NAVNEET JAN NOV 1971 G.K.U

रु. 6650 में लंदन बस पर सैर का मज़ा.

रु. 5850 में मज़ेदार इटालियन खाने का लुत्फ़.
रु. 6590 में स्विट्ज़रलैंड के शीतल प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द.
रु. 6600 में मोनालिसा की मोहक मुस्कान का रहस्य.

रोम, जिनेवा, पेरिस, लंदन. साथही हमारे वापसी ट्रिपवाले एक्सकर्शन फ़ेयर पर और भी कई शहर.

मिलान—रु. 6099. बुसेल्स या प्राग या वार्सा—रु. 6600.

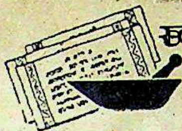
यूरोप के लिए सभी एक्सकर्शन फ़ेयर 14 से 90 दिनों तक के लिए मान्य हैं, तथा रास्ते में किसी एक जगह रुकने की सुविधा भी है. भारत—यू. के. फ़ेयर 21 से 90 दिनों के लिए मान्य हैं और रु. 7350 देने पर रास्ते में किसी एक जगह रुकने की सुविधा भी मिलती है.

सभी एक्सकर्शन फ़ेयर बम्बई/दिल्ली से ही यात्रा प्रारंभ करने के लिए हैं. दूसरी जानकारी के लिए अपने ट्रैवेल एजेंट या एयर-इंडिया से संपर्क कीजिए.



एयर-इंडिया
शुभ यात्रा...शुभ संदेश

AI-3908 A



स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के लिये 3000 वर्ष पुराना नुसखा

डाबर च्यवनप्राश पूरे परिवार के लिये ४ सूत्री आयुर्वेदिक टॉनिक



विटामिन सी से भरपूर, स्वादिष्ट खट्टा-मीठा मिश्रण अपने प्राकृतिक रूप में

१. शरीर के तंतुओं को जवान रखता है

डाबर च्यवनप्राश से शरीर के तंतुओं का क्षय धीमा पड़ जाता है।

२. शरीर की प्रतिरक्षा शक्ति को बढ़ाता है

डाबर च्यवनप्राश शरीर की संपूर्ण प्रतिरोधक शक्ति का विकास करता है तथा सर्दी और ज़ुकाम में भी लाभदायक है।

३. स्फूर्ति प्रदान करता है

डाबर च्यवनप्राश बच्चों में स्फूर्ति बनाए रखता है और वृद्धावस्था में कार्यशक्ति विकसित करता है।

४. इसमें संचय और वृद्धि करने के गुण हैं

डाबर च्यवनप्राश शरीर के विकास में मदद देता है।

देवताओं का नुसखा

च्यवनप्राश का नुसखा ३००० वर्षों से भी पहले का है, जैसाकि कहा जाता है कि देवताओं के चिकित्सकों ने महर्षि च्यवन को उनका यौवन फिर से प्रदान करने के लिए तैयार किया था। यद्यपि च्यवनप्राश सम्भवतः विश्व में प्राचीन स्वास्थ्य-प्रद टानिक है, तथापि डाबर में इसके बनाने का तरीका पूर्ण आधुनिक एवं वैज्ञानिक है।

मुफ्त चम्मच एक किलो डिब्बे के साथ

एक शक्तिदायक आयुर्वेदिक टानिक

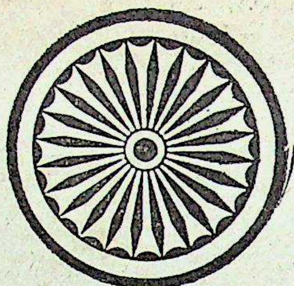
डाबर च्यवनप्राश

सभी दवा विक्रेताओं के यहां मिलता है।



क्या आप हररोज़ का कामकाज
फिर से करने को उत्सुक हैं?
ग्लैक्सोज़-डी® आपको तुरन्त शक्ति





२६ जनवरी

तीन वरदानों वाली – **यह पावन वर्षगांठ**
आज के दिन, ४९ वर्ष पहले, हमने पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का संकल्प लिया।
आज के ही दिन, १९५० में, हमने भारत को एक गणराज्य घोषित किया और अपने लिए एक संविधान स्वीकार किया जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता के आदर्शों को शामिल किया गया था।
दो वर्ष पहले, लगभग इसी समय, हमने संविधान द्वारा गारंटी किये गये लोकतंत्र के रास्ते पर अपनी यात्रा फिर से प्रारम्भ की।
इस पावन वर्षगांठ के शुभ अवसर पर –
आइये ! हम सब अपनी स्वतंत्रता फिर से कायम करने के लिए भारत की जनता को धन्यवाद दें।
आइये ! हम उन लोगों के सपनों को साकार करने का प्रयत्न करें, जिन्होंने स्वतंत्रता और समानता के लिए अपने प्राणों की आहुति दी।
आइये ! हम सब पुनः संकल्प करें कि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त करने के लिए तेजी से प्रयत्न करेंगे।

DAVP 78/394

मुझे ग्लायकोडिन पर भरोसा है

ये मुन्नी को खांसी से जल्द राहत दिलाएगा





ग्लायकोडिन ने खांसी की दूसरी दवाओं के मुकाबले, भारत भर में ज़्यादा से ज़्यादा लोगों की खांसी दूर की है.

इसीलिये ये सबसे आगे हैं.

जहां जहां खांसी का प्रभाव हुआ हो, वहां-वहां यह तेजी से असर करता है... खांसी से जल्द और शर्तिया छुटकारा दिलाता है.

- गले की खराश मिटाता है.
- छाती में जमे बलगम को निकालता है और सर्दी-खांसी से राहत दिलाता है.
- छाती की जकड़न दूर करता है जिससे सांस लेने में आसानी होती है... आप चैन की नींद सो सकते हैं.

खांसी कैसी भी हो— उस पर पूरा काबू पाने के लिए आप मधुर स्वादवाले ग्लायकोडिन पर भरोसा कर सकते हैं.



ग्लायकोडिन— भारत में खांसी को पछाड़ने वाला चैम्पियन... विश्वसनीय दवाएं बनानेवाली कंपनी एलेम्बिक की ओर से.

everest/519/ACW-hn



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
सहसंपादक
सुरेश सिन्हा
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक .... महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक १ | इस अंक में | जनवरी १९७९

KI-0948

चित्र : हर्मन हेस, जगदीश गुप्त, ओके, शेणै, सत्यकाम राहुल, डा. भटनागर, सतीश चव्हाण, शरद कांबली, पंकज गोस्वामी, दत्त प्रसन्न राणे, चोणकर।

श्रीगोपाल नेवटिया लेख-प्रतियोगिता (१९७८) का परिणाम फरवरी १९७९ के नवनीत में प्रकाशित होगा। —संचालक

एक अपील

हिंदी के निष्ठावान पत्रकार श्री गौरीशंकर गुप्त, वाराणसी लंबे अरसे से अस्वस्थ हैं और अर्थाभाव के कारण समुचित चिकित्सा नहीं करा पा रहे हैं। श्रद्धेय श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनकी सहायता के लिए यह अपील निकाली है :

श्री गौरीशंकर गुप्त को मैं बहुत वर्षों से भली भांति जानता हूं और उनकी असाधारण परिश्रमशीलता तथा लगन से भी पूर्णतया परिचित हूं।

भाई गौरीशंकरजी विशुद्ध साहित्यिक हैं और संकटग्रस्त होते हुए भी वे निरंतर सात्त्विक साहित्य की सृष्टि करते रहे हैं। अब आर्थिक कठिनाइयां उनके मार्ग में विशेष बाधक होने लगी हैं। वे सरकार तथा समाज से प्रचुर आर्थिक सहायता पाने के पूर्ण अधिकारी हैं।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

सहायतार्थ रकम निम्नलिखित पते पर भेजी जा सकती है :

श्री गौरीशंकर गुप्त, ए २/५, कामेश्वर महादेव की गली, गायघाट, वाराणसी-१

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-वृष्टि

विशेषांक देखकर मुग्ध हो गया! कविताएं कई हैं, पर एक से एक चित्ताकर्षक, सरल और सामान्य पाठक को सरसता, आह्लाद और प्रफुल्लता प्रदान करने वाली। 'किमाश्चर्यम्?' एक सुखद स्तंभ है, जिसमें विभिन्न विचारकों से मन को अनेक प्रकार के विचार-व्यंजनों का स्वाद मिला। विदेशी लेखकों की रचनाएं, अनुवाद, सहृदय पाठकों का सहज स्पर्श करती हैं और पाठक नवल लोक में विचरित होते हैं। संस्मरणों में रचनाकारों का व्यक्तित्व जितना उभारा गया, उतनी चर्चित व्यक्ति को नगण्यता-सी मिलती लगी। विज्ञान, प्रविधि, खगोलशास्त्र, इतिहास संबंधी गवेषणात्मक सामग्री का अभाव अखरा। मुखपृष्ठ का चित्र मध्ययुगीन जीवन-धारा को प्रतिबिंबित करता है।

—चक्रधर नलिन, रायबरेली-२२९००१

दीपावली-विशेषांक में विज्ञान संबंधी परिचर्चा में प्रो. बी. आर. शेषाचार के विचार जितने स्वस्थ, संतुलित तथा समग्रता लिये हुए हैं, डा. एच. नरसिम्हैया के विचार उतने ही असंतुलित और एकांगी हैं। लगता है, डा. नरसिम्हैया यह भूल गये कि केवल विज्ञान के द्वारा जीवन के असंख्य रहस्य नहीं जाने जा सकते।

'किमाश्चर्यम्' के उत्तर में डा. भगवतशरण उपाध्याय ने श्रीराम के जीवन की अगणित महनीय घटनाओं की उपेक्षा करके केवल दो घटनाओं के आधार पर (उनकी भी अपने अभिप्राय के अनुसार व्याख्या करके) न्यायाधीश की तरह जो निर्णय सुना दिया, वह अपने आपमें एक महान आश्चर्य है।

—डा. सुवालाल उपाध्याय शुकरत्न,
ग्वालियर, म. प्र.

०००

श्री ना. ग. गोरे का लेख 'क्या वे अपनी संस्कृति बचा सकेंगे?' (दीपावली-विशेषांक) ब्रिटेन के भारतीयों के संदर्भ में ही नहीं, भारत में रहने वाले भारतीयों के संदर्भ में भी उतनी ही तीव्रता से लागू होता है। जिस प्रकार के उदाहरण श्री गोरे ने विदेश से दिये हैं, वैसे कोटि-कोटि उदाहरण भारतभूमि में ही उपलब्ध हैं।

एक बार आकाशवाणी में मैंने वाल्मीकि जयंती के अवसर पर 'मा निषाद' शीर्षक रूपक प्रसारित करने का प्रस्ताव रख दिया था। उस रूपक के संबंध में पत्र-पत्रिकाओं

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। भारत में **नवनीत** का आजीवन सदस्यता-शुल्क ४०० रुपये है। (विदेशों में) हवाई डाक से एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३०० रु., समुद्री डाक से एक वर्ष का ६० रु., दो वर्ष का १०५ रु. तथा तीन वर्ष का १५० रु.।

में भेजने के लिए टिप्पणी तैयार कर देने को मुझे कहा गया। परतु रूपक का आलेख अभी प्राप्त नहीं हुआ था, अतः मैं टिप्पणी अभी तैयार नहीं कर पाया था। संबद्ध अधिकारी ने समझा कि मैं आलस्य-वश काम को टाल रहा हूं। अंततः वे बोले—'कृपया आप मुझे यह बता दें कि "मा निषाद" कौन थी, टिप्पणी मैं स्वयं लिख लूंगा।'

एक राजपत्रित कर्मचारी उच्च पद के लिए लोक सेवा आयोग के समक्ष साक्षात्कार के लिए बुलाये गये थे। तैयारी के लिए वे मेरे पास आये। मैंने उनसे प्रश्न किया कि 'रामचरितमानस' नाम का क्या महत्त्व है? क्या 'रामचरित' पर्याप्त नहीं था? 'मानस' शब्द क्यों जोड़ दिया गया? उन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया—'मानस यानी मनुष्य। राम जैसे मानस की कहानी इस पुस्तक में है, इसीलिए "रामचरितमानस" नाम रखा गया।' इसी प्रकार के उत्तर देकर वे उच्च पद के लिए चुन लिये गये।

भारत सरकार का सूचना-प्रसारण मंत्रालय और केंद्र व राज्यों के शिक्षा मंत्रालय इसी तरह के लोगों से भरे पड़े हैं, जबकि यही वे तंत्र हैं जिनसे देश की संस्कृति की रक्षा की आशा की जानी चाहिये। स्कूल-कालेजों और विश्वविद्यालयों में आजकल जो कुछ देखने में आ रहा है, वह किस सांस्कृतिक परंपरा का प्रतीक है? दूरदर्शन पर किस प्रकार के कार्यक्रमों की प्रधानता रहती है? महंगे होटलों में पाश्चात्य संगीत और नृत्य पेश करने वाले पेशेवर लोगों को युवकों के कार्यक्रमों में युवा रुचि के नाम पर दिखाया जा रहा है और ऊपर वाले महाप्रभु हैं कि कुछ नहीं कह पा रहे। मुझे तो यह सब देखकर उर्दू के श्रेष्ठ और लोकप्रिय कवि फ़ानी का यह शेर याद आता है:

फ़ानी दकन में जाके उक़दा खुला कि हम
हिंदोस्तां में रहते हैं हिंदोस्तां से दूर।

—विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक', नयी दिल्ली-११००५८

०००

दीवाली-विशेषांक बहुत अच्छा लगा। मेरे लिए व्यक्तिगत रूप से कविताओं की देन अधिक महत्त्वपूर्ण रही। सभी कविताओं ने तो नहीं परंतु निरंकारदेव सेवक, बशीर अहमद मयूख एवं अंचलजी की कविताओं ने विशेष रूप से प्रभावित किया। शेष कविताएं मुझे स्तरीय नहीं लगीं। अंचलजी की प्रबंध कृति के प्रकाशित अंश के संबंध में भी कुछ कहना चाहता हूं। उनके काव्य की उत्कृष्टता के प्रति यद्यपि मुझे पूरी आस्था है, परंतु इस प्रबंधांश में प्रयुक्त छंद में

वे वैसी सफलता अर्जित नहीं कर पाये हैं, जो उन्होंने 'इन आवाजों को ठहरा लो' संकलन की कविताओं में प्राप्त की है। दूसरा दोष इस अंश में भावों की आवृत्ति का है। संभवत: अंचलजी का गीतिकवि इसके पीछे रहा होगा।

—राजेंद्र गौतम, दिल्ली-११००३२

०००

दीपावली-विशेषांक देखा। गोपाल चतुर्वेदी का गीत 'संदर्भों के साये' अपनी सादगी और आधुनिक बोध की प्रामाणिकता के लिए काफी दिनों तक याद किया जायेगा। इसी अंक में भवानीप्रसाद मिश्र की छोटी-छोटी कविताएं और फैज़ अहमद फैज की साहित्यिक कृति देकर आपने पाठकों को एक साथ बहुत-सी अच्छी सामग्री परोसी है।

—डा. हरिहर प्रसाद, डा. मोतीलाल, नयी दिल्ली

०००

दीपोत्सव-अंक में हिंदी की उन्नति पर परिचर्चा अच्छी लगी। 'किमाश्चर्यम्' में मेरी समझ से ख्वाजा अहमद अब्बास, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, गुरुदत्त, काका हाथरसी के उत्तर विषय की दृष्टि से ठीक हैं। कुछ महानुभावों ने संभवत: इस परिचर्चा को साहित्यिक मखौल समझा और जो जी में आया लिख दिया—शायद यह समझते हुए कि हम हिंदी के गणपति हैं, अतः जो भी लिखेंगे, छपेगा ही। यह भी किमाश्चर्यम् ही है।

—फतहसिंह लोढ़ा, भीलवाड़ा, राजस्थान

कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा भी न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेजकर मंगवायी जा सकेगी। —संपादक

अंचलजी की 'योजनगंधा' (दीपावली-अंक) पसंद आयी। महाभारत के सभी प्रमुख पात्रों पर कुछ न कुछ लिखा जा चुका है, किंतु सत्यवती की कुंठा और संत्रास अपने इस संक्षिप्त रूप में ही बहुत कुछ है। नाजिम हिकमत के संस्मरण और मार्क ट्वेन के हास्य के लिए धन्यवाद।

—राहुल कुमार सिंह, अकलतरा, म. प्र.

०००

श्री इंद्रकुमार शर्मा का लेख 'काला मृग' (अक्तूबर अंक) स्वागत-योग्य है। मगर लेखक का यह कहना ठीक नहीं कि काला मृग संसार में केवल भारत में मिलता है। यह मृग अन्य देशों में भी पाया जाता है, जिनमें नेपाल का नाम उल्लेखनीय है। विगत कुछ वर्षों से विश्व वन्य जंतु कोष, यू. एन. डी. पी., स्मिथसोनियन विश्वविद्यालय (अमरीका) तथा फ्रैंकफर्ट जुओलाजिकल सोसायटी जैसी संस्थाओं की मदद से काले मृग को लुप्त होने से बचा

लिया गया है। इस दिशा में नेपाल तथा भारत के प्रयत्न सराहनीय हैं।

—सूरज प्रसाद श्रेष्ठ
संरक्षक : रायल शुक्ला फांटा वन्य जंतु आरक्ष, सिंहपुर, कंचनपुर, नेपाल

०००

नवनीत-परिवार के बूढ़े हितैषी के नाते पिछले दो अंकों की दो भूलों की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूं :

१. अक्तूबर अंक में पृष्ठ ६२ पर एकांकी नाटक 'चक्र' में छपा है—'दांत निपोरकर "गाय ! गाय !" कहकर जोर से हंसने वाले कौरवों के....'। 'गाय ! गाय !' से वहां महाभारत के जिन श्लोकों (सभापर्व ७७.२०-२३ और २८-२९; कर्ण. ८३. १६-२१ और २५-२८ और ४१-४४; शल्य. ५९.३-८) की ओर इंगित किया गया है, उनमें कौरव 'गौः ! गौः !' कह-कर हंसे थे। 'गो' शब्द संस्कृत में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों में होता है। कौरवों ने भीम को 'गौः' पुल्लिंग में कहा था, स्त्री-लिंग म नहीं। उनका आशय भीम को बैल कहना था। 'गाय' कहा होता तो भीम बुरा क्यों मानता ! उसे 'गौर्वाहीकः' भी कहा गया था, जिसका पंजाबी में अनुवाद होगा—'पंजाबी ढग्गा'।

२. दीपावली अंक में पृष्ठ १३८ पर 'बिरादरी वाले' नामक कथा छपी है। यह बात कम से कम इतनी पुरानी तो अवश्य है, जितनी संस्कृत की यह उक्ति—'ब्राह्मणो ब्राह्मणं दृष्ट्वा कुक्कुर इव घुर्घुरायते।' और जहां तक मुझे याद पड़ता है, प्रेमचंदजी ने आधी शताब्दी पहले ऐसा ही कुछ लिखा था। इतनी पुरानी बात **नवनीत** में नहीं छपनी चाहिये।

—इंद्रचंद्र नारंग, इलाहाबाद

* ये बातें श्री नारंगजी ने एक निजी पत्र में लिखी थीं और ये हमें पाठकों के लिए उपयोगी प्रतीत हुईं।

—संपादक

०००

आपके कृपापत्र से यह पता चला कि एक पाठक ने आपको सूचित किया है कि मेरी रचना 'सर्द चांदनी का दर्द' **नवनीत से** पूर्व **अरुण** (मुरादाबाद) में प्रकाशित हो चुकी थी।

मैंने दो वर्ष पूर्व १९७६ में अपनी कहानी 'टूटते संदर्भ' प्रकाशनार्थ **अरुण** में भेजी थी। काफी समय तक वहां से कोई उत्तर नहीं आया। मैंने दो स्मृतिपत्र भी संपादक के नाम डाले कि आप अगर मेरी रचना को प्रकाशित नहीं कर रहे हों तो कृपया रचना वापस भेज दें, ताकि मैं अन्यत्र उसका उप-योग कर सकूं। उनका भी कोई उत्तर न पाकर मैंने उसे कुछ बदलकर 'सर्द चांदनी का दर्द' के नाम से 'श्रीगोपाल नेवटिया कहानी प्रतियोगिता-१९७७' में भेजा। मुझे तो आपके पत्र से ही इसका पता चला कि **अरुण** ने भी उस रचना को छापा है और ढूंढ़ने पर जुलाई १९७८ का **अरुण** मिला और उसमें वह कहानी प्रकाशित मिली। मुझे **अरुण** से कहानी के प्रकाशन की कोई सूचना नहीं मिली।

इस अवस्था में मेरा दोष क्या और

कितना है, इसका निर्णय आप ही करें।

—मशीयत अली, कोटा-३२४००१

०००

हिंदी के दो-तीन प्रयोगों के संबंध में मन में उठी शंका प्रस्तुत कर रहा हूं :

१. 'अधिकांश' शब्द का प्रयोग प्रायः किया जाता है—'अधिकांश लोग', 'अधिकांश देश' आदि । मेरा खयाल है कि इन स्थलों पर 'अधिकतर' होना चाहिये । वरना यहां 'अंश' (अधिक+अंश= अधिकांश) का कोई अर्थ नहीं निकलता।

२. 'हर आने-जाने वालों से' जैसे प्रयोग आजकल बहुत मिलते हैं। 'हर' के साथ तो एकवचन होना चाहिये।

३. 'दंपति' शब्द के साथ क्रिया का वचन क्या हो—'दंपति आ रहा है' या 'दंपति आ रहे हैं' ?

—रवींद्र, पांडिचेरी-२

* १. 'अधिकांश' का 'ज्यादातर' अर्थ अब कोश-सम्मत है (द्रष्टव्य—बृहत् हिंदी कोश, ज्ञानमंडल, काशी)। यों व्याकरण की दृष्टि से यह अर्थ निकालना कठिन है। यदि इसे षष्ठी तत्पुरुष मानें तो अर्थ 'अधिक का अंश' होगा; हां, कर्मधारय समास मानें तो शायद खींच-तानकर यह अर्थ निकाला जा सके। परंतु जब कोई पद-प्रयोग बहुत प्रचलित हो जाता है, व्याकरण उसे मान लेता है—शास्त्राद् रूढिर्बलीयसी।

वैसे जिस 'अधिकतर' के आप तरफदार हैं, वह भी 'ज्यादातर' के अर्थ में बहुत शास्त्रशुद्ध नहीं है। बृहत् हिंदी कोश ने इसे संस्कृत शब्द माना है और इसके दो अर्थ दिये हैं – १. (विशेषण) और अधिक, किसी की तुलना में ज्यादा बड़ा; २. (अव्यय) बहुत करके, ज्यादातर। मगर विचार करें तो दूसरा अर्थ संस्कृत के हिसाब से निकलता नहीं। संस्कृत का तद्धित प्रत्यय 'तरप्' कम्पैरेटिव डिग्री का सूचक है, जैसे—स्वच्छतर, सुंदरतर। यदि 'अधिकतर' में 'तरप्' है तो अर्थ हुआ (दो में से) 'ज्यादा अधिक'। मेरा तो खयाल है कि अव्यय 'अधिकतर' शब्द 'ज्यादातर' में 'ज्यादा' की जगह 'अधिक' बैठकर बनाया गया है। इस हिसाब से यह संकर शब्द है। सौभाग्य से शब्दलोक में 'संकरो नरकायैव' नहीं होता।

२. फारसी विशेषण 'हर' के साथ एकवचन ही ठीक लगता है। उसका अर्थ ही ही प्रत्येक है। वैसे, every के साथ बहुवचन का प्रयोग अंग्रेजी भी में चलता था; हालांकि फ़ाउलर जैसे शब्दब्रह्मा उसे गलत करार दे चुके, फिर भी कहीं-कहीं वह मिलता है।

३. संस्कृत शब्द 'दंपती' है; बृहत् हिंदी कोश भी उसे ही शुद्ध मानता है। संस्कृत में 'दंपती' द्विवचन है। पुराने निरुक्तकार इसकी व्युत्पत्ति यों करते हैं—जाया+पति= जम्पती = दम्पती। मुझे तो इसके साथ बहुवचन का प्रयोग ही ठीक लगता है। विशेष आवश्यकता है लोगों को 'दंपत्ति' लिखने से विरत करने की। —नारायण दत्त

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४

व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग, ३३५, बेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४



राजेश्वर गंगवार

जो भोर का तारा है, वही सांध्य-तारा है और वही शुक्र ग्रह है, जो अनेक बातों में पृथ्वी का जुड़वां भाई है। हालांकि हम इसे सुबह-शाम रोज देखते हैं और यह पृथ्वी का सबसे नजदीकी पड़ोसी ग्रह है, फिर भी अभी तक यह हमारे लिए रहस्य-मय बना हुआ है। घनत्व, द्रव्यमान, व्यास आदि अनेक बातों में शुक्र पृथ्वी से बहुत मिलता-जुलता है। शुक्र का घनत्व ५.३ है, पृथ्वी का ५.५; शुक्र का द्रव्यमान ०.८१ है, पृथ्वी का १.००; शुक्र का व्यास लगभग १२,००० कि. मी. है, पृथ्वी का १२,५०० कि. मी.। किंतु वातावरण की दृष्टि से दोनों ग्रहों में इतना भारी अंतर है कि ४८० डिग्री शतांश पर भट्ठी-सा धधकता शुक्र हमारी हरी-भरी पृथ्वी का जुड़वां भाई तो बिलकुल भी नहीं लगता।

शुक्र के चारों ओर जीवननाशक जह-रीली गैस कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों की मोटी व घनी परतें हैं, जिनके कारण उसका धरातल पृथ्वी पर से दूरबीन से भी दिखाई नहीं देता है। उसके धरातल पर वातावरणीय दबाव पृथ्वी की अपेक्षा १०० गुना अधिक है। वायुमंडल के दबाव की अधिकता के कारण शुक्र पर प्रकाश की किरणें ९० डिग्री से भी अधिक मुड़ जाती हैं। यानी अगर कोई मनुष्य शुक्र की सतह पर खड़ा हो सके, तो वह एक ही जगह खड़े होकर पूरे ग्रह को—यानी ग्रह के पृष्ठ भाग को भी—देख सकेगा। यदि उतना ही उच्च दबाव पृथ्वी पर पैदा हो सके, तो भारत में खड़े होकर अमरीका को देखा जा सकेगा।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जब इन दोनों ग्रहों का निर्माण हुआ, तब शुक्र का ताप पृथ्वी की तुलना में सिर्फ १० डिग्री अधिक था; किंतु बाद में वह बढ़ता गया। वातावरण को प्रभावित करने वाले घनत्व, द्रव्यमान, व्यास आदि घटकों की समानता के बावजूद शुक्र का वातावरण पृथ्वी से इतना भिन्न क्यों है? क्या कारण है उसके इस उच्च तापमान और दबाव का?

इस रहस्य को जानने के लिए सन १९६१ से अब तक तेरह बार शुक्र को अंत-रिक्ष-यान भेजे जा चुके हैं—दस बार रूस

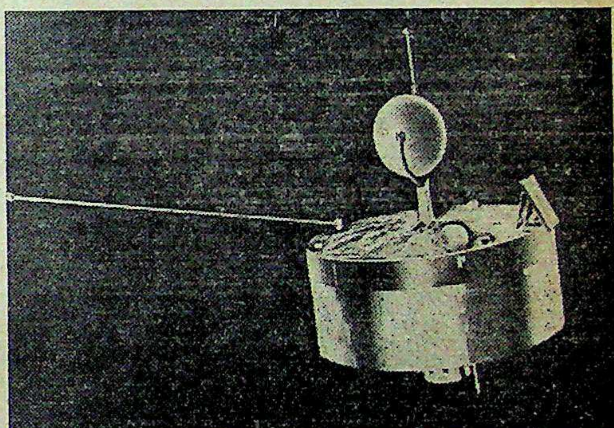
द्वारा और तीन बार अमरीका द्वारा। रूस को शुक्र की सतह पर पांच मानव-रहित वेनेरा-यान उतारने में सफलता मिली है। इनमें वहां सबसे अधिक समय तक सक्रिय रहने वाले यान ने कुल १०७ मिनट तक काम किया। बाकी इससे भी कम समय में नष्ट हो गये। इन यानों से शुक्र के वातावरण के बारे में अनेक बातों का पता चला है।

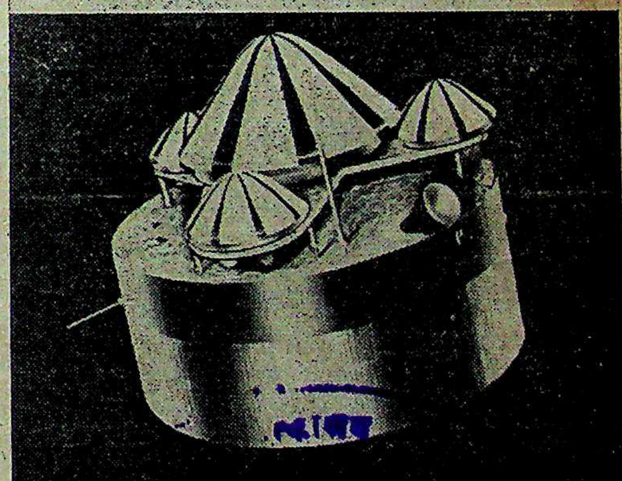
शुक्र के ऊंचे तापमान का कारण है उसके चारों ओर छाये कार्बन डाइ आक्साइड के घने बादल। सूर्य की तप्त किरणें (अवरक्त विकिरण) इन बादलों को बेधकर शुक्र की सतह तक पहुंच तो जाती हैं, किंतु वे उन्हें बेधकर बाहर नहीं निकल पातीं। इस तरह वे वातावरण के तापक्रम को बढ़ाती जाती हैं।

रूसी खोजों के अनुसार, कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों में गंधक का तेजाब और अल्प मात्रा में पानी की भाप भी है। इन बादलों की संरचना और प्रकृति के बारे में इससे अधिक जानकारी अभी तक तो नहीं मिल सकी है। शुक्र की सतह किन तत्वों की बनी है, इस बारे में भी प्रामाणिक जानकारी का अभाव है।

यही सब पता लगाने के लिए शुक्र का अध्ययन जारी है और उसी अध्ययन के अंग हैं अमरीका द्वारा इस ग्रह को भेजे गये दो मानव-रहित अंतरिक्ष-यान—पायोनियर वीनस-१ और पायोनियर वीनस-२।

पायोनियर वीनस-१ (पा. वी.-१) २० मई १९७८ को पृथ्वी से रवाना हुआ और





पायोनियर वीनस-१ (ऊपर) और पायोनियर वीनस-२।

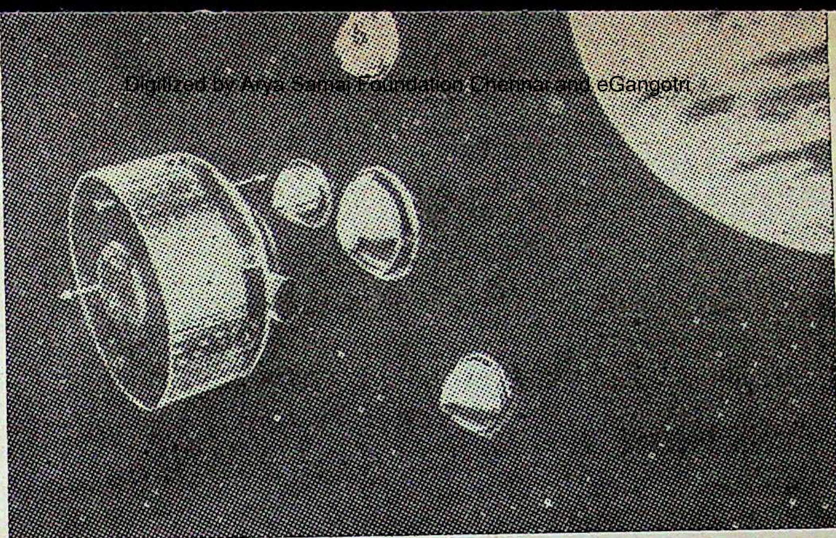
उसके ढाई महीने बाद ८ अगस्त १९७८ को रवाना हुआ पायोनियर वीनस-२ (पा. वी.-२)। दोनों ही यान ढाई-ढाई मीटर व्यास के हैं और पीपे के आकार वाली 'बस' जैसे हैं। पा. वी.-१ को शुक्र तक पहुंचने के लिए ४८ करोड़ कि. मी. की यात्रा करनी पड़ी। पा. वी.-२ कुछ छोटे रास्ते से गया; उसे सिर्फ ३५ करोड़ ४० लाख कि. मी. का सफर तय करना पड़ा। पहला यान ४ दिसंबर को भारतीय समय के अनुसार रात के ९ बजकर २६ मिनट पर शुक्र की कक्षा में पहुंच गया। उसके पांच ही दिन बाद ९ दिसंबर को दूसरा भी पहुंचा।

पा. वी.-१ शुक्र की कक्षा में चक्कर लगाते हुए उसके वातावरण को बेधकर उसकी सतह के नक्शे उतार रहा है। पा. वी.-२ को शुक्र के वातावरण के ताप, घनत्व और दबाव का अध्ययन करने के साथ-साथ यह भी पता लगाना है कि वह वातावरण किन तत्त्वों से बना है और शुक्र के रहस्यमय बादलों की संरचना कैसी है। इसके लिए ९०४ किलोग्राम वजन वाले उस यान ने शुक्र के वातावरण में चार खोजी यान (प्रोब) छोड़े हैं-एक बड़ा और तीन छोटे।

ये खोजी यान शुक्र के वातावरण को बेधते हुए उसकी सतह पर उतरने का प्रयास कर रहे हैं। उनमें से एक यान सही-सलामत सतह पर उतर गया है और काम कर रहा है। मूल यान से अलग होने के बाद से ये पृथ्वी को सूचनाएं भेजने लगे हैं। ये अपने में स्वतंत्र यान हैं। इनका नियंत्रण न तो मूल यान से हो रहा है, न पृथ्वी पर के नियंत्रण-कक्ष से। मूल यान से छूटने के बाद इनके ट्रांसमिटर चालू हो गये। ये केवल संदेश भेजेंगे और पृथ्वी उन संदेशों को सुनेगी।

इन खोजी यानों में से जो सबसे बड़ा है, वह १.५ मीटर व्यास की गेंद जैसा है। उसका भार २८९ किलोग्राम है। २८ कि. ग्रा. के वैज्ञानिक उपकरण उसमें हैं। परियोजना-वैज्ञानिक डा. लैरी कोलिन के अनुसार, उसमें रखा सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है एक स्पेक्ट्रोमीटर (न्यूट्रल पार्टिकल मास स्पेक्ट्रोमीटर), जो शुक्र के आंतरिक वातावरण की संरचना का अध्ययन करेगा। शुक्र की सतह की ओर जाते समय यह स्पेक्ट्रोमीटर मार्ग में आने वाली गैसों और बादलों तथा रासायनिक दृष्टि से सक्रिय अन्य अनेक घटकों का अध्ययन करेगा। डा. कोलिन का कहना है कि अगर केवल यही उपकरण कार्य करता रहे और अन्य सब उपकरण बेकार हो जायें, तब भी हमारा प्रयास सफल माना जायेगा।

शुक्र के आंतरिक वातावरण का अध्ययन करने के लिए चारों खोजी यानों को उतारकर पा. वी.-२ ने बाह्य वातावरण के अध्ययन करने के इरादे से अपनी चाल कुछ धीमी कर ली है। वह ऊंचाई पर छाये (या उड़ते) बादलों के बारे में आंकड़े भेजेगा और धीरे-धीरे वातावरण की गरमी



पायोनियर वीनस-२ और चार खोजी यान।

से नष्ट हो जायेगा।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि सब कुछ योजनानुसार चलता रहा, तो शुक्र के वातावरण के अनेक रहस्यों का पता चल सकेगा। बस, जरूरत इस बात की है कि खोजी यानों (प्रोब) की बैटरियां काम करती रहें। वैसे पृथ्वी पर निर्मित उपकरण शुक्र के वातावरण में कितने समय तक टिक सकेंगे, यह कहना मुश्किल ही है, क्योंकि पृथ्वी पर शुक्र का-सा वातावरण बनाकर उनमें उनकी जांच करना संभव नहीं है।

शुक्र का वातावरण बदलना

मगर क्या शुक्र पर ही पृथ्वी का-सा वातावरण बनाने की कोशिश नहीं की जा सकती? अत्यंत गरम और कार्बन डाइ आक्साइड व गंधक के तेजाब से बना शुक्र का वायुमंडल प्राणियों की क्या बात, धातु के उपकरणों तक को नष्ट कर डालता है। किंतु इस धधकती भट्ठी को अगर ठंडा कर लिया जाये तो? कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों को कार्बन और आक्सिजन में तोड़ दिया जाये तो?

यदि ऐसा हो सके, तो शुक्र पर भी शीतल वर्षा हो सकती है। फिर उस पर वनस्पतियां भी उग सकती हैं। हमारी पृथ्वी भी तो कभी काफी गरम थी। फिर स्थिति बदली। पहले उस पर अमीबा जैसे एककोशीय जीव का जन्म हुआ और आज अक्ल का पुतला मानव उस पर बसर कर रहा है और अन्य ग्रहों को अपने रहने योग्य बनाने की कल्पनाएं कर रहा है।

अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञानी डा. कार्ल सैगान (निदेशक—लैबोरेटरी फ़ॉर प्लैनेटरी स्टडीज, कार्नेल विश्वविद्यालय, अमरीका) के अनुसार, शुक्र पर आदमी के रहने की बात इतनी असंभव है नहीं, जितनी कि वह सुनने में लगती है।

शुक्र के वायुमंडल में ०.७ प्रतिशत पानी की भाप है। थोड़ी मात्रा में नाइट्रोजन और बहुत अल्प मात्रा में पारे और क्लोरीन के यौगिक भी उसमें विद्यमान हैं। उसमें लगभग ९७ प्रतिशत कार्बन डाइ आक्साइड है। हमारी पृथ्वी पर कार्बन डाइ आक्साइड केवल ०.०३ प्रतिशत है। लेकिन शुक्र की कार्बन डाइ आक्साइड ज्वालामुखियों से उत्पन्न है और वह केवल वायुमंडल में है।

कार्बन डाइ आक्साइड को कार्बन और आक्सिजन में तोड़ना असंभव काम नहीं है। पृथ्वी पर प्रकृति हर क्षण यह कार्य करती रहती है। पौधे कार्बन डाइ आक्साइड में से कार्बन लेकर आक्सिजन छोड़ते रहते हैं। कार्बन से ही पेड़-पौधों का अस्तित्व है और पेड़-पौधों के कारण ही अन्य प्राणियों का जीवन पृथ्वी पर संभव हुआ है। कार्बन डाइ आक्साइड के विभाजित होने की यह प्रक्रिया यदि किसी तरह शुक्र पर शुरू कर दी जा सके, तो फिर यह चक्र स्वयं चलता रहेगा। फिर शुक्र पर भी जीवन संभव हो पायेगा।

शुक्र पर कार्बन डाइ आक्साइड के विच्छेदन के लिए कार्ल सैगान ने एक योजना बनायी है। इसके लिए वे शुक्र के वायुमंडल में ऐसे जीवकोश छोड़ना चाहते हैं, जो ४८० शतांश जितने उच्च ताप को सहन कर लेते हों और कार्बन पर जीते हों।

इस तरह का ऐल्जी नामक एककोशीय जीव पृथ्वी पर विद्यमान है। असल में ऐल्जी वनस्पति और जंतु दोनों का मिलाजुला रूप है। कहा जाता है कि पृथ्वी पर भी सबसे पहले यही उत्पन्न हुआ और इसी की बदौलत पृथ्वी पर जीवन-योग्य वातावरण तैयार हो सका। ऐल्जी के सामान्य रूप हैं काई और सिवार।

ऐल्जी की ही एक जाति है—ब्लू ग्रीन ऐल्जी (सियानेफाइटा)। यह तापक्रम की बहुत अधिक घट-बढ़ भी सहन कर लेती है। अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में भी यह मजे से जीवित रहती है। यहां तक कि परमाणु-संयंत्र से होकर बहने वाले पानी में भी यह पायी गयी है। (मनुष्य तो उस जगह पहुंचते ही घातक विकिरणों से मौत के मुंह में पहुंच जायेगा।) दक्षिण ध्रुव की बर्फ में भी यह रह लेती है। बर्फ की सिल्ली में यह वर्षों तक जिंदा दबी रहती है, और २२५ डिग्री शतांश तक गरम जल में भी मरती नहीं।

ब्लू ग्रीन ऐल्जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह बिना लैंगिक संबंध के उत्पन्न होती है और इसकी वंशवृद्धि बड़ी तेजी से होती है। प्रोटोजोआ (जिससे सचल जीव विकसित हुए) और बैक्टीरिया (जिन्हें पौधों की श्रेणी में रखा जाता है) दोनों की जन्मदात्री यह ब्लू ग्रीन ऐल्जी ही है। इस तरह यह पृथ्वी के सभी जीवों (जंतु और वनस्पतियों) की आदिपूर्वज है।

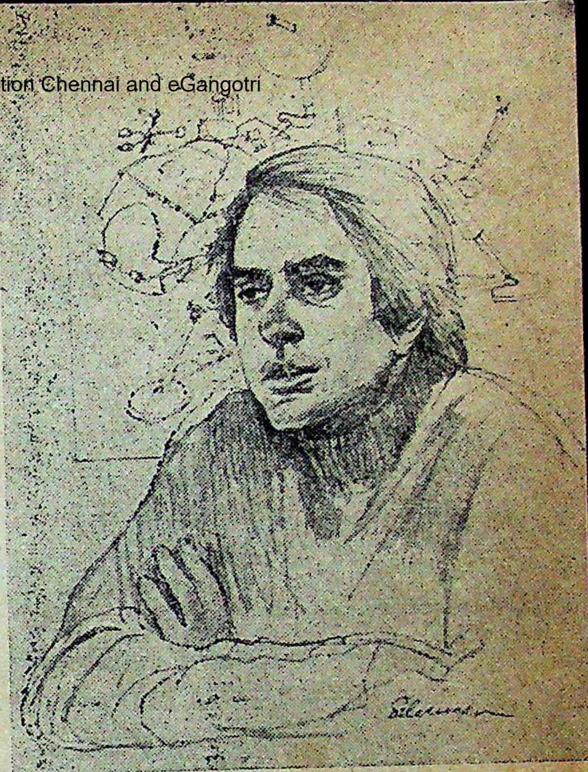
इन विशेषताओं के कारण ही ब्लू ग्रीन ऐल्जी को कार्ल सैगान ने शुक्र पर भेजने के लिए चुना है। उनका सुझाव है कि एक

साथ कई दर्जन अंतरिक्ष-यान शुक्र की कक्षा में भेजे जायें, जिन पर टारपीडो और राकेट हों। प्रत्येक राकेट के अग्रभाग में भारी संख्या में ब्लू ग्रीन ऐल्जी हों। राकेट शुक्र के वायुमंडल में करीब पांच-पांच सौ मील के अंतर पर डेढ़-डेढ़ मिनट बाद छोड़े जायें। वे कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों तक पहुंचते ही ऐल्जी को मुक्त कर देंगे। इसके लिए उन्हें थोड़ा-सा विस्फोटक पदार्थ भी इस्तेमाल करना पड़ेगा।

इस तरह अरबों-खरबों की संख्या में ब्लू ग्रीन ऐल्जी शुक्र के वातावरण में पहुंच जायेंगे। वहां वे कार्बन डाइ आक्साइड से कार्बन लेकर अपनी वंशवृद्धि शुरू कर देंगे।

यह प्रक्रिया जब शुरू हो जायेगी तो स्वयं ही तेजी पकड़ती जायेगी। धीरे-धीरे, शुक्र के वायुमंडल में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा घटती जायेगी और आक्सिजन की मात्रा बढ़ती जायेगी। कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों के छंटते-छंटते शुक्र की धरती पृथ्वी पर से दूरबीन से दिखाई देने लगेगी।

डा. सैगान की योजना की उपयुक्तता की जांच करने के लिए १९७० में चार जीवविज्ञानियों ने कार्बन डाइ आक्साइड से युक्त टैंकों में ब्लू ग्रीन ऐल्जी रखी। टैंकों में गैस इतनी अधिक दबाकर भरी गयी थी कि थोड़ी और भरी जाने पर टैंकों की दीवारें फट सकती थीं। उस भयंकर दबाव पर ऐल्जी अपनी वंशवृद्धि करती रही। प्रयोग की एक शृंखला में तो ऐल्जी ने आक्सिजन की मात्रा में ३८० प्रतिशत



कार्ल सैगान—शुक्र का वायुमंडल बदल दें।

प्रतिदिन के हिसाब से वृद्धि की।

इन प्रयोगों से यह भी पता चला कि गरम चश्मों में पायी जाने वाली सियानेडियम काल्डेरियम जाति की ब्लू ग्रीन ऐल्जी शुक्र पर भेजने के लिए सबसे उपयुक्त है।

शुक्र पर शीतल वर्षा

ब्लू ग्रीन ऐल्जी की बदौलत जैसे-जैसे शुक्र के वायुमंडल में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा कम होती जायेगी, वैसे-वैसे अवरक्त विकिरण को शुक्र के वायुमंडल से छूट भागने का अवसर मिलता जायेगा। इससे निचले वायुमंडल का तापक्रम कम होता जायेगा। वायुमंडल में विद्यमान भाप संघनित होती जायेगी। अनुमान है कि यह

भाप २५० से. मी. वर्षा के लिए काफी होगी। पर तब भी पानी की बूंदें शुक्र की धरती तक नहीं पहुंच सकेंगी; क्योंकि ४८० शतांश के तापमान के कारण बीच में ही वे फिर भाप बन जायेंगी। हां, इससे शुक्र का तापमान कुछ कम जरूर होगा।

उधर वायुमंडल में विद्यमान ऐल्जी आक्सिजन और कार्बन से अपने लिए कार्बोहाइड्रेट और ग्लूकोज बनायेंगे। इस तरह वहां प्रकाश-संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस) की प्रक्रिया भी शुरू हो जायेगी। इन्हीं कार्बोहाइड्रेटों से जटिल कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति होगी, जिनसे शुक्र पर वनस्पति का विकास संभव होगा।

वर्षा की प्रक्रिया जो एक बार शुरू हुई, वह बार-बार होती रहेगी और हर बार वर्षा की बूंदें पिछली बार की अपेक्षा शुक्र की धरती के अधिक नजदीक पहुंचेंगी। जब तापक्रम २०० डिग्री शतांश तक गिर जायेगा, तब वर्षा और भी तेजी से होने लगेगी और पानी शुक्र के धरातल तक पहुंच जायेगा।

इस तरह वायुमंडल में कार्बन डाइ आक्साइड के बादलों के छंट जाने से शुक्र पर आक्सिजन पर्याप्त मात्रा में हो जायेगी। इस आक्सिजन से वहां ओजोन की परत का निर्माण होगा, जो सूर्य की खतरनाक पराबैंगनी किरणों को शुक्र की सतह तक पहुंचने से रोकेगी। अंततः मनुष्य के निवास के लिए एक पड़ोसी ग्रह प्राप्त हो जायेगा।

अपनी इस योजना के बारे में कार्ल सैगान ने स्वयं एक नैतिक प्रश्न उठाया है। सैगान का खयाल है कि शुक्र के मध्यवर्ती वायुमंडल में अमीबा या जेलीफिश जैसे जीव तैर रहे हो सकते हैं। ये जीव कार्बन डाइ आक्साइड पर ही पलने वाले होंगे, क्योंकि यदि वे कार्बन-भक्षी होते तो शुक्र के कार्बन डाइ आक्साइड के बादल कभी के छंट गये होते।

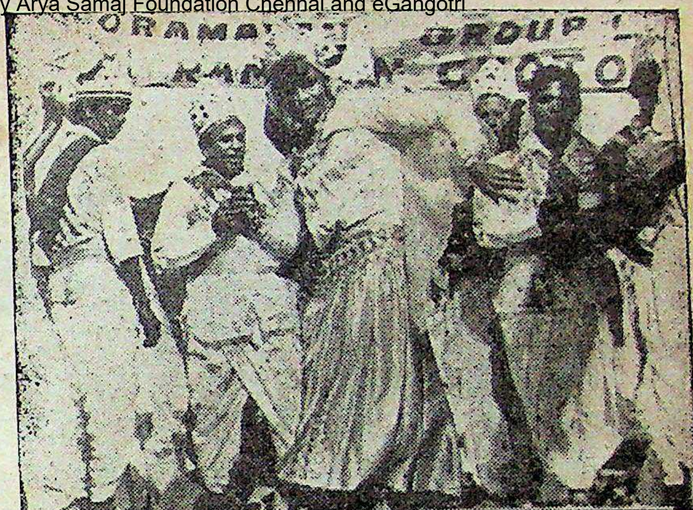
यदि शुक्र के वायुमंडल में ऐसे कोई जीव हैं, तो हमारे भेजे हुए ऐल्जी शुक्र की कार्बन डाइ आक्साइड को तोड़ने की प्रक्रिया में उन जीवों को भी नष्ट कर देंगे। लेकिन शुक्र के उन जीवों ने ही अगर हमारे ऐल्जी को मार दिया तो? आखिर वे तो अपने ही घर में होंगे—उन परिस्थितियों के अभ्यस्त। वे ऐल्जी पर भारी भी तो पड़ सकते हैं।

शुक्र के जीवों और ऐल्जी में लड़ाई ठने या नहीं, पर यह योजना है सचमुच बड़ी रोमांचक। यदि यह सफल हो गयी, तो शायद मनुष्य शुक्र पर घर बना लेगा।

लेकिन यहीं समस्याओं का अंत नहीं हो जायेगा। शुक्र पर एक सूर्योदय होने के बाद से अगला सूर्योदय होने के बीच पृथ्वी पर ११६.८ दिन बीत जाते हैं। यानी शुक्र का एक अहोरात्र हमारे ११६.८ अहोरात्रों के बराबर होता है। ५८.४ दिनों की रात तो काटे न कटेगी। मगर मनुष्य शायद अलग-अलग प्रदेशों में शिबिर बनाकर अपनी इच्छा के अनुसार दिन और रात का सेवन किया करेगा।

—हिंदी विभाग,
भारतीय रिजर्व बैंक, बंबई-४००००१





त्रिनिदाद में रामलीला की परंपरा

डा. जगदीशचंद्र झा

भारत के मुख्य पर्वों में विजयादशमी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत के हर राज्य में अब भी यह समारोह मनाने की परंपरा कायम है। इस अवसर पर भारत के कुछ राज्यों में 'रामलीला' मनाने की भी परिपाटी है।

सन १८४५ से १९१७ के बीच करीब डेढ़ लाख भारतीय बंधुआ मजदूर के रूप में भारत से त्रिनिदाद भेजे गये थे। कालक्रम में अपनी कला और संस्कृति को उन्होंने कायम रखा। भारत के अन्य पर्व-त्योहारों की भांति त्रिनिदाद में विजयादशमी के अवसर पर 'रामलीला' मनाने की परंपरा कुछ संशोधित रूप में आज भी कायम है।

बंधुआ मजदूर त्रिनिदाद में गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाये गये थे और उन्हीं मजदूरों ने रामलीला की यह परंपरा यहां कायम की। उन मजदूरों में लगभग तीन चौथाई उत्तर प्रदेश और बिहार के गांवों से आये थे, इसलिए त्रिनिदाद की रामलीला उसी प्रकार की थी जैसी अंग्रेज पर्यटक बिशप हेबर ने सन १८२४ में इलाहाबाद में देखी थी—ढोल, घड़ी, घंटे, आदि के बीच गहनों, चमकते कागज के मुकुट आदि से सजे, तीर-धनुष से लैस राम-लक्ष्मण, बांस के घेरे, राक्षसों का पुतला और मुखौटे, रंगीन वस्त्र आदि में वानर-गण।

शुरू-शुरू में त्रिनिदाद में जब भारतीयों

की संख्या कम थी या उनमें अच्छे रामायणी या रामलीला के जानकार का अभाव था, वे चाहते हुए भी रामलीला जैसे पर्व का आरंभ नहीं कर सके। लेकिन १८९० में राजनाथ करवर महाराज नामक एक पुरोहित ने डाव नामक गांव में रामलीला का शुभारंभ किया (देखिये, पोर्ट आफ स्पेन गजट, १० अक्तूबर १९०१, पृ. ६)।

प्रवासी भारतीयों ने बहुत उत्साह से इसका स्वागत किया और इसके लिए हर प्रकार की तैयारी की गयी। जंगल साफ करके बांस के घेरे डाले गये और मचान बनाये गये। उत्तर का मचान श्रीराम का 'सिंहासन' और दक्षिण का लंकापति रावण का था। सस्वर रामायण-पाठ करने वाले पंडितों का स्थान दोनों सिंहासनों के बीच में था। रंगीन कागज की तिकोन झंडियां लटकायी गयीं, आम और नारियल के पत्ते डोरियों में लटकाये गये और विभिन्न प्रकार के फूल-पत्तों और केले से द्वार सजाये गये। उस समय पूरे त्रिनिदाद में करीब १० हजार भारतीय थे, और हजारों लोग इसे देखने आये। आयोजकों ने उन्हें चीनी का शरबत पिलाया और भारतीय खाना खिलाया। कुछ आगंतुक अपने साथ ढोल, मृदंग, खंजड़ी, करताल आदि भी लेते आये थे। प्रतिदिन जब तक रामलीला आरंभ न हो जाती, वे भजन गाते रहते थे। एक अजीब समां था।

चार बजे के करीब आरती के साथ रामलीला का शुभारंभ हुआ। राम, लक्ष्मण, सीता आदि की भूमिका ब्राह्मण और क्षत्रिय बालकों ने की तथा रावण और उसके दल के लोगों की वैश्य तथा शूद्र लड़कों ने। रामलीला में भाग लेने वाले लड़कों को दस दिनों तक गांव के मंदिर में ही रखा गया। चूंकि उन्हें स्वच्छ तन-मन से रहना था, इसलिए एक ब्राह्मणी उनका खाना तैयार करती। उनका विश्वास था कि सात्विक भोजन से सात्विक विचार आयेंगे। राम का सिंहासन पवित्र समझा जाता और उस पर लाल-पीले पताके फहराते। रावण का तामसी तत्त्वों वाला माना जाता तथा उस पर काली झंडियां लहरातीं। धूमन-गुग्गुल जलाने के साथ उन पर फूल चढ़ाये जाते, हवन और आरती होती। सिपरिया रोड के पंडित गोवर्द्धन ने राम की भूमिका अदा की और दशरथ महाराज ने रावण की। पहली शाम भूमिका में ही बीत जाती। दूसरे दिन ऋषि विश्वामित्र पीत वस्त्र, लंबी पकी दाढ़ी और केश में राक्षसों का नाश करने के लिए राजा दशरथ के पास आते और राम तथा लक्ष्मण को ले जाते। जब-तब जोरों से ताशा बजाया जाता।

तीसरी शाम ताशा और ढोल पर जोर से थाप पड़ते—मारीच, सुबाहु और ताड़का का वध होता और विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को जनकपुर ले जाते।

चौथे दिन धनुष-यज्ञ होता और रमा उस धनुष को तोड़ते। पांचवें दिन राम-विवाह का जलसा होता। राम जोड़ा-जामा और मुकुट में बड़े ही अच्छे लगते। दर्शक

महिलाएं विवाह के मंगल गीत गातीं, नर्तक नाचते और ताशा जोर से बजता। छठी शाम को मंथरा-कैकयी संवाद और राम-वनवास का दृश्य दिखलाया जाता। सातवीं शाम को सीता-हरण, जटायु द्वारा उसे रोकने का प्रयास और राम तथा लक्ष्मण का क्रोध, आठवें दिन सीता की खोज, कबंध, शबरी और अंत में किष्किंधा संबंधी घटनाएं दिखलायी जातीं। नौवें दिन बालि-वध, लंकादहन आदि और दसवें दिन राम-रावण युद्ध और रावण कुंभकर्ण और मेघनाद के विशाल पुतले आदि का जलाना संपन्न होता।

शुरू-शुरू में त्रिनिदाद में रामलीला का मुख्यत: यही ढंग रहा। कालक्रम से कई जगहों में रामलीला होने लगी और कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन भी किये गये। फेलिसिटी, शगुआना (चौहान) पीनाल, देवे, मैकवीन, कैरोलिना, औरेंजवैली आदि में भी रामलीला का आयोजन होने लगा।

१८९५ में डाव गांव की रामलीला में राम बने गोवर्द्धनजी ने रावण बने दशरथ महाराज की एक आंख बांस के बाण से बींध डाली। रक्त-प्रवाह शुरू हुआ, लेकिन दशरथजी अपना 'रोल' अदा करते ही रह गये।



लेखक

१९ अक्तूबर १८९८ को 'हिंदोस्थानी कोहनूर का अखबार' ने दो स्थानों की रामलीला का वर्णन किया—१. डाव गांव में राम-उत्सव का मजा देखने के लिए हिंदुस्तानी भाइयों को कहा गया। मुख्य आयोजक थे बाबू शिवनंदन सिंह। २. लवार्टीन (लैवेन्टिल) गांव में 'अपने देशी पर्व का सत्कार' करने को रामरसिक जनों को कहा गया और बाबू कोलाहल सिंह इस 'पर्व और मेला' के आयोजक थे।

१९०१ के अक्तूबर में शगुआना के लाइम स्टेट में बड़े उत्साह से रामलीला का आयोजन हुआ और गरीबों के खाने और रहने का प्रबंध किया गया। ढोल, नगाड़े खूब बजे और आग में नाचने, जादूगरी आदि के करिश्मे दिखलाये गये।

सन १९१३ और १९१६ के अक्तूबर में शगुआना के 'उडफर्ड क्वायर' में पं. कपिलदेव की अध्यक्षता में रामलीला संपन्न हुई। लाल मथुरा पंडित, भगन महाराज, रिकी (ऋषि) महाराज आदि ने मुख्य 'रोल' अदा किया। १९१६ में रामलीला के क्षेत्र में एक साधु ने सबका ध्यान आकृष्ट किया। वह दिन-भर एक पांव पर खड़ा रहता दूसरे पांव को मोड़कर रखता

और श्रीराम की प्रार्थना करता रहता। एक 'सीटन' नामक व्यक्ति ने भी अपने करतब दिखलाये। १९१६ में ही कूवा रिक्रियेशन ग्राउंड में भी बड़ी धूमधाम से रामलीला संपन्न हुई। 'मिरर' नामक अखबार (९ अक्तूबर १९१६, पृ. ९) में एक व्यक्ति ने रामलीला के असली महत्त्व पर प्रकाश डाला और इस बात की भर्त्सना की कि राम को 'कुली गाड' (भगवान) और हनुमान को बंदर कहा जाता है। उसने कहा—त्रिनिदाद के पश्चिमी वातावरण में रामलीला का धार्मिक महत्त्व समाप्त नहीं होना चाहिये।

सन १९१९ में शगुआना के 'उडफर्ड क्वायर' की रामलीला को सफल बनाने में पं. कपिलदेव, लाल मथुरा पंडित, भारत गोविन, लछमन सिंह आदि का मुख्य हाथ था। १९२१ में रेवरेण्ड सी. डी. लाला ने ईस्ट इंडियन लिटररी क्लब में रामलीला के महत्त्व पर प्रकाश डाला (पोर्ट आफ स्पेन गजट, १४ अप्रैल १९२१ ई.)। १९२४ ई. में सानवान की रामलीला अरंग्वेज मैदान में बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। पटेसरी पंडित, राजनाथ पंडित और भोला पंडित ने जैराम गोसाई आदि के सहयोग से इसे सफल बनाया। १९२८ में शगुआना, डाउ और पीनाल की रामलीला प्रशंसनीय थी। १९२९ में सानवान, सेंट जोजेफ क्यूरप और शगुआना की रामलीला की प्रशंसा की गयी।

१९३० और १९३१ में सिपरिया रोड के गोवर्द्धन पंडित और चंदर महाराज ने बड़ी शान से रामलीला आयोजित की। कई रात हजारों लोग जमा हुए, गरीबों को भोजन कराया गया। देवे में पंडित जानकी प्रसाद शर्मा (जो अभी भी जीवित हैं), संध्या महाराज, रामचरण साधु, प्रेमचन्द बंसी आदि ने मुख्य भूमिका निभायी।

१९३२ ई. में तो राजधानी पोर्ट आफ स्पेन के क्वीन्स पार्क सवाना में रामलीला का विराट आयोजन हुआ। १९३५ में शगुआना के पास फेलिसिटी गांव में पंडित हरगोविंद शर्मा द्वारा आयोजित रामलीला देखने योग्य थी (देखिये त्रिनिदाद गार्डियन, १० अक्तूबर १९३५, पृ. १४)। वहां रामायण गायन प्रतियोगिता में पीनाल, मानग्रेटूट और काकंडी के रामायण गोल ने क्रमशः जैराम गोसाई, रामप्रसाद और कतवारु के नेतृत्व में भाग लिया। पं. मिसरी दत्त पांडे, पं. चंडिका प्रसाद तिवारी और बाबू रामटहल सिंह ने निर्णायक का काम किया। पीनाल गोल को प्रथम पुरस्कार के रूप में रामायण की पुस्तक दी गयी, काकंडी दल को द्वितीय पुरस्कार में ढोलक; और तीसरे दल को पं. दीनानाथ तिवारी ने एक विशेष पुरस्कार दिया।

सीडर हिल, रिफार्म आदि की रामलीलाएं भी अच्छी थीं। प्रिन्सेस टाउन से स्पेशल ट्रेन, बस और मोटरगाड़ियां यात्रियों को रामलीला-स्थली तक ले गयी थीं। १९२३ ई. में पीनाल (दक्षिणी त्रिनिदाद) में राम की भूमिका अदा करते समय पं. कालीचरण का देहांत हो गया। १९५३ ई.

में एडिनबरा गांव शगुआना और बालमेन (कूवा) के मिल्टन स्टेट में रामलीला हुई। १८९५ ई. की दुर्घटना की तरह दो और दुःखदायी घटनाएं घटीं। १९३१ ई. में टेबुल लैंड (दक्षिण त्रिनिदाद) के मोन्टाको रोड के पास जब गनपत नाम का आदमी रामलीला में भाग ले रहा था, कुंजबिहारी और उसके साथियों ने उसे बहुत पीटा (पोर्टआफ स्पेन गजट, २३ जनवरी १९३१, पृ. ५)। इसी तरह १९६९ ई. में राम की भूमिका अदा करने वाले ने फेलिसिटी गांव में एक लोटा हवा में उछाल दिया, जिससे एक दर्शक का सिर फट गया।

गत बीस-पचीस वर्षों में त्रिनिदाद की रामलीला का स्वरूप काफी बदल रहा है। अब बांस की जगह लकड़ी और टिन के सिंहासन बनाये जाते हैं। लाउडस्पीकर का व्यवहार जमकर होता है, जिससे दूर-दूर तक के लोग संवाद सुनते हैं। लेकिन अब निर्देशक पंडित ही सारे संवाद बोलता है। कारण, अक्सर नवयुवक जो राम या सीता बनते हैं, हिंदी नहीं बोल सकते। सजावट के नये तरीके अपनाये जाते हैं। रंगीन बिजली के लट्टू और गद्दी वातावरण को आकर्षक बनाते हैं। अब छोटी जात—यहां तक कि अफ्रीकी आदि भी रामलीला में रावण आदि का 'पार्ट' लेते हैं। अब राम-सीता के चरण कोई नहीं छूता। लोग शराब पीते देखे जाते हैं। दो-तीन वर्ष पूर्व तो सेंट आगस्टिन में महाराज दशरथ के पुत्र-कामेष्टि यज्ञ से रामलीला का आरंभ हुआ, लेकिन डाव गांव में अभी भी विश्वामित्र के आगमन से ही शुरू होता है।

पहले रामलीला-क्षेत्र में पहलवानों की कुश्ती भी होती थी। अब जुआ, ताश आदि का बोलबाला रहता है। अब रामलीला में भाग लेने वाले लोग भी मांस और मदिरा से परहेज नहीं करते। मुसलमान और ईसाई भी अब छोटे-मोटे रोल करते हैं। लड़ाई के दृश्य में तीर-धनुष के साथ आगे-पीछे पैंतरा बदलना अब पहले जैसा नहीं होता। शूर्पणखा के 'रोल' में कभी-कभी बेजा हरकतें कर दी जाती हैं। द्वंद्वयुद्ध अब पहले जैसा नहीं होता। ताशा और बड़े ढोल-ढाक अभी भी जोर से बजते हैं, लेकिन अब विदेशी शैक-शैक या मराकस का भी स्थान रहता है। पुरुष और स्त्री दर्शक अभी भी अलग-अलग घेरे में बैठते हैं। हिंदुस्तानी मिठाइयां लड्डू, जलेबी आदि खूब बिकती हैं। आइसक्रीम और कोका-कोला आदि का भी जोर रहता है।

यों आजकल भड़कीली पोशाक के दाम बहुत बढ़ गये हैं, फिर भी रामलीला में भाग लेने वाले अंतिम दिन पीले, लाल और काले (लंकावासियों के) रंग की मखमली पोशाक पहनते हैं। कांच की माला आदि चमकीली चीजें भी रहती हैं। मुकुट, धनुष-बाण, तरकस आदि भी अच्छे रहते हैं। मुखौटे भी तरह-तरह के रहते हैं—कोई कागज या गत्ते की बड़ी जीभ निकाले पूंछ लगाये—बांस के पुष्पक विमान, नाव, सेतु, बांध तथा एक घूमते ऊंचे स्थान पर रावण

आदि के पुतले जो लड़ाई के समय आगे-पीछे घूमते हैं, दिखाये जाते हैं। उन्हें तीर से बींधकर बारूद में आग लगाकर समाप्त कर दिया जाता है। त्रिनिदाद के 'कार्निवाल' में प्रयुक्त मुखौटे आदि का अब रामलीला में भी प्रयोग होने लगा है। नगाड़े बजाना, नाचना और कूदना भी अफ्रीकियों के ढंग का देखा जा सकता है।

फिर भी त्रिनिदाद के हिंदुओं के लिए रामलीला धार्मिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का एक उत्तम साधन है। बड़े-बूढ़े अभी भी उत्साह से दूर-दूर तक—सीडरहिल, क्यूरप (औरेंज गांव) आदि में—रामलीला देखने जाते हैं और श्रीराम के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होते हैं। उनका विश्वास है कि लोकरक्षक मर्यादापुरुषोत्तम राम की लीलाएं देखकर वे पापमुक्त हो जायेंगे। लेकिन लड़कियां अभी भी रामलीला में भाग नहीं लेतीं और एक्टरों को कुछ बोलना नहीं पड़ता। संवाद पंडित बोलते हैं जिसके एवज में उन्हें अच्छी दक्षिणा मिल जाती है—जैसे सीडरहिल में पं. काशी प्रसाद और विलियम्स विल में पं. चंद्रबलि महाराज। कहीं-कहीं राजनैतिक लड़ाई, चुनाव आदि के कारण रामलीला बंद कर दी गयी है। लेकिन लोग फिर से इसे चालू करने की सोचते रहते हैं। भारतीय धार्मिक-फिल्में—संपूर्ण रामायण, जय हनुमान आदि दिखायी जाती हैं। फिल्में देखने के बाद नवयुवक अपनी रामलीला को निरर्थक प्रयास समझने लगे हैं। लेकिन फिर भी तीन वर्ष पूर्व जब यूनिवर्सिटी के पास ही सनातन धर्म महासभा की खाली जमीन में रामलीला का आयोजन हुआ, तो रोज करीब हजार दर्शक उसी तरह जमा होते थे, जैसे भारत के मेलों में सजधज कर जाते हैं। अब हर साल यहां यह आयोजन होता है। आखिर रामकथा बचपन से ही इनके मानस में समायी रहती है।

इस प्रकार त्रिनिदाद में कुछ परिवर्तित रूप में रामलीला की परंपरा आज भी कायम है। अन्य भारतीय कला और संस्कृति की भांति पर्व-त्योहारों की इस परंपरा ने त्रिनिदाद के प्रवासी भारतीयों को भारत के लोगों के बिलकुल करीब लाने में एक शृंखला का काम किया है और वे भारतीयों के साथ अपनी भावात्मक एकता कायम किये हुए हैं।

—२९३, राजेंद्रनगर, पटना-८०० ०१६



१. पुस्तक-सार एवं अन्य लेखों के लंबे हो जाने से चार घोषित रचनाएं (बचपन की याद, एक साल में तीन पोप, अस्पताल की कहानी, कुकुरमुत्ते) और 'किमाश्चर्यम्' इस अंक में नहीं जा पाये। क्षमा करें और अगले अंकों में इन्हें पढ़ें।

२. शुक्र संबंधी लेख में यह जानकारी जोड़ लें कि मानव-रहित रूसी यान वीनस-१२ गत २१ दिसंबर को और वीनस-११ २५ दिसंबर को शुक्र पर उतरे। —संपादक



नवनीत

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

अपेक्षा-गीत

कोई एक शब्द तो मिले,
रचना पर रख दूं तुलसीदल-सा
रचना की रचना नैवेद्य बने।

०

कोई एक फूल तो खिले,
चरणों पर रख दूं राजीव-नयन
अगरु-धूप गंध के वितान तने।

००

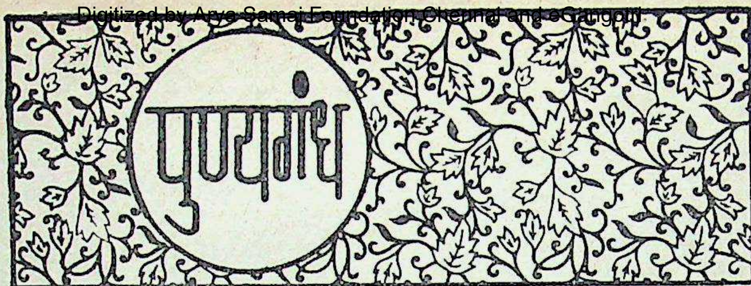
कोई एक अधर तो हिले,
गंध-अनुष्टुप जिस पर छंद रचूं
पोर-पोर सोऽहं अनुभूति-सिने।

०००

कोई एक दिया झिलमिले,
जिसमें उपलब्ध हों परस्पर हम
समर्पण अद्वैत हों घने-घने।

—उमाकांत मालवीय

—महावीरन गली, इलाहाबाद-३



जिस तरह पुष्पित वृक्ष की सुगंध दूर-दूर तक फैलती है, उसी तरह पवित्र कर्मों की सुगंध दूर-दूर तक पहुंचती है।

प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभिक दौर में १९१५ में चर्चिल ब्रिटेन के नौसेना-मंत्री थे और नौसेनाध्यक्ष एडमिरल लार्ड फिशर से उनकी अनबन रहती थी। धीरे-धीरे यह अनबन इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि चर्चिल को अपने ओहदे से हाथ धोना पड़ा। यह आघात चर्चिल के लिए इतना गहरा था कि उसे वे जीवन-भर भूल नहीं पाये।

उस घटना के एक-डेढ़ साल बाद किसी प्रसंग में उसका जिक्र छिड़ने पर चर्चिल ने कहा—'अगर मुझे फिर से वह ओहदा मिले तो मैं फिशर को बुलाकर उन्हें फिर से वही काम सौंप दूंगा। व्यवस्थापक के रूप में उनके काम की आज भी मेरे दिल में बहुत कद्र है।'

उसके कई साल बाद एडमिरल लार्ड फिशर की जीवनी प्रकाशित हुई, जिसमें चर्चिल की सख्त आलोचना की गयी थी। चर्चिल उसे पढ़ने लगे। फिशर की आलोचना उन्हें गलत और बुरी लगी। फिर भी पुस्तक समाप्त करते ही उन्होंने फिशर की प्रशंसा में लंबा लेख लिखकर एक पत्रिका में छपने के लिए भेजा।

०

टेक्सास (अमरीका) के करोड़पति व्यापारी ह्यू कलेन ने एक बार हाउस्टन विश्वविद्यालय को पचास लाख डालर का दान देने का एलान किया।

एक स्थानीय समाचार-पत्र में जब इसकी खबर छपी तो दान की रकम पचास लाख के बजाय एक सौ पचास लाख (५ मिलियन डालर के बजाय १५ मिलियन डालर) छप गयी।

अगले दिन सुबह कलेन ने खबर पढ़ते ही समाचार-पत्र के संपादक को फोन किया और गुस्से में कहा कि आखिर यह गलत खबर क्यों छापी गयी है। संपादक ने सुना तो सहम गया। फिर उसने माफी मांगते हुए कहा—'यह गलती हमारे एक प्रूफरीडर की असावधानी से हुई है। मैं अच्छी तरह समझता हूं कि इससे आपके लिए मुश्किल पैदा हो गयी है। कल के अखबार में मैं इस गलती को ......'

'खैर रहने दीजिये।' कलेन ने संपादक की बात काटते हुए कहा—'आपने एक सौ पचास लाख डालर लिखा है तो इस बार मैं इतनी रकम ही दे दूंगा। लेकिन फिर कभी ऐसी गलती न हो।'

०

एडविन स्टेन्टन बहुधा अब्राहम लिंकन की निंदा किया करते थे। और वह निंदा लिंकन तक पहुंच जाती थी।

गृहयुद्ध के दिनों जब युद्ध-सचिव के पद के लिए किसी योग्य व्यक्ति के चुनाव का प्रश्न आया तो लिंकन ने बिना किसी झिझक के स्टेन्टन को ही चुना।

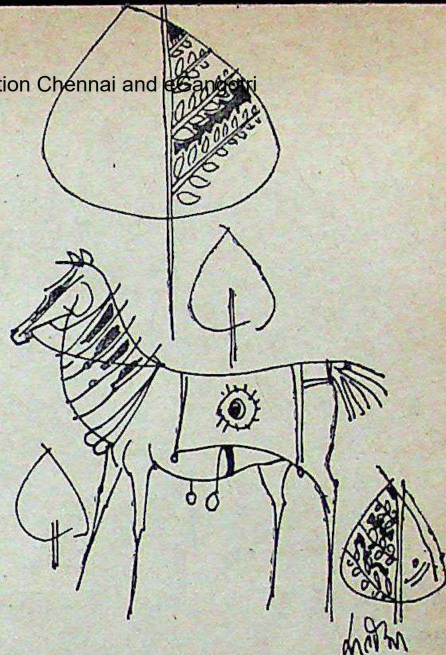
मगर मंत्रिमंडल में शामिल हो जाने के बाद भी स्टेन्टन ने लिंकन की निंदा करना न छोड़ा।

एक बार लिंकन के एक मित्र ने उनसे कहा—'यह स्टेन्टन आपकी निंदा करने से अभी तक बाज नहीं आया। जब देखो, आपके खिलाफ बोलता रहता है। यहां तक कि उसने आपको मूर्ख कहा है।'

'अच्छा!' लिंकन ने दिलचस्पी दिखाते हुए कहा—'तब तो इस बात की सचाई से इन्कार नहीं किया जा सकता; क्योंकि स्टेन्टन की बातें प्रायः सही होती हैं।'

०

एक आदमी हजरत मोहम्मद से बेहद नफरत करता था। वह जब भी उन्हें अपने घर के सामने से गुजरते हुए देखता, तो घर की छत पर रखा ढेर सारा कूड़ा-करकट उठाकर उनके सिर पर डाल देता।



चित्र : सतीश चव्हाण

हजरत मोहम्मद उसे एक नजर देखते, मंद-मंद मुस्कराते और आगे बढ़ जाते।

यह सिलसिला लंबे अरसे तक चलता रहा। न उस आदमी की नफरत कम हुई, न हजरत मोहम्मद को कभी उस पर गुस्सा आया।

एक दिन यह सिलसिला टूटा। उस दिन हजरत मोहम्मद अपने ऊपर कूड़ा न पड़ने पर गली में रुक गये और नजर उठाकर मकान की छत की ओर देखा। वहां उस व्यक्ति को न पाकर उन्हें आश्चर्य हुआ और उन्होंने पड़ोसियों से पूछताछ की। जब पता चला कि वह आदमी बीमार है, तो वे उसके घर गये और उसे दिलासा दिया कि तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगे। फिर वहीं वे उसकी सेहत के लिए परमात्मा से प्रार्थना करने लगे।





चित्र : प्रेमचंद्र गोस्वामी

एक स्वगत

—रमेशचंद्र शाह—

कीच में धंस-धंसकर
पौधे हरे होते हैं
फिर भी उन्हें हवा और धूप के सिवा
और कुछ सूझता ही नहीं;
और तुम हो कि—लगे रहते हो
अनवरत इसी धुन में
कि तुम्हारे अलावा मुझे
और कुछ सूझे नहीं।
काश! .....कि एलोरा के शिल्पी का
चेतना-प्रवाह
एक क्षण-भर के लिए मेरा हो सकता!

समय की दराज में
अभी मत झोंको मुझे
जीते जी मुझे पंचतत्त्वों को मत दो

अगर छितराना ही चाहो
छितरा दो मुझे बादल-रंगों की तरह
बशर्ते वह
एक खास कस्बे का खास आसमान हो।

ओ भाई!
तुम्हारी बात दूसरी है
मेरे लिए तो वह अनंत भी
किसी कालकोठरी से कम नहीं
जिसे
मेरी सांसों ने
कभी छुआ ही न हो।

—३/२ प्रोफेसर्स कालनी, विद्याविहार,
भोपाल, म. प्र.

महान पत्रकार
संत निहालसिंह

बनारसीदास चतुर्वेदी

'मैंने पत्रकारिता के क्षेत्र में चालीस वर्ष व्यतीत किये हैं; पर इस लंबे अरसे में मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिसमें पत्रकारिता के विषय में मिस्टर सिंह से अधिक प्रतिभा हो।'

ये शब्द हैं स्वर्गीय डब्ल्यू. टी. स्टेड के, जो स्वयं अंतरराष्ट्रीय कीर्ति के पत्रकार थे। उन्होंने अक्टूबर १९१० में संत निहाल सिंह पर अपने पत्र 'रिव्यू ऑफ रिव्यूज़' में यह बात लिखी थी। स्टेड तो संत निहालसिंह को 'टाइटैनिक' जहाज में अपने साथ ले जाना चाहते थे; परंतु उनकी (निहालसिंह की) पत्नी ने मना कर दिया। यदि वे स्टेड के साथ यात्रा करते, तो उनकी भी जल-समाधि हो जाती।

अभी कुछ महीने पहले हिंदी के एक प्रसिद्ध पत्रकार ने मुझसे संत निहालसिंह का पता पूछा, तो मुझे आश्चर्य तथा खेद भी हुआ, क्योंकि संत साहब तो बहुत वर्ष पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। दुर्भाग्य की बात यही हुई कि किसी हिंदी पत्र ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित नहीं की। स्वयं मैं भी अपराधी हूं; क्योंकि मैं भी उन पर कोई लेख नहीं लिख पाया। बहुत दिनों तक मुझे भी उनके देहांत की खबर नहीं मिली थी।

संत निहालसिंह का जन्म सन १८८० के आस-पास रावलपिंडी में हुआ था। बाल्यावस्था से ही वे पुस्तकों के प्रेमी थे। जब कालेज में पहुंचे तो वे अंग्रेजी में अपनी कक्षा के सबसे तेज विद्यार्थी माने जाते थे; पर गणित में कमजोर थे। महान बनने की उनमें बड़ी आकांक्षा थी। एक दिन उनके मन में यह विचार आया कि अपने नगर में पड़े-पड़े इस आकांक्षा की पूर्ति नहीं हो सकती, इसलिए वे घर से भाग निकले। उस वक्त उनकी जेब में केवल एक रुपया था; पर उनका मनोरथ था एशिया-भर की यात्रा करने का। उस वक्त उनकी उम्र १८-१९ वर्ष की रही होगी। उसी एक रुपये के बल-बूते पर उन्होंने देश-विदेश की यात्राएं कर डालीं!

अपनी चीन-यात्रा में वे एक बार काफी बीमार पड़ गये और उन्हें अस्पताल में भरती होना पड़ा। जब स्वस्थ होकर वे वहां से निकले, उनकी जेब में कुछ ही पैनी पड़ी थीं। परंतु सौभाग्य से 'शंघाई मर्क्युरी' नामक

अंग्रेजी पत्र ने उनसे एक लेखमाला लिखने का अनुरोध किया। उन्होंने तुरंत यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही वह लेखमाला लिख दी। उससे जो पारिश्रमिक मिला, वह उनके भोजन तथा यात्रा-व्यय के लिए पर्याप्त था।

चीन से संत निहालसिंह जापान पहुंचे। वहां भारतीय विद्यार्थियों ने उनसे कहा कि यहां लेख लिखकर कुछ कमा लेना असंभव होगा; पर संत निहालसिंह ने कुछ ही हफ्तों में उनकी भविष्यवाणी असत्य सिद्ध कर दी। लेख लिखकर उन्होंने जापान में अपना खर्च तो चला ही लिया, अमरीका की यात्रा के लिए पैसा भी जमा कर लिया। जापान में रहते समय वे वहां के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों से मिले और उनसे लेखों के लिए बहुत कुछ सामग्री भी एकत्र कर ली। उन्होंने यह नियम बना लिया था कि जिस भी नगर या देश में रहूंगा, वहां के सभी क्षेत्रों के विशेषज्ञों से मिलूंगा। जापान से वे अमरीका रवाना हुए और सन १९०६ में सियेटल (वाशिंगटन राज्य) पहुंचे। वहां उनका न कोई मित्र था, न किसी के नाम परिचय-पत्र, न जेब में पैसा ही।

उन्होंने बड़ी होशियारी से काम लिया। उन्हें पता लगा कि वैंकूवर (कनाडा) में भारतीयों पर जुल्म हो रहे हैं। उन्होंने कनाडियन क्लबों में उसके बारे में भाषण देना शुरू किया, और पत्रों में लेख लिखना भी। हर जगह उनका हार्दिक स्वागत हुआ, जैसे वे कोई सिद्ध-पुरुष हों, यद्यपि उस समय उनके पास न गरम कोट था और न जेब में पैसा। वे कनाडा छोड़कर न्यूयार्क आ गये और वहां उन्हें कुछ दिनों तक भूखों रहना पड़ा। कुछ दिन उन्हें आवारा आदमियों के साथ तंग कोठरियों में रहना पड़ा। पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी, यद्यपि उस समय उन्हें दिन में एक ही बार खाना मिल पाता था।

उन्हें भाषण देने के लिए निमंत्रण मिलते थे, पर यात्रा के लिए पैसे ही नहीं थे। पर वे इतने अच्छे वक्ता थे कि उनकी फटी-पुरानी पोशाक पर श्रोताओं का ध्यान ही नहीं जाता था। कुछ दिनों के भीतर ही उन्हें अमरीका की सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने के निमंत्रण मिलने लगे। सन १९१० में वे ब्रिटेन पहुंचे और वहां उनका हार्दिक स्वागत हुआ। ब्रिटेन से भारत आने से पहले वहां की पत्र-पत्रिकाओं ने उनसे लेख लिखने के लिए आग्रह किया। प्रायः उन्हें सप्ताह में प्रतिदिन सवेरे से लेकर शाम तक लेख लिखते हुए बैठे रहना पड़ता था; उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे और कई ग्रंथ भी।

शिकागो में ही उन्होंने एक अमरीकी लड़की से शादी कर ली थी, जो स्वयं एक अच्छी पत्रकार थी और शिकागो के एक साप्ताहिक 'इंटरओशन' में काम करती थी। यह महिला बराबर उनके कार्य में सहायक रही।

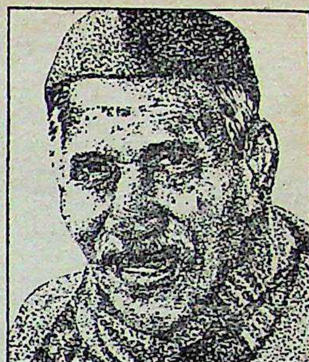
सन १९३४ या ३५ में मुझे भाई श्रीराम शर्मा के साथ देहरादून और मसूरी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और तब मैंने संत

निहालसिंह और उनकी पत्नी दोनों के दर्शन किये थे। उस समय उनकी धर्मपत्नी ने मुझसे कहा था—'मिस्टर सिंह बहुत अच्छा भोजन बना लेते हैं और उन्होंने आज स्वयं ही खास तौर पर आप दोनों के लिए भोजन तैयार किया है।' हम दोनों ने वह स्वादिष्ट भोजन किया। और बहुत-सी बातचीत भी होती रही। उनके घर पर पत्रों की कतरनों के ढेर व्यवस्थित रूप से रखे हुए थे। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने कहा था कि हमारा संग्रहालय किसी पत्रकार-विद्यालय के लिए उपयोगी होगा। यही बात उन्होंने रामानंद बाबू से कही थी, जब वे देहरादून गये थे।

स्वतंत्र पत्रकारिता के प्रयोग करते हुए संत निहालसिंह व्यावहारिक दृष्टि से अत्यंत कुशल बन गये थे। छोटे-बड़े सभी के साथ वे स्नेहपूर्ण संबंध स्थापित कर लेते थे। चूंकि मैं उनसे उम्र में बारह वर्ष छोटा था, इसलिए वे मेरा आधा नाम ही लिखते थे।

मेरे सहायक ब्रजमोहन वर्मा को भी वे नहीं भूले। उनके पत्र सदैव अत्यंत सुंदर अक्षरों में लिखे हुए होते थे। एक चिट्ठी में उन्होंने मुझे लिखा था—'मेरे लेख का पारिश्रमिक यथासंभव शीघ्र ही भिजवाइये, क्योंकि यह सवाल मेरे लिए दाल-रोटी का है।'

आर्थिक दृष्टि से उन्हें निरंतर जागरूक रहना पड़ता था। कहीं भी उन्हें कोई काम मिले, तो वे उसे तुरंत स्वीकार कर लेते थे। एक रेल-कंपनी के लिए प्रचारात्मक लेख लिखने का कार्य उन्हें मिल गया, जिसे



श्री चतुर्वेदीजी

उन्होंने तुरंत स्वीकार कर लिया। राजेंद्र बाबू के अभिनंदन-ग्रंथ के लिए भी उन्होंने लेख लिखा था। 'माडर्न रिव्यू' के पुराने अंक उनके लेखों से भरे पड़े हैं।

अंतरराष्ट्रीय कीर्ति प्राप्त इस महान पत्रकार का जब स्वर्गवास हुआ, तो किसी हिंदी पत्र ने उन पर एक पंक्ति भी नहीं लिखी। अंग्रेजी पत्रों में कुछ छपा हो तो उसका हमें पता नहीं। कुछ समय पहले राजा महेंद्रप्रताप का एक पत्र मुझे मिला था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि संत निहालसिंह अपना संग्रहालय सरकार के नाम कर गये हैं, पर सरकार ने उसकी रक्षा का कोई उचित प्रबंध नहीं किया।

संत निहालसिंह की स्मृति में किसी पत्र ने विशेषांक नहीं निकाला। उनका कोई स्मारक नहीं और लोग उन्हें बिलकुल भूल चुके हैं। संपादकाचार्य स्टेड साहब ने जिन्हें विश्व का एक अद्वितीय पत्रकार कहा था, उनके शुभ नाम की यह छीछालेदर हुई!

—फीरोजपुर, जि. आगरा, उ. प्र.





विज्ञान-बिंदु

केजिता

मानव-शरीर प्रकृति का बनाया हुआ एक जटिल यंत्र है। हर यंत्र के संचालन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। शरीर को यह ऊर्जा रक्त-शर्कराओं से प्राप्त होती है। मनुष्य जो कुछ खाता-पीता है, वह शर्करा में परिवर्तित होकर रक्त में मिल जाता है। शरीर को जब जरूरत होती है, रक्त-शर्करा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार रक्त मानव शरीर में ऊर्जा के स्टोर और सप्लाई-एजेंट का काम करता है।

रक्त में शर्करा की मात्रा उचित अनुपात में रहे, यह उत्तरदायित्व एक प्रोटीन-हार्मोन का है, जिसे इन्सुलिन कहते हैं। शरीर में इन्सुलिन का अभाव होने पर रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है, उसकी धारण-क्षमता कम हो जाती है और वह मूत्र के साथ शरीर से बाहर आने लगती है। इसी को कहते हैं--मधुमेह (डायबिटीज)।

पिछले कुछ वर्षों में यह रोग काफी तेजी से फैला है। एक अनुमान के अनुसार, सारी दुनिया में लगभग दस करोड़ लोग इस रोग से पीड़ित हैं। ऐसा क्या कुछ हुआ है कि इतने सब लोगों के शरीर में इन्सुलिन का कम उत्पादन होने लगा? कोई स्पष्ट कारण अभी तक मालूम नहीं हो पाया है। यही कारण है कि मधुमेह के उपचार संबंधी खोज शरीर को बाहर से इन्सुलिन पहुंचाने तक सीमित रही है। लेकिन दोष यह है कि रोगी जीवन दवा पर आश्रित रहता है। असली और स्थायी उपचार तो यह होगा कि शरीर में ही इन्सुलिन का उत्पादन फिर से शुरू कराया जा सके। इसी दिशा से अब इस समस्या को सुलझाने की कोशिश जेनेटिक इंजीनियरी के जरिये की जा रही है।

नेशनल मेडिकल सेंटर (कैलिफोर्निया, सं. रा. अमरीका) के उपनिदेशक डा. रैकमील लेविन ने इस क्षेत्र में किये गये अनुसंधान-कार्यों पर हाल में प्रकाश डाला है। उनके अनुसार, उनकी प्रयोगशाला में एक मानव-जीन का संश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है, जिसकी सहायता से प्रयोगशाला में इन्सुलिन तैयार की जा सकेगी।

शोध-दल के एक सक्रिय सदस्य डा. राबर्ट क्री के अनुसार, प्रयोगशाला में जो

जीन तैयार की जाती हैं, वे पूर्णतः कृत्रिम होती हैं, इन्सानी नहीं। इन्सानी जीनों का अध्ययन उनके केमिकल कोडों को समझने के लिए किया जाता है। 'केमिकल कोड' से अभिप्राय जीन-विशेष की रासायनिक रचना का निर्धारण करना है। मानव-शरीर में जो जीन इन्सुलिन का उत्पादन करती है, उसकी रासायनिक संरचना को समझने के बाद वैज्ञानिकों ने उन्हीं घटक रसायनों की सहायता से प्रयोगशाला में कृत्रिम जीन का सफलतापूर्वक संश्लेषण किया है। यह संश्लिष्ट जीन प्राकृतिक जीन की तरह इन्सुलिन तैयार कर सकती है।

अभी मधुमेह के रोगियों को जो इन्सुलिन दी जाती है, वह पशुओं की पैंक्रिया-ग्रंथियों से निकाली हुई होती है। यह पशु-जन्य इन्सुलिन कुछ रोगियों में एलर्जी पैदा करती पायी गयी है। आशा है, संश्लेषित मानव-जीन द्वारा उत्पादित इन्सुलिन मानव-शरीर को सहज स्वीकार्य हो सकेगी। यों भी जिस तेजी से यह रोग फैल रहा है, उससे इन्सुलिन की मांग इतनी बढ़ी है कि उसकी पूर्ति पशु-इन्सुलिन से करना अब बहुत कठिन हो जायेगा। इसलिए भी किसी अन्य स्रोत की जरूरत तो पड़ेगी ही।

समस्या पर एक और दिशा से भी आक्रमण किया जा रहा है। योजना यह है कि स्वस्थ पैंक्रिया-ग्रंथियों से निकाली गयी इन्सुलिन-उत्पादक कोशिकाओं को सछिद्र प्लास्टिक की थैली में बंद करके मधुमेह के रोगी के शरीर में स्थापित कर दिया जाये। थैली के गिर्द रक्त प्रवाहित होता रहेगा। कोशिकाएं इन्सुलिन तैयार करके रक्त में विसर्जित करती रहेंगी। मगर रक्त के श्वेतकण थैली में घुसकर कोशिकाओं पर हमला नहीं कर सकेंगे। प्लास्टिक थैली में जो छेद होंगे, वे इतने सूक्ष्म होंगे कि श्वेत-कण उनमें से होकर थैली में प्रवेश न कर सकें; मगर भीतर से इन्सुलिन के कण बाहर निकल सकें।

भूगर्भीय भेदिये

देश के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में स्थापित कुछ रिफाइनरियों ने जोरहाट स्थित रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी से खनिज तेल से संबंधित कुछ समस्याओं के समाधान तलाश करने का आग्रह कुछ समय पहले किया था। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण सवाल यह था कि तेल के भंडारों की ठीक-ठीक अवस्थिति को 'पिन-पाइंट' करने का क्या तरीका हो, ताकि तेलकूप की खुदाई बिलकुल सही जगह शुरू की जा सके। साधारण भू-सर्वेक्षण विधियों से यह समस्या सुलझ नहीं पाती।

अब लगता है कि इस समस्या को सुलझाने का वैज्ञानिक आधार हाथ लग गया है। पता लगा है कि पृथ्वी की सतह के नीचे विभिन्न गहराइयों पर पाये जाने वाले अनक सूक्ष्म जीवों के परिवारों का भोजन वहां पर प्राप्य खनिज पदार्थ ही होते हैं। इसी तथ्य के सहारे कुछ सूक्ष्मजीवों के ऐसे परिवारों की पहचान की जा चुकी है, जो अपने भोजन के लिए पेट्रोलियम पर निर्भर होते हैं। मीथेनोजीन्स एक ऐसा ही परि-

वार बताया गया है।

इस कार्य के लिए जमीन के नीचे कुछ मीटर गहराई से मिट्टी के नमूने लेकर उनका रासायनिक विश्लेषण किया जाता है। अगर किसी नमूने में ब्यूटेन और प्रोपेन नामक रसायन पाये जायें, तो इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वहां पेट्रोलियम-जीवी जीवाणु भी नीचे काफी गहराई पर जरूर होंगे। ब्यूटेन और प्रोपेन पेट्रोलियम-पोषित सूक्ष्मजीवों के शरीर से बाहर फेंके गये रसायन हैं, जो धीरे-धीरे जमीन की गहराई से सतह की ओर अग्रसर होते हैं और सतह से कुछ मीटर नीचे तक आ पहुंचते हैं।

मीथेन गैस भी इस काम के लिए आधार मानी जा सकती है; परंतु उस पर पूरी तरह भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि जीवाणुओं के अलावा, सड़े हुए जैव पदार्थों से भी यह गैस निकलती है।

जोरहाट प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों का एक दल इस क्षेत्र में काफी काम कर चुका है और एक सूचना के अनुसार, वह शीघ्र ही एक निर्णायक बिंदु पर पहुंचने वाला है।

दास्ताने दिल

दुनिया दिल वालों की जरूर हो सकती है, मगर दिल की दुनिया की खैर-खबर रखने के लिए दिमाग चाहिये। एक ऐसे ही दिमाग वाले वैज्ञानिक हैं हंगरी के डा. पाल एल. वाघी, जिन्हें हृदय-अनुसंधान की अंतरराष्ट्रीय संस्था ने उनकी दिल-संबंधी महत्त्वपूर्ण खोजों के लिए हाल में सम्मानित किया है।

उनके शोध का विषय यह है कि दिल आक्सिजन का ग्रहण और उपभोग कैसे करता है। इसके द्वारा वे यह भी पता लगाना चाहते हैं कि धूम्रपान दिल को नुक्सान कैसे पहुंचाता है।

डा. वाघी इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि धूम्रपान करते समय दिल को पहुंचने वाली आक्सिजन की मात्रा कम हो जाती है। जाहिर है कि 'चेन स्मोकर' जो कि लगभग हर समय धुएं के कश खींचते रहते हैं, अपने दिल को काफी आक्सिजन से महरूम कर देते हैं। और दिल की तो खूराक ही आक्सिजन है। जब उसे खूराक ही पूरी नहीं मिलेगी, तो वह बेचारा कब तक अपनी गाड़ी घसीट सकेगा!

कयामती कैफीन

हृदय-विशेषज्ञों का मत है कि कैफीन नामक रसायन हृदय के लिए काफी नुक्सानदेह है। पेय काफी में यह रसायन बड़ी मात्रा में रहता है। इसी कारण यह सुझाव दिया गया है कि एक दिन में दो-एक प्याले से अधिक काफी न पी जाये। प्रसिद्ध भारतीय हृदय-विशेषज्ञ डा एम. ताजुद्दीन के अनुसार, पांच-छह प्याले काफी हर रोज पीने वाले व्यक्ति के दिल के रोग से ग्रसित होने की संभावना काफी अधिक होती है। इस दृष्टि से चाय को अपेक्षाकृत कम हानिकारक बताया गया है।

अमरीका के हार्वर्ड यूनिवर्सिटी मेडिकल कालेज में शोधरत दो भारतीय वैज्ञानिक

डा. एल. कौल और डा. बी. अहलूवालिया ने हाल में अपने शोधकार्य और उसके परिणामों की चर्चा करते हुए बताया है कि जो महिलाएं नियमित रूप से ओरल पिल और काफी दोनों का सेवन करती हैं, उनमें बहुत-सी ब्लड-प्रेशर से ग्रस्त पायी जाती हैं।

इन शोधकर्ताओं ने पिल का सेवन करने वाली और न करने वाली महिलाओं के रक्त-सीरम में उपस्थित कैफीन की मात्रा नापी और वे इस नतीजे पर पहुंचे कि पिल के रसायन शरीर में कैफीन के उपापचयन (मेटाबोलिज्म) को प्रभावित करते हैं। हाई ब्लडप्रेशर से ग्रस्त महिलाओं के सीरम में सामान्य महिलाओं की अपेक्षा एस्ट्रोजेन और प्रोगेस्टोजेन का अधिक मात्रा में पाया जाना भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि कैफीन और पिल का ब्लड-प्रेशर से संबंध है। एस्ट्रोजन और प्रोगेस्टोजेन को मिलाकर ही ओरल पिल बनायी जाती है।

पिल परमावश्यक

मगर ऐसा लगता है पिल से अब मानव-जाति को छुटकारा मिलना मुश्किल ही है। हां, उनके सेवन की सारी जिम्मेदारी केवल औरतों की नहीं रह जायेगी। पुरुष भी अब पिल का सेवन करेंगे। परंतु चूंकि पुरुष का प्रजनन-तंत्र अलग ढंग से काम करता है, इसलिए उसकी पिल भी अलग किस्म की होगी।

नयी दिल्ली के नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ हेल्थ एंड फैमिली वैलफेयर के प्रजनन-जैवचिकित्सा विभाग के अध्यक्ष डा. सोमनाथ राय बताते हैं कि उन्होंने साइप्रोटिरोन एसीटेट नामक रसायन को लेकर जो पुरुष-पिल तैयार की है, वह पुरुष-शुक्राणुओं (स्पार्म) की संख्या कम करने के साथ ही बचे जिंदा शुक्राणुओं को भी अशक्त कर देती है। फलतः वे शुक्राणु स्त्री की योनि-नलिका में पहुंचने पर भी गतिहीन ही रहते हैं।

स्वेच्छा से पिल खाने वाले कुछ पुरुषों द्वारा उत्सर्जित शुक्राणुओं की परीक्षा करने पर पाया गया कि उनके ६० से लेकर ७० प्रतिशत तक शुक्राणु गतिहीन हो जाते हैं। साथ ही इसकी भी जांच की गयी कि पिल खाने से कहीं पुरुष की संभोगेच्छा और संभोगशक्ति पर तो कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता और डा. राय का दावा है कि ऐसा कोई दुष्प्रभाव नहीं देखा गया है।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के कुछ अन्य शोधकर्ता एक नये रसायन को इस कार्य के लिए अजमा रहे हैं। उसका नाम है—नारईथीनड्रोन एसीटेट। बताया जा रहा है कि इस रसायन की सहायता से शत-प्रतिशत सफलता संभव है। यह भी कहा जा रहा है कि इसका निरंतर सेवन करने की जरूरत नहीं पड़ेगी और आवश्यकता पड़ने पर पुरुष अपनी संसेचन-क्षमता और शक्ति को पुनः प्राप्त कर सकेगा।

अभी ये पुरुष-पिल निर्माण और विकास की स्थिति में ही हैं। इनमें क्या खामियां हैं, यह तो तभी पता चलेगा जब इनका व्यापक रूप से उपयोग होने लगेगा।



कफन ईसा मसीह का!

हरमन चौहान द्वारा प्रस्तुत

लोग उसे भक्तिपूर्वक 'सांता सिंदोने' कहते हैं। वह बहुत पुरानी लिनेन का बड़ा-सा टुकड़ा है–कई जगह से मरम्मत किया हुआ और धुंधले रंगीन धब्बों एवं जलने के निशानों से युक्त। लंबाई में वह १४ फुट ३ इंच है और चौड़ाई में ३ फुट ७ इंच। सामान्यतः वह बड़ी सावधानी से तह करके चांदी के काम वाली एक काष्ठ-मंजूषा में रखा रहता है तूरीन (इटली) के प्रधान गिरजे के शाही प्रार्थना-गृह की वेदी के ऊपर बने जालीदार आले में, और आले पर जड़े रहते हैं कई-कई ताले।

पिछले ४०० वर्षों से 'सांता सिंदोने' को प्रायः एक पीढ़ी में, एक बार खोलकर रखा जाता है और तब ईसाई दर्शनार्थियों की भीड़ उमड़ पड़ती है तूरीन में। पिछले साल २७ अगस्त से छह सप्ताह तक उसे दर्शनार्थ रखा गया था और तीस लाख भक्तों ने उस पर बनी धुंधली दोहरी मनाव-आकृति को निहारकर धन्यता अनुभव की थी। दस कार्डिनल और सौ बिशप भी आये थे।

श्रद्धालु मानते हैं कि यह दोहरी आकृति ईसा मसीह के शव की छाप है। ऐसी मान्यता है कि सलीब से उतारकर मसीह के शव को इस कपड़े के आधे हिस्से पर लिटाकर शेष कपड़ा उसके ऊपर ओढ़ा दिया गया था (देखिये–चित्र पृष्ठ ४६) और तब पसीने और खून से सनी उनकी दिव्य देह की दोहरी छाप इस कपड़े पर पड़ गयी थी।

प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच यह कपड़ा ईसा मसीहा का कफन है? इसकी जांच पिछले साल अक्तूबर से यूरोपीय और अमरीकी विज्ञानी नवीनतम वैज्ञानिक विधियों और उपकरणों से कर रहे हैं। जांच के परिणाम सामने आने में अभी शायद समय लगेगा। परंतु इस 'पवित्र कफन' और इसके बारे में अब तक हुई खोजों का परिचय तो पा लें।

जब 'पवित्र कफन' को पूरा फैला दिया जाता है, तो उसकी लंबाई में मानव-शरीर की धुंधली-सी दोहरी आकृति दिखाई देती है। ललछौंह भूरे रंग की इन दो मानव-आकृतियों के सिर आपस में छूते हैं और पैर विपरीत दिशा में हैं। एक आकृति शरीर के अग्रभाग की है, दूसरी पृष्ठभाग की। सामने वाली आकृति में भरी-पूरी दाढ़ी और घूरती हुई आंखों वाली मुखाकृति है। किर-मिजी धब्बों की दो धाराएं इस तरह आकर पेडू के ऊपर मिलती हैं कि जैसे दोनों हाथों की कलाइयां एक साथ बांधकर हथेलियां पेडू पर रख दी गयी हों। पृष्ठभाग की आकृति में जगह-जगह नन्ही डम्बबेल जैसे बहुत-से निशान हैं जो किरमिजी रंग के हैं।

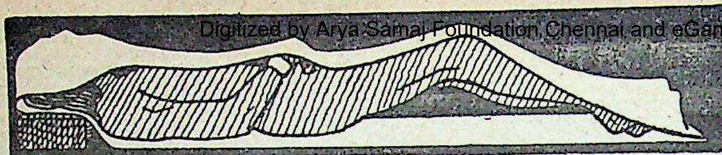
दोनों आकृतियों के दायें-बायें दो सीधी रेखाओं में बड़े-बड़े निशान हैं। ये कपड़े के जलने-झुलसने और मोटे कपड़े की थिगली लगाकर मरम्मत किये जाने के प्रमाण हैं। इनके अलावा टेढ़े-मेढ़े सूराखों के चार जोड़े भी हैं।

कहा जाता है कि 'पवित्र कफन' तूरीन के प्रधान गिरजे में पहुंचने से पहले कैम्बरी के गिरजे में रखा हुआ था। वहां आग लग जाने पर मंजूषा पर मढ़ी कुछ चांदी पिघल-कर अंदर रखे वस्त्र पर चू पड़ी और उस हिस्से का कपड़ा जल-झुलस गया। क्लेयर मठ की संन्यासिनियों ने थिगलियां लगाकर उसकी मरम्मत कर दी।

सूराखों के किनारे जले हुए ह। अगर 'पवित्र कफन' को एक बार लंबाई में, फिर एक बार चौड़ाई में तहाया जाये तो सूराखों के चारों जोड़े ठीक एक-दूसरे पर आते हैं। अनुमान है कि शायद कभी किसी ने लोहे की गरम सलाख घोंपकर 'पवित्र कफन' को नष्ट करने का यत्न किया था। यह वारदात



कफन पर की आकृति (अधिक स्पष्ट बना-कर) और जलने के दाग व थिगलियां।



'कफन' पर शव ऐसे लिटाया गया होगा।

१५१६ ई. से पहले ही हुई होगी; क्योंकि उस वर्ष 'पवित्र कफन' के जो चित्र बने, उन पर भी सूराख अंकित हैं।

यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि यदि सचमुच यह ईसा मसीह का कफन था और इस पर उनके शरीर की छाप बन गयी थी, तो बाइबल में इसका जिक्र क्यों नहीं है? दूसरी बात यह है कि 'पवित्र कफन' का सबसे पहला जिक्र चौदहवीं सदी ई. में मिलता है; उससे पहले इतनी सदियों तक यह चमत्कारी धार्मिक अवशेष कहां तो छिपा रहा और एकाएक प्रकट कैसे हो गया?

असल में 'पवित्र कफन' की ज्ञात कहानी १९ सितंबर १३५६ को आरंभ होती है। उस दिन प्वात्या (फ्रांस) के मोर्चे पर अंग्रेज सेना फ्रांसीसी सम्राट को लगभग कैद कर लेने को ही थी कि ज्योफ्री दे शार्नी नामक फ्रांसीसी सरदार अंग्रेजों की राह रोककर खड़ा हो गया। बड़े उग्र संघर्ष के बाद दे शार्नी भाले के आघातों से मरकर गिरा। तब तक फ्रांसीसी सम्राट को निकल भागने का मौका मिल गया।

इसी ज्योफ्री दे शार्नी के पास यह 'पवित्र कफन' था। यह उसने कहां से और कैसे हासिल किया था, इसकी जानकारी भी उसी के साथ सदा के लिए दफन हो गयी। सच तो यह है कि दे शार्नी के जीवन-काल में भी इस पवित्र अवशेष के अस्तित्व के बारे में किसी को कुछ पता नहीं था। मगर उसकी मृत्यु के कुछ समय बाद उसकी दुर्दशाग्रस्त विधवा इसका प्रदर्शन करने लगी, जो सिलसिला उसके बेटे ने भी जारी रखा।

स्थानीय बिशपों ने तब इसका तीव्र विरोध किया था और उन्हीं दिनों किसी ने लिखा था:

'हमारे प्रभु की आकृति की छाप वाला यह (वस्त्र) उनका असली कफन नहीं हो सकता, क्योंकि पवित्र सुसमाचारों में ऐसी छाप का कोई उल्लेख नहीं है, जबकि अगर यह असली होता तो यह लगभग असंभव है कि सुसमाचार-लेखक इसे दर्ज किये बिना छोड़ देते या कि यह तथ्य हमारे समय तक छिपा रहता।'

था भी वह जमाना ऐसी जालसाजियों का ही। यही नहीं, मृत सरदार के उत्तराधिकारियों ने 'कफन' के प्रदर्शन बंद कर दिये और जालसाजी के आक्षेप का कोई प्रतिवाद भी जारी नहीं किया। इससे संशय और भी घना हो उठा। बाद में सन १४५३ में सरदार की पोती ने, जो कि विधवा और निःसंतान थी, इसे सेवाय के ड्यूक के हवाले कर दिया। तभी से इसे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

पिछले साल मई में ब्रिटेन के विख्यात प्रकाशक विक्टर गोलान्स्ज ने 'द तूरीन

श्राउड' नाम की पुस्तक प्रकाशित की है। उसके लेखक इयन विलिस ने 'पवित्र कफन' से संबंधित तमाम तथ्यों का गहराई से अध्ययन किया है और इस वस्त्र का बारीकी से निरीक्षण भी किया है।

वे बताते हैं कि 'कफन' पर बनी आकृति को बहुत नजदीक से या आतशी शीशे से देखने पर वह वस्त्र में विलीन-सी हो जाती है। अगर यह सचमुच किसी कलाकार द्वारा अंकित है, तो इसे 'इम्प्रेशनिस्ट' शैली का चित्र मानना होगा; मगर उस शैली का जन्म तो पांच सौ साल बाद हुआ। यों भी एक इतालवी विज्ञानी ने जांच-पड़ताल करके बताया है कि कपड़े पर कोई पेन्ट मौजूद नहीं है। आकृति अगर किसी द्रव से निर्मित होती तो रेशों में वह द्रव पैठ जाता; मगर रेशों के अध्ययन से ऐसी किसी चीज का अस्तित्व प्रकट नहीं हुआ है।

आज से अस्सी वर्ष पूर्व सेकंदो पिया नाम के इतालवी वकील ने 'पवित्र कफन' का सबसे पहला फोटोग्राफ लिया था। उसने इसके लिए उन दिनों प्रचलित कांच का निगेटिव उपयोग किया था। जब वह उसे डार्करूम में ले गया, तो वह चकित रह गया। जब 'कफन' पर ही मुखाकृति धुंधली है, तो निगेटिव पर तो और धुंधली होनी चाहिये। मगर सेकंदो पिया ने डेवलपर में देखा कि कपड़ा तो काला दिख रहा है किंतु मुखाकृति मुंदी हुई आंखों वाले शानदार शाही चेहरे में बदल गयी है। सन १९३१ में गुइसेप्पी एनरी नामक पेशेवर फोटोग्राफर ने जो फोटो लिया, उसमें मुखाकृति और भी स्पष्ट दिखती थी।

ऐसा प्रतीत होता है, जैसे 'कफन' पर बना हुआ चित्र अपने आपमें निगेटिव है। क्या फोटोग्राफी के आविष्कार के कई सौ साल पहले कोई चित्रकार संयोग से ऐसा निगेटिव चित्र रच दे, यह संभव था?

जब अमरीकी वायुसेना अकादमी के भौतिकी के उप-प्राध्यापक डा. जैक्सन ने अमरीकी अंतरिक्ष-कार्यक्रम में प्रयुक्त वी. पी-८ इमेज एनालाइजर से 'पवित्र कफन' पर की आकृति का अध्ययन किया, तो यह देखकर वे स्तंभित रह गये कि यह आकृति तो पूर्णतया त्रिविमीय (थ्री-डाइमेन्शनल) चित्र है।

क्या यह संभव है कि कपड़े पर लिटाया गया शव उस पर अपने उभारों और गढ़ों की स्थायी छाप छोड़ जाये? इसी तरह, क्या यह संभव है कि पसीना और खून कपड़े पर आकृति अंकित कर दें? ये प्रश्न तो बने ही रहते हैं। एक दलील यह है कि भयंकर



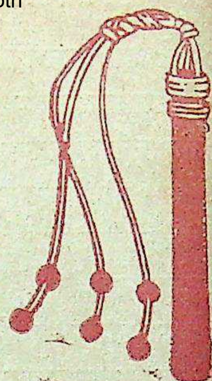
कफन के वस्त्र की बुनावट।

वेदना के क्षणों में पसीने में कुछ विशष रसायन निकलते हैं, जिनसे यह संभव है। मगर परीक्षणों व प्रयोगों से सिद्ध होने तक इसे मानना कठिन है।

'कफन' पर बनी आकृति ५ फुट ११ इंच लंबे आदमी की है और नृवंशशास्त्री कार्लटन कूल ने मुखाकृति का अध्ययन करके बताया है कि ऐसी आकृतियां कुलीन अरबों या सेफारिक यहूदियों में देखी जाती हैं। केश और दाढ़ी का कट रोमन यहूदियों जैसा है।

कोड़ों से पिटाई

विस्मय की बात यह है कि 'पवित्र कफन' की जांच करने वाले चिकित्सकों में से बहुतों की राय इसे प्रामाणिक मानने के पक्ष में होती जा रही है। इस सदी के आरंभ में पेरिस के सोरबान विश्वविद्यालय में शरीररचना-शास्त्र के प्राध्यापक रहने वाले दे लाज, सन १९३०-४० के फ्रांसीसी सर्जन प्येर बार्बेट, आजकल के ब्रिटिश निदानशास्त्री डा. डैरेक बैरोविक एवं डा. डेविड विलिस, अमरीकी निदानशास्त्री डा. राबर्ट बकलिन, चिकित्सक डा. एन्टनी सारा और इटली की न्यायिक-चिकित्साशास्त्र की प्राध्यापिका जुडिथ कोर्दिग्लिया 'पवित्र कफन' के बारे में कई बातों में आपस में सहमत नहीं हैं; मगर वे सभी यह मानते हैं कि 'पवित्र कफन' पर बनी आकृति पांच बातों में बाइबल में आये वर्णनों से मेल खाती है :



रोमन कोड़ा

१. मुखाकृति मे खासकर दायीं आंख के नीचे सूजन के लक्षण हैं और मुंह पर उथले घावों के चिह्न हैं—बेशक सामान्य दर्शक इन्हें पहचान नहीं पाते—और बाइबल में कहा गया है कि ईसा के मुंह पर प्रहार किये गये थे।

२. सारे पृष्ठभाग पर और कहीं-कहीं अगले भाग पर भी छोटे डम्बबेल के से निशान हैं, जिनकी संख्या ९० से कुछ अधिक है। ये निशान रोमन कोड़ों से पीटे जाने के हैं। रोमन कोड़े में चमड़े की दो-तीन पट्टियां होती थीं, जिनके खुले सिरे पर मनकों के जोड़े पिरोये रहते थे। रोमन रिवाज था कि सूली पर चढ़ाने से पहले अपराधी पर कोड़े बरसाये जाते थे। 'सुसमाचारों' में

ईसा की ऐसी पिटाई का उल्लेख है।

३. आकृति के माथे तथा सिर के पिछले भाग एवं पार्श्वों पर खून बहने के चिह्न हैं; ये ईसा को कांटों का ताज पहनाये जाने की पुष्टि करते हैं।

४. हाथों-पैरों से रक्त निकलकर बहने के निशान इस वर्णन से मेल खाते हैं कि ईसा के हाथों-पैरों में कीलें ठोंकी गयी थीं।

[यहां एक बात उल्लेखनीय है। फ्रांसीसी सर्जन बार्बेट ने सिद्ध किया है कि 'पवित्र कफन' पर जिस मनुष्य की छाप है, उसकी कलाइयों में कीलें ठोंकी गयी थीं। सलीब पर टंगे ईसा मसीह के चित्रों में चित्रकारों ने हथेलियों में कीलें दिखायी हैं। सन १९६८ में इस्रायली पुरातत्त्वज्ञ पहली सदी ई. के एक यहूदी कब्रिस्तान की खुदाई करवा रहे थे। वहां उन्हें सलीब पर चढ़ाकर मारे गये मनुष्य की पहली ठठरी मिली। उसमें कीलें कलाई में ही ठोंकी हुई थीं। अलबत्ता बाकी बातों में कुछ अंतर था।]

५. 'पवित्र कफन' पर की आकृति में दायीं ओर की पांचवीं व छठी पसली के बीच अंडाकार घाव हैं। बाइबल (युहन्ना का सुसमाचार) के अनुसार, सलीब पर टंगे ईसा की पसलियों में भाला घोंपा गया था।

परंतु बाइबल के अनुसार ईसा के सिर पर कांटों का ताज पूर्वाह्न में पहनाया गया था और भाला घोंपा गया था सांझ को, जब तक सिर से निकला खून जमकर सूख चुका होगा। मगर 'पवित्र कफन' पर उसकी छाप बैंगनी-किरमिजी रंग की है। इससे भी बड़ी बात यह कि जब 'कफन' से लिये गये धागों की पैराक्साइडेस जांच की गयी, तो खून की उपस्थिति का कोई प्रमाण नहीं मिला। क्या कैम्बरी के गिरजे में लगी आग ने 'कफन' को झुलसाने-जलाने के साथ खून को भी निष्प्रभाव बना दिया?

डा. मैक्स फ्राइ पचीस वर्ष तक ज्यूरिच (स्विट्जरलैंड) की पुलिस-प्रयोगशाला के अध्यक्ष रहे थे। उन्हें सूझा कि यदि यह 'कफन' प्रामाणिक है, तो यह मूलतः फिलस्तीन से आया होगा; और वहां रहते समय इस पर जो धूल आदि गिरी, उसके कुछ तो कण इस पर जरूर होंगे। तूरीन के आर्चबिशप की अनुमति से उन्होंने 'कफन' पर से कुछ धूलिकण लेकर सूक्ष्मदर्शक के नीचे



कफन-खंड—जांच के लिए काटा गया।



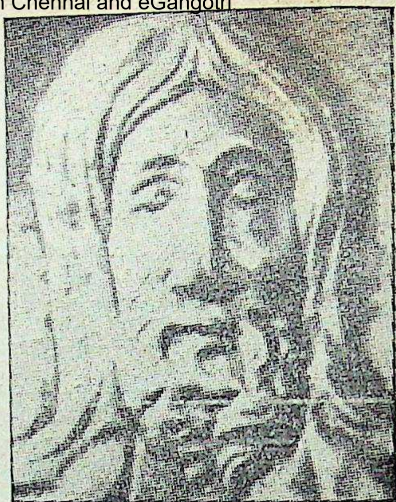
लिनम मैक्रोनेटम—कफन पर प्राप्त एक पराग-कण।

उनकी जांच की। उसमें उन्हें हैलोफाइट कुल की वनस्पतियों के पराग के कुछ कण मिले। ये पौधे नमक (सोडियम क्लोराइड) की उच्च मात्रा वाले परिवेश में पनपते हैं। ऐसा परिवेश केवल मृत सागर (डेडसी) के आप-पास है। तुर्की इलाके के कुछ पौधों के पराग-कण भी 'कफन' पर मिले। (पराग के कण बड़े ही सख्त होते हैं और चिरकाल टिकते हैं।) सो 'कफन' कभी फिलस्तीन और तुर्की इलाके में रहा होगा और यह चौदहवीं सदी से पहले की बात ही हो सकती है।

'द तूरीन श्राउड' के लेखक इयन विलिस का खयाल है कि चौदहवीं सदी से पहले 'पवित्र कफन' का उल्लेख नहीं मिलने का कारण शायद यह है कि इस काल से पहले उसे कफन के बजाय, अन्य ही किसी रूप में जाना जाता था। किस रूप में भला?

लेखक विलिस ने अपनी पुस्तक में इसका लंबा और जटिल उत्तर दिया है। उसका सार जान लेना ही काफी होगा।

ईसा मसीह की जो विभिन्न मुखाकृतियां चित्रों और मूर्तियों में अंकित की गयी हैं, उनमें से एक मुखाकृति ऐसी है, जिसमें वे ठीक सामने देखते हुए दिखाये जाते हैं। इस रुख वाले विभिन्न चित्रों व मूर्तियों में दाढ़ी और केशों के विन्यास में कुछ-कुछ अंतर भले हो, मगर नाक-नक्श की गहरी समानता पायी जाती है। ठेठ छठी सदी में बने चित्रों आदि तक में यह समानता देखी जा सकती हैं। इसके सबसे पुराने नमूनों



हम्स से प्राप्त चांदी के पात्र (छठी सदी ई.) पर बना ईसा का मुखड़ा—कफन पर की मुखाकृति से आश्चर्यजनक साम्य।

में से एक है शाम (सीरिया) के हम्स नामक स्थान से प्राप्त, छठी सदी ई. के चांदी के एक बरतन पर अंकित ईसा-मुख। उसे देखकर यह खयाल आये बिना नहीं रहता कि उसे अंकित करने वाले ने 'पवित्र कफन' पर की मुखाकृति अवश्य देखी होगी। सच तो यह है कि ऐसी आकृति छठी सदी से पहले के अंकनों में दिखाई नहीं देती। चौथी-पांचवीं सदी में ईसा बहुधा दाढ़ी-मूंछ रहित तरुण के रूप में दरशाये गये हैं या हल्की दाढ़ी और लंबे बालों वाले युवक के रूप में।

फिर छठी सदी में यह घनी दाढ़ी वाली मुखाकृति कहां से टपक पड़ी? ईसाई कला के इतिहासकार इस मामले में चुप ही हैं। मगर पूर्वी यूरोप व पश्चिम एशिया में प्रचलित आर्थोडाक्स चर्च की परंपरा में इसका

कुछ उत्तर मिलता है।

आर्थोडाक्स चर्च की दृढ़ मान्यता रही है कि ईसा की मुखाकृति का मूल आधार है एक चमत्कारी वस्त्र पर अंकित ईसा की छवि। इस चमत्कारी वस्त्र को उनके यहां 'मेन्डिलियन' कहा गया है। इस 'मेन्डिलियन' की नकलें आज भी आर्थोडाक्स संप्रदाय के गिरजों में पायी जाती हैं। पर मूल 'मेन्डिलियन' तेरहवीं सदी में कुस्तुंतुनिया से गायब हो गया। उससे बहुत पहले छठी सदी ई. में भी एक बार वह गायब हुआ था और एशियाई तुर्की के एदेसा नगर में प्रकट हुआ था। और अभी हम कह आये हैं कि छठी सदी से ही ईसा की एक खास मुखाकृति के अंकन की परिपाटी चली।

'मेन्डिलियन' के बारे में बहुत-सी जानकारी दर्ज मिलती है। मान्यता है कि ईसा मसीह ने ग्रेथ्समेन की यातना के समय अपना मुंह धोया और एक कपड़े से सुखाया। तब उनकी मुखाकृति उस वस्त्र पर अंकित हो गयी थी; यही वस्त्र 'मेन्डिलियन' कहलाया। 'मेन्डिलियन' की जो अनुकृतियां आर्थोडाक्स संप्रदाय के पुराने गिरजों में हैं, उनमें भी ललछौंह भूरे रंग की, कुछ वैसी ही सामने देखती हुई मुखाकृति देखने को मिलती है, जैसी 'कफन' पर है।

इयन विलिस की राय है कि 'मेन्डिलियन' ही 'पवित्र कफन' है। वे दलील देते हैं कि ईसा मसीह के शिष्य तो मूलतः यहूदी थे— यहूदी संस्कारों में पले और पगे। जब उन्होंने कफन पर मसीह के शव की आकृति अंकित देखी होगी, तो उन्हें झटका-सा लगा होगा। रक्त-सना कफन यहूदी परंपरा के अनुसार तो अपवित्र चीज थी। यदि रुढ़िवादी यहूदी कफन को देख लेते तो अवश्य ही नष्ट कर देते। शायद इसीलिए शिष्यों ने इसका बाइबल में भी जिक्र नहीं किया।

एक अनुश्रुति के अनुसार, ईसा मसीह को उनके जीवन-काल में ही एशियाई तुर्की के एदेसा शहर के शासक एबगार (पंचम) ने अपने यहां निमंत्रित किया था। (ऐतिहासिक प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं कि एबगार पंचम १३–५० ई. में एदेसा पर शासन करता था।) ईसा तो एदेसा नहीं जा सके; मगर उनकी मृत्यु के बाद उनका एक शिष्य तादेयस (जो बारह मुख्य शिष्यों में गिने जाने वाले तादेयस से भिन्न था) एदेसा गया और वहां उसने ईसाइयत का प्रचार किया।

परंपरागत मान्यता है कि तादेयस अपने संग 'मेन्डिलियन' भी ले गया था। मगर एबगार (पंचम) की मौत के बाद वहां के राजाओं ने ईसाइयत को तो तिलांजलि दी ही, ईसाइयों पर अत्याचार भी किया।

अगली पांच सदियों तक 'मेन्डिलियन' कहां रहा, इसका कुछ पता नहीं चलता। मगर छठी सदी में, शायद ५२५ ई. की बाढ़ के बाद जब शहर का पुनर्निर्माण हो रहा था, नगर-द्वार के ऊपर एक तरेड़ को खोलने पर उसमें अन्य अनेक वस्तुओं के साथ ईसा मसीह की एक तस्वीर मिली, जो 'हाथों से अनिर्मित' थी। लोगों ने उसे 'मेन्डिलियन'

[शेष पृष्ठ १४५ पर]



अनुवाद : राजेन्द्र शर्मा

यह शादी शुरू से ही डा. सोलोमन मार्गोलिन के लिए परेशानी की वजह बन गयी थी। शादी इतवार को होने वाली थी, पर ग्रेटल की शिकायत थी कि ले-देकर उसे एक इतवार ही उनके साथ बिताने को मिलता है और वह भी अक्सर यों ही जाया हो जाया करता है। उनकी शामें अक्सर समाज-सेवा के कामों में बीत जाती थीं, और वे ग्रेटल को वक्त दे ही नहीं पाते थे। वे एक समिति के सदस्य थे, जो यहूदियों के लिए स्वतंत्र देश की मांग कर रही थी; एक यहूदी शैक्षणिक संस्था के संचालक-मंडल में भी वे थे; और एक यहूदी त्रैमासिक के सहसंपादक भी। और हालांकि वे अपने को नास्तिक कहते थे, पर सीडर जैसे त्योहार की दावतों में वे बरसों से ग्रेटल को लेकर अपने गांव सैन्सीमिन के पुराने मित्र अब्राहम मेखल के यहां जाया करते थे। यहूदी पादरियों, शरणार्थियों और लेखकों का इलाज डा. मार्गोलिन मुफ्त कर दिया करते थे, जरूरत पड़ने पर उन्हें मुफ्त दवाइयां और अस्पताल में बिस्तर भी दे देते थे।

अब अब्राहम मेखल अपनी सबसे छोटी लड़की सिल्विया की शादी करने जा रहा था। ग्रेटल ने तो इतनी दूर जाने से साफ मना कर दिया था। उसके अनुसार, शादियों में गरिष्ठ खाना खाने और नींद खराब करने के अलावा होता ही क्या है? शायद मेरी पत्नी सच कहती है, डा. मार्गोलिन ने सोचा। उन्हें सोने का मौका कब मिलेगा?

सोमवार की सुबह रोज की तरह उन्हें अस्पताल पहुंचना होगा। ये शादियां उन्हें वैसे भी नापसंद थीं, क्योंकि इनमें यहूदी संस्कृति का बड़ा बिगड़ा हुआ रूप सामने आता था। यहूदी अपनी भाषा को बड़े बनावटी अंग्रेजी-नुमा लहजे में बोलते थे, संगीत कर्णकटु होता था, नाच जंगली। अपनी ईसाई पत्नी को ऐसे मौकों पर ले जाने में वे शरम महसूस करते थे। वह भी समझने लगी थी कि अमरीका में यहूदी धर्म अपनी पहचान खो चुका है। पर इस बार वह नहीं जा रही थी और उन्हें सफाई नहीं देनी पड़ेगी, उन्होंने सोचा।

साधारणतः इतवार को सुबह के नाश्ते के बाद वे अपनी पत्नी के साथ सेंट्रल पार्क में टहलने निकल जाते थे। पर आज वे बिस्तर में ही लेटे रहे। धीरे-धीरे उन्होंने सेन्सीमाइनर समाज के उत्सवों में जाना बंद कर दिया था। उनका गांव सैन्सीमिन कभी का बरबाद हो चुका था। वहां उनके परिवार के शेष सदस्यों को किसी जमाने में भीषण यातनाएं देकर मार डाला गया था। गांव के बचे-खुचे लोग भागकर अमरीका आ गये थे। वे लोग शिकायत करते थे कि सोलोमन उनसे दूर होता जा रहा है और अपने आपको बड़ा आदमी समझने लगा है। फिर भी उन्हें शादी में जाना था—भेंट तो वे पहले ही भेज चुके थे।

रात में काफी बर्फ गिरी थी और सुबह बड़ी बदरंग थी। सोलोमन ने देर तक सोने का इरादा किया था, पर आज उनकी नींद और जल्दी खुल गयी थी। आखिर उन्होंने बिस्तर छोड़ दिया, उठकर दाढ़ी बनायी, भूरे बालों को छांटा। फिर भी उनकी ढलती उम्र साफ दिख रही थी, आंखों के नीचे सूजन थी और चेहरे पर झुर्रियां। नाश्ते के बाद वे ड्राइंग-रूम के सोफे पर लेट गये। यहां से ग्रेटल दिख रही थी, जो पेटीकोट पहने थी और रसोई में खड़ी कपड़ों पर इस्तिरी कर रही थी। ग्रेटल बर्लिन के उस अस्पताल में नर्स थी, जहां वे कभी डाक्टर थे। उसका एक भाई नात्सी था और रूस की जेल में मर गया था। दूसरा साम्यवादी था और उसे नात्सियों ने गोली से उड़ा दिया था। उसका बूढ़ा बाप हैम्बर्ग में अपनी दूसरी बेटी के साथ रहता था, जहां ग्रेटल उसे बराबर पैसे भेजती रहती थी। वह खुद भी अपने तौर-तरीकों में लगभग यहूदिन हो गयी थी।

डा. मार्गोलिन ने जम्हाई ली, सिगरेट उठायी और अपने बारे में सोचने लगे। अपने व्यवसाय में उन्हें काफी सफलता मिली थी। उनके साथी उनका आदर करते थे और न्यूयार्क के यहूदियों में वे एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। उनका दवाखाना वेस्ट एंड एवेन्यू में था और उनके मरीज काफी पैसे वाले लोग थे। सैन्सीमिन के एक गरीब धर्म-शिक्षक का बेटा इससे ज्यादा और क्या उम्मीद कर सकता था? उनका कद लंबा और व्यक्तित्व आकर्षक था और स्त्रियों को खुश करने में वे माहिर थे। वे अभी भी उनका साथ ढूंढ़ते थे, हालांकि उनकी उम्र

काफी हो चुकी थी और रक्तचाप भी था।

पर भीतर ही भीतर वे जानते थे कि अपनी जिंदगी में वे असफल रहे हैं। बचपन में लोग उनकी चतुराई पर अचंभा किया करते थे—बाइबल के कई अंश उन्हें कंठस्थ थे और गूढ़ यहूदी धर्मग्रंथों का भी उन्होंने उस कच्ची उम्र में ही अध्ययन कर लिया था। सत्रह साल की उम्र होते-होते उन्होंने स्पिनोज़ा के नीतिशास्त्र का भी अनुवाद किया था। सब कहते थे कि वे बड़े होकर महान बनेंगे।

लेकिन वे अपनी प्रतिभा का समुचित उपयोग नहीं कर पाये। उनके अध्ययन का क्षेत्र बराबर बदलता रहा और उन्होंने कई साल विभिन्न भाषाएं सीखने और एक देश से दूसरे देश में भटकने में गंवा दिये।

उन्हें प्रेम के क्षेत्र में भी सफलता नहीं मिली। उन्होंने रैजेल से प्रेम किया था, जो घड़ीसाज मेलेख की लड़की थी। पर रैज़ेल की शादी कहीं और हो गयी थी और बाद में नात्सियों ने उसे गोली से उड़ा दिया था। सारी जिंदगी कुछ अहम सवाल उन्हें परेशान करते रहे थे। रात में अक्सर उनकी नींद टूट जाती थी और वे सोचा करते थे कि दुनिया आखिर क्या है? वे सदा अपने को बीमार समझते थे और मौत का डर उन्हें सपनों में भी सताता रहता था। हिटलर ने जो यहूदियों का क़त्लेआम किया था और जिस निर्दयता से उनके परिवार के लोगों की हत्या की गयी थी, उससे मनुष्य-जाति पर से उनका विश्वास डिग गया था। उन्हें उन औरतों से बड़ी नफरत होती थी, जो अपनी छोटी-छोटी तकलीफें लेकर उनके पास आया करती थीं, जबकि उधर असंख्य लोग एक दूसरे को यातना देकर मारने की तजवीजें ढूंढ़ रहे थे।

ग्रेटल रसोई से बाहर आ गयी। 'तुम कौन-सी कमीज पहनकर जाओगे?' उसने पूछा।

सोलोमन ने उसकी तरफ देखा। ग्रेटल ने खुद काफी मुसीबतें झेली थीं। वह अपने भाइयों पर भी शर्मिंदा थी, जिनमें से एक नात्सी था। वह अपने पति के समक्ष अपने को अपराधी महसूस करती थी, जैसे उससे बड़ी भारी गलती हो गयी हो। शायद इसीलिए वह घर में नौकरानी रखने से साफ मना करती थी, और सारा काम खुद ही करती थी, हालांकि उसका पति धनी था।

'कमीज!' यकायक सोलोमन ने कहा—'कोई-सी भी चलेगी। सफेद दे दो।'

वह कमरे के बाहर चली गयी।

डा. सोलोमन मार्गोलिन ने एक बार फिर शीशे में देखा और वे बाहर आ गये। अपने आकर्षक व्यक्तित्व से लोगों को प्रभावित करने की इच्छा उनमें अब भी मौजूद थी। मगर वे सिद्धांतवादी भी थे। अपने मरीजों के साथ वे सदा बेहद ईमानदारी बरतते थे और पैसा या प्रतिष्ठा कमाने के लिए अनुचित साधन उन्होंने कभी नहीं अपनाये। उनकी कार भी सादी थी, अन्य साथियों की तरह कैडिलैक नहीं। पर शादी में उन्होंने टैक्सी से जाना पसंद किया।

सिंगर अमरीका में रहने वाले यहूदी लेखकों में यहूदी परंपराओं से सबसे अधिक जुड़े हुए हैं और अमरीका की मिश्रित यहूदी संस्कृति के आलोचक हैं। उनका जन्म १९०४ में पोलैंड में हुआ था और १९३५ में जब हिटलर ने यहूदियों को बर्बर यातनाएं देना शुरू कर दिया, वे अमरीका चले आये थे और तब से वहीं हैं।

परंतु ऐसा नहीं लगता कि अमरीका की भड़कीली संस्कृति ने उन्हें बहुत अधिक भावित किया है। उनकी जड़ें, उनका खास रिश्ता जमीन से है—पोलैंड के उन यहूदी गांवों से जहां वे पैदा हुए, जहां उनका बचपन गुजरा। इस रिश्ते की काव्यात्मक प्रस्तुति इस कहानी में भी मिलती है।

एक और खास बात। गांव के लोग (जिनका कि सिंगर मुख्यतया चित्रण करते हैं) कुछ मानी में अधिक कल्पनाशील होते हैं, जादू-टोने में, अतींद्रिय अनुभवों में अधिक सहज विश्वास रखते हैं। सिंगर की अन्य कई रचनाओं की तरह इस कहानी में भी यथार्थ और कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण है। टैक्सी में ब्राउन्सविल जाते हुए एक दुर्घटना में डा. मार्गोलिन की मृत्यु हो जाती है, फिर भी वे विवाह-स्थल पर 'पहुंच' जाते हैं, अपने गांव के मित्रों से 'मिलते' हैं, यहां तक कि अपनी प्रेमिका से भी जो उन्हीं की तरह मृत है। स्थूल यथार्थ के धरातल को छोड़ मानवीय संबंधों का सहज व मर्मस्पर्शी चित्रण वे यहां कर पाये हैं और इसी में कहानी की सार्थकता है। आत्मविश्लेषण भी बराबर मौजूद है। अर्थात् कहानी कई धरातलों पर साथ-साथ चलती है, उसमें गहराई है। —राजेन्द्र शर्मा

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

इस सर्द रात में टैक्सी की खिड़की से बाहर देखने को कुछ ज्यादा नहीं था, बस न्यूयार्क की सफेद सड़कें दूर तक फैली हुई थीं। कुछ देर बाद वे आंखें बंद करके सीट में पीछे झुक गये। शायद यह दुनिया भी एक टैक्सी की तरह है, जो अनजान रास्तों पर कहीं बढ़ी चली जा रही है। लेकिन ईश्वर ने हिटलर और स्तालिन जैसे लोग क्यों बनाये? भयंकर नर-संहार वाले विश्व-युद्धों की क्या जरूरत थी? लोग बीमारियों से क्यों मरते हैं? डा. मार्गोलिन ने एक सिगरेट लेकर सुलगा ली। अपनी कब्रें खोदते वक्त उनके कई चाचा क्या सोच रहे थे? (नात्सियों ने यहूदियों से कब्रें खुदवायी थीं और उन्हें मारकर उन्हीं कब्रों में गाड़ दिया था।) क्या आदमी अविनाशी है? क्या आत्मा जैसी कोई चीज है? पर उन्हें लगा कि ऐसी सारी चर्चा सारहीन है।

टैक्सी ईस्ट रिवर को पार करके आगे बढ़ने लगी और अब आसमान साफ दिख रहा था, जो भट्ठी में जलती धातु की तरह लाल था। बर्फ धीमे-धीमे बराबर गिर रही थी, धरती पर शांति फैलाते हुए, जैसा कि वह हजारों बल्कि लाखों सालों से करती आ रही थी। टैक्सी की सामने की खिड़की खुली थी और पेट्रोल व समुद्री गंध लिये हवा के

अगला नवनीत

मनुष्य छोटा है, छोटा ही सुंदर है

स्व. शूमाकर के आर्थिक-सामाजिक चिंतन का सार **नेमिशरण मित्तल** के शब्दों में।

काला ताजमहल

क्या मथुरा रिफायनरी शाहजहां के संगमरमरी स्वप्न ताजमहल को दर्शनीय रहने देगी?

रूसी राष्ट्रपति के साथ एक रात

मिस्र के एक मूर्धन्य पत्रकार का दिलचस्प अनुभव।

कहानियां:

विकल्प (मराठी)—शरू रांगणेकर; कथा (हिंदी)—मनहर चौहान।

वृद्धो, अपने को बदलो

क्रांतिकारी पृथ्वीसिंह आजाद का वृद्धों को उद्‌बोधन।

अन्य लेख

औरत क्लार्क; नाभिक को कौन जोड़ता है?; महामौन की गोद में; जीवजंतुओं में विद्युतगति; किस्सा कुंआरी जासूसों का; फूल कैसे खिलते हैं?

कविताएं—संस्मरण—विज्ञान—हास्य—अन्य स्थायी स्तंभ।

सर्द झोंके भीतर आ रहे थे।

यकायक पूर्वी पार्कवे पर टैक्सी बड़े जोर से उछली और फिर एकदम रुक गयी। शायद कोई दुर्घटना हो गयी थी। एक पुलिस कार दौड़कर वहां पहुंची और उस पर लगा साइरन जोर से बज उठा। एक एम्बुलेन्स भी तेजी से पहुंच गयी। डा. मार्गोलिन का चेहरा दुःख से सिकुड़ गया। बेचारा एक और आदमी मारा गया था। गाड़ी को जरा-सा गलत घुमा दो और एक आदमी की सारी योजनाएं हवा हो जाती हैं। दुर्घटनाग्रस्त आदमी को स्ट्रेचर पर ले जाया जा रहा था। गहरे रंग के सूट और खून सनी कमीज के ऊपर उसका निचुड़ा चेहरा पीला पड़ गया था। लाश की एक आंख बंद थी और दूसरी अधखुली। शायद वह भी किसी शादी में जा रहा था, डा. मार्गोलिन ने सोचा। शायद वह उसी शादी में जा रहा था, जिसमें वे खुद जा रहे थे! .....

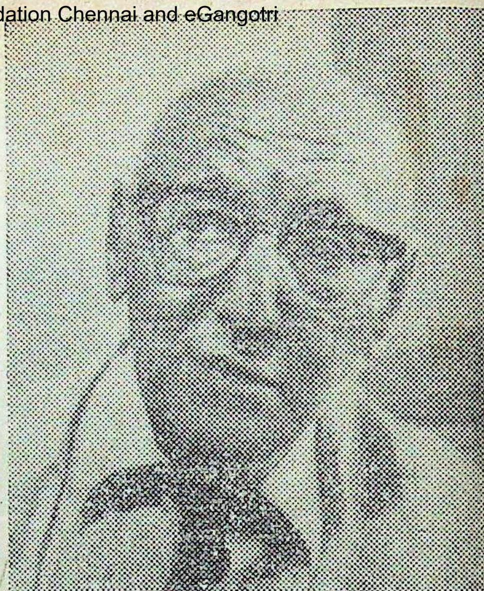
कुछ समय बाद टैक्सी फिर चलने लगी। सोलोमन मार्गोलिन अब न्यूयार्क की ऐसी बस्तियों में से गुजर रहे थे, जो उनके लिए अनजानी थीं। फिर वे एक औद्योगिक बस्ती में से गुजरने लगे। यहां कई कारखाने, कोयले के गोदाम व कबाड़ के ढेर थे। सड़कों पर यहां-वहां हब्शी लोग खड़े थे और उनकी आंखों में एक अजीब उदासी थी, जैसे कि वे पिछले जन्म के पापों को ढो रहे हों। सोलोमन सोचने लगे कि ड्राइवर जाने-अनजाने कहीं उन्हें गलत दिशा में तो नहीं ले जा रहा? पूरे समय वह बिलकुल गुमसुम बैठा रहा था। पर तभी वे एक घनी बस्ती में आ गये। कुछ देर में विवाह-स्थल भी आ गया, जो रोशनी से जगमग था। डा. मार्गोलिन ने ड्राइवर को एक डालर का इनाम दिया, जो उसने बिना बोले रख लिया।

हैट और कोट बाहर लॉबी में रखकर डा. मार्गोलिन ने एक चिपकी यहूदी टोपी पहन ली और वे भीतर आ गये। वहां संगीत की आवाज गूंज रही थी और सारी जगह लोगों से खचाखच भरी हुई थी। टेबल खाने की चीजों से लदी थी और पास में बहुत-सी शराब की बोतलें रखी थीं। बाजे वाले एक यहूदी धुन बजा रहे थे। आदमी आदमियों के साथ नाच रहे थे, औरतें औरतों के साथ, और आदमी-औरतें साथ-साथ भी नाच रहे थे। यकायक दुलहन अपनी सहेलियों के संग आयी। डा. मार्गोलिन हर एक को जानते थे पर एक बेगानापन भी महसूस कर रहे थे, हालांकि लोग उनसे हंसकर बात करते थे और वे भी उसी लहजे में जवाब दे रहे थे। उनके गांव के लोग उन्हें गुजरे जमाने की याद दिला रहे थे। कुछ उन दिनों को याद कर रहे थे, जब उनके समूचे परिवारों को जर्मनों ने गोलियों से भून दिया था। 'हम खुद भी तो तब मौत के कितने नजदीक थे!' एक ने कहा। 'एक तरह से हम सभी लोग मरे हुए हैं। हमारा सर्वनाश करने में उन्होंने क्या कसर छोड़ी थी? जो बचे-खुचे लोग हैं, उनके दिलों में मौत की दहशत अभी भी बनी हुई है। पर इस वक्त शादी है और

हमें खुश होना चाहिये।

अब शादी की रस्म का वक्त हो चुका था, पर कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति रह गया था और लड़की का बाप अब्राहम मेखल बेसब्री से उसका इंतजार कर रहा था। इधर नाच और तेज होता जा रहा था, और ज्यादा लोग उसमें शामिल होते जा रहे थे। शोर इतना बढ़ गया था कि सोलोमन की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि लोग उनसे क्या कह रहे हैं, और वे हर बात पर हां कहकर सिर हिलाते जा रहे थे। 'डा. मार्गोलिन, आप नाच क्यों नहीं रहे?' एक पूछ रहा था। 'हम आपके लिए कोई अजनबी तो नहीं हैं। वहां गांव में आप कोई डाक्टर-वाक्टर नहीं थे, सिर्फ श्लोइम डेविड थे, धर्म-शिक्षक के बेटे। हम सभी एक ही मिट्टी से बने है, और आगे कभी एक ही मिट्टी में साथ-साथ सो जायेंगे।'

डा. मार्गोलिन ने कुछ पिया नहीं था, पर फर्श उन्हें घूमता लग रहा था जैसे वे नशे में हों। एक कोने में खड़े होकर वे नाचने वालों को देख रहे थे। तभी एक मित्र उन्हें खींचकर ले गया और वे उसके साथ नाचने लगे। कुछ देर बाद उसका साथ छोड़कर वे फिर अलग खड़े हो गये। पर वह महिला कौन है? उन्हें वह कुछ जानी-पहचानी-सी लगी। क्या वे उसे सचमुच जानते हैं? वह तो उन्हें बुला रही है। वे पसोपेश में पड़ गये। वह न तो युवा थी, न बूढ़ी। उन्होंने याद करने की कोशिश की कि उन्होंने उसे कहां पर देखा है—वह छोटा-सा चेहरा, वे



नोबेल-पुरस्कृत सिंगर

गहरी काली आंखें, वह जवान मुस्कान। उसका सौंदर्य ग्रामीण था, उनके गांव सैन्सीमिन की लड़कियों जैसा। उसने अपने बाल भी वैसे ही गूंथ रखे थे। उसे देखकर गुजरे जमाने की याद फिर से ताजा हो गयी। वे आंखें एक जमाने में उन्हें बड़ी प्यारी लगीं थीं, और उनका आकर्षण अमिट था। हल्की-सी मुस्कराहट के साथ उन्होंने उसकी तरफ देखा और वह भी हंस दी। हंसने पर उसके गालों में छोटे-छोटे गढ़े बन गये। मार्गोलिन झेंपते हुए उसके पास गये।

'मुझे ऐसा लगता है कि मैं आपको जानता हूं। क्या आप सैन्सीमिन की हैं?'

'हां, वहीं की।'

उन्हें वह आवाज पहचानी लगी। कभी इस आवाज से उन्हें बड़ा प्यार रहा था।

'सैन्सीमिन की—तो फिर आप कौन हैं ?'

उसके ओंठ कांपे।

'क्या आप मुझे इतनी जल्दी भूल गये ?'

'मुझे सैन्सीमिन छोड़े बहुत वक्त हो गया है।'

'आप पिताजी से मिलने आया करते थे।'

'आपके पिता कौन थे ?'

'घड़ीसाज मेलेख।'

डा. मार्गोलिन यकायक कांप गये।

'अगर मैं पागल नहीं हुआ हूं, तो मैं अनहोनी घटनाएं देख रहा हूं।'

'आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ?'

'क्योंकि रैज़ेल मर चुकी है।'

'मैं रैज़ेल हूं।'

'तुम रैज़ेल हो ? यहां कैसे आयीं ? अगर यह सही है तो कुछ भी संभव हो सकता है। न्यूयार्क कब आयीं ?'

'कुछ ही देर पहले।'

'कहां से ?'

'उधर से ?'

'पर मुझे सबने बताया था कि आप सभी लोग मर चुके हैं।'

'हां, मेरे पिता, मेरी मां, मेरा भाई हर्शेल .....'

'पर तुम्हारी तो शादी हुई थी ?'

'हां, हुई थी।'

'अगर यह सच है, तो कुछ भी संभव है', डा. मार्गोलिन ने इस अप्रत्याशित घटना से कांपते हुए फिर कहा। शायद किसी ने उन्हें गलत जानकारी दे दी थी। पर क्यों ? वे काफी उलझन में थे।

'पर तुमने मुझे कभी सूचना क्यों नहीं दी ? आखिर .....' वे चुप हो गये। वह भी कुछ क्षण को चुप रही।

'मैं सब कुछ खो चुकी थी। पर आत्म-सम्मान तो मुझमें बाकी था।'

'चलो, कहीं एकांत में चलें। यह मेरी जिंदगी का सबसे अच्छा दिन है।'

'पर अभी तो रात है.....'

'तो सबसे ख़ुशनुमा रात ! जैसे कि कोई मरकर जी उठे !'

'कहां जाना चाहते हो ? अच्छा चलो।'

मार्गोलिन ने उनकी बांह थाम ली और युवावस्था का प्रेम एक बार फिर उनके भीतर हिलोरें लेने लगा। वे उसे दूसरे मेहमानों से दूर ले गये—उन्हें डर था कि वह कहीं भीड़ में गुम न हो जाये या कोई दूसरा व्यक्ति आकर उनकी खुशी को खत्म न कर दे। कक्ष को छोड़कर वे ऊपर चले गये, जहां विवाह की रस्म संपन्न होने वाली थी। यहां विवाह-मंडप बना हुआ था और वैवाहिक अनुष्ठान की पूरी तैयारी थी। दोनों यहां आकर सकुचा गये। मार्गोलिन ने विवाह-मंडप की तरफ इशारा किया।

'हम दोनों वहां खड़े हो सकते थे।'

'हां।'

'अपने बारे में बताओ। आजकल कहां हो ? क्या कर रही हो ?'

'बताना आसान नहीं है।'

'क्या अकेली हो ? या किसी के साथ ?'

'साथ ? नहीं।'

'तुमने कभी मुझे अपने बारे में खबर क्यों

नहीं दी ?'

उसने कोई जवाब नहीं दिया।

उसे देखकर सोलोमन को लगा कि जैसे उनका युवावस्था का उत्कट प्रेम वापस लौट आया है। वे इस विचार से कांप गये कि शीघ्र ही उनको जुदा होना पड़ेगा। वे उसे अपनी बांहों में लेकर चूम लेना चाहते थे, पर उन्हें डर था कि कोई वहां आ न जाये। उसके इतने नजदीक खड़े हुए वे अफसोस मना रहे थे कि क्यों उन्होंने किसी और से शादी कर ली, और आखिर क्यों रैज़ेल की मौत की खबर को सही मान लिया था। 'इतने सारे प्यार को मैं अभी तक कैसे दबा सका ? उसके बिना मैं अब तक जी कैसे पाया ? और अब ग्रेटल का क्या होगा ? मैं उसे सब कुछ दे दूंगा—अपना आखिरी पैसा तक....' वे सोच रहे थे। उन्हें खयाल आया कि यहूदी कानून के मुताबिक वे अभी भी अविवाहित हैं, ग्रेटल से उन्होंने सिर्फ कचहरी में शादी की थी। उन्होंने रैज़ेल की तरफ देखा।

'यहूदी कानून के मुताबिक मैं कुंआरा हूं।'

'सचमुच ?'

'यहूदी कानून के मुताबिक मैं तुम्हें यहां ला सकता हूं और विवाह कर सकता हूं।'

वह उनकी बात पर विचार करने लगी। 'हां, मैं समझती हूं...'

'यहूदी कानून के मुताबिक मुझे एक अंगूठी भेंट करने की भी जरूरत नहीं है। विवाह एक पैसा देकर भी हो सकता है।'

'क्या तुम्हारे पास एक पैसा है ?'

उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला, पर बटुआ गायब था। वे अपनी दूसरी जेबें ढूंढ़ने लगे। क्या किसी ने मेरी जेब काट ली ? उन्होंने सोचा। पर यह कैसे हो सकता है ? मैं पूरे समय तो टैक्सी में बैठा हुआ था। क्या किसी ने यहां शादी में मेरा बटुआ पार कर दिया ? उन्हें बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

'अजीब-सी बात है, पर मेरे पास एक पैसा भी नहीं है।'

'हम उसके बिना भी काम चला सकते हैं।'

'पर मैं घर वापस कैसे पहुंचूंगा ?'

'घर जाने की जरूरत ही क्या है ?' उसने हंसकर कहा। उसकी मुस्कान बड़ी रहस्यपूर्ण थी। सोलोमन ने उसकी कलाई पकड़ ली और गौर से उसे देखा। यकायक उन्हें लगा कि यह उनकी रैज़ेल नहीं हो सकती। यह बहुत जवान दिखती थी। शायद यह रैज़ेल की लड़की हो, जो उनके साथ मजाक कर रही है। 'हे, ईश्वर, मुझे क्या हो रहा है !' वे परेशान होकर सोचने लगे। उन्होंने उसकी उम्र का अंदाज लगाने की कोशिश की—शक्ल-सूरत से यह बता पाना कठिन ही था। उसकी काली आंखों में गहराई थी, उदासी भी। वह भी पसोपेश में पड़ गयी थी, जैसे कहीं कोई गड़बड़ हो।

सोलोमन भी यही सोच रहे थे। पर गड़बड़ कहां थी ? और उनका बटुआ कहां गायब हो गया था ? क्या वे बटुआ टैक्सी में ही भूल गये थे ? उसमें कितना पैसा

[शेष पृष्ठ १४८ पर]

सूर में लोकसंग्रह-तत्त्व

डा. विजयेन्द्र स्नातक

भक्त-शिरोमणि सूरदास के काव्य को अभी तक या तो परंपरागत समीक्षा के मानदंड से परखा जाता रहा है, या उन आदर्शों से जो समीक्षकों ने अपनी वैयक्तिक दृष्टि से निर्मित किये हैं। इन मानदंडों से सूर को भक्त, कवि, दार्शनिक, सांप्रदायिक पंडित आदि तो ठहरा दिया गया; किंतु उनके काव्य की अंतर्भूत शक्ति का परिचय नहीं प्राप्त हो सका।

सूर ने सगुण भक्ति को उदात्त रूप में चित्रित करके लोकभाषा को जो गौरव दिया, उसे उस समय के अन्य कवि भी दे रहे थे। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में अवधी और अन्य ग्रंथों में ब्रज को स्वीकार कर लोकभाषा का ही उन्नयन किया था। सूर की विशेषता यह है कि उन्होंने भक्ति जैसे गूढ़-गंभीर और व्यक्तिनिष्ठ साधना के विषय को बिना किसी कृच्छ्र साधना या दीक्षा के जनसाधारण के लिए साध्य बना दिया।

श्रीकृष्ण की सौंदर्यमयी लीलाओं का गान करके उन्होंने जनमानस को मोहित किया और भक्ति के प्रांगण में ला खड़ा किया। परिणामतः निराश और भयभीत हिंदू जनता अपने आराध्य श्रीकृष्ण को इतने समीप पाकर, उनकी विविध लीलाओं में विभोर होकर यह भूल गयी कि उसे कोई भय, त्रास या पीड़ा है, उस पर शोषण और दमन का चक्र चल रहा है; वह किसी प्रकार भी साधनहीन और अकिंचन है। यह आत्मविस्मृति उस समय की नव्य चेतना कही जायेगी। इसी नव्य चैतन्य को लोक के कल्याण का संकेत मानना चाहिये।

सूर ने श्रीकृष्ण की भक्ति का उपदेश किसी ग्रंथ के आधार पर, मर्यादा के मार्ग से, युद्ध और संघर्षरत नायक के जरिये नहीं दिया था। उनका उपदेश प्रेममार्ग में मग्न होकर, पुलकित होकर अपने प्रेमी परमेश्वर की ओर बढ़ने का था। उनका कहना था कि प्रेममार्ग से यह संसार-सागर पार

किया जा सकता है। यद्यपि यह कथन नितांत मौलिक या नया तो नहीं था, किंतु सूर की शैली में यह पहली बार व्यंजित हुआ था :

प्रेम प्रेम से होय प्रेम ते पारहि पइये।
प्रेम बंध्यो संसार, प्रेम परमारथ लइये।
एकै निश्चय प्रेम को, जीवनमुक्ति रसाल,
सांचौ निश्चय प्रेम को, जहि रे मिलै गुपाल।।

सूर ने निराधार प्रेम की स्थापना नहीं की थी। उनके प्रेम के आधार गोपाल थे। वे गोपाल जिन्हें मीरा ने तन-मन-प्राण से स्वीकारा था—'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।' मुद्रा, भस्म, विषाण, मृगचर्म आदि धारण कर, पद्मासन लगाकर, मुदित-नयन ध्यान करने का विधान सूर ने नहीं किया था। निरंजन का ध्यान कर अलख जगाना भी सूर की प्रेम-साधना में नहीं था। सूर के सामने लोकमंगल का प्रश्न था, लोक की कल्याण-कामना ही उनका पहला अभीष्ट था।

क्या सूर ने लोकरंजक लीलाएं गाकर केवल जनता के मनोरंजन जैसा हल्का-फुल्का काम किया था? क्या सूर का सारा साहित्य मनोरंजन के सतही स्तर पर समाप्त हो जाता है? यदि ऐसा है तो उनका भक्तिरस, वात्सल्यरस, माधुर्यभाव, दर्शन, कला, संगीत, तत्त्वज्ञान सब थोथा है। स्मरण रहे कि सूर ने श्रीकृष्ण को छोड़कर किसी का मनोरंजन न किया, न कभी करना चाहा। सूर के आराध्य कृष्ण थे, उनकी लीलाओं द्वारा वे जनकल्याण की कामना से उनका गायन करने में प्रवृत्त हुए थे, इस मंतव्य तक हमें पहुंचना होगा।

सूरदास के काव्य, दर्शन, भक्ति, लोकतत्त्व और जीवन पर दृष्टिपात करने के बाद हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूर-साहित्य किसी राजनैतिक प्रतिक्रिया या सांप्रदायिक परंपरा का संकीर्ण साहित्य न होकर भक्त हृदय की सात्त्विक प्रेरणा से प्रसूत रससिक्त साहित्य है।

जिस युग में सूरदास ने काव्य-सृजन किया, वह उनकी कोमल भावनाओं के सर्वथा अनुकूल नहीं था। उस युग में धर्म अंतर की पावन साधना न रहकर दंभ और पाखंड का रूप धारण कर चुका था। शास्त्रविहीन योगसाधना के मार्ग प्रचलित हो गये थे। एक ओर नाथपंथी सिद्धों का जमघट हो रहा था, तो दूसरी ओर सूफी संतों की रोमानी साधना-पद्धति का प्रचार हो रहा था। इन दोनों विचारधाराओं के योग से निर्गुणमार्गी कबीर, दादू, नानक, दरिया साहब आदि संतों का उदय हुआ।

इन संतों ने अंधविश्वास और आडंबर को चुनौती तो दी, लेकिन निर्गुण ज्ञानमार्ग का उपदेश गूढ़ और गंभीर होने से सर्वजन-सुलभ नहीं बन सका था। कहने को तो कबीर साहब ने सहज साधना, सहज समाधि और सहज ज्ञान की बात कही; लेकिन वह सहज न होकर अत्यंत दुरूह ही बनी रही। उधर सहजयान और बौद्धधर्म की नास्तिक दृष्टि भी धुंधली नहीं हुई थी। ऐसे संक्रांति काल में सूर ने कृष्ण-चरित्र का आश्रय लेकर मर्यादावादी आदर्शों का बीड़ा नहीं उठाया,

वरन कृष्ण की लोकरंजक लीलाओं का गान करके साहित्य को भक्ति के क्षेत्र में स्थान दिया। यह साहित्य का धर्म और भक्ति के साथ सम्मिलन-सहित नूतन संस्कार था।

सूर ने जयदेव और चंडीदास की आवृत्ति नहीं की, किंतु भागवत के लीलातत्त्व को जनभाषा द्वारा लोकमानस तक पहुंचाया। सूर ने शास्त्र को तिलांजलि न देकर शास्त्र की प्रेरणा (स्पिरिट) को अपने साहित्य में प्रतिध्वनित किया। जनसाधारण का कृष्ण-चरित्र के प्रति अधिकाधिक अनुराग ही इस बात का प्रमाण है कि सूर-साहित्य काव्य, दर्शन, भक्ति, साधना और संप्रदाय सभी क्षेत्रों में समान रूप से समादृत है। इस सम्मान का भाजन होने पर भी सूर-सागर धर्मशास्त्र नहीं है, वरन वह संवेदनीय काव्यगीत है जो चित्तवृत्तियों को प्रफुल्लित और परिष्कृत करता है। सूर की वाणी में श्रीकृष्ण की मोहिनी मूर्ति और संगीत-भारती एक साथ साकार हो उठी है।

सूरदास ने अपने युग में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का उपदेश झाड़ने वाले निर्गुण-मार्गी योगियों और दंभी साधुओं के समक्ष भक्ति का एक व्यवहार्य और सुगम मार्ग प्रस्तुत किया था, जिसका उद्देश्य संसार का त्याग किये बिना ही अपने आराध्य को सगुण-साकार रूप में प्रस्तुत करना था। यह उद्देश्य लोकसंग्रह की भावना से दूर न होकर संसार में रहकर लोकसंग्रह का ही एक रूप था। वस्तुतः सूर ने भक्तिमार्ग को सगुणोपासना द्वारा कंटकविहीन बनाकर लोककल्याण का ही पथ प्रशस्त किया था, जिसका मूल्यांकन अभी तक नहीं किया गया है।

जो सूर के प्रेम को लोक से न्यारा और ऐकांतिक मानते हैं, वे वस्तुतः उसके उद्देश्य की गहराई तक नहीं जाना चाहते। सूर का प्रेम गांभीर्य के उस तल तक पैठा हुआ है, जहां सांसारिक कोलाहल और द्वंद्व से संत्रस्त मन की वृत्तियां अपने लिए राग और प्रेम की अतुल निधि पाकर परितुष्ट होती हैं। जीवन की गंभीर समस्याओं से तटस्थ रहने का आरोप भी सूरदास पर इसी कारण लगाया जाता है कि आज जीवन को राजनीति, समाज और संघर्ष तक सीमित मान लिया गया है। पारिवारिक जीवन की शाखा-प्रशाखाओं में फूटने वाली विविध परिस्थितियों का चित्रण, लोक-व्यवहार और लोकनीति का वर्णन भी लोकसंग्रह का ही दूसरा रूप है।

सूर की प्रेमचर्चा में संयोग और विरह का विशद व्यापक वर्णन होने के साथ गांभीर्य का अभाव नहीं है। सूर ने मानव-मन की अतल गहराइयों में प्रवेश कर प्रेम की रागात्मिका स्थिति का चित्रण किया है जो आज मनोविज्ञान की कसौटी पर श्लाघ्य ठहरती है। मनुष्य की पाशव भावना को संस्कृत कर, भक्ति की पावन मंदाकिनी में प्रक्षालित कर समाजोपयोगी बनाने का गुरुतर कार्य सूर ने किया है। उन्होंने यह कार्य लोक-संग्रही दृष्टि से ही किया है और उसके



युग की सापेक्षता से सूर और उनका साहित्य सर्वथा बचा रहा। सूर ने भक्ति को माधुर्य-मंडित करके प्रस्तुत करने का ध्येय अपने सामने रखा था। यही उस युग की सबसे बड़ी मांग थी।

चैतन्य के शिष्य रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी ने शास्त्रीय मर्यादा में देववाणी द्वारा भक्ति का माधुर्य-पक्ष स्थिर किया था। किंतु जन-मानस से उसका सीधा लगाव न उस युग में हुआ और न बाद में ही हो सका। सूर ने उसी युग में भक्ति की नूतन मर्यादा बनाकर जन-मानस को उसमें निमज्जित कर दिया।

इसके साथ ही सूर ने साहित्य की शाश्वत मान्यताओं को सदैव अपने सामने रखा। फलतः सूर-साहित्य युग की सीमाओं में सिमटकर समाप्त नहीं हो गया। यदि सूर आख्यान-काव्य लिख पाते तो शायद स्थिति कुछ और होती; किंतु गेय मुक्तकों की

प्रभाव का आकलन लोकसंग्रह के निकष पर ही करना चाहिये।

यदि युग-सापेक्ष दृष्टि से तात्कालिक समाज को केंद्रबिंदु बनाकर सूर-साहित्य का आकलन किया जाये तो स्पष्ट लक्षित होगा कि सूर ने बाह्य प्रपंच से मुक्ति लेकर अंतर्लीन दशा में काव्यसृष्टि की थी। किंतु इसका अर्थ यह न समझ लिया जाये कि

चित्र—जसोदा मैया और नंदलाल : सत्यकाम राहुल

परंपरा में उन्होंने युग-निरपेक्ष चिरंतन साहित्य सृजन करके, अपना स्थान भक्ति, प्रेम, काव्य और संगीत में अमर बना लिया है।

सूर-साहित्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर अभी तक सतही तौर पर ही विचार हुआ है। मनोवैज्ञानिक गंभीरता के साथ सूर-साहित्य का चिंतन-मनन अद्यावधि नहीं हुआ है। बाललीला या भ्रमरगीत के पदों में गोपियों (युवतियों) की विदग्ध वाक्-पटुता में मनोविज्ञान का शोध करने से सूर का आभ्यंतर भाव और मनोविकार-संबंधी मनोविज्ञान उद्घाटित नहीं होता। सूरकाव्य में भावों की सूक्ष्म शैली से व्यंजना हुई है। अतः शैशव एवं यौवन की इनी-गिनी बातों तक ही उसे सीमित नहीं कर देना चाहिये।

यह कहना कि सूर की उक्तियां अत्युक्तिपूर्ण हैं अतः वे स्वाभाविक रूप से किसी भाव की व्यंजना नहीं करतीं, बहुत युक्ति-संगत नहीं है। भावों की इयत्ता न होने के साथ उनकी अभिव्यक्ति के प्रकारों की भी सीमा नहीं है। कृष्णलीला के विविध रूपों में भावों और मनोविकारों की विविधता का यदि संधान किया जाये, तो विदित होगा कि सूर की अंतर्दृष्टि मन के उन गुह्य स्तरों तक गयी थी, जहां सामान्य मानव की पहुंच नहीं हो सकती।

मनोविज्ञान का सीमित अर्थ लेकर सूर-साहित्य को रूप-वर्णन या भाव-वर्णन तक नहीं बांधा जा सकता। इन दोनों क्षेत्रों से आगे मन के द्वंद्व और संघर्ष की अभिव्यक्ति को भी मनोविज्ञान की कसौटी पर परखना होगा। सूर की गोपियां, सूर की राधा, सूर की यशोदा, सूर के गोप और सूर के कृष्ण सभी अपने-अपने क्षेत्र की व्यापक परिधि में भाव-व्यंजना करते हुए मन के उन स्तरों का अनावरण करते दृष्टिगत होते हैं, जो मनस्तत्त्व के पारखी द्वारा ही संभव है।

सूर का कविता-क्षेत्र महाकाव्य-प्रणेता कवियों की अपेक्षा सीमित था। भक्ति की नींव पर सूर ने अपने वात्सल्य, माधुर्य और शृंगार का भवन खड़ा किया था। भवन बनकर तैयार हुआ तो वह शृंगार के उदात्त रूप का, माधुर्य के अवदात रूप का और भक्ति के उज्ज्वलतम रूप का प्रतीक बन गया। भक्त के रूप में सूर ने अपनी साधना शुरू की, भक्त के रूप में उसका उपसंहार भी किया; किंतु जब उनकी साधना फलीभूत हुई तो सूर भक्त, दार्शनिक, कवि और महात्मा बन गये।

सीमाओं में रहकर असीम हो जाना ही कला की परिणति है। सूर की कला आज असीम होकर श्रद्धा-सम्मान पा रही है। सूर की दृष्टि को परिमित, उनकी रचना को अनेकरूपता-विहीन और उनके काव्य को वस्तुगांभीर्य-रहित कहना सूरकाव्य के व्यापक प्रभाव की अवहेलना करना है।

जीवन का सबसे व्यापक पक्ष और काव्य का शिरोमणि है शृंगार। रतिभाव की प्रबल शक्ति का उल्लेख अनादि काल से होता आ रहा है। सूर ने भक्ति की गरिमा



कृष्ण और राधिका : चोणकर

को जानते हुए भी शृंगार को माध्यम बनाकर काव्य लिखा—इस रहस्य को समझे बिना उनके काव्य का अध्ययन नहीं किया जा सकता। विश्व-साहित्य की भूमिका पर सूर-साहित्य की कतिपय विशेषताओं का विचार किया जा सकता है। भारतीय साहित्य में बालक्रीड़ा का जो रूप सूर ने प्रस्तुत किया, वह उनके पहले या उनके बाद और किसी कवि द्वारा वर्णित नहीं हुआ। विश्व-साहित्य में भी कदाचित् ईश्वर की बाललीलाओं का ऐसा वर्णन किसी कवि ने नहीं किया होगा। क्योंकि अवतारी ईश्वर की कल्पना के साथ शिशुक्रीड़ा का संबंध भारतीय कल्पना में तो संगत बैठ जाता है, विदेशी भावधारा के साथ उसका मेल ही नहीं है।

विश्व-साहित्य का पाठक न होने के कारण मैं इस विषय में प्रामाणिक रूप से कोई व्यवस्था देना उचित नहीं समझता। हां, इतना अवश्य कहूंगा कि जिस दुःखांत रचना-विधान का श्रेय विदेशी कवियों और लेखकों को दिया जाता है, 'सूरसागर' के गोपी-विरह-वर्णन में उसके बीज ही नहीं, उसका परिपूर्ण विकास विद्यमान है। जैसे गोपियों की मर्मांतक वेदना को सूर ने स्वयं भोगकर काव्य लिखा है, प्रत्येक पद से यह व्यंजित होता है। कवि की तल्लीनता ही काव्य की सफलता है और वह सफलता कवि ने विरह, जन्म, दुःखांत संदर्भों द्वारा प्राप्त की है।

एशिया के अरब, फारस आदि देशों के विरह-वर्णन के साथ सूर का विरह-वर्णन कोई तादात्म्य नहीं रखता। कारण, उनके काव्य का आधार इतना स्थूल एवं भौतिक है कि उनकी आध्यात्मिकता काव्य की व्यंजना में समाप्त हो जाती है। सूर-काव्य की व्यंजना लौकिक होने के साथ-साथ अपने पारलौकिक या आध्यात्मिक अनुबंध को तिल-भर भी नहीं छोड़ती। सूर की कविता न तो उन्मत्त प्रेमी का प्रलाप है, और न अंधभक्त की रहस्य-साधना। उसमें न तो वासना की कालिमा है और न योग-साधना की जटिल दुर्बोधता।

महाकवि सूर ने लीलारस की जो अनुभूति अपने जीवन में प्राप्त की थी, उसका साक्षात्कार संयोग-वियोग की मृदुल-मोहक मर्मछबियों के चित्रण द्वारा अपने पाठक को भी कराया। कामभाव की विगर्हणा

को स्वीकार न करके सूर ने काम के मूल में सन्निविष्ट जगत की रागमयी शुभ्र प्रवृत्तियों का पता लगाया और माधुर्य-शृंगार की स्थापना करके जगत और जीवन को रागरंजित कर दिया।

सूरकाव्य की सार्थकता न तो उनके शिल्प में है और न उनकी कोरी आध्यात्मिकता में ही; वरन उसकी सार्थकता तो जीवन को रागमय बनाकर, प्रसन्न और विशद बनाकर, भगवत्चरणारबिंदों में लीन करने में है। पुष्टिमार्गीय भक्ति को सूरदास ने पूरे विवेक के साथ स्वीकार किया था। वे पुष्टि में लोककल्याण का भाव देख सके थे। यह पुष्टि निवृत्ति का उपदेश नहीं देती, वरन प्रवृत्तिपरकता ही इसका संदेश है। जीवन के प्रति गहरा प्रेम, आशा और उमंग की प्रेरणा ही इस मार्ग का ध्येय है।

निवृत्ति-परायण वैराग्य-भावना में भक्त और भगवान के बीच दूरी बढ़ गयी थी। असीम, अगाध, अगोचर, निर्गुण, निराकार बनकर भगवान का स्वरूप वैसा आकर्षक नहीं रह गया था, जो संत्रस्त और भग्न-मनोरथ हताश जन को सांत्वना दे सके। सूर ने लीलामय श्रीकृष्ण की अवतारणा द्वारा भक्ति, प्रेम, शृंगार और आनंद का नया मार्ग प्रशस्त किया।

मैं इसे लोकसंग्रह का महान मंगलमय कार्य मानता हूं और विनम्रतापूर्वक सूर के समीक्षकों से सूर-साहित्य के हार्द को इसी दृष्टि से पहचानने का आग्रह करता हूं। लोकमंगल केवल युद्ध और संघर्ष द्वारा ही स्थापित नहीं होता। शांति, संतोष, शील, भक्ति और समर्पण भी लोकमंगल की दिशा में ले जाने के वरेण्य साधन हैं।

—ए ५/३ राणा प्रताप बाग, नयी दिल्ली-७



आज

बाबा नानक !
अगर आज तुम्हें अमृतसर से ननकाना साहब जाना हो
तो अपनी फोटो की छह-छह कापियां
और अच्छे चाल-चलन का परवाना हाजिर करके
रिश्वत देकर
मिन्नतें करके
पुलिस से 'वीसा' मिलेगा—अपने जन्मस्थान जाने के लिए।

जब तुम सरहद पार करोगे,
वहां बैठे हुए 'रखवाले'
तुम्हारी 'सच की झोली' तक को टटोल-टटोलकर पूछेंगे—
'बाबा, इसमें कोई खतरनाक चीज तो नहीं ?'

—फकीर चंद तुली





आदमी

–शिल्पिन् थानकी–

सिर्फ़ घर से कब्र तक ही चल रहा है आदमी,
और अपने आपको भी छल रहा है आदमी।
लौ नहीं, शोला नहीं आता नज़र फिर भी मुझे
लग रहा है, आज ज़िन्दा जल रहा है आदमी।
है तरल द्रव, बर्फ के टुकड़े मिले हैं ग्लास में,
गल रही है बर्फ या खुद गल रहा है आदमी?
जी सकेगा कब तलक वह, बात यह संदिग्ध है,
बस, प्रदूषित सांस ले-ले पल रहा है आदमी।
आईना जब बोल देगा, तब पता लग जायेगा:
है हकीकत, आईने को खल रहा है आदमी।
ज़ीस्त की आवाज़ को झुठला रहा है आदमी,
आदमी को छोड़ सब कुछ पा रहा है आदमी।
फूलदानी में सजे ताजा गुलों के पास ही
देखता हूं किस कदर मुरझा रहा है आदमी।
उड़ सकेगा वह पुनः आकाश में–संभव नहीं,
पंख बूढ़े गीध-सा फैला रहा है आदमी।
मिल सकेगा क्या उसे कोई खजाना भी कभी?
हर शिला को स्थान से खिसका रहा है आदमी।
कौन जाने किस दिशा में बढ़ रहा है आदमी!
फिर उतरकर बांस पर ही चढ़ रहा है आदमी!
व्यक्त अपने आपको वह कर रहा है इस तरह–
मंदिरों में संगेमरमर जड़ रहा है आदमी।
वृक्ष वैदिक काल में उसने उगाये थे कई,
सूखे पत्ते की तरह अब झड़ रहा है आदमी।
बंद कमरे के कभी अंदर रहा है आदमी,
बंद कमरे से कभी बाहर रहा है आदमी।
नाम मंदिर दें उसे, चाहे उसे मस्जिद कहें–
पत्थरों के बीच, बस, पत्थर रहा है आदमी।
थक चुके शायर कई उद्‌बोधनों को पेश कर,
बधिर श्रोता की तरह अक्सर रहा है आदमी।

• जवाहर रोड, उपलेटा-३६०४९० [सौराष्ट्र] •

शीर्षक के साथ
शरद कांबळी रचित चित्र



संभालिये राष्ट्र की इस संपदा को

डा. एस. राधाकृष्णन्

बच्चे राष्ट्र की संपत्ति हैं। उनकी शक्तियों को सही दिशा में प्रेरित करने से समूचे समाज का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य सुधरता है।

हमारे देश में बच्चों की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। बृहदारण्यक उपनिषद् का आदेश है कि पांडित्य का गर्व छोड़ो और बच्चे की तरह जियो—तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठेत्। बच्चे के स्वभाव की विशेषताएं क्या हैं? एक अन्य उपनिषद् (सुबाल) बताती है—बालस्वभावो असंगो निरवद्यः। बच्चे का स्वभाव है असंगता (अनासक्ति) और निर्दोषता। नीत्शे कहता है—बच्चा मासूमियत और विस्मृति है, नयी शुरूआत है, खेल है, स्वचलित पहिया है, प्राथमिक गति है, पवित्र 'हां' है। हम लोग दिव्यशिशु कृष्ण के पूजक रहे हैं। ईसाई धर्म के सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतीकों में से एक है 'मां और शिशु'।

'जब तक बच्चा नहीं बन जाओगे ईश्वर का राज्य नहीं देख पाओगे।' हैराक्लिटस के अनुसार—'(ईश्वरीय) राज्य सिर्फ बच्चे का है।' बच्चे-जैसा बन पाना आसान नहीं है। बच्चे की मनोहरता और विनम्रता अर्जित कर पाना बड़ा कष्टसाध्य है। चीनी विचारक मेनशियस कहता है—'महान वह है जिसने बाल-हृदय नहीं गंवाया है।'

ऐसी भी चीजें हैं जो विद्वानों से छिपी हुई हैं, परंतु बच्चों को विदित हैं। 'शब्दकल्पद्रुम' के अनुसार, परब्रह्म का ज्ञान

दूसरों को देने वाले नारद मुनि ज्ञान प्राप्त करने के लिए सनत्कुमार के पास गये थे, जिन्हें भारतीय परंपरा सनातन-शिशु मानती है। अर्थात् पांडित्य-भरे नारद अपंडित सनत्कुमार के पास ज्ञान ग्रहण करने गये।

बच्चा खुले दिमाग और ग्रहणशीलता का प्रतीक है। बच्चे भावुक होते हैं, ऊष्मा-भरे होते हैं और मित्रता करने को उत्सुक रहते हैं। बच्चे का व्यक्तित्व संवेदनशील होता है और पास-पड़ोस के प्रभाव के प्रति तीव्रता से प्रतिक्रिया करता है। बच्चे की शारीरिक देखभाल ही पर्याप्त नहीं है; भावनाओं की देखभाल भी जरूरी है।

बड़ों के भ्रांत सिद्धांतों की वजह से बच्चे जीवन के स्वाभाविक स्रोतों से विमुख कर दिये जाते हैं। गलत सिद्धांतों का जहर बच्चों में भरकर हम उनकी सामाजिक प्रकृति को विकृत कर देते हैं। हमारे यहां शुरू से ही बच्चों को यह महसूस कराया जाता है कि वे अमुक जाति, राज्य या भाषा-समूह के सदस्य हैं और इस तरह उनके मनों को हम तोड़-मरोड़ देते हैं। जब हम यह चाहते हैं कि हम सबसे पहले इस महान देश के निवासी हैं, यह चेतना अपने लोगों में विकसित हो, तो इसके लिए हमें छुटपन से ही नागरिकों के मन को इस दिशा में मोड़ना शुरू करना होगा।

प्रत्येक शिशु एक प्रयोग है, उदात्ततर जीवन की दिशा में एक 'एड्वेंचर' है, और रूढ़ प्रतिमानों को बदलकर नये प्रतिमान बनाने का एक अवसर है। प्रत्येक बच्चा एक स्पष्ट और विशिष्ट व्यक्ति है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक संबंध जोड़ पाने की जो क्षमता बच्चे में होती है, उसे किसी प्रकार दिशाहीन या दिग्भ्रांत नहीं होने देना चाहिये; क्योंकि यदि यह क्षमता सही दिशा में बहेगी, तो बच्चे के जीवन में समृद्धि एवं स्थिरता लायेगी।

अपने बच्चों में हमें अपनी महान आध्यात्मिक विरासत का एहसास पैदा करना है, अपने भारतीय होने का गर्व उन्हें महसूस कराना है—**दुर्लभं भारते जन्म**...... भारत में जन्म मुश्किल से मिल पाता है। यहां जन्म पाने से भारत की सामाजिक संरचना और उसके जरिये मानवीय प्रकृति को बदलने का एक महान अवसर हासिल होता है। बच्चों को हमें अपनी संस्कृति के इस विचार से परिचित कराना चाहिये



'नहीं भाई, मैं किसी लड़की को अपहरण करके नहीं ला रहा हूं। यह मेरी पोती है, इसे मैं स्कूल पहुंचाने जा रहा हूं। ['स्पुत्तनिक' से]

कि सभी धर्म ईश्वर की ओर ले जाते हैं; वे ईश्वर तक पहुंचने के विभिन्न मार्ग भर हैं। मार्गों के अंतर को लेकर लड़ना अनुचित भी है और धर्मविरुद्ध भी। धार्मिक असहिष्णुता उस भावना के विरुद्ध है, जिसके लिए शताब्दियों से यह देश डटा हुआ है।

हमारी संस्कृति बताती है कि प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का निवास है, भले ही वह दुष्ट या पतित जीव क्यों न हो। यही आस्था प्रजातंत्र का आधार है। हमारी संस्कृति हमसे दान, दम (आत्मनियंत्रण) और दया को आचरण में उतारने को कहती है। वह हमें अपने कर्मों के महत्त्व से आगाह करती है और बताती है कि प्रत्येक कर्म का परिणाम अवश्य होता है।

विश्व एक नैतिक व्यवस्था है। नैतिक नियमों के उल्लंघन का दंड अवश्य मिलता है। हम अन्याय करें और उसका दंड हमें भोगना न पड़े, यह संभव नहीं। इसलिए हमें न्यायप्रिय होना चाहिये।

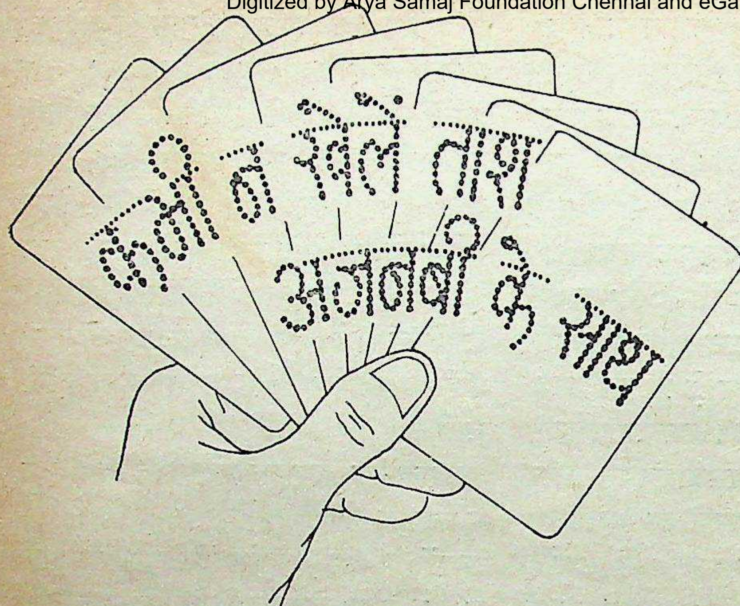
ये सब शिक्षाएं हमें बच्चों को गीतों और कहानियों तथा खेल और काम के द्वारा देनी हैं। राष्ट्रीय पर्व और महापुरुषों व नेताओं की जयंतियां-पुण्यतिथियां मनाने से बच्चे हमारी विरासत चेतना को ग्रहण कर पाते हैं। विश्व की महान विभूतियों की जीवनियों से, जैसा कि ह्वाइटहेड का कहना है, महानता की निरंतर झांकी मिलती है। भ्रमण-यात्राओं से उन्हें अपने देश की विशालता और उसकी कला एवं स्थापत्य की महानता का पता चलता है।

अतीत का प्रथम परिचय बच्चों को मिलता है ऐतिहासिक आख्यानों से, और छोटी उम्र में मन में जमा दिये गये पूर्वग्रहों को आगे चलकर मिटा पाना मुश्किल हो जाता है। हम छुटपन से यह विचार लेकर बड़े न हों कि हमारा देश हमेशा सही रहा है। इतिहास की पुस्तकें सावधानी से लिखी जानी चाहिये और वे राष्ट्रों में परस्पर मैत्री-भावना की वृद्धि करने वाली होनी चाहिये।

बच्चों के लिए पुस्तकें और फिल्में बड़ी सावधानी से तैयार की जानी चाहिये। बच्चों के लिए विशेष रेडियो-कार्यक्रमों का आयोजन होना चाहिये, जो सावधानी, जीवंतता और कल्पनापूर्ण अनुभव से तैयार किये गये हों। रेडियो और सिनेमा बच्चों के मानसिक क्षितिज का विस्तार करें और उन्हें वापस पुस्तकों के पास लायें। महान पुस्तकें हमारी संस्कृति और सभ्यता का आधार हैं। हमें बच्चों को स्वाध्याय की महत्ता के प्रति जागरूक रखना चाहिये और उन्हें सुंदर रूप से लिखी व छापी गयी पुस्तकें देखने-पढ़ने का अवसर देना चाहिये।

बच्चों की देखभाल करना विज्ञान ही नहीं है, बल्कि कला भी है। हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जिनके मन में बच्चों के लिए सच्चा प्यार ही नहीं आदर भी हो। यह जरूरी है कि बालकल्याण के विचार का गांवों में प्रसार हो। सामाजिक पुनर्निर्माण की हमारी योजनाओं में बच्चों को ऊंची प्राथमिकता मिलनी चाहिये।





जेम्स आर्मस्ट्रांग के लेख पर आधारित

बच्चे, बूढ़े और जवान सभी बड़े चाव से ताश खेलते हैं। रमी, कोटपीस, ट्वेंटी-नाइन और ब्रिज आदि इसके कुछ लोकप्रिय खेल हैं। पर ताश के पत्तों से सबसे अधिक खेला जाने वाला या सबसे लोकप्रिय खेल है—जुआ। दुनिया के तमाम देशों में भारी पैमाने पर जुआ खेला जाता है, और उसमें ताश का प्रयोग सबसे अधिक होता है।

पश्चिमी देशों में जुए के रूप में 'पोकर' खेल काफी मशहूर है तो अपने यहां 'फ्लश' और 'पपलू' आदि बेहद लोकप्रिय हैं। इन खेलों में भारी रकमें दांव पर लगायी जाती हैं। इसलिए बेईमानी भी भारी पैमाने पर होती है। दांव जीतने के लिए विभिन्न तकनीकों से पत्तों में फेर-बदल की जाती है। ताश में इस तरह की 'चीटिंग' आम कारण, ताश में धोखाधड़ी या पत्तेबाजी मात्र फिल्मों या जुआघरों की फड़ तक ही सीमित नहीं है। पर ताश में ठगी की प्रवृत्ति इतनी आम हो गयी है कि सामान्य आदमी कुछ सोच भी नहीं सकता इस बारे में।

ट्रेन में यात्रियों के अजनबियों द्वारा ताश में ठगे जाने की खबरें अक्सर सुनी जाती हैं। ये पेशेवर ठग होते हैं और फर्स्ट क्लास में सफर करते हैं। लेकिन इस कला में माहिर तमाम लोग हमें अपने आस-पास भी मिल जायेंगे।

क्लबों में और टूर्नामेंट मैचों में भी इस प्रकार की बेईमानी प्रत्येक स्तर पर चलती है। एक बार विश्व ब्रिज चैंपियनशिप की विजेता टीम के दो सदस्यों को चीटिंग के आरोप में निलंबित कर दिया गया था। बात है।

कुछ लोग निश्चय ही ईमानदारी से खेलते हैं, पर जुए के तौर पर ताश खेलते समय ईमानदारी कोई मानी नहीं रखती। चाहे शाम को क्लब में खेल रहे हों या दफ्तर में लंच के समय, इस तरह की ठगी से सतर्क रहना पड़ता है, बेईमानी करने वाले व्यक्ति पर नजर रखनी ही पड़ती है।

वे खेल में एक सांकेतिक भाषा प्रयोग कर रहे थे।

बाजार में ताश की ऐसी गड्डियां भी बिकती हैं जिन पर विशेष संकेत या चिह्न अंकित होते हैं। इससे ठगी करना आसान हो जाता है और भारी रकम जीती जा सकती है।

जादूगरी का सामान बेचने वाली दुकानों में विशेष प्रकार की गड्डियां बिकती हैं जिन पर 'केवल जादूगरों के लिए' लिखा होता है। ये 'ट्रिक' या हाथ की सफाई दिखाने के लिए होती हैं।

कुछ लोग पेशेवर जादूगर न होते हुए भी संकेतयुक्त ताश की गड्डियां इस्तेमाल करते हैं। दुकानदारों से कुछ ग्राहक खास तौर पर निशान बनी हुई गड्डियों की मांग करते हैं। कुछ लोग तो दुकानों में यह तक पूछने आते हैं कि पत्तों पर किस प्रकार चिह्न आदि बनायें कि पकड़ में न आ सकें।

ताश में निशान बनाने की कोई ऐसी तकनीक नहीं है, जो अचूक हो या पकड़ी न जा सके। खिलाड़ियों पर तनिक भी संदेह हो तो चौकन्ने हो जाइये। नीचे हम आम तौर पर उपयोग किये जाने वाले चिह्न बता रहे हैं। ध्यान से देखिये कि पत्तों पर इनमें से कोई निशान तो नहीं बने हैं।

संकेत के लिए उपयोग की जाने वाली सबसे प्रचलित डिजाइन है घड़ी की डिजाइन। इसमें एक सूई अलग-अलग पत्तों पर १ से लेकर १२ के अंक तक के किसी स्थान पर दरशायी गयी होती है। सूई अगर १ पर है तो पत्ता इक्का है, १२ पर है तो बेगम और ११ पर है तो गुलाम। बादशाह पर प्रायः कोई संकेत नहीं होता।

घड़ी-चिह्न वाले पत्तों की शिनाख्त का तरीका यह है कि बायें हाथ में गड्डी लेकर दायें हाथ से पकड़कर पत्तों को 'फ्लिक' कीजिये। पत्तों पर निशान होंगे तो एक लकीर या बिंदु थिरकता दिखाई देगा।

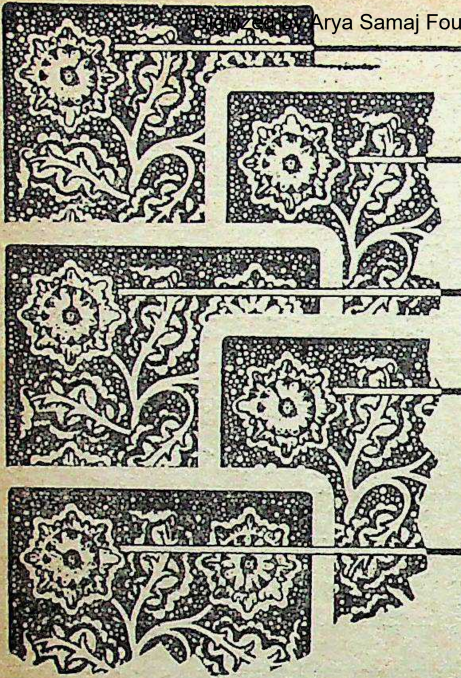
पत्तों पर फूल-पत्तियों वाली डिजाइन बहुत प्रचलित है। एक भी पत्ती के स्थान, आकार या रंग में तनिक-सा फर्क भी अनुभवी पत्तेबाज को यह बताने के लिए पर्याप्त है कि वह कौन-सा पत्ता है।

निशान इतनी बारीकी से बनाये जाते हैं कि साधारण खिलाड़ियों का उन पर ध्यान ही नहीं जाता। पर पेशेवर पत्तेबाज बता सकता है कि सामने वाले के हाथ में कौन-सा पत्ता है।

लेकिन सभी पत्तेबाज निशान या संकेतों से युक्त गड्डियों का प्रयोग नहीं करते। कुछ की अपनी ही विशिष्ट युक्तियां भी होती हैं। एक पत्तेबाज उंगलियों के पोरों में टिन की बनी चपटी कील फंसा लेता था और पत्तों पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर हल्का-सा छेद बना देता था।

जुआघरों में प्रत्येक राउंड में नयी गड्डी की मांग करने पर तो खिलाड़ी को अनाड़ी या बददिमाग ही समझा जायेगा। इसलिए लोग पुरानी घिसी-घिसाई गड्डी से ही कई-कई राउंड खेलते हैं। पत्तेबाज के लिए यही स्थिति वरदान सिद्ध होती है।

• दिनेश कुमार द्वारा प्रस्तुत •



रेखा १ बजे पर = इक्का;
सफेद पंखड़ी ६ बजे पर = ईंट।

फूल पर कोई रेखा नहीं = बादशाह;
सफेद पंखड़ी १२ बजे पर = पान।

रेखा १२ बजे पर = बेगम;
सफेद पंखड़ी ३ बजे पर = हुकम।

रेखा ११ बजे पर = गुलाम;
सफेद पंखड़ी ९ बजे पर = चिड़ी।

रेखा १० बजे पर = दहला;
सफेद पंखड़ी ३ बजे पर = हुकम।

वह पत्तों पर निशान बनाने के लिए गंदा-सा गोंद प्रयोग कर सकता है। वह खास पत्तों के कोनों पर गोंद रगड़कर उसे गंदा कर देता है। यह हल्की-सी निशानी ही खेल में भारी परिवर्तन कर देने के लिए पर्याप्त होती है।

क्या आपने कभी किसी ऐसे खिलाड़ी के साथ ताश खेला है, जो खेलते समय काला चश्मा लगाये रहता हो? इसके लिए वह तेज रोशनी, धुएं या आंख की तकलीफ आदि का बहाना बना सकता है। हो सकता है, सचमुच वह कमजोर नजर वाला ईमानदार आदमी ही हो। मगर यह भी उतना ही संभव है वह कोई धूर्त पेशेवर जुआरी हो। कारण, चीटिंग के लिए भी काले चश्मे का उपयोग होता है।

पत्तों की पीठ पर चमकदार पेंट से बड़े-बड़े अक्षरों में चिड़ी का इक्का, पान का बादशाह आदि लिख लिया जाता है। यह लिखावट केवल पोलराइज्ड चश्मे की मदद से पढ़ी जा सकती है। एक धाकड़ पत्तेबाज कई दिनों तक लोगों को मूर्ख बनाते रहने के बाद अचानक अपनी जरा-सी गलती के कारण पकड़ा गया। उसने अपना चश्मा उतारकर पत्तों के ऊपर रख दिया था। किसी की नजर पड़ी तो लेन्स में कुछ अंक चमकते दिखाई दे गये। बस, पत्तेबाज की कलई खुल गयी। परंतु ऐसा बहुत कम हो पाता है। अभ्यस्त पत्तेबाज जल्दी पकड़ में आने वाली गलतियां करते नहीं।

दरअसल ताश की गड्डी जितनी घटिया दर्जे की हो, पत्तों पर निशान बनाना उतना ही आसान होता है। पत्तों की पीठ पर छापी जाने वाली डिजाइन की छपाई रद्दी हो तो हाथ से बनाये गये हल्के-से निशान उसमें आसानी से छिप जाते हैं और कोई बहुत ही ध्यान से देखे, तो ही उनका पता चल पाता है।

सभी पत्तेबाज पत्तों पर निशान करते हों, ऐसी बात नहीं। कुछ लोग गड्डी में से चुपके-से खिसकाये हुए खास पत्ते छिपाकर रखने के लिए 'क्लिप' और 'रिस्टबैंड' आदि उपकरणों का प्रयोग करते हैं।

यदि यह मालूम हो जाये कि हमारे विरोधी के पास कौन-से पत्ते हैं, तो फिर दूसरे तरीकों के फेर में पड़ा ही क्यों जाये, जिसमें पकड़े जाने का जोखिम भी हो! 'स्ट्रिपर' नाम की एक प्रकार की गड्डी आती है। पत्तेबाज उसमें से एक ही चाल में कोई भी एक पत्ता या पत्तों का समूह काट सकता है। इन पत्तों का एक सिरा दूसरे सिरे से जरा-सा ज्यादा चौड़ा होता है। यह अंतर इतना अल्प होता है कि जब तक सब तंग सिरे एक ही ओर हों, तो उसे बहुत बारीकी से माप-जोख किये बिना पकड़ा नहीं जा सकता। मगर एक पत्ता उलटी दिशा में घुमाकर रख दें तो उसका कोना गड्डी से इतना-सा बाहर निकल आयेगा कि पत्तेबाज आराम से गड्डी के किनारों पर अपनी उंगलियां फेरकर उस पत्ते का पता लगाकर उसे खींच सकता है। अंतर इतना सूक्ष्म होता है कि संदेह की गुंजाइश नहीं रहती। पत्तेबाज गलत दिशा में पत्ता घुमा-घुमाकर चारों इक्के हमेशा अपनी पहुंच में रख सकता है।

ये हैं पत्तेबाजों द्वारा आजमाये जाने वाले तरह-तरह के हथकंडों में से चंद। वास्तव में पत्तेबाजों की माया अनंत है। वैसे यह भी सच है कि इन हथकंडों का जितना ज्यादा ज्ञान आपको होगा, ताश खेलने का आपका मजा भी उतना ही कम होगा। क्योंकि तब आप खेल का रस लेने के बजाय खुफियागिरी करने लगेंगे। हां, खुफियागिरी का भी अपना आनंद तो है ही।



'अवध पंच' नामक समाचारपत्र ने एक बार खबर छापी—'आज शाम को लखनऊ से "काला बुखार" इलाहाबाद जा रहा है।' संयोगवश उसी दिन शाम को उत्तर प्रदेश का अंग्रेज लेफ्टिनेंट गवर्नर रेलगाड़ी से लखनऊ से इलाहाबाद जाने वाला था। उपर्युक्त खबर पढ़ने पर अधिकारियों को लगा कि उसमें लेफ्टिनेंट गवर्नर पर व्यंग्य किया गया है। सो समाचारपत्र के संपादक मुंशी सज्जाद हुसैन को बुलाकर जवाबतलबी की गयी।

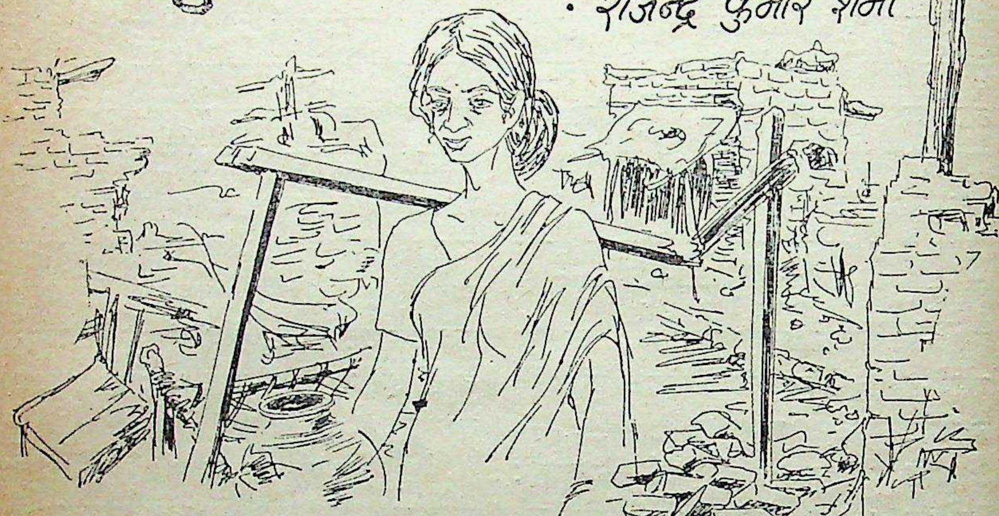
मुंशीजी ने अपनी सफाई में कहा—'हुजूर, मेरा इशारा गवर्नर साहब की तरफ बिलकुल नहीं था। वे तो गोरे हैं। उन्हें "काला बुखार" भला कैसे कहा जा सकता है?'

—गोपीनाथ अमन



दरख्त

· राजेन्द्र कुमार शर्मा



हिंदी कहानी

मैं पहुंचा तो दीदी लगभग तैयार थी। दोनों बच्चे शायद स्कूल जा चुके थे। बहुत ही खुश दिखी दीदी। नयी सूती साड़ी, करीने से कढ़े बाल और पालिश की गयी चप्पलें। मैंने मजाक करते हुए पूछा—'क्या घीसू-बल्ली की सगाई-वगाई की तैयारी है दीदी?'

दीदी ने चाय का मग मेरी ओर बढ़ाकर हंसते हुए कहा—'अरे बैठ तो सही, ले पहले चाय पी।'

चटाई पर बैठते हुए मैंने चाय का मग ले लिया। चाय सिप करते हुए मैं दीदी की झोपड़ी का जायजा लेने लगा—कितनी सफाई रखती है दीदी, वरना इस गलीज बस्ती में तो.....।

'चाय पीते-पीते इसे देख तो धरमू।' दीदी ने एक गुलाबी रंग की पुस्तिका देते हुए कहा—'लेकिन जरा जल्दी।'

उत्सुकतावश चाय सिप करना छोड़कर, मैं पुस्तिका देखने लगा। वह किसी हाउसिंग सोसायटी की नियमावली थी। उसमें बहुत कुछ लिखा था। मैं चाय पीना भूल गंभीरता से उसे पढ़ने लगा। हाउसिंग सोसायटी का मुख्य उद्देश्य था—गरीबों के लिए सस्ते भाव पर मकानों के प्लाट देना। मैं मन ही मन कृतज्ञता से भर उठा उस सोसायटी के प्रति, जो दीदी जैसे गरीबों को अपनी छत की छाया दिलवाने का प्रयत्न

कर रही थी।

'और ये देख।' दीदी ने मेरा ध्यान बंटाते हुए कहा—'अरे, तू चाय तो पी, ठंडी हो जायेगी।'

दीदी के हाथ से हरा कागज लेकर देखा—वह दीदी के नाम की रसीद थी, पैसा जमा कराने के एवज में हाउसिंग सोसायटी द्वारा जारी की गयी। मुझे बहुत अच्छा लगा। मैंने पुनः चाय सिप करते हुए कहा—'तो अब मेरी दीदी मकान-मालकिन हो जायेगी—क्यों?'

दीदी ने हंसकर कहा—'बिलकुल। हां तो धरमू, मेरे लिए आज थोड़ा समय तो है न तेरे पास?'

'क्यों नहीं दीदी।' मैंने शेष चाय सुड़कते हुए कहा—'आपने खबर ही ऐसी भिजवायी थी। जरूरी हुआ तो आधे-दिन की छुट्टी ले लूंगा।'

'तो चलें फिर?'

'कहां?'

दीदी ने उत्साह से चप्पलें पहनीं। ताला-चाबी उठाते हुए कहा—'धरमू, इस हाउसिंग सोसायटी के प्लाट तैयार हो गये हैं। सड़कें भी बन गयी हैं। पानी की टंकी भी। बस मुझे प्लाट मिलने ही वाला है। जरा देख तो आयें, क्या-कैसे प्लाट कटे हैं?'

'तो ये बात है?'

'हां धरमू, तू तो जानता है यह पूरी बस्ती ही दूसरे की जमीन पर गैरकानूनी ढंग से बसी हुई है।' दीदी ने उदास होकर कहा—'जब इस बस्ती की झोपड़ियों पर बुलडोजर चलाया जायेगा तो... तो ये सब लेकर जाऊंगी कहां? प्लाट मिल ही रहा है तो उस पर अपनी झोपड़ी बनाकर, कम से कम सिर छिपाने का आसरा तो हो जायेगा न।'

'लेकिन दीदी,' मैंने झटके से उठते हुए कहा—'इसमें तो बहुत दिन भी लग सकते हैं। न जाने आपका नंबर....।'

'मुझे सबसे पहले प्लाट मिलेगा धरमू।' दीदी ने मेरी बात काटी और दरवाजा बंद करके ताला लगाते हुए कहा—'मैंने इस प्लाट के लिए सिर फुड़वाया है—सिर!'

'क्या मतलब दीदी?'

'प्लाट के पैसे जमा करवाने के लिए आयी भीड़ में लाठियां-चक्कू चल गये।' दीदी ने उत्साह से बताया—'मेरा भी सिर फूट गया उसमें, लेकिन मैंने चौथे-पांचवें नंबर पर पैसे जमा करवाकर ही सिर की मरहम-पट्टी करवायी—हां।'

'तब तो दीदी आपको प्लाट मिला ही समझो।'

०००

दीदी और मैं मुख्य सड़क की तरफ चल पड़े। यहां से वहां तक झोपड़ियां ही झोपड़ियां। बेढब कच्चे रास्ते, जिन पर से गंदा पानी बह रहा था। छत कहीं टिन की थी तो कहीं फूस-खपरैल की। झोपड़ियों के सामने फटे-पुराने चिथड़ेनुमा कपड़े सूख रहे थे। नंगे-अधनंगे बच्चे खेल रहे थे। औरतों-युवतियों का जिस्म फटे कपड़ों में से झांक रहा था। मर्द अपने वर्तमान भविष्य से बेखबर बीड़ी-चिलम पी रहे थे।

इस गंदी बस्ती में रहने वाली दीदी को लेकर मेरे परिवार ने मेरा बहिष्कार-सा कर दिया है। भैया अक्सर कहते हैं—उस छिनाल को दीदी कह-कहकर क्यों इस खानदान की नाक कटवा रहा है धरम, न जात की न रिश्ते की। भाभी नाक-भौंह सिकोड़कर कहती हैं—क्यों लालाजी, यही मिली थी तुमको अपनी बहन और मेरी ननद बनाने के लिए? शीला, पत्नी का अधिकार जताने की गरज से कई प्रकार के सलाह-मशविरे भी दिया करती है। काश, कोई जानता कि दीदी का मुझ पर कितना बड़ा एहसान है, जिससे इस जीवन में तो शायद ही मुक्त हो पाऊं मैं। जाति, समाज, परिवार, रिश्तों से ही क्या होता है? उस दिन दीदी का पति शंभू मुझे न बचाता तो या तो मैं आज जिंदा ही न होता, और अगर होता तो जेल के सींकचों के पीछे।

वह दिन मैं कभी नहीं भूल सकता—कभी नहीं। ...... मोल्डिंग शाप में 'चार्जिंग' चल रहा था। 'क्युपोला' में तेजी से स्टील पिघल रहा था और पिघला हुआ स्टील 'खुर्सीबिल' (क्रूसिबल) में भर-भरकर हम तक क्रेन द्वारा लाया जा रहा था—'मोल्ड्स' में भरने के लिए। क्रेन के घिसे-पुराने 'क्रैक हुक' की शिकायत शंभू ने मुझसे कई बार की थी, लेकिन मैंने हमेशा ही उसकी शिकायत को हंसी में टाल दिया था। एक दिन खीजकर वह बोला भी था—'साहब, आपकी ये लापरवाही एक दिन किसी की जान ले लेगी—हां।'

'तुम मौत से डरते हो शंभू?' मैंने हंस कर पूछा था।

'यह बात नहीं साहब।' शंभू ने दार्श निक अंदाज में कहा था—'गरीब आदमी की तो पग-पग पर मौत है। लेकिन फि भी जानबूझकर मौत को कौन बुलान चाहता है?'

और वही हुआ, जिसकी आशंका शंभ को थी। उस दिन वह मेरे ही पास खड़ा थ और पिघले स्टील से भरे-खाली 'खुर्सीबिल को आते-जाते गौर से देख रहा था। सहस शंभू ने मुझे जोर से धक्का दिया। उठकर संभलकर देखा तो सिर चकरा गया। पिघले स्टील से भरा खुर्सीबिल शंभू के पास ही गिरा था और पिघले स्टील की धार उसको कई जगह से काट भी चुकी थी मरते वक्त शंभू ने दुर्घटना की सारी जिम्मे दारी अपने ऊपर लेते हुए मुझसे सिर्फ इतना ही कहा था—'मेरे बीवी-बच्चों का खयाल रखना साहब।'

दीदी ने मेरे ही कारण विधवापन ओढ़ लिया, बच्चे मेरे ही कारण अनाथ बन गये लेकिन उसके बदले में उन्होंने कभी भी न तो कुछ मांगा, न शिकायत की और न कभी कोई एहसान ही.....।

'धरमू!' दीदी ने कहा—'तू सोचता बहुत है।'

'आपका प्लाट कितनी दूर है?' मुख्य सड़क पर पहुंचकर बोला मैं—'और चलना किधर है?'

'रिक्शा ले लें धरमू।' दीदी बोली

'क्यों ? मेरा स्कूटर जो है।'

'धरमू!' दीदी ने उदासी से कहा–'बेकार में लोग यहां तरह-तरह की बातें करते हैं।'

'यहां–इस बस्ती में लोग बातें भी करते हैं दीदी ?' मैंने व्यंग्य से कहा–'जिनके पैरों तले जमीन नहीं है वे बातें भी करते हैं–वाह!'

दीदी ने बुझी हंसी हंसकर कहा–'पैरों तले जमीन भले ही न हो धरमू, मुंह में जबान तो है। और आजकल सबसे ज्यादा जबान का ही इस्तेमाल होता है ना। तू तो ...ये–ये रिक्शा.....।'

'आप बैठिये दीदी, मेरे स्कूटर पर।' मैंने बात काटकर स्कूटर स्टार्ट करते हुए कहा–'अगर लोगों की बातों की यों ही परवाह करते रहेंगे तो संसार में जीना ही मुश्किल हो जायेगा। आओ बैठो।'

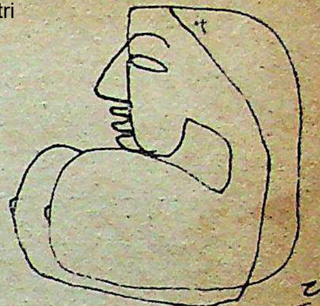
दीदी एक सड़क की तरफ इशारा करती हुई, एहतियात से मेरे पीछे बैठ गयी। कुछ दूर चलने के बाद मैंने हंसकर कहा–'अरे दीदी, मुझ अछूत से छू जाओगी इस डर से गिर-विर मत जाना–हां।'

दीदी ने हंसकर कहा–'मार खाने का इरादा है क्या? ये ले–अब तो खुश है न तू।'

मैंने भी हंसकर ही कहा–'दीदी, बहुत गरम हैं आप तो।'

'चुप। शैतान कहीं का।' दीदी ने कृत्रिम गुस्से से कहा–'कोई तेरी बातें सुन ले तो.....।'

०००



स्केच : डा. जगदीश गुप्त

एक बार शीला ने पूछा–'तो यह थी आपकी दीदी?'

'हां, क्यों?'

शीला ने ओंठ काटकर कहा–'एक ही है।'

'क्या मतलब?'

मैंने चिढ़कर पूछा, तो वह हंसकर बोली–'भई, इसमें नाराज होने की क्या बात है। क्या मैं आपकी दीदी की सुंदरता का वर्णन या प्रशंसा भी नहीं कर सकती? सचमुच आपकी दीदी हसीन है।'

मैंने बात बदलने के इरादे से कहा–'लेकिन शीलू, वह तुमसे हसीन तो नहीं है।'

और वक्त होता तो शीला शरमा जाती, लेकिन इस बार वह गंभीरता से बोली–'सुना है, उसे आप अपने स्कूटर पर लिये घूमा करते हैं।'

'घूमना क्या शीलू, दीदी को उसके किसी काम-वाम से कभी-कभार यहां-वहां ले गया था। तुम तो जानती ही हो बस में कितनी देर लगती है और रिक्शा......।' मैंने स्पष्टीकरण-सा दिया।

शीला ने जरा तीखेपन से कहा–'लेकिन स्कूटर चलाते वक्त आपकी इस हसीन दीदी के चिकने-नरम अंग आपका स्पर्श करते हैं तो आपको मजा ही......'

'शीलू!' मैंने तीखेपन से उसकी बात

काटी—'इस तरह का अनुभव हासिल करने की बात भी कभी मेरे दिमाग में नहीं आयी। याद रखो, जिसके प्रति आदमी के मन में श्रद्धा होती है, उसके चिकने-नरम अंग, तीखे नक्श और दूसरी बातें तन-मन में उत्तेजना नहीं भरतीं।'

'बस-बस, रुक जा धरमू।' दीदी ने कहा तो मैंने झटके से ब्रेक लगा दिया। दीदी स्कूटर पर से उतर गयी, मैं भी।

सामने ही हाउसिंग सोसायटी का बोर्ड लगा था। पास ही दूसरा बोर्ड भी था, जिस पर वहां का नक्शा, प्लाटों की साइज, संख्या, रोड आदि दरशाये गये थे। दीदी धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी और प्रत्येक प्लाट को आत्मीयता से देख भी रही थी।

मैं दीदी के चिंतन में बाधा नहीं डालना चाहता था, सो इधर-उधर देखता हुआ साथ-साथ चल रहा था। यहां से वहां तक प्लाट ही प्लाट कटे थे। रोड लगभग बन चुके थे। पानी की टंकी और नालियां बन चुकी थीं। पानी के लिए पाइप-लाइन बिछायी जा रही थी। मैंने प्लाटों की संख्या और दीदी की 'सीनियारिटी' का हिसाब लगाते हुए कहा—'दीदी, इतने प्लाट हैं, आपको जरूर मिल जायेगा।'

'यही तो मैं भी सोच रही हूं, धरमू।'

'एक काम करना दीदी', मैंने उत्साह से कहा—'आप प्लाट लेकर, किसी बैंक से कर्ज ले लेना। अच्छा मकान बनवा लेना। मैं भी आपका किरायेदार बन जाऊंगा—सच्ची।'

दीदी बोली—'इतने बड़े प्लाट में दो-तीन कमरे और किचन तो आसानी से बन जायेंगे धरमू।'

'बिलकुल। सिर्फ यही नहीं पिछवाड़े आंगन, सामने छोटा-सा बगीचा भी निकल जायेगा दीदी, चीसू-बल्ली के खेलने के लिए।' मैंने उत्साह से कहा—'इतने बड़े प्लाट पर बीस-पचीस हजार कर्ज तो आपको मैं दिलवा सकता हूं। थोड़ा हिस्सा किराये पर देकर किस्तें चुकाती रहना आप।'

दीदी का चेहरा सुख से चमक उठा। भरे गले से बोली वह—'धरमू, अगर ऐसा हो जाये तो......।'

'ऐसा होगा ही दीदी।' मैंने बात काट-कर कहा—'क्या आपको अपने धरमू की बात पर शक है?'

दीदी की आंखों में आंसू आ गये—शायद खुशी के। अपने सिर पर अपनी छत का मोह किसे नहीं होता। आदमी भूखा-प्यासा भी निजी मकान की छत तले हंसकर जी सकता है। मैंने तभी मन ही मन पक्का निश्चय भी कर लिया कि दीदी के इस सपने को पूरा करने में मैं कोई कोर-कसर न उठा रखूंगा।

०००

रविवार को सुबह-सुबह ही घर आ गयी दीदी। शीला ने उसे बैठने तक को नहीं कहा। मुझे शीला के इस व्यवहार पर गुस्सा तो बहुत आया, लेकिन उससे उलझ-कर छुट्टी का दिन खराब नहीं करना चाहता

था। हंसते हुए मैं ही बोला—'बैठो दीदी। शीलू, जरा दो कप चाय और नाश्ता भिजवा देना।'

'अरे रहने दे धरमू।' दीदी ने बैठते हुए कहा—'क्यों बहू को परेशान करता है।'

'परेशानी कैसी दीदी?' मैंने हंसते हुए कहा—'यह तो आपका ही घर है दीदी। हां, आपके उस प्लाट का क्या हुआ?'

दीदी ने उत्साह से कहा—'बस समझो हो ही गया अब अपना प्लाट धरमू, ये .... ये देख तो जरा कागजात।' और दो लिफाफे मेरी तरफ बढ़ा दिये। मैंने लिफाफे ले लिये। एक में वह नोटिस था, जो सरकार की तरफ से मिला था। दूसरे में हाउसिंग सोसायटी की सूचना थी, जिसके अनुसार तुरंत दो हजार रुपये जमा करने थे—प्लाट के एलाटमेंट के लिए। दोनों कागज और खाली लिफाफे दीदी को लौटाते हुए मैंने पूछा—'तो दो हजार में प्लाट आपका हो जायेगा फिर?'

'नहीं रे,' दीदी ने बताया—'हर महीने पंद्रह-बीस रुपये किस्त और देनी पड़ेगी। बीस साल तक। पूरा कागज पढ़ न।'

कागज मैंने पूरा ही पढ़ा था, लेकिन जो नोटिस दीदी को सरकार की तरफ से मिला था उसमें झोंपड़ी एक सप्ताह में हटाने के आदेश के अलावा जो बातें लिखी थीं, उन्हीं में उलझकर मैं बाकी बातें भूल-सा गया था। दीदी का मन रखने के लिए मैंने दोनों कागज दुबारा पढ़ने का अभिनय-सा किया और स्वीकृति में गंभीरतापूर्वक सिर हिला दिया और कहा भी—'तब तो दीदी, वह प्लाट आपको बहुत ही महंगा पड़ेगा।'

'महंगा-सस्ता क्या धरमू!' दीदी बोली—'सारी झोंपड़ी का अटाला उठाकर अपने प्लाट पर चली जाऊंगी। पैरों तले अपनी जमीन तो हो जायेगी न। धरमू, सुना है—सात दिन में अगर हम लोगों ने अपनी झोंपड़ियां नहीं उठायीं तो उन पर बुलडोजर चला दिया जायेगा।'

मैंने दीदी को दिलासा देने की गरज से कहा—'अरे छोड़ो दीदी, मजाक है झोंपड़ियों पर बुलडोजर चलाना! हूं, आंदोलन हो जायेगा। मार-पीट भी। क्या गरीब आदमी सिर छिपाने भर की जमीन भी नहीं ले सकता? आखिर वह जाये कहां।'

दीदी ने मेरे कथन को विशेष महत्त्व नहीं दिया। शायद वह ऐसी बातों की असलियत से वाकिफ थी। बोली—'एक काम कर। ये कुछ रुपये हैं और कुछ गहने। गहने बेचकर और ये रुपये मिलाकर कल हाउसिंग सोसायटी के दफ्तर में जमा करवा आना।'

बात पूरी होने के साथ ही शीला चाय लेकर आ गयी। मैं दीदी से कहना चाहता था कि गहने बेचने की क्या जरूरत है, पैसों का इंतजाम मैं कर दूंगा। लेकिन शीला की उपस्थिति में ऐसा कहना बात का बतंगड़ बन जाने देना होता। शीला ने तभी कहा—'अरे दीदी, सारी उम्र की धरोहर यों ही गंवाने की क्या जरूरत है,

रुपयों की व्यवस्था तो कर देंगे। आखिर भाई बनाने का कुछ तो फायदा उठाइये आप। क्यों जी?'

शीला के इस व्यंग्य पर मैं बुरी तरह कटकर रह गया। गुस्से से उसे डांटना ही चाहता था, लेकिन तभी दीदी ने चाय पीना छोड़कर गंभीरता से कहा–'बहू, ऐसा भाई भगवान सबको दे। लेकिन जब मेरे पास रुपयों की व्यवस्था है तो इससे क्यों मांगू? जरूरत आ ही पड़ी तो मांग लूंगी। तुम लोगों के सिवा इस संसार में मेरा है भी कौन। अच्छा तो धरमू, अब मैं चलती हूं।'

'लेकिन चाय तो......।'

'रहने दे धरमू, मन नहीं कर रहा है।' बोली दीदी, और गंभीर चाल से बाहर हो गयीं। मैं हतप्रभ-सा उसे बाहर तक छोड़ने भी न जा सका। बहुत देर तक गुमसुम बैठा दीदी के बारे में ही सोचता रहा–कितना मजबूत दरख्त है दीदी, जो अपना अस्तित्व बरकरार रखते हुए, अन्यान्य को भी अपनी स्नेहसिक्त छाया प्रदान करती जा रही है।

'आज पिक्चर चलना है ना।' मेरी विचार शृंखला को तोड़ते हुए बोली शीला–'हमेशा अपनी दीदी के बारे में सोचते रहते हो, कभी हमारे बारे में भी तो......।'

'शीलू।' मैंने बात काटकर कहा–'ये गहने-वहने कहां बिकते हैं?'

'सराफा बाजार में।'

'कितने के होंगे दीदी के ये गहने?'

शीला ने इस बार मुझे घूरा और बड़ी निश्चिंतता से कहा–'मैं कोई सुनार हूं?'

'फिर भी, खरीदे-पहने तो हैं न।'

शीला ने गहनों को उलटते-पलटते हुए बताया–'चार हजार से कम के तो नहीं ही हैं।'

'हूं, और ये रुपये? जरा गिनो तो।'

शीला रुपये गिनने लगी तो मैंने हिसाब लगाया कि ये रुपये और कुछ रुपये और मिलाने से दीदी के प्लाट की पूरी कीमत एक साथ दी जा सकती है। प्लाट की रजिस्ट्री भी दीदी के नाम अभी हो जायेगी। किस्तों का झमेला भी नहीं रहेगा। मकान के लिए कर्ज मिलने में भी सुविधा रहेगी।

'ग्यारह सौ।' शीला ने कहा तो मेरा ध्यान उचट गया और मैं उन गहनों की तरफ देखने लगा, जो दीदी ने कभी बड़े चाव से बनाये होंगे, लेकिन आज-अब......।

मेरे माथे पर पसीना आ गया। मैंने हाथ से पसीना पोंछते हुए कहा–'तो ये सब करीब पांच हजार का है।'

'पांच हजार!' शीला ने चौंककर कहा–'अरे, ये गहने सराफा में बेचने जाओगे न आप तो लफड़े में पड़ जाओगे–हां। ऐसा करती हूं, ये गहने मैं रख लेती हूं और नौ सौ दिये देती हूं। भर आना कल दो हजार हाउसिंग सोसायटी के दफ्तर में–दीदी के नाम पर।'

'लेकिन चार हजार के गहने नौ सौ में?' मैं भी भाव-ताव पर उतर आया था–'चार हजार की व्यवस्था करती हो तो...., देखती नहीं, पुराना असली सोना है–

असली !'

शीला की आंखों में चमक भर गयी। कुछ सोचकर बोली—'मैं कौन इन गहनों को खाये जा रही हूं जी। जब दीदी पैसे वापस कर देगी तो गहने भी वापस कर दिये जायेंगे।'

शीला का यह प्रस्ताव मुझे कुछ-कुछ अच्छा लगा। शीला भी अच्छी लगी—चलो दीदी के प्रति इसके मन में थोड़ी सहानुभूति तो......।

०००

हाउसिंग सोसायटी के दफ्तर में दीदी के नाम पर दो हजार रुपये जमा कराके रसीद लेते हुए मैंने क्लर्क से पूछा—'भाई साहब, ये प्लाट कब तक एलाट हो जायेंगे?'

'जब जिसका नंबर आयेगा।' वह समझाता हुआ बोला—'लेकिन इसमें भी एक बात और है। पहले प्लाट आउट रेट पर बेचे जायेंगे, फिर नंबर वालों को सीनियारिटी से......।'

'आउट रेट।' मैंने बात काटकर कहा—'क्या मतलब?'

'मतलब यह कि', उसने एक आंख बंद करके कहा—'जो प्लाट की पूरी कीमत के साथ कुछ दक्षिणा-पानी देगा, उसको प्लाट पहले दिया जायेगा और बाकी लोगों को बाद में।'

'तो इसका अर्थ तो यह हुआ कि ये प्लाट गरीबों के लिए नहीं, पैसे वालों के लिए हैं।'

क्लर्क के चेहरे पर दार्शनिक-भाव उभर आया। वह गंभीरता से बोला—'भाई साहब, प्लाट की भली कही आपने, यह संसार ही पैसे वालों के लिए है। बाकी तो महज अपने जीने की भूमिका भर निभा रहे हैं।'

मैंने कुछ सोचकर कहा—'इस प्लाट की कीमत क्या है?' क्लर्क ने एक अन्य रजिस्टर उलटते-पलटते हुए बताया यही पांच—साढ़े पांच हजार।'

'मतलब साढ़े तीन हजार और जमा करवा दिये जायें तो......।'

'सिर्फ तीन हजार!' क्लर्क ने तत्क्षण कहा—'बाकी पांच सौ कहां जमा होंगे, मैं बता दूंगा। प्लाट आज ही आपको मिल जायेगा। यह......यह देखिये, ब्लैंक एलाटमेंट आर्डर।'

मैं स्कूटर पर तेजी से घर आया। शीला कहीं बाहर गयी हुई थी। मन में अतिरिक्त उत्साह था कि दीदी को आज जब प्लाट एलाटमेंट आर्डर दूंगा तो वह कितनी खुश होगी, कितने आशीर्वाद देगी। शीला को किसी तरह राजी करके दीदी के गहनों के नाम पर शेष साढ़े तीन हजार ले लूंगा और......।

मेरा एक-एक क्षण बड़ी मुश्किल से कट रहा था।

शीला आयी तो मैंने नम्रता से उसको सारी बात बताकर साढ़े तीन हजार की बात कही। वह तटस्थता से बोली—'आपकी दीदी के गहनों के रुपये मैं दे चुकी हूं।'

'लेकिन शीलू, गहने तो चार हजार के हैं।' मैंने समझाते हुए कहा—'तुमने सिर्फ नौ सौ दिये हैं। शीलू प्लीज, दीदी को प्लाट



चित्र : दत्तप्रसन्न राणे

नहीं मिला तो वह परेशानी में पड़ जायेगी। झोपड़ियों पर वैसे ही बुलडोजर चलाने की योजना बन रही है।'

'मैंने सारे जमाने का ठेका ले रखा है क्या ?' इस बार शीला ने गुस्से से कहा।

'शीलू, दीदी गैर नहीं है।'

'गैर नहीं है तो इस घर में ही लाकर रख लो न !' शीला ने गुस्से से कहा— 'मैं सब समझती हूं कि आपको उस दीदी से इतनी सहानुभूति क्यों है।'

'शीलू।' मैंने गुस्से से कहा—'अपने पति पर इतना बेहूदा लांछन लगाते हुए शर्म नहीं आती तुमको ? ठीक है, तुम ऐसा कह रही हो तो ऐसा ही सही—लाओ, दीदी के सारे गहने वापस करो। मैं गहने बाजार में बेचकर अभी तुम्हारे रुपये वापस करता हूं और—और बाकी' ......

'गहने !' शीला बात काटकर व्यंग्य से हंसती हुई बोली—'कौन-से गहने ? मैंने जब गहनों की कीमत ही चुका दी तो .....। मैंने तो उन्हें तुड़वाकर, नये गहने बनवाने का......।'

'शीला !' मैं गुस्से से चीखा—'तुमने दीदी के गहने तुड़वा दिये ?'

'हां।'

'और बाकी रुपये नहीं दोगी ?'

'नहीं।'

'तो कान खोलकर सुन लो शीला—दीदी अगर तुम्हारी इस हरकत के कारण किसी परेशानी में पड़ गयी तो मैं तुम्हें कभी क्षमा नहीं करूंगा और वह सचमुच इसी घर में आकर रहेगी।' गुस्से से मैंने कहा और घर से बाहर हो गया।

ooo

तीन-चार हजार की व्यवस्था करने के लिए मैंने रात-दिन एक कर दिया, लेकिन सब व्यर्थ। पहली बार एहसास हुआ—आर्थिक संकट आदमी को इस स्तर तक परेशान कर सकता है। दीदी के सामने भी जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। दीदी के पास-पड़ोसी सामान उठाकर यहां-वहां जा रहे थे। पता चला—सचमुच बुलडोजर चलने वाला है। मैं एक बार और हाउसिंग सोसायटी के दफ्तर गया। उस क्लर्क ने मुझे देखते ही कहा—'भाई साहब, ले आये साढ़े तीन हजार और पांच सौ ?'

'इंतजाम कर रहा हूं।' मैंने नम्रता से कहा—'हां, प्लाट की क्या पोजिशन है ?'

वह बोला—'एक सेठ ने करीब-करीब सारे प्लाट आउट रेट पर खरीद लिये हैं। दो-चार बचे हैं।'

'सेठ इतने प्लाट का क्या करेगा ?' मैंने जानते हुए भी व्यर्थ-सा प्रश्न किया।

क्लर्क ने मुझे उचटती निगाह से देखा और फिर अपने काम में व्यस्त हो गया।

मुझे अपने आप पर गुस्सा आने लगा। तीखे स्वर में बोला—'फिर जिन लोगों ने दो-दो हजार जमा करवाये हैं, उनके लिए सोसायटी क्या कर रही है ?'

'एक खेत खरीदा है।' क्लर्क बोला—'उसमें प्लाट......।'

'उसे भी कोई पैसे वाला आउट रेट पर खरीद लेगा।'

क्लर्क रहस्य से मुस्करा दिया।

०००

सुना—दीदी की बस्ती को नेस्तनाबूद करने के लिए बुलडोजर आ गये हैं। पुलिस भी। दो घंटे का समय और दिया गया है। रुपये का इंतजाम न कर पाने की विवशता से मेरी आंखों में आंसू आ गये। हे भगवान, दीदी पर क्या बीत रही होगी ?

सहसा मुझे अपने स्कूटर का खयाल आया। एक मित्र के पास स्कूटर गिरवी रखकर मैं रुपये लेकर हाउसिंग सोसायटी के दफ्तर गया। क्लर्क ने देखते ही कहा—'सॉरी भाई साहब, बाकी प्लाट भी एक सेठ ने आउट रेट पर खरीद लिये हैं।'

०००

दीदी की बस्ती पर बुलडोजर चल रहे थे। हाहाकार मचा हुआ था। लोग बचे-खुचे, टूटे-फूटे सामान को समेटने का प्रयत्न कर रहे थे। प्रलय-लीला देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। गुस्से से मैं आगे बढ़ता कि तभी मुझे सुनाई दिया—'धरमू!'

मैंने पलटकर देखा—दीदी बुझी हंसी हंस रही थी। पास ही भयभीत-से घीसू-बल्ली गिरती दीवारें, टूटते घर, उड़ती धूल देख रहे थे।

हम सब सड़क पर थे। मैंने सीधी-सपाट सड़क को देखा—आस-पास एक भी दरख्त नहीं था।

—हाउस नं. ६, स्ट्रीट नं. १, परदेशीपुरा, इंदौर, म. प्र.



एक लोमड़ी बेहद भयभीत होकर भागी जा रही थी। किसी ने उससे इसका कारण पूछा, तो उसने कहा—'देख नहीं रहे हो, लोग ऊंटों को पकड़कर ले जा रहे हैं! वे उनसे जबर्दस्ती अपना काम करवायेंगे।'

'पर तुम्हें ऊंटों से क्या लेना-देना ? ऊंटों की बदकिस्मती से तुम्हारा कोई वास्ता नहीं है। तुम्हें तो कोई गलती से भी नहीं पकड़ेगा, क्योंकि तुम ऊंट-जैसी बिलकुल भी लगती नहीं हो।'

लोमड़ी ने कहा—'खामोश! अगर मेरे किसी दुश्मन ने अफवाह फैला दी कि मैं ऊंट, तो फिर पकड़े जाने पर मुझे कौन छुड़ायेगा ?'

—इदरीस शाह





बी. एस. रघुनाथ राव

बीदरी सामान से आप अपरिचित नहीं होंगे। इसने यह नाम पाया है कर्नाटक राज्य के बीदर नगर पर से। यह एक विशिष्ट कुटीरोद्योग है, जो बीदर में केंद्रित है और अब सारे विश्व में मशहूर हो गया है। जिस मिश्रधातु से बीदरी सामान बनाया जाता है, उसमें जस्ता और तांबा १६: १ के अनुपात में रहता है। इस मिश्रधातु से विविध वस्तुएं गढ़कर उनमें सोने-चांदी की जड़ाई की जाती है। यह उद्योग लगभग पांच सौ साल पुराना है।

कहा जाता है कि दक्षिण के बहमनी साम्राज्य का प्रधान-मंत्री महमूद गवान बीदरी के बने एक खास प्याले में ही पानी पीता था, जिस पर सोने से कुरान की कुछ आयतें अंकित थीं। आज भी पुराने खा[न]दानों में ऐसे प्याले मौजूद हैं, परंतु उन प[र] आयतें चांदी में लिखी हुई होती हैं। आ[ज] ये प्याले प्राचीन कलाकृतियों के रूप में ब[हु]मूल्यवान हैं। यह भी विश्वास प्रचलि[त] है कि इन प्यालों में पानी पिलाने से छो[टे] बच्चों का बुखार दूर हो जाता है।

पुराने जमाने में चारपाई के पायों, प्यालियों, तश्तरियों, वाश-बेसिन, पानदान, खासदान, आभूषणों की पेटी, हुक्के, शेरवानी के बटन, अंगूठी और तस्वीरों के फ्रेम आ[दि] के रूप में बीदरीकाम की वस्तुओं का दैनिक जीवन में बहुत उपयोग होता था।

मिश्रधातु की गहरी काली पृष्ठभूमि में चांदी की निखरी हुई सफेदी इन वस्तु[ओं]

● 'आकाशवाणी' से साभार ●

की खास सुंदरता है। फिर सोने की जड़ाई से इनकी सुंदरता और बढ़ जाती है। चांदी और सोने का यह सम्मिलित काम 'गंगा-जमुनी' काम कहलाता है।

बीदरी काम तीन प्रकार के हैं–१. तार का काम–मिश्रधातु की काली सतह पर चांदी के तार से फूल-पत्तियों एवं अन्य आकर्षक डिजाइनों की जड़ाई होती है। २. पत्तर का काम–चांदी के पत्तरों को फूल-पत्ते और तस्वीरों के आकार में जड़ा जाता है। ३. चांदी के तार और पत्तरों के संयोग से अंगूर की लताओं, फूल-पत्तियों एवं अन्य डिजाइनों के जड़ने का काम।

ग्राहक की मांग पर सोने का उपयोग भी किया जाता है। पहले इसके अलावा दो काम और होते थे–नक्काशी का काम और जड़ने का काम। मिश्रधातु की सतह के ऊपर सोने और चांदी में फूलपत्तियों और लताओं की नक्काशी की जाती थी। अब तो यह काम बिलकुल बंद हो गया है। पर इस काम के नमूने हमें संग्रहालयों में या प्राचीन कलात्मक वस्तुओं की दुकानों में मिल सकते हैं।

बीदरीकाम केवल भारत में होता है। इस मामले में/यह अन्य हस्तकलाओं से विशिष्ट है ही, साथ ही अपनी चमत्कारी उत्पादन-प्रक्रिया की दृष्टि से भी यह उल्लेखनीय है। बीदर के पुराने किले की चहारदीवारी में पायी जाने वाली एक विशेष प्रकार की मिट्टी से यह अद्भुत प्रभाव पैदा किया जाता है।

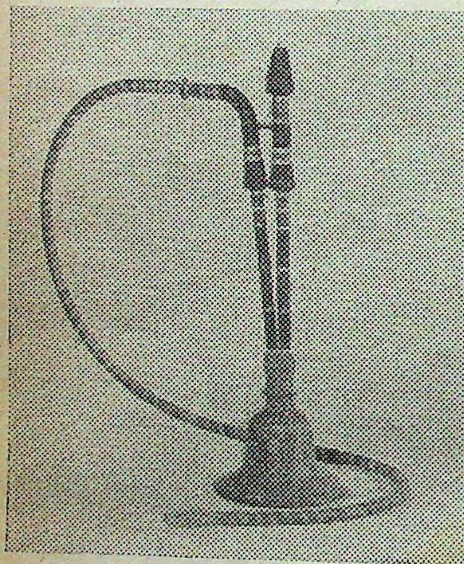
सबसे पहले मिश्रधातु तैयार करने के लिए १६:१ के अनुपात में जस्ता और तांबा लिया जाता है–अर्थात् ८०० ग्राम जस्ता तो ५० ग्राम तांबा। तांबा इसलिए मिलाया जाता है कि मिश्रधातु में चमक-दमक आये। जो चीज बनानी हो, उसका सांचा तेल में सनी मिट्टी से तैयार किया जाता है। जस्ते और तांबे की पिघली हुई मिश्रधातु सांचे में उड़ेली जाती है। क्षण-भर में ही धातु सांचे की मूल आकृति में ढल जाती है। निर्माण-प्रक्रिया का प्रथम चरण इस तरह पूरा होता है।

जब अपेक्षित वस्तु तैयार होकर सांचे से निकाल ली जाती है, उस पर से अतिरिक्त धातु रेती से घिसकर निकाल दी जाती है। यह काम अल्प-कुशल कारीगरों से कराया जाता है। आगे रेती से तराशने का काम सिद्धहस्त शिल्पकार करते हैं, जो नक्काशी के कार्य में निपुण होते हैं। ढला हुआ तैयार पात्र रंग में सफेद होगा, हालांकि थोड़ा बहुत तांबा भी इसमें मिला होता है।

अब इस पात्र को लकड़ी के एक टुकड़े से लाख की सहायता से जड़ दिया जाता है। इसके बाद कुशल शिल्पकार नक्काशी, खुदाई और तराशने का कार्य शुरू करते हैं। इस काम में बहुत कुशलता और प्रतिभा की आवश्यकता होती है। चूंकि पहले विशिष्ट डिजाइनों के लिए विकास-केंद्र तो थे नहीं, शिल्पकार स्वयं ही आकर्षक डिजाइनों की कल्पना करते थे और बड़ी कुशलता से उन्हें पात्रों पर अंकित करते थे।

मौलिकता के आकर्षण के कारण ये वस्तुएं अच्छे दामों पर बिक जाती थीं। डिजाइनों को दुहराया नहीं जाता था, जब तक कि कोई खरीदार इसकी फरमाइश न करे।

नक्काशी का काम समाप्त हो जाने पर सोने और चांदी के तार-पत्तरों की जड़ाई का कार्य बहुत ही सावधानी के साथ छोटे और हल्के औजारों की मदद से धीमे-धीमे



हुक्का : बीदरी शान

ठोंककर किया जाता है। यह काम पूरा हो जाने के बाद अंदर जड़ी हुई धातु के अतिरिक्त अंश को रेती से आहिस्ते खरादकर साफ कर दिया जाता है। इससे डिजाइन निखर उठती है। चूंकि मूल मिश्रधातु और उस पर जड़ी चांदी, दोनों का ही रंग सफेद होता है, इसलिए उन पर उत्कीर्ण चित्र अथवा डिजाइनें इस अवस्था में पहली नजर में स्पष्ट नहीं हो पातीं।

अब जड़ावदार वस्तु को हल्की आंच पर गरम किया जाता है और ऐसे कपड़े के टुकड़े से रगड़ा जाता है जो बीदर किले की दीवारों की मिट्टी में नौसादर और पानी मिलाकर बनाये गये गारे से सना होता है। इससे जस्ते और तांबे की वह मिश्रधातु तुरंत आक्सीकृत होकर गहरा काला रंग पकड़ लेती है, जबकि सोने और चांदी पर कोई रासायनिक क्रिया न होने से उनका रंग वैसा ही बना रहता है।

मिश्रधातु का रंग काला पड़ जाने से वस्तु का शिल्प-सौंदर्य एकदम निखर उठता है। अब वस्तु को सादे पानी में धोया और सुखा लिया कि बस माल बिक्री के लिए तैयार। बीदरी काम के सामान पर पालिश करना हो तो खाने के तेल की कुछ बूंदें छिड़क कर कपड़े से रगड़ दीजिये, चीज चमक उठेगी। किसी दूसरी पालिश की जरूरत नहीं पड़ती।

पुराने समय में मशीनें तो थीं नहीं, ढलाई से लेकर आक्सीकरण तक की सारी प्रक्रियाएं विभिन्न शिल्पकार विभिन्न चरणों में करते थे। इसलिए बीदरी सामान की उत्पादन-लागत ज्यादा पड़ती थी। फिर हस्तनिर्मित होने के कारण उत्पादन भी सीमित मात्रा में हो पाता था, जिससे मांग की पूर्ति मुश्किल से हो पाती थी। इस कारण भी बीदरी सामान महंगा बिकता था।

आज मशीनों ने बहुत-सा काम संभाल लिया है। सांचे बनाने, ढलाई, रेती से

तराशने का कार्य और पालिश आदि कार्यों में मशीन के उपयोग से श्रम की लागत में पर्याप्त बचत होने लगी है। और साथ ही उत्पादन में वृद्धि भी। कुशल कारीगर अब पूरे समय नक्काशी और जड़ाई के काम में लगे रह पाते हैं। उत्पादन बढ़ जाने से अब ज्यादा नक्काश रोजगार पाते हैं।

आज विदेशों में बीदरी सामान की भारी मांग है। साड़ी-पिन, ब्रोच, टाइ-पिन, राखदान, पानदान, सिगार-सिगरेट-केस, गुलदान, कलमदान, पेपरवेट, पेपर-कटर, नेकलेस, पायल-पाजेब, बटन, तस्वीरों के फ्रेम, लैंप-स्टैंड आदि अनेक सजावटी एवं दैनिक उपयोग की वस्तुएं विदेशी बाजारों में काफी लोकप्रिय हैं।

वैसे स्वदे में इनकी खपत बहुत कम है। कारण, एक तो ये सामान काफी वजनदार होते हैं, दूसरे आज बाजारों में सस्ती और नकली चीजों का जोर है। मेरी मान्यता है कि मशीनों की मदद से इनमें से कुछ वस्तुओं का वजन तो निश्चित रूप से काफी कम किया जा सकता है। अभी बीदरी सिगरेट-केस देखने में तो आकर्षक होते हैं, पर भारी होने की वजह से कोट या बुशर्ट की जेब में मुश्किल से रखे जा सकते हैं।

एक और मुद्दा विचारणीय है। निर्यात के दौरान समुद्री जलवायु का बीदरी सामान पर दुष्प्रभाव पड़ता है। धातु का गहरा काला रंग एक-सा नहीं रह पाता और जगह-जगह धब्बे-से उभर आते हैं। इससे वस्तु का सौंदर्य नष्ट हो जाता है। इसका कोई इलाज खोजा जाना चाहिये।



कलंदरी फकीर बहुत हाजिर-जवाब और मुंहफट होते हैं। सो लोग उन्हें जल्द ही रोटी या पैसे देकर उनसे अपना पीछा छुड़ा लेते हैं कि कहीं कोई फिकरा न कस दें।

एक बार एक कलंदरी फकीर एक गली में घुसा तो उसे एक आबनूस-जैसे काले मुंशीजी दिखाई पड़े, जो बाहरी दलान में हरा दुशाला ओढ़े बैठे अखबार पढ़ रहे थे। फकीर खड़ा रहा, लेकिन मुंशीजी ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

फकीर ने कहा—'अरे, हरे खेत के काले कौए, कुछ फकीर को भी दिला।'

मुंशीजी उठकर घर के भीतर चले गये। फकीर कुछ देर इंतजार करने के बाद आगे बढ़ गया। थोड़ी देर बाद जब वह लौटा, तो देखा कि मुंशीजी हरे की जगह पीला दुशाला ओढ़कर कुर्सी पर बैठे हैं। जैसे वे उसका ही इंतजार कर रहे हों।

फकीर ने इस बार उनका पीला दुशाला देखकर कहा—'अरे बंगाल की पीली मैना, कुछ फकीर को भी दिला।' मुंशीजी कौए से पीली मैना बनकर खुश हो गये और उन्होंने जेब से एक रुपया निकालकर फकीर को दिया।

फकीर ने रुपया लेने के बाद कहा—'भाई वाह! मुर्गी है तो काली, लेकिन अंडा सफेद ही देती है।' मुंशीजी खिसिया गये और फकीर आगे बढ़ गया।

—सुरेश सिंह





रावण-दाह : संस्कृति या विकृति

प्रेमाचार्य शास्त्री

श्री इंद्रचंद्र नारंग ने उक्त शीर्षक वाले लेख में ऐसी अनेक बातें लिखी हैं, जो मेरी राय में असंगत हैं और इस कारण विवादास्पद हैं। विजयादशमी के उल्लास-मय पर्व पर विशाल पुतले के रूप में रावण का दाह किया जाना व्यक्ति रावण के प्रति हिंदुओं की बद्धमूल घृणा का द्योतक नहीं, अपितु अन्याय, अधर्म और नीति-विपरीत आचरण के प्रति मानव-सहज धिक्कार-भावना का परिचायक है। वास्तव में, जनमानस में श्रीराम और रावण शताब्दियों से मात्र ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं, अपितु धर्म और अधर्म अथवा न्याय और अन्याय के प्रतीक हैं। रावण-दाह के पीछे भी यही सांस्कृतिक अंतर्दृष्टि है। उसे 'विकृति' की संज्ञा देना उसके परिप्रेक्ष्य का समुचित मूल्यांकन नहीं है।

लेख में यह भी स्थापित करने की चेष्टा की गयी है कि रावण ने कोई 'पाप' नहीं किया था। लेखक का कहना है कि तत्कालीन मान्यताओं के अनुसार अकामा से बलात्कार करना ही पाप, सकामा के साथ संपर्क हेय नहीं था; रावण ने सीता का अपहरण मात्र किया था, कोई बलात्कार नहीं किया था; अतः वह निष्पाप था। इसके पक्ष में उन्होंने महाभारत तथा अन्य पुराणों से कुछ उदाहरण दिये हैं। परंतु इस संदर्भ में अन्य ग्रंथों को लाना आवश्यक नहीं है। स्वयं वाल्मीकि-रामायण ही अतिशय स्पष्ट रूप से रावण को 'पापकर्मा' घोषित करता है।

१. बृहस्पति के पुत्र ब्रह्मर्षि कुशध्वज की तपस्विनी कन्या वेदवती के साथ रावण ने बलात्कार करना चाहा। वह कन्या कहती रही कि मैं नारायण-प्राप्ति के लिए महा व्रत में संलग्न हूं, मेरा स्पर्श करके मर्यादा भंग मत करो। परंतु रावण ने कन्या की याचना पर ध्यान नहीं दिया और बलपूर्वक उसके बाल पकड़ लिये। तब आत्मरक्षा का कोई अन्य

पाय न देखकर वेदवती ने अपने शील की रक्षा के लिए यज्ञाग्नि में कूदकर आत्मदाह कर लिया [वा. रा. ७. १७. ३०]।

२. कुबेर रावण का भाई था। उसके पुत्र नलकूबर की प्रेयसी रंभा पर रावण की दृष्टि पड़ गयी। वह कामाभिभूत हो उठा और उससे अनुचित प्रस्ताव करने लगा [वा. रा. ७. २६. २१-२७]। रंभा गिड़गिड़ाकर बोली :

अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्नुयां धर्षणं यदि।
तद् धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते ।। [वा. रा. ७.२६.२९]

–किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बलात्कार की चेष्टा किये जाने पर भी मैं आपके द्वारा रक्षणीय हूं। (सो स्वयं अनुचित प्रस्ताव करना आपको शोभा नहीं देता।) मैं धर्मपूर्वक आपकी पुत्रवधू हूं और यह तथ्य की बात निवेदन कर रही हूं।

किंतु रावण ने रंभा की एक नहीं मानी और उसे वहीं वन में शिलातल पर गिराकर बलपूर्वक उसके साथ संभोग किया [वा. रा. ७.२६.४०]।

बाद में जब रंभा से नलकूबर को रावण के दुष्कृत्य का पता चला, तो उसने उसे शाप दिया कि यदि भविष्य में तुम किसी भी अकामा स्त्री के साथ बलात्कार करोगे तो तुम्हारा मस्तक खंड-खंड हो जायेगा [वा. रा. ७.२६.५५]। इस उग्रशाप से भयभीत होकर रावण ने अकामा नारियों पर बलात्कार न करने का संकल्प किया :

श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम्।
नारीषु मैथुनीभावं नाकामास्वभ्यरोचयत् ।। [वा. रा. ७.२६.५८]

इस तरह सीता से बलात्कार न करने के पीछे भी रावण का सौजन्य अथवा सिद्धांत प्रेम नहीं था; अपितु नलकूबर के दिये शाप का भय ही उसे रोकता रहा। अन्यथा परस्त्रियों के अपहरण तथा उनके साथ बलात्कार को रावण 'स्वधर्म' मानता था :

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा ।। [वा. रा. ५.२०.५]

यही कारण है कि न केवल श्रीराम, हनुमान, अंगद आदि रावण के शत्रु-पक्षीय व्यक्ति ही उसे 'पापात्मा' कहकर तिरस्कृत करते हैं, अपितु उसका सहोदर विभीषण भी उसे 'त्यक्तधर्मव्रत' [वा. रा. ६.१११.९३] कहकर लांछित करता है और स्वयं उसकी पट्टमहिषी मंदोदरी भी उसे 'धर्म-मर्यादाओं को तोड़ने वाला' [धर्मव्यवस्थाभेत्तारं, वा. रा. ६.१११.५२] कहकर उसकी दुराचार-वृत्ति को प्रकट करती है।

किसी पतिपरायणा, शीलवती, साध्वी महिला का अपहरण करना, उसे कारागार में डालकर डराना-धमकाना आदि क्रियाएं श्री नारंग की दृष्टि में चाहे पाप न हों, परंतु विभीषण तथा मंदोदरी तो रावण के इन दुष्कृत्यों को ही उसके सर्वनाश का कारण मानते

हैं। विभीषण तो उस 'परदाराभिमर्शी' का अंतिम संस्कार तक करने को प्रस्तुत नहीं था [वा. रा. ६.१११.९३]। और मंदोदरी ने यहां तक कह डाला :

अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते। सीतां धर्षयता मान्यां त्वयाह्यसदृशं कृतम्।।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो। प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप।
पतिव्रतानां नाऽकस्मात् पतन्त्यश्रूणि भूतले।। [वा. रा. ६.१११.२१,२२,६६]

—हे दुर्बुद्धि, तुमने अरुंधती तथा रोहिणी से भी अधिक माननीय पतिव्रता सीता का अपमान करके अत्यंत अनुचित कार्य कर डाला था। उस पतिव्रता के तेज से ही तुम्हारा सर्वनाश हुआ है। हे राजन्, तुम्हारी दुर्गति देखकर मुझे यह बात सर्वथा सत्य जान पड़ती है कि भूमि पर गिरे हुए पतिव्रताओं के आंसू कभी निष्फल नहीं होते।

लेख में दूसरी विसंगति यह है कि श्री नारंग एक ओर तो श्रीराम को आदर्श और मर्यादावान पुरुष मानते हैं, दूसरी ओर रावण-वध को उनका 'परम-प्रयोजन' बताते हैं। वास्तव में लेखक द्वारा उद्धृत, श्रीराम के कथन **'मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्'** [वा. रा. ६.१०९.२५] का 'मरण के साथ वैर का अंत हो जाता है, हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है' यह अर्थ संगत नहीं है। क्योंकि यदि श्रीराम का 'प्रयोजन' रावण-वध में ही होता, तो युद्ध में जब अपने प्रधान सेनापति प्रहस्त के मारे जाने पर रावण अन्य सेनानायकों-सहित रणभूमि में आया और श्रीराम की अविच्छिन्न बाण वर्षा ने उसे व्याकुल कर डाला, उसका रथ टूट गया और सारथि मारा गया तथा त्रस्त होकर उसने धनुष फेंक दिया [वा. रा. ६.५९.१४१], उस समय यदि वे (श्रीराम) चाहते तो अपने चंगुल में फंसे हुए असहाय, निरस्त्र तथा भयविह्वल रावण को मारकर अपना 'प्रयोजन' पूरा कर सकते थे। परंतु श्रीराम ने उसे उस समय मारा नहीं, अपितु क्षमा दान देते हुए कहा :

तस्मात्परिश्रान्त इति व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि।
गच्छानुजानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिंचरराज लंकाम्।।
[वा. रा. ६.५९.१४४-४५]

—हे राक्षसराज, इस समय तुम अत्यंत परिश्रांत हो। इसलिए मैं तुम्हें अपने बाणों से मौत के घाट नहीं उतार रहा हूं। तुम युद्ध में पराभूत हो गये हो। मेरा परामर्श है कि तुम लंका लौट जाओ।

ऐसी स्थिति में रावण के मरण को श्रीराम की प्रयोजन-सिद्धि बताना सर्वथा असंगत है। बेशक बादशाह अकबर ने जयमल और पत्ता को तथा अंग्रेजों ने बलभद्र थापा को उनके मरणोपरांत शत्रु न मानकर वीर प्रतिद्वंद्वी रूप में स्वीकार किया था। परंतु श्रीराम का आदर्श और व्यक्तित्व इससे कहीं अधिक ऊंचा था। उन्होंने तो रावण को जीवन-काल में भी कभी शत्रु नहीं माना था। अपने प्रति वैरभाव रखने वाले का भी हित चाहने वाले एक

सच्चे महामानव के नाते उन्होंने रावण पर भी सदा उपकार-दृष्टि ही रखी। यद्यपि रावण एक के बाद एक अनेक वैर बढ़ाने वाले कार्य करता आ रहा था, फिर भी श्रीराम उन सबको भुलाकर उसे अभय प्रदान करने तथा भ्रातृभाव से उसे स्वीकार करने को प्रस्तुत थे। विभीषण की शरणागति के समय श्रीराम ने सुग्रीव से कहा था:

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥ [वा. रा. ६.१८.३४]

—हे वानरश्रेष्ठ सुग्रीव, इसे मेरे पास ले आओ। मैं इसे अभय प्रदान करता हूं—यह विभीषण हो अथवा रावण ही क्यों न हो।

इस प्रकार, श्रीराम का रावण-वध 'प्रयोजन' किसी भी प्रकार नहीं हो सकता था। इसलिए 'राम ने रावण से वैर को मरणांत कहा था' लेखक का यह कथन निस्सार है।

वास्तव में '**मरणान्तानि वैराणि**' का तात्पर्य भिन्न ही है जो श्री नम्पिळ्ळै प्रभृति सुधी वैष्णवाचार्यों ने प्रकट किया है। उसके अनुसार, यहां श्रीराम का हार्द यह है:

हे विभीषण, रावण प्रारंभ से ही मेरे प्रति वैरकार्य करता आ रहा है। अब उसके मर जाने के साथ ही मेरे प्रति उसके द्वारा किये जाने वाले वैरकार्यों का सिलसिला भी समाप्त हो गया है। अब यह और वैरकार्य नहीं कर पायेगा—**मरणान्तानि वैराणि**। और मैं जो सदा इसके प्रति हितभाव रखता रहा था किंतु इसके दुष्टस्वभाव के कारण इसका कुछ भी हित कर नहीं पा रहा था, अब कुछ हित कर पाऊंगा। मेरा प्रयोजन अब सिद्ध हुआ है—**निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्**। इस समय इसका अंतिम हित यही होगा कि इसके शव को गीध, कुत्ते और गीदड़ नोच-नोचकर अपमानित न कर पायें, इसलिए तुम विधिवत् इसका संस्कार करो—**क्रियतामस्य संस्कारः**। यदि कदाचित् आक्रोश-वश तुम इसका संस्कार नहीं करोगे तो मैं करूंगा। क्योंकि जिस प्रकार यह तुम्हारा भाई है, उसी प्रकार मेरा भी इसमें भ्रातृभाव है—**ममाप्येष यथा तव**।

अंत में एक बात और। रामलीलाओं का चलन कराने वाले गोस्वामी तुलसीदास के ऊपर रावण-दाह का संपूर्ण दोष आरोपित करना भी समीचीन नहीं। रामलीलाएं प्रारंभ कराना कोई पापकर्म नहीं था। उन्होंने 'रामचरित-मानस' अथवा अपने अन्य किसी भी ग्रंथ में रावण-दाह की प्रेरणा देना तो दूर उसका संकेत मात्र भी नहीं किया है। रावण-दाह होलिका-दाह की भांति ही परंपरागत है। जिस प्रकार होलिका-दाह हिरण्यकशिपु की बहन होलिका के प्रति विद्वेष-भावना का द्योतक न होकर एक दुर्नीति के प्रति सामाजिक आक्रोश की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार रावण-दाह भी व्यक्ति विशेष के प्रति घृणा का प्रदर्शन नहीं है, अपितु लोक-विरुद्ध अन्यायाचरण के प्रति जन-मानस का ज्वलंत क्षोभ है।

—१०३ ए, कमला नगर, दिल्ली-११०००७



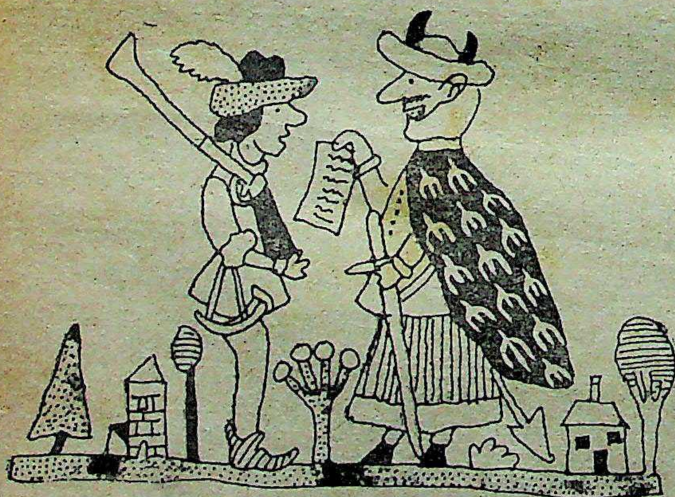
शैतान को चकमा

जर्मन लोककथा : सागरिका द्वारा प्रस्तुत

एक बहुत बड़ा जमींदार था। उसके एक ही बेटी थी। उसका नाम था—ग्रेश्चेन। वह थी बहुत ही सलोनी, सयानी और भली। दूर-दूर से राजा, सेनापति और व्यापारी आते रहते थे ग्रेश्चेन से शादी करने की आशा लेकर। मगर जमींदार उन सबसे यही कहता कि मैं तो अपनी बिटिया की शादी उससे करूंगा, जो दुनिया का सबसे बड़ा निशानेबाज हो। राजा, सेनापति और व्यापारी मुंह लटकाकर चले जाते।

जमींदार की गढ़ी के पास के एक गांव में एक लड़का रहता था हान्स—बहुत सुंदर और बहुत भोला और बिलकुल अपढ़। पता नहीं कैसे, उसके सिर पर यह धुन सवार हो गयी कि मैं तो ग्रेश्चेन से ही शादी करूंगा। उसकी मां ने उसे बहुत समझाया कि ग्रेश्चेन की शादी तो संसार के सबसे बड़े निशानेबाज से ही होगी। पर हान्स अड़ गया। बोला—'मां, अपनी ओर से कोशिश करने में क्या बुराई है!' और कंधे पर बंदूक रखकर चल पड़ा जमींदार की गढ़ी की ओर।

चलते-चलते एक चौराहे पर उसे मिला एक आदमी। बड़ा ही अजीब था उसका हुलिया। उसके सारे कपड़े लाल थे और टांगें बकरी जैसी थीं। आते ही उसने ऊंची आवाज में पूछा—'तुम कहां जा रहे हो हान्स ? और इतने निराश क्यों दिख रहे हो ?'



यह सुनकर हान्स को काफी आश्चर्य हुआ कि इस आदमी को मेरा नाम कैसे मालूम हुआ! उसने

उत्तर दिया–'मैं जमींदार की गढ़ी पर जा रहा हूं और वहां जमींदार से कहूंगा कि ग्रेश्चेन से मेरी शादी कर दो। पर मुझे नहीं लगता है कि ग्रेश्चेन मुझे मिलेगी; क्योंकि उसके पिता ने कह रखा है कि मैं अपनी बेटी की शादी दुनिया के सबसे बड़े निशानेबाज से करूंगा।'

'बस, इतनी-सी बात! इस कागज पर तुम हस्ताक्षर कर दो, मैं तुम्हें दुनिया का सबसे बड़ा निशानेबाज बना दूंगा।' अजीब आदमी ने कहा।

हान्स ने पूछा कि इस कागज पर लिखा क्या है? अजीब आदमी ने बताया–'यही कि आज से ठीक सात साल के बाद तुम हमेशा के लिए मेरे नौकर बनकर मेरे साथ चल दोगे। हां, अगर तुम मुझसे ऐसा सवाल पूछ लो कि जिसका उत्तर मैं न दे सकूं, तो और बात है।'

हान्स ने कागज पर अपना अंगूठा लगा दिया। पढ़ा-लिखा तो वह था नहीं। तब अजीब आदमी ने हान्स की बंदूक लेकर उसकी नली में फूंक मारी और कहा कि तुम दुनिया के सबसे बड़े निशानेबाज बन गये हो, अब जाओ।

हान्स गढ़ी में पहुंचा। पहरेदारों ने उससे पूछा कि तुम यहां क्यों आये हो? हान्स बोला–'ग्रेश्चेन से शादी करने।' पर पहरेदारों ने उसे अंदर नहीं जाने दिया। तभी ग्रेश्चेन ने गढ़ी की खिड़की में से उसे देखा और पहरेदारों से सारी बात पूछकर उसे अंदर बुलवा लिया। देखकर जमींदार बोला–'अच्छा तुम अपने को दुनिया का सबसे बड़ा निशानेबाज मानते हो? ठीक है, मेरी गढ़ी की मीनार पर वह जो गौरैया उड़ रही है न, उसकी पूंछ का एक पंख गोली मारकर गिराओ–मगर सिर्फ एक पंख ही गिराना।'

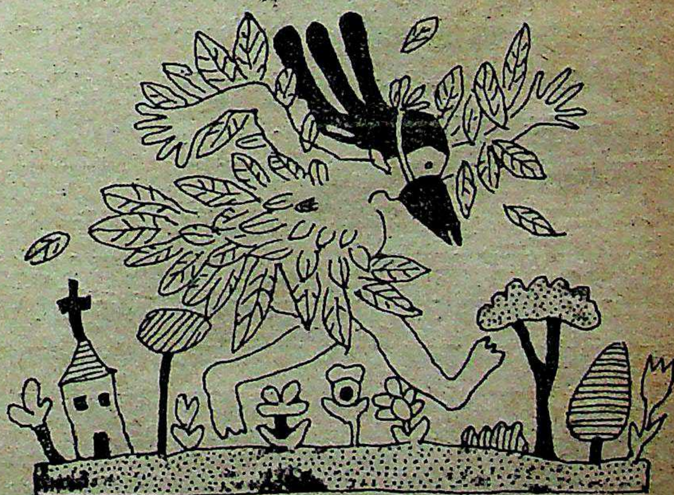
हान्स ने बंदूक उठाकर ठांय से गोली दाग दी। मीनार पर उड़ती गौरैया की पूंछ का एक पर टूटकर जमींदार के पास आ गिरा।

'शाबाश!' ग्रेश्चेन बोल उठी।

पर जमींदार ने हान्स से कहा–'उस खेत में वह खरगोश दौड़ रहा है न, काट सकते हो उसकी पूंछ गोली मारकर?'

हान्स ने बंदूक उठाकर गोली दाग दी। फौरन खरगोश की पूंछ कटकर गिरी।

'शाबाश!' ग्रेश्चेन बोल उठी।



जमींदार ने गुस्से से अपनी बेटी को देखा और हान्स से कहा—'देखो, वहां पहाड़ की ढलवान पर मेरे नौकर बगीचे में काम कर रहे हैं। उनके मुखिया के मुंह में जो पाइप है, उसे तुम गोली मारकर गिरा सकते हो?'

हान्स ने बंदूक उठायी और ठांय से गोली दाग दी। थोड़ी देर में सारे नौकर बगीचे से दौड़े-दौड़े आये और जमींदार से बोले—'सरकार गजब हो गया। किसी ने गोली मारकर मुखिया की पाइप तोड़ दी।'

ग्रेश्चेन बोल पड़ी—'पिताजी, अब तो आपने देख लिया न कि हान्स दुनिया का सबसे बड़ा निशानेबाज है। आप मेरी शादी उससे करके अपना वचन पूरा कीजिये।'

जमींदार को मानना ही पड़ा। हान्स और ग्रेश्चेन की शादी हो गयी और वे सुख से रहने लगे। सुख में समय बहुत जल्दी कट जाता है। सात साल पूरे होने में सिर्फ एक दिन रह गया। हान्स एकाएक बहुत उदास हो गया। ग्रेश्चेन ने उसकी उदासी का कारण पूछा, तो उसने अजीब आदमी की सारी बात उसे बतायी। चतुर ग्रेश्चेन बोली—'अरे, वह तो शैतान था।...पर कोई बात नहीं।' फिर उसने हान्स के कान पर मुंह रखकर उसे कुछ बताया। फिर वे दोनों खा-पीकर निश्चिंत सो गये।

अगले दिन ग्रेश्चेन ने अपने शरीर और कपड़ों पर गाढ़ा शहद चुपड़ा और चिड़ियों के पंखों से बना हुआ अपना तकिया उधेड़कर उन पंखों पर लोट गयी। फिर जंगल में जाकर छिप गयी।

थोड़ी देर में अजीब आदमी गढ़ी के दरवाजे पर आ पहुंचा। हान्स अपनी बंदूक लेकर वहीं खड़ा था। अजीब आदमी ने पूछा कि तैयार हो मेरे साथ चलने को? हान्स बोला—'हां चलिये। पर क्या आप मुझे अपनी बंदूक से अंतिम बार शिकार करने देंगे?' अजीब आदमी ने हां कहा और दोनों चल पड़े।

थोड़ा आगे चलने पर उन्हें जुता हुआ खाली खेत मिला। उसमें उन्हें विचित्र-सी आवाज के साथ उछलती-कूदती हुई अजीब चीज दिखाई दी जो देखने में बहुत बड़ी चिड़िया लगती थी। असल में वह थी ग्रेश्चेन। शहद पर चिड़ियों के पंख चिपक जाने से वह चिड़िया-जैसी लग रही थी। अजीब आदमी ने कहा—'चलाओ उस पर गोली।' इस पर हान्स ने कहा—'मगर पहले यह बताओ कि वह क्या है?'

अजीब आदमी खीजकर बोला—'जो भी होगा, होगा। तुम उस पर गोली चलाओ।'

'पर पहले यह बताओ कि वह है क्या?'

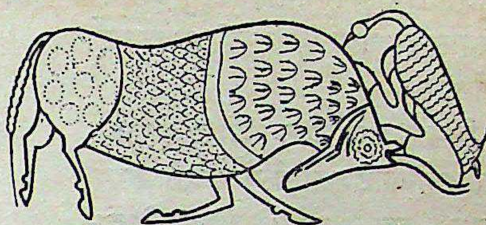
'जहन्नुम में जाओ, मुझे नहीं मालूम कि वह क्या है।' अजीब आदमी झल्लाया।

इस पर हान्स तनकर खड़ा हो गया और बोला—'जहन्नुम में जाओ तुम, क्योंकि मेरे सवाल का जवाब तुम नहीं दे सके। अब मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूंगा।'

अजीब आदमी, जो कि शैतान था, बड़बड़ाता हुआ और अपने खुरों से धूल उड़ाता हुआ वहां से भाग गया। हान्स और ग्रेश्चेन निश्चित होकर आनंद से रहने लगे।



स्मृति के अंकुर



मां के आगे मृत्यु नतमस्तक

उस दिन मेरे मित्र डा. गुप्त का हर्निया का आपरेशन था। अन्य मित्रों के साथ मैं अस्पताल के आपरेशन-थियेटर के बाहर प्रतीक्षा कर रहा था। रह-रहकर मेरी दृष्टि सामने की बेंच पर बैठी ग्रामीण मुस्लिम युवती पर अटक जाती थी। तांबई रंग का उसका आकर्षक सुडौल शरीर इस समय भयग्रस्त मेमने की तरह थरथरा रहा था और बदहवास-सी वह थियेटर के बंद दरवाजे को एकटक देखे जा रही थी, जैसे थियेटर के अंदर उसके जीवन और मृत्यु का फैसला हो रहा हो। मैंने उसके पास बैठी उसकी मां से पूछा, तो उसने बताया कि पिछले साल जब युवती की बच्ची पैदा हुई थी तो उसकी जीभ बढ़ी हुई थी। बच्ची घर पर ही पैदा हुई थी। किसी ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अब अचानक एक दिन बच्ची की तबीयत खराब हुई और अस्पताल में दिखाया। आज उसका आपरेशन हो रहा है।

इतने में थियेटर का दरवाजा खुला और जैसे ही डाक्टर साहब बाहर निकले, युवती उचककर खड़ी हो गयी। उसका चेहरा पसीने से नहा गया। ओंठ कांप उठे, पर बोल नहीं फूटे। आंसुओं से भरी बड़ी-बड़ी आंखों में प्रश्न तैर गया—'मेरी बच्ची कैसी है?' मैं लपककर डाक्टर के पास गया और अपने मित्र की कुशल पूछना भूल युवती की बच्ची के हाल पूछ बैठा। वे एक उड़ती नजर युवती पर डालकर धीरे-से बोले—'बच्ची की हालत काफी सीरियस है। आज की रात भी शायद ही निकाले।'

युवती हमसे इतनी दूरी पर थी कि डाक्टर के शब्द बिलकुल सुन नहीं सकती थी। किंतु पता नहीं, उसके अंतर्मन ने कैसे आभास पा लिया। युवती की सांस तेजी से फूलने लगी और दिल के जोरों से धड़कने के कारण उसका उन्नत वक्ष तेजी से ऊपर-नीचे होने लगा। और यह क्या! उसकी अंगिया भी भीगने लगी। मुझे रोमांच हो आया, मेरी पलकें भीग गयीं। सहसा मुंह से निकल पड़ा—'नहीं, यह नहीं हो सकता।' डाक्टर साहब कुछ बोले नहीं और सिर झटकते हुए अंदर चले गये। मैं भी जब

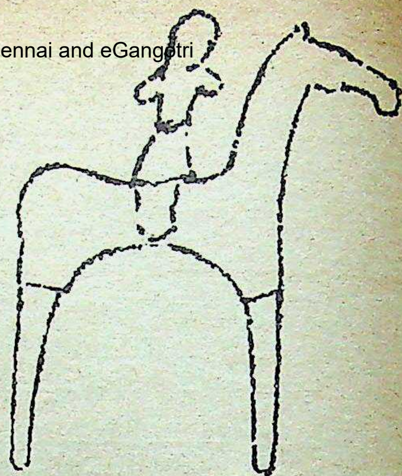
स्थिर हुआ तो सकुचा गया; परंतु मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया कि बच्ची अवश्य ही बच जायेगी।

मेरे मित्र का आपरेशन ठीक हो गया था और उन्हें काटेज वार्ड में भरती करवा दिया गया। कुछ कारणों से मैं अगले दो-तीन दिन मित्र से मिलने अस्पताल नहीं जा सका था। चौथे दिन जब जनरल वार्ड की गैलरी पार करके काटेज वार्ड की ओर जा रहा था, तो अचानक ठिठककर खड़ा हो गया। गैलरी में वही युवती पास ही किलकारियां भरती अपनी बच्ची से प्रसन्न-चित्त बतिया रही थी। मारे खुशी के मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। आंखों से आस्था और प्रसन्नता के मिले-जुले आंसू बह निकले। मातृशक्ति के सामने यमराज परास्त हो चुके थे। **—शिवजी, बीकानेर, राजस्थान**

०००

चिट्ठी नहीं आती

शोधकार्य कई महीनों से संतोषजनक नहीं चल रहा था। विभिन्न परिणामों में कोई ताल-मेल ही न बैठता था। तिस पर उस शोध के लिए मिला अनुदान भी समाप्त होने को आ गया था। उस विषादपूर्ण मनःस्थिति में मैं दो माह से घर कोई पत्र न डाल सका था। इस पर मां ने रुदन-भरे शब्दों में लिखा—'सुना था, विदेश जाकर लड़के मां-बाप को भूल जाते हैं। बेटे तुमने उसे सच करके दिखा दिया। हर दिन हम लोग डाकिये की प्रतीक्षा करते हैं कि आज चिट्ठी



आयेगी, आज चिट्ठी आयेगी; पर तुम्हारी चिट्ठी आती नहीं। खाने-पीने में मन नहीं लगता। हर समय चिंता बनी रहती है....' पत्र पढ़कर मैंने अपने को अपराधी-सा अनुभव किया।

मां के पत्र के साथ ही एक मित्र का भी पत्र था। उसे पढ़ा तो अनेक परिचित परिवारों का खयाल हो आया। किसी घर में खासे पढ़े-लिखे नौजवान लड़के नौकरी के अभाव में बेकार बैठे हैं तो किसी में अनब्याही लड़कियां अधेड़ हुई जा रही हैं। सब जगह चिट्ठियों का इंतजार हो रहा है। कहीं नियुक्ति की चिट्ठी का, तो कहीं लड़के वालों की 'हां' की चिट्ठी का।

मेरा अपराध-भाव कम हो गया, दुःख बढ़ गया। **—अजय कु. कुलश्रेष्ठ, कैलिफोर्निया, सं. रा. अमरीका**

०००

भीतर का आदमी

हम नागालैंड की यात्रा पर थे। सुन रखा था कि भारत के पूर्वी छोर का यह

पहाड़ी प्रदेश कई छोटे-छोटे कबीलों में बंटा है और नागा हमारे जैसे सभ्य नहीं हैं। पूरी यात्रा में हमारी कार का ड्राइवर था हितोवी सेमा, जो कि नागा था। असल में वह हमारा ड्राइवर ही नहीं गाइड, सहायक, मित्र सब कुछ था। उसने अभिभावक की तरह हमारा ध्यान रखा। कठिन से कठिन रास्ते पर भी वह बड़े धैर्य से गाड़ी चलाता रहा। पंद्रह-पंद्रह घंटे लगातार गाड़ी चलाने के बाद भी उसने कभी थकान की शिकायत नहीं की। न कभी क्रोध ही दरशाया। वह बातें कम और काम अधिक करता। उसके नम्र और परिश्रमी स्वभाव ने नागाओं के प्रति हमारे पूर्वग्रहों को मिटा डाला।

एक संकरे रास्ते पर हमारी कार के आगे एक बड़ी सवारी-बस थी। हितोवी उसे रास्ता देने के लिए बार-बार हार्न बजाता रहा। लगभग १५-२० किलोमीटर चलने के बाद एक गांव के पास बस रुकी। हितोवी ने झटके से गाड़ी रोकी, दरवाजा खोला, लपककर बस के पास पहुंचा और बस के ड्राइवर का हाथ पकड़कर बाहर खींचते हुए बोला—'नीचे उतर! घंटे-भर से रास्ता मांग रहा हूं। नीचे उतर, बताता हूं।'

हितोवी क्रोध से कांप रहा था। इस समय यदि उसके पास कुल्हाड़ी या तलवार होती, तो वह उस ड्राइवर का सिर ही काट लेता।

हमने हितोवी को समझाकर वापस कार में बुला लिया। कार में बैठते-बैठते भी उसने बस-ड्राइवर को धमकी दी—'दीमापुर में देखूंगा।'

उस शांत-विनम्र नागा का यह रौद्र रूप देख हम चकित रह गये थे। मगर कुछ ही देर में वह बिलकुल शांत हो गया। उसके मन में न बदले की भावना रही, न क्रोध की।

नागालैंड से लौटते समय हमने हितोवी को पुरस्कार के रूप में कुछ रुपये देने चाहे। पर उसने बड़ी नम्रता से इन्कार करते हुए कहा—'नहीं साब, हम कुछ नहीं लेगा। आप लोगों को अभी बहोत दूर जाने का है। अपने पास रुपया रखो, रास्ते में काम आयेगा।'

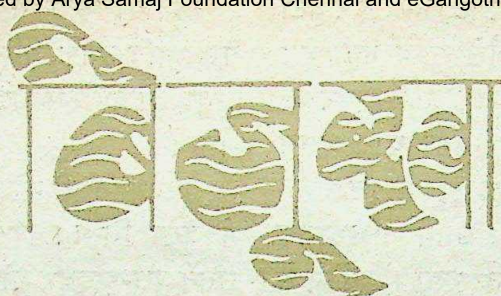
हितोवी में मैं देख रही थी आदमी के भीतर का आदमी, जो हर जगह एक-सा ही है—वही क्रोध, वही संवेदना, वही भावनाएं। अंतर शायद इतना ही था कि यहां वह सहज ही प्रकट हो जाता था, क्योंकि हितोवी ने सभ्यता के लबादे नहीं ओढ़ रखे थे। — **उर्मि कृष्ण, अंबा लाछावनी**



नया उपनाम

वे समय के अनुसार चलने लगे हैं—
पुराना उपनाम 'दीप' छोड़कर
स्वयं को 'नियोन बल्ब' कहने लगे हैं।

—सत्य स्वरूप दत्त



अजीज ने सिन का तुर्की व्यंग्य

रविवार का दिन। मौसम बेहद खूबसूरत था। सवेरे जी चाहा कि घर से बाहर निकलें, घूमें-फिरें और दुनिया का तमाशा देखें। पहले शहर के फैशनेबल इलाकों का चक्कर लगाने की तबीयत हुई। फिर सोचा, ये इलाके तो अमीरों की निजी संपत्ति हैं, क्यों न आज फकीरों की झुग्गियों की ओर चला जाये। सो शहर से बाहर खेतों-खेत फकीरों के इलाके की ओर निकल पड़ा। एक खेत से गुजर रहा था कि आवाज आयी—'भाई साहब! भाई साहब!'

मुड़कर देखा तो खेत में छड़ियों का बना एक इंसान रूपी ढांचा नजर आया, जिसके दोनों हाथ ट्रैफिक के सिपाही की तरह दायें-बायें फैले हुए थे। सिर पर फटी-पुरानी टोपी और शरीर पर चिथड़े लटक रहे थे। दूर से लगता था, जैसे कोई किसान खड़ा हो। कौओं को डराने-भगाने के लिए देहाती ऐसे पुतले खेत में खड़े कर देते हैं। वे इसे बिजूखा कहते हैं।

मैंने निकट जाकर गौर-से देखा, तो यों महसूस हुआ कि बिजूखा सचमुच हरकत कर रहा है। मेरे अचरज की सीमा न रही। इतने में फिर आवाज आयी—'डरो मत बरखुरदार! डरो मत!'

बिजूखे को बोलते देखकर मैं घबरा गया, डर से कांपने लगा और हकलाते हुए इतना ही कह सका—'असलाम अलैकुम! मियां बिजूखे।'

'वालेकुम सलाम!' बिजूखा बोला-'कहो, मेरे रिश्तेदारों का क्या हाल है?'

'हैं! क्या तुम्हारे रिश्तेदार भी होते हैं?' मैंने विस्मय से पूछा।

इस पर बिजूखे ने इतने जोर से कहकहा लगाया कि उसकी टहनियां दोहरी हो गयीं। फिर बोला—'क्यों, मेरे रिश्तेदार नहीं हो सकते क्या? क्या समझ रखा है मुझे?'

'आश्चर्य है। मैं तो यह पहली बार ही सुन रहा हूं।'

'तो क्या आज तक तुम इतना भी नहीं जान सके कि बड़े लोगों की बड़ी तादाद का संबंध मेरी ही जाति से है?'

'सच कहता हूं मियां बिजूखे, मुझे आज

अनुवाद : सुरजीत

तक इस बात का बिलकुल पता न था।'

'कोई बात नहीं बरखुरदार, अब जान लो कि अगर हम न होते तो दुनिया का इतिहास ही कुछ और होता। आज तक दुनिया में न जाने कितने बादशाह, राष्ट्र-पति, प्रधान-मंत्री और मंत्री हुए हैं, जो हमारे खानदान से संबंध रखते थे।'

'जैसे उदाहरण के लिए ......?' मैंने पूछा।

'नहीं-नहीं, यह मत पूछो!' बिजूखे ने उत्तर दिया-'नाम नहीं गिनाऊंगा। किस-किसका नाम लूं? अगर एक-दो का नाम बताता हूं तो बाकी गिला-शिकवा करेंगे।'

'अच्छा, अगर ज्यादातर बड़े-बड़े लोग तुम्हारे खानदान से संबंधित रहे हैं, तो फिर तुम यहां खेतों की मिट्टी क्यों फांक रहे हो?'

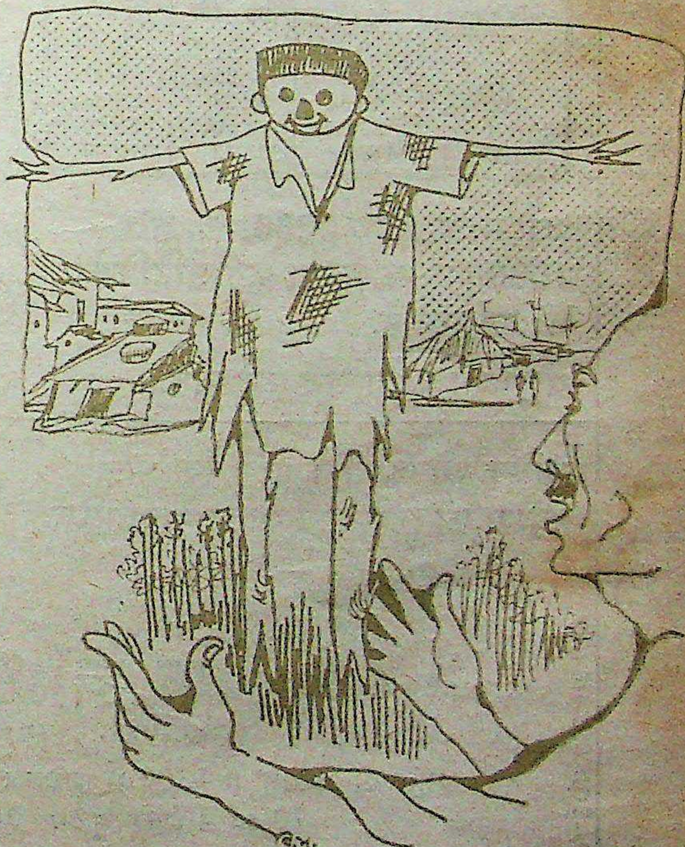
बिजूखे ने ठंडी सांस भरी और कहा-'यह तो जमाने का इंकलाब है बरखुरदार! वरना कोई वक्त था कि मेरे नीचे भी एक अदद ऊंची-मजबूत कुर्सी हुआ करती थी। अपनी स्टाफ-कारें थीं। अपने इर्द-गिर्द भी सुबह-शाम खुशामदियों का जमघट लगा रहता था।'

'फिर क्या हुआ?'

'होना क्या था। मैं अपनी असलियत यानी बिजूखापन भूलकर हर बात में अपनी टांग अड़ाने लगा था।'

'मसलन, किस बात में?'

'भई, हर बात में। जैसे यही कि चीनी की कीमत कम करो; गोश्त महंगा भी है और दुर्लभ भी-उसकी सप्लाई बढ़ाओ और कीमतें घटाओ। हुकूमत लोगों के सोशल-बीमा का प्रबंध करे। बेरोजगारी का हो खात्मा और कमरतोड़ टैक्सों में कमी करके



चित्र : डा. विष्णु भटनागर

जनता का बोझ हल्का किया जाये, वगैरह-वगैरह।'

'ये सब तो बड़ी अच्छी बातें थीं। आपके इन प्रस्तावों का परिणाम क्या निकला?'

'परिणाम वही निकला जनाब, जो आप देख रहे हैं। हमारे लीडर को ये प्रस्ताव फूटी आंखों नहीं सुहाये। वह इन्हें अपने निजी हितों के विरुद्ध समझता था। आखिरकार एक दिन उसने मुझे कान से पकड़ा और यहां लाकर गाड़ दिया। भई, सयानों ने यों ही तो नहीं कहा कि अगर बातचीत चांदी है तो खामोशी सोना है।'

'अच्छा तो, अब क्या होगा?'

'मैं अभी अपने भविष्य से निराश नहीं हुआ हूं।'

'वह कैसे? मैं समझा नहीं।'

'इसमें समझने की क्या बात है मियां? लगता है, तुम इस दुनिया की व्यवस्था से बिलकुल अपरिचित हो। तुम्हें पता होना चाहिये कि हम बिजूखे कभी-कभी तो यों ही किसी वीराने में फेंक दिये जाते हैं। फिर एक वक्त आता है और हमारे भी दिन फिरते हैं। सत्ताधारी बिजूखों में से एक-आध बिजूखा जब गलती से मुंह खोलता है और कोई हितकारी सलाह देने की मूर्खता कर बैठता है, तो उसे फौरन कुर्सी से हटाकर एक तरफ फेंक दिया जाता है, और तब उसकी जगह फिर हम-जैसे दंडित बिजूखों को दुबारा सत्ता की कुर्सी पर बैठने का मौका मिल जाता है।'

यह कहकर बिजूखा बड़े लोगों के विशिष्ट अंदाज में यों खांसा, जैसे सचमुच सत्ता के सिंहासन पर बिराज़मान हो। फिर बोला—'और जब अधिकारों की बागडोर हमारे हाथ में आती है तो कोई शख्स खुदा का नाम पढ़े बिना हमारी सेवा में आने का साहस नहीं कर सकता, चाहे वह जनता में से ही क्यों न हो।...अच्छा, बरखुरदार! यह तो बताओ, क्या तुम भी बड़ा आदमी बनना पसंद करोगे?'

मैंने उत्तर दिया—'कौन बड़ा आदमी बनना नहीं चाहता मियां बिजूखे! मैं भी तो बड़ा आदमी बनने के ही सपने देखता रहता हूं।'

'तो फिर आओ और मेरी बगल में खड़े हो जाओ। हम बिजूखों की संगति में बैठा करो। किसी न किसी दिन अवश्य तुम्हें कुर्सी मिलेगी।'

मैंने फ़ौरन अपने उस परम हितैषी के परामर्श पर अमल किया। अपना कोट उतारा और उलटा करके पहन लिया, अपनी दोनों बांहें दायें-बायें फैला दीं और बिजूखा बनकर खेत में खड़ा हो गया। अब मैं भी अपनी बारी की प्रतीक्षा में हूं। खुदा की मेहरबानी से आजकल में ही अपनी किस्मत का सितारा चमकने वाला है। फिर देखिये, हम किस तरह आप लोगों के सिरों पर एक नया प्रलय बनकर छा जाते हैं।



एका बहुत जरूरी है; मगर सिर्फ सत्ता बनाये रखने के लिए एका बेमानी है। —चंद्रशेखर



भारतीय भाषा का पहला सचित्र मासिक

वेंकटलाल ओझा

'पत्रों का उद्देश्य होना चाहिये—मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवृद्धि। लोग काम-काज से थककर आराम के लिए पत्र पढ़ने के लिए हाथ में लेते हैं, तब उन्हें क्या मिलता है? नीरस उपदेश का भंडार। लोगों को उससे ऊब होती है। बहुत-से संपादक अपनी पसंद के गंभीर विषयों से अपने पत्र को भर देते हैं। जो विषय उन्हें रुचिकर हैं वे दूसरे लोगों को कितने पसंद हैं, इसका वे ध्यान नहीं रखते। अंत में ग्राहक-संख्या धीरे-धीरे कम हो जाती है और फिर पत्र बंद हो जाता है। जैसे लेख लोग पसंद करते हैं, या जिस तरह के लेखों की पाठकों को जरूरत है, वैसे ही विषयों पर आकर्षक व सचित्र लेख "वीसमी सदी" में दिये जाते हैं।'

यह दावा था गुजराती के ही नहीं भारतीय भाषाओं के सर्वप्रथम सचित्र मासिक 'वीसमी सदी' के प्रवर्तक स्व. हाजी महम्मद अलारखिया शिवजी का, जिन्होंने अपने पत्र का आवरण-पृष्ठ ब्रिटेन से छपाकर मंगाया था। 'वीसमी सदी' का पहला अंक अप्रैल १९१६ को बंबई से प्रकाशित हुआ था। समूचा यूरोप उस समय प्रथम महायुद्ध की ज्वाला में धांय-धांय जल रहा था। ऐसे समय ब्रिटेन से आवरण-पृष्ठ छपवाकर मंगवाना विशेष साहस ही कहा जायेगा।

'वीसमी सदी' का प्रत्येक लेख और कविता तक सचित्र रहती थी। इसके लिए एक ओर लेखकों और कवियों की फौज उनके साथ थी, तो दूसरी ओर चित्रकारों की। कौन-सा लेखक किस विषय पर अच्छा लिख सकता है, इसका उन्हें खूब अंदाज था। हर लेखक से वे उसके अनुरूप विषय पर ही लिखवाते। जब वे लिखने की फरमाइश लेकर लेखक पास पहुंचते थे, तो 'इंडिपेंडेंट' जैसा बहुमूल्य फाउनटन पेन और सुंदर कागजों का पैड उसे भेंट करते थे। लेखक भला ना कैसे करता! प्रायः तुरंत लिखने बैठ जाता और वे उससे रचना लेकर प्रस्थान करते।

कवि खबरदार, नरसिंहराव भोलानाथ, गौरीशंकर गोवर्द्धनराम जोशी, कृष्णलाल झवेरी, धूमकेतु, जुगतराम दवे, शयदा, मस्तफकीर, साधुचरित पढियारजी, मावजी गोविंदजी शेठ, नूरमहम्मद प्रभृति विज्ञ कृतिकार उनके दरबार के नवरत्न थे। जब उनके यहां मजलिस जमती, तो दिन के ११ बजे से रात के आठ बजे तक साहित्य-चर्चा चलती रहती। इन मजलिसों में हिंदी के चतुरसेन शास्त्री और विश्वम्भरप्रसाद जीज्जा भी कभी-कभी आ जमते थे। जीज्जाजी हिंदी में कहानी सुनाने में सिद्धहस्त थे। वे हिंदी में कहानी कहते और हाजी उसे गुजराती में लिखते जाते। 'घूंघट वाली' कहानी इसी तरह तैयार हुई थी। 'हिंदी पंच' के लिए हरिश्चंद्र तालचेरकर मराठी में लिखवाते जाते और हाजी गुजराती में लिखते। यह लेखमाला 'जालंधरनाथ' के नाम से छपी।

चित्रकारों में धुरंधर और मुलर तो आवरण के लिए सुरक्षित थे और प्राचीन ऋषियों की वाणी, ऐतिहासिक पात्रों आदि के सजीव चित्रण के लिए रविशंकर रावल। पश्चिम के चित्रों को भारतीय वेशभूषा में तैयार करने के लिए दत्तात्रेय और गोरक्षकर तैयार थे। मनमोहक आर्यललना के चित्रण के लिए वे श्रीमंत चित्रकार पुरुषोत्तम को पकड़ते। माली और पटेल को भला वे कैसे छोड़ते! इस तरह उस युग के नामी कलावंतों का सहकार उन्होंने 'वीसमी सदी' के लिए प्राप्त किया।

इसी तरह संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, फारसी, अरबी, उर्दू, बंगला, अंग्रेजी साहित्य के लिए भी व्यक्ति निश्चित थे, जो उस-उस साहित्य के मर्मज्ञ थे। 'मस्तफकीर' से वे हास्य-विनोद की रचनाएं लिखवाते थे। कविता के अनुरूप एक-एक पंक्ति के भाव को प्रकट करने वाले





मेरी यह रचना विधवा है। हाजी मुहम्मद के साथ एक तौर से मैंने इसका ब्याह कर दिया था। यह आदमी गुजराती साहित्य-मंदिर का मस्ताना पुजारी था—और 'वीसमी सदी' नामक प्रख्यात पत्रिका का संपादक था। सबसे प्रथम उसी की दृष्टि में यह रचना चढ़ी। उसने पागल की तरह इसे लाड़ किया—मैंने भी अपने-पराये की परवाह न कर उसी से इसका ब्याह कर दिया! ब्याह होते ही तो वह मर गया!

एक-एक पंक्ति पर चित्र बनाने की उसने तैयारियां की थीं। एक चित्रकार 'रूप' पर कुछ चित्र बनाकर लाया भी था—पर वे उसे पसंद न आये। उसने कहा—'लेखक जो कुछ कह नहीं सकता है, चित्रकार उसी कमी को पूरा करता है। उत्तम चित्रकार वही है।.....'

वह एकाएक मर गया। साहित्य के भाग्य फूट गये। अब इस रचना को क्या अलंकार मयस्सर होगा ? .....

इस रचना में कुछ अभाव रह गये। कुछ नये निबंध बढ़ाने थे और कुछ का संशोधन करना था। पर हाजी मुहम्मद के मरने पर जी बैठ गया—कितनी बार चेष्टा की, पर न नया लिख सका और न पिछले को सुधार सका। तबीयत हाजिर ही नहीं हुई....

—चतुरसेन शास्त्री

[अपनी पुस्तक 'अंतस्तल' की प्रस्तावना में]

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

चित्र देना उनकी विशेषता थी। एक कविता की प्रथम पंक्ति में बगीचे का वर्णन था। उनके निजी संग्रह से अनुरूप चित्र मिल गया। दूसरी पंक्ति में 'मदभरे नयना' शब्द आते थे। इसके लिए उन्हें अपने संग्रह में कोई चित्र नहीं मिला। तभी अमरीकी चित्रकार हैरिसनफिशर का बनाया चित्र एक पत्रिका में दिख गया। वे उसे खरीद लाये, गोरक्षकर ने उसे भारतीय रूप दिया।

विज्ञानाचार्य डा. जगदीशचंद्र बसु के बंबई आने की खबर मिली तो फोटोग्राफर लेकर पहुंच गये उनके डेरे पर। चित्र लिये और शाम तक प्रिंट भेंट करने पहुंच गये। डा. बसु इनकी फुर्ती देखकर दंग रह गये। महामना मदनमोहन मालवीय बंबई की किसी सड़क पर एक संस्था का पता ढूंढ़ते हुए मिल गये। उन्हें संस्था तक पहुंचाया और चित्र के लिए अड़ गये। मालवीयजी को उनकी बात माननी ही पड़ी।

देशभक्त दादाभाई नवरोजी को एल-एल. डी. की मानार्थ उपाधि मिली। उनका चरित्र और कई चित्र 'वीसमी सदी' में तुरंत प्रकाशित हुए। बंबई के बेताज के बादशाह फीरोजशाह महेता पर भी विस्तृत लेख छापा। लाला लाजपतराय, सरला-देवी चौधरानी जैसों की भेंटवार्ताएं सचित्र छापी जातीं। ऐसे प्रखर पत्रकार थे हाजी।

कनैयालाल माणेकलाल मुनशी की ऐति-

हासिक कहानियां चित्र समेत 'वीसमी सदी' के पृष्ठों की शोभा बढ़ाती थीं। यहां तक कि बिहारी की 'सतसई' को भी अपने पत्र में दिया। अपने युग की अप्रतिम सुंदरी श्रीमती झीणा के चित्र उनके पत्र की शोभा बढ़ाते थे। उमरखैयाम की रुबाइयों के सस्ते से सस्ते और महंगे से महंगे संस्करण उनके पास थे। फिर भी चित्रकार धुरंधर से उन्होंने रुबाइयों पर ठेठ ईरानी परंपरा के चित्र बनवाये थे। बाद में उन्होंने ये चित्र सर फजलअली के विशेष आग्रह पर उन्हें ३ हजार रुपयों में दे दिये।

तब तक गुजराती के ही क्या किसी भी भारतीय भाषा के पत्रों में लेखकों को पुरस्कार या पारिश्रमिक देने की परिपाटी नहीं थी। पर हाजी 'वीसमी सदी' के लेखकों को पुरस्कृत करते थे। उनका मत था कि कागज, छपाई, चित्रकारी, ब्लाक के लिए तो रुपया दिया जाता है; फिर लेखकों



स्व. अलारखिया शिवजी

को क्यों मुफ्त घसीटा जाये।

'वीसमी सदी' के उस जमाने में चार हजार ग्राहक थे। समूचे गुजरात में और विशेषतः बंबई में उसकी बड़ी धूम थी। पाठकों की सुविधा की दृष्टि से उन्होंने ह्वीलर कंपनी को लिखा कि अपने रेल्वे बुक स्टालों पर 'वीसमी सदी' बेचने के लिए रखें। उत्तर आया कि हम देशी भाषा के पत्र नहीं रखते। मगर कुछ सयम बाद उसी ह्वीलर कंपनी से मांग आयी कि अपना पत्र बेचने के लिए हमारे यहां रखने की कृपा करें। सरकार की ओर से ब्रिटिश म्यूजियम और इंडिया आफिस पुस्तकालय के लिए 'वीसमी सदी' भेजने का अनुरोध आया।

'वीसमी सदी' अपने समय की सच्ची सचित्र पत्रिका थी—केवल नाम के लिए एक-आध चित्र छापकर अपने को 'सचित्र' कहने वाली पत्रिका नहीं। उसके प्रकाशन के पीछे आर्थिक लाभ का कोई उद्देश्य नहीं था। अन्यथा हाजी इस तरह दिल खोलकर पैसा क्यों खर्च करते! न उन्हें अपने स्वास्थ्य की चिंता थी, न अपने कुटुंब की। उन पर तो बस एक ही धुन सवार थी—'वीसमी सदी' को देश की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका बनाने की। कभी वे लेखक के पास भागे जा रहे हैं, तो कभी कागज या स्याही वाले के पास और कभी प्रेस में बैठे प्रूफ-संशोधन कर रहे हैं। प्रेस बंबई के फोर्ट इलाके में था, जिल्द भायखला में बंधती थी और खोजा मोहल्ले के कार्यालय से पत्रिका डाक में रवाना

होती थी। जिस दिन नया अंक आता, कार्यालय में शिशुजन्म का-सा उत्साह छा जाता।

सब कुछ सर्वश्रेष्ठ देने के आग्रह के कारण हाजी अंततः आर्थिक संकट में फंस गये। कम से कम ४०-५० हजार रुपये का घाटा उन्हें हुआ होगा। सबसे बुरा असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ा। अंत में २१ जनवरी १९२१ को वे अनंत निद्रा में लीन हो गये। उस समय के गुजराती, मराठी, हिंदी, उर्दू के मूर्धन्य पत्रों ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

इस तरह हाजी केवल पांच वर्ष 'वीसमी सदी' का प्रकाशन कर पाये। उस युग को देखते हुए वह एक साहस ही था। हाजी के गुण को कलावंत रविशंकर रावल ने ग्रहण किया। हाजी के पदचिह्नों पर चलकर उन्होंने १९२४ में अहमदाबाद से 'कुमार' (मासिक) का प्रकाशन आरंभ किया, जो आज अपने ५५ वें वर्ष में चल रहा है। मासिक क्या है, चित्रों से भरपूर विश्वकोष का अंक है।

हाजी महम्मद अलारखिया शिवजी जाति से खोजा मुसलमान थे। १३ दिसंबर १८७८ को उनका जन्म हुआ। उनके पूर्वज कच्छ से बंबई आये थे। खूब धन कमाया। पेडर रोड पर बंगला और खोजा मुहल्ले में मकान, और भरा-पूरा कारोबार छोड़ गये। पर हाजी ने अपने पैतृक धंधे पर विशेष ध्यान नहीं दिया। मजनूं की तरह वे पत्रकारिता पर फिदा हो गये और उसी पर

हाजी महम्मद अलारखिया शिवजी

एक तुम्हारे उठ जाने से
विकल यहां दो-दो बैठे
कला और साहित्य आज हा!
जी-सा अपना खो बैठे ॥
और 'वीसमी सदी'? हाय! वह
खो बैठी अपने को ही
बैठ गयी, उठ गयी, क्या करें
हम अबोध-से हो बैठे ॥

—मैथिलीशरण गुप्त

मिटे। उनका घर का नाम सलीम था। वर्तमान सदी के पहले दशक में उन्होंने गुजराती में 'गुलशन' नामक मासिक का संपादन-प्रकाशन किया। यह आकार में छोटा था और केवल खोजा-समाज के लिए था।

गुजराती साहित्य और गुजरात की कला-चेतना पर हाजी का बड़ा उपकार है। रविशंकर रावल को कलाक्षेत्र में लाने वाले वही थे। रावलजी ने १९२२ में उनकी स्मृति में 'हाजी महम्मद स्मारक ग्रंथ' का प्रकाशन किया, जिसमें उन्होंने 'पीर बबरची भिश्ती खर' की तरह काम किया। यह ग्रंथ छोटा, पर अनूठा है। इसमें १० कलात्मक चित्र तो स्वयं रावलजी के बनाये हुए हैं। यह रावलजी का पहला प्रकाशन था; परंतु उन्होंने हाजी की स्मृतिरक्षा अपूर्व सुंदरता से की। इसी सिलसिले में श्री बचुभाई पो. रावत से उनका परिचय हुआ,

जो 'कुमार' के प्रकाशन में सहायक हुआ।

हाजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गुलामहुसैन हाजी महम्मद शिवजी ने १९२६ में 'बीसमी सदी' का पुनः प्रकाशन साप्ताहिक के रूप में किया। उसका दोरंगी आवरण गोरक्षकर बनाते थे और वह लिथो पर छपता था। अंदर कई लेख सचित्र रहते थे, जो मनोरंजक के साथ ज्ञानवर्द्धक भी होते थे। वार्षिक मूल्य ७ रु. और एक अंक का २ आने था। ३० पृष्ठ रहते थे और आकार २८ × २१ सेंटिमिटर था। परंतु यह पुनरुज्जीवित रूप भी ज्यादा दिन चल नहीं सका।

—हिंदी समाचारपत्र संग्रहालय,
कसारट्टा रोड, हैदराबाद-५०००२



यशस्वी पत्रकार स्व. मेहता लज्जाराम शर्मा के बारे में एक घटना उनके पौत्र श्री हरिलाल जी ठाकोर ने इस तरह से प्रस्तुत की है :

'बात उन दिनों की है कि जब मेहताजी देवली में बूंदी रियासत के प्रतिनिधि (वकील) थे। वर्ष में एक-दो बार रियासत से पोलिटिकल एजेंट को डाली जाया करती थी। डाली में तरह-तरह के मेवे और फल हुआ करते थे। उन दिनों बूंदी के अनार प्रसिद्ध थे। डाली का सामान हमारे घर से जाता था। एक बार किसी नौकर ने डाली के अनार में से कुछ दाने मुझे खाने को दे दिये। इसे मेहताजी ने देख लिया। डांटकर बोले—''खबरदार, इसमें से कुछ दिया तो। घर में पैसा है—बच्चे को अनार देना है तो खरीदकर ला दो। पैसा नहीं रहेगा तो चने खा लेगा। मगर परायी चीज में से बालक को मत दो।'' सब चुप। मैंने वे दाने भी जिसने दिये थे, उसे वापस दे दिये।

'यह घटना मेरे हृदय पर आज भी स्पष्ट अंकित है, जिसने मेरे जीवन को बड़ा प्रभावित किया है, और सारी सरकारी नौकरी में यह घटना बराबर मेरे सामने रही है।'

—दिनेश विजयवर्गीय



एक संपादक को मकान-मालिक से छह माह के बकाया किराये की नोटिस मिली। कुछ दिनों बाद नोटिस मकान-मालिक के पास वापस लौट आयी। उस पर एक पुर्जा नत्थी था, जिस पर छपा था—'अस्वीकृत, खेद-सहित सधन्यवाद वापस।'

मकान-मालिक बहुत बौखलाया। उसने फिर एक नोटिस भेजी और उसके पीछे बड़े कठोर शब्दों में यह मजमून लिखा—'महाशय, यह प्रकाशनार्थ प्रेषित रचना नहीं, बल्कि छह माह के बकाया मकान-किराये की नोटिस है।'

इस दफा भी वह नोटिस मकान-मालिक के पास लौट आयी और इस बार उस पर जो पुर्जा नत्थी था, उस पर संपादक की लिखावट में यह लिखा था—'कृपया पर्याप्त हाशिया छोड़कर कागज के एक ही ओर लिखें।'

—राजकुमार अनिल



ग़ज़ल

आख़िर इक बात बनी हो जैसे,
करवट एहसास ने ली हो जैसे।
'हां, चलो और चलो' गुनते हैं,
अपनी तकमील[1] यही हो जैसे।
हौसले देखिये इन्सानों के,
यही अज़मत[2] की घड़ी हो जैसे।
हर कोई सिर पै कफ़न बांधे है,
इक नयी रीत चली हो जैसे।
आज जीने का मज़ा दूना है,
आज का ग़म भी ख़ुशी हो जैसे।
किस क़दर चुप हैं मिरे देस के लोग,
राज़ की बात सुनी हो जैसे।
हां ग़ज़ल ख़ूब है रहबर, तो भी
फ़िक्र[3] में अब भी कमी हो जैसे।

—हंसराज रहबर
एस १६, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

१. परिपूर्णता, २. महानता, ३. चिंतन।

रंग भर सकते हैं जीवन में रंग

ज्ञानचंद्र

बहुधा हम रंगों को बहुत महत्त्व नहीं देते; मगर निश्चय ही उनका बड़ा गहरा प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता है। उनसे हमारे मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य को जहां उत्तेजन मिल सकता है, वहीं वे हममें विषाद उत्पन्न करने में भी समर्थ हैं।

हम अपने कमरों को रंगते हैं; पर प्राय: उस रंग के परिणाम पर ध्यान नहीं देते। एक सज्जन की पत्नी स्नायु-विकार से पीड़ित होकर इतनी चिड़चिड़ी हो गयी थी कि वे उसे तलाक देने की बात सोचने लगे। संयोग से उसी बीच उन्होंने अपने एक मित्र को भोजन के लिए आमंत्रित किया। मित्र ने कमरा देखते ही कहा—'तुमने अपने कमरे को लाल रंग से रंगवा रखा है। अगर इस कमरे में तुम्हें दिन-भर रहना पड़े तो कुछ ही दिनों में तुम स्नायु-विकार से पीड़ित हो जाओगे। अगर तुम अपनी पत्नी को तलाक नहीं देना चाहते, तो कमरे का रंग बदल दो।' जब कमरा नीले और भूरे रंगों से रंग दिया गया, तो उन सज्जन को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनकी पत्नी का चिड़चिड़ापन काफूर हो गया है।

एक फैक्टरी की कैंटीन जब नीले रंग से रंग दी गयी तो वहां बैठकर भोजन करने वाले श्रमिक ठंड महसूस करने लगे और इसी कष्ट के कारण ग्राहकों का आना कम हो गया। कैंटीन के उसी कमरे को जब मालिक ने नारंगी रंग से रंगवा दिया और रंग मिलाने के लिए कुर्सियों पर भी नारंगी रंग के खोल चढ़ा दिये, तो सभी उस कमरे को उचित से अधिक गरम बताने लगे। मालिक ने कुर्सियों के नारंगी रंग के खोल हटा दिये, तब ग्राहकों को कमरा पसंद आ गया। उतने से ही उसकी गरमी कम हो गयी थी।

एक कारखाने का मालिक इस बात से परेशान था कि उसके कर्मचारी बार-बार उस कमरे में जाते थे, जहां पीने के पानी की व्यवस्था थी। मालिक श्रमिकों के आंदोलन के भय से उन्हें कुछ कहता नहीं था। उसी बीच उसका 'इन्टीरियर डेको-

रेटर आया। उसने उस कमरे को देखा और उसकी प्रशंसा मालिक से की। जब मालिक ने श्रमिकों के काम छोड़कर बार-बार वहां जाने की बात उससे कही, तो उसने उस कमरे को प्रिय लगने वाले रंग के स्थान पर हरे रंग से रंगवा दिया। मालिक की समस्या हल हो गयी। श्रमिकों का काम छोड़कर उस कमरे में बार-बार जाना मात्र रंग बदल देने से कम हो गया।

रंग आपकी कल्पनाओं को भी धोखा दे सकते हैं। रंग के कारण चीजें यथार्थ से काफी भिन्न लग सकती हैं। एक फैक्टरी से बक्सों में सामान भरकर जाया करता था। फैक्टरी इन बक्सों को काले रंग में रंगा करती थी। मजदूर बक्सों को उठाने में शिकायत करते कि वे बड़े वजनी हैं। कुछ समय बाद फैक्टरी ने बक्सों को हल्के हरे रंग में रंगना शुरू किया। सामान वही, वजन वही, बक्सों के माप भी वही; मगर अब कोई श्रमिक उनके वजनी होने की शिकायत नहीं करता था।

एक बार अमरीका में मक्खन की बिक्री बेतरह घटने लगी। गृहिणियां मक्खन के स्थान पर मार्गरीन खरीदने लगीं। कारण, मार्गरीन का रंग उन्हें बेतरह पसंद था। बाद में कानून बनाकर अमरीकी सरकार ने मार्गरीन में पीला रंग मिलाने पर रोक लगा दी। अब प्रायः ग्राहक कहते-फिरते कि मार्गरीन का स्तर अब पहले जैसा नहीं रहा है। लोग फिर मक्खन की ओर आकृष्ट होने लगे और उसकी खूब मांग होने लगी।



जर्मन साहित्यकार हेस रचित जलरंग-चित्र

डब्बाबंद मटर का हरा रंग जरूर आपको आकर्षित करता होगा। यह हरा रंग प्राकृतिक नहीं होता। यह रंग का करिश्मा है कि वह मटर आपको अच्छी लगती है। इसी प्रकार जैम और अन्य सभी डब्बाबंद चीजों में रंग मिलाकर उन्हें मनभावन रूप दिया जाता है। इसकी तुलना में असली चीज कम आकर्षक लगती है।

दुकान की प्रकाश-व्यवस्था में भी रंग का अपना महत्त्व है और विशेषज्ञ बतलाते हैं कि कौन-सी चीज किस रंग के प्रकाश में विशेष आकर्षक बन जाती है।

जूतों की एक दुकान में पुराना कालीन हटाकर अंगूरी और लाल रंग का एक नया कालीन बिछा दिया गया। बिक्री तेजी से घटने लगी। दुकानदार ने सज्जाकार (इन्टीरियर डेकोरेटर) से परामर्श किया, तो उसने कहा कि कालीन के शोख रंगों के कारण जूते घटिया दिखने लगते हैं। तब भूरे और नीले रंगों का कालीन बिछाया गया और व्यापार फिर चमक उठा।

रोगियों पर भी रंगों का जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। मानसिक तनाव के रोगी को यदि सही अनुपात के हरे और नीले रंग के कमरे में रखा जाये, तो उसमें शिथिलन जल्दी होता है और रोगी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करता है।

एक बार ऐसा हुआ कि लंदन में टेम्स नदी के पुल से कूदकर आत्महत्या करने वालों की संख्या बेतरह बढ़ गयी। उस पुल की रेलिंग काले रंग से रंगी गयी थी, जो स्वतः दुःख और मृत्यु का प्रतीक है। जब अधिकारियों का ध्यान उस ओर गया, उन्होंने उसे काले के स्थान पर हरा रंगवा दिया। प्रतिफल तुरंत देखने को मिला। आत्महत्याएं घट गयीं।

सूर्य के प्रकाश में यद्यपि केवल सात रंग हैं, परंतु उनके मिश्रण से लगभग १० लाख रंग बन सकते हैं। इनमें से हमारे नेत्र केवल ३७८ रंगों का अंतर कर सकते हैं।

सही ढंग के हल्के रंग आपकी भूख बढ़ा सकते हैं, थकान दूर कर सकते हैं, मन में मोद भर सकते हैं, आंखों में नींद ला सकते हैं और आपको मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं।

—न्यू क्वार्टर्स, नंदन भवन,
गोरखपुर-२७३००१



अंग्रेजी है कहां?

जब कभी अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेने का मौका मिलता है, यह देखकर हंसी आती है कि भारत में सभ्य कहा जाने वाला बुर्जुआ समाज अंतरराष्ट्रीयता के अंग्रेजी के लबादे से भरा रहता है, लेकिन वह अंग्रेजी है कहां?

अलजीरिया में, भूमि और कृषि सुधार के त्वरित कार्यक्रम द्वारा ग्रामीण जगत की कायापलट के संबंध में एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में भाग ले रहा हूं। इसमें दुनिया के लगभग एक सौ देशों के प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं। पर उनमें से केवल आठ देशों के प्रतिनिधि अंग्रेजी में भाषण करते हैं, पंद्रह देशों के प्रतिनिधि फ्रेंच में और उतने ही अरबी में। जितने प्रतिनिधि यहां जमा हैं, उनमें आठवां-दसवां हिस्सा भी अंग्रेजी नहीं समझ पाता। अल्जीरिया में कहीं भी अंग्रेजी से काम चला पाना असंभव है। होटल हो या बाजार, कहीं अंग्रेजी काम नहीं देती। ड्राइवर हो या होटल के बैरे, कोई अंग्रेजी का क-ख-ग नहीं जानते।

चिंता होती है और दुःख होता है कि जब सारी दुनिया अंग्रेजी के बिना चल सकती है, तो हम क्यों नहीं चल सकते? अनेक बार बाहर अंग्रेजी बोलने या अंग्रेजी में भाषण करने पर यह प्रश्न सुनने को मिला है—'क्या आपके देश की कोई अपनी भाषा नहीं है?' और हर बार जी में आया है कि इस चांटे का एक ही जबाब दूं—'है, लेकिन वह अभी तक दासी है और पता नहीं कभी उसे पटरानी का भी स्थान मिल पायेगा या नहीं।'

—शंकर दयाल सिंह



वाल्टर बोवार्ट

हत्यारे 'जीवित शव'



वाल्टर बोवार्ट की पुस्तक 'आपरेशन माइंड कंट्रोल' से

विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत

'साहित्य जीवन का पूर्वानुमान होता है।'.....यदि आस्कर वाइल्ड का यह कथन सत्य है, तो रिचार्ड कान्डन का उपन्यास 'द मंचूरियन कैन्डिडेट' निश्चित रूप से साहित्य है। सन १९५८ में प्रकाशित इस उपन्यास में अमरीकी सेना के एक सार्जेंट की कहानी है। उसे कोरिया-युद्ध के दौरान दुश्मनों ने गिरफ्तार कर लिया और नौ दिन में ही सम्मोहन के द्वारा ऐसा बदल दिया कि एक खास संकेत पर वह किसी की भी हत्या कर सकता था। जब यह सैनिक अमरीका लौटा तो उसका मस्तिष्क इस तरह से 'बनाया' जा चुका था कि ताश की गड्डी में ईंट की बेगम को देखते ही वह किसी की भी हत्या कर देता। इस सार्जेंट ने यंत्रचालित ढंग से कई व्यक्तियों की हत्या की, जिनमें अमरीका के राष्ट्रपति-पद का एक उम्मीदवार भी शामिल था। हत्या के बाद हत्यारे के मन से इन घटनाओं की याद को स्मृतिलोप द्वारा हमेशा के लिए मिटा दिया गया था।

जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, तो लेखक रिचार्ड कान्डन को भी नहीं पता था कि किसी के मस्तिष्क पर इस तरह पूर्ण-नियंत्रण किया जा सकता है। कान्डन ने तो अपनी कल्पना से एक उपन्यास लिखा था; उन्हें क्या पता था कि अमरीकी सरकार की कई गुप्त एजेंसियां पिछले अठारह साल से मस्तिष्क-नियंत्रण के प्रयोग कर रही थीं। मस्तिष्क-नियंत्रण के जिन तरीकों का उन्होंने अपनी कल्पना से वर्णन किया था, उनका बाद में राजनैतिक हत्याएं करने वालों ने अक्षरशः उपयोग किया।

कान्डन के उपन्यास में मस्तिष्क-नियंत्रण अर्थात् किसी एक के मस्तिष्क पर दूसरे के कब्जा जमा लेने का प्रयोग एक चीनी मनोविज्ञानी करता है। यह विडंबना ही तो है कि लेखक की कल्पना को साकार करने का काम न तो चीनियों ने किया और न अन्य किसी कम्युनिस्ट देश ने, बल्कि यह काम किया उनके अपने देश अमरीका ने। ऐसा लगता है, जैसे इस उपन्यास को आधार बनाकर ही सब-कुछ किया गया।

कहा जाता है कि किसी जमाने में जादू-टोने से शवों का संचालन किया जाता था। पता नहीं वह सच है या झूठ। परंतु यह सच है कि कान्डन ने अपने उपन्यास में जिन जीवित शवों (ज़ोम्बी) की कल्पना की थी, उस तरह के अनेक ज़ोम्बी तैयार कर लिये गये—कुछ हत्यारे जो इशारा पाकर हत्या करते, कुछ ऐसे जो सम्मोहित अवस्था में बारीक से बारीक विवरण याद रख

सकते, ऐसे संदेशवाहकों जिनके मस्तिष्क के किसी भाग में संदेश रहता था और उन्हें उसका पता तक नहीं होता था और जब वह जानकारी वहां रखने की आवश्यकता न रह जाये तो उसे उनके मस्तिष्क से निकाल लिया जाता था।

वियतनाम में लड़ने वाले सामान्य अमरीकी सैनिकों को तो यों ही नागरिक जीवन में लौट जाने दिया गया; परंतु जिन सैनिकों को अत्याचार और उत्पीडन की तकनीकों में पारंगत बनाया गया था, उनके मस्तिष्क से वह सारी जानकारी वापस निकाल ली गयी। उन्हें सेना से अलग करने से पहले उनकी स्मृति को इस तरह समाप्त कर दिया गया कि उन्हें याद भी नहीं रहा कि वे कौन थे और वियतनाम में वे क्या कर रहे थे।

मस्तिष्क-नियंत्रण की इस तकनीक को मुकम्मिल बनाने में अनेक मनोविज्ञानियों और वैज्ञानिकों ने सहयोग दिया। मगर उनमें से प्रत्येक को सिर्फ अपने जिम्मे सौंपे गये काम के बारे में पता था। उन्हें कभी यह नहीं पता चल पाया कि उनके कार्य का उद्देश्य क्या है और मूलतः कौन उनसे यह सब काम करवा रहा है।

हालांकि इस कार्य में सबसे अधिक पैसा लग रहा था सी. आइ. ए. के माध्यम से, पर सचाई यह थी कि हर सरकारी एजेंसी जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे इससे जुड़ी हुई थी। यह सारा कार्य अदृश्य नन्ही सरकारों, अलिखित कानूनों, अलिखित योजनाओं और अलिखित निष्ठाओं से संचालित हो रहा था। यह सब योजना थी उस नौकरशाही की, जिसे 'क्रिप्टोक्रेसी' कहा जा सकता है–'क्रिप्टो' अर्थात् गुप्त और 'क्रेसी' अर्थात् तंत्र। सी. आइ. ए. के नेतृत्व में चल रही इस क्रिप्टोक्रेसी की शाखाएं सेना के खुफिया संघटनों, न्याय-विभाग, स्वास्थ्य-विभाग, जेल ब्यूरो, मादक द्रव्य ब्यूरो, परमाणु ऊर्जा आयोग, सामान्य प्रशासन, नेशनल सायंस फाउंडेशन और यहां तक कि बड़े अमरीकी निगमों–विशेषतः एयरलाइन्स, तेल-कंपनियों आदि–में भी फैली हुई है।

यह क्रिप्टोक्रेसी व्यक्तियों और संस्थाओं की गोपनीयता का हनन करती है; विदेशों की आंतरिक राजनीति में दखलंदाजी करती है। इसने राज्यों के अध्यक्षों की हत्या के लिए मस्तिष्क-नियंत्रित हत्यारों को पैसे देकर तैयार किया है, प्रशिक्षित किया है और उन्हें हथियार मुहैया किये हैं।

कान्डन के उपन्यास 'द मंचूरियन कैन्डिडेट' का एक पात्र बार-बार उसे आने वाले एक सपने का जिक्र करता है, जो स्मृति का अवदमन किये जाने का परिणाम था। इसमें वह पात्र किसी खास इशारे पर हत्या करता है, कम्युनिस्ट मस्तिष्क-नियंत्रकों के सामने वह स्टेज पर अपने एक साथी के गले में रूमाल बांधकर उसका गला घोंट देता है, एक अन्य साथी को पिस्तौल से उड़ा देता है। मैंने भी अपनी इस खोज में जिन लोगों से बातचीत की है, उनमें से बहुतों को ऐसे ही सपने आते हैं। ०००

टेक्स अमरीकी सेना में सार्जेंट था। जब उसे सेना से बर्खास्त किया गया, उसकी स्मृति को समाप्त कर दिया गया था। पर वह एक सपना बार-बार देखता था। वह बताता है:

'सपने में मेरे दोस्त के हाथ पीठ के पीछे बंधे होते हैं। मैं अन्य साथी सैनिकों के साथ लाइन में खड़ा होता हूं। मैं सोचता रहता हूं कि मैं अपने दोस्त पर गोली नहीं चलाऊंगा, मैं अपनी राइफल कमांडर को दे दूंगा। पर हमारे पास राइफलें हैं नहीं।

'मेरे साथी को हमारे सामने के खुले मैदान में ले जाया जाता है, उसके हाथ पीछे बंधे हुए हैं, उसकी आंखों पर पट्टी बांध दी गयी है, और कोई अरब उससे बातें कर रहा है। दूसरा अरब आता है, उसके घुटनों पर पीछे से राइफल मारता है। वह घुटनों के बल गिर जाता है।

'तभी एक अरब एक लंबी तलवार से उसका गला काट देता है..... उसका सिर मैदान में लोटने लगता है..... उसका शरीर सिर कटे मुर्गे की तरह तड़पता है। तभी मेरी नींद खुल जाती है.....'

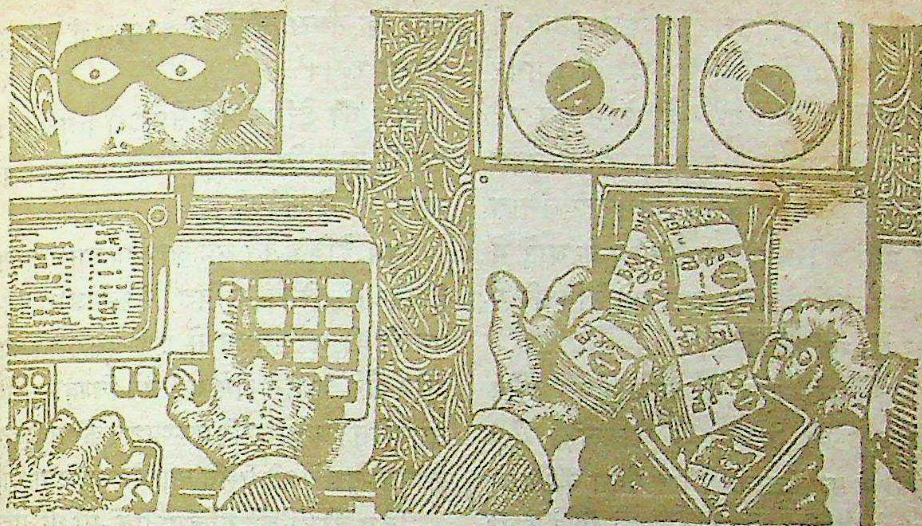
कान्डन ने ठीक ही लिखा था। मस्तिष्क-नियंत्रण के शिकार नींद में सपने में खुद अपने पर हुए अत्याचारों को देखते हैं। हर रात वे भयंकर आकृतियां, जिन्हें नियंत्रण की अनेक परतों में दबा दिया गया था, सपनों में उभरकर आती हैं। क्या ये आकृतियां मात्र सपने हैं, या स्मृतियां हैं? टेक्स का सपना उन सपनों में से एक है, जिन्हें मैंने १,२०० पृष्ठों में लिपिबद्ध किया है।

× × ×

सैनिक अस्पताल में जब डेविड की आंख खुली, तो उसे बताया गया कि उसने नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या करने की कोशिश की थी। पर डेविड तो ऐसा युवक था, जिसने कभी किसी प्रकार का नशा नहीं किया था। देशभक्ति से प्रेरित होकर वह सेना में भरती हुआ था। सबसे पहले उसे छह सप्ताह के बुनियादी प्रशिक्षण के लिए लेकलैंड एयरफोर्स अड्डे भेजा गया, फिर छह सप्ताह के विशेष प्रशिक्षण के लिए एक तकनीकी स्कूल में। लेकिन जब काम सौंपने का मौका आया, तो उसे यह जानकर बहुत निराशा हुई कि उसे मेडिकल कोर के बजाय सप्लाई कोर में भेजा जा रहा है।

डेविड को लगा कि वायुसेना ने उसके साथ सरासर विश्वासघात किया है। तभी एक व्यक्ति उससे मिलने आया और उसने एकांत में डेविड से कहा कि निराश होने की आवश्यकता नहीं—सप्लाई कोर तो बहाना मात्र है, असल में तुम्हें गुप्तचर-सेवा के लिए चुना गया है। तब उससे कहा गया कि सुरक्षा-जांच पूरी होने तक तुम्हें कम्प्यूटर का विशेष प्रशिक्षण दिया जायेगा।

कुछ ही सप्ताह में डेविड को मिनोट भेज दिया गया। यहां पर वह कम्प्यूटर की सहायता से अपनी स्मरण-शक्ति बढ़ाता रहा। उसे सार्जेंट बना दिया गया। पर वह अपनी स्थिति में संतुष्ट नहीं था। उसके भीतर



ही भीतर एक असंतोष पनप रहा था ।..... पर उस दिन जब अस्पताल में उसे होश आया, उसका असंतोष समाप्त हो गया था । वह शांत था । पिछली बातों को वह याद करना चाहता था, पर कुछ याद नहीं आ रहा था । उसे लगा, जैसे उस क्षण तक वह सारी जिंदगी सोता ही रहा है।

काफी अरसे बाद उसे कुछ-कुछ याद आया। ऐसा लगा, जैसे कोई उसके 'मस्तिष्क के साथ बलात्कार कर रहा था'।

डेविड ने सोचा कि मैंने तो आत्महत्या का प्रयास किया है, इसलिए मुझे सेना से निकाल दिया जायेगा । पर ऐसा कुछ नहीं हुआ । उलटे, सादे लिबास में आये एक व्यक्ति ने उसे बताया कि तुम्हें एक विशेष खुफिया काम के लिए चुना गया है।

फिर उसे दो सप्ताह की छुट्टी दे दी गयी। दो सप्ताह बीतने पर एक तार मिला। उसे समुद्र-पार सुदूर पूर्व में जाने का आदेश था । सामान्यतः ऐसा आदेश तार द्वारा भेजा नहीं जाता । पर उस तार पर एक कोड-नंबर था और शायद यही उसकी विशेषता थी । विमान से कैलिफोर्निया पहुंचते ही उसे एक और विमान में बैठाकर गुआम भेज दिया गया।

यहां डेविड को मिनोट का अपना एक साथी मिला—मैक्स । वह भी डेविड की तरह सप्लाई कोर में ही था । पर डेविड जानता था उसकी विशेषताएं कुछ और हैं—जैसे, वह कराते में माहिर था । पर मैक्स के काम की अधिक जानकारी वह कभी नहीं पा सका।

वहां से डेविड और मैक्स को एक बस में बैठाकर आठ मील दूर एक एकांत स्थल पर पहुंचाया गया । बिजली के तारों से घिरे उस अहाते में छह बैरकें थीं और कई सौ सैनिक वहां रहते थे । उस जगह का नाम था मारबो । डेविड के शब्दों में, 'यहां के

सैनिकों में से कई उत्तर डकोटा राज्य में सप्लाई विभाग में काम कर चुके थे। मगर यहां मारबो में सब दूसरे ही काम कर रहे थे।.... मुझे लगता है, हम सब यह मानकर चल रहे थे कि हमें विशेष काम पर तैनात किया गया है। कोई अपने काम के बारे में दूसरे को नहीं बताता था। कोई किसी से पूछता भी नहीं था।'

ड्यूटी पूरी होने के बाद मैक्स और डेविड एक ही विमान से घर लौटे थे। हवाई-अड्डे पर इंटरकाम पर मैक्स का नाम पुकारा गया और वह चला गया। फिर कभी लौटा नहीं।

कुछ महीने बाद वह डेविड को अचानक ही मिल गया। डेविड बताता है—'मैक्स ने मुझसे हाथ तो मिलाया, पर मुझे लगा कि उसे मुझसे मिलकर कोई खुशी नहीं हुई। मैं चाहता था कि कहीं बैठकर उसे सब-कुछ बताऊं। पर वह तो मुझसे बात ही नहीं करना चाहता था। वह मुझे नमस्ते करके चला गया।

'यह बात कभी मेरी समझ नहीं आयी कि एक आदमी जो महीनों दिन-रात मेरे साथ रहा, मेरे लिए लड़ा, अब मुझसे क्यों बात नहीं करना चाहता है!

'जब मैं सेना से बाहर आया तो शुरू में मुझे बस इतना-सा याद था कि उन चार बरसों में मैंने बहुत मौज की है। यह बात तो बहुत बाद में मेरे जेहन में आयी कि सेना में मैंने मौज-मस्ती के अलावा भी कुछ तो किया होगा। पर मुझे याद यही रहा कि मैक्स और पैट के साथ मैं मजा ही करता रहा।'

पैट थी डेविड की सेक्रेटरी। गुआम में पहली बार मिलते ही दोनों एक-दूसरे को प्यार करने लगे थे।

अब डेविड को यह आश्चर्यजनक लगता है कि वे तीनों—डेविड, मैक्स और पैट-पहली ही मुलाकात में एक-दूसरे को क्यों और कैसे चाहने लगे थे! उसे विश्वास है कि उन तीनों को किसी कम्प्यूटर की सहायता से एक-दूसरे की पसंद का बनाया गया था।

'हम तीनों की रुचियां एक-सी थीं, एक-सी चीजों से हम बेचैन होते थे, एक-से मजाक सुनकर हम हंसते थे। हम ऐसे तीन व्यक्ति थे जो एक-दूसरे के बहुत निकट थे, और एक-दूसरे के पूरक थे।'

गुआम में ड्यूटी समाप्त होने के दो माह पूर्व ही डेविड और मैक्स को घर भेज दिया गया। पैट वहीं पर रह गयी थी। डेविड और पैट ने परस्पर वादा किया था कि हम लिखते और मिलते रहेंगे। डेविड ने पैट का पता भी लिया था। लेकिन वह पता कहीं खो गया (!) और आश्चर्य की बात है कि डेविड को पैट का पूरा नाम भी याद न रहा। उसके शहर का नाम भी उसे कभी याद न आया। वह पैट से फिर कभी नहीं मिला।

तेरह घंटे की वापसी उड़ान में डेविड टेप-रिकार्डर में लगातार बोलता रहा था। उसके दोनों ओर वायुसेना के पुलिसमैन बैठे हुए थे। कोई उससे कुछ पूछ नहीं रहा

था; वह स्वयं ही बोस आ रहा था। मगर अब उसे कुछ भी याद नहीं है कि वह बोलता क्या रहा।

कैलिफोर्निया लौटने के बाद उसे टेलिफोन आपरेटर का काम दिया गया और सेना में अपना आखिरी वर्ष उसने इसी हैसियत से बिताया।

सेना से अलग होते समय जब उसे उसकी सर्विस-फाइल दिखायी गयी, तो उसमें सबकुछ बदला हुआ था। जब उसने कारण पूछा, तो उसे बताया गया कि गोपनीयता के लिए यह जरूरी है और उसकी वास्तविक फाइल गुप्त रखी जायेगी।

फिर डेविड घर आ गया था।

घर में सबने महसूस किया वह कुछ बदल-सा गया है। खुद डेविड को कुछ समय तक तो ऐसा कुछ नहीं लगा; लेकिन बाद में जब उसने नौकरी के लिए कोशिश शुरू की, तब उसे अजीब अनुभव हुए। वह प्रार्थनापत्र तक नहीं भर पा रहा था। उसने अपना नाम लिखा, और उसकी हथेलियों में पसीना आने लगा। पता लिखा, और दिल जोरों से धड़कने लगा। उसे महसूस हुआ कि उसका दम घुट रहा है, कमरे की दीवारें उसके पास सिमटती आ रही हैं। घबराकर वह बाहर भाग आया। सबने कहा कि उत्तेजनावश ऐसा हुआ होगा।

डेविड एक और जगह नौकरी के लिए गया। इस बार उसने नाम, पता, जन्मतिथि सब भर दीं। मगर जब पिछले चार वर्षों के कार्यों का विवरण लिखने की बारी आयी तो उसके कान भारी तो हो गये, दिल जोरों से धड़कने लगा। इस बार भी उसे लगा कि दीवारें उसका घेराव कर रही हैं। वह बाहर आ गया। कुचला हुआ फार्म उसकी मुट्ठी में था।

यही अनुभव उसे बार-बार हुआ। जब भी कोई उससे सेना में बिताये चार बरसों के बारे में पूछता, वह आतंकित हो उठता था। एक दिन मां-बाप ने उसे समझाया कि तुम कम्प्यूटर की सहायता से नौकरी पाने की कोशिश क्यों नहीं करते? कम्प्यूटर का नाम सुनते ही उसे गुस्सा आ गया। वह बताता है—'आज भी मैं कम्प्यूटर के बारे में नहीं सोच सकता। मैं चाहता हूं, सारे ही कम्प्यूटरों को तोड़ डालूं। पर मैं यह भी समझता हूं कि यह बात विवेकपूर्ण नहीं है।'

आखिर डेविड को मनश्चिकित्सक के पास जाना ही पड़ा।

पहले वह एक पुरुष मनश्चिकित्सक के पास गया, जिसने सम्मोहन-चिकित्सा का सहारा लिया। मगर जब भी चिकित्सक कहता कि 'अब मैं चाहता हूं कि तुम अपनी पिछली जिंदगी की ओर जाओ', एकाएक सम्मोहन-अवस्था समाप्त हो जाती और डेविड उठकर बैठ जाता।

इसके बाद डेविड ने एक महिला मनश्चिकित्सक की शरण ली, जिसका नाम एलिस था। यहां भी वही बात होती थी। एलिस कहती कि 'अब हम पीछे चलते हैं,' और डेविड की सम्मोहन-अवस्था समाप्त हो

जाती। मगर एलिस ने हिम्मत नहीं हारी। प्रति सप्ताह उनकी तीन बैठकें होती थीं। सोलह महीने गुजर गये। तब एलिस ने डेविड से कहा–'शायद हम वायुसेना में तुम्हारी सेवा के चार सालों पर पड़ा परदा उठा सकेंगे और यह पता लगा सकेंगे कि किसने यह सब किया और क्यों किया। पर इसमें काफी समय लगेगा। दूसरी ओर, यह भी हो सकता है कि मैं तुम्हें सामान्य जीवन जीने लायक बना सकूं। अब यह फैसला तुम्हें करना है कि तुम सामान्य जीवन जीना चाहते हो, या यह रहस्य जानना चाहते हो कि किसने तुम्हारे जीवन के चार वर्षों पर परदा डाला, क्यों डाला और वह क्या चीज थी जिसे तुम्हारे मस्तिष्क से गायब कर दिया गया है।'

स्वाभाविक था कि डेविड पहले विकल्प को चुने।

किंतु एलिस की चिकित्सा ने आगे चलकर डेविड को धीरे-धीरे वह सब याद दिलाना शुरू किया, जिसे वह स्वयं याद नहीं कर पा रहा था। अब डेविड कुछ-कुछ याद कर सकता है कि 'सम्मोहन-सेवा' के उन चार बरसों में उसने अपने देश के लिए क्या किया था। वह बताता है :

'एक दिन मैंने एक सपना देखा। फिर मुझे लगा जैसे मेरे मस्तिष्क में स्मृति के कोशाणु फूट रहे हैं। मुझे कुछ घटनाएं याद आने लगीं। मुझे पता नहीं कि यह सब सच है या नहीं, पर यह सब इतना स्पष्ट है कि मुझे सच लगता है।

'मुझे सबसे स्पष्ट याद वियतनाम की है। मैं समुद्र के किनारे एक लंबी मेज के पास खड़ा था। एक तरफ उत्तर वियतनाम के अधिकारी बैठे थे और दूसरी ओर अमरीकी अधिकारी। सब वर्दी में थे।

'पर मैं सबसे अधिक भयभीत था समुद्र में खड़े जहाजों से। एक जहाज हमारा था, दूसरा शायद वियतनाम का या रूस का था। इस दूसरे जहाज पर तोपें लगी हुई थीं और उनका मुंह हमारी ओर था।..... मैं समझता हूं, किनारे पर कुछ भी गड़बड़ होते ही तोपों के गोले हमें भून डालते।

'दुभाषियों के माध्यम से काफी गरम बहस हो रही थी। पर कोई भी किसी बात को लिपिबद्ध नहीं कर रहा था। शायद इसीलिए मेज के एक किनारे पर मैं खड़ा था। मुझे याद पड़ता है कि वे कोशिश कर रहे थे कि मैं सब कुछ याद करके बताऊं। पर मुझे उसका विवरण याद नहीं आ रहा।

'मुझे पता है कि मुझे स्मरण-प्रशिक्षण दिया गया था। मारबो में पता नहीं क्यों, मैं रोज ही बाकी लोगों से तीन घंटे पहले जग जाता था और फिर कहीं जाता था। फिर ८.३० बजे मैं काम पर जाता था। मुझे याद है कि मारबो से मैं बस में बैठकर गुआम के सैनिक अड्डे तक अकेला जाया करता था। पर मुझे यह याद नहीं आ रहा है कि ड्यूटी पर जाने से पहले मैं अकेले कहां जाता था।

'मुझे संदेह है कि वह कम्प्यूटर वाला काम भी स्मृति-प्रशिक्षण का ही अंग था।

पर मैं यह नहीं बता सकता कि वह था क्या। मगर मुझे लगता है, मुझे मानवीय टेप-रेकार्डर की तरह काम में लाया जा रहा था।

'समुद्र-तट का वह दृश्य तो मुझे याद है, पर वह स्थान कहां था, उस दिन कौन-सी तारीख थी–कुछ भी मैं बता नहीं सकता। मैं यह भी नहीं याद कर पाता कि सेना में चार साल मैं क्या करता रहा।

'कुछ लोग इसे "ब्रेन वाशिंग" कह सकते हैं। मगर "ब्रेन वाशिंग" में बड़ी क्रूरता बरती जाती है। मेरे साथ तो ऐसा कोई व्यवहार नहीं किया गया।

'मुझे विश्वास है कि मैं जो कुछ कह रहा हूं, सच कह रहा हूं। पर अगर मैं यह सब वायुसेना में जाकर कहूंगा, तो वे मेरी फाइल दिखाकर कहेंगे "यह आदमी पागल है। इसने नींद की गोलियां खाकर आत्म-हत्या करने की कोशिश की थी।"

'लेकिन मुझे लगता है, मुझे साधन की तरह इस्तेमाल किया गया है। सप्लाई-विभाग में मेरी नियुक्ति तो एक दिखावा-भर थी।

'मैंने अपने बलिदान के बारे में कभी सोचा नहीं है। लेकिन संभव है कि मैंने देश की खातिर शरीर से भी कुछ अधिक गंवाया है–अपनी आत्मा।'

०००

जून १९७५ में पहली बार यह सार्वजनिक रूप से प्रकट किया गया कि सी. आइ. ए. और उसके निर्देश पर काम करने वाली कई एजेंसियां पिछले बीस वर्ष से भी अधिक समय से अमरीकी नागरिकों पर ऐसी दवाओं के प्रयोग कर रही थीं, जो मनुष्य के व्यवहार को गहरा प्रभावित करती हैं।

(ज्ञातव्य है कि १९५३ में सी. आइ. ए. ने जानवरों और मनुष्यों पर प्रयोग करने के लिए १० किलोग्राम एल. एस. डी. खरीदने की योजना बनायी थी। एक ग्राम एल. एस. डी. में १०,००० 'खुराकें' होती हैं; इस हिसाब से सी. आइ. ए. दस करोड़ खुराकें चाहती थी। उसका उद्देश्य था एल. एस. डी. को कब्जे में करना, ताकि 'एल. एस. डी. –युद्ध, में कोई और देश उससे आगे न निकल पाये।)

तभी सी. आइ. ए. की गतिविधियों के बारे में राकफेलर-रिपोर्ट प्रकाश में आयी। उसमें कहा गया था–'सन ४० वाले दशक में सी. आइ. ए. ने मानव-व्यवहार को प्रभावित करने वाले मादक द्रव्यों (जैसे एल. एस. डी.) का इस दृष्टि से अध्ययन शुरू किया था कि गुप्त कार्यों में उनका क्या और कैसे उपयोग किया जा सकता है..... इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शत्रु द्वारा ऐसे द्रव्यों के प्रयोग से बचाव के तरीके खोजना था।..... पर यह कार्यक्रम वस्तुतः मानवीय व्यवहार को नियंत्रित करने के संभावित तरीके खोजने के सी. आइ. ए. के बृहत्तर कार्यक्रम का एक हिस्सा था।'

दो वर्ष बाद समाचारपत्रों ने राकफेलर-रिपोर्ट के मादक द्रव्य वाले हिस्से को तो काफी उछाला, पर अन्य प्रयोगों की उपेक्षा

ही की। किसी ने भी इस बात पर सोचने की आवश्यकता नहीं समझी कि सी. आइ. ए. के इस कार्यक्रम के अधिकांश दस्तावेज क्यों और कैसे नष्ट हो गये और १९७३ में इस कार्यक्रम से संबद्ध सारी फाइलें जला देने का आदेश क्यों दिया गया?

मगर राकफेलर-रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद सार्वजनिक असंतोष उभरने के कारण उपस्थित हो गये थे। सबसे पहले तो डा. फ्रैंक ओल्सन के बच्चों ने अपने पिता की कथित आत्महत्या को हत्या बताया। सेना में काम करने वाले डा. ओल्सन को, बिना उन्हें बताये, एल. एस. डी. दी गयी थी और तब उन्होंने न्यूयार्क के एक होटल की बारहवीं मंजिल से कूदकर आत्महत्या (!) कर ली थी। पूरे बाईस वर्ष तक उनके बच्चों को यही भ्रम था कि उनके पिता ने आत्महत्या की थी। डा. ओल्सन की मृत्यु के कई मास पूर्व पेशेवर टेनिस-खिलाड़ी हेराल्ड ब्लाउर की मृत्यु भी न्यूयार्क राज्य मनश्चिकित्सा संस्थान में 'प्रयोगात्मक दवाओं' से हुई थी। 'राष्ट्रीय सुरक्षा' के नाम पर यह बात गुप्त ही रखी गयी कि हेराल्ड को कौन-सी 'दवाएं' दी गयी थीं।

इन तथ्यों के प्रकाश में आने पर सरकारी एजेंसियों को बाधित होकर अपने अपराध स्वीकार करने पड़े। सेना ने घोषणा की कि १९५६ से लेकर उस समय तक सेना के १,५०० अनजान व्यक्तियों और ५,५०० स्वयंसेवकों पर एल. एस. डी. के परीक्षण किये गये थे।

सेना की इस स्वीकारोक्ति के कुछ ही दिन बाद स्वास्थ्य, शिक्षा तथा समाज-कल्याण विभाग ने भी इस तरह के प्रयोगों का इकबाल करते हुए घोषणा की कि १९५५ से १९६८ के बीच लगभग २,५०० कैदियों, मनोरोगियों और सवेतन स्वयंसेवकों पर मादक द्रव्यों से संबंधित प्रयोग किये गये थे। साथ ही यह भी बताया गया कि उस विभाग ने मानव-व्यवहार पर एल.एस.डी. के प्रभावों के बारे में अनुसंधान करने के लिए तीस से अधिक विश्वविद्यालयों को ७५ करोड़ डालर का अनुदान दिया था।

परंतु बहुत बाद तक यह बात नहीं बतायी गयी कि एल. एस. डी. तथा अन्य मादक द्रव्यों और मानव-मस्तिष्क को नियंत्रित करने के सभी संभव साधनों के बारे में अनुसंधान करने के लिए सी. आइ. ए. ने सरकार की सभी संभव सैनिक तथा असैनिक एजेंसियों एवं विश्वविद्यालयों व निजी अनुसंधान-दलों का उपयोग किया था।

इन सारे प्रयोगों के परिणामों का फायदा उस मनोवैज्ञानिक युद्ध में उठाया गया जो दूसरे विश्वयुद्ध के बाद छिड़ा था। इसकी 'तीसरे विश्वयुद्ध' (शीतयुद्ध) की शुरुआत प्रचार के रूप में हुई थी। फिर धीरे-धीरे प्रचार का स्थान लिया तोड़फोड़, हत्या, गुप्त अर्धसैनिक कार्रवाई और सीमित 'पुलिस कार्रवाई' ने।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से ही अमरीकी नेताओं को अपने राष्ट्र की तकनीकी श्रेष्ठता का बल प्राप्त था। हालांकि नयी तकनीकी

से, विशेषत: न्यूक्लीय ऊर्जा से, नेताओं को प्यार था; मगर इस पर से अपना एकाधिकार छिनने का भय भी उन्हें सताने लगा था। इस भय ने इस धारणा को बल दिया कि विदेशी सरकारों द्वारा करायी जाने वाली तकनीकी चोरियों से बचने के लिए नवीन गुप्त एजेंसियों और गतिविधियों की अत्यधिक आवश्यकता है।

मूलत: यह युद्ध 'शत्रु' राष्ट्रों से लड़ा जाना था; मगर इसकी शुरूआत घर में ही हुई। अमरीका के भीतर ही सैद्धांतिक आस्थाओं और स्वतंत्र विचार के खिलाफ इसका उपयोग एक ऐसी गुप्त नौकरशाही ने किया, जिसे संघीय सरकार का पूरा समर्थन प्राप्त है पर जो सरकारी कमान की शृंखलाओं में बंधी हुई नहीं है। यह गुप्त नौकरशाही–क्रिप्टोक्रेसी–अपनी ताकत से बौरा गयी है।

यों तो राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर अत्याचार करने वालों के लिए सी. आइ. ए. की टट्टी की ओट लंबे अरसे से बहुत उपयोगी रही है, परंतु इस क्रिप्टोक्रेसी में सिर्फ सी. आइ. ए. ही नहीं है। इसमें और भी अनेक सरकारी एजेंसियों के कर्मचारियों की व्यापक मिलीभगत है, जो सामान्यत: गुप्त कार्यों से संबंधित नहीं समझी जाती।

क्रिप्टोक्रेसी को अपने काम के लिए संविधान के प्रत्येक सिद्धांत का उल्लंघन करना पड़ता है और 'राष्ट्रीय सुरक्षा' के नाम पर वह ऐसा प्रत्येक अपराध करती है जो कि मनुष्य को विदित है। इसलिए वह इसकी आशा नहीं कर सकती कि उसके एजेंट मात्र देशभक्ति के बल पर उसकी गोपनीयता को बनाये रख सकेंगे। इसलिए किसी भी एक व्यक्ति को उससे अधिक नहीं बताया जाता कि 'जितना जानना उसके लिए जरूरी है।'

यह एक ऐसा टेक्नोक्रैटिक संघटन है, जिसका कोई आदर्श नहीं है और जिसकी निष्ठा एक अनुच्चारित और अपरिभाषित राष्ट्रवाद में ही है। इसके सदस्य अज्ञात हैं। इसके आर्थिक साधन गुप्त हैं। इसकी गतिविधियों का इतिहास रहस्यमय है। यहां तक कि इसके लक्ष्य भी गोपनीय हैं। यह अमरीका की राजनीति में लगी एक गुप्त बीमारी है, जो इतनी चुपचाप फैल रही है कि चार दशकों के अस्तित्व के बावजूद इसकी बाबत चंद निर्णयकर्ताओं के अतिरिक्त किसी को कुछ पता नहीं है।

यह क्रिप्टोक्रेसी मशीन की तरह काम करती है। मशीन की तरह ही यह भावनाशून्य है। पर मशीन के विपरीत, यह महत्त्वाकांक्षी अवश्य है। इसकी नजरों में मनुष्य सस्ते पुर्जे मात्र हैं।

इसके एजेंट को राष्ट्रवाद का वास्ता देकर भरती नहीं किया जाता। उसे रिश्वत दी जाती है। यदि वह रिश्वत नहीं लेता, तो उसे 'ब्लैकमेल' किया जाता है। यदि उसे 'ब्लैकमेल' करना संभव नहीं है, तो उसे एक निश्चित तरीके से निश्चित काम के लिए 'संचालित' किया जाता है। यदि इनमें से कोई भी तरीका काम नहीं करता है, तो

उसे मार डाला जाता है; क्योंकि यह बात कभी प्रकट नहीं होनी चाहिये कि उसे किसी काम के लिए कहा गया था। 'राष्ट्रीय सुरक्षा' कोई ऐसी-वैसी चीज तो नहीं!

यह निश्चित करना कभी-कभी मुश्किल हो जाता है कि यह क्रिप्टोक्रेसी अमरीकी राष्ट्रपति के लिए काम करती है, या उसके विरुद्ध। इसके अनेक अपराध, जिनका पता चल चुका है, यह स्पष्ट संकेत देते हैं कि इसने अक्सर राष्ट्रपति के विरुद्ध ही कार्य किया है। अब हम जानते हैं कि इसने अमरीकी संविधान और अमरीकी जनता के खिलाफ काम किये हैं। इसने अपने रास्ते में आने वालों को तो सताया और समाप्त किया ही है, यह ऐसे निरीह लोगों की मृत्यु का कारण भी बनी है, जो इसके लिए ही काम कर रहे थे। अमरीकी कांग्रेस की समितियों द्वारा की गयी कई जांचों में इसके अत्याचारों के प्रमाण पाये गये हैं, पर कभी किसी को सजा नहीं दी गयी। (हां सी. आइ. ए. के निदेशक रिचर्ड हेल्म्स को चिली सरकार का तख्ता पलटने में सी. आइ. ए. की भूमिका के बारे में गलत जानकारी देने के अपराध में अवश्य दंडित किया।)

क्रिप्टोक्रेसी बड़े-बड़े उद्योगों की सहायता करती है। वह अमरीकी व्यावसायिक निगमों को विदेशी उद्योगों से संबंधित गुप्त जानकारी देती है। इसके बदले में ये निगम उन उम्मीदवारों के राजनैतिक अभियानों में आर्थिक सहायता देते हैं, जिनका संबंध क्रिप्टोक्रेसी से हो। यह कार्य राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर होता है। क्रिप्टोक्रेसी के कई अवकाश-प्राप्त अफस इन निगमों में काम करते हैं। और क्रिप्टो क्रेसी के अंतरराष्ट्रीय प्रभाव के पीछे इन्हीं लोगों का हाथ है। सरकार की एक एजेंसी से दूसरी एजेंसी में तो गुप्त धन जाता ही है, इन निगमों को भी गुप्त धन मिलता और फिर निगमों की अपनी व्यापारि गतिविधियों के नाम पर यह पैसा विश्व जहां आवश्यकता होती है, वहां पहुं जाता है।

वस्तुतः अमरीकी सरकार पर इस क्रिप्टो क्रेसी का नियंत्रण है। यह कार्यपालिका को केवल ऐसी गोपनीय सूचनाएं तोड़-मरोड़ कर देती है, जिनके आधार पर केवल उन्हीं फैसलों पर पहुंचा जा सकता है, जो इसकी (क्रिप्टोक्रेसी की) योजना के अनुरूप हैं।

क्रिप्टोक्रेसी ने बड़े योजनाबद्ध तरीके से अमरीकी चेतना को अपने अनुरूप ढाल है। साम्यवाद के बढ़ते हुए खतरे का ना लेकर इसने अपने अस्तित्व का औचित्य जताया है और अपनी निरंकुशता के समर्थन में देश के प्रमुख राजनेताओं से यह बा मनवा ली है कि आग का मुकाबला आग से किया जाना चाहिये।

क्रिप्टोक्रेसी अच्छी तरह जानती थी कि सत्ता के खेल में अपनी टांग ऊंची रखने का एक ही रास्ता है—तकनीकी क्षेत्र में सब आगे रहना। इसके लिए इसने हर तरह का प्रयत्न किया है।

दूसरे विश्वयुद्ध से भी क्रिप्टोक्रेसी

अपने देशवासियों और विदेशियों दोनों को भरमाने के लिए इलेक्ट्रानिक तकनीक का प्रयोग किया। इसका अस्तित्व ही गलत सूचनाओं और प्रचार द्वारा जनता के विचारों को प्रभावित करने पर निर्भर है। चूंकि क्रिप्टोक्रेसी खुलेआम काम नहीं कर सकती, इसलिए अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वह लोगों को मनाने और मनवाने के तरीके काम में लाती है। साथ ही क्रिप्टोक्रेसी के अस्तित्व के लिए पूर्ण गुप्तता भी आवश्यक है। इसके बिना यह शक्तिहीन हो जाये। इसलिए क्रिप्टोक्रेसी सूचनाओं के स्रोत पर ही नियंत्रण करती है और समस्त सूचनाओं का स्रोत है—मानव-मस्तिष्क!

मस्तिष्क-नियंत्रण का प्रारंभिक अनुसंधान सी. आइ. ए. ने शुरू कराया था। चुपचाप वह प्रत्येक विज्ञानी या वैज्ञानिक-समूह को काम बांटता था। किसी को यह न पता होता था कि दूसरा क्या कर रहा है। कोई यह भी नहीं जानता था कि वह जो कर रहा है, किसलिए कर रहा है। उन सबकी संगति बैठाती थी सी. आइ. ए.।

यह मस्तिष्क-नियंत्रण का अभियान कुछ गुप्तचरों की ही योजना नहीं थी और न यह कार्य गुप्त सूचनाएं एकत्र करने तक ही सीमित था। यह सच है कि शुरू में इसके शिकार वही लोग हुए, जिनका व्यक्तित्व शिकार होने लायक ही था। पर अंततः शायद कुछ ही लोग बच सकेंगे इसका शिकार होने से।

× × ×

हत्यारों के रूप में क्रिप्टोक्रेसी ऐसे ही व्यक्तियों को चुनती है, जिनकी प्रकृति हिंसक हो और जिन्हें किसी की जान लेने में बहुत सोचना नहीं पड़ता हो। उसे ऐसे हत्यारों की आवश्यकता रहती है, जो अपनी इच्छा से नहीं, दूसरे के आदेश से हत्या कर सकें।

जुलाई १९७५ में लंदन के 'संडे टाइम्स' ने अमरीकी नौसेना के एक मनोविज्ञानी लेफ्टिनेंट कमांडर डा. नरुत का हवाला देते हुए एक खबर छापी थी। इस मनोविज्ञानी ने बड़े घमंड के साथ यह प्रकट किया था कि अमरीकी नौसेना के खुफिया विभाग ने सैनिक जेलों से सजायाफ्ता हत्यारों को चुनकर उन्हें मस्तिष्क-नियंत्रण की विधियों से राजनैतिक हत्यारों के रूप में प्रशिक्षित करके सारे विश्व में अमरीकी दूतावासों में नियुक्त किया है। यह बात उन्होंने ओस्लो में मनोविज्ञानियों के एक सम्मेलन में कही थी और बाद में उन्होंने पत्र-प्रतिनिधियों के समक्ष भी बताया कि उन्होंने ऐसे प्रशिक्षण-कार्यक्रम में हिस्सा लिया है, जिसमें ऐसे हत्यारे तैयार किये गये थे, जो आवश्यकता पड़ने पर किसी भी देश में किसी की भी हत्या कर सकें।

कुछ चुनिंदा व्यक्तियों को इस तरह से तैयार किया जाता था। उन्हें ऐसी फिल्में दिखायी जाती थीं, जिनमें हत्या और उत्पीड़न के अलग-अलग तरीके दिखाये गये हों। क्रमेण क्रूर, क्रूरतर और क्रूरतम फिल्में दिखाकर उनका मस्तिष्क खास ढंग से

तैयार किया जाता था। दूसरा चरण था— संभावित शत्रुओं को उनसे नीचा जताना। इस चरण तक आते-आते यह तय हो जाता था कि किस व्यक्ति को किस देश में काम करना है। तब उन्हें उन देशों के जन-जीवन का परिचय इस ढंग से दिया जाता, जिससे उन्हें यही एहसास हो कि उस देश के बाशिंदे हमसे बहुत घटिया और नीचे दर्जे के हैं। उन्हें अमरीका का शत्रु भी बताया जाता था। डा. नरुत के अनुसार, कुछ ही सप्ताह में यह प्रशिक्षण पूरा हो जाता था।

इसके कुछ सप्ताह बाद जब 'संडे टाइम्स' के एक पत्रकार ने डा. नरुत से संपर्क करने का यत्न किया, तो वे उसे कहीं नहीं मिले। फिर पेंटागन (अमरीकी सेना मुख्यालय) से यह खंडन जारी हुआ कि अमरीकी नौसेना ने कभी किसी को मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण या हत्या-प्रशिक्षण नहीं दिया। कुछ दिन बाद डा. नरुत अचानक लंदन में प्रकट हुए और एक प्रेस-कान्फरेन्स में उन्होंने यह घोषणा की कि 'मैंने सारी बातें थ्योरी के स्तर पर कही थीं, व्यावहारिक स्तर पर नहीं।'

पर डा. नरुत के प्रतिवाद के बावजूद 'हत्यारों के प्रशिक्षण' वाली बात लोगों के दिमाग से निकली नहीं। साथ ही यह भी सामने आ गया कि हत्या करने के अनिच्छुक व्यक्तियों को भी सम्मोहन द्वारा हत्याकार्य के लिए प्रेरित किया जा सकता है और उसके बाद सम्मोहन द्वारा ही उनके मस्तिष्क से अपराध की स्मृति को समाप्त कर दिया जा सकता है।

केनेडी-बंधुओं और मार्टिन लूथर कि[ंग] की हत्याओं में प्राप्त प्रमाणों से जो लो[ग] चौंक गये थे, उनमें वर्जीनिया पालिटेक्नी[क] इंस्टिट्यूट के डा. जोसेफ बन्र्ड भी थे[।] उन्होंने यह पता लगाना चाहा कि क[्या] सम्मोहन द्वारा किसी के मन में राजनैति[क] पसंद-नापसंद पैदा की जा सकती है औ[र] क्या मनुष्य को सम्मोहन द्वारा इस तरह तैयार किया जा सकता है कि वह अप[ने] अनजाने में ही हत्याकार्य इस तर[ह] कर डाले कि वह उसका स्वैच्छिक का[र्य] प्रतीत हो? विशेषज्ञों ने बन्र्ड के इन प्रश्न[ों] के उत्तर 'हां' में दिये थे। लेकिन उनक[ी] रिपोर्ट 'हत्या और सम्मोहन : राजनैति[क] प्रभाव अथवा षड्यंत्र' (एसैसिनेशन ए[ंड] हिप्नॉसिस : पोलिटिकल इन्फ्लुएन्स ऑ[र] कान्स्पिरेसी) कभी प्रकाशित नहीं हो पायी[।] शायद क्रिप्टोक्रेसी घबरा उठी थी।

लेकिन क्रिप्टोक्रेसी के सारे प्रयासों [के] बावजूद मस्तिष्क-नियंत्रण का रहस्य धी[रे-] धीरे खुलने लगा। 'सम्मोहित हत्यारों [के] अस्तित्व के प्रमाण सामने आने लगे। ऐ[से] ही एक हत्यारे का समाचार फिलिपाइन्स [के] अखबारों की सुर्खी बना था।

× × ×

२ मार्च १९६७ को लुइ एंजिल कास्तिल[ो] नाम के चौबीस वर्षीय युवक को मनील[ा] (फिलिपाइन्स) में राष्ट्रपति मार्कोस [की] हत्या के षड्यंत्र के संदेह में गिरफ्तार कि[या] गया। उसी के अनुरोध पर उसे 'ट्[...]

सीरम' का इंजेक्शन दिया गया, उस पर सम्मोहन-क्रिया का प्रयोग किया गया। तब कास्तिलो ने यह बताया कि चार वर्ष पूर्व हुई एक हत्या में उसका हाथ था। उसने बताया कि सम्मोहन द्वारा उसे इसके लिए तैयार किया गया था कि वह खुली कार में जा रहे एक व्यक्ति की हत्या कर दे। उसे यह तो पता नहीं था कि उसका यह भावी शिकार कौन है, पर उसके प्रस्तावित हमले का स्थान था डलास (टेक्सास, अमरीका) और तारीख थी २२ नवंबर १९६३।

उसने संवाददाताओं को बताया था–'मैं नहीं जानता कि मैं डलास कैसे पहुंचा और कैसे वहां से बाहर निकला। मगर एक बात तय है कि मेरे पास बंदूक नहीं थी।'

जांच के दौरान कास्तिलो ने बताया कि डलास में एक औरत ने उसे प्रारंभिक निर्देश दिये थे। उसने यह भी बताया कि वह क्यूबा की नागरिक-सेना में था और तभी उसे गुप्तचरी के काम के प्रशिक्षण के लिए चुना गया था। प्रशिक्षण देने वालों में क्यूबा और अमरीका दोनों जगह के लोग थे।

तीन साल बाद कास्तिलो को सही लाइसेन्स आदि के बिना कार चलाने के अपराध में गिरफ्तार किया गया। उस वक्त उसके पास मिले कागजात के अनुसार उसका नाम एलोरियेगा था। उसे चार दिन की कैद की सजा मिली। न्यायाधीश ने लिखा था–'मैंने उसे इसलिए सजा दी कि जब आदमी को अपना नाम तक याद करने में कठिनाई हो रही हो, तो निश्चित रूप से कुछ गड़बड़ होती है।'

किसी को कास्तिलो की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था। मगर बाद में अमरीका के फेडरल ब्यूरो आफ इन्वेस्टिगेशन (एफ. बी. आइ.) के सहयोग से हुई जांच में बहुत कुछ सामने आया। लेकिन फिलिपाइन्स के अधिकारियों को तब आश्चर्य हुआ, जब एफ. बी. आइ. ने पूछताछ के दौरान कास्तिलो से हवाना से आठ मील दूर स्थित एक हवाई अड्डे के बारे में भी जानकारी मांगी। कास्तिलो और क्यूबा के आपसी संबंधों के बारे में एफ. बी. आइ. को कुछ भी बताया नहीं गया था।

सम्मोहन की सहायता से हो रही इस पूछताछ में एक बार कास्तिलो से साढ़े तीन घंटे तक सवाल-जबाव होते रहे। इस पूरी अवधि में उसके पेट में मरोड़ पड़ते रहे। कई बार तो वह पीडा से चिल्ला उठा था। पूछताछ के कई-कई दौर हो जाने के बाद सम्मोहनकर्ता ने यह पाया कि कास्तिलो को सम्मोहन के चार पृथक् स्तरों पर ले जाया जा सकता है। उसने इन चार स्थितियों को ज़ोम्बी–१, ज़ोम्बी–२, ज़ोम्बी–३ और ज़ोम्बी–४ की संज्ञा दी। (ज़ोम्बी का अर्थ है–जीवित शव।)

ज़ोम्बी–१ स्थिति में कास्तिलो यह मानता था कि वह एलोरिएगा है और इस स्थिति में उसने अमरीका-विरोधी जासूसी के किस्से सुनाये। ज़ोम्बी–२ स्थिति में वह कठिनाई में फंसा एक सी. आइ. ए. एजेंट बन गया। ज़ोम्बी–३ स्थिति में वह एक

ऐसे एजेंट के रूप में सामने आया, जिसका भेद खुल चुका था। इस स्तर पर उसने आत्महत्या करने की आवश्यकता महसूस की। जिस दिन उसे मारकोस की हत्या करनी थी, उस दिन कास्तिलो ने जेल में आत्महत्या की कोशिश की—इस कार्यक्रम का कच्चा चिट्ठा वह पिछली एक सुनवाई में खोल चुका था।

ज़ोम्बी–४ की स्थिति में पता चला कि कास्तिलो का असली नाम मान्युएल आन्जेल रेमिरेज है। उसकी उम्र २९ वर्ष की है और वह ब्रोन्क्स, न्यूयार्क का निवासी है। इस स्थिति में उसे अपने बचपन की कोई याद नहीं थी। बस इतना-भर याद



राष्ट्रपति जान एफ. केनेडी

था कि शायद उसके पिता 'एजेंसी' (सी. आइ. ए.) में उच्च अधिकारी थे। रेमिरेज के रूप में कास्तिलो ने बताया कि उसका अधिकांश समय सी. आइ. ए. के विशेष मिशन और प्रशिक्षण में ही बीता। सारी बातचीत से पूर्व-निर्धारित कार्य करने वाले एक एजेंट की 'थीम' उभरकर सामने आयी। सम्मोहन के अधीन पूछताछ करने पर कास्तिलो एक ऐसे व्यक्ति के रूप में सामने आया, जिसके व्यक्तित्व को कई बार पूरी तरह मिटाकर नया रूप दिया गया था।

एक से पांच घंटे तक चलने वाली चालीस से अधिक सम्मोहन-बैठकों के बाद सम्मोहनकर्ता ने अपनी रिपोर्ट दी। उसके अनुसार, कास्तिलो न केवल राष्ट्रपति जान एफ. केनेडी की हत्या से संबंधित था, बल्कि वह एक ऐसा पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम वाला (प्रीप्रोग्राम्ड) 'ज़ोम्बी' था, जो संकेत मिलते ही हत्या कर सकता था।

अपनी रिपोर्ट में सम्मोहनकर्ता ने यह बताया कि उसने इस रहस्य की गुत्थी कैसे सुलझायी। कास्तिलो की गिरफ्तारी के समय तलाशी लेने पर उसकी घड़ी के पिछले हिस्से में सिगरेट की डिब्बी का एक टुकड़ा पाया गया था, जिस पर रोमन लिपि में xbgumidutxbx ये बारह अक्षर लिखे हुए थे। कास्तिलो ने बताया कि यह कागज और पैसे उसे लुई माशिसियो नामक व्यक्ति ने दिये थे, जो एक गेरिल्ला संघटन का सदस्य था।

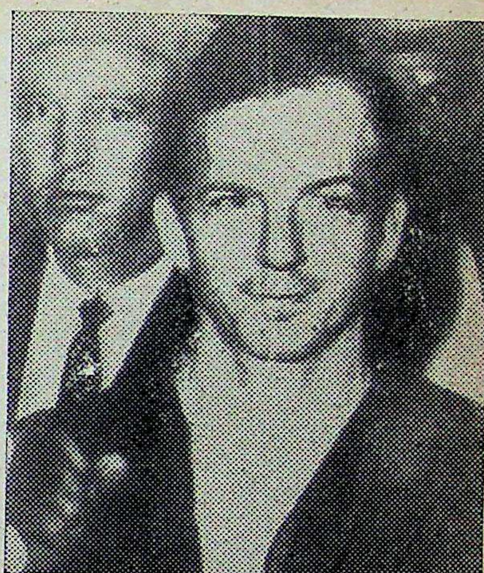
कास्तिलो को सम्मोहन द्वारा बेहोश

करके वे अक्षर बोले गये। उस पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। फिर सम्मोहन-कर्ता ने उन अक्षरों को बीच-बीच में व्यवधान देकर पढ़ा। उसने पाया कि जब वह तीसरे अक्षर 'जी' और चौथे अक्षर 'यू' के बीच रुकता था तो कास्तिलो कहता था—'मुझे स्वयं ही हत्या करनी है।'

सम्मोहनकर्ता के 'जी' कहने पर कास्तिलो तत्काल बोला 'माशिसियो'; 'बी जी यू' कहने पर 'मुझे स्वयं,' और 'एम आइ' कहने पर 'हत्या करनी है'।

इसी तरह सम्मोहन की स्थिति में जब-जब उसे 'लुई कास्तिलो' कहकर पुकारा गया, एक दर्दनाक दृश्य सामने आया। कास्तिलो पिस्तौल अपनी कनपटी पर रखकर घोड़ा दबा देता था। जब-जब सम्मोहनकर्ता ने '१२ जून १९६७, बारह बजे', '२२ जून १९६७', '४ जुलाई १९६७' या '१ जनवरी १९६८' कहा, कास्तिलो ने पिस्तौल से निशाना साधकर घोड़ा दबा दिया।

सम्मोहन की अवस्था में कास्तिलो ने एक और रहस्य भी खोला। उसने बताया कि हत्या 'दोपहर से पहले' हुई थी। उसे याद आता था कि वह एक लंबे आदमी के साथ था, जिसका वजन लगभग १९० पौंड था, जिसकी नाक बाज जैसी थी, बाल काले थे और मुंह लंबोतरा था। उसका अंग्रेजी उच्चारण विदेशी का-सा था, पर किस देश के आदमी का-सा, यह कास्तिलो नहीं बता पाया। उसने बताया कि वह उस



हत्या का अभियुक्त—ली हार्वे ओस्वाल्ड

व्यक्ति से तीन-चार अन्य व्यक्तियों के साथ एक हवाई अड्डे पर मिला था। बकौल कास्तिलो, उन व्यक्तियों में अमरीकी और विदेशी दोनों थे। इनमें से एक स्पेनी था। फिर वे सब एक काली कार में बैठकर एक इमारत तक गये थे।

कास्तिलो ने बताया कि उस इमारत पर पहुंचकर वे लोग तीसरी मंजिल के एक कमरे में गये। कुछ अनिश्चितता के साथ उसने बताया कि वह कमरा भूरे रंग का था। उसमें पैकिंग के डिब्बे, एक छोटी मेज और एक टाइप-मशीन थी और सड़क की ओर दो खिड़कियां थीं, जिनके कांच के पल्ले ऊपर चढ़ाये जा सकते थे।

पहले व्यक्ति ने जिप और ताले वाला एक काला सूटकेस खोलकर एक राइफ़ल के

खंडों को निकाला और जोड़ा। टेलिस्कोप को ५०० गज पर 'सेट' करके उसने वह राइफल कास्तिलो को दे दी। उससे कहा गया कि उसे जुलूस के मध्य में जा रही एक खुली कार की पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति को गोली मारनी है। उसे यह भी बताया गया कि वह व्यक्ति एक महिला या दूसरे पुरुष के साथ बैठा होगा। सड़क के दूसरी ओर सामने के मकान से दर्पण हिलाकर दो बार रोशनी फेंककर बताया जायेगा कि उसे कब गोली चलानी है। यह संकेत होने के फौरन बाद जो कार आये, उस पर उसे फायर करना होगा। परंतु पूछताछ करने पर कास्तिलो यह नहीं बता पाया कि खुली कार में बैठा हुआ वह व्यक्ति कौन था।

ये सब निर्देश कास्तिलो को देकर वह व्यक्ति नीचे चला गया था। बाद में वह दौड़ता हुआ कमरे में आया और उसने बताया—'उसके गोली लग गयी। अब यहां से निकल चलें।' फिर उसने कास्तिलो के हाथ से राइफल छीनकर खोल डाली और उसके खंड और टेलिस्कोप काले सूटकेस में भर लिये।

अब कास्तिलो और वह आदमी दौड़कर नीचे आये और अन्य दो व्यक्तियों के साथ कार में बैठकर वहां से रवाना हो गये। पहले ही मोड़ पर उन्होंने एक गंजे आदमी को कार में बैठाया। फिर दो-चार ब्लाक बाद एक और व्यक्ति को। कास्तिलो का कहना था कि वह कार की पिछली सीट पर इन दो व्यक्तियों के बीच बैठा था। कुछ दूर जाने पर जब कास्तिलो इधर-उधर दे रहा था, उस दूसरे व्यक्ति ने उसे एक इंजे क्शन लगा दिया। उसे तत्काल नींद आ गयी। जब वह उठा, तो शिकागो के एक होटल के एक कमरे में था। उसके साथ वह सम्मोहन करने वाली महिला थी, जि कास्तिलो कभी 'अच्छी' बताता था और कभी उससे 'घृणा करने' की बात कहता था। (जांच-रिपोर्ट के अनुसार, कास्तिलो की चेष्टाओं और चेतना पर इस महिला का पूर्ण नियंत्रण था।)

कास्तिलो ने बताया कि उस महिला के साथ एक नीली कार में बैठकर वह मिल वाकी गया था। रास्ते में ही कार के रेडियो पर उन्होंने राष्ट्रपति केनेडी की हत्या का समाचार सुना था।

सम्मोहनकर्ता की अंतिम रिपोर्ट प्रस्तु किये जाने के कुछ दिन बाद ही कास्तिलो को फिलिपाइन्स के नेशनल ब्यूरो ऑफ इन्वे स्टिगेशन की जेल से रिहा कर दिया गया और वह किसी अज्ञात स्थान पर चला गया। बाद में पता चला कि १९६७ में उसे अमे रीका भेज दिया गया था और एफ. बी. आई. ने उससे पूछताछ की थी। एफ. बी. आई. के प्रवक्ता के अनुसार, 'हमने कास्तिलो से बातचीत की थी और उसने हमें बताया कि केनेडी की हत्या के बारे में सारा किस्सा उसने मनीला में गढ़ा था।'

सरकारी कागजात के अनुसार कास्तिलो को जून १९७१ में एक डाके के अपराध में छह वर्ष की सजा दी गयी और ३७ मा

की सजा भुगतने के बाद रिहा कर दिया गया। रिहाई के शीघ्र बाद वह अपनी मां से मिला था। यही उसका अंतिम ज्ञात संपर्क है। फिर वह न जाने कहां खो गया!

यदि एफ. बी. आइ. के प्रवक्ता के इस दावे को सही मान लिया जाये कि कास्तिलो ने 'मनीला में किस्सा गढ़ा था' तो मानना पड़ेगा कि उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी और सोडियम एमाइटल और अलकोहल को सहने की गजब की क्षमता उसमें रही होगी। परंतु उसकी मनोवैज्ञानिक रूपरेखा और उसका जीवन दोनों इस बात को झुठलाते हैं कि उसमें ये योग्यताएं थीं।

× × ×

लुई कास्तिलो को जब 'कार्यक्रम के लिए तैयार' किया गया था, तब मस्तिष्क-नियंत्रण से संबंधित एजेंसियां सक्रिय थीं। और ये एजेंसियां उस वक्त भी सक्रिय थीं, जब जान केनेडी, मार्टिन लूथर किंग और राबर्ट केनेडी की हत्याएं हुईं।

जनता को बार-बार यह बताया और विश्वास दिलाया गया है कि इन तीनों नेताओं की हत्या तीन परस्पर असंबद्ध हत्यारों ने अपने निजी निर्णय से की। मगर ८० प्रतिशत अमरीकी जनता का विश्वास है कि इन हत्याओं के पीछे कोई षड्यंत्र था।

तीनों मामलों में हत्या का साधन एक ही था—गोली। तीनों मामलों में परिस्थिति एक-सी थी—हत्या अनेक लोगों की आंखों के सामने सार्वजनिक जगह पर हुई थी। तीनों हत्यारे डायरियों आदि के रूप में इस बात के सबूत छोड़ गये थे कि हत्या उन्होंने की है। और तीनों हत्यारों का जीवन बताता है कि उनका मन-मस्तिष्क संतुलित नहीं था।..... और प्रमाण इस बात का भी पता देते हैं कि उन तीनों को कभी न कभी सम्मोहित किया गया था।

परंतु पता नहीं क्यों, जांच करने वालों को इन सब समानताओं में कोई आपसी संबंध नजर नहीं आया! कोई भी अच्छा जासूस बता सकता है कि तीनों मामलों में तरीके की समानता इस बात का संकेत है कि किसी सुदक्ष टोली ने भुलावे के लिए यह जाल फैलाया है।

के. जी.बी. और सी. आइ. ए. दोनों के पेशेवर जासूसों को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाता है कि अपना भंडा फूट जाने के बावजूद वे भुलावे के जाल पर अड़े रहें और यदि आवश्यकता पड़े तो मर जायें, मगर ओंठ न खोलें।

किसी भी अपराध की छानबीन का आधार दो बातें होती हैं—१. अपराध का तरीका और २. हत्या का उद्देश्य। ये हत्याएं 'एकाकी पागलों' ने की थीं, इस मान्यता के हिमायतियों का कहना है कि इन तीनों ही हत्याओं का कोई राजनैतिक उद्देश्य बता पाना कठिन है। मगर हाल के इतिहास का कोई भी विद्यार्थी जानता है कि इन तीनों हत्याओं से घोर दक्षिण-पंथियों को राजनैतिक लाभ पहुंचा है। केनेडी-बंधु और किंग तीनों ही स्वतंत्र विचारक थे, जिन्हें खरीदा नहीं जा सकता था।

नागरिक अधिकारों को व्यापकतर बनाने के लिए वे तीनों जिस तरह प्रयास कर रहे थे, उसे दक्षिणपंथी लोग 'कम्युनिस्ट' तरीके मानते थे।

यह एक खुला सत्य है कि एफ. बी. आइ. के अध्यक्ष हूवर को मार्टिन लूथर किंग से चिढ़ थी और केनेडी-बंधु सी. आइ. ए. और एफ. बी. आइ. दोनों की कार्यविधियों से संतुष्ट नहीं थे। राष्ट्रपति केनेडी ने गुप्तचर-सेवा के अनेक अधिकारियों को हटाया था और जब उनकी हत्या हुई, उस समय वे अमरीका की समूची गुप्तचर-व्यवस्था के पुनर्गठन के बारे में विचार कर रहे थे। एटार्नी जनरल के रूप में राबर्ट केनेडी संघटित अपराधों के विरुद्ध अभियान चलाये हुए थे।

इन तीनों हत्याओं का सीधा लाभ घोर दक्षिणपंथियों को मिला—नागरिक अधिकारों का आंदोलन दब-सा गया, वियतनाम का संघर्ष तीव्र हुआ और क्रिप्टोक्रेसी के भ्रष्ट नेता सत्ता में बने रह सके।

राष्ट्रपति केनेडी की हत्या के बाद बैठाये गये वारेन जांच-आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, राष्ट्रपति की हत्या ली हार्वे ओस्वाल्ड ने अकेले ही की थी। आश्चर्य ही है कि जैक रुबी द्वारा ओस्वाल्ड के कत्ल किये जाने और इसकी जानकारी मिलने के बाद भी कि जैक रुबी का संबंध संघटित अपराध और कास्त्रो-विरोधी आंदोलन से था, वारेन-आयोग को षड्यंत्र का कोई प्रमाण या संकेत नहीं मिला!

गवाहों ने ओस्वाल्ड के इतने परस्पर विरोधी वर्णन किये थे कि हत्या की स्वतंत्र रूप से जांच करने वाले लोगों ने यही निष्कर्ष निकाला कि कम से कम दो ओस्वाल्ड रहे होंगे—एक 'असली' और दूसरा उसका कोई गुप्तचर प्रतिरूप। लेकिन यदि इस ढर्रे पर सोचा जाये कि लुई कास्तिलो की तरह ओस्वाल्ड के व्यक्तित्व को भी विभिन्न व्यक्तियों में विभाजित करके नियंत्रित किया गया था, तो हत्यारे-संबंधी परस्पर विरोधी वर्णनों का सच होना समझ में आ सकता है। संभव है, किसी ज़ोम्बी-अवस्था में वह बहुत अच्छा निशानेबाज हो और दूसरी ज़ोम्बी-अवस्था में उसे निशाना साधना भी न आता हो। फिर, यदि किसी को सम्मोहन से इस प्रकार 'तैयार' (प्रोग्राम्ड) किया जाये कि उसे हत्या से संबंधित होने की कोई बात याद ही न रहे, तो सच-झूठ का पता लगाने वाले आधुनिकतम यंत्र भी उसे निर्दोष ही बतायेंगे, क्योंकि वह अपने को निर्दोष मान रहा होगा।

जो प्रमाण जांच-आयोग से छिपाये गये, उनमें एक यह भी था कि सी. आइ. ए. के अधिकारियों ने १९६० वाले दशक के आरंभ में गुप्तचरी के उद्देश्य से ओस्वाल्ड से बात की थी। सी. आइ. ए. का इससे संबंधित दस्तावेज १९७६ के 'फ्रीडम ऑफ इन्फर्मेशन एक्ट' के तहत अब सामने आया है। इस दस्तावेज से यह भी स्पष्ट होता है कि किस तरह एलेन डलस ने सी. आइ. ए. को यह पट्टी पढ़ायी थी कि ओस्वाल्ड

उसका किसी भी प्रकार का संबंध था, इस बात से उसे सरासर इन्कार करना चाहिये। बाद में यह बात सामने आयी कि सी. आइ. ए. की 'फाइल २०१' ओस्वाल्ड पर है।

एक और बात की वारेन-आयोग ने उपेक्षा कर दी। वह यह है कि क्रिप्टोक्रेसी ने फीदेल कास्त्रो की हत्या कराने के कई असफल प्रयास किये थे। सी. आइ. ए. की ओर से जांच-आयोग को सब जानकारियां दे रहे रिचर्ड हेल्म्स ने आयोग का ध्यान इस ओर नहीं खींचा; क्योंकि तब यह पता चल जाता न कि क्रिप्टोक्रेसी को हत्या की योजना बनाने का व्यावहारिक अनुभव है।

इस सबके बावजूद यह अफवाह फैलती ही गयी कि सी. आइ. ए. के निर्देश पर ओस्वाल्ड ने रूस में जाकर शरण ली थी। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि रूस के खुफिया संघटन के. जी. बी. पर ओस्वाल्ड का भेद खुल गया था और बाद में उसने उसे 'मंचूरियन कैंडिडेट' की तरह ही एक कार्य-विशेष के लिए 'तैयार' (प्रोग्राम्ड) करके अमरीका वापस भेजा था।

इन अफवाहों के आधार पर वारेन-आयोग के वकील ने सी. आइ. ए. के निदेशक हेल्म्स को एक पत्र लिखकर रूस की 'ब्रेन वाशिंग' क्षमताओं के बारे में जानकारी मांगी थी।

उत्तर में हेल्म्स ने 'ब्रेन वाशिंग' के लिए रूस द्वारा अपनाये जाने वाले तरीके तो बताये ही, साथ ही यह दावा भी किया कि 'मादक द्रव्यों के बारे में रूस में व्यापक अनुसंधान भी हुआ है, मगर वह पश्चिमी अनुसंधान से लगातार पांच साल पिछड़ा रहा है।' फिर हेल्म्स ने एक ऐसी बात लिख दी, जिससे क्रिप्टोक्रेसी की अपनी अकांक्षाओं का उद्घाटन होता था। हेल्म्स ने लिखा था—'इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि रूस के पास कोई ऐसी तकनीक या एजेंट है, जो विशेष प्रकार का व्यवहार उत्पन्न कर सके और जो पश्चिम के पास नहीं है।'

केनेडी-हत्याकांड पर से परदा उठाने के लिए स्वतंत्र रूप से प्रयत्नशील जिम गैरिसन ने डेविड विलियम फेरी नामक एक व्यक्ति का पता चलाया था। जो सम्मोहनकर्ता भी था और सी. आइ. ए. का एजेंट भी। १९५० वाले दशक में फेरी न्यू ओर्लियन्स के सिविल एयर पेट्रोल ग्रुप में ओस्वाल्ड के साथ था। एक गवाह ने बताया था कि ओस्वाल्ड को निशानेबाजी का प्रशिक्षण फेरी ने ही दिया था। फेरी के घर की तलाशी में पुलिस को कई हथियार, मादक द्रव्य और तीन कोरे अमरीकी पासपोर्ट मिले थे। साथ ही सम्मोहन-विद्या से संबंधित किताबों की एक अच्छी-खासी लाइब्रेरी भी मिली थी।

एक गवाह पैरी रेमंड रूसो ने न्यू ओर्लियन्स में एक ग्रैंड ज्यूरी को बताया कि वह १९६३ में एक दिन फेरी, लियोन ओस्वाल्ड नामक व्यक्ति और एक अन्य व्यक्ति क्लेम बर्ट्रेंड के साथ फेरी के मकान में था और तब ये तीनों व्यक्ति एक ऐसी हत्या के प्रयास के बारे में बातचीत कर रहे थे,

जिसमें ध्यान बंटाने के तरीके काम में लाये जाने वाले थे। फेरी को उद्धृत करते हुए रूसो ने कहा था–'इसमें कम से कम तीन व्यक्ति जरूरी हैं। दो ध्यान बंटाने के लिए गोली चलायेंगे और तीसरा..... असली निशाना साधेगा।' फेरी ने यह भी कहा था कि इन तीन में से एक 'बलि का बकरा' होगा, और वह शेष दो को भागने का समय देगा।

.....और २३ फरवरी १९६७ को लुई कास्तिलो की गिरफ्तारी के कुछ ही दिन पूर्व डेविड फेरी अपने घर में मृत पाया गया। आत्महत्या-संबंधी एक नोट भी घर में मिला, परंतु शव-परीक्षा में पाया गया कि उसकी मृत्यु मस्तिष्क की एक नस फट जाने



डा. मार्टिन लूथर किंग

के कारण हुई थी। विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि यह नस पीठ-पीछे से किसी कराते-विशेषज्ञ द्वारा सिर पर वार किये जाने से फटी हो सकती है।

यानी डेविड फेरी ऐसा व्यक्ति था कि राष्ट्रपति की हत्या के बाद उससे पूछताछ की जाये। पर इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि एफ. बी. आइ. ने फेरी से कोई पूछताछ की। आखिर क्यों?

जैक रुबी एक और व्यक्ति था, जिसे केनेडी-हत्याकांड के संबंध में डलास जेल में रखा गया था। अर्ल वारेन और जेराल्ड फोर्ड ने उससे जेल में ही पूछताछ की थी और वह उस सारी बातचीत के दौरान यह कहता रहा था कि मुझे वाशिंग्टन ले जाया जाये, मैं राष्ट्रपति को एक रहस्य बताना चाहता हूं ..... और यह रहस्य मेरे मरने पर रहस्य ही बना रहेगा। उसने यह भी कहा था कि 'अंततः एक बिलकुल नयी तरह की सरकार हमारे देश को हथिया लेगी।'

डलास जेल में रुबी से भेंट करने वाली एकमात्र प्रमुख पत्रकार डोरोथी किलगैलन ने अपने कुछ दोस्तों को बताया था कि रुबी ने उसे ऐसी बातें बतायी हैं, जिनसे केनेडी-कांड का पासा ही पलट जायेगा..... और कुछ ही दिन बाद डोरोथी किलगैलन मृत पायी गयी। उसके मकान की बुरी तरह तलाशी ली गयी लगती थी और रुबी के साथ उसकी बातचीत के सारे नोट्स गायब थे।

सन १९६७ के प्रारंभ में रुबी ने शिका-

यत की कि मुझे जहर दिया जा रहा है। डाक्टरों ने कहा उसे कैन्सर है। परंतु कुछ दिन बाद वह कैन्सर से नहीं, बल्कि मस्तिष्क की नस फटने से मरा, जैसे कि डेविड फेरी मरा था।

रुबी जो बात वारेन-आयोग को बताना चाहता था, उसकी पुष्टि मृत्युशय्या पर किये गये एक और इकबाल से भी होती है। प्रो. मोरेनशिल्ड जासूस रह चुका था और ओस्वाल्ड का मित्र था। पेट्रोलियम-संबंधी भूगर्भशास्त्र में डाक्टरेट प्राप्त इस प्रोफेसर का एक दक्षिणपंथी पेट्रोल-कुबेर एच. एल. हंट से गहरा परिचय था और १९७६ में एफ. बी. आइ. ने यह रहस्य खोला था कि ली हार्वे ओस्वाल्ड भी हंट और मोरेनशिल्ड से अच्छी तरह परिचित था।

वारेन-आयोग ने तो अपनी रिपोर्ट में यही कहा है कि इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है कि मोरेनशिल्ड का अतिवादी संघटनों से संबंध था। लेकिन बाद में यह स्पष्ट हो गया कि मोरेनशिल्ड बरसों से विभिन्न गुप्त कारवाइयों से संबंधित था। १९७७ में हत्याओं की जांच करने वाली अमरीकी लोकसभा (हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स) की हाउस सलेक्ट कमेटी के समक्ष बयान देते हुए विलेम ओल्टमान्स ने बताया कि केनेडी-हत्याकांड की कुंजी मोरेनशिल्ड के हाथ में थी और उसने स्वयं स्वीकार किया था कि उसे हत्या के षड्यंत्र का पहले से ज्ञान था।

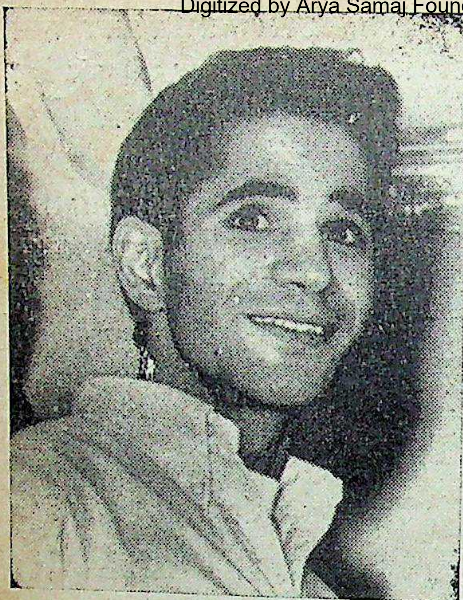
कमेटी के एक प्रवक्ता ने कहा था कि यदि ओल्टमान्स के दावे में कुछ सचाई पायी गयी, तो मोरेनशिल्ड की तलाश की जायेगी। एक सप्ताह बाद उसे पाम बीच (फ्लोरिडा) में खोज भी लिया गया। परंतु उससे पूछताछ नहीं हो सकी। वह मृत पाया गया। उसके सिर में एक गोली लगी थी। स्थानीय अधिकारियों ने इसे आत्म-हत्या का मामला बताया था।

मोरेनशिल्ड की बेटी एलेग्जांड्रा को विश्वास है कि टेलिफोन पर कोई सम्मोहन-संकेत सुनने के बाद ही उसके पिता ने आत्म-हत्या की थी।

मोरेनशिल्ड के जीवन के आखिरी दिन



दंडित 'हत्यारा' जेम्स अर्ल रे



'कातिल' सिरहन-सिरहन

मस्तिष्क-नियंत्रण के शिकारों के आखिरी दिनों से आश्चर्यजनक रूप में मेल खाते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि जब मादक दवाएं और 'इलेक्ट्रिक शॉक' स्मृति को मिटाने में विफल रहीं, तो अंतिम हल अपनाया गया? अथवा क्या उसे आत्महत्या करने के लिए 'तैयार' (प्रोग्राम्ड) किया गया था?

× × ×

मार्टिन लूथर किंग की हत्या का मामला भी कुछ ऐसा ही है। एफ. बी. आइ. के ६,००० एजेंटों में से आधों को किंग के हत्यारे की खोज में लगाया गया था। हत्यारा बहुत-से निशान छोड़ गया था और एफ. बी. आइ. को यह पता लगाते देर नहीं लगी कि राइफल पर बने उंगलियों के निशान एरिक एस. गाल्ट नामक व्यक्ति के हैं, जिसका असली नाम जेम्स अर्ल रे है।

राबर्ट केनेडी की हत्या के एक दिन बा[द] इस व्यक्ति को लंदन में किसी कनाडावा[ले] का पासपोर्ट दिखाकर ब्रिटेन से बाह[र] जाने की कोशिश करते हुए पकड़ा ग[या] था। और विश्व-इतिहास की इस 'सब[से] मुकम्मिल खोज' के बाद १० मार्च १९६[९] को इतिहास का सबसे अल्पकालीन मुक[द]्दमा चला। उसमें रे के वकील ने न्याया[-] लय से सौदा पटा लिया कि रे अपरा[ध] कबूल करेगा, बशर्ते न्यायालय उसे मृत्युदं[ड] के बजाय ९९ वर्ष की कैद की सजा दे। ती[न] घंटे में सारी सुनवाई पूरी हो गयी और खा[ने] की छुट्टी के बाद न्यायालय ने ९९ वर्ष क[ी] सजा सुना दी।

परंतु जेल में पहुंचते ही रे ने यह कहन[ा] शुरू कर दिया कि मेरे साथ अन्याय हुआ है। उसने अपने वकीलों को बर्खास्त कर दिया। उसका कहना था कि उसे ऐसे अपराध म[ें] फंसा दिया गया है, जो उसने किया ह[ी] नहीं है। नयी सुनवाई हुई, उसमें उस[ने] न्यायालय में शपथ लेकर कहा–'मैंने डा[.] किंग पर गोली नहीं चलायी थी; मगर हो सकता है कि अपने अनजाने में मैं आंशि[क] रूप से उत्तरदायी रहा होऊं।'

यदि जेम्स अर्ल रे ने डा. किंग की हत्य[ा] की थी, तो क्यों की थी? इसके उत्तर म[ें] सिर्फ एक चश्मदीद गवाह का बयान है जिसने यह कहा था कि मैंने लास एंजेल[स] के एक शराबखाने में रे को अश्वेतों क[े] विरुद्ध घृणा व्यक्त करते हुए सुना था।

परंतु रे को सजा सुनाने के कुछ ही दिन बाद ऐसे प्रमाण मिले थे, जो बताते हैं कि यह अधिक संभव है, रे के बजाय एफ. बी. आइ. ने किंग की हत्या की हो। १९७५ में गुप्तचरी से संबंधित सेनेट कमेटी ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि १९६४ में एफ. बी. आइ. ने मार्टिन लूथर किंग को एक गुमनाम पत्र के साथ एक टेप भेजा था। इस टेप के जरिये उसने किंग को 'ब्लैकमेल' करने की कोशिश की थी। डा. किंग का खयाल था कि यह टेप भेजने का उद्देश्य यह था कि इसे सुनकर वे आत्महत्या कर लें।

टेप में डा. किंग और एक युवती के कथित यौनसंबंधों का 'प्रमाण' था और उसके साथ भेजे गये पत्र में कहा गया था—'किंग, अब तुम्हारे लिए एक ही रास्ता बचा है, और तुम जानते हो वह क्या है। फैसला करने के लिए तुम्हारे पास सिर्फ ३४ दिन हैं।' यह उल्लेखनीय है कि उस पत्र के आने के ठीक ३४ दिन बाद मार्टिन लूथर किंग को ओस्लो में विश्वशांति का नोबेल पुरस्कार लेना था।

सेनेट कमेटी ने यह रहस्योद्घाटन भी किया है कि डा. किंग की हत्या से छह वर्ष पूर्व से ही एफ. बी. आइ. उनके टेलिफोन 'टैप' कर रही थी और आठ बार डा. किंग के कमरों में गैरकानूनी रूप से यंत्र लगाये गये थे, ताकि वहां होने वाली बातचीत सुनी जा सके। उद्देश्य था डा. किंग को ब्लैकमेल करने का कोई मसाला खोजना।

सेनेट द्वारा ये सब तथ्य प्रकाश में लाये जाने के बाद श्रीमती किंग ने ऐसी बात कही,



सेनेटर राबर्ट केनेडी

जिसे कहते वे तब तक डरती रही थीं; उन्होंने कहा कि उन्हें विश्वास है, किंग की हत्या किसी सरकारी षड्यंत्र में हुई है।

इसके बाद एफ. बी. आइ. के गुप्त कागजात से यह भी पता चला कि जिस राइफल पर रे की उंगलियों की छाप मिली, वह सचमुच चलायी गयी थी इस बात का कोई सबूत एफ. बी. आइ. न राइफल पर पा सकी थी, न तीसरी मंजिल के उस कमरे में। डा. किंग के शरीर में धंसी गोलियों का उस राइफल से संबंध भी सिद्ध नहीं किया गया। इससे यह संकेत मिलता है कि राइफल पर रे की उंगलियों की छाप चाहे किसी प्रकार भी दर्ज की गयी हो, वह राइफल रे को फंसाने और असली हत्यारे को भागने देने के लिए वहां रखी गयी थी।

बाद में 'न्यूज डे' नामक एक पत्र ने यह कापीराइट समाचार छापा कि किंग के अंगरक्षक के रूप में सरकार द्वारा नियुक्त एक अश्वेत खुफिया एड. रेडिट को मेम्फिस के एक उच्च अधिकारी ने ड्यूटी १८ से हटा दिया था और जब किंग की हत्या हुई, तब किंग की रक्षा का भार जिन व्यक्तियों के सुपुर्द था, वे सब किंग-विरोधी आंदोलन में भाग ले चुके थे।

किंग की हत्या के एक वर्ष पूर्व की जेम्स अर्ल रे की गतिविधियों से यह संकेत मिलता है कि ओस्वाल्ड की तरह ही वह भी एक 'पैट्सी' था। इस दौरान वह मेक्सिको, न्यू ओर्लियन्स और लास एंजेलस गया था। ओस्वाल्ड की गतिविधियों से भी इन जगहों का गहरा रिश्ता रहा था।

सम्मोहन-विद्या से भी रे का नाता था। लंदन में जब उसे गिरफ्तार किया गया, तो उसके पास इस विषय की तीन पुस्तकें पायी गयी थीं और रे ने स्वयं भी कहा था—'लास एंजेल्स में मैंने सम्मोहन का कोर्स किया था।'

जिस डाक्टर ने रे को यह कोर्स दिया था, उसका कहना है कि रे एक बहुत ही 'सरल' केस था। सम्मोहन की भाषा में 'सरल' उसे कहते हैं, जो डाक्टर या सम्मोहनकर्ता के साथ सहयोग करे। संभव है, डाक्टर को रे इसलिए 'सरल' लगा हो कि पहले उसे सम्मोहित किया जा चुका था।

× × ×

....और राबर्ट केनेडी का 'हत्यारा' सिरहन? सिरहन को रंगे हाथों पकड़ा गया था। उसके घर एक डायरी भी मिली थी, जिसमें उसने लिखा था—'राबर्ट केनेडी को मार दिया जाना चाहिये।'

मगर सिरहन का व्यवहार अस्वाभाविक था। उसकी मानसिक जांच भी करायी गयी। पर सुनवाई के दौरान न्यायाधीश ने 'ट्रुथ सीरम' का उपयोग कराने से इन्कार कर दिया और रे की तरह ही उसे भी चटपट सजा सुना दी गयी।

सन १९७३ में सान क्वेंटिन जेल के मनश्चिकित्सक डा. एडवर्ड सिम्सन ने राबर्ट केनेडी के मामले की फिर से सुनवाई का आग्रह किया। उन्होंने कहा—'सिरहन के मामले की सुनवाई इस शताब्दी की सबसे बड़ी मनश्चिकित्साशास्त्रीय भूल मानी जायेगी।'

जब १९७५ में राबर्ट केनेडी की हत्या के मामले पर फिर से संक्षिप्त विचार हुआ, तो यह पता चला कि छत की खपरैलों के टुकड़े और गोलियों के अंश जैसे महत्त्वपूर्ण साक्ष्य खो दिये गये और ओस्वाल्ड के मामले की तरह ही महत्त्वपूर्ण गवाहों के बयानों की अवहेलना की गयी। (डा. सिम्सन के बयान में इस संभावना की ओर संकेत किया गया था कि सिरहन सम्मोहन द्वारा हत्या के लिए तैयार किया गया हिप्नो-प्रोग्रैम्ड हत्यारा हो सकता है।)

तभी अमरीका एक ऊंचे भूतपूर्व खुफिया-अफसर चार्ल्स मैक्विस्टन ने सान क्वेंटिन के मनश्चिकित्सकों के साथ मिलकर

सिरहन के बयानों का विश्लेषण किया था। मैक्विस्टन का कहना है—'बयानों की टेपों की जांच और विश्लेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सिरहन को यह पता नहीं था कि वह क्या कर रहा है। जब उसने गोली चलायी, तो वह सम्मोहन की अवस्था में था। ....निश्चित रूप से इस हत्या के साथ कोई और भी जुड़ा था और सिरहन को सम्मोहन द्वारा (राबर्ट) केनेडी की हत्या के लिए तैयार किया गया था। यह एक जीवंत "मंचूरियन कैंडिडेट" है।'

डा. डाइमंड ने भी अपने निष्कर्ष में लिखा था कि सिरहन को सम्मोहन का पूर्वानुभव था। सम्मोहन की अवस्था में सिरहन बोलने में हिचकिचाता तो था, पर लिख आसानी से सकता था। उसकी डायरी का एक पृष्ठ दिखाकर डा. डाइमंड ने पूछा था:

'क्या यह पागलपन है?'

'हां, हां, हां।' सिरहन ने लिखकर जवाब दिया।

'क्या तुम पागल हो?'

'नहीं, नहीं।' सिरहन ने लिखा।

'तुम पागलों-जैसी बातें क्यों लिख रहे हो?'

'अभ्यास, अभ्यास, अभ्यास।'

'किसका अभ्यास?'

'मस्तिष्क-नियंत्रण, मस्तिष्क-नियंत्रण, मस्तिष्क-नियंत्रण।' सिरहन ने लिखा था।



हिंदीसेवा का सही रूप देखने का अवसर मुझे प्रयाग के पिछले कुंभ मेले में मिला। मैं अमेरिकन ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन में अनुवादक का कार्य कर रहा था और वयोवृद्ध साहित्यकार पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी के यहां ठहरा था।

रोज शाम को मैं मेले की दिन-भर की घटनाएं पंडितजी को सुनाया करता था। एक दिन मैंने मेले के समाचार सुनाने के साथ ही मेले का एक नक्शा भी उन्हें दिया, जिसमें मेले का संपूर्ण विवरण सिर्फ अंग्रेज़ी में था। उन्होंने मुझसे उसकी हिंदी प्रति मांगी। मैंने बताया कि हिंदी का नक्शा तो मुझे दिया नहीं गया है।

अगले ही दिन हिंदी नक्शे के लिए उन्होंने मेला-अधिकारी के पास मेरे हाथों पत्र भेजा। मैं भी देख रहा था कि हिंदी में नक्शों के न होने से लाखों तीर्थयात्रियों को मीलों चक्कर लगाना पड़ता है, तब जाकर कहीं वे गंतव्य स्थान पर पहुंच पाते हैं। शाम को मैंने उनके पत्र का उत्तर उन्हें दिया, जिसमें मेला-अधिकारी ने लिखा था कि हिंदी में नक्शा छपा ही नहीं है। यह उत्तर पढ़कर पंडितजी काफी नाराज हुए और तत्काल उन्होंने उसकी शिकायत सरकार को भेज दी। परिणामतः कुछ ही दिनों के भीतर हिंदी में नक्शा छपकर आ गया और मेले में आयी जनता उससे लाभान्वित हुई।

बाद में मेला-अधिकारी ने व्यक्तिगत रूप से पंडितजी से क्षमा मांगी और सुझाव के लिए उन्हें धन्यवाद दिया।

—अशोक तोमर



[पृष्ठ ५१ का शेष]

के रूप में पहचाना । उसे वहां संत सोफिया के गिरजे में रखा गया । बाद में एदेसा पर मुसलमानों की हुकूमत हो गयी ।

सन ९४४ में कुस्तुंतुनिया की ईसाई सेना ने एदेसा पर हमला किया । सेनापति ने एदेसा के मुसलमान अमीर से कहा कि अगर 'मेन्डिलियन' हमें दे दिया जाये तो तुम्हें भारी रकम दी जायेगी, गिरफ्तार हुए २०० मुसलमान युद्धबंदी रिहा कर दिये जायेंगे और शहर पर फिर कभी चढ़ाई नहीं की जायेगी । अंततः अमीर ने ईसाई नागरिकों के विरोध के बावजूद 'मेन्डिलियन' कुस्तुंतुनिया के सेनापति को सौंप दिया । तबसे बारहवीं सदी के अंत तक 'मेन्डिलियन' कुस्तुंतुनिया के सम्राट के पास रहा । सन १२०४ में चौथे धर्मयुद्ध (क्रूसेड) के समय कुस्तुंतुनिया लूटा गया । तभी 'मेन्डिलियन' गायब हो गया ।

यह सब किस्सा इतने विस्तार से बताने का प्रयोजन यह है कि इयन विलिस का मत है कि 'मेन्डिलियन' ही 'पवित्र कफन' है ।

ऐसा मानने में कुछ दिक्कतें हैं । पुराने विवरणों के अनुसार 'मेन्डिलियन' पर ईसा मसीह की केवल मुखाकृति थी । 'मेन्डिलियन' की अनुकृतियों में भी ऐसा ही है । जबकि 'कफन' पर पूरे शरीर के अग्रभाग और पृष्ठभाग की दोहरी आकृति है । इयन विलिस इसका समाधान यों करते हैं कि 'मेन्डिलियन' इस तरह तह करके रखा गया था कि केवल मुखाकृति दिखे, और उस पर जाली भी मढ़ दी गयी थी । इसलिए कोई उसे पूरा खोलकर देख नहीं सकता था । उन्होंने बारहवीं सदी के ऐसे कुछ लिखित प्रमाण ढूंढ़ निकाले हैं, जिनमें 'मेन्डिलियन' पर मसीह की पूरी आकृति होने का जिक्र मिलता है ।

यदि 'मेन्डिलियन' ही 'कफन' है, तो ईसा मसीह के देहोत्सर्ग से लेकर कुस्तुंतुनिया की लूट तक का सिलसिला मिल जाता है । यही नहीं, डा. फ्राई को 'कफन' पर फिलस्तीन और तुर्की के पौधों के जो पराग-कण मिले, उनकी भी संगति बैठ जाती है । तब केवल १२०४ ई. से १३५६ तक डेढ़ सदी की खाई बाकी रहती है । इयन विलिस ने खोज निकाला है कि चौदहवीं सदी में फ्रांस में जो लोग मूर्तिपूजा का आरोप लगाकर जीवित जलाये गये थे उनमें एक था ज्योफ्री दे शार्नी, जो कि टेम्पलर था । उसने मूर्ति-पूजक होने के आरोप का खंडन भी किया था । संभव है, वास्तव में 'कफन' टेम्पलरों के पास रहा हो और वे गुप्त रूप से उसकी आराधना करते रहे हों । उसी को भ्रमवश मूर्ति समझ लिया गया हो । इयान विलिस का अनुमान है कि 'टेम्पलर' दे शार्नी अपने वंशजों को चुपचाप यह 'पवित्र कफन' दे गया और वही १३५६ में ज्योफ्री दे शार्नी के पास था । ये दोनों ज्योफ्री दे शार्नी एक ही घराने के थे, यह सिद्ध होना बाकी है ।

मगर असली चीज तो यह है कि विज्ञान क्या सिद्ध करता है ।.... क्या सचमुच यह 'पवित्र कफन' ईसा मसीह का है ?



पैसे आपके कि आप पैसों के ?





आपके पास पैसे हैं या नहीं, यह जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण यह है कि पैसे के बारे में आपका सही दृष्टिकोण है या गलत दृष्टिकोण। नीचे के प्रश्नों से आपने आपको जांचिये। ये प्रश्न अमरीकी पत्रिका 'टुडेज़ हेल्थ' से लिये गये हैं।

१. क्या आप पैसे को जीवन की अन्य सब चीजों—स्वास्थ्य, प्यार, परिवार, मनोविनोद, मित्रता, संतोष आदि—से पहले रखते हैं?

२. क्या आप जरूरत न होने पर भी चीजें सिर्फ इसलिए खरीद लेते हैं कि वे रियायती दाम पर बिक रही हैं?

३. क्या आप गैरजरूरी चीजें इसलिए खरीद लेते हैं कि आजकल उन्हें रखना दूसरों को प्रभावित करने के लिए जरूरी है?

४. क्या पास में पर्याप्त पैसा होते हुए भी मोजे-जैसी जरूरत की चीजों पर खर्च करते हुए भी आप अपने को कसूरवार-सा महसूस करते हैं?

५. क्या कोई भी बड़ी चीज खरीदते समय आपको यही अनुभव होता है, आपको ठगा जा रहा है?

६. क्या आप दूसरों पर तो खुले हाथों और यहां तक कि कुछ अविवेकपूर्वक खर्च करते हैं, और खुद अपने ऊपर खर्च करते समय पैसों को दांतों से पकड़ते हैं?

७. क्या आपके मुंह से सहसा निकल जाता है कि मुझे यह पुसायेगा नहीं, भले असल में ऐसी बात हो या नहीं?

८. क्या हरदम आपको ठीक-ठीक याद रहता है कि इस समय आपकी जेब या बटुए में कितने रुपये और पैसे हैं?

९. क्या खर्च करने का फैसला करने में आपको कठिनाई होती है—चाहे रकम छोटी हो या बड़ी?

१०. क्या खरीदारी करते समय आपके मुंह से हरदम यही निकलता है कि चीजें कितनी महंगी हो गयी हैं?

११. क्या होटल आदि स्थानों में मित्रों के बीच बिल आने पर आप हमेशा अपने वाजिब हिस्से से ज्यादा चुकाते हैं—यह

दिखाने के लिए कि आप किसी के कर्जदार नहीं रहना चाहते ?

१२. क्या महीने के अंत में सब खर्चा काटकर कुछ पैसा पास बच जाने पर आपको अजीब-सा महसूस होता है और आप उससे छुटकारा पाने की कोशिश करते हैं ?

१३. क्या आप अपने वशवर्ती लोगों को डराने और उन पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिए पैसे का उपयोग करते हैं ?

१४. क्या अपने से अधिक पैसे वाले के आगे आप तब भी अपने को हीन अनुभव करते हैं, जब आपको मालूम है कि उसने पैसा अपनी योग्यता से अर्जित नहीं किया है ?

१५. क्या अपने से कम पैसे वालों के सामने आप अपने को अधिक श्रेष्ठ अनुभव करते हैं—भले ही वे कितने ही योग्य और कर्तृत्वशाली क्यों न हों ?

१६. क्या आपका यह दृढ़ विश्वास है कि पैसा तमाम समस्याओं को सुलझा सकता है ?

१७. क्या जब आपकी आर्थिक हालत के बारे में आपसे पूछा जाता है, तो आप बेचैनी महसूस करते हैं ?

१८. किसी भी [illegible] से कोई भी चीज खरीदते समय क्या सबसे पहले उसकी कीमत की बात आपके ध्यान में आती है ?

१९. क्या यह पता लगने पर कि जो चीज आपने खरीदी, वही आपके पड़ोसी ने आपसे कम दाम में खरीदी है, आप अनुभव करते हैं कि लो, हम बुद्धू बने ?

२०. क्या आप पैसे को तुच्छ मानते हैं और पैसे वालों से नफरत करते हैं ?

२१. क्या आप उद्योग आदि में पैसा लगाने के बजाय बैंक में जमा रखना पसंद करते हैं कि कौन जाने कब उद्योग चौपट हो जाये और आप हाथ मलते रह जायें ?

२२. क्या आपको हमेशा यही लगता है कि जितना पैसा आपने बचाया-जोड़ा है, वह काफी नहीं है ?

२३. क्या आपको अनुभव होता है कि अंततः सिर्फ पैसा ही काम देता है ?

ईमानदारी के साथ इन प्रश्नों के उत्तर हां या न में दीजिये। उत्तरों की बहुसंख्या हां में है या न में, इसके आधार पर स्वयं फैसला कीजिये कि आप अपने पैसों के मालिक हैं या पैसे आपके मालिक हैं।



लोकसभा में बहस चल रही थी। विरोधी पक्ष के एक सदस्य ने श्री फखरुद्दीन अली अहमद से यह पूछा था कि क्या यह सही है कि उन्होंने सोलह वर्ष की कन्या से विवाह किया है ? और भी प्रश्न पूछे गये थे, जो इसी तरह के चिढ़ाने वाले थे। श्री फखरुद्दीन अली अहमद जवाब देने के लिए खड़े हुए। अपनी समरस आवाज में जब उन्होंने कहा कि 'जी हां, मैंने सोलह वर्ष की एक कन्या से विवाह किया है', तो क्या कांग्रेसी और क्या विरोधी, सभी सदस्यों के कान खड़े हो गये। इसके बाद श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने धीरे-से कहा—'चालीस वर्ष पहले।' और सदन की गंभीरता हंसी में प्रस्फुटित हो गयी। —ज. प्र. च.



[पृष्ठ ९० का शेष]

था ? उन्होंने याद करने की बहुत कोशिश की, पर कुछ भी याद नहीं आ रहा था। 'शायद मैंने बहुत पी ली है', उन्होंने फिर सोचा। एक अरसे तक वे गुमसुम खड़े रहे, जैसे उन्हें होश ही न हो।

यकायक उन्हें पूर्वी पार्कवे पर हुई दुर्घटना याद आ गयी। एक विचित्र संदेह उन्हें होने लगा—शायद वे उस दुर्घटना के केवल दर्शक ही नहीं थे। शायद उस दुर्घटना के शिकार वे खुद ही थे। स्ट्रेचर पर जाता वह आदमी उन्हें जाना-पहचाना लगा। वे अपना निरीक्षण कुछ इस तरह करने लगे, जैसे वे अपने मरीजों का करते थे। उन्होंने पाया कि न तो उनकी नब्ज चल रही है, न सांस। और वे अपने आपको बड़ा हल्का-फुल्का महसूस कर रहे हैं, जैसे कि शरीर हो ही नहीं। यह कैसे संभव है ? वे बुदबुदाये। क्या कोई आदमी बिना जाने मर सकता है ? और अब ग्रेटल का क्या होगा ? वे यकायक बोल उठे—'तुम वही रैज़ेल नहीं हो।'

'नहीं ? तो फिर मैं कौन हूं ?'

'रैज़ेल को तो मार डाला गया था।'

'मार डाला गया था ? तुम्हें किसने बताया ?'

वह काफी घबरायी हुई लग रही थी। उसने अपना सिर नीचे झुका लिया था, जैसे कि कोई बड़ी बेढब खबर सुन ली हो। शायद उसे अपनी स्थिति का सही-सही ज्ञान नहीं था—डा. मार्गोलिन ने सोचा। उन्होंने सुन रखा था कि जीव किस तरह एक धुंधलके की दुनिया में रहता है। शरीर से अलग होकर भी आत्मा अर्धचेतन अवस्था में इधर-उधर भटकती रहती है, पिछले जीवन के भ्रमों से जुड़ी हुई, और अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुंच पाती। पर यह सब अंधविश्वास तो नहीं था ? 'शायद मैं शराब के नशे में हूं,' डा. मार्गोलिन ने सोचा—'और मैं जो कुछ देख रहा हूं, वह एक भ्रमजाल है...'

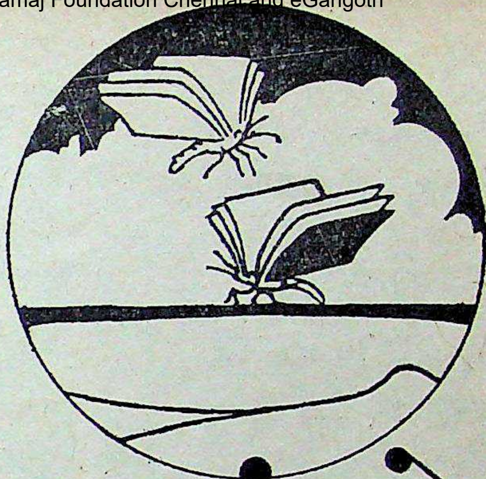
उन्होंने सामने देखा—वह अभी भी वहां पर थी। 'जब तक हम दोनों साथ हैं, इससे क्या फर्क पड़ता है ?' उन्होंने धीरे-से रैज़ेल के कान में कहा।

'मैं इस क्षण का वर्षों से इंतजार कर रही थी।'

'तुम अब तक कहां थीं ?'

उसने कोई जवाब नहीं दिया और न सोलोमन ने दुबारा पूछा। वे चारों तरफ देखने लगे। खाली कक्ष अब भर गया था, सब कुर्सियों पर लोग बैठ चुके थे। कक्ष में शांति थी, और संगीत धीमे-धीमे बज रहा था। पादरी ने आशीर्वचन बोले। अब्राहम मेखल अपनी लड़की को साथ लेकर नपे-तुले कदमों से आगे बढ़ रहा था।





ग्रंथलोक

***सार्त्रवाद और मार्क्सवाद *संपत ठाकुर; नंदिता प्रकाशन, ११ नंदिता, १५वां रास्ता, बंबई-५०; १० रुपये; ७२ पृष्ठ।**

डा. संपत ठाकुर की यह कृति, जिसमें उन्होंने पाश्चात्य जीवन-चिंतन की दो धाराओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया है, निश्चित रूप से स्तुत्य है; क्योंकि हिंदी में इस प्रकार की पुस्तकें बहुत कम हैं।

पुस्तक छह अध्यायों में विभक्त है, जिनमें सार्त्रीय अस्तित्ववाद, सार्त्रवाद की समर्थक और विरोधी मान्यताओं का विश्लेषण तथा सार्त्रवाद और मार्क्सवाद का तुलनात्मक अध्ययन है।

कीएर्कगार्ड और नीत्शे से चले अस्तित्ववाद को सार्त्र के चिंतन ने नयी दिशा दी। सार्त्र ने अपनी विचारधारा में अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद की कुछ विशेष मान्यताओं को स्वीकार करके एक नया जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया। उसी को लेखक ने अपनी पुस्तक में 'सार्त्रवाद' नाम दिया है और एक नयी विचारधारा के रूप में पाठकों के सामने रखा है।

लेखक की विशेषता यह है कि उसने न नया 'जार्गन' गढ़ा है और न पुराने 'जार्गन' को दोहराया है, बल्कि सीधे-सरल शब्दों सार्त्रीय मान्यताओं को प्रस्तुत किया है। इसलिए सार्त्र-चिंतन को समझने के इच्छुक हिंदी पाठकों के लिए पुस्तक उपयोगी है। हां, मूल्य जरा कम रहता तो यह अधिक लोगों तक पहुंच सकती थी।

०००

*** कोहरे * दीप्ति खंडेलवाल; राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली; ८ रुपये; १०२ पृष्ठ।**

जीवन की मर्मस्पर्शी व्यथा से धड़कते इस उपन्यास में दीप्ति खंडेलवाल ने दांपत्य-संबंधों पर छाये हुए कुहासे और उससे उपजी घुटन का चित्रण करते हुए इसके माध्यम से नयी और पुरानी पीढ़ी की दांपत्य - संबंधी मान्यताओं का अंतर भी दिखाया है। एक तरफ है आधुनिका स्मिता, जो अपने समर्पण के प्रतिदान में पति का पूर्ण समर्पण चाहती है। दूसरी ओर है स्मिता की ममी, जो जिंदगी-भर मेजर पति की प्रताड़ना भोगती रही है, पर मौन समर्पण करती रही है।

स्मिता को एक ऐसी पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है, जिसे पति हमेशा अपनी बंदिनी बनाकर रखना चाहता है। आधुनिक पुरुष नारी की व्यक्तिसत्ता की बात तो करता है; परंतु उस व्यक्तिसत्ता को भी अपनी अधिकार-सीमाओं में बंदी बना लेना चाहता है। स्मिता का पति सुनील इसी तरह का पुरुष है। वह स्वयं तो असर्यादित, उच्छृंखल जीवन जीता है, पर स्मिता अपनी प्रतिभा का विकास करे, यह उसे पसंद नहीं। स्मिता के टोकने पर वह तलाक तो दे देता है, पर अपने अहं को सीमित करने को तैयार नहीं हो पाता। पति से अलग होकर स्मिता अपने मेजर पापा के पास लौट आती है; परंतु भावनात्मक संतोष तो उसे अपने पूर्वप्रेमी प्रशांत में ही मिल पाता है।

दांपत्य-संबंध बहुत नाजुक चीज है। सामंजस्य, समर्पण और समझदारी इस संबंध की आधारशिला हैं। परंतु क्या ये चीजें एकतरफा हो सकती हैं? सहयोग दोनों तरफ से होना चाहिये। इसीलिए स्मिता के मम्मी-पापा का परिवार बचा रहता है, और सहयोग के अभाव में स्मिता का परिवार बिखर जाता है।

'कोहरे' नायिका-प्रधान उपन्यास है और नायिका स्मिता इतनी अधिक भावुक बना दी गयी है कि वह आज की नारी की प्रतिनिधि नहीं बन पाती। यथार्थपरक वर्तमान युग में लिजलिजी भावुकता का कोई महत्त्व नहीं है। यों भी जीवन की सार्थकता चुनौतियों को झेलने में है, टालने में नहीं।

तो भी उपन्यास के तौर पर 'कोहरे' सफल है। नारी के अंतर्मन को अभिव्यक्त करना लेखिका का उद्देश्य है और उसमें वह सफल हुई है। **—डा. उषा मंत्री**

०००

*** वन्य जीवों का संसार * रामेश बेदी; राजपाल एंड संज; दिल्ली-६; ११ रुपये; २५१ पृष्ठ।**

हिंदी में सच्चे या मनगढ़ंत शिकार-प्रसंग प्रायः छपते रहते हैं। लेकिन वन्य-प्राणियों के जीवन की जानकारी देने वाली पुस्तकों की खलने वाली कमी है। 'वन्य जीवों का संसार' इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसमें लेखक ने सिंह, हाथी, गैंडा, चीतल, सांभर, भालू, सूअर, लकड़बग्घा, ऊदबिलाव और जंगली कुत्तों के बारे में जानकारी दी है। देश के अनेक महत्त्वपूर्ण वन्य पशुओं का पुस्तक में समावेश नहीं

हुआ है, शायद पृष्ठसंख्या की सीमा के कारण। परंतु हिरन की पांच जुदा नस्लों का अलग-अलग विस्तार से वर्णन किया गया है।

वेदीजी वन्य-जीवों का नजदीक से दर्शन और अध्ययन करने के लिए वनों में खूब भटके हैं, सो उन्होंने बीच-बीच में उनके संस्मरण पिरोये हैं, जिससे रोचकता और रोमांचकता साथ-साथ चलती है। व्याकरण की भूलें रसभंग करती हैं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय और पुस्तक के पुनरीक्षक इसके लिए अधिक दोषी हैं।

०००

*** एक डिप्टी की डायरी (दो भागों में) * * छोटी-बड़ी कहानियां * निशीथकुमार राय; इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्रा. लि. इलाहाबाद; मूल्य क्रमशः १२ और १० रुपये।**

डायरी-शैली की अन्य हिंदी पुस्तकों से भिन्न 'एक डिप्टी की डायरी' में वस्तुतः एक सरकारी अफसर के संस्मरण हैं। इनमें एक निवृत्त डिप्टी कलक्टर आजादी से पहले और बाद अपने इर्द-गिर्द घटित घटनाओं के जरिये भ्रष्ट सरकारी तंत्र की रीतियों के वास्तविक चित्र खींचता है। कहीं-कहीं कल्पना का पुट जरूर है, पर इतना ज्यादा नहीं कि वर्णन अस्वाभाविक लगने लगे। भाषा-शैली पुराने ढंग की होते हुए भी रोचक और विचारोत्तेजक है। सरकारी अफसरों द्वारा अपने पद के दुरुपयोग के प्रकरण इसके प्रमाण हैं कि आजादी के आगमन से अफसरशाही के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं आया। शायद अभी आये भी नहीं। हां, लेखक ने इस दुस्साहस द्वारा अपनी अफसर-बिरादरी में 'घर का भेदी' का दर्जा जरूर हासिल किया होगा।

'छोटी-बड़ी कहानियां' साधारण और विशिष्ट दोनों ही हैं—कहानी-शैली या तकनीक की कमी के कारण साधारण, कहानियों में उद्घाटित सत्यों के कारण विशिष्ट। शैली ज्यादातर पुरानी ही है; ज्यादातर कहानियां काफी पहले लिखी गयी थीं और 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। 'बोझ', 'यादें', 'नारी मन,' 'छुटकारा', 'ब्रह्मशाप' आदि सामाजिक संदर्भ में आज भी अर्थ रखती हैं। कुछ कहानियां ग्रामीण परिप्रेक्ष्य की स्थितियों को स्पष्ट करने में सफल रही हैं।

आज की कहानी में मनःस्थितियां मुख्य होती हैं, जबकि श्री राय की कहानियों में कथा या प्लाट है, मनःस्थितियां नहीं हैं। वर्णनात्मकता भी इनमें पुरानापन ला देती है। फिर भी मूल तथ्य और स्थितियां पाठक को बांधे रखती हैं। **—हरमन चौहान**



* दुनिया की प्रथम महिला ड्राइवर थीं जेनेवेरा डेलफिन मज, जिन्होंने १८९८ में न्यूयार्क में वेवरली इलेक्ट्रिक कार चलायी थी। बाद में काररेस में कार चलाते हुए वे 'स्किड' कर गयीं और पांच दर्शकों को धराशायी कर बैठीं।



अपने लेखकों से

श्री संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कैसी रचनाएं लेते हैं? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये:

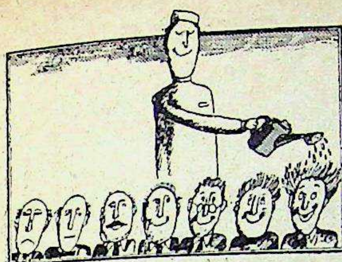
क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुरुचि को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।

ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बर्तो मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।

ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कलां के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।

* लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।
* रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सधे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।
* रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।
* रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

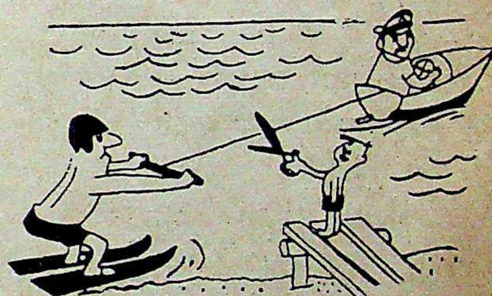
संपादक—नवनीत हिंदी डाइजेस्ट
नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई—३४





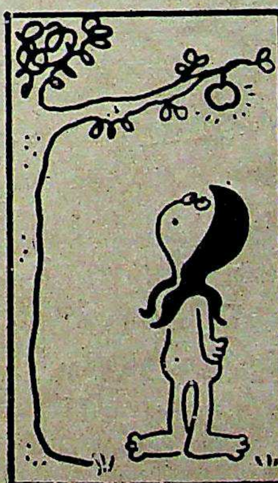
शब्दातीत













दो क्षण तो हँस लें

'सुनता हूं कि तुम्हारी फर्म के मालिक बड़े मिलनसार हैं। मालिक-मजदूर का फर्क तक नहीं मानते और तुम लोगों के साथ ताश तक खेलते हैं?'

'बिलकुल सच है। पर सिर्फ पह
तारीख को खेलते हैं।'

'पहली तारीख को ही क्यों ?'

'इसलिए कि उसी दिन हमें वेतन मिल
है। दांव में उनसे हम पैसा हार जाते हैं,
अगले वेतन तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

○

प्रेमी : फिल्मों में तुम्हारे प्यार-भरे जानदा
संवाद सुनकर ही मैंने तुम पर अपना दि
वार दिया था। पर मेरे सामने वैसे संवा
बोलने में तुम्हारी नानी क्यों मरती है ?

सिने-तारिका : व्यर्थ के आक्षेप मत लगा
इये। आपने वैसे संवाद मुझे लिखकर कह
दिये ?

○

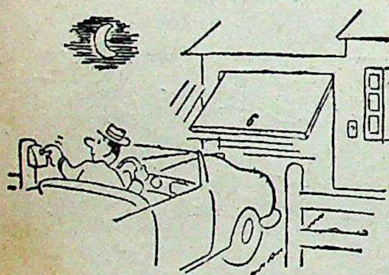
मार्क ट्वेन ने अपने मित्र से कहा-'अ
नादान ! अपनी पत्नी की बातों को काट
में अपना समय व्यर्थ क्यों कर रहे हो ? द
मिनट चुप रहो, वह खुद अपनी बातों
काटने लग जायेगी।' **-रा. वीलिनाथ**

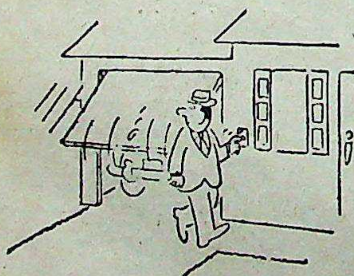
○

मित्र-१ : भाभीजी की खांसी एकदम मि
गयी है। किस डाक्टर से इलाज कराया!

मित्र-२ : इलाज ? मैंने खुद ही किया। मैं
तुम्हारी भाभी से कहा, यह खांसी उ
ढलने का लक्षण है। उसी दिन से खां

पुशबटन घर-दृश्य १







बंद हो गयी।

—गोविंद स्वामी

०

'कैसे दिये केले ?'

'डेढ़ रुपया दर्जन।'

'बहुत ज्यादा है। कुछ कम करो न ?'

'ठीक है, ग्यारह ले जाओ।'

०

वार-भविष्य पढ़ते हुए नववधू ने वर से कहा—'आप अगर दो दिन पहले पैदा हुए होते, तो बहुत उदार और प्रेमल स्वभाव के होते।'

'हां, तब मुझे पत्नी भी दूसरी मिली होती।' वर ने कहा।

—विशाल

०

पत्नी : इस लेख में लिखा है, स्त्रियों की तुलना में पुरुष ज्यादा संख्या में पागल होते हैं।

पति : किस के कारण पागल होते हैं, यह भी लेख में लिखा है कि नहीं ?

०

घबराये हुए स्वर में पत्नी ने अपने पति से कहा—'जल्दी आओ। देखो, नौकर तुम्हारे कोट की जेब टटोल रहा है।'

पति ने निर्विकार भाव से कहा—'तुम स्वयं जाकर उससे फैसला कर लो। यह तुम दोनों का मामला है। मुझे बीच में न घसीटो।'

०

उम्र को स्त्रियां पांच अवस्थाओं में बांटा करती हैं—बचपन, किशोरावस्था, जवानी, जवानी, जवानी।

—सुरजीत

०

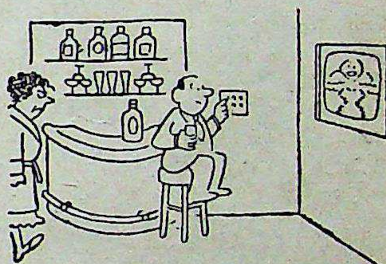
पिता : पप्पू ! तुम टामी को बहुत तंग करते हो। तुम्हें इस पिल्ले से जरा भी प्यार नहीं है। सारे दिन बेचारे को हैरान करते रहते हो। अब से तुम इसे मारोगे तो मैं भी तुम्हें मारूंगा। तुम इसके कान खींचोगे तो मैं भी तुम्हारे कान खींचूंगा।

पप्पू : अगर मैं इसकी पूंछ खींचू तो ?

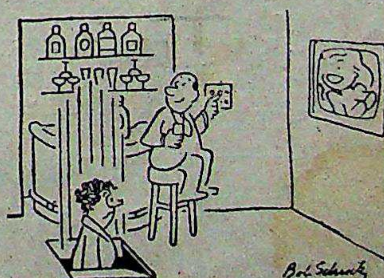
—नरेंद्र कुमार गहलोत

०

पुशबटन घर—दृश्य १ जारी









जब उत्साह नहीं, तो कुछ नहीं !

दुर्भाग्य
निरन्तर चिन्ता
कार्याधिक्य
जीर्ण अपचन
स्नायुदौर्बल्य के सामान्य लक्षण हैं
विस्मृति
भय
मिथ्या भावना
आत्महत्या के विचार
मतिभ्रम
इसके भयंकर परिणाम हैं



यदि आप स्नायुदौर्बल्य से ग्रसित हैं, तो
परामर्श करें :

कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति

KALPA PHARMACY

NAVRATNA CHOWK
JULLUNDUR CITY. Pb.

PHONE: 2401 ● GRAMS: KALPAPHAR

(कृपया अंग्रेजी अथवा हिन्दी में पत्र-व्यवहार कीजिये ।)





शक्तिदाता.
सबका आराध्य है.
पूजन में. अर्चन में.
आत्म चिंतन
मनन में.
अंधेरे में. प्रकाश में.
जीवन की प्रेरणा में.
इन सभी के मूल में
सूर्य है.
सूर्य चक्र चल रहा...
सूर्य है जल रहा.

मफतलाल

सूटिंग, शर्टिंग,
साड़ियां,
ड्रेस मॅटीरियल्स
व डेनिम.






[हिन्दी डाइजेस्ट]

फरवरी १९७९

मूल्य : रु. २.२५



एक चम्मचभर बेडेकर का अचार...

(भोजन अधिक लज्जतदार हो जाता है)

आपका भोजन शाकाहारी हो अथवा मांसाहारी बेडेकर का अचार आपके भोजन को अत्यधिक लज्जतदार बनाता है।

दाल-भात के साथ आम का अचार, दही-भात के साथ नींबू का अचार, मांसाहारी भोजन के साथ मिश्रित या मिर्ची का अचार और बच्चों व बडों के लिए नींबू के रस का अचार (इस शीशी को बच्चों से दूर रखिये नहीं तो वे दिन भर अचारही खाते रहेंगे।) बेडेकर का अचार आपके भोजन को स्वादिष्ट व रुचिकर बनाता है।

केवल बेडेकर ही आपको इतना जायकेदार अचार दे सकते हैं क्योंकि बेडेकर का अचार बनाने का वर्षों-वर्षों का अनुभव है।

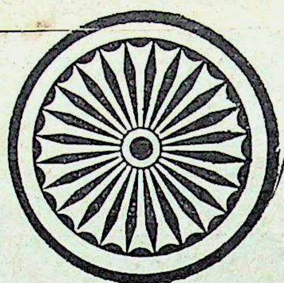


B. Vasant/VPB/4-77

बेडेकर

बम्बई ४

१७९

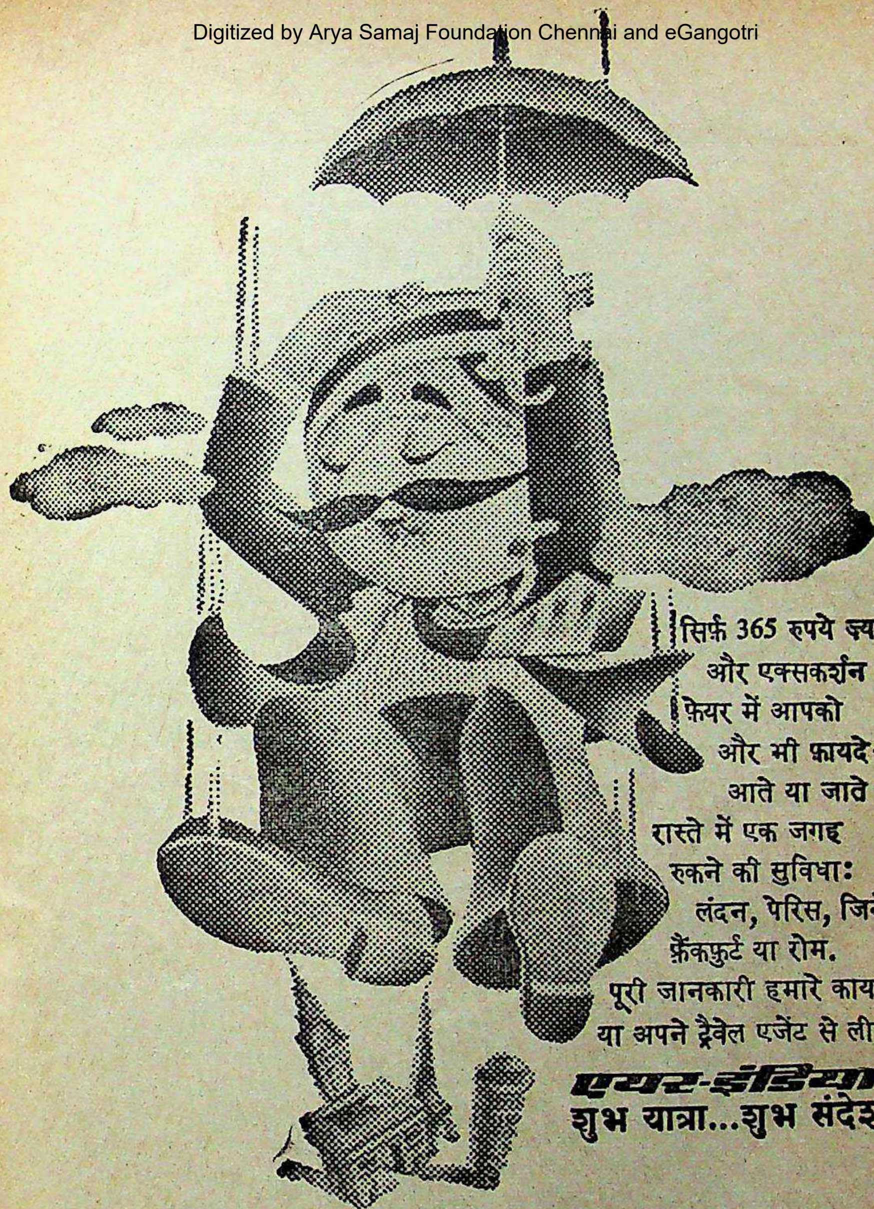


२६ जनवरी

तीन वरदानों वाली – यह पावन वर्षगांठ
आज के दिन, ४९ वर्ष पहले, हमने पूर्ण
स्वराज्य प्राप्त करने का संकल्प लिया।
आज के ही दिन, १९५० में, हमने भारत को
एक गणराज्य घोषित किया और अपने
लिए एक संविधान स्वीकार किया जिसमें
न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता
के आदर्शों को शामिल किया गया था।
दो वर्ष पहले, लगभग इसी समय, हमने संविधान
द्वारा गारंटी किये गये लोकतंत्र के रास्ते पर
अपनी यात्रा फिर से प्रारम्भ की।
इस पावन वर्षगांठ के शुभ अवसर पर –
आइये ! हम सब अपनी स्वतंत्रता फिर से कायम करने
के लिए भारत की जनता को धन्यावाद दें।
आइये ! हम उन लोगों के सपनों को साकार करने का
प्रयत्न करें, जिन्होंने स्वतंत्रता और समानता
के लिए अपने प्राणों की आहुति दी।
आइये ! हम सब पुनः संकल्प करें कि सामाजिक, आर्थिक
और राजनैतिक न्याय प्राप्त करने के
लिए तेजी से प्रयत्न करेंगे।

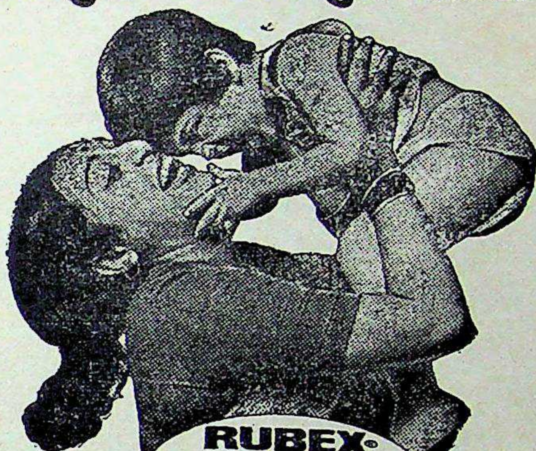
DAVP 78/394

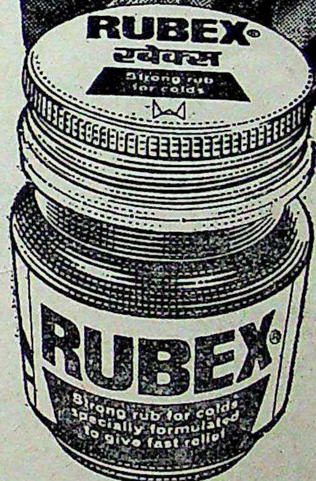
13 FEB 1979



अमेरिका जाते समय यूरोप में ठहरते हुए जाइए.

अपने मुन्ने से जैसा बर्ताव करें ...
वैसा ही बर्ताव करें उसकी सर्दी से भी.
प्यार-दुलार के साथ कुछ सख्ती भी.





रबेक्स

बस आप जैसा ही है. सर्दी के साथ सख्ती से पेश आता है. आपके मुन्ने को आराम दिलाता है.

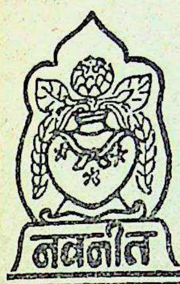
रबेक्स

सर्दी से राहत दिलानेवाली...
जलन व चिपचिपाहटरहित तेज़असर दवा.

ग्लायकोडिन के निर्माता (Alembic) एलेम्बिक की ओर से,
जो अनेक प्रकार की आधुनिक दवाएं बनाते हैं.

everest/665/ACW

फरव[illegible] १९७९



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
सहसंपादक
सुरेश सिन्हा
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक .... महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक २ फरवरी १९७९

इस अंक में



चित्रसज्जा : अबू, डा. जगदीश गुप्त, ओके, शेणै, सतीश चव्हाण, प्रह्लाद बेहेरा, दत्तप्रसन्न राणे, टी. ए. राणा।



श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित



पत्र-वृष्टि

हिंदी के वयोवृद्ध और प्रमुख पत्रकार-संपादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के लेख 'महान पत्रकार संत निहालसिंह' (जनवरी अंक) के माध्यम से इस भूले-बिसरे पत्रकार की स्मृति को आज की पीढ़ी के पत्रकारों के सम्मुख रखकर **नवनीत** ने बड़ा उपकार किया है। उस लेख से मेरी भी बाल्यकाल की कुछ स्मृतियां उभर आयीं।

शायद इस शती के द्वितीय शतक की बात है। मैं हरिद्वार में गंगा-पार शिवालक की तराई में घने वनों में नील धारा के तट पर गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का छात्र था। हमारे आचार्य प्रा. रामदेवजी की संत निहालसिंहजी से घनिष्ठता थी। उनके संपादकत्व में आर्यसमाज की ओर से अंग्रेजी में मासिक 'वैदिक मैगजीन' गुरुदत्त भवन, लाहौर से प्रकाशित होती थी; उसमें संतजी के लेख भी कभी-कभी छपा करते थे। देहरादून से वे सपत्नीक दो-तीन बार गुरुकुल भी आये थे। हम बालकों से वे खूब प्रेम करते और हमारी दिनचर्या के कई कार्यों में शामिल होते थे। छात्रों की सभा में उनके भाषण भी हुए। उनसे यह सुनकर हम बच्चों को तब आश्चर्य हुआ था कि अमरीका में सवारी का साधन इक्के और तांगे नहीं हैं; वहां मोटर-गाड़ियां हैं, जो तेल से चलती हैं और पीछे धुआं छोड़ती हैं।

परंतु मैं समझता हूं, श्री चतुर्वेदीजी ने हिंदी पत्रकारों और लेखकों द्वारा संत निहालसिंह की उपेक्षा की जाने की जो शिकायत की है, वह उचित नहीं है। कारण, निहालसिंहजी का हिंदी लेखन व पत्रकारिता से कोई संबंध नहीं था। उनके समस्त लेख अंग्रेजी में और अंग्रेजी पत्रों के लिए ही होते थे—भले उनमें से कुछ का अनुवाद श्री चतुर्वेदीजी के 'विशाल भारत' तथा अन्य किसी पत्र में प्रकाशित हुआ हो। वे अंग्रेजी के ही अंतरराष्ट्रीय लेखक थे और प्रायः विदेशों के बारे में ही लिखते थे। उनका समूचा जीवन, रहन-सहन अंग्रेजी ढंग का ही था। किसी हिंदी-संस्था से वे अपना तादात्म्य नहीं जोड़ सके। देहरादून में रहते हुए भी वे वहां की जनता और संस्थाओं से प्रायः कटे हुए ही थे। इसमें मैं उनका विशेष दोष नहीं मानता; क्योंकि उस युग का बुद्धिजीवी और शिक्षित व्यक्ति प्रायः 'सुपीरियॉरिटी काम्प्लेक्स' से ग्रस्त होकर विदेशोन्मुखता में ही गौरव समझता था।

इसी कारण, संत निहालसिंह का मृत्यु-

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से: एक वर्ष : ६० रु.; दो वर्ष : १०५ रु.; तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३०० रु., एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

समाचार हिंदी के—और संभवतः अंग्रेजी के भी—पत्रों द्वारा उपेक्षित रहा। आज के तो बहुत कम पत्रकार उनका नाम भी जानते होंगे। **—दीनानाथ सिद्धांतालंकार, जयपुर**

* हमें खेद है कि श्री चतुर्वेदीजी के लेख के अंत में उनके पते में **फीरोजाबाद** की जगह **फीरोजपुर** छप गया। कई पाठकों ने इस ओर हमारा ध्यान खींचा है। **—संपादक**

[२]

श्री चतुर्वेदीजी के लेख में संत निहालसिंहजी के चित्र के स्थान पर श्री चतुर्वेदीजी का चित्र देखकर विस्मय हुआ। आशा है, भविष्य में जिस व्यक्ति के विषय में लेख हो, उसी का चित्र भी प्रकाशित करेंगे।

—अविनाशचंद्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद

* बहुत प्रयत्न करके भी हम संतजी का चित्र प्राप्त न कर सके। यदि आप या अन्य कोई पाठक उनका चित्र भेज सकें, तो हम कृतज्ञ होंगे। श्री चतुर्वेदी का चित्र उस लेख के लेखक के नाते छापा गया है। **—संपादक**

जनवरी के **नवनीत** में शिल्पिन थान की रचना बहुत उत्कृष्ट थी। उसमें मी और नज़ीर की सादगी और हाली औ गालिब के दर्शन का बड़े ही कौशल के सा समन्वय हुआ है। इस वाग्वैदग्ध्य के लि कवि को बधाई। हरमन चौहान के 'कफ ईसा मसीह का?', 'रावणदाह' पर श्री प्रेमाचार्य की सटीक टिप्पणी, ओझाजी 'भारतीय भाषा का पहला सचित्र मासि ने मेरी ज्ञानवृद्धि की। विश्वनाथ द्वा प्रस्तुत 'आपरेशन माइंड-कंट्रोल' का सा पढ़कर चकित हुआ। वैसे हमारे यहां प्रश सन मस्तिष्क-नियंत्रण तकनीक में इतन आगे बढ़ गया है कि सरकारी कर्मचारी सत्य को सुनने कहने का साहस ही नहीं रह और जो कर्मचारी जितना ही कायर हो है, उतना ही उच्च पद प्राप्त करता है।

—विश्वप्रकाश दीक्षित बटुक, नयी दिल्

०००

'कफन ईसा मसीह का?' बेशक रोच था। यदि कोई मठ श्री शंकराचार्यजी अथ श्री रामानुजाचार्यजी की चादर का प्रद आरंभ कर दे और आप उस पर सचित्र ले छापें, तो वह भी रोचक ही होगा। शा आपको ज्ञात हो, तूरीन के कफन की 'वै निक जांच' १९६९ में भी हुई थी; म उसका परिणाम कभी छपा नहीं। देख है, इस बार की जांच का परिणाम छप है या नहीं। **—आनंद माधव, लखन**

०००

इसी अंक में श्री धीरेन्द्र कुमार दी

का लेख 'काला ताजमहल' छपा है। उसके छपने के बाद लेखक ने कुछ और जानकारी भेजी है, जिसमें से कुछ यहां प्रस्तुत है :

१. मथुरा रिफाइनरी यमुना नदी में प्रतिदिन ३ करोड़ लिटर अपशिष्ट द्रव छोड़ेगी; इस प्रकार दूषित हुआ यमुना-जल स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा करेगा।

२. रिफाइनरी को मथुरा से हटाकर ताज के दक्षिण-पूर्व में इटावा के पास लगाने से ताज प्रदूषणकारी तत्त्वों और धुएं से बच सकेगा।

३. प्रदूषण के असर से बचाने के लिए ताज पर संरक्षक-पुताई (प्रोटेक्टिव कोटिंग) करने या मिलान (इटली) के मशहूर गिरजे पर की गयी रासायनिक क्रिया करने का सुझाव कुछ ने दिया है। एक तो यह सब समय खाऊ और खर्चीला है, दूसरे इससे ताज के सौंदर्य को क्षति पहुंचेगी।

०००

बहुत समय बाद जनवरी अंक के सबके सब चुटकुले पसंद आये। नोबेल-पुरस्कृत लेखक सिंगर की 'एक शादी ब्राउन्सविल में' पढ़कर वैसी ही आंतरिक प्रसन्नता हुई, जैसी 'गोल्डमंड और नार्सिस' पढ़कर हुई थी।

—चंद्रकांत पारिख, इलाहाबाद

०००

कार्टून-पृष्ठ हर बार दें। साथ ही कार्टूनिस्टों के नाम भी।

—मणि, बेंगलूर

०००

श्री फकीरचंद तुली की कृति 'आज' (जनवरी अंक) में मुझ जैसे उन लाखों-

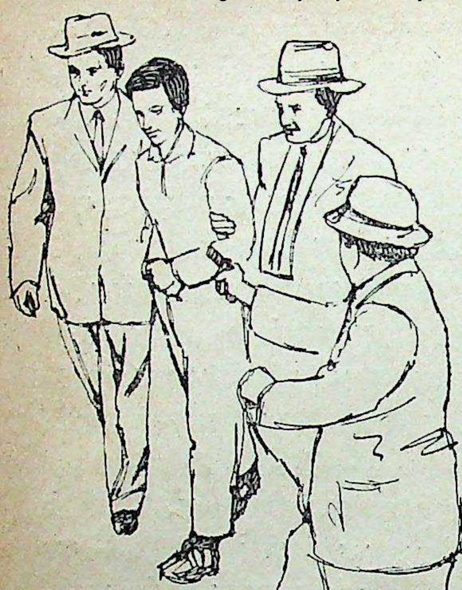
कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा भी न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेजकर मंगवायी जा सकेगी। —संपादक

करोड़ों बदकिस्मत विस्थापितों के दुःख को अत्यंत रम्य अभिव्यक्ति मिली है, जिन्हें देश के विभाजन के फलस्वरूप स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि को जन्मभूमि कहने के अधिकार से वंचित कर दिया गया है, जिनसे आशा की जाती है कि अपनी जन्मभूमि के सपूतों को भाई न कहें, दुश्मन मानें। इसमें ननकाना साहब का उल्लेख मेरी भावनाओं को और अधिक कुरेदता है; क्योंकि यदि मैं कभी अपनी जन्मभूमि को 'मत्था टेकने' जाने का सौभाग्य पा सकूं, तो मुझे पवित्र ननकाना साहब लांघकर जाना होगा।

—इंद्रचंद्र नारंग, इलाहाबाद

०००

मैंने देखा है कि अंग्रेजी से अनुवाद करते समय 'मिलियन' में दिये गये आंकड़ों को लाख-करोड़ के भारतीय क्रम में बदलने में लोग अक्सर गड़बड़ कर जाते हैं। संस्कृत में 'मिलियन' (दस लाख) के अर्थ में 'प्रयुत' शब्द है, जो आप्टे के संस्कृत-अंग्रेजी कोश में



राष्ट्रपति केनेडी के 'हत्यारे' ओस्वाल्ड पर गोली दागते हुए जैक रुबी का यह चित्र हमारे पाठक श्री क्रांतिचंद्र, नागपुर ने जनवरी अंक का पुस्तक-संक्षेप पढ़कर हमें भेजा है। उन्हें धन्यवाद।

ही नहीं, प्रायः प्रत्येक भारतीय भाषा के बड़े कोश में मिलता है। उसे अपनाने से अनुवाद में गलती से बचा जा सकता है। इसी-तरह दस हजार के लिए संस्कृत का 'अयुत' शब्द भी ग्रहणीय है।

—कृष्णलाल कोटडावाला, बंबई

* जैसा पहले किसी टिप्पणी में भी हमने लिखा था, कन्नड में 'मिलियन' को 'मिलिय' बनाकर पचा लिया गया है। **—संपादक**

०—०

'पत्र-वृष्टि' स्तंभ मैं अवश्य पढ़ता हूं; इसमें प्रबुद्ध पाठकों के विचार और संपादक की ज्ञानवर्धक टिप्पणियां रहती हैं। किंतु दिसंबर अंक की 'पत्र-वृष्टि' में केवल नामी-गिरामी लेखकों के पत्र थे। क्या ये पन्ने भी नामी लेखकों के लिए आरक्षित हो जायेंगे और प्रबुद्ध किंतु अप्रसिद्ध पाठकों के विचार छपने से रह जायेंगे?

श्री सुंदरलाल बहुगुणा के उद्धृत लेख 'यूकेलिप्टस कितना घातक' ने महत्त्वपूर्ण नयी जानकारी दी।

* इस पत्र के लेखक के हस्ताक्षर पढ़ने में हम असमर्थ रहे। **—संपादक**

०००

श्री बहुगुणाजी ने यूकेलिप्टस में जो अनेक दुर्गुण दरशाये हैं, वे सही हो सकते हैं। मगर जब तक ऐसा कोई वृक्ष न सुझाया जाये जो यूकेलिप्टस की तरह जल्दी और भरपूर ईंधन देता हो, गांवों में उसके प्रचार-प्रसार को रोकना शायद संभव न होगा।

—ज्ञानवती कपूर, लुधियाना

०००

दिसंबर अंक का प्रथम लेख 'हमारी रेलों का आधुनिकीकरण' दिलचस्पी से पढ़ा। उसमें पृष्ठ २८ पर एक्सल-काउंटर का जिक्र इन शब्दों में किया गया है—'लखनऊ की मानक संस्था ने इसका विकास किया है।' इससे ऐसा लगता है, जैसे एक्सल-काउंटर को स्वतंत्र रूप से प्रथम बार इस संस्था ने ईजाद किया है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। आगे पृष्ठ २९ पर १,५०० 'वाट' तथा २५,००० 'वाट' नहीं, 'वोल्ट' होना चाहिये। क्या

'सिग्नल गिरेगा' (पृष्ठ २७) के बजाय 'सिग्नल झुकेगा' नहीं होना चाहिये ?

'स्मृति के अंकुर' स्तंभ में छपा 'वे कातर नेत्र' पता नहीं कितने शिकारियों को शिकार से विरत करा पायेगा। परंतु मेरी आंखों के सामने तो श्री मनुभाई, मृत हिरनी और कातर नेत्रों वाले छौने का चित्र घूम रहा है।

—र. च. निगम, वाराणसी

* 'सिग्नल गिरना' तो लगभग मुहावरा बन गया है। **—संपादक**

०००

श्री ज. प्र. चतुर्वेदी ने 'हमारी रेलों का आधुनिकीकरण' में पृष्ठ ३२ पर 'शान-ए-अवध' को लखनऊ को दिल्ली से जोड़ने वाली गाड़ी बताया है। वास्तव में वह गोरखपुर को लखनऊ से जोड़ती है।

'भारत का प्रथम पितृहंता राजवंश' (डा. अ. ला. श्रीवास्तव) के संदर्भ में, यह जानकारी पाठकों को दिलचस्प लगेगी कि मगध-सम्राट बिंबिसार जिस कारागार में कैद था, वह आज भी राजगीर (जि. नालंदा, बिहार) में रेल्वे स्टेशन से 'रोप-वे' जाने वाली मुख्य सड़क के बायीं ओर लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर मौजूद है। वह लगभग २०० फुट लंबा और उतना ही चौड़ा है। कहते हैं, इस कारागार से बिंबिसार गृध्रकूट पर स्थित भगवान बुद्ध को देख सकता था।

—सूर्यकांत त्रिपाठी,
शेरपुर (मिर्जापुर), उ. प्र.

०००

कुछ पाठकों से हमें पत्र मिले हैं कि जनवरी अंक में छपी कविता 'आज' से उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंची है। यह जानकर हमें बहुत दुःख हुआ; क्योंकि सब धर्मों और उनके महापुरुषों का समादर करना नवनीत का नियम है।

पंजाबी में छप चुकी इस छोटी कविता को हमने इसलिए चुना था कि देश-विभाजन में अपना जन्मस्थान गंवा बैठने वालों का गहरा दर्द इसमें मुखरित हुआ है—खासकर सिक्खों का, जिनके लिए उनके कई पवित्र धर्मस्थान 'विदेश' हो गये। कवि ने इसी की शिकायत व्यंग्यशैली में सीधे गुरु नानकदेवजी से की है।

हमारे अनजाने में हमारे पाठकों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंची, इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। —संपादक

श्री रमेशदत्त शर्मा का 'अब दालों की बारी है' (दिसंबर अंक) बहुत ही अच्छा लगा। कितना अच्छा हो कि इस प्रकार की कृषि-संबंधी जानकारी **नवनीत** में प्रत्येक अंक में हो। साथ ही यह भी बताया जाये कि नये विकसित बीज कहां, किस मूल्य पर मिल सकते हैं; इससे कृषकों को लाभ होगा।

—महावीर प्रसाद शर्मा,
सरवाड (अजमेर), राजस्थान

०००

नवनीत में जो कविताएं आप प्रकाशित करते हैं, वे पत्रिका के स्तर को देखते हुए घटिया और उथली होती हैं। पत्रिका का कलेवर ऐसी ओछी कविताओं से न भरकर

उच्च कोटि की भावपूर्ण, सरस तथा सुंदर कविताओं से सजायें, तो सोने में सुगंध होगी। **—भगवतीप्रसाद, अलीगढ़, उ. प्र.**

०००

सितंबर अंक में पृष्ठ ३५ पर आचार्य कृपलानी की उक्ति पढ़ी। वास्तव में यह शब्द 'कृपलानी' न होकर 'कृपालाणी' है। रोमन लिपि में लिखते समय हमें 'ण' के लिए भी 'एन' का ही उपयोग करना पड़ता है; क्योंकि उस लिपि में 'ण' के लिए कोई अक्षर नहीं है। लेकिन हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को तो 'कृपालाणी' लिखने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये।

हमारे सूचना व प्रसारण मंत्री का नाम भी बहुधा अशुद्ध लिखा जाता है; उनका नाम वास्तव में 'लालकृष्ण आडवाणी' है, न कि 'लालकृष्ण आडवानी'। सिंधी शब्द आडवाणी में 'ड' अक्षर के स्थान पर सिंधी अक्षर है, वह हिंदी भाषा में होता नहीं है। इसलिए नागरी में सिंधी लिखते समय प्रायः नागरी के 'द' अथवा 'ड' को रेखांकित करके काम चलाया जाता है।

—अनंत कृपालाणी, आदिपुर-कच्छ

०००

पेशे से किसान हूं। कृपया हम किसानों के लिए भी थोड़ी-बहुत सामग्री दिया करें। कुछ महीने आपने 'हरा कोना' स्तंभ चलाया था, वह उपयोगी था। बंद क्यों कर दिया?

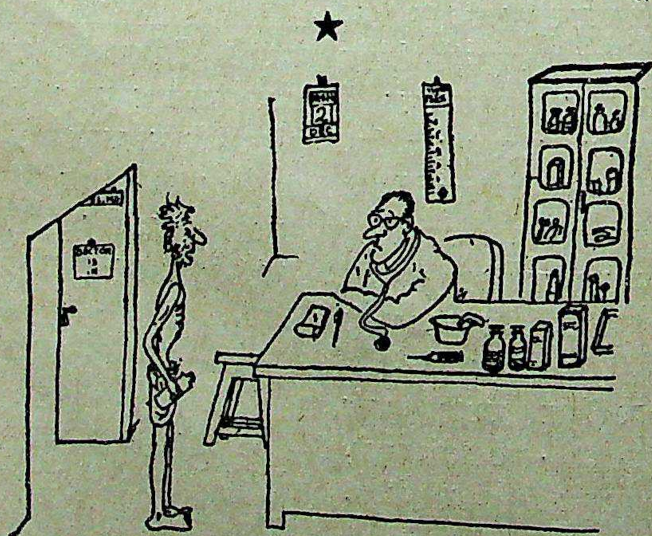
—अनिल कुमार गुप्ता, पूर्णमा-८५४३

०००

अब **नवनीत** में 'वाक्यदीप' प्रकाशित नहीं हो रहा है; उस पृष्ठ से मुझे आत्मिक शांति और ज्ञान-दीप्ति मिलती थी।

—नारायणराव टकले, महू (कैंट), म.प्र.

★



डाक्टर साहब, आपका बताया टानिक तो मैंने लिया; पर उसे खरीदने के लिए मुझे पांच दिन भूखे रहना पड़ा।

(अबू : इंडियन एक्सप्रेस)

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताड़देव, बंबई-४०००

जापानी एन्सिफेलाइटिस

डा. बी. शंकरन्
महानिदेशक–स्वास्थ्यसेवा, भारत सरकार

देश के कुछ हिस्सों में फैल रहे रोग जापानी एन्सिफेलाइटिस से निश्चय ही आप लोग भी चिंतित होंगे।

जापानी एन्सिफेलाइटिस ऐसा रोग है, जो मुख्यत: मस्तिष्क को और उसके चारों ओर की श्लेष्माझिल्ली को प्रभावित करता है। यह रोग पैदा होता है एक विषाणु से जो तंत्रिकाओं से विशेष रूप से संलग्न हो जाता है। तंत्रिकाओं से संलग्न होने वाले एक अन्य विषाणु से ही पोलियो (पोलियोमाइलाइटिस) होता है; वह विषाणु सुषुम्णा (स्पाइनल कार्ड) से संलग्न हो जाता है।

एन्सिफेलाइटिस के विषाणु को मनुष्य के शरीर में पहुंचाता है उसका वाहक मच्छर। क्युलेक्स मच्छरों की सात किस्में हमारे यहां इस विषाणु के वाहक के रूप में पहचानी गयी हैं। एनोफेलिस मच्छर की एक किस्म को भी यह विषाणु फैलाते पाया गया है।

विषाणु जब मस्तिष्क में पहुंच जाता है तो वहां सूजन पैदा करता है। यह सूजन शरीर का रक्षण और संचालन करने वाली महत्त्वपूर्ण क्रियाओं में बाधा डालती है। अंतत: जब बीमारी प्रबल हो जाती है और महत्त्वपूर्ण क्रियाएं रुक जाती हैं, तब रोगी की मृत्यु हो जाती है।

इसलिए इस रोग-संक्रमण की बुनियादी चिकित्सा यह है कि दवा देकर सूजन उतारी जाये, जिसके लिए मैनिटाल और डेकाड्रोन जैसी दवाइयां दी जाती हैं। इस चिकित्सा से सूजन घट जाती है, खास करके अगर चिकित्सा आरंभिक अवस्था में ही शुरू कर दी जाये तो।

यह रोग जैसा कि आप भी जानते होंगे, दक्षिण पूर्व एशिया के और भी कई देशों में देखा गया है–विशेषत: फिलिपाइन्स, इंडोनेसिया, थाइलैंड, मलेशिया और जापान में। इसके विषाणु को जापान में पृथक् किया गया था, इसलिए उसे 'जापान-बी एन्सिफेलाइटिस' कहा गया। इससे यह स्पष्ट है कि इस रोग की दूसरी कई किस्मों के विषाणु भी पृथक् किये जा चुके हैं।

यों एन्सिफेलाइटस कोई नया रोग नहीं है। पहले भी दूसरे विषाणुओं की मेहरबानी से इस रोग की वारदातें होती रही हैं। मच्छरों के उन्मूलन का उद्देश्य यह है कि यह एन्सिफेलाइटिस फैले नहीं। इसलिए इस रोग की रोकथाम के कार्यक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है मच्छरों का उन्मूलन–विशेषत: क्युलेक्स मच्छरों का उन्मूलन।

● 'आकाशवाणी' से साभार ●

पिछले पांच वर्षों में जापानी एन्सिफलाइ-टिस ११ हजार भारतीयों की जान ले चुका है। पिछले साल (मध्य दिसंबर तक) देश के सोलह राज्यों से ६,६०० नागरिकों को यह रोग होने की सूचना मिली; उनमें से २,३५९ की मृत्यु हो गयी। कविराज बृहस्पतिदेव त्रिगुण तथा अन्य कई आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने दावा किया है कि आयुर्वेद द्वारा सभी प्रकार के एन्सिफेलाइटिस का उपचार संभव है, और सफलतापूर्वक किया भी जा रहा है।

क्युलेक्स मच्छरों की जो किस्में यह रोग फैलाती हैं, वे प्रायः धान के खेतों में और शहरों में गंदे पानी के जमावों में रहती हैं। बड़े शहरों की गंदी बस्तियों, गंदे नालों और चहबच्चों में भी वे पनपती हैं। मच्छरों की आबादी बहुत बढ़ने न देने के लिए इन स्थलों पर दवा का छिड़काव करना चाहिये। छिड़काव पी-एक्स-ई, मेलाफियोन, पाइरेथ्रान या डी. डी. टी. में से किसी का भी किया जा सकता है।

घर के भीतर और बाहर की दीवारों पर छिड़काव करना भी बहुत जरूरी है। इससे मच्छरों की आबादी काफी हद तक घटेगी। अगर छिड़काव करके मच्छरों की आबादी घटा दी जाये तो बीमारी की वारदातें भी कम होती जायेंगी। छिड़काव की कार्रवाई बड़ी हद तक उन सभी इलाकों में शुरू हो चुकी है, जहां से रोग के संक्रमण की खबरें आयी हैं। इसलिए हमें आशा है कि कुछ समय बाद वक्त के साथ-साथ इसकी वारदातें कम होती जायेंगी। मगर एक दिन में दूर नहीं हो जायेगा यह रोग।

दुर्भाग्य से इस रोग में मृत्युदर बहुत ऊंची है। लेकिन बीमारी अगर शुरू में पहचान ली जाये तो मृत्युदर निश्चय ही नीची की जा सकती है। फिर भी जो लोग मरने से बच जाते हैं, उनमें रोग के कुछ परिणाम या अवशेष रह जाते हैं। बहुधा वे बोलने में असमर्थ हो जाते हैं; या उन्हें मतिभ्रंश हो जाता है, जिससे उन्हें आस-पास की चीजों का बोध नहीं होता। उन्हें आधे शरीर का पक्षाघात (अरधंग) हो सकता है या हाथों और पैरों का पक्षाघात। इसलिए भी जरूरी है कि इस रोग का बहुत गंभीरता से उपाय किया जाये।

यह तो मैं विस्तार से कह ही चुका हूं कि मच्छर इस रोग के विषाणु का वाहक है और उसका उन्मूलन आवश्यक है। वर्षों पहले जब हमारे देश में इस विषाणु को पृथक् किया गया था तब यह भी पता चला था कि इसके दूसरे भी 'मध्यवर्ती मेजबान' (इन्टर मीडियरी होस्ट हैं—विशेषतः सूअर और बत्तख। चौपायों में सूअर के सिवा और कोई 'मेजबान' नहीं देखने में आया है। ये 'मध्यवर्ती मेजबान' विषाणु के स्टोर का काम करते हैं और रोग फैलाते हैं। इसलिए जरूरी है कि विशेषतः रोगाक्रांत इलाकों में सूअरों को दूर रखा जाये और उनके बाड़ों में दवा का छिड़काव किया जाता रहे।

मच्छर जब सूअर को काटता है, विषाणु

सूअर के शरीर में पहुंच जाता है और वहां से वह मनुष्य में पहुंच सकता है, हालांकि सूअर को रोग नहीं भी हो सकता। सौभाग्य से हमारे यहां सूअर उतनी बड़ी संख्या में पाले नहीं जाते, जितने कि दक्षिण-पूर्व एशिया के कई देशों में पाले जाते हैं। इसलिए हमारे यहां वे उतना बड़ा सिरदर्द नहीं हैं। जापानी एन्सिफेलाइटिस की रोकथाम का दूसरा साधन है टीका (वैक्सीन)। अभी तो यह टीका दुनिया-भर में सिर्फ जापान में बनता है। इसलिए बहुत सीमित मात्रा में उपलब्ध होता है। चूहे के मस्तिष्क में विषाणु का इंजेक्शन देकर यह टीका तैयार किया जाता है। सामान्यतः चार से दस दिन के अंतर से दो बार टीका लगाया जाता है। अटलांटा (अमरीका) के सेंटर फार कम्युनिकेबल डिसीज़ेस के अनुसार, इस टीके से प्राप्त होने वाली सुरक्षा औसत से लेकर अच्छी तक पायी गयी है।

जापान में इस टीके का उपयोग मुख्यतः पांच वर्ष के या उससे छोटे बच्चों पर किया जा रहा है; क्योंकि इससे बड़ी उम्र वालों को इस रोग के विषाणु का संक्रमण हो चुका होगा और उनमें इसके प्रति अवरोध पैदा हो चुका होगा।

यह टीका बेहद महंगा है; इसलिए नहीं कि इसे बनाने में बहुत खर्चा आता है, बल्कि इसलिए कि इसे बहुत निम्न तापमान पर ही सावधानी से रखना पड़ता है। विशेषतः एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते-ले जाते हुए इसे ऋण ६ से ऋण ३० अंश के तापमान पर रखना पड़ता है। परिणामतः इसकी एक खुराक २० रुपये की पड़ती है।

मगर बड़े पैमाने पर टीके का सहारा लेने से जो हमें चीज रोक रही है, वह खर्च की चिंता नहीं है। टीके का अत्यंत सीमित मात्रा में प्राप्त होना और उसे सुदूर रोग-स्थल तक पहुंचाने की कठिनाइयां इसमें अड़चन डाल रही हैं। साथ ही आबादी के इतने बड़े वर्ग पर इसके इस्तेमाल के लाभ भी अभी पक्के तौर पर सिद्ध नहीं हुए हैं।

मगर हमें अंततः अपने ही देश में टीके का निर्माण शुरू करना ही होगा; क्योंकि ऐसा नहीं लगता कि इसी साल यह रोग पूरी तरह थम जायेगा। मगर टीके का निर्माण आरंभ करने से पहले विशेषज्ञों से बहुत सलाह-मशवरा करना होगा, बहुत-सी जांच-पड़ताल करनी होगी, उसकी क्षमता और आम जनता को उसकी प्राप्ति का हिसाब लगाना होगा, उत्पादन व भंडारण और इतने बड़े देश में सर्वत्र उसके वितरण की समस्याओं को समझना होगा।

मेरी अपील तो यह है कि गंदे पानी के तलैयों और मच्छरों के उन्मूलन में और दवा के छिड़काव में सारा समाज हिस्सा ले, जहां तक संभव हो मच्छरदानियों का उपयोग किया जाये और मच्छरों को मुसीबत बनने से रोका जाये।



माओ से पीछे हटता चीन

जापानी अधिकारी इन दिनों चीन के भविष्य को लेकर एक विचित्र पहेली बूझने में व्यस्त हैं। गत वर्ष के आरंभ में जापान और चीन के बीच संधि-वार्ता चल रही थी, तब दोनों देशों के बीच क्षेत्रीय विवाद का प्रश्न भी सामने आया था। इस पर चीन के उपप्रधान-मंत्री तेंग स्याओ-पिंग ने सुझाव दिया कि क्षेत्रीय विवाद पर दस-बीस वर्षों तक विचार नहीं करना चाहिये। 'उसके बाद कौन जाने चीन में कैसी व्यवस्था रहे' उन्होंने कहा था !

तब तो तेंग की उस बात पर किसी ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया था। पर चीन की हाल की घटनाओं को देखते हुए उनकी उस छोटी-सी उक्ति के अनेक अर्थ लगाये जा रहे हैं। दूर की कौड़ी लाने वाले कुछ प्रेक्षकों का तो यह भी कहना है कि चीन में वस्तुतः गैर माओ-वादी व्यवस्था की स्थापना के प्रयास आरंभ भी हो गये हैं; और यह भी कि इन प्रयासों का नेतृत्व तेंग स्याओ-पिंग ही कर रहे हैं।

नवंबर १९७८ में चीन में जो कुछ हुआ, उसकी कुछ समय पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। प्रदर्शनों और पोस्टरों की बाढ़ तो वहां पहले भी अनेक बार आयी है; परंतु पहले ये सब माओ त्से-तुंग के विचारों के समर्थन में होते थे। इस बार उनमें जन-तांत्रिक अधिकारों की मांग की गयी और सामंती फासिस्ट ताना-शाही को समाप्त करने का आह्वान दिया गया। इतना ही नहीं, इस बार प्रदर्शनकारियों ने 'जनतंत्र जिंदाबाद!' के नारे लगाये और गुप्त मतदान से चुनाव कराने की मांग की।

प्रदर्शनकारियों का आरोप था कि चंद नेताओं के दकियानूसीपन के कारण ही चीन आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है। एक पोस्टर में चुनौतीपूर्ण शब्दों में पूछा गया था—'हम ताइवान से पीछे क्यों रह गये? हमारी अर्थव्यवस्था उनके मुकाबले आगे क्यों नहीं बढ़ रही?' एक अन्य पोस्टर में सीधी चोट की गयी थी—'मुट्ठी-भर लोगों की बदनाम चौकड़ी दस साल तक देश में मनमानी कैसे करती रही?'

साफ बात थी कि चीनी क्रांति के बाद स्थापित व्यवस्था के आधारभूत सिद्धांतों को ही ये लोग चुनौती दे रहे थे। राजनैतिक विसहमति का यह अभियान एकाएक नहीं भड़क उठा था। पिछले कितने ही महीनों से माओ त्से-तुंग के विचारों की सार्थकता

को लेकर चीनी नेताओं में जमकर बहस चल रही है। माओ ने स्वयं गलतियां सुधारते रहने पर जोर दिया था; यह दीगर बात है कि उन्होंने स्वयं शायद ही कभी कोई गलती स्वीकार की हो। लेकिन माओ के कथनों का ही हवाला देकर अब तेंग स्याओ-पिंग व उनके समर्थक कह रहे हैं कि माओ ने भी अपने जीवन-काल में अनेक गलतियां की हैं। 'वे कुशल रणनीतिज्ञ थे। उनके ७० प्रतिशत काम सही थे, तो ३० प्रतिशत गलत भी थे।' दूसरे शब्दों में, माओ मसीहा नहीं, बल्कि साधारण मनुष्य थे।

तीस वर्षों तक सुबह से लेकर आधी रात तक, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक क्रिया-कलाप के लिए माओ-विचार को दिव्यवाणी से भी अधिक पवित्र और प्रभावी मानने वाले देश के लिए माओ की यह मानव-छबि सचमुच अनजानी है। १९४५ से चीनी साम्यवादी माओ-विचार को शास्त्र-सिद्धांत का सर्वोत्तम सार मानते रहे हैं। सन पचास वाले दशक में थोड़े समय चले वैचारिक उदारता के दौर में जब 'सौ फूलों को साथ-साथ खिलने दो' के नारे का जोर था, तब भी माओ-विचार को सीधी चुनौती नहीं दी गयी थी। और सांस्कृतिक क्रांति के दौरान तो माओ की लाल किताब चीन के युवा क्रांतिकारियों की नजरों में, जीवन और जगत की सभी समस्याओं का त्रैकालिक समाधान प्रस्तुत करने वाली धर्म-पुस्तक बन गयी थी। लेकिन अब माओ के उत्तराधिकारी ही कह रहे हैं कि वे समाधान गलत थे।

बात कहां तक पहुंच गयी है, इसका अंदाज कराता है चीन के 'क्वांगमिंग दैनिक' में प्रकाशित एक लेख, जिसमें सन साठ वाले दशक में चली सांस्कृतिक क्रांति को राष्ट्र के लिए अपव्ययकारी कहा गया है। यह लेख माओ के एक भूतपूर्व सचिव ने लिखा है, जिसे सांस्कृतिक क्रांति के दौर में पदच्युत किया गया था। उसने सुझाव दिया है कि चीन की वर्तमान सरकार-नियंत्रित अर्थ-व्यवस्था समाप्त की जाये और उसकी जगह पश्चिमी ढंग की अर्थव्यवस्था स्थापित हो।

अवधनंदन

इतना ही नहीं, विवादों का फैसला पार्टी के अफसरों पर न छोड़कर न्यायाधीशों को सौंपा जाये।

'पीपल्स डेली' के ७ नवंबर १९७८ के अंक में छपा काओ चेन-तुंग नाम के एक सैनिक का पत्र भी चीन में चल रहे सैद्धांतिक विवाद का स्पष्ट संकेत देता है। इस पत्र में काओ ने पूछा है—'जनता अपने लिए प्रबंध करने वाले और अपने हितों तथा मांगों को व्यक्त करने वाले अधिकारियों का चुनाव क्यों नहीं कर सकती?' अपने पत्र में काओ ने इस मान्यता को चुनौती दी है कि पार्टी या सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी जनता के हितों और अपेक्षाओं को समझते हैं। उसका कहना है—'चुनाव कराने से जनता को सचमुच लगेगा कि वह स्वामिनी है। आप ही विचार कीजिये कि जब किसी

अफसर का भाग्य-निर्णय जनता के हाथ में रहेगा, तो क्या वह (अफसर) लोगों को आतंकित कर सकेगा, या व्यक्तिगत फायदा उठा सकेगा, या धोखाधड़ी कर सकेगा?'

जनतंत्र में भी नौकरशाही के भ्रष्टाचार और मनमानी भुगत चुके हम लोगों को काओ चेन-तुंग का पत्र खामखयालियों से भरा लग सकता है; किंतु परिवर्तन की जिस कामना ने उसे पत्र लिखने को प्रेरित किया, उसे कैसे कम आंका जा सकता है?

वस्तुत: 'क्वांगमिंग दैनिक' और 'पीपुल्स डेली' में प्रकाशित इस तरह की सामग्री के पीछे सबसे बड़ी प्रेरणा काम कर रही है तेंग स्याओ-पिंग की। तेंग को १९७६ में 'पूंजीवादी मार्ग का राहगीर' कहकर अपने पद से बर्खास्त कर दिया गया था। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में माओ ने स्पष्ट रूप से जान लिया था कि तेंग का समूचा दृष्टिकोण माओ-विचारधारा के प्रतिकूल है। इस खतरे को समझकर ही उन्होंने १९७६ में पीकिंग के तिएन आन मीन चौराहे पर चाउ-स्मृति को लेकर हुए प्रदर्शनों के दो दिन बाद ही तेंग को सत्ताच्युत करा दिया था। लेकिन माओ की मृत्यु के बाद तेंग न सिर्फ वापस अपने पद पर आ गये, बल्कि उन्होंने माओ-विचार को दरगुजर करके चीन के तेजी से आधुनिकीकरण का अभियान भी शुरू कर दिया।

माओ ने पिछले बीस वर्षों में स्वावलंबन पर लगातार जोर दिया था, किंतु अब चीन को विदेशी सहायता से कोई परहेज नहीं रह गया है। १९७८ के आरंभ में चीन के केंद्रीय अधिकारियों ने प्रांतीय और उपप्रांतीय अधिकारियों को विदेशी व्यापारिक प्रतिष्ठानों से सौदे तय करने के भी कुछ अधिकार दे दिये। साथ ही साथ स्थानीय कारखानों के लिए विदेशी उपकरण खरीदने के लिए विदेशी मुद्रा की मात्रा भी दो गुना कर दी गयी। इसी बीच चीन में विदेशी वस्तुओं के आयात की भी छूट दे दी गयी, ताकि लोगों को विश्वास हो जाये कि वर्तमान नेता चीनियों का जीवन-यापन स्तर ऊंचा उठाना चाहते हैं।


तेंग स्याओ-पिंग

तेंग की इन आर्थिक नीतियों के अंतर्गत ही चीन के ५० प्रतिशत कामगारों के वेतन में वृद्धि की गयी जो कि १९६२ के बाद पहली वेतन-वृद्धि है और अनेक कारखानों में निश्चित परिमाण से अधिक उत्पादन करने पर नकद बोनस देने की योजना शुरू की गयी।

सन २००० में अमरीका की बराबरी

कहने की जरूरत नहीं कि

कट्टर माओवादी नकद बोनस के सुझाव को 'पूंजीवादी प्रोत्साहन' मानते रहे हैं। उनकी मान्यता है कि श्रमिक लोग मुनाफे के लालच से नहीं, बल्कि सैद्धांतिक शिक्षण और प्रेरणा से ही अधिक उत्पादन करते हैं। इसके विपरीत, तेंग का कहना है कि सैद्धांतिक विवाद के चक्कर में चीन का काफी नुकसान हो चुका; अब हमें तेजी से अपनी अर्थव्यवस्था को २१ वीं सदी के लिए तैयार करने और देशवासियों का जीवन-यापन-स्तर ऊंचा उठाने के काम में जुटना चाहिये।

तेंग सैद्धांतिक चर्चा को कितना कम महत्त्व देते हैं, यह उनकी एक उक्ति से बड़े पैने रूप में प्रकट होता है—'बिल्ली चाहे काली हो या सफेद, अगर वह मूसे मारती है तो काम की है। चीन के त्वरित आर्थिक-विकास में तेंग पूंजीवादी बिल्ली के उपयोग के लिए भी तैयार हैं।

अब तो चीन में स्पष्टतः स्वीकार किया जाने लगा है कि 'औद्योगिक-आर्थिक विकास की हमारी तेजी से बढ़ती प्यास को बुझाने के लिए यदि पूंजीवादी स्रोतों का भी कुछ पानी चुराना पड़े, तो क्या हर्ज है!' किंतु क्या चोरी का पानी चीनियों की साम्यवादी मनोरचना को भी प्रभावित नहीं करेगा? पूंजीवादी चावों का चस्का एक बार लग गया, तो उसे छुड़ाया कैसे जायेगा?

चीन के वर्तमान नेताओं में इसकी सबसे अधिक चिंता शायद पार्टी चेयरमैन एवं प्रधान-मंत्री हुआ कुओ-फेंग और उनके अनुयायियों को है। हुआ जरूरी परिवर्तन के पक्षपाती तो हैं, परंतु माओवाद को पूरी तरह तिलांजलि देने के हक में नहीं हैं। चीनी मामलों के कुछ विशेषज्ञों का तो कहना है कि हुआ और तेंग वस्तुतः चीन के शासक-वर्ग में दो जुदा गुटों के प्रतिनिधि हैं। हुआ के मुख्य समर्थक हैं कट्टर माओवादी, जबकि तेंग की शक्ति का आधार है औद्योगिक विकास के साथ पनप रहा आधुनिक प्रबंधकों-व्यवस्थापकों का वर्ग। वर्षों तक माओ-विचारधारा के एकछत्र प्रभाव के कारण दबे हुए बुद्धिजीवियों का भी समर्थन तेंग को प्राप्त है। जैसे-जैसे विदेशों से चीन का संपर्क बढ़ रहा है, वैसे-वैसे चीनी राजनयिकों, वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों में भी तेंग का प्रभाव बढ़ रहा है।

नवंबर १९७८ के पोस्टर-प्रदर्शन अभियान के दिनों में तो अनेक प्रेक्षकों ने कहा भी था कि इस अभियान की ओट में तेंग-हुआ का ही शक्ति-संघर्ष है और इस अभियान को तेंग का आशीर्वाद प्राप्त है। अनुमान शायद निराधार न रहा हो; परंतु दिसंबर १९७८ के आरंभ तक यह बात स्पष्ट हो गयी कि तेंग भी इस संघर्ष को निर्णायक परिणाम तक पहुंचाने की स्थिति में नहीं हैं। मामले को हाथ से निकलता देखकर ही उन्होंने एक वाक्य में सारे अभियान को रफा-दफा कर दिया। उन्होंने कहा—'माओ ७० प्रतिशत सही और ३० प्रतिशत गलत थे, मैं तो ६० प्रतिशत ही सही और ४० प्रतिशत गलत हूं।' मतलब बिलकुल सीधा था कि तेंग माओवादी नीतियों को

पूरी तरह से बदलकर भी माओ के मिथक को नष्ट नहीं करना चाहते।

माओ का मिथक आज भी चीन के शासक वर्ग को जोड़े रखने में सहायक है। उसे पूर्णतया नष्ट करने का अर्थ होगा चीनी नेताओं में खुला आपसी संघर्ष। ऐसा संघर्ष अगर छिड़ गया तो चीन का त्वरित आर्थिक विकास करने की तेंग की तमन्ना पूरी होने के बजाय कुछ ज्यादा ही पिछड़ जायेगी। इस खतरे को समझकर ही तेंग तथा उनके समर्थकों ने हुआ-विरोधी संघर्ष को धीमा करने का निश्चय किया हो, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। कुछ आर्थिक प्रेक्षकों ने तो यह भी कहा है कि तेंग इस समय संघर्ष को तेज करके विदेशी पूंजी के विनियोजकों को पसोपेश में नहीं डालना चाहते। स्थायित्व और आंतरिक शांति की तस्वीर प्रस्तुत करके ही वे विदेशी पूंजी को आकृष्ट कर सकते हैं।

तेंग के वक्तव्य के बाद चीन के उथल-पुथल-भरे वातावरण में बदलाव आया। चीनी अधिकारी माओ-विरोधियों की शक्ति को सुरक्षित और कम जोखिम वाली दिशा में मोड़ने का प्रयत्न करने लगे। सरकारी इशारे पर चेयरमैन हुआ के समर्थन में भी प्रदर्शन होने लगे, जिनमें 'अनुशासन-सहित जनतंत्र' के नारे लगाये गये। प्रदर्शन के दौरान एक वक्ता ने माओ की गलतियों को सुधारने की बात कहने के साथ ही प्रदर्शनकारियों को चेतावनी दी कि वे शरारती तत्त्वों से सावधान रहें और कानून तथा व्यवस्था का पालन करें। इसी बीच ए पोस्टर में माओ-विरोधियों को चेताव दी गयी कि वे अपनी हरकतों से बा आयें। चेतावनी बेअसर न रहे, इसलि स्वयं तेंग ने कनाडा के एक पत्रकार बातचीत में कहा—'दीवार पर जनतंत्र बात अच्छी है। परंतु इन पोस्टरों में बातें गलत भी थीं। हर चीनी जानता कि चेयरमैन माओ के बिना आज का न चीन अस्तित्व में भी नहीं आता।'

हो सकता है, माओ के प्रति तेंग की श्रद्धापूर्ण उक्ति केवल तात्कालिक रा नैतिक स्वार्थ से प्रेरित हो। किंतु यह अ भी संदिग्ध है कि इस तरह की उक्ति चीन में भीतर ही भीतर चल रहे संघ को अधिक समय तक दबा रख पायेंगी। कारण, यह संघर्ष जितना सत्ता-शक्ति है, उतना ही विचारों का भी है। वर्षों त सारी दुनिया से अलग-थलग रहने के बा एक विशाल राष्ट्र सर्वथा अपरिचित परि स्थितियों और पूर्णतया अनजानी व्य स्थाओं के संपर्क में आ रहा है। दिसंब १९७८ के आरंभ में चीनियों ने तेंग स्याओ पिंग की जापान-यात्रा की फिल्म दूरदर्श पर देखी, उसी के माध्यम से ही उन्हें जा जापान के वैभवपूर्ण जीवन का पहली बा परिचय मिला।

अब १ जनवरी १९७९ से संयुक्त रा अमरीका ने भी चीन को मान्यता दे दी है इस मान्यता के साथ ही चीन के संपर्कों और वृद्धि होगी। ऐसी स्थिति में चीनि

के मन में अपनी व्यवस्था के संबंध में उठ रही शंकाएं यदि विस्फोटक रूप लें, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। वस्तुतः प्रदर्शनों के पहले दौर के बाद उन्हें नियंत्रित करने का सरकारी प्रयत्न शुरू होते ही चीन में एक पोस्टर लगा था—'तुम लोग जनता पर एक बार फिर खामोशी थोप सकते हो। लेकिन इससे कोई समस्या हल नहीं होगी।' कौन कह सकता है कि पोस्टर की चेतावनी गलत है?



नानी की दुकान

दुकान का नाम है—'नानी की दुकान'। मगर वह भारत के किसी शहर में नहीं बल्कि बेल्जियम के एंटवर्प नगर में है और उसे चलाती भी एक बेल्जियन महिला ही हैं। एंटवर्प में शायद ही कोई भारतीय प्रवासी होगा। पर भारतीय वहां काफी संख्या में आते रहते हैं—खासकर भारतीय व्यापारी जहाजों के खलासी। एंटवर्प करमुक्त बंदरगाह (फ्रीपोर्ट) है, इसलिए वहां कई चीजें काफी सस्ती मिलती हैं और नानी की दुकान बंदरगाह जाने वाली सड़क पर ही है।

यह दुकान वैसे है काफी पुरानी—शायद दो-तीन बरस में इसकी स्वर्ण-जयंती मनायी जाये। उसका मूल नाम 'क्लेरियस मार्टिमस' था। तीस साल पहले नया नामकरण हुआ—'नानी की दुकान'। यह हिंदी नाम क्यों? भारतीय खलासियों को आकृष्ट करने के लिए। आप जानते हैं, हमारे व्यापारी जहाजों के खलासी विभिन्न प्रांतों के होते हुए भी हिंदी में काम चलाते हैं। दुकान की सफलता का राज यह है कि इसकी मालकिन 'नानी' अकयास हिंदी बोलती हैं। हास-परिहास से भरी उनकी हिंदी सुनकर भारतीय खलासी दांतों तले उंगली दबाते हैं। वे ही 'नानी' के भाषागुरु हैं और 'नानी' खिताब भी उन्हीं का दिया हुआ है।

'पहले पैसा, बाद में भगवान', 'नानी की दुकान में एक ही दाम, नहीं दूसरा दाम', 'अच्छा, मेरे दोस्त!' जैसे वाक्य नानी के मुख से ऐसे निकलते हैं कि कोई भारतीय ग्राहक खाली हाथ नहीं लौटता। आधी रात के बाद भी, 'नानी' कहकर आवाज देने पर दुकान खुल जाती है और ग्राहक घड़ी, रेडियो जैसे चीजें खरीद ले जाता है। अगर माल पसंद नहीं आया, तो एक साल बाद भी लौटाकर दूसरा माल लिया जा सकता है।

ढलती उम्र की नानी ऐसी चुस्त और चुलबुली हैं, मानो चढ़ती जवानी की हों। इनके पति उम्र में इनसे दस साल छोटे हैं। इनका असली नाम इवान डी मिक है। नानी सिर्फ हिंदी ही नहीं, तमिल, मलयालम, गुजराती, बंगला आदि कई अन्य भारतीय भाषाओं का भी कामचलाऊ ज्ञान रखती हैं। इन भाषाओं का शुद्ध उच्चारण खलासियों से सीखने के लिए वे खास-खास वाक्य 'टेप रिकार्डर' पर अंकित कर लेती हैं।

—रा. वीलिनाथन् [आइसक रोडरिको के एक लेख पर से]



उड़न-तश्तरियां

उड़न-तश्तरियां फिर चर्चा का विषय बन गयी हैं और इस बार केवल उड़ती चर्चा नहीं; न्यूजीलैंड में एक टेलिविजन-टोली ने उसके चित्र खींचे हैं। क्या सचमुच उड़न-तश्तरि[यों] का अस्तित्व है? देश के एक विख्यात विज्ञानी की राय पढ़िये।

जयंत वि. नारळीकर

२४ जून १९४७ के दिन ३२-वर्षीय अमरीकी व्यापारी केनेथ आनल्ड अपना विमान स्वयं चला रहा था। विमान से ही उसने उथली थाली जैसी कुछ वस्तुएं आकाश में उड़ती देखीं। उसने बताया कि वे वाशिंग्टन राज्य में माउंट रेनियर के पास से उत्तर से दक्षिण की ओर जा रही थीं। उसके इस अनुभव को समाचारपत्रों ने खूब उछाला और 'उड़न-तश्तरियां' शब्द प्रचार में आया।

उसके बाद बहुतों ने कहा कि हमने भी वैसी ही चीजें देखी हैं। कोई बाहरी शक्ति पृथ्वी पर नजर रखे हुए है, उसके यान हमारे वायुमंडल में चक्कर काट रहे हैं, ऐसी घटनाएं हमारे चारों ओर घट रही हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान कूत नहीं पा रहा है—आदि तरह-तरह की बातें जब बड़े पैमाने पर कही जाने लगीं, तो अमरीकी सरकार के लिए यह जरूरी हो गया कि वह इन उड़न-तश्तरियों के मामले में दखल दे।

सन १९४८ में अमरीकी वायुसेना [ने] 'प्रोजेक्ट साइन' नाम से इस मामले [की] खोजबीन शुरू की। १९४९ में 'प्रोजे[क्ट] ग्रज' और १९५२ में 'प्रोजेक्ट ब्लूबु[क]' प्रकल्प भी इसी उद्देश्य के लिए हाथ में लि[ए] गये। इनमें से ब्लूबुक प्रकल्प १९६९ में ब[ंद] कर दिया गया। इसके अलावा, अमरी[की] वायुसेना ने रैंड कारपोरेशन नामक नि[जी] कंपनी को भी उड़न-तश्तरियों की खोज [का] काम सौंपा। इन सब जांच-पड़तालों [का] परिणाम जो निकला, वह यों था:

१. उड़न-तश्तरियों से पृथ्वी को कि[सी] प्रकार का खतरा नहीं है।

२. उड़न-तश्तरियों अथवा वैसी ची[जों] के देखे जाने के ज्यादातर समाचार दृ[ष्टि] भ्रम अथवा गलत गवाही पर आधारित [हैं]।

३. उगते और अस्त होते हुए गुरु, शु[क्र]

मंगल आदि ग्रहों को अथवा पृथ्वी पर ही बने आकाशयानों को देखकर अनेक लोगों को यह भ्रम हो गया कि उन्होंने दूसरे ग्रह पर से आयी उड़न-तश्तरियां देखी हैं।

'यू. एफ. ओ.' (अन्-आइडेन्टिफाइड फ्लाइंग आब्जेक्ट) यह नाम प्रायः आकाश में दिखने वाली अनचीन्ही वस्तुओं को दिया जाता है। जब यह पता चल जाये कि वह वस्तु क्या है, तो फिर वह यू.एफ.ओ. नहीं रह जाती। इस प्रकार, यू. एफ. ओ. मानी गयी ९० प्रतिशत चीजों की सही पहचान हो जाने से वे यू. एफ. ओ. नहीं रह गयीं। तथापि सामान्य जन यू.एफ.ओ. का मतलब उड़न-तश्तरियां ही लगाते हैं।

मगर बहुधा पूछा जाता है, जिन यू.एफ. ओ. की पहचान अभी तक नहीं हो सकी, उनकी क्या व्याख्या है? इसी तरह यह भी आक्षेप किया जाता है कि इन सब जांचों की रिपोर्टें पूरी की पूरी छापी नहीं जातीं; उनके कुछ अंश सुरक्षा की दृष्टि से दबा दिये जाते हैं। यह भी आक्षेप कतिपय उड़न-तश्तरी-समर्थक करते रहे हैं कि यह सिद्ध हो जाने पर भी कि ये उड़न-तश्तरियां हैं, वायुसेना ने इस बात को छिपा दिया। परंतु हाल में ही 'डि-क्लासिफाइ' किये गये यानी अध्ययन के लिए खोल दिये गये गुप्त कागज-पत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन संदेहों एवं आक्षेपों में कोई दम नहीं है।

उलटे, पिछले कुछ वर्षों में विशेषज्ञों ने यू.एफ.ओ. के ब्योरों की जांच शुरू की, तो ऐसे कई 'केस' हल हो गये, जो अब तक हल नहीं हो पाये थे। वातावरण के तापमान में व्युत्क्रम (टेम्परेचर इन्वर्शन) होने से आकाश में मृग-मरीचिका दिख सकती है। केनेथ आर्नाल्ड कांड में ऐसा ही हुआ होगा।

७ जनवरी १९४८ को अमरीकी वायुसेना के कैप्टन टामस मेंटल की आकाश में ऊंचाई पर दिखने वाले यू. एफ. ओ. का पीछा करते हुए संदेहास्पद स्थिति में मृत्यु हो गयी। बाद में पता चला कि जो यू. एफ. ओ. उन्होंने देखे, वे शुक्र ग्रह की दिशा में थे। परंतु उसी समय अमरीकी नौसेना के स्काइहुक गुब्बारे भी वहीं ६० हजार फुट की ऊंचाई पर छोड़े गये थे। चूंकि मेंटल के विमान को इतनी ऊंचाई पर जाने की आवश्यकता नहीं थी, इसके कारण उनके पास आक्सिजन-उपकरण नहीं थे। इसलिए इतनी अधिक ऊंचाई पर जाते हुए वे बेहोश हो गये होंगे और उनका विमान नीचे गिर पड़ा होगा—विशेषज्ञों का ऐसा अनुमान है।

परंतु इस घटना के कारण अमरीकी गुप्तचर संस्था सी. आइ. ए. को उड़न-तश्तरियों में दिलचस्पी हुई। उन स्काइहुक गुब्बारों का उपयोग रूस की जासूसी करने के लिए किया जाना था। अगर वैसे ही गुब्बारे रूस भी काम में ला रहा हो तो? संक्षेप में कहें तो कुछ यू. एफ. ओ. गुप्तचरी के लिए छोड़े गये मानव-निर्मित अंतरिक्ष-यान ही हों, इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। ऐसी यू. एफ. ओ. की जानकारी उसे छोड़ने वाले देश से मिलने की अपेक्षा तो की ही नहीं जा सकती।

उड़न-तश्तरियां बिलकुल गप्प हैं ऐसा कहें, तो भी उसका यह अर्थ नहीं कि पृथ्वी से परे जीव नहीं है। उलटे, पिछले कुछ वर्षों में अनेक विशेषज्ञों ने यह तर्क रखा है कि हमारी ही आकाशगंगा में ऐसी दस लाख सभ्यताएं हो सकती हैं, जो तकनीकी में हमसे आगे बढ़ी हुई हों। इस मामले में फ्रैंक ड्रेक नामक खगोल-विज्ञानी के नाम पर प्रसिद्ध ड्रेक-सूत्रों का उपयोग किया जाता है। उसके मुख्य अंश ये हैं:

क. आकाशगंगा में तारों के निर्माण की रफ्तार;

ख. तारों के गिर्द ग्रह-मंडल का निर्माण होने की संभावना।

ग. ग्रह-मंडल बन जाने पर उसमें जीव को धारण करने में समर्थ ग्रह के अस्तित्व की संभावना।

घ. ग्रह में जीव का उद्भव होने की संभावना।

ड. जीव के समुन्नत स्थिति में पहुंचने की संभावना।

च. अत्यंत समुन्नत सभ्यता की आयु-मर्यादा।

इस सभी घटकों को गुणा करने पर आकाशगंगा में अत्यंत समुन्नत जीवसृष्टि की संख्या प्राप्त होगी। मगर घटक 'क' को छोड़कर बाकी घटकों की जानकारी अभी हमें बहुत कम है। इसलिए ऐसा न समझें कि दस लाख सभ्यताओं की बात अचूक है। फिर भी मोटे तौर पर यह संख्या मान लेने में कोई हर्ज नहीं।

इतनी सब सभ्यताओं के रहते उन हमारे अंतरिक्ष में आने वाली तश्तरियों क प्रमाण क्या मिले बिना रहता? एक छोटा-सा हिसाब लगायें तो इसका उत्तर 'नहीं' में मिलेगा। वह हिसाब यों है:

आकाशगंगा में लगभग १०० अरब तारे हैं। मान लें कि इनमें से हमारा सूर्य ज १० प्रतिशत तारों में है, जिनके बारे में किसी समुन्नत सभ्यता को ऐसा लगे कि इसमें कुछ विशेष देखने को मिल सकता है। १ अरब की संख्या को १० लाख से भाग दें तो उत्तर आयेगा १०,०००। इसका अर्थ य हुआ कि ऐसी प्रत्येक सभ्यता यदि प्रतिव १०,००० अंतरिक्ष-यान इन तारों की ओर भेजे, तो प्रतिवर्ष औसतन एक 'उड़न तश्तरी' हमें दिखाई देगी। 'वर्ष' रूपी काल खंड अति समुन्नत सभ्यता की काल-गणना में बहुत ही छोटा होता है, इसलिए एक व में १०,००० यान छोड़ना—सो भी विनो मानकर—क्या असंभव-सा नहीं है? इस लिए आजकल आये साल उड़न-तश्तरियों के देखे जाने के जो वाकये छपते रहते हैं वे बहुत विश्वसनीय तो नहीं ही माने ज सकते।

उड़न-तश्तरियों के समर्थक शायद य दावा करेंगे कि ये तश्तरियां विशेषतः पृथ्वी की ओर ही भेजी गयी होती हैं वे योगायोग से इधर नहीं आ जातीं। य ऐसी बात है, तब तो हमारी मानव-सभ्य आकाशगंगा में विशेष महत्त्व की होगी ऐसी महत्त्वपूर्ण सभ्यताएं १० लाख से बहु



तथाकथित 'उड़न-तश्तरी' के चित्र, जो न्यूजीलैंड की एक टी. वी. कैमरा-टोली ने साउथ आइलैंड के कैकूरा प्रदेश पर से उड़ते विमान से लिये हैं। बाद में न्यूजीलैंड की वायुसेना ने स्काइहाक युद्ध-विमान उड़न-तश्तरी की टोह लेने को तैनात किये। उधर जिनोवा (इटली) के पुलिस सिपाही फार्चुनाटो जानफेट्टा ने दावा किया है कि हाल में उसे दो बार उड़न-तश्तरियां 'उड़ा' ले गयी थीं। उड़न-तश्तरियों द्वारा 'उड़ा' ले जाये गये लोगों के लंबे-चौड़े लेख अमरीकी पत्रिकाएं छाप चुकी हैं।

ही कम होंगी। इस आधार पर भी, प्रति-वर्ष इतनी सारी उड़न-तश्तरियां आयें, यह सही नहीं लगता।

एक और बात पर भी विचार करना आवश्यक है। अंतरिक्ष-युग के प्रारंभ हो जाने के बाद से मानव चंद्रमा तक यात्रा कर आया; सौर मंडल के पार भी यान पहुंच गये। यदि यह सब हो सका है, तो कोई अतिसमुन्नत सभ्यता पृथ्वी पर यान क्यों नहीं भेज पायी?

पहले हम यही कल्पना करें कि ऐसी अतिसमुन्नत सभ्यता मंगल पर अथवा हमारे सौर मंडल के किसी दूरवर्ती ग्रह पर विद्यमान है। हमारे इतने पास रहने वाली और हमसे भिन्न सभ्यता अपनी प्रगति का कोई चिह्न हमें नहीं दरशाती, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? सीधे प्लेटो (ग्रह) से लेकर पृथ्वी तक दौरा करना ही नहीं, पृथ्वी पर से संदेशों का आदान-प्रदान करना भी ऐसी सभ्यता के लिए संभव हो गया होता। पर आज तक वैसा हुआ नहीं है। इसलिए यह सभ्यता इतना पास नहीं हो सकती।

जरा दूर चलें तो पृथ्वी से सबसे निकट का तारा लगभग ४ प्रकाश-वर्ष के अंतर पर है। इस दूरी को लांघना ऊर्जा की दृष्टि से, समय की दृष्टि से अथवा इलेक्ट्रानिक नियंत्रणों की दृष्टि से आज की हमारी तकनीकी के लिए संभव नहीं है। मान लें कि किसी अतिसमुन्नत सभ्यता के लिए यह संभव है, तो उस सभ्यता के द्वारा उपयोग किये जाने वाले वाहन यानी अंतरिक्ष-यान निश्चय ही हमारे यानों से अधिक वेगवान होंगे। बैलगाड़ी और चंद्रमा पर जाने वाले अपोलो-११ यान—इन दोनों की तकनीकी में जो अंतर है, उससे कितने ही गुना अधिक अंतर हमारी अंतरिक्ष-तकनीकी में और तारों के बीच के

अपने लेखकों से

श्री संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कैसी रचनाएं लेते हैं? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये:

क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुरुचि को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।

ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बर्तो मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।

ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कलां के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।

* लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।
* रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सधे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।
* रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।
* रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

संपादक—नवनीत हिंदी डाइजेस्ट
नवनीत प्रकाशन लिमिटे , ३४१, ताडदेव, बंबई—३४

अंतर को लांघ सकने वाली अतिसमुन्नत तकनीकी में होगा। उस अतिसमुन्नत तकनीकी द्वारा निर्मित अंतरिक्ष-यान में और हमारे वर्तमान अंतरिक्ष-यान में अक्षरशः जमीन-आसमान का अंतर होना चाहिये। परंतु उड़न-तश्तरी देखने का दावा करने वालों द्वारा वर्णित अंतरिक्ष-यान और हमारे अंतरिक्ष-यान में अंतर दिखाई नहीं देता।

इससे दो ही वैकल्पिक निष्कर्ष निकल सकते हैं। एक यह कि जिन्होंने इन यू. एफ. ओ. के दर्शन किये, वे वस्तुतः मानव-निर्मित यान ही देख रहे थे। अथवा उड़न-तश्तरियों का संपूर्ण चित्र ही कल्पनारंजित है। हमें यह भी कहना होगा कि यह चित्र खींचने वालों की कल्पना-शक्ति बहुत मर्यादित थी।

इतना सब कह लेने पर एक प्रश्न उठता है। उड़न-तश्तरियों या ऐसी ही वस्तुओं के प्रति जन-साधारण में इतना आकर्षण क्यों है? इसका उत्तर देने के लिए भौतिकशास्त्र के बजाय मनोविज्ञान का आश्रय लेना होगा।

अद्‌भुत, अकस्मात् दिखने वाली, अगम्य, चमत्कारी चीजों और घटनाओं के प्रति मनुष्य में मूलतः ही आकर्षण है। ऐसी चीज या घटना के दृष्टिगोचर होने पर उसका उत्तर खोजने के दो रास्ते हैं। पहला रास्ता वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बंधा हुआ है। वह कहता है कि वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध जानकारी अथवा उस पर आधारित सिद्धांत द्वारा ऐसी घटना का कारण-विवेचन किया जाये, या करने की कोशिश की जाये। हालांकि मनुष्य अपने को 'विचारवान', 'बुद्धिवादी' आदि विशेषज्ञों से विभूषित करता है, पर इस मार्ग का अवलंबन करने वाले मनुष्य बहुत कम हैं।

उलटे, कोई विचित्र वस्तु नजर आते ही ज्यादातर लोग यह मानते हैं कि इसके पीछे कोई (हितकारी या अहितकारी) शक्ति जरूर है और यह चीज हमारे प्रस्थापित विज्ञान की कक्षा से भी बाहर की है। तस्वीर में से राख झड़ने, इम्पोर्टेड घड़ी हवा में से प्रकट होने, अथवा मन के प्रश्न को जान लेने आदि घटनाओं से जिन भोले-भाले जीवों को (यदि वे 'विशेषज्ञ' कहे जाते हैं तो 'विशेषज्ञ' शब्द का अर्थ हमें बदलना पड़ेगा!) दिव्यत्व की प्रतीति होती है, वे अगर यह समीकरण लगायें कि यू.एफ. ओ. के साथ, उड़न-तश्तरियों के साथ कोई अतिसमुन्नत जीव जुड़ा हुआ है, तो क्या आश्चर्य।

इस भोलेपन का कैसे लाभ उठाया जाता है और वैज्ञानिक जांचकर्ता किस तरह उसकी कलई खोलते हैं, इसके दो ताजे उदाहरण मैं दूंगा।

गत कुछ वर्षों में यूरी गेलर के 'पराक्रमों' के कारण जनसामान्य में ऐसा भ्रम प्रचलित हो गया कि मानसिक शक्ति के जरिये बहुत कुछ 'नया' करके दिखाया जा सकता है। दूर बैठकर केवल मानसिक शक्ति के जरिये चम्मच को मोड़ देना अथवा ऐसे दूसरे काम मानसिक शक्ति से किये जा सकते हैं, ऐसा दावा गेलर ने और कुछ हद तक दूसरों ने भी किया था। परंतु शुद्ध

वैज्ञानिक पद्धति से जांचने पर यह स्पष्ट हो गया कि इस दावे में कोई दम नहीं है।

'बर्म्यूडा ट्रायंगल' ऐसा ही एक और मामला है। फ्लोरिडा, पोर्टो रिको और बर्म्यूडा इन तीन बिंदुओं को जोड़ने वाला समुद्री त्रिकोण ही 'बर्म्यूडा ट्रायंगल' नाम से जाना जाता है। अटलांटिक महासागर का यह भाग और इसके ऊपर का आकाश-खंड अनेक जलयानों और विमानों के अदृश्य हो जाने की वारदातों केलिए बदनाम हो गया है। चार्ल्स बर्लिज नामक लेखक ने एक पुस्तक लिखकर इस त्रिकोण के बारे में रहस्य का जाल रच डाला। इस त्रिकोण के बारे में कही गयी बातें पढ़कर पाठक सोचने लगते हैं—क्या यहां लोकांतरीय जीव हस्त-क्षेप करते हैं ? विज्ञान द्वारा न हल हो पायी घटनाएं यहां घटती रहती हैं। यहां पर अंतरिक्ष और काल का व्यवहार रहस्य-मय है, वगैरह-वगैरह .....।

परंतु 'कही गयी' बातों और वास्तव में घटित अथवा यंत्रों पर रेकार्ड की गयी हकीकतों में कितना अंतर होता है, यह पिछले एक-दो वर्षों में स्पष्ट हुआ है। लारेंस कुश ने अपनी पुस्तक में दिखाया है कि वैज्ञानिक जांच में बर्लिज की बातें कैसी झूठी एवं परस्पर विरुद्ध सिद्ध हुई हैं। वास्तव में पृथ्वी पर अथवा अंतरिक्ष में जैसी दुर्घटनाएं सब कहीं घटती रहती हैं, उनकी तुलना में बर्म्यूडा त्रिकोण में कोई खास बात है, देखने में नहीं आया है।

उड़न-तश्तरियां भी ऐसे ही 'तथाकथित विज्ञान' की परिधि में आती हैं। आकाश में उड़ती पतंग को देखकर कोई बच्चा पूछे कि 'पिताजी यह क्या है ?', तब पतंग उसके लिए यू. एफ. ओ. ही होती है। जब पिता सही जानकारी उसे दे देता है, तब वह पतंग यू. एफ. ओ. नहीं रह जाती। आकाश में किसी विचित्र वस्तु को देखने पर हम जब तक जान न लें कि वह क्या है, तब तक उसे यू. एफ. ओ. कहने में कोई हर्ज नहीं। परंतु यू. एफ. ओ. उड़न-तश्तरी ही है, ऐसा मान लेने का कोई आधार नहीं।

केनेथ आर्नाल्ड वाले वाकये को हुए तीन दशक गुजर चुके हैं, फिर भी अभी तक उड़न-तश्तरियों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं प्राप्त हुआ है। अमरीकी अखबार 'नेशनल एन्क्वायरर' ने इसका आधार प्रस्तुत करने के लिए दस लाख डालर का पारितोषिक घोषित कर रखा है। फिलिप क्लास बहुतों से बाजी लगा चुके हैं—'उड़न-तश्तरियों का अस्तित्व सिद्ध करो, १०,००० डालर दूंगा।' अभी तक यह पारितोषिक या यह बाजी जीतने कोई सामने नहीं आया। इसका अर्थ आप ही लगा लें।

परंतु बहुत-से साधुओं के ढोंग की कलई खुल जाने के बाद भी ढोंगबाजी चलती ही रहती है। इसी तरह वैज्ञानिक जांच में टिक न पाने के उदाहरण लगातार सामने आते रहने पर भी उड़न-तश्तरियों जैसे 'तथाकथित विज्ञान' का प्रचार चल ही रहा है। यह अपने को 'विज्ञाननिष्ठ' कहने वाले आज के मानव-समाज की शोकांतिका है।



नवनीत

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

तुम एक सिसकती शबनम को
अंगार बना दो तो जानूं !

तीखे कांटों को फूलों का शृंगार बना दो तो जानूं !
वीरान जिंदगी की खातिर कोई न कभी मरता होगा;
झुलसी सांसों के लिए नहीं यौवन-मरु तप करता होगा;
फैली-फैली यह रेत ! जिंदगी है या निर्जल उज्ज्वलता ?
निर्जल उज्ज्वलता को जलधर, जलधार बना दो तो जानूं !
मैं छांह-छांह चलता आया पैने प्रकाश की आशा में;
गुमसुम-गुमसुम जलता आया : उजलूं तो लौ की भाषा में !
औंधा आकाश टंगा सिर पर, डाला पड़ाव सन्नाटे ने,
ठहरे गहरे सन्नाटे को झंकार बना दो तो जानूं !
गिर पड़ी अचानक धरती पर, थी नील झील में तैर रही
पहचान हवा का रुख न सकी अंबर में थी कर सैर रही
आते-जाते सूरज सब दिन संध्या-प्रभात को सुलगाता
तुम एक सिसकती शबनम को अंगार बना दो तो जानूं !

निराला-निकेतन, मुजफ्फरपुर-१

—जानकीवल्लभ शास्त्री

'यदि मुझे दूसरा ही जीवन जीना पड़ता तो मैं चाहता कि मैंने बीठोफन की सिम्फ
रची होतीं......या चाहता कि मैं वेल्स की फुटबाल की कप्तानी करता.....'

ब्रिटिश प्रधान-मंत्री जेम्स कैलागैन



प्रश्न : जब आपको फुरसत होती है, आप 'रिलैक्स' कैसे करते हैं?

उत्तर : मेरा तो खयाल है, मैं ज्यादातर 'रिलैक्स्ड' ही रहता हूं। यह चौबीस घंटे की नौ है, और मैं बजाय इसके कोई और नौकरी नहीं करना चाहता। मैंने कहा न यह २४ की नौकरी है, जब इसमें आनंद आता हो तो दूसरी नौकरी करना कोई चाहेगा ही क्यों ऐसा दिन कोई नहीं होता, जब मुझे कोई काम नहीं रहता। मैं खूब टहलता हूं। शतरंज और स्क्रैबल खेलना पसंद है। मुझे जीवन-चरित पढ़ने का शौक है; मैं दे चाहता हूं कि दूसरों ने मेरी समस्याओं से मिलती-जुलती समस्याओं को कैसे सुलझा अपने खेत में टहलना मुझे अच्छा लगता है—मेरा खयाल है, लोग (मेरे खेत के कर्मचा उस दिन की कल्पना करके डर रहे होंगे, जब मैं रिटायर होकर वहां बसूंगा। फिल मुझे खेत में घूमना, वहां क्या हो रहा है, यह देखना और मौसम की प्रगति दे अच्छा लगता है।



प्रश्न : क्या आपका खयाल है कि एक उम्र है, जि पहुंचकर प्रधान-मंत्री को सोचना चाहिये कि उम्र हो गयी।

उत्तर : ऐसी कोई उम्र नहीं। यही वजह है कि के बारे में आपके सवालों का जवाब देने में दुविधा हुई। जब आदमी अतीत को याद क लगता है, इसका मतलब है कि वह बूढ़ा हो चला मैं तो १९८० वाले दशक की उत्साह से राह रहा हूं। मेरा खयाल है, यह हमारी मानसिक पर निर्भर है। राबर्ट मेयर जैसे आदमी का उदाह लीजिये। वे १०० वर्ष के हैं, और अब भी सं सभाओं की योजनाएं बनाते रहते हैं, विशेषतः के लिए। हेनरी मूर को लीजिये, जो अब भी सो रहते हैं कि अब आगे क्या चीज सिरजूं। अलग पर, अर्थशास्त्री निकलस डेवनपोर्ट का उदाह

लीजिये; जीवन के नौवें दशक में वे अपने साप्ताहिक पत्र के लिए प्रति सप्ताह नया लेख लिखते हैं। ये लोग आत्मिक और मानसिक-बौद्धिक दृष्टि से तरुण हैं। मगर जब हम उस स्तर पर पहुंच जायें जहां से पीछे की बातें सोचने लगें, जब हममें अपना कर्तव्य कार्य करने के लिए शारीरिक शक्ति न रह जाये, मेरा खयाल है, तब हम बूढ़े होने लगते हैं। यह अलग-अलग लोगों में अलग-अलग उम्र में होता है।

प्रश्न : अगर आप यह सार्वजनिक जीवन न जी पाते और आपको कोई भिन्न जीवन जीना होता तो उसे आप किस रूप में जीना चाहते?

उत्तर : तब मैं चाहता कि मैंने सेंट पाल गिरजे का गुंबद बनाया होता। मैं चाहता कि मैंने बीठोफेन की सिम्फनियां रची होतीं। मैं चाहता कि मैं मर्विन डेवीस होता और फार्वर्ड के रूप में खेलते हुए वेल्स की फुटबाल-टीम की कप्तानी करता।

● 'अब्ज़र्वर' में छपे केनेथ हैरिस के इंटरव्यू में से साभार उद्धृत ●



श्रद्धांजलि

नये वर्ष के प्रथम दो सप्ताहों में हिंदी-जगत तीन विशिष्ट व्यक्तियों से वंचित हो गया।

संत-साहित्य के प्रकांड विद्वान और व्याख्याकार श्री परशुराम चतुर्वेदी (८४ वर्ष) का ५ जनवरी को लखनऊ में देहावसान हो गया।

मराठी-भाषी होते हुए हिंदी को अनेक लोकप्रिय उपन्यास देने वाले श्री अनंत गोपाल शेवड़े (६७ वर्ष) का १० जनवरी को कलकत्ता में दिल के दौरे से अकस्मात् निधन हो गया। वे १९७५ में नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के संयोजक थे।

हिंदी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान-मंत्री एवं भारतीय जनसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री मौलिचंद्र शर्मा (७८ वर्ष) १२ जनवरी को नयी दिल्ली में दिवंगत हुए। वे कुशल राजनीतिज्ञ, कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

दिवंगत आत्माओं को नवनीत-परिवार की श्रद्धांजलि।



महान भारतीय

जयप्रकाश नारायण

जादुई व्यक्तित्व और जोशीली वक्तृता राजाजी की खूबियों में से नहीं थीं। मेरी राय में उनकी महानता की निशानी थी—सादा जीवन और उच्च विचार, दूर-दृष्टि और शांत गरिमा जो केवल उन्हीं लोगों में पायी जाती है जिनका अपने अंतःकरण से कोई झगड़ा न हो।

एमर्सन ने कहा था—'दुनिया सत्पुरुषों की सचाई से टिकी हुई है; वे धरती को स्वास्थ्यकर बनाते हैं।' राजाजी भगवान के उन नेक बंदों में से थे।

आज हमारा राष्ट्र कृतज्ञता के साथ प्रणाम कर रहा है भारतीय राजनीति के इस पितामह को, जिसने आज से सौ वर्ष पूर्व (१० दिसंबर को) परतंत्र राष्ट्र में जन्म लिया था और जिसने परस्पर-विरोधी लगने वाले दो गुण अपने पिता से विरसे में पाये थे—विद्वत्ता और समाज-सेवा।

और जब सन १९७२ में क्रिस्मस के दिन राजाजी इस लोक से विदा हुए, तो उदात्तता-पूर्वक जिये हुए महान और नेक जीवन की स्मृति अपने पीछे छोड़ गये—एक स्मृति जो पूरे राष्ट्र की थाती बन चुकी है और जो अनजनमी पीढ़ियों को हस्तांतरित क[रने] योग्य है।

गांधीजी ने कहा था, राजाजी मेरे 'अं[तः]करण के रखवाले' हैं। जो लोग गांधी[जी] को समझते थे, उनके लिए इसमें सभी कु[छ] आ जाता है। स्वातंत्र्य-संग्राम में राजा[जी] की भूमिका, वे पद जिन्हें उन्होंने अ[पनी] विशिष्टता के साथ अलंकृत किया, प्रजात[ंत्र] तथा मानव-अधिकारों के प्रति उन[की] प्रतिबद्धता, नैतिक नियमों की प्रभुता [में] उनकी अडिग आस्था—ये सब हाल के इ[ति]हास का हिस्सा हैं।

राजाजी ने कभी इसकी छूट नहीं दी [कि] सत्ता उन्हें बिगाड़े और राजनीति उ[न्हें] कलंकित करे। उन्होंने हमें सिखाया [कि] राजनीति में रहते हुए भी उससे ऊपर उ[ठ]कर रहा जा सकता है, जैसे कि कहावत है—पद्मपत्रमिवाम्भसा।

तार्किक बुद्धि, तलवार-सी पैनी मेधा, प्रत्युत्पन्नमत्तित्व और इन सबसे बढ़[कर] उद्वेग-रहित स्वभाव एवं विनम्रता—ये उन[के] विशिष्ट गुणों के रूप में जाने जाते थे।

मगर तर्कप्रियता ने उन्हें आम जनता

परे नहीं रखा। उनकी सरल भाषा जिसमें बोधकथाएं, कहावतें और पौराणिक आख्यान गुंथे रहते थे, आम जनता के साथ उनके संवाद का साधन थी। संस्कृति में समृद्ध मगर 'सर्वसत्ता-संपन्न प्रजातांत्रिक गणतंत्र' जैसी संधारणाओं को समझने में असमर्थ हमारी आम जनता को वे बीते दिनों के स्कूल-मास्टरों की तरह बड़े सब्र से और अपने सुकरात-सरीखे सयानेपन का पूरा उपयोग करते हुए सब बातें समझाया करते थे।

आम जनता के लिए उन्होंने लिखा भी। पुराण-काव्यों के उनके सारानुवाद 'रामायण' और 'महाभारत', गीता और उपनिषदों की उनकी व्याख्याएं ऐसी कृतियां हैं, जो आगे चलकर निश्चय ही कालजयी कहलायेंगी। वे जानते थे कि हमारी जनता को सर्वोपरि शिक्षा तो हमारे पुराणों में और पुराण-काव्यों में भरी हुई नसीहतों से ही हासिल हो सकती है। आखिर हमारे पुराण और पुराण-काव्य, जो कि हमारे राष्ट्र का अवचेतन मस्तिष्क हैं, त्रैकालिक सनातन नैतिक नियमों को यथार्थ जीवन में जीने के हमारे पुरखों के प्रयत्नों का वर्णन ही तो हैं।



स्व. राजाजी

धर्म ने राजाजी में दुनिया से भागने और जीवन की समस्याओं से कन्नी काटने की इच्छा उत्पन्न नहीं की। उलटे, धर्म में उनकी गहरी निष्ठा ने ९३ वर्ष की वय में भी उन्हें मानव-जाति की सेवा में नियोजित किये रखा।

प्रजातंत्र के प्रति राजाजी की प्रतिबद्धता संपूर्ण थी। सो उनके प्रति और स्वयं अपने प्रति हमारा यह कर्तव्य है कि हम ऐसे कदम उठायें, जिनसे ६२ करोड़ की आबादी वाले अपने इस देश में प्रजातंत्र का सम्यक् संचालन होने लगे।

राजाजी का यह विश्वास था कि आम मताधिकार पर आश्रित प्रजातंत्र में समर्थ प्रतिपक्ष बहुत ही आवश्यक चीज है। जब जवाहरलाल नेहरू ने बड़े निश्चयपूर्वक कहा कि प्रतिपक्ष के निर्माण में मदद करना सरकार का काम हरगिज नहीं है, तब राजाजी ने उसका यह जवाब दिया था :

'समर्थ प्रतिपक्ष के बिना प्रजातंत्र वैसा ही होगा, जैसे गधे की पीठ पर सारा का सारा बोझ एक ही गठरी में रखकर गधे को हांका जाये। द्विदलीय व्यवस्था बोझ को दो झाबों में लगभग समान बांटकर चाल को स्थिर बनाती है।

'मानव-शरीर में दो आंखें और दो कान देखी व सुनी वस्तुओं का सही स्थान पहचानने में मदद देते हैं। एकदलीय प्रजातंत्र जल्दी ही तारतम्य-वुद्धि खो बैठता है। उसे दिखाई तो देता है, मगर वह देखी हुई वस्तुओं को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं रख पाता, या प्रश्न के सब पहलुओं को समझ नहीं पाता।'

वे महान पृथक्चेता (डिसेन्टर) थे और उन प्रथम व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने स्वतंत्र भारत में सुस्पष्ट व्यक्तित्व वाले प्रतिपक्ष के निर्माण के लिए प्रयास किया।

बोलने व लिखने में एक-एक शब्द को तोलकर काम में लाने वाले राजाजी सार्वजनिक जीवन में पवित्रता तथा साफ-सुथरे सुदक्ष प्रशासन के लिए और प्रजातंत्र को सत्ता, संपदा एवं इनकी पापिष्ठ संतान के क्षयकारी दुष्प्रभावों से बचाने के लिए अनवरत संघर्ष करते रहे।

उन्होंने बार-बार बलपूर्वक कहा कि 'अगर हम चाहते हैं कि राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा के क्षेत्र में निरंकुश तानाशाही की जगह स्वतंत्रता पदासीन हो, अगर हम चाहते हैं कि योग्यता पार्टी-फंड के चंगुल से छुटकारा पाये, तो हमें इसकी जांच-परख करनी होगी कि चुनावों को आज की तुलना में काफी कम खर्चीला कैसे बनाया जाये।'

सुकरात-सरीखे राजाजी ने संकेत किया था—'जो नर या नारी नयी दिल्ली में सर्वोच्च सत्ता पर पहुंच जाये और सत्ता को हाथ में बनाये रखने में किसी प्रकार का नैतिक संकोच न रखे, उसका निहित स्वार्थ



मैं मानता हूं कि मेरे मत का खंडन करने का आपको पूरा-पूरा हक है। लेकिन एक बात यह याद रखिये कि मुझे भी अपना मत आपके सामने रखने का पूरा हक है।

—स्व. ई. वे. रामस्वामी नायकर

[प्रेषक : रा. वीलिनाथन्]

चुनाव को खूब खर्चीला बना देने में है।'

राजाजी की यह जगजाहिर राय थी कि 'छह महीनों तक पार्टी-शासन की छुट्टी करके चुनाव-काल में पूरे राष्ट्र में राष्ट्रपति का और राज्यों में राज्यपालों का निर्दलीय शासन होना चाहिये।'

राजनैतिक विवेक और परिपक्वता में राजाजी सिर्फ गांधीजी से घटकर थे और आधुनिक भारत के नेस्टर[1] माने जाते थे। वे उन बिरले महान राजनीतिज्ञों में से थे, जिनके बारे में कहा जा सकता था कि हालांकि वे राजनीति में गहरे डूबे हुए थे,

१. यूनानी पुराणों में वर्णित एक विवेकी राजा।

उनकी नजरें युद्धपंक्ति से बहुत ऊपर टिकी हुई थीं। मानव-प्रकृति को वे बड़ी गहराई से समझते थे और तमाम राष्ट्रीय और अंतर-राष्ट्रीय मसलों का आवेश-रहित और तटस्थ दृष्टि से विश्लेषण करने की विस्मयकारी क्षमता रखते थे।

दृढ़ आस्थाओं वाले और उन आस्थाओं के निर्वाह के लिए कोई भी त्याग करने को सदा तैयार रहने वाले राजाजी अपने व्यस्त और सफलताओं से लदे जीवन का संध्या-काल आराम में बिताने के बजाय राज-नीति एवं सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा के लिए जी-जान से जूझते रहे। साथ ही वे स्वयं नैतिक दिग्गज थे।

कहा जाता है कि महापुरुष वह है, जो तात्कालिक घपले के पार देख सके और पह-चान सके कि कौन-से नैतिक प्रश्न इसमें उलझे हुए हैं; जो परीक्षा व खतरे की घड़ियों में अपनी न्यायबुद्धि को विकृत न होने दे; जो अपनी अंतरात्मा की आवाज को सुने और उसकी अंतरात्मा उसी के ढंग से सोचने वाले सब लोगों के लिए शंखनाद बन जाये, ताकि वे सब उसके इर्दगिर्द आ जुटें और साझे ध्येय और पारस्परिक सहायता द्वारा अंततः इतिहास में एक नये युग का निर्माण कर दें।

राजाजी इस सदी के ऐसे ही एक महान भारतीय थे।



● संत इब्राहीम बिन अदम एक बार कहीं जा रहे थे। उन्होंने देखा कि रास्ते में एक शराबी पड़ा हुआ है, उसके कपड़े मिट्टी से लथपथ हैं और मुंह कीचड़ से सना है। यह देखकर संत बोले–'जिस मुंह से खुदा का नाम लिया जाता है, उसे इस हालत में नहीं रहना चाहिये।' और उन्होंने पास ही कहीं से पानी लाकर शराबी का मुंह धो दिया। जब शराबी को इस बात का पता चला, उस पर बड़ा असर पड़ा। उसने शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और सुधर गया।

● इब्राहीम बिन अदम बलख के बाद-शाह थे। वैराग्य हुआ तो राजपाट छोड़कर जंगल की ओर चल दिये। अब वे जंगल से बीनी हुई लकड़ियां बेचकर या खेतों की रखवाली करके रोजी कमाते। जो मिलता, उसमें से कुछ हिस्सा फकीरों को बांट देते और बाकी से अपनी गुजर चलाते। वे कहा करते थे–'मर्दों का दर्जा हलाल की रोटी से मिलता है।'

● संत राबिया बसरी ने एक सूफी संत के पास तीन चीजें भेजीं–मोम, सूई और बाल। साथ में यह संदेश भी :

'मोम की तरह जलकर दूसरों को रोशनी दो।

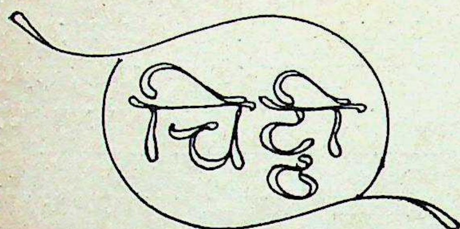
'सूई खुद नंगी रहती है, मगर दूसरों को कपड़े सीकर पहनाती है। उसी तरह तुम भी जनता की निःस्वार्थ सेवा करो।

'तब तुम बाल की तरह लचीले, हलीम और बेखतरा हो जाओगे।'

–गफूर तायर



[डोगरी से कवि द्वारा स्वयं अनूदित]



—पद्मा सचदेव—

नगर के चारों ओर बादल घिर आये हैं
सिर धोकर बदली दालान में आने लगी है
या दोहरी प्रथा से ब्याही कोई मुटियार आज
ससुराल से पहली बार मैके जाने लगी है

बादल घिर आये हैं, पास-पास आ जुड़े हैं
सांस सत्ता रोककर धरती पर झुके हैं
कड़वी बात पीते ही ये घिर आये थे आंखों में
अकेली को घेरने के लिए ये आंसू रुके हैं

एक-एक बूंद कोई, मोतियों के मोल मुई
नगरी के घर-बाहर आंगन धुला जाये
कौन जाने ससुराल की लकड़ी की दहलीज ही
बल इसका कसा हुआ खुलवा के रुला जाये

बादल ये फौजियों के झुंड की तरह घिरे हुए हैं
डाकिये को देखकर प्रतीक्षा नहीं कर पा रहे
कागज की एक चिट मोतियों की एक मुट्ठी
किसके हिस्से आयेगी धीरज नहीं धर पा रहे।

० मे फ्लावर, एम. एल. दहाणुकर मार्ग, बंबई-२६ ०



जर्मनों और साम्यवादियों से जूझ चुके पोप

मनुगुप्त

बीता साल सन १९७८ ईसाई इतिहास में इसलिए स्मरणीय रहेगा कि इसने तीन पोप देखे और उससे भी बढ़कर इस-लिए कि उसमें पूरे ४५५ वर्ष बाद एक गैर-इतालवी को पोप चुना गया। पोप जान पाल द्वितीय न केवल गैर-इतालवी हैं, बल्कि पोलिश हैं, यानी एक साम्यवादी देश के हैं।

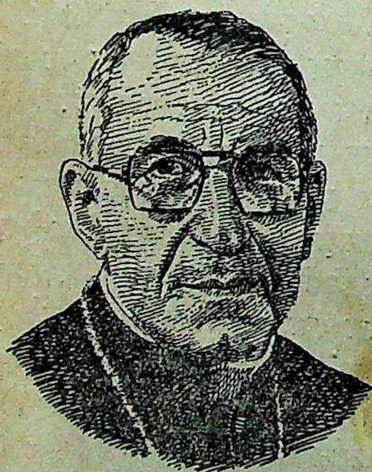
उनके निर्वाचन से सबसे ज्यादा अचरज तो पोलैंड के धार्मिक विषयों के मंत्री काजी-मीर्ज काकोज्ज को हुआ होगा, जिन्हें अपने देश की साम्यवादी सरकार और रोम के काथलिक चर्च के तनाव-भरे संबंधों की देखभाल करनी पड़ती है। जिस दिन नये पोप का निर्वाचन घोषित होने वाला था, उसी दिन भेंट के लिए आये हुए कुछ पत्र-कारों से उन्होंने मजाक में कहा भी था कि अगर कोई पोलैंड-निवासी पोप बन जाये, तो मैं आप सबको शैम्पेन पिलाऊंगा।

उस वक्त इस असंभव बात पर सभी जोर से हंस पड़े थे; लेकिन दस मिनट बाद ही मंत्री महोदय के एक सहायक ने उन्हें इस खबर की चिट दी कि क्राक्वा के कार्डिनल कारोल वायतिला पोप चुन लिये गये हैं; और उन्हें सब पत्रकारों को शैम्पेन पिलानी पड़ी।

क्राक्वा के ये कार्डिनल जो अब **पोप जान पाल द्वितीय** नाम से जाने जाते हैं, कैसे व्यक्ति हैं, यह इससे प्रकट होता है कि कार्डिनलों की कन्क्लेव (पोप-निर्वाचक मंडली) को उन्हें मनाने में काफी मुश्किल

हुई। वे तो क्राक्वा के कार्डिनल ही बने रहना पसंद करते थे। उन्नीसवीं सदी के पायस नवम के बाद सबसे कम उम्र (५८ वर्ष) में पोप-पद संभालने वाले वे वैटिकन की राजनीति से सर्वथा अछूते रहे हैं और पूर्वी यूरोप की धर्म-विरोधी एवं सर्वसत्तावादी व्यवस्थाओं से जीवन-भर चलते संघर्ष के अनुभवी हैं। वे कभी किसी की पृष्ठ-पोषकता के आसरे नहीं रहे।

वैटिकन के आडंबरों को तोड़ने में तो उन्हें दो दिन भी नहीं लगे। पोप बनने के अड़तालीस घंटे बाद ही वे एक खुली कार में रोम की सड़कों पर दिखाई पड़ गये—एक बीमार पोलिश बिशप से मिलने अस्पताल जाते वक्त! उन्होंने पोपों की ताजपोशी की परंपरागत रस्म भी खारिज कर दी।



स्व. पोप जान पाल प्रथम, जिन्होंने पाल षष्ठ के देहांत के बाद काथलिक जगत का अल्पकालीन किंतु उदार नेतृत्व किया।

वे किसी के भी दबाव में आने वाले या 'पालतू' होने वाले जीव नहीं। उन्होंने रोमन काथलिक गिरजे को एक नयी तीर्थयात्रा पर निकल पड़ने को कहा है। पद-ग्रहण करते समय का उनका संदेश है :

'हम इस अवसर पर समस्त हार्दिकता के साथ उन सब लोगों की ओर अपने हाथ बढ़ाना चाहते हैं, जो किसी भी तरह के अन्याय या भेदभाव की नीति और बरताव से पीड़ित हैं। चाहे यह पीड़ा आर्थिक हो या सामाजिक, राजनैतिक हो या विवेक स्वातंत्र्य से संबंधित, हमें उनके पास अपने सारे साधनों से पहुंचना है। वर्तमान युग के सारे अन्यायों से हमें जनमत के बल पर ही निबटना है। हम चाहते हैं कि उन सबकी तकलीफें दूर हों और सब लोग जीने योग्य जिंदगी जियें।' [यह संदेश इसका सूचक है कि वे पोप जान २३ वें एवं पोप पाल षष्ठ की विश्वशांति व मानव-अधिकार-समर्थक उदार नीति को जारी रखेंगे। पोप जॉन पाल द्वितीय नाम भी उन्होंने इसीलिए चुना है।]

नये पोप में यह स्वतंत्र मनोवृत्ति यों ही नहीं आ गयी; वह उन्हें जीवन के कठिन पथ से मिली है।

दूसरे विश्वयुद्ध से पहले वे भाषातत्त्व के छात्र थे। (शायद इसीलिए वे अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच और इतालवी भाषाओं पर इतना अच्छा अधिकार कर सके।) उन्हीं दिनों उन्होंने पोलिश साहित्य पढ़ा और कविताएं भी लिखीं। उनका एक छोटा-सा प्रगतिशील समुदाय था, जिसे 'चारण गीति

मंच' कह सकते हैं। ये लोग पोलैंड के इतिहास की वीरगाथाओं पर गीति-नाटक रचते और उन्हें कभी-कभी तो आधुनिक वेशभूषा में ही प्रस्तुत भी करते थे।

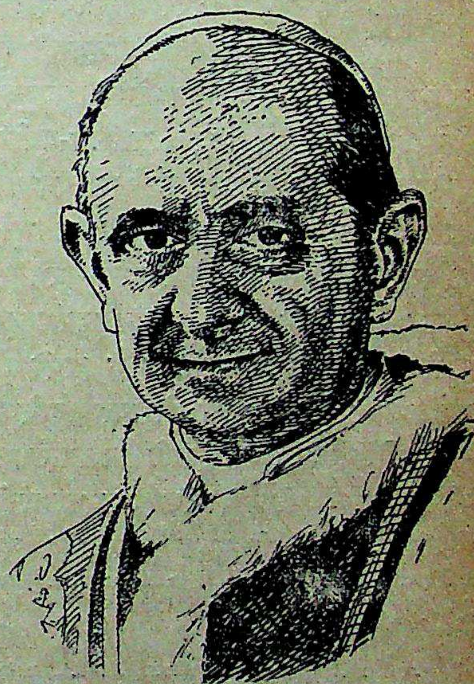
सन १९४० में जब जर्मन आधिपत्य ने पोलैंड का सांस्कृतिक जीवन समाप्त कर दिया, तब यह युवामंच भूमिगत हो गया और बीस-बीस, तीस-तीस दर्शकों के समक्ष निजी घरों में ही प्रदर्शन करता रहा। भावी पोप कारोल वायतिला भी जर्मनों के खिलाफ इस सांस्कृतिक प्रतिरोध में हिस्सेदार थे।

यह कैसा सुखद आश्चर्य है कि उनके पोप चुने जाने में सबसे अधिक सहयोग जर्मन कार्डिनलों का ही रहा। पश्चिम जर्मनी में यों भी उन्हें बहुत लोग मानते हैं, यद्यपि एक बार वहां की यात्रा में उन्होंने हठ ठानकर डाचाउ युद्धबंदी शिविर में जाकर धर्मोपदेश दिया था।

बचपन में ही वायतिला अनाथ हो गये थे। उम्र में उनसे बहुत बड़े उनके अग्रज, जो एक अस्पताल में डाक्टर थे, लड़ाई शुरू होने से पहले ही छूत की बीमारी से चल बसे थे। २१ वें साल से ही वायतिला पूर्णत: स्वावलंबी हो गये। जिंदा रहने के लिए उन्हें नाम बदलकर क्राक्वा में ही एक बेल्जियम मालिक की रासायनिक फैक्टरी में काम करना पड़ा। इससे उन्हें एक और भी लाभ हुआ—कामगार-कार्ड मिल जाने से वे गुलाम श्रम-शिविर में जाने से बच गये।

सन १९४२ में वे इस कारखाने से गायब हो गये और विश्वयुद्ध के बाद ही प्रकट हुए। वास्तव में वे अन्य तीन छात्रों के साथ क्राक्वा के आर्च बिशप के प्रासाद में गुप्त रूप से रहने लगे थे और कार्डिनल सापीहा के अंतेवासी बनकर दर्शन और धर्म-विज्ञान पढ़ते रहे थे। सुरक्षा के लिए, वे कभी इस प्रासाद से बाहर नहीं निकले। (तभी किसी ने यह झूठी कहानी उछाल दी कि उनकी शादी हुई थी, फिर वे विधुर भी हो गये थे।)

सन १९४६ में दीक्षित पादरी बनकर वे किसी तरह रोम आ गये, जहां उन्होंने आंजेलिकम विश्वविद्यालय में क्रास वाले संत

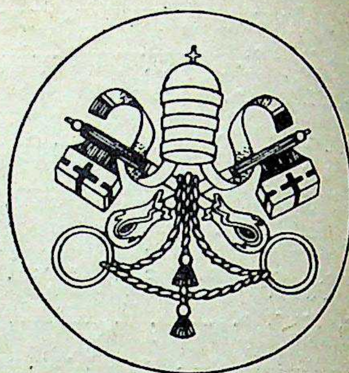


स्व. पोप पाल षष्ठ जिन्होंने बड़ी संख्या में एशियाई, अफ्रीकी और दक्षिण अमरीकी कार्डिनलों की नियुक्ति करके गैर-इतालवी पोप का निर्वाचन संभव बनाया।

जान पर प्रबंध प्रस्तुत किया। वहां उनके निदेशक थे कट्टर परंपरा-भक्ति के लिए प्रसिद्ध फ्रांसीसी डोमिनिकन रेजिनाल्ड गारिगु-लाग्रांज। वायतिला में धर्म-विज्ञान विषयक रूढिवाद उन्हीं से आया। यह उनमें आज भी मौजूद है, यद्यपि इसके साथ ही उनमें पर्याप्त बौद्धिक संतुलन भी है। इसलिए पूर्वी पोलैंड के लूबलिन नगर में पहुंचने पर उन्होंने माक्स स्केलर पर और ही तरह का प्रबंध प्रस्तुत किया। माक्स काथलिक दर्शनवेत्ता तो हैं, पर अस्तित्व-वाद की ओर उनका जबर्दस्त झुकाव है।

वायतिला न केवल सच्चे बुद्धिवादी हैं, बल्कि दृढ़निश्चयी व्यक्ति भी हैं। क्राक्वा विश्वविद्यालय में जब स्तालिन-युगीन दमन-चक्र में धर्म-विज्ञान का अध्यापन बंद कर दिया गया था, तब भी वायतिला पहले सहकारी पुरोहित और फिर पल्ली-पुरोहित के रूप में गुप्त रूप से धर्म-विज्ञान पढ़ाते रहे। तभी से वे सारस्वत-स्वातंत्र्य के हामी हो गये। आज उनकी यही विशेषता दुनिया को सर्वाधिक प्रभावित करती है। कार्डिनल की हैसियत से भी वे पोलैंड के उन तूफानी विश्वविद्यालयों की मदद करते रहे, जो सरकार द्वारा निषिद्ध विषयों को भी पढ़ाते हैं।

लेकिन वे गैरजरूरी जोखिम उठाने के आग्रही नहीं थे। वे अपनी मुक्तछंद की कविताएं, जिनमें धर्म एवं पुण्य की जगह नैतिक और दार्शनिक विषय अधिक हैं, 'आंद्रेय योविन' के छद्म नाम से लिखते रहे



पोप की राजमुद्रा

और उन्हें पोलैंड के बुद्धिवादी काथलिकों ने छापा भी। १९५८ में क्राक्वा में सहाय बिशप बनने पर भी उन्होंने अपना सि दो कमरे वाला घर नहीं बदला। १९६४ में आर्च बिशप बनने पर भी जब वे उसी घर में डटे रहे, तब विकार-जनरल ने चार ह बाद एक दिन मौका पाकर उनकी गैरहाजिरी में सारा सामान आर्च बिशप प्रासा में रखवा दिया।

मगर उन्होंने प्रासाद को भी मानो कर्म शाला बना दिया। हर महीने वहां युवकों की द्वि-दिवसीय विचार-गोष्ठियां जमने लगीं, जिनमें युवा कामगार, अभिनेता और पादरी सभी शामिल होते थे। वे इनमें खु भी शामिल होते थे, यद्यपि उनके सहकारी चाहते थे कि वे यह समय दूसरे कामों में दें। यहीं वे हर सुबह मुलाकातियों से भी मिलते थे—जो जिस क्रम से आता, उ

[शेष पृष्ठ १५७ पर]

मर्द माताहरियों की माया

सुरेश सिन्हा

सुजान सुंदरियां शृंगारपूर्ण हावभावों से चुनिंदा पुरुषों को मुग्ध करें और महत्त्वपूर्ण राजनैतिक एवं सैनिक जानकारियां उनसे उगलवा लें—यह बहुत घिसी-पिटी बात हो गयी है जासूसी में। नारी-स्वातंत्र्य के आज के युग में नया ढंग यह है कि आकर्षक पुरुष चुनिंदा नारियों के साथ प्रेम और दांपत्य का नाटक रचें और उनके जरिये महत्त्वपूर्ण सरकारी और सैनिक सूचनाएं एकत्र करके अपने आकाओं को भेजें। पश्चिम जर्मनी में ऐसी जासूसी बड़े पैमाने पर चल रही है।

तीस वर्ष पार कर चुकी रूपसी रेनात लुत्स पश्चिम जर्मनी के रक्षा-मंत्रालय के एक उच्च अधिकारी की विश्वस्त और चुस्त सेक्रेटरी थी। काम में इतनी मुस्तैद कि रोज शाम को बाकी सबके घर चले जाने के बाद भी देर तक दफ्तर में काम करती रहती थी। इतना काम क्या रहता था उसे रोज-रोज? सुनिये।

वह महत्त्वपूर्ण गुप्त कागज अपने अफसर की अलमारी से निकाल लेती या मंत्रालय के रेकार्ड-रूम से अपने अफसर के नाम पर निकलवा लेती और उनकी फोटो-कापियां बना लती और अपने पति लोत्हर के सुपुर्द कर देती थी। पति लोत्हर पूर्व जर्मनी की ओर से जासूसी करता था।

इस तरह लुत्स की मेहरबानी से एक हजार से भी ज्यादा दस्तावेज पूर्व जर्मनी पहुंच गये। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण थे युद्धकाल में नाटो की सेनाओं को पेट्रोल पहुंचाने के लिए नाटो देशों में बिछायी गयी गुप्त जमींदोज पाइप-लाइन के नक्शे। नतीजा यह है कि आज वार्सा-संधि संघटन को अच्छी तरह मालूम है कि पाइप-लाइन कहां-कहां से काटी जा सकती है और आक्रमण के बाद कितने समय में नाटो-सेनाओं को पेट्रोल के लाले पड़ जायेंगे। और पाइप-लाइन ऐसी चीज तो है नहीं कि आज यहां से उखाड़ी और कल वहां बिछा दीं।

पर रेनात लुत्स ने अपने देश की सुरक्षा को इस तरह खतरे में क्यों डाला? इसलिए कि उसे अपने पति से गहरा प्यार था। और उसका पति लोत्हर रेनात से शादी करने से बहुत साल पहले से ही पूर्व जर्मनी का जासूस-एजेंट था।

मगर इससे भी अधिक नाटकीय किस्सा है आकर्षक नैन-नक्श वाली जेर्डा ओस्टेन-



जेर्डा और उससे जासूसी कराने वाला पति श्रायट्टर।

राइडर का, जिसकी उम्र अब तीस से दो-तीन साल ज्यादा होगी। वह बताती है:

'तब मैं तरुणी थी, निरी उन्नीस वर्ष की। मैं दुनिया को बेहतर बनाना चाहती थी, समाजवाद की हिमायती थी; मगर मुझे किसी भी चीज का गहरा ज्ञान नहीं था। फिर मेरे जीवन में यह शख्स आया जो उम्र में मुझसे पूरे सत्रह साल बड़ा था। उसने बताया कि वह "दूसरे" जर्मनी के लिए काम करता है और यह विश्वशांति के लिए बहुत जरूरी है। मैंने उस पर विश्वास कर लिया।'

इस तरह जेर्डा जासूसी के चक्कर में फंस गयी। हर्बर्ट श्रायट्टर, जिससे उसने प्यार और विवाह किया, पूर्व जर्मनी का एजेंट था। उसके फुसलाने से जेर्डा ने पश्चिम जर्मनी के विदेश-मंत्रालय में नौकरी प्राप्त कर ली। सरकार ने जेर्डा और उसके पति के पूर्वचरित का पता लगाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी।

कार्यदक्ष जेर्डा कुछ ही समय में विदेश-मंत्रालय के एक अ
महत्त्वपूर्ण अनुभा
पहुंच गयी। यह
समाचार-कक्ष। व
विश्व के सब प
जर्मन दूतावासों
जाने वाले और व
आने वाले तमाम
इस कक्ष से आ
जाते हैं। अब जेर्डा
पांचों उंगलियां घी
थीं। वह सब महत्त्वपूर्ण तारों की नकलें ब्रीफकेस के चोर-खाने में छिपाकर घ
आती और अपने पति को सौंप देती। द
से कागजात चुराकर लाने में उसे कभी
अड़चन नहीं हुई। कभी किसी पहरेदा
उसके झोले की तलाशी नहीं ली।

हर्बर्ट ये कागजात पूर्व बर्लिन जाने वा
ट्रेन के गुसलखाने में वाश-बेसिन के
छिपा दिया करता था और वे पूर्व ब
में निकाल लिये जाते थे।

लंबे अरसे तक यह सिलसिला च
रहा। जेर्डा की सेवा से पूर्व जर्मनी इ
प्रसन्न हुआ कि उसने दो बार उसे गुप्त
से स्वर्ण-पदक दिये। मगर धीरे-धीरे
अनुभव करने लगी कि वह अपने दे
साथ द्रोह कर रही है। उसे महसूस
लगा कि हर्बर्ट ने जासूसी कराने के लि
उससे शादी की थी। हर्बर्ट के संग र
उसे कष्टप्रद लगने लगा। उसे तो इ
भी भरोसा न रहा कि हर्बर्ट श्रायट्टर उ

पति का असली नाम है, नकली नाम नहीं।

सन १९७२ में जेर्डा की नियुक्ति वार्सा के पश्चिम जर्मन दूतावास में हुई। वहां उसने साहस जुटाकर राजदूत से सारी बात कह दी। मगर अपने पति से वह बेवफाई नहीं करना नहीं चाहती थी। वार्सा से फोन करके उसने हर्बर्ट को बता दिया कि मैं अपनी व तुम्हारी कलई खोल रही हूं, तुम्हारी गिरफ्तारी होने वाली है। श्रायटर पूर्व बर्लिन खिसक गया। जेर्डा पर मुकद्दमा चला और उसे तीन साल की जेल हुई।

आखिर ये युवतियां जासूसों के चक्कर में फंसती ही क्यों हैं? मामला जरा उलझा हुआ है। छोटी आबादी वाला छोटा-सा शहर है बॉन। मगर सरकारी दफ्तर वहां बड़ी संख्या में हैं; आखिर वह है देश की राजधानी। दफ्तरों में काम करने के लिए वहां पर्याप्त संख्या में पुरुष नहीं मिलते। इसलिए लड़कियों को आसानी से नौकरी मिल जाती है। नौकरी करके स्वतंत्र रहने की ख्वाहिश से देश-भर से लड़कियां बॉन आती हैं। शीघ्र ही यहां उन्हें अकेलापन सताने लगता है, पुरुषों के साहचर्य और प्यार के लिए तरसने लगती हैं वे; और इसका फायदा उठाते हैं जासूस।

असल में इस समय पश्चिम जर्मनी साम्यवादी देशों के जासूसों से पटा पड़ा है—विशेषतः पूर्व जर्मनी के जासूसों से। दुनिया मई १९७४ में चौंक उठी थी जब यह बात प्रकट हुई कि पश्चिम जर्मनी के प्रधान-मंत्री विली ब्रांट का विश्वासपात्र सहायक गुंटर गिलामे पूर्व जर्मनी का जासूस है। विली ब्रांट को त्यागपत्र देना पड़ा था। कैसी विडंबना की बात कि साम्यवादी देशों से—विशेषतः पूर्व जर्मनी से—तनाव-रहित और मधुर संबंध बनाने की साहसपूर्ण नीति अपनाने का यह मूल्य विली ब्रांट को चुकाना पड़ा!

पूर्व जर्मनी का जासूस-संघटन एच. वी. ए. दुनिया के सबसे चतुर और कार्यक्षम जासूस-तंत्रों में गिना जाता है। पश्चिम जर्मनी में काम करने में उसके गुप्तचरों को विशेष सुविधा है। आखिर भाषा और संस्कृति तो एक ही है इन दोनों देशों की और कुछ नहीं तो लाख-दो लाख जर्मन परिवार ऐसे हैं, जिनके कुछ सदस्य पूर्व जर्मनी में हैं तो कुछ पश्चिम जर्मनी में। सो पूर्व जर्मन जासूसों को पश्चिम जर्मनी में छिपने व खपने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती।



पुरातन काल की बात है। समुद्र पार से एक किश्ती जापान के तट पर आ लगी और विचित्र वेश वाला एक विदेशी यात्री उसमें से उतरा। वह अपने साथ कपास के बीज लाया था। वह उसी देश में बस गया और कपास की खेती करने लगा। धीरे-धीरे उसने जापानी भाषा सीखी और तब लोगों को पता चला कि वह भारतीय है। इस प्रकार जापान में कपास लाने और उसकी खेती शुरू करने का श्रेय भारत को है। यह बात एक जापानी वस्त्रोद्योग कंपनी के अधिकारी श्री एस. नोदा ने सूरत में बतायी।



श्रीगोपाल नेवटिया लेख-प्रतियोगिता का परिणाम



प्रथम पुरस्कार : ५०० रु.

सब निर्णायक इसमें एकमत थे कि कोई भी प्रविष्टि इस पुरस्कार के योग्य नहीं थी। इसलिए यह पुरस्कार नहीं दिया गया है।

द्वितीय पुरस्कार : ३०० रु.

डा. विष्णु प्रसाद *(कानपुर)*

[क्या भारत आर्थिक विकास की दौड़ में पिछड़ता जा रहा है, और क्यों?]

तृतीय पुरस्कार : २०० रु.

श्रीमती मणि आनंद *(अलीगढ़)*

[क्या औद्योगिक विकास की बलि चढ़ाये बिना ग्राम-विकास संभव है, और कैसे?]

निर्णायक :

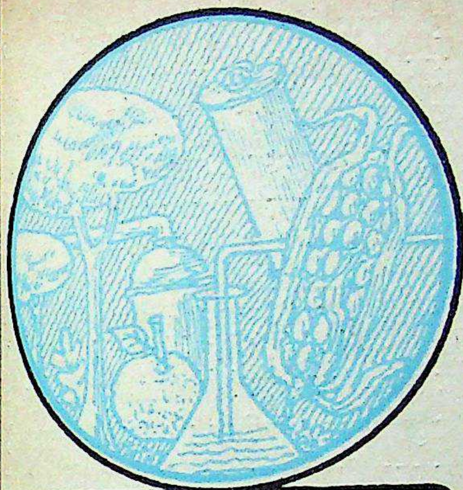
श्री गणेश मंत्री, मुख्य उपसंपादक : धर्मयुग, बंबई।

श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री, भूतपूर्व सह-संपादक : क्वार्टरली इकोनामिक रिपोर्ट, नयी दिल्ली।

श्री नारायण दत्त, संपादक : नवनीत, बंबई।

● पुरस्कार-राशि विजेताओं को चेक द्वारा प्रेषित की जायेगी। ● प्रतियोगिता में भाग लेने वाले समस्त बंधुओं को हमारा धन्यवाद।

—प्रबंध-संचालक : नवनीत



विज्ञान-बिंदु

केजिता

वैचारिक हठवादिता का जोर घटने से जो चीजें धर्मास्था या अंधविश्वास का ही विषय न रहकर वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में आती जा रही हैं, उनमें से एक है—पुनर्जन्म।

अमरीका की वर्जीनिया यूनिवर्सिटी के परामनोविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष डा. इयन स्टिवेन्सन पिछले तीस वर्षों से इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। अभी पिछले दिनों उन्होंने अपनी भारत-यात्रा के दौरान यह बताया है कि विस्तृत सर्वेक्षण से संसार के कुछ ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों का पता लगा है, जहां पूर्वजन्म की स्मृतियों वाले बच्चे अपेक्षाकृत अधिक संख्या में पैदा होते हैं। ये क्षेत्र हैं—श्रीलंका, उत्तर भारत, बर्मा, थाइलैंड, तुर्की, इंदोनेशिया के सैयद मुस्लिम आबादी वाले इलाके और उत्तर-पश्चिम अमरीका आदि। ऐसा क्यों है? यह अभी बता पाना कठिन है।

पुनर्जन्म के मामलों के अध्ययन की विधियों पर प्रकाश डालते हुए डा. स्टिवेन्सन ने बताया कि बच्चे की प्रवृत्ति, बातचीत और कभी-कभी शारीरिक रचना से भी उपयोगी बातों का पता लग सकता है। उनके पास ऐसे कुछ बच्चों के रेकार्ड हैं, जो पानी, कुत्ते या ट्रक वगैरह को देखकर चीखने-चिल्लाने लगते थे, और जिन्होंने कुछ बड़े होने पर बताया कि पूर्वजन्म में यही चीजें उनकी मृत्यु का कारण बनी थीं। छानबीन करने पर कई मामलों में उनके बयान सही पाये गये।

ऐसे मामलों में पूरे परिवार का अध्ययन करना होता है। यह पता लगाना होता है कि उस परिवार में किसी और व्यक्ति में तो इसी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं है, या कभी कोई ऐसी घटना तो इस जीवन में नहीं हुई है, जिसके प्रभाव से वह ऐसी बातें कहता हो।

डा. स्टिवेन्सन के अनुसार, पिछले तीस वर्षों में यह पाया गया है कि कई बच्चों के व्यवहार की अपसामान्यताओं का कारण उनके पूर्वजन्म से संबद्ध होता है। उन्होंने एक सिंहली-भाषी बच्चे के विषय में बताया, जो अपने वर्तमान माता-पिता के लिए मम्मी-डैडी शब्दों का उपयोग करता था और पूर्वजन्म के माता-पिता के लिए इनके

सिंहली पर्यायों का।

शारीरिक लक्षणों से पूर्वजन्म की पुष्टि के भी प्रकरण उन्होंने सुनाये। वे एक तुर्की युवक को जानते हैं, जो कहता है कि पूर्वजन्म में वह डाकू था और एक बार फ्रांसीसी पुलिस के घेरे में आ जाने पर उसने अपनी बंदूक कनपटी पर रखकर घोड़ा दबा दिया और आत्महत्या कर ली। कनपटी पर जिस स्थान पर उसने बंदूक की नली टिकायी थी, ठीक उसी स्थान पर इस जन्म में उसके शरीर पर एक निशान है।

डा. स्टिवेन्सन ने युवक के बताये विवरणों के आधार पर गुप्त रूप से इस मामले की पूरी परीक्षा की। उन्होंने उस पुलिस-दल का पता लगाया, जिसने उस डाकू का घेराव किया था। दल के सदस्यों ने बताया कि उन्होंने भी एक गोली दागी थी, जो डाकू की खोपड़ी में लगी थी।

डा. स्टिवेन्सन ने पुलिस के इस बयान के आधार पर सरकारी अस्पताल के कागजात देखे और डाकू की खोपड़ी में गोली ठीक कहां लगी थी और उससे कितना बड़ा और कैसा घाव बना, इसका ब्योरा प्राप्त किया। फिर उन्होंने उस तुर्की युवक को इस विषय में कुछ बताये बिना उसकी खोपड़ी की जांच की। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने पाया कि उसकी खोपड़ी में भी ठीक उसी स्थान पर, ठीक उसी आकार का एक निशान मौजूद है!

अपने अध्ययन और अनुभव का सार डा. स्टिवेन्सन ने बेंगलूर विश्वविद्यालय की एक सभा में इन शब्दों में प्रकट किया: 'पुनर्जन्म की संभावना को एकदम नकारा नहीं जा सकता; परंतु अभी उसकी घोषणा भी असंदिग्ध रूप से नहीं की जा सकती। जो परिणाम अब तक सामने आये हैं, उत्साहवर्धक हैं।'

खून की जरूरत है

यों तो अब जगह-जगह रक्त-बैंक खुल गये हैं। मगर बैंकों में रक्त पैदा तो होता नहीं; लोग वहां जितना रक्त जमा कराते उतना ही रक्त रहता है बैंकों में। जमा करने वाले भी सीमित संख्या में ही आते हैं। फिर लड़ाई के मैदानों में, जहां रक्त-बैंक नहीं होते, वहां भी जीवन-रक्षा के लिए रक्त की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए रक्त की जगह किसी अन्य पदार्थ को इस्तेमाल किया जा सके, यह कोशिश पिछले कई वर्षों से विज्ञानी करते आ रहे हैं।

इसी स्तंभ में पहले आप पढ़ चुके हैं कि अमरीकी वैज्ञानिक इस प्रयास में सफल होने की घोषणा कुछ वर्ष पूर्व कर ही चुके हैं और उनके द्वारा तैयार किये गये कृत्रिम रक्त के सहारे चूहों को काफी लंबे समय तक जीवित रखा जा सकता था। अब रूसी वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि उन्होंने इस क्षेत्र में एक बिलकुल नयी खोज की है और अपने बनाये नकली रक्त के सहारे एक बिल्ली को आठ घंटे तक जिंदा रखने में कामयाब हुए हैं।

शरीर में रक्त जो अनेक कार्य करता है, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण काम है श्वासक्रिया

में फेफड़े में पहुंची हवा में से आक्सिजन का अवशोषण करके उसे शरीर के आवश्यक स्थान पर ले जाकर विमुक्त करना। रक्त की इस जिम्मेदारी को निभाता है उसकी कोशिकाओं में पाया जाने वाला लाल रंग का वर्णक हीमोग्लोबिन।

इसलिए नकली रक्त बनाने के प्रयत्नों की सफलता की पहली शर्त यह है कि ऐसे किसी पदार्थ की खोज की जा सके, जो फेफड़े में आक्सिजन का अवशोषण करके उसे शरीर के अन्य भागों में विमुक्त कर सके। इसी से जुड़ी हुई दूसरी शर्त यह है कि जिन शरीरक्रियात्मक अवस्थाओं में रक्त यह काम करता है, उन्हीं हालात में यह नया पदार्थ भी यह काम कर सके। रूसी वैज्ञानिकों की नयी खोज इन्हीं बुनियादी बातों पर टिकी है।

रूसी समाचार के मुताबिक, फ्लुओरोकार्बन नामक रसायन इन गुणों में हीमोग्लोबिन से मिलते-जुलते हैं। रूसी प्रयोगों में बिल्ली के शरीर में से वास्तविक रक्त निकालकर फ्लुओरोकार्बन ही भरे गये थे।

नकली रक्त प्राकृतिक रक्त का स्थान पूरी तरह ले सके, उस स्थिति तक पहुंचने में अभी कुछ और समय लग सकता है। परंतु फिलहाल प्रतिरोध के लिए अंगों के परिरक्षण आदि के लिए फ्लुओरोकार्बनों से रक्त का काम लिया जा सके तो उससे भी मानव का काफी भला हो सकेगा।

उत्तरी विक्षिप्ति

मानसिक अवसाद (मेन्टल डिप्रेशन) का रोग लगातार बढ़ोतरी पर है। इस रोग को लेकर एक सर्वेक्षण पटियाला के मेडिकल कालेज के मनश्चिकित्सा-विभाग के प्रो. गुरमीत सिंह ने किया है। देश के विभिन्न चिकित्सा-केंद्रों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर वे इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि यह रोग देश के उत्तरी क्षेत्रों में दक्षिणी प्रदेशों की अपेक्षा अधिक व्याप्त है।

उदाहरणार्थ, दक्षिणी प्रदेशों में मानसिक चिकित्सालयों में उपचार के लिए आने वाले रोगियों में मानसिक अवसाद वाले व्यक्तियों का प्रतिशत सामान्यतः ४ और ९ के बीच होता है और अधिक से अधिक अनुमानतः १२। इसके विपरीत उत्तर में यह संख्या २० से लेकर ३५ प्रतिशत तक पायी गयी है। पटियाला और चंडीगढ़ में यह रोग सबसे अधिक व्याप्त है। वहां इसके रोगियों का प्रतिशत २९.२ से लेकर ३४.९ तक है।

मानसिक अवसाद के मुख्य लक्षण हैं—लगातार थकावट, सिरदर्द, नींद और भूख की गड़बड़ी, काम-काज में अरुचि, समाज से विलगाव की प्रवृत्ति, तेजी से बदलने वाला मूड, हर समय घेरे रहने वाली उदासी और निराशा। चरम अवस्था में रोगी आत्महत्या भी कर सकता है।

इस रोग की कई किस्में हैं। इनमें से जो सबसे अधिक ज्ञात है, उसे 'एन्डोजीनस' यानी अंतर्जनित कहते हैं और मनुष्य की जीन-संरचना और उसमें होने वाले परिवर्तनों को उसका कारण समझा जाता है।

अगला नवनीत

ख्रुश्चोव की जीवन-सांझ
रूस के पदच्युत कर्णधार निकिता ख्रुश्चोव ने अपने अंतिम वर्ष कैसे गुजारे—एक मार्मिक चित्र।

होली है.....
कन्हैयालाल कपूर, रवींद्रनाथ त्यागी आदि की हास्य रचनाएं और उपेन्द्रनाथ अश्क का संस्मरण।

ऋषीकेश में प्रेरणा-गोमुख
सामाजिक न्याय की तीव्र चेतना से दीप्त संन्यासी स्वामी चिदानंद सरस्वती (अध्यक्ष : शिवानंद मिशन) का व्यक्तित्व-सौरभ।

नक्षत्र
कुंआरे-कवि स्व. पंतजी के गृहमोह की हृदयस्पर्शी झांकी।

जासूसी उपग्रह बिकाऊ हैं
पश्चिम जर्मनी की एक व्यापार-संस्था जैरे के राष्ट्रपति मोबुटु को जासूसी उपग्रह बेच रही है। कीमत ? लेख में पढ़िये और चौंक पड़िये।

कहानियां
पहाड़ों की बर्फ (उर्दू)—**अहमद नदीम कासमी**; छह बच्चे (जर्मन)—**जूलियस फूचिक**; अभिशप्ता (हिंदी)—**शीतांशु भारद्वाज।**

कविताएं—संस्मरण—विज्ञान—अन्य स्थायी स्तंभ।

एक सूचना

श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला नेपाल के राजनेता ही नहीं नेपाली के सर्वमान्य उपन्यासकार भी हैं। उनका उपन्यास **'सुम्निमा'** परंपरागत मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करता है। उसका धारावाहिक प्रकाशन **नवनीत** में अप्रैल अंक से शुरू होगा।

तो क्या भारत के उत्तरी और दक्षिणी देशों के निवासियों के 'जेनेटिक पूल' में कोई छोटा या मोटा अंतर है और उसी के कारण मानसिक अवसाद उत्तरी क्षेत्रों में अधिक और दक्षिणी क्षेत्रों में कम है ? और क्या इसके आधार पर यह मानना ठीक होगा कि पंजाबियों की जीन-संरचना शेष भारत के निवासियों से बहुत अलग होती है ?

डा. सिंह स्वयं भी किसी निर्णय पर नहीं पहुंचे हैं। हां, इस तरह अनुसंधान के लिए एक नये क्षेत्र का पता लगा है।

समुद्री उर्वरक

विकास-योजनाओं में कृषि को सर्वाधिक महत्त्व देने का संकल्प राष्ट्र ने किया है। कृषि-विकास का गहरा संबंध है खाद (रासायनिक और जैविक दोनों) की भरपूर उपलब्धि से। इस सिलसिले में एक नयी सफलता भावनगर (गुजरात) के सेंट्रल साल्ट एंड मैरीन केमिकल्स रिसर्च इंस्टिट्यूट को प्राप्त हुई है। हाल में उसकी एक विज्ञप्ति में बताया गया है कि उसने समुद्री घास-पात से एक ऐसे द्रव पदार्थ का निर्माण किया है, जो फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्त्वों से संपन्न है और उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

इस शोध में मुख्य मुद्दा यह था कि समुद्री घास-पात से पोषक तत्त्वों के निष्कर्षण की विधि विकसित की जाये और जो पदार्थ इस प्रकार तैयार किया जाये वह स्थिर हो और आसानी से काम में लाया जा सके। शोधदल का कहना है कि उनका शोधकार्य इन दोनों दृष्टियों से सफल रहा है। बताया गया है कि प्रयोगशाला के स्तर पर इस समुद्री उर्वरक का परीक्षण किया जा चुका है और क्षेत्र-परीक्षण के लिए इसे सारे देश के विभिन्न भागों में भेजा जा रहा है।

इसी शोधदल के अनुसार, समुद्री काई से घरेलू ईंधन के रूप में काम में लायी जाने वाली मीथेन गैस तैयार करने का भी प्रयत्न किया जा रहा है।

मूत्र-चिकित्सा: नया आयाम

सारे देश में जंगल की आग की तरह फैल रही और तरह-तरह की एलर्जी फैला रही गाजर घास (पार्थेनियम) का उन्मूल विकट समस्या बन गया है। अब एक दिलचस्प बात इस बारे में सुनिये।

एक सज्जन के घर के आहते में पार्थेनियम ने गहरी जड़ें जमा ली थीं और उसे समूल नष्ट करने की उनकी सारी कोशिशें विफल हो चुकी थीं। गुस्से में आकर उन्होंने उस झाड़ी पर पेशाब करना शुरू कर दिया। कुछ समय में वे भूल ही गये कि उस झाड़ी को खत्म भी किया जाना है।

कुछ दिनों बाद उन्होंने अचानक देखा कि झाड़ी कुछ-कुछ मुरझाने लगी है और उसका फैलाव भी कुछ कम होने लगा है। कुतूहलवश उन्होंने पौधे का मूत्रोपचार जारी रखा। फिर एक दिन उन्होंने देखा कि पौधा सचमुच दम तोड़ चुका है। बेशक वे सज्जन कोई वैज्ञानिक परीक्षण नहीं कर रहे थे; मगर वैज्ञानिक जहां पर नाकाम हो चुके थे, वहां उन्हें सफलता मिल गयी।



रूसी राष्ट्रपति के साथ एक रा

मुहम्मद हैकल

ख्रुश्चोव के पदच्युत कर दिये जाने के दस महीने बाद अगस्त १९६५ में कर्नल रूस के नये भाग्य-विधाताओं को देखने-परखने के इरादे से मास्को गये। उनके सलाहकार तथा 'अल अहराम' के संपादक मुहम्मद हैकल भी उनके साथ थे। इस या हैकल के साथ एक मजेदार घटना घटी। उसका वर्णन नीचे उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत



रूस के नये नेताओं ने हमारी यात्रा को सफल बनाने की ठान ली थी। २७ अगस्त को तमाम रूसी नेता हवाई अड्डे पर हाजिर थे मिस्री मेहमानों की अगवानी करने। जयकारे लगाने के लिए सड़कें पार्टी-कार्यकर्ताओं से भर दी गयी थीं।

रूसी त्रिमूर्ति (पोदगोर्नी, ब्रेजनेव और कोसीगिन) इस बात को खूब समझते थे कि अंतरराष्ट्रीय जगत में मध्यपूर्व का कितना महत्त्व है और वे नासर को यह दरशाने को व्यग्र थे कि मध्यपूर्व-संबंधी रूसी नीति रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की नीति थी, ख्रुश्चोव का निजी मामला नहीं। लिहाजा दो औपचारिक बैठकों के बाद ब्रेजनेव नासर से बोले—'आप तो सोवियत रूस पहले भी देख चुके हैं। इस भेंट-यात्रा में जरूरत इस बात की है कि मिल-बैठकर बातें करने के लिए वक्त निकाला जाये। हमारे-आपके बीच में हरी चादर बिछी मेज न हो और मनुष्य-मनुष्य के रूप में हम एक-दूसरे को जान-समझ

सो उस सप्ताहांत-गोष्ठी के लिए दोवा नाम का शिकार-कुटीर चुना जहां मास्को से कार द्वारा थोड़ी ही दे पहुंचा जा सकता था। कुटीर में दी पर शिकार में मारे गये एल्क और पशुओं के सिर टंगे हुए थे। जब हम पहुंचे, त्रिमूर्ति पहले से वहां मौजूद थी शेलेपिन, मिकोयान, ग्रोमीको पोल्यान्स्की भी हाजिर थे।

दोपहर का वक्त था। ब्रेजनेव ने प्रस्त रखा कि हम लोग या तो शिकार पर या मछली पकड़ने। नदी-बांध से नि एक विशाल झील पास ही थी, जहां ब का शिकार किया जा सकता था; साथ एक छोटी झील भी थी, जिसमें म पकड़ी जा सकती थी।

हमारे विदेश-मंत्री डा. फावजी को मुझे छोड़कर सभी लोगों ने शिकार

ना पसंद किया । डा. फावजी को और झे मल्लाह, बंसी और डोरी के साथ एक-क छोटी किश्ती दे दी गयी । कुछ ही मिनटों में मैंने पाया कि मैं उससे कहीं अच्छा मछुआ हूं, जितना कि मैं अपने को समझता था। लगभग हर तीन मिनट में मैं एक मछली झील से निकालकर किश्ती में डालता गया ।

सूरज डूबने को हुआ । डा. फावजी झील के दूसरे किनारे अपनी किश्ती में थे । मैंने चिल्लाकर उनसे कहा—'मैंने ढेरों मछलियां पकड़ डाली हैं—पूरी ११० ।' मगर डा. फावजी भी बहुत पीछे नहीं रहे थे, हालांकि उन्होंने इससे पहले कभी बंसी-डोरी को हाथ नहीं लगाया था। उनका योगफल ६० रहा ! वे बोले—'या तो यह पार्टी-झील है, या जनसंपर्क-झील । इसमें मछलियां खुद-ब-खुद हमारे पास चली आती हैं !'

कुछ देर बाद शिकारी भी लौट आये। ब्रेजनेव ने अठारह बत्तखें मारी थीं, नासर ने बारह, कोसीगिन ने दस, सादत और जकरिया मोहिद्दीन और मिकोयान ने तीन-तीन, और ग्रोमीको ने दो । मार्शल मेलिनोव्स्की अपना झोला खोलने को तैयार नहीं हो रहे थे। मगर ब्रेजनेव ने दबाव डाला तो पता चला कि एक भी बत्तख मार्शल के हाथ नहीं लगी थी। वे उदास आवाज में बोले—'अगली बार मैं अपने कर्मचारियों को हिदायत दूंगा कि वे मेरे लिए "जमीन से बत्तख प्रक्षेपास्त्र" ईजाद करें ।'

फिर हुआ रात्रिभोज । मूड जरा तनावपूर्ण था। किसी ने भी ख्रुश्चोव का जिक्र नहीं किया; मगर हर कोई वैसा वातावरण सिरजने की कोशिश कर रहा था, जैसा ख्रुश्चोव के अधिकार-काल में ऐसे अवसरों पर होता था । मानो अनुपस्थित ख्रुश्चोव की प्रतिभा भोज की अध्यक्षता कर रही थी ।

भोज के बाद ज्यादातर मेजबान और मेहमान जल्दी ही सोने चले गये । मगर मैं मिकोयान के साथ बातें करता बैठा रहा या कहना चाहिये कि उनकी बातें सुनता बैठा रहा। वे बड़ी बढ़िया अंग्रेजी बोलते थे और किस्से सुनाने में तो कमाल ही हासिल था उन्हें। मुझे उनके संस्मरण बड़े ही दिलचस्प लग रहे थे ।

जब हमने गपशप समाप्त की, तो आधी रात हो चुकी थी । मैं जीना चढ़कर अपने सोने के कमरे की ओर चला । सब कमरों पर नंबर लिखे हुए थे और मैं उस कमरे के द्वार पर पहुंचा, जिसे मैं अपना कमरा समझता था ।

दरवाजा तो खुल गया, मगर भीतर अंधेरे में मैं न रोशनी का स्विच ढूंढ़ पाया, न अपना सूटकेस । मैं लौटकर बाहर गलियारे में आया। मगर वहां कोई भी नहीं था । सभी लोग सो चुके थे । पहरेदार सब नीचे की मंजिल पर थे । मैंने सोचा—ठीक है, यही कपड़े पहनकर सो रहूंगा । मैं बिस्तर पर जा लेटा ! मगर पता चला कि उस पर पहले से ही कोई लेटा हुआ है । तो क्या दो-दो मेहमानों के लिए एक पलंग का इंतजाम था ?

पर पता लगाने का कोई उपाय न था। यों भी अब मैं कर ही क्या सकता था? सो करवट बदलकर लेट गया और लगा सोने की कोशिश करने। लेकिन मेरा हमबिस्तर बेचैन था। वह खर्राटे भरने लगा और उसने समूचा कंबल अपने ऊपर खींच लिया। इस तरह मुझे कुछ भी आराम नहीं मिल सका।

आखिरकार सवेरा हुआ। मैंने अ खोलीं और देखा कि रात-भर का मेरा बिस्तर मुझ पर झुककर बहुत गौर से देख रहा है और उसके मुखड़े पर अ आश्चर्य फैला हुआ है।

मेरे वे हमबिस्तर थे—निकोलाई प गोर्नी, सोवियत संघ के राष्ट्रपति।

★



थिम्पू : तीन कविताएं

—इंदु जैन—

?

इतनी गुम्फा
इतने कंगूरे
इतने झंडे
चाहिये
इंसान को
जीने के लिए
यहां
हरियाली
कैसे जीती है?
पेड़ कैसे
डरते ही नहीं
मरते ही नहीं?

०००

न

गहरे डूब
न ऊब।

०००

इंद्रजाली

मीलों लंबी घाटियों के
गलियारों में निःशब्द
गौर-चरण चलते
धतूरे के घंटों का
नशीला नाद सुनते
शीशम के थाल में
परोसे कृतार्थंते
सिन्कोना की लाल
पत्तियों की नीरोग
मेंहदी रचाते
तिस्ता को
बांहों में दुलारते
शिरीष की महकती
छाया में चाय—
बगान सिहराते

बादल
इंद्रजाली
कहां छूट गये बीच रास्ते
धुएं की सुरंग से उतारकर नरक में
स्वयं
स्वर्ग के द्वार ठिठक लिये!

—एफ-१८, प. निजामुद्दीन, नयी दिल्ली-१३

★

विकल्प



—शरु रांगणेकर

तेज चलती कार की रफ्तार धीमी हो जाती है। मैं होश में आता हूं और कार से बाहर झांकने लगता हूं। कार शहर के बड़े पार्क में आ रही है।

मैं घड़ी की ओर निगाह डालता हूं—तीन बज चुके हैं। अब अगला अपाइंटमेंट चार बजे है। पार्क से वहां पहुंचने में ज्यादा से ज्यादा आधा घंटा लग सकता है। मतलब आधा घंटा मैं यों ही टहल सकता हूं।

मैं दुबारा कार से बाहर देखता हूं और बाहर का दृश्य पहचाना-सा लगता है। कालेज में था तब मौसी के घर छुट्टियां बिताने आया करता था—तब मैं और उमा इधर ही घूमने आया करते थे। करीब-करीब रोजाना ही। कितने साल बीत चुके हैं—छह ..... सात ..... या करीबन आठ।

अगले मोड़ पर दायीं ओर हम दोनों की मनपसंद जगह थी। 'इस मोड़ पर दायीं

मराठी से अनुवाद : डा. विजय बापट

तरफ घुमाकर गाड़ी खड़ी कर दो, मैं ड्राइवर से कहता हूं। कार रुकती है और मैं उतर जाता हूं।

अभी-अभी बारिश हो चुकने की वजह से हवा में ठंडक है। सूरज की किरणों की वजह से अब दरख्तों में कई-कई हरे रंग चमक रहे हैं। हरा—यानी उमा का मनपसंद रंग।

मैं कुछ कदम और चलता हूं और मुझे वही बेंच नजर आती है।

उस बेंच पर एक औरत बैठी है। हरी साड़ी, हरा ब्लाउज और गले के इर्द-गिर्द हरा मफलर। करीब ही एक बाबागाड़ी खड़ी है और उस पर मसहरीनुमा एक जालीदार कपड़ा पड़ा हुआ है, ताकि मक्खियां बच्चे को परेशान न करें।

उस मां और बच्चे को तकलीफ होगी, इस ख़याल से मैं रुक जाता हूं। पर मेरी आहट पाते ही वह औरत मुड़कर मेरे सम्मुख हो जाती है।

चार आंखें मिल जाती हैं और पल-दो पल में ही पहचान उभर आती है। वह उमा है।

मैं उसी तरह खड़ा रहता हूं। उमा खड़ी रहती है और ताजगी के साथ कहती है—'हलो...हलो...हलो...कितनी अजीब बात है..... मैं रोज ही दोपहर के वक्त, अगर बारिश न हो तो बच्चे को यहां लाती हूं। पर तुमसे मुलाकात आज हो रही है—सो भी यों अचानक!'

मैं तिस पर भी उसी तरह खड़ा रहता हूं, उमा की ओर देखते हुए। उमा और गोरी प्रतीत होती है, पर कमजो जाने की वजह से रंग हल्का हो गया है उम्र में काफी बड़ी लगने लगी है— साल बाद मिल रही है। आंखों के नीचे निशान हैं—पर आंखों में चमक वही है

'अरे, कितनी कमजोर हो गयी हो' उसकी बातों के जवाब में मैं कहता हूं

'और तुम कितने मोटे हो गये हो!' हंसती हुई कहती है—'कम से कम बीस वजन तो बढ़ ही गया होगा तुम्हारा

'नहीं—इतना तो नहीं', मैं जवाब हूं—'पिछले दो-तीन साल में वजन बढ़ है। दोपहर का खाना, शाम की काकटेल इस तरह सब बढ़ ही रहा है।'

'हां...मैंने सुना है कि तुम बड़े मैं हो गये हो। दो-चार जगह तुम्हारे भी देखे—अखबारों में और पत्रिकाओं भी। परसों तो टेलिविजन पर भी दे दिल्ली के किसी सेमिनार में हिस्सा रहे थे तुम।'

'ऐसा उलझ गया हूं बस! पर तुम क्या हाल हैं?'

उसकी आंखें पथरा जाती हैं। बाबागाड़ी की ओर देखती हुई कहती 'औरतों के और क्या हाल होंगे—शादी बच्चे.... घर-बार!'

'अगली बार आऊंगा तो तुम्हारे जरूर आऊंगा। पिछली बार मिला न..... उसके बाद आज इस शहर में रहा हूं।'

'हां, मुझे हमारी आखिरी मुलाकात याद है कालेज के आखिरी साल की छुट्टियों में तुम आये थे। बाद में तुम्हारी मौसी ने बताया था कि तुम अव्वल नंबर से पास हुए..... नौकरी पाते-पाते बीवी भी पा गये और तुम्हारे अमीर ससुर ने तुम्हें विदेश भेज दिया।'

'हुंह!.... वह बात सही नहीं है। मुझे विदेश में पढ़ाई के लिए फेलोशिप मिली थी और उसी वक्त शादी का प्रस्ताव आ गया। ससुर साहब ने कहा कि वापस आने तक रुकने के बजाय शादी करके दोनों ही चले जाओ, कुछ मदद मैं भी कर दूंगा—उनकी कुछ मदद जरूर हुई, बस!'

'शादी करके गये यह ठीक ही हुआ, नहीं तो वहां तुम्हें कोई अपने जाल में उलझा लेती।'

उसकी बातों में व्यंग्य था—पता नहीं। पर मैं बेचैन था।

'मुझसे गलती हो गयी उमा .....' मैंने अजीब अटकाव के साथ कहा—'मुझे तुम्हें एक खत तो जरूर लिख देना चाहिये था। पर खत लिखना कितना मुश्किल था—तुम खुद समझ सकती हो। शब्द ही नहीं मिल पाते। तब से मेरा मन खुद मुझे परेशान किये जा रहा है।'

'हूं..... सच ही है ..... वचन देते वक्त शब्दों की जो गति होती है, वह वचन तोड़ते वक्त लड़खड़ा ही जाती है। पर इतना बुरा मानने की जरूरत नहीं है। उस उम्र में यही लगता है—सब कुछ यही है, और अगर यह खो गया तो दुनिया वीरान हो जायेगी। पर वैसा होता नहीं है। जिंदगी में कई विकल्प हुआ करते हैं। अब मुझे ही देखो—खुश हूं.....घर-बार.....पति, बच्चा.....सब कुछ।'

'आज सचमुच मुझे राहत महसूस हो रही है....' मैं कहता हूं—'मुझे हमेशा यही खयाल तंग करता रहा कि मैंने तुम्हें दुःखी बना दिया। पर आज तुम्हें खुश देखकर अजीब तसल्ली हो रही है।'

इस पर वह हंसने लगी, और उसका हंसना रुकता ही नहीं। यों तो उसकी पुरानी आदत है। आंखों में पानी आ जाये, पर हंसी रुकती ही नहीं—उस वक्त मैं उसकी पीठ पर घूंसा जमा दिया करता था।

'अब अगर हंसी रुकी नहीं तो घूंसा जमाऊंगा।' मैं धमकाता हूं।

शब्द उसके कानों तक पहुंचते ही उसकी हंसी रुक जाती है और रोना शुरू हो जाता है। अजीब पागलों की तरह का रोना। कलेजा फट जाये ऐसा रोना। मुझे हड़बड़ाया-सा देखकर वह गले का मफलर निकालकर अपना मुंह ढांप लेती है।

... और तभी दूसरा झटका लगता है। उसके गले में मंगलसूत्र नहीं है।

मैं नीचे झुककर बाबागाड़ी का मसहरीनुमा जालीदार कपड़ा हटाता हूं।

बाबागाड़ी में लेटे-लेटे मेरी ओर बेजान आंखों से देखती रहती है—एक गुड़िया।



दिव्य प्रेम*

श्रीमाताजी

प्रेम विश्व की महान शक्तियों में से एक है। यह शक्ति स्वनिर्भर है, और यह जिन पदार्थों में तथा जिन व्यक्तियों के माध्यम से आविर्भाव प्राप्त करती है, उनसे स्वतंत्र रूप में काम करती है। जहां-जहां संभव हो तथा जहां-जहां इसके प्रति उन्मुखता हो, वहां-वहां यह आविर्भाव प्राप्त करती है। परंतु मनुष्य इस मनोभाव को महज अपनी निजी अनुभूति समझता है; यह एक भ्रम है। वास्तव में प्रेम तो विश्वव्यापी सनातन प्रेमसागर की ही एक लहर है जो बहकर उस मनुष्य में आयी है।

प्रेम एक विश्वव्यापी और सनातन तत्त्व है। वह सदा-सर्वदा अपना आविर्भाव करता ही रहता है। और इस आविर्भाव में उसका मूल तत्त्व हमेशा एक ही प्रकार का होता है। यह एक दिव्य शक्ति है। इसके बाह्य व्यापारों में जो विकृतियां दिखाई देती हैं, वे उसके करणों यानी साधनों के कारण होती हैं। प्रेम के मूल सनातन तत्त्व में आसक्ति, वासना, स्वामित्व की भूख, स्वकेंद्रित लोलुपता इनमें से एक भी नहीं होती। विशुद्ध रूप में प्रेम, मनुष्य की अंतरात्मा की भगवान के साथ मिलन की आकुलता होती है।

ज्ञानमार्ग के अनुयायी भी एक ऐसी भूमिका पर आकर अटक जाते हैं कि जिससे आगे प्रगति करने के लिए उन्हें प्रेम की भूमिका में भी प्रवेश करना पड़ता है। इस भूमिका में ज्ञान दिव्यप्रेम के साक्षात्कार का आलोक बन जाता है और प्रेम ज्ञान का साक्षात् हृदय बन जाता है। आत्मा की प्रगति में एक ऐसी भूमिका आती है, जहां ये दोनों—ज्ञान और प्रेम—एक हो जाते हैं।

प्रेमशक्ति की क्रिया केवल मानव-जाति में ही सीमित नहीं है। मनुष्येतर जीवों में इसकी क्रिया शायद कम विकृत भी है। प्रकृति में पुष्पों की ओर, वृक्षों की ओर दृष्टि फेरिये। सूर्यास्त हो रहा हो, सब ओर गंभीर नीरवता छा रही हो, तब घड़ी-भर के लिए किसी वृक्ष के नीचे जाकर बैठिये और प्रकृति के साथ अपनी अंतरात्मा को एक करने का प्रयत्न कीजिये। आपको अनुभव होगा कि प्रेम की एक आर्त व्याकुलता पृथ्वी में से, वृक्षों की गहरी जड़ों में से निकलकर वृक्ष के रेशों में से होती हुई ऊंची से ऊंची टहनी तक आरोहण कर रही है, समूची पृथ्वी मानो अस्तमित प्रकाश को वापस मांग रही है, किसी

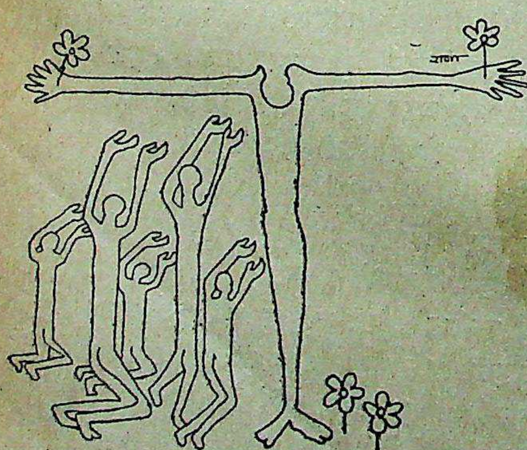
बायीं ओर : श्रीमाताजी [पोर्ट्रट : वी. एन. ओके]

कल्याणकारक ज्योतिर्मय वस्तु के लिए तड़प रही है। यह आकुलता इतनी विशुद्ध औ तीव्र होती है कि यदि आप वृक्षों की आंतर चेतना के साथ अद्वैत अनुभव कर सकते हैं तो आपकी अंतरात्मा भी प्रभु की दिव्यशक्ति, दिव्यज्योति और उसके प्रेम के लि आर्तभाव से प्रार्थना करने लगेगी, जो इस संसार में अभी अप्रकट रूप से विद्यमान है।

यदि आप एक बार भी इस विशाल, विशुद्ध और सच्चे दिव्यप्रेम का स्पर्श पा सके इसके किसी अंश को एक क्षण के लिए भी अनुभव कर सकें, तो आपको पता चलेगा कि मनुष्य की वासना ने इसकी कैसी दुर्दशा कर डाली है। मानव-प्रकृति में आकर यह प्रे अधम, पाशविक, स्वार्थी, आवेशपूर्ण और कुरूप हो गया है, अथवा वह नितांत निर्ब और भावुक, क्षणिक, छोटे-छोटे क्षुद्र मनोभावों से भरा, छिछला और कृपण बन गया है।

मानव-प्रेम की कथा में जहां कहीं शुद्ध प्रेम का एक भी परमाणु प्रकट हो पाया है और बिना किसी विकार के उसका आविर्भाव हो सका है, वहां हमें सत्य और सौंदर्य के दर्शन होते हैं। और यदि प्राण की यह सुंदर और भव्य क्रिया अल्पायु सिद्ध होती है तो उसका कारण यह है कि उसे अपने लक्ष्य का, अपनी आकुलता के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। प्राणतत्त्व की गतिविधि मनुष्य मनुष्य के बीच संयोग करने के लिए नहीं, अपितु भूतमात्र का परमात्मा के साथ योग है। परंतु प्राण को इसका ज्ञान नहीं है।

इस क्लेशमय, अंधकार-भरे जगत में सनातन चेतना ने जगत को और प्राणियों को वापस भगवान की ओर ले जाने के निमित्त जिस परम शक्ति का अवतरण किया है उसका नाम 'प्रेम' है। अंधकार और अज्ञान में डूबा हुआ पार्थिव जगत प्रभु को बिसार बैठा था। उस अज्ञान में प्रभु का दिव्यप्रेम अवतरित हुआ और जो भी अंधकार में सुषुप्त थे, उन सभी को उसने जागृत कर दिया। बहरे हो चुके कानों में उसने हौले-से कहा—'जिसे जगकर देखा जाये, जिसके लिए ही जिया जाये ऐसी एक वस्तु जीवन में है। वह है दिव्यप्रेम।' और प्रेमभाव के जागृत होते ही पुनः भगवान की ओर गति करने की संभावना पृथ्वी में उद्भव हो गयी। संसार प्रेम के जरिये भगवान की ओर गति करता है, और उसके प्रत्युत्तर में प्रभु का प्रेम और करुणा जगत से मिलने के लिए ऊपर



चित्र : टी. ए. राणा

के लोक से नीचे उतरते हैं। जब तक पृथ्वी और परमात्मा के बीच यह परस्पर विनिमय और संयोग न सधे, तब तक प्रेम अपना विशुद्ध सौंदर्य धारण नहीं कर सकता, उसमें उसका नैसर्गिक सामर्थ्य और परिपूर्णता का तीव्र घन आनंद प्रकट नहीं होता।

सृष्टि में आज पर्यंत प्रेम की यह गति अधिक से अधिक जिस कक्षा तक पहुंची है, मनुष्य उसी में प्रेम के उच्च से उच्च, अधिक से अधिक विशुद्ध और सर्वाधिक निःस्वार्थ रूप को देखता है। उदाहरणार्थ, बच्चे के प्रति मां का प्रेम। परंतु मनुष्य में काम कर रहे इस प्रेम की निगूढ़ आतुरता तो कुछ और ही है। जिस क्षण मनुष्य की चेतना, प्रेम के समस्त मानवीय आविर्भावों से पूरी तरह निराले और स्वतंत्र विशुद्ध दिव्यप्रेम का स्पर्श पाती है, उस क्षण ही उसे भान होता है कि वस्तुतः उसका हृदय अब तक किस वस्तु के लिए आकुल था। अंतरात्मा की अभीप्सा का आरंभ इसी क्षण होता है। उसमें भगवान से मिलन की तमन्ना जागती है। उसी क्षण से सभी अज्ञानजन्य विकार और दूसरे आविर्भाव पुंछने लगते हैं।

अनेक महान आत्माएं इस जगत में प्रभु के दिव्यप्रेम की विशुद्धताओं का अवतरण करने के लिए जन्म लेती रही हैं। ऐसे व्यक्तिगत आविर्भावों के माध्यम से भागवत प्रेम का साक्षात्कार बहुत सुगम बन जाता है। भागवत प्रेम को अपने में धारण किये व्यक्ति के प्रति मनुष्य तीव्र भावना अनुभव कर सकता है और ऐसा भावानुभव उसे प्रभु के प्रेम के प्रति जागृत कर देता है। उसके बाद व्यक्ति को लगता है कि अपने को बदलने का काम सरल हो गया है।



मौक्तिक

यहां यह सभा बैठी है, अभी अगर इसके बीच कोई सांप आ निकले और वह किसी को काटे नहीं तो भी सबके दिल में भय होगा। इसी तरह गांव की सीमा पर आकर कोई बाघ गर्जना करे और किसी को मारे नहीं तो भी सब घबरा जायेंगे और घर के भीतर दुबक जायेंगे। इसी प्रकार तनिक-सा भी क्रोध उपजे, तो वह दुःखदायी होता है।

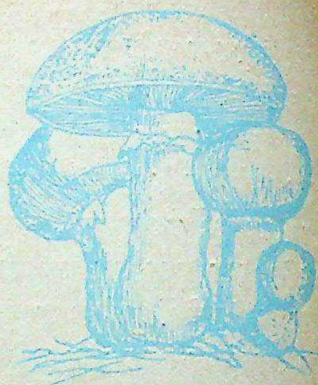
किसी-किसी को भांग की, अफीम की, शराब या गांजे की लत होती है और वह उसकी तृप्ति किया करता है। यह प्रारब्ध के कारण नहीं होता। अगर वह व्यसन से छूटने के लिए श्रद्धा-सहित आग्रह करे, उसमें हिम्मत हो तो वह व्यसन से मुक्त हो जाता है। परंतु श्रद्धा न हो, हिम्मत न हो, तो व्यसन टलता नहीं।

—श्रीस्वामिनारायण



• देवेन्द्र मेवाड़ी •

कितने-कितने कुकुरमुत्ते



आषाढ़ का एक दिन। ऊदे आसमान में सहसा बदली घिर आयी। घन-गर्जन के साथ शुरू हो गयी वर्षा की फुहार। दामिनी दमकी और फिर लग गयी वर्षा की झड़ी। ...... अगली सुबह आप निकले मैदान की सैर पर। यह क्या ! कल जहां कुछ नहीं था, वहां रात-भर में नन्ही रंग-बिरंगी छतरियां कहां से उभर आयीं ! जंगल में पेड़ों की घनी छांव में भी कुकुरमुत्तों की छतरियां तनी हुई हैं !

दूसरा दृश्य। ऊंचे शैल-शिखर। चीड़-देवदार के सघन वन बर्फ से ढंके हुए हैं। हिमवर्षी हवा धीरे-धीरे वासंती बयार में बदलने लगती है। बर्फ पिघलने लगती है। वृक्षों पर नयी कोंपलों की ताकझांक और पंछियों के कलरव के साथ वसंत का आरंभ हो जाता है। और सहसा चीड़-देवदार के वन गुच्छियों से भर उठते हैं।

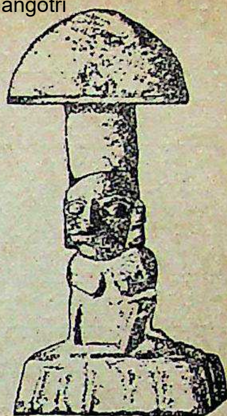
सड़ी-गली चीजों पर सहसा पैदा होक गायब हो जाने वाले खूबसूरत, नरम-नाजु कुकुरमुत्ते सदियों से भारी कुतूहल क विषय रहे हैं। हिंदी में इनके अनेक नाम हैं कुकुरमुत्ता, खुंभ, खुंभी, धिंगरी, झिंगरी गुच्छी, छत्रक और अब तो अंग्रेजी से आय 'मशरूम' शब्द भी लोगों की जबान पर च गया है। इनके कुल और गोत्र तो हजार में हैं।

बहुत पुरानी है कुकुरमुत्तों से मनुष्य प्रेम की कहानी। प्राचीन रोम और यूना में यह मान्यता थी कि आसमान में घुमड़ बादलों के बीच कड़कती दामिनी के कार ये धरती के दामन में उभर आते है प्राचीन मेक्सिकी इन्हें बादलों की बिजल और धरती के समागम से उपजी संता मानकर पूजते थे। उनके धार्मिक उत्सवों इनका उपयोग जादू-टोने के लिए होता थ

...र विभ्रमकारी एवं पौरुषवर्धक औषध के ...प में भी। पत्थर की बनी कुकुरमुत्तों की ...तियां अब भी वहां बहुतायत से मिलती हैं।

पश्चिम में चिकित्सा-विज्ञान के जनक ...हे जाने वाले यूनानी चिकित्सक हिप्पो-...टस (४६०-३७७ ई. पू.) ने आहार और ...षध के रूप में कुकुरमुत्ते का वर्णन किया ...। यूनानी दार्शनिक और प्रकृति-विज्ञानी ...थियोक्रेटस (ई. पू. ३७१-२८७) ने घोषित किया कि हरे रंग के न होते हुए भी कुकुर-मुत्ते और भूमिगत फफूंद 'ट्राफल' निश्चित रूप से वनस्पति हैं। फिर भी इनकी उत्पत्ति के बारे में भ्रम बने ही रहे। ठेठ सोलहवीं सदी में एक यूरोपीय जीव-विज्ञानी ने लिखा कि ये कामक्रीडा में रत मृगों के शुक्र से बनते हैं।

कुकुरमुत्तों के असली कद्रदान थे रोम-वासी। 'अमेनिटा सीजेरिया' नामक कुकुर-मुत्ता धनी रोमनों का प्रिय आहार था। उसे 'देवताओं का भोजन' कहा जाता था। प्रख्यात रोमन व्यंग्य-लेखक मार्शियलिस (४०-१०२ ई.) का कहना था—'सोने-चांदी की उपेक्षा करना आसान है, लेकिन कुकुर-मुत्तों की रकाबी को बिना छुए छोड़ देना बहुत कठिन है।' पाकशास्त्र पर यूरोप की सबसे पुरानी उपलब्ध पुस्तक, जो केलिअस ने तीसरी सदी ई. में लिखी थी, कुकुरमुत्तों के व्यंजन बनाने की विधियों से भरी पड़ी है। कलम और तलवार दोनों के धनी प्लिनी ने कुकुरमुत्तों की पूरी कहानी लिखी। उसने इनके जीवन-काल, प्राकृतिक आवास और किस्मों का विवरण देने के साथ उन्हें पहचानने के गुर भी बताये।



कुकुरमुत्ते की प्रस्तर-मूर्ति (मेक्सिको)।

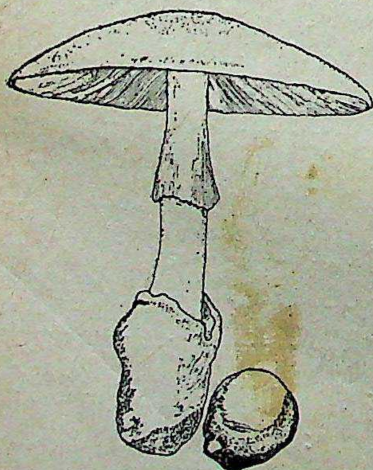
प्राचीन मिस्र के शासक फैराओ मानते थे कि कुकुर-मुत्ते आम आदमियों के लिए जरूरत से ज्यादा अच्छी चीज हैं। अरब भी कुकुर-मुत्तों के गुणग्राहक रहे। महान अरब विचारक और चिकित्सक अविसेना या अबू इब्न सिना (९८०-१०३७ ई.) ने खाने योग्य कुकुरमुत्तों और विषैले कुकुरमुत्तों की पहचान के लिए पते की बातें बतायीं।

कहते हैं, रोम के खब्ती और खूनी सम्राट नीरो (ई. पू. ४२ से ३७ ई.) ने कुकुरमुत्ते की स्तुति में सर्वोत्तम कविता के लिए भारी इनाम घोषित किया था। पता नहीं, वह इनाम किसी ने जीता या नहीं। परंतु हमारे यहां महाप्राण निराला ने अपने ही बलबूते पर कूड़े-कचरे में पलने-बढ़ने वाले कुकुरमुत्ते को सर्वहारा वर्ग का प्रति-निधि मानकर उसे अपना प्यार दिया और उसके मुंह से पुष्पराज गुलाब को चुनौती दिलवायी :

वहीं गंदे में देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठा सिर ऐंठकर बोला
कुकुरमुत्ता—

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत अगर पायी खुशबू, रंगोआब
खून चूसा तूने खाद का अशिष्ट
डाल पर उतरा रहा कैपिटलिस्ट।

प्रकृति की यह खूबसूरत रचना सहसा कहां से आ टपकती है? असल में ये भी पौधे हैं और सड़ी-गली चीजों से आहार पाते हैं। सभी कुकुरमुत्ते फफूंदियां हैं और पतले धागे के रूप में जमीन में सड़ी-गली खाद या लकड़ियों में बढ़ते रहते हैं। जब बीज पैदा करने का समय आता है, तो वर्षा की एक हल्की फुहार पड़ते ही इनके फल बाहर फूट आते हैं। रंग-बिरंगे, गोल-मटोल या छतरियों-से खुले सभी कुकुरमुत्ते वास्तव में फफूंदी के फल हैं और उनमें एक-एक में लाखों बीज बनते हैं। बीज बिखरने के साथ ही छतरी गिरकर नष्ट हो जाती है।



अमेनिटा सीजेरिया : शाही कुकुरमुत्ता (खाने योग्य)

कभी-कभी भूमि में फफूंदी फैलती ज[ाती] है। फिर एक घेरे में कुकुरमुत्ते उभर [आते] हैं। आस-पास के पोषक तत्त्वों का उपयो[ग] कर लेने पर फफूंदी और आगे फैलती और दूसरे वर्ष बड़े घेरे में कुकुरमुत्ते प्र[कट] होते हैं। ये घेरे अंग्रेजी में 'फेयरी रि[ंग]' (परी-वृत्त) कहे जाते हैं। कभी ऐसा मा[ना] जाता था कि इन पर चांदनी रातों में परि[यां] नाचती हैं।

डच प्रकृति-प्रेमी डा. थिजसे ने इस स[दी] के आरंभ में लगातार तीन वर्ष तक प[री]-वृत्तों का अध्ययन किया। उन्होंने ७ नवं[बर] १९०९ को एक मैदान में 'ग्रेट वायले[ट] राइडर' जाति (वैज्ञानिक नाम–ट्राइको[ ]लोमा न्यूडा) के कुकुरमुत्तों का एक घे[रा] देखा, जो ९४.५ इंच लंबा और ७४.८ इं[च] चौड़ा था। अगले वर्ष ४ नवंबर १९१० [को] वहीं उन्हें ११५.३ इंच लंबा और १४४.[ ] चौड़ा घेरा दिखाई दिया। तीसरे व[र्ष] सन १९११ की १ नवंबर को उसी जग[ह] २१८.२ इंच लंबे और २०८ इंच चौड़े परी-वृत्त के दर्शन हुए। इसमें २३२ कुकुरमु[त्ते] हवा में सिर उठाये हुए खड़े थे।

कुकुरमुत्तों का शिकार

कुकुरमुत्ता सदा ही गरीबों का बेदा[म] भोजन रहा है। साथ ही न जाने कितन[ी] बार बन-बीहड़ों और पहाड़ों में भूले-भटके पथिकों, शिकारियों और सैनिकों के प्रा[ण] उसने बचाये हैं। उन्नीसवीं सदी में महा[न] प्रकृति-विज्ञानी चार्ल्स डार्विन दक्षिण अमे[]रीका के टिअरा-डेल-फ्यूगो द्वीप में ...

देखकर चकित रह गये कि वहां के नग्नप्राय निवासी मांस-मछली के अलावा केवल दो ही प्रकार का वानस्पतिक भोजन करते थे—स्ट्राबेरी और कुकुरमुत्ता। आज यह कुकुरमुत्ता 'डार्विन की स्मृति में साइटेरिया डार्विनाइ' कहलाता है। विश्व के अन्य भागों में भी आदिवासी बड़े शौक से कुकुरमुत्ते खाते-उगाते रहे हैं।

जंगलों में जमीन के भीतर कंद की तरह पाये जाने वाले 'ट्रफल' और कुकुरमुत्ते एकत्र करना शौकीन लोगों के लिए आखेट की तरह मनोविनोद बन गया था। ट्रफल खोजने के लिए सूअरों और कुत्तों को प्रशिक्षित किया जाता था। शिकार-कुशल 'ग्रे हाउंड' कुत्तों की तरह 'ट्रफल हाउंड' तैयार किये जाते थे, जो गंध के आधार पर भूमिगत कुकुरमुत्तों का पता लगाते थे।

कुकुरमुत्तों के बीनने-बटोरने का काम हमारे देश में भी होता है। बाजार में बिकने वाला 'खुंभ' हरियाणा, पंजाब और राजस्थान के कुछ भागों में रेतीली जगहों पर उगता है और प्रायः सुखाकर बेचा जाता है। ये खुंभ वस्तुतः फेलोरिना इन्क्विनेरा तथा पोडाक्सिस पिस्टिलेरिस नामक दो जातियों के होते हैं। इनमें दूसरा ऐसी भूमि में ज्यादा उगता है, जिसमें सड़ी-गली चीजों का अंश अधिक होता है। यह हरियाणा और उसके आस-पास पंजाब, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में वर्षा शुरू हो जाने के बाद जुलाई-अगस्त में अधिक उगता है।

खुंभ के अलावा काला ट्रफल भी हमारे



और अपने से उगा मैं,
बिना दाने का चुगा मैं,
कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता।

—निराला ('कुकुरमुत्ता' से)

यहां बांज के जंगलों में भूमिगत कंद की तरह पाया जाता है। विदेशों में सर्वाधिक स्वादिष्ट माना जाने वाला यह कुकुरमुत्ता हमारे देश में अभी अनजाना ही है। बांज-वनों से घिरी ऊंची पहाड़ियों में इसे बहुतायत से पैदा किया जा सकता है।

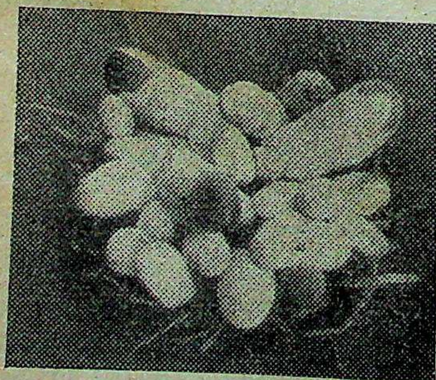
मगर गुच्छी में हमारी साख अच्छी है। दुनिया में आज तक इसकी खेती करने में सफलता नहीं मिली है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश की सुरम्य घाटियों में चीड़-देवदार के वन वसंत में बर्फ पिघलने पर और वर्षा ऋतु की विदाई के बाद बंद मुट्ठियों-सी भूरी-मटमैली गुच्छियों से भरने लगते हैं। जिस वर्ष हिमपात अधिक होता है, गुच्छियां भी अधिक निक-

लती हैं। इन्हें अत्यंत स्वादिष्ट माना जाता है और ग्रामवासी इन्हें जंगल से बटोरते हैं। जम्मू-कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के वन-विभाग हर साल गुच्छियां एकत्र करने का ठेका देते हैं।

मौस्केला (गुच्छी) और प्ल्यूरोटस आस्ट्रिएटस तथा चौतरविले (धिंगरी) को सुखाकर निर्यात भी किया जाता है। अनुमान है कि हर साल जम्मू-कश्मीर में लगभग २१ टन और हिमाचल प्रदेश में करीब ९ टन गुच्छी सुखायी जाती है, जिसका अधिकांश भाग स्विट्जरलैंड, फ्रांस, बल्गारिया, जर्मनी, जापान आदि अनेक देशों को निर्यात किया जाता है।

पौष्टिक आहार

गरीबों की पत्तल से अमीरों की प्लेटों तक यों ही नहीं पहुंच गया कुकुरमुत्ता। पोषण-विज्ञानियों का कहना है कि यह कूड़े में पैदा हुआ कंचन है। कहते हैं, १०० ग्राम कुकुरमुत्ते से हमें औसतन ५ ग्राम ऐसी



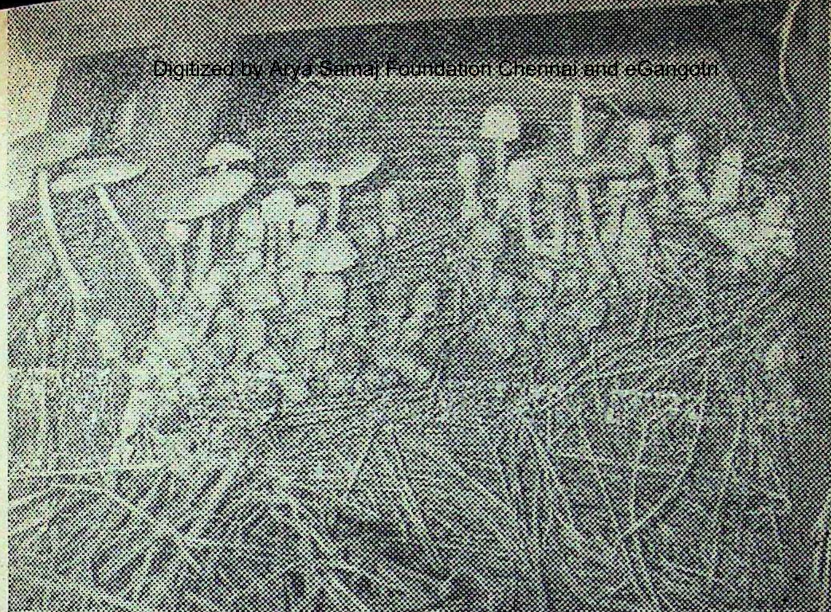
वोल्वेरिया : छतरियां फूटने से पहले

प्रोटीन मिलती है, जो पूरी तरह शरी पच जाती है। इसके अलावा उससे हम दैनिक जरूरत से अधिक फास्फोरस पोटैशियम, दैनिक जरूरत के बराबर दैनिक आवश्यकता का एक तिहाई और उससे कुछ कम मात्रा में कई महत्त्वपूर्ण खनिज भी मिलते हैं। इतना नहीं, लगभग १० ग्राम कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होता है।

ताजा कुकुरमुत्ते में विटामिनों की प्र मात्रा होती है। बी समूह के बहुमूल्य वि मिन इसमें काफी मात्रा में होते हैं। निटा सीजेरिया और कैन्थरेलस सिबेरि में विटामिन-ए बहुत होता है। मांस तरह कुकुरमुत्तों में भी विटामिन-सी होता है; लेकिन अपवाद है फिस्टुलि हीपेटिका किस्म, जिसमें १५० मिलिग्र तक विटामिन-सी होता है। विटामिन- भी ताजे कुकुरमुत्तों में काफी होता है १०० ग्राम कुकुरमुत्ते में १०० से ५ अंतरराष्ट्रीय इकाई तक, जो कि हमा दैनिक आवश्यकता से कहीं अधिक है इस मामले में यह मक्खन और अंडे जर्दी से कुछ ही घटकर है। इसमें वि मिन-के भी पाया जाता है और कई कार्बनिक अम्ल भी मिलते हैं, जो श्वस क्रिया में मदद देते हैं।

बाकायदा खेती

अपनी विशिष्ट खुशबू और स्वाद कारण कुकुरमुत्ते भूख बढ़ाते हैं और खाद्य पदार्थों के साथ पकाने पर व्यंजनों



वोल्वेरिया : धान के पुआल पर खेती।

स्वादिष्ट और सुगंधित बना देते हैं। इसी-लिए तो आज दुनिया के कोने-कोने में कुकुरमुत्तों की खेती की जा रही है। घर-आंगन और झोपड़ियों से लेकर तापनियंत्रित कक्षों तक में कुकुरमुत्तों की सैकड़ों जातियां उगायी जा रही हैं।

जापानी लोग कम से कम दो हजार वर्षों से पेड़ों के तने के टुकड़ों पर अपना मन-पसंद कुकुरमुत्ता 'शिताके' उगाते आ रहे हैं। चीन में भी एक खास जाति के कुकुरमुत्ते 'ज्यूज़ इयर' की खेती पूर्वकाल से चल रही है। मगर कुकुरमुत्तों की विधिवत् खेती आरंभ करने का श्रेय फ्रांसीसियों को है। उन्होंने सत्रहवीं सदी में पेरिस के निर्माण के लिए जो चूना-पत्थर खोदा गया उसकी बेकार पड़ी ठंडी-अंधेरी खानों में और गुफाओं में घोड़े की लीद पर कुकुरमुत्तों की खेती शुरू की। वहां से इसका चलन सारे यूरोप में और सं. रा. अमरीका में हुआ।

बाद में घोड़े की लीद का स्थान कंपोस्ट खाद ने ले लिया। गेहूं व धान के पुआल की कुट्टी की कंपोस्ट खाद बनाकर उस पर कुकुरमुत्ते पनपाये जाने लगे। कई किस्में पेड़ों के तनों के टुकड़ों पर उगायी जाने लगीं। आज सारे विश्व म इनकी वैज्ञानिक खेती चल रही है। मांग इनकी इतनी है कि बड़े शहरों में ताज़े कुकुरमुत्ते ३० से ५० रुपये किलोग्राम और सुखाये हुए १०० रुपये किलोग्राम तक बिक रहे हैं।

कहते हैं, सेलिओटा (एगेरिकस) वंश के कुकुरमुत्तों की सर्वाधिक खेती हो रही है। हमारे देश में कृषि-विश्वविद्यालय, कृषक और अन्य शौकीन लोग एगेरिकस

(बटन मशरूम), वॉल्वेरिया, प्लूरोटस आदि जातियों की खेती कर रहे हैं। बटन मशरूम को कंपोस्ट खाद पर अक्तूबर से लेकर फरवरी तक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह कंपोस्ट खाद गेहूं के भूसे में रासायनिक खाद, चोकर, लकड़ी का बुरादा और कीटनाशक दवाइयां मिलाकर बनायी जाती है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु में इसकी खेती की जा रही है।

प्लूरोटस को भी अक्तूबर-फरवरी की अवधि में ही धान के पुआल की कुट्टी पर लकड़ी की पेटियों में उगाया जाता है। वाल्वेरिया की खेती धान के पुआल पर अप्रैल से सितंबर तक की जा सकती है। इस प्रकार साल-भर ताजे कुकुरमुत्ते प्राप्त किये जा सकते हैं। पर्वतीय क्षेत्र में कटे पेड़ों के तने के टुकड़ों पर शिताके किस्म के कुकुरमुत्ते की खेती के परीक्षण किये जा रहे हैं। शिताके की फसल दो साल बाद



प्लूरोटस : स्वादिष्ट और खाने योग्य

मिलती है; मगर फिर लगातार छह सा तक वर्ष में दो फसलें मिलती रहती हैं।

विभिन्न प्रकार के कुकुरमुत्तों की खे के लिए हमारे देश की जलवायु बहुत अ कूल है। इसके लिए आवश्यक साध सामग्री भी हमारे यहां प्रचुर मात्रा में उ लब्ध है। इसलिए बड़े पैमाने पर इन विभिन्न किस्मों की खेती करके इन निर्यात करना संभव है। अभी तो ह सालाना छह-सात टन (बटन मशरूम ऊंचे दाम पर विदेशों से आयात कर रहे हैं

वॉल्वेरिया, रुसुला, प्लूरोटस, बोलेट सेलिओटा, पेज़ाइज़ा, हेल्विला आदि व के कुकुरमुत्ते सर्वाधिक स्वादिष्ट और सु धित माने जाते हैं। कई प्रकार के कुकु मुत्ते कच्चे भी खाये जाते हैं, जैसे कि प्राची रोम का शाही कुकुरमुत्ता अमेनिटा सी रिया और बोलेटस, आरिकुलेरिया, फिस् लिना, सेलिओटा (एगेरिकस), लाइको पर्डोन आदि।

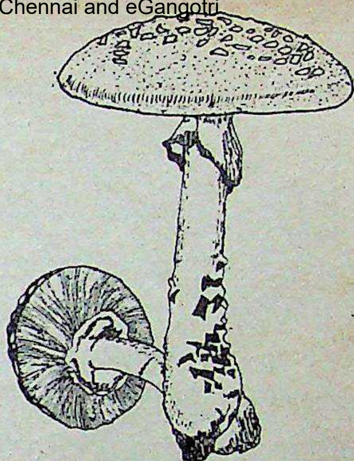
खूबसूरत जहर

लेकिन बला के खूबसूरत और बिलकु मासूम दिखने वाले कुछ जंगली कुकुरमु से कभी-कभी दिल हिला देने वाले हाद भी हो जाते हैं। इनकी हजारों जातियों चंद जातियां जहरीली भी हैं। जंगल किसी नम कोने में उगे सुर्ख लाल, चित्ती दार अमेनिटा मस्केरिया (फ्लाइ अगेरिक को देखकर भला कौन सोच सकता है इसका रसपान करने वाली मक्खियों अपनी जान गंवानी पड़ती है!

बहुत पहले एक बार फ्रांस में मजदूर पंद्रहवीं सदी की कुछ 'ममियों' को स्थानांतरित कर रहे थ। एक ही परिवार की सात ममियों के चेहरों पर अंकित असहनीय पीड़ा के भावों को देखकर वे कांप उठे। बात डाक्टरों के कानों तक जा पहुंची और ममियों के चेहरे देखते ही डाक्टर कह उठे-'डेथ कैप!' सैकड़ों वर्ष पहले कभी वह पूरा परिवार डेथ कैप अर्थात् अमेनिटा फैलोइडीज की भेंट चढ़ गया था। यों हत्यारों ने भी कई बार जहरीले कुकुरमुत्तों का उपयोग किया है।

कुकुरमुत्तों के जहर की खासियत यह है कि उसका असर अक्सर बहुत देर में होता है। खाते समय इनके स्वाद का गुणगान करने और फिर-फिर थाली आगे बढ़ाने वाले लोग प्रायः आठ से लेकर चालीस घंटे बाद ही यह जान पाते हैं कि उन पर जहर का असर हो गया है। कई विषैले कुकुरमुत्ते खाने में कड़वे-कसैले नहीं बल्कि बेहद स्वादिष्ट होते ह। बस गनीमत इतनी है कि जान लेने वाले कुकुरमुत्ते कम ही हैं। अधिकांश तो मतिभ्रम कराते हैं अथवा पाचन-तंत्र व स्नायु-प्रणाली पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

अमेनिटा वंश के कुकुरमुत्ते सर्वाधिक विषैले होते हैं। इसकी कुछ जातियां पकाते समय गरमी से निर्विष हो जाती हैं; लेकिन बाकी विषैली ही बनी रहती हैं। इनका जहर बहुत धीरे-धीरे असर करता है। लगभग बारह घंटे तक कोई लक्षण नहीं



जहरीला कुकुरमुत्ता अमेनिटा मस्केलिया—अनुमान है कि सोमरस इसी से बनाया जाता होगा।

उभरता। लेकिन उसके बाद जहर बहुत तेजी से जिगर और गुर्दों को बरबाद कर देता है। दिल की धड़कन बंद हो सकती है और भीतरी रक्तस्राव शुरू हो सकता है।

इसी वंश के कुकुरमुत्तों में से एक है—अमेनिटा फैलोइडीज। यह सबसे विषैला और घातक कुकुरमुत्ता माना जाता है और 'डेथ कैप' (मौत की टोपी) कहलाता है। इसकी मात्र २० ग्राम की खूराक आदमी की जान लेने के लिए काफी है। इसके अलावा अमेनिटा बाइस्पोरिगेरा, अमेनिटा विरोसा, अमेनिटा वर्ना, लेपिओटा हैल्विओला तथा कौर्टिनेरिअस ओरेलेनस भी बेहद विषैले और घातक कुकुरमुत्ते हैं।

अमेनिटा वंश के कुकुरमुत्तों का विषैलापन ८ से ४० घंटे बाद कै, दस्त, बेहद पसीना और न बुझने वाली प्यास के रूप में प्रकट

महामशरूम

क्या आप कल्पना कर सकते हैं ऐसे कुकुरमुत्ते की, जिसका व्यास इंचों में नहीं, फुटों में नापा जाये? लंदन के 'संडे टाइम्स' की खबर के अनुसार पिछले साल ऐसा एक 'पफबाल' कुकुरमुत्ता पाया गया, जिसका व्यास ५ फुट और वजन २४ पौंड था। आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि वह मिला सोवियत संघ के किरगिजिया गणतंत्र में। आखिर सर्वहारा का प्रतीक ऐसा कीर्तिमान साम्यवादी देश में ही तो स्थापित कर सकता है।

होता है। हाथ-पैर ठंडे पड़ने लगते हैं, पिंडलियों में मरोड़ पैदा होने लगती है, आंखें गहराई तक धंसी हुई-सी और चेहरा पीला व बुझा हुआ दिखाई देता है। फिर चिंता और विषाद का दौर शुरू होता है। नाड़ी की गति बहुत बढ़ जाती है, पक्षाघात हो जाता है, शरीर ऐंठने लगता है और अंत म प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। यह सारी प्रक्रिया १० से लेकर २० दिन तक चल सकती है। जहर से जिगर और गुर्दों को बचाने के लिए कोलाइन और थायोटिक अम्ल लाभकारी पाये गये हैं। कई कुकुरमुत्ते स्नायुतंत्र को नुकसान पहुंचाते हैं। इनमें प्रमुख हैं—अमेनिटा मस्केरिया, इनोसाइबे पेटोइलार्डी और क्लाइटोसाइबे डीलबाटा।

कुछ कुकुरमुत्ते पेट के लिए हानिकारक हैं। ये प्रायः जान तो नहीं लेते, लेकिन गहरा नशा पैदा करने के साथ-साथ पेटदर्द, दस्त और बेहोशी ला देते हैं। इन्टोलोमा लिविडम बेहद नशीला और घातक कुकुरमुत्ता है, मगर सौभाग्य से दुर्लभ भी है। ट्राइकोलोमा पार्डिनम, ट्राइकोलोमा विर्गेटम, ट्राइकोलोमा ग्रोआवेन्स, क्लिटोसाइबे ओलीएरिया, बोलेटस सेटनस, बोलेटस पुरपुरियस और क्लेवेरिया फोर्मोसा भी गहरा उन्माद पैदा करते हैं।

सच तो यह है कि विश्व के कई भागों में नशे के लिए ही कुकुरमुत्तों का सेवन किया जाता है। यह भी कहा जाता है कि वेदों में वर्णित सोमरस भी अमेनिटा मस्केरिया कुकुरमुत्ते की ही देन था। मेक्सिको के प्राचीन निवासी एजटेक लोग लोकोत्तर आनंद के लिए कुकुरमुत्ते का सेवन करते थे। किसी भी बाहरी आदमी को इस 'पवित्र' कुकुरमुत्ते के बारे में जानकारी देना निषिद्ध था।

अगर पेजाइजा, मौस्केला, हेल्वेला, अमेनिटा रुबिसेन्स और रोडोपेक्सिलस न्यूडस को कच्चा खाया जाये, तो विषैला असर हो सकता है। कोप्रिनस एट्रामेंटेरियस यों तो खाने लायक कुकुरमुत्ता है, लेकिन इसके साथ या इसे खाने के बाद शराब और कभी-कभी तो चाय-काफी भी पीने से यह बहुत विषैला असर करता है। चेहरा लाल पड़ने लगता है, नाड़ी की गति धीमी पड़ जाती है और हाथ-पैर ठंडे पड़ जाते हैं। लेकिन धीरे-धीरे हालत में स्वयं सुधार होने लगता है।

कुकुरमुत्तों के बारे में तरह-तरह के अंधविश्वास भी फैले हुए हैं। उनमें से एक यह है कि वसंत ऋतु में उगने वाले सभी कुकुरमुत्ते खाये जा सकते हैं। लेकिन बेहद जहरीला और घातक अमेनिटा वर्ना वसंत में ही उगता है। अमेनिटा मस्केरिया और अमेनिटा फैलोइडीज़ जैसे जहरीले कुकुरमुत्तों को घोंघे बहुत चाव से खाते हैं; परंतु मनुष्यों के लिए ये बड़े खतरनाक हैं। मान्यता है, बैंगनी रंग के सभी कुकुरमुत्ते विषैले होते हैं; मगर लकाविया अमेथिस्टिना माइसीना पुरा और कार्टिनेरियस वायोलेसियस बैंगनी रंग की होने पर भी खाने लायक जातियां हैं। यह भी सही नहीं है कि काटने के बाद जो कुकुरमुत्ते रंग बदल देते हैं, वे विषैले होते हैं। बोलेटस साइनेसेन्स काटने पर स्याही की तरह नीला पड़ जाता है, मगर सर्वाधिक स्वादिष्ट कुकुरमुत्ता माना जाता है। दूसरी ओर अमेनिटा वंश के विषैले कुकुरमुत्तों का रंग काटने पर नहीं बदलता। यह खयाल भी गलत है कि सिरका या नमक मिले पानी में उबालने पर विषैले कुकुरमुत्तों का विषैलापन नष्ट हो जाता है। चाहे कितना ही उबाल लें, अमेनिटा वंश के विषैले कुकुरमुत्ते अपना विष नहीं खोते।

जहरीले कुकुरमुत्ते की पहचान यह बतायी जाती है कि उनसे अंडे की सफेदी या दूध फट जाता है। मगर अमेनिटा सीजेरिया और बोलेटस इडुलिस निर्विष हैं, फिर भी वे विषैले कुकुरमुत्तों की तरह दूध या अंडे की सफेदी को फाड़ देते हैं। सबसे प्रचलित अंध विश्वास यह है कि विषैले कुकुरमुत्ते चांदी की चीजों का और कुछ लोगों की राय में सोना, टिन, प्याज और लहसुन तक का रंग बदल देते हैं। असलियत यह है कि जहरीले अमेनिटा कुकुरमुत्ते इनमें से किसी भी चीज का रंग नहीं बदलते।

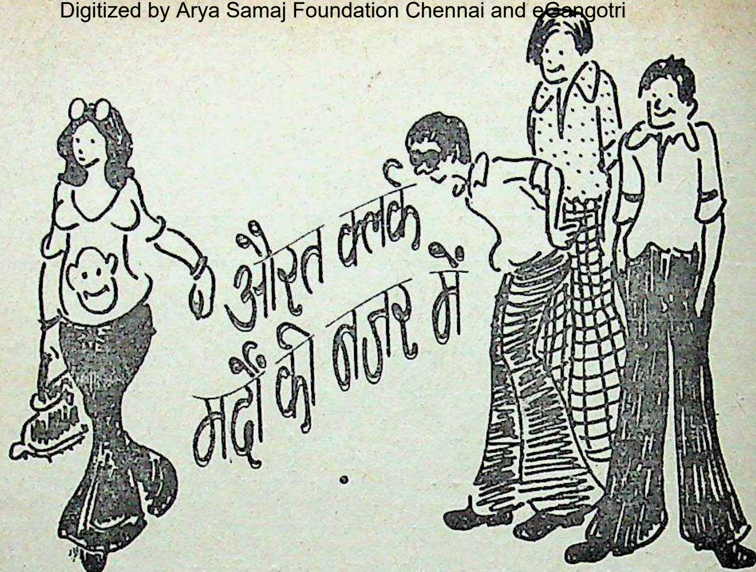
इसलिए कुकुरमुत्तों को अच्छी तरह पहचान कर ही खाइये और अंधविश्वासों पर कतई कान न दीजिये। तभी आप विष से बचते हुए इनके अतुलनीय स्वाद का आनंद उठा सकेंगे। बाजार में बिकने वाले कुकुरमुत्ते तो खाने योग्य ही होते हैं। हां, अगर कभी कुकुरमुत्तों के आखेट पर निकलें तो यह बात जरूर याद रखें कि हर कुकुरमुत्ता खाने लायक नहीं होता। **—सेक्टर ५/१३९१, कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर-२६३ १४५**



आशुलिपि (शार्टहैंड) की कक्षा में अध्यापक ने कहा—'आशुलिपि का आज के व्यस्त जीवन में बहुत महत्त्व है। सब जानते हैं कि अंग्रेज कवि ग्रे अपनी कविता "एलिजी इन ए कंट्री चर्चयार्ड' सात वर्ष में लिख पाये थे। अगर उन्हें आशुलिपि का अच्छा ज्ञान होता, तो यह कविता लिखने में उन्हें सात मिनट से अधिक नहीं लगता। मुझे यह बताते हुए गर्व होता है कि इस स्कूल में कई ऐसे छात्र थे, जिन्होंने सात मिनट में यह कविता लिख ली थी।'

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'





डा. अरुण कुमार मिश्र

पश्चिम जर्मनी में एक संस्था है—महिला स्वातंत्र्य क्लब। उसका कार्यालय राजधानी बॉन में है। सन १९७३ में उसने कामकाजी महिलाओं (वर्किंग विमेन) के बारे में सुनी जाने वाली फब्तियों का यह संकलन 'औरत क्लर्क' शीर्षक से प्रकाशित किया था।

वह बच्चों को दूसरों के घर छोड़ आती है—
राक्षसी होगी।
या उन्हें घर ही रहने देती है—
शायद रसोईघर में बंद कर आती होगी।

क्या उसके पास काफी पैसे रहते हैं—
तब तो उससे डरना चाहिये।
या सारे पैसे पति-बच्चों पर खर्च कर आती है—
फिर बेकार में क्यों खटती है!

खूब मेक-अप करती है—
एक पति काफी है और कितनों को फंसायेगी?
बिना मेक-अप के चली आती है—
फूहड़ है।

ठीक से काम नहीं करती—
प्रोमोशन की चिंता करे बेचारा पति।
बहुत अच्छा काम करती है—
घर की तो चिंता ही नहीं।



बहुत पढ़ी-लिखी है—
लाज-शरम की आशा करना ही बेकार।
पति पढ़ा-लिखा है—
बेकार ही की इतनी पढ़ाई।

सहकर्मियों से बातें करती है—
पति को घर पर परेशान कर डालती ो ी।
कम बोलती है—
पत्थरदिल होगी।

पचीस बरस की है और कुंआरी है—
आगे भी शादी की कोई उम्मीद न ीं।
उन्नीस बरस में ही शादी हो गयी—
इसके मजेदार होने का पता लोगों ने जल्दी लगा लिया।

दूसरों की मदद को तत्पर रहती है—
अपने रजिस्टर भी उसी से भरवा लो।
बस, अपने काम से मतलब रखती है—
बहुत घमंडी है।

क्या बहुत ही आकर्षक है?
सब तो उसे घूरने में ही लगे रहते होंगे।
देखने में साधारण है—
इससे तो मर्द ही अच्छा।

हमेशा हंसती-बोलती रहती है—

इसका भरोसा न करना।
शांत, चुपचाप रहती है—
रोनी सूरतें मुझे पसंद नहीं।

क्या तेज है?
मर्दों को न दिखाये, अपनी तेजी।
भोंदू है—
चलो सुंदर तो है।

तबीयत खराब होने पर भी दफ्तर चली आती है—
दूसरों को भी छूत लगायेगी।
बीमार पड़ने पर छुट्टी ले लेती है—
तब तो घर पर बड़े नखरे करती होगी।

मिनी पहन कर आती है—
किसी को काम नहीं करने देगी।
मैक्सी पहनती है—



टांगें थुलथुल, मोटी होंगी।
सोमवार को थकी हुई आती है—
रविवार को बहुतों को परेशान किया होगा।
सोमवार को चुस्त, दुरुस्त आती—
कोई होगा ही नहीं।

आसानी से दोस्तों के साथ चली जाती है—
छिनाल होगी।
किसी के साथ नहीं जाती—
बड़ी कुलवधू बनती है।

शराब पीती है—
मर्दों को भी मात कर दिया।

सिगरेट, शराब छूती तक नहीं—
इसके साथ निबाह भी कठिन है ।

क्लब ने इसका बड़ा प्रचार किया—यह जताने को कि समाज में औरतों को हमेशा मर्द के कहे के अनुसार चलना होता है और मर्द हर बात में औरतों की नुक्ताचीनी करते हैं। मर्द स्त्रियों का स्वतंत्र व्यक्तित्व बनने नहीं देना चाहते—न घर में, न बाहर।

जर्मन संसद ने १८९६ में परिवार-व्यवस्था के संबंध में एक बिल पारित किया था। उसके अनुसार स्त्री का काम था घर पर रहकर भोजन पकाना, परिवार का प्रबंध तथा बच्चों का पालन-पोषण करना और पुरुष की जिम्मेदारी थी बाहर रहकर धंधा-रोजगार करके पूरे परिवार के भरण-पोषण के लिए पैसे जुटाना।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जापान की तरह पश्चिम जर्मनी का भी बड़ी तेजी से विकास हुआ। १९६५ तक वह धन तथा सुख-सुविधा से परिपूर्ण हो गया, कई मामलों में अमरीका से भी आगे निकल गया। तथापि जर्मन संसद ने पिछली सदी में पास किये विधेयक को जरा भी नहीं बदला और १९७७ तक वह अधिनियम स्त्रियों को घर में ही रहने का उपदेश देता रहा। हालांकि उस अधिनियम पर पूरा अमल नहीं होता था, फिर भी स्त्रियों को हीनता का बोध होता रहा। अब पिछले साल वह अधिनियम बदल दिया गया है। पति-पत्नी में जो भी चाहे घर पर रहे या बाहर काम करे। हमारे देश में 'जहां नारियों का सत्कार होता है वहां देवता निवास करते हैं' कहने वाले मनु महाराज ही यह भी कह गये हैं—'स्त्री (किसी भी हालत में) स्वतंत्रता की अधिकारिणी नहीं है।'

असाधारण व्यक्तित्व वाली स्त्रियां हमारे यहां भी हुई हैं और अनेक क्षेत्रों में असाधारण रूप से सफल हुई हैं। परंतु साधारण स्त्रियों का जीवन, साधारण मर्दों की तुलना में अभी भी ज्यादा कष्टमय है। मानवीय गरिमा और देश की प्रगति दोनों के लिए इस पर विचार होना आवश्यक है।

[बॉन विश्वविद्यालय के जर्मन भाषा विभाग की (श्रीमती) डा. लेहफेल्ड के दिये हुए तथ्यों पर आधारित।]

—बेला रोड, दरभंगा-८४६ ००४



मेरी मां, मैं जब अभी निरा बच्चा था, तभी विधवा हो गयी। स्वेच्छा से उसने वैधव्य सहा; मुझे दुनिया में अपना सब कुछ मानकर वह मुझमें खोयी रही। अपने भाई का सहारा पाकर वह मेरे लिए खटती रही। वह निरक्षर थी और मेरे लिए प्रेम की मूर्ति थी। पर मुझ पर उसने दृढ़ अंकुश रखा और आस-पास के दुष्प्रभावों से मेरी रक्षा की। उस जमाने के पूर्वग्रहों का सामना करके उसने स्त्री-शिक्षा तथा समाज-सुधार के अन्य कार्यों में पूरे दिल से मेरी मदद की। मैं जो कुछ हूं, उसी का बनाया हुआ हूं। **—डा. दादाभाई नौरोजी**



वृद्धो, अपने को बदलो

बाबा पृथ्वीसिंह आजाद

आज के समाज के अधःपतन का कारण यह है कि बुजुर्गों और युवकों के बीच प्रेम और विश्वास का संबंध नहीं रह गया है।

जिन लोगों के हाथों में स्वतंत्र भारत की पतवार सौंपी गयी थी, वे शीघ्र ही हमारे बीच से विदा हो गये। उनके बाद जो भारत के भाग्यविधाता बने उन्होंने, हम सबके दुर्भाग्य से, देश को भयंकर गर्त में ढकेल दिया।

जो भारत के भावी भाग्यविधाता हैं यानी आज के हमारे युवक, वे स्वयं अपने भविष्य के संबंध में भी सोचते नहीं। या उनमें उस विषय में सोचने की शक्ति ही नहीं है।

आज हम अनुशासनहीनता के शिकार हो गये हैं। अनुशासन—स्वानुशान—के बिना जीवन-विकास असंभव है। जो व्रतधारी संयम से और नियमपूर्वक जीवन स्वीकार कर तपस्वी जीवन जीते हैं, वे ही युवा पीढ़ी को अनुशासन का पाठ सिखा सकते हैं।

ऐसा भी वक्त था जब देशबांधवों को जीवन से मुंह फेरकर मृत्यु को गले लगाना सिखाने की जरूरत थी—गोलियों की वर्षा में सीना तानकर खड़े रहने, फांसी के त पर चढ़कर उसकी रस्सी को चूमने, तम मुश्किलों को ठोकर मारकर आगे ब हंसते-हंसते जेल की यातनाएं झेलने पाठ सिखाने की जरूरत थी। ईश्वर कृपा से, मैंने यह सब सीखा।

पर आज के युवकों को उस शिक्षा आवश्यकता नहीं है। आज यह सिखाने आवश्यकता है कि सन्मार्ग पर चलकर कि प्रकार जियें। स्वयं तपस्वी बनकर ही इस तरह की शिक्षा दी जा सकती है।

कोई धर्मगुरु अथवा समाज-सेवक आ के युवक को बरबादी की राह पर चलने रोक नहीं सकता। हाथ में मशाल ले खोजने निकलें, तो भी ऐसा योगी पु मिलना मुश्किल है। आज का युवक-सम अपने में से ही कोई व्रतधारी युवा नेता पै कर सके, तो वह नेता अवश्य युवकों पथ-प्रदर्शक बन सकेगा।

यदि इस देश के नवयुवकों को हर प्रक के बंधनों से मुक्त रहना है, तो उन्हें स और नियमबद्ध जीवन जीना सीखना पड़े

• अनुवादक : गिरिजाशंकर त्रिवेदी •

जो व्यक्ति ऐसा जीवन जीना पसंद करे, वही अपने साथियों का प्रेमपात्र और विश्वासपात्र बन सकता है और अपने मित्रों को प्रेमपाश में बांधकर उनकी जीवन-दिशा बदल सकता है।

प्रत्येक मनुष्य दो शक्तियों की मदद से ही अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण कर सकता है—१. बलवान शरीर, २. निश्चल एवं पवित्र मन। जिस व्यक्ति के पास नीरोग शरीर और स्वच्छ मन नहीं है, वह जीवन-यात्रा में हमेशा ठोकरें ही खाता रहेगा। वह कभी अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण नहीं कर सकेगा।

अगर हमें देश का नवनिर्माण करना है, तो देश के युवकों को व्रतधारी, क्रांतिकारी और तपस्वी बनाये बिना चारा नहीं।

आज देश का युवक भंवर में फंसा हुआ है। वह निर्णय नहीं कर पा रहा है कि क्या करे। वह जो कुछ देखता और सुनता है, उसका चित्र उसके मानस-पटल पर उतर आता है। वह दिवास्वप्नों में रमता है, मदमस्त होता है। परंतु सचेत होकर देखता है, तो उसे कुछ भी जमता नहीं है।

देश के लिए बलिदान की बातें सुनकर वह आवेश में आ जाता है; परंतु दूसरे ही क्षण वह देखता है कि ऐसी बातें करने वाले नेता और देशभक्त तो स्वार्थसिद्धि के लिए प्रतिस्पर्धा में पड़े हुए हैं।



क्रांतिकारी पृथ्वीसिंहजी
[स्केच : वी. एन. ओके]

स्वतंत्रता की लड़ाई जब चल रही थी, प्रत्येक युवक अपने नेता के कदमों पर चलने के लिए हरदम तत्पर रहता था। तब युवकों के सामने कोई उपदेशक नहीं था। वे देश की स्वतंत्रता के लिए सिर पर कफन बांधकर फिरने वालों के हमराही बनना चाहते थे और बनते भी थे। आज उनके सामने ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है।

आज वे क्या देखते हैं? आज उनकी नजर विलासी जीवन जीने वाले चतुर-सुजान और धनवान नेताओं पर जाती है, जो एक दूसरे की टांग घसीटने और सिर फोड़ने में लगे हुए हैं। आज का युवक इन कथित नेताओं का अनुकरण कर रहा है। और कितनी कुशलता से वह अनुकरण करता है, इसके कितने ही नमूने हमने देखे हैं। अगर ऐसा ही चलता रहा, तो कल इसका कैसा अनिष्टकारी परिणाम भोगना पड़ेगा, उसे भी हमें देखना होगा।

मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है। वह जैसा देखता है, वैसा आचरण करता है। वह देखकर ही सीखता है, सुनकर नहीं। देखकर काम करने की इच्छा होती है; सुनकर तो केवल बोलने की ही शक्ति आती है। आज देश के लाखों और करोड़ों बालक गीता का पाठ करते हैं, गायत्री का जप करते हैं और संध्यावंदन करते हैं। बुजुर्गों

मैं अपनी मां की कोख में नाचती रही—अपने दुःख-भरे परिवेश और आत्मा की विवशता को प्रकट करने के लिए। फिर जब मैं छोटी-सी लड़की थी तब मैं नाचती रही, क्योंकि शरीर के अंगों के विकास में एक खुशी भरी हुई थी। फिर जब मैं जवान हुई, तो मैंने जीवन की तहों में छिपे दुःखों को जाना और उन दुःखों को झुठलाने के लिए मैं नाचती रही। उसके बाद मैं जीवन से संघर्ष करती हुई नाचती रही। उस नाच की तुलना दर्शक मौत के साथ करते थे। सचमुच, मौत के साथ संघर्ष करना बहुत बड़ी खुशी होती है। —इसाडोरा डंकन

को वे यह सब करते सुनते हैं। परंतु अपनी आंखों से वे क्या देखते हैं?

घर की चहारदीवारी के बीच, मंदिरों में, शिक्षासंस्थाओं में, विधानसभा, लोकसभा तथा राज्यसभा में, आज के समाज के तथाकथित सूत्रधार कैसा व्यवहार करते हैं? जो कुछ वे देखते हैं, उसी का अनुकरण करते हैं; उसमें लेशमात्र भी फर्क नहीं पड़ने देते। ऐसा विषचक्र कब तक चलता रहेगा, इसका कोई उत्तर क्या हमारे पास है?

आज की शिक्षासंस्थाएं हमारे लिए किसी काम की नहीं रह गयी हैं। धर्मगुरु, साधु-संत और नेता केवल उपदेश ही दे सकते हैं। आदर्श नेता आज मिलना मुश्किल है। तो इसका क्या उपाय है? निराश होने की जरूरत नहीं, उपाय है।

देश की बागडोर वृद्धों और जवानों के हाथ में है। वे एक दूसरे के विश्वासपात्र… प्रेमपात्र बनें तो राष्ट्र की ज्यादातर समस्… हल हो जायें। जो लोग ५०-६० साल… उम्र पार कर चुके हैं, वे ही युवकों… कल्याणकारी मार्ग बता सकते हैं। परंतु… कार्य वे तभी कर सकेंगे, जब वे स्वयं विला… जीवन से विमुख बनें। उन्हें समाज के म… चरित्रवान बनकर, युवा पीढ़ी का उपा… बनकर जीना पड़ेगा। अगर वे इतना… सकें, तो आज का युवक-जगत आदरपू… अपना मस्तक उनके चरणों में झुका दे…

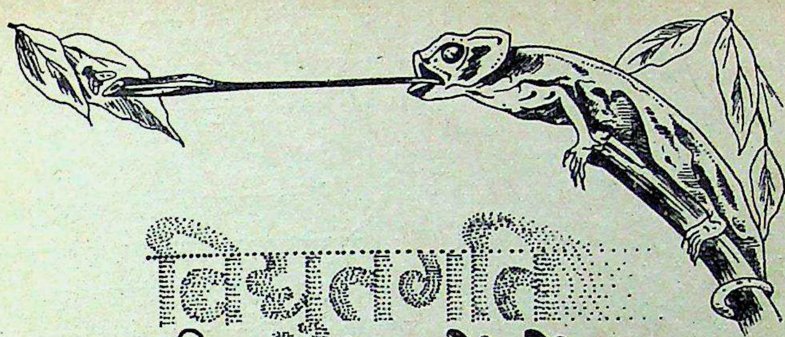
हे समाज के बुजुर्गो! युवा-वर्ग… सबका अनुकरण ही कर रहा है। आप… व्यक्तिगत जीवन की दिशा बदलिये… फिर देखिये कि आज का युवक… समाज का रूप-रंग बदल डालता है कि न…

जो लोग आज समाज के सूत्रधार बन… बैठे हैं, वे जान लें—डंडे के जोर से युवकों… काबू नहीं पाया जा सकेगा। किसी… उपदेश का भी उन पर असर नहीं होगा।

किसी भी प्रकार की कठिनाई में से छु… के दो ही रास्ते हैं—बलिदान और तपस्… इन दोनों में से जिसे जो स्वीकार हो वह… स्वीकारे तो भी बहुत कुछ हो सकेगा।

अंत में, एक क्रांतिकारी के नाते देश… और देश के बुजुर्गों से मुझे स्पष्ट रूप… कहना होगा कि यदि वे सदाचार-म… जीवन-मार्ग नहीं अपनायेंगे, तो वे बुरे ह… में मरेंगे। और युवक अगर बुजुर्गों के आज्ञा… कारी नहीं बनेंगे, तो उन्हें दीवारों से सि… टकराकर मरना पड़ेगा।





विद्युतगति जीव-जंतुओं में

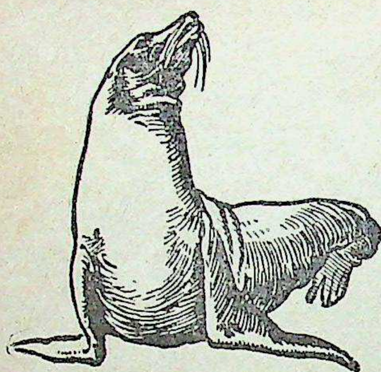
सुरेश सिंह

बिजली की रफ्तार बहुत ही तेज होती है—एक सेकंड में १ लाख ८६ हजार मील। फिर भी किसी की तेज रफ्तार को देखकर उसकी तुलना हम बिजली से ही करते हैं और उसकी चाल को 'विद्युतगति' कहते हैं। वास्तव में 'बिजली' तेजी और फुरती का प्रतीक बन गयी है।

प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मनुष्य बड़ा काहिल हो गया है। उसे अब न तो अपनी रक्षा के लिए हरदम चौकन्ना रहना पड़ता है और न पेट भरने के लिए शिकार ही पकड़ना पड़ता है। इससे उसकी फुरती में काफी कमी आ गयी है। लेकिन पशु-पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े यदि फुरती से काम न लें, तो पृथ्वी पर उनका कोई नामलेवा ही न रह जायें। अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए उन्हें सदा चौकन्ना रहना पड़ता है और आत्मरक्षा, शिकार और अन्य कार्यों में गजब की फुरती से काम लेना पड़ता है।

मनुष्य भी खेलकूद, घूंसेबाजी, कुश्ती और नृत्य आदि में कभी-कभी फुरती का काफी अच्छा परिचय देता है। इसी तरह सितार, हारमोनियम, पिआनो व टाइप-राइटर पर उसकी उंगलियों की तेज थिरकन कई बार हमें चकित कर देती है। लेकिन अन्य जीव-जंतुओं की तेजी और फुरती से तुलना करने पर हमें इनमें कुछ भी चमत्कार नजर नहीं आता। बहुत तेज टाइप करने वाली लड़की की उंगलियां टाइप-राइटर पर एक सेकंड में १६ बार से ज्यादा नहीं पड़तीं, जबकि मामूली फुलचुही चिड़िया अपने पर एक सेकंड में ७० बार चला लेती है। भौंरों और मधुमक्खियों का तो कहना ही क्या! उनके पर एक सेकंड में ३०० बार तक चलते हैं।

अपनी नंगी आंखों से हम इस तेजी को देख भी नहीं सकते। लेकिन फिल्मी कैमरा की आंख उसे देख सकती है। ऐसी फिल्में बनायी गयी हैं, जिनसे बहुत तेज



सील

रफ्तार वाली चीजों को आसानी से देखा जा सकता है। लेकिन इस तरीके से देखने पर हमें अपने फुरतीले कार्य भी बहुत सुस्त और अटपटे प्रतीत होने लगते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम एकाएक टार्च जलाकर किसी की आंखें चौंधिया देते हैं, तो वास्तव में उसकी पलकें टार्च के जलने और बुझने के बाद बंद होती हैं; और यह शायद आप न जानते होंगे कि एक बार पलक भांजने में एक सेकंड का चालीसवां भाग लगता है। इसी प्रकार जब हम किसी के हाथ पर जलती हुई सिगरेट रख देते हैं, तो वह आदमी हाथ ऐसे झटकता है जैसे कि बदन में सिगरेट के छूने से पहले ही उसकी गरमी से उसने अपना हाथ हटा लिया हो; लेकिन असल में सिग-रेट छुआकर हटा लेने के बाद कहीं जाकर उसका हाथ खिसकना शुरू होता है।

लेकिन जब इसी तरीके से जीव-जंतुओं की फुरती की परीक्षा की गयी, तो कुछ बड़ी आश्चर्यजनक बातों का पता चला। यद्यपि जानवरों के साथ परीक्षण करते स… मनुष्यों जैसी सहूलियत तो नहीं थी, फि… भी कुछ अनूठी बातें आसानी से जान… गयीं।

मेंढ़क जिस तेजी से अपनी लंबी … दोहरी जबान को बाहर फेंककर उसमें कीड़े मकोड़े चिपकाता और जबान को भीत… वापस खींच लेता है, वह क्या किसी म… से कम है! आपको सुनकर ताज्जुब हो… कि यह सारा काम वह एक सेकंड के पांच… हिस्से में कर डालता है।

गिरगिट भी कीड़ों को पकड़ने के लि… अपनी लंबी और चिपचिपी जीभ को तेजी… तीर की तरह बाहर निकालता और … जीभ की नोंक में चिपकाकर उदरस्थ क… लेता है। उसके इस फुरतीले शिकार … विद्युतगति कहना उचित ही है।

सांप का डसना भी बहुत फुरती से होत… है। फन का वार करने, बदन में दांत गड़ा… कर विष छोड़ने और दंशस्थल से दांत … निकालकर फन को अपने स्थान पर वाप… लाने में सांप को आधे सेकंड से भी कम सम… लगता है। कितनी तेज रफ्तार है! … जरा नेवले की फुरती के बारे में सोचिये, … विद्युतगति वाले सांप के फन पर हावी … जाता है!

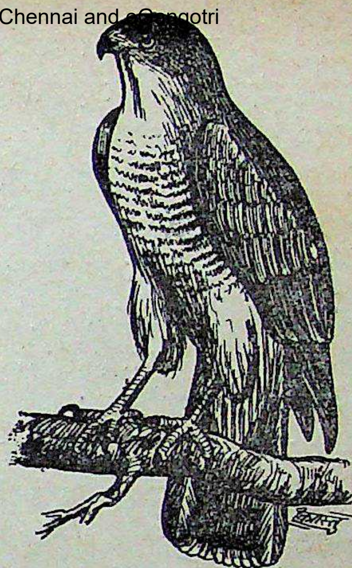
स्तनधारी प्राणियों में चीता और तेंदु… सबसे फुरतीले माने जाते हैं। लेकिन उनक… तुलना में स्थूल शरीर वाले शेर में भी क… फुरती नहीं होती। शेर को गाय, बैल, भैं… या बाहरसिंघे को मारने में आधे सेकंड …

अधिक समय नहीं लगता। और तेंदुआ तो शिकार को इससे भी कम समय में मार लेता है।

तेंदुआ अपने फुरतीले आक्रमण के लिए प्रसिद्ध है तो चीता आक्रमण की रफ्तार में सबसे आगे है। जब वह शिकार के लिए टूटता है, तो दो ही सेकंड में उसकी रफ्तार ७० मील प्रति घंटे तक पहुंच जाती है।

इस दृष्टि से चिड़ियां भी पिछड़ी नहीं कही जा सकतीं। बाज, बहरी, शिकरा आदि शिकारी पक्षी अपने तेज आक्रमण के लिए प्रसिद्ध हैं। शिकार पर वे इस तेजी से झपट्टा मारते हैं कि हम सहज में उसका अंदाजा नहीं लगा सकते। बाज जाति के एक शिकारी पक्षी ने एक बटेर पर बड़े वेग से आक्रमण किया। बटेर ने, जो डर से अधमरी हो रही थी, अपने पंख समेट लिये ताकि वह नीचे की झाड़ी में गिर सके और किसी तरह अपनी जान बचा सके। लेकिन इससे पहले कि बटेर का शरीर झाड़ी में गिरे, बाज विद्युतगति से नीचे की ओर झपटा और अपने शरीर को बटेर के नीचे करके उलट गया और शिकार को ऊपर ही लोककर हवा में तेजी से उड़ गया। आक्रमण में ऐसी तेजी और फुरती की मिसाल मिलना मुश्किल है।

लेकिन चिड़ियों के शिकार के शौकीनों को शिकारी पक्षियों के आक्रमण की फुरती देखने का मौका प्रायः मिलता रहता है। अक्सर नदियों और झीलों पर बंदूक दगते ही शिकारी पक्षी घायल, मरी हुई चिड़ियों को इस तेजी से उठा ले जाते हैं कि बंदूक-



शिकरा

धारी देखता ही रह जाता है। वह उन पर बंदूक चलाये, तब तक लुटेरे पक्षी बंदूक की मार से बाहर हो जाते हैं। यही नहीं, बाज, बहरी आदि शिकारी पक्षी जब लगभग १०० मील प्रति घंटे की रफ्तार से उड़ते हुए बत्तखों की गोल पर हमला करते हैं, तो बत्तखें मारे डर के आंखें बंद करके अपने पर समेट लेती हैं और ईंट-पत्थर की तरह ऊपर से तालाब में गिरती हैं।

कीड़े-मकोड़ों में हम और भी अधिक तेजी देखते हैं। मक्खी, भौंरे और मधुमक्खियां इस तेजी से अपने पर चलाती हैं कि हमारी आंखें उसे देखने में समर्थ नहीं हैं। उनके पर एक सेकंड में लगभग ३०० बार घूमते हैं, जिसका चित्र मामूली कैमरा नहीं खींच सकता। कीड़े-मकोड़ों के फुरतीले कामों को देखने के लिए वैज्ञानिकों ने तरह-तरह के

दूसरे यंत्रों का प्रयोग किया है, जिनसे उनकी फुरती आसानी से पकड़ में आ जाती है।

एक वैज्ञानिक ने प्रति सेकंड ३,००० चित्र खींचने में समर्थ चलचित्र-कैमरे से चिड़ियों की उड़ान के चित्र खींचे। चित्रों के प्रिंट तैयार करने पर पता चला कि मक्खी को उड़ते-उड़ते हवा में उलट जाने में एक सेकंड का हजारवां हिस्सा लगता है। इसी प्रकार अन्य कीड़े जब मक्खियों पर आक्रमण करते हैं, तो हमला करने और शिकार को पकड़ने में उन्हें एक सेकंड का हजारवां हिस्सा लगता है।

सैकड़ों प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि ऐसे भी कुछ जीव-जंतु हैं, जिनकी फुरती के आगे बंदूक की गोली कुछ भी नहीं है।

छर्रे वाली बंदूक दागने पर उसके छर्रे एक सेकंड के सातवें हिस्से में लगभग ४० फुट की दूरी तक जाते हैं और राइफल की गोली इतनी ही दूरी एक सेकंड के बीसवें हिस्से में तय कर लेती है। मगर कुछ जीव-जंतु इससे भी अधिक तेजी दिखाकर बंदूक की गोली से अपनी जान बचा लेते हैं। उनकी मांसपेशियां क्या बिजली से कम तेजी से काम करती हैं?

सील का शिकार करने वालों का अनुभव है कि अगर सील ने आपको बंदूक साधते देख लिया है, तो आपकी बंदूक का घोड़ा गिरे और गोली निशाने पर पहुंचे, इससे पहले ही वह मजे से पानी के भीतर चली जायेगी।

ऊदबिलाव भी कम फुरतीला नहीं होत[...] वह भी अगर शिकारी को देख रहा है, [...] बंदूक की गोली से अधिक फुरती दिखा[...] पानी में गुम हो जाता है और शिकारी [...] वार खाली जाता है। एक बार मैंने [...] ऊदबिलाव पर पूरे १७ बार बंदूक चलायी [...] लेकिन हर बार छर्रे पहुंचने से पहले ही ऊद[...] बिलाव पानी के भीतर चला जाता था।

घड़ियाल और मगर को भी उन[...] जानकारी में मार पाना बहुत कठिन है[...] धोखे में तो ये मारे जाते हैं; लेकिन शिका[...] को देख लेने पर ये बड़ी तेजी दिखाते [...] और बंदूक का घोड़ा गिरने के बाद [...] गोली पहुंचने के पहले ही पानी के भीत[...] चले जाते हैं।

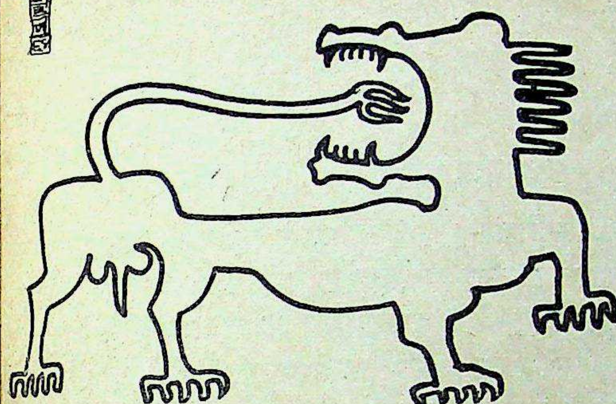
बंदूक को बेकार कर देने वाली इसी त[...] की फुरती कुछ चिड़ियों में भी पायी जा[...] है। छोटी पनडुब्बी बत्तख, जो हमारे [...] के तालाबों में बारहों महीने दिखाई पड़[...] है, बंदूक चलने पर इस तेजी से पानी [...] डुबकी मारती है कि अक्सर शिकारियों [...] निशाना खाली जाता है। दूसरी भी कु[...] बत्तखें हैं जो अनुभव से इतनी होशियार [...] गयी हैं कि अब बंदूक से भी अधिक फुर[...] दिखाकर बंदूक को बेकार कर देती हैं।

जीव-जंतुओं की ऐसी अद्भुत फुरती [...] देखकर मैं तो मानने लगा हूं कि उसके लि[...] 'विद्युत-गति' शब्द का इस्तेमाल कि[...] जाता है, तो वह आक्षेपयोग्य नहीं है।

—कालाकांकर, प्रतापगढ़, उ.[...]







चित्र :
डा. जगदीश गुप्त

अपनी-अपनी अंतर्हित आग

आज
अचानक
यादों के घेरे
कसते गये
तन-मन में
जीवन का विष-अमृत
जठर की आग भी
नहीं जला पाती !
यह क्या है
जो
हममें
सभी में
कण-कण में
कभी बुझता नहीं,
राख नहीं बनती,
इसकी कभी
तुषाग्नि-सा
सुलगता ही रहता है !

जलकर
भस्म होते
शवों और अन्य
सारे पदार्थों के
शून्य परिणति से
पहले ही
यह
सारी चेतना में
विश्व वेदना में
समा जाता है !

—पृथ्वीनाथ शास्त्री

१४/१६ डा. विल्सन पथ,
बंबई-४०० ००४



तमाशबीनों की भीड़ में

कुमार प्रशांत

विश्व के रंगमंच पर अपनी भूमिका निभाकर बहुत निःशब्द चले जाना आसान नहीं होता है। इस प्रदर्शन-प्रिय दुनिया में मृत्यु भी आडंबर का अवसर है। लेकिन जो समाज के प्रवाह के विपरीत जीने का संकल्प करके आते हैं, उनकी मृत्यु भी उनके जीवन की तरह ही आडंबरहीन होती है।

७८-वर्षीय श्री धीरेंद्र मजुमदार ऐसा ही जीवन जीकर २१ नवंबर १९७८ को ऐसी ही मृत्यु को प्राप्त हुए। कहीं शोर नहीं हुआ, 'बड़े लोगों' के शोक-संदेश नहीं आये, अखबारों में काली पट्टियां नहीं लगीं और गांधी के बाद उसकी क्रांति के महल बनाने वाले मिस्त्रियों में से प्रमुख मिस्त्री चला गया। धीरेन दा अपने को 'मिस्त्री' ही कहते थे; क्योंकि 'शास्त्री' वे नहीं थे।

धीरेंद्र मजुमदार गांधी की रचनात्मक सेना के कुशल सिपाहियों में एक थे। और गांधी जब तक रहे, अपने रचनात्मक कार्यकर्ताओं को राजनैतिक संघर्ष से अलग रखते रहे। जब गांधी से उन्होंने इसका कारण पूछा तो गांधी बोले—'तुम लोग बैरक में रखी गयी फौज हो। जब परिस्थिति बिगड़ती है तभी तो बैरक से फौज निकलती है।'

जब गांधी नहीं रहे, धीरेन दा (सव... स्नेहपूर्वक यही कहते थे) अखिल भा... चरखा संघ के अध्यक्ष बने। परंतु ... और गादी (गद्दी) की लड़ाई में उन्हों... खादी की गांधी-कल्पित भूमिका स... और चरखा संघ के नवसंस्करण का स... उपस्थित किया। खादी के व्यापारीक... और सरकारीकरण का खतरा उन्होंने ... लिया था, इसलिए संस्था के रूप में 'य... स्थिति' की ताकतों को बढ़ते देखकर उन्हों... चरखा संघ छोड़ दिया और उस आंदो... में कूद पड़े, जिसे उन्होंने अहिंसक क्रांति ... अगला कदम कहा था।

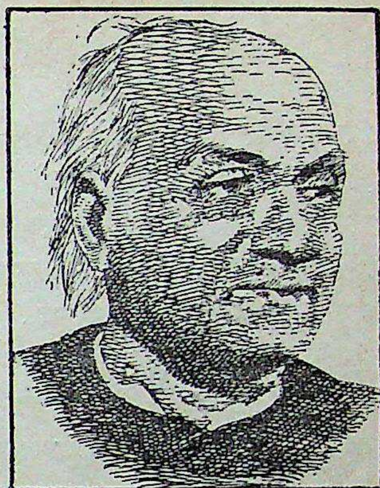
आचार्य विनोबा का भूदान आंदो... अहिंसक क्रांति के जिस नये आयाम को ले... आगे बढ़ा, उसने समाज-परिवर्तन के हि... यती विभिन्न लोगों को सम्मोहित कि... भूदान-आंदोलन का श्रीगणेश करके विनो... ने और जो कुछ भी किया हो या न किया ... गांधी-विचार के उस बीज को निश्चय ... बचा लिया और एक हद तक विकसित ... किया, जो आज भी विकल्प बनकर वि... के सामने खड़ा है।

धीरेंद्र मजुमदार भूदान-आंदोलन ...

आये, तो नेता बनकर नहीं—कार्यकर्ता बनकर। वे इंजीनियरी के छात्र रहे थे और पढ़ाई छोड़कर एकदम अनजाने ही स्वतंत्रता-संघर्ष में आ गये थे। आचार्य कृपालानी से मुलाकात होने पर उनके शिष्य बन गये थे। फिर जब उनकी बहन सुचेताजी का विवाह गुरु कृपालानी से हो गया, तो यह संबंध गाढ़ा हो गया।

किंतु समाज-परिवर्तन के आंदोलन के मामले में गुरु–शिष्य–बहन कभी एकमत नहीं हो पाये। गुरु और बहन ने आजादी के बाद लोकसभा-विधानसभा को समाज-परिवर्तन का हथियार बनाने की कोशिश की; शिष्य ने समाज-पविर्तन के लिए सिवा 'लोक' के किसी शक्ति को स्वीकार ही नहीं किया।

अपने विचारों की कसौटी पर अपने को वैसी निर्ममता से कसने वाला व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा। एक अजीब रूक्षता और औघड़ता थी उनके व्यक्तित्व में। जब से मैंने उन्हें जाना, वे वृद्ध हो चले थे और कमर की तकलीफ के कारण आराम-कुर्सी पर लेटे-लेटे ही सभा आदि में बोलते थे। वह कुर्सी, उनके कपड़े, उनकी चप्पलें, उनका भोजन, उनके बरतन सब निराले थे—इतने सामान्य कि विशिष्ट हो जाते थे। सब उनकी इंजीनियर-बुद्धि के स्पर्श से अलंकृत रहते थे। एक भी चीज एकदम बेकार होने से पहले हटायी या फेंकी न जाये, इसका उन्हें बहुत खयाल रहता था। मुंह साफ कर दातुन का कूंची वाला सिरा काटकर बाकी हिस्सा अगले दिन के लिए रखते मैंने उन्हें देखा था।



स्व. धीरेंद्र मजुमदार

सर्वोदय की कल्पना को मूर्त करने के लिए प्रयोग-क्षेत्र लेकर काम करना चाहिये, इसके वे आग्रही थे, और दूसरों की फिक्र न करके स्वयं प्रतिकूल से प्रतिकूल क्षेत्र में जाकर बैठते रहे। काम के नये-नये प्रयोग ही जैसे उन्हें जीवन-शक्ति देते थे; और अंतिम दिनों में डाक्टरों के अनुसार इन्हीं प्रयोगों ने उनकी जीवन-शक्ति सोख डाली थी। लेकिन ऐसे प्रयोगों को वे अहिंसक क्रांति की दिशा खोजने के लिए आवश्यक मानते थे। 'मार्गदर्शन' शब्द को वे अहिंसक क्रांतिकारी के लिए व्यर्थ मानते थे; 'मार्ग-खोजन' उनके लिए अर्थपूर्ण था।

अहिंसक रीति से समाज-परिवर्तन का कोई बना-बनाया रास्ता नहीं है, कोई उदाहरण भी नहीं है; इसीलिए वे कहते थे—'हमारी क्रांति की तकनीक इतिहास की पुरानी क्रांतियों की तकनीक को तोड़ या

जोड़कर बनायी नहीं जा सकेगी; उसकी नये सिरे से खोज करनी होगी।' जयप्रकाशजी ने इसे ही अपनी तरह से 'क्लीन स्लेट पर लिखना' कहा है।

इस नयी तकनीक की खोज में धीरेनभाई का पल-पल बीता। न परिवार, न रिश्तेदार; न कोई शौक, न कोई आकर्षण—सिर्फ अहिंसक क्रांति का चिंतन और प्रयोग! विफलताएं मिलीं, अव्यावहारिकता उजागर हुई, स्वास्थ्य गिरा, मित्रों ने छोड़ा; पर धीरेनभाई सबसे कुछ सीखते आगे चलते रहे।...... 'क्रांति की व्यूह-रचना सांप के जीवन-जैसी होती है। सांप अपने शरीर का केंचुल लगातार बदलता रहता है। उसी तरह क्रांति की व्यूह-रचना भी समय-समय पर बदलती रहनी चाहिये।'

जनाधार पर रहने के प्रयोग उन्होंने किये; धान-कटाई यात्राएं चलायीं, जिसमें धान-कटाई के वक्त गांव-गांव घूमकर खेतिहर मजदूरों के साथ मिलकर धान काटना और उनसे चर्चा करना चलता था। कई आश्रम बनाये जहां आज भी रचनात्मक कार्यों का सिलसिला चल रहा है। किंतु संस्थाएं बनाने और उनमें से निकल आने में उन्हें कभी देर नहीं हुई। वे कहते थे कि क्रांतिकारी को बदन में तेल लगाकर रहना चाहिये, जैसे पहलवान बदन में तेल लगाकर कुश्ती लड़ते हैं। संस्था खड़ी की और जैसे ही देखा कि वह हम पर हावी हो रही है, फिसलकर निकल गये। क्रांतिकारी संस्था में बंधकर रहेगा, तो क्रांति रुक जायेगी।

जीवन के अंतिम वर्षों में उन्होंने लोमहर्षक प्रयोग शुरू किया—लोक[गंगा] यात्रा। बिहार के सहरसा जिले को आ[...] विनोबा ने सर्वोदय-आंदोलन का सघन-[क्षेत्र] घोषित किया, और सबको सहरसा[...] 'धंसने और गड़ने' का संकेत दिया। '[अहिं]सक सेनापति आदेश नहीं संकेत करता[...]' कहने वाले धीरेनभाई तुरंत सहरसा [पहुंच] गये। उनके शरीर, स्वास्थ्य और आयु [की] दृष्टि से यह एकदम प्रतिकूल निर्णय [था।] शारीरिक अस्वस्थता को मात देने के [लिए] उन्होंने लोकगंगा-यात्रा शुरू की।

लोगों के जीवन के समवाय में समस्या[ओं] के हल बताने की उनकी शैली बड़ी आसा[नी] से दिल में उतर जाती थी। विचार ले[कर] लोगों के दरवाजे तक पहुंचना वे आवश्य[क] मानते थे। विचार फैलाना यानी खेतों [में] बीज छिड़कना। वैचारिक जगत में [हल] चलाना, निराई करना और फिर बी[ज] डालना—ऐसे मुहावरे में अहिंसक क्रांति[कारी] की भूमिका समझाते थे वे।

'हमारी परंपरा में जीवन के अं[तिम] दिनों में गंगावास की प्रथा है। जिसे लो[क]क्रांति की खोज करनी है, उसके लिए [तो] लोक ही गंगा है। इसलिए मैंने अपने अंति[म] दिन लोकगंगा के किनारे ही गुजारना [तय] किया है। मैं चाहता हूं, आज सुबह या[त्रा] पर निकलूं और अगले पड़ाव पर जब [लोग] मुझे उतारें, तो मैं मृत मिलूं।' प्रवाह [में] चलते हुए ही विलीन हो जाने की उन[की] अभिलाषा थी।

लोकगंगा-यात्रा का प्रारंभ साइकल के कैरियर पर बैठकर गांव-गांव जाने से हुआ। खेत की मेड़ पर से चलना, कहीं बैठ जाना और मजदूरों से बात करना। फिर एक बैलगाड़ी ली। उससे गांव-गांव जाना, सबसे निर्धन के यहां ठहरना, कई घरों से मांगकर खाना और 'गप्प' करना। उनकी गप्प-गोष्ठी अहिंसक क्रांति की अद्भुत प्रशिक्षण-शाला थी। बैलगाड़ी भी कई गांवों से साधन इकट्ठा करके बनायी गयी थी और बैल भी हर गांव को देना पड़ता था अगले गांव तक पहुंचाने के लिए।

लोकगंगा-यात्रा लोगों के सहयोग से अटूट चलती रही। उन्हें देखकर याद आते थे तब मुझे सांप्रदायिक दंगों के वक्त के गांधीजी, जिन्हें माउंटबैटन ने 'वन-मैन आर्मी' कहा था। सहरसा में दूसरे लोगों ने भी काम किया, पर धीरेनभाई विनोबा की 'वन-मैन आर्मी' की तरह अंत तक रहे।

शासन-शोषण-विमुक्त जिस अभिनव समाज की कल्पना गांधी ने की थी, उसकी खोज शायद ऐसे अभिनव प्रयासों से ही हो सकेगी, और ऐसे प्रयासों की कीमत समाज बहुत आगे जाकर पहचान सकेगा। धीरेनभाई की मृत्यु ने ऐसे ही एक प्रयास की शृंखला को खंडित कर दिया है।

अहिंसक क्रांति की कला को खोजने वाला कोई विद्यार्थी इस अपूर्व जीवन के पृष्ठ उलटे बगैर आगे नहीं बढ़ सकेगा।

अंतिम दिनों में वे अपने गुरु कृपालानीजी की इच्छा से राजस्थान में 'सुचेता कृपालानी सेवा संस्थान' नाम की संस्था खड़ी करने वाले थे, जो महिलाओं के लिए विशेष रूप से काम करने वाली थी। उन्हें विशेष कोई रोग नहीं था, परंतु काया को खड़ा रखने लायक तत्त्व शरीर में बचा ही नहीं था। इसलिए वह गिर गया। एक मौन जीवन महामौन में विलीन हो गया।



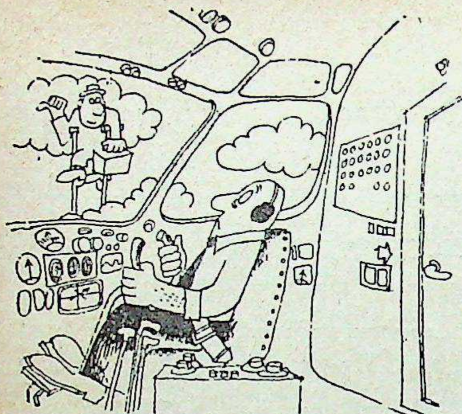
शायद नेहरूजी को छोड़कर जो सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व मैंने देखा, वह डा. एस. राधाकृष्णन् का था। बहुत बरस पहले एक बार वे कलकत्ता में हमारे रिश्तेदार श्री सतीश मजुमदार के यहां ठहरे थे, जो उनके घनिष्ठ मित्र और नामी वकील थे। एक बार डा. राधाकृष्णन् बंबई आये तो श्री मजुमदार के बेटे विजय मजुमदार ने बंबई में उनसे मेरा परिचय कराया, देर तक उनसे मेरी बातें हुईं। उसी बातचीत में मैंने प्रसंगवश उन्हें बताया कि मैं एक मुकद्दमे में फंस गयी हूं।

कुछ वर्ष बाद एक बार दिल्ली में उनसे मिलने राष्ट्रपति भवन गयी तो उन्होंने मुझे चकित कर दिया यह पूछकर कि तुम्हारे मुकद्दमे का क्या हुआ। बड़ी गजब की याददाश्त थी उनकी। जिससे भी मिल लेते, उसे याद रखते थे। उनसे बातचीत करना बड़ा आनंददायक होता था; क्योंकि हर चीज में वे गहरी दिलचस्पी लेते थे।

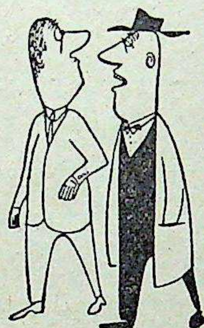
—अरुणा मुखर्जी ['फ्री प्रेस जर्नल' में]



रेखांकित हास्य



'लिफ्ट मिलेगा ?'



बेचारा जहां भी जाता है, दुर्भाग्य
उसके साथ-साथ चलता है।



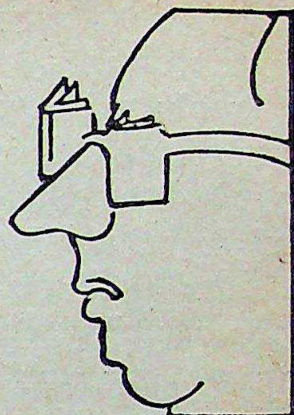
लो, यहां भी आ पहुंचीं सासजी !

यह तुम्हें खानी नहीं है। इसे सुबह-शाम
पर उठाकर दस मिनट घूमो, ताकत आ









जालसाजों का दुश्मन

बलवीर सिंह

जूलियस ग्रांट की गणना जालसाजियों का पता लगाने वाले संसार के सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञों में होती है। इस क्षेत्र में आने के लिए उसने खुद ५,००० पौंड का जाली चेक बनाकर बैंक वालों की आंखों में धूल झोंकी थी।

सन १९३५ में उसे एक बैंक को खास किस्म का कागज दिखाने के लिए आम्स्टरडाम भेजा गया। कागज बनाने की किसी बड़ी कंपनी में वह उन दिनों नौकरी करता था। जब बैंक-अधिकारियों ने उसे बताया कि जो कागज वे इस्तेमाल कर रहे हैं, वह काफी संतोषप्रद है, तो ग्रांट उनसे असहमति जताते हुए बोला—'आपके कागज पर लिखी इबारत मिटायी जा सकती है, जबकि हमारे कागज पर लिखे को मिटाना असंभव है। और अगर इसका सबूत चाहें, तो एक छोटी रकम का चेक लिखकर मुझे दीजिये।'

बैंक-अधिकारियों को भी दिलचस्पी हुई और उन्होंने एक चेक लिखकर उसे दे दिया। अपने होटल में आकर रासायनिक पदार्थों की मदद से उसने चेक पर लिखी रकम मिटाकर उसकी जगह ५,००० पौंड की रकम लिख ली। ग्रांट ने रसायनशास्त्र में डाक्टरेट की थी और पदार्थों के गुणों से अच्छी तरह परिचित था। जब वह जाली चेक लेकर बैंक गया, तो अधिकारी चेक देखकर हैरान रह गये। उनके विशेषज्ञ भी चेक में की गयी तब्दीली को पकड़ न पाये।

फिर ग्रांट ने उनसे कहा—'लेकिन यह जालसाजी हमारे कागज पर संभव नहीं है। क्योंकि उस पर कोई भी तब्दीली की जाये, तो वह दिखाई दे जाती है।'

बैंक की ओर से ग्रांट को उस कागज का आर्डर मिल गया। बाद में ग्रांट ने उस कंपनी की नौकरी छोड़ दी और बड़े-बड़े जालसाजों की जालसाजियों का अध्ययन करने में दिलचस्पी लेने लगा। इस क्षेत्र में वह कुछ कर दिखाना चाहता था। उस समय उसकी उम्र चौंतीस साल की थी।

सबसे पहले उसने कागज, स्याही और रासायनिक पदार्थों का और गहरा अध्ययन किया, और कुछ ही समय में जालसाजियों का पता लगाने वाले विशेषज्ञ के रूप में वह विदेशों में भी प्रसिद्ध हो गया।

ग्रांट का दफ्तर लंदन में है। कई कमरों वाला बहुत बड़ा दफ्तर है, वह और उसमें विभिन्न प्रकार के यंत्र और प्रयोगशालाएं हैं, जहां कागज, स्याही, खून, उंगलियों के

निशानों आदि का अध्ययन जालसाजियों का पता लगाने के लिए किया जाता है।

ग्रांट की राय में, कुछ जालसाज सचमुच कलाकार होते हैं। वे हस्ताक्षरों की हूबहू नकल से लेकर चेक, पासपोर्ट, सर्टिफिकेट आदि किसी भी चीज में मनचाही तब्दीली कर सकते हैं। मगर समाज का सौभाग्य है कि संसार में ऐसे विशेषज्ञ जालसाज बहुत कम हैं, जो कागज, स्याही आदि के भौतिक गुणों से परिचित हों। आज सैकड़ों जालसाज जेलों में सड़ रहे हैं; क्योंकि उन्होंने गलत किस्म का कागज इस्तेमाल किया था।

ग्रांट अपनी खोजबीन कागज की परख से शुरू करता है। उसके ही शब्दों में, 'जो खोजबीन में अंतिम सीमा तक जाने को तैयार हो, उसे कागज का एक टुकड़ा किसी एक्स-रे फोटोग्राफ की तरह बहुत कुछ बता सकता है।'

कुछ साल पहले लंदन के साप्ताहिक 'द संडे टाइम्स' के प्रकाशन-संस्थान ने मुसोलिनी की एक निजी डायरी की प्रामाणिकता के बारे में ग्रांट से राय ली। उसे मुसोलिनी के पुत्र और हस्तलेख-विशेषज्ञों ने मुसोलिनी की डायरी सिद्ध किया था। मगर डायरी देखते ही ग्रांट को महसूस हुआ कि उस कागज में कुछ गड़बड़ है। उसने उसके एक पृष्ठ के कोने से छोटा-सा टुकड़ा काटा और जांच के लिए प्रयोगशाला में भेजा। जांच से पता लगा कि वह कागज एक विशेष प्रकार की घास से बना हुआ है और सन १९३६ से पहले इटली में नहीं बनता [illegible] सो, मुसोलिनी सन १९२५ में उस का[illegible] पर लिख ही कैसे सकता था। ग्रांट ने डा[illegible] को जाली करार दिया।

ग्रांट अब अपनी आयु के आठवें द[illegible] में है और अब भी बहुत स्वस्थ, चुस्त [illegible] मेहनती है। जब वह किसी समस्या [illegible] हल करने में जुट जाता है, उसे समय [illegible] बिलकुल ही खयाल नहीं रहता। हफ्ते [illegible] औसतन चार बड़ी समस्याओं से उलझ[illegible] पड़ता है उसे। पर शनि और इतवार [illegible] वह दफ्तर से दूर कहीं चला जाता है [illegible] पूरा आराम करता है।

लगभग ८५ देशों की विभिन्न संस्था[illegible] सरकारों और नागरिकों की समस्याएं [illegible] हल की हैं। नवस्वतंत्र अफ्रीकी राष्ट्रों [illegible] नये नोटों की छपाई के संदर्भ में ग्रांट [illegible] सलाह-मशविरे की जरूरत हमेशा मह[illegible] होती है। कोई कागज बनाने की समस्या [illegible] बारे में उसे बुलाता है, तो कोई सही कि[illegible] की स्याही के इस्तेमाल के बारे में। [illegible] किस्म का कागज बनाने के लिए सही कि[illegible] की लकड़ी का चुनाव करने के लिए [illegible] बार वह खुद भी किसी देश के जंगलों [illegible] जाता है। इस तरह उसे साल में लग[illegible] पांच महीने विदेशों में रहना पड़ता है।

इतना बड़ा विशेषज्ञ किसी भी [illegible] की मुंहमांगी फीस ले सकता है। मगर [illegible] अपनी फीस तय करता है—काम पर [illegible] होने वाले समय के आधार पर। [illegible] पहले उसने कहा था—'मुझे मालदार [illegible]

के बजाय ईमानदार बनना ज्यादा पसंद है।' और ईमानदारी के कारण ही वह बहुत मालदार नहीं बन सका है। उसका कहना है–'मैं एक अच्छे खाते-पीते देहाती वकील से ज्यादा नहीं कमाता। निश्चय ही मैं लखपति कभी नहीं बन सकूंगा।'

ग्रांट के दफ्तर में दीवार पर एक छोटा-सा कागज फ्रेम में लगा हुआ है। यह उसकी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण खोजबीन की यादगार है। इंग्लैंड की नेशनल गैलरी ने लियोनार्दो द विंची का एक चित्र ८ लाख पौंड (लगभग १ करोड़ ६० लाख रुपये) में खरीदा था। चित्र की प्रामाणिकता बहुत पहले सिद्ध हो चुकी थी; परंतु यह पता नहीं लग रहा था कि पांच सौ साल पुराने उस चित्र के फटे हुए भागों पर कागज के टुकड़े कब चिपकाये गये थे। सो, यह पता लगाने के लिए ग्रांट को कहा गया।

ग्रांट ने चिपकाये हुए कागज में से एक छोटा-सा टुकड़ा काटा। (वही अब उसके दफ्तर में फ्रेम में लगा हुआ है।) उसे सूक्ष्मदर्शक द्वारा परखा गया, तो उस पर उसे 'वाटर मार्क' दिखाई दिये। अब यह कैसे तय किया जाये कि ये वाटर मार्क कब के थे? इसके लिए ग्रांट ने पांच हजार कागजों के टुकड़ों को परखा। उन पर बने वाटर मार्क की परस्पर तुलना करके वह इस नतीजे पर पहुंचा कि चित्र पर कागज के टुकड़े सन १९४० में चिपकाये गये थे।

ग्रांट ने अपने अनुभवों और खोजों पर एक दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में एक विशेषज्ञ के रूप में ग्रांट ने बहुत-से काम किये थे। ब्रिटिश सरकार के लिए की गयी उसकी कुछ खोजें आज भी गुप्त रखी गयी हैं। पर उसके कुछ कामों से सभी परिचित हैं। उसने एक ऐसा कागज बनाने में सरकार की मदद की थी, जिस पर गुप्त समाचार लिखकर जासूसों के हाथ भेजे जाते थे। पकड़े जाने का खतरा होने पर जासूस कागज को आसानी से निगल सकता था।

एक और किस्म का विशेष कागज भी ग्रांट ने बनाया था, जो जर्मन कैदियों को पत्र लिखने के लिए दिया जाता था। उस पर लिखी गयी किसी भी प्रकार की 'अदृश्य लिखावट' पढ़ी जा सकती थी। इस तरह जर्मन कैदियों द्वारा लिखी गयी ऐसी किसी भी बात का पता लग सकता था, जिससे इंग्लैंड को खतरा हो।

ग्रांट ने राशन-कार्डों के लिए भी ऐसा कागज बनवाया, जिसमें गाय के बाल होते थे। शक होने पर कार्ड में से एक बाल निकालकर जलाया जाता था। अगर उसका धुआं दुर्गंधमय न होता, तो वह राशन-कार्ड जाली साबित होता।

ग्रांट ने एक बार कहा था–'जालसाज शायद यह भूल जाता है कि विज्ञान उससे हमेशा कुछ कदम आगे रहता है। जो नयी बातें वह जानता है, उनका ज्ञान विशेषज्ञों को भी होता है। इसीलिए जालसाज बुनियादी तौर पर मूर्ख होता है और अंततः उसे हार खानी पड़ती है।'



सुमधुर भजनों के स्रष्टा

स्वामी ब्रह्मानंद

प्यारेलाल श्रीमाल

हिंदीभाषी प्रदेश में भक्ति-संगीत का कोई कार्यक्रम हो और उसमें ब्रह्मानंद का एक न एक गीत गाया न जाये, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

मधुर भक्तिगीतों के रचयिता श्री ब्रह्मानंदजी महाराज का जन्म संवत १८२९ में एक भक्त परिवार में हुआ। आपका मूल नाम 'लाडू' था। काव्य-प्रतिभा का प्रमाण वे बाल्यावस्था से ही देने लगे थे। कंठ भी बड़ा सुरीला था। लोग उनसे गीत-भजन सुनकर मुग्ध हो जाते थे। एक बार उन्हें अपने पिता के साथ उदयपुर दरबार में कविता गाने का अवसर मिला। महाराणा उनकी कविता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने काव्य-कला के विशेष अध्ययन के लिए आपको कच्छ भेज दिया। कच्छ में पूरे आठ वर्ष अध्ययन करके ब्रह्मानंदजी ने काव्यांगों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया।

आपकी कवित्व-शक्ति की प्रखरता के बारे में किस्सा है कि वे ओंठों में सूई दबाकर बैठते थे और पवर्ग-रहित आशु कविता बोलकर लिखवा देते थे।

क्रमेण उनके काव्य-चमत्कार की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी और बड़े-बड़े दरबा[रों] से उन्हें बुलावे आने लगे। तत्कालीन बड़े [नरेश]... नरेश तो उनके अनन्य अनुरागी बन गये। उन्होंने अपने दरबार में उन्हें बड़े सम्मा[न] पूर्वक रखा। पर्याप्त द्रव्य भी प्रदान कि[या] किंतु लौकिक सुख-संपदा के प्रति ब्रह्मानंद में आरंभ से अनासक्ति थी। हजारों रु[पयों] की वार्षिक आय तथा राजसम्मान [को] तिलांजलि देकर वे वहां से चले पड़े।

देश-भ्रमण करते हुए अकस्मात् उन[की] भेंट भगवान श्रीस्वामिनारायण से हु[ई]। जिस गुरु की उन्हें तलाश थी, वे गुरु मि[ल] गये। उन्होंने श्रीस्वामिनारायण से दी[क्षा] लेकर अपना नाम 'लाडू' से बदलकर रंग[दास] रख लिया। कुछ समय बाद उनकी आ[ध्या]त्मिक अवस्था को देखकर स्वयं श्रीस्वा[मि]नारायणजी ने उन्हें 'ब्रह्मानंद' नाम दि[या]। अब वे भगवान की भक्ति और सद्गुरु [की] सेवा करते और बचे समय में 'ब्रह्मानंद' नाम से भजन रचते।

गुरुजी श्रीस्वामिनारायण महारा[ज के] गोलोकवासी होने पर आप पुनः देश-भ्र[मण] पर निकल पड़े। भगवद्भजन का प्र[चार]

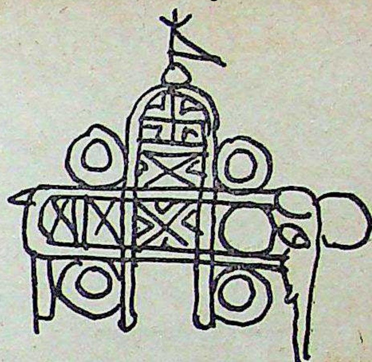
ड़े-बड़े दरबा
कालीन बड़े
ी बन गये
ई बड़े सम्म
प्रदान कि
ति ब्रह्मानं
हजारों
जसम्मान
ले पड़े।
कस्मात् उन
ायण से हु
ी, वे गुरु
ायण से दी
दलकर रंग
उनकी आ
वयं श्रीस्वा
ई' नाम दि
ीर सद्गुरु
में 'ब्रह्मानंद
ा महाराज
ुनः देश-
जन का प्र
हिंदी डाइ

प्रसार करते हुए उन्होंने अहमदाबाद, मूली आदि अनेक स्थानों पर मंदिरों का निर्माण भी करवाया। आबू पर्वत पर तपस्या करके वाक्‌सिद्धि प्राप्त की। वहां से चलकर विभिन्न नगरों में धर्मोपदेश करते हुए वे पुष्कर पहुंचे। पुष्कर तीर्थ में आपका मन ऐसा रमा कि वहीं 'ब्रह्मानंद आश्रम' बनाकर रहने लगे। वहां वे नित्य अनुष्ठानादि करवाते तथा स्वयं घर-घर जाकर मंत्रशक्ति तथा औषधों से रोगियों का उपचार करते। इस सेवा में वे किसी प्रकार का वर्ग-वर्ण का भेद नहीं करते थे।

पुष्कर में रहते हुए ब्रह्मानंदजी ने दस ग्रंथों की रचना की, जिनमें 'ब्रह्मानंद-काव्य', 'ब्रह्मविलास', 'छंद-रत्नावली' विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके कुछ ग्रंथ वेदांत तथा योगाभ्यास-विषयक भी हैं। पर 'ब्रह्मानंद-भजनमाला' उनकी अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक है। इसमें उनके ५०० भजन संगृहीत हैं। ये भजन वैष्णव मंदिरों में तो गाये ही जाते हैं, आकाशवाणी केंद्रों से भी प्रायः प्रसारित होते रहते हैं। ये भजन आध्यात्मिकता से परिपूर्ण होते हुए भी चुटीले एवं मार्मिक हैं। अलंकारों के बोझ से मुक्त सहज भाषा में होने से उन्होंने जन-सामान्य के हृदय में स्थान बना लिया है। एक उदाहरण :

[रेखता—ताल दादरा]

जिसको नहीं है बोध तो गुरु ज्ञान क्या करे
निज रूप को जाना नहीं, पुराण क्या करे
॥ टेक ॥
घट-घट में ब्रह्म जोत का परकाश हो रहा



मिटा न द्वैतभाव तो फिर ध्यान क्या करे
॥ १ ॥
रचना प्रभु की देख के ज्ञानी बड़े-बड़े
पावे न कोई पार तो नादान क्या करे ॥ २ ॥
करके दया दयाल ने मानुष जनम दिया
बंदा न करे भजन तो भगवान क्या करे ॥ ३ ॥
सब जीव-जंतुओं में जिसे है नहीं दया
ब्रह्मानंद बरत-नेम-पुण्य-दान क्या करे ॥ ४ ॥

एक और उदाहरण :

[राग जंगला—तीन ताल]

क्या पानी में मल-मल न्हावे, मन की मैल
उतार पियारे ॥ टेक ॥
हाड़-मांस की देह बनी है, झरे सदा नवद्वार
पियारे ॥ १ ॥
पाप कर्म तन के नहिं छोड़े, कैसे होय सुधार
पियारे ॥ २ ॥
सतसंगत तीरथ-जल निरमल, नित उठ गोता
मार पियारे ॥ ३ ॥
ब्रह्मानंद भजन कर हरि का, जो चाहे
निस्तार पियारे ॥ ४ ॥

इन भजनों पर पीलू, काफी, बिहाग, मल्हार, श्यामकल्याण, देस, आसावरी,

खमाज, पहाड़ी, मांड, तोड़ी, सोरठ, भैरवी आदि रागों के अलावा मंगल, पंजाबी काफी, बरहंस, बंजारा धुन, प्रभाती, कसूरी रासड़ा, मारवाड़ी आदि अप्रचलित रागों के नाम भी दिये हैं। साथ में धमार, चौताल, तीन ताल, एक ताल, दादरा, कहरवा आदि तालों का निर्देश है। कुछ भजन धमार तथा तीन ताल में गजल की तर्ज पर हैं। कुछ भजनों पर गजल-क़व्वाली, सावनी-क़व्वाली, लावनी-क़व्वाली लिखा है; मगर वहां कव्वाली से अभिप्राय कव्वाली ताल से है। राग खमाज, झिंझोटी तथा जिला में ठुमरी की तर्ज पर कुछ भजन हैं, जो तीन ताल में निबद्ध हैं। कुछ भजनों पर 'राग धुन ताल धीमा' लिखा है।

यह सब सिद्ध करता है कि स्वामी ब्रह्मानंदजी केवल कवि ही नहीं, अपितु सफल वाग्गेयकार (कवि और स्वरकार) थे। रागों एवं तालों के अतिरिक्त ध्रुपद, धमार, ठुमरी, गजल, लावनी आदि गीत शैलियों की भी उन्हें पूर्ण जानकारी थी। वस्तुत: आपके तमाम भजनों की भाषा तथा विषय-वस्तु इन गीतशैलियों के सर्वथा अनुकूल है। 'दया की नजर से देख मुझको' मुखड़ा गजल का है, तो 'हरिदर्शन की मैं प्यासी रे' मुखड़ा ठुमरी का है। लावणी सरल और लावणी लंगड़ी में रंभा-शुक-संवाद, प्रह्लाद-हिरण्यकश्यप-संवाद जैसी विषय-वस्तु का चयन किया गया है। होरी-धमार में कृष्ण की रासलीला का वर्णन किया है, तो ध्रुपद में गणेश, महेश, आदिदेव आदि की स्तुति की गयी है। एक ध्रुपद देखिये :

[ध्रुपद—चौताल]

जय महेश जटाजूट कंठ सोहे कालकूट
जन्म-मरण जाय छूट नाम लेत जाके ॥१
तीन नयन चंद्र भाल मुंडन की गले मा
शोभित तन मिरग-छाल कटि में ना
बांके ॥२
गौर बसत सदा संग, भस्म लसत अंग-अं
शीश गंग के तरंग वाहन वृषभ के ॥३
कर त्रिशूल अरु कुठार ब्रह्मानंद निर्विका
जाकी महिमा अपार कहत वेद थाके ॥४

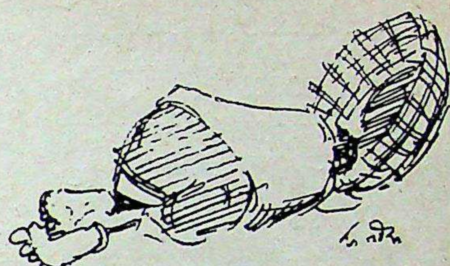
इस प्रकार विनय, नाम-स्मरण, गु भक्ति, हितोपदेश, कथा-प्रसंग आदि वि यक भजनों का रसपान कर पाठक एवं श्रो आत्मविभोर हो उठते हैं।

भजनों के माध्यम से समाज को संगीताम् पिलाकर आध्यात्म के रंग में रंगने वाले पर हंस स्वामी ब्रह्मानंदजी ने पुष्कर में ही म सर सुदी २, १९८२ वि. को प्रातःका गोलोक-प्रयाण किया। ब्रह्मानंद आश्रम आज भी आपकी गादी विद्यमान है। क जाता है कि महाप्रयाण से पूर्व आप स धिस्थ होकर गादी से कुछ ऊपर उठ गये तथा आपके मुखारविंद से यह वाणी नि हुई थी—'इस स्थान पर शंख-चक्र- पद्मधारी भगवान श्री आदिनारायण प्रतिमा स्थापित की जाये। लाओ, मेरी मा ले आओ।' माला धारण करते ही आ श्रीमुख से 'नारायण नारायण' शब्दोच्च हुआ और तत्क्षण आपने प्राण त्याग दि

—रंगमहल, नयी पैठ, उज्जैन, म.



स्मृति के अंकुर



हंसता चेहरा

निश्चय ही उस सांझ मेरे चेहरे पर चिंता की रेखाएं कुछ ज्यादा ही गहरी रही होंगी। क्योंकि जब मैं कार्यवश मित्रवर श्री वलमजी (बचुभाई) कीरी की दुकान पर पहुंचा तो ग्राहकों के छंट जाने के बाद उन्होंने अपनी नरम आवाज को और नरम बनाते हुए पूछा—'क्या बात है, कुछ परेशान नजर आते हैं ?' मैंने उन्हें बताया कि कैसी समस्याओं में फंस गया हूं। उन्होंने हाल सुना और कुछ व्यावहारिक सुझाव दिये। फिर एक पते की बात कही :

'जब समस्याएं आती हैं, चिंता होना स्वाभाविक है। पर मेरा कुछ दूसरा ढंग है सोचने का। चिंताएं दो तरह की होती हैं। एक वे जो सुलझायी जा सकती हैं; दूसरी वे जो सुलझायी नहीं जा सकतीं। जिन्हें सुलझाया जा सकता है, वे सही उपाय सोचने और करने से सुलझती हैं, चिंता करने से नहीं। बल्कि बहुत चिंता करने से तो राह सूझना भी बंद हो जाता है। और जो समस्याएं सुलझायी नहीं जा सकतीं, उनमें चिंता करने से फायदा ही क्या ! सुनने में बात विचित्र लगेगी—जिस रोज मुझे व्यापार में घाटा होता है, चाय मंगवाकर दुकान के सब कर्मचारियों को पिलाता हूं। मैं तो समझता हूं, हंसते-हंसाते हुए चीजों को झेल लेना ही जीवन है।'

श्री वलमजी हंसते भी थे, हंसाते भी थे—बड़ा मीठा और सहज होता था उनका हास्य। कुछ महीने पूर्व उनका गैंग्रीन का आपरेशन हुआ था। लोकल एनेस्थोसिया दिया गया था, और वे होश में थे। आपरेशन टेबल पर उनके दोनों हाथ फैला दिये गये थे। लेटे-लेटे वे बोले—'देखो, ईसा को सलीब पर चढ़ा दिया गया है।' आपरेशन के बाद जब टेबल से उतारकर बिस्तर पर लिटाया गया तो कहने लगे—'अब ईसा को सूली पर से उतार लिया गया है।' डाक्टर विस्मित रह गये थे इस रोगी की जिंदादिली पर।

अभी कुछ ही सप्ताह पूर्व एक रात श्री वलमजी हार्ट-एटैक से एकाएक गुजर गये।

• शीर्षक के साथ सतीश चव्हाण रचित चित्र •

सत्ताईस वर्ष पूर्व ग्राहक के रूप में पहली बार उनकी दुकान में गया था और जब दुकान से निकला तो उनका मित्र बनकर निकला था। मुझे लगता है, प्राणों का ग्राहक बनकर आये यमराज को भी उन्होंने मित्र बना लिया होगा। **—नारायण दत्त**

०००

सार्थक कविता

काव्य-पंक्तियों से कभी-कभी जीवन-दृष्टि ही बदल जाती है। कविता की इस शक्ति की अनुभूति मुझे पिछले दिनों हुई।

जनवरी १९७८ के **नवनीत** में श्रीमती पुष्पा राही का गेयगीत छपा था। शीर्षक था—'क्षमा-गीत।' मुझे वह बहुत पसंद आया। फुरसत के क्षणों में मैं उसे अक्सर गुनगुनाने लगता। नाइट ड्यूटी पर रात में प्रेस में पेज बनवाते समय कभी जोर से गाने भी लगता।

पर जून ७८ की २६ तारीख को तो मैं आश्चर्यचकित रह गया, जब एक नवदंपति ने, जो पास ही रहते थे, आकर मुझे धन्यवाद दिया। पति महोदय बताने लगे कि हमारे दांपत्य-जीवन में मूर्खतावश आयी कटुता आपने मिटा दी है। मैंने पूछा—कैसे? तब वे शरमाते-सकुचाते बोले—'यह सब उस गीत की कृपा है, जिसे आप कभी-कभी रात को जोर से गाने लगते हैं।'

'कौन-सा गीत?' मैंने पूछा।

उन सज्जन ने अपनी पत्नी की ओर गौर से देखा और शरारत-भरी मुस्कान बिखेरते हुए बोले—'उसकी पंक्तियां हैं :

आज से तय हो गया है
यह हमारे बीच
आपसी मतभेद पर
लो शीघ्र आंखें मींच।'

मैं मुस्करा पड़ा। पर वे बताते र
'बार-बार सुन-सुनकर ये पंक्तियां हम दो
को याद हो गयी हैं। .... बात यों है
कुछ मतभेदों के कारण हम निरंतर झग
रहते थे। फिर हमारी बोलचाल बंद
गयी। कई महीने चुप्पी में निकल ग
दोनों नौकरी करके घर लौटते और खा
खाकर अंदर ही अंदर कुढ़ते हुए सो जाते
तभी यह कविता सुनाई पड़ने लगी। आप
कार्यालय और हमारे घर के बीच एक
दीवार है और ऊपर रोशनदान है ही
कविता मेरी जबान पर चढ़ गयी। ए
दिन मैं उसी को गुनगुना रहा था, तो य
बोली—"बात की किश्ती कभी आगे
बढ़ने दो .... तोते की तरह रटते हो
कब तक रटते रहोगे!" और मैं उसी दि
समझौते के सूत्रों में उलझ गया। दोनों
सिर्फ अपनी-अपनी कुंठाओं में जी रहे थे
इस गीत ने हमें नयी दृष्टि दी है।'

मैंने उनसे कहा—'भई, धन्यवाद तो आ
पुष्पाजी को भेजें। **नवनीत** के संपादक औ
संचालक को दें।' वे मुस्करा दिये—'हमने तो
इसे आपकी आवाज से पकड़ा है।'

काव्य के प्रयोजन गिनाते हुए हमा
पुराने काव्यशास्त्रियों ने गलत नहीं कहा
है—'काव्य व्यवहार ज्ञान कराता है, अमंग

का नाश करता है, तुरंत परम आनंद देता है और कांतासम्मिति द्वारा उपदेश देता है।'

—दुर्गाशंकर त्रिवेदी, कोटा-३२४००६

०००

अनोखा पुरस्कार

तब मैं बी. ए. का छात्र था। उम्र कोई सोलह की रही होगी। शुरू से मैं गंभीर और अल्पभाषी रहा हूं। फिर अपनी मुफ़लिसी का संकोच। पचास सहपाठियों में अधिकांश संपन्न घरों के फैशनपरस्त युवक थे। मैं ही एक गरीब पिता का पुत्र था। हमारी अंग्रेजी की व्याख्याता मेडम उमा ढींगरा कद और शरीर में तो छोटी व दुबली-पतली थीं, लेकिन बुद्धि से बहुत प्रखर और स्वभाव से सचमुच शांत और विनीत।

एक दिन तिमाही परीक्षा की कापियां दिखायी जा रही थीं। प्रोत्साहन के लिए मेरिट के हिसाब से प्रथम, द्वितीय और तृतीय नंबर वाले छात्रों को मेडम ने पुरस्कार के रूप में पुस्तकें दीं। मेरा परिणाम शून्य था। वैसे भी मैं सबसे पीछे बैठता था। शरम से और दोहरा होकर छिप-सा गया। पर सबसे अंत में अचानक ही मेरा नाम पुकारा गया। मुझे एकदम झटका लगा। सोचा, डांट पड़ेगी। किंतु नहीं। मेडम ने मेरी ओर पुस्तक बढ़ाते हुए सब छात्रों से कहा—'तुम्हारे इस साथी को इसके सरल व्यवहार के लिए मैं पुरस्कार दे रही हूं।'

सिर झुकाये मैं शरम से गड़ा जा रहा था। मैं आगे नहीं बढ़ा, तो मेडम खुद मेरे पास आयीं। इतने में घंटी बज गयी और सभी छात्र चले गये। पुस्तक थमाते हुए वे बोलीं—'कोई बात नहीं...... मुझे मालूम है......तुम्हारे अंदर बहुत पासिबिलिटीज़ (संभावनाएं) हैं। लेकिन थोड़ा-सा साहस करो......।' यह सुनकर मैं पूरा भर आया। कुछ बोल न सका। लेकिन उस छोटे-से व्यक्तित्व के उन शब्दों से मैंने पिछले आठ वर्षों में अनेक बार बल प्राप्त किया है और सफलता पायी है।

—गोपाल चौरसिया, ग्वालियर-१



श्री माखनलाल चतुर्वेदी अस्वस्थ अवस्था में चारपाई पर थे और मध्यप्रदेशीय शासन-साहित्य-परिषद् की ओर से उनके सम्मान का आयोजन किया गया था। समारोह में पधारे अनेक साहित्यकार चतुर्वेदीजी के दर्शनार्थ उनके निवास-स्थान पर भी गये। जब 'सरस्वती' के संपादक पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी उनसे मिलने पहुंचे, दोनों में यह वार्तालाप हुआ।

'आप कहां ठहरे हैं महाराज?'

'हमारे ठहरने की व्यवस्था एक "लाज" में की गयी है।'

'अरे! आप कब से लाज करने लगे?'

'आज तो सारा देश ही "सरमदान" कर रहा है।'

और ठहाकों से कमरा गूंज गया।

—डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'



एक अस्पताल का जन्म-मरण

रमापद चौधरी

प्रिय अनंत,

तुम्हारा पत्र समय पर मिला था, पर बहुत सारे झमेलों की वजह से जवाब न दे सका। तुम लोग जानते ही हो मैं ठेकेदारी करता हूं, सुर्खी-चूना ही मेरी रोजी-रोटी है। लेकिन अपना गांव मैं कभी नहीं भूला। हालांकि मेरा धंधा शहरों में बड़ी-बड़ी इमारतें बनाना है, फिर भी खेलाई गांव के उस कच्चे मकान से जुड़ी यादों को भूल पाना मेरे लिए कतई मुमकिन नहीं है। थोड़ी-सी फुरसत मिलते ही मन वहां पहुंचने के लिए बेचैन हो जाता है।

तुम्हारे दूसरे पत्र से मालूम हुआ कि एक अस्पताल बनवाने के काम में तुम लोग काफी दूर तक बढ़े हो। तुमने मुझसे दस हजार रुपये मांगे हैं। पर शायद तुम्हें यकीन नहीं होगा कि खरचने के लिए दस पैसे हम ठेकेदारों की जेबों में नहीं रह पाते। फिर भी मैं अपनी हैसियत के मुताबिक जरूर मदद करूंगा। गांव और आस-पास के बड़े जोतदारों या कारोबारियों के दान से कोई बड़ा काम कराने का जमाना अब कहां रह गया है। आज तो सरकार इस ओर ध्यान दे तभी कुछ हो सकता है। सो बेहतर हो तुम लोग किसी मंत्री को पकड़ो, आस-पास के गांव वालों से दरख्वास्त करवाओ। कोशिश करने पर सरकारी पैसों से एक बड़ा-सा अस्पताल वहां बन सकता है। उसके बाद तो मैं हूं ही। —गुणमय

०

नटू भैयाजी,

बारासत वाले मामले में फोन पर आपसे बातचीत होने के बाद सोचकर भी आपसे मिल नहीं पाया। फिलहाल खेलाई गांव के इन लड़कों को आपके पास भेज रहा हूं। ये लोग वहां एक अस्पताल बनवाने की कोशिश में हैं। मैंने अपनी हैसियत के मुताबिक मदद करने को कहा है। स्वतंत्रता आने के बाद अनेक जगहों पर स्कूल, कालेज, अस्पताल खोले गये। पर आपके गांव कालि... पुर में कुछ भी नहीं हुआ। आप हमारे श्रद्धेय हैं, उस पर मंत्री। आपने कहा था कि अपने गांव में कुछ करने से पक्षपात जैसा लगेगा, सो आपने इस ओर ध्यान नहीं दिया। पर गांव वालों के भी तो कुछ दावे हैं। आशा है, आप इनकी बातें ध्यान...

से सुनेंगे। मेरा श्रद्धापूर्ण नमस्कार स्वीकारें।

आपका—गुणमय

०

अनंत,

नटू भैयाजी से तुम लोगों की मुलाकात के बाद मेरी उनसे बातचीत हुई थी। तुम लोग यदि पंद्रह हजार का चंदा जमा कर लो तो शायद काफी सुविधा हो जाये। बीच-बीच में समाचार देते रहना।

—गुणमय भैया

०

अनंत,

लंबे अरसे तक तुम लोगों का कोई पत्र न मिलने पर मैंने सोच लिया था कि तुम लोगों ने उम्मीद छोड़ दी है। खैर, चंदे के रुपयों का इंतजाम हो गया है तो अब बाकी रुपये सरकार से लेने की कोशिश करनी होगी। नटू भैयाजी के कालिकापुर से हमारे खेलाई तक बारह मील के भीतर कोई अस्पताल नहीं है। गांव के लोगों के दुःख-कष्ट, असुविधाओं की चर्चा वाले कुछ पत्र समाचारपत्रों में छपवाने का इंतजाम करो। रमेश नंदी का लड़का अखबार का आदमी है, उसको जाकर पकड़ सकते हो।

— गुणमय भैया

०

अनंत,

समाचारपत्रों की कतरनें मिलीं। मेरे पास भेजने की जरूरत नहीं थी। मैं उन्हें पहले ही देख चुका हूं, इसलिए लौटा रहा हूं। इन्हें लेकर जगतपुर के निशा भट्टाचार्य से मिलो। वे हमारे पड़ोस के चुनाव-क्षेत्र से विधानसभा में आये हैं, तब भी खेलाई के पड़ोसी गांव के ही आदमी हैं न। इसके अलावा विरोधी पक्ष के सदस्य की हैसियत से अस्पताल की कमी की बात उठाना उनके लिए आसान होगा। निशा बाबू को भी मैं पत्र लिख रहा हूं।

—गुणमय भैया

०

अनंत,

कल फोन पर नटू भैयाजी से बातचीत हुई। निशा बाबू ने विधानसभा में बड़ी चतुराई से बात उठायी है। नटू भैयाजी का जवाब भी आशाजनक है। तुम एक-दो जने उनसे तुरंत मुलाकात करो और निशा बाबू को धन्यवाद दे आओ। मैंने भी फोन पर उन्हें आभार जताया है।

—गुणमय भैया

०

नटू भैयाजी,

आखिरकार बंदोबस्त हो ही गया, सो



बंगला से अनुवाद : सोमनाथ द्विवेदी

मेरा धन्यवाद। हम लोग सचमुच ही अब तक आप पर गर्व करते आये हैं। अब और ज्यादा कृतज्ञ हुए। मेरा आदमी शिवेन पत्र लेकर जा रहा है, उसकी जबानी सब सुनियेगा। आपके लिवर का दर्द घटा है या नहीं, मालूम करायेंगे। रोजाना एक चम्मच कालमेघ का रस पीकर देखें। मुझे फायदा पहुंचा था। यदि न मिलें तो मुझे लिखें, रोज ताजे कालमेघ के पत्ते भिजवाने का इंतजाम कर दूंगा। अगले ही सप्ताह मैं आपसे भेंट करूंगा।

—गुणमय

०

प्रिय शिवेन,

मैं इस सप्ताह रांची से लौट न सकूंगा। बारासत का काम कितना आगे बढ़ा है, सीमेंट रखवाने का क्या इंतजाम किया है तुमने, यतीन बाबू ने स्कूल-बिल्डिंग का प्लान सबमिट किया या नहीं, लिखना। और नटू भैयाजी के सेक्रेटरी, नाम भूल रहा हूं उनका, उनसे मिलकर खेलाई के अस्पताल का आर्डर इशू कराने के लिए तकादा करना। उनकी तनिक खातिर-तवज्जोह भी करना।

—गुणमय सेन

०

यतीन बाबू,

मुझे लौटने में और तीन-चार दिन लगेंगे। यहां का बिल वसूल होते ही मैं लौटूंगा। काम करके रुपये वसूलना भी एक समस्या है। कभी-कभी तो कारोबार समेट लेने की तबीयत होती है। खैर, सुना है आपका स्कूल वाला प्लान उन्हें बहुत पसंद आया है। हमारे खेलाई गांव परती जमीन पर बड़ी सड़क के कि एक बड़े अस्पताल के बनने की संभा है। सरकारी दफ्तरों के काम से तो वाकिफ हैं। इसमें कितने रुपये लगेंगे, इ निर्णय लेने में ही उन्हें महीनों लग जाये सो आप एक प्लान बनाकर तैयार क इसमें मैं डेढ़-एक लाख रुपये खर्च कर चाहता हूं। समूचा प्लान जमा करके आ इशू कराने में सुविधा होगी।

आज सुबह शिवेन ने ट्रंककाल किया उसे भी मैंने समझा दिया है। फिल इतना ही।

—गुणमय से

०

नटू भैयाजी,

अस्पताल के प्लान के साथ शिवेन आपके पास भेज रहा हूं। आप जरा दे लीजियेगा। आप लोगों के इंजीनियरों द्वा प्लान बनवाने पर शायद हम लोग अ जीवन में अस्पताल न देख सकें। सो अ ही खर्च से बनवा लिया है। जब लग पचास गांवों का भला होता हो और प्ल का खर्च मुझे ही देना पड़ जाये तो क्या फ पड़ता है।

मैं कल रांची से लौटा हूं। आज रि जा रहा हूं। दो दिन वहां रहूंगा।

फाइनान्स डिपार्टमेंट वालों से आप तनि कह देंगे, इसका मुझे यकीन है। मेरा स नमस्कार स्वीकारें।

आपका—गुण

पुनश्च : आपके आदेशानुसार शंकर नौकरी की बात मैंने कॉलिन साहब

चलायी है। आशा है, हो जायेगी।

०

शिवेन,

हमारा जमा किया हुआ अस्पताल का प्लान तनिक हेरफेर के साथ मंजूर हो गया है, जानकर खुशी हुई। टेंडर के लिए विज्ञापन कब तक निकलेगा, यह पहले से पता कर रखना। हेरफेर की वजह से पूरे एस्टिमेट में क्या फर्क आयेगा, यतीन बाबू से हिसाब करवा लेना। यह बात उसे याद रखने के लिए कहना कि आजकल सबका मुंह फैलता जा रहा है। बसंत बाबू का ट्रांसफर कराये बगैर काम नहीं चलेगा। इतने-से काम के लिए इतने ज्यादा रुपये! आज बस इतना ही।

—गुणमय

०

बसंत बाबू,

शिवेन बाबू को आपके पास भेज रहा हूं। सारी बातें सुनियेगा। आप हमेशा ही मेरा उपकार करते रहे हैं, यह मैं कभी न भूलूंगा। कौन-कौन-सी पार्टी टेंडर देंगी, इसका पता लगाकर मेहरबानी करके मालूम कराइयेगा। हां, चीनी की जरूरत है क्या?

आपका—गुणमय

०

शिवेन,

आशा है, परसों मैं दुर्गापुर से लौट आऊंगा, पर इससे पहले ही खेलाई के अस्पताल का टेंडर सबमिट करना होगा। बसंत बाबू से भीतरी बातें जानकर यतीन बाबू को फ्रेश एस्टिमेट बनाने के लिए कहना। रिसड़ा का बिल पास करवाने के लिए तुम्हें एक बार जाना पड़ेगा। मैं पिछली बार टू परसेंट से ज्यादा पर राजी नहीं हुआ था। जरूरत पड़ने पर तुम थोड़ा बढ़ा देना।

—गुणमय सेन

०

अनंत,

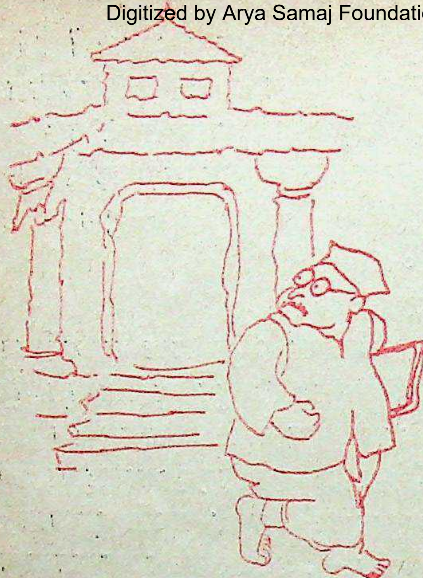
लंबे अरसे से तुम लोगों की कोई खबर नहीं मिली। क्या तुम लोगों ने मुझे भुला दिया है? तुम लोगों का उत्साह देखकर ही मैंने अस्पताल के लिए इन नौ महीनों में जो मेहनत की है, उसके बारे में तुम सोच ही नहीं सकते। आखिरकार अब अस्पताल बन ही जायेगा। वैसे गांव के अस्पताल का काम हाथ में लेने पर कोई खास फायदा नहीं होगा मुझे, फिर भी यह काम मैंने अपने हाथों में ले लिया है। तुम्हें तो पता ही है कि ठेकेदारों पर यकीन नहीं किया जा सकता। इतनी कोशिशों के बाद एक अस्पताल सैंक्शन हुआ है। वह भी दो दिनों में ढह जाये, ऐसा मैं नहीं चाहता। इसी वजह से यह काम मैंने अपने हाथ में ले लिया है। आज बस इतना ही।

—गुणमय भैया

०

श्रद्धेय निशा बाबू,

बहुत दिनों से आप से मिल नहीं पा रहा हूं। विभिन्न कामों में ऐसा उलझे रहना पड़ता है कि वक्त ही नहीं निकलता। आजकल कंट्राक्टरों का हाल तो जानते ही हैं। सरकारी दफ्तर के दरबान से मंत्री तक सभी डपटते रहते हैं। और फिर कदम-



कदम पर फैले हुए हाथ ही मिलते हैं। आप लोग तो फिर भी बीच-बीच में एक-दो सच बात मुंह पर कह देते हैं।

खेलाई के अस्पताल का काम मैंने लिया है। फायदा तो होगा नहीं। फायदा सिर्फ यही होगा कि उस इलाके में एक बड़ा अस्पताल बन जायेगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि बुढ़ापे में वहीं जाकर रहूं, इसलिए अस्पताल जरा अच्छी तरह बने, इसी कोशिश में हूं। फिर भी आप जानते ही हैं कि मैं हर वक्त सब काम खुद नहीं देख पाता हूं, ओवरसियरों के भरोसे रहना पड़ता है। यदि अस्पताल के काम मे कोई गड़बड़ देखें तो कृपया कोई झमेला न करके मुझे खबर दें, मैं ठीक करवा दूंगा।

उस दिन अचानक थोड़ी-सी झींगा मछली मिल गयी थी, सो आपको भिजवा दी थी। पहुंचते-पहुंचते खराब तो नहीं हुई थी न?

आपका—गुणमय सेन

०

शिवेन,

डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर दासगुप्त कुछ दिन कलकत्ता में रहेंगे। उनके लिए करनानी मैंशन का फ्लैट खुलवा देना। उन्हें किसी चीज की जरूरत न खले। —गुणमय सेन

०

अनंत,

तुम खेलाई वाले हो और मैं भी। तुम्हारे और मेरे पिता के जो आपसी संबंध थे, उन्हें मैं आज भी नहीं भूला हूं। इसके अलावा मुझे इस अस्पताल के लिए कितने पापड़ बेलने पड़े हैं, यह शायद तुम नहीं जानते। सरकारी दफ्तरों में एक मेज से दूसरी मेज पर एक फाइल को खिसकने में तीन महीने लगते हैं। हम कंट्राक्टरों की कोशिशों से ही वे आगे बढ़ती हैं। इस देश में यदि कोई काम होता है, तो वह हमारी ही कोशिश से। इसके लिए इसी बीच कितने रुपये पानी में गये, इसका हिसाब मेरे पास नहीं है। फिर भी मैं समझता हूं कि वे रुपये पानी में नहीं गये क्योंकि अपने गांव में इतना बड़ा अस्पताल बन रहा है, इसकी मुझे खुशी है। पचास गांवों को तो इससे फायदा होगा ही।

सुना है, गांव के लड़के मेरे राज-मिस्त्रियों और ओवरसियर को तरह-तरह से परेशान कर रहे हैं। तुम लोग यह सब बंद करवाओ। वैसे भी ईंटों की क्वालिटी, दरवाजे-खिड़की की लकड़ी वगैरह के बारे में उनके बेवजह सवाल करने का कोई मतलब नहीं होता।

क्या अच्छा है और क्या खराब, यह बात यदि मिस्त्रियों को मालूम होती, तो वे ही कंट्राक्टर नहीं बन जाते! मुझ पर यकीन रखो, कम से कम अपने गांव को तो मैं नहीं ठगूंगा। इसके अलावा इंजीनियर दासगुप्त रोजाना दौरे पर जाया करते हैं।

तुम लोगों के सहयोग की कामना करता हूं।

—गुणमय भैया

पुनश्च:—अस्पताल पूरा बन जाने दो। तब देखकर तुम लोग खुश होगे। अभी छोटी-छोटी बातों पर रुकावट डालने से अंत में कहीं अस्पताल बनना बंद न हो जाये।

०

शिवेन,

इंजीनियर दासगुप्त के लिए क्रिकेट मैच के चार टिकट चाहे जैसे भी इंतजाम करके उन्हें पहुंचा दो।

—गुणमय सेन

०

अनंत,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने मेरी बात समझ ली है, जानकर खुशी हुई। क्या मैंने अपने पत्र में तुम पर दोष लगाये थे? दर-असल, मुझे शक है कि विरोधी पक्ष के सदस्य निशा भट्टाचार्य के इशारे पर कुछ लड़के नाच रहे थे। सरकार कोई अच्छा काम करे, यह उन्हें सहन नहीं होता। वे किसी भी तरह इसमें रुकावट डालना चाहते हैं। तुम लोग उन्हें समझाओ।

—गुणमय भैया

०

श्रद्धेय निशा बाबू,

कल आपके यहां से लौटते वक्त आपकी बातों ने मुझे सोच में डाल दिया था। सच-मुच यदि ऐसे ही चलता रहा तो इस देश की भलाई नहीं होगी। अपने पार्टी-फंड में पांच सौ रुपये देने को आपने कहा था। मैं शिवेन के हाथों एक हजार रुपये भेज रहा हूं। अपनी हैसियत के मुताबिक मैं क्यों न मदद करूं! शायद आप लोग समझते हैं कि हमें काफी फायदा होता है। पर यह अंदाज गलत है। एक तरफ बीसियों किस्म के टैक्स और दूसरी ओर पग-पग पर रिश्वत। कारोबार करने की तबीयत ही नहीं होती। और देशी चीजों का हाल भी बुरा है आजकल; हमारे पास और कोई चारा नहीं है सो उनका इस्तेमाल करना पड़ता है। लोग-बाग हमारे ही सिर दोष मढ़ते हैं।

आपने अगले चुनाव में न खड़े होने की बात कही थी। पर हजारों आंखें आपकी ओर लगी हुई हैं, यह न भूलें। श्रद्धापूर्ण नमस्कार स्वीकारें।

आपका—गुणमय सेन

०

माइ डियर दासगुप्त,

कुछ-एक दिनों के लिए लांच पर सुंदर-वन की ओर तफरीह पर जा रहा हूं। चिड़ियों का शिकार किया जा सकेगा। ईंट-पत्थरों की दुनिया न आपको अच्छी लगती है और न मुझे ही। मिसेज और बच्चों को लेकर चलिये न, घूम आयें। सुहावना लगेगा।

मिसेज को मेरा श्रद्धा-सहित नमस्कार और बच्चों को स्नेह। —सेन

पुनश्च :— बनारसी साड़ी मिसेज को पसंद

यी या नहीं, मालूम कराइयेगा।

०

भैयाजी,

खेलाई-कालिकापुर अस्पताल का काफी काम हो चुका है, पर अब लगता है काम बंद रखना पड़ेगा। पहली किस्त के बिल का भी अब तक पेमेंट नहीं हुआ है। मुखर्जी साहब को दया करके फोन पर कह दीजिये न।

उस दिन आपके यहां से लौटने के बाद सर्दी-जुकाम से काफी परेशान हो गया था। आप कैसे हैं?

—गुणमय

पुनश्च:—जमीन खरीद लीजिये, मकान की फिक्र न कीजिये।

०

शिवेन,

मुखर्जी साहब क्या चाहते हैं, तुम उनके क्लर्क से साफ-साफ जान लो। इसीलिए तो मैंने यतीन बाबू को जरा बढ़ा-चढ़ाकर एस्टिमेट बनाने के लिए कहा था।

रांची वाले मामले में आइ. टी. ओ. मूर्ति ने यह क्या किया? गला कटना ही बाकी रह गया है।

—गुणमय सेन

०

शिवेन,

पहली किस्त के रुपयों का पेमेंट हो गया है, जानकर खुशी हुई। दासगुप्त फिर पर-सेंटेज बढ़वाना चाहता है। दे देना, कोई चारा नहीं है। सारे झमेले हम उठाते हैं और मुनाफा इन चींटों के पेट में चला जाता है। अस्पताल के एकाउंट से एक सौ टन कपूर को दे देना। नगद।

—गुणमय सेन

०

शिवेन,

अस्पताल का काम जल्दी ही खत्म कर देना पड़ेगा। थोड़े और मिस्त्री लगा लो। दुर्गापुर में एक और टेंडर मंजूर हो गया है। आदमी नहीं मिल रहे हैं। एक तरफ तो बेकारी की चीख-पुकार मची है और दूसरी तरफ कोई काम ही नहीं करना चाहता। आदमी मिलते ही लगा लेना।

अस्पताल के दरवाजे, खिड़कियां जल्दी रंगवा देना और कमरों की पुताई भी करवा देना। न जाने कब, कौन आकर देख जाये और लकड़ी की क्वालिटी पर झमेला खड़ा कर दे।

—गुणमय सेन

०

अनंत,

तुम्हारा पत्र मिला। आस-पास के गांव के लोग अस्पताल देखकर खुश हुए हैं, जानकर मुझे भी खुशी हुई।

मेरा जो फर्ज था, मैंने पूरा कर दिया। शुभेच्छा रही!

—गुणमय भैया

०

शिवेन,

बशीरहाट का टेंडर देने का इंतजाम करो। यतीन बाबू से मार्जिन ज्यादा रखने के लिए कहना। खेलाई के मामले में तो तुमने देखा ही है कि कितना ज्यादा 'ऊपरी' खर्च हो गया। अब इधर इन्कमटैक्स की तलवार भी झूल रही है। उनका तो खयाल है कि हमें जितना मिलता है, वह पूरा का पूरा फायदा ही है।

खैर, तसल्ली है कि खेलाई के दूसरे बिल का पेमेंट हो गया है। —गुणमय सेन

०

भाई अनंत,

तुम्हारे तीनों पत्र मुझे मिले थे। इधर महीने-भर विभिन्न कामों में इतना उलझा रहा कि जवाब नहीं दे पाया। खेलाई के अस्पताल के बारे में जो कुछ तुमने लिखा है, पढ़कर सचमुच ही खराब लगता है। पर मैं इससे ज्यादा और क्या करूं, बताओ। मैंने जितनी जिम्मेदारी ली थी, उसे पूरा कर दिया है। तुम्हें जानकर अचरज होगा कि उसके पूरे रुपये मुझे अब तक नहीं मिले हैं। तुम लोग नटू भैयाजी को पकड़ो। वे शायद कुछ कर सकें। वैसे वे भी क्या करेंगे? सरकारी काम ही ऐसा है। कंट्राक्टरों को सभी कोसते हैं, कहते हैं सरकार स्वयं करवाये तो काम काफी अच्छा होगा। सरकारी दफ्तरों का हाल तो तुम जानते ही हो। मैंने अस्पताल की इमारत बनवाने की जिम्मेदारी ली थी, उसे मैंने पूरा करवा दिया है। डाक्टर-नर्स, दवा-औजार-मशीनें— यह सब तो मेरे काम नहीं हैं। दवा-औजार-मशीनें अंत में यदि आ भी जायें तो वे भी किसी कंट्राक्टर की मेहरबानी से ही आयेंगी। अब तो मुझे लगता है कि डाक्टर-नर्स के लिए भी यदि टेंडर इन्वाइट किये जायें, तभी काम पूरा होगा।

इस देश में जितने भी काम हुए हैं, वे सब हमारी ही कोशिशों से हुए हैं। जहां कंट्राक्टर नहीं हैं, वहीं काम पड़ा रह जाता है। तुम लोग नटू भैयाजी से मिलो।

—गुणमय सेन

०

शिवेन,

खेलाई के अस्पताल का पूरा पेमेंट मि[ल] गया है, जानकर खुशी हुई। बशीरहाट [के] टेंडर मंजूर हुआ या नहीं, मालूम करा[ना]। मैं अभी दुर्गापुर ही रहूंगा। —गुणमय से[न]

०

अनंत,

तुम्हारे कुछ पत्र लगातार मुझे मि[ल] रहे हैं। मुझे जो कहना था, मैंने तुम्हें प[हले] ही कह दिया है। डाक्टर-नर्स के मामले में मैं कुछ नहीं कर सकता।

तुमने लिखा है, अस्पताल की एक दीवा[र] ढह गयी है। इस मामले में भी हमारे क[रने] लायक कुछ नहीं है। नियमित इंस्पेक्श[न] हुआ था; तब किसी ने कोई कमी न[हीं] दिखायी थी। इमारत की देखरेख न क[रने] पर वह तो ढहेगी ही। —गुणमय [सेन]

०

अनंत,

मेरी समझ में नहीं आता कि तुम बा[र]-बार मुझे क्यों तंग कर रहे हो। इस माम[ले] में मेरे करने लायक कुछ भी नहीं है।

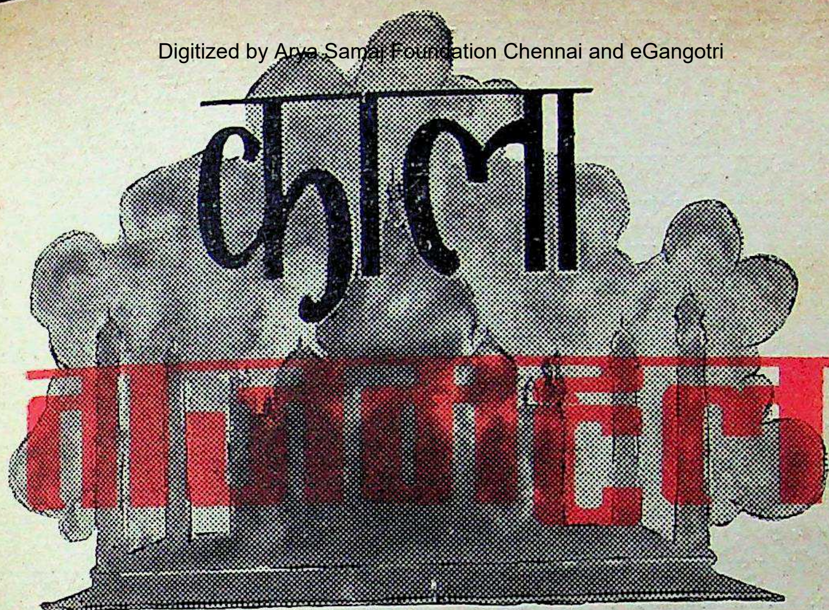
—गुणमय [सेन]

०

शिवेन,

अनंत के पत्र आयें तो फाड़कर फेंक दे[ना]। रिडाइरेक्ट करके मेरे पास भिजवाने [की] कोई जरूरत नहीं। —गुण[मय सेन]

★



धीरेन्द्र कुमार दीक्षित

कहते हैं, मुगल सम्राट शाहजहां ने आगरा में यमुना के दूसरे तट पर काले संगमरमर का एक मकबरा हूबहू सफेद ताजमहल के समान खुद अपने लिए बनवाने का सपना १६३७ ई. में देखा था। उसका वह शाही अरमान कभी पूरा न हो सका। किंतु लगता है, अब हम उस प्रेमी बादशाह के संगमरमरी सपने को ही कालिख से पोत देंगे।

मथुरा में यमुना नदी के ऊपर ४० किलोमीटर पर निर्माणाधीन ६० लाख टन क्षमता वाले विशाल तेलशोधक कारखाने (आइल रिफाइनरी) के चालू होने पर ताज के लिए खतरा पैदा हो जायेगा। कारखाना सोवियत रूस की सहायता से बन रहा है तथा १९८० तक उत्पादन शुरू कर देगा। वह जो धुआं और रासायनिक गैसें हवा में उगलेगा, उससे भविष्य में न केवल ताज का संगमरमरी बदन स्याह होगा, बल्कि भय है कि उसका और आस-पास की अन्य भव्य इमारतों का संगमरमर क्षरित हो जायेगा।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग, जो कि देश के प्राचीन स्मारकों व पुरातत्त्वीय महत्त्व की इमारतों की रक्षा व रखरखाव के लिए उत्तरदायी है, मथुरा तेलशोधक कारखाने से उत्पन्न होने वाले खतरे से चिंतित है। उसे आशंका है कि रिफाइनरी से निकलने वाले प्रदूषणकारी तत्त्व ताज के संगमरमरी ढांचे को तो विरूप तथा विकृत करेंगे ही, इतमादुद्दौला की कब्र, फतहपुर सीकरी, सिकंदरा और आगरा किले में प्रयुक्त लाल बलुए पत्थर (सैंडस्टोन) को भी प्रभावित करेंगे। मथुरा के प्राचीन मंदिर भी रिफा-

इनरी के स्थान से पास होने के कारण प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेंगे। और उसका भय निराधार नहीं है।

मथुरा तेलशोधक कारखाना जिन प्रदूषक पदार्थों को जन्म देगा, उनमें से पेट्रोलियम बाष्प, फ्लू गैसें (चिमनी से छोड़ी जाने वाली गैसें) तथा कैटेलिस्ट कण (बारीक कण) प्रमुख होंगे। 'फ्लोटिंग रूफ स्टोरेज टैंकों' के उपयोग के बाद पेट्रोलियम बाष्पों का परिमाण न्यूनतम होगा। कम सांद्रता में इन बाष्पों की उपस्थिति पर्यावरण के लिए खतरा नहीं है। जो बारीक कण महीन चूर्ण के रूप में निकलेंगे, वे रासायनिक दृष्टि से मिट्टी की भांति निष्क्रिय पदार्थ होते हैं, सो वे प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं खतरनाक प्रदूषक हैं चिमनी गैसें, जो भट्ठियों से निकलेंगी व वायुमंडल को दूषित करेंगी।

जब कच्चे तेल (क्रूड आइल) का परिशोधन किया जाता है, तब सल्फर डाइ आक्साइड नामक घातक गैस भारी मात्रा में उत्पन्न होती है। कोयले के जलने से भी यह गैस पैदा होती है। वायुमंडल में उपस्थित नमी से मिलकर यह गैस सल्फ्यूरिक एसिड (गंधकाम्ल) में परिवर्तित हो जाती है और गंधकाम्ल संगमरमरी इमारतों का भयंकर दुश्मन है। वेनिस के राजप्रासाद, मूर्तियां व मूल्यवान कलाकृतियां गंधकाम्ल से युक्त हवा के कारण क्षरित हो रही हैं। वेनिस-वासी इसे 'पत्थर का कैन्सर' कहते हैं। प्रदूषण की इस माया ने पेरिस के नोत्रेदाम के मकरमुख परनालों से लेकर वाशिंगटन के लिंकन मेमोरियल तक मानव की अनेक उदात्ततम सृष्टियों को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया है।

ई. पू. पांचवीं शताब्दी में एथेन्स के एक्रोपोलिस पर निर्मित पार्थेनान के देवालय को बचाने के लिए यूनान सरकार ने आस-पास की इमारतों को गरम करने के लिए काम में लाये जाने वाले ज्यादा गंधक की मात्रा वाले तेल के उपयोग पर हाल में प्रतिबंध लगा दिया है। अगर यह कदम कारगर न हुआ तो उस क्षेत्र में बसों-कारों के यातायात पर पाबंदी लगा दी जायेगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूनान में जिस रफ्तार से कारखाने बने हैं और मोटर-गाड़ियों का यातायात बढ़ा है, उससे पार्थेनान के संगमरमर का बिखरना अपरिहार्य ही था। १९७३ के बाद अरब देशों द्वारा तेल की कीमतें बढ़ायी जाने पर लोगों ने कम ग्रेड का, सस्ता तेल इस्तेमाल करना शुरू किया। उससे वायुमंडल में सल्फर डाइ आक्साइड गैस का परिमाण तीन गुना बढ़ गया है। एथेन्स के एक प्राध्यापक के शब्दों में 'पत्थर ऐसे पिघल रहे हैं, जैसे गरम फर्श पर बर्फ।' यूनान सरकार तो यहां तक सोच रही है कि यदि वायु-प्रदूषण पर नियंत्रण न पाया जा सका, तो सभी कलाशिल्पों व मूर्तियों को उठाकर एक्रोपोलिस के तल पर एक संग्रहालय में सुरक्षित रख दिया जाये तथा खाली जगहों पर फाइबर-ग्लास की बनी प्रतिकृतियां स्थापित कर दी जायें।

इस सबसे आप अनुमान कर सकते हैं कि संगमरमर के 'कैन्सर' से ताज के लिए कितना खतरा है।

मगर यह 'कैन्सर' होता कैसे है? इटली के सुप्रसिद्ध पाषाण-परिरक्षण-विशेषज्ञ डा. जियोर्गियो तोराका के शब्दों में, 'संगमरमर बहुत ही सछिद्र होता है तथा कैल्शियम कार्बोनेट के बड़े-बड़े स्फटिकों (क्रिस्टल) से बना होता है। ये स्फटिक उसी पदार्थ के एक प्रकार के सीमेंट से जुड़े रहते हैं, जिसके कण चीनी के दानों से भी बारीक रहते हैं। प्रदूषणकारी रासायनिक तत्व—विशेषतः सल्फर डाइ आक्साइड—हवा में स्थित नमी से मिलकर एक प्रकार का हल्का अम्ल तैयार करते हैं। यह गंधकाम्ल संगमरमर के छिद्रों में धीरे-से प्रवेश करता है और "सीमेंट" के लघु स्फटिकों को विघटित कर देता है, जिसके फलस्वरूप बड़े स्फटिक भी बिखर जाते हैं। विघटन या बिखराव की यह प्रक्रिया बहुत तेजी के साथ घटित होती है तथा इससे हुई क्षति अपूरणीय है।'

संगमरमर की इस भेद्यता व संवेदनशीलता के कारण ताजमहल के संदर्भ में, मथुरा पेट्रो-केमिकल कारखाना विवादास्पद तथा गहन चिंता का विषय बन गया है।

प्रदूषण की मात्रा तथा राष्ट्रीय स्मारकों पर उससे होने वाले प्रभाव का पता लगाने के लिए भारत में अनेक वैज्ञानिक अध्ययन-दलों ने अनुशीलन तथा विश्लेषण किया है। मथुरा रिफाइनरी परियोजना से संबद्ध पेट्रोलियम मंत्रालय एवं भारतीय तेल निगम (इंडियन आइल कार्पोरेशन) ने भी इस समस्या का करीब से अध्ययन किया है। निगम ने जुलाई १९७४ में डा. एस. वरदराजन् की अध्यक्षता में एक विषशेज्ञ-समिति 'प्रदूषण से होने वाले प्रभाव को न्यूनातिन्यून रखने के लिए किये जाने वाले उपायों' का सर्वांगीण अध्ययन करने एवं इस विषय में सरकार को सुझाव देने के लिए गठित की थी। भारत सरकार का मौसम-विज्ञान विभाग, विज्ञान एवं टेक्नॉलाजी विभाग, नागपुर का राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी), देहरादून का इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ पेट्रोलियम तथा उत्तर प्रदेश शासन भी इसमें शामिल थे।

भारतीय तेल निगम ने रिफायनरी से निकलने वाले सल्फर आक्साइड की मात्रा कम करने के लिए कुछ कदम उठाये हैं। मथुरा रिफाइनरी में अंकलेश्वर (गुजरात) के कच्चे तेल के स्थान पर बाम्बे हाइ के कच्चे तेल का इस्तेमाल किया जायेगा, जिससे सल्फर डाइ आक्साइड ६ टन प्रति घंटे के बजाय १ टन प्रतिघंटा उत्पन्न होगी। दग्ध गैसों को चिमनियों से निकलने के पूर्व 'स्क्रबिंग' (मार्जन) प्रक्रिया द्वारा सल्फर डाइ आक्साइड से विरहित किया जायेगा। चिमनियों की ऊंचाई भी बढ़ाकर ८० मीटर कर दी जायेगी, ताकि प्रदूषणकारी गैस वायुमंडल में आसानी से बिखरे।

मौसम-विज्ञान विभाग ने मौसम-संबंधी आंकड़े एकत्र करने के लिए तथा यह देखने

के लिए कि आगरा क्षेत्र में रिफाइनरी से निकलने वाली प्रदूषणकारी सल्फर डाइ आक्साइड गैस का कितना भूमितल-जमाव (ग्राउंड-लेवल कंसेंट्रेशन) होगा, उस भाग में इलेक्ट्रानिक उपकरणों की सहायता से गहन अनुसंधान किया है। लगभग यह सारा शोध अन्य देशों में विकसित 'गणितीय ढांचों' (मैथेमैटिकल माडल) तथा स्थिरांकों (कान्स्टेन्ट) के उपयोग पर आधारित है। स्थानीय तापक्रम तथा जलवायु-संबंधी स्थितियों को ध्यान में रखकर इन अनुसंधानों की सत्यता प्रमाणित करने की दृष्टि से भी शोधकार्य किया जा रहा है, ताकि शोध-परिणाम भारतीय परिस्थितियों में लागू हो सकें।

पुरातत्त्व सर्वेक्षण तथा मौसम-विज्ञान विभागों द्वारा की गयी खोजों से पता चला है कि ताज को फिलहाल खतरा १३ मेगावाट क्षमता के दो ताप-बिजलीघरों, रेल्वे शंटिंग यार्ड तथा लगभग २५० फाउंड्रियों (ढलाई-कारखानों) से है, जो इस भव्य स्मारक के समीप स्थित हैं। ढलाई-कारखाने कोयला इस्तेमाल करते हैं, जो भारी मात्रा में सल्फर डाइ आक्साइड गैस उगलता है। मोटर-वाहनों व घरेलू चूल्हों से होने वाले प्रदूषण ने समस्या को और जटिल बना दिया है। आगरा शहर के वायुमंडल में एक घन मीटर में ८·५ मिलिग्राम सल्फर-डाइ आक्साइड जमा हो गयी है, जबकि स्वीकृत मानदंड के अनुसार २·५ मिलिग्राम से ज्यादा नहीं होनी चाहिये।

फाउंड्रियों की चिमनियों से निकलने वा... कालिख भी संगमरमर का रंग बदल रही...

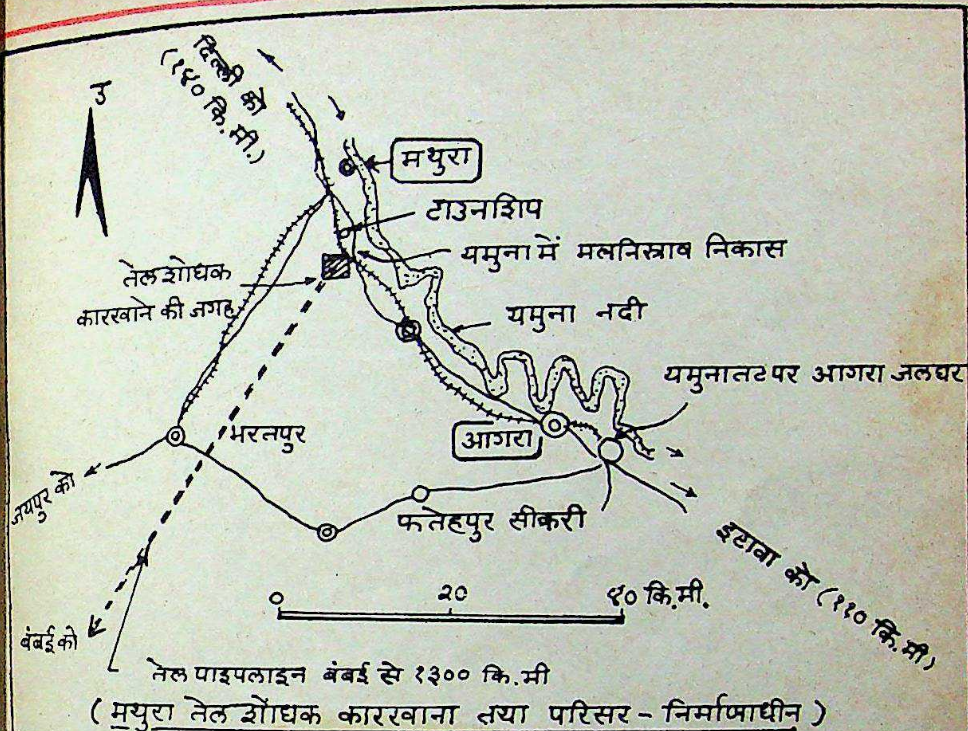
इन तथ्यों के आधार पर उत्तर प्र... सरकार ने ढलाई-कारखानों को शह... बाहर काफी दूरी पर हटा देने के लिए आ... श्यक आदेश दिया है। फाउंड्रियों को ह... का खर्चा तथा मालिकों की नुक्सान-... पाई का भार राज्य-सरकार वहन करेगी।

सल्फर डाइआक्साइड व उसके अ... यौगिकों से संगमरमरी स्मारकों पर ह... वाले दुष्प्रभावों के बारे में पर्याप्त तकनी... जानकारी इटली को है। इसलिए भा... सरकार ने दो वर्ष पूर्व इटली की टेक्ने... नामक अर्ध-सरकारी पर्यावरण-इंजीनि... फर्म के साथ समझौता किया। टेक्नेको ... आगरा आकर मामले का स्थलीय अ... यन (आन द स्पॉट स्टडी) करने को क... गया। उसके कार्यक्षेत्र में निम्नलिखित ... समाविष्ट की गयीं :

१. प्रारूपिक (टिपिकल) मौस... स्थितियों का वातावरण प्रदूषण की दृष्टि... निर्धारण तथा खासकर आगरे में प्रदू... (उत्सर्जनों) के भूमितल पर जमाव (ग्रा... लेवल कंसेंट्रेशन) का आकलन;

२. आगरा-क्षेत्र में वर्तमान प्रदूषण-... का निर्धारण तथा स्मारकों के परिरक्षण ... वर्तमान स्थिति।

टेक्नेको के विशेषज्ञों ने आगरा ... हवा के नमूने लिये और ताजमहल ... संगमरमर के टुकड़े व लाल बलुआ प... इकट्ठे किये। इन पत्थर के नमूनों ...



(मथुरा तेल शोधक कारखाना तथा परिसर - निर्माणाधीन)

तुलना उन खदानों के ताजा पत्थरों से की गयी, जहां से ये लाये गये थे।

अपने अंतिम प्रतिवेदन में टक्नेको ने कहा है कि प्रस्तावित रिफाइनरी से होने वाले प्रदूषण से ताज व आगरा-मथुरा क्षेत्र के अन्य ऐतिहासिक स्मारकों को खतरे की कोई संभावना नहीं है। परंतु उसके इन निष्कर्षों पर कई संघटनों के विशेषज्ञों का विश्वास नहीं है।

असल बात यह है कि भारत सरकार के मौसम-विभाग ने और टेक्नेको ने अलग-अलग मौसम-स्थितियों में सल्फर डाइ आक्साइड की मात्रा की गणना रिफाइनरी-स्थल से भिन्न दूरियों पर की है। मौसम-विभाग ने इसके लिए मौसम-परिवर्तन का भी प्रभाव ध्यान मे रखा है। इसके अनुसार, ५ टन प्रति घंटा सल्फर डाइ आक्साइड उत्सर्जन-दर पर आगरा में अल्पकालिक जमाव अनुमानत: १०० ग्राम से अधिक प्रति घन मीटर तथा दीर्घकालिक जमाव ४० माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर होगा। ये आंकड़े सामान्य सर्दियों के दिनों के लिए हैं। बाद में जाने किन रहस्यमय कारणों से सुविधाजनक कल्पनाओं के आधार पर उपर्युक्त अंकों के दसवें भाग जितने या उससे भी न्यून आंकड़े पेश किये गये।

मौसम-विभाग व टेक्नेको दोनों की
जें दिल्ली के दस वर्ष के वायु-आंकड़ों पर
धारित हैं। टेक्नेको ने पाया कि अपेक्षा-
त कम कालावधियों के लिए भी अव-
कित आगरा के हवा के आंकड़े दिल्ली के
आंकड़ों से नितांत भिन्न हैं। लंबे अरसे के
रान जब हवा की गति ६ किलोमीटर
प्रति घंटा से कम हो, गंधक के आक्साइडों
का कम प्रभाव होता है, इसकी टेक्नेको ने
पेक्षा कर दी। विशेषज्ञों ने यमुना-घाटी में
हवाओं के सरणि-प्रभाव (चैनलिंग इफेक्ट)
था ताज पर उसके परिणाम की भी अव-
हेलना की। प्रदूषकों के जमावों का सही
आकलन करने के लिए आवश्यक उत्क्रमण-
आंकड़ों (इन्वर्शन डेटा) की आवर्त्तता,
अवधि व परिमाण का भी उन्होंने विचार
नहीं किया। ऐसी दशा में मौसम-विभाग व
टेक्नेको के प्रतिवेदनों को संदिग्ध तथा
त्रुटिपूर्ण ही मानना पड़ता है।

मथुरा-आगरा रोड पर अभी से कार-
खानों का बहुत जमाव हो गया है। मथुरा
का तेलशोधक कारखाना आने के बाद सह-
योगी छोटे उद्योग और बढ़ेंगे। इसका दूर-
गामी परिणाम होगा यातायात, नगरीकरण
तथा औद्योगीकरण की समस्याओं में वृद्धि।
जैसा कि स्वाभाविक है, उससे पर्यावरण-
दूषण की दर बेतहाशा बढ़ेगी। विमानों
और गुब्बारों पर किये गये प्रयोगों से सिद्ध
हुआ है कि प्रदूषणकारी गैसें सैकड़ों मील
की यात्रा कर सकती हैं तथा चिमनी की
ऊंचाई बढ़ाने से विशेष फर्क नहीं पड़ता।

८७९

बारिश इससे अम्ल-वृष्टि (एसिड रेन) की समस्या बढ़ जाती है, विशेषतः वर्षाऋतु में।

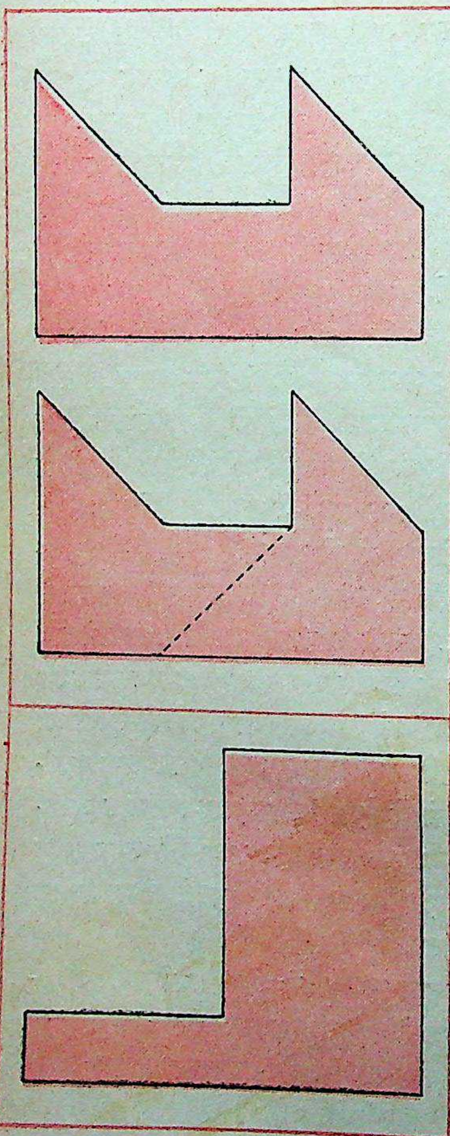
लगभग सभी प्रमुख पर्यावरण-विशेषज्ञ इस बारे में एकमत हैं। डा. जी. टोराका यूनेस्को के इंटरनेशनल सेंटर फार कंज़र्वेशन, रोम (इटली) से संबद्ध हैं। उनका दृढ़ मत है–'संगमरमर के मामले में सुरक्षित सहन-सीमा जैसी कोई चीज नहीं है; क्योंकि सल्फर डाइ आक्साइड की अत्यल्प मात्रा भी संक्षरण के लिए पर्याप्त है।'

आंध्र विश्वविद्यालय (वाल्टेयर) के पर्यावरण अभियांत्रिकी विभाग के प्रमुख प्रो. टी. शिवाजी राव का कहना है–'सल्फर डाइ आक्साइड के संभावित प्रभावों के बारे में जो मानक विदेशों में विकसित किये गये हैं, वे भारतीय परिस्थितियों में लागू नहीं हो सकते। सरकार को यह भ्रम है कि १०-२० करोड़ रुपये की लागत से प्रदूषण-नियंत्रक-संयंत्र या उपकरण बैठाकर इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। सर्वथा निर्दोष उपकरण भी आकस्मिक दुर्घटनाओं, यांत्रिक गड़बड़ियों या मानवीय त्रुटियों-उपेक्षाओं के शिकार हो सकते हैं। तेलशोधक कारखानों में ऐसी घटनाएं या विस्फोट असामान्य बात नहीं है। ताज-जैसे स्मारक के लिए यह खतरा मोल लेना बेहद महंगा पड़ सकता है।'

नागपुर के राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी) के निदेशक डा. बी. बी. सुंदरेशन, जो सरकारी

[शेष पृष्ठ ११८ पर]

आइये, देखें कि आप बंटवारा क



प्रिय पाठक

पहले यह इश्तहार था और अक्ल व सू-बूझ का इम्तहान भी। अब यह इश्तहार तो नहीं है, मगर अक्ल और सूझबूझ का इम्तहान जरूर है।

इन दो पृष्ठों पर आप कुछ आकृतियां देख रहे हैं। मान लीजिये, ये खेतों के नक्शे हैं। इन खेतों का बंटवारा आपको इस तरह करना है कि प्रत्येक खेत एक-से क्षेत्रफल और एक-सी आकृति वाले दो हिस्सों में बंट जाये।

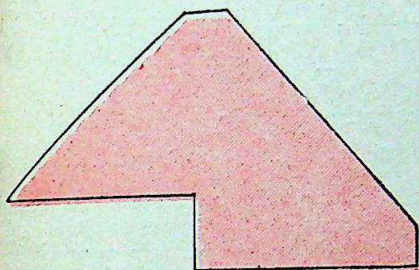
इस पृष्ठ के पहले कालम में ऊपर की पहली व दूसरी आकृतियां उदाहरण के रूप में हैं—पहली आकृति को दूसरी आकृति में कटावदार रेखा द्वारा समविभक्त किया गया है।

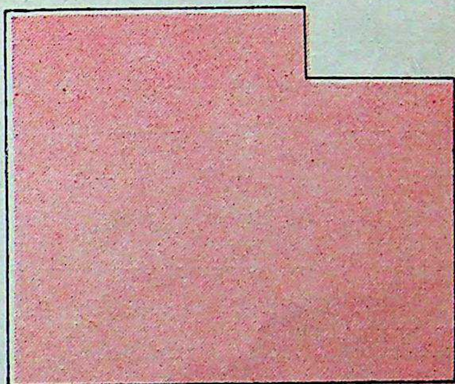
क्या शेष सात आकृतियों को आप सम-विभक्त करेंगे? प्रयत्न कीजिये। एक महीने का समय आपके पास है।

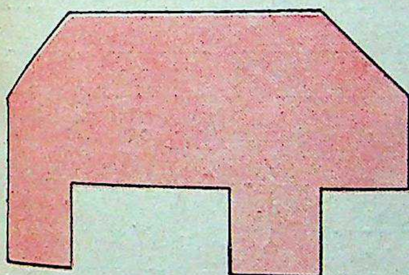
उत्तर मार्च १९७९ के नवनीत में देखें।

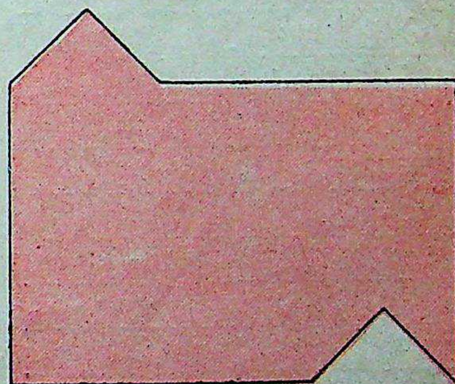
यह प्रश्न हमने ६,००० पदार्थों का उत्पादन करने वाली ब्रिटिश कंपनी बायर के एक इश्तहार से लिये हैं; इसीलिए हमने आरंभ में ही कहा कि पहले यह इश्तहार था।

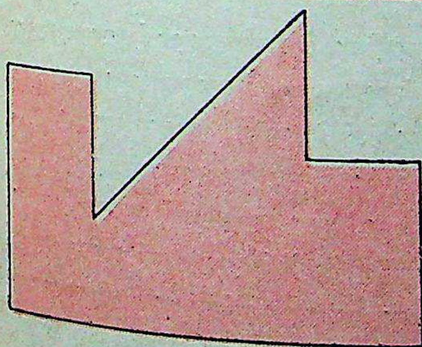
करने में कितने कुशल हैं.....

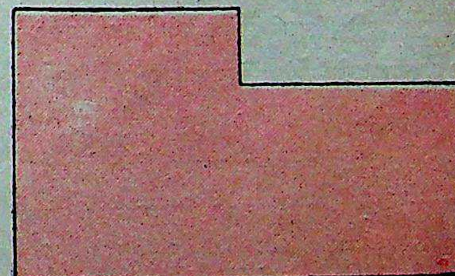












विशेषज्ञ-समिति के सदस्य भी हैं, अधिक आशावान नहीं हैं। उनके अनुसार—'निर्माणाधीन रिफाइनरी को ताज की पवनाभिमुख दिशा में स्थित मथुरा से हटाकर फीरोजाबाद-इटावा क्षेत्र में अन्य किसी ऐसे स्थान पर जो हवा-ओट दिशा में हो, स्थापित करना अभी भी समझदारी की बात होगी। विशेषज्ञ-समिति ने सरकार से यह सिफारिश इसलिए नहीं की, क्योंकि समिति के कार्यक्षेत्र में इसका उल्लेख नहीं था।' डा. सुंदरेशन का विचार है कि रिफाइनरी बनने की प्रारंभिक अवस्था में ही यदि उनकी संस्था के वैज्ञानिकों ने सरकार को वस्तुस्थिति से अवगत कराया होता, तो शायद आज यह नौबत न आती।

कुल ३०० करोड़ रु. की लागत से बनने वाले इस तेलशोधक कारखाने पर सरकार अभी तक कुछ राशि खर्च कर चुकी है तथा रिफाइनरी को अब मथुरा से हटाने का उसका इरादा नहीं दीखता है। इसलिए एक अंतरराष्ट्रीय कार्रवाई समिति बनायी गयी है, जो दूसरा स्थल चुनने व वर्तमान स्थान से रिफाइनरी हटाने के लिए सरकार पर दबाव डालेगी। अलीगढ़ की 'नेचर कंजर्वेशन सोसायटी' ने करीब एक हजार गवेषकों व बुद्धिजीवियों के हस्ताक्षरों सहित एक स्मरण-पत्र राष्ट्रपति एवं पेट्रोलियम मंत्री को देने का निश्चय किया है। यह आपको राजनैतिक कार्रवाई प्रतीत हो सकती है, मगर बाम्बे हाइ के कच्चे तेल को १,३०० किलोमीटर दूर मथुरा ले जाकर शोधने का फैसला भी तो राजनैतिक फैसला ही है।

सुप्रसिद्ध पक्षी-विशेषज्ञ डा. सालिम अली के अनुसार—'ताज को निकट भविष्य में जिन खतरों का सामना करना पड़ सकता है उनकी विकट गंभीरता को ध्यान में रखकर प्रदूषण-संबंधी प्रश्न पर पुनर्विचार आवश्यक है। प्रदूषण-नियामक-यंत्रों में भी मानवीय उपादान का योगदान है ही तथा इस यंत्र-मालिका के न बिगड़ने की गारंटी तो मैं ही क्या, कोई भविष्यवक्ता या ज्योतिषी भी नहीं दे सकता।' डा. अली का यह भी कहना है—'इस कारखाने से भरतपुर पक्षी अभयारण्य पर बहुत बुरा असर पड़ेगा और साइबेरियन क्रेन (सारस पक्षी) के लगभग लोप हो जाने की संभावना है। घाना झील (भरतपुर के पास) प्रदूषित हो रही है। प्रकृति-प्रेमियों, पक्षी-दर्शकों तथा सौंदर्य-बोध रखने वाले सभी व्यक्तियों के लिए यह चिंता का विषय है।'

दिसंबर १९७६ में 'सांस्कृतिक वस्तुओं के परिरक्षण से संबंधित राष्ट्रीय सेमिनार' उस्मानिया विश्वविद्यालय में हुआ था और दिसंबर १९७७ में हैदराबाद के इंस्टिट्यूट ऑफ इंजीनियर्स में 'पर्यावरण पर विकास-कार्यों के प्रभाव विषयक अखिल भारतीय सेमिनार' हुआ था। इनमें भाग लेने वाले सभी वैज्ञानिकों ने रिफाइनरी को मथुरा से हटाकर अन्यत्र स्थापित करने की जोरदार प्रार्थना सरकार से की।

प्रो. शिवाजी राव का कहना है—'पर्या-

रणीय सुरक्षा के लिए व्यापक कानून के अभाव में प्रदूषण-नियंत्रण की सफलता की आशा दुराशा मात्र है।' उन्होंने इस पर भी खेद प्रकट किया है कि विशेषज्ञ-समिति ने नाइट्रोजनआक्साइडों', कार्बन मोनो आक्साइड, कार्बनिक अम्ल, सड़न के जैविक अभिकर्ता व सूक्ष्मकणों से होने वाले प्रभाव का विश्लेषण नहीं किया। विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट में ताज के परिसर में हरियाली (ग्रीन बेल्ट) लगाने, एक प्रदूषण-मापक आधुनिक मॉनिटरिंग नेटवर्क दिन-रात चलाने, पावर स्टेशनों एवं फाउंड्रियों में कोयले की जगह तेल इस्तेमाल करने तथा १ टन प्रति घंटा सल्फर डाइआक्साइड वाले क्रूड तेल का उपयोग करने की कानूनी बाध्यता लागू करने की सिफारिशें हैं।

सारांश यह कि ताज को अक्षुण्ण रखने के लिए रिफानइरी का मथुरा से हटाया जाना वांछनीय ही नहीं, नितांत आवश्यक है। पिछले दिनों अमरीका के मेरीलैंड में व स्काटलैंड में नागरिकों ने वहां पेट्रोलियम-उद्योगों की स्थापना का सफल प्रतिकार किया। हाल ही में, रेवासा उर्वरक कारखाने के विरोध में अलीबाग (महाराष्ट्र) के १४ गांवों ने सफल संघर्ष किया। भविष्य में जब ताज के सौंदर्यभ्रष्ट होने के साथ ही पीने का पानी भी प्रदूषित हो जायेगा, तब आगरा-वासी भी ऐसा कदम उठाने को मजबूर होंगे।

अगर समय रहते ताज की रक्षा न की गयी तो इस स्मारक-सम्राट् का नूर बिखर जायेगा। वारेन हार्स्टिंग्स एवं विलियम बेंटिंक ताज को नीलाम करना चाहते थे; पर ब्रिटिश शासन के हस्तक्षेप की बदौलत ताज तब बच गया था। अब क्या यह कलंक स्वतंत्र भारत अपने माथे पर लगायेगा?

—विश्वेश्वरय्या रीजनल इंजी. कालेज,
नागपुर-४४० ०११



जन्मजात लेखक

पुस्तकों के बारे में बातें करते हुए एडगर ब्रुक, बर्ट्रेन्ड रसल से कहने लगे—'जब मैं आठ साल का था, तो मैंने पाया कि पढ़ने में कितना बड़ा आनंद है। तब मुझे यह नहीं पता था कि पुस्तकों के लिखने वाले भी होते हैं। फिर जब मैं दस साल का हुआ, तो मैंने जाना कि पुस्तक के पहले पृष्ठ पर जो नाम छपा होता है, वह उसके लिखने वाले का होता है।

रसेल ने उत्तर दिया—'बहुत दिलचस्प बात बतायी आपने। और क्या आपको पता है कि जब मैं दस साल का था, तो मुझे एक ऐसे आदमी का परिचय मिला, जिसने कोई भी पुस्तक नहीं लिखी थी और वह हमारा माली था! मुझे बड़ी हैरानी हुई। शायद आपने सुना होगा कि मैंने अपनी पहली पुस्तक छह साल की उम्र में लिखी थी। यद्यपि वह बहुत अच्छी नहीं थी, फिर भी पुस्तक तो थी।'



नेमिशरण मित्तल

मनुष्य छोटा है छोटा ही सुंदर है

'आजकल यह विश्वास जोरों से चल पड़ा है कि सार्वत्रिक समृद्धि ही शांति की मजबूत बुनियाद बन सकती है। .... शांति की दिशा में बढ़ने के लिए संपत्ति की सड़क पकड़नी होगी। .... इस धारणा में दोहरा आकर्षण है—एक तो यह कि इसने शांति की तलाश के लिए नैतिकता अथवा त्याग-बलिदान को अनावश्यक घोषित कर दिया है; और दूसरा यह कि जिस विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास आज हमने कर लिया है, उसके सहारे हम शांति और समृद्धि के मार्ग पर बढ़ सकते हैं। .....यह धारणा गरीबों को यह संदेश देती है कि उस मुर्गी का पेट चीरने के लिए अधीर न होओ जो समय आने पर निश्चय ही तुम्हारे लिए सोने के अंडे देगी; और अमीरों को यह संदेश कि यदि तुम समय-समय पर गरीबों की मदद करते रहने की बुद्धिमत्ता दिखाते तो और भी अधिक मालदार हो जाओगे।

आधुनिक अर्थ-व्यवस्था पर यह कर व्यंग्य किया है स्वर्गीय ई. एफ. शूमाकर अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'स्माल ब्यूटिफुल' में। वे यह कहना चाहते हैं शांति के लिए मनुष्य की मूलभूत अच्छा और नैतिक मूल्य अनिवार्य हैं, इस तथ्य परदा डालकर आधुनिक अर्थशास्त्र ने मनु को वैज्ञानिक तर्कबद्धता और तकनी क्षमता के जाल में उलझा दिया है।

वे कहते हैं—'गांधी इन तथाकथित स्व पूर्ण व्यवस्थाओं का खंडन किया करते जिनमें मनुष्य को भला मनुष्य होने आवश्यकता ही नहीं रहेगी।' उन्हें इसका है कि गांधी की बात पर ध्यान देने के बजा हमारा झुकाव इस शताब्दी के सर्वाधि

प्रभावशाली अर्थशास्त्री लार्ड मेनार्ड केन्स की ओर है, जिन्होंने कहा था—'वह दिन दूर नहीं, जब प्रत्येक व्यक्ति मालदार हो जायेगा, और..... तब एक बार फिर हम साधनों की अपेक्षा साध्यों को और उपयोगिता की अपेक्षा अच्छाई को महत्त्व प्रदान करेंगे। लेकिन सावधान! अभी वह समय नहीं आया है। अगले सौ साल तक हमें स्वयं इस भुलावे में रहना और दूसरों को रखना होगा कि जो उचित है वह अनुचित है, और जो अनुचित है वह उचित है; क्योंकि अनुचित उपयोगी है तथा उचित में उपयोगिता नहीं है। अभी और कुछ समय हमें ईर्ष्या, सूदखोरी तथा सतर्कता की उपासना करनी होगी; क्योंकि वे ही हमें आर्थिक अनिवार्यता की सुरंग में से प्रकाश की ओर ले जा सकते हैं।'

इस धारणा को शूमाकर तीन पहलुओं से परखते हैं :

१. क्या सार्वत्रिक समृद्धि संभव है?

२. क्या 'खुद मालदार बनो' के भौतिकतावादी दर्शन के आधार पर सार्वत्रिक समृद्धि की प्राप्ति संभव है?

३. क्या यही एक मार्ग शांति की ओर जाता है?

प्रत्येक व्यक्ति अंततः दौलत में डूब जाये, इस सीमा तक असीन आर्थिक वृद्धि हो पाना शूमाकर की दृष्टि में दो कारणों से संदिग्ध है:

१. बुनियादी साधनों की उपलब्धि की एक सीमा है;

२. उस वृद्धि की प्रक्रिया में प्रकृति के साथ भारी मात्रा में जो जोर-जबर्दस्ती होती है, उसे सहने में पर्यावरण असमर्थ है।

यह तो हुआ भौतिक पहलू। इसके अलावा, समृद्धि के नाम पर खड़ी की गयी आधुनिक अर्थ-व्यवस्था के नैतिक पहलू की भी आलोचना शूमाकर करते हैं :

'आधुनिक व्यवस्था लोभ की प्रबल वासना से संचालित है तथा ईर्ष्या में ओतप्रोत है। ये उसके आनुषंगिक लक्षण नहीं हैं, बल्कि उसकी विस्तारमूलक सफलता के मूल कारण हैं। प्रश्न यह है कि क्या ये कारण देर तक प्रभावकारी बने रह सकेंगे, अथवा क्या इनके भीतर आत्मविनाश के बीज विद्यमान हैं? ..... यदि लोभ और ईर्ष्या सरीखे मानवीय विकारों का व्यवस्थित रीति से विकास किया गया, तो उसका अपरिहार्य परिणाम होगा—बुद्धि का विनाश।'

यहां हम देखते हैं कि शूमाकर श्रीकृष्ण की 'सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति' वाली भाषा का इस्तेमाल करते हैं :

'लोभ और ईर्ष्या से परिचालित मनुष्य वस्तुओं को उनके मूल रूप में अर्थात् उनके बहुपक्षीय और संपूर्ण स्वरूप में नहीं देख पाता और उसकी सफलता विफलता में पलट जाती है।'

यह बात प्रतिदिन कही जाती है कि यदि लोग अपने वास्तविक हितों को पहचान सकें, तो हमारी सब समस्याएं हल हो सकती हैं। शूमाकर पूछते हैं—'आखिर लोग वास्तविक हितों को पहचान क्यों नहीं पाते?' और

स्वयं ही उत्तर देते हैं—'या तो लोगों की बुद्धि लोभ-ईर्ष्या के कारण मंद पड़ गयी है, या उन्हें यह विश्वास है कि उनके असली हित कहीं अन्यत्र हैं और एकदम भिन्न हैं।'

अस्तित्व के खतरे की शंका

शूमाकर मानते हैं—'एक सीमित प्रयोजन की दिशा में तो "वृद्धि" संभव है; किंतु असीम और अनिश्चित "वृद्धि" हो नहीं सकती।' यहां वे गांधीजी का हवाला देते हैं—'पृथ्वी प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति के लिए तो सुपर्याप्त सामग्री प्रदान करती है; लेकिन वह प्रत्येक व्यक्ति के लोभ की पूर्ति नहीं कर सकती।' आवश्यकताओं के विकास और विस्तार को शूमाकर अक्लमंदी की निशानी नहीं समझते; बल्कि उसे वे स्वतंत्रता और शांति के सर्वथा प्रतिकूल मानते हैं। उनका कहना है—'आवश्यकता में होने वाली प्रत्येक वृद्धि से बाह्य शक्तियों पर मनुष्य की निर्भरता बढ़ जाती है। ये बाह्य शक्तियां उसके बस में तो होती नहीं, इसलिए उसके भीतर अस्तित्व के खतरे का भय उत्पन्न हो जाता है। आवश्यकताएं घटाने के द्वारा ही ये तनाव कम किये जा सकते हैं। अन्यथा ये तनाव संघर्ष और युद्ध को जन्म देते हैं।'

प्रथम मूर्धन्य गांधीवादी अर्थशास्त्री डा. जे. सी. कुमारप्पा की भांति शूमाकर भी 'स्थिरता की अर्थनीति' (इकॉनामी आफ़ परमानेन्स—कुमारप्पाजी की एक पुस्तक का शीर्षक) के हिमायती हैं। वे कहते हैं:

'स्थिरता की अर्थनीति और शांति के लिए हमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी को [...] पैमाने पर सुसंस्कृत बनाना होगा, ता[...] विवेक के लिए अपना द्वार खोल सकें [...] अपने ढांचे में विवेक को सचमुच स्था[...] सकें। ...... नित्य विशाल से विशाल[...] होती जाने वाली मशीनें, उनसे जुड़ा [...] आर्थिक शक्ति का विशालतर केंद्रीक[...] तथा वातावरण के प्रति निरंतर बढ़ती [...] हिंसा ये प्रगति के चिह्न नहीं हैं। ये वि[...] के प्रतिपक्षी हैं। विवेक की मांग है कि वि[...] और प्रौद्योगिकी को जैविक, शालीन, [...] सक, गरिमाशाली और सुंदर (व्यवस्[...] की दिशा दी जाये। ..... हमें प्रौद्योगिकी[...] नयी क्रांति लानी होगी, ताकि वह [...] और यंत्रों की विनाशकारी प्रवृत्ति को [...] सके, जो कि आज हम सबके अस्तित्व [...] चुनौती दे रही है।'

शूमाकर विज्ञानियों और प्रौद्योगि[...] विदों से ऐसी प्रविधियों और उपकरणों [...] मांग करते हैं, जो 'इतने सस्ते हों कि सच[...] प्रत्येक व्यक्ति की पहुंच के भीतर हों, [...] पैमाने पर संचालन के लिए उपयुक्त [...] तथा मनुष्य की सृजनशीलता की अ[...] हार्यता से मेल खाते हों। ..... इन तीन [...] से अहिंसा और प्रकृति के साथ मनुष्य [...] वह संबंध उत्पन्न होगा, जिससे स्थि[...] उपजती है।'

वे बताते हैं:

'गांधी की चिंता का मूल विषय यही [...] (गांधी का कहना था कि) "मैं चाहत[...] कि मेरे देश के कोटि-कोटि मूकजन स्[...]

और प्रसन्न तथा आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित हों।..... यदि हमें मशीनों की आवश्यकता हो, तो हम निश्चय ही उनका निर्माण करें। ऐसी प्रत्येक मशीन के लिए स्थान है, जो मनुष्य-मात्र के लिए सहायक सिद्ध हो।..... लेकिन उन मशीनों के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिये, जो शक्ति को चंद हाथों में केंद्रित कर दें और जन-समाज को बेकार बना डालें, अथवा मशीन की सार-संभाल करने वाले कारीगर मात्र बना छोड़ें।"

'आल्डुअस हक्सले ने कहा था कि यदि आविष्कारक और इंजीनियर यह लक्ष्य स्वीकार कर लें कि वे जन-साधारण को ऐसी मशीनें बनाकर देंगे, जिनके द्वारा लोग "लाभकारी तथा वस्तुतः महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकें,..... अफसरशाही से छुटकारा पा सकें, स्वतंत्र रोजगार कर सकें अथवा किसी स्वायत्त सहकारी समूह के सदस्य बनकर रोजगार और स्थानीय बाजार प्राप्त कर सकें.....तो इस अलग ढंग की प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप आबादी का उत्तरोत्तर विकेंद्रीकरण होगा, भूमि सुलभ हो जायेगी, उत्पादन के साधनों पर तथा राजनैतिक-आर्थिक सत्ता पर आम आदमी का स्वामित्व स्थापित होगा..... अधिक मानवीय संतोष देने वाले जीवन, सच्चे स्वशासी लोकतंत्र और स्वतंत्रता का वरदान अधिक लोगों को प्राप्त होगा.....।"'

शूमाकर चाहते हैं कि उत्पादन के उपकरण (औजार व यंत्र) इतने सस्ते हों कि उन्हें खरीदना आम आदमी के लिए संभव हो, उनकी कीमत का समाज के आय-स्तर के साथ एक निश्चित अनुपात हो। मशीन की कीमत उससे (मशीन से) होने वाले वार्षिक उत्पादन की आय से अधिक नहीं होनी चाहिये। उनकी दृष्टि में, 'यह बात बहुत स्पष्ट है कि छोटी इकाइयों में संघटित व्यक्ति भूमि के अपने टुकड़े की अथवा अन्य नैसर्गिक संसाधनों की देखभाल अनाम कंपनियों या समूचे ब्रह्मांड को अपना जायज अधिकार-क्षेत्र समझने वाली, सत्तादर्प से पीड़ित सरकारों की अपेक्षा कहीं अच्छी तरह करेंगे।'

इतना ही नहीं, उत्पादन के तरीके और उपकरण ऐसे होने चाहियें कि 'मानवीय सृजनशीलता' के लिए प्रर्याप्त गुंजाइश रहे। यदि काम के ढर्रे में 'मानवीयता का कोई स्थान ही न हो और काम महज यांत्रिक क्रिया बन जाता हो, तो मनुष्य का क्या होगा ? .... पोप पायस ग्यारहवें ने कहा था कि "जिस शरीर-श्रम को ईश्वर ने मनुष्य की काया और आत्मा के लिए हितकर कहा था, उसे नाना रीतियों से विकृति का साधन बना डाला गया है; कारखाने में से जड़ पदार्थ तो परिष्कृत होकर निकलता है, किंतु मनुष्य भ्रष्ट और पतित हो जाता है।"'

प्रश्न यह है कि हम मशीन की दासता में फंस कैसे गये ? शूमाकर का उत्तर है :

'लोभ रूप पाप ने हमें मशीन की शक्ति के हवाले कर दिया है। यदि आधुनिक मनुष्य पर लोभ सवार न होता और यदि ईर्ष्या लोभ को भरपूर सहारा न देती, तो

यह कैसे संभव था कि उच्चतर "जीवन-स्तर" प्राप्त हो जाने पर भी अर्थ-परायणता की धुन कम न हो? वस्तुतः जो समाज समृद्धतम हैं, वे ही अपने आर्थिक लाभ के लिए सर्वाधिक हृदयहीनता अपनाते हैं। ऐसा क्यों है कि प्रायः सर्वत्र ही समृद्ध पूंजीवादी अथवा समाजवादी समाजों के शासक श्रम को मानवीय बनाने की दिशा में कार्य करने से इन्कार करते हैं? ज्यों ही यह दलील पेश हुई कि इससे "जीवन-यापन-स्तर" में कमी आ जायेगी, यह विषय समाप्त कर दिया जाता है। जब ये तथ्य पेश किये जाते हैं कि ऐसा आत्मनाशी, निरर्थक, यांत्रिक, नीरस और अबौद्धिक श्रम लाजमी तौर पर पलायनवाद अथवा आक्रामकता को जन्म देता है, तथा "रोटी और सर्कस" चाहे कितनी बड़ी मात्रा में उपलब्ध हों उनसे क्षतिपूर्ति नहीं होती, तब न तो इन तथ्यों से इन्कार किया जाता है न इन्हें स्वीकार ही किया जाता है, वरन मौन का षड्यंत्र रच लिया जाता है.....।'

विवेक की तलाश

शूमाकर की दृष्टि में शांति और सुख के लिए मानवीय विवेक अनिवार्य है। वे प्रश्न करते हैं–'विवेक क्या है? कहां रहता है?' और स्वयं ही उत्तर देते हैं–'उसका एकमात्र निवास-स्थान व्यक्ति के भीतर है। उस विवेक को पाने के लिए लोभ-द्वेष सरीखे मालिकों के चंगुल से मुक्त होना अनिवार्य है।'

वे मानते हैं कि जो जीवन आध्यात्मिक लक्ष्यों से विमुख और मूलतः भौतिक प्रयोजनों की पूर्ति को समर्पित होता है, वह खोखला और बुनियादी तौर पर असंतोषकारी होता है। 'ऐसा जीवन अनिवार्यतः मनुष्य को मनुष्य के विरुद्ध और राष्ट्र को राष्ट्र के विरुद्ध खड़ा कर देता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की आवश्यकताएं असीम होती हैं तथा असीम की प्राप्ति केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में हो सकती है, भौतिक जगत में कदापि नहीं।'

शूमाकर की मान्यता है कि शांति की स्थापना आर्थिक बुनियाद पर नहीं हो सकती; क्योंकि आधुनिक अर्थ-व्यवस्था मनुष्य के चरित्र में लोभ और द्वेष के व्यवस्थित विकास पर आधारित है, और ये चीजें संघर्ष का मूल कारण हैं। इस संदर्भ में वे यह बुनियादी सवाल उठाते हैं–'मनुष्य को अपने भीतर लोभ, ईर्ष्या, घृणा और वासना की हिंसा पर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य कहां से प्राप्त होगा?' उनकी दृष्टि में इस प्रश्न का सबसे सही उत्तर गांधीजी ने दिया है, जिन्होंने कहा था:

'शरीर से भिन्न आत्मा के अस्तित्व को और उसकी स्थायी प्रकृति को स्वीकार किया जाना चाहिये तथा इस मान्यता को जीवंत आस्था का रूप लेना चाहिये। अंत में मैं कहूंगा कि जिन लोगों की प्रेम-परमेश्वर में जीवंत आस्था नहीं है, वे अहिंसा का साक्षात्कार नहीं कर सकते।'

प्रौद्योगिकी का इन्सानी चेहरा

आधुनिक जगत एक संकट से दूसरे संकट की दिशा में ठोकरें खाता फिर रहा है

चारों ओर खतरे की भविष्य-वाणियां सुनाई पड़ रही हैं तथा विघटन के लक्षण उभर आये हैं। कैसे टल सकता है यह खतरा? शूमाकर सीधे जड़ में उतरकर इस खतरे के कारणों को तलाशते और बताते हैं कि आधुनिक विश्व का स्वरूप प्रौद्योगिकी ने तय किया है और स्वयं प्रौद्योगिकी अमानवीय तथा मानव-निरपेक्ष चेहरा धारण कर बैठी है। यही है खतरे का मूल कारण। सो खतरे से बचने का एकमात्र उपाय यह है कि हम प्रौद्योगिकी को मानवीय या मानव-सापेक्ष चेहरा ढूंढ़ करके दें।

शूमाकर इस ओर हमारा ध्यान खींचते हैं कि मनुष्य और प्रकृति दोनों में ही जैसे विकास और वृद्धि का नियम है, वैसे ही वृद्धि के थमाव का भी नियम है। प्रकृति में प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति का एक लगभग निश्चित आकार है और उसकी गति तथा हिंसा-क्षमता भी निश्चित है। 'परिणामतः प्रकृति की व्यवस्था, जिसका कि मनुष्य भी अंग है, आत्मसंतुलनकारी, आत्मानुकूलनकारी और आत्मशोधनकारी है। आज बुनियादी दोष यह आ गया कि प्रौद्योगिकी का अथवा यों कहें कि प्रौद्योगिकी और विशेषीकरण के प्रभुत्व में पड़े मनुष्य का रूप यह नहीं रह गया है।' आकार, गति और हिंसा के मामले में अपने को सीमित करने की शक्ति उसमें नहीं रह गयी है। तब आत्मसंतुलन, आत्मानुकूलन और आत्मशोधन की क्षमता का तो प्रश्न ही नहीं उठता।



स्वर्गीय शूमाकर

शूमाकर को लगता है कि आधुनिक जगत की प्रौद्योगिकी और विशेषतः अधि-प्रौद्योगिकी (सुपर टेक्नॉलाजी) प्रकृति की सूक्ष्म व्यवस्था के भीतर एक विजातीय तत्त्व के रूप में कार्य करती है और वे कहते हैं कि इसके अनेक लक्षण स्पष्ट उभर रहे हैं कि प्रकृति इस विजातीय तत्त्व को अस्वीकृत कर रही है।

उनकी दृष्टि में, आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा निर्मित दुनिया एक साथ तीन संकटों में फंस गयी है :

१. अमानवीय प्रौद्योगिकी एवं संघटन-मूलक तथा राजनैतिक ढांचे के विरुद्ध मानव-प्रकृति विद्रोह करती है; उसे इनमें घुटन महसूस होती है, अपनी शक्ति के क्षय की अनुभूति होती है।

२. मानव-जीवन को पोषण देने वाला जीवनमूलक पर्यावरण दबाव महसूस कर रहा है, कराह रहा है और आंशिक टूटन (बिखराव) के संकेत दे रहा है।

३. पृथ्वी के भरपाई न किये जा सकने वाले संसाधनों–विशेषत: जीवाश्म-ईंधनों (कोयला और पेट्रोल)–का क्षय इतनी तीव्रता से हो रहा है कि निकट भविष्य में सचमुच ही उनके समाप्त हो जाने का खतरा और गंभीर गतिरोध की स्थितियां साफ दिखाई दे रही हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है–'पदार्थवाद अर्थात् सीमित पर्यावरण के भीतर स्थायी और असीम विस्तार देर तक नहीं चल सकता है; और विस्तार के प्रयोजन जितने ही अधिक सफल होंगे, इस पर्यावरण की जीवन-परिधि उतनी ही छोटी रह जायेगी।'

आधुनिक तकनीकी अपने ज्ञात स्वरूप के द्वारा विश्व की गरीबी मिटाने में मदद कर सकती है, इसमें शूमाकर को संदेह है। बेरोजगारी की समस्या का तो जिक्र ही फिजूल है; तथाकथित विकासशील देशों में बेरोजगारी ३० प्रतिशत तक जा पहुंची है तथा अनेक समृद्ध देशों में भी 'उसने घातक आयाम ग्रहण कर लिये हैं।'

तब उपाय क्या है? बकौल शूमाकर, उपाय है 'ऐसी तकनीकी जो इन्सानी चेहरे वाली हो और जो मनुष्यों के हाथों और दिमागों को निरुपयोगी बना देने के बजाय पहले की अपेक्षा अधिक उत्पादक बना सके।' इस सिलसिले में वे गांधीजी को उद्धृत करते हैं--'दुनिया की समस्या वि... पैमाने के उत्पादन से हल नहीं होगी... हल होगी विशाल जनसाधारण द्वारा ... दन से।' इसी को शूमाकर 'मध्यम ... गिकी' (इंटरमीडिएट टेक्नॉलाजी) ... हैं, जो आदिम प्रौद्योगिकी और ... प्रौद्योगिकी (सुपर टेक्नॉलाजी) के ... स्थित है। वे इसे लोकतंत्रीय प्रौद्योगि... जन-प्रौद्योगिकी कहते हैं, 'जिसमें ... व्यक्ति प्रवेश पा सकता है और जो ... एवं सशक्त (वर्ग) के लिए सुरक्षित नहीं...'

शूमाकर प्रतिव्यक्ति उत्पादन को म... हीन चीज नहीं मानते, तथापि उनका ... है कि प्रतिव्यक्ति उत्पादन की निरंतर ... हमारा बुनियादी उद्देश्य नहीं है; ... हमारा बुनियादी उद्देश्य है बेरोजगार ... अपर्याप्त रोजगार वाले लोगों के लिए ... गार-प्राप्ति के अवसरों में अधिकतम ... सो शूमाकर के नये अर्थशास्त्र का मू... है–'सबके लिए पर्याप्त काम'। चंद ... 'सब कुछ' उत्पादन करें, इसके विपरी... इसके हिमायती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ... न कुछ' उत्पादन करे। उनकी दृष्टि ... रोजगार आदमी हताशाग्रस्त होता है ... उखड़ने व उजड़ने को लाचार हो जाता ...

भारत जैसे देश के आर्थिक नियो... लिए वे यह चार-सूत्री आधार पेश करते ...

१. कारखाने छोटी बस्तियों में ... जायें न कि नगरों में, जहां लोग बाहर ... आकर बसने को मजबूर होते हैं।

२. इन कारखानों की लागत इतनी ...

हों कि ये बड़े पैमाने की पूंजी जुटाने और मशीन आदि के आयात के बिना ही बड़ी संख्या में लगाये जा सकें।

३. उत्पादन-विधियां अपेक्षाकृत सरल हों, जिससे कि उत्पादन-प्रक्रिया में ही नहीं बल्कि संघटन, कच्चे माल की पूर्ति, वित्तीय प्रबंध, बिक्री-व्यवस्था आदि में भी अति-कुशल विशेषज्ञों की मांग कम से कम रहे।

४. उत्पादन मुख्यतः कच्चे माल से हो और ज्यादातर स्थानीय खपत के लिए हो।

इस सबके लिए आवश्यक होगी विकास की क्षेत्रीय दृष्टि तथा 'मध्यम प्रौद्योगिकी'। भारत का उदाहरण देकर शूमाकर कहते हैं कि यदि सारे भारत को एक उत्पादन-इकाई मान लिया जाये, तो उससे उत्पादन-कार्य के किसी एक क्षेत्र में केंद्रित हो जाने का भय है। पिछले तीस वर्ष के अनुभव ने इस भय को सही सिद्ध किया भी है। इसलिए उनका सुझाव है कि भारत में जिले को आर्थिक विकास की इकाई माना जाये; इससे क्षेत्रीय असंतुलन नहीं पैदा होगा।

शूमाकर पूंजी-प्रधान उद्योगों के बजाय श्रम-प्रधान उद्योगों को समग्र विकास का एकमात्र सही आधार मानते हैं। वे चाहते हैं कि उद्योगों का चयन कच्चे माल की उपलब्धि, खपत के बाजार आदि के आधार पर किया जाये। 'मध्यम प्रौद्योगिकी' को वे श्रम-प्रधान मानते हैं तथा उन्होंने उसका एक अत्यंत व्यावहारिक मानदंड तय किया है। उनका कहना है कि मध्यम प्रौद्योगिकी वाले कारखाने की लागत एक आदमी की बारह महीनों की कमाई से अधिक नहीं होनी चाहिये, यानी आदमी प्रतिवर्ष एक महीने की कमाई बचाकर बारह वर्षों में उस कारखाने का स्वामित्व प्राप्त कर सके।

संपन्न लोग इस प्रौद्योगिकी का विरोध करेंगे; लेकिन हमें यह प्रौद्योगिकी उन लोगों के लिए चाहिये जो जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित हैं।

शूमाकर को लगता है कि मार्क्स को इस सत्य का तभी पूर्वाभास हो गया था जब उन्होंने लिखा—'पूंजीवादी अर्थशास्त्री उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन की बात करते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि असंख्य उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन असंख्य निरुपयोगी मनुष्यों का निर्माण कर देता है।'

शूमाकर इसके सख्त विरोधी हैं कि प्रौद्योगिकी को मानवीय समस्या के संदर्भ से काटकर केवल वस्तुओं के उत्पादन के संदर्भ में देखा जाये।

जीवन-वृत्त

तकनीकी को मानवीय चेहरा प्रदान करने के हिमायती शूमाकर 'समृद्धि के सौदागर' अर्थशास्त्रियों की भीड़ में निपट अकेले थे। १९७३ में जब उनकी पुस्तक 'स्माल इज़ ब्यूटिफुल' प्रकाशित हुई, तो पहले तो उन्हें पश्चिमी पाठकों और समालोचकों से उपेक्षा और उपहास की ही सौगात मिली; लेकिन शीघ्र ही वह पुस्तक विश्व की सोलह भाषाओं में प्रकाशित हुई और उसकी गणना सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तकों में हुई। इस संबंध में उन्होंने कहा



गांधी : औद्योगिकोत्तर समाज में अर्थवत्ता

था–'मैं लेखक नहीं हूं; मैं कार्यकर्ता हूं, संघटक हूं। मेरी पुस्तक की सफलता का रहस्य यह है कि वह यथार्थ के रक्त से लिखी गयी है।'

शूमाकर का जन्म १९११ में जर्मनी में हुआ। उन्होंने रोड्स छात्रवृत्ति पाकर आक्सफर्ड (ब्रिटेन) में शिक्षा प्राप्त की, फिर कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमरीका) से डाक्टरेट ली और वहीं पढ़ाने लगे। हिटलर की तानाशाही से बेचैन होकर उन्होंने स्वदेश छोड़ दिया। वे भारत में बसना चाहते थे; मगर यह संभव न हुआ। युद्ध के बाद वे मित्रराष्ट्रीय नियंत्रण-आयोग के आर्थिक सलाहकार के रूप में जर्मनी लौटे तथा युद्धोत्तर जर्मनी के पुनर्निर्माण में योग दिया। वे बर्मा के प्रधान-मंत्री के आर्थिक सलाहकार भी रहे। बर्मा में उन्हें मौलिक आर्थिक दृष्टि प्राप्त हुई तथा सन १९६८ में उनकी पुस्तक 'आर्थिक वृद्धि की जड़ें' (रूट्स आफ इकॉनॉमिक ग्रोथ) प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने ... अर्थशास्त्र का प्रतिपादन किया।

शूमाकर गांधीजी के चिंतन और आर्थिक दर्शन से बहुत प्रभावित थे। गांधीजी को वे 'बीसवीं सदी का महानतम अर्थशास्त्री' मानते थे। उन्होंने लंदन में 'मध्यम प्रौद्योगिकी समूह' की नींव डाली और तभी से उसके अध्यक्ष रहे। यह समूह छोटे उद्योगों के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी आदि के बारे में जानकारी इकट्ठी करके लोगों की मदद करता है।

वे दो बार भारत आये थे–१९६१ में तत्कालीन प्रधान-मंत्री जवाहरलाल नेहरू के निमंत्रण पर और दूसरी बार १९७३ में। दूसरी यात्रा में उन्होंने 'मध्यम प्रौद्योगिकी समूह' की भारतीय शाखा का उद्घाटन किया। उनके विचारों से प्रभावित होकर अमरीका की सरकार ने मध्यम प्रौद्योगिकी का एक राष्ट्रीय केंद्र स्थापित किया है।

६ सितंबर १९७७ को शूमाकर का निधन हुआ। उनका उठ जाना विशेषकर तृतीय विश्व के विकासशील देशों के लिए एक गहरी क्षति थी, जिनके लिए वे मध्यम प्रौद्योगिकी का महान विचार विरासत में छोड़ गये हैं। गांधीवादी अर्थशास्त्र को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करके उन्होंने मानव-जाति की महान सेवा की है।

–डी-३९३, डिफेन्स कालोनी
नयी दिल्ली-११००...

★

व्यसन

प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

व्यसन मनुष्य को निकम्मा बना देता है, अनेक बार घृणा का पात्र भी। किंतु जब भी राजाजी के व्यसन की याद आती है, हृदय श्रद्धा और सम्मान से भर उठता है।

राजाजी गांव के बड़े जमींदार थे। लाखों के स्वामी, किंतु उन्हें दान का व्यसन था। पता नहीं, भगवान ने किस धातु से उनका हृदय बनाया था कि वे किसी का दुःख, किसी का अभाव सहन नहीं कर पाते थे। कभी कोई जरूरतमंद उनके दरवाजे से खाली हाथ नहीं लौटा। स्वयं पूछ-पूछकर भी लोगों की सहायता किया करते थे। आखिर एक दिन ऐसा आया, जब उनके पास देने को कुछ नहीं रह गया; और तब उन्होंने अपनी बड़ी-सी हवेली बेचकर धूम-धाम से एक गरीब की बेटी का विवाह कराया। धूम-धाम उनके रक्त में जो थी!

मैंने लगभग चालीस साल पहले उन्हें देखा था। तब वे अपनी रानी और दो राजकुमारों के साथ एक टूटे-कच्चे मकान में रहते थे। किसी सीमा तक विक्षिप्त हो गये थे। भिक्षाटन से उनकी जीविका चलती थी। लेकिन भीख वे दीन बनकर नहीं, अधिकार से मांगते थे। गांव के लोग भी उनका समुचित सम्मान करते थे।

एक दिन सवेरे मैं एक मित्र के यहां बैठा बातें कर रहा था। राजाजी जाने किधर से आ पहुंचे। आते ही उन्होंने बताया कि राजकुमार को टाइफायड हो गया है। डाक्टर ने पांच रुपये का इंजेक्शन बताया है। चार घरों से चार रुपये मिल गये हैं। एक रुपये की जरूरत और है।

मित्र ने फौरन एक रुपया उनके हाथ पर रख दिया।

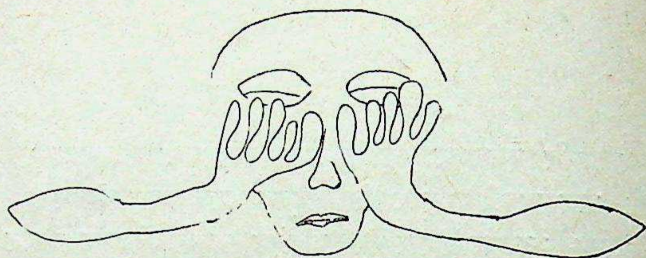
राजाजी के जाने के बाद ही मैं भी वहां से उठा। रास्ते में देखा, एक टूटे-फूटे मकान के दरवाजे की कुंडी पकड़कर राजाजी खटखटाते ही जा रहे थे कि सामने से जोर-जोर से रोता एक आदमी आता दीख पड़ा। राजाजी ने उसे पुकारकर रोने का कारण पूछा। उसने बताया कि रात को मां मर गयी है, कफन के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं।

राजाजी के चेहरे पर एक ऐसा तनाव आया, आंखों में एक ऐसी गहरी व्यथा चमकी, जिसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। जेब में हाथ डालकर उन्होंने मांगकर लाये हुए पांच रुपये उस व्यक्ति को देते हुए भीगे स्वर में कहा—'मेरा बेटा तो मरने वाला है, तेरी मां मर गयी है। मुझसे बड़ी जरूरत तेरी है। रो मत, ले, भाग जा।'

उस दिन पहली बार मैंने मानवता का जो विराट रूप देखा था, वह अविस्मरणीय है।



हिंदी कहानी :



हत्या के बावजूद

मनहर चौहान

यह जे. बी. पंड्या की अनुभव-कथा है। यहां जे. बी. पंड्या का अर्थ केवल जे. बी. पंड्या नहीं। उसका अर्थ 'स्वयं आप' भी हो सकता है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि जे. बी. पंड्या जैसा अनुभव स्वयं आप भी कई बार ले चुके हों। पूरी संभावना है कि उन अनुभवों को आपने अलग से पहचाना न हो। यह कथा आपके भीतर उसी पहचान को अंकुरित करने के लिए है। कथा के अंत में जे. बी. पंड्या कुछ नहीं करता; निष्क्रिय रह जाता है। अब, यह आपको सोचना है कि वह जे. बी. पंड्या की भूल थी या नहीं। इसी प्रश्न को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है कि जैसी स्थितियों में पंड्या था, वैसी ही स्थितियों में यदि आप हों, तो क्या आप भी पंड्या की तरह निष्क्रिय रह जायेंगे ? यदि हां, तो इसे आप अपनी भूल मानेंगे या नहीं ?

पंड्या दाहोद का निवासी था। की जगह 'है' भी लिखा जा सकता है। को सही मानें या 'है' को, मैं फैसला कर सकता; क्योंकि पंड्या के साथ कोई नियमित संपर्क नहीं है।

एक दिन पंड्या राज्य-परिवहन की में बैठा। उसका ध्यान दो बुजुर्ग देहाति की ओर सहसा चला गया। चेहरों से देहाती उतने भोले नहीं लग रहे थे, मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित गये हैं। दोनों देहाती अगल-बगल बैठे और उनमें से एक ऐन खिड़की पर उनके हाव-भाव से स्पष्ट था कि दोनों बीच गहरी दोस्ती है।

कंडक्टर ने घंटी और सीटी दोनों बजा कर भरी दुनिया में एलान किया कि

शीर्षक के साथ का चित्र : शुकदेव प्रसाद

ने का वक्त हो गया है। ड्राइवर ने तुरंत पनी सीट पर आकर इंजन चालू कर दिया। चिर-ढिचिर बस चल पड़ी। अड्डे से कलकर वह सड़क पर चली; चल क्या ही थी, घिसट रही थी। भीड़ ढिठाई से मने डटी हुई थी। उसे काटकर बस झपट हीं पा रही थी।

ऐन खिड़की पर बैठे देहाती ने अपनी ाड़ीमय मुंडी अकस्मात् खिड़की से बाहर निकाली और डांटने या ललकारने की तरह ल्लाकर कहा—'ऐ लड़के! लाना तो केले।'

धीमे-धीमे चलती बस के साथ एक ड़का तेजी से दौड़ने लगा। जे. बी. पंडचा ने ौड़ते लड़के को स्पष्ट देखा था। लड़के ने ाथ उठाया, ताकि देहाती को केले दे सके।

'दर्जन-भर हैं। एक रुपये के।'

'हां-हां, एक रुपये के।' देहाती ने मंद-मंद मुस्कराकर कहा और हाथ नीचे की तरफ बढ़ाकर केले ले लिये।

केले गोद में रखकर उसने अपनी जेबों में टटोलना शुरू किया। जे. बी. पंडचा को बिलकुल भी शक न हुआ कि देहाती झूठमूठ टटोल रहा है।

सहसा बस को जरा खुला रास्ता मिला और उसने तेजी पकड़ना शुरू कर दिया। बस के साथ दौड़ रहा लड़का जोर से चिल्लाया—'रुपया दो, बाबा!'

देहाती ने अपनी जेबों में ज्यादा तेजी से टटोलना शुरू किया। खुला नोट उसे मिल नहीं रहा था। बगल में बैठे अपने दोस्त की ओर देखकर, मंद-मंद मुस्कराते हुए उसने कहा—'देना, यार, ... खुला नोट है तुम्हारे पास?'

दोस्त ने भी मंद-मंद मुस्कराना शुरू कर दिया—'मेरे पास? नहीं तो! मेरे पास कहां है खुला नोट? सब सौ-सौ के हैं?'

देहाती ने और भी ज्यादा तेजी से अपनी जेबों में टटोलना शुरू किया। वह बड़-बड़ाया—'कमबख्त एक का नोट ...' और उसकी मंद-मंद मुस्कान डूब नहीं रही थी।

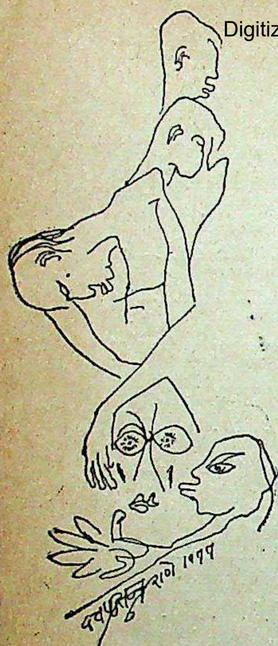
जे. बी. पंडचा ने जब देखा कि एक नहीं, दोनों देहातियों के चेहरों पर ठीक एक-जैसी मंद-मंद मुस्कान खिली हुई है, तो उसका माथा ठनका। उसे तुरंत इलहाम हुआ कि कंडक्टर से कहकर बस रुकवा देनी चाहिये।

इलहाम के बावजूद, पंडचा अपनी सीट से एकाएक उठा नहीं। उसे भय था कि कहीं वह भूल न कर रहा हो। वह उन देहातियों पर ख्वाहमख्वाह आरोप नहीं लगाना चाहता था।

इस बीच बस की तेजी और बढ़ गयी। बाहर, साथ-साथ दौड़ रहा लड़का पूरी शक्ति से चिल्लाया—'बाबा! नोट!'

जेबों में टटोलने का शुभ कार्य देहाती अभी तक पूरा नहीं कर सका था। बगल में बैठा उसका दोस्त बोला—'अब रहने भी दो। लौटते में दे देंगे।'

पंडचा ने ये शब्द सुने और सुनते ही समझ लिया कि दोनों में से एक भी देहाती इस रूट से वापस लौटने वाला नहीं है। कंडक्टर से कहकर बस रुकवाने के लिए



[दत्तप्रसन्न राणे]

पंड्या अपनी सीट से उठने वाला था कि...

बाहर एक विचित्र चीत्कार सुनाई पड़ा। शुरू होते ही वह शांत भी हो गया। फ्यूज उड़ने पर जिस तरह बिजली अचानक गुल होती है, उसी तरह वह चीत्कार शुरू हुआ कि खत्म हो गया।

बस उछल पड़ी, मानो उसका पहिया किसी मोटी चीज पर से एकाएक गुजरा हो। पीछे की तरफ बैठी सवारियों ने पीछे की ही तरफ लगे शीशे के आर-पार देखना शुरू किया—कि पहिया आखिर कौन-सी मोटी चीज पर से गुजरा।

एकाएक पूरी बस में हड़कंप मच गया—'रोको, रोको, छोकरा दब गया, रोको, हाय मर गया ......'

कंडक्टर ने सीटियों पर सीटियां मारीं, ठाक-ठाक घंटी बजाई, ड्राइवर को उसका नाम ले-लेकर पुकारा; और इस प्रकार बस आखिर रुक गयी। लोग ऐसे फटा-फट उतरने लगे, जैसे टोकरी उलटने पर अमरूद निकल पड़े हों। बस के पीछे जो धूल उड़ी हुई थी, उसके आर-पार लोगों ने सरपट दौड़ लगा दी। पंड्या उनमें शामिल था। सब इस आशा में दौड़ रहे थे कि छो... लिए शायद कुछ किया जा सके। अधिकांश को ऐसा खटका भी था कि... हो चुकी है।

देर हो चुकी थी।

लाश का मुंह खुला था, आंखें खुली... हथेलियां भी खुलीं। मुंह, आंखों और ... लियों को देखने ही से एहसास हो जाता ... कि एक रुपये की वसूली की आशा ... अभी तक नहीं छोड़ी है। जे. बी. पं... ऐसा स्तब्ध हुआ कि सब भूल गया। ... का अस्तित्व, बस का अस्तित्व, दुनिया ... अस्तित्व, खुद अपना अस्तित्व। लाश ... कर लोग जिस तरह सीत्कार और चीत्कार ... के साथ पीछे हट रहे थे, उस ओर से ... बी. पंड्या पूर्णतया अचेत था।

पंड्या को पता नहीं कि कुल ... मिनटों बाद उसकी चेतना लौटी। ... उसने पाया क चीत्कार और सीत्कार ... से हो गये हैं। औरतों और बच्चों की ... फासले पर खड़ी है। मर्दों ने लाश पर ... सा डाल दिया है। राह चलते लोग ... भी दौड़ते और इकट्ठे होते जा रहे ... पुलिस आ गयी है। उसकी सीटियां ... बार बज उठती हैं।

ठठ।

पंड्या की नजर सहसा एक गली ... गयी। दो देहाती जल्दी-जल्दी गली पार ... रहे थे। उनकी पगड़ीमय मुंडियां ... हुई थीं। उनमें से एक के हाथ में ... भर केले अब भी थमे हुए थे। उनके ...

...ी शीघ्रता से ही जाहिर था कि वे डर ...ये हैं और अब उसी बस से यात्रा नहीं कर सकेंगे। पंड्या का मन हुआ कि खूब जोर से दौड़े, उन्हें धर दबोचे और चिल्ला-चिल्ला-कर एलान करे–'इन्होंने रुपया ले लिया, गहने ले लिये, और जान भी ले ली ....देखो, गहने अभी तक इन्हीं के पास हैं, और ये .... और ये .....'

लेकिन निष्क्रिय कायरता ने पंड्या को दबा रखा था। उसका मुंह सूख रहा था, गला अवरुद्ध था, आंखें सब देखकर भी कुछ नहीं देख रही थीं। सिवा स्तब्ध खड़े रहने के, जे. बी. पंड्या ने कुछ नहीं किया।

अब, यह आपको सोचना है कि वह जे. बी. पंड्या की भूल थी या नहीं? क्या वह उस कांड को हत्याकांड साबित कर सकता था? इतना तो खैर आप बता ही सकते हैं कि पंड्या ने स्वयं को माफ किया होगा या नहीं? अथवा .... नहीं बता पायेंगे?

—४ डी, राजेंद्रप्रसाद कालनी, ग्वालियर-२



विदेश-मंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी तब संसद में विपक्ष के महारथियों में से थे। एक दिन बिहार की स्थिति पर बहस होनेवाली थी। स्पीकर महोदय ने घोषणा की कि बहस में सिर्फ 'बिहारी' बोलेंगे। उनके यह कहते ही वाजपेयीजी उठ खड़े हुए और धाराप्रवाह बोलने लगे।

स्पीकर महोदय ने हड़बड़ाकर कहा –'न-न, आपको नहीं बोलना है।'

वाजपेयीजी ने जवाब दिया –'क्यों, मैं क्यों न बोलूं? अभी तो आपने कहा कि आज सिर्फ बिहारी सदस्य ही बोलेंगे। मैं भी बिहारी हूं – अटल बिहारी। इसलिए मुझे बोलने का अधिकार है।'

संसद-भवन ठहाकों से गूंज उठा।

०००

वैज्ञानिक परिव्राजक स्वामी सत्यप्रकाशजी को कहीं व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया था। वहां जो कुछ घटा, स्वामीजी से ही सुनिये :

उस समय मेरे पैर में एक फोड़ा था। आयोजक महोदय ने श्रोताओं को मेरे बारे में बताते हुए कहा कि स्वामीजी आजादी की लड़ाई के दौर में जेल भी जा चुके हैं, अंग्रजों की गोलियों के शिकार भी हुए हैं। अब यही देखिये, स्वामीजी के पैर में जो फोड़ा आप देख रहे हैं, वह आजादी की लड़ाई के दौर में लगी गोली का ही घाव है।



बचपन की यादें: कितनी पुरानी?

क्या मनुष्य अपने जन्म के क्षण को याद कर सकता है? कुछ मनोविश्लेषक इ
उत्तर 'हां' में देते हैं। कुछ अन्य मनोविश्लेषकों का दावा है कि मनुष्य मां के ग
रहते समय की बातें भी याद कर सकता है। 'न्यू साइकालॉजिस्ट' में से जान रो
के एक लेख का सार **दिनेश लखनपाल** द्वारा प्रस्तुत।



बचपन की कुचली हुई भावनाओं और अप्रिय अनुभूतियों की अवदमित स्मृतियां मन में घाव बना देती हैं; मनुष्य का अगला सारा जीवन उनसे प्रभावित रहता है और काफी हद तक उनसे परिचालित भी होता है। यह फ्रायडीय विचार आधुनिक मनोविज्ञान का अविभाज्य अंग बन गया है।

मगर बचपन यानी कितने पहले तक का बचपन?

प्रचलित धारणा यह है कि ये घाव लगभग पांच वर्ष की वय में (मुख्यतः ईडिपस ग्रंथि के कारण) बनते हैं। इस मामले पर विशेष लिखने वाले आर्थर जैनोव ने भी अपनी प्रथम पुस्तक में ऐसा ही माना था।

मगर मेलनी क्लाइन ने तथा बाद में कई अन्य मनोविज्ञानियों ने भी दिखाया कि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घाव जीवन के प्र
वर्ष में ही बन जाते हैं। बहुत-से म
विज्ञानी यह मानने को तैयार नहीं
उनका कहना था कि एक वर्ष के बच्चे
मस्तिष्क तो बहुत ही अविकसित होता
वह इतने संश्लिष्ट और कल्पनात्मक वि
लेने में समर्थ नहीं होता।

क्लाइन ने यहां तक कहा था कि
माता अच्छी तरह देखभाल नहीं करती
छह मास से कम उम्र का बच्चा भी अ
कर सकता है कि उसे सताया जा र
और वह मां की यंत्रणा देने और मार ड
तक की कल्पना कर सकता है और छह
के बाद, हो सकता है, वह अपने को अप
अनुभव करे और मायूस हो जाये।

क्या इतनी छोटी उम्र के बच्चे स
इतने जटिल विचार मन में रख सकते

अब तक जुटाये गये प्रमाणों से तो यही लगता है कि यह संभव है।

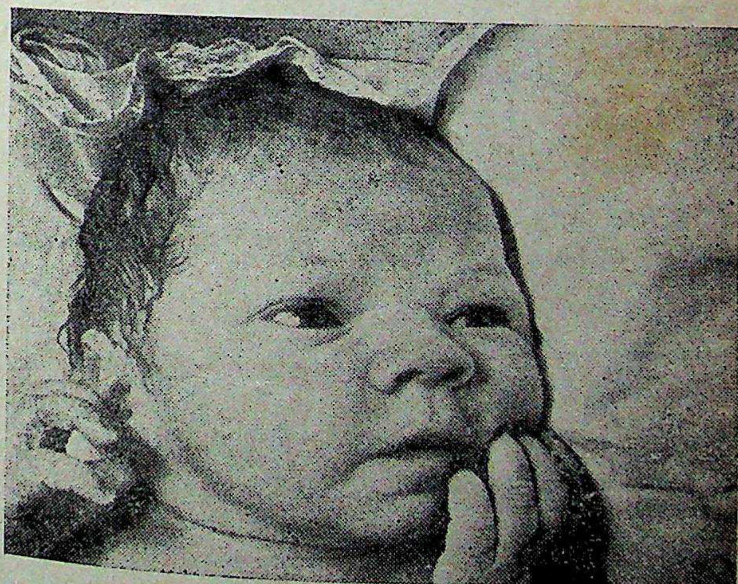
बच्चों पर किये गये विभिन्न प्रयोगों ने यह दरशा दिया है कि नवजात शिशुओं को जितना अपरिपक्व समझा गया था, असल में उतने अपरिपक्व वे होते नहीं हैं। पहले यह माना जाता था (और पाठ्य पुस्तकों में अब भी लिखा मिलता है) कि नवजात शिशु को अपने आस-पास का सब कुछ गड्ड-मड्ड और धुंधला-सा दिखाई देता है। मगर हाल में बवर के सूझबूझपूर्ण प्रयोग यह स्पष्टतः दरशा चुके हैं कि छह से आठ सप्ताह की उम्र के बच्चे भी स्थिर वस्तुओं को त्रिविम-रूप में देख सकते हैं।

जो बच्चे आम अस्पतालों में जनमे थे और शुरू के दिनों में जिनकी देखरेख नर्सों ने की थी उनकी तुलना रिंगलर, ट्राउस और क्लास ने ऐसे बच्चों से की, जिन्हें उनकी माताओं ने जन्म के प्रथम दो घंटों में से कम से कम एक घंटा और अगले दिनों में साधारण देखरेख के अलावा कम से कम पांच घंटे तक हाथों से सहलाया था। पांच वर्ष की उम्र में जब इन दोनों वर्गों के बच्चों की भाषा और बुद्धिक्षमता संबंधी योग्यता आंकी गयी, तो अपनी माता का ज्यादा सान्निध्य पाने वाले बच्चे दूसरों से कहीं अधिक सक्षम पाये गये।

इस तरह डेनियल रैपोपोर्ट ने १२० नवजात शिशुओं पर शोधकार्य करके यह दिखाया है कि जिन बच्चों का जन्म बिना कठिनाई के सहज-स्वाभाविक ढंग से हुआ वे और उनके माता-पिता मानसिक दृष्टि से अधिक सुखी व प्रसन्न रहे हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि जन्म के समय नवजात शिशु इतना चुस्त और सचेत अवश्य होता है कि अपने चारों ओर होने वाली घटनाओं पर प्रतिक्रिया कर सके। बेशक इन्हीं आरंभिक अनुभवों के साथ जुड़े मानसिक आघातों के कारण वह इन्हें भूल भी जाता है।

अब तो यहां तक कहा जाने लगा है कि




डेट
डिटर्जेंट धुलाई की टिकिया





...जन्म की स्मृति को भी बच्चा अव... कर डालता है। इस मामले में एलि... फेहर (अमरीका), फ्रैंक लेक (ब्रिटेन) ... ग्राफ (चेकोस्लोवाकिया) ने इस ... में काफी प्रयोग किये हैं, जिनका अनु... वाद में अन्यत्र भी किया गया है। ... कई प्रकार की मानस-चिकित्साओं ... रीज को अपने जन्म के अनुभव को फिर ...ने के लिए प्रेरित किया जाता है।

...ख्यात मानस-चिकित्सक ग्राफ ने इन ...-कालीन अनुभवों को चार अवस्थाओं ... विभाजित किया है।

...वस्था १: मां के साथ आदिम गठबंधन– ...शय में निश्चित निवास। ज्यादातर ...ों के लिए यह परम आनंदमय अनुभूति ...ी है। जिनका मन इसी अवस्था पर ...का रह जाता है, वे जीवन-भर उसी में ...ट चलने को प्रयत्नशील रहते हैं, हालांकि ...हें यह पता नहीं होता कि उन्हें तलाश ...स चीज की है।

...वस्था २: मां के प्रति विरोध–इसमें ...शय का सिकुड़ना शुरू हो चुका होता ...गर उसका मुंह अभी पूरी तरह खुला ...होता; इससे दबाव का और निकलने ...ाह न होने का एहसास होता है–खास ...तव जब प्रसव-वेदना लंबी चले। जो ...त मन से इस स्थिति पर अटक जाता ...ह ऐसी परिस्थितियों के प्रति अत्यंत ...नशील होता है, जिनमें दबाव बहुत ...र कोई हल दिखाई नहीं देता हो।

...वस्था ३: मां के साथ सहक्रिया–इस स्थिति में जन्म-नली में नीचे सरकता हुआ बच्चा भारी दबाव के बावजूद गति का अनुभव करता है, जो सुख और दुःख का मिश्रित रूप होता है और जिसे आत्म-पीड़न-परपीड़न-सुख (सादो-मेज़किज़्म) भी कहा जा सकता है। मन से इस स्थिति पर अटके व्यक्ति हिंसा से बहुत प्रभावित होते हैं चाहे सकारात्मक ढंग से, चाहे नकारात्मक ढंग से।

अवस्था ४: मां से अलगाव–इसमें बच्चा मां के शरीर के बाहर निकल आता है। इस स्थिति पर जिसका मन अटका रहे, वह व्यक्ति मृत्यु और पुनर्जन्म की कल्पनाओं से अभिभूत रहता है।

देखा गया है कि जन्मकाल के छोटे-छोटे अनुभवों को पुनर्जागृत करके जन्मकाल में अनुभूत मानसिक आघातों से निबटकर मनोरोगी को स्वस्थ बनाया जा सकता है। इस तरह स्वास्थ्य लाभ तभी संभव है, जब ये स्मृतियां कोरी भ्रांतियां न हों। जन्मनाल गरदन में लिपट जाने, सिर पर शलाका (फारसेप्स) का दबाव, गर्भ में या नली में उलटी-सीधी स्थिति आदि की स्मृतियां लोगों ने सुनायी हैं और अस्पतालों के रेकार्डों या डाक्टरों-दाइयों की बातों से इनकी पुष्टि हुई है।

हजारों बच्चों का प्रसव करा चुके डा. लेबोअर भी फ्रैंक लेक के कार्य-शिबिरों में लोगों को जन्म-अनुभवों में से गुजरते हुए और भ्रूण की तरह की गतियां करते हुए देखकर हक्के-बक्के रह गये थे। वैसी हर-

कतों का प्रसूति-विशेषज्ञों के सिवा बहुत कम लोगों को पता होता है और बहुत कम लोग जागृतावस्था में वैसी हरकतें कर सकते हैं।

सहसा इस पर विश्वास नहीं होता कि नवजात शिशु ऐसी बातें अपने मन में सोच सकें कि 'मां तो चाहती ही नहीं थी मुझे' या कि 'मुझे जीने का हक नहीं है'। ऐसी बातें सोचने के लिए वयस्क मनुष्य सेरिब्रल कार्टेक्स का उपयोग करता है, जिसका नवजात बच्चे में अभी विकास नहीं हुआ होता। इसका अर्थ यह हो सकता है कि ऐसी बातें सोचने के लिए सेरिब्रल कार्टेक्स की मदद की आवश्यकता नहीं होती। संभव है, मस्तिष्क के अन्य भाग—थैलामस, मध्य मस्तिष्क, सेरिबेलम, मेड्युला और मेरु-रज्जु—आदि जो सेरिब्रल कार्टेक्स से अधिक आदिमावस्था के हैं, यह काम करते हों। या यह भी संभव है कि इसमें मस्तिष्क बिलकुल भी भाग न लेता हो।

राइश ने बहुत पहले ही प्रतिपादित किया था कि बहुत-सी स्मृतियां मस्तिष्कीय नहीं होतीं, बल्कि वे मांसपेशियों या यहां तक कि कोशिकाओं में रहती हैं। इन क्षेत्रों में हो रहे अनुसंधानों के परिणामों से भी यही प्रतीत होता है। मानस-चिकित्सा की सर्वथा सामान्य बैठकों में लोग इतने पीछे तक की बातें याद करते पाये जा रहे हैं, जिसे पहले असंभव ही समझा जाता था।

उदाहरणार्थ, स्मृतियों में पीछे लौटते हुए एक रोगी ने मां के पेट में रहते समय सात माह की अवस्था में मां की असावधानी से चोट लगने की घटना को याद कि चीखकर विरोध प्रकट किया। म सिर पर लाल निशान भी उभर आ

यह कैसे संभव है? मगर बाद में की मां से पूछताछ करने पर पता च जब मरीज गर्भ में सात महीने का था एक दिन वह (मां) किसी परपुरुष के कार में जा रही थी और कार दुर्घटना हो गयी थी। फौरन उसने जाकर अ में जांच करवायी थी; लेकिन डाक् चोट को मामूली बताया था। महि अपने पति से इसका जिक्र नहीं किया। गर्भस्थ बच्चे ने उस आघात को मां बहिष्कार और प्रहार के रूप में याद

मानसिक आघात की दृष्टि से वि करें तो गर्भपात के विफल प्रयत्न से आघात क्या हो सकता है गर्भस्थ शि लिए? यह तो उसके जीवन पर ही है—सो भी अपनी मां का किया हुआ प्र यह पूर्णतः संभव है कि भ्रूणावस्था में भूत उस भय के क्षण की याद बनी रहे उसे फिर से जगाया जा सके।

प्रो. लिले ने गर्भाशय के भीतर का यन कैमरा द्वारा करके इसके पक्के प्र प्रस्तुत किये हैं कि वास्तव में गर्भस्थ बड़ा ही सतर्क होता है और प्रतिक्रिया सकता है। गर्भाधान के नौ सप्ताह बा भ्रूण उंगलियां और पांव चूसने लगता है देख, सुन व पी सकता है, हाथ-पांव फे धक्का दे सकता है, लुढ़क सकता है। चूंकि गर्भाशय में तंत्रिकाओं के छोर

चलते, इसलिए मां भ्रूण की इस गतिशीलता और सक्रियता से अनभिज्ञ ही रहती है। उसे इसका पता तभी चलता है, जब भ्रूण इतना बड़ा हो जाये कि उसके हलचल करने से पेट की भींत पर दबाव पड़े। तात्पर्य यह कि आठ-नौ सप्ताह का भ्रूण भी जीवन की अनेक क्षमताओं से युक्त सक्रिय जीव पिंड होता है।

मगर इससे भी पुरानी स्मृतियों में लौटना संभव है। मनोविज्ञानी आर. डी. लैंग ने अपनी नवीनतम पुस्तक 'द फैक्ट्स ऑफ लाइफ्' (एलन लेन, १९७६) में गर्भ ठहरने और उससे संबद्ध आघातों की चर्चा की है। शुक्राणु से निषेचित होने के बाद लगातार विभाजित और विकसित होता हुआ डिंब फेलोपियन नली में नीचे की ओर यात्रा करता हुआ गर्भाशय में आता है, जहां उसे गर्भाशय की दीवार से चिपकना होता है। यही गर्भ ठहरना है। इस अवस्था में उसे कोशिका-बिंब (ब्लास्टोसिस्ट) कहते हैं।

लैंग के अनुसार इस समय चार संभावनाएं होती हैं:

१. कोशिका-बिंब गर्भाशय की दीवार से चिपककर ठहरने को तैयार है और गर्भाशय उसे ठहराने को तैयार है—कोई समस्या नहीं उठती।

२. कोशिका-बिंब तो ठहरने को तैयार है, मगर गर्भाशय उसे ठहराने को तैयार नहीं। (शायद मां गर्भवती बनने को मन से तैयार नहीं है।) ऐसी हालत में संघर्ष हो सकता है, जिसमें जीत दोनों में से किसी की भी हो सकती है। यदि कोशिका-बिंब ही जीत जाये, तो भी आगे चलकर बच्चे को मां द्वारा अंगीकार किये जाने के लिए जीवन-भर संघर्ष करते रहना पड़ेगा।

३. कोशिका-बिंब ठहरने के लिए तैयार नहीं, मगर गर्भाशय उसे ठहराने को तैयार है। इस हालत में भी दोनों में संघर्ष होगा।

४. दोनों की ही तैयारी नहीं है। ऐसी हालत में गर्भ ठहरता ही नहीं।

यह बात केवल लैंग ही नहीं कह रहे हैं। बिल स्वटिली जैसे कई मानस-चिकित्सकों ने अपने मरीजों की गर्भ ठहरने के समय की स्मृतियों का वर्णन किया है। हालैंड के पिअर बोल्ट ने ऐसे मामलों का वर्णन किया है, जिनमें गर्भ ठहरने के बाद ऋतु स्राव हुआ और भ्रूण ने उसे 'मुझे निकाल फेंकने' की चेष्टा के रूप में याद रखा। ऐसे मामलों की सत्यता की जांच अस्पतालों के रेकार्डों से की जा सकती है; क्योंकि ऐसी अवस्था में बच्चा समय से पहले पैदा होता है, मगर होता है परिपक्व।

फिर वही प्रश्न सामने आता है कि यह कैसे संभव है? कोशिका-बिंब के पास, याद रखने का साधन ही क्या है? पर जैसा कि मनोविज्ञानी ऑसगुड ने कहा है, यहां हमें याद रखना चाहिये कि यह प्रेम, क्रोध, भय जैसी बुनियादी अनुभूतियों और लगभग जैविक प्रतिक्रिया का मामला है, इसमें मस्तिष्कीय चिंतन का हाथ नहीं होता।

यही कारण है कि मानस-चिकित्सक पिअर बोल्ट ने अपनी तकनीक को 'गर्भा-

न-विश्लेषण' कहा है। व अपने मरीजों गर्भाधानकाल तक की स्मृतियों में वापस टने को प्रेरित करते हैं और इसके ठोस वं लाभकारी परिणाम भी उन्होंने दर-ये हैं। वे कहते हैं कि इस दशा में भी चार स्थितियां हो सकती हैं :

१. शुक्राणु एवं डिंब दोनों गर्भाधान के अनुकूल हैं;

२. शुक्राणु अनुकूल है, डिंब प्रतिकूल;

३. शुक्राणु प्रतिकूल है, डिंब अनुकूल;

४. शुक्राणु एवं डिंब दोनों प्रतिकूल हैं।

शारीरिक दृष्टि से ये स्थितियां निश्चय ही संभव हैं; क्योंकि गर्भाधान हो पाये, इसके लिए शुक्राणु और डिंब में सूक्ष्म रासायनिक संतुलन जरूरी है।

इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि माता द्वारा अस्वीकृति या बहिष्कार जैसे आघात चाहे कितने भी पुराने क्यों न हों, स्मरण किये जा सकते हैं।

यह एक नया और अत्यंत व्यापक क्षेत्र है, जिसमें अनेक आश्चर्यकारी बातों का पता लगने की संभावना है।

इससे यह सवाल भी उठता है कि क्या पूर्व जन्म के आघातों की भी इसी तरह याद बनी रह सकती है? यह जटिल मामला है। बहरहाल यह मानना काफी है कि मनुष्य अपने तमाम मानसिक आघातों को याद रखता है और उनमें से कई बेहद पुराने हो सकते हैं।



रेडियो-वार्ता

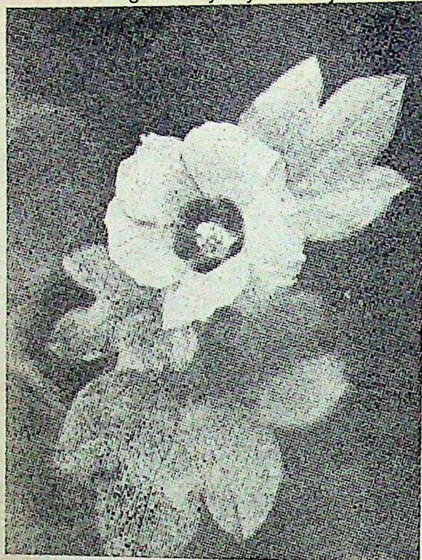
अर्धांग से पीड़ित, अर्धचेतना में डूबता-उतराता मैं अपने शहर और स्वजनों से बहुत दूर मणिपुर-इम्फाल में अस्पताल में पड़ा था। पत्नी डाक्टरों की सलाह से स्ट्रेचर पर लिटाकर वायुयान से बंबई के एक नर्सिंग होम में ले आयीं। उस समय मैं बिलकुल मूक था और दायें हाथ-पैर से निष्क्रिय था।

कुछ दिन बाद मुझे 'आकाशवाणी' का एक पत्र डाक से मिला, जिसमें मुझे रेडियो-वार्ता सुनाने का निमंत्रण था। मैंने प्रसन्न होकर पत्नी से कागज और पेन मांगा, किंतु लिखता कैसे? हाथ काम करने में असमर्थ जो था। खैर, पत्नी से लिखने के लिए कहा। बोलने की कोशिश की तो ब-ब-ब के सिवा मुख से कुछ निकला नहीं। पत्नी खूब हंसती रहीं, फिर समझाया कि अच्छे होने पर लिखवाइये। मन में उत्साह था, आत्मा भी पूरी तरह जागृत थी; लेकिन विवश होकर रह गया।

उसी रात स्वप्न देखा कि अपनी वार्ता रेडियो पर पढ़ रहा हूं और वार्ता समाप्त करके खुशी से घर की ओर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए लौट रहा हूं।

—जगदीश नारायण वर्मा





फूल कैसे खिल

मुकुलचंद पां

फूलों से लदी डालियां और फूलों से भरी क्यारियां किसका मन नहीं मोहतीं? फूल प्रकृति की सौंदर्य-वृद्धि ही नहीं करते, वरन पौधों की वंशवृद्धि का उत्तरदायित्व भी ढोते हैं। फूलों से ही बीज बनते हैं, जिन्हें बोकर नये पेड़-पौधे उगाये जाते हैं।

हम जानते हैं कि अलग-अलग मौसमों की अलग-अलग फसलें होती हैं। वस्तुतः प्रत्येक पौधा जीवन-पर्यंत वृद्धि करता है और उसकी वृद्धि में सूर्य के प्रकाश का मुख्य हाथ है। पौधे को कितना तीव्र प्रकाश मिलता है और कितने समय तक मिलता है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मंद प्रकाश में उग रहे पौधों के तने प्रायः पतले, लंबे व निर्बल होते हैं, उनकी पत्तियां गूदेदार हो जाती हैं और उनका रंग पीला पड़ जाता है। प्रकाश में रखने पर वृद्धि तो अवश्य कम हो जाती है, पर पौधे स्वस्थ रहते हैं। पौधे की सक्रियता प्रकाश पर निर्भर है।

सूर्य का बहुत तेज प्रकाश भी पौधे नुक्सान पहुंचाता है। परंतु प्रकाश की ऐसी तरंग-लंबाइयां भी हैं, जो अधि पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल होत वैसे अलग-अलग जाति के पौधों की त्तम वृद्धि के लिए अलग-अलग प्रका प्रकाश जरूरी होता है। उदाहरणार्थ, टर, घास आदि को ठीक पनपने व फूल लिए काफी तेज रोशनी चाहिये। प्र जितना तीव्र होगा, उनकी वृद्धि उत अधिक होगी। इसके विपरीत कु कुछ पौधे मंद प्रकाश में अधिक वृद्धि हैं। मगर गुलाब-जैसे कुछ पौधे दोन स्थितियों में मजे से वृद्धि करते हैं।

विभिन्न तरंग-लंबाइयों वाली कि का पौधों की वृद्धि पर अलग-अलग प्र पड़ता है, भले उनकी तीव्रता एक-जै

क्यों न हो। प्रयोगों से पता चला है कि नीले रंग के प्रकाश में रखे हुए पौधे प्रायः छोटे रह जाते हैं और लाल रंग के प्रकाश में उनकी लंबाई बहुत अधिक बढ़ जाती है; मगर वर्णक्रम के मध्यभाग की किरणें, जो कि प्रायः हरे रंग की होती हैं, किसी भी प्रकार का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालतीं।

एक प्रयोग में सेम और जौ जैसे पौधों को छोटी तरंग-लंबाई वाले प्रकाश में रखा गया तो उनके तने की वृद्धि रुक गयी। फिर जब उन्हें अधिक तरंग-लंबाई वाले प्रकाश में रख दिया गया, तो तनों की रुकी हुई वृद्धि फिर शुरू हो गयी। परंतु इस प्रकार के प्रकाश का असर पत्तियों पर उलटा पड़ता है।

दिन के प्रकाश की अवधि का भी पौधों में फूल व फल लगने की क्रिया पर असर होता है। किसी पौधे को जितने समय तक प्रकाश मिलता है, उसे विज्ञान में 'दीप्तिकाल' कहते हैं। यह अलग-अलग ऋतुओं में अलग-अलग होता है। 'दीप्तिकाल' के प्रति पौधों के संवेदन को 'दीप्तिकालिकता' कहते हैं और यह भिन्न-भिन्न जातियों के पौधों में भिन्न-भिन्न होती है।

सामान्यतया वृद्धि की कुछ निश्चित अवधि के बाद पौधे में प्रजनन होता है। कुछ जातियों के पौधे प्रतिदिन कम समय तक प्रकाश पाने पर ही फूल उत्पन्न कर देते हैं। इन्हें 'अल्पदीप्तिकाली' पौधे कहते हैं। चावल, छोटा गोखरू, स्ट्राबेरी, गुलदाउदी आदि अल्पदीप्तिकाली हैं। इन्हें प्रतिदिन १२ घंटे से कम समय प्रकाश मिले तो भी पर्याप्त होता है। विज्ञानी गार्नर और एलार्ड ने १९५० में देखा कि तंबाकू के पौधे गरमियों में १०-१५ फुट तक लंबे हो जाते हैं पर फूलते नहीं, जबकि सर्दियों में उनमें ५ फुट के पौधों में ही फूल आ जाते हैं।

कुछ पौधों में फूल लगने के लिए काफी लंबे दिनों की आवश्यकता होती है। इन्हें 'दीर्घदीप्तिकाली' पौधे कहते हैं। ऐसे पौधे गरमियों के लंबे दिनों में फूल उत्पन्न करते हैं। यदि उन्हें रात में कुछ देर तक कृत्रिम प्रकाश में रख दिया जाये, तो उनमें जल्दी फूल व फल आ जाते हैं। गेहूं, चुकंदर आदि ऐसे पौधे हैं।

तीसरे प्रकार के पौधों को फूलने के लिए किसी खास अवधि तक प्रकाश मिलने की आवश्यकता नहीं होती। टमाटर, घिया, कपास, सूर्यमुखी आदि इसके उदाहरण हैं।

अल्पदीप्तिकाली पौधों को यदि ऐसे मौसम में या ऐसे स्थान पर उगाया जाये जहां सूर्य का प्रकाश दिन में १२ घंटे से अधिक समय रहता है, तो उनमें फूल नहीं आते और अगर आते भी हैं तो बहुत धीरे। ठीक यही बात दीर्घदीप्तिकाली पौधों को अल्पदीप्तिकाल वाले स्थानों या मौसम में उगाने पर होती है।

शायद यही कारण है कि प्रकृति भिन्न-भिन्न मौसमों में अपना शृंगार भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलों से करती है।

दिलचस्प बात यह है कि प्रतिकूल परि-



प्रकृति में भी यदि पौधों को कुछ समय के लिए उनका विशेष दीप्तिकाल प्राप्त हो जाता है तो भी उनमें फूल लग जाते हैं। चाहे बाद में वह दीप्तिकाल रहे या नहीं। इस प्रकार के कई प्रयोग छोटे गोखरू के पौधों पर किये गये हैं।

प्रकाश की दृष्टि से पौधे का सबसे संवेदी भाग होता है पत्तियां। जिस पौधे की बाकी सब पत्तियां तोड़ दी गयी हों, उसे अनुकूल दीप्तिकाल देकर भी फूल उगाने को प्रेरित नहीं किया जा सकता। लेकिन अगर पौधे में सिर्फ एक पत्ता भी बाकी रहे तो अनुकूल दीप्तिकाल प्राप्त होने पर उसमें फूल लगने की प्रक्रिया अपने आप शुरू हो जाती है।

अलग-अलग पौधों की पत्तियों की प्रकाश-संवेदन की क्षमता अलग-अलग होती है और वह पौधे के अन्य गुणों पर निर्भर होती है। आयु का भी पत्तियों के प्रकाश-संवेदन पर काफी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया नये पत्ते प्रकाश-संवेदी नहीं होते पर जैसे-जैसे वे बढ़ते जाते हैं, उनकी संवेदनशीलता बढ़ती जाती है। पर कुछ पौधों की अधिक उम्र वाली पत्तियां प्रकाश-संवेदी नहीं होतीं।

पौधों में फूल लगने के लिए जितनी आवश्यकता दैनिक दीप्तिकाल की है, उतनी ही आवश्यकता रात के अंधकार की भी है। अंधकार के बिना पौधों में फूल नहीं खिल सकते। अल्पदीप्तिकाली पौधे को दीर्घ रात्रिकाल की आवश्यकता होती है, जबकि दीर्घदीप्तिकाली पौधे को रात का अंधकार थोड़ी ही देर चाहिये। इस प्रकार हम अल्पदीप्तिकाली पौधे को 'दीर्घरात्रिकाली' पौधा भी कह सकते हैं। यदि किसी भी कारण पौधों के अभीष्ट रात्रिकाल में व्यवधान हो जाये तो पौधे फूलों का उत्पादन नहीं कर पाते।

इसी तरह वातावरण में उपस्थित कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा का भी फूलों के उत्पादन में काफी महत्त्व है। वातावरण में यदि कार्बन डाइ आक्साइड की पर्याप्त मात्रा न हो, तो फूलों का उत्पादन कुछ समय के लिए रुक सकता है।

स्पष्ट है कि पौधों की पत्तियां वातावरण से कार्बन डाइ आक्साइड सोखती हैं। ऐसा समझा जाता है कि इस प्रक्रिया में पत्तियों में कुछ हारमोन बनते हैं, जो स्थानांतरण द्वारा शाखाओं के सिरों पर पहुंचकर वहां फूलों के उत्पादन को प्रेरित करते हैं। प्रयोगों में इस प्रकार के एक पादप-हारमोन 'फ्लोरीजिन' का पता लग चुका है।

एक प्रयोग में वैज्ञानिकों ने अल्पदीप्तिकाली छोटे गोखरू के दो पौधे लिये। उनमें से एक पौधे पर दिन में थोड़े समय सूर्य का प्रकाश डाला जाता था। उसमें फूल खिलने लगे। दूसरे पौधे को प्रतिदिन काफी देर तक सूर्य के प्रकाश में रखा जाता था। उसमें फूलों का उत्पादन रुक गया। फिर उन दोनों पौधों का आपस में संकरण कराया गया। कुछ समय बाद दूसरे पौधे में भी फूल खिलने लगे।

इस प्रयोग से इस बात की पुष्टि हुई कि पहले पौधे में एक हारमोन का निर्माण हुआ और संकरण के बाद वह दूसरे पौधे में रिस-कर चला गया, जिससे दूसरा पौधा भी प्रभावित हो गया। यह भी देखा गया कि यदि पौधे की पत्ती के डंठल को इस प्रकार काट दिया जाये कि हारमोन का स्थानांतरण न हो पाये तो फूलों का उत्पादन रुक जाता है।

पौधे को प्रतिदिन मिलने वाले प्रकाश की अवधि पर नियंत्रण रखकर उसमें कभी भी फूल उत्पन्न किये जा सकते हैं। इस प्रकार से वर्ष में केवल एक बार फूलने वाले पौधों में दो बार फूल लाये जा सकते हैं। खेती में भी दीप्तिकालिकता का बहुत आर्थिक महत्त्व है। प्रकाश की अवधि को कृत्रिम रूप से नियंत्रित करके अलग-अलग ऋतुओं में फलने वाले दो पौधों में एक साथ फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

—५३, छोटा चांदगंज, लखनऊ-२२६००७



थोड़ा-बहुत

एक दिन बीरबल अपनी पंचवर्षीय पुत्री को लेकर शाही दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने बच्ची से प्यार से पूछा —'तुम्हें बोलना आता है?'

'थोड़ा-बहुत।' लड़की ने कहा।

'थोड़े-बहुत से क्या मतलब?' बादशाह ने प्रश्न किया।

'उत्तर मिला—'मैं बड़ों से थोड़ा, और छोटों से बहुत बोला करती हूं।'

—सूर्यकांत त्रिपाठी

०००

एक सज्जन की घोड़ी एक दिन बेकार हो गयी और उसकी लात लगने से उन सज्जन की मां मर गयीं। अगले दिन आसपास के मुहल्लों की तमाम नौजवान सुहागिनें उनके घर जमा हो गयीं। भीड़ को देखकर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—'देखा, मेरी मां कितनी लोकप्रिय थीं, एक तुम्हीं हो जिसे मां से शिकायत रहती रही। इतनी सारी औरतें उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करने आयी हैं।'

पत्नी बोली—'ये तुम्हारी मां की मृत्यु पर शोक प्रकट करने नहीं आयी हैं। ये तो हमारी घोड़ी मांगने आयी हैं।'

—डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'

०००

बच्चों से 'दूध' पर दो पृष्ठों का निबंध घर से लिखकर लाने को कहा गया था। अगले दिन जांचने पर एक बच्चे का निबंध सिर्फ आधे पेज का था। शीर्षक था—'कंडेंस्ड मिल्क'।

—'वंशी'

०००

स्वर्गादपि गरीयसी

भवानीदत्त जोशी 'पारखी'

मोटर से पहाड़ की यात्रा कष्टसाध्य तो होती है परंतु गंतव्य पर पहुंचकर मार्ग का सारा कष्ट वैसे ही विस्मृत हो जाता है, जैसे पुत्र की प्राप्ति के पश्चात् मां प्रसव-पीडा को भूल जाती है।

जीवन के प्रारंभिक वर्ष पर्वतों की गोद में ही बिताये थे। पर होश संभाला तो अपने को कलकत्ता के अथाह जन-समुद्र में पाया। भीड़ में जब भी दम घुटने लगता, मुझे याद हो आती अपनी जन्मस्थली बैतड़ी की सुंदर छटा, जो नेपाल की पश्चिमी सीमा महाकाली अंचल में है। बैतड़ी के पूर्व में सेती नदी, पश्चिम में महाकाली का कल कल निनाद, पांच हजार से नौ हजार फुट तक ऊंचे नयनाभिराम हरे-भरे गिरि-शिखर एवं सुंदर गगन के आधार-स्तंभ से दिखने वाले हिम-पर्वत किसी भी पर्यटक का मन मोह लेने के लिए पर्याप्त हैं, फिर मेरी तो वह जन्मस्थली है।

हजारों नेपाली किशोरों को मिलने वाला घोर दारिद्र्य-जनित निर्वासन मुझे भी मिला था। चौबीस वर्षों से जब भी जन्मभूमि जाने का प्रयास किया, जीवन के संघर्ष छुट्टी नामंजूर करते रहे। लेकिन दो [...] पूर्व चैत्र के नवरात्र में अपनी मां के [...] अपनी जन्मस्थली की यात्रा पर नि[...] ही पड़ा।

बैतड़ी पहुंचा जाता है उत्तर प्रदे[...] पिथौरागढ़ होकर। पुराने जर्जर पिथौरा[...] में आधुनिक ढंग के नवनिर्मित आवा[...] किसी संपन्न पश्चिमी देश के रंगीन छा[...] चित्र सरीखे दिख रहे थे। पौड़ीहाट [...] मोटर-स्टेशन से ही मां ने तर्जनी से दिखा[...] —'वह देखो बैतड़ी। तुम तो सब रास्ते-[...] भूल गये होगे!'

हम भारत के उत्तराखंड की पर्व[...] मालाओं के अंतिम छोर पर पहुंच रहे [...] नीचे बल खाती महाकाली नदी दिख र[...] थी। ज्यों-ज्यों झूलाघाट निकट आ रहा [...] महाकाली का अनुपम सौंदर्य निखरता [...] रहा था। झूलाघाट पहुंचते ही डोटिया[...] कहे जाने वाले नेपाली कुलियों ने हमारी [...] मोटर घेर ली। मैंने बचपन में भी [...] गिरिवासियों को ठीक इसी रूप में दे[...] था—तन ढंकने के लिए एक टाटनुमा [...] निर्मित कपड़ा, राजमुकुट की भांति [...]

र नेपाली टोपी और पीठ पर ढाई-तीन मन का डोका। जैसे बोझ ढोने के लिए ही पैदा हुए हों।

उस रात थकान के कारण जल्दी ही आंख लग गयी। अगली सुबह मुंह अंधेरे नींद टूटी। महाकाली के प्रवाह की गंभीर ध्वनि सुनाई दे रही थी। नेपाली कुलियों की 'हे-हो' की आवाजें आ रही थीं। संभवतः वे ट्रकों पर सामान लाद या उतार रहे थे। चौबीस वर्षों से जन्मस्थली के दर्शन के लिए लालायित मन यह सोचकर डूबा जा रहा था कि आज मैं अपने ही क्षेत्र में विदेशी बन गया हूं। बंगला कथाकार विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय की 'पथेर पांचाली' का 'अपू' मुझे याद आ रहा था। मैं सोच रहा था, मैं भी 'अपू' की ही भांति विस्थापित हो गया हूं।

साढ़े पांच बजे मां उठ गयी। दोनों महाकाली में स्नान करने गये। नदी तीव्र वेग से वह रही थी। नदी के इस तट पर भारतीय नहा रहे थे, सामने के तट पर नेपाली। भले ही भारत और नेपाल मानचित्र पर दो देश हों परंतु नेपाली जनता के लिए भारत कभी विदेश नहीं रहा।

मां ने मुझे महाकाली की वह भंवर दिखायी जिसे स्थानीय भाषा में धोपट्या कहते हैं। इस शब्द का मूल अर्थ है—औंधा। उस पार की नेपाल की पगडंडी की ओर संकेत करते हुए मां ने कहा—'वहां से जाने-अनजाने कोई फिसल गया तो औंधा होकर धोपट्या में गिरता है।'

'जाने-अनजाने! क्या मतलब? जान-बूझकर कोई क्यों गिरेगा?' मैं बोल उठा।

'गृह-कलह से ऊबे, जिंदगी से निराश बहुत-से लोगों ने इसी धोपट्या में कूदकर जान गंवायी है।'

स्नान आदि करके हम नेपाल जाने के लिए आगे बढ़े। उन दिनों झूलाघाट पुल की मरम्मत हो रही थी। पुल का द्वार सवेरे, दोपहर और सांझ को एक-एक घंटे के लिए इस पार से उस पार आने-जाने वालों के लिए खुलता था। शेष समय पुराने तख्तों के स्थान पर नये तख्ते लगाने का काम चलता था। पुल के दोनों ओर की जाली खुली हुई थी। नये-पुराने तख्तों के बीच की खाली जगह में तिरछे तख्ते बिछाकर थोड़ी देर के लिए मार्ग बना दिया जाता था।

इस पार भारत का झूलाघाट है और उस पार नेपाल का। दोनों के बीच की दूरी सिर्फ कुछ हाथ की है, किंतु दोनों में जैसे जमीन-आसमान का अंतर है। यातायात की सुव्यवस्था से एक ओर का जीवन उज्ज्वल भविष्य की ओर कुलांचें भर रहा है; दूसरी ओर का निबिड अंधकार में रेंग रहा है। जिन्होंने देखा-सुना नहीं, वे विश्वास नहीं कर पायेंगे कि डोटी, डंडेलधूरा, बंझाग, अछाम, बाजुरा, जुम्ला एवं हुम्ला से ग्रामीण नेपाली नमक जैसी मामूली चीज खरीदने के लिए पंद्रह-पंद्रह, बीस-बीस दिन दुर्गम पर्वत-घाटियों की कष्टसाध्य यात्रा करके झूलाघाट आते हैं!

हमेशा की भांति उस दिन भी सवर्ण नेपाली झूलाघाट बाजार के इर्द-गिर्द एवं

महाकाली के तट पर अपना भोजन अलग-अलग बना रहे थे। भारत के किसी महानगर में जाकर वे भले ही आपद्धर्म में जहां तहां खाना खा लें, किंतु अपनी भूमि की सीमा में वे अपने ही हाथ का बनाया भोजन करते हैं। वैसे छुआछूत की इस जकड़न के बावजूद उनके दिलों में घृणा जैसी कोई चीज नहीं होती।

झूलाघाट से ही बैतड़ी सदर मुकाम के लिए दुर्गम चढ़ाई शुरू हो जाती है। हम तो बिना बोझ के भी कच्छप-गति से चल पा रहे थे, जबकि भारवाही नेपाली दो-ढाई मन का बोझ लादकर खरगोश की-सी तेजी से ऊपर-नीचे आ-जा रहे थे। लगभग दो घंटे की चढ़ाई के बाद हम सांगड़ी पीपल के चबूतरे पर विश्राम करने बैठे। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि वह पीपल-वृक्ष सतयुग का है। वहां कुछ मिनट सुस्ताकर नदी-पर्वतों की शोभा देखते और अपने सुख-दुःख की कथा कहते-सुनते हुए हम उस दुर्गम चढ़ाई पर आगे बढ़े।

ऊंचाई से झूलाघाट के घर घरौंदे-से दिख रहे थे। महाकाली के तट के खेतों में गेहूं और जौ की कटाई हो रही थी। मार्ग बहुत संकरा था, फिर भी भारवाही घोड़े पूरी रफ्तार से आ-जा रहे थे। पैर फिसलने से नीचे गिरने का भय था; ऊपर भूस्खलन या पत्थर लुढ़क आने का खतरा!

रहन-सहन की दृष्टि से बैतड़ी उत्तर प्रदेश के पिथौरागढ़ से काफी मिलता-जुलता है। एक अंतर यह था कि यहां नेपाली राष्ट्रीयता का प्रतीक नेपाली टोपी प्रायः सब पुरुषों के सिर पर थी। मध्याह्न तक हम लोग धामीगांव के रैन्यासैनी त्रिपुरा सुंदरी के मंदिर पहुंचे। मुझे याद आया कि उस मंदिर में 'बोगाली' नामक प्रसिद्ध मेला लगता है, जिसमें नेपाल के डोटी और डंडेलधूरा के लोग ग्रामोद्योग की वस्तुएं बेचने आते हैं और भारत के पीलीभीत व बरेली तक के व्यवसायी अपनी दुकानें लगाते हैं।

गांव, खेत, चरागाह पार करते हुए हम शाम के करीब पिपला गांव पहुंचे। महाकाली अंचल में मंदिरों का सर्वोपरि स्थान है और मानो देवी-देवताओं का ही शासन है। ६० प्रतिशत मुकद्दमे वहां देवताओं की अदालत में पेश होते हैं। 'पीड़ित' व्यक्ति किसी भी देवी या देवता के मंदिर में जाकर 'फरियाद' कर आता है। कुछ ही दिनों में 'उत्पीड़क' के घर रोग-शोक, अशांति आदि का दौर शुरू हो जाता है। ज्यों-ज्यों वह दवा करता है, बीमारी बढ़ती जाती है। हार कर वह 'धामी' (देवता के प्रवक्ता) से उपाय पूछता है। देवता जब धामी के सिर आते हैं, वह थर-थर कांपने लगता है, गेंद की भांति उछलने लगता है। कभी-कभी तो वह जलती धूनी में कूद पड़ता है; लोगों की मान्यता है कि देवता की शक्ति के कारण अंगारे उसे जला नहीं पाते।

धामी बताता है कि तुमने अमुक का हक मारा है.....। तब उत्पीड़क फरियादी की शिकायत दूर करता है और साथ ही

प्रायश्चित्त के रूप में मंदिर में भी 'स्या' (पूजा-पाठ आदि) करवाता है। अनेक मंदिरों में बलिप्रथा भी है।

उस रात नवरात्र का प्रथम जागरण था। रिचपला गांव के बच्चे-बूढ़े सब एकत्र हुए थे। रात में देवता ने धामी के सिर आकर सबको आशीर्वाद दिया। थोड़ी देर को मुझे लगा कि मैंने आज तक जो कुछ स्वाध्याय किया है—कुरान, बाइबल, स्वामी दयानंद का सत्यार्थ प्रकाश एवं कार्ल मार्क्स की किताबें—वह सब भूल गया हूं। मुझे यह भी स्मरण नहीं रहा कि वैज्ञानिक चंद्रमा से लौटकर अब मंगल को 'प्रोब' (टोहयान) भेज रहे हैं। रात-भर महिलाएं सामूहिक स्वर में तैंतीस कोटि देवताओं का स्तुति-गान करती रहीं।

दूसरी सुबह हम लोग देवलहाट पहुंचे। स्थानीय भाषा में हाट का अर्थ बाजार नहीं, अपितु राजधानी होता है और 'देवल' कहते हैं देवालयों के स्थान को। बैतड़ी के देवल-हाट गांव में अति प्राचीन काल के सात देवालय हैं।

इन देवालयों को मैंने बचपन में सैकड़ों बार देखा था। कोई नहीं जानता कि वे कब किसने बनवाये। देवल के आंगन में महाकाली अंचल का प्रमुख त्योहार 'गौरा' (गौरीपूजन) मनाया जाता है। गौरा-पूजन उस इलाके के प्रत्येक गांव में होता है। भाद्र दूर्वाष्टमी के दिन धान के पौधों को एकत्र कर और सुंदर रेशमी वस्त्रों से सजा-कर 'गौरा' बनायी जाती है और लकड़ी के 'महादेव' बनाकर महिलाएं सिर पर रखकर सामूहिक गीत गाते हुए खेलती हैं।

फिर 'गौरा-महादेव' को जमीन पर रखकर सैकड़ों स्त्रियां एक दूसरी की कोहनी में कोहनी फंसाकर बड़ा-सा गोल घेरा बनाती हैं। घेरा एक-एक कदम बढ़ाकर गीत गाता गौरा-महादेव के चारों ओर हुआ घूमने लगता है। इसी प्रकार का दूसरा बड़ा घेरा पुरुषों का होता है। पुरुषों का घेरा बिना कोहनी जोड़ भी होता है, जिसमें अधिकांश लोगों के हाथों में मंजीरे होते हैं।

घेरे के अंदर ढोलक बजाने वाले भी नाचते रहते हैं। वे जो गीत गाते हैं, उनमें रामायण, महाभारत एवं पौराणिक कथाएं होती हैं। ये कथाएं ही उनके लिए श्रुति एवं स्मृति हैं। उन सुंदर, शिक्षाप्रद, काव्य-मय आख्यानों के रचयिता न जाने कौन थे।

मैंने मां से कहा—'मां जिंदगी रही तो कभी गौरापूजन के समय भादों के महीने में हम यहां आयेंगे।' मां ने कहा—'क्यों नहीं बेटे, जब यह जन्मभूमि माता बुलायेगी तो जरूर आयेंगे।'

थोड़ी देर में, गांव के लोग—विशेषतया महिलाएं—हमारे आने की सूचना पाकर हमारे पास आने लगे। अधिकांश की आंखों में स्नेह के आंसू छलक आये थे। दशकों बाद हमारे इस प्रकार अचानक आने की कल्पना किसी ने नहीं की थी।

मैंने उन सात देवालयों को बड़े ध्यान से देखा, यद्यपि मुझे मंदिर-स्थापत्य और

प्रतिमा-विधान के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं है। उनमें से छह देवालय बहुत पास-पास बने हैं। सातवां अपेक्षाकृत छोटा एवं कुछ दूर हटकर है। पूरब से पहला देवालय छोटा है। दूसरे की छत में चार बड़ी मूर्तियां तेज दौड़ने की मुद्रा में खुदी हैं। प्रत्येक के एक हाथ में ढाल व दूसरे में कटार है। चार अन्य मूर्तियां दूसरी मुद्रा में हैं। मूर्तियों के बीच कमल बना है। इसी प्रकार सभी मंदिरों की छतों में भिन्न-भिन्न कलाकृतियां दिखायी गयी हैं। एक देवालय के द्वार बंद थे। उसमें शिवलिंग स्थापित है; किंतु कहा नहीं जा सकता कि शिवलिंग पर मंदिर बनाया गया है या मंदिर बनाकर उसमें शिवलिंग स्थापित किया गया है। देवालयों के समय का एक नौला (बावड़ी) भी है।

मैं गांव के एक वृद्ध सज्जन के पास गया जो देवालय से कुछ ही कदम की दूरी पर रहते थे। उन्हें मैंने अपना परिचय दिया तो वे रो पड़े। बोले—'आदमी जिंदा रहे तो कभी न कभी मिलने की संभावना रहती है। अब मुझे देखो, सौ वर्ष से कुछ कम या ज्यादा का हो गया हूं। मैं तुम्हारे दादा के जमाने का हूं .... पता नहीं, मौत कहां भटक गयी है।' आंसू पोंछकर वे पुनः बोले—'हां, तो तुम क्या पूछ रहे थे इन देवालयों के विषय में...... ये कब बने? ... कोई कुछ नहीं जानता। हम, हमारे बाप-दादा, परदादा सभी यही सुनते आये हैं कि ये सातों एक ही रात में बने थे। शाम को



प्रह्लाद बेहेरा का वुडकट

यहां कुछ नहीं था, पौ फटने तक छह देवालय तैयार हो चुके थे। सातवां अधूरा ही था कि ग्रामवासी जग गये और निर्माणकर्ता भाग गये। उन्हें किसी ने नहीं देखा। देवालयों में जिन पत्थरों का उपयोग हुआ है, उन्हें "शिला-पत्थर" कहते हैं। इस प्रकार का पत्थर इस देश में नहीं पाता जाता। पता नहीं, कहां से लाया गया। एक देवालय को पुराने जमाने में ही लुटेरों ने तोड़ डाला था। एक का गुंबद इधर पांच-सात वर्ष पहले टूटा है। टूटे गुंबद में बहुत सामान निकला।'

मैंने पुजारीजी के घर में रखे उस सामान को देखा—दो साबुत तलवारें, एक खंडित

तलवार, एक छुरी, तांबे की गोल पतीलियां, करछुल, सरौता, नक्काशीदार ढकना, टोंटीदार लोटे एवं और बहुत-सी वस्तुएं थीं।

बहुत तलाशने पर नेपाल सरकार के गृह-मंत्रालय की प्रचार-उपशाखा द्वारा प्रकाशित एक छोटी-सी पुस्तिका 'जिल्ला बैतड़ी परिचय' पढ़ने को मिली। उसमें उन देवालयों के विषय में इतना ही लिखा था—देवलहाट के मंदिर बैतड़ी सदर मुकाम के निकट ही हैं। प्राचीन युग में एक ही रात में बने हैं, ऐसा सुना जाता है।

देवलहाट के बाद अपने जन्मगृह बर्नोला के खंडहरों में घंटों अपना बचपन ढूंढ़ता रहा। देखने को बहुत-कुछ बाकी था—खलंगा जहां सरकारी कार्यालय हैं, जगन्नाथ मंदिर, ईश्वरीगंगा के तट पर बनी प्राकृतिक गुफा, कुल्लू कोट आदि।

फिर हम देहीमांडौ के प्रसिद्ध देवी-मंदिर के दर्शन के लिए चल पड़े। मार्ग में भारवाही डोटियाल, भेड़वाले 'सौका' आ-जा रहे थे। मां मुझे एक-एक गांव-पहाड़ आदि का परिचय देती जा रही थीं। उन्होंने मुझे वह पहाड़ दिखाया, जहां 'धज्याढूंगा' (आवाज देने वाला पत्थर) है। सुनते हैं, एक बार उस पत्थर ने आवाज देकर बैतड़ी के राजा को लुटेरों के आने की सूचना दी थी। लुटेरों ने पलटकर आवाज देने वाले को ढूंढ़ा तो उन्हें एक पत्थर मिला जो निरंतर आवाज दे रहा था। उन्होंने भाले-बल्लमों से उस पर प्रहार किया, तो उससे खून की धारा बहने लगी। पत्थर पर बने 'घाव' आज भी देखे जा सकते हैं।

रास्ते-भर असंख्य छोटी-बड़ी पर्वत-मालाओं के उस पार हिमालय का दृश्य देख-देखकर मैं आनंदमग्न होता रहा। देहीमांडौ से कुछ पहले पड़ने वाले उच्च स्थान से हिमालय अर्धवृत्त के आकार में दिखता है।

वह अनुपम गिरि-दृश्य मैंने बचपन में भी देखा था। दृश्य तो तब भी यही था; परंतु दृष्टि कहां थी तब? दारिद्रय एवं अशिक्षा के निविड अंधकार में जी रहे स्थानीय गिरिवासियों ने भला उस स्वर्गिक दृश्य को देखा ही कब है!

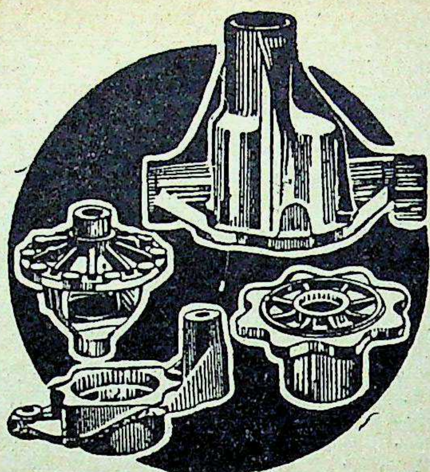
—१६२ नेहरू रोड, सदर बाजार, लखनऊ-२



पहला व्यक्ति : मैं पहाड़ पर इसलिए आया हूं कि मुझे खतरों से जूझने का शौक है, और नयी चीजें देखने-जानने की कभी न खतम होने वाली उत्सुकता है। मैं नित्य नये स्थानों से सूर्योदय देखना चाहता हूं, और ऐसी जगहों पर घूमना चाहता हूं, जहां मनुष्य ने कभी कदम न रखा हो। मैं पहाड़ों के शिखरों की नीरवता और ऊंचाई पर से ब्रह्मांड को बांहों में भर लेना चाहता हूं और प्रकृति की सुंदरता को एकटक निहारता हुआ अपने अंदर समो लेना चाहता हूं। .... और आप?'

दूसरा व्यक्ति : और मैं इसलिए कि मेरी पत्नी रोज पक्के गाने का अभ्यास करती है।'





दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

का आपको निमंत्रण है, आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

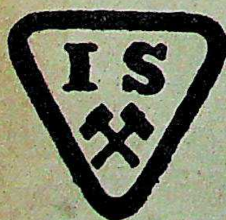
एस० जी० आइरन के कास्टिंग

कांसा, पीतल, गनमेटल या लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुर्जों व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

मैलिएबल आइरन के कास्टिंग

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कास्टिंग का काम दे सकते हैं।

एस.जी. आइरन और मैलिएबल आइरन के कास्टिंगों में उच्च भौतिक गुण होते हैं वे खरीदने में सुगम, दृढ़ एवं तन्यतायुक्त होते हैं, उनमें घिसाव कम होता है।



संपर्क कीजिये :
फेरसफाउंड्री, पंचपाखाड़ी, पहला पोखरनलेन, थाना (महाराष्ट्र)
उच्च श्रेणी के कास्टिंगस् व बचत के लिए डबल हैमर ब्रांड का आग्रह कीजिये।

[पृष्ठ ४४ का शेष]

वे क्रमशः उसे मिलने बुलाते।

वे अपने क्षेत्र में धर्मसभाएं भी आयोजित करते रहे। ये आज भी नियमित रूप से जुड़ती हैं। इनमें १५-२० भक्तों की ५०० टोलियां विचार-विनिमय करती हैं, चूंकि पोलिश सरकार बड़ी धर्म-जमातें पसंद नहीं करती। इनमें लोग प्रार्थना और धार्मिक पाठों पर चर्चा करते हैं।

वायतिला के घनिष्ठतम मित्र वे हैं जिन्हें वे क्राक्वा में पढ़ाते थे। इनमें से कुछ स्त्री-पुरुष तो अब तीसियों-चालीसियों में हैं, कुछ की शादियां भी वायतिला ने ही संपन्न करायीं और उनके बच्चों को बप्तिस्मा भी उन्हीं ने दिया। उन्हें कोई नाम कभी नहीं भूलता। ये सब लोग उन्हें 'वू-येक' (छोटे काका या चाचा) कहते हैं, जो कि पोलिश भाषा में प्रेम और आदर का सूचक है। आज के क्राक्वा के बहुत-से साहसी स्वतंत्रचेता छात्रों के लिए वे 'कारोलेक' (कारोल वायतिला का प्यार-भरा लघु-रूप) हैं, जो उनके हर तरह से मददगार थे।

गिरजे-संबंधी प्रसंगों में वायतिला का दृष्टिकोण सुविदित है। द्वितीय वैटिकन काउन्सिल में भी उन्होंने गिरजा, विवाह और धार्मिक स्वातंत्र्य पर मौलिक वक्तव्य दिये थे। उनका यह सुदृढ़ विचार है कि पोप की एकछत्रता के बजाय अब कतिपय महत्वपूर्ण विषयों में बिशपों की राय लेकर निर्णय किया जाना चाहिये। साथ ही ईसाइयत के सभी संप्रदायों (काथलिक, प्रॉटेस्टेंट, आर्थोडॉक्स चर्च) में एकता भी संस्थापित हो जाये तो अच्छा होगा।

पोलैंड के बाहर भी बहुत-से लोग उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते हैं। पिछले दस वर्षों में लगातार वे गिरजे की बड़ी-बड़ी धर्मसभाओं में पोलैंड के प्रतिनिधि चुने जाते रहे हैं। १९७० में उन्हें पोलैंड से बाहर जाने की अनुमति मिली थी तो वे अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और पोलिनेसिया घूम आये थे।

किंतु वे उन काथलिक पादरियों से सहानुभूति नहीं रखते, जो धर्म में अविश्वास या संदेह रखते हैं या ब्रह्मचर्य-व्रत छोड़कर विवाह-बंधन में पड़ना चाहते हैं। स्त्रियों के प्रति भी उनका वही परंपरावादी पोलिश रुख है, जिसमें उन्हें अबला मानकर हर तरह से संरक्षित रखा जाता है। यों उनके मित्रों का यह कहना भी काफी वजनदार है कि अतीत के आचरण से ही किसी के भावी कार्यों का अनुमान नहीं किया जा सकता, विशेषतः जब कोई व्यक्ति उनके जैसा शक्त, विचारशील और मनस्वी हो। यों भी अब उन्हें पोलैंड में निरंतर चलते राज्य और गिरजे के दैनंदिन संघर्ष की तबालत नहीं है। अब तो पोप के रूप में उनसे यही आशा की जाती है कि वे सारी दुनिया की जरूरतों को दृष्टि में रखकर अपनी नीतियां और कार्यक्रम निर्धारित करेंगे।

देखना यह है कि तात्रा पर्वत के आरोहण, बर्फ पर फिसलने के खेल (स्कीइंग), मनोरम माजुरिअन झील की सैर, फुटबाल

क्रीड़ा एवं लोकगीतों के सस्वर गायन के शौक की पूर्ति वे रोम में कैसे करेंगे। वे उस पोलैंड को कैसे भूल पायेंगे, जिसमें युवकों के झुंड के झुंड उन्हें अक्सर घेरे रहते थे?"

आगामी मई १९७९ को क्राक्वा में संत स्तानिस्लाव के निधन की नौवीं शती मनायी जायेगी। संत टामस ए बेकेट की तरह संत स्तातिस्लाव का भी लगभग वैसी स्थितियों में खून किया गया था। नये ने घोषित किया है कि इस अवसर पर क्राक्वा अवश्य जायेंगे।

देखना है, तब धर्मविमुख साम्य पोलिश सरकार की और उनकी आप निभती है या नहीं।

★

एक ढंग से सही

वयोवृद्ध पत्रकार श्री ज्ञानचंदजी ने अपने स्कूली जीवन की यह दिलचस्प घटना सुनायी थी।

एक बार अंग्रेजी के पर्चे में सवाल आया कि पोर्शिया का चरित्र-निरूपण क (पोर्शिया शेक्सपियर के नाटक 'मर्चेंट आफ वेनिस' की नायिका है; नायक है बसानियो एक लड़के ने उत्तर कुछ इस प्रकार लिखा—'पोर्शिया वॉज़ दि मदर ऑफ बसानियो

दूसरे दिन कक्षा में कापी दिखाते समय अध्यापक महोदय श्री अली अमीर साह (जो बाद में हाइस्कूल बोर्ड के सचिव भी रहे) उस लड़के को बुलाकर उसका लिखा उत्तर सबको सुना दिया। सभी लड़के हंसने लगे। तभी अली अमीर साहब ने कहा- यू वर राइट इन ए सेन्स', क्योंकि ....

'माशूक न होते गर, आशिक न होते पैदा।
दर अस्ल हसीनों, तुम आशिकों की मां हो।'

—शुकदेव प्र

०००

हिंदी के शुभचिंतक

दो मास पूर्व काका हाथरसी हमारे शहर आये। साहित्य-प्रेमियों ने उन्हें घेर लि फिर हास्य-विनोद होने लगा। इन महानुभावों के बीच एक युवक प्रोफेसर अपना उ हिंदी प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे। तभी उनका बेटा कान्वेंट का यूनिफार्म पहन वहां पहुंचा। उसे देखकर काकाजी ने प्रोफेसर साहब को मुखातिब करके ये पंक्तियां कहीं

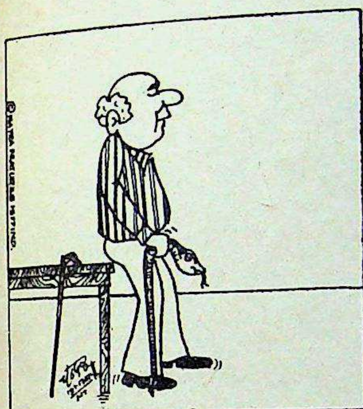
शुभचिंतक श्रीमान राष्ट्रभाषा के सच्चे,
कानवेंट में दाखिल करा दिये हैं बच्चे।

वाह-वाह! ..... सब हंस पड़े। बेचारे प्रोफेसर साहब एकदम झेंप गये।

—प्रेम शीला गु

★

दो क्षण तो हँस लें



कार्टून : मायरा फीचर्स

शिक्षक : शेक्सपियर और नेपोलियन बोनापार्ट के बारे में क्या जानते हो ?

छात्र : सर, नेपोलियन शेक्सपियर के नाटकों में बौने का पार्ट किया करता था।

—श्याममनोहर व्यास

०

पिता ने पुत्र को आठ आने दिये और गली के कोने की दुकान से सिगरेट का एक पैकेट लाने को कहा। पुत्र पैसे लेकर घर से भाग गया। बंबई पहुंचा और उसका भाग्य चमका। वह खासा मालदार बन गया।

दस वर्ष बाद पिता के घर के सामने एक शानदार कार आकर खड़ी हुई। उसमें से चमचमाते सूट में पुत्र उतरा और आकर पिता के पैरों में झुक गया।

पिता ने छूटते ही पूछा—'सिगरेट का पैकेट ले आया ?'

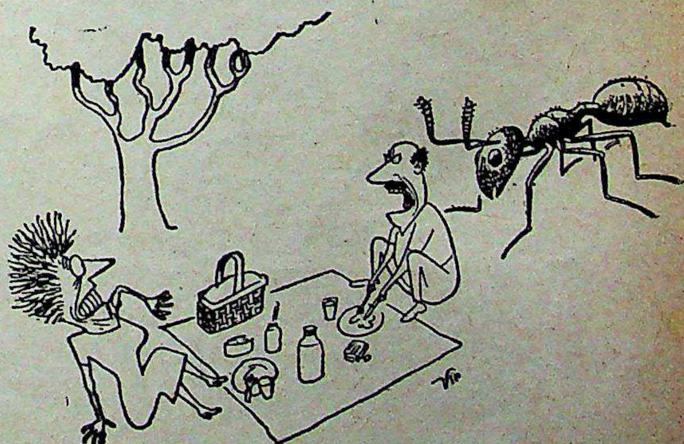
पुत्र ने जेब से पैकेट निकालकर पिता की ओर बढ़ाया और कहा—'इसका दाम अब डेढ़ रुपया हो गया है, सो एक रुपया मुझे और दीजिये।'

—अनुराग शर्मा

पत्नी : आप खुद तो दिन-भर भाषण देते रहते हैं। मैं थोड़ा भी बोलती हूं तो चुप रहने को कहते हैं!

नेताजी : मेरा भाषण हजारों कानों में बंटकर हल्का हो जाता है। पर तुम्हारा भाषण सिर्फ मुझे ही सुनना पड़ता है।

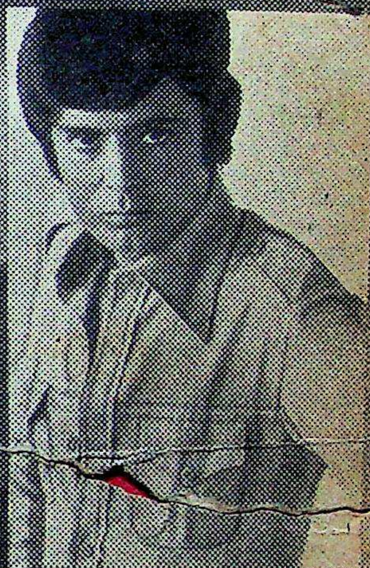
—बृजमोहन गुप्ता

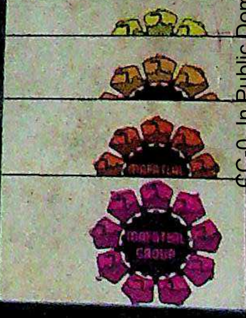


पिकनिक है तो एक-आध चींटी तो आयेगी ही।







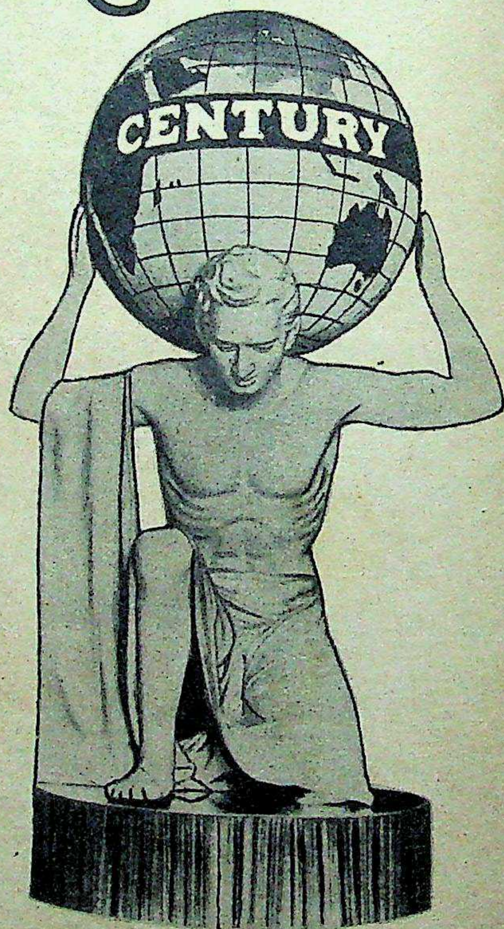

MAFATLAL
MAFATLAL GROUP

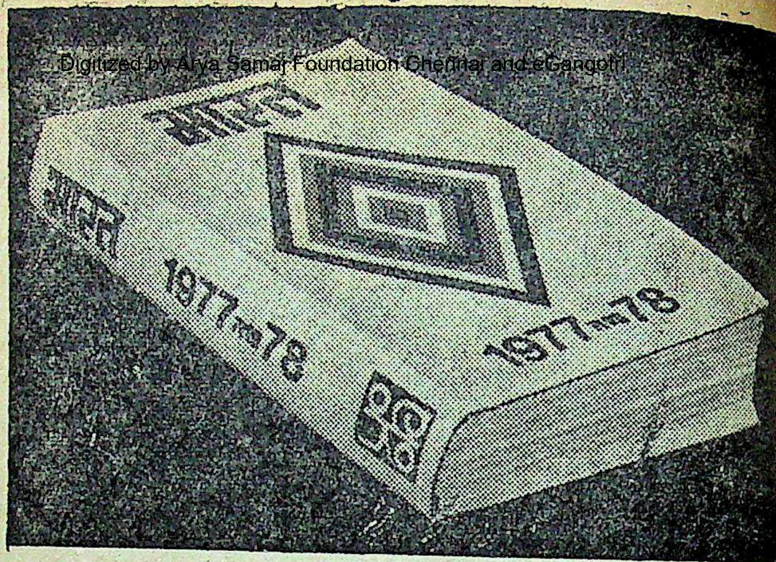
अप्रैल १९७९

मूल्य रु. २-२५ पै.

नवनीत हिंदी डाइजेस्ट




CENTURY


भारत
भारत 1977-78
1977-78

आज़माइए और सुबूत पाइए:

किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद





सुपर रिन नियमित इस्तेमाल कीजिए और अपनी आंखों देखिए आपके कपड़े कितने ज़्यादा सफ़ेद नज़र आते हैं; उन कपड़ों से कहीं ज़्यादा सफ़ेद जो आपने किसी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से धोये हैं. यह इसलिए कि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी लाने की शक्ति है. आज़माइए और सुबूत पाइए.



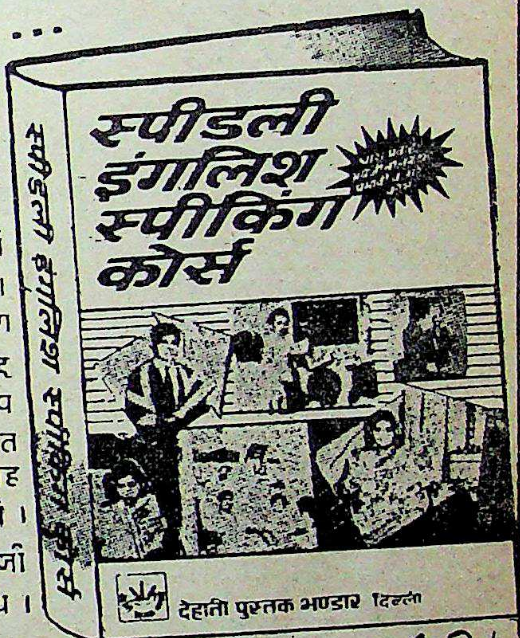
किसी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर

लिंटास-RIN. 34-1511 HI (RR)

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

क्या आप अंग्रेज़ी बोलने व लिखने में अटकते हैं?

तो बिना झिझक, धारा प्रवाह अंग्रेज़ी बोलने के लिये पढ़ें ...





इसे क्यों और जरूर पढ़ें !

यह कोर्स
वार्तालाप शैली में वाक्य अंग्रेज़ी
में और शब्द देवनागरी में हैं।
अंग्रेज़ी बोलने में प्रयोग होने वाले लगभग
2750 अंग्रेजी शब्द
तथा 3000 आम वार्तालाप
के प्रभावशाली वाक्य जो आपको निश्चित
रूप से धारा-प्रवाह
अंग्रेज़ी बोलने में सहायक सिद्ध होंगे।
भारत में पहली बार नई पद्धति से अंग्रेजी
सिखाने वाला ग्रन्थ।

मूल्य 18/-
डाक खर्च 2/-

अब 276 पृष्ठों की बजाय 408 पृष्ठों में सजिल्द संस्करण

सभी शिक्षण संस्थाओं द्वारा अपनाया गया कोर्स। 5 से अधिक प्रतियां एक साथ मंगाने पर 12½% विशेष रियायत तथा डाक-खर्च माफ़

48 पृष्ठों की अंग्रेज़ी-हिन्दी डिक्शनरी भी

केवल सजिल्द संस्करण ही खरीदें अजिल्द नहीं।



देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाज़ार, देहली-110006, टेलीफ़ोन-261030

पैरि[...]

छः अ[...]

शालिनी

शालिनी

शालिनी

किरन

रेशमा

रेशमा

मुल[...]

बीज[...]

पैरिस ब्यूटी की एक और भेंट

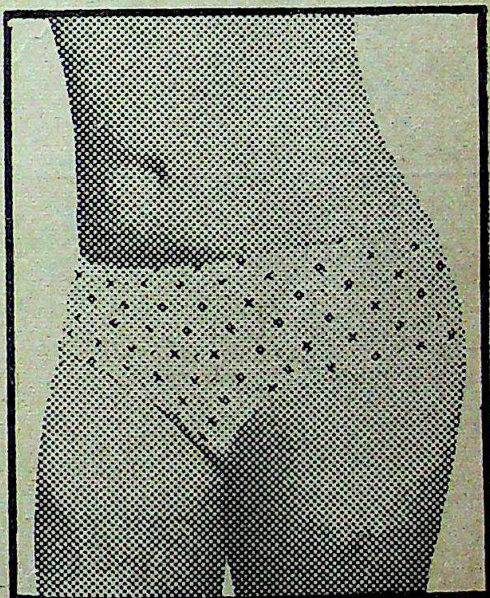
पैरिस ब्यूटी

काटन निटिड क्लाथ व नायलान पैंटीज

पैरिस ब्यूटी पैंटीज़ के छः आकर्षक डिज़ाईन !

शालिनी (रिब्बड फोम)	10.15
शालिनी रिब्बड (इला.लेस)	8.40
शालिनी रिब्बड	6.45
किरन (नेट क्लॉथ)	7.00
रेशमा प्रिंटिड (कलर)	6.00
रेशमा प्रिंटिड (सफेद)	5.25

मुलायम और आरामदेह।
पहनने में नया व सुखद अनुभव !



TRENDS

वितरक

पैरिस ब्यूटी सेल्स कार्पोरेशन

बीडनपुरा, अजमल खां रोड, नई दिल्ली-110005 फोन : 566594

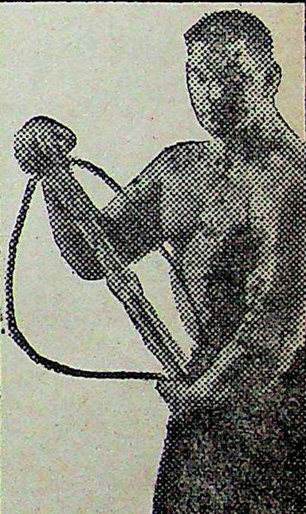
शरीर संवर्धन में संसार का सर्व प्रथम
बुलवर्कर के साथ
७४ रु. मूल्य की मुफ़्त भेंट*

*बुलवर्कर स्पोर्ट्स शर्ट नवीनतम डिज़ायन व उच्चकोटि के इजिप्शियन सूत से बना कभी-कभी पहनने व व्यायाम करते समय के लिए आदर्श तीन नापों में प्राप्त





*बुलवर्कर कैरिंग केस टिकाऊ व उत्तम किस्म का बना



यह योजना १० दिनों के भीतर कूपन भेजने पर ही मान्य होगी

मेल ऑर्डर सेल्स प्रा. लि. (ऑर्डर विभाग BWC-POR-H) NV—11
१५ मैथ्यू रोड, बम्बई ४०० ००४.

कृपया १४ दिनों की मुफ़्त आज़माइश के अंतर्गत मेरा बुलवर्कर भेजिए यदि मैं पूर्णतया परिणामों से सन्तुष्ट नहीं हुआ तो मैं आज़माइश अवधि के अन्दर अपनी रकम (पोस्टेज़ व अन्य खर्च काटकर) वापिस पाने के लिए शीघ्र ही सबकुछ लौटा दूंगा।

(कृपया उचित चौकार में ☑ निशान लगाइये)

☐ रजि. पोस्ट पार्सल द्वारा भेज दीजिए मैं रु. २४४ (साथ रु. १५ डाक खर्च व अतिरिक्त खर्च) चैक/ड्राफ्ट/आई.पी.ओ. द्वारा भेज रहा हूँ। मनीऑर्डर नं. .... तारीख.......... ☐ वी.पी.पी. द्वारा भेज दीजिए। डिलीवरी के समय पोस्टमेन को रु. २५९ देने का वचन देता हूँ।

स्पोर्ट शर्ट का नाप ☐ छोटा ☐ मध्यम ☐ बड़ा

नाम ....

पता ....

....

हस्ताक्षर ....



मुख्य-मुख्य स्टोर्स एवं उपरलिखे पते पर हमारे शो-रूम से प्राप्त

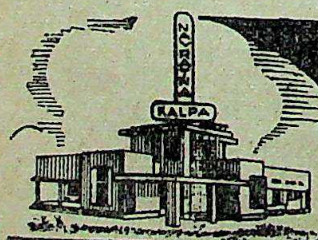
जब उत्साह नहीं, तो कुछ नहीं !

दुर्भाग्य
निरन्तर चिन्ता
कार्याधिक्य
जीर्ण अपचन
स्नायुदौर्बल्य के सामान्य लक्षण हैं
विस्मृति
भय
मिथ्या भावना
आत्महत्या के विचार
मतिभ्रम
इसके भयंकर परिणाम हैं



यदि आप स्नायुदौर्बल्य से ग्रसित हैं, तो परामर्श करें :

कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति



KALPA PHARMACY

NAVRATNA CHOWK
JULLUNDUR CITY. Pb.

PHONE: 2401 ● GRAMS: KALPAPHAR

(कृपया अंग्रेजी अथवा हिन्दी में पत्र-व्यवहार कीजिये।)

ऋषि मुनियों की
युगों युगों की शोध

सेवाश्रम का

गाय



छाप

ब्राह्मी आँवला केश-तैल और काला दन्त-मन्जन

ब्राह्मी आँवला केश-तैल आधुनिक पद्धतिसे निर्मित केवल तैल ही नहीं एक आयुर्वेदिक सौंदर्य प्रसाधन है। तथा काला दन्त-मंजन केवल मंजन ही नहीं एक आयुर्वेदिक औषधि है।



आयुर्वेद सेवाश्रम लिमिटेड,
उदयपुर, वाराणसी, हैदराबाद

heros' AS-143



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
सहसंपादक
सुरेश सिन्हा
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक .... महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक ४ अप्रैल १९७९

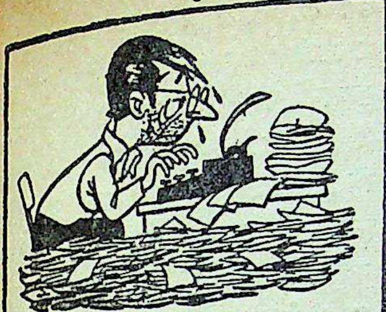
इस अंक में



श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी इस अंक में छपे अपने महत्त्वपूर्ण लेख 'हिंदी का प्रथम दैनिक' की पांडुलिपि टाइप कराने के बाद कुछ अस्वस्थ हो जाने के कारण उसे सुधार नहीं पाये थे; इसलिए मुद्रित लेख में कुछ न्यूनताएं रह गयीं; उनका सुधार यहां प्रस्तुत है: **पृष्ठ ५३ :** गोवा में छपी पहली पुस्तक ईसाई बन चुके गोवावासी भारतीयों के लिए थी। हेनरीक हेनरीकस 'पूर्व के बड़े पादरी' थे। **पृष्ठ ५४ :** हिकी के पत्र का नाम 'बंगाल गजट एंड कैलकटा जनरल एडवर्टाइज़र' था। 'ए ग्रामर ऑफ बंगाली लैंगुएज' बंगला उद्धरणों से युक्त अंग्रेजी पुस्तक थी। वार्ड के प्रेस से ही हिंदी में पूरी बाइबल पहले पहल छपी। **पृष्ठ ५६ :** नागरी प्रचारिणी सभाओं के प्रसंग में 'आरा' की जगह 'आगरा' पढ़ें। **पृष्ठ ५८ :** राजा राममोहन राय के चतुर्भाषा पत्र में पहले चारों भाषाएं एक ही पत्र में होती थीं और भाषाओं के अनुसार भिन्न टाइटल रहते थे; बाद में 'हिंदू हेरल्ड' पृथक् छपने लगा। श्री सेन पर मुकद्दमा १८२३ के रेग्युलेशन तथा १४ जून को प्रचारित समाचारपत्र नियंत्रक आदेश के तहत चला था। 'फिर उसी साल .....' से शुरू होने वाला वाक्य रद्द समझें। **पृष्ठ ५९ :** 'समाचार सुधावर्षण' की प्रतियों के संदर्भ में 'नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता' के बदले कृपया 'ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन' पढ़ें।

—संपादक

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-वृष्टि

हास्य और व्यंग्य की रचनाओं से छलकता हुआ मार्च अंक आया। पाठकों के मन-मस्तिष्क को ताजा बनाये रखने के लिए कितना श्रम करते हैं आप लोग! हास्यलेख तो बढ़िया थे ही, दो अन्य लेखों ('ख्रुश्चोव की जीवन-सांझ' और 'क्रेमलिन की झांकी युगोस्लाव नजरों से') से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ, जिनमें रूस की राजनीति का अंतरंग चित्र मिलता है।.... एक शिकायत करूं? आप सामयिक विषयों पर अपनी राय नहीं छापते, क्या यह पाठकों के साथ अन्याय नहीं है?

—राकेश शर्मा, होशंगाबाद, म. प्र.

०००

संदर्भ: ख्रुश्चोव की जीवन-सांझ, मार्च अंक। रूसी विसहमति के नेता इतिहासकार रॉय मेडवेडेव ने अपने चर्चित लेख में एक बात यह भी कही है कि रूस के कर्णधार ख्रुश्चोव को चाहे कुछ भी समझते हों, जिन तीन दिवंगत रूसी राजनेताओं की समाधियों पर आम जनता आज भी सबसे ज्यादा फूल चढ़ाती है, उनमें ख्रुश्चोव भी एक हैं; शेष दो हैं—लेनिन और स्तालिन। मुझे आश्चर्य है कि श्री चंद्रकांत विनीत ने यह जानकारी क्यों छोड़ दी; क्योंकि जहां से उन्होंने इस सामग्री का इतना सुंदर सारोद्धार किया है, वहीं यह बात भी छपी थी।

—नागेश्वर वर्मा, वाराणसी

०००

रवीन्द्रनाथ त्यागी के 'भद्र पुरुष' (मार्च अंक) में सुरुचि-संपन्न पाठकों को संतोष देने की क्षमता थी। त्यागीजी का अपना विशिष्ट अंदाज है, विषय-वस्तु के निर्वाह की अपनी विधि है, जो एक विदेशी रचना से प्रेरित इस निबंध में भी अक्षुण्ण है।.... यह बात खली कि इतने आकर्षक मुखपृष्ठ का कोई परिचय नहीं दिया गया।

—शांतिलाल लूकड़, जोधपुर

०००

आजकल पुस्तकों के सार-संक्षेप नियमित रूप से नहीं छप रहे हैं। इस ओर ध्यान दें। वैसे इधर के अंक अच्छे निकले हैं।

—जगदीशप्रसाद मिश्र, सुलतानपुर, उ. प्र.

०००

मुल्ला नसरुद्दीन से फिर से मिलकर बड़ा आनंद आया। जितनी बार भी वे मिलें, मन प्रफुल्लित ही होगा।

—डा. राजकुमारी मिश्र, कलकत्ता

०००

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से: एक वर्ष : ६० रु., दो वर्ष : १०५ रु., तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३००रु.; एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

'रिक्शेवाले से बढ़ते-बढ़ते.....'(अवनीन्द्र विद्यालंकार, मार्च अंक) बहुत ही प्रेरणा-दायक था। ऐसे छोटे, प्राणवंत लेखों की संख्या ज्यादा रखने का यत्न कीजिये। ये जीवन में हमारी आस्था बढ़ाते हैं।

—जयश्री बी. राव, धारवाड

०००

श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का लेख 'चिरकुमार भारतीय राजनीति के' अपने



पश्चिम बंगाल के प्रथम कुंआरे मुख्यमंत्री डा. प्रफुल्लचंद्र घोष, जिनका चित्र हम मार्च अंक में जुटा नहीं पाये थे।

ढंग की चीज थी। मगर उसमें सरदा भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद की चि कुमारों में गणना करना ठीक नहीं ला 'चिरकुमार' शब्द मेरे खयाल से बंगला हिंदी में आया है। ज्ञानमंडल के 'बृहत् हिं कोश' ने उसका अर्थ दिया है—'आजीव क्वाँरा रहने वाला'। विवाह की साम उम्र बीत जाने पर भी जो कुंआरा र उसी के लिए यह विशेषण ठीक है। भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद उस उम्र लांघने से पहले ही शहीद हो गये। इसलि उन दोनों को 'कुंआरा' तो कहा जा सकत था, 'चिरकुमार' नहीं।

—विनीता सरकार, पट

* शीर्षक में 'चिरकुमार' शब्द रोचक की खातिर हमने जोड़ा था; लेखक ने शीर्षक में 'कुंआरे' शब्द ही रखा था।

—संपाद

०००

जनवरी अंक में संत निहालसिंह श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का लेख बे पसंद आया था। फरवरी अंक में पत्रवृ स्तंभ में श्री दीनानाथ सिद्धांतालंकार टिप्पणी पढ़ी कि संत निहालसिंह अं के लेखक ही थे और उनके लेख हिंदी 'विशाल भारत' आदि को छोड़कर अन्य नहीं छपे हैं। यह टिप्पणी साधार नहीं है संत निहालसिंह के लेख सरस्वती, चां माधुरी आदि में भी छपते थे। उदाहरण लिए 'सरस्वती' के मई १९३३ अंक में उनके लेख की कतरन है। यह बात स

है कि उनके लेख प्रायः विश्व-राजनीति पर होते थे।

—ओंकार पारीक, डिब्रूगढ़–७८६००३

०००

श्री देवेन मेवाड़ी का खोजपूर्ण और ज्ञानवर्धक लेख 'कित्ते कित्ते कुकुरमुत्ते' (फरवरी अंक) पढ़कर इस महंगी सब्जी से संबंधित अपना एक अनुभव याद हो आया।

सन १९३४-३५ में मैं बंबई में एक हिंदी दैनिक का सहायक संपादक था। उन दिनों दिल्ली, पंजाब, उ. प्र. की तरफ के लोगों को उस शहर में आसानी से मकान नहीं मिलते थे। एक हमपेशा मित्र की मदद से माटुंगा में किंग्स सर्कल के पास छोटी रसोई वाला एक कमरा किसी तरह मिल सका। फ्रंटियर मेल से लाहौर से लंबी यात्रा करके जब परिवार बंबई पहुंचा, उसे इस कमरे में टिकाकर मैं दफ्तर चला गया। पत्नी धूप में सुखाये हुए कुकुरमुत्ते (गुच्छियां) अपने साथ लायी थी। उसने सब्जी बनाने के लिए वे स्टोव पर चढ़ा दिये।

करीब दो घंटे बाद जब मैं घर पहुंचा, अपने कमरे के सामने का दृश्य देखकर भौंचक्का रह गया। इमारत के चार-पांच लट्ठबंद चौकीदार नाक पर कपड़ा बांधे दरवाजे पर खड़े थे और भीतर बीवी-बच्चे रो रहे थे। पड़ोस की तीन-चार औरतें व बच्चे भी तमाशबीन बनकर पास ही खड़े थे। मुझे देखते ही चौकीदारों का मुखिया बोला—'इस कमरे में तुम नये किरायेदार बनकर आये हो न, अभी कमरा खाली करो।'

कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेजकर मंगवायी जा सकेगी। —संपादक

सहमते हुए कारण पूछा तो बोला—'तुमने तो कहा था कि तुम मांस नहीं खाते, पर तुम्हारे घर में मांस पक रहा है। पहले ही दिन यह धोखाधड़ी! इसीलिए तो हमारे सेठिया लोग तुम्हारे देश वालों को किरायेदार नहीं रखते।'

गरजमंद होने के नाते मैंने बड़ी विनम्रता से उसे समझाया कि हमारे परिवार में मांस खाया तो क्या, छुआ भी नहीं जाता। इस

विख्यात पत्रकार स्व. संत निहालसिंह— श्री ओंकार पारीक, डिब्रूगढ़ के भेजे हुए चित्र पर से ओके-रचित रेखाचित्र।

पर लट्ठबंद बोला— स्टोव पर रखी पतीली में मांस नहीं पक रहा है? इतनी बदबू फैल रही है।' तब मैंने उसे गुच्छी के बारे में विस्तार से समझाया और स्टोव पर से पतीली उतरवाकर पहरेदारों से उसकी छानबीन करने को कहा। लठैत पहरेदारों और पड़ोसियों को अंततः संतोष हो गया कि वह मांस नहीं, सब्जी ही है और उनकी नाक पर से पट्टी उतरी। बाद में तो पड़ोसियों से हमारा बहुत सौहार्दपूर्ण संबंध हो गया।

—दीनानाथ सिद्धांतालंकार, जयपुर

०००

नवनीत के अक्तूबर के अंक में श्री कृष्णकांत दुबे के लेख 'विंध्य मेरे भीतर' में पारिजात पुष्प (हारसिंगार या निक्टेन्थिस आर्बोरट्रिस्टिस) के सौंदर्य और मोहक सुगंध के विषय में तो आपने पढ़ा था। अब जरा उसके गुण-धर्म भी पढ़िये :

आयुर्वेद के अनुसार यह ज्वरघ्न, कफघ्न, यकृत-उत्तेजक, आनुलोमिक, वायुशामक तथा त्वक्दोषहर है। इसके पत्ते सेन्टोनीन की तरह कृमिघ्न, कटु, पौष्टिक, पित्तद्रावक और आनुलोमिक हैं। इसके गुण पत्तों में सर्वाधिक हैं। ज्वर में ताजी पत्तियों का रस और अदरक का रस समभाग मिलाकर पीने से बड़ा लाभ होता है (डा. वामन गणेश देसाई कृत द्रव्यगुण-विज्ञान, पृष्ठ २५६)। पुराने एवं जटिल ज्वर में प्रायः सभी वैद्य इसके पत्तों के रस के अनुपान से औषध-सेवन कराते हैं। इसका ज्वरनाशक गुण वैद्य-समाज में सुप्रसिद्ध है।

मेरे अनुभव में गृध्रसी अर्थात् साइटिका रोग में हारसिंगार के पत्तों का काढ़ा सुबह शाम २ से ४ तोला तक की मात्रा में पीने से शीघ्र ही अत्यंत लाभ होता है। वृंदावन में टेलिफोन एक्सचेंज के इन्चार्ज श्री केदारनाथ मिश्र के वृद्ध पिता गृध्रसी (साइटिका) रोग के कारण खटिया से उठ भी नहीं सकते थे। उन्हें मुझे दिखाया गया तो मैंने रोग की असाध्य स्थिति समझकर चिकित्सा करने से इन्कार कर दिया। दो महीन बाद वही सज्जन मुझे बाजार में चलते-फिरते मिले तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि हारसिंगार के पत्तों का काढ़ा पीने से मैं बिलकुल स्वस्थ हो गया हूं। वैसे आश्चर्य होना तो नहीं चाहिये था; क्योंकि यह वचन विद्यमान है :

शेफालिका दलैः क्वाथो मृद्वग्निपरिसाधितः
दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत्

[चक्रदत्त, वातव्याधि चि. श्लो. ४...]

—शेफालिका (पारिजात) के पत्तों का मंद अग्नि पर पकाया हुआ क्वाथ (काढ़ा) पीने से असाध्य गृध्रसी रोग दूर होता है।

हारसिंगार के पत्तों के क्वाथ का प्रयोग मैंने गृध्रसी के सैकड़ों रोगियों को सेवन कराया है और उन्हें इससे बढ़ा उत्तम लाभ हुआ है।

इस प्रयोग के संबंध में साइटिका के किसी भी रोगी या उसके अभिभावक को कुछ विशेष जानकारी करनी हो, तो...



…यातुल्ला खोमेनी के नारी-स्वातंत्र्य-विषयक दकियानूसी विचारों के विरुद्ध तेहरान में स्त्रियों का प्रदर्शन। **खोमेनी पर लेख पृष्ठ २० पर।**

…खे पते पर जवाबी पत्र भेजकर जानकारी …प्त करें।

–वैद्य रामनारायण शर्मा,
रामनारायण आयुर्वेद भवन औषधालय,
…कृष्ण जन्मस्थान, जन्मभूमि, मथुरा, उ.प्र.

०००

नवनीत मैं लगातार पढ़ता रहा हूं। पत्रिका …च्छी है। परंतु खेद यह है कि ज्यादा …मसाला आप साहित्यिक रुचि के शहरी …पाठकों की भूख मिटाने का ही रखते हैं। …आप भी वही भूल कर रहे हैं, जो आज तक हमारे देश की सभी सरकारें करती चली …आ रही हैं–यानी देश की ८५ आबादी को …जो कि ग्रामवासी है, आप भी दरगुजर कर …रहे हैं। दिसंबर अंक में दालों व यूकेलिप्टिस …के बारे में दो लेख पढ़कर खुशी हुई थी। …मेरे गांव के कई लोगों ने मुझसे वह अंक …लेकर पढ़ा और एक को तो ये लेख इतने …पसंद आये कि उसने अंक ही नहीं लौटाया। …परंतु जनवरी अंक में मामला आपने फिर गोल कर दिया। उम्मीद है, फसलों व कृषि के बारे में एक बढ़िया लेख तो हर अंक में जरूर रखेंगे।

–के. पी. सिंह, खमानो, लुधियाना, पंजाब

०००

वैसे तो मैं **नवनीत** का नियमित पाठक हूं। लेकिन पहली बार पत्र लिख रहा हूं। यों कहिये लिखने को बाध्य हुआ हूं। कारण हैं जनवरी अंक की श्रेष्ठ कविताएं–'आज' (फकीरचंद तुली) और 'आदमी' (शिल्पिन थानकी)।

वैसे **नवनीत** की सामग्री अपने आपमें विशेषता लिये रहती है। लेकिन अच्छी हिंदी कहानी तो कभी-कभार ही पढ़ने को मिलती है। वैसे उसी अंक में छपी 'दरख्त' (राजेंद्र कुमार शर्मा) अच्छी लगी।

–श्याम कुमार राई,
ई. एफ. आर. फर्स्ट बटालियन,
पो. सलुआ, जि. मिदनापुर, प. बंगाल

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४
फोन : ३७२८४७
…व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग, ३२५, बेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४
फोन : ३९२८८७

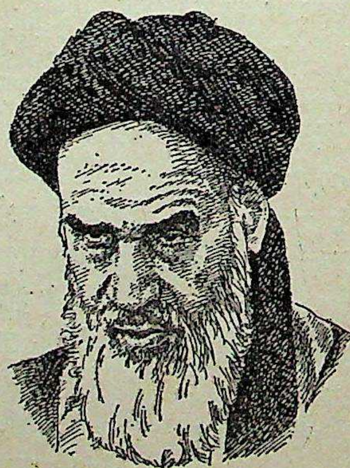
आयातुल्ला खोमेनी
ईरान के 'टेपरिकार्ड' मसीह

दीवान बरिन्द्रनाथ

कहते हैं कि होमर जब मरा तो यूनान में सात शहरों ने यह दावा किया था कि वह महान कवि उनके यहां का था। ईरान के ७८ वर्षीय धानपान-से नये लौह-पुरुष आकाए आयातुल्ला रूहुल्ला खोमेनी के विषय में कम से कम तीन मुल्क यही दावा कर रहे हैं। उनमें से एक तो ईरान है, दूसरा इराक और तीसरा है अपना देश भारत।

भारत में भी एक तरफ लखनऊ के एक उच्च शिया परिवार के मौलाना आगा रूही का कहना है कि खोमेनी के दादा उत्तर प्रदेश के बाराबंकी से पहले शिया धार्मिक स्थान नजफ (इराक) गये और बाद में कुम (ईरान) जाकर बस गये। (कुम को ईरानी इतिहास और शिया धर्म में वही स्थान प्राप्त है, जो भारत और हिंदू धर्म में काशी का है।) दूसरी ओर, भारत के ही एक और कोने कश्मीर से आ उठी है कि खोमेनी के पूर्वजों का संबंध उच्च कश्मीरी शिया परिवार से था।

हो सकता है कि लखनऊ वाले भी हों और कश्मीर वाले भी। उच्चस्त धार्मिक शिया परिवारों में दूर-दूर नाते करने का रिवाज बहुत आम है। यह है कि इस तरह एक ही जैसे ऊंचे वारों के दरम्यान नये बंधन स्थापित



आयातुल्ला खोमेनी
[पोर्ट्रेट : वी. एन. ओके]

यही कारण है कि इ और ईरानी, पाकि और ईरानी, भार और ईरानी-इ शिया परिवारों विवाह-संबंध आम पर होते रहते हैं।

हो सकता है खोमेनी भी इसी से एक नहीं बल्कि देशों से संबंधित हों। बात उल्लेखनीय है खोमेनी ने स्वयं यह नहीं कहा कि मूल

कहां के थे। एक प्रकार से उनकी इसी चुप्पी ने उनके सारे जीवन को रहस्यमय बना रखा है। आम लोग उनके बारे में यही जानते हैं कि वे ५६ वर्ष की उम्र तक ईरान के धार्मिक नगर कुम में शिया धर्म की शिक्षा देते रहे और इस शिक्षा में वे सबसे अधिक महत्व इस बात को देते थे कि इस्लाम—और विशेषतः शिया धर्म—किसी भी ताना-शाह सुल्तान को सहन नहीं कर सकता; ईरान में जो भी दुःखदायी बुराइयां हैं उनका कारण यह है कि शासक वर्ग धर्म के रास्ते से हट गया है; और ईरान ही नहीं बल्कि दुनिया के कल्याण का एक ही रास्ता है कि वह कुरान के बताये हुए सीधे रास्ते पर चले।

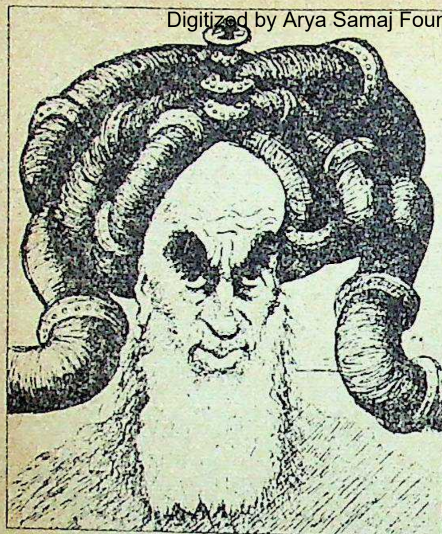
खोमेनी ने इस्लाम की जिस प्रकार से व्याख्या की, वह उस आम रास्ते से काफी भिन्न था जिसे ज्यादातर धार्मिक नेता अपनाये हुए थे। ज्यादातर धार्मिक नेताओं का कहना था कि वर्तमान शासक के सामने सिर झुकाना ही धर्म का पालन करना है। पर खोमेनी ने बताया कि इस्लाम में सबसे बड़ी बात यही है कि वह धर्म और राजनीति को अलग चीजें नहीं समझता। स्वयं हजरत मुहम्मद साहब के नाती हजरत हुसैन इराक में करबला के रेगिस्तान में केवल इसलिए लड़ते हुए शहीद हो गये कि वे एक जालिम शासक यजीद को मुसलमानों का खलीफा मानने को तैयार न थे।

खोमेनी की आवाज में भी एक ऐसा जादू है कि लाखों लोग उसे सुनकर बेताब हो जाते हैं। इसी पर उन्नीस वर्ष पहले वहां की सरकार ने उन्हें इतना परेशान किया कि वे कुम छोड़कर शिया धर्म के बहुत बड़े धार्मिक स्थान नजफ (इराक) चले गये। पिछले साल तक वे नजफ में ही एक छोटी-सी मस्जिद के तीन कमरों में रहते हुए धार्मिक स्वाध्याय करते रहे और साथ ही अपने टेप-रिकार्ड किये गये भाषणों से शाह ईरान के खिलाफ संघर्ष करती हुई ईरानी जनता को नयी प्रेरणा देते रहे।

यह कहना बिलकुल सत्य होगा कि



कारूं से भी बड़ा खजाना और साइरस के उत्तराधिकार का दावा भी शाह ईरान को तख्त पर टिकाये न रह सका।



खोमेनी के आदेश पर ईरानी श्रमिकों ने ईरान के विराट तेल-उद्योग को ठप कर दिया था।

खोमेनी की सफलता में काफी बड़ा हाथ टेप-रिकार्डर और कैसेट टेपों का भी है। उनके टेप इस कदर लोकप्रिय थे कि शाह के जमाने में जब ये बाहर से 'स्मगल' होकर ईरान में आते तो पौन घंटे के एक टेप की कीमत एक सौ से लेकर दो सौ रुपये तक पड़ती थी!

इन भाषणों में खोमेनी दो-तीन बातें ही बार-बार दुहराते थे। पहली तो यह कि ईरान के कल्याण की कुंजी इस्लाम में है और इस्लाम ऐसे शासक के विरुद्ध जेहाद अर्थात् धर्मयुद्ध की आवाज देता है। खोमेनी ने इस तरह से ये बातें कहीं कि वे ईरानी जनता के दिलों में उतर गयीं।

ईरान में पिछले बीस वर्षों में यों तो बहुत कुछ हुआ, लेकिन दो मुख्य बातें ऐसी हुईं जिन्होंने आखिरकार शाह का तख्ता पलट दिया। इनमें से एक तो यह थी कि आधुनिक प्रगति के बावजूद ईरानी शहरों में युवा पीढ़ी बेचैन हो रही थी कि सत्ता के ढांचे में उसके लिए कोई जगह नहीं है। ऊंचे पद पर जो भी लोग नियुक्त किये जाते, वे सबके सब शाह के गिने-चुने दोस्त और वफादार परिवारों के ही सदस्य होते थे।

दूसरी बात, देहात में गरीबी बढ़ती ही जा रही थी। कुछ ही साल पहले मैंने ईरान में कार से सफर करते हुए जो दृश्य देखा, वह हमारे देहात से शायद कई गुना बुरा था। यह हालत तब थी जब कि ईरान में तेल की दौलत का सैलाब आया हुआ था। शाह ईरान को आज भी इतना धनवान समझा जाता है कि अगर दुनिया के दस सबसे बड़े अमीरों की संपत्ति जमा कर दी जाये, तो भी शाह की संपत्ति उससे अधिक ही होगी। खोमेनी इसी दस अरब डालर की धनराशि को अमरीका और स्विट्जरलैंड के बैंकों से निकलवाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हां तो बात ईरान की बेचैनी की हो रही थी। यहां पर इस आंदोलन के मुख्य कारणों या उसके ढांचे का वर्णन करने का अवकाश नहीं है; लेकिन यह समझ लेना चाहिये कि ईरानी आंदोलन अपने प्रकार का एकमात्र जन-आंदोलन था, जिसमें आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सारे ही कारण मिलकर लोकतंत्र की एक आवाज बन गये थे। इस आवाज को जबान दी खोमेनी ने। पिछले साल के

इराक से निकलकर पेरिस चले गये। वहां से ईरान में अपने अनुयायियों के साथ उनका संबंध और गहरा हो गया और फिर जो कुछ हुआ उससे सभी परिचित हैं।

यह बात भी सभी जानते हैं कि तेहरान में अपने आखिरी दिनों में शाह ने बहुत कोशिश की थी कि किसी प्रकार खोमेनी से उनकी बातचीत हो जाये। कहा जाता है कि एक विशेष दूत के जरिये उन्हें संदेश भेजा गया कि अगर वे विद्रोह का रास्ता छोड़ दें, तो उन्हें ईरान का प्रधान-मंत्री बनाया सकता है। लेकिन खोमेनी ने यह कहकर शाह के किसी भी दूत से बात करने से इन्कार कर दिया कि जब शाह को सत्ता का वैध अधिकार ही नहीं है, तो वह किसी को प्रधान-मंत्री कैसे बना सकता है!

खोमेनी जब फरवरी के आरंभ में ईरान पहुंचे, उस समय भी शाह के नियुक्त किये हुए प्रधान-मंत्री डा. शापुर बख्तियार तेहरान पर हुकूमत कर रहे थे। लेकिन लाखों लोगों की भीड़ खोमेनी के लिए इस तरह उमड़ पड़ी कि छह दिन के अंदर-अंदर डा. शापुर बख्तियार का तख्ता पलट गया। खोमेनी के नियुक्त किये हुए डा. मेहदी बजारगां ने प्रधान-मंत्री के रूप में कारोबार संभाल लिया। ईरान इस्लामी लोकतंत्र बन गया और खोमेनी उसके लौह पुरुष बन गये।

लेकिन इस पर न तो खोमेनी की बात खत्म हो सकती है और न ईरान की समस्या ही। खोमेनी इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि दुनिया में—और खास तौर पर वर्तमान



खोमेनी के 'चुने' हुए प्रधान-मंत्री डा. बजारगां—असल में शासन-तंत्र पर अधिकार कितना ?

इतिहास में—वे एकमात्र धार्मिक नेता हैं, जिन्होंने एक पूरे राज्य को पलट दिया। अन्य देशों में जितने भी क्रांतिकारी आंदोलन हुए हैं, उनमें धार्मिक नेताओं ने क्रांतिकारियों का साथ भले ही दिया हो, परंतु उसका नेतृत्व पूरी तरह से उनके हाथ में कभी नहीं रहा। इस प्रकार का दूसरा उदाहरण मिलता है सिर्फ आर्चबिशप मिकारियोस का, जिन्होंने अपने छोटे-से द्वीप-देश साइप्रस को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चंगुल से न केवल मुक्त करवाया, बल्कि आखिरी दम तक उसका नेतृत्व भी किया।

लेकिन न तो ईरान साइप्रस जैसा छोटा-सा देश है और न उसकी समस्याएं ही सीधी-सादी हैं। मौलाना खोमेनी के सामने आज कई प्रकार की चुनौतियां मौजूद हैं। एक तो व्यक्तिगत प्रकार की भी है। अभी से उंगलियां उठनी शुरू हो गयी हैं कि उनके परिवार के लोग—दो बेटे और दो बेटियां और दामाद—राजनीति में काफी दखल दे रहे हैं। उनके ५६ वर्षीय बड़े बेटे के बारे में विशेष तौर पर कई तरह की आलोचना-

त्मक बातें कही जा रही हैं। (उनके एक बेटे को शाह के एजेंटों ने १९६९ में इराक में जहर देकर मरवा दिया था।) सवाल यह है कि क्या खोमेनी इस मामले में भी नया रेकार्ड कायम कर सकेंगे कि जन-आंदोलन के सहारे सत्ता प्राप्त करने वाले नेता अपने बेटों, बेटियों और दामादों के चक्रव्यूह में बंदी बनकर न रह जायें?

दूसरा, इससे भी बड़ा प्रश्न यह है कि ईरान का पूरा आंदोलन दक्षिणपंथियों और वामपंथियों में बंटा हुआ है। शाह के विरुद्ध संघर्ष करते समय सब एक थे; लेकिन अब स्थिति यह है कि खोमेनी के बार-बार अनुरोध करने पर भी लगभग पांच से लेकर दस लाख तक स्वयंसेवकों ने अपने हथियार नहीं लौटाये। इन्होंने शाह की सेनाओं के खिलाफ बंदूकें संभाली थीं। खोमेनी का सबसे बड़ा इम्तहान यह होगा कि वे किस प्रकार साम्यवादियों और इस्लामी तत्त्वों को एक साथ मिला पाते हैं। यह बात साफ जाहिर है कि ईरान के शहरों में, विशेषत: विद्यार्थियों और श्रमिकों में साम्यवादियों का काफी असर है और यदि इनसे समझौता न हुआ तो स्थिति काफी बिगड़ सकती है।

तीसरी बात यह भी याद रखनी चाहिये कि शाह के शासन के दौरान ईरानी समाज में काफी आधुनिक परिवर्तन हुए थे। विशेषत: ईरानी महिलाएं अब पीछे हटने को तैयार नहीं हैं। खोमेनी ने यह आश्वासन तो दिया है कि महिलाओं को इस्लामी मामलों में पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त होंगे; लेकिन उन्हें इस्लाम और आधुनि[कता] में पूरी तरह तालमेल पैदा करने के [लिए] अभी काफी प्रयत्न करना पड़ेगा।

ईरान में विभिन्न प्रकार के नस्ल-आ[धा]रित फिरके भी मौजूद हैं। ईरानी सीमा[ओं] पर काफी बड़ी संख्या में बलोच, कुर्द [और] अजरबाइजानी (मुगल) नस्लों के लो[ग] आबाद हैं। इन लोगों के बीच कुछ विदे[शी] शक्तियां भी अपना असर जमाती रही हैं। यह देखना है कि खोमेनी के व्यक्तित्व [का] प्रभाव इन फिरकों पर भी होता है या नहीं। डर यह है कि ऐसे किसी गैरईरानी इला[के] से विद्रोह का सिलसिला शुरू हो सकता है।

और अंत में, यह भी नहीं भूलना चाहि[ए] कि अब भी ईरान में अमरीकी सी. आइ. [ए.] और शाह की अपनी गुप्त पुलिस सावक [के] षड्यंत्र खत्म नहीं हुए हैं। इन षड्यं[त्रों] के पीछे करोड़ों बल्कि अरबों डालर [की] संपत्ति मौजूद है। कोशिश यही होगी [कि ईरान] गृहयुद्ध में उलझ जाये और फिर वहां [की] सरकार के विरुद्ध ऐसा विद्रोह उठे कि उ[सके] बहाने शाह दुबारा वापस आ जायें। [सन्] १९५३ में जब डा. मोसद्दिक की सर[कार] आयी थी, तो छह महीनों के अंदर-अं[दर] यही कुछ हुआ था।

अब देखना यह है कि खोमेनी किस [हद] तक इस बात को साबित कर पाते हैं [कि] इतिहास कभी अपने आपको दुहराता न[हीं]।

—२, निजामुद्दीन वेस्ट मा[र्केट]
नयी दिल्ली-११००[१३]



श्रीगोपाल नेवटिया लेख-प्रतियोगिता (१९७८) में
तृतीय पुरस्कार प्राप्त लेख :

क्या औद्योगिक विकास की बलि चढ़ाये बिना ग्राम-विकास संभव है..... और कैसे?

श्रीमती मणि आनंद

जे/३०, जनकपुरी कालोनी, अलीगढ़, उ. प्र.



जो देश ग्रामों का देश हो, जिसकी अधिकांश आबादी ग्रामों में रहती हो, वह अगर अपनी जनसंख्या के केवल १९ प्रतिशत के आर्थिक संवर्धन की योजना बनाकर कहने लगे कि मैं भी अब विकसित देशों की श्रेणी में आने की अवस्था में हूं, तो निश्चय ही वह बहुत बड़े भ्रम में पड़ा हुआ है। वस्तुतः भारत ऐसे अर्थशास्त्री, राजनीति शास्त्री और समाजशास्त्री पैदा कर रहा है, जो यूरोपीय परिस्थितियों में उपजे अर्थ-सिद्धांतों की सार्वदेशिक प्रामाणिकता एवं सार्वकालिक व्यावहारिकता के प्रति पूर्णतया आश्वस्त हो चुके हैं, जिसके कारण जटिल एवं विरोधाभासी आर्थिक समस्याओं के निराकरण के लिए प्रगतिशील एवं सम्यक् आर्थिक विचारों को शास्त्रीय मान्यता प्राप्त ही नहीं हो पाती। यही कारण है कि इस प्रतियोगिता में जो प्रश्न रखा गया है (क्या औद्योगिक विकास की बलि चढ़ाये बिना ग्राम-विकास संभव है, और कैसे?) उसमें इतनी बड़ी मजबूरी की परोक्ष ध्वनि निकल रही है।

हमने अपनी आर्थिक संस्कृति को भुलाकर यूरोपीय आर्थिक सभ्यता के आधार पर पूंजीगत बड़े उद्योगों का निर्माण किया है। अब ये विशाल पूंजी वाले उद्योग हमारी सारी आर्थिक समस्याओं का समाधान करना तो दूर रहा, बल्कि तरह-तरह के आर्थिक दूषणों को जन्म दे रहे हैं। वैसे हमारे देश के कुल उत्पादन एवं आर्थिक



श्रीमती मणि आनंद

संरचना में बहुत कुछ परिवर्तन इनके द्वारा हुआ है। इन पर पूंजी का विनियोजन इतना हो चुका है कि इनके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है। यही कारण है कि अब ग्रामों का विकास औद्योगिक विकास की गति को बिना रोके किया जाना है— वह भी औद्योगिक विकास के पूरक रूप में। जबकि यथार्थ में होना तो यह चाहिये था कि ग्राम-विकास के पूरक के रूप में औद्योगिक विकास हो।

अर्थशास्त्र कोई सर्वव्यापी, सर्वमान्य, सार्वकालिक विज्ञान नहीं है। देश, काल, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का जितना अधिक प्रभाव अर्थ-विज्ञान पर पड़ता है, उतना और किसी विज्ञान पर नहीं। विकास के विभिन्न चरण, विभिन्न राष्ट्रों में एक जैसी आर्थिक परिस्थितियों से अभिप्रेरित नहीं होते हैं। अर्थशास्त्र की सर्व-ग्राह्यता एवं प्रभावकारिता संबंधी भ्रामक मान्यता के परिणाम-स्वरूप अधिकांश देशों में यूरोपीय अर्थनीतियों का व्यापक अंधानुकरण हुआ है, और उससे आर्थिक जटिलताओं में वृद्धि हुई है। भारत के बारे में मैं विशेषतः कह सकती हूं कि निश्चय ही वह इस भ्रांत धारणा का शिकार हुआ है। इस स्थिति से उबरने का एकमात्र उपाय यह है कि हम अपनी विकसित की हुई तकनीक एवं परिस्थिति के आधार पर तथा हमारे जैसे अन्य कृषि-प्रधान देशों की विकास-प्रक्रिया के अनुभव का लाभ लेते हुए अपनी आर्थिक संरचना को तीव्रता के साथ मजबूत बनायें।

भारत पूंजी-प्रधान अर्थव्यवस्था का नहीं, अपितु श्रम-प्रधान अर्थव्यवस्था का राष्ट्र है। इसीलिए मैं यह कह सकती हूं कि गांधीजी का अर्थ-चिंतन जो कि उद्योग-प्रधान न होकर कृषि-प्रधान था, साम्राज्यवादी न होकर लोकतांत्रिक था—आज की हमारी आर्थिक संस्कृति में अत्यंत व्यावहारिक एवं समीचीन है। और प्रो. जे. के. मेहता ने अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थव्यवस्था : समस्याएं एवं प्रतिविधान' के पृष्ठ १ पर गांधीजी के यथार्थ चिंतन के बारे में एक विदेशी अर्थ-चिंतक की जो टिप्पणी उद्धृत की है, उससे हमारे देश के योजनाकारों की आंखें खुल जानी चाहिये :

'अभी हाल में एडवर्ड गोल्डस्मिथ ने कहा है कि औद्योगिकी सभी समस्याओं

का समाधान नहीं कर सकती। सर्वाधिक औद्योगीकृत राष्ट्र सं. रा. अमरीका भी निर्धनता और अपर्याप्त पोषण का निराकरण करने में असमर्थ है। इसके साथ ही वहां औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण प्रदूषण, व्यापक रोग, जनसंख्या का संकेंद्रण, अपराध एवं नये-नये रोग व्याप्त हैं। इसलिए उन्होंने पाश्चात्य देशों से गांधी-निर्देशित पथ के आधार पर अपने समाज और अर्थ-व्यवस्था को परिवर्तित करने को कहा है।'

ऐसा ही विचार हमें 'डीसेन्ट्रलाइज्ड डेवलपमेन्ट–ए सिंपोजियम' (वोरा एंड कंपनी, बंबई, १९५९) में वाडीलाल डगली के प्राक्कथन में मिलता है कि यहां के 'शहरों में सभी आधुनिक एवं सुसंघटित आर्थिक गतिविधियों के संकेंद्रण का एक परिणाम यह हुआ है कि शहरों में ही राष्ट्र का आर्थिक अतिरेक (इकनॉमिक सरप्लस) केंद्रित हो गया है। न केवल आर्थिक स्रोत शहरों में जमा हो गये हैं, बल्कि राष्ट्र का लगभग सारा बौद्धिक एवं सांस्कृतिक जीवन शहरों में सिमट आया है। ऐसी परिस्थितियों में ताज्जुब नहीं कि ग्रामीण जनता का सुविज्ञ अंश भी शहरों में नौकरी ढूंढ़कर शहरी जीवन अपनाने को लालायित रहता है। इस प्रकार के स्थानांतरण से ग्रामीण क्षेत्रों को प्रगतिशील लोगों से वंचित हो जाना पड़ा है, ग्रामीण जीवन की नीरसता बढ़ गयी है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में देश की ४/५ जनता निर्धनता से ग्रस्त नीरस जीवन बिताने को मजबूर है।' इतना ही नहीं, जैसा कि एक सर्वेक्षण से स्पष्ट हुआ है, एक आदमी के गांव से शहर में आकर बसने से राष्ट्र पर उस एक व्यक्ति के लिए पांच लाख रुपये की सामाजिक लागत का अतिरिक्त भार पड़ता है, जबकि उसी व्यक्ति को उसके ही गांव में रोजगार आदि दिलवाने में मात्र पांच हजार रुपये की सामाजिक लागत का बोझ पड़ता है। इसलिए आवश्यक है कि ग्राम-विकास इस तरह किया जाये कि उससे बड़े उद्योगों के विकास व उत्पादन में भी वृद्धि हो और ग्रामीणों का प्रवास भी शहरों में न हो।

उद्योग एवं कृषि दोनों ही क्षेत्र देश के लिए धन का उत्पादन करते हैं। इस उत्पादन में (१९७३-७४ के आंकड़ों के अनुसार) ४२·६ प्रतिशत हिस्सा केवल कृषिक्षेत्र का है, जबकि ग्रामक्षेत्र पर विभिन्न योजनाओं में मात्र १७ प्रतिशत से लेकर अधिक से अधिक २१-२२ प्रतिशत तक व्यय किया गया है। अब सरकारी नीति के अनुसार छठी योजना में पहली बार ग्राम-विकास पर कुल राष्ट्रीय आय का ४० प्रतिशत व्यय करने का लक्ष्य रखा गया है। वर्तमान सरकार की इस नीति से कहा जा सकता है कि पूंजी-प्रधान उद्योग एवं तकनीकी विकास को रोके बिना ग्राम-विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जायेगा।

अतः अब मूल प्रश्न (क्या औद्योगिक विकास की बलि चढ़ाये बिना ग्राम-विकास संभव है, और कैसे?) के उत्तर में, उक्त

नीति एवं अपनी निर्मित आर्थिक संरचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि बड़े उद्योगों के विकास के साथ-साथ ग्राम-विकास संभव है, बशर्ते कृषि से संबद्ध कुटीर, आवश्यकता पर आधारित, स्रोत पर आधारित उद्योगों का पक्का माल (उत्पादन) लघु उद्योगों के लिए कच्चा माल हो और लघु उद्योगों का उत्पादन बड़े उद्योगों के लिए कुछ क्षेत्रों में कच्चा माल होने लगे। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत की वर्तमान आर्थिक संस्कृति की संरचना की पृष्ठभूमि को देखते हुए गांव-शहर के बीच की दूरी को समाप्त करने के लिए बृहत एवं लघु उद्योग अब परस्पर पूरक बनें बजाय इसके कि एकपक्षीय दृष्टि से लघु उद्योग बृहत उद्योगों के पूरक हों या बृहत उद्योग लघु उद्योगों के पूरक हों। जापान की तरह हमारे यहां लघु उद्योग बड़े उद्योगों के सहायक उद्योग के रूप म भी विकसित किये जा सकते हैं। इससे उत्पादन के साधनों की सीमितता की समस्या हल की जा सकेगी। इतना ही नहीं, एक आर्थिक शृंखला का भी निर्माण हो जायेगा। गांधी के राष्ट्र का उत्थान ग्राम की अंतिम इकाई—पिछड़े वर्ग के दीन व्यक्ति—के उत्थान से ही संभव हो पायेगा। इसके साथ-साथ रोजगार के अवसर एवं प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि होगी। छठी योजना के अंत तक १४ प्रतिशत औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य सुगमता से प्राप्त होगा।

ग्राम-विकास के निमित्त नवीन उपक्रमियों को प्रोत्साहन देने के लिए ग्रामीण क्षेत्र के उद्योगों के वस्तु-उत्पादन का क्षे निश्चित कर दिया जाये और उन वस्तु का उत्पादन बड़े उद्योग के क्षेत्र में न हो दिया जाये। सरकार ने लघु उद्योगों क्षेत्र में ८०७ प्रकार की वस्तुओं के उत्पाद का निर्धारण किया है। (हिंदुस्तान टाइम्स २१ नवंबर १९७८, पृष्ठ ७)। इससे पूंजी-प्रधान उद्योगों एवं श्रम-प्रधान उद्योगों में लयबद्धता पैदा करके विकास-प्रक्रिया और तीव्रता पैदा की जा सकेगी, स्थानी सामग्री एवं तकनीक का उपयोग हो सकेगा। पूंजी-प्रधान उद्योग के पास जो उच्च तकनीक है, उसका दोहन लघुउद्योगों के विका में उपयोग करके किया जा सकेगा। बृह उद्योगों को भी देश से ही बहुत कुछ कच्च सामग्री प्राप्त हो सकेगी। इस प्रक्रिया निर्यात-अतिरेक (एक्सपोर्ट सरप्लस) प्राप्त होगा। उस अतिरेक (सरप्लस) का ला पूंजी-प्रधान उद्योगों के लिए नवप्रवर्तं युक्त तकनीक के आयात करने के लि उठाया जा सकेगा। इससे विकेंद्रीकर की प्रक्रिया में तेजी आयेगी, केंद्रीकरण क प्रवृत्ति में कमी होगी। कृषिक्षेत्र को प्रबंधकीय तकनीक का लाभ प्राप्त होगा देश के संतुलित विकास में विवेकपूर्ण दृष्टि कोण प्रयुक्त होगा।

क्षेत्रीय संतुलन को प्रोत्साहित करने लिए जहां ७ से ८ करोड़ बेरोजगार लो के लिए कुटीर, ग्रामीण एवं लघु उद्यो के विकास की आवश्यकता है, वहीं कु

एवं विकसित पूंजी की भी इन उद्योगों के लिए आवश्यकता है। इस बात की पुष्टि अन्य अर्थचिंतकों ने भी की है। जैसा कि एच. के. परांजपे ने अपनी लेखमाला 'इंडियाज स्ट्रैटेजी फॉर इंडस्ट्रियल ग्रोथ' (दि इकनॉमिक टाइम्स; ४, ५ तथा ६ जुलाई १९७४) में चीन के अनुभवों से उदाहरण देते हुए कहा है–'उचित नीति के निर्माण से स्थानीय मांग की पूर्ति के लिए श्रम-प्रधान तकनीकों का प्रयोग करके स्थानीय श्रम, स्थानीय सामग्री तथा तकनीकों का बेहतर प्रयोग हो सकता है। हमारी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संभवतः उद्योगों को विकेंद्रित करना आर्थिक दृष्टि से बेहतर होगा। परंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिये कि पूंजी-प्रधान उद्योगों की आवश्यकता नहीं होगी। निश्चय ही धातु-कर्म उद्योग, खनन, भारी रसायन तथा मशीन-निर्माण उद्योग इस प्रकार के होंगे, जिनमें भारी पूंजी-निवेश की आवश्यकता पड़ेगी। परंतु पूंजी और श्रम की सापेक्ष कीमत एवं वांछनीयता का ध्यान रखने पर औद्योगिक तकनीकों के प्रति हमारा दृष्टिकोण अधिक विवेकपूर्ण होगा।' इस उद्धरण का तात्पर्य यह भी है कि ग्रामोत्थान में बाधक मुख्य समस्याएं बेरोजगारी एवं पूंजी की कमी का सामना तभी संभव है, जब बड़े उद्योग अपने पूंजीगत तथा विकसित तकनीकी स्रोतों को गांवों की ओर मोड़ें, गांवों-शहरों के बीच की कड़ी को जोड़ने वाले सहायक उद्योगों एवं लघु उद्योगों को बड़े उद्योगों की आधुनिक तकनीक का लाभ गांवों में ही मिले।

बृहत उद्योग एवं कुटीर-लघु-उद्योग में बिना प्रतियोगिता के विकास की नीति का निर्धारण होना चाहिये। बड़े उद्योगों के लिए लघु उद्योग एवं लघु उद्योगों के लिए ग्रामीण उद्योग, सहउद्योग के रूप में विकसित किये जायें।

गांवों से कच्चा माल प्राप्त करने वाले बड़े-बड़े उद्योगों को अपनी वस्तुओं से संबंधित कार्य-कलापों में ग्राम-विकास को सम्मिलित करना चाहिये। अपने कारखानों के आस-पास के गांवों या गांवों के समूह को गोद लेने की प्रक्रिया अपनाने से वे ग्रामोत्थान में सहायक हो सकते हैं – जैसे कृषि-उत्पादन, पशु-मुर्गी पालन उद्योग, डेरी उद्योग, जनकल्याण कार्यक्रमों को ग्रहण करना।

जिन कंपनियों का व्यवसाय कृषि-उत्पादन-साधनों से संबंधित है, उन्हें गांवों में कृषि-विकास के तरह-तरह के प्रोग्रामों का प्रदर्शन करना चाहिये, किसानों को उत्पादन-लागत के आधार पर कृषि-औजार उपलब्ध कराने चाहिये। कंपनियों द्वारा गांवों में नयी मशीनी तकनीकी ज्ञान प्रदान करने वाली 'परामर्शदात्री' सेवा-समितियां स्थापित की जानी चाहिये।

जो कंपनियां या बड़ी संस्थाएं अपने प्रोग्रामों के माध्यम से गांवों के पिछड़े वर्गों (जैसे–छोटे किसानों, कृषि-श्रमिकों, सामान्य श्रमिकों, ग्रामीण दस्तकारों एवं गरीबी रेखा से नीचे जीने वाले लोगों) को अपने

उद्योग से संबंधित उत्पादन प्रदान करने के लिए प्रोत्साहन दे रही हैं, उनका प्रचार-प्रसार अन्य क्षेत्रों में भी किया जाना चाहिये। उनसे जिन वर्गों को लाभ पहुंचा है, उन्हें परियोजना में जरूर शामिल करना चाहिये।

सरकार की नवीन नीति के आधार पर यह भी देखा जाना चाहिये कि ग्रामीण क्षेत्रों में पाये जाने वाले उद्योगों में स्वरोजगार के अवसर समयबद्ध योजना के आधार पर दिये जा रहे हैं या नहीं। अन्य ग्राम-विकास योजनाओं को (जैसे उद्यान-कृषि, बागान, वनोद्योग आदि जैसे उद्योगों को) मूल्यांकन के साथ, फैलाना चाहिये।

जिला-स्तर पर ऐसी एकीकृत एजेंसी स्थापित की जाये जो ग्रामीण, कुटीर, नन्हे-नन्हे एवं लघु उद्योगों से सहयोग करे और उन्हें तरह-तरह की सेवाएं प्रदान करे—जैसे कि बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं से बिना विलंब सस्ती दरों पर वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना। इससे गांवों में ग्राम-वित्त संस्था का भी विकास संभव हो सकेगा।

कंपनियों तथा बड़ी व्यावसायिक संस्थाओं को ग्राम-विकास योजनाओं को अपने हाथ में लेने के लिए सरकार से राजकोषीय सहायता मिलनी चाहिये।

विकासखंड-स्तर पर उद्योग-केंद्र स्थापित किये जाने चाहिये। लेकिन वर्तमान सरकार ने संपूर्ण देश के ४६० जिलों में एक-एक जिला उद्योग-केंद्र स्थापित करने की पहल की है। इससे भी ग्राम-विकास में तीव्रता आयेगी। १९७९ के अंत तक सभी जिलों में ये उद्योग-केंद्र स्थापित हो जा... लेकिन यह जरूरी है कि इनके संचाल... प्रबंध के लिए जो प्रबंधक चुने जायें वे ... समस्याओं के जानकार हों। वे अपने ... संचालन में निपुण तो हों ही, बल्कि ... स्याओं से निबटने की स्वतंत्र तुरत-बु... युक्त भी हों।

शिक्षा के पाठ्यक्रम ऐसे बनाये जा... आज के हमारे महाविद्यालय एवं वि... विद्यालय ग्रामोन्मुख बनें। इन ... संस्थाओं के समस्त विभागों एवं कार्य... को ग्रामों से संबद्ध करने से भावी ... नागरिकों को अपने देश की यथार्थ ... स्याओं को समझने एवं उन्हें हल कर... व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होगा।

ग्रामों का औद्योगीकरण करने में नि... लिखित उपाय सहायक हो सकते ... १. गांवों में कुटीर, लघु एवं अन्य छो... उद्योग स्थापित करने के लिए सर्वे... संस्थाएं जिला एवं खंड स्तर पर स्था... की जायें; २. इन उद्योगों के लिए ... क्रमशीलता का प्रशिक्षण प्राप्त करके ... उन उद्योगों को अपनाने के लिए गांवों ... लोगों को प्रोत्साहित किया जाये; ३. ... उद्योगों के विकासार्थ उस क्षेत्र में तदनु... आर्थिक संरचना का निर्माण करना चा... (जैसे—सामान्य सुविधा-केंद्र, जल ... शक्ति, शेड एवं विकसित भूभाग का नि... करना); ४. वित्तीय संस्थाओं से ... जोड़कर औद्योगिक रूपरेखा एवं ... व्यवहार्यता-रिपोर्ट के साथ उपक्रमि...

हायता देना;

५. सभी प्रकार की आधुनिक तकनीकी हायता, यथा–निर्माण-इकाइयां, कच्चे ल एवं मशीनों की निरंतर उपलब्धता स्था उत्पादन को प्रोत्साहन देना एवं उनके ए बाजार उपलब्ध कराना; एवं

६. औद्योगिक संस्कृति को गांवों में हुंचाने और तकनीकी ज्ञान को ऊंचा ठाने के लिए प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना।

आज जिन-जिन प्रांतों में वहां की रकारें उक्त पद्धतियां अपना रही हैं, बिना सी राजनैतिक एवं संघटनीय भेदभाव उन्हें दूसरे प्रांतों को भी मार्ग निर्देशन ने एवं उनसे लेने के लिए आगे बढ़ना हिये, ताकि ग्राम-विकास की एक समय-बद्ध योजना राष्ट्रीय स्तर पर बन सके। इससे व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक का चातुर्दिक विकास हो सकेगा। इसमें बड़े-बड़े औद्योगिक एवं व्यावसायिक घराने अपने अनुभव, तकनीक एवं वित्तीय सामर्थ्य के ाथ सरकार को सहयोग दें।

सरकार द्वारा स्थापित जिला-स्तरीय विकास एजेंसी एवं राज्य-स्तरीय विकास निगम भी आर्थिक संरचना का निर्माण रके ग्रामोत्थान में सहायता दें।

अंत में मेरे दृष्टिकोण से व्यक्ति से र राष्ट्र तक के चातुर्दिक विकास की क्रिया में गांव और शहर के बीच की ी खाई को कम से कम समय में समाप्त किया जा सकता है, यदि ग्राम विकास के साथ-साथ बड़े उद्योगों का विस्तार किया जाता रहे।

लेकिन बड़े उद्योगों एवं ग्राम-क्षेत्रों के विकास में एक दूसरे की पूरकता के निर्माण की प्रक्रिया में जो परियोजना निर्मित की जाये, उसके लिए निम्नलिखित पांच बातें ध्यान में रखने योग्य हैं :

१. प्राजेक्ट (परियोजना) कमजोर ग्रामीण वर्ग अर्थात् भूमिहीन श्रमिक, नाममात्र के (मार्जिनल) कृषक, कारीगर आदि को क्या लाभ पहुंचायेगा ?

२. उस प्राजेक्ट के कारण क्षेत्र के कितने लोगों को रोजगार मिलेगा ?

३. इस प्राजेक्ट द्वारा प्राप्त रोजगार एवं स्वरोजगार से कितने लोगों का औद्योगिक घरानों के व्यवसाय से संबंध जुड़ेगा ?

४. प्राजेक्ट में स्थानीय लोगों की सहभागिता की मात्रा मापने का पैमाना क्या होगा ?

५. प्राजेक्ट लंबे समय की दीर्घकालीन आय दिलाने की क्या गारंटी देता है ?

यदि कोई परियोजना ऊपर की पांचों कसौटियों पर खरी न भी उतरे, तो भी कम से कम कल्याणकारी योजना के रूप में तो उससे लाभ प्राप्त किया जा सकता है। परंतु जब हम बड़े उद्योगों के विकास के महत्त्व को बिना कम किये ग्राम-विकास की बात करते हैं, तो हमें यह अनिवार्य रूप से समझ लेना चाहिये कि गांवों के गरीब लोगों को विकास-कार्यक्रमों से न्यूनतम जीवनयापन स्तर तो जरूर ही प्राप्त हो सके।



अपने लेखकों से

श्री संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कैसी रचनाएं लेते हैं? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये :

क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुरुचि को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।

ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बर्तो मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।

ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कलां के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।

* लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।

* रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर साफ अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।

* रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।

* रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

संपादक—नवनीत हिंदी डाइजेस्ट

नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई—३४

क्यों ?

बसता है तुम्हारा प्रभु तुम्हारे ही अंतर में
क्यों फिर भटकते हो देश में, विदेश में ?

अंकित हैं प्रभु के शब्द तुम्हारी हृदय-पोथी में
क्यों फिर सुनते हो पंडे-पुरोहितों के उपदेश ?

मिलता है प्रभु का सान्निध्य बिना मांगे ही
क्यों खोजते हो उसे व्यर्थ के विधानों में ?

चाहिये प्रभु को सिर्फ एक चीज—सच्चा प्रेम
क्यों फिर बैठे हो जपमाला फेरते ?
या तीर्थ-तीर्थ भरमते हो लकुटी को टेकते ?
या क्यों सजाते हो ये बेमानी झांकियां
जो कि ढंक लेती हैं प्रियतम का चंद्रमुख ?

—साधु टी. एल. वासवाणी

कालिय-मर्दन और

दो चित्र मेरे सामने हैं—कालिय नाग पर नृ
करते हुए बालकृष्ण का चित्र, और प्रल
काल में नृत्य करते हुए नटराज का चित्र।

फुफकारते हुए भयंकर कालिय नाग प
कोमल-चरण बालगोपाल का नृत्य और वं
वादन मृत्यु पर अमर जीवन के आनंदमय नृ
को सूचित करता है। कालिय नाग के पं
सिर पंच इंद्रियों को सूचित करते हैं, जिन
आत्मा नृत्य करती है। अक्सर वे इंद्रियां
जीवात्मा को नचाती रहती हैं। जहां वह जरा-
चूका कि इंद्रियां उसे डस लेती हैं। उनसे ब
का एकमात्र उपाय यही है कि हम इंद्रियों
अपने मन में रहने वाले परमात्मा को सौंप दें
फिर तो ऐसा नृत्य चलेगा कि फुफकारते हु
कालिय नाग के मुख से फुसकार निकलने लगे
और वह पनाह मांगने लगेगा।



भागवत में वर्णित है कि कालिय नाग क
जो सिर नहीं नमता था, उसे बालकृष्ण अ
चरण-प्रहार से नंवा देते थे। इस चरण-प्रहा
से कालिय नाग विष वमन करने लगा। इंद्रि
से विषय-रूपी विष वमन कराने का भी य
उपाय है कि उन पर बालकृष्ण का पदाघात हो

इधर कालिय विष वमन कर रहा है औ

...और तांडव-नृत्य

उधर बालकृष्ण उसे अपने मधुर वंशी-निनाद से मुग्ध कर रहे हैं। विष से खाली हुए कर्ण-कुहरों को भक्तिसुधा से भर रहे हैं।

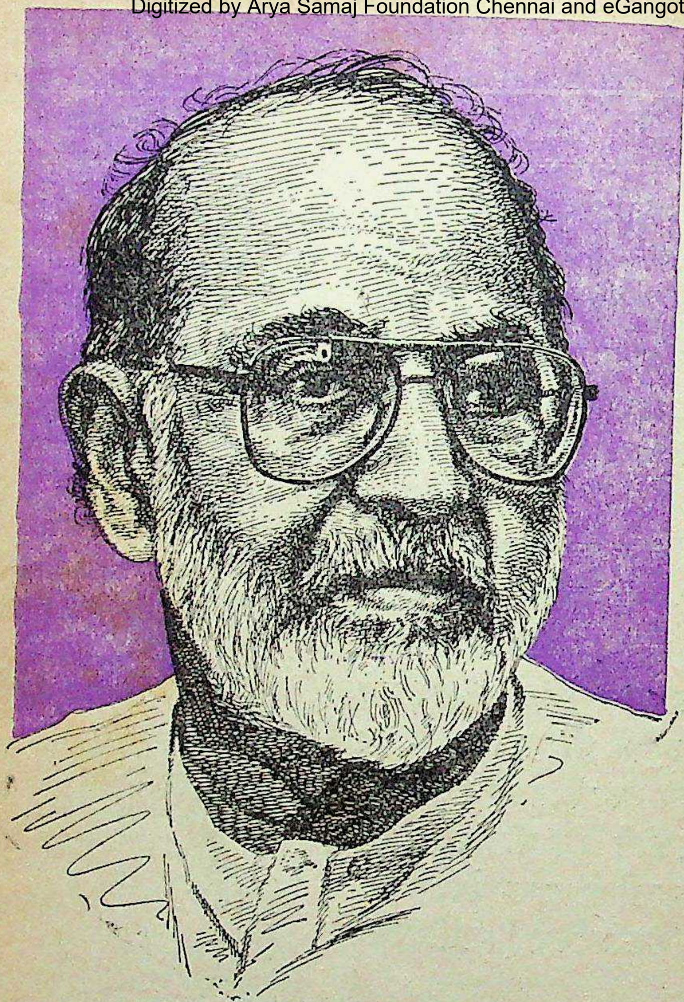
दूसरी ओर, नटराज प्रलयंकर अपनी जटाओं को छिटकाये, गजचर्म ओढ़े और डमरू बजाते हुए, विश्व के शव पर अपना तांडव-नृत्य कर रहे हैं।

बालकृष्ण का नृत्य मृत्यु पर जीवन का नृत्य है और तांडव-नृत्य जीवन पर मृत्यु के देवता प्रलयंकर का नृत्य है। दोनों ही आनंद से वंशी और डमरू बजा रहे हैं। जीवन में भी आनंद, और मृत्यु में भी आनंद। आनंद हमारे जीवन का ध्रुव सत्य है, दुःख नहीं। इसी लिए शिव प्रलयंकर होते हुए भी शंकर हैं; शव को चूर्ण-विचूर्ण करने के कारण वे शिव हैं; भीम-रूप होकर भी कल्याणकर हैं—**ससीमरूपः शिव इत्युदीर्यते**।

मृत्यु का प्रतीक विष उनके कंठ में विराजमान है। कालरूपी सर्प उनका भूषण है। विष भी उनके लिए अमृत हो गया है—**कालकूट फल दीन्ह अमी के**। त्याग-सूचक जटा उनका मुकुट है—**जटा मुकुट अहि मोर संवारा**।

—व्योहार राजेन्द्रसिंह





पोर्ट्रेट: वी. एन. ओके

अज्ञेय से साक्षात्कार

—डा. इंद्रनाथ चौधुरी

अज्ञेय को पढ़ने से, देखने से, सुनने से जीवनानन्द दास की पंक्तियां याद आ जाती हैं—'सुचेतना, तुम दूर की एक द्वीप हो, शाम के नक्षत्र के पास ।' इस व्यक्ति के इर्द-गिर्द जितना मिथक छिपा हुआ है, उतना शायद ही और किसी हिंदी लेखक के साथ हो । नजदीक से भी अज्ञेय बहुत दूर के लगते हैं—कम से कम उनका इंटरव्यू लेते हुए मुझे तो कुछ ऐसा ही एहसास हो रहा था । कदाचित् उनकी दृष्टि सीमित काल के आयाम को तोड़ती हुई आद्य क्षणों को पा लेना चाहती है—जो क्षण हमारी सांसों में तो धड़कते रहते हैं मगर जिन्हें हम हमेशा पहचान नहीं पाते । अज्ञेय की काव्य-चेतना उन क्षणों की देन है, इसीलिए तो उसका आविष्कार करना पड़ता है । निस्तरंग समुद्र के नीचे जिस तरह मछली छिपी रहती है, उसी तरह कवि-प्रशांति के अंतराल में एक मिथकीय चेतना छिपी हुई है, जिसे आविष्कार करते हुए कोई उसे रोमांटिक कहता है, तो कोई रहस्यवादी या परंपरावादी ।

'नवभारत टाइम्स' के संपादक के कमरे में मैंने इसी आविष्कार के सूत्र को खोजते हुए उनसे पूछा :

प्रश्न : ज्ञानपीठ-पुरस्कार प्राप्त करने पर आपको बधाई । 'कितनी नावों में कितनी बार' की रचना १९६७ में हुई और आपने १९३३ (भग्नदूत) से लिखना शुरू किया था । इन चौतीस वर्षों में आपके अनुसार, काव्य-जीवन के कौन-से पड़ाव पर आप पहुंच पाये थे ?

उत्तर : बधाई के लिए धन्यवाद । कवि को तो लगता है कि जिस तरह के पड़ाव होते हैं, वे बिलकुल दूसरे ढंग के होते हैं । हालांकि पड़ाव होते जरूर हैं और निरंतर वहां से आगे ही बढ़ते रहते हैं । वे एक तरह के सम्पराय होते हैं, जहां से नदी पार करके और आगे चले जाते हैं । मैं भी कहीं पार पहुंचने की कोशिश करता रहा । पहुंचा या नहीं, यह तो आप ही जानिये ।

प्रश्न : उसके बाद दस वर्ष बीत चुके । क्या आपकी इस समय की काव्यदृष्टि में कुछ अंतर आया है ?

उत्तर : यह भी फिर ऐसा ही प्रश्न है कि जो लिखा है उसमें इसका जितना उत्तर दिखे उतना ही संगत है । अपने आप सोचने में तो ऐसा मानना चाहता हूं । सोचते-सोचते कुछ न कुछ तो नयी दृष्टि मिलती रहनी चाहिये और आशा करता हूं कि मुझे मिली भी ।

प्रश्न : आपके बारे में यह कहा जाता है कि कविता में आप उलझाते हैं—कोष्ठक, कामा, प्रश्नचिह्न आदि का प्रयोग ये सब उलझाने के तौर-तरीके हैं । आपकी कविता में एक विशिष्टता की मुद्रा है, सहजता की नहीं । आप क्या सोचते हैं ?

उत्तर : यों तो मैं कुछ भी कहूं, अगर पाठक को इस बारे में यदि कोई बात लगती है तो

उसके लिए वही प्रमाण है। लेकिन जितना मेरा कहना संगत हो सकता है, उतना कहूं। एक तो यह है कि कविता के स्वभाव में एक परिवर्तन आया और उस परिवर्तन का संपूर्ण स्वीकार ही नयी कविता की बुनियादी दलील रही। और वह परिवर्तन था- वाचिक से पठित कविता की ओर संक्रमण। आज कविता पुस्तक में छपती है, पढ़ी जाती है और प्रायः एकांत में पढ़ी जाती है। जब हम छपाई का तर्क स्वीकार करते हैं, तब छपे हुए विराम भी उसमें आने चाहिये, ऐसा मैं मानता हूं। छपाई के साथ छापे के विरामों की अनिवार्यता अपने आप आती है। यह अनिवार्यता भी है, और युक्तिसंगत भी वही है।

प्रश्न : रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल-पुरस्कार मिलने से पहले कटु आलोचना सहनी पड़ी थी; और मैं देखता हूं कि ज्ञानपीठ का पुरस्कार मिलने के बाद आपकी काफी आलोचना हो रही है। विशेष रूप से हिंदी-जगत् का एक तबका काल्पनिक गड़े मुर्दे उखाड़ने पर तुला है। आपको क्या लगता है?

उत्तर : देखिये, उनसे (रवीन्द्रनाथ से) मेरी तुलना तो मत कीजिये; और नोबेल-पुरस्कार का नाम भी न लें तो अच्छा ही है। यों मुझे तो ऐसा लगता है कि पुरस्कार मिलने के पहले भी, यह भी और इससे छोटे पुरस्कार भी जो पहले मिले उनसे पहले भी, लगातार कटु आलोचना मेरी होती रही है और पुरस्कार मिलने से कुछ कम हो जायेगी ऐसा तो मैंने नहीं सोचा था। बढ़ेगी यह भी नहीं सोचा था; लेकिन कम होगी ऐसा तो नहीं ही सोचा था। इसीलिए अगर अब भी हो रही है तो मानना चाहिये कि स्थिति सहज है, सब कुछ पूर्ववत् है, और इसलिए स्वास्थ्यकर है।

प्रश्न : आप परंपरा एवं निर्वैयक्तिकता के पक्षपाती हैं। क्या ये आपकी कमजोरियां हैं?

उत्तर : मैं नहीं समझता कि कोई भी कवि परंपरा को तोड़ने वाला कभी भी परंपरा से वास्तव में मुक्त होता है। मुक्त होता तो तोड़ने का भी सवाल न उठता—वह तो अप्रासंगिक हो ही चुकी होती। अधिकतर तो आलोचक भी इसी बात से नाराज होते हैं कि मैंने किसी भी परंपरा को इस अर्थ में नहीं माना है—वे तत्काल यह नहीं कह सकते कि ये विचार ज्यों के त्यों अमुक जगह से लिये गये हैं। 'निर्वैयक्तिक' मैं मानता हूं कि अच्छा और महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। लेकिन एक ओर तो मुझे घोर व्यक्तिवादी कहा जाता है, दूसरी तरफ निर्वैयक्तिकता का कवि कहा जाता है। दोनों बातें अपनी जगह सही हैं। लेकिन जहां सही हैं, उसे पहचानना चाहिये। मैं समझता हूं कि बिना व्यक्तित्व के कवि नहीं होता। पहले तो उसे व्यक्तित्व-लाभ करना चाहिये और फिर उसे अपने व्यक्ति से मुक्त भी होना चाहिये—व्यक्तित्व से मुक्त नहीं, व्यक्तिपन से मुक्त। इसमें थोड़ा अंतर है, जिसके बारे में मैंने बार-बार लिखा है। हम पहले अहं

को पाते हैं। कोई भी जीव अपने विकास-क्रम में पहले अपने अहम् को पहचानता है और फिर अहम् को छोड़ते हुए आत्मा को पहचानता है, फिर उससे आगे भी बढ़ता है। यह सहज और प्रकृत क्रम है और स्वस्थ क्रम भी यही है।

प्रश्न : 'कितनी नावों में कितनी बार' की कौन-सी कविता, आपके अनुसार, सबसे अच्छी है?

उत्तर : यही कह सकता हूं कि कुछ कविताएं कभी बहुत अच्छी लगी थीं, जिनमें से एक 'सम्प्रदाय' शीर्षक की कविता है। एक इसमें जो लंबी कविता है 'ओ निस्संग ममेतर', वह भी है।

प्रश्न : आपके बारे में कहा जाता है कि कवि अज्ञेय की अपेक्षा कहानीकार अज्ञेय की साहित्यिक कीमत ज्यादा है। क्या यह ठीक है?

उत्तर : और यह भी मैं कैसे जान सकता हूं? यह जानता हूं, कुछ लोग कहानी पढ़कर कहते हैं कि यह तो कवि है, इसे कहानी नहीं लिखनी चाहिये; और कुछ इस मत के भी हैं जो (मत) आपने अभी बताया। और अगर दोनों मतों के लोग हैं, तब तो मैं सोचता हूं कि ठीक ही है। यों कहानी लिखना मैंने छोड़ दिया है, या मुझसे छूट गया है। कविता लिखना अभी तक तो नहीं छूटा है।

प्रश्न : आपने गद्य-पद्य की नाना विधाओं में रचनाएं की हैं। किस विधा में अभिव्यक्ति का संतोष सबसे ज्यादा मिला है?

उत्तर : शायद कविता में अभिव्यक्ति का संतोष अधिक मिला है। लेकिन वह अभिव्यक्ति ही चरम लक्ष्य है ऐसा तो मैं नहीं मानता हूं। अभिव्यक्ति भी होनी चाहिये, लेकिन दूसरे तक पहुंचना मैं साहित्य के लिए अनिवार्य मानता हूं। तो इतना सोचना काफी नहीं है कि मेरी अभिव्यक्ति हुई या नहीं। मैं दूसरे तक पहुंच सका या नहीं, यह प्रश्न मेरे लिए कभी कम महत्त्व का नहीं रहा है। कुछ लोग इसे महत्त्व नहीं देते; लेकिन मैं इसे सृजन की प्रक्रिया का अनिवार्य अंग मानता हूं।

प्रश्न : आपने 'अज्ञेय' उपनाम क्यों रखा? कहीं इसके पीछे अज्ञेय ब्रह्म या आभिजात्य संस्कार का हाथ तो नहीं है?

उत्तर : बिलकुल नहीं। यह नाम मुझे संयोगवश मिल गया था और अगर यह किसी ने रखा तो जैनेन्द्र कुमार अथवा प्रेमचंदजी ने रखा। मैं जब जेल में था, तब एक कापी में नकल करके—बल्कि दो-तीन कापियों में नकल करके—मेरी पहली कहानियां जगह-जगह भेज दी गयी थीं कि सुरक्षित रहें। क्योंकि जेल में तो किसी समय भी सब चीजें ले ली जा सकती थीं। कुछ कहानियां जैनेन्द्र कुमारजी के पास पहुंची थीं और उन्होंने दो कहानियां प्रेमचंदजी को भेजी थीं देखने के लिए, क्योंकि मैं भी राय जानना चाहता

था। प्रेमचंदजी को दोनों कहानियां अच्छी लगीं और उन्होंने (जैनेन्द्रजी को) लिखा कि कहानियां तो दोनों मुझे अच्छी लगी हैं और मैं छापना भी चाहता हूं। लेकिन एक कहानी तो मैं बिलकुल भी नहीं छाप सकता जब तक कि कोई पांच हजार रुपये की जमानत का प्रबंध न कर दे। दूसरी कहानी मैं सोचता हूं कि छापूंगा। लेकिन आप तो बतायें कि लेखक कौन है? ..... मैं क्योंकि जेल में था और ये कहानियां चोरी से बाहर भेजी गयी थीं, इसलिए नाम तो बताया नहीं जा सकता था, तो जैनेन्द्रजी ने उन्हें यही लिखा कि (लेखक का) नाम तो मैं नहीं बता सकता हूं—वे तो अज्ञेय हैं। इस पर प्रेमचंदजी ने कहा कि तब मैं इसी नाम से ये कहानियां छाप देता हूं। तो इसी नाम से पहली कहानी और फिर दो-एक कहानियां छप गयीं। और जब छपीं तो मुझे भी कुछ यह नाम भारी लगा और संकोच भी हुआ। फिर यही सोचकर संतोष कर लिया कि अगर 'सच्चिदानंद' नाम भी मुझसे पूछकर नहीं दिया गया था तो यह एक नाम भी वैसा ही भारी अगर दे दिया गया तो ठीक है।

प्रश्न : विभिन्न भाषाओं के लेखकों में आपको सबसे प्रिय कौन लगते हैं?

उत्तर : शरच्चंद्र मुझे कभी बहुत ही अच्छे लगते थे। लेकिन अब कभी पढ़ना पड़े तो यह मानकर पढ़ूंगा कि अमुक प्रयोजन से पढ़ना ही है, अपनी रुचि से नहीं पढ़ूंगा—एक-आध पुस्तक को छोड़कर। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ कहानियां मुझे बहुत अच्छी लगती थीं, अब भी लगती हैं; बल्कि कविताओं में कई-एक कभी-कभी अच्छी नहीं भी लगतीं। गुरुस्थानीय मैथिलीशरण गुप्त .... उनकी कविताएं भी – कुछ कविताएं मुझे बहुत अच्छी लगती थीं, लगती हैं; कुछ उतनी अच्छी नहीं लगतीं। निराला की बहुत-सी कविताएं मुझे अच्छी लगती हैं। उत्तरकालीन पंत उतने अच्छे नहीं लगते। टेनिसन और ब्राउनिंग बहुत अच्छे लगते थे और समझता हूं कि (मैंने) उनसे कुछ सीखा भी और विशेष रूप से ब्राउनिंग से। फिर बाद में दूसरे कवि और लेखक अच्छे लगते रहे। विचारों की दृष्टि से टी. एस. इलियट का कुछ प्रभाव रहा। काव्य उनका बहुत अच्छा तो नहीं लगा, बाद की कुछ रचनाएं अच्छी लगी थीं। और इसी तरह एज़रा पाउंड की कुछ चीजें अच्छी लगीं। उपन्यासकारों में तालस्ताय अच्छे लगते रहे, अब भी लगते हैं। और, और भी नाम ले सकता हूं।

प्रश्न : आजकल आप व्यावसायिक पत्रकारिता से जुड़े हुए हैं और आपके अनुसार यह लेखक की निजता को आक्रांत करती है। आप अपने संदर्भ में इसे उचित मानते हैं?

उत्तर : पत्रकारिता के साथ यह विशेषण (व्यावसायिक) जब आप जोड़ते हैं, तो

[शेष पृष्ठ १४६ पर]

अज्ञेय और उनकी कविता

प्रभाकर श्रोत्रिय

तब हिंदी में छायावादी काव्यधारा अंतिम सांसें ले रही थी। जो लोग उसका विरोध कर रहे थे, वे भी उसके इर्द-गिर्द, उसे दूसरी तरह से निचोड़ने में लगे हुए थे। स्वच्छंदता, मांसल रोमांस का पर्याय हो गयी थी। प्रगतिशीलता बहुत-कुछ किताबी और सोफिस्ट बनी दहाड़ रही थी। पाठक को ऐसी कविता की प्रतीक्षा थी जो निपट अनौपचारिक, उन्मुक्त अन्वेषी, नये आस्वाद और नयी चेतना के अनुरूप हो।

ठीक इसी वक्त अज्ञेय ने नयी राहों के अन्वेषी कवियों को जुटाकर 'तार-सप्तक' नामक काव्य-संकलन निकाला, जो अपने आपमें हिंदी में एक प्रयोग था। उसकी कई विशेषताएं थीं। एक तो यह कि बिना किसी पाठ्य-पुस्तकीय इरादे के नये और समकालीन कवियों का ऐसा संग्रह हिंदी में पहली बार ही प्रकाशित हुआ था। दूसरे, इसमें संकलित कवि भिन्न-भिन्न विचार, शैली और स्वभाव थे। तीसरे, हर कवि के व्यक्तित्व, दृष्टि और रचना-प्रक्रिया को स्वतंत्र मान देते हुए उनके वक्तव्य भी इसमें शामिल किये गये थे। एक दूसरे से भिन्न और कहीं-कहीं विरोधी प्रतीत होने वाले ये तमाम कवि हिंदी कविता को अपने ढंग से एक नयी भावभूमि, परिधान और व्यक्तित्व देना चाहते थे। लेकिन कर्ता का दंभ उनमें नहीं था, खोजी का उत्साह अलबत्ता था।

अज्ञेय के व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि वह जितना अंतर्मुख और सृजनधर्मी है, उतना ही उसमें संयोजन की ऐसी विलक्षण क्षमता भी है जो प्रायः बहिर्मुख और स्वयं के सृजन की मारक समझी जाती है। अज्ञेय के पहले सिवा भारतेन्दु हरिश्चंद्र के ऐसी संयोजन-क्षमता किसी सृजनशील हिंदी लेखक में नहीं देखी गयी। इतने विविध और विचित्र नये कवियों को एकजुट कर पाना दूभर काम था। अज्ञेय की इस क्षमता की पुष्टि 'दिनमान' के संपादन-काल में भी होती है। उन्होंने अपने सहयोगियों के रूप में जिन रचनाकारों को चुना था, उनमें ऐसे भी थे जो शुरू से उनके विरोधी थे। शायद अज्ञेय के सर्जक व्यक्तित्व ने ही उनके संयोजक को इतनी विधेयात्मक शक्ति दी है। इससे यह बात भी प्रकट होती है कि वे सृजन-प्रतिभा को कितना अधिक और कितना उत्कट सम्मान देते हैं।

संयोजन की उदारता अज्ञेय का आवरण नहीं, उनके स्रष्टा की भीतरी जरूरत

है। जब हम उनकी रचनाओं में विभिन्न दृष्टि, विचार, शैली, अनुभव, परिवेश आदि को समंजित हुआ पाते हैं, तो लगता है कि गुटीकरण से दूर रहकर विरोधों का सामंजस्य उनकी अंतःप्रकृति है। अज्ञेय ने ज्ञान की जितनी विविध धाराओं और विभिन्न विचारों को अपने व्यक्तित्व में मौलिक रूप में समोया है, उसका सानी किसी आधुनिक हिंदी कवि में नहीं मिलता। इतना ही नहीं, उन्होंने कई दिशाओं में कीर्तिमान स्थापित किये हैं—कविता, उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा-संस्मरण, विचार और यहां तक कि संपादन में भी।

नयी कविता के जितने संभव आयाम हैं, सब अज्ञेय की कविताओं में मिलते हैं। यह विश्वविद्यालयों का सुख है और इसलिए वे समझते हैं कि नयी कविता अज्ञेय से शुरू होकर उन पर ही खत्म होती है। गो यह सच नहीं है, तब भी व्यवसायी पंडितों के माहौल ने अन्य लेखकों के मन में अज्ञेय के प्रति टीस पैदा की है और वे रह-रहकर उनके विरोध में खड़े होते हैं। उन्हें लगता है कि अज्ञेय पर हमला किये बगैर उनकी अपनी विशिष्टता या नयापन सिद्ध ही नहीं होगा। अज्ञेय इन नकारात्मक आक्रमणों से विचलित नहीं हुए। जिस संयम से उन्होंने इन्हें झेला इसका प्रमाण जयशंकर प्रसाद के अलावा कहीं नहीं मिलता। संयोजन और संपादन ने अगर अज्ञेय को महिमा-मंडित किया है तो उसने उनके रचनाकार का तेज हरने की भी कम कोशिश नहीं की है। तब भी अज्ञेय की स्थिति यथावत् है। यह उनकी सृजन-शक्ति का प्रमाण है।

अज्ञेय विश्वयात्री और विश्व-साहित्य के यात्री हैं। उन जैसा अधीत कवि आज हिंदी में मिल पाना कठिन है। यह विचित्र है कि इन यात्राओं ने उन्हें भटकाया नहीं, बल्कि खुद को समेटने में मदद दी है। भारतीय वेदांत के साथ पाश्चात्य मनोविश्लेषण, अस्तित्ववाद और प्रगतिशीलता की सीमाएं उनके भीतर मिलती और टकराती दोनों हैं। कोई विचार अज्ञेय को आक्रांत नहीं करता। इसलिए किसी वाद की चिप्पी उन पर चिपकायी नहीं जा सकती। वे विचारों को मानस-प्रत्यक्ष कर उनमें से चुनने की क्षमता रखते हैं। वे हर चीज का अंतः विश्लेषण और बौद्धिक छानबीन करते हैं। परिणामतः, उनकी रचनाओं में जो छनकर परिष्कृत होकर, समंजित होकर आता है वह उनका अपना होता है।

अज्ञेय मुद्रित शब्द के अंतःसत्य को अपनी पूरी सत्ता में पाना चाहते हैं; इसलिए जरूरी संघर्ष उनकी रचनाओं में दीख पड़ता है। जब तक कोई व्यक्ति उनके शब्दों के अंतस्तत्त्व में शामिल होकर शब्दों की बहुआयामी संभावनाओं में गहरे न उतरे, तब तक उनकी कविता से आस्वाद दुहना शायद संभव नहीं है। अज्ञेय के पास भाषा की रिफाइनरी है। शब्द से नवीन अर्थ प्रसव कराना एक कठिन काम है, मगर यही अज्ञेय की प्रिय चिंता है। शब्द की सच्ची सत्ता पाये बिना अज्ञेय की कविता

में अर्थ की सत्ता पाना संभव नहीं है। इस मानी में कई बार अर्थ का रूपांतरण ही नहीं, उसका नवसृजन भी आवश्यक होता है।

कुछ लोग अज्ञेय को 'स्नॉब' कहते हैं, लेकिन यह 'स्नॉबरी' उन पर फबती है। क्योंकि यह अंतररचना का ही बाह्य रूप है। उनके बिंब, विचार, भाषा और लय बहुत नीट और छने हुए होते हैं। और जहां कहीं वे इसका प्रत्याख्यान करने की कोशिश करते हैं, वहीं बुरी तरह ध्वस्त हो जाते हैं; क्योंकि वे स्वयं सुघड़, संयत और शालीन हैं।

अज्ञेय का जीवन और कविता के प्रति बौद्धिक आचरण जरूर है, लेकिन कविता का सृजन-क्षण उन्हें आर्द्र और कोमल बनाता है। फिर भी यह आर्द्र कोमलता उनके शिल्प और भाषा को बेधकर ही हासिल की जा सकती है और जरा मुश्किल से ही कविता का सार मिलता है। क्योंकि जो कविता न सतह पर मिलती है, न वाद के सहारे व्याख्यायित की जा सकती है, न मस्तिष्क को ऊपरी तौर पर झनझनाती है, वह जटिल तो होती ही है। अज्ञेय की कविताओं के साथ यही है। लेकिन वे निगूढ मन को मननशील और चिंतनशील बनाती हैं। उन्हें किसी रूढ काव्यशास्त्रीय कसौटी या मतवाद पर कसने से काम नहीं चल सकता; क्योंकि वे अंतर्मंथन, गहन जीवनानुभूति और भाषा की नसों में प्रवेश करने की मांग करती हैं। अज्ञेय का मुहावरा उद्वेलित और उत्तेजित करने वाला नहीं, मननशील बनाने वाला है। कदाचित् अंतः-संघर्षमयी कविता की रचना और आस्वाद की यह कठिनतम प्रक्रिया है।

अज्ञेय का व्यक्तित्व स्वयं एक कविता है। जैसे उनकी कविता बोलती कम और सोचती ज्यादा है, वैसे ही वे भी कम बोलते और ज्यादा सोचते हैं। उनके विचारों और व्यक्तित्व को पाना उनकी कविता को पाने की तरह ही एक दुर्लभ और अंतः-साक्ष्यमयी प्रक्रिया के बिना संभव नहीं है। उनके विचारों और यहां तक कि उनके कवित्व से मतभेद रखने वाले भी यह जरूर मानेंगे कि उन जैसी संयत और चुनी हुई अनुभूति संयत भाषा में दे पाना कम कवियों के बस का है। और यह बात कविताओं के मामले में ही नहीं, उपन्यासों, कहानियों और निबंधों के मामले में भी उतनी ही सच है। बाह्य यथार्थ को बौद्धिक और चिंतनशील अंतर्मुखता में पर्यवसित करने का परिणाम अंततः आत्मगत अनुभव और दार्शनिक रुझान हुआ करता है। 'आंगन के पार द्वार' से प्रारंभ हुई यह प्रवृत्ति 'कितनी नावों में कितनी बार' में भी है।

अज्ञेय निरवधि कालसत्ता को क्षण में और अपार संसार को व्यक्ति की अस्मिता में समाविष्ट मानते हैं। उनका लहजा साधनारत योगी का है, जो आत्मस्थ और कूटस्थ होकर निरवधि काल से जुड़ा है। अज्ञेय की कविता को पाने के लिए उनके वैचारिक आधार को पाना भी जरूरी है, क्योंकि वे विचार के स्तर पर वहीं खड़े हैं,

जहां कविता के स्वर पर।

यह सच है कि अज्ञेय पारिभाषिक वामपंथी नहीं हैं; लेकिन वे परिभाषित दक्षिणपंथी भी नहीं हैं। प्रवाह में न बहकर विरोधों के बीच अपने मौलिक व्यक्तित्व की रक्षा करना और उसे साधना बड़ा ही दुस्साध्य काम है। शायद इस संघर्ष से एकतान न हो पाने के कारण अज्ञेय की कविताओं का सही मूल्यांकन अब तक नहीं किया जा सका है—इतनी किताबों के बावजूद।

अज्ञेय वस्तुवादी की तरह सतह की खोज नहीं करत, बल्कि वस्तुवाद का आत्मिक परीक्षण करते हैं और उसे एक सूक्ष्म आभ्यंतरिक रूप देते हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार' की एक कविता में कहा गया है कि वस्तुवाद एक तथ्य है, जबकि सत्य हिरण्मय पात्र में गोपित है, कवि को उसी सत्य तक पहुंचना है।

'कितनी नावों में कितनी बार' अज्ञेय के परिपक्व काल की कविताओं का संग्रह है। यह कहना उचित न होगा कि यह उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसे जो सम्मान दिया गया है, वह वास्तव में इसके बहाने अज्ञेय की समग्र रचनाशीलता का सम्मान है।

'दिया जाना' और 'दे दिया जाना' जैसी भाषा अज्ञेय की काव्यभाषा है। इसे तोड़-मरोड़कर पेश करने की अपेक्षा यह देखना बेहतर होगा कि वह पाठक के व्यक्तित्व को कविता में लय करने और प्रकारांतर से जीवन में लय करने की मांग करती है। कवि, व्यक्तित्व की सार्थकता समष्टि में लय होने को मानता है। 'कितनी नावों में कितनी बार' की पहली कविता है 'उधार' जिसमें यह कहा गया कि व्यक्ति ने सबसे मांगा और पाकर संपन्न हो गया, मगर जब उससे किसी ने प्यार मांगा तो वह हिल गया। जबकि सच तो यह है कि हम लेकर नहीं देकर संपन्न होते हैं। असल में 'कितनी नावों में कितनी बार' आत्मविसर्जन की कविताएं हैं।

यों देखें तो अज्ञेय की कविता आधारभूत कविता है, जिससे कविता के कई आयाम, शाख और उत्स फूटते हैं। आम तौर पर ये कविताएं कविताओं की जननी हैं, जिनका अनुकरण तो हिंदी में हुआ, मगर उनके अंतस्तत्त्व के विस्तार और अंतरंग संवेदना से कम आगे बढ़ा गया है। ये कविताएं बीज उतनी नहीं हैं जितनी कि मिट्टी हैं जहां बीज अंकुरित होते हैं। अज्ञेय की कविताएं रेखांकित कम की जा सकती हैं क्योंकि उनकी अपील बौद्धिक यानी व्यापक और अंतरंग है। इसलिए एक लकीर खींचकर उन्हें प्रेम, घृणा, उपालंभ, दया, क्रोध या किन्हीं वस्तुगत या भावगत उपशीर्षकों में बांटा नहीं जा सकता।

ऐसे कवि के सामने सबसे बड़ा खतरा ही यह रहता है कि वह मतवादी आधार पर किसी को भी स्वीकार नहीं होता। फिर भी यदि उसमें आकाश-सा विस्तार और समुद्र-सी गहराई हो तो वह इन सीमाओं को लांघकर भी बड़ा और विशिष्ट हो जाता है। और यह क्षमता अज्ञेय में है।



पत्रों का महत्त्व

बनारसीदास चतुर्वेदी

सुप्रसिद्ध अंग्रेजी-लेखक डा. सैम्युअल जान्सन ने २७ अक्तूबर १७७७ को एक पत्र में किसी महिला मित्र को लिखा था-'किसी मनुष्य के पत्र में उसकी आत्मा नग्न रूप में दीख पड़ती है। उसके पत्र उसके हृदय का दर्पण होते हैं। और जैसी कुछ उसके दिल में गुजरती है, बिना मेल-मिलावट के अपने स्वाभाविक रूप में उसके पत्रों में प्रकट हो जाती है। उसमें कुछ घटा-बढ़ी नहीं होती।'

पूरे दो सौ दो वर्ष बाद भी जान्सन का यह कथन सर्वथा सत्य है। खेद की बात यही है कि हिंदी-जगत् ने पत्रों के महत्त्व को अभी तक पूरी तरह नहीं समझा।

और जहां तक हम जानते हैं, हमारे यहां (स्व.) आचार्य पद्मसिंह शर्मा ने ही सर्वप्रथम पत्रों के महत्त्व को समझा। उनसे भी पहले महाकवि शंकरजी (पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर') ने पत्रों का संग्रह प्रारंभ कर दिया था। पर वे पत्र रक्षित नहीं रह सके। संख्या में वे हजार-बारह सौ थे, और उनमें ग्रियर्सन साहब तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इत्यादि के बहुत-से पत्र थे। सुना है कि पं. पद्मसिंहजी उन्हें अपने साथ ले गये थे और कहीं खो बैठे थे। यह हिंदी-जगत् की भयंकर क्षति हुई।

अब कुछ लोगों ने पत्रों का संकलन शुरू किया है; और पंद्रह-बीस पत्र-संग्रह प्रकाशित भी हो चुके हैं। इनमें स्वामी दयानंद के पत्र, पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्र, डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र इत्यादि मुख्य हैं। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने भी कुछ पत्रों को छपवा दिया था। इनके अतिरिक्त श्री बैजनाथसिंहजी ने भी द्विवेदीजी के तथा उनके पास आये हुए संग्रह छपवा दिये थे। कलकत्ते के बंधुवर गोयन्काजी ने श्री द्विवेदीजी के पत्रों का संग्रह करवा दिया था, पर शायद वे छप नहीं सके। श्री राय कृष्णदासजी ने भी अपने संग्रहालय में अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रों का संकलन किया है और उन्हें वे समय-समय पर छपवाते रहते हैं।

परंतु हिंदी के मुकाबले में उर्दू में प्रकाशित पत्र-संग्रहों की संख्या तिगुनी या चौगुनी होगी। गालिब के पत्र साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं और उनका हिंदी में भी अनुवाद हो गया है। अंग्रेजी

में तो छपे पत्र-संग्रहों की संख्या सैकड़ों होगी। जामनगर (गुजरात) के हिंदी अध्यापक श्री कमल पुंजाणी हिंदी के पत्र-साहित्य पर शोध कर रहे हैं, और हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी यथाशक्ति सहायता करें।

पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्रों का संग्रह भाई हरिशंकर शर्मा के सहयोग से मैंने प्रकाशित करा दिया था, और भाई वृंदावनदासजी ने डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों को छपवा दिया था। मेरी चिट्ठियां भी उन्होंने छपवा दी थीं। स्वयं भाई वृंदावनदासजी के पत्रों का संग्रह भी छप गया है।

सहज स्वाभाविकता, भाषा और भाव की दृष्टि से पं. पद्मसिंहजी के पत्र हिंदी में सर्वश्रेष्ठ माने जायेंगे। डा. अग्रवालजी के पत्र इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं कि वे जो कुछ भी लिखते थे, पूर्ण तन्मयता से लिखते थे।

कौन-से पत्र छपने चाहिये, कौन-से नहीं, यह प्रश्न भी विचारणीय है। एक अंग्रेजी-लेखक ने लिखा था—'केवल वे ही पत्र संग्रहणीय हैं, जो कभी लिखे नहीं जाने चाहिये थे, और लिखे भी गये तो फाड़ दिये जाने चाहिये थे।' भावों की उन्मुक्तता की दृष्टि से पं. प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के पत्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे। खेद की बात यही है कि मिश्रजी के पांच-सात ही पत्र रक्षित हो सके। हां, नवीनजी के ७०-७५ पत्र मैंने सुरक्षित करा दिये थे और उन्हें 'नर्मदा' के विशेषांक में छपवा भी दिया था। उनकी निगेटिव मेरे पास अब भी विद्यमान है और मूल पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार, नयी दिल्ली में हैं।

बिना किसी वृथाभिमान के मैं यह कह सकता हूं कि जितने अच्छे पत्रों का संग्रह मुझसे हो सका, उतने अच्छे पत्र हिंदी-जगत में शायद ही किसी ने रक्षित किये हों। वास्तव में पत्र-व्यवहार बड़ा खर्चीला व्यसन है, और दुर्भाग्य से या सौभाग्य से मैं उसका शिकार ५०-५५ वर्ष पहले ही हो गया था। अब तो पत्र-लेखन-कला की विधा को शिक्षा-जगत् में स्वीकार कर लिया गया है। आवश्यकता इस बात की है कि पुराने लेखकों के यहां जो पत्र पड़े रह गये हों उनकी रक्षा कर ली जाये।

यदि धृष्टता क्षम्य हो तो मैं इस विषय में अपने कार्य का कुछ जिक्र कर दूं। मेरा जो संग्रह राष्ट्रीय अभिलेखागार (जनपथ, नयी दिल्ली) में सुरक्षित है, उसमें २१० पत्र दीनबंधु एन्ड्रूज के, सौ से ऊपर महात्मा गांधीजी के, ७० पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के, सैकड़ों पं. पद्मसिंह शर्मा के, १५० आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के, ७० नवीनजी के, ३ रोमां रोलां के, ६-७ कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर के, ४० माननीय श्रीनिवास शास्त्री के (जो भारत के सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक माने जाते थे) और ४६ दिनकरजी के हैं।

एक महत्त्वपूर्ण संग्रह है—महात्मा मुंशीराम (बाद के स्वामी श्रद्धानंद) और दीनबंधु एन्ड्रूज का पत्र-व्यवहार। भाई सत्यदेवजी विद्यालंकार की कृपा से उसे मैंने सुरक्षित करा दिया था।

आवश्यकता इस बात की है कि किसी जिम्मेदार संस्था की ओर से कुछ व्यक्ति घूम-घामकर मूलपत्र या उनकी फोटोस्टैट कापी प्राप्त करें। उर्दू के महाकवि फिराक साहब के पास प्रेमचंद के बहुत-से पत्र थे; मगर वे उनकी रक्षा नहीं कर सके। पर मुंशी दयानारायन निगम ने प्रेमचंदजी के पत्रों को बचा रखा था। ये भी नष्ट हो गये होते यदि प्रेमचंदजी के सुपुत्र श्री अमृत राय ने ऐन वक्त पर पहुंचकर इन्हें प्राप्त न कर लिया होता।

यहां मैं अपने अनुभव की एक बात कह दूं। पत्र जब आयें, तभी अनावश्यक पत्रों को छांटकर नष्ट कर दिया जाये और आवश्यक पत्र अलग रख दिये जायें, तो ही वे रक्षित हो सकते हैं। नहीं तो अनावश्यक पत्रों के साथ आवश्यक पत्र भी खत्म हो जाते हैं। पत्रों में हृदय का स्पंदन सुनाई पड़ सकता है।

अभी पुराने पत्रों के समुद्र में गोता लगाने पर कई और पत्र दिनकरजी के मिले। एक-दो पत्र बेनीपुरीजी के भी। और बनैली राज्य के मंत्री श्री रघुवीर नारायणजी का भी एक। यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि रघुवीर नारायणजी भोजपुरी के अतिरिक्त अंग्रेजी के भी अच्छे कवि थे। (स्व. रघुवीर नारायण के जीवन और साहित्य-सृजन पर श्री प्रतापनारायण का लेख अगस्त १९७८ के **नवनीत** में छपा था। –संपादक) स्व. दिनकरजी ने एक पत्र में सर मुहम्मद इकबाल की कविता के बार में विस्तार से लिखा था, और बेनीपुरीजी ने सीतामढ़ी जेल से अपनी आर्थिक कठिनाइयों का हृदयस्पर्शी वर्णन किया था।

स्व. राजेन्द्रबाबू की कृपा से मैंने उनका निजी पत्र-संग्रह देखा था। उसमें सैकड़ों महत्त्वपूर्ण पत्र थे। एक बार मैंने बाबूजी की सेवा में उपस्थित होकर उस संग्रह की रक्षा के बारे में भी निवेदन किया था। उन्होंने कहा—'आप मृत्युंजय के साथ मिलकर इस काम को कर सकते हैं। मेरे पास तो इतना वक्त नहीं है। हां, मेरा एक सुझाव है कि पत्रों की प्रतियां आठ-दस जगह सुरक्षित करा देनी चाहिये।'

स्व. वंशीधरजी विद्यालंकार बहुत ही बढ़िया पत्र-लेखक थे और उनके तीन सौ से अधिक पत्र मैंने सुरक्षित करा दिये थे। उसी प्रकार उतने ही पत्र भाई हरिशंकरजी शर्मा के भी सुरक्षित करा दिये थे। प्रयाग की 'सम्मेलन पत्रिका' ने भी मेरे भेजे हुए सर्वश्री सैयद अमीर अली मीर, पीर मुहम्मद म्युनिस, मुंशी अजमेरी, पं. रामनरेश त्रिपाठी, पं. माखनलाल चतुर्वेदी इत्यादि के पत्र छापे हैं। श्रद्धेय पं. झाबरमल्लजी शर्मा के संग्रहालय में भी पत्रों की अमूल्य निधि विद्यमान है। भाई लक्ष्मीशंकरजी व्यास ने स्व. पराड़करजी के कुछ पत्रों का संग्रह कर लिया है और काशी के श्री गौरीशंकर गुप्त के पास भी अच्छा पत्र-संग्रह है। हिंदी साहित्य तथा हिंदी-पत्रकारिता का इतिहास लिखने में भी इनसे कुछ सहायता मिलेगी।

—फीरोजाबाद, जि. आगरा, उत्तर प्रदेश



पाकिस्तानी पंजाबी कहानी :

सौगात

अहमद सलीम

आज अप्रैल की १४ तारीख है, और इतवार का दिन। मैं अपने छोटे-से कमरे में बैठा नवतेज सिंह (प्रसिद्ध पंजाबी कहानीकार) का सफरनामा 'दोस्ती के रास्ते' पढ़ रहा हूं। मेरा कमरा एक नयी आबादी में है। जिस मकान का यह कमरा है, वह अभी नया ही बना है। इसलिए उसकी दीवारों में से हर वक्त पानी रिसता रहता है। और कब्र-जैसे इस सीलन-भरे कमरे में मुहब्बत का एक दु:खी शाहजादा जैसे-तैसे अपनी जिंदगी गुजार रहा है। मेरा बिस्तर, मेरे कपड़े, मेरी किताबें हर वक्त भीगी रहती हैं। और इस सीलन के कारण मुझे अक्सर बुखार चढ़ जाता है।

मैं कमरे का दरवाजा हमेशा बंद करके बैठता हूं। बैठता क्या हूं, लेटा रहता हूं। मेरे हाथ में कोई न कोई किताब होती है।

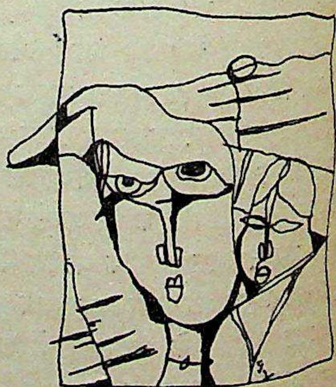
सामने की दीवार पर दो तस्वीरें टंगी हुई हैं। एक तस्वीर हो ची मिन्ह की है, और दूसरी शहीद भगतसिंह की। फर्श पर कागज बिखरे पड़े हैं। एक कोने में टीन का छोटा-सा खाली संदूक पड़ा है, जिस पर बहुत-सी किताबें बेतरतीब एक दूसरी पर चढ़ी हुई हैं। मैंने फर्श पर बिस्तर बिछा रखा है, और कुछ किताबें मेरे बिस्तर पर भी बिखरी हुई हैं। हालांकि इस कमरे का मालिक बहुत नेक और भला शख्स है, लेकिन इस बात से उसे खीझ होती है कि मैं रात के बारह-बारह बजे तक घर से बाहर रहता हूं। वैसे मेरे दफ्तर का डाक्टर मुझे कई बार यह कमरा छोड़ने की सलाह दे चुका है। लेकिन दस रुपये किराये के इस कमरे से बढ़िया कमरा तो जन्नत में भी नहीं मिल सकता।

अचानक मैं दरवाजा खोलकर हाथ में किताब लिये कमरे से बाहर निकलता हूं और बस-स्टैंड पर जाकर राजा बाजार जाने वाली बस का इंतजार करने लगता हूं।

बारिश होने लगती है।

बारिश थम जाती है।

आज राजा बाजार में बहुत चहल-पहल है। हर तरफ रंग-बिरंगी पगड़ियां और



चित्र : चरन शर्मा



दाढ़ी-मूंछों वाले पुरुष, उनकी स्त्रियां और बच्चे इधर-उधर घूम रहे हैं। ये सब लोग 'पंजा साहब' गुरुद्वारे की यात्रा पर आये हैं और बैसाखी के मेले से आज ही यहां (रावलपिंडी) लौटे हैं। भारत, अफगानिस्तान और दूसरे कई देशों से आये हुए ये दो-तीन हजार सिक्ख यात्री बहुत खुश नजर आ रहे हैं।

मैं एक होटल में बैठा हूं। मेरे सामने एक सिक्ख यात्री अपनी पत्नी और बेटी के साथ बैठा है। वे तीनों मेरे पास मेज पर रखी किताब को हैरानी से देख रहे हैं।

'यह क्या किताब है, बेटा?' सरदारजी मुझसे पूछते हैं।

'जी, यह नवतेज सिंह की किताब है—"दोस्ती के रास्ते"। लीजिये, देखिये।'

वे किताब के पन्ने पलटने लगते हैं।

मैं लड़की की तरफ देखता हूं।

'तुम गुरुमुखी (लिपि) पढ़ लेते हो?' सरदारजी पूछते हैं।

'जी।'

वे किताब रख देते हैं।

'चाय पियेंगे?' मैं पूछता हूं।

'नहीं, बेटा। अभी-अभी पी है।'

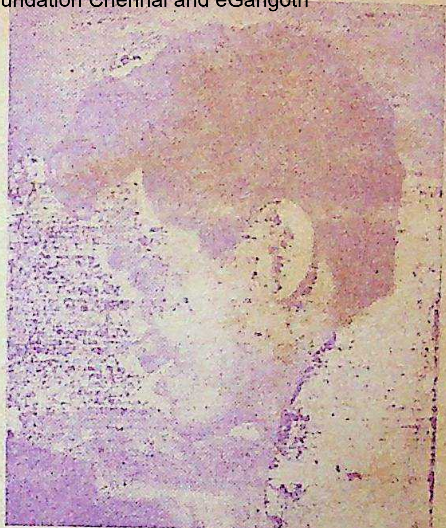
'तो फिर उसका बिल मुझे अदा करने दीजिये।'

'इसकी क्या जरूरत है?'

'बहुत जरूरत है!'

'अच्छा, तुम्हारी खुशी।'

मैं उनसे बातें करने लगता हूं, पर मेरी नजर लड़की के चेहरे पर है।



पाकिस्तानी पंजाबी कवि अहमद सलीम—तरुणावस्था में। उनकी पंजाबी कविता 'भगतसिंह' का श्री सुखबीर कृत अनुवाद पृष्ठ ५०-५१ पर है। यह अनुवाद संक्षिप्त रूप में 'धर्मयुग' में पहले छपा था।

तभी वह जैसे मेरी आंखों का सवाल पढ़ लेती है और कहती है—'मेरा एक भाई था—तुम्हारे जैसा। वह जंग में मारा गया।'

सुनते ही मुझे पसीना छूटने लगता है। मैं कुछ नहीं कह पाता।

लड़की की मां रोने लगती है।

'भाग्यवान, यह क्या मौके-बेमौके रोने बैठ जाती है?' सरदारजी उससे कहते हैं।

लड़की सिर उठाकर मेरी तरफ देखती है। मैं उससे नजर नहीं मिला सकता। उसकी मां ने आंसू पोंछ लिये हैं। और चेहरे पर खुशी लाने की कोशिश कर रही है।

'माताजी, मुझे प्यार कीजिये।' मेरे मुंह

से निकलता है।

'मेरा बेटा।' ..... वह मेरा माथा चूम लेती है।

'देखो, आज तुम्हारा भाई जंग से लौट आया है।' मैं लड़की का हाथ पकड़कर कहता हूं। उसकी आंखों में आंसू छलक उठते हैं।

'रो क्यों रही है, पगली!'

'रो कहां रही हूं?' और वह हल्का-स मुस्कराती है।

०००

हम होटल से बाहर आ गये हैं। किसी हद तक सकुचाते हुए मैं सरदारजी को 'पिताजी' कह चुका हूं। वे मेरे बारे में पूछते हैं, और मैं बिना सोचे-समझे उलटे-सीधे जवाब देने लगता हूं।

अब मेरा एक हाथ अपनी बहन के हाथ में है और दूसरा हाथ मां के हाथ में।

'दिल खुश कर दिया बेटा!' पिताजी का चेहरा खिल उठा है।

एक सिपाही मुझे गौर से देख रहा है।

'माताजी, मैं सुरिंदर को कोई सौगात देना चाहता हूं। इसे क्या पसंद है?'

'भैया, मेरी पसंद की सौगात देना तुम्हारे बस की बात नहीं है।' सुरिंदर कहती है।

मैं हैरानी से उसकी तरफ देखता हूं। उसकी आंखों में फिर आंसू आ जाते हैं।

'मैं तुम्हारी हर चाह पूरी कर सकता हूं।' मैं अपने रूमाल से उसके आंसू पोंछता हुआ कहता हूं—'बताओ, क्या चाहिये तुम्हें?'

[शेष पृष्ठ १४९ पर]

भगतसिंह

अहमद सलीम

और उस बूढ़े ने अपनी कमीज़ बीच में से
फाड़ डाली
और कहने लगा :
यह लो, इसके टुकड़े ठंडे पानी में भिगोकर
अपनी आंखें पोंछो
जालिमों ने कैसी कहर की गैस
आंखों में डाल दी है
और अब लाठियां चलाने की तैयारी
कर रहे हैं
तंग और गंदी गलियों में जन्म लेने वाले
हमारे-जैसे कीड़ों पर अभी गोलियां भी
चलेंगी
हमारी मेहनतों, इज्जतों,
जानों के ये रखवाले
हमें कीड़े समझते हैं
लेकिन सच पूछो तो
ये दस-बीस लोगों के रखवाले बनकर
हमारे खून में तैरने आये हैं...
जिंदगी के सौतेले बेटो!
हमने तो गंदी नालियों में भी
हमेशा जिंदगी के सुर्ख फूल खिलाये हैं
हममें से कोई भगतसिंह उठा
और सारी 'बार'[1] में सुहानी पुरवाई बहने
लगी
जिंदगी के सौतेले बेटो!

१. पश्चिमी पंजाब का एक इलाका।

मुसलमानो !
तुम भगतसिंह को सिक्ख कहते हो
उसे उस पार दफनाकर समझते हो
कि तुमने खुदा की लाज रख ली है
मैं समझता हूं कि तुमने
अपनी खुदी को मार डाला है
तभी तो तुम दोनों तरफ लाठियां खा रहे
हो... ०००
और खुदा न इस तरफ है, न उस तरफ
यह कमीज मैंने बीच में से फाड़ी है
जिंदगी के सौतेले बेटो !
आधे टुकड़े उस पार भेजो
वहां भी जिंदगी के सौतेले बेटे—तुम्हारे भाई
लाठियां खा रहे हैं
वहां भी जहरीली गैस आंखों में डाली जा
रही है
वहां भी पेट अनाज से खाली हैं
और अनाज दोनों ही तरफ चोर-गोदामों
में कैद
जार-जार आंसू बहा रहा है। ०००
लो, एक और तमाशा हुआ
अपने खून में नहा रही जिंदगी के कपड़े
किसी ने उठा लिये
अब वह अलफ नंगी बाहर कैसे आये ?
इसलिए
जिंदगी के सौतेले बेटो !
कोशिश करके किसी नयी कब्र में से
कोई कफन निकाल लाओ
'जिंदगी-मां' का जिस्म ढंको
फिर उसी बाजार में नचाओ
तलवारें-भाले उसके हाथ में पकड़ाओ
और कहो
उस तरफ रहने वाले अपने कुटुंब पर
ये तलवारें-भाले आजमाकर देख, मां !
अपने बेटे भगतसिंह की मढ़ी खोद डाल,
मां !
जो कि अब तेरा कुछ नहीं लगता
क्योंकि
वह एक सिक्ख के यहां जनमा था। ०००
लो, एक और तमाशा हुआ
जिंदगी के सिर पर एक ऐसी लाठी पड़ी
कि सिर बीच में से फट गया—
मेरी कमीज की तरह
मारने वाले ने भी कैसी रमज़ पहचानी !
आधा सिर इस तरफ दफनाकर
ऊपर 'शहीद फतह मुहम्मद' की तख्ती
लगाओ
और आधा सिर उस तरफ भेज दो
दुश्मनों के यहां
वहां रहने वाले लोग 'शहीद फतहसिंह' की
मढ़ी खुद बना लेंगे !
फतह मुहम्मद और फतहसिंह के वारिसो !
दोनों तरफ फतह के बिगुल बजाओ,
हारे हुए मूर्खो !
इस पागल लाठी की सयानी रमज़ को
पहचानो !
इसलिए मैंने अपनी कमीज बीच में से
फाड़ी है
और मैं उसके टुकड़े दोनों तरफ बांट रहा हूं
मैं बूढ़ा हूं, मेरे बूढ़े पांवों की चाल पहचानो
मेरा नाम तुम्हें कहीं भूल तो नहीं गया ?
कहीं पंजाब सचमुच ही उजड़ तो नहीं गया?



यिह पत्रिका बड़ कथा बड़ेबाजार आ फिसको थे। दाखिले दक्षिण तरफ कमल नयनकी गल्लीम ९६ ७० नम्बर कभी मसे हैं दैनिक छपा होता है, इसका मालिक म श्रीश्यामसुन्दर से न इन्का दान नर्थि मेमे १ रुपेया आगा मो ८ रुपेया



প্রত্যাহিক পত্র।

५ बालम, १९१६ संख्या। सन १२६५ साल तारिख २ आश्विन शुक्रवार, ३० सन १८५८ साल ता.१७ सेप्टेम्बर आश्विन शुदि १

৫ বালম, ১৯১৬ সংখ্যা] সন ১২৬৫ সাল তারিখ ২ আশ্বিন শুক্রবার ইংরাজী সন ১৮৫৮ সাল তারিখ ১৭ সেপ্টেম্বর

MUNICIPAL COMMISSIONER'S NOTICE.

মিউনিসিপেল কমিস্যনরদিগের বিজ্ঞাপন।

সন ১৮৫৬ সালের ২৫ আইনের ৯ ধারানুযায়িক অত্র বিজ্ঞাপন দ্বারায় সর্ব্ব সাধারণকে জ্ঞাত করা যাইতেছে যে আগত ১ অক্টবর তারিখে শুক্রবার বেলা দুই প্রহরের সময়ে ও তাহার পরদিবসাবধি মোকাম কসাইটোলার ফ্রিমেসন হলে বাটীর নম্বর ৪৮ সংর কলিকাতার মিউনিসিপল কমিস্যনর সাহেব দিগের তথায় বৈঠক হইবেক; তাহাতে বর্ত্তমান বর্ষে এসেশার সাহেব কর্ত্তৃক যে সকল বাটীর উপর এক্ষণে প্রথম বার এসেসমেন্ট অর্থাৎ কর নিধারিত করা হইয়াছে তাহার বিচার হইবেক, এবং ঐ বিষয় সম্বলিত ঐ সকল বাটীর দখলিকার ও ভাড়াটীয়াগণ সকলকে নতন্ত্র সংবাদ দেওয়া হইয়াছে, অতএব যে সকল লোকের ঐ এসেসমেন্ট জন্য কোন ওজর বা আপত্তি থাকে তাঁহারা ঐ মোকাম এবং ঐ তারিখ অবধি উপস্থিত হইয়া উক্ত কমিস্যনর সাহেব দিগের নিকট আবেদন করিবেন।

ইতি সন ১৮৫৮ সাল তারিখ ১৪ সেপ্টেম্বর।

By Order of the Commissioners
ROBERT TURNBULL.
Secretary.

কমিস্যনরদিগের আদেশানুসারে রবর্ট টরনবুল সেক্রেটারী।

CALCUTTA
No 3 Chowringhee Road
The Office of Municipal
Commrs, Dated 10 th
September 1858

विज्ञापन।

हलवोए साहब।

मोविलेके अपरिमताय गलमाला आम फिसोटक और फोटक यो अनाधात योरखने कर मन्दाग्नेप्रदायक बाभाविक पीडा उत्पन्न होय यह हलवोए सहायके बटिका यो मलहमने यथा निर्मूल होने कि सम्पूर्ण सम्भावना है य सब रोगके लिये हेदेव बटिका को मलहमके उपरमे निर्भर आवश्यक अनुरोध करने अन्य औषध सेवने मज्जा पावते हु हलवोयेके औषध केवल हउरोपोवान रोगके प्रति बाटे एमन मात्रान बोमार को बहुरे शाके सब भातोव मनुष्यका एवं को हथा बहे उपकारी होय आशीर्वादि उससे बोय ऐ बटिकामे सुफलि रहेगा और हफ्वार नवाहा बाहालहेनेहे रोग पुनराय अन्नावने कि सम्भावना करि तो नहे कि।

वेचनेवाले।

हलवोयेकी गोली को मलहम।

मिट्रोपोलिटन डिस्पेनसी नम्बर ६६ कसाईटोला कलकत्ता वाले धर्मताले उत्तर पश्चिम मोड़के ऊपर रहते थानामे मिलती हैं उसकी किम्मत की मोयल हउरह गो ली या मलहम मधो कुर्ई डिबिया १०॥ मलहम २॥ होती गो बस।

थि मुखल हव बो॥

বিজ্ঞাপন।

তিনটা তেরাওা টেনের কল মায় সরঞ্জাম ও ১ টা পিসিবার কল যাহা উক্ত কলের জন্যে আবশ্যক হয় এবং উত্তম কর্ম্মের উপযুক্ত আছে যাহার প্রয়োজন হইবে ২২নং পুরাতন চিনেবাজার স্থিত মিসর্স ফুলসি দাস দত্ত কোং কম্পানিতে প্রশ্ন করিবেন।

दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' के १७ सितंबर १८५८ के अंक का प्रथम पृष्ठ।

हिंदी का प्रथम दैनिक

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

भारत में छपाई का प्रारंभ सन १५५६ में पुर्तगाली जेसुइट पादरियों ने गोवा में किया। हुआ यह कि ६ सितंबर १५५६ को एक जहाज गोवा पहुंचा। जहाज पर इथियोपिया का बड़ा पादरी था और साथ ही एक प्रेस भी था। प्रेस का चलाने वाला या मालिक जोआओ दे बुस्तामेन्ते नामक एक स्पेनी था। वह अपने साथ एक भारतीय सहायक भी लाया था, जिसने पुर्तगाल की राजधानी लिस्बोआ (लिस्बन) में छपाई का काम सीखा था।

बुस्तामेन्ते ने सन १५६० तक गोवा में पांच किताबें छापीं। पहली किताब अक्तूबर १५५६ में छपी। इसमें मुख्यतया धार्मिक चित्र थे और यह स्थानीय धार्मिक ईसाइयों के पढ़ने के लिए थी। पर गोवा में छपी पहली पुस्तकें पुर्तगाली भाषा में ही थीं। इनमें से एक पुस्तक सन १५६३ में छपी थी। उसका नाम था—'कोलोकुअस डास सिम्प्लेश ई ड्रोगाज'। यह भारतीय वनस्पतिशास्त्र और ओषधियों पर थी और उसे गार्सिया डाओर्टा नामक व्यक्ति ने लिखा था। इसकी एक प्रति ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन में रखी हुई है। उस लाइब्रेरी में १५ अक्तूबर १९७८ से १९ फरवरी १९७९ तक एक प्रदर्शनी आयोजित की गयी, जिसमें भारत की प्रारंभिक छपाई दिखायी गयी थी। उसमें यह पुस्तक मैंने देखी। यह वहां रखी गयी पुस्तकों में सबसे पुरानी थी।

सन १५७५ में गोवा में जेसुइट पादरियों का एक सम्मेलन हुआ था और उसमें यह निर्णय किया गया था कि ईसाई धर्म के प्रचार के लिए यह आवश्यक है कि ईसाई साहित्य पुर्तगाली भाषा में ही नहीं, बल्कि देशी भाषाओं में भी प्रचारित किया जाये। इस सिलसिले में जो देशी भाषाएं इंगित की गयीं, वे थीं कोंकणी और तमिल। उन दिनों पुर्तगाली लोग कोंकणी को 'कनारिम' या 'ब्रामन्ना' और तमिल को 'मलाबार' नाम से पुकारते थे। तमिल में अनुवाद करने का काम सौंपा गया हेनरीक हेनरीकिस को, जो तमिल का पहला यूरोपीय अध्येता था। १५७७ में गोवा में ही तमिल टाइप बनाये गये। उन्हें बनाने में एक लुहार जोआ गोन्साल्वेस और एक तमिल ब्राह्मण (जो ईसाई हो गया था) पेद्रो लुईस ने योगदान दिया।

पूर्वी भारत में छपाई का श्रीगणेश १८वीं

शताब्दी में कलकत्ते में हुआ। १७७७ में जेम्स आगस्टस हिकी ने कलकत्ता जेल में अपना प्रेस शुरू किया और १७८० में उन्होंने अपना प्रसिद्ध पत्र 'बंगाल गजट एंड कलकटा एडवर्टाइज़र' शुरू किया। १७७८ में ईस्ट इंडिया कंपनी के एक क्लर्क चार्ल्स विल्किन्स ने एक जड़िया जोसेफ शेपर्ड और एक बंगाली लुहार पंचानन कर्मकार के साथ बंगला टाइप बनाये, जिनसे बंगला की प्रथम पुस्तक 'ए ग्रामर आफ दि बंगाल लैंग्वेज' छपी। विल्किन्स फौरन ही ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रेस के अध्यक्ष बना दिये गये। सन १७८० में उन्होंने फारसी का नस्तालिक टाइप बनवाया और १७९२ में कालिदास का 'ऋतुसंहार' देवनागरी टाइप में छापा।

श्री पंचानन कर्मकार जो विल्किन्स के सहयोगी थे, बाद में श्रीरामपुर (सेरामपुर) के बैप्टिस्ट प्रेस में चले गये। उसी प्रेस में प्रसिद्ध विद्वान विलियम कैरी और जोशुआ मार्समैन थे। वहीं विलियम वार्ड भी थे, जिन्होंने डर्बी में छपाई की विधिवत् शिक्षा ली थी। वार्ड ने कलकत्ते से एक प्रेस खरीदा और सन १८०० में बंगला में बाइबल का एक अंश, मैथ्यू का सुसमाचार प्रकाशित किया। अगले साल बाइबल का नया टेस्टामेन्ट और १८०९ में पुराना टेस्टामेन्ट तैयार हो गये। इसी प्रेस में हिंदी में बाइबल भी प्रकाशित हुई।

कलकत्ते में छपाई के साथ-साथ पत्रकारिता का भी प्रारंभ हुआ। भारत में सबसे पहला पत्र 'बंगाल गजट एंड जनरल एड-वर्टाइज़र' जेम्स आगस्टस हिकी ने २९ जनवरी १७८० को निकाला। उस पत्र से हिकी ने भारतीय पत्रों के लिए उच्च आदर्श और भविष्य भी निर्धारित कर दिया था। इसके अग्रलेख में उन्होंने लिखा था—'मुझे अपने मन और आत्मा के लिए स्वतंत्रता मोल लेने में अपने शरीर को दास बनाने में प्रसन्नता होती है।' पत्र के शीर्षक के नीचे लिखा गया था—'राज-नैतिक और व्यापारिक साप्ताहिक—खुला तो सब पार्टियों के लिए है पर प्रभावित किसी से नहीं है।'

'बंगाल गजट' में (जिसे साधारणतया 'हिकीज़ गजट' कहा जाता था) गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स की खरी आलोचना होती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि गवर्नर जनरल ने १४ नवंबर १७८० को आदेश दिया कि 'बंगाल गजट' की प्रतियां बिना डाक-टिकट लगाये ग्राहकों को भेजने की और ग्राहकों से डाक-व्यय वसूल करने की जो सुविधा दी गयी थी वह बंद कर दी जाये। १७८२ में हिकी का प्रेस जब्त कर लिया गया और बाद में उन्हें भारत से बाहर निकाल दिया गया।

इसके बाद कलकत्ते में और भी पत्र निकले; पर वे मुख्यतया अंग्रेजी के पत्र थे।

श्रीरामपुर के पादरियों के बैप्टिस्ट मिशन प्रेस से सन १८१८ में प्रथम बंगला मासिक 'दिग्दर्शन' का प्रकाशन हुआ। भारत की आरंभिक छपाई की जो प्रदर्श-

ब्रिटिश म्यूजियम में १५ अक्तूबर १९७८ से १९ फरवरी १९७९ तक हुई, उसमें १८२२ के बंगला 'दिग्दर्शन' की एक प्रति दिखायी गयी थी। 'दिग्दर्शन' के बारे में कहा गया है कि यह बंगला युवकों का पत्र था। मुख्यतया यह एक शैक्षणिक पत्र था। उन दिनों पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं और 'दिग्दर्शन' में पाठ्य सामग्री ही रहा करती थी। हाल में यह विवादास्पद बात प्रचलित हो गयी है कि 'दिग्दर्शन' १८१८ में हिंदी में भी प्रकाशित हुआ था। परंतु अभी तक उसकी कोई हिंदी प्रति न तो भारत में उपलब्ध हुई है और न हमें ही अपनी हाल की यात्रा में ब्रिटिश संग्रहालय के प्राच्य पांडुलिपियों और मुद्रित पुस्तकों के विभाग में देखने को मिली।

'दिग्दर्शन' के प्रकाशन के पश्चात् श्रीराम-पुर से एक पत्र निकला—'समाचार दर्पण'। इसके संपादक थे श्री मार्समैन। उसी वर्ष कलकत्ते से भी एक बंगला पत्र निकला, जिसका नाम था—'बंगाल गजट'। उसके प्रकाशक और संपादक श्री हारुचंद्र राय और श्री गंगाकिशोर भट्टाचार्य थे। ये दोनों सज्जन राजा राममोहन राय के मित्र थे और इन्होंने समाज-सुधार की भावना से यह पत्र निकाला था। सन १८२० में राजा राममोहन राय के एक अन्य मित्र श्री भवानीचरण बनर्जी ने श्री ताराचंद्र दत्त के साथ मिलकर 'संवाद कौमुदी' निकाली।

बाद में स्वयं राजा राममोहन राय ने 'ब्रैह्मानिकल मैगजीन' निकाली, जो बंगला और अंग्रेजी दोनों में छपती थी। इसके बाद ही राजा राममोहन राय इंग्लैंड गये। वहां से लौटने पर उनका सामाजिक बहिष्कार हुआ और उन्होंने ब्राह्म समाज की स्थापना की तथा फारसी में 'मीरात उल अखबार' निकाला। फारसी उन दिनों राजभाषा और कचहरियों की भाषा थी; क्योंकि राज दिल्ली के बादशाह का समझा जाता था और ईस्ट इंडिया कंपनी उसकी दीवान थी।

राजा राममोहन राय बंगाल में पत्रकारिता के जनक थे। उन्होंने ४ दिसंबर १८२१ को 'संवाद कौमुदी' निकाली और उसके बाद ५ मार्च १८२२ को 'समाचार चंद्रिका' प्रकाशित हुई। बाद में कलकत्ता से बहुत-से पत्र निकले। इनमें विशेष उल्लेखनीय है ३० मई १८२६ को आरंभ हुआ हिंदी का प्रथम पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड'। इसकी स्थापना श्री युगलकिशोर शुक्ल ने की थी। वे कलकत्ते में सदर दीवानी अदालत में लेखक थे और बाद को वकील हो गये थे और इस तरह उर्दू-फारसी से ही उन्हें काम पड़ता था; परंतु उन्होंने प्रथम हिंदी पत्र की स्थापना की और उसे बड़ी ही बहादुरी से ११ दिसंबर १८२७ तक चलाया।

'उदन्त मार्त्तण्ड' कलकत्ता-वासियों की दृष्टि में प्रथम हिंदी पत्र था। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि 'समाचार चंद्रिका' नाम की बंगला पत्रिका ने ११ मार्च १८२६ को 'नागरी नूतन समाचारपत्र' शीर्षक से

अगला नवनीत

एक कला-व्यसनी का कर्तृत्व
पुणे के विख्यात राजा केलकर संग्रहालय की कला-संपदा की सचित्र झांकी।

पूज्य दद्दा
महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंद्रहवीं पुण्यतिथि पर उनके भावस्निग्ध हृदय और व्यवहार-निपुण बुद्धि का मार्मिक शब्दचित्र सुरेश सिंह की लेखनी से।

आइन्स्टाइन : एक विशुद्ध चेतना
सापेक्षवाद के जनक की जन्म-शताब्दी के संदर्भ में विज्ञानी लियोपोल्ड इन्फील्ड की आत्मकथा का एक अंश और रानी डिसूजा रचित पोर्ट्रेट।

नाम ही बन गये काम
विज्ञान के पारिभाषिक शब्द बनकर इन विज्ञानियों के नाम अमर हो गये हैं- प्रमोद जोशी का लेख।

मुर्दा हाथ की रेखाएं बोलीं
विश्वविख्यात हस्तरेखा-विशेषज्ञ कीरो का एक हृदयस्पर्शी संस्मरण।

दुहाई मुक्ति-संग्राम की
श्री एन. जी. गोरे का विचार-प्रेरक राजनैतिक लेख।

सुम्निमा
विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला के उपन्यास की दूसरी किस्त।

कहानियां
हंसोड–हाइनरिश ब्योल (जर्मन); कसूर–मिथिलेश्वर (हिंदी); युद्ध-घोषणा से पहले–पीटर चेनी (अंग्रेजी)।

अन्य शीर्षक :
मार्गरेट मीड और संस्कृति; दायित्व रिटायर्ड और वृद्धों का; तीन सबक; जा पान ले आ।

कविताएं–संस्मरण–विज्ञान–हास्य–अन्य स्थायी स्तंभ।

यह सूचना प्रकाशित की थी कि शीघ्र ही नागरी भाषा में एक समाचार-पत्र प्रकाशित होने वाला है। (उस समय हिंदी को 'नागरी' ही कहा जाता था; उसी के आधार पर 'नागरी प्रचारिणी' सभाओं की स्थापना काशी, आरा तथा अन्य स्थानों पर हुई।) जब 'उदन्त मार्त्तण्ड' प्रकाशित हो गया, तो श्रीरामपुर के 'समाचार दर्पण' के १७ जून १८२६ के अंक में छपा–'अंग्रेजी और बंगला पत्रों के बाद फारसी में और कुछ दिनों तक उर्दू में भी पत्र प्रकाशित हुए और अब नागरी भाषा में "उदन्त मार्त्तण्ड" प्रकाशित हुआ है, जिससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है।'

डा. महादेव साहा और श्री जोगेंद्र सक्सेना ने 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' में यह दावा किया है कि अप्रैल १८१८ से मार्च १८१९ और जनवरी १८२० से अप्रैल १८२० तक मासिक 'दिग्दर्शन' के कुल १६ अंक अंग्रेजी और बंगला में प्रकाशित हुए थे। प्रकाशकों ने हिंदी में भी इस पत्रिका को निकालने की बात सोची। दिल्ली से आदमी लाकर इसके तीन अंक निकाले गये। इस तरह 'दिग्दर्शन' बंगला का पहला पत्र होने के साथ ही हिंदी का भी पहला पत्र था।

डा. साहा ने यह बात सबसे पहले अगस्त १९५९ में लिखी थी। परंतु अभी तक ये बातें पता नहीं चल सकी हैं कि हिंदी 'दिग्दर्शन' किस तिथि को प्रकाशित हुआ, कौन उसका संपादक था और उसमें क्या छपता था। दिल्ली से आदमी लाने की बात भी समझ में नहीं आती; क्योंकि दिल्ली में तो पहला प्रेस ही १८३४ में खुला। उससे पहले बनारस से 'बनारस अखबार' निकल चुका था और वहां हिंदी का प्रेस कायम हो चुका था; हिंदी का कंपोजिटर और संपादक वहां से बुलाये जा सकते थे।

ब्रिटिश म्यूजियम की प्रदर्शनी में १८२२ में प्रकाशित बंगला 'दिग्दर्शन' का मुखपृष्ठ ही दिखाया गया था और उसे भारतीय युवकों की पत्रिका कहा गया था। डा. साहा ने खुद भी लिखा है कि कलकत्ते के 'दिग्दर्शन' के अंक खरीदकर कलकत्ता स्कूल बुक्स सोसायटी ने स्कूलों को बांट दिया था और 'दिग्दर्शन' का अंग्रेजी-बंगला संस्करण भी पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया था, जिसके मुखपृष्ठ पर लिखा गया था–'दिग्दर्शन अर्थात् युवलोकेर कारण संगृहीत नाना उपदेश'। इस दृष्टि से भी यह पत्र चाहे बंगला में रहा हो या उसका हिंदी अनुवाद रहा हो, समाचारपत्र नहीं था, जिसमें देश-विदेश के समसामयिक समाचारों के साथ राजनैतिक और सामाजिक टिप्पणियां रहती हों।

'दिग्दर्शन' की तो बात ही क्या, 'समाचार दर्पण' में भी (जो कि बाद में साप्ताहिक हो गया) धार्मिक प्रचार ही अधिक रहता था। उसमें कंपनी सरकार के विरुद्ध कोई टिप्पणी नहीं रहती थी और कंपनी सरकार से उसे मदद मिलती थी। लेकिन 'उदन्त मार्त्तण्ड' को कोई सरकारी सहा-

यता नहीं मिली। ग्राहकों और विज्ञापकों का भी कोई बड़ा सहयोग नहीं मिला, जिसके कारण श्री युगलकिशोर शुक्ल को यह पत्र बंद कर देना पड़ा।

'उदन्त मार्त्तण्ड' के समाप्त होने के बाद राजा राममोहन राय ने फिर चार भाषाओं में एक पत्र निकाला, जिसका हिंदी तथा बंगला नाम था 'बंगदूत' और संपादक थे श्री नीलरत्न हालदार। अंग्रेजी का पत्र 'हिंदू हेरल्ड' के नाम से निकलता था और बाकी कालमों में हिंदी, बंगला और फारसी होती थी। इसके बाद कलकत्ता और बनारस से और बाद में आगरा, इंदौर, ग्वालियर या भरतपुर से भी जो पत्र निकले, वे प्रायः साप्ताहिक थे और द्विभाषी थे।

हिंदी पत्रकारिता की दृष्टि से जून १८५४ में एक महत्त्वपूर्ण पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह था—दैनिक 'समाचार सुधावर्षण'। यह हिंदी और बंगला दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। परंतु यह बंगला का प्रथम दैनिक नहीं था। जब यह छपना शुरू हुआ, तब बंगला में तीन दैनिक मौजूद थे, जिनमें से 'संवाद प्रभाकर' काफी पुराना था। 'समाचार सुधावर्षण' चौदह वर्षों तक चला और किसी देशी भाषा के पत्र का इतने लंबे काल तक चलना उस जमाने में स्वयं एक बड़ी उपलब्धि थी।

'समाचार सुधावर्षण' को एक दूसरा गौरव भी प्राप्त है, जिसके लिए भारतीय पत्रकारिता की स्वाधीनता के इतिहास में उसका नाम अत्यंत गौरवपूर्ण शब्दों में लिखा जायेगा। १८५७ में भारत [illegible] प्रथम स्वाधीनता-संग्राम छिड़ने पर [illegible] शाह बहादुरशाह ने एक फरमान नि[illegible] कर अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने [illegible] आह्वान किया था। 'समाचार सुधाव[illegible]' ने यह फरमान ज्यों का त्यों छापा। [illegible] पर उसके संपादक-प्रकाशक श्री श्याम[illegible] सेन पर १७ जून १८५७ को कलकत्ते [illegible] सर्वोच्च न्यायालय में मुकद्दमा चला।

यह मुकद्दमा एडम्स के १८२३ के [illegible] लेशन के अनुसार चलाया गया था [illegible] इसमें श्री सेन पर राजद्रोह का अभि[illegible] लगाया गया था। परंतु सन १८३६ में [illegible] चार्ल्स मेटकाफ के आदेशों से एडम्स [illegible] लेशन की कड़ाई कम हो गयी थी [illegible] पत्रों को लिखने और छापने की अ[illegible] स्वाधीनता दी गयी थी। उसी के प[illegible] णामस्वरूप श्री श्यामसुंदर सेन बच [illegible] नहीं तो वे वर्षों की जेल काटते और उ[illegible] प्रेस भी जब्त हो जाता। फिर उसी [illegible] यानी १८५७ में ही लार्ड कैनिंग ने ए[illegible] के समय प्रचलित नियमों को पूरे दे[illegible] पुनः लागू किया और यह कानून प्रे[illegible] प्रतिबंधित या नियंत्रित करने वाले [illegible] के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

'समाचार सुधावर्षण' की फाइल [illegible] कल भारत के किसी पुस्तकालय, संग्रहा[illegible] या अन्य ऐसे स्थान पर उपलब्ध नहीं [illegible] जहां शोधार्थी उन्हें देख सकें। मुझे [illegible] हाल की लंदन-यात्रा में ब्रिटिश संग्रहा[illegible] के प्राच्य विभाग में इसके सितंबर १[illegible]

के कुछ अंक देखने को मिले। पत्र का शीर्षक, पता, संख्या, तिथि आदि सभी दो भाषाओं में हैं—पहले हिंदी में और फिर बंगला में। प्रथम पृष्ठ पर विज्ञापन होते हैं—पहले हिंदी में और फिर बंगला में। दूसरे पृष्ठ पर भी विज्ञापन ही हैं। किसी विज्ञापन को 'विज्ञापन' कहा गया है और किसी को 'इस्ताहार'। भाषा बंगला से प्रभावित हिंदी है। सुप्रीम कोर्ट के विज्ञापन हिंदी में हैं और म्युनिसिपल नोटिस बंगला में और उनमें अंग्रेजी में पदाधिकारियों के नाम आदि भी हैं।

अग्रलेख पहले प्रथम पृष्ठ पर ही छपता था। 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' में जो नमूना छपा है, वह २१ पौष शुक्रवार ई. सन १८५६, तारीख ८ जनवरी का है। उसमें भी अग्रलेख प्रथम पृष्ठ पर है। परंतु ऐसा लगता है कि बाद में जब विज्ञापन बढ़ गये, तो अग्रलेख पहले-दूसरे पृष्ठों के बजाय सातवें-आठवें पृष्ठों पर छपने लगा; क्योंकि चौथे पन्ने तक तो समाचार ही आ पाते थे और उससे पहले विज्ञापन रहते थे। नेशनल लाइब्रेरी (कलकत्ता) में इसकी जो प्रतियां हैं, वे खंडित हैं। उनमें पहले-दूसरे और सातवें-आठवें पृष्ठ तो हैं, लेकिन तीसरे-चौथे व पांचवें-छठे पृष्ठ गायब हैं। इससे प्रतीत होता है कि लाइब्रेरी को भी या तो आधा पत्र ही उपलब्ध हुआ है, या उसने शीर्षक वाले पृष्ठों को ही सुरक्षित रखना काफी समझा।

'समाचार सुधावर्षण' की भाषा कैसी होती थी, इसका एक उदाहरण लीजिये :

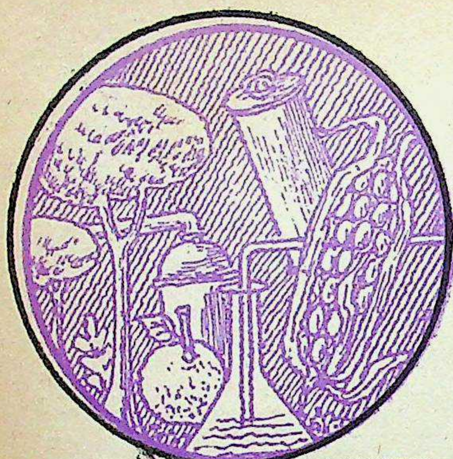
'तिन ठो रेडी के तेल का कल माय असबाब ओ एक ठों पिसने का कल जो वोही कलका वास्ते आवश्यक है और बहुत अच्छा काम लायक है इस्का दरकार होवेगा १२ नम्बर पुराना चिने बाजार में रहने वाला मिसार्स तुलसीदास दत्त कोके कार्यालय में गमन करने से मिलेगा।'

श्री रामरतन भटनागर ने अपने शोध-प्रबंध में लिखा है कि समाचार, संपादकीय आदि मुख्यतया हिंदी में होते थे और बंगला में विज्ञापन मात्र रहते थे। परंतु लंदन में इसके जो अंक हमने देखे और पढ़े, उनके बंगला अंशों का अनुवाद कराने पर हमने पाया कि बंगला में भी हिंदी की ही तरह समाचार, संपादकीय टिप्पणियां और पाठकों के ज्ञानवर्धन की अन्य सामग्री आदि होती थी।

'समाचार सुधावर्षण' हिंदी का प्रथम दैनिक होते हुए भी समाचारों की दृष्टि से सुलझा हुआ पत्र था। उसके पास सरकारी सूत्रों से तार आते थे और कलकत्ता, बंबई, मद्रास, पूना, बेंगलूर के समाचारपत्रों में (जो कि अंग्रेजी के थे) छपे मुख्य समाचारों का सार पाठकों के लिए दिया जाता था। समाचार अंतरराष्ट्रीय भी होते थे और राष्ट्रीय भी।

अंतरराष्ट्रीय समाचारों में से एक यह था कि लाल सागर में भयानक उत्ताप हुआ और इतनी गरमी पड़ी कि एक जहाज पर

[शेष पृष्ठ १५१ पर]



विज्ञान-बिंदु

केजिता

आदमी शून्य में नहीं जीता—यह सामाजिक दृष्टि से ही नहीं भौतिक दृष्टि से भी सत्य है। आदमी के चारों तरफ वायु और ऊर्जा का एक विशाल आवरण है। जीवन-संचालन में वायुमंडल और ऊर्जा-पर्यावरण बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। परंतु एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में अनेक देश और समाज ऐसे कई काम करने से बाज नहीं आ रहे हैं, जिनसे जीवन-संचालन के लिए आवश्यक मूल तत्त्वों के ही टूटने-बिखरने का खतरा पैदा हो गया है।

विश्व मौसम-विज्ञान संघटन ने हाल ही में ऐसे ही एक गंभीर खतरे की तरफ दुनि का ध्यान आकृष्ट किया है। इसका सं सूर्य और वायुमंडल से है। हम सभी जा हैं कि सांस द्वारा हम आक्सिजन को भीतर खींचते हैं, जो हमारे चारों ओर वातावरण में घुली हुई होती है। आक्सिजन रक्त के माध्यम से शरीर प्रत्येक कोशिका तक पहुंचती है। शरी की दूषित आक्सिजन, कार्बन डाइ आक्स इड निःश्वास के साथ वातावरण में निका दी जाती है। पेड़-पौधे इस कार्बन ड आक्साइड को ग्रहण कर फिर उसे आक्सि जन में परिवर्तित कर देते हैं। वायुमं का यह काम जीवन को चलाये रखने लिए प्राथमिक महत्त्व का है।

वायुमंडल का एक दूसरा काम भी है वह एक सुरक्षा-आवरण के रूप में हमें की खतरनाक विकिरणों से बचाये रख है। सूर्य की पराबैंगनी किरणें मनुष्य कैन्सर उत्पन्न कर सकती हैं। वायुमं की ऊपरी मोटी परत, जो कि मुख्य ओजोन गैस की बनी हुई है, पराबैं किरणों को बाहर ही रोक देती है और पृथ्वी तक नहीं पहुंचने देती। रासायनि दृष्टि से ओजोन और आक्सिजन में को तात्त्विक भेद नहीं होता। ओजोन में आक्सिजन के तीन और आक्सिजन- में इसके दो परमाणु होते हैं। यदि हमा किन्हीं हरकतों से वायुमंडल की ओजोन-परत टूटकर आक्सिजन में बदल लगे तो उससे मनुष्य-जीवन के लिए ख

...ता हो जायेगा।

भयंकर बात यह है कि यह सिलसिला, ...वर्षों पहले बहुत मंद गति से प्रारंभ ...आ था, अब तेजी पकड़ता जा रहा है। ...श्व मौसम-विज्ञान संघटन के अनुसार ...छ वर्ष पूर्व ओजोन-विघटन २० वर्ष ...५ प्रतिशत की रफ्तार से चल रहा था। ...ाजातर अनुमान के अनुसार यह काम ...ब २० वर्ष में १५ प्रतिशत की रफ्तार से ...ने लगा है। विश्व मौसम-विज्ञान संघटन ... वायुमंडल में अनेक रसायन-परीक्षण ...रके ये आंकड़े प्राप्त किये हैं।

ओजोन-परत को प्रभावित करने वाले ...रकों में एरोसॉल, स्प्रे, प्रशीतलन (रेफ्रि...रेशन), विभिन्न औद्योगिक प्रक्रम, ऊंची उड़ान भरने वाले वायुयान और कृत्रिम उर्वरक विशेष रूप से गणनीय हैं। मगर दुर्भाग्य से यही सब तो आज औद्योगिक-आर्थिक विकास के पैमाने भी हैं!

बूढ़ी खाद-युवा उर्वरक

कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए बड़े पैमाने ...र उर्वरकों का उत्पादन हानिकारक ...वृत्ति है, इसकी पुष्टि की है अमरीका ...के प्रसिद्ध प्राकृतिक ऊर्जा विशेषज्ञ जॉन ...ार ने। 'डिजाइन फार ए लिमिटेड ...नेट' नामक बहुचर्चित पुस्तक के लेखक ...नार अभी पिछले दिनों भारत आये थे। ...न्होंने अमरीका में तो संदूषण के विरुद्ध आंदोलन छेड़ रखा ही है, विश्व के अन्य ...शों को भी संदूषण के खतरों से आगाह करने के लिए उन्होंने कमर कस ली है।



प्रो. देवेन्द्र लाल, निदेशक: फिजिकल रिसर्च लैबोरेटरी, अहमदाबाद, जिन्हें हाल में लंदन की रायल सोसायटी का फेलो मनोनीत किया गया। अंतरराष्ट्रीय ख्याति के परमाणु-विज्ञानी प्रो. लाल हिंदी में आम पाठकों के लिए विज्ञान-लेख लिखने में भी पटु हैं।

भारत को नेक सलाह देते हुए उन्होंने कहा है कि सबसे साफ-सुथरा रास्ता तो यही है कि मनुष्य और पशुओं के मलमूत्र और कृषि-अपशिष्ट पदार्थों से निर्मित खादों को पुनश्चक्रण द्वारा अधिक प्रभावकारी बनाकर उन्हीं का खेतों में इस्तेमाल किया जाये। यदि रासायनिक उर्वरकों के बिना काम चलता ही नजर न आये तो भी उनके निर्माण के लिए बड़े कारखाने तो

हर्गिज न बनाये जायें। छोटे-छोटे उर्वरक कारखाने संदूषण की दृष्टि से कम खतरनाक होते हैं।

श्री नार को विश्वास है कि अभी जिन कृषिविधियों की इतनी चर्चा और प्रशंसा की जा रही है, उनके दोष कुछ समय में खुद ही उभरकर सबके सामने आ जायेंगे। उन्होंने ऊर्जा-स्रोतों के रूप में सौर और पवन ऊर्जा के साथ बायोगैस संयंत्रों की स्थापना की भी जोरदार वकालत की है।

आक्सिजन : एक नया आयाम

आक्सिजन का उपयोग अब कुष्ठरोग की चिकित्सा में भी किया जा रहा है। इस नयी उपचार-विधि को 'एच. पी. ओ. थैरेपी' अर्थात् उच्च दाब आक्सिजन चिकित्सा की संज्ञा दी गयी है। बंबई के पोर्ट ट्रस्ट अस्पताल के डा. ई. डी. मोकाशी ने इसका विवरण हाल में एक सेमिनार में दिया है।

इसमें रोगी एक गैसकक्ष में रहकर शत प्रतिशत शुद्ध आक्सिजन की सांस लेता है। कक्ष में गैस का दाब भी वायुमंडलीय दाब से अधिक रखा जाता है। कुष्ठग्रस्त ऊतकों (टिश्यू) पर शुद्ध और उच्च दबावयुक्त आक्सिजन सीधा प्रहार करती है। इससे रोग का आगे का प्रसार रुकने लगता है और जितना प्रसार हो चुका होता है, वह ठीक होने लगता है।

बंबई का पोर्ट ट्रस्ट अस्पताल देश का पहला अस्पताल है, जिसमें इस तकनीक का उपयोग किया जा रहा है। बंबई के लिए इसका विशेष महत्त्व है; क्योंकि बंबई कुष्ठरोग का प्रसार तेजी से बढ़ रहा है अब वहां आठ और नौ हजार के बीच प्रति वर्ष नये केस रजिस्टर किये जा रहे हैं।

ऊर्जा की भूख और खोज

ईंधन के नये-नये स्रोतों, नयी किस्म के ईंधनों और उनकी उत्पादन-विधियों की व्यग्रता-भरी खोज के संदर्भ में कुछ ता खबरें ये हैं :

* **सूरजी कार :** स्वीडन की एक का निर्माता फर्म ने एक ऐसी कार का निर्मा कर लिया है, जो सौर ऊर्जा से चलती है इस कार में आठ बैटरियां हैं, जिन्हें चा करेंगे कार की छत और उसके पिछले भा में फिट किये गये ५०२ सोलर सेल। इ कार की स्पीड पचास किलोमीटर के आ पास है। फिलहाल यह कम दूरी की या के लिए ही इस्तेमाल की जा सकती है यह पेट्रोल-चालित कारों की तरह धु नहीं उगलती।

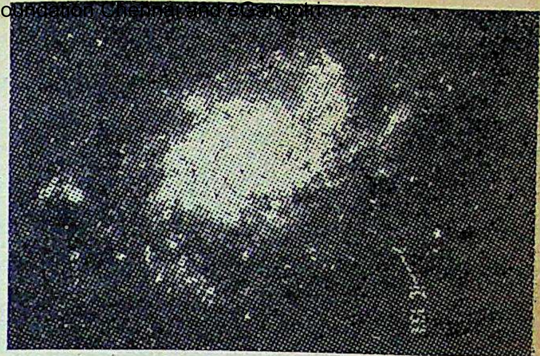
* **केले के तने से मीथेन गैस :** मी गैस एक ईंधन है। जमीन से निकलने वा गैस में भी मीथेन मौजूद होती है। के के तने से इस गैस के निर्माण के लिए का समय से प्रयत्न चल रहा था बड़ौदा विश्वकर्मा विद्यालय में। अब वहां के आचा आर. एम. दवे ने इस प्रयत्न के सफल है की घोषणा की है। बताया गया है कि और उत्पादन लागत की दृष्टि से यह विधि व्यावहारिक और उपयोगी सा होगी।

* **तापांतर से ऊर्जा :** महासागरों और समुद्रों के पानी की ऊपरी सतह का तापमान प्रायः अधिक होता है और गहरे तलों के पानी का तापमान अपेक्षाकृत कम। इस तापांतर का उपयोग बिजली के उत्पादन के लिए करने की बात काफी समय से सोची जा रही थी। अब जापान के साणा विश्वविद्यालय और एक औद्योगिक एव प्रौद्योगिक शोध संस्थान ने मिलकर यह काम कर दिखाया है।

परीक्षण के तौर पर छोटे पैमाने पर किये गये प्रयोग में लगभग एक किलोवाट बिजली पैदा की जा सकी है। इसके लिए लगभग बीस अंश (डिग्री) का तापांतर आवश्यक समझा जाता है। गरमी के मौसम में समुद्र की विभिन्न सतहों में इतना तापांतर दिन के ६० से लेकर ७० प्रतिशत समय तक रहता है। इसका उपयोग करके समुद्र-तटीय इलाकों में उपयोगी मात्रा में ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। जापान में ओकीनावा द्वीप-समूह का क्षेत्र इस दृष्टि से विशेष अनुकूल माना गया है।

* **रेशम के कीड़ों से तेल :** रेशम के कीड़ों से रेशम निकाल लेने के बाद बचने वाले अंश से तेल और खाद्य प्रोटीन हासिल किये जा सकते हैं। अभी तो यह बचा हुआ हिस्सा कूड़े के रूप में फेंक दिया जाता है।

नयी दिल्ली में पिछले दिनों हुई तेल और तिलहन संबंधी अंतरराष्ट्रीय कांग्रेस में बताया गया कि रेशम के कोये में से रेशम-तंतु निकाल लेने के बाद बचे कीड़े के शव



नीहारिका आइ. सी. १३३ हमारी अपनी आकाशगंगा के बाहर पहला स्थान है, जहां विज्ञानियों को पानी के अस्तित्व का प्रमाण मिला है। यह नीहारिका पृथ्वी से २२ लाख प्रकाशवर्ष परे एक आकाशगंगा के किनारे स्थित है। पानी का अस्तित्व इसका संकेत है कि संभवतः उस आकाश-गंगा में जीव का उद्भव और विकास हुआ होगा।

में से एक तेल प्राप्त किया जा सकता है, जो कि साबुन, पेन्ट और वस्त्रोद्योग के लिए उपयोगी होगा। यही नहीं, यह तेल प्राप्त करने के बाद जो हिस्सा बचेगा, उसे भी मुर्गी और मवेशी आदि के लिए तैयार किये जाने वाले आहार में प्रोटीन की पूर्ति के लिए काम में लाया जा सकता है। हिसाब लगाया गया है कि रेशम-तंतु निकाल लेने के बाद शेष भाग में भार की दृष्टि से तेल की मात्रा लगभग २६ प्रतिशत तक होती है और तेल निकाल लेने के बाद बचे पदार्थ में औसतन ७६ प्रतिशत प्रोटीन होती है।



झरा हुआ फूल

एक एक कर झरीं
क्यारी में बिखरी
पंखुरियां
अस्त-व्यस्त
रंगों की दुनिया ......
स्मृतियां –
या कि
किनकों पर बिखर गयी
ओस-भीगी व्यथा ......
अस्तित्व और अनस्तित्व को
उजागर करने वाली
जीवन की लघुकथा ......
या कि
हवा की अनगिनत-अक्षय लहरों में
खुशबू की यह व्यापकता ......
क्षणभंगुर जीवन की
सार्थकता ......

–डा. रमा सिंह

किशोर भवन, रतनाडा,
जोधपुर, राजस्थान

डा. अ. ला. श्रीवास्तव के लेख 'भारत का पहला पितृहंता राजवंश' (दिसंबर अंक) के संदर्भ में

क्या अजातशत्रु पितृहंता था?

मुनि शीलचंद्रविजय

अजातशत्रु पितृहंता नहीं था और न उसका पूरा वंश ही पितृहंता था—इस बात का ऐतिहासिक आधार है।

अजातशत्रु जिस राजवंश का था, वह 'शिशुनाग-वंश' कहलाता था। ईसा पूर्व ८०५ में काशी के शिशुनाग नाम के राजा ने मगध के आमंत्रण पर मगध का स्वामित्व स्वीकारा और अपने नाम से वहां एक राजवंश की स्थापना की।

बिंबिसार

इसी वंश में जनमा बिंबिसार ईसा पूर्व ५८० में मगध का छठा सम्राट् बना। यों तो मगध की राजधानी कुशाग्रपुर थी; किंतु बिंबिसार के पिता राजा प्रसेनजित् ने उस काष्ठप्रासादमय नगर में रहने वाले प्रजाजनों की दुर्दशा देखकर, वैभारगिरि की पर्वतमाला में नयी राजधानी बसायी, जो गिरिव्रज या राजगृही नाम से प्रख्यात हुई।

राजा प्रसेनजित् (ईसा पूर्व ६२३ से ५८०) के बहुत पुत्र थे। उनमें से एक था बिंबिसार। जैन ग्रंथों में वह श्रेणिक और भंभासार इन दो नामों से प्रसिद्ध है। उसका राज्यकाल ईसा पूर्व ५८० से ५२८ (५२ वर्ष) का रहा। उसने अपने जीवन में क्रमशः तीनों धर्मों का पालन किया। अपने शासन के प्रारंभिक सोलह वर्ष (ईसा पूर्व ५८० से ५६४) तक वह वैदिकधर्मी रहा, ऐसा मालूम होता है। बाद में यज्ञीय हिंसा से ऊबकर उसने बौद्धधर्म स्वीकारा और उसका पालन करीब सात साल तक किया। बाद में उसने जैनधर्म अंगीकार कर लिया। इसके दो कारण माने जाते हैं। एक तो यह कि उसकी रानी क्षेमा ने उसकी इच्छा के विरुद्ध भगवान बुद्ध से दीक्षा ले ली (डा. त्रिभुवनदास ल. शाह कृत 'प्राचीन भारतवर्ष', खंड १, पृ. २५६)। दूसरा कारण था विदेह देश के गणतंत्रनायक राजा चेटक की पुत्री—जो कि जैन थी—चेल्लणा अथवा चिल्लणा (छलना नहीं) के साथ उसका विवाह। इस अतीव रूपवती रानी की संगति के प्रभाव से बिंबिसार ईसा पूर्व ५५८ में जैन धर्मानुयायी बना और जीवन के अंत तक जैन धर्मानुयायी ही रहा।

बिंबिसार के भी अनेक पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा था अभयकुमार। जैन ग्रंथों के

अनुसार वह बिंबिसार की वणिक्-रानी सुनंदा का पुत्र था, बुद्धिमान था और अपने पिता का मंत्री एवं समग्र राज्य का महामंत्री था। राज्य का प्रथम हकदार तो वही था; मगर उसने भगवान महावीर का शिष्य होना ही पसंद किया। उसके बाद राज्य का हकदार युवराज अजातशत्रु बना। डा. त्रिभुवनदास के अनुसार, उसका नाम 'अजितशत्रु' (शत्रुओं द्वारा अजेय) होना चाहिये। जैन ग्रंथों अनुसार उसका नाम 'अशोकचंद्र' अथवा 'कूणिक' (जिसकी एक बांह टेढ़ी हो) था। बौद्ध ग्रंथों में उसे 'विदेहीपुत्तो' और पुराणों में 'दर्शक' नाम से पहचाना गया है।

अपने माता-पिता की तरह वह भी जैनधर्मी एवं भगवान महावीर का परम उपासक था। आचार्य हेमचंद्र कृत मान्य ग्रंथ 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र' व 'परिशिष्टपर्व' के निम्न दो श्लोकों से यह बात स्पष्ट है :

त्रैलोक्यसंशयोच्छेदकारकं परमेश्वरम् ।
वन्दितुं तत्र समवसरणे कूणिकोऽप्यगात् ।।
सुधर्मस्वामिगणभृत्पादपद्मैरधिष्ठितम् ।
आससाद वनोद्देशं नृपोऽथ सपरिच्छदः ।।

'द आक्सफर्ड हिस्टरी ऑफ इंडिया' (१९२८) में कहा गया है—'बौद्ध और जैन दोनों दावा करते हैं कि वह उनका था। जैनों का दावा साधार प्रतीत होता है (पृष्ठ ४८)।'

यह और इसी आशय का 'कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इंडिया' का संदर्भ अजातशत्रु के जैनत्व को प्रमाणित करते हैं। सभी धर्मों वाले उसे अपने धर्म का समझते हैं; इसे उसकी (अजातशत्रु की) सांप्रदायिक आग्रह से निरपेक्ष उदार दृष्टि का प्रमाण समझना चाहिये।

अजातशत्रु का राज्यकाल ईसा पूर्व ५२८ से ४९६ तक था। अपने पिता के अकाल मरण से दुःखित होकर उसने पिता के मृत्युस्थान को छोड़कर चंपानगरी को अपनी राजधानी बनाया। भरहुत नाम का प्रसिद्ध स्थान इसी चंपानगरी के निकट था और भगवान महावीर की कैवल्य-प्राप्ति का स्थान भी वही था। अजातशत्रु ने वहां पर एक स्तूप बनवाया, ताकि भगवान के कैवल्य-प्राप्ति के स्थान की स्मृति लोक मानस में सर्वदा बनी रहे। इस स्तूप में अजातशत्रु को भगवान के चरणों में वंदन करते हुए दिखाया गया है।

'बुद्धिस्ट इंडिया' (पृष्ठ १५) में प्रो. राइस डेविस ने कहा है :

'जैसा कि प्रायः हुआ है, भरहुत स्तूप में बुद्ध का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं किया गया है, केवल उनके चरण-चिह्न दरशाये गये हैं। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि आंदोलन के बाद, जिसमें उसका हृदय संचलित हुआ था, वह सचमुच बुद्ध के उपदेशों का अनुगामी बना रहा। जहां तक हम जानते हैं फिर कभी वह नैतिक प्रश्नों की चर्चा के लिए न बुद्ध की और न संघ के अन्य किसी सदस्य की सेवा में उपस्थित हुआ और हमें यह सुनने को नहीं मिलता कि बुद्ध

जीवन-काल में उसने संघ को कोई भौतिक सहायता दी।'

इससे स्पष्ट है कि भरहुत स्तूप के बौद्ध स्तूप होने का कोई प्राचीन प्रमाण नहीं है।

यह विचारणीय है कि अजातशत्रु को पितृहंता कहा जाये या नहीं। माना जाता है कि उसने अपने पिता को कैद कर दिया था और कारावास में ही उसकी हत्या भी कर दी थी। मगर यह निर्भ्रांत यथार्थ तथ्य नहीं है। इस घटना का पूरा सिलसिला यों है :

बिंबिसार ने मन ही मन तय कर लिया था कि अब अजातशत्रु को राज्य सौंपकर मैं निवृत्त हो जाऊं। तब उसने यह सोचकर कि बाद में मेरे अन्य पुत्रों को असंतोष या अन्याय का एहसास न हो, सभी को उत्तम वस्तुएं यथायोग्य बांट दीं। उसका आशय यह था कि यह सब काम निबटाकर ही अजातशत्रु को गद्दी दूं, ताकि उसका मार्ग निष्कंटक रहे। मगर अजातशत्रु पिता का उच्च आशय समझ नहीं सका, और उसने किसी भी तरह पिता को कैद कर लिया और स्वयं राजा बन बैठा।

पिता पर उसे इतना तीव्र रोष था कि उसने उसे भोजन देने की भी सख्त मनाही कर दी; यही नहीं प्रतिदिन दो बार वह खुद जाकर उसे सौ-सौ कोड़े भी लगाने लगा (त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र)। फिर भी उसने अपनी मां चेल्लणा को यह छूट दे दी थी कि वह दिन में एक बार पिता के पास जा सकती है, मगर बिना कुछ साथ में लिये।

चेल्लणा भी कम न थी। वह अपने लंबे केशपाश को खोलकर उसमें कुछ पक्व अन्न छिपा लेती थी और केशपाश को शतधौत नामक मदिरा से पूरी तरह भिगा लेती थी, मानो अभी-अभी स्नान किया हो। कारावास में जाकर वह पति को अन्न खिला देती और बाद में केशपाश को निचोड़कर उसके मुंह में मद्यबिंदु डाल देती।

एक बार अजातशत्रु अपने बालपुत्र उदयन को गोद में बैठाकर भोजन कर रहा था। तब यकायक उस बच्चे ने भोजन-पात्र में पेशाब कर दिया। फिर भी राजा जुगुप्सा के बिना भोजन करता रहा और पास में ही बैठी अपनी मां की ओर देखकर बोला—'मां! देख, मेरा पुत्रप्रेम कैसा है!'

उचित अवसर की ही प्रतीक्षा कर रही मां ने तुरंत उत्तर दिया—'बेटा! इतने में ही तू गर्वित हो उठा? अरे, तू जब छोटा था, तब तेरी उंगलियां सड़ गयी थीं और उनमें से सतत विषैली गंध वाला रक्त बहा करता था। भयंकर पीडा के कारण तू चिल्ला-चिल्लाकर रोया करता था। तब तेरे पिता तेरी उंगलियों को लंबे समय तक अपने मुंह में रखे रहते थे और दुर्गंधयुक्त व विषयुक्त रक्त और पीब चूस-चूसकर थूकते रहते थे। तब कहीं तू शांत होकर सो पाता था। यह क्रम बड़े लंबे अरसे तक जारी रहा। अगर उन्होंने ऐसा न किया होता, तो शायद तू आज जीवित भी न होता। अब तू ही बता कि किसका पुत्रप्रेम बड़ा है, तेरा या तेरे पिता का? और ऐसे पुत्रवत्सल

पिता को भी तू कैसी निर्दयता से पीडा दे रहा है !'

यह सुनना था कि अजातशत्रु की आंखें भर आयीं। वह उठा और 'इसी क्षण जाकर पिता को बंधनमुक्त करता हूं और उनका राज्य वापस उन्हें सौंपता हूं' कहता हुआ कारागृह की ओर भागा। कारागृह के द्वार झटपट तोड़ने के लिए कुछ साधन लेना चाहा, तो उसके हाथ में एक कुल्हाड़ी आयी।

राजा अजातशत्रु को हाथ में कुल्हाड़ी लिये बड़ी तेजी से आते देखकर रक्षक-वर्ग घबरा उठा। बिंबिसार ने पुत्र को उस रूप में आते देखकर सोचा कि शायद आज यह मेरा खात्मा कर देगा, अन्यथा कुल्हाड़ी क्यों लाता ? ऐसी दारुण मृत्यु से बचने के लिए अथवा पुत्र को पितृहत्या के कलंक से बचाने के लिए बिंबिसार ने (जो तब तक बारह मास का कारावास भुगत चुका था) तुरंत जीभ काटकर या विषपान करके आत्महत्या कर ली। यह ई. पू. ५२८ की घटना है। आचार्य नेमिचंद्र के 'आख्यान-मणिकोश' के अनुसार, पिता का यह अंत देखकर अजातशत्रु विलाप करने लगा।

क्या इससे सिद्ध नहीं होता है कि अजातशत्रु पितृमरण में (अंशतः) निमित्तभूत अवश्य था, परंतु पितृहंता तो नहीं ही था ? 'ऑक्सफर्ड हिस्टरी ऑफ इंडिया' के लेखक ने भी (पृष्ठ ४८) लिखा है—'बौद्ध ग्रंथों में कितनी ही बातें विपक्ष को हल्का दिखाने के लिए अयथार्थ रूप में लिखी गयी हैं, और इसी कारण से मैं "अजातशत्रु पितृहंता था" ऐसी बौद्ध ग्रंथों की बात को नहीं मानता हूं।'

समग्र राजवंश भी पितृहंता नहीं

अजातशत्रु की मृत्यु उसके पुत्र उदाई भद्द-उदयन के हाथों हुई और बाद में पीढ़ी तक यही पितृहत्या-परंपरा चलती रही, इस बात को भी इतिहास का सहारा नहीं मिलता है। आचार्य हेमचंद्र के अनुसार, उसकी मृत्यु का कारण था चक्रवर्ती बनने की लालसा में दिग्विजय-यात्रा में वैताढ्य पर्वत (उत्तर खंड) के उस ओर जाने का उसका प्रयास। डा. त्रिभुवनदास की राय में उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के बीच में उन दिनों सीधा आवागमन नहीं हो पाता था; उसे शुरू करने के प्रयास के दौरान अजातशत्रु की मृत्यु हो गयी (प्राचीन भारतवर्ष, खंड-१)।

अजातशत्रु के पुत्र उदयन की मृत्यु तो स्वाभाविक रीति से हुई अथवा उसकी हत्या की गयी। यदि उसकी मृत्यु तीर्थ-यात्रा के दौरान स्वाभाविक न हुई हो, तो भी यह निश्चित है कि उसकी हत्या उसके पुत्र ने नहीं की अपितु किसी शत्रु ने की। कथानुयोग के अनुसार एक बार उदयन उपाश्रय में धर्मानुष्ठान एवं ध्यान में लीन था, तब रात में उसकी हत्या की गयी। हत्यारा था उसी का एक पुराना नौकर जिसे उसने किसी अपराध के कारण देश-निकाला दे दिया था।

[शेष पृष्ठ ८१ पर]

चुनाव का वह बांका लड़ाका

स्व. राधाकृष्ण की अंतिम व्यंग्य-रचनाओं में से एक



जब उन्होंने अपनी कौड़ी-जैसी आंख उठाकर मेरी ओर देखा, तो मैंने भी उनकी पकौड़ी-जैसी नाक पर नजर डाली। तब उन्होंने कचौड़ी-जैसे गाल को फुलाकर अपनी हथौड़ी-सी आवाज में पूछा—'आप ? माने कि तुम ? यानी कि तुम कौन हो ?'

मैं अपना परिचय देने जा ही रहा था कि वे फिर बोल उठे—'हां, तुम्हें देखा तो याद हो आया। मालूम होता है कि तुम्हें मनीजर ने भेजा है। मैंने ही मनीजर से कहा था कि किसी एक फटीचर को भेज देना। उससे कुछ काम लेना है। तो अगर मेरा पोस्टर साटने का काम करोगे तो तुम्हें बीस रुपये हजार के भाव सटाई मिलेगी। अगर दूसरों के पोस्टर के ऊपर मेरा पोस्टर चिपकाओगे तो उसके लिए तीस रुपये हजार का रेट है। अगर होशियारी के साथ दूसरों का पोस्टर उखाड़ सकते हो, तो पचास रुपये हजार का पगार। समझे जी, ऐसा ही भाव है। अगर तुम पसंद करो......'

'जी नहीं', मैंने कहा—'इन कामों से मेरा मतलब नहीं। मैं एक फ्री-लान्स जर्नलिस्ट हूं। समाचारपत्रों में छपाने के लिए आपका इंटरव्यू लेने आया हूं।'

मेरी बात सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हो गये। ओंठों पर आपसे आप मनभावनी मुस्कराहट आ गयी। चहककर बोले—'अहाहा, तो आप फ्रीलान्स हैं! यह बहुत अच्छा है। आप मेरा फ्री इंटरव्यू लेने आ गये। इससे अच्छी बात दूसरी हो ही नहीं सकती। मैंने तो सोचा था कि डेढ़-दो हजार रुपये खर्च करके अपना एक बढ़िया-सा इंटरव्यू छपवाऊंगा। मगर इस बात की अब कोई जरूरत नहीं। हां, तो आपका नाम क्या है ?'

मैंने कहा—'मेरा नाम है राधाकृष्ण !'

'राधाकृष्ण !'......मेरा नाम सुनते ही वे चौंक उठे, फिर गंभीर हो गये। बोले—'मैंने आपका नाम सुना है। आपकी बहुत शिकायत सुनने में आती है। सुना है कि आप तानासाहित्य लिखते हैं। यह खराब बात है। आज के युग में आपका ताना-साहित्य नहीं चलेगा। बूढ़े हो गये, मगर तानासाहित्य लिखना बंद नहीं किया। आपको मालूम होना चाहिये कि मैं ताना-साहित्य का विरोधी हूं। लोकसभा में जाकर मैं आप लोगों के तानासाहित्य का ऐसा विरोध करूंगा कि सारा लिखना-

पढ़ना भूल जायेगा।'

मुझे बुरा महसूस हुआ। बुरा लगना ही था। मैंने कहा—'नहीं महाशय, मैं ताना-साहित्य नहीं, जन-साहित्य लिखता हूं।'

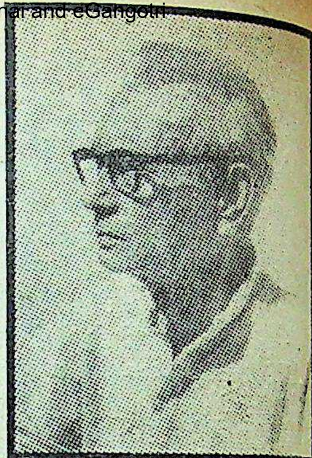
'जन-साहित्य !' उन्होंने कहा—'अच्छा-जी, तो आप जन-साहित्य लिखते हैं! जन-साहित्य से मेरा विरोध नहीं। जन-साहित्य लिखिये। फिर देखिये, जनाना-साहित्य की देश में बड़ी कमी है। कुछ जनाना-साहित्य भी लिखिये। हां, तो आप मुझसे मेरे बारे में बढ़िया-बढ़िया प्रश्न कीजिये। मेरे बारे में पूछिये, फिर दूसरों के बारे में पूछिये। दूसरे उम्मीदवारों के बारे में पूछियेगा तो मैं उनका भी सारा कच्चा-चिट्ठा सुना दूंगा।'

सवाल के लिए मैंने मुंह खोला ही था कि उन्होंने मुझे रोक दिया। बोले—'अच्छा-जी, पहले आप जलपान तो कर लीजिये। फिर मैं आपसे अच्छी तरह बात करूंगा।'

उन्होंने अपने नौकर को बुलाया। बोले—'देखते नहीं, ये फ्रीलान्सजी मेरा इंटरव्यू एक दम फ्री लेने के लिए आ गये हैं। इन्हें अच्छी तरह जलपान कराओ और काफी पिलाओ। समझे।'

कहना नहीं होगा कि जलपान कीमती और स्वादिष्ट था। वे समोसे, वे लाजवाब मिठाइयां, अंडों का आमलेट अस्वीकार करते हुए मुझे झेंप-सी मालूम हुई। काफी अच्छी थी। सत्कार भी अच्छा था।

वे अपनी कुर्सी पर उठंग गये, फिर कुर्सी पर ही पालथी लगाकर बैठे। मेरे प्रश्नों का भली भांति डटकर जवाब दिया।



राधाकृष्ण

रांची में १० सितंबर १९१२ को जन्म। अभावों से भरपूर बचपन। पढ़ाई सिर्फ ... दर्जे तक। किशोरावस्था से ही जीवि... पार्जन। नमक की फेरी लगाने से बस-कं... क्टरी, मुहर्रिरी तक कई धंधे। साथ ... पढ़ने का व्यसन। स्वाध्याय और स्व... चिंतन। पहली कहानी 'सिन्हा साहब' ... १९२९ में प्रकाशित। प्रेमचंद द्वारा स... हना; 'हंस' में निरंतर छपना। व्यंग्य लेख... पहले छद्मनाम से, फिर अपने ही नाम से... स्वच्छ, पैने, बेलाग व्यंग्य का प्रति... स्थापन। संपादन। गद्य की सभी विधा... में विपुल और विशिष्ट लेखन। कुछ ... फिल्मी लेखन। दीर्घकाल तक आकाशवा... की सेवा। शौक—फोटोग्राफी, घुड़सवा... गप्पगोष्ठी। आजीवन आर्थिक संघर्ष। ... टूटने, न झुकने की टेक। लंबा अस्वास्थ्य... ३ फरवरी १९७९ को देहावसान।

कुछ प्रश्न तो स्वयं भी सुझाये... 'आपको मुझसे यह प्रश्न पूछना था सो आपने अभी तक पूछा ही नहीं। खैर, अभी भी पूछ लीजिये। मैं देश का धन बचाना चाहता हूं। फिर देखिये, मैं देश का समय बचाना चाहता हूं। जयप्रकाशबाबू, माने कि लोकनायक। लोकनायकजी ने क्या अच्छा कहा है समग्र क्रांति! यह समग्र क्रांति ही मेरा मतलब है।'

अब की बार मेरे चौंकने की बारी थी। मैंने पूछा–'समग्र क्रांति से आपका क्या मतलब हो सकता है?'

मेरा प्रश्न सुनकर वे मंद-मंद मुस्कराने लगे–'अच्छाजी, तो आपने क्या समझ लिया है कि समग्र क्रांति से मेरा कोई मतलब ही नहीं? समग्र क्रांति से ही मेरा मतलब हल होता है। उदाहरण के लिए मैं आपको बतलाऊं, अभी मैं इनकम-टैक्स अफसर का सम्मान करता हूं। यह समग्र क्रांति नहीं है। लोकसभा में जाऊंगा तो केवल अर्थमंत्री और अर्थसचिव का सम्मान करूंगा। अर्थ के मामले में व्यर्थ सम्मान का कोई अर्थ नहीं होता। समझ गये आप? यह समग्र क्रांति हुई, क्योंकि एम. पी. होने के बाद ये इनकम टैक्स वाले स्वयं मेरा सम्मान शुरू कर देंगे। यही सबसे बड़ी समग्र क्रांति है।'

अचंभे से भरकर मैंने उनकी ओर देखा। वे गौरव के साथ अपना सिर हिला रहे थे। मैंने भी आश्चर्य से अपना सिर हिलाया। मैंने पूछा–'आप देश का धन बचाने की बात कर रहे थे?'

'देश का धन बचाने के लिए ही तो मैं खड़ा हूं, वरना खड़ा ही क्यों होता? जो बैठा हुआ आदमी है उसे उठकर खड़े होने में तकलीफ होती है। मगर यह समग्र क्रांति की बात है।'

उन्होंने मुस्कराकर मेरी ओर देखा। उस मुस्कराहट में जरूर ही कोई अर्थ छिपा हुआ था, जो राजनीति और अर्थशास्त्र से संबंध रखता था।

उन्होंने कहा–'ज्यादा पुरानी बातों में जाना फिजूल है और अच्छा नहीं है। बीते हुए चुनाव की बात ले लीजिये। ऐसा ही तो चुनाव हुआ था पिछली बार भी। इंदिरा गांधी ने लोकसभा को भंग कर दिया और बोल उठीं कि अब हम गरीबी को दूर कर देंगे। अच्छाजी, तब चुनाव होने लगा और गरीबी दूर होने लगी। पहले तो इनकम टैक्स के माननीय लोग आये और अच्छी तरह अपनी गरीबी दूर की। फिर सेल्स टैक्स वाले आये। उन्होंने भी बतलाया कि देश से गरीबी दूर होने वाली है, अब गरीबी दूर करने का लक्ष्य रखा गया है; इसलिए आपको भी गरीबी दूर करनी चाहिये। मैंने फिर गरीबी दूर की। आबकारी विभाग वाले आये। बोले कि गरीबी दूर कीजिये। तब मैंने फिर गरीबी दूर की। उसके बाद जिला कांग्रेस के अध्यक्ष आये। बोले कि आपको जरा समझ होनी चाहिये। अफसर लोग गरीबी दूर नहीं करेंगे। गरीबी दूर करने वाले तो हम लोग हैं। तब साहब फ्रीलान्सजी, मैंने फिर

गरीबी दूर की। तब राज्य कांग्रेस के अध्यक्षजी ने आकर बतलाया कि गरीबी कितनी खराब चीज होती है। गरीबी में बहुत कष्ट है, गरीबी में बेतरह पाप है। इसलिए गरीबी दूर कीजिये। फ्रीलान्सजी, उस समय मैंने इतनी गरीबी दूर की कि मालूम होने लगा कि मैं स्वयं गरीब हो गया हूं। इसके अलावा पार्टी। पार्टी से आप टी-पार्टी डिनर-पार्टी न समझ लें। मैं पोलिटिकल पार्टियों का सामना करते-करते परेशान हो गया। तरह-तरह, किसिम-किसिम के लोग आते गये और मेरा बैंक-बैलेन्स साफ करते गये। इसलिए फ्रीलान्सजी, इसीलिए इस बार तो मैं खुद चुनाव में खड़ा हूं। कोई मुझसे चंदा मांगने के लिए क्यों आयेगा? मैं स्वयं सबसे चंदा मांग रहा हूं। जयप्रकाशजी की समग्र क्रांति भी ठीक है। मैं हर सिद्धांत का समर्थक हूं। गरीबी मिटनी चाहिये, समाजवाद आना चाहिये, शोषण खत्म हो, पाकेटमारी से भी देश के धन का बहुत नुक्सान है। इसलिए मैं सबका समर्थन करता हूं। यही तो समग्र क्रांति है। इसके लिए चंदा चाहिये, क्योंकि मैं चुनाव में खड़ा हूं। सबका कर्तव्य है कि मेरी जीत के लिए चंदा दें। दिल खोलकर चंदा दें। अगर दिल न खोल सकें तो थैली खोलकर ही चंदा दें। मेहराजी ने पंदरह हजार दे दिया। मलहोत्राजी ने सात हजार दिया है। सरदार किरपानसिंह ने दिया, चंदूभाई ने दिया, मुफतभाई-फोकटभाई से मिला। गबी खा न दिया, दस्तूरभाई ने दि दामलेजी ने दिया। जिससे जैसा ब सबने दिया। मैं देश के धन की बचत के लिए चुनाव में खड़ा हूं। बहुत होगा तो हारकर बैठ जाऊंगा, मगर मुझसे कोई चं मांगने तो नहीं आता। कहिये फ्रीलान्सजी ठीक है न?'

मैंने स्वीकारात्मक भाव से सिर हिलाया भाव था कि भला आप भी कोई गलती क सकते हैं!

उन्होंने किसी विजयी वीर की तर मेरी ओर देखा। बोले—'और यह भी सम लीजिये फ्रीलान्सजी, सभी चीजों में व्या रिक भावना रखनी चाहिये। यह अच्छ होता है। आप यह भी समझ लें कि फायदे में हूं। जितना चंदा मिला है, उस अस्सी परसेंट खर्च होगा, बाकी फायद हर पांच साल में लगभग पचास हजार बचत हो जाया करेगी। हार जाने पर यह बुरा नहीं है। इसको समग्र क्रांति क हैं। जीते तब भी ठीक, हार गये तब ठीक। माने कि समग्र क्रांति।'

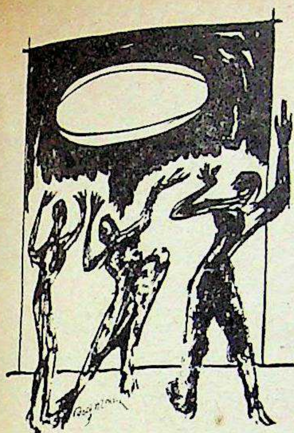
उनकी कौड़ी-जैसी आंखों में एक वि चमक आ गयी, कचौड़ी-सरीखे गालों एक अनोखी लाली छा गयी और हथौड़े जैसी आवाज रस से भीग उठी। 'यह ब है जी, हमारी वाइफ भी कहती है कि अच्छा है।'

मैं एकदम अवाक् होकर उनकी ओ देख रहा था।



सूय

सुबह-
जितना
होता है
उतना ही
खूबसूरत
शाम को
न अपने
न दूसरों
सहज बा
फूलों को
अंकुरों
आदमी
सतरंगी
साक्षीभा
चुपचाप



चित्र : विष्णु भटनागर

सूर्य और सूर्यपुत्र

सुबह–
जितना शांत, एकाग्र, प्रसन्नमुख
होता है सूरज उगते हुए;
उतना ही खुश, सुकूनभरा
खूबसूरत चेहरा होता है उसका
शाम को डूबते हुए।
न अपने आगमन की घोषणा
न दूसरों को कुछ देने का दंभ–
सहज बांटता रहता है रोशनी
फूलों को खिलाते हुए
अंकुरों को पकाते हुए
आदमी को जगाते हुए।
सतरंगी किरणों की सौगात लुटाकर
साक्षीभाव से
चुपचाप कह जाता है अलविदा।
और
इधर हम
बंद कमरों में
सूरज उगाते हैं।
मुट्ठियां तानते हैं
मेजें थपथपाते हैं
वक्तव्य देते हैं
रिपोर्ताज छपाते हैं।
उधर देश-परिवेश में
घना होता जाता है अंधियारा;
हर आदमी भटकता है
अकेला, बे-सहारा।
हमारे शब्द
नहीं बनते उनके सहचर
हमारी क्रांति-किरण
उन्हें नहीं दिखा पाती
सही दिशा;
प्रकाश की हजार-हजार घोषणाओं
के बावजूद
घिरती चली आती है
अमावस की निशा।
ऐसे हम
"सूर्यपुत्र"
महज नाम के?
शब्द जो अनुभूति की लपटों में
धधके नहीं –
ठंडे, अ-प्रेषणीय किस काम के?

–दिनकर सोनवलकर

जी ३, स्टाफ क्वार्टर्स, शासकीय महाविद्यालय, जावरा, म. प्र.

उर्मि कृष्ण

यात्रा-व्यथा

त्रुटि यह हो गयी कि कुछ पढ़ लिया, कुछ जान लिया। मन मचल उठता है—देश के झरने, ताल, पहाड़, नदियां, समुद्र, मंदिर, महल, खंडहर आदि देखने के लिए। वर्ष-भर बचत करके कुछ रुपये जुटाये। कुछ और ले-देकर सोचा, अब तो कहीं जाया जा सकता है।

पूरा फरवरी माह सोचते रहे। हिसाब लगाते रहे। मार्च में कार्यक्रम को अंतिम रूप दे डाला। नागालैंड, मणिपुर, काजिरंगा, गोहाटी, दार्जिलिंग और लगे हाथों बनारस का गंगा-स्नान भी।

'हमारे पास दिल्ली की एक संस्था के फार्म आये थे एक बार।' कुछ याद करते हुए मैंने कहा।

'हां आये तो थे, उससे क्या ?'

'उसके अनुसार शायद आपको रेलवे-कंसेशन मिल जाये।'

'क्या पता। पुछवा लो रेलवे से।'

फोन, एक आदमी, दो आदमी फिर मैं—सबने रेलवे आफिस के चक्कर लगाने शुरू किये। कभी पूछताछ क्लर्क, कभी बुकिंग क्लर्क, कभी टिकट कलेक्टर, आफिस सुपरिंटेंडेंट, स्टेशन-मास्टर सभी से मुलाकात का अवसर आ गया। हां, हां, ...
आपके पति को कंसेशन मिल सकता है...
हैं डिकेप्ड पर्सन होने के नाते आप उन...
साथ एक ही टिकट पर जा सकती हैं...
सिविल सर्जन का प्रमाणपत्र ले आइ...
व्हील चेयर पर इन्हें चलते और बैठे दे...
कर भी सरकारी डाक्टर ने लगभग पच...
प्रश्न पूछे और एक घंटा परीक्षण में लगा...
सर्टिफिकेट दिया। दो-चार चक्कर ...
रुंगे में लगवा ही लिये। आखिर सरका...
दरबार का काम जो ठहरा। कोई लल्...
पंजू का थोड़े ही है।

अच्छा जी, १७ अप्रैल का रिजर्व...
दीजियेगा आसाम मेल में और कंसेशन ...
दीजिये। वहां जाइये, वहां जाइये, ...
खिड़की, अब फलां बाबू, अब पुल पार रे...
सुपरिंटेंडेंट के हस्ताक्षर।

'इन्हें तो कंसेशन नहीं मिल सकता।'

'क्यों ?'

'क्यों क्या ! यह उन्हें दिया जाता है...
जो इलाज के लिए जाते हैं। और सरका...
डाक्टर को यह लिखकर देना चाहिये ...
ये इलाज के लिए जा रहे हैं।'

सरकारी डाक्टर ने कहा—'भले ही ...

इलाज के लिए जा रहे हो, पर इसे मैं कैसे लिख सकता हूं ?'

'साहब, आप महीने-भर पहले भी तो यह बात बता सकते थे।'

'नियम देखने में कुछ चूक हो गयी।' रेलवे बाबू ने हाथ मलते हुए कहा।

खैर, कुछ मित्रों और स्नेहियों की शुभकामनाएं ले आसाम मेल में चढ़ गये। दिल्ली से मुगलसराय तक एक-जैसे दृश्य थे। खेत, मैदान, कुछ पेड़, छोटे-मोटे नदी-नाले। मुगलसराय के आगे बिहार, बंगाल और फिर असम। यहां केले, बांस और कटहल के वृक्षों ने हमारा मन बहलाया। असम के शुरू होते ही घने जंगलों ने आंखों को तृप्ति दी। दूर तक ऊंचे छोटे घने पेड़। मैं उछल-सी पड़ी यह देखकर कि अभी हमारे देश में इतने घने जंगल हैं। लेकिन यह सुख अधिक देर नहीं टिक सका। एक स्टेशन पर मोटे-मोटे लट्ठे मालगाड़ी में लादे जा रहे देखकर मेरे मुंह से विषाद और आश्चर्यमिश्रित शब्द निकल पड़े—'इतने मोटे-मोटे पेड़ काट डाले।'

आगे फिर जंगलों के दृश्य, कई बलिष्ठ वृक्ष असहाय-से धराशायी थे। हरे-भरे घने वृक्षों की इस असहायता पर मेरा हृदय कराह उठा। शायद मेरा यह कागज उन्हीं में से किसी एक वृक्ष का हो।

गोहाटी पहुंचे, ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे का साफ-सुथरा नगर यह वहीं के निवासी एक मित्र ने दिखाया यहां के धनलिप्सु व्यापारी पर्यटकों को निचोड़ लेने में निपुण हुए एक 'मारवाड़ी भोजनालय' में खाना खाया। हम चार थे, किंतु खाना दो को ही खाना था। दो मात्र गप्पें लगाने के लिए बैठ गये। किंतु भोजनालय के मालिक कैलाशचंद्र ने चारों के पैसे वसूले। बैठने का भी कर देना पड़ा हमें।

प्रसिद्ध कामाख्या मंदिर देखे बिना गोहाटी की यात्रा अधूरी रहती है। मंदिर पहुंचे। कई पंडों को टालते-टालते एक पीछे लग ही गया। पचीस से शुरू होकर पांच रुपये दक्षिणा में मुश्किल से टला और दो-चार रुपये के फूल-प्रसाद के चक्कर में डाला सो अलग।

मंदिर को देखते हुए जब पिछली ओर के खुले आंगन में पहुंचे तो जगह-जगह खून के धब्बे पड़े थे। पंडे ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति से बताया कि यहां बकरों की बलि दी जाती है। मेरा मन घृणा और करुणा से भर उठा। यह जगदंबा का मंदिर, जहां अपने ही पुत्रों की बलि ...... यह देश का प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है, जहां खून का व्यापार, भक्तों की लूट। यहां लूट टैक्सी वालों से ही शुरू हो जाती है, जो आठ किलोमीटर का पचास-पचास रुपये किराया मांगते हैं। जबकि गोहाटी में किलोमीटर के हिसाब से टैक्सी किराया निर्धारित है।

मंदिर के आंगन में टीन के शेड के नीचे बकरी के नन्हे-नन्हे बच्चे बंधे थे। मैं अति भावुक होकर एक-एक को प्यार करने लगती हूं। बेचारे......

दूसरे दिन गोहाटी से दीमापुर (नागा-



दो यात्रिणियां, मगर विदेशी
[चित्र : सच्चिदा नागदेव]

लैंड) पहुंचे। दस दिन यहां रहकर अधिक से अधिक देखने का प्रयत्न किया। दीमापुर, राजधानी कोहिमा, सबसे पिछड़ा जिला मोन और उसका एक गांव सांगन्यू, घने जंगल, सुखद मौसम, ऊंचे पहाड़, संकरी नदियां, गहरे नाले। पर यह क्या? एक भी चिड़िया नहीं। एक भी जानवर नहीं। सब यहां के निवासियों के उदर में समा गये। पालतू जानवरों में कुत्ते, गाय, सूअर थे। कभी न कभी इनकी भी बारी आनी है।

सांगन्यू गांव के आंग (मुखिया) के घर के एक बड़े से घास-फूस के हाल में हड्डियों, बाघ और मिथुनों की खोपड़ियों के ढेर देखकर प्राणीविहीन जंगलों का रहस्य समझ में आ गया। चार-चार, पांच-पांच फुट लंबे और मोटे-मोटे हाथीदांतों को हाथ फेर-फेरकर देख लिया। हम मूंग की दाल-रोटी खाने वालों के लिए यह दृश्य बड़ा विचित्र, रहस्ययुक्त और दर्दी... था। आंग ने हमें भरसक समझाने का प्रयत्न किया, किंतु भाषा-व्यवधान के कारण हम कुछ न समझ सके।

कोहिमा का सबसे आकर्षक स्थान 'सिमिट्री' है। द्वितीय विश्वयुद्ध के शहीदों की कब्रें यहां सुंदर पुष्पगुच्छों के बीच बनी हैं। कब्रों पर लिखे नाम पढ़ते-पढ़ते मैं उदास हो जाती हूं। हालांकि नीचे उतर आये बादलों के कारण सारा वातावरण बड़ा मायावी लग रहा है।

फिर हम पूर्वी भारत का एकमात्र प्रसिद्ध पर्वतीय स्थल दार्जिलिंग पहुंचे। उस समय शाम हो रही थी। टैक्सी वाले से कहा था—भैया, किसी अच्छे होटल में छोड़ देना। होटल 'एलिस' में उसने हमें उतार दिया। रास्ता पकड़ा। हमने जब होटल के रेट पूछे तो सबसे कम २५ रुपये का एक बेड था। पति-पत्नी रहें एक साथ, एक ही कमरे में, किंतु किराया दोनों का अलग-अलग बेड के हिसाब से लिया जायेगा। चाय ... रुपये की, खाना दस रुपये का, गरम पानी एक बाल्टी एक रुपया।

दर्शनीय स्थलों के लिए जाने वाली जीप दस रुपया प्रति सवारी है। किंतु सा'ब आप अगली सीट पर बैठे थे, इसलिए बारह रुपये के हिसाब से दे दीजिये और ... अलग। बढ़ती जनसंख्या, घने मकान, दुकानें, फैक्ट्रियां सबने मिलकर दार्जिलिंग के सौंदर्य को निगल लिया है। नगर में ...

हुए आपको आभास ही नहीं होता कि आप किसी पर्वतीय स्थल पर हैं। शांति और प्राकृतिक सौंदर्य की खोज है तो नगर से दस-पंद्रह किलोमीटर दूर जाइये।

आठ हजार फुट ऊंचे टाइगर हिल से आप कंचनजंगा की थोड़ी बर्फ देख सकते हैं। कंचनजंगा के पीछे से सूर्योदय का दृश्य देखने के लिए यहां रात तीन बजे से मेला लगना शुरू हो जाता है। भारी सर्दी में ठिठुरते हुए लोग ऊपर-नीचे उतरते रहते हैं। कहीं बैठने के लिए बेंच तक नहीं है। एक चाय की कैंटीन चल रही थी जो आधा गिलास गरम पानी-सी चाय तीस पैसे में पिला रही थी।

वहां के निवासियों ने बताया कि दार्जिलिंग गर्म होता जा रहा है। पिछले पचीस सालों से यहां बर्फ नहीं गिरी। सारे पहाड़ पर सड़कों का जाल बिछ गया है। ट्रकें, बसें, जीपें और टैक्सियां हजारों की संख्या में दिन-रात दौड़ती हैं। 'पहले जैसे जंगल अब कहां रहे सा'ब, कई झरने भी सूख गये, बर्फ तो देखने को नहीं मिलती नगर में।' एक पुराने निवासी दुःखी मन से कह रहे थे।

हमारे यहां के प्रत्येक पर्वतीय स्थल की तरह यहां भी सा'ब, मैमसा'ब संबोधन सुनसुनकर कोफ्त होने लगती है।

दो दिन में पांच सौ रुपये का हवन कर हम बनारस की ओर लौट पड़े।

रात तीन बजे मुगलसराय स्टेशन पर उतरे तो नींद के मारे बुरा हाल था। कुछ देर सामने ही बने वेटिंग रूम में आराम करना चाहा। पर वेटिंग रूम का परिचारक अकड़कर बोला—'यह प्रथम श्रेणी का वेटिंग रूम है सा'ब।'

'क्यों भाई, ये जो पचासों लोग यहां पड़े हैं, सबके पास प्रथम श्रेणी का टिकट है क्या?' मैंने नम्रता से कहा तो वह और अकड़ गया। भेंट-पूजा चाहिये थी। दो रुपये में सेकंड क्लास पैसेंजर फर्स्ट क्लास के बन जाते हैं।

अभी तक साथ आया कुली खड़ा था। कहने लगा—'सा'ब बनारस जाना हो तो पैसेंजर गाड़ी खड़ी है। बैठा देता हूं।'

उसे तो अपनी कमाई की पड़ी थी। उसने हमें एक डिब्बे में ठूंस दिया। डिब्बे में भेड़-बकरियों की तरह लोग ठुंसे थे। न लाइट थी, न पंखे। ढाई बजे चलने वाली पैसेंजर सुबह साढ़े चार बजे तक नहीं चली थी। गरमी के मारे लोगों का दम घुटा जा रहा था। हम भी घुट रहे थे, पर डिब्बे से बाहर निकल सकने की भी गुंजाइश नहीं थी। मुगलसराय से बनारस का रास्ता एक घंटे से भी कम का है, पर हम तीन घंटे भीड़ में पिसते हुए सुबह बनारस पहुंचे। धन्य है भारतीय रेलों में चलने वाले वे लोग जो ऐसी हालत में भी सही-सलामत उतर जाते हैं।

रेल-यात्रा की गर्दिश कुली के साथ शुरू होती है और अंत भी उसके ही साथ। मुझे हर स्टेशन पर पति के लिए व्हील चेयर या सहायक करना पड़ता था। चाहे चार गज ही क्यों न चलना पड़े। कुली व्हील चेयर

कामाख्या मंदिर में

[गोहाटी के कामाख्या मंदिर में भक्त जन अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार भेड़, बकरे या कबूतर का सिर काटकर देवी को चढ़ाते हैं। फरवरी सन ७६ में जब सारा देश ही कामाख्या मंदिर बना हुआ था, मैंने यह कविता लिखी थी।]

सत्य जो प्रत्यक्ष मेरे सामने था,
भेड़, बकरा या कबूतर
सिर उसी का काट
मंदिर में प्रतिष्ठित
एक देवी को चढ़ाकर
तुम बड़े धर्मात्मा बनने चले हो।
आज गांधी भी नहीं जो
मौन सत्याग्रह करे
सिर सत्य का कटने न पाये।

–निरंकार देव सेवक

लाने के लिए तीन-तीन, चार-चार रुपये मांगते। सामान के चार से लेकर छह रुपये तक। लगता है इस देश की सारी नैतिकता पैसे में समाकर रह गयी है। टैक्सी, जीप, टिकट-कलक्टर, कुली सब इंसानियत भूल मजबूरी का लाभ लेने को तैयार रहते हैं। हर स्टेशन की आरक्षण खिड़की पर सीट नहीं है का टका-सा जवाब मिलता और दुगुने-तिगुने पैसे देने पर तत्काल सीटें पैदा हो जातीं। रिश्वत लेना धर्म हो गया है [illegible] कोई जगह देने में म[illegible] कचोटता था, पर पति की असमर्थता ने [illegible] मेरा भी धर्म बना दिया। पसीने की कमा[ई] को इस तरह बहता देख मेरा रोम-रो[म] दुख उठता।

अपने हिसाब से करीब छह सौ रु[पये] अधिक रखे थे मैंने, किंतु बनारस में ए[क] मित्र की तलाश करनी पड़ी कि वे कु[छ] रुपये दें तो हम घर तक पहुंचें।

कुछ खट्टे-मीठे अनुभवों के बाद [illegible] सौ रुपये मिल गये। मित्र को दुआएं दे[ते] हुए बनारस-दर्शन किया और गंगा में नौ[का]-विहार भी।

बनारस से अंबाला तक का इक्कीस घं[टे] का रास्ता, फिर पीस देने वाली भीड़। [illegible] बिना आरक्षण के तो जाना मुश्किल है। कुछ मनुहारें, कुछ मजबूरी का बयान, कु[छ] मित्रों की सिफारिश, कोई एक ही सीट आर[क्]षित करवा दो......फिर सबसे बड़ा मि[त्र] बनकर सामने आया रुपया। पंद्रह रु[पये] अधिक दिये और अमृतसर हावड़ा मेल [में] २–५–७८ की सीटें बुक हो गयीं

सुबह नौ बजे ट्रेन में चढ़े थे। शाम [illegible] चार बजे लखनऊ पहुंचे, तब तक रेल [illegible] लैट्रिन, बाथरूम, वाश-बेसिन किसी में [illegible] एक बूंद पानी नहीं था। छोटे-छोटे बच्चों को लेकर औरतें हड़बड़ी में स्टेशनों [पर] उतरतीं। आखिर टट्टी में सने बालकों [को] कब तक बैठाये रहें!

एक-दो स्टेशनों पर ट्रेन में पानी न हो[ने] की शिकायत टी. टी. से की तो उसने बता[या] [illegible]

'साब असल में मुगलसराय पर गाड़ी को पानी लेना था, पर बिजली नहीं थी। आज-कल सारी बिजली आजमगढ़ जा रही है वहां चुनाव है न।'

मैंने सिर पीट लिया—चुनावी हथकंडों में इस देश की जनता कब तक पिसती रहेगी ?

पंद्रह रुपये जो रास्ते में खाने-पीने के लिए बचाये थे, वे साथ चलते टिकट बाबू की भेंट हो गये। अब ? मेरा पर्स, इनका पर्स, सूटकेस की जेबें, हैंडबैग की तली सब खोजकर तीन रुपये साठ पैसे की रेजगारी निकाली। भीषण गरमी की यात्रा में कई रुपये का तो पानी ही पी गये ! चना-चबेना खाते जब अंबाला उतरे तो कुली के लिए पैसे कहां से लायें ? रिक्शे वाले को तो घर पहुंचकर भी दे देंगे। सामान तो मैं ढो ले जाऊं किसी तरह, पर इनके लिए तो सहारा चाहिये ही। सोच में पड़े ही थे कि एक अखबार वाले ने कहा—'नमस्ते डाक्टर साहब, कहां से आ रहे हैं ?'

'यार हाल-चाल बाद में पूछना, पहले पांच का नोट तो दे, घर अखबार डालने आना तब ले लेना।'

उस बेचारे के पास पांच रुपये नहीं थे। पर उसने कहीं से लाकर दिये।

हम जब घर पहुंचे तो यात्रा की कुशलता के साथ सभी के प्रश्न थे—'नागालैंड से शाल लाये ?

'मणिपुर से बांस का सामान जरूर लाये होंगे ?'

तनाव

नदी भी एक तनाव जीती है
अपनी छाती पर झूलते पुल का।
पुल जो कगार से बंधा होकर भी
पार कराने का दावा करता है।
पार तो वह नदी होती है
जो अपने पांवों चलकर
समंदर से मिलती है।

*

लाचारी

चमगादड़-सा टंगा है औंधे मुंह अतीत
उल्लू-सी चमक रही हैं भविष्य की आंखें
भेड़िये-सा खड़ा है मुंह बाये वर्तमान
ऐसे में आदमी जाये तो कहां जाये।

—रामनारायण उपाध्याय
ब्राह्मणपुरी, खंडवा, म. प्र.

'बनारस से साड़ी लाये कि नहीं ?'

'हमारे लिए क्या लाये ?'

अभी तक चिट्ठियों और फोन के जरिये स्नेही पूछ रहे हैं—'हमारे लिए क्या लाये ?'

अंतरंग स्नेही जनों को जब यात्रा की गर्दिश सुनाते हैं, तो वे सांत्वना देते हुए कहते हैं—'अजी खुदा का शुक्र करो, आप सही-सलामत आ गये, नहीं तो लूटमार, मारधाड़, एक्सीडेंट क्या नहीं हो रहा आज कल रेलों में ?'

—४१५० कोतवाली मुहल्ला, अंबाला छावनी



अंधेरे में रोशनी रोशनी में अंधेरा

संतकुमार टंडन 'रसिक'

दीवाली आ गयी थी, जगह-जगह दिये जल उठे थे। उसे दियों से नहीं, उन अंधियारों से प्यार था, सहानुभूति थी, जहां दिये नहीं जलाये-धरे गये थे, जहां तक दियों की रोशनी नहीं पहुंची थी। उसके अपने घर में भी अंधेरे कोने थे। लोगों को या तो दिये जलाने का शौक नहीं था। या इतना स्वार्थ था कि अपने कमरे में एक दिया जलाकर रख लें।

भगवान की दया से मकान बहुत बड़ा था। और कई मंजिल का भी। दीवाली पर भी तीन-चौथाई से ज्यादा हिस्सा इतने घने अंधेरे में डूबा रहता कि हाथ को हाथ न सूझे। उन अंधे हिस्सों से उसे बड़ा लगाव था, क्योंकि वे उ... अपने जीवन से जुड़े हुए थे। वह पु... शौचालय-नहानघर जो अब इस्तेमाल... नहीं आता, वह चौमहलिया जहां ब... चौकड़ियां भरता था, वह पुरानी ... बरसाती जहां कभी-कभी लोग ... करते थे, वह पुरानी सीढ़ी जिस पर ... नयी सीढ़ी बन जाने के बाद कोई ... उतरता नहीं था, मकान का वह हि... कमरा-बारजा, जो अब खाली और ... पड़ा था—क्योंकि भाई साहब शहर ... चुके थे। दीवाली पर वह उन सभी स्था... पर चुपचाप जाकर एक-एक दिया ... रख आता था। कुछ देर के लिए ही ... उन स्थानों का अंधेरा छंट जाता था।

इस बार जब वह भाई साहब ... हिस्से में दिया रख रहा था, बीते हुए ... का एक प्रसंग सहसा याद आकर ... आंखों को नम कर गया।

उस दिन बिजलीघर से ही बत्ती ... हुई थी। भाई साहब अपने कमरे में ... मोमबत्ती जलती छोड़कर कहीं चले ...

थे। जब वह बाहर से घर में आया, अंधेरा था। उसने भाई साहब के कमरे में जल रही मोमबत्ती उठाकर अपने कमरे में लगा ली थी। कुछ देर बाद भाई साहब घर लौटे थे। आवाज लगायी कि मेरे कमरे की मोमबत्ती कहां गयी? उसने ललककर कहा था– 'भैया, मेरे कमरे में....।' और भाई साहब लपककर उसके कमरे में आये थे और तड़ातड़ उसे पीटने लगे थे। .... उसकी आंखों से गिरी आंसुओं की बूंदें उस दिये में जा गिरीं, जो वह भाई के बंद पड़े कमरे के आगे रख रहा था।



● व्यंग्यकार स्व. राधाकृष्णजी की बारहवीं पर फादर कामिल बुल्के भी पधारे और उसमें उन्होंने हिंदू कर्मकांड के अनुसार सब विधियों का पालन किया। किसी ने उनसे कहा कि सामान्यतः ईसाई लोग तो किसी दूसरे के धार्मिक कामों में भाग नहीं लेते। इस पर उन्होंने उत्तर दिया–'आपका कहना ठीक है। परंतु मैं एक हिंदू के घर नहीं, मानव-प्रेमी के घर आया हूं। राधाकृष्णजी मानवता के प्रेमी पहले थे और बाद में हिंदू।'

● बहुत पहले एक शाम को राधाकृष्णजी ने अपने बेटे के हाथ में नौकरी का आवेदन-पत्र देखकर पूछा था–'आज ही सुबह तो तुम इसे भेजने वाले थे, फिर क्या हुआ?'

'आज शनिवार था और यह दिन मुझे शुभ नहीं लगा, इसलिए नहीं भेजा।' पुत्र का उत्तर था। इस पर उन्होंने कहा था–'ईश्वर ने सभी दिनों को समान बनाया है। शनिवार की अवहेलना करना ईश्वर की अवहेलना करना है।'

–छबि विश्वास



[पृष्ठ ६८ का शेष]

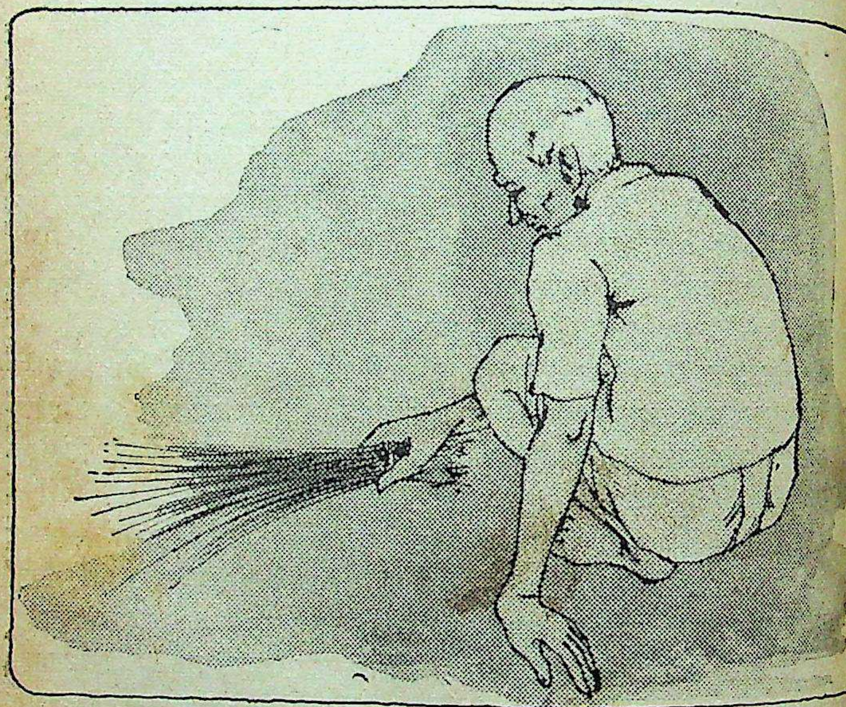
उदयन के दो पुत्र थे–अनिरुद्ध और मुंड। राजा बनने के बाद बहुत अल्प समय में ही अनिरुद्ध मर गया। बाद में मुंड को राजा बनाया गया। याद रहे कि मुंड अनिरुद्ध का पुत्र नहीं अपितु छोटा भाई था (प्राचीन भारतवर्ष)। डा. त्रिभुवनदास का अनुमान है कि मुंड ने अपने भाई की हत्या नहीं की थी। अनिरुद्ध की मृत्यु का कारण वे 'महामारी या वैसा ही कोई उपद्रव' बताते हैं। मुंड तो बड़े भाई की और उसके बाद अपनी प्रिय रानी की अकाल-मृत्यु से इतना शोकमग्न रहने लगा कि राज्य-पालन में असमर्थ हो गया। तब राज्य को अराजकता से बचाने के लिए मुंड को पदच्युत किया गया और सिंहासन सेनापति नागदंशक को सौंप दिया गया।

सो, शिशुनाग-वंश के अजातशत्रु से लेकर मुंड तक के एक भी राजा ने अपने पिता की या अपने पूर्ववर्ती राजा की हत्या की थी, इसका ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। जो मिल रहा है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक नहीं है, जैसा कि हमने ऊपर बताया है।

–नेमुभाईनी वाडीनो उपाश्रय, गोपीपुरा, सूरत-३९५००२



हिंदी कहानी :



—डा. नरेन्द्रनाथ चतुर्वे

हां, रात-दिन यही महसूस होता था.... यह जो पहाड़ है न – कभी जरूर खिसकेगा .... और हम पर आ गिरेगा। इतना ऊंचा पहाड़ और उस पर यह किला ... लगता था मानो सारी चेतना को सोख लिया हो ... ब्लाटिंग पेपर-की तरह।

घर से हजार किलोमीटर आपका तबादला कर दिया गया हो, और वह भी मा... अध्यापकी हो, क्या कभी अच्छा लगता है... पर नौकरी नौकरी जो है। जब तक ... गुलाम हैं, हमारी क्या आकांक्षा ! हम ... पुतले मात्र हैं, मालिक के इशारों पर नाच... यही तो हमारी किस्मत है।

उस शाम हम स्टेशन से लौट रहे थे।

हां, तब तक उस शहर में हम भी कुछ-कुछ परिचित होने लगे थे। दिन-भर की ऊब के बाद शाम को शहर से बाहर निकल जाना क्रम-सा बन गया था। दिन में दो ही बार वहां रेल आती थी। सुबह और शाम। मोनू नहीं मानता था, रेल दिखाने जाना ही पड़ता था। और शायद यह जानकर कि हम कुछ देर के लिए उस किले की छाया से दूर हो जाते हैं, फिर यह नियम-सा ही बन गया था। सूरज डूबने के साथ ही हम सड़क पर निकल आते थे।

सड़क पर मोनू दौड़ रहा था। पत्नी ने फिर कहा–'सुनो। यहां क्या कोई नौकर नहीं मिलेगा?'

'नौकर?' मैं चौंका। 'क्यों?'

'क्यों? .... मैं कब तक बरतन रगड़ती रहूंगी। क्या यह भी किस्मत में लिखा है, जो यहां भोगना पड़ेगा? सब जगह तो ...?'

'कहा तो है, स्कूल में बड़े बाबू से भी कहा था। पर....'

'पर?'

'हां, यहां नौकर नहीं मिलते। .... देखा नहीं, मकान-मालकिन खुद बरतन रगड़ती है।'

'हूं ....' वह चुप ही रही।

समझ गया, यह जानकर कि मैंने उसकी बात में रुचि नहीं ली है ... वह अब कुछ खिन्न-सी हो गयी है।

× × ×

कल ही तो मगनभाई कह रहे थे–'शर्माजी, और सब यहां है पर नौकर तो हमें भी नहीं मिला। 'हमें' शब्द पर वे बार-बार जोर दे रहे थे। हां, बड़े आदमी जो हैं–वकील हैं, नेता हैं, साहूकार हैं। मैंने यह भी सुना था, उनके पिता ऊंटों पर सामान लादकर हाट लगाया करते थे। पर मगनभाई ने जैसे किस्मत ही बदल दी। अब उनके पास कई मकान थे, जमीन थी यानी सब कुछ। यह सब इतनी जल्दी कहां से आया? जहां था, वहीं से। अगर आप और हम नहीं ला सकते, तो हमारा ही दोष है। प्रकृति तो खुले हाथ से लुटा रही है, शर्त यही है हमें भी लूटना आता हो। और लूटना ही तो कला है....

स्टेशन पर ही थे। परिवार-नियोजन के पोस्टर के नीचे ही तो बेंच थी।

पत्नी जो अब तक चुप थी, फिर बोली–'सुनो, कल जरूर फिर बड़े बाबू से बात करना।'

'तुम समझती हो .... मुझे ध्यान ही नहीं है?'

'हां-हां, और नहीं तो क्या।'

'ठीक है, जैसा तुम समझो।' जानता था, ज्यादा कुछ कहना मेरा ही दोष कहा जायेगा। इतनी दूर घर से इन सबको साथ ले आया जहां पर कोई पूर्व-परिचित नहीं। ... मन अचानक उदास हो जाता है। तभी देखा साफा बांधे, बंद गले का कोट और घुटनों से ऊपर तक उठी हुई धोती पहने बूढ़ा-सा वह इधर ही बढ़ आया था।

'बाबू साहब, राम-राम!'

मैं चौंका। हां, हर क्षण 'मास्साब' सुनने

के आदी कान इस नये अभिवादन पर चौंक ही गये ।

'कहिये ?'

'सुना है, आपको नौकर की जरूरत है ।'

'हां-हां, बाबा आप ला दीजिये ।' पत्नी बोली ।

'बाई, काम क्या होगा ?'

'यही चौका-बरतन-झाड़ू ....'

'हूं, आ जाऊंगा .... मकान तो वही है न ... मगनभाई वाला ? आ जाऊंगा ।'

'आप ?'

'क्यों, क्या मैं नहीं कर सकता ?'

'पर आप ?'

'बाई, मैं उतना बूढ़ा नहीं हुआ .... अभी भी जो यह किला है न, उस पर बिना रुके सीधा चढ़ जाऊं ... आप काम भी तो देखिये ?'

'ठीक है, पर ... ?'

'हां बाई, महंगाई भी कितनी है । रुपया रोज तो ....'

'तीस रुपये ?' पत्नी चौंकी ।

'बाई, पहले आप काम देखिये ... पसंद न आये तो ....'

उसके जाने के बाद लगा—चलो, एक बोझ तो हटा .... घर तो गृहिणी का ही होता है, वही अगर रुष्ट रहे तब ?

सुबह वह जल्दी ही आ गया था ।

देखा तो हंसी आ ही गयी । इस समय उसके सिर पर साफे की जगह बंदरवाला टोप था । पांवों में तंग मोहरी का पाजामा था .... और बाकी सब कुछ वही ।

'अरे बाबा, नाम तो बता दें,' ... किवाड़ खोलते हुए कहा ।

'नाम में क्या रखा है, बाबूजी । ... देखिये । जो आप चाहें नाम दे दें ....' ... वह कुछ कहते-कहते रुक गया हो ।

यही सोचा, 'बाबा' ही क्या बुरा है ... मोनू भी रह-रहकर 'बाबा' कह रहा ... वे दोनों बैठे हुए आपस में बतियाने ... लग गये थे ।

मैं भी अब अपने काम में लग गया ... टेस्ट मेरे आने से पहले ही हो गये ... आते ही कापियां मिल गयी थीं । उन्हीं ... जांच रहा था ।

तभी मोनू ने आकर फुसफुसाकर कहा ... 'पापा, चलो देखो, बाबा कैसे काम कर ... है ।'

'कैसे ?'

'चलो तो सही ।'

'रहने भी दे .... जा खेल ।'

'नहीं चलो ।' वह हाथ पकड़कर ... रहा था ।

उठना ही पड़ा ।

देखा, उससे झाड़ू नहीं लग रही ... वह घिसट-घिसटकर चल रहा था । ... बैठकर, घिसटते हुए दोनों हाथों से ... लगाना कुछ अजीब-सा लगा । तभी ... भी चौके से बरामदे में निकल आयी ... 'बाबा, ऐसे... ऐसे ...' वह समझाने ... गयी थी ।

मैं अंदर चला आया । पर काम में ... नहीं लगा । सच, यह तो बहुत बूढ़ा है ... आगे

रात की उम्र कुछ कम लग रही थी, पर अब ... तभी याद आया, हम लोगों के पिता भी इसी उम्र के होंगे।.... कभी वे ... नहीं-नहीं, कितना गंदा विचार है ... मन कुछ खिन्न हो गया। तभी पत्नी की आवाज सुनाई दी–'यह क्या बाबा, तुमने तो सारे बरतन सिर्फ पानी में धोकर रख दिये ... उन्हें मांजना-रगड़ना था। यह पानी में किसलिए रख गयी थी ?'

'बाई ...' वह जैसे कुछ कहना चाह रहा था, पर आवाज थी कि हर बार लड़खड़ा जाती थी।

'पहले इन्हें राख से साफ करो और फिर पानी से धोना।' पत्नी टब में से सब बरतन बाहर निकाल रही थी।

'अच्छा बाई।' और वह फिर अपने काम में लग गया था।

कुछ दिन यों ही बीत गये। पत्नी असंतुष्ट होते हुए भी जरा खुश थी कि चलो, काम तो चल ही गया है। वह भी कभी-कभी स्टेशन पर दिख जाता था। पर एक बात जो हमें अब तक समझ में नहीं आयी थी, वह था उसका व्यवहार। वह हमें कहीं बाहर देखते ही बचने का प्रयास करता था। साथ ही, दूसरे सब लोग उससे आदर से व्यवहार करते मिलते थे।

पत्नी ने कहा भी–'बाबा की यहां बड़ी इज्जत है।'

'हूं।'

'चलो ठीक ही है, जब तक दूसरा न मिले यही ठीक है।'

'दूसरा !' मैं चौंका।

'हां, कल मैं सक्सेना साहब के यहां गयी थी। उनकी मिसेज कह रही थीं कि कल वे अपनी नौकरानी से कहेंगी......देखो, कोशिश में तो हूं ......'

× × ×

उस दिन सब्जी मंडी से लौट रहा था। बाबा दिख गया। वह मुझे देखते ही पास की गली में खिसक गया। इधर मैं यह सोच रहा था कि वह मिल गया है, ठीक ही हुआ–थैले घर तक पहुंचा देगा।

उसका इस तरह जाना बुरा ही लगा। सोचा, अजीब आदमी है, घर पर तो रिरियाता है...और बाहर ? तय किया, आज जरूर ही डांटना पड़ेगा।

वह जिस ठेले पर खड़ा था, वहीं पूछा–'यह बाबा कौन है ?'

'कौन ? हीरजीभाई ...... आप नहीं जानते ?'

मैं अवाक् था .... चलो, नाम तो मिला।

'स्साब, कभी इसका भी जमाना था। यह जो किला है, कभी इसमें इसे भी कैद किया गया था। तब प्रजामंडल का जमाना था। व्यासजी भी यहीं थे। माथुर साहब जब भी आते हैं, आते ही इससे मिलते हैं। सब किस्मत की बात है। पहले यह बात नहीं थी। जमा हुआ धंधा था। फिर जब चौपट हुआ तो संभला ही नहीं। तब भाइयों ने छीन लिया; अब जो थोड़ा-बहुत किया, उस पर बेटों का कब्जा है। बड़े बेटे के पास ट्रक है, छोटा कहीं सरकारी नौकर है ...

पर अब कोई इसे नहीं पूछता। उलटा यही कहते हैं—जब सब खा-कमा रहे थे, तब घर में आग लगाकर कबीरदास बनने की क्या सूझी थी ? बात भी ठीक है। व्यासजी मंत्री बने, माथुर साहब बने .... कौन नहीं बना ? और हीरजी ?'

मुझसे और अधिक नहीं सुना गया।

मन था कि जाने कहां-कहां उड़ रहा था। पता नहीं, रास्ता कैसे कटा। हर बार यही लग रहा था, जैसे हीरजी गली के मोड़ पर खड़ा हो और रिरियाती आवाज में यही कह रहा हो—'बाबूजी, पहले मेरा काम तो देखिये।'

काम ? हां सचमुच उसका काम ही देखा था। तभी तो यह हवा, यह धूप, और यह इतना खुला आकाश, हम जान पाये हैं। रोज जब उमस बढ़ती है, तब जी करता है—भागो ..... किले की इस छाया से भी दूर भागो..... कम से कम खुला आकाश तो मिले ..... शायद वह घुटन भी ऐसी ही होगी।

घर पहुंचा ही था कि पत्नी ने सूचना दी—'हीरजी आया था। वह फटे मोजे मांग रहा था। दे दिये। और हां, सक्सेना साहब की नौकरानी भी आयी थी ... वह तैयार है ... मैं सोच रही हूं .....'

मुझसे कुछ नहीं बोला गया।

थैले फर्श पर रखे और पंख कटे पक्षी की तरह पलंग पर गिर पड़ा।

न जाने मन कहां से कहां तक भटकता उड़ रहा था। कल ही तो सक्सेना साहब कह रहे थे—'भंडारी जो आज करोड़पति है, मैं [illegible] हमारी-आपकी तरह ही मामूली हैसियत का था। चीन की लड़ा[illegible] के बाद तस्करी क्या चली, इनकी कि[illegible] ही बदल गयी। हंसमुख सेठ का आपने [illegible] देखा है? .... संगमरमर का स्विमिंग[illegible] .... बाथरूम ही तीन-चार लाख का हो[illegible] और तभी सुना था, प्रकृति तो खुले हा[illegible] लुटा रही है, चाहिये लूटने वाला.....

और हीरजीभाई प्रकृति बने रहे... [illegible] लुटाते रहे। याद आयी, किले की वह [illegible]

हम उस समय बंद कोठरी के पा[illegible] गुजर रहे थे। मोदीजी बोले—'ये ही [illegible] कोठरियां हैं, जहां कभी आजादी की लड़[illegible] के समय व्यासजी को बंद किया गया था[illegible] व्यासजी, माथुरजी, और न जाने क्या-क्[illegible] नाम .... वे पूरा एक इतिहास सुना गये [illegible] 'और वह अपना हीरजी है, वह भी यहां [illegible] था। बेचारा सबकी बहुत सेवा करता था[illegible] सबके कपड़े भी धो दिया करता था। [illegible] करने पर यही कहता—यह तो पुण्य है।'

'कौन ?' मैं तब चौंक-सा गया था।

'हमारा हीरजी ... आप नहीं जानते[illegible] हमारे यहीं आता है, आजकल बहुत त[illegible] लीफ में है। बहुत बूढ़ा हो गया है। क[illegible] मिलवाऊंगा।'

याद आया—बहुत कुछ। यही तो [illegible] है स्मृति-सरोवर की। बस, ताल पर कं[illegible] गिरनी चाहिये, फिर जो लहरें उठेंगी, [illegible] कहती चली जायेंगी ..... कब, कहां, [illegible] हुआ था।

× × ×

'क्यों, क्या हो गया? तबीयत तो....?'

'ठीक है।'

'क्या बात है?'

'सुनो, कल हीरजी आये तो .....'

'हीरजी?'

'हां, वही बावा। वह जो मांगे दे देना... पर उससे बरतन मत मंजवाना ....'

'तुम्हें क्या हो गया है? जो मांगे दे देना और बरतन मत मंजवाना ... मैं तो पहले ही ..... पर?'

'उसका ही नाम हीरजी है.... वही जिसके बारे में मोदीजी कह रहे थे वही ....' और मुझसे कुछ अधिक नहीं कहा गया।

'हीरजी!' पत्नी अवाक् थी।....'सच्च?'

हम दोनों चुप थे। कुछ बोला नहीं जा रहा था। लग रहा था, जो हमें प्रिय था, वह अब नहीं रहा है। रह-रहकर आंखों के सामने हीरजी उभर रहा था। और उभर रहा था किला, वह बंद कोठरी, वह पहाड़ और गहराता हुआ अंधेरा जिसमें डूबा हुआ देश, हंसमुख सेठ, भंडारीजी, मैं, कलक्टर, मिनिस्टर सब जैसे अनंत प्रवाह में बहते चले जा रहे हैं। रह-रहकर वही रिरियाती आवाज करीब चली आ रही थी। हां, सचमुच हीरजी ही था–उजास में नहाया हुआ, धीरे-से कहता हुआ–'पहले मेरा काम तो देखिये।' और अजानी बेड़ियों में जकड़ा, अंधेरे में खोया हुआ चला जा रहा था। नहीं-नहीं, मुझे इसमें से बाहर आना है, मैं यहां नहीं रह सकता।.... लगा–मैं हवालात में खड़ा हूं, चारों तरफ सलाखें ही सलाखें हैं, जिनसे बाहर आना है ... नहीं, नहीं .... और मैं रो रहा था।.... बाहर रह-रहकर सांकल बज रही थी।

वही आवाज ... वही पदचाप।

लेकिन न मैं सुन रहा था, न पत्नी ही। लगा, जैसे हीरजी स्वतः दीवारें लांघता हुआ पास चला अया हो और पूछ रहा हो–'बाबूजी, मेरा काम कैसा लगा?' लेकिन जो स्वयं पराधीन है, वह कहीं सुन सकता है? नहीं, शायद नहीं.... यही मेरी नियति है। मैं .... मैं ....

–गोयल भवन, मामा-भानजा, झालावाड़, राजस्थान

★

मेरा मकान

ये 'गालिब' हैं, ये हैं 'इकबाल', ये बुद्धा,
ये ईसा हैं–ये कैलेंडर में बैठी
एक हिन्दुस्तानी दोशीज़ा[1] है
जिसकी नीमउरियां[2] छातियां
हैं महताबे-वाश्गो[3] गोया/मगर इन पांच
चेहरों, पैकरों[4] ने क्या बना डाला है
मेरे सादा कमरे को
एक ऐसी पेंटिंग जिसमें
खुदा तर्गीब-जिंसी[5] दे रहा हो
जैसे खुद अपने ही बंदों को

–सुलेमान अदीब

लिप्यंतर : ज़ाहिद इकबाल

१. कुमारी, २. अर्धनग्न, ३. झुका हुआ चंद्रमा, ४. शरीर ५. सेक्स-प्रलोभन।

अजीज ने सिन

किराये के घर में रहने का मतलब क्या है, इसका ज्ञान उसे बचपन में ही हो गया था। यही कारण था कि आज से कई वर्ष पहले उसके मन में यह इच्छा पैदा हुई कि ज्यों-त्यों करके सिर छिपाने के लिए अपना एक छोटा-सा घर बना लिया जाये।

उसके बचपन की सबसे गहरी यादें किराये के एक घर से किराये के दूसरे घर में तबादले से जुड़ी हुई थीं। ऐसे हर मौके पर उसके माता-पिता का आपस में झगड़ा होता। दोनों कई-कई दिन एक-दूसरे से नाराज रहते। फिर घर बदलने की तैयारियां शुरू होतीं। टूटने वाली सब चीजें बड़ी सावधानी से अलग-अलग कागजों और मैले कपड़ों में लपेटकर रजाइयों और गद्दों की तहों में रखी जातीं। उसकी मां कोयले की अंगीठी से लेकर तवे-परात तक हर छोटी-बड़ी चीज अखबार के पन्नों में लपेटकर डिब्बों और बक्सों में बंद करती। फिर सारा सामान किराये की एक घोड़ागाड़ी में लादा जाता। घर का सारा सामान एक गाड़ी में फिट करना भी एक अजीब समस्या होती। चलते समय तक कोई न कोई चीज बाकी बच जाती। कभी कोई गमला, कभी कोई लोटा और कभी कोई डिब्बा। उस मां इन चीजों को कभी गाड़ी के एक में ठूंसने का प्रयत्न करती, कभी दूसरे कभी उसे मुरब्बे के किसी पुराने डिब्बे बचा-खुचा शीरा रिसता हुआ दिखाई दे तो भागी-भागी किसी चिथड़े से उसे करती और सब डिब्बों को पुनः जरा सावधानी से सीधा करके जमा देती।

घर का सामान एक जगह से दूसरी ले जाने वाली घोड़ागाड़ी और उसके पीछे, ऊपर-नीचे बंधी हुई रस्सियां सबको याद उसके मस्तिष्क में यों ताजा मानो कल ही की बात हो।

नये घर पहुंचकर कभी कुछ प्लेटें, लैंप का शीशा, कभी एक-आध गिलास कभी कोई बोतल टूटी हुई मिलती। किसी बोतल या डिब्बे का ढकना खुल से तेल, सिरका या उसकी मां के हाथों बना हुआ मुरब्बा कपड़ों पर गिर जाता ऐसे मौकों पर उसका बाप अपने खूब कोसता और कहता—'भई, गरीबी बड़ी जलील चीज है।'

ये सब बातें उसके मां-बाप के बीच नये झगड़े खड़े करती रहीं। नये घर

अनुवादक : सुरजीत

रहते अधिक समय न बीतने पाता कि उन्हें कोई और घर ढूढ़ने की जरूरत पेश आ जाती। उसके भी कई कारण थे। कभी किराया समय पर न चुकाने के कारण थाने और अदालत के चक्कर काटने पड़ते। ऐसे अवसरों पर आखिर में उनके घर की सभी चीजें उठाकर गली में फेंक दी जातीं और घर बदलने के सिवा और कोई उपाय न रहता। कभी स्वयं उस घर में रहने के बहाने उन्हें मकान खाली करने पर मजबूर किया जाता और फिर वही घोड़ा-गाड़ी और वही टूट-फूट। वही चीजों का सत्यानास और वही मां-बाप के झगड़े।

अब तक वे लोग शहर के लगभग हर मुहल्ले में रह चुके थे। आज भी वह शहर के जिस इलाके से गुजरता, वहां कोई न कोई पुरानी याद उसका पीछा करती और उसके स्वर्गीय पिता के ये शब्द उसके कानों में गूंजते :

'दुनिया में मकान, परलोक में ईमान।'

जब उसने मैट्रिक पास किया, तो मां-बाप दोनों मर चुके थे। नौकरी पाते ही उसने निश्चय किया कि जब तक अपना मकान नहीं बना लूंगा, शादी नहीं करूंगा। पूरे पांच वर्ष उसने कपड़ों के केवल एक जोड़े में गुजारा किया। न सिगरेट पीने की आदत डाली, न शराब को हाथ लगाया। न सिनेमा जाता, न थियेटर। फिजूल इधर-उधर घूमने-फिरने में भी संकोच करता कि कहीं कोई चीज खरीदने को जी न मचल जाये। मतलब यह कि एक लंबे अरसे तक बिलकुल साधुओं जैसा जीवन बिताता रहा।



पूरे पांच वर्ष के निरंतर संघर्ष और आधे भूखे-प्यासे रहने के बाद कहीं जाकर दो हजार रुपये बचा सका। उसकी हैसियत के किसी भी सरकारी कर्मचारी के लिए यह अच्छी-खासी रकम थी। मिलने को एक हजार में भी घर मिल जाते थे, पर वे इतने टूटे-फूटे होते कि उसे एक आंख न भाते। अंत में उसने सोचा, क्यों न एक छोटा-सा मकान बना लिया जाये। मकान समुद्र के किनारे, सड़क के किनारे, सुंदर जगह पर होना जरूरी था। घर के आगे खुला लान भी अवश्य होना चाहिये। इन सभी शर्तों पर केवल दो प्लाट पूरे उतरते थे। एक की कीमत तीन हजार और दूसरे की साढ़े तीन हजार थी। वैसे तो एक हजार में उनसे भी बड़े प्लाट मिल सकते थे, पर वे उसकी इच्छा के अनुकूल न थे। इसलिए उसने सोचा कि कुछ समय और रुपया जमा किया जाये।

सन १९३७ में अपनी सारी जमा-पूंजी, जो उस समय तक चार हजार रुपये हो चुकी थी, जेब में डालकर वह घर से निकला। अब उसे विश्वास था कि अपनी इच्छा

से भी बढ़िया प्लाट उस रकम से मिल जायेगा। वह सबसे पहले वही प्लाट देखने गया, जिसकी कीमत कुछ वर्ष पूर्व साढ़े तीन हजार थी। उस प्लाट का आधा भाग बिक चुका था। उस पर एक कोठी भी बन चुकी थी। प्लाट का स्वामी दूसरे आधे भाग का पांच हजार रुपये मांगता था।

तब वह तीन हजार रुपये वाले प्लाट पर गया। उस प्लाट के स्वामी ने छह हजार की मांग की। मजबूरन उस एक हजार रुपये वाले प्लाट पर पहुंचा, जिसे वह सिरे से अस्वीकार कर चुका था। इस प्लाट की कीमत अब साढ़े चार हजार थी। उसने सारी रकम वापस बैंक में जमा करा दी। एक नये संकल्प के साथ पहले से भी ज्यादा किफायतशारी से दिन बिताने लगा। जूतों और कपड़ों पर पैबंदों की तादाद बढ़ती रही। उसने सोचना शुरू कर दिया कि अगर मकान समुद्र के किनारे न भी हो तो कोई हर्ज नहीं; शहर के किसी अच्छे इलाके में बन जाये तो ठीक है। मतलब यह कि प्लाट खरीदकर मकान बनवाने, घर की चीजें खरीदने और फिर शादी करके संतान वाला होने के मनसूबे बनते रहे और बिगड़ते रहे।

जब सन १९४३ शुरू हुआ तो उसके पास सिर्फ पांच हजार रुपये जमा हो सके थे। सारी किफायत और तंगियों के बावजूद इससे अधिक रकम जमा करना उसके लिए संभव न हो पाया। कारण यह था कि अब चीजों की कीमतों में दिन-दुगुनी रात चौगुनी तरक्की हो रही थी। जिस प्लाट की कीमत पहले पांच हजार थी, अब उ[...] पर चार मकान खड़े थे। प्लाट का ए[...] छोटा-सा भाग खाली बचा रह गया था[...] मालिक उसके लिए छह हजार रुपये [...] मांग कर रहा था। मुद्दत हुई, वह शहर के अंदर मकान बनाने के इरादे से भी बाज आ[...] चुका था। शहर के बाहर ही कहीं एक प्ला[ट] मिल जाये तो भी गुजारा हो जायेगा। प[र] जमीन मिले तो कहां मिले? किफाय[त] और कंजूसी अपनी पराकाष्ठा पर पहुं[च] गयी। वह कुछ न खाता, न पीता। पै[सा] जमा करने की एक धुन थी, जो रात-दि[न] उसके सिर पर सवार थी।

अब उसे तरक्की भी मिल गयी थी। तनख्वाह बढ़ चुकी थी। हालांकि अब ह[र] महीने पहले से कहीं अधिक रुपया मिलता[...] फिर भी १९५० तक वह केवल साढ़े सा[त] हजार रुपया जमा कर सका। सात हजा[र] रुपयों में जमीन का प्लाट? सब लोग उसके इरादों पर हंसे। इतनी रकम में तो शह[र] के बाहर घर के लिए तो क्या, झोपड़ी के लिए भी प्लाट मिलना असंभव था। जि[स] प्लाट की कीमत कुछ वर्ष पहले दो हजा[र] थी, अब उसके दसवें भाग की कीमत चालीस हजार थी।

'प्लाट खरीदने के लिए और रकम ज[मा] करने के सिवा उपाय ही क्या था? इसलि[ए] उसने पैसा जोड़ने की रफ्तार में और वृ[द्धि] कर दी। घर का नक्शा उसके मस्तिष्क [में] बिलकुल स्पष्ट था। एक विलायती ढा[ंचे का] रूम, और एक देसी। एक सोने का कम[रा]

और एक मेहमानों का। एक खाने का कमरा और एक ड्राइंग-रूम। कम से कम बच्चों का एक अलग कमरा भी जरूरी था। पहले दुमंजिला घर बनाने के मनसूबे बांधा करता था, पर अब इकमंजिले मकान ही से संतोष था; क्योंकि उम्र अधिक हो चुकी थी और वह अब कुछ थक भी चुका था।

सन १९५४ तक उसके पास दस हजार रुपया जमा हो गया। वह एक बार फिर प्लाट की तलाश में निकला। पर अब इस रकम में शहर के आस-पास में तो नहीं, पर कोई तीस मील दूर कटी-फटी जमीनों में जमीन मिलने की संभावना थी। उसने निश्चय किया कि खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने पर जरा और कंट्रोल करके और बचत की जाये। अब उसके प्लान में भी खासा परिवर्तन आ चुका था। उसे केवल एक छोटे-से प्लाट की जरूरत थी, जिस पर एक छोटा-सा घर बनाया जा सके। पांच कमरे न सही, दो में ही गुजारा हो जायेगा। देसी और विलायती बाथ-रूम भी उसके काल्पनिक नक्शे से लोप हो चुके थे। बस एक-दो कमरे हो जायें, ताकि वह कम से कम अपना सिर तो छिपा सके और ज्यों ही घर तैयार हो, फिर अगला काम...शादी...

सन १९५६ में उसकी पेंशन हो गयी। अब चाहे खाना-पीना बिलकुल ही छोड़ दे, पेंशन की अल्प धनराशि में से और बचत करना किसी प्रकार संभव न था। पूरे छब्बीस वर्ष की नौकरी के दौरान कौड़ी-कौड़ी जमा करके बचायी हुई उसकी सारी जमापूंजी केवल बारह हजार रुपये बनती थी। इतनी रकम में न शहर के अंदर, न शहर के बाहर, न समुद्र-तट पर, न किसी पहाड़ी की चोटी पर प्लाट प्राप्त करना संभव था। मंजिल आज भी उतनी ही दूर थी, जितनी दूर छब्बीस वर्ष पहले थी। घर के लिए प्लाट के भरसक प्रयत्नों ने उसे अपनी असल उम्र से भी बीस वर्ष अधिक बूढ़ा बना दिया था और अब भी मरहूम बाप के ये शब्द हर समय उसके कानों में गूंजते रहते—'दुनिया में मकान, परलोक में ईमान।'

अंत में वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दुनिया में मकान तो असंभव है। अब उसे कम से कम अगली दुनिया का ही खयाल करना चाहिये।

एक दिन शाम के समय वह प्लाट की तलाश में फिरता हुआ थका-हारा घर वापस आ रहा था कि एक कब्रिस्तान पर नजर पड़ी। वह उसके अंदर चला गया। कितनी शांतिपूर्ण, कितनी सुंदर जगह थी। बिलकुल उसके सपनों के घर की तरह। सुंदर बगीचे, फल, क्यारियां और हरी-भरी घास। जब उसने हरी-भरी घास और रंग-बिरंगे फूलों के बीच संगमरमर का एक मजार देखा, तो अपने आपसे कहने लगा—क्यों न मरकर ऐसे ही एक सुंदर मजार को अपना घर बना लिया जाये। आखिर मौत अटल है, फिर क्यों न जीवन में ही इस कब्रिस्तान में एक कब्र के लिए जगह खरीदकर अपनी इच्छा के अनुसार एक बढ़िया-सा मजार बनवा लिया जाये?

कब्रिस्तान एक छोटी-सी पहाड़ी पर समुद्र के बिलकुल सामने स्थित था। क्या सरू के ऊंचे पेड़ों की ठंडी छाया में चिर-निद्रा सोना इस कटु जीवन का उत्तर नहीं, जहां सिर छिपाने को एक झोंपड़ी भी नहीं मिलती?

अगले दिन वह भागा-भागा कब्रिस्तान-विभाग पहुंचा। वह अपने लिए एक कब्र की जगह खरीदना चाहता था।

जवाब मिला, जिस कब्रिस्तान में आप जगह चाहते हैं, वहां कोई जगह खाली नहीं है, पर अगर आप चाहें तो एक दूसरे कब्रिस्तान में बहुत सुंदर जगह पर आपको बीस हजार रुपये में कब्र की जगह मिल सकती है।

उसने शरम से सिर झुकाकर जवाब दिया—क्या इससे जरा सस्ती, मेरी हैसियत के अनुकूल और जगह नहीं मिल सकती?'

जगहें तो और भी थीं और पंद्रह, बारह बल्कि दस हजार रुपये में भी मिल सकती थीं। उसने बड़ा सोच-विचार किया। घर के प्लाट के सिलसिले में निरंतर प्रयत्नों का अनुभव उसे तत्काल फैसला करने में सहायक सिद्ध हुआ। उसने सोचा, अगर और प्रतीक्षा की तो कब्रों की कीमतें भी उसी रफ्तार से बढ़ती जायेंगी और फिर अपनी पूरी जमा-पूंजी से एक कब्र की जगह ख[रीद]ना भी असंभव हो जायेगा। इस[लिए] उसी समय सारी कारंवाई पूरी करके [उसने] अपनी कब्र के लिए देखे बिना एक [दूसरे] कब्रिस्तान में जगह खरीद ली।

जब वह कब्रिस्तान पहुंचा तो देखा [कि] बिलकुल टूटी-फूटी, खस्ता दीवारों से घि[री] बहुत शायराना किस्म की जगह थी। [पर] वह फिर भी बेहद खुश था। उसकी आं[खों] में एक अजीब-सी चमक पैदा हुई। [वह] चिल्लाया—'अहा! यह जगह मेरी अप[नी] जगह है..... मेरी जगह .... मेरी अ[पनी] जगह .....'

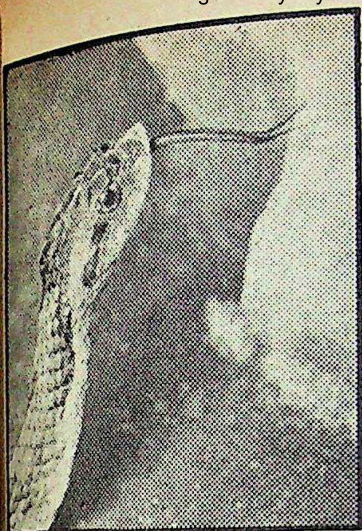
जिस तरह पहले वह रोज दफ्तर जा[या] करता था, उसी तरह अब वह रोज म[न] सीधे कब्रिस्तान जाता है। उसके मन [में] जमीन के एक टुकड़े के स्वामित्व से उत्प[न्न] खुशियां भर जाती हैं। वह इसी स्वामि[त्व की] अनुभूति में अपनी भावी कब्र की जगह [पर] बैठ जाता है। उस पर से घास-फूस [और] गर्द-गुबार साफ करता और झाड़ता-फू[ंकता] है, इर्द-गिर्द खूबसूरत फूलों के पौधे लगा[ता] है और फिर थक-हारकर बहुत हसरत [और] अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा करता [है] जब वह अपने निजी मकान में रह सकेगा और वह भी सदा-सदा के लिए.....



'जब तुम्हें पता चल गया है कि तुम्हारी साइकल फलाने ने चुरायी है, तो तुम [उसे] पुलिस में क्यों नहीं पकड़वा देते?'

'पकड़वाऊंगा, छोड़ूंगा थोड़े ही; मगर जब वह मेरी साइकल में नये टायर डलवा [लेगा] उसके बाद।'





डा. शारदा र. काणकोणकर

सांपों का सामाजिक जीवन और प्रजनन

स्तनधारी प्राणियों या पक्षियों की तरह समूह में रहते हुए सामाजिक जीवन व्यतीत करना सांपों का स्वभाव नहीं है। वे एकाकी जीना ही पसंद करते हैं। उनका जो भी सामाजिक जीवन है, वह केवल लैंगिक सुख की पूर्ति के लिए है और केवल प्रजनन के मौसम में कुछ समय के लिए वे एकांतवास का परित्याग करते हैं।

हमारे देश में बारिश का मौसम सांपों के संभोग का समय होता है। इसलिए बरसात के दिनों में नर और मादा सांप जोड़े में घूमते नजर आते हैं। मगर उनका यह सम्मिलित जीवन क्वचित् ही बच्चे होने तक चल पाता है। न यही देखने में आता है कि कोई मादा किसी निश्चित नर के साथ या कोई नर किसी निश्चित मादा के साथ रहता हो। संभोग के मौसम के बाद तो सांप जोड़ियों में दिखाई देते ही नहीं।

सांप अपने बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी न मानते हैं, न कभी निभाते हैं। बच्चे होने के बाद वे उन्हें खुले वातावरण में छोड़ देते हैं। सो उनमें परस्पर प्रेमभाव उपजना संभव ही कैसे है? न यही संभव है कि किसी सांप को मार डालने पर उसके रिश्तेदार उसे मारने वाले से द्वेष रखें या उससे बदला लें।

अलबत्ता यह हो सकता है कि संभोग के मौसम में मादा के संग घूम रहा नर मादा के मारे जाने के स्थल पर जाये या उसे मारने वाले के समीप घूमे। परंतु ऐसा तभी होगा, जब मादा को मरे थोड़ा ही समय हुआ हो। ऐसी अवस्था में यह कहना हास्यास्पद है कि दूसरा सांप बदला लेने आया है।

सांपों की घ्राणेंद्रिय (जीभ) तीक्ष्ण होती है और सांप अपने दुखाने वाले की गंध

याद रखें और उसके प्रति वैरभाव रखे, यह संभव है। परंतु यह महज संभावना है या वास्तविकता है, कहना कठिन है। यदि यह वास्तविकता है तो प्रश्न उठता है कि सताने वाले की गंध को वह कितने दिनों तक याद रख सकता है, और कितने समय तक वैरभाव रख सकता है? अभी तक इस बारे में निश्चित रूप से कुछ पता नहीं चल पाया है।

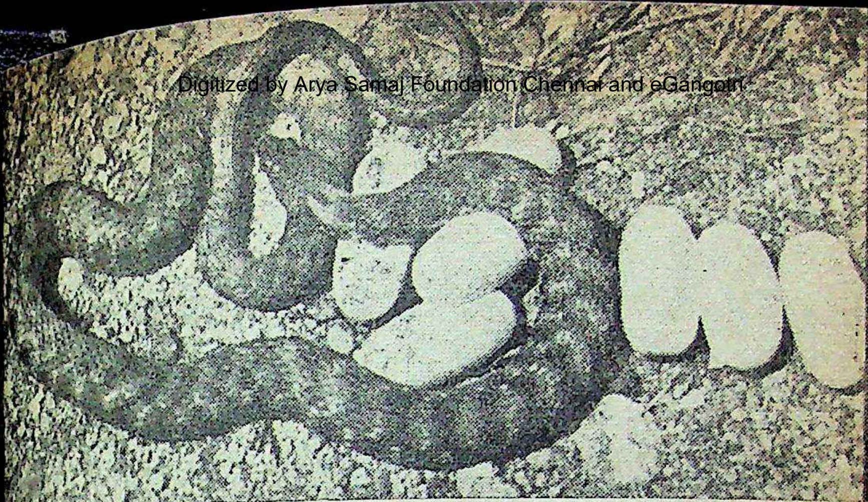
मादा की तुलना में नर सांप की पूंछ लंबी होती है। ऐसे मामूली अंतर छोड़ दें तो नर और मादा के शरीर की बाह्य रचना में कुछ खास अंतर नहीं होता। इसलिए नर और मादा केवल शरीर की गंध एवं स्पर्श के आकर्षणों से एक दूसरे के निकट आते हैं। बहुत-सी मादाओं की त्वचा से कुछ स्राव निकलते रहते हैं तथा कुछ के गुदा-द्वार के पीछे की ग्रंथियों से रजोदर्शन होता है। नर सांप अपनी कुशाग्र जीभ से इन स्रावों का पता लगाते हुए मादा के निकट पहुंचते होंगे। इस प्रकार कुछ विशेष महीनों में गंध के कारण नर मादाओं की ओर अधिक आकर्षित होते होंगे।

ऐसा भी लगता है, सांप कट्टर जातिवादी होते हैं या उन्हें वर्ण-संकरता स्वीकार नहीं है; क्योंकि विजातीय सांपों में सहसा समागम नहीं होता।

समागम से पूर्व सांप खूब प्रणय-निवेदन करते हैं। मादा के साथ-साथ शरीर का स्पर्श कराता हुआ नर एक विशेष रीति से रेंगता है। इसके बाद उसका रास्ता रोककर उसके शरीर पर अपना माथा रगड़ उसे उत्तेजित करता है, अपने व उसका बदन घिसता है, कई बार चपल जीभ से उसे माथे से लेकर दु सहलाता है, कभी उसकी पीठ पर से हुआ सिर से दुम तक आता है। ऐसे प्र निवेदनों द्वारा पूर्ण उत्तेजना में आने के नर और मादा एक दूसरे की बगल में लेट जाते हैं। नर अपनी पूंछ की कुंड डालकर मादा को इस तरह अपने खींच लेता है कि दोनों के गुदाद्वार आ सामने आ जायें।

नर की जननेंद्रिय एक नहीं होती, अर्धशिश्नों की जोड़ी रहती है। गुदा के थोड़ा पीछे तथा पूंछ के आधार के दायीं और बायीं ओर खोखली नलिका समान एक-एक अर्धशिश्न धंसा रहता समागम के पहले विशेष स्नायुओं की यता से दोनों अर्धशिश्न बाहर निकल हैं। धीरे-धीरे उनका अंदर का बाजू की तरफ उभर आता है। उनमें रक्त-संचय होने से वे कड़े हो जाते हैं।

एक वैज्ञानिक टिप्पणी के अनु मैथुन के समय भारतीय अजगर के शिश्न की लंबाई ४१-४१·५ मिली और रंग तनिक नीलापन लिये बैंजनी है। कुछ सांपों के अर्धशिश्नों का रंग सफेद परंतु मैथुन के समय धीरे-धीरे और बाद में नीला हो जाता है। अर्ध का अग्रभाग कुछ कंटीला और पु आकार का होता है, ताकि वे मा



...नतेंद्रिय में ठीक से जमकर बैठें।

मैथुन में एक साथ दोनों अर्धशिश्नों का उपयोग नहीं होता, बल्कि मादा नर के जिस ओर लेटी हुई हो, उसी ओर का अर्ध-शिश्न मादा की योनि में प्रविष्ट होता है। प्रवेश के बाद नर और मादा कई मिनटों से लेकर कई घंटों तक शांत व गुमसुम पड़े रहते हैं। प्रसिद्ध विशेषज्ञ क्लोवर के अनुसार, अमरीका के झुनझुने सांपों में अधिक से अधिक समय का समागम २२ घंटे और ४५ मिनट का देखा गया है। इन सांपों में यह भी आदत है कि एक दूसरे से अलग होने के पहले कई बार मादा नर को कुछ दूर तक घसीट ले जाती है।

विशेषतः समागम के मौसम में, मादा को पाने के लिए दो नरों में होड़ होना अस्वाभाविक नहीं है। जिसे कई बार हम नर-मादा का प्रणय-नृत्य, शृंगार-नृत्य समझ लेते हैं, वह वास्तव में दो नरों का गुत्थम-गुत्था होता है। इस हाथ-पैर-रहित हाथा-पाई के दौरान वे घंटों एक दूसरे को कुंडली में जकड़ते, ऐंठते, निचोड़ते और एक दूसरे को पस्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस सारी क्रिया का उद्देश्य मादा पर प्रभाव जमाना नहीं होता। विज्ञानी फ्ले का तो कहना है कि मादा इधर ध्यान ही नहीं देती।

विज्ञानी रैम्से ने समागम के मौसम के बाहर भी दो नरों में ऐसी उठा-पटक देखी है। उनका कहना है कि यह उठा-पटक किसी विशेष मादा से समागम करने के लिए नहीं होती होगी; बल्कि यह समलिंगी समागम से बचने की कोशिश होती होगी। शॉ नामक वैज्ञानिक की भी यही राय है। लेडरर ने लिखा है कि उन्होंने रुई-मुई (काटन माउथ) सांपों के दो नरों के बीच समागम होते देखा है।

कुछ सांप शिशु-प्रजनक (बच्चों को जन्म देने वाले) और कुछ अंड-प्रजनक (अंडे देने वाले) होते हैं। गर्भ धारण करने के बाद शिशु-प्रजनक सांप को बच्चे देने में १५ से २४ सप्ताह तक का समय लगता है। अंड-प्रजनक सांप समागम के बाद साधारणतः

४ से ८ सप्ताह के बाद अंडे देते हैं। एक ब्यात में अंडों की संख्या ४ से लेकर १०० तक हो सकती है। अंडे बिलों में, पेड़ों, पत्थरों व चट्टानों या कूड़े-करकट के ढेरों पर दिये जाते हैं। समुद्री अंड-प्रजनक सांप समुद्र के किनारे की बालू या रेत में अंडे देते हैं। वैसे बहुत-से समुद्री सांप शिशु-प्रजनक होते हैं।

अंडों की बाहरी सतह कोमल, चीमड़ और चमड़े जैसी होती है। अंडों में केवल पीतक (योल्क) होता है, उसके चारों ओर श्वेतक (अल्बूमिन) नहीं रहता है। अंडों की लंबाई चौड़ाई की तुलना में डेढ़ या तीन गुना अधिक होती है। छिलका ९-१० परतों का बना होता है। अजगर के अंडे टेनिस के गेंद के आकार के होते हैं।

अंडे देने के बाद सामान्यतः सांप उनकी ओर ध्यान नहीं देता है। लेकिन अजगर और कुछ अन्य जातियों में मादा अपने अंडों के चारों ओर कुंडली मारकर बैठती है। वह केवल अंडों के बचाव और देखभाल के लिए ऐसा करती है या उन्हें सेने के लिए, इस बारे में विज्ञानियों में मतभेद है। अपने शरीर से गरमी उत्सर्जित करके अंडों को देना, 'सेना' कहलाता है। सांप शीत रक्त का जीव है। उसका शरीर हमेशा ठंडा रहता है। सो वह अपने शरीर से गरमी उत्सर्जित करके अंडों को गरमी नहीं पहुंचा सकता। इसलिए कुछ वैज्ञानिकों की मान्यता है कि सांप का अंडों के चारों ओर कुंडली डालकर बैठना अंडों की रक्षा करने तथा उन्हें कड़ी धूप से सूखने से बचाने के लिए है।

इसके विपरीत श्मिट, इंजेर ... वैज्ञानिकों का कहना है कि मादा ... अपने शरीर से गरमी उत्सर्जित ... अंडों को गरमी पहुंचाती है। यही ... उस समय उसकी कुंडलियों का ता... आस-पास के वातावरण के तापमान ... अंश फारेनहाइट अधिक होता है।

हाल में हुए अनुसंधानों से पता च... कि केवल भारतीय अजगर अंडे 'सेते' हैं ... वे अंडों के गिर्द कुंडली डालकर बैठ... बेलेर एवं कैरिंग्टन का यह कहना है ... कुंडली वाले भागों के स्नायुओं के आ... से निर्मित गरमी अंडों को पहुंचती है।

अनुकूल वातावरण प्राप्त होते ही ... अंडों से बाहर निकलने लगते हैं और ... छह-सात महीने लगते हैं। पक्षियों के ... सांप भी कभी-कभी असेंचित अंडे देते हैं।

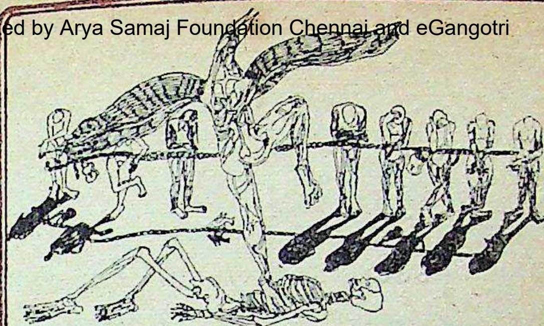
अंडों से बाहर निकलने के पहले ... लियों के थूथन पर एक छोटा-सा ... जैसा दांत होता है, जिसकी सहायता ... अंडे को फोड़कर बाहर आते हैं। ... आने के कुछ दिन बाद यह दांत झड़ जा...

विषैले सांपों के बच्चों में जन्म ... विष होता है। पहले वर्ष बच्चों की ब... बहुत तेजी से होती है। एक वर्ष के ... उनकी लंबाई दुगुनी हो जाती है। ... वर्षों में वे पूरी बढ़वार प्राप्त कर प्रौढ़ ... बनकर प्रजनन-क्षम हो जाते हैं।

—४/२, निसर्ग दत्त कोऑपरेटिव हा...
सोसायटी, रिक्लेमेशन ...
बांद्रा (प.), बंबई-४००...



क्रांति के अंकुर



नयी टिड्डियां

बाड़मेर का वह रेबारी किसना बड़े दिनों के बाद नजर आया था मुझे। मेरे कुएं को गहरा करने का ठेका जब उसने लिया था, तब से उससे आत्मीयता हो गयी थी। कुशल-क्षेम पूछने के बाद खेती-बाड़ी की बातचली और मुझे याद आ गयी अखबारी सुर्खियों में चमकी पश्चिमी राजस्थान पर टिड्डियों के हमले की खबर।

मैं उससे पूछ बैठा—'किसनाजी! अब की बार तो आपके उधर टिड्डियों ने जबर्दस्त हमला किया है। अखबारों में बराबर खबरें आ रही हैं।'

यह सुनते ही वह बोला—'कुदरती टिड्डियां होंगी बाबूजी ये!'

'हां किसनाजी! टिड्डियां कुदरती ही होती हैं। आसमानी जीव हैं ये तो।' मैंने कहा।

इस पर किसना हंस पड़ा। कहने लगा—'बाबू सा'ब! खेत साफ करने वाली टिड्डियां आसमान से ही गिरती हैं। पर हमारे मुल्क में तो नयी-नयी तरह की टिड्डियां पैदा हो रही हैं।'

'नयी टिड्डियां कैसी किसनाजी?'

उसने अपनी ठेठ बोली में उत्तर दिया—'अजी बाबूजी! क्यूं गरीब की दुखती रग पर भाटो मार र्‍या हो! नवी टिड्डियां की कई कमी हैं! जागीरदार टिड्डी, जमींदार, उनसे बड़ी, थानेदार, पटवारी, ग्रामसेवक, और तो और सहकारी को सेक्रेटरी तक छोटी टिड्डी बण ग्यो है! सब देहात ने चाटने के लिए ऐडी-पंजा को जोर आजमा र्‍या है।'

'किसनाजी! आज तुम किसी विरोधी पार्टी वाले नेता का भाषण सुनकर आये लगते हो।' मैं जरा अविश्वास से उसे घूरता हुआ कह उठा।

'हां बाबू साब! आप जश्या को खून भी अणों नवी टिड्डियां के तई देख-देखकर नी खोल सकें तो म्हां दव्यापिस्या गरीब गुरबान को कांई!' किसनाजी ने अपनी सारी पीड़ा एक ही बार में उगलकर अपनी राह ली।

१९७१

हम 'अंत्योदययोजना' चालू करें या समग्र क्रांति का नारा लगायें, जब तक ये परोपजीवी टिड्डियां किसी भी देश में जीवित रहेंगी, देश की हालत ऐसी ही रहेगी।

—दुर्गाशंकर त्रिवेदी, कोटा, राजस्थान

०००

रहस्य

दक्षिण-पूर्व एशिया के दौरे पर एक शिष्टमंडल में गया था। दक्षिण कोरिया की राजधानी सिऊल के बाद टोकियो गया और वहां से हांगकांग पहुंचा। साथ में पांच-सात संसद-सदस्य थे। लेकिन यात्रा में सभी बिछुड़ते गये, हांगकांग पहुंचने तक रह गये केवल दो—मैं और एक संसद-सदस्या, जिनका नाम जान-बूझकर नहीं दे रहा हूं।

जिस दिन हांगकांग से मनीला जाना था, सुबह हम दोनों होटल में नाश्ते के टेबल पर बैठे थे। वे बहुत उदास और खोयी-खोयी-सी दिखीं। मैंने कारण जानना चाहा, तो वे बोलीं—'रात मैंने भयानक सपना देखा और मेरी नींद टूट गयी, तभी से उदासी ने घेर लिया है। सपने में मैंने देखा कि पुलिस के सिपाही मेरे बेटे को खून के इल्जाम में पकड़कर लिये जा रहे हैं। मेरा दिल बुरी तरह धड़क रहा है और मन करता है कि अब कहीं न जाऊं, सीधे घर लौट जाऊं।'

मेरे मुंह-से सहसा निकल पड़ा—'कभी कभी सपने सत्य भी हो जाते हैं।' इस पर वे और भी घबरा गयीं और बोलीं—'एयर इंडिया वालों से बात कर लीजिये, ... जगह मिल जाये तो मैं आज ही भारत ... जाऊंगी।'

मैंने उन्हें बहुत समझाया कि ऐसी ... बात है; यात्रा पूरी कर लीजिये, दस ... दिन बाद तो पहुंचना ही है। लेकिन ... पर जिद सवार हो गयी थी वापस ... की। पुत्रप्रेम उनके सामने मातृत्व ... परीक्षा के लिए खड़ा हो गया था। ... दोनों एयर इंडिया के कार्यालय में गये ... सौभाग्य से उसी रात की फ्लाइट में ... दिल्ली के लिए जगह मिल गयी और ... चली गयीं।

बात आयी-गयी हो गयी। मैं इस ... को भूल भी गया था। लेकिन एक दिन ... समाचार ने मुझे झकझोर कर रख दि... मैं किसी बैठक के सिलसिले में देश के ... राज्य की राजधानी में गया था। सवेरे ... चाय के साथ जब उस दिन का अख... हाथ में आया, बैनर हेडिंग पर मेरी ... टिक गयी और मैं स्तब्ध रह गया। ... चार था कि अमुक संसद-सदस्या का ... खून के जुर्म में पुलिस द्वारा गिरफ्तार ... लिया गया है।

मेरी आंखों के सामने हांगकांग की ... सुबह घूम गयी, जब उन्होंने सपने की ... कही थी और सीधे भारत वापस आ ... थीं। सपने तथा घटना के बीच सात ... का भी अंतर नहींथा।

—शंकरदयाल सिंह, पट...

०००

प्राणों से बढ़कर

अगस्त की काली रात, मूसलाधार बारिश और बिजली की कड़कड़ाहट। नदी के किनारे बसा हमारा छोटा-सा गांव, लगभग १,२०० घर। रात के लगभग साढ़े आठ बजे नदी का पानी कगार को लांघकर गांव में घुसने लगा था। हम सब अपने-अपने घर छोड़कर सुरक्षित स्थानों की ओर जा रहे थे।

तभी हम एक ऐसे झोपड़े पर पहुंचे, जहां अभी भी दिया टिमटिमा रहा था। ग्यारह-बारह साल का एक किशोर बालक व एक विधवा आग के पास बैठे बातें कर रहे थे। विधवा मजदूरी करके घर का और इकलौते बेटे गोपाल की पढ़ाई का खर्च चलाती थी। सबको घर छोड़ते देख गोपाल ने भी अपनी मां से चलने के लिए कहा था; लेकिन मां ने उसे ईश्वर पर भरोसा रखने के लिए कहकर बात टाल दी थी। हमने भी समझाया, मगर वह घर छोड़कर चलने को तैयार न हुई।

हम उन्हें छोड़कर आगे बढ़ गये। पर मन न माना। कुछ देर बाद फिर झोपड़ी पर लौटे और विधवा से कहा कि अपने साथ इस बच्चे को क्यों मार रही हो, नदी में भयंकर बाढ़ आ गयी है। विधवा ने अपने उन पर दृष्टि डाली और चलने की तत्परता दिखाते हुए कहा–'मेरे गोपाल को ले चलो, मैं पीछे से आती हूं।' गोपाल खुश हुआ और हमारे साथी उसे लेकर चले गये। मैं दरवाजे पर विधवा का इंतजार करता रहा। जब वह काफी देर तक बाहर न निकली, तो मैंने पुनः आवाज लगायी। इस पर वह बाहर आयी और बोली–'यह मेरे पिया का घर है। मैं दम तोड़ सकती हूं, पर यह घर नहीं छोड़ सकती। मेरे गोपाल को सुरक्षित रखना।' मेरे बहुत कहने पर भी वह नहीं मानी। विवश हो मैं भी वहां से चला आया। गोपाल के पूछने पर उसे समझा दिया कि तुम्हारी मां आ रही है।

सुबह बारिश रुकी। पूरा गांव बाढ़ की चपेट में आ गया था। हमें उस विधवा की चिंता सता रही थी। मैं अपने कुछ साथियों के साथ गांव की ओर गया। अधिकांश घर ढह चुके थे। बस्ती पहचानी नहीं जा रही थी। हम विधवा के घर की ओर बढ़े। वहां जाकर देखा कि घर ढह चुका है। विधवा समय रहते निकल गयी थी या वहीं दबकर मर गयी, यह जानने के लिए हम मलबे को हटाने लगे। काफी मेहनत के बाद हमें विधवा की लाश मिली। जैसे ही हमने उस लाश हो बाहर निकाला, हमारी आंखें स्तब्ध रह गयीं, हाथ रुक गये। नीचे गोपाल की भी लाश थी। गोपाल यहां कहां से आया? हम तो उसे रात को अपने साथ ले गये थे। पूछताछ करने पर पता चला कि जब काफी इंतजार के बाद भी मां नहीं आयी तो रात को ही गोपाल घर चला आया था। विधवा ने पिया के घर को प्राणों से बढ़कर माना और गोपाल ने मां की ममता को।

–भीकाराम भाटी, लालराई

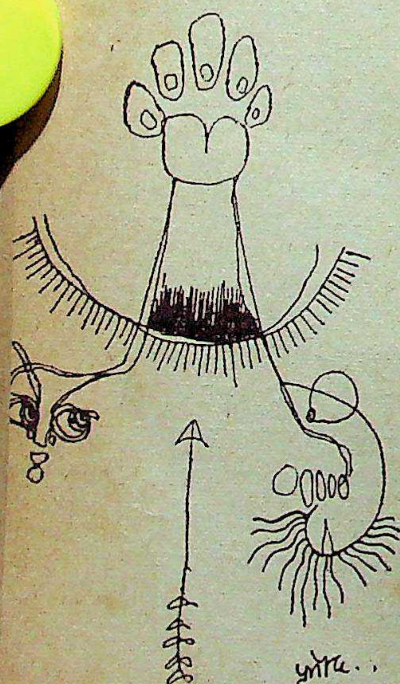


॥ कल ॥

प्रणव कुमार वन्द्योपाध्याय

गरीब वसंत की तरह कोई जब
छेदों वाले कपड़े पहने
जब कोई नरशिशु मेला देखकर उदास हो जाये
चुप रात के पास जब
सदियों पुरानी वही, कत्ले-आम के बाद की खामोशी
तब भी कौन पढ़ेगा यह कविता ?
लेकिन पैबंद लगे कपड़ों
और चुप रात के सन्नाटे में
फिर से एक बार मां का मुख याद आता है।
याद आता है वही सवाल—यारों के जख्म के बगैर
आग भला कैसे लगेगी ....
कि नरशिशु के सामने का निष्ठुर मेला जलकर
एक युद्धक्षेत्र बन जाये।
तब कोई बागी शायर सुना रहा होगा
नन्हे-नन्हे पैगंबरों के चल पड़ने की कहानी।
जिस मैदान में पिता रक्त उगलता रहा
नरशिशु के खंडित अन्नपात्र के सामने
वहां अब कभी भी
वसंत के आने की उम्मीद कोई क्यों करे ?
वसंत नहीं आयेगा
और रक्त की जगह अब पिता लावा उगलेगा सिर्फ।
हम जानते हैं, ऋतुएं अब बहुत गरीब हैं हमारे लिए
हम जानते हैं, नरक के दरवाजे तक जाकर
हमारी यातनाएं एक बार तो कभी लौटेंगी ही
तब इजाजत के बिना
हम एक बार फिर से जियेंगे
कि सुकून से मर सकें।

चित्र: प्रमोद गणपत्ये



—डी २४०, सर्वोदय एनक्लेव, नयी दिल्ली-११००

इक़बाल: ज़िंदगी के आख़िरी सफ़े

ज़ाहिद इक़बाल

सन् १९३४ की बात है। जाड़े का मौसम था। दस जनवरी थी और ईद का दिन था। हर जगह ईद की खुशियां मनायी जा रही थीं। डा. मुहम्मद इक़बाल भी खुश थे। उनकी यह आदत थी कि ईद धूमधाम से मनाते थे और दोस्तों के साथ ईद की नमाज पढ़ने के लिए ईदगाह जाते थे।

उस दिन भी गाड़ी मंगवायी गयी और डाक्टर साहब अपने दोस्तों के साथ ही अपने इकलौते बेटे जावेद इकबाल और नौकर अलीबख्श को भी लेकर शाही मस्जिद ईद की नमाज पढ़ने गये।

जाड़े का मौसम था ही, अचानक सुबह से तेज और ठंडी हवा चल रही थी। डाक्टर साहब को शुरू से ही कपड़ों से खास दिलचस्पी नहीं थी। खास मौकों पर, वह भी एकदम मजबूरी की हालत में, वे सूट पहनते थे, वरना ज्यादातर सलवार, कोट और पगड़ी में ही बाहर जाते थे। उस दिन भी उनकी यही वेशभूषा थी।



दार्शनिक-कवि इकबाल

मस्जिद जाने और वहां से आने में उन्हें रास्ते में ठंड लग गयी। इससे भी बुरा यह हुआ कि उन्होंने मस्जिद से आते ही दूध-सिवईं के बदले दही-सिवईं खायी। क्योंकि उनके पिता ईद के दिन हमेशा दही-सिवईं खाते थे।

खैर, ईद का दिन तो ठीक से गुजरा; लेकिन दूसरे दिन उन्हें नजला हो गया। डाक्टर साहब का गला बचपन से ही खराब रहता था। वे हर थोड़े-थोड़े समय पर खांसते थे। इसी वजह से हकीम ने उन्हें दूध और दूध से बनी दूसरी चीजों से बचने की सलाह दी थी। उनका खयाल था कि नजला दही खाने की वजह से ही हुआ है। लेकिन अजीब बात कि दवा से भी कोई फायदा नहीं हुआ, बल्कि उनका गला और बैठ गया।

दोस्तों की सलाह से उनका इलाज दिल्ली के प्रसिद्ध हकीम नाबीना से शुरू हुआ। हालांकि डाक्टरों की राय थी कि वे एक

सेकेंड भी बरबाद न करें और यूरोप या इंग्लैंड जाकर अपना इलाज करायें। लेकिन डाक्टर साहब नहीं माने। हकीम नाबीना से वे पहले भी इलाज करा चुके थे। दूसरे, जब से हकीम नाबीना का इलाज शुरू हुआ था, थोड़ा फायदा भी था। सिर्फ आवाज नहीं खुली थी, जिससे थोड़ी परेशानी थी। तो डाक्टर साहब हकीम नाबीना को अपनी हालत लिखकर भेज देते थे और वहां से दवा आ जाती थी। दोस्तों की सलाह थी और खुद उनकी भी राय बनी कि एक बार दिल्ली जाकर हकीम साहब से मिलें। इसलिए ११ जून को एक दिन के लिए वे लाहौर से दिल्ली गये। हकीम साहब ने उन्हें हर तरह से इत्मीनान दिलाया और वे खुशी-खुशी दिल्ली से लाहौर वापस लौटे।

हकीम साहब के इलाज से डाक्टर साहब की हालत इस हद तक सुधरी कि वे अपने इधर-उधर जाने का प्रोग्राम, जो कुछ दिनों से स्थगित कर दिया था, फिर से बनाने लगे।

कपड़े पहनने की तरह खाने के मामले में भी वे बहुत सादे थे। रात के खाने में सिर्फ दूध-दलिया लेते और कभी जी चाहा तो कश्मीरी चाय पीते। नाश्ता सिर्फ लस्सी या एक-आध बिस्कुट का होता। वह भी रोज नहीं। अलीबख्श कमरे ही में पानी और चिलमची लाता और वे चिलमची में हाथ धोते, फिर रूमाल या तौलिया जांघ पर रख लेते और अलीबख्श खाने की तश्तरी उनके सामने रख देता। अगर कोई साहब मौजूद होते तो डाक्टर साहब कहते 'आप भी खायें।' और फिर खुद खाने लगते। मगर हां, अगर फल होता तो हर आदमी को, जो भी वहां मौजूद होता, थोड़ा-थोड़ा जरूर देते। उनके खाने में किसी खास इंतजाम की जरूरत नहीं पड़ती थी। उनकी राय थी कि खाना ढंग से खाया जाये, उसका स्वाद अच्छा हो, खुशबू अच्छी हो, खटाई और लाल मिर्च भी हों।

दवाओं के बारे में उनकी राय थी कि दवा अच्छी हो, उसका मजा अच्छा हो, खुशबू हो। और इत्तफाक से हकीम नाबीना की दवा इस कसौटी पर पूरी उतरती थी। इसलिए उनका हकीम साहब से विरोध सिर्फ खाने के मामले में था। हकीम साहब उन्हें खरगोश का भेजा खाने को कहते थे। डाक्टर साहब कहते कि भेजा भी कोई खाने की चीज है? ...उसे तो देखने से ही घृणा होती है!

उनकी बीमारी को छह महीने गुजर गये, लेकिन हकीम साहब के इलाज से कोई फायदा नहीं हुआ, बल्कि आवाज की समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। इसमें शक नहीं कि गले की हालत काफी सुधरी, लेकिन आवाज का धीमापन अब तक अपनी जगह पर था। इससे घबराकर डाक्टर साहब ने दवाओं के संबंध में अपनी राय बदलना शुरू कर दिया। यह दवा ठीक नहीं। इस दवा से फायदा ज्यादा मालूम नहीं होता। यह गोली नहीं खाऊंगा। इसकी क्या

है, आवाज पर दवा का कोई असर नहीं हुआ, आदि।

दूसरी तरफ डाक्टर उन्हें यूरोप जाकर इलाज करवाने की सलाह दे रहे थे। लेकिन डाक्टर साहब को खुद ही डाक्टरी इलाज पर विश्वास नहीं था। हां, डाक्टरों की सलाह वे खामोशी से सुन लेते थे। यहां तक कि हकीमी इलाज पर डाक्टर जो भी आलोचना करते, उसे भी खामोशी से सुन लेते और कभी-कभी मुस्करा देते। लेकिन डाक्टरों को कभी ऐसा जवाब नहीं देते, जिससे उन्हें दुःख हो।

और जब हकीम नाबीना से आवाज के संबंध में कहा जाता, तो वे कहते—'आवाज बैठ गयी है तो उसके लिए समय की जरूरत है। सेहत ठीक होगी तो गला खुद ही ठीक हो जायेगा।' असल में, हकीम साहब को डाक्टर साहब की आवाज का इतना खयाल नहीं था, जितना कि उनकी सेहत का था।

वक्त गुजरता जा रहा था। जितने मुंह उतनी बातें। कोई जोंक लगाने के लिए कहता तो कोई कश्मीर की पुरानी गुलकंद इस बीमारी के लिए लाभदायक बतलाता। कोई लेप लगाने का मशविरा देता। लेकिन डाक्टर साहब को हकीम नाबीना पर इतना भरोसा था कि वे सिर्फ उनकी दी हुई दवाइयां खाते थे। इधर कुछ दिनों से नाक से बलगम आने लगा था, इससे उन्हें और भी यकीन हो गया कि आवाज ठीक हो जायेगी। इसी बीच उन्हें छींकें आने लगीं, सिर चकराने लगा। इसकी उन्होंने हकीम साहब से शिकायत भी की। लेकिन ये शिकायतें कुछ दिनों में दूर हो गयीं। फिर उन्हें दोनों कंधों के बीच दर्द रहने लगा। मगर यह तकलीफ भी हकीम साहब की दवा से ठीक हो गयी, हालांकि कभी-कभी उसका दौरा पड़ता रहा। फिर कुछ ही दिनों बाद उन्हें हिचकी की शिकायत हुई। लेकिन हकीम साहब की दो-तीन खुराक दवा से वह भी ठीक हो गयी। इस तरह आवाज के धीमेपन के सिवा अब वे बिलकुल ठीक थे।

मगर जैसे ही उनकी हालत थोड़ी ठीक हुई, उनकी पत्नी बीमार पड़ गयीं, जिससे उनकी परेशानी बढ़ गयी। काफी इलाज बाद उनकी पत्नी की हालत कुछ सुधरी। १२ दिसंबर को वे अलीगढ़ गये और वापसी पर दिल्ली में ठहरे और हकीम नाबीना से मिले। हकीम साहब ने हर तरह से देखकर इत्मीनान दिलाया और मामूली परहेज के साथ दवा जारी रखने की ताकीद की। इस तरह वर्ष १९३४ ठीक से गुजर गया।

लेकिन जनवरी १९३५ में सर रास मसऊद साहब से मिलने के लिए उन्होंने भोपाल जाने का प्रोग्राम बनाया। उसी जमाने में मशहूर तुर्की अदीबा खालदा अदीब खानम के भाषणों का सिलसिला जामिया मिलिया की निगरानी में हो रहा था। डा. अंसारी और जामिया मिलिया के दूसरे लोगों ने डा. इकबाल से दरख्वास्त की कि उनके किसी एक भाषण की सदारत करें। पहले तो इन्कार किया, लेकिन फिर तैयार हो गये। ३० जनवरी की सुबह वे

इकबाल की लिखावट और हस्ताक्षर

दिल्ली आये और खालदा अदीब खानम के एक भाषण की सदारत की, फिर दिल्ली से भोपाल चले गये। इस बार वे भोपाल में कुछ ज्यादा दिन रहे। ८ मार्च को भोपाल से दिल्ली आकर उन्होंने हकीम नाबीना से मुलाकात की और ११ मार्च को लाहौर लौट आये।

हां, इस बीच उनका उसूल बन गया था कि असल इलाज तो हकीम साहब से ही कराते रहेंगे, लेकिन जरूरत पड़ी तो स्थानीय डाक्टरों या हकीमों से दवाइयां ले लेंगे। उनका खयाल था कि आवाज का सुधार मुमकिन है, भले ही देर में हो। लेकिन हकीमी इलाज के साथ-साथ बिजली का इलाज भी अच्छा है। दुःख की बात यही थी कि इसी बीच उनकी पत्नी की हालत फिर खराब हो गयी। हजार इलाज हुआ, मगर २३ मई की शाम को उनकी पत्नी चल बसीं।

वह जमाना डाक्टर साहब की परे... का था। अपने नये मकान 'जावेद मंज़...' में आये अभी मुश्किल से दूसरा दिन था... उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी थी।... सवाल बच्चों की देखभाल का था।... उनकी तबीयत खराब रहती थी। वका... का सिलसिला एकदम खत्म हो चला था... परेशानी तो और भी बढ़ जाती, अ... भोपाल के नवाब साहब पांच सौ म... महीना वजीफा तय न कर देते। दूसरे... कुछ लोगों ने उन्हें वजीफा देना चाहा, म... डाक्टर साहब ने कह दिया–'मैं एक फ़... आदमी हूं, नवाब साहब मुझे जो कुछ... देते हैं, उसी से मेरी जरूरतें पूरी हो जा... हैं।'

फिर ५ जुलाई को डेढ़ महीने के लि... वे भोपाल गये, ताकि बिजली का इलाज... हो जाये। भोपाल में वे सर रास मसऊ... साहब के यहां ठहरे। पर भोपाल से वा... पर उनकी सेहत ठीक नहीं थी। बिज... के इलाज और हकीम साहब की दवाओं... बावजूद बीमारी में कोई कमी नहीं ... जैसे तंदुरुस्ती और बीमारी के बीच ... छिड़ गयी हो। अब कमजोरी का एह... भी ज्यादा हो रहा था। आखिर अक्टू... में जब मौलाना हाली की सदसाला ब... के मौके पर वे पानीपत गये, तो उन्हें मह... हुआ कि अब उन्हें लंबा सफर नहीं कर... चाहिये। तब से उन्होंने लंबे सफर ... प्रोग्राम बंद कर दिया।

लेकिन ९ अप्रैल १९३६ को वे एक बार फिर भोपाल गये। यह उनका भोपाल का आखिरी सफर था। लाहौर वापस आये तो 'जरबे कलीम' के छपवाने की तैयारी करने लगे। दो साल पहले उनमें इतनी ताकत थी कि आसानी से चल-फिर लेते थे। दिल्ली रेलवे स्टेशन की ऊपरी मंजिलों की सीढ़ियां चढ़ लेने में उन्हें कोई खास तकलीफ नहीं होती थी। मगर अब तो पलंग से दो कदम चलने पर हांफने लगते थे। इसके बावजूद वे बिस्तर पर लेटे रहने के बजाय अक्सर पास वाले कमरे में आकर बैठ जाते। खुद लिखना-पढ़ना छोड़ दिया था; क्योंकि मोतियाबिंद की वजह से लिखने-पढ़ने में तकलीफ होती थी। जब १९३७ में सर रास मसऊद साहब की मृत्यु हो गयी तो उससे उन्हें बहुत सदमा पहुंचा। अक्सर उनका जिक्र करते वक्त वे रोने लगते थे। उनकी सेहत पर इसका काफी असर पड़ा।

फिर शुरू हुआ सन १९३८। 'इकबाल जयंती' की तैयारी शुरू हुई और वह बहुत शानदार तरीके से मनायी गयी। कुछ दिन बाद रात पिछले पहर उनकी नींद उचटने लगी और गुर्दे में कुछ दर्द होने लगा। हकीम कुरैशी की राय थी कि उन्हें (डाक्टर साहब को) कार्डिएक अस्थमा है। इस तकलीफ में वे अक्सर बैठे-बैठे सामने की तरफ झुक जाते थे। उस वक्त अक्सर वे अपने नौकर अलीबख्श से कहा करते थे कि सन ३८ ठीक से गुजर जाये तो समझना, मैं अच्छा हूं।

हालत दिन-ब-दिन गिरती गयी। नींद एकदम नहीं आती थी। अलीबख्श, रहमा, दीवान अली (डाक्टर साहब के नौकर) बदन दबाते। रिश्तेदार और दोस्त इधर-उधर की बातें सुनाते, ताकि उन्हें नींद आ जाये। कभी वे खुद ही दीवान अली से बुल्लेशाह की काफिया या पंजाबी गीत भी सुनते कि शायद इस तरह नींद आ जाये।

आखिरी दिनों में डाक्टर साहब कुछ चिड़चिड़े हो गये थे। एक दिन बोले– 'पुलाव खाने को जी चाहता है।' हकीम कुरैशी ने कहा–'आप पुलाव नहीं, खिचड़ी खाइये।' इस पर उन्होंने जिद की–'मगर खूब घी वाली खिचड़ी होनी चाहिये।'

हकीम कुरैशी साहब ने कहा–'नहीं। आपका जिगर बढ़ा हुआ है, ज्यादा घी से नुक्सान पहुंचेगा।'

'तो खिचड़ी में दही डालकर खाया जाये।'

'नहीं आपको खांसी है, नुक्सान करेगा।' हकीम साहब ने समझाते हुए कहा। तब डाक्टर साहब चिढ़कर बोले–'इससे अच्छा है कि खिचड़ी खायी ही न जाये।'

लेकिन इसके बावजूद डाक्टर साहब की निश्छलता और मोहब्बत में कोई कमी नहीं आयी थी। सच तो यह है कि बीमारी के जमाने में उन्होंने इस बात का ज्यादा खयाल रखना शुरू कर दिया था कि आने वाले को किसी तरह की कोई तकलीफ न हो। सेहत की खराबी के बावजूद वे दूसरों के किसी काम से इन्कार नहीं करते थे,


देकर थकान मिटाता है।
ग्लैक्सोज़-डी से आप घर के काम-काज के लिए तैयार हो जाती हैं। क्योंकि ग्लैक्सोज़-डी आप को वह भरपूर शक्ति देता है, जो आप को थकान के बाद फिर से चुस्ती-फुर्ती के लिए चाहिए। डॉक्टरों की सिफारिश पाने वाला ग्लैक्सोज़-डी बहुत उच्च कोटि का ग्लूकोज़ है जो विटामिन-डी, कैल्शियम और फॉस्फरस से युक्त है।
ग्लैक्सोज़-डी आप की थकान मिटाता है और आप को ऐसी शक्ति देता है कि आप मज़े से घर का काम-काज करती रहती हैं।
ग्लैक्सोज़-डी®
सारे परिवार के लिए
तुरन्त शक्ति का साधन
dCA/GL/54/HA

बल्कि दूसरों का काम करना अपना फर्ज समझते थे। बीमारी के बावजूद वे यूरोप और एशिया की एक-एक तब्दीली का हाल पूछते थे और अपने अंदाज में उस पर अपनी राय देते थे।

असल में एक क्षण भी बीमार बनकर रहना उन्हें पसंद न था। एक बार जब उनके खाने, दवा और आराम पर खास ध्यान दिया जाने लगा तो बोले—'इस तरह की जिंदगी गोया जिंदगी से बगावत करना है। महसूस करता हूं कि अब मैं दुनिया के लायक नहीं रहा।'

कुछ ही दिनों बाद उनके पांव और चेहरे पर सूजन आ गयी। वे पीठ के दर्द से भी परेशान रहने लगे। फिर देखते ही देखते सूजन पूरे बदन में छा गयी। डा. हमबीयत सिंह को बुलाया गया। डा. हमबीयत ने उन्हें जांचकर मायूसी जाहिर की, बल्कि डाक्टर साहब को साफ-साफ बता भी दिया। लेकिन डाक्टर साहब परेशान नहीं हुए। बल्कि डा. हमबीयत के जाने के बाद जब उनके बड़े भाई शेख मोहम्मद अता ने उन्हें दिलासा देने की कोशिश की तो वे उलटे अपने बड़े भाई को ही समझाने लगे।

१९ अप्रैल को तीसरे पहर से डाक्टर साहब के बलगम में खून आ रहा था। डाक्टर ने दवा दी। जब दवा पिलायी गयी तो डाक्टर साहब की तबीयत मतलाने लगी और उन्होंने बिगड़कर कहा—'यह दवा अनहचूमन (अमानवीय) है।' तब हकीम साहब ने उन्हें एक दवा दी। उससे



चित्र : डा. जगदीश गुप्त

डाक्टर साहब को थोड़ा आराम मिला और घंटा-डेढ़ घंटा के बाद उनकी आंख लग गयी। लेकिन पिछले पहर के करीब उनकी बेचैनी बढ़ गयी। हालत धीरे-धीरे बिगड़ने लगी और बेहोशी-सी छाने लगी।

आखिर, २१ अप्रैल १९३८ की वह मनहूस सुबह आयी। ५ बजकर ५ मिनट हुए थे। कमरे में अलीबख्श के अलावा कोई नहीं था। डाक्टर साहब ने उससे कंधे दबाने के लिए कहा, फिर दिल पर हाथ रखकर बोले—'यहां पर दर्द है।' इसके साथ ही सिर पीछे की तरफ गिरने लगा।

अलीबख्श ने आगे बढ़कर सहारा दिया, तो उन्होंने पश्चिम की तरफ रुख करके 'या अल्लाह' कहा और आंखें मूंद लीं।

इस तरह, दूसरों को जगाने वाला खुद हमेशा-हमेशा के लिए मौत की गोद में सो गया।



आनंद कुमारस्वामी

डा. एस. चंद्रशेखर के 'हिंदू' (मद्रास) में प्रकाशित दो लेखों के आधार पर मनुगुप्त द्वारा प्रस्तुत।

एक सौ दो वर्ष पहले श्रीलंका के एक संपन्न तमिल नागरिक सर मुत्तु कुमारस्वामी ने शादी की केन्ट (इंग्लैंड) की एक कुलीन महिला एलिजाबेथ क्ले से और अपने एकमात्र पुत्र का नाम उसकी मां की जन्मस्थली से जोड़कर रखा—आनंद केन्टिश कुमारस्वामी। उन माता-पिता ने तब शायद यह कल्पना भी नहीं की थी कि उन दोनों ने पूर्व और पश्चिम का जो 'संगम' वैयक्तिक रुचि में कर दिखाया है, उसीका 'महान प्रवर्तक' होगा यह पुत्र। पश्चिम में पूर्व के (सच पूछिये, तो प्रधानतः भारत के) सांस्कृतिक अवदान की श्रेष्ठता का अनुभव जितनी सबलता से आनंद कुमारस्वामी ने कराया, उतनी शक्ति के साथ फिर अन्य किसी एक व्यक्ति नहीं कराया। उनकी छोटी-बड़ी रचनाएं ४८५ से अधिक हैं (इनमें पुस्तक-समीक्षाएं सम्मिलित नहीं हैं) और ये सभी अपनी विशिष्टता के लिए सराही जा चुकी हैं।

श्रीलंका तब भारत में ही शामिल था। आनंद कुमारस्वामी भी इसलिए अपनी भारतीयता के गौरव-बोध को कभी नहीं भूलते थे। यों वे एक ओर भारत के सांस्कृतिक उत्कर्ष के हिमायती थे तो दूसरी ओर समसामयिक कुप्रथाओं के निडर-निष्पक्ष आलोचक भी थे। कला और शिल्प के अतिरिक्त वे राष्ट्रीयता और राजनैतिक समस्याओं पर भी गहरा सोचते थे। मसलन उनका कहना था—'हर हिंदू जातिहीन पैदा होता है। कोई ब्राह्मण तभी हो सकता है, जब वह अपने को ब्राह्मण बना ले। अतः तो भारत में अधिक ब्राह्मण नहीं रहे; क्योंकि सत्य की खोज, रचनात्मक कृतित्व और शिक्षकता अब बहुत कम लोगों में शेष है। हां, बहुत-से तथाकथित ब्राह्मण रसोइये, क्लर्क आदि बने दिखाई पड़ते हैं, किंतु जाति तो जन्म से नहीं, कर्म से होती है। हर एक "व्यवसायी" को वैश्य कहा जाये तो ठीक होगा।'

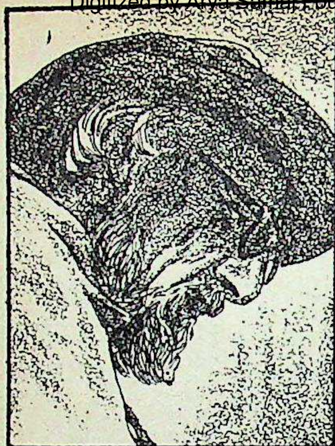
इसी तरह पहले विश्वयुद्ध के दूसरे वर्ष में उन्होंने लिखा था—'भारत ने विश्व को जो कुछ दिया, वह उसके दर्शन की ही उपज है। वही तो जिंदगी के नक्शे की कुंजी है। दर्शन के बिना जिंदगी के मकसद और उसे साधने के तरीकों पर काबू नहीं होता। अगर हम दुनिया में कभी एक आम तहजीब के बारे में सोचें, तो आदमी की आम समस्याओं की पहचान जरूरी हो जाती है। सभी लोग एक दूसरे का हाथ बंटा सकते हैं। इस दिशा में भारत की एक बेजोड़ देन है—धर्म और जीवन-दर्शन। भारत ने सदा ही अमूर्त विचारों को कार्यरूप में प्रतिष्ठित करने की कोशिश की है, ताकि रोज की जिंदगी बेहतर हो सके।'

आनंद कुमारस्वामी का अधिकांश जीवन पश्चिम के सुख-सुविधापूर्ण स्थानों पर ही बीता था; किंतु वे उसकी तकनीकी चकाचौंध से कभी दिग्भ्रांत नहीं हुए। कोई भी फैशनपरस्त भारतीय उनसे अमरीका में मिलता था, तो वे सदा ही उसे महात्मा गांधी का अनुयायी बनने को कहते थे। उन्हें जिंदगी का खर्चा व साजोसामान अंधाधुंध बढ़ाते रहने की आदत से कोफ्त होती थी। 'तब तो संतोष का कोई मूल्य न रह जायेगा। जीवन बाथटबों, रेडियो-सेटों और रेफ्रिजरेटरों से कहीं ज्यादा बड़ा है। मुझे आशंका है कि जीवन-यापन-स्तर निरंतर बढ़ाते रहने से संस्कृति का अवमूल्यन अनिवार्य हो जाता है।' इसीलिए वे महात्मा गांधी को युगपुरुष मानते रहे। उनकी दृष्टि में उनकी (महात्मा गांधी की) महानता इसलिए है कि अपनी गलतियों के बावजूद वे हमारे युग में अहिंसा की आवाज बुलंद कर सके और शांति तथा भाईचारे की बात कहते रहे, जब कि चारों ओर इन्सानियत गिरती और खत्म होती जा रही है।

अपनी जीवन-गाथा लिखने के वे प्रबल विरोधी थे। उनकी मान्यता थी कि विख्यात व्यक्तियों के जीवन और व्यक्तित्व के बारे में तथ्यों के संग्रह, विवेचन और प्रकाशन



डा. कुमारस्वामी जीवन के मध्याह्न में
[एक दुर्लभ चित्र 'हिंदू' से साभार]



डा. कुमारस्वामी जीवन-संध्या में

की आधुनिक प्रणाली से लोगों के अवैध कुतूहल की भोंडी संतुष्टि होती है। 'आप मेरे बारे में कुछ कहना ही चाहते हैं तो मेरे काम के स्वरूप और रुझानों के बारे में जानिये-सोचिये।.... यह मैं "विनय" नहीं उसूल की बात करता हूं।' यह दो टूक बात उन्होंने एक जिज्ञासु को लिखी थी, जो उनके पीछे पड़ा हुआ था कि आप अपने जीवन एवं कृतित्व के बारे में लिखिये।

इसी आत्मगोपन का यह नतीजा है कि उनके बारे में बहुत-सी गलत बातें और भ्रांतियां फैली हुई हैं। फिर भी इतना तो सभी निर्विवाद रूप से जानते और मानते हैं कि वे गहरे विद्वान ही नहीं थे, बल्कि पूर्व और पश्चिम, अतीत और वर्तमान के बीच एक गंभीर व्याख्याता और सहृदय संपर्क-अधिकारी की तरह काम करते थे। वे विश्वबंधुत्व की सही और सुदृढ प्रतिष्ठा के लिए तत्पर थे और अपनी सारी रचना द्वारा वे यह सिद्ध करते रहे कि 'बहुत रास्ते एक ही शिखर की ओर ले जाते हैं'।

श्रीअरविंद की तरह कुमारस्वामी की भी शिक्षा-दीक्षा लंदन और उसके आस पास ही हुई। किंतु छब्बीस साल की तरुणाई में ही वे श्रीलंका के खनिज सर्वेक्षण के निदेशक नियुक्त होकर स्वदेश लौट आये। इससे दो-तीन वर्ष पहले ही वे लंदन विश्वविद्यालय से भूतत्त्व और वनस्पतिशास्त्र में विशेषज्ञता के साथ प्रथम श्रेणी के स्नातक हो चुके थे और उस वक्त की प्रतिष्ठित पत्रिका 'कार्टरली जर्नल ऑफ द जियोलाजिक सोसायटी' में उनका 'श्रीलंका की चट्टानें और लिखिज' (ग्राफाइट) निबंध छप चुका था। अपने कार्यकाल में उन्होंने श्रीलंका के खनिज सर्वेक्षण पर ग्रंथ प्रकाशित किये। और इस काम के दौरान हुई यात्राओं ने उन्हें समस्त श्रीलंका की कला और शिल्प के वैभव का परिचय कराया।

सन १९०६ में लंदन विश्वविद्यालय से भूतत्त्व में डाक्टर की उपाधि पाने के बाद वे अपने खर्चे से अगले दस वर्ष तक समूचे भारत की यात्राएं करते रहे। इनसे उन्हें भारत के आंतरिक और बाह्य स्वरूप का गहरा परिचय तो मिला ही, उनके पास बहुत-से चित्र, राजपूत शैली के लघुचित्र (मिनियेचर) और कांस्यकृतियां भी एकत्र हो गयीं। उन्हीं के प्रयत्न से सन १९१० में लंदन में 'रायल इंडियन सोसायटी

स्थापित हुई। इसी अवधि में उनकी 'मेडीवल सिंहलीज़ आर्ट' (१९०८), 'एस्सेज़ इन नेशनल आइडियलिज्म' (१९०९), 'बुद्ध एंड द गॉस्पेल ऑफ बुद्धिज्म' (१९१६) एवं दो भागों में लिखित 'राजपूत पेंटिंग्ज़' (१९१६) जैसी पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

सन १९१७ में डा. कुमारस्वामी के जीवन में और एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। वे बोस्टन (अमरीका) के फाइन आर्ट्स म्यूजियम में एक अधिकारी बना दिये गये। बात यह थी कि मुगल और राजपूत शैली के चित्रों और कांस्यकृतियों का उनका अच्छा-खासा संग्रह डा. डेनमैन डब्ल्यू. रॉस ने खरीदकर उसे बोस्टन संग्रहालय को भेंट कर दिया था। डा. रॉस उस संग्रहालय के एक ट्रस्टी और उदार परोपकारी थे। उन्होंने डा. कुमारस्वामी को उस संग्रह के अध्ययन और सूची बनवाने को बुलवा लिया। यही संग्रह पहले डा. कुमारस्वामी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय को देना चाहा था—इस शर्त पर कि उसे अच्छी तरह रखने का प्रबंध कर दिया जाये और भारतीय कला और संस्कृति का पीठ स्थापित करके उन्हें उसका अध्यक्ष बनाया जाये। किंतु देश का दुर्भाग्य कि वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ।

बोस्टन म्यूजियम में डा. कुमारस्वामी की नियुक्ति भारतीय और मुस्लिम कला के रक्षक के रूप में हुई और अगले तीस वर्ष वे उस पद पर रहे। इस अवधि में उन्होंने बोस्टन संग्रहालय के लिए भारतीय कला की ऐसी अपूर्व कृतियां जुटायीं कि आज वह भारतीय कला के बृहत्तम संग्रहों में से गिना जाता है। इसकी कई विद्वत्तापूर्ण परिचायिकाएं भी उन्होंने तैयार कीं, जो १९२३-३० में प्रकाशित हुईं। मुख्य रूप से यह उन्हीं की सूझबूझ और लगन का फल है कि अमरीकी और पश्चिमी दुनिया में भारतीय कला सुविदित हो गयी।

जीवन के अंतिम वर्षों (१९१८–४७) में डा. कुमारस्वामी ने १२० किताबें और प्रबंध, ३०० विद्वत्तापूर्ण निबंध और ५० पांडित्यपूर्ण समीक्षाएं लिखीं। इसके अतिरिक्त बहुत-से पत्र और तकनीकी टिप्पणियां भी उन्होंने लिखीं। उनके निजी जीवन के बारे में विशेष पता नहीं चलता; किंतु यह ठीक है कि उनकी चार शादियां हुईं और उनमें से कोई भी पत्नी सिंहली या भारतीय नहीं थी।

भारत की आजादी के साल में ही डा. कुमारस्वामी ने यह घोषणा की कि वे अवकाश के बाद हिमालय के पाद-प्रांत में एक कुटी बनाकर



चित्र : श्यामनि


बुद्धजन्म, नालंदा, नौवीं सदी ई.

साधु की तरह शेष जीवन बिताना चाहते हैं। अभी वे अपना सत्तरवां साल पूरा कर रहे थे कि ९ सितंबर १९४७ को नीडहैम (मैसाचुसेट्स) के अपने उपनगरीय घर में उनकी मृत्यु हो गयी।

डा. कुमारस्वामी ने अन्य विषयोंपर भी अपने सुचिंतित विचार प्रस्तुत किये हैं, जो विशेष रूप से उनकी पुस्तक 'द डान्स ऑफ शिव' (१९१७) और 'ह्वाट हैज इंडिया कंट्रिब्यूटेड टु द वर्ल्ड' (१९१५) नामक निबंधों में पढ़ने को मिलते हैं। कला का प्रयोजन वे केवल सशक्त संप्रेषण को ही मानते थे। परंतु कला संप्रेषित क्या करती है? इसके उत्तर में उन्होंने कहा है– 'हमें यह अप्रिय सत्य कह देना है कि ज्यादातर कलाकृतियां ईश्वर-विषयक हैं; ईश्वर नाम आजकल शिष्ट समाज में वर्जित-सा हो गया है।'

भारत में व्याप्त निरक्षरता पर सटीक टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था– 'हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि भारत जैसे देश की साक्षरता-संख्या के मानदंड प उसके सांस्कृतिक उत्कर्ष की जांच कर हास्यास्पद है। आज की पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में क्या साक्षरता से संस्कृति-संपन्नता का अंदाज लग सकता है? क्या पढ़ना चाहिये–यह न जानना तो निरक्षरता से भी खराब चीज होती है।' वे मध्ययुग के कला संसार और ईसाइयत तथा भारत के क्लासिकी दर्शनों के (जिनमें धार्मिकता के प्रति गहरा झुकाव परिलक्षित होता है) पक्षधर थे एवं अमरीका के प्रगतिशील आधुनिक सांस्कृतिक व्यतिक्रमों को त्याज्य मानते थे। पश्चिम की अपेक्षा पूर्व, आधुनिक युग की जगह मध्ययुग, और बड़े औद्योगीकरण की बनिस्बत ग्रामों की आत्मनिर्भरता को तरजीह देने के कारण डा. कुमारस्वामी हमारे यहां बहुत लोगों को प्राचीनपंथी प्रतीत होते थे। किंतु स्वयं पश्चिम में पाश्चात्यता और आधुनिकता का अब जो पुनर्मूल्यांकन हो रहा है, उसे देखते हुए 'प्राचीनपंथ' अब उतना बड़ा गुनाह नहीं है। उनका यह कथन तो आधुनिकतम विचारक या वक्ता जैसा है:

'मैं इस बात पर विशेष जोर देना चाहता हूं कि मैंने अपना कोई फलसफा या अपनी कोई विशेष विचारधारा स्थापित करने की कोशिश नहीं की। शायद सबसे बड़ी चीज जो मैंने सीखी है, वह यह है कि अपने आप न सोचूं। मैंने अभी तक जो भी खोजा वह भी यही है कि जो अभी तक कहा गया है उसे भली भांति समझूं।'





जूलियस फ्यूचिक

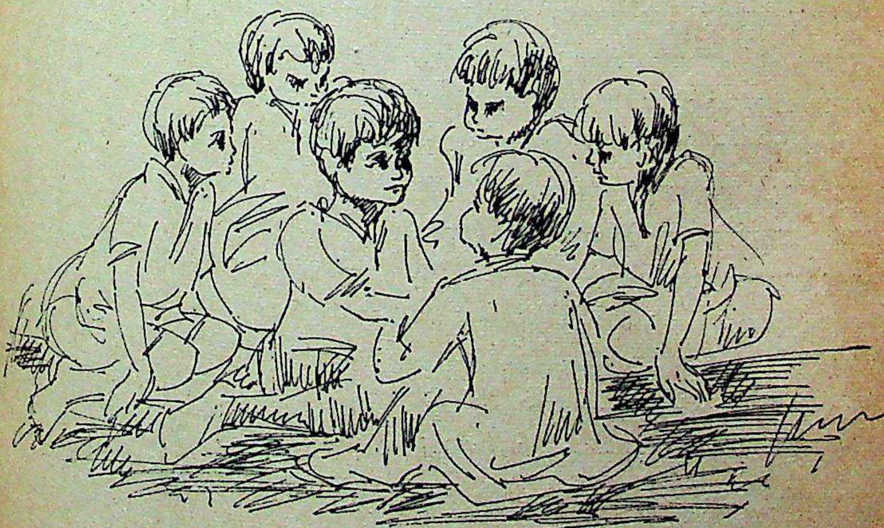
आकाश से देखने पर यह जगह कोई महत्वपूर्ण स्थान जान पड़ सकती थी। एक छोटा-सा गड्ढा था, जिसके चारों ओर खड़े आधे दर्जन बच्चे अपने हाथों में लंबी-लंबी फलियां लेकर उन्हें हिला रहे थे। शायद यह उनका कोई अनोखा खेल था। यद्यपि लड़ाई के कारण चारों ओर सन्नाटा था, लेकिन बच्चों के खेलों में भला क्या अंतर पड़ सकता था!

लेकिन तभी जर्मनी का एक विमान वहां से गुजरा और एक बम बच्चों के बीच गड्ढे में आ गिरा।

लोग अपने-अपने घरों से बाहर निकल आये। उनके चेहरे तमतमाये हुए थे और आंखें गुस्से से लाल होती जा रही थीं। उन सबने इकट्ठे होकर उन मासूम बच्चों को उठाया और उनके स्कूल की तरफ ले चले, जहां से वे थोड़ी देर पहले जीवित खेलने के लिए निकले थे।

यह खबर सारे शहर में आग की तरह फैल गयी। तभी सरकारी फोटोग्राफर आया और उसने तमाम दृश्यों के फोटो उतार लिये।

तीन दिनों के अंदर पेरिस, लंदन, प्राग तक भी यह घटना अखबारों के जरिये



अनुवाद : क्षमा शर्मा

पहुंची। अखबारों ने उन बच्चों के बड़े-बड़े चित्र छापे, सारी घटना का ब्योरा दिया। लोग इस घटना को पढ़ते और उनकी भी आंखें उसी तरह लाल हो जातीं, उनके भी चेहरे तमतमा जाते, जैसे बम गिरने के बाद एल्यू के निवासियों का हुआ था।

वसंत ऋतु में कोयले के डिपो के पीछे फूलों से लदा एक पेड़ खड़ा था, जो कि स्मिचोव नगर के उस धुएं-भरे भाग में प्रकाश-स्तंभ का काम करता था। साथ ही शायद यह पेड़ उस गड्ढे की तरफ भी इशारा कर रहा था, जहां बच्चे आकर खेलते थे। पूरे प्राग में उन छह लड़कों के लिए इस स्थान से ज्यादा महत्त्वपूर्ण दूसरा स्थान नहीं था, जो एक कवि की तरह अनेक प्रकार की योजनाएं यहां बैठकर बनाते थे। वह स्थान बिलकुल एकांत में था, जिस पर अध्यापक की निगाह कभी नहीं पड़ती थी। यहां के कीचड़-भरे रास्ते पर जब लारियां गुजरतीं, तो ड्राइवर पत्थरों के लुढ़कने-जैसे भयंकर शोर को न रोक पाते। यहां एक छोटा-सा घास का मैदान भी था—कोयलों के बीच में उग आयी थी यह घास। इस जगह बैठकर कोई भी बच्चा लड़ाई के सपने देखता हुआ सतरंगा कांच या पत्थर का टुकड़ा जीत या हार सकता था।

लेकिन उस दिन वे छह लड़के कोयले की खान के पास युद्ध के बारे में सोचने और खेलने नहीं आये थे। और तो और उन्होंने उस गड्ढे की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा था, जो बहुत देर से उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वे सब रास्ते के किनारे हरी घास पर बैठ गये थे।

फ्रांटा ने अपनी कापी खोली और सावधानी से अखबार के उस टुकड़े को बाहर निकालकर सीधा किया। अखबार पर एक लड़के का चेहरा बना हुआ था। सारे लड़के झुककर अखबार के उस टुकड़े को देखने लगे, जिसके नीचे लिखा था—एल्यू की घटना में मारा गया एक लड़का। फ्रांटा ने अपनी पतली आवाज को जरा भारी बनाकर पढ़ना शुरू किया। उसने एल्यू पर हुई बमबारी की रिपोर्ट को पढ़ा, जिसमें फासीवाद और युद्ध का विरोध करने की मांग की गयी थी।

बच्चे इन सारे शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाये। लेकिन उन्होंने उन शब्दों का अपनी भाषा में अनुवाद जरूर कर लिया था। एल्यू के लड़के जरूर अपने स्कूल से कोयले की खान की तरफ फलियों और पत्थरों के टुकड़ों से खेलने गये होंगे और तभी एल्यू की कोयले की खान से मृत्यु आयी और उन पर टूट पड़ी, और वे सब मारे गये।

उन्होंने डरी हुई आंखों से ऊपर देखा था। वसंत के बादल आकाश में उड़ रहे थे। लेकिन आज उन्हें कोई शत्रु नहीं दिखाई दिया था। वहां सब आंखें गड़ा-गड़ाकर उसे खोजने की कोशिश कर रहे थे। शत्रु कई-कई रूपों में प्रकट होता था। कभी वह सर्पदैत्य की तरह लंबोतरे चेहरे

वाला दिखाई देता, तो कभी मोटे [illegible] और जल्दी से एक झलक दिखाकर आकाश में छिप जाता था। आज वे उन दोनों शत्रुओं को एक दूसरे से अलग नहीं कर पाये थे। वह तो सिर्फ सबका खतरनाक शत्रु था। उनका विश्वास था कि इस सर्पदैत्य ने चुपके-से आकर एल्यू के बच्चों को मार डाला था, और वे बच्चे सहायता के लिए पुकारते ही रह गये थे।

क्या वे उनकी सहायता करेंगे ? 'जरूर' -सबने एक साथ उत्तर दिया। जैसे ही फ्रांटा ने पढ़ना खतम किया, रूडा ने बहुत धीमे स्वर में कहा-'भाइयो, स्पेन चलें ..... वहां सहायता....' उन्हें यह सोचना अच्छा लगा।

'लेकिन तुम्हें गोली चलाना कहां आता है?' फ्रांटा ने पूछा।

यह बात सचमुच सही थी। इसीलिए उन्होंने तुरंत बंदूक चलाना सीखने का निश्चय किया। लेकिन बंदूक चलाना सीखने में कुछ दिन लग सकते थे, जबकि सहायता फौरन चाहिये थी। उसमें देर नहीं की जा सकती थी। सारे अखबार जल्दी से जल्दी सहायता देने की अपील कर रहे थे।

उन्हें क्या करना चाहिये ? उन्होंने अखबारों की तरफ देखा, नुक्सान के बारे में सोचा। तभी फ्रांटा ने उस तरफ इशारा किया, जहां लिखा था-'स्पेन के लोगों की सहायता के लिए दिया गया धन'-पांच, दस, पचास, सौ क्राउन, जो भिन्न-भिन्न [illegible] दिये गये थे। सहायता के लिए धन देने वालों के नामों से अखबार भरा पड़ा था।

बच्चों ने स्पेन को आर्थिक सहायता देने के लिए अपनी जेबें टटोलीं। लेकिन कुल मिलाकर वह सारी राशि आधे क्राउन के बराबर भी नहीं हुई। 'यह तो बहुत कम है।' सोचते हुए उन्होंने दुबारा अखबार पर निगाह डाली। किसी ने इतना कम धन नहीं दिया था। भला आधा क्राउन देकर भी किसी की सहायत की जा सकती है!

'मैं कल कुछ पैसे और ले आऊंगा।' किसी एक ने धीमे से कहा।

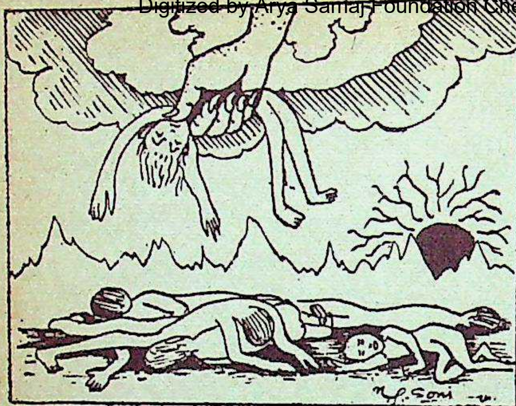
'पर तब तक तो बहुत देर हो जायेगी।' सब एक साथ फुसफुसाये।

कौन जानता है कि कल क्या होगा ? उनकी देरी के कारण एल्यू के न जाने कितने लड़कों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा ? नहीं, कल नहीं। उन्होंने पूरे दृश्य पर नजर दौड़ायी। कितना अच्छा हो कि कोई नोट यहीं पड़ा मिल जाये; ऐसा होना बिलकुल असंभव भी नहीं है। कोई राहगीर जा रहा हो, और उसकी जेब से नोट जमीन पर गिर पड़े। लेकिन दुर्भाग्य से उन्हें एक भी ऐसा नोट मिला नहीं।

छह बच्चों ने गंभीरता से सिर हिलाते हुए वास्तविकता को स्वीकार किया था।

तभी अचानक एंटनी बोला-'मेरे पास पेंसिल छीलने का एक छोटा चाकू है।'

'लेकिन तुम चाकू से क्या सहायता कर



चित्र : सोनी

सकते हो?' किसी एक ने पूछा।

एंटनी का पेंसिल छीलने का चाकू खजाने की तरह था, जिससे दूसरे लोग ईर्ष्या करते थे। इसीलिए उसने नन्हे सैनिकों के सामने चाकू रूपी तलवार को रख कसम खायी। 'क्या मैं इस चाकू को बेच नहीं सकता?' एंटनी ने कहा।

एंटनी की बात सुनकर आंखों के पांच जोड़े अविश्वास से घूरने लगे थे। शायद वे सब एंटनी की अमीरी को देख चकित थे—'कितना अमीर और दिलेर है एंटनी! वह अपने अमूल्य चाकू को बेच देगा।' वे सारी बात समझ गये थे। फ्रांटा ने गरम-जोशी में आकर एंटनी का हाथ थाम लिया था। यह ऐसा स्वागत था जो एक बच्चा ही दूसरे बच्चे का कर सकता है। बड़ी उम्र का आदमी खतरे के समय में ही ऐसा करता होगा।

फिर बिना एक शब्द बोले फ्रांटा ने पालिश की पुरानी खाली डिब्बी एंटनी के चाकू के पास रख दी। इस डिब्बी का उपयोग खेलों में भांति-भांति से किया जाता था। कभी उसे कीड़े पकड़ने के काम में लाया जाता था, तो कभी उसे गाड़ी बनाकर चलाया जाता। वाल्टवा के किनारे के पानी में जहाज बनकर भी वह चल चुकी थी। यों तो वह डिब्बी एंटनी के चाकू की तरह कीमती नहीं थी, लेकिन उसके माध्यम से फ्रांटा के जीवन का अब तक का इतिहास जाना जा सकता था।

रूडा ने भी अपनी हथेली में पकड़ी चौदह रंग-बिरंगी कांच की गोटियों में से तेरह गोटियां चाकू और डिब्बी के पास रख दीं। लेकिन जोजेफ ने जब अपनी सबसे प्यारी सीटी भी वहां रख दी तो रूडा शरमा गया और उसने बचायी हुई रंगीन गोटी भी वहीं रख दी। यह गोटी रूडा को बहुत को प्यारी थी; क्योंकि आज तक के सभी खेलों में उस गोटी ने ही रूडा को जिताया था।

सारे उपहारों को समेटे बच्चे रास्ते की ओर बढ़ गये। बच्चों के चेहरों पर दुःख का नाम-निशान नहीं था। यद्यपि वे अब अपनी सारी अमूल्य वस्तुएं दान कर चुके थे—जैसे चाकू, पालिश की डिब्बी, रंग-बिरंगी गोटियां, सीटी, डोरी, कागज का पुराना पर्स जो चमड़े का-सा दिखता था, एक पेंच का

ऊपरी हिस्सा, फुटबाल-खिलाड़ी प्लेनिका का एक फोटो जिस पर किसी ने प्लेनिका के हस्ताक्षरों की नकल कर दी थी। इसके अलावा भी बहुत-सी ऐसी चीजें उनमें थीं, जो महत्त्वपूर्ण और उपयोगी थीं, लेकिन जिनका नाम और उपयोग बच्चों के अलावा कोई नहीं जानता था। सभी लड़कों ने एक बार फिर अपने खजाने को देखा, उनके मन में अपनी चीजों को वापस लेने की इच्छा कतई नहीं थी। इसके बाद उन्होंने सारी चीजों को बेचने का भार फ्रांटा और एंटनी को सौंप दिया।

वाल्टवा के किनारों पर पुराना प्राग शहर बसा हुआ है। उसके किनारों पर कबाड़ियों की अनेक दुकानें हैं। यहां एक यहूदी कबाड़ी भी था, जो बच्चों के इस खजाने को पैसों में बदल सकता था।

बच्चे सड़क पर कदम से कदम मिलाते हुए सड़क और पुल को पार करते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे। भांति-भांति के लोग बच्चों के पास से गुजरते चले जा रहे थे, बिना यह जाने कि उनके पास से विजयी बच्चों का एक जुलूस चला जा रहा है। कौन जानता है, शायद बहुतों ने बच्चों के सामने टोप उतारकर सिर झुकाया हो।

सबसे आगे फ्रांटा और एंटनी अपने मजबूत हाथों को जेबों में डाले चले जा रहे थे; क्योंकि इस वक्त उनकी जेबों में अमूल्य खजाना भरा हुआ था।

दस कदम की दूरी पर उनकी आंखें कुछ खोज रही थीं। इन आंखों में एक-दूसरे के प्रति सम्मान और जिम्मेदारी दोनों ही झलक रही थी। अंततः उन्होंने बूढ़े ईसाक की दुकान खोज निकाली थी। दुकान में घुसने से पहले बाकी चारों लड़कों ने फ्रांटा और एंटनी को सम्मान की नजरों से देखा। फ्रांटा और एंटनी उस दुकान में घुस गये, जहां मजदूरों के पुराने धुले कपड़े पड़े थे। उनके दिलों की धड़कनें तेज हो गयीं। शायद इसलिए कि बाहर खड़े उनके साथियों की आंखें उन पर लगी थीं।

बूढ़ा ईसाक काउंटर के पीछे खड़ा था। उस चुप्पी के माहौल में उन्होंने टीन, सीटी, डोरी, पत्थर के टुकड़े और सबसे बाद छोटा चाकू ईसाक के सामने फैला दिये। एंटनी और फ्रांटा ने अपनी आंखें ईसाक पर गड़ा दी। उन आंखों में मां के डांटने या पिता के मारने के डर का भाव न था; बल्कि वे आंखें विजयी मुद्रा में ईसाक को देख रही थीं।

बूढ़े ईसाक ने लड़कों की मूर्खता-भरी हरकत पर बड़बड़ाते हुए कहा—'मैं इन सब चीजों का क्या करूं?' बच्चों की इस हरकत पर उसे सचमुच आश्चर्य था। किसी को भी चिढ़ाने के लिए यह काफी था।

'मुझे सही-सही बताओ कि मैं इन चीजों का क्या करूं?' उसने दुबारा पूछा। शायद वह सही बात को नहीं समझ पा रहा था। उसे लगा कि लड़के उसके साथ मजाक कर रहे हैं।

फ्रांटा रुक न सका। बोला—'ये सारी चीजें बेचने के लिए हैं।' बूढ़ा ईसाक लोगों

को अच्छी तरह जानता था। वह सिर्फ आवाज से पहचान लेता था कि कौन अपनी चीज बेचने के लिए तरह-तरह के बहाने बना रहा है, या कौन मुसीबतजदा है, कौन पहली बार आया है। .... कौन ईसाक के मना करने पर अपना पुराना कोट न बेच पाने से भूखों मर जायेगा और दुबारा दुकान पर कभी नहीं आयेगा। लेकिन फ्रांटा की आवाज इन सबसे अलग थी। ईसाक इतना बूढ़ा भी न था कि आवाज को ठीक से सुन न पाये। लेकिन सबसे मजेदार और उलटी बात उसने बच्चों से यह पूछी कि आखिर तुम यह सब बेचकर क्या करोगे? शायद उन पैसों की सिगरेट खरीदोगे?

'लेकिन ये पैसे सिगरेट के लिए नहीं हैं।' फ्रांटा ने अपमान महसूस करते हुए कहा।

'तो क्या सिनेमा के लिए ....?'

'नहीं, सिनेमा के लिए भी नहीं।' कड़वाहट से फ्रांटा बोला—'ये स्पेन के लिए हैं।'

यह सुनते ही बूढ़ा ईसाक चुप हो बारी-बारी से बच्चों के चेहरों की तरफ देखने लगा। धीरे-धीरे रहस्य ईसाक की समझ में आने लगा था। जबकि फ्रांटा अपने आपको कोसने लगा था; वह एंटनी की तरफ देखने का भी साहस नहीं कर रहा था। क्यों उसने इस यहूदी को यह बात बता दी। अब वह जरूर पुलिस को बुला लेगा। खजांची फ्रांटा पकड़ लिया जायेगा। फिर वे कभी भी एल्यू के लड़कों की मदद न कर सकेंगे। वह धीरे-धीरे काउंटर के पास पहुंचा। शायद वह अपने सामान को खुद को बचा सके।

'वहीं रहो।' ईसाक ने सख्ती से कहा।

वह फ्रांटा के उस पुराने और बदरंग टीन के टुकड़े को बहुत देर तक घुमा-फिरा कर देखता रहा। उसके इस तरह देर लगाने से दोनों बच्चों की आंखें अपने बचाव के लिए और ज्यादा तैयार होती जा रही थीं।

'ट्‌ठीक है।' ईसाक ने हकलाते हुए कहा—'यह टीन बुरी नहीं है। लेकिन मैं इसके दो क्राउन से ज्यादा नहीं दे सकता।'

'और यह ...' उसने एंटनी के चाकू को अपने हाथों और लड़कों की आंखों तक उठाया।

'...अच्छा... काम.... स्पेन के लिए... तुम कह रहे थे .... मैं सोचता हूं, इसके लिए पांच क्राउन काफी होंगे।'

ईसाक की बात सुनकर बच्चों के दोनों प्रतिनिधियों ने राहत की सांस ली थी और वे एल्यू के बच्चों की सहायता के स्वप्न देखने लगे थे। वे कितने ज्यादा पैसों से—पांच क्राउन से—उनकी मदद कर सकेंगे!

बूढ़े ईसाक ने एक-एक चीज और गोटियां, डोरी आदि को बारी-बारी से देखा था।

जब बच्चे खड़े सोच रहे थे, ईसाक ने जो कुछ कहा था, उसमें थोड़ा परिवर्तन हुआ। बूढ़े ईसाक ने काउंटर से पांच क्राउन की जगह बीस क्राउन निकालकर गिन दिये।



सौंदर्य की शक्ति

दोस्तोयेव्स्की ने एक बार एक बड़ा ही गहन विचार प्रकट किया था—'सौंदर्य संसार को बचायेगा।' यह कैसी बात? लंबे अरसे तक मैं इसे केवल शब्दों के रूप में देखता रहा। क्या यह संभव है? आखिर, खून के प्यासे इतिहास में सौंदर्य ने कब किसको बचाया है?

वैसे देखा जाये, तो सौंदर्य में एक विचित्रता पायी जाती है, और वह विचित्रता कला की एक विशेषता है—किसी भी सच्ची कलाकृति में एक ऐसी विश्वसनीयता होती है, जिसे किसी भी हालत में नकारा नहीं जा सकता, और वह किसी विरोधी को भी झुकने के लिए बाध्य कर देती है।

किसी गलत बात और झूठ के आधार पर ऊपरी तौर से सुंदर और शानदार प्रतीत होने वाला कोई राजनैतिक भाषण, कोई जोरदार लेख, कोई सामाजिक कार्यक्रम, या कोई दार्शनिक निबंध लिखा जा सकता है। उसमें छिपायी गयी या तोड़-मरोड़कर पेश की गयी असलियत उसी समय प्रकट नहीं होगी। फिर, उसके विरोध में उतना ही सुंदर और शानदार कोई भाषण, कोई लेख, कोई कार्यक्रम, कोई निबंध लिखा जायेगा, और वह भी प्रभावकारी साबित होगा। यही कारण है कि इस प्रकार की चीजों पर विश्वास भी किया जाता है और अविश्वास भी। जो बात हृदय को नहीं छूती, उसे दोहराना व्यर्थ है।

लेकिन प्रत्येक कलाकृति में ही उसकी सचाई का सबूत भी होता है—गलत विचारों का ढांचा टूटकर ढेर हो जाता है, वे विचार बीमार और पीले पड़ गये लगते हैं, और वे किसी पर भी असर नहीं करते। परंतु जो कलाकृतियां सचाई की पूरी खोजबीन के बाद उसे एक सजीव शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती हैं, वे हमारे अंदर घर कर लेती हैं, और कोई भी मनुष्य कई-कई सदियां बीत जाने पर भी, उनका खंडन नहीं कर सकता।

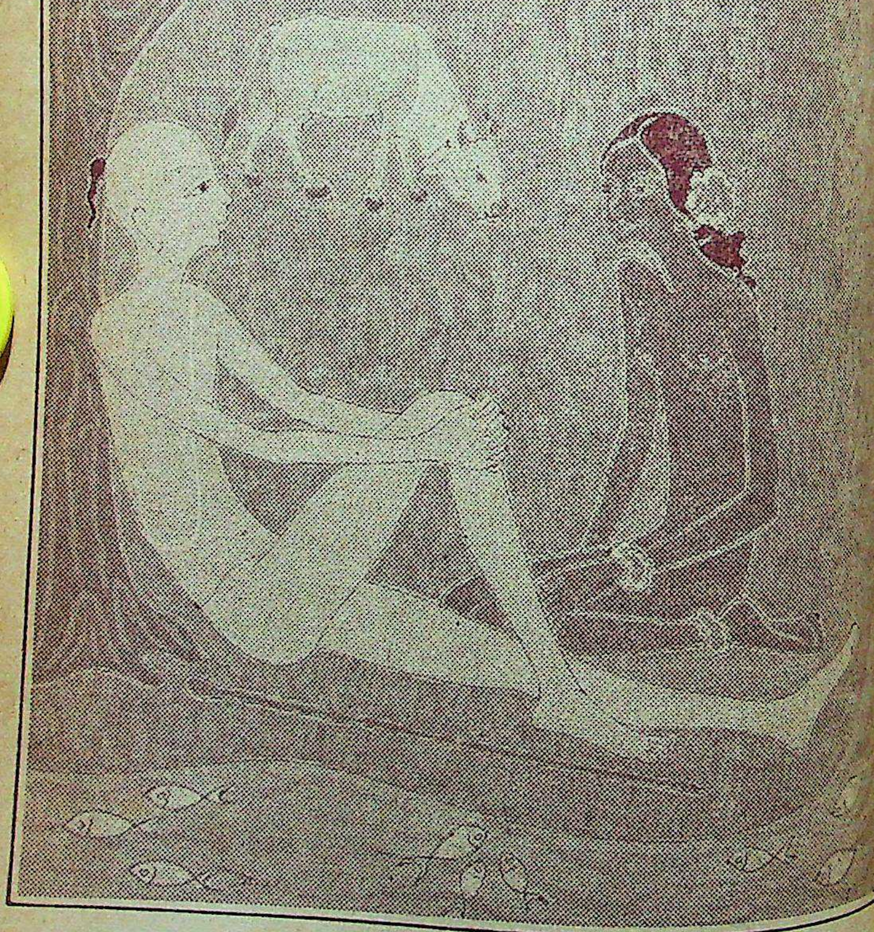
सो प्राचीन समय से चली आ रही सत्य, शिव, सुंदर की बात पुरानी पड़ चुकी या खोखली बात नहीं है, जैसा कि आत्मविश्वास और पदार्थवादी दृष्टिकोण वाली अपनी जवानी के दिनों में हम सोचा करते हैं। अगर इन तीनों वृक्षों के शिखर झुकने लगें, और बहुत ज्यादा शोरगुल मचाने वाले सत्य और शिव को काट डाला जाये, तो शायद सुंदर की आश्चर्यजनक, अप्रत्याशित वृद्धि ऊपर उठती हुई उसे फिर उसी ऊंचाई तक ले जायेगी और इस प्रकार वह अकेला ही तीनों का काम संपन्न करेगा।

इस हालत में हम पायेंगे कि दोस्तोयेव्स्की का यह कथन कि 'सौंदर्य संसार को बचायेगा', लापरवाही में बोला गया वाक्य नहीं, बल्कि एक भविष्यवाणी था। आखिर दोस्तोयेव्स्की बहुत कुछ देख सकता था—उसमें ज्ञान का आश्चर्यजनक प्रकाश था। और उस हालत में, साहित्य शायद सचमुच ही आज संसार की सहायता कर सकेगा। —अलेक्सांद्र सेल्जेनित्सिन



सुम्निमा

—विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला



'सुम्निमा' के लेखक श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला नेपाली के श्रेष्ठ कथाकारों में से हैं। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सत्यों का अद्भुत सामंजस्य उनमें हुआ है और उनका स्थान नेपाली में वही है, जो हिंदी में प्रेमचंद का और अंग्रेजी में चार्ल्स डिकन्स का है। पिछले दो-तीन दशकों में नेपाली कथा-साहित्य को कई कथाकारों ने नया मोड़ दिया है, फिर भी जो आकर्षण और सुग्राह्यता कोइरालाजी की कथाओं में है, वह अन्यत्र नहीं है।

'सुम्निमा' में धर्म और दर्शन की लौकिक कसौटी पर परख की गयी है। यह धर्म और धरती, परलोक और इहलोक, आत्मा और शरीर के संघर्ष की कहानी है, जिसमें बड़े सुंदर ढंग से यह दरशाया गया है कि शरीर और आत्मा के धर्म अलग हैं। ऐहिक लड़ाई कभी आध्यात्मिक धरातल पर नहीं लड़ी जा सकती। जब कभी इन दोनों को एक करने का दुष्प्रयास किया जाता है, वहां अवश्य ही शोकांतिका घटित होती है। पुराण-गाथा सदृश कहानी के सहारे लेखक ने यहां उस शाश्वत प्रश्न को उठाया है, जिसका उत्तर मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी खोजता आया है।

संक्षिप्त अनुवाद : सुरेंद्र प्रसाद साह



अतिप्राचीन कथा है यह, अतीत के ऐसे धूमिल गर्भ से आयी हुई कि आज यह हमारे कान को पुराण की कथा-सी लगती है। प्राचीन कथाओं को हम आज के वैयक्तिक अनुभवों के सहारे ग्रहण नहीं कर सकते हैं; वे हमारी जीवंत अनुभूतियां नहीं हो सकतीं हैं। वे न तो अपने प्रेम की गरमी से हृदय को उष्ण कर सकती हैं और न अपने दुःख से हमारी आंखों को अश्रुसिक्त। हमारे जीवन के अनुभवों से असंबद्ध वे पुरानी घटनाएं सत्य और असत्य की माप से एकदम मुक्त हो गयी हैं। यदि वे हमें आकृष्ट कर सकती हैं तो केवल इसलिए कि उन कथाओं की प्रतीकात्मकता के कारण उनमें हम स्थान और काल से परे भी कुछ संकेत पाते हैं। दस हजार वर्ष तक जीने वाले ऋषि वैज्ञानिक सत्य नहीं हो सकते और न चित्रकार के द्वारा कागज पर बनाया गया लाल सूरज ही वैज्ञानिक सत्य हो सकता है। अनुभव के दायरे से बाहर की रुचि प्रतीकात्मक होती है या संकेतात्मक। इसीलिए यह कथा सत्य और असत्य की माप से परे है। इसका महत्त्व पौराणिक, सांकेतिक और प्रतीकात्मक है।

०००

हिमालय पर्वत के दर्रे में टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग बनाती हुई कौशिकी नदी मायका छोड़ने वाली उन्मुक्त युवती की तरह पहाड़ की गोद से स्वतंत्र होकर वराह क्षेत्र के चतरा नामक समतल प्रदेश में एकाएक प्रवेश

करती है—अपने संपूर्ण वेग और शक्ति के साथ, हजार कंठों से चीत्कार करती हुई। वह क्षेत्र वृक्ष, गुल्म, लता और झाड़ियों से इस प्रकार आच्छादित था कि मानो वह भूखंड न होकर गाढ़े हरे रंग का सघन काला दैवीय धब्बा हो। हवा में भी वहां सजल हरितिमा व्याप्त रहती थी। हरितिमा के उस महासागर में पश्चिम का शैवालिक पर्वत तक डूब-सा गया था। उत्तर की ओर भी कुछ दूर तक उस हरितिमा का ही साम्राज्य था, और उसके बाद हिमालय की चोटियां आकाश में अपना मस्तक उठाये हुए थीं। उस सघन हरीतिमा को मानो धारदार टेढ़ी तलवार से काटती हुई, आकाश को अपने वक्ष पर धारण करती हुई कोशी नदी नील-लोहित धारा में प्रबल वेग से प्रवाहित होती थी। वहां की अनुश्रुति थी कि उसी स्थल पर नदीतट की एक अधित्यका पर गाधिपुत्र महर्षि विश्वामित्र ने अपना आश्रम बनाया था। राम और लक्ष्मण के गुरु बनने के बाद उन्हें अपने आश्रम के दर्शन कराने की उनकी इच्छा हुई, लेकिन जनकपुर तक आकर उनकी यात्रा खंडित हो गयी। वहां राम का विवाह हो जाने के बाद स्थिति ही कुछ और हो गयी और वे लोग सीता को लेकर अपनी राजधानी अयोध्या वापस लौट गये। इसीलिए राम और लक्ष्मण की यात्रा के महान गौरव से चतरा की भूमि वंचित रह गयी।

जिस समय का यह वृत्तांत है, उस समय विश्वामित्र मात्र एक पौराणिक ऋषि के रूप में स्मरण किये जाते थे। विश्वामित्र के स्वर्गवासी होने के बाद वन ने धीरे-धीरे आश्रम-स्थल को अपने अंक में समेटकर गायब कर दिया। उत्तरी पहाड़ वाले स्थान पर किरात लोग अपनी पुरानी स्थिति में ही थे। उनके लिए विश्वामित्र, उनका आगमन तथा कार्य-कलाप स्वप्न में देखे दृश्य थे। यही हाल दक्षिण के भीलों का भी था। जंगल के भीतर बसी उनकी छोटी-छोटी बस्तियां अपनी पुरानी परंपराओं में ही डूबी हुई थीं। उनकी स्मृतियों से विश्वामित्र और उनका आश्रम एकदम विलुप्त हो गये थे।

कालांतर में उसी स्थल को खोजकर एक तपस्वी ब्राह्मण-दंपति ने वहां अपना आश्रम बनाया। स्थान रमणीय था, वन कंद-मूल और फल-फूल से भरा। समीप में ही नीचे शीतलजला कौशिकी बहती थी। स्थल कुछ ऊंचा होने कारण स्वास्थ्यकर भी था। दंपति अपने एक पुत्र के साथ यहां अरण्यवास के लिए आये थे। उन्होंने सोचा था कि वानप्रस्थ में प्रवेश करके कालयापन करते हुए अपने पुत्र को भी ब्राह्मणोचित सद्धर्म और उच्च जीवन की शिक्षा दे सकेंगे। किशोरावस्था से ही कठोर अनुशासित जीवन में रखकर शिक्षा देने से उनका पुत्र आदिकाल के ऋषियों का समकक्ष हो सकता है—इसका उन्हें पूरा विश्वास था। पुत्र सोमदत्त भी मेधावी था। एक बार भी सुना श्लोक उसे कंठस्थ हो

जाता था। उसकी कुशाग्र बुद्धि की प्रशंसा जनपद के बड़े-बड़े पंडितों ने भी की थी।

माता-पिता ने अरण्यवासी होने के पहले ही सोमदत्त का यज्ञोपवीत-संस्कार कर देने का विचार किया था। सौभाग्य से एक विद्वान महापंडित भी गांव में आये हुए थे। उनके पौरोहित्य में सोमदत्त का व्रत-बंध संपन्न हो गया। बालक के संस्कारयुक्त वेदपाठ और शुद्ध मंत्रोच्चारण से उपस्थित मंडली मुग्ध हो गयी। जब उसने मूंज की मेखला और कौपीन धारण कर, भिक्षा की झोली बायें कंधे से लटकाकर, पलाश-दंड टेकते हुए भिक्षा मांगी 'भवति भिक्षां देहि!'..... उसके मुंडित सिर पर हिलती गोखुर के बराबर की चोटी और कृश बाल-मुख पर चमकती हुई दो आंखें देख सबने कहा-'यह बालक एक उत्कृष्ट ब्राह्मण होगा। महात्मा के सभी विशिष्ट लक्षण इस बालक में विद्यमान हैं।' इस प्रशंसा से हर्षित पिता सूर्यदत्त ने मन ही मन संकल्प किया-'यह हमारे वंश में ऋषि पैदा हुआ है। इसकी समुचित शिक्षा-दीक्षा में मैं कोई कमी नहीं रहने दूंगा।'

यज्ञोपवीत संस्कार के बाद वे लोग तत्काल जंगल की ओर चल पड़े थे। सारे ग्रामवासियों ने गांव की सुदूर सीमा तक आकर मंगल-कामना के साथ उन्हें विदाई दी। छोटी कौपीन धारण किये, हाथ में पाठ करने के निमित्त एक पुस्तक लिये, उपनयन के दिन मिले पलाश-दंड को टेकता हुआ सोमदत्त अपने समवयस्क बालकों की ओर ध्यान न देता हुआ माता-पिता से आग्रहपूर्वक पूछ रहा था-'अब कब चलेंगे पिताजी? कब जायेंगे माताजी?' ग्रामवासियों की दृष्टि में उसका यह आग्रह भविष्य में सिद्धपुरुष होने का प्रमाण था।

जब दंपति उत्तर दिशा में चल पड़े, बालक सोमदत्त लाठी टेकते हुए, पुस्तक की छोटी पोटली सम्भाले अपने छोटे डग से शीघ्रतापूर्वक चल रहा था-आगे-आगे। मां-बाप ने एक-दो बार गांव की ओर मुड़-कर देखा भी, लेकिन सोमदत्त ने पलटकर नहीं देखा। जब आंखें पोंछते हुए ग्राम-वासी अपने-अपने घर लौटे, सबकी चर्चा का विषयक एक ही था-'सोमदत्त प्राचीन ऋषियों की मर्यादा कायम रखेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

०००

चतरा आश्रम में आकर बालक सोमदत्त का ब्रह्मचर्य-व्रत आरंभ हुआ। वह एकदम सवेरे ब्राह्म-मुहूर्त्त में जब संपूर्ण चराचर जगत अभी निद्रामग्न होता था, पिता के साथ शैयात्याग करता और एक जल-पात्र, पवित्र वस्त्र तथा कुशासन लेकर कोशी-तट पर पहुंच जाता था। अभी वन की हरितिमा रात्रि के अंधकार में ही डूबी रहती थी। प्रातःकालीन पक्षियों की मधुर आवाज कोशी-तट की प्रगाढ शांति को सूई की नोंक से छेदती मालूम पड़ती थी।

सोमदत्त का नियम था-स्नानादि संपूर्ण दैनिक कार्य पूरे किये बिना मुंह से एक भी शब्द न बोलना, मौनव्रत धारण किये

रहना। स्नान के बाद वह गंगास्तवन करके मस्तक में त्रिपुंड्र और देह में भभूत धारण करके नदी के स्वच्छ बालुका-तट पर कुशासन बिछाकर पूर्वाभिमुख होकर पद्मासन लगाकर बैठ जाता और शांत मुद्रा में बहुत देर तक गायत्री का जाप करता था। कमर में अटकायी हुई छोटी कौपीन और मूंज की मेखला के सिवा उसके शरीर पर कुछ नहीं रहता था। उसकी गोखुर के बराबर मोटी शिखा भीगी रहती थी। गायत्री-जाप के बाद दीक्षा-मंत्रोच्चारण करके वह भगवती की उपासना करता। फिर प्राणायाम की लंबी क्रिया चलती। तब तक सूर्य की प्रथम लंबी सुनहरी किरण जंगल की चोटियों को छूने लगती थी। फिर वह कुशासन पर खड़ा होकर सूर्यमंत्र का पाठ करते हुए रवि-वंदन करता था।

आश्रम वापस आने के बाद पिता-पुत्र अरणि से अग्निमंथन करके यज्ञवेदी में आहवनीय की स्थापना करते थे, फिर उच्च कंठ स्वर से मंत्रोच्चारण करते हुए चावल, घी, जौ और तिल मिलाये हुए हव्य पदार्थों का होम करते थे। मीठी अन्न-घृतमय सुगंध से वातावरण सुवासित हो जाता। पिता-पुत्र के सम्मिलित कंठ से उच्चरित वेद की ऋचाएं वायुमंडल में तरंगित होती रहतीं।

देवों और पितरों की उपासना के बाद प्रसाद के रूप में पंचामृत के आचमन द्वारा मुख शुद्ध करके सोमदत्त पात्र-भर धारोष्ण दूध पीता था। तत्पश्चात् आरंभ होता था स्वाध्याय—कौमुदी-पाठ। पिता होते शिक्षक और पुत्र होता था सत्यार्थी शिष्य। पिता बोलते—'मित्रे चार्ष्वौं......।' पुत्र एकाग्र होकर रटता—'मित्रे चार्ष्वौं......।'

दिन में सोमदत्त गाय लेकर कोशी के किनारे जाता। गाय चराते समय वह कुछ समय के लिए नियमों से मुक्त हो जाता। नदी के किनारे हरी घास खोजती हुई इधर-उधर चरती गाय के पीछे-पीछे वह सानंद घूमता और कभी-कभी थक जाने पर वहीं एक विशाल शमी वृक्ष के नीचे बांह का तकिया बनाकर सो लेता। कोशी का अनवरत गर्जन भी उसकी नींद न तोड़ पाता।

ooo

एक दिन वह इसी तरह निश्चित निद्रा-मग्न था कि एक बालिका उधर से आ निकली। उसकी जटायुक्त चोटी, भभूत वेष्टित शरीर, त्रिपुंड्रशोभित ललाट तथा मेखला और कौपीन युक्त कमर देखकर बालिका को कौतुक-मिश्रित आश्चर्य हुआ। चरने से पेट भर जाने के कारण तभी गाय ने तृप्ति की ध्वनि निकाली—अब्बां......। सोमदत्त की नींद टूट गयी। उसने देखा कि सामने केले की भीतरी परत के समान पीले शरीर वाली एक सर्वांग-नग्न बालिका खड़ी है चकित दृष्टि से उसी को देखती हुई।

क्षण-भर बाद सोमदत्त ने प्रश्न किया—'बालिके, तुम कौन हो?'

बालिका ने निश्छल उत्तर दिया—मैं

किरातबाला हूं–सुम्निमा। तुम कौन हो, ओ दुबले बालक?'

सोमदत्त ने कहा–'मैं आर्यवंशी ब्राह्मण सूर्यदत्त का पुत्र सोमदत्त हूं।'

उसने यह भी बताया कि वह यहीं पास के आश्रम में अपने माता-पिता के साथ निवास करता है।

सुम्निमा ने उत्तरी पहाड़ी के एक हरे स्थान की ओर उंगली से इशारा करते हुए बताया–'वह..... वहां है हमारा गांव।..... पर सोमदत्त, तुमने अपना नाम बताते हुए अपने पिता का नाम क्यों बताया?'

'पुत्र पिता से जीवन-दान ग्रहण करता है, इसलिए यह कृतज्ञता-ज्ञापन है।' सोमदत्त ने उत्तर दिया।

सुम्निमा अब और उत्सुक हुई, बोली–'तो, फिर तो जिस मां ने पैदा किया उसका भी मान करना चाहिये कि नहीं? हम किरात लोग तो पहले मां को पहचानते हैं और वह जिसे पिता बता देती है वही हमारे पिता होते हैं!'

सोमदत्त ने सगर्व कहा–'हम लोग आर्य-संतति हैं, सुसंस्कृत हैं। तुम लोग संस्कृति-विहीन वर्बर जाति के किरात हो। इसलिए हमारे विचार तुम्हारे विचारों से भिन्न हैं। तुम उन्हें नहीं समझ सकतीं।'

बालक-बालिकाओं में एक प्रकार का द्वंद्व होता है। उसी से प्रेरित होकर सुम्निमा बोली–'ऐ ब्राह्मणपुत्र, मां ही तो अपने पुत्र को पिता की पहचान कराती है। पिता तो मां के द्वारा दिखाया गया पुरुष होता है।'

उसी समय सोमदत्त ने आश्रम की ओर से आती हुई अपनी मां की पुकार सुनी। ऊपर उत्तर की ओर से भी एक नारी-कंठ की अस्पष्ट आवाज सुनाई पड़ी–'सुम्निमा, ऐ लड़की....क्या कर रही है?'

सुम्निमा ने कहा–'मुझे मां बुला रही है। जाऊं क्या?'

सोमदत्त ने भी कहा–'मुझे भी माता का आह्वान हुआ है।'

जाते-जाते सुम्निमा ने कहा–'कल यहीं भेंट होगी, ऐ ब्राह्मण! अभी जाती हूं।'

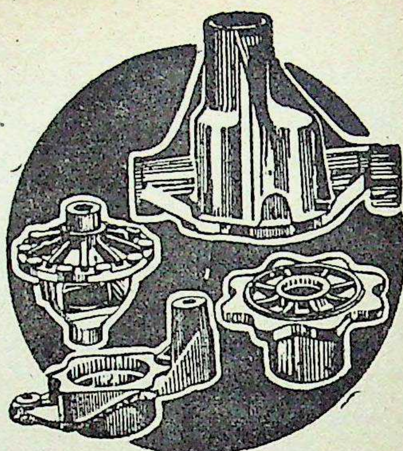
फिर घनघोर जंगल में वह गायब हो गयी। सोमदत्त गाय लेकर आश्रम वापस आया।

पुत्र के व्यग्र प्रश्न के उत्तर में पिता सूर्यदत्त ने समझाया–'माता द्वारा परिचित होने की प्रवृत्ति पाशविक है। पशुओं में सतीत्व और पातिव्रत्य धर्म की शून्यता के कारण संतान का परिचय माता से दिया जाता है। किंतु वत्स सोमदत्त, ऐसा विकार-युक्त प्रश्न तुम्हारे मस्तिष्क में क्यों उत्पन्न हुआ?' वे कुछ-कुछ शंकित हो उठे थे।

सोमदत्त ने किरातबाला के साथ हुए विवाद का वर्णन किया तो पिता ने कहा–'पुत्र यह अनार्य देश है। तुम्हें बहुत सतर्कतापूर्वक रहना है। अनार्य लोग पशु-धर्मावलंबी हैं। हम लोग देवधर्मी हैं।'

०००

दूसरे दिन गाय चराने के लिए कौशिकी-तट पर जाने पर सोमदत्त की भेंट फिर सुम्निमा से हो गयी। उतावली, निश्छल



दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

का आपको निमंत्रण है, आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

एस० जी० आइरन के कास्टिंग

कांसा, पीतल, गनमेटल या लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुर्जों व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

मैलिएबल आइरन के कास्टिंग

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कास्टिंग का काम दे सकते हैं।

एस.जी. आइरन और मैलिएबल आइरन के कास्टिंगों में उच्च भौतिक गुण होते हैं, वे खरीदने में सुगम, दृढ़ एवं तन्यतायुक्त होते हैं, उनमें घिसाव कम होता है।



संपर्क कीजिये :

फेरसफाउंड्री, पंचपाखाड़ी, पहला पोखरनलेन, थाना (महाराष्ट्र) उच्च श्रेणी के कास्टिंग्स् व बचत के लिए डबल हैमर ब्रांड का आग्रह कीजिये।

सुम्निमा ने शांत-गंभीर बालक सोमदत्त से पूछा–'हां सोमदत्त, तुमने मां को कल "माता" क्यों कहा ?'

'यह देवभाषा है।'

'तुम आदमी होकर आदमी की भाषा में क्यों नही बोलते ? आदमी होकर देवता का अनुसरण करना ठीक नहीं है।'

'सुम्निमा ! ऐ अबोध बालिके ! ...हम ब्राह्मण हैं, तप के बल से हम देवत्व प्राप्त कर सकते हैं। हमारा यज्ञ, धर्म-कर्म, नियम-साधना–ये सब मनुष्यता से मुक्ति पाने के प्रयास हैं। समझी ?'

'मैं तुम्हारी कोई बात नहीं समझ पाती सोमदत्त ! मुझे लगता है, आदमी होकर देवता बनने की कोशिश करना ठीक नहीं। यह आदमी का धर्म नहीं है। इसी से आदत बिगड़ जाती है। देवता बनकर रहने की कोशिश में आदमी आदमी भी नहीं रह पाता। मैं तुम्हें अच्छी तरह समझा नहीं पा रही हूं, बुद्धि नहीं है न इसलिए। लेकिन देखो तो, आसानी से "मां" कहने के बदले "माता" कहकर तुमने मां-जैसी प्यारी औरत को कितनी दूरी पर ले जाकर खड़ा कर दिया ! क्या "माता" कहकर तुम मां की गरम और प्यार भरी बांह से दूर नहीं हट गये ?' फिर अचानक वह परेशान होती हुई बोली–'धत्, देखो न मैं बात समझा भी नहीं पाती।'

लेकिन सोमदत्त सुम्निमा का अभिप्राय अच्छी तरह समझ गया था। फिर भी कहा–'माता देवतुल्य होती है। आदर, सम्मान और कृतज्ञता से हम माता को ऊंचे आसन पर प्रतिष्ठित करते हैं। सम्मान और कृतज्ञता के उस महान भाव को "माता" शब्द के माध्यम से कुछ अंशों तक प्रकट किया जा सकता है। "मां" तो मात्र दैनिक जीवन के कौटुंबिक संबंध का सूचक शब्द है।'

बालिका ने फिर हठ किया–'घर-परिवार के अंदर ही तो मां रहती है। कुटुंब के संबंध के बाहर मां और क्या होती है ?'

सोमदत्त ने उत्तर दिया–'हम लोग माता को दैहिक संबंध से मुक्त करके उच्च मर्यादा संपन्न बनाते हैं। यही संस्कृति है।'

सुम्निमा का मन नहीं भरा। उसने कहा–'तुम लोग जिसे चाहे उसे साड़ी पहनाकर छिपा देते हो। जप-तप और यज्ञ करके और व्रत रखकर तुम लोग मनुष्य के ऊपर नकली चेहरा लगा देते हो, बहुत तरह के पहरावे से शरीर को ढंक देते हो और इसी तरह बहुत तरह की बड़ी-बड़ी बातें करके और अबूझ भाषा में बोलकर इतना अधिक स्नेह करने वाली मां को दूर करके क्या-क्या बना देते हो ! तुम्हारी मां अपने शरीर को रात-दिन इतने लंबे-लंबे कपड़ों से ढंके रहती है कि उसी औरत से देवी-देवता बनाने में तुम लोगों को आसानी पड़ती है। नहीं तो कपड़े के अंदर सभी औरतें जो होती हैं तुम्हारी मां भी तो वही है न ! पर हम कपड़े नहीं पहनते, इसलिए हम अपनी नंगी मां को "माता" और "देवी" के रूप में नहीं देख पाते। नंगी मां को कौन देवी कहेगा ?'

अत्यंत आहत होकर सोमदत्त ने कुछ कठोर शब्दों में कहा–'हे असंस्कृत बाले ! देवीतुल्य माता के संबंध में तुम यह क्या अनर्गल प्रलाप कर रही हो ? बहुत हो गया । इस पापमय प्रलाप को बंद करो ।'

सोमदत्त को क्रोधित देखकर सुम्निमा व्यग्र-सी हुई । उसने कहा–'तुम गुस्सा हो गये ? मुझ पर गुस्सा न करो सोमदत्त ।'

'माता के संबंध में ऐसे अपशब्द मैं सुनना नहीं चाहता ।'

सुम्निमा दुःखी हो गयी । बोली–'मैंने अपराध किया सोमदत्त । मुझे क्षमा करो । लेकिन मैंने ऐसी बुरी बात कहां कही जी ? मैंने तो इतना ही कहा कि मन में उत्पन्न होने वाली बातें जिसे तुम "भावना" या कि क्या कहते हो, उसे हमारे रहने के संसार की मिट्टी के साथ बेमेल न बना डालो । भावना पंखयुक्त चिड़िया की तरह है। चिड़िया चाहे जितने ऊपर जा सकती है, पर हमें तो धरती से संबंध रखना होगा। आदमी होकर आदमी के चाल-चलन से बंधकर रहना होगा, यही तो मैंने कहा सोमदत्त ! और मैं तुम्हारे समान पढ़ी-लिखी भी तो नहीं हूं न ! देखो, तुम कितनी बातें जानते हो, कितने ज्ञानी हो !'

सोमदत्त का मन शांत हुआ । लेकिन उस दिन दोनों के बीच कोई और विशेष बात नहीं हुई । सुम्निमा उदास मन से घर वापस आयी और रात भर निश्चय किया कि कल वह सोमदत्त को प्रसन्न करने की कोशिश करेगी ।

उस दिन पुत्र सोमदत्त से विवाद का विवरण सुनकर पिता सूर्यदत्त अत्यंत प्रसन्न हुए और 'साधु-साधु' कह उठे ।



देवगोष्ठी–हळेबीड का एक शिल्प (अनुकृति : ओके)

दूसरे दिन सोमदत्त और सुम्निमा की भेंट नहीं हुई; क्योंकि सोमदत्त सदा की तरह गाय लेकर नदीतट पर जा नहीं सका। सुम्निमा बहुत देर तक उस ब्राह्मण बालक की प्रतीक्षा में शमी वृक्ष के नीचे बैठी रही। घर से नीचे आते हुए वह अंजुल-भर पहाड़ी फूल तोड़ लायी थी। दोपहर को निराश होकर सारे फूल उसी वृक्ष के नीचे सोमदत्त के बैठने की जगह पर गिराकर वह घर लौट गयी।

उस दिन गाय चराने के नियम में सोमदत्त को बाधा पहुंची एक राजकुमार के आगमन से, जो कि शिकार खेलने के लिए ससैन्य पधारे थे। जब उन्हें पता चला कि वहां एक पुण्यात्मा तपस्वी ब्राह्मण की कुटी भी है, तो अपने साथ आये अंगरक्षक, सेना एवं रथ को दूर ही छोड़कर दर्शनार्थ आश्रम में आये और बोले—'महाभाग द्विजश्रेष्ठ! मैं राजकुमार हूं और शिकार खेलने यहां आया हूं। मेरा सादर अभिवादन स्वीकारें तथा कुछ सेवा करने का अवसर मुझे दें।'

नतशिर खड़े राजकुमार को आशीर्वाद देने के लिए सूर्यदत्त एवं उनकी पत्नी ने दोनों हाथ ऊपर उठाये।

राजकुमार ने फिर पूछा—'हे पुण्यात्मन्, क्या आप लोगों के यज्ञादि कर्म निर्विघ्न चल रहे हैं? यहां की अनार्य जातियां उनमें कोई विघ्न-बाधा तो नहीं डालतीं?'

ब्राह्मण ने आस-पास की अनार्य जातियों द्वारा की जाने वाली पशुहिंसा और गोवध की चर्चा की, जिसे सुनकर राजकुमार ने अत्यंत ओजयुक्त वाणी में सेना को आदेश दिया—'पास के गांवों में जाकर किरात और भील जातियों के प्रमुख व्यक्तियों को राजाज्ञा सुनाकर यहां ले आओ।'

तदनंतर उसने ब्राह्मण-दंपति से विनम्रभाव से कहा—'ब्राह्मणदेव! क्षत्रिय का धर्म है ब्राह्मण की सेवा करना, उसका परिपालन अवश्य होगा।'

कुछ देर बाद अरण्य-निवासी भीलों और किरातों के प्रमुख व्यक्ति एक-एक करके आश्रम में एकत्र होने लगे और दो समूहों में अलग-अलग बैठने लगे। वे लोग प्रायः सर्वांगनग्न थे। भील लोगों के शरीर गहरे काले रंग के थे और किरातों के पीले। भीलों के लंबे बालों में मयूर पंख के मुकुट शोभमान थे और छाती तथा कमर में कौड़ियों की मालाएं। किरात लोग इतने अलंकृत नहीं थे। उनकी स्त्रियां भी निर्वस्त्र थीं। पर उनमें बहुतों ने बालों में लाल गुरांस के चटकीले फूल लगा रखे थे। कोई-कोई अपनी स्तनपायी संतान को छाती से लगाये हुए थी। कुछ छोटे-छोटे बच्चे भी बूढ़ों के साथ चले आये थे और उनसे सटे रहकर आश्चर्य से इधर-उधर देख रहे थे। पर सुम्निमा वहां नहीं थी। वह तो सवेरे ही कोशी-तट पर आ गयी थी सोमदत्त को देखने। इसीलिए आश्रम की इस विराट सभा की खबर ही उसे नहीं थी।

प्रधान कुटी के दरवाजे के सामने खड़े

होकर राजकुमार ने किरात-भील मंडली को ओजस्वी वाणी में संबोधित किया–'उपस्थित भील-किरातो ! हिमालय तक का भूभाग हमारे पूर्वजों द्वारा विजित होकर हमारे संरक्षण में है। युद्ध में हारकर तुम लोगों ने हमारी प्रभुता को स्वीकारा है। यहां आश्रम बनाकर निवास कर रहा यह ब्राह्मण-परिवार हमारा पूज्य है। अतः प्रत्येक साधन से उसे संरक्षण और सुविधा प्रदान करना हमारा परम उद्देश्य है।'

उपस्थित किरात-भील समुदाय में थोड़ी हलचल हुई। लोग आपस में बातचीत करने लगे। फिर उनमें से एक खड़ा हुआ और राजकुमार से कहने लगा–'हमने अपने इस स्थल पर आये ब्राह्मण-परिवार की यथासंभव मदद की है। हमने जंगल काटकर जमीन को समतल बनाया, आश्रम की कुटी बनाने के सामान का प्रबंध किया, और अपने जनबल से यह कुटी खड़ी की। गांव-भर में सबसे ज्यादा दूध देने वाली काली गाय बछड़े समेत इन्हें दान की। समय-समय पर अन्य इच्छित सामानों का भी प्रबंध हम करते रहे हैं। क्या यह सच नहीं है सूर्यदत्त ब्राह्मण ?'

सूर्यदत्त के उत्तर देने के पहले ही राजकुमार ने उस किरात वक्ता से प्रभुता-भरी वाणी में पूछा–'तुम कौन हो ?'

'मैं ऊपर के किरात गांव का तीसरा बिजुवा हूं। यहां पर एकत्र हुए किरात लोग मेरे मुंहबोले भाई हैं।'

राजपुत्र के साथ खड़े एक अंगरक्षक सेनाअधिकारी ने राजकुमार को समझाया–'बिजुवा एक तरह के तांत्रिक होते हैं, जैसे हम लोगों के पुरोहित होते हैं।'

राजपुत्र ने फिर उसी स्वर में कहा–'बिजुवा, लेकिन तुम लोगों ने गोवध की हिंसा करके इस तपोभूमि की पवित्रता को बार-बार नष्ट किया है। इससे ब्राह्मण परिवार की तपस्या में बाधा पहुंची है। आज से राजाज्ञा द्वारा तुम लोगों को इस क्षेत्र में गोवध न करने का आदेश दिया जाता है। इस तपोभूमि के आस-पास किसी प्रकार की हिंसा भी आज से वर्जित है।'

भीलों और किरातों के समूह में फिर हलचल हुई। वे लोग आपस में बात करने लगे। कुछ गरमागरमी भी हुई। बिजुवा फिर खड़ा हुआ और बोला–'राजपुत्र! हम लोग तो पराजित हुए ही हैं। भील लोग भी पराजित होकर अपने प्रांत को छोड़कर सुरक्षित अंचल की तलाश करते-करते हमारे पास के जंगल और पर्वत के निकट आ बसे हैं। लेकिन आपकी यह आज्ञा पराजय से भी कठोर है राजपुत्र ! इसे स्वीकार करने पर हमारी परंपरा एवं नियम-कानून में बड़ी बाधा पड़ेगी।'

भील-समूह से भी एक व्यक्ति खड़ा हुआ और बोला–'वहां, सामने की छोटी पहाड़ी पर हम दोनों जातियां पूजा करती हैं। वहां हम अपनी पूजा के नियमानुसार सूअर की बलि देते हैं। बलि न चढ़ाये जाने से अंधेर होगा राजपुत्र !'

परंतु राजकुमार ने किसी की बात नहीं

मुनी और घोषणा कर दी कि राजाज्ञा अटल है। सूर्यदत्त ने ही किरातों-भीलों को समझाते हुए कहा–"लो, तुम लोग वह स्थान पूजा के निमित्त चाहते हो, तो वह तुम्हारा ही रहेगा। लेकिन वहां सूअर की बलि मत दो। वह स्थान आज से वाराह-क्षेत्र कहलायेगा, और हमारे पुराण में वर्णित वराह-अवतार का द्योतक होगा।'

राजपुत्र ने सभा विसर्जित कर दी। किरात और भील नर-नारी हृदयों में अपने भविष्य के प्रति आशंका लिये अपने-अपने घर की ओर रवाना हुए। रास्ते में वे लोग उत्तेजित होकर विवाद करने लगे। लेकिन शाम घिर आने के कारण वे लोग तेजी से चलते भी जा रहे थे। तभी एक भील ने किरात बिजुवा से कहा–'बिजुवा बाबा, मैं सलाह के लिए आपके घर आऊंगा।'

०००

शाम को जब खिन्न मन लेकर सुम्निमा घर लौटी, तो घर सुनसान था। पूरे गांव में भी कोई नहीं था। उसे संसार में अचानक अकेले होने का अनुभव हुआ, कुछ-कुछ डर भी लगा। उसे सोमदत्त की याद आने लगी। उससे भी आज भेंट नहीं हुई। क्या आने वह भी अपने आश्रम में अकेला ही रह गया हो! वह उसके लिए भी चिंतित हो उठी। उसने रोते हुए पुकारा–'मां... बप्पा.....!' उसका पतला बालिका-स्वर पुनः पुनः-प्रतिध्वनित होता हुआ वन-पर्वतों में विलीन हो गया। उसने फिर आग्रहपूर्ण स्वर में पुकारा–'सोमदत्त'।

कहीं से कोई उत्तर न पाकर वह अत्यंत विकल होकर घर के ओसारे पर बैठकर रोने लगी। उसी समय उसके माता-पिता ने घर के आंगन में प्रवेश किया। व्यग्रता के साथ उनसे लिपटकर वह बोली–'मुझे अकेली क्यों छोड़ गये?..... सोमदत्त को क्या हुआ?..... ऐ मां.....ऐ बप्पा!'

'आज अचानक तुझे क्या हो गया है बेटी? तू इस तरह रोयी क्यों? तू किसे सोमदत्त कह रही है?' मां ने पूछा।

सुम्निमा ने हिचकी लेकर रोते हुए ही कहा–'आश्रम के ब्राह्मण का बेटा सोमदत्त।'

बप्पा ने इसका उत्तर दिया–'तुम्हारा सोमदत्त सकुशल है। बल्कि उन लोगों के कारण हम लोगों का ही गांव में रहना कठिन हो गया है।'

सुम्निमा आश्वस्त हुई। बप्पा की देह से सटकर बोली–'बेचारे सोमदत्त ने क्या किया बप्पा?'

बप्पा ने इसका उत्तर नहीं दिया; आंगन की ओर जाते हुए बोले–'कहां है भील युवक? कहां चला गया वह?'

अंधकार में से एक काली मूर्ति की तरह प्रकट होकर भील युवक सामने आया और बोला–'बिजुवा बाबा, मैं तो यहीं हूं न! जब तक आप न बुलायें तब तक मैं कैसे आपके घर में प्रवेश करता?'

बिजुवा ने कहा–'देखो न मेरी बेटी सुम्निमा का हाल। उसी के कारण तुम्हें भीतर बुलाना भूल गया।'

इतना कहकर दोनों ओसारे पर बैठ

गये। उनके बीच विचार-विमर्श होने लगा।

सुम्मिना की मां कोठरी के अंदर जाकर खाना तैयार करने के लिए आग सुलगाने लगी। सुम्निमा बप्पा की बात सुनने ओसारे पर ही उससे सटकर बैठ गयी। भील का कहना था कि जंगल के अंदर हमें अपना रीति-रिवाज नहीं छोड़ना चाहिये। सुम्निमा ने यह सुनकर धीरे-से पूछा—'फिर सोमदत्त का क्या होगा बप्पा?'

भील अपनी रौ में कहता गया—'उनकी जहां इच्छा हो वहां जायें। और अगर क्षत्रिय लोग उन्हें फिर से यहां बसाने आयेंगे तो युद्ध की घोषणा करनी पड़ेगी।'

बिजुवा शांति के पक्ष में था। उसका कहना था—'युद्ध में हम लोग अनेक बार हार चुके हैं। इसी कारण हमारी संख्या कम होती गयी है। हाल के विशाल युद्ध को अभी हम भूल नहीं पाये हैं। उसमें आर्यों के अस्त्र-शस्त्रों ने भीलों-किरातों की सम्मिलित शक्ति पर भारी विजय पायी थी और हम दोनों जातियों के बहुत-से लोग मारे गये थे। ऐसी हालत में युद्ध करने से सर्वनाश होगा।'

भील उत्तेजित होकर बिजुवा के तर्क का खंडन करता हुआ बराबर कहता रहा—'बिजुवा बाबा, इस तरह का अन्याय सहने से तो मरकर समाप्त हो जाना ही अच्छा है।'

बिजुवा उसे शांत स्वर में समझाता रहा—'भील युवक, जिंदा रहकर ही न्याय-अन्याय की खोज की जा सकती है। मरकर समाप्त हो जाने के बाद उसका तात्पर्य ही क्या रह जाता है?'

सुम्निमा उन लोगों की बातें ठीक से समझ नहीं सकी; परंतु इतना तो समझ ही गयी कि बप्पा अहिंसा के पक्ष में है। वह स्वयं भी मरना नहीं चाहती थी, इसलिए उसे बप्पा की बात अच्छी लग रही थी।

भील ने आवेश के झोंक में कहा—'मरने से भी धरम ही होता है, पुन्न ही होता है।'

बिजुवा ने समझाया—'भील युवक, तुम तो आर्यों जैसी बात करते हो। बचने के लिए युद्ध की बात मानी जा सकती है। लेकिन मरने के बाद होने वाले धर्म के लिए युद्ध करने की बात किसी तरह नहीं मानी जा सकती। उन लोगों ने धर्म के नाम पर एक महाभारत का युद्ध किया। उन्हें क्या मिला लाशों के पहाड़ के सिवा? नहीं, मैं तुम्हारी सलाह नहीं मान सकता। उन लोगों के साथ मिलकर रहने में ही सबकी भलाई है। यदि वे अपनी सीमा में गाय नहीं काटने देंगे तो नहीं काटेंगे; लेकिन उसके बदले स्वयं कट जाना बेहतर नहीं है। हम उन लोगों की सीमा से थोड़ा आगे हटकर बलि का स्थान बना लेंगे। लेकिन अगर हम अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहते तो हमें गोवध बंद करना ही होगा।'

'देवस्थान में सूअर के बच्चे की बलि पर भी तो रोक लगायी गयी है!' भील ने कहा।

'उससे क्या हुआ जी? मैं तांत्रिक हूं। वैसा दूसरा स्थान भी बना सकता हूं।'

'आप पहले अपने मुंहबोले भाइयों से

तो पूछिये।'

सारी रात बिजुवा के घर में किरातों की सभा हुई। एक गाय काटकर सबको भोज दिया गया। सुम्निमा और उसकी मां अतिथियों की सेवा में व्यस्त रहीं। प्रातः-काल सभा में उपस्थित सभी किरात बिजुवा का समर्थन करते हुए बोले–'बिजुवा बाबा का कहना ठीक है। हम सब उनसे सहमत हैं।'

भील युवक नीचे दक्षिण की समतल वन-भूमि में बसे अपने गांव की ओर लौट गया।

सुबह उठने के साथ सुम्निमा को सबसे पहले सोमदत्त की याद आयी। मां ने रात के बचे मांस का एक टुकड़ा और थोड़ा भात उसे दिया, जिसे वह जल्दी से खा गयी। फिर तेजी से कोशी-तट की ओर चल पड़ी। रात की सभा में बप्पा का किया निर्णय सोमदत्त को सुनाने की हड़बड़ी थी उसे।

सोमदत्त गाय लेकर पहले ही वहां पहुंच चुका था। वह भी कल आश्रम में घटी घटना सुम्निमा को सुनाना चाहता था। तेजी से सांस लेती हुई और नाक पोंछती हुई सुम्निमा ने कहा–'सोमदत्त!' कोशी नदी की ओर आते हुए कूदते-फांदते उसने लाल गुरांस का एक झब्बा तोड़ लिया था और उसे बाल में खोंस लिया था।

सोमदत्त ने शांत स्वर में कहा–'सुम्निमा, कल दिन में आश्रम में एक प्रतापी क्षत्रिय राजकुमार आये थे.....।'

सुम्निमा भी हड़बड़ाकर बताने लगी–'भील की बात हम लोगों ने नहीं मानी। सोमदत्त, अब लड़ाई नहीं होगी.....।'

'क्षत्रिय राजकुमार ने आज्ञा दी है कि अब इस तपोभूमि को कोई अपवित्र नहीं कर सकता.....।'

'गाय मारने की बात पर अड़कर सभी के मर जाने की बात पर बप्पा राजी नहीं हुए, देखो सोमदत्त.....ऐ.....'

'क्षात्र शस्त्रास्त्रों द्वारा राजकुमार ने इस तपोभूमि को अपने संरक्षण में ले लिया। अब इस अरण्यभूमि में धर्म निर्बाध गति से प्रवाहित होगा.....।'

'समझे सोमदत्त, बप्पा ने कहा–धर्म को मानुस से ऊपर नहीं रखा जा सकता, धर्म के नाम पर मानुसों का नाश हो यह ठीक नहीं है.....।'

'गोमाता अब सुरक्षित हो गयी, पशु-पक्षी निश्शंक हो गये.....।'

सुम्निमा को सारी बातें कहने की उता-वली थी। उसने कहा–'फिर बप्पा ने कहा कि मानुस मरकर समाप्त न हो जायें, इस-लिए पशु की हत्या बंद करनी होगी। वरना सोमदत्त, वह भील लड़का तो धरम के नाम पर हमारे किरात भाइयों को लड़ाई के लिए उकसा रहा था.....।'

सोमदत्त ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा–'सुम्निमा, आज अपूर्व शुभ दिन है। मैं अत्यंत प्रसन्न हूं। आकाश में देवी-देवता भी परम संतोष में होंगे। आज अधर्म के ऊपर धर्म की विजय हुई है। आर्यध्वजा इस तपोभूमि में फहराने लगी है।'

सुम्निमा बोली–'मैं भी बहुत खुश हूं। खुशी की यह बात सुनाने के लिए ही मैं

दौड़ती हुई आयी हूं। तुम्हें अब कुछ नहीं होगा, हममें से किसी को कुछ नहीं होगा।'

गुरांस के लाल फूल से सजे बालों के नीचे झलमलाते हुए सुम्निमा के चेहरे पर दो आंखें प्रसन्नता से चमक रही थीं।

उसने कहा–'मेरे बप्पा बिजुवा हैं। वे कल दूसरा स्थान दिखा देंगे, सूअर का बच्चा चढ़ाने का स्थान।'

सोमदत्त ने शांत आवाज में प्रश्न किया–'क्या सूअर का बच्चा चढ़ाने से देवता प्रसन्न होते हैं सुम्निमा?'

सुम्निमा ने आश्चर्य से पलटकर पूछा–'नहीं तो कैसे प्रसन्न होते हैं?'

'यज्ञ-दान आदि से, सुम्निमा!' सोमदत्त ने उत्तर दिया।

सुम्निमा के मुखड़े से स्पष्ट था कि उसकी शंका का निवारण नहीं हुआ।

सोमदत्त को इसमें संदेह न रहा कि यह किरातबाला एकदम अपढ़ है और घोर अज्ञान में फंसी है। उसमें दया का भाव पैदा हो गया। बोला–'अबोध बालिके, तुम लोग विशाल भ्रमजाल में फंसे हुए हो। अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है–अहिंसा परम धर्म है और वह सबसे ऊपर है, मनुष्य से भी ऊपर।'

०००

समय-समय पर उनके बीच इसी तरह की बातें होती रहती थीं। स्नेह की स्पष्ट भावना लेकर सुम्निमा वहां पहुंचती थी और सोमदत्त भी कोशी-तट पर उससे बात करते हुए तथा उसे स्मरण कर प्रसन्नता अनुभव करता था। सुम्निमा सरलतापूर्वक अपना अज्ञान स्वीकार कर लेती थी और कहती थी–'तुम बहुत ज्ञानी हो, पढ़े-लिखे हो। कितनी बातें जानते हो!'

सोमदत्त और भी प्रसन्न हो जाता था।

पर कभी-कभी सुम्निमा हठपूर्वक बहस करने लगती थी। एक दिन दोपहर में कोशी-तट की बालुका-राशि गरम हो गयी थी। पक्षी वृक्षों की घनी टहनियों में फुदक रहे थे। सदा की तरह शमी वृक्ष की छाया में सोमदत्त और सुम्निमा बैठकर बातें कर रहे थे। 'गरमी के दिनों में आलस्य बहुत आता है। मन में कैसी-कैसी बातें आती रहती हैं, बालू में उठने वाली भाप की तरह। क्या तुम्हें ऐसा नहीं महसूस होता सोमदत्त?'

सोमदत्त ने कोई उत्तर नहीं दिया। सुम्निमा ही फिर बोली–'क्या सोच रहे हो सोमदत्त?'

तो भी सोमदत्त कुछ नहीं बोला। सुम्निमा ने अंगड़ाई ली। सोमदत्त ने देखा कि उसके शरीर में कौमार्य के लक्षण स्पष्टतर हो गये हैं। एक पल के लिए उसे लगा कि सुम्निमा को शरीर ढंकने के लिए कहे। लेकिन वह कुछ बोला नहीं। तभी धूप से परेशान एक श्वेत कबूतर छाया पाने के लिए पंख फड़फड़ाते हुए शमी की एक डाली पर आ बैठा। हठात् आलस्य छोड़कर सुम्निमा बोली–'देखो, देखो, सोमदत्त! कैसा सुंदर कबूतर! इसके पंजे लाल हैं और आंखें भी।'

कबूतर तक सोमदत्त की दृष्टि पहुंचने के पहले ही आकाश से एक बाज प्रकट हुआ

और महावेग से उस कबूतर पर टूटा, जो अभी तक शमी की डाली पर ठीक से बैठ भी नहीं पाया था। सोमदत्त ने तत्काल 'हा-हा' करके बाज की एकाग्रता भंग कर दी। भय से मूर्छित होकर कबूतर वृक्ष से उन्हीं लोगों के बीच आ गिरा। बाज उड़कर चला गया। सोमदत्त कबूतर को उठाकर स्नेह से पुचकारने लगा।

सुम्निमा ने कहा–'कितना सुंदर सफेद कबूतर! कैसे सुंदर पंजे!'

सोमदत्त का ध्यान कबूतर की सुंदरता पर नहीं था। उसने कहा–'आह, इसकी प्राणरक्षा हो गयी।'

सुम्निमा देह टेढ़ी करके तिरछी आंख से सोमदत्त को देखते हुए हंसकर बोली–'लेकिन कहां! भूखे बाज के प्राणों की रक्षा तो नहीं हो सकी।'

इसी छोटे बहाने से उन लोगों की बहस छिड़ गयी। न जाने क्या बात थी आज सुम्निमा ने भी अपना हठ नहीं छोड़ा। कहने लगी–'सुन लो तुम्हारे शिबि राजा की कहानी। तुमने जिस अहिंसा को इतना बड़ा बताया, उसका मेल राजा शिबि की कथा से कहां बैठता है? शिबि ने इतना तो समझा था कि जिस बाज का आहार छीन लिया गया, उसके लिए आहार का प्रबंध कर देना चाहिये। उसने कबूतर के मांस के बराबर मांस अपने शरीर से काटकर दे दिया था। लेकिन इससे क्या सब दिनों के लिए बाज के भोजन का प्रबंध हो जाता? अपने शरीर से तुम कितना मांस दे सकते हो? कितने बाजों को कब तक दे सकते हो?'

सोमदत्त सुम्निमा के आज के आवेश को देखकर चकित रह गया। आज तक कभी सुम्निमा ने ऐसी दृढ़ता के साथ उसकी बातें नहीं काटी थीं। उसने स्वयं को संयत रखते हुए कहा–'क्या तुम्हारी दृष्टि में धर्म-अधर्म कुछ नहीं है? क्या तुम हिंसा-अहिंसा में कोई भेद नहीं मानतीं?'

'बाज हिंसा नहीं करता है; हम जो गाय काटते हैं, वह भी हिंसा नहीं है। लेकिन तुम्हारे राजकुमार जो शिकार खेलते हैं, वह सच्ची हिंसा है। तुम्हारी धर्म-पुस्तक पुराण ने जिस महाभारत को उचित कहा है, वह असली हिंसा है। तुम्हारे धर्म ने प्रकृति की बनावट को उलट-पुलट दिया है, इसलिए संसार में इतनी हिंसा हो रही है।'

सोमदत्त अपने को फिर से संभालते हुए शांत स्वर में बोला–'हे अबोध किरातबाले, यह तुम्हारे कुसंस्कार का प्रमाण है कि तुम हिंसा और अहिंसा के भेद को नहीं जानतीं। इसीलिए तुम धर्म-स्वीकृत अहिंसा के मर्म को न समझकर उसकी निंदा कर रही हो, पाशविक प्रवृत्ति से प्रेरित हिंस्र पशु के व्यवहार को निंदनीय नहीं मानतीं। यही कारण है कि तुम गोवध को भी उचित कहती हो।'

भर पेट चरने के बाद गाय उनके समीप के बृक्ष की छाया में लेट गयी थी। उसने अंगड़ाई लेकर 'बांऽऽऽ' की आवाज की। सोमदत्त ने स्नेहपूर्ण आवाज में कहा–'कपिला माता।' गाय उठकर खड़ी हो गयी, जैसे घर जाने के लिए प्रस्तुत हो। सोमदत्त

ने भी आश्रम [illegible] अपनी छड़ी उठा ली। सुम्निमा को लगा कि आज की बातों से सोमदत्त दुःखी हो गया है। मन ही मन उसने अपने को बहुत धिक्कारा। क्षण-भर बाद बोली–'सोमदत्त, क्या मुझसे रूठ गये? मैं आज व्यर्थ ही तुमसे उलझ पड़ी। मैं गलती मानती हूं, मुझे माफ करो सोमदत्त!'

दूसरे दिन भेंट होते ही सुम्निमा ने कहा–'सोमदत्त! कल रात-भर मैं परेशान रही–यह सोचकर कि तुम रूठ गये हो। मां ने मुझसे कहा कि इस उम्र में औरतों को दोपहर की गरमी में ऐसा ही होता है। देह फड़कने लगती है और सुधबुध खो जाती है कभी-कभी। कल मुझे ऐसा ही हुआ था क्या? चौदह-पंद्रह वर्ष की तो मैं हो गयी न।'

सुम्निमा ने अपनी बात ऐसे मर्मस्पर्शी स्वर में कही कि सोमदत्त का मन शांत हो गया। वे लोग सहज होकर बात करने लगे। सोमदत्त की कपिला गाय समीप में ही चर रही थी। दोपहर की धूप अभी वृक्ष के नीचे नहीं पहुंच सकी थी। सोमदत्त वृक्ष के तने के सहारे बैठा था। पास ही कुहनी पर बल डालकर सिर को ऊपर उठाये सुम्निमा लेटी थी। बात ही बात में उसने कहा–'मां कहती थी, मैं बहुत सुंदर हूं, मेरी देह भरी हुई है, पेट सीधा और सपाट है, स्तन भी ठीक स्थान पर हैं...हैं न सोमदत्त?'

'ऐसी बात नहीं करनी चाहिये सुम्निमा। यह पाप है।' सोमदत्त ने कहा।

सुम्निमा सोमदत्त के और पास खिसक [illegible] और [illegible] से बोली–'कैसा पाप!'

'शरीर पाप की खाई है और तुम इसी की प्रशंसा कर रही हो सुम्निमा।'

सुम्निमा ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा–'तुम तो हर चीज में पाप ही पाप देखते हो–हिंसा में, गाय के मांस में, तड़के उठकर नहाने में, जप न करने में, और फिर अच्छी देह में.....इस तरह चारों ओर पाप से घिरे रहने से तुम्हें कितनी यातना भुगतनी पड़ रही होगी।' उसकी आवाज बहुत स्नेह-सिक्त थी।

क्षण-भर चुप रहकर सोमदत्त बोला–'सुम्निमा अपने शरीर को ढंककर रखा करो तुम।'

सुम्निमा उठकर बैठ गयी। उसने सिर घुमाकर कहा–'नहीं, मुझे वस्त्र से शरीर ढंकने में लाज लगती है–कैसा विचित्र तो लगता है.....सचमुच।'

'नग्न रहने में लज्जा नहीं आती है?'

सुम्निमा ने सिर हिलाकर कहा–'नहीं, कपड़े पहना हुआ शरीर मुझे शृंगार किये हुए जानवर की तरह लगता है, इसलिए तो लज्जा लगती है।'

और वह सिर में लगे हुए गुरांस के फूल को सहसा हथेली से हटाने लगी, जैसे वही लज्जा का स्थल बन गया हो। इसका क्या उत्तर दे सोमदत्त? जैसे स्वयं से बोल रहा हो, इस तरह क्षीण आवाज में बोला–'यह अज्ञानांधकार है।'

०००

वयःक्रमानुसार सोमदत्त युवा हुआ, अर्थात

सुम्निमा युवती हुई। सूर्यदत्त ने वय:प्राप्त पुत्र के लिए उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था की। सोमदत्त वेद, उपनिषद्, वेदांत, दर्शन आदि के गहन अध्ययन में प्रवृत्त हो गया। यज्ञ और जप आदि के नियम और समय में भी विस्तार हुआ। पिता ने कहा—'वत्स! अब तुम ऐसी कठिन आयु में प्रवेश कर रहे हो, जिसमें बाह्य शरीर-जनित मोह ज्ञान को आच्छादित कर, अपनी सारी शक्ति के साथ मनुष्य की आत्मा पर अंतिम आक्रमण करता है। तुम्हें बहुत सावधान रहना पड़ेगा। अब तुम ब्रह्मचर्य के कठोर कंटकाकीर्ण मार्ग की यात्रा शुरू कर रहे हो। जब-जब तुम्हें दैवी परीक्षा का सामना करना पड़े, तब-तब केवल एक बात याद रखना कि विषय-वासना निकृष्ट तत्त्व है, शरीर का आनंद विष है, इसकी एक सूक्ष्म बूंद भी घोर तपस्या से प्राप्त महान आत्मोपलब्धि को विषाक्त बना देगी।'

सोमदत्त ने धर्मग्रंथों और प्राचीन ऋषि-मुनियों के चरित्रों का अध्ययन किया था। पुस्तकों में जगह-जगह उसे पिता के इन वचनों की सत्यता का प्रमाण मिल चुका था। उसके दिन-प्रतिदिन के अनुभव भी तीव्रता के साथ इसका संकेत दे रहे थे कि यौवन के प्रचंड उन्माद का दमन करना यथार्थतः बड़ी कठिन तपस्या है। समुद्र में उठने वाले ज्वार को मनुष्य शायद अपनी हथेली से रोक ले, लेकिन हजारों समुद्रों के सम्मिलित वेग से भी अधिक शक्तिशाली यौवन के वेगवान ज्वार को कौन केवल शारीरिक शक्ति के सहारे रोक सकता है—मनोबल और तपस्या से अर्जित ब्रह्मतेज के अभाव में? इसलिए सोमदत्त यम, नियम, प्राणायाम आदि अष्टांग योग के अभ्यास में पूरी तैयारी से निमग्न होता गया।

सोमदत्त ने सुम्निमा के सिवा किसी अवस्था-प्राप्त युवती को समीप से देखा नहीं था। इसलिए जवानी के नशे से युक्त चंचल सुम्निमा का चित्र ही सदा उसके मन में अंकित रहता था। वह कभी यह भी सोचता कि कहीं सुम्निमा को किसी ईर्ष्यालु देवता ने तो नहीं भेजा है मेरी परीक्षा लेने के लिए?

जैसे-जैसे उसका मन सुम्निमा की ओर आकृष्ट होता, वैसे-वैसे वह अपनी तपस्या का समय और कठोरता बढ़ाता जाता। दिन में कौशिकी के तट पर उनकी भेंट तो होती ही थी; पर पहले की तरह बातचीत नहीं होती थी। सोमदत्त धैर्यपूर्वक ध्यान-मग्न रहता। सुम्निमा मन ही मन कहती—'आजकल सोमदत्त को क्या हो गया है?' लेकिन उसे लगता कि वह स्वयं भी पहले की तरह चंचल और वाचाल नहीं रही। मन के परिपूर्ण हो जाने पर शायद शब्द निरर्थक हो जाते हैं। वह भी टकटकी लगाये बैठी रहती। कभी-कभी दोनों में बात भी होती तो भी उसमें पहले जैसी बहस की उत्तेजना नहीं रहती। दोनों में से कोई भी अपनी बात दूसरे से मनवाने की जिद नहीं करता।

एक दिन सोमदत्त मौनभाव से ध्यान-मग्न था। सुम्निमा देर से चुपचाप उसे

देख रही थी। अंत में उसने पूछा—'सोमदत्त क्यों हम लोग पहले की तरह बात नहीं करते? क्यों ऐसा लगता है कि मेरे और तुम्हारे बीच एक विशाल पहाड़ खड़ा हो गया है? क्यों...?'

'शांति सत्य का स्वर है।' इतना कहकर सोमदत्त फिर चुप हो गया।

'सत्य क्या होता है?'

'आत्मा।'

सुम्निमा के हृदय में आनंद की छोटी-छोटी तरंगें नृत्य करने लगीं। गद्गद होकर परितृप्ति की लंबी सांस छोड़ती हुई स्वयं से पूछती हुई वह बोली—'यदि ऐसा है तो मेरे भी आत्मा है, है न सोमदत्त? तुम पहले मुझे जिस आत्मा के बारे में समझाते थे, वह मेरे पास भी है इसके भीतर।'... इतना कहते हुए उसने अपनी नंगी छाती पर दोनों हथेलियां रखकर लंबी सांस ली।

सोमदत्त ने कोई उत्तर नहीं दिया। क्षण-भर बाद अपनी लाठी उठायी और चलते हुए बोला—'अब मैं आश्रम लौटता हूं।'

'इतनी जल्दी?' आहत आग्रह से प्रश्न के रूप में सुम्निमा ने ठंडी सांस ली।

सोमदत्त असमय ही आश्रम लौट गया और आश्रम के पूर्व के उपवन में एक विशाल वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर समाधिस्थ हो गया। आजकल वह समय-समय पर इसी तरह समाधिस्थ हो जाता था। दोनों चक्षुओं को निम्न ललाट के मध्यबिंदु में केंद्रित करके वह निश्चल भाव से बहुत देर तक बैठा रहता। ऐसा करने से चक्षु-जनित विकार दूर हो जाते थे और इंद्रियों की चंचलता शमित हो जाती थी। वृद्ध सूर्यदत्त और उनकी वृद्ध पत्नी को पुत्र के इस प्रयोग से बड़ी प्रसन्नता होती थी।

किंतु योग-क्रिया से यौवन की चंचलता का दमन केवल क्षणिक रूप में ही हो पाता था। आसन से उठते ही सोमदत्त के मानस-पटल पर सुम्निमा उपस्थित हो जाती थी। कभी-कभी परास्त होकर वह अत्यंत दीन स्वर में पुकार उठता—'हे प्रभु। इस दासानुदास पर कृपा क्यों नहीं रखते? यह भक्त कामरूपी ग्राह से ग्रसित है, हे ग्राह-मोचक विष्णु....'

परंतु एक बात का उसे संतोष था। जब भी सुम्निमा उसके सामने आती, उसका विकारयुक्त मन अनायास ही परिष्कृत और संयमी हो जाता था। सुम्निमा के सामने उसे कभी उस आंतरिक पीड़ा का बोध न हुआ जो उसके परोक्ष में होता था। जैसे शरीर के सामीप्य के सूक्ष्म संतोष से उसका मन स्थिर हो जाता हो। दृष्टि से सुम्निमा के ओझल होते ही मन अशांत हो उठता था, मानो मन के अंदर सुम्निमा की छाया के सिवा कुछ था ही नहीं। क्या सोमदत्त मात्र इस बात से संतुष्ट हो सकता था कि घोड़ा वश में आ गया है, जबकि सारथी वश में नहीं आया था?

प्रतिदिन की भांति उस दिन भी सोमदत्त कपिला गाय को लेकर कोशी-तट पर आया था। सुम्निमा पहले से उसी की प्रतीक्षा कर रही थी। बहुत दिनों के बाद आज फिर

वह चपल हो उठी थी। उसकी आंखें क्रीड़ा-कौतुक के लिए चंचल थीं। लेकिन सोमदत्त का ध्यान उधर नहीं था। वह तो शरीर और मन के बीच के पार्थक्य और उससे उत्पन्न होनेवाले नाना विकारों के विश्लेषण, निरूपण तथा दमन की बातें सोच रहा था। उसकी वाणी में भी तदनुरूप गंभीरता थी।

सुम्निमा उस दिन पहाड़ी निर्झरणी की तरह लहरा रही थी। चपल बंकिमता के साथ नृत्य करती हुई, ध्वनियुक्त आनंद और उल्लास प्रकट करती हुई थिरक रही थी। कभी दौड़ती हुई बलुवा ढाल पर पहुंचती और वहीं से केलि-कंपित स्वर में पुकारती-'सोमदत्त !.....आओ न सोम!' और कभी दौड़ती हुई उसके पास आ जाती तथा कान से मुंह सटाकर स्नेहसिक्त आवाज में धीरे-से कहती -'सोमदत्त! सोमदत्त!' उसके बालों की गंध सोमदत्त के नासापुटों में पहुंचती और वह सिर झटककर उस गंध को दूर भगाने की चेष्टा करता। कहता-'यह कैसा खेल कर रही हो सुम्निमा?'

वह चारों ओर तेजी से नाचती और कहती -'सोमदत्त, आज मैं स्वयं अपने भीतर नहीं समा रही हूं। मेरा यह शरीर अब आनंद का बोझ ढो नहीं पाता, इसलिए यह कांप रहा है। मेरी देह रोमांचित हो रही है। न जाने क्यों, आज इस शरीर से बहुत बड़ा सुख पाने को मन करता है, शायद इसलिए यह ऐसा कर रहा है।'

सोमदत्त ने एकदम शांत मुद्रा में कहा-आनंद का संधान शरीर से बाहर का अनुसंधान है।

'अहँ, आज यह सब बात मत बोलो।' सुम्निमा ने कहा और श्वेत हंसिनी की तरह नृत्य करती हुई वह नदी के किनारे पहुंची और पानी में प्रवेश करके जलक्रीडा करने लगी।

वृक्ष के नीचे बैठा सोमदत्त यह दृश्य देख रहा था। मध्याह्न के सूर्य की आंखों को चुंधियाने वाली ज्योति नदीतट की बालुका-राशि पर पड़ रही थी और उससे परावर्तित होकर सारे जगत् को उद्भासित कर रही थी, सघन जंगल में प्रविष्ट होकर वहां की हरियाली को तरलता में परिणत कर रही थी, जैसे हरे-भरे जंगल के बीच एक दूसरा ही प्रकाश-लोक विद्यमान हो। कोशी नदी अपने अशांत वक्ष पर उस प्रकाश-लोक को धारण करती हुई बह रही थी। नदी के अंदर दृढ़ता के साथ गड़े हुए विशाल शिला-खंडों से टकरा-टकराकर जल-प्रवाह लक्ष-लक्ष खंडों में विभाजित चमकदार मोतियों के चूर्ण की तरह आकाश में छितरा रहा था। नदी की कलकल ध्वनि जैसे अनंत के कान में रहस्य का संवाद सुना रही थी। संपूर्ण चराचर जगत् तंद्रामग्न, स्तब्ध और शांत था। वृक्ष की डालियों पर उड़ते हुए पक्षियों की चंचलता भी निष्प्रयोजन नहीं लगती थी मध्याह्न की उस रहस्यमय स्तब्धता में।

सोमदत्त का ध्यान वृक्ष पर क्रीड़ा करते हुए छोटे-छोटे पक्षियों की ओर गया। उसने सोचा, इनके लोप हो जाने से क्या इस

विराटता में शून्यता नहीं आ जायेगी? इस ब्रह्मांड के साथ इन छोटे-छोटे पक्षियों का क्या और कैसा संबंध है—क्या इसी की विवेचना उपनिषद आदि में नहीं की गयी है? उसका ध्यान बराबर हरे पत्तों के बीच कोमल डालियों पर ऊपर-नीचे उड़कर आनंद मनाते हुए एक पक्षी-युगल पर था। साथ ही सुम्निमा की ओर भी उसका ध्यान बराबर आकृष्ट हो जाता था, जो समीप के नदीजल में आनंद-तरंगित लोक की सृष्टि कर रही थी। जंगल के बीच से किसी अदृश्य पक्षी का तेज कूजन सुनाई पड़ रहा था—कूऊ.....कूऊ.....'

सोमदत्त की विचार-शृंखला हठात् भंग हो गयी। उसे लगा कि चारों ओर स्तब्धता व्याप्त हो गयी है। जिसे उसने विराट शून्य समझा था, वह आंदोलित समुद्र के समान चंचल हो उठा था—मात्र एक नगण्य पक्षी के कूजन से। उस ध्वनि की तरंग ने सोमदत्त को भी प्रभावित किया। अचानक उसके तपःकृश शरीर में सिहरन हुई और धीरे-धीरे विराटता का लोक सामने से लुप्त होने लगा— अनुभव की मुट्ठी में बची मात्र उसकी दुर्बल देह की सिहरन। क्या यह मोह तो नहीं है? आंख में पड़ा हुआ यह जाला निद्रामग्न पक्षी की आंख में पड़े जाले की तरह तो नहीं है?

यह कौन उसके सामने खड़ी है? कहीं यह उसके मनोलोक का चित्र तो नहीं, जो अभी उसकी आंख के सामने प्रकट हो गया है—तंद्रा की माया लेकर? यह कैसी आवाज है, जो उसके कान तक आकर उसे पुकार रही है? शायद वह सो गया है। शायद उसके असंयमी मन ने यहां भी कौतुक प्रारंभ कर दिया है।

उसी समय उसने सुम्निमा की स्पष्ट आवाज सुनी—'सोमदत्त! कहां चले गये तुम? देखा न मुझे! मैं यहीं हूं न!'

निस्संदेह सुम्निमा उसी के सामने खड़ी थी। सोमदत्त ने उसे चकित दृष्टि से देखा, जैसे हठात् पहली बार देख रहा हो। सहस्र सूर्यों की प्रखरता के साथ उसके सामने खड़ी थी—ऐसी प्रखरता से, जो यौवन की चरमावस्था में कुछ ही समय के लिए शरीर को प्राप्त होती है। सोमदत्त ने देखा। लगा—मात्र मन की सृष्टि नहीं है यह, न यह छल द्वारा विकार के वाष्प से अंतःपटल पर निर्मित कोई व्यर्थ तस्वीर ही है। यह तो उसकी आंखों के सामने स्थूल यथार्थता के साथ खड़ी है, दूर रहकर भी उसके शरीर को पूरे वेग से झकझोर रही है, उसी तरह कि जिस तरह आंधी वृक्षों को झकझोरती है। इंद्रियों के पांचों वेगवान अश्व असंयमी होकर हिनहिना रहे थे—नथुनों को फुलाकर, खुरों को धरती पर पटकते हुए। मन का सारथी तप-साधना की रास को अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ खींच रहा था, दांत पर दांत बैठाकर। श्रम से चेहरा लाल हो गया था, ललाट पर स्वेदबिंदु छलक आते थे।

सोमदत्त की यह अवस्था देखकर सुम्निमा घबरा गयी। चिंता-विह्वल स्वर...

में उसने पूछा–'सोमदत्त ! सोमदत्त ! क्या हो गया है तुम्हें ? क्यों ऐसा चेहरा बिगाड़ लिया है तुमने ?'

सोमदत्त ने सांस को साधते हुए उत्तर दिया–'इंद्रियां पांच अनियंत्रित अश्व हैं–असंयमी, असंस्कृत, दुर्दांत, पाशविक। साधना का लक्ष्य ही है निपुण अश्वारोही की तरह इन्हें वश में रखना।'

स्वयं सोमदत्त को ही लगा कि यह सुम्निमा के प्रश्न का उत्तर नहीं है।

सुम्निमा ने कहा–'यह तुम्हारी अनूठी बात है, और आज तो तुम्हारी हर बात अनूठे ढंग की हो रही है।'

हां, सोमदत्त ने अनुभव किया कि उसका शरीर तक अपने नियंत्रण में नहीं है, सुम्निमा के नग्न सुंदर शरीर के आकर्षण को सह नहीं पा रहा है। इस कृश देह में कितनी शक्ति और संपन्नता है कि यह विश्व के महान तत्त्व के ऊपर–उसके ज्ञान-विज्ञान और तप-साधना के ऊपर–अधिष्ठित होना चाहता है सर्वोपरि होकर। उसे ब्रह्मचारी शुकदेव का स्मरण हो आया, जिसे प्राचीन काल में एक बार ऐसा ही हुआ था। कहीं सुम्निमा पहले की देवसभा की शोभामयी रूपराशियुक्त रंभा तो नहीं है ? कहीं यह कौशिकी-तट पर घटित होने वाला शरीर और आत्मा का सनातन नाटक तो नहीं है, जिसमें सोमदत्त और सुम्निमा एक-एक पक्ष का अभिनय कर रहे हैं ? जिस नाटक को प्रकृति अपनी अनंत आंखों से देखती आ रही है, वही नाटक तो आज प्रारंभ नहीं

सोमदत्त ने दृढ़ता के साथ मुट्ठी बांधी और मन ही मन संकल्प किया–'मैं अपने पक्ष को निर्बल नहीं होने दूंगा।' इस संकल्प के साथ उसमें किंचित संयम का संचार हुआ। उसने संयत होकर कहा–'जाओ-जाओ, सुम्निमा ! तुम मेरी आंखों के सामने मत पड़ो। जाओ तुम, मेरी आंखों के सामने से अदृश्य हो जाओ.....।'

सुम्निमा स्तब्ध रह गयी–'क्यों ? मैंने क्या बिगाड़ा सोमदत्त ?'

'तुम्हारा शरीर मेरी आत्मा के विकास में बाधक है।'

बात समझ गयी सुम्निमा। अधरोष्ठ को टेढ़ा करके, कड़कती आंखों से देखते हुए नखरे के साथ आश्चर्य प्रकट करती हुई बोली–'तो तुम्हारी आत्मा ही शरीर के विकास के मार्ग में रुकावट बनकर आ गयी है, यह कहो न।'

'आत्मा नित्य है, शरीर क्षणभंगुर; इसलिए नित्य का सेवन करना चाहिये और अनित्य का त्याग।'

'क्या जानें, मैं तुम्हारी बात समझी या नहीं। फिर भी मैं तुम्हारी भाषा में कहती हूं, गुस्सा मत करना सोमदत्त ! तुमने यही कहा न कि आत्मा कभी नहीं मरती है, लेकिन यह शरीर मर जाता है, कुछ ही समय तक रहता है; इसलिए क्षण-भर रहने वाले शरीर की बात नहीं माननी चाहिये। सब दिन हमारे अंदर रहने वाली आत्मा को साफ-सुथरा रखना चाहिये।

अब मैं कहता हूं—चूंकि यह शरीर जल्दी समाप्त होने वाला है, इसलिए क्या इसकी अधिक देखरेख करने की आवश्यकता नहीं है? युग-युगांतर तक या सब दिन रहनेवाली चीज को सहेजकर रखने के लिए देखरेख की क्या जरूरत है? वह तो सब दिन के लिए है ही। जो अरक्षित है, रक्षा तो उसकी होनी चाहिये। इसलिए मेरी बात मानो, सोम! जिसे तुम अनित्य कहते हो, उसी की रक्षा करो; जो नित्य है, वह तो स्वयं अपनी रक्षा कर लेगा।'

'आत्मा हिमालय की तरह अटल है, सदा स्थायी।'

'शरीर फूल की तरह सुंदर है—क्षण-भर सुवास बिखेरकर समाप्त हो जाने वाला।'

'आत्मा के आनंद का अंत नहीं है।'

'शरीर का आनंद समाप्त हो जायेगा।'

'इसलिए, अनंत आनंद की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य है।'

'इसलिए, यथासंभव आनंद का भोग कर लेना चाहिये।'

'अनंत आनंद का परित्याग करके कौन मूढ़ क्षणिक आनंद के पीछे दौड़ेगा?'

'युग-युग तक प्राप्त होने वाला आनंद एक बहुत बड़ी यातना है। उससे कभी मुक्ति नहीं मिलेगी। क्षण-भर प्राप्त होने वाला सुख ही बड़ा आनंद है; क्योंकि वह क्षण-भर में ही समाप्त हो जायेगा।'

'आत्मा कभी न बुझने वाला सहस्र सूर्य है। शरीर अंधकार में बुझ-बुझ जाने वाला दीपक है।'

'न बुझने वाले सहस्रसूर्य का आलोक आत्मा के लिए सेवनीय है।'

'सदा चमकने वाले सूरज की तेज रोशनी में सदा आंख खोलकर रहने की यातना की अपेक्षा अंधकार में बुझ जाने वाले दीपक की मधुर रोशनी कितनी महान है!'

प्राचीन काल में शुकदेव और रंभा का संवाद भी इसी प्रकार हुआ था। अंतर इतना ही था कि सुम्निमा अज्ञान के अंधकार के कारण द्वंद्वहीन होकर विश्वास की वाणी बोल रही थी और प्राचीन काल की रंभा दूसरे के द्वारा भेजी गयी अप्सरा थी, जिसे अज्ञान का आत्मविश्वास नहीं था। और सोमदत्त की आस्था भी अभी के अनुभव के कारण द्वंद्वमय हो गयी थी। ऐसी अवस्था शुकदेव मुनि की नहीं हुई थी। बीच-बीच में सोमदत्त को लगता कि वह केवल बुद्धि के बल पर ऐसे तर्कों को उपस्थित कर रहा है, जिनका समर्थन उसका अनुभव नहीं करता। इसीलिए उसका मन बेचैन था। उसे लगा कि उसकी अपूर्ण तपस्या आस्था के द्वंद्व का कारण है। अज्ञान से परिपूर्ण नारी स्वयं को दृढता के साथ स्थापित कर रही है और वह मात्र ज्ञान का पुतला बन-कर रह गया है।

इस तरह का संवाद न जाने कितनी बार चला। सोमदत्त को बीच-बीच में ऐसा लगता, जैसे वह अंधकार द्वारा ढंक लिया गया है—उसका शरीर गहरे अंधकार में डूब गया है और किसी गहरे शीतल तलस्पर्श के कारण उपलब्धि के रूप में मात्र कंपन हाथ

लगा है। संभवतः इसीलिए उसका शरीर कांपने लगता था। सुम्निमा उन्हीं दुर्बल क्षणों में उस पर आघात पर आघात करती थी–'सोमदत्त देखो मुझे, इस पारलौकिक सुंदरता के बीच खड़ी हूं, देखो।' और वह एड़ी के बल खड़ी होकर चारों ओर नाच जाती थी। सुम्निमा का संपूर्ण शरीर सोमदत्त के अंतर्हृदय में पल-भर के लिए झलमलाकर नाचने लगता था। उसे लगता कि उस किरात-युवती का शरीर पूरी मादकता से सराबोर होकर चक्कर खा रहा है।

लेकिन तत्काल संयत होकर उसने कहा–'इस पापमय दृश्य को मेरी आंखों के सामने से हटाओ.....'

सुम्निमा आज अत्यंत कौतुकमयी हो रही थी। शरीर को बंकिम बनाते हुए, आंखों को चारों ओर घुमाते हुए जैसे किसी को खोज रही हो, उसने कहा–'कहां है पाप? कहीं देख तो नहीं पा रही हूं।'

लेकिन उसी क्षण सोमदत्त के विकृत चेहरे को देखकर उसने कहा–'सोमदत्त, तुम्हें बुखार हो गया है।'

सोमदत्त ने दृढ़ता के साथ चार-पांच बार सिर को हिलाया और कहा–'मैं बीमार नहीं हूं, मैं स्वस्थ हूं।' और स्वर को थोड़ा कड़ा करके फिर कहा–'सुम्निमा, मैं कहता हूं, यह तुम्हारा शरीर पाप का प्रतीक है, विष है, घृणा के योग्य है। हटाओ मेरे सामने से इस नरक को।'

इससे सुम्निमा के अहं को गहरी ठेस लगी। उसे अपने शरीर का बहुत अभिमान था और वह शरीर आज विशेष रूप से उल्लसित हो रहा था। उसके अर्धचेतन में मां के प्रशंसा-वचन गूंज रहे थे–'सुम्निमा को बहुत ही सुंदर देह मिली है।' लेकिन अभी उसी गर्व के विषय की उपेक्षा करते हुए सोमदत्त कह रहा था–'नरक है तुम्हारा शरीर।'

इसलिए उसने आवेश में कहा–'तुम्हीं में कहीं नरक निवास कर रहा है, इसलिए तुम्हारी आंखों से वही नरक झांक-झांक उठता है। तुम शारीरिक बनावट को बिगाड़कर अपने अंदर भयानक खाई तैयार कर रहे हो। शारीरिकता को धकेलकर बाहर निकाल देने के कारण बनी हुई उस रिक्त खाई में तुम्हारा पाप पैदा होता है। तुम कहते हो कि शरीर की उपेक्षा करके धर्म अर्जित किया जाता है; लेकिन यह तुम्हारी गलत धारणा है।'

सुम्निमा की बातों से नयी तीक्ष्णता प्राप्त करते हुए सोमदत्त ने कहा–'प्रकृति या स्वभाव से ऊपर उठने के प्रयास का नाम धर्म है। तुम जिसे प्रकृति से शून्य चेष्टा कहती हो, वह प्रकृति से ऊपर उठने का लक्षण है। मनुष्य स्वभाव और प्रकृति तक सीमित नहीं रहना चाहता। वह सांसारिक बंधन से मुक्त होकर गगनविहारी होना चाहता है।'

सुम्निमा ने आवेश में मर्माहत होकर कहा–'तुम शरीर का त्याग करके झूठ को अपना रहे हो। धर्म झूठे शून्य आकाश में काल्पनिक पंखों के सहारे उड़ने वाला एक काल्पनिक

१९७९



लेखक-राजनेता कोइराला
['टुडेज़ इंडिया' से साभार]

पक्षी है।'

सुम्निमा न जाने और क्या-क्या बोलती, लेकिन तभी उसकी दृष्टि तेजी से आंखें झपकाते, मुट्ठियां कसे, लाल चेहरे वाले निरीह सोमदत्त पर पड़ी। वह बोल उठी— 'सोमदत्त! सोमदत्त!'

सोमदत्त ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह एकदम निश्चल था। उसके निर्बल चेहरे पर स्वेदकण छलक आये थे और गले की नसें फूलकर बाहर निकल आयी थीं। सुम्निमा ने व्यग्र होकर उसे सहारा देते हुए उसके सिर को अपने वक्ष पर रख लिया और उसके बाल सहलाने लगी।

सोमदत्त ने हल्की आवाज में कहा— 'मेरा स्पर्श मत करो।'

सुम्निमा फिर मर्माहत हुई। उसने धीरे-से सोमदत्त के सिर को अपनी छाती से हटाया और सीधी तनकर खड़ी हो गयी। सोमदत्त ने आंखें खोलीं। सुम्निमा शा[...] ही थी, शायद उसकी देह रोमांचित थ[...] सोमदत्त ने हल्की आवाज में आग्रह कि[...] 'सुम्निमा, मेरे पास मत आओ।'

इस भारी चोट से विकल होकर सुम्नि[...] नारीत्व के संपूर्ण स्वाभिमान के साथ बो[...] 'ठीक है, मैं तुम्हारे पास अब कभी न[...] आऊंगी।'

यह कहती हुई वह बड़ी दृढ़ता के [...] तेजी से मुड़कर उत्तर की ओर चल प[...] सोमदत्त कुछ देर तक उसके पृष्ठभाग [...] जो झूले से समान झूलता दिखाई पड़ता [...] नदी-तट पर ओझल होते हुए देखता र[...] उसके पुष्ट कांचन स्कंध-प्रदेश में काले [...] की राशि लहरें उछाल रही थी।

वह कांचनप्रभा किरातबाला दे[...] देखते वन में विलुप्त हो गयी। क्लां[...] सोमदत्त ने धीरे-से अपनी लाठी उ[...] और क्षीण स्वर में पुकारा—'कपिला मा[...] चलो, अब आश्रम लौटें।'

अत्यंत शिथिल होकर वह आश्रम पहुं[...] जैसे अचानक जीर्णरोगी हो गया हो। [...] में किंचित् मात्र भी शक्ति नहीं थी।

पुत्र को इस तरह अतिदीन अवस्था[...] शिथिल पग से धीरे-धीरे आते हुए देख[...] सोमदत्त की माता ने चिंता के स्वर में कह[...] 'क्या हुआ सोमदत्त को? वन के हि[...] हिंस्र जंतु ने घायल तो नहीं कर दिया उसे[...]

सूर्यदत्त भी कुटी से बाहर निकले। [...] की अवस्था देखकर वे भी व्यग्र होकर बो[...] 'क्या हुआ वत्स तुम्हें? विचरण करते [...]

असावधानी से पर्वत के किसी अज्ञात गर्त में तो नहीं पड़ गये तुम ? शरीर आहत तो नहीं है ?'

माता-पिता के समीप पहुंचकर दीन वाणी में सोमदत्त ने कहा—'तात, मेरी तपस्या अब भी अपूर्ण है। मैं इसी क्षण इस आश्रम का परित्याग करके कठोरतर व्रत में लगना चाहता हूं। माता-पिता से मात्र आशीर्वाद और विदाई लेने के लिए संप्रति उपस्थति हुआ हूं।' इतना कहकर उसने झुककर दोनों के चरणों का स्पर्श किया और संध्या के अंधकार में वनपथ की ओर प्रस्थान कर गया—माता-पता को अश्रुसिक्त और विमूढ़ अवस्था में छोड़कर।

०००

शाम तक सुम्निमा भी अपने गांव पहुंची। उसकी मां ने बेटी का चेहरा देखकर चिंता से पूछा—'क्या हुआ सुम्निमा तुम्हें ?'

अभी तक नारीके स्वाभिमान की खातिर ही जिन आंसुओं को किसी तरह संयम में रखा गया था, वे मां के एक वचन से बांध तोड़कर बह निकले। सुम्निमा रोने लगी।

सुम्निमा के बप्पा बिजुवा घर के भीतर से निकल आंगन में आये और बेटी को रोते हुए देखकर आश्चर्य से पूछा—'क्यों ऐसी हो सुम्निमा, किसने क्या किया तुम्हें ?'

मां बोली—'इस उम्र में वन में अकेले घूमने से वायुदेव लग जाते हैं....मैंने तुमसे पहले ही कहा था। कोशी के किनारे तो तरुणियों को अकेले जाना ही नहीं चाहिये।'

पिता ने कहा—'सुम्निमा की उम्र हो गयी है, अब तो उसे दुलहा खोज लेना चाहिये।'

मां बोली—'सुम्निमा, इस गांव में तुम्हारा कोई युवक साथी नहीं है ?......क्यों नहीं खोजती हो ?'

सुम्निमा ने रोनी आवाज में उत्तर दिया—'मैं तो किसी युवक को पहचानती नहीं, आश्रम के सोमदत्त को छोड़कर।'

मां ने प्यार-भरे हाथ से युवती बेटी के सिर को सहलाया। सुम्निमा झरझर आंसू बहाती हुई हिचकी ले-लेकर रोने लगी।

'बुरा न मानो सुम्निमा', मां ने आश्वासन के स्वर में कहा—'कोई भी किरात लड़का तुम्हें पाकर अपने को भाग्यवान समझेगा। तुम्हें सिर्फ "हां" कहना होगा। देखो, अपना झनझनाता शरीर।'

मां सुम्निमा के शरीर को प्यार-भरे हाथों से सहलाती रही। [क्रमशः]



इसका भी तरीका है कि इतनी सप्राणता से, ताजगी से, मौलिकता से, स्वतःस्फूर्ति से और गतिमयता से जिया जाये कि जीवन स्वयं रूपांतरण बन जाये, शाश्वत आनंद बन जाये—जन्मजात आह्लाद, जिसे छीना नहीं जा सकता।

—स्व. श्रीराम



खयाल उठता है कि इसके विकल्प में कौन-सी दूसरी पत्रकारिता है? अगर आप कहें कि एक शौकिया पत्रकारिता होती है और एक व्यावसायिक पत्रकारिता होती है, तो मैं दोनों के साथ जुड़ा रहा हूं। जहां तक दैनिक पत्रों का सवाल है, अगर उनका सफल और समर्थ होना जरूरी है, तो शायद इस अर्थ में उनका व्यावसायिक होना भी जरूरी है; और फिलहाल मैं एक दैनिक अखबार से जुड़ा हुआ हूं। 'फिलहाल' इसलिए कहता हूं कि मैंने ऐसा कभी सोचा नहीं और न यह स्थिति ही है कि इसे अपने लिए स्थायी आजीविका या कि हल मानता हूं। कुछ समय के लिए, कुछ खास लक्ष्य पूरा करने के लिए यह काम मैंने उठाया है और वह पूरा हो जायेगा तो मैं अपने को मुक्त समझूंगा।

प्रश्न : 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है।' ये आपके शब्द हैं। इसका क्या तात्पर्य है? क्या आप उन्मुक्त यौन के पक्षपाती हैं?

उत्तर : न मैं उन्मुक्त यौन का पक्षपाती हूं, न आज की सभ्यता उसकी पक्षपाती है—यद्यपि कुछ लोग ऐसे विचारों के समर्थक अवश्य हैं। और क्योंकि उन्मुक्त यौन का समर्थन आज का समाज नहीं करता, इसीलिए वह बात सही हो जाती है जो मैंने कही है। हमारे-जैसे समाज में जहां कि दो बिलकुल विभिन्न जाति के संस्कारों की टकराहट होती है और अधिकतर शिक्षित लोगों की शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी में और विदेशी प्रतिमानों के आधार पर होती है लेकिन उनका जीवन अपनी भाषा में और अपने समाज में कटता है—वहां पर ये दो विरोधी परिस्थितियां होती हैं कि वे दोनों से परिचित होते हैं। एक समाज में कुछ आचरण सम्मत है और कुछ निषिद्ध है; दूसरे समाज में दूसरे प्रकार का आचरण सम्मत है और कुछ निषिद्ध है। एक में एक ही परिधि में वे जीते हैं और दूसरी से पायी हुई दीक्षा के अनुसार जीते हैं। इसलिए हमारे समाज में यह स्थिति कुछ ज्यादा उग्र रूप पा लेती है।

प्रश्न : त्रिलोचन का हवाला देते हुए आपने एक स्थान पर कविता में नाटकीय तत्त्व या नाटकीय स्थितियों के प्रक्षेपण की बात उठायी है। इससे आपका तात्पर्य क्या है?

उत्तर : हमारे साहित्य-विवेचन में कविता के संदर्भ में कहते थे कि यह अमुक नायिका की उक्ति है या अमुक नायक इसमें दरशाया गया है तो आधुनिक पश्चिमी आलोचना की भाषा में उसका मतलब यही था कि यहां पर कवि अपनी ओर से उत्तमपुरुष एकवचन में बात नहीं कर रहा है, एक व्यक्तित्व ओढ़कर उसकी ओर से बात कर रहा है—पश्चिमी आलोचना में जिसे 'परसोना' कहते हैं या हम लोग उतने सही अर्थ में नहीं लेकिन 'मुखौटा' कहते हैं। तो जहां पर कवि एक मुखौटे की ओट से कोई बात कहता है तो एक परिस्थिति रचकर उसमें किसी एक पात्र को रखकर उसके विचार प्रस्तुत

अगले

करता है, तो एक तरह की नाटकीय स्थिति वह है।

प्रश्न : अंतिम प्रश्न......पहले प्रश्न को ही दोहरा रहा हूं। अपनी काव्य... पड़ाव पर आप खड़े हैं, क्या आपको कोई राह मिली है ?

उत्तर : राह और पड़ाव की बात आपने कही तो मैंने एक कविता में इसका उत्त[र] दिया है :

है राह, कुहासे तक ही नहीं, पार देहरी के। है।
मैं हूं तो वह भी है, तीर्थाटन को निकला हूं
कांधे बांधे हूं लकड़ियां चिता की : गाता जाता हूं–
'है, पथ है :
वह जो रुक जाता है कूल-कूल पर, बार-बार–
यों नहीं कि वह चुक जाता है :
पर तीर्थ यही तो होते हैं,
अनजाने–यद्यपि वांछित–सम्पराय :
हम होते ही रहते हैं वहां पार !'

तो मैं भी कहीं पार पहुंचने की कोशिश करता रहा। पहुंचा या नहीं, यह तो आप जानिये।

–१८३, टैगोर पार्क, दिल्ली-९



त्योरी

आज भी मैं सामने देख सकती हूं–अपने पिता के माथे पर पड़ी हुई एक त्योरी।

सन १९३६ की बात है, जब मेरी पहली पुस्तक छपी थी। महाराजा कपूरथला ने मेरी उस पुस्तक को बुजुर्गाना प्यार देते हुए दो सौ रुपये मेरे नाम भेजे थे। फिर कुछ ही दिनों के बाद महारानी नाभा ने (कभी वे मेरे पिताजी की शागिर्द रही थीं) उस पुस्तक के लिए प्रशंसा के तौर पर मुझे एक साड़ी भेजी। ये दोनों चीजें डाक से आयी थीं। फिर एक दिन जब डाकिये ने घर का दरवाजा खटखटाया, तो मुझे लगा कि कोई और मनीआर्डर या पार्सल आया होगा और मेरे मुंह से निकला–'आज फिर कोई इनाम आया है !' यह सुनते ही पिताजी के माथे पर जो त्योरी पड़ी, वह आज तक मुझे याद है।

उस दिन मैं यह नहीं समझ पायी थी कि पिताजी मेरे अंदर जिस किस्म की शख्सियत देखना चाहते हैं, उस की तुलना में मैं अपने उस एक वाक्य के कारण बहुत छोटी बन गयी थी। तब बस इतना समझ पायी थी कि ऐसी आशा या लालसा करना गलत है। यह क्यों गलत है और किस प्रकार यह लेखक को छोटा बना देती है, यह बात मैं बहुत बाद में समझ पायी।

–अमृता प्रीतम



खयाल र...
कि ए...
मैं...

[पृष्ठ ५० का शेष]

'एक भाई।' वह लगभग रो उठती है।

'मैं जो हूं।'

'पर कितनी देर के लिए ? ....'

मैं फिर उसके आंसू पोंछता हूं। कई लोग मुझे शक-भरी नजरों से देख रहे हैं।

चूड़ियों की एक दुकान पर हम रुक जाते हैं।

'चूड़ियों की सौगात तुम्हारी तरफ से, और पैसे मेरी तरफ से।' पिताजी कहते हैं।

'यह कैसे हो सकता है!'

'तो फिर, जैसा तुम्हें अच्छा लगे।'

चूड़ियों की आवाज के साथ हम आगे बढ़ते हैं।

सुरिंदर अपने पर्स में से एक फाउंटन पेन निकालकर मेरी जेब में लगा देती है—'यह मेरी तरफ से।'

'पर तुम्हारी सौगात तो मेरे पास है।' मैं कहता हूं।

'कौन-सी ?' वह हैरानी से पूछती है।

'तुम्हारे आंसू, जिनकी खुशबू से मेरा रूमाल महक उठा है।'

माताजी, पिताजी और सुरिंदर सिर से पांव तक कांप उठते हैं।

लाहौर जाने वाली स्पेशल बसें अब आ रही हैं। सभी सिक्ख यात्री गुरुद्वारे के फाटक के पास इकट्ठे हो रहे हैं।

'सुरिंदर, तुम्हारा पता ?'

'सुरिंदर कौर, मार्फत सरदार गुरुबख्श-सिंह, मकान नं. ....'

'पगले, तुमने भी औरतों की तरह रोना शुरू कर दिया है!' माताजी मेरे और सुरिंदर के जुड़े हुए हाथों को छूकर कहती हैं।

'सुरिंदर, मैं तुम्हें खत लिखूंगा....लेकिन जंग के मैदान से नहीं।'

वे सब एक बार फिर कांप उठते हैं।

मेरे हाथ सुरिंदर और माताजी के हाथों से अलग नहीं हो पा रहे हैं।....

०००

मैं फिर अपने कमरे में बैठा हूं।

शहीद भगतसिंह की तस्वीर सामने है।

मैं तस्वीर को चूमता हूं।

अब मेरे सामने एक और शहीद का चेहरा है, जिसने जंग में अपनी सरकार के गलत उद्देश्य के लिए लड़ते हुए अपनी जान गंवायी है।

मैं रूमाल से आंसू पोंछता हुआ सुरिंदर को खत लिख रहा हूं।



- मृत्यु नाम की चीज न हो तो जीवन एक असमाप्य नरक बन जाये।

  —राजाजी

- किसी मनुष्य के चारित्र्य को समझना हो तो यह देखो कि वह किस तरह की चीजों पर हंसता है।
- जब तक हम बच्चों को दुःख झेलते रहने देंगे, संसार में सच्चा प्यार संभव न होगा।

  —इसाडोरा डंकन



[पृठ ५९ का शेष]
दो नाविक दम घुटने से मर गये, जिससे बाकी जहाज भी स्वेज नहर से पीछे की ओर लौटने लगे। यह जहाज सिंध रियासत की ओर जा रहा था। इसका पूरा विवरण दिया गया है कि नाविकों को कैसे गरमी लगी, कैसे उनके पैर कांपने लगे और उनके होश गुम हो गये।

इसी तरह का एक रोचक समाचार सिंध का था। सिंध में एक स्थान है, जिसे मगरपीर कहते हैं। वहां के पुजारी यह दावा करते हैं कि उनके पीर का इतना असर है कि मगर भी पीर की आज्ञा बिना किसी को खाते नहीं हैं। पीर की महिमा दिखाने के लिए कुछ उत्साही पुजारी यात्रियों को उठाकर मगरों से भरे हुए तालाब में डाल देते हैं और मगर उन्हें खा जाते हैं। अभी आदेश हुआ है कि इस प्रकार की वारदातें न होने दी जायें।

यह भी समाचार छपा कि संथाल परगना में एक स्पेशल जज नियुक्त किया गया है, जिसे तुरंत मुकद्दमे निबटाने का अधिकार होगा। इसके लिए तत्संबंधी आदेशों में परिवर्तन किये गये हैं। ये मिस्टर जूल्स किसी सहायक की मदद नहीं लेंगे, बल्कि खुद गवाहों को बुलायेंगे और उनसे पूछताछ करके तत्काल खफीफा तरीके से निर्णय लेंगे।

लेकिन जो समाचार हमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण लगे, वे 'सिपाही विद्रोह' से संबंधित हैं। लार्ड कैनिंग ने १ जुलाई १८५८ को यह अधिघोषणा की थी कि गदर समाप्त हो गया है। लेकिन 'समाचार सुधावर्षण' के अंकों को पढ़ते हैं, तो यह प्रकट होता है कि १ जुलाई १८५८ के बाद भी युद्ध जारी था। २९ सितंबर के अंक में छपे एक समाचार में कहा गया है कि कैप्टन मेह के नेतृत्व में अतिरिक्त सेनाएं दमदम आ गयी हैं और १९ वीं रेजिमेंट का एक भाग मेजर हक के नेतृत्व में चिनसुरा भेजा गया है और चिनसुरा में सेना की शक्ति और अधिक बढ़ गयी है। (चिनसुरा बारकपुर छावनी के करीब है, जहां भारतीय सेना ने सबसे पहले विद्रोह की चिनगारी सुलगायी थी।) इस समाचार से पता लगता है कि सितंबर १८५८ तक बंगाल की स्थिति सुदृढ़ नहीं बन पायी थी।

इसी के साथ यह समाचार भी था कि ३ सितंबर (१८५८) को पटना से जो पत्र भेजा गया है, उससे पता लगा है कि हरीनघाटा स्टीमर के नाविकों ने दो विद्रोहियों को पकड़ लिया है और इन विद्रोहियों ने बताया है कि दूसरे विद्रोही नदी को पार करके गोरखपुर पहुंच चुके हैं, उनके नेता भवानीसिंह हैं और वे गोरखपुर के जंगलों में विश्राम एवं शक्ति संचय कर रहे हैं।

इसी अंक में यह भी कहा गया है कि 'बंबई गजट' ने यह खबर छापी है कि ब्रिटिश जंगी जहाजों ने बमबारी करके जूडाघार को बिलकुल नष्ट कर दिया है। (इससे यह स्पष्ट होता है कि जूडाघार पश्चिमी तट पर कोई ऐसा किला रहा

होगा, जहां अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष चालू था।)

यह भी कहा गया कि भारत सरकार ने इस बात पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की है कि बाबू विश्वनाथ पंडा ने नावों का एक पुल बनाया है, जिससे गोरखा सिपाहियों को नदी पार करने में बड़ी मदद मिली है। सरकार ने विश्वनाथ पंडा को पांच सौ रुपये का इनाम दिया है तथा जिन दो गांवों ने इस काम में उनकी मदद की थी, उन्हें दो-दो सौ रुपये का इनाम।

समझा यह जाता है कि विद्रोह उत्तर भारत तक ही सीमित था और हैदराबाद के निजाम ने भारत सरकार की बड़ी मदद की थी। लेकिन 'समाचार सुधावर्षण' के सितंबर १८५८ के ही एक अंक में छपे एक समाचार में बताया गया है कि इस बात की संभावना है कि हैदराबाद में मुहर्रम शांतिपूर्वक गुजर जायेगी। भारत सरकार के सौ सिपाही दो तोपों के साथ प्रेसिडेंसी की रक्षा कर रहे हैं और नवाब सालारजंग के सिपाही भी उनकी मदद कर रहे हैं। (नवाब सालारजंग हैदराबाद के प्रधानमंत्री थे।) साथ ही इस समाचार में यह भी कहा गया है कि अंत में शांति रहती है या नहीं, यह इस पर निर्भर रहेगा कि अरब सरदारों का रुख क्या रहता है।

विद्रोह का जो मुख्य क्षेत्र था, उसके बारे में भी विस्तृत समाचार हैं।

२९ सितंबर के अंक में छपे एक समाचार तथा अग्रलेख में कहा गया है :

कैप्टन मिनी के १९ सितबर को रीवां से लिखे पत्र से पता चलता है कि कमांडर मिचिल ने महू राज्य से सेनाएं लेकर तात्या टोपे की सेनाओं पर हमला किया। हम लोग लड़ाई जीत गये हैं, विद्रोही हार गये हैं और हमने उनकी कुछ तोपें अपने कब्जे में कर ली हैं। विद्रोही इधर-उधर बिखर गये हैं और उत्तर पूर्व की ओर भाग रहे हैं। हमारी घुड़सवार सेना, जिसके पास बंदूकें और हथियार हैं, पैदल सेना के साथ उनका पीछा कर रही हैं। ये विद्रोहियों के अंतिम दिन हैं। ब्रिगेडियर कार्पेन्टर ने उनके छिपने की जगहों को नष्ट कर दिया है और उनके एक सरदार रामनाथ सिंह को घायल कर दिया है।

एक अन्य समाचार में बताया गया है कि कैप्टन मिचिल ने महू क्षेत्र की सेनाओं के साथ तात्या टोपे के सहकारियों पर राजगढ़ और रीवां में आक्रमण किया और उनकी बीस या तीस तोपें कब्जे में कर लीं, पर उनका कोई आदमी हताहत नहीं हुआ। 'दिल्ली गजट' में छपा है कि नानासाहब धुर शिबिर के पास एक जंगल में कैंप किये हुए हैं और उनके साथ उनके बहुत-से सरदार हैं, जैसे—बाल राधा भट्ट, कनु ताती, गंगाधर टांटिया, वासुकाली, शाहअली, अमीदुल्ला, मोहम्मद ईसाक वगैरह। यह भी कहा गया है कि नानासाहब की सेनाएं इधर-उधर बिखरी हुई हैं और वे कुछ भी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वे ताकत खोते जा रहे हैं।

१९७१

यह समाचार भी दिया गया है कि 'डेली न्यूज' के अनुसार बंबई के गवर्नर श्री एलफिंस्टन ने शिक्षा के प्रचार के लिए भाषण दिया है।

एक संपादकीय लेख में उन कुत्तों की भर्त्सना की गयी है, जो दिन में तो सोते रहते हैं लेकिन रात में नवजात बच्चों को उठाकर ले जाते हैं। स्पष्ट ही यह राजनैतिक व्यंग्य है; परंतु यह किस प्रसंग में लिखा गया है, उसका अंदाज हम नहीं लगा सके। धार्मिक विषयों पर भी संपादकीय लिखे जाते थे और उनसे प्रकट होता है कि 'समाचार सुधावर्षण' आस्तिक हिंदुओं का पत्र था।

'समाचार सुधावर्षण' का इतिहास रोचक ही नहीं गौरवपूर्ण भी है। १३ जून १८५७ को लार्ड कैनिंग ने लेखन व मुद्रण की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने वाला कानून जारी किया और उसके अंतर्गत १७ जून को ही सर्वोच्च न्यायालय में 'समाचार सुधावर्षण' के संपादक श्री श्यामसुंदर सेन की पेशी हो गयी। इस तरह श्री सेन पत्रों की स्वाधीनता की रक्षा के प्रयास में भारतीय पत्रकारों में अग्रणी थे। उनके साथ ही फारसी के दो पत्र 'दूरबीन' और 'सुल्तान अखबार' पर मुकद्दमा चला था।

सन १८५७ और १८५८ के सारे संघर्ष-काल में देश में जो भी अंग्रेजी या भारतीय भाषाओं के पत्र थे, वे इतने सतर्क रहे कि बेदाग बचे रहे। परंतु श्री श्यामसुंदर सेन के साहस ने हिंदी पत्रकारिता को एक परंपरा दी, जिस पर वह हमेशा नाज कर सकती है।

—५५ काका नगर, नयी दिल्ली-११०००३



ख्रुश्चोव की प्रथम साइबेरिया-यात्रा के बारे में एक किस्सा मैंने सुना था। कहते हैं, वहां उनकी मुलाकात नब्बे वर्ष के एक आदमी से हुई। उन्होंने उससे पूछा—'बताइये दादाजी, क्या आप महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति से पहले की बनिस्बत आज ज्यादा सुखी हैं?'

बूढ़े ने जवाब दिया—'मैं नहीं जानता कि मैं तब ज्यादा सुखी था या अब ज्यादा सुखी हूं। मगर क्रांति से पहले मेरे पास दो जोड़ी जूते थे, दो ओवरकोट थे, दो सूट थे, दो ऊनी सूट थे—दो जोड़ी दस्ताने थे। अब एक-एक ही हैं, सो भी फटे-पुराने।'

ख्रुश्चोव तनिक भी सकपकाये बिना बोले—'जाने दीजिये दादाजी। क्या आपको पता नहीं है कि चीन, हिंदुस्तान, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका में लोगों के पास तो यह भी नहीं है और वे नंग-धड़ंग रहते हैं!'

इस पर बूढ़े ने सिर खुजलाते हुए कहा—'तो उनकी महान समाजवादी क्रांति हमारी महान समाजवादी क्रांति से बहुत-बहुत पहले हुई होगी।'

—टी. एन. कौल ['डिप्लॉमेसी इन पीस एंड वार' में]



इस मौसम में अपनी प्रेयसी का मन खुशी से भर दीजिए..



उनके लिए एक रीटा सिलाई मशीन खरीदिए—क्योंकि इसे बड़ी लगन के साथ उन लोगों ने बनाया है जो सिलाई की तकनीक को जानते-समझते हैं और जिन्हें पता है कि महिलाओं की पसंद क्या है। रीटा की लगातार सेवा और शानदार बनावट ने देश विदेश की महिलाओं का मन मोह लिया है।

चाहे आपकी पत्नी हो या पुत्री—या कोई भी जिसे आप दिल से चाहते हों—रीटा का उपहार सचमुच एक उपयुक्त उपहार साबित होगा।

रीटा

मैकेनिकल वर्क्स

लुधियाना

प्रेम की प्रतीक है-
रीटा सिलाई मशीन

पत्रों में से झांकते कृपालानीजी

पत्र नर-नारियों के दिल की प्रामाणिक और अंतरंग झांकियां पेश करते हैं और पत्रों में उनकी मनःस्थितियां और कल्पनाएं, विभिन्न समयों पर विभिन्न स्थितियों के प्रति उनकी प्रतिक्रियाएं चित्रित होती हैं। बात यह है कि ईमानदार पत्र-लेखक सच्चे मित्रों, स्वजनों और अपने प्रिय या आदरणीय जनों को पत्र लिखते समय मुखौटा उतार डालते हैं।

आचार्य कृपालानी के बहुत-से पत्र मेरे पास हैं। २७ अगस्त १९७६ को उन्होंने गहरी वेदना में मुझे लिखा :

'क्या लिखा जाये ! वक्त इतना बेढब है, खासकर मेरे जैसे आदमी के लिए जो कि अपनी जिंदगी और उपयोगिता से ज्यादा जी चुका हो। लिखे भी कोई क्या ! कौन उसे छापेगा? मेरे लिए तो बस यही बचा है कि वक्त काटूं, जब तक खुद वक्त मुझे न काट दे। मैं कभी ही घर से बाहर निकलता हूं, सिवा इसके कि शाम को नजदीक के अरविंदाश्रम चला जाता हूं। मेरा कैदखाना मेरे मित्रों के कैदखाने से भी ज्यादा कठोर है। बेहतर तो यह होता कि मुझे भी कैदखाने पहुंचा दिया जाता। आजकल करने योग्य कुछ भी तो नहीं रह गया है। वक्त था जब भाषण हजारों लोगों को प्रभावित कर सकता था। आज आप..... गला फाड़-कर चिल्लायें तो भी कोई न सुनेगा। बल्कि इस सारी जहमत के लिए आपको बेवकूफ समझा जायेगा।'

अपने बेटे की शादी के बाद मुझे आचार्यजी से बड़ा ही दिलचस्प पत्र मिला, जो कि असल में मेरे बेटे के लिए था। उसमें उन्होंने युवा नवदंपति को हितोपदेश दिया था:

'नौजवान लड़के को मेरी ओर से कहना कि घर में शांति रखने का सर्वोत्तम उपाय है चटपट सहमत हो जाना। उसे इसका भी हमेशा खयाल रखना चाहिये कि पत्नी जब नयी साड़ी पहने और सजे-धजे तो फौरन उस पर ध्यान देने और उसकी तारीफ करने से चूके नहीं। उसे उसकी पाककला की भी प्रशंसा करनी चाहिये। और हर अवसर पर उसे उपहार देते रहना चाहिये। सुखमय दांपत्य की राह यही है।

'युवती वधू से मैं कुछ भी नहीं कह सकता—निरा मर्द जो ठहरा। सुचेता कुछ कह सकती थी, मगर वह यहां नहीं है। फिर भी एक शब्द अप्रासंगिक नहीं होगा। अगर पति औरत-कबीले की किसी और सदस्या के प्रति मधुर-सा होता नजर आये तो उसे चटपट यह नतीजा नहीं निकाल बैठना चाहिये कि वह उससे प्यार करता है और लिहाजा मेरे प्रति निष्प्रेम है। वह ऐसा न दिखाये कि उसने यह चीज देख ली है। अगर वह ऐसा दिखायेगी तो खुद को दुःखी बना बैठेगी और उसी चीज को बुला बैठेगी जिससे कि उसे डरना चाहिये।.....सबको प्यार।'

—पी. डी. टंडन ['आकाशवाणी' में]



दो क्षण तो हँस लें

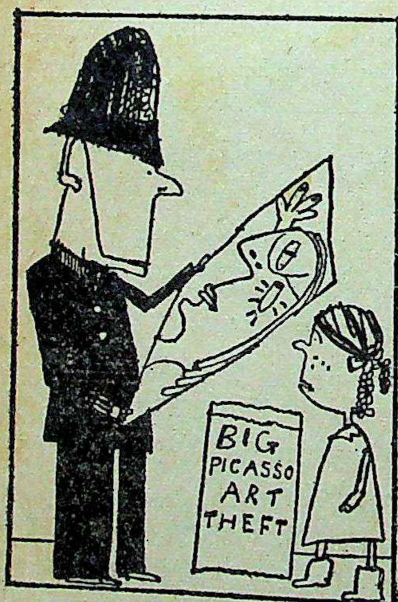
एक अत्याधुनिक दफ्तर में दो प्रसाधन-कक्ष थे। उन पर क्रमशः लिखा था :

'केवल आफिसरों के लिए ......'

'केवल मर्दों के लिए ......'

०

दांत का डाक्टर मरीज से : 'हूं, अपना मुंह खोलो।'



'इन्स्पेक्टर, यह चित्र मैंने प्रदर्शनी में से चुराया नहीं है, खुद बनाया है। चाहें तो आप चलकर हमारी मास्टरनी से पूछ लें।' [बी. बी. सी. लिसनर]

मरीज ने मुंह इतना अधिक खोल कि डाक्टर बोला :

'मुंह और ज्यादा मत खोलो। मैं अंदर नहीं, बाहर ही बैठकर तुम्हारे निकालूंगा।'

०

'मेरा बेटा मुझे बहुत परेशान करता

'क्यों, क्या हुआ ?'

'होना क्या है यार, जो भी चीज देता हूं, लौटा देता है; या कहता है, नहीं है, दूसरी लाइये और चीज को रद्दी की टोकरी में फेंक देता है।..... में नहीं आता, बड़ा होकर क्या बनेगा।

'संपादक बनेगा, सारे लक्षण संपा जैसे हैं।'

०

लेखक पति : 'जानती हो, रोग शरीर के कमजोर हिस्से पर ही जमाता है।'

पत्नी : 'हूं, तभी तुम हमेशा सिरदर्द शिकायत किया करते हो।'

०

दुकानदार अपनी पत्नी से :

'देखो, आज सामने की दुकान से मत खरीदना !'

'क्यों, क्या हुआ ? वह तो बहुत

दार है.....'

'सो तो है, लेकिन आज सामान तोलने के लिए हमारा बाट उधार ले गया है।'

०

एक मोटा देहाती अपने मित्र का घोड़ा लेकर यात्रा पर निकला। पचास कोस पर उसने विश्राम किया .....बाद में डाकखाने जाकर बाबू से तार दिलवाया—'मेरी यात्रा सुखद रही।'

अगले पड़ाव पर उसे भी तार मिला—'मेरे घोड़े का स्वास्थ्य कैसा है?'

०

'क्यों भाई, यह कुत्ता किसका है?'

'पुलिस का है।'

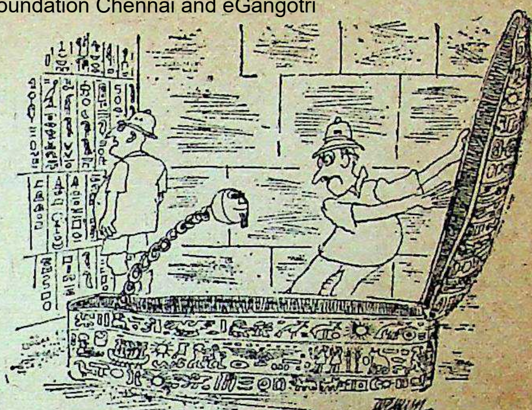
'लगता तो नहीं.....'

'कैसे लगेगा श्रीमानजी, यह गुप्तचर विभाग में है।'

०

प्रेमी: 'मैं तुम्हारे पिता से शादी की बात करना चाहता हूं। कौन-सा समय ठीक रहेगा?'

प्रेमिका: 'जब उनके पैरों में जूते न हों।'



'हमारा पुरातत्त्व-अभियान एकदम व्यर्थ तो नहीं गया।' आखिर हम यह तो पता लगा सके कि फैरोआ अमेनहाटेप को 'मसखरा' क्यों कहते थे। ['रोटेरियन' से]

'कविता-प्रतियोगिता' के दौरान विषय दिया गया—'देश में गरीबी।'

पुरस्कृत कविता यों थी:

'यत्र,
तत्र,
सर्वत्र।'

—अनुराग शर्मा



दूध की दुकान पर

१. बिलकुल असली दूध २ रुपये ५० पैसे लीटर।
२. असली दूध १ रुपया ८० पैसे लीटर।
३. दूध १ रुपया ६० पैसे लीटर।

—श्याम मनोहर व्यास



° स्वेटर—एक वस्त्र, जिसे मां को ठंड महसूस होने पर बच्चा पहनता है।

° स्त्री विवाह के बाद पहले तीन साल चंद्रमुखी होती है; उसके बाद तीन साल सूर्यमुखी; उसके बाद होती है—ज्वालामुखी।

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'



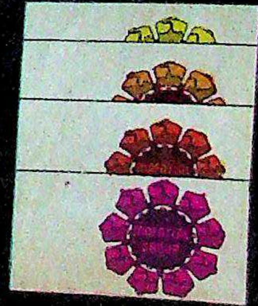
क

प्रकार का
होती है।
न, इत्यादि
रमावश्यक
ी पूर्ति की
र व बाहर
।





सबका आराध्य है,
पूजन में, अर्चन में,
आत्म चिंतन
मनन में,
अंधेरे में, प्रकाश में,
जीवन की प्रेरणा में,
इन सभी के मूल में
सूर्य है.
सूर्य चक्र चल रहा...
सूर्य है जल रहा.



चेहरे पे मुस्कान व भरकर दिल में प्यार सहज बना सकते हैं बेडेकर अचार

जब आप तैयारशुदा [रेडी मिक्स्ड पिकल स्पाइसेज] अचार का मसाला खरीदती हैं तो मत समझिए कि यह केवल मसाला है अचार का। लेकिन यह तो आपके लिए एक नुस्खा [फ़ॉर्मूला] है अपने ही घर में, बगीचे से लाये गये हरे-हरे कच्चे आमों व पके, सुनहले नींबूओं से अचार बनाने का। हर पैक के साथ दिये निर्देशों का पालन कीजिए और बढ़िया अचार बनाइए। फिर आप और आपके परिवार के लोग अचार के साथ उंगलियाँ न खा जाएँ तो कहना

और हाँ, आप भी ये अचार उतना ही बढ़िया खुद बना सकती हैं, जितना बेडेकर बनाते हैं...और वह भी बड़ी आसानी से हँसते-मुसकराते! बेडेकर के 'रेडी मिक्स्ड पिकल स्पाइसेज' [अचार का मसाला] ले आइए और आप खुद ही अचार बनाकर देखिए।



बेडेकर

बम्बई-४



दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

लालबहादुर शास्त्री मार्ग, भांडुप, बंबई-४०० ०७८

केबल : 'लकी' भांडुप फोन : ५८४३८[illegible]

१. **नानफेरस यूनिट**

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीत, स्ट्रिप और फाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल



एलाय और कास्टिंग विभाग :
एंटिफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स
गनमैटल्स और ब्रोन्जेस, ब्रेजिंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स
फाइन जिंक डाइकास्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम
बेस्ड डाइकास्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज राड्स सालिड
कोर्ड, फिनिश्ड कास्टिंग रफ और मशीन्ड।

२. **फेरस यूनिट :**

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयर्न और स्पेशल स्टील कास्टिंग्स
मेलिएबल आयर्न कास्टिंग्स
आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० आइ० एम० के पेसिफिकेशन्स तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता के अनुसार सप्लाई किये जाते हैं।



हिन्दी में एक नवीन प्रयोग

पहली बार एक सांस्कृतिक-आध्यात्मिक मासिक का प्रकाशन

प्रकाशितमन

प्रकाशित मन के प्रत्येक अंक में आत्मोन्नति प्रेरक लेखों और रोचक प्रसंगों के साथ भारत के सांस्कृतिक वैभव, प्राकृतिक सौन्दर्य की झलक तथा तीर्थों, पर्यटन केन्द्रों की सचित्र झांकी प्रस्तुत की जाती है !

– मूल्य : प्रति अंक ३ रुपये, वार्षिक ३० रुपये –

ग्रीष्म ऋतु के अवसर पर
मई के मध्य में प्रकाशित हो रहा है
प्रकाशितमन का पहला विशेषांक

पर्वतीय सुषमा अंक

इस अंक में भारत-भर के पहाड़ी पर्यटन केन्द्रों का सचित्र परिचय प्रस्तुत होगा।

ग्रीष्म ऋतु में भ्रमण का कार्यक्रम बनाने से पूर्व इस विशेषांक की सलाह अवश्य लें।

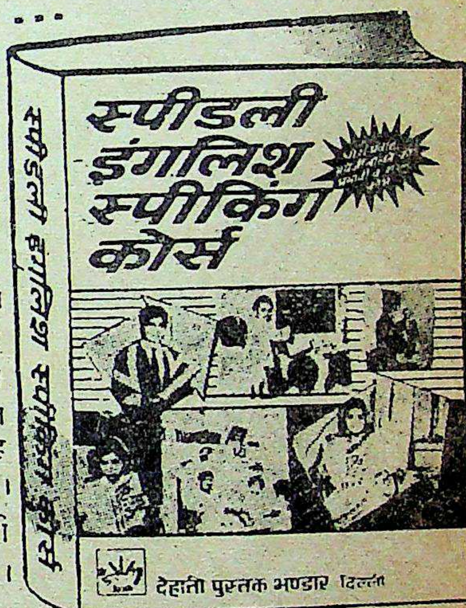
इस विशेषांक का मूल्य ५ रुपये है। वार्षिक मूल्य ३० रुपये भेजकर इस विशेषांक सहित आगामी १२ अंक घर बैठे प्राप्त कर सकेंगे।

प्राप्ति स्थान–

प्रकाशित मन कार्यालय, १६४१ दरीबा कलां, दिल्ली-६

क्या आप अंग्रेज़ी बोलने व लिखने में अटकते हैं?

तो बिना झिझक, धारा प्रवाह अंग्रेज़ी बोलने के लिये पढ़ें ...



इसे क्यों और जरूर पढ़ें !

यह कोर्स वार्तालाप शैली में वाक्य अंग्रेज़ी में और शब्द देवनागरी में हैं। अंग्रेज़ी बोलने में प्रयोग होने वाले लगभग 2750 अंग्रेजी शब्द तथा 3000 आम वार्तालाप के प्रभावशाली वाक्य जो आपको निश्चित रुप से धारा-प्रवाह अंग्रेजी बोलने में सहायक सिद्ध होंगे। भारत में पहली बार नई पद्धति से अंग्रेजी सिखाने वाला ग्रन्थ।



मूल्य 18/-
डाक खर्च 2/-

अब 296 पृष्ठों की बजाए 408 पृष्ठों में सजिल्द संस्करण

सभी शिक्षण संस्थाओं द्वारा अपनाया गया कोर्स। 5 से अधिक प्रतियां एक साथ मंगाने पर $12\frac{1}{2}$% विशेष रियायत तथा डाक-खर्च माफ़

48 पृष्ठों की अंग्रेज़ी-हिन्दी डिक्शनरी भी

केवल सजिल्द संस्करण ही खरीदें अजिल्द नहीं।



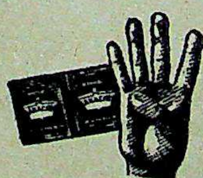
देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाज़ार, देहली-110006. टेलीफ़ोन-261030

"आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे! सर बुरी तरह दुख रहा है।"

"मेरी मानो तो एनासिन ले लो।"

जल्द आराम पाने के लिए तेज़ असर और विश्वसनीय एनासिन लीजिए

तेज़ असर-एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है। विश्वसनीय-एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है। एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।



तेज़ असर और विश्वसनीय
मॅनर्स
एनासिन*

*Regd. TM

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
जैफ़ी मॅनर्स के एनासिन विभाग की ओर से।

A 22-7(H)

उसे देखिये

* उसकी नाक में खुजलाहट रहती है और गला सर्दी से जकड़ा रहता है।
* वह बिस्तर पर उठ बैठता है, या सीधे खिड़की की ओर भागता है।
* उसे घुटन महसूस होती है और सांस लेने में हांफता है।
* उसकी श्वास थोड़ी और जल्दी-जल्दी चलती है।
* उसकी उच्छ्वास भारी और लंबी होती है।
* खांसते समय वह पसीने से तरबतर हो जाता है।
* उसके होंठ पीले पड़ गये हैं।
* उसका चेहरा बहुत-कुछ कहता है।

यह दमा है!



चिंता और दयनीयता की साकार मूर्ति
आंसू बहाने मात्र से क्या होगा ?
इस मूर्ति को आनंद और आशा की मूर्ति में बदल डालिये।

सलाह लीजिये :

कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा वैद्य-वाचस्पति

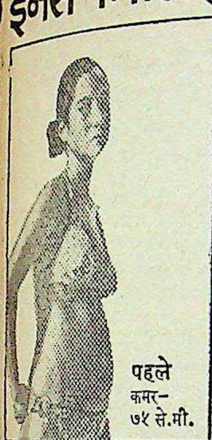
KALPA PHARMACY

NAVRATNA CHOWK
JULLUNDUR CITY. Pb.

PHONE: 2401 • GRAMS: KALPAPHAR

(कृपया अंग्रेजी अथवा हिन्दी में पत्र-व्यवहार कीजिये।)

इनसे मिलिए ! इन्होंने अपनी कमर कम की है.



पहले
कमर–
७५ से.मी.



बाद में
कमर–
६७ से.मी.

"अब मेरी कमर फिर से पतली हो गयी है... मैंने सिर्फ़ ७ दिनों में अपनी कमर ७ से.मी.कम की और ५ किलो वज़न घटाया, इसके लिए न तो मुझे खाने में परहेज़ करना पड़ा और न ही कठिन व्यायाम करने पड़े—"
ये कहना है जे.सी.का.

...ही आसान

...व्यायाम करने की जरूरत. न भोजन में परहेज करने की. जब ...लिये, हर दिन सिर्फ़ कुछ ही मिनटों तक मजे मजे से कसरत ...– चाहे सुबह हो या शाम (भले ही आप टी वी क्यों न देख ...हे). इससे तुरंत आपके शरीर से मोटापा घटना शुरू हो जाता है.

...का असर

...सिस्टम मुख्य रूप से आपकी कमर को कम करता है. वजन ...कमर की ही वजह से आप अपनी उम्र से अधिक बढ़े ...ते हैं. आपकी शारीरिक रस-प्रक्रिया में तेजी लाकर यह ...शरीर में जमा कॅलोरी की मात्रा को जलाने में सहायक होता ...शरीर में पानी की अतिरिक्त मात्रा का विसर्जन करता है ...दबाये बिना उसपर संयम रखता है. इससे आपकी शक्ति ...आती है और आप चुस्त व फुर्तीले नजर आते हैं. हमारी ...है कि पांच दिनों में इसके परिणाम आप खुद ब खुद देख ...के १० ही दिनों में आप हमेशा की तरह जवान और ...नजर आने लगेंगे.

...भोजन में परहेज की ज़रूरत नहीं—जो जी में आये, खाइये (...सिर्फ़ खाने की ही चीज़ें खाइये)

...सिस्टम की बदौलत अब आपको खाने में परहेज करने की कोई ...नहीं. आप अपना मनपसन्द खाना खा सकते हैं. लेकिन हाँ, ...योग्य चीजें ही खायें और पेटभर खायें. उसके बाद ...सौना सिस्टम से कसरत करने पर आप चुस्त रहेंगे और ...नहीं लगेंगे... न खाना कम करने की जरूरत और न ही ...करने की.

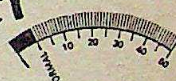
सौना सिस्टम की बदौलत अपनी कमर का मोटापा कम करना उतना ही आसान है जितना क ख ग पढ़ना।



इसके परिणाम रहें हमेशा कायम

जब आपका वजन सामान्य हो जाय तो अपनी सुविधानुसार रोजाना कुछ ही मिनटों तक व्यायाम करने पर आप चुस्त रहेंगे. आपका मोटापा भी नहीं बढ़ेगा और आपका वजन कम-ज्यादा नहीं होगा.

मुफ़्त



कमर की चर्बीनापक यंत्र

यदि आप घरेलू आज़माइश कूपन को भरकर
१० दिन के अन्दर भेज दें

१०-दिवसीय मुफ़्त घरेलू आज़माइश कूपन

मेल ऑर्डर सेल्स प्रा. लि. (ऑर्डर डिपा. SS-7-H) N\-19
१५ मैथ्यू रोड, बम्बई-४०० ००४.

कृपया सौना सिस्टम का सम्पूर्ण कोर्स १०-दिवसीय मुफ़्त घरेलू आजमाइश के लिए भेजें. यदि इस अवधि के भीतर मेरा मोटापा २ से ७ से.मी. तक कम न हुआ तो मैं आजमाइश की अवधि समाप्त होने से पूर्व पूरा सामान तुरंत धन-वापसी (डाक-व्यय व पैकिंग खर्च घटाकर) के लिए भेज दूंगा.

कृपया सही वर्ग में निशान ☑ लगायें.

☐ रजिस्टर्ड पोस्ट पार्सल द्वारा भेजें. मैं ८९ रुपये (साथ ही डाक-व्यय व पैकिंग खर्च के ६ रुपये) चैक/ड्राफ्ट/पोस्टल ऑर्डर/मनी-ऑर्डर नं.............. दि.................... द्वारा भेज रहा हूं.

☐ वी.पी.पी. द्वारा भेजें. मैं डिलीवरी लेते समय डाकिये को ९५ रुपये देने का वादा करता हूं.

नाम..
पता..
....
हस्ताक्षर.....................................



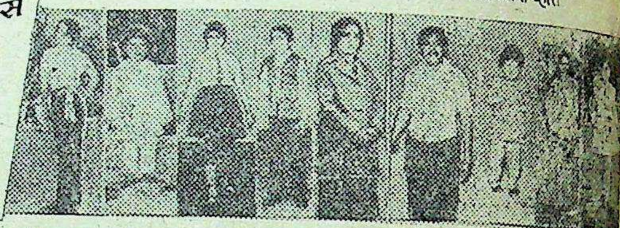
घर बैठे

टेलरिंग सिखाने वाला प्रभावी व सरल कोर्स

रैपिडैक्स होम टेलरिंग कोर्स

लेखिका – महिला विषयों की विशेषज्ञा श्रीमती आशारानी व्होरा





बड़े साइज के
456 पृष्ठ
मूल्यः 24/-
डाकखर्च 4/-

गृहिणियो !

दर्जियों जैसी सिलाई-कटाई घर बैठे कीजिए और सिलाई के भारी खर्च से छुटकारा पाइए

न किसी टेलरिंग स्कूल में जाने का झंझट और न ही अधकचरी जानकारी वाली पुस्तकों में भटकने की आशंका – लेकिन आवश्यकता है तो बस एक रैपिडैक्स होम टेलरिंग कोर्स की।

- विवाह में देने योग्य शानदार उपहार
- फालतू समय में आमदनी बढ़ाने में महिलाओं का साथी
- हर घर के लिए आवश्यक निर्देशिका
- टेलर मास्टरों के लिए सन्दर्भ ग्रंथ
- सिलाई-कला की प्रशिक्षार्थियों के लिए सम्पूर्ण कोर्स

पुस्तक के मुख्य आकर्षण

- **मनमोहक फ्रॉक :** चुन्नटदार फ्रिल व स्मॉकिंग वाले ए-शेप, एम्ब्रेला कट, बेबी योक-फ्रॉक, कोट-फ्रॉक, मन-फ्रॉक वनपीस प्लीटेड-फ्रॉक, स्कर्ट-फ्रॉक एवं बहुत सी अन्यान्य।
- **लुभावनी मैक्सियाँ :** सादी, चुन्नटदार व फ्लेयर वाली फुल मैक्सियाँ। ए-शेप, फ्लेयर व कलीदार स्कर्ट मैक्सियाँ।
- **सलोनी नाइटी, नाइट सूट व गाउन :** सादी व फ्रिल वाली नाइटी। सादे, डिज़ाइनदार व बुनोसेशा टाइप नाइट सूट, गाउन और ड्रेसिंग-गाउन।
- **मनोहर टॉप्स :** पैंट, बेलबॉटम, जीन, पैरेलल स्कर्ट तथा लहंगे के साथ पहनने के लिए शर्ट-टॉप, पोलका-टॉप, लहंगा-टॉप, गांठ वाली चोलीनुमा टॉप, ब्लाउजनुमा टॉप, मैटरनिटी टॉप, मॉड टॉप्स एवं जीन जैकेट आदि।
- **आपके नन्हे-मुन्नों के लिए :** प्यारे खिलौने व नैपकिन से लेकर बिब, फीडर, बानेट, झबला, ट्यूनिक, रोमन-सूट, बाबा-सूट, कम्बीनेशन-सूट, मैटिनी कोट, ... गरारा और शरारा सूट, लहंगा सूट, सलवार-कुरता, ... ब्लाउज, स्कूल यूनीफार्म, नाइट-सूट, नाइटी आदि।
- **युवक-युवतियों के लिए :** पैंट, बेलबॉटम, पैरेलल सूट, सलवार-सूट, नाइट-सूट, शर्ट, बुशशर्ट, कुरता व जैकेट आदि।
- **गृह-सज्जा के लिए :** पर्दे, कुशन, सोफा-कवर, दीवान-कवर, मूढ़ा-कवर आदि की सिलाई।
  इसके अलावा सिले कपड़ों में सुधार (आल्टरेशन), पुराने कपड़ों की मरम्मत तथा पुरानी बड़ी पोशाकों से बच्चों की नई पोशाकें बनाना।
- **सामान्य जानकारी :** सिलाई मशीन व उसके कल-पुर्जों की जानकारी व मरम्मत से लेकर कटाई-सम्बन्धी विस्तृत निर्देश — विभिन्न डार्ट्स, चुन्नट्स, प्लीट्स, आस्तीन, ... जेब, कॉलर, योक, फेसिंग, अस्तर, इलास्टिक, ... हुक आदि तथा सभी टाँके जिन्हें हर स्तर पर चित्रों की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

घर-भर के कपड़ों की सिलाई
रैपिडैक्स होम टेलरिंग कोर्स ने,
घर-घर सिखाई



पुस्तकें वी॰पी॰पी॰ द्वारा मंगाने का पता– फोन: 529314, 265403, 264151

पुस्तक महल (N) खारी बावली, दिल्ली-110006



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
सहसंपादक
सुरेश सिन्हा
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक .... महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक ५

इस अंक में

मई १९७९

चित्रसज्जा : ओके, शेणै, ठाकोर राणा, विष्णु भटनागर, सतीश चव्हाण, रानी डिसूज़ा, प्रमोद यादव, सोनी, प्रमोद गणपत्ये।

आवरण-चित्र : नासिक.....शिवाजी तुपे

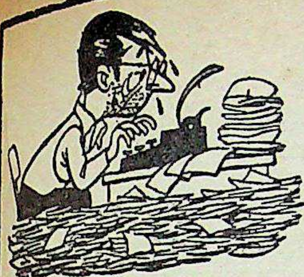


लोकैषणा से परे

सन १९५२ में इस्रायल के प्रथम राष्ट्रपति कैम वीजमान की मृत्यु के बाद उस देश का राष्ट्रपतित्व ग्रहण करने की प्रार्थना आइन्स्टाइन से की गयी। उन्होंने अपनी स्वभावगत विनम्रता और स्पष्टवादिता के साथ उस निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया और इस्रायली राजदूत अब्बा एबान से कहा—'मुझे प्रकृति के बारे में तो थोड़ा-सा मालूम है, मगर मनुष्य के बारे में लगभग कुछ नहीं मालूम है.....हमारे राष्ट्र इस्रायल के इस निमंत्रण ने मेरे हृदय को गहरा छुआ है और मुझे एक साथ उदास और लज्जित कर दिया है, क्योंकि मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।

'जीवन भर मेरा वास्ता भौतिक पदार्थों से रहा है; मुझमें मनुष्यों से समुचित व्यवहार करने और सरकारी कामों को निभाने की न स्वाभाविक क्षमता है, न अनुभव। अगर बढ़ती उम्र मेरी शक्ति को सोखने न लगी होती तो भी सिर्फ ये कारण ही मुझे इस उच्च पद के लिए अनुपयुक्त ठहराने के लिए काफी हैं।' —'इस्रायल न्यूज लेटर' से





पत्र-वृष्टि

अप्रैल अंक में प्रकाशित लेख 'हिंदी का प्रथम दैनिक' में पृष्ठ ५५ पर श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी लिखते हैं–'.....इसके बाद राजा राममोहन राय इंग्लैंड गये। वहां से लौटने पर उनका सामाजिक बहिष्कार हुआ और उन्होंने ब्राह्म समाज की स्थापना की तथा फारसी में "मीरात उल अखबार" निकाला।" वास्तविकता यह है कि राजा राममोहन राय सतीप्रथा-निषेध कानून के विरुद्ध 'धर्मसभा' (जिसका नेतृत्व राधाकांत देव और पं. शशधर तर्कचूडामणि जैसे कट्टरपंथियों के हाथों में था) द्वारा दायर की गयी अपील का जवाब प्रीवी कौंसिल के समक्ष स्वयं उपस्थित होकर देने के लिए १५ नवंबर १८३० को 'द अलबियन' नामक जहाज से इंग्लैंड गये थे। वहीं उनके जीवन के अंतिम तीन वर्ष बीते और स्टेपलटन ग्रोव में (ब्रिस्टल के पास) कुमारी हेयर के निवास-स्थान पर शुक्रवार २७ सितंबर १८३३ को अर्धरात्रि में २·२५ बजे उनकी इहलीला समाप्त हुई। ब्राह्म-समाज की स्थापना उनके इंग्लैंड-प्रस्थान से दो वर्ष पूर्व २० अगस्त १८२८ को हो चुकी थी। फारसी साप्ताहिक 'मीरात उल अखबार' का प्रकाशन १२ अप्रैल १८२२ को प्रारंभ हुआ था, जो राममोहन राय के इंग्लैंड प्रस्थान से आठ वर्ष पूर्व की घटना है।

ऐसे जानकारी पूर्णलेख में ऐसी भ्रांत बातों का समावेश खेदजनक है।

–कन्हैयालाल राजपुरोहित, जोधपुर-१

[२]

श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने अपने लेख 'हिंदी का प्रथम दैनिक' (अप्रैल अंक) में जो सुधार सूचित किये थे, वे उसी अंक में पृष्ठ १४ पर एक टिप्पणी के रूप में छपे थे। विज्ञ पाठकों ने देखा होगा कि इन सुधारों के बावजूद लेख में एक जगह दो परस्पर-विरोधी कथन हैं। पृष्ठ ५५ पर पहले कहा गया है कि 'संवाद कौमुदी' की स्थापना ताराचंद दत्त ने की; बाद में उसी पृष्ठ पर राजा राममोहन राय को उसका स्थापक कहा गया है। संपादन के समय हम यह बात लेखक के ध्यान में नहीं ला सके। परंतु अभी कुछ दिन पूर्व श्री सुकुमार मित्र के एक पुराने लेख में इसका परिहार हमें मिला। 'संवाद कौमुदी' की स्थापना ताराचंद दत्त ने ही की थी और भवानीचरण बंद्योपाध्याय उसके संपादक थे। उसमें राजा राममोहन राय के भी लेख छपते थे। बाद में राममोहन राय ने उसे

HICKY's
BENGAL GAZETTE;
OR THE ORIGINAL
Calcutta General Advertifer.

A Weekly Political and Commercial Paper, Open to all Parties, but influenced by None,

From Saturday December 9th to Saturday December, 16th 1780. No. [XLVII]

भारत के सर्वप्रथम समाचारपत्र 'बंगाल गज़ट' या 'हिकीज़ गज़ट' का नामशीर्ष (मास्टहेड)–बंगला मुद्रण की द्विशतवार्षिकी पर आनंद बाजार पत्रिका द्वारा प्रकाशित पुनर्मुद्रण में से। मूल आकार इससे दुगुना बड़ा था। बीच में छोटे अक्षरों में छपी यह पंक्ति विशेष ध्यान देने योग्य है–'ए वीक्ली पोलिटिकल एंड कमर्शल पेपर, ओपन टु आल पार्टीज़, बट इन्फ़्लुएन्स्ड बाइ नन'। 'हिकीज़ गज़ट' का जिक्र पिछले अंक के लेख 'हिंदी का प्रथम दैनिक' में हुआ था। **[सौजन्य : पू. ना. शास्त्री]**

अपने हाथ में ले लिया था। —संपादक

०००

हारसिंगार (निक्टेन्थिस अर्बोरट्रिस्टिस) पर वैद्य रामनारायण शर्मा का पत्र (अप्रैल अंक)। इस वनस्पति की होमियोपैथिक प्रूविंग डा. अघोरचंद्र भादुड़ी ने एवं बाद में डा. शरच्चंद्र घोष ने सन १९०० में की। डा. घोष की प्रूविंग व प्रयोग से प्रभावित होकर विश्वविख्यात ब्रिटिश होमियोपैथ डा. जान एच. क्लार्क ने इसे अपनी अमर कृति 'डिक्शनरी आफ मेटिरिया मेडिका' में सम्मिलित किया। फिर अमरीका के डा. विलियम बोरिक ने भी इसे अपनी विख्यात 'मेटिरिया मेडिका' में शामिल किया।

हारसिंगार का होमियोपैथिक प्रयोग सरल है। होमियोपैथी की दुकान से मूल अर्क या 3× शक्तिक्रम प्राप्त करके आवश्यकतानुसार तीन अथवा चार घंटे या अधिक के अंतर से इसका सेवन किया जा सकता है। मूल अर्क की मात्रा २ से ५ बूंद तक है। साइटिका में कई चिकित्सक १० से २० बूंद तीन बार लेने की सलाह दिया करते हैं। इसे थोड़े-से जल में लेना चाहिये। इस औषध से शरीर में पित्तलक्षण-युक्त बुखार जलन व बेचैनी के लक्षणों सहित–विशेषतः सवेरे–हो, तो तेजी से आराम होता है। मूल अर्क को समपरिमाण तेल में मिलाकर साइटिका में मालिश भी कर सकते हैं।

—डा. प्रणवकुमार बनर्जी,
पो. पेंड्रा, बिलासपुर. म. प्र.

०००

आप 'अगला नवनीत' में कवियों के नाम क्यों नहीं देते? क्या कवियों को आप दूसरे दर्जे के रचनाकार मानते हैं? नवनीत में

जैसी प्रतिष्ठित, गरिमामय पत्रिका के लिए क्या यह उचित है।

–रा. ब. सिंह, लश्कर, ग्वालियर, म. प्र.

०००

'श्रीगोपाल नेवटिया प्रतियोगिता' में तृतीय पुरस्कार प्राप्त लेख (श्रीमती मणि आनंद का) अप्रैल अंक में पढ़ा। यह तो ठीक है कि बड़े उद्योगों को लघु उद्योगों से सहयोग करके चलना चाहिये। परंतु दो बातों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये–१. क्या तीव्रता से विकसित किये गये कुटीर/लघु उद्योगों के सामान तुरंत बिक जायेंगे तथा २. क्या गांवों में काम कराने वाले मन लगाकर काम करेंगे? प्रो. जे. के. मेहता की पुस्तक के जिस अध्याय से लेखिका ने उद्धरण दिया है, वहां ये बनियादी बातें उठायी गयी हैं। **–कु. मंजु अग्रवाल, प्रयाग**

०००

श्री सुंदरलाल बहुगुणा का लेख 'गंगातट पर प्रेरणा-गोमुख' (मार्च अंक में) स्वामी चिदानंदजी के बहुविध व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश डालता है। हम सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए स्वामीजी का आश्रम वास्तव में प्रेरणा का गोमुख ही है। शारीरिक, मानसिक थकावट आश्रम के वातावरण में प्रवेश करते ही मिट जाती है। एक दिन मैं आश्रम के अन्नपूर्णा हॉल में भोजन कर रहा था। किसी विचार-प्रसंग में स्वामी चिदानंदजी का स्मरण आ रहा था कि कानों में परिचित स्वर-लहरी गूंज उठी–'धूमसिंहजी, कब आये?' सामने नजर पड़ी तो पाया कि पाकशाला के द्वार पर खड़े स्वामीजी भोजन कर रहे आश्रमवासियों और अतिथियों पर प्रेमवृष्टि कर रहे हैं। वे प्रवास से अभी-अभी लौटे थे और लौटते ही सबसे पहले पाकशाला का निरीक्षण करने आ गये थे। मैं कुछ कह नहीं पाया; लेकिन जो कुछ प्राप्त हुआ, उससे भोजन में अमृत-तुल्य रस का स्वाद तो आया ही, मन-प्राण भी सराबोर हो उठे। **–धूमसिंह नेगी, जाजल, टिहरी-गढ़वाल, उ. प्र.**

०००

मार्च अंक के पृष्ठ ७४ पर छपे लघु प्रसंग में श्री श्याम मनोहर व्यास ने उदयपुर-नरेश स्व. महाराणा फतहसिंहजी को अनपढ़ बताया है। डिंगल और राजस्थानी का अच्छा ज्ञान होने के ही कारण महाराणा फतहसिंहजी श्री केसरीसिंह बारहठ की ओजस्वी कविताएं सुन-समझकर दिल्ली-दरबार में जाने से विरत हुए थे। इसलिए वे 'अनपढ़' तो निश्चय ही नहीं थे। हां,

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से: एक वर्ष : ६० रु., दो वर्ष : १०५ रु., तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३०० रु.; एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

अप्रैल अंक में श्री जाहिद इकबाल के लेख 'इकबाल की जिंदगी के आखिरी सफे' में पृष्ठ १०४ पर महाकवि इकबाल की लिखावट और हस्ताक्षर का यह ब्लाक छपा था। इसमें फारसी का यह शेर है :

सुख़न अय हमनशीं तू मन चे ख़्वाही
कि मन बा ख़्वेश दारम गुफ़्तगूए।

(ऐ मेरे हमनशीं, तुम मुझसे क्या चाहते हो? मैं तो खुद से बातें करता हूं।)

अंग्रेजी से वे जरूर अनभिज्ञ थे।

—नेमीचंद भराड़िया, हैदराबाद-५००१२

०००

मार्च का अंक विशेष आकर्षक था। किंतु 'सेवा-समारोह' निश्चय ही उस अंक की उत्कृष्ट रचना रही। वह लेख पढ़ने के तुरंत बाद मेरे एक मित्र ने उसमें आये 'चेयर्स' और 'पेयर्स' शब्दों से प्रभावित होकर अभिजात वर्ग की विशेषताओं को इस तरह पद्यबद्ध कर डाला :

सामने बने ये जो पार्क के चेयर्स हैं,
अभी बैठे जो उन पर पेयर्स हैं।
एक की बात ही नहीं यहां,
हर बड़े फर्म में इनके शेयर्स हैं।
सभ्य लोग हैं ये इसीलिए इनके,
एक के बाद एक कई लेयर्स हैं।
ये नहीं तो इनके रिश्ते-नाते,
हर बड़े शहर के मेयर्स हैं।
आप जो भी काम करें मामूली है
किंतु इनके रफ़ भी फेयर्स हैं।
कार जनता की हो सकती है
किंतु हर कार के यही गेयर्स हैं।

—कु. शुभा सिंह, बिलासपुर, म. प्र.

०००

'ख्रुश्चोव की जीवन-सांझ' नामक लेख के प्रथम पैराग्राफ के एक शब्द पर मेरी नजर अटकी—'फूल्स कैप' इस शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में मैंने कहीं पढ़ा था कि इंग्लैंड में १७ वीं सदी में ओलिवर क्रामवेल कागजों पर जल चिह्न में शाही निशान के बदले 'फूल्स कैप' (मूर्ख की टोपी) अंकित करवाने लगे। वही 'फूलस्कैप' बाद में ('फुल स्केप') हो गया, जो अब तक प्रचलन में है। क्या 'फूल्स कैप' रूप आपके यहां गलती से मुद्रित हो गया? **—राकेशकुमार सिंह, गया, बिहार**

* सही शब्द 'फूल्स कैप' ही है, जो हिंदी में 'फुलिसकेप' अथवा 'फुल्स केप' हो गया है। देखिये, ज्ञानमंडल का बृहत् हिंदी कोश।

—संपादक

०००

संदर्भ : नवनीत फरवरी १९७९ के अंक में छपा श्री प्यारेलाल श्रीमाल का लेख 'सुमधुर भजनों के सृष्टा स्वामी ब्रह्मानंद'। मई

* ब्रह्मानंद के नाम से दो भक्त कवि हिंदी में हुए हैं—१. गुजरात के स्वामिनाराणण संप्रदाय के श्री ब्रह्मानंद स्वामी तथा २. पुष्कर (अजमेर) के निवासी श्री ब्रह्मानंदजी। श्री श्रीमालजी ने दोनों कवियों को एक ही मानकर गलत बातें लिख दी हैं। उन्होंने काव्यपक्ष पुष्कर-निवासी श्री ब्रह्मानंदजी का लिया है और जीवनी-पक्ष स्वामिनारायण संप्रदाय के श्री ब्रह्मानंद स्वामी का।

• मोतीलालजी फोजदार द्वारा संपादित 'ब्रह्मानंद काव्य', 'श्री ब्रह्मानंद स्वामीनु जीवन-चरित्र (पुराणी नारायण प्रियदासजी)', 'गुजरात के संतों की हिंदी वाणी (डा. अम्बाशंकर नागर)', 'हिंदी ना विकासमां गुजरातीओ नो फालो (जनकशंकर दवे)' तथा 'वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास (दुर्गाशंकर शास्त्री)' आदि ग्रंथों के अनुसार, गुजरात के स्वामिनारायण संप्रदाय के श्री ब्रह्मानंद स्वामी के जन्म और मृत्यु की तिथियां यों हैं :

जन्म : महा शुक्ला ५, १८२८ वि. संवत;
मृत्यु: ज्येष्ठ शुक्ला १०, १८८८ वि. संवत।

इस दृष्टि से श्री श्रीमालजी की दी हुई जन्म एवं मृत्यु की तिथियां भ्रांतिपूर्ण हैं।

स्वामिनारायण संप्रदाय के श्री ब्रह्मानंद स्वामी ने दस के करीब ब्रजभाषा-हिंदी ग्रंथों की रचना की थीं, जिनमें से प्रमुख हैं—ब्रह्मविलास, सुमतिप्रकाश, नीतिप्रकाश, विवेकचिंतामणि, उपदेशचिंतामणि, वर्त्तमानविवेक, संप्रदायप्रदीप तथा छंदरत्नावली। इनके अलावा उन्होंने लगभग



पश्चिम बंगाल की कुंआरी राज्यपाल पद्मजा नायडू कुंआरे मुख्यमंत्री श्री अजय मुखर्जी को पद की शपथ दिलाते हुए। ..... मार्च अंक का लेख 'चिरकुमार भारतीय राजनीति के' पढ़कर एक कृपालु पाठक द्वारा प्रेषित।

८,००० स्फुट पदों की भी रचना की थी। इन श्री ब्रह्मानंद स्वामी के पद हिंदीभाषी प्रदेशों में भी प्रचलित हैं और आकाशवाणी के केंद्रों से भी प्रसारित होते हैं। वैसे इसका निर्णय करने में बड़ी कठिनाई पेश आती है कि कौन भजन किन ब्रह्मानंदजी का है; क्योंकि दोनों के ही पद-भजनों में केवल 'ब्रह्मानंद' नाम आता है। यों भी भक्त, भावक या श्रोता इन बातों का विवेचन करने कहां बैठेगा? उसे तो बस पद के गायन या श्रवण से प्राप्त आनंद से मतलब है।

स्वामिनारायण संप्रदाय के श्रीब्रह्मानंद स्वामी पिंगलशास्त्र तथा संगीतशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला में इनका गहन अध्ययन किया था। **—ऊजम पटेल, अहमदाबाद-९**



• नारायण दत्त •

जयप्रकाशजी को हम क्यों जिलाये रखना चाहते हैं

जयप्रकाशजी को जिलाये रखने की चाह के पीछे कई कारण हैं, कई तरह के कारण हैं।

जयप्रकाशजी ने इस देश की और इसकी सीमा के बाहर की दुनिया की सतत और सुदीर्घ हितचिंता तथा हित-साधना की है; और इमर्जेन्सी का घटाटोप अंधकार तो मुख्यत: उन्हीं के कारण छंटा। यह उनका हम पर महान ऋण है। हमारा यह उपकर्ता महापुरुष रोगमुक्त होकर सौ साल जीने के मानवीय अधिकार का उपभोग करे और आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान एवं हमारी प्रार्थनाएं इसमें सहायक हों—यह चाह हमारी हार्दिक कृतज्ञता की सहज अभिव्यक्ति है। कृतज्ञता का यह भाव हमें खुद अपनी नजरों में गिरने से बचाता है और हमारे राष्ट्रीय जीवन को संस्कारिता का पुट देता है, जिसकी भयंकर कमी आज देश में समस्त स्तरों पर नजर आती है।

जयप्रकाशजी हमारे स्वतंत्रता-संग्राम के वीरगाथा-काल के एक हीरो हैं। उनकी उपस्थिति उस युग की याद को जिलाये रखती है, जब इस देश में उच्च आदर्शवाद की लहर बार-बार आती रही और माटी के पुतलों में चैतन्य भरती रही। जयप्रकाशजी को जिलाये रखने की चाह इसका धुंधला संकेत है कि आज की तमाम क्षुद्राशयता और सिनिसिज़्म के बावजूद आदर्शवाद की दबी चिनगारियां हमारे राष्ट्रीय मानस में दबी पड़ी हैं और अपने अनजाने में ही हम चाहते हैं कि वे फिर से दहक उठें और हमारे राष्ट्रीय जीवन के मलों को जलाकर नष्ट करें।

जयप्रकाशजी, कम से कम पिछले दो वर्षों में, हमारी सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चिंतन-परंपरा की युगों-पुरानी एक कल्पना के साथ जुड़ गये हैं। वह है 'राजगुरु' की कल्पना। राजमुकुटों से मंडित मस्तकों को अपने चरणों में बरबस झुकाने वाला चक्रवर्ती सम्राट् भी राजगुरु के चरणों में श्रद्धा से मस्तक नंवाता है। हमने राम पर वशिष्ठ को, चंद्रगुप्त पर चाणक्य को और शिवाजी पर समर्थ रामदास को रखा है। मूलतः शायद यह वर्ण-व्यवस्था का तार्किक परिणाम था; शायद राजगुरु-पद क्षत्रिय पर ब्राह्मण के वर्चस्व की राजनैतिक अभिव्यक्ति था। मगर आगे चलकर कम से कम चिंतन

शे

के स्तर पर तो यह इस विचार का प्रतीक बन गया कि राज्यशक्ति पर नैतिक चेतना और प्रज्ञा का अंकुश अत्यावश्यक है।

जयप्रकाशजी को जिलाये रखने की चाह के पीछे आम भारतीय की यह चाह भी है कि जयप्रकाशजी राजगुरु बनकर 'जनता'-सरकार का नीति-नियंत्रण और नैतिक नियमन करें। क्या जयप्रकाशजी की निजी लाभ-लोभ से मुक्त जीवनव्यापी राजनैतिक सक्रियता ने यह सिद्ध नहीं कर दिया है कि वे राजगुरु-पद के सर्वथा अधिकारी हैं?

मगर यहीं हमारा बौद्धिक आलस्य और राजनैतिक अकर्मण्यता भी प्रकट हो जाते हैं। राजगुरु राजतंत्र की चीज है। आज के प्रतिनिधि-मूलक, पार्टीबद्ध संसदीय प्रजातंत्र में बड़े से बड़ा व्यक्ति भी मंत्रिमंडल के बाहर रहते हुए सरकार की नीतियों और कार्यों पर अंकुश नहीं रख सकता; रखने की कोशिश करेगा तो मंत्रिमंडल से उसका टकराव होगा। क्या स्वयं गांधीजी को अपने ही पट्टशिष्यों की सरकार के विरुद्ध अनशन नहीं करना पड़ा था? और क्या यह भी सच नहीं है कि उस बल-परीक्षा में देश का आम राजनैतिक जनमत 'राजगुरु' के नहीं बल्कि 'राजाओं' के साथ था? यह बात और है कि गांधीहत्या ने (चर्चिल के मुहावरे में) ब्लैक बोर्ड को ही तोड़ दिया और उस पर लिखे सवाल को हल करने की विवशता समाप्त कर दी। यह था हमारे युग के एकमात्र 'राजगुरु' का हश्र। (माओ अथवा खोमेनी को राजगुरु नहीं कहा जा सकता; उनकी सही उपाधि है—सर्वाधिकारी। उनमें से एक सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का सूत्रधार था; दूसरा इस्लामी गणतंत्र का कर्णधार है—सरकार के सिर पर बैठी असली सरकार।)

प्रतिनिधि-मूलक संसदीय प्रजातंत्र की बुनियादी संकल्पना ही यह है कि मतदाता राजनैतिक शक्ति का असली मालिक और अंतिम नियामक है। पुराने शब्दों में, राजा और राजगुरु दोनों वह खुद है। आखिर वही तो मतदान द्वारा इस या उस पार्टी का राज्याभिषेक करता है। मतदान की रस्म द्वारा वह अपना राजत्व कुछ देर के लिए इसको या उसको सौंप सकता है। मगर अपना राजगुरुत्व क्षण-भर के लिए भी छोड़ नहीं सकता। छोड़ता है तो अपनी चिता स्वयं चिनता है।

कैसी विडंबना है यह कि हम जिन जयप्रकाशजी को स्वस्थ और रोगमुक्त कराकर उनके हाथों में राजगुरुत्व के दंड-कमंडलु थमाना चाहते हैं, वे स्वयं ही एक अरसे से लोक-समितियों की संकल्पना के जरिये यह बुनियादी बात देश के मतदाता को हृदयंगम कराने का प्रयत्न करते आ रहे हैं। मगर हम उनकी नसीहत की उपेक्षा और उनके व्यक्तित्व की पूजा करना चाहते हैं; और जो हमारे अपने राजनैतिक कर्तव्य हैं उन्हें उनके हाथों पूरा कराना चाहते हैं।

जयप्रकाशजी रोगमुक्त और दीर्घजीवी हों और उनके जीवन-काल में ही हम लोक-समितियों के जरिये राज्यसत्ता के नियमन का राजनैतिक प्रयोग आरंभ करके दिखायें।





संस्कृतियों की अध्येता

हरीश अग्रवाल

मानवीय विकास एवं व्यवहार में गहरी दिलचस्पी और बच्चों से अटूट प्रेम रखने वाली ७७ वर्षीय मार्गरेट मीड जिनका देहावसान नवंबर १९७८ के अंतिम सप्ताह में हुआ, जीवन के अंतिम क्षणों तक व्यस्त रहीं। नृतत्त्वीय शोधकार्य, भाषण तथा अध्यापन करने की उनकी शक्ति का लोहा युवक भी मानते थे। गत दिसंबर में दिल्ली में हुई नृविज्ञान कांग्रेस में उन्हें भी भाग लेना था, लेकिन जानलेवा कैन्सर ने बीच में ही उन्हें परलोकगामिनी बना दिया। डा. मीड ने आदिवासी और आधुनिक समाज तथा बच्चों के विकास के पृथक् संतुलनात्मक अध्ययन में अपना सारा जीवन लगा दिया था। आदिवासी संस्कृतियों में व्यक्तित्व के विकास और निर्माण में जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक शक्तियों का क्या योगदान होता है, इसका अध्ययन उन्होंने बड़ी गहराई से किया था और उसके परिणामों का आधुनिक समाज से तालमेल बैठाया था।

वे गजब की वक्ता थीं। बोलने के लिए उन्हें कभी लिखित पांडुलिपि की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। टेलिविजन के समर्थन में एक बार उन्होंने कहा था—'इसकी मदद से पहली बार युवा वर्ग इतिहास को बनते देख रहा है—इतिहास भी ऐसा कि जिसे माता-पिता उनसे छिपा नहीं सकते और न उसमें कोई काट-छांट कर सकते हैं।'

डा. मार्गरेट मीड का समूचा जीवन एक असाधारण वृतांत है। इधर वर्षों से यह हालत थी कि अंतरराष्ट्रीय गोष्ठियों में अगर नृविज्ञानी कभी अपने विषय से हटकर कुछ बात करते थे तो प्रायः उनकी चर्चा का विषय होती थीं मार्गरेट मीड।

और अब तो दे वर्षों तक चर्चागोष्ठियों का मुख्य विषय होंगी। मीड ने स्वयं न जाने कितनी पीढ़ियों, कितनी संस्कृतियों एवं समाजों का अध्ययन किया था। वे बीस वर्ष की भी नहीं हुई थीं कि समोआ की आदिवासी संस्कृति का अध्ययन करने अकेली ही पहुंच गयीं दक्षिणी प्रशांत सागर के उस द्वीप में और वहां मलेरिया के चंगुल में फंस गयीं। तीन शादियां कीं और अनेक बार गर्भपात झेले। ४५ वर्ष की अवस्था से पहले ही संयुक्त पारिवारिक जीवन के अनेक कटु अनुभव पा लिये।

फिर भी व्यस्त जीवन की तो वे प्रतीक ही बन गयीं थीं। खाली बैठना तो मानो सीखा ही नहीं था। न्यूयार्क सेंट्रल पार्क-वेस्ट में उनकी एक पड़ोसिन पत्रकार ने लिखा था–'मैं मीड को सुबह पांच बजे उठकर पोर्टेबल विद्युत् टाइप-राइटर पर काम में जुटी हुई देखती हूं। अपने कमरे से भूरे लहरदार बाल वाला उनका सिर हमेशा हरकत करता हुआ ही दिखता है। पिछले दिन ही वे कैलिफोर्निया से लौटी होंगी, जहां उन्होंने अंतरिक्ष-वैज्ञानिकों के समक्ष सन ३,००० के आचार-विचार पर भाषण दिया होगा या उन्होंने वर्जीनिया विश्वविद्यालय में इसका अध्ययन प्रस्तुत किया होगा कि पिछले दशक में जन-आंदोलनों का क्या स्वरूप रहा। कुछ भी हो, रात को वे अपने न्यूयार्क के घर में सदा पढ़ती ही नजर आती थीं और चाहे कितनी ही देर तक क्यों न पढ़ती रही हों, सुबह पांच बजे ही उठ जाती थीं।'

तीन घंटे बाद उनके सामने बड़ा-सा घरेलू प्लास्टिक थैला रखा होता था, जिसमें से वे एक फुट ऊंचा डाक का बंडल निकालतीं व छांटतीं। छात्रों के शोध-निबंध, पुस्तकें तथा अनुदान-आवेदनपत्र वे देखतीं, कार्ड-फाइलों पर उनकी प्रगति दर्ज करतीं। फिर शुरू होता उनकी लिखाई का सिलसिला। वे अपनी मुद्रणाधीन पुस्तकों के गैली-प्रूफ देखतीं या नये लेख लिखने में लग जातीं। लेखन इस तरह अव्याहत रूप से चलता कि मानो कोई कम्प्यूटर अपना काम कर रहा है।

आयु की बंदिनी नहीं

मीड ने अपने जीवन में यह साबित कर दिखा था कि औरत उम्र से बंधी नहीं होती। वे पुरुषों के क्षेत्रों में स्त्रियों के प्रवेश के विरुद्ध थीं और सहशिक्षा को भी पसंद नहीं करती थीं। ऐसे व्यक्तियों के साथ भी उनकी पटरी नहीं बैठती थी, जो निजी जीवन की कठिनाइयों में डूबकर अपनी योग्यताओं-क्षमताओं को पंगु बना डालते हैं। उन्हें स्वयं भी अपनी क्षमताओं पर पूरा काबू था। उनके एक पुराने मित्र और साथी का कहना है–'मैंने मीड को जीवन में दो बार सबसे ज्यादा खुश देखा–एक तो जब वे मां बनीं और दूसरे जब वे दादी बनीं।'

अपने निजी जीवन की कटु से कटु आलोचना से भी वे कभी भयभीत नहीं हुईं। शुरू से ही उन्होंने पुरुषों के बीच रहकर अपना काम निकालने की कला भली भांति सीख ली थी। एक बार तो उनके पिता को भी यह

कहना पड़ा था—तुम्हें तो लड़का होना चाहिये था। तुमने तो लड़कों को भी मात कर दिया।' असल में उन्होंने कभी किसी को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया।

मीड ने एक बार कहा था—'अमरीकी महिलाएं अच्छी माताएं होती हैं, अच्छी पत्नियां नहीं।' इसका कारण उन्होंने यह बताया था कि अमरीकी पुरुष दूसरों की ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते। 'अमरीका में स्त्रियां अच्छी-खासी, तगड़ी, खूबसूरत हैं। लेकिन कोई अमरीकी पति यदि अच्छी पत्नी चाहे तो उसे मुश्किल हो जाती है। जब वह दफ्तर से हारा-थका आता है, उसे सेवा के लिए कोई अच्छी पत्नी चाहिये। किसी पति को शिक्षक या नेता के नाते यदि अपना काम ठीक से चलाना है, तो इस चीज को संभव बनाने के लिए उसे पूरे समय की "गृहिणी" चाहिये। अतः हमें ऐसे व्यक्ति तैयार करने चाहिये जो दूसरों के लिए त्याग करें और उसी में खुशी अनुभव करें। गृहणियां पतियों और बच्चों की सेवा करें।'

यों तो मीड की दिलचस्पी अनेक विषयों में थी, लेकिन उन सबका केंद्र मनुष्य ही था। एक बार एक संवाददाता उनका भाषण सुनने न्यूयार्क संग्रहालय में पहुंचा। उसने देखा, मीड अनेक विषयों पर बहुत अच्छा बोल सकती हैं, जैसे--संग्रहालय, पत्थर, पक्षी, गुफाओं की कलाकृतियां, बच्चे, माता पिता, डाइनोसार, ह्वेल, अवकाश में जीवन, शिक्षा, १९६० के दशक की युवा क्रांति, मानव-जाति की एकता, प्रदूषण, उद्भव, न्यूगिनी में बचपन से प्रौढ़ावस्था तक यौन-संबंध, कम्यून तथा जातियों में संबंध-विच्छेद।

मृत्यु से तीन साल पहले वे अमरीकी विज्ञान प्रगति संस्था के अध्यक्षपद से बोली थीं। उनके व्याख्यान का विषय था—'मानवीय विज्ञान की ओर'। इस संस्था ने सदा ही अपंग तथा असहाय वर्गों का ध्यान रखा है और इसीलिए मीड का भाषण बहरों के लिए सांकेतिक भाषा में पढ़ा गया था। इस भाषण में उन्होंने आदमी की बहु-ज्ञानेंद्रिय-क्षमता का प्रदर्शन किया और अमरीकी नृविज्ञान के संस्थापक फ्रांज बोआस का उद्धरण देकर कहा कि मानव के कल्याण का प्रश्न ऐसा है, जिसका उत्तरदायित्व नृवैज्ञानिकों को लेना चाहिये। बोआस ने भी यही कहा था—'सर्वव्यापकता तथा संस्कृतियों की विविधता का अध्ययन करके नृविज्ञान मानवता के भावी मार्ग-निर्माण में सहायक बन सकता है।'

मीड का विचार था कि विज्ञान का प्रसार इस प्रकार से होना चाहिये कि उसे सब समझ सकें। यही नहीं, विज्ञान की स्वतंत्र रूप से परीक्षा भी हो, जिससे उसमें आगे खोज करने की गुंजाइश रहे। वारेन वीवर ने कहा था कि कोई व्यक्ति यदि किसी भौतिक स्थिति का सही विश्लेषण करता है, तो वह भी "एक अच्छा वैज्ञानिक" ही है। इस दृष्टि से आदिमानव भी अच्छा वैज्ञानिक था। शिकार-कला की वैज्ञानिकता में तो आज का आदमी भी उसे मात नहीं

दे सकता।

मीड संस्कृतियों को अलग-थलग रखने के भी सर्वथा विरुद्ध रहीं। गोरे-काले बच्चों के लिए अलग-अलग स्कूल बनाये जाने की वे विरोधी थीं। नगर तथा गांव के बारे में भी उनके विचार बड़े सुलझे हुए थे। १९७६ में संयुक्त राष्ट्र के विश्व आवास (हैबिटैट) सम्मेलन के अवसर पर उन्होंने स्पष्ट कहा था-'शहरी समाज और ग्रामीण समाज दो अलग पक्ष हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं। क्या वे एक दूसरे से संवद्ध नहीं हैं? आवास वस्तुत: हर प्रकार की रहने की परिस्थितियों से संबंध रखता है। यह कोई कार्यालय भी हो सकता है, जहां मनुष्य अपना दिन (या रात भी) बिताते हैं। यह जहाज का केबिन भी हो सकता है या अंतरिक्ष-यान या अंतरिक्ष-बस्तियां भी।'

आधुनिक जीवन के संबंध में उनका विचार था-'परमाणु-संयंत्रों से सारे संसार को खतरा है। इनसे वायुमंडल को खतरा है। लेकिन इनके अलावा पर्यावरण में भी अन्य विषाक्त पदार्थ मिल रहे हैं कीटनाशकों और उर्वरकों के कारण।'

मानवीय विकास के बारे में वे प्राय: कहा करती थीं-'हमें विकास को सीमित करना होगा। जीवन को हमें व्यसन नहीं बना लेना चाहिये। हमें ऐसा विकास चाहिये, जिसमें ऊर्जा नष्ट न हो और पृथ्वी प्रदूषित न हो। हम अपने जीवन को बहुत कुछ सुधार सकते हैं। जरा सोचिये तो—संगीत किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं करता और न प्रार्थनाएं। विध्वंसात्मक, प्रतिस्पर्धापूर्ण तथा बरबाद करने वाला व्यवहार ही प्रदू-

मार्गरेट मीड : दो मुखड़े ये भी

जीवनीकार आने वाले वर्षों में मार्गरेट मीड के अनेक मुखड़ों पर प्रकाश डालेंगे—विदुषी, विज्ञानी, सांस्कृतिक नृतत्त्व-शास्त्री, व्याख्याकार, मानवप्रेमी, तरुणों एवं वृद्धों और पीडितों एवं गलत समझ गये लोगों की पक्षधर। किंतु संभव है, मीड के दो मुखड़े उनके ध्यान में आने से रह जायें, जो दुनिया-भर में इतने सारे लोगों पर मीड के प्रभाव को समझने में सहायक हैं।

अव्वल, वे बहुत गहरी धार्मिक महिला थीं। भलाई और बुराई का उनका बोध बहुत तीव्र और सदा-सजग था। वे सदा भलाई करने के लिए यत्नशील रहती थीं।

दूसरे, उनमें कवि का कुछ अंश था। शब्दों पर ओप चढ़ाने वाले के अर्थ में 'कवि' नहीं, मगर इस व्यापक अर्थ में कि वे बिलकुल सही बिंब और रूपक ढूंढ़ लेती थीं, जिनमें विस्मयकारी सत्य भरा होता था। उनकी अंतर्दृष्टियां कई बार आंशिक सूचनाओं पर आधारित होते हुए भी अक्सर सही निकलती थीं।

अपनी अंतर्दृष्टियों से उन्होंने अपने आपको भी कभी बख्शा नहीं। एक साल पहले, जैसे ठगी गयी हों ऐसे स्वर में उन्होंने कहा था—'मेरा शरीर उतने दिन टिकेगा नहीं, जितना कि मैं सोचती थी।'

—ए. पी. टी. ['नैचुरल हिस्टरी' में]

षण पैदा करता है।

दस साल पूर्व मीड ने 'नैचुरल हिस्टरी' में छपे 'ए वर्किंग पेपर फॉर मैन एंड नेचर' नामक निबंध में लिखा था–'हम मानव की प्रकृति में भारी परिवर्तन के कगार पर हैं। यह परिवर्तन उन परिवर्तनों से भी अधिक दूरगामी होगा, जो मानव के पुरखों ने हथियारों का इस्तेमाल करने, बोलने, बीज बोने, नगर बसाने और लिखने के रूप में सीखा। हम संभवतः और भी बड़ा परिवर्तन देखने वाले हैं।

'उस परिवर्तन का एक अंग वह ज्ञान और समझ है, जो आदिमानव के बारे में हमारे पास है। उसी आदिमानव से हमने बहुत-कुछ प्राप्त किया है। आज हम जो जटिल औजार इस्तेमाल करते हैं, अंतरिक्ष-यान बनाते हैं, भारी वजन उठाते-धरते हैं, यह सब औजारों की ही देन है। लेखन से पहले बोलना आया, छपाई से पहले लेखन आया और रिकार्डिंग से पहले छपाई आयी। इसके साथ ही साथ हम हजारों वर्षों की अवधि में विकसित तकनीकी पर भी निभर हैं। हम नयी मशीनों पर पुराने संकेतों का प्रयोग करते हैं, जरूरत न पड़ने पर भी पुराने सुरक्षात्मक उपायों को इस्तेमाल करते हैं।

'लेकिन अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि क्या हम ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। और आगे क्या दिशा लेंगे? मशीनी युग के लिए आवश्यक जिम्मेदारी हम नहीं निभा पाये हैं और यह स्थिति बहुत महंगी पड़ रही है। लाखों का जीवन होम हो रहा है।

मार्गरेट मीड (१९०१-७८)–अमेरिकन नैचुरल हिस्टरी म्यूजियम, न्यूयार्क में नृतत्त्व-विभाग की संग्रहालयाध्यक्ष; कोलंबिया विश्वविद्यालय में अतिरिक्त प्राध्यापिका; शिशुपालन एवं व्यक्तित्व तथा सांस्कृतिक विषयों की विशेषज्ञ; मानसिक स्वास्थ्य के विश्वसंघ की अध्यक्ष (१९५६-५७); उनकी चंद प्रसिद्ध पुस्तकें–द चेंजिंग कल्चर ऑफ एन इंडियन ट्राइब, सेक्स एंड टेम्परामेन्ट इन थ्री प्रिमिटिव सोसायटीज़, मेल एंड फ़ीमेल, न्यू लाइव्स फ़ॉर ओल्ड : कल्चरल ट्रेडिशन्स इन मानूस; पीपल एंड प्लेसेज़।'

हो सकता है, इसका प्रमुख कारण नये युग में पुरानी बातों का प्रचलन हो। पर एक कारण यह भी है कि हम पुरानी बातों का रचनात्मक प्रयोग नहीं कर पाते। इससे वे सहायक होने के बजाय बाधक बन जाती हैं।

'हम अपने नये ज्ञान का अच्छा उपयोग कर सकते हैं। हम एक ऐसा संसार रच सकते हैं, जिसमें बुद्धि तथा भावना पर अधिक निर्भरता हो। हमें आज ऐसी शिक्षा-प्रणालियों के विकास की आवश्यकता है जो मानव-विकास से मेल खाती हों।'

मीड ने किसी नयी संस्कृति की बात नहीं कही। हां, उन्होंने यह इच्छा अवश्य जाहिर की कि पुरातन तथा नूतन संस्कृतियों का यदि कोई संगम हो सके तो बहुत उत्तम होगा।

–डी-४०, गुलमोहर पार्क,
नयी दिल्ली-११००४९



दुहाई मुक्ति-संग्राम की

ना. ग. गोरे

स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?

—स्त्री के जीवन में क्या-क्या घटनाएं हुईं और पुरुष की पौ बारह कैसे हुई, यह तो भगवान भी बता नहीं सकते; बेचारे मनुष्य की क्या औकात ?

सुभाषितकार का यह कहना स्त्री तथा पुरुष के बारे में सर्वांश में सत्य है, ऐसा तो मैं हर्गिज नहीं कहूंगा, लेकिन जिस तरह की राजनीति आज दुनिया में चल रही है, उसे देखते हुए लगता है कि यह सुभाषित राजनीति पर अवश्य लागू होता है।

रामायण तथा महाभारत को पढ़ते समय हर बार मेरे मन में यह बात उठी है कि क्या कारण है कि यह पता चलते ही कि कल राज्याभिषेक होना तय हुआ है, रानी कैकेयी को भान हुआ कि राजा दशरथ की दी हुई पुरानी हुंडियों को अभी ही भुना लेना चाहिये? प्रभु रामचंद्र को चौदह साल वनवास के लिए भेजने की मांग उसने की; लेकिन उन्हें दंडकारण्य ही भेजा जाये, यह शर्त उसने रखी नहीं थी। मगर किसी दूसरे वन में जाने के बजाय सीधे दंडकारण्य का रास्ता प्रभु रामचंद्र ने कैसे पकड़ा? रावण एक अच्छा, दश ग्रंथों का अध्येता पंडित था, मंदोदरी-जैसी सुलक्षणा पत्नी उसे मिली थी, उसका अपना साम्राज्य था। अगर वह राम को मार डालता तो उसके खिलाफ शायद ही कोई शिकायत करता। लेकिन सीता का अपहरण करने की वासना उसे क्यों हुई? उस एक घटना का कितना गहरा प्रभाव भारतीय जीवन पर पड़ा है!

इसी तरह के शंकासुर का दर्शन मुझे महाभारत में भी होता है। कौरव तथा पांडवों में अनबन क्यों थी, यह समझ में आता है। जब वे आचार्य द्रोण के पास पढ़ रहे थे, तभी से इसके लक्षण दिखाई देने लगे थे। तभी से वे आपस में लड़ रहे थे। क्षत्रिय-संतान होने के नाते मद्यपान, द्यूतक्रीडा आदि की उन्हें पूरी छूट थी और उसमें उन्हें आनंद भी आता था। दिल्ली की मिट्टी का क्या गुण है कौन जाने; लेकिन वहां का राज्यपद संभालने वाले को सत्ता का नशा-सा चढ़ जाता है। वह राजनैतिक द्यूत में रमने लगता है और अंततोगत्वा आत्मघात और देश का घात करने में हिचकता नहीं!

कौरव-पांडव एक दिन द्यूत खेलने बैठे। पांडव ऐसे अक्लमंद निकले कि एक के बाद एक चीज दांव पर लगाते-लगाते राज्य तक खो बैठे! हर बार हारते थे, लेकिन रुकते

न थे। अंत में उन्होंने द्रौपदी को भी दांव पर लगा दिया। उसमें भी उनकी हार हुई और द्रौपदी पर कौरवों का अधिकार हो गया। उस जमाने का कानून ही वैसा था। उस समय मानो वे सबके सब अंध धृतराष्ट्र की संतान बन गये थे। पांडवों की ऐसी करारी हार होने पर कौरवों को चाहिये था कि मजे से गुलछर्रे उड़ाते। लेकिन कौन किसान जमीन के कब्जे में आने पर उसमें हल चलाने के लोभ से अपने को रोक सकता है? कौरवों ने अंतःपुर में जाकर द्रौपदी को घसीटते हुए बाहर निकाला। वे उतावले हो गये भरी सभा में उसके वस्त्र उतारने के लिए। और उसी समय अठारह अक्षौहिणी सेना को बरबाद करने वाली कलहाग्नि की चिनगारी कौरव-सभा में प्रकट हुई।

अगर हम भारतीय युद्ध को ऐतिहासिक घटना मान लें तो निष्कर्ष यह निकलता है कि भारत के क्षत्रिय-वर्ग को तबाह करके उस युद्ध ने इस देश के हाथ में भगवद्गीता पकड़ायी।

मन में बार-बार आता है कि चिरस्थायी परिणाम करने वाली इन घटनाओं को तो हम देखते हैं, लेकिन उनके पीछे काम करने वाले जो तत्त्व हैं, उनका ठीक पता हमें नहीं लगता। कभी कोई वाल्मीकि, कोई व्यास, कोई काफी खान, कोई गिबन या टॉयन्बी अपनी शक्ति के अनुसार ऐसी गुत्थियों को सुलझाने की कोशिश करते नजर आते हैं और हम विवश होकर उनका विश्वास भी कर लेते हैं; लेकिन अचानक कोई नया ही सूत्र सामने आता है और लगता है कि एक नया चित्र प्रस्तुत हुआ है।

केवल पुरानी घटनाओं के बारे में यह स्थिति होती हो, ऐसी बात नहीं। अभी-अभी जो घटनाएं हुईं, उनके बारे में भी ऐसा होना संभव है। हाल में हमारे पड़ोसी अफगानिस्तान में राज्यक्रांति हुई। उस क्रांति की लपटें तो हम देख सके, लेकिन उसके पीछे कौन था, उसका नक्शा किसने बनाया था, यह शायद ही कोई जानता है। संभव है कि कुछ वर्षों तक यह रहस्य वैसा ही बना रहेगा।

कुछ ही महीने पहले अफ्रीका के जेरे देश में अचानक ही लड़ाई छिड़ गयी। अंगोला की तरफ से दुश्मन जेरे के दक्षिणी प्रदेश शाबा पर चढ़ आये और उन्होंने मोबुटु की सेनाओं को परास्त करके कोलवाजी नामक एक बड़े औद्योगिक केंद्र पर कब्जा कर लिया। लेकिन आश्चर्य इस बात से हुआ कि उस केंद्र पर कब्जा करना उनका उद्देश्य नहीं था। यह एक छापामारी का प्रकार था, ऐसा लगा। आक्रांताओं ने वहां की कोबाल्ट तथा तांबे की खानों में उपयोग में आने वाली मशीनों को ध्वस्त किया। सौ डेढ़-सौ गोरे तंत्रज्ञों को उन्होंने मारा और सैकड़ों काले मजदूरों को कत्ल कर डाला, लूटपाट की। जब फ्रेंच तथा बेल्जियन छाताधारी सैनिक कोलवाजी में उतरने लगे, तो ये आक्रांता दस्ते वहां से भाग निकले। लेकिन उन

आठ-दस दिनों में संसार का उष्णतामान १५० अंश से अधिक ऊपर चढ़ गया।

इन छापामारों को क्यूबा के सेनादलों ने अंगोला में तालीम दी थी, ऐसा आरोप फिर लगाया गया। रूस का भी हाथ इसमें है और रूस को अपना हाथ वापस खींच लेना चाहिये, वरना इसके परिणाम भीषण होंगे, ऐसी धमकी-भरी भाषा का भी कहीं-कहीं उपयोग किया गया। दुनिया अवाक् होकर यह सब सुनती रही। फिर आगे सफाई दी गयी कि यद्यपि छापामारों को क्यूबा के सैन्य दलों ने तालीम दी थी, छापामारी में उन्होंने कोई हिस्सा नहीं लिया था। रूस ने स्पष्टीकरण दिया कि ऐसे मामलों में पड़ने की हमारी नीति नहीं है लेकिन किसी ने सहायता मांगी तो गरज-मन्दों की सहायता करना हमारा कर्तव्य है और उसे हम हर हालत में निबाहते रहेंगे।

इधर फ्रेंच तथा बेल्जियन सैनिक वापस भेजे गये और फ्रेंच मित्र-मंडल के अन्य सैनिक अमरीकी हवाई जहाजों से वहां जा पहुंचे। मोबुटु की सहायता करना उनका उद्देश्य था। मोबुटु फिर से अपने आसन पर जमकर बैठ गया और फिर सब तरफ सन्नाटा छा गया। ऐसा सन्नाटा कि मानो शेबा में कुछ हुआ ही न हो।

जब हम यह सब देखते हैं, तो लगता है कि अफ्रीका के अंधेरे रंगमंच पर यह कैसा और नाटक खेला जा रहा है। बगावतें क्या होती हैं, सिंहासन कैसे डोलने लगते हैं, कीड़े-मकोड़ों की तरह अंधाधुंध हत्याएं कैसे होती हैं, लोकतंत्र तथा मार्क्सवाद के नारे कैसे बुलंद किये जाते हैं, एक ही देश से प्राप्त किये हुए शस्त्रों का आपसी मार-काट के लिए किस तरह उपयोग किया जाता है, और अचानक सब तरफ एकदम सन्नाटा कैसे छा जाता है। 'आर्गनाइजेशन आफ्रिकन यूनिटी' के नेता यह बात क्यों नहीं समझ पाते कि ये बड़े राष्ट्र उन्हें नचा रहे हैं। बस पुकारने भर की देर है कि रूस, चीन, अमरीका कैसे आ टपकते हैं! क्या ये राष्ट्र सचमुच हमारी मदद करने आ रहे हैं या अपने स्वार्थों से आ रहे हैं? क्या अफ्रीका के नेता यह सवाल कभी अपने से करते होंगे? अफ्रीकी देशों में ऐसी क्या बात है कि ये बड़े देश इस तरह वहां जा रहे हैं? इस लगाव के पीछे क्या तत्त्व हैं?

अभी कुछ दिन पहले मेरे हाथ में कुछ कागजात आये। मुझे लगा कि उनसे कुछ नयी रोशनी जेरे की घटनाओं पर पड़ती है। अफ्रीका की गुत्थी सुलझाने के बदले बार-बार इस तरह उलझ क्यों रही है, इसका कुछ अंदाज इस पर से हो सकता है। अंतरराष्ट्रीय राजनीति की जड़ें किस तरह चारों तरफ फैल गयी हैं, गहराई तक जा पहुंची हैं और किस तरह एक दूसरे में उलझ गयी हैं, इसका एक और सबूत सामने आया है। ......

न कोऽपि कस्य चिन्मित्रं
न कोऽपि कस्यचिद् रिपुः।
अर्थतस्तु भविष्यन्ति मित्राणि रिपवस्तथा।

यह महाभारत का सूत्र अंतरराष्ट्रीय

राजनीति का स्वरूप स्पष्ट करता है। अफ्रीका के रंगमंच पर जो नाटक खेला जा रहा है, उसका रहस्य मंच पर दिख रहे पात्रों से स्पष्ट नहीं होता। आदिकाल से अफ्रीकी भूमि में जो दुर्लभ खनिज द्रव्य पड़े हैं, उनके कारण यह रहस्यमय नाटक खेला जा रहा है।

कोबाल्ट धातु जेरे में उपलब्ध होती है, इसकी कुछ धुंधली-सी कल्पना थी; लेकिन उसके महत्त्व के बारे में जो बातें अब सामने आयी हैं, वे चौंका देने वाली हैं। कोबाल्ट धातु के बिना जेट इंजन बन ही नहीं सकता। अमरीका के पास अपनी कोबाल्ट खानें नहीं हैं, जिससे उसे कोबाल्ट बाहर से खरीदना पड़ता है। दुनिया में कोबाल्ट का सबसे बड़ा संचय जेरे के पास है। करीब ... टन का संचय होगा। अमरीका की ... फी सदी आवश्यकता की पूर्ति जेरे करता है। अमेरिकन ब्यूरो ऑफ माइन्स के अनुसार, जेरे में कोबाल्ट, जर्मेनियम तथा औद्योगिक हीरे का दुनिया का सर्वोत्तम उत्पादन होता है। तांबे के उत्पादन में वह दुनिया का छठा महत्त्वपूर्ण देश है। जेरे में खनिज-उद्योग सरकार के नियंत्रण में रहता है। जेरे सरकार को विदेशी मुद्रा का दो-तिहाई हिस्सा इसी उद्योग से प्राप्त होता है।

जेरे की सबसे समृद्ध खदान शावा प्रदेश के कोलवाजी नगर में है और उसी स्थान पर छापामारों ने तोड़फोड़ की कार्रवाई की थी। कांगो नदी के दक्षिण-तट से जो प्रदेश सटा हुआ है, उसमें अफ्रीका की कुल खनिज संपत्ति का ८७ फी सदी संचय है। कोबाल्ट तथा तांबा तो महत्त्वपूर्ण खनिज हैं ही; क्रोमियम भी कीमती धातु है। अंदाज था, १९७८ में अमरीका ने ५ लाख ६० हजार टन क्रोमियम का आयात किया। सन २००० में उसे १० लाख टन से अधिक क्रोमियम की आवश्यकता पड़ेगी। दक्षिण अफ्रीका तथा रोडेशिया में दुनिया के तमाम क्रोमियम का ९० फी सदी संचय पड़ा है।

१९७९

अमरीका की तरह पूर्व में जापान तथा पश्चिमी देशों में इंग्लैंड, फ्रांस, प. जर्मनी आदि देश भी खनिज संपत्ति के लिए अफ्रीका पर ही निर्भर हैं। अमरीका ९०% निकल, ८८% बाक्साइट, ९०% मैंगनीस तथा १००% टिन बाहर से आयात करता है, तभी उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाती है। यदि हम साथ में खनिज तेलों को जोड़ लें तो चित्र और स्पष्ट हो जाता है।

आज हम अंतरराष्ट्रीय अखाड़े में दो बराबरी के पहलवानों को आमने-सामने खड़ा पाते हैं। एक है रूस तथा दूसरा है अमरीका। यहां अमरीका का अर्थ है अमरीका तथा उसके गुट के अन्य राष्ट्र, और रूस का अर्थ है रूस तथा उसके गुट के अन्य राष्ट्र। ये दोनों गुट अफ्रीकी देशों पर नजर गड़ाये बैठे हैं। अमरीका में नागरिक स्वतंत्रता होने के कारण हर कोई अपनी बात खुले तौर पर लोगों के सामने रखता है। अफ्रीकी राजनीति के अध्येता डा. क्लाइन ने इस संदर्भ में अपनी राय व्यक्त की

है। डा. क्लाइन जार्ज टाउन विश्वविद्यालय के युद्धनीतिशास्त्र तथा अंतरराष्ट्रीय संबंध विभाग के संचालक हैं और इसीलिए उनकी राय विशेष महत्त्व रखती है। उन्होंने लिखा है–'मार्क्स-लेनिनवाद की दुहाई देकर जो लड़ाइयां छिड़ रही हैं, उनकी मदद करने के बहाने सोवियत संघ तथा क्यूबा एक साजिश कर रहे हैं। मध्य तथा दक्षिण अफ्रीका के देशों में वे अपना प्रभाव जमाना चाहते हैं। यहां की खनिज संपत्ति का लोभ इसकी जड़ में है। वे इस संपत्ति पर कब्जा करने के इच्छुक हैं तथा साथ ही साथ अमरीकी गुट को इस संपत्ति से वंचित रखना चाहते हैं। आज अफ्रीकी देश विश्वयुद्ध की छाया में जी रहे हैं।'

डा. क्लाइन द्वारा संकेतित परिप्रेक्ष्य में सोचने पर इतने पैंतरों का पता चलता है। अटलांटिक महासागर पर स्थित अंगोला, हिंद महासागर पर स्थित मोजांबीक, लाल सागर के किनारे पर इरिट्रिया से लेकर अदन तक का प्रदेश अपनी एड़ी के नीचे लाने के लिए रूस जो प्रयत्न कर रहा है, उसमें निहित सूत्र को समझने में कोई दिक्कत नहीं होती, वैसे ही इस्राइल, ईरान, दक्षिणी कोरिया, सिंगापुर, जॉर्डन तथा जिम्बावे यानी रोडेशिया आदि प्रदेशों को अपने प्रभाव में रखने की जो कोशिश अमरीकी गुट कर रहा है, उसका सूत्र भी समझने में कोई दिक्कत नहीं होती।

मन में विचार आता है, पिछड़े देशों के मुक्ति-संग्राम को मिलने वाला रूसी समर्थन तथा अमरीका द्वारा दी जाने वाली मानवीय अधिकारों की दुहाई, क्या सचमुच निर्लेप हैं? अफ्रीकी देशों की खनिज संपत्ति के स्वामित्व के लिए जो व्यूह-रचना हो रही है, यह उसका हिस्सा तो नहीं है? अंतरराष्ट्रीय राजनीति की जड़ें कितनी दूर तक और कितनी गहरी फैली हैं, और एक दूसरे में कितनी उलझ गयी हैं, इसे समझने में यह जानकारी अवश्य सहायक हो सकती है।

रूपांतर: यदुनाथ



मतिमतां च विलोक्य दरिद्रताम्

परीक्ष्य सत्कुलं विद्यां शीलं शौर्यं सुरूपताम्।
विधिर्ददाति निपुणः कन्यामिव दरिद्रताम्॥

–विधाता सत्कुल, विद्या, शील, शौर्य, सुरूपता यह सब देखकर मानो अपनी कन्या दे रहा हो इस तरह गरीबी देता है।

दारिद्र्य भोस्त्वं परमं विवेकि गुणाधिके पुंसि सदानुरक्तम्।
विद्याविहीने गुणवर्जिते च मुहूर्तमात्रं न रतिं करोषि॥

–हे दारिद्र्य, तुम कितने विवेकी हो। सदा ही तुम अत्यंत गुणवानों पर अनुरक्त रहते हो और विद्याविहीन, गुणहीन लोगों से क्षण-भर भी स्नेह नहीं करते हो।



अस्ति, अतीत, अनागत

'सीखना' उसी की तलाश है जो है
पहले से ज्ञात
'करना' इसका निरूपण कि तुम्हें वह ज्ञात है
'सिखाना' दूसरों को याद दिलाना है कि
वह उन्हें भी ज्ञात है उतनी ही अच्छी तरह।
तुम सब सीखने, करने, सिखाने वाले हो।
जीवन में तुम्हारा पथदर्शक है
भीतर का शिक्षार्थी,
क्रीडा-कौतुकी आध्यात्मिक जीव
जो कि तुम स्वयं हो।
न मोड़ो मुंह संभावित भविष्यों से
जब तक तुम्हें न हो जाये यह निश्चय
कि कुछ नहीं सीख सकते उनसे तुम।
तुम्हें छूट है सदा ही अपना मन
बदलने की—
कोई अलग भविष्य चुनने की—
या, कोई अलग अतीत।
पहला पाप है—सीमा में बांध देना
'अस्ति' को। बांधो मत।

—रिचार्ड बाक ['इल्यूजन्स' में]

मदर टेरेसा

ये लोग ही क्यों, और मैं क्यों नहीं? वह आदमी जिसे अभी गंदी नाली में से बीना गया है, वही वहां क्यों पड़ा था, और मैं क्यों नहीं? ..... यही तो रहस्य है। कोई इसका उत्तर नहीं दे सकता। लेकिन फैसला करना हमारे हाथ में नहीं है; केवल परमात्मा जिंदगी और मौत का फैसला कर सकता है। हो सकता है तंदुरुस्त आदमी मरते हुए आदमी की बनिस्बत मौत के अधिक करीब हो, बल्कि मर रहे आदमी से ज्यादा मरा हुआ हो। हो सकता है वह आत्मिक दृष्टि से मरा हुआ हो, जो कि देखने पर पता नहीं चलता।



• प्रार्थना •

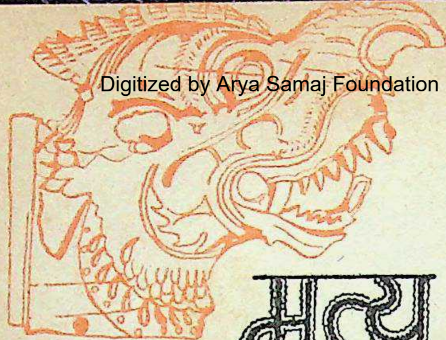
० सब चीजें परमात्मा ने सिरजी हैं। तमाम तितलियां प्राणी और समूचा ब्रह्मांड उसने हमारे लिए सिरजा है। उन्हें उसने चुनने की इच्छाशक्ति नहीं दी है। उनमें केवल सहज बुद्धि है। जानवर बहुत प्यारे हो सकते हैं और बहुत सुंदर ढंग से प्यार कर सकते हैं, मगर वे सहज बुद्धि से प्यार करते हैं। परंतु मनुष्य स्वयं चुन सकता है। यही एक चीज है जिसे परमात्मा हमसे ले नहीं लेता–इच्छा-शक्ति, इच्छा करने की शक्ति। मैं स्वर्ग जाना चाहती हूं, तो प्रभु की कृपा से जरूर स्वर्ग जाऊंगी। अगर मैं पाप करना और नरक जाना चाहूं, तो यह मेरी पसंद है। परमात्मा मुझे ऐसा न करने को विवश नहीं कर सकता। यही तो कारण है कि जब हम धार्मिक जीवन अपनाते हैं तो इस इच्छाशक्ति को कुर्बान कर देते हैं।

इसीलिए तो बलिदान इतनी ऊंची चीज है—आज्ञाकारिता का व्रत बहुत कठिन है। क्योंकि यह शपथ लेते हुए हम उस एकमात्र वस्तु का समर्पण कर देते हैं जोकि हमारी अपनी है—हमारी इच्छाशक्ति। वरना मेरा स्वास्थ्य, मेरा शरीर, मेरी आंखें, मेरा सब कुछ तो परमात्मा का ही है और वह उन्हें चाहे जब वापस ले सकता है।

० हमारा फैलता-बढ़ता हुआ ज्ञान हमारी श्रद्धा को मंद नहीं करता; वह तो परमात्मा की सृष्टि का आकार कितना है, यह दरसा देता है। बहुधा हम समझ नहीं पाते हैं। मैं नहीं जानती, आपने संत आगुस्तिन का जीवन-चरित्र पढ़ा है या नहीं—बड़ा सुंदर उदाहरण है वह। आगुस्तिन परमात्मा को समझने का, त्रियेक परमेश्वर (ट्रिनिटी) को समझने का, परमात्मा की सृष्टि को समझने का घोर प्रयत्न कर रहे थे। मगर उनका मानवीय मस्तिष्क इन्हें समझ नहीं पा रहा था। वे इधर-उधर खोचते फिर रहे थे। तभी उन्हें एक छोटा बालक नजर आया, जो जमीन में बने एक सूराख को पानी से भरने की कोशिश कर रहा था। संत आगुस्तिन ने उससे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो और बच्चे ने बताया—'मैं इस छेद को पानी से भरने की कोशिश कर रहा हूं।' संत आगुस्तिन ने उससे कहा कि यह तो असंभव है। इस पर वह बालक, जो कि असल में एक फरिश्ता था, बोला—'इस छेद में महासागर को भर देना कहीं ज्यादा आसान है, बनिस्बत इसके कि तुम परमात्मा के रहस्य को समझ सको।' और यह सच है।

० तुम्हें कम से कम आधा घंटा सवेरे और आधा घंटा रात को प्रार्थना में बिताना चाहिये। काम करते हुए प्रार्थना कर सकते हैं। काम प्रार्थना में आड़े नहीं आता, और प्रार्थना काम में आड़े नहीं आती। बस, मन को जरा-सा ऊपर उठाकर प्रभु तक पहुंचाना होता है। 'प्रभो, मैं तुमसे प्यार करता हूं, तुम पर भरोसा करता हूं, तुममें विश्वास रखता हूं, मुझे इस वक्त तुम्हारी जरूरत है।' ..... ऐसी छोटी-छोटी बातें। और कमाल की प्रार्थनाएं हैं ये।





मृत्यु के सम्मुख

अभी एक ही साल पहले की बात है। कान, नाक और गले के सर्जन डा. जूलियन कर्चिक ने एक लंबा रोजनामचा लिखा, जिसमें उन्होंने अपने मौत से दू-ब-दू होने का समूचा हाल बतलाया है। उनकी इस रचना से यह पूरी तरह उजागर हो जाता है कि मरता हुआ आदमी भी अपनी तिल-तिल करके छीजती जिंदगी के आस-पास खड़े लोगों की हिम्मत बंधा सकता है, जिन्हें यह मालूम है कि वे उस मरने वाले के लिए कुछ नहीं कर सकते और जिन्हें खुद अपनी जिंदगी शर्मनाक-सी लगती है।

डा. कर्चिक ने अपने रोजनामचे में मौत पर बड़ी गहराई से सोचा है और धीरे-धीरे मरने के निजी अनुभवों को दूसरों से बांट लेने की कोशिश की है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि जो व्यक्ति अभी तक दूसरों को उनकी आसन्न मृत्यु की सूचना देता रहा हो, उसे जब खुद अपने बारे में दूसरों से ऐसी सूचना मिले तो कैसा महसूस होता है। वे लिखते हैं—'यह एक ऐसा एहसास था, जिसने मुझे खूब रुलाया। लेकिन साथ ही मैं अपने इस दुर्भाग्य पर खूब हंसा भी। कभी-क तो मुझे मौत पर भी हंसी आ जाती थी।'

मौत से उनका पहला साक्षात्कार ए 'विजन' में हुआ। 'यह एक बड़ा ही भय वना पैशाचिक दृश्य था, जिसने मुझे निर्वि सा कर दिया। नहीं मालूम कि वह सप था या नहीं। इतना मैं जरूर समझ गया कि यही वह चीज है, जिसे मृत्यु कहते हैं

'मैं उस वक्त अपने बंगले के पिछवा में बने स्विमिंग-पुल के तट पर था, जिस चारों ओर गुलाब की झाड़ियां उगी हैं बहुरंगी फूलों वाली अजेलिया के पौधे हैं नाजुक मनोहर 'क्लेओम' फूल हैं। सूर डूब रहा था और आस-पास के पेड़-पत्तियों मे छन-छनकर आती हुई उसकी किरणें प्रांगण में पड़कर धूप-छांव की जाजम बिछा रही थीं। यह नजारा और सन्नाटा मुझे अजी समाधि-सी अनुभव करा रहे थे। अचा नक झाड़ियों में लगभग बीस फुट की दूरी पर खड़खड़-सी सुनाई पड़ी, तो मैं चौं उठा। क्या है, यह मालूम करने मैं अपनी आराम कुर्सी से उठकर दो-तीन कदम ही

…ता था कि सहसा रुक गया। क्योंकि वहां एक डरावने घुसपैठिये का, मृत्यु का, चेहरा दीख पड़ा। उसका पहनावा भिक्षुओं जैसा था—लंबी नीचे लटकती बांहों का लबादा और बड़ा-सा कनटोपा। उसकी खोपड़ी में आंखों के गढ़ों से आंखें गायब थीं। फिर मुझे लगा कि उनकी ही नजर मेरी आत्मा के आर-पार बिंध गयी है।

अचरज की बात थी कि वह खीस निपोर-कर बड़े दोस्ताना ढंग से मुस्कराया भी। उसके सूखे-से हाथ ने मुझे इशारा किया, मानो कह रहा हो कि "मेरे पास आओ।" मेरे पैर जैसे रास्ते पर ही जम गये। शरीर में ऊपर से नीचे दौड़ती भय की लहर से मैं निश्चल हो उठा था।

अभी तक मैं यह नहीं समझ पाया कि वह नजर का धोखा था या मेरी कल्पना या और कुछ भी, यद्यपि थी यह मृत्यु ही।'

…वर्षीय डा. कर्चिक सफल डाक्टर थे। अचानक उनके शरीर का बायां पार्श्व लकवा-ग्रस्त हो गया। खाना खाते तो चबाते वक्त मुंह से कुछ खाना बाहर निकल जाता, उसका भी उन्हें पता न चलता। बांहों में से ताकत जैसे एकदम चली गयी। …की परीक्षा की गयी तो पता चला खोपड़ी में दायीं ओर एक बड़ा-सा ट्यूमर है, जो दिमाग के दायें अंश को दबा रहा है, इसलिए बायां भाग काम नहीं करता। …इलाज से ट्यूमर तो ठीक हो गया, …इन अस्थियों में कैन्सर प्रकट हुआ जो …सारे शरीर पर छाता जा रहा था।

उनके दायें कूल्हे, दोनों घुटनों और छाती में दर्द होता रहता। फिर तो सारे शरीर में पीड़ा होने लगी। ताकत इतनी कम हो गयी कि हाथ की पकड़ की जांच करने वाले उप-करण पर सिर्फ ३ का आंकड़ा आया, जबकि सामान्य अवस्था में १०० आना चाहिये। अब वे अल्युमिनियम के शिकंजे में अपने को कसे बिना चल भी नहीं पाते थे। तभी से उन्होंने अपना रोजनामचा लिखना शुरू किया। वे सोचते थे कि शायद इससे उनकी हिम्मत बंधेगी; मन की व्यथा, दुःखदर्द कागज पर उतार देने से राहत मिलेगी। यह भी कि यह दिलचस्प चीज होगी—एक डाक्टर का अपनी मौत से सामना।

'लेकिन नहीं! मरते वक्त डाक्टर भी रोगियों से बेहतर नहीं होते।' डा. कर्चिक का कहना है। अपने रोजनामचे में वे लिखते हैं—'है तो यह बहुत ही अजीब-सी बात, लेकिन सच है कि घोर पीड़ा से ग्रस्त होकर भी बहुतेरे रोगी जिंदगी से बुरी तरह चिपके

चित्र : सोमी



रहते हैं। चाहे जितनी तकलीफें उठानी पड़ें, लेकिन वे अस्तित्व की नाजुक-सी डोर को हाथ से छूटने नहीं देते।' और आगे देखिये :

'जब मैं अपने मरीजों से छोटा-मोटा झूठ बोलकर उन्हें दिलासा देता था, तो मेरे सामने यही समस्या रहती थी कि उन्हें कितना सच बताया जाये। कोई भी शत-प्रतिशत तो यह कह नहीं सकता कि मरीज बचेगा या नहीं। यह तो केवल ईश्वर ही जानता है।

चार साल पहले जब डा. कर्चिक पर बीमारी ने पहली बार हमला किया था, तो उन्हें यह आभास हो गया था कि शायद यह घातक सिद्ध होगा। मामूली जुकाम के रूप में शुरू हुई बीमारी गले की सूजन, नाक की झिल्लियों की सूजन, कंठ के स्वरतंतुओं की सूजन और निरंतर ज्वर में बदल गयी थी। जब विशेषज्ञों ने उन्हें अस्पताल में दाखिल कराया, तब उन्हें पता चला कि रोगियों को भरती के वक्त कैसा महसूस होता है। वहां का डाक्टर उनका मित्र था। वह जांच पर जांच करवा रहा था—उनके रक्त की। उनकी दांयी कांख से एक ग्रंथि आपरेशन करके निकाल दी जाती है। फिर जब उनकी हड्डी से मज्जा का नमूना निकाला गया वे झल्ला पड़े—'नर्सें मुझे चार्ट नहीं देखने देतीं। ऐसा क्या रहस्य है? क्या मुझे ल्युकेमिया (रक्त-कैन्सर) हो गया है?' आखिर डा. शार्प ने घुमा-फिराकर बताया कि उन्हें मल्टिपल माइलोमा है।

'मैं अपनी कुर्सी में जड़ी भूत-सा बैठा रह गया। मुझे कुछ भी नहीं दीख रहा था। सारी दुनिया मुझे टूटती-सी जान पड़ी। डा. शार्प मुझसे कह रहे थे—"जूलियस दोस्त, सब ठीक हो जायेगा। फिक्र न करो। इसका तो इलाज कामयाब हो सकता है।" मैंने उनकी ओर ताका; लेकिन मुझे उनका चेहरा बहुत धुंधला दीखा; क्योंकि मेरी आंखों में आंसू छलक आये थे।

'हां, डाक्टर भी रोते हैं, और मुझे यह कबूलने में शरम नहीं आ रही है। मैंने अपने को चीखने से रोकने के लिए कुर्सी की बांहें जोर से पकड़ लीं।

'तभी डा. शार्प ने मुझे एक पेटेंट दवा का नाम बतलाया, जो इस बीमारी के लक्षण सालों तक नहीं पनपने देती। मुझे अनुभव हुआ कि वह वैसी ही चिकनी-चुपड़ी बातें कर रहे हैं, जैसी कि मैं कैन्सर-रोगियों से किया करता था। तकदीर का खेल है कि अब वही बातें मुझे सुननी पड़ रही हैं। आज मैं मौत के दू-ब-दू हूं। आज कैन्सर मेरा निजी दुश्मन हो गया है। भाग्य की विडम्बना से घटना-चक्र उलट गया है। शायद मैं सपना देख रहा हूं। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं तो डाक्टर हूं। अब मैं अंतिम रूप से अपने उस "विजन" का जो मैंने अपने स्विमिंग पूल के किनारे देखा था, मतलब समझ पा रहा हूं।'

और मुसीबत अकेली नहीं आती। डा. कर्चिक की पत्नी को भी इसी बीच श्रोणि का कैन्सर हो गया और शल्य-चिकित्सा जरूरी जान पड़ी। वे तो ठीक हुईं, कि

डा. कर्चिक की हालत दिन पर दिन बिगड़ती गयी। उनके कंधे और कांख में भी दर्द बढ़ता गया। वे कभी अस्पताल में होते, तो कभी घर पर। उन्हें मालूम पड़ गया था कि अब उनके गुर्दे व फेफड़े तो निकम्मे हो जायेंगे ही, पेट व दूसरे अवयवों से रक्तस्राव भी शुरू हो जायेगा।

उन्होंने अपनी डाक्टरी प्रैक्टिस बेच दी; क्योंकि अब उन्हें अस्पताल में काफी समय रहना पड़ता था। काम करने में बहुत ज्यादा थकान भी आ जाती थी। लगता था कि कच्चे धागे से बंधी तलवार सिर पर लटकी हुई है। फिर भी वे जिंदगी के सुखदायी लम्हों को भी भोगते रहे। मई १९७७ में वे अपने लड़के हावर्ड की शादी में शरीक हुए। यह उनके लिए बड़ा 'हर्षपूर्ण अवसर' था। वे अपने तीन वर्ष के नाती को मनोरंजनस्थल में भी ले जाते रहे।

आखिर जब वे एकदम अशक्त हो गये तो अस्पताल के पलंग पर पड़े-पड़े एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी से फुसफुसाकर कहा—'जीन, क्या फायदा इन सब उपचारों का! अब तो मुझे मरने देना चाहिये, सारी तकलीफों का एकबारगी खात्मा हो जाये।'

मगर यह उनकी सत्रह वर्षीया बेटी वेन्डी ने सुन लिया। उसने उन्हें एक लंबा पत्र लिखा :

'आप नहीं जानते क्या कि मां आपके पलंग के पास बरसों तक बैठना ज्यादा पसंद करेगी, बजाय इसके कि वह अकेली बैठी रहे! आप नहीं देखते क्या कि उसे आपकी जरूरत है, हम सबको भी आपकी जरूरत है? आप सोचते हैं कि हम सबको वह महसूस नहीं जो आपको भोगना पड़ रहा है। लेकिन हम तो आप ही का खून हैं; जो आप महसूस करते हैं, वही सब हमें भी महसूस होता है। आप हमारे हैं और हम आपको चाहते हैं।

'लड़िये अपने लिए नहीं तो हम सबके लिए ही सही। मां के लिए, अपने सब प्रियजनों के लिए। ... मेरे लिए। मुझे जब फाइनल का डिप्लोमा मिलेगा, तो उस उत्सव में आपको मौजूद देखकर मुझे कितनी खुशी होगी! आपको वहां आकर मेरे हाथों में वह डिप्लोमा अवश्य देखना है।'

डा. कर्चिक ने इस पत्र को पाकर निश्चय किया, उन्हें जैसे भी हो जून से पहले नहीं मरना है। वेन्डी के दीक्षांत-समारोह में शामिल होने के बाद ही वे इस दुनिया को छोड़ेंगे। सुबह-शाम बड़ी मुश्किल से वे डाक्टरों की बतायी कसरत करते।

अंत में उनका बोलना बंद हो गया। उनकी पत्नी उनका हाथ अपने हाथों में लिये पास बैठी रहती और रोने लगती। दोनों के बीच एक उखड़ती-सी नजरों का आदान-प्रदान होता और यह महसूस होता कि अब 'कोई उम्मीद बर नहीं आती, कोई सूरत नज़र नहीं आती।' आखिर डा. कर्चिक को मियामी एयरपोर्ट से न्यूयार्क ले जाकर सेंट्रल जनरल अस्पताल में भरती किया गया और एक हफ्ते बाद ४ मई १९७८ को वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। बेटी का दीक्षांत देखने के लिए वे जून तक जिंदा नहीं रह सके!



• अजित शेठ •

एक कला-व्यसनी की साधना

जब भी पुणे (पूना) में मैं गायक-साधक-, कवि दिलीपकुमार के आश्रम जाता हूं, मुझे ऐसा लगता है कि मैं तीर्थयात्रा कर रहा हूं। कोई तीन वर्ष पहले हमेशा की तरह जब पुणे में उनसे मिलने गया, तो मेरा लंगोटिया यार कवि-चित्रकार प्रद्युम्न तन्ना भी साथ था। जब हम दिलीपकुमार राय के निवास स्थान 'हरिकृष्ण मंदिर' हो आये, तो प्रद्युम्न ने कहा–'दिलीप बाबू का दर्शन तो कराया; पर एक और ऐसे ही बिरले व्यक्ति यहीं पुणे में हैं। चलो, उनके भी दर्शन कर आयें। उनका कला-संग्रह देखने की मेरी बड़ी इच्छा है।'

शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं, संतों, शूर-वीरों तथा संगीतकारों की परंपरा से विभूषित पुणे शहर में हम निकल पड़े। घूमते-फिरते पहुंच गये शुक्रवार पेठ। बाजीराव रोड के दायीं ओर एक संकरी गली में तीन मंजिल की एक विशाल हवेली। जामुनी, लाल और हरे रंगों से तीनों मंजिलें शोभित। पहली नजर में कोई राजस्थानी इमारत प्रतीत होती थी। यह था–राजा केलकर संग्रहालय।

अंदर दाखिल होते ही दंग रह गये हम। मुगल तथा मराठा काल की दुर्लभ ऐतिहासिक सामग्री से ठसाठस भरी हुई हवेली। जैसे-जैसे देखते गये, चकित एवं चमत्कृत होते गये। कांगड़ा व राजस्थानी शैली के अनगिनत चित्र, मूर्तियां, पुराने वस्त्र, आभूषण, पुरानी ड्योढ़ियां, किवाड़-दरवाजे, तोरण, विश्वास न हो इतने प्रकार के दीये, दावात-कलम, सरोते, पानदान, हुक्के... अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में व्यवहार में लाये जाने वाली ये तमाम घरेलू चीजें एक जगह जुटायी हुई देखकर हम स्तब्ध रह गये।

कुल ३६ विभाग हैं इस संग्रहालय में। एक विभाग स्त्रियों के प्रसाधनों का ही है। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्त्रियां शृंगार के लिए जो भी चीजें उपयोग करती थीं, वे सब यहां देखने को मिलती हैं। सिंदूर-कुंकुम की डिब्बियां, सुरमेदानियां, तरह-तरह के नक्काशीदार कंघे, कर्नाटक और गुजरात से लेकर ठेठ कश्मीर तक की कढ़ाई, कशीदाकारी और वस्त्रों पर मनकों के काम के अनूठे नमूने। एक स्वतंत्र विभाग संगीत के

• पृष्ठभूमि में–राम की विजय-घोषणा करते हुए हनुमान, राजा केलकर संग्रहालय, पुणे।

...र्पित है। उसमें तरह-तरह के तालवाद्य, तानपूरे, बीन, सितार आदि देखने को मिले। सबसे अधिक ध्यान खींचने वाली चीज ...हां देखी—बाजीराव-मस्तानी का महल। ...से तनिक दूर कोठरुद में मस्तानी के महल के जो अवशेष थे, वे इस संकरी गली ...में लाये गये होंगे, यह सोचने को विवश हो जाता है दर्शक।

सब देख लेने के बाद इच्छा हुई कि इस ...संग्रहालय के संस्थापक से मिलना चाहिये। पूछताछ करते हम तलमंजिल पर ...कुंज के लता-मंडप में पहुंचे। लता-...के पीछे सहन में सफेद कुरता और ...धोती पहने एक वृद्ध सज्जन खड़े थे। ये थे ...दिनकर गंगाधर केलकर—इस बेजोड़ संग्र-...हालय के स्थापक। उनका चेहरा देखकर ...लगता था, जैसे हम अतीत और वर्तमान ...के संधिस्थल से मिल रहे हों।

...ने भारतीय विद्याभवन (बंबई) का ...देकर अपना परिचय दिया। मुस्कान ...के साथ वे हमें भीतर के कमरे में ले गये। ...उनकी पत्नी सौ. कमलाबाई लोटे में पानी ...लायीं। गिलास में हमने पानी पिया। फिर ...बात छिड़ी।

काकासाहब (उन्हें सब परिचित जन ...इसी नाम से जानते हैं) बताने लगे: ...'आपको पता नहीं होगा, पर शुरू में ...मुझे कविता करने का शौक था। "अज्ञात-...वासी" उपनाम से मैंने खूब कविताएं लिखीं। ...मराठी वाङ्मय के प्रसिद्ध कवि-नाटककार ...राम गणेश गडकरी मेरे गुरु थे। कविता करते-करते ऐतिहासिक-पौराणिक काव्य पढ़ने शुरू किये। उनमें खूब रस आने लगा और बाद में उनमें वर्णित ऐतिहासिक वस्तुएं इकट्ठी करने का शौक चढ़ा। बीते जमाने की चीजों की खोजबीन करते समय मैं अपने आपको भूल जाता, विस्मृति के गर्भ में दबे इतिहास के पन्नों में खो जाता। मेरी दृष्टि धीरे-धीरे गहरी और व्यापक होने



बाजीराव की प्रणयिनी मस्तानी

लगी। और अब तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं इन वस्तुओं का गुलाम हो गया हूं।

'अल्प साधन, पैसों की तंगी, तिस पर १९३० में बारह-वर्षीय एकमात्र बेटे की करुण मृत्यु का आघात—इन सब विपरीत परिस्थितियों में भी पुरानी चीजें जमा



सरोते पर सरस्वती, पीतल, १९ वीं सदी

करने के मेरे खोजकार्य में कभी बाधा नहीं पड़ी। चरैवेति चरैवेति–निरंतर चलना ही तो जीवन है। इसी शोधव्यसनी स्वभाव के मारे पिछले साठ वर्षों से भारत के गांव-गांव में भटका हूं। अपने देश के गौरवशाली



दीपस्तंभ, नेपाल, १८ वीं सदी

अतीत से जुड़ी हुई दस हजार के लगभग चीजें मैंने एकत्र की हैं। खोज अभी भी निरंतर चालू है। सरकार ने मुझे दो व्यक्तियों का फ्री रेल्वे-पास दे रखा है, जिससे यात्रा करना थोड़ा-बहुत आसान हो गया है।' ८० वर्ष की परिपक्व अवस्था में भी कैसी उमंग!

अपने बेटे राजा की स्मृति में उन्होंने संग्रहालय का नाम 'राजा केलकर संग्रहालय' रखा है। 'सेवंती का फूल', 'बाहुली चा विवाह', 'द्वारमती' जैसे मराठी बालगीत संग्रह भी उन्होंने छापे हैं। उनके दीयों के संग्रह पर 'लैम्पस ऑफ इंडिया' नाम से अंग्रेजी में एक पुस्तक छपी है। उन्होंने उसकी एक प्रति अपने हस्ताक्षर के साथ मुझे और नीरू (मेरी पत्नी निरुपमा) को कृपापूर्वक भेंट की।



एक दीपक और

जब हम उनसे मिले, तब वे अपना संग्रहालय महाराष्ट्र सरकार को दे देने की तैयारी कर रहे थे। नीरू ने उन्हें और कमलाताई को सादर प्रणाम करके कहा, 'जिस संग्रहालय के पीछे आपने अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया और जो आपकी जीवन-साधना का मंदिर है, वह आप सरकार को सौंप देंगे–यह बहुत बड़ा त्याग है।'

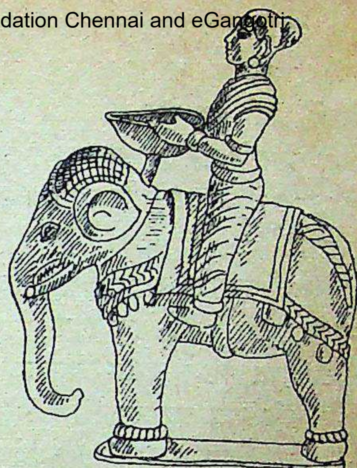
हंसकर वे बोले–'पहली मंजिल पर आपने राम की कांसे की मूर्ति देखी है?



उसके लिए एक धनी अमरीकी सज्जन कई लाख डालर देने को तैयार हो गये थे। पैसे की तो बेटा, सख्त जरूरत रहती है। पर अपने देश का ऐश्वर्य, उसके गौरव-भरे अतीत की स्मृतियां परदेशियों को बेच डालूं? हमें तो अपनी इस विरासत की रक्षा करनी है। यह संग्रहालय प्रत्येक भारतीय के जीवन का एक अभिन्न अंग बना रहे, प्रत्येक नगरवासी का मित्र। मेरी तो महाकाल से यही प्रार्थना है कि यह कला-संग्रह एक शोध-संस्थान का रूप ले, हमारे इतिहास के विस्मृत अंशों पर प्रकाश डाले और हमारी युवापीढ़ी में देशप्रेम की भावना जगाये।'

मन में पल-भर को याद हो आयी संगीत-नाटक अकादेमी के श्री मोहन खोकर की। उन्होंने नृत्य के संबंध में अपनी एकत्र की हुई तमाम वस्तुएं–चित्र, फोटो, पुस्तकें तथा अन्य पदार्थ–देश की किसी संस्था को देने के बजाय न्यूयार्क के लिंकन सेन्टर के नृत्य-विभाग के संग्रहालय को भेंट में दे दीं। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी घोषणा की है कि भविष्य में भारतीय नृत्य-प्रणाली पर किसी को शोधकार्य करना हो, तो उसे न्यूयार्क के लिंकन सेंटर के संग्रहालय के द्वार खटखटाने ही पड़ेंगे। कहां काका केलकर और कहां इस नृत्यविद् का देशप्रेम! हमने मन ही मन काका साहब का शत-शत अभिनंदन किया।

फिर काका साहब ने बताया–'अभी नारी-जीवन में कला (आर्ट इन विमेन्स



गजलक्ष्मी, आंध्र, १७ वीं सदी

लाइफ़) नाम का एक संग्रहालय बनाना है। उसका सारा काम औरतें संभालेंगी। भारतीय नारी में मेरी श्रद्धा अटूट है। मेरी मां, और मेरी पत्नी कमला के कारण ही यह संग्रहालय बन पाया। मेरे व्यक्तित्व और कृतित्व में उनका योगदान बहुत बड़ा है। नारी-जीवन से संबंधित यह संग्रहालय मैं आने वाले वर्षों में खड़ा करूंगा। भारतीय नारी के प्रति यह मेरी विनम्र श्रद्धांजलि



दीपधारिणी, गुजरात, १९ वीं सदी

होगी।' यह कहते हुए उस वयोवृद्ध पुरुष की आंखों में जवानी की चमक और जोश थे।

अंत में उठते हुए मैंने भारतीय विद्या-भवन की ओर से उनका सत्कार-समारोह आयोजित करने की अनुमति मांगी। उत्तर में हंसकर बोले :

'जाते-जाते एक किस्सा भी सुन लीजिये। मेरे एक मित्र ने मेरा तैलचित्र तैयार किया। मेरी बेटी प्रभा पूछने लगी—"काका, इस चित्र के नीचे क्या इबारत लिखूं?" मैंने कहा—"फुकट गेलेला माणुस" (व्यर्थ गया आदमी) लिखो। लोग संग्रहालय की प्रशंसा करते हुए थकते हैं। परंतु उसका निर्माता तो उपेक्षित ही रह जाता है। अगर कोई नवविवाहिता अपने पति के साथ बगिया में निकले और सुंदर फूल देखकर उसे तोड़कर अपने जूड़े में खोंस ले और बगिया के माली से एक शब्द भी न कहे, तो माली के मन में क्या गुजरेगी?' काका साहब का असंतोष उनकी वाणी में प्रकट हो रहा था। हमारा मन अकृतज्ञ समाज के प्रति ग्लानि से भर गया।

ड्योढ़ी से निकलकर गाड़ी में बैठते समय 'फुकट गेलेला माणुस' शब्द मन में गूंजते रहे।



सापेक्षवाद की जन्मकथा

एक दिन सुबह प्रोफेसर (आइन्स्टाइन) ड्रेसिंग-गाऊन पहने हमेशा की तरह नाश्ते के लिए नीचे आये। लेकिन उन्होंने नाश्ते को छुआ तक नहीं। मैंने सोचा कि उनकी तबीयत खराब होगी। जब मैंने उनसे पूछा, तो बोले—'एक बड़ा ही गजब का खयाल सूझा है मुझे।' तब वे काफी पीने लगे। फिर पियानो के पास गये और उसे बजाने लगे। बीच-बीच में वे रुक जाते, कुछ लिखते, और कहते—'बहुत अनोखा खयाल सूझा है! बहुत ही शानदार!'

'पर बताइये भी कि वह क्या है? मेरी उत्सुकता और न बढ़ाइये।'

कहने लगे—'यह तो मुश्किल है। मुझे उस पर अभी काम करना है।'

वे आधे घंटे तक पियानो बजाते रहे और बीच-बीच में कुछ लिखते रहे। फिर वे ऊपर अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में चले गये और जाते समय कह गये कि उन्हें नीचे न बुलाया जाये।

वे दो हफ्ते तक ऊपर ही रहे। मैं रोज उनका खाना ऊपर भेज देती। अलबत्ता शाम को वे कुछ देर के लिए सैर करते और फिर अपने कमरे में जाकर काम में डूब जाते।

एक दिन वे कमरे में से निकले तो उनका चेहरा एकदम पीला पड़ा हुआ था। हाथ में पकड़े दो कागज थकावट के अंदाज में मेज पर रखते हुए वे बोले—'यह रहा।'

वह था उनका सापेक्षवाद का सिद्धांत।

—श्रीमती आइन्स्टाइन



कहानी भारतीय इत्र की

डा. बी. एस. एम. दत्त

इत्र क्या है? जटिल रासायनिक संरचना वाले ऐसे द्रव्य, जो अपनी सुगंध से नासिका को आनंद देते हैं। इत्रों का इतिहास सौंदर्य-प्रसाधनों से संबद्ध है। जिस तरह मसाले भोजन को स्वादिष्ट बनाते हैं, उसी तरह इत्र मनुष्यों में पारस्परिक निकटता और संपर्क को सुखद बनाते हैं।

एक तरह से इत्र-फुलेल का इतिहास भी सभ्यता के इतिहास जितना ही पुराना है। अति प्राचीन काल से इत्र के उपयोग के प्रमाण मिलते हैं। संस्कृत-साहित्य में उनका बार-बार जिक्र मिलता है।

संभव है कि इत्र और सौंदर्य-प्रसाधनों का विकास मूलतः पूर्व में ही हुआ हो। प्राचीन मिस्री सम्राटों की ताजपोशी इत्र छिड़के बगैर पूरी नहीं होती थी।

ईसा मसीह के जन्म पर लोग माता मरियम के पास तरह-तरह के लोबान, इत्र और उबटन लेकर पहुंचे थे। रोम और यूनान के नागरिकों के जीवन में भी इत्र का बहुत महत्त्व था। यूनान में तो इत्र का उपयोग एक खासी कला बन गयी थी और शरीर के अलग-अलग अवयवों पर अलग-अलग इत्र लगाये जाते थे।

भारत में मुगल बादशाह बाबर गुलाबों का बड़ा प्रेमी था। अबुल फजल की पुस्तक 'आईने अकबरी' से पता चलता है कि सम्राट अकबर इत्र-फुलेल तैयार करने की कला को बहुत प्रोत्साहित किया करता था। सम्राज्ञी नूरजहां सदा गुल.बजल मिले पानी से नहाया करती थी। गुलाब के इत्र के बारे में बादशाह जहांगीर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है –'इस इत्र की ईजाद मेरे शासन-काल (१६१२ ई.) में नूरजहां बेगम की मां के प्रयत्न से हुई। एक बार उन्होंने देखा कि जिन रकाबियों में मर्तबानों से गुलाबजल उड़ेला गया था, उनमें कुछ तेल-जैसा चिकना पदार्थ मौजूद है। उन्होंने थोड़ा-थोड़ा करके उस चिकने पदार्थ को इकट्ठा किया। उसकी खुशबू इतनी तेज थी कि अगर उसकी एक बूंद हथेली पर मल ली जाये तो समूची महफिल महक उठती थी, जैसे अनेक गुलाब एक साथ खिल उठे हों। इसके बराबर का कोई इत्र नहीं। हमने सलीमा बेगम को मोतियों की एक माला इनाम में दी, जिन्होंने इत्र का नाम "अत्तर-ए-जहांगीरी" रखा।'

विदेशों में वर्षों तक भारतीय इत्रों का बोलबाला रहा। इंग्लैंड में १८ वीं शताब्दी

में भारतीय इत्रों का आयात इतना बढ़ गया था कि ब्रिटिश पार्लमेंट बहुत चिंतित हो उठी। शायद कारण यह हो कि कुछ सदस्यों को अनुभव हुआ कि भारतीय इत्र लगाकर जिन औरतों ने उन्हें मुग्ध किया था, वे असल में उतनी सुंदर थीं नहीं।

राजा जार्ज तृतीय के शासन-काल में पार्लमेंट में एक विधेयक पेश किया गया कि जो भी औरतें चाहे वे किसी भी उम्र, पद, पेशे की हों, चाहें अक्षतयोनि, अविवाहिता या विधवा हों, इस कानून के बनने के पहले या बाद में इत्र, अंगराग, प्रसाधन, नकली दांत, नकली बाल, स्पेनी ऊन, लोहे की चोली, हूप, ऊंची एड़ी के जूते, नकली नितंब-उभार द्वारा किसी महामहिम महाराज की किसी प्रजा को धोखे में डालकर लुभाकर, उससे शादी रचायेंगी, वे जादूगरनी-विरोधी कानून के तहत दंडनीय होंगी और अपराधी सिद्ध होने पर वह विवाह रद्द हो जायेगा।

सौभाग्य की बात है कि आज यह कानून चलन में नहीं है। वरना कितनी ही आधुनिकाओं को जेल की हवा खानी पड़ जाये। वैसे मुमकिन है आधुनिकाएं बिना शृंगार के बाहर रहने के बजाय शृंगार के साथ जेल में रहना ज्यादा पसंद करें।

बहुत से प्राचीन इत्र सुगंधित वानस्पतिक वस्तुओं को तिल, बादाम या जैतून के तेल में संसाधित करके तैयार किये जाते थे। प्राकृतिक सुगंध-द्रव्य वनस्पतियों की विभिन्न जीवन-प्रक्रियाओं के परिणाम हैं। इनका सर्वोत्तम उदाहरण है फूलों का सौरभ। यह सौरभ उड़नशील गंधतैलों के कारण होता है। उदाहरण के लिए, गुलाब और लैवेंडर में यह तारपीनों के रूप में होता है, चमेली और गुलशबी (रजनीगंधा) में ग्लूकोसाइड के रूप में, जो अनुकूल परिस्थितियों में विघटित होकर उड़नशील तेलों में परिणत हो जाते हैं। कई बार सुगंध-द्रव्य वनस्पतियों के अन्य भागों में उत्पन्न होते हैं जैसे कि चंदन के काठ में, खस की जड़ों मे, जंभी नीबू और संतरे के फल के छिलके में, लैवेंडर की पत्तियों में।

खुशबू कितने समय तक टिकी रहती है इसका इत्रों में बहुत महत्त्व है। जिस इत्र की सुगंध रूमाल, कपड़े आदि में लगाने के बाद देर तक बनी रहे, वे इत्र अधिक लोकप्रिय होते हैं। कुशल अत्तार विभिन्न इत्रों का ऐसा मिश्रण करते हैं कि उनकी मिश्रित गंध और भी सुखद एवं आह्लादकारी बन जाये। उदाहरण है ओ द कोलोन और फ्रंजिपानी का मिश्रण। ओ द कोलोन में नारंगी के फूल, रोजमैरी, नीबू और जंभीरी का इत्र होता है, जबकि फ्रंजिपानी में होते हैं चंदन, सेज, नारंगी के फूल, बच और कस्तूरी।

इत्रों में सुगंध-द्रव्यों के अलावा एक प्रकार के तत्त्व और होते हैं, जिन्हें 'फिक्सेटिव' कहते हैं; ये कम उड़नशील होते हैं। ये इत्रों को बहुत जल्दी उड़ने नहीं देते। ये वनस्पतिजन्य भी हो सकते हैं, प्राणिजन्य भी। बच और चंदन के तेल वनस्पतिजन्य होते हैं। इत्र निकालने के तीन मुख्य ढंग

हैं-चुआना, पेरना और द्रावकों में घोलकर निकालना। प्रसिद्ध इत्रों में से कुछ ये हैं:

ओटो या गुलाब का इत्र : यह रोजा डेमेस्सेना किस्म के फूलों से तैयार किया जाता है। २० हजार पौंड फूलों से १ पौंड इत्र मिलता है। इसका निर्माण भारत, इटली, बल्गारिया, उत्तर अफ्रीका और एशियाई तुर्की में होता है। इस किस्म का गुलाब शायद मुगल लोग भारत में लाये।

यिलांग-यिलांग : कैनांग ओडोरोटा के फूलों से निकाला जाता है। लैवेंडर जैसी भीनी खुशबू वाले इस इत्र की बड़ी मांग है।

संदल : यह चंदन के काठ से निकाला जाता है। यह अच्छा 'फिग्जेटिव' भी है।

चंपक : माइकेलिया चंपक के फूलों से निकलने वाला यह इत्र यिलांग-यिलांग का खासा प्रतिस्पर्धी है। इनके अलावा चमेली, अनन्नास जैसी पत्तियों वाले पौधे कूमाइन, स्पेनी चेरी और कपूर की भी इन उद्योगों में बड़ी मांग है।

पशुजन्य सुगंध-द्रव्यों में अंबर, कस्तूरी (मुश्क) और बिलावकस्तूरी (सिवेट) की विशेष मांग रहती है। अंबर एक तीव्र सुगंध वाला पदार्थ है, जो स्पर्म ह्वेल के शरीर में स्वयं बनता है। अनुमान है कि कटल फिश नामक मछलियों को पूरी तरह पचा न पाने पर आंतों में गड़बड़ी होने से इसका निर्माण होता है। कई बार यह समुद्र में तैरता मिल जाता है; पर ज्यादातर ह्वेल को मारने पर प्राप्त होता है। अंबर का अब तक मिला सबसे बड़ा खंड २४० पौंड का था और १२, ००० पौंड में बिका था।

कस्तूरी या मुश्क : कस्तूरी मृग का ग्रंथिस्राव होता है। कस्तूरी मृग तिब्बत, नेपाल और हिमालय पर्वत-श्रेणी में मिलते हैं। कहते हैं कि प्रतिवर्ष ६० हजार कस्तूरी मग मारे जाते हैं, जिनसे २,००० किलो व्यापारिक कस्तूरी मिलती है। कस्तूरी की गंध मस्कोन नामक पदार्थ के कारण है।

बिलाव कस्तूरी : इसमें सिवेटोन नामक गंध-तत्त्व होता है। ये बिलाव इथियोपिया में मिलते हैं। इनकी पूंछ के नीचे एक थैला होता है, जिसमें यह द्रव्य उत्पन्न होता है।

कृत्रिम इत्रों के बारे में दो शब्द कहना अप्रासंगिक न होगा। १८६८ में डब्ल्यू. एच. पार्किन्स ने कृत्रिम क्युमेरिन इत्र बनाया। क्युमेरिन (अनंतमूलि) एक प्राकृतिक सुगंध-द्रव्य है, जिसका इत्र तैयार किया जाता है। इसके बाद बनाया गया वेनीला का कृत्रिम इत्र वेनिलीन। अब तो रसायनशालाओं से नाना फूलों, फलों और अन्य प्राकृतिक सुगंध-द्रव्यों के इत्र कृत्रिम रूप से तैयार होकर बाजारों में आ रहे हैं।

बेनजाइल एसिटेट में चमेली की सुगंध है और फिनाइल एथिल अल्कोहल में गुलाब के इत्र की। एमाइल एसिटेट लौंग की खुशबू देता है। बीटा नेप्थाल ईथरों में नारंगी की सुगंध होती है और आइसो-एन्जिनाल में कार्नेशन फूलों की सुगंध। साधारणतया कृत्रिम इत्रों को अधिक लुभावना बनाने के लिए उनमें प्राकृतिक इत्र भी थोड़ी मात्रा में मिला दिये जाते हैं।

● 'आकाशवाणी' से साभार ●

सृष्टि का गीत

• ऋग्वेद के नासदीय सूक्त से प्रेरित •

तेजनारायण काक

कहीं नहीं तब कोई जड था, चेतन कहीं नहीं था,
कहीं नहीं था चंचल मारुत, नभ भी कहीं नहीं था!
सभी छिपा था, जाने किसमें? किससे होकर रक्षित?
जाने था या नहीं सिंधुजल गहन-अथाह-अपरिमित?
कहीं नहीं था मरण, अमर जीवन भी कहीं नहीं था,
कहीं नहीं थे रात्रिचिह्न भी, दिन भी कहीं नहीं था!
कोई एक श्वास लेता था बिना वायु निज बल पर,
उसके सिवा कहीं भी कोई था न एक सचराचर!
आदिकाल में अंधकार में अंधकार था संवृत,
जो अभेद्य-अज्ञात सलिल-सा था दिशि-दिशि में उत्थित!
वही आदि-उद्भूत सघन-तम महाशून्य से आवृत,
वही एक था तापशक्ति से हुआ शून्य में सर्जित!
सबसे पहले उसी एक में इच्छा हुई प्रवेशित,
आदिबीज जो थी विचार की, मानवता की ईक्षित!
ऋषियों ने अपनी प्रज्ञा से निज मानस मंथन कर
पाया था संबंध-सूत्र चेतन का जड़ के भीतर!
उनकी ज्ञानराशि से फैली ज्योति, सघन-तम अंतर,
पर जाने वह एक कहां था, नीचे हो या ऊपर?
सर्जन-शक्ति वहां दिखती थी जग-क्षमता-उत्पादक,
नीचे-ऊपर सभी ओर थी वही शक्ति स्रष्टात्मक!
कौन जानता निश्चयपूर्वक? कौन करेगा वर्णन?
कैसे जन्म लिया संसृति ने? किससे इसका सर्जन?
देवों ने भी जन्म लिया था सृष्टि-सृष्टि के पीछे,
कौन जान सकता तब उपजी है यह संसृति किससे?
कोई नहीं जानता है यह सृष्टि-श्रेय दें किसको?
उसने भी है इसे बनाया, या न बनाया इसको?
जो सर्वोच्च-स्वर्ग में बैठा करता इसका ईक्षण,
केवल वही जानता भी है, या न जानता कारण?

—'शिवाश्रम,' चांद पोल, जोधपुर

पूज्य दद्दा

तब मैं निरा लड़का ही था, जब 'भारत-भारती' प्रकाशित हुई और हिंदी संसार में उसकी धूम मच गयी। रामायण की चौपाइयों की तरह उसके दो-चार पद हर हिंदीप्रेमी को कंठस्थ रहते थे। मैंने भी कई बार उसे आद्योपांत पढ़ा और एकलव्य की भांति उन्हें पूज्य गुरु के रूप में हृदय में आसीन कर लिया।

मेरे पूज्य भ्राता (स्व. राजा अवधेश सिंह) को यद्यपि साहित्य में विशेष रुचि नहीं थी, तथापि उन्हें 'भारत-भारती' बहुत पसंद आयी और राज्याधिकार पाने पर वे अपने यहां की और अन्य मित्रों के यहां की सारी छपाई का काम चिरगांव में गुप्त-बंधुओं के प्रेस में छपने को देने लगे। इसी सिलसिले में कई बार भाई सियाराम-शरणजी कालाकांकर आये और उनसे मेरा परिचय हुआ। मैं घंटों उनसे पूज्य दद्दा (श्री मैथिलीशरणजी) के बारे में पूछता रहता और उनके लौटते समय उनके द्वारा उन्हें सादर वंदन कहलवाता।

इसके बाद देश में सत्याग्रह के बादल मंडराने लगे और पूज्य बापू की रणभेरी सुनकर देश आजादी की लड़ाई में कूद पड़ा। मुझे भी छह मास का कठोर कारा-वास मिला। जेल से छूटने के बाद पहले मैं पूज्य रामनरेश त्रिपाठी के बालोपयोगी पत्र 'वानर' का संपादन करने लगा। इसी

सुरेश सिंह



[चित्र : मैथिलीशरण गुप्त]

समय मेरी प्रार्थना स्वीकार करके श्री पंतजी कालाकांकर में स्थायी रूप से रहने के लिए आ गये और मैंने 'वानर' का संपादन छोड़कर कालाकांकर से ही बड़े बालकों के लिए 'कुमार' नाम का एक मासिक पत्र निकाला।

मैंने साहस बटोरकर पूज्य दद्दा को एक पत्र लिखकर उनसे 'कुमार' के लिए उनका आशीर्वाद मांगा और कविता भेजने की भी प्रार्थना की। उत्तर में उनका जो स्नेह-भरा पत्र आया, वह इस प्रकार है:

श्रीराम

चिरगांव (झांसी)
२.६.३१

प्रिय कुंवर साहब,

कृपापत्र मिला। आपकी साहित्य-प्रीति सुनकर मैं पहले ही आपके प्रति आकर्षित था। इधर आपकी देशभक्ति देखकर तो आपके विषय में मेरा आदर-भाव और भी बढ़ गया है। ऐसे महानुभाव ने मुझे आह्वान किया यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

इधर बहुत दिन से मैं अस्वस्थ रहता हूं। इस कारण मेरा लिखना-पढ़ना बहुत ही कम हो गया है। फिर भी यदि आपकी कुछ सेवा बन पड़े तो इससे मुझे बड़ा संतोष होगा। पत्र निकलने दीजिये, मैं प्रयत्न करूंगा कि आगे-पीछे कुछ भेज सकूं। बच्चों के लिए कुछ लिखना बड़ा कठिन है, इसलिए भी कह नहीं सकता कि कहां तक सफल हो सकूंगा। परंतु प्रयत्न करूंगा।

विनीत—मैथिलीशरण

उनका यह प्रथम पत्र पाकर मैं आनंद-विभोर हो उठा, जैसे बहुत बड़ी निधि ही मिल गयी हो। कुछ दिनों बाद मैंने फिर उनसे 'कुमार' के लिए प्रसादस्वरूप कुछ रचनाओं की अपनी प्रार्थना दुहरायी। उत्तर में उन्होंने 'यशोधरा' के चार अंश भेजे और मुझे लिखा :

श्रीराम

चिरगांव (झांसी)
दिनांक ३०.३.३१

प्रिय कुंवर साहब,

कृपापत्र मिला। भाई सियारामशरण कुछ अच्छे हैं, किंतु अभी इतने सबल नहीं हुए कि लोनावला जा सकें। डाक्टर उन्हें 'स्वामिन' के इंजेक्शन दे रहा है।

मुझसे तो अब कुछ लिखा लेने की आशा न रखिये। मैं तो अपने को सब प्रकार असमर्थ पाता हूं। आज्ञानुसार 'यशोधरा' के चार अंश भेज रहा हूं। इनमें से जो आपको पसंद हों अथवा 'कुमार' के लिए अधिक उपयुक्त समझ पड़ें ऐसे दो गीत रख लीजिये और दो कृपा करके लौटा दीजिये। संभव है, उनसे दो मित्रों की मांग और भी पूरी कर सकूं।

पंतजी से कृपा कर मेरा प्रणाम कह दीजियेगा। उनकी प्रसन्नता के समाचार सुनकर प्रसन्नता हुई। विशेष विनय, कृपा रखिये।

सियारामशरण का नमस्कार।

आपका—मैथिलीशरण

मैंने चारों अंश रख लिये और उन्हें लिखा कि इन चारों रचनाओं में किसे अच्छी

कहूं और किसे लौटाऊं, इतनी बुद्धि मुझमें नहीं है, इसीलिए चारों अंश 'कुमार' के लिए रख रहा हूं। आशा है, आप इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। उनका उत्तर मिला :

श्रीराम

चिरगांव
११.४.३३

प्रिय कुवर साहब,

कृपापत्र मिला। श्री पंतजी का फोटोग्राफ भी। कृपा के लिए आप दोनों का कृतज्ञ हूं। बड़ी कृपा की जो फोटोग्राफ भेजा। पंतजी को स्वस्थ देखकर संतोष हुआ। आप चारों कविताएं रखना चाहते हैं तो मैं क्या कहूं। 'राजा करे सो न्याव।' परंतु मुझे तो इसमें भी आपकी दया ही दृष्टि आती है।

आपका—मैथिलीशरण

×××

इसके बाद दिनों-दिन उनका स्नेह बढ़ता ही गया और डरते-डरते मैंने उनसे कालाकांकर पधारने की प्रार्थना की। दूसरे ही सप्ताह उनकी स्वीकृति आ गयी कि वे अगले मास अवश्य कालाकांकर आयेंगे।

निश्चित तिथि पर मैं उन्हें लेने के लिए श्री पंतजी के साथ स्टेशन पहुंचा। मेरी आंखों में उनकी वही तस्वीर थी, जो मैंने उनकी फोटो में देखी थी। बदन पर लंबा कुरता, धोती-पटका, और सिर पर पगड़ी। लेकिन जब वे ट्रेन से उतरे तो केवल धोती-कुरता पहने थे। इससे जल्दी में उन्हें पहचान न सका। ट्रेन के चले जाने पर जब उन्हें पहचाना तो उनकी चरण-धूल माथे पर

१२७२

लगाकर उन्हें अपना परिचय देकर कहा—'बड़ी कृपा की आपने।' उन्होंने बड़े स्नेह से मुझे छाती से लगाकर कहा—'इसमें कृपा की कौन-सी बात है! कालाकांकर तो हम सब साहित्यसेवियों का तीर्थ है, यहां भला कैसे न आता! फिर अब तो श्री पंतजी यहां हैं। इससे बड़ा आकर्षण और क्या होगा?' श्री पंतजी से भी वे बड़े स्नेह से मिले। और उन्हीं के साथ 'नक्षत्र' में ठहरे।

सवेरा होते ही दद्दा मेरे यहां आये और बोले—'आज रामनवमी है, गंगास्नान करने न चलियेगा!' गंगाजी में स्नान करना तो हम लोगों के दैनिक कार्यक्रम में ही रहता है, उससे मुझे भला क्या एतराज होता। स्नान करने के बाद उन्होंने ठाकुरद्वारे में बड़ी श्रद्धा से पूजन किया और उसके बाद रामजन्म होने तक वहीं बैठे रहे। जन्म के बाद जब वे फलाहार करके पंतजी की कुटिया में जाने लगे, तो किसी ने मुझसे बाग में लगे हुए डीजल इंजन के बारे में कुछ पूछा।

दद्दा ने इंजन का नाम सुनते ही कहा—'यहां कोई इंजन लगा है क्या?' मैंने उन्हें बताया कि बाग में बहुत दिनों से एक इंजन लगा है। फिर तो उन्होंने उस इंजन के बारे में इतने प्रश्न किये कि उन सबका उत्तर दे पाना मेरे लिए संभव नहीं था। पर मुझे उन दिनों एक और इंजन की जरूरत थी। इंजनों के बारे में उनकी इतनी जानकारी देखकर मैंने उनसे पूछ लिया कि क्या उनकी निगाह में कोई पुराना इंजन बिकाऊ है।

मेरा इतना कहना था कि उन्होंने न जाने

अगला नवनीत

हीरो
स्व. बलराज साहनी का एक हृदयस्पर्शी संस्मरण।

मैं आपका राजदूत
अमरीका में भारत के राजदूत नानी पालखीवाला के स्फुट विचार।

खुदा की कुदरत
मुज्तबा हुसैन का चुटीला उर्दू व्यंग्य।

हूणों की मुखाकृति
डा. जगदीश गुप्त का पुरातत्त्वीय लेख।

बनफूल : यादें सुगंधित
बंगला कथाशिल्पी बनफूल का स्मृतिचित्र पृथ्वीनाथ शास्त्री की कलम से।

सुम्निमा
विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला के नेपाली उपन्यास की अंतिम क़िस्त।

बड़प्पन
काशीनाथ यादव की हिंदी कहानी।

पिछले अंकों से बची रचनाएं—**नाम ही बन गये काम; युद्ध-घोषणा से पहले; जासूसी उपग्रह बिकाऊ हैं।**

कविताएं—विज्ञान—हास्य—अन्य स्थायी स्तंभ।

कितने इंजनों का पता मुझे बता डाला। कलकत्ते के ठनठनियां बाजार में इतने इंजन मिल जायेंगे .... और फलां जिले में एक पुराना इंजन बिकाऊ है—इस प्रकार उन्होंने इतनी जानकारी दी कि मैं चकित रह गया।

उस यात्रा के बाद तो उनका स्नेह बढ़ता ही गया और उनके विशाल हृदय में मेरे लिए भी थोड़ा-सा स्थान उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक सुरक्षित रहा। इतने वर्षों के लंबे समय में शायद ही कोई महीना ऐसा गया होगा, जिसमें उनका पत्र मुझे न मिला हो। कभी लिखने में मुझे देर हो जाती, तो उनका उलाहना-भरा पत्र आ पहुंचता और कभी उनके उत्तर में विलंब हो जाता तो मेरा मन चिंता से भर जाता। आज सोचता हूं कि कितना विशाल साहित्यिक परिवार था उनका और बड़े-बड़े साहित्यिकों की तो बात ही क्या, मेरे जैसे सामान्य साहित्यसेवियों की भी उन्हें कितनी चिंता और फिक्र रहती थी।

अपने जीवन में मुझे अनेक राजनैतिक नेताओं तथा साहित्य-महारथियों के चरणों के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। लेकिन जैसा अपनत्व और अपनपौ मैंने पूज्य दद्दा में पाया, वैसा महामना मालवीयजी तथा राजर्षि टंडनजी को छोड़कर और किसी में नहीं पाया। ये तीनों महापुरुष मुझे सचमुच अपने ही घर के बुजुर्गों की तरह लगते थे। और कितने भाग्यशाली थे हम लोग, जिन्हें इन तीनों स्नेहमूर्तियों का स्नेह प्राप्त था!

मेरी प्रार्थना पर दद्दा कई बार कालाकांकर पधारे। यहां आते ही वे घर के बुजुर्ग की तरह सब कार्यों की देखभाल करते और जो कमी देखते उसे प्रकाश (मेरी पत्नी) को बताते। प्रकाश को वे अपनी सगी बेटी की तरह मानते थे और प्रकाश को कोई कष्ट होता तो मुझ पर दद्दा की मीठी फटकार पड़ती थी।

सन ४१ में भारत रक्षा अधिनियम के अंतर्गत जब मेरी गिरफ्तारी हुई तो दद्दा ने प्रकाश को लिखा :

श्रीराम

चिरगांव
५.४.४१

श्री देवी प्रकाशवतीजी,

आपका पत्र पहुंचा। कुंवर सुरेशसिंहजी तक मेरा सादर सस्नेह नमस्कार पहुंचा दीजियेगा। कभी-कभी उनके कुशल समा-

चित्र : डा. भटनागर



चार मुझे भी भेज दिया कीजिये। आभारी हूं। आशा है, आप धैर्यपूर्वक अपनी गृह-व्यवस्था बनाये रखेंगी और बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में कोई बाधा न आयेगी।

आज पत्रों में पढ़ा, कुंवर ब्रजेश सिंहजी भी पकड़ लिये गये। मेरे भतीजे चि. श्रीनिवास गुप्तजी कल भारत रक्षा कानून में पकड़ लिये गये। दूसरे भतीजे चि. रघुवीरशरण पहले ही दंडित हो चुके हैं। भगवान इसमें भी कुछ भला ही करेंगे। और क्या कहूं ? आपका–मैथिलीशरण

एक बार मेरा गंभीर आपरेशन हुआ। पूज्य दद्दा बहुत चिंतित थे। आपरेशन के सफल होने की सूचना मैंने उन्हें दी, तो उन्होंने लिखा :

श्रीराम

चिरगांव
२४.१०.४३

प्रियवर,

आपरेशन हो गया, अच्छा ही हुआ। घर रहने में जो सुविधा है, लखनऊ में नहीं। समय-समय पर आवश्यकतानुसार डाक्टर देखते रहेंगे।

आशा है, इस बार व्रण शुद्धि हो जायेगी।

सचमुच प्रकाशजी इधर बड़ी ही व्यथित, चिंतित और व्यस्त रहीं। स्त्रियों को कितना सहना पड़ता है! वनचारी अपने लिए तपते हैं, परंतु गृहिणियां हमारे लिए उनसे सौ गुनी तपस्या करती हैं। उस तप का मूल्य भी हम नहीं आंक पाते।

मैं जैसे लखनऊ आता, वैसे ही काला- [illegible] कुशल-समाचार दीजिये।

आपका–मैथिलीशरण

लगभग आठ-दस महीने बाद उन्होंने प्रकाश की अस्वस्थता के बारे में सुना तो मुझे तुरंत यह पत्र लिखा :

श्रीराम

चिरगांव
२३.८.४[illegible]

प्रियवर,

आज प्रकाशजी के कष्ट की बात सुनी। क्षमा कीजिये आप पर उस कष्ट का दायित्व है। न जाने आप कैसा भोजन करते हैं। उनको भी वही कुछ न कुछ खाना पड़ता होगा – अंडज-पिंडज। सरकार ने आपको नजरबंद करके भूल की। आप पर तो यही आज्ञा लगानी थी कि गांधी बाबा का भोजन आपको दिया जाये। चार दिन में ठीक हो जाते आप। और माफी मांगते दिखाई देते। आशा है, प्रकाशजी अब स्वस्थ हैं।

आपका–मैथिलीशरण

पूज्य दद्दा के हृदय में हिंदी के सभी प्रेमियों के लिए एक प्रकार का स्नेह और आदर-भाव मैंने देखा–भले ही उनके विचारों से वे सहमत न हों। एक बार मेरे एक निराला-भक्त साहित्यिक मित्र ने मुझसे कहा–'पंत और निराला के मतभेद की बात तो सभी जानते हैं; लेकिन मैंने सुना है कि श्री मैथिलीबाबू तक निराला से द्वेषभाव रखते हैं और निराला को कष्ट में देखकर उन्हें खुशी होती है। पिछली बार जब निरालाजी बीमार थे तो सुना कि

मैथिलीबाबू बहुत प्रसन्न थे। आपका क्या ख्याल है !'

मैंने उन्हें उत्तर दिया कि सौभाग्य से मुझे इन तीनों महाकवियों का स्नेह प्राप्त है और तीनों के चरणों के निकट बैठने का अवसर भी मिला है। इनके स्वभावों में भले ही आकाश-पाताल का अंतर हो, लेकिन ये तीनों विभूतियां अपनी मातृभाषा की सेवा की प्रेमडोर से इस प्रकार बंधी हुई हैं कि एक दूसरे को कष्ट में पड़ा नहीं देख सकतीं। तीनों यह जानते हैं कि यदि वे साहित्य में अमर होंगे तो अपनी कृतियों के द्वारा ही होंगे–एक दूसरे से द्वेष करके नहीं।

लेकिन वे मित्र जब इसे मानने को तैयार न हुए तो मैंने उन्हें पूज्य दद्दा के दो पत्र दिखाये, जो उन्होंने श्री निरालाजी की बीमारी के समय लिखे थे। वे पत्र नीचे दिये जा रहे हैं :

[१]

श्रीराम

चिरगांव, २४.१०.४२

प्रिय कुंवर **साहब,**

आपने निरालाजी की अस्वस्थता के समाचार दिये थे और उनके विषय में फिर लिखने की बात लिखी थी।

कृपया उनके विषय में विश्वस्त समाचार दीजिये। चिंता है। मैंने यह भी सुना था, उनके मन में कोई अशुभ संदेह हो गया है। उनकी स्वस्थता के लिए जो कुछ हो सके, होना चाहिये। आप तो उनके लिए अपना कर्तव्य करेंगे ही। मुझसे कुछ हो सके, तो उसे मैं अपना सौभाग्य समझूंगा, यद्यपि मेरी शक्ति ही कितनी है !

१९७१

निरालाजी का जीवन हम लोगों के लिए मूल्यवान है, इसका कहना ही क्या। वे हैं कहां ?

[२]

चिरगांव, ४.११.४२

प्रियवर कुंवर साहब,

निरालाजी का करवी (बांदा) से पत्र तो बहुत दिन हुए, यहां भी आया था। फिर कुछ पता नहीं।

मैं जानता हूं, आपकी सहृदयता। मुझे यही भय हुआ था कि प्रसादजी की भांति कहीं इनका रोग भी न बढ़ जाये। इसी से आपको लिखा था। प्रभु उनकी रक्षा करें।

श्री प्रकाशवतीजी को नमस्कार, बच्चों को प्यार। ठीक कहते हैं आप, पंतजी अंततः कवि हैं।

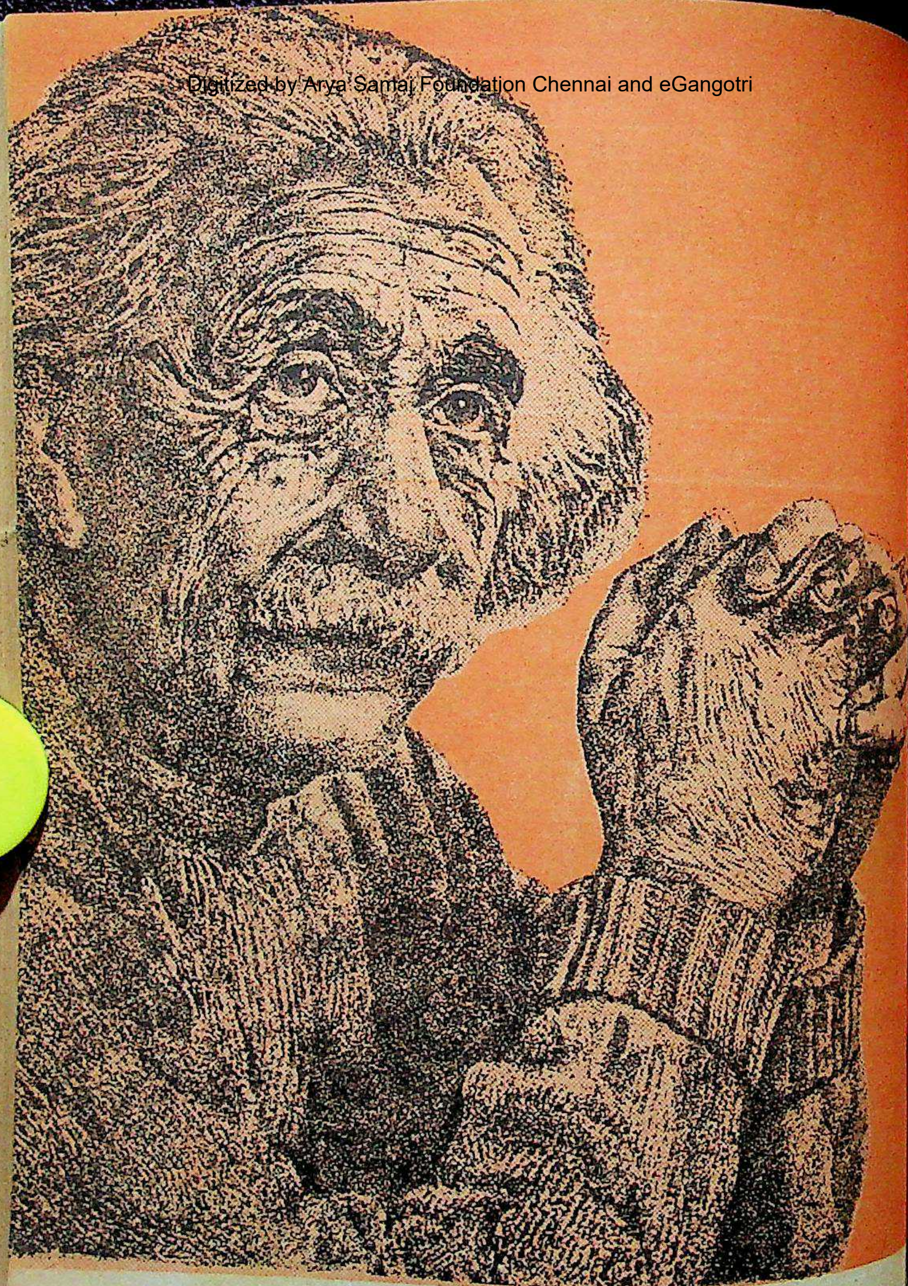
सस्नेह–मैथिलीशरण

उन पत्रों को देखकर वे मित्र अवाक् रह गये।

×××

एक बार जब दद्दा कालाकांकर आये, तो हम लोगों ने नौका-विहार का कार्यक्रम रखा। श्री पंतजी भी थे और प्रकाश भी थीं। हम लोग गपशप में लगे थे कि एक मांझी ने कहा–'भइया, तैयार हो जायें, बतखों का एक गोल बहुत नीचे से आ रहा है।' मैंने तुरंत अपनी बंदूक उठा ली। लेकिन जब वे चिड़ियां और पास आयीं, तो मैंने यह कहकर बंदूक रख दी कि ये तो

[शेष पृष्ठ १४३ पर]



जीवन तो सत्य के संधान का एक विनीत प्रयास है।
—अल्बर्ट आइन्स्टाइन [१४ मार्च १८७९ : १८ अप्रैल १९५५]

पोर्ट्रेट : कुमारी राखी डिसूजा

जन्मशती के संदर्भ में :

एक विशुद्ध चेतना

लियोपोल्ड इन्फील्ड

प्रिंस्टन में शनिवार को पहुंचा। रविवार यों ही निकल गया। सोमवार की सुबह में फाइन हाल के दफ्तर आया। सबसे जान-पहचान करनी थी। सचिव से पूछा कि आइन्स्टाइन से कब मिल सकता हूं। उसने फोन किया और मुझे बताया— 'प्रोफेसर आइन्स्टाइन आपसे अभी मिलना चाहते हैं।'

मैंने कमरा नं. २०९ के दरवाजे पर दस्तक दी तो जोर से सुनाई पड़ा—'अंदर आ जाइये।' मैं अंदर गया तो देखा कि एक हाथ बड़े तपाक से आगे बढ़ा हुआ है। वे ही थे आइन्स्टाइन। बर्लिन में उन्हें जैसा देखा था, उससे ज्यादा बूढ़े लग रहे थे। सोलह साल के अंतराल का यह प्रभाव मुझे ठीक नहीं लगा। उनके लंबे बाल सफेद हो गये थे। चेहरे पर थकान और पीलापन झलकते थे। लेकिन गहरी आंखों में अब भी पहले जैसी ही संजीदगी और चमक थी। पहनावे में वही कत्थई रंग की चमड़े की जाकिट थी, जिसे वे अपने बहुत-से चित्रों में पहने दिखते थे। (किसी ने उन्हें यह समुद्री यात्रा करते वक्त पहनने को दी थी और यह उन्हें इतनी पसंद आयी थी कि अब वे इसे रोज पहनते थे।) बिना कालर की कमीज, कत्थई पतलून पर सलवटें और बिना मोजे के जूते। सोचा था, वे मुझसे कुछ निजी बातें भी पूछेंगे; लेकिन कुछ नहीं पूछा। बोले :

'क्या आप जर्मन बोलते हैं?'

'जी हां।'

'शायद मैं आपको बता सकूंगा कि आजकल मैं किस काम में लगा हूं।'

चुपचाप उन्होंने खड़िया का एक टुकड़ा उठाया, ब्लैकबोर्ड तक गये और एक मुकम्मिल व्याख्यान दे डाला। जितनी शांति के साथ वे बोल रहे थे, वह बहुत ही प्रभावपूर्ण था। उनमें एक वैज्ञानिक जैसी आतुरता नहीं थी, जो अक्सर इसलिए आ जाती है कि वर्षों तक कुछ समस्याओं से निबटते रहने पर वक्ता को ऐसा महसूस होता है, जैसे उसके श्रोता भी इन समस्याओं से उतने ही परिचित हैं और फिर वह बड़ी तेजी से उनकी व्याख्या करने लगता है। ब्योरा बताने से पहले आइन्स्टाइन ने अपनी दार्शनिक समस्याओं की पृष्ठभूमि संक्षेप में

समझायी। वे कमरे में चारों तरफ धीरे-धीरे भव्यता से घूम रहे थे, बीच-बीच में गणित के समीकरणों को लिखने ब्लैकबोर्ड तक जाते; बुझा पाइप मुंह में बना रहता, लेकिन वाक्यों की पूर्णता में कोई कमी न आती। वे जो कुछ भी बोल रहे थे, उसे ज्यों का त्यों छापा जा सकता था। प्रत्येक वाक्य बिलकुल पूर्ण था। व्याख्या सरल, गहरी और स्पष्ट थी।

मैंने उनकी बातें ध्यान से सुनीं और वे पूरी तरह मेरी समझ में आ गयीं। आइन्स्टाइन के शोधलेखों के मूल विचार सदा ही बड़े सीधे और बुनियादी होते थे। आइन्स्टाइन को सदा ही बुनियादी प्रश्नों में दिलचस्पी रही। एक बार उन्होंने मुझसे कहा भी था–'मैं भौतिक-विज्ञानी की अपेक्षा दार्शनिक ज्यादा हूं।'

इस कथन में विचित्र कुछ भी नहीं है। प्रत्येक भौतिक-विज्ञानी दार्शनिक भी होता है, यद्यपि यह संभव है कि कोई अच्छा प्रयोग-विज्ञानी हो मगर घटिया दार्शनिक। किंतु भौतिकी में जिसकी गहरी दिलचस्पी है, वह मूलभूत दार्शनिक प्रश्नों से कभी बच नहीं सकता।

गुरुत्वीय क्षेत्र का समीकरण बनाकर आइन्स्टाइन ने गुरुत्वाकर्षण के लिए वही काम किया, जो विद्युत-सिद्धांत के क्षेत्र में फैराडे और मैक्सवेल ने किया था। सामान्य और विशेष सापेक्षता-सिद्धांत पर तो उनके मौलिक विचार सारे विज्ञान-जगत को मालूम ही हैं।

उस दिन उन्होंने जब प्रारंभिक बातें खत्म कीं, उन्होंने मुझे यह भी बताया कि एकिक क्षेत्र सिद्धांत (यूनिटरी फील्ड थियरी) से संबंधित समस्या पर वार्ता के और मेरे विचार उन्हें क्यों पसंद नहीं हैं। फिर वे पदार्थ को क्षेत्र के संकेंद्रण के रूप में समझने के अपने असफल प्रयत्नों पर भी बोले और यह स्वीकार किया कि उनके सहयोगी और वे एक साल तक पर्याप्त उबाऊ काम करके भी अपने 'सेतुओं' वाले मत की कठिनाइयां सुलझा नहीं पाये।

हमारी बातें खत्म होने से पहले ही द्वार पर एक दस्तक पड़ी। एक बहुत ही छोटा-सा दुबला-पतला, साठ के करीब का व्यक्ति मुस्कराता और हाथ-पैरों से इशारे करता, स्पष्टतः माफी मांगता-सा अंदर आया, जो मानो यह नहीं सोच पा रहा था कि कौन-सी भाषा बोले। ये इटली के प्रसिद्ध गणितज्ञ लेवी-सिविता थे, जो तब रोम में प्राध्यापक थे और छह महीने के विशेष आमंत्रण पर प्रिंस्टन आये थे। इस पतले-दुबले आदमी ने कुछ वर्ष पूर्व इटली के विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों के लिए तैयार की गयी फासिस्ट शपथ लेने से इन्कार कर दिया था।

मैंने सोचा कि शायद उन्हें आइन्स्टाइन से कुछ खास बातें करनी हों, क्योंकि वे इनके पुराने परिचित थे। सो मैं स्वयं ही बोला–'तो मैं चलूं, फिर कभी आ जाऊंगा।'

आइन्स्टाइन ने विरोध किया–'नहीं। हम तीनों बातें करेंगे। मैं संक्षेप में अभी

तक की सारी बातें दुहरा देता हूं। कोई ज्यादा बातें तो नहीं हुईं अभी। अगले अंश पर हम तीनों ही विचार करेंगे।' और उन्होंने अपनी प्रारंभिक बातें और अधिक संक्षेप में कहीं।

अब हम लोग अंग्रेजी बोल रहे थे। सुनी बातों पर दुबारा एकाग्र होने के बजाय मैं और ही एक मजा ले रहा था। आइन्स्टाइन की अंग्रेजी बहुत ही सादी थी—लगभग तीन सौ शब्दों की, जिन्हें वे अपने खास लहजे में बोलते थे। लेकिन उनकी आवाज की आकर्षकता, बोलने की धीमी गति और भावस्थिरता के कारण हर लफ्ज साफ समझा जा सकता था। लेवी-सिविता की अंग्रेजी ज्यादा खराब थी, शब्दों का अर्थ उनके इतालवी उच्चारण में घुल जाता था और इस कमी की पूर्ति वे अपनी भावगर्भ मुद्राओं से करते थे।

फिर भी हम तीनों अगर एक दूसरे को समझ सके तो इसलिए कि गणितज्ञों को एक दूसरे को अपनी बात समझाने के लिए शब्दों की बहुत कम जरूरत पड़ती है। गणित के संकेतों और मुट्ठी-भर तकनीकी संज्ञाओं को बिगड़े उच्चारण के बावजूद समझा जा सकता है। लेकिन उस सारे दृश्य पर मैं अपनी हंसी बड़ी मुश्किल से रोक पा रहा था। आइन्स्टाइन बार-बार अपनी ढीली पतलून संभालते थे और दुबले-पतले लेवी-सिविता ब्लैकबोर्ड पर लिखे फार्मूलों की ओर इशारा करके जैसे-तैसे जो भी बोल पा रहे थे, उसे वे दोनों समझ रहे थे कि यह अंग्रेजी है।

अब आइन्स्टाइन अपने नवीनतम और अप्रकाशित शोधलेख के बारे में बता रहे थे। वह गुरुत्वाकर्षण-तरंगों की समस्या पर था और उसका सार यह था कि हालांकि स्थूल रूप से देखने पर ऐसा लगता है कि उनका अस्तित्व है, परंतु गहरे विश्लेषण से यह बात गलत सिद्ध होती है। तभी लेवी-सिविता ने इशारे करना शुरू कर दिया कि उन्हें लंच के लिए एक जगह जाना है। इससे मुझे भी भूख लग आयी।

आइन्स्टाइन ने मुझे अपने घर चलने को कहा ताकि वहां अपने शोधलेख की पांडुलिपि पढ़ने को दे सकें। रास्ते में वे भौतिकी पर बातें करते रहे। विज्ञान की इस अति से मैं थक-सा गया था और उनकी बातें समझने में भी मुझे कठिनाई हो रही थी। वे समझा रहे थे कि आधुनिक क्वांटम यांत्रिकी सौंदर्यबोध की दृष्टि से उन्हें तृप्तिकारी क्यों नहीं लगती। और क्यों वे ऐसा मानते हैं कि उसका स्वरूप तात्कालिक है और भावी शोध उसे आमूलाग्र बदल डालेगा।

घर पहुंचते ही वे मुझे अपने अध्ययन-कक्ष की बड़ी-सी खिड़की के पास ले गये और उजले शारदीय रंगों से दिप रहा अपना बाग दिखाकर बोले—'इस खिड़की से बहुत सुंदर दृश्य दीखता है।' अभी तक हुई सारी बातचीत के दौरान भौतिकी से असंबंधित पहला वाक्य था यह उनका।

आइन्स्टाइन के उस नवीनतम शोधलेख की प्रवीणता से मैं बहुत प्रभावित हुआ।

प्रस्तुत लेख लियोपोल्ड इन्फील्ड की आत्मकथा 'क्वेस्ट' के दो परिच्छेदों का सार है। इन्फील्ड स्वयं बहुत बड़े भौतिक-विज्ञानी थे। यह प्रसंग नवनीत में लेने का सुझाव देने के लिए हम श्री आर. वी. वत्सगोत्री के कृतज्ञ हैं। –संपादक

यद्यपि उसकी तर्क-शृंखला बहुत जटिल थी, पर बड़ी बुद्धिमत्ता से सजायी गयी थी। उसका सार यह था कि गुरुत्वाकर्षण-तरंगों का अस्तित्व नहीं है। यदि यह बात ठीक थी तो सापेक्षवाद के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात थी।

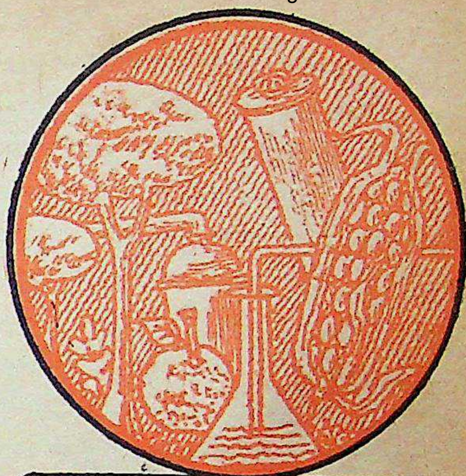
दूसरों की युक्तियों की सचाई परखना आसान काम नहीं होता। जिसने शोध में दिन बिताये हों, वही समझ सकता है कि बड़े-बड़े मनीषी भी कैसे फंदों में पड़ सकते हैं। नील्स बोर ने एक बार कहा था कि 'विशेषज्ञ' वही है, जिसने कटु अनुभव द्वारा अपने सीमित क्षेत्र की सारी संभव गलतियां जान ली हैं। मसलन, यह समझना कि आइन्स्टाइन से कोई गलती नहीं हो सकती, वैज्ञानिक कार्य-प्रणाली को न समझना ही माना जायेगा। वास्तव में, आइन्स्टाइन की महानता तो इसी में थी कि वे अपनी प्रचंड कल्पना-शक्ति और अविश्वसनीय दृढ़ता का प्रयोग वैज्ञानिक समस्याओं से जूझने में करते थे। महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक कार्य में मौलिकता सर्वाधिक सारवान घटक होती है। अंतर्ज्ञान हमें अनचीन्हे क्षेत्रों में ले जाता है और अंतर्ज्ञान की बौद्धिक व्याख्या नहीं की जा सकती, जैसे कि भूगर्भ के स्रोत का पता यों ही बता देने वाले की शक्ति की बौद्धिक व्याख्या नहीं की जा सकती।

गलतियों के बिना कभी किसी ने कोई बड़ा काम नहीं किया और कभी कोई महान व्यक्ति हमेशा सही नहीं होता। यह प्रत्येक विज्ञानी जानता है। आइन्स्टाइन का शोधलेख गलत हो सकता है, फिर भी वे इस पीढ़ी के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक रह सकते हैं।

अपनी इस मुलाकात के दिन ही शाम को मैं चाय के लिए फाइन हाल गया और वहां एच. पी. राबर्ट्सन से मेरी मुलाकात हुई। सापेक्षतावाद की दृष्टि से सृष्टि-विज्ञान पर मैं इनका काम जानता था। वे प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में सैद्धांतिक भौतिकी के प्राध्यापक थे। यदि उनकी आंखों से चातुर्य और व्यंग्य न झलकते तो उनके गुलथुल चेहरे को बिलकुल भावशून्य कहना पड़ता। उन्हें मैंने जब आइन्स्टाइन के शोधलेख में विवेचित निर्णय के बारे में बताया, तब वे तुरंत प्रतिवाद करते हुए बोले–'इसमें कहीं कुछ गलती है। मेरा निश्चय है, गुरुत्वाकर्षण-तरंगों को नकारा नहीं जा सकता।'

आइन्स्टाइन का वह जटिल शोधपत्र मैंने ध्यान से पढ़ा। मैंने सोचा कि यदि आइन्स्टाइन का फैसला ठीक है, तो उसे साबित करने का कोई आसान तरीका भी होना चाहिये। मैंने उस पर अपने तरीके से सोचा और कुछ दिनों के काम के बाद लगा

[शेष पृष्ठ १५६ पर]



विज्ञान-बिंदु

केजिता

यूरोप और अमरीका में पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध से ही ऐसे कई संघटन हैं, जो शाकाहार का प्रचार बड़ी लगन से कर रहे हैं, और हाल के वर्षों में पश्चिम में शाकाहार को जीवन-मूल्य के रूप में अपनाने वालों की संख्या कुछ तेजी से ही बढ़ी है। परंतु मोन्टेफ्लोर अस्पताल (अमरीका) के बालरोग-विशेषज्ञ डा. फिन्वर्ग के एक ताजा लेख ने इन शाकाहार-भक्तों में खासी हलचल पैदा कर दी है। अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन की बालरोग-पत्रिका के ताजा अंक में डा. फिन्वर्ग ने बताया है कि मांस-सेवन के अभाव में इसकी काफी प्रबल संभावना रहती है कि बच्चों का विकास दोषपूर्ण रह जाये।

इस संबंध में पिछले दिनों दो अलग-अलग अध्ययन किये गये थे। इनसे प्रकट हुआ कि ऐसा कोई भी वानस्पतिक खाद्य पदार्थ नहीं है, जो अमीनो अम्लों अर्थात् प्रोटीनों की दृष्टि से मनुष्य के लिए आवश्यक संतुलित पोषक तत्त्वों से युक्त हो। कुछ तत्त्व तो शुद्ध शाकाहार द्वारा शरीर को प्राप्त हो ही नहीं सकते। इनका अभाव विकास में बाधक होने के अलावा अनेक भयंकर रोगों, विकलांगता, और यहां तक कि बाल्यावस्था में ही मौत का कारण बन सकता है। विकासशील देशों में बहुतायत से पाये जाने वाले कई रोगों का कारण भी यही बताया गया है कि वहां के शाकाहारी-लोगों को वे सभी पोषक तत्त्व संतुलित विकास के लिए आवश्यक मात्रा में नहीं मिल पाते।

विटामिन-डी इन तत्त्वों में विशेषतः उल्लेखनीय है। लेख में यह भी सुझाया गया है कि शाकाहारियों को इसकी पूर्ति के लिए काड लिवर आइल या फिर विटामिन-डी की गोलियां नियमित रूप से इस्तेमाल करनी चाहिये।

मगर यह भी सच है कि भारत जैसे देशों में जहां धूप की कोई कमी नहीं है और धूप के संपर्क से कोई बच नहीं पाता, वहां विटामिन-डी की पर्याप्त मात्रा धूप के जरिये शरीर को अनायास प्राप्त हो जाती है। वस्तुतः सूर्य की किरणें विटामिन-डी का सर्वसुलभ प्राकृतिक स्रोत है।

बिगाड़-बीड़ी

अब तक यह विश्वास काफी प्रचलित था कि सिगरेट की तुलना में बीड़ी कम हानिकारक होती है; क्योंकि पत्ते के जलने पर जो धुआं बनता है उसमें कागज के धुएं की अपेक्षा कम कार्बन-कण होते हैं। मगर ताजा अध्ययनों से यह विचार गलत साबित हुआ है।

तंबाकू-सेवन के विभिन्न रूपों के प्रभावों को जानने के लिए भारत के ही एक शोधदल ने चंद स्वस्थ सामान्य व्यक्तियों और चंद हृद्रोगियों को लेकर इसका विशेष अध्ययन किया कि खाने के तंबाकू के तथा सिगरेट और बीड़ी के सेवन के पश्चात् उनमें नाड़ी-गति, रक्तचाप, इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम तथा रक्त-पिंडन (खून का अचानक जमकर द्रव से ठोस अवस्था में बदल जाना) आदि में क्या परिवर्तन होते हैं। इस अध्ययन से सामने आयी बातों में से कुछ इस प्रकार हैं :

तंबाकू खाने के कुप्रभाव अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और ज्यादा देर तक रहने वाले पाये गये हैं। परीक्षणाधीन सभी व्यक्तियों की नाड़ीगति और रक्तचाप खाने के तंबाकू, बीड़ी और सिगरेट तीनों के ही सेवन से काफी बढ़ गये। सिगरेट पीना समाप्त करने के बाद सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों पर सत्रह मिनट तक और हृद्रोगियों पर सत्ताईस मिनट तक ये प्रभाव बने रहे। बीड़ी के शौकीनों में ये अवधियां क्रमशः अठारह और तेंतीस मिनट पायी गयीं। तंबाकू चबाने वालों की नाड़ीगति और रक्तचाप उस पूरी अवधि में सामान्य से ऊपर रहे, जब तक वे तंबाकू चबाते रहे। चबाना खत्म करने के बाद सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों में ये प्रभाव सोलह मिनट तक और हृद्रोगियों में लगभग छब्बीस मिनट तक बने रहे। यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि एक सिगरेट या एक बीड़ी पीने की तुलना में तंबाकू की एक खुराक को खत्म करने में कई गुना—पंद्रह, बीस गुना या कभी-कभी इससे भी कहीं अधिक – समय लग जाता है। इतने लंबे समय तक हृदय और रक्तचाप का अपसामान्य अवस्था में बने रहना उन शरीरक्रियात्मक या जैवरासायनिक प्रक्रमों के लिए बहुत हानिकारक हो सकता है जो जीवन-संचालन के लिए उत्तरदायी हैं।

खाने के तंबाकू से मुंह-कैन्सर और धूम्रपान से फेफड़ा-कैन्सर की संभावना काफी बढ़ जाती है, यह तो अब सर्वविदित है।

ठंडी बीयर : कितनी ठंडी?

ठंडी बीयर का शौक पिछले दिनों काफी तेजी से बढ़ा है—विशेषतः बड़े शहरों और संपन्न परिवारों में गरमी के दिनों में यह धीरे-धीरे शीतल पेयों का स्थान लेने लगी है। दुनिया के सबसे बड़े बीयर-पियक्कड़ देश जर्मनी के एल्डेबर्ग शहर के कैन्सर रिसर्च सेन्टर के विज्ञानियों ने लगभग डेढ़ सौ कंपनियों की बीयरों का विश्लेषण करके हाल में यह निष्कर्ष निकाला है कि उनमें से अधिकांश में नाइट्रोसो अमीन नामक अकार्बनिक नाइट्रोजनी रसायन अवश्य

के रूप में उपस्थित रहते हैं। वैज्ञानिकों की मान्यता है कि ये पदार्थ कैन्सर को जन्म दे सकते हैं।

'जर्मन न्यूज' पत्रिका के अनुसार, १९७७ की अवधि में जर्मनी में बीयर की १४६·६ लिटर खपत प्रतिव्यक्ति रही। बीयर के माध्यम से नाइट्रोसोअमीन रसायनों की इतनी बड़ी खपत को प्रसिद्ध जर्मन चिकित्सक रुडोल्फ प्रौसमान ने खतरनाक बताया है।

दूसरी तरफ स्वीडिन के कुछ वैज्ञानिकों ने मूत्राशय (ब्लैडर) के कैन्सर की रोकथाम और उपचार में सहायक एक नयी दवा के विकास में सफलता पाने की घोषणा की है। स्टाकहोम के विख्यात कैरोलिंस्का अस्पताल के एक शोधदल के अनुसार, …आमापसिन नामक दवा एक विशेष विधि द्वारा मूत्राशय में पहुंचायी जाये तो मूत्राशय की ऊपरी सतह पर होने वाले कैंसर का विकास थम जाता है और वह धीरे-धीरे ठीक हो जाता है। इस विषय में किये गये परीक्षणों के नतीजे काफी उत्साहवर्धक रहे हैं।

काई की बड़ाई

खड़े पानी पर उतराती नीली-हरी काई धान-उपज बढ़ाने में सहायक हो सकती है। यह रहस्य खोज निकाला है भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली के विज्ञानिकों ने। उन्होंने यह जानने के लिए एक अध्ययन किया था कि दालों के अतिरिक्त कौन-सी फसलें ऐसी हैं, जो सूक्ष्मजीवों के माध्यम से वायुमंडल से नाइट्रोजन प्राप्त कर सकती हैं। पता चला कि धान ऐसी फसल है। बताया गया है कि धान की फसल के लिए आवश्यक नाइट्रोजन की लगभग एक तिहाई पूर्ति काई या शैवाल की सहायता से की जा सकती है।

तमिलनाडु के अनेक कृषकों ने तो नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए धान की फसल को काई और शैवाल देना शुरू भी कर दिया है, जिसमें खेतों की उपज बढ़ी भी है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और मध्य-प्रदेश आदि कुछ अन्य राज्यों में भी इसके परीक्षण किये जा रहे हैं।

हाइड्रोजनी कार

अमरीका के एक शोधदल ने यह घोषणा की है कि उसने मोटर-गाड़ियों में पेट्रोल के स्थान पर हाइड्रोजन गैस इस्तेमाल करने की तकनीक का विकास किया है। जैसा कि आप जानते हैं, हाइड्रोजन एक ज्वलनशील गैस है, जो आक्सिजन के संपर्क में आम ईंधन की तरह जल सकती है। परंतु दहन-इंजनों में इसे ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने में दो कठिनाइयां थीं। पहली तो यह कि गैस और द्रव दोनों ही अवस्थाओं में हाइड्रोजन बहुत अधिक अस्थिर वस्तु है। दूसरी यह कि इसे वाहनों में ईंधन के रूप में टंकी आदि में भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना व्यावहारिक नहीं है।

इन मुश्किलों से बचने के लिए पहले हाइड्रोजन गैस को एक मिश्रधातु के साथ स्थिर करके धातु-हाइड्राइड में परिवर्तित

कर लिया जायगा। किसी धातु और हाइड्रोजन के संयोग से बनने वाले पदार्थ को रसायनशास्त्र में 'हाइड्राइड' कहते हैं। यह हाइड्राइड ठोस अवस्था में होगा और इसलिए स्थिर रहेगा और उसे लाने-ले जाने में सुविधाजनक भी। ईंधन के रूप में इसे इस्तेमाल करने के लिए हाइड्राइड को गरम भर करना होगा, जिससे हाइड्रोजन गैस दहन-कक्ष में सीधी पहुंचायी जा सकेगी।

हाइड्राइड को गरम करने के लिए भी मोटर-गाड़ी आदि से निकलने वाली बेकार गैसों को ही इस्तेमाल किया जायेगा।

गाड़ी के चलने में पैदा होने वाली गैस को बाहर न जाने देकर हाइड्राइड-कक्ष में भेजा जायेगा और वहां निर्मित हाइड्रोजन गैस को मोटर के दहन-कक्ष में इस प्रकार यह क्रियाचक्र जितनी देर आवश्यक हो जारी रखा जायेगा।

पृथ्वी से ताप-दोहन

गरम पानी के सोतों की भूतापीय ऊर्जा को कैसे उपयोगी बनाया जाये, यह प्रश्न काफी समय से विज्ञानिकों को कुरेदता रहा है। (इस विषय पर श्री श्यामलाल काकानी का विस्तृत लेख अगस्त १९७८ के नवनीत में छपा था। –संपादक)

अब बेंगलूर की राष्ट्रीय विमान प्रयोगशाला के कुछ विज्ञानियों ने एक ऐसी युक्ति विकसित की है, जिसकी सहायता से ... सोतों के गरम पानी का इस्तेमाल कर ... आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद ढंग से बिजली का उत्पादन किया जा सकता है।

पांच किलोवाट क्षमता के इस 'टर्बाइन सिस्टम' को हिमाचल प्रदेश में लगाने की तैयारी पूरी हो चुकी है। बिजली उत्पादनार्थ टर्बाइन चलाने के लिए जितनी ऊर्जा चाहिये, वह प्राकृतिक सोतों के गरम पानी से सामान्य अवस्था में नहीं मिल पाती। यह नयी युक्ति 'लो ग्रेड' ऊष्मा को 'अपग्रेड' करके उस ताप सीमा तक पहुंचा सकेगी जो टर्बाइन के संचालन के लिए आवश्यक होती है।

सदा ही बिजली-उत्पादन का ... महत्त्वपूर्ण पक्ष यह रहता है कि उत्पादन व्यय बहुत ज्यादा न हो। यदि उत्पादन-व्यय बहुत ज्यादा होगा तो बिजली महंगी पड़ेगी और उसका उपयोग उद्योग एवं घरेलू कामों के लिए नहीं किया जा सकेगा। इस नयी तकनीक से उत्पादित बिजली कोयले से उत्पादित बिजली की अपेक्षा सस्ती पड़ेगी ... संचालन पर भी मामूली खर्च ही आयेगा।

बताया गया है कि भारत सरकार से आर्थिक सहायता मिलते ही इस संयंत्र को हिमाचल प्रदेश में स्थापित करने का काम शुरू हो जायेगा।



किसी ने श्रीमती आइन्स्टाइन से पूछा–'क्या आप अपने पति के सापेक्षवाद के सिद्धांत को समझती हैं?' उत्तर मिला–'नहीं वह मेरी समझ से बाहर की चीज है। उससे महत्त्व की चीज यह है कि मैं अपने पति को अच्छी तरह समझती हूं।'



फुटबाल : कुछ क्षण

नसीमा अब्बासी

अर्जेंटाइना में हुई १९७८ की विश्व-कप फुटबाल प्रतियोगिता ने यह बात निर्विवाद रूप से दिखा दी कि फुटबाल विश्व का सबसे लोकप्रिय खेल है। मैचों को प्रत्यक्ष रूप से या टेलिविजन पर देखने वालों, उनका आंखों देखा हाल सुनने वालों या अखबारों में उनका विवरण पढ़ने वालों की विशाल संख्या और तीव्र उत्सुकता ने सिद्ध कर दिया कि फुटबाल के जादू से चीन, क्या अमरीका कोई भी देश नहीं बच सका है।

पेश हैं फुटबाल की दुनिया की चंद रंगीन झांकियां।

जीत की हार

गोऽऽल ! .... विश्व-कप फुटबाल के फाइनल मैच का पहला गोल। लेकिन क्या गोल करने वाली टीम इस पहले गोल को 'जीत की तरफ पहला कदम' मान सकती है? शायद ही। विश्व-कप फुटबाल के पचास वर्षों के इतिहास में १९७४ के फाइनल को छोड़कर शेष जितने फाइनल हुए हैं, उनमें पहला गोल दागने वाली टीम अंत में पराजित ही हुई है। सन १९७८ के फाइनल में भी पहला गोल हालैंड ने किया और विजयश्री मिली अर्जेंटाइना को।

गोल करवाने वाले भूत

फुटबाल का विश्व-कप जीतना जितना कठिन है, उतना ही प्रतिष्ठापूर्ण भी है। कौन देश है जो विश्व-कप-विजेता बनना नहीं चाहता और उसके लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक नहीं करता—चाहे साम्य-





चित्र : विष्णु भटनागर

वादी रूस हो, या सामंतवादी इंग्लैंड, या पूंजीवादी पश्चिम जर्मनी!

जब अफ्रीकी देश ज़ेरे विश्व-कप प्रतियोगिता के अंतिम 'राउंड्स' में पहुंचा, तो ज़ेरे सरकार ने भी अपने दल को विजयी बनाने का प्रयत्न आरंभ कर दिया। उसने एक ओझा दल के पास भेजा। ओझा का काम था मंत्रतंत्र करना, ताकि भूत और चुड़ैलें ज़ेरे के खिलाड़ियों का साथ दें और विपक्षी दलों से असहयोग रखें।

खिलाड़ियों को स्वस्थ-चुस्त बनाये रखने के लिए नियमित रूप से उनका प्रिय भोजन बंदर का मांस भी दिया जाता था।

मगर सारे प्रयास विफल रहे और ज़ेरे की टीम हर मैच में हारी।

फुटबाल का अभिमन्यु

एक कप-मैच में विल्फ्रेड मिन्टर ने 'हेमटेल' क्लब की टीम के मुकाबले में अपनी 'सेन्ट अल्बास' टीम की ओर से खेलते हुए ७ गोल किये। लेकिन परिणाम? सेन्ट अल्बास ७-८ से हार गयी।

विजय-ध्वज—पराजय-ध्वज

इंग्लैंड की पूर्व क्षेत्रीय फुटबाल लीग के १९५२ के मौसम (सीजन) में 'न्यूमार्केट टाउन फुटबाल क्लब' को एक पताका (फ्लैग) से पुरस्कृत किया गया। लीग मैचों में क्लब का रेकार्ड था—३४ मैच खेले, ३४ हारे, १९ गोल किये और १७१ गोल झेले।

जिस सौम्यता और खेल-भावना से 'न्यूमार्केट टाउन फुटबाल क्लब' के खिलाड़ी पराजय पर पराजय स्वीकार करते थे, उसी की प्रशंसा में यह पताका भेंट की गयी थी।

फुटबाल-निषेध

मद्य-निषेध ही क्यों, फुटबाल-निषेध का भी कानून बन सकता है! फुटबाल मैचों में आये दिन होने वाली सिर-फुटव्वल में मद्यपान की भूमिका का ठीक से आकलन अभी तक तो नहीं हो सका है, मगर फुटबाल-प्रेमी सचेत रहें कानून के हस्तक्षेप से।

एडवर्ड द्वितीय से लेकर रानी एलिजाबेथ प्रथम के काल तक इंग्लैंड में फुटबाल खेलने की मनाही रह चुकी है। वजह यह थी कि छोकरे न सिर्फ खेल में वक्त बरबाद करते थे, बल्कि धौल-धप्पे की सारी वारदातों के लिए 'मैच के दौरान मतभेद' का बहाना ढूंढ़ लिया करते थे।

बुरे हाल

'क्या स्कोर हुआ?'

'छत्तीस!'

यह संवाद क्रिकेट से संबंधित लगता है, मगर इसका रिश्ता फुटबाल से भी हो सकता है।

स्काटिश कप के लिए ५ सितंबर १८८५ को हुए प्रथम श्रेणी के फुटबाल मैच में अर्बोथ क्लब ने बॉन एकार्ड क्लब को हराते हुए स्कोर किया—३६-०। आज तक यह प्रथम श्रेणी के फुटबाल मैच के अधिकतम गोल-अंतर का विश्व-कीर्तिमान है।

अंतरराष्ट्रीय मैचों में अधिकतम गोल-अंतर रहा है—१७-०, इंग्लैंड बनाम आ[...]लिया, १९५१।

वह गोलरक्षक

ऊपर बताये स्कोर शायद कभी संभव न होते, अगर पराजित टीमों के पास गोलरक्षक के रूप में होते विली फाओक। छह फुट तीन इंच ऊंचे, ३११ पौंड वजन के विली का शरीर ही गोल का काफी आकार घेर लेता था।

इंग्लैंड के विली फुटबाल के 'बृहत्तम' गोलकीपर माने जाते हैं।

पेले (फुटबाल) प्रेम

'पेले, तुमने मुझे धोखा दिया! ...... मैं तुमसे घृणा करती हूं पेले।' चीख-चीखकर यह कहते हुए एक ब्राजीली युवती ने तूफानी समुद्र में कूदकर जान दे दी।

असफल प्रेम? नहीं! युवती 'फुटबाल के जादूगर' कहलाने वाले पेले से इसलिए खफा थी कि घायल होने के कारण वे १९६६ के विश्व-कप के कुछ महत्त्वपूर्ण मैचों में खेल नहीं पाये थे और ब्राजील क्वार्टर-फाइनल से पहले ही हार गया था।

गोल जिसने युद्ध छेड़ दिया

एल साल्वाडोर बनाम होंडुरास! दो गरीब दक्षिण अमरीकी देशों के बीच फुटबाल का मैच! दोनों देशों के बीच राजनैतिक और आर्थिक कारणों से पहले से ही तनातनी! उस मैच की विजेता टीम १९७० के विश्व-कप के अंतिम राउंड्स खेलने की अधिकारी होती।

कुछ विश्व-कप से जुड़ी प्रतिष्ठा, कुछ दोनों देशों के आपसी मतभेद, कुछ वैसे ही फुटबाल का जुनून। मैच जी-जान लड़ाकर खेला और देखा गया। अंत में निर्णायक-गोल करके एल साल्वाडोर विजयी हुआ। लेकिन होंडुरास की जनता को शक हो गया कि निर्णायक-गोल सही नहीं था। पराजय के क्षोभ को इस शक ने धधकती आग में परिणत कर दिया। और होंडुरास की सेना ने एल साल्वाडोर पर हमला बोल दिया। युद्ध छिड़ गया और शांति स्थापित होने तक जान और माल की भारी क्षति हुई।



विश्व के सर्वोत्तम होटल : ताजमहल (बंबई), क्लैरिज (ब्यूनोस आयर्स), इंटर कान्टिनेन्टल (फ्रैंकफर्ट), इंटर कान्टिनेन्टल (जिनीवा), ग्रासवेनर हाउस (लंदन), कामिनो रियल (मेक्सिको सिटी), प्रिंसिपे दे सेवोया (मिलान), इंटर कान्टिनेन्टल (पेरिस), कोपाकाबाना पैलेस (रियो दे जेनीरो), ग्रांद (रोम), शेरेटन (स्टाकहोम), ओकुरा (टोक्यो), पार्क प्लाजा पैलेस (टोरोंटो)। [अमरीकी पत्रिका 'फार्चून' के अनुसार]

भारत के सर्वोत्तम होटल : अशोक (नयी दिल्ली), सेन्टार (बंबई), चोळा (मद्रास), फोर्ट अगाडा बीच रिसार्ट (गोवा), ग्रैंड (कलकत्ता), कोवलम् बीच रिसार्ट (कोवलम्, केरल), ओबेराय इंटर कान्टिनेन्टल (दिल्ली), ओबेराय (बंबई), ताजमहल और ताज इंटर कान्टिनेन्टल (बंबई), ताजमहल (नयी दिल्ली)। ['इंडियन एक्सप्रेस' से]





• विजय सहगल •

रहस्य संत सुंदरसिंह की अंतिम यात्रा का

१८ नवंबर १९२९ को सारी दुनिया के समाचारपत्रों में एक सनसनीखेज खबर छपी—हिंदुस्तानी साधु अचानक तिब्बत में लापता। कलकत्ता के सूत्र से छपी इस खबर में साधु सुंदरसिंह की तिब्बत-यात्रा का उल्लेख था और यह आशंका भी व्यक्त की गयी थी कि संभवतः ईसाई धर्म-विरोधी लोगों ने वहां इनकी हत्या कर दी है।

भारतीय ईसाइयों के धर्मगुरु साधु सुंदरसिंह ने अनेक कष्ट झेलकर ईसा के सिद्धांतों का प्रचार किया था और पीड़ितों की सेवा की थी। विदेशी मिशनरियों से उनका मुख्य अंतर यह था कि वे भारतीय संस्कृति के हामी थे और ईसाइयत में उसके सभी गुणों का समावेश करना चाहते थे। विदेशी मिशनरियों को उनकी लोकप्रियता रास नहीं आयी थी। अपने अनुयायियों पर साधु सुंदरसिंह का प्रभाव पड़ने से उन लोगों का वर्चस्व कम हो चला था।

उन दिनों भारतीय हल्कों में भी साधु सुंदरसिंह की ख्याति तथा भारतीयपन की आलोचना की जाती थी। लेकिन इन आलोचकों ने भारतीय दर्शन और विचार-धारा को समझे और उससे जुड़े बिना ही अपनी राय कायम कर ली थी। साधु सुंदर-सिंह ऐसी आलोचनाओं को सहर्ष सुनते थे और उनका तर्कसंगत उत्तर देते थे। उनकी कई पुस्तकें मसीही जगत के लिए अमूल्य देन हैं।

सुंदरसिंह अधिकांशतः उर्दू और अंग्रेजी में लिखते थे। लेकिन उनकी प्रायः सभी रचनाओं का हाथों-हाथ कई देशी-विदेशी

भाषाओं में अनुवाद हो जाता था और एक-एक पुस्तक के कई-कई संस्करण निकलते थे।

ईसाई धर्म के कुछ पश्चिमी पंडित तो यह भी मानने लगे थे कि पूरब में साधु सुंदरसिंह के रूप में ईसा मसीह ही पैदा हुए हैं, जो विदेशी मिशनरियों के प्रभाव या उनकी सहायता के बिना ही ईसाइयत को भारतीय स्वरूप देने के पुण्य कार्य में लगे हैं। वेश-भूषा में भी वे पूरे भारतीय साधु ही लगते थे।

शिमला की खूबसूरत पहाड़ियों के दामन में बसी पुरानी सुबाथू छावनी साधु सुंदरसिंह की कर्मभूमि थी। आज भी यदि आप सुबाथू जायें तो वहां उनकी वह पुरानी कुटिया नजर आयेगी, जहां वे काफी लंबे अरसे तक धर्म-साधना के अलावा स्वाध्याय एवं लेखन-कार्य करते रहे थे। यहीं से उन्होंने भारतीय ईसाई समाज को नयी दिशा दी थी। पंद्रह वर्ष की कच्ची उम्र में वे यहां चले आये थे और कुछ लोगों की तो मान्यता है कि उनकी आत्मा आज भी यहीं कहीं विराजती है। वैसे इतनी बात बिलकुल सही है कि सुबाथू साधु सुंदरसिंह को अत्यंत प्रिय था। यदि वे कभी अन्यत्र अस्वस्थ होते थे तो स्वास्थ्य-सुधार के लिए सुबाथू को ही चुनते थे। यहां रहते हुए उन्हें हिमालय की ऊंची हिमाच्छादित चोटियों के पार बराबर तिब्बत-यात्रा के लिए भी प्रेरित करते थे।

सुबाथू में साधु सुंदरसिंह 'मिशन लेपर होम' के एक बंगले में रहते थे। सुबाथू के बाजार और कस्बे की चहल-पहल से काफी दूर यह एकांत स्थान चीड़ के घने जंगलों से घिरा है। बाद में इसी बंगले को, जिसे सुबाथू के लोग 'एक नंबर बंगला' के नाम से जानते हैं, उन्होंने तीन हजार रुपये में खरीद लिया था। वे अस्पताल में कोढ़ियों की सेवा भी करते थे। उनके स्पर्श मात्र से रोगी चंगा होने लगता है, ऐसी प्रसिद्धि हो गयी थी।

साधु सुंदरसिंह ३ सितंबर १८८९ को पटियाला के निकट एक छोटे-से गांव के एक सिक्ख परिवार में जनमे थे। पिता अच्छे-खासे जमींदार थे। लेकिन नन्हे सुंदर को धर्म-प्रेरणा अपनी मां से मिली, जो अक्सर यह सोचती थी कि उसका पुत्र किसी दिन संत बनेगा। मां की संगति में सुंदर ने गीता न केवल कंठस्थ ही की, बल्कि अच्छी तरह समझी भी। शायद इसीलिए आगे चलकर उन्होंने कृष्ण के कर्मयोग को ईसा के सिद्धांतों के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया। उनकी यह भी मान्यता थी कि हिंदू, बौद्ध, पारसी और मुस्लिम अलग नहीं हैं, सभी 'रूहे-अल्लाह' हैं। उनके प्रशंसकों का तो विश्वास था कि साधु सुंदरसिंह ने सदियों पुराने ईसाई धर्म-दर्शन को नया रूप दिया है।

सुंदरसिंह ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि चौदह वर्ष की उम्र में मां की मृत्यु के बाद अत्यंत पीडा और उपेक्षा के क्षणों में उन्हें ईसा के साक्षात् दर्शन हुए थे। किशोर

सुंदर ने ठान लिया था कि ईसा के दर्शन न हुए तो रेल के नीचे आकर अपनी जान दे दूंगा। आधी रात को ही इस 'दर्शन' की बात सुंदर ने अपने पिता को बताने की कोशिश की। लेकिन पिता ने सोचा कि बच्चा बुखार में सपना देख रहा होगा। यहीं से परिवार ने सुंदर का विरोध करना शुरू किया। कैसी अनहोनी बात कि जिस लड़के ने मिशन-स्कूल में पढ़ते समय बाइबल जला डाला था, वही अब ईसा का मतवाला हो उठा था! सुंदरसिंह ने स्वयं आगे चलकर लिखा–'जितनी ही यातनाएं मैंने झेलीं, मेरा आनंद उतना ही गहरा होता गया।'

सभी संतों की तरह साधु सुंदरसिंह के जीवन से भी कई चमत्कार-कथाएं जुड़ी हुई हैं, जिनमें कुछ बातें अतिरंजित भी हो सकती हैं।

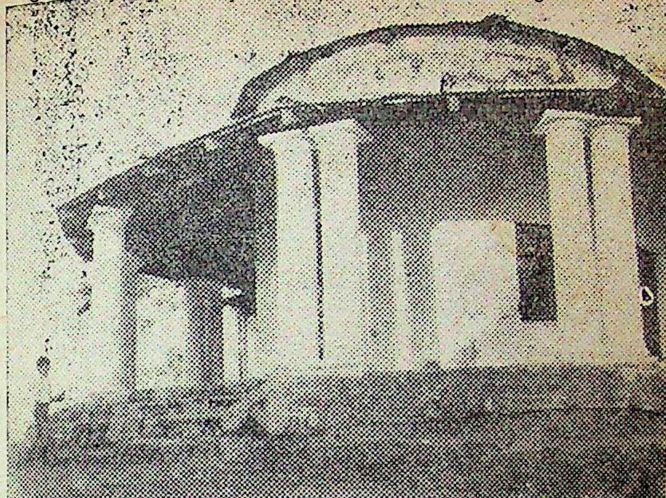
अनेक पुस्तकों में इस बात का उल्लेख है कि साधु सुंदरसिंह ने देश-विदेश की अनेक यात्राएं कीं। १९१७ के बाद विश्व-भर में उनकी ख्याति फैली। परिणामस्वरूप उन्होंने बर्मा, चीन, ब्रिटेन, अफगानिस्तान, अमरीका, फिलस्तीन, स्विट्जरलैंड, जर्मनी, फ्रांस तथा हालैंड की यात्राएं कीं। लेकिन तिब्बत जाने की ललक उनमें बराबर बनी रही। उनकी तीन-चार तिब्बत-यात्राओं के विवरण भी कई जगह मिलते हैं।

कुछ विद्वानों की राय में साधु सुंदरसिंह ने मई १९२३ में अपनी अंतिम तिब्बत-यात्रा से पूर्व अपने मित्रों को पत्र लिखे थे और उसके बाद उनका कोई पता [illegible] चलता। इसके कुछ ही समय बाद बंबई के एक अखबार ने खबर दी कि साधु सुंदर-सिंह अब जीवित नहीं रहे। दूसरे देशी-विदेशी अखबारों ने भी इस खबर को [illegible] चढ़ाकर छापा था।

लंदन के 'डेली न्यूज़' ने लिखा–'विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि भारतीय [illegible] संत (साधु) सुंदरसिंह की तिब्बत में ह[illegible] कर दी गयी है .....।' बहुत दिनों [illegible] दुनिया-भर के लोग केबल और तार भेजकर साधु सुंदरसिंह का कुशल-क्षेम पू[illegible] रहे। लेकिन उन्हें कोई संतोषजनक ज[illegible] नहीं मिला।

लेकिन एक लेखक के अनुसार [illegible] समय बाद साधु सुंदरसिंह की कोट[illegible] वापसी की पुष्टि हुई थी। इस लेखक [illegible] कथन है कि कोटगढ़ से ही साधु सुंदरसिंह [illegible] अपनी मृत्यु के समाचार का खंडन कि[illegible] था और यह भी कहा था–'राजनैतिक [illegible] धार्मिक कठिनाइयों के कारण मैं लौट आ[illegible] हूं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं निक[illegible] कि वे पुनः तिब्बत नहीं गये। उन्होंने [illegible] ही लिखा है–'खुदा ने मुझे तिब्बत जाने [illegible] रोका है, लेकिन मैं इसके बावजूद [illegible] तिब्बत जाऊंगा।' इससे स्पष्ट होता है [illegible] चाहे यह उनकी तीसरी या चौथी तिब्बत [illegible] यात्रा रही हो, व एक बार फिर तिब्बत [illegible] गये थे।

इन्हीं दिनों उन्हें न्यूजीलैंड आदि स्थानों से कई निमंत्रण मिले थे। लेकिन उन्[illegible]



सुबाथू में साधु सुंदरसिंह का पुराना बंगला

साफ लिख दिया कि तिब्बत में भारत से तिब्बत के अलावा और कहीं नहीं जाऊंगा।'

उनकी अंतिम तिब्बत-यात्रा के साथ एक और तथ्य भी जुड़ा हुआ है। १९२३ के आस-पास ही उनके पिता का निधन हो गया था। तब वे रांची, मैनपुरी एवं सहारनपुर की प्रवचन यात्रा से लौटे ही थे। उन्होंने ४ अप्रैल (१९२३) को लिखा—'मेरे पिता की रामपुर में मृत्यु हो गयी। मुझे इसका लेशमात्र दुःख नहीं है; क्योंकि मैं उनसे शीघ्र मिलूंगा। उनसे मेरी जुदाई [illegible] है।'

बाद इस दौरान उनकी अंतिम तिब्बत-यात्रा की तैयारी चल रही थी। कुछ दोस्तों ने इस यात्रा के लिए धन एकत्र किया था, जो एलायंस बैंक (शिमला) में सुरक्षित था। अचानक वह बैंक फेल हो गया और सुंदरसिंह को कुछ नहीं मिला। इस घटना के बारे में उन्होंने लिखा है—'मैं पैसे में यकीन नहीं रखता। पैसे देने के लिए मैं खुदा का शुक्रगुजार हूं। अब पैसा मेरे पास से चला गया है तो उसके लिए भी खुदा का आभारी हूं। मेरा यकीन तो उस खुदाई बैंक में है, जो कभी फेल नहीं होता।'

साधु सुंदरसिंह के एक परिचित जेनेट लिंच वाटसन ने अपनी पुस्तक 'द सैफ्रन रोब' में उनकी तिब्बत-यात्राओं का काफी स्पष्ट उल्लेख किया है। इन्हीं में से एक शायद उनकी अंतिम यात्रा रही होगी। वाटसन ने लिखा है कि १९२७ की गरमियों के प्रारंभ में सुंदरसिंह एक बार फिर तिब्बत को रवाना हुए। लेकिन खराब सेहत की वजह से आगे नहीं जा सके। वे जिन तिब्बतियों के साथ यात्रा कर रहे थे, उन्हीं ने उन्हें सुबाथू लौटाने का प्रबंध किया।

लेकिन दो वर्ष बाद अप्रैल १९२९ में साधु सुंदरसिंह ने पुनः तिब्बत जाने की कोशिश की। इसके लिए उन्होंने विशेष तैयारी नहीं की थी। हां, अपने कमरे में बैठकर अपने एक प्रिय मित्र टामस रिडल को (जिसके नाम वे वसीयत भी कर गये

थे) यह पत्र अवश्य लिखा :

'मैं अपनी तिब्बत-यात्रा के खतरों और दिक्कतों को जानते हुए भी आज तिब्बत को रवाना हो रहा हूं। मुझे तो अपना फर्ज निभाना है। प्रभु ईसा के प्रचार से मिलने वाले आनंद के मुकाबले मैं अपनी जिंदगी को अधिक कीमती नहीं समझता। तुमसे मिलने आना चाहता था, लेकिन मुझे एक व्यापारी का खत मिला है। उसने मुझे तुरंत तिब्बत-यात्रा के लिए बुलाया है। मैं उसी मार्ग से जाऊंगा, जिसके बारे में गत वर्ष तुमसे बात हुई थी।

'मुझे यह उम्मीद है कि जून के अंत तक मैं एक-दो तिब्बती ईसाइयों के साथ वापस लौटूंगा। यदि कुछ हो गया, तो थापा (सहायक) को तुमसे मिलने भेज दूंगा। और यदि तुम्हें मेरी कोई सूचना न मिले तो जुलाई में आकर मेरे घर में सारी चीजों को देखभालकर उन्हें संभाल लेना।'

यात्रा पर रवाना होने से पहले साधु सुंदरसिंह लेपर अस्पताल के सुपरिन्टेन्डेन्ट जी. एच. वाटसन से मिले। वाटसन ने खराब सेहत की वजह से उन्हें यात्रा पर जाने से रोका। लेकिन वे नहीं मा उन्होंने वाटसन को ऋषिकेश, बदरीनाथ अपने यात्रा-मार्ग की जानकारी देकर तक लौटने का आश्वासन दिया। अम के एक भारतीय प्रचारक सन्नूलाल सुबाथू के बाहर तक छोड़ने भी आये रवानगी से पूर्व साधु सुंदरसिंह ने बंगले की तरफ एक भरपूर नजर थी। जैसे कि उन्हें मालूम हो कि अब वहां कभी नहीं लौट सकेंगे।

बाद में साधु सुंदरसिंह के मित्रों ने उन कुशल-क्षेम जानने के लिए बदरीनाथ उससे आगे तक की यात्रा की तथा वाहक भी भेजे। लेकिन ये सारे प्र निष्फल रहे। शायद उस समय तक, को जीवन मानने वाला, गीता का पु वह भारतीय ईसाई संत अपने मिशन पूर्ति में मिट चुका था।

सुबाथू का उनका बंगला (जो अब बिक चुका है) आज भी भगवे एवं पगड़ी पहनने वाले साधु सुंदरसिंह याद को संजोये हुए है।

—नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली



मृत्युः शरीरगोप्तारं धनरक्षं वसुंधरा। दुश्चारिणी च हसति स्वपतिं पुत्रवत्सलम्॥

—शरीर की बहुत देखभाल करने वाले पर मौत हंसती है; (जमीन में गाड़ कर) धन की रक्षा करने वाले पर धरती हंसती है; अपने बच्चों से बहुत लाड़ लड़ाने वाले पति पर दुश्चरित्र स्त्री हंसती है।

कृपणः स्ववधूसङ्गं न करोति भयादिह। भविता यदि मे पुत्रः स मे वित्तं हरेदिति॥

—असली कृपण तो इस भय से अपनी पत्नी से समागम भी नहीं करता कि कहीं लड़का हो गया तो वह मेरा धन छीन लेगा।





शरीर के कौतुक

सुरजीत

मानव-शरीर संसार के सबसे बड़े विस्मयों में से हैं। मगर कुछ मानव-शरीर ऐसे विस्मयकारी होते हैं कि स्वयं विस्मय भी विस्मित रह जाये।

संसार का सबसे भारी और लंबा-चौड़ा आदमी इलिनायस (अमरीका) का राबर्ट ह्यूगो था, जिसका वजन उसकी मौत के समय १,०४१ पौंड था, कद ६ फुट था, कमर का घेरा १२२ इंच और बांहें ४० इंच थीं। जन्म के समय उसका वजन बारह पौंड था। उसका सर्वाधिक वजन ... वर्ष की आयु में था–१,०६९ पौंड।

संसार का सबसे लंबा आदमी भी इलिनायस (अमरीका) का ही निवासी था–राबर्ट वेडली। वह २२ फरवरी १९१८ को पैदा हुआ। पांच वर्ष की आयु में ही उसका कद ५ फुट ४ इंच था। २२ वर्ष की आयु में जब वह मरा, वह ८ फुट ११ इंच ऊंचा था; वजन ४९१ पौंड।

संसार की सबसे लंबी स्त्री ब्रिटेन की ... विनफोर्ड थी। ग्यारह वर्ष की उम्र में उसका कद बढ़ना शुरू हुआ और मौत के समय तक ७ फुट ७ इंच हो गया। उसका ... बर्मिंघम विश्वविद्यालय (ब्रिटेन) के म्यूजियम में अभी भी मौजूद है।

संसार की सबसे नाटी स्त्री हालैंड की पाउलीन थी, जो केवल २३.२ इंच ऊंची थी। २६ फरवरी १८७६ को जनमी पाउलीन १९ वर्ष की अल्पायु में ही न्यूयार्क में मर गयी।

संसार का सबसे ठिगना पुरुष क्लीवन फिलिप्स मैसाचुसेटस (अमरीका) में पैदा हुआ था और १८१२ में २१ वर्ष की आयु में मरते समय उसका कद केवल २६.६ इंच था।

संसार का सबसे हल्का-फुल्का व्यक्ति कहलाने का श्रेय लूसिया जेबर्ट को है। वह मेक्सिको की नागरिक थी। १७ वर्ष की आयु में उसका वजन ४.७ पौंड था; हां, बीसवें जन्मदिन तक वह १३ पौंड की हो गयी थी।

फ्योदोर वासिलेत संसार की सबसे अधिक संतान वाली स्त्री स्वीकार की गयी है। उसके ६९ बच्चे थे। १६ बार उसके दो-दो, ७ बार तीन-तीन और ४ बार चार-चार बच्चे हुए। इसी पराक्रम के कारण उसे रूस के जार द्वितीय के दरबार में पेश किया गया था।

पतली कमर सौंदर्य का मापदंड समझी

जाती है। सबसे पतली कमर फ्रांसीसी अभिनेत्री मली पोलारी की थी। उसकी कमर का घेरा केवल १३ इंच था। वह फ्रांसीसी दरबार से संबद्ध थी।

नाखून बढ़ाने का अधिकतम रेकार्ड भारत के नागरिक रमेश का है। २७ वर्ष तक नाखूनों का पालन-पोषण करके उन्होंने २७.७५ इंच लंबे नाखून बढ़ाये।

बाल बढ़ाने का सबसे अनोखा रेकार्ड कायम किया भारत के ही स्वामी पंदरा-संधाई ने। १९४९ में उनके बालों की लंबाई २६ फुट थी।

लंबी दाढ़ी का विश्व-रेकार्ड नार्वे के हैंस लेंग्थ का है। उसकी दाढ़ी साढ़े सत्रह फुट लंबी थी। ब्रिटेन के रिचर्ड लीटर की दाढ़ी की लंबाई भी १८ फुट मानी गयी है, पर उसकी दाढ़ी घनी नहीं है।

प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश) के मसुरियादीन ने मूंछें बढ़ाने में सबको पछाड़ दिया है। उन्होंने १३ वर्ष में अपनी मूंछें १०२ इंच बढ़ा लीं। मूंछों की परवरिश पर वे एक हजार रुपये वार्षिक खर्च करते हैं।

चौड़ा सीना वीरता का प्रतीक माना जाता है और राबर्ट अर्ल ह्यू का सीना १२७ इंच चौड़ा है। लेंकिन उसमें वीरता नाममात्र को भी नहीं है।

शरीर का न्यूनतम तापमान विस्कान्सिन (अमरीका) की नागरिक मेरी डेविस का रेकार्ड किया गया था—६०·८फा.।

ब्रिटेन के एक अस्पताल में एक बीमार का तापमान ११५ फा. रेकार्ड किया गया। उसका नाम क्रिस्टोफर लगा था। ... तापमान का रेकार्ड ९ फरवरी १९... कायम हुआ।

रूसी लेखक इवान तुर्गनेव के ... का वजन ४ पौंड और ६.७ औंस था ... कि अब तक का रेकार्ड है। मनुष्य के ... का औसत वजन २ पौंड १३ औंस होता ...

दैत्याकार स्त्रियों का जिक्र बहुत ... मिलता है। फ्लोरा जैक्स संसार की ... मोटी और भारी स्त्री थी। उसका ... उसकी मौत के समय ८४० पौंड था।

कैरोलाइना (अमरीका) के बिल ... बेन संसार के सबसे अधिक वजनी ... भाई थे। इनका वजन क्रमशः ६६० ... ६४० पौंड था।

सन १८५४ में डब्ल्यू. डरी ... डाक्टर ने ऐसे व्यक्ति का विवरण ... था, जिसकी चार आंखें थीं। उसकी ... अतिरिक्त आंखें सामान्य आंखों के ... ऊपर ललाट पर थीं। सो हर चीज वह ... आंखों से देखता था।

एडवर्ड मार्डो नामक अंग्रेज के दो ... थे। उसके सिर के पिछले भाग पर ... आंखें और मुंह मौजूद थे। ये ... आंखें थोड़ा बहुत देख सकती थीं। ... मुंह से वह सीटी जैसी आवाज ... सकता था।

सन १८८८ में एक पंद्रह वर्षीय ... को निरंतर लंबी जम्हाई आने ... उसकी सबसे लंबी जम्हाई पांच सप्ताह ... समाप्त नहीं हुई।

दुनिया का सबसे हृष्ट-पुष्ट बच्चा एलिस हाऊ १२ अक्तूबर १९६९ को पैदा हुआ था। २२ महीने की उम्र में उसका वजन ६१.५० पौंड और शरीर का घेरा ३५.७५ इंच था।

डा. वाइट के कथनानुसार एक आदमी के दोनों हाथों में तेरह-तेरह उंगलियां थीं, जबकि दोनों पैरों में बारह-बारह थीं।

१० मार्च १९६७ को मेक्सिको सिटी के एक नर्सिंग-होम में एक स्त्री मारिया टेरी के एक ही प्रसव में आठ बच्चे पैदा हुए। उनका कुल वजन ९ पौंड १० औंस था। आठ जुड़वां बच्चों के जन्म की यह घटना संसार की एकमात्र घटना है।

—सी-३४, सुदर्शन पार्क, मोतीनगर,
नयी दिल्ली-११००१५



वीरचक्र

हम सोने की अंगूठी बनवाने के सिलसिले में अपने परम मित्र के साथ सुनार की दुकान पर बैठे थे। अचानक एक हृष्ट-पुष्ट सज्जन वहां पधारे। उनके चेहरे पर भयानक उदासी के भाव थे। उन्होंने अपने दायें हाथ की मुट्ठी पूरे जोर से बंद कर रखी थी।

कुछ सकुचाते हुए मेरे मित्र ने उनकी उदासी का कारण पूछा, तो उन्होंने गरम सांस छोड़ते हुए कहा—'बेटा, मेरी उलझन कुछ अजीब प्रकार की है। बेटी की शादी में कुछ ही दिन शेष हैं। उसकी ससुराल वालों ने दहेज की लंबी-चौड़ी लिस्ट भेज दी है।' फिर उन्होंने अपनी मुट्ठी ढीली करते हुए बात आगे बढ़ायी—'अपने प्राणों को हथेली पर रखकर यह वीरचक्र पाया था और आज अपनी बेटी के सुख-भरे भविष्य के लिए उसे बेचने आया हूं।' कहते-कहते उनकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली और हम दोनों का भी गला भर आया।

'बाबा, मैं आपकी उलझन का समाधान ढूंढ़ सकता हूं।' मेरे मित्र ने वीरचक्र को चूमकर कहा—'वीरता का प्रतीक और भारत मां का सम्मान कभी नहीं बिक सकता। बाबा, क्या आप मुझे इस वीरचक्र को बचाने के बदले में एक गोल्ड मेडल दे सकेंगे?'

उन सज्जन ने उलझन-भरी दृष्टि से मेरे मित्र को निहारते हुए पूछा—'बेटा, मैंने तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझा।'

'बाबा, मैं सरकारी बैंक में अच्छे पद पर हूं। क्या आप अपनी बेटी को मेरी जीवन-संगिनी......'

'पर बेटा, क्या यह संभव है?'

'बाबा, दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं है।'

अगले दिन उन सज्जन की सहमति पर हम कुछ मित्र बिना बैंड-बाजे और घोड़ी के बारात लेकर उनके घर पहुंच गये।

—खुशहाल ठाकुर



विख्यात हस्तरेखा-विज्ञ कीरो का एक मार्मिक संस्मरण

मुर्दा हाथ की रेखाएं बोलीं

एक रात लंदन में मैं अपने दफ्तर में बैठा हुआ था कि सूचना मिली—'कोई साहब जो नीचे गाड़ी में बैठे हैं, फौरन आपसे मिलना चाहते हैं।' इससे मुझे बड़ी हैरानी हुई और खीझ भी। पहले हैरानी, और वह इसलिए कि तब रात के ग्यारह बज चुके थे। फिर खीझ, क्योंकि दिन-भर के काम के बाद मुझे आराम और नींद की सख्त जरूरत थी, ताकि कल बिला नागा जो व्यस्त दिन आने वाला था उसके लिए तैयार हो सकूं।

फिर भी मैं जीना उतरकर नीचे गया और वहां मैंने जरा बड़ी उम्र के एक आदमी को घोड़ागाड़ी में बैठे इंतजार करते पाया। 'गुड ईवनिंग' के सिवा अन्य किसी भूमिका के बिना ही वह आदमी कहने लगा—'श्रीमन्' क्या आप इसी क्षण मेरे साथ चलेंगे और एक व्यक्ति की हस्तरेखाएं पढ़ेंगे, जिससे मैं आपकी मुलाकात कराऊं?' मैं बेझिझक तैयार हो गया उसके साथ चलने को, हालांकि अब मैं बता नहीं सकता कि एड्वेंचर के शौक ने मुझे इसके लिए प्रेरित किया था, या हस्तरेखाएं पढ़ने के शौक ने।

मैं घोड़ागाड़ी में सवार हो गया और चंद मिनट में गाड़ी हमें तेजी से लिये जा रही थी हैमरस्मिथ की दिशा में।

मैंने अपने साथी से बातचीत छेड़ने की कोशिश की, मगर व्यर्थ। आखिर थक मैं ढांसला लेकर आराम से बैठ गया औ सोचने लगा कि कैसी तो विचित्र यह या है, और इसकी मंजिल क्या होगी!

मैंने ध्यान दिया तो पाया कि गा किराये की थी। वह शहर के किसी हिस्से के किसी अच्छे गाड़ीखाने से आ हो सकती थी। निश्चय ही मेरा सा पक्का भद्र पुरुष था। सड़क के दीपस्तं की भागती रोशनी में मैं उसके लंबे प ष्कृत हाथों और नाजुक-सी उंगलियों देख सकता था, जो गाड़ी के तनिक रुकने पर व्यग्रता और बेचैनी से ऐं लगती थीं। उसका चेहरा गहरी रेखा से युक्त और धूप में तपकर गाढ़े रंग का चुकने के बावजूद सुंदर था। उसके नाक नक्श तराशे हुए और कुलीनों जैसे थे उसके बाल तनिक सफेद और छोटे कटे हु थे। कुल मिलाकर उसके व्यक्तित्व निवृत्त सैनिक अधिकारी के पूरे लक्षण दि

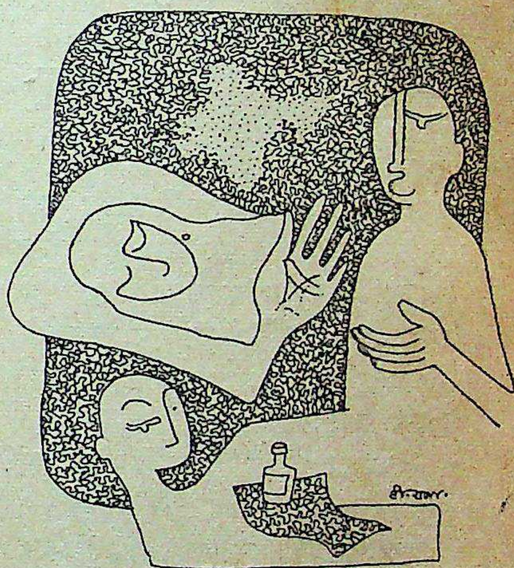
ज्यों-ज्यों हम हैमरस्मिथ के नजदी पहुंच रहे थे, उसकी बेचैनी बढ़ती जा र थी। और तब तो मुझे आश्चर्य ही न

...य भी महसूस हुआ, जब रिचमांड रोड में प्रवेश करते ही उसने अपनी जेब से एक बड़ा-सा काला रेशमी रूमाल निकाला और जिद ठानी कि आपको अपनी आंखों पर पट्टी बंधवानी पड़ेगी।

प्रतिरोध करना बेकार था; क्योंकि वह अपनी बात पर दृढ़ता से अड़ा हुआ था। मैंने उसे जितना ही रोकना चाहा, वह उतना ही जिद्दी हो उठा और चूंकि मैं इस एडवेंचर को अंत तक देखना चाहता था, इसलिए मैं अंततः राजी हो ही गया।

दस मिनट बाद मैंने महसूस किया कि गाड़ी सड़क से उतरकर मुड़ गयी है और क्षण-भर बाद पहिये के नीचे बजरी के ...ने की ध्वनि ने मुझे बता दिया कि गाड़ी ...सी प्राइवेट मकान के कच्चे रास्ते पर ...रही है। चंद मिनट और बीते कि गाड़ी खड़ी हो गयी, मेरा साथी गाड़ी से ...और गाड़ीवान का किराया चुकाकर ...से सहारा देकर मुझे गाड़ी से उतारा ...र चंद सीढ़ियां चढ़ाकर एक मकान में ले ...या। वहां उसने मुझे क्षण-भर बैठाया, ...र बिना कुछ बोले वह मुझे नरम कालीन ...ढ़े जीने तक ले गया और बांह में बांह ...ले हम दोनों धीरे-धीरे जीना चढ़ने लगे। दूसरी मंजिल पर वह रुका और दर-वाजा खोलकर एक कक्ष में ले गया, जो मेरी जागरूक और उत्तेजित इंद्रियों को ...ड़ा और विचित्र-सा प्रतीत हुआ। वह ...मुझे एक कुर्सी के पास ले गया और जब मैं ...कुर्सी पर बैठ गया तो उसने मेरी आंखों पर से पट्टी खोल दी और 'क्षण-भर में आता हूं' कहकर तेजी से कमरे से बाहर चला गया।

पट्टी इतनी कसकर बांधी गयी थी कि कुछ सेकंड तक तो मुझे कुछ भी दिखाई न दिया। और जब दिखाई दिया तो मैं कुर्सी पर तनकर सीधा बैठ गया। भय और बेचैनी से मेरे रोंगटे ही क्या, सिर के बाल भी खड़े हो गये।



चित्र : ठाकोर राणा

मैंने तो आशा की थी उजली रोशनी और प्रतीक्षातुर अतिथियों से भरी बैठक की। पर बजाय उसके मैंने पाया कि मैं चांदनी में बैठा हुआ हूं एक महिला के—असल में एक शव के—बिस्तर के पास।

पलंग के सिरहाने पर खिड़की खुली हुई थी। उसमें से आती हुई मंद-मंद हवा शव के माथे पर घुंघराली अलकों से खेल रही

थी और उसके कफन में घुसकर उठ व गिर रही थी, जैसे कि कोई जीवंत वस्तु हो। उस औरत के सीने पर आबनूस का सलीब था, जो उसके गले की संगमरमरी सफेदी से सरासर विपरीत था। उसके चेहरे पर दर्द के निशान नहीं थे, न शांति के ही थे। मैं तो कहूंगा कि उसके मुंह से आखिरी आह शोक की निकली होगी। जवानी में मरना कष्टकारी होता है, विशेषत: जो व्यक्ति सुंदर हो उसके लिए; और यह औरत जवान भी थी और सुंदर भी।

मैं अभी तक खड़ा ही था—विस्मय, अटकलबाजी और भय में डूबा हुआ। तभी दरवाजा खुला और मेरा साथी प्रकट हुआ। चटपट उसने खिड़की के परदे खींच दिये और एक छोटी मेज पर रखा हुआ लैंप जलाकर मेज को खींचकर पलंग के पास किया। फिर मुझे बैठने का इशारा करके उसने कफन हटाया और दबी हुई उत्तेजना के साथ कहा :

'मैं चाहता हूं आप इन हाथों की रेखाएं पढ़ें।'

अब तक मैंने तरह-तरह की विचित्र परिस्थितियों में हस्तरेखाएं पढ़ी थीं, मगर इतनी भुतही, इतनी भयानक स्थिति में कभी नहीं। इसके अलावा, मुझे इसका क्या अधिकार था कि मैं उस औरत की हस्तरेखाओं को बोलने को विवश करूं, जिसके कि ओंठ सदा के लिए चुप हो चुके थे। 'अतीत के गड़े मुर्दों को गड़ा ही रहने देना ठीक होता है; मैं भी चुप ही रहूंगा'.....

इस निश्चय पर मैं पहुंचा ही था कि कै... किसी ठंडे निःश्वास ने मुझे स्पर्श किया। यह कोरी कल्पना थी या वास्तविकता, ... मैं कह नहीं सकता। मगर मैंने सोचा ... साथ ही महसूस भी किया कि कोई ची... मेरे कानों में फुसफुसा रही है—'संकोच ... करो। हस्तरेखाएं पढ़ो, और जो सच है ... बता दो।'

उसी क्षण मानो मैं अपनी सारी संक... शक्ति गंवा बैठा। मानो अब मैं कि... अदृश्य शक्ति या प्रभाव के नियंत्रण में ... मैंने अपने को पलंग की ओर खिंचता हु... अनुभव किया और सिहरकर देखा ... झुककर मैंने उन मृत हाथों को बड़ी मृ... से अपने हाथों में ले लिया है।

मुझे ज्यादा प्रकाश मिले, इस उद्दे... से मेरे साथी ने एक और लैंप जलाया; ... चूंकि कमरे में दूसरी कोई मेज नहीं ... जिस पर लैंप रखा जा सके, इसलिए ... पलंग के पायताने रखे ताबूत को ... खींचा। और जब वह उस पर लैंप र... लगा, तो मैंने ताबूत पर अंकित यह सी... सादी इबारत पढ़ी :

एग्नेस मार्टन
उम्र : २४

सिर्फ २४ साल, फिर भी उसकी ह... रेखाएं भारी परेशानी और चिंता की सू... दे रही थीं। मगर विवाह-रेखाएं ... इस सबका प्रतिकार करते हुए कह ... थीं कि उसे अपने पति से उत्कट प्रेम था... जैसे-जैसे मैं एक-एक ब्योरा पढ़ता गया, ...

साथी के मुखड़े पर अंकित मानसिक वेदना अधिकाधिक तीव्र और भयंकर होती गयी।

मैंने उसे बताया कि शुरू से ही उस औरत के जीवन में कोई गुप्त स्नेह था, जिसे उसने चुपचाप संजो रखा था। यह स्नेह किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति था, जिसे वह अपने पैसों से सहायता और सहारा देती आयी थी, जिससे उसे पूरी दिली मुहब्बत थी, और मुझे पक्का विश्वास था कि वह उसका कोई रिश्तेदार था।

मेरा साथी इस तरह कराहा, जैसे उसके कलेजे में चाकू भोंक दिया गया हो और कुर्सी में बेहोश होकर ढह पड़ा।

मृत हथेलियों को छोड़कर मैं अपने साथी की ओर लपका। चंद मिनटों में वह वापस होश में आया और जब उसकी नजरें मुझ पर पड़ीं, तो उसने अपनी कनपटी पर हाथ फिराया, मानो याद करने की कोशिश कर रहा हो कि यह आदमी कौन है और यहां क्यों मौजूद है। और जब उसे याद आया तो मुझे हैरत में डालते हुए, उसने व्यग्रता से मेरी बांह पकड़कर मुझे तेजी से कमरे से बाहर ले जाकर बिना किसी स्पष्टीकरण के बड़ी उत्तेजना में कहा—'मैंने काफी सुन लिया—जो कुछ सुनने की इच्छा थी, सब सुन लिया। श्रीमन्, अब तशरीफ ले जाइये, भगवान के वास्ते मुझे अकेला छोड़ दीजिये। किसी रोज शायद मैं आपको फिर बुलवा भेजूं और सारी बात आपको बताऊं।'

× × ×

आठ महीने गुजर गये। मैंने उस अजीब किस्से के बारे में न कुछ देखा, न सुना। फिर एक शाम को एक घोड़ागाड़ी मेरे द्वार पर रुकी और गाड़ीवान ने आकर मुझसे प्रार्थना की कि कृपया गाड़ी में बैठकर चारिंग क्रास के नजदीक एक प्राइवेट होटल में चलिये।

होटल पहुंचने पर मुझे एक प्राइवेट बैठक में ले जाया गया और वहां मैंने पाया कि पलंग पर लेटा हुआ कोई आदमी मेरा इंतजार कर रहा है। उसने मुझसे हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया और न उठ पाने की माफी मांगी। उसकी आवाज परिचित-सी लगी। फौरन मुझे याद आया कि वह आठ महीने पहले की उस रात के उस विचित्र एड्वेंचर का मेरा साथी था।

मगर वह इस कदर बदल गया था कि उसे पहचानना भी दुश्वार था—बस, आवाज नहीं बदली थी। उसकी जो चुस्त सैनिक अदा पिछली बार मैंने देखी थी, वह गायब हो चुकी थी। वह सिकुड़-सा और टूट-सा गया था, जैसे इन चंद महीनों में उसने एक पूरी जिंदगी गुजार दी हो। उसके बाल सफेद और छितरे हो गये थे। मुंह निकल आया था और उस पर छाये हुए पश्चात्ताप-भाव और दर्द को देखना दूभर था।

'आह, आपको मेरी याद है!' उसने कहा—'मुझे खुशी है कि आप पधारे। मैं अब सब कुछ बता देना चाहता हूं आपको। मुझे लगता है कि मेरे दिल का धड़कना बंद हो, इसके पहले मुझे अपना दिल आपके सामने उड़ेल देना चाहिये। पास बैठ जाइये,

बैठेंगे न ? मेरी आवाज में बहुत दम नहीं है।

खांसी का झमझोर देने वाला एक दौरा थमते ही उसने कहना शुरू किया—'क्या पिछले अगस्त की वह रात आपको याद है, जब मैं आपको लंदन के बाहर एक मकान में ले गया था और आपने मेरी खातिर हस्त-रेखाएं पढ़ी थीं ?' मैंने सिर हिलाकर हामी भरी और उसने कहना जारी रखा—'सुनिये, व ; औरत मेरी पत्नी थी। उससे चंद ही साल पहले की बात है, भारत में सेना में सर्विस करके लौटते वक्त जहाज पर मेरी मुलाकात एक अत्यंत रूपवती औरत से हुई थी, जिसके संग एक नौकरानी के सिवा दूसरा कोई नहीं था। यात्रा में उससे मेरी मित्रता हो गयी और हम इंग्लैंड पहुंचें, इसके पहले ही मैंने अनुभव किया कि जीवन में पहली दफा मैं बुरी तरह प्रेम में पड़ गया हूं। मैं तब चालीस वर्ष का था—भारत में सक्रिय सैनिक सेवा कर चुक था। वह मुश्किल से बीस वर्ष की सुंदर तरुणी थी। फिर भी पहले ही दिन से मुझे पक्का यकीन हो गया कि उसके जीवन में कोई रहस्य है, जिसे वह गुप्त रखना चाहती है।

'एक सांझ को जब भूमध्य सागर में हम दोनों जहाज के डेक पर साथ-साथ चहलकदमी कर रहे थे, मैं अचानक इस बात का जिक्र छेड़ बैठा...... वह चौंकी, मगर चटपट संभल गयी और विनोदपूर्वक बोली—'कर्नल साहब, औरतें रहस्य की पुतलियां हैं। अगर आप चाहते हों कि हमारी मित्रता बनी रहे, तो याद रखिये कि मुझे अपने रहस्य गुप्त रखने की छूट है।"

'बाद में उस रात मैंने उस वाक्य पर बहुत तरह से विचार किया, मुझे भरोसा हो गया कि उसके शब्द जितना मैं समझ रहा था, उससे अधिक गंभीरता से कहे गये थे। इससे मेरे प्यार और मेरे अहंकार में लड़ाई ठन गयी। मैंने अपने मन में दलील दी कि किसी पुरुष को किसी स्त्री से यह मांग करने का कोई अधिकार नहीं कि हमारी मुलाकात होने से पहले की अपनी सारी बातें बताओ। सो मैंने तय किया कि इसी रात मैं उसके पास जाऊंगा और उसे बताऊंगा कि मैं किस कदर उससे प्यार करने लगा हूं और उससे जीवन-सहचरी बनने की प्रार्थना करूंगा।

'अनुकूल अवसर भी मिल गया। मैंने उसे डेक के पिछले भाग में समुद्र की ओर मुंह किये खड़े पाया। मैं चुपके-से जाकर उसकी बगल में खड़ा हो गया और उसकी बांह में बांह डालकर उसे अपनी ओर खींचा। जब वह मेरी तरफ मुड़ी, मैंने पाया कि उसकी आंखें आंसुओं से भरी हुई हैं। वह रो रही थी। "एग्नेस !" मैं बोला—"मैं तुम्हें प्यार करता हूं। मुझ पर भरोसा करो। बताओ, तुम


उद्भ्रांत

रो रही हो? यह रहस्य क्या है?"

'उसने मेरे हाथ अपने हाथों में लेकर उन्हें चूम लिया और गरम आंसुओं की नाराजगी-सी करते हुए कहा—"मैं बता नहीं सकती प्रिय, मैं बताने की हिम्मत नहीं कर सकती। अगर तुम्हें मुझसे प्यार है, तो कभी मुझसे यह रहस्य बताने को मत कहना। यही मेरे प्रति तुम्हारे मान का निशान होगा।"

मैंने कहा—"एग्नेस, बस एक सवाल है जो मुझे पूछना ही है और मैं पूछूंगा भी। उसका उत्तर तुम दे दो, तो फिर चाहे जो रहस्य रखना चाहो, रखना। क्या तुम किसी और पुरुष से प्यार करती हो और अगर नहीं तो क्या तुम मुझसे प्यार कर सकोगी?"

सिर झुकाकर उसने मृदुता से कहा—"जिस अर्थ में तुम पूछ रहे हो, उस अर्थ में मैं किसी और पुरुष से प्यार नहीं करती। मैंने कभी प्यार नहीं किया, मगर अब करती हूं। मैं तुम्हें प्यार करती हूं—संपूर्ण हृदय और आत्मा के साथ।"

इंग्लैंड पहुंचकर हमने शादी कर ली। कोई तीन साल हमने लगभग आदर्श जीवन बिताया। न मैंने कभी उसके बीते जीवन के बारे में सवाल पूछे, न उसने कभी मेरे बीते जीवन के बारे में।

एक रोज भारत से उसके नाम एक चिट्ठी आयी। मैं वह चिट्ठी उसके पास ले गया और बोला—"क्यों भई, भारत में तुम किसे जानती हो? मुझे पता नहीं था कि भारत में तुम्हारे दोस्त हैं।" वह चौंकी। उसकी आंखों में आंसू छलछला आये। उसने दो-चार असंबद्ध शब्द कहे, फिर फफककर रोने लगी और कमरे से चली गयी।

'अगर मैं उसके पीछे-पीछे गया होता, अगर मैंने मृदुता से उसका विश्वास जीतने की कोशिश की होती, तो सब कुछ ठीक हो जाता। मगर काश, ऐसा लगता है कि उस एक क्षण में मेरा स्वभाव ही भयानक रूप से बदल गया। ईर्ष्या मेरे हृदय पर हावी हो गयी, उसने मेरे प्यार को कुचल डाला, वह आग बनकर मेरी शिराओं में धधकने लगी, और मेरे सिर में घुसकर उसने मुझे पागल बना डाला, जैसे मुझे सांप ने डंस लिया हो।

'कई दिनों तक मैं अपनी पत्नी से दूर ही दूर रहा और अपनी ईर्ष्या को सहलाता रहा, अपने दुर्भाग्य पर कुढ़ता रहा। अंत में मैंने एक कार्य-योजना बनायी और फिर प्रतिशोध की बात सोची। अब मैं इस बात को समझ पाया कि उसने मुझे सेना छोड़ने से मना क्यों किया था। उसका खयाल था कि मुझे फिर भारत वापस भेजा जायेगा और तब वह भी भारत जा सकेगी। मगर मैं उस पर नजर रखूंगा, और जिस चीज के सबूत मैं पाना चाहता हूं वे प्राप्त करूंगा और वे उसके सामने पेश कर दूंगा और उसके मुंह से सचाई कबूल करवाने का संतोष प्राप्त करूंगा। मैं घर लौटा और मुस्कान के साथ अपनी पत्नी से मिला। मगर एक ही नजर में उसने देख लिया कि मेरी मुस्कान झूठी है और मैंने देखा कि

वह सिमट गयी, जैसे कई फूल रात आने पर पंखुरियां समेट लेते हैं।

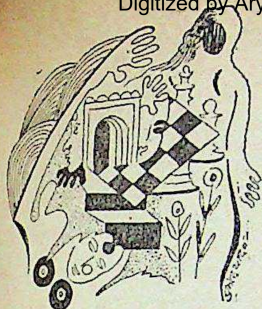
'बहुत कम लोग जान सकते हैं कि असली ईर्ष्या क्या होती है। बहुत कम लोग इस किस्म के पागलपन के प्रति सहानुभूति रख पाते हैं। पर कितनी भयंकर, कितनी तल्लीन कर लेने वाली चीज है ईर्ष्या! जिस औरत से मैंने प्यार किया था, वही अब मेरी नजरों में मेरी सबसे बड़ी दुश्मन बन गयी थी। मैं अनुभव कर सकता था कि मैं जब उसके निकट पहुंचता हूं, वह कैसे सिकुड़ जाती है। मैं उसके सामने मुस्कराता, मगर मेरी मुस्कान उसे बर्फ की तरह जमा देती। मेरे चुंबन उसके लिए तपते हुए डंक थे, जिन्हें वह सह नहीं पाती थी। मैं बैठक में ऐसी जगह बैठता, जहां से उस पर नजर रख सकूं। मैं बगीचे की झाड़ियों में दुबककर बैठ जाता और उसका आना-जाना देखता। मैंने डाकिये को घूस देकर ऐसी व्यवस्था कर ली कि उसकी तमाम डाक मेरे हाथों में से गुजरे। रात को उठकर मैं चुपचाप उसके शयन-कक्ष में चला जाता और अंधेरे में उसे इस कदर घूरता कि मुझे डर लगने लगता कि कहीं मेरी आंखों की उग्रता से वह जल ही न जाये।

'एक रात मुझे इनाम मिल गया अपनी मेहनतों का। मैं दबे पांव उसके कमरे में पहुंचा तो मैंने पाया कि वह चिट्ठी लिख रही है। हालांकि यह पुरुषोचित नहीं था, हालांकि यह सरासर विश्वासघात था, मगर मैं अपने को रोक न पाया। आहिस्ते से मैंने कमरा पार किया और उसके [illegible] खड़े होकर उसके कंधे पर से झांककर [illegible] लगा कि पत्र में उसने क्या लिखा है। [illegible] लिखा था:

"मेरे दुलारे छोकरे, तुम जानते हो [illegible] मैं उन किस्सों पर कभी विश्वास नहीं [illegible] जिनके कारण तुम्हें इंग्लैंड छोड़ना [illegible] तुम जानते हो कि मुझे कितनी [illegible] तुम्हारे भविष्य की और कितनी प्रतीक्षा [illegible] उस दिन की जब बावजूद तमाम बातों [illegible] हम फिर मिलेंगे। मैं बेरिंग्स, कलक[illegible] की मार्फत तुम्हें एक ड्राफ्ट भेज रही [illegible] मेरे दुलारे, इसका उपयोग तुम्हें करना [illegible] होगा। तुम विपदाओं से जूझ रहे [illegible] मुझे आश्वासन दो कि तुम इस पैसे [illegible] उपयोग करोगे, ताकि मैं....."

'मैं और ज्यादा न पढ़ सका। ईर्ष्या [illegible] बौराया हुआ मैं अपनी बुरी से बुरी [illegible] काओं की सत्यता का प्रमाण पाकर [illegible] कमरे में लौट आया और मैंने फैसला [illegible] लिया कि मैं अपनी जिंदगी का अंत [illegible] दूंगा और उसे स्वतंत्र कर दूंगा, ताकि [illegible] भारत जाकर उस आदमी से शादी कर [illegible] जिससे उसे प्यार है।

'मैंने अपनी वसीयत निकाली और [illegible] ध्यान से पढ़ा, ताकि उसमें कोई खामी न [illegible] जाये, ताकि वह मेरी तमाम जायदाद [illegible] किसी कठिनाई या हुज्जत के प्राप्त [illegible] सके। मैंने सोचा—"वह दूसरा पुरुष [illegible] है; जब मैं त्याग कर रहा हूं तो सर्व[illegible] त्याग ही क्यों न करूं। हां, सभी कुछ [illegible]



चित्र : प्रमोद यादव

मिलना चाहिये। सुख पाने के लिए उसे तीन साल की प्रतीक्षा जो करनी पड़ी, उसकी भी क्षतिपूर्ति मैं कर दूंगा।"

'जब मैं वसीयत लिख रहा था तो मुझे उसके अपने कमरे में चलने-फिरने की आहट सुनाई दी। "अहा! सो नहीं पा रही है।" मैंने सोचा–"न्यूराल्जिया का दौरा पड़ा होगा। उसका स्नायुतंत्र तबाह हो गया है। खैर, मेरे मरने के बाद उसे पूरा आराम मिलेगा।" इसके बाद मुझे उसके कमरे का दरवाजा खुलने की आवाज सुनाई दी। मैंने ध्यान देकर सुना। वह मेरे कमरे की ओर आ रही थी। मैंने झटपट अपने लिखने की डेस्क बंद की, और तभी उसने दस्तक दी। मैं दरवाजे पर गया और मैंने देखा कि वह एक चादर लपेटे दहलीज पर खड़ी है। बोली–"ओह आर्थर, तुम्हें डिस्टर्ब किया, इसके लिए माफ करना। मुझे बहुत दर्द हो रहा है। दवा की अलमारी में से जरा लाडेनम निकालकर दोगे, ताकि जरा राहत पा सकूं?"

'मैंने कुछ जवाब नहीं दिया. मगर दरवाजा खुला रखा। सो वह भीतर चली आयी और वहां पहुंची, जहां मैं दवाइयां रखता था और दवा की अलमारी खुली देखकर तत्क्षण अपना दर्द भूल गयी और बोली–"आर्थर, आर्थर! क्या तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है? मुझे माफ करो आर्थर, इधर कुछ समय से मैं बहुत स्वार्थी हो गयी हूं। मेरे प्रति तुम्हारे व्यवहार ने मुझे आघात पहुंचाया था। मगर अब मैं समझ पा रही हूं, तुम बीमार हो, शायद काफी बीमार हो। बात क्या है? मुझे माफ कर दो प्यारे!"

'मेरी इच्छा हुई कि उसे बांहों में भर लूं; पर मैं वैसा न कर सका. वैसा करने का मुझे साहस न हुआ। मुझमें इतना आत्म-विश्वास नहीं था कि बोल सकूं, क्योंकि मुझे भय था कि मेरी आवाज लड़खड़ा जायेगी और मैं रो पड़ूंगा। मैंने सोचा, सवेरे मेरा पत्र मेरी ओर से सब कुछ बोलेगा ही। तब वह भी उसे जान जायेगी, जो चीज अभी मैं जानता हूं।

'मैंने सख्ती से, शायद क्रूरता से उसे परे हटाया; क्योंकि मैं इस दर्दनाक मुलाकात को जल्दी खत्म करना चाहता था और दवा की अलमारी से एक छोटी शीशी उठाकर उसे थमाकर मैंने उसकी ओर पीठ फेर ली और जाकर डेस्क के सामने कुर्सी पर बैठ गया।

'आहिस्ते से और बड़ी अनिच्छा से वह दरवाजे की ओर बढ़ी और दहलीज पर क्षण-भर को ठिठकी। हमारी आंखें चार हुईं। वह बोली–"गुड नाइट।" मैंने कहा–

“गुड बाइ।” परेशान और विचलित मैंने अपनी चिट्ठी फिर से शुरू की। जो कुछ अब तक लिखा था, वह मुझे जंचा नहीं और बहुत ज्यादा सख्त जान पड़ा। मैंने उसे फाड़ डाला और दूसरा पत्र लिखना शुरू किया। बार-बार ऐसा ही होता रहा और अंत में मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि पौ फटने लगी है और मैं अभी अपना काम नहीं निबटा पाया हूं। मैंने सोचा—“यों तो चंद पंक्तियां ही काफी हैं।” इसलिए मैंने फिर से कलम उठाकर चटपट लिखा—“अलविदा। मुझे सब पता लग गया है। अब तुम स्वतंत्र हो। सुखी रहो।”

‘मैंने पत्र को एक लिफाफे में रखकर लिफाफे पर उसका नाम लिखा, फिर कुछ और तैयारियां कीं। मैंने सोचा, इस वक्त वह सोयी हुई होगी। मैं चुपचाप उसके कमरे में जाऊंगा, उस मुखड़े को देखूंगा जिससे मैंने इस कदर प्यार किया है, और फिर अपने कमरे में लौट आऊंगा—और बाकी सब बहुत आसान होगा।

‘मैं चुपचाप उसके कमरे में पहुंचा और दरवाजे पर खड़े होकर मैंने देखा कि उषा की किरणें उसके तकिये पर पसर रही हैं। उसके बिस्तर के पास पहुंचकर और अपने आंसू पोंछकर (क्योंकि मुझे डर था कि वे उसे जगा न दें) मैं आखिरी चुबन के लिए झुका। उसके ओंठ बर्फ की मानिंद ठंडे थे। “हे भगवान, क्या माजरा है?” मैं चीख पड़ा। मैंने जल्दी-जल्दी उसके कपड़े हटाये। मैंने उसे अपने सीने से चिपटा लिया। मैं उसके हाथों को, उसके मुखड़े को, उसके स्तनों को चूमने लगा। अंत में एक ठंडी उंगली मेरे मस्तिष्क में यह खयाल लिख गयी कि वह मर चुकी है।

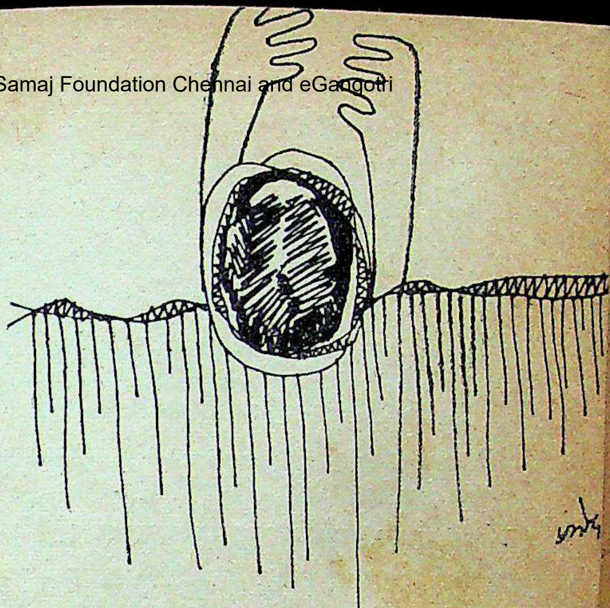
‘आप आसानी से समझ सकते हैं कि क्या हुआ होगा। रात को उत्तेजित अवस्था के कारण मैंने उसे लाडेनम के बजाय वह विष दे डाला था, जो कि मैं खुद लेना चाहता था। बस, एक चीज का खुलासा मैं नहीं कर पाऊंगा। वह है, उस भयंकर रात को मेरा आपके पास पहुंचना और उन मृत हाथों की रेखाएं पढ़ने के लिए आपको बुलाकर लाना। पर मैंने वैसा किया, यह अच्छा ही हुआ। आपने उस रात बताया था कि कोई शख्स था जिससे वह प्यार करती थी; वह उसका रिश्तेदार था, उस पर बोझ था, और उसी ने उसका जीवन बरबाद किया था। आपकी बात सच निकली। वह पुरुष जिसे उसने पैसे भेजे थे, उसका सगा भाई था, और वह अपमानजनक अवस्था में इंग्लैंड से भाग गया था। मैं केवल इसलिए अब तक जीवित रहा कि उस आदमी के बारे में अपनी पत्नी की इच्छा की पूर्ति कर सकूं। मैं भारत गया था। मैं वहां उससे मिला था। और अब मरने के लिए स्वदेश लिए लौटा हूं।’

×××

तीन हफ्ते बाद कर्नल मार्टन का शव कब्रिस्तान को रवाना हुआ। उसकी शव-यात्रा में सम्मिलित होने वाला एकमात्र व्यक्ति मैं ही था।



चित्र : प्रमोद गणपत्ये



चंद सांसों की सलामी के लिए

ये बियाबान मेरे वास्ते बने होंगे
इनकी रौनक न बढ़ाऊं तो किधर जाऊंगा,
सर्द रातों में चिलकती हुई धूपों के तले
मैं न गाऊंगा तो मर जाऊंगा।

बारहा मुझको सफर करना है
राह में आग बिछा दो तो भी तर जाऊंगा,
तुमने जिस राह पर अपनी हो बनायी मंजिल
ताउम्र भूल से उस राह नहीं जाऊंगा।

चंद सांसों की सलामी में जिंदगी खो दूं
ऐसा सौदा तो मैं सांसों का न कर पाऊंगा,
कोई अपना तो नहीं रात के सायों के सिवा
काले सूरज को उजाले तो न दे पाऊंगा।

तुमने छीनी हैं जो मुझसे वो सुनहरी किरणें
उनकी स्याही में बहुत गहरे उतर जाऊंगा,
फिर न मैं लौट के उस गांव कभी आऊंगा
अब न मातम तेरे जाने का मैं मनाऊंगा।

—रामस्वरूप पाठक



हाइनरिश ब्योल की जर्मन कहानी

यदि कोई मेरा पेशा पूछता है तो मुझे गहरी उलझन का सामना करना पड़ता है। मैं घबराकर हकलाने लगता हूं, हालांकि मुझे एक संतुलित व्यक्तित्व वाला आदमी माना जाता है। मुझे उन लोगों पर रश्क होता है, जो यह कह सकते हैं कि मैं मिस्त्री हूं; मुझे उनसे डाह होती है जो कहते हैं कि मैं नाई हूं; मुझे उनसे ईर्ष्या होती है जो अपने आपको लेखाकार अथवा लेखक कहते हैं। उनके पेशों के नाम में ही उनके काम की स्वीकारोक्ति है। इन धंधों की कोई अलग से व्याख्या नहीं करनी पड़ती। परंतु मुझे अपने व्यवसाय के बारे में बताते हुए अनेक प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। 'मैं हंसोड़ हूं' यह कहते ही मुझे दूसरे प्रश्न का उत्तर देना पड़ता है–'क्या आप अपनी रोजी-रोटी इसी पेशे से कमाते हैं?' जी हां! यह सच है कि मैं अपनी रोजी इसी पेशे से कमाता हूं। मेरी कमाई खासी अच्छी है, क्योंकि व्यावसायिक रूप में मैं एक अच्छा हंसने वाला हूं और मेरी हंसी की बहुत मांग है। मैं एक अनुभवी हंसोड़ हूं। मेरे-जैसी हंसी कोई दूसरा नहीं हंस सकता। मेरी कला की सूक्ष्मता को कोई दूसरा अब तक अपना नहीं सका है।

उबा देने वाली व्याख्याओं से बचने के लिए शुरू में मैं अपने आपको अभिनेता कहा करता था। किंतु स्वांग और वक्तृता के क्षेत्र में मेरी योग्यता इतनी कम थी कि मेरे लिए यह 'ओहदा' उचित नहीं कहा जा सकता था।

मैं सचाई पसंद हूं और सच यह है कि मैं हंसने वाला हूं। मैं न तो विदूषक हूं और न मसखरा ही। मैं लोगों को प्रसन्न नहीं करता, बल्कि उनके लिए प्रसन्नता का प्रदर्शन करता हूं। मैं रोमन सम्राट् की भांति अथवा किसी संवेदनशील स्कूली बच्चे की तरह हंस सकता हूं। मैं सत्रहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों की हंसी भी हंस सकता हूं। मैं समाज के सब वर्गों की तरह हंस सकता हूं। हर उम्र के लोगों की हंसी हंस सकता हूं। यह एक ऐसी कला है जिसमें मैंने प्रवीणता प्राप्त कर ली है, कि लोग जूते गांठने के हुनर में पारंगत होते हैं।

हंसौड़

जाते हैं। मैंने अपनी छाती में अमरीकी हंसी, अफ्रीकी हंसी, काले गोरे और पीले लोगों की हंसी संजो रखी है और पूरे मेहनताने के एवज में निर्देशक के इच्छानुसार मैं इसकी परतें उधेड़ता चला जाता हूं।

अपने इस धंधे में मैं अपरिहार्य बन चुका हूं। मेरी हंसी के रिकार्ड भरे जाते हैं, मेरा हास्य टेप किया जाता है। टेलिविजन के निर्देशक मेरा आदर करते हैं। मैं शोकभरी हंसी, संतुलित हंसी अथवा उन्मुक्त हंसी हंस सकता हूं। मैं बस-कंडक्टर की हंसी, या वनिये के नौकर की हंसी, सुबह की हंसी, शाम की हंसी, रात के अंधकार की हंसी, धुंधलके की हंसी हंस सकता हूं। सारांश यह है कि जब भी, जहां भी हंसी की आवश्यकता हो, मैं हाजिर हूं।

यह बताने की तनिक भी आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के व्यवसाय में कितनी थकावट हो जाती है—विशेषतः इसलिए भी कि संक्रामक हंसी की कला में भी मैंने निपुणता प्राप्त कर ली है। इसी कारण तीसरे और चौथे दर्जे के मसखरों के लिए भी मैं अनिवार्य बन गया हूं। ये लोग मुझसे भयभीत रहते हैं और इसकी एक वजह है। जब दर्शक उनके मजाकिया वाक्यों को समझ नहीं पाते, तो मैं किराये के प्रशंसक के रूप में क्लबों में उनके कार्यक्रम के कमजोर क्षणों में संक्रामक रूप से हंसता चला जाता हूं। यह उन्मुक्त हंसी ठीक समय पर निकलनी चाहिये—न तो यह समय से पूर्व और न देर से। बिलकुल सही समय और सही जगह पर, पूर्व-निर्धारित समय पर मुझे हंसी के फव्वारे छोड़ने होते हैं—ताकि सब दर्शक मेरे साथ ठहाके मार-मारकर हंस सकें और मजाक का मजा किरकिरा न हो जाये।

अंत में ड्यूटी की समाप्ति पर थका-हारा अपना ओवरकोट लेकर घर लौटने के खयाल से मैं खुश हो जाता हूं। मगर घर पर प्रायः कई तार मेरी प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। 'आपकी हंसी की तुरंत आवश्यकता है...रिकार्डिंग मंगल को' आदि-आदि। कुछ घंटे बाद मैं अपने भाग्य को कोसता हुआ एक्सप्रेस गाड़ी में सवार हो जाता हूं।

मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जब मैं ड्यूटी पर नहीं होता अथवा छुट्टियां मना रहा होता हूं, तो मेरी हंसने की जरा भी इच्छा नहीं होती। ग्वाला जब गाय के काम से और राज जब चूने-गारे से दूर होता है तो प्रसन्नचित्त होता है। अक्सर बढ़इयों के अपने घरों के दरवाजे खराब हालत में रहते हैं या मेज के दराज ठीक

अनुवाद : राजेन्द्र वोहरा

तरह से खुलते नहीं। हलवाई को प्रायः खट्टा अचार अच्छा लगता है, कसाई को बादाम की मिठाई भाती है, तो नानबाई रोटी से बढ़कर चटनी खाना पसंद करता है। सांडों से जूझने वाले कबूतरों का शौक पालते हैं। मुक्केबाज अपने बच्चों के नाक से खून बहते देखकर पीले पड़ जाते हैं। मुझे यह सब कुछ सहज, स्वाभाविक और प्राकृत लगता है; क्योंकि मैं भी जब ड्यूटी पर नहीं होता, तो बिलकुल नहीं हंसता हूं। मैं एक गंभीर व्यक्ति हूं और लोग—शायद ठीक ही—मुझे निराशावादी समझते हैं।

शादी के पहले वर्ष मेरी पत्नी अक्सर कहा करती थी कि 'हंसो भी'। परंतु अब उसे दृढ़ विश्वास हो गया है कि मैं उसकी यह इच्छा पूरी नहीं कर सकता। जब मैं अपने चेहरे की तनावपूर्ण मांसपेशियों को ढीला करने अथवा थकी हुई आत्मा को आराम देने की हालत में होता हूं तो उस समय मुझे अतीव प्रसन्नता का अनुभव होता है। अब हालत यह है कि मैं दूसरे लोगों की हंसी से भी खिन्न हो उठता हूं; क्योंकि यह मुझे अपने पेशे की बहुत याद दिलाती है। अतः हमारा विवाहित जीवन शांत तथा नीरव है, क्योंकि मेरी पत्नी ने भी हंसना भुला-सा दिया है। हां, कभी-कभी मैं उसे मुस्कराते हुए पकड़ लेता हूं और स्वयं भी मुस्करा देता हूं। हम बहुत धीमे-धीमे बातें करते हैं, क्योंकि मुझे रात्रि-क्लबों और रिकार्डिंग स्टूडियों के शोर से सख्त नफरत हो गयी है। जो लोग मुझे नहीं जानते, वे सोचते हैं कि मैं स्वभाव से ही चुप्पा हूं। शायद मैं हूं भी, क्योंकि मुझे अपना मुंह हंसने के लिए बार-बार खोलना पड़ता है।

मैं धीर, निरावेग गति से जीवनयापन कर रहा हूं—कभी-कभार मंद मुस्कान बिखेर लेते हुए। कभी-कभी मेरे मन में विचार उत्पन्न होता है कि क्या मैं कभी हंसा हूं? मेरा खयाल है कि नहीं। मेरे भाई-बहन सदा ही मुझे एक गंभीर व्यक्ति के रूप में मानते रहे हैं।

इस तरह मैं अनेक प्रकार से हंसता हूं; किंतु मैंने अपनी हंसी आज तक नहीं सुनी है।



सोलहवीं सदी का छपा हुआ एक एटलस पिछले दिनों लंदन के मशहूर नीलामघर साउथबी में ३ लाख ४० हजार पौंड (लगभग ५७ लाख रुपये) में बिका है। पुराने नक्शों की कीमत का यह नया कीर्तिमान है। अब तक जो नक्शा सबसे महंगा बिका था, उसके ४४ हजार पौंड मिले थे। इस एटलस में आधुनिक नक्शाशास्त्र के प्रवर्तक जेरार्डस मर्कटर द्वारा सन १५४४ में छापे गये यूरोप के नक्शे की एकमात्र उपलब्ध प्रति भी जुड़ी हुई है। सन १५६९ में निर्मित एक विश्व-नक्शा भी इसमें है। यह एटलस बेल्जियम की एक पुरानी किताबों की दुकान में पुराने छापों के ढेर में दबा हुआ मिला था और एक डच सज्जन ने तब इसे १० हजार से ३० हजार फ्रैंक के बीच किसी दाम पर खरीदा था।





कुलदीप शर्मा

कल्पना कीजिये कि आप अमावस की घोर अंधेरी रात में एक भयंकर घने जंगल में घूम रहे हैं। आपकी पदचाप के अलावा और कोई आहट नहीं आ रही है। तभी कहीं एक लालटेन जलती है और फिर बुझ जाती है। आपकी ऊपर की सांस ऊपर, नीचे की नीचे। माफ कीजिये, यह भूत नहीं है और न तस्करों का संकेत ही। यहां दीवाली मनायी जा रही है। कुदरत की ओर से यह जो रंग-बिरंगे प्रकाश का खेल खेला जा रहा है, इसे हम 'जीवों द्वारा स्वयं प्रकाश बनकर दीवाली मनाना' कह सकते हैं। वैज्ञानिक इसे कहते हैं–'बायोल्युमिनिसेन्स'।

चमकने वाले पौधों में सबसे प्रमुख हैं कुदरत के नन्हे-मुन्ने जादूगर जीवाणु। यों तो एक अकेला जीवाणु नंगी आंख से दिखाई तक नहीं देता, मगर जब लाखों-करोड़ों जीवाणु किसी वस्तु पर अपना डेरा डाल दें, तो अपनी चमक से उसी वस्तु को चमकती कंदील बना सकते हैं।

बरसात के दिनों में या सीलन-भरे स्थान पर कुकुरमुत्तों का पैदा होना आम बात है। इस वर्ग के कुछ सदस्य प्रकाश भी पैदा करते हैं। इनकी लगभग पचास प्रकाशमयी जातियां प्रकाश में आयी हैं। कुछ छत्रधारी कुकुरमुत्ते अपने छाते को चमकाते हैं और कुछ के उत्पादक अंग यानी बीजाणु चमकते हैं। कुकुरमुत्ते का शरीर बहुत-से कवक-तंतुओं के आपस में गुथ जाने से निर्मित

होता है। कवकतंतुओं के इस जाल को कवक-जाल (माइसीलियम) कहते हैं। यह कवक-जाल बहुत ही मनमोहक प्रकाश देता है, मानो कई लड़ियां उलझकर रह गयी हों।

कुछ कुकुरमुत्ते तो इतना प्रकाश देते हैं कि आप 'नाइट लैंप' को भूल जायें। 'क्लीटोसाइके इल्यूडेन्स ऐसा ही एक बड़ा चमकदार कुकुरमुत्ता है। अमरीका में इसका नाम ही 'जैंको लैंटर्न' रख दिया गया है। पांच इंच से बड़े व्यास वाला यह कुकुरमुत्ता नारंगी रोशनी देता है। जब अंधेरी रात में कई बड़े-बड़े कुकुरमुत्ते नारंगी और पीला प्रकाश फेंकते होंगे, तब क्या ऐसा नहीं लगता होगा कि शायद वृक्षों पर बिजली के रंग-बिरंगे वल्ब लटका दिये गये हैं!

जापान में तो इसका नाम ही 'मूनलाइट मशरूम' (चंद्रिका छत्रक) रख दिया गया है। वैसे इसका वैज्ञानिक नाम है-'लेन्टेरोमाइसीज जैपोनिकस'।

चमकने वाली वनस्पतियों से भारत का परिचय पुराना है। कालिदास ने कहा है कि हिमालय की कंदराओं में ये प्रकाशमयी वनस्पतियां सिद्धांगनाओं के लिए 'सुरत-प्रदीप' का काम करती हैं।

एशिया के उष्ण-कटिबंधीय वनों में चमकने वाले कुकुरमुत्तों का एक वंश है-माइसीना। इन कुकुरमुत्तों के बीजाणु गीली अवस्था में ही चमकते हैं, यानी 'बिन पानी सब सून'। मैक्सिको की प्राचीन 'एजटेक' सभ्यता में तो इनकी पूजा की जाती थी। अमरीका के गोर्डन वासन नामक एक धनपति को इन जादुई कुकुरमुत्तों ने इस कदर दीवाना कर दिया कि वह इनकी चमक के रहस्य का पता लगाने अपनी रूसी पत्नी समेत घने जंगलों में जा पहुंचा। चित्तभ्रांति - कारक दवाओं में सबसे नयी दवा 'सीलोसाइबिन' ऐसे ही एक चमकदार कुकुरमुत्ते 'सीलोसाइबे' से तैयार की गयी है।



आतिशबाजी ?..... नहीं, वनस्पतियों की प्राकृतिक चमक।



कुप्पी में रसायन नहीं चमकीली सूक्ष्म वनस्पतियां हैं।

अभी तक सुना-देखा जाता था कि बिल्ली वंश के जीवों की ही आंखें अंधेरे में चमकती हैं। लेकिन अब पता चला है कि कुछ आदमियों की आंखें भी अंधेरे में चमक उठती हैं। इस चमक का कारण है चमकदार जीवाणुओं का मानव की आंखों में जाकर बस जाना। वेडा द्वीप-समूहों में पायी जाने वाली मछलियों में तो चमकदार जीवाणु बिना कुछ हानि पहुंचाये बस जाते हैं और उन्हें चमक प्रदान करके दोस्ती निभाते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का खयाल है कि शायद जुगनुओं की चमक भी ऐसे ही जीवाणुओं के कारण है।

सवाल यह है कि आखिर यह प्रकाश आता कहां से है? क्या यह भी चांद के प्रकाश की तरह सूरज से उधार ली हुई रोशनी है? इस गुत्थी को सुलझाने की कोशिश प्रसिद्ध वैज्ञानिक रावर्ट बायल ने १६६७ में की। उन्होंने बताया कि कुकुरमुत्ते तथा जीवाणुओं को चमकने के लिए हवा, पानी और आक्सिजन की जरूरत होती है। मगर वैज्ञानिक रैमूर (१७३३) और वैज्ञानिक स्पालेंजानी (१७९७) का कहना था कि चमक पैदा करने में पानी ही मुख्य उपादान है। उनकी राय थी कि ऐसे चमकदार पौधों को सुखाकर रखा जा सकता है; शुष्क अवस्था में भले ही वे प्रकाश न दें, परंतु पानी डालते ही वे प्रकाश देंगे।

वैज्ञानिक द्युबोइस ने १८८७ में ऐसी चमक के सूत्रधार रासायनिक पदार्थ ल्यूसीफेरिन और ल्यूसीफेरेस को खोज निकाला। १९१८ में वैज्ञानिक ई. एन. हार्वे ने अत्यंत परिश्रमपूर्ण खोज के बाद बताया कि चमकने वाले जीव अपनी ल्यूसीफेरिन का आयुपर्यंत चाहे जितनी बार प्रयोग कर सकते हैं। यह पदार्थ खर्च नहीं होता; बल्कि प्रकाशोत्पादक रासायनिक क्रिया कुछ इस प्रकार संपन्न होती है कि प्रकाश का भंडार ज्यों का त्यों बना रहता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के बाद पता लगाया है कि प्रकाशमय पौधों और जंतुओं को आलोकमय बनाने वाला चमत्कारी रासायनिक पदार्थ है—ए. टी.

पी. यानी एडीनोसाइन ट्राइ फास्फेट। वैज्ञानिक मैकाइ लोनी के अनुसार जुगनुओं से प्राप्त ल्यूसीफेरिन और ल्यूसीफेरेस यों तो जरा भी नहीं चमकते, परंतु ज्यों ही उनमें ए. टी. पी. और थोड़ा-सा मेग्नीशियम तथा मैंगनीज मिला दिया जाता है, तुरंत उसमें प्रकाश-किरणें झिलमिलाने लगती हैं। बात यह है कि ए. टी. पी. की सहायता से रासायनिक ऊर्जा प्रकाशीय ऊर्जा में बदल जाती है।

अमरीका की ओकरिज प्रयोगशाला में एडीनोसाइन ट्राइ फास्फेट का विशेष अध्ययन किया जा रहा है। वहां के विज्ञानियों के अनुसार सभी पौधे चमकते हैं—यह और बात है कि उनकी चमक महसूस न की जाये। उनके प्रकाश का रंग हरा या गहरा लाल रहता है। जिस तरह जुगनुओं की मांसपेशियों में मौजूद ए. टी. पी. उन्हें चमक प्रदान करता है, उसी तरह पौधे भी ए. टी. पी. की वजह से ही चमकते हैं। लेकिन बाद में विज्ञानियों ने देखा कि हरे पौधे से अर्क में से ए. टी. पी. निकाल दिया जाये, तो भी उसकी चमक बनी रहती है और इस अक्षय प्रकाश की उत्पत्ति होती है उसी हरे रंग-द्रव्य पर्णहरित यानी क्लोरोफिल से। अनेक क्रियाओं से पर्णरहित को जो ऊर्जा मिलती है, वही फिर प्रकाश में बदल जाती है। हां, एक बात अवश्य है कि सभी हरे पौधों में इस प्रकाश को भौतिक आंखों से नहीं देखा जा सकता। इसके लिए विशेष यंत्रों का सहारा लेना पड़ता है।

पर हर चमकीली चीज सोना नहीं होती और यह भी जरूरी नहीं कि फायदा ही पहुंचाये। जितने भी चमकने वाले कुकुरमुत्ते हैं, या तो जहरीले हैं या मादक। इसलिए अगर इनकी चमक पर मुग्ध होकर आप इन्हें अपने ड्राइंग-रूम में सजायें या दीवाली पर दीपपंक्ति के स्थान पर इनका प्रयोग करें, तो इनके जहरीलेपन का भी जरूर ध्यान रखें।

वैज्ञानिकों ने आशंका प्रकट की है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब धरती के सभी ऊर्जा-स्रोत समाप्त हो जायेंगे। हो सकता है, तब हमें रात को रोशनी के लिए इन्हीं चमकदार पौधों, जीवाणुओं और कुकुरमुत्तों की शरण लेनी पड़े।

जिस तरह आजकल बाजार में सब्जी के लिए सूखे हुए कुकुरमुत्ते मिलते हैं, वैसे ही कल शायद रोशनी के लिए भी मिलने लगें। घर आकर इन पर पानी छिड़किये और प्रकाश पैदा करने के लिए प्रार्थना कीजिये—'तमसो मा ज्योतिर्गमय' ..... और कृतार्थ हूजिये।

—१५ मुखर्जी नगर (पश्चिम),
दिल्ली-११०००९



दायित्व रिटायर्ड और वृद्धों का

• दीनानाथ सिद्धांतालंकार •

दफ्तर में आज अनोखी चहल-पहल थी। ४॥ बजे ही बाबू-संप्रदाय की कलम ...द। चौथी जमात के कर्मचारियों ने ...र्सियों को स्थानच्युत किया और मेजों को ...इलविहीन करके उनकी श्वेत परिच्छद और गुलदस्तों से सजावट की। खिड़की के सामने क्यू में लगे कुछ लोग लिपिक ...देव की नजरे इनायत के इंतजार में ...नी टांगें थका रहे थे। पर एकाएक ...ज सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब की विदाई की ...यी है, दफ्तर बंद हो रहा है' की घोषणा के साथ खिड़की बंद कर दी गयी। बाहर ...तार में खड़े लोग बुड़बुड़ाते और आवाजें ...ते वापस लौट चले।

...तीस साल की नौकरी में सुपरिन्टेन्डेन्ट ...की कुर्सी तक पहुंचे बाबू श्यामलाल आज ...र हो रहे थे। इसी उपलक्ष्य में स्टाफ ने ...करके–जिसमें आधी रकम खुद बाबू ...लाल की जेब से निकली थी–इस ...र्टी का आयोजन किया था। चम्मच-...टे प्लेट-प्यालियों की खड़खड़ाहट ...र बाबू साहब के गुणगान के साथ पार्टी ...त्म हुई। रात को घर में देर से पहुंचे बाबू ...मलाल स्टाफ द्वारा गायी गयी स्तुति-...यां और पार्टी की कामयाबी का जिक्र ...नी पत्नी को सुनाते अघाते नहीं थे।

...अगला दिन। सुबह से ही दफ्तर के ...ने की हाय-तौबा मचती थी वह आज ...नदारद। बाबू श्यामलाल देर से ही उठे–...त की थकावट जो थी। एक हफ्ते बाद ...नया एकदम बदला हुआ। उधार देने को सदा उतावले रहने वाले और 'बाबू सा'ब' की रट लगाये रहने वाले दुकानदार, धोबी, चौकीदार, पड़ोसी–सबके तेवर बदले हुए।

एक मास बाद बाबू श्यामलाल पुराने दफ्तर गये अपनी पेन्शन को धक्का लगवाने। समूचे स्टाफ के चेहरों पर इस 'अजनबी' को देख क्षणिक सूखी मुस्कराहट। एकदम ठंडा स्वागत। हेड क्लर्क ने कहा–'अभी से पेन्शन के लिए इतनी उतावली! अपनी तीस साल की थकान तो पहले दूर कर लेते। आप तो जानते ही हैं, पेन्शन की फाइल के पहिये बिना तेल के जाम हो जाते हैं।' श्यामलाल के यह कहने पर कि 'अपनों के साथ भी यही सलूक!' हेड क्लर्क ने व्यंग्य के साथ कहा–'यह कुर्सी अंधी, गूंगी, बहरी है; किसी का लिहाज नहीं करती। आप भी इसी पगडंडी के मुसाफिर रहे हैं। क्या भूल गये?'

रिटायर होने से पहले कई मंजिल ऊंचे

जो रंगीन स्वप्न व मनसूबे संजोये थे, उन्हें पैरों तले रौंदे जाते देखकर भी बाबू श्यामलाल बेबस थे। अब समय काटना उनके लिए मुश्किल हो गया। कभी-कभार दो-चार रिटायर्ड कहीं मिल जाते, तो दर्द और शिकायतों से भरी अपनी-अपनी कहानी एक-दूसरे को सुनाकर बिछुड़ जाते।

रिटायर होने से पहले ही सचेत हो जायें

बाबू श्यामलाल तो कल्पित नाम है, पर यह कहानी लगभग सभी रिटायर्ड लोगों की है। पर्याप्त उच्च पद से रिटायर्ड एक संभ्रांत व्यक्ति ने बड़े आक्रोश के स्वर में मुझसे कहा था—'मेरे हस्ताक्षरों से लोगों को रोजगार, कर्जा, ठेका, कई किस्म के फायदे मिल जाते थे और उन्हें जीवन की नयी दिशा मिल जाती थी। पर एक ही रात में मेरी कलम की नोक नपुंसक बन गयी।'

इसलिए रिटायर्ड होने वाले व्यक्तियों को हमारी सलाह है कि इस स्थिति से अचानक पाला पड़े, इससे कई वर्ष पूर्व ही अपने भावी जीवन की योजना बना लें। इस पलायनवादी वृत्ति से काम नहीं चलेगा कि अभी क्या जल्दी है, रिटायर होने में इतने साल बाकी हैं; जब सिर पर आयेगा, तब राम भला करेंगे। वस्तुतः यह समस्या केवल भारत में ही नहीं है, किंतु विश्वव्यापी है।

जो व्यक्ति अपनी आयु के तीस वर्ष के सर्वोत्तम काल में प्रतिदिन ६-७ घंटे अत्यंत व्यस्त रहा हो, उसके सिर पर जब जबरन दिन-भर खाली रहने का बोझ लाद दिया जाये, तब बोरियत के सिवा क्या परिणाम होगा? अगर वह केवल मक्खी मारने का ही धंधा पकड़ ले, तब भी बोर हो जायेगा। इसलिए रिटायर्ड लोगों और वृद्धों की सबसे बड़ी समस्या खाली समय काटने की है।

वैज्ञानिक और चिकित्सा-संबंधी आविष्कारों के फलस्वरूप आज मानव की औसत आयु में वृद्धि हो गयी है। सामान्यतया ५५-६० वर्ष की आयु में रिटायर होने वाले व्यक्ति के लिए, अब २५-३० वर्ष तक और जीवित रहने की संभावना रहती है। फलतः वृद्धों और रिटायर्ड व्यक्तियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। पाश्चात्य देशों में कई सरकारी व गैरसरकारी संस्थाएं इनकी समस्याएं सुलझाने के लिए प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं। भारत में भी यदि इस दिशा में कुछ प्रयास किये जायें, तो अवश्य ही लाभ होगा। इस संबंध में हमारे कुछ सुझाव हैं।

बोरियत से बचने के लिए

१. वृद्धों व पेन्शनरों के क्लब स्थापित किये जायें, जिनमें वालीबाल, टेनिस, बास्केटबाल, बैडमिंटन इत्यादि टीम वाले तथा भागदौड़ वाले खेलों, ताश, कैरम बोर्ड, बिलियर्ड इत्यादि भागदौड़-रहित खेलों अथवा अन्य प्रकार के मनोरंजनों का प्रबंध हो।

२. रिटायर होने से दो-तीन वर्ष पूर्व किसी नये धंधे या हुनर का प्रशिक्षण लेना शुरू कर दिया जाये, जैसे—कागज के फूल व थैले-लिफाफे बनाना, कपड़ों की सिलाई

मरम्मत, खिलौने और प्लास्टिक के ध्यान ... गुब्बारे बनाना, मोजे-स्वेटर बुनना इत्यादि। सरकारी सहयोग से स्थापित सहकारी समितियों के जरिये कच्चे माल की सप्लाई व तैयार माल की बिक्री का प्रबंध हो और पारिश्रमिक का भुगतान ... कर दिया जाये। केवल रिटायर्ड व्यक्ति इन समितियों के संचालक और ... हों।

... इन योजनाओं द्वारा जहां रिटायर्ड ... और वृद्धों में सामुदायिक भावना ... होगी, वहां साथ ही निश्चित समय ... निश्चित स्थान पर प्रतिदिन एकत्र ... से उनमें 'मैं अकेला और कटा हुआ ... हूं' यह भावना भी पनपेगी। एक-दूसरे ... आने से उनकी आत्मकेंद्रितता ... होगा और उनमें पारस्परिक घनि-... सौहार्द और सामूहिकता के भाव ... होंगे, एक-दूसरे के सुख-दुःख में ... होने से उनकी बोरियत खुद ही ... होगी।

... रिटायर्ड एवं वृद्ध लोग मिलकर ... मास के अंतिम रविवार को या ... के अनुसार किसी और दिन उद्यान-... (पिकनिक), वन-भोजन (गार्डन-...), आस-पास के दर्शनीय स्थानों ... यात्रा पर जाया करें। इन अवसरों पर ... हास्य-विनोद, कविता-पाठ, संगीत, ..., एकांकी नाटक इत्यादि का आयो-... भी किया जा सकता है। ऐसे कार्यक्रमों ... रिटायर्ड लोगों और वृद्धों के स्वास्थ्य पर निश्चय ही अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

५. कुछ रिटायर्ड व वृद्ध महसूस करते हैं कि अपने कार्यकाल में व्यवस्थित जीवन और स्थिर आय के कारण परिवार और बिरादरी में उनका जो रौबदाब था, उसके समाप्त हो जाने से अब वे घर में उपेक्षित, अवांछित और बोझ-स्वरूप हो गये हैं। इसलिए वे घर से बाहर नये परिवेश में निर्द्वंद्व रूप से रहना चाहते हैं। ऐसे व्यक्तियों में सचमुच यदि एकांत-वास की आकांक्षा हो, तो वे किसी आश्रम में अकेले या सप-त्नीक रहते हुए जनसेवा के कई छोटे-मोटे काम कर समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

६. सामाजिक स्तर पर किये गये पर्य-वेक्षणों से पता चलता है कि कुछ व्यक्तियों के दिल में यह भय-सा रहता है कि रिटायर होने के बाद मैं निर्वाह कैसे कर पाऊंगा, मेरा जीवन कैसे कटेगा? इस प्रकार की मानसिक निर्बलता नहीं आने देनी चाहिये। इसे रोकने का एक उपाय यह है कि जिस धंधे व नौकरी में आप अभी काम कर रहे हैं, उससे भिन्न कोई धंधा रिटायर होने के बाद प्रारंभ करने की योजना बनाकर रिटायर होने से कुछ वर्ष पहले ही उसका प्रशिक्षण लेना आरंभ कर दें। तब रिटायर होने के बाद आप अनुभव करेंगे कि यह नया धंधा आपके लिए किसी भी अंश में कम लाभकारी नहीं है।

हमारे परिचित एक सज्जन ने रिटायर होने के बाद मकानों व प्लाटों की दलाली

प्रारंभ कर दी। एक ... सब्जी-फल की दुकान खोल ली। तीसरे ने बच्चों, महिलाओं और वृद्धों के लिए सुपाठ्य, मनोरंजक पुस्तकें घर-घर जाकर बेचनी शुरू कर दीं। इन सबको इन नये धंधों से पर्याप्त आय है।

आप राष्ट्र के सहयोग से निर्मित हैं

रिटायर्ड और वृद्ध व्यक्ति अपनी अस्मिता का कुछ त्याग करके और अपने हृदय में तनिक परसेवा, परदुःख-कातरता और विनम्रता की सात्त्विक वृत्तियों को पल्लवित करके समाज, राष्ट्र, पास-पड़ोस और मुहल्ले के लिए बड़े उपयोगी हो सकते हैं। सेवा के अनेक छोटे-मोटे कार्य ऐसे हैं, जिनमें किसी प्रकार का अर्थव्यय नहीं होता, केवल सद्भावना से प्रतिदिन अर्पित तीन-चार घंटे ही पर्याप्त होते हैं।

हम ऐसे अनेक व्यक्तियों को जानते हैं जो रिटायर्ड हैं, सब प्रकार से खुशहाल हैं, परिवार के दायित्व से मुक्त हैं, पर अपना समय बेरहमी से काटने के लिए घातक ऐयाशी के रास्तों पर भटकते रहते हैं।

फीस देकर शिक्षा प्राप्त करने और रोजगार में लग जाने के बावजूद हमें यह तथ्य कभी नहीं भूलना चाहिये कि हमारे लालन-पालन-पोषण पर और हमें उच्च पद तक पहुंचाने में समाज और राष्ट्र ने अतुलनीय सहयोग दिया है और वह हमारे अंतिम क्षण तक हमें सहयोग देता रहेगा। श्री नेहरूजी ने यह बात सर्वथा ठीक कही थी कि देश का कोई व्यक्ति (उदाहरण के लिए डाक्टर, इंजीनियर, तकनीकि... प्राध्यापक, अध्यापक, क्लर्क) केवल अपनी दी हुई फीस के बलबूते पर जीवन में ... नहीं हो सकता; उसकी फीस से तीन-... गुना अधिक खर्च उस पर राष्ट्र को ... कोश में से करना पड़ता है। तब ... य रहोने के बाद केवल पेन्शन-जीवी बन... अमूल्य समय नष्ट करना जीवन का ... हो सकता है? नहीं, कभी नहीं। ऐसा ... समाज और राष्ट्र के प्रति द्रोहपूर्ण है।

पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी की प्रेरक बने

इसलिए हम जोर देकर कहना चा... हैं कि रिटायर्ड व्यक्ति केवल अपनी ... सुविधाओं की मृगतृष्णा में न उलझे ... प्रभु-प्रदत्त इस अवसर को दैवीय ... समझते हुए, राजनीति के दलदल से ... रहते हुए, अपने पास-पड़ोस, मुहल्ले, ... विशेषतः गांवों और पिछड़े वर्गों की ... सेवा करते हुए सामाजिक चेतना ... करें, तो निश्चय ही भारत का स्वरू... दशक में ही सर्वथा बदल जायेगा।

इसका एक बड़ा लाभ यह भी है ... कि पुरानी पीढ़ी द्वारा किये जा रहे ... समाज-सृजन के कार्य से आज की दि... युवा पीढ़ी को प्रेरणा एवं स्फूर्ति मिले... जहां इससे आज देश में सर्वत्र अनु... किया जा रहा पीढ़ियों का अंतराल घटे... वहीं नयी पीढ़ी अपने सम्मुख नैतिक ... का एक ज्वलंत मूर्त रूप देखकर प्राण... हो सकेगी।

—ई/३७, शास्त्रीनगर, जयपुर ३०२...



स्मृति के अंकुर


चित्र : सतीश चव्हाण

भीख नहीं

मैं स्टेशन पर बैठी ट्रेन का इंतजार कर रही थी कि छोटे-छोटे दो बच्चे मेरे पास आये और बोले–'हम आपके पैर दबा दें।' मैं कुछ समझी नहीं और उन्हें मना कर दिया। उनमें से जो बच्चा छोटा था, थोड़ी दूर जाकर बैठ गया और रोने लगा। बड़ा बच्चा उसे चुप करा रहा था। मन में जिज्ञासा हुई। उन्हें पास बुलाकर पूछा–'तुम मेरे पैर क्यों दबाना चाहते हो ?'

'हमें पैसे चाहिये। उनसे हम लाई-चना लेकर बेचेंगे। हमारे पास बांट और तराजू भी हैं।' बड़ा बच्चा मुझे बताने लगा। उसने हाथ में लिये थैले से निकालकर तराजू और बांट दिखाये।

'तुम्हारे मां-बाप नहीं हैं क्या ?'

'मां बीमार पड़ी है घर में। पिताजी कुछ दिन पहले नहीं रहे।'

उन पर बड़ा तरस आया। मैंने कहा–'लो, पैसे मैं तुम्हें देती हूं। तुम लाई-चना लाकर बेचना।' मैं पैसे देने लगी। मगर बच्चे पीछे हट गये और बड़ा बच्चा बोला–'हम भीख नहीं लेते। मां ने मना किया है। आपके पैर दबा देता तो ले लेता। आपका सामान ट्रेन तक पहुंचा दूं तो ले लूंगा।'

बाद में उन्होंने मेरा बैग ट्रेन में लाकर रखा और तभी पैसे लिये।

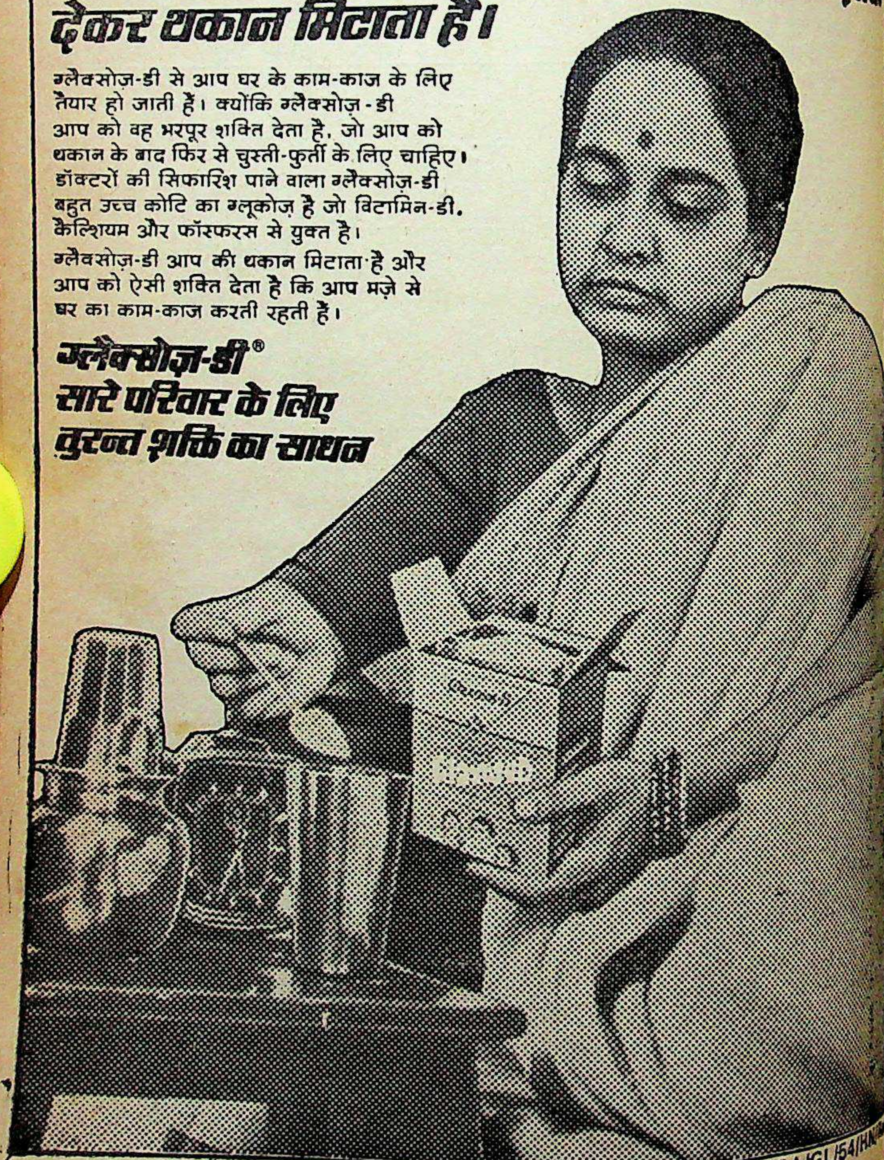
—रेखा श्रीवास्तव, उरई-२८५००१

०००

सच्चा गुरु

अभी एक सेमिनार में एक नामी विद्वान को किसी प्रखर छात्र ने एक बुनियादी सवाल पूछकर 'घेर' लिया। उन विद्वान ने तब जिस झुंझलाहट-भरी अशोभन रीति से यह कबूल किया कि प्रश्न का सही उत्तर उनके पास नहीं है, उससे बचपन की एक दबी हुई याद उभर आयी।

मैं एक गुरुकुल में पढ़ता था। उसके प्रतिस्पर्धी एक अन्य गुरुकुल के एक अध्यापक के पांडित्य और अध्यापन-कौशल की बड़ी ख्याति थी और बहुधा मेरे साथी और मैं सोचा करते थे–काश, हमें उनसे संस्कृत व्याकरण पढ़ने का अवसर मिलता! फिर उन्हीं के एक शिष्य ने एक किस्सा सुनाया। एक बार उसने कक्षा में पाणिनि के किसी सूत्र पर कोई शंका उठायी। अध्यापकजी


देकर थकान मिटाता है।
ग्लैक्सोज़-डी से आप घर के काम-काज के लिए तैयार हो जाती हैं। क्योंकि ग्लैक्सोज़-डी आप को वह भरपूर शक्ति देता है, जो आप को थकान के बाद फिर से चुस्ती-फुर्ती के लिए चाहिए। डॉक्टरों की सिफारिश पाने वाला ग्लैक्सोज़-डी बहुत उच्च कोटि का ग्लूकोज़ है जो विटामिन-डी, कैल्शियम और फॉस्फरस से युक्त है।
ग्लैक्सोज़-डी आप की थकान मिटाता है और आप को ऐसी शक्ति देता है कि आप मज़े से घर का काम-काज करती रहती हैं।
ग्लैक्सोज़-डी®
सारे परिवार के लिए
तुरन्त शक्ति का साधन
dCA/GL/54/HN

न उसका कुछ उत्तर दिया, मगर छात्रों को समाधान न हुआ। अध्यापकजी ने कई ढंग से समाधान करना चाहा, मगर व्यर्थ। अंत में उन्हें कबूल करना पड़ा कि शंका का उत्तर उनके पास नहीं है। ठीक तभी पीरियड की समाप्ति की घंटी बजी और अध्यापकजी के मुंह से निकला—'ब्रह्मचारियो, मैं आधा मिनट और तुम लोगों को उलझाये रखता, तो मुझे हार न माननी पड़ती।'

इससे सर्वथा भिन्न थे हमारे संस्कृत व्याकरण के अध्यापक। कभी-कभी यह अनुभव होने पर कि छात्र की शंका का सही उत्तर उनके पास नहीं है, वे बेझिझक कहते-'ब्रह्मचारियो, यह चीज मुझे बहुत स्पष्ट नहीं है। श्री पं. .... जी से पूछकर कल बताऊंगा।' श्री पं. .... जी उनके भी गुरु रहे थे। यदि उनसे समाधान मिल गया तो ठीक, अन्यथा वे उन्हें भी साइकल के कैरियर पर बैठाकर पांच मील दूर एक विद्वान संन्यासी के पास जाते। अगले दिन कक्षा में उनका प्रवचन यों आरंभ होता :

'ब्रह्मचारी... के प्रश्न का उत्तर कल मैं नहीं दे पाया था। श्री पं. ......जी ने कृपापूर्वक बताया कि उसका समाधान यों है, ... या 'श्री पं. ...... जी और मैं कल स्वामीजी महाराज के पास गये थे; उन्होंने कृपापूर्वक बताया कि ......'

उस कच्ची उम्र में तो नहीं समझ सका था, मगर अब समझ पा रहा हूं कि ज्ञान अत्यंत गरिमामय वस्तु है, पढ़ना-पढ़ाना अध्यापक और शिष्य का पवित्र साझा उपक्रम है जिसमें दोनों ओर से पूरी ईमानदारी और विनम्रता आवश्यक है। इसका सतत जागरूक बोध सच्चे गुरु का लक्षण है और इस दृष्टि से हमारे वे अध्यापक सच्चे गुरु थे।

—हरिशंकर, बंबई

०००

नियत

मैं बी. एस-सी. द्वितीय वर्ष में पढ़ता था। मेरा एक मित्र जो मेरे साथ ही छात्रावास में रहता था और बहुत गरीब घर का था, एक शाम उदास बैठा था। यह देखकर मैंने उससे पूछा—'भाई, इस तरह उदास क्यों बैठे हो? घर पर कुशल-मंगल है न?'

'कुछ नहीं ऐसे ही बैठा हूं।' कहकर उसने पहले तो बात टालनी चाही; फिर मेरे बहुत जिद करने पर वनस्पति-विज्ञान की एक पुस्तक, जो कालेज पुस्तकालय की ही थी, मेरे सामने रख दी। उसमें से किसी ने महत्त्वपूर्ण चित्र वाला एक पृष्ठ फाड़ लिया था।

मैंने कहा—'हां किसी ने फाड़ लिया है। यह तो बड़ी सामान्य बात है।' वह बोला—'हां, यह हमारे यहां आम बात है। मगर मेरे जैसे दूसरे गरीब छात्रों का क्या होगा, जो इन्हीं पुस्तकों के सहारे परीक्षा पास करते हैं?' और उसकी आंखें भर आयीं।

उस वर्ष कालेज में ही नहीं पूरे विश्वविद्यालय में, उसी ने सबसे अधिक अंक प्राप्त किये थे।

—केदार उपाध्याय,
चिरैयाकोट, आजमगढ़, उ. प्र.



जा पान ले आ

रामावतार चेतन

पान तो आपने देखा ही होगा। दिल के आकार का बड़ा-सा पत्ता, जिसे एक खास अदा के साथ मोड़कर परिवार-नियोजन के लाल तिकोन का-सा आकार दिया जाता है। फर्क इतना ही है कि तिकोन बाहर से लाल होता है और पान भीतर से। इस भीतर से लाल और बाहर से हरे पान के बीड़े का मुख में प्रवेश होते ही मुख लाल और तबीयत हरी हो जाती है।

मनुष्य और पान का रिश्ता बहुत पुराना है। हमारी भाषा में खान-पान, जलपान आदि शब्द इसके प्रमाण हैं। खान के बाद पान और जल के बाद पान यानी भोजन करने या पानी पीने के बाद पान खाने का रिवाज हमारे यहां रहा है। आदिम मानव जंगल में अपने शिकार का कच्चा मांस खाने के बाद एक पान का पत्ता अवश्य खाता रहा होगा। मांस और खून की लाली पान के पत्ते के साथ ओंठों पर रचकर अनोखा आदिम सौंदर्य प्रस्तुत करती रही होगी।

पान का शौक हमारे देश में बहादुरों का शौक रहा है। यह शौक राजपूतों और बंदरों में विशेष रूप से प्रचलित था। जहां भी किसी दुस्साहसिक कार्य का अनुष्ठान हुआ, एक ऊंची चौकी पर केसर-क सुगंधित पान का बड़ा-सा बीड़ा रख दि जाता था और नौजवानों को चुनौती दी जाती थी कि है कोई माई का लाल, जो खाये यह बीड़ा और उठाये पीड़ा। सभा में से एक गबरू जवान उठता और बड़े गर्व के साथ पान को जबान के हवाले करके जान पर खेलने के लिए ढाल-तलवार से लैस होकर निकल पड़ता। सीता का पता लगाने के लिए ऐसा ही बीड़ा रखा गया था, जिसे महावीर हनुमान ने उठाया था। इस कलि-युग में भी पान के बीड़े का संबंध निःसंदेह वीरता से जुड़ा हुआ है। लोग छज्जे पर बैठे-बैठे पान खाते हुए लाल-लाल पीक बड़ी बहादुरी के साथ सड़क पर चलने वालों पर थूक देते हैं और शरीफ होने के नाते झगड़ा बचाने के लिहाज से अपना मुंह छिपा लेते हैं।

आम आदमी से लेकर खास आदमी तक और कोठों से लेकर राजदरबारों तक पान

…ाना और खिलाना बड़े सम्मान का विषय …ना जाता रहा है। इसीलिए पान लगाने और खाने की अनेक कलात्मक शैलियों का विकास हुआ है। कहावत है—'बाप-दादे …खाये पान, दांत निपोरत गये परान !' …जो लोग पान खाने की कला में शून्य होते हैं वे पान को आधे मिनट में सलाद-पत्ती की तरह चबा जाते हैं। ऐसों को पान खिलाना पान का सरासर अपमान करना है। जिन्हें पान खाने में महारत हासिल है, …एक पान को घंटों मुंह में घुला-घुलाकर …ते रहते हैं और उस बीच बात करना …अनिवार्य हो जाये, तो आसमान की ओर मुंह उठाकर बात करते हैं। ऐसे …चेन-स्मोकर की तरह हर समय …में पान भरे दिन-भर पागुर करते …हैं। मेरे एक मित्र चौबेजी का पूरा …पान की पागुर करते बीतता ही …में भी वे सोते-सोते पागुर करते हैं …सुबह जब उठते हैं तब उनका तकिया …मिलता है।

…वार एक सज्जन ने मेरे सामने इस …का दावा किया कि वे पान का बीड़ा …में रखे हुए पूरा भोजन कर सकते हैं …पान को जैसा का तैसा सही-सलामत …रख सकते हैं। उनका यह चमत्कार …का अवसर तो नहीं मिला, किंतु मैंने …एक वार यह प्रयोग करने का प्रयत्न …। एक दोस्त के यहां जलपान का …था। उनके घर के समीप हम लोग …ही रहे थे कि एक और पुराने मित्र सहसा प्रकट हो गये और उन्होंने पास की दुकान पर ले जाकर हमें पान खिला दिया। पान इतना स्वादिष्ट था कि मैं अधिक से अधिक समय तक उसके रस में लीन रहना चाहता था। दोस्त के यहां जलपान के समय मैं मुंह में एक ओर पान दबाये हुए दूसरी ओर से संपूर्ण जलपान कर गया और पान सलामत बना रहा। मेरा तो वह पहला और आखिरी प्रयोग था; किंतु मुझे विश्वास है इस फन में बहुत माहिर हुआ जा सकता है।

पान खाने की कला से बड़ी है पान लगाने की कला। इस नाते पानवाला एक महान कलाकार होता है। वह बड़ी सफाई के साथ किसी को भी कत्था और किसी को भी चूना लगा सकता है। पान खाने में आप कलाकार हैं या अनाड़ी, इसका पता वह आपका चेहरा देखकर और दो शब्द सुनकर लगा लेता है। आप कलाकार दिखे तो वह बड़े करीने से पान लगाकर असली चांदी के वरकों में लपेटकर पेश करेगा; और आप अनाड़ी दिखे तो चलताऊ पान लगाकर अल्युमिनियम के वरकों में लपेट देकर आपको चलता करेगा।

पानवाला छोटा-मोटा वैद्य-हकीम भी होता है। आपको धड़ाधड़ छींक आ रही है, सर्दी का जोर है और गला खराब है, तो वह पान में ऐसी पत्ती डाल देगा कि एक खूराक खाने से ही सर्दी नदारद और गला साफ। आपका हाजमा खराब हो गया है, तो ऐसे मसाले डालकर आपका पान बना-

...गा कि खाते ही हाजमा दुरुस्त। आपको ...सरदर्द है, तो ऐसा किवाम डालकर देगा कि बस आपको नींद आ जाये। आप सोकर ...ठें नहीं कि दर्द गायब। आपके दांत खराब हैं और मुंह से बदबू आती है, तो ऐसे सुगं-...त द्रव्य डालकर पान बनायेगा कि ...की प्रियतमा आपसे बात करते-करते ...प पर न्योछावर हो जाये।

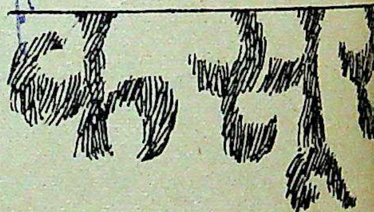
पानवाला बड़ा छैल-चिकनिया जीव ...ता है। वह हमेशा पान का थाल, कत्थे-...चूने के बरतन और अपना चेहरा चमका-...कर रखता है। वह मूंछ पर मलाई, आंखों में सुरमे की सलाई फेरकर आता है और ...कलफ़दार कुरता, बनारसी धोती डाटकर ...मुस्कान के साथ पान लगाता है। ...पानवाले की दुकान पर इतना बड़ा आईना ...ता है कि उसमें आप अपना ही नहीं, ...समाज का प्रतिबिंब देख सकते हैं। ...नीति की उठा-पटक, समाज की घिसाई-...नाटक-फिल्म, हीरो-हीरोइनों की ...के पीछे की जिंदगी, क्रिकेट, टेनिस, ...कुश्ती-अखाड़ा, जैसे तमाम ...की एकदम ताजी खबरें चाहिये ...पान की दुकान पर तशरीफ ले जाइये। ...-भांति के लोगों की बातचीत सुनते-...और उनमें कभी-कभार भाग लेते-...पानवाले का सामान्य ज्ञान गजब का ...जाता है। वह 'मास्टर ऑफ नन' रहते ...भी 'जैक ऑफ आल ट्रेड्स' हो जाता ...। हर किसी के लिए आपबीती और ...बीती के बखान के लिए एक ही तो स्थान है—वह कोना नहीं पानकी दुकान है।

समाज के बड़े से बड़े लोगों के मुंह तक पहुंच होने के बावजूद पानवाले को लोग 'पानवाला' कहकर उसे रिक्शावाला, तांगावाला की श्रेणी में रख देते हैं। इस बात का पानवाले को बड़ा रंज है। दस, बीस, पचास रुपये रोज कमाने वाला मामूली बनिया लालाजी और साहजी कहलाता है, किंतु सैकड़ों रुपये रोज कमाने वाले महा-नगरीय पानवाले को कोई आदर-सूचक संबोधन न मिले, यह सरासर अन्याय है, खासकर हमारे ऐसे समाज में जहां पैसा ही सम्मान का बायस है। यह सोचकर मैंने तो अपने पानवाले को लालाजी कहना आरंभ कर दिया है। यह संबोधन कम से कम मेरे लिए पान में शुद्ध और असली चांदी के वरक की गारंटी तो है ही।

अन्य भारतीय कलाओं की भांति पान खाने और लगाने की कला का भी जोरों से निर्यात हो रहा है। हिंदुस्तान का प्रत्येक नुक्कड़ पान की दुकान से सरसब्ज और आबाद रहने की परंपरा तो है ही, अब आप दुबई जायें या अदीसअबाबा, सिंगापुर जायें या टोकियो, लंदन जायें या न्यूयार्क, वहां के अनेक नुक्कड़ों पर आपको हिंदुस्तानी पान की दुकानें जगमगाती नजर आयेंगी। अब यदि आपने अपने नौकर को आदेश दिया कि 'जा पान ले आ' और वह स्वामिभक्ति के अतिरेक में जापान चला गया, तो वहां से भी वह पान लेकर ही लौटेगा। —८१ सुनीता, १४वां महला, कफ परेड, बंबई-५



हिंदी कहानी



• मिथिलेश्वर •

ट्रेन से उतरकर वह चल पड़ता है। प्लैट-फार्म से बाहर आते ही गांव के लोग उसे नजर आने लगते हैं। उसे खयाल आता है, आज शनिवार है। शनिवार को इस कस्बे में बाजार लगता है। उसके तथा अगल-बगल के गांवों के लोग कुछ खरीदने-बेचने के लिए आते हैं। उसे भी पिंकी की दवा ले लेने की याद हो आती है। वह जेब टटोलता है—सिर्फ दस पैसे शेष बचे हैं। मन मसोस-कर रह जाता है वह। फिर बगल के खोंचे वाले से आधी छटांक मूंगफली ले गांव की ओर चल देता है। जानता है, बुखार की दवा मूंगफली नहीं है। लेकिन दस पैसे में वह और ले ही क्या सकता है?

एक दुकान के समीप गांव के कुछ लोग उसे नजर आते हैं। वह उन लोगों की ओर लपकता है। किंतु वे सब बदले-बदले से जान पड़ते हैं। वह महसूस करता है, वे

उससे दहशत महसूस कर रहे हैं और कन्नी काटकर इधर-उधर भाग जाने की फिराक में हैं। वह हैरत में पड़ जाता है। आखिर यह आकस्मिक बदलाव क्यों? वह कुछ भी समझ नहीं पाता है। चुपचाप आगे बढ़ जाता है। कुछ दूर पर फुलन महतो और जानकी सिंह उसे बतियाते नजर आते हैं। पर उसे देखते ही जैसे उन्हें काठ मार जाता है। खामोश हो वे एकटक उसे देखने लगते हैं। फिर आपस में खुसुर-फुसुर बातें करते हुए आगे बढ़ जाते हैं। वह गहरे असमंजस में पड़ जाता है। माजरा क्या है? वह कुछ भी समझ नहीं पाता। आखिर कल तक तो कुछ नहीं हुआ था। क्या कुछ हो गया है? अनेक शंकाएं उसे दबोच लेती हैं।

डाक्टर बनर्जी की डिस्पेन्सरी के पास पहुंच जाता है। अनेक जाने-पहचाने चेहरे उसे बुलाने लगते हैं। डाक्टर बनर्जी की डिस्पेन्सरी इस कस्बे की जान है। रोगियों के लिए ही नहीं, बेकार युवकों के लिए भी। इलाके-भर के पढ़े-लिखे युवक डाक्टर बनर्जी से परिचित हैं। क्योंकि बनर्जी चार-पांच मशहूर अखबारों के नियमित ग्राहक हैं। वे तरह-तरह की नौकरियों की सूचनाएं देते हैं। शायद इसी कारण उनकी डिस्पेन्सरी चलती भी है।

वह डिस्पेन्सरी में प्रवेश करता है। वहां बैठे चार युवकों में तीन उसके क्लास-फेलो रह चुके हैं। सबसे पहले प्रमोद उससे हाथ मिलाता है। फिर बैठने को कहता है। उनके साथ वाली बेंच पर ही वह बैठ जाता है।

'अच्छा तो यार, तुम इस समय क्या कर रहे हो?' शमीम जो काफी दिन बाद मिला था, पहला सवाल दाग बैठता है।

'क्या करेंगे, हमारी-तुम्हारी तरह ही अखबारों से वेकेन्सियां नोट करते होंगे।' सुरेश उसके कुछ बोलने से पहले ही जवाब दे देता है। अब प्रमोद अपने को रोक नहीं पाता है—'अरे, तुम लोगों को मालूम नहीं है क्या! इनका तो "एज बार" हुए करीब एक साल हो गया।'

प्रमोद की बात सुनकर वे सब चकित रह जाते हैं।

'लक ने साथ नहीं दिया बेचारे का।' डा. बनर्जी दुःख प्रकट करते हैं। वह उनकी ओर देखने लगता है। डा. बनर्जी उसके पुराने परिचित हैं। बी. ए. कर चुकने के बाद के शुरू-शुरू के दिनों में वह उनके पास ही नौकरियों की सूचनाएं पाने आता था और एवज में गांव के रोगियों को उनसे ही इलाज करवाने का परामर्श देता था।

सहसा उसे रात घिर आने की आशंका सताने लगती है। वह डा. बनर्जी और मित्रों से विदा ले गांव की ओर चल देता है। अभी बीस-पचीस कदम भी नहीं बढ़ने पाता है कि गांव के उसके हमउम्र युवक रामहरख, सुरिंदर और जगमोहन सामने से आते दिखाई पड़ते हैं। वे इतना लेट बाजार क्यों आ रहे हैं, वह सोचता है। पर उनके कंधों पर चादरें देखते ही वह समझ जाता है, कस्बे के सिनेमा हाल में कोई नयी पिक्चर

लगी है। वह भांपता है, वे दूर से ही उसे देखकर सकपकाने लगे हैं। फिर धीमी-धीमी आवाजों में उसे लक्ष्य करके ही कुछ कहने-सुनने लगते हैं। उसे बड़ा अजीब लगता है। आखिर इन लोगों को वह नया क्यों लगने लगा है। वह उन लोगों से साफ-साफ पूछने के लिए अपने को तैयार कर लेता है। मगर यह क्या? समीप आते ही वे सब भीगी बिल्ली की भांति दुम दबाकर भाग जाने के फेर में होते हैं। वह आगे बढ़कर सुरिंदर का गट्टा पकड़ लेता है–'क्यों रे, आंख बचाकर भाग जाना चाहता है!'

'नहीं यार, सेकंड शो के लिए टिकट का समय हो गया है।'

'अच्छा, गांव की कोई नयी खबर है?'

'तो तुम्हें कुछ मालूम नहीं है क्या?' सुरिंदर चौंकता है।

रामहरख और जगमोहन भी उसे घेरकर खड़े हो जाते हैं।

वह झल्लाता है–'कहो न क्या बात है?'

सुरिंदर एक बार रामहरख और जगमोहन की तरफ देखता है। फिर बहुत साहस बटोरकर धीरे-से कहता है–'तुम्हारे घर पुलिस आयी थी।'

वह सुनते ही भौंचक रह जाता है। आश्चर्य से उसकी आंखें बड़ी-बड़ी हो जाती हैं और मुंह खुला का खुला रह जाता है। एक क्षण तक वह उसी तरह चुपचाप उन लोगों के बीच खड़ा रहता है। वे सब आंखें फाड़-फाड़कर उसके चेहरे के दहशत-भरे भावों को लक्ष्य करते रहते हैं। फिर वह पूछता है–'क्यों?'

सुरिंदर जवाब देता है–'बाहर की ... तियों में तुम्हारा नाम है।'

'आंय!.....!!.....!!!'–और ... लगता है, वह हिमालय की चोटी से ... गिर गया है। अब उसे कुछ भी पूछने ... हिम्मत नहीं होती है। वह आगे की ... बढ़ जाता है। और वे सब पीठ पीछे ... फुसाते हुए चल देते हैं। उन सबकी ... फुसाहट पर उसे गहरा दुःख होता ... आखिर ये युवक तो दिन-रात उसके ... रहते हैं। फिर ये क्यों उस पर शंका ... रहे हैं? उसे अपने गांव के नटवर ... याद आ जाती है। वह कभी चोरी-... नहीं करता है। लेकिन गांव की ह... में पुलिस उसे पकड़कर ले जाती है। ... गांव का सबसे गरीब वह है तो फिर ... करेगा और कौन? क्या अमीर लोग ... करते हैं?

शाम का अंधकार घिरने लगता ... लेकिन हर बार की तरह आज का ... उसे बुरा नहीं लगता। उसे लगता है ... कार में ही वह शांतिपूर्वक चल ... क्योंकि ऐसे जाहिल और डरपोक ... उसे नहीं देख पायेंगे। किसी की आ... मृत्यु भी इनके लिए उतनी भयाव... होती है, जितनी किसी के घर पुलिस ... की सूचना। काश, ये युवक अपने ... यह तहकीकात करते कि पुलिस का ... कितना सार्थक और कितना निरर्थक ...

पक्की सड़क से उतरकर वह गांव ...

वाली मोटी मेड़ पकड़ता है। तब वह कितना भयातुर हो जाता था, जब बाजार से लौटते हुए शाम के हल्के धुंधलके का सामना भी उसे करना पड़ता था! वह तेजी से दौड़ते हुए कस्बे से गांव तक की दो मील की दूरी पचीस मिनट में ही तय कर लेता था। पर आज शाम का यह घिर रहा धुंधलका उसे बहुत-बहुत प्यारा लगता है। उसके पांव तेजी से चलने के बजाय मंद-मंद चलना ही पसंद करते हैं। उसे अपने बाबू की बात याद आती है। उन्होंने कहा था–'रमेन्दर, अब किसी इंटरव्यू में मत जाओ। हाथ का सब कुछ तो चला ही गया। पैर के नीचे की जमीन को तो रहने दो।'

उसे बाबू की बात सही लगी थी। सत्तर साल के बाबू की बूढ़ी आंखों ने उसके सैकड़ों इंटरव्युओं की निरर्थकता देख ली थी। उसने बाबू से कहा था–'बाबू, यह आखिरी इंटरव्यू है। अब कभी नहीं जाऊंगा।'

बाबू ने किसी तरह उसके इस इंटरव्यू के लिए भी पैसों का इंतजाम कर दिया था। लेकिन लौटते वक्त उसे अपने आप पर गुस्सा आ रहा है। अगर उसने बाबू की बात मान ली होती तो इस अंतिम इंटरव्यू के पैसे बरबाद न होते। उसे बराबर यह महसूस होता रहा है कि बाबू ने उसे पढ़ा-लिखाकर गलती की है। इंटरव्युओं में जाकर वह यह जान चुका है कि अधिकांश वैसे ही लड़कों को नौकरियां मिलती हैं, जिनके यहां पुश्तों से नौकरियों की परंपरा चली आ रही है। किसी किसान के बेटे को कभी-कभार ही कोई नौकरी मिल पाती है, लाटरी के टिकट की तरह। उसे अपने गांव के सभी पढ़े-लिखे बेकार युवकों की निरर्थकता अब समझ में आ रही है। आखिर उन्हें नौकरी मिले भी तो किस स्रोत से? किसान के पास रोपनी-कटनी और दंवनी के सिवा और स्रोत ही क्या है? हां, जो काफी पैसे वाले हैं, वे घूस की मोटी रकम देकर कहीं लग जाते हैं। बाबू ने किसान होते हुए भी उसे पढ़ाया, लिखाया; यह बाबू ने ठीक नहीं किया। अब वह खेती-बाड़ी के लायक भी तो नहीं रह गया है। जिस तरह दीमकें किताबों को चाट जाती हैं, उसी तरह किताबों ने उसे चाट लिया है। हल, फाल और कुदाल, बैल की दुनिया से अब वह तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकता है। अगर कागज-कलम की दुनिया ने उसे स्वीकार नहीं किया, तो फिर उसकी जिंदगी बिलकुल निरर्थक हो जायेगी।

घिसी हुई हवाई चप्पलों को अंधकार में घसीटते हुए वह आगे बढ़ा जा रहा है। उसे उन दिनों की याद आती है, वह जब फर्स्ट इयर में पढ़ता था। जूते और मोजे के बावजूद हल्के अंधकार में उसे इन पगडंडियों पर डर लगता था। कहीं कोई सांप या बिच्छू न डंस ले, यह आशंका उसे रास्ते भर सताती रहती थी। पर अब सब कुछ बदल गया है। जीवन के प्रति किसी भी स्तर पर मोह की कोई भावना शेष नहीं रह गयी है। आखिर वह है तो उसकी सार्थकता ही क्या है? उसके रहने और न रहने के बीच

फर्क ही किस बात का है? आज तक तो वह दूसरों के सिर का बोझ ही बना रहा है और अब भविष्य का कोई सपना भी तो नहीं रह गया है उसके पास। कपड़े-लत्ते और इंटरव्यू के लिए बाबू से पैसे मांगते हुए अपनी घिनौनी आकृति उसने स्वयं महसूस की है। पत्नी की परोक्ष मांगों को बुखार की तीखी दवा की भांति वह हजारों बार निगल चुका है। हर जगह और हर अर्थ में उसने अपने होने की अनावश्यकता और निरर्थकता देख ली है। कहीं और किसी बिंदु पर भी उसका होना कोई अर्थ नहीं रखता था। बल्कि अब तो जगह-जगह अनर्थ रखना शुरू कर दिया था। बाबू को अब पछतावा होने लगा था उस पर खर्च किये अपने पैसों को याद कर-करके। सास और ससुर भी अपनी बेटी उसके साथ ब्याह-कर अब अफसोस करने लगे थे। पर वह ज्यों का त्यों है। बाबू को पहले की ही तरह सम्मान देता है। सास और ससुर के साथ वही नम्रतापूर्ण व्यवहार करता है। पर वे उसके साथ जुड़े अपने पहले के धरातल से बिलकुल कट गये हैं।

उसे ठोकर-सी लगती है। वह संभल जाता है। अब अंधेरा पूरी तरह छा गया है। उजली लकीर की तरह पगडंडी की हल्की अनुभूति उसे इधर-उधर गिरने से बचाती है। फिर भी उसके मन में घर पहुंचने की कोई उतावली नहीं है। वह जानता था, यह स्थिति एक दिन आयेगी ही। आखिर बाहर की डकैतियों में उसके जैसे पढ़े-लिखे बेरोजगार युवकों का नाम नहीं रहेगा, तो क्या नटवर जैसे बूढ़े ... का नाम रहेगा?

वह देखता है, बगल के टीले से ... उठाकर सियारों ने रोना शुरू कर दिया है। लेकिन आज सियारों का रोना भी ... अपशकुन नहीं लगता है। वह तो साधारण चाल से आगे बढ़ा जा रहा है। धीरे-धीरे वह गांव के बिलकुल करीब आ जाता है। यहां महुए का एक बहुत घना वृक्ष है। ... के नीचे घोर अंधकार है। लोग कहते हैं वर्षों से इस महुए पर कोई प्रेत रहता है। शायद इसी से रात में यहां लोग आते नहीं। पर उसे तो आज उसी प्रेत का इंतजार है। वह आंखें फाड़-फाड़कर देखता है—कहीं कुछ नहीं है। उसे लगता है, अपना मतलब साधने के लिए लोगों द्वारा प्रचारित तमाम झूठी बातों की तरह यह भी एक झूठी बात है। उसे अपने स्कूली दिनों की याद आती है। स्कूल से लौटते हुए उसे जब ... रात हो जाती थी, उसकी मां लालटेन लेकर महुए के पास बैठी होती थी।

मां की याद आते ही वह उठकर ... देता है। पुलिया पार करके चमरटोली की ओर बढ़ता है। चमरटोली से होकर ... रास्ता उसके घर की ओर जाता है। चमार-टोली के कुत्ते भौंकने लगते हैं। चमारों के घरों से ढिबरियों की हल्की रोशनी कहीं-कहीं आती दीख पड़ती है। फिर भी गली में पूरा अंधकार है। वह धीरे-से गली में घुस जाता है। रास्ते उसके पूर्ण परिचित ...

हैं। सहसा गली के मोड़ पर हरपाल सिंह के दालान से उसे अपना नाम सुनाई पड़ता है। वह रुक जाता है। फिर दीवार से सटकर सुनने लगता है। हरपाल सिंह, हरभजन सिंह, गणेश दुबे और बाबूनन की आवाज वह पहचान जाता है।

'लगता है, उस बार सेदहां में जो डकैती हुई थी, उसी के मामले में पुलिस रमेन्दर को पकड़ने आयी थी।' हरपाल सिंह बोलते हैं। फिर बाबूनन उनकी बात काटते हुए कहता है–'अरे नहीं, तुम्हें मालूम नहीं। वह मामला आरा शहर की डकैती का है।'

'लेकिन वह तो बहुत सीधा-सादा लड़का है। पढ़ने-लिखने में भी बराबर अव्वल आता रहा है। आज तक उसकी कोई भी बदनामी सुनने में नहीं आयी है।' गणेश दुबे प्रतिकार करते हैं। फिर हरभजन सिंह गणेश दुबे को समझाने लगते हैं–'दुबेजी! आज के लड़कों को आप नहीं जान सकेंगे। रमेन्दर को मैं पहचानता हूं। कम्बल ओढ़कर मांड़ पीने वाला धूर्त! कैसे अपने बाप की बदनामी करवा रहा है।'

उसका जी हुआ कि वह दनदनाता हुआ हरपाल सिंह के दालान में घुसे और हरभजन सिंह की गरदन पकड़कर पूछे–'चूतिये, कहने को तो गांव के मुखिया बन गये हो, लेकिन कोटे का सभी सामान ब्लैक करते हुए कहां रहती है तुम्हारी ईमानदारी? गद्दार कहीं के! अपना दोष दूसरों पर थोपते हुए शरम नहीं आती है? विधवा चाची को फुसलाकर उसका सारा खेत लिखवा लिया और कराह-कराह कर मरते वक्त उसे एक पैसे की दवा तक न दी थी।'

गुस्से से वह कांपने लगा था। पर वह चुपचाप आगे की ओर बढ़ गया। गांव के तमाम पगड़ीधारी इज्जतदारों के घिनौने काम वह देख चुका है। यह कोई नयी बात नहीं है। पर यह बात उसे बराबर नयी लगी है कि अपना दोष दूसरों के माथे मढ़कर ये चंद जल्लाद किस्म के इज्जतदार कैसे निष्कलुष और निर्दोष बने रहते हैं। कोई पैदा क्यों नहीं होता डंके की चोट पर इन्हें बेनकाब करने के लिए?

भिखारी की मड़ई की बगल से गुजरते हुए सिगरेट के धुएं की गंध उसे लगती है। भिखारी जैन कालेज, आरा का छात्र है। गांव के उसके अनेक हमउम्र साथी दस बजे रात तक इसी मड़ई में बैठकर रेडियो पर फिल्मी गाने सुनते हैं और सिगरेट पिया करते हैं। उसे काफी आश्चर्य होता है यह जानकर कि ये युवक देश की समसामयिक घटनाओं से तनिक भी वाकिफ नहीं होते हैं, परंतु बाम्बे में बन रही नयी फिल्मों और उनमें नियुक्त हो रहे नये-नये कलाकारों की पूरी सूचियां अपने पास रखते हैं। छुट्टियों के दिनों में दिन-भर बैठकर ताश खेलते हैं और गांव की लड़कियों को फंसाने के लिए नयी-नयी योजनाएं बना रहे होते हैं। रहने को तो वह भी उन लोगों के साथ रहता ही है, लेकिन हर बात में उन लोगों के साथ उसका मतभेद हो जाता है। फलतः उन लोगों के बीच रहते हुए भी वह अकेला

महसूस करता रहता है।

वह चोर की भांति मड़ई के पीछे-पीछे ही निकल जाना चाहता है कि उसके पांव रुक जाते हैं। वह कान खड़े करके सुनने लगता है। मड़ई के युवक उसी के बारे में बात कर रहे हैं। रमेसर कहता है–'यह तो अजब हो गया भाई! रमेन्दर तो पक्का उस्ताद निकला। आज तक लोग उसे नंबर वन शरीफ ही समझते आ रहे थे, लेकिन वह नंबर वन खूंखार निकला।'

'लेकिन मुझे तो अब भी विश्वास नहीं हो रहा है यार। लगता है, बिलकुल गलत बात है। पुलिस को किसी ने झूठी सूचना दे दी है.....।' सुरेश अपनी बात कहता है। फिर तत्काल भृगुनाथ सुरेश की बात का विरोध कर उठता है–'अरे बच्चू, कानून के हाथ बड़े लंबे होते हैं। कौन क्या करता है, यह सब पुलिस बैठे-बैठे ही जान लेती है।'

'अच्छा, यह पता चला कि किस मामले में पुलिस आयी थी?' ब्रजेश पूछता है। फिर भृगुनाथ चट जवाब देता है–'हरपाल सिंह तो कह रहे थे कि सेदहां में जो डकैती हुई थी, उसी के मामले में पुलिस आयी थी।'

'हरपाल सिंह झूठ बोलते हैं', मदन गरजता है–'किसने उनसे कहा कि सेदहां वाली डकैती के मामले में पुलिस आयी थी। अरे जनाब, जिस समय पुलिस रमेन्दर के घर आयी थी, उस समय मैं वहां मौजूद था। रमेन्दर के बाप के साथ पुलिस की जो बातचीत हुई थी, उससे तो यह कतई जाहिर नहीं हो रहा था कि सेदहां वाली डकैती का मामला है।'

'तो उस समय तुम वहां थे!... और भई कहो न क्या-क्या बात हुई?' सुरेश और ब्रजेश एक ही साथ पूछ बैठते हैं।

फिर मदन इत्मीनान के साथ कहना शुरू करता है–'करीब तीन बजे की बात है। गोपाल काका (रमेन्दर के बाप) भैंस को सानी दे रहे थे कि अचानक तीन-चार पुलिस वाले और एक दारोगा कहीं से आ धमके। उन्हें अपने दरवाजे पर देखते ही गोपाल काका एकदम सकपका गये। फिर हाथ जोड़कर बोलने लगे–"हुजूर, आप लोग किसको खोज रहे हैं?"

' "रमेन्दर का यही घर है?"–दारोगा ने पूछा था।

' "हां हुजूर। मैं रमेन्दर का बाप हूं।"

' "अच्छा तो बूढ़े, वह तुम्हारा ही लड़का है?" दारोगा ने अपना सिर हिलाते हुए कहा था। फिर सख्त होकर पूछा था–'बताओ, कहां है तुम्हारा लड़का?"

' "इंटरव्यू देने जमशेदपुर गया हुआ है सरकार .....क्या बात है सरकार.....उससे कुछ गलती हो गयी है क्या हुजूर?" काका बुरी तरह कांपने लगे थे। दारोगा गरजा था–"बनो मत बूढ़े। तुम्हें सब पता है।"

'काका दारोगा के पैरों पर गिर पड़े थे–"मैं कुछ भी नहीं जानता हूं माई-बाप! उसने क्या कसूर किया है सरकार?"

"क्या नहीं किया है, यह क्यों नहीं पूछते हो? शहर में जितने उत्पात होते हैं उनकी जड़ में तुम्हारा लड़का है। इतना मई

जान लो कि तुम्हारा लड़का अब हाथ से निकल चुका है।" दारोगा ने ऐंठते हुए कहा था। काका टुकुर-टुकुर दारोगा का मुंह ताकने लगे थे।

'"मुंह क्या ताक रहे हो?" दारोगा फिर गरजा था–"चलो, पहले घर सर्च कराओ।" और दारोगा ने पुलिस वालों के साथ रमेन्दर के घर में प्रवेश किया था। लेकिन कहीं कुछ नहीं मिला था। रमेन्दर की अलमारी में इंटरव्यू से संबंधित कागज, किताबें और पत्र-पत्रिकाएं थीं। दारोगा ने दो पत्रिकाएं उसमें से निकाल ली थीं।'

इतना कहकर मदन चुप हो गया। तब भगुनाथ बोला–'तब तो साहब, कोई ठीक नहीं है कि किस मामले में पुलिस आयी थी.... लेकिन जहां तक मैं जानता हूं, पिछले साल से ही वह ज्यादा बाहर आता-जाता है।'

उससे और अधिक सुनते नहीं बनता है। गांव के ये युवक उसे पालतू कुत्ते लगते हैं। उनके प्रति उसका मन घृणा से भर जाता है। वह चुपके-से आगे बढ़ जाता है। रघुशरण चाचा का मकान लांघते हुए वह दीनानाथ वाली गली में घुसता है। दीनानाथ वाली गली के अंत में सिधारी बाबा का दालान है। वह अंदाज लगाता है, सिधारी बाबा के दालान के लोग सो गये होंगे। अक्सर वे शाम के आठ बजे के अंदर ही बिस्तर पर गिर जाते हैं। फिर लालटेन बुझाकर बारह बजे रात तक बिस्तर पर लेटे-लेटे ही बतियाते रहते हैं। दालान की बगल से गुजरते हुए उसे अपना अंदाज ठीक ही लगता है। लालटेन बुझाकर बिस्तरों पर पड़े-पड़े ही लोग बतिया रहे होते हैं। दालान से आगे बढ़ते-बढ़ते उसे उन लोगों की बातों के बीच अपना नाम सुनाई पड़ जाता है। वह जानता है, विषय क्या है। उसे बड़ी कोफ्त होती है। पर सब कुछ निगलता हुआ वह अपने दरवाजे पहुंचता है।

एक क्षण के लिए वह स्तंभित रह जाता है। घर का दरवाजा बिलकुल खुला है। सूनापन चारों ओर बिखरा है। घर में किसी के होने का आभास तक नहीं मिल रहा है। कस्बे से यहां तक के बीच पहली दफा वह अंदर से टूटता हुआ महसूस करता है। उसका मन तिलमिला जाता है। पांव एक दम से बोझिल हो जाते हैं। किंतु वह अपने को जब्त कर घर के अंदर घुसता है।

आंगन में जल रही लालटेन की रोशनी में वह देखता है। उसे सब कुछ जैसे बिखरा-बिखरा-सा लगता है। ओसारे में चारपाई पर मां बेहोश पड़ी है। उससे दूर चौकी पर सिर झुकाये बाबू बैठे हैं। आंगन के एक कोने में पत्नी उकड़ूं होकर बैठी है। वह कुएं के पास जाकर कुल्ला करने लगता है। सहसा बाबू की नजरें उस पर पड़ जाती हैं। वे चौकी से बाज की तरह उतरते हुए गालियां बकते हुए उसके सामने आ जाते हैं–'निकल जा मेरे घर से साले .... मैं तेरी सूरत नहीं देखना चाहता। मांस बेच-बेचकर तुझे पढ़ाया .... फिर भी तू कमीना ही निकला ...अब क्या मुझे जेल भिजवायेगा?'

वह कुछ नहीं बोलता है। चुपचाप

झरा हुआ फूल
राम की खड़ाऊं

माना कि मिला नहीं सिंहासन
या मुकुट जड़ाऊ हां
तो कहां मिली सेंदने को
राम की खड़ाऊं हीं।
फटे हुए पन्नों पर कटे हुए हस्ताक्षर
शिबिरबद्ध आयोजन
मूर्जा म इतिहासों के
जी रहे मुखौटों में
एक आत्मनिर्वासन
पिटे हुए मोहरे गीले अहसासों के
राते प्रस्तावों की दिन हुए जुलूसों के
सभामंचों पर पाया आदमी बिकाऊ हां
टोहते अंधेरे में अनजानी रूहों को
हवा में उछालते
आतंकित हाथों को
कूड़ेदानों में ढक
मुहरबंद आश्वासन
बहसों में टकराते गरमाये माथों को
गर्दिश का आलम चीखें नेपथ्यों की
हर मौसम लग रहा मुस्तकित उबाऊ हो।

—रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण'
पो. सीतामढ़ी कोर्ट, सीतामढ़ी, बिहार

सुनता रहता है। वे देर तक गालियां बकते रहते हैं। फिर रोने लगते हैं। फिर हांफते हुए चौकी पर जाकर बैठ जाते हैं। वह मां की खाट के पास जाता है। मां सिर्फ मुस्करा रही होती है। उसके पुकारने पर भी जवाब नहीं देती है। वह पत्नी के पास आता है।

'पिंकी का बुखार कैसा है?' वह पूछता है। पत्नी भी कुछ नहीं बोलती। वह देखता है, पत्नी का माथा फूट गया है और खून बह रहा है। वह समझ जाता है, दीवार से टकराकर इसने सिर फोड़ लिया है। उसका मन जैसे विचलित होने लगता है। जी रोने-रोने को हो आता है। लेकिन वह यहां भी अपने को संभाल लेता है और सीधे घर में चला जाता है। चौकी पर पिंकी सो रही होती है। वह चादर उठाकर पिंकी का बदन छूता है। बुखार के कारण वह तवे की भांति जल रही होती है। वह उसे ढंक देता है और जेब से मूंगफली निकाल उसके सिरहाने रख देता है। फिर धीरे-से उसकी बगल में लेट जाता है।

काफी देर तक वह सोचता रहता है। आज की घटना ने कहीं बहुत गहरे में उतर कर उसे सोचने के लिए बाध्य कर दिया है। लंबे समय बाद, पत्नी के कमरे में आने की आहट उसे महसूस होती है। वह देखता है पत्नी धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश करती है और बगल वाली चारपाई पर लेट जाती है। काफी समय तक वह उसके बोलने की प्रतीक्षा करता रहता है। पर वह कुछ नहीं बोलती है। एक क्षण के लिए कमरे का सूना-

तब उसे डंसने लगता है। किंतु वह धीरे-धीरे हर चीज का अभ्यस्त होता जा रहा है। कमरे के बेतरतीब सामान को वह देर तक निरुद्देश्य घूरता रहता है। घर और आंगन की मायूस चुप्पी कुछ अजीब महसूस होती है। श्मशानी सन्नाटा हर विकल्प को निगलने के लिए मुंह बाये खड़ा है। थोड़ी देर के लिए वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। अपना गांव की ठाकुरबारी से उसे घंटों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। वह जैसे सोते से जागता है। रात के बारह बज गये हैं। बारह बजे ठाकुरजी का भोग लगता है। उसे नटवर डोम की याद आने लगती है। उसने कई बार नटवर से पूछा था—'ऐ नटवर, तू इतना शरीफ आदमी है, कभी चोरी-चमारी नहीं करता है। फिर भी हर चोरी में पुलिस तुझे क्यों पकड़ ले जाती है?'

नटवर जवाब देता था—'बबुआजी, मैं गरीब होते हुए भी शरीर से तगड़ा हूं न, इससे बड़ा कसूर और क्या हो सकता है दुनिया में?'

वह करवट बदलकर सोने का उपक्रम करने लगता है। लेकिन नींद तो जैसे वर्षों के लिए उसकी आंखों से जुदा हो गयी हो। उसकी अधखुली और अधमुंदी पलकों के आगे नटवर डोम की आकृति तैरती रहती है और कानों में उसके वाक्य गूंजते रहते हैं—'बबुआजी, मैं गरीब होते हुए भी शरीर से तगड़ा हूं न, इससे बड़ा कसूर और क्या हो सकता है दुनिया में?'

—महाराजा हाता कतिरा, आरा, बिहार



व्यूह-रचना के चक्र में

बत्तीस वर्ष की इस छोटी-सी अवधि ने
क्या कुछ नहीं देखा है,
देखा ही देखा नहीं,
बहुत कुछ भोगा भी है।

नये, तरोताजा खून के
अरमानों की होली जलती देखी है,
दिशाएं बतलाकर रास्ते भटकाती आयी
'व्यवस्था' भी खूब देखी है;
भीतर से सब रास्ते
बंद कर दिये जाते रहे हैं
क्या यह 'चक्रव्यूह' नहीं है!

ऐसा नहीं है
कि यहां अभिमन्युओं की कमी हो
या हो अर्जुन का अभाव,
यहां तो बस व्यूह ही कुछ ऐसा है
कि इसके शीत-द्वंद्व से ही अर्जुन को
परास्त किया जाता रहा है।

आज का अभिमन्यु
कहां से सीखे वह विद्या,
जब गर्भवती-मां का पति
स्वयं ही घिरा हो
इस व्यूह-रचना के चक्र में!

—नरेन्द्र भारद्वाज
एच-७, डी. डी. ए. फ्लैट,
हौज खास, नयी दिल्ली-११००१६

तीखा सबक

बलराज साहनी

एक दिन डेविड के साथ मेरा दृश्य फिलमाया जा रहा था। संवाद याद न होने के कारण मेरे रीटेक पर रीटेक हो रहे थे। आखिर मैंने डेविड से पूछा—'क्या डायलाग याद करने का कोई तरीका भी है? आपके तो रीटेक नहीं होते।'

डेविड ने मुझे बड़े प्रेम से समझाया :

'वाक्य के हर शब्द के पीछे एक चित्र होता है। दूसरे शब्दों में, अगर उस वाक्य को अपनी कल्पना में देखो तो वह चित्रों की एक शृंखला के रूप में दिखाई देगा। अगर डायलाग बोलते समय उस चित्र-शृंखला की ओर ध्यान दो, तो शब्द भूलेंगे नहीं।'

मैंने आजमाकर देखा, तो यह बात सही निकली। मैंने इस शिक्षा को दिल में बैठा लिया। इस प्रकार फिल्म-अभिनय का मुझे पहला सबक मिला, जिसके लिए मैं डेविड का आभारी हूं।

[२]

एक दिन 'हम लोग' के शॉट के दौरान दुर्गा खोटे ने मेरे कान में कहा—'तुम्हारे डायलाग कुछ फ्लैट हो रहे हैं।'

यह सुनकर मेरे आत्मविश्वास का बुर्ज ढहने लगा, पर मैं संभला। मुझे महसूस हुआ कि उन्होंने मुझ पर कृपा की है और मुझे उनका आभारी होना चाहिये। इ[...] डेविड ने भी तो इसी तरह मुझे सही रा[...] दिखाया था। कितना काम आ रहा [...] उनका दिया सबक! मैं अपने रि[...] और रीटेकों का खुद आलोचक बन [...] था। दुर्गा खोटे ने बिलकुल ठीक कहा [...] मैं सारे वाक्य एक ही सुर में बोले जा [...] था। उनमें वे उतार-चढ़ाव गायब थे [...] कि स्वाभाविक बोल-चाल में बहुत [...] होते हैं।

अब मैं रिहर्सल से पहले एक कोने [...] चला जाता। डेविड के बताये तरीके [...] संवाद अपने दिमाग में बैठाता और [...] खोटे की बात ध्यान में रखकर उ[...] चढ़ाव पर गौर करता, ताकि संवादों [...] छिपे हुए भाव साकार हों।

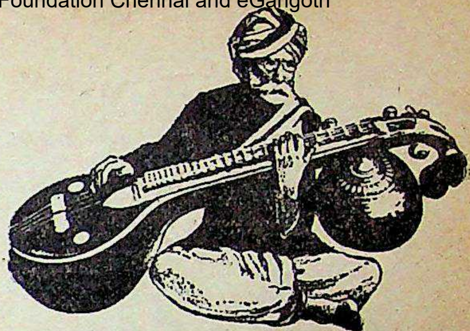
मैंने एक और कसौटी ढूंढ़ ली। मैं [...] अपने से पूछता कि अगर यही संवाद [...] पंजाबी में बोलने हों, तो कैसे बोलें [...] पंजाबी मेरी मातृभाषा है और वह हिन्दी [...] बहुत निकट है। इस प्रकार स्वाभाविक [...] से संवाद बोलने के रास्ते में मैं एक क[...] और आगे बढ़ सका।

[३]

'बदनाम' में उल्हास और मुराद [...] महत्त्वपूर्ण रोल कर रहे थे। दोनों [...]

जबान पर जैसे सरस्वती विराजमान थी। उन्हें सैकड़ों-हजारों शेर याद थे। हिंदी-उर्दू उनकी मातृभाषा थी। जब वे शराब के गिलास भरकर एक-दूसरे से चुहलबाजी करने लगते, तो सुनने वालों पर जादू-सा तारी हो जाता। इसी तरह के. एन. सिंह, हमीद बट्ट, कामेश्वर सहगल, कन्हैयालाल और बद्रीप्रसाद जैसे कलाकारों के मुंह से भी मैं शब्दों की फुलझड़ियां छूटती हुई देखता और महसूस करता कि मैंने बी. बी. सी. की नौकरी के जमाने में यद्यपि हिंदी-उर्दू पर बेहद मेहनत की थी, पर फिल्मी कलाकार कहलाने का मैं तभी हकदार हो सकता हूं, जब मैं इन लोगों-जैसी सहजता, रवानी और सुंदरता के साथ हिंदी बोल सकूं।

अभिनय के मामले में तो मैं आवाज से ज्यादा खेलने का हिमायती नहीं था; पर यह जरूर मानता था और आज भी मानता हूं कि जिस भाषा में अभिनेता बनना हो, उसके उच्चारण का, उसके शब्द-भंडार और साहित्य का उसे माहिर होना चाहिये, वरना उसका विकास एक जगह पर आकर रुक जाने का खतरा है। इस बात को ध्यान में रखकर मैं लगातार अभ्यास करता था, और मुझे सफलता भी जरूर मिलती थी। पर फिर भी उल्हास या मुराद तक पहुंचने की आशा मैं एक जन्म में तो क्या दो जन्मों में भी नहीं कर सकता था। मुझे अपनी मातृभाषा पंजाबी की ओर प्रेरित करने में उल्हास और मुराद का बहुत हाथ है।



वीणाभक्त

मैसूर के महान वीणावादक स्व. शेषण्णा कहा करते थे–'हम सब अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार वीणा बजाते हैं। जो वीणा की क्षमता के अनुसार वीणा बजा सके, वह अभी पैदा नहीं हुआ है।' बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड ने उनके वीणावादन पर मुग्ध होकर उन्हें एक बहुमूल्य पालकी भेंट की और उसमें बैठाकर सारे शहर में उनका जुलूस निकलवाया। वे मैसूर लौटे तो गुणग्राही मैसूर महाराज ने आज्ञा की कि उसी पालकी में बैठकर शाही सम्मान के साथ दरबार पधारें। अपने आश्रयदाता के समक्ष ठाटबाट से जाना उस महान वैणिक को न भाया। वे अपनी वीणा को पालकी में रखकर स्वयं पालकी के साथ पैदल राजमहल गये। स्व. शेषण्णा का १२५ वां जन्मदिन गत नवंबर में मनाया गया।





क्रांति का अमर गायक

• जगदीश चतुर्वेदी

हिस्तो बोतेव (१८४८-१८७६) बल्गारिया के उन महत्त्वपूर्ण कवियों में हैं, जिनका जीवन देश और मानव-हित के लिए समर्पित रहा है। बल्गारिया की जनता इस कवि को क्रांतिकारी तथा योद्धा के रूप में जानती है। उनके जीवन, विचारों और कविताओं ने परवर्ती कवियों और क्रांतिकारियों को प्रेरणा प्रदान की। वे आधुनिक बल्गारियाई कविता के जनक माने जाते हैं। वस्तुतः कविता और क्रांति की सही पहचान उनकी कविताओं के द्वारा संभव हुई।

आज से करीब एक शताब्दी पूर्व अपने देश को स्वतंत्र कराने के प्रयास में गोली लग जाने के कारण मात्र २८ वर्ष की अल्पा आयु में वे शहीद हो गये। जवानी में का[ल] कवलित हो जाने से वे अधिक न लिख स[के] किंतु जिन बीस-पचीस कविताओं की उन्हों[ने] रचना की, वे मानवीय करुणा और क्रांति [के] जीवंत दस्तावेज मानी जाती हैं।

बोतेव का जन्म २५ दिसंबर १८४[८] [को] बाल्कन पर्वत की तराई में बसे खूबसू[रत] कस्बे कालोफर में हुआ। उनके पिता शिक्ष[क] थे और बहुत-से प्रगतिशील विचारों [के] लोगों से उनका घनिष्ठ परिचय था।

बोतेव पर अपनी मां इवांका बोतेव का [भी] बहुत प्रभाव पड़ा, जो बल्गारियाई लोकगी[त] गा-गाकर अपने पुत्र को सुनाया करती थीं। मां से बोतेव ने बल्गारिया के क्रांतिकारि[यों] और वीरों की गाथाएं गीतों के माध्यम [से] सुनी थीं। कालांतर में ये ही गीत प्रचं[ड] आग बनकर बोतेव के जीवन और कवि[]ताओं में प्रस्फुटित हुए।

प्रारंभिक शिक्षा उन्होंने पिता [की] संरक्षकता में कालोफर कस्बे में ही पायी। सन १८६३ में वे अगली शिक्षा प्राप्त कर[ने] के लिए रूस भेजे गये। ओडेसा के हाई स्कूल में उनका दाखिला कराया गया। इस संवेदनशील बालक को शीघ्र ही पता लग गया कि पुस्तकों में वर्णित आर्द[श]

वैभव-गान कितने सत्य हैं। वह सामंतवाद का जमाना था और वहां के श्रमजीवियों और सामान्य जन में एक आतंक व्याप्त था।

यहीं बोतेव का परिचय रूस के युवा क्रांतिकारियों से हुआ और उन्होंने समाजवादी साहित्य का अध्ययन किया। शहर के समाजवादी और प्रगतिशील विचारकों से उनकी घनिष्ठता देखकर स्कूल के अधिकारियों ने उन्हें स्कूल से निष्कासित कर दिया। उन पर युवा विद्यार्थियों को सरकार के विरुद्ध भड़काने का आरोप था।

बोतेव पिता के पास लौट आये; पर क्रांति की जो आग उनमें प्रज्वलित हो चुकी थी, बुझी नहीं। उनका रूस तथा पड़ोसी देशों के क्रांतिकारियों से पत्र-व्यवहार प्रारंभ हो गया। इतना ही नहीं, वे रुमानिया चले गये और वहां के क्रांतिकारियों के सहयोग से अपनी मातृभूमि बल्गारिया को स्वतंत्र कराने के प्रयासों में जुट गये। वहां रहकर उन्होंने कई साहित्यिक तथा जनवादी पत्रिकाओं का संपादन किया। उनकी गद्य रचनाएं भी अत्यंत मार्मिक और प्रेरणादायक सिद्ध हुईं। उनकी लेखनी ने युवकों में आग फूंकी और बहुत से बल्गारियाई नौजवान, जो निष्कासित होकर रुमानिया में रह रहे थे, उनके समर्थक तथा सहयोगी बने। इस बीच उन्हें अपार कष्ट भी झेलने पड़े, पर वे विचलित नहीं हुए।

मई १८७६ में बोतेव ने डेन्यूब नदी पार करके बल्गारिया के अपने कस्बे को तुर्की तानाशाहों से स्वतंत्र कराने की एक योजना बनायी। उस समय के यूरोपीय क्रांतिकारियों के समान उन्होंने पहले एक आस्ट्रियन जलपोत पर कब्जा किया, फिर क्रांतिकारी युवकों की टोली शस्त्रों से सज्जित होकर अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए चल पड़ी।

तुर्कों की सेनाओं से उनका घमासान युद्ध हुआ। तमाम बालकन की पहाड़ियों पर तुर्की सेनाएं फैली थीं। फिर भी ये क्रांतिकारी युवा काफी दिनों तक दुश्मनों से युद्ध करते रहे। एक मुठभेड़ में गोली लगने से हिस्तो बोतेव शहीद हो गये। उनका जलपोत तब बल्गारिया के तट पर पहुंच गया था और अपनी मातृभूमि की गोद में वे चिरनिद्रा में लीन हो गये।

अपने जीवन की आपाधापी और अल्प आयु में काल-कवलित हो जाने से बोतेव अधिक न लिख सके। पर उनकी बीस-पचीस कविताएं उनके रक्त से लिखी कृतियां हैं—सप्राण, जीवंत तथा मर्मस्पर्शी! उनकी कविताओं में देशप्रेम, मानव-हित तथा वैयक्तिक राग-द्वेष की सशक्त अभिव्यक्ति पाठकों को आप्लावित करती है। उनकी वे कविताएं जो नितांत निजी हैं—मां के लिए, भाई के लिए—उनमें भी जन्मभूमि के प्रति अगाध निष्ठा, प्यार और उत्सर्ग की भावना है। वैयक्तिक अनुभूति को सार्वजनीन बना देने की उनकी प्रतिभा कविकर्म की अनन्यता की परिचायक है। लगता है, एक आवेश उनकी धमनियों में कसकता रहता था और उनकी प्रत्येक पंक्ति लावा बनकर

प्रकट होती थीं। उनकी कविताएं भी उनके जीवन की तरह देश को समर्पित रहीं और परवर्ती कवियों ने उनसे पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की। एक शताब्दी पूर्व के इस बल्गारियाई कवि में समकालीन युवा कवियों की तरह ही उद्दाम वेग, आकर्षण तथा नवीनता है।

बोतेव की मृत्यु के पश्चात् बल्गारिया के मूर्धन्य कवियों में उनकी गणना हुई। विश्व के कई देशों में उनकी कविताओं के अनुवाद हुए और उनको सराहा गया। आज भी उनकी कविताएं बल्गारिया के कवियों में चर्चा का विषय हैं और क्रांति का जीवंत दस्तावेज मानी जाती हैं।

मां के लिए

तुम ही थीं मां
आंखों में वेदना संगीत भरे
तुम ही थीं मां
जिसने लंबे तीन वर्षों तक
मुझे भाग्यहीन मानकर
लावारिस समझ लिया
और उन लोगों से आत्मीयता बतायी
जिनसे मुझे घृणा थी।
क्या मैं अपने पिता की तमाम जायदाद
प्यालों में पी गया ?
क्या मैंने तुम्हारे शरीर पर
गहरे जख्म उकेर दिये ?
मेरे यौवन का प्रारंभिक वसंत तो मां !
दुःख के अगाध समुद्र में
डूबा और झर गया।
अपने तमाम दोस्तों को
मैं [illegible] हूं
मैं जब उनके साथ होता हूं
तो ठहाके लगाता हूं, मुस्कराता हूं
लेकिन वे नहीं जानते कि मैं मुर्दा हूं
और मेरा यौवन
एक गहरी धुंध में डूबा हुआ है।
कैसे जान पायेंगे वे ?
मैंने अत्यंत आत्मीय को भी
अपने आत्मिक संघर्ष की दास्तां
नहीं बतलायी;
मैंने नहीं बताया अपना प्रेम,
अपना आंतरिक विश्वास,
अपने स्वप्न, अपना विचार-तंत्र
या अपना अगाध दुःख !
सिर्फ तुमको मालूम था
मेरा व्यक्तित्व, मेरा अंतरंग
तुमको सौंपा मैंने
अपना विश्वास और प्यार;
फिर भी न जाने क्यों
माना गया अविश्वसनीय
जबकि मैं तुम्हें देता रहा श्रद्धा
और दिल में धधकती रही आग।
समय के साथ यह विश्वास हो गया है
कि हम दोनों साथ ही जियें और खुश रहें
मैं इतना महसूस करता हूं तुम्हें,
मैं किससे प्रेरणा लूं—
मेरी इच्छाओं को तुम स्वयं ही
कब्र में दफना दो।
तुम अपने को निराश्रित और अकेला
समझो, समझती रहो
मैं अभी भी तुम्हारे खुले बाजुओं में

शरीर और आत्मा के धर्म अलग-अलग हैं। ऐहिक लड़ाई कभी आध्यात्मिक धरातल पर नहीं लड़ी जा सकती। जब भी इन दोनों को एक करने का दुष्प्रयास किया जाता है, अवश्य ही शोकांतिका घटित होती है।... .एक पुराण-गाथा सदृश कहानी, जिसमें लेखक ने वह शाश्वत प्रश्न उठाया है, जिसका उत्तर मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी खोजता आया है।

संक्षिप्त अनुवाद : सुरेन्द्र प्रसाद साह

इस तरह एक दिन संध्या समय सोमदत्त पराजय की झोंक में आश्रम का भी परित्याग करके चल पड़ा। यदि शरीर ने उसे महान पराजय का तीखा स्वाद चखाया है तो अब वह भी शरीर को अंतिम रूप से पराजित किये बिना छोड़ेगा नहीं। यही प्रतिज्ञा करके वह आज आश्रमत्यागी बना था। उसकी यह यात्रा एक महाभिनिष्क्रमण थी, उद्योग-पर्व की यात्रा—दैवी शस्त्रास्त्र के संग्रह के लिए, वशिष्ठ के द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मतेज को अर्जित करने के लिए, और आध्यात्मिक शक्ति के संचय के लिए।

वह आश्रम से आस्था की विजय का स्वप्न लेकर निकला था। पर सुम्निमा भी अज्ञात रूप में उसके अंदर निवास करती हुई उसके साथ-साथ आ रही थी। मन के अंदर पैठी हुई उस मूर्ति को वह तपस्या के द्वारा उखाड़ फेंकना चाहता था।

वह अतिशय कठोर जीवन-यापन करने लगा—निराहार रहता, निर्जल रहता, वाजश्री रहता, शीतकाल में कैलाश-तीर्थ के मार्ग के हिमाच्छादित मानसरोवर के जल में डुबकी लगाता, ग्रीष्म की तपती धूप में ज्वालाजतीर्थ में देहपाक करता। वह समुद्र के बीच किसी चट्टान पर पद्मासन लगाकर महीनों बैठा रहता, समुद्र के खारे जल और वायु से उसकी देह प्रक्षालित होती रहती, जिससे उसकी देह पर काई-सी जम जाती और सीपी, शंबुक, कर्कट, शैवाल आदि देह से संलग्न हो जाते। और उग्र तप के ऐसे प्रत्येक प्रयोग के बाद वह अपने मन को टटोलकर देखता कि वहां कहीं सुम्निमा का कोई अवशेष तो नहीं बचा है!

कहीं उसे पागल कहा जाता। कहीं उसके भयानक रूप को देखकर ग्रामीण बालक-बालिकाएं डरकर भागने लगते। कहीं उसे महात्मा समझकर पूजा जाता। उसके संपूर्ण शरीर पर मछली की तरह परत पर परत जम गयी थी। शरीर कंकाल पर चढ़ाये गये चमड़े के झोले जैसा दिखाई पड़ता था। कुएं की तरह दीखने वाली उसकी टिमटिमाती आंखों से भयावह ज्योति निकलती थी, जिसे देखकर कहीं तो गांव के कुछ लोग तो डरकर भाग जाते थे, और कहीं इसे दैवी तेज समझकर उसका श्रद्धायुक्त अभिनंदन भी किया जाता था। पुआल के गट्ठर के समान घनघोर जटाजूट उसके शिर पर खड़ा था और नीरस हड्डियां संधिस्थलों पर लकड़ी की तरह खट-खट शब्द पैदा करती थीं। फिर भी क्या

१९७९

सुम्निमा ने उसका पीछा छोड़ा था। यदा-कदा वह पीडा से कराहता–'जब तक धुक-धुकी बंद नहीं होगी, तब तक सुम्निमा मुझे छोड़ेगी नहीं।' तब वह कठोरतर तपस्या में जुट जाता था। कितनी बार तो किसी नदीतट पर उसे मुमूर्षु अवस्था में देखकर धार्मिक जनों ने उसकी सेवा की, जिससे उसमें प्राणों का पुनः संचार हुआ।

अंत में एक दिन उसे अपनी तपस्या पूर्ण होती जान पड़ी। उस दिन वह गंगाद्वार में स्नान के बाद बहुत देर से पद्मासन लगाकर ध्यानमग्न बैठा था। सूर्य की प्रथम किरण के साथ उसकी आंखें खुल गयीं। देखा कि नदी और पर्वत का सारा दृश्य शुचितामय है, जैसे सब कुछ धुलकर पवित्र हो गया हो। शांत वातावरण में केवल गंगा की कलकल ध्वनि गूंज रही है। सूर्य की एक पृथक् किरण-रेखा गंगा के घाट के पास पानी में पड़ रही है और उस स्थान पर आलोडित जल में उत्पन्न छोटी तरंग पर सूर्य की वह रश्मि-रेखा सुवर्ण-कलश बना रही है। उसके मन में परम शांति का बोध हुआ। विशेष आनंद की अनुभूति से उसका सूर्यदीप्त चेहरा प्रसन्न हो उठा। तभी एक नारीकंठ निनादित हुआ–'तपस्वी, इधर मत देखो। मैं स्नान करने के लिए नग्न होकर जल के भीतर पैठी हुई हूं।'

उत्तर में उसने कहा–'हे बाले, मेरे चक्षु केवल जल और सूर्यरश्मि की क्रीडा देख रहे थे, तुम निश्शंक होकर उदक-क्रीडा करो। तपस्वी के चक्षु तुम्हारे शरीर को ग्रहण नहीं करेंगे।'

स्वभावानुसार सोमदत्त ने उस क्षण अपने हृदय में सुम्निमा को खोजा। किंतु उसका हृदय रिक्त था, एकदम शून्य। उसे लगा कि अब वह सुम्निमा को भी निर्विकार भाव से याद कर सकता है। तब एक क्षण के लिए उसने विकार-रहित दृष्टि से तरुणी की जलक्रीडा को भी निहारा। उसे प्रतीत हुआ कि उसकी तपस्या सफल हो गयी है। मृगचर्म और कमंडलु उठाकर उदयाचल के बालसूर्य को लक्ष्य करके वह कह उठा-'आज मेरी तपस्या सार्थक हुई, मैं जितेंद्रिय हुआ।'

उसी समय उसे अपने माता-पिता की याद आयी और उसने तत्क्षण आश्रम को प्रस्थान किया।

०००

गांठों से युक्त अपने शरीर को लाठी का सहारा देकर क्लांत पगों से चलता हुआ सोमदत्त जब एक दिन आश्रम के लिपे हुए प्रांगण में प्रवेश करके सीधा खड़ा हुआ, तो उसके वृद्ध माता-पिता अपनी क्षीण होती हुई दृष्टि से उसे पहचान ही नहीं सके। दोनों ने यही समझा कि कोई वृद्ध तपस्वी रात बिताने के लिए आये हैं। सूर्यदत्त ने कहा-'अतिथिदेव! आपका स्वागत है। कहां से पधारे हैं? आपका परिचय?'

अपनी झुकी हुई कमर को हाथ का सहारा देकर कुछ सीधा खड़ा होते हुए सोमदत्त ने आंगन से ही कहा–'क्या पूज्य पिता भी मुझे पहचान नहीं सके?' और समीप गई

जाकर उसने दोनों के चरणों पर अपना जटामंडित मस्तक रखकर दंडवत् किया और उन्हें बताया–'तात, मैं सोमदत्त तपस्या द्वारा इंद्रियों पर पूरी विजय प्राप्त करके वापस आया हूं।'

सूर्यदत्त और उनकी पत्नी ने हर्षाश्रु बरसाते हुए कहा–'हे वत्स, तुमसे हमें यही आशा थी।' उन्होंने उसके सिर को बार-बार सूंघा।

तपस्वी पुत्र को अपनी इच्छा के अनुसार विकसित देखकर वृद्ध दंपति के आंतरिक संतोष की सीमा न रही। जब प्रातःकाल सोमदत्त विभिन्न योगमुद्राओं में बैठकर निर्निमेष चक्षु से सूर्यकिरण का पान करते हुए त्राटक करता, तब उसके क्षीण मुखड़े पर सूर्य की प्रभा को लक्ष्य करके माता गद्गद होकर कहतीं–'मेरे पुत्र का चेहरा तपःतेज से उद्दीप्त है।'

जिह्वा को कंठ के भीतर, ठीक मस्तक के नीचे घुसाकर अमरत्व रस के एकांत आस्वादन में लीन सोमदत्त को देखकर गर्व से रोमांचित होते हुए सूर्यदत्त कहते–'ब्राह्मणी, यह कठिन खेचरी मुद्रा भी हमारे पुत्र के लिए सहजसाध्य हो गयी है!' बार-बार उनके मुंह से निकलता–'पुत्र सोमदत्त ने हमारे संपूर्ण कुल को तार दिया है।'

किंतु अब भी एक बात की चिंता सता रही थी उन्हें–विवाह के प्रति पुत्र का नितांत वैराग्य-भाव।

सूर्यदत्त चिंतित स्वर में कहते–'क्या सोमदत्त के बाद हमारा वंश निर्मूल हो जायेगा?' उनकी पत्नी अपने श्वेत बालों पर निराशा का हाथ फेरते हुए बोलतीं–'पितृगण अपना भोग किसके द्वारा पायेंगे, यदि हमारे वंश की समाप्ति इसी पुत्र में हो जायेगी तो?'

एक दिन जब वृद्धा माता ने यह विषय सोमदत्त के सामने छेड़ा तो सोमदत्त अति-विरक्ति के स्वर में बोला–'माता, मेरे विवाह का क्या प्रयोजन?'

इसका उत्तर पिता ने दिया–'संतानोत्पत्ति के लिए विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है पुत्र।'

'परंतु मैंने तो आजीवन ब्रह्मचारी रहने का विचार किया है।'

'वत्स, कर्तव्य-हेतु किया गया विवाह न केवल निर्दोष है, अपितु धर्मसम्मत भी है।'

माता ने भी समर्थन किया–'प्रेतयोनि और पुत् नामक नरक से पितृकुल का त्राण केवल पुत्र ही कर सकता है। सोमदत्त, तुमने तो समस्त धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है!'

सोमदत्त ने ओढ़े हुए कंबल को हटाकर अपना शरीर दिखाते हुए कहा–'पुण्यमयी माता, ब्रह्मचर्य की साधना के लिए क्या-क्या तपस्या नहीं की मैंने! शरीर को स्थान-स्थान पर काटकर मांसखंडों की अग्नि में आहुति भी दी है .....।'

पुत्र की तपस्या की अचिंत्य कठोरता के चिह्न उसके शरीर पर देखकर क्षण-भर के लिए माता-पिता स्तब्ध रह गये। कुछ क्षण बाद बिनती-सी करते हुए सोमदत्त से बोले–

'पुत्र, कर्तव्य पालन के उद्देश्य से किये गये स्वपत्नी-समागम से ब्रह्मचर्य खंडित नहीं होता। मात्र वासना त्याज्य है।'

माता भी अनुनय के स्वर में बोलीं–'पुत्र सोमदत्त, मात्र एक संतान के लिए तुम अपने जैसी ही किसी तापसी ब्राह्मण-कन्या का पाणिग्रहण करो। तभी हम निश्चित होकर परलोक की यात्रा कर सकेंगे।'

'एवमस्तु।' सोमदत्त क्षीण स्वर में बोला। उसकी वाणी में कामना और उल्लास की सूक्ष्मातिसूक्ष्म झलक भी नहीं थी। बस, पितृऋण से उऋण होना था उसे।

कुछ दिन बाद एक ब्राह्मण-दंपति अपनी कन्या के साथ उस आश्रम में पधारे और आतिथ्य ग्रहण करने के बाद बोले–'आप जैसे उच्चकुलीन ब्राह्मण परिवार के साथ संबंध स्थापित करने के लिए हम अपनी सुलक्षणा और सुशिक्षिता कन्या के साथ आये हैं।'

सूर्यदत्त ने प्रसन्न होकर कहा–'अतिथि-देव! हमें भी यह संबंध कल्याणकर लगता है। धर्मशास्त्रानुसार मैं स्वयं ही आपकी सुलक्षणा कन्या को अपने पुत्र सोमदत्त के लिए मांगता हूं।'

उधर सोमदत्त और अतिथि-कन्या पुलोमा निःस्पृह होकर और ही किसी चर्चा में लगे हुए थे।

सोमदत्त–'जीव और आत्मा का द्वैत-भाव केवल परमात्मा के पास पहुंचकर ही लुप्त होता है।'

पुलोमा–'भेददृष्टि अज्ञान-दृष्टि है।'

उधर माता-पिता विवाह की तिथि विधि-पूर्वक स्थिर कर रहे थे। इधर पास ही बैठे हुए भावी वर-वधू तत्त्वचर्चा में निमग्न थे।

वार्ता के समाप्त होने पर कन्या के पिता ने कहा–'शुभस्य शीघ्रम्...।' पुत्र के पिता ने समर्थन किया–'मेरा भी यही विचार है।' उधर सोमदत्त उसी समय कह रहा था–'शरीर स्वल्पजीवी तुच्छ मांसपिंड है।' पुलोमा उसका समर्थन कर रही थी–'हां, सांस से फूला हुआ पानी का एक बुलबुला मात्र।' वे दोनों सहमत थे–'आत्मा को शरीर के विकास से जितना असंलग्न तथा शुद्ध रखा जाये, उतना ही वह परमात्मा में अपने को लीन करने में समर्थ होती है।'

अगले दिन वैदिक धर्मानुसार शास्त्रोक्त विधि से वे दोनों पति-पत्नी हो गये।

विवाह-कार्य संपन्न होने के बाद सूर्य-दत्त ने पुत्र सोमदत्त से कहा–'पुत्र के प्रति मेरा मुख्य और अंतिम कर्तव्य आज पूर्ण हो गया। अब तुम्हें पितरों के प्रति अपना कर्तव्य करना है।'

विवाहोपरांत एक दिन वृद्ध दंपति-युगल सोमदत्त की कुटी के सामने आकर बोले–'अब हम चारों तुम दोनों से विदा लेकर उत्तरापथ की ओर प्रस्थान करते हैं। अब हम संन्यासी होकर योग द्वारा प्राण-विसर्जन करने की शास्त्रोक्त आयु में पहुंच चुके हैं।'

नव-विवाहित वर-वधू ने अपने माता-पिताओं के चरणों पर मस्तक रख दिये और उनके आशीर्वाद पाये। जाते-जाते सूर्यदत्त ने

हा-'पुत्र सोमदत्त ! तुम शारीरिक सुख का परित्याग करके तपस्या में सफलीभूत हुए। अंत तक धर्म मत छोड़ना।'

सोमदत्त ने कहा-'देव, सुख-भावना का कल्मष दीर्घ तपस्या में भस्मीभूत हो चुका है। अब मुझमें शुद्ध कर्तव्य तथा धर्म की प्रेरणा का पुनीत स्वर्णखंड ही शेष है।'

सोमदत्त और पुलोमा अब आश्रम की इस कुटी में आ बसे थे। उनका अधि-कांश समय धर्मशास्त्रानुसार निर्दिष्ट दैनिक कार्यों के संपादन में बीतता। प्रातःकाल वे यज्ञादि कार्य संपन्न करते। यज्ञ की अग्नि से तप्त मुख और धुएं से पीली हुई आंखें लिये हुए पुलोमा ब्राह्मणी दोनों के लिए स्वल्प भोजन तैयार करती और पति के उच्छिष्ट भोजन का एक-दो कौर खाकर अपने पति की कोठरी में पहुंच जाती। फिर दोनों दिन-भर विभिन्न धर्मग्रंथों के अध्य-यन में निमग्न रहते। संध्या के धार्मिक अनुष्ठान के बाद वे स्वल्प भोजन करते और शय्या-ग्रहण के कुछ समय पूर्व तक दीपक के धूमिल प्रकाश में धर्मग्रंथों का पाठ करते, उनके सत्यासत्य की व्याख्या होती। पुलोमा विदुषी थी, इसलिए अध्यात्म-वाद का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थ और व्याख्या करने में वह सोमदत्त की सच्ची अर्धांगिनी बन गयी थी। किसी दिन तो विवेचन की तन्मयता में उन्हें समय का भी बोध ही न रहता और दीपक में तेल के समाप्त हो जाने पर ही उन्हें ज्ञात होता कि रात बहुत बीत गयी है। तब कुशखंड से बत्ती को उकसाती हुई पत्नी से सोमदत्त ही कहता-'बस हुआ ब्राह्मणी, अब शयन का समय हो गया है। "पूर्णात् पूर्णमुदच्यते" की व्याख्या कल होगी।'

पुलोमा उठती और अपना कुशासन मोड़कर कोठरी की दीवार से टिका रखती और पति के लिए एक लंबा कुशासन भूमि पर फैलाकर उसके ऊपर पतला कंबल बिछा-कर पति के चरणों पर अपना मस्तक रख देती। पति गद्गद होकर आशीर्वाद देता-'सौभाग्यवती होओ कल्याणी !' फिर पुलोमा अपनी कोठरी में आकर स्तोत्रपाठ करके कुशासन पर कंबल बिछाकर उस पर सो जाती। दूसरी कोठरी में सोमदत्त भी सोने के पहले क्षण-भर स्तोत्रपाठ करता। दोनों अपने जीवन को सार्थक अनुभव करते।

एक दिन प्रातःकाल सोमदत्त ने पाया कि नित्य की तरह कुटी के ओसारे, आंगन और देहली को लीप-पोतकर परिष्कृत नहीं किया गया है। प्रतिदिन तो पति के उठने के पहले ही पुलोमा यह काम कर लेती थी। वह ब्राह्म मुहूर्त के पहले ही उठती और कोशी में स्नान और तदनंतर संध्या-अर्चनादि दैनिक कार्य संपन्न करके गोशाला में जाती। उसे देखते ही कपिला गाय चंचल होकर देह सिहराने लगती। गोशाला को साफ-सुथरा करके पुलोमा कुटी के ओसारे, आंगन, देहली और तुलसीचौरा आदि को लीपती। तब तक सोमदत्त उठकर कुटी के बाहर निकलता और बहुत संतोष के साथ

पत्नी के गृहकार्य को देखता। अतः उस दिन प्रातःकाल आंगन इत्यादि को न लीपा हुआ देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने आवाज दी–'पुलोमा ब्राह्मणी!'

पुलोमा का क्षीण स्वर उसे गोगृह के पीछे वाले वन से सुनाई पड़ा–'देव, मुझे रात्रि के अंतिम प्रहर में रजोदर्शन हुआ, जिससे विधि के अनुसार गुप्तवास में हूं।'

सोमदत्त चुपचाप कमंडलु, कुशासन और एक सफेद वस्त्रखंड लेकर स्नानार्थ कोशी की ओर चल दिया।

चौथे दिन प्रथम प्रहर में विधिपूर्वक शुद्ध होकर पुलोमा दैनिक कार्य में संलग्न हो गयी। सोमदत्त भी आह्निक समाप्त करके कोशी तट से कुटी लौटा और पुलोमा से बोला–'ब्राह्मणी, तीन दिन पश्चात् आज तुम शुद्ध हुई हो। कर्तव्य-पालन के लिए पुत्रप्राप्ति-हेतु आज हमारा समागम-काल उपस्थित हुआ है। स्मृति और धर्मशास्त्र के अनुसार इसके लिए अब हमें एक विशेष याज्ञिक अनुष्ठान करना है।'

'आज्ञा हो पतिदेव। मैं प्रस्तुत हूं।'

सर्वप्रथम 'हमें शुद्ध कर्तव्य-भाव से पुत्रेष्टि अनुष्ठान करना है। मूल तत्त्व है–वासना-कामना का परित्याग।'

'पतिदेव, कामना और वासना से मैं बिलकुल शून्य हूं।'

'भार्या ब्राह्मणी! मुझे इसका ज्ञान है। अब विधिपूर्वक यज्ञ-हविष्य के लिए आवश्यक धान स्वयं कूटकर लाओ। तुमने शुद्ध अखंड वस्त्र तो धारण किया है न?'

'हां आर्यपुत्र!'

कुछ देर में, एक ओखल चावल कूट[illegible]
पुलोमा यज्ञस्थल पर पहुंची। सोमदत्त [illegible]
अरणि-मंथन करके अग्नि प्रकट [illegible]
समिधा के सूखे काष्ठखंडों में अग्नि प्र[illegible]
लित हो गयी। तत्पश्चात् पुलोमा ने [illegible]
हुए चावल का स्थालीपाक की विधि [illegible]
घृत-संस्कार किया तथा उसका चरु पका[illegible]
फिर सोमदत्त ने स्थालीपाक से थोड़ा-थो[illegible]
अन्न लेकर तीन बार अग्नि में आहुति [illegible]
'अग्नये स्वाहा। अनुमतये स्वाहा। दे[illegible]
सवित्रे सत्यप्रसवाय स्वाहा।' बाद में पु[illegible]
ने भी चरु का होम किया।

फिर बहुत देर तक गृह्यसूत्र की [illegible]
से यज्ञकर्म चलता रहा। लगभग म[illegible]
में अंतिम स्विष्टकृत् होम करके वे [illegible]
आसन पर से उठे। अग्नि और सू[illegible]
आतप से दंपति के चेहरे लाल हो गये [illegible]
अग्नि के द्वारा ग्रहण की हुई ह[illegible]
सामग्री के छोटे टुकड़े को सोमदत्त ने [illegible]
छोटी सींक के द्वारा निकाला और वे[illegible]
घी में उसे घोटकर पहले अपने मस्तक [illegible]
टीका लगाया, बाद में पुलोमा के माथे [illegible]
तदनंतर उसने स्थालीपाक का भोजन [illegible]
उच्छिष्ट भाग पत्नी को ग्रहण करने दि[illegible]
फिर हाथ-पैर धोकर आचमन द्वारा [illegible]
को शुद्ध करके 'उत्तिष्ठान मंत्र' का [illegible]
करते हुए पवित्र जल से तीन बार पु[illegible]
का अभिषेक किया।

यह सब अनुष्ठान पूरा होते-होते [illegible]
पहर हो गया था। तब तक पति[illegible]

त्यंत क्लांत हो चुके थे। फिर सांझ भी
पहुंची। सदा की तरह उन्होंने कोशी-
तट पर संध्या-पूजन आदि संपन्न किये। गाय
के दूध में सुबह कूटे गये चावल की खीर
पकाकर उसमें गाय का घी मिलाकर पुलोमा
ने रात्रि का भोजन प्रस्तुत किया।

सोमदत्त उसका सेवन करते हुए बोला–
जो पुरुष विमलवर्ण, वेदाध्यायी तथा पूर्ण
आयु वाले पुत्र की कामना करता हो, उसे
ऐसी ही पवित्र विधि से प्रस्तुत पायस का
भोजन करना चाहिये।'

पुलोमा क्लांत स्वर में बोली–'शास्त्र-
निर्दिष्ट विधि से ही मैंने यह भोजन तैयार
किया है। "पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनु-
ब्रुवीत सर्वमायुरियादिति।" ऐसा उपनिषद
में कहा गया है।'

'हां, ब्राह्मणी।'

०००

संध्या-भोजन के बाद दीपशिखा के
प्रकाश में वे कुछ देर तक नियमानुसार धर्म-
ग्रंथों का स्वाध्याय करते रहे। शयन-काल
होने पर पुलोमा उठी। सोमदत्त ने कहा–
'पुत्रप्राप्ति के लिए आज तुम्हें मेरे कक्ष में
आना है।'

पुलोमा क्लांत स्वर में बोली–'तथास्तु।'
क्लांत स्वर में ही सोमदत्त ने उसे आदेश
दिया–'पुलोमा, तुम अपना कुशासन भी
मेरे कक्ष में लाओ। और देखो, शुद्धि के
लिए मृत्तिका-पात्र में थोड़ा गोबर, गोमूत्र
भी लाना। स्नान करने के लिए ताम्रघट में
गंगाजल है कि नहीं ब्राह्मणी?'

१९७१

हे देव।

दिन-भर के अनुष्ठान से क्लांत हुए शरीर को सोमदत्त ने कुश के बिछावन पर यों ही डाल दिया। क्षण-भर बाद पुलोमा सब बतायी हुई सामग्री लेकर पति की कोठरी में उपस्थित हुई और अपनी शय्या बिछाते हुए बोली–'आज के विशेष अनुष्ठान से शरीर किंचित् क्लांत हो गया है।' अत्यंत शिथिलता का अनुभव करते हुए सोमदत्त लेटे-लेटे ही बोला–'अब दीपक को बाहर रख दो।' एक क्षण बाद वह धीरे-धीरे बिछावन पर उठ बैठा, बोला–'अभी आज के अनुष्ठान में पुरुष द्वारा पढ़ा जाने वाला मंत्र शेष है। तुम्हारा उपस्थेंद्रिय वेदी है और उसका मध्यभाग प्रज्वलित अग्नि। यौन समागम तो केवल धार्मिक अनुष्ठान है, वाजपेय यज्ञ की तरह। वेदिरुपस्थः समिद्धो मध्यतः।'

पुलोमा बोली–'हां, पतिदेव।'

सोमदत्त मंत्रपाठ करने लगा–'अमोऽहस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहं सामाऽहस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी ....' (मैं प्राण हूं, तुम वाणी; तुम वाणी हो, मैं प्राण; मैं साम हूं तुम ऋक् हो, मैं आकाश हूं, तुम पृथ्वी....)।

पुलोमा इतनी थकी हुई थी कि वह मंत्र पर मन केंद्रित नहीं कर सकी, बल्कि मंत्र-पाठ से उसे तंद्रा का अनुभव होने लगा। उसी तंद्रा में ही उसे लगा कि वह हल्की आवाज सुन रही है–'देवी, लो आओ, सहभाग में सहरेतस् धारण करो....।'

मंत्रोच्चारण द्वारा विधिपूर्वक पत्नी का

आलिंगन करके सोमदत्त दूसरे मंत्र का जाप करने लगा–'विजिहिथा द्यावापृथिवी...' फिर पुलोमा के मुख से मुख सटाते हुए वह 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' मंत्र पढ़ने लगा और पुलोमा के शरीर पर अपना शरीर डालते हुए बोला–'किरण-रूपी कमलों की माला धारण करके अश्विनीकुमार मुझमें अभिन्न रूप में स्थित हों और तुममें गर्भ को धारण करायें।'

समागम-विधि संपन्न करके पति-पत्नी बहुत क्लांति अनुभव करने लगे। पति ने कहा–'पुलोमा, आज का पुत्रेष्टि-अनुष्ठान निष्पन्न हुआ। तुम्हारे शरीर ने भोग का बोध तो नहीं किया? तुम वासनासक्त तो नहीं हुईं?'

थके हुए शरीर को हाथ के सहारे उठाते हुए पुलोमा क्षीण स्वर में बोली–'नहीं हुई, आर्यपुत्र।'

'ऐसा ही होना चाहिये, ब्राह्मणी। अब तुम अपनी कुटी में जाओ और स्नानादि से पवित्र होकर शय्या ग्रहण करो।'

सदा की तरह दूसरे दिन सवेरे उठते हुए पुलोमा ने विरक्ति और थकान के सिवा और कोई परिवर्तन अपने में नहीं महसूस किया। न सोमदत्त ने ही। हां, पितृऋण से मुक्त होने के गहन उत्तरदायित्व को अपने कंधे से उतारने जैसा दोनों ने अवश्य अनुभव किया, जिसका उन्हें संतोष था। अब वे निर्बाध रूप से परमार्थ-चिंतन में संलग्न हो रुकते थे।

एक महीने के बाद पुलोमा ने पुनः ऋतुकाल में प्रविष्ट होने की सूचना ... और पुनः तीन दिन के लिए वह गोशाला ... पीछे के वन में गुप्तवास में चली गयी।

अनलिपे कुटीर-प्रांगण में चिंतित ... हुए सोमदत्त ने पुकारा–'ब्राह्मणी!' ... अत्यंत खिन्न था। उसने कहा–'पितृऋण ... को चुकाना अभी भी शेष है।' पुलोमा ... भी विरक्त हो गयी।

जब पुलोमा इसी तरह बार-बार पुत्रें... यज्ञों की विफलता की सूचना सोमदत्त ... देती रही, दोनों भविष्य के प्रति आशं... हो उठे। सोमदत्त कहता–'हमारे अनुष्ठा... की विधियों में तो कोई भूल नहीं हु... कहीं तुमने ऋतुकाल में कांसे के बरतन... तो भोजन नहीं किया?'

ऐसे प्रश्न को आक्षेप मानकर पुलो... किंचित् तीव्र वाणी में उत्तर देती–... आश्रम में कांसे के बरतन हैं ही कहां?'

'पर त्रुटि तो अवश्य ही हुई है किसी ... द्वारा। कहीं तुमने अशौचकाल में गोम... का तो स्पर्श नहीं किया?'

पुलोमा दृढ स्वर में प्रतिवाद करती–... देव, क्या मुझे इस तरह का साधारण ... भी नहीं है?'

रजोदर्शन-काल जैसे-जैसे समीप आ... पुलोमा उद्विग्न हो जाती। सोमदत्त ... बार-बार की निराशा की कल्पना से ... हो उठता। वे लोग यज्ञादि धार्मिक कार्यों ... वृद्धि करते गये, दैनिक अनुष्ठानों की ... भी बढ़ाते गये। ऋतुदर्शन के चौथे दि... उन्हें शास्त्रोक्त अनुष्ठानों से क्षण-भर ...

भी अवकाश न मिलता। फिर भी पुलोमा प्रतिमास सारे उपायों के विफल हो जाने की सूचना देती रही।

दुःखी हो सोमदत्त मन ही मन कहता—पुलोमा को कोई दैवी शाप है।' पुलोमा सोचती—'क्या ब्राह्मण के पूर्वजन्म-दोष के कारण पुत्रप्राप्ति नहीं हो रही है?' उनके आपसी संबंधों में एक तरह का चिड़चिड़ापन और मनोमालिन्य दिखाई पड़ने लगा। उनके आश्रम-जीवन में कटुता उत्पन्न हो गयी। धर्मग्रंथों और आध्यात्मिक विषयों पर उनके वार्तालाप अब प्रायः ही शास्त्रार्थ में परिणत हो जाते, जिनमें दोनों अपने पांडित्य का सहारा लेते। एक दिन 'पूर्णात् पूर्णमुदच्यते' को लेकर उनमें घोर शास्त्रार्थ छिड़ गया। अंततः विवाद को पति के अधिकार द्वारा समाप्त करते हुए सोमदत्त ने कहा—'पुलोमा ब्राह्मणी, बहुत हुआ। अब सोने जाओ। तुम्हें तो पता ही है, किसी-किसी शास्त्र में नारियों के लिए धर्मग्रंथों का अध्ययन वर्जित है। पहले के ऋषि-मुनियों ने समझकर ही यह विधान किया था।'

कक्ष के बाहर निकलती हुई पुलोमा क्षण-भर रुकी। वह पति को यह उत्तर देना चाहती थी कि वेद की बहुत-सी ऋचाओं की रचयिता नारियां थीं। किंतु क्रोध को किसी तरह नियंत्रित कर वह बाहर निकल गयी। परंतु नित्य की तरह पति के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम करना नहीं भूली।

दूसरे दिन 'आत्महनः' (आत्महंता) शब्द के आध्यात्मिक अर्थ को लेकर दोनों में अकारण ही विवाद छिड़ गया। सोमदत्त ने कुछ ऊंचे स्वर में कहा—'ईशावास्योपनिषद् में जिस तमस से असूर्य और अंधलोक में "आत्महनः" का पहुंचना बताया गया है, क्या वह अपने शरीर की ही हत्या है।'

पुलोमा कुछ ऊंचे स्वर में बोली—'हां। "आत्महनः" पद को "शरीरहनः" के अर्थ में ही समझना होगा। मर्त्यधर्मा शरीर ही "हन्" अर्थात् मारा जा सकता है। चूंकि आत्मा अविनाशी है, अतः वह मर्त्य नहीं है।'

सोमदत्त उसका तर्क काटते हुए बोला—'ब्राह्मणी, यहां हन् धातु मारने का वाचक नहीं है। वह तुल्यार्थक है, "मानो मारना" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आत्मा को न पहचानकर जो उसकी उचित सेवा नहीं करता, वह आत्मा की हत्या के समान कार्य करता है—यह इसका भाव है।'

पुलोमा को इसका उत्तर तुरंत नहीं सूझा। इसलिए उसे अकारण ही क्रोध हो आया और सोमदत्त ने अपनी विजय के क्षण में रात्रि-कालीन धार्मिक विवाद की समाप्ति की घोषणा कर दी—'लो, सोने जाओ।'

पुलोमा तो जैसे उसी क्षण की प्रतीक्षा में थी। पति को झटपट प्रणाम करके वह अपनी कोठरी में आयी और ईशावास्योपनिषद् उलटती रही। आज उसे कुंठित होने का बोध हुआ। पढ़ने में भी मन नहीं लगा।

दिन तो किसी तरह बीत ही रहे थे। आश्रम के दैनिक कार्य साधारणतया संपादित हो रहे थे। बाहर से उनके जीवन-चक्र

११७९

में कोई परिवर्तन नहीं दिखता था; लेकिन आंतरिक जीवन मानसिक चिंता से घुल-घुलकर बीत रहा था।

सोमदत्त कभी-कभी अत्यंत विरक्ति के साथ कहता–'यदि माता-पिता की आज्ञा और धर्मशास्त्र के आदेश की बाध्यता न होती, तो मैं उसी समय संन्यासी हो जाता।'

पुलोमा भी कहती–'मैं भी धर्मशास्त्र की बाध्यता के कारण ही वैवाहिक जीवन में पड़ी हुई हूं। नहीं तो कभी की तापसी होकर वन में प्रवेश कर जाती। प्रतिमास का पुत्रेष्टि-यज्ञ का अनुष्ठान अब असह्य हो गया है। केवल कर्तव्य-भावना के कारण मैं अपने शरीर को इस तरह की घोर यातना दे रही हूं।'

सोमदत्त फिर कुछ न बोलता।

०००

एक दिन इसी तरह की शुष्क वार्ता के बाद रात को पुलोमा सदा की तरह भोजन के बाद पाठ्य ग्रंथ और आसनी लेकर सोमदत्त की कोठरी में पहुंची, तो सोमदत्त बोला–'पुलोमा ब्राह्मणी, हमारे बीच वैचारिक अंतर आ जाने के कारण ग्रंथपाठ के समय अर्थ में भी अंतर आने लगा है। इसीलिए अब सहपाठ का कोई तात्पर्य नहीं रहा। अब हम लोग अपनी-अपनी कोठरी में ही स्वाध्याय किया करें।'

तेजी से लौटती हुई पुलोमा ने मन ही मन कहा–'मैं भी यही चाहती थी।'

एक ही आश्रम में रहते हुए और अनेक दैनिक कार्य एक साथ करते हुए भी वे धीरे-धीरे एक-दूसरे से अलग होते गये। कभी कभी तो बहुत दिनों तक उनमें एक शब्द का भी आदान-प्रदान न होता।

एक दिन पुलोमा पुनः रजस्वला होकर नियमपूर्वक अलग हट गयी। आने वाले चौथे दिन के अनुष्ठान की पुनरावृत्ति की कल्पना से उसका हृदय कांप उठा। उसे लगा कि इस बार वह अनुष्ठान के लिए स्वयं को किसी तरह प्रस्तुत नहीं कर सकेगी। पत्नी के उस रूप की कल्पना से ही उसके तन-मन रो उठते थे। घृणा से शरीर [illegible] लगता था। उससे तो, हे भगवान, मृत्यु ही स्पृहणीय है।' घोर वितृष्णा से उसका शरीर जकड़ जाता।

सोमदत्त भी उस तात्पर्यहीन परिश्रम के लिए स्वयं को अप्रस्तुत पाता। हठात् उसे शरीर सारी शक्ति से शून्य लगता। पुलोमा के अलग रहने की तीन दिनों की अवधि में वह चिंतित होकर बैठा रहा था। क्या किया जाये? किसी नियम में लेशमात्र भी गलती नहीं हुई है। यदि पूर्वजन्म के पाप के फलस्वरूप उसे यह दंड भोगना पड़ रहा है, तो अब किया ही क्या जा सकता है? यदि ऐसा है तो हे भगवान, जल्दी मृत्यु देकर पापमुक्त करो।

उधर गोशाला के पीछे पर्णकुटी में बैठी हुई पुलोमा को नाना दुश्चिंताएं घेरतीं। [illegible] कार्य-विहीन होकर बैठे रहने से उसे अपने बाल्यकाल की याद आती, माता-पिता द्वारा कठोर तपोमय जीवन में प्रवेश कराये जाने की याद आती। फिर वह गांव की [illegible]

सोचने लगती जहां वह भील बालकों के साथ माता-पिता की सजग दृष्टि से बचकर खेलने चली जाती थी। एक भील बालक की उसके साथ घनिष्ठता की बात सुनकर मां ने आदेश दिया था–'पुलोमा, अब से घर के बाहर मत जाया करो।' बीच-बीच में चौथे दिन की याद करके उसे घबराहट भी होती। 'भगवान, एक बार मां बना दो, एक संतान दे दो। चौथे दिन की यातना से मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।'

०००

पुत्रेष्टि की विफलताओं की एकाग्र चिंता की झोंक में एक दिन सोमदत्त ने सोचा–'यह स्थान मध्य-किरात देश है। कहीं ऐसा तो नहीं कि कोई अदृश्य तत्त्व बाधा पहुंचा रहा हो! उसे लगा कि किरात लोगों के देवताओं को भी संतुष्ट करना शायद उचित होगा। तो इस बार चौथे दिन ब्राह्म मुहूर्त से पहले ही वह कोशी-तट पर पहुंच गया। चिंता के मारे वह रात-भर सो नहीं सका था। कोशी में स्नान करके जब वह पद्मासन लगाकर ध्यान करने बैठा, तो हठात् उसे पूर्णिमा के तांत्रिक पिता की याद आ गयी। उसे पता था कि वह तांत्रिक किरातों का बिजुवा है, उसने सभी किरात देवी-देवताओं को साध रखा है। जैसे डूबता हुआ आदमी तिनके का सहारा लेता है, वैसे ही उसे भी सहारा मिल गया। तुरंत वह बिजुवा के गांव की ओर चल पड़ा।

किरातों के गांवों में बिजुवा (तांत्रिक) का घर कहां है, इसका उसे पता नहीं था। उसे इतना-भर मालूम था कि उत्तर की ओर उस पर्वत की चोटी पर, हरे जंगलों के बीच जहां से कभी-कभी धुआं निकलता है, वहीं किरात गांव है।

उस दिन पुलोमा भी अत्यंत आलस्य के साथ उठी। जरा भी शक्ति न रहने पर भी वह उठने के लिए बाध्य थी। उसे शुद्ध होना था। उठते ही उसके मस्तिष्क में अपने गांव के उस भील साथी की याद कौंधी, जो उसके घर के पीछे आकर धीमी आवाज में पुकारा करता था–'पुलोमा, ऐ पुलोमा!' पुलोमा की मां उसे डांटकर भगा देती थी– 'भील होकर ब्राह्मण बालिका के साथ खेलने का दुस्साहस! भागो यहां से .....।' पुलोमा इन स्मृतियों की जुगाली करती हुई स्नान के लिए कोशी-तट पर गयी।

०००

कृशकाय सोमदत्त बालसूर्य की प्रथम किरण के साथ किरात गांव के निकट पहुंचा और थक जाने के कारण लाठी को एक तरफ टिकाकर एक पत्थर पर बैठ गया। रास्ते के बायीं ओर किरात गांव बसा हुआ था, दायीं ओर एक छोटा जलप्रपात था। अपने वहां आने का उद्देश्य स्मरण कर उसे अचानक लज्जा का बोध हुआ। वह बिना हिले-डुले बहुत देर तक पत्थर पर बैठा रहा किंकर्तव्यविमूढ होकर। बैठे-बैठे ही उसने देखा कि सूर्य वृक्ष की शाखाओं को पार करके चढ़ आया है और एक नग्न तरुणी पानी भरने के लिए गांव के रास्ते से नीचे आ रही है। सोमदत्त हड़बड़ाकर उठ खड़ा

११७९

हुआ। दूर से ही उसे लगा कि वह सुम्निमा है। मगर उसकी बांहों में बच्चे को देखकर सोचा कि नहीं, वह सुम्निमा नहीं है, शायद सभी किरात-स्त्रियों का शरीर एक-सा होता है। सुम्निमा को याद करके वह बहुत लजा गया।

युवती जलधारा में गागर डालकर एक शिलाखंड पर बैठकर शिशु को स्तनपान कराने लगी। सोमदत्त को अनुभव हुआ कि वह उस अपरिचित नग्न युवती को शिशु को स्तनपान कराते हुए देख रहा है। वह हड़बड़ाकर उठा और दृष्टि को जल-प्रपात के विपरीत दिशा में मोड़कर पूछा—'बिजुवा का घर कहां है किरात-बाले? मुझे बिजुवा से काम है।' 'ऊपर बायीं ओर का घर है न, वहां जाकर बुलाओ।' कहकर युवती सिर झुकाकर शिशु का स्तनपान देखने लगी।

सोमदत्त धीरे-से उठा, लाठी लेकर गांव की ओर चल पड़ा। युवती के द्वारा निर्देशित घर के दरवाजे पर पहुंचकर उसने जोर से पुकारा—'बिजुवा!' नीचे से युवती ने भी पुकारकर कहा—'बप्पा, कोई ब्राह्मण आया है मिलने।'

ओसारे पर बंधा हुआ भोट कुत्ता भूंकने लगा। बिजुवा बाहर आया और सोमदत्त से पूछा—'तुम कौन हो? क्यों आये हो?'

सोमदत्त के अपना परिचय और प्रयोजन बताने पर बिजुवा ने उससे कहा—'सोमदत्त ब्राह्मण! तुम बहुत दिनों तक बेटी सुम्निमा को याद आते रहे। अब तो उसका विवाह हो गया है। छह महीने की बेटी भी है।' और वहीं से आवाज लगायी—'सुम्निमा! देखो, तुम्हारा सोमदत्त आया है।' फि[र] सोमदत्त की ओर मुड़कर कहा—'तुम्हारी यह क्या हालत हो गयी है! कितने दुबले हो गये हो! कितना बूढ़ा भी गये हो!'

सोमदत्त सिर झुकाये चुप खड़ा रहा। बिजुवा ने व्यावसायिक स्वर में पूछा—'[illegible] बेटा, क्या चाहते हो?'

'धर्म-निर्वाह के लिए संतान न हो तो पितरों का उद्धार नहीं होगा। संतान के बिना मनुष्य-लोक में अर्जित धर्म निष्फल हो जाते हैं—ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।'

'क्या इसके सिवा संतान का और कोई उद्देश्य नहीं है?'

'इसके अतिरिक्त हमारे लिए पुत्रप्राप्ति का और कोई हेतु नहीं है।'

'शरीर से भोग किया जाता है, क्या [illegible] मानकर कभी स्त्री-समागम नहीं किया?'

'कभी नहीं।'

'क्या यह शरीर सुख के लिए नहीं है?'

'नहीं। भोग और कर्तव्य में से मैंने भोग-कामना को तपस्या के सहारे मृत बना दिया है। केवल कर्तव्य ही शेष है हमारे जीवन में।'

बिजुवा इस पर बड़ी गंभीरता से बोला—'ब्राह्मण, तुम्हारा मनुवा (मन) हट गया है। तुमने तपस्या से उसे मारना चाहा [illegible] अब तुम्हें मनुवा-दह में नहाना पड़ेगा।'

सोमदत्त चुपचाप खड़ा रहा। क्षण-भर बाद बिजुवा जैसे कुछ याद करते हुए बोला—'हमारा शरीर न तो यंत्र है, न माध्यम, न साधन। वह स्वयं साध्य है। तुम जानते [illegible]

कर उसके सुख की उपेक्षा नहीं कर सकते। शरीर में जब भोग-भावना और सुख की इच्छा नहीं रह जाती है, तब वह बेजान हो जाता है। तब वह संतान भी पैदा नहीं कर सकता। संतान संभोग का परिणाम और प्रमाण है–समझे ब्राह्मण ?'

तब तक सुम्निमा भी अपनी बच्ची को लेकर वहीं आ पहुंची। एक क्षण के लिए सोमदत्त और सुम्निमा ने एक दूसरे को आश्चर्य से देखा। सोमदत्त को अब पता चला कि नीचे धारा पर मिली युवती सुम्निमा ही थी। पहले के समान ही पूर्ण लावण्य से चमकता हुआ कांचनप्रभा से युक्त था उसका शरीर अब भी। उम्र बढ़ने का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई पड़ा उसमें। सोमदत्त की स्मृति में सुम्निमा के साथ बिताये हुए दिन कौंधने लगे। फिर भी वह निःशब्द खड़ा रहा। सुम्निमा ने ही शांति भंग की–'सोमदत्त।' क्षण-भर वे दोनों मौन एक दूसरे को देखते रहे। फिर स्नेह के स्वर में सुम्निमा ने धीरे-से कहा–'सोमदत्त, तुम कितने दुबले और बेढब हो गये हो! मैं तो तुम्हें पहचान भी नहीं सकी।'

उसने स्नेह से सोमदत्त के कंधे का स्पर्श किया। सोमदत्त की सूखी चमड़ी में सूक्ष्म कंपन की लहर दौड़ गयी, जैसे जानवरों की देह सिहर उठती है।

बिजुवा बोला–'सुम्निमा बेटी, सोमदत्त ब्राह्मण का मन रिसा गया है। मन पर बहुत चोट पड़ने पर वह रूठ जाता है। अब उसे रिझाना पड़ेगा।'

१९७९

बच्ची अब तक गोद में सो गयी थी। उसे लिटाने के लिए सुम्निमा कोठरी के अंदर गयी। बिजुवा ने सिर हिलाते हुए कहा, जैसे स्वयं से बोल रहा हो–'तन को ही मनुवा कहा जाता है। तन की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये सोमदत्त!'

तीव्र इच्छा हुई सोमदत्त की कि प्रतिवाद करे–'शरीर तो मात्र खोल है.....।' परंतु पहाड़ चढ़ने के कारण थके शरीर और सुम्निमा के आकस्मिक दर्शन से अस्त-व्यस्त हुए मस्तिष्क के कारण उसमें तर्क करने की शक्ति नहीं रह गयी थी।

बच्ची को लिटाकर सुम्निमा बाहर आ गयी। उसके मुंह से बार-बार यही निकल रहा था–'यह कैसी गत बन गयी तुम्हारी सोमदत्त!' वह प्रश्न पर प्रश्न करती गयी–'क्या तुम्हारा अब तक विवाह नहीं हुआ है? या क्या ब्राह्मणी तुम्हारी सेवा नहीं करती? नहीं तो तुम मात्र हड्डी और चमड़ी कैसे ...? तुम्हें ठीक से आहार भी तो नहीं मिलता है। क्या तुम्हें प्यार करने वाला और तुम्हारी देखरेख करने वाला कोई नहीं है ...... ?'

बिजुवा ने समझाया–'बेटी, इन्हें और कुछ नहीं हुआ है; इनका रुख देखकर शरीर ने जिद ठान ली है। इनका मनुवा इनसे रूठ गया है। उसे रिझाना पड़ेगा, और कोई रास्ता नहीं है।'

सुम्निमा ने कहा–'जो-जो करना पड़ेगा, जल्दी ही कर दो बप्पा। सोमदत्त की यह हालत देखकर मैं रो भी नहीं सकती।'

बिजुवा सांत्वना देता हुआ बोला–'बेटी, यह काम तुम्हीं को करना है। आओ, क्या करना पड़ेगा, मैं तुम्हें बता देता हूं। रहो ब्राह्मण, एक क्षण तुम यहीं बैठो रहो।'

सुम्निमा भीतर से बिछावन लाकर ओसारे पर बिछाकर बोली–'एक क्षण यहीं बैठो सोमदत्त।' फिर वह अपने बप्पा के साथ कोठरी में चली गयी, कुछ क्षण बाद एक बड़ा थैला कंधे पर लादे बाहर निकली और बोली–'लो, चलो।'

'कहां?' सोमदत्त ने आश्चर्य से पूछा।

ओसारे पर खड़े बिजुवा ने कहा–'जाओ ब्राह्मण, सुम्निमा के साथ एकदम निडर होकर जाओ। तुम्हारा ब्राह्मण-धर्म नष्ट नहीं होगा।'

क्षण-भर सोमदत्त अनिश्चित खड़ा रहा। सुम्निमा ने मनुहार की–'आओ न सोमदत्त, देर मत करो।'

किस अनूठी क्रिया के लिए सुम्निमा उसे बुला रही है? वह कुछ समझ नहीं सका। उसके मस्तिष्क में बड़ी हलचल मची हुई थी।

बिजुवा कोठरी के अंदर चला गया। सोमदत्त का हाथ पकड़कर सुम्निमा चलने लगी। सोमदत्त के मन और शरीर ने कोई विरोध नहीं किया, पैर अपने आप चलने लगे।

'तुम क्यों इस तरह सूख गये, सोम?' सोमदत्त कुछ नहीं बोला।

'मैं तुम्हें बहुत दिनों तक याद करती रही।'

फिर भी सोमदत्त कुछ नहीं बोला, केवल चलता रहा। उसे भी याद आता रहा कि किस तरह सुम्निमा को भूलने के लिए वह ... करता हुआ देश-देशांतर भटकता रहा था।

सुम्निमा के प्रश्नों का अंत नहीं था। 'तुम्हारे शरीर में तो घाव के निशान ही निशान भरे पड़े हैं! ऐसा क्यों हुआ?'

सोमदत्त ने नहीं कहा कि कभी उसी को भूलने के लिए उसने अपने शरीर के मांस-खंडों को काट-काटकर अग्नि में होम कर दिया था। वह बिना कुछ बोले सुम्निमा के साथ लगातार चलता जा रहा था, जैसे किसी मादक वस्तु के प्रभाव से तंद्रिल अवस्था में हो। सुम्निमा का स्वर लगातार उसके कानों के कुहरों में इस तरह पैठ रहा था, जैसे कोई छोटा प्रपात किसी वन के शीतल निकुंज में छोटे-छोटे कंकड़ों पर अनवरत झर रहा हो।

सूर्य का ऊर्ध्वारोही शुभ्र प्रकाश सुम्निमा के पुष्ट चंपक-शरीर को आभायुक्त बना रहा था और उसके चेहरे पर कोमल ... चमक रही थी। कंधे तक लहराते केशों का कुछ भाग सुम्निमा की सुडौल पीठ पर था और कुछ भाग दोनों कंधों से आगे ... स्तन पर धूप-छांह का आभास दे रहा था।

काफी देर चुप चलने के बाद सोमदत्त ने प्रश्न किया–'सुम्निमा, तुम किस तरह मेरी सहायता करोगी?'

'तुम बोले तो सही! मुझे तो लगता था कि तुम मुझ से रूठे हुए हो, इसीलिए नहीं बोलते।' फिर मुस्कराकर बोली–'देखो, बप्पा ने कैसा काम लाद दिया है!'

'तो क्या तुम भी झाड़-फूंक का ...

जानती हो ?' हतबुद्धि-से सोमदत्त ने पूछा ।
'नहीं, मैं नहीं जानती । मैं तो सीधी-सादी औरत हूं ।'

'ऐसा है तो....!' बुरा मानते हुए सोमदत्त ने सुम्निमा की ओर देखा।

'घबराओ नहीं सोमदत्त । बप्पा ने कहा है कि तुम्हें मनुवा-दह में नहला दूं और धारा की देवी के सामने तुम्हारा सिंगार कर दूं । तुम्हारा रूप ऐसा बदल दूं कि कोई तुम्हें पहचान ही न सके । इसके लिए मैं झोले में सारा सामान लेकर आयी हूं ।'

सोमदत्त कुछ नहीं समझ सका । विधि की कैसी विडंबना ! कुछ वर्ष पहले जिसे हृदय से निकालने के लिए घोरतम तपस्या प्रारंभ की थी और शरीर को सुखा डाला था, आज उसी नग्न किरात-युवती के पीछे वह किसी अज्ञात स्थान को जा रहा है ! अपना आश्रम और वहां उसकी प्रतीक्षा करती सुलोमा स्वप्न की तरह उसके मस्तिष्क में धूमिल होते गये।

कुछ समय बाद गांव पार करके वे देवदार, चंपा आदि के घने वन में प्रविष्ट हुए । सुम्निमा ने उसे चेताया—'अब हम लोग देवी-वन के निकट पहुंच गये हैं । वहां वृक्षों की छांह में जो जगह है, वही मनुवा-दह है ।'

वह स्थान अत्यंत रमणीय था । वन के भीतर एक छोटा-सा उपवन था—घने हरे पत्तों से आच्छादित, अखंड शांतिमय गुप्त निर्जनता को आत्मसात् किये हुए ।

एक हाथ से पत्तियों को हटाती हुई सुम्निमा उस उपवन के भीतर कुछ दिखाते हुए बोली—'सोमदत्त, वह देखो मनुवा-दह ।'

वृक्षों के झुरमुट में एक खुला स्थान । उसके बीच जलाशय, जिसके निर्मल पानी पर वृक्षों की पतली शाखाएं झुकी हुई थीं । पानी की एक झलक पड़ी सोमदत्त तंद्रिल की आंखों में । सुम्निमा ने पत्तियों के झुंड से अपना हाथ अलग किया । फैली हुई पत्तियां पुन: पूर्ववत् हो गयीं, मानो वे रंग-बिरंगे चित्रों से सुसज्जित मनुवा-दह के क्षण-क्षण खुलने वाले दरवाजे के परदे हों ।

'भीतर जाने के पहले एक बार पीछे मुड़कर देखो तो सोमदत्त, कितनी ऊंची जगह पर आ गये हैं हम ! वहां नीचे जंगल के भीतर बड़े सेमल के वृक्ष के समीप तुम्हारा आश्रम है। देखा तुमने ? ..... वहीं जहां से कोशी नदी मुड़ गयी है।'

किंतु सोमदत्त उस नि:शब्द निर्जनता में अपने शरीर से सटकर खड़ी, सांस लेती सुम्निमा और अपने मस्तिष्क की पीडा को अनुभव कर रहा था। मध्याह्न के समय भी पर्वत की ऊंचाई के कारण समशीतोष्ण हल्की पुरवैया सुम्निमा का स्पर्श करती तथा सोमदत्त को आलिंगित करती हुई बह रही थी। वनस्पति की गंध में सुम्निमा की मानवगंध भी मिली-जुली थी। अज्ञात रूप से आती सूक्ष्म मानव-सुगंध से उस विराट निर्जनता में आत्मीयता का लघुलोक निर्मित हो रहा था । सोमदत्त को लगा, यह वीरान जगह नहीं है।

सुम्निमा बोली—'सोम, अब मनुवा-दह के भीतर प्रवेश करो ।' और उसने पहले की

तरह ही एक हाथ से टहनियों को हटाकर एक छोटा प्रवेश-द्वार बनाया। पहले सोमदत्त प्रविष्ट हुआ, फिर सुम्निमा। पत्तों का द्वार फिर बंद हो गया। वन की उस एकांतता में एक और एकांत कोना बन गया था।

भीतर प्रविष्ट होते ही सोमदत्त ने लंबी सांस ली, जैसे फेफड़े के अंदर ठंडी सुगंधित हवा को भर लेना चाहता हो। उसकी थकान जैसे उतने भर से मिट गयी। बोला—'कैसा अद्भुत मनोरम स्थल!'

'आगे आओ जरा। उस बड़े पत्थर पर बैठकर इसकी शोभा देखो। यही मनुवा-दह है।'

सोमदत्त एक बड़े शिलाखंड पर बैठ गया। बोला—'चारों ओर से वनस्पति से संरक्षित यह सुरम्य सरोवर मुझे माता के गर्भ की याद दिलाता है और यहां के सरोवर का जल उस जीवन-रस की तरह लगता है, जिससे गर्भ में शिशु पोषित होता है।'

सुम्निमा जमीन पर बैठकर झोले में से सामग्री निकाल रही थी। सोमदत्त की मुग्ध मनुहार को लक्ष्य करके वह विस्मित स्वर में बोली—'सोमदत्त।'

'क्या सुम्निमा?'

'क्यों ऐसा चेहरा हो गया है सोमदत्त?'

'कैसा, सुम्निमा?'

सुम्निमा ने बात बदली—'कुछ खाओगे नहीं? भूख लग गयी होगी?'

'यहां तो भोजन की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। इस स्थान की सुंदरता से ही परितृप्ति हो जाती है।'

'पर हमारा देवता भूखे रहने से नहीं रीझता।' सुम्निमा ने हंसकर कहा।

'तो किस चीज से रीझता है?'

'खाकर, शरीर को परितृप्त करने से।'

सोमदत्त की दृष्टि सुम्निमा की नग्न देह पर पड़ी—स्वास्थ्य से प्रदीप्त, स्वर्ण की प्रतिमा-सी कांतिमय, सुगठित, ठोस। क्षण भर को उसे अपने शरीर का बोध हुआ—काला सूखा हुआ, झुर्रीदार और सलवट-युक्त, चमड़े के खोल-सा।

तभी सुम्निमा ने पूछा—'क्या तुम ब्राह्मण होकर किरात का छुआ कैसे खाऊं, यह सोच रहे हो?'

'नहीं। मेरा ध्यान तो उस बात की ओर गया ही नहीं था।'

'लेकिन मेरा ध्यान गया था। तुम्हारा धर्म नष्ट न हो इसलिए घर से केवल दूध और मधु लेकर आयी हूं।' सुम्निमा ने झोले से दूध और मधु के दो बरतन निकाले। फिर हंसकर बोली—'मैं भी आज तुम्हारी तरह मात्र दूध और मधु खाऊंगी। एक दिन ब्राह्मणी बनना पड़ेगा। बप्पा ने बताया है कि मनुवा-दह का देवता बहुत कठोर है। मुझे कोई काम ऐसा नहीं करना है, जिससे तुम्हारा धर्म नष्ट होता हो।' उसने दूध और मधु के बरतन सोमदत्त के सामने रख दिये।

सोमदत्त बड़ी रुचि से सब खा गया। फिर झोले का तकिया बनाकर शिलाखंड पर लेट गया। उसे पूर्ण तृप्ति का बोध हो रहा था।

सुम्निमा बोली—'सोम, तुम क्षण-भर इसी तरह थकान मिटाओ; तब तक मैं दह में स्नान करके आती हूं।'

दह में जलक्रीडा करती हुई सुम्निमा घूम-घूमकर सोमदत्त को देख लेती थी। सुख की तंद्रा में सोमदत्त को बहुत वर्ष पहले का दृश्य याद आने लगा, जब सुम्निमा कोशी नदी में इसी तरह जलक्रीडा करती थी। उसे लगा, जैसे सुम्निमा उसे बुला रही है—'सोमदत्त।'

यथार्थ और स्वप्न को विभाजित करने की अवस्था में वह नहीं था।....कोशी नदी और मनुवा-दह का जल एकाकार हो गया था उसके मस्तिष्क में, कोशी-तट की बलुआही गरम हवा इस सरोवर के ठंडे वातावरण में लुप्त हो गयी थी .... गाय चराने के सिलसिले में जिस शमी वृक्ष के तने से टेककर विश्राम करता था वह और अभी का शिलाखंड उसके मस्तिष्क में एकाकार हो गये थे। एकाकार होकर सारी चिंताएं विलुप्त हो गयीं। क्षण-भर को वह सोया, केवल शरीर में अवर्णनीय सुख का बोध शेष रहा। कान में जैसे लगातार यह मधुर आवाज गूंजती रही—'सोमदत्त !... सोमदत्त !... सोमदत्त !'

वायु का एक ऐसा झोंका जो एक साथ गरम भी हो और ठंडा भी, जिसमें मानव-शरीर की गंध भी मिली हुई हो—उसे लगा कि उसके मुखड़े को छू रहा है। वह नींद में ही बड़बड़ाया—'सुम्निमा!'

सुम्निमा अपना मुंह उसके मुंह के पास लाती हुई बोली—'सोमदत्त !'

सुम्निमा के भीगे हुए बालों से जल की दो-तीन बूंदें सोमदत्त के चेहरे पर गिरीं। सोमदत्त को लगा, जैसे स्वप्न में हल्की जल-वृष्टि हो रही हो।

सुम्निमा बोली—'सोमदत्त ! सोमदत्त ! सोमदत्त ! क्या तुम सो गये हो ?'

सोमदत्त की आंखें खुलीं। उसने देखा कि सुम्निमा अपना भीगा शरीर लिये एकदम उसके पास खड़ी है और उसके मुख के पास अपना मुख लाकर पुकार रही है—'सोमदत्त, अब उठो।'

सोमदत्त अंगड़ाई लेता हुआ बोला—'कैसा मादक उपवन है यह ! वनस्पति से आवेष्टित, एकदम नशीला ! मैं तो एकदम सो गया था।'

'हां सोमदत्त, तुम पूरी मीठी नींद में डूब गये थे, जैसे इतनी निःसंकोच नींद कभी न ली हो। मैं तुम्हें उठाना नहीं चाहती थी। लेकिन देखो न, सूरज ढलने लगा है।'

आनंदयुक्त आलस्य से अभिभूत होकर सोमदत्त ने कहा—'मुझे तो लगता है कि कहीं नहीं जाऊं—यहीं बैठा रहूं, बैठा रहूं, जब तक मन लगे, सदा के लिए यहीं बैठा रहूं।'

सुनकर सुम्निमा को आश्चर्य हुआ। बोली—'देवता के स्थान पर भी कोई रात बिताता है क्या ? यहां रात में नहीं रहना है। बप्पा ने कहा है कि कोई ऐसा काम नहीं होना चाहिये, जिससे तुम्हारे धर्म का नाश हो। मनुवा बहुत डरावना देवता है जी। इसीलिए .... लो चलो सोमदत्त, देर हो

गयी है। तुम्हें तेल लगा देता हूं, स्नान करा देती हूं और बप्पा के कहे अनुसार तुम्हारे अभी के रूप को बदल देती हूं।.....'

जल्दी में सुम्निमा ने ये बातें कहीं और तेजी से झोले से तेल की एक कुप्पी निकालकर बोली—'क्षण-भर के लिए तुम ठीक से लेट जाओ सोमदत्त, मैं तुम्हारी देह में तेल लगा देती हूं। यह तेल बप्पा ने वनस्पतियों के अर्क से तैयार किया है। सूंघो, तो कैसी सुगंध आ रही है!'

तेल में अगर की सुगंध थी। तेल लगाती हुई सुम्निमा के हाथ का हल्का स्पर्श सोमदत्त को बहुत अच्छा लग रहा था। उसे धीरे-धीरे शिथिलता का बोध होने लगा। बीच-बीच में सुम्निमा की नग्न देह का स्पर्श सोमदत्त के शरीर से हो जाता था। इससे एक तरह की ऊष्मा का अनुभव करके सोमदत्त फिर नींद में डूबता गया। जैसे वह बराबर तंद्रा में डूबना चाहता था। सुम्निमा बोलती जा रही थी—'तुम्हारी देह किस तरह सूख गयी है! तेल को इस तरह सोखती है, जैसे कोई प्यासा पानी पी रहा हो—गटागट! सारी देह में किस तरह दरारें और झुर्रियां पड़ी हुई हैं.... जरा उठो तो, बालों में तेल लगा दूं....।'

उस निःशब्द वातावरण में किसी पक्षी के कलरव की तरह सुम्निमा की आवाज सोमदत्त के कान में पहुंचती थी।

वह यंत्रवत् उठकर सुम्निमा के साथ मनुवा-दह में प्रविष्ट हुआ। जल के निर्मल शीतल स्पर्श से उसका अंग-अंग पुलकित हो उठा। अब तक की नशीली तंद्रा मानो जल के शीतल स्पर्श के कारण एकदम तिरोहित हो गयी और उसके स्थान पर पूरे तन और मन में एक तरह की अनजान अद्भुत स्फूर्ति और चंचलता का संचार हो गया। दिन के चमकते प्रकाश में उसने अपने सामने देखा सुम्निमा को, जो जांघों तक पानी में खड़ी होकर जलक्रीडा करती हुई उस पर छींटे उछाल रही थी। उसे ऐसा लगा जैसे सारी प्रकृति पुलकित है, क्रीडामग्न है। उसने भी सुम्निमा पर पानी उछाला और उसे सराबोर कर दिया। हाथों से पानी के छींटों को रोकती हुई सुम्निमा चिल्लायी—'बस, बस, सोमदत्त!'

देर तक वे जल में स्नान करते रहे और दूर तक गहरे सरोवर में साथ-साथ तैरते गये। जब किनारे पर आकर सुम्निमा भीगे कपड़े से उसके शरीर को पोंछने लगी, तो सोमदत्त बोला—'तुम्हें इस तरह की अच्छी-अच्छी बातें किसने सिखायीं? तुम्हारा हाथ कैसे इस तरह निपुण हो गया? कैसा कोमल स्पर्श, कैसा कोमल दबाव है तुम्हारी हथेली में कि तेल लगाते समय मैं उसके स्पर्श से नशे में डूब गया था।'

सुम्निमा भीगे कपड़े से उसकी गरदन फिर-फिर मलती-पोंछती रही। इस क्रिया में सोमदत्त की गरदन तक पहुंचने के प्रयत्न में उसका शरीर बार-बार सोमदत्त की देह से सट-सट जाता था।

वह कहती जा रही थी—'आज तुम मुझे चिढ़ाना चाहते हो, है न सोमदत्त? ...

क्या आता है?...इस तरह सिर झुकाओ तो, गरदन की जड़ को ठीक से मल दूं।'

सोमदत्त ने सिर झुका दिया। सुम्निमा गरदन रगड़ती हुई बोली–'देखो-देखो, कैसा मैल जम गया है तुम्हारी गरदन पर!'

झुके-झुके ही सोमदत्त बोला–'मैंने मजाक नहीं किया है सुम्निमा। सत्य कहता हूं, तुम अत्यंत प्रवीण हो। इस तरह की सेवा किसने सिखायी तुम्हें, कहो न!'

'अरे, इस तरह की छोटी-मोटी बातें भी क्या किसी को सीखनी-सिखानी पड़ती हैं–तेल लगाना, नहला देना, प्यार करना! ये बातें तो जिंदगी यों ही सिखा देती है। सहज ढंग से रहते हुए ये सारी बातें स्वयं आ जाती हैं। पुरुष और स्त्री के बीच प्रेम की बात भी किसी को सिखानी पड़ती है? तुम तो मेहनत करके कितनी बातें जानते हो, कैसी-कैसी कितनी किताबें पढ़ते हो! फिर भी ऐसी अबूझ बातें करते हो....!' और वह जोर से हंसने लगी।

सोमदत्त तभी फुसफुसाते हुए बोला–'सुम्निमा!'

उसकी पीठ मलती हुई सुम्निमा एकाएक रुक गयी। उसने साश्चर्य पूछा–'क्या है सोमदत्त? क्या कह रहे हो?'

सोमदत्त कुछ न बोला, केवल अजीब तरह से उसे देखता रहा। सुम्निमा घबराकर बोली–'अब बहुत देर तक पानी में मत बैठो। यहां का देवता बहुत कठोर है। आते समय बप्पा ने कहा भी था कि ब्राह्मण के बेटे को जल्दी वापस ले आना, उसे कुछ हो न जाये वहां।'

११७९

पानी से बाहर निकलकर वे तट के एक शिलाखंड पर रुके। सुम्निमा ने कहा–'क्षण-भर हवा में इसी तरह खड़े रहो, शरीर सूख जायेगा।'

सोमदत्त को, हृदय में हल्की सिहरन का बोध हुआ। उसके शरीर ने सुख का अनुभव किया। सुम्निमा ने पूछा–'क्या ठंड लग गयी सोमदत्त!'

'नहीं, मैं एकदम प्रसन्न हूं, इसीलिए शरीर पुलकित हो रहा है।'

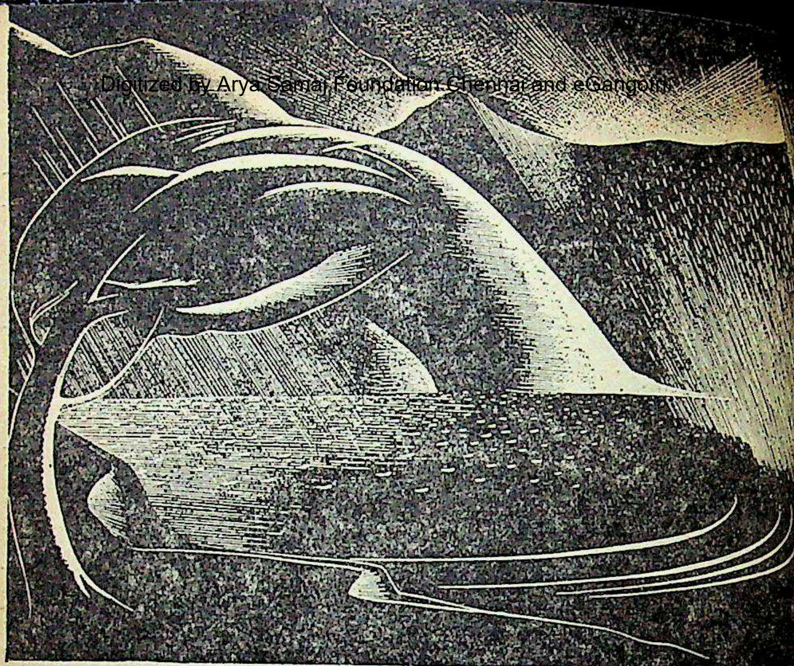
'तब तो तुम्हारा मनुवा शायद रीझ गया है सोमदत्त। जब शरीर इस तरह प्रसन्नता अनुभव करने लगे, तो समझना चाहिये कि मन ने अब रूठना छोड़ दिया है। गायों को देखा है? प्यार से छुओ तो किस तरह देह रोमांचित हो जाती है उनकी। उसी तरह मनुवा भी प्रसन्न होकर पर फड़फड़ाता है, वही है यह। बप्पा ने ऐसा ही कहा था सोमदत्त। लो, क्षण-भर बैठो। मैं तुम्हारा शृंगार कर दूं, तुम्हारा रूप बदल दूं......।'

'क्यों? मुझे शृंगार की क्या जरूरत है? मेरा रूप बदलना क्यों जरूरी है?'

'क्या कहूं, सोमदत्त! तुम्हें भील के रूप में सजा देती हूं.....'

'पहले बताओ कि मेरा रूप क्यों बदला जा रहा है?'

'बप्पा ने कहा है कि तुम्हारा मनुवा दूसरा रूप ग्रहण करके खुश हो जायेगा। बालक की तरह उसे अनेक तरह से बहलाना पड़ता है। स्वयं रीझ जाने पर वह



दूसरे के अप्रसन्न मनुवा को भी रिझा सकता है। मैं ये सब बातें समझ नहीं पायी सोमदत्त। पता नहीं, बप्पा ने क्या-क्या कहा......।'

यह कहते हुए सुम्निमा ने झोले से कौड़ियों की करधनी निकाली और सोमदत्त की कमर में पहना दी। फिर कौड़ियों की माला उसके कंधे पर झुला दी। बालों को संवारकर सिर पर मयूरपंखी मुकुट पहना दिया। फिर एक काली चिकनी लकड़ी का डंडा हाथ में देकर बोली—'यह है तुम्हारा हथियार ...... लो, अब देखो अपना चेहरा दह के पानी में!'

दह के किनारे घुटने टेककर दोनों बैठ गये और झुककर पानी में परछाईं देखने लगे।

'क्या देखा पानी में? पहचाना तुमने अपने को?'

'यहां तो एक भील युवक है और सोने जैसे रूप वाली एक सुदर किर तरुणी है।'

पानी में तरुणी का चेहरा मुस्करा उठा तभी वायु का एक झोंका आया और पानी का शरीर रोमांचित हो उठा किनारे से एक-एक कर टकराने वाली ने पानी के छायाचित्र को हिलाकर कर दिया।

चकित स्वर में सोमदत्त बोला—'यह हो गया?' अचानक उसने सुम्निमा के हुए कंधों को दोनों हाथों से जोर से हि हुए कहा—'सुम्निमा!'

उसकी आंखें एक भयंकर दीप्ति चमक रही थीं, जैसे रात में बाघ की

चमकती हैं। उसकी सांस उत्तप्त थी और बहुत तेजी से चल रही थी।

घबराकर सुम्निमा तेजी से उठी। सोमदत्त को भी उठाते हुए बोली–'अब तुम्हें अधिक देर तक यहां नहीं बैठना है। मनुवा-दह का देवता बहुत बलवान है और कठोर भी है। बप्पा ने कहा था कि तुम्हें बचाकर जाना है.....।'

मनुवा-दह की पत्तियों को हटाकर वे बाहर निकले। सोमदत्त की आंखें बाहर की तेज रोशनी में चौंधियाने लगीं। एक तरह से सुम्निमा ने उसे मनुवा-दह के उपवन से खींचकर बाहर निकाला था। बाहर आकर वह कुछ संयत हुआ। बोला–'बाहर कितना प्रकाश है!'

'पर अब दिन छिपने को है, रात आने में देर नहीं, और तुम्हें दूर अपने आश्रम जाना है। मैं तुम्हें कोशी-किनारे के शमी वृक्ष तक पहुंचा देती हूं। तेजी से चलो अब।'

०००

किरात-गांव के दायीं ओर की पगडंडी पकड़कर वे नीचे आ रहे थे। सोमदत्त गहरी शांति और परम सुख का अनुभव कर रहा था। इस तरह की परिपूर्णता का बोध उसे आज तक कभी नहीं हुआ था। मानो जीर्ण रोग के बाद उसने पहली बार पूरा भोजन किया हो। मन आनंदित था, लेकिन उसमें मनुवा-दह वाली उग्र चंचलता नहीं थी। अब वह पुनः साधारण स्थिति में आ गया था। लगता था, जैसे वे दोनों बहुत पुराने मित्र हैं, एक ही गांव के पुराने साथी। वे बातें करते हुए रास्ता काट रहे थे।

'तुम्हारा विवाह कब हुआ सुम्निमा?'

'जब तुमने मुझे ठुकरा दिया तो मैं बहुत वर्षों तक दुःखी रही। लगता था, जैसे किसी चीज में स्वाद ही नहीं रहा है, सब एकदम सूखा-सूखा है। बाद में मां और बप्पा की जिद नहीं टाल सकी। शादी कर ली गांव के एक किरात लड़के के साथ। उसने भी मुझसे ही शादी करने का हठ ठान रखा था। एक बेटी भी है हमारी, छह महीने की।'

'क्या तुम सुखी हो सुम्निमा?' स्वर को अत्यंत मधुर बनाकर सोमदत्त ने पूछा।

'कटा हुआ पेड़ भी तो हरा-भरा हो जाता है, अगर उसमें बचने लायक रस बाकी रह गया हो और उसका सहज-स्वाभाविक रूप से विकास हुआ हो। मेरा दुलहा तुम्हारी तरह ही है। उसके साथ रात बिताते हुए लगता है, जैसे तुम्हारे साथ ही हूं। जिंदा रहने के लिए ऐसा ही कोई स्वप्न पालना पड़ता है न?'

क्षण-भर दोनों चुपचाप चलते रहे। फिर सुम्निमा ने कहा–'मेरा दुलहा कहता है, सुम्निमा! मैं तुम्हें पा नहीं सका। रात-भर मैं उससे सटकर सोती हूं, तो भी वह मुझे पा नहीं सका! बेटी भी हुई तो भी मैं उसे नहीं मिली! वह कहता है–अब मैं काशी जाऊंगा, वहां ब्राह्मण की तरह गोत्र लूंगा और मैं भी एक बड़ा सपना पालूंगा। वह यह कैसे कर सकता है सोमदत्त? किरात कहीं ब्राह्मण का गोत्र ले सकता है?'

सोमदत्त अवाक् होकर सुम्निमा की बातें

सुन रहा था, यद्यपि उसके हृदय में अब काफी उद्वेग और हलचल थी। सुम्निमा ने एक लंबी सांस ली और कहा—'इस जिंदगी से बंधकर रहने के लिए छोटा-मोटा सपना पालना ही पड़ता है। फिर भी किरात का गोत्र लेना और ब्राह्मणों की तरह महान सपना पालना ...... यह कहां तक ठीक होगा ? पर सोमदत्त, तुम क्यों नहीं कुछ बोलते ?'

'तुम्हारी बेटी बहुत ही सुंदर है।' सोमदत्त बोला।

अब वे कोशी-तट के शमी वृक्ष के नीचे आ पहुंचे थे। वृक्ष के नीचे खड़ी होकर सुम्निमा बोली—'याद है सोमदत्त, यहीं पर हमारी पहली मुलाकात हुई थी बहुत दिन पहले ..... !'

सोमदत्त ने देखा सुम्निमा की आंखें डबडबा गयी हैं। उसने धीरे-से कहा—'क्या वह भूलने की बात है सुम्निमा ?' उसने सुम्निमा का हाथ पकड़ लिया।

उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ाते हुए सुम्निमा बोली—'मुझे देर हो गयी .... मैं अब जाती हूं ..... प्यार मत तोड़ना ..... हां ! बप्पा ने तो नहीं कहा था लेकिन यह अंतिम विधि मैं अपने मन से करती हूं ..... ।' हठात् उसने सोमदत्त को अपने साथ सटाकर आलिंगन में बांध लिया और उसके मुख को चूम लिया।

फिर वह तेजी से दौड़ती हुई वहां से चल दी और यह कहती गयी—'मैंने अपनी गरम सांस से तुम्हारे मनुवा को प्रज्वलित कर दिया है सोमदत्त ..... सोमदत्त ! ... सोमदत्त ! .....' उसकी आवाज जंगल के अंदर फैलती रात्रि के अंधकार में लुप्त हो गयी। सोमदत्त विक्षिप्त की तरह चिल्लाया—'सुम्निमा ! सुम्निमा !'

सुम्निमा की दूर, और दूर होती हुई मधुर आवाज उसके कान में पहुंची—'सोमदत्त ! ..... मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूं आश्रम में .... सपने की तरह तुमसे बा[illegible] गनबद्ध होने के लिए .....'

सोमदत्त के ओंठ इस तरह दाहयुक्त थे जैसे आग में झुलस गये हों। उसका शरीर अभी के नारीस्पर्श से जल रहा था—उत्तेजित और चंचल। उन्मुक्त कंठ से वह चिल्लाया—'सुम्निमा !' कोशी की कलकल ध्वनि को चीरती हुई उसकी आवाज पहाड़, जंगल और दर्रों में प्रतिध्वनित होती रही—'सुम्निमा ! सुम्निमा !'

०००

गहराते अंधकार में सुम्निमा अपने घर की ओर दौड़ी चली जा रही थी। लगता था कि वह बेहोश हो जायेगी। प्रतिध्वनित होती हुई सोमदत्त की आर्त पुकार को न सुनने के लिए उसने दोनों हथेलियों से अपने कान बंद कर लिये थे।

उस अंधकार में विक्षिप्त सोमदत्त अपनी कुटी वापस आया, जहां एक पीली रोशनी जल रही थी। उस क्षीण प्रकाश में सिमटकर बैठी हुई पुलोमा ऐसी लग रही थी जैसे कोई गृहवासिनी किरात-नारी प्रतीक्षा में बैठी हो।

[क्रमशः]



[पृष्ठ ५५ का शेष]

सुर्खाब हैं।

पूज्य दद्दा ने मुझसे कहा–'इन चक्रवाकों पर आपने इतनी दया क्यों दिखायी ?'

'मैं चक्रवाकों को नहीं मारता।' मैंने उत्तर दिया।

'आखिर क्यों ?' दद्दा ने पूछा।

मैंने कहा–'दद्दा, बात कुछ पुरानी है, कई वर्षों पहले की। इसी प्रकार एक दिन नौका-विहार के लिए निकला, तो सुर्खाब का एक जोड़ा मेरी बोट के बहुत निकट से उड़ता हुआ आया। मैंने बंदूक चलायी तो उनमें से एक पानी में गिर गया। उसका डैना टूट गया था, लेकिन वह जिंदा था। उसके जोड़ीदार ने जब उसे पानी में गिरते देखा, तो वह लौटकर उसके पास आ गया और उसके ऊपर चक्कर लगाने लगा, जैसे हम लोगों का उसे कोई डर ही न हो। लोगों ने मुझसे उस पर बंदूक चलाने को कहा। लेकिन वह दृश्य देखकर मेरी हिम्मत न पड़ी उसे मारने की। मुझे रहीम का यह दोहा याद आ गया :

चकई चकवा दुइ जने इनहिं न मारे कोय।
ये मारे करतार के, रैन बिछोहा होय॥

'और मैंने तभी से सुर्खाबों को मारना छोड़ दिया।'

दद्दा ने इस पर कहा–'चक्रवाकों की जान तो रहीम खानखाना की वकालत पर आपसे बच गयी। लेकिन बाकी पक्षी रहीम की तरह कहां वकील पाते! क्या मैं उनकी ओर से बिना वकालतनामा दाखिल किये कुछ कह सकता हूं ?'

मेरे चुप रहने पर उन्होंने कहा–'देखिये कुंवर साहब, संसार में अगर कोई किसी की भलाई करता है, तो हम उसका एहसान जीवन-भर मानते हैं और उसके एहसान का बदला चुकाने को सदैव तत्पर रहते हैं। लेकिन जो एहसान का बदला नहीं चुकाता, उसे आप जानते हैं क्या कहा जाता है ?'

मैंने कहा–'एहसान-फरामोश।'

'आपने ठीक कहा,' दद्दा बोले–'मैं अपने मुख से यह शब्द नहीं कहना चाहता था।' आप जानते ही हैं कि इन्हीं चिड़ियों के कारण आपने हिंदी साहित्य में एक विशेष स्थान बना लिया है। इन्हीं पक्षियों का निरीक्षण करके आपने न जाने कितनी पुस्तकें लिखी हैं और आगे भी लिखेंगे। इन्हीं पक्षियों के कारण आपको इतना मान-सम्मान मिला है। रहीम के एक दोहे के कारण आपने चक्रवाकों को तो अभयदान दे दिया, लेकिन बाकी बची हुई हजारों चिड़ियां कहां से वकील-कवि लायें जो आपसे उन्हें जीवनदान प्राप्त हो ? आपको तो इनका कृतज्ञ होना चाहिये, इनका एहसानमंद होना चाहिये, न कि .....'

मैंने बीच में ही उनकी बात काटकर कहा–'बहुत हो गया दद्दा, अब मुझे और लज्जित न करें। आपको वचन देता हूं कि आज से किसी पक्षी को नहीं मारूंगा। खूंखार जानवरों के विरुद्ध और आत्मरक्षा के मौके अलावा मेरी बंदूक अब कभी नहीं उठेगी। आज से वह भगतिन हो गयी।'

पूज्य दद्दा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पंतजी तथा प्रकाश से कहा—'देखिये, आप दोनों हशिया गवाह हैं सुरेशजी के इस निर्णय के।'

ऐसा सुंदर ढंग था उनका अपने स्नेहियों से कुछ कहने और कराने का, जिसे पूज्य बापू के सिवा दूसरे किसी में मैंने नहीं पाया।

जब वे राज्यसभा के सदस्य नामजद हुए, तो उन्हें बहुत व्यस्त रहना पड़ता था। फिर भी देर-सवेर उनका पत्र आ ही जाता था। दिल्ली से भेजा हुआ उनका एक पत्र यहां दे रहा हूं, जिसमें उनका अपनपौ साफ झलकता है :

श्रीराम

६ नार्थ एवेन्यू, नयी दिल्ली
७.३.५८

प्रियवर,

पत्र और पुस्तक पाकर आभारी हूं। सचमुच इधर बहुत दिन हो गये आपसे मिलना नहीं हुआ। उत्सुक तो हूं ही। देखिये कब अवसर आता है।

अप्रैल में डाक्टर मोतीचंद की बेटी का विवाह है, तब काशी जाऊंगा, प्रयाग भी। उधर भी बहुत दिनों से नहीं गया। शरीर अब थकान का अनुभव करता है।

आप अपने ढंग के एक विशिष्ट लेखक हैं। मुझे यह देखकर आनंद के साथ आश्चर्य होता है कि वैज्ञानिक विषयों में परिश्रम करके भी आप सुकुमार साहित्य से विमुख नहीं। और ऐसी सुंदर कहानियां लिखते हैं। 'असली मुर्गाछाप' मैं ध्यानपूर्वक पढ़ूंगा। सियारामशरण मेरे साथ हैं। उन्होंने आपके "शरमदान" पढ़कर मुझसे उसका बखान किया है।

परंतु उसका समर्पण मुझे अप्रिय लगा। श्री प्रकाशवतीजी को उससे पीड़ा ही हुई होगी। अशुभ भावना क्यों रखी जाये।

आवे तब मृत्यु भले आवे।
क्यों अमृतपुत्र मरने जावे॥

श्री प्रकाशजी से मेरा नमस्कार कहिये।

आपका—मैथिलीशरण

पूज्य दद्दा आज इहलोक में नहीं हैं, लेकिन मुझे उनकी याद आती है तो ऐसा लगता है कि उनका वरदहस्त आज भी मेरे सिर पर उसी प्रकार है।

—कालाकांकर, उ.प्र.



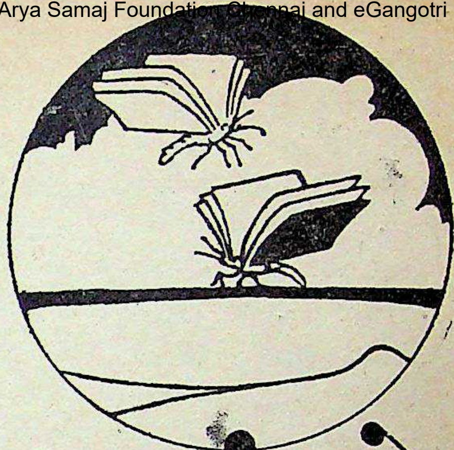
● विचार विश्व के महान योद्धा हैं; जिस युद्ध के पीछे कोई विचार नहीं, वह निरी वहशियत है।
—गारफील्ड

● विचारों में बमों से कहीं ज्यादा विस्फोटक तत्त्व होता है।
—बिशप विल्केन्स

● विचारों के लिए स्वस्थ भूख हममें हो, यही जीवन की सुंदरता और धन्यता है।
—जॉ इन्ग्राहम



समीक्षक :
अनंत कुमार 'पाषाण'
गणेश मंत्री
हरमन चौहान



ग्रंथलोक

कालजयी (खंडकाव्य) * भवानीप्रसाद मिश्र; भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ; मूल्य : १२.५० ।

हिंदी के आधुनिक प्रबंध-काव्यों की परंपरा प्रधानतः गांधीवादी रही है। गांधी-दर्शन से प्रभावित श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' लिखा था। उसके बाद श्री सियारामशरण गुप्त ने स्वयं बापू पर ही अपना खंडकाव्य लिखा। उसी उज्ज्वल परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है लोकप्रिय कवि श्री भवानीप्रसाद मिश्र का सम्राट अशोक पर लिखा खंडकाव्य 'कालजयी'।

इसमें अशोक के चरित्र को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक विश्वसनीय बनाकर पेश किया गया है। इतिहास ने अशोक की क्रूरता की आंतरिक प्रतिक्रिया के रूप में ही उसकी करुणा को प्रस्तुत किया है। कवि ने अशोक के चरित्र-विकास में करुणा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इस विकास-क्रम को प्रतीकात्मक शीर्षकों से समझा जा सकता है—बीज, अंकुर, विकास, वट, छाया, निर्वाण।

हिंदी में शैली की चार परंपराएं रही हैं—श्री मैथिलीशरण गुप्त की संभाषण-शैली, श्री सुमित्रानंदन पंत की निर्वैयक्तिक चित्रशैली, निरालाजी की नाद-प्रधान संस्कृत काव्य की परंपरा वाली शैली, और बच्चनजी की फारसी के अंदाजे बयां की अंग्रेजी के लिरिक-फार्म पर जमायी हुई शैली। 'साकेत' के कवि की परंपरा में 'कालजयी' एक उपलब्धि है।

अरस्तू ने ठीक ही कहा था कि प्रबंध-काव्य में चरित्र नहीं, अपितु घटना प्रधान होनी चाहिये। जीवन की समग्र दृष्टि की

१९७१

झलक देने के लिए व्यक्ति के कमोबेश गुण-अवगुण लेकर बाल की खाल निकालते रहना प्रबंध को ढीला कर देता है। प्रधान रूप से युद्ध और शांति के मसलों को यह काव्य बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से उठाता है और सूक्ष्म रूप से उनका हल भी देता है। रंगों के हल्के-फुल्के उपयोग ऐसे हैं, जो मोटा चश्मा पहनने वालों के लिए नहीं हैं।

चरित्र-चित्रण के निर्वाह में भी ऐतिहासिक दृष्टि है—जैसे यूनानी माता से उत्पन्न अशोक के भाई सुसीम का राजगुरु पर हस्तत्राण फेंकना युद्ध के लिए ललकारने के यूनानी रिवाज का निरूपण है। करुणा में ओज पैदा करने से या तो ओज नरम पड़ जाता है या करुणा को हरारत हो जाती है। 'कालजयी' में करुणा और ओज का अद्भुत सम्मिश्रण है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की ही तरह कविता में संवाद लिखने में श्री भवानीप्रसाद मिश्र को महारत हासिल है। एक ऐसी सादगी उनकी कविता में है, जो आज के युग में बहुत ही दुर्लभ है :

ऐसा कोई व्यक्ति नहीं
जिसको आत्मीय अपना
स्नेहयुक्त छलनाहीन आचरण
बना न ले,
स्वार्थहीन प्रेम निश्चय
इतना निरुपाय नहीं,
करके समर्पित सब कुछ
उत्सव वह अपने मन की ममता का
मना न ले।

शायद कवि कभी महाकाव्य भी लि...

—अनंत कुमार 'पा...

०००

*** गांधी, विनोबा, लोहिया, जयप्रकाश... रामनंदन मिश्र; नवभारत प्रकाशन, ...रियासराय, बिहार; ८९ पृष्ठ; १२ ...**

पिछली पीढ़ी के अग्रणी समाजवादी ... और राष्ट्रीय आंदोलन के चिंतन... कर्मठ कार्यकर्ता श्री रामनंदन मिश्र के ... राजनीति जीवन-मूल्यों की व्यापक ... और तीव्र सरोकार का ही दूसरा नाम ... है। आपाधापी के वर्तमान दौर के ... में ही मिश्रजी ने राजनीति से संन्यास ... लिया और स्वाध्याय-चिंतन में निरत ... गये। इन संस्मरणात्मक सरस शब्दचि... के इस संकलन में उन्होंने सहज प्रवाह... भाषा में कुशलता से गूंथे गये छोटे-... आत्मीय प्रसंगों के माध्यम से ... विनोबा, लोहिया, जयप्रकाश नारायण ... व्यक्तित्वों की छबि सचमुच नख-दर्पण ... उतार दी है। एक उदाहरण :

'उस समय अहमदाबाद से दिल्ली ... के लिए छोटी लाइन से रेलवे सफर ... दो दिनों में पूरा होता था। जाने के ... मैंने गांधीजी को प्रणाम किया और ... मांगी। गांधीजी ने बहुत स्नेह से आ... र्वाद दिया और मैं विदा हुआ। ... गांधीजी ने रोककर कहा—"तुम्हें रास्ते ... खाने के लिए बा ने कुछ दिया?" मैंने ... भाव से उत्तर दिया—"नहीं!" इस छोटे ... उत्तर के परिणामस्वरूप एक भयंकर ...

पढ़ेगा, यह मैं कैसे समझ सकता था ? लेकिन हुआ वही। सुनते ही गांधीजी की मुद्रा बदल गयी। उन्होंने बा को बुलाया और पूछा–"तुमने रामनंदन को रास्ते के लिए भोजन दिया ?" बा ने अत्यंत सरल भाव से कहा–"मैं भूल गयी।" गांधीजी ने गंभीर स्वर में कहा–"यदि देवदास जाता होता, तो तुम ऐसी भूल कर सकतीं ? देवदास और रामनंदन का अंतर कब तुम्हारे अंतर से मिटेगा ?" ऐसा कहकर गांधीजी रसोईघर में चले गये और स्वयं ही पराठे और आलू की तरकारी बनाने में लग गये। बा भी आकर बैठ गयीं। उनकी दोनों आंखों से झर-झर आंसू गिर रहे थे और आटा गूंथकर वे पराठा बेलने लगीं। गांधीजी तवे पर पराठा पका रहे हैं, बा की आंखों से आंसू गिर रहे हैं और वे पराठा बेल रही हैं–मैं निस्तब्ध अवाक् खड़ा हूं।

निस्तब्ध अवाक् तो हम आज भी खड़े हैं, जब देश में सब कहीं तथाकथित 'गांधीवादियों' की तूती बोल रही है।

छपाई-कागज को देखते हुए पुस्तक का मूल्य अधिक है। यदि भीतर चित्र न दिये जाते तो पुस्तक अधिक साफ-सुथरी रहती और लागत भी कम आती। **–गणेश मंत्री**

०००

*** उर्दू-हिंदी हास्य-व्यंग्य * संपादक : रवीन्द्रनाथ त्यागी; पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-३२; २४५ पृष्ठ; २० रुपये।**

हिंदी में सूक्ष्म हास्य-व्यंग्य की खलने वाली कमी रही है। उर्दू के व्यंग्यकारों का भी खेमा अलग-सा ही रहा है। व्यंग्यकार रवीन्द्रनाथ त्यागी ने उर्दू और हिंदी दोनों के १२-१२ व्यंग्यकारों की प्रतिनिधि रचनाएं एक साथ प्रस्तुत करके इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया है। प्रस्तावना में उन्होंने दोनों भाषाओं की हास्य-व्यंग्य-परंपरा का संक्षिप्त इतिहास दिया है।

चूंकि यह 'प्रतिनिधि संकलन' है, इसमें मंटो की 'प्रगतिशील कब्रिस्तान', फिक्र तौंसवी की 'खुदा की जन्नत', भगवतीचरण वर्मा की 'दो बांके', राधाकृष्ण की 'एक सड़ी हुई बिल्ली' आदि बहुत प्रचलित रचनाएं भी सम्मिलित हैं। इतनी ही दमदार मगर अप्रचलित रचनाएं चुनना उपयुक्त होता। संपादक ने पुराने व्यंग्यकारों को कुछ ज्यादा ही महत्त्व दिया है, जबकि पिछले एक दशक में उर्दू और हिंदी में कई नये सशक्त लेखक उभरे हैं। फिर भी उर्दू-हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठ व्यंग्यकारों को एक साथ पेश करना स्तुत्य है।

१२७९

*** धांसू (कहानी-संग्रह) * गोविन्द मिश्र; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली; १० रुपये।**

हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में राजनीति कितनी घुस आयी है, इसे 'धांसू' के कहानीकार ने नजदीक से नजदीक परिधि वाली लकीरों से उकेरने की कोशिश की है। लेखक के अनुसार, आज हमारा बुनियादी कष्ट ही राजनीति है। हर कहानी का हर पात्र हमसे भिन्न होकर भी अभिन्न है। ऐसे पात्र प्रतिदिन हमसे टकराते हैं, चाहे फिर 'बहुधंधीय' कहानी का आचार्यश्री या फिर

गोबरगनेस' एवं 'धांसू' के अनाम मुख्य पात्र। ऐसे पात्रों के नाम नहीं होते, वे तो सर्वनाम हैं।

सभी कहानियों में बीच-बीच में सोचना पड़ता है और सोचना जरूरी भी है। 'सूता' में एक ऐसी महिला-पात्र है जो करने को कुछ नहीं करती है.... बस सोचती है, क्योंकि सोचना ही उसका प्रमुख काम है। वह कुछ न करके भी विदेश से पुत्र के आने पर कुछ करती है। ऐसे ही 'बहुधंधीय' कहानी के आचार्यश्री हैं, जो जनसेवक हैं। करते कुछ भी नहीं हैं, फिर भी कहने को बहुत करते हैं। संग्रह की पहली कहानी 'जनतंत्र' कस्बे की राजनीति और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को उधेड़ती है। 'स्वर-लहरी', 'सिलसिला' आदि में भी समाज का खोखलापन चित्रित है। 'प्रत्यवरोध' में राजनीतिक कानून-कायदों पर करारी चोट है। 'गोबरगनेस' और 'धांसू' सशक्त राजनीतिक कहानियां है। लेखक अंदर तक गहरी चोट करता है....इसीलिए कहानी की लकीरें उकेरने में सफल भी हुआ है।

०००

*अग्निशय्या * राजपाल एंड संज, दिल्ली-६; १०३ पृष्ठ; ८ रुपये। * लेबेदेव की नायिका * राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; १६८ पृष्ठ; १५ रुपये। * अजगर * राजपाल एंड संज, दिल्ली-६; ९१ पृष्ठ; ९ रुपये। तीनों के लेखक : प्रतापचंद्र चंद्र।

राजनीतिज्ञ हमारे यहां यदि साहित्यकार भी हो, तो राजनीति में उसका सितारा बुलंद होने के साथ उसका साहित्यिक दर्जा भी ऊंचा उठता जाता है, वह अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित होने लगता है। कभी श्रीमती नंदिनी शतपथी इसका उदाहरण थीं; अब श्री प्रतापचंद्र चंद्र (केंद्रीय शिक्षामंत्री) इसके उदाहरण हैं। हमारा यह आशय नहीं कि इन दोनों की रचनाएं अनुवाद्य या पठनीय नहीं हैं।

११७९

'अग्निशय्या' नारी के समर्पण, विद्रोह और प्रतिशोध की कहानी है। नायिका राधिका अनाथ होकर अपने मामा-मामी के पास रहती थी। मामा ने उसे कुश्ती लड़ना सिखा दिया था, जिसकी आय से किसी तरह घर चलता था। उस कुश्ती से मुग्ध होकर नयन ने राधिका से शादी करके उसे छोटी बहू बनाया। मगर शीघ्र ही मन भर जाने से उसने राधिका के विरोध के बावजूद उसे गांव में बड़ी बहू के पास भेज दिया। परिस्थितियों से लड़ने वाली राधिका को बड़ी बहू और गांव वालों से समझौता करना पड़ता है, मगर मथुर जैसे धूर्त को वह सजा देती है। दूसरी ओर वह ब्रह्मचारी साधु सुबल पर रीझ जाती है और उसे पाने के लिए आधी रात को श्मशान में जादू-टोना, वशीकरण आदि करती है। इसके चर्चे सुनकर जब नयन गांव आता है, वह उसे समर्पित होने से इन्कार कर देती है। इस विद्रोह की परिणति नयन की मृत्यु में होती है। राधिका पर आरोप लगता है। जब सुबल उसके साथ भाग चलने को तैयार नहीं होता, वह मृत

पति के साथ सती होने का निश्चय करती है और डरपोक प्रेमी सुबल को जबरन अपने साथ घसीटकर चिता में कूद पड़ती है। लेखक प्रेम और वितृष्णा की सीमाओं और नारी की मनोव्यथा का सशक्त और रोमांचक निरूपण कर पाया है।

'लेबेदेव की नायिका' है तो ऐतिहासिक उपन्यास, परंतु इसमें भी प्रमुख तत्त्व नारी की मनोव्यथा ही है। रूसी वायलिन-वादक लेबेदेव को कला और ज्ञान की साध भारत खींच लायी है। वह बंगला सीखता है और बंगाली अभिनेता-अभिनेत्रियों के साथ नाटक खेलने की कल्पना लेकर अंग्रेजी नाटक के बंगला अनुवाद और थियेटर की स्थापना के लिए दोड़-धूप करता है। उसे नायिका मिलती है चंपावती–एक अंग्रेज की रखैल। कथा चंपावती के इर्द-गिर्द घूमती है।

अठारहवीं सदी के अंत में, अंग्रेजों के शक्तिमद के मध्याह्न में कलकत्ता में अंग्रेजी थियेटर के सामने बंगला थियेटर की स्थापना आसान काम नहीं। अंग्रेज तरह-तरह की अड़चनें पैदा करते हैं, मगर लेबेदेव हारता नहीं–नाटक सफलता से खेला जाता है। फिर असफल लेबेदेव स्वदेश वापस चला जाता है–एक कहानी छोड़कर। चंपावती के चरित्र को उभारकर लेखक कथा को रोचक बनाये रखता है। दोनों उपन्यासों का अनुवाद अच्छा हुआ है।

'अजगर' तीन पर्वों में एक संन्यासिनी की काम-वासना की कथा है, जिसमें हिंदी फिल्मों की तरह ही कल्पना की उड़ान की अधिकता है। नारी की मनःस्थितियों और मजबूरियों को लेकर श्री चंद्र के लिखे अन्य उपन्यासों की तरह इसमें भी प्रेम के बजाय वासना को ज्यादा स्थान मिला है। प्रमुख भूमिका नारी की ही है। जो पाठक स्तर के बजाय रोचकता को महत्त्व देते हैं, उन्हें यह उपन्यास अवश्य पसंद आयेगा। अनुवाद ठीक है।

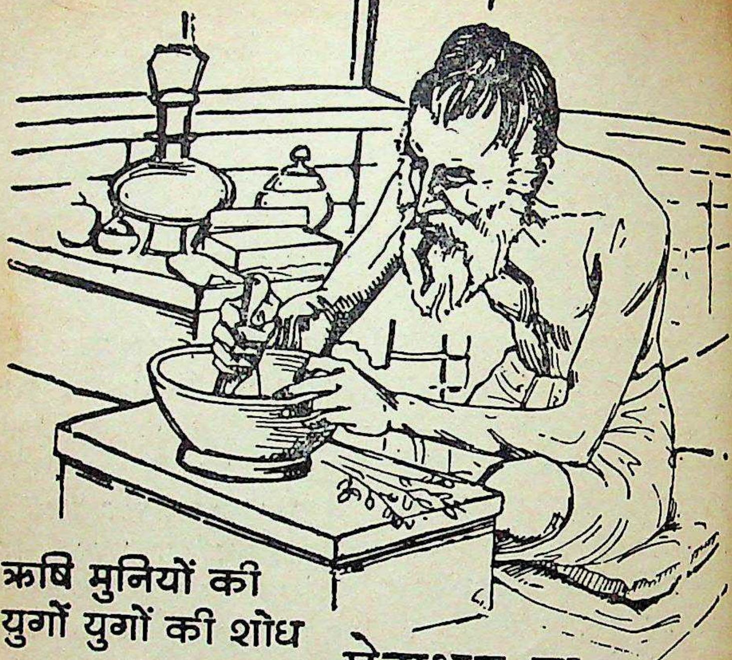
*** नंगा शहर * भीमसेन त्यागी; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली; १४९ पृष्ठ; १२ रुपये।**

यह उपन्यास वैज्ञानिक जगत की कल्पित संभावनाओं पर एक फैन्टेसी है, जिसमें इस शताब्दी के समाप्ति-काल के एक विराट शहर के एक भयावह दिन का वर्णन है। लेखक ने उस शहर को 'नंगा शहर' कहा है। उसमें यांत्रिकी व्यवस्था के अंतर्गत सब लोग 'उन्मुक्तता-दिवस' मनाने में व्यस्त हैं। उस एक भयावह दिन में इन्सान का नहीं केवल यांत्रिक व्यवस्था का मूल्य है।

कथा, नाटक, एकालाप और मुक्त-चिंतन का इसमें मिश्रण है, जिसे लेखक ने 'कोलाज' बताया है। फैंटेसी बड़ी प्रभावशाली हो सकती है; मगर 'नंगा शहर' में प्रभावशालिता नहीं आ पायी है। फिर भी वैज्ञानिक रहस्य-कथाओं में रुचि रखने वालों को यह काफी पसंद आ सकती है।

–हरमन चौहान





ऋषि मुनियों की
युगों युगों की शोध



सेवाश्रम का

गाय  छाप

ब्राह्मी आँवला
केश-तैल और
काला दन्त-मन्जन

ब्राह्मी आँवला केश-तैल आधुनिक पद्धतिसे निर्मित केवल तैल ही नहीं एक आयुर्वेदिक सौंदर्य प्रसाधन है। तथा काला दन्त-मंजन केवल मंजन ही नहीं एक आयुर्वेदिक औषधि है।

आयुर्वेद सेवाश्रम लिमिटेड,
उदयपुर, वाराणसी, हैदराबाद

सिरदर्द

जगदीश

यों तो सिरदर्दों से छुटकारा बड़ा आसान है—कुछ वक्त के लिए। लेकिन कभी-कभी वे ऐसे खतरों की सूचना देते हैं, जिन्हें नजरअंदाज करना बहुत बड़ी गलती है।

ऐसे आदमी, औरत, बच्चे शायद ही कोई हों, जिन्हें साल में एक बार भी सिरदर्द न हुआ हो। रात को जल्दी सोने और एस्पिरीन गोलियां खाने वगैरह से आप इसे ठीक भले ही कर लें, लेकिन इसकी उपेक्षा कभी न करें, बल्कि सही निदान जानने की कोशिश करें।

ज्यादातर लोग यही समझते हैं कि तनाव, दिमागी काम और अत्यधिक चिंता सिरदर्द के कारण बन जाते हैं। अन्य भी दूसरे कारणों के बारे में लोग अटकल लगाते हैं और ऐसा भी सोचते हैं कि यह दर्द स्वयं मस्तिष्क में ही होता है। इन्हें यह नहीं पता होता कि मस्तिष्क को स्वयं किसी भी दर्द की अनुभूति होती ही नहीं।

तो फिर सिरदर्द कहां और कैसे होता है?

दिमाग जिस्म का एक बहुत ही नरम और नाजुक हिस्सा है। इसी से प्रकृति ने उसकी रक्षा के लिए इसे खोपड़ी के खोल में बंद कर दिया है। दिमाग के चारों ओर झिल्लियां रहती हैं। अतः यदि दिमाग का आकार बढ़ता है, तो उसका दबाव बाहर की ओर, अर्थात् खोपड़ी पर पड़ता है और यदि वह सिकुड़ता है तो अपने आधार पर अंदर की ओर। वास्तव में यह दबाव ही सिरदर्द का कारण होता है।

दिमाग को खून की अच्छी-खासी सप्लाई निरंतर होती है और जिन धमनियों द्वारा रक्त वहां पहुंचता है, वे काफी मजबूत होती हैं। इसीलिए वे मुख्य रक्तचाप को सह जाती हैं। लेकिन रक्त की वापसी में जिन शिराओं से काम लिया जाता है, वे उतनी सशक्त नहीं होतीं। अतः उनमें रक्तचाप आसानी से घट-बढ़ जाता है। नतीजा यह होता है कि सिर नीचा करने या जोर से खांसने और छींकने पर खोपड़ी में खून की मात्रा बदल जाती है और इससे भी सिरदर्द होने लगता है।

यही वजह है कि अचानक झुकने या झुकी हालत से सीधे खड़े होने पर चक्कर-सा आ जाता है। इसी से यह भी पता चलता है कि सिरदर्द से रक्तचाप बढ़ना कैसे मालूम हो जाता है।

और भी एक तरह का गहरा सिरदर्द दिमाग के आस-पास के ऊतकों (टिशुओं) की बीमारी से होता है। मसूढ़ों की सूजन या उनमें मवाद पड़ना, नासा-कोटर व गले में इन्फेक्शन, कान का दर्द आदि भी सिरदर्द पैदा कर देते हैं। खोपड़ी से लगी मांसपेशियों में गड़बड़ी से भी सिरदर्द हो सकता है और गठिया और देहतंतुओं की सूजन से भी।

आधासीसी एकदम अलग तरह का

'मम्मी !
मैं ३ महीने का हो चुका हूँ !'



'जी हाँ, अब देना शुरू कीजिए
फ़ैरेक्स®'

मुन्ने के ठोस आहार की शुरुआत के लिए
डॉक्टरों की सिफ़ारिश है फ़ैरेक्स®

मुन्ने का आदर्श ठोस आहार
जल्द और सर्वांगीण
विकास के लिए



लिंटास-GLF.68-1510 HI

सिरदर्द है, जो दिमाग के किसी भी अंश में रक्त धमनियों में अकड़ या ऐंठन से उप-जता है। इसके और भी कई कारण होते हैं।

बहुधा सिरदर्द आंखों पर बहुत जोर डालने से होता है। मान लीजिये, आपको चश्मे की जरूरत है, लेकिन आप हैं कि बिना चश्मे के ही दिन-भर आंखों से काम लेते हैं तो समझ लीजिये आप सिरदर्द मोल ले रहे हैं। खास तौर से माथे में और उसके आस-पास का दर्द आंखों और चेहरे की मांस-पेशियों में सिकुड़न, जकड़न, ऐंठन से होता है।

छोटी-छोटी बीमारियां (जैसे फ्लू, जुकाम, खांसी आदि) भी सिरदर्द पैदा कर सकती हैं। इनके दौरान सिर में थोड़ी हरकत करते ही दर्द होने लगता है।

शराब पीने वालों को अगर पीने के बाद खुमारी के वक्त सिरदर्द से बचना हो, तो सोने से पहले काफी ठंडा पानी पी लेना चाहिये।

अगर आप भावनाओं या संवेगों की प्रतिक्रियाओं से चिंतित हैं, अथवा किसी भी तरह की शारीरिक या मानसिक थकान से पीड़ित हैं, तो भी सिरदर्द के मरीज बन सकते हैं। कई बार तो सिरदर्द आपके लिए 'रक्षक' बनकर आता है। खास तौर से जिंदगी की उन हालतों में, जो आपको अक्सर हराती रहती हैं। हल्के सिरदर्द से उस वक्त कुछ आराम-सा मिलता है। शायद यह हमारे अंतर्मन की ही एक चाल होती है।

छोटे-मोटे, मामूली और कभी-कभी होने वाले सिरदर्द आप एस्पिरीन आदि सहज-सुलभ दवाओं से ठीक कर सकते हैं। लेकिन अगर सिरदर्द गहरा हो और बरा-बर होता हो, तो यह जरूरी है कि उसका निदान करवा लिया जाये; चूंकि यह और किसी बड़े और कष्टसाध्य रोग का लक्षण हो सकता है।



जब जैकी और क्लाड बर्नर ने आज से आठ साल पहले एक दूसरे को पति-पत्नी के रूप में वरा तो घोषणा की थी कि हम छह बच्चों के माता-पिता बनेंगे। मगर बच्चे थे कि दुनिया में आने से इन्कार करते रहे। दंपति ने डा. एड्मंड वर्थ से सलाह ली और डाक्टर ने जैकी पर की हार्मोन-चिकित्सा की। चार महीने बाद जैकी के गर्भ ठहरने के सुखद लक्षण प्रकट हुए। दो महीने बाद डा. वर्थ ने जैकी की शारीरिक जांच करके खबर दी कि आपकी कोख में त्रिमूर्ति पल रही है। 'आश्चर्य, मगर सुखद आश्चर्य!' भावी माता के मुंह से निकला। उसके दो महीने बाद जैकी प्रसूतिगृह में जांच कराने गयीं तो वहां उन्हें परम सुखद खबर दी गयी कि उनकी कोख में त्रिमूर्ति के अलावा कम से कम एक मूर्ति और है। अब चारों बच्चियां मां की कोख से उतरकर पालने में आ गयीं हैं। श्रीमती जैकी बर्नर फ्रांस की प्रथम बच्चा-चौकड़ी की माता के रूप में अखबारों में अपना नाम व चित्र देखने का सुख अनुभव कर रही हैं। सुखी श्री क्लाड बर्नर भी कम नहीं हैं। उन्हें नौकरी में तरक्की मिली है।



[पृष्ठ ६० का शेष]

कि गुरुत्वाकर्षण तरंगों का अस्तित्व नहीं है, इसका अधिक सरल प्रमाण मेरे हाथ आ गया है। आइन्स्टाइन को उसे दिखाने पर उनसे दाद मिली। बोले, इसने यह मामला बहुत आसान कर दिया है। अब इसे छपवाने के लिए लिख डालो। साथ ही उन्होंने यह भी कहा—'अगर तुम मेरे साथ काम करो तो मुझे बहुत खुशी होगी।'

उसी शाम को उन्होंने फोन करके अपने मुझे घर बुलाया और जब हम उनकी बगिया में टहल रहे थे, उन्होंने बड़ी शांति से मुझे बताया कि गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र के समीकरण में 'पदार्थ' का निरूपण संभव है। अकेले आइन्स्टाइन ऐसा मानते थे। उन्होंने मुझसे कहा भी :

'मुझे मालूम है कि शायद ही कोई पदार्थ-विज्ञानी यह मानेगा कि पदार्थ के निर्माण में गुरुत्वाकर्षण-बलों की भी कोई भूमिका रहती है। वे हमेशा इसी बात पर जोर देते हैं कि ये बल तो बहुत ही छोटे होते हैं। इससे मुझे एक मजाक याद आ जाता है। एक कुंआरी औरत ने बच्चा जना तो उसके खानदान को लगा कि जैसे इज्जत चली गयी। तब धाय ने बेचारी मां की तसल्ली के लिए कहा—"इतनी फिक्र न करो, यह तो बहुत ही छोटा-सा बच्चा है।"'

अपने बालों से खेलते-से वे इस मजाक पर बहुत जोर से हंसे भी थे।

गुरुत्वाकर्षी समीकरणों के समाधानों की खोज में आइन्स्टाइन ने एक नयी आनुमानिक पद्धति भी निकाली थी। वे

'मुझे यकीन नहीं कि मैं अब ज्यादा जिंदा रहूंगा। लेकिन मेरी यह तीव्र इ है कि शेष जीवन मैं पदार्थ-विज्ञान की भूत समस्याओं पर काम करते हुए बिताऊं।' यह चीज मैंने उनके साथ अ बातचीत में बार-बार पायी। मानो उ लिए जीवन और मौत में अंतर यही था एक में भौतिकी की समस्याएं सुलझा संभव था, जबकि दूसरे में संभव नहीं उनकी सबसे अद्भुत चीज थी उनकी ज र्दस्त प्राणशक्ति, जो पूरी तरह निर्वो थी मौलिक सोचने में और शोधकार्य में।

दूसरे दिन राबर्टसन ने मेरे काम ब्लैकबोर्ड पर परखा और बड़ी जल्दी निश्चिततापूर्वक मेरी गलती ढूंढ़ निका जिसे मैं स्वयं तीन बार गणना करके जान नहीं पाया था। मेरे बहुत हतोत्सा होने पर राबर्टसन ने तसल्ली देने की कोशि की—'ऐसा सभी से होता है। सर्वाधिक भूल को पकड़ना सर्वाधिक कठिन होता है।'

अगले दिन जब मैंने यह सब आइन्स्टा इन को बताया तो वे बोले—'हां, मुझे भी अपने शोधपत्र की भूल का कल रात ही पता चला। मेरा प्रमाण भी गलत है।' उन्होंने इसके बारे में और विस्तार से बताया, तो मेरी समझ में आया कि उनकी गलती तो और भी छोटी थी और इसलिए उसे पकड़ पाना और भी कठिन था।

स्थिति कितनी नाटकीय थी, इसका अंदाज आपको इससे होगा कि एक सप्ताह

पहले ही घोषित हो चुका था कि आइन्स्टाइन अपने नये शोधलेख पर फलां तारीख को फाइन हाल में भाषण देंगे। वह तारीख कल थी और अब उन्हें ऐसे शोधलेख पर बोलना था, जिससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता था।

मगर वे ४५ मिनट बड़ी दक्षता से बोले। उन्होंने सारा प्रश्न समझाया और अपनी कठिनाइयां भी बतायीं और अंत में बोले—'अगर आप मुझसे पूछें कि गुरुत्वाकर्षण-तरंगें होती हैं या नहीं, तो मेरा यही जवाब होगा कि मुझे नहीं मालूम। किंतु यह बहुत अहम सवाल है।'

बाद में वे भी उसी नतीजे पर पहुंचे थे, जो उन्हें राबर्टसन की मदद से मिला था—यह कि गुरुत्वाकर्षण-तरंगें होती हैं। अपना वह शोधपत्र उन्होंने फ्रैंकलिन संस्थान की पत्रिका में छपवाया भी। भूल और उसके सुधार के साथ ही उसमें यह ब्योरा भी था कि इस संपूर्ण विचार-प्रक्रिया के दौरान क्या-क्या परिवर्तन हुए थे।

आइन्स्टाइन—और मेरा खयाल है कि सभी विज्ञानी—अपनी पहुंच (एप्रोच) में यथार्थवादिकता का खयाल रखते हैं। विज्ञानी की कोशिश यही रहती है कि प्रकृति और उसके नियमों को हम अपने संवेद्य जगत के परिप्रेक्ष्य में समझ सकें। मानव-मस्तिष्क अपने जगत को बार-बार बनाता-बिगाड़ता रहता है। किंतु उसके अंतरतम में यही विश्वास होता है कि हजार गलतियों के बावजूद यथार्थ या वास्तविकता अंततः समझी जरूर जा सकती है। विज्ञान की हर कोशिश का मतलब यही होता है कि हम प्रकृति को अधिकाधिक स्पष्टता से और गहराई से समझें।

दार्शनिक प्रत्ययवाद (फिलोसाफिकल आइडियलिज़्म) तो निष्फल ही होता है। इसीलिए आइन्स्टाइन जब भी कभी ईश्वर और उसकी सृष्टि के बारे में बोलते थे, तो उनका आशय यही होता था कि प्राकृतिक नियमों में एक प्रकार की आंतरिक स्थिरता और अपरिवर्त्यता तथा तार्किक सरलता निहित है। मैं इसे ईश्वर की यथार्थवादी धारणा कह सकता हूं।

आइन्स्टाइन ईश्वर-संबंधी अपनी इस संकल्पना का उपयोग किसी काथलिक पादरी से भी ज्यादा करते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा—'कल रविवार का दिन है। क्या आप चाहते हैं कि हम दोनों कल भी काम करें।'

'क्यों नहीं?'

'मैंने सोचा, शायद कल आप आराम करना चाहें।'

आइन्स्टाइन जोर से हंसकर बोले—'ईश्वर भी तो रविवार को आराम नहीं करता।'

फाइन हाल में एक कक्ष है। वह यों तो बंद रहता है, किन्तु किसी विशिष्ट अतिथि के आने पर उसका स्वागत-सत्कार उसी में किया जाता है। उसके आतिशदान पर आइन्स्टाइन का यह वाक्य खुदा हुआ है :

'ईश्वर चतुर तो है, धूर्त नहीं है।'



दो क्षण तो हँस लें

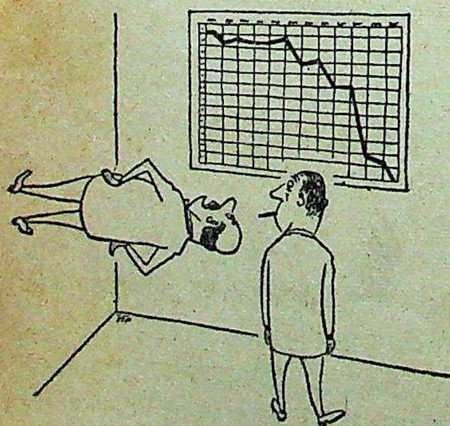
सागरिका

शहर का मशहूर कंजूस बीच सड़क में पड़े हुए पांच पैसे के सिक्के को उठाने के लिए झुका और दनदनाती हुई बस उसके ऊपर से निकल गयी।

करोनर ने उसकी मृत्यु के सर्टिफिकेट में लिखा—'स्वाभाविक कारणों से मृत्यु'।

०००

जब सिनेमाघरों में नये ढंग के अति-विशाल परदों का प्रचलन शुरू ही हुआ था, न्यूयार्क के एक सिनेमाघर ने विज्ञापन किया—'गिना लोलोब्रिगिडा को हमारे नवीन परदे पर देखिये.....सीना १९० इंच, कमर १२५ इंच, नितंब १९५ इंच।'



नफा-नुक्सान तो नुक्ते-नजर की बात है।

०००

'ये थोड़े-से कागजात फाइल करने में तुम तीन आदमी क्यों जुटे हुए हो?' मैनेजर ने गुस्से में पूछा।

'सर, रामलाल फाइल को पकड़े हुए है, अशोक कागजों को पंच कर रहा है, और मैं उन्हें फाइल में लगा रहा हूं।' उत्तर मिला।

०००

निर्मला : मेरी मां इसके सख्त खिलाफ हैं अशोक कि मैं तुमसे शादी करूं। कहती हैं कि तुम स्त्रैण-से लगते हो।

अशोक : हां, तुम्हारी मां से तुलना करने पर तो मैं शायद स्त्रैण ही लगूंगा।

०००

दुनिया दो प्रकार के लोगों के कारण चल रही है—एक जो मन लगाकर काम करते हैं; दूसरे जो काम कराने में मन लगाते हैं।

०००

ग्राहक : वेटर, इसका क्या मतलब है? कल भी मैं यहां आया था और कल भी मैंने पुलाव और मटन-करी ही मंगवायी थी और दोनों चीजें आज से दुगुनी मात्रा में दी गयी थीं।

वेटर : कल आप किस मेज पर बैठे थे साहब ?

ग्राहक : उससे तुम्हें क्या लेना-देना ? फिर भी, मैं खिड़की के पास वाली उस मेज पर बैठा था।

वेटर : तो ठीक है, खिड़की के पास बैठने वालों को सब चीजें दुगुनी परोसी जाती हैं, जिससे वाहर वाले देख सकें।

०००

अध्यापिका ने बच्चों को डांटते हुए कहा–'तुम लोगों ने कक्षा की दीवारों पर यह सब क्या लिख मारा है! कल इन्स्पेक्टर साहब आ रहे हैं, देखकर क्या कहेंगे! इसमें शब्दों के हिज्जे गलत हैं।'

०००

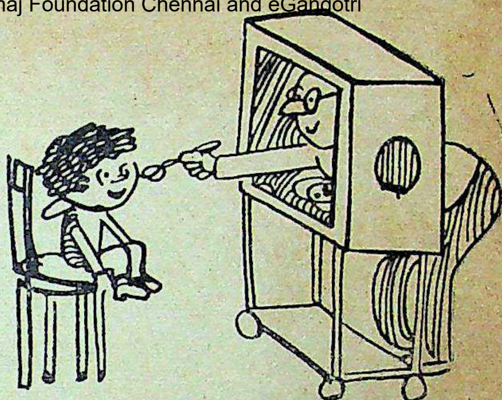
रात को सड़क के किनारे बिजली के खंभे पर दस्तक दे रहे शराबी को देखकर पुलिस के सिपाही ने कहा–'भैयाजी, दस्तक देना व्यर्थ है। घर पर कोई नहीं है।'

'देखते नहीं, दुमंजिले पर बत्ती जल रही है। जरूर कोई घर पर होगा।' शराबी ने उत्तर दिया।

०००

सन १९२९ में जिस दिन अमरीका में स्टाक एक्सचेंज में शेयरों के दाम एकदम गिर पड़े, अभिनेता एडी कैंटर ने एक होटल में जाकर १९ वीं मंजिल पर एक कमरा किराये पर मांगा। सयाने क्लर्क ने उनसे पूछा–'साहब, कमरा रहने के लिए चाहिये या खिड़की से कूदने के लिए ?'

०००



टेलिविजन नहीं, टेलिभोजन

'सुना कि आपका कारखाना कल जलकर राख हो गया ? क्या बनाया करते थे आप उसमें ?'

'आग बुझाने के उपकरण।'

०००

कन्कार्ड विमानों की गजब की तेज रफ्तार के गुण गाते हुए एक पर्यटक ने कहा–'हमने खाना पेरिस में खाया और डकार न्यूयार्क में ली।'

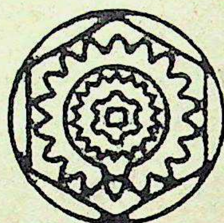
०००

कला-समीक्षक अपनी पत्नी से एक कलाकार की प्रशंसा करते हुए कह रहे थे–'उसने अपने कमरे की छत पर मकड़ी के जाले का ऐसा यथार्थवादी चित्र बनाया कि उसकी नौकरानी झाड़ू से उस जाले को हटाने के लिए तीन दिन तक कोशिश करती रही।'

पत्नी बोली–'वैसे कलाकार तो दूसरे भी मिल जायेंगे जी, मगर आजकल वैसी नौकरानी बहुत दुर्लभ है।'



यांत्रिक प्रगति का अनुपम प्रतीक



लोहे में गोल छेद बनाना आसान है, पर उसे विभिन्न प्रकार का बनाने के लिए विशेष प्रकार के टूल 'ब्रोच' की जरूरत होती है। जिन-जिन देशों में मोटर, लारी, स्कूटर, मशीन टूल, इत्यादि इंजीनियरिंग उत्पादन होते हैं, वहां 'ब्रोच' उत्पादन परमावश्यक होता है। डॅगर-फोर्स्ट टूल लिमिटेड ने इस आवश्यकता की पूर्ति की है। उनके बनाये 'ब्रोच' से लोहे या अन्य धातु के भीतर व बाहर के भाग को आसानी से विविध स्वरूप दीजिये।



डॅगर-फोर्स्ट टूल्स लि.,
पहला पोखरण रास्ता,
थाना (बंबई)

कार का
होती है।
इत्यादि
आवश्यक
पूर्ति की
व बाहर



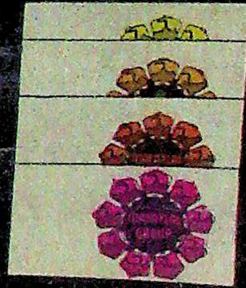




शक्तिवाला.
सबका आराध्य है.
पूजन में. अर्चन में.
आत्म चिंतन
मनन में.
अंधेरे में. प्रकाश में.
जीवन की प्रेरणा में.
इन सभी के मूल में
सूर्य है.
सूर्य चक्र चल रहा...
सूर्य है जल रहा.

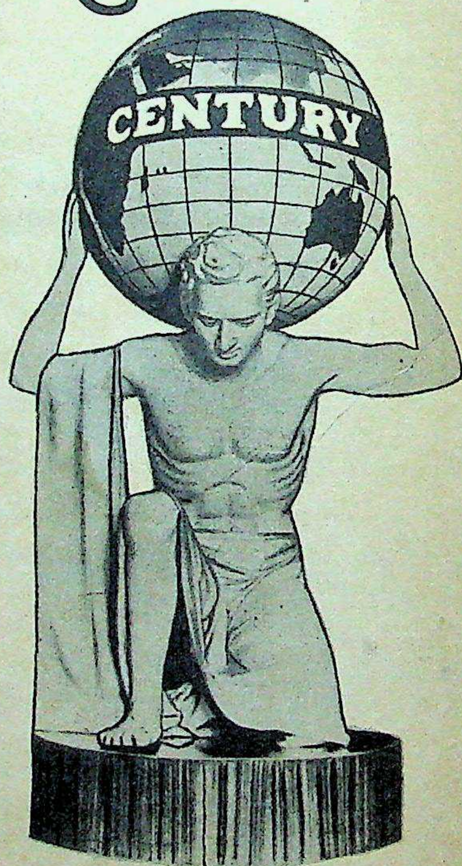
मफतलाल

शूटिंग, शर्टिंग,
साड़ियां,
ड्रेस मटीरियल्स
व डेनिम.




नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

चेहरे पे मुस्कान व भरकर दिल में प्यार सहज बना सकते हैं

बेडेकर अचार

जब आप तैयारशुदा [रेडी मिक्स्ड पिकल स्पाइसेज] अचार का मसाला खरीदती हैं तो मत समझिए कि यह केवल मसाला है अचार का। लेकिन यह तो आपके लिए एक नुस्खा [फ़ॉर्मूला] है अपने ही घर में, बगीचे से लाये गये हरे-हरे कच्चे आमों व पके, सुनहले नींबूओं से अचार बनाने का। हर पैक के साथ दिये निर्देशों का पालन कीजिए और बढ़िया अचार बनाइए। फिर आप और आपके परिवार के लोग अचार के साथ उंगलियाँ न खा जाएँ तो कहना

और हाँ, आप भी ये अचार उतना ही बढ़िया खुद बना सकती हैं, जितना बेडेकर बनाते हैं...और वह भी बड़ी आसानी से हँसते-मुसकराते! बेडेकर के 'रेडी मिक्स्ड पिकल स्पाइसेज' [अचार का मसाला] ले आइए और आप खुद ही अचार बनाकर देखिए।

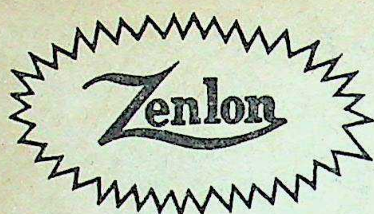


Vasant/VPB/8-76

बेडेकर

बम्बई-४

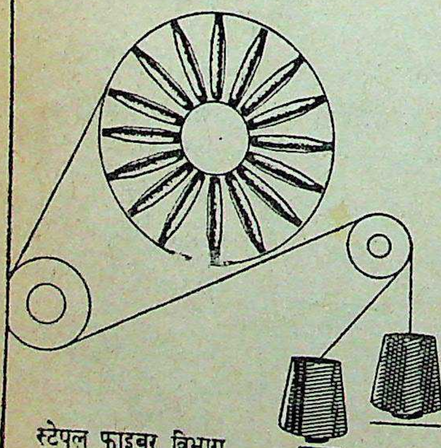
बेडेकर मसाले | बेडेकर अचार | बेडेकर पापड | बेडेकर चटनी | बेडेकर मसाले | बेडेकर अचार



विविध किस्मों के प्राकृतिक, रासायनिक व मानव निर्मित

बुनाई के सूत

परदे, गद्दियां व कवर बनाने के लिए मुलायम और बहुरंगी • क्रोशेसेटों के लिए सुंदर और चमकदार • वसन्त में लचीले और नमीसोख



स्टेपल फाइबर विभाग

विरला ज्यूट मैन्युफैक्चरिंग कं. लि.

९/१ आर. एन. मुकर्जी रोड
कलकत्ता–७०० ००१



उच्च स्तर के प्रति अनन्य नि
के लिए सुविख्यात

जेनिथ स्टील पाइ
एंड इंडस्ट्रीज लि

१९५, चर्चगेट रिक्लेमेशन
बंबई–४०० ०२०

फोन : २९४४५, टेलेक्स: ०११-
ग्राम : ZENPIPES

अत्युत्तम स्टील पाइपों, औद्यो
छुरियों और विशेष फौलाद
निर्माता।

अगर
सरद

...ई एक सेरिडो
...ही सरदर्द ज
...न हो जाता
...र आप फिर
...स्त और तरो
...जाते हैं. लेकि
...भी सरद
...तेज और

श

डायमंड पाकेट बुक्स में

लोकप्रिय लेखकों के रोचक उपन्यास...



लोकदर्शी का नया उपन्यास
दासी
मूल्य ४/-



राहुल का नया मर्मस्पर्शी उपन्यास
दो भाई
मूल्य ४/-



चेतना का रोमांटिक उपन्यास
परछाईं

- श्रावणी (ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त आशापूर्णा देवी की बहुचर्चित कृति) मूल्य ४/-
- जूडो—कैराटे बाक्सिंग, कुंगफू कैसे सीखें मूल्य ४/-



प्रेम बाजपेयी का हृदयस्पर्शी उपन्यास
जले पंख
मूल्य ३/-



इंस्पेक्टर गिरीश का रोंगटे खड़े कर देने वाला खौफनाक जासूसी उपन्यास
भटकती आत्मा मूल्य ३/-

- मूल्य प्रति २/५० रु.
- आपके बच्चों का मन लुभाने वाले रंगीन आवरण से सुसज्जित चित्रमय कथानक **डायमंड कामिक्स**

चाचा भतीजा सीरीज में —
चाचा भतीजा और जादुई चिराग
चाचा भतीजा और खतरनाक जादूगर

फौलादी सिंह सीरीज में —
लम्बू मोटू मुर्दों की बस्ती में
लम्बू मोटू स्मगलरों के बीच

मामा भांजा सीरीज में —
मामा भांजा और चतुर खरगोश
मामा भांजा और चतुर गीदड़

लम्बू मोटू सीरीज में —
फौलादी सिंह और लौह मानव
फौलादी सिंह और विचित्र अण्डा

...के बच्चों के लिए बाल ... उपन्यास —
...चोर (एस.सी बेदी) २-००
...चेहरा " " २-००
... " " २-००
...का ... " " २-००

अपने निकट के बुक-स्टाल से खरीदें या हमें लिखें :

डायमंड पाकेट बुक्स

२७१५, दरिया गंज, नई दिल्ली-११०००२

LINKED WITH THE COUNTRY'S PROGRESS FOREVER!

Our close communication with colour for over two decades has created a fantastic range of high-quality Dyes and Pigments extensively used in every industry.

Textiles, Paints, Coir and leather, Printing inks and plastics...all rely on our fast, easy-to-use and economical Dyes. Amar Dye-Chem's colour know-how continues to enrich the nation, the world.



– to enrich india's life with colour!



AMAR DYE-CHEM LTD.

RANG UDYAN MAHIM, BOMBAY-400 016

BRANCHES: AHMEDABAD • CALCUTTA • DELHI • AMRITSAR • JAIPUR • MADRAS • MADURAI

MIRAT/ADC/203-A2

अपने लेखकों से

श्री संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कैसी रचनाएं लेते हैं? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये:

क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुरुचि को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।

ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बर्तो मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।

ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कलां के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।

* लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।
* रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सधे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।
* रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।
* रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

संपादक—नवनीत हिंदी डाइजेस्ट
नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई—३४



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त
सहसंपादक
सुरेश सिन्हा
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक .... महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक ६ | जून १९७९

इस अंक में

चित्रसज्जा : ओके, शेणै, श्यामनि, राणा, शरद कांबळी।



वह भी एक दिन था, जब अपने बारे में इस प्रकार विस्तारपूर्वक लिखने के ब... सोचा था कि कभी जब मैं अपनी आत्मकथा लिखूंगी तो केवल दस पंक्तियों में लिखूं... और वे पंक्तियां मैंने कागज पर लिखकर रख ली थीं। वे पंक्तियां आज भी मेरे सामने हैं...

'मेरा लेखन–चाहे वह कविता हो, चाहे गद्य–एक गैरकानूनी बच्चे की तरह है।

'मेरी दुनिया की हकीकत ने मेरे मन के सपने से इश्क किया और उनके वर्जित मि... में से इस लेखन ने जन्म लिया।

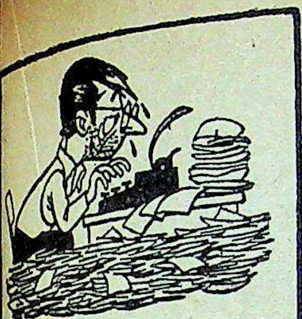
'मैं जानती हूं, एक गैरकानूनी बच्चे की किस्मत इस लेखन की भी किस्मत है, औ... यह लेखन जीवन-भर अपने साहित्यिक समाज के माथे पर त्योरियां देखता रहेगा।

'मन का सपना क्या था, कौन था, इसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं है।... कमबख्त बहुत हसीन होगा, और व्यक्तिगत जीवन से लेकर संसार-भर की बेहतरी की बा... करता होगा। ...... तभी तो हकीकत अपनी औकात को भूलकर उससे इश्क... बैठी।...... और तब जिस लेखन ने जन्म लिया, वह लावारिस बना हमेशा कुछ कागजों... भटकता रहा।......'

आज भी मेरा विश्वास है कि ये दस पंक्तियां मेरी पूरी आत्मकथा हैं। –अमृता प्रीतम



श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ११/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-वृष्टि

मई अंक कल ही प्राप्त किया और उसे पढ़ते-पढ़ते ही आपको जल्दी से खटखटाने की उमंग हो आयी। 'जयप्रकाशजी को हम क्यों जिलाये रखना चाहते हैं' शीर्षक आपकी टिप्पणी पढ़कर मुझे बहुत अच्छा लगा। अपने ही मन की बात थी। जान ... के लेख का चुनाव भी आपने खूब किया। श्री कोइराला का उपन्यास मुझे पूरा पढ़ा होगा। पर जितना पढ़ा है, उसके लिए साधुवाद कैसे न दूं! यह महज उपन्यास नहीं है। संत सुंदरसिंह के बारे में भी जानकारी यहीं से मिली मुझे। पूज्य दद्दा का संस्मरण भी पढ़ गया हूं। तेजनारायण ... का 'सृष्टिगीत' अच्छा अनुवाद है। ... का संस्मरण (धुंधली-सी याद है कि कहीं पढ़ा है) भी बहुत दिलचस्प है। अभी इतना ही पढ़ पाया हूं। पूरे तीन दिन का मसाला है। **–रमेशचंद्र शाह, अलमोड़ा**

हम तो श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला को जाने-माने राजनेता के रूप में ही जानते थे। पर आपके द्वारा प्रकाशित 'सुम्निमा' (संक्षिप्त अनुवाद) ने नयी बात जनायी। **नवनीत** में १९६७ में छपे 'सौंदर्य-लोक का सिरजनहार' (मूल: 'एगोनी एंड एक्स्टेसी', अर्विंग स्टोन) और १९६८ में छपे 'पौलस्त्य' (श्रीनिधि सिद्धांतालंकार) के बाद 'सुम्निमा' वैसी ही हृदयग्राही चीज है—कभी न भूलने वाली चीज।

पर यह तो बताइये, तीसरी किस्त के वास्ते अपनी अधीरता कैसे संभालूं! अभी मई आधी ही गुजरी है। उसे जून बनने में बहुत समय है। **–रामकृष्ण, लखनऊ**

०००

नि:संदेह 'सुम्निमा' एक उपलब्धि है—चिंतन और लेखन दोनों दृष्टियों से।

–वेदानंद झा शास्त्री, दिल्ली–६

०००

अप्रैल अंक में डा. इन्द्रनाथ चौधरी का 'अज्ञेय से साक्षात्कार' अच्छा लगा। इसी तरह श्री हरिवंश राय बच्चन, श्रीमती महादेवी वर्मा आदि के भी साक्षात्कार करवायें।

–विष्णुकुमार अग्रवाल, कलकत्ता-२

०००

दिसंबर १९७८ के अंक में अपनी अनूदित पुस्तक 'गोपबंधु दास' पर श्री कुमार प्रशांत की समीक्षा पढ़ी। पुस्तक श्री रामचन्द्र दास ने मूलत: अंग्रेजी में ही लिखी थी, न कि उड़िया में और अनुवाद अंग्रेजी से ही किया गया था। समीक्षक ने एक स्थल पर लिखा

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से : एक वर्ष : ६० रु., दो वर्ष : १०५ रु., तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३००रु.; एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

है—'प्रस्तुत पुस्तक म गोपबंधु के जीवन के तथ्यों का वर्णन अधिक है, जीवंतता कम है। शायद अनुवाद होने के कारण ऐसा लगता हो। परंतु यह चीज इस पुस्तकमाला के मूल उद्देश्य की पूर्ति में बाधक होती है।'

वर्णन में जीवंतता का अभाव अनुवाद का दोष कैसे हो सकता है? अनुवादक तो मूल के प्रति पूरी निष्ठा रखते हुए ही उसे दूसरी भाषा में उतारने का यत्न करता है। साथ ही इस पुस्तकमाला का मूल उद्देश्य चरित-नायक के जीवन को उसके सामाजिक, राजनैतिक संदर्भ में प्रस्तुत करना है; और मैं समझता हूं कि लेखक ने गोपबंधु के जीवन के हरएक पहलू को बड़ी सफलता के साथ पाठकों के समक्ष रखा है।

—नूर नबी अब्बासी, दिल्ली-६

०००

अप्रैल अंक में उर्मि कृष्ण के लेख 'यात्रा-व्यथा' में व्यथा सचमुच ही कहीं-कहीं व्यथित करती है। परंतु अंधेरे में छोड़े गये तीर और प्रकृत सत्य का अपरिचय कई जगह जानकार पाठक को व्यथित क[रते] हैं। कुछ बातें यों हैं :

* आसाम मेल रात को लगभग [..] बजे असम में प्रवेश करती है और सुबह [..] के लगभग गौहाटी पहुंचती है।

* कामाख्या में और तीर्थों की [तरह] पंडे सौदेबाजी नहीं करते हैं। मंदिर-[दर्शन] पंक्तिबद्ध होकर करना पड़ता है।

* टाइगर हिल (दार्जिलिंग) से हि[मा]लय की पूरी बर्फीली शिखर-शृंखला दि[खाई] दे जाती है। कंचनजंघा की कुछ चो[टियां] कर्सियांग से ही देखी जा सकती है। [जिस] दृश्य को देखने के लिए पर्यटक टाइगर हि[ल] जाते हैं वह है—हिमालय की बर्फीली चोटि[यों] पर सूर्य की सतरंगी किरणों की छटा [और] प्राची में सूर्योदय का अपूर्व रूप। [इस] अवलोकन का सही मौसम है दीवाली [के] आस-पास का समय। परंतु तब भी मौस[म] स्वच्छ हो, तभी दर्शक कृतकार्य होता है।

* सन १९७७ की २५-२६ दिसंबर [को] भारी हिमपात के कारण दार्जिलिंग [का] संबंध सारे देश से कट गया था।

—बब्बन शुक्ल, कर्सियांग-दार्जिलि[ंग]

०००

श्री मुनि शीलचन्द्रविजयजी का ऐति[]हासिक निबंध 'क्या अजातशत्रु पितृह[न्ता] था?' (अप्रैल अंक) पढ़ा। रचना अन[ेक] ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करती है। यह सराहनीय बात है। फिर भी लेखक [ने] अजातशत्रु की पितृहत्या के संबंध जो सफा[ई] पेश की है, विधिशास्त्र की दृष्टि से बचा[व] ...

...लगती है। हत्या का मतलब किसी ...तलवार से काट देना या गोली मारकर ...की जान ले लेना ही नहीं है; किसी ...भूखों तड़पाकर या त्रास देकर भी हत्या ...जा सकती है। इस दृष्टि से अजातशत्रु ...ने पिता की हत्या का पूरा प्रयास कर ही ...था। जब उसके विचारों में परिवर्तन ...और वह प्रायश्चित्त के लिए तत्पर ..., तब तक उसके उस प्रयास का परि... लगभग निकल चुका था। श्री मुनिजी ...लिखते हैं कि बिंबिसार ने अपने पुत्र के ...रूप को देखते ही भय से आत्महत्या ...ली। उसकी यह आत्महत्या भी हत्या ...है, क्योंकि उसका मूल कारण अजातशत्रु ...न कि बिंबिसार की स्वेच्छा। इसलिए ...भाषा में यह कहना कि अजातशत्रु ...था, गलत नहीं प्रतीत होता। हां, ...शत्रु की संतान के संबंध में मतभेद ...सकता है। —महारुद्र मिश्र, ग्रा. बलिया, पो. तीसीनरसाम, जि. मधुबनी, बिहार

○○○

...ने लेख 'भारत का पहला पितृहंता ...' के प्रत्याख्यान में श्री मुनि ...चंद्रविजयजी का लेख 'क्या 'अजात...शत्रु पितृहंता था?' (नवनीत, अप्रैल १९-...) पढ़ा। श्री मुनिजी अजातशत्रु को ...पितृघात के कलंक से तो नहीं बचा पाये, ...अनेक निराधार और तर्कहीन बातें ...गये, जिनका निराकरण आवश्यक है। ...अजातशत्रु के विषय में स्वयं मुनिजी ...कहते हैं कि उसने राज्यलोभ से अपने पिता

कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा भी न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेजकर मंगवायी जा सकेगी। —संपादक

बिंबिसार को कैद किया था, वह उसे प्रति दिन सौ कोड़े मारता था और उसे (अजातशत्रु को) कुल्हाड़ी लेकर आते देखकर ही बिंबिसार ने आत्महत्या कर ली थी। क्या किसी की हत्या करना, कराना या किसी को आत्महत्या के लिए विवश करना लगभग एक ही बात नहीं है?

अजातशत्रु का पुत्र उदयन (उदाई या उदाईभद्द) पक्का जैन था; इसीलिए जैन ग्रंथों ने उसे भी कलंक से बचाना चाहा है। स्वयं मुनिजी पहले तो कहते हैं कि उसकी मृत्यु दिग्विजय-यात्रा के दौरान हुई, फिर अनिश्चय ग्रस्त होकर कहते हैं—'उसकी मृत्यु या तो स्वाभाविक स्थिति में हुई अथवा उसकी हत्या की गयी।' दोनों कथनों में से किसे प्रमाण माना जाये?

केवल डा. त्रिभुवनदास ल. शाह के अनुमान को आधार मानकर मुनिजी मुंड द्वारा अनिरुद्ध की हत्या को अस्वीकार कर देते हैं। पर इतिहास में बिना तर्क या आधार के

अनुमान नहीं लगाये जाते। ऐसे तर्क के अभाव में मुनिजी किसी भी राजा को निर्दोष नहीं सिद्ध कर पाये हैं।

न तो सभी जैन साक्ष्य अविश्वसनीय हैं, न सभी बौद्ध साक्ष्य ही पूर्ण विश्वसनीय; परंतु उनमें दिये गये विवरण यदि अन्य स्रोतों से तथा संबंधित घटनाओं के पौर्वापर्य से मेल खाते हैं तो उन्हें प्रामाणिक स्वीकार किया जाता है। इस दृष्टि से तत्कालीन इतिहास को जानने के लिए बौद्ध साहित्य सामान्यतया जैन साहित्य से अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है—विशेषतः पालि साहित्य और उसमें भी श्रीलंका का पालि ग्रंथ 'महावंस'। उसमें अजातशत्रु और उसके पूरे वंश को पितृघातक कहा गया और यह भी कि 'उस वंश को पितृघातक वंश जानकर सभी नागरिकों ने क्रोधित होकर नागदासक को गद्दी से हटा दिया और शिशुनाग नाम से प्रसिद्ध सम्माननीय अमात्य को सबके हित के लिए राज्य पर अभिषिक्त किया।'

यह शिशुनाग न बिंबिसार के वंश का था, न पहले काशी का राजा था, जैसा कि श्री मुनिजी समझते हैं। वह वैशाली की एक नगरशोभिणी (वेश्या) का पुत्र था और नागदासक के शासन में काशी का राज्यपाल (अमात्य) था। शिशुनाग बिंबिसार से पहले नहीं बाद में हुआ, यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है।

श्री मुनिजी ने बिंबिसार को प्रसेनजित् का एक बेटा बताया है। प्रसेनजित् मगध का नहीं, कोसल का राजा था (रा… प्रसेनजित् कोसलो – भरहुत-अभिलेख)। उसने अपनी बहन कोसलदेवी का वि… मगध-नरेश बिंबिसार से किया था (संयुक्त निकाय)। इस प्रकार बिंबिसार प्रसेनजित् का बहनोई था, पुत्र नहीं।

अश्वघोष ने राजगृह को 'बिंबिसारपुरी' कहा है। यों भी कोसल का राजा प्रसेनजित् मगध की राजधानी का निर्माण क्यों करवाता?

श्री मुनिजी ने लिखा है कि पितृशोक में अजातशत्रु ने पिता के मृत्युस्थान को छोड़कर चंपा को अपनी राजधानी बनाया। वस्तुतः अंग को जीतकर मगध का प्रांत बना लेने के बाद बिंबिसार ने अजातशत्रु को उस प्रांत का राज-प्रतिनिधि या राज्यपाल बनाया था (चंपायं कुणीको राजा बभूव—भगवतीसुत्त)। परंतु पिता को कैद करने और मगध का राजा बनने के बाद वह राजगृह में ही रहा। वहीं वैभार गिरि की सप्तपर्णि गुफा में उसने प्रथम बौद्ध संगीति के आयोजन की व्यवस्था की थी।

श्री मुनिजी का (केवल डा. त्रिभुवनदास शाह की पुस्तक के आधार पर) यह कहना कि रानी क्षेमा के बिंबिसार की इच्छा के विपरीत बौद्ध दीक्षा ले लेने से वह (बिंबिसार) बौद्ध धर्म छोड़कर जैन बन गया, कोरी कल्पना है। वास्तव में, जैसा कि मुनिजी ने भी माना है, बिंबिसार उदार-धर्मा राजा था। उसकी एक रानी चेल्हणा की बुआ (त्रिशला) महावीर की मां थीं, शायद इसलिए बिंबिसार भी जैनधर्म की

ओर अभिमुख था। परंतु जीवन के अंत तक वह बौद्ध धर्म का ही अनुयायी रहा। राइस डेविस की पुस्तक 'बुद्धिस्ट इंडिया' के एक उद्धरण से मुनिजी ने यह सिद्ध करना चाहा है कि भरहुत स्तूप बौद्ध स्तूप था ही नहीं, इस कारण 'अजातसत्तू भगवतो वंदिते' से यह प्रमाणित नहीं होता कि अजातशत्रु बाद में भी बौद्ध बना रहा। वस्तुतः स्वयं राइस डेविस भरहुत को बौद्ध स्तूप मानते हैं।

अजातशत्रु भले बौद्ध भिक्षु न बना हो, परंतु बौद्ध धर्म से उसका अनुराग था। पितृहत्या के बाद उसका पश्चात्तापपूर्वक बुद्ध की शरण में जाना (महापरिनिब्बान सुत्त तथा भरहुत-अभिलेख), बुद्ध के अवशेष पाने के लिए उसका कुशीनगर के मल्लों पर आक्रमण करना (म.प. सुत्तंत तथा सांची का दक्षिणी तोरण-फलक), बाद में उन अवशेषों पर राजगृह में स्तूप बनवाना (महावंस), प्रथम बौद्ध संगीति के आयोजन का भार उठाना (सुमंगलविलासिनी) आदि से यह प्रमाणित होता है। 'बुद्धिस्ट इंडिया' का लेखक भी यही मानता है (देखिये बुद्धिस्ट इंडिया, तृ. सं., कलकत्ता, १९५७, पृ. ७-८)। वस्तुतः श्री मुनिजी ने उस ग्रंथ के विचारों को तोड़-मोड़कर रखा है।

कैम्ब्रिज हिस्टरी (द्वि. सं., १९६२, पृ. १६३) में कहा गया है—'इस घटना (बिंबिसार की मृत्यु) के विवरण सत्य हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं, परंतु अपने पुत्र अजातशत्रु के हाथों बिंबिसार की हत्या एक ऐतिहासिक तथ्य है।'

कनिंग्हम, बरुआ आदि की स्वतंत्र पुस्तकों ने ही नहीं बल्कि श्री मुनिजी ने जिन पुस्तकों का सहारा लिया है उन्होंने भी भरहुत स्तूप को बौद्ध ही माना है। क्या श्री मुनिजी बता सकेंगे कि यदि यह जैन स्तूप है तो उस पर बौद्ध जातक कथाएं क्यों अंकित हुईं?

भरहुत स्तूप की कलाशैली तथा उस पर अंकित अभिलेख (सुगानं रजे) पर से विद्वानों ने उसे शुंगकालीन माना है। श्री मुनिजी को शायद 'अजातसत्तू भगवतो वंदिते' अभिलेख से उसे अजातशत्रु द्वारा निर्मित (छठीं-पांचवीं शती ई. पू.) कहने की प्रेरणा मिली है।

भरहुत इलाहाबाद-जबलपुर रेलमार्ग पर स्थित सतना (म. प्र.) के निकट था। उसे चंपा अर्थात् भागलपुर (बिहार) के निकट बताना और महावीर स्वामी की कैवल्यप्राप्ति की स्मृति में निर्मित कहना आश्चर्यकारी और निराधार है।

—डा. अ. ला. श्रीवास्तव, इलाहाबाद

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४
फोन : ३७२८४७
व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग, ३३९, बेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४ फोन : ३९२८८७

जासूसी उपग्रह किराये पर

• हरिशंकर •

जो कुटिल काम अभी केवल अमरीका और रूस करते हैं, हो सकता है कि कुछ ही वर्ष बाद एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के भी कई देश भी करने लगें। वह काम है–जासूसी उपग्रहों द्वारा दूसरे देशों के रहस्यों का पता लगाना। इसके लिए उन्हें अपने यहां अंतरिक्ष-विज्ञान का विकास करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। उन्हें जासूसी उपग्रह किराये पर मिल जायेंगे पश्चिम जर्मन की एक व्यापारिक फर्म ओट्राग (OTRAG) से। किराया होगा सिर्फ ६ करोड़ रुपये !

ओट्राग उनके लिए जासूसी उपग्रह अफ्रीका महाद्वीप से छोड़ेगा। इसके लिए उसने अफ्रीकी देश जेरे के शाबा (कटांगा) प्रांत में एक अंतरिक्ष-अड्डा भी बनाया है, जो भूमध्य-रेखा पर स्थित एक पहाड़ पर कायम किया गया है। पहाड़ ४,००० फुट ऊंचा है और ऊपर से बिलकुल मेज की तरह सपाट। यह स्थान राकेट छोड़ने के लिए आदर्श स्थान बताया गया है। कारण, यहां बादल, धुंध आदि की समस्या नहीं है। (अमरीका के केनेडी अंतरिक्ष-अड्डे में यह समस्या इतनी उग्र है कि इसी कारण कई बार उपग्रह छोड़ने की तारीखें बदलनी पड़ जाती हैं।) इससे भी महत्त्व की बात यह है कि भूमध्य-रेखा पर से छोड़े गये राकेट को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से छूटने में सुविधा होती है; क्योंकि पृथ्वी की अक्षीय गति से उसे 'धक्का' मिलता है।

जेरे के राष्ट्रपति मोबुटु ने यह स्थान ओट्राग को पट्टे पर दे दिया है। वस्तुतः उन्होंने केवल यह स्थान ही नहीं, बल्कि शाबा (कटांगा) प्रांत का लगभग एक लाख वर्ग किलोमीटर इलाका ओट्राग को सौंप दिया है। पट्टे की शर्तें सचमुच चौंका देने वाली हैं:

धारा १: इलाके पर ओट्राग का पूर्ण वर्चस्व होगा और उसे उसके उपयोग और उपभोग का अबाधित अधिकार रहेगा; केवल ओट्राग के प्रतिनिधि इलाके पर से उड़ान भर सकेंगे।

धारा २: ओट्राग के किसी भी प्रतिनिधि पर जेरे सरकार किसी भी तरह की कार्रवाई नहीं कर सकेगी। कर्मचारियों पर केवल ओट्राग का अनुशासन होगा।

धारा ३ : ओट्राग जिन्हें अनुमति दे, केवल वे लोग इस इलाके में रह सकेंगे। ओट्राग के कहने पर बाकी सब लोगों को इस इलाके से हटाने और दूर रखने को जेरे सरकार वचनबद्ध रहेगी।

यही नहीं, किसी भी कारण से मोबुटु सन २००० तक पट्टे को रद्द नहीं कर सकेंगे।

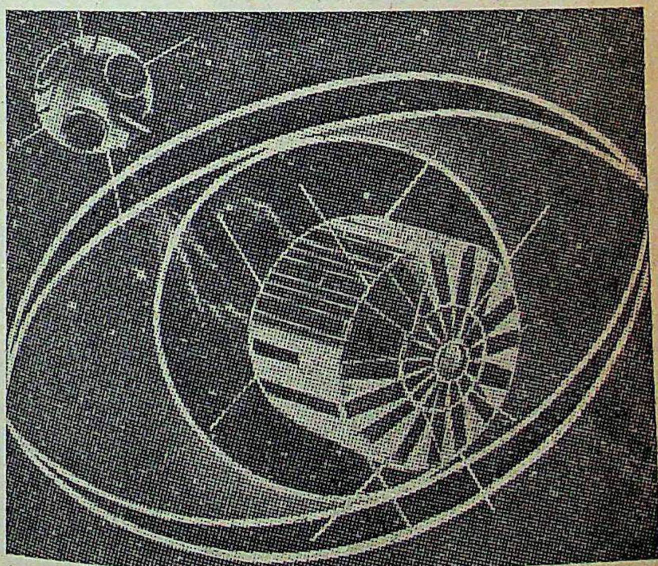
इस तरह राष्ट्रपति मोबुटु ने बहुमूल्य खनिज-संपदा से लबालब भरे इस इलाके की लगभग १२।। लाख कबाइली प्रजा को ओट्राग का गुलाम बना डाला है और ओट्राग इसका पूरा-पूरा लाभ उठा रहा है। अंतरिक्ष-अड्डे पर जो अफ्रीकी मजदूर-टोलियां काम करती हैं, उन्हें मजदूरी में चंद किलोग्राम मक्का और कभी-कभार एक मरी गाय दे दी जाती है; ये मजदूर काम छोड़कर भी नहीं जा सकते। जर्मन कर्मचारी अलबत्ता खूब ठाट से रहते हैं और ऐश करते हैं।

बदले में मोबुटु को ओट्राग से क्या मिलने वाला है?

क. सालाना २५ लाख पौंड किराया। (मगर किराये का भुगतान तब आरंभ होगा, जब ओट्राग पहला उपग्रह छोड़ चुकेगा; और पहले उपग्रह के छूटने में अभी पांच साल का समय लग सकता है। किराया जेरे के सिक्कों में चुकाया जायेगा; और जेरे में इस समय ८० प्रतिशत सालाना के हिसाब से मुद्रास्फीति हो रही है।)

ख. जेरे के लिए ओट्राग एक जासूसी उपग्रह मुफ्त में छोड़ेगा।

अविश्वसनीय प्रतीत होने वाला यह समझौता जिन महाशय की मध्यस्थता से हुआ, वे हैं पश्चिम जर्मनी के एक महाजन फ्रेडरिक वेइमार। यह नाम आपको कुछ परिचित-सा लगे तो कोई आश्चर्य नहीं। ये वही सज्जन हैं, जिन्होंने कुछ वर्ष पूर्व जेरे में मुहम्मद अली और फोरमन के बीच मुक्केबाजी का मुकाबला कराया था और



ओट्राग के उपग्रह की शक्ल—चित्रकार की कल्पना।

The New York Times Magazine



PRESIDENT MOBUTU PRESENTS

GEORGE

FOREMAN

★★ VS. ★★



MUHAMMAD

ALI

IN

THE FIGHT TO PUT ZAÏRE ON THE MAP

Contents Page 25

जेरे में मुहम्मद अली और फोरमन के बीच हुआ बहुचर्चित और मुनाफादेह मुक्केबाजी-मुकाबला वेइमार ने आयोजित किया था। करोड़ों रुपये कमाये थे। मगर उनका कहना है कि इस बार उन्हें कानी कौड़ी भी नहीं मिली है और यह सौदा उन्होंने 'महज दोस्ती की खातिर' कराया है।

निश्चय ही राष्ट्रपति मोबुटु से फ्रेडरिक वेइमार की गहरी दोस्ती है। उसी तरह पश्चिम जर्मनी के लगभग सभी दक्षिणपंथी राजनीतिज्ञों से भी उनकी गाढ़ी छनती है। जब फ्रांज जोसेफ स्ट्रास पश्चिम जर्मनी के रक्षामंत्री थे, उन्होंने वेइमार की मार्फत राष्ट्रपति मोबुटु को पश्चिम जर्मनी की राजकीय यात्रा पर बुलाया था और पानी की तरह पैसा बहाकर उनका भव्य स्वागत और आतिथ्य किया था। मूल उद्देश्य था अफ्रीका में बढ़ते साम्यवादी प्रभाव की रोकथाम के लिए मोबुटु का उपयोग करना।

तीसरी दुनिया के राष्ट्रों को किराये पर जासूसी उपग्रह मुहैया करने को तत्पर इस पश्चिम जर्मन व्यापारिक संस्था ओट्राग के अध्यक्ष हैं लुत्स कैसर, जो अभी पैंतालीस से भी कुछ कम ही उम्र के हैं। बड़े कुशल संयोजक हैं वे। जब वे अभी स्टटगार्ट में विज्ञान-छात्र थे, तभी उन पर यह धुन सवार हो गयी कि अमरीका और रूस की तरह बेतहाशा पैसा बहाये बिना भी राकेट बनाना संभव होना चाहिये और उस दिशा में शोध किया जाना चाहिये। आगे चलकर उन्होंने इस दिशा में शोधकार्य करने के लिए एक कंपनी स्थापित की, जिसे उनके देश की सरकार ने ३।। करोड़ रुपये का शोध-अनुदान फौरन दे दिया। यही कंपनी आगे चलकर ओट्राग बनी।

ओट्राग में ज्यादातर पूंजी लगी है पश्चिम जर्मनी के उद्योग-संस्थानों की। उस देश के एक आर्थिक नियम ने ओट्राग के लिए पूंजी जुटाना आसान बना दिया। वहां पर यह नियम है कि शोधकार्य में जितनी पूंजी कोई लगाये, उसे उतना घाटा किसी और मद में दिखाने का अधिकार मिल जाता है। लुत्स कैसर ने सरकार को इस बात के लिए पटा लिया कि ओट्राग में शोधपूंजी लगाने वालों के लिए घाटे की छूट २६० प्रतिशत तक हो, यानी ओट्राग में १,००० रुपये की शोधपूंजी लगाने वाले को २,६०० रुपये का घाटा दूसरी जगह एड्जस्ट करने की छूट रहे।

ओट्राग के राकेट में एक मूल घटक है।

उसमें दो ट्यूब रहती हैं। एक में आक्सी-कारक तत्व भरा होता है; दूसरे में डीजल ईंधन। दोनों का मिलन होने पर वे सुलग उठते हैं और राकेट छूटता है। ईंधन के निकास-मार्ग का नियंत्रण किया जाता है कार के विंडशील्ड वाइपर की मोटर से! परंपरागत राकेट की तरह इसमें एक के ऊपर एक खंड नहीं जमाया गया है; बल्कि यह अनेक घटकों का बड़ा-सा बंडल है। (देखिये–पृष्ठ २१) राकेट को जितना अधिक वजन ढोना हो, उतने अधिक घटक उसमें रहेंगे।

पहले राकेट का बाहरी छल्ला सुलगाया जायेगा, जिससे उसमें से दूसरा स्टेज छूटेगा। फिर दूसरे स्टेज में से छूटेगा अंतिम स्टेज। अभी तो केवल अंतिम स्टेज को छोड़कर देखा गया है। तीन बार इसके परीक्षण हुए। पहली बार तो सफलता नहीं मिली; मगर शेष दो बार अंतिम स्टेज ३० मील की ऊंचाई तक निर्विघ्न चला गया।

एक जर्मन विज्ञानी वूल्फगांग पिल्स का कहना है कि ओट्राग के इस राकेट में नया कुछ भी नहीं है। द्वितीय विश्वयुद्ध के आखिरी दिनों में हिटलर ने वैज्ञानिकों को ऐसा राकेट बनाने पर लगा रखा था, जो वी-२ जितना खर्चीला न हो और जिसे बड़े पैमाने पर तैयार किया जा सके। तब इस उद्देश्य से 'वाटरफाल' नाम का जो राकेट विकसित किया जा रहा था, उसी का अनुकरण ओट्राग के राकेट में किया गया है।



जेरे के राष्ट्रपति मोबुटु

पिल्स की बात पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। उन्होंने हिटलर के वी-२ राकेट पर काम किया था। बाद में राष्ट्रपति नासर ने इस्रायल के विरुद्ध राकेट तैयार करने के लिए उन्हें मिस्र बुलाकर रखा। आजकल वे पश्चिम जर्मनी में छिपकर रहते हैं–छिपकर इसलिए कि कहीं इस्रायली आतंकवादी उन्हें मार न डालें।

हिटलर के ही राकेट-विज्ञानियों में से एक थे डा. कुर्ट डेबुस, जो वी-२ योजना में डा. वर्न्हेर वान ब्राउन के मुख्य सहायक थे। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर उन्हें भी जबरन अमरीका ले जाया गया। वे वहां के नागरिक बन गये और डा. वान ब्राउन के मुख्य सहायक रहे, फिर केप केनेडी अंतरिक्ष-अड्डे के अध्यक्ष बनाये गये। अब वे निवृत्त हो गये हैं और ओट्राग के चेयरमैन हैं। ओट्राग की राकेट-योजनाओं पर वे अक्सर लीपापोती करते रहते हैं।

मगर ओट्राग के अध्यक्ष लुत्स कैसर यह बात खुल्लमखुल्ला कबूल करते हैं कि ओट्राग का उद्देश्य 'तीसरी दुनिया' की सरकारों की ओर से जासूसी उपग्रह छोड़ना है, ताकि ये राष्ट्र अपने शत्रुओं की सैनिक हलचलों पर नजर रख सकें। अभी यह सुविधा केवल अमरीका और रूस के पास है। लुत्स कैसर की राय में 'यह जरूरी है कि यह सुविधा समस्त देशों को प्राप्त हो, ताकि जासूसी जानकारी का संतुलन बना रहे।'

रूस ओट्राग की गतिविधियों से बहुत चिंतित है। जब जेरे के अंतरिक्ष-अड्डे से पहला राकेट छोड़ा गया, तो रूस ने फौरन दो नये जासूसी उपग्रह छोड़े, ताकि ओट्राग के अड्डे के विस्तृत फोटोग्राफ लिये जा सकें। उसने राष्ट्रसंघ में भी इस मामले में आवाज उठायी। उसका आक्षेप है कि ओट्राग अमरीका में अमरीका की आर्थिक और तकनीकी मदद से खड़ा किया गया है और उसका उद्देश्य अमरीका के लिए महत्त्वपूर्ण सैनिक जानकारी जुटाना है। इन सब बातों से पश्चिम जर्मनी के प्रधान-मंत्री हेल्मुट श्मिट बहुत परेशान हैं और ओट्राग के पर कतरने की फिराक में हैं। पर अभी तक तो इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली है।



श्रद्धांजलियां

हिंदी साहित्य के महारथी सर्जक साहित्यकार, उद्भट समालोचक; भारतीय संस्कृति के प्रवीण और प्रौढ अध्येता एवं व्याख्याता तथा जीवन में उसके निदर्शन-स्वरूप; विश्व भारती, काशी हिंदू विश्वविद्यालय और पंजाब विश्वविद्यालय (चंडीगढ़) में हिंदी के आचार्य; हिंदी ग्रंथ अकादमी (लखनऊ) के उपाध्यक्ष; नागरी प्रचारिणी सभा (काशी), हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत; कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के स्नेहपात्र सहयोगी, रवीन्द्र-साहित्य के रसज्ञ पाठक और अनुवादक; कबीर के मर्मज्ञ और प्रामाणिक टीकाकार; हिंदी साहित्य के इतिहास के नवीन उद्भावक; उत्तम कथा-साहित्य की रचना के माध्यम से नूतन-पुरातन की समन्वयी जीवन-दृष्टि के पुरस्कर्ता; भाषण और संभाषण-कला में कुशल; संस्कृत-हिंदी-बंगला साहित्यों के अधिकारी विवेचक; भरे-पूरे परिवार और अति विशाल एवं विशिष्ट शिष्यवृंद के श्रद्धेय तथा वत्सल गुरु; सबके स्नेही एवं उपकारी विप्र आचार्य **हजारीप्रसाद द्विवेदी** को नवनीत-परिवार की श्रद्धांजलि।

[देहांत : १९ मई १९७९; आयु : ७२ वर्ष]

हिंदी वाङ्मय की समृद्धि के लिए आजीवन प्रयत्नशील, सुलेखक एवं समाजसेवी, 'सस्ता साहित्य मंडल' के भूतपूर्व कर्मठ सचिव **श्री मार्तंड उपाध्याय** को श्रद्धांजलि।

[देहांत : २ मई १९७९; आयु : ७० वर्ष]



काम करो आराम से

चंद्रकांत

सोवियत संघ के ईस्तोनिया गणतंत्र के कोहत्लाजरेव शेल प्रोसेसिंग कारखाने की एक विशेषता यह है कि उसमें काम के घंटे कर्मचारियों की सुविधा के अनुसार रखे गये हैं।

डिजाइन-इंजीनियरी से संबंधित काम देर से शुरू होता है; इसलिए डिजाइन-इंजीनियर अगर आध घंटे देर से आये तो भी चलता है; शाम को आधा घंटा देर से घर जायेगा। हिसाब-किताब तथा अन्य कई विभागों के लिए भी काम के घंटों की ऐसी ही लचीली व्यवस्था की गयी है।

दिन में कुल कितने घंटे काम करना है, यह निश्चित है, परंतु कर्मचारियों को छूट है कि वे आफिस या प्रयोगशाला में ७, ८, ९ बजे-जब चाहें आ सकते हैं। शाम को काम बंद करने का समय भी ऐसा ही लचीला रखा गया है। दोपहर को घंटा-भर भोजन की छुट्टी होती है। पर कर्मचारी डेढ़-दो घंटे भी ले सकता है। लेकिन एक नियम पक्का है—सुबह १० से १२ और दोपहर को २ से ४ बजे तक प्रत्येक कर्मचारी को काम पर हाजिर रहना ही चाहिये, ताकि जिस काम में परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग आवश्यक हो, वह संपन्न हो सके।

जो कर्मचारी घंटा-भर देर से काम पर आया हो, उसे उसी दिन उस वंटे की भरपाई करनी पड़े, ऐसा भी नहीं है। अपनी सुविधा से किसी और दिन वह एक घंटा अधिक काम कर सकता है। इसी प्रकार, कोई कर्मचारी किसी दिन अधिक घंटे काम करे, तो उतने घंटे उस कर्मचारी के खाते में जमा कर दिये जाते हैं। इस तरह जमा घंटों का उपयोग वह जरूरत पड़ने पर छुट्टी लेकर कर सकता है। हां, इतनी बंदिश अवश्य है कि एक महीने के दौरान कम या अधिक काम करने के घंटे काम के कुल घंटों के ५ प्रतिशत से (यानी ९ घंटों से) अधिक नहीं होने चाहिये। ५ प्रतिशत की इस छूट का वेतन पर कोई असर नहीं पड़ता। अलबत्ता कमीबेशी का ९ घंटे तक का हिसाब अगले महीने के खाते में जोड़ा जा सकता है।

११७१

ऐसे अवसर अक्सर आते हैं कि कर्मचारी को किसी निजी कार्य के कारण काम के घंटों में छुट्टी लेनी पड़ती है। प्रचलित सामान्य नियमों के अनुसार कारखाने को इस कारण अनेक मानव-घंटे खोने पड़ते हैं। लेकिन लचीले समय की पद्धति अपनाने से हमारे यहां इस प्रकार के नुक्सान में कमी हुई है।

ऐसी भी बात नहीं कि इस सुविधा के कारण सभी कर्मचारी काम पर देर से आते हों। उलटे आधे से अधिक कर्मचारी तो समय से ५ मिनट पहले ही आ जाते हैं। इतना ही नहीं, किसी वक्त काम आयेगा, यह सोचकर अधिकांश कर्मचारी अधिक समय काम करके कुछ घंटे अपने खाते में

'जमा' रखते हैं।

इस प्रयोग का काम पर कैसा असर पड़ा है, यह तय करना कठिन है। मशीन चलाने वाले कर्मचारी ने दिन-भर में कितने नग बनाये, इस पर से हिसाब लग जाता है कि उसने कितना काम किया। परंतु इंजीनियर अथवा टेक्नीशियन के काम का अंदाज लगाना कठिन होता है। परंतु नयी पद्धति अपनाने के बाद डिजाइन-विभाग में उत्पादकता ५० प्रतिशत बढ़ गयी है।

विशेष फायदा यह हुआ है कि काम पर देर से आने पर उलाहना नहीं सुनना पड़ता और न जल्दी घर जाने के लिए व्यवस्थापक से छुट्टी मांगनी पड़ती है। इससे कर्मचारी मुक्त मन से और उत्तम कार्यशक्ति से काम करते हैं। इसके अलावा भीड़ के समय यातायात पर पड़ने वाला दबाव भी इस पद्धति की कृपा से कुछ हल्का हुआ है।



कर्मचारी : साहब, मैं तीस वर्ष से आपके यहां काम पर हूं और इससे पहले कभी मैंने आपसे वेतन बढ़ाने की प्रार्थना नहीं की थी।

मालिक : इसीलिए तो तीस वर्ष तुम यहां काम पर रह सके।

०००

'आज तारे इतने मंद क्यों हैं?,' वह बड़ी नाजो-अदा के साथ बोली।

'तुम्हारी आंखों की चमक देखकर झेंप गये हैं।' वह आलिंगन-पाश को और कसते हुए बोला।

[यह उनकी सगाई के बाद की बात थी।]

'सोचो तो, तारों को छूने के लिए तार के कितने खंभे चाहिये?' वह बोली।

'कई करोड़ मील का एक ही खंभा काफी है।..... जरा अक्लभरी बातें किया करो।' वह बड़बड़ाया।

[यह उनके विवाह के बाद की बात है।]



श्री उच्छंगराय न. ढेबर एक बार सौराष्ट्र में दूर किसी गांव में गये। वहां उनकी मुलाकात एक सरल-हृदय वृद्ध खेतिहर से हुई। वृद्ध ने खेती आदि की बातें करते हुए कहा–'फसल तो इस बार अच्छी रही। पर आप पहले से काफी बदल गये हैं। गांव का शिक्षक बता रहा था कि आप जंतरमंतर में रहने लगे हैं और खादी कमिशन पर बेचने लगे हैं, जैसे मैं खेती के औजार कमिशन पर लेता हूं।'

यह बात खुद श्री ढेबर ने खादी कमिशन के हम अफसरों को सुनायी थी। उस समय वे खादी कमिशन के अध्यक्ष थे; उससे पहले वे अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष रहे थे, जिसका प्रधान कार्यालय नयी दिल्ली में जंतर मंतर रोड पर था। –ज. ना. व.



भूकंप की भविष्यवाणी जीव-जंतुओं की मदद से

शेन लिङ-हुआंग

२८ जुलाई १९७६ के दिन उत्तर चीन का एक पशुपालक रोज की तरह मुंह अंधेरे उठा और पशुओं को चारा-पानी देने गया। बड़ी हैरानी से उसने देखा कि अस्तबल में बंधे दो घोड़े और दो खच्चर चारे पर टूट पड़ने के बजाय बुरी तरह उछल-कूद मचाने और लातें झाड़ने में लगे हैं। अंततः उसके सामने ही वे जानवर रस्सियां तुड़ाकर बाहर भाग निकले। उसी क्षण आसमान तेज सफेद रोशनी से चमक उठा और दूर-दूर तक भारी गड़गड़ाहट गूंज उठी। बाद में पता चला कि ठीक तभी वहां से ४० किलोमीटर दूर तांगशान में ७.८ की शक्ति का भूकंप आया था।

तांगशान और उसके आस-पास के भूकंप-ग्रस्त इलाकों के सर्वेक्षण के दौरान चीनी वैज्ञानिकों को इस घटना की सूचना दी गयी। वे विज्ञानी इसकी जांच कर रहे थे कि क्या पशुओं के बरताव के आधार पर भूकंप की विश्वसनीय भविष्यवाणी की जा सकती है।

यह सर्वेक्षण चीनी जीवभौतिकीविदों, प्राणिशास्त्रियों, भूभौतिकीविदों, रसायन-शास्त्रियों और मौसम-विज्ञानियों ने तांगशान भूकंप के फौरन बाद किया था। भूकंप आने से पूर्व पशुओं के व्यवहार में अचानक असाधारण परिवर्तन होने के २,०९३ मामले उन्होंने स्थानीय लोगों से बातचीत और सवाल-जवाब करके दर्ज किये।

इन मामलों की छानबीन से यह तथ्य वैज्ञानिकों के सामने आया कि इनमें से ८० प्रतिशत मामले घोड़ों, गधों, खच्चरों, गायों, मुर्गियों, चूहों, सूअरों कुत्तों, बिल्लियों, बकरियों, मछलियों और नेवलों से संबंधित थे।

कई सौ नेवले दिन के वक्त और किसानों की मौजूदगी में ही अपने बिलों से निकल भागे थे। उनमें से बहुतों ने अपने नन्हे बच्चों को पीठ पर चढ़ा रखा था या मुंह में दबा रखा था। आम तौर पर नेवले रात को ही बिलों से निकलते हैं और नन्हे प्राणियों का शिकार करते हैं।

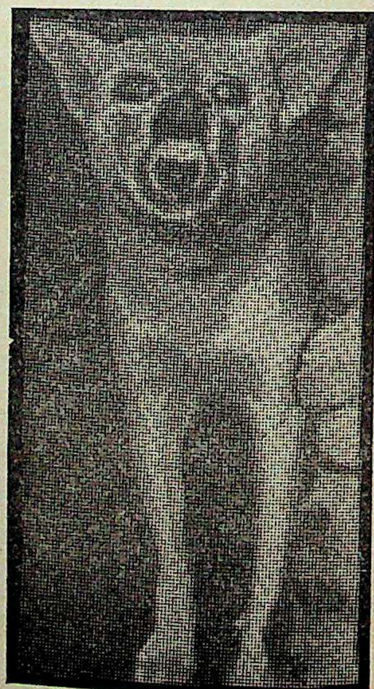
घरों में कांच के टैंकों में पाली गयीं मछलियां भूकंप से पहले उछल-कूद मचाने और उन टैंकों से बाहर निकलने की कोशिश करने लगी थीं। तालाब की आजाद मछलियां भी पानी की सतह पर आकर छटपटाने और इधर-उधर भागने लगीं, हवा

में छलांगें भरने लगी। बकरियां बेचैन हो उठीं और करुण आवाज में मिमियाने लगीं; उन्होंने अपने बाड़ों में वापस जाने से इन्कार कर दिया। बिल्लियां कमरों में चारों ओर भागने व कूदने लगीं और रोके जाने पर अपने मालिकों को ही नोच बैठीं। कुछ तो अपने बच्चों को मुंह में दाबकर बाहर खुले में भाग निकलीं।

घर के बाहर खुले छूटे हुए कुत्ते दरवाजों पर पंजे मारते और सहमकर गुर्राते रहे। जब उन्हें जबरन घर में लाया गया, तो उन्होंने मालिकों पर ही भोंकना और झटपना शुरू कर दिया। कुछ कुतियां अपने पिल्लों-समेत कुत्ताघरों से भाग निकलीं। सूअरों ने खाना छोड़कर विचित्र ढंग से घुर-घुराना शुरू कर दिया और वे बाड़े की दीवारें फांदकर बाहर निकलने की चेष्टा करने लगे।

झुंड के झुंड चूहे बिलों में से बाहर निकल आये। आम तौर पर चुस्त-चौकन्ने माने जाने वाले ये जीव एकदम सुन्न पड़ गये। उन्हें यह भी खयाल न रहा कि नजदीक ही मनुष्य भी हैं। चकराये-से चूजे रात के अंधेरे के बावजूद अपने दड़बों से हड़बड़ाकर बाहर निकले और वृक्षों की फुनगियों और दड़बों की छतों पर जा बैठे।

तांगशान के इस सर्वेक्षण से यह भी जाहिर हो गया कि जिस जगह भूकंप जितना तीव्र था, वहां के छोटे जानवरों के व्यवहार में असामान्यता की घटनाएं भी उतनी ही ज्यादा देखी गयीं। साथ ही यह भी कि इन जानवरों के व्यवहार में ये परिवर्तन भूकंप के ठीक २४ घंटे पहले चरम सीमा पर पहुंच गये। घोड़ों, कुत्तों, गायों, सूअरों, मुर्गों और बिल्लियों में ऐसे परिवर्तन भूकंप के ठीक पूर्व अधिक देखे गये।



भूकंप के पूर्वाभास से त्रस्त

चीन के अन्य हिस्सों में भी जहां भूकंप-पूर्वीय झटके महसूस किये गये थे, सामान्यतः भूकंप से दो या तीन दिन पूर्व चूहों, मछलियों और सांपों के व्यवहार में अंतर देखा गया; कई बार तो इससे भी काफी पहले ही।

जानवरों के व्यवहार में ऐसे भूकंप-पूर्वीय परिवर्तनों का अध्ययन चीनी विज्ञानियों ने उत्तर चीन के होपेई प्रांत के सिंग-

ताइ क्षेत्र में १९६६ में आये भीषण भूकंप के बाद शुरू किया था। बाद के वर्षों में उन्होंने भूकंप के संदर्भ में पशुओं के बरताव-परिवर्तन का राष्ट्रीय स्तर पर पुनरीक्षण किया। वे उन सभी स्थानों पर गये, जो बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में भीषण भूकंपों की चपेट में आये थे। वहां के बड़े-बूढ़ों से इस बारे में मिली जानकारी के आधार पर उन्होंने एक रिपोर्ट तैयार की। उसमें ५८ किस्म के घरेलू और जंगली जानवरों में भूकंप से पूर्व देखे गये परिवर्तनों का उल्लेख है।

इस रिपोर्ट के अध्ययन से पता चलता है कि चीन में आये सबसे जोरदार भूकंप में (वह ८.५ की शक्ति का था और १९२० में उत्तर-पश्चिमी चीन में निंगिसिया प्रदेश में हेयुआन क्षेत्र में आया था) भेड़ियों के झुंड दौड़ने लगे थे; गौरेयां चारों ओर पर फड़फड़ाती हुई उड़ने व चीं-चीं करने लगी थीं। एक आदमी तो यह देखने के लिए ही बिस्तर से उठा कि आखिर कुत्ते इस बुरी तरह क्यों भौंक रहे हैं, और ज्यों ही वह घर से बाहर निकला कि भूकंप आ गया। इस तरह वह ढहते घर के मलबे में दबकर मर जाने से बाल-बाल बचा।

जीव-जंतुओं के बदले हुए व्यवहार के आधार पर भूकंप की भविष्यवाणी करने के लिए पहला प्रयोग-केंद्र १९६८ में सिगताइ में ही खोला गया। सिगताई लंबे अरसे तक भूकंपोत्तर झटके झेलता रहा था।

ऐसा दूसरा प्रयोग-केंद्र १९७१ में आक्सू (सिक्यांग) में खुला। वहां भूकंप का अंदेशा हमेशा ही बना रहता है। इसलिए जीव-भौतिकीविदों ने वहां १०० कबूतरों के जरिये एक सफल परीक्षण किया। कबूतर की शरीर-रचना ऐसी है कि उसकी टांगों में अंतर्जंघिका (टिबिआ) और बहिर्जंघिका (फिब्युला) के बीच कोई एक सौ अतिसूक्ष्म इकाइयां (यूनिट) होती हैं। स्नायुकेंद्रों से जुड़ी ये इकाइयां यांत्रिक थर्राहट के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं। वैज्ञानिकों ने पचास कबूतरों की टांगों में आपरेशन करके इन इकाइयों का संबंध स्नायुकेंद्रों से काट दिया।

फिर जब उस इलाके में लगभग ४ की शक्ति वाला भूकंप आया, तो उसके पूर्व ये पचास कबूतर बिलकुल शांत बने रहे; जबकि बाकी पचास कबूतर (जिनका ऐसा आपरेशन नहीं किया गया था) घबराकर उड़ गये। लेकिन दोनों ही तरह के कबूतर इस दौरान में बाजों और गिद्धों के हमलों के प्रति पूरे सतर्क बने रहे।

इन प्रयोगों और परीक्षणों का ही यह फल था कि चीन में दो भूकंपों की भविष्यवाणी जीव-जंतुओं के बदले हुए व्यवहार के आधार पर सफलतापूर्वक की जा सकी।

१८ जुलाई १९६६ को पोहाइ समुद्र में ७.४ की शक्ति का भूकंप आया। उसके कुछ दिन पूर्व समुद्र-पांखियों (सीगल) तथा शार्क एवं अन्य पांच किस्म की मछलियों में असामान्य बरताव देखने में आया था। तियेत्सिन के सार्वजनिक उद्यान के चिड़ियाघर में मंचूरियाई बाघ, भीमकाय पंडा, याक,

हिरन अन्य जानवर अजीब-सा व्यवहार कर रहे हैं, यह देखकर भूकंप की चेतावनी दी गयी और दो घंटे बाद वहां भूकंप आ गया।

इन सबसे चीनी विज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भूकंप के पूर्व पृथ्वी की परतों में होने वाले भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों के कारण घरेलू और जंगली जानवरों के सलूक में परिवर्तन होता है। इन भौतिक-रासायनिक परिवर्तनों का स्वरूप होता है—भूविद्युतीय और भूचुंबकीय प्रभाव, गति और ध्वनि में हेरफेर, जमीन के तापमान में घट-बढ़, भूमिगत जल का स्वरूप बदल जाना, वायु के आयनों और विद्युत-चुंबकीय क्षेत्र में बदलाव।

जमीन के तापमान में घट-बढ़, भूमिगत जल और भूविद्युतीय क्षेत्र में परिवर्तन, भीतरी जमीन की टूट-फूट, चट्टानों को लगने वाले झटके आदि तत्त्व भूकंप के पूर्व सांपों और चूहों के व्यवहार में आने वाले परिवर्तन का कारण हो सकते हैं।

मानवीय कानों को न सुनाई पड़ने वाली अतिमंद ध्वनि-तरंगें, जल के रासायनिक संयोजन में उत्पन्न परिवर्तन और अन्य अज्ञात तत्त्व मछलियों को भूकंप के पूर्व उछल-कूद करने, कलाबाजी खाने और सतह पर उतराने की प्रेरणा देते होंगे। उदाहरणार्थ, कैटफिश नाम की मछली पानी के विद्युतीय क्षेत्र में होने वाले हल्के-से परिवर्तन को भी महसूस कर लेती है। हो सकता है कि जल की विद्युत-धारा में होने वाले परिवर्तनों के कारण ये मछलियां भूकंप से पूर्व विचित्र व्यवहार करने लगती हों।

चीनी विज्ञानी मानते हैं कि जानवरों के बरताव के सुव्यवस्थित अध्ययन तथा अन्य प्रचलित उपायों के सम्मिलित उपयोग से तीव्र एवं विनाशकारी भूकंप की भविष्यवाणी सफलतापूर्वक करना शीघ्र संभव हो जायेगा।

वे यह भी मानते हैं कि यदि इन अध्ययनों से पता चले कि जीव-जंतुओं में कोई ऐसी इंद्रिय है, जो भूकंप से पूर्व होने वाले कुछ खास किस्म के भौतिक-रासायनिक परिवर्तनों को ग्रहण कर सकती है, तो उस इंद्रिय की नकल पर ऐसा यंत्र बनाना संभव होगा, जो उसी इंद्रिय के ढर्रे पर काम करता हो। यह यंत्र पृथ्वी से आने वाली परिवर्तन-सूचनाओं को ग्रहण करेगा और सीधे उसके आधार पर (अर्थात् जीव-जंतुओं के व्यवहार का निरीक्षण किये बिना ही) भूकंप की भविष्यवाणी की जा सकेगी।



श्रद्धांजलि

अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक क्षेत्र के सुविदित व्यक्ति, संस्कृत के प्रकांड विद्वान **डा. वी. राघवन्** को श्रद्धांजलि। उनके चंद अनूदित लेख **नवनीत** में भी छपे थे।

[देहांत : ५ अप्रैल १९७९ ; आयु : ७१ वर्ष]



ग्राम-विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी

प्रदीप चतुर्वेदी

समय के साथ जैसे फैशन बदलता रहता है, ठीक वैसे ही समय-समय पर राजनीति में भी नये नारे अपनाने के लिए राष्ट्रीय नीतियों में थोड़ा-बहुत उलटफेर करके आम जनता के समक्ष एक नयी नीति पेश कर दी जाती है। भारत की अनपढ़ ग्रामीण जनता के उत्थान का मुद्दा किसी भी समय, किसी भी प्रकार से और कहीं भी फेंक दिया जाता है, और जहां पर भी उसे फेंक दिया जाये उसे ठीक माना जाता है। आजादी के बाद से हमेशा से सभी 'राष्ट्रीय नीतियां' आम व्यक्ति के और उसमें भी गांव में रहने वाली ८५ प्रतिशत जनता के भविष्य को ही ध्यान में रखकर अपनायी गयी हैं। अंधविश्वास तथा रूढिवाद को ग्रामीण जनता के तमाम दुःखों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। कभी-कभी विज्ञान के महत्त्व की दुहाई भी उनके उत्थान के लिए दी जाती है।

ऐसा नहीं है कि विज्ञान के क्षेत्र में हम भारतवासी पीछे रहे हैं, या अब अचानक ही हमारे शासकों तथा वैज्ञानिकों को पता चला है कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के उपयोग से ग्रामीण जनता का उत्थान हो सकता है। विज्ञान की बात लें, हमारे ही देश के जगदीशचंद्र बसु ने रेडियो-तरंगों का आविष्कार सबसे पहले किया था। परंतु कितने लोग हैं, जो जगदीशचंद्र बसु को याद करते हैं? दूसरी ओर, जिसने इस आविष्कार का रेडियो में उपयोग किया, उसे आज सारी दुनिया जानती है–मारकोनी। यह उदाहरण सिर्फ यह दरशाता है कि शुरू से प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल की, वैज्ञानिक आविष्कार से अधिक उपयोगिता रही है। इस तरह के उदाहरण विकसित औद्योगिक देशों में भी पाये जाते हैं।

इसके भी उदाहरण हैं कि वैज्ञानिक उपलब्धि को तो सराहा जाता है और उस पर आधारित प्रौद्योगिकी की आलोचना होती है; क्योंकि आम व्यक्ति को उसका फायदा नजर नहीं आता। ब्रिटेन तथा फ्रांस ने मिलकर कान्कर्ड हवाई जहाज का निर्माण किया। ब्रिटेन में लोगों ने इसे बहुत सराहा कि उनके देश ने ऐसा कार्य किया जो अपने आपमें अद्भुत था तथा परिवहन के क्षेत्र में एक चमत्कार; क्योंकि कान्कर्ड के निर्माण के पहले कोई कल्पना भी नहीं करता था कि कोई यात्री-विमान ध्वनि से दुगुनी

रफ्तार से उड़ सकेगा। परंतु इसका दूसरा पहलू यह था कि इस पर व्यय किया गया सारा पैसा सरकार का था अर्थात् आम जनता का पैसा था, जब कि इसका लाभ बहुत ही सीमित वर्ग को मिल रहा है और आम जनता के लिए इसका कोई सीधा उपयोग नहीं है। यही सब देखकर ब्रिटेन में भी इस बात पर शोर मच रहा है कि इस तरह के कार्यों पर पैसा क्यों खर्च किया जाये? सो भारत को भी, जिसके कि साधन और भी सीमित हैं तथा आवश्यकताएं अधिक हैं, यह ध्यानपूर्वक सोचना पड़ेगा कि पैसा किन क्षेत्रों में लगाया जाये।

भारत में गांवों के उत्थान के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का उपयोग नितांत आवश्यक है। परंतु ज्यादा जोर प्रौद्योगिकी पर रहेगा, और विज्ञान पर कम। जब यह बात कही जाती है, तो आम तौर पर जनता को तथा सरकारी नीति का परिपालन कराने वालों को इसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि विज्ञान को छोड़ दिया जाये और प्रौद्योगिकी पर ही जोर दिया जाये। यह निरे मानसिक दिवालियेपन का उदाहरण है। जब कभी प्रौद्योगिकी पर जोर देने की बात की जाती है, तो उसका तात्पर्य सिर्फ यह होता है कि एक पर ६० प्रतिशत और दूसरे पर ४० प्रतिशत जोर रहे, यानी संतुलन प्रौद्योगिकी के पक्ष में हो। परंतु जब तक दोनों में उचित समन्वय न हो तो न प्रौद्योगिकी ही पूर्ण रूप से उपयोग की जा सकती है और न विज्ञान को ही विकसित किया जा सकता है। फिर बहुत-से क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें हमें न तो वैज्ञानिक जानकारी मिलेगी और न प्रौद्योगिकी ही उपलब्ध करायी जायेगी। जिन कारणों से इन्हें हम विदेशों से नहीं प्राप्त कर सकते हैं, उन्हीं कारणों से इनका विकास हमारे लिए आवश्यक है।

ग्राम-विकास की जब बात आती है तो इसके लिए सबसे पहले आवश्यकता है ऊर्जा की। और जब ऊर्जा की बात उठायी जाती है, तो बहुत-से आंकड़े भारत सरकार तथा ग्राम-विद्युतीकरण निगम की ओर से प्रस्तुत हो जाते हैं। अभी तक किसी ने इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी है कि गांवों को जो बिजली उपलब्ध करायी जा रही है, उसका वहां पर कैसा और क्या उपयोग हो रहा है। ९० प्रतिशत बिजली वहां पर पहले से चल रहे उपकरणों में उपयोग की जा रही है – आटे की चक्की, कोल्हू, डीजल-चालित पानी-निकासी पंप आदि में। इस प्रकार के सारे यंत्र जो कि पहले डीजल इंजन से चल रहे थे, अब सस्ती दर पर उपलब्ध बिजली से चलने शुरू हो गये। इस तरह हालांकि ग्राम-विद्युतीकरण निगम ने बिजली की उपलब्धता बढ़ायी है, परंतु उससे कोई अतिरिक्त ऊर्जास्रोत गांवों को उपलब्ध नहीं हुआ। बिजली ने बस पहले के ऊर्जास्रोतों का स्थान ले लिया।

गांवों के लिए ऊर्जा का नया उपयोगी स्रोत है–सौर ऊर्जा। भारत के विज्ञान

ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ष में कम से कम ३०० दिन सूर्य बादल-कोहरे के बिना स्पष्ट चमकता है। इस असीम ऊर्जास्रोत का उपयोग यदि हम नहीं कर पाते हैं, तो इसकी जिम्मेदारी नीति-निर्धारण तथा कार्यान्वयन करने वालों पर ही है। ऐसा नहीं है कि इस क्षेत्र में कोई कार्य नहीं हुआ है। विशेष रूप से दो बड़े संस्थानों—भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड तथा सेंट्रल इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड—ने इसमें काफी सराहनीय कार्य किया है। परंतु दुर्भाग्य से अभी तक दोनों का सारा कार्यक्रम अनुसंधान की अवस्था में ही है और उत्पादन की स्थिति में नहीं पहुंचा है। हाल में ही एक संगोष्ठी में जब इन दोनों संस्थानों के वैज्ञानिकों ने अपनी उपलब्धियों का वर्णन किया, तो राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष डा. आत्माराम ने कहा—'इन दोनों संस्थाओं को चाहिये कि सौर ऊर्जा उपकरणों को खाली अनुसंधान तक ही सीमित न रखें, बल्कि उनका उपयोग भी शुरू करें। अनुसंधान उत्पादन के साथ-साथ चल सकता है, ताकि उपकरणों को और अच्छा बनाया जा सके।' इस बात को छह माह से ऊपर हो चुके हैं, परंतु अभी किसी तरफ से यह नहीं पता चला है कि उन्होंने डा. आत्माराम के इस कथन से कोई सीख ली हो।

गांवों में ऊर्जा के लिए दूसरा क्षेत्र है गोबर-गैस का। गोबर-गैस का सबसे पहले प्लांट भारत में लगा था; परंतु अब विदेशों में तो गोबर-गैस संयंत्रों का उपयोग काफी

भारत को ...... विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में छलांग लगानी होगी।

—डा. साराभाई



बड़े स्तर पर हो रहा है, जबकि भारत में इस क्षेत्र में कुछ भी प्रगति नहीं हुई है। हां, बेशक जब भी कहीं बड़ी प्रदर्शनी लगती है, तो खादी ग्रामोद्योग कमिशन की तरफ से वहां पर एक गोबर-गैस संयंत्र लगा दिया जाता है, ठीक उसी तरह जैसे कि 'आर्यभट' को दरशाया जाता है। आम आदमी उसे देखता है, सराहता है और चला जाता है। अधिकारी-गण भी यह सोचते हैं कि जिस तरह से एक उपग्रह छोड़ना बड़ी उपलब्धि है, एक गोबर-गैस संयंत्र बनाना भी बहुत बड़ी उपलब्धि है।

सन १९५१ से जब खादी ग्रामोद्योग कमिशन ने यह कार्य संभाला था, अब तक ३० हजार के करीब संयंत्र लग पाये हैं, जब कि चीन में एक ही क्षेत्र में ६० लाख संयंत्र लग गये हैं। यदि खादी ग्रामोद्योग कमिशन इस कार्यक्रम को ठीक से नहीं चला पा रहा है, तो अन्य अनुसंधानशालाओं तथा निजी क्षेत्र की संस्थाओं को भी इसके विकास की छूट दी जा सकती है। अभी तो खादी ग्रामोद्योग कमिशन की दिलचस्पी इस बात

में लगती है कि संयंत्र की कीमत कितनी ऊंची रखी जा सकती है; क्योंकि उसी अनुपात में उसे भारत सरकार से अनुदान मिलता है।

गोबर-गैस संयंत्र की उपयोगिता को हमारे यहां पूरी तरह से समझा नहीं जा रहा है। इससे उत्पन्न गैस को जला सकते हैं, बिजली के काम में ला सकते हैं और जो बाद में संयंत्र में से खाद निकलती है वह गोबर की खाद से बहुत अच्छी होती है।

गांवों में इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता २५ वाट के बल्ब की है। परंतु जब ये सब संस्थान ऊर्जा का नया स्रोत उपलब्ध कराने की सोचते हैं, तो उनके सामने नक्शा यह होता है कि घर में एक पंखा भी हो, रेडियो भी हो, चार-चार बत्तियां भी जलें और टेलिविजन भी चले। और इस सबको मिलाकर खर्चा बहुत अधिक बैठता है। यदि कम खर्च पर संयंत्र उपलब्ध कराये जायें और ग्रामवासियों की बिजली की न्यूनतम आवश्यकता को देखते हुए उपकरण बनाये जायें,तो वे ज्यादा व्यावहारिक रहेंगे। २५ वाट की रोशनी से जरी तक का काम किया जा सकता है। आज तो गांव में शाम को अंधेरा होने के बाद से सुबह रोशनी होने तक कुछ भी उत्पादक काम नहीं हो पाता। पर गांव का पूरा वातावरण बदल सकता है, अगर सिर्फ २५ वाट बिजली प्रति घर ४ घंटे के हिसाब से उपलब्ध कराई जाये। और यह अपने आपमें कोई मुश्किल काम नहीं है।

ग्राम-विकास के लिए कोई अलग ग्रामीण प्रौद्योगिकी बनाने की जरूरत नहीं। बल्कि उपलब्ध प्रौद्योगिकी को ही गांवों में उपयोग में लाया जाये। कुछ क्षेत्रों में अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है, जिसका इस्तेमाल करने में किसी प्रकार की झिझक नहीं होनी चाहिये। जैसे कि स्वर्गीय डा. विक्रम साराभाई ने अपनी पुस्तक में लिखा था–'यदि भारत को अत्यधिक पिछड़े हुए स्थान से अग्रणी देशों के साथ पहुंचना है तो उसके लिए उसे विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में छलांग लगानी होगी।' उनका तात्पर्य था कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास अन्य उन्नत देशों में जिस रीति से हुआ, वही रास्ता यदि भारत भी अपनायेगा तो बहुत समय लग जायेगा। बेहतर यही है कि जो कुछ विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी दूसरे देशों में विकसित हुई हैं, उनका उपयोग यहां पर उचित रूप में किया जाये और साथ ही हमारे अनुसंधान तथा विकास कार्यक्रम भी सुचारु रूप से चलें।



काल-निर्णय

गर्ल्स स्कूल में हिंदी व्याकरण की कक्षा में सुना गया प्रश्नोत्तर:

अध्यापिका : 'मैं युवती हूं'..... इसका काल बताओ, सीता।

विद्यार्थिनी : भूतकाल, सिस्टर।



नवनीत

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

स्वर्गद्वार पर सिकंदर

सिकंदर महान पूर्वी देशों की यात्रा में घूमता-घामता एक दिन स्वर्ग के फाटक पर जा पहुंचा। उसने फाटक पर दस्तक दी तो द्वारपाल फरिश्ते ने पूछा–'कौन है?' उत्तर मिला–'मैं, सिकंदर!' ..... 'कौन सिकंदर!' ..... 'सिकंदर यानी सिकंदर, इतना नहीं जानते? सिकंदर महान, विश्वविजेता।' ..... 'हम किसी सिकंदर को नहीं जानते, उसे यहां प्रवेश नहीं मिलेगा। यह प्रभु का द्वार है, यहां सिर्फ न्यायशील प्रवेश पाते हैं।'

तब सिकंदर ने बड़ी नम्रता से प्रार्थना की कि उसे कोई निशानी दी जाये इस बात की कि वह स्वर्ग के फाटक पर पहुंचा था। तब मनुष्य की खोपड़ी का एक छोटा-सा टुकड़ा उसकी ओर फेंक दिया गया–इन शब्दों के साथ कि 'जाकर इसे तोलो।' वह उस हड्डी को अपने संग ले आया और बड़ी अवज्ञा के साथ उसने वह हड्डी अपने दरबार के दानिशमंदों दिखायी। वे लोग फौरन दौड़कर एक तराजू ले आये। एक पलड़े में हड्डी रखी गयी, दूसरे में सिकंदर ने कुछ सोना-चांदी रखवायी; मगर हड्डी वाला पलड़ा भारी रहा। तब और सोना-चांदी रखी गयी; मगर व्यर्थ। खजाने का तमाम सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात दूसरे पलड़े पर रखने पर भी दोनों पलड़े बराबर नहीं हुए। तब दानिशमंदों ने धूल के चंद जर्रे उठाकर हड्डी पर रख दिये। फौरन दोनों पलड़े बराबर हो गये। असल में वह हड्डी आंख के झरोखे की हड्डी थी; और आंखों को तब तक चैन कहां, जब तक कब्र की मिट्टी उन्हें न ढंक ले!

– जेकब बेन एशर

अनाथ बच्चों का पिता

'इस्रायल न्यूज लेटर' से साभार

सैंतीस वर्ष पूर्व अगस्त १९४२ का एक दिन। नाजी-आक्रांत पोलैंड की राजधानी वारसा की यहूदी बस्ती में एक विशिष्ट और अत्यंत सम्मानित व्यक्ति एक नन्हे बच्चे को गोद में उठाये बड़े दृढ कदमों से सड़क पर चला जा रहा था। उसके संग दो सौ बच्चे थे। उन सबको उम्श्लागप्लात्स में इकट्ठा होना था और वहां से उन्हें भेजा जाने वाला था ट्रेब्लिंका के नाजी बंदी-शिविर में मृत्यु-देवता के मुंह का कौर बनने के लिए। उस व्यक्ति का दूसरा हाथ साथ चलते बच्चों के सिर पर प्यार-भरी थपकियां दे रहा था। कुछ महीने बाद वह व्यक्ति और वे दो सौ मासूम बच्चे 'यहूदी समस्या के आखिरी समाधान' की नाजी योजना के तहत मृतकों की तालिकाओं में निरे अंक बनकर जुड़ चुके थे।

अपने 'बच्चों' को एकाकी मरने देने से इन्कार करने वाले ये व्यक्ति थे—डा. जानुस कोरजाक, पोलैंड के एक सुविख्यात और अत्यंत सम्मानित यहूदी शिक्षा-विशेषज्ञ, जिनकी जन्म-शताब्दी संयोगवश अंतरराष्ट्रीय बाल-वर्ष के साथ इस साल मनायी जायेगी। वे वारसा में एक अनाथालय के निदेशक थे और अपना सारा जीवन उन्होंने बालशिक्षा और बाल-कल्याण के कामों में बिताया था।

सन १९४० में नाजी शासकों की आज्ञा से डा. कोरजाक को अनाथालय की पक्की इमारतें खाली करके २०० बच्चों के साथ यहूदी मुहल्ले में शरण लेनी पड़ी थी, जिसमें लगभग पांच लाख अभागे यहूदियों को बाड़े में ठुंसी हुई भेड़-बकरियों की मानिंद जीना पड़ रहा था। दो साल के भीतर वहां एक लाख मौतें हुईं! बेकारी, भूख, भीड़-भड़क्का, गंदगी ने लोगों में मामूली बुखार सहने की भी शक्ति नहीं रहने दी थी। बीमारी का झोंका आता था और जैसे आंधी में टिकोरे डाली से झड़ जाते हैं, इस तरह लोग चू पड़ते थे मौत के झोले में।



डा. कोरजाक की सबसे बड़ी समस्या थी उन दो सौ बच्चों को

खिलाना-पिलाना और स्वस्थ रखना। अपनी डायरी में उन्होंने एक जगह लिखा था : 'जूतियां घिसकर कुचला हुआ-सा मैं घर लौटा। सात जनों से मुलाकातें, बात-चीत, जीने चढ़ना-उतरना, सवाल-जवाब। और नतीजा?..... चंदे में पांच ज़्लोटिस (पोलिश फ्रैंक) तथा हर माह पांच ज़्लोटिस देने का आश्वासन! इस रकम पर मुझे २०० जनों को जिंदा रखना है।'

परंतु उन विकट परिस्थितियों में भी डा. कोरजाक जी-जान से कोशिश करते कि बच्चों को जीने लायक खाना मिले और वे स्वाभाविक ढंग से पढ़ते-लिखते व जीते रह सकें।

फिर आया नाजियों के 'आखिरी समाधान' कार्यक्रम का अंतिम दौर। लाखों यहूदियों का सामूहिक वध किया गया; गैस-चेम्बरों में लाखों का खात्मा किया गया। वारसा के यहूदी मुहल्ले के बाशिंदों को मवेशी ढोने के ट्रकों में ठूंसकर ट्रेब्लिका के मृत्यु-शिविर ले जाया जाने वाला था।

डा. कोरजाक के प्रशंसकों की कोई कमी नहीं थी। इन लोगों ने उनके सामने बार-बार प्रस्ताव रखा कि हम आपको चुपके-से यहूदी मुहल्ले और देश के बाहर पहुंचा देते हैं। मगर डा. कोरजाक अपने बच्चों को छोड़कर जाने को तैयार न हुए। अंत में आ पहुंचा अगस्त १९४२ का एक मनहूस बुधवार। डा. कोरज़ाक को आज्ञा मिली कि उनके सब बच्चों को यहूदी मुहल्ले से चल देना है! मंजिल थी–ट्रेब्लिका।



डा. कोरजाक और उनके लाड़ले बच्चे।

डा. कोरजाक ने यह बात बच्चों को नहीं बतायी और उनसे यही कहा कि आज हम सब पिकनिक पर जायेंगे।

बच्चे बड़े सहज भाव से यहूदी बस्ती की गलियों में से होकर उम्श्लागप्लात्स की ओर चल पड़े, जहां से उन्हें ट्रकों में ट्रेब्लिका रवाना किया जाने वाला था। मुहल्ले के लोग टकटकी बांधे देख रहे थे इस मशहूर लेखक और शिक्षा-विशेषज्ञ को, जो एक नन्हे अनाथ बच्चे को गोद में उठाये दृढ कदमों से चला जा रहा था और जिसके साथ बांहों में बांहें अटकाये दो सौ

अनाथ बच्चे थे। उन सबके पीछे थीं स्तेफानिया विलसिस्का, जो अनेक वर्षों से डा. कोरजाक की सहायिका थीं।

'पिकनिक' पर कूच शुरू होने से चंद मिनट पहले भी डा. कोरजाक से उनके प्रशंसकों ने कहा था कि अब भी आपको छिपाकर यहूदी मुहल्ले से निकालकर आपकी जान बचायी जा सकती है; बस, 'हां' कह दीजिये। पर नहीं, डा. कोरजाक के मुंह से 'हां' की जगह 'ना' ही निकला। वे अंतिम क्षणों में 'अपने बच्चों' के संग ही रहना और उन्हें सांत्वना देना चाहते थे।

उम्श्लागप्लात्स के प्राथमिक उपचार-केंद्र के एक कार्यकर्ता ने उस दिन का यह आंखों देखा हाल बताया है :

'ट्रकें ठसाठस भरी जा रही थीं। जैसे उनमें जगह की कोई कमी नहीं थी। कोड़े मारकर ज्यादा से ज्यादा लोगों को उनमें ठेला जा रहा था। दूसरों को यंत्रणा [illegible] में आनंद पाने वाला पुलिस-अफसर [illegible]लिंग, जिसे नाजियों ने उम्श्लागप्लात्स [illegible] थानेदार बना रखा था, गरजा कि [illegible] बुलाओ। जीते जी मैं कभी उस दृश्य [illegible] भूल न सकूंगा। यह महज ट्रकों में [illegible] नहीं था; यह हत्यारों के विरुद्ध नि[illegible] किंतु संघटित प्रतिरोध था। ऐसा [illegible] इन्सानी आंखों ने आज तक नहीं देखा [illegible]

'बच्चे चार-चार की कतारों में [illegible] रहे थे। कोरजाक सबसे आगे थे और दू[illegible] टोली की अगुआ थीं कोरजाक की स[illegible]यिका स्तेफानिया विलसिस्का। हत्यारों [illegible] हिकारत की नजरों से देखते हुए वे मौत [illegible] मिलने जा रहे थे। जब वे यहूदी मुहल्ले [illegible] पुलिस सिपाहियों के सामने से निकले, [illegible] सहज ही सिपाहियों ने खट् से एडियां [illegible] कर सलामी दी थी डा. कोरजाक को।

★

सैकड़ों उपयोगी आविष्कार करने वाले टामस आल्वा एडिसन ने जीवन में अनु[illegible] से यह पाया कि अभाव भी वरदान सिद्ध हो सकते हैं। वे शुरू से ही कुछ ऊंचा सुनते थे। उनका खयाल था कि इसी चीज ने उन्हें स्वाध्याय-प्रेमी बनाया। प्रयोगों और परीक्ष[illegible] में व्यस्त रहते हुए भी हर साल वे दर्जनों पुस्तकें पढ़ डालते थे। टेलिग्राफ-आपरे[illegible] बनने के बाद उन्होंने देखा कि तार की खट-खट सुनने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती, मगर चूंकि दूसरी आवाजें उनके कान में पड़कर उनका ध्यान नहीं बंटातीं, इसलिए [illegible] औरों की अपेक्षा अधिक दक्षता से काम कर पाते हैं। एक बार एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा था—'बहरेपन ने मुझे गपशप के आनंद से वंचित कर दिया। पर इसकी मुझे खु[illegible] ही है। रात को जिस होटल में मैं खाना खाने जाता, वहां जब दूसरे लोग गपशप में [illegible] होते, मैं अपनी समस्याओं पर सोचता रहता। अगर मैंने भी वे सब बेमानी बातें और आवाजें सुनी होतीं, जो सामान्य आदमियों को सुननी पड़ती हैं, तो शायद आज मुझमें इतना मनोबल न होता।'

★

आपका राजदूत

नानी पालखीवाला

मनुष्य की कमियां और खामियां असल में सारी दुनिया में एक-सी हैं। मनुष्य एक पतलूनधारी बंदर है, चाहे वह दिल्ली में रहता हो या डिट्रायट में और चाहे वह ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़कों पर नंगे पांव चलता हो या ६०० मील घंटे की रफ्तार से हवाई जहाज में उड़ान भरता हो।

पिछले साल मैंने ऐसी घटनाएं देखीं, जो द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति (१९४५) के बाद से सबसे अधिक महत्त्व की घटानाएं हैं। मैंने चीन में उदारता का दौर आते देखा; चीन-जापान-संधि और अमरीका-चीन की संयुक्त घोषणा देखी; ईरान और अफगानिस्तान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखे।

यह कैंप डेविड शिखर-वार्ता का भी वर्ष रहा, जो शांतिसंधि तो नहीं करा सकी, मगर मिस्र और इस्रायल के बीच शांति अवश्य स्थापित कर सकी।

सन १९७८ में ही अमरीकी राष्ट्रपति कार्टर ने भारत की और भारत के प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने अमरीका की यात्रा की। इन यात्राओं ने विश्व के इन सबसे बड़े प्रजातंत्रों की आपसी मित्रता को दृढ बनाने में बड़ा हाथ बंटाया है।

अमरीका के निजी मामलों में यह वर्ष था पनामा नहर-संधि का, और डालर की साख में गिरावट का, जिससे हमारा सीधा-साधा रुपया कभी विश्व का सबसे मजबूत सिक्का समझे जाने वाले डालर की तुलना में अपेक्षाकृत मजबूत हो गया। इसी वर्ष में अमरीका के अनेक राज्यों में करदाताओं ने विद्रोह-सा कर दिया और वोट द्वारा करों में भारी कटौती की। उनका कहना था कि भले ही मौत और कर अटल हों,

अमरीका में बसे विश्व-विख्यात भारतीय संगीत-संचालक जुबीन मेहता





नोबेल-पुरस्कृत डा. हरगोविंद खुराना

मगर करों के बोझ से मरने की नौबत को तो टाला ही जा सकता है।

अमरीका के सामने जो अत्यंत विषम समस्याएं हैं, उनमें से एक समस्या भारत के सामने भी खड़ी है। वह है—सर्वव्यापी, सर्व-शक्तिशाली नौकरशाही। और जैसे भारत में वैसे ही अमरीका में भी, नौकरशाही के पास जितनी जानकारी है उतना ज्ञान नहीं है, जितना ज्ञान है उतना विवेक नहीं है, और जितनी बुद्धि है उतनी कल्पना नहीं है। जैसा कि एक अमरीकी लेखक ने लिखा है—'अगर पाप करना ही हो तो भगवान के प्रति करो, नौकरशाही के प्रति नहीं; क्योंकि भगवान तुम्हें माफ कर देगा, मगर नौकरशाही कभी माफ नहीं करेगी।'

ढाई करोड़ भारतीय इस समय विश्व के विभिन्न देशों में बसे हुए हैं। नि:संदेह भारतीय प्रतिभा का सबसे अधिक जमाव हुआ है अमरीका में। वहां अत्यंत विशिष्ट भारतीय विज्ञानियों ने मुझसे कहा कि हम अमरीका में जितना वेतन आदि पा रहे हैं, उससे बहुत कम वेतन पर भी हम भारत में आकर काम करने को तैयार हैं, बशर्ते हमें राजनीतिज्ञों की दखलंदाजी और नौकरशाही के नियंत्रण के बिना काम करने दिया जाये।

यह हमारी त्रुटि है कि हमने विदेशों में रह रहे अपने विशिष्ट व्यक्तियों का समुचित आदर और गौरव नहीं किया है। राजनीति से अत्यधिक आक्रांत रहने के कारण हम अपने देश की विशिष्ट प्रतिभाओं की उपेक्षा करते रहे, जो अब अमरीका में मानवीय चिंतन में परिवर्तन ला रहे हैं और मानव-जीवन को समृद्ध बना रहे हैं। इनमें से चंद नाम हैं—हरगोविंद खुराना, जुबीन मेहता, प्रो. सुदर्शन और प्रो. चंद्रशेखर।

विश्व-राजनीति की दृष्टि से भारत के महत्त्व को अब अधिक व्यापक रूप से समझा जाने लगा है, जैसा कि अब तक कभी समझा नहीं गया था। टेक्सास विश्वविद्यालय (आस्टिन, अमरीका) के प्रो. रोस्टोव ने यह आस्था प्रकट की है कि भारत में प्रजातंत्र जो जिंदा बच गया, यह द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। ब्रिटिश इतिहासकार ई. पी. टाम्सन ने कहा है—'विश्व के भविष्य के लिए भारत एक महत्त्वपूर्ण देश नहीं, बल्कि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देश है..... अगर यह महादेश तानाशाही में सिमट गया, अगर यह वैविध्यपूर्ण बुद्धिशक्ति और सृजनशीलता समरूपता के अंधकार में गर्क हो गयी, तो यह मानव-इतिहास



ताराभौतिकी-विशेषज्ञ डा. चंद्रशेखर

की सबसे बड़ी पराजयों में से एक होगी; जिससे एशिया के अन्य भी अनेक देशों की पराजय अटल हो जायेगी।'

अपने पंद्रह मास के विदेश-वास ने मुझे तीन नतीजों पर पहुंचाया है :

पहला यह कि भारतीयों की जन्मजात बुद्धिशक्ति और कौशल इतनी ऊंची किस्म के हैं कि भारत चोटी पर पहुंच सकता है; बशर्ते हम शिक्षा, संघटन और अनुशासन से युक्त हों। वैसे, बहुत कड़ी शर्त है यह।

दूसरे, हमें इस भ्रांति से छुटकारा पा लेना चाहिये कि तमाम समस्याएं राजनीति से सुलझ सकती हैं। इसी भ्रांति के चलते लोग राज्य की शक्ति का असीम फैलाव कबूल कर लेते हैं, जो कि बहुत ही खतरनाक चीज है, जैसा कि गांधीजी बार-बार हमें समझाते रहे। कानून की चुप्पी ही नागरिकों की स्वतंत्रता है।

तीसरे, जैसे कि डा. ई. एफ. शूमाकर ने अपनी पुस्तक 'ए गाइड फ़ॉर द परप्लेक्सड' में (जो कि उनकी मृत्यु के बाद छपी) कहा है–'पश्चिम का मनुष्य साधनों के मामलों में धनी और साध्यों के मामले में दरिद्र बन गया है।' भारत का पुराना ज्ञान दृढ़ता से यह घोषित करता आया है कि मनुष्य का सुख इसमें है कि वह ऊंचा उठे, अपनी उच्चतम क्षमताओं का विकास करे, उच्चतम चीजों का ज्ञान प्राप्त करे और हो सके तो ईश्वर-साक्षात्कार करे।



एक उत्साही खगोलवेत्ता ने एक बार प्रसिद्ध अमरीकी धर्मोपदेशक बिशप फुल्टन शीन से कहा–'खगोलवेत्ता की दृष्टि में मनुष्य अनंत ब्रह्मांड में एक अतिक्षुद्र बिंदु से अधिक कुछ भी नहीं है।'

'बहुत ही दिलचस्प दृष्टिकोण है यह। किंतु एक बात भूलते हैं आप–वह अतिक्षुद्र बिंदु गोलवेत्ता भी है।' बिशप शीन ने बड़ी शांति से उत्तर दिया।



नब्बे वर्ष के एक स्वस्थ-सुखी वृद्ध ने सुखी जीवन का यह सूत्र बताया था : 'चिंता कम करो, खेलो अधिक; सवारी पर कम चढ़ो, पैदल चलो अधिक; खपा कम होओ, हंसो अधिक; खाओ कम, चबाओ अधिक; खर्च कम करो, बचाओ अधिक; उपदेश कम दो, काम करो अधिक।'



वनस्पति-गीता

इस्माईलभाई नागोरी

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मिट्टी में सोये हुए बीज में से अंकुर उठ खड़ा होता है, तो जब तक जिंदा रहता है, रुख रखता है नूर की तरफ ही। पौधा अपना कदम तो जमीन पर ही रखता है, मगर रहता है ऊर्ध्वगामी—प्रकाश की तरफ ही अभिमुख। शाखाओं का फैलना, डालियों का बांकपन, टहनियों का घुम्मट बन आकाश-दर्शन, पेड़ों की बुलंदी, सबका एक ही लक्ष्य है—प्रकाश-प्राप्ति। प्रकाश अमृत है, प्रकाश का अभाव मृत्यु। किसान के द्वारा खेत में बोया हुआ बीज का दाना-दाना भी दुआ करता है: 'रब्बना अख़रिजना मिनज़् जुलुमाते इलन्नूर—प्रभो! हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ।'

पत्ती की जादुई दुनिया

एक बड़े पेड़ पर सत्तर लाख से भी ज्यादा पत्तियां होती हैं और हर एक का कार्य है पवन, प्रकाश, पानी और पृथ्वी से पकवान बना लेना। अंदर देखो तो इसके एक-एक कोष में बीस लाख क्लोरोफिल कण—पर्णहरित—प्रकाश की किरणें लेकर, एक किस्म का कारखाना ही चला रहे हैं। अच्छा, नीचे देखो तो एक-एक वर्ग इंच में तीन हजार और कई बार तो आधे लाख से ज्यादा खिड़कियां लगी हुई हैं, जिन्हें परिरंध्र कहते हैं। पत्ती अपरिग्रही है। अपनी आवश्यकता से ज्यादा पानी और प्राणवायु वह वातावरण को दे देती है; पक्व होने पर कंचनकाय बनती है, हवा में नाचती हुई धरती की गोद में आती है और क्षार भी वापस दे देती है।

पत्ती खुद एक प्रयोगशाला

सब सेंद्रिय पदार्थ—वनस्पति में, हैवान में, या मानव में—कहीं भी हों, किसी भी स्वरूप में हों, प्रथम पैदा हुए उन पदार्थों से, जो पत्ती में यानी क्लोरोप्लास्ट में बन पायें। कुदरत में पत्ती ही की एक प्रयोगशाला है, जहां निरिंद्रिय से सेंद्रिय पदार्थ रचे जाते हैं। दूसरे जितने रूप दिखाई देते हैं, वे सबके सब रूपांतर ही हैं। स्टार्च से शक्कर और शक्कर से सेल्यूलोज और शर्करा और एमोनिया मिलकर अनेकविध नत्रिल पदार्थ बनाते हैं।

पत्ती निरिंद्रिय पदार्थों से जो सेंद्रिय संयोजित वस्तु बनाती है, वह वनस्पति-जगत् को ही नहीं, प्राणि-जगत् को भी निभाती है।

फूलों की बहार

फूल यानी मृदुता, रंग, सौंदर्य, सुवास, कला का समन्वय। वनस्पति-जगत का भावी (भविष्य) इन आकर्षक अमल अंगों में छिपा हुआ है। नयी प्रजा का पैदा होना, नये आकार-रूप, नये गुण-दोष, नये स्वाद-रस, नयी संभावनाएं, सबका निर्माण सुकोमल फूल ही करते हैं। फूल मूर्तिमंत आशा हैं। वन-उपवन के रंग, घर-आंगन की शोभा, वायु की सुगंध, क्षितिज की रम्यता फूल की ही बदौलत है। फूल यौवन का प्रतिनिधि है। नवसर्जन का संदेश वसंत को वही देता है। रूपकों ने भगवान को भी 'कमलनयन' बनाकर फूल को पावित्र्य और क्या-क्या दे दिया। फूलों की बहार इस लिहाज से नूतन विकास की ही नहीं, पूर्णता के पथ पर पुलकित प्रयाण की भी ध्वजधारिणी है।

महकते सितारे

कुटीर के पास आंखों के सामने ही मदनबान की कतारें लगी हुई हैं; फिर भी न पत्ती दिखाई देती है, न पौधा। काली रात की श्यामल चादर पर छाये हुए प्रकाशित फूल ही फूल नजर आते हैं। विद्यार्थियों से कहा–'अमावस्या के चमकते सितारे तो देखे होंगे। आओ, तुम्हें महकते सितारे बताऊं। देखो तो सही, कितनी सुगंध! कितना सौंदर्य! इसी लिहाज से पागल बनकर पतंगे सुवासित मार्ग से फूल तक पहुंच जाते हैं। जाकर बैठो शांति से उनके समीप। निसर्ग की कई-कई बातें सुनने को मिलेंगी उनकी मूक भाषा में।'

फलीकरण

दो इंच के एक पुष्पगुच्छ पर कैमरे की आंख लगायी गयी, तो क्या नजर आया? हर पांच सेकंड में एक कीटक मुलाकाती आता है। आठ घंटे का दिन गिनें, तो सत्तावन सौ से भी अधिक आने वाले हुए। एक-एक मधुमक्खी एक-एक लाख पराग-कण ले सकती है। एक मिनट में वह तीस फूलों को पराग पहुंचाती है। एक दिन में कितने फूलों को वह पराग पहुंचाती होगी! हर फूल की रचना और कीटक का अंदर जाना-बाहर आना ऐसा होता है कि फलीकरण हो ही जाये। उसी सबसे बागों में और खेतों में आयोजनपूर्वक छत्ते बसाये जाते हैं। मधु और फलबीज दोनों बढ़ते हैं।

संतति-नियमन

शीर्षक से तुम्हें अचंभा होगा कि जहां संतति की गिनती भी दुश्वार है, वहां निय-

मन कहां से आ गया ? मगर कुछ न कुछ अंकुश इस प्रचंड प्रजोत्पत्ति पर कुदरत में दिखाई देता है। आम की मंजरी देखो। एक-एक पुष्पगुच्छ में सैकड़ों फूल होते हैं। वसंत ऋतु आयी और आम गोया गुंबदेगुल बन गया। मगर ठहरो। यह बहार चंद दिनों की ही है। मंजरी में जहां फूल बारह सौ थे, वहां सुपारी-साइज के फल दो-चार-आठ ही होंगे। बुच का एक स्तर पोषण-प्रवाह बंद कर देने के लिए आप ही आप पैदा होता है और संतति-नियमन का कार्य शुरू कर देता है। क्या कुदरत है !

परजीवी वनस्पति

वनस्पति-समाज के आर्किड, पोथोस जैसे कई सदस्य ऐसे हैं, जो रहते हैं दूसरों की देह पर, फिर भी खाने-पीने का प्रबंध खुद कर लेते हैं। मगर लोरेन्थस जैसे कई ऐसे भी हैं, जो आक्टोपस की तरह मेजबान का खून चूसकर ही जीते हैं, यहां तक कि कई बार मेजबान कमजोर होकर मर भी जाता है। पेड़ पर के छत्रक जैसे कई ऐसे भी हैं, जो जीवन-रस नहीं पीते, मुर्दा त्वचा या मुर्दा अंग का ही इस्तेमाल करते हैं और सिम्बायोटिक नोडयूल्स वाले बैक्टीरियां जैसे कई ऐसे भी हैं, जो लेते भी हैं, देते भी हैं। जीने की रीतें वनस्पति में बेशुमार हैं।

पानी बिच मीन पियासी रे

दो सौ से पांच सौ मील की गहराई का एक हवाई महासागर हमारे ऊपर छाया हुआ है। इस हवाई महासागर में नाइट्रोजन कल्पनातीत मात्रा में होता है। एक एकड़ गेहूं के लिए तिरसठ पाउंड नाइट्रोजन कायम है और उसी एक एकड़ पर सैंतीस हजार टन नाइट्रोजन तैर रहा है ! लेकिन गेहूं की हालत तो पानी में मीन पियासी जैसी। नाइट्रोजन के महासागर का उसे कोई काम नहीं। नाइट्रोजन पाने के लिए उसे मूल, पत्ती या मानव का ही सहारा लेना पड़ता है। अंग्रेज कवि कोलरिज की पंक्ति याद आती है : 'पानी पानी सर्वत्र, पीने को नहीं बूंद' (वाटर वाटर एवरी ह्वेयर एंड नाट ए ड्राप टु ड्रिंक)।

पानी से प्रीत

वनस्पति के मूल को पानी से ऐसी प्रीत है कि उसे वे कहीं से भी ढूंढ़ निकालते हैं। टेमेरिस्क सौ-सौ फुट की गहराई से पानी प्राप्त कर लेता है। मेक्सिको के राक्षसी कैक्टस गहराई में तो तीन फुट से ज्यादा नहीं जाते, मगर इर्द-गिर्द—अतराफ में तो नब्बे फुट के वर्तुल में पहुंचकर तृषा बुझाते हैं। एक किस्म का कैक्टस सदा गैलन पानी संगृहीत करता है। ऐसे भी पेड़ हैं, जो छह-छह साल तक अपने संग्रह पर ही जी सकते हैं। बिसनागा को अगर काट जाये और उसमें कटोरे-सा गड्ढा बनाया जाये, तो वह फौरन उसे पानी से भर देता है। जैसे हमारा, वैसे ही वनस्पति का जीवन पानी पर अवलंबित है।

बैक्टीरिया के विभिन्न कार्यक्षेत्र

दूध का दही बनाना, द्राक्षा, गन्ने का रस, खजूर का पानी वगैरह मीठे तरलों में से शराब या सिरका बनाना, साइलेज बनाना,

गोशाला के कूड़े-कचरे में से खाद बनाना, वनस्पति की पत्तियों में से पत्तीखाद (लीफ-मोल्ड) बनाना, पनीर को किस्म-किस्म का जायका देना—सब इन जीवाणुओं की सहायता से ही होता है। गंदे पानी में से स्वच्छ पानी नितारना बैक्टीरिया की ही करामात है। बैक्टीरिया न होते तो खेती के काबिल जमीन न होती, मृत उद्भिज्ज-प्राणिज देहों से पृथ्वी पट जाती। यमराज के प्राणहर दूत भी बैक्टीरिया के खानदानों में से मिलते हैं। सर्जन-विसर्जन के आयोजन में बैक्टीरिया के कार्यक्षेत्र कितने अनिवार्य और विभिन्न हैं!

परिवार एक, देहरूप अनेक

घास और बांस, गेहूं और गन्ना—देखने में कितना फर्क है! लेकिन चारों एक ही परिवार के हैं। करेला और कद्दू के स्वरूप, स्वाद सब अलग-अलग, मगर हैं वे दोनों ककड़ी के ही कुटुंब के। कृष्णकमल और कौला एक ही घराने के हैं, मगर एक वृक्ष है, एक वल्ली। आलू, मिर्च, बैंगन, टमाटर एक ही कबीले के हैं—पोषण में पोटाश की तरफ रगबत सबकी यकसां है। मूंग, मूंगफली और मक्खनसेम एक ही गिरोह से आते हैं—हवा से नाइट्रोजन हासिल कर लेने की व्यवस्था सबमें समान है। हां, जैसा साम्य है, वैसी ही विभिन्नता भी है। एक ही परिवार में कोई रसीला, कोई नशीला, तो कोई जहरीला भी है। कितनी अद्भुत है वनस्पति-सृष्टि!

मूल के असाधारण रूप

प्रायः मूल को निजी रंग-रूप के सिवा न शोभा मिली है, न कुछ असाधारणता। मगर कहीं-कहीं ठाट भी कर लेता है और असामान्य भी बन जाता है। खबर नहीं क्यों, शलगम, मूली जैसी जड़ें साहूकार की तरह पेट बढ़ा लेती हैं और लाल, गुलाबी, पीला, काला, जामुनी रंग भी चढ़ाती हैं। मैन्ग्रोव की जड़ वृक्ष पर के बीज में से सीधी जमीन में उतरती है और बड़ की जड़ डाली से झूला खाकर स्तंभ-सी बन जाती है। केवड़ा बाजू में टेके-सी जड़ें निकालता है और कई जलबेलें लटकती जड़ रखती हैं। जड़ आधार भी बनती है, कोठार भी बनती है। हवा और जमीन से पानी भी चूसती है एवं नयी बस्ती भी बढ़ाती है। इस जग में असाधारण कौन नहीं?

कमल-बीज की अद्भुत कहानी

मंचूरिया में एक सरोवर था। गुलाबी कमलों से नीले जल की मनोहर शोभा थी। कमल-फलों का कुछ हिसाब नहीं था। धरती ने करवट ली और सरोवर गायब हो गया, कमल दफन हो गये, जल था वहां थल हो गया। सैकड़ों साल का कारवां गुजर गया। फिर उस रेत में खेत हुए। काश्तकारी शुरू हुई। किसान-बाल हल से निकले कमल-बीज खाने लगे। बीज की बात विज्ञान-भवन तक पहुंची। शिकागो विद्यापीठ के वैज्ञानिक डा. लिब्बी ने बीज की उम्र एक हजार और चालीस साल की करार दी। बीज बोये गये तो कमल-बाल पैदा हुए। वाशिंगटन में उनकी औलाद आज भी है।

[लेखक की पुस्तक 'वनस्पति जीवन दर्शन' से]



जब हम राजाजी से सवाल करने गये

जगदीश नारायण वर्मा

सन ४२-४३ के भयानक दिन थे वे। एक रोज 'हितवाद' में यह खबर पढ़ी कि राजाजी (चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) नागपुर से गुजर रहे हैं। बंबई में वे मि. मुहम्मद अली जिन्ना से पाकिस्तान की रूपरेखा पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने वाले थे। हम लोगों ने स्टेशन पर उनसे मिलने की ठानी।

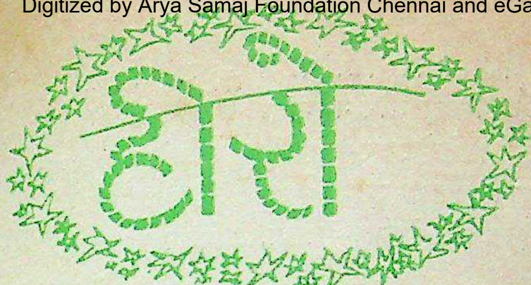
मेल में बड़ी भीड़ थी। पर हमने पहले दर्जे के डिब्बे में उन्हें खोज निकाला। पाकिस्तान की रूपरेखा के बारे में तो उन्होंने खास कुछ कहा नहीं, मगर इधर-उधर की बहुत-सी बातें–खासकर हम लोगों की पढ़ाई के विषय में--पूछते रहे। सलाह भी दी कि विद्यार्थियों को पहले पढ़ाई पर पूरी तरह ध्यान देना चाहिये, उसके बाद ही राजनीति में दखल देना चाहिये।

तभी प्लैटफार्म पर एक अंग्रेज-दंपति जंजीर में बंधे हुए दो विलायती कुत्ते लिये हुए आये; उनके साथ अपनी 'आया' के संग कुत्ते के पिल्ले को लिये उनका बच्चा भी था। वे सब अपने बैठने का डिब्बा खोजने की हड़बड़ी में थे। मेरे एक मित्र के मुंह से निकला–'इतनी भीड़ और ये साहब बहादुर बीवी-बच्चों के अलावा कुत्तों का परिवार लेकर गाड़ी में जाना चाहते हैं। जब इन्सानों के बैठने की जगह नहीं है, तब यह बारात ये कहां बैठायेंगे।'

राजाजी ने सुना और अंग्रेजी में कहा–'ये अंग्रेज अब कुछ समय के लिए ही हमारे मेहमान हैं। गाड़ी में इनके बैठने के स्थान पहले से रिजर्व्ड होंगे। कुत्तों के लिए रेलगाड़ी में अलग स्थान होता है। जब मालिक जा रहे हैं तो कुत्ते भी जायेंगे ही; बंद कोठी में वे कैसे रहेंगे भला। पर आपने देखा, कुत्ते का पिल्ला अपने स्वस्थ-सुडौल छोटे मालिक के साथ कितना प्यारा लग रहा है! देखिये, पिल्ला कैसे मुड़-मुड़कर अपने छोटे सरकार को देखता हुआ चल रहा है।'

हम विद्यार्थी राजाजी के इस उदार प्रेममय दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुए। वैसे पाकिस्तान की रूपरेखा को सहानुभूतिपूर्वक समझने और 'उलटी गंगा' बहाने के कारण जनता में वे उस समय बहुत अप्रिय हो गये थे और इसी कारण उनसे मिलने स्टेशन पर हम विद्यार्थियों के सिवा कोई नहीं आया था।

★



स्व. बलराज साहनी

इनाम देने की रस्म टैगोर थिएटर में होने की बात थी; लेकिन जब मैं चंडीगढ़ के हवाई अड्डे पर उतरा, तो पता लगा कि कोई और ही जगह चुनी गयी है।

वहां पहुंचने पर मैंने देखा कि शानदार पंडाल लगाया गया है और शहर की लगभग सारी 'जेन्ट्री' सोफों और कुर्सियों पर विराजमान है। बाहर भी इतनी भीड़ थी कि उसे संभालना पुलिस के लिए कठिन हो रहा था। पंजाब के मुख्यमंत्री, शिक्षा-मंत्री और भाषा-विभाग के निदेशक मंच पर आ चुके थे। सिर्फ गवर्नर साहब की प्रतीक्षा थी। मेरी आंखों के आगे पंडाल के बाहर की भीड़ और उस पर उभरी हुई पुलिस की लाठियों का दृश्य घूमने लगा। मुझे ऐसा लगा कि मैं किसी फिल्म के प्रीमियर पर आ गया हूं।

खचाखच भरी मोटर में से मैं गेंद की तरह उछलकर ऊपर उठा। फिर दोनों हाथ जोड़ते हुए ऊपर उठाकर चारों तरफ की भीड़ को सलामी देने लगा, जैसे अखाड़े में उतरने से पहले पहलवान करते हैं।

११७९

मुझे देखते ही पंडाल में लोग कुर्सियों पर से उठ खड़े हुए और उनके बीच में बिछा लाल कालीन एक लंबी गली में बदल गया। तभी उस गली में से पहियों वाली कुर्सी पर बैठा मेरी ओर आता ओम्प्रकाश दिखाई दिया। उसकी लकड़ी की टांगें सामने की ओर इस तरह उठी हुई थीं, जैसे रेल-इंजन के बंपर हों।

कुर्सी के पहियों को दोनों हाथों से घुमाता हुआ वह मेरे सामने आकर ऐसे रुका, जैसे ये सारी तैयारियां हम दोनों की मुलाकात के लिए ही की गयी हों, जैसे यह सिकंदर और पोरस की मुलाकात हो। एक सब-इंस्पेक्टर ने उसे रास्ते में से हटाने की कोशिश की; लेकिन मैंने झट आगे बढ़कर उसका हाथ अपने हाथों में थाम लिया। उसके हाथ मुझे असाधारण रूप से बड़े और तगड़े महसूस हुए। कुर्सी पर स्थिर उसका धड़ भी असाधारण रूप से बड़ा लग रहा था।

'मां से मिलने आयेंगे न?' उसने बड़े अपनापे से मेरी ओर आंखें उठाकर कहा।

लेकिन तुरंत संतोषप्रद जवाब न पाकर दूसरों के सामने अपमान की संभावना से उसकी आंखों में दयनीयता और नगण्यता का भाव उभर आया। इसे देखकर मुझे दुःख हुआ। मैंने तपाक से दुबारा उसका हाथ दबाया और ऊंची आवाज में कहा—'जरूर, जरूर।'

तब तक पीछे से और इर्द-गिर्द से शोर उठने लगा था। जैसे-तैसे ओम्प्रकाश की कुर्सी रास्ते से हटायी गयी और मेरा जुलूस एक बार फिर आगे बढ़ा।

लेकिन मेरा उत्साह अब बिलकुल ही मर चुका था। जैसे मंच पर सचमुच फांसी का फंदा मेरी प्रतीक्षा कर रहा हो, जैसे वह लाल कालीन खून की नहर हो और उसमें ओम्प्रकाश की कटी हुई दोनों टांगें बही जा रही हों।

नेफा के मोर्चे पर चीनियों के खिलाफ लड़ाई में ओम्प्रकाश ने अपनी टांगें गंवायी थीं। अब उसे सिर्फ ४२ रुपये ८ आने माहवार की पेन्शन मिलती थी। तीन चीनी भी मारे थे उसने; इसके बदले में उसे २० रुपये प्रति चीनी के हिसाब से इनाम भी मिला था।

अक्सर यह कहा जाता है कि कोई तलवार से देश की सेवा करता है, कोई कला से। मैंने कला से देश की सेवा की थी और इसके एवज में आज मुझे ५,१०० रुपये का इनाम मिलने वाला था और बंबई से चंडीगढ़ आने-जाने का हवाई जहाज का किराया भी। मैं मन ही मन दोनों प्रकार की सेवाओं की तुलना कर रहा था।.....

× × ×

ओम्प्रकाश पहली बार भी मुझसे ऐसे ही नाटकीय ढंग से मिला था। तब मैं एक फिल्म की आउटडोर शूटिंग के लिए चंडीगढ़ गया हुआ था। एक रात किसी अमीर दोस्त के घर पार्टी थी। स्काच का दौर जोरों से चल रहा था। पंजाबी मेहमाननवाजी, पंजाबी हुस्न, पंजाबी हंसी-मजाक अपनी आखिरी हदें छू रहे थे। मार्च का महीना था, बेहद सुहावना महकता हुआ मौसम। ड्राइंग-रूम सुंदरियों से महक-चहक रहा था।

तभी एक मित्र ने आकर मेरे कान में कहा—'बली, बाहर एक आदमी खड़ा है तुमसे मिलने के लिए। जरा एक मिनट बाहर जाकर उसे दर्शन दे आओ।'

मैंने कहा—'आज के दिन मैं सारी ड्यूटियां भुगता चुका हूं। उससे तुम कह दो कि कल सुबह होटल में आकर मिल लें।'

'मेरी रिक्वेस्ट है, बली! वह शाम के पांच बजने से पहले ही कोठी पर आ गया था। और अभी तक बाहर खड़ा है।'

मैं बड़ी बेदिली से बाहर गया। गैराज के पास दूधिया चांदनी में चमक रहे सीमेंट के फर्श पर खड़े कुछ लोगों की टोली के साथ पहिये वाली कुर्सी पर प्लास्टिक के पुतले की तरह बैठा हुआ था ओम्प्रकाश। मुझे देखकर उसने फौजी ढंग से सलाम किया। मैं कुछ समझ नहीं पाया और बूत

पास आकर सभी लोगों से हाथ मिलाने लगा। ओम्प्रकाश कुर्सी पर बैठे-बैठे ही बोला– 'क्या हम भी मेजर रनबीर सिंह साहब के साथ हाथ मिला सकते हैं ?' फिर खिल-खिलाकर हंस पड़ा।

'कौन मेजर रनबीर सिंह ?' मैंने जरा परेशानी से पूछा।

'"हकीकत" के मेजर रनबीर सिंह, और कौन !' वह फिर उसी प्रकार हंसा।

'पसंद आयी तुम्हें वह पिक्चर ?' मैंने रस्मी तौर पर सवाल किया।

'कैसे न आती साहब, हम भी तो लड़े हैं चीनियों के साथ। आप मेजर थे, हम मामूली सिपाही सही।'

उसकी व्यंग्यपूर्ण हंसी और लकड़ी की टांगों की असलियत अब मेरी समझ में आयी। और मैं सन्न रह गया। एक फौजी जवान, जिसने भारत-चीन युद्ध में अपनी दोनों टांगें खोयी थीं, मुझसे मिलने के लिए चार घंटे से इंतजार कर रहा था ! मुझे बेहद शरम महसूस हुई।

'तुमने मुझे खबर क्यों नहीं दी कि तुम फौजी जवान हो ?' मैंने कहा।

'बताकर मिलने में नहीं, मेजर साहब, बल्कि मिलकर बताने में मजा है।'

'मुझे बार-बार "मेजर साहब" कहकर शर्मिंदा न करो, ईश्वर के वास्ते।'

'आप अपनी कीमत हमारे दिल से पूछिये।'

कुर्सी पर बैठे होने के कारण वह मुंह उठाये मेरी ओर देख रहा था। उसकी नजर मेरे अंदर बेचैनी पैदा कर रही थी। मैं बड़े प्यार से उससे बातें करता रहा। लेकिन उन बातों में कितनी सचाई थी, कितनी ऐक्टिंग और कितना व्हिस्की का असर था, यह मैं खुद नहीं जानता।

ऐक्टिंग में मजबूरी भी होती है। वरना पूरे आदर के साथ उस बहादुर जवान को अंदर पार्टी में ले गया होता। फिर भी मेरे व्यवहार का उन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। कुछ एक ड्राइवर भी वहां आकर खड़े हो गये थे। वे भी मुझे खुशी-भरी आंखों से देख रहे थे। अंत में ओम्प्रकाश से विदा लेते समय उस प्रभाव को और भी गहरा करने के लिए मैंने कह डाला–'मेरे लायक कोई सेवा हो तो जरूर बताना।'

'वह तो अभी बताये देता हूं। मंजूर करेंगे ?'

'अगर मेरे करने लायक हुई तो......'

इस बार मैंने झिझकते हुए कहा।

'मेरा घर यहां से सिर्फ पांच मिनट के फासले पर है। जरा चलकर मेरी मां से मिल लीजिये। आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।'

मेरी जान में जान आयी। मैंने कहा– 'हां-हां, जरूर, खुशी से।'

मुझे कोठी से बाहर जाते देख मेरे वे मित्र, जिन्होंने बाहर आने का अनुरोध किया था, परेशान-से हो गये और उन्होंने वहां खड़े लोगों से कहा–'इन्हें जरा जल्दी छोड़ देना।' फिर वे कोठी में चले गये।

ओम्प्रकाश ने सड़क पर आकर अपने

११७९

साथियों से मेरा परिचय करवाया। सभी उस 'स्पोर्ट्स-क्लब' के सदस्य थे, जो ओम्प्रकाश ने शुरू किया था। उस साल उनकी वालीबाल-टीम सारे पंजाब में अव्वल रही थी। कुछ आगे बढ़ने पर एक पेट्रोल-पंप पर खड़े, उस क्लब के कुछ और सदस्य हमारे साथ हो गये। अच्छा-खासा जुलूस बन गया। मुझे चिंता हुई कि अगर इसी तरह लड़के साथ होते गये तो मेरी वापसी का क्या भरोसा? मेरे संग न मेरा कोई साथी था, न मेरे पास गाड़ी थी। मैं रुक गया।

'इस तरह तो बहुत मुश्किल हो जायेगी ओम्प्रकाश! तुम्हारी माताजी से मिलने के लिए मैं कल किसी वक्त आ जाऊंगा।' मैंने कहा।

वह मेरी घबराहट का कारण समझ गया और गंभीरता से बोला—'आप बेफिक्र रहिये। ये सब मेरे अपने ही लोग हैं।' फिर उसने अपने साथियों से कहा—'देखो भाइयो, किसी को न बताना कि हमारे साथ कौन जा रहा है। साहनी साहबजी को किसी किस्म की तकलीफ न हो। एकदम पाबंद, डिसिप्लिन।' इस बार उसने मुझे 'मेजर साहब' नहीं कहा।

मैंने कुर्सी का हैंडल घुमाते हुए ओम्प्रकाश के मजबूत हाथ, हृष्ट-पुष्ट अधूरे शरीर और चेहरे की ओर देखा। वहां मुझे किसी किस्म की उदासी या निराशा की झलक तक नहीं दिखाई दी। लेकिन एक फिल्म-स्टार के दर्शन के लिए किसी की कोठी के बाहर चार-चार घंटे इंतजार करने की बात अजीब-सी लगती थी और उसकी हीन भावना और अपूर्णता की सूचक भी। कहीं ऐसा तो नहीं कि दर्दनाक असलियत की आंखों में आंखें डालकर देखने की उसकी हिम्मत जवाब दे चुकी हो? वह असलियत दर्दनाक भी तो कितनी है!

कभी मैंने एक रूसी हवाबाज की कहानी पढ़ी थी। जंग में उसकी दोनों टांगें कूल्हों तक कट गयी थीं। लेकिन अस्पताल से खारिज होते ही उसने नकली टांगें लगवा ली थीं। फिर उनसे चलने का इतना अभ्यास किया था कि बिना छड़ी के सहारे के ही चलने लगा था। यहां तक कि वह नाच भी सकता था। अंत में उसे फिर से वायुसेना में ले लिया गया और वह जंग में दुश्मनों से लड़ा भी।

क्या ऐसी टांगें हिंदुस्तान में ओम्प्रकाश के भी लग सकती थीं? अगर हां तो वह इस देश की सरकार से उन्हें हक के तौर पर क्यों नहीं पा सका? वे उसे कहीं से दान में शायद मिल सकती थीं—किसी अमीर आदमी या किसी संस्था की मेहरबानी की बदौलत। लेकिन सैनिक के लिए दान जहर से भी ज्यादा कड़वा होता है। वैसे पूंजीवादी देशों में अपाहिज सैनिक का भिखारी बन जाना हैरानी की बात भी नहीं है।

आदमी जिस असलियत को सह नहीं पाता, उससे भागने लगता है। कहीं ओम्प्रकाश भी किसी काल्पनिक संसार में तो नहीं

बस गया है? एक ऐसा संसार, जिसमें मैं मेजर रनबीर सिंह और वह—एक फौजी जवान—दोनों बराबर हैं? जैसे उसने भी सचमुच की लड़ाई न लड़ी हो, बल्कि किसी फिल्म में लड़ने का अभिनय किया हो।

असलियत और सपनों के बीच का फासला बाल-बराबर ही तो होता है। जब हम लद्दाख में 'हकीकत' की शूटिंग कर रहे थे, तो हमारा रहना-खाना सब फौज के साथ ही था। जो कलाकार अफसरों की भूमिकाएं कर रहे थे, उन्हें अफसरों के मेसों में ठहराया गया था। सुबह होते ही अरदली उनके लिए भी चाय के मग भरकर लाते, उनकी पेटियों और बूटों पर पालिश करते, उनकी वर्दियों के बटन चमकाते। जब वे मेसों में से बाहर निकलते, तो संतरी उन्हें भी 'सेल्यूट' करते। जब खाना खाने के लिए बैठते, तो वे भी कमर की पेटी ढीली कर लेते और पेटी के खाने में से पिस्तौल निकालकर पतलून की जेब में डाल लेते। फर्क सिर्फ इतना था कि उनके पिस्तौल लकड़ी के होते। इसी तरह साधारण फौजियों की भूमिकाएं करने वाले कलाकार जवानों के साथ रहते और फौजी जिंदगी की सख्तियों का खुशी से पालन करते थे।

एक दिन एक खतरनाक बर्फानी नाला पार करने का दृश्य फिल्माते समय इसी भ्रांति का शिकार होकर मैं भी मेजर रनबीर सिंह के रूप में असली हुक्म देने लग गया था, हालांकि यह ड्यूटी अधेड़ उम्र के एक सार्जेंट की थी। मेरी इस मूर्खता के कारण नकली और असली दोनों किस्म के जवानों की जानें खतरे में पड़ गयीं। बड़ी मुश्किल से हमें नाले में से बाहर निकाला गया। तब उस सार्जेंट ने तोल-तोलकर मुझे गंदी गालियां दी थीं। लेकिन उस समय वे गालियां भी मेरे कानों को अच्छी लगी थीं। फौज ने मुझे असली अफसर समझा था, मेरा हुक्म माना था—इससे ज्यादा खुशी की बात एक ऐक्टर के लिए क्या हो सकती थी।

अगर मैं भूलता नहीं तो 'हकीकत' की उस भूमिका के लिए मुझे चालीस हजार रुपये मिले थे!

मैंने फिल्मी मेजर के अंदाज में कुछ हमदर्दी दिखाकर ओम्प्रकाश से पूछा—'पेन्शन वगैरह अच्छी मिलती है न?'

इस सवाल के लिए वह तैयार नहीं था और यह फौजी की शान के खिलाफ भी तो था। उसने मुस्कराकर कहा—'ये बातें घर चलकर करेंगे।'

हम सड़क छोड़कर क्वार्टरों से घिरे एक चौरस मैदान में दाखिल हुए मेरे आने का पता लगते ही वहां चहल-पहल हो गयी। एक दुमंजिले क्वार्टर की सीमेंट की सीढ़ियों पर किसी प्रकार धक्का-मुक्की करके चढ़ना पड़ा मुझे। ओम्प्रकाश कैसे आयेगा? आ भी रहा है, या नहीं? मुड़कर देखना मुश्किल था।

ऊपर आकर देखा, एक लंबे-से कमरे

[शेष पृष्ठ १४६ पर]

नाम ही इनका नामे ना

प्रमोद जोशी

● सोने के मुकुट में मिलावट ज्ञात करने के जिस सिद्धांत का पता यूनान के महान गणितज्ञ आर्शमीदस को नहाते समय लगा था, वह आज भी 'आर्शमीदस का सिद्धांत' कहलाता है।

● शल्यक्रिया की जिस विधि द्वारा जूलियस सीजर का प्रसव हुआ, उसे 'सीजेरियन आपरेशन' कहा जाने लगा।

● जर्मन वनस्पतिशास्त्री फुच का नाम अत्यंत सुंदर और आकर्षक पौधे फुचिया से सदा के लिए जुड़ गया।

नामों पर से नाम रखने की यह परंपरा दुनिया में बहुत पुरानी है। विज्ञान भी इस प्रथा से अछूता नहीं है। सैकड़ों वस्तुओं, संकल्पनाओं, नियमों व अभिकर्मकों के साथ वैज्ञानिकों के नाम जुड़े हुए हैं—कुछ तो उनके पर्यायवाची ही बन गये हैं। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं :

० **गैब्रियेल फेलोपियो** (१५२३–६२) : ये इतालवी चिकित्साशास्त्री थे और पैडुवा विश्वविद्यालय में शरीररचना-विज्ञान और वनस्पतिशास्त्र पीठ के अध्यक्ष रहे। शरीर-रचना-विज्ञान पर एक बृहत ग्रंथ लिखा और गर्भाशय-नली, प्रघाण, कर्णपटल-तंत्रिका जैसे आंतरिक अवयवों का पता लगाया।

फेलोपियन नली : मादा स्तनपायि… के जननांग में पायी जाने वाली एक न… जिसमें से होकर अंड या डिंब गर्भाशय… पहुंचता है।

० **मार्सेलो मैलपिघी** (१६२८–९४) इटली के बोलोना और पीसा विश्वविद्याल… में चिकित्सा-विज्ञान के प्राध्यापक; भ्रू… विज्ञान, ऊतक-विज्ञान और पादप-शरी… रचना-विज्ञान के प्रकांड विद्वान। शरी… रचना-विज्ञान पर दो खंडों की पुस्तक लि… और मानव-शरीर तथा वनस्पति-शरीर… अनेक संरचनाओं का पता लगाया। १६६… में एफ. आर. एस. (रायल सोसायटी, लं… के फेलो) निर्वाचित।

मैलपिघियन परत : त्वचीय परत… ठीक बाद पायी जाने वाली बाह्य त्वचा… एक परत, जिसमें कोशिका-विभाजन नि… तर होता रहता है और त्वचा को गहरा रं… देने वाला रंजक पदार्थ 'मेलानिन' पा… जाता है।

० **गेब्रियल डेनियल फारेनहाइट** (१६८६–१७३६) : दुकानदारी में विफल हो… भौतिकी का अध्ययन किया; व्यवसाय… कांच फुलाना और भौतिकी के उपकर… बनाना। १७२४ में ०° से २१२° अंक…

वाले तापमापी (थर्मामीटर) का निर्माण। उन्होंने वर्ष जल के अतिशीतलन तथा दाब बदलने के साथ उबाल-बिंदु बदलने का सिद्धांत खोजा। १७२४ में एफ. आर. एस.।

फारेनहाइट : तापमान का एक माप। प्रत्येक फा. अंश सेंटिग्रेड अंश का ५/८ वां हिस्सा होता है। ०° फा. बर्फ, जल तथा नमक के मिश्रण का तापमान है; ३२° फा. बर्फ के जमने का; और २१२° फा. जल के उबलने का।

० **जोहान हाइनरिश लैम्बर्ट** (१७२८–१७७७) : जर्मन गणितज्ञ। बड़ी कठिनाइयां झेलकर पढ़े, क्लर्क और प्राइवेट शिक्षक रहे। बर्लिन खगोलविद्या वार्षिकी का संपादन किया। त्रिकोणमिति में हाइपरबोलिक फलन का प्रवेश कराया और ताप, प्रकाश एवं वर्ण के संबंध में व्यापक कार्य किया।

लैम्बर्ट : द्युति (ब्राइटनेस) की इकाई जो १/π कैंडल प्रति वर्ग सेंटिमीटर के बराबर होती है।

० **जेम्स वाट** (१७३६–१८१९) : सुधरे हुए भाप-इंजन के निर्माण के लिए विश्व-विख्यात ब्रिटिश इंजीनियर। १७८५ में एफ. आर. एस.।

वाट : बिजली की एक इकाई। उपभोक्ता को बिजली बेचने में इसका इस्तेमाल किया जाता है। १,००० वाट (या १ किलो वाट) १.३५ अश्वशक्ति (हार्सपावर) के बराबर होता है।

० **लुइजी गाल्वानी** (१७३७–९८) : इतालवी चिकित्सा-विज्ञानी, बोलोना विश्वविद्यालय में शरीररचना-विज्ञान के प्राध्यापक। पशु-विद्युत की संकल्पना प्रस्तुत की और रासायनिक विद्युत पर व्यापक कार्य किया।

गैल्वेनिज्म : रासायनिक प्रक्रिया द्वारा विद्युत का उत्पादन, विद्युतधारा की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त शब्द।

० **शार्ल आगुस्तिन दे कूलम्ब** (१७३६–१८०६) : फ्रांसीसी विज्ञानी, कुछ समय तक



गाल्वानी



वोल्टा

मार्तिनीक में सैनिक भी रहे। विद्युत और चुंबकत्व के क्षेत्र में शोधकार्य के लिए व्यापक यश मिला।

कूलम्ब : विद्युत-आवेश की एक इकाई।

० **एलेसांद्रो वोल्टा** (१७४५–१८२७) : पाविया विश्वविद्यालय (इटली) में भौतिकी के प्राध्यापक। बिजली को मानवोपयोगी बनाने में व्यापक योगदान। स्थैतिक विद्युत को जमा और भंडारित करने वाले उपकरण इलेक्ट्रोफोरस का आविष्कार और वोल्टेनिक सेल और बैटरी का निर्माण किया; धाराविद्युत सिद्धांत की प्रस्तुति।

वोल्टा : विभवांतर (पोटेन्शल डिफ़

अगला नवनीत

बर्नार्ड शा के साथ तीस वर्ष

शेक्सपियर के बाद के सबसे महान अंग्रेजी नाटककार बर्नार्ड शा की तीस वर्ष तक सेक्रेटरी रहने वाली महिला ब्लांची पीस की पठनीय पुस्तक 'थर्टी इयर्स विद बर्नार्ड शा' का सार।

अमीन : युगांडा का दुःस्वप्न

नीरो और कैलिगुला की परंपरा के एक शासक की झांकी।

प्रेमचंद हम सबके गुरु थे—**ख्वाजा अहमद अब्बास** का लेख।

गोरक्षा का अर्थशास्त्र

देश के विख्यात अर्थशास्त्री **प्रो. सी. एन. वकील** का लेख।

भारत के भेड़िया-बच्चे

एक बहुचर्चित प्रश्न है—'क्या भेड़िया मानव-शिशु का पालन-पोषण कर सकता है?' उत्तर सुनिये **धीरेन्द्र कुमार दीक्षित** से।

दो हिंदी कहानियां :

अलग कमरा—**आरिगपूडि**; कच्चे धागे से—**सुखबीर**।

विज्ञान और धर्म

देश के एक मूर्धन्य वैज्ञानिक **डा. डी. एस. कोठारी** के मननीय भाषण का सार।

अन्य लेख :

योग और उसका व्यवहार-पक्ष; माना की भीमशिला; माया मिली न राम।

कविताएं—संस्मरण—विज्ञान—हास्य—अन्य स्थायी स्तंभ।

(स्व) की इकाई।

० आन्द्रे मारी एम्पियर (१७७५–१८३६) : फ्रांसीसी भौतिकीविद् और रसायनज्ञ, जो बारह वर्ष की उम्र में ही अवकलन गणित में माहिर हो गये थे और अठारह की उम्र में फ्रांस के अग्रणी गणितज्ञों में गिने जाने लगे थे। पहले पहल यह बताया कि चुंबकीय पदार्थों में चुंबकत्व का आधारभूत स्रोत एक विद्युतधारा होती है, न कि चुंबकीय ध्रुव। बिजली की मोटर के बारे में आधारभूत जानकारी दी।

एम्पियर : धाराविद्युत की एक इकाई।

० कार्ल फ्रेडरिक गॉस (१७७७–१८५५) : सोलह वर्ष की उम्र में गैर-यूक्लिडीय ज्यामिति और अठारह वर्ष की उम्र में 'लीस्ट स्क्वेयर' नामक नयी परिकलन-विधि प्रस्तुत करने वाले जर्मन भौतिकीविद्। ग्रहों की कक्षा का परिकलन करने की विधि खोजी। एफ. आर. एस.।

गॉस : चुंबकीय क्षेत्र घनत्व की एक इकाई (सेंटिमीटर–ग्राम–सेकंड प्रणाली में)।

० जार्ज सिमन ओम (१७८९–१८५४) : म्यूनिक विश्वविद्यालय में भौतिकी के विशिष्ट प्राध्यापक। विभवांतर, विद्युतधारा तथा विद्युत-प्रतिरोध के बीच गणितीय संबंध (ओम नियम) की स्थापना और डी. सी. विद्युत परिपथों की गणितीय व्याख्या की। एफ. आर. एस.।

ओम : ओम (वोल्ट / एम्पियर) विद्युत-प्रतिरोध मापने की एक व्यावहारिक इकाई।

० जेम्स प्रेस्काट जूल (१८१८–८९) : ब्रिटिश भौतिकीविद्। सुप्रसिद्ध विज्ञानी जान डाल्टन से गणित, रसायन तथा वैज्ञानिक विधियों का प्रशिक्षण पाया। ताप के यांत्रिक सिद्धांत की स्थापना की। गैसों का अणुगणित सिद्धांत खोजा, जिसमें गैसीय अणु के वेग का आकलन पहली बार किया गया। एफ. आर. एस; अमेरिकन नेशनल सायन्स एकैडमी के सदस्य।

जूल : सेंटिमीटर–ग्राम–सेकंड प्रणाली में ऊर्जा की इकाई।



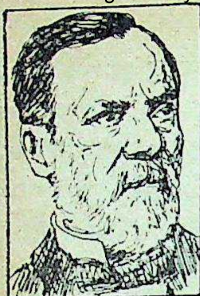
एम्पियर



गॉस

० **लुई पास्तुर** (१८२२–९५) : विश्व-विख्यात फ्रांसीसी रसायनज्ञ। लाइल विश्वविद्यालय में रसायन के प्राध्यापक। किण्वन पर व्यापक अध्ययन-अनुसंधान। एन्थ्रेक्स और रेबीस (कुत्ता काटने से होने वाला पागलपन) का अध्ययन किया और उनका टीका खोजा। त्रिविम-रसायन (स्टीरियोकेमिस्ट्री) में शोध, शर्कराओं की अणु-संरचना पर कार्य।

पास्तुराइज़ेशन (या पाश्चराइज़ेशन): तापोपचार द्वारा दूध आदि तरल पदार्थों में हानिकारी जीवाणुओं को नष्ट करने की



पास्तुर



मैक्सवेल

प्रक्रिया, जिससे वे पदार्थ अधिक समय टिक पाते हैं।

० जेम्स क्लार्क मैक्सवेल (१८३१–७९) : महान ब्रिटिश भौतिकीविद्। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, कैवेन्डिश प्रयोगशाला के निदेशक। विद्युतधारा तथा चुंबकीय क्षेत्र के बीच परस्पर क्रिया (मैक्सवेल सिद्धांत) की स्थापना, जो संवाद-प्रेषण के उपकरणों के विकास का आधार बना; अनेक समीकरणों की प्रस्तुति, जो विद्युत-चुंबकत्व के सभी नियमों तथा धारणाओं पर लागू होते हैं।

मैक्सवेल : सेंटिमीटर – ग्राम – सेकंड प्रणाली में चुंबकीय फ्लक्स की इकाई।

० अर्न्स्ट माक (१८३८–१९१६) : आस्ट्रियाई भौतिकीविद, जो भौतिकी, गणित और दर्शन के प्राध्यापक रहे। पराध्वनिक प्रक्षेपकों तथा जेटों पर विशेष कार्य।

माक : पराध्वनिक (सुपरसानिक) उड़ान से संबंधित एक इकाई।

० कोमिल्लो गोल्गी (१८४३–१९२६) : इतालवी कोशिकाविज्ञानी, पाविया में रोग-विज्ञान के प्राध्यापक। कोशिका की संरच[ना] के अध्ययनार्थ उसमें धात्विक लवण प्रवि[ष्ट] कराने की विधि खोजी, जिससे कोशिका [को] सूक्ष्मदर्शी में सुगमता से देखा जा सकता है। १९०६ में चिकित्सा के नोबेल पुरस्कार [के] हिस्सेदार।

गोल्गी पिंड : पशु-कोशिकाओं में पा[ई] जाने वाली संरचनाएं, जो सेन्ट्रोसाम से घि[री] रहती हैं।

० रूडाल्फ डीजल (१८५८–१९१३) : जर्मन इंजीनियर। ताप-इंजनों पर वि[शेष] कार्य और डीजल मोटर की खोज।

डीजल : विशेष प्रकार के इंजनों में इस्[ते]माल किये जाने वाला तैलीय ईंधन।

० प्येर क्यूरी (१८५९–१९०६) : फ्रांसी[सी] भौतिकीविद्। सोरबान विश्वविद्यालय में अध्यापन, अनुसंधान। दाब विद्युत-आवे[श] को मापने के लिए क्यूरी विद्युतमापी का निर्माण; क्यूरी नियम का प्रतिपादन; रेडियो-सक्रियता पर शोध; अपनी पत्नी मदाम मारी क्यूरी के साथ रेडियम और पोलोनियम तत्त्वों की खोज। १९०३ में मदाम क्यूरी और बैकरेल के साथ भौति[की] का नोबेल पुरस्कार पाया।

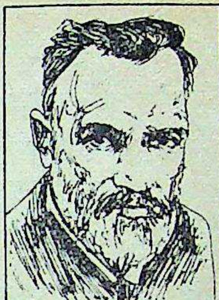
क्यूरी : वह तापमान जिस पर अनु[चुंबकत्व] चुंबकत्व लौहचुंबकत्व में बदल जाता है।

० लियो हेन्ड्रीक बेकलैंड (१८६३–१९४४) : मूलतः बेल्जियम-निवासी। फोटोग्राफी का सामान तैयार करने वाली एक फर्म में रसा[]यनज्ञ रहे; फिर कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमरीका) में रसायन-इंजीनियरी के प्राध्[यापक]

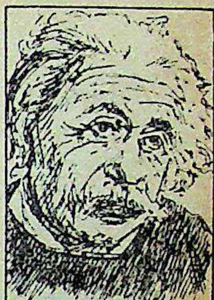
पृथक हुए। बेकलाइट का आविष्कार किया।

बेकलाइट : औद्योगिक दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण पहला प्रमुख कृत्रिम प्लास्टिक, जिसका विद्युत-उपकरणों में व्यापक रूप से उपयोग होता है।

० अल्बर्ट आइन्स्टाइन (१८७९–१९५५) : सापेक्षवाद के जनक, जिनका कि यह जन्म-शताब्दी वर्ष है। १९२१ में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार।



प्येर क्यूरी



आइन्स्टाइन

आइन्स्टाइन : विकिरण-ऊर्जा की इकाईजो ३.७९×१०^{४} के बराबर होती है।

० II ५५७, विश्वविद्यालय आवास, पंतनगर, नैनीताल, उ. प्र. ०



सत्य का सबसे बड़ा दोस्त है समय, उसका सबसे बड़ा दुश्मन है पूर्वग्रह, और उसकी चिरसंगिनी है नम्रता।

—चार्ल्स कोल्टन

सत्य मनुष्य को महान नहीं बनाता, बल्कि मनुष्य सत्य को महान बनाता है।

—कन्फ्यूशियस

समय की धारा गलतियों को बहा ले जाती है, और मनुष्यता के लिए उत्तराधिकार के रूप में सत्य छोड़ जाती है।

—जार्ज ब्रांडेस

सत्य हमेशा ही मक्कारों, जालिमों, लुटेरों की हुकूमत के लिए खतरनाक रहा है। इसलिए उसे दबाना उनके लिए जरूरी हो जाता है।

—यूजीन डेब्स

चालाकी को वस्त्रों की जरूरत पड़ती है, पर सत्य को नग्न रूप में रहना अच्छा लगता है।

—टामस फुलर

युग के कंधे के सहारे लंगड़ाकर चलने वाला सत्य हमेशा पीछे रह जाता है।

—बाल्टाजार ग्रेशियन

सत्य के लिए हमेशा फांसी का तख्ता होता है और झूठ के लिए हमेशा सिंहासन होता है।

—जेम्स लेवल

सत्य को पाने वाला आदमी मशाल जलाता है। **—इंगरसोल**

मजाक करने का मेरा तरीका है—सत्य बोलना। संसार में यह सबसे बढ़िया मजाक है।

—जार्ज बर्नार्ड शा

सत्य में मनुष्य की आस्था तब शुरू होती है, जब वह उससे पहले माने गये सभी सत्यों को संदेह की नजर से देखने लगता है।

—नीत्शे



आसानियों की महारानी

वीरेन्द्रकुमार जैन

नहीं, वक्त की हदों में
हम तुमसे नहीं मिल सकते।
वक्त को दफन कर आना उस समाधि में,
जिस पर तुम हर सुबह माथा टेकती हो,
और तुम्हें अचानक मेरी याद आ जाती है।

....उस लेबरनम के पेड़-तले
पीले फूलों की महकती छाया में
चुपचाप टप्-टप् झरते फूल :
और वक्त वहां काफूर हो जाता है।

....तुम्हीं ने लिखा था एक बार :
वक्त रुक जायेगा,
दुनिया थम जायेगी,
जब हम मिलेंगे पहली बार।

•

लेकिन सुनो, मैं एक मुश्किल आदमी हूं,
हरदम कज़ा से कुश्ती लड़ता हुआ :
मगर फिर भी एक बालानशीन और
हसीन जिंदगी जीता हूं,
वक्त के हर लमहे में—
वक्त की हदें तोड़ता हुआ !

....लेकिन वो दिन तो अभी बहुत दूर है,
जब हम आयेंगे वक्त के पार
तुम्हारे जल्वागाह में :

बीच में अभी जाने कितने द्वीप हैं, समुद्र हैं :
मानवीय उलझावों के बेशुमार जंगल हैं :
खूंरेज़ियां हैं, युद्ध हैं, आज तक का
कैन्सर-ग्रस्त इतिहास है।



•

ओह, हठात् यह क्या हुआ
कि मुश्किलों का लड़ाका 'टाइटन',
तमाम मुश्किलात का मालिक होकर खड़ा है
बड़े इत्मीनान से,
तुम्हारी नज़र से ओझल,
मगर, हर वक्त तुमसे मुक़ाबिल।

...ये क्या हुआ, कि हमारी हर मुश्किल
एक कमल हो गयी,
अपनी ही ज़ुल्फों से खेलते तुम्हारे हाथ में !

...तुम्हें केवल लक्ष्मी या सरस्वती या सावित्री
कहकर जी नहीं भरता :
आसमानियों की महारानी,
दोनों जहान की सुल्ताना को
हाय, हम किस नाम से पुकारें ? ....

गोविंद निवास, सरोजिनी रोड,
विले पार्ले पश्चिम, बंबई-४०००५६



तुरंत निर्णय की शक्ति आपमें कितनी है ?

निर्णय करने में सुस्ती गुण नहीं है । मगर चुटकियों में निर्णय कर डालने की प्रवृत्ति बहुधा प्रगति में आड़े आती है, कभी-कभी घातक भी प्रमाणित होती है । उदाहरणार्थ, वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में तात्कालिक निर्णय अथवा निर्णय के मामले में जल्दबाजी न संभव है, न उचित ही । वहां तो किसी भी निर्णय पर पहुंचने के लिए धैर्य और प्रतीक्षा दोनों नितांत आवश्यक हैं । जब तक सारे तथ्य एकत्र न हो जायें, प्रयोगों के अंतिम परिणाम प्राप्त न हो जायें, तब तक निर्णय नहीं किया जा सकता ।

किंतु कई अवसर ऐसे भी होते हैं, जब तत्काल किसी निर्णय पर पहुंचना नितांत आवश्यक होता है । इन अवसरों पर पूरे तथ्यों के लिए इंतजार करते रहना या तुरंत निर्णय न कर पाना घातक हो सकता है । उन अवसरों पर दुविधा में रहना गलत निर्णय से भी अधिक घातक हो सकता है ।

कल्पना कीजिये, एक तैराक समुद्र में बिलकुल अकेला तैर रहा है । चारों ओर पानी ही पानी है । क्षितिज भी नहीं दिख रहा है । किनारे पर पहुंचने के लिए तैरने के सिवा और कोई रास्ता नहीं । ऐसे में अगर वह इसी सोच में पड़ा रहे कि कौन-सी दिशा सही है, दायें-बायें, आगे-पीछे किस ओर जाने से किनारे पर पहुंच पाऊंगा, तो यह दुविधा ही उसे ले डूबेगी । यदि वह तुरंत निर्णय करके किसी भी दिशा में तैरना शुरू कर दे, तो कम से कम यह संभावना तो रहेगी कि शायद वह किनारे पहुंच जाये।

जब तत्काल किसी निर्णय पर पहुंचना बहुत जरूरी हो, क्या उस वक्त बिना घबराहट में पड़े तत्काल निर्णय कर लेने की क्षमता आपमें है ? ऐसी परिस्थिति में क्या आप सिर्फ अटकल का सहारा लेते हैं ? अथवा क्या, सीमित समय में भी उपस्थित अल्प-स्वल्प साधनों का उपयोग करके उचित फैसला कर डालने का सामर्थ्य आपमें है ?

नीचे, इसी बात की जांच की कसौटी दी गयी है । इस जांच के तीन भाग हैं :

भाग—१

अ, आ, इ तीन खंडों में कुछ कतारें हैं जिनमें अंक हैं । प्रत्येक कतार के अंकों को जोड़ने से कोई राशि बनेगी । अब तय कीजिये कि प्रत्येक खंड में वे तीन कतारें कौन-सी हैं, जिनके अंकों का जोड़ सबसे अधिक होगा । उन कतारों के आगे सही का निशान कर दें । आपके पास इतना समय नहीं है कि आप हर कतार का जोड़ करें

• विलियम ब्रेंड की पुस्तक 'टैस्ट योरसेल्फ' से साभार •

अ	आ	इ
क–१२३४५६७	क–१११११५५५	क–१५७९८३२
ख–११२३४५८	ख–१५१५१५१	ख–९०३६७२१
ग–७६५४३२१	ग–१६४६५१५	ग–८८९५३६१
घ–२३७५६८६	घ–५६४६०११	घ–४५६४५३९
च–२३४५६६७	च–६११५५४०	च–६९३२१९९
छ–१११७७७१	छ–१२०५६४१	छ–५४१२८३८
ज–२८३४५६८	ज–१५३६७५१	ज–१९८८७५६
झ–२११३४५८	झ–१७३३१६५	झ–५६७६५८७

हैं; क्योंकि केवल २ मिनट का समय आपको दिया गया है। इसलिए या तो अटकल इसका अनुमान लगाइये कि वे कतारें कौन-सी हैं, या चटपट जितनी कतारों की संख्याओं को जोड़ सकें, जोड़ जाइये।

भाग–२

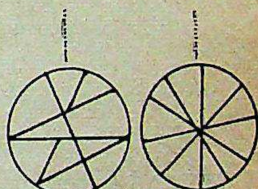
फैसला कीजिये कि नीचे दी हुई नौ कतारों में कौन-सी तीन कतारें ऐसी हैं, जिनमें सबसे ज्यादा अक्षर हैं। उन कतारों पर सही का निशान कर दीजिये। आपको अंदाज से ही काम लेना होगा। सब अक्षरों को गिनने लायक समय आपके पास नहीं है; ३० सेकंड में आपको यह काम कर देना है।

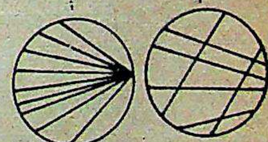
१. ववववब बववबब बववबबब
२. वणवणवणव वणवणवणव
३. झझझझझझ झझझझझझझ
४. ममममम ममममममम मममममम
५. हहहहहहहह हहहहहहह हहहहहहह हहहहहहहह
६. रझरझरझरझरझ रझरझरझरझ
७. ववववववव वववववव ववववववव वववववव ववववववव
८. झनझनझनझनझन झनझनझ
९. ववर वववववर वववववर वववर वववववर वववर

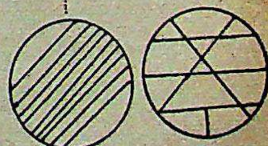
भाग–३

नीचे दिये गये छह वृत्तों में हर वृत्त में रेखाएं खींचकर उन्हें अलग खंडों में बांटा गया है। ३० सेकंड में फैसला कीजिये कि कौन-से दो वृत्त ऐसे हैं, जिन्हें सबसे ज्यादा खंडों में बांटा गया है।

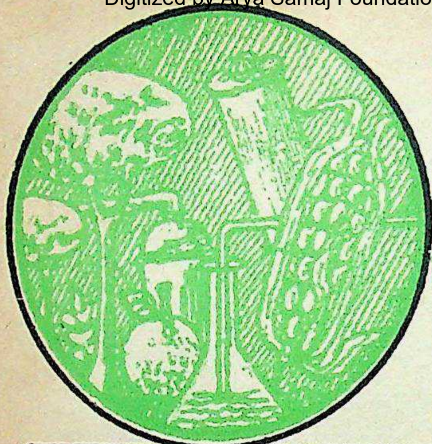
१. ४.
२. ५.
३. ६.







उत्तर पृ. १४९ पर देखें।



विज्ञान-बिंदु

केजिता

आकाश में एक भयंकर और अभूतपूर्व तारे के खोज की ताजा घोषणा काफी सनसनीखेज है। शिकागो विश्वविद्यालय के विख्यात खगोलविद् ब्रूस मार्गन ने इस नये तारे के अस्तित्व की सूचना देते हुए अमेरिकन फिजिकल सोसायटी की एक बैठक में बताया कि इससे पहले कभी भी हमने ऐसा या इससे तनिक भी मिलता-जुलता कोई भी तारा न देखा था और न कभी उसकी कल्पना ही की थी। पृथ्वी से लगभग दस हजार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर स्थित एस. एस. ४३३ नामक एक धुंधले तारे का अध्ययन करते समय मार्गन के अध्ययन-दल को इस तारे का पता लगा।

किसी भयंकर संकट में ग्रस्त यह आकाशीय पिंड १८.४ करोड़ किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से दो परस्पर विपरीत दिशाओं में एक साथ दौड़ रहा है। इनमें से एक दिशा हमारी पृथ्वी की तरफ है। १६० दिन के एक नियमित चक्र में इसकी गति का उतार-चढ़ाव होता रहता है। इस अत्यंत वेगवान तारे से गैसों की दो जबर्दस्त धाराएं विपरीत दिशाओं में उसी तरह निरंतर निकल रही हैं, जिस तरह बगीचों में पानी छिड़कने के लिए काम में लाये जाने वाले फिरकी-पंप से पानी की बौछारें निकलती हैं। इस पिंड से आने वाले प्रकाश के तरंगदैर्घ्य को नापकर मार्गन के शोधदल ने इसकी दूरी, गतिदिशा, रफ्तार आदि का हिसाब लगाया है।

वैज्ञानिकों की व्याख्या के अनुसार, यह विशाल तारा निरंतर टूटने की प्रक्रिया से गुजर रहा है और यह टूटन एकतरफा न होकर दोतरफा है। इसका क्या परिणाम संभव है, यह अभी कोई कह नहीं सकता। क्या यह टूटता हुआ तारा पृथ्वी तक पहुंच जायेगा, या रास्ते में किन्हीं अन्य आकाशीय पिंडों से इन टुकड़ों का टकराव होगा या कि यह खगोल में किसी बड़ी उथल-पुथल की शुरूआत है, इत्यादि कई प्रश्न हैं जिनका उत्तर भविष्य की कोख में छिपा है।

मौसम बिगाड़ने वाले खुद हम

मौसम में अपसामान्य परिवर्तन होने

की शिकायत हम आये दिन करते हैं। मगर क्या हम कभी इसका भी खयाल करते हैं कि इसके लिए हम खुद किस हद तक जिम्मेदार हैं?

टोक्यो (जापान) की प्रसिद्ध न्यूज एजेन्सी कायोडो ने अपसामान्य मौसम के संबंध में प्रकाशित एक श्वेतपत्र का हवाला देते हुए कहा है कि विकास के नाम पर मनुष्य की अनेक गतिविधियां निश्चित रूप से मौसम के निरंतर परिवर्तन के लिए जिम्मेदार हैं। कल-कारखानों की संख्या लगातार बढ़ने के कारण कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा वायुमंडल में बढ़ती जा रही है। मौसम-संतुलन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

श्वेतपत्र के अनुसार १९५०, १९६०, और १९७० के वर्षों में विश्व के ज्यादातर हिस्सों में सामान्य से ज्यादा सरदी पड़ी। मौसम विज्ञान की भाषा में उच्च तापमानों की अपेक्षा निम्न तापमान अधिक अपसामान्य रहे। वर्षा की दृष्टि से साठ के बाद वाले वर्षों में वर्षा की अपेक्षा सूखे का प्रकोप अधिक रहा है। आने वाले दस-बीस वर्षों में पृथ्वी पर शीत के प्रभाव के और भी विकट हो जाने का अनुमान है।

शीतल पेय, कितने अशीतल

गरमी के मौसम में बच्चे शरबत और बाजारू कोल्ड ड्रिंक बिना ि.ये और बर्फ आदि बिना खाये मानते नहीं और यही चीजें हैं जो बच्चों के लिए खतरा पैदा कर देती हैं। ये शीतल पदार्थ गले और टान्सिलों पर खराब प्रभाव डालते हैं। यानी उनसे वहां इन्फेक्शन होने की संभावना काफी ज्यादा रहती है, यह सर्वविदित है। परंतु प्रसिद्ध भारतीय मूत्रतंत्रज्ञ डा. आर. ए. दरबार के अनुसार, ये पदार्थ मूत्र-नलिका और गुर्दे पर भी दुष्प्रभाव डाल सकते हैं।

डा. दरबार बताते हैं कि लगभग पंद्रह प्रतिशत बच्चों में गुर्दे का इन्फेक्शन सीधे नहीं होता; बल्कि परोक्ष मार्ग से होता है और इसमें श्वसन-तंत्र का स्थान प्रमुख है। होता यह है कि शीतल पेय और बर्फ आदि पहले गले और टान्सिलों को इन्फेक्ट करते हैं और वहां से बैक्टीरिया श्वसन-तंत्र के माध्यम से खून में पहुंचते हैं। इस तरह रक्तचक्र में शामिल हो जाने पर वे बैक्टीरिया मूत्र-तंत्रिका और गुर्दों तक पहुंचकर वहां भी इन्फेक्शन पैदा कर देते हैं। इस तरह बेचारे गुर्दे जिनका काम बैक्टीरिया को फिल्टर करना है, खुद ही बैक्टीरिया के चक्कर में पंस जाते हैं।

इन रोगों से बच्चों को बचाने के लिए डा. दरबार माता-पिताओं को दो बातों का विशेष ध्यान रखने की सलाह देते हैं!

१. मूत्र-तंत्र को स्वस्थ रखने के लिए बच्चों को पानी से अपने शरीर को लगातार साफ करते रहना चाहिये। किसी भी प्रकार के बाह्य पदार्थ के कणों के दिखाई देने पर उस स्थान को तुरंत धो डालना बहुत जरूरी है।

२. यदि तनिक भी ऐसा लगे कि रोग के लक्षण पनप रहे हैं, तो फौरन उसके निदान और उपचार की व्यवस्था कर लेनी

चाहिये। आरंभिक अवस्था में रोग की चिकित्सा जितनी सुगमता से हो सकती है, उतनी उसके बढ़ जाने पर संभव नहीं रहती।

इंजन एक बहुरुपिया

इंजन! कोई भी ऐसा यंत्र या व्यवस्था जो पेट्रोल, डीजल, मिट्टी के तेल आदि ईंधन को यांत्रिक ऊर्जा (मैकेनिकल इनर्जी) में परिवर्तित कर सके, इंजन कहलाता है। वह किसी भी मशीन को आवश्यक गति देने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। हवाई जहाज से लेकर आटा पीसने की चक्की तक के लिए इंजन की जरूरत पड़ती है। हां, हर मशीन के लिए उसकी जरूरत के मुताबिक खास किस्म का इंजन ही काम में लाया जा सकता है और वह इंजन भी किसी खास ईंधन से चलता है। यही कारण है कि बाजार में दर्जनों प्रकार के इंजन आज बेचे-खरीदे जाते हैं।

अब खबर है कि बंबई के एक शोधकर्ता पी. जी. भिडे ने एक ऐसे इंजन का माडल तैयार किया है, जो पेट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल इनमें से किसी भी ईंधन से चलाया जा सकता है। इतना ही नहीं, इसे कार, मोटर-साइकल, विदयुत-जनित्र, पम्पसेट और ट्रैक्टर आदि किसी में भी फिट किया जा सकता है। यह भी बताया गया है कि इस इंजन का वर्किंग माडल दुनिया का सबसे छोटा इंजन है और इसे पैंतीस वर्ष पुराने एक पेट्रोल इंजन (२५० वाट) से तैयार किया गया है।

बंबई नगर के पवई नामक स्थान में स्थित अपनी प्रयोगशाला एवं वर्कशाप में अपने इंजन का प्रदर्शन करते हुए आविष्कारक भिडे ने इसके और भी अनेक गुणों का जिक्र किया है।

इसमें एक 'सेल्फ-कन्वर्टर' लगा हुआ है, जो स्वयंचलित है। एक वर्ष तक इस इंजन की परीक्षा की जा चुकी है और अभी तक कोई भी अवांछनीय बात देखने में नहीं आयी है। पेट्रोल इंजन की तुलना में इसकी परिचालन-लागत लगभग ६० प्रतिशत कम है, फिर भी सुख-सुविधा की दृष्टि से यह पूरी तरह सक्षम है। डीजल से चलाये जाने पर इसमें अतिरिक्त कंपन पैदा नहीं होते, जैसा कि आम डीजल इंजनों में देखा जाता है। और अंत में, पेट्रोल इंजन को इस प्रकार के इंजन में बदलने में कुल एक घंटे का समय व सिर्फ दो हजार रुपये लगते हैं।

भिडे को इसके आविष्कार में लगभग नौ वर्ष का समय लगाना पड़ा है।

दंत-रसायन

दांत की खोखल को भरवाने या टूटे हुए दांत की मरम्मत करवाने में अभी तक दंत-चिकित्सक और मरीज दोनों को ही अच्छी खासी जहमत उठानी पड़ती है। जब तक दांत का गीला मसाला सूखकर सख्त न हो जाये, तब तक उसे अपनी जगह टिकाये रखने के लिए उस स्थान को 'रुश' करना पड़ता है। यानी जलबेंत या सरपत की मदद से वहां रोक लगानी पड़ती है, जो निःसंदेह कष्टप्रद है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों की एक

ताजा खोज की कृपा से भविष्य में ऐसा कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी।

'केमिकल एंड इंजीनियरिंग न्यूज' में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार, एक ब्रिटिश शोधदल ने एक नये रासायनिक पदार्थ का विकास किया है, जो सामान्य अवस्था में गाढ़ी लुगदी जैसा होता है, पर प्रकाश की किरणों की सहायता से तत्काल ठोस बनाया जा सकता है। इस लुगदी के मुख्य घटक हैं—डाइमिथी साईक्लेट, अतिसूक्ष्म कणों के रूप में एक कांचयुक्त बेरियम यौगिक, और एक सिलिकन यौगिक। पहले इस लुगदी से दांत के गढ़े को भर दिया जाता है, फिर एक 'गन' से प्रकाश-पुंज डाला जाता है, जिससे यह फौरन ठोस वस्तु के रूप में जम जाती है। जमने के बाद इस पदार्थ की रासायनिक रचना वही हो जाती है जो कि आस-पास के दांतों के एनैमल की होती है। रासायनिक दृष्टि से यह नया पदार्थ निष्क्रिय होता है, यानी इस पर किसी खाद्य पदार्थ का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

मांस का सौतेला भाई

अमरीकी माताएं चिंतित हैं कि उनके बच्चे प्लेट में रखे मांस को तो चटपट चबा जाते हैं, परंतु साग (शाक) को छूते भी नहीं, जबकि साग उनके स्वास्थ्य के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि मांस। मगर अमरीकी बच्चों पर जोर-जबर्दस्ती कैसे की जा सकती है? अमरीकी समाज तो अनुशासन जैसी चीज में विश्वास ही नहीं रखता।

अब लगता है कि कृषि-विज्ञान की मदद से यह समस्या किसी हद तक सुलझ जायेगी। अमरीकी कृषि-विज्ञानियों ने एक नयी सब्जी का विकास किया है, जिसका नाम है—'शुगर स्नैप पी'। यह साधारण मटर और एक विशेष अमरीकी मटर 'स्नो पी' के संकर से तैयार किया गया है। इसके विकास-कर्ता हैं—डा. कैल्विन लैम्बार्ले। मोटापे और शरीर के भारीपन के डर से परेशान रहने वाले अमरीकी इस नयी सब्जी को पाकर बेहद खुश हैं, क्योंकि यह पोषण-तत्त्वों से भरपूर है, साथ ही इसकी कैलोरी-धारिता बहुत कम है—सामान्य मटर से भी कहीं कम। इसे बिना छीले तथा कच्चा भी खाया जा सकता है, क्योंकि यह काफी मीठा और रुचिकर है।

इसकी बेल लगभग छह फुट ऊंची होती है और अच्छे विकास के लिए तनिक अम्लीय मृदा इसके लिए अधिक उपयोगी है। धूप में यह बेल तेजी से बढ़ती है। अगर उर्वरक के रूप में मिट्टी में अस्थिचूर्ण का इस्तेमाल किया जाये, तो परिणाम और भी अच्छा होता है।

अमरीकी वानस्पतिक विज्ञान-जगत में इसे विगत पचास वर्षों की सबसे महत्त्व-पूर्ण उपलब्धि कहा जा रहा है। अभी इसका उत्पादन सीमित मात्रा में शुरू हो सका है और इसीलिए अभी इसका मूल्य कुछ अधिक है। परंतु उत्पादन बढ़ जाने पर मूल्य काफी कम हो जाने की उम्मीद है।



उर्दू व्यंग्य :

ख़ुदा की क़ुदरत

मुजतबा हुसैन

कुदरतउल्लाह मुझसे हमेशा यह कहते थे कि वे खाते-पीते घराने से संबंध रखते हैं। यह ठीक भी था, क्योंकि एक बार मैंने खुद अपनी आंखों से उन्हें सूखी रोटी का टुकड़ा चटनी की मदद से खाते और बाद में पानी पीते देखा था। खाते-पीते घराने की जो कल्पना उनके मन में थी उसके अनुसार वे ठीक ही कहते थे। यद्यपि खाने के नाम पर वे कभी दाल-रोटी और पीने के नाम पर कभी पानी से आगे नहीं बढ़ सके। उनके लिए खाते-पीते घराने का मतलब यह नहीं था कि आदमी खाने के नाम पर गिजाएं खाये और पीने के नाम पर स्काच पिये और पानी से यथासंभव परहेज करे। मैं उन्हें छेड़ना भी नहीं चाहता था, क्योंकि वे अपनी जगह संतुष्ट थे और हरएक से खुद यह कहते फिरते थे कि वे खाते-पीते घराने से संबंध रखते हैं।

मगर एक दिन कुदरत को न जाने क्या सूझी कि कुदरतउल्लाह को सचमुच लखपति बना दिया। यह दौलत उनके पास कैसे आयी, कोई नहीं जानता था। कोई इस बारे में पूछता तो कहते–'यह सब खुदा की कुदरत है, वरना कुदरतउल्लाह किस गिनती में है!'

पहले पहल जब उनके पास दौलत आयी तो भागे-भागे मेरे पास आये और कहने लगे–'यार, चलो, आज हम ऐश करते हैं; मेरे पास ढेरों दौलत आ गयी है।'

मैंने पूछा–'तुम्हारी जेब में इस वक्त कितने पैसे हैं?'

अपनी जेब को बड़ी मजबूती के साथ दोनों हाथों से थामते हुए बोले–'पूरे दो हजार रुपये हैं।'

मैंने कहा–'दो हजार रुपये तो काफी हैं। इनमें सचमुच ऐश किया जा सकता है। मगर यह तो बताओ कि ऐश से तुम्हारा क्या मतलब है?'

बोले–'यही कि कुछ खा-पी लिया जाये।'

मैंने कहा–'चलो यों ही सही, हालांकि मेरी डिक्शनरी में ऐश के मानी जरा दूसरे हैं। तुम्हारी खातिर तुम्हारी बात मान लेते हैं। मगर यह तो तय करो कि क्या खायेंगे और कहां खायेंगे?'

यह सवाल उनके लिए बड़ा पेचीदा था। काफी सोच-विचार के बाद चुटकी बजाते

अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त

र उछलकर बोले–'चलो, मूंगफली खायें हैं। आज जी भरके खायेंगे !'

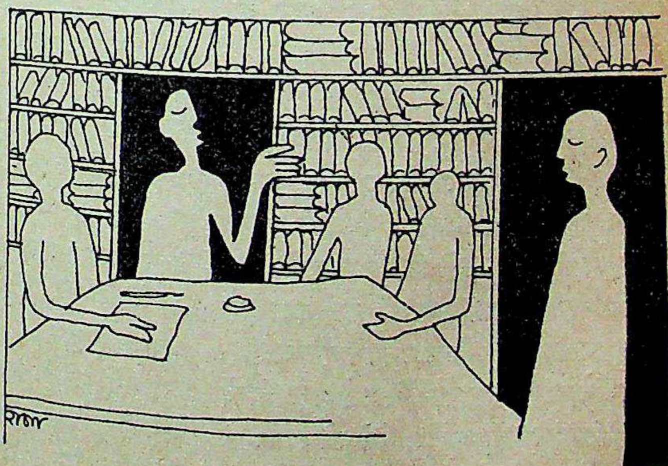
मैंने कहा–'धत् तेरे की ! आखिर वही बात की न ! तुम्हारी जेब में दो हजार रुपये हैं और बात यों कर रहे हो जैसे रुपये पड़े हैं !'

कुदरतउल्लाह अपनी आंखों में कई आंसू कर बोले–'यार, यही तो मुश्किल है कि कुदरत ने अचानक मुझे लखपति तो बना दिया है, लेकिन वह सलीका नहीं दिया कि इस दौलत को खर्च कर सकूं। तुम जगत-खो हो, अपनी सारी तनख्वाह पहली तारीख को ही खर्च कर देते हो और बाकी महीना लोगों से कर्ज मांगते फिरते हो। पैसे को खर्च करने का जो सलीका तुम्हें आता है मुझे नहीं आता। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि तुम आज से मुझे दौलत को खर्च करने का सलीका सिखाओ।'

और मैं कुदरतउल्लाह की दौलत को खर्च करने का सलाहकार बन गया। मैंने एक टैक्सी मंगवायी और उसमें बैठ गया। मगर कुदरतउल्लाह उसमें सवार होने से घबराते रहे। मैंने कहा–'जाने मन, शरमाया नहीं करते। अब तुम लखपति बन गये हो। पैदल चलना तुम पर हराम हो चुका है। अब तो टैक्सी में बैठ जाओ, कल तुम खुद अपनी मोटर खरीद लेना।' बोले–'तुम ठीक कहते हो। दौलत को खर्च करने का एक यह भी तरीका हो सकता है।'

फिर हम एक फाइव स्टार होटल में गये। मैं खाना खाता रहा और कुदरतउल्लाह छुरी-कांटे में यों उलझ गये कि लगता था खाना नहीं खा रहे हैं बल्कि खाने पर छुरी-कांटे से हमला कर रहे हैं। बड़ी देर के बाद उन्होंने छुरी-कांटे को एक तरफ रख दिया और आस्तीन चढ़ाकर खाने पर टूट पड़े और आन की आन में मेज पर सजी प्लेटें साफ कर गये। फिर एक लंबी डकार लेकर कैबरे डान्सर को यों घूरने लगे, जैसे मौका मिले तो उसे भी खा जायेंगे।

मैंने कुदरतउल्लाह को उनकी सारी हरकतों के बारे में एक लंबा-चौड़ा लेक्चर दिया, जिसका सार यह था कि आदमी पैसा इस तरह खर्च करे कि वह बाद में



हमारे कल्चर का हिस्सा बन जाये।

वे बोले–'मैं कल्चर के बारे में कुछ नहीं जानता, लेकिन एग्रिकल्चर के बारे में थोड़ा-बहुत जान लेता हूं। यह तो बताओ कि इन दोनों में क्या फर्क है ?'

मैंने कहा–'कुदरतउल्लाह, एग्रिकल्चर खेतों में होता है और कल्चर शहरों के बड़े होटलों और अमीरों के घरों में पाया जाता है। मिसाल के लिए यह छुरी और कांटा, यह कैबरे डान्सर, होटल के फर्श पर बिछे हुए कीमती कालीन, ये नीली-नीली रोशनियां, ये म्यूजिक की धुनें, ये सुगंध में रसी-बसी सांसें, तरशे-तराशे कहकहे, यह सजावट, यह दिखावट–कहां तक गिनाऊं, ये सब कल्चर के ही तो हिस्से हैं। जब तुम लखपति आदमी बन गये हो तो तुम्हें कल्चर्ड आदमी भी बनना चाहिये। तुम्हारी हॉबियां होनी चाहिये, तुम्हारा एक मिजाज होना चाहिये, दुनिया को देखने का एक नजरिया होना चाहिये तो बाकी चीजें धीरे-धीरे आ जायेंगी।'

और कुदरतउल्लाह ने उसी क्षण कल्चर्ड आदमी बनने का संकल्प कर लिया। मैं उन्हें कल्चर की पटरी पर चढ़ाकर घर वापस आ गया। शुरू के दिनों में वे लगभग हर रोज मेरे पास आते और कल्चर के बारे में अपनी विभिन्न शंकाओं का समाधान प्राप्त करते। उन्हीं दिनों उन्होंने एक आलीशान बंगला भी खरीदा। फिर वे बहुत दिनों तक मेरे पास नहीं आये। मैंने सोचा कि वे शायद कल्चर के रास्ते पर बहुत दूर निकल गये हैं और यह कि अब उन्हें मेरे मशवरों की जरूरत नहीं रही है।

एक दिन मैं सड़क से गुजर रहा था कि एक मोटर मेरे बराबर आकर रुकी। बड़े-लंबे बालों वाला एक नौजवान निहायत नफीस किस्म का सूट पहने मोटर में बैठा था। जब उसने मोटर का दरवाजा खोलकर मुझे अंदर आने को कहा तो मैंने पूछा–'आपकी तारीफ ?'

नौजवान बोला–'भई, कमाल करते हो! इतनी जल्दी भूल गये! मैं एस. क्यू. उल्लाह हूं–तुम्हारा पुराना दोस्त!'

'एस. क्यू. उल्लाह! .... कौन एस. क्यू. उल्लाह ? मैं किसी एस. क्यू. उल्लाह को नहीं जानता।' मैंने कहा।

'यार, अनजान क्यों बनते हो? मैं हूं तुम्हारा पुराना दोस्त कुदरतउल्लाह, प्रोप्राइटर–कुदरत इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट कंपनी।'

मैंने कुदरतउल्लाह को दाढ़ी के अंदर पहचानने की कोशिश करते हुए कहा–'भई, यह तुम एस. क्यू. उल्लाह कब से बन गये?'

बोले–"एस. क्यू. उल्लाह का मतलब है सैयद कुदरतउल्लाह, इतना भी नहीं जानते; बड़े कल्चर्ड आदमी बने फिरते हो।'

मैंने कहा–'यह तो बताओ कि तुम इतने दिन कहां गायब रहे ?'

बोले–'मैं कहां गायब रहा ? मैं तो दर-असल तुम्हारी ही सलाह के अनुसार अपने आपको कल्चर्ड आदमी बनाने के प्रयास में लगा रहा। चुनांचे मैंने मोटर खरीद ली है, और एक बंगला भी खरीद लिया है और

एक अदद गर्लफ्रेंड भी खरीदी है। अब केवल बंगले और गर्लफ्रेंड को सजाने का मामला बाकी रह गया है, इसके लिए तुम्हें जहमत करनी पड़ेगी।'

मैंने कहा–'बंगले को सजाने में मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूं, लेकिन जहां तक गर्लफ्रेंड को सजाने का मामला है, यह जिम्मेदारी तुम खुद संभालो।' वे इस समझौते पर राजी हो गये। मुझे घर ले गये और वह सारा फर्नीचर दिखाया, जो उन्होंने घर को सजाने के लिए खरीद रखा था और जिसमें से कच्ची वार्निश की बू आ रही थी। मेरी तरफ प्रशंसा-प्रार्थी निगाहों से देखते हुए वे बोले–'ड्राइंग रूम की सजावट के मामले में मैं तुम्हें कष्ट नहीं दूंगा, क्योंकि मैंने एक डेकोरेटर की सेवाएं प्राप्त कर ली हैं। तुम्हें तो बस मेरे स्टडी रूम को सजाने में मदद करनी होगी और वह भी इसलिए कि मैंने सुना है कि स्टडी में केवल किताबें होती हैं। तुम किताबों की बातें खूब जानते हो। बस, इसी बात पर मेरे लिए चंद राइटरों की अच्छी-सी किताबों की इतनी बड़ी सूची बना दो कि किताबों की कम से कम छह अलमारियां भर जायें; बल्कि हो सके तो मेरे साथ चलकर बाजार से मुझे ये किताबें खरीदवा देना।'

मैंने हैरत से कुदरतउल्लाह का मुंह देखते हुए कहा–'कुदरतउल्लाह, यह तुम्हें क्या हो गया है? किताबों से तुम्हारा क्या संबंध? तुम तो दस्तखत करना भी नहीं जानते, किताबें खरीदकर क्या करोगे?'

बोले–'तुम अभी तक जहालत में हो, हालांकि जमाना कयामत की चाल चल रहा है। तुम्हें यह खुशखबरी सुनाऊं कि मैंने आठ दिन पहले दस्तखत करना सीख लिया है।'

मैंने कहा–'मगर इसका मतलब यह नहीं कि तुम्हें अपनी 'स्टडी' में शेक्सपियर, मिल्टन और वर्ड्स्वर्थ की किताबें रखने का हक मिल गया है।'

बोले–'मानता हूं कि किताबों से मेरा कोई संबंध नहीं, लेकिन मैं तो सिर्फ घर की सजावट के लिए अपनी स्टडी में किताबें रखना चाहता हूं।'

मैं लाख मना करता रहा मगर वे फिर भी मुझे घसीटकर बाजार ले गये। किताबों की दुकान पर पहुंचकर उन्होंने खूबसूरत जिल्दों वाली सारी किताबें अलग से निकालीं, फिर पूछने लगे–'यह तो बताओ कि इनमें शेक्सपियर, मिल्टन और वर्ड्स्वर्थ की किताबें आ गयी हैं?'

मैंने कहा–'एक भी किताब नहीं आयी।'

बोले–'तो फिर उनकी किताबें भी निकाल दो।'

मैंने शेक्सपियर के ड्रामे, मिल्टन और वर्ड्स्वर्थ के काव्य-संकलन निकालकर उनके सामने रख दिये। वे बड़ी देर तक उन्हें घूरकर देखते रहे। फिर बोले–'यार, इन किताबों की जिल्दबंदी अच्छी नहीं हुई है। ऐसी किताबों से मेरे कमरे की शोभा क्या खाक बढ़ेगी?'

मैंने निवेदन किया–'जब तुम किताब

की जिल्द देखकर ही किताब खरीदना चाहते हो तो फिर अच्छी जिल्द वाली सारी किताबें खरीद लो। इसमें किसी चुनाव की क्या जरूरत है?'

मेरी तजवीज पर वे फौरन राजी हो गये और जब एक लॉरी में इन किताबों को भरवाकर घर पहुंचे तो देखा कि इनमें ९५ प्रतिशत कानून की किताबें और शेष पांच प्रतिशत में मौलवी अब्दुलहक की पचीस डिक्शनरियां भी शामिल थीं!

मैंने पूछा—'कुदरतउल्लाह, इतनी सारी डिक्शनरियां एक साथ क्यों उठा लाये?'

बोले—'जरा इनकी जिल्दबंदी तो देखो कि कैसी नफीस है! जिस घर में रहेंगी उसकी शोभा में चार चार चांद लगा देंगी।'

कुदरतउल्लाह किताबों से अपने घर को सजा चुके तो एक दिन उन्हें किसी ने बरगलाया कि जब तक तुम अपने घर को मॉडर्न पेन्टिंग्स से नहीं सजाते तब तक तुम्हारा घर 'कल्चर्ड' आदमी का घर नहीं मालूम होगा। वे फिर दौड़े-दौड़े मेरे पास आये और कहने लगे—'तुम फौरन तैयार होकर मेरे साथ चलो और कुछ माडर्न पेन्टिंग्स की खरीदी में मेरी मदद करो।'

मैंने कहा—'कुदरतउल्लाह, जिस तरह तुमने जिल्द देखकर किताबें खरीदी थीं, उसी तरह अब पेन्टिंग्स भी खरीद लो। मुझे क्यों तकलीफ देते हो!'

वे मेरे व्यंग्य को भांप गये। बोले—'ठीक है, मैं खुद ये भी खरीद लूंगा। तुम यह समझ रहे हो कि तुमने कल्चर का ठेका ले रखा है। यह बात न भूलो कि शहर के कई लेखक और बुद्धिजीवी मुझे कल्चर के बारे में मशवरे देना चाहते हैं, मगर मैंने सोचा कि तुम मेरे बचपन के दोस्त हो इसलिए यह इज्जत तुम्हें बख्शूं।'

× × ×

मुझसे नाराज होकर कुदरतउल्लाह ऐसे गये कि फिर कभी मेरे पास नहीं आये। कई दिनों बाद एक दिन मैं उससे मिलने गया, तो देखा कि उनके ड्राइंग रूम में दुनिया के बड़े-बड़े चित्रकारों की पेन्टिंग्स लगी हैं। यह और बात है कि कुछ पेन्टिंग्स उलटी लटकी हुई थीं। बराबर वाले कमरे में मोत्सार्ट की कोई सिम्फनी बज रही थी। मैंने सोचा कि कुदरतउल्लाह अब बहुत आगे निकल गये हैं। मैंने उनके नौकर से अपने आने की सूचना भिजवायी।

नौकर ने वापस आकर फरमाया—'साहब अपनी स्टडी में बैठे हैं। आपको वहीं बुलवाते हैं।'

मैं गया तो देखा कि कुदरतउल्लाह परामर्शदाता-मंडल से घिरे बैठे हैं और अलमारियों में रखी हुई डिक्शनरियां उन्हें घूरे जा रही हैं। कुदरतउल्लाह ने मेरा परिचय अपने बुद्धिजीवी मित्रों से कराया—ये संगीतकार हैं, ये लेखक हैं, ये चित्रकार हैं, ये कवि हैं वगैरह-वगैरह। फिर मुझसे पूछा—'इतने दिन कहां गायब रहे?'

मैंने कहा—जरूरी कामों में उलझा रहा।

कहने लगे—'इस वक्त मैं भी एक जरूरी

[शेष पृष्ठ ७५ पर]

हूणों की मुखाकृति

जगदीश गुप्त

पहले 'वृषल' वर्ग में परिगणित; फिर क्षत्रिय मान लिये गये शक-यवन आदि से हूणों की स्थिति कुछ भिन्न दिखाई देती है, यद्यपि भारतवर्ष में आक्रमक बनकर प्रवेश करने वाली जातियों में ही उनकी भी गणना की जाती है।

स्वर्गीय डा. राजवली पांडेय ने कालिदास के काल-निर्णय में विदेशी विद्वानों द्वारा उठायी गयी हूणों की समस्या को बाधक नहीं माना है। उनका कहना है कि कालिदास ने हूणों का वर्णन देश-विजयी के रूप में न करके दिग्विजय के प्रसंग में भारत के बाहर के एक पराजित जाति-विशेष के रूप में किया है:

'परंतु ध्यान देने की बात यह है कि रघुवंश में हूणों अथवा अन्य जातियों का वर्णन विदेशी विजेता के रूप में नहीं आता। रघु ने अपनी दिग्विजय में उन्हें भारत की सीमा के बाहर पराजित किया था, अतः कालिदास के समय में हूणों को भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के पास कहीं रहना चाहिये। चीन तथा मध्य एशिया के इतिहास से प्रमाणित हो गया है कि ई. पू. पहली तथा दूसरी शताब्दी में हूण पामीर के पूर्वोत्तर में आ चुके थे।' [कालिदास-ग्रंथावली, तीसरा खंड, पृ. १२.]

गुप्तकाल में हूण-नरेश तोरमाण के प्रारंभिक वर्ष का अभिलेख सीमा से सुदूर मध्य भारत में स्थित एरण नामक स्थान से प्राप्त विशाल वराह-मूर्ति में अंकित मिलता है, जिससे सिद्ध होता है कि हूण उस समय तक भारत में बहुत भीतर तक



लेखक को शाहाबाद से मिली मृण्मूर्ति।

प्रवेश कर गये थे और उन्होंने कुछ सत्ता भी हस्तगत कर ली थी। विष्णु के अवतार के रूप में शिल्पित पशु-वराह का यह रूप मानव-वराह के रूप से पहले का है। अब यदि कालिदास को गुप्तकाल में ही माना जाये, तो 'तत्र हूणावरोधानां' (रघुवंश, चतुर्थ सर्ग, श्लोक ६८) की संगति नहीं बैठेगी। 'तत्र' को 'यत्र' मान लेना भी संभव नहीं। हूण उस काल में यत्र-तत्र-सर्वत्र रहे हों, ऐसा लगता नहीं।

भारतीय साहित्य में 'हूणों' का बहुविध उल्लेख हुआ है। यहां उस सबका हवाला देना अभीष्ट नहीं है और न आवश्यक ही। केवल काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में वामन-विरचित 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के उस प्रसंग पर ध्यान केंद्रित करना है, जिसमें हूणों की आकृति-प्रकृति को अप्रस्तुत-विधान का अंग बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

वामन का समय अनुमानतः आठवीं-नौवीं शती ई. के बीच निर्धारित किया गया है। डा. नगेन्द्र ने पूर्वसीमा और उत्तर-सीमा के रूप में कतिपय तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए 'हिंदी काव्यालंकारसूत्र' में प्रायः यही धारणा व्यक्त की है।

कल्पिता उपमा के संदर्भ में वामन के द्वारा प्रस्तुत दो उदाहरणों में हूणों के रूप-रंग आदि का जितना सजीव, स्वानुभूत और सूक्ष्म वर्णन हुआ है, वह बहुत ही रोचक, मनोहारी और ज्ञानवर्धक है।

उद्गर्भहूणतरुणीरमणोपमर्द-
भुग्नोन्नतिस्तननिवेशनिभं हिमांशोः।
बिम्बं कठोरबिसकाण्डकडारगौरै-
र्विष्णोः पदं प्रथममग्रकरैर्व्यनक्ति॥
[चतुर्थ अधिकरण, द्वितीय अध्याय]

सद्योमुण्डितमत्तहूणचिबुकप्रस्पर्धि-
नारंगकम् ॥२॥
[पृष्ठ सं. १८८-१८९]

अपने ग्रंथ में वामन ने उपमा के दो भेद किये हैं—१. लौकिकी और २. कल्पिता। लौकिकी उपमा में साम्य लोक-प्रसिद्ध माना जाता है और उपमेय-उपमान दोनों ही सुपरिचित होते हैं, जैसे—मुख-कमल आदि। परंतु कल्पिता उपमा असाधारण होती है और उसमें कवि के कल्पना-वैचित्र्य एवं निजी अनुभव का पूरा समावेश रहता है।

पहले श्लोक में क्षितिज पर उदित होते हुए चंद्रमा के लाल प्रशस्त बिंब की तुलना गर्भवती हूण-तरुणी के उस सुविशाल स्तन से की गयी है, जो आलिंगन की अवस्था में दबकर (चिपटा और थाली जैसा) अधिक गोल हो गया है। इस उदाहरण से हूणों के विशेष रक्तिमता लिये हुए गौर-पीत वर्ण का परिचय मिलता है। यह श्लोक मुझे एक अन्य प्रसंग में भाई भोलाशंकर व्यास ने सुनाया था और प्राचीन कवियों के रूप-बोध और वर्णबोध पर वे बहुत देर तक विमुग्ध होते रहे थे। कमलनाल का गौर-पीत रंग असाधारण होता ही है।

दूसरे श्लोक में जो उपमा दी गयी है, उससे वे (हूण) कितने अधिक लाल होते थे, इसका प्रत्यक्ष-जैसा बोध होने लगता है तथा उनके चेहरे की बनावट भी सामने आ

आती है।

तुरंत मुड़े हुए मदोन्मत्त हूण की ठोढ़ी [illegible] गोल और उभरी हुई थी कि वह नारंगी से स्पर्धा करती प्रतीत होती थी। नारंगी रंग जिसके शरीर की त्वचा का हो, जिसकी ठोढ़ी नारंगी जैसी ही गोलाकार उभर उठी हुई हो तथा जो दाढ़ी और सिर [illegible] रखता हो और मदोन्मत्त विलासी [illegible]हो-वही हूण के रूप में अपनी पहचान [illegible] सकता है। कुछ पठान और अंग्रेज [illegible] ही लगते थे। हूण उन्हीं जैसे या उनसे [illegible] अधिक लाल रंग वाले रहे होंगे।

मुझे उत्तर प्रदेश में अपनी जन्मस्थली [illegible]बाद (जि. हरदोई) से जो मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, उनमें दो शीश ऐसे हैं जो इस [illegible] के बहुत ही समीप दिखाई देते हैं। [illegible] में से एक का छायाचित्र इस लघु लेख के पृष्ठ ६९ पर प्रस्तुत है। इसमें भौंहों की मांसपेशियां काफी उभरी हुई हैं। छोटी [illegible], माथे पर सिकुड़नें, ओंठ पतले तथा [illegible] और गाल चिकने सुडौल किंतु विदेशी-[illegible] को स्पष्टत: व्यक्त करने वाले लगते हैं। [illegible] संभवत: कुछ लंबी रही होगी। [illegible] भी बड़े ही दीखते हैं। सिर पर टोप [illegible] हो ऐसा इस छायाचित्र से आभास [illegible] होता है, पर वस्तुत: वैसी बात नहीं है। एक से दूसरे का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। पूरी मूर्ति अखंडित रूप में उपलब्ध हुई होती या अधोभाग भी वहां से मिल गया होता, तो शरीर के समग्र आकार-प्रकार का बोध सरलता से हो जाता। परंतु खेद है कि अभी तक वह अनुपलब्ध है। फिर भी ज्ञानवृद्धि तो इतने से भी हुई ही है।

हो सकता है कि कुछ विशेषज्ञ मेरी इस धारणा को स्वीकार करने में संकोच करें। परंतु जब मैं साहित्य, कला और पुरातत्त्व एवं इतिहास के सभी तथ्यों पर एक साथ दृष्टिपात करता हूं, तो मुझे संदेह नहीं रहता। मेरी बात प्रमाण-पुष्ट है, अत: जो चाहे स्वतंत्र रीति से अन्वेषण करके तथ्यों का परीक्षण कर सकता है। इस तरह की पद्धति अपनाते हुए डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, डा. मोतीचंद्र तथा डा. कृष्णदत्त वाजपेयी आदि विशेषज्ञों ने अनेक निष्कर्ष निकाले हैं, जो हमारी जानकारी बढ़ाने में निश्चित रूप से सहायक हुए हैं। मृण्मूर्तियों में आकृति-प्रकृति को बहुत दूर तक सही उतारा जाता रहा है, इसके प्रभूत प्रमाण हैं। मुखाकृतियों की जितनी विविधता मृण्मूर्तियों में मिलती है, वह केवल शैली-भेद के कारण नहीं है। उसमें वस्तुतत्त्व की विविधता भी सहज रूप से समाहित होती रही है।

मैं चाहता हूं कि हूणों का साक्षात्कार अकेले मैं ही न करूं, औरों को भी यह सुख दूं; इसीलिए लेखन का सहारा लिया है। कम से कम विचार-विनिमय की भूमिका तो बनेगी ही। अभाव की पूर्ति और भूल-सुधार भी हो सकते हैं। यदि किसी ने मेरी धारणा से पूरी तरह सहमति व्यक्त की, तो मैं अपना श्रम सार्थक मानूंगा।

—१८१-ए/१, नागवासुकि, इलाहाबाद-६



बनफूल - यादें सुगंधित

पृथ्वीनाथ शास्त्री

भागलपुर पहुंचने की देर थी कि जिससे भी पूछा, बोला–'अरे वो डाक्टर साहब! हां-हां, आदमपुर चले जाइये, ऊपर चढ़ाई पै है उनकी बंगलिया।'

मैं सुबह आठ बजे के करीब पहुंचा था। शांति-निकेतन (बोलपुर) से रात को चला था। आज से उनतीस वर्ष पहले की बात है। मुझे उन दिनों प्रकाशक बनने की धुन थी। भारती प्रकाशन नाम से काम शुरू करने वाला था। इच्छा थी, बंगला साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों के हिंदी में और हिंदी की श्रेष्ठ कृतियों के बंगला में प्रकाशन के साथ ही 'प्रतिवेशी' या 'पड़ोसी' नाम से एक पत्रिका प्रारंभ करूं, जिसमें कुछ रचनाएं पहले धारावाहिक रूप से छपें और फिर पुस्तकाकार में। खैर, बहुत-कुछ नहीं किया जा सका इस दिशा में, सो योजना कार्यान्वित न हुई। किंतु उस वक्त जिन साहित्यकारों से मिला और धन्य हुआ, उनमें बनफूल सबसे अग्रणी थे। .....

बड़ी सहृदयता से उन्होंने मुझे अपने यहां ठहराया। जगह भी अच्छी थी। ऊंची कुर्सी पर बनायी गयी एक गोलाकार छोटी-सी बंगलिया, चारों ओर पेड़-पौधे उगाने के लिए काफी उपजाऊ जमीन। एक किनारे नौकर-चाकरों के लिए दो-एक कुटीर, जिनमें एक डा. बलाईचंद मुखोपाध्याय (बनफूल) का अध्ययन-कक्ष और कार्यकक्ष भी था। वे रोज सवेरे ५ से ८॥ बजे तक वहीं रहते, पढ़ते, सोचते, लिखते।

मुझे बैठक में ठहराया था। लेकिन शौचादि के लिए डाक्टर साहब के शयनगृह में से होकर जाना पड़ता, सो मुझे संकोच होता था। लेकिन बनफूल और उनकी गृहिणी के घरेलू बरताव से इतना मुग्ध हुआ कि दो-तीन दिन कैसे निकल गये, पता ही नहीं चला। हिंदी वे बिहारी लहजे में बोलते थे–खूब अच्छी तरह।

'बनफूल' नाम का भी अलग इतिहास है। बचपन में ही वे कविता लिखने लगे थे। स्कूल के पंडित ने सोचा कहीं पढ़ाई में ढील न कर दे सो डांटा, तब से वे इस छद्मनाम से छपने लगे। 'मालंच' और 'प्रवासी' में वे १९१८ में इसी नाम से छपे और पंडितजी को पता भी चल गया; लेकिन अब वे कुछ नहीं बोले। उलटे पीठ ठोंकी कि लिखो, बड़े लेखक बनो। नाम तो यह इसलिए अपनाया था कि शायद ही किसी की नजर पड़ेगी बनफूल पर; किंतु हुआ ठीक उलटा। नजर चढ़ गये वे सभी की। वैसे बीसवीं

ज्ञान भी पूरा नहीं हुआ था अभी।

वे दो-तीन दिन आज भी ताजे हैं मेरी यादों के घेरे में। कितना कुछ बताया था उन्होंने! अपने अध्ययन की आदत की बात करते हुए कहा था—'मैं घर में हर जगह छोटी-छोटी तिपाहियों पर कुछ किताबें रखता हूं। जहां भी होऊं, अगर कुछ मिनिट खाली हों तो जो किताब नजदीक हो, निशान वाली जगह से आगे पढ़ने लगता हूं।'

'क्रम टूट जाने से आपको कठिनाई नहीं होती? फिर एक साथ इतनी किताबों के विषय आदि याद रखने में भी तो मुश्किल पड़ती होगी। शायद प्रसंग-सूत्र पकड़ने के लिए पुनः पीछे की तरफ पढ़ते होंगे।' मैंने पूछा।

बोले-'नहीं! मेरे दिमाग ने मेरी इस आदत के साथ एक तरह से समझौता कर लिया है। कहीं भी पढ़ना शुरू करते ही उससे पहले की सारी बातें याद आ जाती हैं मुझे। मानो अलग-अलग खाने बना लिये गये हैं वहां।'

वे उन दिनों पंडित जवाहरलाल नेहरू से बहुत प्रभावित थे। उन्हें वे सुभाषचंद्र वसु से ज्यादा मानते थे। पता नहीं, अंत तक वे यह निष्ठा रख सके थे या नहीं; क्योंकि जब से कलकत्ते आ गये थे, मैं उनसे मिल ही नहीं सका, यद्यपि सोचता था कि जाऊंगा।

सुबह वे उपनिषदों के अनुवाद का काम शुरू करते थे और फिर वह क्रम, यानी पढ़ने-लिखने का काम, जब भी फुरसत मिलती किया जाता था। रात को १०॥ से पहले तो वे कभी सोते नहीं थे उन दिनों। तीन पीढ़ियां डाक्टरों की थीं परिवार में, सो उन्हें भली भांति पता था कि नियमित जीवन का क्या महत्त्व है। भागलपुर के बाजार में उनकी पैथोलाजिकल प्रयोगशाला थी, जहां बहुत ही वाजिब कीमत पर वे और उनके सहकारी १० से ६ तक काम करते थे। कितने ही रोगियों के मल-मूत्र-थूक-रक्त आदि का परीक्षण वे कभी-कभी मुफ्त में भी कर देते थे अगर उन्हें यह विश्वास हो जाये कि रोगी सचमुच गरीब है।

लिखने के लिए उन पर इतनी मांग रहती थी वे सारे संपादकों और प्रकाशकों को संतुष्ट नहीं कर पाते थे; कोशिश जरूर करते थे कि सबको कुछ न कुछ अवश्य भेज दें।

यह काम शुरू करने की भी अपनी एक कहानी है। डाक्टर होते ही एक अच्छी नौकरी मिल गयी थी। पर वह इसलिए छोड़ दी कि उसकी एक शर्त, जो बाद में लागू हुई, उन्हें एकदम नापसंद थी। वे रोज अपने प्रवर गोरे



डा. बलाईचंद मुखोपाध्याय

साहबों के दरबार में सलाम ठोकने जाने के लिए तैयार नहीं थे। अतः १९२९ से ही भागलपुर में अपनी 'सेरोबैक्ट्रो लैब' शुरू कर दी और वह खूब चल भी निकली। मैं तो उनसे १९५० में मिला था। उस वक्त वे इस क्षेत्र में सबसे आगे माने जाते थे।

अपने साठ वर्ष के साहित्यिक कार्यकाल में बनफूल ने लगभग २०,००० पृष्ठ (अधिकांश मौलिक, और थोड़े अनूदित) लिखे। उनका समग्र लेखन अब ३० खंडों की ग्रंथावली में प्रकाशित हो रहा है। बारह खंड छप भी गये हैं। कुल मिलाकर १०० से अधिक पुस्तकें इन ३० जिल्दों में मिलेंगी।

यों तो उपन्यास, निबंध, नाटक, कविता और आपबीती सभी कुछ लिखा है उन्होंने; किंतु अद्वितीय वे अपनी लघुकथाओं के लिए माने जाते हैं। **नवनीत** में इनमें से बहुत-सी छपी हैं। उनके तीन उपन्यासों पर फिल्में भी बनीं—भुवन शोम, हाटे बाजारे और आरोही (अर्जुन मंडल)। 'भुवन शोम' से उत्पल दत्त हिंदी फिल्म-जगत् में मशहूर हुए अपने चरित्र-अभिनय के लिए। 'हाटे बाजारे' में वैजयंतीमाला ने अदाकारी में कमाल किया था।

बनफूल के उपन्यासों में प्रसिद्ध हैं—'स्थावर' (जिसमें वनस्पति-जगत् का अद्भुत परिचय है), 'जंगम' (पक्षि-जगत् का विशेष अध्ययन), 'द्वैरथ', 'मृगया', 'अग्नीश्वर', 'हाटे बाजारे' (जो १९६२ में रवीन्द्र पुरस्कार से सम्मानित हुआ था), 'भुवन शोम' (जिसकी फिल्म को राष्ट्रपति-स्वर्ण पदक मिला), और 'अर्जुन मंडल' (फिल्मी संस्करण 'आरोही', जिसकी फिल्म स्क्रिप्ट को वर्ष की सर्वश्रेष्ठ स्क्रिप्ट माना गया) तथा 'भीमपलश्री'। इसके अतिरिक्त 'निर्मोक,' 'नवदिगन्त', 'से ओ आमि', 'अदृश्य लोक,' 'स्वप्नसम्भव,' 'अनुगामिनी', 'त्रिवर्ण,' 'एक झांक खंजन' आदि भी लोकप्रिय हुए थे। कहानी-संग्रह तो कितने ही हैं। 'त्रिनयन' नाम का एक नाटक और 'पश्चात्पट' (जीवन-वृत्त) भी सराहे गये हैं।

सन १९७५ में उन्हें 'पद्म भूषण' भी दिया गया था। अंतकाल में वे लेटे-लेटे ही लिखते रहते थे और १९६८ से कलकत्ते में आ गये थे। **बंगीय साहित्य परिषद** के अध्यक्ष रहे थे। **१ फरवरी** को सरस्वती-पूजा के दिन वे **अचानक** चल बसे। निधन से कुछ क्षण पहले तक वे **सच्ची** सरस्वती-पूजा (वाङ्मय-रचना) में लगे रहे थे। निरभिमान वे इतने थे कि जिन परिमल गोस्वामी ने उनके 'तृणखंड' उपन्यास को 'शनिवारेर चिठि' पत्रिका के लिए ठीक न समझकर बहुत पहले वापस कर दिया था, उन्हीं को १९... में भागलपुर से एक पत्र लिखा था-'परिमल, तुम पटना गये तो देखोगे कि तुम्हारे हाथों से गढ़े गये बनफूल ने कितने लोगों का मन चुरा लिया है। तुमने गढ़ा था इसलिए गर्व करता हूं। .... बलाई!'

क्या हैं बनफूल की साहित्यिक खूबियां? उनकी सारी रचनाओं में परिवेश साधारण जीवन का रहता था और मानवीयता एवं समाज-संचेतनता मुख्य स्वर। ...

वे अपने को दुहराते नहीं थे, नवनवोन्मेष करने वाली प्रतिभा के धनी थे। डाक्टरी अनुभव का भरपूर प्रयोग किया था, अतः दोनों पेशों में कभी असंगति नहीं आयी और रचनाएं अनुभव-समृद्ध हो उठीं—खास तौर से रोगियों और चिकित्सकों के मन को परखने की दृष्टि से। अभिव्यक्ति की शैली उनकी अपनी थी, जिसकी नकल अभी तक कोई नहीं कर पाया। मर्द-औरतों की और जिंदगी की असंगतियों पर वे जी खोलकर हंस लेते थे; फिर भी उनकी रचनाओं में प्रत्येक पात्र से सहानुभूति में कमी नहीं आती थी। लगता था जैसे मानव-देह के अवयवों का ही नहीं, मन का भी वे खुर्दबीनी परीक्षण-निरीक्षण कर पा रहे हैं। मानव को वे क्षुद्र नहीं विराट के परिप्रेक्ष्य में भी देख सकते थे। आदर्श की हिमायत तो वे करते थे, लेकिन यथार्थ से जुड़े रहकर ही। इतना वैविध्य भी कोई बंगाली लेखक अभी तक तो नहीं ला पाया अपने रचना-जगत् में। परंपरा और आधुनिकता का ऐसा निर्वाह भी नहीं है किसी में।

वार्तालाप में और मित्रों व स्वजनों को परोसने-खिलाने में वे कितने कुशल थे, कैसे उन्मुक्त होकर खुद अपने पर और दूसरों पर हंस सकते थे, यह तो मैं व्यक्तिगत अनुभव से भी जानता हूं। लंबी-चौड़ी काया, गोरा रंग, सदा प्रसन्न चेहरा—उन्हें देखते ही श्रद्धा होती थी। अतिथि-वत्सल इतने कि लोग उनके खाने-खिलाने और गोष्ठीबाजी की चर्चा करते नहीं अघाते थे। कभी उन्होंने किसी पुरस्कार या प्रशंसा-प्राप्ति के लिए जोड़-तोड़ नहीं किया, न निंदा-स्तुति में रस लिया। शरत् पुरस्कार, रवींद्र पुरस्कार, जगत्तारिणी-पदक, पद्मभूषण और जादवपुर तथा भागलपुर विश्वविद्यालयों से डी. लिट्. अयाचित ही मिले थे। उनकी बहुत कुछ अच्छी रचनाएं अभी हिंदी में नहीं आ सकी हैं, जो अवश्य ही आनी चाहिये।

—१६, डा. विल्सन पथ, बंबई—४००००४



[पृष्ठ ६८ का शेष]

काम में उलझा हुआ हूं। इन लोगों ने बुद्धिजीवियों, लेखकों और चित्रकारों की एक समिति बनायी है। मुझसे निवेदन किया गया है कि मैं इस समिति का न केवल संरक्षक बनूं, बल्कि इस समिति का उद्घाटन भी करूं। इस वक्त मेरे उद्घाटन-भाषण का मसौदा तैयार हो रहा है। इसलिए तुम कभी फुरसत के वक्त आओ तो अच्छा रहेगा।'

मैं उठकर जाने लगा तो अब्दुलहक की डिक्शनरियों ने मुझे यों घूरकर देखा जैसे कह रही हों—'मियां, जाना है तो चले जाओ, मगर खुदा के लिए हमें भी अपने साथ ले चलो। हमें यहां से आजाद करो—क्योंकि यहां हमारा दम घुट रहा है। यहां किसी को शब्द और उसके अर्थ से कोई मतलब नहीं।'

मैंने डिक्शनरियों पर दुःख-भरी निगाह डाली और चला आया।

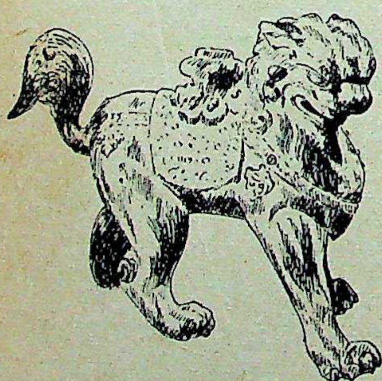


ब्रिटिश रेल्वे का कलाप्रेम

दिनेश पालीवाल

कर्मचारियों को पेन्शन देने के लिए जो पेन्शन फंड (निवृत्ति-निधि) एकत्र किया जाता है, उसके निवेश (इन्वेस्टमेन्ट) की समस्या पर अक्सर वाद-विवाद होता है। लेकिन इस संबंध में तीन बातों पर सभी सहमत हैं।

एक तो यह कि फंड का निवेश ऐसी मदों पर न किया जाये, जिनमें नुक्सान की बहुत संभावना हो। दूसरे, इसका उपयोग राष्ट्र की पैदावार बढ़ाने में हो; और तीसरे, इसके निवेश से फंड को एक स्थिर रकम की आमदनी भी होती रहे, जो पेन्शन देने के काम आये।



सोने का पानी चढ़ा यह कांसे का सिंह, जो चीन में (६१८-९०६ ई.) में बना था, १ लाख डालर में खरीदा गया था।

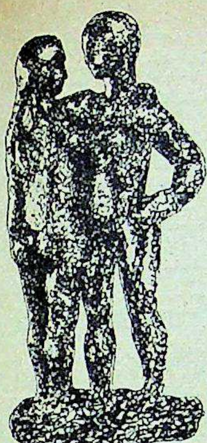
ब्रिटिश रेलों के पेन्शन फंड की निवेश-योग्य रकम इस समय कोई ८५ करोड़ पौंड है। यह निवेश अभी तक ज्यादातर गृह-निर्माण और औद्योगिक विकास-कार्य में होता रहा है।

लेकिन अब एक नयी मद में भी निवेश हो रहा है। सुनकर आप चौंकेंगे। वह मद है—कलाकृतियों की खरीद। यों अभी इस मद में लगी रकम समूची निवेशित पूंजी के ३ प्रतिशत से अधिक नहीं है और इसे कभी भी ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होने दिया जायेगा।



काष्ठ-मुखौटा, कां
[२० हजार डालर]

सुनने में यह बात अजीब लगेगी, लेकिन कलाकृतियों में पैसा सोच-समझकर ही लगाया गया है। पिछले चार वर्षों में बहुत ही पोशीदगी से इस फंड के अधिकारियों ने लगभग १,६०० से भी अधिक बहुमूल्य कलाकृतियां खरीदी हैं। केवल पिछले साल ही ७० लाख पौंड की रकम इसमें खर्च हुई थी। इसकी तुलना में पिछले साल ब्रिटिश सरकार ने नेशनल गैलरी और ब्रिटिश संग्रहालय के जरिये कला की खरीदी पर कुल १३ लाख ४५ हजार पौंड ही खर्च किये थे।



मार्सील-एरिस्टिड मायोलकृत 'दो हमजोलियां' मायोल पर अफ्रीकी प्रभाव की सूचक है। इसे २ लाख डालर में खरीदा गया था।

निधि द्वारा संगृहीत कलाकृतियों में सुरचित पेंटिंग, फर्नीचर, मध्यकालीन पांडुलिपियां, कालीन और दीवार-दरियां आदि बहुमूल्य सामग्री है। इनकी खरीद के लिए उसे प्रशंसा ही नहीं मिली है, आलोचना भी सहनी पड़ी है।

पिछले साल निधि ने साउथबी की नीलामी से ६ लाख ५ हजार पौंड कीमत का १२वीं सदी का एक सुनहरा शमादान खरीदा। इस सौदे पर एक संसद-सदस्य ने प्रसिद्ध दैनिक 'टाइम्स' में एक पत्र लिखकर विरोध प्रकट किया और यह आरोप भी लगाया कि सार्वजनिक संग्रहालयों में जाने वाला आम दर्शक इस कलाकृति के देखने से वंचित ही रहेगा, क्योंकि इसे निधि के भंडार में संरक्षित रखा जायेगा।

मगर निधि के अधिकारियों का कहना है कि यदि निधि इन उत्कृष्ट एवं बहुमूल्य कलाकृतियों को न खरीदे तो निश्चित रूप से ये विदेशी संग्रहालयों द्वारा हथिया ली जायेंगी। वैसे भी निधि की ४० प्रतिशत कला-सामग्री तो इस समय भी कहीं न कहीं प्रदर्शित है ही।

इनमें से सुविख्यात चितेरे रेन्वार द्वारा १८८० में बनाया गया प्रख्यात चितेरे सेजां का चित्र इस समय 'विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय' में मांगी हुई कलाकृति के रूप में रखा हुआ है। इसे १९७६ में निधि ने २ लाख ३० हजार डालर में खरीदा था।

यहीं प्रदर्शित पाब्लो पिकासो की कृति 'यंगमैन इन ब्ल्यू' (१९०५) भी निधि ने १९७६ में १० लाख डालर में न्यूयार्क से खरीदी थी।

नेपोलियन ने अपने पुस्तकालय के लिए छह चांदी-जटित शमादान बनवाये थे, जिनमें से प्रत्येक उस समय ७ हजार फ्रैंक



२५०-५५० ई. की मेक्सिकी मूर्ति; कीमत १०,००० डालर।

का था। इन्हीं में से एक को १९७५ में निधि ने जिनीवा की नीलामी में १,९०,००० स्वीडिश फ्रैंक में खरीदा। वह भी विक्टोरिया एंड अल्बर्ट म्यूजियम में प्रदर्शित है।

निधि की अप्रदर्शित कला-संपत्ति में कांसे के बरतनों का एक जोड़ा है। ये बरतन ११ वीं सदी के चीन में पशुबलि और नरबलि देते समय काम में लाये जाते थे। इन्हें १९७६ में लंदन के प्रसिद्ध नीलामघर साउथबी में ८५ हजार डालर में खरीदा गया था। ११ वीं सदी में चीन में कांसे की ढलाई की बहुत उम्दा तकनीक काम में लायी जाती थी। और ऐसे बरतनों का शायद ही कोई और जोड़ा अब दुनिया में मौजूद हो।

संग्रहालयों में स्थान की कमी होने तथा सुरक्षा और बीमा आदि की कठिनाइयों के कारण पेन्शन-निधि चाहते हुए भी अपनी सारी कला-संपत्ति का प्रदर्शन नहीं कर पा रही है। कई बार तो कलाकृतियों को सही-सलामत रखने के लिए जो तापमान चाहिये, उसकी व्यवस्था भी संग्रहालयों में नहीं हो पाती।

ब्रिटेन की रेल पेन्शन-निधि ने कला-संसार में पदार्पण कैसे किया? इसका उत्तर यह है–'पूंजी-निवेश कार्यक्रम में विविधता लाना जरूरी हो चला था। इससे पहले निधि का अधिकांश पैसा शेयरों और जायदाद से संबंधित प्रतिष्ठानों में लगा हुआ था।' और ऐसे प्रतिष्ठान सामान्यतः दुहरी फाइलें रखते हैं। निधि को मुद्रास्फीति के असर से बचाने के लिए यह एक अच्छा रास्ता है; क्योंकि श्रेष्ठ कलाकृतियों के दाम बराबर बढ़ते रहते हैं और सोने और जमीन की तुलना में ज्यादा ही होते हैं।

निधि की एक प्रबंधक श्रीमती अन्ना मारिया एडल्स्टाइन कलाकृतियों की सारी खरीदारी के लिए जिम्मेदार हैं। वे कलाकृतियों की सही कीमत और प्रामाणिकता की जांच के लिए विश्व के विभिन्न देशों की यात्राएं करती हैं और हर संभव माध्यम से कला-जगत् के समाचार और मोल-भाव की प्रामाणिक जानकारी जुटाती रहती हैं।

अक्सर यह भी होता है कि निधि किसी कलाकृति को खरीदती है और अगले ही दिन कला-व्यापारी उससे कहीं ऊंचे दामों पर उससे वह कलाकृति खरीदना चाहते हैं; लेकिन निधि के बोर्ड ने ऐसे सौदे न करने और कलाकृतियों को कम से कम २० वर्ष अपने पास रखने की नीति तय कर दी है।

सन १९७७ में ब्रिटेन की कम से कम एक करोड़ रुपये की कला-धरोहर विदेशों को चली गयी थी। राष्ट्रीय संपत्ति की इस निकासी को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने डेढ़ लाख पौंड के वार्षिक बजट का आर्थिक सहयोग देकर एक नयी कलारक्षा समिति का गठन किया था। लेकिन सरकारी समिति की आर्थिक क्षमता की तुलना में ब्रिटिश रेल कर्मचारी पेन्शन-निधि के प्रयत्न अधिक जोरदार और प्रभावकारी सिद्ध हो रहे हैं।



ग़ज़ल

दाग़े-दिल देख लिया, ग़ैर ही समझा फिर भी,
हमको तुमसे नहीं, अपने से है शिकवा फिर भी ।

ज़ख़्म पर ज़ख़्म उठाने का मजा देख चुके,
जी में जीने का बदस्तूर है सौदा फिर भी ।

हम सराबों[1] में रहे तुम भी सराबों में रहे,
क्यों रहे ? सोच तो लें, सोचना अच्छा फिर भी ।

मुझको नादान समझ के वो हंसे, खूब हंसे,
ज़ख़्म उनका नहीं अपना ही कुरेदा फिर भी ।

हौसला हार के जो बैठ गये, बैठ गये,
क़ाफ़िला चलता रहा, चलता रहेगा फिर भी ।

सूरज इक और भी पूरब में उगा है, देखो !
दूर होता नहीं जेहनों से कुहासा फिर भी ।

शोरो-गुल शग़ल बना, शग़ल से मन बहला लो,
अपने इस देस में सन्नाटा रहेगा फिर भी ।

दोस्तो, मान लिया, रीत भी अब रीत नहीं,
सरफरोशी की कसम भूल न जाना फिर भी ।

जहर शिव ने नहीं, हमने भी पिया है रहबर
यह तसलसल[2] तो तसलसल ही रहेगा फिर भी।

चित्र : शरद कांबळी



—हंसराज रहबर

एस-१६, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

१. मृगतृष्णा, भ्रमजाल; २. सिलसिला।

युद्ध-घोषणा से पहले

—पीटर चैनी



कैलिगन ने चाय की प्याली मेज पर रखी और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगायी ही थी कि उसके सहायक मैकआलिवर ने मुंह बनाकर कहा—'लीजिये आयी मुसीबत !'

कैलिगन ने घूमकर देखा। दरवाजे में एक लंबे कद की स्त्री खड़ी थी। उसके कीमती कपड़ों और अंदाज से लगता था कि वह अच्छे घराने की शिक्षित महिला है; फिर भी तनिक परेशान नजर आ रही थी। उन दोनों को वहां बैठे देखकर उसके चेहरे पर इत्मीनान की झलक प्रकट हुई और वह नपे-तुले कदम उठाती मेज के पास आ गयी।

'मिस्टर कैलिगन !.... मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूं .... मुझे आपके दफ्तर

आना चाहिये था; लेकिन इस भय से कि मेरा पीछा किया जा रहा है, मैं वहां नहीं गयी.... मुझे पता था कि आप यहां मौजूद होंगे.....'

कैलिगन ने उसकी कांपती हुई आवाज से अनुमान लगाया कि वह बहुत डरी हुई है और मुश्किल से अपने आप पर काबू पा रही है।

'बैठ जाइये मैडम !' कैलिगन ने तीसरी कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा। मैक आलिवर घबराकर उठ खड़ा हुआ—'मैं चलता हूं। दफ्तर में बैठूंगा !' उसने स्त्री को घूरकर देखा और पैर पटकता हुआ बाहर चला गया।

कैलिगन ने मुस्कराते हुए कहा—'यह मेरा सहायक है। अपनी शादी की समस्या पर बात करना चाहता था कि आपने तशरीफ लाकर उसका सारा मजा किरकिरा कर दिया।'

'मिस्टर कैलिगन ! मेरा काम बहुत महत्वपूर्ण है और चूंकि आपकी ख्याति से अवगत हूं, इसलिए इधर-उधर भटकने के बजाय सीधे आपके पास चली आयी। मुझे विश्वास है कि यह काम केवल आप ही कर सकते हैं।'

कैलिगन ने नया सिगरेट सुलगाया—'विस्तार से बताइये मैडम ! आपका काम क्या है और आप इतनी भयभीत किसलिए हैं?'

स्त्री ने कुछ क्षण सोचने के बाद ठंडी आह भरी और रुंधे हुए स्वर में कहा—'मेरा नाम मिसेज जोरीस है। पिछले वर्ष भ्रमण के दौरान मेरी मुलाकात एक विदेशी पुरुष से हुई। संबंध बढ़े और मैंने उससे शादी कर ली। बड़ा प्रेम है मुझे उससे !'

'शायद उसने आपसे बेवफाई की और अब किसी अन्य स्त्री के चक्कर में है?' कैलिगन ने बात बढ़ायी।

'काश ! ऐसा होता मिस्टर कैलिगन ! मैं अपने पति की बेवफाई सहन करने को तैयार हूं, लेकिन यह मामला तो बेवफाई से अधिक यातना-जनक है। मुझे पता चला है कि मेरा पति जासूस है और हमारे देश के सैनिक रहस्य प्राप्त करके जर्मनों के हाथ बेच रहा है।'

कैलिगन ने हाथ की प्याली नीचे रख दी। उसकी भौंहें तन गयीं। 'मामला दिलचस्प है।' उसने दिल में सोचा और कुर्सी पर सीधा होकर बैठ गया।

'विश्वास कीजिये ! मेरा आराम और चैन बरबाद हो गया,' स्त्री ने रोते हुए कहा—'मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूं? कहां जाऊं? किससे जिक्र करूं? कुछ माह पहले मेरी एक सहेली ने आपके कुछ कारनामे सुनाये थे, इसलिए चली आयी। मैं आपको मुंहमांगी फीस दूंगी। भगवान के लिए मुझे इस संकट से मुक्ति दिलाइये !' उसकी सुंदर नीली आंखों से निरंतर आंसू बह रहे थे। कैलिगन को प्रभावित होने में देर न लगी।

'मैडम ! अगर आप चाहती हैं कि लाभदायक परिणाम निकले, तो सब कुछ

• अनुवाद : सुरजीत •

सच-सच बता दीजिये।

'मैं कुछ भी नहीं छिपाऊंगी', मिसेज जीरोस ने रूमाल से आंसू पोंछते हुए उत्तर दिया–'मुझे छह माह पहले एहसास हुआ कि मेरे पति का व्यवहार रहस्यपूर्ण और अबूझ होता जा रहा है। वह चुप्पी साधे रहता, जैसे किसी मानसिक यातना या दुःख में ग्रस्त हो। मैंने कई बार उससे इसका कारण जानने का प्रयत्न किया; लेकिन वह हर बार टाल जाता। सुबह नाश्ता करते ही घर से निकलता और रात गये लौटता। कभी-कभी आधी रात को बिस्तर से उठकर चुपके-से बाहर चला जाता। हिटलर की युद्ध-घोषणा से कुछ सप्ताह पूर्व एक रात की बात है कि वह मुझे सोयी हुई समझकर घर से निकला। लेकिन खटके से मेरी आंख खुल गयी। मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और यह पता लगाने के लिए कि वह कहां जाता है, उसका पीछा शुरू कर दिया। वह इधर-उधर या पीछे देखे बिना चलता जा रहा था। अंत में वह वेस्ट-एंड के एक छोटे-से क्लब में प्रविष्ट हुआ। थोड़ी देर बाद मैंने दरवाजे से लग-कर देखा, वह एक अन्य व्यक्ति से भेद-भरे अंदाज में बातें कर रहा है। मैं दूसरे आदमी को पहचानती थी; वह एक विदेशी दूता-वास का कर्मचारी था। उन दोनों को यों मिलते देखकर तुरंत यह खयाल मेरे मन में कौंध गया कि मेरा पति जासूस है। न जाने वह कब तक वहां रहा। मैं उलटे पांव घर वापस आ गयी। लेकिन मुझे रात-भर नींद नहीं आयी। मेरे दिल-दिमाग पर दहशत छायी हुई थी और कुछ समझ में न आता था कि क्या करूं। मैंने अपने पति से कुछ न कहा; पर चुपके-चुपके उसकी रहस्यमयी हरकतों और आवागमन पर नजर रखने लगी। इस दौरान में मुझे बहुत-सी बातें पता चलीं। यदि मैं जाकर पुलिस को बता देती, तो मेरा पति निश्चय ही जेल में होता। लेकिन अपने पति से प्रेम होने के कारण, मैंने पुलिस की सहायता नहीं ली; पर अब मामला हद से गुजर चुका है।'

मिसेज जीरोस सूनी नजरों से छत की ओर देखने लगी। कैलिगन चुपचाप सिगरेट के कश लगाता रहा।

'आपको याद होगा मिस्टर कैलिगन, पिछले सप्ताह अखबारों में यह सनसनीखेज खबर छपी थी कि रीजेंट पार्क में खड़ी हुई एक कार में से कुछ महत्त्वपूर्ण सरकारी कागज चुरा लिये गये हैं। उनका संबंध ब्रिटेन के गुप्तचर-विभाग से था। चोरी का सुराग लगाने में पुलिस असफल रही है। लेकिन आपको यह सुनकर अचरज होगा कि परसों रात मैंने ये सारे कागजात अपने घर में देखे। मेरे पति ने अपने कमरे में चमड़े के थैले में उन्हें बंद कर रखा था।'

'फिर आपने क्या किया?' कैलिगन ने पूछा।

'कागजात को देखते ही मेरा धैर्य जाता रहा। शाम को जब मेरा पति घर आया, तो मैंने उसे अलग ले जाकर पूछा कि ये कागजात कहां से आये और वेस्ट-एंड क्लब

में आधी रात तुम किससे मिलने जाते हो ? मेरी बातें सुनकर उसका रंग उड़ गया और उसने रोज की तरह मुझे बहकाने का प्रयत्न किया। पर मैंने सख्ती से कहा—"देखो, तुम मुझे बेवकूफ मत बनाओ। बेशक मुझे तुमसे प्रेम है; लेकिन अपना देश तुमसे भी ज्यादा प्यारा है। यदि तुम सच-सच नहीं बताओगे तो भगवान की सौगंध, अभी स्काटलैंड यार्ड को फोन कर दूंगी।" वह भय से थरथर कांपने लगा और मेरे पांव पकड़कर याचना की कि जरा धीरज धरो, मैं सब कुछ बता दूंगा; तुम नहीं जानतीं मैं किस मुसीबत में फंस गया हूं।' बस, इतना कहकर वह फफक-फफककर रोने लगा और फिर अपने कमरे में चला गया। उसने कागजात और अपने क्लब वाले मित्र के बारे में मुझे एक शब्द भी न बताया। उसकी दशा से मैंने अनुमान लगाया कि उसे जान से मार डालने की धमकी देकर अपने साथ काम करने को मजबूर किया गया है। मेरी मूर्खता देखिये कि मैंने कागजात का थैला उसी के कमरे में रहने दिया। सुबह जागी, तो वह घर में नहीं था। मैंने तुरंत उसके कमरे की तलाशी ली, थैला गायब था। वह उस दिन घर न आया। पर शाम की डाक में उसकी कलम से लिखा लिखा हुआ एक पत्र मिला।'

मिसेज जीरोस ने अपना पर्स खोलकर कागज का एक छोटा-सा पुरजा निकाला और कैलिगन के सामने रख दिया। उस पर लिखा था :

तुमने धमकी दी है कि पुलिस को सब कुछ बता दोगी। मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि यह तुम्हारे हक में अच्छा न होगा। यदि तुमने पुलिस को सूचना दी, तो मैं वही कदम उठाने पर मजबूर हो जाऊंगा, जिससे तुम अवगत हो।

—फ्रांज जीरोस

कैलिगन ने पुरजा तह करके कोट की भीतरी जेब में रख लिया और कहा—'इसमें लिखा है, "मैं वही कदम उठाने पर मजबूर हो जाऊंगा, जिससे तुम अवगत हो।" इस वाक्य का क्या अभिप्राय है ?'

'इसका अभिप्राय आत्महत्या से है', मिसेज जीरोस ने आंसू बहाते हुए कहा—'मुझे विश्वास है कि वह अपने आपको खत्म कर देगा। आज सुबह घर से निकली, तो महसूस हुआ कि वह मेरा पीछा कर रहा है। शायद वह यह पता करना चाहता था कि मैं पुलिस-स्टेशन जाती हूं या नहीं। एकाएक खयाल आया कि मुझे किसी न किसी तरह अपने पति का पीछा करके पता करना चाहिये कि वह रहता कहां है, अतः अवसर पाकर मैं एक दुकान में घुसी और पिछले दरवाजे से निकलकर एक टैक्सी में बैठ गयी। बाद में यह टैक्सी उस दुकान के मुख्य द्वार के सामने दूसरी ओर फुटपाथ पर रुकवा ली। मेरा पति कुछ दूरी पर एक खंभे के साथ खड़ा मेरे बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहा था। पंद्रह मिनट बाद वह

दुकान के भीतर दाखिल हुआ, लेकिन फौरन बाहर आ गया। उसके व्यग्र चेहरे से मैंने अनुमान लगाया कि मुझे वहां न पाकर घबराया हुआ है। उसने टैक्सी पकड़ी। मैं अपनी टैक्सी में उसके पीछे-पीछे गयी। सेंट जान वुड के इलाके में एक खाली और अलग-थलग मकान के पास उसने टैक्सी रुकवायी और दरवाजे पर लगा हुआ ताला खोलकर अंदर चला गया।'

'खूब! बहुत खूब!' कैल्गिन ने मुस्कराकर कहा–'दास्तान बहुत दिलचस्प है मिसेज जीरोस! लेकिन यह तो बताइये कि मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूं?'

'मैं चाहती हूं, आप सेंट जान वुड के उस मकान में जायें। मुझे आशा है, वे महत्त्वपूर्ण सरकारी कागजात उसी मकान में कहीं छिपाये गये हैं। आप उन्हें वहां से प्राप्त करके सरकार के हवाले कर दें। उसके बाद आप मेरे पति के सारे हालात मालूम करके उसे विदेशी जासूसों के पंजे से छुड़ाने की कोशिश करें।'

मिसेज जीरोस ने पर्स खोलकर एक लिफाफा निकाला और कहने लगी–'इसमें दो सौ पचास पौंड के करेंसी नोट हैं। यह आपकी अग्रिम फीस है और यह है वह कागज जिस पर सेंट जान वुड के उस मकान का पता लिखा हुआ है।' कैल्गिन की ओर कुछ क्षण चुपचाप देखने के बाद उसने खुशामद-भरे स्वर में कहा।

'भगवान के लिए मुझे निराश न कीजिये। यह मेरी जिंदगी और मौत का सवाल है।' उसका रूमाल एक बार फि[र] आंखों तक पहुंच गया। कैल्गिन ने लिफाफ[ा] जेब में रखा और कुर्सी से उठ खड़ा हुआ– 'चिंता न कीजिये, मेरी सेवाएं हाजिर हैं।'

०००

शाम के सात बजे कैल्गिन अपने दफ्तर में दाखिल हुआ। ब्लैक-आउट और कुहरे के कारण इतना अंधकार था कि हाथ को हाथ न सूझता था। उसने कोट उतारकर एक ओर फेंका। हैट खूंटी पर लटकाया और आदत के अनुसार दोनों टांगें मेज पर फैलाकर अभी बैठा ही था कि उसकी सेक्रेटरी कमरे में प्रविष्ट हुई–'एक शख्स आपसे मिलने आया है। अपना नाम जीरोस बताता है और आग्रह कर रहा है कि इसी समय मिलना है।'

कैल्गिन ने मेज से टांगें हटा लीं और संभलकर बैठ गया–'उसे आने दो!'

कुछ मिनट बाद जीरोस ने प्रवेश किया और कैल्गिन की मेज के पास आकर चुपचाप खड़ा हो गया। वह ठिगने कद का आदमी था। फूले हुए चेहरे पर मोटे शीशों की ऐनक लगी थी, जिसके पीछे नीले रंग की छोटी-छोटी आंखें हरकत कर रही थीं। शरीर की तुलना में उसका सिर खासा बड़ा और वजनी था। कैल्गिन उसे एक नजर देखकर मुस्कराया और कहने लगा– 'फरमाइये, मिस्टर जीरोस! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?'

जीरोस ने दांत पीसकर कहा–'मिस्टर कैल्गिन! आज मेरी पत्नी आपसे मिलने

आयी थी, उसने आपसे क्या कहा ? क्या आपका संबंध पुलिस से है ?'

'मैं प्राइवेट जासूस हूं।'

'मैं केवल यह कहने आया हूं कि आप मेरी पत्नी को इतना समझा दें कि वह अपनी सरगरमियों से बाज आ जाये; नहीं तो जो कह चुका हूं, उस पर अमल करूंगा ! ..... समझे ?'

'समझ गया।' कैलिगन ने उत्तर दिया—'और कुछ ?'

'बस।' जीरोस ने कहा—'और यह कि तुम जासूस के बजाय काठ के उल्लू नजर आते हो।'

वह जाने को मुड़ा ही था कि कैलिगन बोला-'आपने ठीक कहा, मिस्टर जीरोस ! मैं मूर्ख हूं, लेकिन आप मुझसे भी बड़े मूर्ख हैं।' उसने कहकहा लगाकर घंटी बजायी। सेक्रेटरी ने कमरे में प्रवेश किया।

'एफी, इस शरीफ आदमी को बाहर जाने का रास्ता दिखाओ। बेचारा इतने मोटे शीशों की ऐनक लगाये हुए है कि इस ब्लैक-आउट में कहीं लुढ़क गया, तो हड्डी-पसली बराबर हो जायेगी। बल्कि अच्छा यह है कि फोन करके इसके लिए कोई टैक्सी मंगवा दो।'

'धन्यवाद!' जीरोस ने झल्लाकर कहा—'बाहर टैक्सी मेरी प्रतीक्षा कर रही है।'

उसके जाते ही कैलिगन ने डेस्क-टेलिफोन पर अपने सहायक मैक आलिवर से कहा-'मैक! एक आदमी अभी-अभी मेरे कमरे से बाहर गया है। उसने ओवरकोट पहन रखा है। गले में सुर्ख रूमाल और आंखों पर मोटे शीशों का ऐनक है। बाहर एक टैक्सी उसकी प्रतीक्षा में है। जरा दौड़कर टैक्सी का नंबर नोट कर लो।'

तीन मिनट बाद मैक आलिवर ने कमरे में प्रवेश किया। उसकी सांस फूली हुई थी।

'जनाब ! बाहर कोई टैक्सी नहीं थी। वह आदमी यहां से निकलकर सड़क पर पैदल ही जा रहा था कि मेरे देखते-देखते सामने से एक टैक्सी आकर रुकी और वह उसमें बैठकर चला गया। टैक्सी मुझसे बीस-तीस गज की दूरी पर थी। ब्लैक-आउट होने के कारण मैं उसका नंबर नोट न कर सका।'

कैलिगन ने सिर हिलाया—'अच्छा, तो वहां टैक्सी मौजूद नहीं थी और दूसरी दिशा से बाद में टैक्सी पहुंची ! खूब ! लेकिन तुम्हें कैसे पता लगा कि वह टैक्सी ही थी।'

मैक आलिवर अपने मालिक की बेवकूफी पर हंसा—'जनाब ! उसके ऊपर "टैक्सी" शब्द रोशन अक्षरों में चमक रहा था और जब वह आदमी गाड़ी में बैठ गया तो टैक्सी-ड्राइवर ने "टैक्सी" शब्द के रोशन अक्षर बुझा दिये।'

'अच्छा, ! तुम दफा हो जाओ !' उसने सिगरेट सुलगाकर पैर पुनः मेज पर रख दिये और धुएं के छल्ले बनाने लगा। एकाएक उसने अपनी नोटबुक जेब से निकाली। मिसेज जीरोस का फोन नंबर ढूंढ़ा और डायल घुमाने लगा। दूसरी ओर घंटी बज रही थी; लेकिन किसी ने रिसीवर नहीं

उठाया। उसने बार-बार डायल किया और पंद्रह मिनट बाद जाकर कहीं सफलता मिली।

'मिसेज जीरोस! आपका पति थोड़ी देर पहले मेरे पास आया था। उसने मुझे और आपको परामर्श दिया है कि हम अपने काम से काम रखें और उसके मामले में टांग न अड़ायें। आपका खयाल सही है कि जब आप सुबह मेरे पास आयीं, वह आपका पीछा कर रहा था।'

'फिर क्या सोचा है आपने ? मैं तो सुबह से बहुत परेशान हूं और भय के मारे घर से भी नहीं निकली !' मिसेज जीरोस ने घबरायी आवाज में उत्तर दिया।

'आपकी परेशानी सही है। वैसे मैं सोच रहा हूं, अब हमें हरकत में आ जाना चाहिये। आपका पति खासा "सख्त" आदमी लगता है। निश्चय ही वह फरार होने की योजना बना रहा है। बहरहाल कुछ मिनट के अंदर-अंदर मैं आपके पास पहुंच रहा हूं। फिर हम दोनों सेंट जान वुड के रहस्यपूर्ण मकान पर चलेंगे। शायद वहां से कुछ सुराग मिल जाये। आप इतनी देर में तैयार हो जाइये।'

'बहुत अच्छा। मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगी।'

कैल्गिन ने फोन बंद करके मैक आलिवर को बुलाया। उसे कुछ हिदायतें दीं और सीटी बजाता हुआ दफ्तर से बाहर निकल गया।

आठ बजे कैल्गिन ने अपनी कार सेंट जान वुड के इलाके में ले जाकर रोक दी। हर ओर डरावना सन्नाटा और घुप अंधेरा था। कुछ क्षण आंखें फाड़-फाड़कर देखने के बाद उसने चुपके-से कहा-'मिसेज जीरोस ! मेरा खयाल है वह सामने वाला मकान है, जिसकी सफेद-सफेद छत नजर आ रही है। जासूसों के लिए ऐसा वातावरण और मौसम बहुत उपयोगी होता है।'

'आह ! मिस्टर कैल्गिन ऐसा न कहिये! मेरा दिल धड़क रहा है।' मिसेज जीरोस ने कांपती हुई आवाज में कहा। उसने कार से निकलकर कैल्गिन की बांह मजबूती से पकड़ ली। मकान के गिर्द एक छोटा-सा बगीचा था। कैल्गिन अंधेरे में ठोकरें खाता और पेड़ों को टटोलता हुआ आगे बढ़ा। दरवाजे के पास पहुंचकर उसने छोटी-सी टार्च जलायी और जेब से कुछ औजार निकालकर ताला खोलने का प्रयास किया। मिसेज जीरोस सहमी हुई नजरों से यह सब देख रही थी। दो मिनट बाद ताला झटके से खुल गया।

'आइये मिसेज जीरोस', कैल्गिन ने मद्धिम आवाज में कहा। दोनों ने अपने आपको एक हाल में पाया। सजे हुए फर्नीचर पर धूल की मोटी तह जमी हुई थी। टार्च के प्रकाश में हाल के दूसरे सिरे पर एक खुला दरवाजा नजर आया। कैल्गिन दबे पांव उस ओर बढ़ा और दरवाजे में से झांका। फिर भीतर दाखिल होकर जल्दी से खिड़कियों पर परदे खींच दिये और बिजली का बटन दबा दिया। उसके ओंठों पर एक अजीब-सी मुस्कराहट प्रकट

हुई।

'मिसेज जीरोस ! यहां आइये।' उसने धीरे से आवाज दी। स्त्री डरते-डरते कमरे में प्रविष्ट हुई। लेकिन दूसरे ही क्षण उसके गले से घुटी-घुटी-सी चीख निकली और वह हाथों से चेहरा ढांपकर बरबस रोने लगी।

आतशदान के सामने कालीन पर खून में नहायी हुई जीरोस की लाश पड़ी थी। उसकी बायीं कनपटी में खासा-बड़ा सूराख था। गोली दूसरी ओर से निकल गयी थी। जीरोस के दायें हाथ में पिस्तौल अभी तक मौजूद थी। कैलिगन ने मिसेज जीरोस की ओर देखा और खिन्नता से बोला—'हे भगवान! आखिर उसने आत्महत्या कर ही ली।' स्त्री ने सिसकियां लेते हुए कहा—'अब क्या होगा ?'

'आप चिंता न कीजिये मिसेस जीरोस ! शांत होकर इस कुर्सी पर बैठ जाइये ! मुझे पहले यह देखना है कि वे कागजात यहां ही हैं या नहीं।' वह तेजी से कमरे का सामान उलटने-पुलटने लगा। एक कोने में पड़े हुए पलंग का गद्दा उठाते ही चमड़े का थैला दिखाई दिया। उसमें कागजात मौजूद थे।

'कागजात तो मिल गये !' कैलिगन ने कहा—'प्रश्न यह है कि इनका क्या किया जाये ?'

'आप ये कागजात सरकार के हवाले करके उसे सारी घटनाओं से अवगत करा दीजिये !' मिसेज जीरोस ने परामर्श दिया। कैलिगन ने आतिशदान के पास खड़े होकर सिगरेट सुलगाया और अर्थपूर्ण अंदाज में लाश की ओर ताकने लगा। कुछ क्षण बाद बाहरी हाल की ओर से पदचाप आयी। मैक आलिवर ने कमरे में प्रवेश किया। कैलिगन ने पूछा—'उसे पकड़ लिया गया ?'

'जी हां ! पुलिस उसे स्काटलैंड यार्ड में ले गयी है।'

मिसेज जीरोस की आंखें फैल गयीं और वह बोली—'मैं समझी नहीं मिस्टर कैलिगन, कौन पकड़ा गया ? मुझे विस्तार से बताइये।'

कैलिगन ने हंसते हुए कहा—'मिसेज जीरोस ! आप बखूबी जानती हैं कि कौन पकड़ा गया होगा। मैं आपको बधाई पेश करता हूं और आपकी बुद्धिमत्ता की दाद देता हूं। आज तक आप जैसी कुशल अभिनेत्री मेरी नजरों से नहीं गुजरी। आपने बहुत चालाकी से असली घटनाओं को उलटकर अपना दामन बचाने का प्रयास किया; पर मात खा गयीं। यह आपका अभागा पति जो मरा पड़ा है, जासूस नहीं है; बल्कि जासूस आप हैं, और आपका वह विदेशी मित्र है, जिसे पुलिस पकड़कर ले जा चुकी है। आप दोनों ने कागजात चुराये और संयोग से आपके पति को इसका पता चल गया। उसने आपको समझाया कि ये कागजात तुरंत सरकार को वापस कर दो, वरना मैं पुलिस को सूचना दे दूंगा। पति के इस रवैये पर आप अजीब कठिनाई में फंस गयीं। इससे निबटने के लिए आपने बहुत अच्छी योजना तैयार की। आप जानती थीं कि आपका पति आपसे

प्रेम करता है और वह कभी पुलिस को मामले की सूचना नहीं देगा। आपने उसे धमकाया कि यदि वह पुलिस के पास गया, तो आप कह देंगी, कागजात स्वयं इसी ने चुराये हैं; क्योंकि वह विदेशी है। पुलिस वाले आपके मुकाबले में विदेशी की बात न मानते। आपने अपने पति को यहां तक डराया कि आप मुझसे मिलकर परामर्श करेंगी; इसीलिए आप मेरे दफ्तर आयीं और आपके पति ने आपका पीछा किया। आप यह भी जानती थीं कि वह भी मेरे दफ्तर में आकर मुझसे मिल सकता है। इसलिए कि यदि वह वाकई जासूस होता तो इतनी मूर्खतापूर्ण बात कभी न करता। आपने मुझे अपने पति के हाथ का लिखा हुआ पुरजा भी दिखाया, जिसमें आपके कथनानुसार "आत्महत्या" की धमकी दी गयी थी; हालांकि उसका अभिप्राय यह था कि वह यह साबित कर सकता है कि कागजात आपने चुराये हैं। आप अपने पति की इस कमजोरी से अवगत थीं कि उसकी नजर कमजोर है, इसलिए ब्लैक-आउट में जब वह मुझसे मिलने आयेगा, तो टैक्सी को बाहर रुकने के लिए जरूर कहेगा। आप मेरे दफ्तर के आस-पास घूमती रहीं और जब वह टैक्सी से उतरकर मेरे दफ्तर में आया, तो आपने किराया देकर टैक्सी विदा कर दी। वह मुझसे मिलकर बाहर निकला, तो टैक्सी गायब थी। वह किसी अन्य टैक्सी की खोज में पैदल ही चल पड़ा। एकाएक सामने से एक टैक्सी आकर उसके पास रुक गयी। उसकी कमजोर नजर का खयाल करते हुए ब्लैक-आउट के बावजूद "टैक्सी" शब्द रोशन कर दिया गया; इससे वह निस्संकोच उस टैक्सी में बैठ गया। उसके बैठते ही ड्राइवर ने "टैक्सी" शब्द बुझा दिये। बेचारे जीरोस का समय पूरा हो चुका था। आप टैक्सी के भीतर पिस्तौल लिये बैठी थीं और आपका विदेशी मित्र गाड़ी चला रहा था। आपने अपने पति की कनपटी में गोली मार दी और फिर फौरन चली गयीं और आपका मित्र लाश को "आत्महत्या" का रूप देकर इस मकान में छोड़ गया। पर उसने एक बात पर विचार न किया कि कोई आदमी आत्महत्या करने के लिए इतना परिश्रम नहीं करता कि दायें हाथ में पिस्तौल लेकर अपने बायीं कनपटी को निशाना बनाये। आपने सोचा, मैं इस मकान में अवश्य आऊंगा और आपके पति की लाश देखते ही फौरन समझ जाऊंगा कि उसने "आत्महत्या" कर ली है। फिर यहीं से मुझे वे कागजात भी मिल जायेंगे, जिन्हें लेकर मैं स्काटलेंड यार्ड जाऊंगा और जीरोस पर जासूसी का आरोप लगाते हुए उन्हें सूचना दूंगा कि उसने अपने आपको गोली मारी है; क्योंकि उसकी पत्नी ने अपने देश से वफादारी का प्रमाण देते हुए एक प्राइवेट जासूस को ये कागजात वापस प्राप्त करने के काम पर लगा दिया था। इससे सरकार आपकी बहुत-बहुत आभारी होगी। फिर आप और आपका मित्र बाद में निश्चिंतता से शत्रुओं के लिए जासूसी

करते रहेंगे और किसी को आप जैसी देश-भक्त महिला पर संदेह न होगा। और हां, एक बात और है। आपने फोन पर बताया था कि भय के मारे आप आज दिन-भर घर से नहीं निकलीं। पर विस्मय की बात है कि मैं टेलिफोन करता रहा और पंद्रह मिनट तक किसी ने रिसीवर न उठाया। संभवतः यह वही समय था, जब आप अपने निर्दोष पति को मौत के घाट उतारने का कर्तव्य पूरा कर रही थीं।'

मिसेज जीरोस मुस्करायी। अब वह बिलकुल शांत थी–'मिस्टर कैल्गिन! आपने जो व्याख्या प्रस्तुत की, वह बड़ी दिलचस्प है; लेकिन कागजात चुराने के बाद उन्हें पुनः यहीं छोड़कर असल मालिकों के हवाले कर देने वाली बात मेरी समझ में नहीं आयी। भला, यह कैसे संभव है ?'

कैल्गिन ने कहकहा लगाया–'मिसेज जीरोस! मैं इतना मूर्ख नहीं, जितना शक्ल से नजर आता हूं।' फिर वह मैक आलिवर की ओर मुखातिब हुआ–'मेरा खयाल है, पुलिस ने इन कागजात की फोटो-कापियां उस आदमी से बरामद कर ली होंगी ?'

मैक ने हां में सिर हिलाया। मिसेज जीरोस उठ खड़ी हुई–'आप जीत गये मिस्टर कैल्गिन! अब मैं केवल इतनी प्रार्थना करूंगी कि मुझे मेरे मित्र से मिलने की अनुमति दी जाये।'

कैल्गिन ने दूसरा कहकहा लगाया–'आपकी सूचना के लिए निवेदन है कि उसे अभी तक पुलिस ने नहीं पकड़ा। मैक आलिवर ने जो कुछ बयान किया, वह तो एक चाल थी। मगर अब हम उसके घर जा रहे हैं। मेरा खयाल है, वह मुझे, आपको और पुलिस वालों को देखकर खासा खुश होगा। फोटो-कापियां उसके घर से निश्चय ही बरामद होंगी।'

०००

रात के नौ बजे मैक आलिवर और कैल्गिन आमने-सामने बैठे हुए उस कारनामे का सिंहावलोकन कर रहे थे कि सहसा सहायक ने कहा–'एक बात मेरी समझ में नहीं आयी। आप कहते हैं इस समस्या का सारा हल "टैक्सी" शब्द के रोशन अक्षरोंमें छिपा था। आखिर कैसे ?'

'तुम निरे गावदी हो!' कैल्गिन ने कहा–'अरे मूर्ख! तुमने ट्रैफिक-पुलिस के नियम नहीं पढ़े ? ब्लैक-आउट की रातों में टैक्सियों पर "टैक्सी" शब्द जताने की सख्त मनाही है! तुमने स्वयं ही तो मुझे बताया था कि जीरोस के सामने एक टैक्सी आकर रुकी और जब वह उसमें बैठा तो ड्राइवर ने तुरंत यह शब्द बुझा दिया। आखिर क्यों ? महज इसलिए कि वह जीरोस को उस निशान से अपनी ओर आकर्षित करना चाहता था। यदि वह अभागा आदमी टैक्सी में बैठने से पहले देख लेता कि उसकी पत्नी पिस्तौल लिए पिछली सीट पर विराजमान है, तो उसके प्राण बच जाते। मगर अफसोस....।'



काले पानी के दिन

विजय कुमार सिंह

भारत के तट से लगभग एक हजार मील दूर अंडमान द्वीपपुंज में उस दिन (११ फरवरी १९७९) प्रधान-मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने 'सेल्युलर जेल राष्ट्रीय स्मारक' की स्थापना द्वारा एक प्रशंस्य कदम उठाया था। अंग्रेजी राज के जमाने में तो लोग काले पानी की सजा सुनते ही थर्रा उठते थे। पर मेरी जिंदगी के तो कुछ सबसे अच्छे साल वहीं गुजरे थे। १९३३ से १९३८ तक में उस कुख्यात जेल की अंधेरी संकरी काल-कोठरियों में कैद था। उसके बाद से तो वहां राजनैतिक बंदियों को भेजना ही बंद हो गया था; क्योंकि हमारी दूसरी सामूहिक भूख-हड़ताल ने, जिसमें विभिन्न प्रांतों के सैकड़ों कैदियों और सजायाफ्ताओं ने हमारा साथ दिया था, सरकारी दमन-चक्र के छक्के छुड़ा दिये थे।

भगतसिंह के खिलाफ चले १९३० के लाहौर षड्यंत्र केस में मुझे आजीवन कारावास का दंड मिला, तो पंजाब की जेलों से पहले मुझे मद्रास प्रेसिडेन्सी जेल भेजा गया और वहां से सागर-पार अंडमान दीपपुंज में। वहीं एक ऐसी रोबदार इमारत में, जो देखने में किसी राजे-रजवाड़े की गढ़ी-सी लगती थी, मुझे चार सौ अन्य क्रांतिकारियों के साथ अपनी लंबी सजा काटनी थी। सारे देश में, विशेषतः बंगाल और पंजाब में उन दिनों क्रांतिकारी आंदोलन ने बहुत ज़ोर पकड़ रखा था। सरकार फांसी पर लटकाने और गोली चलाने पर उतर आयी थी; लेकिन इससे वह हमारे बढ़ते कदम रोक नहीं सकी थी।

सरकार ने सोचा था कि अपने देश से इतनी दूर पटके जाने और दोस्तों व रिश्तेदारों से मुलाकातें करने और खत पाने के अवसर से वंचित होकर हमारे दमखम टूट जायेंगे। उसका खयाल था कि जेल के अफसर उन दमन से हमें तोड़ डालेंगे—शरीर से भी और आत्मा से भी। लेकिन हुआ इसके ठीक उलटा। काला पानी हमारे लिए छिपा वरदान सिद्ध हुआ। देश में जब हम जेल से बाहर थे, तब तो छोटे-छोटे दल बांधकर इधर-उधर बिखरे हुए दस्तों में ही काम कर पाते थे। इसी से जब वहां मद्रास, संयुक्त प्रांत, बिहार और बंगाल से आये बहुत-से क्रांतिकारियों से मुलाकात हुई तो हमारी खुशी का ठिकाना न रहा। अकेले बंगाल से ही ३०० से ज्यादा बंदी आये थे!

वैसे हाकिमों ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। हर तरह की लानत-मलामतें थोपी

आगे

थीं हम पर; कड़ी मशक्कत करवाकर वे हमें न खाने लायक खाना देते थे। नहाने-धोने की भी सुविधा नहीं थी। हमारे खत, किताबें और अन्य चीजें, जो बड़ी तदबीर भिड़ाकर दोस्त और रिश्तेदार लोग हमें भेजते थे, रद्दी के ढेर में फेंक दी जातीं या उन्हें वे खुद डकार जाते।

आखिर हमें भी कुछ तरकीबें सोचनी पड़ीं। हमने तय किया कि इस जगह बाहरी मदद तो कोई मिल नहीं सकती, इसलिए हमें आखिरी सांस तक अपनी लड़ाई जारी रखनी पड़ेगी। हमने भूख-हड़ताल शुरू कर दी और यह प्रतिज्ञा कर ली कि हम एक के बाद एक मरते चले जायेंगे, जबत क कि ये हुक्मवर अफसर अपना रवैया न बदलें।

सबसे पहले शहीद हुआ महाबीर सिंह, जो लाहौर षड्यंत्र केस में मेरा साथी था। उसने अमर-शहीद जतीन दास का अनुसरण किया था, जिन्होंने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य-संघर्ष में आत्माहुति देने का एक नया मानदंड लाहौर जेल में १९२९ की भूख-हड़ताल के वक्त कायम किया था। १७ मई १९३३ को हमारी हड़ताल के पहले दिन ही, महाबीरसिंह पठान कैदियों के गिरोह से जूझता रहा था। वे लोग डाक्टर के हुक्म पर उसे जबर्दस्ती खिलाना चाहते थे। उन्होंने उसे जमीन पर गिरा दिया। तब महाबीर ने सांस रोक ली और इसका नतीजा यह हुआ कि उसकी नाक में दूध उंड़ेला गया, जो सीधा उसके फेफड़ों में चला गया। वह बेहोश हो गया और कुछ घंटों बाद, रात की खामोशी में जेल के अस्पताल में ही उसने आखिरी सांस ले ली। हममें से किसी को भी उसके पास नहीं रहने दिया गया था। आखिर हम उसे 'अलविदा' भी नहीं कह पाये।

इस तरह हमारा मोर्चा मौत की तरफ चल पड़ा। दस दिन भी नहीं बीते थे कि मोहन किशोर भी महाबीर के पास चला गया। उसे तो सिर्फ सात ही साल की सजा हुई थी। अगले अड़तालीस घंटों में मोहित मैत्र की मृत्यु हुई। वह अपने मीठे गानों और जिंदादिली के लिए अपने कामरेडों को बहुत प्रिय था। अब तो सरकार को भी पसीना छूटने लगा; क्योंकि ऐसा लगता था कि और भी मौतें होने वाली हैं। अतः उसने अपना रुख बदला और आवश्यक सुविधाओं के लिए हमारी सारी मांगें मान लीं—यहां तक कि हमारे पढ़ने-लिखने पर से भी पाबंदी हटा ली।

सन १९०९ में अलीपुर षड्यंत्र केस के निर्णय के बाद श्रीअरविंद के भाई बारीन्द्र-घोष और दूसरे सजायाफ्ता कैदियों को बंगाल से अंडमान की सेल्युलर जेल में लाया गया। कलकत्ते से जब वे जहाज पर चढ़े तो उनके पैरों में बेड़ियां डाल दी गयी थीं। महाराष्ट्र से सावरकर-बंधु भी आ गये थे। बड़े भाई गणेश सावरकर को राष्ट्रीय कविताएं प्रकाशित करने के अपराध में आजन्म कारावास मिला था और छोटे भाई विनायक को पूरे पचास साल की सजा सुनायी गयी थी। संयुक्त प्रांत में इलाहाबाद से १९०७

['आकाशवाणी' से साभार]

से क्रांतिकारियों ने एक पत्र निकाला था, 'स्वराज्य'। इस पत्र के पहले नौ संपादकों को एक के बाद एक दंडित किया गया। इसमें से चार को काला पानी भेजा गया था।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान १९१४ से १९१८ के बीच भारत में अंग्रेजी राज का तख्ता पटलने की साजिश में सैकड़ों कांतिकारियों को सजाएं सुनायी गयी थीं। बहुतों को फांसी के तख्ते पर झुला दिया गया या उन्हें गोली मार दी गयी। लंबी अवधि के बंदियों को ही अंडमान भेजा गया था। अब तक इस जेल में यातना-गृह भी बन चुके थे। कैदियों को कोल्हू में जोतकर घंटों तक घुमाया जाता और उनकी निगरानी एक अदना-से जेल-अफसर को सौंप दी जाती, जिसके हाथ में सदा चाबुक रहता। कभी उनसे एलुवा कुटवाया जाता और फिर वे उससे रस्सी बुनवाते, जिससे बंदियों के हाथों में छाले पड़ जाते। अक्सर कैदियों के नंगे बदन पर बुरी तरह कोड़े या बेंत बरसाये जाते। लेकिन क्रांतिकारियों ने अपनी सतत अवज्ञा से इन सारे अत्याचारों को नाकाम कर दिया था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि घुटने टेककर जीने की बनिस्बत खड़े-खड़े मरना बेहतर है।

इस अनवरत संघर्ष में कइयों ने खामोशी से जान दे दी और शाश्वत निद्रा में डूब गये। ऐसा ही एक वीर सरदार भन्तसिंह था, जिसे १९१५ के लाहौर षड्यंत्र केस में क़ैद हुई। उसे जेलर और उसके वार्डरों ने उसी के लिए खास तौर से बनाये लोहे के पिंजरे में बंद करके पीटा और मार डाला था। मांडले षड्यंत्र केस के बंदी राम रखा ने भूख-हड़ताल करके अपनी जान दे दी; क्योंकि उसे अपने धर्म को भी नहीं पालने दिया गया। निरे अठारह साल के भावुक तरुण इंदुभूषण राय ने जेल के सेल में ही फंदे से झूलकर आत्मघात किया था। उसने जेल के किसी भी नियम को मानने से इन्कार कर दिया था। उल्लासकर दत्त, जो बहुत ही उच्च-शिक्षित और हमारा बम-विशेषज्ञ था, जेल की असह्य परिस्थितियों में पागल हो गया था। गदर पार्टी के कैदी, जिन्हें यहां कनाडा से लाया गया था, इस अवज्ञा संघर्ष के अगुआ थे। इनमें सात तो यहीं चल बसे थे।

इस प्रकार सिर्फ यह जेल ही नहीं समस्त अंडमान द्वीप-पुंज ही गौरवान्वित हो चुका था; क्योंकि इससे पहले भी यहां भारत में बगावत का झंडा बुलंद करनेवाले वीर सपूतों को देशनिकाला दिया गया था। १८५७ के हमारे प्रथम स्वातंत्र्य-युद्ध के लगभग ३,००० सैनिकों को अंग्रेजी सरकार ने सजा काटने के लिए यहीं ला पटका था। तब यहां की कष्टकर हालत नरक से भी बदतर थी। बैरकपुर की १४वीं रेजिमेंट नेटिव इन्फैन्ट्री के कैदी दूधनाथ तिवारी ने १३० कैदियों के साथ जंगल पलायन अभियान संघटित किया था। लेकिन उन पर खूंख्वार आदिवासी कबीलों ने हमला कर दिया और तिवारी के सिवा सब मार डाले गये। इसी तरह दीनानाथ

(बिहार) के सिपाही नरायन ने भागने की कोशिश में समुद्र में कूदकर जान दे डाली थी। कप्तान वाकर ने, जो २५० कैदियों को एक लांच में ला रहा था, तुरंत उसके गोली मार दी थी और फिर उसे पानी की कब्र में ही छोड़ दिया था।

सन १८७२ में ही अंदमान में और एक जिंदगी का आकस्मिक अंत हुआ। लेकिन इस बार मरने वाला भारत सरकार का सर्वोच्च हाकिम था—वाइसराय लार्ड मेयो, जो इस द्वीप के मुआयने के लिए आया था। जनम-कैदी वहाबी शेर अली उस पर झपट पड़ा था और उसे छुरे से गोद दिया था। शेर अली को फांसी पर लटका दिया गया, जिसके लिए वह बिलकुल तैयार था।

और भी अनेक कैदी यहां आये थे, जिसमें वहाबी आंदोलन के मुस्लिम क्रांतिकारी थे, तरावदी विद्रोह के बर्मी बंदी थे, मलाबार में बगावत करने वाले मोपला थे, आंध्र के आदिवासी गेरिल्ला एवं अल्लूरि सीतारामराजु के अनुयायी थे। रासबिहारी बोस के दायें हाथ शचीन्द्रनाथ सान्याल को दो बार अलग-अलग वक्त पर दो षड्यंत्र केसों में फंसाकर जनम-कैद काटने यहीं भेजा गया था। अंततः उनकी मृत्यु बहुत दूर के एक सेनेटोरियम में तपेदिक से हुई, जहां चिकित्सा-फंड की कमी से उनका इलाज भी ठीक तरह नहीं हो सका।

मुझे भी बड़ी ही खस्ता सेहत में, डाक्टरी सलाह पर ही, १९३९ में छोड़ा गया था। इसके लिए भी गांधीजी, सुभाष बाबू, जिन्ना और शौकत अली को वैयक्तिक प्रयत्न करने पड़े थे। वहां से आते ही सबसे पहला फर्ज मैंने अंडमान पर एक किताब लिखकर अदा किया था; क्योंकि मैं अपने देशवासियों को अपने उन साथियों के कष्टों और आशा-आकांक्षाओं के बारे में बताना चाहता था, जिन्हें मैं वहीं छोड़ आया था। ब्रिटिश सरकार ने उसे फौरन जब्त कर लिया। उसका शीर्षक मैंने 'द इंडियन बास्तील' दिया था—इस उम्मीद से कि जल्दी ही एक दिन आयेगा, जब इस पर धावा बोला जायेगा, जैसा कि फ्रांसीसी क्रांति में हुआ था। लेकिन तब मुझे यह नहीं मालूम था कि यह दिन इतना नजदीक है।

मुश्किल से अभी पांच साल भी नहीं गुजरे कि आजाद हिंद फौज के वीर सिपाही अंडमान आ पहुंचे। आजाद हिंद सरकार के प्रमुख सुभाष वसु ने ८ नवंबर १९४३ को घोषणा की—'अंडमान को आजाद करने का मतलब हिंदुस्तानियों के लिए ब्रिटिश गुलामी से अपने देश के पहले भूखंड की मुक्ति।' उन्होंने अंडमान का नया नाम 'शहीद' और निकोबार का 'स्वतंत्र' रखा।

भारतीय इतिहासकारों में वरिष्ठ श्री रमेशचंद्र मजुमदार, जो अब ९१ वर्ष के हैं, अंडमान पर अपनी नयी किताब बड़ी श्रद्धा से लिखते हैं—'यहां का इतिहास एक प्रकार से वीरगाथा महाकाव्य है। और सेल्युलर जेल तो पवित्र तीर्थ ही है।'



अमरीका उन्नीस सौ अठहत्तर में

तरह-तरह के मामलों पर नागरिकों से सवाल पूछकर उनकी राय जानते रहना अमरीकी सार्वजनिक जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। इस मामले में डा. गैलप की संस्था बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित है। अपने जनमत-संग्रहों के आधार पर १९७८ के अमरीकी जन-मानस का यह मिनिएचर चित्र डा. गैलप ने खींचा है:

● जोन्स टाउन की सामूहिक आत्महत्याएं एवं हत्याएं ऐसी घटना थी, जिसके बारे में सबसे अधिक पढ़ा व सुना गया। ९८ प्रतिशत अमरीकियों ने बताया कि उन्होंने इस घटना के बारे में सुना है। गैलप मत-संग्रह पिछले ४३ वर्षों से हो रहे हैं; मगर इतने वर्षों में बहुत कम घटनाएं ऐसी हुई हैं, जिनका इतने अधिक लोगों को पता रहा हो।

● १९७८ के मत-संग्रहों से प्रकट हुआ कि 'भीतरी' जीवन में अमरीकियों की दिलचस्पी बदस्तूर बनी हुई है। अनुमानतः ५० लाख अमरीकियों का योग से, ३० लाख का भावातीत ध्यान (टी. एम.–ट्रान्सेन्डेन्टल मेडिटेशन) से, २० लाख का पूर्वी धर्मों से वास्ता है। ९० लाख अमरीकी आध्यात्मिक शक्ति से इलाज कराने में विश्वास रखते हैं।

● परा-स्वाभाविक (पैरानार्मल) चीजों में विश्वास रखने वाले अमरीकियों–विशेषतः युवकों और सुशिक्षितों–की संख्या आश्चर्यकारी रूप में बढ़ी है। ५७ प्रतिशत अमरीकी उड़न-तश्तरियों में विश्वास रखते हैं–हालांकि ११ के पीछे एक ही अमरीकी यह दावा करता है कि उसका उड़न-तश्तरी से सीधा साबका पड़ा है।

● २९ प्रतिशत अमरीकियों का कहना है कि आकाश के ग्रह-नक्षत्र हमारे जीवन को संचालित करते हैं। आठ के पीछे एक अमरीकी (१३ प्रतिशत) को उत्तर पश्चिमी प्रशांत क्षेत्र के आठ फुट और ९०० पौंड वजन वाले रहस्यमय 'बिगफूट' बनमानुस के अस्तित्व में विश्वास है और लगभग इतने ही लोग मानते हैं कि ब्रिटेन की लाक नेस झील में सचमुच दैत्याकार जलचर 'नेसी' विद्यमान है। मगर केवल ११ प्रतिशत को भूतों में विश्वास है।

● १९७८ के अमरीकी संसद् (कांग्रेस) के चुनावों ने अमरीका की इस ख्याति को कायम रखा कि दुनिया के तमाम प्रजातंत्रीय देशों में से अमरीका के नागरिक ही मतदान में सबसे कम दिलचस्पी लेते हैं। वहां उस साल पतझड़ में हुए चुनावों में मताधिकार-प्राप्त हर दस अमरीकियों में से केवल चार ने वोट डाले।

–अविवेक



नेत्रहीन को राह दिखा . . . . . .

दिनेश सिंह

लार्ड स्नोडन ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ द्वितीय की छोटी बहन राजकुमारी मार्गरेट के भूतपूर्व पति के रूप में जाने जाते हैं। उनकी दूसरी तारीफ यह है कि वे बहुत बढ़िया फोटोग्राफर हैं। मगर ऐसा लगता है कि भविष्य में शायद वे इसलिए याद किये जायेंगे कि उनकी सूझबूझ और प्रोत्साहन से एक उपकरण बना, जो अंधों को निर्भय होकर चलने-फिरने में मदद देगा।

एक दिन लार्ड स्नोडन पोलेरायड कंपनी के एस. एक्स.-७० नाम के नये कैमरे की जांच कर रहे थे, जिसमें फोकसिंग के लिए एक स्वयंचलित व्यवस्था है। उनका ध्यान कैमरे में लगे एक छोटे-से उपकरण पर विशेष रूप से गया। यह उपकरण ऐसी ध्वनि-तरंगें भेजता है, जिन्हें मनुष्य के कान सुन नहीं पाते। जिस वस्तु का फोटो लेना हो, उससे टकराकर ये तरंगें कैमरे के पास लौट आती हैं। इस दुहरी यात्रा में तरंगों को कितना समय लगा, इस जानकारी के आधार पर लेन्स स्वयं ही फोकस पर आ जाता है। कैमरे का शटर दबाने के साथ ही यह उपकरण काम करने लगता है, जिससे बिना फोकस किये फोटो खींचना असंभव हो जाता है।



लार्ड स्नोडन

अंधों और अपंगों की समस्याओं में गहरी दिलचस्पी लेने वाले लार्ड स्नोडन को इससे एक बात सूझी। उन्होंने सोचना शुरू किया कि क्या सिगरेट की डिबिया जितने बड़े इस उपकरण का उपयोग अंधे लोगों को रास्ता चलते समय सामने आने वाली अड़चनों की चेतावनी देने के लिए नहीं किया जा सकता? उन्होंने यह विचार पोलेरायड कंपनी के सामने रखा। पोलेरायड कंपनी इस बारे में आवश्यक परीक्षण व प्रयोग कराने को तैयार हो गयी है, ताकि इस उपकरण के आधार पर अंधों के लिए उपयोगी मार्गदर्शक-यंत्र बन सके।

अंधों को मार्ग की अड़चनों की सूचना देने वाला आदर्श इलेक्ट्रानिक उपकरण बनाने का प्रयत्न काफी समय से चल रहा है। कई उपकरण बने भी हैं। मगर उनमें से कोई भी पूरी तरह संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। कारण, ये सभी उपकरण काफी महंगे हैं और जटिल भी। इसलिए कुछ ही लोग इनका उपयोग कर पाते हैं।

अभी तो पालतू कुत्ता और लंबी छड़ी ये दो ही अंधों के सबसे विश्वसनीय मार्गदर्शक हैं। मगर कुत्ता सब जगह साथ नहीं दे सकता और छड़ी कमर की सीध से नीची वस्तुओं की ही सूचना दे सकती है, उससे ऊपर की चीजों की नहीं। वैसे भी छड़ी का उपयोग करना सीखने में काफी समय लगता है। देखा गया है कि सामान्यत: कोई शिक्षक साल-भर में सिर्फ बीस अंधों को छड़ी के उपयोग की तालीम दे पाता है।

लार्ड स्नोडन का सुझाव है कि पोलेरायड के इस फोकसिंग उपकरण में ऐसा सुधार किया जाये कि रास्ते में कोई अड़चन निकट आने पर वह आवाज पैदा करके चेतावनी दे। अच्छा हो कि यह उपकरण कोट के कालर पर या हैट पर लगाया जा सके। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि दरवाजों के चौखट, शहतीर, पेड़ की नीची डाली आदि से अंधों का सिर टकराने का खतरा टल सकेगा।

पोलेरायड के फोकसिंग उपकरण से ऐसा यंत्र तैयार करने के लिए बहुत लंबा-चौड़ा और खर्चीला शोधकार्य नहीं करना पड़ेगा। पोलेरायड कंपनी इस फोकसिंग उपकरण का बड़े पैमाने पर उत्पादन कर रही है; सो नया यंत्र भी उन्हीं मशीनों से बन जायेगा। अभीष्ट यह है कि नये उपकरण की कीमत २० पौंड से अधिक न हो। हां, पाठक स्मरण रखें, ये सारी चीजें अभी योजना और शोध के स्तर पर हैं।



मैत्री-परायण

प्रसिद्ध संगीतकार लियोपोल्ड गोदोव्स्की ने एक बार अपने नाई से बातें करते हुए उसे बताया कि आइन्स्टाइन उनके मित्र हैं।

'अच्छा! क्या कभी मैं उनके दर्शन कर सकता हूं?' नाई ने पूछा।

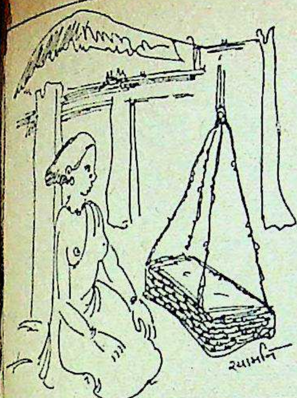
'हां, कभी वे यहां आये, तो उनसे मिलाऊंगा।'

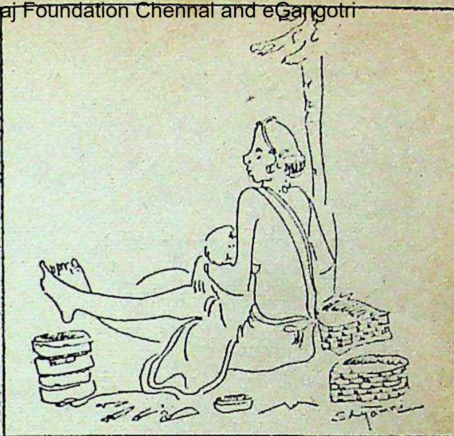
अगली बार जब आइन्स्टाइन उनसे मिले, तो उन्होंने नाई से उन्हें मिलाने की बात की। मगर आइन्स्टाइन उस समय जल्दी में थे, सो बोले—'उनकी दुकान का पता लिख दीजिये, मैं खुद ही कभी उनसे मिल लूंगा।'

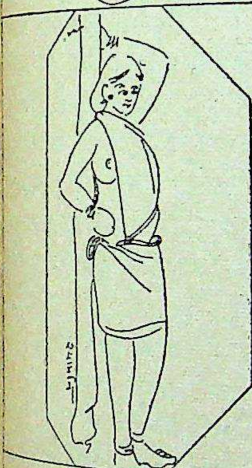
इसके बाद काफी समय निकल गया। आइन्स्टाइन न्यूयार्क नहीं गये।

अंतत: एक दिन जब आइन्स्टाइन को गोदोव्स्की की मृत्यु की खबर मिली, तो वे शोक प्रकट करने के लिए न्यूयार्क गये और तब जाकर उस नाई से भी मिले।







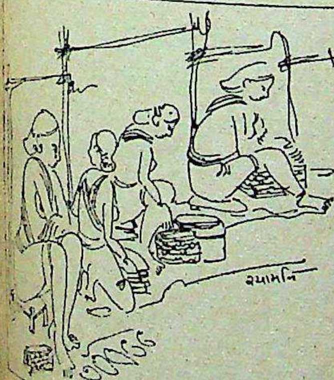


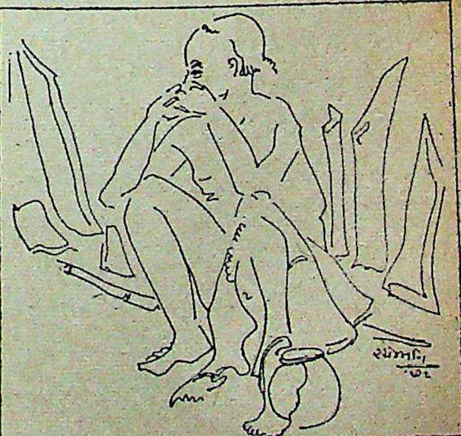
आदिवासी-जीवन की चंद झांकियां

•

चित्रकार : श्यामनि

•







डा. सुरेशव्रत राय

हमेशा की मरीज वृद्धा अम्मा के ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ चिकित्सक पुत्र की अकाल मृत्यु देखने वालों के पैरों तले की जमीन खिसक गयी। अब क्या होगा? कनिष्ठ पुत्र रोटी-वस्त्र की व्यवस्था और सेवा करेगा। लेकिन इलाज? वज्रपात के बावजूद आस्थामयी अम्मा के चेहरे पर कोई शिकन नहीं पड़ी।

अचानक अम्मा बहुत बीमार पड़ गयीं। ब्लड प्रेशर के २०० से १०० तक के उतार-चढ़ाव ने खतरे की घंटी बजा दी। हर संभव इलाज चलता रहा, पर सेहत में फर्क नहीं पड़ा। न जाने कैसे कानपुर में तैनात सुप्रसिद्ध सर्जन डा. एस. सी. राय को यह खबर मिली। वे दूसरे ही दिन चल पड़े। संयोगवश डा. शर्मा को भी यहां आना था। अम्मा को देखने डा. राय अपने मित्रों (डा. शर्मा, डा. एम. एम. मैथानी तथा डा. एम. डी. मिश्र) सहित आये। कई घंटे देखा-भाला, पूरी केस हिस्टरी तथा नुस्खे बनाकर वापस चले गये। घर के लोग निश्चित होकर बैठ गये। शायद समझ में भी नहीं आया। दो दिनों बाद डा. मैथानी घनघोर वर्षा में बिना बुलाये डा. मिश्र के साथ घर पधारे। हम सब चकरा गये।

बैठते ही डा. मैथानी बोले–'आप लोगों ने दो दिनों से न तो अम्मा का कोई हाल भेजा और न मिलने ही आये। खैर कोई बात नहीं। बेटे को भी मां की चिंता रहती है, कल अम्मा को लेने आऊंगा, आवश्यक जांच करानी है.....।' हम लोगों पर घड़ों पानी पड़ गया। बड़ी कठिनाई से डा. मैथानी को राजी किया कि अम्मा को लेकर हम स्वयं वहां पहुंच जायेंगे।

डा. मैथानी ने मरीज को सिर्फ अम्मा ही नहीं कहा, बल्कि उनके अस्पताल पहुंचते ही चार-पांच दिनों में होने वाली जांच कुछ घंटे में पूरी की।

अम्मा वापस आ गयीं, परंतु रात्रि तीन बजे से हालत नाजुक हो गयी। सांस लेना भी मुश्किल है, देखकर डा. मैथानी को फोन से कहा तो वे किटकिटाती सर्दी में तड़के सात बजे ही सात किलोमीटर दूर से घर आकार बोले–'अम्मा, आप दो-तीन दिन के लिए अपने बेटे के घर चलेंगी न? यहां रहने से आपकी देख-भाल ठीक नहीं कर पाऊंगा।'

और एक घंटे बाद ही वे अपनी कार से पुन: घर आ, अम्मा को साथ ले अस्पताल जा पहुंचे। दोपहर बाद डेढ़ बजने तक डा. मैथानी लगातार मरीज के साथ रहे,

उनसे खाने और विश्राम के लिए कहा तो बोले-'जब तक अम्मा दवा पीकर आराम नहीं करेंगी, बेटे को आराम कैसे मिलेगा ?' आखिर वे तीन बजे घर गये। रात में फिर आ गये, बोले-'अम्मा मैं रहूं रात में आपके पास ?' उनके साथ में ठहाकों के धनी डा. मिश्र थे। बड़े आग्रह के बाद दोनों वापस हुए। नर्स आदि को हिदायतें देते गये-'मेरी अम्मा हैं, कहीं कोई गफलत न होने पाये।'

दूसरे दिन शाम से अम्मा की दशा फिर बिगड़ने लगी, इंजेक्शन से थोड़ा आराम मिला। रात के आठ बजे से डा. मैथानी जो बैठे तो घर जाने का नाम ही नहीं लिया। रात दस बजे मां को थोड़ा आराम हुआ तो फिर उनसे घर जाने के लिए अनुरोध किया तो 'अच्छा' कहकर चले तो गये, लेकिन पच्चीस मिनटों में ही वापस आ गये। बोले-घर जाने का मन नहीं किया और आधे से ही कार वापस मोड़ ली।'

रात के ग्यारह बजे अम्मा की हालत बहुत ही नाजुक होने लगी। डा. मैथानी कभी दिल की धड़कनें देखते, तो कभी नाड़ी पकड़कर बैठ जाते। रक्तचाप २०० से गिरते-गिरते १००, ८०, ७० फिर ६४ पर आ गया। अम्मा पसीने से नहा गयीं-बर्फ जैसी ठंडी और अचेत।

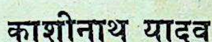
डा. मैथानी टार्च लेकर बाहर दौड़े, बाहर से ढूंढ़-ढूंढ़कर ईंटें लाये, अपने हाथ से पलंग के नीचे लगायीं। इमरजेंसी स्टाफ को बुलाया, कार निकाली और लगभग रात-भर नगर की सड़कों पर उसे दौड़ाते रहे-मेडिकल कालेज, अन्य अस्पताल, प्राइवेट डाक्टर। उनकी लोकप्रियता के प्रभाव से सुबह के साथ स्थानीय विशेषज्ञ डाक्टर अम्मा के चारों ओर थे, तेजी से जांच चल रही थीं। हम लोगों के चेहरे पीले पड़ गये थे। डा. मैथानी नर्सों की जगह स्वयं अम्मा की सेवा कर रहे थे.....डाक्टर नहीं, बेटे की भांति। दशा कुछ सुधरी, फिर भी डा. मैथानी अपने स्थान से हिले नहीं। अम्मा को देखते रहे, उन्हें अम्मा के पास बैठे पूरे चौबीस घंटे हो चुके थे, और जब अम्मा की चेतना थोड़ी वापस हुई तो वे निश्छल पुत्र की भांति नाच उठे।

फिर.... काफी देर बाद डा. मैथानी ने पूछा-'अम्मा, आप थोड़ी देर के लिए ऊपर गयी थीं, वहां क्या-क्या देखा आपने?' फिर धीरे-से बोले-'मैं बताऊं, वहां बड़ा उत्सव चल रहा था, सत्संग, प्रवचन हो रहे थे। लोगों ने कहा, "कृपया तशरीफ ले जाइये, यहां अध्यक्ष का स्थान खाली नहीं है।"' और गंभीर वातावरण में ठहाके गूंज उठे।

जब तक अम्मा अस्पताल रहीं, प्रातः आठ बजे, मध्याह्न दो बजे, रात्रि ८ बजे अथवा ११ बजे डा. मैथानी या डा. मिश्र अवश्य पधारते, अंगीठी पर हाथ-पैर सेंकते, बैठे-बैठे गप-शप करते। बच्चों की भांति अम्मा को हाल-चाल सुनाते, हंसाते रहते। बीच में आवश्यक कार्यवश जब डा. मैथानी को दो दिनों के लिए नगर से बाहर जाना पड़ा तो और चार डाक्टरों को लगा गये ...

[शेष पृष्ठ १४५ पर]

हिंदी कहानी :



काशीनाथ यादव

बिशनपुर पुराने जमाने से संपन्न गांव रहा है। वहां पर बड़े-बड़े रईसों का अखाड़ा जमता आया है। खेती-बाड़ी, घर-दुआर की संपन्नता के साथ-साथ पशु-प्राणी भी सुखी और संपन्न हैं।

गांव में चोर, डाकू, लुटेरों का नामो-निशान तक नहीं। जानवरों के रखने तथा उनकी देखभाल करने का शौक प्रायः सभी को है। हाथी, घोड़ा, भैंसा, मेंढ़ा, तीतर, मुर्गा, तोता, मैना आदि पालना आम बात है। झगड़ू नाई के पास एक मैना है तो झारी दर्जी का मुर्गा उस ढबरे में एक है। लालू का तीतर भी कम मशहूर नहीं। शिवबहाल सिंह का चितकबरा घोड़ा, तो भोला चौधरी का चितकबरा मेंढ़ा अजेय हैं। वकील रघुपत लाल अपनी वकालत में गरीबों के देवता माने जाते हैं। तीतर, मेंढ़ों, भैंसों, मुर्गों की लड़ाई उन्हें भी बहुत पसंद है। डा. कर्णसिंह उस इलाके में इलाज और निदान के लिए सिद्धहस्त हैं। वे सबके दिल-दर्द को समझते हैं। भोला चौधरी के मेंढ़े ने पशुओं की प्रदर्शनी में सोने का तमगा जीता है। कृषि-विभाग से उन्हें कृषि में चांदी का पदक भी मिला है। शारीरिक बलिष्ठता के लिए भी यह गांव मशहूर है। तालाब के किनारे बहुत बड़ी व्यायामशाला जो है।

सांझ को गांव के पूरब की कच्ची सड़क पर मौके दर मौके घुड़दौड़ हो जाया करती है। दौड़ में कभी चंदूसिंह का घोड़ा बढ़ जाता है तो कभी गोपीसिंह का। शिवबहाल सिंह का घोड़ा उनके साथ नहीं दौड़ता। पर सभी अपने-अपने जानवरों की डींग हांकते हैं। घोड़े पसीने से तर हो जाते हैं। उनके मुंह से झाग निकलने लगता है। उनकी हिनहिनाहट और फिर फरफराहट से वातावरण में वीरभाव छा जाता है। इसीलिए किसी ने घोड़े का नाम चेटक रखा है तो किसी ने बेदुला या नाहर।

गोधूलि-बेला में चरवाहों का अपनी गायों को लेकर घर आने का समय होता है। गायों के झुंड और घोड़ों की टापों से, कच्ची सड़क की धूलि तथा गर्द-गुबार से आकाश ढंक जाता है। फिर भी संपत बरई की पान की दुकान पर जमकर लोग पान खाते हैं और पान की गिलोरियां मुंह में दबाए मस्ती से बातें करते घर जाते हैं। चौ...

त्योहारों पर तो कार्यक्रमों की भीड़ लग जाती है।

गांव में अष्टभुजी दुर्गाजी का मंदिर भी है। रामनवमी के दिन यहां गांव में मेला लगता है। इसमें उस चौहद्दी के ही नहीं, बल्कि कोस-कोस के लोग आते हैं। कवि, गायक, शायर सभी की मंडली आती है। लोकगीतों का अखाड़ा जम जाता है। पर हार-जीत का निर्णय कभी नहीं हो पाता।

वैसे बाबू शिवबहाल सिंह का चितकबरा घोड़ा जब भी दौड़ता है तो बाजी मार ले जाता है। उसकी गठन भी गजब की है। कनपटी से सटे दोनों कान बर्छी की नोक की तरह सीधे, जो हर समय चौकन्ना रहने के लिए हरकतें करते रहते हैं। टांगें ऐसी मानो स्वयं विश्वकर्मा ने तराशी हों। आंखें काली चंचल। रंग काला-सफेद, जैसे बादल में बिजली। शायद इसीलिए वह दौड़ में भी बिजली को मात कर देता है। भागता है तो पत्ते झाड़कर। भोला चौधरी का मेंढ़ा भी चितकबरा है। उसे देवी दुर्गा का वरदान है। इसीलिए तो कभी वह माथा नहीं टेकता।

गांव की पूर्वोत्तर सीमा पर सड़क के पार एक बहुत बड़ा तालाब है। गांव के सारे जानवर उसी में पानी पीते और नहलाये जाते हैं। रामनवमी के मेले के दिनों में सभी अपनी-अपनी तैयारी में लग जाते हैं। ऐसे ही एक दिन बाबू शिवबहाल सिंह का सईस चितकबरे को धोकर आ रहा था। लगाम उसकी पीठ पर थी। सईस कुछ पिछड़ गया था। घोड़ा प्रतिदिन की भांति अपने आप घर चला आ रहा था। उधर भोला का भाई बोधे भी मेंढ़े को धोकर ला रहा था। उसके गले के छोटे-छोटे घुंघरू



उसकी चाल में लय और ताल मिला रहे थे। घोड़े के पास आते ही उसने अपने भीगे शरीर के पानी को गिराने के लिए अचानक झटकारा तो घोड़ा भड़का और साथ ही उसने लात चला दी। मेंढ़ा कवई काटकर सामने आ गया। घोड़े ने अपनी थुथनी से उसे ढकेलना चाहा। बोधे ने दूर से ही हट-हट की आवाज लगायी। लेकिन तब तक मेंढ़े ने पीछे हटकर घोड़े की थुथनी पर एक बार हल्के-से अपने सींग मार दिये थे। घोड़ा और भी भड़क उठा, उसकी थुथनी से खून बहने लगा था, एक पैर में भी चोट आ गयी। घोड़े की लात भी मेंढ़े के लिए मौत का पैगाम बन जाती, पर वह बच गया था। मेंढ़े का माथा जमकर घोड़े के माथे पर पड़ा होता, तो घोड़ा भी चूर-चूर हो जाता।

बोधे और ठाकुर के सईस में इसी बात पर झड़प हो गयी। बड़बड़ाते हुए दोनों घर गये। मामला कुछ आगे बढ़ा। बीच-बचाव के बावजूद ठाकुर ने कहा–'मेंढ़े को बिना काटे नहीं छोड़ूंगा। आज मेरी नाक कट गयी, मेला नजदीक है मैं कैसे मुंह दिखाऊंगा!' भोला ने कहा–'बाबू, जानवर जानवरों का झगड़ा था। न वहां आप थे, न मैं। दोनों ने अपने-अपने वार किये। अपने-अपने पैंतरे बदले। अचानक ऐसी अनहोनी बात हो गयी। अगर बोधे न पहुंचता तो न जाने क्या हो जाता। इसके लिए हम और आपमें तो फर्क नहीं आना चाहिये।' पर न जाने क्यों ठाकुर के मन में वैमनस्य की चिनगारी चटकने लगी। उन्होंने भोला को हर मानी में परास्त करने और नीचा दिखाने की मन में ठान ली।

और यह बात भी चारों तरफ बिजली की तरह फैल गयी। पर लोगों की समझ में फर्क था। ठाकुर अपनी तौहीन समझ रहे थे। यह तो कोई स्पर्धा थी नहीं, यह तो संयोग की बात थी। लेकिन ठाकुर के दिल में एक गांठ अंकुरित हो गयी। वे समझते थे कि बोधे ने जानबूझकर मेंढ़े को ललकारा था; क्योंकि उनके सईस जग्गू ने डर के मारे यह कह दिया था कि बोधे ने जानबूझकर मेंढ़ा छोड़ दिया था।

रबी की फसल कटकर जब खलिहान में आ गयी, तब गांव वालों ने आंका कि इस साल सबसे अधिक अनाज भोला के यहां होगा। गत वर्ष ठाकुर ने तकरार-वश भोला के गेहूं वाले खेत में घोड़ा दौड़ा दिया था। वह खेत बिलकुल सड़क से सटा हुआ था। पंचायत हुई, ठाकुर कसूरवार ठहराये गये थे। भोला ने कहा था–'इसके पहले एक पूले का भी नुकसान कभी नहीं होता था, यद्यपि पहले इससे भी अधिक घुड़दौड़ होती थी। गांव की गायें और भैंसें चरवाहे इसे खेतों से ले आते और ले जाते रहे हैं। चालीस गायें, दस भैंसें, उनके कच्चे-बच्चे तो हमारे ही चरने के लिए नित्य इसी रास्ते से जाते हैं। मजाल क्या किसी का एक पत्ता भी छूते।

गये साल ठाकुर की लड़की शादी थी। गांव-भर को निमंत्रण था। सभी लोग दर-बाजे पर गये थे। बारात बड़े ठाट-बाट की थी। हाथी, घोड़े, नाच, गाजे-बाजे की

भरमार थी। भोला ने दिन-रात एक कर दिया था। अगवानी से लेकर आवभगत तक का सारा प्रबंध अपने कंधों पर उठा लिया था। बारात भोला की बारी में ठहरी थीं। सारी चीजों की भोला ने छूट कर दी थी। पर थोड़े ही दिनों बाद भोला की लड़की की शादी में ठाकुर ने केवल 'दइजा' भिजवा दिया था। इतना ही नहीं, अपनी दालान के पलंग और बिछौने भी उठवा लिये थे। अपना घोड़ा नहीं दौड़ाया था, कहने पर घोड़े की बीमारी का बहाना बना दिया था। केवल ठाकुर को छोड़कर भोला के दरवाजे पर छत्तीसों जाति के लोग गये थे। भोला ने सबको न्योता दिया था। सभी से हाथ जोड़कर मिले थे।

बारात में चौरसि..ा की मंडली ने नाचा था। जब नगाड़े बजे, तुरही की आवाज लोगों ने सुनी, तो किसी से न रहा गया। नगाड़े की चोट पर थिरकते रसिया के नाज-नखरे, उनकी ऊंची उड़ान में बिरहे की कड़ी तानों को सुनकर गांव के ही नहीं, बल्कि चौहद्दी के सभी नर-नारी और बाल-वृद्धों का जमघट-सा लग गया था।

दोपहर को लोकगीतों और नाचों से समां बंध गया था। कुश्ती फरी, और जोड़ी गदा, मुगदर, नाल की कला देखने तो दूर-दूर से आये लोगों की भीड़ लग गयी थी। भोला ने एलान कर दिया था कि कोई भाई-बंधु बिना पानी पिये न जाये। नगाड़ा कड़का, बाजे बजे, तुरही की आवाज से देवगण की स्तुति हुई। अखाड़े पर देखते-देखते नौ-जवानों का जमाव हो गया। लंगोट-जांघिया चढ़ाये, ऊपर से लाल, पीला, नीला, हरा, बैंगनी, गुलाबी गाउटी बनारसी गमछा लगाये हुए। उनके बलिष्ठ सुडौल बदन के अंग-प्रत्यंग पक्की रियाज के द्योतक थे। दर्शक मुग्ध थे। कभी-कभी भोला भी आते और मुस्कराते। अपने दुआर की बढ़ती शोभा देखकर किसे खुशी नहीं होती! और वे भी तो अपने जमाने के इने-गिने नामी पहलवानों में से एक थे। इन सब बातों को देख-सुनकर ठाकुर का मन कसमसा जाता था और वे दांत पीसने लगते थे।

ठाकुर सोचते—'भोला धन, संपत्ति, सभा-सोसायटी में भी नाम कमा रहा है। उसकी बुराई चाहता हूं, पर वह अनायास बढ़ता जा रहा है। लड़की की शादी में भी उसका ठाट ही निराला था, जबकि मैंने सोचा था, मेरा सामना क्या करेगा? पर मैं भी क्षत्रिय हूं, मुझे अपनी आन-बान-शान पर अटल रहना है।'

भोला का लड़का एम. बी. बी. एस. पास कर चुका था। उसकी शादी होने वाली थी धरमपुर में। ठाकुर को याद आया कि हमारे घर भी तो बड़े लड़के के लिए धरम-पुर के ठाकुर ही आये थे। अगर मैं उस शादी के लिए हामी भर लूं और यह बात किसी को न मालूम हो तो भोला को नीचा दिखाने का सुअवसर और क्या हो सकता है? विवाह का दिन और लग्न एक ही रहे। बारात इतने ठाट से ले चलूं कि भोला के बाराती भी हमारे ही तंबू, डेरे-मंडप में

आकर बैठें। जड़ से उखाड़ देने का अच्छा मौका है। तब मालूम होगा बेटे को कि बड़प्पन का ठाट कैसा होता है। घोड़े, हाथियों की लाइन लगा दूंगा। ठाकुर की हां में हां मिलाने वाले सिरफिरों ने भी ठाकुर जैसी ही अपनी राय जाहिर की।

जब भोला को मालूम हुआ कि ठाकुर के लड़के की शादी भी धरमपुर ही में होने वाली है, तब उन्हें बड़ी खुशी हुई। अच्छा होगा–कुशल-मंगल किसी न किसी से दोनों घरों के मिलते रहेंगे। लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि शादी एक ही दिन और लग्न की है तो अच्छा नहीं लगा। भोला ने अपने लड़के की शादी टालने की बात पंडित धर्मदत्त शर्मा से कही। पर पंडितजी ने कहा–'इससे अच्छी साइत नहीं है।' ठाकुर के विवाह की बात पूछने पर पंडितजी जानते हुए भी अनजान बन गये, केवल उनकी मुस्कराहट से ही पता चलता था। ठाकुर ने यह बात पंडितजी से भी कही थी कि अब भोला को दिखाना है कि बड़प्पन किसे कहते हैं।

दोनों बारातें बड़ी सजधज के साथ धरमपुर पहुंचीं। दोनों बारातों ने एक भीड़-सी लगा दी थी। द्वारपूजा की साइत भी एक ही थी। गांव के लोग दोनों तरफ बुलाये गये थे। वे दोनों को संभालना चाहते थे। दोनों तरफ दौड़-धूप मची थी। परंतु धनी-मानी रईसों की कारें, मोटरें, हाथी, घोड़े और पालकियों की संख्या ठाकुरसाहब की बारात में अधिक थी। शामियाना, छोलदारी, मेक डम्बर, रईसाना ठाट भी अधिक था। रेशमी झालरें भी टंगी थीं।

पर भोला की बारात तो किसानों की शोभायात्रा थी। पुरानी मिरजई पहने, बनारसी साफा बांधे, घुटने तक दुकच्छ धोती पहने, बड़ी-बड़ी मूंछों वाले भोला के पिता चौधरी बलकरन मंडप में बैठे हुक्के के कश खींच रहे थे। भोला की बारात में जवानों, वीरों तथा पहलवानों की भी कमी नहीं थी। पर सवारी में घोड़े और बैलगाड़ियां ही थीं।

ठाकुर की बारात में बनारस की मैना-बाई अपनी आठ सहेलियों के साथ आयी थी। महफिल में सारंगी और तबले की गूंज थी। पर गांव की जनता किसी को कूवत अपने ढर्रे से ही कूतती है। उन्हें ताल, लय, तबला, सारंगी के बार-बार दुहराये जाने वाले रियाजी गीत अच्छे नहीं लगे।

और तभी नगाड़े पर लकड़ी की चोट पड़ी। नगाड़े की टनक और तुरही की देव-वाणी-सी आवाज उनके कानों में गूंज गयी। दर्शक तूफान के झोंके की भांति मुड़े, लहरियों की भांति उमड़े और पहुंच गये गांव के उत्तर में टिकी भोला की बारात में।

अब तो बस रईसों के चाय-पान, नखरे नजारे वाले, बनावटी अदा दिखाने वाले कुछ ही लोग ठाकुर की बारात में बाकी रह गये थे। कुछ दुविधा में पड़े थे। बहुरिया, गुजरिया का नाच चौरासी नगाड़े पर शुरू हो गया था। गुजरी के नट जाने पर दूल्हा मनाने लगा। उनकी तानों में सभी झूम रहे थे। चारों तरफ वाह-वाह की आवाजें

उठ रही थीं। सभी बहुत खुश थे।

तलवा में चमकै लै ताल के निरुइया
कि खेते कड़े गेंहुआ की बाल।
कमवा में चमकै लै स्वामी की पगरिया
कि मड़ये में टिकुली हमार।

इस लोकगीत ने सारे श्रोता-दर्शकों को झकझोर दिया। स्वयं ठाकुर साहब भी इसकी लपेट से बच नहीं सके।

उनके तंबू, डेरा, छोलदारी, मंडप सब खाली हो गये। जेवनार के बाद अधिकांश लोग चौरसिया नाच देखने चले गये। कुछ बचे-खुचे लोग ही मैनाबाई के नाज-नखरों का रस ले रहे थे। तकियों, मसनदों के सहारे पड़े-पड़े वे उनींदे हो चले थे या आनंद ले रहे थे, कौन जाने!

सवेरा होते ही सभी बाराती उठ गये, बल्कि ठाकुर के अरमान भी अधूरे छोड़ गये थे। जलपान, चाय-नाश्ते के बाद ही फिर नाच तो शुरू हुआ, पर रात की खुमारी के कारण जम नहीं पाया, सो बंद करा देना पड़ा। संध्या समय भोला ठाकुर से आकर मिले। सुबह भी नाश्ते में आये थे। लेकिन ठाकुर का मुंह सीधा नहीं हुआ। भोला का हंसते हुए आना और अत्यंत नम्रभाव से हाथ जोड़ना भी उन्हें अपना मजाक ही लगा था। मन ही मन बोले–'तो भोला यहां मेरी छाती पर मूंग दलने आया था!'

इधर भोला की बारात में बिरहा (लोक-गीत) के दो नामी अखाड़े अपनी-अपनी चौकियों पर जमे थे। कजली, कव्वाली, चैता, ठुमरी, पूर्वी, विदेशिया, लोरकी, आल्हा तथा फिल्मी धुनों के गीत भी गूंज रहे थे। आल्हा की धुनें, ढोलक की गूंज, हारमुनिया, बुलबुल-तरंग सभी ने वातावरण में एक अजीब-सा उल्लास भर दिया था। लोकवाणी के बोल अब भी गूंज रहे थे:

गई जवानी फिर ना अइहै,
कितनो घीव मलीदा खाय।
बात के चुकले गई मरदई,
तिरिया हाथ मलै पछताय।

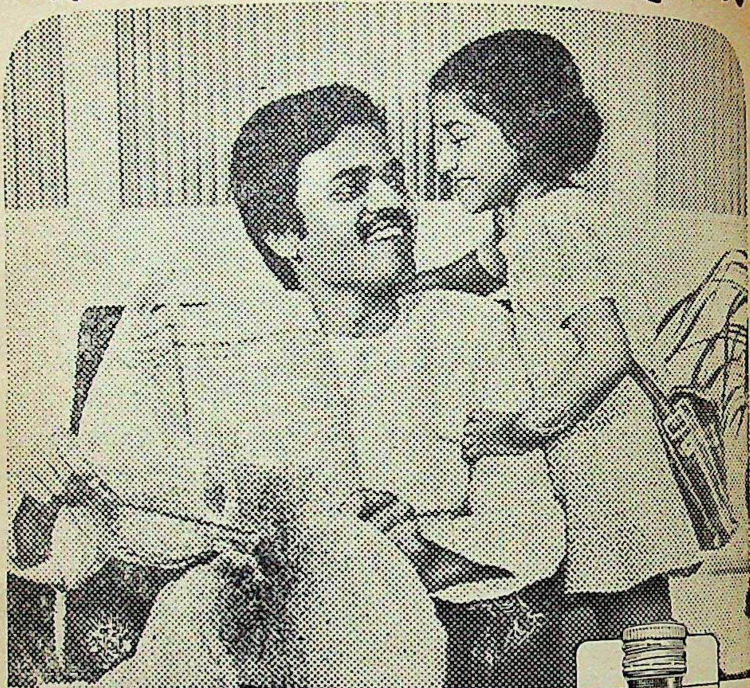
ठाकुर के कानों तक यही धुन लहराती हुई हवा के झोंकों से पहुंच गयी। बात सही थी, आखिर ठाकुर को भी यह बात माननी ही पड़ी। ठीक ही तो है–मर्द की जान भले ही चली जाये, पर उसकी शान नहीं जाती, बशर्ते वह अपनी आन का धनी हो।

दूसरे दिन दस बजे खान-पान की सारी व्यवस्था हो रही थी। सभी नहाने-धोने, साफा-पत्ती लगाने में व्यस्त थे कि तभी पास वाले गांव से जोर-जोर से रोने-चिल्लाने की आवाजें आने लगीं।

पता चला कि पठकौली में दासू पाठक का कुआं बंध रहा था कि वह बैठ गया और मलबे में सात-आठ आदमी दब गये हैं।

यह बुरी खबर आग की तरह चारों तरफ फैल गयी। भोला को मालूम हुआ तो उसने अपने नौजवान बारातियों से हाथ जोड़कर कहा–'जवानो, गो-ब्राह्मण की रक्षा करना हमारा पहला फर्ज है। यह तुम्हारे जोर-जंग की परीक्षा का वक्त है। देर न हो। डट जाओ। कुछ जानें बचाने की जी-तोड़ कोशिश करो।' देखते-देखते उस कुएं के

ख़ून के रिश्ते कितने गहरे...



मिनाडेक्स का भी आपके ख़ून के साथ गहरा रिश्ता है

स्वस्थ ख़ून अच्छी सेहत का आधार है। और स्वस्थ ख़ून के लिए ज़रूरत है लौहतत्व की। मिनाडेक्स में लौहतत्व की प्रचुर मात्रा के कारण इसके हर चम्मच से आपके ख़ून को पूरा फ़ायदा मिलता है।



रक्तशक्ति दायक

मिनाडेक्स®

CASGM-19-172

मलबे के चारों ओर अपार भीड़ जम गयी। कुएं की जड़ तक खोदकर ईंटें निकाली गयीं। आठ घेरे थे। बड़ी सावधानी से एक-एक ईंट निकाली गयी। पहले दो आदमी, जो दीवार के सहारे वाली सीढ़ी पर खड़े थे, केवल ईंट-गारे से ढंके थे, उन्हें निकाला गया। उन्हें मामूली चोट लगी थी। उन्होंने बताया कि अभी दो नीचे और बोल रहे हैं, कुल पांच हैं।

समय नहीं था, जो प्राण श्वासों में रुके थे उन्हें भी प्रकाश मिला, हवा मिली, बाहर निकाले गये तो बेहोश मिले। धीरे-धीरे दो और पाये गये। ईश्वर की महिमा अपार होती है। मालिक के हाथ बड़े लंबे होते हैं। वे भी सुरक्षित थे। पर उन्हें विश्वास हो चला था कि मर जायेंगे, क्योंकि कौन ऐसा माई का लाल है जो हमें ईंटों के अपार भंडार से निकालेगा। धीरे-धीरे उन्हें लोगों के बोलने की आवाजें सुनाई देने लगीं। शायद उन्हीं आवाजों के आधार पर उनके प्राण बचे रहे थे। जब उनके सिर की ईंटें हटीं, किसी के हाथ का आभास हुआ तो दबा हुआ आदमी जोर से कराहा। सीढ़ी टूट चुकी थी। छाती पर ईंट-गारे का बोझ आंखों पर मौत का काला परदा। 'पर कोई मुझे खींच रहा है,' ऐसा लगा था उसे।

पांचवां आदमी निकल चुका था। छठा बेहोश था। उसकी दायीं टांग बेकाम हो चुकी थी। सिर फूट गया था। पर वह जिंदा था। उसकी हालत बहुत खराब थी।

बिलकुल नीचे मिस्त्री जो ईंटों को ठीक करके अंतिम घेरा बांध रहा था, उसे कोई नहीं बचा पाया। ऊपर पूजापाठ, जाप, मंत्र तथा देवी-देवताओं की स्तुति हो रही थी, हरि-कीर्तन का मूक-पाठ चल रहा था, सभी 'भगवान-भगवान' मना रहे थे। भोला के डाक्टर बेटे ने, जो दूल्हे के रूप में सजा हुआ था, मरहम-पट्टी शुरू कर दी थी। थाने पर दारोगा को खबर पहुंच चुकी थी।

नौजवान बारातियों के शरीर से पसीना मिट्टी के साथ बह रहा था। उन्हें अपनी सफलता पर गर्व था। आज उनकी जिंदगी और जवानी सार्थक हो गयी थी। दासू पंडित के दोनों भाई बच गये थे। वे भोला के गले से लिपटकर रो रहे थे। भोला और उनके बारातियों की जयजयकार होने लगी थी। थानेदार विक्रमसिंह भोला की पीठ ठोंककर शाबाशी दे रहे थे। पर भोला हाथ जोड़कर कह रहे थे–'मैंने क्या किया, जो कुछ हुआ है भगवान की इच्छा है।' यों तो ठाकुर के भी बाराती लगे हुए थे, पर यश का सेहरा भोला के माथे पर ही बंधा।

आखिर ठाकुर शिवबहाल सिंह को भी भोला के बरताव के आगे द्रवित होना पड़ा। उन्हें एहसास हो गया कि भोला की शक्ति और व्यक्तित्व बड़प्पन का प्रतीक है। हंसते हुए वे भोला से गले मिले। और कह उठे–'भोला भाई, इस लाग-डांट से भी आपका व्यक्तित्व खरे सोने की भांति निखर गया है। आपके खरेपन को कोई आंच नहीं लगी। हमारे गांव का नाम और रुतबा आपने बढ़ा दिया है।'

–६/१६ कैलाशपुरी, गोविंद नगर, मालाड, बंबई-६४



एक बंगाली राजा बहादुर

• मनुगुप्त •

कलकत्ते के शोभाबाजार-निवासी महाराजा नवकृष्ण लार्ड क्लाइव के 'मुंशी' थे। सरकारी राजस्व या कर का दफ्तर उसके घर था और उस जमाने के बहुत-से अंग्रेज अफसर वहां आते-जाते थे। इसलिए नवकृष्ण और उनके खानदान के लोग अंग्रेजों के देशप्रेम और उनकी स्वजन-पक्षधरता का महत्त्व समझने लगे थे। नवकृष्ण के कोई औरस संतान न थी। उनके दत्तक पुत्र राजा गोपीमोहन देव ने वंश आगे चलाया। राजाबहादुर राधाकांत देव इन्हीं के पुत्र थे। यदि सन १९८४ के मार्च में उनके जन्म की 'द्विशताब्दी' मनायी जाये, तो कोई आश्चर्य नहीं।

राजाबहादुरकी कीर्ति-पताका कितने ही सौधों से फहराती है। उन्हें लोग 'सनातन भारतीय संस्कृति' का परम रक्षक मानते हैं। क्या सतीप्रथा की रक्षा के लिए वे प्रीवी कौंसिल तक नहीं लड़े थे! संस्कृत और बंगला भाषा के साहित्य एवं मान-मर्यादा के महान पक्षधर के रूप में वे प्रसिद्ध हैं। उन्हें संस्कृत के प्रथम 'बृहत्कोशकार' होने का विरुद प्राप्त है। इस लेख में हमें उनके पूरे कर्तृत्व का परिचय प्रस्तुत करना है।

उनके 'शब्दकल्पद्रुम' के प्रथम पृष्ठ का ब्लाक यहां छापा गया है। कृपया उस पर दृष्टिपात करें। उसमें इस बृहत्कोश को 'स्यार (सर)-राजा-राधाकान्तदेव-बाहादुरेण विरचितः' बताया गया है। 'शब्दकल्पद्रुम' के किसी भी संस्करण में महाराजा नवकृष्ण के सभापंडित जगन्नाथ तर्कपंचानन, चतुष्पाठी के अध्यक्ष पंडित काशीनाथ तर्कालंकार तथा उस 'अशेष-शास्त्र-विशारद-कोविदवृंद' का नामोल्लेख तक नहीं हुआ है, जिनके अथक परिश्रम और प्रभूत योगदान के बिना इस बृहत्कोश की रचना का महाकार्य कभी संपन्न नहीं हो सकता था। अलबत्ता कोश के आरंभ में २६ श्लोकों में राजाबहादुर की वंशावली बड़ी शान से दी गयी है। वस्तुतः राजाबहादुर ने वही किया, जो इस देश के धनी-मानी और प्रभुता-संपन्न श्रीमंत सदा से करते आये हैं।

कल्पना कीजिये, 'बाबू' राधाकांत देव (अंग्रेज लोग बहुत दिनों तक उन्हें इसी रूप में जानते थे) सत्रह साल की उम्र में संस्कृत पढ़ना आरंभ करते हैं और दो वर्ष बाद ही 'संस्कृत शब्दचयन' करने लगते हैं और पचीस के होते न होते 'संस्कृतशब्द-

कल्पद्रुम' का अधूरा प्रथम भाग प्रस्तुत हो जाता है! फिर भी अपने ही बल पर बंगला लिपि का प्रेस लगाकर पहला कांड (जिसमें स्वरवर्णों से आरंभ होने वाले शब्द हैं) प्रकाशित करने में उन्हें दस-बारह वर्ष और लग गये। सन १८२१ में शुरू हुआ यह काम १८५७ में पूरा हुआ, जब आठवां कांड परिशिष्ट के रूप में निकला। द्वितीय संस्करण नागरी लिपि में १८८६ में छपना शुरू हुआ और अगले आठ-दस वर्षों में बैप्टिस्ट मिशन प्रेस (कलकत्ता) द्वारा मुद्रित हुआ। इसी का नया संस्करण १९६७ में भारत सरकार के अनुदान से मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास (दिल्ली-वाराणसी-पटना) ने फोटो आफसेट प्रणाली से पांच खंडों में छापकर १९४.७५ रु. में बेचना शुरू किया था, जो अब ३५० रुपये से ४०० रुपये तक में मिलता है। इस संस्करण में कुल ३,१६४ पृष्ठ हैं।

इस प्रसंग में संस्कृत के एक अन्य बृहत्कोश 'वाचस्पत्यम्' की याद आना स्वाभाविक है। उसे सरकारी संस्कृत कालेज के प्राध्यापक पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य ने संकलित और 'संस्कृत' (संपा-



शब्दकल्पद्रुमः।

अर्थात्

लौकिकवैदिकशब्दानामाकारादिवर्णक्रमविन्यस्तशब्द-तल्लिङ्ग-नानार्थ-पर्याय-प्रमाण-प्रयोग-धातु-तदनुबन्धाभिधेय-
चरित-तत्तच्छास्त्रप्रमाणोत्थित-वेद-वेदाङ्ग-वेदान्त-न्याय-पुराणेतिहास-सङ्गीत-शिल्प-सूपकारशास्त्र-ज्योतिष-
तन्त्राख्यान-काव्यालङ्कार-छन्दःप्रभृति-नाम-लक्षणोदाहरण-द्रव्यगुण-रोगनिदानौषध-
स्मृत्युक्तव्यवस्थादिसंयुक्त-सर्व्वदर्शनमतानुसारि-संस्कृताभिधानग्रन्थः।

स्यार-राजा-राधाकान्तदेव-बाहादुरेण

विरचितः।

'शब्दकल्पद्रुम' के नागरी संस्करण के पुनर्मुद्रण के प्रथम पृष्ठ का ऊपरी भाग।

दित) किया और वह १८६६ में छपना शुरू होकर १८८४ में पूरा हुआ। उसे भी मोतीलाल बनारसीदास ने १९६२ में छह जिल्दों में उसी तरह निकाला है। उसमें ५,४४२ पृष्ठ हैं और उसमें राधाकांत देव के शब्दकल्पद्रुम, विल्सन, या बोर्टलिंग्क (सेन्ट पीटर्सबुर्ग) के संस्कृत-जर्मन कोश की अपेक्षा बहुत अधिक शब्द संकलित एवं विवृत हैं।

संस्कृत का नवीनतम बृहत्कोश है 'मीमांसाकोश,' जिसका पहला भाग १९५२ में छपा और छठा व अंतिम भाग १९६२ में। केवलानंद सरस्वती द्वारा प्राज्ञ पाठशाला, सातारा (महाराष्ट्र) से प्रकाशित इस कोश में ३,६३१ पृष्ठ हैं (रायल साइज) और पूरे सेट का मूल्य १३५ रु. मुद्रित है।

आश्चर्य की बात है कि इन दोनों कोशों में भी उन विद्वानों का नामोल्लेख नहीं किया गया है, जिनकी सहायता के बिना ऐसे बड़े काम पूरे नहीं होते। ऐसे कोशों को केवल मुख्य संकलयिता या संपादक अथवा व्यवस्थापक का कृतित्व घोषित करना घोर शोषक मनोवृत्ति का प्रमाण है। और राजाबहादुर तो इसकी पहली मिसाल थे।

वास्तव में राधाकांत देव का मौलिक कृतित्व उन्हें मिले यश की तुलना में बहुत छोटा है। सन १८१८ में उन्होंने ३५ पृष्ठों की 'नीतिकथा' लिखी। १८२१ में हिज्जे या वर्तनी की पुस्तक 'बांग्ला शिक्षा ग्रंथ' (पृष्ठ २८८) रची, जिस पर से १११ पृष्ठ का 'संक्षिप्त बांग्ला शिक्षा ग्रंथ' १८२७ में छपा। 'पदावली' १८६४-६७ में राजाबहादुर के वृंदावनवास के दौरान दो भागों में प्रकाशित हुई। इनके अलावा है ३२ पृष्ठों की एक अनूदित (फारसी से अंग्रेजी में) रचना, जो 'हार्टिकल्चरल सोसायटी के लिए प्रस्तुत' कही गयी है।

'शब्दकल्पद्रुम' के कारण राजाबहादुर को जो सम्मान मिला, उसका भी जायजा लें। सन १८३५ में इस बृहत्कोश के प्रकाशनार्थ एवं मुफ्त वितरणार्थ उन्हें एशियाटिक सोसायटी, पेरिस का सदस्य बनाया गया। एशियाटिक सोसायटी बंगाल के मंत्री ने उन्हें १८३६ में एक प्रशंसात्मक पत्र लिखा, जिसके ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं- 'लाडेबल एंड क्रेडिटेबल अंडरटेकिंग इन एनरिचिंग एंड प्रिज़र्विंग योर नैशनल हेरिटेज'।

१८४५ में ब्रिटेन और आयरलैंड की रायल एशियाटिक सोसायटी ने उन्हें 'कॉरेस्पॉडिंग मेम्बर' बनाया और लार्ड विलियम बेन्टिक तथा मि. फुलर्टन से सिफारिश की कि इन 'नेटिव जेन्टलमन' का यह 'प्रोडक्शन' प्रशंस्य है। १८४६ में एशियाटिक सोसायटी पेरिस ने लिखा कि 'शब्द कल्पद्रुम' का लाभ यूरोप को तभी मिल सकेगा, जब वह उचित मूल्य पर सर्वसुलभ हो। १८४८ में उस वक्त की अंग्रेजी भारत सरकार के सचिव बुशबी ने 'बाबू' राधाकांत देव को उनकी 'भेंट' के लिए लंदन स्थित कोर्ट की तरफ से तारीफ का पत्र लिखा। फिर १८५३ में जार्ज कूपर (सचिव, भारत सरकार) ने प्रशंसा हुं- बूत

राबी। १८५९ में आक्सफर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत प्राध्यापक पंडित विल्सन ने लिखा—'शब्दकल्पद्रुम बहुमूल्य सामग्री का भंडार है; इसे छोटे आकार के अक्षरों में और अच्छे कागज पर देवनागरी में मुद्रित करना चाहिये।' लेकिन इससे पहले ही, १८५२ में लाहौर के महाराजा रनजीतसिंह के दरबारी पंडित राधाकृष्ण ने इसका नागरी लिप्यंतर निजी तौर पर शुरू करा दिया था।

१८५४ में राजाबहादुर को डेन्मार्क के राजा से प्रशस्ति-पत्र मिला और १८५८ में बर्लिन की विज्ञान अकादमी ने उन्हें सम्मानित सदस्यता प्रदान की। वे ही प्रथम भारतीय थे, जिन्हें रूस की विज्ञान अकादमी ने अपना 'करेस्पॉन्डिग मेम्बर' बनाया। महारानी विक्टोरिया ने उन्हें एक पदक भेजा। वाराणसी के विट्ठल शास्त्री, मद्रास विश्वविद्यालय के प्रेसिडेन्ट तथा गाइरसिंग विश्वविद्यालय (जर्मनी) के संस्कृत-प्राध्यापक आदि ने उनकी तारीफ की। एक सज्जन ने तो 'शब्दकल्पद्रुम' को राधाकांत देव का 'नामयशोद्रुम' कह डाला। उन्हें मिले और भी कई डिप्लोमा और प्रशंसा-पत्रों का उल्लेख मिलता है।

राजाबहादुर राधाकांत देव ही प्रथम भारतीय थे, जिन्हें अंग्रेजों ने 'के. सी. एस. आई.' की पदवी दी थी। चौंतीस वर्ष तक वे कलकत्ता के हिंदू कालेज से भी संबंधित रहे। कालेज की नियमावली बनवाने में भी उन्हीं का मुख्य हाथ था। कवि हेनरी लुई विवियन डेरोज़ियो पर जब यह दोष लगाया गया कि अध्यापक के नाते वे कालेज के छात्रों को 'सुपथ' पर नहीं ले जा रहे, तो राजाबहादुर ने इस इल्जाम का समर्थन किया और प्रिंसिपल को भी पदत्याग के लिए बाध्य कर दिया। नये प्रिंसिपल एफ. स्पीड से भी उन्होंने 'छात्रों की नैतिकता पर विशेष ध्यान देने का' अनुरोध किया था। नैतिकता से उनका आशय रूढ़िवाद के पालन से था। राजा राममोहन राय ने जब लार्ड आमहर्स्ट से संस्कृत की जगह अंग्रेजी शिक्षा पर जोर देने को कहा (चूंकि संस्कृत पंडित अक्सर दकियानूस होते हैं), तब देव ने उनका तीव्र विरोध किया था। यहां तक कि उन्होंने राय के एक मित्र विलियम एडम की हिंदू कालेज में नियुक्ति का विरोध भी यह कहकर किया कि वह पहले एक मिशनरी पादरी था, फिर राममोहन का वेदांती शिष्य बना और अब 'यूनिटेरियन' है।

पर ध्यान दें, जब इंग्लैंड के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने हिंदू कालेज के प्रिंसिपल पद पर जेम्स एडम्सन को मनोनीत किया, तो राजाबहादुर ने सारे भारतीय सदस्यों के साथ उस नियुक्ति का तीव्र विरोध किया और अंत में यह कहकर कालेज से नाता तोड़ लिया—'सरकारी शिकंजा कालेज के भारतीय व्यवस्थापकों को "बेकार" बनाये दे रहा है।' वे इसके सख्त आलोचक थे कि हिंदू कालेज के असंतुष्ट अध्यापक या छात्र पादरियों के 'फुसलाने' से ईसाई बनें। प्रसिद्ध कवि मधुसूदन दत्त इन्हीं दिनों ईसाई

हुए थे..... प्रसन्नकुमार ठाकुर ने इसी कारण कालेज की गवर्नरी से इस्तीफा दे दिया था। कालेज के सामने ही गिरजाघर खोलने का विरोध तो डेविड हेयर को भी करना पड़ा था।

'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका के जरिये राजाबहादुर ने ईसाई बनाने के खिलाफ जनमत संघटित किया। १८४५ की एक सभा में ४० हजार रुपये (४०० रुपये प्रतिमास) मिलने के वादे पर हिंदुओं के लिए एक 'फ्री स्कूल' की स्थापना की गयी, जिसके नाम पर कलकत्ते में अभी तक एक सड़क मौजूद है। अंत में आर्थिक कठिनाई से ये सारे प्रयत्न चिरस्थायी नहीं हो सके थे। १८५१ में राजाबहादुर ने पंडितों के नाम एक मार्मिक अपील निकालकर 'पतितोद्धार सभा' भी स्थापित की। पर १८५४ में उन्होंने हीरा बुलबुल नाम के एक छात्र को हिंदू कालेज में भरती होने से सिर्फ इसलिए रोकना चाहा कि वह 'वेश्यापुत्र' है।

आखिर संरक्षणशील सनातनी हिंदुओं ने एक 'हिंदू मेट्रोपॉलिटन कालेज' खोल दिया, जिसे रामकृष्ण परमहंस की भक्त रानी रासमणि ने दस हजार रुपये दान में दिये। इसी में शील का 'फ्री कालेज' और 'डेविड हेयर अकादमी' शामिल कर दिये गये थे। लेकिन मतभेद और झगड़ों के कारण यह भी सिर्फ एक 'स्कूल' ही बना रहा।

राजाबहादुर के कई उपयोगी काम हैं। बंगला भाषा की शिक्षा वैज्ञानिक पद्धति से दी जाये, इस उद्देश्य से उन्होंने स्कूल बुक सोसायटी बनायी और पंडित गौरमोहन विद्यालंकर से 'स्त्री-शिक्षा-विधायक' नामक पुस्तक तैयार करवायी। पुरानी पाठशालाओं के सुधार के लिए एक स्कूल सोसायटी स्थापित की। हिंदू कालेज में गरीब छात्रों के पढ़ने के लिए छात्रवृत्तियां आयोजित कीं।

स्त्री-शिक्षा-प्रचार के लिए उन्होंने खुद अपने घर एक प्राइमरी पाठशाला खोली। पादरी वेथून के इस आश्वासन पर कि मिशनरियों द्वारा स्त्री-शिक्षा-प्रसार में ईसाई धर्म का प्रचार नहीं किया जायेगा, 'संवाद भास्कर' और 'संवाद प्रभाकर' द्वारा उनका समर्थन कराया। वे चाहते थे कि स्त्रियां अक्षर-ज्ञान के साथ ही साथ हाथ के काम और छोटी-मोटी घरेलू मशीनों का उपयोग भी सीखें। उन्होंने हिंदू शिक्षिकाएं तैयार करने पर भी विशेष रूप से जोर दिया था।

सन १८५७ में उन्होंने 'समाचार चंद्रिका' नाम से एक अखबार चलाया। लेकिन उन्हें इसे बंद करना पड़ा। दीनबंधु मित्र के 'नील-दर्पण' का अंग्रेजी अनुवाद करने पर जब पादरी लैंग पर मुकद्दमा चला, तब कलकत्ता के ४३ अन्य गण्यमान्य नागरिकों का नेतृत्व करते हुए उन्होंने लैंग की भरसक मदद की थी। 'मद्यपान विरोध' में उन्होंने डाल साहब की किताब 'टेम्परेन्स प्लीज' का अनुवाद कराया और बंगला भाषा में कृषि-शिल्प-शिक्षा का सूत्रपात किया।

बंगाली चरित्र पर अंग्रेज जुरियों के आक्षेपों की उन्होंने बड़ी ही निर्भीकता से भर्त्सना की थी। वे स्वयं भी 'जस्टिस ऑफ पीस' थे और स्वदेशी जुरियों की नियुक्ति के पक्षपाती थे। 'निष्कर' संपत्ति पर कर लगाने के वे घोर विरोधी थे। जमींदार सभा की ओर से ५० बीघा तक 'ब्रह्मत्र' भूमि छोड़ने के समर्थक भी थे। ब्रिटिश इंडिया एसोसियेशन के सभापति की हैसियत से वे इस बात के सदा हिमायती रहे कि काले-गोरों के लिए एक ही न्याय-व्यवस्था लागू की जानी चाहिये। आजीवन वे गोवध के निंदक रहे। पर मेडिकल कालेज के सवर्ण हिंदू छात्रों द्वारा शवच्छेद के विरोध का उन्होंने कभी पक्ष नहीं लिया, बल्कि हिंदुओं को विदेश जाकर चिकित्सा-पद्धति सीखने के लिए उत्साहित ही किया।

अपने समय में कुछ प्रगतिवादी किंतु 'संरक्षणशील' राजाबहादुर का जब १८६७ में देहावसान हुआ, उनके विरोधियों ने भी उनके मधुर व्यवहार और शिष्टता की तथा 'विशुद्ध' चरित्र और प्राचीनपंथी धर्मनिष्ठा की सराहना की। वे चाहते तो दूसरे धनियों की तरह विलासपूर्ण जीवन जी सकते थे। उनकी आंतरिक प्रवृत्तियों की छबि तो उनके पत्रों में प्रतिफलित होती है।

१८ नवंबर १८५१ को मैक्सम्युलर को लिखित उनके पत्र का एक अंश देखिये :

'जब मैंने कोशकार बनने का साहस किया, तब मेरी महत्त्वाकांक्षा सिर्फ इतनी थी कि अपने देश में संस्कृत के अध्ययन में जो कमी आ रही है उसे रोकने और उसके प्रति रुचि को पुनः जगाने में सहायक हो सकूं। लेकिन मैं यह ढोंग रचना भी ठीक नहीं समझता कि मुझे यश की लिप्सा नहीं थी। क्योंकि जब मेरा अध्यवसाय थकता और धीरज जवाब दे जाता था, तब कीर्तिशाली होने की अदम्य कामना से ही बल मिलता था।

'मैंने अपने जीवन का ज्यादातर हिस्सा और बहुत सारा श्रम और समय इसी कार्य की पूर्ति में लगाया है। विश्वकोशकार के नाते मैं किसी भी तरह की मौलिकता का तो दावा नहीं करता और न यही कि मैं विशेष प्रतिभा का धनी हूं। किंतु मेरा यह विश्वास जरूर है कि शायद कभी मुझे संस्कृत-शिक्षा के पथ-निर्माता के रूप में याद किया जायेगा और तब मेरा श्रम और मनोयोग अवश्य ही प्रशंसित होंगे।'

मैक्सम्युलर ने उत्तर में लिखा :

'आपने संस्कृत विद्वानों की चिरकृतज्ञता अर्जित की है। "तथा च श्रुतिः यावदस्मिल्लोके पुरुषपुण्येन कर्मणा श्रूयते तावदयं स्वर्गे लोके वसतीति।"'

७ नवंबर १८५१ को प्रो. विल्सन को लिखित पत्र से :

'संस्कृत कालेज के भाग्य का तो आप इसी से अंदाज लगा लें कि अब इसके निरीक्षण की जिम्मेदवारी जिस समिति को सौंपी गयी है, उसमें एक भी व्यक्ति न तो संस्कृत का जानकार है, न उसे जरा भी संस्कृत की परवाह है।'



किमाश्चर्यम् !

दीपावली (१९७८) अंक में हमारे **प्रश्न** के उत्तर में अनेक साहित्यकारों तथा पत्रकारों ने बताया था कि उनकी दृष्टि में सबसे बड़ी आश्चर्य की बात क्या है। हमारे कई कृपालु पाठकों ने भी स्वयंप्रेरित होकर उत्तर दिये थे। उनमें से जो उत्तर हमें पसंद आये, यहां दिये जा रहे हैं। हमें खेद है कि इन्हें छापने में इतना विलंब हो गया।

●

लीला बहादुर पौडेल क्षत्री

प्रश्नकर्ता यक्ष केवल युधिष्ठिर का एक उत्तर पाकर संतुष्ट हो गया था और साथ ही सहस्राब्दियों तक सभी उस उत्तर से संतुष्ट थे। पर आप नवनीत-साहित्य-सरोवर के मालिक सैकड़ों से इसका उत्तर मांग रहे हैं और सैकड़ों युधिष्ठिर इसका उत्तर दे रहे हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य क्या हो सकता है!

बिशन स्वरूप

गद्दियां मिलने से पूर्व जो नेता किसी विषय को लेकर सरकार की आलोचना करते नहीं थकते, वही सरकार में मंत्री बनने पर उस विषय में मुंह पर ताला लगा लेते हैं।

उग्रनाथ नागरिक

एक यक्ष था, जो अपने आपको सारे तालाब का मालिक बताता था। आश्चर्य है, वह आज भी जिंदा है।

राजेन्द्र प्रसाद लहरिया

यक्षप्रश्न का युधिष्ठिर का उत्तर उस काल में समुचित और खरा था। लेकिन इस काल का तो सबसे बड़ा आश्चर्य है-भूख, जो कि अतृप्ति की भगिनी तो है ही, साथ ही तृप्ति की दुहिता भी है।

विजयकुमार

आश्चर्य यही है कि जो आदमी रिक्शे-वाले या मजदूर को ७५ पैसे बड़ी मुश्किल से देता है, वही मंदिर में पांच रुपये का प्रसाद चढ़ाकर अपने को कृतार्थ अनुभव करता है।

(श्रीमती) किशोरी वर्मयोगी

धर्मराज का उत्तर महाभारत-काल में भले ही सोलह आने पाव रत्ती ठीक रहा हो, पर आज के प्रदूषण-युग में जब हम जहर खाते हैं, जहर पीते हैं और जहर ही सांस में लेते हैं, वह पूर्णतः सत्य है। यही संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है।

बी. बी. राय

यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद जीवन के गंभीरतम प्रश्न का उत्तर देता है; वह उत्तर तीनों कालों में झुठलाया नहीं जा सकता। अचरज यह है कि उस उत्तर के उपरांत भी हम उत्तर देने की धृष्टता करते हैं, जबकि ये उत्तर एकदम सतही हैं।

विजयसूर्योदय सूरि

भगवान का नाम-स्मरण अत्यंत सुलभ है, कष्टसाध्य नहीं और जीभ भी-जो भगवान का नाम बोल सकती है-अपनी ही है ...... तब भी लोग भगवान का नाम लेने में परेशानी अनुभव करते हैं और अपनी

दुर्गति करते हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा!

बृजेश परसाई

यह जानते हुए भी कि मुझ अदना व्यंग्य-लेखक की ये बेचारी पंक्तियां तो पढ़ी भी नहीं जायेंगी, इन्हें इस विश्वास के साथ भेजा जा रहा है कि ये प्रकाशित होंगी ही।। इस से बढ़कर क्या आश्चर्य !

मुनि शीलचंद्रविजय

वेदशास्त्रों से लेकर विज्ञान तक विविध विषयों को जानने वाले तो हजारों मिलते हैं, परंतु अपने अज्ञान को जानने वाला विरला ही मिलता है। किमाश्चर्यमतः परम्!

चंद्रमौलेश्वर प्रसाद सिंह

बदसूरत वर भी खूबसूरत दुल्हन की कामना–दहेज के साथ–कर रहा है..... इससे बढ़कर आश्चर्य क्या हो सकता है।

रमेशचंद्र

नाभि से ब्रह्मा और कान से कर्ण पैदा हुए थे। यदि इस कलियुग में परखनली से देवी पैदा हो गयी तो किमाश्चर्यम् !

गोपाल चौरसिया

'किमाश्चर्यम्' स्तंभ पढ़कर सोया था। रात एक सपना देखा। एक देश में सफेद रंग के गधे पैदा हुए हैं, जो उस देश को तीस वर्षों से लगातार चर रहे हैं, मगर भूलकर भी वे ईमानदार होकर देश का बोझ नहीं ढोते। और देश की जमीन भी खूब है कि हर पांच, सात या तीन सालों में हरी घास की अच्छी फसल पैदा कर देती है और उन्हें चरने देती है। कितने आश्चर्य की बात है !

आनंद प्रकाश पालीवाल

गांधी और मौलाना आजाद के देश में आजादी आने के तीस बरस बाद भी अलीगढ़ और जमशेदपुर सत्ता के भूखे भेड़ियों से अपने को बचाते हुए इस विश्वास से जी रहे हैं कि कभी तो अविश्वास की धधकती आग बुझेगी और सब निश्चिंत रह सकेंगे।

सुरेशव्रत राय

स्वदेशी आंदोलन वाले देश में स्वतंत्रता-प्राप्ति के इकतीस वर्ष बाद भी इम्पोर्टेड सामान का भूत लोगों पर सवार है, फलतः अपने देश में ही निर्मित सामानों पर विदेशी मुहर लगाकर भारी मुनाफा कमाने वालों के खूब चमकते धंधे। राष्ट्रभाषा और भारतीय संस्कृति का झंडा ऊंचा करने वालों द्वारा हर असुविधा तथा कठिनाई के बावजूद बच्चों को अंग्रेजी माध्यम वाले पब्लिक स्कूल भेजने की आतुरता तथा इन स्कूलों में उमड़ती भीड़। विवाह आदि में मंगल-वाद्य का निष्कासन करके आर्केस्ट्रा पर पश्चिमी धुनें या फिल्मी गीत बजवाना। पश्चिमी टेबल मैनर्स, रॉक एन रोल तथा ट्विस्ट नृत्यों से सुपरिचित पत्नी की कामना करना। सभी तो महदाश्चर्य हैं।

रंगनाथ राकेश

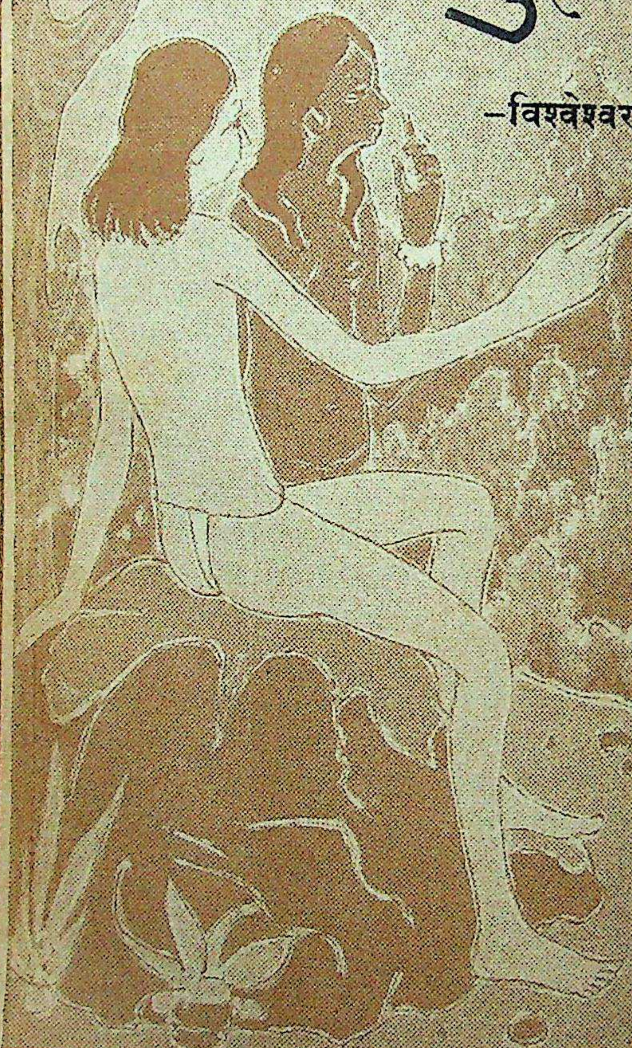
जय का प्रकाश तो देख रहा हूं–
विगत उन्नीस महीनों से
पर प्रकाश की जय
धुंधलाती जा रही है क्रमशः।
एक अंधेरी सुरंग से निकलकर
हम दूसरी सुरंग में आ गये हैं।



अंतिम किस्त

सुम्निमा

—विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला



शरीर और आत्मा के धर्म अलग-अलग हैं। ऐहिक लड़ाई कभी आध्यात्मिक धरातल पर नहीं लड़ी जा सकती। जब भी इन दोनों को एक करने का दुष्प्रयास किया जाता है, अवश्य ही शोकांतिका घटित होती है।.....एक पुराण-गाथा सदृश कहानी जिसमें लेखक ने वह शाश्वत प्रश्न उठाया है, जिसका उतर मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी खोजता आया है।

संक्षिप्त अनुवाद : सुरेन्द्र प्रसाद साह



उस दिन पुलोमा सवेरे अत्यंत आलस्य के साथ उठी। अंगड़ाई लेते हुए उसने सोचा-'आज तो शौच से भी निवृत्त नहीं हुई।' बिछावन पर उसका शरीर गरम था। अशौचावस्था में ही वह रात-भर पड़ी रही अपनी देह के ताप के कारण। हठात् उसे बचपन के भील साथी की याद आयी-उसने फिर अंगड़ाई ली। कैसा आश्चर्य! आज क्या हो रहा है उसे?

अनिच्छापूर्वक वह बिछावन से उठी और कोशी-तट पर गयी। स्नान-घाट की गीली जमीन देखकर उसने सोचा—पति की स्नानादि क्रिया संपन्न हो चुकी है। आज उसे काफी देर हो गयी है। जल्दी-जल्दी स्नानादि समाप्त करके वह भीगे परिधान में ही आश्रम आयी। उसे लगा कि आज आश्रम अस्वाभाविक रूप से सूना है। अब तक सोमदत्त यज्ञ के लिए अग्नि प्रज्वलित करने आंगन में आ जाता था। पुलोमा ने सोचा, शायद मेरे उठने में देर हो जाने के कारण आश्रम के उत्तरी भाग में बैठे हुए उन्होंने अनुष्ठान की अवधि बढ़ा दी है—और वे योगक्रिया कर रहे होंगे। वह भी बिना हड़बड़ाये धीरे-धीरे अपना दैनिक कार्य करने लगी।

बाहर सूर्य के प्रकाश से सारा आश्रम प्रकाशित हो चुका था। पुलोमा को समय का जरा भी ज्ञान नहीं रहा। धान कूटने की ढेंकी के छोर पर खड़ी-खड़ी स्वप्न के समान बचपन की बातों को याद करने लगी। उसे स्मरण हो आया गांव के बगीचे का वह जलाशय और काली चमकदार देह वाला वह भील लड़का, जिसे कुछ दिनों के बाद मां ने आने से मना कर दिया था, क्योंकि लड़की सयानी बन गयी थी। लेकिन तो भी वह घर के पीछे आकर बुलाता था—'पुलोमा, ऐ पुलोमा।' एक दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई पुलोमा ने सोचा—'कहां होगा वह आजकल?'

गोगृह से कपिला गाय 'बां' करके रंभायी। अचानक पुलोमा की तंद्रा विलुप्त हो गयी। उसने सोचा—'आज धान नहीं कूट सकी, चौथे दिन का यह नियम भी आज टूट गया।'

गाय की दैनिक सेवा समाप्त करके वह गोशाला से बाहर आयी। ठंडी अग्निवेदी पर वृक्ष से झरे हुए पत्ते पड़े थे। तुलसी का मठ भी सूखकर कड़ा हो गया था। कल के लिपे आंगन में भी पपड़ियां बनने लगी थीं

और चारों ओर पक्षियों की बीट, वृक्ष की पतली टहनियां तथा पत्ते बिखरे थे। सुबह जो साड़ी सूखने के लिए पसारी थी, उसका एक छोर जमीन पर लोट रहा था। पुलोमा को वह साड़ी भी दूसरे की लगी। वह सोचने लगी–'यहां कितने वर्ष बिताये मैंने ?'

फिर एक बार वह सोमदत्त की कोठरी में गयी। कोठरी रिक्त थी। तब वह उस स्थान पर गयी, जहां सोमदत्त आजकल एकांत में अधिकाधिक समय बिताता था। वह भी रिक्त था। वापस आकर प्रांगण में तुलसी-मठ के समीप खड़ी होकर वह आश्रम के चारों ओर देखने लगी। महान शून्यता के अलावा वहां कुछ नहीं था। उसे लगा–उसका जीवन कितना अकेला है। सोमदत्त के प्रति उसे जरा भी आग्रह का बोध नहीं हुआ। उसे अनुभव हुआ केवल अपने जीवन का वह खोखलापन, जिस पर दैनिक धार्मिक अनुष्ठान का पतला आवरण चढ़ता जा रहा था। अवकाश-विहीन क्रिया-अनुष्ठान, व्रत-पूजा-तप आदि ने अब तक उस खोखलेपन को अगोचर तथा अग्राह्य बना रखा था। लेकिन आज क्षण-भर के अवकाश में उसके आगे सारी शून्यता फूट पड़ी, उसके हृदय का घाव उभर आया। हे ईश्वर ! यह क्या हो गया है !

एकाएक पुलोमा के अंदर भय का संचार हुआ–उस अकेलेपन की विराटता के बोध के कारण। उसने सिर को ऊपर उठाकर पुकारा–'ब्राह्मण पति !' लेकिन उसकी इस पुकार में कोई आग्रह नहीं था। प्रत्युत्तर में कहीं से कोई आवाज नहीं आयी। केवल सघन वन के भीतर दूर से उसकी अमानवीय प्रतिध्वनि गूंजी। पुलोमा को चिंता हुई–'कहां गये होंगे वे?' फिर वह वहां से उठकर अपने कक्ष में आयी और बिछावन पर लेट गयी। शरीर हल्का हो गया था। कोठरी की शीतलता उसके जलते शरीर को विश्राम की शांति दे रही थी। उसे लगा, जैसे पूरे जीवन में कभी इस तरह का निश्चित अवकाश नहीं मिला था–दिन-रात वह किसी न किसी चर्या में ही लगी रही थी। आज के इस अप्रत्याशित आनंद का भोग वह बिछावन पर लोट-पोटकर करती रही। शरीर का पोर-पोर ढीला हो गया, मन का तनाव भी अकारण कम हो गया। शरीर और मन दोनों थकान उतार रहे थे। परंतु संस्कार की हल्की वाणी फूट पड़ी–'पुलोमा, जीवन-भर का पुण्य-संचय एक क्षण की असावधानी के कारण नष्ट हो जायेगा। आज यह क्या कर रही हो तुम ?'

लेकिन ठंडे बिछावन के आनंद का अनुभव करने वाले शरीर ने उठने का कोई उत्साह नहीं दिखाया। बाहर जाकर मध्याह्न के प्रखर ताप में काम करने की उत्सुकता पुलोमा में नहीं थी। 'पुण्य क्यों ऐसा क्षण-भंगुर है ? जीवन में वह कोई ऐसी परायी चीज तो नहीं है, जिसे सुरक्षित रखने के लिए सदा सचेष्ट रहना पड़े, जैसे प्रतिकूल वातावरण और जमीन में लगाये गये विदेशी

जूं

दिखने को सुरक्षित रखना पड़ता है। क्या धर्म में स्वाभाविकता नहीं होती? अन्यथा, आज शरीर क्यों इस तरह का सुख अनुभव कर रहा है—धार्मिक अनुष्ठान से निवृत्ति पाकर?' तंद्रावस्था में अस्पष्ट रूप से देखे गये दृश्य की तरह, असंलग्न और असंबद्ध वस्तुओं की छाया की तरह ही ये विचार पुलोमा के मन में आ रहे थे। उस समय उनका सबसे प्रमुख अनुभव था—थकान मिटाने का सुख। वह सुख आलस्य के साथ मिलकर उसे विलासिता की भूख का स्वाद दे रहा था। उसने करवट लेकर सोचा—'आज भोजन बनाने का काम भी मैं नहीं करूंगी।'

लेकिन तभी उसे लगा कि भूख लग गयी है। वह उठकर भंडारगृह में गयी। पिछले दिन का जमाया हुआ दही था। थोड़ा चिवड़ा और दही खाकर वह बाहर निकल आयी। गोगृह से गाय ने 'बां' की ध्वनि की। पुलोमा को याद आया, गाय भूखी रह गयी है। वह गाय की रस्सी खोलती हुई बोली—'जाओ कपिला, आज जहां मन हो वहां स्वच्छंद होकर चरो।' पूंछ खड़ी करके कूदती हुई कपिला नदी की ओर भागी।

पुलोमा जब फिर कोठरी में आयी तो उसकी दृष्टि ओसारे पर लटकाये हुए मृगचर्म पर पड़ी। आज वह चर्म मुड़ा ही रह गया। उसी पर बैठकर सोमदत्त ध्यान-पूजा किया करता था। एक बार फिर उसे सोमदत्त का स्मरण हो आया। उसने कहा—'वे मेरे पति हैं..... पुत्रेष्टि-कार्य के लिए नियुक्त पुरुष।'

इतने वर्षों तक दिन-रात साथ रहने पर भी सहधर्मिणी का कोई अन्य रूप उसने अपने में देखा ही नहीं—धार्मिक अनुष्ठान के लिए वासनाशून्य हृदय से रात को सहशैयाशायिनी होकर उसके साथ कुछ कठिन समय बिताने के अलावा.....वह भी दिनभर के यज्ञ-पूजा-व्रत आदि के कठिन श्रम के बाद, जो कि अब तो शरीर और मन दोनों को थकाने वाला निरा क्लेशदायी कर्म बन गया था। अब तो उनमें बातचीत भी बंद हो गयी थी। एक को दूसरे के अस्तित्व की अनुभूति थकी लाल आंखों से तरेरकर देखे जाने के बाद ही होती थी, अन्यथा दोनों एक-दूसरे के अस्तित्व को भूले रहते थे। साथ रहते हुए भी मनुष्य आपस में किस तरह निःस्पृह हो सकते हैं! ये सारी बातें मन में सोचती हुई पुलोमा स्वयं को सहारा देती हुई-सी बोली—'वे मेरे पति हैं, आज कहां चले गये वे?'

समय व्यतीत करने के लिए पुलोमा महाभारत पढ़ने बैठी लेकिन एक-दो पृष्ठ पढ़ने के बाद आगे पढ़ने की इच्छा नहीं हुई। खुली पुस्तक सामने रखे वह यों ही बैठी रही। उसे स्मरण हुआ—'मुझे संतान क्यों नहीं हुई?' उसने अपने शरीर पर दृष्टिपात किया—एकदम सूखा और झुर्रीदार, मन को न भाने वाला। उसने अपने पेट का स्पर्श किया—एकदम ठंडा, जैसे बुझी हुई आग। 'दूसरी औरतें कैसी सहजता से गर्भ धारण करती हैं। पर मैं क्यों वंध्या रह गयी? किस पाप से?'

एक बार सोमदत्त ने एक ग्रंथ में दिखाया था–'पापी नारी वंध्या होकर पैदा होती है।' सोमदत्त के पाठस्वर में जरा भी कटुता नहीं थी। लेकिन पढ़ने के लिए उन्होंने कैसा विष-बुझा वाक्य निकाला था! वे क्यों अपने को ऊंचे स्थान पर रखकर उसकी ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं? क्या उनके अपने ही पाप का परिणाम नहीं हो सकती वैवाहिक जीवन की यह निष्फलता ? पुरुष स्त्री से 'श्रेष्ठ' है न, इसलिए वह अपने पाप स्त्री को ओढ़ा देता है।

मन को नियंत्रण में लाने के लिए पुलोमा फिर सामने की खुली हुई पुस्तक को पढ़ने लगी। पुस्तक का वही पन्ना खुला हुआ था, जहां मेनका द्वारा विश्वामित्र के तपस्या-भंग का वृत्तांत था। 'उतने बड़े ऋषि की तपस्या भी कितनी जल्दी भंग हो गयी! यहीं कहीं तो वह प्रणय-लीला हुई होगी कौशिकी के तट पर।' क्षण-भर के लिए पुलोमा सतर्क हो गयी। सोचने लगी–पुराणों में अनेकानेक पुरुष तो मोहित होकर नारियों के वश में हुए हैं; लेकिन ऐसी स्त्री का वर्णन उनमें कहीं नहीं है, जो सहज ही पुरुष द्वारा मोहित होकर मर्यादाच्युत हुई हो। .... है क्यों नहीं ? ऐसी ही तो है अहल्या की कथा।'

ठीक उसी समय स्मृति की सुदूरता से उसे भील युवक के पुकारने की आवाज-सी सुनाई पड़ी–'पुलोमा ! ऐ पुलोमा !' ऐसा ही तो गांव में होता था। वह पाठ्य पुस्तक लेकर बैठती। बाहर घर के पीछे भील लड़का आ जाता और धीरे-से उसे पुकारता। वह आवाज सुनते ही उसका ध्यान पुस्तक से हट जाता। वह सिर उठाती और घर के बाहर के खेत-बगीचे की ओर ताकती, लेकिन मां के डर से फिर पुस्तक में सिर गड़ा देती। फिर भी वह पढ़ नहीं पाती। आज वही पुकार-सी सुनकर उसने उत्सुकतावश दरवाजे के बाहर देखा। तीसरे पहर की हवा से जंगल के अंदर एक उदास ध्वनि भील लड़के की सीटी-सी गूंज रही थी–स् स् स् स्।

उसे स्मरण हुआ कि क्षण-भर बाद ही शाम पड़ने वाली है। वनप्रांत में शाम होते ही एकाएक रात उतर आती है। वह आलस्य के साथ उठी। संध्या का दीपक ठीक करके फिर कोठरी में आ गयी। गोशाला में कपिला ने 'बां' की आवाज दी–घास चरकर वापस आ गयी थी वह।

'आज कहां चले गये हैं सोमदत्त ब्राह्मण?'

अंधेरा होने पर उसने दीपक जलाया। उसके मस्तिष्क में अभी भी मेनका-विश्वामित्र, अहल्या और इंद्र की कथाएं घूम रही थीं। महाभारत को समेटकर उसने रामायण निकाल ली और पढ़ने लगी :

तस्यान्तरं विदित्वा च सहस्राक्षः शचीपतिः।
मुनिवेषधरो भूत्वा अहल्यामिदमब्रवीत्॥

उसने मन ही मन कहा–'शचीपति इंद्र ने मुनि का वेश धारण करके प्रोषित-भर्तृका के साथ रमण किया। पुराण का यह असंभव आख्यान है! बिना मोहाछन्न हुए किसी नारी को ऐसा भ्रम कदापि नहीं हो सकता। कवि ने बाद के प्रसंग में अहल्या के इंद्र को पहचानने का वर्णन किया है। यदि ऐसा ही

था, तो इंद्र ने छद्म वेश क्यों धारण किया था ?..... परंतु निष्प्रयोजन ही ये सब विचार क्यों आ रहे हैं आज मेरे मस्तिष्क में ? पहले भी तो इस ग्रंथ का पारायण कई बार कर चुकी हूं। शुष्क ताड़पत्र पर लिखे ये ठंडे अक्षर आज क्यों इस तरह जागृत हो रहे हैं ?'

एक बार उसकी देह कांपी, जैसे भय का कंपन देह में प्रविष्ट हो गया हो। उसने वस्त्रखंड से बांधकर पोथी को छत से टांग दिया और सोने का उपक्रम करने लगी। लेकिन आंखों में नींद नहीं थी। वन में रात्रि के असंख्य जीवों के बोलने की ध्वनि एक अलग दुनिया निर्मित कर रही थी। हृदय के किसी गहरे निर्जन स्थल से पैदा होने वाले भय ने उसके शरीर को ठंडा कर दिया था। उसे लगा, उसके हृदय के अंदर का भय-कंपन और बाहर रात्रि के अंधकार में डूबे वन की अस्पष्ट ध्वनियां मिलकर एक हो गये हैं—बाहर की ध्वनि उसके हृदय में प्रविष्ट होती जा रही है और भीतर का भय काला अंधकार बनकर संसार-भर में फैलने लगा है। उसे लगा, जैसे अंधकार का भय कोई ठोस रूप धारण करके आ रहा है और जैसे घबराये मन से वह उसी की प्रतीक्षा में बैठी है। तभी एक पक्षी पास के वृक्ष पर चिल्लाया। उसकी चीत्कार सारे वनप्रांत में गूंज गयी और दूर पहाड़ में भी प्रतिध्वनित हुई। पुलोमा को वह ध्वनि बाल्यकाल की एक परिचित ध्वनि-सी लगी.....उसके घर के पीछे छिपकर खड़ा भील किशोर जैसे

धीरे-से फुसफुसाकर बुला रहा हो—'पुलोमा; ऐ पुलोमा !'

पुलोमा को स्मरण हुआ—'गांव छोड़कर इधर आते समय अंतिम बार भील किशोर से भेंट हुई थी। पानी की धारा के समीप वह अकेला खड़ा था पके जामुनों का दोना हाथ में लिये प्रतीक्षा करता हुआ। उसे पता था कि बरसात के ये जंगली फल मुझे पसंद हैं। वह वृक्ष पर चढ़कर डाली हिला-कर जामुन गिराता और मैं नीचे बैठकर गिरे हुए फलों को चुनती। बाद में मां ने मुझे बाहर जाने से रोक दिया था। उस विदाई-घड़ी में भी मां ने उसे डांटा था—"नहीं देने हैं वे फल, जाओ।" मैं हताश होकर उसे देखती रही थी। तब पिताजी ने कहा था—'क्या हुआ जी, फल में क्या दोष है ? पुलोमा, ले लो वे फल, ले लो।" और जामुन मेरी अंजुरी में रखकर वह वहीं खड़ा रहा और हम लोग चल पड़े। दूर जाने पर, वृक्ष के झुंडों से ओझल होने के पहले, मैंने पलटकर उसे देखा था। दूर काले धब्बे के समान वह खड़ा था। डूबते हुए सूर्य की किरणों में उसकी कटि और ग्रीवा में पहनी हुई कौड़ियों की मालाएं चमक रही थीं।' कई असंलग्न चित्र उसके मन में आते रहे—विश्वामित्र-मेनका, अहल्या, भील किशोर।

तभी सहसा पुलोमा को भान हुआ कि बाहर के अंधकार में से कोई प्रचंड वेग के साथ कक्ष में प्रविष्ट हुआ। उसके अंग-अंग में ठंडा कंपन होने लगा। उसके कंठ से चीत्कार फूट पड़ा। दीपक के क्षीण प्रकाश

में उस रौद्र रूप को देखकर वह लड़खड़ाये स्वर में चिल्लायी—'भील युवक !'

और उस काली छाया ने पुलोमा के सर्वांग को ढंक लिया। पुलोमा को अंधकार के सिवा और कुछ नहीं दिखाई दिया। एक उत्तप्त शरीर उग्र वेग के साथ उसके ऊपर गिर पड़ा था, उसे भींचते हुए। उसके उष्ण निःश्वास से पुलोमा का मुख उत्तप्त हो गया। पुलोमा को एक साथ त्रास, पीड़ा, आनंद की अनुभूति हुई.... और काले आनंद की विस्मृति में उसे मृत्यु की तरह एक उच्छ्-वसित आवाज कान के पास गूंजती लगी—'सुम्निमा ! सुम्निमा !'

भय और त्रास की प्रतिक्रिया में पुलोमा ने उस काली आकृति को पूरी शक्ति से पकड़ लिया। वह स्वां-स्वां करती खंडित स्वर में कह रही थी—'भील युवक ! भील !'

उससे अधिक काली रात फिर कभी नहीं आयी, उससे अधिक पीड़ा का बोध फिर कभी नहीं हुआ। लगता था, जैसे वह बार-बार मृत्यु में डुबकी लगा रही है। लेकिन वैसी मृत्यु को उतने आग्रह के साथ किसी ने शायद ही अंगीकार किया होगा। पुलोमा को लगा कि आज वह अपने आलिंगन से उस मृत्यु को निकलने नहीं देगी। पीड़ा और आनंद के सम्मिलित भोग में पड़कर वह हल्का सीत्कार करते हुए बोले जा रही थी—'आह; आह भील, आह ! आह !' उसे लगता कि उसके कान के समीप ही सारा वनप्रांत निःश्वास लेते हुए बुदबुदा रहा है वाष्प-जैसी हल्की ध्वनि में—'सुम्निमा !..... सुम्निमा !'

०००

दूसरे दिन जब सोमदत्त की आखें खुलीं तो उसे लगा, जैसे मात्र उसकी आंखें खुली हैं, शरीर अब भी रात्रि के भोग-विलास में निमग्न है। लेटे-लेटे ही उसने कोठरी में चारों ओर दृष्टि डाली। सूर्य की बाल-किरणें की पीत आभा छिद्र में से प्रविष्ट होकर कोठरी में जीवन का संचार कर रही थी। उस पीत आभा ने उसे सुम्निमा की याद दिला दी। सुम्निमा का शरीर भी स्वर्ण की तरह पीला है। उसने पुलोमा पर दृष्टि डाली, जो उसकी बगल में अभी भी निश्चिन्त निद्रामग्न थी। कल रात्रि के क्षीण पीले प्रकाश में पुलोमा भी तो पीत आभा से युक्त हो गयी थी। सोमदत्त को पीला रंग बहुत अच्छा लगा। पुलोमा ने तभी अंगड़ाई के साथ नींद में दीर्घ निःश्वास लेकर करवट बदली। उसका हाथ सोमदत्त की छाती पर पड़ा और जांघ उसके शरीर के साथ सट गयी। सोमदत्त ऊर्ध्वमुख होकर चुपचाप लेटा रहा। पर उसे लगा कि कमर में कोई चीज गड़ रही है। उसे स्मरण हुआ कि कौड़ियों की करधनी टूटकर उसकी कमर में चुभ रही है। धीरे-से अपनी छाती पर से पुलोमा का हाथ हटाकर वह उठकर बैठ गया। टूटी हुई करधनी की कौड़ियां कोठरी में चारों ओर बिखरी हुई थीं। मयूरपंखों का मुकुट भी टूटकर सिर की ओर गिरा हुआ था। बुझा हुआ दीपक दीवार के निकट औंधा पड़ा था और जमीन पर तेल का काला अं

और टेढ़ा-मेढ़ा दाग पड़ा हुआ था । सोमदत्त ने पुलोमा के तकिये को धीरे-से ठीक किया और गिरी हुई चादर को शरीर पर ठीक से ओढ़ा दिया । फिर बिखरी हुई कौड़ियों एवं मोरपंखों को समेटकर वह कुटी से बाहर निकल आया ।

बाहर की शीतल स्वच्छ वायु और प्रभात-कालीन दृश्य से उसका मन पुलकित हो उठा । उसे शरीर के हल्के होने का बोध हुआ । उसने कमंडलु उठाया, छत से लटकता हुआ मृगचर्म उतारा और स्नानार्थ कौशिकी-तट की ओर चल पड़ा । प्रभात-कालीन शीतल समीर उसके शरीर में हल्की गुद-गुदी पैदा कर रहा था । पक्षियों के कलरव में कितनी मिठास होती है, इसका पता सोमदत्त को जैसे आज पहली बार हुआ । कौशिकी में उतरकर सबसे पहले सोम-दत्त ने पानी में अपने भील-रूप के दर्शन किये । अपनी आकृति देखकर वह हंसा और उसे लगा कि जीवन में वह पहली ही बार हंस रहा है । उसने एक-एक करके सब शृंगार-सज्जा उतारी । कौड़ियों की माला पानी में 'छप्प' की आवाज के साथ डूब गयी । मयूरपंख जल-प्रवाह में बहुत दूर तक बहता रहा और सूर्य के प्रकाश में चमकता रहा । उस दिन सोमदत्त को स्नान करने में बड़ा सुख मिला । फिर सदा की तरह जप के लिए वह कुशासन पर बैठा ।...

उधर कुछ देर के बाद पुलोमा भी उठी । वह स्पष्ट रूप से कुछ भी समझ नहीं सकी । लेकिन मन में कुछ-कुछ अच्छा लग रहा था—जैसे किसी मीठे सपने के सुख का प्रभाव जगने पर भी बना रहता है । क्षण-भर बाद पूर्ण रूप से चेतनावस्था में आने पर उसे रात की घटना को याद आने लगी । माता-पिता के साथ गांव में रहते हुए जिस भील लड़के के साथ उसकी मैत्री थी, उसी की मधुर याद आयी और उसने चारों ओर नजर डालकर भील युवक की खोज की । लेकिन वहां कहां था भील युवक ? वह तो कोठरी में अकेली है—एकदम अकेली । उसे हठात् घबराहट हुई—अगर सोमदत्त ने देख लिया कोठरी का यह दृश्य तो ?

पुलोमा हड़बड़ाकर उठी । माला की टूटी हुई कौड़ियां तकिये पर, बिछावन पर और कोठरी के कोनों में अब भी इक्का-दुक्का मौजूद थीं । मयूरपंख के छोटे-छोटे रोएं भी यहां-वहां चमक रहे थे । खुली हुई साड़ी को ठीक करते हुए वह उठी और जमीन पर के रोओं और कौड़ियों को चुनने लगी । दीवार के नजदीक उलटे हुए दीपक को ठीक किया, फिर घबरायी-सी बाहर निकल आयी । उसने चारों ओर गौर से देखा । नहीं, सोमदत्त के लौटने का कोई चिह्न नहीं था । पर तभी उसकी दृष्टि उस स्थल पर पड़ी, जहां मृगचर्म लटका रहता था । अरे, मृगचर्म कहां गया ? उसका सिर चकराने लगा । दौड़कर वह गोशाला के पीछे गयी और हाथ से ही एक छोटा गड्ढा खोदकर कौड़ियां और मयूरपंख गाड़ दिये । उसी समय गाय ने 'बां' की आवाज की । लेकिन पुलोमा का ध्यान उधर नहीं

था। व्यग्र और चिंतित वह सोमदत्त के बारे में सोच रही थी –'वे क़ल रात में ही तो नहीं आ गये ?'

जब पुलोमा स्नान करने के लिए कोशी-तट पर गयी, मन की व्यग्रता के बावजूद उसके शरीर में असाधारण स्फूर्ति और अज्ञात प्रसन्नता थी। वहां सूर्य की ओर मुख करके ध्यानमग्न बैठे हुए सोमदत्त को देखकर उसकी चाल एकाएक लज्जा से भारी हो गयी। उसके पैर आगे नहीं बढ़ सके। उसे लगा, सोमदत्त के चेहरे पर आज असाधारण दीप्ति है, उसका मुखड़ा ऐश्वर्य-मय हो गया है। पिछली रात को याद करके उसने स्वयं को धिक्कारा–'हे भगवान ! क्यों मुझे इस पाप में डुबा दिया ? मैं क्यों अपने तपस्वी पति के समान न रह सकी ?'

पुलोमा के पैर की आवाज सुनकर तभी सोमदत्त ने आंखें खोलीं। उसकी आंखों में स्नेह और करुणा की ज्योति थी। ऐसी प्रेममय दृष्टि से उसने पुलोमा को कभी नहीं देखा था। अब तक तो उसकी आग्रहहीन दृष्टि में तिरस्कार और वैर का भाव ही रहा करता था। उसकी सुकुमार दृष्टि देखकर पुलोमा बहुत आश्वस्त हुई कि सोमदत्त को पता नहीं चला है, भगवान ने मेरी मान-मर्यादा बचा ली।

नदी के शीतल जल में उतरने पर जैसे उसके शरीर की सारी व्यथा दूर हो गयी जैसे जीवन का सारा ताप धुल गया। जैसे उसका शरीर आनंद से उड़ रहा था। कहां होगा भील युवक अभी ? रात्रि के कितने प्रहर बीतने के बाद गया होगा कुटी से ? जल में डूबी हुई उसकी नग्न देह में कोशी की दक्षिणवाहिनी धारा एक प्रकार की आनंद-दायिनी गुदगुदी पैदा कर रही थी। उसने झुककर अपने शरीर को देखा, जो अब ढलने लगा था। लेकिन आज उसे अपने शरीर पर बहुत ममता हुई। उसने बहते हुए पानी को आलिंगन में ले लिया और मन ही मन कहा–'कहां होगा भील युवक अभी ?' रात्रि के असह्य आनंद की याद में वह डूबना चाहती थी, जिसने चेतना को लुप्त कर दिया था।......

सोमदत्त कुशासन पर ध्यान में बैठा था; लेकिन उसका मन स्थिर न होकर चंचल था–किसी व्यथा की वजह से नहीं, बल्कि ऐसे आनंद के अनुभव के कारण जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था। कल की घटनाएं उसके मस्तिष्क में एक-एक करके आ रही थीं। मनुवा-दह उसकी आंखों के सामने तस्वीर की तरह लहरा रहा था। उसे बार-बार सुम्निमा की याद आ रही थी। इसी कोशी-तट पर तो सुम्निमा के साथ प्रथम बार भेंट हुई थी। उसके मस्तिष्क में एक-एक करके सुम्निमा के विभिन्न भावों के चित्र नाचने लगे।......

पुलोमा जब नहाकर तट पर आयी, तब भी पति को ध्यानमग्न अवस्था में देखकर वह चकित रह गयी। उसकी आनंदमग्नता एका-एक विलुप्त हो गयी। उसे हठात् ग्लानि का अनुभव हुआ। पति की एकाग्र ब्रह्म-चिंतन की मुद्रा देखकर उसे लगा–'सोमदत्त कितने

जून

धर्मनिष्ठ और ऋषितुल्य हैं! उनकी तुलना में मैं कितनी ओछी और पातकी हूं! जीवन में अब तक अर्जित सारा धर्म एक रात्रि के छोटे-से अनुभव में रीत गया। अब क्या मैं एक साधारण कुलटा नारी नहीं हो गयी हूं— सोमदत्त की तुलना में तुच्छातितुच्छ?' आत्मग्लानि में परवश होकर उसने पति के सामने घुटने टेक दिये और धीरे-से स्नानार्द्र सिर को पति के चरणों पर रख दिया।

सोमदत्त का ध्यान भंग हुआ। पत्नी के इस अनूठे व्यवहार से उसकी प्रसन्नता बढ़ गयी। उसे लगा, आज की परम प्राप्ति में उदार-हृदयता की अब सीमा नहीं है। पुलोमा के सिर पर हाथ रखते हुए उसने कहा-'कल्याणी! भद्रे!' उस एक क्षण में वे दोनों भावभरे हृदय से एक-दूसरे के अत्यंत निकट आ गये थे। उस क्षण उन्होंने दाम्पत्य-प्रेम का पहली बार दर्शन किया। उन्होंने एक क्षण के लिए पति-पत्नी के प्रेम के मधुर भाव का अनुभव किया, जो उनके लिए अत्यंत नया अनुभव था। सोमदत्त ने स्नेह के स्वर में पत्नी को अकारण ही पुकारा-'पुलोमा!' और अपने ही स्वर की कोमलता को अनुभव करके उसे न जाने कैसा-कैसा लगा। वह चुप हो गया। पुलोमा पति के कोमल संबोधन से चकित होकर सोमदत्त की ओर देखने लगी। उसके मुख-मंडल पर स्नेह की दीप्ति थी। उसने भी अत्यंत आर्द्र स्वर में पुकारा-'पतिदेव!' लेकिन उसे भी अपनी आर्द्रता असामयिक-सी लगी और वह भी चुप हो गयी।

१२७९

स्नेह से गद्गद सोमदत्त और पुलोमा जब कुटी वापस आये, दिन बहुत चढ़ चुका था। दैनिक नियम को भंग करने की इच्छा न होने से सदा की तरह उन्होंने यज्ञ किया; लेकिन उसमें किसी की रुचि नहीं थी। दिन में भोजनोपरांत पहले की तरह की छोटी-मोटी बातचीत हुई धर्मग्रंथों के विषय में। सोमदत्त तनिक विश्राम करना चाहता था। उसने कहा—'अब तुम भी जाकर कुछ समय विश्राम करो।'

दोनों अपने-अपने कक्ष में बिछावन पर लेटकर रात की घटना याद करने लगे— अपनी एकाकी उपलब्धि की तरह। सोमदत्त को पता था कि रात के उन्माद में वह जिसे सुम्निमा समझकर बाहुपाश में लिये रहा, वह उसकी पत्नी पुलोमा ही थी। लेकिन उन्माद या भ्रम में प्राप्त तत्कालीन अनुभव यथार्थ से भी अधिक सत्य लग रहा था उसे। उसे बोध हुआ कि किसी-किसी धर्मग्रंथ में संभोग-सुख की तुलना ब्रह्मानंद से क्यों की गयी है। आत्मदर्शी का कहना है कि ब्रह्मानंद का वह अनुभव बाद में साधारण स्थिति में आने पर भी स्थूल यथार्थ से अधिक गहरा और अधिक सत्ययुक्त जान पड़ता है। 'मेरा जीवन और मेरी चेतना का स्तर उस अनुभव के कारण उच्चतर हो गया है।' सोमदत्त ने मन ही मन कहा—'फिर मैंने कोई पाप-कर्म तो क़िया नहीं। उन्माद में भी, भ्रम की तीव्रता में भी, पति-पत्नी का ही समागम हुआ। बेचारी पुलोमा को वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो पाया है, जिससे वह पापबोध

से पीड़ित होगी। इसी तरह की बातें सोचते-सोचते वह सो गया।.....

पुलोमा की समग्र चेतना भी कल रात की यादों में डूब गयी। उसे लगा कि कोठरी के अंदर वे बातें अब भी हो रही हैं। वह शिथिल-सी हो गयी। बिछावन पर लेटे-लेटे वह अपने आपसे बोली–'पाप-पुण्य चाहे जो भी हुआ हो, अब मैं कल की पुलोमा नहीं रही। उस अनुभव ने मुझे दूसरी नारी में परिणत कर दिया है। मेरे शरीर की रग-रग में नवीनता की सृष्टि हो गयी है। मैं संभवतः संतान-रचना की क्रिया में लग चुकी हूं।'

पुलोमा ने धीरे-से अपना हाथ पेट पर रखा। उसे सोमदत्त का ध्यान आया–'हाय, मैं इस महान अनुभव का साझीदार उन्हें नहीं बना सकती। मेरी यह उपलब्धि नितांत एकाकी रह गयी।' यही सब सोचते-सोचते वह भी निद्रा में डूबने लगी। एक बार फिर अपने भाग्य को सराहते हुए बोली–'भगवान मेरी रक्षा करने के लिए सोमदत्त को अज्ञान में रखे।'

दोनों बहुत देर तक सोते रहे और जब उठे, तो शाम घिर आयी थी।

०००

दूसरे दिन से उनका जीवन सदा की तरह नियमबद्ध चलने लगा। जीवन में फिर कभी भी शारीरिक संबंध के आकर्षण में वे नहीं बंधे। इसलिए साथ रहकर भी वे अलग-अलग ही थे। किंतु क्या वे पहले के समान निश्चिततापूर्वक दैनिक कार्य संपादित करते हुए जीवन बिता पाते थे? बाहर से देखने पर आश्रम के दैनिक नियम और निष्ठाचार में किसी तरह के अंतर का पता नहीं चलता था। लेकिन उनके अंतर्जगत में महान उथल-पुथल मच गयी थी। आपसी संबंधों का पुराना आधार जो लंबे समय से साथ रहने के कारण बना था, लगभग आकर्षणशून्य था और पति-पत्नी के धार्मिक उद्देश्य की आस्था से जो संबंध निर्मित हुआ था, अब वह भी समाप्त हो गया था। उसके स्थान पर उन्हें संबंध का कोई और आधार नहीं मिल पाया था। इसलिए उनकी स्थिति बहुत विचित्र और असंगत हो गयी थी। वे पहले भी अलग-अलग ही रहते थे, लेकिन अब तो एकदम विचित्र स्थिति में पड़कर अपने में संकुचित हो बैठे थे। जहां पहले उन्हें एकांत-सेवन में भयावह नीरसता का बोध होता था, वहां अब वे अपनी-अपनी कोठरी में अकेले बैठकर अनुभव की परिपूर्णता की अनुभूति करते थे। वे यह भी समझने लगे थे कि एकांत रिक्तता नहीं है, बल्कि उस समय अनुभव की प्रबलता से शरीर और मन प्रकंपित हो उठता है। वे एकांत में आकर निर्बाध सुख का अकेला भोग कर पाते थे और नयी स्थिति में अपना स्थान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर सकते थे। जीवनपर्यंत जिस बात को वे मल मानते चले आये थे, उसके विनाश का खंडहर आंखों के सामने होने पर भी स्वभाववश वे उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए उनके हृदय के अंदर भयानक आंधी

रत रही थी। अनुभव और आस्था—इनमें क्या मिथ्या है? अनुभव जो स्वयं भोगा हुआ और पाया हुआ है, अथवा चिंतन के आधार पर खड़ा किया हुआ परिकल्पित विश्वास—क्या सत्य है? इंद्रियजन्य भोग या बुद्धिजन्य वैचारिक निष्कर्ष? क्या सदा इंद्रियां सत्यानुभूति ही कराती हैं? कहीं यह मृगमरीचिका की तरह दृष्टिदोष तो नहीं?

यदि उस रात के अनुभव को वे किसी तरह अपने जीवन से मिटा सकते, तो उन्हें आसानी होती। लेकिन वे स्वय भी उस अनुभव से मुक्ति नहीं चाहते थे। उनके मिलन जीवन को उसी ने परिपूर्णता दी थी।

पुलोमा अकेली बैठकर सोचती—'जीवन में पाप क्या है? क्या उसका कोई लक्षण है जो घाव के पीव की तरह जीवन में ही प्रकट होता है? कहा जाता है कि मरने के बाद पाप-पुण्य का दंड-पुरस्कार मिलता है; लेकिन वहां भी पाप-पुण्य पहचानने का आधार क्या है? क्या सोमदत्त को भी इस जीवन में पाप-पुण्य की पहचान है? वे महात्मा हैं। मैं तो पातकी हो गयी। क्या मैं सचमुच पातकी हो गयी? यही तो मैं जानना चाहती हूं। इतने दिनों के बाद भी आज तक उस रात के अनुभव के सुख से मेरा शरीर पुलकित है, उसकी याद मात्र से मेरा नारी-शरीर द्रवित हो जाता है, उल्लास से मन में संगीत की मधुर ध्वनि सुनने-जैसा अनुभव होता है। पाप की तो ऐसी अनुभूति नहीं होनी चाहिये।'

सोमदत्त भी अकेला अपनी कोठरी में बैठा कल्पना के आनंद की लहर में तैरता रहता। उस रात का अनुभव महान गंगा-स्नान के समान था, मन और शरीर दोनों को सदा-सदा के लिए पुलकित करने वाला। वैसा अनुभव क्यों हुआ उसे? यौन संबंध में इस तरह की शुचिता का बोध, इस तरह के आनंद का अनुभव? क्या यह पापासक्ति नहीं है? क्या स्त्री-समागम के सुख में पाप निहित है? धर्मशास्त्र में भी पत्नी के साथ समागम वर्जित नहीं है, यदि उसमें आनंद न हो; बल्कि पुत्रप्राप्ति के लिए यह संबंध शास्त्र-समर्थित है।

सोमदत्त आनंद-प्राप्ति के दोष को तर्क से शुद्ध करने का प्रयास करता कि यदि पुलोमा गर्भ धारण कर सकी तो वह आनंद के दोष से मुक्त हो जायेगा। लेकिन क्या इतना साधारण और सहज अनुभव था उसका? धर्म की सूक्ष्म गति है, वायु के समान अदृश्य-अगोचर उसका प्रवेश है। उस दिन सारी रात जिस नारी को उसने अपने आलिंगन-पाश में बांध रखा था, वह निःसंदेह उसकी पत्नी पुलोमा ही थी। परंतु क्या मानकर पुलोमा के साथ सटकर सोया रहा था वह रात-भर आनंद में निमग्न होकर? क्या सुम्निमा समझकर नहीं? यदि ऐसा है, तो पाप और पुण्य का आधार क्या है—शरीर या मन? दोष का मूल स्रोत कहां है देह-जगत् में अथवा भाव-जगत् में? सोमदत्त उद्विग्न होकर बोल उठता—'पाप-भावना सांसारिक वस्तु है।'

०००

ऐसे ही अवसर पर पुलोमा ने एक दिन पूछा—'आर्यपुत्र, पाप का रूप कैसा होता है ? उसे कैसे पहचाना जा सकता है ? उसके स्वाद का पता कैसे पाया जा सकता है ? शरीर और मन में उसकी अनुभूति कैसी होती है ? क्या पक्षी के द्वारा प्रभाती गाकर जगाये गये सूर्योदय के समान सुंदर रूप होता है उसका ? क्या उसका स्वाद जीभ पर मधु के समान मीठा होता है ? क्या शरीर और मन में उसके अनुभव मात्र से उसी तरह आनंद की लहर उठती है, जिस तरह हल्की हवा के स्पर्श से नदी के वक्ष पर छोटी-छोटी लहरें तरंगित होने लगती हैं ?'

सोमदत्त ने उत्तर दिया—'पुलोमा, पाप मन की चीज है। तुम निश्चित हो जाओ। तुममें इस तरह का विचार अकारण उठ रहा है। तुम पुण्यात्मा नारी हो। तुम्हारा शरीर भी शुद्ध है। पर यदि मन के शुद्ध रहने के बावजूद मात्र शरीर से कोई ऐसा कार्य हो गया है जो तुम्हारी दृष्टि में दोषपूर्ण है, तो याद रखो—शरीर केवल मन का यंत्र है। मन ही पाप और पुण्य का कार्य करता है। तुम व्यर्थ में अपने को मत धिक्कारो। पापी तो मैं हूं मन से।'

सोमदत्त को लगा कि वह इस प्रकार पत्नी के सम्मुख स्वयं को दोषी ठहराकर कुछ अंशों में अपना पापमोचन कर रहा है।

पुलोमा सोमदत्त की इस अचिंत्य बात को सुनकर पतिभक्ति से विह्वल होकर बोली—'आर्यपुत्र, आज आप कैसे इस तरह की असंगत बात मुझसे कह रहे हैं ? मुझे पता है, मेरा पति ऋषि है, उससे मनसा वाचा-कर्मणा किसी तरह का पाप नहीं हो सकता है। मैं ही पापी नारी हूं। आपको पता नहीं, मैं कितने बड़े पापकुंड में डूबी हूं।'

सोमदत्त ने कहा—'विश्वास करो पुलोमा, मुझे सब पता है। तुमसे कोई पापकर्म नहीं हुआ है। तुम निश्चिंत हो जाओ।'

कुछ संयत होकर पुलोमा क्षण-भर सोमदत्त के चेहरे की ओर ताकती रही। पति के इस मनुहार में स्नेह की स्निग्धता थी। लेकिन एक बात पुलोमा को एक दम विह्वल बना गयी..... आज सोमदत्त उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रहा है ? कहता है, मुझे सब कुछ पता है। क्या उसे सब कुछ ज्ञात है ? तो क्या उसे उस रात की बात का भी पता है ?

मन से विकल पुलोमा दुबारा सोमदत्त के चेहरे की ओर नहीं देख सकी। उसने सिर झुकाकर ही आंख के कोने से सोमदत्त के चेहरे का अध्ययन किया। सोमदत्त पुलोमा को देख रहा था—वक्र आंखों से। पुलोमा को वह क्षण असह्य जान पड़ा। वह उठकर अपनी कोठरी में आ गयी।

कोठरी में आकर वह बहुत ही उद्विग्न हो गयी। 'क्या पता है उन्हें ? यदि सचमुच ही उन्होंने उस रात हम लोगों को देख लिया था, तो इस लज्जामय नग्नता में कैसे उनके साथ जीवन बिता सकती हूं मैं ?' फिर मन को कमजोर होने से बचाने के लिए उसने सोचा—'अहँ, हो नहीं सकता ! उन्हें कुछ भी पता नहीं है।'

क्रम

कोठरी की जमीन पर परसों रात के दीपक के तेल का चिह्न अभी भी बाकी था— टेढ़ी-मेढ़ी काली रेखा। उससे उसे आश्वासन-सा मिला। उसे लगा कि उस अनुभव के सुख को कोई उससे छीन नहीं सकता। उसी से वह ऐश्वर्यवती, भाग्यवती और सौभाग्यवती हुई है।

पुलोमा मन को दृढ़ करती हुई कहती— क्या पता है सोमदत्त? तुम्हें कुछ पता नहीं है। तुमने तो सदा-सर्वत्र मुझे दुःख और व्यथा देना ही सीखा। तुम्हारे साथ के इतने वर्षों के सहजीवन में पीड़ा के अनुभव के सिवा, विवशता के सिवा मैंने कुछ नहीं पाया। आज जबकि मैंने अपने जीवन में एक बार सुख पाया, तो तुम उसी अंधशत्रुता से उसे समाप्त करना चाहते हो यह कहकर कि "मुझे सब पता है!" क्या पता है तुम्हें? सोमदत्त, तुम ईर्ष्यालु हो, मेरे प्रति ईर्ष्यालु हो; इसलिए अनजाने में भी तुमसे मेरे अहित की चेष्टा हो रही है।.....यदि तुम्हें मेरे प्रति ऐसा दुर्भाव है तो सुनो, मैं भी तुम्हें हृदय से घृणा करती हूं।' और कोठरी में अकेली बैठकर मुंह बिगाड़ते हुए उसने अनुभव किया कि सचमुच वह सोमदत्त से घृणा करती है। उसे लगा कि उसका जीवन अत्यंत सुखपूर्ण हो सकता था, यदि उसके जीवन में सोमदत्त न आया होता।

उधर सोमदत्त का मन भी पुलोमा के तुरंत उठकर चले जाने के बाद बेचैन हो उठा और वह कोठरी में बहुत देर तक यों ही टहलता रहा। 'जब मैंने पुलोमा से कहा कि 'पुलोमा, मुझे सब पता है' वह चौंकी क्यों? पहले के वार्तालाप में तो बड़े ही समर्पण-भाव से उसने स्वयं को पापी कहा था; पर मेरी बात सुनते ही उसके कान क्यों खड़े हो गये? मेरी सहज उक्ति के प्रति भी ऐसी सजग चेष्टा क्यों हुई उसकी?'

सहसा उसके हृदय में ईर्ष्याग्नि दहक उठी—पुलोमा अपने गुप्त सुख को अपने पति से भी गुप्त रखना चाहती है। अपनी किशोरावस्था पुलोमा ने जिस गांव में व्यतीत की, वहां भीलों का भी निवास था। क्या उस समय ही कोई भील युवक उसके हृदय में निवास कर रहा था? क्या इसीलिए वह स्वाति की सीपी की तरह खुल गयी थी उस रात? वैसी तन्मयता तो अतीत की किसी अतृप्त वासना के कारण ही हो सकती है। सोमदत्त को याद आया कि उस रात पुलोमा जैसे किसी की प्रतीक्षा करती बैठी थी। उसकी उस रात की चेष्टा में आनंद की कठोरता थी। क्या वह चेष्टा व्यभिचार-चेष्टा नहीं थी? हठात् सोमदत्त चिल्ला उठा—'असती नारी!' उसे जीवन के प्रति विरक्ति हो गयी। उसे अत्यधिक शिथिलता का अनुभव हुआ।

○○○

यदि किसी बड़े समाज में सोमदत्त और पुलोमा का निवास होता तो संभवतः अन्य लोगों के साहचर्य से वे स्वयं को स्थिर रखने में सफल हो जाते। एक रात की वह घटना समाज में घटने वाली बड़ी-छोटी घटनाओं के बीच शायद स्वाभाविक रूप ले लेती

और उसके ऊपर समय का आवरण पड़ जाता। लेकिन यह उस एकांत आश्रम में संभव नहीं था। सो जैसे-जैसे दिन बीतते गये, अन्य घटनाओं के अभाव में वह घटना अतिशय महत्त्वपूर्ण बनती चली गयी—जैसे छोटा बीज धीरे-धीरे विशाल वट-वृक्ष बन जाता है। उस वटवृक्ष ने उनकी संपूर्ण मनोभूमि को आच्छादित कर लिया था। इससे वे एक-दूसरे को भूल नहीं पाते थे। वे कभी-कभी अस्वाभाविक रूप से दांपत्य-स्नेह से ओतप्रोत हो जाते और एक-दूसरे के मर्म को समझकर सहानुभूति में मन ही मन कहते—'बेचारी पुलोमा, अज्ञान के कारण दुःख भोग रही है।' ..... 'बेचारा सोमदत्त मन के द्वारा ठगा गया है।' और कभी अकारण वैमनस्य के जोश में एक-दूसरे को मन ही मन शाप देने लगते।

एक बार सोमदत्त अपने मन को ढाढ़स देते हुए खुद से बोला—'स्वस्त्रीगमन पाप नहीं है। वह धर्मशास्त्र-विहित है। यद्यपि एक प्रकार की विस्मृति में यह कार्य संपादित हुआ, लेकिन क्षणिक मदनोन्माद में भी मेरा पैर सत्पथ में ही पड़ा है। धर्मशास्त्र मुझे किसी तरह पकड़ नहीं सकता—किसी तरह का आरोप मुझ पर नहीं लगा सकता।' लेकिन तो भी उसे एक बात साल रही थी। उसे मिली शिक्षा के अनुसार पति-पत्नी का वही शरीर-संबंध शास्त्रानुकूल होता है, जो संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से हो। वासना उस उद्देश्य को कलुषित बनाती है। पति-पत्नी का समागम निष्काम कर्म है।

लेकिन इसी स्थल पर आकर वह अपने तर्कबुद्धि, शिक्षा-दीक्षा और शास्त्राचार के साथ अपने आनंद को जोड़ नहीं पाता था। इसीलिए वह बारंबार बेचैन हो उठता था। लेकिन वह कभी मुक्तकंठ से सुम्निमा को धिक्कार न पाता था। वह कहता—'सुम्निमा का क्या दोष? तब क्या पुलोमा का दोष है? उसका भी कोई दोष नहीं है और न मेरा ही है। पति का सहज स्वाभाविक संबंध पत्नी के साथ स्थापित करके मैंने निश्चय ही कोई दोष नहीं किया है। वह संबंध-जनित आनंद उस संबंध की अप्रतिहार्य उपलब्धि है। उसे ही प्रेम कहते हैं।' जैसे एक नये ज्ञान की प्राप्ति हुई हो, ऐसे बोल पड़ा वह-'यह आनंद, यह प्रेम पति-पत्नी के बीच उत्पन्न होने के कारण दोषरहित है।'

अचानक उसने प्रेम के नये प्रकाश में पुलोमा को देखा। उस प्रकाश में विगत-यौवना पुलोमा एक अद्भुत सुंदरता से मंडित हो गयी। व्यग्र होकर सोमदत्त पुलोमा के कक्ष में आ गया।

उस समय पुलोमा अपने कक्ष के एकांत का सुख भोगती हुई बैठी थी। भील युवक की याद उसके शरीर में अद्भुत सुख का संचार कर रही थी—जैसे किसी आनंददायी स्वप्न में डूबी हो। सुख के उस क्षण में हठात् सोमदत्त के उस कक्ष में आ जाने से पुलोमा का स्वप्न भंग हो गया। वह संयत होकर बैठ गयी और उसने विरक्ति की दृष्टि से सोमदत्त को देखा। हठात् उसे लगा—'कितना कुरूप व्यक्ति मेरा पति है!'

किंतु सोमदत्त अत्यंत आग्रह के साथ पुलोमा के निकट बैठ गया, उससे सटकर। उसके स्पर्श से बचने के लिए पुलोमा जरा [illegible] हट गयी। सोमदत्त ने आर्द्र स्वर में कहा–'सौम्ये, आज मैं प्रेमकातर हूं।'

पुलोमा ने चकित होकर सोमदत्त को देखा–एक झुर्री वाला चेहरा ये शब्द बोल रहा है; कंधों से लटके हुए उसके दो सूखे हाथ किसी ठूंठ शाखा की तरह हैं। बोली–'कितना अशोभनीय वाक्य है तुम्हारा आज, ब्राह्मण!'

मर्माहत सोमदत्त ने कहा–'क्या पति में प्रेम का प्रादुर्भाव होना अशोभनीय है?'

पुलोमा ने कठोरता से कहा–'तुम मेरे पति हो, पर हमारा संबंध प्रेम का नहीं है।'

सोमदत्त ने भी कठोर बनते हुए पूछा–'फिर कैसा संबंध है हमारा, यदि प्रेम का नहीं है तो?'

'केवल कर्तव्य का', पुलोमा दृढ थी–'तुम्हारे प्रति मेरा पत्युचित कर्तव्य है, जैसा कि तुम्हारा मेरे प्रति पत्युचित। इसमें प्रेम का स्थान कहां है?'

'तब क्या वह संभोग में है?'

'वह प्रेम की आग्रह-जनित वस्तु नहीं है। यह हमारे बीच मात्र कर्तव्य का संपादन है।'

एकदम परास्त हो गया सोमदत्त। लेकिन इससे उसका क्रोध उग्र हो उठा। बोला–'पुलोमा, इसीलिए मैं तुमसे पत्नी के कर्तव्य की मांग करने आया हूं। कहां है मेरा कमंडलु?' उसने एकदम चिल्लाते हुए कहा–'तुम उसे सुबह-शाम दोनों वक्त मांजतीं क्यों नहीं? कहां है मेरा मृगचर्म? उसे नित्य धूप में क्यों नहीं सुखातीं? क्यों आंगन यथासमय नहीं लीपतीं? क्यों? ......क्यों?'

पुलोमा अवाक् होकर क्षण-भर सुनती रही। फिर अत्यंत वितृष्णा के स्वर में बोली –'ब्राह्मण, आज तुम विमूढ होकर चिल्ला रहे हो।'

सोमदत्त ने पुलोमा की बात सुनकर भी ठीक से नहीं सुनी। वह तो बस पुलोमा के चेहरे पर आयी वितृष्णा को लक्ष्य करता रहा। उसने कठोर स्वर में चीखकर कहा– 'मैं आज तुम्हारे पास पति के प्रति पत्नी के कर्तव्य का दावा करने आया हूं। समझीं, प्रत्युत्तर देने वाली असंस्कृता नारी? मैं संभोग के अपने अधिकार का दावा करता हूं–अभी, इसी क्षण।'

पुलोमा तेजी से उठी। तीव्र क्रोध और उग्र घृणा से उसका शरीर कांप रहा था। उसने कमर में बंधे हुए वस्त्र की ग्रंथि खोल दी। अब वह सर्वांगनग्न होकर सोमदत्त के आगे खड़ी थी।

यह देख जैसे सोमदत्त के शरीर से सारी शक्ति लुप्त हो गयी। क्रोध को कायम रख पाने की भी शक्ति उसमें नहीं रह गयी। उसकी देह एकदम ठंडी हो गयी। 'कितना असुंदर, रसहीन, शुष्क है यह शरीर–सूखी लकड़ी का ठूंठ। इसीलिए यह नग्नता अत्यंत बीभत्स है।' उसे लगा।

क्रोध से भस्मीभूत हुई पुलोमा तभी लांछना और घृणा के स्वर में बोली–'अश्लील

पुरुष ! संभोगकामी असंयमी ब्राह्मण ! लो अपने अधिकार का प्रयोग करो ।'

एकदम परास्त सोमदत्त तेजी से उठा और जाते-जाते लांछना और असीम घृणा के स्वर में बोला–'अतिनिर्लज्ज नारी !... असंस्कृत बर्बर स्त्री ! ... ढंको अपनी यह बीभत्स नग्नता ।'

वह द्रुतगति से अपने कक्ष में प्रविष्ट हो गया । उसने पत्नी के कुरूप शरीर को याद करके अत्यंत वितृष्णा से मुंह बिचकाया । तभी मानो इसी क्षण की प्रतीक्षा में बैठी-सी सुम्निमा की नग्न देह उसकी चेतना में उद्भासित हुई–असंख्य अवसरों पर और असंख्य भंगिमाओं के साथ उसके द्वारा देखी हुई वह दीप्तियुक्त कांचन देह । उसने मन ही मन कहा–'क्या नग्नता भी इस तरह विभिन्न प्रकृतियों की होती है–एक बीभत्स और कुरूप, और दूसरी सौम्य और सुंदर ? क्या स्वप्न भी इसी तरह भिन्न प्रकृतियों के होते हैं–सुखमय स्वप्न, और क्लेशदायी दुःस्वप्न ?'

पुलोमा बहुत देर तक उसी तरह खड़ी रही निर्वसना । क्रोध और घृणा के वेग से उसका शरीर कांप रहा था । बहुत प्रयत्न करके उसने अपने मन को तो नियंत्रण में कर लिया; लेकिन उसकी देह की कंपकंपी रुकी नहीं । उसे लगा कि आज उसकी देह अपने संपूर्ण यौवन-काल की वंचना और रिक्तता की भूख से असह्य होकर क्रंदन कर रही है और उस वंचना के मूर्त रूप अपने पति पर उसके संचित क्रोध की संपूर्ण रिक्तता फूट पड़ी है।

फिर एकाएक वह वात्सल्य से द्रवित होकर अपनी ही देह को सहलाने लगी, जैसे कोई दरिद्र मां अपने भूखे बालक को भोजन के अभाव में स्नेह देती है । अपने जीर्ण-शीर्ण शरीर के प्रति उसमें बहुत ममता जाग पड़ी। स्नेह के मुलायम हाथों से वह अपने शरीर को सहला रही थी–जांघ, कमर, पेट और स्तन सबको। फिर अपने शरीर के प्रति सहानुभूति में वह गरम-गरम आंसू बहाने लगी । पहले एक-दो बड़ी बूंदें पेट पर से ढरकती हुई जमीन पर गिरीं; फिर वह भूमि पर गिरी हुई साड़ी में मुंह गड़ाकर फूट-फूटकर रो पड़ी । कुछ समय के क्रंदन के बाद आंसू पहले की तरह तीक्ष्ण और तप्त न रहे, बल्कि उष्ण धारा के समान उसे विलासिता का आनंद देते हुए, उसके शरीर को हल्का करते हुए बहते रहे बहुत देर तक।

आंसुओं का बहना रुकने के बाद उसे उस रात की घटना का स्मरण हुआ और उसकी स्मृति से ही वह एक बार आनंद से कांप गयी । अकारण ही उसके मन में सारे विश्व के प्रति सद्भावना छा गयी । उसने सोचा–'सोमदत्त का भी क्या दोष ? यदि दोष है तो मुझमें है । जीवन में पहली बार आग्रह के साथ मेरे पास आये थे । मैंने उन्हें तिरस्कृत करके लौटा दिया । जीवन में पहली बार प्रेम उदय होना चाहता था ; उसके उषा-काल में ही मैंने उसे बादल से ढंक दिया।'

उठकर उसने साड़ी पहनी, मुंह पोंछा और जीवन में पहली बार केश-प्रसाधन

की ओर ध्यान दिया। बालों में तेल डालकर वह स्वयं से बोली–'प्रेम ! आज यह अनूठी भावना मेरे हृदय में पैदा हुई है।' उसने आंगन के समीप के रक्तकरवीर के पौधे से एक पुष्प तोड़ा और बालों में खोंस लिया। फिर वह स्फूर्ति के साथ सोमदत्त की कोठरी की ओर चल पड़ी।

क्लांत सोमदत्त कुशासन पर बैठा था और मन ही मन बार-बार कह रहा था–'क्यों कोई नारी-शरीर वैसा कुरूप, बीभत्स और विरक्तिकर; और क्यों कोई अत्यंत सुंदर, सुरुचिपूर्ण, कलात्मक और आकर्षक?' बार-बार उसकी आंखों के सामने सुम्निमा आती और वह कह उठता–'सुम्निमा क्यों इतनी अनिंद्य ?'

तभी पुलोमा आ पहुंची। किंचित् संकोच और क्षमा-याचना के भाव के साथ सोमदत्त के पास बैठ गयी सटकर। फिर धीरे-से उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। सोमदत्त ने हाथ खींच लिया और थोड़ा अलग हटकर बोला–'यह क्या ?'

पुलोमा को अचानक विफलता की सूई हृदय में चुभती जान पड़ी। तो भी उसने स्नेह से आंखें बड़ी-बड़ी करके सोमदत्त को देखा–वे आंखें क्षमा-याचना की लज्जा से संकुचित नहीं थीं, वरन आग्रह से विस्फारित थीं। बोली–'प्राणनाथ ! मुझे क्षमा कर दीजिये।'

सोमदत्त ने कठोर शुष्क स्वर में दुबारा कहा–'यह क्या ?'

अब तक पुलोमा पराभूत हो चुकी थी। उसके हृदय में उत्पन्न हुई लालसा मुरझाने लगी। वह कुछ नहीं बोली।

ओंठ को कुछ सिकोड़ते हुए व्यंग्यपूर्ण स्वर में सोमदत्त बोला–'आज यह कैसा परिधान पुलोमा ? और यह कैसा केश-विन्यास ? यह लाल पुष्प लगता है, जैसे किसी सूखे वृक्ष में किसी ने एक करवीर का पुष्प खोंस दिया हो।'

अपमान की लज्जा से पुलोमा धरती में गड़ने लगी। सबसे बढ़कर लज्जा तो उस पुष्प को हुई, जिसे पुलोमा ने अपने बालों में लगा लिया था। उसने सिर झुका लिया।

सोमदत्त ने आक्रमण जारी रखा–'तुम मर्यादाशून्य हो गयी हो। तुम्हारे वृद्ध शरीर में पाप-भावना जग गयी है पुलोमा!'

'पाप ?' हठात् पुलोमा लज्जा का परित्याग करते हुए बोली–'पाप ! क्या पति-पत्नी का प्रणय पाप है ?'

सोमदत्त को मनुवा-दह से वापसी की रात्रि की घटना याद आ गयी और उसके बाद से अपनी पत्नी के बदलते आचरण की भी। ईर्ष्यासिक्त वाणी में उसने कहा–'कहां से आया प्रणय आज तुममें ? कहां से आयी शरीर का शृंगार करने की लालसा? किस गुप्त अवांछनीय कामना से प्रेरित हुआ है तुम्हारा प्रणय आज ?'

पुलोमा मात्र इतना कह सकी–'हृदयहीन पुरुष ! तुम पति के रूप में मेरे शत्रु हो...... हाय !'

सोमदत्त आघात पर आघात करता चला गया–'नारी ! तुम्हारे अभी के आचरण से

स्पष्ट है कि तुम्हारे अंदर पाशविक प्रवृत्ति जागृत हो गयी है। संयम और धैर्य का परित्याग करके, बालों में तेल लगाकर, रक्त करवीर का पुष्प सजाकर तुम उन्मादिनी की भांति छटपटा रही हो। यह तुम्हारा प्रणय नहीं है—मेरे प्रति आग्रह नहीं है—यह सतीत्व नहीं है। तुम अनार्य भीलनी की तरह बर्बर हो गयी हो।'

ईर्ष्या के वशीभूत होकर सोमदत्त पत्नी के आग्रह को किसी परपुरुष भील के प्रति आग्रह समझकर ठुकरा रहा था। यह बात वह स्पष्ट रूप से कहना नहीं चाहता था, इसलिए उसकी बातें हेतुहीन और अप्रासंगिक लग रही थीं। उसने कहा—'तुम अनार्य हो गयी हो अपनी प्रवृत्ति में, स्वभाव में, शारीरिक चेष्टा में। संपूर्ण आर्य संस्कृति, शास्त्र-शिक्षा, धर्मादेश तुम्हारे अंतर से विलुप्त हो गये हैं। ईश्वर ने तुम्हें छोड़ दिया है, त्याग दिया है.....'

लज्जा से जर्जर पुलोमा तब तक फिर क्रोध में आ गयी थी। उसने कहा—'सोमदत्त, यह कैसा तात्पर्यहीन अनर्गल प्रलाप कर रहे हो तुम? कहां से आया ईश्वर का प्रसंग यहां? ईश्वर का प्रश्न ही कैसे पैदा हुआ?'

'हमारा आर्य ईश्वर तुमसे विदा ले चुका है।.....इसलिए तुम उन्मादिनी, असंयमी, अनार्य भीलनी हो गयी हो.....'

'ईश्वर कौन है?' पुलोमा ने चिढ़कर पूछा।

शास्त्रार्थ में विजेता पंडित अंतिम निर्णय सुना रहा हो, इस तरह सोमदत्त बोला-'तुम्हारा यह प्रश्न ही प्रमाणित करता है कि तुम ईश्वरशून्य हो गयी हो। इतने वर्षों के बाद, अध्ययन और धर्मानुष्ठान का दीर्घ जीवन व्यतीत करने के बाद मृत्यु से समय पूछती हो—ईश्वर कौन है? तुम ईश्वरहीन नारी हो गयी हो, इसका इससे बड़ा प्रमाण क्या चाहिये?'

पुलोमा ने पूरी दृढता से कहा—'नहीं, मैं ईश्वर को अमान्य घोषित नहीं करती। बल्कि मैं उसे मात्र अपने शरीर में विद्यमान पाती हूं। मैं अपनी अंधकामना में अनुमोदित हुए.....' तभी पुलोमा को लगा कि यह निरर्थक विवाद है। एक भावनाशून्य और सूखे पुरुष के सामने अनुभव-सिक्त वाक्य का कोई अर्थ नहीं है। वह तेजी से उठी, किंतु जाते-जाते बोली—'ईश्वर हमारा शत्रु नहीं है।'

अपने कक्ष में आकर वह धम्म-से बैठ गयी और मस्तक पर हाथ रखकर अपने आपसे बोली—'ओह, कैसी मूर्ख हूं मैं! और सोमदत्त की कैसी वंचना, कैसा धोखा! केवल सत्य और निष्कपट रहा है उस रात्रि का क्षण—स्थायी घड़ी का अशेष आनंद।'

इस प्रकार प्रेम के संधान में एक दूसरे का आग्रहपूर्वक पीछा करते हुए भी उन्हें प्रेम का पारस्परिक क्षण एक साथ कभी नहीं मिला। इस प्रकार के प्रत्येक निष्फल साक्षात्कार के बाद वे लोग क्रमशः दूर ही दूर होते गये।

०००

एक दोपहर को निष्काम-भाव से कोठरी में बैठी पुलोमा को नारी के सहज ज्ञान से बोध हुआ कि वह गर्भवती हो गयी है। आनंद का अनुभव करते हुए वह तेजी से ...। सुख भी इस तरह बेचैन कर सकता है, यह उसने नहीं जाना था। विचारशून्य आनंद का महासागर मन में लहरा रहा था। यों ही प्रसन्न होती हुई कुटी के बाहर आंगन में निकल आयी। प्रसन्न होती हुई गोगृह में गयी और आनंद से उद्वेलित होकर कपिला की गरदन में बांहें डालते हुए बोली–'गोमाता, कपिला माता! अब मैं भी माता होने वाली हूं।' क्षण-भर गाय के साथ चिपटी रही, फिर उसकी गरदन को सहलाने लगी। तब उसने सोचा–'यह शुभ संवाद सोमदत्त को भी सुनना चाहिये।'

स्फूर्ति के साथ सोमदत्त के कक्ष की ओर जाते हुए उसके चरण वहां पहुंचते-पहुंचते लज्जा से शिथिल हो गये। संकोच से सिर नीचा किये वह दरवाजे पर खड़ी रही। उसने आशा की थी कि सोमदत्त उठकर पास आयेगा और उसका हाथ पकड़ लेगा और वह उसके स्पर्श से क्रमशः गड़ती जायेगी। स्त्रीय लज्जाभाव था पुलोमा में। आनंद का ऐसा उद्रेक न होता तो शायद लज्जा भी उस सीमा को न छूती।

लेकिन कहां! सोमदत्त ने तो कोई उत्साह नहीं दिखाया और कुछ क्षण बाद अत्यंत शुष्क वाणी में प्रश्न किया–'क्यों इस तरह खड़ी हो? भीतर आने का मन हो तो आ जाओ। आओ।

पुलोमा के अंदर का सारा उत्साह लुप्त हो गया। उसे लगा कि उसकी लज्जा अनावश्यक और असामयिक है। लज्जा तो प्रेमी के प्रति प्रदर्शित की जाने वाली चीज है।

उसने युद्ध की घोषणा के समान चुनौती के स्वर में कहा–'मैं गर्भवती हो गयी हूं।'

सोमदत्त ने उसी प्रकार नीरस स्वर में जवाब दिया–'अच्छा हुआ। अब तुम उस पुत्र की कामना करो, जो हमारे कुल का उद्धार करेगा।'

'क्या आज तुम्हें इतना ही कहना है?'

'तो और क्या कहूं? जो काम साधारण नारी सहज ही कर सकती है, उसमें इतने दिनों बाद यदि तुम सफल हो गयीं तो कौन-सा बड़ा काम कर लिया?'

पुलोमा ने उत्तेजित होकर कहा–'तुम्हें पिंड देने वाला चाहिये था। वह मैंने देर-सवेर जैसे हो सका, दे दिया। तुम माता की दृष्टि से इस घटना पर विचार नहीं कर सकते तो न सही, पर कम से कम पिता की दृष्टि तो रख सकते हो!'

उत्तर में सोमदत्त न जाने क्या बोलता रहा, जिसे अनसुना करके पुलोमा तेजी से अपनी कोठरी में चली गयी।

सोमदत्त मन ही मन बड़बड़ाया–'इसके पेट की संतान ने मात्र निमित्त के रूप में मेरे वीर्य को ग्रहण किया है, वरना वह तो किसी भील की मानस-संतान है।'

पुलोमा अपनी कोठरी में आकर आहत स्वर में स्वयं से बोली–'यदि मैं भीलों के

११७९

घर में होती तो आज कैसा उत्सव मनाया जाता वहां, ढोल और नृत्य के साथ !'

इस विषय को लेकर वे दोनों बहुत दिनों तक मन ही मन एक दूसरे से घृणा करते रहे। पुलोमा को लगा कि आनंद की विह्वलता में वह अपने मर्म को सोमदत्त के सामने उद्घाटित करने आयी थी और सोमदत्त ने उस उद्घाटित मर्मस्थल पर निर्दयतापूर्वक कोड़े का प्रहार किया था। और इधर सोमदत्त सोचता था–किसी नारी में व्यभिचार-जनित इतनी निर्लज्जता और ऐसा आनंद !

उनके बीच अस्पष्ट और परोक्ष रूप से खींचतान होती ही रही और एक दिन उनका विवाद मर्यादा को लांघ गया। तृतीय प्रहर के अवकाश-काल में सोमदत्त अपनी कोठरी में अकेला बैठा सोच रहा था –'इतने वर्षों तक मेरे अथक परिश्रम और प्रयास के बाद भी पुलोमा वंध्या की वंध्या ही रही थी। मुझमें कौन-सा ऐसा अनाकर्षण था कि पुलोमा का गर्भ मेरे प्रति रुद्ध ही रहा था ? फिर ऐसा कौन-सा तत्त्व उस रात प्रकट हो गया उसके अंतर्हृदय में कि वह निर्बंध होकर उद्घाटित हो गयी और तत्क्षण गर्भ धारण करने में समर्थ हो गयी ? उस रात उसके लिए मैं नहीं था; वह उस समय किसी और के साथ रमण कर रही थी। एक सिहरन के साथ उसे स्मरण हो आयी पुलोमा की उस रात्रि की दुर्दांत चेष्टा। वैसा उग्र और प्रचंड रूप तो उसने पहले कभी नहीं दिखाया था। मर्माहत होकर वह चिल्ला उठा–'उसके लिए मैं नहीं था उस रात। आज भी मैं उसके गर्भ का पिता नहीं हूं।'

ईर्ष्या के दाह से छटपटाता हुआ वह कोठरी के बाहर निकला। उसकी दृष्टि एक वृक्ष की ओट में बैठी पुलोमा पर पड़ी, जो एकाग्रचित्त होकर अपने बढ़े हुए विवस्त्र पेट को निहार रही थी और धीरे-धीरे हाथ से सहला रही थी। भावी मातृत्व के संतोष से दीप्त उसके चेहरे को देखकर सोमदत्त क्रोध से दग्ध हो उठा और चिल्लाया –'नारी, तुम किस बात से इस तरह आनंद-विभोर हो ? मैं ही था तुम्हारे साथ उस रात, समझीं ?'

पुलोमा हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई, नीचे खिसकी साड़ी को संभालती हुई। सोमदत्त के वाक्-प्रहार से आहत वह चिल्लायी–'किस रात, किस रात ?'

'उसी रात, जिस रात तुम यह समझकर संलग्न हुई कि कि तुम व्यभि...... मैं ही हूं उस रात का भील, दुर्मते!'

पुलोमा को लगा, सोमदत्त उसका आजीवन शत्रु है, जो उसके मातृत्व की हत्या करने उद्यत होकर आया है। उसने भी कड़ककर कहा–'ब्राह्मण, तुमने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि तुम्हारी ब्राह्मणी कितनी पतिव्रता रही है। लेकिन निर्दयी, आज तुम स्वयं को उस रात का भील बताकर मेरे उस सुख को भी छीन लेना चाहते हो ? मन के सुख से भी ईर्ष्या करने वाले अधम पुरुष!'

उस दिन से वे लोग एकदम अकेले हो

गई। अपने पेट में संतान को पालती हुई हुआ दिन-भर मन में भील को याद करके कभी आनंदित और कभी उदास होती हुई बैठी रहती थी पुलोमा। सोमदत्त अकेला कोठरी में बैठा रहता और कभी-कभी उत्तरी किनारे पर जाकर ऊपर के पहाड़ को देखता रहता। वहां से ऊपर उठते धुंए को देखकर वह मन ही मन सोचता—'सुम्निमा का गांव है वह.....।'

०००

समय पूरा होने पर पुलोमा ने पुत्र को जन्म दिया। प्रारंभ में सोमदत्त ने बच्चे में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। लेकिन जब बच्चा घुटने टेकते हुए पुलोमा की कोठरी से उसकी कोठरी में आ जाता, तो उसमें स्नेह पैदा होने लगता। घुटनों के बल चलते हुए बालक को वह उठा लेता और कहता—'अंततः यह मेरे ही वीर्य की रचना है। पुलोमा तो मात्र क्षेत्र थी। क्षेत्रपति तो मैं हूं।' बालक को वह छाती से लगा लेता। लेकिन तभी उसे सुम्निमा की याद आ जाती और वह बोल उठता—'मेरा यह पुत्र सुम्निमा के मानस-गर्भ से उत्पन्न हुआ है।'

लेकिन कभी ऐसा भी होता कि बालक को समीप आया देखकर सहन न कर पाता और क्रोध से चिल्ला पड़ता—'भागो यहां से।' बालक डरकर रोने लगता। तब पुलोमा अपनी कोठरी से दौड़ती हुई आती और उसे उठाकर तेजी से अपनी कोठरी में चली जाती। फिर बालक के मुंह में स्तन देकर थपथपाती और कहती—'क्यों गये वहां? वहां मत जाया करो, मेरे राजकुमार।' उसके स्तन से दूध की धारा बहने लगती। वह देर तक पुत्र का चुंबन लेती रहती।

सोमदत्त अपनी कोठरी में अकेला बड़बड़ाता—'मेरे वीर्य का होने से क्या हुआ? माता के लिए तो यह पुत्र व्यभिचार-वासना का परिणाम है। भील है इसका मानस-पिता।' उधर पुलोमा चुंबनों से बालक का पूरा मुख भिगा देती और कहती—'पितृहीन अभागा!'

ऐसे क्षुब्ध घर में बालक बढ़ता रहा। उसकी शिक्षा-दीक्षा की कोई व्यवस्था नहीं हुई। वह अपने माता-पिता के स्नेह का निश्चित बिंदु भी नहीं था। मां अधिकांशतः अस्वाभाविक वात्सल्य के आधिक्य से स्नेह में उसे डुबाये रखती और कभी अकारण ही क्रोध से पीटने लगती—'तू भाग्यवान होता तो मेरे यहां पैदा होने नहीं आता....।'

तब सोमदत्त कोठरी से ही चिल्लाता हुआ आता—'राक्षसी, पति का तो तूने सत्यानास कर ही दिया, अब क्या पुत्र का भी भक्षण करना चाहती है?' और बालक को अपनी कोठरी में ले जाकर स्नेह से सिर सहलाते हुए कहता—'मत जाओ तुम मां की कोठरी में, मेरी ही कोठरी में रहा करो। ..... और अब तो तुम्हें अक्षर-ज्ञान भी कराना है।'

विचित्र स्थिति में पड़कर बालक चुपचाप ताकता रहता।

०००

कुछ और बड़ा होने पर, बालक गाय को लेकर कोशी-तट पर जाने लगा। वह वहीं दिन-भर गाय चराते हुए घूमा करता। थक जाने पर शमी वृक्ष की छाया में विश्राम करता। एक दिन वहां एक बालिका आयी। उसने कहा–'मैं सुम्निमा की बेटी हूं और तुम?'

वह बोला –'मैं सोमदत्त का पुत्र।'

एक ही दिन के परिचय में वे एक-दूसरे से बहुत हिल गये। सोमदत्त के पुत्र के लिए दिन-भर में सबसे अधिक आनंददायक समय वही होता, जब वह गाय चराने के लिए नदी के किनारे पहुंचता था। वहीं आ पहुंचती थीं सुम्निमा की बेटी भी। एक दिन वह बोली–'तुम मेरे यावा।' सोमदत्त के पुत्र को चकित देखकर उसने फिर कहा–'समझे नहीं? यावा माने साथी।'

सुनकर बालक खुश हुआ। प्रसन्नतापूर्वक बोला–'तुम भी मेरी यावा।'

वे बालू पर बैठे हुए थे और एक-दूसरे की छाती को उंगली से छूते हुए कहे जा रहे थे–'तुम मेरे यावा! .....तुम मेरी यावा!' क्रीडा के इस नये आविष्कार से वे खूब प्रसन्न थे और हंस रहे थे। एक क्षण के बाद सुम्निमा की बेटी ने कहा–'चलो यावा, अब कोशी में नहायें।'

उसके पीछे-पीछे चलते हुए सोमदत्त का पुत्र भी नदी में प्रविष्ट हुआ। वह बोली–'तुम्हारा पहना हुआ यह कपड़े का टुकड़ा भीग जायेगा। उसे खोलकर कंधे पर डाल लो, तब पानी में घुसना।'

घुटने तक जल में खड़े होकर सोमदत्त के पुत्र ने कहा–'माता-पिता देख लेंगे तो गुस्सा करेंगे।'

'यहां कौन देखेगा जी?' सुम्निमा की बेटी ने चारों ओर देखकर कहा।

सोमदत्त के पुत्र ने एक झटके में मेखला से बंधे हुए कौपीन को खोल दिया और किनारे के बालू पर फेंक दिया। वे दोनों बहुत देर तक नहाते रहे। संध्या समय जब सोमदत्त का पुत्र आश्रम आया, उसकी आंखें लाल-लाल थीं। उस दिन वह थककर चूर हो गया था।

उपसंहार

चतरा आश्रम उजड़ता चला गया। अब वहां यज्ञादि कार्य स्थगित हो गये थे। प्रसव-काल में ठीक से देखभाल न होने से पुलोमा रोगिणी हो गयी थी। बड़ी उम्र में गर्भ धारण करने के कारण उसने अपने जीवन के संपूर्ण रस से पुत्र को कुक्षि में पाला था। शरीर के रिक्त हुए उस पोषक द्रव्य की पूर्ति फिर नहीं हो पायी और पुत्र को जन्म देने के साथ वह बूढ़ी-सी हो गयी। छोटी-मोटी व्याधियां उस पर आक्रमण करने लगीं। वह कोठरी में पड़ी कराहती रहती। दिन-प्रतिदिन वह सूखती चली गयी।

सोमदत्त भी बूढ़ा होता जा रहा था। वह भी अपनी कोठरी से बिरले ही निकलता। धीरे-धीरे उसने कोशी-तट जाना भी छोड़ दिया था।

एक दिन सोमदत्त के पुत्र ने सुम्निमा

की बेटी को खबर दी–'मां बीमार हो गयी है।' उसने यह वाक्य ऐसे भावशून्य होकर कहा था, मानो किसी पराये की बीमारी की खबर सुना रहा हो। उसके स्वर में लेशमात्र भी चिंता का भाव नहीं था।

दूसरे दिन वह नदीतट पर गाय चराने नहीं आया। सुम्निमा की बेटी कुछ देर उसी वृक्ष की छाया में उसकी प्रतीक्षा में बैठी रही। फिर धीरे-धीरे पैर बढ़ाती हुई और सहमती हुई आश्रम की ओर चल पड़ी। आश्रम के दरवाजे पर आकर उसने धीरे से पुकारा–'यावा!'

सोमदत्त के पुत्र ने सुना। बाहर आकर बोला–'यावा, मेरी मां मर गयी।'

यह संवाद सुनते ही सुम्निमा की बेटी भागती हुई अपने गांव आयी और उसने अपने माता-पिता को आश्रम में पुलोमा की मृत्यु हो जाने की खबर सुनायी। उन्होंने गांव से कुछ लोगों को मदद के लिए आश्रम भेजा।

सोमदत्त के पुत्र ने कुछ दिनों तक सूना-पन अनुभव किया। सोमदत्त भी बीमार था, इसलिए वह, पुत्र क्या कर रहा है और कैसा है–देख नहीं पाया। पुलोमा की मृत्यु के बाद वह बिछावन से उठने लायक नहीं रहा था। पुत्र दिन-भर गाय चराता और दिन ढलने पर पिता की देखभाल करता, दूध गरम कर उसे पिलाता।

कभी-कभी सुम्निमा की बेटी खाने की कोई चीज ले आती और कहती–'मां ने भेजा है तुम्हारे लिए।' सोमदत्त का पुत्र पूछता–'और तुम्हारे लिए कहां है?' उत्तर मिलता–'मेरे लिए तो पकाया हुआ मांस है, दूसरे ही पत्ते में लायी हूं। मां ने कहा है कि तुम मांस नहीं खाते! .....तुम ब्राह्मण और हम किरात..... इसलिए।'

एक दिन भेंट होते ही उसने सोमदत्त के पुत्र से पूछा–'तुम्हारे पिताजी कैसे हैं? मां ने पूछा है।' सोमदत्त के पुत्र ने उत्तर दिया–'बहुत बीमार हैं।'

सच कहें तो सोमदत्त की अब जीवित रहने की कोई आकांक्षा नहीं थी। उसे लगता कि उसका पूरा जीवन ही व्यर्थ गया, जप, पाठ, पूजा, तपस्या और मोक्षप्राप्ति का यत्न सब निरर्थक हो गये। पुत्र से कोई ममता ही नहीं जुड़ी। 'सारी उपलब्धि ...कहां गयी उपलब्धि?' और सोचते-सोचते थककर वह लंबी सांस लेता।

दूसरे दिन सुम्निमा आश्रम में आयी। उसकी बेटी भी साथ थी। सोमदत्त की अवस्था देखकर बहुत दुःखी होकर सुम्निमा बोली–'मुझे खबर क्यों नहीं दी, सोमदत्त?' परिचित स्वर सुनकर सोमदत्त ने आंखें खोलीं। सुम्निमा सोमदत्त के सिर के समीप ही झुककर खड़ी थी। अब वह युवती नहीं रह गयी थी। ढलने की उम्र थी उसकी। उसकी पुत्री मां से सटकर खड़ी थी। लड़की को देखते ही सोमदत्त को कोशी-तट पर पहली बार देखी हुई सुम्निमा याद हो आयी। उसने आंखें झपकायीं। उसे लगा, जैसे वह किसी गहरी घाटी में चला जा रहा है–गहरी.....गहरी..... और गहरी; रिक्तता में

डूब रहा है..... डूब रहा है। आंखें बंद किये ए ही वह फुसफुसाया–'सु....म्नि...मा।'

सुम्निमा ने उसके ओंठों को कांपते देखकर सिर झुका लिया और उस के मुख के पास अपना मुख लाकर उच्च स्वर में पूछा–'क्या कह रहे हो सोमदत्त ?'

सोमदत्त के शरीर में एक हल्की हलचल हुई, मानो चेतना के अंतरतम तल में उसने सुम्निमा की आवाज सुनी हो। लेकिन तुरंत उसका शरीर निश्चल हो गया।

सुम्निमा की बेटी ने पूछा–'क्या हुआ मां इन्हें ? ये बोल क्यों नहीं रहे हैं?'

बेटी का हाथ पकड़कर सुम्निमा कोठरी से बाहर आयी और उससे आंखें बचाकर आंसू पोंछे। फिर भी दो बूंद आंसू उसकी आंखों से चूकर धरती पर गिर ही पड़े।

बाहर आकर सुम्निमा अशक्त होकर ओसारे पर बैठ गयी और बेटी से बोली–'जाओ बेटी, गांव से लोगों को बुला लाओ।' फिर उसने सोमदत्त के पुत्र को छाती से लगाते हुए कहा–'अब तुम्हें मेरे यहां चलना है, चलोगे ?'

'मैं यावा के साथ रहूंगा।' सोमदत्त के पुत्र ने गांव की ओर दौड़ती जाती हुई बालिका को उंगली से दिखाते हुए कहा–'वह, वह है मेरी यावा।'

सुम्निमा ने उसे फिर से छाती से लगा लिया और स्नेह से उसका मुंह चूम लिया।

सोमदत्त का दाह-संस्कार करने के बाद सुम्निमा सोमदत्त के पुत्र को साथ लेकर अपने गांव आयी। आश्रम की सारी चीजें ढोकर वह अपने घर लायी थी। आश्रम की गाय को भी गोशाला में डाल लिया।

आश्रम की चीजों–लंगोटी, कमंडल, धोती, मूंज की डोरी, पीढ़ा, कुशासन आदि–को एक-एक करके जांचती हुई सुम्निमा ने सोमदत्त के पुत्र से पूछा था–'क्या ये सामान तुम रखना चाहते हो अपने पिताजी की यादगार के रूप में ?' पर बालक में पिता के प्रति किसी प्रकार का स्नेहभाव नहीं था जैसे। उसने कहा–'नहीं, मैं इन्हें नहीं रखूंगा।'

'माता-पिता की याद में कोई एक-दो चीजें रख लो।' सुम्निमा के दुबारा कहने पर वह घबरायी हुई आवाज में बोला–'मुझे डर लगता है इनसे।' और सुम्निमा की बेटी के पास जाकर खड़ा हो गया।

आश्रम वीरान हो गया।

०००

किरात गांव में आने के बाद, कुछ दिनों तक सोमदत्त का पुत्र घबराहट के कारण क्षण-भर के लिए भी सुम्निमा की बेटी को नहीं छोड़ता था। उसी की देखादेखी अब वह भी सुम्निमा को 'मां' कहता था। सुम्निमा की बेटी भी उसे पाकर खुश थी तथा उसे गांव के बाहर के नये-नये स्थान दिखाने ले जाने लगी थी। गांव के लड़के-लड़कियों के साथ उसका परिचय कराते समय वह अभिमान से सिर तानकर कहती–'समझे, यह मेरा यावा है ! नीचे के आश्रम के ब्राह्मण का पुत्र।' सोमदत्त का पुत्र लज्जा अनुभव करते हुए खड़ा रहता। तब सुम्निमा

जून

की बेटी उसका हाथ पकड़कर कहती–'चलो, जंगल में फूल तोड़ेंगे ।'

कभी-कभी सोमदत्त का पुत्र कहता–'तो कोशी के किनारे नहीं चलोगी यावा ?'

तब वे कोशी-तट पर जाते । वहां पर कभी बालू पर दौड़ते-खेलते और कभी पानी में डुबकी लगाकर, तैरकर और एक दूसरे पर पानी उछालकर आनंद मनाते ।

कभी-कभी सोमदत्त का पुत्र शमी के वृक्ष के तने से पीठ टेककर यों ही एकटक ताकता हुआ बैठ जाता । तब सुम्निमा की बेटी उसके पास आकर पूछती–'क्या हुआ यावा ? इस तरह क्यों बैठे हुए हो ?'

वह चौंककर उठ खड़ा होता और कहता–'चलो तो यावा, आश्रम देखने चलें ।'

'अब वहां क्या है जो जाओगे ?' वह कहती ।

तो भी वह जिद करता और वे आश्रम जाते ।

एक दिन आश्रम पहुंचने पर सोमदत्त के पुत्र ने कहा–'अरे, गोशाला तो गिर गयी है देखो ।'

'सूने घर में मुझे डर लगता है ।' सुम्निमा की बेटी ने कहा ।

आश्रम की गिरी हुई कुटी से कभी-कभी सियार निकल आता । सुम्निमा की बेटी चिल्लाती हुई भागती । सोमदत्त का पुत्र भी उसके पीछे-पीछे भागता । कोशी-तट पर आकर ही वे रुकते ।

एक दिन सुम्निमा की बेटी ने अपनी मां से कहा–'देखो न मां, मेरा यावा कभी-कभी यों ही एकटक देखता हुआ बैठा रहता है । मेरे साथ खेलते हुए भी नहीं खेलता ।'

सुम्निमा ने बेटी को समझाया–'तुम्हारा यावा ब्राह्मण का पुत्र है । उसके पिताजी बहुत बड़े तपस्वी ब्राह्मण थे । इसीलिए उसके मन में अनेक तरह की बातें आती रहती होंगी, जिससे वह ध्यानस्थ हो जाता होगा ।'

'तो क्या मेरा यावा मुझे प्यार नहीं करता ?'

'ऐसा क्यों पूछती हो बेटी ?'

'अगर वह मुझे प्यार करता है तो आश्रम क्यों ले जाता है ? वहां मुझे डर लगता है ।'

'उसके माता-पिता नहीं हैं न, कभी-कभी उनकी याद आ जाती होगी ।'

सुम्निमा की बेटी उठकर बाहर आयी और सोमदत्त के साथ सटकर बैठ गयी, जो एक बड़े पत्थर पर बैठकर आकाश की ओर ताक रहा था । सुम्निमा की बेटी ने उसकी कमर को हाथ से घेर लिया, फिर क्षण-भर बाद पूछा–'यावा, क्या तुम्हें अपने माता पिता की याद आती है ? इसीलिए यहां तुम्हारा मन नहीं लगता है, न ?'

जब उसने कोई उत्तर नहीं दिया, तो सुम्निमा की बेटी का गला भर आया । उसने रोनी-सी आवाज में कहा–'यहां सभी लोग तुम्हें प्यार करते हैं । यह घर तुम्हारा है । मेरी मां तुम्हारी भी तो मां है । मैं भी तुम्हारी ही हूं ।'

०००

सुम्निमा की बेटी और सोमदत्त का पुत्र

अब बालक-बालिका नहीं रहे थे। कुछ दिनों में वे युवावस्था को प्राप्त कर लेंगे, तब क्या होगा—यह दुश्चिंता घेरे रहती सुम्निमा को। वह जानती थी, वे आपस में प्यार करते हैं, इसीलिए उसने अपने मन में दोनों को भावी पति-पत्नी के रूप में देख लिया था। 'लेकिन ब्राह्मण के पुत्र और किरात की बेटी के संबंध का न जाने क्या परिणाम हो? सोमदत्त का पुत्र किरात-समाज में पलकर बड़ा हुआ है; पर इससे क्या? रक्त तो उसका आर्य ब्राह्मण का ही है।'

कभी-कभी सुम्निमा की बेटी भी घबराहट में मां के पास आकर बताती—'देखो न मां, यावा वहां बिलकुल चुप बैठा है। पूछो तो कहता है, "यों ही बैठा हुआ हूं यावा। वहां नीचे देखो, आश्रम का सेमल का वृक्ष गिरा हुआ है, देख रही हो न? उसी को देखता हुआ बैठा था।" मां, वृक्ष तो गिर चुका है। उस सूने स्थान को क्यों ताकता रहता है वह?'

सुम्निमा को भी कई बार सोमदत्त की याद आती और उसकी याद में बहुत देर तक वह सुध-बुध खोये बैठी रहती।

सोमदत्त का पुत्र और सुम्निमा की बेटी बहुत बार एक-दूसरे की बात नहीं समझ पाते थे। लेकिन दोनों एक-दूसरे को बहुत प्यार करते। युवावस्था में पदार्पण करने के बाद उम्र के साथ जैसे-जैसे उनका प्रेम बढ़ता गया, उनके व्यवहार से सहजता लुप्त होती गयी। अब वे एक कोठरी में न रहते। सैर के लिए गांव के बाहर जाने पर चाहे जितना स्वच्छंद होकर घूमते, पर गांव पहुंचते ही एक-दूसरे का हाथ छोड़कर अलग हो जाते। पर एक दूसरे को बुलाते समय उसी तरह मधुर स्वर में कहते—'यावा!' गांव के भी लोगों के मन में यह बात बैठ गयी थी कि उन दोनों ने एक दूसरे को दूल्हा-दुल्हन के रूप में तय कर लिया है।

एक दिन वे दोनों सदा की तरह घूमते-घामते कोशी-तट पर आ गये। लेकिन आज न बालू पर दौड़े और न डुबकी लगाने कोशी नदी में उतरे। पहले की तरह उन्होंने गीत भी नहीं गाया। बल्कि बिना कुछ बोले, चुपचाप शमी वृक्ष के नीचे बहुत देर तक बैठे रहे। प्रेम की बहुत बोझिल घड़ी थी वह। सोमदत्त के पुत्र ने थूक से गले को तर करते हुए फटे स्वर में कहा—'यावा, मैं तुम्हें प्यार करता हूं।'

सुम्निमा की बेटी कुछ बोल नहीं सकी, अपने यावा का चेहरा भी नहीं देख सकी। सोमदत्त के पुत्र ने अपने कांपते हाथ से उसके झुके हुए चेहरे को ऊपर उठाया, तो उसने आंखें बंद कर लीं। सोमदत्त के पुत्र ने उसे आलिंगन-पाश में बांधकर, उसके मुख को चूम लिया। तब सुम्निमा की पुत्री ने भी सोमदत्त के पुत्र को जकड़ लिया। कोशी की मधुर कलकल ध्वनि के बीच प्रेम में एकाकार हुए उनके शरीरों को शमी की घनी छाया ने ढंक दिया।

अपराह्न में घर वापस आते समय वे दोनों आनंद-विभोर थे, फिर भी बोलने के लिए कोई बात न होने से निःशब्द थे। हाथ में

बून

हाथ डाले वे घर तक आये। सोमदत्त का पुत्र सुम्निमा की बेटी के हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर आंगन में सीधा खड़ा हो गया। सुम्निमा की बेटी ने कोमल और आनंद-गदगद स्वर में कहा–'यावा!' फिर वह ओसारे पर जाकर अपनी मां की कोठरी के दरवाजे के पास खड़ी हो गयी। उसके मुंह से मात्र 'मां!' शब्द निकला–वह भी फुसफुसाहट की तरह। इसके बाद उसने पैर पर दूसरा पैर रखकर सिर नीचा कर लिया और उंगलियां चटकाते हुए वहीं खड़ी रही। लड़की की यह लज्जाकातर अवस्था देखकर सुम्निमा सारी बात समझ गयी। फिर भी पूछा–'क्या बेटी?'

सुम्निमा की बेटी ने उसी लज्जायुक्त अवस्था में आंख के संकेत से, नीचे आंगन में खड़े सोमदत्त के पुत्र को दिखा दिया। वह भी लज्जा का अनुभव करते हुए दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया। सुम्निमा कोठरी से बाहर निकली और दोनों के सिर पर हाथ रखते हुए बोली–'तुम दोनों सुखी रहो।'

फिर अपनी बेटी को संबोधित करते हुए कहा–'बेटी, आज तुमने जिसे दूल्हे के रूप में अपनाया है, वह ब्राह्मण का पुत्र है। उसका रक्त दूसरा है। वे लोग हवा के प्राणी हैं। उन्हें इस जीवन की पूर्णता से संतोष नहीं होता, इसकी शून्यता उन्हें आकर्षित करती है। शून्यता की खोज में वे तरह-तरह की तपस्या करते हैं। भोग-विलास और अपने शरीर तक को त्यागने में उन्हें देर नहीं लगती। ....और तुम्हारा रक्त दूसरा ही है। तुम किरात की बेटी हो। मिट्टी के प्राणी हैं हम किरात; मिट्टी से हमारा प्रेम है। जीवन के आनंद और उसके भोग में ही हम निमग्न रहते हैं; उसके अभावों को हम नहीं देखते। हमारे लिए हमारा शरीर ही सबसे प्यारी वस्तु है। हमें ब्राह्मण धागे में बंधी पतंग लगते हैं; और उनके लिए हम लोग मिट्टी के केंचुए हैं।'

फिर उसने सोमदत्त के पुत्र की ओर मुड़कर कहा–'बेटा, तुम्हारे पिता बहुत बड़े तपस्वी थे। वे कहते थे, आत्मचिंतन ही सबसे बड़ी चीज है। तुम उन्हीं की संतान हो। आज तुमने एक किरात लड़की को अपनी पत्नी बनाया है। उसका किरात स्वभाव चंचल है। वह अपने शरीर से बाहर और किसी चीज को नहीं पहचानती। तुम्हारी उड़ान में वह कहां तक साथ जा सकती है? लेकिन यदि तुमने उसकी जाति-परंपरा को समझा और उसके मार्ग को देखा, तो उसे तुम अच्छी तरह समझ सकोगे। उसे तुम्हारी बात समझकर अपने रास्ते को कुछ हद तक छोड़ने के लिए तैयार होना पड़ेगा। इसी तरह तुम्हें भी समझौता करना पड़ेगा, अपने रास्ते को थोड़ा-बहुत छोड़कर। तुम लोगों का कल्याण हो! तुम्हारी संतान समझौते का रास्ता अपना सके।'

इतना कहकर वह कोठरी में चली गयी। सोमदत्त का पुत्र अपनी वधू को हाथ थामकर संध्या के अंधकार में अपनी कोठरी के अंदर ले गया।

०००

तीन महीने बाद-सिर्फ़ दूध काफ़ी नहीं है



डॉक्टरों की सिफ़ारिश है



फ़ैरेक्स®

आपके मुन्ने का आदर्श ठोस आहार

डॉक्टर फ़ैरेक्स की सिफ़ारिश क्यों करते हैं?

क्योंकि यह आपके मुन्ने की पहले ठोस आहार की जरुरत पूरी करने वाला पूर्णतया संतुलित आहार है, फ़ैरेक्स में आपके मुन्ने के दिमाग और शरीर के विकास के लिए पचने में आसान सही प्रोटीन है, शक्ति देने वाले कार्बोहाइड्रेट्स हैं. और दांतों तथा हड्डियों को मज़बूत बनाने के लिए पर्याप्त केल्शियम, फास्फ़ोरस और विटामिन डी हैं. साथ ही फ़ैरेक्स में सबसे अधिक महत्व की चीज़ है, सही मात्रा में आयरन, जो आपके मुन्ने के ख़ून को स्वस्थ बनाये रखता है.

फ़ैरेक्स विशेष रूप से मुन्ने की पाचन शक्ति के अनुरूप बनाया जाता है क्योंकि तीन महीने का होने पर भी मुन्ने की कोमल पाचन शक्ति प्रचलित आहारों को पचा नहीं सकती. साथ ही फ़ैरेक्स आपके मुन्ने में सही तरीके से चबाने की आदत डालने और भोजन को ठीक से पचाने में मदद देता है.

अब यही गुणवान फ़ैरेक्स ४०० ग्राम के नये टिन में मिलता है.



मुन्ने का आदर्श ठोस आहार जल्द और सर्वांगीण विकास के लिए

लिंटास-GL-44-1518 HI

कुछ कालबाद सुम्निमा परलोक सिधार गयी। मरने के पहले वह अपने दोहते का मुंह देख सकी। नीचे आश्रम के खंडहरों में फिर जंगल उत्पन्न होने लगा। सोमदत्त के पुत्र और उसकी पत्नी की अनेक संतानें हुईं। वृद्ध होने तक भी सोमदत्त का पुत्र गांव के दक्षिण तरफ के पत्थर पर बैठकर नीचे के जंगल को देखता रहता और अपने पुत्र-पुत्रियों से कहता–'वह....वहां....तुम लोगों के दादाजी का आश्रम था।'

'कहां वप्पा?' वे लोग पूछते।

दक्षिण के जंगल की ओर उंगली से इशारा करके वह बताता–'वह..... वहां।'

सोमदत्त के पुत्र और सुम्निमा की बेटी की मृत्यु के बाद उनकी संतान आश्रम की जगह को एकदम भूल गयी। आश्रम के स्थान को जंगल ने पूरी तरह ढंक लिया। किरात लोग जब शिकार के लिए वहां आते, तो किसी पत्थर को दिखाकर आपस में कहते–'यह प्राचीन काल के एक आश्रम का अवशेष है।' किरातों में केवल यह जन-श्रुति अब बाकी रह गयी थी कि उनकी जाति की एक शाखा, जो बाद में रावा की धारा की ओर चली गयी, उसका एक पूर्वज आश्रमवासी ब्राह्मण था।

प्रकृति को काट-छांटकर अपना आश्रम बनाने वाले एक ब्राह्मण के स्थान को प्रकृति ने फिर से अपना बना लिया। कहा जाता है कि वहीं पर त्रेता युग में विश्वामित्र-आश्रम का भी यही हाल हुआ था। किरातों की जातीय रक्तधारा में एक ब्राह्मण ने अपना रक्त मिला दिया था। उस जातीय रक्त के महासमुद्र में एक बूंद का कोई अस्तित्व नहीं रहा। बस, कोशी की अबाध गति प्रकृति की शांति को चीरती हुई बहती रही।

[समाप्त]



[पृष्ठ ९९ का शेष]

और बाहर से आये तो स्टेशन से होल्डाल-बक्सा लिये सीधे अम्मा के कमरे में आ गये। बोले–'वहां मेरा जी अम्मा पर लगा था।'

डिस्चार्ज होते वक्त हम लोग उतावले थे, परंतु डा. मैथानी कहीं कार्यवश फंसे थे। शाम को जब वे वापस आये तो बोले–'नहीं, आज हरगिज नहीं, आज बुधवार है। कल बृहस्पतिवार को मैं स्वयं अपनी कार में अम्मा को घर पहुंचा आऊंगा।' घर से वापस जाने लगे यह कहकर–'शीघ्र आऊंगा', तो अम्मा डबडबाये नेत्रों से देखती रहीं, बोलीं–'मेरे बेटे की वापसी हो गयी। मुझे मेरा बेटा मिल गया।' और वे भाव-विह्वल हो उठीं। एक हाथ से उनके बेटे को छीन लेने वाले ईश्वर ने दो बेटे वापस जो कर दिये।

आज अम्मा जिंदा नहीं हैं। नहीं, अपने बेटों में उनकी स्मृतिदेह अभी जिंदा है।



[पृष्ठ ४९ का शेष]

में चार-पांच चारपाइयां पड़ी हुई हैं। कमरे की लगभग सारी जगह उन्हीं से भर गयी थी। एक चारपाई पर एक नौजवान लड़का स्कूल का काम कर रहा था और उसके साथ वाली चारपाई पर लगभग चालीस वर्ष,का एक व्यक्ति रजाई ओढ़े कोई जासूसी उपन्यास पढ़ रहा था। मुझे देखकर वह प्रणाम करता हुआ उठ खड़ा हुआ। बाकी चारपाइयां सोने वालों की प्रतीक्षा में थीं। मुझे उन्हीं में से एक पर बैठने को कहा गया। इतने में ओम्प्रकाश भी आ गया और बचकाने ढंग से चारपाई पर चढ़कर मेरे साथ सटकर बैठ गया। हजार मना करने पर भी कमरा लड़के-लड़कियों और बच्चों से भर गया। 'यह मेरे भाई साहब का घर है', ओम्प्रकाश ने एक व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए कहा।

इस बीच में परिवार के अन्य व्यक्ति भी किसी पिछले कमरे में से (शायद वह रसोईघर था) आ गये। सभी मेरी ओर ऐसे देखने लगे, जैसे मैं सीढ़ियां चढ़कर आने के बजाय आसमान से उतरा होऊं। जितना ही मैं लोगों की नजरों का केंद्र बनता गया, ओम्प्रकाश का महत्त्व उतना ही कम होता गया। उसके चेहरे पर ग्लानि और उसकी आंखों में ईर्ष्या दिखाई दी। शायद इस चीज को छिपाने के लिए उसने मेरा हाथ दबाकर कहा–'आप तो हमारे लिए देवता के समान हैं।' उसके बड़े भाई ने भी उसकी बात का समर्थन किया–

'धन्य भाग्य हैं हमारे, जो आपने गरीबों की कुटिया में चरण रखे।' कुछ ऐसे ही शब्द उसकी भाभी ने भी कहे।

'धन्य भाग्य तो मेरे हैं जी कि ओम्प्रकाश जैसे महान आदमी के दर्शन मुझे नसीब हुए। मैं तो उस मां को बधाई देने के लिए हाजिर हुआ हूं, जिसकी कोख से इस रत्न का जन्म हुआ है।' मैंने कहा। मेरी आंखें सचमुच उसकी मां को तलाश रही थीं।

मेरी बात का ओम्प्रकाश पर अच्छा असर पड़ा। उसने कहा–'कुछ देर यहां ठहरकर मांजी के पास चलेंगे।' उसकी आंखों में प्यार का सागर उमड़ आया था। ओह! तो क्या मां से मिलने कहीं और जाना पड़ेगा? इसने तो कहा था कि सिर्फ पांच मिनट......। लेकिन मैं संभल गया और मुस्कराकर बोला–'तुमने कहा था न कि अपनी पेन्शन के बारे में घर चलकर बताओगे।'

'हां', उसने हंसकर कहा। इस बार उसे यह सवाल जरा भी बुरा नहीं लगा। उसने बताया–'मैंने तीन चीनी मारे थे। फी चीनी बीस रुपये के हिसाब से मुझे इनाम दिया गया था। और पेन्शन है बयालीस रुपये आठ आने, जो हर महीने बाकायदा मिल जाती है।' उसके चेहरे पर संतोष की मुस्कान थी।

मेरा ध्यान घड़ी की ओर गया। देर हो रही थी। 'चलें?' मैंने ओम्प्रकाश की ओर मुड़कर कहा।

'चाय पी लीजिये, फिर चलेंगे।' उसने

मुस्कान के साथ कहा।

'नहीं-नहीं, चाय के लिए वक्त नहीं है। तुम तो मेरी मजबूरी जानते ही हो।'

'लेकिन चाय बिलकुल तैयार है। एक मिनट भी नहीं लगेगा।' उसकी भाभी ने कहा और वह रसोईघर की ओर चल दी। मैं मजबूर हो गया।

'क्या मैं पूछ सकता हूं कि लड़ाई में तुम..... जख्मी कैसे हुए?'

उसके चेहरे की कठोर सरलता को, जो फौजी जवानों की विशेषता होती है, मेरे सवाल ने जैसे पिघला दिया। उसके होंठ कांपने लगे और आंखें गीली हो गयीं। फिर भी उसने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा–'यह सवाल आप न ही पूछते तो अच्छा था। खैर, कोई बात नहीं।' उसने एक ठंडी सांस ली और कहना शुरू किया:

'मैं नेफा के मोर्चे पर था और एक महीने की छुट्टी लेकर घर आया हुआ था अपनी शादी के लिए। १५ अक्तूबर को शादी होने वाली थी।..... उसके दो दिन पहले तार मिला कि यूनिट में फौरन वापस पहुंचो। सारी तैयारियां पूरी हो चुकी थीं। मेरी मां, मेरे भाइयों (पिताजी तो मेरे बचपन में ही स्वर्ग सिधार गये थे), मेरी ससुराल वालों–सबकी राय थी कि शादी हो जानी चाहिये; एक-दो दिनों की मोहलत मांगी जा सकती है। लेकिन मैं जानता था कि मैं खतरनाक मुहिम पर जा रहा हूं। सो मैं नहीं माना। मैं लड़की के साथ अन्याय नहीं करना चाहता था। मैं ठीक वक्त पर बेस कैंप पहुंच गया। हमारा यूनिट पहाड़ों में आगे जा चुका था। यूनिट तक पहुंचने के लिए मुझे जीप दी गयी, जिसमें सिर्फ मैं और ड्राइवर थे।

'हम अपने ठिकाने के काफी नजदीक पहुंच गये थे कि अचानक मुझे अपने सामने तीन चीनी फौजी दिखाई दिये। इसके पहले कि वे कोई फैसला कर पायें, मैंने गोली चला दी और तीनों को मार गिराया। फिर हम दोनों जीप से उतरकर उसकी आड़ में हो गये। लेकिन उसी वक्त एक हैंड ग्रेनेड आया, और..... बस।'

वह थोड़े में ही बहुत कुछ बता गया था। ज्यादा कुछ पूछने की न तो जरूरत थी और न मुझमें हिम्मत ही थी। मैं चुपचाप उसकी पीठ सहलाने लगा। दीवार पर टंगी गांधीजी और नेहरूजी की तस्वीरें हमारे उस नाटक में भाग लेती हुई प्रतीत हुईं।

चाय आयी। सिर्फ दो कप–एक मेरे लिए, एक ओम्प्रकाश के लिए। लेकिन उसने नहीं पी। वह चारपाई से नीचे उतरकर मेरी ओर पीठ करके छड़ी के सहारे खड़ा हो गया। उसके बड़े भाई को चाय पीनी पड़ी। मैंने जल्दी से चाय खत्म की, और हम वहां से चल पड़े।

ओम्प्रकाश का अपना घर, जहां वह अपनी मां के साथ रहता था, और भी छोटा था। छोटे-छोटे दो कमरे थे। बैठक में से गुजरकर हम सोने के कमरे में गये, जो तीन चारपाइयों से भर-सा गया था। एक

चारपाई पर ओम्प्रकाश का छोटा भाई बीमार पड़ा था। उसके सिरहाने वाली चारपाई पर रजाई ओढ़े उसकी मां बैठी थी।

ओम्प्रकाश ने कहा था कि उसकी मां मुझे देखकर बहुत खुश होगी। लेकिन वह तो जरा भी खुश नहीं हुई। इतना उदास चेहरा मैंने कभी ही देखा होगा। सच तो यह है कि उसकी आंखें मेरे बजाय ओम्प्रकाश पर ही लगी रहीं।

ओम्प्रकाश लुढ़कता हुआ मां के पास चला गया। उस समय मां के चिकने, घने बैठे हुए काले-स्याह बाल मुझे बहुत सुंदर लगे और खुद ओम्प्रकाश बाल-गोपाल की तरह दिखाई दिया, जो खेल-कूद से घर लौटा हो और अपने एक साथी को भी संग लेता आया हो अपनी मां को दिखाने के लिए..... मानो यह कहने कि देखो मां, यह भी मेरे जैसे खेल-कूद करता है; क्या हुआ अगर मैं गिर पड़ा और मुझे चोट लग गयी!

मुझे विश्वास हो गया कि वह अपनी मां से मिलाने के लिए ही मुझे वहां लाया था। वह जो धोखा खुद को दिया करता था, उसमें किसी न किसी तरह अपनी मां को भी शामिल करना चाहता था। लेकिन मां तो अपने मूर्ख बेटे की तरह धोखे में आने वाली नहीं थी। वह सारी हकीकतों को समझ चुकी थी। उसकी नजर में, उसके अभागे बेटे के मुकाबले बड़े से बड़े मंत्री और फिल्मी सितारे की कीमत एक कौड़ी जितनी भी नहीं थी।

इसकी प्रतिक्रिया ओम्प्रकाश पर होनी स्वाभाविक थी। 'बुखार अभी उतरा नहीं इसका?' उसने भाई के बारे में मां से पूछा।

'नहीं।'

'भैया, मेरी दवा मंगा दो।' बीमार भाई ने रजाई में अपना चेहरा छिपाते हुए कहा।

'हां-हां, आ जायेगी।' ओम्प्रकाश ने कहा। फिर वह मेरे पास आकर बोला- 'बैठेंगे?'

मैंने इन्कार में सिर हिलाया। लेकिन साथ आये लड़कों ने शायद सोचा कि मैं बैठूंगा। वे मेरे साथ बैठने के चाव में चारपाई पर कूदकर चढ़ बैठे और वह चरमरा टूट गयी। सबकी हंसी फूट पड़ी। मेरे लिए अब वहां और एक पल भी ठहरना असह्य हो गया। मैं चहता था कि ओम्प्रकाश की मां से सांत्वना के कुछ शब्द कहूं; लेकिन उस शोर में मुझे कुछ भी नहीं सूझा। 'अच्छा भई, अब मैं चलता हूं।' कहकर मैं बाहर की ओर बढ़ा।

ओम्प्रकाश के साथियों ने बैठक में खास इंतजाम कर रखा था। वे मुझे अलमारियों में सजे हुए कप और प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ खिंचवायी हुई फोटो आदि दिखाना चाहते थे। अगर मैं भूलता नहीं तो उन्होंने एक फोटोग्राफर भी बुला रखा था। लेकिन मैं रुका नहीं और सीधा बाहर गली में आ गया। चेहरे पर बनावटी-सी खुशी लाकर मैंने जल्दी-जल्दी लड़कों से हाथ मिलाया,

जून

ओम्प्रकाश से फिर मिलने का वादा किया और स्कूटर वाले एक लड़के से कहा कि मुझे स्कूटर पर कोठी तक छोड़ आओ ।.....

× × ×

हजारों आंखें मेरी ओर लगी हुई थीं । हर तरफ से आटोग्राफ-बुक मेरी ओर बढ़ायी जा रही थीं । गवर्नर साहब, मुख्य-मंत्री, शिक्षा-मंत्री और भाषा-विभाग के निदेशक बारी-बारी से भाषण दे रहे थे । लेकिन मेरा ध्यान इस सबकी ओर नहीं था। कभी मेरी आंखें भीड़ में खोये हुए ओम्प्रकाश को ढूंढ़ती, कभी चारपाई पर बैठी उसकी मां को देखतीं । फिर मैं भी भाषण दने उठा । शायद ही कभी मैं इस कदर उखड़ा-उखड़ा बोला होऊंगा । मेरे कानों में जैसे कोई लगातार कहे जा रहा था—बीस रुपये. ... बीस रुपये.... बीस रुपये ..... पांच हजार रुपये..... पांच हजार एक सौ रुपये..... बयालीस रुपये आठ आने .... बयालीस रुपये आठ आने.... चालीस हजार रुपये... चालीस हजार रुपये..... चालीस हजार रुपये.....

और फिर गवर्नर साहब ने अपने शुभ हस्तों से मुझे चमकती हुई रेशमी थैली भेंट की, जिसका रंग रास्ते में बिछाये हुए कालीन की तरह लाल-सुर्ख था ।



तुरंत निर्णय की शक्ति आपमें कितनी है ? [सही उत्तर]

भाग-१ : अ:—घ, च, ज । आ:— ग, ज, झ ।
इ:- ग, ज, झ ।
भाग-२ : ५, ७, ९ ।
भाग-३ : ५, ६ ।

हर गलती पर आपको ३ अंक प्राप्त होंगे। निर्धारित समय में जो परीक्षण करने में आप असफल रहें, उनमें से प्रत्येक के लिए आपको १० अंक मिलेंगे । जरा जोड़कर देखिये, आपको कुल कितने अंक मिले । अगर आपके प्राप्तांक ४२ से ७७ के बीच हैं, तो इसका अर्थ है कि आप इस परीक्षा में फेल हो गये; आपमें तात्कालिक निर्णय की क्षमता की कमी है । अगर प्राप्तांक ३२ से ४१ के बीच हैं, तो आप इस परीक्षा में किसी तरह उत्तीर्ण भर हो पाये हैं । प्राप्तांक २३ से ३१ के बीच हों तो समझिये, आप अच्छी तरह उत्तीर्ण हुए । अगर आपके प्राप्तांक २२ या उसके भीतर ही हैं, तो इसका अर्थ है कि आपने यह परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की है; आपमें तत्काल निर्णय करने की उपयुक्त क्षमता है और आपके ऐसे निर्णय अधिकांशतः सही हुआ करते हैं ।

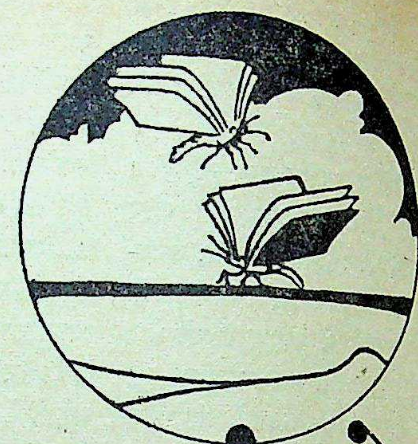


व्यापारिक कुशलता

'औसत गृहिणी का शब्दज्ञान—केवल ८०० शब्द' .....एक सर्वेक्षण-रिपोर्ट पर अखबारी सुर्खी ।

टिप्पणी— 'कितनी छोटी पूंजी से कितना विशाल कारोबार!'





ग्रंथलोक

समीक्षक :
पृथ्वीनाथ शास्त्री

* लौटो सिंदबाद (कविता-संग्रह) * अनंत कुमार 'पाषाण'; विराग प्रकाशन, चंदन निवास, कुर्ला रोड, अंधेरी, बंबई–४०० ०६९, ६४ पृष्ठ, ९ रुपये।

* पारदर्शी पर्त (कविता-संग्रह) रामावतार चेतन, पराग प्रकाशन, दिल्ली ३२, १०२ पृष्ठ; १४ रुपये।

* गोबर-गणेश (उपन्यास) * रमेशचंद्र शाह; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; ३४२ पृष्ठ; २५ रुपये।

* क्या नेताजी जीवित हैं? * समर गुह; सरस्वती विहार, नयी दिल्ली; १९१ पृष्ठ, ३० रुपये।

* मुजरिम हाजिर (दो खंड) * बिमल मित्र; अनुवादक: हंसकुमार तिवारी; राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली–६; ३५० पृष्ठ (प्र. खं.) और ४१४ पृष्ठ (द्वि. खं.); प्रत्येक खंड ३५ रुपये।

१. पाषाणजी की कविताएं विगत तीस वर्ष से सहृदय पाठकों को अनुप्राणित करती रही हैं। यह उनका प्रथम कविता-संग्रह निश्चय ही स्वागत-योग्य है। जैसा कि पुस्तक के शीर्षक में शामिल नाम से स्पष्ट है, कवि अदम्य जहाजी सिंदबाद की तरह सदा से ही आत्मान्वेषण की यात्रा में निरत रहा है। भूमिका में बच्चनजी ने ठीक ही कहा है – 'आज की कविता का संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यही है कि वह हमसे हमारा साक्षात्कार करा दे।' पाषाणजी के प्रयोग इस दिशा में सचमुच बहुत अच्छे बन पड़े हैं। प्रस्तुत संग्रह में कुल ५७ कविताएं हैं जो समानतया आस्वाद्य हैं। हरएक में रहस्य है, जो ध्यान से दो-तीन बार सहृदयपूर्वक पढ़ने पर ही

खुलता है। यों भाषा एकदम सहज और प्रवाहमयी है। दुरूहता यदि कहीं है तो भाव-ग्रहण में सामने आती है। मुझे इन कविताओं को पढ़ते वक्त बार-बार कई आधुनिक चित्रकारों और संगीत-कलाकारों की याद आती रही। उनकी कृतियां भी इसी तरह शीर्षकहीन होती हैं और पुनः-पुनः देखने-सुनने पर ही हृदयंगम होती हैं; और फिर तो वे अभिभूत कर देती हैं—अपनी संपुंजन की समग्रता से, कलात्मक अनुभूति की बारीकियों से, भावाभिव्यंजन की बांकी अदाओं से, मर्मस्पर्शिता से! यही पाषाणजी की इन कविताओं के बारे में भी मेरा संक्षिप्त निवेदन है। इनमें संजोये गये बिंब, प्रतीक, रूपक, संदर्भ—सभी कुछ पाठक में एक पृष्ठभूमि की अपेक्षा रखते हैं; किंतु पढ़ते ही प्रभावित भी कर देते हैं। हां, पूर्णतः वे 'अधिगत' तभी हो सकते हैं, जब उन्हें गहरे जाकर गहें; केवल शब्द-संयोजन के चमत्कार से, गति से, लय से और पहली अनुभूति से ही चमत्कृत होकर न रह जायें। क्योंकि जीवन के साधारण-से परिदृश्यों की प्रस्तुति में ही पाषाणजी ने जो प्रतिमाएं गढ़ दी हैं, वे बहुत ही आकर्षक हैं। मसलन्, 'नाल से बंधी नाव दाईं ने काट दी थी, / लेकिन पार की हुई / नदी वह मुट्ठी में बंद थी।' (३) अथवा – 'टूटे हुए खिलौने / जितने अधिक टूटे हों, / उतने ही हर्ष-भरे छूटे हुए शैशव हैं।' (४) सीढ़ियां साथ-साथ चढ़ते हुए, / साथ उतरते हुए / आंखों ने दृष्टि के कितने ही / बिना पते लिखे कोरे लिफ़ाफ़े / खोल-खोल डाले हैं।' (१४) 'सूरज ढलने पर ही धूप तुम्हें मिलती है / यह तो तुम्हारा नहीं / लेकिन उस दिशा का दोष है / जिसमें घर तुम्हारा खड़ा है,' (१७) / वस्तुतः कृति मूल्य अधिक होने पर भी ग्राह्य है।

२. चेतनजी कीं कविताएं भी पिछले बीस साल से छपती उनकी कविताओं से स्वनिर्वाचित हैं। इनमें भी अस्मिता की खोज है, अस्तित्व की तीव्र अनुभूति है। वे इन्हें 'समय की धारा पर तैरते भावखंड' कहते हैं। बदहवासी में भी बेहोश न होना कवि की विशेषता है। जीवन के राग-रंग को आधार न बनाकर वे अपने को खोज सके हैं और पाठक को अपने आपकी पहचान कराने का विश्वास रखते हैं—कविताओं के माध्यम से। इस संग्रह में सड़सठ कविताएं हैं। सभी कुछ है इनमें—बेबसी की छटपटाहट, एकांत की गंभीरतम उपलब्धि, संघर्ष में अपराजेय मनोवृत्ति, जीवन-पथ के संबल के प्रति मोह, ज्योतिर्मय रहने की अदम्य आकांक्षा, अमृत की मृग-भटकन, निश्चय से जीत, अनिश्चय से हार, संदर्भों में जीने की अनिवार्यता। इसीलिए चेतनजी यह कह पाते हैं—'और यह चेहरा / समाज का, / निगाहों का एक घूर बनकर रह गया है।' (पृष्ठ ५) अथवा—'एक बहुत भारी खराद पर चढ़े हम!'..... 'हम रीतेंगे नहीं / घटेंगे नहीं, / नहीं हो सकते हैं कम!' (पृ. ९-१०)

मुझे इस संग्रह की और भी कुछ कविताएं

बहुत अच्छी लगीं, जैसे 'प्यारे लोग', 'मत जासना', 'संघर्ष गीत', 'हवा', 'खगोल', 'एक स्थिति', 'याद की याद में', 'युक्तलय', 'झोंपड़ी की बात', 'भाषा-परिभाषा', 'अल्प वक्तव्य', 'एक पारिवारिक अनुभूति'। कुछ व्यंग्य भी बड़े सशक्त हैं–'युवा गीत', 'शांति-दूत', 'गीत अगीत' 'लेखनसेवी', 'सीधी बात।' और ये कटूक्तियां भी–'है कि नहीं', 'परिवार-प्रयोजन', 'हो गया है', 'नजर आते हैं', 'हम'। कुछ खरी बातें–जैसे 'हो गयी हैं', 'चाहिये', 'खासियां'– और ये सब उर्दू कविता की तर्जों में हैं। किंतु मार्मिकता है चेतनजी की छोटी कविताओं में, जिनमें 'अस्तित्वबोध', 'समवेदन', 'एक अनुभूति', 'कल का शिशु', 'आस्था' और 'अज' हैं। चेतनजी का यह तीसरा कविता-संग्रह है और आशा है, इसका स्वागत होगा।

३. 'गोबर-गणेश' सार्थक जीवन की तलाश में हुई कशमकश का एक जीवंत लेखा-जोखा है। बहुत दिनों बाद एक इतना अच्छा उपन्यास पढ़ने को मिला। प्रकाशकीय फ्लैप-कथन अक्सर अतिरंजित ही होते हैं; लेकिन 'गोबर-गणेश' इसका अपवाद है। उसके ये वाक्यांश 'एक खंडित और विकलांग जीवन की मर्म गाथा', व्यक्ति और समाज की पुनर्रचना की कोशिश', 'जीवनदायी अर्थ की तलाश', 'एक समूचे देश और काल की आत्मा की मुक्तिकामी छटपटाहट और चिरहास्य-रुदन-'गोबर-गणेश' की अच्छी खासी वस्तुगत परिचिति करा देते हैं।

उपन्यास के घटना-केंद्र हैं अलमोड़ा, इलाहाबाद, टनकपुर और इनके आस-पास के क्षेत्र। मुख्यतः यह मध्यमवर्गीय जीवन की व्यथा-कथा है, समग्र रूपरेखा है, जिसमें जगह-जगह सच्चे 'ह्यूमर' का पुट है। लगता है कि लेखक को 'होलोग्राफी' आती है अन्यथा वह इस एक छोटे-से क्षेत्रीय नक्शे में ही भारत के दो समूचे युग–आजादी से पहले और बाद के–कैसे आंक लेता? जगन काका, सरोज, शान्तम्, विनायक, नायर साहब, मथुर कका, शान्तम् की सर्वसहा मां, बुद्धिमान सक्सेना, और वे सारे बचपन के दोस्त '(जिनका' 'नैरेशन' विनायक के दृष्टिकोण से बहुत ही कलापूर्ण हुआ है)–सबके सब इतने जीवंत हैं कि हमें महसूस होता है कि वे हमारे चारों ओर आज भी घूम रहे हैं। मशगूल हैं वे अपनी खुराफातों में, कारवाइयों में, अपनी-अपनी अदाकारियों में, मुखौटे चढ़ाने और उतारने में। और हम उन सबके जीवन का 'रस' लेते हैं, एक साथ राग-अनुराग से, तृप्ति-वितृष्णा से। उनकी जिंदगी की बेवकूफियां, रंगीनियां, लंतरानियां, बातें और बतंगड़, चीजें और चतुराइयां–सभी कुछ हमें अपने जीवन का भी प्रतिबिंब-सा लगता है।

सबसे बड़ी उपलब्धि है इस उपन्यास की भाषिक रवानी। लेखक ने अपनी अंग्रेजी और संस्कृत की जानकारी का भरपूर उपयोग किया है; लेकिन सर्वत्र वह अपनी प्रादेशिकता से, आंचलिकता से भी जुड़ा रहा है। और उसे यह भी खयाल रहता है

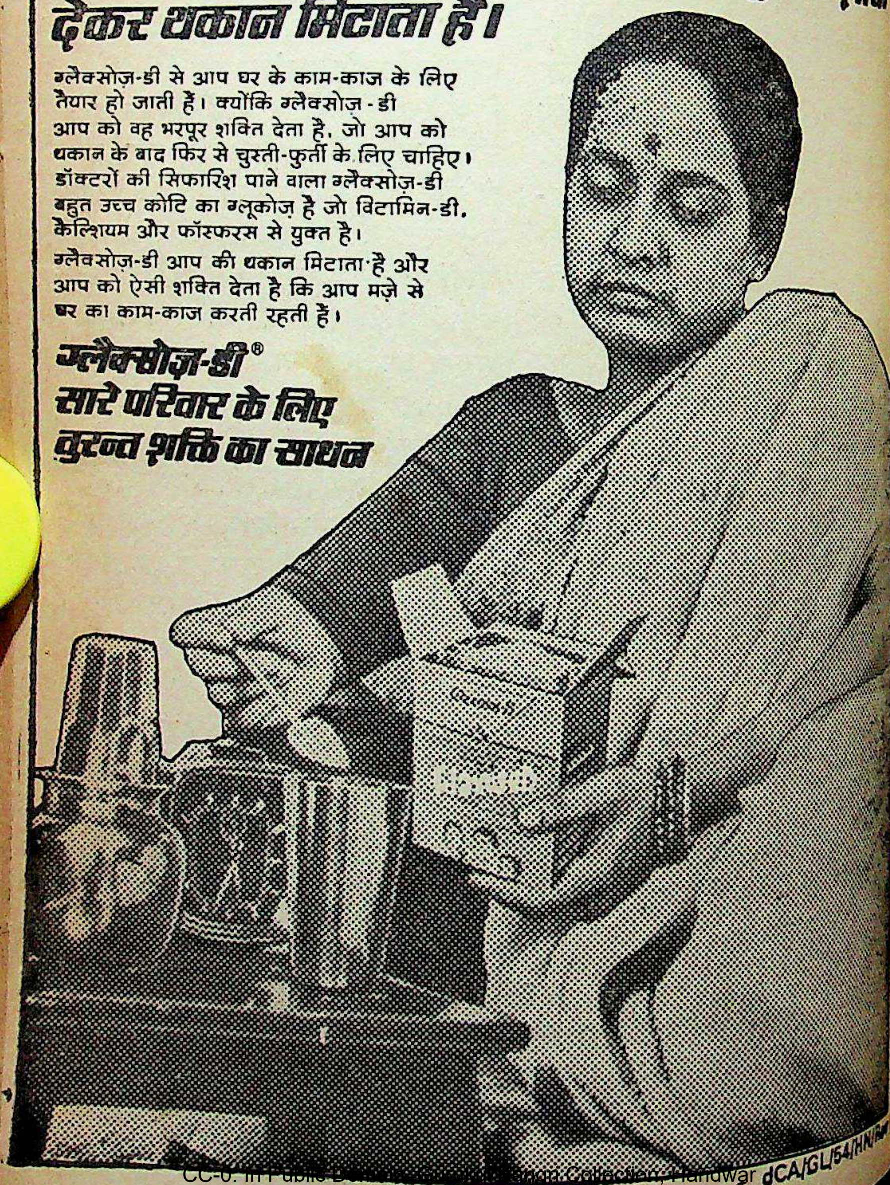
कि यह कृति वह समूचे भारत या कहें विश्व के हिंदी वालों के लिए लिख रहा है। काव्य की गरिमा या भावों की मधुरता, बातों की गहराई अथवा स्थिति एवं प्रसंगों की रोचकता में भाषा ने अपनी पूरी अभिव्यंजकता दी है इस कृति को। व्यंग्यों के तीखेपन, विचारों के वजन, वर्णन की यथार्थता और लेखकीय 'विजन' की समग्रता और उसकी अपने पात्रों से समानुभूति—किसी में भी भाषा के कारण कोई उथलापन या बोझिलता नहीं आती। चौंकाने वाले प्रयोग एकदम नहीं हैं; किंतु आंचलिक प्रयोगों से समृद्धि जरूर मौजूद है।

सारी औपन्यासिक कलाविधाओं का समावेश है इसमें। आत्मकथा, तटस्थ उत्तम-पुरुषीय नैरेशन, स्वगत, आत्मविश्लेषण, चेतन-प्रवाह, अस्तित्ववादी चिंतन और चित्रण, फ्लैशबैक, फन्तासी, मिथक—सभी का इसमें आनुपातिक एवं यथायथ समुपयुक्त सम्मिश्रण है, समन्वय है। पूरा संघटन बेजोड़ है। इसे कोई भी निष्पक्ष आलोचक बीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास के आठवें दशक की अत्यंत श्रेष्ठ कृति कह सकता है। आश्चर्य है कि इसे अभी तक पुरस्कृत क्यों नहीं किया गया! लेकिन पुरस्कारों का रिश्ता कृति के सही मूल्यांकन से प्रायः नहीं होता, इसलिए कोई दुःख नहीं।

४. यह पुस्तक है तो अंग्रेजी से अनूदित, किंतु पता नहीं क्यों इस बात पर परदा डाला गया है। यह ठीक है कि अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है। श्री गुह ने यह तो अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है कि शाहनवाज और खोसला रिपोर्टों से सच पूरी तरह नहीं साबित हुआ; लेकिन यदि सच यह है कि नेताजी जीवित हैं, तो उसे श्री गुह भी असंदिग्ध रूप से प्रमाणित नहीं कर पाये। पुस्तक के शीर्षक में शायद इसीलिए प्रश्नवाचक चिह्न जोड़ा गया है। लेखक ने भूमिका में जो प्रश्न उठाये हैं और जो संभावनाएं और आकांक्षाएं व्यक्त की हैं और जिस तरह अपनी सूचनाओं को गुप्त रखा है, उससे तो लगता है कि कुछ लोगों का यह लक्ष्य बन गया है कि नेताजी सुभाषचंद्र के नाम और चरित-गाथा का भरपूर उपयोग किया जाये। मैं यह नहीं कहता कि श्री गुह भी इस प्रवृत्ति के शिकार हैं। लेकिन कलकत्ते में आये दिन छपते और बिकते सूचना-पत्रों से तो यही धारणा बनती है। नेताजी यदि जिंदा होते तो अब तक प्रकट क्यों न होते—इसका कोई भी सही और स्वीकार्य उत्तर किसी के पास नहीं। उन्होंने अभी तक (यदि वे जिंदा हैं तो) अपनी पत्नी और पुत्री को भी क्यों नहीं तलाशा—यह भी कोई नहीं सोचता।

५. विमल मित्र लंबे उपन्यास लिखने में माहिर हैं। किंतु अब वे प्रायः चर्वित-चर्वण ही करते हैं। उनके सारे उपन्यासों को यदि संक्षिप्त रूप में प्रकाशित किया जाये तो वे सचमुच साहित्य की सुपाठ्य सुकृति बन सकते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की १२ पृष्ठ लंबी भूमिका दोनों जिल्दों में अनावश्यक ही दुहरायी गयी है। यह पाठक

११७९



ग्लैक्सोज़-डी से आप घर के काम-काज के लिए तैयार हो जाती हैं। क्योंकि ग्लैक्सोज़-डी आप को वह भरपूर शक्ति देता है, जो आप को थकान के बाद फिर से चुस्ती-फुर्ती के लिए चाहिए। डॉक्टरों की सिफारिश पाने वाला ग्लैक्सोज़-डी बहुत उच्च कोटि का ग्लूकोज़ है जो विटामिन-डी, कैल्शियम और फॉस्फरस से युक्त है।
ग्लैक्सोज़-डी आप की थकान मिटाता है और आप को ऐसी शक्ति देता है कि आप मज़े से घर का काम-काज करती रहती हैं।
ग्लैक्सोज़-डी®
सारे परिवार के लिए
तुरन्त शक्ति का साधन
dCA/GL/54/HN/

पर जबर्दस्ती है।

विमल मित्र के नायक कितने ही 'सक्रिय ने आदमी' क्यों न हों, वे एक विशेष पाठक-वर्ग को ही पसंद आ सकते हैं। अन्यथा उन्हें अवास्तविक ही माना जायेगा। क्योंकि उनमें अतिरंजना और फन्तासी की सारी सीमाओं को लांघा गया है। मैं स्वयं ही उनके एक अतिविशाल उपन्यास का अनुवाद कर चुका हूं, अतः यह बात व्यक्ति-गत अनुभव के आधार पर कह रहा हूं।.....

उनकी उद्भावित घटनाएं भी ऐसी हैं, जिन पर कोई आसानी से यकीन नहीं कर सकता। जैसे, प्रस्तुत कृति में कपिल पायरीपोड़ा की आत्महत्या। अथवा नयनतारा और सदानंद की 'पवित्र' प्रणय-गाथा। 'पूर्ण' तो वह कतई नहीं कही जा सकती। हिंदी में अब अनुवादों की इतनी भीड़ न लगाकर प्रकाशक मूल्यवान मौलिक साहित्य ही अधिक प्रकाशित करें, तो अधिक अच्छा होगा। अनुवाद ठीक है।



पहला कविता-संग्रह : बिक्री का प्रश्न

मेरा पहला कविता-संग्रह सन १९२३ में छपा था। जल्दी के कारण सिर्फ पांच दिनों में उसकी छपाई पूरी कर दी गयी थी। उसके प्रूफ नहीं पढ़े गये थे, न उसमें कविताओं की सूची जोड़ी गयी थी। उसके पृष्ठों पर संख्या भी नहीं दी गयी थी। उसकी केवल तीन सौ प्रतियां छपी थीं। उन दिनों पुस्तकें प्रकाशित करना खतरा मोल लेना था। मैंने न तो उसे पुस्तक-विक्रेताओं को भेजने के बारे में सोचा, और न समालोचनार्थ पत्र-पत्रिकाओं को भेजने का विचार ही किया। उसकी अधिकांश प्रतियां मैंने यों ही लोगों को दे डालीं। उसे बांटने का एक तरीका मुझे आज भी याद आता है।

यह देखकर कि 'नोसोस्त्रोस' नामक पत्रिका के दफ्तर के अधिकांश कर्मचारी अपने ओवरकोट दफ्तर के एक कमरे में लटका जाते हैं, मैं अपनी पुस्तक की पचास या शायद सौ प्रतियां लेकर पत्रिका के संपादक अल्फ्रेडो बियान्ची के पास गया।

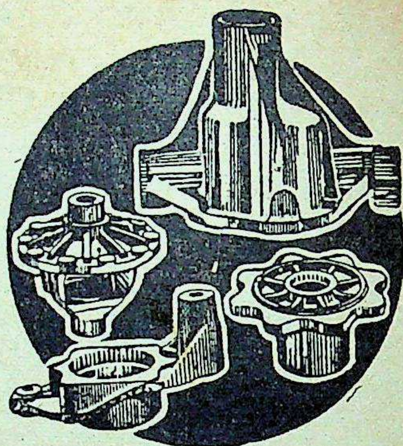
बियान्ची ने मुझे हैरानी से देखा, फिर कहा—'ये पुस्तकें क्या बेचने के लिए मेरे पास लाये हो?'

मैंने कहा—'नहीं। हालांकि यह पुस्तक मैंने ही लिखी है, पर मैं इतना सिरफिरा नहीं हूं। मैं बस इतना चाहता हूं कि आप इन प्रतियों को दूसरे कमरे में टांगे जाने वाले ओवर-कोटों की जेबों में डलवा दें।'

बियान्ची ने मेरी बात मान ली।

जब मैं एक साल के बाद यूरोप से वापस आया, तो मैंने पाया कि उन ओवरकोटों के मालिकों में से कुछ ने मेरी पुस्तक पढ़ी थी, और कुछ एक ने उसके बारे में लिखा भी था। इस प्रकार कवि के रूप में मैंने थोड़ा-सा नाम कमाया था। —होर्हे लुई बोर्हेस






IS

दो क्षण तो हँस लें

अनामिका

एक धनी वकील ने मरने से पहले अपना पुराना वसीयतनामा रद्द करके नया लिखवाया और उसमें सारी संपत्ति मूर्खों और पागलों के नाम कर दी। कारण पूछा गया तो बोले—'उन्हीं से यह सब पाया था, अब उन्हीं को लौटा रहा हूं।'

००

उद्योग और व्यापार में एग्जिक्युटिव को हर चीज के बारे में कुछ-कुछ पता होता है। टेक्नीशियन को किसी एक चीज के बारे में सब कुछ पता होता है। लेकिन टेलिफोन आपरेटर को सभी कुछ पता होता है।

००

डाक्टर: देवीजी, आपके दायें पैर में जो दर्द है, वह बुढ़ापे के कारण है।

रोगिणी: बेतुकी बातें मत कीजिये डाक्टर साहब! मेरी बायीं टांग भी तो उतनी ही बूढ़ी है। वह क्यों नहीं दुखती?

००

जार्ज बर्नार्ड शा अपने नाटक को अंतिम रूप देने में व्यस्त थे। तब उन्हें अपने दो नौकरों की यह बातचीत सुनाई पड़ी:

'साहब बहुत व्यस्त हैं, क्या?'

'अरे नहीं, बस बैठे नाटक लिख रहे हैं सवेरे से।'

'क्या अपने से छोटों को मारना कोई अच्छी बात है?'

'नहीं रामू बेटे, अपने से छोटे को मारना बहुत बुरी बात है।'

'तो कल चलकर हमारी मास्टरनीजी को समझा दोगी मां? शायद उन्हें यह पता नहीं है। वे मुझे रोज मारती हैं।'

००

वेतन-वृद्धि की मांग पेश करते हुए कर्मचारी ने जिक्र किया कि कई कंपनियां उसके पीछे पड़ी हुई हैं।

मालिक ने पूछा—'कौन-सी कंपनियां?'

उत्तर मिला—'गैस-कंपनी, बिजली-कंपनी, बीमा-कंपनी.....'

००

धनी परिवार के साहबजादे, जो डाक्टरी पढ़ने के लिए इंग्लैंड भेजे गये थे, तीन ही महीने बाद अचानक एक दिन घर लौट आये।

परिवार के लोगों ने उनसे वापसी का कारण पूछा, तो बोले—'निमोनिया!'

'तुम्हें निमोनिया हो गया था? तुमने सूचना तक नहीं दी!'

'नहीं, निमोनिया हुआ नहीं था; मुझे निमोनिया के हिज्जे नहीं मालूम थे।'







वार्षिक मूल्य रु. २४

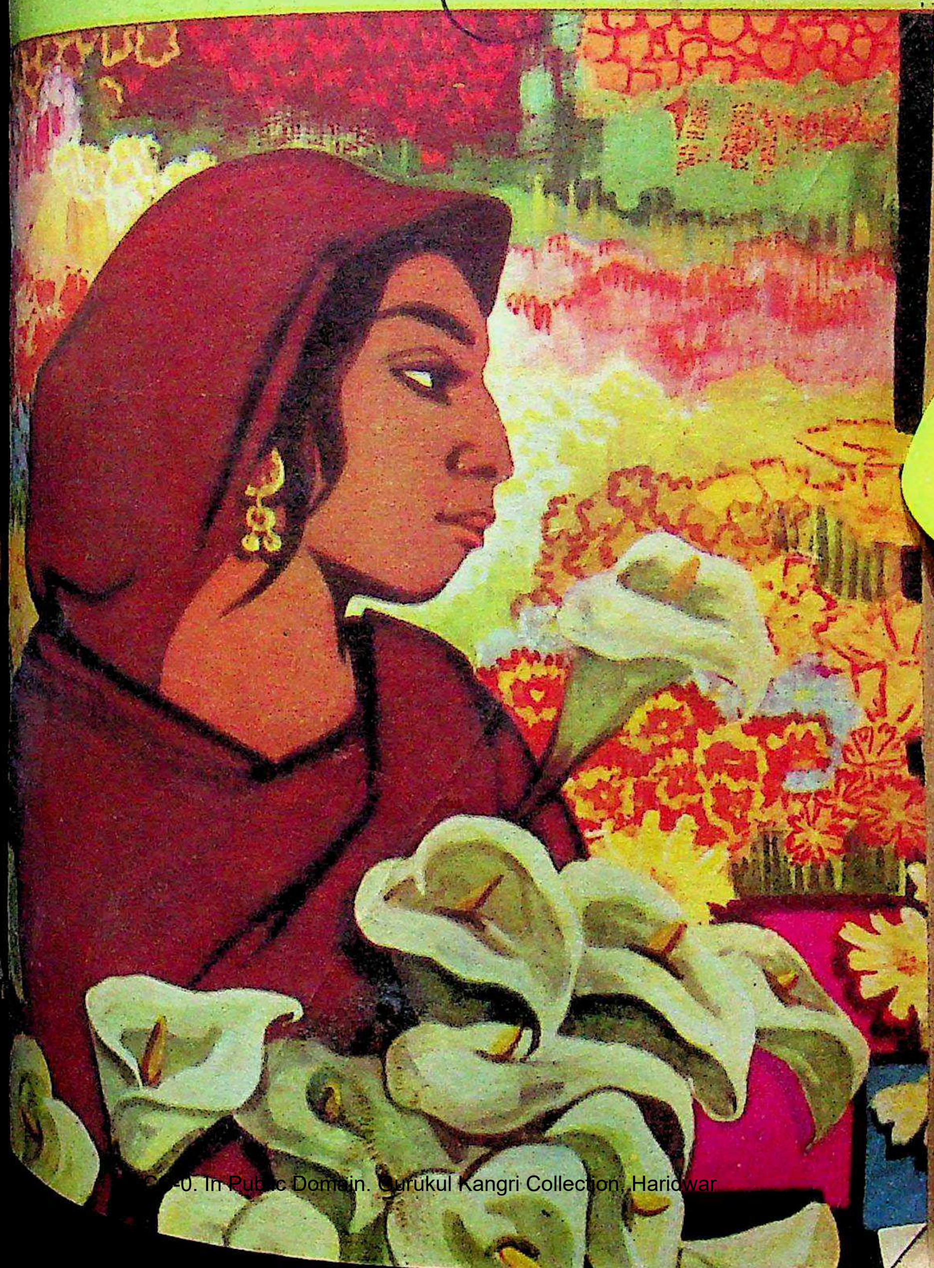
मूल्य रु. २-२५

Regd. No. BYW

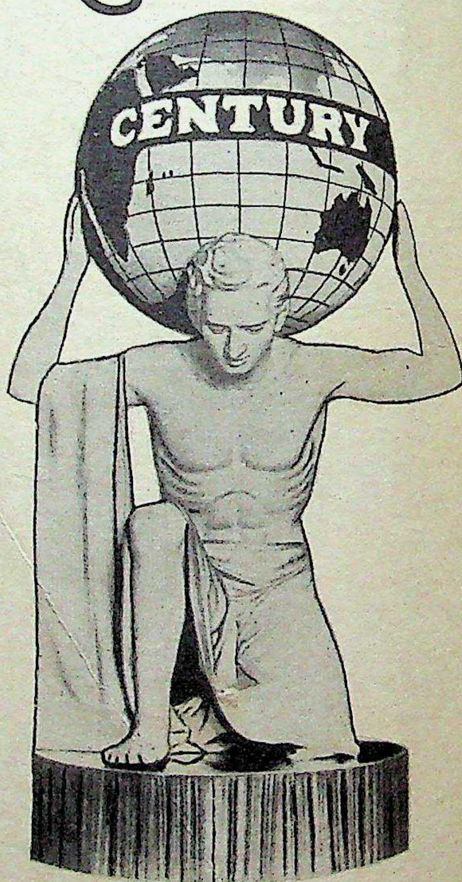
जीवनदाता
शक्तिदाता
सबका आराध्य है.
पूजन में, अर्चन में,
आत्म चिंतन
मनन में.
अंधेरे में, प्रकाश में,
जीवन की प्रेरणा में,
इन सभी के मूल में
सूर्य है.
सूर्य चक्र चल रहा......
सूर्य है जल रहा.

मफतलाल
शूटिंग, शर्टिंग,
साड़ियां,
ड्रेस मैटीरियल्स
व डेनिम

नवनीत हिंदी डाइजेस्ट



सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये

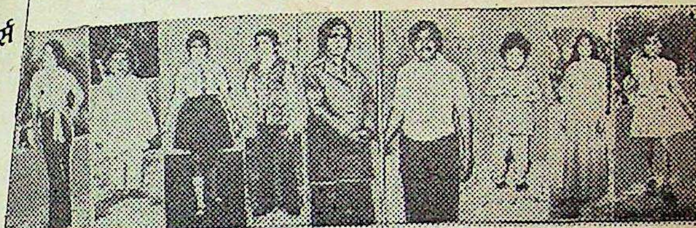
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

टेलरिंग सिखाने वाला प्रभावी व सरल कोर्स

रैपिडैक्स होम टेलरिंग कोर्स

लेखिका — महिला विषयों की विशेषज्ञा श्रीमती आशारानी व्होरा





बड़े साइज के
456 पृष्ठ
मूल्य: 24/-
डाकखर्च : 4/-

पुस्तक के मुख्य आकर्षण

- **मनमोहक फ्रॉक :** चुन्नटदार फ्रिल व स्मॉकिंग वाली, ए-शेप, एम्ब्रेला कट, बेबी योक-फ्रॉक, कोट-फ्रॉक, सन-फ्रॉक, वनपीस प्लीटेड-फ्रॉक, स्कर्ट-फ्रॉक एवं बहुत सी अन्यान्य ।
- **लुभावनी मैक्सियाँ :** सादी, चुन्नटदार व फ्लेयर वाली फुल मैक्सियां । ए-शेप, फ्लेयर व कलीदार स्कर्ट मैक्सियां ।
- **सलोनी नाइटी, नाइट सूट व गाउन :** सादी व फ्रिल वाली नाइटी । सादे, डिजाइनदार व युनीसेक्स टाइप के नाइट सूट, गाउन और ड्रेसिंग-गाउन ।
- **मनोहर टॉप्स :** पैंट, बैलबॉटम, जीन, पैरेलल स्कर्ट तथा लहंगे के साथ पहनने के लिए शर्ट-टॉप, पोलका-टॉप, लहंगा-टॉप, गांठ वाली चोलीनुमा टॉप, ब्लाउजनुमा टॉप, मैटरनिटी टॉप, मॉड टॉप्स एवं जीन जैकेट आदि ।
- **आपके नन्हे-मुन्नों के लिए :** प्यारे बिछौने व नेपकिन से लेकर बिब, फीडर, बानेट, झबला, ट्युनिक, रोम्पर, सन-सूट, बाबा-सूट, कम्बीनेशन-सूट, मैटिनी कोट, कोट, गरारा और शरारा सूट, लहंगा सूट, सलवार-कुरता, स्कर्ट-ब्लाउज, स्कूल यूनीफार्म, नाइट-सूट, नाइटी आदि ।
- **युवक-युवतियों के लिए :** पैंट, बेलबॉटम, पैरेलल सूट, सलवार-सूट, नाइट-सूट, शर्ट, बुशशर्ट, कुरता व जैकेट आदि
- **गृह-सज्जा के लिए :** परदे, कुशन, सोफा-बैक, दीवान-कवर, मूढ़ा-कवर आदि की सिलाई ।
  इसके अलावा सिले कपड़ों में सुधार (आल्ट्रेशन), पुराने कपड़ों की मरम्मत तथा पुरानी बड़ी पोशाकों में से बच्चों की नई पोशाकें बनाना ।
- **सामान्य जानकारी .** सिलाई मशीन व उसके कल-पुर्जों की जानकारी व मरम्मत से लेकर कटाई-सबंधी विस्तृत निर्देश — विभिन्न डार्ट्स, चुन्नट्स, प्लीट्स, आस्तीन, पट्टियां, जेब, कॉलर, योक, फेसिंग, अस्तर, इलास्टिक, जिप, बटन, हुक आदि तथा सभी टांके जिन्हें हर स्तर पर चित्रों की सहायता से स्पष्ट किया गया है ।

गृहिणियो !

र्जियों जैसी सिलाई-कटाई घर बैठे कीजिए
और सिलाई के भारी खर्च से छुटकारा पाइए
न किसी टेलरिंग स्कूल में जाने का झंझट और न ही
अधकचरी जानकारी वाली पुस्तकों में भटकने की
जरूरत - लेकिन आवश्यकता है तो बस एक
रैपिडैक्स होम टेलरिंग कोर्स की ।

- विवाह में देने योग्य शानदार उपहार
- फालतू समय में आमदनी बढ़ाने में महिलाओं का साथी
- हर घर के लिए आवश्यक निर्देशिका
- टेलर मास्टरों के लिए सन्दर्भ ग्रंथ
- सिलाई-कला की प्रशिक्षार्थियों के लिए सम्पूर्ण कोर्स

घर-भर के कपड़ों की सिलाई
रैपिडैक्स होम टेलरिंग कोर्स ने,
घर-घर सिखाई



पुस्तकें वी०पी०पी० द्वारा मंगाने का पता— फोन: 529314, 265403, 264191

पुस्तक महल (N) खारी बावली, दिल्ली-110006

नव वधू को नसीहत

पीएनबी में बचत करने वाली महिला द्वारा



...अवसर पर मुझे उपहार के रूप ... रकम मिली। मैंने इसे पंजाब ... बैंक की बहुलाभकारी तथा ... जमा योजना के अन्तर्गत जमा ... दिया। अब यह रकम बढ़ते-बढ़ते ... हो गयी है कि उसे हम मकान ... आदि जैसी किसी बड़ी जरूरत ... काम में ला सकते हैं।

... तुम भी, इस योजना से लाभ ...।

... 100/- रुपये के गुणितों में 12 ... 120 महीनों तक की किसी ... के लिये, जो कि तीन महीनों ... में हो, जमा करा सकती हो।

अधिक जानकारी के लिए हमारी निकटतम शाखा से सम्पर्क करें।

पंजाब नैशनल बैंक

(भारत सरकार का उपक्रम)

...भरोसे का प्रतीक।

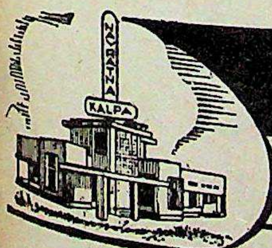
जब उत्साह नहीं, तो कुछ नहीं !

दुर्भाग्य
निरन्तर चिन्ता
कार्याधिक्य
जीर्ण अपचन
स्नायुदौर्बल्य के सामान्य लक्षण हैं
विस्मृति
भय
मिथ्या भावना
आत्महत्या के विचार
मतिभ्रम
इसके भयंकर परिणाम हैं



यदि आप स्नायुदौर्बल्य से ग्रसित हैं, तो
परामर्श करें :

कविराज पं. दुर्गादत्त शर्मा, वैद्य-वाचस्पति



KALPA PHARMACY
NAVRATNA CHOWK
JULLUNDUR CITY. Pb.
PHONE: 2401 • GRAMS: KALPAPHAR

(कृपया अंग्रेजी अथवा हिन्दी में पत्र-व्यवहार कीजिये।)

अब पुरुषों के लिए

पैरिस ब्यूटी

की ओर से

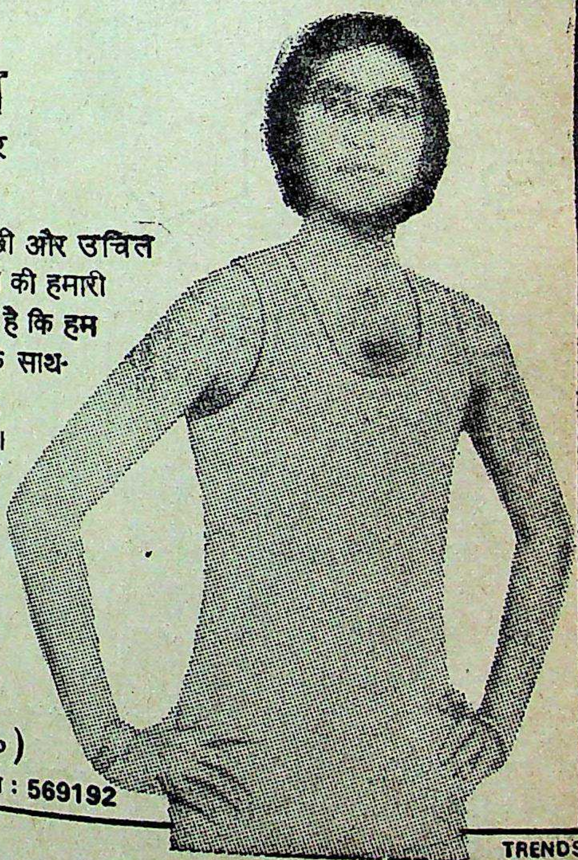
बनियान

• गोल्ड • सिलवर

• किंग • क्वीन

पुरुषों के लिए एक अच्छी और उचित दाम की बनियान बनाने की हमारी कोशिश का ही नतीजा है कि हम ब्रेसियर्ज़ और पैंटीज़ के साथ-साथ अब पुरुषों के लिए बनियान भी बना रहे हैं। सुपर कौम्ब, बढ़िया यार्न से बनी पैरिस ब्यूटी की बनियान-बाज़ू व बिना बाज़ू दोनों प्रकार की उपलब्ध हैं।

निर्माता:
पैरिस ब्यूटी
ब्रेसियर्ज़ कं० (रजि०)
नई दिल्ली-110005 फोन : 569192



मुझे ग्लायकोडिन पर भरोसा है

ये मुन्नी को खांसी से जल्द राहत दिलाएगा



ग्लायकोडिन ने खांसी की दूसरी दवाओं के मुकाबले, भारत भर में ज़्यादा से ज़्यादा लोगों की खांसी दूर की है. इसीलिये ये सबसे आगे है.



जहां जहां खांसी का प्रभाव हुआ हो, वहां-वहां यह तेजी से असर करता है... खांसी से जल्द और शर्तिया छुटकारा दिलाता है.

- गले की खराश मिटाता है.
- छाती में जमे बलगम को निकालता है और सर्दी-खांसी से राहत दिलाता है.
- छाती की जकड़न दूर करता है जिससे सांस लेने में आसानी होती है... आप चैन की नींद सो सकते हैं.

खांसी कैसी भी हो— उस पर पूरा काबू पाने के लिए आप मधुर स्वादवाले ग्लायकोडिन पर भरोसा कर सकते हैं.

Alembic

ग्लायकोडिन— भारत में खांसी को पछाड़ने वाला चैम्पियन...
विश्वसनीय दवाएं बनानेवाली कंपनी एलेम्बिक की ओर से.

everest/519/ACW-hn

नवनीत के ग्राहकों को सूचना

१) पत्र-व्यवहार में अपना ग्राहक-क्रमांक या रसीद-संख्या अवश्य लिखें ।

२) ग्राहक-क्रमांक देने से आपकी शिकायत और सूचनाओं पर हम शीघ्र ध्यान दे सकेंगे ।

३) 'नवनीत' की प्रतियां पिछले माह के आखिरी सप्ताह में आपको भेजी जाती हैं । प्रति न मिलने की शिकायत मास की १० तारीख के बाद की जा सकती है ।

४) यदि आपको अपने पते में परिवर्तन कराना हो, तो उसकी सूचना माह की १५ तारीख तक हमारे दफ्तर में दें ।

५) बहुत थोड़े समय के लिए हम पते में परिवर्तन नहीं कर सकेंगे । अतः डाकघर से ऐसी व्यवस्था कर लें कि वह आपकी डाक नये पते पर भेज दे ।

६) नये ग्राहकों को चंदा भेजते समय पूरा पता साफ अक्षरों में लिखना चाहिये ।

अपने लेखकों से

श्री संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कैसी रचनाएं लेते हैं? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये:

क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुरुचि को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।

ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बर्तो मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।

ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कलां के जंगल में जिराफ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।

* लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।
* रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सधे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।
* रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।
* रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

संपादक—नवनीत हिंदी डाइजेस्ट
नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई—३४



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त

सहसंपादक
सुरेश सिन्हा

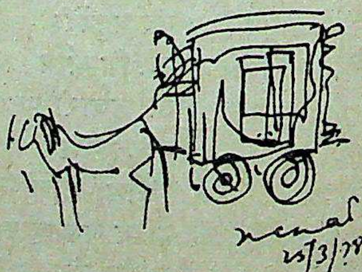
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक .... महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक ७ | जुलाई १९७९

इस अंक में

चित्रसज्जा : होकुसाई, तोकोयुनी, अबू, ओके, शेणॅ, रमेश सत्यार्थी, अमरेश, टी. ए. राणा, प्रमोद गणपत्ये ।



श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-वृष्टि

जून अंक में श्री प्रदीप चतुर्वेदी का लेख 'ग्राम-विकास के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी' पढ़ा। प्रसन्नता है कि लेखक ने सौर ऊर्जा के क्षेत्र में भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड एवं सेंट्रल इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड के कार्य को सराहा है। साथ ही उन्होंने विज्ञान एवं प्रौद्यौगिकी की राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष डा. आत्माराम का यह कथन उद्धृत किया है कि अब इन संस्थाओं को चाहिये कि वे सौर ऊर्जा उपकरणों को केवल अनुसंधान तक ही सीमित न रखकर उपयोग में भी लाना प्रारंभ करें।

इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि सेंट्रल इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड ने (जिसे भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग ने फोटोवोल्टाइक पद्धति द्वारा सौर ऊर्जा से सीधे ही विद्युत-शक्ति का विकास एवं उत्पादन करने का कार्य सौंपा है) इस दिशा में उल्लेखनीय काम करके देश के विभिन्न भागों में इस प्रकार के संयंत्र पहले से ही स्थापित किये हैं। उदाहरण हैं—जामनगर बंदरगाह पर 'दीपघर' को आलोकित करने के लिए सौर फोटोवोल्टाइक माड्यूल, सी. ई. एल. प्रांगण में स्थापित परीक्षात्मक सौर-ऊर्जा जलपंप, श्रीनगर और लेह के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में बच्चों के शिक्षण तथा मनोरंजन के लिए सौर ऊर्जा से चलने वाले रेडियो-सेट, गुजरात में भावनगर के अवानिया गांव में घर में प्रकाश करने के लिए सौर ऊर्जा पर आधारित ट्यूब लाइट, बेतार-संचरण व्यवस्था में उपयोग के लिए सौर फोटोवोल्टाइक माड्यूल इत्यादि।

वास्तव में सेंट्रल इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड में सौर ऊर्जा से विद्युत-शक्ति के उत्पादन के उपकरणों का लघु स्तर पर नियमित उत्पादन एक वर्ष से अधिक समय से हो रहा है। सी. ई. एल. की भांति बी. एच. ई. एल. ने भी देश में विभिन्न स्थानों पर (जैसे दिल्ली में कुतुब होटल पर) विभिन्न सौर ऊर्जा उपकरण स्थापित किये हैं।

यह बात याद रखनी चाहिये कि केवल भारत में ही नहीं, अपितु पूरे विश्व में सौर ऊर्जा के वर्तमान साधनों की कीमत अन्य परंपरागत साधनों की अपेक्षा बहुत अधिक है। इसलिए भविष्य में सौर ऊर्जा व्यापारिक रूप से भी वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के रूप में स्थापित हो सके, इसके लिए न केवल बड़े पैमाने पर उत्पादन एवं उपयोग, अपितु निरंतर शोध एवं विकास भी बहुत आव-

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से: एक वर्ष : ६० रु., दो वर्ष : १०५ रु., तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३००रु.; एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

श्यक है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सेंट्रल इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड में अथक प्रयत्न किये जा रहे हैं।

– डा. भूपेन्द्र मोहन सिंह बिष्ट, शोध वैज्ञानिक, सौर फोटोवोल्टाइक परियोजना, सेंट्रल इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड, औद्योगिक क्षेत्र ४, साहिबाबाद २०१००५

०००

जून अंक में 'भूकंप की भविष्यवाणी जीव-जंतुओं की मदद से' पढ़ने के अगले दिन 'संडे स्टैंडर्ड' (१०.६.१९७९) में एक समाचार पर मेरी नजर पड़ी। उसका अनुवाद इस प्रकार है :

कैटफिश–भूकंपमापी

कैटफिश नामक मछलियां भूकंप की भविष्यवाणी करने के लिए काम में लायी जा सकती हैं; क्योंकि भूकंपीय कंपनों से पहले वे बहुत उत्तेजित हो उठती हैं। यह बात तोक्यो नगर-प्रशासन के विज्ञानियों ने सात महीनों के प्रयोगों के आधार पर कही है। ये प्रयोग दस कैटफिशों पर किये गये थे और ये मछलियां तोक्यो में नगर-प्रशासन की समुद्री परीक्षण-शाला में तीन टंकियों में रखी गयी थीं।

दिसंबर १९७७ से अगले सात महीने तक के परीक्षण-काल में तोक्यो और उसके आस-पास २० भूकंप आये। इनमें से ८५ प्रतिशत की भविष्यवाणी कुछ दिन पूर्व कैटफिशों के असामान्य व्यवहार के आधार पर की जा सकी थी।

–विश्वेश्वर भट्ट, पूना-३०

०००

प्रमोद जोशी के लेख 'नाम ही बन गया काम' (जून अंक) की कतिपय गलतियों की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूं :

पृष्ठ ५१–फारेनहाइट स्केल का प्रत्येक अंश सेंटिग्रेड अंश का ५/८ वां हिस्सा बताया गया है, जबकि वास्तव में यह ५/९ वां हिस्सा होता है।

० वाट को 'बिजली की एक इकाई' कहना सर्वथा गलत है। वास्तव में यह शक्ति (पावर) की इकाई है, भले ही वह विद्युत शक्ति हो अथवा यांत्रिक, प्राकाशिक या किसी अन्य प्रकार की। १ वाट '१ जूल प्रति सेकंड' की कार्य-दर के बराबर होता है।

० विभवांतर की इकाई वोल्टा नहीं वोल्ट है। वह भी मूलतः विभव की इकाई है। यह बात दूसरी है कि विभवांतर की माप भी वोल्ट में ही की जाती है; क्योंकि दो समान भौतिक राशियों का अंतर उसी इकाई में प्रकट किया जायेगा, जिसमें स्वयं

सी राशियों की माप की जाती है। एक ठंडी और एक गरम वस्तु के तापों का अंतर यानी सेंटिग्रेड बताने से सेंटिग्रेड तापांतर (टेंपरेचर डिफरेंस) मापने की इकाई न होकर ताप मापने की इकाई ही बनी होगी।

पृष्ठ ५३–गॉस चुंबकीय क्षेत्र मापने की इकाई है। 'चुंबकीय क्षेत्र घनत्व' नाम की कोई चीज भौतिक विज्ञान में नहीं है। हां, पुरानी संकल्पना के अनुसार इसे 'चुंबकीय फ्लक्स घनत्व' की इकाई कहा जा सकता है। ध्यान देने की बात यह है कि चुंबकीय क्षेत्र और चुंबकीय फ्लक्स अलग-अलग भौतिक राशियां हैं। पहले की इकाई गॉस (सेंटिमीटर-ग्राम-सेकंड प्रणाली) या वेबर प्रति वर्ग मीटर (मीटर-किलोग्राम-सेकंड प्रणाली) है, जबकि दूसरे की वेबर। १ वेबर प्रति वर्ग मीटर १०,००० गॉस के बराबर होता है।

• ओंम विद्युत प्रतिरोध मापने की इकाई है। विद्युतधारिता मापने की इकाई फैरड (कूलॉम/वोल्ट) है।

• जूल ऊर्जा मापने की इकाई है तो सही, लेकिन मीटर-किलोग्राम-सेंकड प्रणाली में। सेंटिमीटर-ग्राम-सेकंड प्रणाली में ऊर्जा की इकाई अर्ग है।

पृष्ठ ५४–माक वास्तव में गति मापने की इकाई है। हवा में ध्वनि की गति को एक माक (अथवा मैक) कहते हैं। इसका उल्लेख किया जाना था। यह सही है कि इसका उपयोग पराध्वनिक विमानों की गति मापने में किया जाता है।

पृष्ठ ५५–'एक आइन्स्टाइन ३·७९ × १०⁴ के बराबर होती है'–इससे कोई अर्थ नहीं निकलता। अंकों के बाद ऊर्जा का उचित मात्रक भी देना चाहिये।

–नीरज त्रिपाठी, मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज, इलाहाबाद

कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा भी न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेज-कर मंगवायी जा सकेगी। –संपादक

०००

श्री हरीश अग्रवाल के 'संस्कृतियों की अध्येता' शीर्षक लेख (मई अंक) में मार्गरेट मीड के जीवन और उनके बहुविध ज्ञान पर तो अच्छा प्रकाश डाला गया है, परंतु इसका उल्लेख मात्र किया गया है कि 'आदिवासी संस्कृतियों में व्यक्तित्व के विकास और निर्माण में जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक शक्तियों का क्या योगदान होता है, इसका उन्होंने बड़ी गहराई से अध्ययन किया था।' आदिवासी क्षेत्रों में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के लिए इस विषय पर एक स्वतंत्र लेख द्वारा प्रकाश डाला जाये तो



युगांडा के अंग्रेज व्यापारियों से इदी अमीन ने अपनी कुर्सी उठवायी थी। इस घटना का जिक्र श्री हरिशंकर ने इसी अंक में अपने लेख 'एक था तानाशाह......' में किया है। इस बीच प्रो. लुले को पदच्युत करके गाडफ्रे बिनेसा युगांडा के राष्ट्रपति बन गये हैं।

वह बहुत उपयोगी होगा। क्योंकि आदिवासी संस्कृतियों के बारे में अभी तक हिंदी में बहुत कम साहित्य पाया जाता है।

– भूरेलाल बया, उदयपुर, राजस्थान

०००

श्री रामावतार चेतन ने 'जा पान ले आ' (मई अंक में) 'पान भीतर से लाल होता है' कहकर बहुत ज्ञान का परिचय नहीं दिया है। 'रंग लाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद'। हां, हिना तो रंग लाती है; पर कोरा पान दांतों से घिस जाने के बाद रंग नहीं लाता है। यहां मुंह लाल होता है कत्थे और चूने से। पान की लाली का रिश्ता खून और मांस से जोड़कर भी लेखक ने वीभत्स रस की सृष्टि की है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है–'पान खाने की कला से बड़ी है पान लगाने की कला।' हम तो कहते हैं दोनों ही कलाएं नहीं हैं, कला तो पान देने की होती है–चाहे दिया जाने वाला पान बिना चांदी के वर्क का ही क्यों न हो।

–जयसिंह चौहान 'जौहरी', कानोड़, उदयपुर, राजस्थान

०००

उड़न-तश्तरियों के संबंध में डा. जयंत नारळीकर का लेख सामान्य पाठक की जिज्ञासा की तुष्टि के लिए अच्छा लेख था। उसमें इस प्रसिद्ध विज्ञानी ने साधारण पाठकों के मन में उठने वाली शंकाओं का बड़ी सहज शैली में समाधान किया है। श्री इंद्र मोहन सोनी ने इस लेख पर अपने पत्र (मार्च अंक) में डा. नारळीकर को 'पूर्वग्रही' कहा है, जबकि श्री सोनी का पत्र जताता है कि उनसे अधिक पूर्वग्रही तो वे स्वयं हैं। वे साइबेरिया में हुए विस्फोट की चर्चा करते हैं। उन्हें अवश्य पता होगा कि पहले इसे किसी उल्का-पिंड के पृथ्वी से टकराने का परिणाम माना गया था। श्री सोनी ने जिन नयी संभावित व्याख्याओं की चर्चा की है, वे सब तो अनुमान मात्र हैं। आखिर कौन विशेषज्ञ उस समय यह सब दर्ज करने के लिए साइबेरिया में मौजूद था!

डा. नारळीकर का यह प्रश्न न्यायसंगत

है कि यदि अन्य कोई समुन्नत सभ्यता ब्रह्मांड में विद्यमान है तो वह पृथ्वी पर यान क्यों नहीं भेजती। श्री सोनी तुनककर कहते हैं-'यह प्रश्न उस सभ्यता से पूछिये।' क्या बचकाना मत है यह!

मैं मानता हूं, डा. नारळीकर ने तस्वीर से राख झड़ने, इंपोर्टेड घड़ियां प्रकट करने आदि पर जो टिप्पणी की है, वह सर्वथा प्रसंगोचित है, जबकि श्री सोनी ने टेलिपैथी, पूर्वसूचना, दिव्यदृष्टि, मरणोत्तर जीवन आदि सबको इस प्रसंग में ठूंसने का प्रयत्न किया है। अच्छा होता वे अपने पूर्वग्रह छोड़कर अपने को मूल विषय तक सीमित रखते। **-बी. बी. राय, सागर, म. प्र.**

०००

कुछ समय पूर्व श्रद्धेय श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की एक अपील **नवनीत** में छपी थी, जिसमें उन्होंने वाराणसी के हिंदी पत्रकार श्री गौरीशंकर गुप्त की चिकित्सा के लिए आर्थिक सहायता की संस्तुति की थी। श्री गुप्तजी की पत्नी टी. बी. की मरीज हैं और चिंताजनक स्थिति में हैं। उनकी चिकित्सा के लिए सहृदय पाठक निम्न पते पर आर्थिक सहायता भेज सकते हैं: **श्री गौरीशंकर गुप्त, ए २/५, कामेश्वर महादेव की गली, गायघाट, वाराणसी-२२१००१**



इस सदी का सर्वाधिक चर्चित भेड़िया-बालक रामू-देखिये पृष्ठ ७१।



हमें खेद है, पूर्वघोषित पुस्तक-संक्षेप 'बर्नार्ड शा के साथ तीस वर्ष' हम इस अंक में नहीं दे पाये। उसे आप अगस्त अंक में पढ़ सकेंगे।

समूचे महाराष्ट्र में बिजली कटौती के कारण कई दिन प्रेस बंद रहे। इस कारण यह अंक बहुत विलंब से छप पाया। इसके लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं। **-संपादक**

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४
फोन: ३७२८४७
व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग, ३६५, बेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४
फोन: ३९२८८७

धर्म-परिवर्तन की स्वाधीनता

डा. रघुवंश

श्री ओमप्रकाश त्यागी के व्यक्तिगत विधेयक के इर्द-गिर्द इधर पिछले कुछ महीनों से बहस चल पड़ी है। निजी बातचीत से लेकर पत्र-पत्रिकाओं तक में धर्म-परिवर्तन के प्रश्न को लेकर कई स्तरों पर बहसें उठायी गयी हैं। कहा गया है कि इस विधेयक के अनुसार किसी प्रकार के लालच अथवा दबाव में धर्म-परिवर्तन गैरकानूनी होना चाहिये।

पहले तो मुझे आश्चर्य हुआ कि क्या अभी ऐसा करना वैध माना जाता है? मेरे एक मित्र ने बताया कि किसी कानून के अंतर्गत इसका निर्देश अवश्य है; पर इस विधेयक में इस पर अधिक बल दिया गया है। मन में उठा कि जब ऐसा है, तब उसे दुहराने की आवश्यकता क्या है? फिर अगर उसी बात को दुहराया जा रहा है, तो उसका विरोध क्यों?

हम संविधान में अपने को धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र मानते हैं। इसके अनुसार हमारी प्रतिज्ञा है कि हमारे देश के नागरिकों को धर्म के संबंध में स्वाधीनता है। कोई किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेगा और राज्य धर्म को व्यक्तिगत मामला मानकर उसमें तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगा, जब तक कि दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण न हो और आपसी संघर्ष न हो।

विधेयक के पक्ष में कहा जा रहा है कि धर्म की स्वतंत्रता के लिए ही यह जरूरी है कि किसी की स्वाधीन इच्छा पर लालच अथवा दबाव नहीं होना चाहिये। विपक्ष का कहना है कि दबाव को इतने व्यापक तथा सामान्य अर्थ में ले लिया गया है कि धर्म-परिवर्तन का मौलिक अधिकार खतरे में है।

सवाल है कि यह नयी चिंता कहां से शुरू हुई? और आज की इस बहस का स्वरूप क्या है? विधेयक के पीछे एक चिंता व्यक्त होती है, जो काफी लंबे अरसे से हिंदू समाज में चली आ रही है। ब्रिटिश शासन-काल में कहा जाता रहा है कि राज्यसत्ता और ईसाई मिशन पिछड़े और निर्धन हिंदू लोगों को नौकरी, पद, धन के लालज या दबाव से ईसाई बना रहे हैं। मुस्लिम शासन-काल में यही बात इस्लाम धर्म के प्रचार के बारे में कही जाती थी। इन दोनों स्थितियों में सत्य है। पर ध्यान देने की बात है कि १९वीं शती के पुनर्जागरण द्वारा हमारे धार्मिक-सांस्कृतिक नेताओं ने इस परिस्थिति का सही निदान किया था और इसी कारण दूसरे धर्म तथा संस्कृतियों की चुनौती को स्वीकार कर उन्होंने सही रास्ता भी खोजा था।

निश्चय ही उस समय इंग्लैंड के चर्च को

• 'नवभारत टाइम्स' में छपे लेख का सार •

मुख्यतः तथा अन्य ईसाई मिशनों को सामान्यतः ब्रिटिश शासन का संरक्षण प्राप्त था। उस समय लालच और दबाव काम कर सकता था, करता भी था। वैसी स्थिति में हमारे सांस्कृतिक नेताओं ने इस चुनौती का मुकाबला करने के लिए सबसे पहले अपने हिंदू समाज की कमियों तथा विकृतियों का विश्लेषण किया। ब्रिटिश सरकार धर्म के संबंध में जोर-जबर्दस्ती पर प्रतिबंध लगाये हुए थी; अतः हिंदू नेताओं ने सामाजिक जागृति और धार्मिक सुधार तथा सही दृष्टि के प्रचार से ईसाई धर्म के प्रभाव को रोकने का मार्ग अपनाया था।

उन्होंने देखा कि हिंदू धर्म क्रमशः जड़, रूढ़िग्रस्त और विकृत हो जाने के कारण अपनी गत्यात्मक क्षमता खो बैठा है। हिंदू समाज व्यक्ति-केंद्रित हो जाने के कारण पिछड़े निर्धन दलित वर्गों की उपेक्षा ही नहीं, उनके साथ अन्याय करता है। ऐसी स्थिति में प्रेम, उदारता सेवा के संदेश के आधार पर ईसाई धर्म इन वर्गों के लिए आकर्षक हो सकता है। यह उन उदारमना नेताओं ने समझा था कि ईसाई धर्म का आकर्षण उसकी मूल सेवा तथा प्रेम की भावना है। यह अलग बात है कि इस आधार पर इन वर्गों के लोगों के लिए अन्य लालच तथा दबाव भी धर्म-परिवर्तन में सहायक थे। इसी कारण इन नेताओं ने हिंदू धर्म की दृष्टि को बदलने का प्रयत्न पहले किया और उसे मूल परंपरा से जोड़कर हिंदू धर्म के प्रेम, सेवा, सत्य, अहिंसा जैसे मूल्यों पर बल दिया। ईसाई मिशनों के समानांतर हिंदू समाज को सेवाकार्यों की ओर उन्मुख किया। आर्यसमाज तथा रामकृष्ण मिशन जैसी हिंदू संस्थाओं ने अनेक शिक्षण-संस्थाएं, अस्पताल आदि खोले। इस सबके पीछे भारतीय धर्म तथा संस्कृति की समृद्ध तथा स्वस्थ परंपरा को पुनः जीवित व सक्रिय करने की भावना थी। और इस प्रकार ईसाई धर्म तथा पश्चिमी संस्कृति की चुनौती का उन्होंने सामना किया था।

उस समय जोर-जबर्दस्ती से धर्म-परिवर्तन पर कानूनी रोक थी और इससे अधिक की मांग हमारे उन नेताओं ने नहीं की, यह ध्यान देने की बात है। वे भली भांति समझते थे कि इन पिछड़े पददलित वर्गों के मन पर भी लालच और दबाव का प्रभाव बहुत सीमित रूप में पड़ता है। मुख्य बात यह है कि हिंदू समाज उनके प्रति असहिष्णु, अनुदार तथा अन्यायी है, जबकि ईसाई धर्म प्रेम और सेवा, उदारता तथा समानता का आदर्श लेकर चलता है। इसीलिए उन्होंने हिंदू समाज को जगाने का पहला प्रयत्न किया था और हिंदू धर्म की परंपरा से ही उन्होंने प्रेम, सेवा, समानता का संदेश दिया था।

आज परिस्थिति बदल चुकी है। ब्रिटिश सरकार नहीं है, इंग्लैंड के चर्च का प्रभाव खत्म हो चुका है, जोर-जबर्दस्ती का पहले भी सवाल नहीं था। देश स्वाधीन है। हमारी प्रतिज्ञा धर्मनिरपेक्षता की है। हिंदू समाज बहुसंख्यक है। ईसाई धर्मावलंबी सीमित अल्पमत में हैं। यह जरूर कहा

जाता है कि ईसाई मिशनों का संबंध विदेशों से है और उन्हें भारी आर्थिक सहायता वहां से मिलती है। कभी-कभी यह भी कहा गया है कि मिशन के कुछ व्यक्ति विदेशी व्यक्तियों के प्रभाव में काम करते हैं। पर इस बहस के लिए ये सारी बातें असंगत हैं। विदेशी सहायता और प्रभाव पर दृष्टि रखने और उसे नियंत्रित करने का काम सरकार का है। उसे वह प्रभावी ढंग से करना चाहिये।

इस बहस में अधिकतर ईसाई संघों के लोग भाग ले रहे हैं और विधेयक के विरोध का नेतृत्व भी वही कर रहे हैं। अतः यहां हमारी चर्चा भी ईसाई धर्म तक सीमित है। प्रश्न है कि ईसाई धर्म के पास क्या लालच या दबाव हो सकते हैं। पद या अधिकार का दबाव या लालच वे प्रयोग में ला नहीं सकते। कहा जा सकता है कि उनके पास धन है और तमाम पिछड़े क्षेत्रों में अनेक तरह की संस्थाएं (शिक्षण-संस्थाएं तथा अस्पताल आदि) खोलकर जन-समाज की सेवा करके वे वहां के लोगों को आकर्षित कर सकते हैं और करते हैं।

यह तर्क बहुत मजे का है। हमारी सरकार में भी निश्चय ही बहुसंख्यक हिंदू धर्म के लोग होंगे। फिर सरकार उन क्षेत्रों में लोक-कल्याण के कार्य इस स्तर पर क्यों नहीं करती कि धर्म-सेवकों को श्रम करने की जरूरत नहीं पड़े? फिर हिंदू धर्म में न करोड़पति-अरबपतियों की कमी है और न धर्माध्यक्षों (मठाधीशों, योगियों, भगवानों) की। वे क्यों नहीं पिछड़े, पददलित, शोषित वर्गों को उठाने का प्रेम तथा सेवा का कार्यक्रम अपने हाथों में लेते?

एक पक्ष तो यह है कि अगर किसी धर्म-संघ के लोगों के प्रेम और सेवा से इस वर्ग या व्यक्ति को सहारा मिलता है, शोषण तथा असम्मान से मुक्त होने का आभास मिलता है, तो उन्हें किसी भी समाज में जाने की छूट होनी चाहिये। अगर यह भी मान लिया जाये कि उनके प्रेम तथा सेवा के कार्यक्रमों के पीछे इन लोगों या वर्गों को अपने धर्म-समुदाय में लेने की भावना रहती है, तो भी छूट दी जानी चाहिये। क्योंकि अगर कोई धर्म-समाज अपने वर्ग या व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह नहीं कर सकता और शोषण, अन्याय को दूर करने के लिए सम्मिलित प्रयत्न नहीं कर सकता तो उस वर्ग और व्यक्ति को लालच या दबाव में (जोर-जबर्दस्ती नहीं होने पर मूलतः वह प्रेम या सेवा का ही होगा) अपने धर्म-परिवर्तन की छूट भी होनी चाहिये। अन्यथा हिंदू समाज के इन वर्गों तथा व्यक्तियों को निरंतर अन्याय तथा शोषण सहन करने की विवशता भोगनी पड़ेगी।

अंत में एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना बहुत जरूरी है। सामान्यतः ईसाई धर्मावलंबी भारतीय समाज के शांति-प्रेमी और अनुशासन प्रिय अंग रहे हैं। रोमन चर्च ने अन्य धर्मों के बारे में जो व्यापक और सहमति का दृष्टिकोण अपना रखा है वह संसार के धार्मिक जीवन के लिए स्वस्थ है। इस प्रकार उसकी यह मान्यता है कि

धर्म का संस्कृतियों से अनिवार्य संबंध नहीं है। हर धर्मावलंबी को अपने देश-समाज की संस्कृति को स्वीकार करना चाहिये; क्योंकि इसी प्रकार पूरे समाज (सभी धर्म मानने वालों) का सही संघटन हो सकता है।

मैं समझता हूं कि हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि ईसाई धर्म मानने वालों की अपने देशवासियों के साथ व्यापक भारतीय समाज के अंग बनने की क्रिया में कोई अवरोध उत्पन्न न हो।



संजीवनी वनस्पति

राजस्थान और गुजरात में पाये जाने वाले 'कोमीफोरा मुकुल' नामक एक पादप से हाइपर-लिपेडेमिया रोग के लिए एक दवा लखनऊ के केंद्रीय भैषज अनुसंधान संस्थान में तैयार की गयी है। हाइपर-लिपेडेमिया में रक्त में कोलेस्टेरोल की मात्रा बढ़ जाती है। आप जानते हैं कि रक्त में कोलेस्टेरोल का आधिक्य हृद्रोगों के लिए काफी जिम्मेदार है।

लखनऊ संस्थान के फार्माकॉलाजी विभाग के अध्यक्ष प्रो. वी. एन. धवन ने बताया है कि नयी दवा की लखनऊ के मेडिकल कालेज में क्लिनिकल परीक्षा की जा चुकी है और वह सफल रही है। लगभग एक दर्जन रोगियों पर इसे आजमाये जाने पर उनके खून में कोलेस्टेरोल का स्तर काफी कम होता पाया गया। डा. धवन के अनुसार, प्याज और लहसुन का लगातार प्रयोग भी खून में कोलेस्टेरोल को नियंत्रित कर सकता है।

आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियों में उपचार और औषध-निर्माण के लिए काम में लाये जाने वाले पादप-उत्पादों में से लगभग डेढ़ हजार की परीक्षा लखनऊ केंद्र अब तक कर चुका है। इनमें से लगभग ६ प्रतिशत पादपों में निश्चित रूप से रक्तचाप (ब्लड-प्रेशर) को कम करने की क्षमता पायी गयी है। निचले हिमालय क्षेत्र में बहुतायत से पाये जाने वाले कोलियस नामक पौधे से जो दवा रक्तचाप के नियंत्रण के लिए तैयार की गयी है, उसका प्रभाव चूहों और बंदरों पर अनुकूल पाया गया है। मनुष्यों पर उसकी परीक्षा अगले वर्ष की जा सकेगी।

मद्रास विश्वविद्यालय मे फार्माकॉलोजी विभाग के अध्यक्ष प्रो. वी. एस. वेंकटसुब्बु ने बताया है कि उनके विभाग ने अशोक वृक्ष की छाल से एक औषध का निर्माण किया है, जो बच्चे के जन्म के बाद मां के गर्भाशय से रक्तस्राव को रोकने के लिए गर्भाशय के संकुचन में उपयोगी साबित हुई है। उनके यहां तैयार की गयी एक अन्य दवा आंतों में से कीड़े निकालने के लिए है। इन दोनों दवाओं के परीक्षण-परिणाम काफी संतोषजनक बताये गये हैं।



गोरक्षण-लाभ ही लाभ

प्रो. सी. एन. वकील

गोरक्षण के सवाल को केवल हिंदूधर्म से जोड़ देना एकदम गलत है। प्राचीन ऋषियों ने जीवन के बहुत-से पहलुओं को गहराई से परखा था। वे अपने हितकारी निष्कर्षों का जनता में प्रचार भी चाहते थे। परंतु उस समय प्रेस तो था नहीं, इसीलिए उन्होंने कई बातों को धार्मिक कृत्यों और प्रथाओं का रूप दे दिया था। मसलन गंगा को लें। गंगाजल की उपयोगिता पीने, सींचने और बिजली बनाने में सभी स्वीकारते हैं। यही बात तुलसी की भी है। कितनी ही बीमारियों में तुलसी से बनी दवा रामबाण का काम करती है।

गोरक्षण का महत्त्व भी हमारी खेती-बारी की अर्थ-व्यवस्था में कोई नहीं झुठला सकता। यह बात शहंशाह अकबर ने भी जान ली थी और अपनी सल्तनत में गो-हत्या बंद करा दी थी। किंतु अंग्रेजों ने गायें काटना फिर शुरू करा दिया था, क्योंकि उन्हें अपने गोरे सैनिकों के लिए गोमांस चाहिये था। हमारे संविधान में निर्देशक सिद्धांतों (४८ वीं धारा) में कहा गया है कि राज्य को गोरक्षण करना चाहिये। ध्यान रहे कि अल्पसंख्यक जातियों के सदस्यों ने भी उस वक्त इसका विरोध नहीं किया था।

सर्वोच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की एक पीठ ने (जिनमें एक मुस्लिम भी थे) अपने एक निर्णय में कहा था:

'भारत में गायों का विशेष संरक्षण इस- लिए जरूरी है कि वे उपयोगी हालत में होने पर भी कसाइयों के हाथ बेच दी जाती हैं। और कसाई लोग भी कितने ही तरीकों से गायों को जानबूझकर बे-काम बना देते हैं, ताकि उन्हें काटने में कानूनी कठिनाई न पड़े।'

आगे उन्होंने यह राय भी व्यक्त की- 'इन सारी बातों को मद्दे-नजर रखकर एक खास उम्र के पशुओं का काटा जाना बंद करा देने मात्र से गायों को पर्याप्त संरक्षण नहीं मिल सकेगा। अत: बूढ़ी और कमजोर गायों के लिए भी उक्त नियम में कुछ अपवाद रखना जरूरी हो जाता है।'

गाय का दूध बहुत ही पुष्टिकर और सेहत के लिए जरूरी प्रोटीन का साधन माना जाता है। अभी देश में कई आधुनिक डेरियां खुलने पर भी दूध की आपूर्ति बहुत ही नाकाफी है। अत: यह हमारे ग्राम-विकास की पहली जरूरत है कि गायों की नस्ल बाकायदा सुधारी जाये और गायों को

• 'भवन्स जर्नल' से साभार •

अच्छी तरह पाला-पोसा जाये । इससे गांव-वालों की सेहत तो सुधरेगी ही, जिनके यहां दूध का उत्पादन ज्यादा होगा, उनकी आमदनी भी काफी बढ़ेगी ।

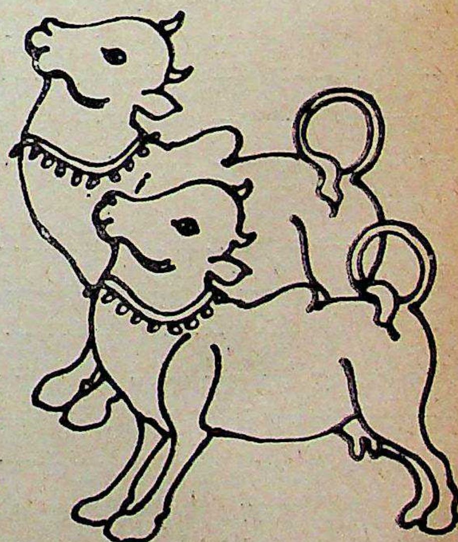
हमारे जैसे खेती-प्रधान देश के लिए अच्छी मिट्टी, अच्छी खाद और कारगर चालक शक्ति ये तीन प्रमुख जरूरतें हैं । पानी को हमने इनमें शामिल नहीं किया है क्योंकि उसके लिए हमें ज्यादातर बारिश पर निर्भर रहना पड़ता है । यद्यपि सिंचाई-योजनाओं से भी कुछ मदद मिल जाती है । वैसे अपने आपमें सिंचाई कम बड़ी समस्या नहीं है। लेकिन यहां पर हम पानी को छोड़कर उक्त तीन समस्याओं से संबंधित ...ओं पर ही विचार कर रहे हैं ।

उपजाऊ मिट्टी

कुदरत हमेशा ही अपने ढंग से काम करती है। अगर हम उसके काम को समझें और उसमें मदद करदें तो वह हमें माला-माल कर देती है । अगर हम लापरवाही करें या कुदरती काम में रुकावटें डालें तो वह हमें सजा देती है । अगर हम अपनी कल्पना-शक्ति पर जरा जोर डालें, तो फौरन पता चल जायेगा कि आदमी, जानवर और पेड़-पौधों का अस्तित्व उपजाऊ मिट्टी पर ही निर्भर है । वास्तव में कुदरत के सभी अंग एक दूसरे पर निर्भर हैं—यह जरूर है कि मिट्टी सबका आधार बनती है । जीवन-तत्व जैसे आदमी, जानवर और पेड़-पौधों में होता है, वैसे ही मिट्टी में भी होता है। सुनने में यह बात अजीब लगती है, लेकिन यह एक बहुत बड़ी सचाई है । मिट्टी में हमेशा मौजूद और काम करने वाले लाखों सूक्ष्मदेही इसके प्रमाण हैं ।

आदमी अपने खाने की तलाश में अक्सर यह भूल जाता है कि जिंदा मिट्टी को भी आदमी, जानवर या पेड़-पौधों की तरह अपनी खुराक चाहिये । नहीं तो वह जल्दी ही मर जाती है, बेकार हो जाती है । मरी हुई मिट्टी पेड़-पौधों को जिंदगी नहीं दे पाती । जिंदा मिट्टी को 'ह्यूमस' चाहिये, जैसे आदमी और जानवरों व पेड़-पौधों को प्राणवायु और पानी ।

ह्यूमस प्राणियों और पादपों के सड़ने-गलने से उपजता है—जीवाणुओं की खास कारस्तानी से । इसी को 'परावर्तन नियम' (जहां से उपज होती है वहीं वापसी) भी कहते हैं । प्राणियों द्वारा छोड़ी या फेंकी



● इस लेख के सब चित्र—शेणै रचित ●



गयी हर चीज जमीन में वापस आ मिलती है। इसका मलतब नहीं कि हम सारा कचरा या गंदगी जमीन पर जहां-तहां फेंकते रहें। उसे यह सब कुछ पके-पकाये या हजम होने योग्य रूप में मिले, तभी ठीक होता है। इसी को 'ह्यूमस' कहते हैं। जमीन को प्राणियों और पादपों का बचा-खुचा सभी कुछ 'ह्यूमस' की शक्ल में ही मिलना चाहिये। खाद भी अपने आप ह्यूमस नहीं बन जाती; इसके लिए उसे मिट्टी के फगस की या जीवाणुओं की मदद की जरूरत पड़ती है।

जाहिर है कि मिट्टी अपने आपमें रसायन ही नहीं और भी बहुत-कुछ होती है, जो उसमें न हो तो वह फिर मिट्टी नहीं बनी रहती, सिर्फ धूल या रेती बन जाती है। लेकिन ऐसा होने से पहले पेड़-पौधे इतने कमजोर हो जाते हैं कि उनमें रोगों को रोकने की ताकत नहीं रहती। तब तरह-तरह के रासायनिक द्रव्यों से उनकी रक्षा करनी पड़ती है। लेकिन रसायनों के अधिकाधिक प्रयोग से उपजाऊ मिट्टी पर जहरीला असर होता है और उसमें उपजते पौधे और भी कमजोर पड़ जाते हैं।

पौधों को कीट-पतंगों से बचाने का एक नया तरीका निकला है—जमीन का बंध्या-करण। किंतु इसका नतीजा यह होता है कि उसमें उपजे खाद्य पदार्थों के स्वाद-गंध बदल जाते हैं। मसलन हरित-गृहों में उप-जाये गये टमाटरों में वह जायका नहीं होता, जो उनमें होना चाहिये।

इस तरह एक रासायनिक दुश्चक्र चलने लगता है। अशक्त जमीन से कमजोर पौधे और रोग तथा नाशक जीव; उनसे बचने के लिए जहरीला छिड़काव और फिर निः सत्व उपज, जिसमें विटामिनों और खनिजों की बहुत कमी होती है। फिर तरह-तरह के रोगों से छुटकारा पाने के लिए हमें औषधों-रसायनों की शरण लेनी पड़ती है। बड़े-बड़े रासायनिक उद्योगपति हमारी दवा खाने की आदत का भरपूर शोषण करते हैं।

अच्छी खाद

खनिज उर्वरकों से जमीन की भूख नहीं मिटती। वे तो उसे और भी ज्यादा बढ़ा देते हैं। उर्वरकों से बढ़ायी गयी खाद्य-उपजों में पोषक तत्त्वों की कमी रहती है। अतः खनिज उर्वरकों से आखिर में आदमियों और जानवरों की सेहत खराब ही होती है।

वास्तव में जमीन की उर्वरता बढ़ाने के लिए सबसे अच्छी खाद गोबर ही होती है।

गोबर का मुकाबला हरी खादें भी नहीं कर पातीं, जिन्हें उपजाने में जमीन एक खास मौसम में ही काम आती है और जिनसे जानवरों की क्षुधा-पूर्ति का काम भी नहीं पूरा होता। उनकी जगह जानवरों के चारे की फसलें उगाने से उतनी ही जमीन से जानवरों के खाने लायक चारा मिल जाता है। ये जानवर हमारे लिए पूरे साल काम तो करते ही हैं, ऊपर से ऐसी खाद भी देते हैं जिससे जमीन की भूख मिटती है।

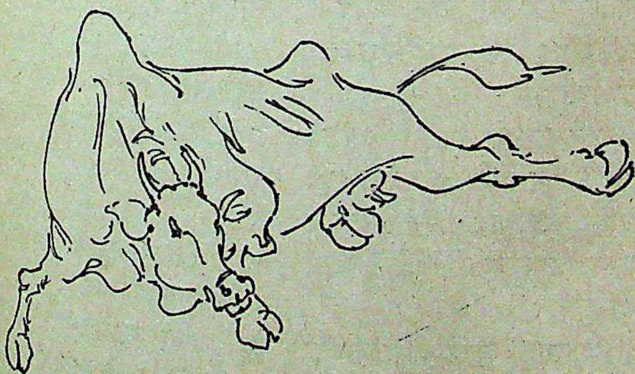
-चालक शक्ति

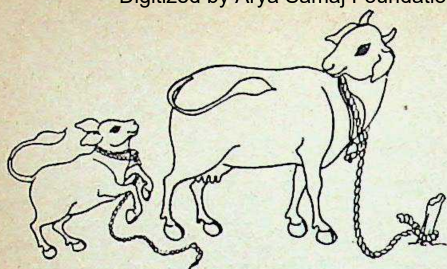
भारत की आधी से ज्यादा आबादी केवल खेती पर ही निर्भर है। उसके लिए यह मानो दायां हाथ है। कारण, गायें किसानों को बैल देती हैं, जिनके बिना खेती के बहुत-से काम पूरे नहीं हो सकते। तेल निकालने या गन्ना पेरने में ज्यादातर बैल ही काम आते हैं। लेकिन आजकल बैलों की दुरवस्था से खेतीबारी और ग्रामोद्योगों में काम आने वाली चालक शक्ति का अभाव बढ़ता जा रहा है। फलतः ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को भी धक्का लग रहा है।

गांव वालों के लिए बैल जिंदा ट्रैक्टर हैं, जिंदा खाद के कारखाने हैं, नाइट्रोजन के स्रोत हैं। वे हमारी जमीन की उर्वरता बढ़ाने में मदद करते हैं; क्योंकि उनसे जमीन की सछिद्रता, नमी और वायु-संचारण जैसी जरूरतें पूरी होती हैं।

मशीनीकरण

कृषि में मशीनों के उपयोग से तभी ज्यादा फायदा हो सकता है, जब कि खेती-योग्य जमीन के चक (प्लाट) बड़े हों। लेकिन हमारे यहां तो अधिकांश किसानों के कृषि-भूखंड छोटे-छोटे ही हैं। मशीनों को कारगर बनाये रखने के लिए खनिज तेल (पेट्रोल आदि) की जरूरत पड़ती है, जिसके भंडार सीमित हैं और थोड़े बरसों के बाद चुक जा सकते हैं। गांवों के यातायात में भी अभी बैलगाड़ियों का महत्त्व कम





नहीं हुआ है, यद्यपि मोटरों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। लेकिन पेट्रोल की तंगी या अभाव में भी बैल काम में आ सकते हैं, मशीनें नहीं।

क्या काम में न आने वाले गाय-बैलों का काटना जायज नहीं है ? यह सवाल अक्सर उठाया जाता है। जायज है—यह साबित करने के लिए कहा जाता है कि इन्हें पालने में जो पैसे खर्चने पड़ते हैं उनसे कहीं अधिक पैसे उन्हें काटकर उनके मांस और चमड़े आदि के देशी उपयोग या विदेश-निर्यात से मिल सकते हैं।

लेकिन यह दलील पेश करने वाले यह भूल जाते है कि गाय-बैल अपने बुढ़ापे के तीन-चार वर्षों में भी काफी गोबर-गैस और नाइट्रोजन-संभरित खाद देते हैं या दे सकते हैं, जिनकी कीमतें पैसों से आंकने पर भी उनका पालन घाटे का सौदा नहीं होता। उनसे मिले खाद के उपयोग से जमीन को पहुंचने वाले लाभ के बारे में जितना कहें, वह थोड़ा ही है।

गाय-बैल (जानवर) मरने के बाद भी काम आते हैं—खाल, मांस, अस्थि-चूर्ण, चर्बी, कंडरा, सींग और खुर आदि उनका सभी कुछ आदमियों के काम आता है। चमड़े के बहुत-से उपयोग तो सभी जानते हैं। हड्डियों की राख मृत्तिका-उद्योग में, सींग सजाने की चीजें बनाने में, कंडरा चिपकाने का द्रव तैयार करने में और सींग-खुर एक तरह की खाद के निर्माण में काम आते हैं।

फायदेमंद जानवर

यदि एकदम निष्पक्ष और पूर्वग्रह-रहित होकर सोचें, तो यह निःसंदेह माना जा सकता है कि गाय हमारी अर्थ-व्यवस्था के लिए अत्यंत उपयोगी पशु है। उसे अंत तक पालने-पोसने में हमारी कोई हानि नहीं होती। इस बारे में महात्मा गांधी ने कहा है :

'हमें अपने हित के के लिए गाय के बारे में ठीक-ठीक जानकारी (विज्ञान और अर्थशास्त्र) होनी चाहिये। गायों से हमें दूध तो मिलता ही है, वे हमें बैल भी देती हैं, जो खेती-बारी की चालक शक्ति हैं, भारवाही हैं। यदि हम जान लें कि उनके चमड़े, मांस, हड्डियों और आंतों का भी सदुपयोग होता है, तो यह भली-भांति समझ सकेंगे कि गाय हमारे लिए बहुत ही उपयोगी पशु है। उससे हमारी कोई हानि नहीं होती।'

कुदरती नियामत और आर्थिक संपत्ति

यदि जनता सरकार ग्राम-विकास की बहुविध योजना सचमुच पूरी करना चाहती है, तो उसे यह देखना ही चाहिये कि गाय-बैलों की जीते-जी और मरने के बाद भी ... जुताई

दुर्गति न हो। उनके उपयोगों का अच्छे से अच्छा प्रबंध होना चाहिये। भारत की ग्रामीण जनता तभी उनका असली महत्त्व समझ सकेगी।

असल में गो-संरक्षण अथवा गोवध की रोकथाम खेती-बाड़ी और जनता की सेहत की रक्षा करना है। गोपूजन का सही अर्थ है– गायों की सेहत और उनके पालन-पोषण की ठीक-ठीक देखभाल करना। सारे देश को यह समझ लेना चाहिये कि भगवान ने हमें यह नायाब कुदरती नियामत दी है, जिसे हमें अपने आर्थिक हितों के लिए संभालकर पालना-पोसना है। गोसंरक्षण, गोरक्षा या गोवध-बंदी का यही अभिप्राय है।



० प्रेम विश्वास में से जन्म लेता है, आशा पर जीता है, और दान से मर जाता है। **–मेनोत्ती**

० किसी आकस्मिक सौभाग्य के बूते पर मनुष्य कुछ अरसे तक दुनिया पर शासन कर सकता है; पर प्रेम के बूते पर वह दुनिया पर हमेशा शासन कर सकता है। **–लाओ-त्से**

० हमारे लिए देशभक्ति और मानव-प्रेम में कोई अंतर नहीं है। **–महात्मा गांधी**

० प्रेम और धर्म मनुष्य में पायी जाने वाली दो सर्वाधिक विस्फोटक भावनाएं हैं, और इसमें आश्चर्य नहीं कि जब इनमें से किसी भी एक में कोई गड़बड़ होती है, तो उसका प्रभाव दूसरी पर भी पड़े बिना नहीं रहता। **–हैवलाक एलिस**

० मनुष्य अपनी गहनतम सचाई को अनुभव तो कर सकता है, पर बता नहीं सकता। यही कारण है कि प्रेम मनुष्य के अंतिम प्रश्न का अंतिम उत्तर है। **–आर्चीबाल्ड मैक्लीश**

० मनुष्य किसी चीज को तब तक समझ नहीं सकता है, जब तक कि वह उसे प्यार न करने लगे। **–गेटे**

० काम और प्रेम–ये बुनियादी चीजें हैं। इनके बिना कोई पागलपन संभव नहीं। **–थियोडोर राइक**

० सभी पापों की जड़ है–कुंठित या तिरस्कृत प्रेम। **–फ्रांज बेर्केल**

० सच्चा प्रेम केवल स्वतंत्र समाज में संभव है; और स्वतंत्रता तभी संभव है, जब प्रेम एक वास्तविकता बन जाये। **–एडवर्ड कार्पेन्टर**



शिक्षा में संस्कार

यदुनाथ थत्ते

एक महानगर का प्रख्यात विद्या-मंदिर। उसमें 'आइ. क्यू.' की छानबीन करके ही प्रवेश मिलता है छात्रों को।....

प्रशासक और तंत्रज्ञ तैयार करना संस्था का उद्देश्य है। और ये प्रशासक तथा तंत्रज्ञ संस्कारसंपन्न हों, ऐसा आग्रह उसके संचालकों का है।

'मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति किञ्चन' कह सकने वाले राजा जनक की कोटि के कार्यकर्ता तैयार करने का प्रयास संस्था-चालक बड़ी लगन से कर रहे हैं। इसके लिए छात्रों के उपनयन का आयोजन करते हैं।

इससे आप यह न समझ लें कि उपनयन के बाद कृष्ण और सुदामा की तरह सबको समान स्थिति में एक साथ रखा जाता है।

देश-काल-पात्र का विचार करना ही पड़ता है। आज के महानगरों में यह कहां संभव है कि बारह-बारह वर्ष तक विद्यार्थी गुरुगृह में रहें और शिक्षा पायें! सो संस्था द्वारा प्रदत्त संस्कार लेकर छात्र अपने घरों में रहते हैं।

बुढ़ापा आराम से गुजारना है तो बच्चों को डाक्टर, इंजीनियर या प्रशासक बनाना चाहिये—ऐसा मानने वाले अभिभावकों की कोशिश रहती है कि उनके बच्चों को इस विद्यामंदिर में प्रवेश मिल जाये।

इस लालच में मुसलमान अभिभावकों के बच्चों का उपनयन भी हो जाता है, जिसे अखबारों में खूब प्रचारित किया जाता है।

'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते' यानी जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं, चाहे उनका आइ. क्यू. कुछ भी हो। इसीलिए उन्हें संस्कारित करने का आग्रह संस्था रखती है।

आधुनिक विज्ञान का सहारा भी इसके लिए खोज लिया गया है। समृद्ध पाश्चात्यों का ह्रास इसीलिए तो हो रहा है कि उन्हें ठीक संस्कार नहीं मिलते। इसीलिए संचालकों की मान्यता है कि समृद्धिदाता पश्चिमी विज्ञान तथा संस्कारदाता पूर्वी अध्यात्म का समन्वय करने से ही मानव-जाति का उद्धार होगा।

देश-विदेश के विशेषज्ञों को संस्था में निमंत्रित करके छात्रों के समक्ष उनके भाषण कराये जाते हैं।

एक बार एक पश्चिमी शिक्षाशास्त्री भारत आये। संस्था को खबर लगी, तो उसने उन्हें निमंत्रित किया।

अतिथि का भावभीना सत्कार किया गया। संस्कारों की तुमाइश उनके लिए आयोजित की गयी। इसके बाद संस्था

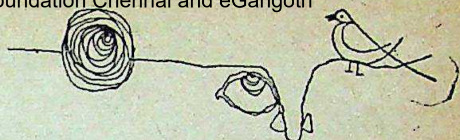
संचालक ने अतिथि से बड़ी विनम्रता से पूछा- 'विद्यार्थी संस्कार-संपन्न हों, इसके लिए आपकी शिक्षा-व्यवस्था में क्या विशेष आयोजन किया जाता है? क्या इसके लिए पाठ्यक्रम में कुछ विशेष समय की व्यवस्था है?'

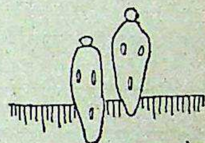
अतिथि महोदय शुरू में तो प्रश्न को समझ ही नहीं पाये; उत्तर क्या देते? संचालक ने किसी तरह अपनी बात उन्हें समझायी। तब अतिथि ने कहा :

'मैं जो विषय पढ़ाता हूं, उसी में संस्कार और नीति भी आ जाती है। मेरे लिए विषय एक बहाना मात्र होता है। मैं इतिहास, भाषा, विज्ञान और गणित पढ़ाता हूं। मगर ये विषय निमित्त-मात्र हैं। मैं उनके बहाने विद्यार्थी के जीवन को संस्कारित करता हूं, उसे नीति का पाठ पढ़ाता हूं। मैं अपने को विषय का नहीं, विद्यार्थी का अध्यापक मानता हूं। इसलिए संस्कार तथा नीति-शिक्षा के लिए कोई अलग आयोजन हम नहीं करते।'

फिर कुछ रुककर उन्होंने कहा :

'संस्कार तथा नीतिशिक्षा के लिए अलग घंटे हम नहीं रखते। हमने माना है कि [illegible]-पीटकर वैद्यराज नहीं बनाया जा सकता। सहज ही विद्यार्थी में संस्कार के फूल खिलने चाहिये और उनकी सुगंध में [illegible] महक उठना चाहिये। उत्तमोत्तम सुभाषित कंठस्थ कर लेना ही संस्कार-संपन्न होने का लक्षण नहीं है। सुभाषित तथा वास्तविकता में जो अंतर है उसे देख-





चित्र : प्रमोद गणपत्ये

कर बेचैनी महसूस करना तथा इस खामी को मिटाने में जुट जाना संस्कारिता का लक्षण है। आदर्श, संभव और वास्तव—इन तीन स्तरों पर जो सोचता है और वास्तव से संभव की ओर और संभव से आदर्श की ओर आगे बढ़ने की धुन जिस पर सवार है, उसे ही संस्कारी सत्पुरुष माना जा सकता है।

'हम संस्कार या नीति की शिक्षा के लिए अलग से समय नहीं निकालते। संस्कार महानगरों में नल से प्राप्त होने वाला पानी नहीं कि निश्चित समय पर ही वह प्राप्त हो। संस्कार और नीति की शिक्षा जागरूक मन प्रतिक्षण पाता रहता है। घर में जैसे हवा का कोई अलग कमरा नहीं होता, सभी कमरों में हवा का होना आवश्यक है, वैसी ही स्थिति संस्कार तथा नीति की है। निरंतर जागृत रहने का अभ्यास ही संस्कार तथा नीति की शिक्षा है।'

संस्था-संचालक के चेहरे पर चिंता की रेखाएं दिखाई दीं। उन्होंने सोचा था कि सहज शिक्षा इसी तरह की होती है।



बिना सिर का आदमी

रसूल हमज़ातोव

तीन शिकारियों को पता चला कि गांव से कुछ ही दूर दर्रे में एक भेड़िया छिपा हुआ है। उन्होंने उसे खोजने और मार डालने का फैसला किया।

भेड़िया शिकारियों से बचने के लिए एक खोह में जा छिपा। खोह में जाने का एक ही रास्ता था, सो भी इतना तंग कि उसमें आदमी का सिर तो घुस सकता था, पर कंधे नहीं। शिकारी पत्थरों के पीछे छिप गये और अपनी बंदूकें खोह के मुंह की तरफ तानकर भेड़िये के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगे। पर भेड़िया मूर्ख नहीं था। वह आराम से अंदर ही बैठा रहा। मतलब यह कि हार उसकी होती, जो बैठे-बैठे पहले ऊब जाये।

आखिर एक शिकारी ऊब ही गया। उसने जैसे भी हो, खोह में घुसने और वहां से भेड़िये को निकालने का फैसला किया। खोह के मुंह के पास जाकर उसने उसमें अपना सिर घुसा दिया। बाकी दोनों शिकारी देर तक अपने साथी की तरफ देखते और आश्चर्य करते रहे कि वह आगे रेंगने या सिर बाहर निकालने की कोशिश क्यों नहीं कर रहा है! प्रतीक्षा करते-करते अंततः वे भी ऊब गये। उन्होंने पास जाकर शिकारी को हिलाया-डुलाया, तो पता लगा कि उसका सिर ही नहीं है।

अब वे यह सोचने लगे कि खोह में घुसने से पहले उसके सिर था या नहीं। एक ने कहा कि शायद था, और दूसरे ने कहा कि शायद नहीं था।

बिना सिर के धड़ को वे गांव में लाये और लोगों को सारी घटना सुनायी। तब एक बुज़ुर्ग ने कहा–'इस बात को ध्यान में रखते हुए कि शिकारी कैसे भेड़िये की खोह में घुसा, यही कहना पड़ेगा कि वह एक जमाने से ही, बल्कि जन्म से ही बिना सिर का था।'

बात को और स्पष्टतः जानने के लिए वे दोनों उस शिकारी की विधवा पत्नी के पास गये।

वह बोली–'मैं क्या जानूं कि मेरे पति के सिर था या नहीं। मुझे सिर्फ इतना याद है कि हर साल वह अपने लिए नयी टोपी खरीदकर लाता था।'



नवनीत

हम राजहंस

क्रुद्धोलूकनखप्रघातविगलत्पक्षा अपि स्वाश्रयं
ये नोज्झन्ति पुरीषपुष्टवपुषस्ते केचिदन्ये द्विजाः।
ये तु स्वर्गतरङ्गिणीबिसलतालेशेन संवर्धिता
गाङ्गं नीरमपि त्यजन्ति कलुषं ते राजहंसा वयम् ।।

–क्रुद्ध उल्लू के नख-प्रहारों से पंख झड़ रहे हों तब भी उसी की बीट खाकर मुटियाते हुए जो अपने घोसले में ही पड़े रहते हैं, वे पक्षी और ही होते हैं। हम तो वे राजहंस हैं, जो स्वर्गनदी के कमल-नालों पर पलते हैं और गंगाजल भी जहां तनिक भी कलुषित हुआ कि उसे छोड़कर चल देते हैं।

– संस्कृत सुभाषित

अगला युग धर्म और विज्ञान का

डा. डी. एस. कोठारी

बात आइन्स्टाइन से ही शुरू करूं, जिनका कि यह शताब्दी-वर्ष है। वे मानव-इतिहास के सबसे महान विज्ञानियों में से थे—सच्चे अर्थों में प्रकृतिविद्। उनकी सबसे महान सृष्टि थी सापेक्षवाद, जो मानव के बौद्धिक इतिहास के सबसे जाज्वल्यमान और महत्त्व-पूर्ण पृष्ठों में गिना जाता रहेगा। सापेक्ष-वाद का मर्म या विषय है—भौतिक विज्ञान में काल-संबंधी संकल्पना की परख और विश्लेषण।

न्यूटन के लिए—या कह सकते हैं कि आइ-न्स्टाइन से पहले के सभी चिंतकों यानी विज्ञानियों और दार्शनिकों के लिए—काल शाश्वत, अपरिणामी और मानव-बुद्धि की पकड़ से पूरी तरह परे की चीज था। मगर आइन्स्टाइन ने ऐसा नहीं माना। उनका सिद्धांत काल के भौतिक स्वरूप के बारे में बहुत विलक्षण और दूरगामी अंतर्दृष्टि हमें देता है। और हम यह भी याद रखें कि वह काल को समझने की शुरूआत ही है।

काल सब तत्त्वों में से सबसे अधिक रहस्य-मय है—विश्व का और हमारा अस्तित्व उस पर आश्रित है। आज—मुख्यत: आइन्स्टा-इन के सिद्धांत की मेहरबानी से—सैद्धांतिक भौतिकी प्रकृति-विद्या बन गयी है। यही कारण है कि मेरे जैसा एक निरा भौतिकी-विद् संक्षेप में भी आत्मविज्ञान या धर्म पर बोलने की हिम्मत कर पाता है।

आइन्स्टाइन यह कहते कभी अघाते न थे कि 'हम जो सुंदरतम अनुभव प्राप्त कर सकते हैं, वह है रहस्यानुभव।' यह बुनियादी भाव—आइन्स्टाइन के ही शब्दों में, एक प्रकार की वैश्विक धार्मिक भावना—तमाम सच्ची कला और सच्चे विज्ञान की जड़ है। और आइन्स्टाइन का यह दृढ़ विश्वास था कि निश्चय ही कोई उच्चतर मन, कोई वैश्विक चेतना—विद्यमान है, जो अनुभूति-जगत् में अपने को मनुष्य के सामने प्रकट करता है।

अप्रैल १९२९ में जब आइन्स्टाइन अमे-रीका की यात्रा पर निकलने वाले थे, न्यूयार्क के रब्बी गोल्डस्टाइन ने समुद्री तार भेजकर उनसे प्रश्न किया था—'क्या आप ईश्वर को मानते हैं?' आइन्स्टाइन ने तार से ही उत्तर भेजा—'मैं स्पीनोजा के ईश्वर को मानता हूं जो सब जीवों-वस्तुओं के सामंजस्य में प्रकट होता है; मैं उस ईश्वर को नहीं मानता जो इन्सानों के भाग्य और खयालों से सरो-

• 'आकाशवाणी' से साभार •

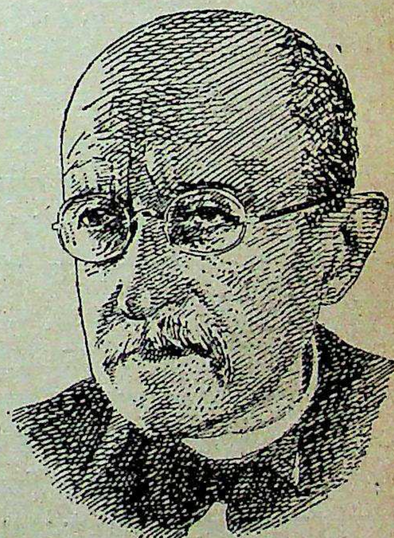
कार रखता है।' स्पीनोजा का ईश्वर हमारे उपनिषदों की विराट् ब्रह्म की धारणा के निकट है।

गंभीर बीमारी के दौरान आइन्स्टाइन से पूछा गया कि क्या मौत से आपको डर लगता है? तब उन्होंने उत्तर दिया था—'मैं तमाम जीवंत वस्तुओं से इतना ऐक्य अनुभव करता हूं कि इसका मेरे लिए कोई महत्व नहीं है कि कब व्यक्ति का आरंभ हुआ और कब अंत।' उन्होंने यह भी कहा—'दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं जिसे मैं क्षण-भर के नोटिस पर तज न सकूं।' उनका नैतिक और आध्यात्मिक बोध गांधीजी से बहुत मिलता-जुलता था।

इलेक्ट्रान क्या है? ब्रह्मांड कितना बड़ा है? वनस्पतियों और प्राणियों में क्या रिश्ता है? ये सब विज्ञान के प्रश्न हैं। मगर कौन है वह 'मैं', जो यह जानना चाहता है और इसके लिए कष्ट उठाने को तैयार है कि इलेक्ट्रान क्या है? सब सवालों को समेटने वाले इस बुनियादी सवाल का उत्तर खोजना विज्ञान के बाहर है। यह धर्म का विषय है।

इलेक्ट्रान विज्ञान में है; मगर इलेक्ट्रान को जानने वाला 'मैं' विज्ञान के बिलकुल बाहर है। 'मैं' को, 'आत्म' को (और उसके साथ जुड़ी तमाम भावनाओं, सौंदर्य, प्रेम, करुणा आदि की समझ को) अपने से बाहर रखने के कारण विज्ञान बुनियादी तौर से अधूरा है। वह दुनिया का आंशिक रूप ही दिखाता है—आंशिक सत्य। मगर 'मैं' को बाहर रखने के कारण ही विज्ञान वस्तुनिष्ठ है और यही उसे बाह्य विश्व से निबटने की बेजोड़ शक्ति देता है। विज्ञान की वस्तुनिष्ठता को क्षति न पहुंचाते हुए उसे पूर्ण कैसे बनाया जाये, यह भविष्य के लिए चुनौती है, जिसकी कठिनता या गुरुता को हम कभी कम न आंकें।

विज्ञान और धर्म दोनों का मूल मनुष्य की बुनियादी प्रेरणाओं और आकांक्षाओं में है। विज्ञान प्रकृति को बोधगम्य बनाता है। वह बताता है कि प्राकृतिक जगत् में क्या संभव है और क्या संभव नहीं। मगर वह यह नहीं बताता और न बता ही सकता है कि हमें क्या करना चाहिये। अर्थात्



धर्म और विज्ञान मिल-जुलकर संदेहवाद और कठमुल्लापन के विरुद्ध, अश्रद्धा और अंधश्रद्धा के विरुद्ध निरंतर अथक आंदोलन चलाते रहते हैं। —मैक्स प्लैंक

विज्ञान का वास्ता 'है' से है और धर्म का वास्ता 'होना चाहिये' से है। दोनों एक दूसरे से असंबद्ध नहीं हैं। आइस्न्टाइन की प्रसिद्ध उक्ति है–'धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञान के बिना धर्म अंधा है।' विज्ञान ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है, अधिक सूक्ष्म और प्रौढ़ बनता जाता है, त्यों-त्यों उसकी देन हमारी अब तक की सबसे गंभीर और अनसुलझी समस्या को यानी हमारे अस्तित्व के रहस्य को सुलझाने में अधिक सहायक बनती है।

यहां आकर यह प्रश्न उठता है कि क्या चेतना या आत्म-चेतना हमारे शरीर और मस्तिष्क को बनाने वाले रासायनिक अणुओं के संयोजन या विन्यास का गुणधर्म मात्र है? अथवा क्या वह अणु-विन्यास के गुण-धर्म से, अणुओं के वास्तु-विन्यास से अधिक कुछ है? यदि हम मानें कि चेतना आणविक घटना है। यानी पदार्थ और गति की उपज-भर है और उससे बढ़कर कुछ नहीं, तो यही बात हमारे विचार, भावनाएं, अनुभूतियां, आनंद, अनुताप और वेदना आदि पर भी लागू होगी। यदि चेतना परमाणुओं और अणुओं के विन्यास का गुणधर्म मात्र है, तो चेतना सिद्धांततः रसायन और भौतिकी का एक अध्याय–बेशक अभी अनलिखा अध्याय–मात्र है। मैं यहां इसी वक्त यह कह देना चाहता हूं कि मेरी राय में आधुनिक विज्ञान इस दावे का कोई आधार, कोई संकेत, कोई समर्थन प्रस्तुत नहीं करता है। बल्कि इससे उलटी दिशा में असंदिग्ध संकेत मिलते हैं।


डा. कोठारी

लंदन की रायल सोसायटी के भूतपूर्व अध्यक्ष सिरिल हिन्सेलवुड ने हाल में एक एडिंग्टन-स्मारक भाषण में कहा है:

'अंतर्जगत् की यथार्थता को न मानना अस्तित्व में जो कुछ प्रत्यक्ष है उसे नकारना है; उसके महत्त्व को कम करना जीवन के उद्देश्य का ही अवमूल्यन कर डालना है; यह कहना कि वह तो नैसर्गिक वरण की एक उपज है, कुतर्क है।'

अंतर्जगत् और बहिर्जगत् इन दो वास्तविकताओं का एक दूसरे में अंतर्भाव नहीं हो सकता। एक की व्याख्या या वर्णन दूसरे के शब्दों में नहीं हो सकता। किसी दूसरे में अंतर्भाव न हो सकना यथार्थता (सत्)

[शेष पृष्ठ १४१ पर]

नंद चतुर्वेदी

छोटी चिड़िया



छोटी चिड़िया
जिस किसी दिन तुम
उड़ती-उड़ती सूर्यरथ की ध्वजा पर
बैठोगी
ठीक उस दिन
यहां पृथ्वी पर तमाम गुलमोहर
झुलस जायेंगे
हवा सिर्फ कांपती रहेगी
वृक्ष-पत्रों पर।

छोटी चिड़िया
जो कुछ यहां रह गया है
रूप, रस, गंध और शब्द
वह सब तुम्हारे छोटे पंखों का संगीत है
तुम्हारे पंखों में बंधे हैं
रोशनी के पुल, सपनों के द्वीपांतर
ऋतुओं का हल्का-हल्का पदचाप
फूलों का जुलूस

बहुत सिमटी हुई दुनिया में
तुम्हीं होती हो
एक उद्दाम यात्रा की तटहीन नदी
एक स्मृति अंतहीन विस्तार वाला आकाश।



[२]
छोटी चिड़िया !
यह तुम्हारा वर्ष है
हमने जब तुमसे सब कुछ ले लिया है
तुम्हारी जमीन, हवा
जंगल, वृक्ष, आसमान, चुग्गा-पानी
शब्द और बोली
अब तुम्हें दे दिया है यह वर्ष
०
छोटी चिड़िया
हमारी दुनिया निपट पाप की है
हम भेड़ियों के मुख लगाये हुए
कीर्तनकार हैं
०
हमें कुछ भी याद नहीं है
अपने समय की धूप-छांह, हवा-जल,
गीत, कविता और सपने
अपने ध्वस्त वर्तमान के नख से
तुम्हारे सारे पंख नोचकर
तुम्हें लौटा दिया है यह वर्ष
०
छोटी चिड़िया बाज के पंख और पंजों से
आच्छादित है आसमान
और हमारे मन बिलकुल नहीं बदले हैं
यह वर्ष तुम्हें देते समय भी।

[३]
छोटी चिड़िया
तुम्हारे पंखों में बंधा है आकाश
तरंगवती नदी
०
तुम जब उड़ोगी या बैठोगी
कहीं किसी डाल पर
निडर
तभी चुपचाप आयेगा व्याध
और मृत्यु
०
छोटी चिड़िया
तुम शायद कभी नहीं सुनोगी
इस सभागृह में पढ़ी गयी
यह लोक-कविता
तुम तक नहीं पहुंचेगा
आकाश का दुःख
नदी की व्यथा
पेड़-पत्तियों, वन-वनस्पतियों का रोष!
०
किंतु, छोटी चिड़िया
कोई भी हो व्याध या कि राक्षस
भेड़िया या बिल्ली या बाघ
वे कांपेंगे इन रास्तों पर चलते हुए
जहां तुम्हारे कोमल पंख बिखरे हुए हैं
धधकती हुई सिंदूरवर्णी अग्नि की तरह।

शब्द दो

फिर-फिर भूल जाता हूं सही शब्द
तलाश करता हूं
जहां अभी-अभी भीगी है
जमीन
अभी-अभी रचा है जहां
एक पैर कांपते हुए आदमी का
एक हाथ जो मेरे कंधे पर रखकर
हो जाना चाहता है
आश्वस्त

एक वृक्ष उगता है अंदर ही अंदर
जीवन और मृत्यु के
आनंद और भय की
एक-सी परिणति होती है
एक फल होता है
तुम्हें देने के लिए
होती है वही कविता

देह का पत्ता
कहता है, कुछ नहीं कहती है नदी
देती है, बहती है
कहती है इसी तरह शब्द की नदी

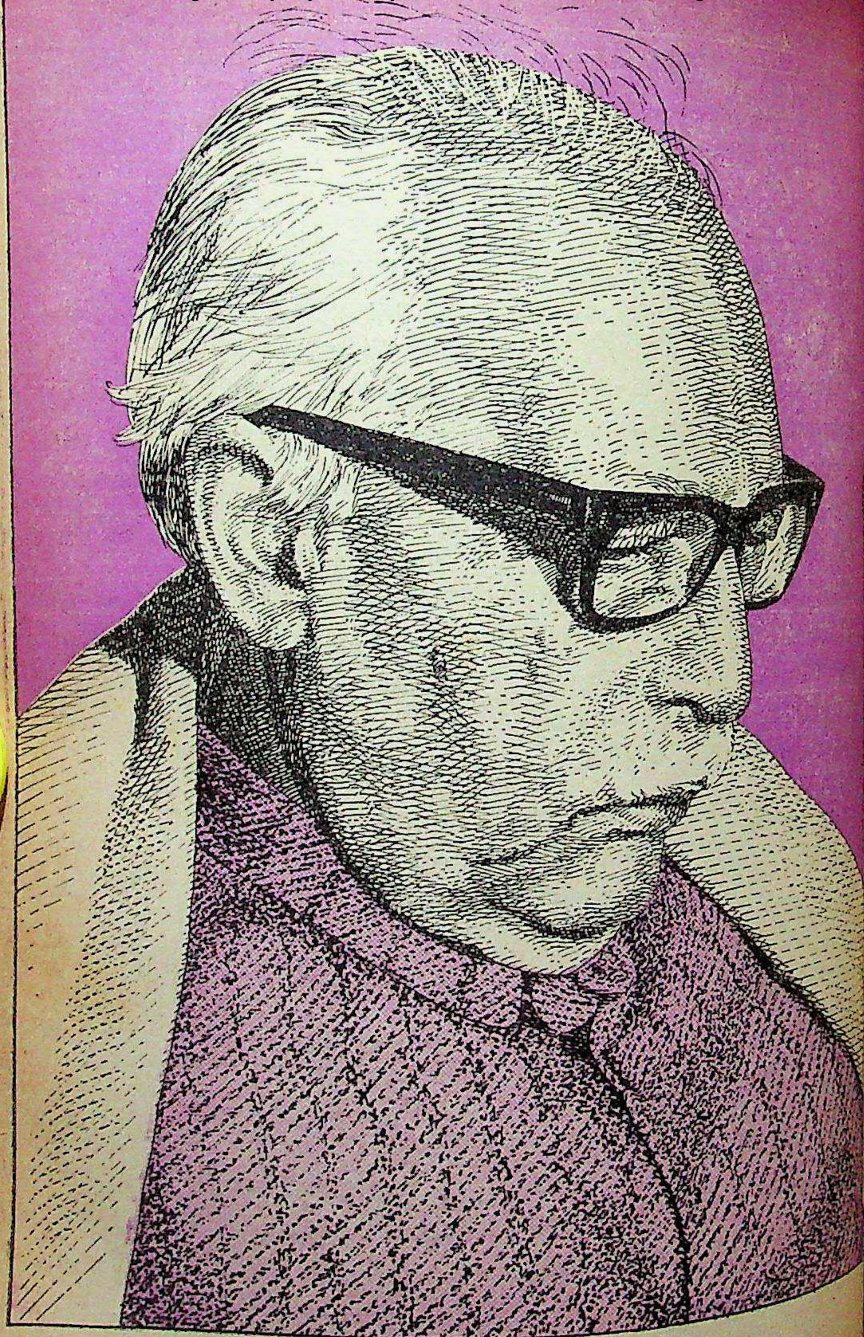
सबको पुकारता है शब्द
गुजरते हैं राजा और मंत्री
लोभी और अंधे-बहरे
सत्ता के रथ के नीचे
दबे पांव चलती है मृत्यु
अजनबी मोड़ और गलियों पर
भौंकते हैं कुत्ते
जलता है ठीक वही शब्द
अग्नि

बार-बार वहीं से गुजरता हूं
कभी-कभी मिलता है कुछ
प्रायः कुछ नहीं, प्रायः वही दुसह, दुखद
दुहराकर थकता हूं
थकाता हूं उन्हें
उन्हें जो जानते हैं
ताजे ओस की पारदर्शी चमक
जानते हैं दूर तक फैली हुई
हवा-गंध
फलों का लगना, फूलना,
झरना

फिर-फिर भूल जाता हूं सही शब्द
बार-बार खोदता हूं मिट्टी
बार-बार कहता हूं
मुझमें ही उगो, बढ़ो, आतपहर वृक्ष
काटो, बहो मुझमें तरंगवती नदी
शब्द दो !

—३०, अहिंसापुरी, फतहपुरा, उदयपुर

★



भारतीय मनीषा के प्रतिनिधि

डा. शिवनाथ

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के आकाश को अपनी सारस्वत प्रतिभा से चमकाया और उनके न रहने पर मानवीय, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर उन्हें जिस निखिल भारतीय रूप में याद किया गया, उससे भी हिंदी की ऊंचाई और बढ़ी है। असल में अपने जीवन और निधन दोनों में उन्होंने हिंदी को उठाया है।

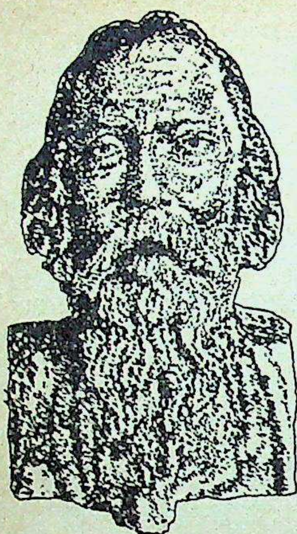
मगर हिंदी तक ही उन्हें घेरे रखकर मन नहीं भरता नहीं है। भारतीय वाङ्मय में उनकी पैठ की गहनता, परिपक्वता, उच्चता, सूझ-बूझ और विस्तृति से जो परिचित हैं, वे कबूल करेंगे कि उनका स्थान भारतीय स्तर के विद्वानों में है। और, उनके लेखन का माध्यम हिंदी भाषा चाहे रही हो, मगर उनकी साहित्य-रचना-दृष्टि मूलतः भारतीय स्तर की थी। कबीर और गोरख को उन्होंने हिंदी तक बांधकर नहीं रखा है, निखिल भारतीय परिप्रेक्षण में उन्हें युग-पुरुष, युगप्रवर्तक रूप में प्रतिष्ठापित किया है। उनके वैयक्तिक निबंधों में 'हिंदी साहित्य की भूमिका' के स्थापन में इसी दृष्टि का आलोक है।

द्विवेदीजी नाना प्रसंगों में यह बात बराबर कहते थे कि महान, बड़ा वह है जिसके संपर्क में आने से हम भी अपने को कुछ महान, बड़ा, ऊंचा समझने लगते हैं। हमारे लिए द्विवेदीजी के व्यक्तित्व का संपर्क ऐसा ही था कि हम अपने को कुछ प्रबुद्ध अनुभव करते थे और अब उस व्यक्तित्व से बना साहित्य भी हमारे लिए ऐसा ही है कि न जाने कितने दिनों तक वह हमारे भावों-विचारों को ऊपर उठाता रहेगा।

द्विवेदीजी के इस स्तरीय व्यक्तित्व और साहित्य के बनने में रवीन्द्रनाथ और उनके साहित्य का संपर्क, शांतिनिकेतन की विद्वन्मंडली में उनकी रहनी का कितना हाथ था, इसकी छान-बीन भविष्य के गवेषक करेंगे। द्विवेदीजी यहां पूरे बीस वर्षों तक थे और रवीन्द्रनाथ के संपर्क में ग्यारह वर्षों तक। मगर यह सच है कि वे जो एवं जितना बने थे, यहीं बने थे और अपनी इसी बनावट की पूंजी से धीरे-धीरे सर्वत्र छा गये। यहां से चले जाने पर उनकी साहित्यिक और वैचारिक मानसिकता में कुछ इजाफा हुआ कि नहीं, यह कहना मुश्किल है।

द्विवेदीजी पहले जाने गये आलोचक के रूप में 'कबीर' और 'हिंदी साहित्य की भूमिका' के माध्यम से। इस क्षेत्र में वे मशहूर भी हो गये। उनकी ख्याति का

• बायें पृष्ठ पर आचार्य द्विवेदीजी–पोर्ट्रेट : वी. एन. ओके, मूल फोटो : एस. अतिबल •



गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कारण यह था कि उन्होंने साहित्य और साहित्यकार को मात्र साहित्य की दृष्टि से नहीं देखा, वरन साहित्य को समाज के उन नाना विध अवयवों—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आदि—और उनके परिवर्तन की पीठिका पर रखकर देखा था, जिनकी प्रेरणा से ही साहित्य बनता है। मतलब, साहित्य को संपूर्णत: समाज के साथ लगाकर उन्होंने देखा था।

उनकी आलोचना में एक बात और दिखाई पड़ी थी। वह बात थी मानव का महत्त्व, जिजीविषावश जीने के लिए उसका संघर्ष, इस संघर्ष द्वारा सतत आगे बढ़ते जाने की उसकी प्रकृति। समाज एवं मानव के इन तत्त्वों को लेकर चली आलोचना उस समय हमारे यहां नयी थी, इसलिए द्विवेदीजी आलोचना के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गये। अपने निबंधों में भी द्विवेदीजी की दृष्टि मूलत: मानववादी है।

हमारी बात गलत हो सकती है, मगर हम समझते हैं कि द्विवेदीजी की आलोचना का यह स्वरूप रवीन्द्रनाथ और उनके साहित्य के प्रभाव से बना था।

या तो सब लोग या बहुत कम लोग इसे जानते हैं कि द्विवेदी का अपना प्रिय विषय था—भारत की मध्ययुगीन धर्मसाधना। शांतिनिकेतन के अवस्थान-काल में इसका गहन और विस्तृत अध्ययन-मनन उन्होंने किया था और उस युग के सभी धर्मों के स्वरूपों को छान-बीनकर समझा-बूझा था। प्रसंगानुसार उनकी साहित्यिक आलोचनाओं में भी केंद्रबिंदु की तरह यह विषय आया है।

मध्ययुगीन धर्मसाधना के अध्ययन-मनन और बौद्धिक स्वायत्तीकरण के सुष्ठु ढांचे में ही साहित्यिक रंगीनी भरकर रचे हैं उन्होंने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु-चंद्रलेख'।

मध्ययुग में प्रचलित कुछ धर्मों के मूल को खोजना चाहा है द्विवेदीजी ने उपनिषत्-काल में 'अनामदास का पोथा' के माध्यम से। इसमें एक अवधूत पात्र आया है, जो अपने स्वच्छंद एवं समयोचित वैचारिक फक्कड़पन से कबीर की याद दिलाता है। मतलब, द्विवेदीजी ने दिखाना चाहा है कि कबीर जैसे व्यक्तित्व की धारा न जाने कब से प्रवाहित होती चली आ रही है भारतीय लोकसमाज में। इस तरह उन्होंने यह भी दिखाया है

बुताई

कि लोकधर्मी धारा का प्रवाह कभी लुप्त नहीं होता है। समय आने पर उसका आविर्भाव-तिरोभाव हो सकता है।

'पुनर्नवा' में उनकी दृष्टि है कालिदास पर, जो उनके प्रिय कवि हैं। रवीन्द्रनाथ के भी प्रिय कवि थे कालिदास। मगर 'पुनर्नवा' घटना-प्रधान ही रह गया।

द्विवेदीजी का एक रूप गवेषक का भी है। गवेषणा के नाना रूप हैं—नवीन सामग्री की खोज; किसी विषय का नवीन प्रतिपादन; अजाने, अस्पष्ट को सामने लाकर स्पष्ट करना, आदि। गवेषणा के ये और ऐसे अन्य-रूप उनकी रचनाओं में उपलब्ध हैं। 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' को उन्होंने नयी दृष्टि से देखा। विश्लेषण करके उन्होंने दिखाया कि इस काल में विषय और विधा की दृष्टि से और तरह का भी साहित्य है, तब इसे 'वीरगाथा काल' ही कैसे कहा जाये। इसी प्रसंग में प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य की धारा की ओर भी संकेत किया गया है।

उनके रचनात्मक साहित्य में भी गवेषणा का छिटपुट रूप मिल जाता है—विशेष रूप से वैयक्तिक निबंधों में। शांतिनिकेतन-निवास के काल में उनका संपर्क विधुशेखर शास्त्री से हुआ था और वे प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य की ओर अभिनिविष्ट हुए थे। द्विवेदीजी अपभ्रंश साहित्य के मार्मिक विद्वान थे, जानने वाले इसे जानते हैं। 'संदेशरासक' और अन्य ग्रंथों में स्फुट रूप से इसकी गवाही मुंदर्ज है। यहीं उनके भाषातात्त्विक के स्वरूप का भी स्मरण किया जा सकता है। उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं शब्दों के मूल और उनके अर्थ के इतिहास की खोज चामत्कारिक और ज्ञानस्पर्शी हैं।

द्विवेदीजी के समग्र साहित्य—आलोचनात्मक, रचनात्मक और अन्य प्रकार का भी—का मूलस्वर भारतीय मनीषा के उद्गायन का है। इस स्वर में ऊंचाई भी है और गहराई भी। उनका ऐसा साहित्य बहुत दिनों तक बचा रहेगा, इसमें संदेह नहीं। हमारे खयाल से स्रष्टा द्विवेदीजी का मूल्यांकन अभी अच्छी तरह से नहीं हो सका है। अब शायद हो। और, भविष्यत् में सही तौर से उनके साहित्य का मूल्यांकन होने पर उनके व्यक्तित्व और उनकी भारतीय मनीषा का रूप और निखरेगा। जो भी हो, उनके 'यशःकाये जरामरणजं भयम्' नहीं है। एवमस्तु। **—शांतिनिकेतन, प. बंगाल**



आप क्यों भूल जाते हैं कि जिसे हम भौतिक सत्य कहते हैं वह भी मात्र मानव-सत्य है। भाषा, गणित—ये सब तथ्यों के नहीं, प्रतीकों के खेल हैं। आप भूल जाते हैं कि थीसिस कोई नहीं है, जो है सो हाइपोथेसिस है। आज जिसे थीसिस समझे हैं, कल चैतन्य का विकास उसे हाइपोथेसिस ठहरा देगा। किसी न्यूटन के सत्य को किसी आइन्स्टाइन का सत्य मिथ्या सिद्ध कर देगा।

—डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी
(साप्ताहिक हिंदुस्तान)



आचार्य की आर्षवाणी

इतिहास-शव की साधना जरूरी है

इतिहास मनुष्य की तीसरी आंख है। ईश्वर ने मनुष्य को पीछे की ओर देख सकने वाला नेत्र दिया है और वह है उसका इतिहास-बोध; इसे पलायन समझना आधुनिकता नहीं, आधुनिकता विरोध है। आधुनिकता की तीन शर्तें हैं—एक, इतिहास-बोध; दूसरी, इहलोक में ही कल्याण होने की आस्था; और तीसरी, व्यक्तिगत कल्याण की जगह सामूहिक की एषणा। मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूं कि जो इतिहास को स्वीकार न करे वह आधुनिक नहीं और जो चैतन्य को न माने वह इतिहास नहीं।

●

प्रगति-विरोधी प्रगतिशीलता

समसामयिकता से मुझे कोई आपत्ति नहीं है, समसामयिकता के दुराग्रह से अवश्य है। यही क्षण, यही गोचर सत्य ही सब कुछ है, ऐसा मानना उतनी ही प्रवंचना है जितनी कि अगोचर को ही, परलोक को ही सब कुछ मानकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना। कदाचित मैं पुराने विचारों का हूं, इसलिए संश्लेषण की दृष्टि रही है। मुझे वैज्ञानिक दृष्टि और ईश्वर-भक्ति में, सामयिक और सनातन में, यथार्थ और आदर्श में कोई परस्पर-विरोध नजर नहीं आता। मैं मिलाना चाहता हूं। मैं प्रगति के विरुद्ध नहीं हूं, किंतु प्रगति के अहंकार के विरुद्ध निश्चय ही हूं। यह अहंकार हमें एकाधिक अर्थ में अनुदार और बर्बर बना डालता है। कैसी प्रगतिशीलता है यह जो पहले वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास के लिए, सामूहिक कल्याण के लिए, और धर्म के उन्मूलन के लिए संघर्ष करती है और फिर रोती रहती है कि 'सेक्युलर इंडस्ट्रियल वेल्फेयर स्टेट' में इन्सान नहीं रहा, निरा मशीन का पुर्जा बनकर रह गया है। और इससे आगे यह मानने तक को तैयार रहती है कि भौतिक प्रगति ही आध्यात्मिक दुर्गति लाती है। एक दुराग्रह से दूसरे दुरागह तक, एक अति से दूसरी अति तक, यही है अहंकार की प्रगति।

मैं समझता हूं कि औद्योगिक विकास और आध्यात्मिक उन्नति दोनों साथ-साथ हो सकते हैं, होने चाहिये। नहीं होंगे तो मानवता का कोई भविष्य नहीं है। ..... अगर आप यह मानते हैं कि मानव-धर्म मर गया है, तो यह निश्चय ही समझिये कि देर-सवेर मानवता भी समाप्त हो जायेगी। यह महाविनाशकारी अस्त्रों का युग है। जिसे आप युटोपियन बात समझते हैं, अगर उसी से सर्वसंहार रोकना संभव हुआ तो मानवता उसे अपना ही लेगी।



श्वाइत्ज़र को बाल-सहायक

मार्टन प्यूनर

महामानव डा. श्वाइत्जर को उस तार से काफी आश्चर्य हुआ। तार नेपल्स (इटली) से अमरीकी वायुसेना के लेफ्टि-नेंट जनरल रिचार्ड सी. लिंडसे ने भेजा था। उसमें उनसे पूछा गया था कि इटली से भेंट में भेजी जा रही ९ हजार पौंड वजन की दवाइयां वे कब स्वीकार कर सकेंगे।

अफ्रीका के जंगलों में अफ्री-कियों के लिए अस्पताल चलाने वाले विचारक-संगीतकार-चिकित्सक श्वाइत्जर विस्मित थे कि अचानक उनके अस्प-ताल को यह दान कैसे मिल रहा है? और जब उन्हें पता चला कि यह दान तेरह वर्ष के एक बालक राबर्ट हिल के शुभ विचार का परिणाम है, तो उन्हें और भी आश्चर्य हुआ, और आनंद भी।

राबर्ट हिल या 'बाबी' (जैसा कि उसे घर पर बुलाया जाता था) अप्रैल १९५८ में अमरीका से नेपल्स में रहने आया था। वहां उसके पिता हेनरी हिल नाटो की दक्षिण यूरोपीय वायुसेना 'एयर साउथ' के मुख्यालय में सार्जेंट थे। वहीं स्कूल में पढ़ते हुए बाबी ने एरिका एंडरसन की पुस्तक 'द वर्ल्ड आफ आल्बर्ट श्वाइत्जर' (आल्बर्ट श्वाइत्जर की दुनिया) पढ़ी। उससे उसे पहली बार पता चला कि किस प्रकार डाक्टर श्वाइत्जर ने धर्मशास्त्र के प्राध्यापक और संगीतकार का जीवन छोड़कर अफ्रीका के जंगलों में अस्पताल खोला और किस प्रकार अपना सारा जीवन अश्वेत अफ्री-कियों की सेवा में बिता दिया। उसने यह भी पढ़ा कि डा. श्वाइत्जर विश्वशांति के बहुत बड़े समर्थक हैं। उसके मन पर इन सब बातों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। अब



अक्सर वह डा. श्वाइत्जर के बारे में सोचा करता था।

एक दिन उसने अपने पिता से कहा—'पापा, आप मुझे पांच डालर देंगे? मैं उनसे कुछ दवाइयां खरीदकर डा. श्वाइत्जर को भेजूंगा।' पिता ने बड़ी खुशी से पांच डालर दिये, मगर साथ ही पूछा—'पर बेटे, ये दवाइयां तुम अफ्रीका में डा. श्वाइत्जर के पास पहुंचाओगे कैसे भला?'

बाबी हिल कुछ दिनों तक इसी समस्या पर विचार करता रहा। उसे एक युक्ति सूझी। उसने एयर साउथ के सेनापति के नाम यह पत्र लिखा :

प्रिय जनरल लिंडसे,

मैंने अखबारों में पढ़ा है कि लोग विश्व-शांति चाहते हैं। मेरे पिताजी ने मुझे बताया है कि नाटो भी विश्वशांति के लिए ही बना है।

मैंने पढ़ा है कि डा. श्वाइत्जर भूमध्य-रेखावर्ती अफ्रीका में लोगों की मदद कर रहे हैं। ...... इसीलिए मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूं। मैं डा. श्वाइत्जर की मदद करना चाहता हूं। मैंने अपने पिताजी से कहा कि डा. श्वाइत्जर को भेजने के लिए वे मुझे कुछ दवाइयां खरीदकर दें। वे कहते हैं, मैं जितना भी हो सके उतनी दवाइयां तुम्हें खरीद दूंगा, अगर उन दवाइयों को डा. श्वाइत्जर के पास भेजने का कोई प्रबंध हो जाये। मैं सोचता हूं कि डा. श्वाइत्जर जहां पर रहते हैं, वहां अगर आपका कोई हवाई जहाज जाने वाला हो, तो वह मेरी दवाइयां उनके पास पहुंचा देगा। हो सकता है, दूसरे भी लोग डा. श्वाइत्जर को दवाइयां भेजना चाहते हों। ......मैंने पिताजी को नहीं बताया है कि मैं आपको पत्र लिख रहा हूं। मगर मुझे विश्वास है, वे एतराज नहीं करेंगे।

अगर आप मदद कर सकें तो मैं आपका कृतज्ञ हूंगा।

—रावर्ट ए. हिल (उम्र तेरह वर्ष)

दो ही दिन में जनरल लिंडसे का उत्तर बाबी के पास आ गया। उन्होंने लिखा था कि मैं तुम्हारी दवाइयां डा. श्वाइत्जर के पास जरूर पहुंचवा दूंगा; साथ ही तुम्हारा पत्र मैं इटालियन रेडियो आर. ए. आइ. को भेज रहा हूं, जो अपने '२४ वां घंटा' नाम के कार्यक्रम में अच्छे कामों के लिए सहायता की अपीलें प्रसारित किया करता है। जनरल ने अंत में यह भी लिखा था—'... उत्साह मत खोना। .... ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं जो दूसरों की मदद करना चाहते हैं।'

अगले रविवार को रात के ८ बजे आर. ए. आइ. ने बाबी का वह पत्र अंग्रेजी, इतालवी, फ्रांसीसी और जर्मन में प्रसारित किया। फिर बाबी को रेडियो-स्टेशन बुलाया गया और उसने रेडियो पर एक दुभाषिये की मदद से लोगों को अपनी योजना समझायी।

तीन सप्ताह के भीतर सारे इटली से लगभग ४ लाख डालर की कीमत की दवाइयां नेपल्स आ पहुंचीं। काफी दवाइयां तो प्रसिद्ध दवा-कंपनी लेपेतित ने दी थीं;

...की विभिन्न नागरिकों ने भेजी थीं। डाक्टरों की एक समिति ने सब दवाइयों की इस दृष्टि से जांच-परख की कि इनमें से कौन-सी तो भूमध्यवर्ती अफ्रीका की जलवायु में टिक पायेंगी, और कौन-सी बिगड़ जायेंगी।

पचास बच्चों ने नकद चंदा भी भेजा था—चार रुपये से लेकर पच्चीस रुपये तक। प्रायः सभी चंदों के साथ चिट्ठियां थीं। ११ वर्ष के एक लड़के ने लिखा था—'मैं नहीं तय कर पाया, कौन-सी दवा खरीदूं। पर अपनी बचत के ये दस रुपये भेजते हुए मुझे खुशी होती है। मुझे आशा है, दूसरे भी बच्चे ऐसा करेंगे।'

इटली की वायुसेना के प्रधान जनरल रेमोनी ने कहा कि ये दवाइयां अफ्रीका पहुंचाने के लिए वे अपना एक लड़ाकू विमान देने को तैयार हैं। फ्रांसीसी वायुसेना भी एक जहाज इस काम के लिए अफ्रीका भेजने को तैयार हो गयी। इसके बाद ही जनरल लिंडसे ने डा. श्वाइत्जर को वह तार भेजा था, जिसका वर्णन आपने शुरू में पढ़ा।

डा. श्वाइत्जर जितने आदर्शवादी थे, उतने ही व्यावहारिक भी थे। उन्होंने जनरल लिंडसे से बहुत-सी बातें पूछीं। क्या ये दवाइयां रेफ्रिजरेटर में रखनी पड़ेंगी? (हमारे यहां तो रेफ्रिजरेटर नहीं है।) क्या ये दवाइयां बहुत-सी जगह घेरेंगी? (हमारे अस्पताल का स्टोररूम बहुत बड़ा नहीं है।) और क्या इनमें से कुछ दवाइयां पेरू भेजी जा सकती हैं? (पेरू में डा. ...के आदिवासियों के लिए एक अस्पताल चलाया जा रहा है।)

जनरल लिंडसे ने उत्तर दिया कि इतालवी डाक्टरों ने जांच-परखकर वही दवाइयां चुनी हैं, जिन्हें रेफ्रिजरेटर में रखने की जरूरत न हो। जनरल ने यह भी लिखा कि इतालवी जनता ने प्रेमपूर्वक ये दवाइयां आपके अस्पताल के लिए ही भेंट में दी हैं; इसलिए उचित तो यही लगता है कि पहले आप ही इन्हें स्वीकार करें; बाद में चाहें तो कुछ दवाइयां किसी और अस्पताल को दान कर दें।

डा. श्वाइत्जर सब दवाइयां स्वीकार करने को सहमत हो गये। उन्हें यह जानकर खास खुशी हुई कि तेरह साल के जिस बच्चे की प्रेरणा से ये दवाइयां उनके पास आ रही हैं, वह एक नीग्रो बालक है। उन्होंने भी तो अफ्रीका के नीग्रो लोगों की सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया था। उन्होंने उस बच्चे को भी देखने की इच्छा प्रकट की।

दवाइयां लेकर इतालवी वायुसेना का एक जहाज अफ्रीका के घने जंगलों में स्थित लैम्बारेने को रवाना हुआ, जहां डा. श्वाइत्जर का अस्पताल और आश्रम था और अब भी है। साथ में फ्रांसीसी वायुसेना के जहाज में बाबी हिल था और उसके साथ थे नाटो के कई अफसर और बहुत-से पत्रकार। उड़ान सोलह घंटे की थी। रास्ते में जहाज कानो (नाइजीरिया) में रुके। पिछले दिन ही 'नाइजीरियन टाइम्स' ने बाबी की तस्वीर छापी थी। सो कानो शहर में वह

जहां भी गया, लोगों ने उसे [illegible] लिया।

कुछ ने उससे कड़वी बातें भी कहीं। एक आदमी उसके पास आकर बोला–'बाबी, इन लोगों के बहकावे में मत आना। तुम हब्शी हो, मैं भी हब्शी हूं। इन लोगों की नजरों में तो हम सदा काले हब्शी ही रहेंगे।' और रात के दो बजे जब बाबी सो रहा था, एक अफ्रीकी कबीले के सरदार ने आकर उसे जगाया और उससे पूछा–'छोकरे, तूने किसके कहने से जनरल लिंडसे को वह चिट्ठी लिखी थी, सच बता?' बाबी चकराया तो सही, मगर घबराया नहीं। उत्तर दिया–'किसी के भी कहने से नहीं।'

१७ जुलाई १९५८ को बाबी और दवाइयों समेत दोनों हवाई जहाज लैम्बारेने की छोटी-सी हवाई पट्टी पर उतरे। हवाई पट्टी के चारों ओर सौ-सौ फुट ऊंचे पेड़ों का घना जंगल था। डा. श्वाइत्जर सलवट-भरे निहायत सादे कपड़े पहने बाबी के इंतजार में खड़े थे। जब बाबी हवाई जहाज से उतरा, तो वे आगे बढ़े और उन्होंने झुककर बाबी को चूम लिया, फिर फ्रांसीसी में कहा–'कितना प्यारा बच्चा है!'

[illegible] वर्षीय बाबी का हाथ अपने हाथों में थामे ८६ वर्षीय डा. श्वाइत्जर बड़ी इज्जत के साथ उसे अस्पताल में ले गये और वहां सब रोगियों से उसे मिलाया और बताया कि ये दवाइयां इन लोगों के इलाज में काम में लायी जायेंगी। एक डच नर्स डा. श्वाइत्जर और बाबी के बीच दुभाषिये का काम कर रही थी।

दोपहर को भोज हुआ और उसमें डा. श्वाइत्जर ने बाबी को तथा दवाइयां भेजने वाले सब दाताओं को अपनी ओर से और अस्पताल के रोगियों की ओर से धन्यवाद दिया। वे बोले–'मैंने कभी नहीं सोचा था कि इस तरह एक नन्हे बालक के माध्यम से मुझे मदद मिलेगी।'

बाबी दो दिन लैम्बारेने में अतिथि बनकर रहा। जब वह नेपल्स वापस लौटने लगा, तो डा. श्वाइत्जर ने उसे शीशम की लकड़ी का बना हुआ एक छोटा डिब्बा दिया और कहा कि यह तुम्हारी मां के लिए है। डिब्बे में बाबी की मां श्रीमती हिल के नाम यह चिट्ठी थी:

'बाबी जैसे बच्चे को जन्म देने वाली माता को प्रणाम। –अल्बर्ट श्वाइत्जर।'

★

श्रद्धांजलि

श्री अमर बहादुर सिंह 'अमरेश', जिनका लेख 'माना की भीमशिला' इसी अंक में छपा है, १२ जून १९७९ को एक दुःखद दुर्घटना में दिवंगत हो गये। वे स्वाध्यायी कवि - उपन्यासकार - समालोचक थे। गांधीजी पर रचित बृहत् उपन्यास 'देवता मेरे देश का' उनकी विशेष चर्चित पुस्तक थी। उनकी कई कृतियां विभिन्न राज्य सरकारों से पुरस्कृत हुई थीं। उन्हें **नवनीत-परिवार** की श्रद्धांजलि।



विद्यार्थी : दो चेहरे

विद्यार्थियों ने सागर विश्वविद्यालय को केंद्रीय विश्वविद्यालय की मान्यता देने की मांग को लेकर बंद का आह्वान करके जुलूस निकाला था और वे दुकानों और स्कूलों को बंद करवाते जा रहे थे। कुछ शरारती यहां-वहां पत्थर भी फेंकते जा रहे थे। रास्ते में एक छोटा बालक ठेलिया में आलू रखे बेचने जा रहा था। वह जुलूस के सामने पड़ गया। देखते ही देखते सारे आलू पत्थरों की जगह आसमान में उड़ने लगे। बालक हाथ जोड़ता रहा, पर विद्यार्थियों ने एक न सुनी। जुलूस आगे निकल गया। बालक रोता खड़ा रहा। मैंने उसे सांत्वना देने की कोशिश की। पर मात्र शब्दों से क्या उस पितृहीन बालक और उसी के पुरुषार्थ पर निर्भर चार सदस्यों के परिवार का पेट भर सकता था? मेरे पास उस समय इतने पैसे थे नहीं कि मैं उसे कुछ आलू खरीदकर दे सकू।

तभी एक विद्यार्थी वहां से निकला। बालक को रोते देख उसने मुझसे पूछा—'क्या बात है बाबूजी, क्यों रो रहा है यह बच्चा?' जब मैंने सारी बात बतायी तो विद्यार्थी की आंखें सजल हो गयीं। उसने बालक के सिर पर हाथ फेरते हुए अपनी जेब से बीस का नोट निकाला और बालक की जेब में रखते हुए कहा—'इनसे आलू खरीद लेना।' बालक बोला—'पर मेरे आलू तो पंद्रह रुपये के थे।' 'तो क्या हुआ, अब तुम बीस रुपये के खरीदना।' कहते हुए विद्यार्थी आगे निकल गया।

—ठा. जमना प्रसाद 'जलेश', दमोह, म.प्र.

०००

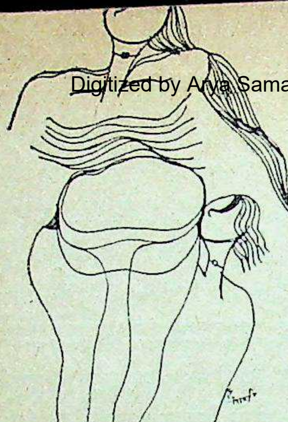
स्मृति के अंकुर

बंधुभाव

सन इकतालीस में मैं काशी विद्यापीठ (वाराणसी) में पढ़ता था और गरमी की छुट्टी बिताकर अपने गांव से वाराणसी लौट रहा था। किसी ने मेरी जेब से मनीबैग निकाल लिया। उसमें बीस रुपयों के अलावा टिकट भी था। पर मैं विशेष घबड़ाया नहीं। मैंने रेल्वे को यात्रा-व्यय तो दे ही दिया था। अपनी सचाई का मुझे सहारा था।

छपरा स्टेशन के पुल के पार वाराणसी जाने वाली ट्रेन खड़ी थी। शायद मेरे दोनों हाथों में गट्ठर को देखकर टिकट-चेकर ने टिकट नहीं मांगा और मैं ट्रेन के कंपार्टमेंट में बैठ गया। लेकिन टिकट न होने की कचोहट मन को कुरेद रही थी।

संयोगवश उसी कंपार्टमेंट में संस्कृत के तीन छात्र भी बैठे हुए थे। वे भी वाराणसी ही जा रहे थे। कुछ समय बाद टिकट-कलक्टर आ ही धमका। जब उसने टिकट मांगा



चित्र : रमेश सत्यार्थी

तो मैंने अपनी रामकहानी सुनायी और टिकट-नंबर भी उसे बताया। लेकिन उसने मानने से इन्कार कर दिया।

मेरी विकट स्थिति को भांपकर उन संस्कृत-छात्रों में से एक ने मुझे एक टिकट दे दिया। असल में रेल्वे-कंसेशन के कारण उनके पास तीन के बदले चार टिकट थे।

वाराणसी पहुंचने पर जब उस छात्र को मैं टिकट के रुपये चुकाने लगा, तो उसने रुपये लेने से इन्कार करते हुए कहा—'जो टिकट मैंने आपको दिया, वह तो बेकार ही जाने वाला था। रेल्वे को दो टिकट के रुपये मिल चुके हैं। एक छात्र होने के नाते दूसरे छात्र को संकट से उबारना हमारा कर्तव्य था।' **—डा. तेज नारायण लाल, आगरा**

०००

सत्य का संबल

गैरसरकारी कालेज होने से कक्षा में छात्रों की संख्या एक सौ बीस, तिस पर लंबे-चौड़े महाराष्ट्रीय नाम; इस कारण हम सब प्राध्यापक केवल रोल नंबर पुकार-कर उपस्थिति लिया करते। ऐसे में जब कालेज के बाहर किसी छात्र से मुलाकात हो जाती, तो बड़ी मुश्किल पेश आती। उसे हम पहचान तो जरूर लेते, पर नाम न जानने से बातचीत में बाधा पड़ती।

ऐसे में. बी. ए. द्वितीय वर्ष का एक छात्र मेरे पास ट्यूशन के लिए आया। अपना ही छात्र था; मुझे तुम्हारा नाम-पता नहीं, यह कहना भी बुरा लगता; अत: संकोचवश मैंने उसका नाम नहीं पूछा था। न जाने क्यों, वह हरदम सहमा-सहमा-सा रहता। वह दूर से पैदल आता, पसीने से तर-बतर, पूछने पर भी कभी पानी न लेता। एक दिन मैंने उसे चाय देना चाहा, तो बोला कि चाय पीने की मेरी आदत नहीं है।

जब परीक्षा के फार्म भरे जा रहे थे, उस छात्र को एक क्लर्क से बहस करते देख मैं वहां पहुंची। पर तब तक वह घर से पांच रुपये लाने के लिए रवाना हो चुका था। 'पैसे कल ले लेते, ऐसी क्या बात थी, नाहक उसे पैदल दौड़ाया।' क्लर्क से कहते-कहते मैंने उस छात्र का फार्म देखा और सहसा चौंक पड़ी। तो उसका सारा संकोच उसकी अपनी मेहतर जाति को लेकर था, जिसे वह मुझसे छिपाने की कोशिश किया करता था। उसका दर्द मैंने महसूस किया और उस पर कभी यह जाहिर नहीं होने दिया कि मैं उसकी असलियत जानती हूं।

मेरी आदत है कि ट्यूशन के आखिरी दिन छात्रों को हलुआ खिलाकर उनके उत्तीर्ण होने की शुभकामना के साथ विदा

करती हूं। सो जब अंतिम दिन मैंने एक ट्रे में हलुए की दो तश्तरियां सजाकर उससे एक तश्तरी उठाने के लिए कहा, तो उसकी आंखों से आंसू ढुलकने लगे और वह बोला–'मैडम, मुझे क्षमा कर दीजिये।'

'किस बात की क्षमा ?'

'आप ट्यूशन नहीं स्वीकारेंगी, इस डर से मैंने आपसे अपनी जाति छिपायी थी। मैं जाति का मेहतर हूं। मैं तश्तरी नहीं छुऊंगा।'

'मैं तो मानती हूं कि हमारी स्वच्छता, हमारी चमक-दमक तुम सब लोगों के दम से है। एक दिन तुम लोगों की हड़ताल हो जाये तो सड़न में गंदगी और दुर्गंध से हमारा जीना मुहाल हो जाता है।'

फिर भी उसने रुंधे कंठ से कहा–'मेरा अपराध क्षमा करें मैडम।' मैंने उत्तर दिया 'अपराध तुमने जरूर किया है, पर वह था सचाई छिपाने का। और एक झूठ को छिपाने के लिए तुम्हें दूसरा झूठ बोलना पड़ा कि तुम चाय नहीं पीते। सचाई तुम्हें कठिनाइयों से सामना करने की शक्ति प्रदान करेगी। सचाई को पकड़े रहो।' और मैंने हलुवे से भरी तश्तरी उसके हाथों में थमा दी।

–कु. नीर 'शबनम', चंद्रपुर, महाराष्ट्र



रामचंद्र ने दांत पीसते हुए कहा–'गुरुदेव, यह तो आपका अपमान है। मैं साले की सैलून में आग लगा दूंगा। उसने सैलून का नाम "गुरुदेव सैलून" रखने की हिमाकत की!'

गुरुदेव (संत तुकड़ोजी महाराज) ने इस पर मुस्कराते हुए कहा–'अरे, तुमने पांडुरंग की बहन से शादी कब कर ली ? बधाई जाति-पांति तोड़ने के इस साहस पर! बोलो, हम सबको दावत कब दे रहे हो ?' सारी सभा ठहाका मारकर हंस पड़ी।

तुकड़ोजी ने आगे कहा–'हनुमान ने लंका में आग लगायी थी! क्या पांडुरंग ने सैलून में किसी सीता को चुराकर छिपा रखा है, जो तुम उसकी दुकान में आग लगाओगे! पांडुरंग तो लोगों के बाल बनाकर अपने परिवार की गुजर चलाता है। उसका सैलून तो श्रमदेवता का मंदिर है। क्या तुम श्रम के देवता का मंदिर जलाओगे ? हनुमान ने तो ऐसा नहीं किया था! तुम्हें नाराजी है, सैलून का नाम "गुरुदेव सैलून" रखे जाने पर! बोलो, क्या "रावण सैलून" कहने से तुम खुश होओगे ? या "कंस-सैलून" ? बेटा, हर बाप को अधिकार है कि वह अपने बेटे को अच्छे से अच्छा नाम दे। हर बेटे का काम है कि वह अपने नाम के अनुरूप अच्छा बनने की कोशिश करे! तुम्हारे पिता ने तुम्हारा नाम रामचंद्र रखा! क्या राम इससे नाराज हुए ?'

रामचंद्र की आंखों से धाराप्रवाह आंसू बह निकले। यह देखकर संत ने बातों का उपसंहार करते हुए कहा–'मित्रो, कल हम पांडुरंग के सैलून में ८ बजे रात से कीर्त्तन करेंगे।' और उस दिन से पांडुरंग के सैलून में रात को ८ बजे से कीर्त्तन होने लगा।

–ज्वाला प्रसाद ज्योतिषी



डूबती किरणों में

इबिन अजमद पागमानी

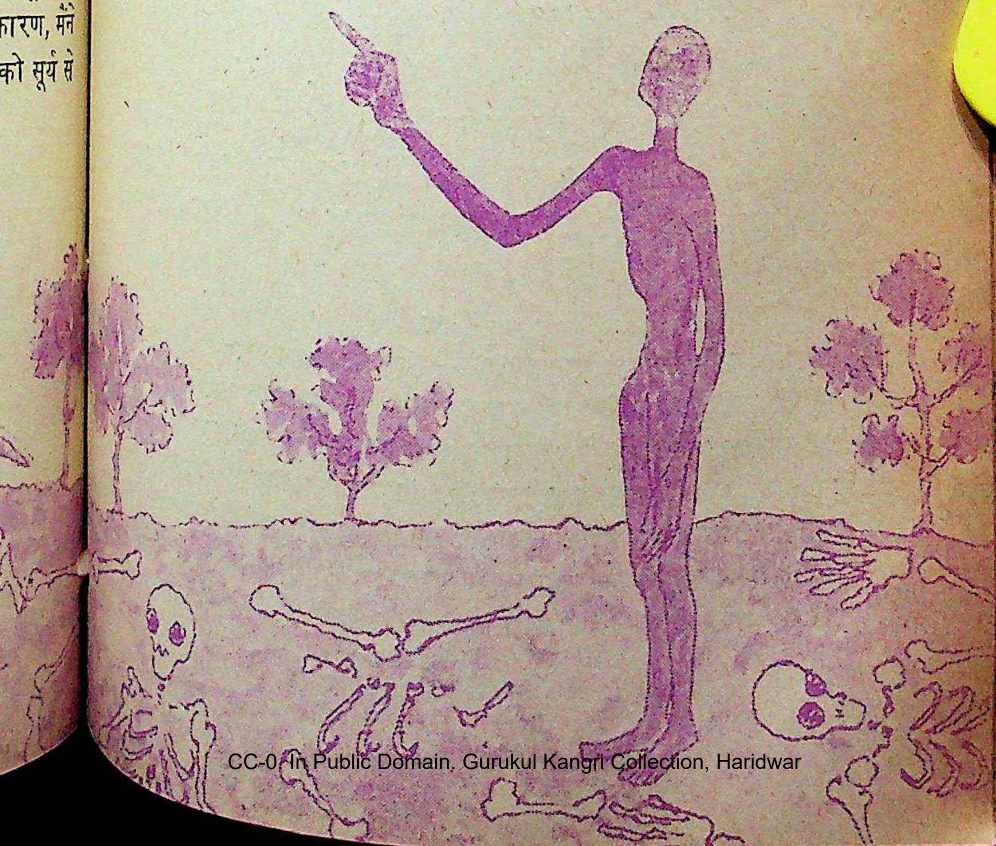
नींद में मैंने एक दिव्य झांकी देखी और जागने पर पाया कि मैं जीवन की कठिनाइयों में जूझने में पहले से अधिक समर्थ हूं। कारण, मैंने आदम के अंतिम वंशज को सूर्य से संभाषण करते सुना था।

सूर्य की किरणें क्षीण थीं और धरती बुढ़ापे के कारण जर्जर थी। विभिन्न राष्ट्रों के वीर-पुरुषों के कंकाल अभी भी अपने निरे अस्थिमय हाथों में जंग-लगी तलवारें पकड़े हुए थे, जबकि अकाल और महामारी में मरने वालों के उनका अवशेष जहां-तहां पड़े हुए नजर आ रहे थे।

विश्व के महानगरों में कोई भी ध्वनियां नहीं गूंज रही थीं। शवों से लदे जलपोत रहस्य-भरे ढंग से तैरते जा रहे थे सन्नाटा-भरे तटों की ओर। फिर भी इन सबके मध्य खड़ा था इकलौता आदमी। उसके शब्दों से शिशिर-कालीन पत्ते पेड़ों से यों झर पड़े, जैसे हवा का झोंका उन पर से गुजरा हो।

वह बोला—'हे गरवीले सूर्य, अब तुम और मैं अकेले रह गये हैं। किंतु तुम्हारी दौड़ पूरी हो चुकी है और करुणा तुम्हें पुकार रही है कि आओ, विश्राम करो। बुझ-सी रही तुम्हारी इन आंखों ने मनुष्य के शोकाश्रुओं की बाढ़ देखी है, किंतु अब और शोक तुम न देखोगे।

'युगों तक, हे सूर्य, मानव की महिमा में हिस्सा बंटाने का गौरव तुम्हें



मिला है। तुम्हारी नजरों के नीचे राष्ट्र उठे और राष्ट्र गिरे। परंतु तुम्हारी सत्ता की भी अपनी सीमाएं थीं। कारण, क्या कभी तुमने किसी दुखते दिल को स्वस्थ किया, या किसी घायल आत्मा पर मरहम लगाया?

'सो अब जाओ, मानवीय अस्तित्व के रंगमंच पर विस्मृति का काला परदा गिरने दो, ताकि कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारा उदय होता प्रकाश मानव-जाति की दयनीय दृश्यावलि को वापस बुला लाये और जीवन के दुःख-शोकों को फिर से स्थापित कर दे।

'स्वयं मैं भी तुम्हारी अंतिम किरणों को लुप्त होते देखना चाहता हूं, और तुम जो कि विश्व की वेदनामय दशाओं के द्रष्टा रहे हो, मेरी सांस टूटने तक रुकना नहीं। तुम यह डींग नहीं हांकोगे कि इस बोलती जबान की मौत तुमने देखी है; बल्कि सहानुभूतिमयी रात मेरी आत्मा को बांहों में भर लेगी और मैं ज्योतिलोक में लौट जाऊंगा। जब तुम्हारी किरणें शेष न रहेंगी, तब मैं स्वर्गिक प्रभा में चमचमा उठूंगा।

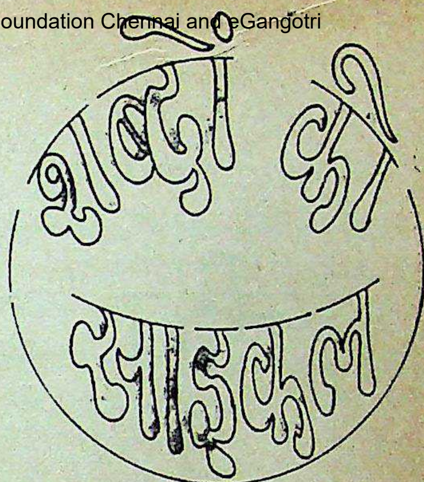
'चमकना छोड़ दो और चले जाओ, हे सूर्य! अब मेरे इस पार्थिव देश-निकाले के कुछ ही क्षण शेष हैं और मैं उल्लासपूर्वक मृत्यु की बाट देख रहा हूं, जो कि मुझे पृथ्वी के निर्मम बंधनों से मुक्त कर देगी।

'जाओ—जाओ, और रात से कह दो जो कि हर सांझ को तुम्हारा चेहरा अपने काले डैनों से ढंक दिया करती थी कि तुमने आदम के अंतिम वंशज को संसार के मलबे पर खड़े देखा था और उस समय भी अमरत्व में उसकी आस्था अडिग थी।'



दूरभाष अपने आपसे कह रहा था—'पूर्वकाल में प्रेमी अपनी प्रेमिका के पास हंस को, वायु को, मेघ को या पवनपूत को दूत बनाकर भेजते थे। उस समय मेरा जन्म नहीं हुआ था, अन्यथा विरही-विरहिणियों को इतना कष्ट या व्यथा न सहना पड़ता। राम से सीता, नल से दमयंती, यक्ष से यक्षिणी बड़ी सरलता से बातचीत कर लेते। प्रेमी ने एक छोर को अपने मुंह से लगाया, और प्रेमिका ने दूसरे छोर को अपने कान से सटाया। सैकड़ों-हजारों मीलों की दूरी को चीरकर भी प्रेमालाप चलता रहता है। मैंने दूरी को जीत लिया है—मैं दूरीजीत हूं। मैंने काल को जीत लिया है—मैं कालजीत हूं।' —व्योहार राजेन्द्रसिंह





आर्थर कोस्लर

भाषा विचारों को अभिव्यक्त ही नहीं करती, उन्हें बदलती भी है। खास और पर जब कोई लेखक किसी नयी भाषा को अपनाता है, तो उसका सोचने का ढंग, उसकी शैली, उसका सौंदर्य-बोध, उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया—हर चीज धीरे-धीरे और लेखक के अनजाने ही बदलने लगती है।

कई वर्षों तक, जब कि मैं सोचने तो अंग्रेजी में लगा था, पर नींद में फ्रांसीसी, जर्मन और हंगेरियन में ही बोलता रहा। भाषाओं की तब्दीली की यह प्रतिक्रिया बड़ी विचित्र है। मैं इसमें से दो बार गुजर चुका हूं—पहले हंगेरियन से जर्मन की ओर, फिर जर्मन से अंग्रेजी की ओर आने पर।

लेखक के रूप में एक अजीब बात मेरे देखने में आयी है कि लेखक कोई भाषा अपनाने पर घिसे-पिटे मुहावरों का प्रयोग करने लगता है। ऐसा प्रत्येक मुहावरा, यहां तक कि 'टूटा हुआ दिल' या 'अनंत सागर' भी कभी बहुत मौलिक था। और जब कोई नयी भाषा में सोचना और लिखना शुरू करता है, तो ऐसे बिंबों और रूपकों का प्रयोग करने लगता है, जो उसकी दृष्टि में बहुत मौलिक होते हैं, और उसे यह एहसास ही नहीं होता कि ये मुहावरे वास्तव में घिसे-पिटे हुए हैं।

यह उस आदमी की दुःखांत कहानी की तरह है, जो रूस के किसी सुदूर पूर्व गांव में रहता था। उसने पहले विश्वयुद्ध के बाद एक ऐसी मशीन तैयार की, जिसके दो पहिये थे और एक काठी थी। पैदल चलने के बजाय उस पर बैठकर वह कहीं भी बहुत जल्द पहुंच सकता था। जब वह उस पर सवार होकर शहर गया और उसने देखा कि सड़कें साइकलों से भरी पड़ी हैं, तो उसे ऐसा धक्का लगा कि वह वहीं गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गये।

कुछ ऐसा ही अनुभव मेरे साथ भी हुआ, जब मैंने अपना पहला उपन्यास अंग्रेजी में लिखा और उसे ऐसे वाक्य के साथ समाप्त किया, जिसकी काव्यात्मकता पर मुझे बड़ा गर्व हुआ था :

'रात के समय अवसन्न उदास तारों के नीचे......'

वह वाक्य आज भी उस उपन्यास के अंतिम पृष्ठ पर है—एक तरह की शाब्दिक साइकल।



अगला नवनीत

पलकों में कटती है रात
अनिद्रा, उसके प्रकार, कारण और निवारणोपाय।

हवा में उड़ते हवाई अड्डे
इस सदी के अंत तक होने वाले एक इंजीनियरी चमत्कार की झांकी—हवाई जहाजों पर पाश्चात्य व्यंग्य-चित्रकारों के ऐतिहासिक व्यंग्य-चित्रों के साथ।

क्या सन ५७ की क्रांति भूमि-सुधारों के खिलाफ थी?
गिरीश चौधरी का विचारोत्तेजक लेख।

आज का लंदन
जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी का यात्रावृत्त।

एक अखबार की जन्म-शताब्दी
मद्रास के प्रतिष्ठित दैनिक पत्र 'हिंदू' का इतिहास—**शंकरदेव विद्यालंकार**।

कहां है पथबंधु वह!
उड़िया के विख्यात शब्दशिल्पी **चंद्रशेखर रथ** का एक ललित-निबंध।

दो हिंदी कहानियां
चौथा अंधा—**ब्रह्मदत्त**; ताज का खंडहर—**कुंकुम चतुर्वेदी**।

मानव-जाति का विचार-गोदाम
मौलिक विचारक; वास्तुशिल्पी बकमिंस्टर फुलर के चिंतन और जीवन का परिचय **नेमिशरण मित्तल** के शब्दों में।

कविता—संस्मरण—विज्ञान—हास्य आदि सभी स्थायी स्तंभ।

प्रेमचंद हम सबके गुरु थे

ख्वाजा अहमद अब्बास

मुंशी प्रेमचंद के बारे में कुछ लिखना उतना ही कठिन है, जितना ताल्सताय के बारे में, गोर्की के बारे में या चार्ल्स डिकेंस के बारे में।

आज हिंदुस्तान और पाकिस्तान में जितने भी उच्च कोटि के (हिंदी-उर्दू) कहानीकार हैं, सबने प्रेमचंद की कहानियां पढ़कर ही कहानियां लिखनी सीखी हैं। जिन लेखकों को कहानी-कला में मान्यता प्राप्त हो चुकी है, जिनका आज साहित्य में नाम है, वे भी प्रेमचंद को अपना गुरु मानते हैं। अपने गुरु के बारे में कोई क्या लिख सकता है!

यह मेरे लिए गर्व की बात है, मुझे प्रेमचंद-जैसे महान कहानीकार से मिलने का, उनसे बात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे अलीगढ़ में मेरे चचाजाद भाई ख्वाजा गुलामुस्सैयदैन के यहां मेहमान थे। निहायत ही सादा-मिजाज इन्सान थे। सादे कपड़े पहनते थे। बात बड़ी नम्रता से करते थे। अपने 'उच्च कोटि का कहानीकार' होने का उन्हें जरा भी एहसास नहीं था। भाईसाहब ने मुझे और अपने छोटे भाई (स्वर्गीय) अजहर अब्बास को उनसे मिलाया और कहा—'मुंशीजी, ये लड़के भी आपकी कहानियों को बहुत पसंद करते हैं।'

प्रेमचंदजी ने मुझसे पूछा—'क्यों भाई, कौन-सी कहानी पसंद आयी?'

मैंने उस जमाने में उनकी कहानी 'ईदगाह' पढ़ी थी, जो एक बच्चे के बारे में थी। मैंने उसी का नाम लिया। मुझे याद है कि प्रेमचंद यह सुनकर बहुत खुश हुए और देर तक मुझसे बातें करते रहे।



मुंशी प्रेमचंद

तब तो मैं तेरह-चौदह साल का बच्चा ही था, फिर भी उनकी बातचीत से प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सका था। जिस लेखक की रचनाएं हमने रुचि से पढ़ी हों, उसी लेखक से हमें मिलने का और बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाये तो उसकी रचनाओं को पढ़ने में और भी आनंद आने लगता है। बिलकुल यही बात मेरे साथ भी

हुई। प्रेमचंदजी से उस मुलाकात के बाद मुझे उनकी कहानियों में और भी आनंद आने लगा था। फिर तो मैंने उनकी दसियों कहानियां पढ़ डालीं।

उस जमाने में प्रेमचंद उर्दू में ही लिखते थे। हिंदी में शायद उस समय तक उनकी कोई कहानी या पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। उनके 'प्रेम-पचीसी' और 'प्रेम-बीती' दो कहानी संग्रह थे। उन्हें मैंने कुछ ही हफ्तों में पढ़ लिया था। फिर एक के बाद एक जैसे-जैसे उनके कहानी-संग्रह और उपन्यास निकलते रहे, मैं उन्हें पढ़ता रहा। यह उस समय की बात है जब गांधीजी ने अंग्रेज सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन चला रखा था। गांधीजी राजनीतिज्ञ थे और प्रेमचंद कहानीकार। फिर भी प्रेमचंद के विचार गांधीजी के विचारों से बहुत मिलते थे। इस बात का पता हमें प्रेमचंद की उन पुस्तकों से मिलता है, जिसमें हमें गांधीजी की संरक्षता में चलने वाले स्वतंत्रता-संग्राम के समय की झलकियां देखने को मिलती हैं।

इस समय मैं क्रम से तो नहीं लिख सकता, लेकिन उनके बड़े उपन्यासों में 'चौगान हस्ती' और 'मैदाने अमल' ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। ऐसा लगता था, जैसे दिमाग की खिड़कियां खुल गयी हों। उनकी कहानियों और उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से मैंने समाज के उस पिछड़े वर्ग को देखा, जो गांव में रहता था। देहाती वातावरण से मुंशीजी को बड़ा लगाव था। उनके देहाती पात्र इतने जीते-जागते होते थे कि नकली नहीं, असली लगते थे।

'गोदान' में देहाती समाज का उन्होंने अपनी देहाती शैली में बहुत ही सुंदर रूप से चित्रण किया है। इस उपन्यास ने भी मेरे दिल और दिमाग पर गहरा असर छोड़ा है। इसी से प्रेरित होकर मैंने अपनी पहली कहानी 'अबाबील' लिखी थी, जिसके पात्र देहाती थे। मैंने उस समय तक व्यक्तिगत रूप से एक ही गांव देखा था और वहां के गरीब लोगों की असहनीय दशा को देखकर मेरे दिल में एक टीस-सी उठी थी। मुझे देहात में रहने वाले किसानों, मजदूरों से और साहूकारों के अत्याचारों से पीड़ित होने वाले निर्धन वर्ग से खास सहानुभूति हो गयी थी।

इसके बाद प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से ही देहाती समाज के बारे में मेरी जानकारी बढ़ी। मेरी इच्छा हुई कि मैं भी देहाती वातावरण पर एक कहानी लिखूं। और मैंने 'अबाबील' लिखी। देहाती वातावरण पर आधारित मेरी यह कहानी बहुत पसंद की गयी। मैं उसे प्रेमचंद की देन ही कहूंगा।

उनका उपन्यास 'बाजार-ए-हुस्न' जो एक वेश्या के बारे में है, उनका एक दुर्लभ उपन्यास है। इसका कारण यह है कि मुंशीजी जैसे पवित्र विचारक को वेश्याओं के जीवन से सहानुभूति तो अवश्य थी, लेकिन उनके अपवित्र जीवन का उन्हें व्यक्तिगत रूप से अधिक ज्ञान नहीं था। इसलिए 'बाजार-ए-हुस्न' काजी अब्दुल गफ्फार के

उपन्यास 'लैला के खतूत' के मुकाबले में एक दुर्लभ उपन्यास है।

उन जमाने में (१९३६-३७) प्रगतिशील लेखक संघ की एक सभा हुई थी, जिसकी अध्यक्षता प्रेमचंद ने की थी। अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने उस सभा में कथा-साहित्य पर अपने जो विचार प्रकट किये, वे हमारे लिए प्रेरणा बने रहे। इसके कुछ दिन बाद ही उनकी एक (लगभग अंतिम) कहानी 'कफन' प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में उन्होंने देहाती समाज के पात्रों का इतना सुंदर, वास्तविक और भयानक चित्रण किया था कि मृणाल सेन ने उसी पर आधारित एक फिल्म 'एक गांव की कहानी' बनायी;

मैंने कभी उन्हें (प्रेमचंदजी को) दोनों तरफ जो कोरा हो ऐसे कागज पर या फाउंटन पेन से लिखते नहीं देखा। स्कूली लड़कों वाली 'जी' निब दावात में डूबती, पूरे कलमदान पर स्याही छिड़कती, रद्दी कागज वाले के यहां से खरीदे हुए, एक तरफ लिखे हुए कागज पर प्रेमचना करती।

एक बार मैंने कहा—'कोरा कागज खरीद लीजिये। पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी पत्र को—चाहे पोस्टकार्ड पर ही लिखें—लिखना एक कला समझते हैं। बढ़िया कागज कलम के बिना वे लिख नहीं सकते।'

'पर वे कहानी नहीं लिखते। यों भी प्रवासी भारतीयों पर लिखते-लिखते वे पश्चिमी [illegible] हो गये हैं।'

'फाउंटनपेन .... फिर भी .....'

'रहने दो मियां, यहां तो आदत पड़ गयी है।..... अमीरी से लिखूंगा तो अमीराना मिजाज हो जायेगी।'

मैं एक चीज उन्हें कभी समझा न सका, या उनकी एक आदत कभी रोक न सका। पान खाते-खाते उनके दांतों में दरारें पड़ गयी थीं, उनमें पान घुस जाता था। लिखते-लिखते वे स्याही-भरी निब से दांत कुरेदने लगते। मुंह काला, जीभ काली!

मैं टोकता—'अरे, क्या कर रहे हैं आप! भला, स्याही भरी निब से ......?'

'किस कमबख्त को याद रहती है।' कहते-कहते पिन उठा लेते।

मैं रोक देता—'इससे जहर फैल जाता है।'

'हाथी-घोड़े तो नहीं फैलते, जहर ही फैलता है।' वे कहते।

मैंने तिनके लाकर रख दिये।

बोले—'तिनका चुनो, काटो, बनाओ, रखो—धत्।'

—परिपूर्णानंद वर्मा ('बीती यादें' से)

जिसे फिल्म-प्रेमियों ने बहुत पसंद किया।

उस समय के कुछ फिल्म-निर्माताओं के कहने पर प्रेमचंद ने फिल्मों के लिए कुछ कहानियां लिखीं; लेकिन वे कहानियां फिल्म-निर्माताओं की आवश्यकता के अनुसार न होने के कारण फिल्मायी न जा सकीं। प्रेमचंद ने अनुभव किया कि पत्रिका के लिए कहानी, प्रकाशक के लिए उपन्यास और फिल्म-निर्माता के लिए फिल्मी कहानी लिखना अलग-अलग कलाएं हैं। फिल्मी वातावरण रास न आने के कारण वे उससे तुरंत अलग हो गये और फिर उन्होंने अपना समय कहानियां और उपन्यास लिखने में ही व्यतीत किया। प्रेमचंद की कहानियों के विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हुए। रूस में उनकी कहानियां बहुत लोकप्रिय हुईं और उनके कहानी-संग्रह रूस की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हुए।

प्रेमचंद वास्तव में (जैसा कि उनके बेटे की पुस्तक का शीर्षक है) 'कलम के सिपाही' थे। उन्होंने अपने कलम को समाज की अच्छाइयां और बुराइयां लिखने में प्रयोग किया। उनका आदर्श 'साहित्य के लिए साहित्य' नहीं था, बल्कि 'जीवन के लिए प्रगतिशील साहित्य' था। जीवन से उनका तात्पर्य जीवन की वे अच्छाइयां और वे मान्यताएं थीं, जो समाज की प्रगति से संबंधित हों। वे ऐसा साहित्य चाहते थे और पैदा करते थे, जिसे पढ़कर हमारे विचार प्रगतिशील बनें, जिसे पढ़कर मानवता में हमारा विश्वास बढ़े।

हम प्रेमचंद पर जितना गर्व करें, कम है। उनके कथा-साहित्य का, उनकी पुस्तकों का, उनकी मान्यताओं का जितना प्रचार करें, कम है।

उनके जन्म को सौ साल होने को आये हैं। आज वे भौतिक रूप से हमारे बीच में नही हैं, लेकिन उनका अमर साहित्य आज भी हमारे बीच है और वह हमारे लिए प्रेरणा का प्रतीक बना रहेगा।

—फिलोमिना अपार्टमेंट्स,
चर्च रोड, जुहू, बंबई-४९



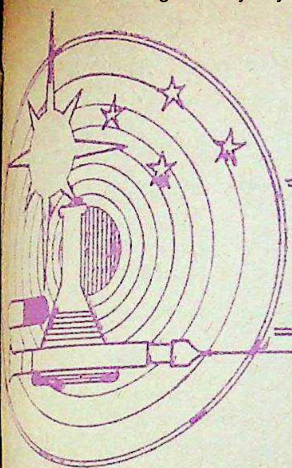
पहला स्पष्टवक्ता

आइन्स्टाइन अपने एक नौजवान मित्र की शादी में विशेष अतिथि रहे थे। बाद में कुछ साल तक वे उससे मिल न सके। एक बार वह मित्र अपनी पत्नी के साथ उनसे मिलने आया; साथ में उनका डेढ़ साल का बच्चा भी था।

बच्चा आइन्स्टाइन को देखते ही एकाएक चीख मारकर रोने लगा। इस पर उसके माता-पिता बेचैनी से इधर-उधर झांकने लगे।

मगर आइन्स्टाइन ने मुस्कराकर उनकी ओर देखा और जैसे उनकी बेचैनी दूर करने के लिए कहा—'तुम्हारा बच्चा पहला व्यक्ति है, जिसने मेरे सामने अपने मन की बात छिपायी नहीं और साफ-साफ बता दिया कि वह मेरे बारे में क्या सोचता है।'





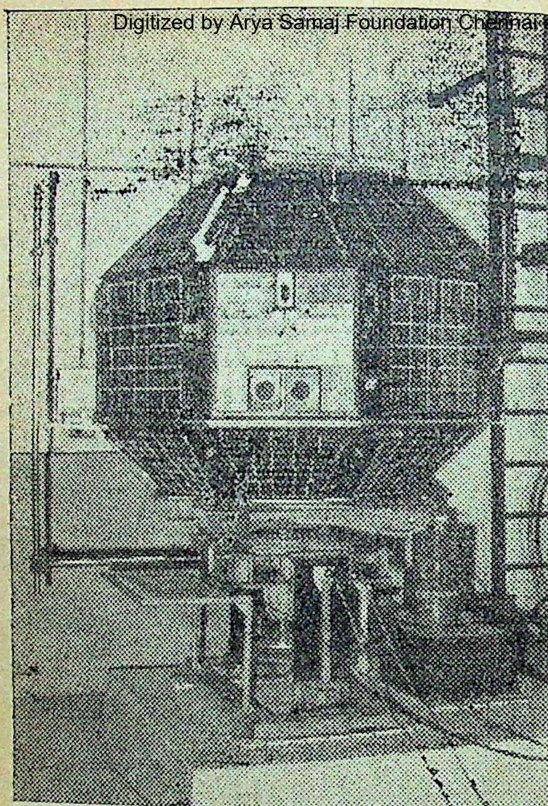
विज्ञान बिंदु

कीटनाशी रसायनों का अब इतना अधिक प्रचार हो चुका है कि अशिक्षित और आम आदमी भी उन्हें बाजार से खरीदकर मनचाहे ढंग से इस्तेमाल करने लगा है। परंतु ये रक्षक पदार्थ वास्तव में इतने रक्षक नहीं हैं, जितना कि इन्हें समझ लिया गया है। सच्चाई यह है कि कभी-कभी तो ये रसायन कीड़े-मकोड़ों और मच्छर-मक्खियों से भी ज्यादा खतरनाक साबित हो सकते हैं, जिनका सफाया करने के लिए इनका इस्तेमाल किया जाता है।

डी.डी.टी. और बी. एच. सी. दो ऐसे कीटनाशी पदार्थ हैं। गली-कूचों और घर-आंगन में डी. डी. टी. का उपयोग मच्छरों को मारने के लिए किया जाता है। म्युनिसिपैलिटी के सफाई-कर्मचारी मुट्ठी भर-भरकर यह सफेद पाउडर हफ्ते में एक-दो बार बड़े शहरों की गलियों-नालियों में बुरक जाते हैं। यह पदार्थ हवा के साथ उड़कर हमारे खाने-पीने के पदार्थों पर भी बैठता है और सांस के साथ सीधे शरीर के अंदर भी पहुंचता रहता है।

सीधी बात है कि अगर यह रसायन कीड़े-मकोड़ों को खत्म कर सकता है तो आदमी पर भी कोई न कोई कुप्रभाव तो इसका पड़ना ही चाहिये। इसीलिए विश्व स्वास्थ्य संघटन ने विश्व के विभिन्न देशों के विशेषज्ञों से विचार-विमर्श के बाद मनुष्य के शरीर में डी. डी. टी. की सुरक्षा-सीमा निर्धारित की, जो कि एक माइक्रोग्राम प्रति किलोग्राम (शरीर-भार) है। अमरीका आदि विकसित देश इन निर्धारित मानकों का बड़ी सख्ती से पालन करते हैं।

परंतु दुर्भाग्यवश भारत जैसे देशों में जहां विज्ञान और आधुनिकता का भूत आम आदमी से लेकर बुद्धिजीवियों तक के सिर



भारत का दूसरा कृत्रिम उपग्रह 'भास्कर', जो ७ जून १९७९ का एक सोवियत अड्डे से अंतरिक्ष में प्रेषित किया गया। ६ करोड़ ४० लाख रुपये की लागत का 'भास्कर' ४२५ किलोग्राम है। इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय कृषि के लिए उपयोगी जानकारी जुटाना है।

अहमदाबाद के नेशनल इंस्टिटयूट ऑफ आक्युपेशनल थैरेपी ने एक राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण के पश्चात् यह सनसनी-खेज रहस्योदघाटन किया है कि औसत हिंदुस्तानी के शरीर में डी. डी. टी. का स्तर ४ माइक्रोग्राम प्रति किलोग्राम पाया गया है। यह ऊपर बतायी गयी सुरक्षा-सीमा से चार गुना अधिक है। उसी संस्था के एक युवा वैज्ञानिक डा. एस. के. गुप्त के अनुसार, इस देश में खाने-पीने की लगभग कोई भी वस्तु डी. डी. टी. से मुक्त नहीं रह गयी है।

डी. डी. टी. के दूरगामी खतरों को भी समझ लें। अहमदाबाद की उक्त संस्था के निदेशक डा. चटर्जी ने हाल में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि डी. डी. टी. दुधारी तलवार की तरह है। इसका जैव अपघटन बहुत आहिस्ता होता है, यानी शरीर में रहकर वह काफी लंबे समय तक वहां अपना असर करती रह सकती है। मगर इससे भी खतरनाक बात यह है कि डी. डी. टी. जीवधारी की जीन-संरचना को भी प्रभावित करती पायी गयी है। मनुष्य

पर बुरी तरह सवार है, कोई रोक-टोक नहीं बरती जाती। यहां तक देखा गया कि बालों की जूओं को मारने तक के लिए गुजरात के कुछ इलाकों में महिलाएं बी. एस. सी. का धड़ल्ले से प्रयोग करती हैं। नतीजा भी हमारे सामने हैं।

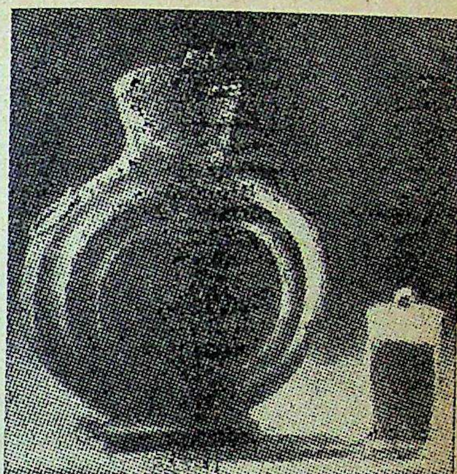
का समस्त व्यक्तित्व जीन पर निर्भर होता है। जीन-संबंधी परिवर्तन का सीधा-सा अर्थ है उसकी बुनियादी संरचना में रद्दो-बदल। अर्थात् भारतीय नागरिकों के शरीर में असाधारण रूप से ऊंची मात्रा में डी. डी. टी. की उपस्थिति आगे चलकर महान राष्ट्रीय संकट पैदा कर सकती है। यदि समय रहते इस दिशा में कारगर कदम नहीं उठाये गये, तो यह देश का बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा।

बाल-मधुमेह वाइरस-जन्य

पिछले वर्षों में धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक मधुमेह रोग खूब फैला है। यहां तक के बच्चे भी बच नहीं पा रहे हैं इसकी चोट से। अब तो सभी यह जानते हैं कि खून में इन्सुलिन नाम के हार्मोन की कमी हो जाने पर उसमें शर्करा-धारण की शक्ति कमजोर पड़ जाती है और ऐसी स्थिति में शर्करा मूत्र के साथ शरीर से बाहर आने लगती है। यही मधुमेह है। इसका इलाज भी कोई रहस्य नहीं रह गया है। इन्सुलिन का इंजेक्शन लेना और खाने में शक्कर आदि का सीमित मात्रा में सेवन। मगर शरीर में इन्सुलिन का अभाव कैसे हो जाता है—यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है।

परंतु बच्चों में इस रोग का लगातार बढ़ते जाना वैज्ञानिकों के लिए विशेष चिंता का और इसीलिए गंभीर अध्ययन का विषय बना है। वयस्कों में यह रोग इतना गंभीर रूप धारण नहीं करता, जितना कि बच्चों में कर लेता है। मधुमेह-ग्रस्त बच्चे प्रायः बच नहीं पाते।

[शेष]



पीकिंग के पैलेस म्यूजियम में रखे इन दो कांस्य मधुपात्रों में दुनिया की सबसे पुरानी शराब भरी हुई है। यह शराब आज से २,३०० वर्ष पहले बनायी गयी थी। ये मधु-पात्र ई. पू. चौथी सदी की एक शाही कब्र की खुदाई में मिले थे। इनमें से एक पात्र का ढक्कन सीलबंद है उस पर मुरचा लगा हुआ है। यह पात्र शराब से आधा भरा हुआ है। दूसरे पात्र में गरदन तक शराब है।

शराब पारदर्शक हरे रंग की है और उसमें अब भी खुशबू बाकी है। विश्लेषण से उसमें अल्कोहल का प्रतिशत बहुत नीचा पाया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि यह भभका-पद्धति के आविष्कार से पहले की शराब है। उसमें प्रोटीन की मात्रा की अधिकता है। वैज्ञानिकों ने इस पर से यह अनुमान लगाया है कि शायद यह फल या अनाज से नहीं, बल्कि दूध से बनायी गयी होगी।

वैज्ञानिकों का अनुमान था कि बच्चों को यह रोग शायद वंशानुगत कारणों से अथवा प्रतिरोध-क्षमता के अभाव से होता होगा। परंतु पिछले दिनों वाशिंगटन के एक अस्पताल में मधुमेह से ग्रस्त एक १०-वर्षीय बालक की मृत्यु ने इस मान्यता की जड़ें काट दी हैं। मृत्यु के बाद बच्चे के शरीर में से तिल्ली निकालकर उसकी विस्तृत परीक्षा की गयी तो वहां एक वाइरस की उपस्थिति का पता चला। यह वायरस 'सीवी बी-४' नामक वायरस की ही एक अन्य किस्म है, जो कि फ्लू के लिए जिम्मेदार होता है।

'न्यूइंग्लैंड जनरल आफ मेडिसिन' के एक ताजा अंक में इस खोज को अत्यंत महत्त्वपूर्ण बताते हुए यह आशा प्रकट की गयी है कि अब इसके आधार पर मधुमेह-निरोधक टीके के विकास का काम आसान हो जायेगा।

शोधदल के एक सदस्य डा. मार्शल आस्टिन के अनुसार, यह वाइरस सिर्फ बच्चों को प्रभावित कर सकता है। वयस्कों में मधुमेह इतने भयंकर रूप में नहीं होता, इससे भी यही जाहिर है कि वहां इसका कारण कुछ और ही होता होगा। बच्चों पर इस रोग के प्रभाव की चर्चा करते हुए डा. आस्टिन ने बताया है कि यों तो इन्सुलिन की सहायता से बच्चों में भी मधुमेह को कई वर्ष तक नियंत्रण में रखा जा सकता है; परंतु उम्र बढ़ने पर ऐसे मामलों में कई प्रकार की पेचीदगियां पैदा हो जाती हैं। कुछ मामलों में गुर्दे-संबंधी गड़बड़ियां शुरू हो जाती हैं और कुछ रोगी तो अंधे हो जाते हैं। इनकी रोकथाम वैज्ञानिकों के लिए किसी भी तरह संभव नहीं हो पा रही है।

इस्पाती तंतु

अंतरिक्ष-युग में प्रवेश के बाद से जिन नये क्षेत्रों में अनुसंधान-कार्य को विशेष बल मिला है, उनमें तीव्र गति और कम वजन वाले अति सुदृढ़ पदार्थों की खोज का विशेष स्थान है। इनके विषय में वैज्ञानिक सूचनाओं का आदान-प्रदान भी खुलकर नहीं हो पा रहा है।

पॉलि-एक्रिलिक नाइट्राइल नामक रसायन से विश्व के कुछ उन्नत देशों ने ऐसे ही एक पदार्थ का विकास किया है। यह हल्का है, परंतु मजबूती में इस्पात से भी टक्कर ले सकता है। इसे इसकी निर्माता फर्में इतना गुप्त रखे हुए हैं कि इसकी निर्माण की प्रक्रिया की जानकारी तो क्या इसकी कच्ची सामग्री पाना भी कठिन हो रहा है।

यह पदार्थ निस्संदेह महत्त्वपूर्ण है और चूंकि भारत अंतरिक्ष-अनुसंधान के कार्यक्रमों में व्यस्त है, उसे भी यह पदार्थ तो चाहिये ही। नयी दिल्ली की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला ने कुछ समय इस दिशा में पहल की थी और अपने ढंग से इसके निर्माण के लिए शोध-कार्य हाथ में लिया था। अब हाल में वहां के निदेशक डा. अजित राम वर्मा ने बताया है कि उनकी प्रयोगशाला एक ऐसे एक्रिलिक तंतु का विकास करने में सफल हो गयी है, जो बाल से भी अधिक पतला है और जिसकी सहायता से इस्पाती मजबूती

[शेष पृष्ठ १४४ पर]

मेरे दादाजी की विरासत

रावर्ट रूआर्क

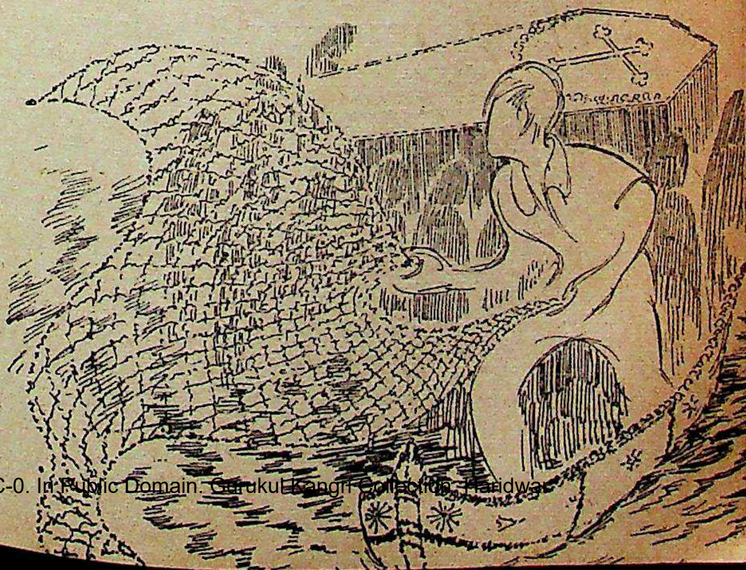
कुछ लोगों को यह बात शायद अटपटी लगेगी कि मैं अपने दादाजी की अंत्येष्टि में शामिल होने के बजाय, मछली पकड़ने चला गया था। पर मेरे दादाजी को यह बात अटपटी न लगती। वास्तव में, उनकी मौत पर जो गहरा सूनापन मुझे महसूस हुआ था, उसे भुलाने का और कोई तरीका था ही नहीं। उस समय मैं पंद्रह वर्ष का था और दादाजी के बिना इतने बड़े संसार में खुद को अकेला महसूस कर रहा था।

मेरे दादाजी की अरथी के साथ जाने वाले लोगों से शहर की सड़कें भरी हुई थीं। उस भीड़ में उनके सगे-संबंधियों में से अगर कोई चेहरा नदारद था, तो वह बस मेरा चेहरा था। मैं उन्हें अलविदा कह चुका था और वे मुझे अलविदा कह चुके थे। उनसे बिछुड़ने के एहसास को मैं लोगों की भीड़ में उलझाना नहीं चाहता था। सो मैं नदी की ओर चल दिया था।

'मार्च का महीना भी क्या अजीब होता है!' दादाजी कहा करते थे–'उसे बिताने का सबसे अच्छा तरीका है यादों में खो जाना।' सो मैं किश्ती में बैठकर मछलियां पकड़ता हुआ यादों में खो गया।

'मैं तुम्हारे लिए ज्यादा कुछ छोड़कर नहीं जा रहा हूं', उन्होंने अपनी मौत को निकट आते देखकर मुझसे कहा था–'मेरी इस बीमारी पर बहुत ज्यादा खर्च हो गया। यह घर गिरवी रखना पड़ा है, और बैंक से भी कर्ज लिया गया है। सो तुम्हारे लिए कुछ बंदूकें, मछली पकड़ने के जाल और किश्ती के सिवा कुछ नहीं बचेगा। या शायद एक याद बची रहे।'

अचानक सूरज निकल आया था और मुझे लगा था कि मैं संसार-भर में सबसे अमीर लड़का हूं। उनका यह कहना गलत था कि वे मेरे लिए ज्यादा कुछ छोड़कर नहीं जा रहे थे। मैंने उनके साथ पंद्रह वर्ष बिताये थे और उन्होंने मुझे लगभग वह सब कुछ दिया था, जो वे जानते थे। उन्होंने मुझे



जीवन में इस प्रकार प्रवेश कराया था, जैसे बच्चे को चलना सिखाया जाता है।

मैं कभी उनकी सही उम्र का अंदाज नहीं लगा पाया था। बचपन से ही मैं उनकी वही पुरानी टोपी और वही उलझी हुई मूंछें देखता आया था। उन्होंने मुझे हमेशा अपनी बराबरी का समझा था।

जब मैं छह साल का था, तो एक बार मैंने घर के लोगों से झगड़कर घर छोड़ने का फैसला कर डाला था।

'अपने साथ सभी जरूरी चीजें ले जा रहे हो न ? दियासलाइयां, लकड़ी काटने की कुल्हाड़ी ? शिकार के लिए बंदूक ... ?' दादाजी ने पूछा था।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया था और जब मैं अपना झोला कंधे पर रखकर चल पड़ा, तो दादाजी बोल पड़े थे–'बिना हाथ मिलाये चले जाओगे।' और उन्होंने अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया था।

मैं उनसे हाथ मिलाकर बगीचे में बने अपने तंबू की ओर चला गया। रात को वहां मुझे बेहद अकेलापन महसूस होने लगा था। मैं भूखा भी था। पर वापस घर में जाने को तैयार न था।

अचानक कदमों की आहट सुनाई दी। फिर दादाजी की नरम आवाज आयी– 'ठीक-ठाक तो हो न ? मैं कोई मदद करूं ?'

'ठीक हूं।' मैंने सिसकी रोकते हुए कहा।

'वास्तव में मैं तुम्हारे माता-पिता और दादी की ओर से तुमसे समझौते की बातचीत करने आया हूं। उनका कहना है कि शायद दोनों तरफ से गलती हुई है। वैसे हम तुम्हें समझौता करने के लिए मजबूर नहीं करेंगे। सही या गलत का फैसला तुम्हें खुद ही करना है। और हां, आज खाने में बहुत बढ़िया "ऐपल पाई" बनी है।'

'ठीक है, मैं समझौते की बातचीत करने को तैयार हूं।' मैंने अपने पर काबू पाते हुए कहा था। हालांकि उस समय मेरी इच्छा हो रही थी कि दौड़कर तंबू से निकलूं और दादाजी के गले में बांहें डालकर उनसे लिपट जाऊं और खूब रोऊं। तब मैं यह नहीं जान पाया था कि किस प्रकार दादाजी ने मेरे स्वाभिमान को तनिक भी ठेस नहीं लगने दी थी।

जब मैं आठ साल का हुआ तो उन्होंने मुझे एक बंदूक लाकर दी थी और कहा था– 'तुम्हारी मां समझती है कि मैं मूर्ख हूं, जो तुम्हें इस उम्र में बंदूक दे रहा हूं। मैंने उससे कहा है कि इसकी जिम्मेदारी मुझ पर रहेगी। सो यह बात याद रखना कि तुम्हारे हाथों में यह एक खतरनाक हथियार है। यह तुम्हारी, मेरी या किसी कुत्ते की जान ले सकता है। इस बात को भूलना नहीं।' और दादाजी की उस बात को मैं आज तक भूला नहीं हूं।

उन्होंने बदलते हुए मौसमों का परिचय मुझे कराया था। उनकी बदौलत मेरी घ्राणशक्ति तीव्रतर हो गयी थी। ग्रीष्म की महक पतझड़ की महक से मुझे अलग महसूस होने लगी थी। ग्रीष्म किसी गाय की सांस की तरह दूधिया और अवसाद-भरा था।

तुर्श और स्फूर्तिदायक थीं। वसंत में जवान लड़की की-सी महक थी, और शिशिर में बूढ़े आदमी की-सी गंध—भट्ठी की आग और तंबाकू की मिली-जुली महक।

उन्होंने मुझे पढ़ना सिखाया था—जैसे वह भी शिकार की तरह एक खेल हो। उन्होंने मेरे सामने ज्ञान के खजाने इस तरह खोले कि मैं हर समय पुस्तकों में डूबा रहने लगा था। इस तरह उन्होंने ऊब से बचने का अमूल्य साधन मुझे दिया था।

एक बार मैंने उनसे कहा था—'मैं चाहता हूं कि एक दिन खूब अमीर बनूं।'

कुछ देर वे चुपचाप पाइप के कश खींचते हुए मेरी ओर देखते रहे। फिर उन्होंने कहा—'किसी अमीर को जानते हो?'

'नहीं।'

'गलत बात। दो अमीरों को तुम निश्चय ही जानते हो। तुम और मैं उन सभी लोगों से ज्यादा अमीर हैं, जो अपने शानदार वजरों में बैठकर यहां आते हैं। अमीरी इसमें नहीं है कि जो चीज तुम्हारे पास नहीं है, उसे तुम खरीद सको। अमीरी इसमें है कि तुम जो कुछ करना चाहते हो, उसके लिए तुम्हारे पास समय हो। अमीरी इसमें है कि तुम्हारे पास खाने के लिए पर्याप्त हो, तुम्हारे सिर पर छत हो, तुम्हारे पास मछलियां पकड़ने का साजो-सामान हो, किश्ती हो, बंदूक हो, और कारतूस खरीदने के लिए कुछ पैसे हों।'

उस दिन, जब मैं दादाजी की अंत्येष्टि के समय मछली पकड़ रहा था, तो उसी विरासत के बारे में सोच रहा था, जो वे मेरे लिए छोड़ गये थे। वह विरासत थी—दो बंदूकें, एक जाल, एक किश्ती और एक घर जो गिरवीं रखा हुआ था। पर नहीं, उनकी विरासत इससे भी कहीं ज्यादा विशाल थी।

अंत में मैं किश्ती खेता हुआ किनारे पर आया और घर की ओर चल पड़ा था। तब तक अधिकांश लोग जा चुके थे और सिर्फ रिश्तेदार तथा कुछ एक नजदीकी दोस्त वहां बाकी रह गये थे। मेरी गैरहाजिरी पर किसी का ध्यान नहीं गया था। तब मैंने मन ही मन पक्का फैसला किया था कि एक दिन मैं लेखक बनूंगा और उन चीजों के बारे में लिखूंगा, जो मुझे दादाजी ने सिखायी थीं। मगर इससे पहले जरूरी था कि मैं तालीम पूरी करूं और पैसा कमाऊं, ताकि गिरवीं पड़े उस पुराने घर को छुड़वाकर अपना बना सकूं।

इसमें बहुत समय लगा, मुझे हजारों शब्द लिखने पड़े और वाशिंगटन, न्यूयार्क, पेरिस, स्पेन और अफ्रीका में घूमना पड़ा और कई बार घर से विदा लेनी पड़ी, पुनः वापस घर लौटना पड़ा, और अपने कुछ एक बाल सफेद करने पड़े। पर अंततः मेरे दादाजी का घर—गौरव-भरा और नये रंग-रोगन से चमकता—फिर से हमारे परिवार को मिल गया, जहां मेग्नोलिया के पेड़ों पर मैना खुशी से गाती है।

अब मैं अपने दादाजी की विरासत को बहुत स्पष्ट रूप में देख पा रहा हूं—वे मुझे पूरा संसार दे गये थे।



भारत के भेड़िया-बच्चे

धीरेन्द्र कुमार दीक्षित

क्या सचमुच भेड़िया मानव-शिशु का पालन-पोषण कर सकता है ? इस प्रश्न ने विद्वानों तथा गवेषकों को असमंजस में डाल दिया है। पिछले सौ वर्षों में भारत में लगभग ५० भेड़िया-बच्चों का वृत्तांत मिला है। इन सभी बालकों के रहन-सहन व व्यवहार में पशु-जीवन के स्पष्ट लक्षण थे। इनके अंगूठे व उंगलियां जंगली जानवरों के पंजों की भांति अंदर की ओर मुड़ी हुई थीं। इनके पैरों, घुटनों तथा हथेलियों पर कड़ी त्वचा की परत स्पष्ट थी।

कई विशेषज्ञों ने भेड़िया-बालकों की प्रामाणिकता पर संदेह प्रकट किया है। फिर भी बहुतों की मान्यता है कि कभी-कभी मादा भेड़िया मानव-शिशु को उठा ले जाती है और मातृ-सुलभ वात्सल्य के साथ उसे पाल-पोसकर बड़ा करती है।

पिछले दिनों 'भालू' नाम का एक जंगली बालक लखनऊ के 'प्रेम-निवास' (मदर तेरेसा के 'होम फार डाइंग डेस्टिटयूट्स') में लाया गया। कहा जाता है, इस अनोखे बालक को उसके माता-पिता ने सात साल पहले जंगल में भगवान-भरोसे छोड़ दिया था। तभी भालुओं की एक टोली उधर से गुजरी। एक वात्सल्यमयी मादा-भालू उस मानव-शिशु को अपने संग ले गयी तथा उसे स्तनपान कराने लगी। भालुओं के बीच में बचपन बीतने से स्वभावतः उस बालक का बरताव और उसके लक्षण भालू-बालक जैसे हो गये।

उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर के जंगलों में एक शिकार-पार्टी के सदस्यों को 'भालू' अकस्मात् दिख गया। आदमियों को देखकर घबराया हुआ वह चारों पैरों से मांद की ओर भागा। परंतु शिकार-पार्टी ने उसे पकड़ लिया तथा सुलतानपुर शहर की एक ईसाई मिशनरी संस्था 'द बेथानी सिस्टर्स' को सौंप दिया, जहां से बाद में उसे लखनऊ भिजवा दिया गया। वहां प्रेम-निवास अनाथाश्रम की धर्म-भगिनियों (सिस्टर्स) ने उसका नाम बदलकर 'पास्कल' रखा है; क्योंकि वह ईस्टर त्योहार के आस-पास उनके पास आया था।

प्रारंभ में 'भालू' का व्यवहार व प्रतिक्रिया उग्र थी। वह भालू जैसा ही चलता-फिरता और बड़े विचित्र ढंग से गुर्राता। आदमियों के बीच उसे अभी भी अटपटा-सा लगता है; हालांकि मनुष्यों जैसा भोजन करने की आदत उसे पड़ती जा रही है। दाल-भात उसे विशेष पसंद आने लगा है।

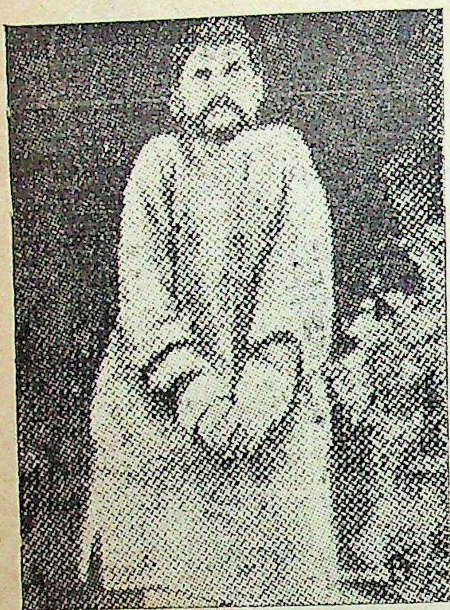
अब तो वह कपड़े भी पहनता है तथा पहले की तरह असावधान आश्रमवासियों पर अचानक झपट नहीं पड़ता। एक बार तो उसे देखने आये एक पत्रकार ने जैसे ही उसका फोटो लेना चाहा, उसने उसके हाथ से कैमरा झटक लिया था। बाद में समझा-बुझाकर एक सिस्टर ने कैमरा उससे वापस दिलवाया। उत्तेजित होने पर वह जोरों से तालियां पीटता है तथा रात में भौंकता-चीखता भी है। किंतु आश्रमवासी बड़े सब्र से उसे मानवीय संस्कार दे रहे हैं।

दो वर्षीय 'भालू' उर्फ 'पास्कल' आश्रम के प्रशस्त प्रांगण में खेलने लगा है तथा आश्रमवासियों से उसकी अब अच्छी-खासी दोस्ती हो गयी है। अनेक न्यूरो-सर्जनों (तंत्रिका-शल्य-चिकित्सकों) ने इस वन्य बालक की जांच की है तथा वे उसमें बोलने की शक्ति विकसित करने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ लोग इस वन्यबालक को रुडयार्ड किपलिंग के मौगली की तरह भेड़ियों के बीच पला-बढ़ा भेड़िया-बालक मानते हैं।

भारत में इस प्रकार का सबसे पुराना और शायद सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण है 'दीना शनीचर' का। इस लड़के को उत्तर-प्रदेश के बुलंदशहर जिले के जंगलों में एक शिकारी-दल ने १८५७ में शनिवार के दिन पकड़ा था। उस समय वह करीब आठ वर्ष का था। वहां से उसे आगरा के समीप सिकंदरा के ईसाई मिशन अनाथालय में भेजा गया। अगस्त १८७३ में भारतीय भू-सर्वेक्षण के भूवैज्ञानिक वी. वाल सिकंदरा आये और उन्होंने इस अजीबो-गरीब बालक को गौर से देखा। उन्होंने अपनी पुस्तक 'द जंगल लाइफ इन इंडिया' में दीना का वर्णन इन शब्दों में किया है :

'उसका माथा नीचा था, दांत कुछ बाहर निकले हुए थे तथा उसका रंग-ढंग "बेचैन और चंचल" था। वह रह-रहकर बंदरों-जैसे दांत निपोरता था, जिसका असर निचले जबड़े के स्नायविक संकुचन से अधिक परिलक्षित होता था। कमरे का और उसमें बैठे लोगों का सर्वेक्षण-सा करके वह जमीन से सटकर बैठ गया। उसके हाथों की हथेलियां विपरीत दिशाओं में फैली हुई और फर्श पर टिकी हुई थीं। वह कागज व रोटी के टुकड़े आदि छोटी-छोटी चीजों को उठाता तथा बंदर के समान उन्हें सूंघ-सूंघकर देखता। मुझे बताया गया कि वस्तुओं को पहचानने के लिए वह उनके स्वाद की अपेक्षा उनकी गंध पर अधिक निर्भर रहता है। पूरी तरह से उसके आचारण का निरीक्षण करने पर इसकी सत्यता का प्रमाण मिला।'

दीना शनीचर छोटे डील-डौल का तथा १६० सें. मी. ऊंचा था। उसकी भुजाएं केवल ३८ सें. मी. लंबी थीं, जो २० वर्षीय आदमी की दृष्टि से बहुत छोटी थीं। कई साल इन्सानों के बीच बिताने पर भी उसका मानसिक विकास न हो सका। बोलना, पढ़ना या लिखना वह अंत तक नहीं सीख पाया। 'वह-वह' तथा 'ढम-ढम' ही वे शब्द थे जिनका उच्चारण वह कर पाता था और



दीना शनीचर–भारत का पहला ज्ञात भेड़िया-बालक

वह भी जब गिरजाघर का घंटा बजे तब। २९ अक्तूबर १८९५ को दीना क्षयरोग से चल बसा।

उसी अनाथालय में दूसरा भेड़िया-बालक आगरा से लगभग ८० कि. मी. दूर मैनपुरी नामक शहर से लाया गया था। वह कुत्ते की तरह पानी पीता था तथा कच्चा मांस व हड्डियां चाटता था। जब उसे भेड़ियों के झुंड में से निकालकर लाया गया, तब उसकी आयु १० वर्ष की थी। किंतु इसके बाद वह कुछ महीनों से अधिक जीवित न रह सका।

मानसिंह नामक एक अन्य भेड़िया-बालक की ओर संसार का ध्यान आकर्षित कराने का श्रेय टामस स्मिथ को है। मथुरा के जंगलों में एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने १९०५ में इस अद्भुत बच्चे को भेड़ियों के चंगुल से छुड़ाया। शुरू में उसे जंजीर से बांधकर रखा गया तथा खाने में कच्चा मांस दिया गया। परंतु क्रमशः वह अधिक सामान्य जीवन व्यतीत करने लगा था। अपनी जिंदगी के आखिरी साल उसने अलीगढ़ के निकट बन्नादेवी मुहल्ले में रेवरेंड नोवल डेविड के पास बिताये। वह टूटे-फूटे कुछ शब्द बोल लेता था। पर आश्चर्य की बात यह है कि आर. एल. स्टीवेन्सन के विख्यात बाल-उपन्यास 'ट्रेजर आइलैंड' के 'बीन गन' की तरह, मानसिंह गिरजे में रविवारों एवं भोज-दिवसों पर उत्कृष्ट ढंग से गाया करता था। १९६० में ६५ साल की उम्र में उसकी मृत्यु हुई। शायद वह विश्व-इतिहास का सबसे दीर्घजीवी भेड़िया-बालक था।

कमला तथा अमला नाम की दो भेड़िया-बालिकाओं की कहानी भी अनोखी और विरली है। रेवरेंड जे. ए. एल. सिंह १९२० में पश्चिम बंगाल के मेदिनीपुर (मिदनापुर) के वनों में तीन भेड़ियों से इन लड़कियों को छुड़ाकर लाये थे। उस समय कमला करीब आठ बरस की थीं तथा अमला कुल दो बरस की। अमला एक साल बाद ही मर गयी। कमला श्रीमती सिंह की देखरेख में शीघ्र ही मानवीय तौर-तरीके सीखने लगी। १९२७ तक कमला का शब्द-भंडार ५४ शब्दों का हो गया था; वह छोटे-मोटे वाक्य बोल लेती थी तथा कभी-कभार गाती भी थी। परंतु

उसका बुद्धि-स्तर तीन साल के बच्चे के बुद्धि-स्तर से कभी ऊपर न उठा। चार्ल्स मैक्लीन ने अपनी पुस्तक 'द वूल्फ चिल्ड्रन' में इस घटना का विवरण दिया है।

सन १९५४ में एक और जंगली बालक पुराने गंदे कपड़े में लिपटा हुआ लखनऊ चारबाग रेल्वे स्टेशन पर पड़ा पाया गया। उसे सरकारी अस्पताल में ले जाया गया, जहां वह अगले चौदह वर्ष 'स्पेशल वार्ड' में रहा। उसका नाम 'रामू' रखा गया। हजारों लोग दूर-दूर से आये तथा इस 'अद्भुत प्राणी' को देखकर स्तंभित रह गये। रामू विश्वव्यापी आकर्षण का केंद्र बन गया। लंदन स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन के सर फिलिप मेन्सन-बॉर भी लखनऊ आये। उन्होंने इस विचित्र बालक को बड़े गौर से जांचा-परखा। उन्होंने रामू में भेड़िये के लक्षण एवं गुणधर्म स्पष्ट रूप से पाये। उन्होंने कहा-निस्संदेह वह (रामू) किसी प्रकार के जानवरों द्वारा पाला गया है। इस प्राणी के मानवीकरण की कोई आशा नहीं है।'

रामू के शरीर का ढांचा तो सामान्य था, पर उसकी अस्थियों में-विशेषतः निचले अंगों में-खनिज पदार्थों की कुछ कमी अवश्य थी। उसे पौष्टिक आहार दिया गया और उसके वजन व ऊंचाई में भी वृद्धि हुई। अपने साथी नौकर से उसने दोस्ती भी कर ली। नहाने में उसे मजा आता था। मानवीय वार्तालाप या संभाषण समझने की क्षमता उसमें कभी नहीं आ सकी, न ऐसा लगा कि कभी आ सकेगी। जीवन के



लखनऊ का 'भालू' उर्फ पास्कल

अंतिम वर्षों में उसे मिरगी के बहुत दौरे पड़ने लगे, उच्च प्रोटीन-युक्त भोजन के बावजूद उसका वजन घट गया और अंत में अप्रैल १९६८ में उसकी मृत्यु हो गयी।

मनोविज्ञानियों की राय थी कि रामू स्तब्ध (स्पास्टिक) बालक था, जिसकी बुद्धि का स्तर औसत दर्जे से नीचा था। इनका खयाल है कि उसके किसान मां-बाप ने उसे रेल्वे स्टेशन के प्लेटफार्म पर छोड़ दिया होगा। दूसरे कुछ विद्वानों का मत है कि रामू मानसिक रूप से अविकसित तथा पोलियो-रोग से ग्रस्त बालक था।

सुविख्यात जिम कार्बेट ने सर फिलिप

मेन्सन-बॉर की इस मान्यता का जोरदार खंडन किया कि रामू को जंगली जानवरों ने पाल-पोसकर बड़ा किया है। १९५५ में केन्या से लिखते हुए उन्होंने 'भेड़िया-बच्चों' को कोरी गप तथा कल्पना-विलास कहकर ऐसी अनहोनी संभावना पर संदेह व्यक्त किया। उनका तर्क था कि बिना उपयुक्त टीके लगवाये कोई मानव-शिशु जिंदा कैसे रह सकता है? भेड़िये जैसे जानवरों के दांत भैंसे की मोटी खाल तक को फाड़ डालने की क्षमता रखते हैं। जब ये जानवर मानव-शिशु को अपने जबड़ों के बीच रखकर ले जायें तो क्या वह शिशु जीवित बच पायेगा? जो भी हो, कार्बेट के इस कथन में कुछ तथ्य जरूर है कि जंगली माहौल व परवरिश में मानव-शिशु का जीवित रहना मुश्किल है।

रामू के ही समान एक और भेड़िया-बालक अप्रैल १९५७ में उत्तर प्रदेश के खंडौली के जंगलों में सेना के जवानों को मिला था। सात वर्ष पूर्व मई १९५० में यह बालक सिर्फ १८ महीने का था, तब आगरा जिले के जार का नगला नामक गांव से भेड़िये उसे उठाकर ले गये थे। उस समय वह रात में खुले गेहूं के खेत में अपनी मां के साथ नींद में सो रहा था। सेना के जवानों ने जब इस लड़के को भेड़िये की मांद में से बाहर निकलते देखा, तो उसे पकड़ लिया और फीरोजाबाद अस्पताल में भरती करा दिया। बाद में जार का नगला गांव की ही श्रीमती बाबूलाल जाधव ने उसे अपने पुत्र परशुराम के रूप में पहचान लिया। परशुराम के सारे शरीर पर घाव के बड़े-बड़े निशान थे। वह बड़े कुत्तों को बहुत पसंद करता था। एक भयंकर कुत्ते से सामना होने पर वह प्यार से उसका आलिंगन करने और उसे चूमने लगा तथा भय के कोई चिह्न उसके चेहरे पर नहीं दिखाई दिये।

शिकागो विश्वविद्यालय के प्रो. विलियम एफ. ओगबर्न ने परशुराम की जांच की और अपना मंतव्य प्रकट किया कि यह मुमकिन है कि मादा-भेड़िया अपने पिल्लों के खो जाने या मर जाने से व्यथित होकर नर-शिशु का पोषण करे। उन्होंने लड़के की शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा का भी सुझाव दिया। परंतु परशुराम के माता-पिता ने किसी भी प्रकार की चिकित्सा कराने से इन्कार कर दिया। परशुराम अधिक दिनों तक जीवित न रहा और १९६० में छोटी माता से उसकी मृत्यु हो गयी।

इस तरह भेड़िया-बच्चे महज कल्पना की उड़ान नहीं माने जा सकते; क्योंकि उनके अस्तित्व के सबूत बाकायदा दर्ज किये गये हैं। फिर भी यह सवाल अभी भी विवादग्रस्त है कि मादा-भेड़िया मानव-शिशु का लाड़-प्यार से कैसे लालन-पालन कर सकती है तथा जंगल की विषम परिस्थितियों में बच्चा जीवित कैसे रह पाता है? जो भी हो, इस विषय पर और अधिक गंभीरता तथा वैज्ञानिक दृष्टि से अनुसंधान होना चाहिये।

—४७, प्रोफेसर्स कालोनी,
विश्वेश्वरय्या रीजनल कालेज
ऑफ इंजीनियरिंग, नागपुर–४४००११



माना की भीमशिला

—स्व. अमर बहादुर सिंह 'अमरेश'

केदार घाटी की नैसर्गिक सुषमा मन में एक चुभन-सी छोड़कर धीरे-धीरे छूटी जाती थी। चतुर्दिक खाड़ी उत्तुंग-शैलमालाओं के मध्य सर्पाकार सड़क के दोनों ओर हिमाच्छादित गिरि-गह्वरों, दुग्ध-फेनिल नदी-घाटियों, निर्झरों और हरीतिमा-मंडित चट्टानों की एक मीठी [illegible] मन में उमड़-घुमड़ रही थी। हम [illegible] चोपता से काफी आगे जा चुके थे। [illegible] ढलने लगा था। चमचमाती चोटियों के रजत-किरीट स्वर्णिम आभा में देवदारु के वृक्षों के मध्य ऐसे झलक रहे थे, मानो आदिकवि वाल्मीकि ने डूबते सूर्य की 'कपोत [illegible]' वाली उपमा से यहीं साक्षात्कार किया था।

हरी-भरी घाटी के चारों ओर बांज, [illegible], अंगियार, पांगर, थुनेर, खरसू, [illegible], चीड़, देवदारु और शाल वृक्षों की [illegible] में रंग-बिरंगे नन्हे-नन्हे पुष्पों का [illegible] कालीन बिछा था और किरमौल [illegible] कंटेदार झाड़ियों तथा कहीं-कहीं अख-[illegible] के वृक्षों के नीचे हताजोड के लंबे, [illegible] फूल शीश उठाये हर यात्री का स्वागत-[illegible] कर रहे थे।

एक ओर मधुमयी केदार घाटी छूट रही थी, दूसरी ओर बदरीनाथ घाटी के नंगे काले पहाड मन में एक सूनापन भरते हुए प्रकृति की विषमता का परिचय दे रहे थे। हिम-परिधान वाली शिलाओं में कहीं-कहीं हरियाली के दर्शन हो जाते थे और यह स्थिति जोशीमठ से पांडुकेश्वर और हनुमान चट्टी तक बराबर बनी रही। किंतु बदरिकाश्रम पहुंचते ही नर-नारायण पर्वत-श्रेणियों के मध्य नीलकंठ की झांकती चोटी ने जो दृश्य उपस्थित किया, उसकी छबि किसी रजत-पुलिनों की भुजाओं में बंधी चमकती गहरी-नीली झील से कम सुंदर न थी।

यहीं से लगभग तीन किलोमीटर दूर, भारत-चीन सीमा का अंतिम गांव माना-गांव था, जिसे देखने की मन में प्रबल अभिलाषा थी। यदि हम वसुधारा के आकर्षण को कुछ क्षणों के लिए छोड़ दें, तो माना-गांव की भीमशिला एक ऐसा आकर्षण है जहां भय, रोमांच और प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ भीम के अपराजेय पौरुष पर अपने आप आस्था पैदा हो जाती है।

हमारे देश में शिलाओं की कमी नहीं है

और प्रायः प्रत्येक शिला के पीछे कोई न कोई लौकिक अथवा पौराणिक आख्यान छिपा है—चाहे वह उत्तराखंड की भीमशिला हो अथवा कश्मीर की चंद्रकुल्यानी, या अहल्या-शिला। अहल्या के शिला बनने और भगवान राम द्वारा उद्धार किये जाने की कहानी सर्वविदित है। चंद्रकुल्यानी शिला की कहानी भी कम रोचक नहीं। 'राजतरंगिणी' में इस शिला का उल्लेख यों मिलता है :

एक समय की बात है। कश्मीर का राजा मिहिरकुल कुल्यानी नामक नदी को पार कर रहा था। तभी एक शिला ने मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर दिया। जल-प्रवाह रुक गया। राजा ने अनेक प्रयत्न शिला हटाने के लिए किये, किंतु सब व्यर्थ रहे। तभी उसे स्वप्न आया कि इस शिला पर एक दैत्याकार ब्रह्मचारी यक्ष विराजमान है और यह शिला तभी हटेगी, जब कोई सती-साध्वी नारी इसका स्पर्श करे। उस समय सतीसर नामक प्रदेश सती नारियों के लिए प्रख्यात था। राजा ने वहां की नारियों को बुलवाया। किंतु शिला टस से मस न हुई। राजा को बड़ा क्रोध आया। उसने कहा कि वे सबकी सब दुराचारिणी हैं, और उन्हें कत्ल करा दिया। अंत में चंद्रावती नाम की एक कुम्हारिन बुलायी गयी। उसके स्पर्श करते ही शिला हट गयी। राजा प्रसन्न हो गया। तब से कुल्यानी नदी की इस शिला का नाम चंद्रकुल्यानी पड़ गया।

ठीक ऐसी ही कहानी भीमशिला की भी है। कहा जाता है कि जब पांचों पांडव हिमालय पर गलकर मृत्यु प्राप्त करने के लिए चले तो इसी मार्ग से निकले थे। पास ही जल और हिमखंडों को नीचे गिराता हुआ रत्नगर्भ निर्झर तुमुल कोलाहल करता हुआ बह रहा था। पांचों पांडव तो उसे पार कर गये; परंतु द्रौपदी उसे पार न कर पायी। तब भीम ने एक शिला उठाकर झरने के आर-पार रख दी। पुल बन गया। द्रौपदी धारा के पार पहुंच गयी। तब से उस शिला का नाम 'भीमशिला' पड़ गया, जो भारत-चीन सीमा के इस अंतिम गांव का अंतिम आकर्षण है।

मानागांव हमारी सीमा का बड़ा ही सुंदर गांव है। जब वहां पहुंचे, शाम के चार बजे थे। पूर्वसूचना के अनुसार गांव के भूतपूर्व प्रधान श्री नारायण सिंह प्रातःकाल से ही हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे। गांव के एक ओर जल-प्रवाह के पास सेना की छावनी, नवनिर्मित सड़क और उसी से लगी हुई तीन सौ पचास मकानों की यह भव्य बस्ती। छोटे-छोटे, ऊंचे-नीचे दुतल्ले मकान, मकानों में बंधी गायें, भेड़-बकरियां और घोड़े। गांव के मध्य में घंटाकरण का प्रसिद्ध मंदिर। राशन की दुकानें, सरकारी बिक्री केंद्र, स्कूल, खादी-ग्रामोद्योग मंडल का प्रशिक्षण-केंद्र। पूरे गांव में शिक्षा का व्यापक प्रचार। घास के गट्ठर, दरांती और थमाडा लिये आ रही युवतियां, हंसमुख युवक, निःसंकोच भाव से बातें करती पहाड़ी किशोरियां।

'आइये, पहले आप इनसे मिलिये!'—

मेरे एक साथी ने कहा। मैं सीढ़ियां उतरकर नीचे पहुंचा। देखा, दरवाजे पर एक झाबे में ऊन के फाहों से ढंका नवजात शिशु किलकारियां भर रहा था। उसके पास ही एक हंसमुख किशोरी खड़ी स्वेटर बुन रही थी और एक वृद्धा बरतन साफ कर रही थी। हम लोग बच्चे को देख विहंस उठे। आगे बढ़े। युवती ने पथप्रदर्शन किया। सामने घंटाकरण का मंदिर था। कपाट बंद थे। युवती ने बताया यह इस समय नहीं खुलेगा। सो हम बाहर से ही माथा नंवाकर आगे बढ़े।

अब तक श्री नारायण सिंह आ चु : थे। हम लोग शहीद-स्मारक, कन्या पाठशाला और व्यास गुफा होते हुए भीमशिला पहुंचे। एक भयानक दृश्य सामने था। ऊंचाई से गिरने वाले जल-प्रपात का कल-कल निनाद इतना तेज था कि एक दूसरे से बात करना और सुनना भी कठिन था। हिमखंडों के तुहिन-कण चारों ओर बिखर रहे थे। पर्वतमाला मेघाछन्न थी। भीमशिला पर खड़े होने में भी डर लगता था। वहीं चित्र खिंचवाते समय श्री नारायण सिंह ने भीमशिला की पौराणिक कहानी सुनायी। हवा इतनी तेज और ठंडी थी कि अपने को संभालना कठिन हो रहा था। लंबी-चौड़ी शिला को देखकर यही लगता था कि भीम ने कैसे इसे उठाया होगा! किंतु जिस देश के हनुमान पर्वत उठा सकते हैं, कृष्ण उंगली पर गोवर्धन धारण कर सकते हैं, उस देश के भीम क्या एक शिला नहीं उठा सकते?

भीम ने शिला उठाकर इस एक शिला वाले पुल का निर्माण किया हो या न किया हो, किंतु भीम के अपराजेय पौरुष, शक्ति और बल-विक्रम के साथ-साथ महाभारत की कथा को सीमांत की इन दुर्गम घाटियों और हिम-मंडित पर्वत-शृंखलाओं तक पहुंचाने का काम जिसने किया, उसकी अवश्य प्रशंसा की जानी चाहिये।

इसी भीमशिला से वसुधारा जाने का मार्ग है और जाने कितनी द्रौपदियां आज भी इस शिला-पुल से उस पार पहुंच जाती हैं। हम अभी वहां खड़े थे, तभी तेज बर्फीली हवा के झोंकों के साथ पानी की बौछारें आने लगीं। उनसे बचने के लिए हमने एक कंदरा की छाया में शरण ली। मानागांव की मान्यता है कि भीमशिला पर यात्रियों के आने पर जलवृष्टि होना शुभ है। इस शुभ घड़ी में हम लोग वहां से लौट पड़े। पानी भी बंद हो गया था और मानागांव पहुंचते-पहुंचते भगवान भुवन-भास्कर नीलकंठ की श्यामवर्ण बर्फीली चोटी के ऊपर स्वर्ण-कलश रखकर छिपते चले जा रहे थे। सैनिकों के दल हथियारों से लैस, व्यास गुफा वाली पगडंडी से सुदूर सीमा-रक्षा के लिए बढ़े चले जा रहे थे।

हम लोग हिमांचली चोटियों में छिपते सूर्य और उन चोटियों पर चढ़ते देश-रक्षकों को नमस्कार करके लौट आये। पर भीमशिला का वह सुषमा-मंडित सांझ का दृश्य आज भी आंखों के आगे चित्रवत् खड़ा है।

—गांधीनगर, रायबरेली-२२९००१



एक था तानाशाह—नरभक्षी, नारीभक्षी

हरिशंकर

आठ वर्ष के निरंकुश शासन में 'अफ्रीका के मोती' युगांडा को नरक बना डालने वाला इदी अमीन इस समय कहां है?

पहले माना गया था कि उसने ज़ेरे, सुडान या इराक में शरण ली है। अब बी. बी. सी. के मास्को-प्रतिनिधि का कहना है कि अमीन लीबिया में कर्नल गदाफी का मेहमान है और वहां से युगांडा के मास्को-स्थित राजदूत को अक्सर फोन किया करता है। एक जर्मन पत्रकार को ट्रिपोली में उसके निवास-स्थल की टोह लेने के अपराध में सात दिन की कैद भी भुगतनी पड़ी।

एक इतालवी मिशनरी ने दावा किया है कि उसने उत्तरी युगांडा में अमीन को अपने सैनिकों के सामने भाषण करते अपनी आंखों देखा है।

उधर अमीन की लाड़ली सिंबा बटालियन (सिंबा=सिंह) के एक सैनिक ने केन्या-युगांडा सीमा पर एक विदेशी पत्रकार से कहा है—'महामहिम रोज ही रेडियो पर हमें हिदायतें देते हैं। वे बाहर से शस्त्रास्त्र लाने वाले हैं। उन्होंने हमसे कहा है, चुपचाप दुबककर रहो, आखिरी क्षण के लिए अपने बुलेट बचाये रखो।'

यानी नरभक्षी खुला घूम रहा है।

कंपाला में यूसुफु किरोंदे लुले की अध्यक्षता में गठित नयी युगांडा सरकार के लिए यह चिंता का विषय है—और हम-जैसे उन तमाम लोगों के लिए भी, जो निरंकुश तानाशाही के एक और गढ़ के ढहने से आनंदित हैं।

इदी अमीन—या जैसा कि वह अपने को कहता था .... हिज एक्सलेन्सी अलहाजी, फील्ड मार्शल डा. इदी अमीन दादा, वी. सी., डी. एस. ओ., एम. सी. आजीवन राष्ट्रपति—युगांडा—कैलिगुला, नीरो और हिटलर की परंपरा का तानाशाह था। आधुनिक इतिहास का शायद वही एकमात्र शासक था, जिसने नरमांस खा चुके होने का दावा किया है। ('नमकीन-सा स्वाद होता है उसका,' उसने कहा था।) इस दृष्टि से हिटलर उसकी तुलना में संत-महात्मा था!

आकार और आचार दोनों में दानव इदी अमीन सन १९२५ में कोबोको नामक गांव में काक्वा कबीले के एक मुस्लिम परिवार में जनमा। स्कूल में उसने शायद कभी कदम नहीं रखे और जो थोड़ी-बहुत विद्या अर्जित की, स्वप्रयत्न से ही अर्जित की। वह ब्रिटिश औपनिवेशिक सेना में भरती हुआ और द्वितीय विश्वयुद्ध में किंग्स आफ्रि-

...राइफल्स में बर्मा ... मोर्चे पर लड़ा। ...बाद में केन्या में माउ-माउ उन्मूलन अभि-यान में शरीक हुआ और औपनिवेशिक ...सेना में सबसे बड़े नान्-कमिशंड ओहदे पर पहुंचा।

युगांडा के आजाद होने (१९६२) से साल भर पहले उसे अफसर का रुतबा मिला था। चार साल बाद राष्ट्रपति डा. मिल्टन ओबोटे की ओर से बुगांडा के काबाका के विरुद्ध सैनिक अभियान का सफल नेतृत्व करके वह स्थलसेना का कमांडर बना। ...ों के गृहयुद्ध में विद्रोहियों के लिए चोरी से भेजे गये सोने से उसने अपनी जेबें भरी थीं। यह बात १९६६ में एक आयोग के आगे उसने खुद कबूल की।

राष्ट्रपति ओबोटे के विरुद्ध असली या कल्पित षड्यंत्र करने वालों को कुचलने में उसने विशेष उत्साह दिखाया। मगर १९६६ में सेना के ढांचे में परिवर्तन करने की ओबोटे की योजना ने दोनों की दोस्ती खत्म कर दी। जनवरी १९७१ में तो राष्ट्र-पति ओबोटे ने अमीन को बर्खास्त करने की पूरी तैयारी कर ली।

मगर मेजर-जनरल इदी अमीन अधिक ...इयां निकला। २५ जनवरी १९७१ को जब ओबोटे सिंगापुर में राष्ट्रमंडल के अधि-वेशन में भाग ले रहा था, इधर कंपाला में अमीन ने उसका तख्ता पलट दिया और सत्ता हथिया ली। २० फरवरी को वह युगांडा का राष्ट्रपति बन गया।

देश ने आरंभ में उसका साथ दिया। मिल्टन ओबोटे ने स्वयं प्रजातंत्र-निष्ठा का बहुत उज्ज्वल उदाहरण नहीं पेश किया था। वह सरासर कबीला-परस्त था और उसकी सरकार भ्रष्टाचारी थी। अमीन ने गैर-फौजी सरकार कायम करने का आश्वासन देश को दिया।

किंतु अमीन का असंस्कारी पाशविक स्वभाव बहुत जल्दी प्रकट हो गया। सत्ता संभालने के साथ ही उसने ओबोटे के प्रति



हिज एक्सलेन्सी अलहाजी डा. इदी अमीन वी. सी., डी. एस. ओ., एम. सी. इत्यादि

वफादार अचोली और लांगी कबीलों के ३,००० आदमियों का खात्मा करा दिया था और सेना के चीफ ऑफ स्टाफ ब्रिग्रेडियर-जनरल मुहम्मद हुसैन को राइफल के कुंदों से कुचलवाकर मरवा दिया था। अब उसने अपनी कुर्सी मजबूत रखने के लिए युगांडा के बीस कबीलों को आपस में लड़ाना शुरू किया। उसके इशारे पर सेना की बैरकों में एक कबीले के सैनिक दूसरे कबीले के सैनिकों को घेरकर उनका वध कर डालते।

जिसकी वफादारी पर अमीन को रत्ती-भर भी शक हो या जो उसकी इच्छा का तुरंत पालन न करे, उसका दिन-दहाड़े अपहरण हो जाता—चाहे वह देश का प्रधान न्यायाधीश हो या मंत्रिमंडल का सदस्य। एक-दो दिन बाद उसका क्षत-विक्षत शव नील नदी में बहता हुआ अथवा किसी सड़क के किनारे सड़ता हुआ पाया जाता। अंदाज



हेनरी क्येंबा
अमीन का भतपूर्व स्वास्थ्यमंत्री

है कि इस राष्ट्रपति ने अपने राष्ट्र की १ करोड़ १० लाख आबादी में से तीन या साढ़े तीन लाख नागरिकों को मरवा डाला!

और मारने के तरीके भी कितने नारकीय! २० पौंड वजनी घनों से खोपड़ी या पसलियां कुचलवा देना; पेट चिरवाकर आंतें खिंचवा देना; जननेंद्रिय काटकर गले में ठूंसकर दम घोट देना।

यह सब करने के लिए उसके पास एक विशेष संघटन था—एस. आर. बी. (स्टेट रिसर्च ब्यूरो)। इसका संयोजक था ब्रिटेन में जनमा एक गोरा—राबर्ट एसल्स। एसल्स जो कभी एक सड़क-निर्माण टोली का मुकद्दम था, मिल्टन ओबोटे का स्नेहपात्र था। तख्ता-पलट के बाद वह अमीन का मुसाहिब और सलाहकार बन गया। यह खुशी की बात है कि अमीन के कंपाला से भागने के बाद वह स्पीड बोट में बैठकर विक्टोरिया झील (जिसका नाम अमीन ने 'इदी अमीन झील' कर दिया था) के पार केन्या पहुंचा और केन्या-पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। एसल्स का कहना है कि एन्टेबे-कांड से पहले अमीन क्रूर नहीं था।

अमीन की सरकारी कोठी में ही एक यंत्रणा-गृह था, जो इन नारकीय कृत्यों में उसकी साझेदारी का प्रमाण है।

०

कैसा था अमीन का आर्थिक प्रशासन? इसी से जान लीजिये कि युगांडा का सिक्का (शिलिंग) पिछले आठ साल में अपनी ९ बटा १० कीमत गंवा बैठा है। १९७१ में

युगांडा का कपास-उत्पादन ४ लाख गांठें था; अब १ लाख गांठें रह गया है। देश के लिए विदेशी मुद्रा जुटाने वाली नकदी फस्ल कॉफी अब प्रायः पेड़ों पर ही सड़ जाती है—बागानों की यह दुर्दशा है।

'सबके लिए संपत्ति' (मुफ्ता मिगी) अमीन का आर्थिक कार्यक्रम था, जिसका आधार यह था कि अगर एशियाई व्यापारियों-कारखानेदारों को चलता कर दिया जाये, तो युगांडा में सबको भरपूर संपत्ति मिल जायेगी। १९७२ में ७१ हजार एशियाई (मुख्यतः भारतीय) युगांडा से खदेड़ दिये गये। उनके जाने के साथ युगांडा का वाणिज्य-उद्योग-तंत्र जो ठप हुआ, अभी तक वहीं पड़ा है।

'टाइम' पत्रिका ने अमीन के एक भूतपूर्व मंत्री के बेटे का हवाला देते हुए एक किस्सा छापा था। जिजा में करोड़पति भारतीय परिवार माधवानियों का दियासलाई-कारखाना देखकर एक अधपढ़ न्यूबियाई के मुंह में पानी भर आया और उसने अमीन से वह कारखाना इनायत करने की प्रार्थना की। बस, अमीन ने फोन करके संबंधित माधवानी को बुलवा भेजा। घंटे-भर बाद कारखाना न्यूबियाई की मिल्कियत बन चुका था!

इससे भी बढ़िया किस्सा सुनिये। अमीन ने १९७५ में युगांडा में उत्पादित सारी की सारी चीनी लीबिया को बेच दी और उसका पैसा अपनी जेब में डाल लिया। भुगतान ट्रिपोली के एक होटल के नाम विदेशी मुद्रा में जमा किया गया। यह होटल असल में इदी अमीन की निजी मिल्कियत था।



पत्नी नं. १—मल्यामू

०

अमीन की नजरों में युगांडा की तमाम औरतें भी उसी की निजी मिल्कियत थीं। वह राष्ट्रपति था न। असल में ओबोटे के समय ही सेनापति अमीन की लंपटता ने समस्याएं पैदा करना शुरू कर दिया था। बाद में तो यह हाल था कि लोग अपनी खूबसूरत बीवियों-बेटियों को राष्ट्रपति की नजरों से दूर ही दूर रखने की चेष्टा करते थे। जो औरत उसे एक नजर भा जाये, उसके पास पैगाम पहुंच जाता। यदि पैगाम की अवज्ञा हुई तो स्टेट रिसर्च ब्यूरो उस अभागिन के भाई, पिता या पति को ठिकाने लगा देता था।

अमीन का काम-संबंध न जाने कितनी स्त्रियों से था; पर ब्याहता बीवियां उसकी पांच थीं, जिनका यह विवरण अमीन के



पत्नी नं. २—के

भूतपूर्व स्वास्थ्य-मंत्री हेनरी क्येंबा ने ब्रिटेन भाग जाने के बाद लिखी अपनी पुस्तक 'स्टेट आफ ब्लड' में दिया है :

पहली पत्नी मल्यामू १·८३ मीटर ऊंची



पत्नी नं. ३—नोरा

और बुद्धिमती महिला थी। तेरह साल साथ रहने और छह बच्चे जनने के बाद १९६६ में अमीन से उसका विवाह हुआ। (यह चीज अफ्रीकी कबीलों में अनुचित नहीं मानी जाती।)

के नामक दूसरी पत्नी एक ईसाई पादरी की बेटी थी। के सुंदर थी, आकर्षक थी, और उस समय अभी छात्रा थी। उसका पादरी पिता मुसलमान दामाद नहीं चाहता था; पर पारिवारिक विरोध के बावजूद के ने १९६६ में अमीन से शादी की। वह पति की निजी शिक्षिका और दुभाषिया भी थी। मल्यामू से उसकी निभती थी।

तीसरी पत्नी नोरा ओबोटे के कबीले की थी। राजनैतिक उद्देश्य से अमीन ने १९६७ में उससे शादी की। वह आकर्षक थी; दोनों सौतों के साथ सद्भावपूर्वक रहती थी।

चौथी पत्नी मदीना तंग नितंबों और भरे स्तनों वाली एक अपढ़ नर्तकी थी। उसे सरकारी प्रचार-विभाग की एक नृत्य-मंडली में देख लेने के बाद अमीन उसके पीछे भटकता रहा। अंततः उसने १९७२ में उसे अपने घर में ला बसाया और अपने चौथे विवाह का एलान रेडियो पर किया।

पांचवीं पत्नी सरा एक गोगो-नर्तकी थी। १९७४ में अमीन उस पर फिदा हुआ। सरा का एक नौजवान प्रेमी था, जिससे वह गर्भवती भी थी। यह बच्चा जब पैदा हुआ, अमीन ने रेडियो पर उसे अपना बच्चा बताया। इसके बाद भी सरा अपने प्रेमी से मिलती रही। फिर एक दिन सरा के

पर उसकी आंखों के सामने ही प्रेमी का काम तमाम कर दिया गया। अंततः सरा राष्ट्रपति के घर आ बसीं।

इससे पहले ही मल्यामू, के और नोरा से अमीन के संबंध बहुत बिगड़ गये थे। उसने रेडियो पर एक साथ तीनों को तलाक देकर उन्हें खाली हाथ घर से निकाल दिया; उनके बच्चे भी उन्हें न दिये। इसके दो हफ्ते बाद मल्यामू कपड़े की तस्करी के जाली मामले में फंसा दी गयी और उस पर जुर्माना किया गया।

तलाक के वक्त के गर्भवती थीं। अमीन उसके बच्चे को पाना चाहता था। एक डाक्टर से गर्भ गिराने के प्रयत्न में के रक्त-स्राव से मर गयीं। डर के मारे डाक्टर ने के का शव काटकूटकर एक बोरी में भर दिया; मगर उसे फेंक आने की हिम्मत न कर सका और विष पीकर मर गया। अमीन को पता लग गया था; उसने क्येंबा से कहकर मुर्दे को मंगवा भेजा और अपनी मृत तलाकशुदा पत्नी को उसके रोते बच्चों और सिसकते बूढ़े पिता के सामने गिन-गिनकर गालियां दीं। इस सारे प्रकरण का टेलिविजन पर चित्र लिया गया! के के बच्चे अपने मित्रों से कहते फिरते थे–'हमारे पापा ने मम्मी को मरवा दिया!'

इसके बाद एक रोज एक आदमी के साथ जाते हुए मल्यामू कार-दुर्घटना में ग्रस्त हो गयीं। (वकील क्येंबा, दुर्घटना अमीन ने करायी थी।) अस्पताल में अमीन टेलिविजन-टोली लेकर पहुंचा। मगर भयंकर



पत्नी नं. ४–मदीना

०



पत्नी नं. ५–सरा

दर्द में भी मल्थामू ने उसे ऐसी फटकार सुनायी कि वह वहां ठहर न सका। अस्पताल से रिहा होते ही मल्थामू केन्या भाग गयी और अब ब्रिटेन में रहती है।

नोरा को अमीन ने बख्श दिया, शायद दुनिया को यह दिखाने के लिए कि वह प्रतिहिंसक नहीं है। उसने उसे एक दुकान भी ले दी। क्येंबा की लिखी किताब के अनुसार, मदीना और अमीन में अक्सर हाथापाई हो जाती थी और सरा के फिर कोई संतान नहीं हुई–अमीन के बहुत चाहने पर भी।

मगर क्येंबा का कहना है, अमीन अपने बच्चों को सचमुच प्यार करता था। एक-आध गुण तो सभी में होता ही है। अमीन में दूसरा गुण है–क्रीडा-प्रेम। दस वर्ष तक वह युगांडा का हेवीवेट बाक्सिग चैंपियन रहा; रग्बी का वह अच्छा खिलाड़ी है। उसका एक काम तो मुझे भी बहुत अच्छा लगा था। एक बार उसने अंग्रेज व्यापारियों से कहारों की तरह अपनी कुर्सी उठवाकर गर्वीले गोरों के साम्राज्यवाद का सही बदला चुकाया।

•

तांजानिया के राष्ट्रपति जूलियस न्येरेरे ने अक्तूबर १९७८ में अमीन के आक्रमण को झेलकर और सही समय पर अपनी सेनाएं युगांडा भेजकर महान राजनैतिक सूझबूझ दिखायी है। अपने मित्र ओबोटे को राष्ट्रपति बनवाने के बजाय, मेकरेरे विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति और युगांडा लिबरेशन फ्रंट के अध्यक्ष लुले को नयी सरकार का मुखिया बनने देना न्येरेरे के विवेकीपन का दूसरा प्रमाण है। फिर भी उन्हें सावधान रहना होगा। मुक्त कराये गये देश मुक्त कराने वाले पड़ोसी देश पर उपनिवेशवाद का आक्षेप देर-सवेर लगाते ही हैं! नेपाल और बाङ्ला देश के मामलों में भारत इसका भुक्तभोगी है।

नयी युगांडा सरकार को अपने देश में प्रजातंत्र वापस लाना है, देश के बीस कबीलों में सौहार्द उपजाना है। देश का ढह चुका आर्थिक ढांचा उसे फिर से खड़ा करना है, जिसके लिए उसे कम से कम दो अरब डालर का कर्ज व दान फौरन चाहिये। उसे ऐसी चतुराई बरतनी है कि कर्ज भी मिल जाये और कलेजे का मांस भी न देना पड़े। शायद आर्थिक-औद्योगिक पुनर्निर्माण के लिए भारतीय व्यापारियों को फिर से वहां प्रवेश मिले। मगर शोषण की खुली छूट उन्हें कोई अफ्रीकी सरकार नहीं देगी। युगांडा से भारतीयों के आर्थिक उच्चाटन की प्रक्रिया ओबोटे के समय ही आरंभ हो गयी थी; और अफ्रीकियों के शोषण का इल्जाम भारतीयों पर अकारण नहीं लगाया गया है।

क्या कर्नल गदाफी अमीन को शस्त्रसज्ज करके वापस भेजेगा? वापस भेज सके या नहीं, मदद तो शायद देगा ही। अमीन मुसलमान है और गदाफी अपने को इस्लाम का गाज़ी समझता है। तभी तो वह 'इस्लामी अणुबम' बनाने के लिए किसी भी भुट्टो या जिया की झोली पेट्रोल के पैसों से भरने को तैयार है।



दुखती पीठ

डा. एच. बेरिक राइट के लेख का सार

जैसे पीठ में नुकीले पंजे गाड़ दिये गये हों, ऐसा लगता है डाक्टर साहब ! ...... पीठ-दर्द बहुत आम शिकायत मानी जाती है। यह होता भी तरह-तरह का है। इसके कारणों में मामूली तकलीफ से लेकर जिंदगी भर की मुसीबत तक कुछ भी हो सकता है। इसके सबब भी कितने ही बन जाते हैं—खोटी किस्मत से लेकर एक पैर पर जोर देकर खड़े होने की गलत आदत तक। इलाज भी बहुत हैं इसके—बड़ी शल्यक्रिया से लेकर रोगी के मानसिक रुझानों के बदलाव तक।

अगर आपको कभी बहुत ज्यादा कड़ी मेहनत करनी पड़े जिसके आप आदी न हों, तो प्रायः पीठ-दर्द शुरू हो जाता है। उद्योग-धंधों में कर्मचारियों की गैरहाजिरी की सबसे बड़ी वजह भी यही है। वैसे इसका आदिकारण तो यह कहा जाता है कि विकास की दौड़ में आदमी ने चारों पंजों के बल खड़ा होना छोड़कर दो पैरों के बल खड़ा होना शुरू कर दिया।

विशेषज्ञों का कहना है कि पीठ और रीढ़ की हड्डी की रचना ही इस तरह की गयी है कि वह भार और दबाव से मुक्त रहे। लेकिन जब हमने उस पर सिर के वजन के अलावा सारी देह को सहारा देने की अतिरिक्त जिम्मेदारी भी डाल दी, तो सहज ही तकलीफें मोल ले लीं।

पीठ-दर्द से मुक्ति के लिए पहला कदम जो हमें उठाना होगा, वह है हर तरह के पीठ-दर्द की असली वजह को समझना।

बहुतों को पीठ-दर्द इसलिए होता है कि वे बड़े ही ढीले-ढाले ढंग से खड़े होते हैं, या उनके तलवे सपाट होते हैं, या वे ऊंची एड़ी के जूते पहनते हैं, अथवा जरूरत से ज्यादा मोटे और भारी हो गये हैं। हाव-भाव, उठने-बैठने-चलने के गलत ढंग भी प्रायः पीठ-दर्द पैदा कर देते हैं।

यदि आपके पीठ-दर्द के भी कारण यही हैं, तो आप भाग्यवान हैं। कारण, इनमें से कुछ के निराकरण तो बहुत सरल हैं—ठीक ढंग से उठें-बैठें-चलें, या जूते बदल डालें।

१९७२

कड़ी कमरपेटी का उपयोग करें या आसान कसरत से पीठ की मांसपेशियों को मजबूत बनायें। लेकिन कभी-कभी मामूली कारण का भी पता लगाने में काफी कठिनाई होती है। एक बीमार को पूरे आठ बार एक्सरे निकलवाने पड़े और खून व पेशाब की भी जांच करानी पड़ी। बेचारा इस चिंता में पड़ गया था कि कहीं उसे कैन्सर न हो। लेकिन अंत में पता चला कि उसके पांव के तलवों की आकृति में कुछ अंतर आ गया है; इसलिए चपटे तलवों के इलाज के रूप में वह जो जूते पहनता है, उनकी डिजाइन में थोड़ा-सा परिवर्तन आवश्यक है। वह परिवर्तन कराते ही उसका पीठ-दर्द ठीक हो गया।

चोट लगने या बहुत अधिक श्रम, खींच-तान, कामकाज करने अथवा दबाव या जोर पड़ने से जो पीठ-दर्द शुरू होता है, उसके ठीक होने में हफ्तों या महीनों की अवधि लग सकती है। इसमें बहुत ही सावधानी से बार-बार डाक्टरी मदद की जरूरत पड़ती है।

लोगों का यह आम खयाल है कि रीढ़ की हड्डी की गुरियां बहुत जल्दी और जरा-सी वजह से खिसक जाती हैं। लेकिन असल में ऐसी बात नहीं है। अक्सर तो यह अपने आप ही ठीक हो जाता है। हां, अगर गुरियों के ऊतक (टिशू) टूटे हों तो उनके ठीक होने में काफी देर लगती है। इसीलिए रोगी की तकलीफ कम करने के लिए डाक्टर दर्दमार दवाओं की सूइयां लगाते हैं। शल्यक्रिया तो कई डाक्टर अनिवार्य जान पड़े, तभी करते हैं। अगर सचमुच गुरियां खिसकी होती हैं, तो उसका दर्द कमर से नीचे दोनों टांगों तक जा पहुंचता है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि शल्य-चिकित्सा से सारे मामले ठीक नहीं हो जाते, दर्द भले ही कम हो जाये। अच्छे मालिश-मौला भी इस तरह का पीठ-दर्द ठीक कर देते हैं।

गठिया (संधिवात या जोड़ों की सूजन) भी पीठ-दर्द की वजह बन जाता है। यह कई किस्म का होता है और हर तरह के गठिया का इलाज तो आधुनिक चिकित्सा भी नहीं कर पाती। यह अक्सर बुढ़ापे में होता है; लेकिन कभी-कभी तीस या चालीस पार के वर्षों में भी हो जाता है। दवाओं के अलावा इसमें योगासन और प्राणायाम भी फायदा पहुंचा सकते हैं। अन्यथा इसे सहना ही पड़ता है।

औरतों में गर्भाशय के अपनी जगह से हटने से पीठ-दर्द होता है। इसी तरह के दूसरे भी खास 'स्त्रीकष्ट' पीठ में दर्द पैदा कर देते हैं। दवाओं, यांत्रिक सहायता या शल्यक्रिया से इनका इलाज होता है। बच्चों को पीठ-दर्द जन्मजात कारणों से भी भुगतना पड़ता है। शल्यक्रिया या दवाओं से यह भी ठीक हो जाता है।

शरीर की असामान्य स्थितियों में भी ऐसा होता, जैसे हड्डियों में कैल्शियम (चूने) की कमी, अथवा रीढ़ के पास कैन्सर की मौजूदगी।

जो भी हो, पीठ का दर्द शुरू होते ही घबरा न उठें। पहले दो-चार दिन उसे सहकर यह देख लें कि वह अपने आप ही ठीक होता है या नहीं। अगर खुद ठीक हो गया तो ठीक; अगर वह बढ़ता ही जाये और बराबर बना रहे, तो डाक्टरी मदद लें।

और एक बात। पीठ-दर्द हमेशा शारीरिक गड़बड़ी या चोट आदि से ही होता हो, ऐसा भी नहीं। वह मानसिक तनाव और भावनात्मक अथवा संवेगात्मक दबावों से भी हो सकता है; क्योंकि तब पीठ की मांसपेशियां अचानक सख्त पड़ जाती हैं और बहुत दुखती हैं। इससे बचने के लिए निराशा, मायूसी, असहाय होने की अनुभूति एवं असंतोष की भावनाओं से बचें। जो लोग जिंदगी की लड़ाई से दूर भागना चाहते हैं, उनकी मांसपेशियां सहज ही तन जाती हैं, और उस तनाव से पैदा होता है पीठ-दर्द। और यह दर्द सिर्फ रीढ़ में ही नहीं, सारी पीठ में होने लगता है। इसे मांसपेशियों में फड़कन और खिचाव से भी पहचाना जा सकता है। यदि यह दर्द मानसिक एवं स्नायविक शामकों के सेवन से थोड़ा भी घटता हो, तो समझिये कि निश्चय ही यह मानसिक कारणों से हुआ है। तब केवल एस्प्रो जैसी दवाओं के सहारे न रहें; अपने भय, असंतोष और नैराश्य के भावों की तह में जाकर उनसे मुक्ति पाने की कोशिश करें। अन्यथा इस पीठ-दर्द से छूट पाना मुश्किल होगा।



चटनी, चाट और भोजन

इस बार जबलपुर की यात्रा में पं. द्वारकाप्रसादजी मिश्र से मिलने उनके निवास-स्थान 'उत्तरायण' गया, तो वहां कवि अंचलजी भी विराजमान थे। बातें होते-होते जा पहुंचीं शेरो-शायरी और गजल पर। अंचलजी ने कहा कि आजकल तो इनका बड़ा जोर है हर जगह लोग इन्हें बड़े चाव से सुनते हैं।

मिश्रजी बोले–'मेरे पत्रकार मित्र श्री कुलदीप नैयड़ एक दिन मुझसे मिलने आये तो उन्होंने भी यही पचड़ा छेड़ दिया और कहने लगे कि उर्दू की शेरो-शायरी का मुकाबला हिंदी के दोहे-चौपाई या कविताएं कर ही नहीं सकतीं। मैंने इस पर उन्हें साफ शब्दों में इन दोनों का अंतर समझाते हुए कहा कि शेरो-शायरी चटनी और चाट हैं, भोजन नहीं है। उनसे जीभ को चटपटा किया जा सकता है, पेट की तृप्ति नहीं हो सकती। और यह दलील वे ही लोग देते हैं, जिन्हें हिंदी के सवैयों, दोहों, सोरठों, चौपाइयों, कवित्तों, बरवै और अन्य पद्यों और साहित्य का ज्ञान नहीं है। फिर मैंने उन्हें बिहारी का एक दोहा सुनाया, जिस पर वे कहने लगे–आप बिलकुल ठीक कहते हैं, हम लोगों को इन चीजों की तो जानकारी ही नहीं है।'

–शंकरदयाल सिंह



एक महान लघु पुस्तक

हेनरी डेविड थारो की युग-प्रवर्तक पुस्तक 'सिविल डिसओबिडियेन्स' का परिचय
राबर्ट बी. डाउन्स की पुस्तक 'टेन बुक्स दैट चेन्ज्ड द वर्ल्ड' के आधार पर।



एक ओर राज्य की शक्ति को प्रमुख और व्यक्ति को गौण मानने वाले मैकियावेली और हिटलर हैं, तो दूसरी ओर हैं हेनरी डेविड थोरो, जिन्होंने व्यक्ति को राज्य की अपेक्षा श्रेष्ठ और अपने आपमें साध्य तथा राज्य को साधन मात्र माना है। थोरो की छोटी-सी पुस्तक 'सिविल डिसओबिडियेन्स' (सविनय अवज्ञा) ने मानव-जाति के इतिहास को तानाशाही और राजशाही की दिशा से लोकतंत्र और नागरिकों के मौलिक अधिकारों की दिशा में मोड़ा।

यह पुस्तक मई १८४९ में 'एस्थैटिक पेपर्स' नामक पत्रिका में लेखमाला के रूप में छपी। उस समय इसका नाम 'रेजिस्टेन्स टु सिविल गवर्नमेंट' (नागरिक शासन का प्रतिरोध) था, जो बाद में बदलकर 'ऑन द ड्यूटी ऑफ सिविल डिसओबिडियेन्स' अथवा महज 'सिविल डिसओबिडियेन्स' कर दिया गया। उस समय तो इसे न विशेष प्रसिद्धि मिली, न अधिक पाठक ही मिले। लेकिन अगले सौ वर्षों में उसे असंख्य लोगों ने पढ़ा और करोड़ों लोगों के जीवन पर उसका प्रभाव पड़ा।

थोरो ने पुस्तक का प्रारंभ सरकार के अस्तित्व पर प्रहार द्वारा किया है। वे जेफरसन से भी अधिक व्यक्तिवादी बन गये। जेफरसन ने कहा था कि सबसे अच्छी सरकार वह है जो कम से कम शासन करती है। थोरो कहते हैं कि सबसे अच्छी सरकार वह है, जो कुछ भी नहीं करती। लेकिन वे शीघ्र ही यह स्वीकार कर लेते हैं कि मनुष्य अभी उस पूर्णता की अवस्था में नहीं पहुंचा है, जहां उसे सरकार की आवश्यकता नहीं रहती और इसलिए वे अपने विचार को व्यावहारिक धरातल पर उतारते हुए कहते हैं :

'व्यावहारिक दृष्टि से तथा नागरिक के रूप में सोचा जाये तो मैं कहूंगा कि मैं उन लोगों जैसा नहीं हूं जो अपने आपको अराजकतावादी कहते हैं। मैं इसी समय सरकार की समाप्ति नहीं चाहता। लेकिन इसी समय अच्छी सरकार अवश्य चाहता हूं और उसे प्राप्त करने की दिशा में पहला कदम यह है कि सब लोगों को यह बात बता दी जाये कि वे किस प्रकार की सरकार का आदर कर सकते हैं।'

थोरो के सामने अमरीका की सरकार थी, जिसका गठन बहुसंख्या के मत के आधार पर किया जाता था, जैसा कि आज भी किया जाता है। एक विचारक के नाते उनके सामने बहुसंख्या के शासन के बारे में अनेक प्रश्न उठे। बुनियादी प्रश्न यह था कि बहुसंख्या के शासन को क्यों अच्छा माना जाये। वे स्वीकार करते हैं कि बहुसंख्या इसलिए शासन नहीं करती कि 'बहुसंख्यकों के सही निर्णय करने की अधिक संभावना होती है, या कि अल्पसंख्यक लोग इस प्रकार के शासन को सबसे अधिक उचित मानते हैं; बल्कि वह (बहुसंख्या) इस कारण शासन करती है कि वह भौतिक दृष्टि से अधिक सबल होती है।'

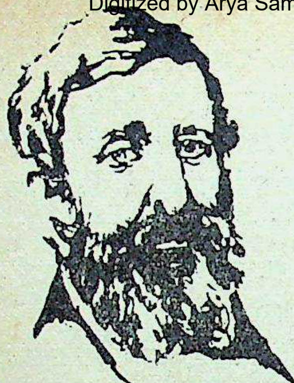
थोरो को यह स्वीकार्य नहीं है कि नागरिक को 'अपना अंतःकरण अपने विधायक के सामने समर्पित कर देना चाहिये।' वे कहते हैं-'हमें पहले मनुष्य और बाद में प्रजा होना चाहिये। यह उचित नहीं है कि कानून के प्रति भी उतना ही आदर पैदा कर दिया जाये, जितना कि सही अथवा उचित के लिए होता है।'

बुद्धि और अंतःकरण में भेद

थोरो के मन में राजनीतिज्ञों के लिए विशेष आदर नहीं था। वे कहते हैं-'अधिकांश विधायक; राजनीतिज्ञ, वकील, मंत्री और पदाधिकारी राज्य की सेवा मुख्यतः बुद्धि के जरिये करते हैं; और क्योंकि वे नैतिक दृष्टि से चीजों में विवेक विरलता से ही कर पाते हैं, अतः वे अनजाने में ही ईश्वर की भांति शैतान की भी सेवा कर सकते हैं। राष्ट्रनायकों, देशभक्तों, शहीदों अथवा सुधारकों सरीखे चंद लोग ही अपने अंतःकरण द्वारा भी राज्य की सेवा कर पाते हैं, और इसी कारण वे अनिवार्यतः तथा अधिकांशतः राज्य का प्रतिरोध करते हैं, जिसके कारण वह (राज्य) उन्हें अपना शत्रु मान लेता है।'

थोरो को मतदान में किसी प्रकार की नैतिकता नजर नहीं आती तथा जन-समुदायों के सामूहिक कार्यों में उन्हें कोई गुण दिखाई नहीं देता। इसलिए उनके सामने यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि अन्यायपूर्ण कानूनों के प्रति नागरिक का क्या रवैया होना चाहिये? क्या वह इसकी प्रतीक्षा करे कि इन कानूनों को बदलने के लिए बहुसंख्या कोई कार्रवाई करेगी? अथवा क्या वह तुरंत ही उनका पालन करने से इन्कार कर दे? वे लिखते हैं कि यदि राज्य 'आपको दूसरे किसी व्यक्ति के प्रति अन्याय करने का साधन बनाये, तो मैं कहता हूं कि आप कानून का उल्लंघन कीजिये।.... हमें यह देखना होगा कि जिस अन्याय की हम निंदा करते हैं, कहीं उसी अन्याय के साधन हम न बन जायें।'

थोरो कहते हैं कि सरकार स्वभावतः परिवर्तन और सुधारों का विरोध करती है। वे पूछते हैं-'वह (सरकार) हमेशा ही ईसा को सलीब पर क्यों लटका देती है, कोपर्निकस और लूथर का धर्म-बहिष्कार क्यों कर देती है और वाशिंगटन तथा फ्रैंकलिन



हेनरी डेविड थारो

को बागी क्यों करार देती है? उनका सुझाव है कि जैसे ही अन्याय नजर में आये, व्यक्तियों को सरकार का समर्थन बंद कर देना चाहिये और इसकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये कि बहुसंख्या हमारी हिमायत करेगी। वे कहते हैं–'जो व्यक्ति अपने पड़ोसी की तुलना में अधिक सही है, वह तो पहले ही एक की बहुसंख्या में है।' यह 'एक की बहुसंख्या' (मेजारिटी ऑफ वन) थोरो का नैतिक प्रत्यय है, और यह 'एक' ईश्वर, सत्य अथवा नैतिक-औचित्य है।

थोरो कहते हैं कि सविनय अवज्ञा का एक रास्ता सबके लिए खुला है; वह है–कर (टैक्स) चुकाने से इन्कार कर देना। यदि नागरिक इस मार्ग का अनुसरण करें, तो सरकार को सही रास्ते पर आना ही पड़ेगा। सविनय अवज्ञा करने पर मिलने वाले दंड को थोरो पुरस्कार मानते हैं और कहते हैं–'जो सरकार लोगों को अन्यायपूर्वक बंदी बनाती हो, उस सरकार के तहत सही आदमी का असली स्थान जेल के भीतर ही है। सरकार को यदि यह भय रहे कि उसने अगर अन्यायपूर्ण मार्ग नहीं छोड़ा तो उसे राज्य के समस्त न्यायप्रिय व्यक्तियों को जेल में रखना होगा, तो उसे सही मार्ग चुनने में देर नहीं लगेगी।' अन्यायी सरकार को कर चुकाना उसके गलत कामों को अपना समर्थन प्रदान करना है।

मगर थोरो को यह भी मालूम था–'धनी आदमी हमेशा ही उस संस्था के हाथों बिका हुआ होता है, जो उसे मालदार बनाती है। यह पूर्ण सत्य है कि जितना अधिक धन होगा, अच्छाई उतनी ही कम रह जायेगी; क्योंकि धन मनुष्य और उसके उद्देश्यों के बीच में आ जाता है तथा वह उसे उनकी प्राप्ति करा देता है।

दासप्रथा के विरुद्ध विद्रोह

थोरो अमरीका के मैसाचुसेट्स राज्य में रहते थे, जहां उस समय दासप्रथा नितांत अमानवीय रूप में प्रचलित थी। थोरो उसके विरोधी थे। वे लिखते हैं–'जो राष्ट्र स्वतंत्रता का शिबिर और शरण-स्थल होने का दावा करता हो, उसकी जनसंख्या का छठा भाग जब दास हो, तब ईमानदार लोगों का विद्रोह और क्रांति के लिए उठ खड़ा होना, मेरे विचार से जल्दबाजी नहीं माना जायेगा।' मगर उन्होंने देखा कि दासप्रथा के उन्मूलन का विरोध 'मैसाचुसेट्स के राजनीतिज्ञ नहीं, वरन एक लाख व्यापारी और किसान कर रहे हैं, जिनकी दिलचस्पी मानवता की अपेक्षा वाणिज्य और कृषि में

अविवेकी है, तथा जो किसी भी कीमत पर सुजानों के प्रति न्याय करने को तैयार नहीं है।

थोरो ने स्वयं छह बरस तक सरकार को कर न अदा करके सत्याग्रह किया, जिसके कारण उन्हें कैद भोगनी पड़ी। इस कैद ने उन्हें राज्य के सही-सही स्वरूप का अधिक गहरा परिचय करा दिया। वे कहते हैं—'मैंने देखा कि राज्य मंदबुद्धि है, किसी एकाकी धनी महिला की तरह है, और अपने शत्रु तथा अपने मित्र में भेद नहीं कर पाता। उसके प्रति मेरे मन का बचा-खुचा सम्मान भी नष्ट हो गया और अब मुझे उस पर तरस आता है। जानबूझकर ही, राज्य व्यक्ति के (मनुष्य के) बौद्धिक अथवा नैतिक संवेदन का सामना नहीं करता, बल्कि उसके शरीर और महज इंद्रियों का सामना करता है। यह श्रेष्ठतर बुद्धि अथवा ईमानदारी से संपन्न होने के बजाय महज प्रबल भौतिक बल से संपन्न है। मैं विवश होने के लिए नहीं पैदा हुआ था। मैं अपने ही ढंग से सांस लूंगा।'

व्यक्ति राज्य के लिए नहीं

सारतः थोरो की मूल धारणा यह है कि राज्य का अस्तित्व व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति राज्य के लिए नहीं है। अगर कभी नैतिकता का प्रश्न उठ खड़ा हो, तो अल्पसंख्या को बहुसंख्या के विरुद्ध उठ खड़ा होना चाहिये। थोरो मानते हैं कि मनुष्य का अंतिम मार्गदर्शक उसका अंतःकरण है।

थोरो की इस छोटी-सी पुस्तक का उनके जीवन-काल में कोई चमत्कारी प्रभाव दिखाई नहीं दिया। किंतु १९०७ में वह पुस्तक दक्षिण अफ्रीका में एक भारतीय वकील मोहनदास करमचंद गांधी के हाथों में पड़ी। जैसे स्वाति नक्षत्र में वर्षा की कोई बूंद सीप के गर्भ में जा पड़ी हो। गांधीजी उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में गोरों की रंग-भेद-नीति के विरुद्ध प्रतिकार के उपाय खोज रहे थे और अपने अहिंसात्मक प्रतिरोध के लिए 'पैस्सिव रेज़िस्टेन्स' (निष्क्रिय प्रतिरोध) शब्द-युगल का प्रयोग कर रहे थे। थोरो की पुस्तक पढ़ने के बाद उन्होंने उसे 'सिविल डिसओबिडियेन्स' (सविनय अवज्ञा) कहना शुरू कर दिया। बाद में 'सविनय अवज्ञा' को 'सत्याग्रह' के व्यापक कलेवर में समाहित कर लिया गया।

'सत्याग्रह' शब्द पर भी थोरो की स्पष्ट छाप है। थोरो ने अंतःकरण, नैतिकता और ईश्वर की शक्ति के आधार पर सत्य अथवा न्याय का आग्रह करने पर बल दिया था। गांधीजी ने इस धारणा को ज्यों का त्यों स्वीकार किया। इतना ही नहीं, गांधीजी ने थोरो की यह कल्पना भी ग्रहण की कि अगर सत्य हमारे पक्ष में है तो फिर इस बात का कोई महत्त्व नहीं रह जाता कि हम अकेले हैं या लोग हमारे साथ हैं। सत्य के आग्रह में संख्या का महत्त्व नहीं है। यहां यह कहना अनुचित न होगा कि गांधीजी ने जीवन में अनेक बार बुद्धि की उपेक्षा करके अंतःकरण की आवाज को सुना और अपना जीवन जोखिम में डालकर भी उसे

महत्त्व दिया।

थोरो ने राज्य के अन्याय का सामना करने के लिए 'सविनय अवज्ञा' की कल्पना की थी। गांधीजी ने सविनय अवज्ञा के उस तत्त्व का उपयोग एक अन्यायपूर्ण सरकार का अंत करने के लिए किया और वे उस प्रयास में सफल भी रहे।

थोरो के अपने राज्य अमरीका में भी दासप्रथा और रंगभेद के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का प्रयोग हुआ तथा इस मंत्र का अनुशीलन करने वाले अश्वेत नेता मार्टिन लूथर किंग को सचमुच ईसा की तरह अपने जीवन की कुर्बानी देनी पड़ी। गांधीजी की तरह किंग को भी गोली का निशाना बनाया गया। अफ्रीका में भी गोरों के अत्याचारों के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का प्रयोग हुआ तथा अभी तक हो रहा है। वहां भी अश्वेत नेता अल्बर्ट लुथुली को शहीद होना पड़ा।

निपट अकेले व्यक्ति को थोरो ने राज्य की संघटित हिंसा के विरुद्ध खड़े होने का साहस प्रदान किया और उस पर यह दायित्व लाद दिया कि उसे राज्य के अन्याय के विरुद्ध खड़ा होना चाहिये; यह उसका धर्म है, कर्तव्य है। इस प्रकार थोरो के 'आन द ड्यूटी ऑफ सिविल डिसओबिडियेन्स' ने असहाय नागरिक को सर्वसत्तासंपन्न राज्य के सामने अजेय बनाकर संसार के इतिहास को एक नया मोड़ दिया और वह मोड़ दो रूपों में सामने आया है—१. अमरीका में दासप्रथा की समाप्ति, और २. चंद अपवादों को छोड़कर संसार के अधिकांश क्षेत्रों से साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का अंत।



अमरीका के गृहयुद्ध के दिनों में दक्षिणी राज्यों के राष्ट्रपति जेफरसन डेविस ने सेनापति जनरल राबर्ट ली से एक सेनाधिकारी के बारे में उनकी राय पूछी। जनरल ने कहा कि उनके बारे में मेरी बहुत ऊंची राय है। इस पर पास में बैठे एक और सेनाधिकारी ने कहा—'मगर जनरल, वे सज्जन तो आपकी बड़ी बुराई किया करते हैं!'

इस पर जनरल ली ने बड़ी शांति से उत्तर दिया—'हो सकता है, मगर राष्ट्रपतिजी उन सज्जन के बारे में मेरी राय जानना चाहते हैं, न कि मेरे बारे में उन सज्जन की राय।'

o

भूमध्य सागर के सामने के तट पर मिस्र में अद्भुत कारीगरी के नमूने पिरामिड रचे गये, मृत्यु की महिमा हुई। इधर यूनान में रंगभूमि जमी, जीवन की महिमा गायी गयी।

—उमाशंकर जोशी

o

झूठ, पाखंड, गुलामी और गैरबराबरी के साथ कभी समझौता नहीं हो सकता।

—सुभाषचंद्र बसु



स्मरण-शक्ति आपकी चेरी है

जॉन लॉन के लेख के आधार पर

लोगों के नाम-धाम, चेहरे और दूसरी कितनी ही बातें हम सिर्फ इसलिए भूल जाते हैं कि उन्हें याद रखने की हमें जरूरत नहीं महसूस होती। लेकिन अगर उनके साथ हमारी रोजी-रोटी का संबंध जुड़ा हो, तो हमें वे आसानी से याद रह जाती हैं।

लगभग सभी मनोविज्ञानी इस बात से सहमत हैं कि हम सब अगर चाहें तो स्मरण-शक्ति के ऐसे चमत्कार दिखा सकते हैं, जिनकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की है।

पोलैंड के प्रसिद्ध गणितज्ञ डा. सालो फिकलस्टाइन असाधारण स्मरण-शक्ति वाले व्यक्ति समझे जाते थे। एक बार उन्हें [illegible] अंकों की इस संख्या को कंठस्थ करने के लिए कहा गया: ६ २ ४ ७ ० ६ ८ ४ ५ ३८६११३२६१८३२।

४.४३ सेकेंड में उन्होंने उसे याद करके दोहरा दिया। इससे ज्यादा समय तो इन अंकों को पढ़ने में ही लग जाता है।

डा. फिकलस्टाइन की स्मरण-शक्ति पर लोग आश्चर्य किया करते थे और उसे ईश्वरीय देन मानते थे। परंतु एक मनोविज्ञानी का कहना था कि यह ईश्वरीय देन नहीं है, बल्कि कोई भी सामान्य व्यक्ति अभ्यास करके ऐसी स्मरण-शक्ति प्राप्त कर सकता है। अपनी बात की पुष्टि के लिए उसने औसत दर्जे के एक विद्यार्थी को चुना और विशेष मनोवैज्ञानिक तरीकों से स्मरण-शक्ति बढ़ाने का अभ्यास उसे कराना शुरू किया। कुछ ही समय में उस विद्यार्थी ने भी उतनी ही लंबी संख्या सिर्फ ४.३७ सेकंड में कंठस्थ करके दिखा दी।

हम सबके दिमाग अलग-अलग तरह के होते हैं। बातें सुनते समय कुछ लोगों के सामने विशेष रूप से तस्वीरें उभरती हैं; कुछ लोगों को विशेष रूप से शब्दों की ध्वनियां सुनाई देती हैं; और कुछ लोगों की कोई दूसरी ज्ञानेंद्रिय अधिक सजग होकर उन बातों को पकड़ रही होती है। किसी भी व्यक्ति की सभी ज्ञानेंद्रियां समान रूप से चीजों को ग्रहण नहीं करतीं। इसलिए जिसकी जो भी एक-दो ज्ञानेंद्रियां अधिक सजग हों, उन्हीं पर जोर देकर अभ्यास करके वह अपनी स्मरण-शक्ति को बढ़ा सकता है।

इस विषय में वैज्ञानिकों ने कई प्रकार के प्रयोग करके देखा है कि स्मरण-शक्ति को कैसे बढ़ाया जा सकता है।

सबसे पहले, किसी चीज को कंठस्थ करने के लिए उसे टुकड़ों में बांटकर याद करने के बजाय समूची इकाई के रूप में

ग्रहण कीजिये। उदाहरण के लिए, अगर कोई कविता याद करनी हो, तो उसके एक-एक पद्य को बार-बार पढ़ने या घोटने के बजाय पूरी कविता को चंद बार पढ़ जाइये। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि एक-एक पद्य को अलग से याद करना गलत है। इसके विपरीत, पूरी कविता को चंद बार पढ़कर कंठस्थ करना आसान भी है और समय भी कम लेता है। रटना या 'घोटा लगाना' तो बिलकुल ही गलत है। अगर उसी कविता को आप एक हफ्ते तक रोज शाम के समय दो बार पढ़ें, तो वह और भी जल्दी कंठस्थ हो जायेगी। इस तरह आप उसे कुल चौदह बार पढ़ेंगे। लेकिन इसके बजाय अगर आप उसे एक ही दिन में बीस बार पढ़ते, तो वह उतनी अच्छी तरह कंठस्थ न होती।

दिमाग पर बहुत ज्यादा जोर डालना भी गलत है। इससे स्मरण-शक्ति तेज होने के बजाय मंद पड़ सकती है। तनाव और थकावट पैदा होने से दिमाग की ग्रहण-शक्ति और धारण-शक्ति क्षीण हो जाती है।

मनोविज्ञानियों का कहना है कि हमें अपनी स्मरण-शक्ति पर विश्वास होना चाहिये। यह विश्वास स्मरण-शक्ति को और अच्छा बनाने में बहुत मददगार होता है। जो हर वक्त अपनी स्मरण-शक्ति को कोसता रहता है, वह खुद उसकी जड़ें काटता है।

बहुधा हम किसी चीज को याद रखने के लिए उसके साथ किसी दूसरी चीज का संबंध जोड़ लेते हैं। उदाहरणार्थ, किसी बात को याद रखने के लिए हम अपने मन में उसके साथ किसी रंग या आवाज का संबंध कल्पित कर लेते हैं, ताकि वह चीज अगर हमारे चित्त से उतर जाये, तो उस रंग या आवाज के जरिये उसे याद कर सकें। मगर इस तरह दिमाग पर जरूरत से ज्यादा बोझ पड़ता है। ज्यादा अच्छा यह है कि हमें जो चीज याद रखनी हो, उसी में हम ऐसी कोई खास बात खोज निकालें, जिसे हम भूल न सकें। डा. फिंकलस्टाइन ने इतनी लंबी संख्या इतने कम समय में किस युक्ति से कंठस्थ कर ली थी? उन्होंने उस संख्या को तीन-तीन अंकों की छोटी-छोटी कड़ियों की लंबी शृंखला के रूप में देखा और वह उन्हें तीन-तीन अक्षरों के शब्दों के वाक्य की तरह आसानी से कंठस्थ हो गयी।

आम तौर पर माना जाता है कि चीजों को कंठस्थ करने के लिए सुबह का समय सर्वोत्तम है। परंतु मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से प्रकट हुआ है कि रात को सोने से पहले याद की गयी चीजें कम समय में तथा अधिक आसानी से कंठस्थ हो जाती हैं।

सारांश यह कि स्मरण-शक्ति कोई ईश्वरीय देन नहीं है; बल्कि कोई भी आदमी वैज्ञानिक विधि से अभ्यास करके उसे चाहे जितना बढ़ा सकता है।

★

यदि अपनी स्मरण-शक्ति की जांच करना चाहते हों तो यह याद करने की कोशिश कीजिये कि पिछले साल इस दिन आप किस चिंता में बेहाल थे।

★



योग और उसका व्यवहार-पक्ष

कमलापति मिश्र

महर्षि पतंजलि कृत 'योगसूत्र' का प्रथम सूत्र है-**अथ योगानुशासनम्**। इस सूत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि योगदर्शन इसका साक्षात् शासन नहीं, अपितु अनुशासन मात्र है। वस्तुतः योग एक अत्यंत प्राचीन शास्त्र है। इसके आदि-प्रवर्तक के संबंध में अभी तक मतैक्य नहीं हो सका है। याज्ञवल्क्य-स्मृति में एक स्थान पर आया है :

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।

और इन हिरण्यगर्भ के संबंध में महाभारत में आया है :

हिरण्यगर्भो द्युतिमान् य एतच्छन्दसि स्तुतः।
योगैः सम्पूज्यते नित्यं स च लोके विभुः स्मृतः॥

अर्थात् ये द्युतिमान् हिरण्यगर्भ वहीं हैं, जिनकी वेद में स्तुति की गयी है। योगी जिनकी नित्य पूजा करते हैं और संसार में जिन्हें व्यापक समझा गया है।

इसके अनुसार अन्य विद्याओं की भांति योग का आदि-प्रवर्तक भी परमेश्वर ही है। ऋग्वेद में योग का स्पष्ट वर्णन तो नहीं मिलता, किंतु कई वैदिक ग्रंथों में अश्वों के नियंत्रण का प्रसंग आया है। इसका संबंध योग से ही है; क्योंकि परवर्ती भारतीय साहित्य अर्थात् उपनिषद् आदि में इंद्रियों को अश्व कहा गया है और योगदर्शन में इंद्रिय-निग्रह पर विशेष बल दिया गया है।

जहां तक योग के दार्शनिक पक्ष का संबंध है, इसे 'सेश्वर सांख्य' की संज्ञा दी गयी है। यह सांख्य के पचीस तत्त्वों के प्रति सहमति प्रकट करता हुआ एक अन्य तत्त्व को भी अपनी स्वीकृति प्रदान करता है; और वह तत्त्व है—ईश्वर। ईश्वर के संबंध में योगसूत्र के प्रथम पाद के चौबीसवें सूत्र में पतंजलि ने लिखा है :

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

अर्थात् जो पुरुष क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय से शून्य है, वह ईश्वर है। ईश्वर प्रकृतिलीन एवं मुक्त दोनों प्रकार के पुरुषों से भिन्न है; क्योंकि वह सर्वथा मुक्त है।

वेदशास्त्रों का प्रथम उपदेष्टा होने के कारण वह आद्य आचार्य है। आत्यंतिक ऐश्वर्य और चरम ज्ञान का अधिष्ठाता होने के कारण वह परमेश्वर है और नित्य होने के कारण वह भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों से अनवच्छिन्न है।

योगदर्शन ईश्वर से अधिक चित्त, उसकी वृत्तियों एवं उनके निरोध की व्याख्या करता है। इस अर्थ में यह 'विज्ञान' है। इससे हमें अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विशुद्धता के संबंध में स्पष्ट एवं विधिवत् संकेत मिलते हैं। संसार में संभवतः ऐसा कोई अन्य दर्शन नहीं है, जो अपने अनुयायियों को अपने प्रतिपाद्य तत्त्व तक ले जाने के लिए इस प्रकार के सुस्पष्ट मार्गों का निर्देश करता हो। यही कारण है कि प्रत्येक आस्तिक भारतीय दर्शन ने प्राविधिक रूप से योग को अत्यंत मान्यता प्रदान की है। बौद्ध और जैन दर्शनों ने भी योग के व्यवहार-पक्ष में अपनी आस्था प्रकट की है।

योगदर्शन में चित्त का अभिप्राय अंतःकरण अर्थात् मन, बुद्धि एवं अहंकार से है। चित्त प्राकृत है, किंतु उसमें सत्त्व की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त, वह प्रतिक्षण परिणामशाली है। चित्त की पांच अवस्थाएं होती हैं—मूढ, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। मूढावस्था में तमोगुण की प्रधानता के कारण वह विवेक-शून्य हो जाता है। क्षिप्तावस्था में चित्त में रजोगुण का आधिपत्य रहता है और इसके परिणाम-स्वरूप वह चंचल रहता है। विक्षिप्तावस्था में वह सत्त्व-प्रधान हो जाता है; फलतः मूढ तथा क्षिप्त अवस्था से यह विशिष्ट एवं स्थिर होता है। एकाग्रावस्था में वह किसी एक ही विषय का चिंतन करता है। किंतु निरुद्धावस्था में वह सर्वथा वृत्तिहीन हो जाता है। इस अवस्था में समस्त संस्कारों का लय हो जाता है। एकाग्र तथा निरुद्ध ध्यान और समाधि के लिए अंतिम दो अवस्थाएं उपयोगी होती हैं।

क्लिष्टाक्लिष्ट-भेद से चित्त की वृत्तियों के पांच प्रकार होते हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—ये प्रमाण के तीन भेद हैं। किसी वस्तु के मिथ्या ज्ञान को 'विपर्यय' कहते हैं। शब्दज्ञान से उत्पन्न किंतु सत्य से विरहित ज्ञान को 'विकल्प' की संज्ञा दी गयी है। 'निद्रा' का आधार तम है। इस वृत्ति में जाग्रत् एवं स्वप्न-वृत्तियों का अभाव रहता है। अनुभूत विषयों का अपरिवर्तित रूप से याद आना ही 'स्मृति' है। चित्त की इन पांच वृत्तियों के भीतर ही चित्त के समस्त व्यापारों का अंतर्भाव हो जाता है।

ये वृत्तियां चित्त में उत्पन्न होकर कुछ काल के उपरांत क्षीण हो जाती हैं; किंतु इनका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता। हमारे अवचेतन में ये संस्कार के रूप में बनी रहती हैं और यही संस्कार चित्त में पुनः-पुनः वृत्ति-रूप में उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार संस्कार वृत्तिजन्य होते हैं और वृत्तियां संस्कार-जन्य होती हैं। योगी इन स्थूल वृत्तियों और सूक्ष्म संस्कारों का अत्य-

...निरंतर करता है और इस दुष्कर कृत्य के पश्चात ही योग की उच्च भूमियों में उसकी प्रतिष्ठा होती है।

हमारा चित्त विपर्यय-रूप क्लेशों का उत्पत्ति-स्थान है। इन क्लेशों के पांच प्रकार हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। जो अनित्य, अपवित्र, दुःख एवं अनात्म है, उसे नित्य, पवित्र, सुख एवं आत्मरूप मानना 'अविद्या' है। ...और बुद्धि को आत्मा मान लेना 'अस्मिता' है। सुखोत्पादक पदार्थों के प्रति तृष्णा या लोभ को 'राग' की संज्ञा दी गयी है। और दुःखी व्यक्ति में प्रतिकूल साधनों के प्रति जिस क्रोध-भावना का उदय होता है, उसे 'द्वेष' कहते हैं। मनुष्य अपना आत्यंतिक नाश नहीं चाहता। वह किसी न किसी रूप में बने रहना चाहता है। किंतु मृत्यु उसकी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं होने देती। अतः वह मृत्यु से भयभीत रहता है। मृत्यु के प्रति मनुष्य का यह भय 'अभिनिवेश' है।

योगदर्शन में इन क्लेशों से मुक्ति पाने का युक्तियुक्त वर्णन किया गया है। इसके लिए इसमें अष्टांग योग की व्यवस्था है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—ये योग के आठ अंग हैं।

'यम' संयम को कहते हैं। इस संयम की सिद्धि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच साधनों से होती है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर-प्रणिधान—ये 'नियम' के पांच अंग हैं। 'हठयोग प्रदीपिका' एवं कुछ अन्य ग्रंथों में 'आसन' के विविध प्रकारों का वर्णन है। आसनों के अभ्यास से चित्त को एकाग्रता की प्राप्ति होती है। योगदर्शन में प्राणायाम को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है। श्वास-प्रश्वास के गति-विच्छेद को ही 'प्राणायाम' कहा गया है। इससे प्राणशक्ति पर साधक का अधिकार हो जाता है।

बाह्य विषयों के प्रति इंद्रियों की विरक्ति ही 'प्रत्याहार' है। शरीर के किसी प्रदेश-विशेष में या किसी बाह्य आलंबन में चित्त के लगा देने को 'धारणा' कहते हैं और जब इस आलंबन में ध्येय वस्तु का ज्ञान निश्चित रूप से प्रवाहित होने लगता है, तब 'ध्यान' का उदय होता है। 'सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपात् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः' के अनुसार विक्षेपों को दूर करके चित्त का एकाग्र होना ही 'समाधि' है। चित्त की वृत्ति का ध्येयाकार बन जाना 'ध्यान' है और उस ध्येय में वृत्ति का सर्वथा निरुद्ध हो जाना ही समाधि है।

योगदर्शन में समाधि के दो भेद हैं—संप्रज्ञात एवं असंप्रज्ञात। संप्रज्ञात समाधि में चित्त को आलंबन की आवश्यकता होती है। प्रारंभ में आलंबन के अभाव में ध्यान असंभव हो जाता है। यह चित्त की एकाग्रावस्था है, जिसमें चित्त किसी एक आलंबन पर केंद्रित हो जाता है। किंतु सतत अभ्यास के पश्चात् जब चित्त निरुद्धावस्था में पहुंच जाता है, तब साधक को असंप्रज्ञात समाधि का लाभ होता है। इस अवस्था में चित्त की

वृत्तियों का आत्यंतिक निरोध हो जाता है। वृत्तियों के साथ-साथ इस भूमि पर आरूढ होने पर संस्कारों का भी क्षय हो जाता है और तब आत्मा अपने विशुद्ध चैतन्य-रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। इस उपलब्धि का नाम है—कैवल्य। दृढ साधना एवं अथक अध्यवसाय से ही इस स्थिति में पहुंचना संभव है।

योगी को अनेक प्रकार के सिद्धिलाभ होते हैं। सिद्धियां आठ प्रकार की हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और यथाकामावसायिता। साधना के मार्ग में इन सिद्धियों की प्राप्ति स्वाभाविक है। किंतु योगी में इनके प्रति आकर्षण की भावना नहीं होनी चाहिये। इनसे आकर्षित होने पर वह पथभ्रष्ट हो जाता है। अतः समर्थ साधक इनसे उदासीन होकर साधना में संलग्न रहता है।

आरंभ में हमने कहा कि योग को 'सेश्वर सांख्य' माना जाता है। किंतु वह सांख्य की नकल नहीं है। जहां सांख्य ज्ञान को मुक्ति का साधना मानता है, वहां योग में मुक्ति के लिए कर्म की व्यवस्था है। गीता में इस अंतर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है :

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा
पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां
कर्मयोगेन योगिनाम्॥

गीता में ही एक और स्थान पर आया है—**योगः कर्मसु कौशलम्।**

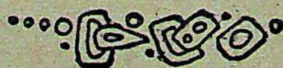
योग की कुछ मान्यताएं गीता की कुछ मान्यताओं से आश्चर्यजनक रूप में मिलती हैं। योगदर्शन के अनुसार, साधक को उसके विश्वास के अनुरूप ही फल मिलता है। यदि साधक मुक्ति में विश्वास करता है, तो उसे मुक्ति प्राप्त होती है; किंतु यदि उसका विश्वास मुक्ति में न होकर किसी लोक-विशेष में है, तो उसे उसी लोक की प्राप्ति होती है।

गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं:
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

भारतीय दर्शन की प्रत्येक आस्तिक शाखा ने योग के व्यावहारिक पक्ष को मान्यता प्रदान की है। श्वेताश्वरतर एवं कठोपनिषद् में योग की महत्ता स्वीकृत की गयी है। शांडिल्य, योगतत्त्व, ध्यानबिंदु, हंस, अमृत-नाद, वराह, नादबिंदु और योगकुंडली आदि उपनिषदों में तो योग के पुष्ट प्रसंग मिलते हैं। शैवों और शाक्तों में भी योग के व्यावहारिक पक्ष के प्रति श्रद्धा है।

जिन दर्शनों को ईश्वर या वेद के प्रति श्रद्धा नहीं है, उनमें से भी कई योग की उपयोगिता स्वीकार करते हैं। जैन धर्म में योग का पर्याप्त विवेचन मिलता है। आचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र में और उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थसूत्र' में योग पर विचार किया है।

—४ ए, पार्क रोड, लखनऊ-२२६००



माया मिली न राम

हिंदीसेवा का संकल्प लेने वाले मुस्लिम लेखकों की स्थिति का विवेचन।

डा. रहमतउल्लाह

शुभ मुहूर्त में कार्य आरंभ करके उसकी सफल समाप्ति पर उत्सव एवं स्वस्त्ययन कर्म करना भारत की प्राचीन परंपरा है। संभवत: इसी से प्रेरणा लेकर आजकल साहित्य-जगत् में भी उत्सवों की बाढ़-सी आ गयी है। नये ग्रंथ के प्रकाशन पर विमोचन-समारोह, उपाधि मिलने एवं जन्म-तिथियों पर आयोजित अभिनंदन-समारोहों के साथ कवि-गोष्ठियों तथा साहित्यिक विचार-गोष्ठियों की धूम-सी मच जाती है।

ऐसे समारोहों में मुस्लिम लेखकों की क्या स्थिति होती है, यह विचारणीय है और इस पर कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। स्वयं मुस्लिम समाज में आयोजित गोष्ठियों में उसकी स्थिति बड़ी दयनीय ही होती है। यहां फारसी और शिष्ट उर्दू को महत्त्व दिया जाता है। प्राचीन कवियों की शैली पर नयी कविताएं पढ़ी जाती हैं या महत्त्वपूर्ण विषयों पर लच्छेदार उर्दू में भाषण दिये जाते हैं, जो सामान्य श्रोताओं के पल्ले कम ही पड़ते हैं। हिंदी लेखक मुसलमान होते हुए भी उनमें न तो सम्मान्य अतिथि बन सकते हैं और न श्रोता। संयोजक उन्हें बुलाने की आवश्यकता ही नहीं समझते। उनकी दृष्टि में ये लोग बुलाये जाने के अयोग्य हैं। प्राय: कह दिया जाता है-'अमुक हिंदी वाला मुसलमान है, उसे न उर्दू आती है और न फारसी; हिंदी भी उसकी वैसी ही है। कठिन शब्दों का न तो सही उच्चारण कर सकता है और न समझ सकता है। वाक्य-रचना भी उसकी बनावटी होती है, यहां तक कि उसे बोलना भी नहीं आता और न महफिल के आदाब मालूम हैं।'

अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा विज्ञान के मुसलमान अध्यापक और सरकारी अफसर अब उर्दू के शायर और लेखक होने लगे हैं। अपने क्षेत्र में अपना-सा मुंह लेकर वे कविता की दुनिया में ख्याति प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे लोग मुसलमान होने के नाते उर्दू भाषा और साहित्य को अपनी बपौती समझते हैं। लेकिन हिंदी अथवा संस्कृत का मुसलमान लेखक या अध्यापक परिश्रम करके जब कभी उर्दू के कवियों, लेखकों पर अथवा साहित्यिक विषयों पर लेख लिखकर

ोष्ठियों में पढ़ने का साहस करता है, तब उसे व्यंग्यबाण सहन करने पड़ते हैं। कभी-कभी तो तरह-तरह के बहाने बनाकर उसे बैठा दिया जाता है और उसे उपदेश दिया जाता है कि पहले बोलना सीखो, तब लिखो। अथवा फब्तीं कसीं जाती है—'अब ये भी उर्दू लिखने लगे हैं!' बेचारा लेखक अपना-सा मुंह लेकर बैठ जाता है।

अपने समाज के इन समारोहों, इन अनुभवों से हताश होकर वह दूसरे बड़े वातावरण में प्रवेश करता है, जहां उसने अपना प्रथम कदम रखा था। प्राय: देखा जाता है कि घर में मार खाने वाला दूसरों में सरताज बन जाया करता है। कदाचित् इसी आशा में मुसलमान लेखक इतर समाज में आशान्वित होकर आता है। क्योंकि उसी के बलबूते पर तो उसने अपने को निखारा है, संवारा है। परंतु बहुधा वहां भी उसे निराशा ही मिलती है। जो सम्मान अपनों में नहीं मिला, उसकी आशा दूसरों से करना भोलापन ही कहा जायेगा। 'जब अपने नहीं, तो पराये नहीं।'

नगर में साहित्यिक गोष्ठियां हो जाती हैं और उसे खबर भी नहीं होती। आयोजक प्राय: सोचते हैं, अमुक को बुलाया ही क्यों जाये! किसी प्रकार हिंदी पढ़ ली, गाहे-बगाहे कुछ लिख लिया, बस तीस मार खां बन गये! यों भी उसके आने से अनेक समस्याएं खड़ी हो जायेंगी। आरती, मिलन, खान-पान सबमें अड़चन होगी। अगर बाद में लेखक निर्लज्ज होकर पूछ ही बैठे तो उत्तर मिलता है—'भाई, शीघ्रता में आयोजन करना पड़ा था, मैं क्या बताऊं चपरासी आप तक नहीं पहुंच सका। खैर फिर कभी।' यदि कोई संयोजक उसे याद करता भी है तो किसी स्वार्थ से ही। वहां लेखक उनकी प्रशंसा के गीत गाये, उन्हीं का राग अलापे, तभी उसकी खैरियत है।

सामान्य लेखक की स्थिति ऐसी ही है। कुछ मुसलमान हिंदी लेखक जो बड़े पदों पर आसीन हैं, उन्हें इसलिए आमंत्रित किया जाता है कि उनसे समारोह की प्रतिष्ठा बढ़ेगी अथवा दिखावे के लिए ऐसा किया जाता है।

कभी अगर किसी गोष्ठी में उसे अपनी रचना पढ़ने का अवसर मिल भी जाये, तो एक पंक्ति भी अपनी न लिखने वाले लोग भी उस पर बड़ी कृपा जताते हुए उसे सुझाव देते हैं कि 'इसी तरह लिखते रहिये, लिखते-लिखते सब ठीक हो जायेगा।' बचपन से साथ पढ़ने वाले लोग भी प्राय: आपस में उसके बारे में कहते हैं—'पता नहीं, उसकी हिंदी कैसी है, कैसा लिखता है!' स्वयं उससे कहा जाता है—'कुछ लिखकर पत्रिकाओं में भेजा करो। शायद कोई प्रकाशित हो जाये।' यदि उसने इस सुझाव पर अमल करके पत्रिकाओं में कुछ भेजा तो रचना चट वापस आ जाती है। कई बार इस टिप्पणी के साथ कि 'ऐसे लेख हमारी पत्रिका में नहीं छपते'। अक्सर तो कारण बताये बिना ही लौटा दिया जाता है। कुछ लेख अपने में बिलकुल मौलिक होते हैं और

इनके विषय गैरमुस्लिम लेखकों की पहुंच के परे होते हैं। फिर भी उन्हें पत्रिकाओं में स्थान नहीं मिलता। संभव है उनसे संपादक महोदय के संकुचित विचारों की अक्काती न होती हो।

मुसलमान हिंदी लेखकों की प्रकाशित रचनाएं कभी-कभी गोष्ठियों में चर्चा का अनौपचारिक विषय बन जाया करती हैं। उनके प्रकाशित होने की वजहें या स्थितियां पूछी जाती हैं, या 'सोर्स' का पता लगाया जाता है। अर्थात् रचना अपनी उपयुक्तता और उत्तमता के कारण छपी, इसमें संदेह निरंतर बना रहता है।

जब फुटकल रचनाओं का यह हाल है तो पुस्तकों के प्रकाशन का प्रश्न कितना विकट होगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

फिर भी कर्मठ और लगनशील मुस्लिम हिंदी लेखक अपना काम करते जा रहे हैं और हिंदी पाठकों का दिल जीतने का प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें अपनी प्राचीन परंपरा से प्रेरणा लेनी चाहिये। एक दिन उनकी रचनाओं का अवश्य स्वागत होगा। जायसी, रहीम, रसखान, रसलीन, मुबारक, निसार, कुतबन, मंझन आदि की भांति उन्हें भी गौरव प्राप्त होगा और वे अभिनंदन के अधिकारी होंगे। तब उन्हें माया भी मिल जायेगी और राम भी।

—हिंदी विभाग, शिबली नेशनल महाविद्यालय, आजमगढ़, उ. प्र.



उम्र ढल जाने से जब **आदमी** बुरी नजीर पेश करने लायक नहीं रह जाता तो भली नसीहतें देने लग जाता है।

०

प्राय: जब तक कोई अभिनेत्री इतना अनुभव अर्जित कर पाती है कि जूलियट की भूमिका अच्छी तरह अंजाम दे सके, तब तक उसकी उम्र उस भूमिका के लायक नहीं रह जाती।

– एथिल बैरीमूर

०

कैनडा में एक बस्ती के पास सड़क पर मोटर-चालकों के लिए मोटे अक्षरों में लिखी गई सूचना :

'धीमे चलायें, आस-पास कोई अस्पताल है नहीं।'

०

अधिकांश भारतीयों के सामने निरंतर यह समस्या बनी रहती है कि अपनी आमदनी के अनुसार ही जिया करें, या कभी-कभी कोई छोटा-मोटा आनंद भी मना लिया करें।



अलग कमरा

आरिगपूडि

बीस-बाईस बरस की चाह जब पूरी हुई, तो पूर्ण चंद्र राव ऐसे खुश हुए, जैसे किसी रियासत की गद्दी पा ली हो। छोटी-सी चाह, और बड़ी तसल्ली। उन्हें अपने दफ्तर में अलग से कमरा दे दिया गया था। और अलग कमरे के लिए वे जिंदगी-भर तरसते आये थे। कमरे का मलतब था—ओहदे में बढ़ोतरी, हैसियत में बढ़ोतरी, साथ के लोगों से एक सीढ़ी ऊपर। इसीलिए वे बेहद खुश थे।

ऐसी बात नहीं कि पूर्ण चंद्र राव रसीली तबीयत के आदमी हों कि बंद किवाड़ों के पीछे दफ्तर की लड़कियों से चोचलेबाजी करना चाहते हों, या दफ्तर में दफ्तर के समय में बिना किसी के देखे अपना निजी काम करना चाहते हों। ऐसी कोई तमन्ना नहीं थी उनमें।

कमरा सिर्फ ईंट-पत्थर का घेरा नहीं है। वह एक प्रतीक है, चिह्न है ओहदे का और ओहदे के साथ आने वाली अहमियत का। पूर्ण चंद्र राव ने वर्षों क्लर्की की थी, सरकते-सरकते इस स्थिति में आये थे कि उन्हें एक अलग कमरा दिया जाये। पर पूर्ण चंद्र राव को इतनी लंबी प्रतीक्षा के बाद कमरा क्या मिला कि साथ के कर्मचारी उनसे ख्वाहमख्वाह जलने लगे। हर कोई चाहता था कि उसे भी कमरा मिले और तरक्की मिले। कितने ही तो होड़ में थे; किंतु पूर्ण चंद्र राव बाजी मार ले गये। सब मन ही मन चिढ़ रहे थे। पूर्ण चंद्र राव के डोरे तगड़े निकले, उन्होंने खींचे और एक अलग कमरे में जा बैठे। जानने वाले जानते थे कि अलग कमरा पाने के लिए पूर्ण चंद्र राव ने क्या नहीं किया था। तरक्की का फेर, निन्यानबे के फेर से भी जबर्दस्त होता है। कोई पाप पाप नहीं लगता, कोई बेइज्जती बेइज्जती नहीं लगती; सब ठीक जंचता है।

मगर एक बात है। आदमी सोचता है कि वह जो कुछ छिपे-छिपे 'बड़ों' को खुश करने

की थी,
ये थे कि
। पर पूर्ण
के बाद
कर्मचारी
हर कोई
मिले और
ड़ में थे;
ले गये।
द्र राव के
और एक
ले जानते
पूर्ण चंद्र
रक्की का
जबर्दस्त
ता, कोई
सब ठीक

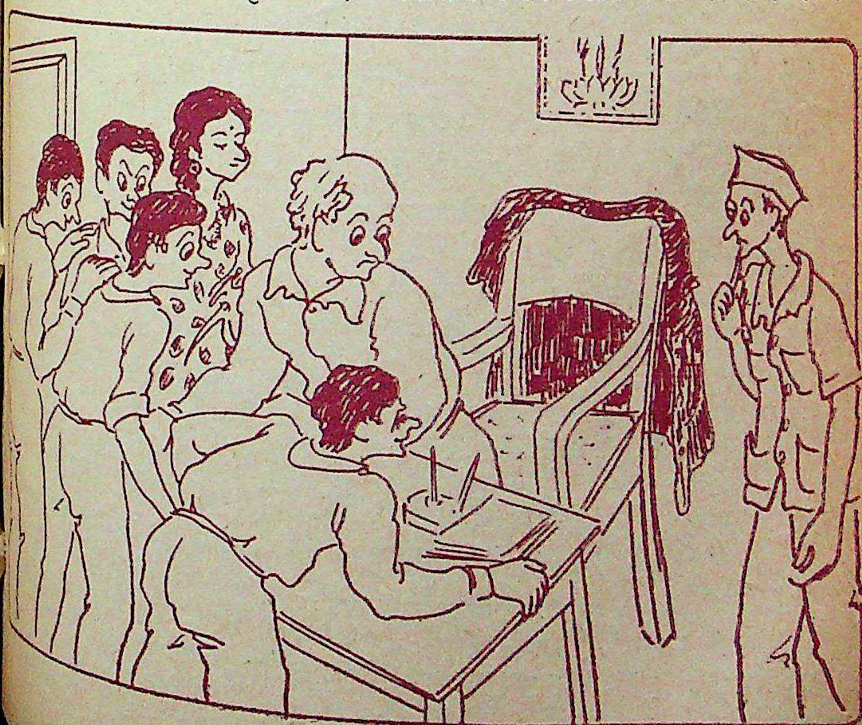
नता है कि
खुश करने

जुलाई

के लिए करता है, उसे कोई नहीं जानता। पर ये बातें ऐसी हैं कि कानो-कान दूर-दूर पहुंच जाती हैं, और जिंदगी-भर गूंजती रहती हैं। यही कारण था कि पूर्ण चंद्र राव अपने दफ्तर में 'लोकप्रिय' नहीं थे। तिकड़म-बाज और चापलूस 'सफल' भले हो जाते हों पर साथियों की नजर में वे हमेशा बुरे ही रहते हैं। खैर।

अलग कमरा क्या मिला कि पूर्ण चंद्र राव के तेवर ही बदल गये। यह आदमी जो सात-सात दिन कुरता नहीं बदलता था, अब दो-दो दिन में कुरता बदलता था। पांच-सात दिन में जाने कितने ही नये कपड़े आ गये थे। जिस आदमी के मुख से हर बात के साथ 'सर' निकलता था, अब इस तरह लोगों की ओर कान देकर सुनता था, जैसे गिन रहा हो कि उसके लिए दूसरों के मुंह से कितनी बार 'सर' निकलता है। कल के साथी, उनके सामने बात-बात पर 'सर' का शब्द लगायें भी तो कैसे? उनके सहकर्मी उनसे नाखुश थे।

वह तरक्की भी क्या जो दिखाई न जाये! पूर्ण चंद्र राव भी दिखाने की कोशिश करते, धौंस जमाते। किंतु आजकल के पचीस-तीस के लड़के उनकी तरह चिकने घड़े नहीं होते कि फिजूल किसी की घुड़कियां सह लें। उनके दफ्तर के छोटी उम्र के युवक पूर्ण चंद्र राव की तरक्की पर खुश हो सकते थे, पर उन्हें यह गवारा न था कि वे अपनी तरक्की का रोब उन पर जमायें और बात-बात में अपना बड़प्पन उन पर थोपने की कोशिश करें। पचीस बरस के बाद चान्स



...मिला कि अपने को मुलतान समझ ... तो करे। अरे, तरक्की मिलते ही आदमी भी बदल गया, जैसे अलग कमरा कोई लिटमस का कागज हो !'

...हैं ! ऊपर वालों की नजर में पूर्ण चंद्र राव चाहे कुछ भी हों, उनकी नजर में तो वे निहायत 'छोटे' आदमी थे। पर पूर्ण चंद्र राव अपनी तरक्की के नशे में थे, और नहीं जानते थे कि दूसरे क्या सोच रहे हैं। कुछ भी सोचें, जब तक डंडा हाथ में है, मातहतों को हांका जा ही सकता है—उनका ख्याल था।

०००

चार-साढ़े चार का समय था, सरला उनके कमरे में गयी। वह उसी दफ्तर में काम करती थी। कोई तीस-बत्तीस की थी। जब शादी वक्त पर न हुई तो उसकी आशा भी जाती रही। वह अपने ही ढंग से तरक्की और आनंद के रास्ते खोजती आयी थी। पूर्ण चंद्र राव भी कभी-कभी उससे बात-चीत में मन बहला लेते थे। दब्बू, बाल-बच्चे वाले आदमी। जाने कब कोई मसखरा घर पर इस बात की खबर कर दे और घर में भूचाल आ जाये—इसी डर में वे जीभ लट-काये प्यास का मजा ले रहे थे।

सरला उनके सामने कुर्सी पर बैठ गयी। दो-चार कागज उनके सामने रखे। पर पूर्ण चंद्र राव न मुस्कराये, न ठीक से देखा ही। ऐनक के ऊपर भौंहें सिकोड़कर वे देख रहे थे। सरला को बुरा लग रहा था। और बाकी दो-चार लोग जो उनके कमरे के आस-पास खड़े, आंखें गड़ाये, कान लगाये इधर-उधर के सूराखों में से देख रहे थे, उन्हें भी बुरा लग रहा था। 'कमबख्त कुछ

'आप ....' सरला कुछ कहना चाहती थी।

'हां, आप . ... ?' पूर्ण चंद्र राव ने इस तरह कहा, जैसे किसी अजनबी से बात कर रहे हों।

'आप कितनी देर रहेंगे दफ्तर में ?'

'साढ़े पांच तक .....' पूर्ण चंद्र राव ने कहा, हालांकि दफ्तर पांच बजे खत्म हो जाता था। तरक्की मिली थी, वक्त के बाद बैठकर अधिकारियों को प्रभावित करना था।

'तरक्की मिली और आपने मिठाई भी नहीं खिलायी !' सरला ने मुस्कराते हुए छाती के ऊपर का आंचल ठीक करते हुए कहा।

'दफ्तर में मिठाई खिलायी जाती है ?'

'तो बाहर चलिये होटल में। आप नहीं खिलाते तो हम ही खिला देंगे. ...' आदतन सरला ने कहा।

'दफ्तर में कहीं ऐसी बातें कही जाती हैं ?' पूर्ण चंद्र राव एकाएक गंभीर हो गये। सरला को यह अच्छा नहीं लगा। वह मुस्कराती, हाथ जोड़ती हुई बाहर चली गयी। पहले कभी वह उन्हें नमस्कार नहीं करती थी।

अगले दिन सरला, जो प्रायः दफ्तर देर से आया करती थी, पहले आ गयी। वह पूर्ण चंद्र राव के कमरे में गयी। वे उसमें न थे। जाने उसे क्या सूझा कि उसने उनकी कुर्सी पर पांच-दस आलपिनें खोंस दीं और

मैंने धुआं देखा है

मैंने धुआं देखा है
जलते हुए जंगल नहीं
सिर्फ बाद में काले ठूंठ
राख फैली ढलानें
आग। जिससे रोटी सिकती है
या फिर ग्रीष्म की दुपहरियां
जब पहाड़ याद आते हैं
पर अब
न जाने कितने दिनों से
कोई चीज
धधकती हुई महसूस करता हूं
उन घरों में
जहां चूल्हा नहीं जलता
उन हाथों में
जिन में सिर्फ एक खालीपन है
उस भविष्य में
जिसे मैं नहीं जानता
सब कुछ जलते हुए देखता हूं।

—गंगाप्रसाद विमल

२६/५६ रामजस रोड, करौलबाग,
नयी दिल्ली-११०००

इस तरह चली गयी, जैसे उनके कमरे में टंगे भगवान के चित्र को नमस्कार करने आयी हो। पूर्ण चंद्र राव नये-नये अफसर बने थे और नया अफसर कई दृष्टियों से आदमखोर शेर से भी ज्यादा खूंख्वार होता है। पूर्ण चंद्र राव आये, अपना पुराना कोट उतारा और कुर्सी पर टांग दिया। फिर कमीज की आस्तीनें मोड़कर आराम से कुर्सी पर बैठे ही थे कि कभी एक तरफ झांकते तो कभी दूसरी तरफ झांकने लगते। कभी लगता कि खटमल काट रहे हैं, तो कभी लगता कोई सूइयां चुभो रहा है। सामने चपरासी था। इसलिए बेतुकी हरकत भी नहीं करना चाहते थे। मगर बैठना मुश्किल हो गया। कोई सूइयों पर बैठे भी तो कैसे?

'अरे, क्या है यह?' वे आखिर झुंझलाये बगैर रह न सके। चपरासी उन्हीं की ओर देख रहा था।

'तुम लोग मेज-कुर्सी झाड़ते-पोंछते भी हो कि नहीं?' उन्होंने उसे डांटा।

'साहब, रोज ही पोंछते-पांछते हैं, पर खटमल तो .....'

'हूं,' पूर्ण चंद्र राव उठ गये। 'देखो, क्या है यह?'

चपरासी ने ध्यान से देखा। कुर्सी में जहां-तहां पांच-दस सूइयां गड़ी हुई थीं।

'अरे, इसमें सूइयां कहां से आयीं? और तुम कहते हो कि कुर्सियां झाड़ते हो। मैं मेमो दिलवा दूंगा।' पूर्ण चंद्र राव की आवाज तेज हुई। और कमरे के बाहर से क्लर्क कमरे में आ गये। सरला भी आयी। सब स्तब्ध। एकदम गंभीर।

'ये कहां से आयीं?' पूर्ण चंद्र राव तहकीकात करना चाहते थे; पर अभी सोच नहीं पा रहे थे कि यह उसी लड़की की करतूत थी, जिससे वे तरक्की से पहले प्रेम जताया करते थे और तरक्की के बाद जिस पर रोब गांठ

रहे थे।

'साहब, चिड़ियां घोंसला बनाती हैं, सुइयां उठा ले जाती हैं, कभी-कभी कोई कुर्सियों पर गिर जाती है।' चपरासी ने कहा। साथ के दो-चार क्लर्कों ने भी उसका समर्थन किया।

सब अंदर-अंदर हंसे, पर ओंठों पर संजीदगी लिये। सरला बिलकुल गुमसुम। खैर। चपरासी ने सूइयां बीन डालीं और श्री पूर्ण चंद्र राव आराम से बैठ गये।

पूर्ण चंद्र राव ने भले ही तरक्की पा ली हो, और काम में भले ही वे तेज भी हों, पर थे वे एक प्रकार से भोंदू-से ही। और आत्मनिरीक्षण की भी उन्हें आदत न थी।

फिर उसके बाद तो रोज ही कुछ न कुछ होता रहता। एक दिन कुर्सी पर गोंद गिरी होती, तो दूसरे दिन मेज पर रखे कागजों पर स्याही। कभी सुराही तोड़ दी जाती, तो कभी टिफिन-कैरियर खाली मिलता। ये सब बातें ऐसी थीं, जिनके बारे में शिकायत भी नहीं की जा सकती थी। उन्हें डर था कि यह कहा जायेगा कि जो आदमी इन छोटी-छोटी बातों को नहीं रोक सकता, भला वह लोगों से काम क्या लेगा?

पूर्ण चंद्र राव जान गये थे कि यह सब उन लोगों की करतूत है, जो कल तक उनके साथी थे और आज मातहत। पर दफ्तर के काम की कुछ ऐसी परंपरा थी कि वे अपने चलते हुए व्यवहार को बदल भी न पाते थे। क्या भाईचारे से, चिकनी-चुपड़ी बातों से दफ्तरों में काम होता है? कब तक करेंगे? में भी देखता हूं। उन्होंने सोचा।

०००

इन बेहूदी बातों का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह किसी न किसी रूप में बढ़ता ही गया। मातहत लोग ठीक से काम न करते, कोई न कोई बहाना करते। ऐन वक्त पर छुट्टी ले लेते और नहीं तो घुमा-फिराकर ताने-तश्नों से इस तरह बेअदबी बरतते कि पूर्ण चंद्र राव को बहुत बुरा लगता। वे उबलते। पर कुछ न कर पाते थे। सोचा, ठीक हो जायेंगे।

अगर एक तरफ यह सब हो रहा था, तो दूसरी तरफ एक और हमला शुरू हो गया था। किसी दिन डाक में उनके नाम चिट्ठी आती, जिसमें दुनिया-भर की गालियां दी गयी होतीं। कभी किसी लिफाफे में लीद आती, तो कभी गोबर। कभी बाल तो कभी बलगम।

इससे पूर्ण चंद्र राव इस कदर घबरा गये कि उन्होंने डाक खोलना ही छोड़ दिया। चपरासी खोलता और सामने रखता, और लोगों को यह सब इस तरह सुनाता कि दिन-भर उसी पर बातें होतीं, कहकहे लगते। हर तरह से पूर्ण चंद्र राव की मिट्टी पलीद की जाती। वे जानते थे कि यह सब किसकी करतूत हो सकती है। पर कोई सबूत नहीं था। सबूत पाना उनके बस की बात भी न थी। नाक में दम आ गया था। इतने लोगों के सामने नाक रगड़-रगड़कर नौकरी पायी थी, अब उसे छोड़ें भी तो कैसे छोड़ें?

यह चल ही रहा था कि एक और तरह

की चिट्ठियां आने लगीं। ..... तुम जैसे नपुंसक जब बड़ी कुर्सी पर बैठते हैं, तो मर्दानगी दिखाने की कोशिश करते हैं और मुंह की खाते हैं। ..... और जाने क्या-क्या लिखा रहता। निहायत गंदी बातें, जो आसानी से लिखी तो जा सकती हैं, पर कही नहीं जा सकतीं। और ये सब बातें ऐसी थीं, जिन्हें किसी से कोई कह भी नहीं सकता, पर दिल पर इस तरह बोझ बनकर रह जाती हैं कि कुछ और सूझता ही नहीं है। कभी-कभार कुछ हो तो समझ में भी आता है, अगर रोज-रोज ही इस तरह की चांदमारी होती रहे तो पूर्ण चंद्र राव जैसे चिकने घड़े भी चटक जाते हैं। और वे सचमुच घबरा गये थे।

दफ्तर में जो हो रहा था वह तो हो ही रहा था, घर में भी बलवा शुरू हो गया था। उनकी पत्नी के नाम गुमनाम चिट्ठियां आने लगी थीं। ..... 'एक लड़की है सरला, आपके पति उसके साथ दफ्तर में गृहस्थी बसाये हुए हैं, आपकी गृहस्थी तबाह कर रहे हैं। कल जब नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा, तो न चूल्हे के ऊपर कुछ होगा, न नीचे ही। अधेड़ पर जब प्रेम सवार होता है तो हर किसी को ले डूबता है। ...'

वाकई यह पूर्ण चंद्र राव की बर्दाश्त से बाहर था। सब घर-गृहस्थी वाले जिम्मेदार लोग, और व्यवहार इस तरह कर रहे थे जैसे स्कूल के आवारा बच्चे हों। इनके कारनामों के कारण अगर वे अब अपना व्यवहार बदलें भी तो कैसे बदलें? तरक्की पाये क्लर्क में दबा-कुचला आत्मविश्वास, स्वाभिमान कभी ही सिर उठाता है, और पूर्ण चंद्र राव में अब वह सिर उठा रहा था।

०००

उन्होंने छुट्टी ले ली। पर उन पर हमले जारी थे। कमीनेपन की भी हद होती है, ये लोग मेरा घर मलियामेट करने में लगे हैं—वे फिक्र में थे और फिक्र से उनकी नींद हराम थी, आराम हराम था। फिर दिल का दौरा पड़ गया! तब जाकर चिट्ठियां आनी बंद हुईं।

जब पहले बीमार पड़ते थे तो साथी अक्सर देखने आया करते थे। अब सिवा एक-दो के कोई नहीं आया। तब उनका संसार एक बड़े कमरे में समाया हुआ था, अब वह सिमटकर एक बहुत छोटे-से कमरे में आ गया था। कितनी छोटी दुनिया और कितनी बड़ी कीमत! उन्हें बड़ी कोफ्त हो रही थी।

जब वे दफ्तर गये तो तबादले के लिए डोरे खींचने लगे, हालांकि उन्हें शहर छोड़कर जाने में बहुत नुक्सान था। इस बीच वे जितना हो सके उस मनहूस अलग कमरे में न बैठते थे। अपने 'मातहत' लोगों की बगल में ही एक पुराने साथी की तरह बैठने लगे। दिल के दौरे ने उनके अपने बदले व्यवहार को फिर स्वाभाविक बना दिया था। और इतनी बड़ी कीमत पर उन्होंने एक ऐसा पाठ सीख लिया था, जो औरों के लिए भी सबक हो सकता था।

—सी ३०१, कतूरबा मार्ग अपार्टमेन्ट्स, नयी दिल्ली-१



एक गांधीवादी विज्ञानी

जे. राधाकृष्ण

आज से बहुत पहले १९४१ में सेवाग्राम में गांधीजी द्वारा स्थापित ग्रामोद्योग संशोधन संस्था की बैठक हो रही थी। संस्था के निदेशक सतीशचंद्र दासगुप्त और कोषाध्यक्ष श्री जमनालाल बजाज भी उपस्थित थे और अध्यक्षता गांधीजी कर रहे थे। जब निदेशक ने कतिपय नयी योजनाएं पूरी करने के लिए अतिरिक्त धन की मांग की तो जमनालाल बजाज भड़क उठे और बोले-'सतीश बाबू तो सफेद हाथी हैं।' इसका आशय यह था कि गांधीवादी विज्ञानी सतीशबाबू बिना ठोस नतीजा दिखाये ही धन पर खर्च किये चले जा रहे हैं। इसका जवाब गांधीजी ने दिया, बोले—'जमनालाल, तुम्हें पता होना चाहिये कि तुम सतीश से भी बड़े सफेद हाथी हो।'

कैसी मजेदार बात है कि जमनालाल बजाज फाउंडेशन का सबसे पहला पुरस्कार उन्हीं सतीशचंद्र दासगुप्त को 'ग्रामोदय में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपभोग के क्षेत्र में दिशा प्रवर्तक शोधकार्य' के लिए गत वर्ष १ नवंबर को दिया गया। कलकत्ता से २५० मील दूर गोगरा नामक अप्रसिद्ध गांव में रहने वाले शांत-अविचल सतीशबाबू जरूर इस पर मुस्कराये होंगे। ९९ की उम्र में भी वे अविश्वसनीय रूप से सक्रिय हैं और परती जमीन के एक लंबे-चौड़े खंड को उपजाऊ खेतों में बदलने में जुटे हैं, जिसने मृदा-विज्ञानियों की सारी सूझ और चतुराई को मुंह की खिलायी है।

यह पुरस्कार गरीबों और दलितों को ऊंचा उठाने में विज्ञान का उपयोग करने की गांधीजी की इच्छा की पूर्ति में लगे एक अत्यंत प्रतिभावान गांधीवादी विज्ञानी की शोकांतिका की भी याद दिलाता है। 'सफेद हाथी' कहे जाने से भी बदतर बातें उन्हें सहनी पड़ी हैं। १९६५ में भारत सरकार के मंजूर किये हुए २ लाख रुपये के अनुदान से उन्हें वंचित कर दिया गया। उन्हें खादी ग्रामोद्योग कमिशन से त्यागपत्र देना पड़ा। विनोबाजी तक ने उनका परित्याग कर दिया। और योजना आयोग के महापंडित तो उन्हें 'खब्ती' कहते थे।

सतीशचंद्र दासगुप्त का जन्म १८ जून १८८० को उत्तर बंगाल के कुड़ीग्राम में हुआ था, जो अब बांङ्लादेश में है। गरीबी की तमाम अड़चनों का सामना करते हुए वे १९०४ में प्रेसिडेन्सी कालेज, कलकत्ता से

• 'इंडियन एक्सप्रेस' से साभार •

बहुत ऊंचे अंक [illegible] हुए। दो साल बाद उन्होंने रसायनशास्त्र में एम. ए. पास किया (उस जमाने में इसे एम. एस-सी. नहीं कहते थे।)

उन दिनों प्रेसिडेन्सी कालेज के रसायन के छात्र परीक्षणों के लिए पास के बंगाल केमिकल्स की प्रयोगशाला जाया करते थे। उसके संस्थापक आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय ने शुरू में ही इस युवक की गजब की सूझबूझ देख ली थी। सो परीक्षा के अगले ही दिन वे उसे 'पकड़कर' बंगाल केमिकल्स ले गये और घोषणा कर दी कि आज से यह कारखाने का सूपरिन्टेन्डेन्ट है।

अठारह वर्ष तक सतीशबाबू की प्रतिभा और कर्मठता का लाभ पाकर बंगाल केमिकल्स एक संघर्ष करती संस्था से उठकर देश में अपने क्षेत्र की पथ-प्रवर्तक संस्था बन गयी और कई ब्रिटिश संस्थाओं से भी आगे निकल गयी। सतीशबाबू ने वहां पूरी तरह देशी साधनों से ही कुचला-सत (स्ट्रिक-ननी) और कैफीन जैसे रसायन तैयार किये। अग्निशामक उपकरण के निर्माण में तो उन्होंने ऐसी सूझ दिखायी कि भारत में वह उपकरण बनाने वाली ब्रिटिश कंपनी का एकाधिकार ही खत्म हो गया।

सन १९१० में बीमा कंपनी की जिद पर बंगाल केमिकल्स के कारखाने में अग्निशामक उपकरण लगाने पड़े। मिनिमैक्स नामक ब्रिटिश कंपनी का इन पर एकाधिकार था; उसने प्रति उपकरण ८० रु. मांगे और दाम में जरा भी कटौती करने से इन्कार कर दिया। [illegible] कि एक साथ कई उपकरण लिये जा रहे थे। सतीशबाबू ने बड़ी चतुराई से एक उपकरण खरीदा और उसे खोलकर उसकी रचना का बारीकी से निरीक्षण किया। फिर उन्होंने 'फायर किंग' नाम का अपना ही उपकरण तैयार किया, जो मिनिमैक्स के उपकरण से बहुत श्रेष्ठ था। उसकी लागत २० रुपये आयी और बंगाल केमिकल्स उसे ४० रु. में बेचने लगी। आचार्य राय ने इस प्रकार की सूझ को बढ़ावा देने के लिए यह नियम बना दिया कि ऐसे नये उत्पादन के शुद्ध मुनाफे का ५० प्रतिशत उसके आविष्कारक को दिया जायेगा।

जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा तो ब्रिटेन से माल आना रुक जाने के कारण मेसोपोटामिया ने हजारों 'फायर किंग' बंगाल केमिकल्स से खरीदे। बंगाल केमिकल्स ने ८ लाख रु. के अग्निशामक मेसोपोटामिया को बेचे, जिससे उसे ४ लाख रुपये का मुनाफा हुआ। सतीशबाबू को २ लाख रुपये उनके हिस्से के दिये गये।

इसी अरसे में कंपनी को कलकत्ता-वासियों के पीने के लिए गंगा का पानी शुद्ध करने के लिए कई लाख रुपये का फेरोएलम सप्लाई करने का आर्डर कलकत्ता नगर के प्रशासकों से मिला। जब सतीशबाबू पहला जखीरा देने गये, तो भ्रष्ट अफसरों ने उनसे कहा कि बिल में रसायन की मात्रा बढ़ाकर लिख दीजिये; आखिर यह फेरोएलम तो पानी में डाल दिया जाने वाला है, उसकी मात्रा असल में कितनी थी इसका किसी

...को पता चलने वाला है नहीं। सतीशबाबू ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, जिससे वह आर्डर बंगाल केमिकल्स के हाथ से जाता रहा। इस पर कंपनी के डाइरेक्टर लोग सतीशबाबू से बहुत नाराज हो गये। सतीशबाबू ने अनुभव किया कि व्यापार में ईमानदारी का निभाव असंभव है।

यही वह जमाना था जब गांधीजी सार्वजनिक जीवन में सत्य के महत्त्व पर जोर दे रहे थे। १९२३ में सतीशबाबू ने बंगाल केमिकल्स से त्यागपत्र दे दिया। वे महात्मा गांधी के संपर्क में आये और रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामोद्योगों के सुधार में अपनी योग्यता और शक्ति का उपयोग करने लगे। गांधीजी ने उनके बारे में कहा था-'एक मूल्यवान सहकर्मी और अत्यंत खरा आदमी।'

स्वतंत्रता मिलने के बाद देश के प्रमुख कांग्रेसियों में से वही एक थे, जिन्होंने कोई भी पद संभालने से इन्कार कर दिया, हालांकि विधानचंद्र राय और प्रधान-मंत्री नेहरू इसके लिए उन्हें बहुत कहते रहे। बाद में उन्होंने स्वतंत्रता-सेनानियों का ताम्रपत्र और पेन्शन भी स्वीकार नहीं की। उनकी नजरों में यह कांग्रेसियों के हाथों गांधीजी का अपमान था।

हां, खादी ग्रामोद्योग कमिशन से जरूर उन्होंने संबंध रखा क्योंकि इससे गांधीजी के आदर्शों के प्रसार का अवसर मिलता था। उनकी आविष्कारक प्रतिभा खादी हाथ-कागज, बांस की तीलियों की सस्ती माचिस आदि के उत्पादन की विधियां सुधारने में काम आयी। परंतु जब भारत सरकार ने अंबर चरखे को साधारण हाथ-चरखे पर तरजीह दी तो इसके विरोध में सतीशबाबू ने खादी कमिशन से त्यागपत्र दे दिया। उनका कहना था कि गांधीजी इसका विरोध करते। उन्होंने विनोबाजी से प्रार्थना की कि वे सरकार को इस नीति से विरत करें। परंतु गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी ने मामले को टाल दिया।



बापू

सतीशबाबू का मोहभंग तो हुआ, परंतु उनका उत्साह न टूटा। कलकत्ता के पास अपने आश्रम सोदपुर खादी प्रतिष्ठान के जरिये वे ग्राम-विकास और हरिजनोद्धार का आंदोलन चलाते रहे।

पचासी वर्ष की उम्र में इस रसायनज्ञ आंदोलनकारी ने कृषि-विशेषज्ञ के रूप में अपनी क्षमता तौलने का निश्चय किया। वीरभूम, बांकुड़ा, पुरुलिया और मेदिनीपुर जिलों के कुछ इलाकों में १९६५ से चले आ रहे अकाल ने उन्हें बहुत उद्विग्न किया।

यहां की लैटराइट-युक्त जमीन के विशाल खंड सरकारी उपेक्षा के कारण परती पड़े हुए थे। लंबी अनावृष्टि के कारण किसानों की और दुर्दशा थी, जिससे दु:खित होकर सतीशबाबू ने विपन्न ग्रामीणों को त्राण देने के लिए कुछ करने का संकल्प किया।

उन्हें याद था कि गांधीजी ने मरने से पहले कहा था–'अगर भारत अमरीका की गेहूं-सहायता पर निर्भर हो गया, तो हम अपनी आजादी खो बैठेंगे।' सो उन्होंने निश्चय किया कि 'परती जमीनों को उपजाऊ खेतों में बदलने का वक्त आ गया है।' वे बांकुड़ा जिले की सदा से परती पड़ी जमीन में गये, जो ग्रामवासियों की दृष्टि में 'भगवान के शाप के कारण' परती पड़ी थी। उन्होंने कबाड़ के रूप में फेंके हुए टिन के डिब्बों और बांस की नलियों में मिट्टी के बारे में परीक्षण व प्रयोग किये और उस मिट्टी को कृषियोग्य बनाने की सरल तकनीक विकसित की। पर इस तकनीक को बड़े पैमाने पर काम में लाने के लिए आवश्यकता थी धन की। और पैसों का ही उनके पास अभाव था।

उन्होंने भारत सरकार के सामुदायिक विकास मंत्री श्री एस. के. दे को ४ लाख रुपये के अनुदान के लिए चिट्ठी लिखी। श्री दे ने पश्चिम बंगाल सरकार के सामुदायिक विकास आयुक्त को यह रकम सतीशबाबू को भेजने को कहा। मगर आयुक्त श्री आर. घोष ने नौकरशाही के सदा के रवैये के मुताबिक अनुदान की रकम ४ लाख से घटाकर २ लाख कर दी और जनवरी १९६६ में वचन दिया कि रकम तीन महीने में मिल जायेगी। मियाद गुजर गयी, मगर पैसा नहीं आया और खुद श्री घोष भ्रष्टाचार के आरोप में नौकरी से हटा दिये गये। अगले आयुक्त जी. डी. गोस्वामी को फाइल ढूंढ़वाने में छह महीने लग गये और वे कुछ कर सकें इसके पहले उनका तबादला हो गया। तीसरे आयुक्त ने एक दिन तो फाइल ढूंढ ली, पर अगले दिन खो भी दी। आखिरी प्रयत्न के रूप में सतीशबाबू ने प्रधान-मंत्री इंदिरा गांधी तक बात पहुंचायी, मगर व्यर्थ।

सतीशबाबू अपने लक्ष्य से डिगने वाले आदमी नहीं हैं। मित्रों से चंदा करके बांकुड़ा से २५ मील दूर गोगरा गांव में उन्होंने २२ एकड़ जमीन खरीदी और मामूली से झोंपड़े में रहते हुए भूमि-सुधार का काम अकेले ही आरंभ कर दिया। उनकी तकनीक लेव लगाने के ढर्रे की है। क्यारियों में पानी भरकर उनमें मिट्टी को मथना, जिससे पानी को धारण करने में समर्थ चिकनी मिट्टी ऊपर आ जाती है। उन्होंने कुओं की चट्टानी पेंदी को डाइनामाइट से उड़वाया, जिससे बारह मास सिंचाई के लिए पानी मिलने लगा।

'सदा से परती पड़े टुकड़ों को मैंने जब खेती लायक बनाकर दिखाया, तो मेरी तकनीक की उपयोगिता असंदिग्ध रूप से सिद्ध हो गयी।' वे बताते हैं–'इससे मुझे और अधिक जमीन के सुधार का काम धीरे-

...रे हाथ में लेने और अधिक उपज देने वाले धान, दलहन, सब्जी और गन्ने की खेती शुरू करने का बढ़ावा मिला।' स्थानीय लोगों के लिए तो यह सब चमत्कार ही था। उन्होंने अपनी २२ एकड़ जमीन में से १९ एकड़ को कृषियोग्य बना लिया है। पिछले तीन वर्षों में इस भूमि में से सारे साल बारी-बारी से धान, गेहूं, सब्जी की खेती होती है, जिससे प्रति एकड़ ३,००० रु. की शुद्ध आय हो रही है। इससे भी बड़ी बात यह है कि इस सफलता से गोगरा के आस-पास के ग्रामवासियों को खुद भी परती जमीन का सुधार करने की प्रेरणा मिली है।

अपनी मुस्कान से ९९ वर्ष की उम्र को झुठलाते हुए सतीशबाबू बताते हैं–'अगर पश्चिम बंगाल के इन चार जिलों की १५ लाख एकड़ शाश्वत परती जमीन सदा के लिए कृषियोग्य भूमि में बदल दी जाये तो हमारा देश के अन्नोत्पादन पर क्या शुभ परिणाम होगा, कल्पना कीजिये। उसमें ४५० करोड़ रुपये की फसलें उगायी जा सकेंगी। सारे देश में लैटराइट-युक्त परती जमीन ३ करोड़ एकड़ के लगभग है। यदि इसे कृषियोग्य बना लिया जाये तो राष्ट्रीय संपत्ति में ९,००० करोड़ रुपये की वृद्धि होगी। तब भारत आज की तरह कंगाल न रहकर दुनिया के समृद्धतम देशों में से एक होगा।'

कुछ समय पूर्व उन्होंने कहा था–'धन की सतत आवश्यकता से मुझे नफरत-सी हो चली थी और मैंने परमात्मा से प्रार्थना की थी कि भगवान, मुझे दुनिया से उठा लो। उस रात गांधीजी सपने में आये और उन्होंने मुझे डांटा–तुम्हें मरने की इच्छा का अधिकार ही क्या है? १२० वर्ष के मानवीय आयुष्य तक जीने और मेरे अधूरे छूटे काम को पूरा करने की कोशिश करो।'

इससे नया उत्साह पाकर उन्होंने नयी-नयी योजनाएं हाथ में ली हैं। पहला है अधिक सस्ते गोबर गैस संयंत्र का विकास करना। फिर वे हाथकागज बनाने का अधिक सस्ता तरीका विकसित करना चाहते हैं, जिससे हाथकागज मिल के कागज से सस्ता भी पड़े और श्रेष्ठ भी बने। बंगाल में बहुतायत से मिलने वाले बांस की तीलियों से वे बढ़िया दियासलाइयां बनवाना चाहते हैं। और किसी किशोर की तरह उत्साह में भरकर कहते हैं–'आशा है, अगले वर्षों में मैं और भी पुरस्कार हथियाऊंगा।'

पिछले महीने की १४ ता. को उन्होंने सौवें वर्ष में प्रवेश किया है। देश के लिए उनकी आशाएं और उनके सत्संकल्प पूरे हों।



अमरीका में किसी टी. वी. नेटवर्क पर मुख्य घंटों में एक मिनट विज्ञापन करने की कीमत १ लाख ४० हजार डालर तक हो सकती है, जिस रकम से हाइस्कूल के सात या आठ अंग्रेजी-अध्यापकों को सारे साल वेतन दिया जा सकता है। –'टाइम' पत्रिका





बायें : भुट्टो की फांसी पर
अबू 'इंडियन एक्सप्रेस' में

मृत्युदंड

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

यदि तुम्हें सांप काटता है
तो तुम सांप को मार सकते हो,
यदि आदमी काटता है
तो तुम आदमी को नहीं मार सकते।
जहरीले आदमी पर तुम थूक सकते हो
सब मिलकर उस पर थूक सकते हो
यही उसकी मौत है
लेकिन उसे लाश बनाकर
किसी एक को भी थूकने का हक उस पर
नहीं है।
क्योंकि इससे जहर नहीं मरता।
आदमी मरता है
और उसके साथ-साथ तुम भी मरते हो—
तुम जिसने उसे मारा है
जो खुद को समाज का अंश कहते हो।
सांप को मारते ही
तुम सांप में नहीं बदलते
आदमी को मारते ही तुम
सांप में बदल जाते हो
जहर खत्म करने के नाम पर
जहर फैलाते हो।
समाज का एक बहुत बड़ा अंश
सीखता है दंश, दंश, केवल दंश
और एक तुमसे
करोड़ों सांप बिलबिलाने लगते हैं।
बढ़ने लगता है उनका वंश
वंश, वंश, केवल उनका वंश।
जहरीले आदमी से छुटकारे के लिए
फिर तुम क्या करो ?
पहली बात, उससे मत डरो
खुद में आत्मविश्वास भरो
सबके साथ एक समुद्र बन उभरो,
उभरो, उभरो।

ऊभ-चूभ उभरो
जब तुम इस तरह लहराओगे
तब उसे खुद अपनी पूंछ पर घूमता
हुआ देखोगे
और उसका जहर मरा हुआ पाओगे।

• 'दिनमान' से साभार •

कच्चे धागे से

सुखबीर की हिंदी कहानी

रजनी ने आंखें खोलीं तो कमरे में मद्धिम-सी रोशनी थी। एक छोटा-सा नीले रंग का बल्ब जल रहा था। और उस कमरे में दवाइयों की महक घुली हुई थी। रजनी आंखें खोले लेटी हुई कुछ देर छत ताकती रही। उसे अपनी पलकें बड़ी भारी हुई लग रही थीं। उन्हें खोलने में उसे तकलीफ हो रही थी। पर वह उन्हें बंद नहीं करना चाहती थी। आखिर, कुछ देर के बाद उसे अपने अस्तित्व का एहसास हुआ और उसने धीरे-से कमरे में नजरें घुमायीं। हां, वह अस्पताल का कमरा था। फिर उसकी नजर अपने पांवों पर गयी। वह ढलवां पलंग पर लेटी हुई थी। पलंग सिरहाने की ओर ढलवां था, और पांवों की ओर काफी ऊपर उठा हुआ। उस पलंग में लेटना रजनी को अजीब-सा लगा। कहीं वह सिर की ओर फिसलती हुई पलंग से गिर ही न पड़े, उसने सोचा। पर नहीं वह अडिग लेटी हुई थी।

उसने अपने पांवों की ओर से नजर हटा-कर बायें हाथ की खिड़की की ओर देखा। खिड़की अंधेरे का एक चौरस टुकड़ा प्रतीत हुई, फिर तारों-भरे आसमान का एक चौरस टुकड़ा प्रतीत हुई। चौरस रात। उसे खयाल आया। खिड़की में से दिखाई देने वाली चौरस रात का जिक्र भला कहां पढ़ा था? किसी कहानी में ही पढ़ा था, पर कहां? और किसकी कहानी थी वह? .... रजनी सोचने लगी, पर उसे याद न आया। फिर यह भी याद न आया कि उस कहानी का प्लाट क्या था और उसमें क्या लिखा हुआ था।

चौरस रात! या तारों-भरा चौरस आसमान! रजनी ने मन में कहा और कमजोर-सी नजरों से खिड़की की ओर देखती रही।

धीरे-धीरे उसकी आंखें मुंदने लगीं। पर उसने चौंककर उन्हें फिर खोल दिया। उसे डर था कि आंखें बंद हुईं, तो फिर कहीं वही सपना न दिखाई देने लगे, जो वह कुछ समय पहले देख रही थी और जिसे देखते हुए एकाएक उसकी आंखें खुल गयीं थीं।

सपने में वह दो पंख आसमान में फड़-फड़ाते हुए देख रही थी। वे कटे हुए दो पंख थे। सिर्फ पंख। भला वे किस पक्षी के

पंख थे? उसने सोचा। आसमान में अकेले ही कैसे फड़फड़ा रहे थे। और आसमान था कि चीखों से भरा हुआ था। क्या अजीब बात नहीं कि वे चीखें दिखाई दे रही थीं। जैसे उन्हें छुआ जा सकता था। पर वे किसकी चीखें थीं? क्या उस पक्षी की, जो वहां नहीं था और जिसके सिर्फ पंख ही वहां थे? या क्या वे चीखें उन पंखों की थीं? जैसे वे चीखते हुए फड़फड़ा रहे हों। फिर एकाएक आसमान से खून की धारा बहने लगी थी और खून नीचे आकर किसी अंधेरे गढ़े में गिरने लगा था। धार बहती रही थी, पर गढ़ा भरने में नहीं आ रहा था। .....

रजनी की खुली हुई आंखों के सामने एक-दो बार वे पंख फड़फड़ाये और खून की धार चमकी। तभी उसे लगा कि वह खून की धार जैसे उसके अंदर से बह रही है और कई दिन से वह रही थी। रजनी कई बार बेहोश हुई है। और जब भी उसे कुछ होश आया था, उसने अपने अंदर से बहते हुए खून को महसूस किया था। डाक्टरों ने बहुत कोशिश की थी, पर खून रुकने में नहीं आ रहा था। रजनी बेहद कमजोर हो गयी थी। वह प्रायः नीमबेहोशी की हालत में लेटी रहती। उस हालत में उसे धुंधला-सा प्रकाश दिखाई देता और मंद-सी आवाजें सुनाई देतीं। और चारों ओर दवाइयों की महक फैली होती। उस महक में जैसे खून की महक भी होती।

नौ दिन पहले रजनी के पेट में एकाएक पैनी पीड़ा उठी थी और उसके अंदर से खून बहन लगा था। दो महीने से उसे माहवारी नहीं हुई थी। शादी के पांच साल के बाद यह पहला मौका था कि उसकी माहवारी रुक गयी थी और उसका जी मितलाने लगा था। उसकी खुशी का अंत नहीं था। आखिर इतने साल के बाद उसकी कोख भरी थी, और वह शून्यता भी भर गयी थी, जो इतने वर्षों से उसके जीवन में फैलती जा रही थी।

रजनी ने जब यह बात पति को बतायी थी, तो उसका चेहरा एकाएक गंभीर बन गया था, और उसकी आंखें जरा-सी सिकुड़ गयी थीं और कहीं दूर देखने लगी थीं। अंत में उसके चेहरे का रंग काला पड़ गया था और वह बिना कुछ कहे वहां से उठकर चला गया था।

रजनी अवाक्-सी उसकी ओर देखती रह गयी थी। फिर अगले ही क्षण उसका मन किसी संदेह से भर गया था और उसका चेहरा भी गंभीर बन गया था।

रजनी को कमरे में घुटन महसूस हुई और लगा, जैसे उसकी सांस अंदर ही अंदर घुटती जा रही है। उसे प्यास महसूस हुई और मुंह एकदम सूखा-सा लगा। उसने बड़ी कठिनाई से जरा-सा घूमकर देखा। नर्स नीचे फर्श पर सोयी हुई थी। उसने बड़ी क्षीण आवाज में नर्स को बुलाया। पर उसे लगा कि वह आवाज उसके अंदर से बाहर निकली ही नहीं। तब उसने और जोर लगाकर दुबारा बुलाया। इस बार नर्स जाग पड़ी और उसके पास आकर पूछने लगी—'कैसी तबीयत है?'

पानी।' रजनी के मुंह से निकला।

नर्स ने उसे पानी पिलाया। फिर वह कुर्सी खींचकर उसके पास बैठ गयी। कैसी तबीयत है?' उसने फिर सवाल किया।

रजनी ने उसकी ओर आंखें फैलाकर देखा और धीमे-से कहा–'ठीक है।'

कुछ देर दोनों चुप रहीं। नर्स खिड़की से बाहर देख रही थी और रजनी उसके चेहरे की ओर। वह हल्के सांवले रंग का चेहरा था। उसमें कहीं छिपी हुई मासूमियत का एहसास होता था। नींद से जागने पर भी उस चेहरे पर ताजगी थी। रजनी को उस चेहरे से ईर्ष्या-सी हुई। उसके मन में आया कि आइने में अपना चेहरा देखे। वह कल्पना में अपने चेहरे को देखने लगी, जो बहुत बीमार और सूखा हुआ-सा दिखाई दिया, जैसे लकड़ी का या सूखी मिट्टी का बना हो।'

'कितने बजे होंगे?' उसने नर्स से पूछा।

नर्स ने अपनी कलाई-घड़ी देखकर कहा–'सवा तीन हुए हैं।'

'रात कितने धीरे-धीरे चलती है।' रजनी ने कहा।

'आप काफी देर से जाग रही हैं?' नर्स ने पूछा।

'पता नहीं। शायद ज्यादा देर से नहीं।'

'अब नींद नहीं आ रही है?'

'नहीं। नींद से डर लग रहा है कि सोऊंगी, तो फिर वहीं सपना देखने लगूंगी। बड़ा भयानक सपना था वह।'

नर्स को सपने के बारे में पूछने की इच्छा हुई, पर उसने नहीं पूछा। उससे मरीज को

'तुम्हें नींद आ रही है?' रजनी ने पूछा।

'नहीं तो।' नर्स ने मुस्कराकर कहा।

'नींद आ रही हो तो सो जाओ।'

'नहीं, नींद नहीं आ रही है।'

सुनकर रजनी को खुशी हुई। वह खुद चाहती थी कि नर्स न सोये तो अच्छा है। वह उससे बातें करना चाहती थी। उसे लग रहा था, जैसे एक अरसा हो गया था कि उसने किसी से बात नहीं की थी।

'थोड़ा और पानी पिलाओ।'

नर्स ने उसे पानी पिलाया।

पानी भी कैसी चीज है, रजनी ने सोचा, जो आदमी को जिंदगी देता है। अब उसे अपना मुंह इतना सूखा हुआ नहीं लग रहा था और न ओंठ ही लकड़ी के बने हुए।

वह ध्यान से नर्स के चेहरे को देखने लगी।

नर्स खिड़की में से बाहर देखने लगी।

कुछ देर के बाद रजनी ने पूछा–'तुम्हारी शादी हो चुकी है?'

'हां।' नर्स ने उसकी ओर नजर मोड़ी–'आठ साल हो गये।'

'आठ साल!' रजनी के मुंह से निकला–'चेहरे से तो तुम बहुत छोटी लगती हो। जैसे अभी कुंआरी हो।'

नर्स को खुशी हुई।

'बच्चे हैं तुम्हारे?' रजनी ने पूछा।

नर्स ने कुछ संकोच से कहा–'तीन हैं।'

'तीन?' रजनी को जैसे विश्वास नहीं हुआ।

'हां तीन। दो लड़कियां और एक लड़का।'

'बहुत होशियार हैं ?'

नर्स की आंखें चमकीं। जवाब में वह सिर्फ मुस्करायी ही। यह ममता-भरी मुस्कराहट थी।

रजनी कुछ देर उसके बच्चों के बारे में बातें करती रही। नर्स ने बताया—'एक बेटी को डाक्टर बनाना चाहती हूं, और दूसरी को टीचर, और लड़के को इंजीनियर। पर वह बड़ा गंभीर लड़का है। अपनी ही दुनिया में खोया रहता है। रंग-बिरंगे चाक लेकर उलटी-सीधी रेखाएं खींचता रहता है। अजीब-अजीब शक्लें बनाता है—जानवरों की, आदमियों की, दूसरी कई चीजों की। फिर उन्हें देखकर खुश होता रहता है। उस समय उसका चेहरा इतना गंभीर नहीं रहता।'

'तब तो वह आर्टिस्ट होगा।' रजनी ने कहा—'कितने साल का है ?'

'साढ़े तीन साल का। जो भी बने, मैं उसे बहुत बड़ा आदमी बनाना चाहती हूं।'

'तुम्हारा पति क्या करता है ?'

नर्स का चेहरा एकाएक काला पड़ गया। कुछ क्षण वह बोल न सकी। उसकी आंखों में से दो आंसू टूटे। उसने साड़ी के आंचल से आंखें पोंछी, फिर कहा—'वे डाक्टर थे।'

'थे ?.... और अब ?'

'अब वे इस संसार में नहीं हैं। पिछले साल स्वर्गवास हो गया उनका।'

'ओह !' बहुत अफसोस हुआ सुनकर।'

नर्स कुछ संभली। 'बस, यही लिखा था किस्मत में। उनके साथ मैंने जो सात-सवा सात साल बिताये थे, और शादी के पहले के दो साल, उन्हें मैं कभी नहीं भूल सकूंगी। वे मुझे सारी जिंदगी के लिए अमीर बना गये हैं। ये पिछले नौ साल कभी नौ दिन भी लगते हैं, कभी नौ सदियां।' नर्स की आंखें फिर गीली हो गयी थीं, और वह चुप हो गयी। इस बार उसने आंखें पोंछीं नहीं और रजनी की ओर से नजर हटाकर आंसुओं के धुंधलके में से खिड़की से बाहर दूर कहीं रात में देखने लगी।

रजनी कुछ देर एकटक उसके चेहरे की ओर देखती रही। फिर उसके उस पार उसे अपने पति का चेहरा दिखाई दिया—गुस्से और नफरत से भरा हुआ चेहरा। वेहद भयानक चेहरा। रजनी के गर्भवती होने का जिक्र सुनकर वह वहां से उठकर चला गया था। उसने शायद हिसाब लगाया होगा। और जब वह लौटकर रजनी के पास आया था, तो उसने कहा था कि वह उसका बच्चा नहीं है। वह सतीश का बच्चा है। वह हराम का बच्चा है।

रजनी पिछली बार अपने माता-पिता से मिलने गयी थी तो वहां से दो-तीन दिन के लिए सतीश के शहर भी—हां, अब वह सतीश का ही शहर था—गयी थी। वह उससे मिली थी। उसने देखा था कि सतीश अपने आपको तबाह कर रहा है, उस दुःख और दर्द को अंदर ही अंदर जी रहा है, जो वह उसे दे गयी थी। रजनी ने उसे नयी जिंदगी शुरू करने के लिए कहा था। अपनी कसमें खिलाकर कहा था कि वह पिछला सब कुछ भूल जाये और नयी जिंदगी शुरू करे। वह जुलाई



होगा तो वह भी खुश होगी, वरना वह उसके दुख को सह नहीं सकेगी। और नयी जिंदगी शुरू करने के लिए उसने सतीश के लिए एक बहुत अच्छी लड़की भी ढूंढ़ी थी। उसकी फोटो उसने उसे दिखायी थी। वह चाहती थी कि सतीश उस लड़की के साथ शादी कर ले और सुख से रहे। हां, वह ऐसी लड़की थी, जिसके साथ वह सुख से रह सकेगा। पर सतीश नहीं माना था। आखिर रजनी निराश होकर और उसका दुःख-दर्द अपने मन में लेकर वहां से लौट आयी थी, और उसे लगा था कि अब वह भी उसी की तरह अंदर ही अंदर घुलकर तबाह हो जायेगी, ...जायेगी।

घर लौटने पर एक दिन उसके पति ने सतीश से मिलने का जिक्र किया था, तो रजनी ने उसके बारे में सब कुछ बता दिया था। वैसे भी पति को उसके सतीश से मिलने का पता लग गया था, दोनों की झड़प हुई थी, और बात आयी-गयी हो गयी थी।

पर रजनी के गर्भवती होने की बात सुनकर पुरानी चिनगारी भड़क उठी थी और पति उस पर झपटा था। वह पागलों की तरह झपटा था और उसे बेतहाशा मारने लगा था। पता नहीं, कितनी लातें उसने उसके पेट में मारी थीं। अंत में रजनी बेहोश हो गयी थी। होश आने पर वह बिस्तर पर पड़ी थी और उसके अंदर से लगातार खून बह रहा था। बार-बार वह खून साफ किया जा रहा था, दवाइयां और इंजेक्शन दिये जा रहे थे, पर खून बंद होने में नहीं आ रहा था। रजनी कई बार बेहोश हुई थी। एक बार बेहोशी के बाद जब उसने आंखें खोलीं थीं, तो देखा था कि वह अपने घर के बजाय अस्पताल में लेटी हुई है।

रजनी को लगा था कि कोई चीज उसके

अंदर से निकल गयी है और अब उसके अंदर एक बहुत गहरा गड्ढा है। कई बार वह गड्ढा फैलने लगता और बहुत बड़ा बन जाता। वह सूखा हुआ गड्ढा था—एकदम खाली और भयानक।

रजनी ने अपने माथे पर नर्स का हाथ महसूस किया तो उसका ध्यान टूटा। वह हाथ उसे स्निग्ध-सा लगा। नर्स उस पर झुकी हुई थी और पूछ रही थी—'क्या बात है, तबीयत खराब हो रही है ?'

रजनी ने जवाब नहीं दिया और आंखें फाड़े उसकी ओर देखती रही। उसके चेहरे पर फिर पसीने की बूंदें उभर आयी थीं। नर्स ने फिर उसका चेहरा पोंछा और उसके माथे पर हाथ रखा।

रजनी ने संभलने का यत्न किया।

'पानी दूं ?' नर्स ने पूछा।

'हां।'

पानी पीकर रजनी की हालत सुधरी। कुछ देर के बाद उसने नर्स से कहा—'लगता है जैसे मेरा अंदर खाली हो गया है। एक-दम खाली हो गया है।'

'बहुत खून बह गया', नर्स ने कहा—'पर चिंता की बात नहीं। आप ठीक हो जायेंगी।'

'क्या पता !' रजनी के मुंह से निकला।

'अब कोई खतरा नहीं है', नर्स ने उसे ढाढ़स बंधाया—'हां, कमजोरी बहुत है। पर वह भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी।'

'क्या पता !' रजनी के मुंह से फिर निकला—'अच्छा होता, मैं मर जाती।'

'ऐसी बात मुंह पर न लाइये। आप बिलकुल ठीक हो जायेंगी। फिर से आपकी सेहत बन जायेगी।'

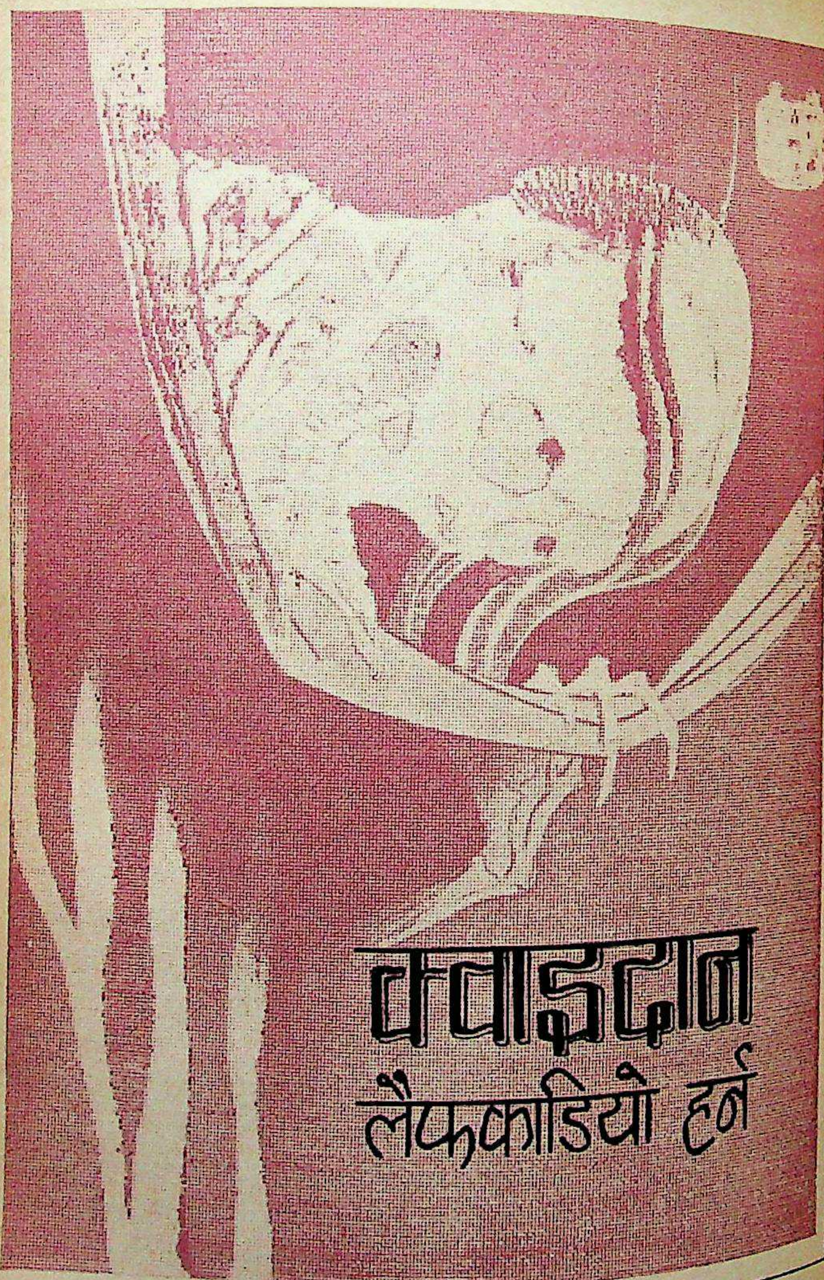
रजनी चुप रही और मन में कहा—अब कुछ नहीं बनेगा। वह जो एक कच्चा धागा था, जिसके साथ वह लटकी हुई थी और जिसे पकड़े हुए पता नहीं किस तरह वह गिरने से बची हुई थी, अब वह टूट गया है। अब कोई सहारा नहीं है। उस एक कच्चे धागे का सहारा था, पर अब वह भी नहीं रहा। वह कच्चा धागा ? भला कौन-सा था वह कच्चा धागा ? . . . हां सतीश भी तो उसी से बंधा हुआ था। पर उसके जिस सिरे से वह बंधा हुआ था, वह सिरा तो कब का टूट चुका था। नहीं, सतीश कच्चे धागे से नहीं बंधा हुआ था। तो वह किससे बंधा हुआ था ? . . . .

रजनी का दिमाग बोझिल होने लगा था। सोचने के लिए उसे दिमाग पर बहुत जोर डालना पड़ रहा था, और वह बेहद कमजोरी महसूस कर रही थी। उसके सामने अंधेरा छाने लगा था। वह कुछ भी सोच नहीं पा रही थी।

कुछ देर के बाद उसकी आंखें मुंद गयीं। उसे नींद आ गयी। नींद में उसने एक मकड़ी को जाल बुनते देखा। मकड़ी बड़ी तेजी से इधर-उधर घूम रही थी। फिर वह एकाएक गिरी, पर नीचे नहीं गिरी, बल्कि हवा में ही लटक गयी और झूलने लगी। रजनी ने ध्यान से देखा—वह अपने एक बारीक-से तार से लटकी हुई थी।

—बी-१९, सन एंड सी, वरसोवा रोड, बंबई-४०० ०६१




क्वाइदान
लैफकाडियो हर्न

'क्वाइदान' को जापानी संस्कृति और साहित्य का सबसे सहृदयतापूर्ण परिचय अंग्रेजी में प्रस्तुत करने वाले अमरीकी पत्रकार-लेखक लैफकाडियो हर्न की सर्वोपरि कृति कहा जाता है। 'क्वाइदान' जापानी भाषा में अद्भुत-भयानक रस की अलौकिक कथाओं को कहते हैं। हर्न ने ऐसी सत्रह चुनिंदा प्राचीन जापानी कहानियां 'क्वाइदान' में संकलित की हैं, जिनमें से चार का अनुवाद **अस्मिता ठाकुर** ने यहां प्रस्तुत किया है।



अकिनोसुके का सपना

यामातो प्रांत के तोईची जिले में मियाता अकिनोसुके नाम का गोशी (स्वतंत्र स्वामी सैनिक) रहता था। उसके बगीचे में एक विशाल और पुराना देवदारु का पेड़ था। जिस दिन बहुत उमस होती, वह उसके नीचे आराम किया करता था। एक दिन वह अपने दो साथी गोशियों के साथ बैठा बातचीत और मद्यपान कर रहा था कि एकाएक उसे ऊंघ-सी अनुभव हुई—इतनी जोरदार कि वह अपने दोनों दोस्तों से क्षमा मांगकर वहीं लेट गया। उसे यह सपना आया:

उसे लगा कि पेड़ के नीचे लेटे-लेटे वह एक बहुत बड़े राजा के अनुचरों के जुलूस को पास के एक पहाड़ से उतरते देख रहा है, और उसे देखने के लिए वह उठ खड़ा हुआ है। सचमुच बड़ा ही शानदार जुलूस था—अब तक उसके देखे किसी भी जुलूस से कहीं अधिक भव्य। और वह उसी के घर की ओर बढ़ा आ रहा था। उसने देखा कि उसके हरावल में बहुत से नौजवान थे जो बड़े कीमती कपड़ों में सजे हुए थे और वे लाख की पालिश की हुई एक पालकी उठाये चल रहे थे। पालकी उज्ज्वल नीले रेशम से ढंकी हुई थी। जुलूस उसके घर से कुछ दूर तक आकर रुक गया और बहुत शानदार कपड़ों वाला एक आदमी—जो निश्चय ही उच्च पदाधिकारी रहा होगा—अकेला आगे बढ़ा और अकिनोसुके के पास आकर बहुत नीचे तक झुककर नमस्कार करके यों बोला:

'सम्मान्य महानुभाव, तोकोयो के कोकुओ का एक सामंत आपके समक्ष उपस्थित है। मेरे मालिक महाराज ने मुझे आदेश दिया है कि उनके कृपापूर्ण नाम से मैं आपका अभिवादन करूं और अपने को पूरी तरह आपकी सेवा में प्रस्तुत करूं। उनका यह भी आदेश है कि मैं आपको सूचित करूं कि वे कृपापूर्वक अपने महल में आपकी उपस्थिति चाहते हैं। इसलिए आप फौरन इस वाहन में आसीन होने की कृपा करें, जो

• सामने के पृष्ठ पर होकुसाई रचित चित्र •

उन्होंने आपके लिए प्रेषित की है।'

ये शब्द सुनकर अकिनोसुके कोई समुचित उत्तर देना चाहता था; मगर वह इतना चकित और उद्भ्रांत था कि उससे बोलते नहीं बना और उसी क्षण जैसे उसकी सारी की सारी संकल्प-शक्ति पिघलकर बह गयी और जैसे उस सामंत का कहना माने बिना उसके लिए कोई चारा न रहा। वह पालकी में जा बैठा और सामंत ने भी उसके साथ आसन ग्रहण किया और अनुचरों को चल पड़ने का आदेश दिया। यात्रा आरंभ हो गयी।

थोड़ी ही देर में वाहन चीनी शैली की एक विशाल दुमंजिली ड्योढ़ी पर जाकर रुका। अकिनोसुके को आश्चर्य हुआ। उसने यह ड्योढ़ी पहले कभी देखी न थी। यहां सामंत वाहन से उतर गया और बोला—'मैं जाकर आपके पधारने की घोषणा करता हूं।' और वह गायब हो गया। इसके थोड़ी देर बाद अकिनोसुके ने भव्य आकृति वाले दो पुरुषों को ड्योढ़ी में से आते देखा। उन्होंने लाल रेशम के चोगे और ऊंची टोपियां पहन रखी थीं, जो कि उनके ऊंचे पद का प्रमाण था। उन्होंने अकिनोसुके को अदब से नमस्कार किया और वाहन से उतरने में उसकी मदद की और ड्योढ़ी में से उसे एक बगीचे में ले गये और एक महल के प्रवेश-द्वार पहुंचाया। उस महल का का पुरोभाग पूर्व और पश्चिम में मानो मीलों तक फैला हुआ था। अकिनोसुके को स्वागत-कक्ष में ले जाया गया, जो भव्यता और विशालता में अनुपम था। वहां उसके मार्गदर्शकों ने उसे सबसे ऊंचे आसन पर बैठाया और स्वयं बड़े अदब से जरा दूरी पर बैठे। शानदार औपचारिक वस्त्र पहने शाही परिचारिकाएं नाश्ता लेकर आयीं। जब अकिनोसुके नाश्ता कर चुका तो लाल वस्त्रधारी मार्गदर्शकों ने झुककर उसे नमस्कार किया, फिर दरबारी शिष्टाचार के अनुसार दोनों ने बारी-बारी से यह बात कही :

'अब आपको यह सूचित करना हमारा गौरवपूर्ण कर्तव्य है ..... कि आपको यहां क्यों बुलाया गया है ..... हमारे प्रभु महाराज की यह कृपापूर्ण इच्छा है कि आप उनके दामाद बनें ..... और यह उनकी इच्छा और आज्ञा है कि आप आज ही..... उनकी कुंआरी कन्या राजकुमारी से विवाह करेंगे ..... हम अब शीघ्र ही आपको दर्शन-कक्ष में ले जायेंगे ..... जहां महामहिम महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं .... परंतु इसके पहले यह जरूरी है ..... कि हम आपको इस समारोह के अनुरूप वेश-भूषा धारण करायें।'

यह कहकर दोनों मार्गदर्शकों ने उसी कक्ष के एक आले में रखी विशाल सुंदर पेटी में से अनेक शानदार चोगे, पटके, शाही, शिरोवस्त्र आदि निकाले, जो बहुत कीमती कपड़ों के बने हुए थे। इन वस्त्रों से उन्होंने अकिनोसुके को शाही दूल्हे जैसा सजा दिया। उसके बाद वे उसे दर्शन-कक्ष में ले गये, जहां तोकोयो का कोकुओ एक विशाल मंच पर आसीन था। उसने काली टोपी और पीले

...लिबास के चोगा पहन रखे थे। मंच के दायें-बायें राज्य के उच्च अधिकारी अपने-अपने पद के अनुसार क्रम से चुपचाप बैठे हुए थे, जैसे मंदिर में रखी मूर्तियां हों। अकिनोसुके ने उनके बीच में से आगे बढ़कर महाराज को तीन बार यथाविधि दंडवत प्रणाम किया। महाराज ने कृपापूर्ण शब्दों में उसका स्वागत किया और कहा :

'तुम्हें पहले ही बताया जा चुका है कि तुम्हें हमारे सम्मुख क्यों पेश किया गया है। हमने निश्चय किया है कि तुम हमारी एकमात्र पुत्री के पति होगे और विवाह-समारोह आज ही संपन्न होगा।'

महाराज का बोलना समाप्त होने के साथ उल्लासमय संगीत गूजने लगा और एक पर्दे के पीछे से राजमहल की महिलाएं जुलूस बांधकर अकिनोसुके को राजकुमारी के कक्ष में ले जाने के लिए प्रकट हुइं।

राजकुमारी का कक्ष अत्यंत विशाल था। पर विवाह देखने के लिए उमड़ आये तमाम लोगों का उसमें समा पाना मुश्किल हो रहा था। जब अकिनोसुके जाकर राजकुमारी के सामने के आसन पर विराजमान हुआ, सबने झुककर उसे नमस्कार किया। राजकुमारी स्वर्ग की कोई देवबाला-सी जान पड़ती थी। उसके वस्त्र वसंत-कालीन आकाश की तरह सुंदर थे। बड़े आनंद और उल्लास के बीच विवाह-विधि संपन्न हुई।

इसके बाद दूल्हा-दुल्हन को महल के दूसरे खंड में ले जाया गया, जो उनके निवास के अनुरूप सजाया गया था। वहां सब दरबारियों, राज्याधिकारियों ने उन्हें बधाइयां और अनगिनत उपहार दिये।

कुछ दिन बाद अकिनोसुके को पुनः दरबार में बुलाया गया। इस बार उसका पहले से भी अधिक कृपापूर्ण स्वागत हुआ और महाराज ने उससे कहा :

'हमारे राज्य के दक्षिण-पश्चिमी भाग में रैशू नाम का द्वीप है। हमने तुम्हें उसका राज्यपाल नियुक्त किया है। वहां के प्रजाजन वफादार और आज्ञाकारी हैं। परंतु उनके नियम-कानून अभी हमारे राज्य के नियम-कानूनों के अनुरूप नहीं ढाले गये हैं; उनके रीति-रिवाजों का भी ठीक से नियमन आवश्यक है। हम तुम्हें यह जिम्मेदारी सौंपते हैं कि तुम उनकी सामाजिक स्थिति को यथाशक्ति सुधारो। हमारी इच्छा है कि तुम उन पर दयापूर्वक और विवेकपूर्वक शासन करो। रैशू की यात्रा की सारी तैयारियां पूरी हो चुकी हैं।'

इस तरह अकिनोसुके और उसकी दुल्हन कोयोतो के राजमहल से विदा हुए। सामंतों और दरबारियों के विशाल जुलूस ने उन्हें समुद्र-तट पर पहुंचाया; वहां से वे राजा के एक शाही जलपोत पर सवार हुए। हवा अनुकूल थी और वे सुरक्षित रैशू पहुंच गये। द्वीपवासी उनके स्वागत के लिए समुद्र-तट पर पहले से ही खड़े थे।

अकिनोसुके ने फौरन शासन संभाला। काम बहुत कठिन नहीं था। अपने शासन के पहले तीन वर्ष उसने कृषि-सुधार और कानून-निर्माण पर ध्यान दिया। उसे बड़े

विवेकी सलाहकार मिल थे, सो सब काम बहुत-सुगमता से होता गया। जब यह सब काम पूरा हो गया, तो उसके पास सिवा इसके कोई काम न रहा कि पुराने रीति-रिवाजों के अनुसार तरह-तरह के औपचारिक समारोहों में भाग लेता रहे। द्वीप इतना स्वास्थ्यवर्धक और सरसब्ज था कि वहां न कोई रोगी था, न भूखा। प्रजाजन बड़े ही भले थे और कभी कानून नहीं तोड़ते थे। अकिनोसुके तेईस वर्ष रैशू में रहा और उस पर शासन करता रहा और इस अरसे में उसके जीवन में दुःख या शोक का एक भी क्षण न आया।

परंतु उसके शासन के चौबीसवें वर्ष एक महान दुःखदायी घटना हुई। उसकी पत्नी राजकुमारी जिससे उसकी सात संतानें हुई थीं—पांच बेटे और दो बेटियां—बीमार पड़ी और चल बसी। उसे बड़ी शान के साथ एक सुंदर पहाड़ी पर दफनाया गया और वहां बहुत शानदार समाधि-मंदिर बनाया गया। परंतु पत्नी-वियोग से अकिनोसुके इतना शोकाकुल हो उठा कि उसे जीने में कोई रस न रह गया।

जब शोक की अवधि समाप्त हुई तो कोयो के राजमहल से एक शाही संदेशवाहक आ पहुंचा। उसने अकिनोसुके को समवेदना का संदेश दिया, फिर ये शब्द कहे:

'यह तोकोयो के महाराज का कृपापूर्ण आदेश है, जिसे मैं आपके समक्ष दुहरा रहा हूं ... अब हम तुम्हें तुम्हारे स्वजनों के बीच वापस भेज रहे हैं। तुम्हारे जो सात बच्चे हैं, वे राजा के दौहते-दोहतियां हैं, उनकी सही-सही देखभाल की जायेगी। उनके लिए तुम चिंतित मत होना।'

यह आज्ञा पाकर अकिनोसुके ने नम्रतापूर्वक विदाई की तैयारी की। जब सारा राजकीय कार्य निबट गया और सलाहकारों एवं राजकर्मचारियों ने विधिवत् उसे विदाई दे दी, बड़ी शान के साथ उसे बंदरगाह ले जाया गया। वह महाराज के भेजे हुए जहाज पर सवार हुआ। जहाज नीले आकाश के तले नीले समुद्र में चल पड़ा। कुछ समय बाद रैशू द्वीप नजरों से ओझल हो गया ... और तभी अकिनोसुके देवदारु के वृक्ष के नीचे अचानक उठ बैठा।

क्षण-भर वह चकित और भ्रमित-सा स्तब्ध बैठा रहा; मगर उसने देखा कि उसके दोनों मित्र बैठे मद्यपान करते हुए गपगोष्ठी में तल्लीन हैं। वह चकित दृष्टि से उन्हें देखता रहा, फिर ऊंची आवाज में बोल उठा—'कितना विचित्र!'

एक दोस्त इस पर हंसते हुए बोला—'अकिनोसुके, शायद तुम सपना देख रहे थे। तुमने क्या देखा अकिनोसुके? क्या चीज विचित्र थी?'

अकिनोसुके ने सारा सपना सुनाया—राजकुमारी से विवाह, कोयोतो राज्य में तेईस वर्ष रैशू द्वीप में शासन करना यदि सब कुछ। मित्रों को भी बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि अकिनोसुके चंद मिनट ही सोया था।

एक मित्र ने कहा:

सचमुच तुमने बड़ी विचित्र चीज देखी। हमने भी एक विचित्र चीज देखी। जब तुम सो रहे थे, एक पीली तितली दो-एक क्षण तुम्हारे मुखड़े के ऊपर पंख फड़फड़ाती रही। हम उसे देखते रहे। फिर वह तुम्हारे पास ही वृक्ष की जड़ के निकट जमीन पर जा बैठी। तभी एक मोटी—मोटी–चींटी बिल में से निकली और तितली को पकड़कर अपने बिल में घसीट ले गयी। जब तुम जगे, ठीक उसके पहले वही तितली को बिल में से वापस निकलते और तुम्हारे मुखड़े पर फिर से मंडराते देखा। उसके बाद वह गायब हो गयी, पता नहीं कहां चली गयी।'

'शायद वह अकिनोसुके की आत्मा थी,' दूसरा मित्र बोला—'निश्चय ही मुझे लगा कि मैंने उसे अकिनोसुके के मुंह में घुसते देखा है।..... मगर वह तितली अकिनोसुके की आत्मा ही रही हो तो भी इससे स्वप्न का स्पष्टीकरण नहीं होता।'

'शायद चींटियां स्पष्टीकरण दे सकें,' पहले मित्र ने कहा—'चींटियां अजीबोगरीब जीव होती हैं—शायद बेताल। ..... और यों भी देवदारु के नीचे चींटियों का बिल है।'

'चलो, देखें!' अकिनोसुके की उत्सुकता बढ़ गयी। वह एक खुरपी ले आया।

देवदारु के नीचे की सारी जमीन को चींटियों ने छेद डाला था और बहुत विशाल बस्ती बसा ली थी अपनी। उस बिल में चींटियों ने तिनके, मिट्टी आदि से अनेक घर-जैसी रचनाएं की थीं, जो एक विशाल शहर सा प्रतीत होती थीं। उस शहर के बीचो-बीच एक विशालतर रचना थी, जिसमें पीले पंखों और काले सिर वाली एक विशाल चींटी को चींटियों के झुंड ने घेर रखा था।

'यही तो है मेरे सपने में दिखा राजा!' अकिनोसुके बोल उठा—'और वह 'रहा कोयोतो का राजमहल!'..... कैसी अद्भुत बात! ..... रैशू भी यहीं कहीं दक्षिण पश्चिम में होना चाहिये, बड़ी जड़ के बायीं ओर!..... अरे हां, यहां देखो—यह है रैशू! कैसी अनोखी बात! मुझे अब यकीन हो गया है, मैं वह पहाड़ भी खोज लूंगा, जिस पर राजकुमारी दफनायी गयी थी।'

बिल के खंडहरों में अकिनोसुके खोजता रहा, खोजता रहा। अंत में मिट्टी की एक नन्ही ढेरी दिखाई दी, जिसकी चोटी पर एक नन्हा-सा कंकड़ रखा हुआ था—बौद्ध स्मारक के आकार का कंकड़। उसके नीचे उसे मिला—चिकनी मिट्टी के लेप से युक्त एक मादा चींटी का शव!

दो जापानी प्रेमगीत

यह मेरा दिल और क्षितिज पर का
जहाज मजे से तिरते लगते हैं,
जब कि दोनों में लदी हैं मुसीबतें।

ऐ फूल, अगर तुममें दिल है तो सुनो :
जब कोई शोकाकुल हो मेरी तरह
तुम खिलते क्यों हो?

[लैफकाडियो हर्न के 'शैडोइंग्स' से]



किस्सा ओ-तेई का

बहुत-बहुत पहले एचिजेन जिले के निइ-ताता कस्बे में नगाओ-चोसेइ नामक आदमी रहता था। नगाओ वैद्य का बेटा था और उसे अपने पिता के ही पेशे का प्रशिक्षण दिया जा रहा था। बचपन में ही उसकी सगाई ओ-तेई नामक लड़की से हो गयी थी, जो उसके पिता के एक मित्र की बेटी थी। दोनों परिवारों ने फैसला किया था कि नगाओ की पढ़ाई पूरी होते ही शादी कर दी जाये। मगर ओ-तेई का स्वास्थ्य बड़ा कच्चा निकला; पंद्रह साल की उम्र में उसे घातक तपेदिक हो गयी। जब उसे महसूस हो गया कि वह बचेगी नहीं तो उसने विदा लेने के लिए नगाओ को बुलवा भेजा। वह आया और उसके बिस्तर के पास घुटनों के बल बैठ गया। वह उससे बोली: 'नगाओ-सामा, मेरे मंगेतर! बचपन में हम एक दूसरे के लिए तय कर दिये गये थे और इस साल के अंत में हमारी शादी होने वाली थी। मगर अब मैं मरने वाली हूं। देवता जानते हैं कि हमारा कल्याण किसमें है। मगर मैं कुछ साल और जी पाती, तो भी तुम्हारे और दूसरों के लिए कष्ट और शोक का ही कारण होती। यह क्षीण शरीर लेकर मैं अच्छी पत्नी नहीं सिद्ध हो सकती। इसलिए तुम्हारी खातिर ही जीने की चाह भी बहुत स्वार्थपूर्ण चाह ही होगी। सो मैं मरने के लिए मन से तैयार हो गयी हूं; और मैं तुमसे यह वचन चाहती हूं कि तुम मेरे लिए शोक नहीं करोगे। ... इसके अलावा मैं तुम्हें बताना चाहती हूं कि मुझे लगता है, हम फिर से जरूर मिलेंगे।'

'निश्चय ही हम फिर से मिलेंगे।' नगाओ ने बड़ी भावना के साथ उत्तर दिया—'और उस पवित्र लोक में वियोग की पीड़ा नहीं होगी।'

'न—न,' ओ-तेई आहिस्ते-से बोली—'मेरा मतलब पवित्र लोक से नहीं है। मुझे विश्वास है कि इसी संसार में फिर से हमारी मुलाकात होकर रहेगी, हालांकि कल मैं दफना दी जाऊंगी।'

नगाओ ने विस्मय से भरकर उसे देखा और वह उसके विस्मय पर मुस्करा दी। वह अपनी मृदु स्वप्निल आवाज में कहती जा रही थी:

'हां, मेरा अभिप्राय है कि इसी संसार में तुम्हारे इसी जीवन में नगाओ-सामा। ..... हां, बशर्ते तुम्हें यह पसंद हो। अलबत्ता इसके लिए मुझे फिर से लड़की के रूप में जन्म लेना पड़ेगा और नारी बनना पड़ेगा। सो तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, सोलह या सत्रह साल ..... बड़ा लंबा समय होता है यह। मगर मेरे मंगेतर पति, अभी तो तुम निरे उन्नीस बरस के हो।'.....

मृत्यु के क्षणों में उसे तसल्ली देने के लिए नगाओ ने बड़ी मृदुता से उत्तर दिया—'तुम्हारी प्रतीक्षा करना मेरा आनंदमय कर्तव्य होगा। हम सात जन्मों के लिए एक दूसरे के मंगेतर हैं।'

'पर तुम्हें शक है?' वह उसका चेहरा ध्यान से देखती हुई बोली।

'मगर प्यारी, मैं तो इस पर शक कर रहा हूं कि दूसरे शरीर में दूसरे नाम से तुम्हें मैं पहचान भी पाऊंगा या नहीं! तुम कोई चिह्न या लक्षण बता जाओ तो और बात है।' नगाओ ने उत्तर दिया।

'वह तो मैं नहीं कर सकती', वह बोली—'केवल देवताओं और बुद्ध को मालूम है कि कहां पर और कब हमारी मुलाकात होगी। मगर मुझे पूरा-पूरा भरोसा है कि अगर तुम मुझे अपनाने के अनिच्छुक न हुए तो मैं जरूर तुम्हारे पास वापस आ सकूंगी।.... मेरे इन शब्दों को याद रखना।'

उसने बोलना बंद कर दिया और उसकी आंखें मुंद गयीं। वह मर चुकी थी।

× × ×

नगाओ सचमुच ओ-तेई से प्यार करता था और उसका शोक बहुत गहरा था। उसने ओ-तेई का स्मृति-फलक बनवाया और उस पर उसका घरेलू नाम अंकित करवाया और फलक को अपने घर पूजागृह में रख दिया। मरने से पहले ओ-तेई ने उससे जो अजीब बातें कहीं थीं, वह अक्सर उनके बारे में सोचा करता था और उसकी आत्मा की प्रसन्नता के लिए उसने एक कागज पर यह प्रतिज्ञा लिख डाली कि अगर तुम दूसरे शरीर में वापस मेरे पास आओगी, तो मैं तुमसे अवश्य विवाह करूंगा। इस लिखित प्रतिज्ञा पर उसने अपनी मुहर लगायी और उसे भी पूजागृह में स्मृति-फलक के पास रख दिया।

मगर नगाओ अपने माता-पिता का इकलौता बेटा था। सो यह जरूरी था कि वह विवाह करे। शीघ्र ही उसे अपने परिवार की इच्छा के आगे झुकना और अपने पिता की पसंद की एक लड़की को पत्नी के रूप में स्वीकार करना पड़ा। विवाह के बाद भी वह ओ-तेई के स्मृति-फलक के सामने नैवेद्य चढ़ाता रहा और उसे प्यार से याद करता रहा। परंतु धीरे-धीरे ओ-तेई का मुखड़ा उसकी स्मृति में धुंधला पड़ता गया—जैसे कोई पुराना सपना हो जिसे याद करना कठिन होता है। और साल बीतते रहे।

उन वर्षों में उस पर कई दुर्भाग्य बरपा हुए। उसके माता-पिता चल बसे। फिर उसकी पत्नी और इकलौते बच्चे की भी मृत्यु हो गयीं। अब वह दुनिया में एकाकी रह गया था। वह अपना वीरान घर छोड़कर लंबी यात्रा पर निकल पड़ा कि इस तरह अपना गम गलत करूंगा।

यात्रा करते-करते एक दिन वह इकाओ पहुंचा, जो एक पहाड़ी गांव है और अपने गरम पानी के चश्मों के लिए अभी तक प्रसिद्ध है—प्राकृतिक दृश्यावली के लिए भी। गांव की जिस सराय में वह ठहरा, वहां एक किशोरी उसकी सेवा करने हाजिर हुई और

पहली नजर उसे देखते ही नगाओ का कलेजा जैसे उछल पड़ा। वह किशोरी ओ-तेई से इस कदर मिलती-जुलती थी कि नगाओ ने अपने चिकोटी काटी, यह जानने को कि कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रहा है। कमरे में अंगीठी और भोजन लाते, बिस्तर बिछाते और दूसरे काम करते उसकी हर भाव-भंगिमा और चाल नगाओ के मन में उसी किशोरी की सुकुमार स्मृतियां जगा रही थी, जो बचपन में उसकी मंगेतर थी। वह जब बोला तो वह भी मृदु और स्फुट आवाज में बोली और उस आवाज की मधुरता ने उसे बीते दिनों की मधुरता से उदास बना दिया।

तब अत्यंत आश्चर्य से उसने उस लड़की से प्रश्न किया :

'बहन, तुम एक लड़की से जिसे मैं बहुत पहले जानता था, इस कदर मिलती हो कि तुम जब पहली बार कमरे में आयीं तो मैं चौंक उठा था। इसलिए इस प्रश्न के लिए मुझे माफ करो—तुम कहां की रहने वाली हो और तुम्हारा नाम क्या है ?'

तुरंत—और मृत मंगेतर की अनभूली आवाज में—वह बोली :

'मेरा नाम ओ-तोई है और तुम इचिगो के नगाओ चोसेई हो। सत्रह साल पहले मैं निइगाता में मरी, तब तुमने यह लिखित प्रतिज्ञा की थी कि अगर मैं फिर नारीदेह में वापस आ सकूं तो तुम मुझसे विवाह करोगे, और तुमने उस लिखित प्रतिज्ञा पर अपनी मुहर लगाकर उसे मेरे नाम से अंकित स्मृति-फलक के साथ पूजागृह में रखा था। इसीलिए मैं वापस आयी हूं।'...

ये शब्द समाप्त होने के साथ वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

नगाओ ने उससे विवाह कर लिया और उनका दांपत्य सुखमय रहा। न तो नगाओ फिर कभी याद कर सका कि इकाओ में उसने अपनी पत्नी से क्या कहा था और न उसकी पत्नी कभी पूर्वजन्म को फिर याद कर सकी। पुनर्जन्म की वह याद जो रहस्यमय ढंग से मिलन के उस क्षण में जाग उठी थी, फिर से विलीन हो गयी और विलीन ही रही।

फूल है यह ? ....तितली है यह ?
तितली कि फूल ?

दोन्-दोन्

जब तुम झिलमिलाते आते हो—मैं बहक जाता हूं
जब तुम टिमटिमाते आते हो—मैं बहक जाता हूं।

ताइक्कोकाने
साकने दोन्-दोन्

[इचिगो प्रांत का एक प्रेमगीत—लैफकाडियो हर्न कृत अनुवाद पर से]

युकी ओन्ना

मुसाशी प्रांत के एक गांव में दो लकड़हारे रहते थे–मोसाकु और मिनोकिची। जब की यह बात है, तब मोसाकु बूढ़ा हो चुका था और मिनोकिची जो उसका सहायक था, अठारह साल का तरुण था। प्रतिदिन वे लकड़ी काटने अपने गांव से पांच मील दूर एक जंगल में पहुंचते। जंगल के रास्ते में उन्हें एक चौड़ी नदी किश्ती से पार करनी पड़ती थी। बार-बार वहां पुल बांधा जाता और बार-बार बाढ़ उसे बहा ले जाती थी। जब नदी बौरा जाती, कोई पुल उसके सामने टिक नहीं पाता था।

एक सांझ को जब बहुत सख्त सर्दी पड़ रही थी और मोसाकु और मिनोकिची घर लौट रहे थे, एकाएक बर्फीला तूफान आ गया। वे किसी तरह नदी तक पहुंचे; मगर उन्होंने देखा कि मल्लाह अपनी किश्ती नदी-किनारे छोड़कर चला गया है। तैरकर नदी पार करने लायक दिन वह था नहीं। वे दोनों लकड़हारे मल्लाह की सूनी झोपड़ी में जा दुबके। यह आश्रय मिल गया, यह भी कम किस्मत की बात न लगी उन्हें। झोपड़ी में कोई अंगीठी नहीं थी, न चूल्हा ही था। बहुत ही तंग झोपड़ी थी वह–दो चटाइयों जितनी बड़ी और सिर्फ एक दरवाजे वाली। मोसाकु और मिनोकिची दरवाजा बंद करके अपनी घास की बरसातियां ओढ़कर फर्श पर ही लेटकर आराम करने। उस समय उन्हें बहुत ज्यादा ठंड नहीं महसूस हो रही थी और उन्हें आशा थी कि तूफान जल्दी ही थम जायेगा।

बूढ़े को तो लगभग लेटते ही नींद आ गयी। लेकिन युवा मिनोकिची देर तक जागा रहा और हवा की भयंकर हा-हू और दरवाजे पर बर्फ के गिरने की आवाजें सुनता रहा। नदी हाहाकार कर रही थी और झोपड़ी ऐसे हिल-डुल रही थी, जैसे समुद्र में डोंगी हिल रही हो। भयंकर तूफान था वह, और हवा प्रतिक्षण अधिकाधिक सर्द होती जा रही थी। मिनोकिची अपनी बरसाती के नीचे ठंड से कांप रहा था बुरी तरह। मगर अंततः उसे भी नींद आ ही गयी बावजूद उस ठंड के।

फिर मुंह पर बर्फ पड़ने से वह जाग पड़ा। झोपड़ी का दरवाजा बरबस खुल गया था। बर्फ की धुंधली रोशनी में उसने एक औरत को कमरे में देखा–औरत जो एकदम सफेद थी। वह मोसाकु पर झुकी हुई थी और उस पर उसांसें छोड़ रही थी–और उसकी उसांस उजली बर्फ की मानिंद थी। ठीक उसी क्षण वह मिनोकिची की ओर मुड़ी और उस पर झुकी। मिनोकिची ने चिल्लाने की पूरी कोशिश की, मगर पाया कि उसके गले से आवाज नहीं निकलती। सफेद औरत उस पर और झुकी, यहां तक कि उसका चेहरा मिनोकिची के

...को लगभग छू गया; और मिनोकिच्ची ने देखा कि वह अत्यंत सुंदर है, हालांकि उसकी आंखों से उसे डर-सा लग रहा था। कुछ देर तक वह मिनोकिच्ची को देखती रही, फिर मुस्करायीं और फुसफुसाहट में बोली-'मैं तुम्हारे साथ भी यही सलूक करना चाहती थी, जो इस दूसरे आदमी के साथ मैंने किया है। मगर मुझे तुम पर तरस आ रहा है, क्योंकि तुम इतने कमउम्र हो। तुम बड़े सुंदर किशोर हो मिनोकिची! मैं तुम्हें इस समय कष्ट नहीं दूंगी। लेकिन अगर तुमने आज यहां देखी बात किसी को भी बतायी-भले वह तुम्हारी मां हो-तो मुझे उसकी खबर मिल जायेगी, और तब मैं तुम्हें जान से मार डालूंगी, समझे? याद रखना मेरी यह बात।'

इन शब्दों के साथ वह उससे परे हट गयी और दरवाजे में से बाहर चली गयी। तब मिनोकिची उछलकर बैठ गया और उसने बाहर झांका। मगर वह औरत तो कहीं भी नजर नहीं आ रही थी। बर्फ तेज वेग से कमरे में घुसी आ रही थी। वह सोचने लगा कि क्या दरवाजा हवा के जोर से खुल गया था? या कहीं वह सपना तो नहीं देख रहा था और कहीं दरवाजे में से आती उजली बर्फ को ही उसने औरत नहीं समझ बैठा था? तय कर पाना कठिन था। उसने मोसाकु को आवाज दी और उसे बहुत डर लगा, क्योंकि बूढ़े ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने अंधेरे में ही हाथ बढ़ाकर मोसाकु का मुखड़ा छुआ। वह बर्फ की मानिंद ठंडा था-एकदम निष्प्राण।

सुबह होने तक तूफान थम चुका था। सूर्योदय के कुछ समय बाद मल्लाह लौट आया। उसने बेहोश मिनोकिच्ची को मरे हुए मोसाकु की बगल में लेटा हुआ पाया। तुरंत उसने मिनोकिची की देखभाल शुरू की, जिससे चंद मिनट में वह होश में आ गया। मगर उस रात की भयानक ठंड के असर से वह बहुत दिनों तक बीमार रहा। बूढ़े की मृत्यु से वह बुरी तरह डर भी गया था। मगर उसने उस सफेद औरत के दर्शन के बारे में किसी से कुछ भी न कहा। स्वस्थ होने पर वह फिर अपने काम में लग गया। सुबह वह जंगल में जाता और शाम को लकड़ियों का गट्ठर लादे घर लौटता, जिसे अगले दिन उसकी मां बेच आती थी।

अगले साल एक शाम को मिनोकिच्ची जब उसी रास्ते से घर लौट रहा था, उसे उसी राह से जाती हुई एक लड़की दिखाई दी। वह तेजी से आगे बढ़कर लड़की के बराबर हो गया। वह लंबी छरहरी लड़की थी, देखने में बहुत ही खूबसूरत। मिनोकिच्ची की नमस्ते का उत्तर उसने गायक पंछियों की आवाज से भी अधिक मीठी आवाज में दिया। मिनोकिच्ची उसके संग-संग चलने लगा और उन दोनों में बातचीत होने लगी। लड़की ने अपना नाम ओ-सुकी बताया और यह भी कि उसके माता-पिता दोनों मर चुके हैं और वह येदो जा रही है। वहां उसके कुछ रिश्तेदार हैं। उन लोगों की भी हालत तो अच्छी नहीं है, पर शायद वे



चित्र : तोयोकुनी

उसे कहीं नौकरानी का काम दिलवा सकें।

मिनोकिची शीघ्र ही लड़की पर मुग्ध हो गया। वह उसे जितना ही देखता, वह उसे उतनी ही खूबसूरत नजर आती। उसने लड़की से पूछा कि क्या तुम्हारी मंगनी हो चुकी है? वह हंसकर बोली कि वह स्वतंत्र है। अब लड़की ने भी मिनोचिकी से सवाल किया कि क्या तुम विवाहित हो या क्या तुम्हारी मंगनी हो चुकी है? मिनोकिची ने बताया कि यद्यपि उस पर केवल उसकी मां के भरण-पोषण का भार है, फिर भी उसके लिए बहूरानी लाने की बात अभी सोची नहीं गयी है, क्योंकि अभी तो उसकी उम्र बहुत कम है।.... ये आपसी रहस्य एक दूसरे को बताने के बाद वे बड़ी देर तक चुपचाप साथ चलते रहे। मगर कहावत है न कि जब बताने की इच्छा होती है तो आंखें ही बहुत कुछ बता देती हैं।

जब तक वे दोनों गांव पहुंचे, एक दूसरे को बहुत पसंद करने लगे थे। मिनोकिची ने ओ-युकी से आग्रह किया कि हमारे घर ठहरकर आराम करो। शुरू में तो ओ-युकी झिझकी, मगर अंत में उसके साथ उसके घर गयी। मिनोकिची की मां ने उसका स्वागत किया और उसके लिए भी गरम भोजन तैयार किया। ओ-युकी का व्यवहार इतना अच्छा था कि मिनोकिची की मां को वह बहुत ही भा गयी। मां ने उससे कहा कि कुछ दिन यहीं ठहरो, येदो जाने की ऐसी जल्दी भी क्या है? अंततः हुआ यह कि ओ-युकी कभी येदो गयी ही नहीं और बहूरानी बनकर उसी घर में रह गयी।

ओ-युकी बड़ी ही अच्छी बहू निकली। पांच बरस बाद जब मिनोकिची की मां की मृत्युघड़ी आ पहुंची, वह अपने बेटे के सामने बहू के गुण गाते-गाते मरी। और ओ-युकी ने मिनोकिची के दस बच्चे जने—उसके सब बेटे-बेटियां बहुत ही सुंदर और गोरे थे।

गांव के लोग ओ-युकी को गजब की औरत मानते थे—अन्य लोगों से बहुत भिन्न। गांव की औरतें बहुत जल्दी ही ढल जाती थीं; मगर ओ-युकी थी कि दस बच्चों की मां बन जाने पर भी बिलकुल उसी तरह

ताजी थी, जैसी उस दिन थी जब वह पहली बार उस गांव आयी।

एक रात जब बच्चे सो चुके थे, ओ-युकी कंदील की रोशनी में कपड़े सीती हुई बैठी थी और मिनोकिची उसी को देख रहा था। वह बोला :

'तुम्हें कपड़े सीते हुए और तुम्हारे मुंह पर रोशनी पड़ते देखकर मुझे एक घटना याद आ रही है, जो तब हुई थी जब मैं अठारह साल का था। मैंने एक लड़की देखी थी, जो बिलकुल तुम्हारे जैसी ही सुंदर और गोरी थी—असल में वह तुमसे बहुत मिलती थी शक्ल में।'

सिलाई पर से नजरें उठाये बिना ही ओ-युकी बोली—'मुझे उसके बारे में बताओ। तुमने उसे कहां देखा था?'

तब मिनोकिची ने मल्लाह की झोपड़ी में बितायी उस भीषण रात का हाल सुनाया और बताया कि किस तरह वह सफेद औरत उस पर झुककर मुस्करायी और फुसफुसायी थी और किस तरह बूढ़े मोसाकु ने चुपचाप दम तोड़ दिया था। फिर वह बोला :

'चाहे सोते में या जागते में बस वही एक समय था जब मैंने तुम्हारे जितनी सुंदर स्त्री देखी। बेशक वह इन्सान नहीं थी और उससे मुझे डर भी बहुत लगा था—पर वह कितनी सुंदर थी! असल में तो मैं आज तक तय नहीं कर पा रहा हूं कि मैंने सपना देखा था, या सचमुच हिमकन्या देखी थी।'

ओ-युकी सिलाई का कपड़ा नीचे पटक-

क्या सखि ? ... ना सखि !

[शिनामो प्रांत का एक हास्य गीत]

पर्वत की छाया में
चमक क्या रहा है—
चंदा कि तारा कि जुगनू ?
न चंदा न तारा
न जुगनू ही प्यारा
वह है बुढ़िया की आंख
मेरी सासू की आंख।
(कोरस) इसकी सासू की आंख !

—'शैडोइंग्स' से

कर उठी और मिनोकिची पर झुककर उसके मुंह के पास मुंह ले जाकर चीख उठी :

'वह मैं थी—मैं-मैं! वह हिमकन्या ही थी। और मैंने उस वक्त तुमसे कहा था कि अगर तुमने उस घटना के बारे में एक भी शब्द मुंह से निकाला, तो मैं तुम्हें मार डालूंगी। अगर यहां सो रहे इन मासूम बच्चों का मुझे खयाल न होता तो मैं इसी क्षण तुम्हें मार डालती। और अब तुम इनकी बहुत अच्छी तरह देखभाल करना। अगर उन्हें कभी तुम्हारे बारे में कोई शिकायत करने का मौका तुमने दिया तो फिर तुम्हें बख्शूंगी नहीं।'

चीखते हुए ही उसकी आवाज क्षीण होती गयी और वह पिघलकर सफेद धुंध बन गयी। धुंध छत की धरन की ओर उठी और चिमनी में से होती हुई बाहर निकल गयी। ओ-युकी को इसके बाद फिर किसी ने नहीं देखा।

कनकटा होइची

सात सौ साल से भी पहले शिमोनोसेकी जल-उमरू-मध्य में दान-नो-उरा में हेइकी या ताइरा कबीले और गेंजी या मिनामोतो कबीले की लंबी लड़ाई का आखिरी मोर्चा लड़ा गया था। उसमें हेइकी पूरी तरह नेस्तनाबूद हो गये—उनके बाल-बच्चे और उनका शिशु-सम्राट जो अब 'अतोकु तेन्नो' के नाम से याद किया जाता है, सभी खत्म हो गये। वह समुद्र और उसका तट पिछले सात सौ साल से भूतों का डेरा बना हुआ है। वहां अजीबोगरीब केकड़े मिलते हैं, जिन्हें 'हेइकी केकड़े' कहा जाता है और कहते हैं कि उनमें हेइकी योद्धाओं की आत्माएं बसती हैं। अंधेरी रातों में उस तट पर हजारों भुतही ज्वालाएं मंडराया करती हैं या लहरों पर नाचा करती हैं। स्थानीय मछुए उन्हें 'ओनी-बी' यानी प्रेत-ज्वालाएं कहा करते हैं।

पुराने समय में हेइकी प्रेत आज की अपेक्षा ज्यादा अशांत रहते थे। वे रात को उधर से गुजरते जहाजों के गिर्द आ जुटते और उन्हें डुबाने की कोशिश करते। और हमेशा ही उनकी नजरें समुद्र-स्नान करने वाले तैराकों पर लगी रहतीं, ताकि उन्हें घसीटकर तली में ले जा सकें। उन मृत आत्माओं को संतुष्ट करने के लिए ही अमिदाजी का बौद्ध मंदिर अकमागासेकी में बनाया गया। तट के पास ही एक कब्रिस्तान भी बनाया और डूबे सम्राट और उसके महान सामंतों की समाधियां वहां बनायी गयीं और उन पर स्मृति-फलक भी खुदवाये गये। मृत आत्माओं की शांति के लिए वहां बार-बार पूजा की जाती थी। तब से हेइकी का उत्पात पहले से तो कम हो गया; मगर आज भी वे जब-तब अजीब हरकतें कर बैठते हैं, जो यह सिद्ध करता है कि उन्हें अभी पूरी तरह शांति नहीं मिली है।

× × ×

कई सदी पहले अकमागासेकी में एक अंधा आदमी रहता था होइची नाम का, जो गाथाएं गाने और बिवा वाद्य बजाने की निपुणता के लिए मशहूर था। बचपन से ही उसे गाथाएं गाने और अभिनय करने की शिक्षा दी गयी थी। और बचपन में ही वह इन चीजों में अपने गुरुओं से भी आगे निकल गया था। मुख्यतः हेइकी और गेंजी के युद्ध की गाथा गाने वाले के रूप में तो उसका बहुत ही नाम था और कहा जाता है कि जब वह दान-नो-उरा के युद्ध की गाथाएं गाता था तो भूतों की आंखों से भी बरबस आंसू टपकने लगते थे।

आरंभ में होइची बड़ा गरीब था। मगर उसे एक मददगार मित्र मिल गया। अमिदाजी मंदिर का महंत काव्य और संगीत का

बड़ा प्रेमी था। वह अक्सर होइची को गाने-बजाने के लिए मंदिर बुलवाता था। लड़के की प्रतिभा से प्रभावित होकर बाद में उसने होइची से कहा कि तुम यहीं पर रहा करो। लड़का बड़ी कृतज्ञता से राजी हो गया। उसे मंदिर में एक कोठरी दे दी गयी, मंदिर से ही उसे खाना भी मिलता था। इसके एवज में किसी-किसी शाम को गाथाएं गाना और बिवा बजाना पड़ता—मगर तभी जब उसका और कहीं गाने-बजाने का कार्य-क्रम न हो।

गरमियों की एक सांझ को महंत को मुहल्ले के किसी मृतक के घर संस्कार संपन्न कराने के लिए बुलाया गया था और वह अकेले होइची को मंदिर में छोड़ अपने चेले के साथ वहां चला गया था। बड़ी उमस-भरी रात थी और होइची अपनी सोने की कोठरी के सामने बरामदे में बैठा हुआ था, ताकि कुछ ठंडक मिले। बरामदे के बाद अमिदाजी के मंदिर के पिछवाड़े की फुलवारी थी। महंत की प्रतीक्षा करता हुआ होइची अकेलेपन की ऊब मिटाने के लिए बिवा पर रियाज कर रहा था। आधी रात गुजर गयी; मगर महंत नहीं आया। मगर अभी भी उमस इतनी थी कि कमरे के भीतर आराम न महसूस होता था, सो होइची बाहर ही बैठा रहा। आखिरकार उसे पिछवाड़े के दरवाजे की ओर से आती हुई पदचाप सुनाई दी। किसी ने फुलवाड़ी पार की, बरामदे की ओर आया और ठीक उसके सामने खड़ा हो गया। मगर महंत नहीं था

११७१

यह। एक गहरी आवाज ने एकाएक और बिना अभिवादन आदि शिष्टाचार के अंधे का नाम पुकारा, जैसे कि कोई सामुराई किसी छोटे आदमी को बुला रहा हो :

'होइची !'

होइची एकदम चौंक पड़ा, और फौरन उत्तर न दे पाया। आवाज ने फिर से पुकारा कठोर आज्ञा के स्वर में :

'होइची !'

'हां,' अंधे ने उत्तर दिया। आवाज में भरी धमकी से डर गया था वह। 'मैं अंधा हूं, मैं जान नहीं सकता कि कौन बुला रहा है।'

'डरने की कोई बात नहीं', अजनबी ने आवाज को मृदु बनाते हुए कहा—'मैं मंदिर के पास ही ठहरा हुआ हूं और एक संदेश देने के लिए मुझे तुम्हारे पास भेजा गया हूं। मेरे वर्तमान मालिक, जो बहुत ही उच्च पद पर आसीन हैं, फिलहाल अकमागासेकी में ठहरे हुए हैं—अनेक कुलीन सामंतों के साथ। वे दान-नो-उरा के युद्ध का स्थल देखना चाहते थे। और आज उन्होंने वह स्थान देखा। उन्होंने सुना कि तुम युद्ध की गाथा बहुत ही बढ़िया सुनाते हो, और वे उसे सुनना चाहते हैं। सो तुम्हें इसी समय अपना बिवा लेकर मेरे साथ उस हवेली में जाना है, जहां शाही मंडली तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी है।'

यह वह जमाना था जब सामुराई की आज्ञा का यों ही उल्लंघन नहीं किया जा सकता था। होइची ने चप्पलें पहनीं, अपना बिवा उठाया और अजनबी के साथ रवाना हो गया। अजनबी बड़ी दक्षता से उसे राह

दिखा रहा था, मगर उसे बहुत तेज चलना पड़ रहा था। उसने फौलादी हाथों से होइची का हाथ पकड़ रखा था और जब वह चलता तो लोहे की खनक होती, जिससे पता चलता कि वह पूरी तरह शस्त्रों से सज्जित है। शायद वह किसी हवेली का रक्षक था। होइची का शुरू का डर जाता रहा था और वह अपने सौभाग्य की कल्पना करने लगा। क्या अजनबी ने नहीं कहा था कि उसका मालिक अत्यंत उच्च पदस्थ है; सो वह राज्यपाल से तो कम क्या ही होगा। थोड़ी देर में अजनबी रुक गया और होइची ने महसूस किया कि वे लोग एक विशाल फाटक पर पहुंचे हैं। उसे आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसे तो याद नहीं पड़ता था कि शहर के इस भाग में अमिदाजी के मंदिर के मुख्य-द्वार के सिवा कोई बड़ा फाटक हो।

'काइमोन!' सामुराई ने आवाज दी और अरगला हटाने की आवाज हुई। फिर वे दोनों अंदर प्रविष्ट हुए। एक बगीचा पार करके वे फिर एक और प्रवेश-द्वार पर रुके और सामुराई ने चिल्लाकर कहा–'कोई है? .... मैं होइची को ले आया हूं।' तब एक साथ तेजी से आते कदमों की आहट, सरकाये जाते परदों और खुलते दरवाजों की आवाजें सुनाई दीं और औरतों के बात करने की आवाजें भी। उन औरतों की भाषा से होइची जान गया कि वे किसी बड़े घराने की नौकरानियां हैं। मगर वह कल्पना नहीं कर पाया कि यह कौन-सी जगह है, जहां उसे लाया गया है। उसे सोचने के लिए वक्त भी नहीं मिला। उसे सहारा देकर पत्थर की कई सीढ़ियां चढ़ाया गया और अंतिम सीढ़ी पर उसकी चप्पलें उतरवा दी गयीं। इसके बाद एक औरत ने हाथ पकड़कर उसे लकड़ी के चिकने तख्तों के अंतहीन फर्श को पार कराते हुए और अनगिनत खंभों का चक्कर कटवाते हुए चटाइयों की आश्चर्यजनक चौड़ाइयों के पार एक विशाल कक्ष के मध्य में ले जाकर खड़ा कर दिया। होइची को लगा कि बहुत सारे बड़े आदमी वहां जमा हैं; रेशमी वस्त्रों की सरसर आवाज जंगल में पत्तों की मर्मर ध्वनि की मानिंद थी। दबी जबान से लोगों के बात करने की गुंजार भी उसे सुनाई दे रही थी–और बातें दरबारी भाषा में की जा रही थीं।

होइची से कहा गया कि बिलकुल भी घबराओ नहीं। उसने पाया कि उसके बैठने के लिए पहले से ही गद्दा बिछा हुआ है। वह उस पर बैठ गया और उसने बिवा के सुर मिलाये। तब एक स्त्री कंठ ने, जो वहां की प्रधान प्रबंधकर्त्री का रहा होगा, उसे लक्ष्य करके कहा:

'अब आदेश है कि बिवा की संगत के साथ हेइके का इतिहास गाया जाये।'

यह गाथा इतनी लंबी थी कि उसे पूरा गाने के लिए कई रातें जरूरी थीं; इसलिए होइची ने पूछने की हिम्मत की:

'पूरी कथा तो थोड़े समय में सुनाई जा नहीं सकती, इसलिए उसका कौन-सा हिस्सा दरबार को सुनना है, जिसे मैं गाऊं?'

श्रीकंठ ने उत्तर दिया :

'दान-नो-उरा के युद्ध की कथा सुनाओ, क्योंकि करुण-रस वहां सबसे घनीभूत है।'

तब होइची ने उच्च स्वर से उस समुद्री युद्ध का वर्णन गाया। वह बिवा से तरह-तरह की ध्वनियां पैदा कर रहा था—जैसे मानो चल रहे हों, जहाज तेजी से एक दूसरे की बगल से गुजर रहे हों, तीर सनसनाते हुए हवा में उड़ रहे हों, आदमी चीख-चिल्ला रहे हों और कुचले जा रहे हों, लोहे के शिरस्त्राणों पर तलवारें खनाखन बज रही हों, मरे हुए सैनिक पानी में छप्-से गिर रहे हों। और बिवा बजाते-बजाते बीच में वह अपने दायें-बायें लोगों को फुसफुसाते सुन रहा था—'क्या कमाल का कलाकार है!' —'अपने प्रांत में तो इस जैसा बिवा-वादन नहीं सुना कभी!' ..... 'सारे साम्राज्य में होइची के मुकाबले का दूसरा गायक नहीं।' इससे उसे और जोश आया, वह पहले से भी बढ़िया गाने और बजाने लगा। उसके आस-पास श्रोताओं का विस्मय-भरा सन्नाटा और गहरा हो गया। और जब अंत में वह स्त्रियों और बच्चों के दर्दनाक अंत और शिशु-सम्राट् को गोद में लिये निई-नो-अमा के समुद्र में कूद पड़ने का प्रकरण गा रहा था, तब तमाम श्रोताओं के मुंह से लंबी और कंपन-भरी कराहें निकलीं, जिसके बाद वे लोग इतने जोर से और बेकली से रोने लगे कि अंधे होइची को अपने ही जगाये इस शोक से भय लगने लगा। बड़ी देर तक रोना-सिसकना जारी रहा। अंततः क्रंदन थमा और एक बार फिर सन्नाटा छा गया।

होइची को उस औरत की आवाज फिर से सुनाई दी, जिसे उसने प्रधान प्रबंधकर्त्री समझा था। वह बोली :

'वैसे हमें बताया तो गया था कि तुम बड़े निपुण बिवा-वादक हो और गाथाएं सुनाने में बेजोड़ हो। मगर हमने कल्पना नहीं की थी कि कोई इतना भी कुशल हो सकता है। हमारे अन्नदाता ने प्रसन्न होकर कहा है कि वे तुम्हें तुम्हारे अनुरूप पुरस्कार देंगे। मगर उनकी इच्छा है कि तुम अगली छह रातें भी उनके समक्ष गाओ-बजाओ, जिसके बाद शायद वे यहां से प्रस्थान कर देंगे। सो कल रात को इसी वक्त तुम्हें यहां आना है। जो सेवक आज तुम्हें यहां लाया, वही तुम्हारे पास भेजा जायेगा। .... मुझे आदेश है कि एक और बात तुम्हें सूचित कर दूं। तुम यहां आने के बारे में किसी को भी नहीं बताओगे, जब तक कि हमारे अन्नदाता यहां अकमागासेकी में उपस्थित हैं। वे चूंकि अज्ञात रूप से यात्रा कर रहे हैं, उनका आदेश है कि इन बातों का बिलकुल भी जिक्र न किया जाये। ...... अब तुम्हें अपने मंदिर लौट जाने की छूट है।'

जब होइची विधिवत् धन्यवाद व्यक्त कर चुका, तो एक स्त्री ने हाथ पकड़कर उसे महल के दरवाजे पर पहुंचाया। वहां वही सेवक खड़ा था, जो उसे मंदिर से बुलाकर लाया था और उसने होइची को मंदिर के पीछे के द्वार से बरामदे में पहुंचाकर उससे विदा ली।

होइची के लौटने तक लगभग सवेरा हो चला था। मगर मंदिर से उसकी गैरहाजिरी का किसी को पता न चला था। महंत रात को बहुत देर गये वापस आया था और उसने सोचा था कि होइची सो गया होगा। दिन में होइची ने कुछ आराम किया, मगर रात की बात के बारे में किसी को कुछ न बताया। उस दिन भी ठीक आधी रात को फिर वही

होइची कब्रिस्तान में बारिश में भीगता हुआ बिवा बजाते हुए गा रहा था।

सामुराई आया और उसे उसी भव्य सभा में ले गया। वहां होइची ने फिर उसी तरह कमाल का गाया। मगर उस रात मंदिर में उसकी गैरहाजिरी किसी तरह लोगों पर प्रकट हो गयी और सवेरे वापस लौटने पर उसे महंत के सामने पेश होना पड़ा। महंत ने दोस्ताना ढंग से उसे झिड़का :

'दोस्त होइची, हम तुम्हारे बारे में बहुत चिंतित रहे। बिना आंखों के इतनी रात गये अकेले बाहर जाना खतरनाक है। हम साथ कोई सेवक भेज देते। और तुम गये कहां थे ?'

होइची ने गोल-मोल उत्तर दिया :

'मित्रवर, क्षमा करें ! मुझे कुछ निजी काम निबटाना था, जो दूसरे किसी समय संभव नहीं था।'

होइची की चुप्पी से महंत को आश्चर्य हुआ, अफसोस भी। उसे यह कुछ अस्वाभाविक जान पड़ा और उसे लगा कि जरूर कुछ गड़बड़ है। उसे शक हुआ कि अंधे होइची को किसी चुड़ैल या भूत ने पकड़ लिया है। उसने उससे और कुछ तो नहीं पूछा, मगर मंदिर के नौकरों को आदेश दिया कि वे उसकी हरकतों पर नजर रखें और अंधेरा होने के बाद अगर वह मंदिर से बाहर निकले तो उसका पीछा करें।

उसी दिन रात होइची को मंदिर से बाहर जाते देख लिया गया। नौकरों ने चटपटा लालटेन जलायी और उसका पीछा करना शुरू किया। मगर उस रात पानी बरस रहा था और घुप्प अंधेरा था और मंदिर के लोग

सड़क तक पहुंचें, इससे पहले होइची गायब हो चुका था। स्पष्ट ही वह बहुत तेजी से चला होगा, जोकि उसके अंधेपन को देखते हुए विचित्र बात थी, क्योंकि सड़क बहुत बुरी हालत में थी।

मंदिर के सेवक गलियों में उसे खोजते रहे और जिन घरों में उसका आना-जाना था, वहां पूछताछ करते रहे। मगर कोई खबर नहीं मिली। अंत में जब वे समुद्र-तट के रास्ते मंदिर लौट रहे थे, तो वे अमिदाजी के कब्रिस्तान में बड़े आवेश के साथ बिवा बजाये जाने की आवाज सुनकर चौंक पड़े। उस ओर एकदम ही अंधकार था। बस, कहीं-कहीं कोई भुतही लौ मंडरा रही थी। फिर भी वे कब्रिस्तान की ओर लपके। वहां उन्होंने अपनी लालटेनों की मदद से होइची को खोज निकाला—वह उस बारिश में अंतोकु तेन्नो की समाधि पर अकेला बैठा हुआ था और बिवा की संगत पर बुलंद आवाज में दान-नो-उरा के युद्ध की गाथा गा रहा था। उसके आगे, पीछे और सब ओर समाधियों पर मृतकों की लौएं मोमबत्ती की तरह जल रही थीं। मर्त्य-मानवों ने इतनी बड़ी संख्या में इन रोशनियों को कभी न देखा होगा।

'होइची-सान!..... होइची-सान!' वे नौकर चिल्लाये—'तुम भूतों के चंगुल में फंस गये हो!'

मगर अंधा जैसे कुछ नहीं सुन रहा था। वह बड़े आवेश के साथ बिवा पर झंकार पैदा करता रहा और सुर बदल-बदलकर गाथा गाता रहा। नौकरों ने उसे पकड़ लिया और उसके कानों में चिल्लाकर कहा:

'होइची-सान! होइची-सान! फौरन घर चलो!'

होइची ने गुस्से में उन्हें डांटा:

'इस शाही दरबार में गाने में इस तरह खलल सहन नहीं किया जायेगा।'

इस पर उस भुतही जगह पर भी नौकर अपनी हंसी न रोक पाये। उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि होइची पर जादू कर दिया गया है, उन्होंने उसे पकड़कर खड़ा किया और लगभग घसीटते हुए उसे मंदिर ले आये, जहां महंत की आज्ञा से फौरन उसके गीले कपड़े बदले गये और उसे भोजन कराया गया। उसके बाद महंत ने अपने मित्र को अपनी अजीब हरकतों का खुलासा करने के लिए विवश किया।

देर तक होइची कुछ भी कहने से झिझकता रहा। अंत में यह देखकर कि उसके व्यवहार से महंत सचमुच चिंतित और खफा है, उसने पहली बार सामुराई के आने से लेकर अब तक की सारी बातें उसे सच-सच बता दीं।

महंत बोला:

'होइची मेरे दोस्त! तुम भयंकर खतरे में हो। कितने दुर्भाग्य की बात है कि यह सब तुमने मुझे पहले नहीं बता दिया। तुम्हारे गायन-कौशल ने तुम्हें अजीब मुसीबत में डाल दिया है। अब तक तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि तुम जहां जाते रहे, वह कोई हवेली नहीं है; बल्कि तुम अंतोकु तेन्नो की

समाधि पर रातें गुजारते रहे हो, जहां आज लोगों ने तुम्हें बरसात में भीगते बैठे पाया। तुम जो कुछ कल्पना करते रहे हो, वह सब निरा भ्रम है—मृतकों के बुलावे के सिवा सब कुछ। उनकी आज्ञा मानकर तुम उनके काबू में आ गये हो। अब जो कुछ हो चुका उसके बाद अगर तुमने उनका कहना फिर माना, तो वे तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। ..... यों भी वे तुम्हें देर-सवेर तबाह करने वाले थे ही। ..... कल रात तो मैं तुम्हारे पास रह न पाऊंगा, क्योंकि एक जगह मुझे संस्कार कराने जाना है। मगर यह जरूरी है कि जाने से पहले तुम्हारी रक्षा के लिए तुम्हारे शरीर पर पवित्र सूत्र लिख जाऊं।'

सूर्यास्त से पहले महंत और उसके चेले ने होइची के कपड़े उतरवाये और अपनी लेखन-कूंचियों से उसकी नंगी छाती और पीठ, सिर, चेहरा, गरदन, बांहें, जांघें, टांगें, तलवे और हथेलियां आदि सब पर उन्होंने 'हन्या-शिन-क्यो' (लघु प्रज्ञापारमिताहृदय-सूत्र) लिख दिया। यह काम पूरा करके महंत ने होइची से कहा:

'आज रात मेरे जाते ही तुम बरामदे में बैठकर इंतजार करने लगना। तुम्हें आवाज दी जायेगी। मगर चाहे कुछ भी हो, तुम जवाब न देना, न हिलना। कुछ न बोलना, स्थिर-शांत बैठे रहना—जैसे कि ध्यान में बैठे हो। अगर तुम जरा भी हिले, अगर तुमने जरा भी आवाज की तो तुम्हें वे चीर-फाड़ डालेंगे। डरना मत, न मदद के लिए पुकारने की ही सोचना—कारण, किसी की मदद से तुम बच न सकोगे। मैं जैसा कह रहा हूं, ठीक वैसा करोगे तो खतरा टल जायेगा, फिर तुम्हें डरने की जरूरत न रह जायेगी।'

अंधेरा होने पर महंत और उसका चेला चले गये और होइची बरामदे में उसी तरह जा बैठा, जैसा कि उसे हिदायत दी गयी थी। पास ही फर्श पर अपना बिवा रखे वह ध्यानमुद्रा में बिलकुल अचल बैठा था। उसे इसका खयाल था कि खांसना तो दूर सांस लेने की आवाज भी नहीं निकलनी चाहिये। घंटों वह इसी तरह बैठा रहा।

और तब उसे सड़क पर से आती पदचाप सुनाई दी। पदचाप फाटक को पार करके, फुलवाड़ी में से होती हुई बरामदे तक आयी और ठीक उसके सामने रुक गयी। 'होइची!' एक गहरी आवाज ने पुकारा। मगर अंधा होइची सांस रोके अचल बैठा रहा।

'होइची!' आवाज ने कठोरता से दुबारा पुकारा, फिर तीसरी बार बड़ी क्रूरता से—'होइची!'

होइची पत्थर की तरह स्थिर और चुप बना रहा। तब आवाज बड़बड़ाते हुए बोली:

'कोई जवाब नहीं! ऐसे काम नहीं चलेगा। ..... देखें, मरदूद आखिर है कहां!'

बरामदे पर कदमों के चढ़ने की धमाधम आवाज हुई। कदम दृढ़ता से उसकी ओर बढ़ते गये और उसके पास आकर थम गये। फिर कई लंबे क्षणों तक चुप्पी छायी रही—मगर होइची महसूस कर रहा था कि दिल की धड़कनों के साथ उसका सारा शरीर थरथर

रहा है।

आखिरकार एक भर्रायी आवाज उसके नजदीक कहीं से बड़बड़ायी :

'बिवा तो यहां पड़ा है, मगर बिवा-वादक के सिर्फ दो कान मुझे नजर आ रहे हैं। अब पता चला कि वह उत्तर क्यों नहीं दे रहा था—उसके मुंह ही नहीं है, सिर्फ दो कान रह गये हैं, बाकी कुछ बचा ही नहीं है। ठीक है, अपने महाराज के पास यही कान मैं ले जाऊंगा—यह साबित करने के लिए कि उनके आदेश का यथाशक्ति पालन किया गया है।'

उसी क्षण होइची ने महसूस किया कि किसी ने उसके कानों को लोहे की उंगलियों से पकड़कर उखाड़ लिया गया है। भयंकर दर्द हुआ, फिर भी वह चीखा नहीं। भारी पद-चाप बरामदे में दूर हटती हुई बगीचे में गयी, सड़क पर पहुंची और अंत में बंद हो गयी। अंधे आदमी ने महसूस किया कि उसके सिर के दोनों ओर कोई गाढ़ी गरम चीज रिस रही है, मगर हाथ उठाकर उसे छूने की हिम्मत उसकी नहीं हुई।

× × ×

सूर्योदय से पहले महंत लौटा। फौरन वह लपकता हुआ पिछवाड़े के बरामदे में पहुंचा। किसी लिसलिसी चीज पर पांव पड़ने से वह फिसला और भय से चीख उठा; क्योंकि लालटेन की रोशनी में वह देख रहा था कि वह लिसलिसी चीज लहू है। मगर उसने देखा कि होइची वहां बैठा हुआ है ध्यानमुद्रा में—और अब भी उसके घावों से लहू रिस रहा है।

'अभागे होइची!' महंत के मुंह से निकला—'यह क्या हुआ? तुम तो घायल हो गये हो!'

अपने मित्र की आवाज सुनकर होइची ने सुरक्षा अनुभव की। वह सिसकियां भरता हुआ रो उठा और आंसू टपकाते हुए उसने रात की सारी कथा सुनायी।

'अभागे होइची!' महंत आहें भरता हुआ बोला—'सब मेरी गलती है—मेरी भयंकर गलती। तुम्हारे सारे शरीर पर पवित्र सूत्र लिख दिया गया था, सिर्फ तुम्हारे कानों को छोड़कर। यह काम मैंने अपने चेले के सुपुर्द किया था और यह मेरी सरासर गलती थी कि मैंने यह नहीं देखा कि उसने अपना काम किया भी या नहीं! अब कान तो वापस आ नहीं सकते, तुम्हारे घाव जल्दी से भर जायें, इसकी ही कोशिश हम कर सकते हैं। खैरियत मनाओ दोस्त! खतरा अब टल चुका है। फिर कभी वे आगंतुक तुम्हें कष्ट नहीं देंगे।'

कुशल वैद्य की सहायता से होइची के घाव शीघ्र भर गये। इस विचित्र घटना की कहानी शीघ्र ही दूर-दूर तक फैल गयी, जिसने उसे और प्रसिद्ध बना दिया। बहुत से धनी-मानी उसका गाथा-गायन सुनने अकमागासेकी आते और उसे भरपूर इनाम-इकराम देते। धीरे-धीरे वह धनवान बन गया। मगर उस घटना के बाद से लोग उसे 'मिमि-नाशी-होइची' (कनकटा होइची) कहने लगे।



[पृष्ठ ३६ का शेष]

का लक्षण है। पर साथ ही ये दो यथार्थताएं एक दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र भी नहीं हैं।

विज्ञान-विरोध, विज्ञान का अस्वीकार सर्वथा त्यागने योग्य है। यह निहायत जरूरी है कि बौद्धिक एवं बुद्धचतीत तथा अबौद्धिक एवं बुद्धि-विरुद्ध में स्पष्ट विवेक किया जाये। बुद्धि-विरोध और विज्ञान-विरोध के लिए मनुष्य के जीवन में कोई स्थान नहीं है। वह असत्य है। और जो भौतिकी से परे है, वह भौतिकी-विरुद्ध नहीं है। वह भौतिकी का अस्वीकार नहीं है।

रहस्यवाद, प्रत्यक्षानुभव और वस्तुज्ञान से परे की इंद्रियातीत अनुभूति—यह धर्म का हृदय है। प्राकृतिक विज्ञान के राज्य में रहस्यवाद के लिए स्थान नहीं है। रहस्यवाद उसके लिए सर्वथा परायी चीज है। विज्ञान में बुद्धि का शासन सर्वोपरि होता है, विज्ञान की वफादारी केवल बुद्धि के प्रति है। मगर विज्ञान का अस्तित्व, बुद्धि का साम्राज्य, प्रकृति का मानव-बुद्धि से ग्रहण किया जा सकना—यह अपने आप एक अथाह रहस्य है।

विज्ञान तर्क है, परंतु वह रहस्य में परिवेष्टित है, प्रतिष्ठित है। विज्ञान का राज्य ज्यों-ज्यों फैलता है, उसके चारों ओर का रहस्य और भी गहरा होता जाता है। बुद्धि और रहस्य दोनों की गहराई अथाह और असीम है। यदि विज्ञान ने हमारे चहुं ओर के भौतिक जगत् को कल्पनातीत रूप में बदल डाला है, तो धर्म ने (जो नकली धर्म से भिन्न है) हमारे अंतर्जगत् को आमूल बदला है। विज्ञान प्रकृति को बोधगम्य बनाकर हमें पदार्थ को ऊर्जा में—मानो मिट्टी को सोने में—बदलने की शक्ति देता है। श्रद्धा (या धर्म) मिट्टी के पुतले मानव को प्रेम, करुणा और अभय की मूर्ति मानव में बदल सकती है।

उत्साह, साहस और निष्ठा के साथ सत्य के समस्त पहलुओं का अनुसंधान करना —और इनमें नैतिक पहलू सर्वोपरि महत्त्व का है—मानव का परम कर्तव्य है। यह उसका स्वधर्म है। स्वानुशासन एवं सत्य को सर्वोपरि मूल्य मानने वाले विज्ञान की सबसे बड़ी सीख यही है। यही धर्म की भी नसीहत है। सत्य का साहसपूर्वक एवं निष्ठापूर्वक अनुसंधान और अहिंसा का आचरण—ये आज मानव-जाति की सबसे बड़ी और सबसे उत्कट आवश्यकताएं हैं।

अहिंसा प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और उनके कल्याण की चिंता है। और वह सत्याग्रह का अमोघ शस्त्र—स्वयं कष्ट-सहन की तलवार—हमें प्रदान करती है। महात्मा गांधी ने कहा है:

'अपने अधिकार, अपने मान और अपने धर्म की रक्षा तलवार से करना उदात्त चीज है। उससे भी उदात्त है दुष्कर्मी को हानि पहुंचाने की चेष्टा किये बिना उनकी रक्षा करना। मगर अपनी जान बचाने के लिए अपने कर्तव्य से भाग खड़ा होना, दुष्कर्मी के आगे अपने अधिकार, मान और धर्म को छोड़ बैठना घृणित, अस्वाभाविक और

अपमानजनक है। मैं जानता हूं कि उन्हें मैं अहिंसा की शिक्षा कैसे दूं, जो मरना जानते हैं। मगर जो मौत से डरते हैं उन्हें अहिंसा की शिक्षा कैसे दूं, मैं नहीं जानता।'

इतिहासज्ञ-शिरोमणि आर्नाल्ड टाय्न्बी ने स्वामी ज्ञानानंद की पुस्तक 'श्री रामकृष्ण एंड हिज युनीक मेसेज' (१९७०) की भूमिका में लिखा है :

'मानव-इतिहास के इस नितांत भयानक क्षण में मानव-जाति की मुक्ति का एकमात्र पथ भारतीय पथ है। सम्राट् अशोक और महात्मा गांधी का अहिंसा-सिद्धांत, सब धर्मों की समस्वरता का श्री-रामकृष्ण का स्वानुभूत प्रमाण—ये वे दृष्टि-कोण और भावनाएं हैं, जो मानव-जाति का एक परिवार के रूप में पलना-बढ़ना संभव बना सकते हैं और परमाणु-युग में आत्म-विनाश का एकमात्र विकल्प यही है।'

आने वाला युग विज्ञान और अहिंसा का है। मानव की प्रगति —जिसमें परमाणु-युग में जीवित बच पाना भी शामिल है—विज्ञान और आत्मज्ञान पर सरासर निर्भर हो गयी है, जैसा कि पहले कभी नहीं था। और यह बुनियादी तौर पर शिक्षा का काम है।



मुलाकात

बगदाद में एक व्यापारी ने अपने नौकर को कुछ चीजें लाने के लिए बाजार भेजा। नौकर कुछ ही देर में भागा हुआ वापस आया और कांपते हुए बोला—'मालिक, बाजार में एक औरत मुझसे टकराकर आगे निकल गयी। जब मैं उसे देखने को मुड़ा, तो क्या देखता हूं कि वह मौत है। तभी उसने मुझे धमकी दी। ...सो, अब मेहरबानी करके मुझे अपना घोड़ा दीजिये, ताकि मैं उस पर सवार होकर यहां से निकल जाऊं और जल्दी से जल्दी समरा पहुंच जाऊं, जहां मौत मुझे ढूंढ़ नहीं सकेगी।'

व्यापारी ने उसे घोड़ा दे दिया। नौकर उस पर सवार होकर समरा की ओर रवाना हो गया।

व्यापारी शाम को बाजार में गया तो उसने मौत को उसी औरत के रूप में देखा। उसने सामने जाकर कहा—'तुमने मेरे नौकर को आज सुबह धमकी क्यों दी थी?'

'वह धमकी नहीं थी', मौत ने कहा—'मैंने तो उसे ज़रा-सा चौंकाया था। उसे बगदाद में देखकर मुझे हैरानी हुई थी, क्योंकि आज रात में उसे समरा में मिलने वाली हूं।'

—सामरसेट मॉम



[पृष्ठ ६४ का शेष]

वाली चादरें तैयार की जा सकती हैं। डा. वर्मा के अनुसार, मजबूती में इस्पात के बराबर होते हुए भी यह पदार्थ वजन में फौलाद से चार से पांच गुना तक हल्का है।

राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला ने कपड़ा-मिलों में इस्तेमाल किये जाने वाले बाजारू एक्रिलिक तंतु से ही अपने प्रयोग-परीक्षण प्रारंभ किये और कार्बनीकरण की एक नयी और द्रुत तकनीक का विकास किया, जिसकी सहायता से मामूली एक्रिलिक तंतु को इस्पाती तंतु में बदलने में सफलता प्राप्त हुई। यह नया तंतु वस्तुतः सामान्य एक्रिलिक तंतु का, एक विशेष विधि द्वारा कार्बनीकृत रूप ही है।

इस्पात भी नयी विधि से

संपूर्ण औद्योगिक विकास में पेट्रोलियम और इस्पात इन दो पदार्थों ने जितनी बड़ी भूमिका अदा की है, उसका अंदाज लगा पाना आम आदमी के लिए आसान नहीं है। यही वजह है कि आज भी इन दोनों का संसार की राजनीति और अर्थनीति के निर्धारण में खासा हाथ रहता है। वैज्ञानिक क्षेत्रों की भी अनेक गतिविधियां इन पदार्थों के इर्द-गिर्द चलती रहती हैं।

इसलिए मेक्सिको के एक शोधदल की एक ताजा घोषणा बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसने दावा किया है इस्पात के निर्माण की एक ऐसी नयी और उन्नत तकनीक का विकास उसने किया है जो अब तक की सभी ज्ञात अथवा प्रचलित विधियों से अधिक विकसित, सुविधाजनक और कम खर्चीली है।

इस नयी प्रक्रिया की विशेषता यह है कि इसमें कोक की जरूरत नहीं पड़ती। इसमें लौह अयस्क (आयरन ओर) को सीधे प्राकृतिक गैस की सहायता से इस्पात पिंडकों में बदल दिया जाता है। इतना ही नहीं इस विधि में वात-भट्ठी भी काम में नहीं लायी जाती और उसके एवज में साधारण इस्पात कारखानों में प्रयुक्त उत्पादक उपस्कर (कपिटल इक्विपमेंट) से काम चल जाता है।

इस विधि में समय और धन की बचत होने और महत्त्वपूर्ण रसायनों और प्रक्रम की जटिलताओं से छुटकारा मिल जाने के कारण इसके प्रति दुनिया का आकृष्ट होना स्वाभाविक है। इसीलिए मेक्सिको यूरोपीय एवं जापानी फर्मों के माध्यम से इस प्रक्रम का निर्यात करने की बात सोच रहा है।

वाहनों के कटेल

शराब के शौकीन काकटेल की कीमत जानते हैं। अब मोटर-गाड़ियां भी कॉकटेल का आनंद उठा सकेंगी। अनेक परीक्षणों से स्पष्ट हो गया है कि यदि पेट्रोल में २० प्रतिशत अल्कोहल मिलाकर कार आदि के इंजन में ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाये, तो इससे पेट्रोल की खपत ५-६ प्रतिशत तक कम हो जाती है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आजकल दक्षता बढ़ाने के लिए पेट्रोल में सीसा धातु का जो पुट दिया जाता है, अल्कोहल मिलाने पर उसकी जरूरत नहीं रह जायेगी। इस तरह

वातावरण-प्रदूषण का खतरा भी [illegible]।

पेट्रोल में यदि २० प्रतिशत तक अल्कोहल मिलाया जाये, तो इंजन की संरचना या कार्य-पद्धति में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होगी। ब्राजील आदि कुछ देशों में तो यह ईंधन-काकटेल काफी प्रचलित भी हो चुका है। फिलिपाइन्स, थाइलैंड और कुछ मध्य अमरीकी देश इस पद्धति को कारगर बनाने के लिए कृषि और वन उत्पादनों के कूड़े से पावर-अल्कोहल बनाने के तरीकों की खोज में लगे हैं।

भारत में रद्दी सूत (काटन वेस्ट), चावल की भूसी और इसी प्रकार के अन्य अनुपयोगी वनस्पतिक पदार्थों से अल्कोहल बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। अभी तक हमारे यहां अल्कोहल का उत्पादन प्रायः शीरे से किया जाता है, जो कि चीनी मिलों में उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है। परंतु यदि इसे ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने का निश्चय किया गया, तो नये साधनों की खोज अनिवार्य हो ही जायेगी।

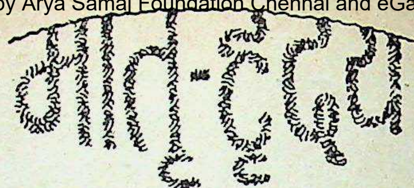
हमारे यहां इस दृष्टि से भी शोधकार्य किया जा रहा है कि यदि पूरी तरह अल्कोहल को ही वाहनों में ईंधन के रूप में काम में लाना हो, तो इसके लिए किस प्रकार के इंजिन की जरूरत होगी और क्या यह इंजन देशी साधनों से स्वदेश में ही निर्मित किया जा सकेगा? इस विषय पर पूर्ण रूप से विचार करने के लिए एक विशेषज्ञ-समिति भी कायम की जा चुकी है।



गर्भाधान के लिए सर्वोत्तम महीने कौन-से हैं? मां-बच्चा दोनों के स्वास्थ्य की दृष्टि से अप्रैल, मई, जून—बंबई के विख्यात प्रसूति-चिकित्सक डा. बी. एन. पुरंदरे का कहना है। इसका कारण वे यह बताते हैं—'इन महीनों में गर्भाधान होने पर सर्दी के महीनों में होने वाले गर्भाधानों की तुलना में, समय से पहले या मरे हुए बच्चे के पैदा होने और प्रसव में बच्चे की मृत्यु की वारदातें कम होती हैं।' और यह बात वे कहते हैं अपने विख्यात पुरंदरे मेटर्निटी हास्पिटल के पिछले ६१ वर्ष के रेकार्डों के आधार पर।

वे समझाते हैं—'इसका कारण बहुत स्पष्ट है। भावी बच्चे का स्वास्थ्य गर्भाधान के बाद के दस सप्ताहों पर निर्भर होता है। यदि वे दस सप्ताह खिलती धूप और अच्छे मौसम के हों, तो बच्चे की शुरूआत अधिक अच्छी होती है—ठंड और बुरे मौसम के दिनों की तुलना में। गर्भस्राव भी प्रायः पहले दस या बारह सप्ताहों में ही होते हैं। यह तो धारणा भ्रमपूर्ण है कि गर्भस्राव बुरी चीज है। बल्कि गर्भस्राव अच्छी चीज हो सकती है, अगर वह इस कारण हुआ हो कि गर्भस्थ भ्रूण अस्वस्थ था और जन्म और जीवन का सामना करने के योग्य नहीं था। खिलती धूप वाले महीनों में शरीर स्वस्थ-अस्वस्थ भ्रूण का विवेक अधिक आसानी से कर लेता है; परिणामतः नौ महीने बाद पैदा होने वाले बच्चे अधिक स्वस्थ जनमते हैं।' डा. पुरंदरे मानते हैं कि सरदियों में गर्भाधान आसानी से होता है।





रवीन्द्र

सन १७९८ की गरमियों में मैसूर के टीपू सुलतान और ईस्ट इंडिया कंपनी की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध चल रहा था। और जैसा कि हमेशा होता है, लड़ते हैं सांड और मरती हैं बिल्लियां। बेचारे गरीबों की मुसीबत हो रही थी।

ऐसे समय तिरुचिरपिल्ली की एक गरीब, कृशकाय, दंतहीन बुढ़िया तपती दोपहरी में आहिस्ता-आहिस्ता लाठी टेकती हुई कहीं चली जा रही थी। यह कहना मुश्किल था कि उसकी साड़ी कहां से खत्म होती है और चिथड़े कहां से शुरू होते हैं। बीच-बीच में वह रुककर रो लेती थी। वह कभी कुछ अंट-संट बक भी लेती और फिर आगे चलने लगती थी। रास्ते में कभी कोई दयालु मिल जाता, तो उसे दो कौर भात दे देता था; नहीं तो वह भूखी ही आगे बढ़ जाती। मानो गरमी की धूप और रात की चांदनी में उसके लिए कोई फर्क न था। जब थक जाती तो राह में ही लुढ़क जाती और तनिक बल मिलते ही फिर उठकर चल पड़ती।

बुढ़िया को तिथि, वार आदि का कुछ भान नहीं था। उसे इतना ही याद था कि एक दिन उसके गांव में बाहर से कुछ लोग आये थे और उन्होंने लड़ाई का समाचार देते हुए कहा था—टीपू की बिसात ही क्या है? गोरे लोग उसे कुछ ही समय में पीसकर धर देंगे, तब गोरों के सिपाहियों की पांचों उंगलियां घी में होंगी। इसी लालच में उसका बेटा कंपनी की फौज में भरती हो गया था। लेकिन टीपू बड़ा प्रचंड निकला; उसने कंपनी के बहुत से सैनिकों को बंदी बनाकर श्रीरंगपट्टण के किले में भर दिया। बुढ़िया ने खबर सुनी तो सिर पीट लिया था। मगर वह चुप न बैठी। श्रीरंगपट्टण का अता-पता पूछकर उसी दिशा में चल पड़ी। लोगों ने उसे समझाया कि चार सौ मील से भी अधिक दूर है श्रीरंगपट्टण। अगर चलकर तू वहां पहुंच भी गयी तो टीपू के सैनिक तुझे किले में घुसने न देंगे। लेकिन बुढ़िया ने उनकी बात न मानी। उसे पूरा विश्वास था कि उसका बेटा जिंदा है और चार सौ मील की यात्रा पूरी करके वह उसे देख पायेगी। 'मैं टीपू के पैरों पर गिरकर रोऊंगी, क्या मेरे आंसुओं से उसका दिल नहीं पिघलेगा?' वह चल पड़ी श्रीरंगपट्टण को।

एक दिन बुढ़िया एक गांव से गुजर रही थी। तेज गरमी के कारण प्यास के मारे

बुढ़िया का बुरा हाल था। आखिर उससे चला न गया। वह एक घर का दरवाजा खटखटाने लगी। कई बार खटखटाने पर कोई उत्तर न मिला, तो लगी अपनी लाठी से दरवाजा पीटने। थोड़ी देर में दरवाजा खुला और एक मेम प्रकट हुई। उसका चेहरा उतरा हुआ था और आंखें सूजी हुई थीं। देखकर लगता था कि वह बहुत दिनों से रोती रही है। बुढ़िया ने इशारे से पानी मांगा। दुखिया दिल ने दूसरे के दुःख को समझ लिया। मेम तुरंत अंदर गयीं और एक लोटा पानी और रोटी के कुछ टुकड़े लेकर लौटी। बुढ़िया ने गटागट पानी पिया, फिर रोटी के टुकड़ों पर पिल पड़ी। मेम वहीं बैठ गयीं और टूटी-फूटी भाषा में बुढ़िया से पूछा कि तुम कहां जा रही हो। श्रीरंगपट्टण का नाम सुनते ही मेम को जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो, वह तुरंत अंदर चली गयी। बुढ़िया अकेली बैठी-बैठी रोटी के टुकड़े चबाती रहीं और फिर वहीं पांव फैलाकर सो गयीं।



जब आंख खुली तो बुढ़िया ने देखा कि सूरज ढल रहा है और पास खड़ी मेम उसे निहार रही है। बुढ़िया ने उससे पूछा, श्रीरंगपट्टण का नाम सुनते ही आप चौंक क्यों गयीं? क्या आपका भी कोई स्वजन वहां है? मेम ने उसे बताया कि उसका पति वहां कैद है। वे दोनों हिंदुस्तान आये ही थे कि उसके पति को लड़ाई पर जाना पड़ा। तभी से वह टीपू की कैद में पड़ा सड़ रहा है। और वह यहां पड़ी-पड़ी रो रही है। फिर सहसा मेम बोली—'तुम मेरा एक काम

कर दोगी ? मैं एक चिट्ठी देती हूं। तुम मेरे पति को खोज निकालना और उसे मेरी चिट्ठी और ये चंद मुहरें दे देना। यही मेरी सारी पूंजी हैं। यहां तो मैं किसी न किसी तरह काम चला लूंगी, पर वहां जेल में पैसों के बिना उसकी बुरी हालत होगी।

भगवान का नाम लेकर बुढ़िया चल पड़ी। अब उसकी जिम्मेदारी बढ़ गयी थी। मेम की थाती उसके पास थी। मेम के विश्वास ने जैसे उसमें नयी जान भर दी थी। वह चलती रही, चलती रही। आखिर एक दिन उसे दूर क्षितिज पर मस्जिद का सुनहरा गुंबद और उससे कुछ हटकर मंदिर के दो विशाल गोपुर दिखाई दिये। बुढ़िया का दिल बल्लियों उछलने लगा। यही तो श्रीरंगपट्टण की निशानी थी। चार सौ मील की यात्रा पूरी करके वह यहां तक आ पहुंची थी। अब वह अपने लाल का मुंह देखेगी और मेम की थाती उसके पति के हवाले करके भार मुक्त होगी।

अगले दिन सवेरे लोगों ने देखा कि किले के बाहर एक तमिल बुढ़िया लोगों के हाथ देखकर उनका भविष्य बताती फिर रही है। वहां जितने घर थे, किले के कर्मचारियों के थे। कर्मचारियों की स्त्रियों ने इस बुढ़िया को देखा तो वे उसके चारों ओर घिर आयीं अपना-अपना भविष्य जानने। बुढ़िया को लोकप्रिय होते देर न लगी। किले के सैनिकों से उसका परिचय हो गया और कुछ ही दिनों में वह किले में आने-जाने लगी। पहले उसने मेम के पति का पता लगाया और जेल-दरोगा की मदद से उसकी थाती उसके हवाले की। फिर वह अपने बेटे को खोज-खबर लेकर उसके पास जा पहुंची। दोनों मिलकर खूब रोये।

जासूसों ने सारी बात टीपू के कानों तक पहुंचा दी। जेल-दारोगा के साथ किले के पांच अधिकारी नौकरी से निकाल दिये गये। बुढ़िया को गिरफ्तार करके टीपू के सामने पेश किया गया।

टीपू की आंखों से आग बरस रही थी। वह गरजा—'बोल बुढ़िया, तुझे अपनी सफाई में कुछ कहना है ?'

'बेटा, तुम न समझ सकोगे मेरी बात को। आज तुम्हारी मां होती, तो वह मेरे दुःख की गहराई को बिना कहे समझ लेती।' इतना कहकर बुढ़िया ने चुप्पी साध ली।

टीपू उसे एकटक देखता रहा। उसे अपनी मां की याद हो आयी। उसकी आंखों में दो मोती छलक आये। खूंखार सिंह प्रेमल गाय बन गया। बोला—'जाओ, तुम्हें और उसे दोनों को माफ करता हूं। रास्ते के लिए खजाने से कुछ पैसे भी लेती जाओ।'

'और मालिक, उन दयालु अफसरों का क्या होगा, जिन्होंने मेरी मदद की थी ?'

'अच्छा जाओ उन्हें भी माफ कर दिया।' टीपू ने भर्राये गले से कहा।

—श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी-६०५००२

पृष्ठ ४४ पर छपे आ. द्विवेदीजी के विचार 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में मुद्रित श्री मनोहर श्याम जोशी के इंटरव्यू से उद्धृत हैं। इसका उल्लेख छूट जाने का हमें दुःख है। —संपादक

ताराबाबू के साथ

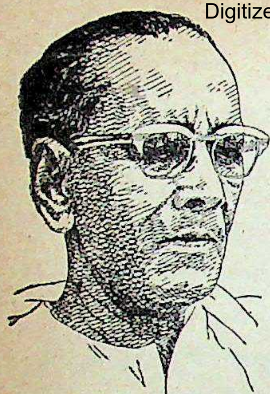
रंगनाथ राकेश

...६८। भारतीय ज्ञानपीठ की नौकरी ...छोड़ चुका था। सिर्फ स्वतंत्र लेखन पर ...दा रहने का मेरा अहमकपन। पर ... लक्ष्मीचंद्र जैन ने मेरी अहम्मन्यता ...ज़िंदगी के कच्चे अनुभव को प्यार की ...से देखा था। श्री ताराशंकर बंद्यो-...पाध्याय को 'गणदेवता' पर भारतीय ज्ञान-...पीठ पुरस्कार मिल चुका था। लक्ष्मीचंद्र ...ने मुझे स्नेहादेश दिया कि मैं तारा-...बाबू की श्रेष्ठतर कहानियों का हिंदी अनु-...वाद भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन के लिए ...दूं, ताकि हिंदी-जगत् उन्हें और भी ...से जान सके। कुल तेरह कहानियों ...चयन किया था स्वयं ताराबाबू ने। मैंने ...सौ पृष्ठों की पांडुलिपि लगभग दो ...में तैयार कर ली थी। ताराबाबू से ...बार मिलना भी पड़ा था।

...जनवरी १९७० को सपत्नीक गया ...लापार्क एवेन्यू के उनके आवास पर। ...पत्नी स्वभाव से मितभाषिणी और ...प्रकृति की। मैं उसके विपरीत। बड़े ...को आवाज दी थी ताराबाबू ने— '...देखो तो राकेशेर बौ एशेछे, जलजोगेर ...एकटु भालो करे होक्' और जल-...में आठ राजभोग रसगुल्ले हमारे सामने हाजिर। मैंने तो निस्संकोच एक को मुंह में डाल लिया और ताराबाबू से शैली और शिल्प पर बतियाता भी रहा। कुमुद्वती (मेरी पत्नी) चुपचाप। तब तक दूसरा रस-गुल्ला भी मेरे मुंह में। ताराबाबू ने मुस्करा-कर कहा—तुमि तो खाँटि ब्राह्मण—हचाँ, आमार आर तोमार दुजनेर इ गोत्र तो शाण्डिल्य!' (तुम तो शुद्ध ब्राह्मण हो, हां मेरा और तुम्हारा दोनों ही जनों का शांडिल्य गोत्र ही है!) फिर मेरी पत्नी की ओर मुखातिब होते हुए बोले—'बौ मा, राकेश तो पंडित लोक, संस्कृतेर पंडित, तुमिओ एर काछे ओइ श्लोकेर मर्मटा बुझे नाओ...... आहारे व्यवहारे च......' बड़ा गहरा कटाक्ष था। मैंने राजभोग छोड़ दिया और मैं भी ठठाकर हंस पड़ा और श्लोकार्ध को पूरा कर दिया—'त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्!'

ताराबाबू ने दूसरे कमरे में जाते हुए कहा—'त्यक्तलज्जः तो पुंल्लिग, सेटा तो देखते इ पाच्छि! बौ मा तुमि अन्ततः दुटो खेए नेबे, आमि परे आसछि!'

ताराबाबू जानते थे कि सरयूपारीण त्रिपाठी परिवार की यह कुलवधू लज्जा-संकोच में ही बैठी रह जायेगी और 'शरा-रती' रंगनाथ रसगुल्ले चट कर जायेगा!



ताराबाबू

मेरी पत्नी ने अपनी आदत के मुताबिक उस श्लोकार्ध का अर्थ पूछा मुझसे। रसगुल्ले समाप्त हो चले थे। मैंने उसे समझाया कि भोजन के समय और लोक-व्यवहार में जो निःसंकोच होता है, वह सुखी रहता है। और मैं 'त्यक्त लज्जः, हूं बकौल ताराबाबू के।

मैंने उनके आवास पर टेलिफोन करके मिलने का समय लिया था १५ नवंबर १९६८ को, पर जा नहीं सका था उस दिन। अगले दिन जाने पर उनसे भेंट नहीं हुई थी! उन्होंने परिहास करते हुए २७ नवंबर को लिखा था—'तुम आकर लौट गये, यह जानकर दुःखित हुआ। साथ ही थोड़ा खुश भी हुआ हूं—कारण यह कि तुम फोन करके आये क्यों नहीं? इसके अलावा तुम बहुत "शरारती" लड़के हो—दो सप्ताह पहले मुझे फोन करके—इंगेजमेंट करके—भी तुम नहीं आये।'

मुझसे उन्होंने मेरा प्रकाशित अनुवाद सुना था, जीवनानंद दास की कविता 'वनलता सेन' और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता 'शाहजहां' का। संयोग कहें या मेरा सौभाग्य कि ये दोनों ही अनुवाद एक ही मास में 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुए थे!

'आशा करि, तुमि परिहास निश्चय बोझो!' मैं पंद्रह वर्षों में काफी कुछ बंगाली मानसिकता से ग्रसित हो चुका हूं। परिहास खूब समझता हूं और करता भी हूं, बशर्ते कोई समानधर्मा मिले तब।

बस, चचा गालिब की चार सतरों के साथ—
'दाम हर मौज में है हल्क़ए-सदकामनिहंग,
देखें क्या गुज़रे है क़तरे पे गुहर होने तक।
ग़मे-हस्ती का असद किससे हो जुज़-मर्ग इलाज़, शमअ हर रंग में जलती है सहर होने तक।'

०

सन १९७० का वर्षांत ही था; दिसंबर याद आ रहा है। ताराशंकर की माताजी श्रीमती प्रभावती देवी बंद्योपाध्याय इहलोक छोड़कर चली गयी थीं। मैंने उनकी माताजी को प्रणाम किया था, प्रणम्य थीं वे—वैसी प्रशांत वात्सल्यमयी मातृ-प्रतिमा कम ही देखी है मैंने। नब्बे वर्ष की परिपक्व आयु में यह चोला छोड़कर वे गयीं और ताराशंकर उस समय बहत्तर वर्ष के थे। भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार मिल चुका था उन्हें सन '६६ में ही। इसके पूर्व 'पद्मश्री', 'पद्मभूषण' मिल चुका था। भारतीय लेखक-दल के प्रतिनिधि होकर एशियाई लेखक सम्मेलन में ताशकंद तथा मास्को सफर कर आये थे १९५७ में ही। १९५५ में भारतीय लेखकों के प्रतिनिधि के रूप में चीन भी घूम आये थे। १९७० तक करीब १३० पुस्तकें उनकी प्रकाशित हो चुकी थीं। पर मां प्रभावती देवी की दृष्टि में वे 'खोका' (बालक) ही थे।

हमेशा पुकारकर कहती—'खोका किछु खेयेछिस तो?' (मुन्ना, कुछ खा लिया तो?) यही मातृमूर्ति ताराबाबू के नारी-पात्रों में झलकती है 'धात्रीदेवता' में, 'गणदेवता' में, 'पंचग्राम' में, 'मन्वंतर' में, 'कवि' और 'आरोग्य निकेतन' में..... पतिता होने पर भी, लांछिता होने पर भी ताराशंकर के नारी-चरित्र मातृमूर्ति की आभा से दीप्त हैं—पुरुष अपराध करता है पर माता उसे त्यागती नहीं है। बरबस ही शंकराचार्य की उक्ति तिर आयी है मन में—'...अपराधपरम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम्।'

आपने 'गुलबदन' पढ़ा है, ताराशंकर का ऐतिहासिक मर्म-विदारक उपन्यास? अनुवाद मैंने ही किया था। मूल बंगला में नाम ...वाई'। मैंने हिंदी में रूपांतर के ... कहा था—'गुलबदन' नामटि खूब ... हबे।' बोले थे—'ठीक आछे, राकेश, ... पंडित लोक, जा ठीक बूझो, करो।' ... उनकी महानता थी। गुलबदन के ... क्या सलूक किया था गुलाम कादिर ने। ... बादाप.रामोशी देखी-सुनी है आपने? ...रानी जैसी नारी देखी है आपने? ... कहानी की नायिका। जिसके पति को ... ममेरे देवर ने बंदूक से मार दिया ... सिर्फ ईर्ष्या के कारण। इस कहानी का अनुवाद मैंने किया था 'नहीं' शीर्षक से—... भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित ...-घर' संग्रह की ग्यारहवीं कहानी ... इसी कहानी पर 'देवर' फिल्म बनी थी। ... अजरानी ने अपने पति के नृशंस हत्यारे को भरी अदालत में इसी मातृशक्ति के वशीभूत होकर चीन्हने से इन्कार कर दिया था। उसने कहा था 'नहीं' और अनंत बरी हो गया था। करुणा और ममता की यह सच्ची कहानी है। इसीलिए शायद ताराबाबू में वात्सल्य भाव सर्वाधिक था।

०

२५ जुलाई १८९८ के दिन ताराशंकर का जन्म हुआ था वीरभूमि जिले के राढ़ अंचल में, लाबपुर ग्राम में। १४ सितंबर १९७१ को वे इस पृथ्वी को त्याग कर अनंत-शाश्वत आलोक में समा गये। छब्बीस हजार छह सौ चौरानबे दिनों तक यह कथाशिल्पी इस ग़मे-हस्ती के बीच मिर्जा गालिब की शेरों को शत-प्रतिशत सार्थक करता रहा।

वाकई वे शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के बाद बंगाल की माटी के सर्वाधिक सफल और लोक-चित्त-संग्राहक कथाकार थे।

मैं तो 'दुष्ट बालक' था उनके लिए—'दुष्टु छेले,' 'चंचल दुष्टुछेले'। इतना प्यार तो मुझे अपने पिता से भी नहीं मिला था! .....मेरे एक मात्र बेटे मनोजेश को वे संयोग-वशात् देख नहीं पाये, पर बार-बार पूछा करते थे—'तोमार छेले के आनो नि?' दस-ग्यारह वर्ष का मनोजेश तब ताराशंकर की विराटता से, प्रसिद्धि से परिचित नहीं था। और अब मैं उसे कैसे मिलाऊँ उनसे? कभी-कभी वह कह उठता है—काश, मैंने भी देखा होता पिताजी, ताराबाबू को आपके साथ.....!



फुटबाल के माईबंद

श्रीशचंद्र मिश्र

विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय खेल फुटबाल का जन्म कहां और कब हुआ—इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। यूनान को फुटबाल का उद्गम स्थल माना जाता है। कहा जाता है कि वहां यह खेल 'एपिसक्यूरोस' के नाम से खेला जाता था। वहां से यह रोम पहुंचा, जहां इसका नाम बदलकर 'हरपास्टस' हो गया।

चीनियों का दावा है कि वे फुटबाल के खेल से उस समय से परिचित हैं, जब यूनानियों व रोमनों को नाक पोंछने तक की तमीज नहीं थी। चीनी परंपरा के अनुसार चीन के सम्राट् के जन्मदिन पर होने वाले विशेष समारोह में शाही सैनिक 'सू चू' नाम का एक खेल खेलते थे, जिसमें चमड़े की गेंद को पैर की ठोकर मारकर विरोधी गोलमुख की ओर ले जाने का प्रयत्न किया जाता था। चीनी यह भी मानते हैं कि उस समय जापान के तराई प्रदेश में रहने वाले किसान यही खेल 'केमाटी' के नाम से खेलते थे।

हाकी की भांति फुटबाल के आरंभिक दौर में भी एक ही पक्ष में सैकड़ों खिलाड़ी रखने की प्रथा थी। एक गांव से दूसरे गांव तक के खाली मैदान को क्रीडांगण मान लिया जाता था और फिर शुरू होती थी फुटबाल को इधर से उधर ले जाने की जद्दोजेहद। इस अमानुषिक संघर्ष में न जाने कितने खिलाड़ियों के हाथ-पांव टूट जाते थे। इस प्रकार का खेल कुछ ही दिनों में इतना विकृत हो गया कि एडवर्ड द्वितीय ने १३१४ में इंग्लैंड में इस पर पाबंदी लगा दी। फिर १३८९ रिचार्ड द्वितीय ने इसे गैरकानूनी करार दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के आस-पास हाकी की भांति ही फुटबाल के लिए अंतरराष्ट्रीय नियमों का निर्माण हुआ। इसके बाद फुटबाल एक शिष्ट खेल के रूप में विश्व के कोने-कोने में पहुंच गया और बहुत कम समय में ही अत्यधिक लोकप्रिय हो गया।

हाकी के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप ने तो हाकी की विभिन्न पद्धतियों का लगभग खात्मा कर दिया, परंतु फुटबाल अब भी अंतरराष्ट्रीय मानक पद्धति के अलावा कुछ

...ईय पद्धतियों के आधार पर भी खेला जा रहा है।

अमरीकी फुटबाल

अमरीकी फुटबाल फुटबाल से काफी मिलता-जुलता खेल है। लेकिन पैरों के साथ हाथों से खेला जाता है। यह वहां फुटबाल जितना ही लोकप्रिय है। अमरीका में जब फुटबाल कहा जाता है, तो यही हाथ-फुटबाल अभिप्रेत होता है। (शेष विश्व में खेले जाने वाले पैरफुटबाल को वे सॉकर कहते हैं।)

'अमरीकी फुटबाल' के आविष्कार का श्रेय वहां के मजदूर वर्ग को है। इस खेल में एक टीम के खिलाड़ी सामूहिक प्रयास से अंडाकार फुटबालनुमा गेंद को विरोधी टीम की गोलरेखा तक ले जाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रयास में प्रत्येक सफलता पर उस टीम को ६ अंक मिलते हैं। ...मीटर लंबे मैदान में खेले जाने वाले इस खेल में खिलाड़ियों का यह प्रयत्न होता है कि वह विपक्षी खिलाड़ी के हाथ से ...बने गेंद छीनकर उसकी गोलरेखा तक पहुंचा दें। ऐसा करने में आने वाली बाधा को दूर करने के लिए वह मन चाहे शारीरिक शक्ति का प्रयोग कर सकता है। कई बार फुटबाल मैचों के दौरान होती ...में खिलाड़ियों को गंभीर चोटें आ जाती हैं। फिर भी विशेषतः अश्वेत अमरीकियों में यह खेल अत्यधिक लोकप्रिय है। शारीरिक शक्ति में दुर्दम्य माने जाने वाले नीग्रो खिलाड़ी फुटबाल मैचों में अपने आह्लादकारी एवं संघर्षपूर्ण क्रीडा-कौशल से दर्शकों को पागलपन की सीमा तक रोमांचित कर देते हैं।

बार्उलिंग

बार्उलिंग नामक खेल आजकल यूरोप के गिने-चुने देशों में ही प्रचलित है—मुख्यतः यह विश्व के सबसे पुराने खेलों में से एक माना जाता है। शिलालेखों, भित्तिचित्रों आदि से पता चलता है कि आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व मिस्र और रोम में भी यह खेला जाता था। प्राचीन मिस्र के शासकों का तो यह सर्वाधिक प्रिय खेल था। जूलियस सीजर के समय रोम में बाउलिंग को 'बोटची' कहा जाता था। इटली में आज भी इसका यही नाम है।

रोम से यह खेल दसवीं शताब्दी में उत्तरी यूरोप पहुंचा और इसने यूरोपीयों को बुरी तरह आकर्षित किया। बाउलिंग वहां का लोकप्रिय खेल बन गया। तेरहवीं शताब्दी के अंत में कुछ अंग्रेज खिलाड़ियों ने साउथम्पटन (इंग्लैंड) में 'साउथम्पटन बाउलिंग क्लब' की स्थापना की। वह ६७५ वर्ष बाद आज भी मौजूद है और उसके मैदान पर आज भी बाउलिंग के मैच खेले जाते हैं। यह मैदान विश्व का सबसे पुराना क्रीडांगण कहा जा सकता है।

गैलिक फुटबाल

गैलिक फुटबाल की पद्धति देखने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बास्केटबाल और अमरीकन फुटबाल का सम्मिश्रण है। कुछ अंशों में यह फुटबाल से मिलता है,

और बाकी बातों में बास्केट बाल का परिवर्तित रूप लगता है। क्रिकेट व लान टेनिस के बाद यही आस्ट्रेलिया का सर्वाधिक लोकप्रिय खेल है—मुख्यतः विक्टोरिया, तस्मानिया तथा दक्षिण एवं पश्चिम आस्ट्रेलिया में। क्रिकेट के सीजन में इसकी महत्ता अवश्य कम हो जाती है, लेकिन बाकी दिनों में वहां की रोमांचप्रिय जनता गैलिक फुटबाल के मैच देखने के लिए टूट पड़ती है।

अमरीकी फुटबाल की भांति इसमें भी खिलाड़ी को अपने प्रतिद्वंद्वी के हाथ से गेंद छीनने के लिए हर तरह की मारधाड़ करने की छूट रहती है। किसी प्रकार विपक्षी के हाथ से गेंद झपटकर बास्केटनुमा जाली में डालना ही खिलाड़ियों का उद्देश्य होता है।

आस्ट्रेलियन फुटबाल

अंतरराष्ट्रीय फुटबाल से मिलता-जुलता एक और खेल भी आस्ट्रेलिया में काफी प्रचलित है, जो अपनी पृथक् शैली के कारण ही अपना विशिष्ट स्थान बना चुका है। इसके नियम भी अंतरराष्ट्रीय फुटबाल से जरा भिन्न हैं। आस्ट्रेलियन फुटबाल में एक टीम में १८ खिलाड़ी हो सकते हैं, जबकि अंतरराष्ट्रीय शैली के फुटबाल में केवल ग्यारह खिलाड़ी होते हैं। आस्ट्रेलियन फुटबाल पूरे सौ मिनिटों तक खेला जाता है, जब कि अंतरराष्ट्रीय फुटबाल का मैच ९० मिनट का होता है। इन सौ मिनटों को चार भागों में विभक्त किया जाता है, जैसा कि गैलिक फुटबाल में भी होता है। २५-२५ मिनट के प्रत्येक भाग के बाद दोनों टीमों की साइड बदल दी जाती है। यह खेल मुख्यतः २०० गज लंबे व १५० गज चौड़े मैदान में खेला जाता है। बाकी सब बातें अंतरराष्ट्रीय पद्धति जैसी ही होती हैं यानी खिलाड़ियों की संख्या, मैदान का क्षेत्रफल और खेल की अवधि के मामले में ही यह अंतरराष्ट्रीय फुटबाल से भिन्न है।

—५९१२, गली जद्दू मिश्र,
बल्ली मारान, दिल्ली ११०००६



[व्यंग्यचित्र : अमरेश]

...पाठकों के लिए :

सारस

हैन्स क्रिश्चियन एन्डरसन

...छोटे-से गांव के कोने में एक झोंपड़ी ...की छत पर सारसों के एक जोड़े ने ...बना रखा था। मादा सारस अपने ...बच्चों के साथ घोंसले में रहती थी। ...की नुकीली चोंचें अभी लाल नहीं ...काली ही थीं। कभी-कभी वे घोंसले ...अपनी चोंचों को बाहर निकालते थे। ...सारस बड़ी मुस्तैदी से उन पर पहरा ...करता था। वह सोचता था—'इस तरह ...के पहरे में रहने से मेरी पत्नी की ...रहती है।'

...सड़क पर लड़कों की एक टोली ...खेलने लगी। जब भी लड़कों को ...के बच्चे दिखाई दे जाते, लड़के उन्हें ...के लिए कुछ गाने लगते।

...सारस के बच्चे अपनी मां से बोले—'ये ...कहते हैं कि हम सब मार डाले जायेंगे।' ...मादा सारस ने कहा—'इनकी बात पर ...ध्यान ही न दो; ये खुद चुप हो जायेंगे।'

...लेकिन लड़के गा-गाकर सारस के बच्चों ...को चिढ़ाते रहे। हां उनमें से एक लड़का ...पीटर, वह चुप ही रहा। उसने अपने ...साथियों से कहा कि पक्षियों को चिढ़ाना पाप है, मैं इसमें तुम्हारा साथ नहीं दूंगा।

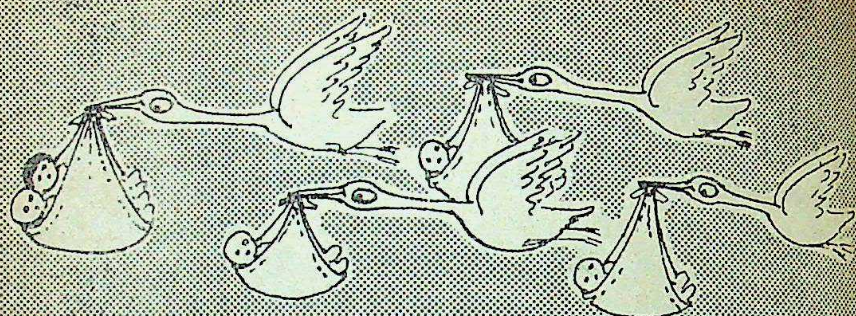
मादा सारस ने अपने बच्चों को यह कहकर फिर ढाढ़स बंधाया कि उन बच्चों की ओर ध्यान ही मत दो। देखो तो, तुम्हारे पिताजी कितनी मुस्तैदी से एक टांग पर खड़े होकर पहरा दे रहे हैं। पर बच्चे घोंसले में दुबककर बोले—'हमें तो डर लग रहा है।'

इसके बाद हर दिन यही क्रम चलता। लड़कों का गा-गाकर चिढ़ाना बंद नहीं हुआ; सारस के बच्चों का डरना और मादा सारस का उन्हें समझाना भी जारी रहा। एक दिन मादा सारस अपने बच्चों से बोली—'इन लड़कों की बात का विश्वास मत करो। मैं जल्दी ही तुम्हें उड़ना सिखा दूंगी। फिर हम लोग उड़कर घास के मैदान में जाया करेंगे और मेढ़कों को ढूंढ़ा करेंगे और पकड़कर खाया करेंगे।'

सारस के बच्चों ने पूछा—'फिर क्या होगा?' उनकी मां ने बताया—'फिर देश-भर के सारस एक जगह इकट्ठे होंगे और शरद ऋतु में उड़ने का अभ्यास करेंगे। तब तक तुम सबको अच्छी तरह उड़ना आ जाना चाहिये; क्योंकि उड़ने की परीक्षा

अनुवाद : अरुणा उप्रेती





में जो फेल होगा उसे सरदार सारस अपनी लंबी चोंच से मार डालेगा।'

सारस के बच्चे एक साथ बोल उठे—'तब तो वे लड़के जो गा रहे हैं, वह सच ही है। हम मार डाले जायेंगे।'

मादा सारस ने उन्हें समझाया—'अरे नहीं, मेरी बात सुनो। लड़कों की बातों पर ध्यान मत दो। जब मैं तुम्हें उड़ना सिखाऊंगी, तो खूब ध्यान से सीखना। जब सरदार हमारा उड़ना देख लेगा, तो हम समुद्र पार के गरम देशों को उड़ चलेंगे। हम मिस्र को जायेंगे। वहां पत्थर की तीन बड़ी-बड़ी इमारतें हैं। वे आकाश को छूती हैं। वे पिरामिड कहलाते हैं और इतने पुराने हैं कि कोई सारस कल्पना भी नहीं कर सकता। उस देश में एक चौड़ी नदी है। जब हम वहां पहुंचेंगे, तो उसका पानी किनारों से छलककर इधर-उधर फैलकर कीचड़ मचा देगा। हम उस कीचड़ में घूम-घूमकर मेढ़कों को पकड़ेंगे और खायेंगे।

सारस के बच्चे एक साथ बोल उठे—'तब तो बड़ा मजा आयेगा।'

मादा सारस ने कहा—'हां, हां, वहां बड़ा मजा आयेगा। हम दिन-भर गरम-गरम कीचड़ में घूमेंगे। यहां तो इतनी सर्दी है कि हरी पत्तियां तक नहीं मिलतीं; और यहां बादल जमकर बर्फ बन जाते हैं, फिर हम पर गिर पड़ते हैं।'

एक बच्चे ने पूछा—'क्या इन शैतान लड़कों पर भी बर्फ गिरती है?'

मादा सारस ने कहा—'नहीं, उस समय ये लोग बंद कमरों में जा बैठते हैं। आग तापा करते हैं। निकलकर बाहर तभी आते हैं, जब हम सुंदर गरम देशों को उड़ जाते हैं।'

नर सारस हर रोज मेढ़क पकड़ लाता। उन्हें खाकर बच्चे घोंसले में ही बढ़ते रहे। अब वे सीधे खड़े होकर बाहर की दुनिया को देखते थे। उनका पिता तरह-तरह के खेल तमाशे दिखाकर उनका मन बहलाता था। वह अपना सिर घुमाकर पूछ पर रख लेता और चोंच मार-मार कर ताली बजाता। बच्चे हंस पड़ते। फिर वह उन्हें

तरह-तरह की कहानियां सुनाता।

एक दिन मादा सारस बोली–'अब समय आ गया है कि तुम सब उड़ना सीख लो। इसलिए सब मेरे साथ चलो।' बच्चों को घोंसले वाली झोंपड़ी की छत के किनारे पर आना पड़ा। वे सब अपने पंखों पर शरीर को तौल रहे थे और भय से कांप रहे थे।

उनकी मां बोली–'मेरी ओर देखो, अपने सिरों को इस तरह साधो, पैरों को मेरे पैरों की तरह रखो और पंखों को इस तरह चलाओ–एक-दो, एक-दो। दुनिया में आगे बढ़ने का यही ढंग है।'

इसके बाद वह कुछ दूर उड़ी। बच्चों ने भी वैसा करने की कोशिश की। लेकिन वे थोड़ा-सा उछलकर रह गये।

एक बच्चा घोंसले की ओर लौटता हुआ बोला–'मुझे उड़ना सीखने की परवाह नहीं। यहीं होगा न कि मैं गरम देश को न जा सकूंगा।'

मां बोली–'क्या कहा? यहीं रहकर बर्फ में मर जाना चाहते हो! वे लड़के आकर तुम्हें खा जायेंगे। अच्छी बात है, बुलाती हूं उन्हें।'

बच्चा घोंसले से फुदककर आता हुआ बोला–'नहीं, नहीं।'

तीसरे दिन वे थोड़ा-थोड़ा उड़ने लगे। वे लड़के आकर शोर मचाने लगे।

बच्चों ने मां से पूछा–'तुम कहो तो हम उनकी ओर उड़कर इन लड़कों पर चोंचें मारें?'

मां ने समझाया–'मेरी बात पर ध्यान देना तुम्हारे लिए ज्यादा जरूरी है, न कि उनकी बातों पर। अब चलो–'एक...... दो...तीन। हम दायीं ओर उड़ेंगे। एक... दो...तीन। अब बायीं ओर उड़ेंगे। हां... बहुत ठीक। कल हम उस दल-दल की ओर उड़कर जायेंगे। वहां सारसों के बहुत-से परिवार मिलेंगे। तुम्हें दिखाना होगा कि तुम कितने अच्छे बच्चे हो।'

बच्चों ने पूछा–'लेकिन क्या हम नीचे जाकर उन शैतान लड़कों पर चोंचें नहीं मार सकते?'

मां बोली–'नहीं, उन्हें चिल्लाने दो। जल्दी ही तुम बादलों के पार पिरामिडों के देश में पहुंच जाओगे और वे लोग यहीं सर्दी में पड़े कांपते रहेंगे।'

बच्चे आपस में कानाफूसी करने लगे। 'इन शैतान लड़कों को तो सजा देनी ही चाहिये।'

जिस लड़के ने शोर मचाना और उन्हें छेड़ना शुरू किया था, उसकी उम्र छह साल से ज्यादा नहीं थी। लेकिन सारस के बच्चों को लगा कि वह पूरा आदमी है, उसे सजा मिलनी ही चाहिये। सारस-बच्चों का क्रोध इतना बढ़ गया कि अंत में उनकी मां को वचन देना पड़ा कि मैं तुम्हें उन लड़कों को सजा देने के लिए जाने दूंगी, लेकिन दूर देश को उड़ने के दिन से पहले नहीं।

मां ने उन्हें सावधान किया–'पहले तो यह देखना है कि तुम लोग ठीक से उड़ सकते हो या नहीं। अगर तुम ठीक से न उड़ सके और सरदार ने तुम्हें अपनी चोंच से मार

डाला, तब तो लड़कों की बात ही सच निकलेगी।'

बच्चों ने मां को आश्वस्त किया—'हम लोग परीक्षा में जरूर पास होंगे।' वे रोज पूरी सावधानी से अभ्यास करने लगे। अब वे इतना अच्छा उड़ने लगे थे कि उन्हें उड़ते देखकर प्रसन्नता होती थी।

शरद ऋतु के आगमन पर तमाम सारस उड़ने की परीक्षा के लिए इकट्ठे होने लगे। लंबी यात्रा आरंभ करने से पहले उन्हें प्रदर्शन करना था कि वे जंगलों और पहाड़ों के ऊपर कैसी खूबी से उड़ सकते हैं। उन बच्चों का काम इतना अच्छा था कि सरदार ने उनकी खूब तारीफ की। उसने कहा कि अब ये जहां भी मेढ़कों और सांपों को पायें, खा सकते है। बच्चों ने किया भी ऐसा ही।

फिर वे बच्चे मां से कह उठे—'अब शैतान लड़कों से बदला लिया जाये ?'

मां बोली—'ठीक है, जरूर बदला लो। मैंने उनके लिए सबसे अच्छी सजा सोची है। परियों के देश के उस तालाब को मैं जानती हूं, जिसमें मनुष्यों के बच्चे रहते हैं। हम ही वहां से बच्चे लाकर उनके माता-पिताओं को देते हैं। वे बच्चे इतने अच्छे होते हैं कि सभी माता-पिताओं की इच्छा रहती है कि उनमें से एक बच्चा हमें मिल जाये। और सभी लड़के भी चाहते हैं कि उनमें से कोई बच्चा हमारा भाई या बहन बने। इसीलिए हम उस तालाब से उन लड़कों के लिए एक-एक बच्चा लायेंगे, जिन्होंने हमें चिढ़ाया नहीं था और भद्दे गाने नहीं गाये थे।'

सारस के बच्चे जोर से चीख उठे—'लेकिन वह जो भोंड़ा-सा शैतान लड़का है, जो हमें खूब चिढ़ाता है, उसका हम क्या करेंगे ?'

मां बोली—'उस तालाब में एक मरा हुआ बच्चा भी है, उस शैतान लड़के के घर हम उसी को ले जायेंगे, इससे उस शैतान लड़के को बड़ा पछतावा होगा। और हां, तुम्हें वह लड़का भी याद है न जिसने कहा था कि पक्षियों की हंसी उड़ाना पाप है? उसके लिए हम दो बच्चे लायेंगे—एक बहन और एक भाई। उस भले लड़के का नाम प्रीतम है, इसलिए तुम्हारा नाम भी प्रीतम रहेगा।'

ऐसा ही हुआ। तभी से उस जाति के सारस आज भी 'प्रीतम कहलाते हैं।'



बंबई के एक पुलिस-थाने में फोन करके एक सज्जन कहने लगे—'इन्स्पेक्टर साहब, अगर मेरा लड़का आकर रिपोर्ट दर्ज कराये कि उसकी कार चुरा ली गयी है, तो चिंता मत कीजियेगा। वह एक जगह बैठकर बोतल चढ़ा रहा था और इस हालत में नहीं था कि कार सुरक्षित चला सके। मैंने देख लिया और दूसरी चाबी लगाकर मैं कार घर ले आया।' इन्स्पेक्टर ने सोचा शायद यह नाबालिग को शराब बेचने का मामला हो, और फोन पर पूछा—'आपके लड़के की उम्र क्या है?' 'चालीस साल!' दूसरी ओर से जवाब आया।



दो क्षण तो हँस लें

राखी सिन्हा

अत्यंत दक्ष महिला इंजीनियर ने कारखाने के मालिक से वेतन-वृद्धि की मांग की तो मालिक ने कहा–'अब भी आपको बगल की टेबल पर बैठने वाले पुरुष इंजीनियर से ज्यादा ही वेतन मिल रहा है, जबकि वे पांच बच्चों के पिता हैं।'

'पर सेठजी, मैं तो समझती थी हमें वेतन यहां जो उत्पादन करते हैं उसके लिए मिलता है, न कि घर पर निजी समय में किये जाने वाले उत्पादन के लिए।' महिला इंजीनियर ने क्षण-भर भी रुके बिना कहा.... और उसका वेतन बढ़ा दिया गया।

०

अमरीकी सेना मुख्यालय में एक अफसर के हिस्से में इतना ज्यादा काम आता था कि उसे रोज दफ्तर बंद होने के बाद भी दो-तीन घंटे काम करना पड़ता था। मगर पास की टेबल पर बैठने वाला एक और अफसर दफ्तर बंद होने के एक घंटा पहले ही काम-धाम समेटकर घर चल दिया करता था। एक दिन पहले अफसर ने दूसरे से पूछा–'तुम सारा काम इतनी जल्दी कैसे निबटा लेते हो?'

उत्तर मिला–'बहुत आसान है, जो कागजात ऐसे आते हैं, जिनका उत्तर लिखने के लिए बहुत मगजपच्ची करनी पड़े, मैं उस पर लिख देता हूं–"कमांडर स्मिथ को रेफर करें।" इतने बड़े दफ्तर में कोई तो कमांडर स्मिथ होगा ही।'

इस पर पहला अफसर आस्तीनें चढ़ाता हुआ दूसरे की ओर लपका–'अच्छा, अब मैं तुझे मजा चखाऊंगा, मैं ही वह कमांडर स्मिथ हूं।'

०

बंबई में उस रोज एक भीड़-भरे चौक में दो कारों की भिडंत हो गयी और लोग यह देखकर चकित रह गये कि दोनों के चालक कार से उतरकर भाग गये।

बाद में पता चला कि दोनों चुरायी हुई कारें थीं।

०

चोटी की उस फिल्म-अभिनेत्री के यहां उस पार्टी में बंबई की लगभग सभी नामी अभिनेत्रियां बेहतरीन पोशाकों और गहनों में पधारी थीं। मेजबान अभिनेत्री की नयी नौकरानी उन्हें देखकर दिग्भ्रमित रह गयी। वह जानना चाहती थी कि ये सुंदरियां आपस में क्या बातचीत करती होंगी। वह ओट

में खड़ी होकर उनकी बातें सुनने लगी और उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन सबकी बातों का विषय एक ही था—नौकरानियां।

०

पेरिस के विश्वविख्यात लूव्र संग्रहालय के दरवाजे पर दो धनी भारतीय पर्यटकों की अचानक मुलाकात हो गयी, जो एक दूसरे से परिचित थे। एक भीतर जा रहा था, दूसरा बाहर आ रहा था।

बाहर आ रहे पर्यटक ने कहा—'मैं तो बिना गाइड के ही सब देख आया, और तीन डालर बचा लिये।'

'तो फिर आपको यह कैसे पता लगा होगा कि कौन-सी कलाकृतियां प्रशंसनीय हैं!' भीतर जा रहे पर्यटक ने कहा।

०

खडकवासला (पुणे) की राष्ट्रीय प्रतिरक्षा एकेडमी देखने आये एक ब्रिटिश एडमिरल ने एक कैडेट से सहसा पूछ लिया—'ब्रिटेन के तीन महानतम एडमिरलों के नाम गिना सकते हो?'

चतुर कैडेट ने चटपट उत्तर दिया—'ड्रेक, लार्ड नेल्सन, और सर, बुरा न मानियेगा... मैं आपका नाम ठीक से सुन नहीं पाया।'

०

बहुत मामूली हैसियत से जीवन आरंभ करके लखपति बनने वाले व्यापारी से उसकी सफलता के रहस्य के बारे में इंटरव्यू लिया जा रहा था।

'मेरी यह मान्यता है कि वेतन काम का सबसे गौण पहलू है। असली चीज है पूरा दिल लगाकर काम करना, अपनी क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग करना। यह वेतन से कहीं गहरा संतोष देता है।'

'तो इस सत्य को हृदयंगम करने के बाद आप लखपति बने?' रिपोर्टर ने पूछा।

'नहीं', सफल व्यापारी ने स्पष्ट किया—'यह सत्य अपने कर्मचारियों को हृदयंगम कराने के बाद।'

०

पति-पत्नी बड़ी चुस्ती से दंत-चिकित्सक के दवाखाने में आये। पत्नी ही चिकित्सक से मुखातिब हुई, बोली—'एक दांत निकलवाना है। और डाक्टर साहब, नोवोकेन की सूई वगैरह के झंझट में मत पड़िये, हमें बहुत जल्दी जाना है।'

'बड़ी बहादुर हैं आप!' दंत-चिकित्सक ने प्रशंसापूर्वक उसे निहारते हुए कहा—'अपना दांत दिखायें।'

'ऐंजी', पत्नी पति की ओर मुड़कर बोली—'जरा अपना दांत तो दिखाओ इन्हें।'

०

खिड़की में से झांककर बारिश देखते हुए नन्हे टिंकू ने अपनी मां से पूछ लिया—'बारिश क्यों होती है?'

'इसलिए बेटा कि पौधे उगें, फूल खिलें, फल लगें।'

'तो फिर सीमेंट के फर्श पर क्यों बारिश हो रही है?' टिंकू ने दार्शनिक की मुद्रा में टिप्पणी की।

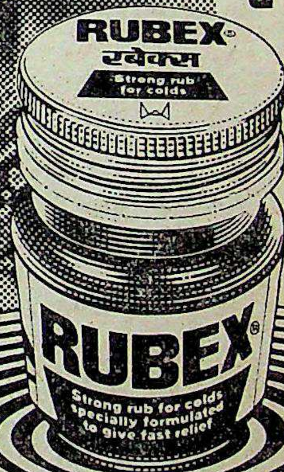


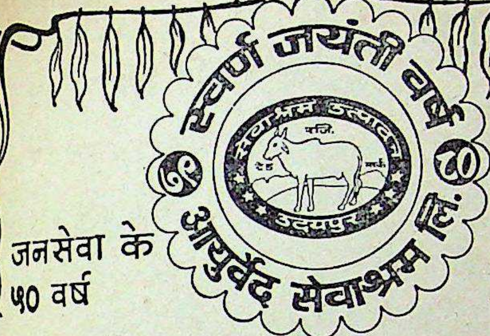
अगस्त १९७९ मूल्य रु. २-२५ पै.

नवनीत हिंदी डाइजेस्ट



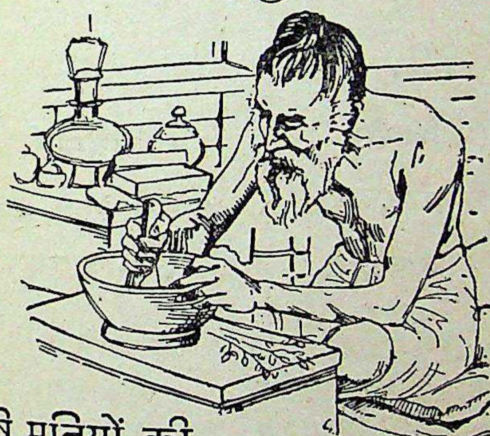

रबेक्स की गरमाहट
सर्दी से
दे राहत


RUBEX®
रबेक्स
Strong rub for colds
RUBEX®
Strong rub for colds specially formulated to give fast relief
रबेक्स
Alembic
के निर्माता
का उत्पादन
गरमाहट फैलाए,
सर्दी-ज़ुकाम से राहत दिलाए.
everest/79/ACW/151-hn



जनसेवा के
५० वर्ष

हम
आभारी हैं



ऋषि मुनियों की
युगों युगों की शोध

सेवाश्रम का

गाय  छाप



ब्राह्मी आँवला केश-तैल
और काला दन्त मन्जन

ब्राह्मी आँवला केश-तैल आधुनिक
पद्धतिसे निर्मित केवल तैल ही नहीं
एक आयुर्वेदिक सौंदर्य प्रसाधन है।
तथा काला दन्त-मंजन केवल मंजन ही
नहीं एक आयुर्वेदिक औषधि है।

आयुर्वेद सेवाश्रम लिमिटेड उदयपुर, वाराणसी, हैदराबाद

heros' AS-147

अगर सेरिडॉन से भी आपका शरीरदर्द नहीं जाए तो डाक्टर की सलाह लीजिए.

र्फ़ एक सेरिडॉन
से ही बदन का दर्द
झट गायब हो जाता
है और आप फिर से
चुस्त और तरोताज़ा
हो जाते हैं. लेकिन
कभी-कभी शरीरदर्द
इतना तेज और



असाध्य होता है
कि सेरिडॉन से भी
आराम नहीं मिलता.
ऐसी हालत में
डाक्टर की सलाह
लीजिए. वही
आपको सही नुस्खा
बताएँगे.

सेरिडॉन

ट्रेडमार्क 'रोश'

शक्तिशाली • हानिरहित

सिर्फ़ एक काफ़ी है.





विश्व बाल वर्ष 1979 में बच्चों के लिए विशेष पुस्तकें



* श्री कृष्ण कथा—ले. सीताराम चतुर्वेदी (गीता के जन्मदाता भगवान श्री कृष्ण की जीवन कथा एक नए रूप में—सरल भाषा में—सचित्र)— रु० 8-00
* पर्वत देवता—ले. राधेश्याम शर्मा (संसार की प्रसिद्ध लोक-कथाओं से चुनी हुई 11 मनोरंजक कहानियां-सचित्र)— रु० 5-00
* असली जीमाकड़े—ले. विमला मेहता (राजस्थान की चुनी हुई 14 लोक-कथाएं-सचित्र)— रु० 7-50
* तेन्दुआ और चीता—ले. रामेश वेदी (तेन्दुआ और उसकी बिरादरी के अन्य जानवरों की विस्तृत व रोचक जानकारी-सचित्र)— रु० 8-00
* पहेलियां—संकलनकर्ता: सूर्यनारायण सक्सेना (भारत में प्रचलित 540 पहेलियों का संग्रह)—रु० 7-50

अंग्रेजी में

* चिल्ड्रन्स महाभारत
  ले. माथुराम भूर्तलिगम— रु० 6-50
* एडवेन्चर्स आफ ए स्पेस क्राफ्ट
  ले. मोहन सुन्दर राजन— रु० 10-00
* थिंग्ज आफ ब्यूटी
  ले. विद्या दहीजिया — रु० 12-50
* टू फार-आफ लैंड्स लॉंग एगो
  ले. कृष्णचैतन्य· रु० 8-00

उर्दू में :-

* पहेलियां· —स ·शहबाज़ हुसैन
  —नंद किशोर विक्रम रु० 8-00

आगामी प्रकाशन

कहानियां बच्चों के लिए (बंगाली), टैगोर की कहानियां, बच्चों के लिए (हिन्दी) उपनिषद की लोक कथाएं (हिन्दी), विश्व की लोक कथाएं (हिन्दी, असमिया, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम) आदि।

हमारी सुप्रसिद्ध व लोकप्रिय पत्रिका "बालभारती" (मासिक) के वार्षिक ग्राहकों को 5 रु० या इससे अधिक की पुस्तकें खरीदने पर 20 प्रतिशत छूट—वार्षिक चन्दा 9 रु०।

डाक खर्च मुफ्त। 10 रु० से कम के आदेश पर पंजीकरण शुल्क अतिरिक्त भेजिए। पुस्तकें स्थानीय पुस्तक विक्रेताओ से लें या सम्पूर्ण बाल साहित्य की जानकारी के लिए लिखें :-



व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

* पटियाला हाउस, नई दिल्ली।
* सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली।
* 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता।
* कामर्स हाउस (दूसरी मंजिल), करीमभाई रोड, बेलार्ड पीयर, बम्बई।
* शास्त्री भवन, 35, हैडोज रोड, मद्रास।
* बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना।
* प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम।

डीएवीपी 79/121

नवनीत के ग्राहकों को सूचना

१) पत्र-व्यवहार में अपना ग्राहक-क्रमांक या रसीद-संख्या अवश्य लिखें ।

२) ग्राहक-क्रमांक देने से आपकी शिकायत और सूचनाओं पर हम शीघ्र ध्यान दे सकेंगे ।

३) 'नवनीत' की प्रतियां पिछले माह के आखिरी सप्ताह में आपको भेजी जाती हैं । प्रति न मिलने की शिकायत मास की १० तारीख के बाद की जा सकती है ।

४) यदि आपको अपने पते में परिवर्तन कराना हो, तो उसकी सूचना माह की १५ तारीख तक हमारे दफ्तर में दें ।

५) बहुत थोड़े समय के लिए हम पते में परिवर्तन नहीं कर सकेंगे । अतः डाकघर से ऐसी व्यवस्था कर लें कि वह आपकी डाक नये पते पर भेज दे ।

६) नये ग्राहकों को चंदा भेजते समय पूरा पता साफ अक्षरों में लिखना चाहिये ।



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

संपादक
नारायण दत्त

सहसंपादक
सुरेश सिन्हा

उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक ········· महेंद्र महेता

वर्ष २८ : अंक ८ — अगस्त १९७९

इस अंक में

चित्र : हेब्बार, शंख चौधुरी, ओके, शेणै, एडलर, पुरोहित, चरन शर्मा, चव्हाण, यादव, गणपत्ये, शरद कांबळी।



घोषित लेखों में से 'पलकों में कटती है रात', 'एक अखबार की जन्म-शताब्दी' और 'मानव-जाति का विचार-गोदाम' इस अंक में जा नहीं पाये; क्योंकि एक तो चित्र जुटाने में विलंब हुआ, दूसरे कई लेख कुछ लंबे हो गये। ये लेख सितंबर अंक में जा रहे हैं।

—संपादक



अगर कोई सारे समय टी. वी. देखता रहता हो और उसे उसमें मजा भी आता हो, तो वह किशोर होगा।

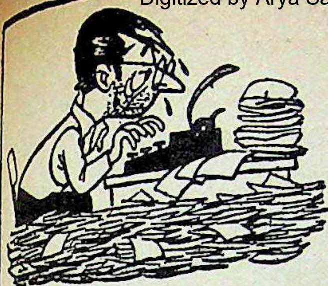
अगर कोई सारे समय टी. वी. देखता रहता हो और उसकी ओर से लापरवाह भी रहता हो, तो वह मजदूर होगा।

अगर कोई सारे समय टी. वी. देखता रहता हो और इस बात पर शरम महसूस करता हो, तो वह बुद्धिजीवी होगा।

अगर कोई सारे समय टी. वी. देखता रहता हो और इस पर गर्व महसूस करता हो, तो वह टी. वी.-समीक्षक होगा।

—बैसिल रैन्सम

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-वृष्टि

श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की, जुलाई अंक में उद्धृत कविता 'मृत्युदंड' में जो उद्वेलित भावना है, वह सबके हृदयों को जागृत करने वाली है। उनका पता मेरे पास न होने से आपसे प्रार्थना है कि मेरे हार्दिक अभिनंदन उन तक पहुंचायें।

—वी. एस. राघवन्, केत्ती—६४३२१५

०००

'श्वाइत्जर का बाल-सहायक' (जुलाई अंक, लेखक मार्टन प्यूनर) ने मेरी हृदय-तंत्री को झनझना दिया। मस्तिष्क-पटल पर तैर आये सुदूर ग्रामांचल में मटमैली जमीन पर खेलते-कूदते बालक। न जाने इनमें कौन-सा राबर्ट हिल छिपा हो, न जाने उनमें से कौन डा. श्वाइत्जर (या डा. राजेन्द्र प्रसाद) निकले! मन पर एक प्रभाव बढ़ने लगा और मैं बढ़ चला कीचड़-भरे मार्ग पर नगर से उस गांव की तरफ, जहां धूल से सने चीथड़ों में लिपटे हुए लाल कक्षा में मेरा इंतजार कर रहे थे।

—अध्यापक अहमदनूर मंसूरी 'बेवक्त', उज्जैन, म. प्र.

०००

श्री हरिशंकर का लेख 'एक था ताना-शाह....' (जुलाई अंक) अच्छा लगा। उसमें पृष्ठ ८२ पर कहा गया है—'और सरा के फिर कोई संतान नहीं हुई।' यह गलत है। १० नवंबर १९७८ को सरा ने एक पुत्र को जन्म दिया, जो दादा अमीन की ३५ वीं औलाद है। अमीन ने घोषित किया था कि यही उसका वारिस होगा। लेख के साथ दिया गया अमीन का तूलिका-चित्र चित्ता-कर्षक लगा। **—चंद्रकांत शर्मा, जयपुर-४**

०००



चंद्रशेखर रथ, जिनके उड़िया निबंध का अनुवाद 'कहां है पथबंधु वह!' पृष्ठ ८८ पर आरंभ होता है।

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से: एक वर्ष : ६० रु., दो वर्ष : १०५ रु., तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३००रु.; एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

हिंदी में ऐसी कोई पत्रिका होनी चाहिये, जिसमें प्रूफ की अशुद्धियां खोजने पर भी न मिलें.... यह इच्छा मेरी ही नहीं, और भी बहुत-से पाठकों, लेखकों की है। कुछ दिन हुए श्री प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त' ने 'नवभारत टाइम्स' में इस विषय पर लेखनी उठायी थी। **नवनीत** के संपादकीय कार्यकर्ताओं की लगन और कार्यनिष्ठा को देखते हुए **नवनीत** से ही इस इच्छा की पूर्ति की आशा हो सकती है। क्या आप और आपके सहकर्मी इसका बीड़ा उठायेंगे ?

—सुभाषचंद्र, अंबाला छावनी-१३३००१

* आपकी जो इच्छा है, वह हमारा चिरकालीन स्वप्न है। प्रयत्न हमारा यही रहता है कि प्रूफ की कोई अशुद्धि न रहे। फिर भी किसी स्तर पर चूक हो जाती है और 'उद्धृत' की जगह 'उद्धृट' (जुलाई अंक, पृ. १४८) छपने जैसी लज्जास्पद घटनाएं हो जाती हैं। कई बार छपते-छपते मात्रा या अक्षर गिर जाते हैं, तब भी पाठकों को शिकायत का मौका मिलता है। कुछ बार पाठक सही को गलत मान बैठते हैं। हाल में एक पाठक ने 'मलियामेट' छापने पर हमारी खबर ली; उनकी राय में शुद्ध रूप 'मटियामेट' है, जबकि कोशों के अनुसार हम गलती पर न थे। हिंदी के एक बुजुर्ग विद्वान इस बात पर रुष्ट रहे हैं कि **नवनीत** 'अँगरेज़ी' छापने के बजाय 'अंग्रेजी' छापता है। हमें उनसे विनम्र निवेदन करना पड़ा कि अब शब्दकोशों ने भी 'अंग्रेजी' रूप को स्वीकार कर लिया है (उदा. बृहत् अंग्रेजी-हिन्दी कोश, डा. हरदेव बाहरी, ज्ञानमंडल, वाराणसी)। वस्तुत: हिंदी में बहुत-से शब्दों के हिज्जों के सर्वसम्मत रूप स्थिर होने बाकी हैं, इस कारण भी शुद्धि-अशुद्धि का मामला जरा जटिल है। और इन सबसे बढ़कर, कंपोजिंग और मुद्रण की दृष्टि से नागरी लिपि पूरी तरह आदर्श लिपि नहीं है। तीव्र गति से छापते समय मात्राएं टूटकर न गिरें, इसके लिए अंततः आवश्यक यह है कि हम उन्नत मुद्रण-विधियां अपनायें, जो कि देश की वर्तमान आर्थिक-औद्योगिक अवस्था में सब पत्र-पत्रिकाओं के लिए सहज-साध्य नहीं है।

—संपादक

०००

डा. धीरेन्द्र कुमार दीक्षित के रोचक लेख 'भारत के भेड़िया-बच्चे' (जुलाई अंक) पढ़ते हुए एक दिलचस्प किस्सा याद आ गया, जो शायद स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने 'श्रीमद्दयानंद-प्रकाश' में दिया है।

स्वामी दयानंद सरस्वती के सामने एक लड़का लाया गया, जिसे भेड़ियों ने अपनी मांद में पाल-पोसकर बड़ा किया था। लड़का हाथ-पैर के बल पशुओं की तरह चलता था और गले-से गों-गों की आवाज करता था। स्वामीजी को देखते ही उसने पैसों के लिए हथेली फैला दी। स्वामीजी ने उसे पैसे दिये और साथ के लोगों से कहा—'देखो, पशुओं के बीच पलने पर भी इसका मानवीय संस्कार गया नहीं।'

—राजेन्द्रनाथ, बीकानेर

०००

जून अंक में अनाथ बच्चों के पिता डा. कोरजाक के त्याग की कथा पढ़कर मैं सचमुच रो पड़ा। लेख के नीचे टामस आल्वा एडिसन से संबंधित जो प्रसंग छपा है, उसने मुझे विशेष बल दिया; क्योंकि मैं भी कुछ ऊंचा सुनता हूं।

—उग्रनाथ नागरिक, सुलतानपुर, उ. प्र.

०००

जून माह के **नवनीत** में हरिशंकर का 'जासूसी उपग्रह किराये पर', चंद्रकांत का 'काम करो आराम से' तथा प्रदीप चतुर्वेदी का 'ग्राम-विकास के लिए विज्ञान' भाये।

'जासूसी उपग्रह किराये पर' रोचक तो है, पर ओट्राग के उपग्रह की लोकप्रियता, विकास तथा भविष्य संदिग्ध लगते हैं। इन जासूसी उपग्रह में जो ईंधन और जो टेक्नोलाजी अपनायी जा रही है, वह द्वितीय विश्वयुद्ध के समय की है। इस प्रकार के ईंधन से चलने वाले राकेटों का भविष्य निश्चय ही अंधकारमय है।

—शक्तिप्रकाश रावत, कोटद्वार, उ. प्र.

०००

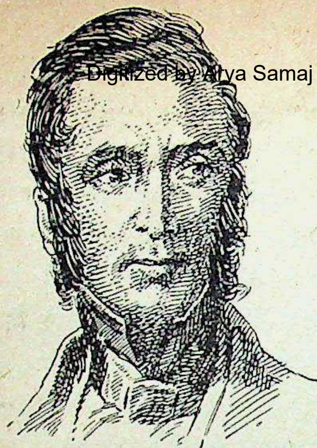
कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा भी न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेजकर मंगवायी जा सकेगी। —संपादक

'नाम ही बन गये काम' (प्रमोद जोशी, जून अंक) में दो त्रुटियां हैं :

क. लेख के आरंभ में कहा गया है—'शल्यक्रिया की जिस विधि द्वारा जूलियस सीजर का प्रसव हुआ, उसे "सीजेरियन आपरेशन" कहा जाने लगा।' यह कथन गलत है। वास्तव में जूलियस सीजर का जन्म सीजेरियन आपरेशन द्वारा नहीं हुआ था। प्रमाण है स्त्रीरोग संबंधी पाठ्य पुस्तक 'द क्वीन शार्लोज टेक्स्ट बुक ऑफ आब्स्टिट्रिक्स' का यह अनूदित अंश :

'सीजेरियन आपरेशन का नाम नूमा पोम्पिली के रोमन नियम लेक्स सीजेरिया पर से पड़ा है, जिसके अनुसार यदि स्त्री प्रसव में मरने वाली हो तो बच्चे को गर्भाशय काटकर निकाला जाये।'

सीजर का जन्म इस विधि से हरगिज



लार्ड डलहौजी, जिसके भूमि-सुधारों का जिक्र गिरीशचंद्र चौधरी के लेख 'सन ५७ की क्रांति......' में है।

नहीं हुआ। उसकी माता उसके जन्म के बाद भी जीवित रहीं। इसका उल्लेख तत्कालीन लेखन में भी मिलता है।

ख. विभवांतर की इकाई लेखक ने 'वोल्टा' बतायी है। वास्तव में 'वोल्ट' (न कि 'वोल्टा') विभवांतर की इकाई है। बेशक 'वोल्टामीटर' यंत्र, जिससे विद्युत-अपघटन किया जाता है, वोल्टा के नाम पर है।

–राकेश कुमार वत्स, कानपुर २०८०१२

*क. यह बात इतनी असंदिग्ध नहीं लगती, द्रष्टव्य हैं निम्नलिखित दो उद्धरण :

Caesarean operation, section : The delivery of a child by cutting through the walls of the abdomen, as is improbably said to have been the case with Julius Caesar or an ancestor. (Chambers's Dictionary, 1960)

Caesarian operation : Whenever it becomes necessary to open the abdomen and then the uterus to aid the birth of a child, the procedure is called a Caesarian section. The term comes from the name of Julius Caesar, who is said to have been born by this route. (The New Illustrated Medical & Health Encyclopedia, vol. i., p. 288).

दूसरा उद्धरण अमरीकी पुस्तक से है, उसमें हिज्जे अमरीकी क्रम से हैं।

श्री वत्सजी के पत्र से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि नूमा पोम्पिली के नियम का नाम 'लेक्स सीजेरिया' क्यों पड़ा। **–संपादक**

०००

मई अंक में 'जयप्रकाशजी को हम क्यों जिलाये रखना चाहते हैं' पढ़कर बड़ी खुशी हुई थी। हजारहा बधाइयां। 'हम उनकी नसीहत की उपेक्षा और उनके व्यक्तित्व की पूजा करना चाहते हैं; और जो हमारे अपने राजनैतिक कर्तव्य हैं, उन्हें उनके हाथों पूरा कराना चाहते हैं।'... यह बहुत सच (पर अप्रिय) बात आपने कही। 'यदा यदा हि धर्मस्य...' के चक्कर में हम बराबर रहते हैं। कृष्ण ने गोवर्धन उठाया तो ग्वालों ने भी लाठियों से सहारा दिया, यह हम भूल जाते हैं और भूल जाना चाहते हैं। है इसका कोई इलाज? श्री जयप्रकाशजी स्वस्थ रहें, दीर्घजीवी हों और प्रभु करे कि उनकी बात सुनी और बरती जाये। **–सत्येन्द्र नारायण, भागलपुर**

०००

...र्च अंक कई कारणों से अभी पढ़ ...हुआ। उसमें प्रकाशित दो लेखों पर टिप्पणी ...करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

श्रीमती मणि आनंद ने श्री गोपाल नेव... द्वारा लेख-प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार ...प्राप्त अपने लेख में बड़े ही तार्किक ढंग से विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत आर्थिक विकास की दौड़ में पिछड़ता जा रहा है। इससे तो कोई भी इनकार नहीं करेगा कि भारत आर्थिक विकास की दौड़ में पिछड़ता जा रहा है; किंतु लेखिका ने जिन्हें आर्थिक विकास का मानदंड माना है, वे मानदंड अब पुराने पड़ ...गये हैं। प्रतिव्यक्ति आय के हिसाब से ...आज दुनिया का संपन्नतम राष्ट्र है; किंतु क्या वह वास्तव में विकसित भी है? लेखिका के ही दिये आंकड़ों के अनुसार, ...थाइलैंड की राष्ट्रीय आय की विकास-दर सोवियत संघ, अमरीका और फ्रांस से अधिक है; किंतु क्या थाइलैंड को आर्थिक विकास में अग्रणी राष्ट्र कहा जा सकता है?

मई १९७७ के **नवनीत** में श्री एम. वी. ...का लेख 'भौतिक सुदशा का नया मानदंड' छपा था। उसमें आयुमान, कम शिशु-मृत्यु और साक्षरता के मिले-जुले निर्देशांक को भौतिक सुदशा का मानदंड मानने की नयी कल्पना का ज़िक्र था। यह काफी हद तक सही है। किंतु इसमें दिक्कत यह है कि यह भी आर्थिक विकास की सही व्याख्या नहीं कर पाती। इस मानदंड के साथ सीमांत व्यक्ति (अर्थात् निर्धनतम व्यक्ति) के कुल उपभोग को आर्थिक विकास का सूचक मानना चाहिये। इसके साथ ही यह भी देखना होगा कि उस उपभोग का कितने प्रतिशत हिस्सा खाद्य वस्तुओं का और कितने प्रतिशत खाद्येतर वस्तुओं का है। खाद्य वस्तुओं के उपभोग का प्रतिशत अधिक होना आर्थिक पिछड़ेपन का लक्षण है। इसके साथ ही, 'पूर्ण रोजगार' की स्थिति से निकटता को भी आर्थिक विकास का मानदंड समझा जाना चाहिये। और अंत में, उच्चतम और निम्नतम आय के बीच अंतर कम होना भी आर्थिक कल्याण का मानदंड होगा।

इन सभी दृष्टियों से विवेचन करने पर भी भारत पिछड़ा ही सिद्ध होगा। किंतु तब विषय के आयाम बदल जाते हैं और पिछड़ेपन के विवेच्य कारण भी।

'भारतीय राजनीति में चिरकुमार' लेख में पुराने राजनीतिज्ञों में श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त और वर्तमान राजनीतिज्ञों में केरल के भू. पू. मुख्यमंत्री ए. के. एंटनी का जिक्र न होना अक्षम्य था।

—आनन्द परुष, इलाहाबाद २११००३

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, २४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४
फोन : ३७२८४७

व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता: नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग, ...१, वेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४ फोन : ३९२८८७

ध्रुवीकरण नहीं, टूट और बिखराव

गणेश मंत्री

दल-बदल के हाल के प्रसंग पर सैद्धांतिक आवरण डालने के लिए कुछ राजनीतिज्ञों ने ध्रुवीकरण की बात कही है। यही कि दिल्ली में जो कुछ कुर्सी का खेल चलता रहा, उसके मूल में बढ़ी-चढ़ी महत्त्वाकांक्षाएं और असंयत राग-द्वेष नहीं अपितु लोकतांत्रिक, धर्म-निरपेक्ष और समाजवादी शक्तियों के ध्रुवीकरण की प्रेरणा है।

यह सैद्धांतिक आवरण कितना झीना और जर्जर है, इसका अनुमान प्रधान-मंत्री-पद के आकांक्षियों के विभिन्न गुटों व संसद-सदस्यों के अतीत को देखकर लगाया जा सकता है।

दोनों ही ओर ऐसे लोगों और तत्त्वों की कमी नहीं, जो कहने मात्र के लिए ही लोकतांत्रिक हैं। व्यवहार में वे लोकतंत्र को सिर्फ सत्ताप्राप्ति का साधन समझते हैं। सत्ता के ऊंचे पदों पर पहुंचने के बाद वे मनमानी, अनियमितता और स्वेच्छाचारिता को अपना नैसर्गिक विशेषाधिकार मानते हैं। वर्तमान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से किसी भी प्रकार की बुनियादी असहमति को वे विद्रोह से कम नहीं समझते। वे अपनी बात समझाने में नहीं, लादने में विश्वास करते हैं।

यही कारण है कि इतने बड़े पैमाने पर दल-बदल, और लोकतंत्र में आस्था के भरमाने वाले नारों के बावजूद अधिकांश-संसद-सदस्यों की एकमात्र कोशिश मध्यावधि चुनाव की अनिवार्यता से बचने की रही। अपने मतदाता के पास जाकर उससे अपने किये-धरे के बारे में जनादेश प्राप्त करने की हिम्मत किसी ने भी नहीं दरशायी। इन सभी के लिए लोकतंत्र का अर्थ जन-प्रतिनिधियों पर मतदाता का प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं, बल्कि चुनाव जीत लेने के बाद पांच वर्ष तक सुरक्षित जागीर का बेरोकटोक उपभोग रहा है।

हमारे यहां के राजनैतिक वातावरण में समाजवाद की स्थिति तो और भी बुरी है। राजनैतिक अवसरवाद ने इसे हर किसी सिर पर बैठने वाली ढीली-ढाली, बेडौल टोपी में बदल डाला है। इतना ही नहीं कि एक बार फिर देश के समाजवादी अपने नेताओं के निहायत व्यक्तिवादी व्यवहार के कारण बंटकर इस या उस दकियानूस कट्टरपंथी, यथास्थितिवादी राजनीतिज्ञ की जयजयकार में व्यस्त हैं; बल्कि वे भूमि की

...ओं और बंटवारे, औद्योगिक साम्राज्यों के नियंत्रण, गरीबी के गढ़े में सड़ रहे करोड़ों लोगों को राहत देने के लिए आवश्यक आर्थिक कार्यक्रमों पर खौफनाक खामोशी अख्तियार करने को भी तैयार हैं।

इस बात को दोहराने में कोई लाभ नहीं कि जिस कांग्रेस के साथ गठबंधन करके समाजवादी शक्तियों के ध्रुवीकरण की बात की जा रही है, उसके ही शासन-काल में आर्थिक विषमताएं निरंतर बढ़ीं। साथ ही यह भी तथ्य है कि जनता पार्टी के शासन-काल में अपने को समाजवादी कहने वाले नेताओं ने पार्टी-घोषणापत्र के समाजवादी मुद्दों पर अमल करने और कराने में कोई खास दिलचस्पी नहीं ली। उनकी अधिकांश शक्ति सत्ता-संघर्ष के प्रमुख अखाड़ों के पट्ठों के रूप में जोर आजमाइश में ही खप गयी।

यही बात धर्म-निरपेक्षता की। अभी तक हम बहुसंख्यकों या अल्पसंख्यकों की सांप्रदायिकता के समर्थक राजनीतिज्ञों को ही देखते आये हैं। एक ओर ऐसे राजनीतिज्ञ और उन्हें शक्ति देने वाले संगठन रहे हैं, जो बहुसंख्यकों के कट्टरपंथी, जातिग्रस्त दृष्टिकोण को सुरक्षित रखने का प्रयास करते हुए अल्पसंख्यकों के प्रति अविश्वास और घृणा फैलाते रहे हैं। दूसरी ओर कुछ अन्य राजनीतिज्ञ तथा उनके संघटन बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता का विरोध करने के नाम पर अल्पसंख्यकों में अलगाव की मनोवृत्ति और धर्मांधता का समर्थन करते रहे हैं। चूंकि वर्तमान राजनैतिक स्वार्थ के कारण प्रायः सभी लोग इस या उस तरह की सांप्रदायिकता के समर्थक हैं, इस कारण अभी तक न तो बहुसंख्यक समाज ही जाति-प्रथा और अस्पृश्यता के सदियों पुराने कोढ़ से मुक्त हो पाया है, और न अल्पसंख्यकों में ही पूरे देश के लिए समान नागरिक कानून, शिक्षासंस्थाओं पर धर्म-निरपेक्ष नियंत्रण जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर उदार जनमत बन सका है।

अभी तक राजनीतिज्ञों की ऐसी कोई बड़ी जमात भी नहीं बन पायी है, जो स्पष्ट रूप से स्वीकार करे कि देशहित की दृष्टि से दोनों तरह की सांप्रदायिकताएं खतरनाक हैं और वे एक दूसरे की सहायता से बढ़ती-पनपती हैं। राजनीति को कतिपय सुनिश्चित जीवन-मूल्यों के चौखटे के बजाय केवल वोट जुटाने और सीट हथियाने की पैंतरेबाजी मानने वाले राजनीतिज्ञों से सही अर्थों में धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण की आशा करनी भी नहीं चाहिये।



राजनारायण
दलतोड़-परायण?
[आर. के. लक्ष्मण]

वैचारिक निष्ठाहीनता की इस अवस्था में राजनैतिक ध्रुवीकरण की सारी चर्चा बेमानी है। आज जो कुछ हम देख रहे हैं, वह ध्रुवीकरण की नहीं, बल्कि टूटने और बिखरने की

खतरनाक प्रक्रिया का पूर्वरंग है। इस प्रक्रिया के मूल में राजनीतिज्ञों की महत्त्वाकांक्षाएं तो हैं ही, साथ ही इसे हमारी पुरानी परंपराओं से भी समर्थन मिल रहा है। कभी-कभी तो लगता है, जैसे थोड़े-बहुत आवश्यक परिवर्तनों के साथ मध्ययुगीन इतिहास का घटना-क्रम ही हमारे सामने फिर से घटित हो रहा है।

बिखराव के उस युग में जब भी विदेशी हमला होता था, विभिन्न राजाओं, सरदारों, सूबेदारों की छोटी-बड़ी टुकड़ियां लेकर भारतीय सेना तैयार होती थी। अपना काम पूरा होने, या हार जाने के बाद ये टुकड़ियां फिर अपने-अपने राजाओं, सरदारों के कब्जे में आ जाती थीं। आपातस्थिति के विशेष प्रसंग में बनी जनता पार्टी भी क्या कमोबेश ऐसी ही विभाजित निष्ठा वाली सेना नहीं थी?

तानाशाही के अत्याचारों से दुःखी भारतीय जनता की शक्ति के बल पर जनता पार्टी जीत भले ही गयी, परंतु उसके साथ ही विभाजित निष्ठाओं के तकाजे भी बढ़ गये। छोटी-बड़ी टुकड़ियों के सरगना अपने आपको महाबली सिद्ध करने में जुट गये। हरएक यह मानने लगा कि सिर्फ मेरे और मेरी टुकड़ी के बूते पर ही सारा संघर्ष जीता गया है, इसलिए अब बाकी टुकड़ियों को शक्तिहीन करके अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहिये। हर संभव उपाय से अपने को शक्तिशाली बनाने की चेष्टा शुरू हो गयी। जो अनुशासन में रहकर यह काम कर सकते थे, उन्होंने इसे चुपचाप किया। राज्यपालों की नियुक्ति से लेकर प्रौढ़-शिक्षाकेंद्रों के लिए अनुदानों तक का अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उपयोग किया गया। अनुशासन में रहकर अपनी शक्ति बढ़ाना जिनके लिए असंभव था, उन्होंने पार्टी तोड़कर अपने स्वार्थ साधने का प्रयत्न किया।

परिणाम सामने है—जोड़-गांठकर एक रखने के सारे प्रयत्नों के बावजूद जनता पार्टी बिखर गयी है, सिर्फ नाम बाकी है। अन्यथा कौन नहीं जानता कि विभिन्न टुकड़ियां और उनके सरदार अब पूरी तरह से अपनी मन-मर्जी के मालिक बन बैठे हैं।

जनता पार्टी की टूट हमें सहज में ही संयुक्त परिवार के विघटन की प्रक्रिया की भी याद दिलाती है।

जैसे संयुक्त परिवार में वैसे ही जनता पार्टी में भी पहले चुपके-चुपके शिकायतों का सिलसिला चला। छिप-छिपकर कहा जाने लगा—हमारे साथ अन्याय हो रहा है; मेरे बाल-बच्चों के साथ सौतेला व्यवहार किया जा रहा है; बड़ा या छोटा अथवा मंझला अपने बुढ़ापे का पूरा इंतजाम कर रहा है; हमारा अपना तो भविष्य अंधकार में है।

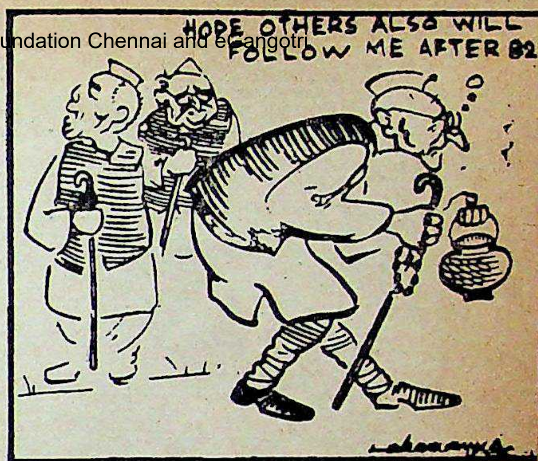
विघटन का विष फैलता गया और एक दूसरे का लिहाज खत्म होता गया। खुल्लम-खुल्ला दोषारोपण, एक दूसरे के विरुद्ध जोड़-तोड़, सांठगांठ का सिलसिला शुरू हुआ। और जैसे विभाजित परिवार के भाई, वैसे ही जनता पार्टी के विभिन्न घटक

अंततः घर की चहारदीवारी लांघकर झगड़ने के लिए सड़क पर आ गये। अब बाहरी लोगों से परहेज का क्या सवाल ! नहीं होगी इनसे कभी हमारी पुश्तैनी दुश्मनी। पर अपना अधिकार पाने के लिए तो वे आज हमारे मददगार हैं।

मां-जाये भाई से दुश्मनी और दुश्मन की दलाली विभाजित परिवार का सामान्य व्यवहार है। जनता पार्टी के विभाजन के बाद क्या आज यहीं नहीं हो रहा है ?

जनता पार्टी का विघटन एक और रूप में भी हमारे सामाजिक जीवन की एक बड़ी विसंगति का परिणाम है। पिछले डेढ़ हजार साल से हिंदुस्तानी मन, अपवादपूर्ण स्थितियों को छोड़कर, अपनी श्रेष्ठता की नकली मान्यताओं के कारण जबर्दस्त सिकुड़न का शिकार रहा है। यद्यपि हमारे समाज-सुधारक और विचारक अतीत की हमारी उदारता, सभी को अपने में समा लेने की विशाल-हृदयता की ओर हमारा ध्यान खींचते रहे हैं, परंतु व्यवहार में हम निरंतर सिकुड़ते रहे हैं। एक-एक करके समाज के जाने कितने अंग टूटकर अलग होते गये हैं और हम उन्हें खींचकर वापस मुख्यधारा में जोड़ने को प्रयास करने के बजाय, यह कह कर तसल्ली करते रहे हैं कि अब हम ज्यादा तसल्ली से रह सकेंगे।

जनता पार्टी भी कतिपय नेताओं की ऐसी संकीर्ण मानसिकता से ग्रस्त रही है। इन नेताओं ने असंतोष के कारणों को जानने और दूर करने के बजाय उनकी सरासर



मगर ये दो भी ८२ के होते ही मेरा अनुसरण करेंगे न ? [लोकमान्य : फ्रीप्रेस जर्नल]

उपेक्षा की। रोग जब हद से बढ़ गया, तो अनुशासन की तलवार का सहारा लिया गया। खेप की खेप संसद-सदस्य पार्टी छोड़कर बाहर जाने लगे, तब भी आत्मतुष्ट वरिष्ठ नेता ने यही कहा—चिंता की कोई बात नहीं; इन्हें तो बाहर जाना ही चाहिये था; अब हम ज्यादा तसल्ली से पार्टी का काम-काज चला पायेंगे।

लेकिन क्या सचमुच तसल्ली से काम-काज चला ? बचे हुए लोगों में ही नेतृत्व के लिए होड़ शुरू हो गयी। बाद में इस पर परदा जरूर डाल दिया गया। लेकिन जल्दी ही नयी होड़ शुरू हो जाये, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। संभव है तब फिर से ध्रुवीकरण का नारा बुलंद किया जाये। लेकिन वह भी आज जैसा ही ढकोसला रहेगा।

ढकोसलेबाजी से मुक्त होने के लिए

हमारे देश में ध्रुवीकरण की किसी भी चर्चा को गोल-मटोल सिद्धांतों की ऊंचाइयों से उतरकर भारतीय सामाजिक-आर्थिक जीवन की वास्तविकताओं के धरातल पर लाना होगा। हमारे सामाजिक-आर्थिक जीवन में एक साथ कई-कई तरह के ध्रुवीकरणों की प्रक्रिया सहज में ही देखी जा सकती है।

उदाहरण के लिए, एक ओर उद्योगपतियों-प्रबंधकों और श्रमजीवियों के बीच ध्रुवीकरण की प्रक्रिया चल रही है, तो दूसरी ओर शासक वर्ग और सामान्य जनता के बीच में ध्रुवीकरण हो रहा है। एक ओर अमीर और गरीब का ध्रुवीकरण है, तो उसके समानांतर ही शहर और गांव का संघर्ष है। स्वयं गांव में भी जहां बड़े किसान और भूमिहीन के दो ध्रुव हैं, वहीं मध्यवर्णी जातियों और हरिजनों के बीच तनाव और संघर्ष है। आर्थिक क्षेत्र में एक ओर रोजगार-प्राप्त मध्यवर्गीयों का ऊंचे जीवन-यापन-स्तर के लिए संघर्ष है, तो उसके साथ-साथ बेरोजगारों का जीवन-अस्तित्व के लिए संघर्ष है। इन सारे ध्रुवीकरणों के अलावा क्षेत्रीय असंतुलन, प्रादेशिक आकांक्षाओं, केंद्र बनाम राज्य और राज्य बनाम राज्यों के तनाव अलग से हैं।

ध्रुवीकरण की चर्चा करने वाली कोई भी सार्थक राजनीति इन तथा ऐसे अन्य तनावों, संघर्षों को हल करने में समर्थ कार्यक्रम देने की शर्त से नहीं बच सकती।

लेकिन हमारे राजनीतिज्ञ आज किसी भी ठोस कार्यक्रम पर अमल की शर्त से बंधने को कहां तैयार हैं ? वे वर्तमान राजनीति के व्यक्तिनिष्ठ, गुट-केंद्रित चरित्र को भी सुरक्षित रखना चाहते हैं और देश में व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का भी आश्वासन देते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि इन दोनों में मौलिक विरोध है।

राजनीति के इस व्यक्तिनिष्ठ, गुट-केंद्रित चरित्र को बदले बिना देशव्यापी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की बात बिलकुल फिजूल है।



मैं अपने ढर्रे पर लिखता चला जाता हूं। क्या मैं फैशनेबल हूं ? क्या मैं अगले साल फैशनेबल नहीं रह जाऊंगा ?—इन चीजों की मुझे रत्ती-भर भी फिक्र नहीं। यह ऐसा ही है, जैसे कि कोई आदमी पचास बरस तक एक ही सूट पहनता रहे, जो कि कभी से पुराने फैशन का हो चुका है। फिर फैशन पीछे लौटता है और उसके कोट के लैपेल की फिर से स्टाइल चल पड़ती है। फैशनेबल बनने के लिए उस आदमी ने यह सब नहीं किया था। बस, उस बेचारे को तो वही कपड़े पहनना अच्छा लगता था।

—आइजैक बाशेविस सिंगर



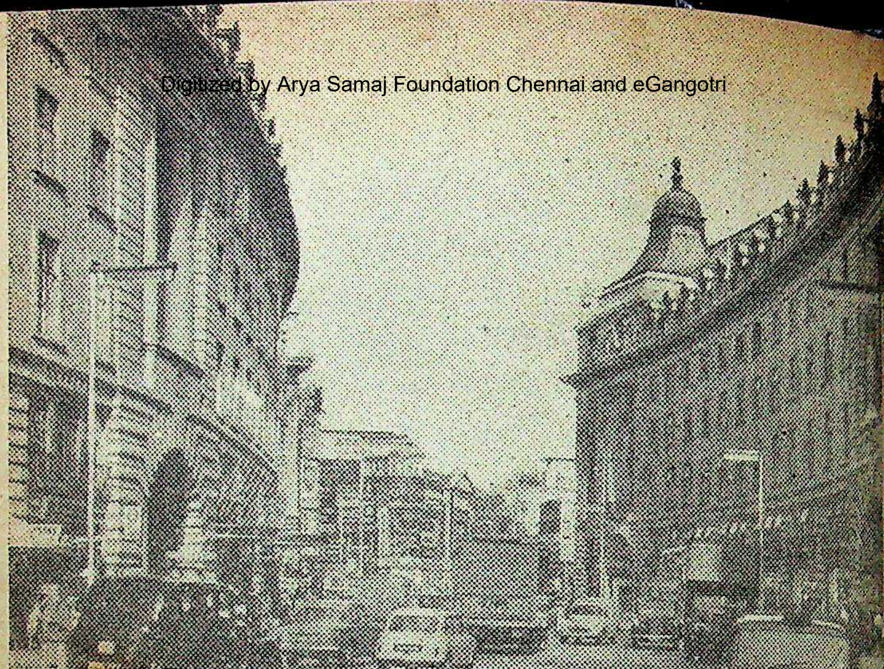
लंदन में इस बार

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

जिस समय मैं हीथ्रो हवाई अड्डे की चहारदीवारी से बाहर निकला, तो धूप खिलखिला रही थी, यद्यपि बहुत ठंडी हवा बह रही थी। बीस साल पहले मैं लगभग इन्हीं दिनों लंदन आया था। (यों बाद में भी एक बार जनवरी मास में लंदन हवाई अड्डे से होकर अमरीका गया था।) उस वक्त के लंदन हवाई अड्डे और हीथ्रो हवाई अड्डे में जमीन-आसमान का फर्क था। तब मैं शायद क्रोइडन में उतरा था। उस समय बस द्वारा टर्मिनल इमारत तक जाना पड़ा था। दूसरी बार जब आया, तो हवाई अड्डे पर बर्फ इतनी थी कि विमान मुश्किल से उतर पाया। हम लोग बड़ी मुश्किल से संभल-संभलकर पैदल ही एक कमरे तक पहुंचे, जहां से एक बस हमें टर्मिनल इमारत में ले गयी। पुराने ढर्रे की इमारत थी। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ था कि महानगर लंदन का यह हवाई अड्डा ब्रसेल्स (जहां से मैं आया था) के हवाई अड्डे के सामने कुछ भी नहीं है। वहां तो जहाज सीधे इमारत की सीढ़ी के नीचे लगा दिया गया था और उससे होकर हम इमारत में चले गये थे। इस बार जब हीथ्रो में हमारे जहाज की खिड़की खुली, तो हमें किसी सीढ़ी से नीचे उतरना नहीं पड़ा; बल्कि विमान की खिड़की से ही एक सुरंगनुमा रास्ता बना दिया गया। उस पर थोड़ी देर चलकर हम टर्मिनल की मुख्य इमारत में पहुंच गये। जहां पर यात्रियों के पासपोर्ट वगैरह देखे जा रहे थे, वहां मैंने अपने कागज-पत्र संबद्ध अधिकारी को दिखाये और उससे कहा कि हो सकता है कोई यहां मेरी प्रतीक्षा भी कर रहा हो। उसने तत्काल मुझे सूचित किया कि उसकी मेज के पीछे जो महिला खड़ी हैं, वे मेरी ही प्रतीक्षा में हैं। वे ब्रिटेन के केंद्रीय सूचना-विभाग से आयी थीं, जिसने मुझे लंदन में पांच दिन अपना अतिथि बनने का निमंत्रण दिया था। सामान को कस्टम से लेने में कोई असुविधा नहीं हुई और जब हम इमारत से बाहर निकले, तो मिस लीविस का ड्राइवर भी मौजूद था, जो मुझे देखकर गाड़ी ले आया। यहीं पर मुझे सूरज की किरण और ठंडी हवा एक साथ सेवन करने को मिली।

१/७९

असल में मैं आया था पेरिस से। इसलिए यहां पर भारत से आने वालों की भारी भीड़ नहीं थी। भारत से आने वाले विमान हीथ्रो अड्डे के दूसरे खंड में उतरते थे। पेरिस का चार्ल्स द गोल हवाई अड्डा गोलाकार बनाया गया है और वहां उतरने-चढ़ने के चार द्वार हैं, जो उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के नाम पर हैं। हीथ्रो हवाई अड्डा आयताकार है और उसके द्वारों को



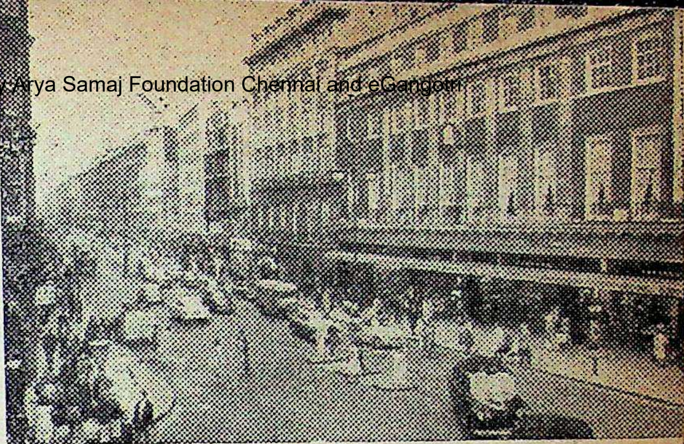
रीजेंट स्ट्रीट, लंदन। [इस लेख के सब चित्र ब्रिटिश इन्फर्मेशन सर्विस के सौजन्य से।]

क्रमसंख्या दे दी गयी है–एक, दो, तीन, चार। विमान से उतरने के लगभग आधे घंटे के भीतर हम अपने होटल पहुंच गये। बड़े शहरों के बाज-बाज हवाई अड्डे तो शहर से ४० या ५० मील दूर होते हैं–जैसे लंदन का ही गेटबिक हवाई अड्डा। मगर हीथ्रो शहर में ही बना हुआ है।

लंदन की इमारतें बड़ी साफ चमक रही थीं, जैसे हाल ही में धोयी गयी हों। १८ वीं और १९ वीं शताब्दी की बनी जो इमारतें बीस वर्ष पूर्व धुएं और कोहरे के असर से काली नजर आयी थीं, वे अब अपने मूल रूप में चमक रही थीं। कुमारी लीविस ने बताया कि सरकार के पर्यावरण-विभाग के आदेश से अब कारखानों को ईंधन का प्रयोग करते समय कुछ खास सावधानियां बरतनी पड़ती हैं, जिससे अब वायु पहले जितनी प्रदूषित और कलुषित नहीं हो पाती। दूसरे, रासायनिक द्रव्यों की सहायता से इमारतें भी साफ की गयी हैं, जिससे उनका रूप-रंग निखर आया है।

हमारी गाड़ी टेम्स नदी के किनारे होकर निकली। हमने सुंदर गुलाबी उद्यान को पार किया। दौड़ती कार से बकिंघम पैलेस को देखते और चैरिंग क्रास रोड, आक्सफर्ड स्ट्रीट, विक्टोरिया रोड आदि लंदन की पुरानी सड़कों को पार करते हम स्काटलैंड यार्ड की गगनचुंबी और आधुनिक इमारत के पीछे कैक्सटन स्ट्रीट में प्रविष्ट हुए। यहां कैक्सटन हाल के पास ही सेंट एरमिन्स होटल है, जिसमें मुझे ठहराया गया।

होटल पुरानी प्रणाली का और कला-



आक्सफर्ड स्ट्रीट, दुनिया का सबसे बड़ा शापिंग सेंटर माना जाता है।

...है–१९ वीं शती में ...। जब यह बना होगा, ... समय अपनी बरोक वास्तु- ... तथा प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों ... आवास के कारण बहुत ... रहा होगा। आवास की ... सुंदर व्यवस्था है। भोजन ... 'कैक्सटन रूम' कहलाता ... ब्रिटिश पत्रकारिता का अध्य- ... करने मैं यहां आया था। इस- ... ब्रिटेन में प्रथम मुद्रणालय ... संस्थापक विलियम कैक्सटन ... नाम वाले कक्ष में भोजन करते हुए मुझे ... परितोष अनुभव हुआ। यहां के सभी ... चारी बड़े सहायक और अनौपचारिक ... से काम करने वाले लगे। वातावरण ... दिखावट के बजाय, आगंतुक के प्रति ... त्मीयता थी।

... मैंने कहा कि मेरा उद्देश्य पत्र- ... रिता का अध्ययन करना था। लिहाजा ... मेजबानों के बाद मेरी पहली मुलाकात ... के पत्रकार संघ नेशनल यूनियन ऑफ ... लिस्ट्स के महासचिव से उनके कार्या- ... एकोर्न हाउस में हुई। वहां जाने के ... हमने लंदन की प्रसिद्ध सड़कें रीजेंट ... आक्सफर्ड स्ट्रीट, ट्राफलगर स्क्वेयर ... स्ट्रैंड को पार करके फ्लीट स्ट्रीट में ... किया। करीब-करीब यहीं पर 'लंदन ...' नाम से विख्यात वह हिस्सा शुरू ... है, जो व्यापार का केंद्र है। एक फाटक- ... द्वार बना हुआ है, जिस पर दो सिंह बैठे हैं। यदि महारानी इसमें गुजरना चाहें, तो उन्हें इसके लिए नगर के मेयर से अनुमति-स्वरूप चाबी लेनी पड़ती है। पहले जब शासक (राजा या रानी) नगर के इस मुख्य भाग में आता था, तो शायद नगर-पालिका की ओर से उसका सम्मान किया जाता था, जिसका प्रतीक यह परंपरा है। बाद में जेम्स प्रथम के समय में राजा और प्रजा में संघर्ष छिड़ा और चार्ल्स प्रथम को मार डाला गया, तो फिर इस प्रथा का स्वरूप बदल गया और यह रस्म स्वागत के स्थान पर एक प्रकार से प्रतिबंध का प्रतीक बन गयी।

फ्लीट स्ट्रीट में अब काफी परिवर्तन हो गया है। 'टाइम्स' का नया भवन दूसरी सड़क पर है; परंतु अन्य सब समाचार-पत्रों तथा समाचार-एजेन्सियों के कार्यालय इसी सड़क पर हैं। यहीं पर प्रेस क्लब भी हैं, जो दिन-रात गुलजार बना रहता है।

भोजन, शराब, बातचीत का दौर चलता ही रहता है। ऊंची आवाजों में जैसी बहसें यहां सुनाई देती हैं, वैसी लंदन के किसी रेस्तरां में नहीं सुनाई देंगी। रेस्तरां में शोर करना असंस्कारिता का सूचक माना जाता है, जबकि यहां बात उलटी है। अन्य क्लबों की तरह यहां पोशाक का कोई महत्त्व नहीं है। जो हस्तियां क्लब की सदस्य रहकर इसका गौरव बढ़ा चुकी हैं, उनके चित्र यहां लगे हुए हैं और पुराना लकड़ी का जीना है, जैसा कि इंग्लैंड की बहुत-सी इमारतों में है।

एकार्न हाउस में नेशनल यूनियन ऑफ

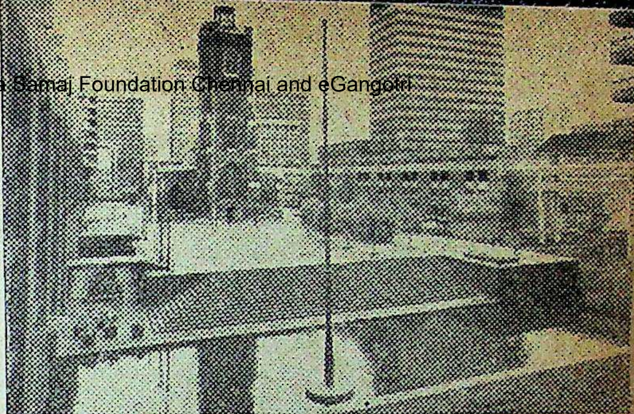
फ्लीट स्ट्रीट, जिसका नाम लंदन में पत्रकारिता का पर्यायवाची बन गया है। पृष्ठभूमि में सेंट पाल का गुंबद है।



जर्नलिस्ट्स के महासचिव श्री एशटन से जब मैं बातचीत करने पहुंचा, लंदन के विश्व-विख्यात 'टाइम्स' के बंद होने में सिर्फ तीन दिन बाकी थे और उसके कुछ दिन बाद ही ब्रिटेन के सारे प्रदेशों के समाचारपत्रों में पत्रकारों की हड़ताल शुरू होने वाली थी। फिर भी श्री एशटन पूरे दो घंटे तक मुझसे बातचीत करते रहे और जब मैंने उनसे विदा ली, तो शाम-सी हो गयी थी। सड़कें बिजली के प्रकाश से जगमगा रही थीं। रीजेंट स्ट्रीट में तो पूरे बाजार में बिजली के बल्बों की झालरें पड़ी थीं।

यहां पर यह प्रथा है कि बड़े दिनों में रीजेंट स्ट्रीट में रोशनी का उद्घाटन प्रिंस ऑफ वेल्स करते हैं और लगभग एक माह तक क्रिस्मस का बाजार चमचमाता है। इसी बाजार में हैं बांड स्ट्रीट (जो बढ़िया कपड़ों के लिए प्रसिद्ध है), केनसिंग्टन हाइ स्ट्रीट और पिकैडिली। ये सब बाजार लंदन के वेस्ट एंड इलाके में हैं।

किंग स्ट्रीट पर लंदन का प्रसिद्ध गिल्ड हाल, जो कि नगर महापालिका का मुख्य भवन है, प्रकाश से जगमगा रहा था। मूल गिल्ड हाल की स्थापना १५ वीं शताब्दी में हुई थी। १९४० की बमवर्षा में वह जलकर समाप्त हो गया। महायुद्ध के बाद उसका पुनर्निर्माण किया गया, लेकिन हूबहू उसी प्राचीन शैली में—अंदर भी और बाहर भी। यहां तक कि कुर्सियां और झाड़-फानूस भी पुराने ढंग के ही बनवाये गये। यहां के पुस्तकालय में सन १५७० के लंदन का एक



लंदन के हृदय में नवनिर्मित बारबिकन डेवलपमेंट क्षेत्र। बीच में है पुराने लंदन का प्रतीक सेंट गिलेस गिरजा।

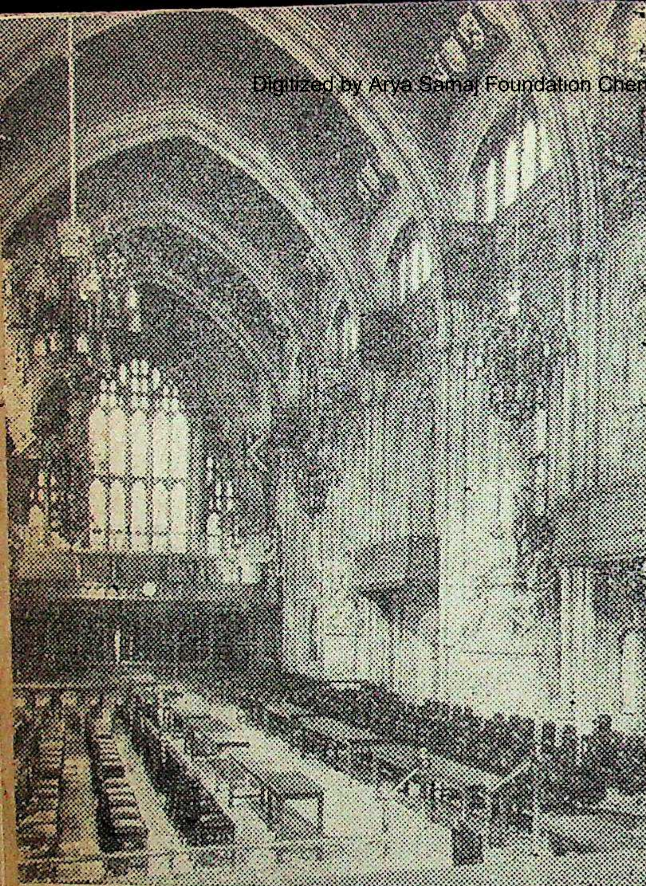
...रखा हुआ है।

०

...पुराने नगर में बहुत कुछ पुराना ...र सब कुछ पुराना नहीं है। ...साल पहले भी सेंट पाल का ...वायर मैंने देखा था। फ्लीट ...ट में घुसते ही उसका गोल गुंबद ...दिखाई देता है। यह बात ...-प्रसिद्ध है कि जब यह जल ... और सर क्रिस्टोफर रेन ने ...का पुनर्निर्माण किया, उस समय ...इस बात का ध्यान रखा कि इसका ...रूप ही कायम रहे। तीन सौ ...अधिक वर्षों के बाद आज भी यह उसी ...के साथ चमक रहा है। सर क्रिस्टोफर ...ने इसमें अपनी सर्वोत्तम कला प्रदर्शित ...है। यद्यपि अब इसमें ब्रिटेन के शासकों ...राजतिलक नहीं होता, पर यह ब्रिटेन के ...हीं, संसार के सुंदरतम गिरजाघरों में ...है। इसमें अन्य अनेक शाही गिरजों ...भांति राजाओं की छतरियां या कब्रें ...है। लेकिन इंग्लैंड के दो विश्वप्रसिद्ध ...ड्यूक ऑफ वेलिंग्टन और लार्ड ...इसी में दफन हैं। यहां के चित्र, ..., कांच पर किया गया सुनहरा काम ...नितांत दर्शनीय हैं।

...किन इस बार जब मैं सेंट पाल गया, ...उसका परिवेश बिलकुल बदला हुआ ...दिया। उसके पास ही सीमेंट का ...आधुनिक बाजार बन गया है, जिसमें ...छोटी कामकाजी दुकानें हैं। वहां पर एक रेस्तरां में मैं दोपहर का भोजन करने गया। इन रेस्तरांओं के मालिक साधारण दुकानदार मालूम नहीं होते थे। छोटी-छोटी दाढ़ी, आंखों पर चश्मा। कोई खाना बनाता, गरम करता; दूसरा प्लेटों में भरता; और तीसरा आपकी मेज तक पहुंचा जाता। छोटी-सी दुकान थी। बेसमेंट में भी और ऊपर भी भीड़ थी। गरमागरम शाकाहारी भोजन हमें प्राप्त हुआ, जो स्वादिष्ट था। अन्य रेस्तरांओं की तुलना में यहां के भोजन में मिर्च-मसाला कुछ ज्यादा था, शायद इसीलिए यहां भीड़ भी अधिक थी।

सेंट पाल गिरजाघर के पीछे ही जो नयी आधुनिक इमारतें बनी हैं, उन्हें पैटर-नोस्टर विकास-योजना कहते हैं। ये पांच-मंजिली इमारतें कांच और सीमेंट का सम्मिश्रण हैं और सेंट पाल की बरोक वास्तुकला का विरोधाभास प्रकट करती हैं। इस तरह के बहुत दृश्य आज लंदन में देखने को मिलते हैं, क्योंकि आधुनिक



गिल्ड हाल–भीतर की झांकी....सब कुछ पहले जैसा।

इमारतें जगह-जगह बनी हैं। एक बार-बिकन विकास-योजना है, जो बमों से नष्ट हुए ६२ एकड़ क्षेत्र में विकसित हुई है। इसमें एक ओर गगनचुंबी इमारतें हैं, जिनके सामने पेड़ छोटी झाड़ियों-जैसे दिखाई देते हैं। दूसरी ओर जैसे उनका मुकाबला करने के लिए ही त्रिपल गेट में सेंट गीलेस का प्राचीन गिरजाघर भी खड़ा है।

०

लंदन शहर की चहारदीवारी से बाहर टेम्स नदी के दूसरे तट पर लंदन का दुर्ग है, जिसे 'टावर ऑफ लंदन' कहते हैं। पिछली बार मैं इसे नहीं देख पाया था। एक दिन सवेरे-सवेरे हम टावर देखने गये। टेम्स नदी के किनारे बने हुए इस प्राचीन दुर्ग की दीवारें तो शायद रोमन विजेताओं के जमाने की हैं, पर इसका मुख्य निर्माण-कार्य विजेता विलियम (१०२७?-१०८७ई.) ने किया था, जो नारमंडी से आया था। आज भी इसका 'ह्वाइट टावर' (श्वेत महल) उसी रूप में विद्यमान है, जिस रूप में उसने उसे बनवाया था। १३वीं शती में इसका विस्तार हुआ। इसके बाद और भी बहुत-से भाग बने।

इस दुर्ग को अपनी लंबी-लंबी मीनारों के कारण 'टावर ऑफ लंदन' कहा जाता है। यह राजमहल भी रहा है और जेलखाना भी। राजा-रानियों ने अपने विलास के दिन भी यहां काटे और यहीं पर उनका कत्ल भी किया गया। एक खाई को पुल से पार करके इसके अनेक द्वारों में से किसी एक में से होकर इसमें घुसते ही दर्शक का ध्यान सबसे पहले ह्वाइट टावर की ओर जाता है। यह आज एक बहुत बड़ा संग्रहालय है, जिसमें एक सुंदर गिरजाघर भी है। इस संग्रहालय में हथियार ही हथियार हैं—प्राचीन काल के तीर-कमान से लेकर

...तौल, रिवाल्वर और राइफल तक। कैसे ...योद्धा पहनते थे और कैसे कवच घोड़ों ... पहनाये जाते थे, यह सब आप यहां ...ते हैं। इस इमारत का मुख्य द्वार बंद ...ता है, आवागमन दूसरे द्वार से होता है। ...यों तो यह महल आयताकार है, परंतु ...की चारों भुजाएं बराबर नहीं हैं। इसके ...रों को देखकर आश्चर्य होता है कि यह ...राजाओं का निवास-स्थल था, मगर ...में न कहीं संगमरमर है, न जगमगाते ...फ़ानूस हैं। मगर इसकी आज जो ...ता है, उसका एक कारण यह भी है कि ...मनहूस जगह है।

...इतिहास में लंदन टावर को ...लिए याद नहीं किया जाता ...यहां हेनरी सप्तम या हेनरी ...म, एडवर्ड प्रथम या रिचर्ड ...रहते थे; बल्कि इसकी ...सिद्धि इस लिए है कि यहां पर ...बड़े लोगों को तलवार के ...उतारा जाता था। यहां एक ...डी टावर' (खूनी मीनार) ...है। इसमें १५८५ ई. में नार्दम्बर-...के आठवें अर्ल ने आत्महत्या ...की और उससे पूर्व १४८३ ई. ...दो नन्हे राजकुमार राजा ...एडवर्ड पंचम और उसके भाई ...के ड्यूक की हत्या की गयी ...। 'रिचर्ड द थर्ड' में शेक्स...पियर ने वह कथा दी है।

...असल में यह पूरे का पूरा महल ...ही फांसीघर है। यहीं पर १३८८ ई. में सर साइमन बरले का सिर उड़ाया गया। हेनरी सप्तम के मंत्री लार्ड डडले का १५१० ई. में, उसके पुत्र ड्यूक ऑफ नार्दम्बरलैंड का १५५३ ई. में, और उसके एक नाती लार्ड गिल्डफोर्ड डडले का १५५४ ई. में सिर उड़ाया गया। सर टामस मोर (जिन्हें कुछ वर्ष पूर्व पोप ने संत का रुतबा दिया) और फिशर की हत्या १५३५ ई. में की गयी, ससेक्स के अर्ल की १५४० ई. में, लार्ड सरे की १५४७ ई. में और उसके पुत्र लार्ड नारफोक की १५७३ ई. में। १७ वीं शताब्दी में लार्ड स्टैफर्ड और आर्च बिशप

लंदन टावर–भीतर की एक झांकी।



लार्ड के सिर यहीं काटे गये थे और स्काट-लैंड के लार्डों के १७१६ ई. और १७४७ ई. में।

राजकीय जेलखाने के रूप में इस महल का उपयोग बहुत पुराने जमाने से होता आया है। इंग्लैंड की महान सम्राज्ञी एलिजाबेथ प्रथम को भी रानी होने से पहले उसकी बहन मेरी ट्यूडर ने इसी राजमहल में कैद रखा था। कैद का यह सिलसिला १२ वीं शताब्दी से शुरू हुआ था, जब राल्फ लैम्बर्ड नाम के राजपुरुष को गिर-फ्तार करके यहां रखा गया। मई १९४१ में हिटलर का मंत्री और सलाहकार रुडाल्फ हेस जब हवाई जहाज लेकर इंग्लैंड में उतरा, तो उसे भी यहीं कैद रखा गया। ऐसा समझा जाता है कि यह दुर्ग इतना अभेद्य है कि इसे पार करके कोई भाग नहीं सकता।

यहां पर एक देशद्रोहियों का द्वार भी है। किसी समय टेम्स नदी इसके पास से बहती थी। देशद्रोही माने गये लोग इसी द्वार से अंदर लाये जाते थे और यहां पर वे या तो कैद रहते या अपना सिर गंवाते।

पुराने ढंग की लाल और नीली फौजी पोशाक पहने और हाथ में भाला लिये चौकीदार यहां आज भी उसी तरह पहरा देते हैं, जैसे १७ वीं, १८ वीं शताब्दियों में दिया करते थे। उनमें एक ने मुझे बताया कि ये वे कमरे हैं, जिनमें हेनरी अष्टम की प्रिय रानी एन बोलीन रहती थी और यह वह मैदान है जहां उसका सिर काटा गया था। सुनकर एक बार तो रूह कांप गयी, हालांकि स्कूल के दिनों में इतिहास की पुस्तकों में यह सब पढ़ा था। अपूर्व सुंदरी एन बोलीन ने राजा से अंतिम प्रार्थना यह की थी कि उसे एक ही झटके में मार दिया जाये, ताकि मरने में उसे कष्ट न हो। इस-लिए फ्रांस के कैले नगर से कुशल तलवार-बाज बुलवाये गये थे। उनमें से एक ने अपनी तलवार से एक ही वार में एन बोलीन का सिर धड़ से जुदा कर दिया था।

परंतु लंदन टावर हम वहां की कत्लगाह देखने नहीं गये थे। हमारा मंशा तो वहां पर ब्रिटिश ताज में जड़कर रखे गये कोहेनूर को देखना था। इसके लिए हम ज्युअल-रूम (आभूषण-कक्ष) में गये, जो कि दो मंजिलों में है। यहां पर कांच के बक्सों के अंदर विविध राजमुकुट रखे हुए हैं, राजदंड हैं, अनेक राजचिह्न हैं, राजसी पोशाकें हैं, रत्नजड़ित सुनहरी मूठों वाली तलवारें और राजदरबार में काम में आने वाली नाना वस्तुएं हैं। अंदर जाने के लिए टिकट लेना पड़ता है।

हमारा कोहेनूर जिस राजमुकुट में लगा हुआ है, वह वर्तमान रानी एलिजाबेथ द्वितीय की माता रानी एलिजाबेथ का है। हुआ यह कि जब कोहेनूर इंग्लैंड पहुंचा, तो उसकी यह ख्याति भी पहुंची कि यह हीरा जिस भी पुरुष के पास रहा उसके लिए दुर्भाग्यकारी रहा, और जिस भी स्त्री के पास रहा उसके लिए सौभाग्यप्रद रहा।

इस मुकुट का भी एक इतिहास है।

इंग्लैंड में यह कायदा है कि ब्रिटिश राज-मुकुट ब्रिटेन से बाहर नहीं जा सकता। इसलिए जब १९११ में जार्ज पंचम दिल्ली-दरबार करने भारत आये, तो उनके लिए और उनकी रानी मेरी के लिए दो नये राजमुकुट बने। वैसे रानी मेरी के लिए एक राजमुकुट अलग से भी बना था। उसे उन्होंने १९१४ में आगे आने वाली रानियों के लिए दे दिया। लेकिन जब एडवर्ड अष्टम के सिंहासनत्याग के बाद जार्ज षष्ठ का राजतिलक हुआ, तब राजमाता मेरी अभी जीवित थीं; इसलिए रानी एलिजाबेथ के लिए नया राजमुकुट बनाया गया। इसमें भी तो वे ही हीरे जड़े गये, जो रानी विक्टोरिया के राजमुकुट में थे; लेकिन उनके ऊपर कोहेनूर को गोल शक्ल देकर जड़ा गया। इस कटे हुए रूप में भी वह जगमगाता है और इस ताज की शान को देखते हुए किसी ताज से कम नहीं है।

दिल्ली-दरबार में जार्ज पंचम ने जो राजमुकुट पहना था, वह भी यहां रखा है; और 'सेंट एडवर्ड' नाम का वह मुकुट भी, जिससे सभी ब्रिटिश राजाओं की ताजपोशी की जाती है। इसमें नीली मखमल के ऊपर सोने में रत्न जड़े हैं। इसका वजन पांच पौंड है; अतः इसका उपयोग केवल राज्याभिषेक में ही होता है। अन्य राजकीय समारोहों पर पहनने के लिए राजा और रानी अलग-अलग मुकुट रखते रहे हैं। इस तरह का एक मुकुट रानी विक्टोरिया का भी है। वह बहुत छोटा है हालांकि रानी विक्टोरिया के समय में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार और वैभव सबसे अधिक था। मेरी ऑफ मोडैना का भी एक राजमुकुट है और प्रिंस आफ वेल्स का भी, जो १७२८ ई. में बना था।

राजमुकुटों के अतिरिक्त यहां लाल और अन्य मणियों से युक्त अंगूठियां भी रखी हैं, जो राजतिलक के समय पहनायी जाती हैं। हम उन तलवारों का जिक्र कर चुके हैं, जो रत्नजड़ित हैं। ब्रिटिश शासक के राज-चिह्नों में एक गोलाकार ओर्ब भी होता, जिसके ऊपर रत्नजड़ित क्रास रहता है। ऐसा ही क्रास उस शाही तलवार पर भी होता है, जो राजतिलक के अवसर पर राजा को दी जाती है।

वास्तव में राज्याभिषेक में ब्रिटिश शासक को तीन तलवारें दी जाती हैं। पहली तलवार तब की है, जब रिचर्ड प्रथम का अभिषेक हुआ था। १२३६ ई. में जब हेनरी तृतीय की रानी एलीन का अभिषेक हुआ, तो एक और तलवार दी गयी। उसका नाम है 'करटाना'। कहते हैं, यह तलवार उस डेनिश सरदार ओगियर की थी, जो कुछ दिन इंग्लैंड का राजा भी रहा। ऐसी कथा है कि यह तलवार उसने अपने प्रभु चार्ल्स महान (शार्ल मैं) के पुत्र के विरुद्ध खींची थी, जिसने ओगियर के पुत्र की हत्या कर दी थी। तब आकाशवाणी हुई कि तू बदला लेने की भावना के बजाय दया दिखा। तभी से यह तलवार 'संत एडवर्ड की तलवार' कही जाती है और उसे 'दया की तल-

वार' भी कहते हैं। यह भी राज्याभिषेक में ही काम में आती है।

इसके अलावा यहां पर गदा की शक्ल के बड़े-बड़े राजदंड हैं। ये सोने के हैं और इन पर रत्न जड़े हुए हैं। राजतिलक के अवसर पर इन्हें सार्जेंट एट आर्म अपने हाथ में लेकर आगे चलते हैं। इसी प्रकार का एक राजदंड हाउस ऑफ कामन्स (लोकसभा) में स्पीकर के सामने और दूसरा हाउस ऑफ लार्ड्स में लार्ड चान्सलर के सामने भी रखे जाते हैं।

शाही पोशाकें तो अनगिनत हैं। राज-परिवार [illegible] में काम में आने वाली सोने की या सुनहरी चम्मचें, नमकदानियां, प्यालियों को गरम रखने वाली या गिरजाघर में काम में आने वाली कटोरियां और तश्तरियां बड़ी संख्या में हैं। बीयर पीने के बरतन भी हैं। इत्रदानियां, जलपात्र, मोमबत्ती जलाने के स्तंभ भी हैं। ये सब सोने के बने हुए हैं या इन पर सुनहरा काम हुआ है।

इस प्रकार यह टावर ब्रिटेन का अत्यंत अमूल्य रत्न-भंडार भी है।

—५५, काका नगर, नयी दिल्ली-११०००३



वाक्यदीप

० किसी देश का भाग्य प्रायः उसके प्रधान-मंत्री के अच्छे या बुरे हाजमे पर निर्भर रहा है।

० ईश्वर ने स्त्री की सृष्टि इसलिए की कि वह पुरुषों को पालतू बनाये।

० मनुष्य की तुलना में पशु तीन बातों में मुनाफे में हैं—उनमें उपदेश देने वाले धार्मिक नेता नहीं होते, मरने के बाद उनके अंतिम संस्कार पर कुछ खर्च नहीं होता, और उनकी वसीयत को लेकर कोई मुकद्दमा नहीं लड़ा जाता।

० शासन की कला इसमें निहित है कि लोगों के एक वर्ग से यथासंभव अधिक से अधिक धन वसूल करके दूसरे वर्ग को दिया जाये।

० तलाक लगभग तभी शुरू हो जाता है, जब शादी की रस्म पूरी होती है; शादी तलाक से कुछ ही पुरानी होती है।

० विचार दाढ़ियों की तरह होते हैं—हम तब तक उन्हें पा नहीं सकते, जब तक कि वे खुद उग न आयें।

० मैं सिर्फ दो बार तबाह हुआ हूं—एक बार, जब मैं एक मुकद्दमा हारा; दूसरी बार, जब मैं एक मुकद्दमा जीत गया।

० विवाह ही ऐसा एकमात्र साहसपूर्ण काम है, जिसे कायर कर सकते हैं।

० पुस्तकों की बढ़ती हुई तादाद हमें अज्ञानी बना रही है।

० हम अपने दोषों को उचित सिद्ध करने के लिए विचारों का प्रयोग करते हैं, और विचारों को छिपाने के लिए जबान का प्रयोग।

० जब पैसे का सवाल आता है, तो हर किसी का एक ही धर्म बन जाता है।

० अपने दुश्मनों के गुणों को माफ कर देना एक चमत्कार है।

—वाल्तेयर



नवनीत

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

परपूजा और आत्मपूजा

पृथ्वी ने एक दिन सूर्य से कहा—'मैं रात-दिन तुम्हारी परिक्रमा करती रहती हूं। किंतु तुम कभी मुझे प्रकाशमान करते हो तो कभी अंधकारमय कर देते हो। सबको सदा प्रकाशमान करना तो तुम्हारा स्वभाव है। उसके प्रतिकूल मेरे साथ ऐसा बरताव क्यों ?'

सूर्य ने उत्तर दिया—'मैं तो अपने स्वभाव पर ही स्थित हूं। तुम ही कभी-कभी मुझसे पीठ फेरती हो। जहां तुमने पीठ फेरी कि अंधकार हो जाता है। मेरा स्वभाव तो स्थिर रहता है; किंतु तुम अपने चंचल स्वभाव के कारण अंधकार में भटक जाती हो। तुम मेरी परिक्रमा अवश्य करती हो; किंतु उससे पहले अपनी परिक्रमा कर लेती हो। मेरी परिक्रमा साल-भर में एक बार ही करती हो; किंतु अपनी परिक्रमा नित्य ही कर लेती हो। मेरी पूजा की अपेक्षा अपनी पूजा अधिक करती हो। जब तक तुममें यह अहम्मन्यता रहेगी, तब तक तुम अंधकार में ही रहोगी।'

पृथ्वी—'बात यह है कि यह चंद्रमा मेरी परिक्रमा कर मेरे अहंकार को बढ़ा देता है। मैं समझने लगती हूं कि मैं भी कुछ हूं।'

सूर्य ने हंसकर कहा—'कुछ न होकर भी अपने को सब कुछ समझ लेना ही तो अहंकार का स्वरूप है।'

— ब्योहार राजेन्द्रसिंह

आखिरी मौका

नये राजनैतिक गठबंधन व्यर्थ हैं, यदि उनसे प्रजातंत्रीय व्यवस्था में राष्ट्रीय अभ्युदय का स्वप्न पूरा न हो।

डा. कर्ण सिंह

इस खुशफहमी को चुनौती देना जरूरी है कि (राजनैतिक) शक्तियों का नया गठबंधन देश के सामने खड़ी समस्याओं को सुलझाने के लिए खुद ही काफी होगा। जैसा कि श्री देवराज अरसु को लिखे अपने पत्र में मैंने कहा था, अगर नये गठबंधन का अर्थ (आम लोगों द्वारा) परित्यक्त, हिम्मत हार चुके और असंतुष्ट राजनीतिज्ञों का सत्ता की तलाश में एकजुट होना है, तो यह सारा प्रयत्न व्यर्थ की कसरत होगा और भारतीय राजनीति को फिर से स्थिर बनाने का संभवतः यह आखिरी मौका हम गंवा बैठेंगे।

आजकल कोई किसी ओर भी निकल जाये तो उसे जनता के सभी तबकों में राजनीति और राजनीतिज्ञों के प्रति बढ़ता हुआ वितृष्णा और भ्रमभंग का भाव देखने को मिलता है; और यह चीज संसदीय प्रजातंत्र में उनकी आस्था की जड़ें धीरे-धीरे काट रही है। पिछले कई वर्षों में खुल्लमखुल्ला भ्रष्टाचार, सिद्धांतहीन जोड़तोड़ और सरासर मौकापरस्ती का बाजार ऐसा गरम रहा है कि आम लोग राजनैतिक नेताओं के विषय में सरासर 'सिनिकल' हो गये हैं—चाहे इन नेताओं की पार्टी या गुट कोई भी हो।

राजनीति, जिसे प्लेटो ने सबसे उदात्त धंधा कहा था और जिसे गीता ने 'लोकसंग्रह' का दर्जा दिया था, आज भारत में लगभग अपशब्द बन गयी है। आजादी आने के बाद के उन आरंभिक वर्षों का तमाम आदर्शवाद और उत्साह, जब हम जवाहरलाल नेहरू के प्रेरणादायी नेतृत्व में नवभारत के निर्माण की 'उत्तेजक साहस-यात्रा' में जुट पड़े थे, आज जैसे काफूर हो गया है। आपात-काल के पूर्व और उसके दौरान श्री जयप्रकाश नारायण के हस्तक्षेप से युवकों में जो उबाल आया था, वह भी शांत हो गया है और अपने पीछे जातिवादी झगड़े और टूटे सपने छोड़ गया है। यदि हम अपनी नयी पीढ़ियों के दिलो-दिमागों को फिर से आलोक-भरित नहीं बना सके, तो चाहे कितने भी राजनैतिक गठबंधन और पुनर्गठबंधन क्यों न हो जायें, उनसे हमारा खास भला नहीं होने वाला है।

यह बात अक्सर भुला दी जाती है कि हम भारत में जो कुछ करने की कोशिश कर रहे हैं, उसका प्रयत्न मानव-इतिहास में पहले

...नहीं किया गया था। हम इसकी कोशिश कर रहे हैं कि अधिक अच्छी जीवन-स्थितियां ...मान हों और गरीबी की वे जंजीरें टूटें ...जिन्होंने मानव-जाति के एक बटा सात ...को जकड़कर पंगु बना रखा है। सदियों ...वंचित और दलित लाखों-करोड़ों लोगों ...कम से कम जीवन की न्यूनतम आवश्य-...ताओं की पूर्ति हो; एक ही पीढ़ी के जीवन-...काल में सामाजिक कायापलट और आर्थिक ...क्रांति लायी जा सके; और यह सब संसदीय ...लोकतंत्र को बरकरार और मानवीय स्वतं-...त्रताओं को सुरक्षित रखते हुए किया जाये। भारतीय मन-मस्तिष्क के तमाम उत्साह और आदर्शवाद को मदद मिले तो भी यह बहुत ही विकट एवं जबर्दस्त जिम्मेदारी है और उस उत्साह और आदर्शवाद के बिना तो सफलता की संभावना बहुत ही क्षीण है।

इसलिए हमें न केवल नये राजनैतिक गठबंधन की समस्या का ही सामना करना है, बल्कि इस समस्या का भी सामना करना है कि किस तरह वह नैतिक और आत्मिक क्रांति लायी जाये जो अगले बीस वर्षों तक—इस सदी के अंत तक—हमें संभाले रह सके।

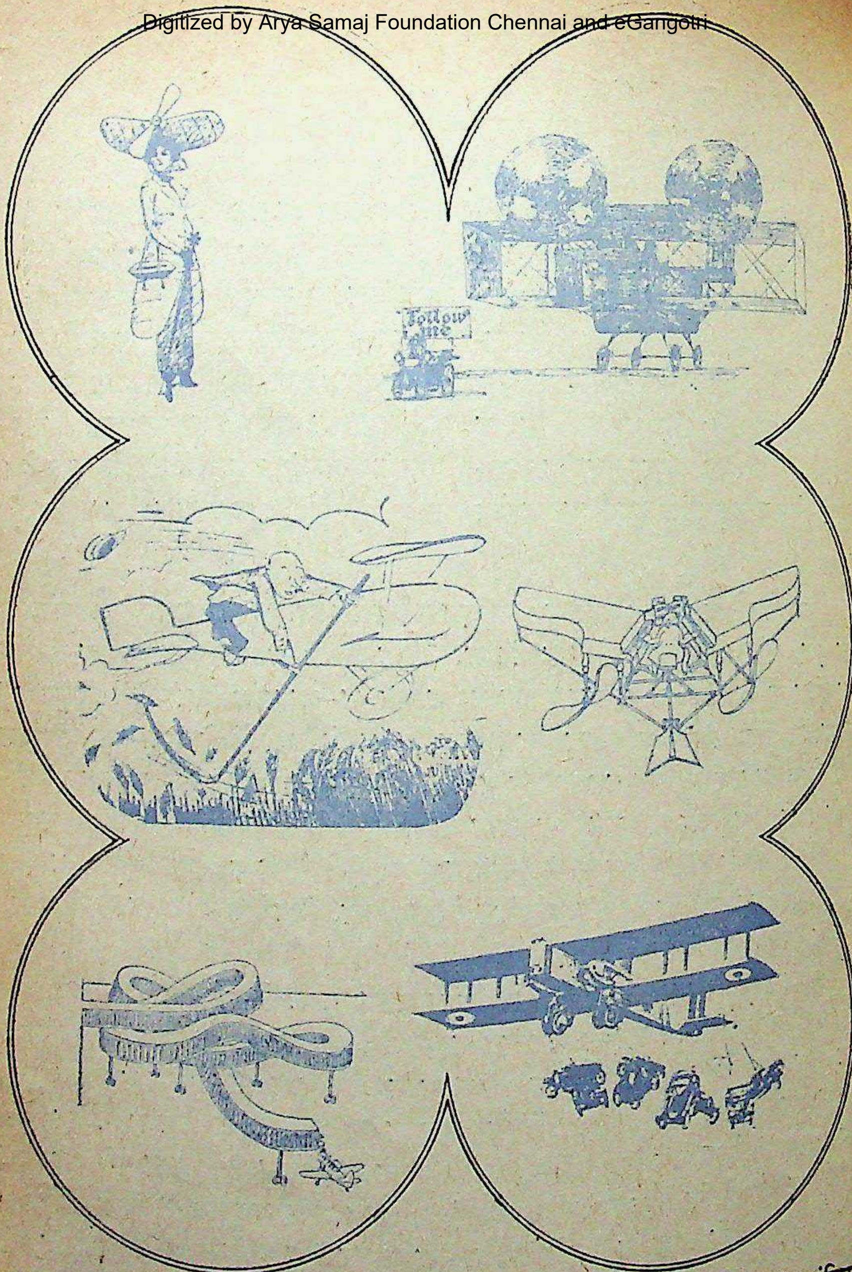
[‘इंडियन एक्सप्रेस’ से साभार]



‘सुप्रभात’ बंद होने के बाद मुझे न्यू एज पब्लिशर्स प्रा. लि कलकत्ता ने एक योजना ...दी थी, १९५९ में—बांग्ला-हिंदी-अंग्रेजी, हिंदी-बांग्ला-अंग्रेजी और अंग्रेजी-बांग्ला-...हिंदी कोश के निर्माण की योजना। हमारा आदर्श थी—श्री राजशेखर वसु (परशुराम) ...का व्यावहारिक बांग्ला-अभिधान ‘चलन्तिका’। तीनों भाषाओं के सर्वाधिक प्रचलित ...शब्दों के ये तीन कोश निश्चित रूप से अत्यंत उपयोगी होते। मुझे केवल हिंदी-बांग्ला-...अंग्रेजी कोश ही नहीं प्रस्तुत करना था, अन्य दोनों कोशों के संग्राहकों से सहयोग भी रखना ...था। वे दोनों अभी अंतिम रूप से मनोनीत नहीं हुए थे। हिंदी का कार्य मुझे तुरंत शुरू ...कर देना था। जरूरत थी दो ऐसे सुविदित विद्वानों की, जिनके तत्त्वावधान में मैं अपना ...कार्य निर्विघ्न संपन्न करूं।

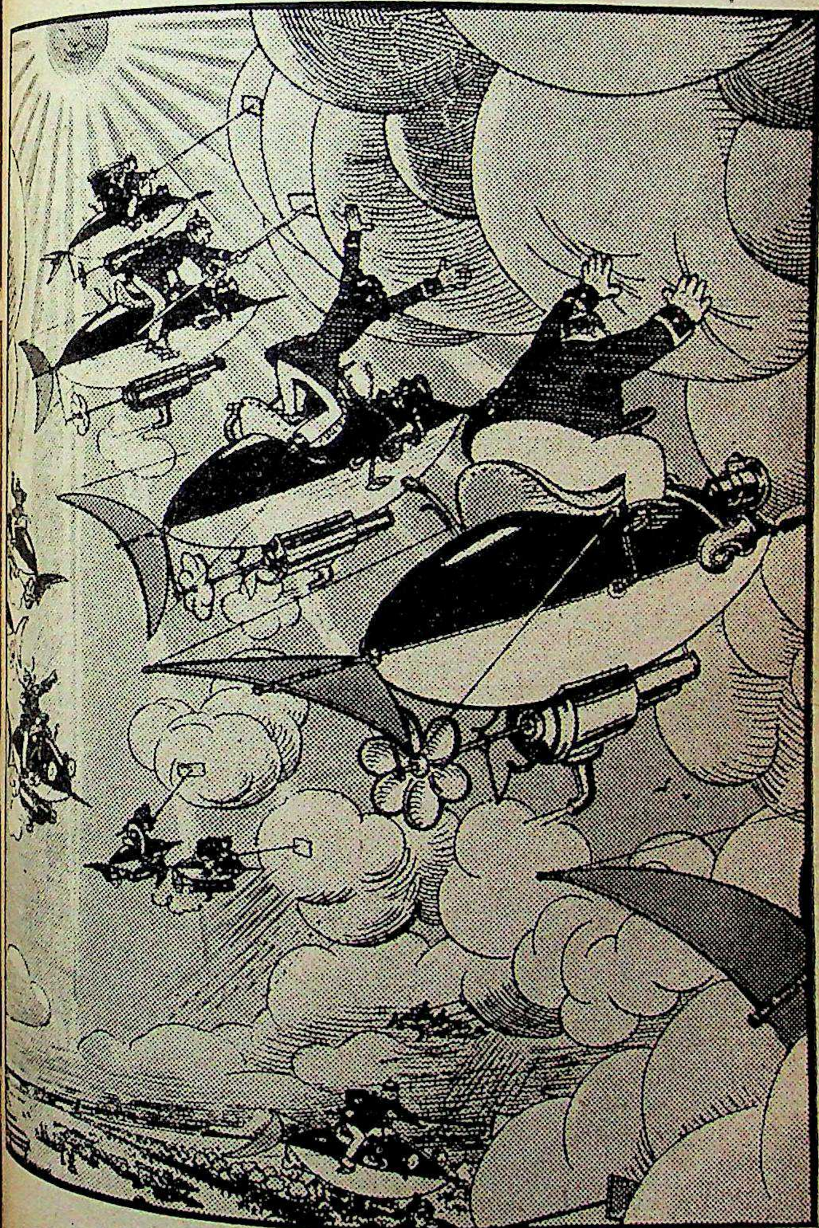
बहुत सोच-विचार के बाद मैंने तय किया श्रद्धेय ह. प्र. द्विवेदीजी का नाम, यद्यपि मैं ...उनसे तब तक व्यक्तिगत रूप से परिचित नहीं था। कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी ...विभागाध्यक्ष श्री कल्याणमलजी लोढ़ा ने डा. शशिभूषण दासगुप्त से मुझे यह आश्वासन ...दिला दिया था कि वे बांग्ला पर्यायों को एक नजर देख लेंगे। लोढ़ाजी ने ही मुझे ...आचार्य हजारी प्रसादजी से भी मिलवाया। आचार्यजी ने बहुत-से प्रश्न पूछे और जब ...आश्वस्त हो गये कि मैं यह कार्य कर सकूंगा, तब अपनी अनुमति सहर्ष दे दी। मेरे ...लिए यह बहुत बड़ी बात थी। यदि वह समूची योजना कार्यान्वित हो गयी होती, तो ...श्रद्धेय डा. शशिभूषण दासगुप्त और डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी दोनों की कृपा से और ...उनके नामों के साथ एक अच्छा-खासा नया कार्य सामने आ जाता। —**पृथ्वीनाथ शास्त्री**





प्रथम पंक्ति—१. हर्बर्ट शूल्ज-बर्लिन, स्पोर्ट ह्यूमर, १९१३; २. लुई मर्‌श्च। द्वितीय पंक्ति—१. प्रावदा, मास्को, १९३३; २. स्टर्न, लुस्टिज ब्लाटर, बर्लिन, १९०९; तृतीय पंक्ति—१. गेरहार्ड ग्लक; २. कार्ल रोडर, लाइपजिग, १९३६।

ऐसी कोई चीज नहीं, जो कार्टूनिस्ट के कटाक्ष से बच सके। जब आदमी ने अपने बनाये अनगढ़ डैनों पर चढ़कर आकाश में फुदकने की चेष्टा शुरू की, तब से आज के अतिस्वन विमानों के युग तक के हवाई उड़ान संबंधी विशिष्ट कार्टूनों की एक प्रदर्शनी पश्चिम-जर्मन हवाई कंपनी लुफ्त हान्सा ने आयोजित की थी। उसमें प्रदर्शित कुछ कार्टून इन दो पृष्ठों पर लुफ्त हान्सा की पत्रिका 'जेट टेल्स' से प्रस्तुत हैं।



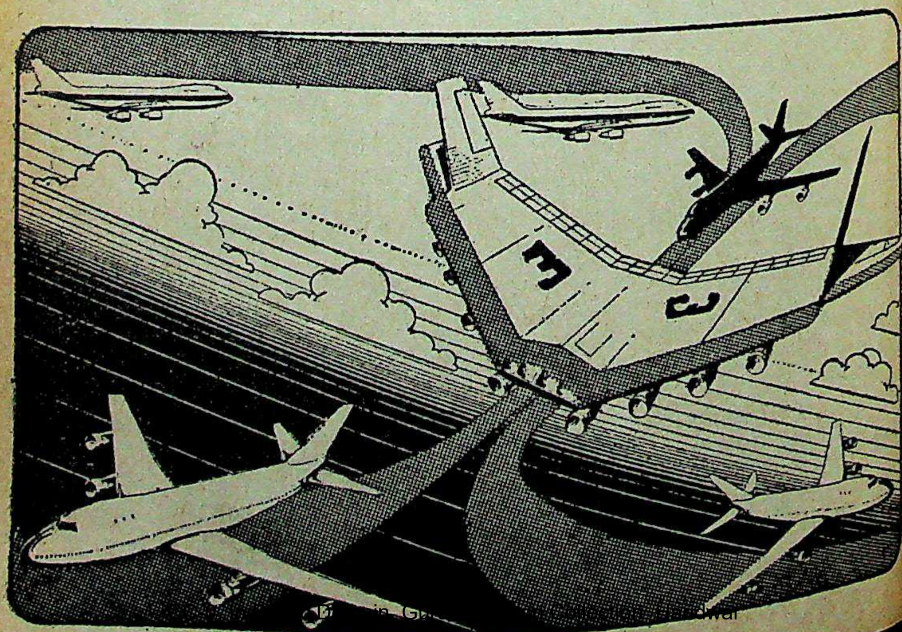
अब उड़ते हवाई अड्डे

अगली सदी की विमान-यात्रा की खास चीज होगी—उड़ते हवाई अड्डे। ३० लाख पौंड वजन और ५०० फुट पक्ष-विस्तार (विंग-स्पैन) वाले ये अड्डे मीथेन या हाइड्रोजन गैस से अथवा परमाणु-शक्ति से संचालित होंगे।

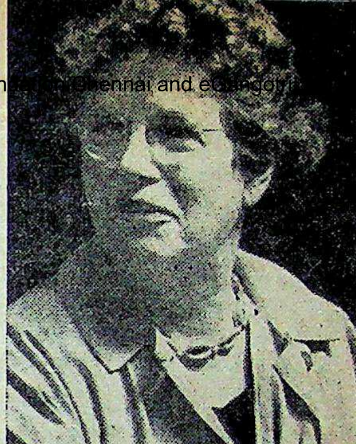
विभिन्न राष्ट्रों के हवाई अड्डों से उड़े जहाज इन उड़ते हवाई अड्डों के डैनों पर आकर उतरेंगे और उन्हें यात्री, माल व ईंधन आदि पहुंचायेंगे तथा उनसे यात्री और माल ग्रहण करेंगे। यह सब काम उसी प्रकार होगा जिस प्रकार आजकल अंतरिक्ष-यानों में होता है। इस तरह ये उड़ते हवाई अड्डे एक महाद्वीप से कई-कई वायुयानों के यात्रियों और माल को दूसरे महाद्वीप पहुंचायेंगे।

असल में ये विराट वायुयान होंगे, जिन्हें अभी 'स्पैन-लोडर' नाम दिया गया है। कारण, डैने ही इनकी काया का मुख्य भाग होंगे और वे ही सारा 'लोड' वहन करेंगे। स्पैन-लोडर ज्यादातर समय उड़ते रहेंगे और केवल बड़ी मरम्मत आदि के लिए भूमि पर उतरेंगे; इसलिए इनके अड्डे शहरों से बहुत दूर निर्जन स्थलों में बनाये जायेंगे।

अभी कुछ दिन पूर्व लंदन में हुए छठे विश्व हवाई अड्डा सम्मेलन में एम. आइ. टी. (अमरीका) के प्रो. राबर्ट सिम्प्सन ने बताया कि अमरीका इन स्पैन-लोडरों में काफी दिलचस्पी ले रहा है। वैसे अभी ये सैद्धांतिक अवस्था में ही हैं। —शं. शा.



लाख पौंड
हाइड्रोजन
र आकर
साल ग्रहण
होता है।
माल को
गया है।
न करेंगे।
भूमि पर
आइ.टी.
में काफी
—शं. शा.



एक बेजोड़ नसीहत

सन् १९७६ में मार्गरेट मीड ने न्यूयार्क के अमेरिकन म्यूजियम में नृतत्त्वशास्त्री के रूप में अपनी ५० वीं सालगिरह और अपना पचहत्तरवां जन्मदिन दोनों मनाये थे। उसी साल में म्यूजियम के नृतत्व-विभाग का अध्यक्ष बना। इस तरह में तीस साल की किशोर वय में मार्गरेट मीड का आखिरी बॉस बना था। (यह बॉस शब्द इस प्रकरण में अज्ञों और भोले-भालों को ही आतंकित करेगा; क्योंकि जो लोग मार्गरेट मीड से परिचित रहे हैं, वे जानते हैं कि मीड का कोई 'बॉस' हो नहीं सकता था।)

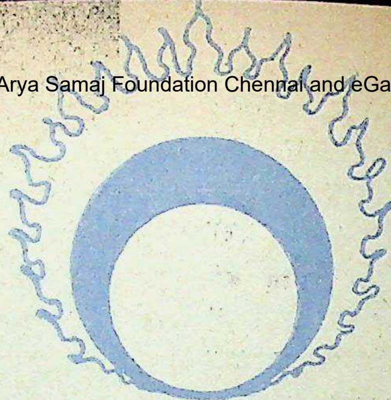
मैं भी नृतत्त्वशास्त्री ही हूं; पर मेरी विशेषज्ञता का क्षेत्र है पुरातत्त्व। अर्थात् मेरे 'सूचनादाता' सैकड़ों साल पहले मर चुके लोग हैं, कई बार तो हजारों साल पहले मर चुके लोग। मगर कई बार में कल्पना किया करता हूं कि मैं किसी जीवंत आदिम संस्कृति में प्रत्यक्ष रूप से फील्डवर्क कर रहा हूं। और एक बार यों ही मैंने मार्गरेट मीड से पूछा कि इसकी तैयारी करनी हो तो उसका सबसे अच्छा तरीका क्या है।

उन्होंने मुझसे पलटकर पूछा कि जीवन के किन्हीं संकटों का आपको कितना ज्ञान और अनुभव है? क्या आप खून, हिंसा और क्रूरता के नजारे सह पाते हैं? किसी आदिम संस्कृति में फील्डवर्क करने जाने से पहले आप न्यूयार्क-पुलिस के अपराध-दस्ते की कार में कुछ रातें गश्त लगायें, तो अच्छा होगा। वे यह बात बड़ी संजीदगी से कह रही थीं। क्या आपने कभी बच्चे का जन्म देखा है? मेरा मतलब है, क्या आपने कभी बच्चे के जन्म के समय वहां खड़े होकर पूरी प्रक्रिया देखी है?... नहीं? तो अभी नजदीक के अस्पताल जाइये में और इसकी व्यवस्था कर डालिये।

उनकी सलाह स्पष्ट थी—पहले अपने ही इर्द-गिर्द के मानव-समूह को ठीक से जान-समझ लो, उसके बाद ही दूसरी किसी संस्कृति में अपनी अनुभवहीनता बिखेरने जाओ।

फिर मार्गरेट मीड ने मृत्यु के विषय में मुझसे प्रश्न किया। क्या आपने मृत्यु के बारे में सोचा है? क्या आपने किसी को मरते वस्तुतः देखा है? क्या आप उस क्षण को हैंडल कर पाते हैं? मृत्यु जीवन की तार्किक परिणति है; मगर हम ऐसी संस्कृति में पले हैं, जो मृत्यु को छिपाती है और एक रहस्य बना डालती है। उन्होंने मुझसे कहा कि नृतत्त्वशास्त्रियों के रूप में हमें उस रहस्य को जीतना चाहिये। **—डेविड हर्स्ट टामस**





आचार्य द्विवेदीजी के महाप्रयाण पर

डा. विद्यानिवास मिश्र



व्योमकेश बादल वह
उमड़-घुमड़ छाया, लहराया,
बरसा, चला गया।
रसवर्षी बादल के देश में
यह बादल
मादल और मृदंग के स्वरों का सेतु था।
रवि ने इसे खींचा था
गंगा की माटी से।
नापे थे इसने इतने दिगंत
नारियल के चौड़े पाट वाली
धानी साड़ी-सी बंगभूमि,
ओंकार की भंगिमा में मुड़ी हुई
उत्तरवाहिनी त्रिपथगा की
सिद्धिभूमि काशी,
कनक की सुनहली बालियों के झूमझूम
भांगड़ा का पानीदार पंजाब।
खोले थे इसने सहस्र द्वार
जाति-वर्ण-राग-द्वेष-दुर्ग-रुद्ध
वाणी कल्याणी के।

आषाढ के प्रवेश-सा
नाटकीय आना हुआ
बाणभट्ट की कहानी का।
इतनी रसवृष्टि,
इतना उद्दाम नृत्य,
इतनी तड़पन की ज्योति,
समष्टि का ऐसा वृंदगान,
हिंदी अघा गयी।
पर बादल चुका नहीं
देकर वह उज्ज्वल हुआ,
धवल हुआ,
उसी बादल ने संतों के मर्म की सीपी में
स्वाती की बूंद दी,
मोती-सा कबीर
हिंदी की आंखें जुड़ा गया
इस उजलेपन में चारुचंद्रलेख हुई
और बादल की पुनर्नवा शक्ति जगी
कुटज, उसने देवदारु आम और अशोक जैसे
ऊंचे उठने की उमंग वाले

...गणित आरोहों को
...या, सहलाया, हिलराया, दुलराया
...और उन्हें चुपके-से कान में मंत्र दिया—
...आसमान ही ताकते न रहो
...धरती को देखो
...मैं भी धरती से उठा हूं
...धरती का प्यार मुझे खींच-खींच लाता है
...खिचाव में
...आकर्षण है,
...बड़ा पोषण है।

...के आगे देखा है
...हार मान लेते हैं
...एक यह बादल था
...में रस और ऊष्मा का एक साथ
...निधान था
...की 'मधुरी बानी' सहज थी, अपनी थी,
...अट्टहास बनकर
...कांपन और बेगानेपन की
...चीर देती थी

डर से सिकुड़ी हुई आदमी की पहचान
वेधक हंसी की कनी से उकसकर रहती थी।
उस बादल की सन्निधि
कालिदास के मेघदूत की सन्निधि थी,
उस पर प्रतीति होती थी
क्योंकि वह सहज-प्रतीती था
वह खिड़की से झांकता था,
बरामदे में आकर बैठ जाता था
और लगता था
बादल आसमान का है ही नहीं।

अभी-अभी देखा है
वह बादल धुआं हुआ चला गया
उससे रससिक्त तरु-वीरुधों में
उसको तलाशने की लाचारी आ गयी।
पर मैंने जो खोया है, उसे कहां पाऊंगा ?
बादलों के देश में वसंत बरसाने वाला
व्योमकेश बादल कहां पाऊंगा ?
व्योमकेश बादल वह बरसा, चला गया।

['नागरी पत्रिका' से साभार]



शायद इस क्षण मेरे ये शब्द वे युवा सोवियत लेखक भी सुन रहे हों, जो भविष्य में ...के साहित्य को आगे ले जाने वाले हैं। मैं उनसे कहना चाहता हूं :

उथले राजनैतिक व्यंग्य के पीछे मेहनत करना अनावश्यक है—वह सबसे निकृष्ट रूप ...साहित्य का। नये रूपों के लिए भागदौड़ करने की भी कोई आवश्यकता नहीं, 'एवों-...र्म' का असल में अस्तित्व है ही नहीं। वह खाली खोपड़ियों वालों की खुराफात ...तुम्हें करना यह है कि अपनी देसी भाषा के लिए, अपनी देसी मिट्टी के इतिहास के ...अपने भीतर अनुराग उपजाओ। यह चीज तुम्हें ढेर सारी सामग्री मुहैया करेगी ...सामग्री स्वयं निर्देश देगी कि लेखक को कौन-सी विधा चुननी है।

—अलेग्जांदर सोल्जेनित्सिन

[बी. बी. सी. पर प्रसारित एक इंटरव्यू में]



सन ५७ की क्रांति भूमि-सुधारों के खिलाफ?

गिरीशचंद्र चौधरी

सन १८५७ की क्रांति भारतीय इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी। सदा से सहिष्णुता की भावना से ओतप्रोत भारतीय जन-मानस पर एक विलक्षण प्रभाव का फल इस क्रांति के रूप में दिग्दर्शित हुआ।

संसार के ज्यादा देशों में क्रांतियों का स्पष्ट आधार आर्थिक विपन्नता ही रहा है; परंतु प्रत्यक्ष रूप से इस भारतीय क्रांति में धर्म का प्रमुख स्थान रहा। गाय व सूअर की चर्बी से युक्त कारतूसों ने स्वदेश में विदेशी सत्ता की स्थापना में लगे हुए, अंग्रेजी सेना के भारतीय जवानों में विद्रोह की वह ज्वाला भड़कायी, जो भारत की सीमा से अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकने के संकल्प में बदल गयी। सांप्रदायिक भेदभाव को भुला-कर हमने मुगलिया सुल्तान को भारत का सच्चा सम्राट् घोषित कर दिया और लाल किले से बादशाह का प्रथम फरमान भी जजिया और गोवधबंदी पर ही निकला।

इस तरह यद्यपि इस क्रांति का अगुआ प्रत्यक्ष रूप से धर्म ही बना था, तथापि स्वतंत्रता के इस प्रथम संग्राम की पृष्ठभूमि में परोक्ष रूप से मुख्यतः आर्थिक कारण ही थे। भूमि-सुधारों के इतिहास के अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। क्रांति के हृदय-स्थल अवध में, इस इतिहास के अध्ययन से क्रांति का कारण बहुत स्पष्ट होकर सामने आता है। इस संबंध में उत्तर भारत की जनता की आर्थिक अवस्था का भी गहरा अध्ययन करने से बहुत-सी गुत्थियां खुलती हैं।

जैसा कि सर्वविदित है, उत्तर भारत ही क्या, संपूर्ण भारत का आर्थिक ढांचा भूमि एवं कृषि पर खड़ा है। भूमि एवं कृषि हमारे समस्त क्रिया-कलापों पर भी छाप डालती हैं। आज भले ही हम उद्योगों की बात करने लगे हों, परंतु कृषि एवं भूमि सदियों से हमारी आर्थिक गतिविधियों की धुरी रही हैं। १९ वीं शती में तो इनका प्रभाव और भी अधिक था; क्योंकि तब उद्योगों के नाम पर हम केवल कच्चे माल का उत्पादन करते थे।

वास्तव में उद्योगों का प्रसार तो विदेशी सत्ता के आने तथा पश्चिम से संपर्क के बाद चंद जागृत भारतीयों के अथक प्रयास से ही हुआ। यह अपने में एक बड़ा परि-

...था, जो देश में सत्ता परिवर्तन के ... हुआ था। इस परिवर्तन से हम उद्योगों की ओर अग्रसर हुए। किंतु फिर भी कृषि प्रधान ... बनी रही। नयी विदेशी सत्ता ने तो ... भारत को कच्चे माल का उत्पादक ही बनाये रखने की भावना रखी और इसी दृष्टि से उसने कृषि की उन्नति की बात सोची, जो भूमि-सुधारों पर आकर फलित हुई। भारतीय अर्थ-व्यवस्था की आधारभूत कृषि की उन्नति तथा सस्ते कच्चे माल के ... में ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी भूमि-सुधारों पर जुट गये।

इसका एक और कारण यह भी था कि ...धारी जब सत्ताधारी बन बैठे तो उन्हें ... जड़ें जमाने की सूझी। देश की दय-नीय अवस्था देखकर शासन-व्यवस्था में ... अंग्रेज सामान्य जनता के मध्य गये, ... उन्हें कृषि एवं भूमि की दुर्व्यवस्था का आभास हुआ। देश के सबसे उपजाऊ क्षेत्र ... भारत की हालत अत्यंत शोचनीय थी। इतिहास में सदा से यही भूभाग भारत के शासकों का भाग्य-निर्णय करता रहा है। ... की जनता का वास्तविक शासक ही भारत-सम्राट् होता था। इसीलिए लखनऊ ... बंगाल की सूबेदारी दिल्ली पर सदा छायी रहती थी। इसलिए उस समय अंग्रेज भी ... भूभाग की जनता को अपने चंगुल में ... के चक्कर में लग गये थे। बंगाल में ... होकर वे शीघ्र ही उत्तर पश्चिम ... में छा गये थे। अतः सर्वप्रथम इसी ... की जनता की आर्थिक व्यवस्था पर ... उनका ध्यान गया।

सर्वप्रथम उन्होंने बंगाल की जनता को कंपनी द्वारा नियुक्त मध्यवर्तियों अथवा जमींदारों को लगान देने को बाध्य किया। यह व्यवस्था सिराज के शासन के अंत के बाद लागू की गयी। इसके पूर्व नवाब सीधे अपने आदमियों द्वारा लूट-खसोट करवाता था। अंग्रजों ने मध्यवर्तियों को जमीन का मालिक बना दिया और जमीन पर हल चलाने वाले किसान का कोई अधिकार न रहा। यह व्यवस्था इस मानी में ठीक थी कि किसान पर अब अनेक के बजाय एक का शासन था, जो कि जमींदार का था।

परंतु यह व्यवस्था अंग्रेज सारे भारत में लागू नहीं करना चाहते थे। इसका विरोध स्वयं अंग्रेज सरकारी कर्मचारी ही करने लगे थे। इनमें प्रमुख थे उत्तर-पश्चिम भारत (आज का पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग) के उपराज्यपाल जेम्स टोमासन एवं उनके राजस्व-अधिकारी राबर्ट बर्ड। ये अधिकारी पंजाब के अपने अनुभवों के आधार पर इसका विरोध कर रहे थे। बात यह थी कि पंजाब में जागीर-दारी प्रथा का अंत होकर असली किसानों के हाथ में भूमि थी। यह व्यवस्था वहां इतनी खरी उतरी कि पंजाब का जमींदार-किसान खुशहाल हो रहा था। यह सब देखते हुए तत्कालीन गवर्नर-जनरल डल-हौजी के विश्वस्त अधिकारियों ने जोरदार सिफारिश की कि अवध में ताल्लुकेदारी प्रथा न चलायी जाये। बात यह थी कि



दैन्य की मूर्तियां

अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की बात उसी समय (सन १८५५ ई.) से ही शुरू हो गयी थी और डलहौजी अवध की भूमि-व्यवस्था को ठीक करने हेतु चिंतित था। उसने अपने विश्वस्त जनरल आउटरम के साथ इस पर गंभीरता से विचार प्रारंभ कर दिया। आउटरम ताल्लुकेदारों के काफी खिलाफ था ही।

डलहौजी ने आउटरम के साथ डेनिसन, क्रिस्टिन एवं ग्युबिन्स जैसे अन्य अफसरों की अवध में नियुक्ति की सोची। ये सभी अफसर भूमि-व्यवस्था के हिमायती एवं विशेषतया किसानों के हित की दृष्टि से ताल्लुकेदारों से सहानुभूति न रखने वाले थे। इनमें मार्टिन ग्युबिन्स की नियुक्त अवध के प्रथम वित्त-आयुक्त के रूप में की गयी। इसके कार्य मुख्यतः राजस्व की वसूली एवं भूमि के बंदोबस्त संबंधी थे। साथ ही लगान एवं भूमि का निर्धारण भी इसके जिम्मे था। इन सब अफसरों को दिये गये निर्देशों के पीछे डलहौजी का आशय सामंतशाही व्यवस्था का अंत करके किसानों को ही भूमि का मालिक बनाना था तथा इस हेतु उसने एक व्यक्ति को एक ही इकाई मानकर चलने का निर्देश दिया था। यह व्यवस्था पंजाब में इतनी सफल हुई थी कि सिंध के पंजाब में मिलाये जाने पर ग्रांट ने सिफारिश की कि इसी व्यवस्था द्वारा सिंध में पंजाब-जैसी खुशहाली हासिल की जाये। डलहौजी ने अवध में कुछ पंजाब जैसी ही व्यवस्था लागू की।

इस व्यवस्था में कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का एकीकरण किया गया। भूमि-कानूनों में स्थानीय भावनाओं एवं कानूनों को साथ लेकर अंग्रेजी ढंग से कानून लागू करने का निश्चय हुआ। भारतीय एवं विदेशी कानूनों को बड़े समन्वित ढंग से चलाने की यह बात सोची गयी थी। सन १८५६ में अवध के अंग्रेजी शासन के अंतर्गत लाये जाने पर इन्हीं आधारों पर भूमि-सुधार संबंधी प्रथम निर्देश दिये गये।

इसके अंतर्गत, जैसे पहले कहा गया है, असल जोतदार से ही भूमि का बंदोबस्त करना था। इस हेतु निर्देश हुआ कि अंग्रेज अधिकारी स्थान-स्थान पर जाकर भूमि पर वस्तुतः मेहनत करने वाले का पता करके आरंभिक रूप से तीन साल का एक अस्थायी बंदोबस्त करें। इस हेतु ये निर्देश थे कि जो किसान जिस भूमि पर मौरूसी रूप से काम करने का सबूत पेश करे, वह जमीन उसी

...दी जाये। इसके साथ ही अवध के पिछले ...ओं के द्वारा दी गयी माफी-लगान की ...नों का भी सबूत प्राप्त करके उनकी ...जारी रखी जाये। जमीन की ठीक-... पैमाइश और उसकी नवैयत (उप-...) के निर्धारण की जिम्मेदारी भी ...कारियों को सौंपी गयी। तीन साल के ...स्थायी पट्टे की व्यवस्था इसलिए की गयी ... इस अवधि में विदेशी अधिकारी प्रदेश ...भूमि-विषयक सही जानकारी पूरी कर ... तथा इस प्रकार स्थायी बंदोबस्त केवल ...ों को मिलेगा, जो उसके वास्तविक ...दार सिद्ध हों।

...न्याय एवं मानवीय भावनाओं के प्रति ...र से ओतप्रोत यह आदेश अपने में अनूठा ... जो कि डलहौजी के विचारों की उच्चता ...द्योतक है। पर इसे उसके जीवनीकार ... गये। ऐसा नहीं था कि किसानों के ... भावना में बहकर डलहौजी ताल्लुके-...रों का हित सोच ही नहीं रहा था। उसने ...ने निर्देश दिया था कि ताल्लुके की वह ...न, जिस पर किसान मौरूसी हक का ...पेश न कर सके, ताल्लुकेदार की मानी ... और जहां ऐसी कोई जमीन न मिले, ... गांव की १० प्रतिशत भूमि ताल्लुके-...रों को दे दी जाये, ताकि वह सर्वस्व-हरण ...स्थिति में न आ जाये। इस प्रकार अवध ...२३,५४३ गांवों में से १३,६४० का बंदो-... ताल्लुकेदारों से तथा ९,९०३ का ...किसानों से हो गया।

...भूमि-व्यवस्था के साथ लगान-संबंधी आदेश भी जारी हुए, जिनमें कहा गया था कि अंग्रेज अधिकारी लगान को कड़ाई से वसूल करें। बात यह थी कि अवध की नवाबी की टूटती हालत में राजकोष की हालत खस्ता हो गयी थी। इसलिए सर्वप्रथम, जैसा ऊपर कहा गया है, लगान का निर्धारण हुआ; परंतु पुराने बकाये की वसूली पुराने रेट से ही की जाने लगी। जो राजा और ताल्लुकेदार राजकोष में बकाया जमा न कर सके, उनकी जमीन जब्त कर ली गयी।

इस व्यवस्था के दो प्रमुख परिणाम हुए। प्रथम तो किसानों को यह आशा बंधी कि १ मई १८५६ से १८५९ तक उन्हें कोई उनकी जमीन से बेदखल नहीं कर सकता। इससे खेती के लिए उनमें नवीन उत्साह एवं श्रमनिष्ठा का संचार हुआ; उत्पादन की संभावना बढ़ी; ताल्लुकेदारों द्वारा मनमानी बेदखली से बचाव हुआ। साथ ही दूरदृष्टि से देखा जाये तो इससे ताल्लुकेदार भी एक कानूनी व्यवस्था के अंतर्गत जागीर के मालिक बने और जोर-जबर्दस्ती अथवा नवाबी कृपा पर मुनहसिर न रहे। परंतु हमारे इन सामंतों ने इस पर संकुचित दृष्टि से ही सोचा। इस व्यवस्था के विरोध में पहले तो उन्होंने बकाया लगान देने से इन्कार किया। डेहरा के राजा रुस्तम राय ने तो किले का दरवाजा बंद करा, वसूली-अधिकारियों को अंदर घुसने ही नहीं दिया। ऐसा ही इन्कार राजा तुलसीपुर एवं राजा मानसिंह ने भी किया। अन्य लोग भी वसूली

पर कुठाराघात करने लगे।

बिना अधिकार के प्राप्त अपनी भूमि को बंटते देख इन ताल्लुकेदारों ने दूसरा विरोधी कार्य यह किया कि भोले-भाले किसानों को यह कहकर भड़काया कि इन विदेशियों ने जैसे हमारी जमीनें ले ली हैं, वैसे ये तुम्हारी जमीनें भी कभी छीन लेंगे। वे भोली-भाली जनता से कहने लगे कि हम अपने सिपाहियों द्वारा तुम्हारी रक्षा करायेंगे। ये सिपाही ही तो इन किसानों को लूटने-खसोटने में अब तक अग्रणी थे!

इसके साथ ही इन सामंतों ने देशप्रेम का नारा भी लगाया और जनता की भावना को अपनी ओर खींचने की कोशिश की। सर्वप्रथम तो गाय व सूअर की चर्बी के कारसूसों के मामले में धर्म के नाम पर भड़काया गया। फिर धीरे-धीरे जमीन संबंधी पृष्ठभूमि को लेकर ये सामंत पूरी तरह विद्रोह में कूद पड़े। इसका कुल परिणाम यह हुआ कि जनता में अंग्रेजी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह की भावना उभरी और कल तक के ये अत्याचारी सामंत उसे अपने रक्षक लगने लगे। फलतः जो भूमिहीन किसान अंग्रेजी व्यवस्था की बदौलत जमीन प्राप्त कर पाये थे, वे ही विद्रोह में सामंतों के साथी बन गये।

क्रांति के भड़कने के पूर्व ही डलहौजी को वापस बुला लिया गया और क्रांति छिड़ जाने से स्थायी बंदोबस्त की तो बात ही समाप्त हो गयी। अन्य सुधार भी स्थगित कर दिये गये गये। लार्ड एलनबरो ने डलहौजी की नीतियों के बारे में इंग्लैंड में कहा था कि उसके कार्य क्रांतिकारी कदम थे, जो राबिन हुड की रीतियों के समान थे। परंतु राबिन हुड अपने देशवासी गरीबों का विश्वासपात्र बन सका, जबकि डलहौजी विदेशी होने के कारण भारतीय जनता का विश्वास प्राप्त न कर सका। इसी के परिणामस्वरूप भारत में विद्रोह हो गया।

एलनबरो की बात में सचाई इतनी ही थी कि भारत में अंग्रेज नये-नये आये थे तथा भोली-भाली अपढ़ किसान जनता उनके लागू किये सुधारों का मूल्यांकन न कर सकी तथा सामंतों एवं बौद्धिक वर्ग ने उसे गुलामी न करने को भड़काया। इसके साथ एक बात और थी। अंग्रेजी सेना के विद्रोही सिपाही भी भारतीय ही थे और उनके विरुद्ध लड़ने को तैयार होने में भारतीय किसान हिचकिचाये। परिणाम यह हुआ कि जो किसान अंग्रेजी व्यवस्था से लाभान्वित हुए थे, वे लाचार हो गये। साथ ही एक बात और भी डलहौजी की समझ में न आयी और वह के ने कही—'भारतवासी हमारी मंजी हुई सुदृढ व्यवस्था के बजाय अपनी प्राचीन देशी सरकार के कुव्यवस्थापूर्ण शासन को ही पसंद करते थे।'

विद्रोह को तो अंग्रेजों ने दबा डाला, परंतु उन्होंने अपनी नीतियों में भारी परिवर्तन किया। क्रांति की कृपा से अंग्रेज यह भी समझ गये कि सामंती शक्तियां ही भारत को काबू में रखने में समर्थ हैं, अतः वे इन शक्तियों को बनाये रखने में लग गये। पहले के भूमि-सुधार कानूनों के लागू करने का कार्य-

स्थगित कर दिया गया। वैसे १८६८ टेनेंट ऐक्ट द्वारा भूमि-सुधार लागू करने की पुनः कोशिश की गयी; परंतु वह उस भावना से ओतप्रोत नहीं थी, जिससे डलहौज़ी ने स्थायी बंदोबस्त लागू किया था। अब तो केवल सामंतों की मदद से जनता को वश में रखने का उपक्रम हो रहा था। इस तरह सन १८५७ में न स्वतंत्रता ही मिली और न गरीब किसानों को भूमि पर अधिकार ही मिला।

आज के संदर्भ में इन सब ऐतिहासिक तथ्यों पर जरा व्यापक दृष्टि से विचार करें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आज के हमारे भूमि-सुधार कानून सौ वर्ष पूर्व ही लागू होने के लिए प्रस्तुत हुए थे और तब इन्हें सामंतवादी शक्तियों ने स्वार्थवश और सर्वहारा वर्ग ने भोलेपन के कारण 'विदेशी' कहकर अस्वीकार कर दिया था। उस समय उनकी सफलता में भी संदेह फैलाया गया था, क्योंकि उस व्यवस्था से सामंतों का सीधा नुक्सान हो रहा था। आज हमारे हदबंदी (सीलिंग) कानून बड़े जोतदारों और भूस्वामियों को फिर वही नुक्सान पहुंचाने को तैयार हैं। इतिहास संकेत दे रहा है कि हमें उन तत्त्वों से चौकन्ना रहना होगा, जो लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था लाने के विरोधी हैं और जो जनता को अनेक ढंगों से गुमराह करके देश में अराजकता फैलाने में सफल हो सकते हैं। **—भौमिकी विभाग,**
का. हिं. वि. वि., वाराणसी

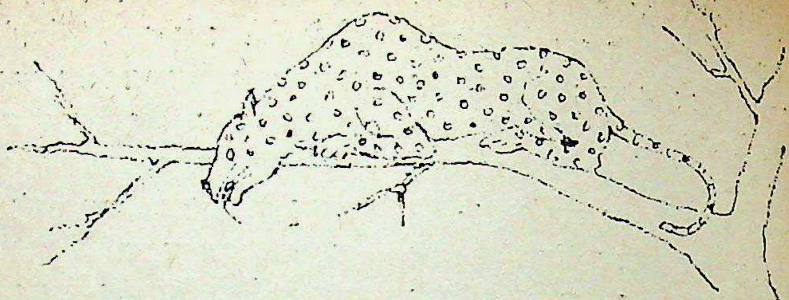
(प्रस्तुत लेख डा. जगदीश राज की पुस्तक 'द म्यूटिनी एन्ड ब्रिटिश लैन्ड पालिसी इन नॉर्थ इंडिया १८५६—१८६८' पर आधारित है।)



विश्व के सर्वकालीन सर्वोत्तम आल राउंडर गिने जाने वाले, वेस्ट इंडीज के सर गैरी सोबर्स ने कुछ समय पूर्व आस्ट्रेलिया की एक क्रिकेट-पत्रिका के लिए विश्व के दस सर्वोत्तम बैट्समनों की यह सूची बनायी थी :

१. विवियन रिचर्ड्स (वेस्ट इंडीज़)
२. इयन चैपल (आस्ट्रेलिया)
३. बैरी रिचर्ड्स (द. अफ्रीका)
४. सुनील गावस्कर (भारत)
५. ग्रेग चैपल (आस्ट्रेलिया)
६. जहीर अब्बास (पाकिस्तान)
७. क्लाइव लायड (वेस्ट इंडीज)
८. एल्विन कालीचरन (वेस्ट इंडीज)
९. गार्डन ग्रीनिच (वेस्ट इंडीज)
१०. डेरिक रैन्डाल (इंग्लैंड)





उदयपुरा का खूनी तेंदुआ

डा. खान रशीद

मध्य प्रदेश (पुराना मध्य प्रांत) में सावन-भादों के महीने खासे कष्ट-दायक होते हैं। निरंतर झड़ी लगी रहे तो जल-थल एक हो जाता है, जंगलों में पहाड़ी नाले जोर-शोर से बहने लगते हैं। इसलिए बारिश थमने से पहले जलहरी नाला पार करके शहर जाने की बात नामुमकिन थी। सांप-बिच्छू तो इन दिनों देहाती घरों में भी रेंगते-फिरते हैं। दरिंदे गांवों में निस्संकोच घुसकर वारदातें करने लगते हैं। पानी के कारण घर से कदम निकालना ही मुश्किल हो जाता है। मैं पछता रहा था, नाहक इस मौसम में इधर का रुख किया! पर चचेरे भाई समीहअल्लाह को मिट्टी के तेल का टीन पहुंचाना जरूरी था। नहीं तो उन्हें पूरी बरसात अंधेरे में काटनी पड़ती।

जोली घने जंगलों में छोटा-सा पहाड़ी गांव है—पक्की सड़क से आठ मील दूर। जलहरी उस कच्चे रास्ते पर जंगल के बीच एक नाला है। है तो दस-पंद्रह फुट चौड़ा, पर गहरा कहीं ज्यादा है और इतनी तेजी से बहता है कि बाढ़ के दिनों में तो उसे पार करना लगभग असंभव हो जाता है।

यह मेरे आवास का दसवां दिन था। उदयपुरा गांव से खबर आयी कि वहां एक तेंदुए ने वारदात की है। घटना-स्थल का मुआयना बड़ा महत्त्व रखता है, इसलिए मैं संदेशवाहक जगन्नाथ के साथ चल दिया।

उदयपुरा वहां से लगभग चार मील दूर है। गांव से निकलते ही जूते निकालकर

...के हवाले करने पड़े; क्योंकि रास्ते ...रम कीचड़-पानी में पांव टखनों तक ...धंस जाते थे। फिर काली और चिकनी ...के खेतों का सिलसिला शुरू हुआ। ...की मेढ़ों पर चलते हुए हम कदम-...पर फिसलते और हर पचीस-पचास ...बाद रुककर पानी में पांव धोते, क्योंकि ...वों पर चिकनी मिट्टी का बहुत मोटा-सा ...चढ़ जाता था और पांव कई सेर के ...जाते थे। लगभग दो फर्लांग बाद जंगल ...पहाड़ी इलाका शुरू हुआ तो इस मुसी-...से छुटकारा मिला।

...वारदात धनीराम मालगुजार के पशुओं ...सार में हुई थी। मरने वाला महावीर ...बल जवान था। रात के दो बजे तेज ...में सार में बंद पशुओं ने अचानक ...लाना शुरू किया और इधर-उधर भागने ...। तब धनीराम के किशोर बेटे मनीराम ...की बंदूक संभाली और लालटेन लेकर ...पार करके सार में प्रवेश किया। देखा, ...में लथपथ महावीर की लाश पड़ी है ...पशु एक सिरे पर जमा हैं और डकरा ...हैं। मरे हुए महावीर की मुट्ठियों में ...हाड़ी जकड़ी थी और सार के बाहरी दर-...का एक पट जरा-सा खुला था।

...ढोर अललाये तो सबसे पहले कुल्हाड़ी ...महावीर ही पहुंचा था। मेरी आंख ...से खुली और जब मैं आया तो उसका ...तमाम हो चुका था। गुलबाघ ने गला ...उसे ऐसा दबोचा था कि उसकी तो ...आवाज भी नहीं निकली होगी।'

मनीराम ने बताया। गवाही के कथनानुसार, पशुओं का शोर सुनकर महावीर कुल्हाड़ी लिये दौड़कर आया। हाथ डालकर सार की भीतरी कुंडी खोली और जैसे ही उसने भीतर प्रवेश किया तेंदुए ने उसे दबोच लिया।

सवाल यह था कि तेंदुआ दरवाजा खुलने के बाद ही अंदर जा सकता था और अगर ऐसा हुआ तो ढोरों के अललाने की घटना भी बाद की होनी चाहिये। कोई जवाब न पाकर मैं तेंदुए के पदचिह्न ढूंढ़ने लगा।

देखा कि सारे गोबर पर तेंदुए के पंजों के स्पष्ट चिह्न हैं और सार के बाहर गीली जमीन पर भी दूर तक वे नजर आ रहे हैं। तेंदुआ निश्चय ही महावीर के सार में दाखिल होने पर ही भीतर दरवाजे से दालान में आया होगा। वहां पैरों के एक से अधिक चिह्न मौजूद थे। आगे बढ़ा तो बायीं ओर भूसे वाली कोठरी पर नजर पड़ी। मुझे बताया गया कि उसका दरवाजा सदा खुला रहता था। वहां भी एक आदमी के पद-चिह्न तेंदुए के पंजों के निशानों के नीचे दब गये थे। शायद महावीर सार से गुजरकर भूसे वाले कमरे में आया और जब वह दुबारा सार में दाखिल हुआ, तभी तेंदुए ने उस पर हमला किया था। कशमकश के चिह्न भी स्पष्ट थे। लेकिन उसने शोर क्यों नहीं मचाया? मैं इस पक्ष पर सोचता रहा और फिर मेरी नजरें शांति पर गड़ गयीं। दिमाग में कुछ और भी कौंध गया। ......

धनीराम की बखरी गांव के सिरे पर थी। उसी में मेरे ठहरने के लिए गल्ले वाला कमरा

साफ कर दिया था। मूसलाधार बारिश के कारण उस रोज बाहर निकलने की कोई संभावना न थी। इसलिए मैं चारपाई पर लेटा गौर से शांति की व्यस्तताएं देखता-सुनता रहा। मशीन की तरह उससे निरंतर काम लिया जा रहा था। मां और बड़ी भावज बात-बेबात उसे झिड़कतीं और बुरा-भला कहतीं। मनीराम मेरे पास बैठा हुक्म चलाया करता–'शांति दीदी,चाय लाओ... यहां झाड़ू दे दो..... दूध गरम हुआ कि नहीं ? .....भैंसों को भूसा डाल दिया था ?' आदि।

शांति थी अठारह-बीस साल की युवती–आठ-दस बरस से विधवा। भांवरों के बाद गौने से पहले ही विधवा हो गयी थी। उसकी यातनापूर्ण और उदास जिंदगी देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं चाहता था कि वह एकांत में मिले तो उसे सांत्वना दूं। जांच के दौरान में मेरे चेहरे पर सवालिया भाव देखकर शायद कुछ घबरा गयी थी वह।

मनीराम की चारपाई मेरे ही कमरे में थी। रात के खाने के बाद वह किसी काम से मां के पास गया और उसकी अनुपस्थिति में शांति घूंघट निकाले मेरे लिए दूध लेकर आयी। मौका ठीक देखकर मैंने कहा–'शांति, मुझे तुमसे पूरी हमदर्दी है। फिक्र मत करो। मैं महावीर वाला भेद किसी को न बताऊंगा।'

वह चौंक पड़ी। दूध का गिलास उसके हाथ से छूटकर गिर गया। उसने अपनी बोझिल पलकें उठाकर मेरी ओर देखा। उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे। हाथ जोड़कर वह कुछ कहना चाहती थी कि मनीराम वापस आ गया। बिखरा दूध देखकर उस पर बरस पड़ा–'हाथों का सत उड़ गया है का ? दूध कैसे गिर गया ? देखके काम नहीं करे। पड़े-पड़े खाये का मिलत है तो मुटा गयी है।'

शांति ने चुपचाप एक निगाह मनीराम पर डाली और फिर बेबसी से मेरी ओर देखने लगी।

'मनीराम ! बहन पर क्यों बिगड़ रहा है ? गिलास तो मेरे हाथ से गिरा है।' मैंने कहा। मेरी बात पर उसका गुस्सा कुछ ठंडा पड़ा। फिर भी उसने त्योरी चढ़ाकर कहा–'अब खड़ी का कर रही है ? बोरी लाकर जमीन पोंछ और दूध का दूसरा गिलास लाके दे।'

'नहीं ! मुझे दूध की जरूरत नहीं।' मैंने तनिक कर्कशता से कहा–'मनीराम ! तुम तो पढ़े-लिखे हो। कोई अपनी बड़ी बहन से इस तरह बात करता है !'

शांति जा चुकी थी। मनीराम बोला –'आप नहीं जानते ! यह ऐसा ही करती रहती है।'

मैं चुप रहा और अभागिन शांति के बारे में सोचने लगा। वह आयी। उसने चुपचाप जमीन साफ की। जब हाथ धोकर वह दुबारा गिलास में दूध लाकर देने लगी, तो मैंने उसकी आंखों में रहस्यपूर्ण संकल्प की झलक देखी।

'शांतिबाई !' हठात् मेरे मुंह से निकला। पर वह जा चुकी थी।

…री, बहरी है का? सुन काहे नाहीं?'

…रीराम बोला।

'नहीं। जाने दो! मुझे कुछ खास बात …हीं कहनी।'

दूसरे दिन अभी खासा अंधेरा था। वह …ड़े और रस्सी लेकर पानी भरने गयी और …छ देर बाद जब दूसरी औरतें पानी लेने …हां पहुंचीं तो शोर मचा कि शांति कुएं में …रकर मर गयी। रस्सी और घड़ा भी लाश …के साथ कुएं से बरामद हुए। घर वालों के …था सारा गांव शांति से हमदर्दी रखता …था और सभी को दुःख था। मगर सबसे …अधिक दुःख अभागिन शांति के घरवाले ही …प्रकट कर रहे थे, जिस पर मुझे हंसी आयी।

०००

दो दिन बाद बारिश रुकी और मैं राइ…फल संभालकर तेंदुए की टोह में जंगल की …ओर निकल पड़ा। मनीराम ने मेरे साथ …चलने का आग्रह किया। मेरी सिफारिश …पर उसके बाप ने इजाजत दे दी। उसने …बारह बोर की दुनाली भी जुगाड़ ली। …उसकी उम्र पंद्रह-सोलह साल की थी, पर …उसे बंदूक चलाने का बहुत शौक था। मैंने …उसकी हिम्मत बढ़ायी और वादा किया कि …अगर अवसर मिला, तो तेंदुए पर पहले …उसी से गोली चलवाऊंगा। कीचड़ में लथ-…पथ हम देर तक जंगल में मारे-मारे फिरते …रहे। तेंदुए का कोई सुराग नहीं मिला। …क्योंकि बारिश ने उसके पंजों के निशान तक …मिटा दिये थे।

हल्की-हल्की फुहारें रुक-रुककर पड़ती रहीं और हम यों ही इधर-उधर चक्कर लगाते रहे। चकारों का एक जोड़ा नजर आया, तो मनीराम से रहा न गया—'भैया! खाने के लिए एकाध फुसकरा जो मार लियो।'

'फुसकरा' वहां छोटे चकारों की उस नस्ल को कहा जाता है, जो जोड़ों में रहते हैं। आदमी को देखकर वे फुस-फुस की आवाजें निकालते हैं। फिर अपनी छोटी-सी दुम हिलाते हुए भाग जाते हैं। फुसकरा मारने को तो जी नहीं चाहता था, मगर एक नया तरीका परखने का खयाल आया, जो मैंने अपने मामा से सीखा था।

तब अपनी राइफल मनीराम के हवाले की और बारह बोर में एल. जी. के कारतूस भरकर उसी जगह निश्चल खड़ा हो गया, जहां चकारे भागे थे। मनीराम को ताकीद कर दी कि वह बिलकुल चुपचाप खड़ा रहे और तमाशा देखे।

'इत्ती ठाड़े रहने से किच्छू फायदा न होगा। ढकाई करके काहे नाहीं मारो?'

'ढकाई की जरूरत नहीं।'

'फुसकरा तो भाग लिये! बेफिजूल में टेम खराब कर रहे हो! अब वह लौट के थोड़ी आयेंगे।'

'आयेंगे मनीराम! जरूर आयेंगे। तुम चुपके खड़े रहो।'

शिकार का यह तरीका खासा धीरज परखने वाला और कष्टदायक है। पर इसमें सफलता सौ प्रतिशत होती है। चकारों की आदत है कि वे जिस जगह से भागते हैं, वहां



कुछ देर बाद इसकी पुष्टि करने के लिए वापस आते हैं कि उनका भागना उचित था या नहीं। चकारों की नजर भी शायद कमजोर होती है। वे स्याह और भूरे तने वाले तेंदू, अचार और याकर के पेड़ों के तनों, झाड़ियों और चट्टानों के बीच खाकी कपड़े पहने निश्चल-निस्पंद खड़े मनुष्यों को पहचान नहीं पाते।

लगभग चालीस मिनट बीत गये और चकारों का दूर-दूर तक नाम-निशान न था। प्रतीक्षा से तंग आकर मैं अपनी योजना खत्म करने ही वाला था कि दूर झाड़ियों के बीच की पगडंडी पर धीर गति से आगे-पीछे आते हुए दोनों चकारों पर मेरी निगाह पड़ी। प्रयोग की सफलता पर खुशी से सांस फूलने लगी। चकारे बड़े सावधान अंदाज से कुछ कदम बढ़ाते और फिर ठहरकर आस-पास देखते, कान हिलाते, फुस-फुस करते—जैसे नथुनों से हमारी गंध सूंघने का प्रयत्न कर रहे हों। वे अभी तक बंदूक के दायरे में न आये थे। पर फायर करने का सबसे ठीक वक्त तो वहीं होता है, जब वे कदम आगे बढ़ा रहे हों।

उस समय हवा चकारों की दिशा से हमारी ओर बह रही थी। इसलिए वे हमारी गंध न पा सके। इसलिए और भी इत्मीनान था। अब मैंने अवसर पाकर बंदूक सीधी की और बंदूक की परिधि में उनके आने की प्रतीक्षा करने लगा। चकारे जब लगभग तीस गज इधर आ गये, तो बंदूक के घोड़े पर मेरी उंगली बेचैन हो गयी और फिर जोरदार धमाके के साथ दोनों चकारे जमीन पर लोटने लगे। एल. जी. के तीन दाने नर को लगे और दो मादा को। बाकी खाली गये। मैंने चकारे जिबह किये। और हम उन्हें लेकर जब उदयपुरा पहुंचे, तो शाम हो चुकी थी।

ooo

दो दिन बाद एक बसूड़े ने आकर बताया कि पिछली रात तेंदुआ उसके घर के पास गुर्रा रहा था, जहां सार में बकरियां बंद थीं। मैंने बसूड़े के घर के पास जाकर नरम जमीन पर तेंदुए के चिह्न देखे और उसके आने का रास्ता भी पहचाना। उसी रात वहीं बेल के पेड़ के नीचे एक बकरा बंधवाया और लगभग बीस गज दूर एक लोधी की ऊंचाई पर बनी छपरी में फूस और बांस की टट्टियों से उचित ओट बनवाकर बैठ गया। मनीराम अपनी बारह बोर के साथ मेरे साथ था। चकारों का शिकार देखकर उसका उत्साह बढ़ गया था और मैं

अगला नवनीत

आकाश की छत

डा. रामदरश मिश्र के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास का एक अंश।

डूबी पनडुब्बी और सी. आइ. ए. की भागदौड़

रूस की डूबी परमाणु-पनडुब्बी को निकालने के लिए अमरीका के गुप्त प्रयत्नों की कथा **विश्वनाथ सचदेव** के शब्दों में।

भीतर का स्वर-संसार

अमर संगीतस्रष्टा **बीठोफेन** के आलोडित हृदय की गूंज उसके अविस्मरणीय पत्रों में **–अनुवादक : जगन्नाथ विद्यालंकार।**

दिमाग और दवाएं

स्नायविक आराम दिलवाने के लिए दिमाग और दवाओं में होड़।

पढ़ने की आजादी

विचार-स्वातंत्र्य का अनिवार्य अंग–न्यायमूर्ति **एच. आर. खन्ना** के एक भाषण का सार।

ऊर्जास्रोत सूर्य

जीवन के ऊर्जास्रोत के रूप में वेदकालीन ऋषियों की सूर्य-वंदना –**डा. सीताराम सहगल।**

दो हिंदी कहानियां

विद्यारंभ –**डा. राधावल्लभ त्रिपाठी**; वसीयत–**सुनील कौशिक।**

कविताएं–संस्मरण–हास्य–अन्य स्थायी स्तंभ

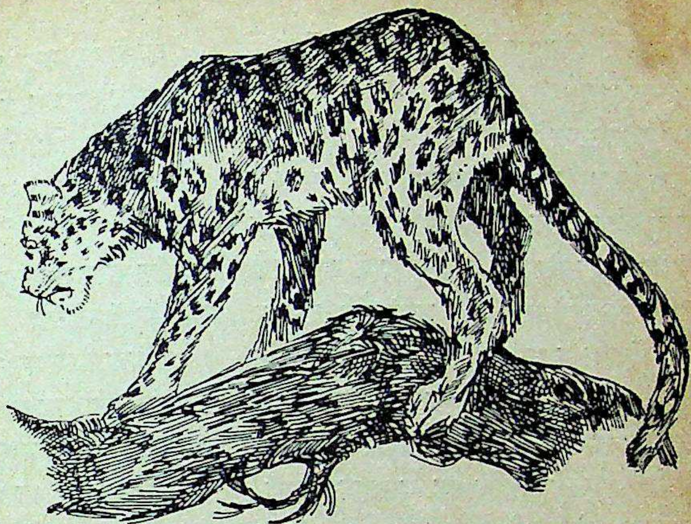
सचमुच यही चाहता था कि मेरी हिदायत से शिकार पर पहला फायर वही करे।

अंधेरी रात गहरे बादलों से और भी ज्यादा काली हो गयी थी। बकरा बेचारा बारिश में भीगने से बराबर मिमिया रहा था। रात के दो बजे तक हमें अपने शिकार की कोई आहट नहीं मिली। फिर बारिश भी कुछ देर के लिए रुक गयी। मेरे अनुभव से तेंदुए के हमला करने का सबसे ठीक वक्त यही था। मैं और अधिक सचेत होकर सिमटा ही था कि सहसा बकरा उठ खड़ा हुआ। रस्सी की गुंजाइश के बराबर वह पीछे हटा और गला फाड़कर चीखने लगा। फिर तीन-चार फुट ऊंची कांटों की बाड़ के निकट धीमी-सी खड़खड़ाहट महसूस हुई, जैसे किसी ने बाड़ को हिलाया हो और पत्तों पर रुके हुए पानी की बूंदें एक साथ नीचे टपकी हों। मैंने मनीराम को बंदूक का घोड़ा चढ़ाकर मुस्तैद रहने को कहा। जरा-सा आगे खिसककर उसने टटिया में बने बालिश्त-भर लंबे सूराख से बंदूक की नाली बाहर निकाली। दूसरे सूराख से मेरी राइफल पहले ही बकरे और उसकी जगह को घेरे में ले चुकी थी।

मनीराम बारह बोर की बंदूक पहले भी चला चुका था, धान के खेत की चौकसी करते वक्त। उसने दो सूअर भी मारे थे। बंदूक उठाने, उसे पकड़ में लेने और कारतूस लगाने या घोड़ा (हैमर) चढ़ाने-उतारने की उसकी कुशलता देखकर मुझे उस पर भरोसा हो गया था। अब बात केवल निशाने की थी। इसीलिए मैंने गोली के बजाय एल. जी. कारतूस चलाने की इजाजत दी थी, जिसके सात दानों में से दो-एक तो तेंदुए को लगते ही। मेरी नौ एम. एम. राइफल की गोली तो मदद के लिए मौजूद थी ही। मेरी नजरें तब बकरे पर केंद्रित थीं। लेकिन न जाने कब पपीतों के झुंड से निकलकर तेंदुए ने उसे दबोच लिया। बकरे की आवाज बंद होने के साथ ही बूंदाबांदी फिर शुरू हो गयी।

बिजली चमकी और मुझे फिर बैठा हुआ बकरा ही नजर पड़ा। समझा, शायद खतरा टल गया और वह आश्वस्त हो, पुनः बैठ गया है। पर अपने अनुमान पर विश्वास न हो रहा था कि बादल के गर्जन के साथ पुनः बिजली कौंधी। संदेह-सा हुआ—शायद वह बकरा न हो, तेंदुआ हो। फिर भी प्रकाश का मध्यांतर इतना कम था कि बारिश की फुहार के परदे ने दृश्य को स्पष्ट न होने दिया। दृष्टि सही काम न कर सकी और सारी शक्तियां एकत्र होकर कानों पर केंद्रित हो गयीं और अब बकरे के पास मैंने मद्धिम-सी खड़खड़ाहट सुनी।

ऐसे मौके पर दरिंदे की मौजूदगी का इत्मीनान किये बिना टार्च जलाना गलत और अक्सर तो खतरनाक भी होता है। और फिर यह सावधानी भी आवश्यक है कि फोकस किये हुए प्रकाश का सबसे रोशन धब्बा सीधा दरिंदे की आंखों पर पड़े। नहीं तो वह आनन-फानन में उछलकर नजरों से ओझल हो जाता है, या फिर छलांग लगा-



...सीधा वहीं पहुंच रहा है, जहां से प्रकाश आ रहा हो। और हम जहां खुले दालान में ...से केवल चार-... फुट ऊपर बहुत ...सुरक्षित बैठे थे। ...लिए संदेह के ...बावजूद मुझे टार्च ...जलाने में संकोच था।

लेकिन खड़खड़ाहट की आवाज ने मेरा ...संदेह विश्वास में बदल दिया और मैंने टार्च जला दी। तेंदुआ बकरे का नरखरा मुंह में दबाये उसका खून पी रहा था। वह खून चूसता, तो बकरे का सारा शरीर सिकुड़-कर दुहरा-सा हो जाता और वह सांस बाहर निकालता तो फिर अपनी असली हालत में आ जाता। तेंदुए की आंखें चमक रहीं थीं और शरीर भी धुंधला नजर आ रहा था। मैंने अपनी राइफल से उसके सिर का निशाना साधा और बायीं कुहनी से मनीराम को कोंचा कि पहला फायर वही अपनी बारह बोर से करे। वह तेंदुए को पहले ही घेरे में ले चुका था।

लेकिन मनीराम शायद बंदूक का धक्का बर्दाश्त न कर सका और धमाके के साथ लुढ़ककर मुझ पर यों गिरा कि मेरा भी हाथ हिल गया। राइफल की नाली ऊपर उठ गयी और उस पर लगी टार्च भी। फिर तेंदुए की 'ऊंह' की आवाज सुनाई दी। संभलते ही मैंने तुरंत राइफल और टार्च का मुख ठीक किया। पर अब आस-पास में तेंदुए का कहीं पता न था। वह कांटों की बाड़ और उसके पास की झाड़ियों की ओट में निगाहों से ओझल हो गया। पानी के तार के झिलमिलाते और मोतियों की तरह चमकते परदे के पीछे निश्चल-निस्पंद स्याह बकरा अलबत्ता उसी जगह पड़ा था। तेंदुए से निराश होते ही मैंने टार्च तुरंत बुझा दी। जख्मी तेंदुआ टार्च की रोशनी में हम पर हमला बोल सकता था।

तीव्र खतरे के एहसास से शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और अब सारे हवास एकत्र करके हम आहटें ले रहे थे। जख्मी होने के बाद तेंदुआ बहुत ज्यादा खतरनाक हो जाता है। अगर वह बदला लेने पर तुल जाये तो अपने जख्मों और जान की परवाह नहीं करता। हर हल्की-सी आहट हमारे दिलों को दहला देती थी। एक-एक क्षण भीषण

व्यग्रता और बेचैनी में कट रहा था। मेरे कहने पर मनीराम खिसककर मेरी ओट में बैठ गया था।

मुझे अपनी इस भूल पर बेहद पछतावा हो रहा था कि मैंने मनीराम को पहले फायर करने को क्यों कहा। तेंदुए की 'ऊंह' से यह विश्वास था कि एल. जी. के दाने उसे लगे हैं; पर कितने लगे और कहां लगे, इसका कुछ अंदाज न था। बारिश की आवाज के सिवा पूरी निस्तब्धता थी। लगभग पांच मिनट इसी अवस्था में बीते। फिर वहीं पास ही से तेंदुए के गुर्राने की आवाज आयी, जो रात के सन्नाटे में बुरी तरह गूंज उठी थी। अगर हमारी मचान में फूस की टट्टी की जगह खिड़की होती, तो उसका शीशा चटख जाता। तेंदुआ फिर एक बार जोर से दहाड़ा।

मनीराम भयभीत होकर मुझसे लिपट गया। यह हमले का अलार्म था और मेरे अनुभव के अनुसार, तेंदुआ उसी क्षण झपटकर हमला करने वाला था। मैं टार्च जलाना चाहता था; लेकिन मेरा हाथ अपनी जगह से हिला ही नहीं। उसने दस्ते को और मजबूती से पकड़ लिया और उंगली राइफल के घोड़े से हटने को तैयार न हुई। यह भी अच्छा ही हुआ, वरना उस वक्त रोशनी हो जाती, तो तेंदुआ खुद नजर आये बिना ही हम पर आसानी से छलांग लगा देता।

कुछ देर दो दिलों में हलचल, किंतु आसपास में निस्तब्धता रही। फिर तेंदुए की आवाज दूर से सुनाई दी और हमारी जान में जान आयी।

बसूड़े का मकान गांव के उत्तरी सिरे पर था। उन खतरनाक हालात में दक्षिणी सिरे पर लगभग पचास-साठ गज दूर धनीराम की बखरी तक जाना खतरनाक भी था और कठिन भी। वहां बैठे रहना भी फिजूल था; क्योंकि फायर के तुरंत बाद तेंदुआ बकरे के लिए नहीं लौटता।

तनिक विराम के बाद मैंने बढ़कर बसूड़े की कुंडी खटखटायी। फायर की आवाज के बाद से वह जाग रहा था और हमारे सिगनल की प्रतीक्षा में था। आहट पाते ही उसने तुरंत दरवाजा खोल दिया। रात हमने उसी के घर बितायी।

तेंदुए के जख्मी होने के बाद अब मेरे लिए यह अभियान छोड़ना असंभव था; क्योंकि बहुत शीघ्र इस तेंदुए के आदमखोर बन जाने की संभावना थी। दुखते हुए जख्म या नाकारा अंगों के कारण दरिंदे में वह ताकत और चुस्ती नहीं रहती, जो जंगली जानवरों को पकड़ने और मारने के लिए जरूरी होती है। जंगल में भूखा मर जाने के बजाय तब वह पालतू पशु हड़पने के लिए बस्तियों की ओर आता है। और तभी वह यदि किसी इन्सान पर हमला कर बैठता है, तो उसे विस्मय होता है कि पहले से ही ऐसा क्यों न किया। यह शिकार तो सबसे सरल, सबसे मजेदार और सबसे नरम है! न खाल में सख्ती, न हड्डियों में; न सींगों का डर, न खुरों की आशंका। फिर गोश्त भी नमकीन

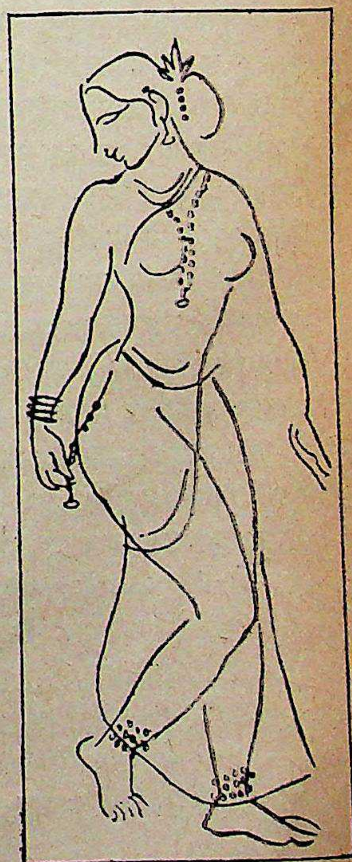
[शेष पृष्ठ १४१ पर]

काल-कवलित गीत ओ !



अंचल •

िस अपर्णा याद की पीली पड़ी पहचान में
ा उठता है तुम्हारा राग बंधातीत हो
गंध जैसी झूमती बनमोगरे की सांस में
जाग उठती लय तुम्हारी काल-कवलित गीत ओ !



नय की अवसन्न अँजुरी से पिघलती सांझ यह
र शिशिरते स्वप्न की रचती गगन में तारिका
गयी थमकर भटकती यातना के मोड़ पर
र उसी पूजित दिशा की रश्मिनी नीहारिका ।

चली किस पंख-टूटे फूल की मरुभावना
की वर्फ से फिर जलकणी अँसुआ उठी
कर पहली नमी जैसे तपे आकाश की
ओदी आंच जलदाकाश की उमसा उठी ।

मरे दिन का अमर आशय तुम्हारी देन है
तिरते हैं तुम्हारे ही पवन की धार में
विछुड़ती रैन तुमको ही सहेजे लौटती
ती है जो तुम्हारी मिट चुकी झंकार में ।

—दक्षिण सिविल लाइन, पचपेड़ी, जबलपुर

चित्र : के. के. हेब्बार



विकास-कथा का एक अध्याय

विठुभाई पटेल

आपने देखा है कि किसान जब अपना माल बेचने जाता है तो उसे खरीदने वाला व्यापारी उसकी कीमत बोलता है। फिर जब ग्राहक वह चीज खरीदने जाता है, तब भी व्यापारी उसकी कीमत बोलता है। यानी उत्पादक और ग्राहक दोनों के लिए कीमत तय करने वाला तो व्यापारी ही रहता है। हरित क्रांति आयी, उत्पादन बढ़ा; परंतु इस मामले में हालत में कोई फेर-बदल नहीं हुआ। किसान अपने माल की उचित बिक्री-कीमत प्राप्त कर सके तथा ग्राहक उचित दाम पर वस्तु खरीद सके—ऐसी क्रांति आनी अभी बाकी है। बहुत बार तो बिक्री का भाव उत्पादन-व्यय से भी नीचे चला जाता है और किसान को जबर्दस्त घाटा होता है; तब निम्नतम कीमत (फ्लोर प्राइस) निश्चित करने की मांग उठने लगती है।

हम कृषि-उत्पादन की उचित कीमत की क्रांति लाने के लिए प्रयत्नशील हैं और इसमें हमें बड़ी हद तक सफलता मिली है। पिछले चार वर्षों से सीजन शुरू होने से पहले ही बेरों का थोक और फुटकर बिक्री-भाव हम ही तय करते हैं।

पिछले कुछ सालों से भावनगर और पालिताणा के बाजारों में प्लास्टिक की थैलियों में पैक किये हुए बेर बहुतों ने खरीदे होंगे। हर एक थैली पर 'सुरेन्द्रबाग' का नाम छपा रहता है। बेरों का वजन और कीमत भी उस पर छपी होती है। इसके अतिरिक्त, इसी भाव से अहमदाबाद के 'अपना बाजार' में भी बेर बिकते हैं। शायद देश में यह पहला ही अवसर है जब किसान ने अपनी वस्तु की कीमत स्वयं निर्धारित की हो, ग्राहक को पुसाने वाली फुटकर कीमत भी तय की हो और पूरे मौसम-भर वही एक भाव कायम रखा हो। मानो मांग और उपलब्धता का अर्थशास्त्रीय सिद्धांत उसे स्पर्श ही नहीं करता।

यदि गुजरात के प्रत्येक शहर में इसी प्रकार उत्तम ढंग से फल निश्चित भाव पर बेचने की व्यवस्था हो सके, तो हमें आशा है कि बहुत सारे पढ़े-लिखे युवक नौकरी खोज में गांव छोड़कर शहर में जाने के बजाय गांव में कृषि-उत्पादन के कामों में लग जायें।

हमारे यहां सुरेन्द्रबाग में सभी ने मिलकर पिछले दस सालों से बेर की वैज्ञानिक खेती करने का प्रयत्न किया; उसी के परिणाम-स्वरूप कृषि-उत्पादनों के भावों में यह क्रांति हम कर सके हैं। ऐसा हो सके इसके लिए जरूरी था कि बाजार में अमूमन मिलने वाले बेरों से बहुत अच्छी किस्म के बेर पैदा किये जायें, ताकि उनकी मांग बढ़े।

गुजराती से अनुवाद : गि. शं. त्रिवेदी



विठुभाई

अभी बाजार में मिलने वाले बेर ज्यादा-तर कीड़े वाले होते हैं। इसलिए जरूरी है कि हमारे बेर कीड़े वाले बिलकुल न हों। इसके अलावा, वे आम बेरों से बड़े होने चाहिये; साथ ही मिठास भी कम नहीं होनी चाहिये। उसका रंग चमकीला एवं आंखों को भाने वाला होना चाहिये, जिससे खरीदार का मन आकर्षित हो।

परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। फसल का आयोजन ऐसा होना चाहिये कि दूसरे बेर बाजार में पहुंचें, इससे पहले हमारे बेर पक जायें; जब दूसरे बेर बाजार में बहुतायत में आ रहे हों तो हमारे यहां बेर कम पकें और जब औरों के बेर कम होने लगें, तब हमारे बेर अधिक परिमाण में पकें।

हमने इस वर्ष यह सब बड़ी सफलता से किया और उत्पादन में कीर्तिमान स्थापित किया। हमारे सबसे बड़े बेर का वजन ८३ ग्राम था। यानी एक किलो में १२ से १३ बेर! .....इतने बड़े बेर कि मुंह में पूरे जायें ही नहीं, काटकर खाने पड़ें!

जब बेर अभी बहुत छोटे होते हैं, तब फलमक्खी उनमें सूराख करके अंडा देती है। दो-तीन दिन में अंडे में से इल्ली पैदा होती है। यह इल्ली अंदर से बेर का गूदा खा जाती है। ऐसे बहुत-से बेर डाल से झड़ जाते हैं और इल्लियां जमीन में प्रवेश करती हैं। इनसे फलमक्खियां पैदा होती हैं, जो फिर से फलों पर आक्रमण करती हैं। इसलिए बेरों को कीड़ों से बचाना हो तो फलमक्खी और इल्ली दोनों का उन्मूलन करना पड़ेगा।

आज तक सारे शोधकर्ता दवा से फल-मक्खी को मारने का प्रयत्न करते रहे, इल्ली को मारने का नहीं। इसीलिए उन्हें पूरी सफलता नहीं मिली। इन दोनों को मारने के लिए 'कान्टैक्ट' और 'सिस्टेमिक' दवाओं की जरूरत होती है। ऐसी दवा सबसे पहले हमारे देश में हमारे यहीं छिड़की गयी। हमने 'सिस्टेमिक' तथा 'कान्टैक्ट' दोनों पद्धतियों का संयोग करके 'नुवाकोन' अथवा 'डिमेकोन' और 'कार्बरील' छिड़का, जिससे हमें सौ प्रतिशत सफलता मिली। बेर बिलकुल सड़ान-रहित पैदा हुए। ऐसे बेरों की मांग बढ़ी। विशेषतः जैन लोग कीड़े के भय से बेर नहीं खाते; वे भी अब विश्वासपूर्वक सुरेन्द्रबाग का बेर खाते हैं।

इसके अलावा हमारी मुख्य सफलताएं हैं:

१. देश के बड़े से बड़े बेर से दुगने वजन का बेर हमने पैदा किया।

[पृष्ठ ६२ पर जारी]

विठुभाई-एक प्रेरक व्यक्तित्व

भावनगर से सात-आठ किलो मीटर दूर स्थित सुरेन्द्रबाग (पोस्ट करदेज, जि. भावनगर, पिन ३६४-०६०) इसका उदाहरण बन गया है कि किस प्रकार विज्ञान की मदद से बागबानी को आर्थिक दृष्टि से अत्यंत लाभकारी बनाया जा सकता है। सुरेन्द्रबाग की समृद्धि के सर्जक डा. विठुभाई मूलत: सिविल इंजीनियर हैं और म्यूनिक (पश्चिम जर्मनी) की टेक्निकल यूनिवर्सिटी से पी-एच. डी हैं। वे भारत के विभिन्न इंजीनियरिंग कालेजों में प्राध्यापक रहे हैं। भूविद्या और मिट्टी के बांधों की डिजाइनों के वे विशेषज्ञ हैं, और युगोस्लाविया सरकार के आमंत्रण पर वहां जाकर ऐसे बांध की डिजाइन तैयार कर चुके हैं। मगर अब सौराष्ट्र के एक कोने में एक साधारण किसान की तरह रहते हुए वे खेती की नयी पद्धतियों द्वारा देश के कृषि-उद्योग में क्रांति लाने के सपने देख रहे हैं।

निष्ठावान शिक्षक-दंपति जीवराजभाई और दिवालीबेन के पुत्र श्री विठुभाई के कार्य-कलापों की सूची बहुत लंबी है। इस समय वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की इंजीनियरी तथा टेक्नोलाजी के संशोधन, अध्यापन और विकास की आवश्यकता संबंधी सलाहकार समिति के सदस्य हैं। 'सॉइल मेकैनिक्स' उनकी विशेज्ञता का क्षेत्र है। पिलानी, कानपुर, जबलपुर, भावनगर आदि स्थानों में वे इंजीनियरी और टेक्निकल संस्थाओं में प्राध्यापक के रूप में काम करते हुए इस क्षेत्र में संशोधन-कार्य में मार्गदर्शन करते रहे हैं। जबलपुर की 'एडवान्स्ड सॉइल मेकैनिक्स एंड फाउन्डेशन इंजीनियरिंग' की ग्रीष्म-शाला (समर स्कूल) के वे डाइरेक्टर रहे हैं। वे रुड़की की 'इंडियन सोसायटी ऑफ अर्थक्वक इंजीनियरिंग' की कार्यवाहक समिति के सदस्य हैं। इसके अलावा भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में संशोधन-संबंधी और शैक्षणिक समितियों में सदस्य के रूप में काम कर चुके हैं।

भारत तथा विदेशों के अनेक सभा-सम्मेलनों में उन्होंने मिट्टी के बांध, पानी का निकास, भवन-निर्माण, भूकंप-इंजीनियरी, समाजशास्त्र, शिक्षा-विज्ञान आदि पर अपने पेपर पढ़े हैं और भारत के अलावा अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, थाइलैंड की महत्त्व-पूर्ण टेक्निकल पत्रिकाओं में उनके पेपर छपे हैं।

इस सब कार्य-कलाप में से वे कृषि के क्षेत्र में कैसे चले आये?

'मिट्टी की पुकार' जैसी भावुकता-भरी या साहित्यिक बातें वे नहीं करते। सीधा-सा उत्तर देते हैं वे–'घर की खेती थी, पर उससे आय नहीं होती थी। मुझे लगा कि खोजों का

...करके उत्तम परिणाम प्राप्त किया जा सकता है, इसका प्रमाण पेश करूं ।'

परंतु उनके अपना कार्यक्षेत्र बदलने के पीछे हमारे देश की नौकरशाही के रंग-ढंग ...अति कटु अनुभव भी हैं। विदेश में डाक्टरेट के लिए उनका पेपर तैयार कराने में उनके ...ध्यापक ने खासी मदद की थी, फिर भी जब पेपर छपा, तो उस पर केवल विठुभाई का ...म था। मगर भारत की एक शिक्षासंस्था में काम करते समय जब उन्होंने पेरिस के ...सम्मेलन के लिए एक पेपर स्वयं तैयार किया और प्रिंसिपल को दिखाया, तो प्रिंसि-...ने उस विषय में कुछ न जानते हुए भी उस पर अपना नाम लेखक के रूप में समा-...ष्ट करने का आग्रह किया। जब विठुभाई ने कहा कि 'यह तो बेइमानी कही जायेगी', तो ...सी परिस्थिति पैदा हुई कि विठुभाई को वह संस्था ही छोड़ देनी पड़ी। पर विठुभाई ...उसका कोई रंज नहीं है।

कृषि में अपनी सफलता के रहस्य दूसरे किसानों को मुक्त हृदय से बांटने में उन्हें ...नंद मिलता है। उनका कहना है कि किसानों को उत्पादन का अधिक अच्छा भाव ...लाने के लिए सम्मेलन हों इसकी अपेक्षा, अधिक तथा उत्तम कोटि का उत्पादन कराना ...र बिक्री की व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना चाहिये, तभी किसानों की हालत ...सुधरेगी। वे अपने खेत को एक खुली प्रयोगशाला मानते हैं और कहते हैं–'खेती की ...पुरानी-पिटी पद्धतियों को छोड़कर नयी पद्धतियों को अपनाये बिना किसानों का निस्तार ...नहीं। जब मैंने हार्मोनों पर काम शुरू किया, तब बहुत-से प्रोफेसरों ने इस चक्कर में न ...पड़ने की सलाह मुझे दी; क्योंकि हार्मोनों की संभावनाओं की विशालता का उन्हें अंदाज न ...था। पर जब उन्होंने मेरा काम देखा, तब कहने लगे कि आपने तो हमें हार्मोनों पर ज्यादा ...ध्यान करने को विवश कर दिया है!'

जिस जमीन से बहुत मामूली आमदनी होती थी, उसी में प्रति हेक्टर २७,००० ...रुपये की आय करने का पराक्रम दिखाने के बाद अब विठुभाई बागबानी में तीन-चार ...नयी फसलों का प्रवेश कराने और प्रत्येक से भरपूर आमदनी पाने की टेक्नोलाजी विकसित ...करने को प्रयत्नशील हैं। उद्देश्य यह है कि इनमें से किसी एक फसल से भी किसान समृद्ध ...हो सके। इसी उद्देश्य से उन्होंने 'गुजरात बागायत विकास मंडल' की स्थापना की है, ...जिसके वे मंत्री हैं। इस संस्था के सम्मेलनों की यह विशेषता है कि राजनीतिज्ञों के लिए ...इसके दरवाजे बंद हैं। इन सम्मेलनों का न कोई उद्घाटनकर्ता होता है, न कोई मुख्य ...अतिथि और न इनमें समापन-भाषण होते हैं। बराबरी की हैसियत से सब लोग साथ बैठ-...कर विचार-विनिमय करते हैं।

अपनी खोजों के संबंध में विठुभाई कोई बात गुप्त नहीं रखते। मुझे जो मिला है, ...वह सभी को मिले–यह उनकी भावना है।

[पृष्ठ ५९ से जारी]

२. प्रति एकड़ उत्पादन का कीर्तिमान स्थापित किया।

३. प्रति एकड़ शुद्ध मुनाफे का कीर्तिमान स्थापित किया।

४. देश में पहली बार ऐसी व्यवस्था की कि किसान थोक तथा फुटकर बिक्री का भाव स्वयं निश्चित करके अपना माल बेच सके।

५. बेर का सीजन डेढ़ महीने का होता है; उसे हम हार्मोनों के उपयोग से तीन महीने का बना सके।

६. हमारी निश्चित की हुई तारीख पर फल पकें, ऐसी व्यवस्था हम कर सके।

यह सब हमने कैसे किया?

आमदनी बढ़े, तभी अधिक खर्च करने का मन होता है। दवा का छिड़काव भी कोई तभी करेगा, जब पेड़ पर अधिक फल लगें। अधिक फल लगें, इसके लिए पेड़ को अधिक पोषण (खाद) चाहिये। पेड़ खाद में से रस तभी ले सकता है, जब जमीन में पर्याप्त नमी हो। इस तरह जमीन, खाद, पानी, फसल की देखभाल, इलाज और बिक्री की अच्छी व्यवस्था द्वारा ही उत्पादन बढ़ाया जा सकेगा।

जमीन को अच्छी तरह जोतना होगा। विपुल मात्रा में जैविक तथा रासायनिक खाद डालनी पड़ेगी। आवश्यकतानुसार दवाएं छिड़कनी पड़ेंगी। चूंकि फलों को अनाज की तरह लंबे समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता, इसलिए उसकी तुरंत बिक्री की व्यवस्था करनी पड़ेगी। इनमें से किसी एक बात में भी चूक, तो सारी मेहनत बेकार।

हमने मई महीने में बेरी की छंटाई (प्रूनिंग) करने के बाद उसके चारों ओर ट्रैक्टर से ऊंची बाड़ बना दी। फिर बेरी के चारों ओर के गाले में ट्रैक्टर से ही नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश युक्त रासायनिक खाद डाली। अधिक खाद के कारण अधिक पानी पिलाना भी जरूरी था। अक्तूबर से फरवरी के मध्य तक ३५ बार पानी पिलाया गया। (तापमान और फस्ल की वृद्धि के अनुसार इसमें कुछ फेर-बदल करना पड़ सकता है।)

अधिक खाद डालने के कारण बेरी खूब तेजी से बढ़ने लगती है और उसमें फल देर से लगने तथा फस्ल चूक जाने का भय पैदा हो जाता है। इस कठिनाई से बचने के लिए बेरी की बढ़वार पर अंकुश लगाना जरूरी था। इसके लिए हमने बेरी पर 'सायकोसेल' हार्मोन छिड़कना शुरू किया। इससे पंद्रह दिन पहले ही फूल आ गये।

अब एक समस्या और खड़ी हो गयी। खूब फूल हों तो फल भी खूब लगेंगे और तब पर्याप्त पोषण न मिला, तो फल सूखकर झड़ने लगेंगे, अथवा छोटे रह जायेंगे। इसलिए फलों को झड़ने से रोकने के लिए एक हार्मोन 'नेप्थलीन एसेटिक एसिड' छिड़का। इससे फलों के डंठल मजबूत हो गये, फलों का टूटकर गिरना कम हो गया।

पर अभी जंग बाकी थी। बहुत सारे फल आरंभिक अवस्था जितने ही छोटे रह जाते हैं। उसके लिए फिर एक हार्मोन 'जिब्रेलिक

...छिड़ककर फल को ... वानस्पतिक कोष ... बड़ा किया। उससे फल की लंबाई बढ़ी। ... फल आकार में बड़ा होगा, तो उसे पक-कर तैयार होने में भी अधिक समय लेगा, ... वह बाजार में देर से पहुंच पायेगा। ... सभी फल अगर बड़े हों और एक साथ बाजार में आयें, तो उनकी ठीक कीमत नहीं मिल पायेगी। इसलिए कुछ पेड़ों पर ... हार्मोन 'ईथरेल' छिड़का। इस तरह ... की क्रिया प्राकृतिक ढंग से शुरू कराने ... फल सुंदर, चमकदार और अधिक मीठे होते हैं।

ऐसे ही बारी-बारी से चार हार्मोनों का छिड़काव करके हमारे यहां फलों को जल्दी और देर से तैयार किया जा सका है। इस तरह जो सीजन पहले डेढ़ महीने चलता था, वह अब पूरे तीन महीने चलता है। हमारे यहां बड़ा से बड़ा बेर ८३ ग्राम वजन का, ६.८ से.मी. लंबा और ४.५ से.मी. व्यास का तैयार हुआ है।

जिस जमीन पर पहले पांच हजार रुपये का भी उत्पादन नहीं होता था, वहां आज तीन लाख रुपये से भी अधिक कीमत का उत्पादन होने लगा है। इस तरह 'ट्रान्सफर टेक्नोलाजी' से बगीचे के उत्पादन में बड़ी रुकावट समाप्त हुई; एक 'ब्रेक थ्रू' आया।

अब हम प्रयत्नशील हैं कि यही पद्धति अन्य बहुत-सी उपजों पर भी इस्तेमाल की जा सके। इसमें सफलता मिल जाये, तो फिर उपज के लिए संतोषकारी भाव प्राप्त करने के लिए सम्मेलन नहीं करने पड़ेंगे और विपुल उत्पादन प्राप्त करने की संभावनाएं बढ़ जायेंगी।

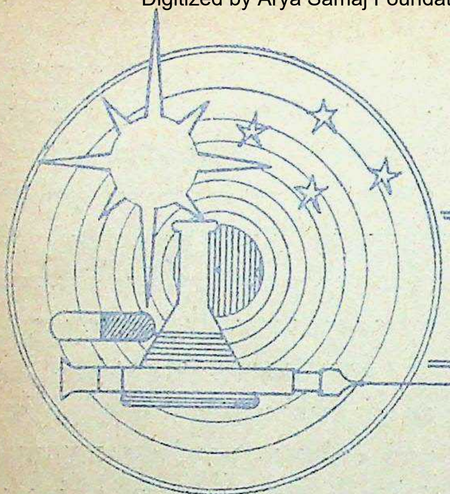
सुरेन्द्रबाग में आम, नींबू, अननास एवं यूकेलिप्टस (सफेदा) पर इस प्रकार के प्रयोग किये जा रहे हैं।



साहसी पूत अपनी लीक स्वयं बनाता है। सयाना आदमी अपनी कहावतें स्वयं बनाये तो क्या हर्ज ? इसी भाव से प्रेरित होकर प्रसिद्ध ब्रिटिश साप्ताहिक 'न्यू स्टेट्समैन' ने नयी कहावतों की एक प्रतियोगिता का आयोजन किया था। उसमें आयी कतिपय नयी अंग्रेजी कहावतों के अनुवाद यों हैं :

- **सयानी मीन प्यासी नहीं रहती।**
- **ज्वार के समय जहां घुटने तक जल हो, भाटे में वहां टखने तक ही जल होगा।**
- **चींटी को चीते का क्या डर !**
- **गंजों के देश में नाई भिखारी होते हैं।**
- **चौड़ी कड़ाही, उथला दूध।**
- **छोटी-सी डबरी भी आसमान को उलट डालती है।**
- **खान में दबा कोयला सिगड़ी नहीं जलाता।**
- **टिटहरियां टैक्स नहीं भरतीं।**
- **कोहनी है तो मुंह के नजदीक, मगर उसे चूसा नहीं जा सकता।**





विज्ञान बिंदु

भारत का दूसरा कृत्रिम उपग्रह 'भास्कर' ७ जून १९७९ को शाम के ४ बजे रूस के एक अंतरिक्ष-अड्डे से अनेक भारतीय और रूसी विज्ञानियों की उपस्थिति में अंतरिक्ष में छोड़ा गया। हमारा पहला उपग्रह 'आर्यभट' उससे लगभग चार वर्ष पूर्व अप्रैल १९७५ में रूस से ही छोड़ा गया था। इस बीच विश्व के राजनैतिक स्वरूप और समीकरणों में काफी हेरफेर हुआ है तथा विज्ञान और टेक्नोलाजी के क्षेत्र में मानव का ज्ञान-भंडार बहुत बढ़ा है। हमें 'भास्कर' का मूल्यांकन इसी पृष्ठभूमि में करना होगा।

अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

पश्चिम के उन्नत देशों में तो अंतरिक्ष-अनुसंधान और अंतरिक्ष-उड़ानों से जुड़ा 'थ्रिल' और 'ग्लैमर' अब लगभग समाप्त हो चुका है। कारण इसके कई हैं। पृथ्वी का इन्सान चांद की धरती को कई-कई बार छूकर लौट आया है। मानव-रहित यान मंगल और शुक्र पर उतर चुके हैं। आकाशीय उपनगरों की चर्चा वैज्ञानिक जगत् में ही नहीं पत्र-पत्रिकाओं में भी आम बात हो चुकी है।

इसके अलावा, इन परियोजनाओं पर जितनी बड़ी धनराशि खर्च की गयी, उसकी भी विश्व-भर में आलोचना हुई है। जब धरती पर ही समस्याओं का अंबार लगा हो, तो आसमान की बात करना लोगों को बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण भी नहीं प्रतीत होता। स्वयं पश्चिम ने अनेक अंतरिक्ष-योजनाओं को रद्द करने का जो निर्णय किया, उसके पीछे ये और ऐसे ही अन्य कारण रहे हैं।

दूसरी ओर, वैचारिक स्तर पर, विज्ञान और टेक्नोलाजी को लेकर एक और नव-चिंतन शुरू हुआ है। बड़े और उन्नत देशों में विकसित की गयी प्रविधियां सभी विकास-शील देशों के लिए समान रूप से उपयोगी

...हो सकती हैं। अनुभव ने सिखा दिया है ...उधार लेकर, नकल करके या चुराकर ...टेक्नोलाजी का अपने यहां प्रतिरोपण ...भी मर्ज की दवा नहीं है। विदेशों से ...बड़ी आतंककारी डिग्रियां बटोरकर ...ने वाले वैज्ञानिक प्रायः अपने घर में ...नाकारा साबित हो रहे हैं। अगर ...शील देशों के आम आदमी की ...में कोई रुचि नहीं जग रही है, तो ...एक बड़ा कारण यह है कि इन देशों ...विज्ञान को स्थानीय जनजीवन ...समस्याओं से जोड़ नहीं पाये हैं।

...सीधी बात है, प्रत्येक देश को अपनी ...आवश्यकताओं के अनुरूप स्थानीय कौशल ...साधनों का उपयोग करते हुए ...और प्रभावकारी टेक्नो-...का विकास करना होगा। ...कोई विकल्प बचा नहीं है। ...प्रकार की टेक्नोलाजी को अब ...प्रिएट' अथवा 'स्वसंगत' टेक्नो-...कहा जाता है।

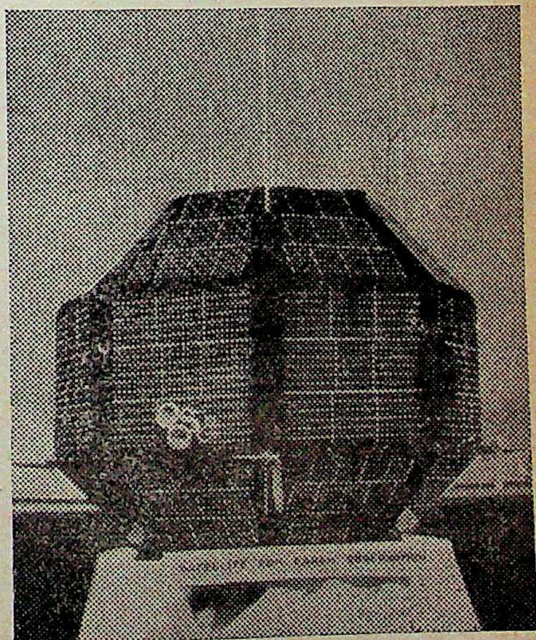
...हमारे देश में शासन-परिवर्तन के ...से इस विचार को काफी बल ...था। सरकार का सारा जोर ...निजी समस्याओं के सुलझाने ...स्वदेशी-स्वसंगत टेक्नोलाजी ...पर रहा।

पश्चिमी टेक्नोलाजियां

...जैसा कि अभी एक प्रमुख और ...अमरीकी वैज्ञानिक ने ...भारतयात्रा के दौरान बताया है पश्चिम में 'सोफिस्टिकेटेड' टेक्नोलाजियों के विकास का कारण यह था कि वहां जनशक्ति (मैन पावर) का अभाव था, प्राकृतिक संपदा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी और सरकार की नीति और स्थिति ऐसी थी कि नये उद्योगों में बड़ी मात्रा में पूंजी लगायी जा सके। हमारे देश में इन तीनों में से एक भी बात नहीं है। ऐसी स्थिति में पश्चिमी टेक्नोलाजियों को भारत में आजमाने की बात बहुत व्यावहारिक नहीं कही जा सकती।

भास्कर : नये परिप्रेक्ष्य में

हमें 'भास्कर' के महत्त्व और उसकी व्यावहारिक उपयोगिता का मूल्यांकन इसी संदर्भ में करना होगा।



हमारा दूसरा उपग्रह-भास्कर।

कोई कृत्रिम उपग्रह जब अंतरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा में परिभ्रमण करता है, तो वह किन्हीं पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ आवश्यक भूमिकाएं भी निभाता है। मसलन, हमारे पहले कृत्रिम उपग्रह 'आर्यभट' का मुख्य उद्देश्य अंतरिक्ष में एक्स-किरण आदि का अध्ययन करना था। परंतु 'भास्कर' की निगाहें 'आसमान' की तरफ न होकर पृथ्वी की तरफ हैं। इसमें जो दो टेलिविजन कैमरे और तीन सुपर हाइ फ्रीक्वेन्सी रेडियोमीटर रखे गये हैं, वे भारत की मृदा, कृषि-फसलों, जंगलों, समुद्री सतह और पहाड़ों पर जमी बर्फ के संबंध में उपयोगी सूचनाएं भेजेंगे, जो हमारे विकास-कार्यों और बाढ़ आदि से सुरक्षा के लिए काम में लायी जा सकेंगी।

अपने देश के लिए स्वसंगत टेक्नोलाजी का विकास तब तक हो नहीं सकता, जब तक हमें अपनी प्राकृतिक संपदा का सही ज्ञान और अनुमान न हो। इस बुनियादी जरूरत की पूर्ति में 'भास्कर' सहायक होगा। इसके अलावा बाढ़ से प्रतिवर्ष धन-जन की जो अपार हानि होती है, उसे भी 'भास्कर' से प्राप्त सूचनाओं की सहायता से किसी हद तक काबू में लाया जा सकेगा।

यानी यह धारणा कि अंतरिक्ष-प्रयोगों पर धनराशि व्यय करना भारत-जैसे गरीब देश के लिए उचित नहीं है, बेबुनियाद है।

कुछ तथ्य व आंकड़े

वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास पर भारत सरकार प्रतिवर्ष लगभग ४०० करोड़ रुपये खर्च करती है। यह विश्वविद्यालयों पर खर्च की जाने वाली रकम से अलग है। 'भास्कर' के निर्माण पर अनुमानतः छह करोड़ रुपये खर्च हुए हैं, जो कि अनुसंधान और विकास के कुल प्रावधान के डेढ़ प्रतिशत के आस-पास बैठता है। यह डेढ़ प्रतिशत धन भी देश के आर्थिक विकास-कार्यक्रमों के लिए आधार-सामग्री जुटाने में सहायक हो सकेगा।

'भास्कर' का कुल वजन ४४४ किलोग्राम है। अनुमान है कि वह पृथ्वी की कक्षा में लगभग एक वर्ष तक रह सकेगा। पृथ्वी की धुरी से वह ५०.७ अंश पर स्थित है और पृथ्वी से उसकी अधिकतम और न्यूनतम दूरियां क्रमशः ५५७ और ५१२ किलोमीटर होंगी। ९२.२ मिनट में वह पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरा कर लेता है।

आकार में 'भास्कर' बहुफलकीय है। कुल मिलाकर उसमें छब्बीस समतल फलक हैं, जिन पर नीले रंग के सिलिकान सौर ऊर्जा सेल लगे हैं। उसका अधिकतम व्यास १.४ मीटर है। उसके संचालन के लिए ऊर्जा सूर्य के अलावा, उसमें कसी गयी निकल-कैडमियम बैटरियों से भी प्राप्त की जा सकेगी। उसके टेलिविजन कैमरे एक समय में पृथ्वी की सतह पर ३२५ किलोमीटर दूरी के चित्र ले सकेंगे।

'भास्कर' तीन-मंजिला उपग्रह है। सबसे निचला तला अल्युमिनियम की एक विशेष मिश्रधातु से तैयार किया गया है। इसी मंजिल में नाइट्रोजन गैस की वे महत्त्वपूर्ण

...तलें रखी गयी हैं, जिनकी सहायता से 'भास्कर' का घूर्णन (स्पिनिंग) नियंत्रित किया जा सकता है। इन बोतलों को पृथ्वी से आवश्यकतानुसार आदेश दिये जा सकते हैं।

'भास्कर' से भेजे जाने वाले संकेतों को ग्रहण करने के लिए बेंगलूर, श्रीहरिकोटा (आंध्र प्रदेश) और अहमदाबाद में विशेष केंद्रों की स्थापना की गयी है।

...र संचालन

जब मैं यह स्तंभ लिख रहा हूं, इस आशय के समाचार छप रहे हैं कि 'भास्कर' के ...-प्रेषक यंत्र ठीक ढंग से काम नहीं कर रहे हैं। 'भास्कर' अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकेगा, इस पर कुछ क्षेत्रों में शंकाएं प्रकट की जा रही हैं। इस संबंध में बेंगलूर के उपग्रह-केंद्र के अधिकारियों का कहना है कि 'भास्कर' के रेडियोमीटरों ने अपना काम सुचारु रूप से प्रारंभ कर दिया है और उनके द्वारा भेजे जा रहे संकेत स्पष्ट हैं। इन्हें श्रीहरिकोटा केंद्र में मानीटर किया जा रहा है।

हां, टेलिविजिन-कैमरों के संचालन के लिए बैटरियों को जितने तापमान की आवश्यकता है, उतना तापमान अभी सूरज की चमक में कमी के कारण नहीं मिल सका है और इसलिए ये कैमरे अभी संचालित नहीं हो सके हैं। स्थानीय वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जुलाई के मध्य तक सूरज की चमक की तीव्रता के सामान्य हो जाने पर इन बैटरियों के रसायन सक्रिय हो जायेंगे और तब टी. वी. कैमरे अपना काम शुरू कर देंगे।



डा. परमानन्द

संकेतों की व्याख्या

उपग्रहों से प्राप्त होने वाली सूचनाएं किस रूप में होती हैं और उन्हें किस प्रकार व्यावहारिक और उपयोगी रूप में परिवर्तित किया जाता है, इस विषय में शिक्षित जन भी लगभग अनजान हैं। कारण यह है कि अंतरिक्ष-सूचनाओं की व्याख्या करने वाला विज्ञान अभी काफी नया है और वह विद्युत-संचार इंजीनियरी के क्षेत्र में पिछली एक दशाब्दि में हुए नये अनुसंधानों पर मुख्यत: आधारित है। इस नये विज्ञान को 'सूचना-प्रक्रमण विज्ञान' (इन्फर्मेशन प्रोसेसिंग सायन्स) कहते हैं और रिमोट सेन्सिंग तकनीक के विकास में इसका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आजकल हैदराबाद, देहरादून और बेंगलूर आदि विभिन्न केंद्रों में इस विज्ञान पर काफी कुछ काम

किया जा रहा है।

इस विज्ञान के कार्य के स्वरूप को जानने के लिए हमने इस क्षेत्र के एक युवा वैज्ञानिक डा. परमानन्द से चर्चा की। उनके अनुसार, जैसे रेडियो-प्रसारण-केंद्र से ध्वनि को विद्युत-चुंबकीय तरंगों में परिवर्तित करके अधिग्रहण-स्थल (रिसीविंग एंड) पर उसे फिर से ध्वनि में बदल लिया जाता है, कुछ-कुछ वैसी ही प्रक्रिया अंतरिक्ष से प्राप्त संकेतों की व्याख्या के लिए अपनायी जाती है। टी. वी. प्रसारण में प्रकाशिक चिह्नों (फोटो) को विद्युत-चुंबकीय तरंगों में और फिर चित्रों में परिवर्तित करना होता है। परंतु उपग्रह से भेजे जाने वाले संकेत रेडियो और टी. वी. की तरंगों से मिल न जायें, इसके लिए उन्हें संख्यात्मक रूप में विद्युत-चुंबकीय तरंगों के माध्यम से पृथ्वी पर भेजा जाता है। यहां उन्हें फिर ध्वनियों और चित्रों में बदला जा सकता है।

इस पद्धति के अनेक लाभ हैं। संख्याओं की सहायता से संकेत भेजने पर एक दूसरे 'आब्जेक्ट' आपस में गड़बड़ नहीं कर सकते। दूसरे, इनकी सहायता से एक ही 'आब्जेक्ट' के विभिन्न भागों और अंगों की व्याख्या आसानी से की जा सकती है। संकेतों को संख्याओं में बदलकर भेजने की तकनीक अभी कोई दस ही वर्ष पुरानी है और आजकल यह क्षेत्र अनुसंधान के लिए बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है।

अंतरिक्ष-विज्ञान अगर आज इस हद तक सफल हुआ है, तो उसके पीछे विद्युत-संचार इंजीनियरी की नयी सूचना-प्रक्रमण तकनीकों का विशेष योगदान है।



अगर गर्भाधान स्त्री के ऋतुस्राव-चक्र के पूर्वार्ध के बजाय उत्तरार्ध के दिनों में हो तो इसकी संभावना बहुत बढ़ जाती है कि लड़की के बजाय लड़का पैदा होगा। यह बात अमरीका में किये गये एक अध्ययन से प्रकट हुई है। स्त्री के अंडाशय से अंड का उत्सर्जन ऋतुस्राव-चक्र के मध्य में होता है और शोधकर्ताओं ने पाया कि अंडोत्सर्ग के दो दिन बाद जिनके गर्भाधान हुआ था, उन औरतों में से दो तिहाई ने बेटे जने। क्या गर्भाधान के समय का भावी बच्चे का लिंग निर्धारित करने में कोई हाथ है? यह बड़ा पुराना सवाल है। शोध-रिपोर्ट ने इसका यों उत्तर दिया है—'सेक्स अनुपात के अंतर का संबंध ऋतुस्राव-चक्र के विभिन्न दिनों में गर्भाधान होने से है, इस मान्यता की सबल पुष्टि इस अध्ययन से होती है।' मगर रिपोर्ट ने दंपतियों को आगाह किया है कि बेटे की आशा में केवल ऋतुस्राव-चक्र के उत्तरार्ध में ही गर्भाधान का प्रयत्न न करें। कारण, उससे जेनेटिक दोषों से युक्त संतान पैदा होने का खतरा भी बढ़ जाता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि अभी इस बारे में बहुत शोध होना जरूरी है, कि क्या विलंबित गर्भाधान से ही ये जेनेटिक विकार उत्पन्न होते हैं।



नील : खेत से कारखाने तक

डा. धनवंत किशोर गुप्त

भारत अत्यंत प्राचीन काल से नील के लिए विश्व में विख्यात रहा है। चमकीले नीले रंग का यह पाउडर कपड़े रंगने अथवा उसकी सफेदी को बढ़ाने के लिए हजारों साल से उपयोग में आता रहा है। यहां से यह अरब देशों से होता हुआ यूरोप जाता था। अंग्रेजी में इसे 'इन्डिगो' कहते हैं। यह शब्द ग्रीक भाषा के 'इन्डिकोन' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ होता है भारतीय। प्राचीन काल में नील यूरोप में बड़ी कीमती वस्तु समझा जाता था। मार्को पोलो ने अपने यात्रा-वृत्तांत में नील की खेती तथा उससे रंग प्राप्त करने की विधि का सविस्तार वर्णन किया है।

भारत, मलेशिया तथा अफ्रीका के कुछ भागों में नील का पौधा पाया जाता है। यूरोप में 'वोड' के पौधों से भी नील प्राप्त होता था। भारतीय पौधों से प्राप्त नील उत्तम होता है। इस पौधे का वैज्ञानिक नाम 'इन्डिगोफेरा टिंक्चोरिया' है। इसकी खेती बिहार में नेपाल के सीमावर्ती चंपारन क्षेत्र में होती है।

नील के पौधे से रंग प्राप्त करने के लिए पौधों को उनमें फूल आने से पहले ही तोड़ लिया जाता है तथा बारह घंटे या इससे अधिक देर तक पानी में भियोगा जाता है। इससे पेड़ के डंठल तथा पत्तियों में से एक पारदर्शक रंगहीन रस पानी में घुल जाता है। फिर इस रस में खमीर उठने जैसी प्रक्रिया होती है, जिसके फलस्वरूप एक पारदर्शक हल्के पीले रंग का द्रव प्राप्त होता है। इस द्रव को अलग कर लेते हैं और खुली हवा में खूब मथते हैं। इससे गहरे नीले रंग का नील उत्पन्न होता है, जो पानी में घुलनशील न होने के कारण तलछट के रूप में नीचे बैठ जाता है। इसे निकालकर सुखा लिया जाता है तथा इसके टुकड़े काटकर बाजार में बेचा जाता है।

पहले भारत से बहुत अधिक मात्रा में नील विदेशों को जाता था तथा हमारे देश को इसकी काफी कीमत मिलती थी। फिर जब भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया, तो उन्होंने नील के व्यापार पर एकाधिकार कर लिया। चंपारन में नील का व्यापार करने वाले अंग्रेज 'निलहे साहब' कहलाते थे तथा उनकी कोठियां 'नीलवाली कोठियां' कहलाती थीं। ये निलहे साहब हमारे किसानों का भयंकर आर्थिक-सामाजिक शोषण करते थे तथा विदेशों को नील निर्यात करके खूब धन कमाते थे। इन्हें अंग्रेजी सरकार का संरक्षण प्राप्त था। अतः ये किसानों पर हर प्रकार का अत्याचार करते

थे। उनकी स्त्रियां उठा ले जाना और उन से बेगार लेना आदि साधारण बातें थीं।

इन्होंने एक कानून बनाया था, जिसके अंतर्गत प्रत्येक किसान को अपने खेत में प्रति बीघे (२० बिस्वा) के पीछे ३ बिस्वा भूमि में नील की खेती करनी ही पड़ती थी। बिहार में बिस्वा को कट्ठा बोलते हैं। अतः तीन कट्ठे में नील की खेती करने के इस कानून को वहां 'तीन-कठिया' कानून कहा जाता था। प्रायः निलहे साहब इस फसल का मूल्य भी नहीं चुकाते थे। गरीब किसानों से वे सारे दिन अपने नील के खेतों में मजदूरी करवाते थे और पुरुषों को दस पैसे, स्त्रियों को छह पैसे तथा लड़कों को तीन पैसे दैनिक मजदूरी देते थे।

अंग्रेजों के इन अत्याचारों से तंग आकर वहां के किसानों ने सन १९१७ में महात्मा गांधी से फरियाद की। गांधीजी उनकी दशा का अध्ययन करने के लिए स्वयं चंपारन गये। वहां उन्होंने भारतीय किसान की घोर गरीबी और असहायता का जो प्रत्यक्ष अनुभव पाया, उसने उनके राजनैतिक विचारों पर शाश्वत प्रभाव डाला। किस प्रकार उन्होंने चंपारन के किसानों को जगाया और उनकी ओर से अहिंसक लड़ाई लड़ी, यह भारतीय इतिहास का ही नहीं, अत्याचार के विरुद्ध मानव की लड़ाई के इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है। वह सारी कथा यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं।



दीनबंधु मित्र, जिनके बंगला नाटक 'नील-दर्पण' ने निलहों के अत्याचारों की ओर पहले पहल देश का ध्यान खींचा।

जब नील के व्यापार पर अंग्रेजों का एकाधिकार था, वे विदेशों में नील का मनमाना मूल्य वसूल करते थे। इससे परेशान होकर यूरोप के अनेक वैज्ञानिक इस रंग को प्रयोगशाला में तैयार करने का प्रयत्न कर रहे थे। इन प्रयोगों में लगभग बीस वर्ष का समय लगा तथा करोड़ों रुपये व्यय हुए। परंतु नील के व्यापारिक महत्त्व के कारण सब करना जरूरी था। इस दिशा में पहली सफलता नोबेल-पुरस्कार विजेता जर्मन रसायनज्ञ प्रो. एडोल्फ वान बायर को मिली। उन्होंने बी. ए. एस. एफ. की प्रयोगशाला में नील का वैज्ञानिक अध्ययन किया और १८८२ में उसका रासायनिक सूत्र ज्ञात किया। बाद में उनके सूत्र में थोड़ा संशोधन

अगला

था।

इसके बाद तो कृत्रिम नील तैयार करने के लिए जर्मनी के रासायनिक कारखानों में ... लग गयी। इसके लिए सर्वप्रथम प्राकृ... विधि का वैज्ञानिक अध्ययन किया ...। यह पाया गया कि जब नील के पौधे ... पानी में डुबोकर रखा जाता है तो उसकी ...यों तथा डंठल में स्थित रंगहीन रासा... पदार्थ 'इंडिकन' पानी में घुलनशील ... के कारण पानी में आ जाता है। इस ... में खमीर उठने पर इंडिकन विखंडित ... ग्लूकोज तथा 'इंडोक्सिल' बनाता ...। यह इंडोक्सिल हल्के पीले रंग का या ... रंगहीन पदार्थ होता है। इसके घोल ... हवा में मथने से हवा में स्थित आक्सि-... में इंडोक्सिल का आक्सीकरण होकर ... (इंडिगो) तैयार होता है, जो पानी में ...शील न होने के कारण नीचे बैठ ... है।

पानी में न घुलने से यह नील रंगाई के ... नहीं आ सकता और केवल सफेदी ... के काम आता है। नील गंधक के ... में घुल सकता है; परंतु गंधक का ... कपड़ें को काट देता है। इसे गंधक ... में घोलकर उसमें कास्टिक सोडा ... पर जो हानिरहित रंग प्राप्त होता ... पानी में घुलनशील होता है। यह ...कारमाइन' कहलाता है। यही घुलन-... रंगाई के लिए उपयोगी होता है।

प्रयोगशाला में नील तैयार करने के लिए 'सोडियम फिनाइल ग्लाइसीन' नामक पदार्थ को कास्टिक सोडा में मिलाते हैं। इससे 'इंडोक्सिल' नामक पदार्थ प्राप्त हो जाता है, जिसके आक्सीकरण से नील प्राप्त होता है। आरंभ में यह प्रक्रिया बहुत महंगी सिद्ध हुई। फिर यह पाया गया कि यदि उपर्युक्त प्रक्रिया में थोड़ा 'सोडियम एमाइड' मिला दिया जाये, तो प्रक्रिया आसान हो जाती है तथा नील का उत्पादन बढ़ जाता है। इस विधि से तैयार किया गया नील प्राकृतिक नील से बहुत अधिक सस्ता पड़ने लगा। १८९७ में पहली बार प्राकृतिक नील से भी कम मूल्य पर कृत्रिम नील का उत्पादन संभव हुआ।

इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे नील का भारत से निर्यात बंद होने लगा, जिससे इसकी खेती भी हमारे यहां धीरे-धीरे उजड़ने लगी। सन १८९७ तक हमारे देश से प्रतिवर्ष लगभग दो करोड़ पौंड नील का निर्यात होता था और इसके लिए सत्रह लाख एकड़ भूमि में नील की खेती होती थी। परंतु वैज्ञानिक विधि के आविष्कार के बाद भारतवर्ष में नील की खेती धीरे-धीरे बिलकुल बंद हो गयीं तथा हजारों साल से यूरोप को नील का निर्यात करने वाला हमारा देश स्वयं यूरोप से नील का आयात करने लगा। **–उपनिदेशक, भौतिकी-कक्ष, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५**



जीवंतस्वामी

मारुतिनंदन प्रसाद तिवारी

जैन परंपरा में संपूर्ण कालचक्र को उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दो युगों में बांटा गया है और प्रत्येक युग में चौबीस तीर्थंकरों (या जिनों) की कल्पना की गयी है। चौबीस तीर्थंकरों की धारणा जैन धर्म की धुरी है। तीर्थंकरों को जैन देवकुल में सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त है। उन्हें देवाधिदेव भी कहा गया है। तीर्थंकर वे आत्माएं हैं, जो सांसारिक बंधनों से अपने को मुक्त करने के साथ ही मानव-जाति को भी मुक्ति का मार्ग बतलाती हैं। वर्तमान युग अवसर्पिणी युग है, और महावीर (या वर्धमान) इस अवसर्पिणी के अंतिम तीर्थंकर हैं।

महावीर ही आधुनिक जैन धर्म के प्रवर्तक हैं। कुंडग्राम के ज्ञातृवंशीय शासक सिद्धार्थ उनके पिता थे और वैशाली के लिच्छवि शासक चेटक की बहन त्रिशला उनकी माता थीं। उनका जन्म तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के ढाई सौ वर्ष बाद ५९९ ई. पू. में पटना के पास कुंडग्राम में हुआ और ५२७ ई. पू. में पावापुरी में उन्होंने निर्वाण पाया।

प्रस्तुत लेख का उद्देश्य महावीर के एक विशिष्ट स्वरूप जीवंतस्वामी का परिचय प्रस्तुत करना है, जिससे सामान्य हिंदी पाठक प्रायः अनभिज्ञ हैं।

'जीवंतस्वामी' महावीर के दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व का रूप है। 'वसुदेवहिंडी,' 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र' जैसे जैन ग्रंथों में इस रूप का विस्तृत उल्लेख है। इन ग्रंथों के अनुसार, जब महावीर ने दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की तो उनके अग्रज नंदिवर्धन ने उन्हें कुछ समय और प्रतीक्षा करने को कहा। इस पर महावीर ने उस समय दीक्षा तो नहीं ली, परंतु सांसारिक सुख-वैभव से अपने को विरत कर लिया और एक वर्ष तक राजमहल में ही तपस्या करते रहे।

यह तपस्या महावीर ने वस्त्राभूषणों से युक्त होकर कायोत्सर्ग मुद्रा में की थी। इंद्र के निर्देश पर विद्युन्माली ने इस स्वरूप में उनकी एक मूर्ति का निर्माण किया। चूंकि यह प्रतिमा महावीर के जीवन-काल में ही निर्मित हुई, अतः इसे 'जीवंतस्वामी' या 'जीवितस्वामी' की संज्ञा दी गयी।

साहित्य और शिल्प दोनों में जीवंतस्वामी को मुकुट, मेखला, हार आदि सामान्य आभूषणों से युक्त राजकुमार के रूप में

निरूपित किया गया है। जीवंतस्वामी कायोत्सर्ग मुद्रा में सीधे खड़े होते हैं और उनकी दोनों भुजाएं लंबवत् नीचे लटकी होती हैं। महावीर के निर्वाण के बाद भी उनकी मूर्तियों के लिए 'जीवंतस्वामी' शब्द ही प्रयुक्त होता रहा।

जीवंतस्वामी का उल्लेख केवल श्वेतांबर परंपरा में ही हुआ है और ये मूर्तियां भी केवल श्वेतांबर स्थलों से मिली हैं। बहुत संभव है कि वस्त्राभूषणों से युक्त होने के कारण ही इन्हें दिगंबर परंपरा में स्वीकार न किया गया हो। परंतु जैन धर्म में मूर्ति-निर्माण एवं पूजन की प्राचीनता के निर्धारण की दृष्टि से जीवंतस्वामी की परंपरा का विशेष महत्त्व है।

यू. पी. शाह ने साहित्यिक परंपरा को विश्वसनीय मानते हुए कहा है कि महावीर के जीवन-काल से ही यह परंपरा चल पड़ी थी। परंतु साहित्यिक परंपरा का ऐतिहासिक दृष्टि से मंथन करने पर यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता कि जीवंतस्वामी मूर्ति की परंपरा महावीर की समकालिक है। जीवंतस्वामी मूर्ति के प्राचीनतम उल्लेख छठी शती ई. के बाद की, आगम-ग्रंथों से संबंधित उत्तरकालीन रचनाओं—यथा निर्युक्तियों, टीकाओं, भाष्यों, चूर्णियों आदि—में प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों से पता चलता है



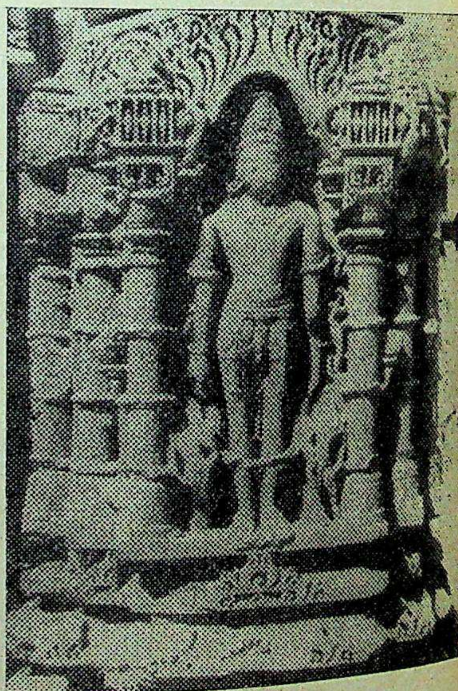
अकोटा (गुजरात) से प्राप्त जीवंतस्वामी की मूर्ति (लगभग ६ठी सदी ई.)—फोटो : अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज, वाराणसी के सौजन्य से।

कि कोशल, उज्जैन, दशपुर (मंदसौर) विदिशा, पुरी एवं वीतभयपत्तन में जीवंतस्वामी मूर्तियां विद्यमान थीं। परंतु आगम-साहित्य एवं 'कल्पसूत्र' जैसे प्रारंभिक ग्रंथों में इन मूर्तियों का कोई उल्लेख नहीं है।

जीवंतस्वामी मूर्ति का सर्वप्रथम उल्लेख हुआ है वाचक संघदासगणि कृत 'वसुदेव-हिंडी' (६१० ई.) में। इसमें आर्या सुव्रता नाम की एक गणिनी जीवंतस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन जाती है। जिनदास कृत 'आवश्यकचूर्णि' (६७६ ई.) में जीवंतस्वामी की प्रथम मूर्ति के निर्माण की कथा वर्णित है। इसके अनुसार, अच्युत इंद्र ने अपने पूर्वजन्म के मित्र विद्युन्माली को महावीर की मूर्ति के पूजन की सलाह दी और विद्युन्माली ने गोशीर्ष चंदन की मूर्ति बनाकर उसकी प्रतिष्ठा की। विद्युन्माली के पास से वह मूर्ति एक वणिक् के हाथ लगी और बाद में सिंधु-सौवीर में स्थित वीतभयपत्तन के शासक उदायन एवं उसकी रानी प्रभावती ने वह मूर्ति उस वणिक् से प्राप्त की और रानी ने मूर्ति की भक्तिभाव से पूजा की। यही कथा हरिभद्रसूरि की 'आवश्यकवृत्ति' में भी वर्णित है।

महान आचार्य हेमचंद्र ने भी 'त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र' (पर्व १०, सर्ग ११) में कुछ नवीन तथ्यों के साथ यही कथा दी है और जीवंतस्वामी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख स्वयं महावीर की वाणी में कराया है। वहां कहा गया है कि दीक्षा लेने के पूर्व जब क्षत्रिय-कुंडग्राम में महावीर ध्यानमग्न थे, तब विद्युन्माली ने उनका दर्शन किया था। चूंकि महावीर आभूषणों से सज्जित थे, इसीलिए विद्युन्माली ने उनकी अलंकरण-युक्त प्रतिमा बनायी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पांचवीं-छठी शती ई. से पहले जीवंतस्वामी के संबंध में



ओसिया (राजस्थान) के महावीर-मंदिर के तोरण-द्वार (१०१९ ई.) की जीवंत-स्वामी-मूर्ति।



इसमें किसी प्रकार की ऐतिहासिक सूचना नहीं प्राप्त होती। महावीर के गणधरों द्वारा रचित आगम-साहित्य में जीवंतस्वामी मूर्ति के उल्लेख का पूर्ण अभाव परवर्ती ग्रंथों के इस कथन में संदेह उत्पन्न करता है कि जीवंतस्वामी की धारणा महावीर की समकालीन है। 'कल्पसूत्र' एवं ई. पू. के अन्य ग्रंथों में जीवंतस्वामी का उल्लेख न मिलना भी संदेह की पुष्टि करता है।

जीवंतस्वामी की जो सबसे पुरानी मूर्तियां मिलती हैं, वे गुप्तकाल की हैं। अकोटा (गुजरात) से लगभग पांचवीं-छठी शती ई. की दो जीवंतस्वामी मूर्तियां मिली हैं। इनमें महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं और वस्त्राभूषणों से सज्जित हैं। एक मूर्ति पर स्पष्टतः 'जिवंतस्वामी' खुदा है। दसवीं से ग्यारहवीं शती ई. के मध्य की कई जीवंतस्वामी मूर्तियां जोधपुर जिले में ओसिया और सेवड़ी के जैन मंदिरों में हैं। कुछ जिन मूर्तियों के परिकर में भी जीवंतस्वामी की लघु आकृति उत्कीर्ण है। ऐसी एक मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में रखी है।

ओसिया की मूर्तियों में तीर्थंकर-मूर्तियों से संबंधित कई विशेषताएं प्रदर्शित हैं। महावीर मंदिर के समक्ष के १०१९ ई. के तोरण-स्तंभों पर भी कायोत्सर्ग मुद्रा में जीवंतस्वामी की वस्त्राभूषण-युक्त कई मूर्तियां हैं। यहां से तीन स्वतंत्र जीवंतस्वामी मूर्तियां भी मिली हैं, जो संप्रति जोधपुर संग्रहालय में हैं। इनमें जीवंतस्वामी के साथ अष्टप्रतिहार्य (सिंहासन के अतिरिक्त), यक्ष-यक्षी युगल, महाविद्याएं एवं जिन-आकृतियां निरूपित हैं।

इन सभी नमूनों में धोती से युक्त जीवंतस्वामी कायोत्सर्ग मुद्रा में पद्मासन पर खड़े हैं और किरीट-मुकुट, भामंडल, हार, मेखला, लंबी माला आदि अलंकरणों से सज्जित हैं। परिकर में त्रिछत्र, देव-दुंदुभि, उड़ते हुए मालाधर एवं गज, और पार्श्वों में चामरधर सेवक आमूर्तित हैं। एक मूर्ति में अप्रतिचक्रा, वैरोटचा, रोहिणी, अच्छुप्ता महाविद्याएं, एवं पांच जिन-आकृतियां और दूसरी में सरस्वती, सर्वानुभूति यक्ष एवं अंबिका यक्षी निरूपित हैं।

– डी. ५१/१६४ बी, सूरजकुंड,
वाराणसी-२२१००१



बूझो तो जानें

१. एक मछली का सिर पांच इंच लंबा है। उसकी पूंछ की लंबाई सिर की लंबाई और धड़ की आधी लंबाई के योग के बराबर है। धड़ की लंबाई सिर और पूंछ की लंबाई के योग के बराबर है। बताओ, मछली कितनी लंबी है?

२. वह पेड़ कितना ऊंचा है, जो उस बल्ली से १५ फुट छोटा है, जो बल्ली पेड़ से तीन गुना ऊंची है?

[उत्तर पृष्ठ ९६ पर]



संघर्ष



दुःख और बंधनों में बंध-बंध गुजर जाती है युवावस्था
धमनियों में उबलता है आक्रोश भरा खून
शोकमग्न दृष्टि मस्तिष्क में कर देती है दरार
भला और बुरा सोचने की शक्ति हो गयी है निस्पंद......

आत्मा पर रहता स्मृतियों का गहरा दबाव
उसकी कड़वी यादगार अक्सर करती है उत्पीडित
सीने से तिरोहित हो गया है प्रेम, विश्वास की एक बूंद भी नहीं
कोई आशा नहीं है कि कभी टूटेगी नींद
किसी सूरमा की—इस मृत्युशैया पर।

मुझे लगता है कि ईमानदारों के मस्तिष्क हो गये हैं रिक्त
और हर जगह कीर्तिमान हो रहे हैं विदूषक
वे करते हैं धनवानों का गुणगान,
किंतु नहीं पूछते कि कितनी आत्माओं को इन्होंने जिंदा जलाया है
कितने बच्चों को छोड़ दिया है अनाथ
अपने ईश्वर को कितना छला है प्रार्थना-सभा में
घुटने झुकाकर और प्रणाम-मुद्रा में मक्कारी भरे हुए :

पादरी और गिरजाघर अगवानी करते हैं उन
मक्कारों की जिनने इस भूमि में दमन-चक्र फैलाया है :
बेवकूफ शिक्षकों के उघड़ गये हैं झुके हुए कपाल
और पत्रकारों में व्याप गया है भय
तमाम बुद्धिजीवी कर रहे हैं घोषणा
ईश्वर के भय से शांत रहने की
दृढ आधार-स्तंभों के आधार रह गये हैं पवित्र झूठ
और सदा के लिए आदमी का दिमाग जकड़ दिया गया है बेड़ियों में
सुलेमान, पापाचार का वह सम्राट
निष्कासित कर दिया गया कुछ समय पूर्व स्वर्ग को
अपनी अनंत कहावतों और मसखरों के साथ।
उसने मूर्खों के बीच एक मूर्खता प्रचारित की थी

मूल : हिस्तो बोतव ; अनुवाद : जगदीश चतुर्वेदी

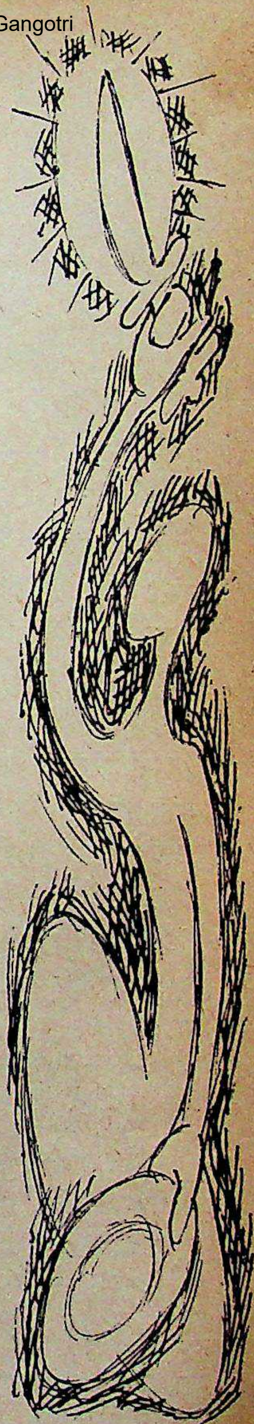
जिस पर अभी भी अमल कर रही है सारी दुनिया :
ईश्वर से डरो और सम्राट को पूजो' !

कैसा पाखंडी उद्गार
नीतबुद्धि और विश्वास सदियों से ठुकराते हैं इसको
इसकी आलोचना करते हुए कई लोग बंदी हुए । यातनाएं सहीं
फिर भी बताओ मुझे कि वे परिवर्तन के लिए क्या करें ?

दुनिया दासता की जंजीरें तोड़ना चाहती है
और साथ-साथ सहन करती है तानाशाही एवं दुर्व्यवहार
वह चूमती है कठोर लौहपंजे
और सद्भावनाओं के साथ सुनती है झुके अधरों की पुकार
इसीलिए जब तुम टूट जाओ, तब चुपचाप प्रार्थना करो
चाहे कोई जंगली पशु तुम्हें टुकड़े कर दे—
चाहे तुम्हारा खून सांपों द्वारा चूसा जाये—
केवल अपने ईश्वर के विश्वास पर जिंदा रहो :
'मेरे पापी कर्मों को ईश्वर मुक्ति दिलाये'
अगर तुम ऐसा कहो तो फिर निभाओ

ईश्वर उनको भी क्षमा कर देगा जिनसे उसे घृणा है
इसी विधि से चल रही है यह सारी दुनिया
यह शापित पृथ्वी गुलामी और झूठ से शासित है
वे इसे पैतृक दायित्व समझ रहे हैं
दिन और रात सह रहे हैं जुल्म अनंत पीढ़ियों से !
किंतु इस दुराचार के खूनी शासन में
इस निरंकुशता और पीडा और अहंकार के अंधकार में
अनंत बुराइयों की परतंत्रताओं में —
संग्राम-संघर्ष जारी रहेगा और गतिमान होगा
वह अपने पवित्र पुरस्कार के लिए करता रहेगा क्रांति.....
तब हमारा नारा रहेगा—'रोटी या खून'।





चौथा अंधा

ब्रह्मदत्त

'तीनों अंधे, खुदा के बंदे ।'

गली में तीनों अंधों का स्वर गूंज उठा। शाम का वक्त था। सड़क की बत्तियां अभी जली न थीं; किंतु दुकानों से आ रही धुंधली रोशनी में मैंने देखा कि हमेशा की तरह तीनों जवान एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखे चौराहे की ओर चले जा रहे हैं।

'नेकी कर लो!' तीनों में सबसे लंबे और उम्र में बड़े दिखाई देते रमजान ने हांक लगायी। तत्क्षण तीनों ने एक-स्वर में बांग दी :

'अल्ला ही देगा।'

'मर्दे दिलावर!' फिर रमजान ने ललकारा।

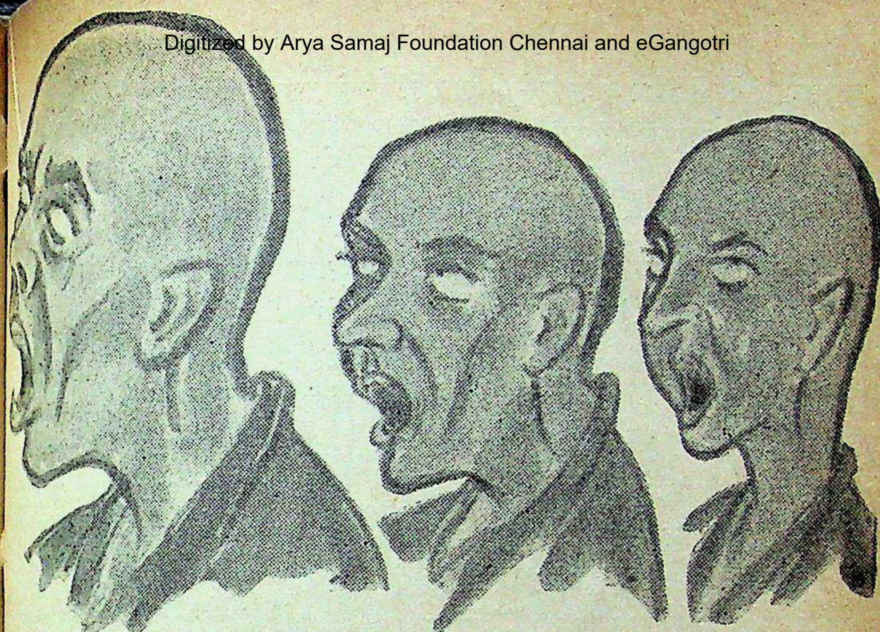
'अल्ला ही देगा!' समवेत स्वर में तीनों ने सूचना दी।

'पांच चवन्नी!' रमजान जैसे सोते से जाग पड़ा हो।

'अल्ला ही देगा!' तीनों ने एक साथ हुंकारी भरी।

गजब की गति थी तीनों की। अभी मैं शाम का अखबार तह करके कुरते की जेब में डाल ही रहा था कि देखा, वे तीनों नुक्कड़ पर पहुंच चुके थे। मैं तेजी से उनकी ओर चला। मैं तीनों को जानता था।

जब पहले-पहल मैं बंबई आया था, तो रेल्वे-लाइन के किनारे की एक झोपड़पट्टी में रहता था। वहीं से इन तीनों को जाना था। रमजान तो मेरा पड़ोसी ही था। शकूर को पहली बार लोकल ट्रेन में भीख मांगते देखा था। तब तीनों साथ नहीं रहते थे। ननकू तो बहुत बाद में आया था। अब सड़कों पर वे दिन-भर मांगते रहते थे। खाना-पीना भी साथ ही करते थे। रात को दिन-भर की कमाई बराबर बांटकर अपने-अपने झोपड़े में सो जाते थे। यह सब मैंने उन दिनों देखा था, जब मैं झोपड़पट्टी में रहता था। अब तो मुझे एक गृहस्थ के यहां पेइंग-गेस्ट के रूप में रहने की सुविधा मिल गयी है; लेकिन न जाने क्या बात है कि जब कभी इन तीनों की आवाज सुनता हूं, मेरा दिल डगमगा उठता है। इन लोगों के लिए मैंने कुछ किया तो नहीं, किंतु उनके हालचाल जानने के लिए मैं



…तना आतुर हो जाता हूं ।

'चार चवन्नी !'

'अल्ला ही देगा ।'

मैंने चौंककर देखा । तीनों कुछ ज्यादा जोश में बोल रहे थे ।

'कितने हट्टे-कट्टे लोग, और भीख मांगते हैं!' मुझे उन लोगों में दिलचस्पी लेते देख एक लंबे-चौड़े डील-डौल के सज्जन ने मेरे निकट आकर कहा ।

बात सच थी । तीनों की काठी खूब लंबी-चौड़ी और मजबूत थी । लंबाई भी लगभग तीनों की समान थी ।

'क्या जमाना आ गया है !' सज्जन ने मुंह बनाकर कहा–'अंधे हैं तो क्या हुआ ? एक-एक ऐसे अंधे हैं कि बड़े-बड़े काम करते हैं न ?'

मैंने आसमान की ओर सिर उठाकर कहा–'जैसी उसकी मर्जी ।'

'नेकी कर लो !' रमजान ने जैसे आह्वान किया ।

'अल्ला ही देगा !' अन्य दोनों ने अपना विश्वास व्यक्त किया ।

रमजान के फैले हाथ पर उन सज्जन ने कोई सिक्का रखा–'बाबा! अल्लाह ही देगा तो उसी से लो, लोगों के आगे हाथ क्यों फैलाते हो ?'

'वही तो देता है, हुजूर । आपकी मुराद पूरी होगी ..... !' रमजान ने दायां हाथ उठाकर असीसते हुए कहा ।

'बाबा, जनम से तुम्हारी आंखें ... ?' सज्जन ने उत्सुकता दिखायी ।

रमजान की बीभत्स मृत आंखें आकाश की ओर उठ गयीं । उसके दोनों हाथों की मुट्ठियां कस गयीं । मैंने जल्दी से आगे

बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रखा–'रमजान!'

'कौन? शरमाजी?' उसने प्रसन्न होकर पूछा।

'हां! कैसे हो रमजान?'

'सब अल्लाह की मेहरबानी है, पंडतजी! ये जो अभी बोल रहे थे, आपके दोस्त हैं क्या?'

'दोस्त नहीं,......पर सभी दोस्त ही हैं।' मैंने उसके कंधे को थपथपाकर कहा।

'जरा उन्हें मेरी कहानी बता दो, शरमाजी!' रमजान ने खुश होते हुए कहा।

कहानी? रमजान की कहानी? और शकूर तथा ननकू की कहानी? मैंने सोचा। अचानक मेरी आंखों की पुतलियों पर पलकें झुक आयीं।

'चलो, चाय पियेंगे मर्दे दिलावर।' मैंने रमजान का हाथ पकड़कर खींचा।

× × ×

'बड़ा मर्द का बच्चा बनता है, यह रमजान का बच्चा!.....'

चोरों का वह गिरोह हमेशा आपस में कहा करता था। पैकिंग-डिपार्टमेंट से बहुत माल चोरी हुआ करता था; लेकिन जब से रमजान ड्यूटी पर आया, चोरों की कुछ चलती न थी। गिरोह के मुखिया ने एक-दो बार रमजान को समझाया था, उसे हिस्सा देने का लालच भी दिया था; लेकिन रमजान विचलित न हुआ था। तंग आकर एक शाम को गिरोह ने मिल के बाहर उस पर तेजाब फेंक दिया। उसी हमले में रमजान की दोनों आंखें जाती रही थीं। मिल-मालिक ने चार हजार रुपये बतौर हर्जाने के उसे दिये थे; किंतु उससे जीवन-भर गुजारा तो हो नहीं सकता था। जो रुपये उसे मिले, उनमें से कुछ से उसने अपनी लड़की की शादी की; बाकी रुपये अपने गांव के मदरसे को बढ़ाने के लिए दान कर दिये। जमीन उसके पास कुछ थी नहीं। बीवी एक लंबी बीमारी में चल बसी।

'तू तो अल्लाह को प्यारी हो गयी', बीवी की लाश के पास बैठकर उसने कहा था–'अब मैं क्या करूं? कहां जाऊं?' वह रो पड़ा था।

'मर्द होकर रोते हो, रमजान?' दोस्तों ने सांत्वना दी थी और वह तड़प उठा था।

उसके कुछ महीने बाद वह शहर लौट आया और एक दिन शहर की गलियों में उसकी मर्दानी आवाज गूंज उठी :

'मर्दे दिलावर!......'

'अल्ला ही देगा' कहने वाली, तब उसके साथ सिर्फ उसकी मर्दानगी ही थी।

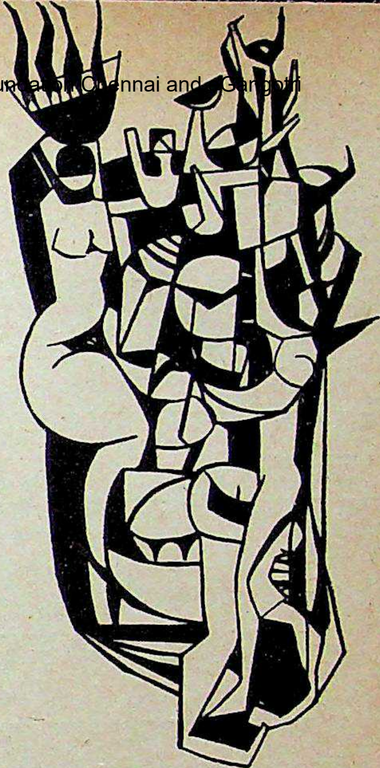
...... शकूर तब लोकल ट्रेनों में अकेले मांगता रहता था। उसके जन्म लेने के पहले ही उसके मां-बाप पर गरीबी टी. बी. का अभिशाप बनकर उतरी थी। शकूर दो साल की उम्र में मेनिन्जाइटिस का शिकार हो गया था। मेनिन्जाइटिस बड़ा बेरहम शिकारी माना जाता है, वह बिना कुछ लिये छोड़ता नहीं। शकूर अपनी दोनों आंखें गंवा बैठा।

जब तक वह जवानी की दहलीज पर कदम रखता, मां-बाप दोनों ही एक-एक

उसे छोड़ गये। तब से रेलें ही उसकी दुनिया हो गयी थीं। प्लैटफार्म पर सोना, गाड़ियों में भीख मांगना। रमजान की और उसकी मुलाकात रेल्वे-पुलिस के थाने पर हुई थी। जनता की शिकायत पर एक अभियान चलाया गया था, ताकि रेलें भिखारियों से मुक्त हो सकें।

उसके बाद रमजान ने शकूर को अपने साथ ले लिया। एक-आध महीने बाद ही ननकू उन्हें झोपड़पट्टी में मिला था। हिजड़ों का कोई गिरोह बचपन में उसे गांव से चुरा ले आया था। अपनी आवक बढ़ाने के लिए उस गिरोह ने क्या-क्या कष्ट उसे नहीं पहुंचाये! जब कमाई फिर भी नहीं बढ़ी तो उनके उस्ताद ने उसे अंधा बना देने का फरमान जारी किया। अंधा होने के बाद एक दूसरा गिरोह उसे खरीद ले गया। तब वह किस-किस शहर में नहीं गया! कम पैसा लाने पर गिरोह के बड़े लोग अक्सर उसकी पिटाई किया करते थे। ऐसी ही एक पिटाई के समय ननकू की दर्दभरी चीखें सुनकर रमजान तड़पकर उठा और हाथ में एक लोहे का लंबा डंडा लेकर उस गिरोह की झोपड़ी के सामने जा खड़ा हुआ।

अंधा-फूटा रमजान, तेजाब से जली अपनी बेनूर आंखों को आसमान की ओर उठाकर आधे घंटे तक धुआंधार गालियां देता, उनको ललकारता, लौहस्तंभ की तरह वहां खड़ा रहा। झोपड़पट्टी में असामाजिक तत्व बहुत थे। पर रमजान की



चित्र : आर. डी. पुरोहित

मर्दानी आवाज ने सबका कलेजा कंपकंपा दिया। कहीं पुलिस का छापा न पड़ जाये, यह सोचकर बहुत लोग उस झोपड़ी में घुसकर ननकू को निकाल लाये। ननकू की चिल्लाहट पर रमजान डंडे को सख्ती से मुट्ठी में दाबे आगे बढ़ा।

'रमजान चाचा! डंडा मत चलाना। हम लोग उसे निकाल लाये हैं, जिस पर मार पड़ रही थी।' लोग चिल्लाये।

डंडे को दोनों हाथों से तानकर और आगे बढ़कर रमजान ने दहाड़कर कहा—'वे सूअर की औलादें कहां हैं, जो उसे सता रही थीं?'

'तुमको देखकर सब शैतान भाग गये,

चाचा !' लंबे बाल वाले युवक ने कहा।

'नहीं,' रमजान डंडा हवा में उठाकर गरजा–'बुलाओ, उन हिजड़ों को। अब बजायें यहां तालीं।'

'मर्द के सामने कौन हिजड़ा ताली बजायेगा?' अपने झोपड़े के बाहर खड़े-खड़े मैंने चिल्लाकर कहा।

'शरमाजी?' रमजान मेरी आवाज की ओर मुड़ गया।

'हां, रमजान!' चिल्लाकर मैं उसकी ओर बड़ा।

'इन हिजड़ों को यहां से भगा ही देना चाहिये, शरमाजी।' रमजान ने दांत पीसते हुए कहा।

'ठीक कहते हो रमजान, मगर सवाल यह है कि इन्हें भगायेगा कौन?' मैंने मुंह लटकाकर कहा।

'हिजड़ों को कोई भी मर्द भगा सकता है, इसमें कौन-सी बड़ी बात है!' रमजान ने मुस्कराकर कहा।

वहां खड़े सभी लोगों ने शरमाकर सिर झुका लिया।

'सच है, हिजड़ों को तो ताली बजाकर भगाया जा सकता है। है न रमजान चाचा?' उसी लंबे बालों वाले युवक ने हंसते हुए कहा।

'नहीं रे, ठाकुर!' रमजान ने शिशु की तरह पुलकते हुए कहा–'ताली तो बड़ी बात हो जायेगी। सिर्फ चुटकी बजा दो, भाग जायेंगे।' रमजान ने मुंह बनाकर कहा। सभी लोग अट्टहास कर उठे।

मेरे मुंह से अनायास ही निकल पड़ा–'मर्दे दिलावर!'

'अल्ला ही देगा!' तीनों की गगनभेदी आवाज गलो में गूंज उठी।

× × ×

रमजान का हाथ पकड़कर मैं तीनों को ईरानी होटल के दरवाजे तक ले आया।

'मेरा किस्सा बताया बाबू साहब को?' रमजान ने उत्सुकता से पूछा।

'क्या बताना किसी को, रमजान! और मैं बता भी दूं तो क्या सब समझ जायेंगे?' मैं नाक चढ़ाकर बोला।

'वह तो है, शरमाजी।' रमजान ने चिंतित होकर पूछा–'मगर सब लोग ऐसा क्यों पूछते हैं कि भीख क्यों मांगते हो? क्या अंधों का भीख मांगना कसूर है?'

'अंधों की क्या बात रमजान, भीख मांगना सभी के लिए जुर्म है।'

'वह तो ठीक है। लेकिन इसके लिए क्या भिखारी जिम्मेवार हैं?' रमजान ने उबलकर कहा।

एक क्षण को मेरी बोलती बंद हो गयी। 'शरमाजी! शरमाजी!' रमजान ने जोर से मेरा हाथ हिलाया।

'हां-हां, कहो, क्या बात है?'

'कुछ बात नहीं है। सिर्फ इतना बताओ कि अंधा हो जाने के लिए क्या अंधा जिम्मेवार है?'

'नहीं,' मैं झट से बोला–'यह सबका जिम्मा है। कोई भीख मांगता है तो भी उसके लिए हम सब जिम्मेवार हैं।'

शाबाश शरमाजी !' रमजान ने खुश होकर कहा–'अब हुई बात कुछ मर्दानगी की।'

'मर्दानगी अब कहां रही, रमजान ?' मैंने कुछ खीझते हुए कहा–'अब तो हम सब चतुर हो गये हैं। अपनी जिम्मेवारी दूसरों पर उछाल देने में हम लोग बड़े माहिर हैं।'

'क्या कह रहे हो शरमाजी ?' रमजान ने अपना चेहरा मेरी ओर घुमाया। उसके माथे पर सलवटें पड़ गयी थीं। उसकी उन सूनी हुई आंखों की तरफ देखने में मुझे बड़ा घबराहट होती है। मैंने जल्दी से अपना मुंह घुमा लिया।

'तुमने तो मुझे सोचने के लिए मजबूर कर दिया, यार रमजान !'

'तो सोचो न, शरमाजी। आप तो पढ़े-लिखे, काबिल आदमी हो।'

'खाक काबिल हूं !' मैंने झल्लाकर कहा।

'नाराज मत होओ, शरमाजी ! मुझे बताओ न कि क्या कह रहे थे अभी ?'

'कह ? ...... हां, सुनो', मैंने ढीला होते हुए कहा–देखो, बस में लोग लाइन खुद तो नहीं लगाते और दोष थोपते हैं सरकार पर, है न ?'

'हां-हां, यह तो मेरा भी देखा हुआ है।' रमजान ने हंसते हुए कहा।

'इसी तरह चोरी, डाका, बलात्कार वगैरह का कोई किस्सा होता है, तो लोग फौरन किसी अंग्रेजी फिल्म को उसका कारण बताकर, फारिग हो जाते हैं। ऐसा तो तुमने भी सुना होगा, है कि नहीं ?'

'सुना है, कई बार सुना है।' रमजान ने जोर से मेरा हाथ हिलाते हुए कहा।

'तीन चाय लाओ।' होटल के बैरे को पुकारकर मैंने कहा।

'तीन कि चार ?' रमजान ने पूछा।

'मैंने थोड़ी देर पहले ही पी थी, तुम लोग पिओ।' मैंने जल्दी से कहा।

'ऐसा कैसे चलेगा ?......' रमजान बच्चे की तरह मचल पड़ा।

'क्यों नहीं चलेगा ?' मैंने हंसकर कहा–'मैं थोड़े ही कहूंगा कि हट्टे-कट्टे होकर भीख मांगते हो।'

'फिर क्या कहोगे, शरमाजी ?' रमजान ने दांत भींचकर सिर मेरी ओर उठाया।

'मैं तो कहूंगा,' अचानक मैं चिल्ला उठा–'तीनों अंधे !'

'खुदा के बंदे !' समवेत स्वर में तीनों बोल पड़े।

रमजान मेरा हाथ पकड़े-पकड़े मुझ पर झुक आया–'हैं तो तीन ही न ? ' शानदार मर्द की तरह छाती तानकर वह मुस्कराया।

'नहीं, चार हैं। चौथा मगर देखकर भी नहीं देखता !'

'अच्छा ?' रमजान के माथे पर फिर सलवटें उभरीं–'मगर क्यों ?'

'क्योंकि वह मर्द दिलावर नहीं है !' मैंने ताली बजाकर कहा।

तीनों अट्टहास करते हुए जोर-जोर से ताली बजाने लगे।

–१२/३४६, बेलासिस ब्रिज, बंबई-३४



विप्लवी प्रतिभा डिरोज़िओ

• पृथ्वीनाथ शास्त्री •

केवल २२ वर्ष–१८०९ से १८३१ तक। भला यह भी कोई जीवन-काल हुआ! किंतु कवि डिरोजिओ इसी में अमर हो गया।......

अपने समकालिक एक अन्य महामना डेविड हेअर (१७७५-१८४१) की तरह उसका भी यह दृढ विश्वास था–भारतीयों को यूरोपीय शिक्षा और विज्ञान की अत्यंत आवश्यकता है। दकियानूसीपन का घोर विरोधी, काली मंदिर में जाकर टोप उतारकर 'मदाम, कैसी हैं आप ?' पूछने वाला यह युवा कवि अध्यापक अगर दीर्घायु होता तो शायद अपने वक्त के लोगों को जंग खायी जंजीरों में जकड़े न रहने के लिए और भी ज्यादा उकसाता रहता और अंततः शायद लोग उसे मार ही डालते! ..... मौत ने उसे मारे जाने से बचा लिया। यों वह प्रचलित 'ईश्वर' में विश्वास नहीं करता था और न किसी तरह के मतवाद के प्रचार का समर्थक था। लेकिन था वह अडिग आदर्शवादी, विचार-स्वातंत्र्य का हिमायती, निजी ईमानदारी का पक्षपाती। ऐसे लोगों को जिंदा कहां रहने दिया जाता है!...

डिरोजिओ का गुरु ड्रमन्ड स्वतंत्र विचारक था–अपने देश से निकाला गया शिक्षक, विद्वान एवं कवि। शायद उसी से डिरोजिओ ने फ्रांस की क्रांति और अंग्रेजों के आमूल सुधारवाद का सबक सीखा था। स्कूल से निकलते ही उसने कुछ समय अपने पिता की कंपनी में क्लर्की की और फिर भागलपुर में जाकर कविताएं लिखने लगा। जर्मन दार्शनिक कान्ट की उसने जो आलोचना की थी और फ्रांस के नैतिक दर्शन पर जो निबंध लिखा था, उनके बल पर उसे हिंदू कालेज में अध्यापक का पद मिल गया। उन्नीस साल से ज्यादा का नहीं था वह तब!

कलकत्ता वापस आते ही उसकी तूफानी साहित्यिक गतिविधि शुरू हो गयी। अपनी कविताओं से उसने 'हेस्परस', 'कलकटा लिटरेरी गजट', 'इंडिया गजट', 'कलकटा मैगजीन', 'इंडियन मैगजीन', 'बंगाल एनुअल' और 'कलाईडोस्कोप' आदि पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने भर डाले। उसकी एक कविता ने नावारिनो के रणक्षेत्र में जीती गयी यूनानी आजादी की सराहना की, दूसरी ने सतीप्रथा-निवारण कानून का अभिनंदन।

उसके आ जाने से हिंदू कालेज के इतिहास में एक नया अध्याय ही जुड़ गया। युवा अध्यापक डिरोजिओ के इर्द-गिर्द उच्चस्तरीय छात्रों की भीड़ जमी रहती। कवि ने इसका अनुभव इन पद्यों में व्यक्त किया है :

एक्सपैन्डिंग द लाइक द पेटल्स ऑफ़ यंग फ़्लावर्स / आइ वाच द जेन्टल ओपनिंग

...ऑर माइन्डस / एंड द स्वीट लूज़निंग
...सेल दैट बाइन्ड्स / योर इन्टलेक्चु-
...एनर्जीज एंड पावर्स / ह्वाट जॉयेन्स
...ग्रांत मी ह्वेन आइ सी / फ़ेम इन द
...ऑफ़ फ़्युचुअरिटी / वीविंग द चैप्ले-
...यू हैव येट टु गेन / एंड देन आइ फ़ील
...हैव नॉट लिव्ड इन वेन ।

...मैं तुम्हारे मन का कोमल विकास
...विकसित कुसुमों के खिलते-बढ़ते दलों
...तरह देखता हूं। और उस मधुर कीलक-
...मुक्ति को भी, जिसने तुम्हारी बौद्धिक
...ओं और शक्तियों को बांध रखा है।
...मैं जब आने वाली पीढ़ियों की यशो-
...सुनता हूं, तो मानो आनंद-वर्षा में
...उठता हूं। वे उन रत्न-शिरोमालाओं
...गूंथ रहे हैं, जो तुम लोगों को मिलने
...ली हैं। और तभी मुझे ऐसा लगता है
...मैं व्यर्थ ही नहीं जिया।

डिरोजिओ ने अपने छात्रों को हर बात
...बुद्धि से सोचने की प्रेरणा दी और
...सवाल किये कुछ भी मानने से इन्कार
...की सलाह भी। 'सच के लिए जियो
...मरो'—यही था उसकी शिक्षा का मूल-
...उसके दो शिष्यों के शब्दों में—'हममें
...के प्रति जो अदम्य जिज्ञासा और पाप
...प्रति जो घृणा जागी, उसका प्रधान
...ये हमारे शिक्षक डिरोजिओ।' और
...व्यक्ति किसी भी प्रश्न के उत्तर में
...और तर्क पेश नहीं करना चाहता वह
...धर्मी है, जो यह कर ही नहीं सकता वह
...है और जो नहीं करता वह गुलाम है।'

लेकिन मुसीबत तब शुरू हुई जब डिरोजिओ के कुछ अतिवादी हिंदू शिष्य यह कहने लगे कि हम 'हिंदूवाद से तहेदिल से नफरत करते हैं' या 'हम गंगा की पवित्रता नहीं स्वीकारते' और तभी उनमें से कुछ लोग डिरोजिओ के घर जाकर वह सब खाने-पीने लगे जो तत्कालीन हिंदू समाज में अभक्ष्य माना जाता था। शायद उनमें से कुछ ने पड़ोसियों की शांति में खलल डालना भी अपराध नहीं समझा होगा। आखिर उन सबकी और उनके गुरु की उम्र ही क्या थी—बीस-बाईस!... 'युवा-मानस' में अचानक उमड़े उत्साह का अंत अक्सर ऐसा ही होता है।

सन १८२८ में डिरोजिओ और उसके शिष्यों ने एक 'अकैडमिक एसोसिएशन' शुरू की, जिसकी चर्चागोष्ठियों के विवेच्य विषयों में ऐसे शीर्षक रहते थे—मानव-संकल्प और नियति, पाप और पुण्य, देशप्रेम और देशभक्ति, ईश्वर है या नहीं, मूर्तिपूजा और पंडित-पुरोहितों या पादरियों और मुल्लाओं का पाखंड। एसोसिएशन की साप्ताहिक बहसों में कलकत्ता के कुछ गण्यमान्य व्यक्ति भी अपने समाज के युवकों की वाद-विवाद-क्षमता का आनंद उठाने आते थे। 'पार्थेनॉन' या 'एथीनियम' नाम की एक पत्रिका भी डिरोजिओ के शिष्यों ने १५ फरवरी १८३० से निकाली जिसमें स्त्री-शिक्षा, कम कीमत पर न्याय-व्यवस्था, अंधविश्वास-निवारण आदि पर लेख छपते थे। लेकिन कालेज के विजिटर डा. विलसन ने इसे दो

अंकों के बाद ही बंद करा दिया। डेविड हेअर के सहयोग से डिरोजिओ ने ४०० छात्रों की एक कक्षा में कुछ व्याख्यान भी दिये थे, जिन्हें खूब सराहा गया था।

आखिर हुआ यह कि समाज में परिवर्तन-कामी भावनाएं जोर पकड़ने लगीं। 'इंडिया गजट' के १२ फरवरी १८३० के अंक में हिंदू कालेज के एक छात्र ने प्रचलित उपनिवेशीकरण के खिलाफ एक जोरदार लेख लिखा। उसी साल १० दिसंबर को २०० व्यक्तियों ने टाउन हाल में जुलाई क्रांति का उत्सव मनाया और २५ दिसंबर को कलकत्ता के मान्युमेन्ट पर फ्रांस की क्रांति का तिरंगा झंडा भी फहरा दिया।

अफवाहें उड़ने लगीं कि हिंदू कालेज के छात्र प्रार्थनाओं में मंत्रों की जगह 'इलिअद' की पंक्तियां दुहराते हैं। वे काली की मूर्ति के सामने झुककर 'गुड मार्निंग मदाम!' बोलते हैं। एक 'आवारा फिरंगी' हिंदू युवकों को नास्तिक बना दे, यह बंगीय समाज के कुलीन ठेकेदार भला कैसे बरदाश्त करते? ...... पहले डिरोजिओ को मारने के लिए कालेज के हेडमास्टर ने हाथ उठाया और डेविड हेअर को 'बदमाश खुशामदी टट्टू' कहा। फिर कालेज की व्यवस्था-समिति ने प्रस्ताव पास किया कि 'जहां तक हो सके छात्रों से ऐसा कुछ न कहा जाये, जो उनमें धर्म के महान सिद्धांतों के प्रति अनास्था जगाये और उन्हें ऐसी सभा-सोसायटियों में जाने से भी रोका जाये, जिनमें राजनैतिक और धार्मिक विषयों पर खुलकर चर्चा होती हो।' और अंत में, व्यवस्था-समिति के एक सदस्य ने ही डिरोजिओ को कालेज से निकालने के लिए एक विशेष बैठक बुलायी। समति ने तीन के मुकाबले छह के बहुमत से यह मानने से तो इन्कार किया कि डिरोजिओ युवकों का शिक्षक होने लायक व्यक्ति नहीं है, मगर यह मान लिया कि वर्तमान हिंदू समाज की क्षुब्ध भावनाओं को दृष्टि में रखकर उसे बरखास्त किया जा सकता है। राजाबहादुर राधाकांत देव ने इस कदम को आवश्यक कहा।

२५ अप्रैल १९३१ को विल्सन के सुझाव पर डिरोजिओ ने कालेज की अध्यापकी से इस्तीफा दे दिया। अलबत्ता त्यागपत्र में यह भी लिखा—'मेरी बात सुने बिना और जांच किये बिना ही आप लोगों ने मुझे बरखास्त कर दिया। कम से कम, न्याय का ढोंग तो किया होता!' २६ अप्रैल को डिरोजिओ ने कालेज के विजिटर विल्सन को एक पत्र लिखकर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। उसका यह अंश पठनीय है:

'यदि ऐसे विषय (ईश्वर-विश्वास) पर बोलना ही अपराध है तो मैं अपराधी हूं। कारण, मुझे यह स्वीकार करने में न भय है, न लज्जा ही कि मैंने इस विषय पर तत्त्वचिंतकों के संदेहों का कथन किया है, क्योंकि मैंने उन संदेहों के समाधान भी बताये हैं। क्या ऐसे प्रश्नों पर बहस करना कहीं भी निषिद्ध है? यदि ऐसी बात है तो दोनों में से किसी के भी पक्ष में दलील पेश करना भी

...ता ही गलत होगा। अथवा क्या यह सत्य ...शुद्ध परिकल्पना के अनुकूल है कि ऐसे ...पूर्ण प्रश्न के केवल एक ही पक्ष से ...को जोड़ लिया जाये और उसके प्रति-...पड़ने वाले तमाम विचारों के प्रति ...आंखों व कानों को बंद करने का ...कर लिया जाये? अपने समाज के ...परिवेश में स्थित तरुणों की शिक्षा ...लिए कुछ वक्त के लिए ही मैं जिम्मेदार ...गया था; ऐसे में क्या मेरा काम यह ...कि मैं उन्हें ढीट और हठवादी बना ...... इसलिए मैंने इसे अपना कर्तव्य ...कि मैं कालेज के कुछ छात्रों को ...के सुविख्यात क्लेन्थीस-फाइलो-संवाद ...से परिचित कराऊं, जिसमें ईश्वर-...के विरुद्ध नितांत सूक्ष्म और परिमार्जित ...प्रस्तुत किये गये हैं। मगर मैंने उन्हें ...को डा. रीड और डुगल्ड के दिये वे पैने ...भी बताये हैं, जो आज तक अकाटच ...हुए हैं। मुझे संदेहवादी और काफिर ...जाये इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं, ...धर्म के मामले में स्वतंत्र-चिंतन ...वालों को ये नाम सदा से दिये जाते ...हैं।'

नौकरी छोड़कर डिरोजियो ने एक ...पत्र 'द ईस्ट इंडियन' प्रकाशित किया ...लेकिन दुर्भाग्यवश १७ दिसंबर १८३० ...हैजा हुआ और २६ दिसंबर को वह ...बसा।......

...डिरोजिओ-टोली के लोग उसकी ...के बाद बहुत वर्षों तक बहुत अधिक सक्रिय रहे थे। उनमें से रसिककृष्ण मल्लिक ने १८३३ में पुलिस-भ्रष्टाचार की जमकर भर्त्सना की। उसने इस्तमरारी बंदोबस्त के कारण हुई किसानों की तकलीफों को भी लोगों के सामने स्पष्ट किया और ईस्ट इंडिया कंपनी की राजनैतिक शक्ति को खत्म करने के लिए आवाज उठायी। १८३४-३५ में उसने कंपनी के चार्टर के संशोधन और प्रेस की आजादी की मांग की। १८४२ में ताराचंद चक्रवर्ती ने तकनीकी शिक्षा के लिए राजकीय व्यवस्था की बात उठायी और तभी रामगोपाल घोष ने दासप्रथा के खिलाफ बोलने वाले जार्ज टाम्पसन के साथ बहुत-सी तेज-तर्रार तकरीरें कीं। १८४७ में इसीलिए उसे 'भारत का डेमोस्थेनीस' कहा गया। १८४९ में उसी ने उन यूरोपीयों को मुंह-तोड़ जवाब दिये थे, जो अपने को इस देश की सामान्य कानून-व्यवस्था से बरी रखना चाहते थे।

१८४३ में दक्षिणारंजन मुखोपाध्याय ने अपना मशहूर लेख 'न्यायालय और पुलिस' लिखा। इसमें बल-प्रयोग और भ्रष्टाचार की भरपूर निंदा की गयी थी। १८४६ में प्यारीचांद मित्र ने रैयत की रक्षा के लिए आवाज बुलंद की। उसने यह साबित किया कि निजी संपत्ति के कारण ही सरकारें कायम होती हैं, सरकारों से निजी संपत्ति नहीं बनती। उसने यह भी स्पष्ट किया कि सरकारी शासन की जरूरत धनी-मानियों

[शेष पृष्ठ ९६ पर]

भाववाही उड़िया निबंध :

कहां है पथबंधु वह !

चंद्रशेखर रथ

किसी के व्यथातुर जीवन में प्रथम अश्रु-दान जो देते हैं, वे ही बन जाते हैं परम आत्मीय सुहृद जन। एक के बाद एक करके जब दुःख का बोझ बढ़ता ही जाता है, अचानक कोई आकर बटोही के माथे पर से कुछ निष्करुण पत्थर उतार देते हैं और अश्रुल नयनों से, भीगी और फीकी मुस्कान के बीच नीरव पूछ बैठते हैं—'कहो बंधु, सचमुच क्या जीवन के केतकी-वन से सारे फूल चुक गये? तनिक चेहरा उठाकर तो देखो! अभी भी सूर्य बुझा नहीं है। उस आहत पेड़ से क्षीर झर रहा है, उसी की छाया में बैठ इस यात्रा के क्षतों को उधेड़कर देखें?'

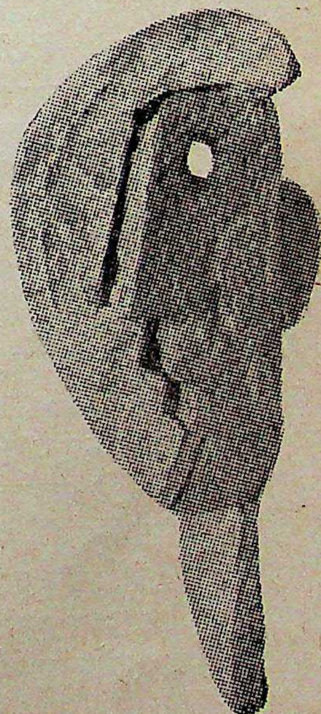
निमंत्रण के चंदन-प्रलेप से आतुर पथिक चौंक उठता है, विस्मय में भरकर। उस पेड़-तले अनेक कंपनों और विदारणों के बीच उमड़ आते हैं अश्रु और दीर्घश्वास। पथिक गा उठता है अपनी व्यथा की कहानी। यातना के अग्नि-वलय से पुनः पार जाते समय उसकी आंखों, उसके मुंह और देह के प्रत्येक बिंदु से अंगारे टपक पड़ते हैं। उनसे पवन तप उठता है, क्षीर झराता वह पेड़ भी। और तप जाती है यह शीतल मृत्तिका। अतीत में अग्निस्नान करने के बाद जब लौटता है, उसके निकटतम वह चेहरा अंगारों की धांस से झुलस चुका होता है। पथिक विह्वल होकर उस चेहरे को देखता है। शायद अनुच्चारित शब्दों में कहता है :

मैं तो अपना दुःख गा रहा था मन ही मन, पर तुम क्यों रो पड़े? मेरी यातना, विडंबना, संघर्ष, पराजय सब कुछ तो मेरा निजी है। मेरे दुःख की गंभीरता, मेरी ज्वाला की तीव्रता मैं ही समझता हूं। पर हे अपरिचित सहयात्री, तुम क्यों रो पड़े! मेरे डूबते समय तुम यों हाथ न बढ़ाओ; कहे देता हूं! देखो, तुम्हें मेरा स्रोत कहीं बहा न ले जाये। मेरे जलते समय यों पास न आओ। मेरी चिताग्नि तुम्हें जला देगी। तुम बहुत सुंदर और नरम लग रहे हो। मुझे और अधिक लुभाओ मत। तुम्हारे नयनों में आंसू मुझसे नहीं सहे जाते। वरन मुझे ही रोने दो। तुम्हारे नेत्रों के बिंदु-भर अश्रु के लिए मैं आजीवन तृषार्त रहता आया। मुझे

अनुवाद : शंकरलाल पुरोहित

...नों पर से ही उसे पी जाने की अनु-
...से। मैं जी उठूंगा इस निर्मम संसार में।
...फिर भी हे मेरे परम सुहृद, कहो .....
...व में तुम क्यों फफक उठे ?
...ता कोई नयी बात नहीं । स्नेह के
...को बाज झपट ले गया है । बेटा मरा
...ई ने दाव साधा है । मर चुका है
...का न्यूनतम मूल्य । जिसे बंधु माना
...विपद के समय छिप गया । चुरा ले
...मेरी मजदूरी । चबूतरे से दुतकार
...मालकिन ने, पेड़ तले से दुतकार दिया
...प्यादे ने । तपती बालू भरे रास्ते
...से अकेला चल रहा हूं पता नहीं ।
...ही ऐसे पास आये हैं । मैं झूम उठा
...सान्निध्य में । बांहों में भर लिया है
...। वे मेरी ओर देखकर हंसे हैं । और
...चले गये हैं । पता नहीं किधर । ठग
...सुख मिटाकर चले गये । उनकी
...अवधि का अनुमान भी मैं नहीं कर पाया।
...सी तरह उन्हें मैं सह गया । वे स्वेच्छा-
...कर चले गये । और मैं इसी तरह खून
...ता चल रहा हूं । मेरे रोम-रोम में क्षतों
...हैं । मैं पिंगला हूं । बाजार में टोकरी
...हांफती कोई मछली हूं । व्याध के
...में से टुकुर-टुकुर ताकता एकाकी
...हूं । मेरे बेशुमार दुःखों के लिए अश्रु
... पर मेरे लिए और कोई भी रो सकता
...नहीं जानता था । अपने दुःख को लांघ
... और का दुःख अपनाया जा सकता
...नहीं जानता था ।
...तुर पथिक प्रथम समवेदना के

[illegible] हो जाता है । एक हृदय की ज्वाला और यातना किसी दूसरे उदार और गंभीर हृदय में संचरित हो सकती है, इस पर वह विश्वास नहीं कर पाता । वर्षा का पानी अनेक मालभूमियां धोता, धूल-माटी पोंछता बह आता है, किसी क्षत से झरती लहू-धार की तरह । चारों ओर से इसी तरह सारी उपत्यका के झरनों को झील स्थान देती है अपने गर्भ में । वह अपनी अथाह अश्रु-संपदा के बावजूद इन यातनाओं को भी धारण करती है । कितने गुल्मों, कितनी लताओं, नन्ही-नन्ही दूर्वाओं, कीट-पतंगों, अणु-परमाणुओं के दुःख वह ग्रहण करती है ! पर वह स्वयं कभी रोती है ? उसकी अश्रुधार क्या किसी दूसरे की



मूर्ति : शंख चौधरी :

तरफ ढुलकती है ? ढलती है कभी-कभी युगों से पुंजीभूत लवणाक्त अश्रु-सागर की ओर। इस पृथ्वी पर तीन भाग केवल अश्रु हैं और बस एक भाग सब्ज जंगल, जहां कभी-कभी फूल खिल जाते हैं। अतः किसी और का दुःख जानना और उसे ग्रहण करना महानुभाव वैष्णवों का लक्षण है। वे करुणार्द्र पुरुष हैं। परंतु आंसू बह जाना तो उच्छलित होने का लक्षण है। अथाह दुःख धारण करने की गंभीर महनीयता उसमें कहां ? परम वैष्णव क्या औरों की यातना पर इस तरह आंसू बहाते हैं ? इस संसार के अपरिमेय लवण-सागर को क्या आंसुओं से व्यक्त किया जा सकता है ?

तो ये जो पास बैठे अश्रुपात कर रहे हैं, वे कौन हैं ? दीर्घश्वास से दीर्घश्वास की ताल मिलाकर जो दुःख भोग रहे हैं, वे कौन हैं ? .... तो क्या वह और एक कातर आत्मा है—जो दूसरी एक जीवन-धारा के बीच घात-प्रतिघात सहती यहां आ पहुंची है ? दुःख-भरे जीवन का परिवेश भिन्न होने पर भी उनकी ज्वाला ऐसी ही है ? नाम भिन्न होने पर भी पुत्रशोक ऐसा ही है ? पता नहीं। असल में, दुःख को पोर-पोर में परख लेने के बाद उसके किसी दृष्टांत से ज्वाला आहरण करना—हो सकता है—सहज हो, अनिवार्य हो। पर यों अकेले में दो आत्माओं के एक दूसरे के पास निवेदनशील होने पर एक-दूसरे की आंखों के कोयों में अपना-अपना प्रतिबिंब बिना देखे आंसू झरना संभव नहीं। सूक्ष्मतः किसी एक निभृत भूमि पर एक किसी दूसरे के दिग्वलय में प्रवेश किये बिना, कम से कम कुछ क्षण के लिए विभाजक रेखा मिटे बिना, एक क्यारी से दूसरी क्यारी तक आंसू बह नहीं सकेंगे। समवेदना के लिए समभूमि पर समांतर आहुति बिलकुल अनिवार्य है।

पर दूसरे के दुःख को अपनी घनिष्ठ परिसीमा में संदीप्त कर सकना कोई साधारण या सार्वजनिक सामर्थ्य की बात नहीं है। असंख्य लोगों के साथ असंख्य घटनाओं में संपृक्त होने पर भी सिर्फ कुछ-एक लोगों के लिए ही कभी-कभी बांध तोड़कर अश्रुओं की बाढ़ झर आती है। तब वेदना घाटनिक न रहकर, कल्पना-संचारी हो जाती है। अतीत की स्मृति के माध्यम से पुनरुज्जीवित होकर दोनों हृदयों को एक साथ विक्षत कर देती है। दो आत्माएं परस्पर इतने पास आ जाती हैं कि एक लपट ही दोनों को दग्ध करती है। सहयात्री बंधु उस समय भूल जाते हैं कि वे निपूते हैं। दूसरे के पुत्र-कष्ट से शोकाविष्ट होकर हाहाकार करते हैं।

इस प्रकार के संक्रमण के लिए जो संयोगकारी सूत्र दोनों के अनजाने बन जाता है, वह मानव-चरित्र की उसी ममता का तंतु ठहरा। शरीर की पीड़ा से भी ऊपर हर तरह की यातना के लिए यह आहत ममता ही उत्तरदायी है। किसी रहस्यमय स्निग्ध एवं तरल क्षण में एक दूसरे को ममता की बाहु में घेर आश्लिष्ट कर लेता है और उसी क्षण उसका अंतर दूसरे केंद्र से सारा

सारी तपन और सारी बरखा को ...कर लेता है। तूफान के बीच दो अपरिचित क्लांत पक्षी जैसे रात्रि ...डाल पर एक दूसरे को स्वीकार करें, ...कभी-कभी हो सकता है ये साथ हो ...एकत्रित दुःख भोगने के बाद समवेदना स्वाभाविक लगती है। इसके बाद ममता का होना न होना एक और पर्याय है। ...रेल दुर्घटना में आहत दो यात्री कुछ ...पास-पास बिस्तर पर चिकित्सा पाने ...बाद, हो सकता है, दूर चले जायें और ...की तरह अकूत व्यवधान फिर उत्पन्न ...जाये। किंतु पहले ममताच्छन्न हो जाने के ...समवेदना घनिष्ठ हो जाती है, गंभीर ...जाती है। वेदना बिलकुल अपनी-सी ...लगती है। किसी अंग पर चोट पड़ते ही ...पूरी देह विकल हो उठती है।

सहयात्री बंधु भी वैसे ही विकल हो उठते ...गोधूलि के समय खिलाड़ी बेटा घुटने ...रिसाता आ पहुंचता है, तो मां उस ...मां से रो पड़ती है। नव-विवाहिता पत्नी ...मामूलिक ज्वर होते ही तरुण पति को दसों ...अंधेरी दिखने लग जाती हैं। ससु-...से बेटी का पत्र पाकर पिता एक बेला ...सो जाता है। घर पर विपद आती ...गांव वाले आकर काम संभाल लेते ...सब आम बातें हैं और साधारण दह्य-...जीवन के उपचार हैं। इस प्रकार कुछ ...प्रलेप न होते तो इन सारी ज्वालाओं ...उपशमन न होता। इन सबके लिए ...प्रकार की प्रत्याशा हमेशा बनी रहती ही है।

जीवन के वाणिज्य में इन सबका न आना बल्कि अस्वाभाविक होगा। परंतु बंधु कोई आते हैं अप्रत्याशित सौरभ की तरह। प्रथम स्पर्श में ही बंधन घिर जाता है। लगता है जैसे इस जरा-से मूल्य के लिए दिनों से जीवन का एक विभाग खाली पड़ा था। अन्य मूल्य धीरे-धीरे कम होते जाते हैं, इस पर ही शायद सहारा लिया जा सकेगा। अमाप विश्वास, असंख्य भरोसे और आश्वासनों के साथ अकस्मात् इस मूल्य को ग्रहण किया जाता है।

सहयात्री बंधु को पास में पाने के बाद सारी यंत्रणा का इतिहास गा देने को जी करता है। मन में कहीं गहरे इलाके में और अकेले रहने की जरूरत नहीं पड़ती। ताज्जुब लगता है कि पत्नी-पुत्र आदि की पारिवारिक घनिष्ठता के बावजूद और भी इतना कुछ बाकी था जानने और जनाने के लिए! अचंभा होता कि अगर ये बंधु न आविर्भूत होते, कितनी असफल और रिक्त रह जाती जीवन की अनेक शाखा-उपशाखाएं! वस्तुतः वे आकर अंगारे सितला देते हैं। क्षतों को सहला देते हैं। उनकी शीतल संवेदनशील उपस्थिति से छिपे हुए लावा स्वतः बह जाते हैं। और एक बार अतीत के आग्नेय क्षणों में प्रवेश करने का मौका मिलता है। परंतु उनकी अश्रुधार में उन में आधी शिखाएं बुझ जाती हैं। अनेक ज्वालाओं को वे स्वतः ग्रहण कर लेते हैं। अतः बारंबार दुःख गा जाने को मन करता

है। और आखिरकार दोनों बंधुओं के बीच यंत्रणा के इतिहास किसी वियोगांतक नाटक की तरह उपभोग्य हो उठते हैं।

फिर समस्या घनीभूत होकर यात्रापथ आच्छन्न करने लगती है तो याद आते हैं सुहृद्। शायद वे ही रास्ता दिखा सकेंगे। किसी भी दायित्व के बोझ-तले कदम जब लड़खड़ा जायें, तो वे किसी बलिष्ठ स्तंभ की तरह पास में खड़े हो जायेंगे। और अपने ऊपर टिका लेंगे। कंधे को थपथपाकर कहेंगे–'चिंता न करो बंधु, मैं हूं!' समस्या का समाधान होना न होना बाद की बात है। पर इस एक बात पर, इस अभय-मुद्रांकित बाहु-प्रसार के लिए शरण में दुबक जाने की इच्छा मचल उठती है। फिर वे अपने साध्य मुझको अपने ठाठ के साथ सागर-लंघन करा लें, अच्छी बात है। वरना डूबते क्षणों में भी आश्रय में समेट लेने के लिए हाथ पसारना यथेष्ट है। फिर अनिवार्य-भाव से कष्ट सह जाने में कोई आपत्ति नहीं। परंतु संपूर्ण निराश्रय और एकाकी उखड़ गये किसी पेड़ की तरह निर्मम आकाश की शून्यता में झर जाना, यह आदमी की सीमा को लांघती दुःसह विडंबना है। सोदर कुटुंबी को लेकर या उनके लिए डूब जाते समय ये सहृदय सुहृद् आकर थाम लेते हैं, आश्रय दे सकते हैं। घनी अंधियारी रात में अपने माथे पर वज्र-विद्युत् धारण कर जो उदार वनस्पति अपने कोटर में आश्रय देती है, आकाश एवं पृथ्वी के विस्तीर्ण अथच निर्मम परिसर के बीच व्यथातुर पथिक को विलीन होते समय जो करुणार्द्र सहयात्री बांहों में भर लेते हैं, उन्हें सदा के लिए मान लेने की इच्छा होती है। उनकी ममता की सब्ज छाया तले नीड़ बनाकर रह जाने को मन करता है। बारंबार उनका हाथ थामकर कहने की इच्छा होती है–'तुम्हीं मेरी एकमात्र आश्रय-स्थली हो, तुम्हीं मेरे एकमात्र निवास।'

सहयात्री बंधु इस निराश्रय पथिक की असहायता पर और अश्रु बिंदु बरसाते हैं। ममता और अधिक निबिड़ हो जाती है। वे बिलकुल पास खड़े होकर देखते हैं बाहर और अंतर की यातना, संघर्ष और रक्तस्राव। गहरे विश्वास से पथिक अपना सारा अतीत खोलकर रख देता है उनके आगे। कुछ भी छिपाता नहीं। निःसंकोच बखानता चला जाता है अपने असंख्य अनागत स्वप्न। अपनी अजस्र कामनाओं, आशा-निराशाओं, अनुराग-विराग की जटिल भावभूति के तंतु खोल-खाल देता है। सहानुभूति की दो स्निग्ध आंखों पर विशुद्ध एवं स्वच्छ मुक्ता-फलों को देखकर उसे विश्वास होता है कि यही एकमात्र व्यक्ति है, जिसने उसे समझा है, इस निष्पंद अरण्य में उसे चुनकर उसका मूल्यांकन किया है, जो उसके क्षतों को और उसके अंग-अंग पर लदे क्रंदन को देख-सुन रहा है, बिरली कलियों को स्नेह कर रहा है। फिर और चिंता की क्या जरूरत!

इस अनंत-अनबूझ संसार को उसके जीवन का सत्य समझा पाने की संभावना नहीं। जब यात्रा पूरी हो जायेगी, वह हाथ

पूर्ण विश्वास से कह सकेगा—'बंधु, तुम्हीं हो मेरे एकमात्र साक्षी। मेरे मरणोपरान्त विचारणा के समय समग्र संसार भी अगर अन्याय करे, तुम्हीं उसे समझा दोगे और कहोगे कि इसने आजीवन कोशिश की है अपनी आशा, अपने विश्वास, प्रेम और अपने ज्वलन को प्रकट करने की। मुझे मिला नहीं समझाने। उसे अगर समझ सको तो अब मैं जो कहता हूं सुनो। मैं ही उसका एकमात्र साक्षी।'

कृतज्ञता से झुक जाता है, पथिक। क्या कह दे सकेगा इस महार्घ ममता के प्रतिदान में? वह विह्वल होकर स्वयं को ही अर्पित कर देता है। 'बोलो हे मीत! तुम्हीं बतला दो, अब मैं क्या करूं? तुम तो मेरा सारा अतीत जानते हो, मेरी आशा और आकांक्षा से परिचित हो। तुम मेरा दायित्व ग्रहण करो। जारी करो मुझ पर अपना प्रभुत्व। अकुंठित-भाव से आदेश दो। तुम पर निर्भर हो चुकने के बाद मैं और किसी बारे में सोच भी नहीं पाता। हे ममतामय प्रभु, तुम्हारा व चस्कर होने का सौभाग्य प्रदान करो।' इतनी निर्भरशीलता, आत्मसमर्पण के बीच एक प्रकार की नारीत्व कहीं से आकर उसे आच्छन्न कर लेती है। निभृत में इच्छा होती है इस बलिष्ठ पुरुष स्नेहशीलता को भर्ता के रूप में ग्रहण करने की। प्रतिपल बंधुता दांपत्य के स्पर्श से सिहर उठती है। ममता प्रेम में और फिर प्रेम कोमलता में रूपायित होकर करुणा को महिमान्वित करता है। व्यथातुर पथिक विगलित हो कह उठता है—'मुझे आवृत कर लो! आच्छन्न कर लो! मेरे जीवन के आगे-पीछे को परिपूर्ण कर विद्यमान रहो। मैं तुम में स्वयं को उत्सर्ग किये हूं। तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरे लक्ष्य हो!'

इस सारे निवेदन के बाद दोनों यात्रियों को क्षीरस्रावी वनस्पति की वह नीरवता ढांप लेती है। अजीब एक हंसी की रेखा उस करुण चेहरे पर खींचकर सहयात्री, बंधु देखते हैं। पथ और पथिक को पार करके देखते हैं उस निस्तब्ध दिगंत की ओर। उस चेहरे पर पथिक को दिख जाता है अनंत व्यथा का इतिहास। राजपुत्र के ललाट में वनवास की दुःसह यातना। सुनाई देता है श्रावण की रात का अरण्य-रोदन। कितने युद्ध, कितनी वेदना, कितनी क्लांति! ...... फिर दिख जाते हैं सेवार की लता तले शराहत रक्तजर्जर वे चरण .....। दिख जाता है आरक्त संध्या में अंधेरा एक काठ का क्रूस। आकाश और पवन पर युगों की पुंजीभूत जीवन-यातना, व्यथा का आर्तनाद। वह अथर्व बैठा रहता है। सूख जाते हैं उसके अश्रु। अनेक अंधेरे समुद्र पार कर वह अपने कंपित नीड में फिर लौट आना चाहता है। अवनत अपराह्न की लंबी पसरी छाया के बीच सहयात्री बंधु वैसे ही बैठे हैं। देख रहे हैं निस्तब्ध दिशा की ओर। उनकी आंखों से भी अश्रु सूख जाते हैं। इतनी व्यथा के लिए अश्रु कहां?



प्यार और घृणा बच्चों में

ए. एस. नील के लेख के अंश

प्यार और घृणा एक दूसरे के विरोधी-भाव नहीं हैं। प्यार का विरोधी भाव है विरक्ति। घृणा प्यार का दूसरा रूप है। घृणा में हमेशा डर का अंश होता है। इसे हम उस बच्चे में देखते हैं, जो अपने छोटे भाई से घृणा करता है। उसकी घृणा के पीछे यह डर होता है कि वह कहीं मां के प्यार से वंचित न रह जाये। साथ ही उसे अपने भाई-संबंधी प्रतिहिंसात्मक विचारों का डर भी होता है।

अन्सी नाम की चौदह साल की एक विद्रोही लड़की जब हमारे स्कूल में पढ़ने के लिए आयी, वह मुझे गुस्सा दिलाने के लिए मारने लगी। वह मुझे अपने पिता का प्रतिरूप समझने लगी थी। पिता के लिए उसके मन में घृणा थी और डर था। पिता ने उसे कभी गोद में बैठने की इजाजत नहीं दी थी। न उसे किसी दूसरे ढंग से प्यार दिया था। सो अपने पिता के प्रति अन्सी का प्यार घृणा में बदल गया था। हमारे स्कूल में आने पर उसे अचानक पिता के रूप में एक ऐसा व्यक्ति मिल गया, जो उसके साथ सख्ती से पेश नहीं आता था और जिससे उसे डर नहीं लगता था। सो उसकी दबी हुई घृणा बाहर निकली। अगले दिन वह मुझसे बड़ी मृदुता से पेश आयी, जो इस बात का सबूत था कि उसकी घृणा वास्तव में प्यार का रूपांतर थी।

बहुत कम माता-पिता यह महसूस करते हैं कि वे सजा द्वारा अपने प्रति बच्चे के प्यार को घृणा में बदल देते हैं। बच्चे में उपजी घृणा को देख सकना बहुत मुश्किल है। माताएं बच्चों को मारने के बाद देखती हैं कि बच्चे का रवैया नरम पड़ गया है; पर वे यह नहीं जानतीं कि बच्चे में जो घृणा पैदा हुई थी, वह मारने से अचानक उसके अचेतन मन में दब गयी। पर दबी हुई भावनाएं मरती नहीं हैं; वे सिर्फ सो रही होती हैं।

एक दिन सुबह मैंने अपने प्रत्येक विद्यार्थी को अलग से बुलाकर उसे अपनी मौत की कहानी सुनायी। सुनते ही हर विद्यार्थी का चेहरा चमक उठा। उस दिन सभी विद्यार्थी बहुत खुश नजर आये। राक्षसों को मारने की कहानियां बच्चों को हमेशा पसंद आती है; क्योंकि वे उन राक्षसों में किसी हद तक अपने पिता को देख रहे होते हैं।

माता-पिता के प्रति बच्चे की घृणा को देखकर घबराने की जरूरत नहीं। यह घृणा हमेशा उस समय शुरू होती है, जब बच्चा अहंवादी था। बच्चा प्यार और शक्ति चाहता है। हर गुस्सा-भरा शब्द, हर गाली,

...बच्चे को उस प्यार और शक्ति ...करता है। मां की डांट सुनकर ...सोचता है–'मां मुझे प्यार नहीं करती।' ...पिता कहता है कि खबरदार, इसे ...लगाना, तो बच्चा सोचता है–'ये मेरे ...में आड़े आ रहे हैं। काश, मैं भी ...बड़ा होता!'

...बच्चे में माता-पिता के प्रति घृणा ...है, पर वह इतनी खतरनाक नहीं ...जितनी कि बच्चे के प्रति माता-...में पायी जाने वाली घृणा। माता-...बच्चों को 'यह न करो, वह न करो' ...कहना, डांटना-फटकारना, मारना-...गुस्से में लाल-पीले होना, उनकी ...प्रतिक्रियाएं हैं। जिन दंपति की ...में बनती नहीं और जो हमेशा आपस ...झगड़ते रहते हैं, उनके बच्चों के ...विकास की बहुत कम संभावना रहती ...माता-पिता अपना गुस्सा बच्चों ...निकालकर अपने मन ...किया करते हैं।

...बच्चा प्यार नहीं ...पाता, तो उसके एवज ...घृणा पाना चाहता ...सोचता है–'मां मुझ...ध्यान नहीं देती। वह मुझे ...नहीं करती। वह मेरी ...बहन को प्यार करती ...उसका ध्यान अपनी ...खींचकर दिखाऊंगा!' ...चीजें तोड़ने-फोड़ने लगता है।

बच्चे के आचरण की सभी समस्याओं के मूल में होता है उसे प्यार न मिलना। सजाएं और नैतिक उपदेश इस समस्या को हल नहीं करते, बल्कि वे घृणा को बढ़ाते हैं।

जब माता-पिता बच्चे को जरूरत से ज्यादा लाड़-प्यार करते हैं, तब भी उसमें घृणा पैदा होती है। बच्चा जहां एक ओर माता-पिता के इन बंधनों से घृणा करता है, वहीं वह माता-पिता को चाहता भी है। यह अंतर्विरोध कई बार निर्दयता के रूप में प्रकट होता है। बच्चे के मन में अपनी मां के प्रति घृणा तो दब जाती है, पर चूंकि इस घृणा को कोई न कोई निकास चाहिये, इसलिए बच्चा बिल्ली को या अपनी छोटी बहन को मारने लगता है, क्योंकि ऐसा करना मां से विद्रोह करने की अपेक्षा उसे आसान नजर आता है।

हम अपने भीतर जिन चीजों से घृणा करते हैं, उन्हीं को दूसरों में देखकर घृणा करते हैं। जो घृणा हमें अपने बचपन में मिली होती है, उसी को हम अपने बच्चों पर प्रकट करते हैं।

कहा जाता है कि अगर आप घृणा नहीं कर सकते, तो प्यार भी नहीं कर सकते। शायद यह ठीक ही हो। परंतु घृणा करना मुझे बहुत कठिन लगता है। और न मैं



चित्र : सतीश चव्हाण

बच्चों को कभी [illegible] । कोरा भावुकता-भरा प्यार तो कभी भी नहीं दे पाया ।

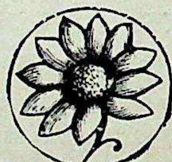
हर बच्चा महसूस करता है कि दंड वास्तव में घृणा है । और प्रत्येक दंड बच्चे को और अधिक घृणा करने के लिए मजबूर करता है । घृणा घृणा को जन्म देती है, और प्यार में से प्यार पैदा होता है । किसी भी बच्चे की घृणा का प्यार के सिवा कोई और इलाज नहीं है ।



[पृष्ठ ८७ का शेष]

और ताकतवरों के लिए नहीं, गरीब और बेसहारा लोगों के लिए ही होती है ।

कृष्णमोहन बंद्योपाध्याय ने 'एन्क्वायरर' निकाला तो रसिककृष्ण मल्लिक ने 'ज्ञानान्वेषण' (द्विभाषिक), जो कि १८४४ तक चला । ताराचंद चक्रवर्ती ने 'क्विल' चलाया, जिसमें सरकारी नीतियों की आलोचना की जाती थी । राधानाथ सिकदार ने 'बंगाल स्पेक्टेटर' में बेगार लेने के खिलाफ आंदोलन शुरू किया । इसी काल में बहुत डिरोजिओई संस्थाएं भी सक्रिय रही थीं । —१६ डा. विलसन पथ, बंबई-४



उर्दू काव्यधारा की बात जब भी कहीं चलेगी, पंडित दयाशंकर कौल 'नसीम' का नाम आदर के साथ लिया जायेगा, खासकर उनके 'गुलजार नसीम' का । वे बड़े ही प्रसन्न-चित्त और हाजिरजवाब थे । एक बार लखनऊ के एक मुशायरे में 'नसीम' भी उपस्थित थे। मुशायरा शुरू होने में जरा देर थी । शेख नासिख ने नसीम की ओर मुड़कर कहा—'पंडितजी, एक मिसरा कहा है, दूसरा बोल दीजिये—शेख ने मसजिद बना मिसमार बुतखाना किया ।'

नासिख के मुंह से यह मिसरा निकलना था कि नसीम ने तत्काल दूसरा मिसरा कहा—'तब तो यक सूरत भी थी अब साफ वीराना किया ।'

सुनते ही सारी मजलिस चहचहा उठी । नासिख ने अपनी कविता के माध्यम से जो मजहबी आग उठायी थी, उसे 'नसीम' ने शांत कर दिया । —डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'



('बूझो तो जानें' के उत्तर)

१. मछली का सिर ५ इंच, धड़ २० इंच, पूंछ १५ इंच । पूरी मछली ४० इंच ।

२. पेड़ ७।। फुट; बल्ली २२।। फुट ।





लालाजी का फैसला

...दिनों दिल्ली क्लाथ मिल में कार-...खाने के विस्तार की योजना के अंतर्गत ...नया निर्माण-कार्य चल रहा था। कुछ ...गर एक रोज काम छोड़कर छाया में ...कर गप्पबाजी का आनंद लूट रहे थे। ...गर बैठे थे, तो बेलदार भी काम क्यों ...ते?

...योग से उसी समय मिल के मालिक ...ला श्रीराम के छोटे भाई लाला शंकर-...ल उधर आ निकले। उन्होंने कुछ देर ...कारीगरों का इंतजार किया। किंतु ...उपस्थिति से अनभिज्ञ कारीगर उसी ...ह गप्पबाजी में मशगूल थे। शंकरलालजी ...ने और एक कारीगर को बुलाकर डांटने ...। बेलदारों-कारीगरों में भगदड़ मच ...। तभी गुस्से में लाला शंकरलालजी ने एक कारीगर को चांटा जड़ दिया।

कारीगर एकदम हक्का-बक्का रह गया। तमाचा जोर से पड़ा था और उससे भी अधिक पीडा उसे अपने ही लोगों के सामने बेइज्जत होने से हुई। वह तड़पकर रह गया और लाला शंकरलाल चल दिये।

लाला श्रीराम प्रतिदिन मिल का एक चक्कर अवश्य ही लगाते थे। इसमें वे कर्मचारियों की कुशल-क्षेम पूछते, उत्पादन की जानकारी लेते, उचित सुझाव देते। ऊपर वर्णित घटना के अगले दिन जब वे कारखाने के राउंड पर थे, तो वह कारीगर आकर उनके सामने खड़ा हो गया और उन्हें अपनी पीडा बताने लगा। रोते हुए उसने कहा—'लालाजी ने मुझको कल चांटा मार दिया।'

'कौन-से लालाजी ने?' लाला श्रीराम ने पूछा।

कारीगर ने रोते-रोते सारी बात कहीं। यह भी कहा—'गलती मेरी जरूर थी। मैं डयूटी के वक्त गपशप कर रहा था। पर उसकी इतनी कड़ी सजा! बेलदारों और कारीगरों के सामने चांटा मारना! मेरे आत्मसम्मान को बड़ी ठेस लगी इससे।'



चित्र: शरद कांबळी

लाला श्रीराम परेशान हो उठे सुनकर। बड़े अजीब धर्म-संकट में फंस गये थे वे। एक तरफ उनके छोटे भाई थे, जो शीघ्र ही कंपनी के प्रबंध-संचालक बनने वाले थे; दूसरी तरफ कारीगर के आत्म-सम्मान का सवाल था। इस दुविधा-भरी स्थिति में वे कुछ देर तक सोचते रहे। फिर वे आस-पास खड़े कंपनी के अधिकारियों, कर्मचारियों, कारीगरों आदि की तरफ देखकर बोले–'आप सब लोग यहां पर हैं। मैं आप लोगों को पंच मानता हूं। कारीगर ने जो कुछ भी कहा है, सच कहा है। सचमुच ही वह शंकरलाल के क्रोध का शिकार हुआ है। उसके आत्मसम्मान को धक्का लगा है, यह भी सच है। अब आप लोग ही बतायें कि इस मामले में क्या किया जाये, ताकि इन्साफ की एक नयी मिसाल सामने आये।'

सभी लोग सुनकर चुप्पी साध गये। मामला बड़ा ही नाजुक था। क्या सलाह दें? लालाजी ने दुबारा कहा–'बोलो भाई पंचो, बोलो! इस मुकद्दमे का फैसला तो आप लोगों को ही करना पड़ेगा।'

फिर भी चुप्पी बरकरार रही। जब काफी देर तक कोई भी कुछ नहीं बोला, तो लाला श्रीराम कहने लगे–'पंचो! आरोप चूंकि शंकरलाल पर है, इसीलिए अगर आप फैसला करने में हिचकिचाते हैं, तो लीजिये मैं खुद ही फैसला कर देता हूं। पर शर्त यह है कि अब हर हालत में आप सभी को उसे मंजूर करना पड़ेगा।'

पंचों को हां करनी पड़ी।

तब लालाजी उस कारीगर की तरफ गाल करके बोले–'भैया, लाला शंकरलाल ने तुम्हें एक चांटा मारा है। वह मेरा छोटा भाई है; मैं उसका बड़ा भाई हूं। अब तुम मेरे मुंह पर एक नहीं दो चांटे मार दो।'

यह सुनना था कि वह कारीगर उनके पैरों में झुक गया और रोते हुए बोला–'लालाजी, आप तो संत हैं! मुझसे बड़ी गलती हुई कि मैंने आपसे शिकायत की।'

लालाजी ने उसे सीने से लगा लिया। शंकरलालजी को भी उन्होंने अपने क्रोध पर नियंत्रण रखने व कारीगरों की मनोवृत्ति समझकर उनसे व्यवहार करने की सलाह दी। लालाजी के फैसले से वातावरण की सारी कटुता घुल गयी।

–दुर्गाशंकर त्रिवेदी, कोटा–३२४००६

०००

सुहागरात का व्रत

स्थान–पंजाब का एक कस्बा (अब पश्चिम पाकिस्तान)। नवदंपति की सुहागरात। पति-पत्नी में यह बातचीत हुई:

पति : कितना पढ़ी हो?

पत्नी : केवल मामूली गुरुमुखी।

(गुरुमुखी यानी पंजाबी। उन दिनों पंजाब में लड़कियों को विशेष पढ़ाने का रिवाज नहीं था। प्राइमरी तक गुरुमुखी या हिंदी की पढ़ाई पर्याप्त समझी जाती थी।)

पति : क्या हिंदी बिलकुल नहीं जानतीं?

पत्नी : जी नहीं।

ति: हिंदी का प्रचार मेरे जीवन का व्रत है। हम दोनों इस पवित्र विवाह-बंधन में आबद्ध हुए हैं। यदि तुम हिंदी न जानोगी और मेरे इस व्रत में सहायक न बनोगी, तो मैं दूसरे लोगों को हिंदी पढ़ने के लिए कैसे प्रेरणा दे सकता हूं ? इसलिए तुम्हें हिंदी तो अवश्य ही पढ़नी होगी। मेरा यह भी व्रत है कि जो गृहिणी हिंदी न जानती हो, मैं उसके हाथ का भोजन नहीं करता। सो तुम जब तक हिंदी का सामान्य ज्ञान प्राप्त न कर लोगी, मैं तुम्हारे हाथ का भोजन नहीं करूंगा।

पत्नी: (सहमकर) मैं हिंदी तो अवश्य ही पढ़ूंगी। पर आप मेरे हाथ का भोजन न करें, यह मैं कैसे सह सकती हूं !

पति: बिना ऐसा दृढ संकल्प किये हम दोनों ही इसके पालन में ढीले हो जायेंगे। मैं तुम्हें एक मास में हिंदी का सामान्य ज्ञान करा दूंगा। हिंदी तो बहुत सहज भाषा है। भोजन के बारे में तुम चिंता न करो। माताजी तो हैं ही। वे हिंदी खूब जानती हैं। उन्होंने ही तो मुझे हिंदी के प्रचार की प्रेरणा दी।

घटना देश-विभाजन के पूर्व के युग की है जब पंजाब में उर्दू का ही बोलबाला था और हिंदी को तो मजाक में 'औरतों की भाषा' कहा जाता था। और हिंदी के इस अटल व्रती का नाम था रैमलदास। लोग उन्हें 'भक्त रैमल' कहते थे। वे निष्काम, लगनशील और समाजसेवी थे। लोगों के पारिवारिक जीवन को सुखी और प्रसन्न बनाने की दिशा में निरंतर प्रयत्नशील होने के कारण उनका अनेक परिवारों से संबंध था और हिंदी न जानने वाली गृहिणी के हाथ का भोजन न करने की भक्तजी की प्रतिज्ञा ने अनेक परिवारों को हिंदी का ज्ञान करा दिया।

विदेशी शासन के उस युग में भी वे अगर किसी पत्र पर पता अंग्रेजी, उर्दू या हिंदीतर भाषा में होता, तो उसे स्वीकार न करते थे। जिस धार्मिक संस्था के माध्यम से वे सामाजिक सेवा करते थे, वहां अगर कभी कोई मनी-आर्डर हिंदीतर भाषा में आता तो वे उसे लेने से इन्कार कर देते। उनका अपना सारा पत्र-व्यवहार व अन्य लेखन-पठन का कार्य मात्र हिंदी में ही होता।

पंजाब में उस समय सरकारी नीति प्रच्छन्न रूप में हिंदी-विरोधी थी। फलस्वरूप भक्त रैमलजी का डाक-तार-विभाग से निरंतर संघर्ष चलता रहता। वे कभी न झुकते, आखिर सफल होते ही।

सुहागरात को भक्त रैमल ने अपनी पत्नी से जो प्रतिज्ञा करायी, उसके फलस्वरूप उस देवी ने भी हिंदी-प्रचार में उन्हें आजीवन पूर्ण सहयोग दिया।

ऐसे कितने ही अज्ञात, अनाम, मौन, कर्मठ और यशःभीरु हिंदीभक्तों के पुरुषार्थ से ही हिंदी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो सकी। परंतु अब हममें से कितने भक्त रैमल की तरह हिंदी के प्रति पूर्णतः निष्ठावान हैं? —दीनानाथ सिद्धान्तालंकार,

जयपुर—३०२००६



ताश का खंडहर

कुंकुम चतुर्वेदी

बिस्तर पर लेटे-लेटे मुझे लगा, खिड़की के रास्ते से छन-छनकर आती धूप ठीक मेरे मुंह पर आ गयी है। बचपन से अब तक यहीं धूप मेरे लिए अलारम-घड़ी बनती आयी है। ऐसी अलारम-घड़ी जिसके बजने पर मैं चाहकर भी पलंग पर नहीं पड़ी रह सकती। फिर भी पलंग पर लेटे-लेटे ही मैं खिड़की के बाहर देखने लगी। इस खिड़की के बाहर देखना मुझे कितना प्रिय है, इसे व्यक्त करना मेरे लिए कठिन है।

कभी खिड़की के ठीक बाहर आम्रकुंज मंजरियों से भरकर झूमने लगता है, तो कभी फलों से लदकर झुक जाता है, मानो अपने विशाल परिवार को समेटे खड़ा हो, जिसमें नन्हे-नन्हे ढेर सारे सुकुमार बच्चे हों। इसी पेड़ को पतझड़ की छटा में अवश-भाव से खड़ा देखा है, पर उस अवशता में भी एक आशा-सी छिपी होती है। मैं इन्हीं सब खयालों में खोयी हुई थी कि देखा झबरे बालों वाली गुदगुदी बिल्ली मेरे पलंग तक पहुंचने की असफल चेष्टा में लगी है। हाथ बढ़ाकर मिकी को मैंने उठाया और चूम लिया। तभी फोन की घंटी तेजी से टनटनायी।

रिसीवर उठाते ही 'हलो ..... मीनू कैट, सोते में से तो नहीं उठना पड़ा ?' खीझकर मैंने उत्तर दिया—'तुमने फिर मीनू कैट कहा।' रोहित आजिजी से बोला—'मेम सा'ब, नाराज न हों, आपके लिए एक सरप्राइज़ है।' आतुर-भाव से मैंने पूछा—'क्या है, जल्दी बताओ।' वह हंस पड़ा—'यह सरप्राइज़ देने का मुझे क्या मिलेगा ?' थोड़ी देर खिझाने के बाद रोहित बोला—'मीनू, अब तुम जल्दी से सामान पैक कर लो, आज ही रात की ट्रेन से आगरा जाना पड़ेगा—आफिस का कुछ काम है। शांतादी के पास ही ठहरेंगे।' मारे खुशी में फोन छोड़कर भागने ही वाली थी कि उसकी आवाज फिर सुनाई पड़ी—'मीनू, हम दीदी के पास तो ठहरेंगे। पर मेरी भी एक शर्त है। जीजाजी और साली के बीच मेरी भी कोई हैसियत है, यह मत भूल जाना, ओ. के. !' एक ठहाके के साथ रोहित ने फोन रख दिया।

आगरा में दीदी से मिलने का उत्साह उतना प्रबल नहीं था, जितना कि जाजी से। मेरी शादी पर उनके न आने की बात सुनकर ही मैं फूट-फूटकर रो पड़ी थी। जीजाजी के जिक्र के साथ-साथ अपना ... में, शांतादी की शादी, दीदी और जीजाजी के साथ बिताये वे दिन स्वप्न-से आंखों के सामने छा गये।

....

उस अल्हड़ कैशौर्य में जिस दिन मुझे ... ने बताया कि शांतादी का ब्याह करीब है, जल्दी पढ़ाई कर लेनी चाहिये, वरना ... के झमेले में कुछ न पढ़ पाऊंगी, मैं ... खुशी से भर गयी थी। इसलिए कि वर्षों से संजोयी कल्पनाएं अब साकार होंगी। किटी, दीपा, रीना—सभी को तो मैंने अपने दीदी-जीजाजी के साथ सैर करते, पिक्चर देखते और चटखारे ले-लेकर इसके किस्से सुनाते देखा था। तब अजीब-सी टीस मेरे गले में उठती थी। काश, मैं भी इनकी तरह कुछ सच्चे, कुछ मनगढ़ंत किस्से सुना पाती! आज भगवान ने मेरी सुन ली थी।

उन्हीं दिनों हमारे स्कूल के ड्रामा 'रोमियो-जूलियट' में रोमियो का रोल एक सीनियर छात्र ने निभाया था। न जाने कितने दिन उस रोमियो ने हम किशोरियों को भावनाओं में डुबाये रखा था। उस दिन जीजाजी का यशोगान करते हुए मुझे उसी



की याद हो आयी। आश्चर्य से आंखें फैलाते हुए मैंने कहा था–'याद है डाली, दीपा, तुम लोगों को अपने स्कूल वाला रोमियो? बिलकुल वैसे हैं मेरे जीजाजी!' इसके साथ ही अपने दोस्तों में मेरा सिक्का जम गया था।

कहने को तो मैं बहुत कुछ कह गयी थी, पर दिल में धुकधुकी हीं मची रही थी कि कहीं मेरे सपने मिट्टी में न मिल जायें। इसीलिए मां की डांट-डपट से परीक्षा की तैयारी करने किताबों का ढेर सामने रखकर बैठती, तो बाबर-हुमायूं से शुरू करके लार्ड क्लाइव और डलहौजी एक-एक करके चलते बनते और सामने छा जाता जीजाजी का अनदेखा व्यक्तित्व। उन दिनों मेरे मन में हीरो-वरशिप थी इस अनजाने व्यक्ति के प्रति।

मेरे इम्तहान खत्म होने के ठीक दस दिन बाद शांतादी की शादी का मुहूर्त निकला। मेरे इम्तहानों में ही मेहमानों की भीड़ घर को घेरने लगी। मुझे अभी तक याद है कि आखिरी पेपर देकर मैं स्कूल से बाहर भागी थी, जबकि मेरे सभी संगी-साथी पेपर डिस्कस करने में ही लगे थे। घर आकर देखा कि बरामदे में पापा टहल रहे हैं। मैं उनसे लिपटती हुई बोली–'पापा, किला फतह...!'

पर शांतादी के कमरे में पहुंचकर मुझे लगा, कोई भी मेरी ओर नहीं देख रहा है, दीदी सारे मजमे की हीरोइन बनी हैं। उनके सामने गहरे लाल रंग और जरीदार पल्लू की फीरोजी और चटख हरे-पीले रंगों की कई-कई साड़ियां बिखरी हैं। अम्मां कभी साड़ियों की, कभी गहने-कपड़ों की, तो कभी जोर-शोर से भावी दामाद की तारीफों में जुटी हैं। 'लड़का भी इंग्लिश में एम. ए. है,' कहती अम्मा का चेहरा गर्व से चमक उठा था। खीझकर मैंने अम्मा को अपनी उपस्थिति का एहसास कराते हुए चीखकर कहा–'दीदी के लिए इतनी बढ़िया साड़ी और मेरे लिए वो सड़ी-सी मैक्सी! मुझे नहीं पहननी।' उस दिन मैं यह नहीं सोच सकी थी कि मैं कुछ भी पहनती, जीजाजी के पास मुझे देखने का वक्त ही कहां था।

और इसी गहमागहमी में वह दिन भी आ गया, जब बंदनवारों से सज्जित हमारे द्वार पर वे आन खड़े हुए। मारे खुशी के अम्मा की आंखें भर आयी थीं। दूसरे ही क्षण अस्पष्ट बोलों में उन्होंने अन्य महिलाओं के सुर से सुर मिलाते हुए गाना शुरू किया था और मैं महीनों बाद कल्पनाओं के महल को यथार्थ होते देखकर उमंग और उल्लास में भर गयी थी। विवाह-संस्कार के समय दीदी-जीजाजी की गांठ जोड़ते वक्त मुझे लगा था, मैं बहुत महत्त्वपूर्ण हो गयी हूं।

दीदी की विदा के एक अरसे के बाद जब वे लोग लौटे, तो हमारा घर फिर एक बार गुलजार हो उठा था। घर में कदम रखते ही जीजाजी ने मेरे हाथों में चाकलेटों का इतना बड़ा पैकेट थमा दिया कि एक क्षण को मुझे लगा कि संसार की सारी नियामतें मुझे मिल गयी हैं। उसके बाद शांतादी ने गोवा से लाये ढेरों उपहारों से मुझे लाद दिया था। दीदी और जीजाजी के साथ सैर-सपाटों में दिन कैसे बीत गये, पता ही न चला।

गोवा से लौटने के बाद ऊपर वाला मेरा कमरा जीजाजी को दे दिया गया था। हमेशा की तरह उस दिन जब कूदती-फांदती घर आयी, तो रोज की अपेक्षा सन्नाटा-सा महसूस हुआ। शाम घिर आयी थी। शायद दीदी ऊपर होंगी, यह सोचकर जीने की दो-दो सीढ़ियां एक साथ फलांगती मैं ऊपर की ओर भागी। वहां पहुंची तो देखा, शांतादी और जीजाजी जमीन पर बैठे, दूर आकाश में झिलमिलाते तारों में खोये हुए हैं। मैंने पीछे से दौड़कर अपनी हथेलियों से जीजाजी की आंखों को कसकर ढंक लिया। तभी शांतादी की झल्लाहट सुनाई पड़ी—'यह क्या बदतमीजी है मीनू!' मेरे हाथों की पकड़ अपने आप ढीली पड़ गयी थी। एक क्षण भी बिना रुके मैं पीछे की ओर भागी और कमरे के पीछे पानी की टंकी के पास बैठकर रोने लगी। लगा सारे आंसू आज ही बह जाना चाहते हैं। तभी उन दोनों की बातें सुनाई दीं—'शांता, हद है! तुम्हें ऐसा नहीं बोलना चाहिये था।' ..... 'आशीष, तुम समझते क्यों नहीं, अब वो बच्ची नहीं रह गयी है। उसके जीजाजी ही नहीं और भी बहुत कुछ हो।' शांतादी की आवाज भर्रायी थी और शायद वे तेज कदमों से जीने की ओर बढ़ रही थीं।

उस अंधेरे में भी आंखें बिलकुल साफ देख रही थीं। जीजाजी अपना कुरता झाड़ते खड़े हुए थे। 'शांता, सुनो! इधर आओ।' दीदी ठीक उनके पास आकर खड़ी हो गयी थीं। जीजाजी ने धीमे-से उनके मुंह को उठाया और गंभीर किंतु धीमे स्वर में कहा—'शांता, क्या मुझ पर ही विश्वास खो बैठी हो? मैं जानता हूं, उसके मासूम हृदय पर मैंने कहां तक अधिकार कर लिया है। तुम इतनी समझदार होते हुए भी क्यों नहीं समझ पायी कि अगर तुम्हारा कोई भाई होता या तुम्हारे पापा परिवार में ज्यादा समय गुजार सकते, तो मीनू के लिए मेरा कोई खास महत्त्व नहीं होता। तब तुम्हारे पिता या भाई ही उसके हीरो होते। शायद यह उम्र होती ही ऐसी है, जब खासकर लड़कियां, बड़ी सहजता से किसी से प्रभावित हो जाती हैं। फिर जब अनुभव जरा बढ़ता है, यह सब तिलिस्म की तरह टूट जाता है। आज ही तुम्हारे जैसा रुख अपनाकर उसके बचपने को खत्म कर सकता हूं। पर किशोर मन पर लगी चोट कितनी मार्मिक होती है, समझती हो न।'

दीदी की हां के साथ उनके कंधे को थपथपाकर उन्होंने मुझे इतने जोर की आवाज दी थी कि मैं टंकी की ओट में और दुबक गयी थी। एकाएक मुझे लगा था—मेरा बचपन कहीं दूर भाग गया है और मैं बहुत बड़ी हो गयी हूं! उस दिन के बाद मेरा व्यवहार कितना सीमाबद्ध हो गया था, इसे मैं ही नहीं, वे लोग भी समझ गये थे।

उस दिन जब जीजाजी घर से विदा हो रहे थे, मैं ऊपर अपने कमरे में चादर से मुंह ढंके ही पड़ी रही—यह जानते हुए भी कि मुझे नीचे न देखकर वे ऊपर आयेंगे। और फिर वही हुआ, जिसकी प्रतीक्षा थी।



चित्र : प्रमोद यादव

जीने पर से आती एक धीमी पदचाप स्पष्ट सुनाई पड़ी। मेरी चादर को एक झटके से हटाकर जीजाजी बोले—'सारा घर ढूंढ़ मारा, कैकेयी कोप-भवन में नजर आयी! हमें क्या पता था साली सा'ब हमसे ही नाराज हैं!' इतने दिन से मान-अभिमान जो कुछ हृदय में संजोया था, एक झटके से वह निकला था। न जाने कितनी देर मैं सुबुक-सुबुककर रोती रही। अंत में अपनी सुपुष्ट हथेली से मेरे आंसुओं को पोंछकर उन्होंने सहज ममत्व से एक बार मेरी पीठ थपथपायी और नीचे उतर गये।

उन दिनों मैं अपना समस्त शब्दकोष जीजाजी को चिट्ठी लिखने में खर्च कर देती थी। जवाब में आती थीं कुछ नन्ही-नन्ही पंक्तियां। धीरे-धीरे पत्र-व्यवहार का सिलसिला भी सिमट गया। यहां तक कि हमारे और शांतादी के रिश्तों में भी एक हद तक दूरी आ गयी। पर संबंधों के बीच बिखराव और कड़वाहट का सिलसिला तब शुरू हुआ, जब सुना कि जीजाजी ने ग्लास-फैक्टरी के वरिष्ठ अधिकारी के पद से इस्तीफा देकर आगरा के ही एक इंटर कालेज में लेक्चररशिप ले ली है। उस दिन घर में जो कुहराम मचा था, आज भी मुझे याद है। जीजाजी के रिज़ाइन कर देने-भर से लगता था, पापा के ही स्टैंडर्ड में कोई फर्क आ गया है। शांतादी की चिट्ठी को फाड़कर उन्होंने दूर फेंक दिया था और जोर-जोर से अपनी छड़ी पटकते हुए बरामदे में टहलते और बड़बड़ाते रहे थे—'अपने आपको इन्टलेक्चुअल समझते हैं! शांता की मां, आजकल इन लड़कों पर यह नया भूत सवार हुआ है बौद्धिक कहलाने का। साले सबके-सब स्यूडो-इन्टलेक्चुअल हैं।'

इसके बाद कितनी ही चिट्ठियां पापा-अम्मा ने उन्हें डाली थीं, नौकरी छोड़ने की कैफियत मांगी; पर जीजाजी का दो लाइन का जवाब आ गया था—'हर नायाब चीज के लिए कोई कीमत चुकानी पड़ती है; और वह मैं नहीं कर सका। इसे ही मेरी मजबूरी या कैफियत समझ लीजिये।'

इसके बाद भी पापा ने कई जगह जीजाजी के लिए सिफारिश की, दौड़-भाग की। पर उनका पत्र आया—'मैं अपनी जॉब से पूरी तरह संतुष्ट हूं, आप व्यर्थ चेष्टा न करें।' हारकर पापा ने अपनी तरफ से चेष्टा छोड़ दी, पर गुस्सा उतरा शांतादी पर। एक अरसे तक पापा ने उन्हें घर आने को नहीं लिखा। लंबे अंतराल के

जब दीदी अकेली ही घर पर आयीं तो मैंने उनसे जीजाजी के न आने के बारे में पूछा तो रूखा-सा जवाब मिला—'वे आ जाते तो बच्चों को कौन देखता ?' ज्यादा कुछ पूछना चाहकर भी मैं नहीं पूछ पायी। इस लंबे अंतराल में शांतादी में जो परिवर्तन आ गया था, वह मेरी ही नहीं, अम्मा-पापा की नजरों से छिपा नहीं था। लेकिन मुझे पापा के व्यवहार को देख आश्चर्य होता था। कैसे कोई अपनी ही बेटी से ऐसी विरक्ति दिखा सकता है ? पापा भी अब ऐसा मनहूस मुंह बनाये रहते थे कि उनसे बात करने में भी लगता था उन्हें डिस्टर्ब कर दिया है।

दीदी के आने के बाद से घर के वातावरण में जो कटा-कटापन या मनहूसी आ गयी थी, मुझे बुरी तरह खल रही थी। एक दिन इस खामोशी को तोड़ने के लिहाज से मैं न जाने क्या-क्या किस्से दीदी को सुनाने लगी थी, बिना इस बात की परवाह किये कि उनमें से कितना वे सुन रही हैं—कालेज में फर्स्ट डे में क्या हुआ, लड़कों ने कैसे मेरी रैगिंग की, किस लड़के ने मुझ पर क्या कमेंट किया; सभी कुछ मैं बखान कर रही थी कि मेरी बात का क्रम तोड़ते हुए शांतादी अम्मा की ओर मुंह करके बोलीं-'अम्मा, मीनू के लिए कोई लड़का देखो।' चाय के कपों को उठाती हुई अम्मा बोलीं-'हां देख रहे हैं। सोच-समझकर ही इस बार धोखा नहीं खाना है।'

बहुत देर तक शांतादी की आंखों में कुछ तरल-सा चमकता रहा। मैंने ही उनका हाथ पकड़कर कहा—'चलो शांतादी, ऊपर चलें।'

उस दिन शांतादी का हाथ पकड़कर ऊपर ले जाते हुए, मुझे लगा जैसे मैं उनसे कई बरस बड़ी हो गयी हूं। निढाल-सी दीदी मेरे पलंग पर बैठ गयी थीं। मैंने उनका सिर अपने कंधे पर टिका लिया था। उम्र का फासला कहीं दूर सिमट गया था। उनके आंसू मेरे कंधे को भिगो रहे थे। उस दिन घंटों हम यों ही बैठी रहीं। मौन ही हमारी भाषा और मौन ही संभाषण। अंत में मैंने पूछा था—'ऐसी क्या मजबूरी थी शांतादी, जो जीजाजी ने उस नौकरी से रिज़ाइन कर दिया ?' संयत रहने की चेष्टा करते हुए दीदी ने कहा था—'बहुत बड़ी मजबूरी थी मीनू, तुम नहीं समझोगी। वे सिद्धांतों में विश्वास रखने वाले लोगों में हैं।' दूसरे दिन शांतादी अचानक आगरा लौट गयी थीं।

एक बार फिर शांतादी काफी दिनों को खो गयी थीं। उनके पत्रों से बस इतना ही पता चलता रहा कि अब तक वे चार बच्चों की मां बन चुकी हैं। मेरे विवाह के अवसर पर केवल शांतादी और उनका छोटा लड़का टिंकू आये थे। जीजाजी को ढूंढ़ती मेरी आंखें शून्य में भटककर रह गयी थीं। शांतादी ने शुभकामना देते हुए मेरे हाथ में छोटा-सा एक डिब्बा थमा दिया, जिसके ऊपर एक कोने में छोटे-छोटे अक्षरों में लिखा था—'विद लव, आशीष।' बड़े जतन से

खोलने के बाद उसमें रखी डान्सिंग डॉल को मैं बड़ी देर तक निहारती रही थी।

विवाह के बाद अक्सर मैं रोहित के सामने जीजाजी का बखान करने बैठ जाती तो रोहित हर बार मेरा मजाक उड़ाता-'हो गया जीजाजी-पुराण शुरू।' घंटों उनके गुणों का बखान करने के बाद भी मुझे लगता कि रोहित मेरी बात को सीरियसली नहीं सुनता। एक-दो बार जब मैंने उससे इसकी शिकायत की तो हंसते हुए उसने जवाब दिया-'जिस दिन आप जीजाजी की गौरव-गाथा का एंड कर देंगी, उस दिन बंदा समझ जायेगा कि आप मैच्योर हो गयीं।' अभी भी अक्सर वह कह बैठता-'काश, हमारी भी कोई साली होती। वही समझ सकती कि हम क्या हैं।'

....

एकाएक मेरी तंद्रा टूटी। कोई बेदर्दी से कालबेल बजा रहा था। दौड़कर मैंने दरवाजा खोला। सामने रोहित खड़ा था। अंदर आते हुए भन्नाया-'हद है लापरवाही की! घंटे-भर से दरवाजे पर खड़े हैं और इनको खबर ही नहीं।' फिर एक नजर बिखरे हुए सामान पर फेंककर पूछा-'सामान तैयार हो गया?' स्वर को यथासंभव धीमा करते हुए मैंने उत्तर दिया-'डिसाइड ही नहीं कर पा रही हूं, क्या ले चलूं, क्या छोड़ जाऊं।' 'डिसाइड होता कैसे, जीजाजी के घर जो जाना है। यार तुम भी.....' कहते-कहते वह खिलखिला उठा था। आज रात की ही ट्रेन से हमें जाना था। रोहित ने तो कहा भी-'मीनू, टेलिग्राम कर देते हैं।' पर मेरी ही जिद थी-'नहीं, दीदी को सरप्राइज़ देंगे।'

०००

सुबह पौ फटने से पूर्व ही ट्रेन आगरा स्टेशन पर आकर रुकी। हमारा रिक्शा स्टेशन से गुजरकर एक संकरे-से बाजार में आ गया। रात का धुंधलका अभी शेष था। दुकानों के बाहर पतली-पतली खाटों की एक कतार-सी बिछी थी और दिन-भर जरूरत से ज्यादा चौकन्ने रहने वाला दुकानदार वर्ग बेफिक्र होकर सो रहा था। ठीक सामने की मिठाई की दुकान पर पड़ी कढ़ाई को एक कुत्ता बड़े मनोयोग से चाट रहा था। अपनी कल्पना के ताजमहल और इस बाजार को एक साथ रखकर मुझे स्वयं ही हंसी आ गयी। 'सुनो रोहित, आज ही हम ताज और फोर्ट देखने चलेंगे-मैं, तुम, शांतादी और जीजाजी।' रिक्शेवाला शायद मेरी बात सुन रहा था। बीच में ही बात काटकर बोला-'बहनजी, आज काए को जात हौ, कल जइयो, कल टिकस नायं लगैगो। ई जालिम सरकार ने दुई रुपया टिकस कर दओ है।' रिक्शेवाले की अयाचित सहृदयता पर मुझे हंसी आ गयी।

कई अजीब नामों की सड़कों से गुजरता हुआ हमारा रिक्शा खचाक-से एक गली के आखिरी मकान पर रुक गया। ठीक सामने गहरे हरे रंग से पुते दरवाजे पर गौर कर मैंने देखा-चाक से टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट

आशीष त्रिवेदी' लिखा हुआ था । ठीक नीचे बड़ी सफाई से एक खोपड़ी का निशान बना हुआ था–४४० वोल्ट–डेंजर। लगता है शांतादी के ही किसी बच्चे ने मारी हुई चाक से यह कारस्तानी दिखायी है। मुझे निरीक्षण की मुद्रा में छोड़कर रोहित ने दरवाजे से झूलती सांकल ता से हिला डाली । तभी उनींदी-सी आवाज सुनाई पड़ी–'खोल रहे हैं भाई, तोड़ डालोगे ?' 'अच्छा स्वागत हुआ !' भाव में खिसियाकर रोहित दरवाजे से कदम पर खड़ा हो गया । मैं दरवाजे हटकर खड़ी थी ।

दरवाजा खुलते ही मैं थोड़ा पीछे हट गयी। एक हाथ से आंखें मलते और दूसरे से लपेटे हुए जीजाजी ठीक मेरे सामने थे। कभी वे मुझे और कभी पीछे खड़े रोहित को देख रहे थे। मैं चिल्लायी–'जीजाजी, मैं मीनू.....पहचाना नहीं ?'

'अरे तुम ? ह्वाटए सरप्राइज़ ! आओ आओ।'

इन सबके बीच मैं तो रोहित को बिल्कुल भूल गयी थी। 'आप ?' कहते जीजाजी व्यर्थ में सूटकेस को हिलाते-रोहित को देख रहे थे। 'ये रोहित' मैंने परिचय दिया। कसकर जीजाजी रोहित को चिपका लिया। 'गॉड ब्लेस माइ चाइल्ड !' कहते-कहते वे भावुक उठे थे। मैं ऊपर से नीचे तक उन्हें देख रही थी। वही प्रशस्त ललाट, वही उनींदी आंखें और वही भर्रायी हुई आवाज । फिर भी ऐसा कुछ था जो उन्हें बदल-सा गया था । रोहित को अपने से अलग करते हुए उन्होंने बेसब्र होकर कई आवाजें दे डालीं-'शांता-टिंकू-शुभा......अरे भई, कहां चले गये सब ?'

धोती के छोर से हाथ पोंछती शांतादी बाहर आयीं तो एक क्षण को मैं सिहर गयी । फिर उनसे लिपट गयी । मुझे अपने से अलग करती हुई शांतादी ने एक बार ऊपर से नीचे तक मुझे देखा । मुझे लगा, उनके चेहरे पर एक-एक करके कई भाव आ रहे हैं । बड़े अनमनेपन से उन्होंने कहा–'आने से पहले खबर तो कर दी होती ।' फिर जीजाजी की ओर उन्मुख होकर, वे उसी रूखेपन से बोलीं–'बैठाओ इन्हें, खड़ा क्यों कर रखा है।' अभिमान से मेरी आंखों में आंसू भर आये । मुंह फेरकर मैं खड़ी हो गयी ।

जीजी के तीन बच्चे आश्चर्य से हमारी ओर देख रहे थे । दौड़कर मैंने टिंकू को गले से लगा लिया और चुंबनों की बौछार कर दी । 'तुम मीनू मौसी हो न ?'–कहते हुए टिंकू ने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा । टिंकू को छोड़कर सभी बच्चे वैसे ही डरे-डरे-से खड़े रहे । 'भई, तुम लोग गुड़िया और मीकू हो न ?' बच्चों ने एक साथ सिर हिला दिये । 'शुभा कहां है ? अब तो खूब बड़ी होगी ।' मैंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी । पर जिनसे जवाब चाह रही थीं, वे शांतादी कब की वहां से जा चुकी थीं । जीजाजी भी रोहित को लेकर दूसरे

कमरे में चले गये थे।

सामने नजर उठाकर मैंने देखा कि परदे के पीछे से दो आंखें झांक रही हैं। मुझे अपनी ओर देखते देखकर वह दरवाजे से और चिपक गयी। मैंने कमरे में झांककर देखा तो उसकी अस्तव्यस्तता मुझसे छिपी न रही। दरवाजे के पीछे छिप रही शुभा को देखकर लगा, बरसों पूर्व की शांतादी सामने खड़ी हैं। कच्ची उम्र की अबोधता और यौवन की देहरी पर वही सौंदर्य सिमटा खड़ा था, जिसे देखकर नजरें यों ही नहीं फेरी जा सकतीं। 'तुम तो बहुत बड़ी हो गयी शुभा!' पर इससे पहले कि मैं कुछ और पूछती, शांतादी अपनी पूर्व मुद्रा में कमरे में आकर खड़ी हो गयी थीं। 'मीनू, यहां क्या कर रही हो? चलो, रोहित के पास बैठो।' एक पल आंखों ही आंखों में शुभा को कुछ इशारा करके वे मुझे ठेलती-सी बाहर को ले चलीं, तो यहां आने की व्यर्थता मुझे बुरी तरह कचोटने लगी। अपने होल्डाल पर बैठते हुए मैंने गुड़िया को पास बुला लिया। 'भई, मीकू कहां है, उसे तो बुलाओ।' गुड़िया जवाब देती, उससे पहले ही टिंकू मेरे नजदीक आते हुए बोल पड़ा—'उसे तो मम्मी ने दालमोठ लेने बाजार भेजा है।' दस साल की गुड़िया ने मेरी नजर बचाते हुए धीरे-से टिंकू का हाथ दबा दिया।

रोहित अकेला बैठा अखबार पलटता आहटें सुनकर उठने लगा, फिर 'ओह तुम?' कहकर पूर्ववत् पैर फैलाकर बैठ गया। अपने मन-मस्तिष्क में घुमड़ रही लज्जा से उबरने के लिए मैंने पूछा—'जीजाजी कहां गये?' 'गये होंगे किसी काम से, आओ तुम बैठो। क्यों भई, मुंह क्यों बना हुआ है तुम्हारा?' स्वर को यथासंभव धीमा करते हुए मैंने कहा—'मुझे लग रहा है, हमारे आने से कोई खुश नहीं है।' मैं वाक्य भी पूरा नहीं कर पायी थी कि रोहित बोल पड़ा —'अरे भाई, तुम उधर क्यों खड़े हो, इधर आओ न।' आंखें फेरकर मैंने देखा, मीकू कमरे की आड़ में कान लगाये खड़ा है।

शुभा की ओर आकर मैंने पूछा—'दीदी कहां हैं?' सामने की ओर इशारा करके शुभा फिर साज-संवार में व्यस्त हो गयी। रसोई में कदम रखने से पहले ही मुझे लगा, शायद हमारे विषय में ही बातें हो रही हैं। अपनी पदचाप जान-बूझकर मैंने धीमी कर दी। शांतादी, जो कभी धीमे बोलने के लिए विख्यात थीं, जोर-जोर से पूछ रही थीं—'और क्या कहा? मीकू, तूने अपने कानों से सुना था न?' मेरे पीछे क्या मंत्रणा हो रही है, यह जानते हुए भी मैं रसोईघर के दरवाजे पर खड़ी हो गयी। मुझे देखकर शांतादी ने सिटपिटाकर मीकू के हाथ छोड़ दिये। जीजाजी उनके पास ही खड़े आगरा की टिपिकल दालमोठ की फंकियां मारते हुए सारी मंत्रणा का जायजा ले रहे थे। रोहित अकेला है और ये तब से यहां विराजमान हैं, यह सोचकर ही मैं वितृष्णा से भर गयी। 'भई, तुम्हारे आने से बहुत खुशी हुई।' बार-बार उनके

मुंह से निकलते ये शब्द तब मुझे दंश-सा लगे। मैंने जो कुछ कहा था, यह उसका जवाब मिल रहा था।

अपमानित-सी मैं चाय बनाती शांतादी के हाथों की ओर व्यर्थ में ताकती रही। दरवाजे की देहरी से मुझसे बचते हुए जीजाजी रसोई से बाहर निकल गये। दबे स्वर में मैंने कहा–'रोहित को तो आफिस में काम है। दस बजे तक जाना होगा।' मेरी बात को कोई महत्त्व न देती हुई शांतादी बोल उठीं–'तुम तो अभी रुकोगी न?' 'हां दीदी, मैं घर पर ही रहूंगी। तुमसे, जीजाजी से मिले हुए भी तो एक अरसा हो गया। तुम लोगों की बहुत याद आती थी।' मेरी बात की ओर बिना ध्यान दिये दीदी ने सभी बच्चों को आवाज लगायी–'शुभा-मीकू-टिंकू, गुड़िया!' जैसे इस निर्देश के इंतजार में हों, सभी आज्ञाकारी बच्चों-से रसोई के दरवाजे पर आ खड़े हुए। धोती के छोर से कढ़ाई के दोनों कुंडों को पकड़कर दीदी ने ठीक मेरे पैरों के पास इतनी जोर से पटका कि मैं सहमकर पीछे हट गयी। फिर उतने ही वेग से उन्होंने सामने खड़ी शुभा से कहा–'इन सबको नाश्ता दो।' मुझे धकेलती बच्चों की पल्टन अंदर घुस आयी थी।

नाश्ते की प्लेट कमरे में रोहित के सामने रखकर धपर-धपर शांतादी फिर रसोई में घुस आयी थीं। 'तुम यहीं खड़ी हो?' आते ही उन्होंने तोप-सी दाग दी और फिर उसी भन्नायी आवाज में जीजाजी को पुकारा। तौलिये से मुंह रगड़ते हुए जीजाजी सामने आकर बैठ गये। बिना एक भी शब्द के कैसे चाय का एक दौर समाप्त हो गया, पता ही न चला।



चित्र : प्रमोद गणपत्ये

वातावरण की बोझिलता को खत्म करने के लिए रोहित बोला–'मीनू तो दिन-रात आपकी तारीफ करती थी।' 'मेरी या इनकी?'... ऐसा लगा कि शांतादी हवाओं से भी लड़ने को तैयार हैं। जीजाजी की ओर इशारा करके रोहित ने जवाब दिया–'खासकर आपकी।' एक अभेद्य चुप्पी के बाद जीजाजी ने सिर उठाया। एक गहरी नजर मुझ पर डालकर वे चुपचाप उठ गये। 'मैंने ऐसा क्या कहा?' के भाव में रोहित ने मेरी तरफ देखा। मेरे अंदर ही अंदर कुछ चटख गया था। जीजाजी की आंखों में छायी निरीहता मैं सहन नहीं कर पायी।

समय से पहले ही रोहित आफिस चला गया। बच्चे एक-एक कर स्कूल जा चुके थे। मैंने देखा कि घर पहले की अपेक्षा अचानक काफी बड़ा लग रहा है। एक विशाल पलंग पर मैं दीवार से टिककर बैठ गयी। बैठने से पलंग की चादर एक ओर सिमट गयी थी। बड़े पलंग के नीचे

एक बांस की खटिया और तिपाई जुड़वा बच्चों-से छिपे बैठे थे। उन पर न जाने क्या-क्या सामान भरा पड़ा था। शायद हमने यहां आकर शांतादी की बंधी-बंधायी गिरस्ती डिस्टर्ब कर दी थी। यही वजह थी कि विवाह से पूर्व जब-जब मैंने शांतादी से उनके पास जाने का आग्रह किया, तब एक ही जवाब मिला–'चाहो तो आ जाओ।' इस निमंत्रण में कोई आग्रह नहीं था, केवल औपचारिकता थी।

मैं इन्हीं सब यादों में उलझी हुई थी कि शांतादी बालटी-भर कपड़े लेकर सामने आ बैठीं। 'अरे मीनू, अकेली बैठी हो। चलो, मैं यहीं बैठकर कपड़े धो लेती हूं।' पहली बार शांतादी के स्वर में सहजता सुनाई पड़ी थी। मैंने ध्यान से देखा कि जिन सुविकसित केशपाशों को दीदी घंटों सहलाया करती थीं, वे अपना बहुचर्चित रूप छोड़कर पीठ पर पुंछलियों के रूप में सिकुड़ गये थे। उतनी ही बेदर्दी से उन्हें रबर बैंड के कई घुमावों में कस दिया गया था। आंखों के नीचे गहरा मटमैलापन आ गया था और वही हाइ चीक बोन्स जो कि शांतादी की खूबसूरती का दृढ मोहरा था, उनकी दुर्बलता दिखा रहे थे। मुझे बेहद दया हो आयी। क्या हो गया है इन्हें? कहां गया सारा रूप-लावण्य? शायद अम्मा भी आज देखें तो पहचान न पायें।

'दीदी! लाओ, मैं धुलवा दूं।' 'नहीं भाई, नहीं।' कहते हुए उन्होंने बालटी अपनी ओर सरका ली। मैं उपेक्षित-सी फिर अपनी जगह जा बैठी। तभी गोला दागती-सी शांतादी बोलीं–'कितना मिलता होगा रोहित को?' क्या दीदी शिष्टाचार के छोटे-छोटे नियम भी भूल गयीं? जानबूझकर बात का जवाब मैंने 'पता नहीं' में दिया। 'इस नौकरी में तो ऊपरी कमाई भी खूब होगी।' कहती हुई शांतादी खिलखिलाकर हंसी, मानो इससे बड़ा जोक कभी उन्होंने किया ही न हो। स्वर का उपालंभ स्पष्ट हो गया था। जी में तो आया चिल्लाकर कहूं–'दीदी, क्यों दबे स्वर में जीजाजी की ईमानदारी का ढिंढोरा पीट रही हो।' पर उस सच्चरित व्यक्ति को अपनी इन छोटी-छोटी बातों में घसीटना मुझे बेहद बुरा लगा। सो चुप ही रही।

'अम्मा ने तुम्हारे लिए तो ब्याह से पहले ही गैस बुक करवा दी थी। हमें तो भई अभी तक नहीं मिल पायी।'..... उनकी वाणी के तारतम्य को बीच में ही तोड़कर मैं उठ गयी। 'दीदी, मैं थोड़ा आराम कर लूं। सफर की थकान है।' 'क्या बर्थ का रिजर्वेशन नहीं कराया था रोहित ने?' 'रिजर्वेशन तो था।' मात्र इतना जवाब देकर मैं अंदर चली गयी।

शायद यह बच्चों का कमरा था। एक नजर दौड़ाकर मैंने चारों ओर देखा–ठीक मेरे सिरहाने सफेद दीवार पर पेंसिल से नन्हे-नन्हे अक्षर लिखे हुए थे: मीटर =१०० सेंटीमीटर। रोज-रोज याद करने की इल्लत से बचने के लिए पूरा पैमाना दीवार पर उतारा हुआ था। उसी

के पास बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था— गुड़िया चोर है।' शायद यह मीकू की शैतानी है। मैं उठकर बैठ गयी। और बिस्तर से उतरकर मैंने घूम-घूमकर सारी दीवारें देखीं। पास ही में एक मेज पर सुव्यवस्थित ढंग से शायद शुभा की किताबें सजी हुई थीं। मैंने ऊपर रखी इतिहास की कापी उठा ली। प्रथम पृष्ठ पर ही एक फिल्मी हीरो अपने सदाबहार अंदाज में मुस्करा रहे थे। कई फिल्मी गानों की पंक्तियां भी नजर आयीं। कापी यथा-स्थान रखकर मैं बिस्तर पर आ बैठी।

बरसों पहले की वह बात याद आ गयी, जब मैंने और किटी ने दीदी की अनुपस्थिति में उनके कमरे की दीवार पर ० और × का एक खेल खेल डाला था। तब इन्हीं दीदी ने मेरे ही नहीं किटी के भी इस बेहूदा हरकत के लिए कसकर चांटे जमाये थे। बचपन की खट्टी-मीठी यादों में खोयी मैं सो गयी और जब आंख खुली तो देखा सारे बच्चे आ चुके हैं। पिछली सभी बातों को भुलाते हुए मैं टिकू से बातें करती रही। रोहित के आते ही बच्चे मेरे पास से उड़न-छू हो गये। कुर्सी को आंगन में डालते हुए रोहित ने मुझसे कहा—'इन बच्चों से तो मिलवाओ, न जाने कहां भाग जाते हैं!' कई बार आवाजें देने पर मीकू, गुड़िया और शुभा बाहर आये। बड़ी देर तक झूठे-सच्चे मनगढ़ंत किस्सों से रोहित सबको हंसाता रहा। बाल-सुलभ हास्य से चमकते हुए उनके छोटे-छोटे गुलाबी मुखड़े मुझे

एकाएक मेरी दृष्टि शुभा पर ठहर गयी। अपने आस-पास से बेखबर वह एकटक रोहित की ओर निष्पाप मुग्ध दृष्टि से ताक रही थी। सहसा मुझे वह बहुत अपनी-सी लगी। न जाने क्या सोचकर मैंने पुकारा—'शुभा!' पलटकर मेरी ओर वह ऐसे देखने लगी, मानो किसी विशाल सागर में तैरते हुए उसे मैंने डिस्टर्ब कर दिया हो। 'शुभा, तुम किस क्लास में हो?' 'हाइस्कूल!' बरसों पूर्व की मीनू एकाएक मेरे सामने आ खड़ी हुई थी।

तभी मुझे रोहित ने सहसा टोका—'क्या सोच रही हो मीनू, जीजाजी आते होंगे। ताज नहीं चलना?' सारे बच्चे खुशी से उछल पड़े थे। 'मम्मी, हमारे कपड़े निकालो, हम ताजमहल जायेंगे।' बच्चों की भागम-भाग के बीच देखा, जीजाजी आंगन के एक कोने में साइकल टिका रहे हैं। 'आप आ गये जीजाजी, चलिये जल्दी तैयार होइये।' मेरी यह बात सुनकर ही शांतादी रसोई से बाहर आ गयीं, पूछा—'क्या प्रोग्राम बन रहा है?' मैंने आश्चर्य से कहा—'तुम्हें नहीं मालूम? हम लोग ताज चल रहे हैं।' शांतादी, जीजाजी दोनों के मुंह से एक साथ निकला—'पर आज तो वहां टिकट लगेगा। कल जाना, शुक्र को टिकट नहीं लगता।' सुनते ही मेरा मुंह उतर गया। बच्चे बिना किसी आक्रोश के चुपचाप अपने कपड़े वापस रख आये। बेसाख्ता मेरे मुंह से निकल गया—'दीदी, दो रुपये



के टिकट के लिए तुमने सबका प्रोग्राम खत्म कर दिया।' शांत स्वर में जीजाजी बोले–'हमारे पीछे आप लोग क्यों अपना प्रोग्राम खत्म करते हैं। जाइये–जाइये, देर क्यों कर रहे हैं।'

एक क्षण को मेरा ही नहीं रोहित का भी मुंह उतर गया। बात की कड़वाहट को खत्म करने के इरादे से वह बोला–'बच्चों को तो भेज दीजिये।' सारे बच्चे आशा-भरी निगाहों से हमें देख रहे थे। मैंने अंदर जाकर शांतादी के बजाय जीजाजी से पूछना बेहतर समझा। जीजाजी आराम-कुर्सी पर आंखें बंद कर लेटे थे। एक क्षण उनके चेहरे को देख मैं व्यथित हो उठी। सब कुछ वही, पर कहां गयीं वह प्रफुल्लता? न जाने कितनी वेदनाओं की क्लांति छायी हुई थीं। आंखें मानो असह्य बोझ को ढोते-ढोते भारी हो गयीं थीं। एक हाथ माथे पर टिकाये वे जाने कहां खोये हुए थे।

धीमे स्वर में मैंने कहा–'जीजाजी!' आंखें खोलकर उन्होंने ताका। अधमुंदे नेत्रों में छायी वेदना छिपी न रही–'कहो।' मैंने धीमे स्वर में पूछा–'इन बच्चों को हम ले जायें?' एक क्षण मेरी ओर देखकर उन्होंने दूसरी ओर मुंह फेर लिया। पल-भर पूर्व की बेचैनी कहीं दूर खो गयी थी; विरक्ति के भाव में उन्होंने कहा–'नहीं, बच्चे नहीं जायेंगे।' मेरे मुंह पर चांटा-सा

ना। चुपचाप मैं बाहर निकल आयी। रोहित ने मेरा मुंह देखकर कहा–'चलो आज ताज को गोली मारो, घर में ही गप-शप करेंगे।' 'नहीं, मैं आज ही जाऊंगी।' मैंने अपने स्वर को इतना ऊंचा करते हुए कहा कि पीठ फेरे लेटे जीजाजी के कानों में किसी प्रकार पहुंच जाये। और जैसे-तैसे कपड़े पहनकर मैं तैयार हो गयी।

एक नजर उठाकर मैंने देखा, अभी भी बच्चे आशा-भरी निगाहों से मुझे देख रहे थे। एक क्षण को अपनी जिद पर मुझे अफसोस हुआ। पर दूसरे ही क्षण बिना किसी ओर देखे, मैं बाहर निकल आयी। गली से निकलकर रिक्शे में बैठते ही लगा, रोहित कुछ पूछना चाहता है। समझते हुए भी मैं चुप रही। जिस व्यक्तित्व को शब्दों के अनेकानेक आभूषणों से सजाकर मैंने रोहित के सामने निरूपित किया था, उसके टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरने की पीड़ा मुझे काफी अंदर तक झकझोर रही थी। रोहित ने मेरी ओर सीधे देखते हुए कहा–'मीनू, तुम्हें टिकट की बात बीच में नहीं लानी चाहिये थी। यह गलत हुआ।' 'हां, कहते-कहते मेरी आंखें भर आयीं। मेरे हाथ को अपने हाथ में लेते हुए उसने कहा–'जिसे हम अपनी जिंदगी में सबसे ज्यादा प्यार करते हैं, इज्जत देते हैं, उसके सामने हम हमेशा सुपीरियर बने रहना चाहते हैं। इसीलिए अपनी मजबूरियों को हम झूठे अभिमान का आवरण पहनाकर प्रकट करते हैं, शायद इस आशंका से कि हमारी जो इमेज हम चाहने वालों के हृदय में है, खंडित न हो जाये।'

मौन भावों के आदान-प्रदान के साथ-साथ हम घंटों ताजमहल के पीछे की लंबी-लंबी मीनारों के तले अपने में खोये-से बैठे रहे। हाथ का सहारा देकर उठाते हुए रोहित ने कहा–'मीनू, हम कल ही वापस चलेंगे।' 'क्यों?' मैं अनायास पूछ बैठी। रोहित ने और भी सहज स्वर में कहा–'मीनू, अगर कोई नहीं चाहता तो हमें क्या हक है कि हम उसकी अंदरूनी जिंदगी में दखल दें।' 'शायद यही ठीक होगा।' कहकर मैंने राहत की सांस ली। पूरी तरह घिरी हुई रात और शुभ्र चांदनी बरसाते आकाश के तले चलना मुझे बेहद अच्छा लग रहा था। जी चाहता था, समय यों ही ठहर जाये।

अनगिनत खुशियां अपनी स्मृतियों में संजोये हम घर आ गये। 'बहुत देर कर दी!' दीदी के स्वर की आतुरता मुझे बहुत अपनी-सी लगी। रोहित ने हाथ में पकड़े मिठाइयों के पैकेट शांतादी को थमा दिये। हम सब साथ खाना खाने बैठे तो चार-पांच सब्जियों, रायते और पूड़ी-कचौड़ी को देख मैं संकुचित हो उठी। 'इतना सब करने की क्या जरूरत थी!' कहने को तो मैं कह गयी, पर बाद में मैंने शब्दों को तोला; कहीं अनजाने में ही मैं फिर ऐसी कोई बात न कह जाऊं कि इन लोगों को बुरा लगे।

'कैसा लगा ताज?' बड़ी देर बाद

जीजाजी के मुंह से शब्द निकले थे। रोहित ने प्रशंसा की झड़ी लगा दी। पर जीजाजी ने स्वर में भरपूर तल्खी भरते हुए कहा– 'खूबसूरत क्यों नहीं होगा?.....गरीबों का खून चूसकर बनायी गयी इमारतें होती ही आलीशान हैं।'

रात-भर अपने बगल के कमरे से आती शांतादी और जीजाजी की तेज-तेज चख-चख, जिसका केंद्र हम थे, मेरे कानों को बींधती रही। जीजाजी का तेज स्वर सुनाई पड़ रहा था–'तुम्हारे घरवाले तो यहीं देखने आते हैं न कि हम कैसे रह रहे हैं, मैं उनकी बेटी को कितने कष्ट दे रहा हूं?' 'चुप रहो.....मीनू सुन लेगी।' शांतादी के चीखने का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था। न चाहते हुए भी मेरी दबी सिसकी निकल पड़ी। न जाने कब तक मैं चादर में मुंह छिपाये अपने आंसू पोंछती रही।

सुबह जल्दी से जल्दी उठने की अपनी तरफ से मैंने पूरी कोशिश की। कमरे से निकलते ही जीजाजी पर नजर पड़ी। देहरी पर रखे कप-प्लेटों को बड़े मनोयोग से धोने में लगे हुए थे वे। मुझे सामने देख एकदम हड़बड़ाकर खड़े हो गये। खिसियायी हंसी हंसते हुए बोले–'बड़ी जल्दी उठ गयी मीनू!' शायद मेरे मन में आये भाव को वे समझ गये थे। निरर्थक हंसी को और तीव्र करते हुए बोले–'तुम्हारी ही बेड-टी का इंतजाम कर रहा था।'

'आज मुझे जल्दी जाना होगा शांता, जरा शेव के लिए पानी तो देना।' कहते हुए जीजाजी दीवार में बने आले के ठीक सामने खड़े हो गये थे। टूटे कप में बार-बार ब्रश डुबाते हुए वे कनखियों से देख रहे थे कि रोहित तो नहीं सोकर उठा। और जब रोहित उठा तो जीजाजी अपनी साइकल ठेलते हुए बाहर निकल गये थे। चलते समय शांतादी ने सामान की एक लंबी लिस्ट और दो बेडौल थैले साइकल के हैंडल के दोनों ओर लटका दिये थे।

रोहित ने उठते ही कहा–'मीनू, चलो तुम भी तैयार हो जाओ। शांतादी, हमारा खाना आज तैयार नहीं करियेगा, आज एक दोस्त के घर लंच पर जाना है।' एक गहरी सांस ले शांतादी चुप रह गयीं।

घर से बाहर निकलते ही मैंने पूछा– 'आज किसके घर लंच है?' 'किसी के घर नहीं भाई, आज का खाना बाजार में खा लेंगे।' 'पर क्यों?' मैंने खीझकर पूछा। 'कल डिनर पर जो तामझाम देखा था, उससे तुम्हें महसूस नहीं हुआ कि वे जरूरत से ज्यादा खर्च कर रहे हैं? सामान्य मध्य-वर्गीय परिवार में एक समय का खाना इतना रिच नहीं होता, मीनू। फिर रात को जो कुछ हुआ, उसे तो तुम सुन ही चुकी हो।' मैंने आश्चर्य से पूछा–'तुम उस समय सोये नहीं थे?' 'अगर सो जाता तो चादर के अंदर से आती आपकी सुबुक-सुबुक कौन सुनता?' कहते हुए रोहित जोर से हंस पड़ा। रोहित से भी उनकी आर्थिक विपन्नता छिपी नहीं रही, यही सोचकर मैं शरम से गड़ी जा रही थी।

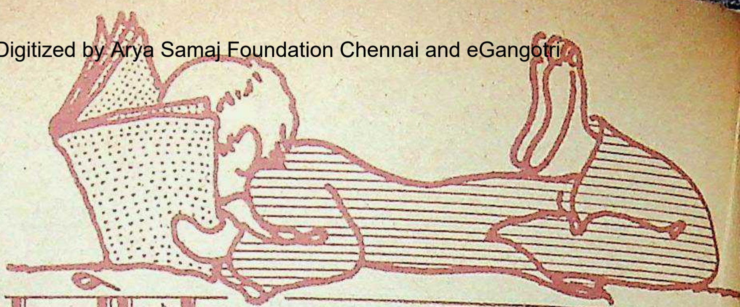
…मैंने ही तुम्हें यहां ठहरने को मजबूर किया। मुझे नहीं मालूम था यह सब …।' 'मीनू, याद है न, जब-जब तुम दीदी-जीजाजी से मिलने की जिद करती थीं, मैं चुप रह जाता था। कभी सोचा क्यों? बात जरा किताबी लग सकती है पर मीनू, जिस अनुभव को हम पूरे मन के साथ महसूस कर चुके हों, उसकी स्मृति ही सुखद होती है। उसे पुनः अनुभव करने का यत्न निराश करता है। खैर छोड़ो, आज रात को तो हम चल ही रहे …' मैंने कृतार्थ-भाव से रोहित को देखा। … के एक चाइनीज रेस्टोरेंट में लंच … साथ लगे एम्पोरियम से हमने सभी बच्चों के लिए ढेर सारी चीजें खरीदीं। … निरर्थक इधर-उधर घूमते रहे। जब घर पहुंचे तो बच्चों ने सहज उल्लास से घेर लिया। सारे बच्चों को उनकी … थमाकर मैंने छोटा-सा केस शुभा … दिया। 'यह तुम्हारे लिए रोहित लाये …' सारे बच्चे शुभा की चीजें देखने को … आये थे। केस खोलते ही वह विस्फा… नेत्रों से कभी मुझे देखती रही, कभी … को। रोहित ने पूछा–'क्यों शुभा, … नहीं लगा?' 'नहीं, बहुत अच्छा है,' … वह चुपचाप कमरे में चली गयी। … शायद जीजाजी थे। मैं भी साथ-साथ आकर खड़ी हो गयी थी। अपने पापा के सिरहाने खड़ी होकर शुभा ने धीमे-से …'पापा, यह हम ले लें?' 'जरा इधर … करो तो, बेटे!' कहते हुए उन्होंने लाल रंग के शो-केस से नाजुक-सी कलाई-घड़ी निकालकर शुभा के हाथ पर बांध दी। शुभा फौरन शांतादी के पास दौड़ गयी थी। जीजाजी ने फिर मेरी ओर एक नजर देखा–उसमें कृतज्ञता थी या निरीहता, समझ नहीं सकी मैं। 'तुम लोग इतना सब क्यों कर रहे हो?'.......

मैंने उनकी बात का सीधा उत्तर न देते हुए कहा–'आज रात की ट्रेन से हम वापस जा रहे हैं। पता नहीं फिर कब मिलना हो, शायद आप हम लोगों से मिलना ही न चाहें। यही सोचकर ये छोटी-मोटी चीजें ले आयी थी। कम से कम बच्चे याद तो करेंगे कि उनकी कोई मीनू मौसी भी है।'..... कहकर मुझे लगा, कल से मेरे अंदर धीरे-धीरे जो लावा-सा इकट्ठा हो रहा था, वह पिघल पड़ा है। पर 'कुछ और तो नहीं कहना?' कहकर जीजाजी ने मेरी आत्मतुष्टि पर पानी-सा फेर दिया। मैं तेजी से बाहर निकल गयी।

हमारे रवाना होने में कुछ ही समय शेष था। दीदी ठीक मेरे सामने खड़ी थीं। 'दो-तीन दिन और रुक जातीं मीनू।' इस निमंत्रण में कितना आग्रह है जानते हुए भी मैंने हंसकर कहा–'रुकना तो बहुत चाह रही थी, पर रोहित को छुट्टी नहीं है।' पर मुझे मालूम था कि आफिस जाकर रोहित को अपनी चार दिन की छुट्टी कैन्सल करानी पड़ेगी।

सूटकेस वगैरह लेकर मैं बाहर आ

[शेष पृष्ठ १५७ पर]



ग्रंथलोक

समीक्षक : पृथ्वीनाथ शास्त्री

* कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी * मुकन्दीलाल; १०७ पृष्ठ; ७ रुपये।

*राजेन्द्रप्रसाद * कालींकिंकर दत्त; अनुवाद प्र. च. ओझा मुक्त; ३२३ पृष्ठ; ९ रुपये। दोनों के प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली—१।

'कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी' शतवार्षिकी पर प्रकाशित पुस्तक है। आचार्य ह. प्र. द्विवेदी ने अपनी भूमिका में एरिक गिल का एक उद्धरण दिया है, जिससे स्पष्ट है कि आनन्द कुमारस्वामी साहित्य, जीवन, धर्म, कला, ज्ञान के भंडार तो थे ही, वे अपनी उदारता के लिए भी विख्यात थे। श्रीलंका में जनमे, इंग्लैंड में पढ़े-लिखे और अमरीका में बहुत वर्षों तक कार्यरत आनन्द कुमारस्वामी को प्रकाशकीय वक्तव्य में 'सच्चे अर्थों में भारतीय महर्षि और विश्वनागरिक' कहा गया है। लेखक मुकन्दीलालजी उनके दो जीवित शिष्यों में से एक हैं (दूसरे हैं इंडोनेशिया के दुरैराजा सिंगम) और उनकी इस पुस्तक की विशेषता है अपने चरित-नायक के विषय में व्यक्तिगत जानकारी और अतिरिक्त तथ्यों का बेजोड़ संकलन।

डा. कुमारस्वामी की यह बात एकदम सच थी कि 'कलाकार के मानस-पटल पर उदित होने वाला बिंब ही उसकी कलाभिव्यक्ति का मुख्य साधन है।' और यह उनकी राय में 'ध्यानयोग' से संभव होता है। यों वे कला को जीवन की एक प्रक्रिया ही मानते थे।

लेखक को इस कृति में रामायण-महाभारत पर कुमारस्वामी के और नीहाररंजन राय और डी. सी. सरकार के मत तो याद रहे हैं, लेकिन इसी विषय पर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या को वे बिलकुल भूल गये हैं। किंतु कुमारस्वामी के बारे में उन्होंने जो कुछ इस कृति में दिया है, वह सचमुच सुपाठ्य और संग्रहणीय है। विशेष महत्त्वपूर्ण हैं कुमारस्वामी के वे पत्र, जो उन्होंने दुरैराजा सिंगम को लिखे थे।

'राजेन्द्र प्रसाद' में भारत के प्रथम राष्ट्रपति के जीवन और कर्मयोग का लेखा-जोखा

है। लेखक विख्यात इतिहासवेत्ता हैं। सो इस कृति में डा. राजेन्द्र प्रसाद के कार्यों की सराहना ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही की गयी है। किंतु देशरत्न, राजनीतिज्ञ, सेवाव्रती, विद्वान राजेन्द्रबाबू के व्यक्तित्व के और भी कुछ पक्ष थे; उन्हें इस रचना में छुआ ही नहीं गया। मसलन, वे अच्छे भाई, पिता और पति थे; अपने अधीनस्थों और सेवकों से उनके बरताव में कभी दिखावे की गंध भी नहीं रहती थी; वे एक बहुत हमदर्द इंसान भी थे। ये सब पक्ष इस कृति में क्यों छोड़ दिये गये, समझ में नहीं आता। यों पुस्तक पठनीय और पुस्तकालयों में रखने योग्य है। मूल्य बहुत वाजिब है, साज-सज्जा भी अच्छी है।

o

सुवर्णलता * आशापूर्णा देवी; अनुवाद : हंसकुमार तिवारी; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली-१; ४८७ पृष्ठ; २५ रुपये।

आशापूर्णाजी बंगाली परिवारों की कथा के ताने-बाने बुनने में प्रतिभा और संयम का दुर्लभ संयोग कर देती हैं। विमल मित्र के उपन्यासों की तरह उनके उपन्यासों में भी एक अबाध प्रवाह रहता है। उनकी कृतियों में रचनाकार की अपनी गहरी सहृदयता के संस्पर्श से जीवन की छोटी से छोटी बातें भी मनोरम हो उठती हैं। 'सुवर्णलता' में भी 'प्रथम प्रतिश्रुति' (इस त्रिक की पहली कड़ी) की तरह वे सारी बातें हैं, जो पाठिकाओं को आकृष्ट करती हैं— ...न, नारी-हृदय के गूढ मनोभावों का आंतरिकता से परिपूर्ण चित्रण और भारतीय नारी की विवशताओं और सशक्त दृढताओं का आलेखन। अनुवाद में तिवारीजी ने बंगला के कुछ शब्द ज्यों के त्यों देकर हिंदी साहित्य की शब्दवृद्धि की है। किंतु अच्छा रहता यदि इन नये शब्दों की परिचिति के लिए टिप्पणियां दे दी जातीं।

o

*** सुंदर और सुंदरियां * पी. सी. कुट्टिकृष्णन् 'उरुब'; अनुवाद: सुधांशु चतुर्वेदी; ५७९ पृष्ठ; मूल्य २५ रुपये।**

*** नरसिंह चिन्तामणि केलकर * रामचंद्र माधव गोले, अनुवाद : आनंद कुशवाहा; ९२ पृष्ठ।**

*** भारतेन्दु हरिश्चन्द्र * मदनगोपाल; अनुवाद: दामोदर अग्रवाल; ६५ पृष्ठ।**

***कल्हण * सोमनाथ धर; अनुवाद: महेन्द्रकुमार वर्मा; ८४ पृष्ठ।**

*** ताराशंकर बंद्योपाध्याय * महाश्वेता देवी; अनुवाद: चन्द्रकिरण राठी; ९१ पृष्ठ।**

*** बंकिमचन्द्र चटर्जी * सुबोधचन्द्र सेनगुप्त; अनुवाद : श्रवणकुमार; ७२ पृष्ठ।**

*** पोतन्ना * दिवाकर्ल वेंकटावधानी; अनुवाद : पांडुरंगराव; ९५ पृष्ठ।**

*** सरोजिनी नायडू * पद्मिनी सेनगुप्त; अनुवाद : म. कु. वर्मा; १०८ पृष्ठ।**

*** नानालाल * उमेदभाई मणियार; अनुवाद : गिरधर राठी; ७५ पृष्ठ।**

*** वेदम् वेंकटराय शास्त्री * वे. वे. शास्त्री (कनिष्ठ); अनुवाद : आइ. पाण्डुरंगराव; ८४ पृष्ठ।**

*** काजी नजरुल इस्लाम * गोपाल हाल्दार; अनुवाद : विनोद भारद्वाज; ८२ पृष्ठ। सभी पुस्तकों के प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली; प्रथम के सिवा प्रत्येक का मूल्य : २.५०।**

'सुंदर और सुंदरियां' व्यक्ति-चरित्र-प्रधान उपन्यास है। अनुभवी लेखक ने अपने पात्रों के अंतर्द्वंद्व पर ही अधिक ध्यान दिया है, उनके आचरण के सामाजिक पक्ष पर नहीं। विध्वंसकारी और उन्मत्त-हृदय लोग भी उसे सुंदर ही लगते हैं, क्योंकि सदाचार, उसकी राय में, मात्र युगधर्म है जो बदलता रहता है। कथानक का कैन्वास मलबार में १९०१-४२ का युग है, जब वहां खिलाफत आंदोलन के वक्त हिंदू-मुस्लिम संघर्ष हुआ और तबाही सिर्फ गरीबों को भुगतनी पड़ी। यों इसमें तीन घरानों की तीन पीढ़ियों के लोगों का जीवन चित्रित है; किंतु उससे समूचे वक्त का पता लग जाता है; सारी तात्कालिक परिस्थितियों के प्रति व्यक्तियों की युगीन प्रतिक्रियाएं मुखर हो उठती हैं; बहुत-से दिलों की धड़कनें एक साथ सुनाई पड़ जाती हैं; और एक साथ ही चार भग्नप्रेमों से हम सहानुभूति कर पाते हैं। इस कृति में हमें जीवन की अजेय शक्ति का साक्षात् परिचय मिलता है। पुस्तक का आवरण-चित्र शीर्षक और कथ्य के एकदम अनुपयुक्त है। किंतु अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है और प्रूफ की अशुद्धियों के बावजूद पाठक को बांधे रखता है।

'भारतीय साहित्य के निर्माता' पुस्तक-माला की ये दस कृतियां शीर्षकों में निर्दिष्ट साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व का संक्षिप्त-सा परिचय देती हैं; इसलिए संदर्भ-साहित्य के रूप में उपयोगी हैं। ये सभी जाने-माने लेखकों की लिखी हुई हैं और अपनी कीमत से कहीं ज्यादा परितोष पाठक को देती हैं। किंतु एक ही व्यक्ति से दो-तीन पुस्तकें न अनुवाद करायी जातीं, तो भाषा और शैली का वैविध्य अधिक उपलब्ध हो सकता था। यह भी अचरज की बात है कि हिंदी के उन्नायक भारतेन्दु हरिश्चंद्र पर (शायद अंग्रेजी से) अनूदित पुस्तक हिंदी में छापी गयी है! क्या इस विषय पर हिंदी में मौलिक रूप से लिखने वालों की कमी थी? आजकल कई भाषाओं के अच्छे जानकार दुर्लभ नहीं हैं। फिर क्यों ये सभी पुस्तकें अंग्रेजी में लिखवाकर भारतीय भाषाओं में अनुवाद करायी जाती हैं? यह बहुत ही बेतुकी स्थिति है—शायद इसमें सुविधा होती हो।

प्रस्तुत पुस्तकों में तीन बंगाली साहित्यकारों पर हैं (काजी नजरुल इस्लाम, ताराशंकर बनर्जी और बंकिमचन्द्र चटर्जी), दो तेलुगु (वेदम् वेंकटराय शास्त्री और पोतन्ना), एक गुजराती (नानालाल), एक इंडो-इंग्लिश (सरोजिनी नायडू), एक मराठी (नरसिंह चिन्तामणि केलकर), एक संस्कृत (कल्हण) और एक हिंदी (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)।

०

*** किशनुली * शिवानी; १२२ पृष्ठ; १० रुपये।**

*** बेगाने घर में * मंजुल भगत; ७६ पृष्ठ;**

...रुपये।

...र्णगन्धा * शैलेश मटियानी; १९१ पृष्ठ;

...रुपये।

...ताजो * शान्ताकुमार; १७५ पृष्ठ;

...रुपये।

...कों के प्रकाशक : सरस्वती विहार, ...नई दिल्ली-१।

...किशनुली' शीर्षक पुस्तक में पहली ...किशनुली का ढांट' शीर्षक लंबी कहानी ...और छह छोटी कहानियां हैं। व्यावसा-...क सुविधा के लिए शायद इसे 'उपन्यास' ...दिया गया है। जैसे, बंगला में दुर्गापूजा ...अवसर प्रकाशित बहुत-सी पत्रिकाओं ...के विशेषांकों में 'संपूर्ण उपन्यासों' की ...आ जाती है, यद्यपि उनमें से कितनी ...रचनाएं मात्र लंबी कहानियां ही होती ...। 'किशनुली' भी ऐसी ही लंबी कहानी ...एक 'कामोन्मादिता' युवती और पथ-...भ्रष्ट हो जाने वाले पहाड़ी पांडे की। शिवानी-...कहानी बहुत अच्छी तरह कहना जानती ...और इसीलिए उनका लिखा सभी कुछ ...पढ़ा जाता है। यह कृति भी इसी बात ...की एक मिसाल है। दूसरी छह कथाएं भी ...और पठनीय हैं।

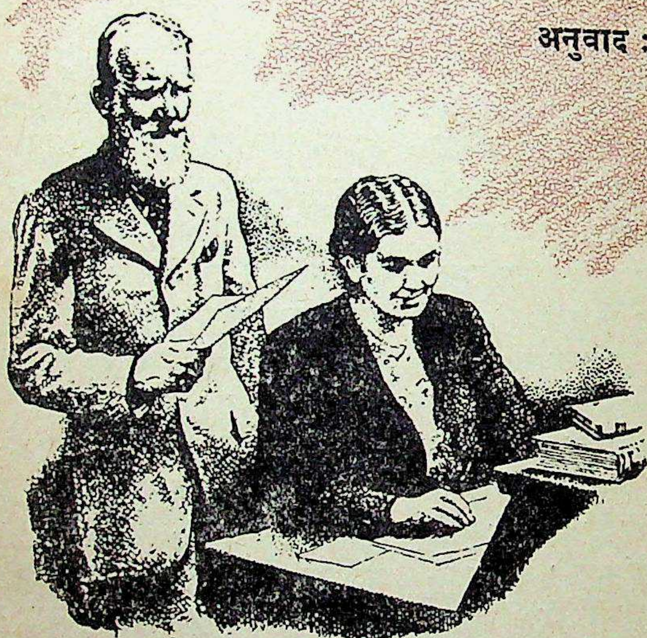
...बेगाने घर में' में मंजुलजी ने भाषा और ...ों की दृष्टि से कमाल किया है। अना-...ही कृष्णा सोबती याद आ जाती है। ...अच्छे, कथानकहीन-से लघु-उपन्यास ...कम हैं हिंदी में। लेखिका को बधाई। ...ही उनके पाठकों की संख्या बढ़ेगी। ...र्णगन्धा' में मटियानीजी ने एक बहुत ...

बड़ी समस्या को अपने इस उपन्यास की वस्तु बनाया है। हरिजन और सवर्ण हिंदुओं के वैवाहिक संबंध शुरू से ही सारे समाज को झकझोरते रहे हैं। आज भी वही स्थिति है। अतः हमारी दुहरी नैतिकता को उजागर करती है इस कृति की कृष्णा मास्टर और गायत्री की जीवन-गाथा। 'जिंदगी भागने की नहीं भोगने की चीज है'—समूचा उपन्यास नायक के इसी एक सिद्धांत-सूत्र से गुंथा है। मटियानी की मंजी हुई कलम हरिजन-सवर्ण-संबंध को व्यापक परि-वेश में आंक सकी है, इसमें संदेह नहीं। कृति प्रशंस्य है। मटियानीजी ऐसे ही कुछ और भी उपन्यास देश के वर्तमान हालात पर लिखें, तो कितना अच्छा होगा।

उनकी हर रचना से हिंदी को कुछ नये सशक्त-सार्थक शब्द मिलते हैं और कुछ हृद्य अविस्मरणीय चरित्र भी। इस कृति के कृष्णा मास्साब और गायत्री उन्हीं में हैं। विशेषतः कृष्णा मास्साब की सूक्तियां सच-मुच संग्रहणीय हैं। कथारस भी कहीं कम नहीं हुआ है इस उपन्यास में। भाषा की रवानी और घटना-वैचित्र्य भी प्रचुर हैं। राजनीति के तथाकथित कर्णधारों और समाज के ढोंगी मुखियों का पर्दाफाश किया गया है। हां, इनके लंबे-लंबे वक्तव्यपूर्ण संवाद अवश्य कुछ रसाभास पैदा करते हैं। शायद यह अनिवार्य था—संगति के लिए। उपन्यास का अंत अवश्य ही कुछ जल्दी हुआ है; किंतु इसका अंतिम निर्णायक तो लेखक ही होता है। [शेष पृष्ठ १५६ पर]

ब्लांश पैच

अनुवाद : सुरजीत



पूरे तीस वर्ष तक जार्ज बनार्ड शा की सेक्रेटरी रहने वाली कुमारी ब्लांश पैच की पुस्तक 'थर्टी इयर्स विद जी. बी. एस.', जिसके कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं, अंग्रेजी की इस कहावत को झुठलाती है कि कोई व्यक्ति अपने सेवक का हीरो नहीं होता; बल्कि आइन्स्टाइन के इन शब्दों की पुष्टि करती है–'हमारे मुखड़ों के सामने आईना पेश करके मि. शा हमें उन्मुक्त कर सके हैं और हम पर से जिंदगी का बोझ कुछ उतार सके हैं, जैसा कि हमारा कोई और समकालीन नहीं कर पाया है।'

बर्नार्ड शॉ के साथ तीस वर्ष

सन् १९३० की ग्रीष्म ऋतु में एक दिन मुझे जार्ज बर्नार्ड शा का पत्र मिला: 'क्या तुम आकर मेरी सेक्रेटरी बनोगी? मेरी जो सेक्रेटरी थीं, वह मुझे धता बताकर चली गयी और शादी कर बैठी।'

फ्लीट स्ट्रीट से सेंट पाल की ओर देखते हुए आज भी मैं यह अनुभव करती हूं कि मेरे जीवन के जो तीस वर्ष जार्ज बर्नार्ड शा के सामीप्य में बीते, निस्संदेह वे मेरे जीवन के अमूल्य वर्ष थे।

जिन सज्जन ने टावर ब्रिज का नक्शा बनाया और जो स्ट्रैंड के प्रदेश से टेम्पल बार को हटाने के लिए जिम्मेदार थे, वे मेरे चाचा और 'गाड-फादर' थे। उनका नाम था-सर होरेस जोन्स। मेरे ये चाचा मरने से पूर्व मेरे लिए एक सौ पौंड छोड़ गये थे। उस रकम की सहायता से मैंने डिस्पेंसरी की ट्रेनिंग प्राप्त की। प्रशिक्षण के बाद मैं डा. डेबनहाम के यहां पहुंची, जो वेल्विन नाम के कस्बे में प्रैक्टिस करते थे। वहीं उन्हीं डाक्टर साहब के यहां काम करते मेरी मुलाकात वेब-परिवार और जार्ज बर्नार्ड शा से हुई।

डा. डेबनहाम के रोगियों में मोली हाल्ट और उनकी बहन श्रीमती रसल भी थीं। वे मेरी हमउम्र थीं और शीघ्र ही हममें गहरे मित्रतापूर्ण संबंध बन गये। उनकी मां प्रसिद्ध 'नौ पाटर बहनों' में से एक थीं। ये 'पाटर बहनें' लिवरपूल के एक सम्मानित व्यापारी रिचर्ड पाटर की बेटियां थीं। इनमें से एक बिएट्रिस पाटर भी थीं। संभव था कि ये बिएट्रिस पाटर साहिबा श्रीमती जोसेफ चेम्बरलेन बन जातीं; पर उन्होंने ज्यादा बुद्धिमानी से काम लिया और सिडनी वेब (लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स के संस्थापक) से विवाह कर लिया।

मोली हाल्ट और उसकी बहन ने मुझे अपनी मौसी और मौसा के बारे में बताया था और जब वे हर्टफोर्डशायर रहने आये मैं उनसे (वेब-दंपति) से मिली। कस्बे में मेरे आवास के दौरान में जार्ज बर्नार्ड शा अक्सर उनसे मिलने आया करते थे। १९१७ की ग्रीष्म ऋतु का कोई दिन था, जब मैं शा से एक गार्डन-पार्टी में मिली।

जार्ज बर्नार्ड शा से मेरी बातचीत डाइनिंग हाल में चाय के बाद हुई। वैसे सत्य यह है कि वे चाय पीने के आदी न थे। बातचीत करने का उनका मित्रतापूर्ण अंदाज मेरे लिए बिलकुल नया और विस्मयकारी था। आप विश्वास करें, उस समय तक मुझे शा के बारे में कुछ अधिक पता न था और तब तक मैंने उनका केवल एक नाटक 'फ़ैनीज़ फर्स्ट प्ले' पढ़ा था।

गार्डन-पार्टी के बाद वेब-दंपति और शा के साथ मैं कस्बे को लौटी और उसके बाद तीन वर्ष तक मेरी जार्ज बर्नार्ड शा से मुलाकात नहीं हो सकी। तीन वर्ष के बाद लंदन में जब मैं उनसे मिली, तो हमारे बीच क्या बातचीत हुई, उसका एक भी शब्द अब मुझे याद नहीं। प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने से कुछ सप्ताह पूर्व १९१८

में मैं लंदन वापस आ चुकी थी।

अस्थायी कंपाउंडर के रूप में कुछ जगहों पर काम करने के बाद मैंने अनुभव किया कि यह पेशा मेरे बस का नहीं। इसलिए लंदन पहुंचकर मैं विमेन्स क्लब में अपनी बहन के साथ रहने लगी थी और विक्टोरिया स्ट्रीट के एक दफ्तर में सेक्रेटरी के का काम प्रशिक्षण प्राप्त कर रही थी। यहीं पर मैंने टाइप करना सीखा। पर शार्टहैंड में मेरी रफ्तार कुछ अधिक न थी; बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि मेरी कोई रफ्तार थी ही नहीं। और सौभाग्य से मुझे शार्टहैंड की रफ्तार बढ़ाने की आवश्यकता भी नहीं पड़ी—इसलिए कि जार्ज बर्नार्ड शा शार्टहैंड में लिखवाने के कायल ही न थे। वे तो पेपीज़ की तरह से स्वयं ही शार्टहैंड में लिखते और पिटमैन-पद्धति का एक सरल रूप काम में लाते थे। इस तरह टाइप करना मेरे लिए बहुत आसान हो जाता था।

श्रीमती वेब की सेक्रेटरी एक बार बीमार पड़ गयीं, तो उन्होंने मुझे बुलाया। पता चला कि शा भी वहां आने वाले हैं। श्रीमती वेब ने मुझसे कहा कि शा से मिलकर तुम्हें निश्चय ही प्रसन्नता होगी। इससे पूर्व वे मुझसे कह चुकी थीं कि पार्लमेंट के सदस्यों को पैम्फलेट बांटने में मेरा हाथ बंटाओ, इसके लिए मैं तुम्हें आधा क्राउन प्रति आधे घंटे के हिसाब से पारिश्रमिक दूंगी। मेरा अनुमान है कि श्रीमती वेब ने यह सिर्फ इसलिए कहा, ताकि वे शा से कह सकें कि मैंने उनके लिए भी काम किया है।

मुझे बाद में पता चला कि ग्रासवेनर रोड पर मुझे निमंत्रित करने का एक उद्देश्य यह भी था कि श्रीमती शा भी मुझे एक नजर देख लें, क्योंकि वे भी वहां मौजूद थीं। फिर जिस प्रकार उस दिन दावत पर शा पति-पत्नी ने मेरा स्वागत किया, उसे मैं जीवन-भर नहीं भुला सकती।

बर्नार्ड शा ने मेरी कोई परीक्षा नहीं ली। उन्होंने पूरी तरह श्रीमती वेब के निर्णय पर विश्वास किया। जब मैंने उन्हें लिखा कि मैं सेक्रेटरी के रूप में बिलकुल अयोग्य हूं और इस काम का मुझे कोई अनुभव भी नहीं है, शायद उन्हें आश्चर्य हुआ। एक सप्ताह के बाद मुझे उनका दूसरा पत्र मिला, जो इस प्रकार था:

१० एडेल्फी टेरेस, डब्ल्यू. सी. २
८ जून १९२०

डियर मिस पैच,

यह जो तुमने अपनी अयोग्यता के बारे में लिखा है, क्या मैं इसे तुम्हारा अंतिम निर्णय समझूं? हालांकि मैं इसे कोई महत्व नहीं देता। तुमसे कम योग्यता वाले लोग भी मेरे साथ मेरी तसल्ली के अनुकूल काम करते रहे हैं। यदि तुम इन्हीं बातों को हमारे बीच बाधक समझती हो, तो इनकी परवाह न करो और चली आओ। मुझे आशा है कि तुम अन्य बातों में निस्संदेह पूरी उतरोगी। मेरी उम्र ६४ वर्ष है और मेरी पत्नी की ६३ वर्ष। स्पष्ट है कि तुम्हारी नौकरी शायद लंबी न हो।

यहां शार्टहैंड का चक्कर, वह तो तुम्हें लगना है ही। और..... जहां तक मेरे शार्टहैंड लेखन का संबंध है, तुम इसे आसानी से समझ लोगी। मैं आम तौर पर बोलकर लिखवाने का आदी नहीं हूं, चूंकि स्वयं ही शार्टहैंड में लिख डालना बोलकर लिखवाने की अपेक्षा मेरे लिए कहीं अधिक आसान है। मेरी पत्नी पर भी तुमने अच्छा प्रभाव डाला है और उसका कहना है कि मैं तुम्हारी किसी भी अयोग्यता को दृष्टि में न रखूं। मैं इस बात पर सहमत हूं कि तुम्हारी यह नौकरी जानी हो। मैं यह भी पसंद नहीं करता कि तुम्हें किसी पुरुष से छीना जाये। रहे.... तुम्हारी ओर से 'न' का शब्द सुनना मैं पसंद नहीं करूंगा, इसलिए यही बेहतर होगा कि तुम 'हां' ही मुझे लिखकर भेजो। देखना, ऐसा न हो कि मुझे यह घोषणा करनी पड़े कि मेरे यहां सेक्रेटरी की जगह पूर्ववत् खाली है।

तुम्हारा—बर्नार्ड शा

यह पत्र मिलने पर केवल यही एक बात मेरे मन में आयी कि यदि अब भी किसी बात पर बर्नार्ड शा मेरे काम से आश्वस्त न हुए, तो उसकी सारी जिम्मेदारी उन्हीं पर होगी; क्योंकि मैं अपनी त्रुटियों के बारे में उन्हें भली भांति अवगत करा चुकी हूं। बहरहाल मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे मुझे छह सप्ताह की मोहलत प्रदान करें। उन्होंने मुझे छह सप्ताह की मोहलत दी और इस तरह जुलाई १९२० में मैंने उनके यहां पहुंचकर सेक्रेटरी का पद संभाला।

वर्षों बाद बर्नार्ड शा ने यह मुझे पत्र-व्यवहार छपवाने की छूट देते हुए उन्होंने निम्नलिखित नोट लिखकर मुझे दिया :

'सेक्रेटरी के रूप में तुम्हें काम करते हुए २८ वर्ष बीत चुके हैं और इस अवधि में मुझे कभी इसका पछतावा नहीं हुआ।

—जार्ज बर्नार्ड शा,

एयट सेंट लारेंस, ७ मार्च १९४९

यह बहुत गर्व करने योग्य सम्मान था, जो मुझे मिला। मैंने एक बार शा से इसका जिक्र भी किया कि लोग कहते हैं कि मुझे यह काम कैसे दिया गया, जबकि मेरे पास कोई उपाधि नहीं है। मेरी यह बात सुनकर बर्नार्ड शा बोले—'तुमने यदि किसी विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त की होती तो मेरे लिए तुम बिलकुल बेकार होतीं।'

स्नातकों के बारे में उनका मत था—'ऐसे व्यक्ति विज्ञान और राजनीति में बिलकुल जाहिल होते हैं। जहां तक सही शिक्षा का संबंध है, पनामा के लाखों आदिवासी उनसे कहीं अधिक उपयोगी और योग्य होते हैं।' विश्वविद्यालयों की उपाधियों के बारे उनका कहना था—'ये उपाधियां महज झूठी और कागज के नुमाइशी पुर्जों से अधिक कुछ नहीं हैं।' वे प्रायः कहा करते—'आक्सफर्ड से तुम्हें तब तक कोई डिग्री नहीं मिलेगी, जब तक तुम विज्ञान की दुनिया से एक सौ वर्ष और इतिहास से सात सौ वर्ष पीछे न होओ।'

'यह पहला नाटक है जिस पर हम दोनों ने मिल कर काम किया।' ये शब्द शा ने 'सेंट जोन' की मेरी प्रति पर अपने हाथ से लिखे थे। शा के कई भक्तों की मान्यता है कि यह शा का सर्वोत्तम नाटक है; पर शा और मैं उनसे सहमत नहीं। 'मैं तो कयामत के दिन ही यह तय कर पाऊंगा, उससे पहले नहीं, शा ने किसी से कहा था, जिसने उनसे पूछा था कि आपकी राय में आपका कौन-सा नाटक सबसे दीर्घजीवी होगा।

—ब्लाश पैंच

बर्नार्ड शा ने ज्यादातर शिक्षा स्वयं ही अर्जित की थीं। जवानी में ब्रिटिश म्यूजियम के वाचनालय में बैठकर वे पढ़ते रहे और अपने मनपसंद विषय के बारे में जो भी जानकारी चाहिये, प्राप्त करते रहे। उनके सोचने का अंदाज बड़ा अनोखा था। याददाश्त भी उनकी अद्वितीय थी। जब उनकी उम्र अस्सी वर्ष से अधिक हो गयी थी और उस उम्र में जब कभी वे कहते कि 'मैं किसी चीज को दस मिनट से ज्यादा देर याद नहीं रख पाता!' तो मैं प्रायः हैरान हुआ करती थी; क्योंकि उनके इस कथन का वास्तविकता से दूर का संबंध भी नहीं था।

०००

डब्लिन से एक दिन मुझे बर्नार्ड शा का पत्र प्राप्त हुआ। उन्होंने लिखा था—'जाओ, और उस कमरे का निरीक्षण करो, जिसमें बैठकर हमें भविष्य में काम करना है।'

१० एडेल्फी टेरेस असल में शार्लट पेन-टाउन्सहेन्ड का फ्लैट था, जिनसे १ मई १८९८ को बर्नार्ड शा ने शादी की थी। वे शादी से बारह वर्ष पहले से वहां रह रहीं थीं। शार्लट के वहां पर रहने का मकसद सिडनी वेब को उनके लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स के काम में मदद देना था। शा-दंपति दूसरी और तीसरी मंजिल के कमरों में रहते थे। रसोईघर तीसरी मंजिल पर था और उसी मंजिल पर हमारा स्टडी-रूम और बेड-रूम भी था।

स्टडी-रूम की ओर शा ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। इस कमरे से टेम्स दरिया, वाटरगेट और हंगरफोर्ड ब्रिज का दृश्य भली भांति देखा जा सकता था। यह एक तंग लंबा कमरा था। उसके एक कोने में बर्नार्ड शा की मेज थी और दूसरे कोने में मेरी मेज। कमरे के हर कोने में पुस्तकें ही पुस्तकें ही थीं। दूसरी मंजिल पर खाने का हाल और ड्राइंग-रूम थे। वहां भी परदा लगाकर शा की पुस्तकों के लिए एक हिस्सा अलग कर दिया गया था। यहां पर ज्यादातर शब्दकोश और विभिन्न प्रकार के संदर्भ-ग्रंथ पड़े थे। इस फ्लैट में कोई गुसलखाना न था। श्रीमती शा गरम पानी से भरी बालटियां अपने कमरे में ले जाया करतीं थीं, ताकि स्नान कर सकें।

एडेल्फी से जाने से पहले मुझे बर्नार्ड शा के साथ काम करते हुए सात वर्ष बीत

...ड। एडेल्फी से निकलकर हम ह्वाइट-
...कोर्ट की चौथी मंजिल के फ्लैट में रहे।
...भवन नेशनल लिबरल क्लब के बिलकुल
...ने में था। इस पर खड़े होकर हम टेम्स
...के दोनों किनारों पर लह-लहाते बागों
...भली भांति देख सकते थे। इस फ्लैट
...दर्जन के लगभग फाइलिंग-अल-
...थीं और विभिन्न विषयों पर
...पुस्तकें और फ्रांसीसी, जर्मन, इता-
...अंग्रेजी और स्पेनी की बाइबलें भी
...थीं। शा के लिखे सभी नाटक और
...विदेशी भाषाओं में अनुवाद तथा
...फर्ड डिक्शनरी की दो भारी-भरकम
...भी यहां रखी थीं। शा ने इन डिक्श-
...को कभी खोलकर भी नहीं देखा
...वे प्रायः कहा करते —'इन्हें देखने
...आवश्यकता ही नहीं पड़ती। मुझे प्रत्येक
...याद है।' तीस वर्षों में मैं उनकी हिज्जे
...एक ही गलती पकड़ पायी। जीवन के
...दिनों में वे millionaire में तीसरा
...लिखना छोड़ जाते थे।

०००

...महायुद्ध से पहले शा-दंपति प्रायः मोटर
...सवार होकर एयट सेंट लारेन्स जाया
...जो हर्टफोर्डशायर में वेलवेन से
...मील दूर था। प्रत्येक सप्ताह शुक्रवार
...शाम को वे वहां जाते और अगले सोम-
...को वापस आते। लंदन के पास की
...में शा-दंपति जब मकान की तलाश
...थे, तभी एक दिन वे घूमते-घामते एयट
...एक स्त्री की कब्र पर जा पहुंचे। समाधि
पत्थर पर उन्होंने यह लेख पढ़ा — 'जेन एवर्सले। जन्म १८१५, मृत्यु १८९५। कितनी छोटी उम्र पायी उसने!'

शा ने समाधि-पत्थर को पढ़कर कहा— 'इसका मतलब है, यहीं मेरा स्थान है।'

शा को एकांत बहुत पसंद था। गांव वालों ने शा के मकान को 'शॉस कार्नर' के नाम से पुकारना शुरू कर दिया। बाद में मालगुजार और स्वयं शा भी यही कहने लगे। मकान के बाहरी फाटक पर उन्होंने उसी नाम की तख्ती भी लगवा दी। श्रीमती शा को यह कभी अच्छा नहीं लगा। वे नहीं चाहती थीं कि राह चलते लोग यह नाम पढ़कर ख्वाहमख्वाह आकर्षित हों।

इस मकान में सात या आठ बेड-रूम थे, एक अध्ययन-कक्ष, ड्राइंग-रूम, डाइनिंग-हाल, नौकरों के लिए दो कमरे और दूसरी मंजिल पर एक बैठक। जब मैं वहां पहुंची तो उनकी हाउस-कीपर का पति माली के रूप में वहां काम करता था। एक ड्राइवर और माली का एक सहायक भी थे।

बर्नार्ड शा ने मुझसे पूछा था कि क्या मैं उनके निधन के बाद वहां रहना पसंद करूंगी। मैं उन्हें कोई उत्तर न दे सकी। शहरी चहल-पहल का अभ्यस्त कोई भी व्यक्ति किसी बेरौनक जगह पर कैसे रह सकता है? तब शा-दंपति सप्ताहांत में ही वहां जाते थे। ज्यादा तो वे विदेशों में घूमते रहते थे। यों श्रीमती शा को पता था कि उनके पतिदेव किसी एकांत स्थान में ही अपना काम भली भांति कर पाते

सर्दी-जुकाम और फ्लू का हमला और उसका मुकाबला

आपके लिए कुछ जरूरी बातें

नर्स नटालिया डिसूजा का बयान है : "सर्दी-जुकाम और फ्लू की पीड़ा से जल्द आराम पाने के लिए एनासिन बड़ी सहायक होती है।"



सर्दी-जुकाम और फ्लू कैसे होते हैं?
ये छूत से फैलने वाले उस विष से होते हैं, जो इन रोगों में ग्रस्त लोगों से हवा में फैलता है। आम तौर से शरीर में उसके मुकाबले की शक्ति होती है। परन्तु ज्यादा मेहनत या कम खूराक के कारण शरीर में कमजोरी आ जाती है और रोग के मुकाबले की शक्ति कम हो जाती है।

रोग लक्षण क्या है?
बदन का दर्द, सर का भारीपन, छींकें आना और नाक बहना, जिसके साथ अक्सर कँपकँपी छूटती है, बेचैनी महसूस होती है और पसीना आता है। उसके बाद खाँसी, गले की खराबी, भूख की कमी और थकावट की शिकायत हो सकती है।

क्या इस से और तकलीफें भी हो सकती हैं?
यदि लापरवाही बरती जाये तो निमोनिया और साँस की ऊपरी नाली में छूत का असर हो सकता है।

एनासिन कैसे सहायक होती है?
एनासिन सर्दी-जुकाम और फ्लू की पीड़ा से आराम दिलाती है। एनासिन तेज असर है—क्योंकि इस में वह दर्द-निवारक दवा ज्यादा है जिसकी दुनिया-भर के डॉक्टर सब से ज्यादा सिफारिश करते हैं। एनासिन पर लाखों लोगों को विश्वास है— क्योंकि यह आपके डॉक्टर की दवा की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। सर्दी-जुकाम या फ्लू के पहले लक्षण देखते ही दिन में चार बार एनासिन लीजिए।

आपको और क्या करना चाहिए?
- उबाला हुआ पानी, सन्तरे या मौसंबी का रस, और पीने के दूसरे पदार्थ काफी पीजिए।
- पौष्टिक आहार खाइए।
- पूरा आराम कीजिए।
- पानी में ऐंटिसेप्टिक दवा या नमक डालकर गरारे कीजिए।
- कमरों को हवादार रखिए।



भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
जेफ्री मॅनर्स के एनासिन विभाग की ओर से

A24-617

* Regd. TM

...वे उन्हें और उनके काम को हर बात ...र्वाह देती थीं।

...ने के बाद बर्नार्ड शा सामान्यतः ...करने के लिए अपने 'शरण-स्थल' पर ...जाते थे; इसे उन्होंने युद्ध के दौरान ...र्षा से बचने के लिए बनवाया था। ...बगीचे के अंदर, घर से केवल तीन ...ट की दूरी पर था। वहां वे किसी के ...हस्तक्षेप के बिना अपना काम जारी ...। नौकरानी मिलने आने वालों को ...र यह कहकर टरका देती थीं कि शा ...पर नहीं हैं। युद्ध के बाद शरद ऋतु ...वे इसका उपयोग नहीं करते थे। तब ...लैट के अंदर ही खिड़की के पास रखी ...पर धूप में बैठे लिखते-पढ़ते थे।

...ज पर जरूरत की सारी चीजें रहती ...। इनमें एक अलार्म-घड़ी भी शामिल ...। यों तो घड़ी उनकी कलाई पर भी ...रहती थी, पर उन्हें अलार्म-घड़ी के ...ने पर ही महसूस होता था कि अब ...हर के भोजन का वक्त हो गया है। ...के बावजूद वे खाने के लिए उठते न थे। ...बार नौकरानी स्वयं वहां पहुंचकर ...खाने के लिए चलने को कहती, या ...घंटी बजाकर खाने के समय की घोषणा ...।

...क्रेटरी रखने से पहले शा स्वयं टाइप ...किया करते थे। इसमें वे दायें हाथ की ...उंगलियों ही से काम लेते थे। मेरी ...के बाद भी विशेष और महत्त्वपूर्ण ...गत पत्र वे स्वयं ही टाइप करते थे, ...

ताकि समय की बचत हो। अपना अंतिम टाइप-राइटर खरीदने के लिए वे स्वयं एक औद्योगिक प्रदर्शनी में गये और वहां उन्होंने सेल्सगर्ल से पूछा—'क्या यह नाटक की पांडुलिपि भी टाइप कर सकेगा?'

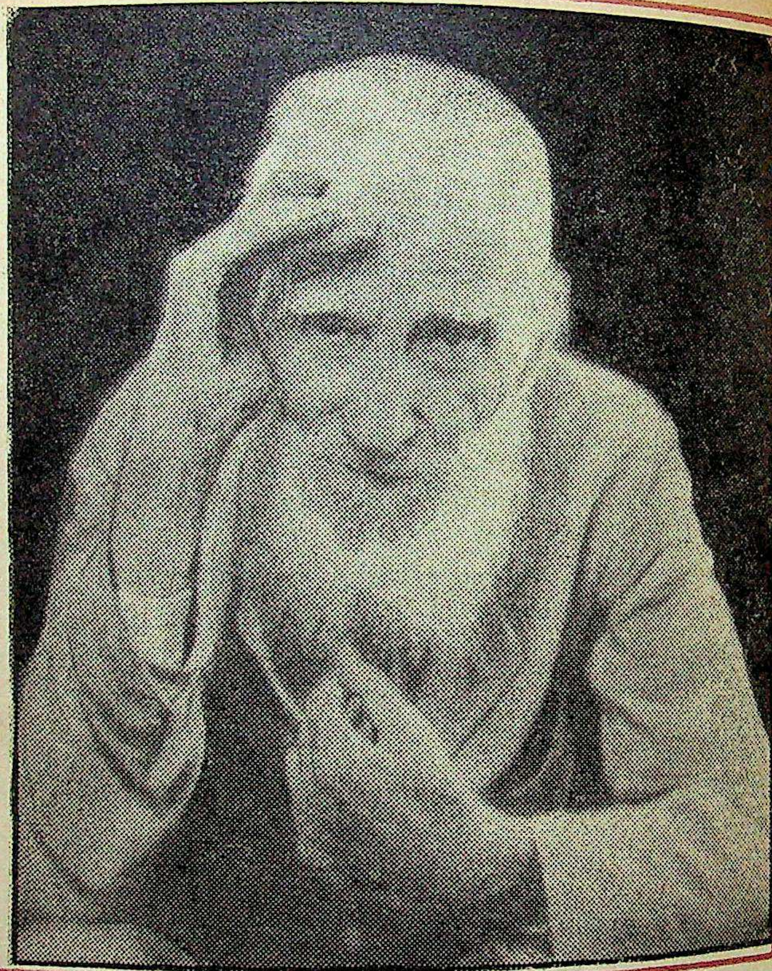
जाहिर है कि यह प्रश्न अर्थहीन था। फिर भी उस युवती ने बहुत ही विनम्रता से उत्तर दिया—'क्यों नहीं सर, यह हर चीज टाइप करेगा।'

वास्तव में वे नये से नये ढंग का टाइप-राइटर खरीदना चाहते थे। रिबन बदलना उन्हें अक्सर झंझट जान पड़ता था। कई बार तो वे अपना टाइप-राइटर अपने साथ लंदन उठा लाते थे ताकि मैं रिबन बदल दूं।

०००

महायुद्ध के बाद बर्नार्ड शा प्रातः नौ बजे से पूर्व नाश्ता करते थे। लेकिन पहले जब लंदन में होते, वे भोर में उठकर 'रायल आटोमोबाइल क्लब' के 'पूल' में तैरने जाते थे। क्लब उनके फ्लैट से काफी दूर था। वे नाश्ते के दौरान हर सुबह 'डेली न्यूज़' पढ़ते थे। पर अंतिम दिनों में 'डेली हेराल्ड' पढ़ने लगे थे। मगर श्रीमती शा सिर्फ 'टाइम्स' पढ़ती थीं।

सुबह ठीक दस बजे वे अपनी मेज पर बैठकर काम शुरू कर देते और बिना रुके दिन के एक बजे तक व्यस्त रहते। दोपहर के भोजन के बाद कुछ देर आराम करते और फिर शाम को ठीक छह बजे अपने अध्ययन के कमरे में जाकर एक घंटा काम करते। वहां से उठकर कपड़े बदलते



और रात का भोजन करते।

श्रीमती शा जब तक जीवित रहीं, वे रात को ग्यारह बजने से पहले सोने के कमरे में पहुंच जाते थे। जीवन के अंतिम दिनों में, वे उन्हीं के कथनानुसार, 'फिर कुंआरे हो गये थे।' कई बार तो वे लिखने का काम खाने के कमरे में भी जारी रखते थे। सामान्यतः भोजन करते हुए वे रेडियो सुनते या पढ़ते रहते। वे आधी रात से पहले कभी सोने के कमरे में नहीं गये। उन दिनों अगर वे कस्बे से बाहर होते, तो टाइप का काम मुझे डाक से लंदन भेजने थे, जिसे टाइप करके मैं वापस भेजती थी।

सबसे कठिन काम जो उन्होंने मुझे

ए वे रेडियो
वी रात से
नहीं गये।
ाहर होते,
लंदन भेजने
जती थी।
न्होंने मुझे
अगस्त

करते भेजा था वह था 'द इन्टेलिजन्ट गाइड टु सोशलिज्म' की पांडुलिपि। कठिन शब्दों की अधिकता थी। इसका 'विमेन्स इन्स्टिटचूट' के लिए दो की पुस्तिका के रूप में हुआ, पर यह लाख शब्दों में पूरी हुई। श्रीमती शा खुल्लमखुल्ला कहती थीं कि वे इसे सुनकर उकता गयी हैं। स्वयं शा बार-कहते थे–'मैं इस बारे में जितना सोचता मेरे मस्तिष्क में उतने ही नये-नये शब्द चले आते हैं।'

जब उन्होंने यह पांडुलिपि पूरी की, तो अच्छी तरह याद है, वे तुरंत मेरे पास और बोले–'तुमने देखा कि मैंने अंतिम पर "समाप्त" (द एंड) लिख दिया मैंने स्वीकृति में गरदन हिलाकर पूछा–शब्द लिखते हुए आपको कैसा लगा?' लगे–'मैंने अपनी कलम मेज पर फेंक और शार्लट (श्रीमती शा) से कहा कि भी खातमा हो ही गया।'

०००

सेक्रेटरी रखने के पूर्व वे अपनी पांडु-अपने हाथ से लिखते थे। 'डाक्टर्स' इस तरह लिखा गया अंतिम नाटक व्हाइटहाल कोर्ट में यह नाटक तीन छोटी-छोटी नोटबुकों की शक्ल अलमारी में मिला। हर नोटबुक में एक-अंक था। हाथ से वे तेजी से नहीं लिख थे। अलबत्ता उनका शार्टहैंड काफी स्पष्ट और सुंदर होता था। वे प्रायः कि हर लेखक को एक मिनट में कम से कम बारह शब्द अवश्य लिखने चाहिये। शार्टहैंड वे इसीलिए पसंद करते थे कि उससे बहुत-सा समय बच जाता है। उनका खयाल था कि कोई भी स्टेनोग्राफर उनका लिखा हुआ शार्टहैंड आसानी से पढ़ सकता है। कई बार तो वे अखबारों को भी अपनी पांडुलिपि शार्टहैंड में ही लिखकर भेजते थे। उसे वहां के स्टेनोग्राफर आसानी से पढ़कर टाइप कर देते थे। वे हर युवा लेखक से कहते कि शार्टहैंड अवश्य सीखो, लेकिन ऐसा शार्टहैंड जिसे तुम जल्दी सीख सको, वर्षों में नहीं।

एक बार शार्टहैंड में उनके लिखे एक शब्द पर मैं काफी देर तक परेशान रही। यह घरेलू समस्या पर लिखे गये एक पत्र में था। वह वाक्य यों था –'द विमेन गॉट नथिंग बट पोर्टर आउट ऑफ इट।' 'पोर्टर' शब्द पर मैंने बहुत विचार किया। इसका एक अर्थ 'कटु मदिरा' है। इससे ज्यादा मैं कुछ न समझी, और अंत में मैंने 'पोर्टर' ही टाइप किया।

इस पत्र पर हस्ताक्षर करते वक्त बर्नार्ड शा कहकहा लगाते हुए मेरे कमरे में आये और उन्होंने मुझसे अपना शार्टहैंड में लिखा मसविदा मांगा। उन्हें स्वयं भी याद नहीं आ रहा था कि उन्होंने 'पोर्टर' ही लिखा था या कुछ और। मसविदा देखने पर पता चला कि उन्होंने भी 'पोर्टर' ही लिखा था। पर यह उपयुक्त नहीं था। अंत में सही शब्द उनके मस्तिष्क में आ गया। वह था 'टॉर्चर'। पिटमैन का शार्टहैंड जानने वाले

हर अवस्था में लिखूं, या लिखूं ही नहीं—दो ही रास्ते मेरे सामने थे; और बाहरी सुविधाओं से अपनी निरपेक्षता मैंने आज तक कायम रखी है। मेरे नाटकों का काफी बड़ा हिस्सा किंग्स क्रास और हैटफील्ड के बीच रेल के डिब्बों में लिखा गया है; और वह उन हिस्सों से किसी भी तरह बुरा नहीं है, जो मैंने स्वेज और पनामा नहरों में लिखे हैं। —बर्नार्ड शा

भली भांति समझ सकते हैं कि यह शब्द लिखने में बर्नार्ड शा से क्या चूक हुई।

यही पहला और अंतिम अवसर था कि उन्होंने मुझसे कहा—'तुम्हारी गलती क्षम्य है और मैं पूरे विश्वास से कहता हूं कि तुम सामान्य स्त्रियों की तरह अपने आप गलत-सलत अंदाज भिड़ाने वाली नहीं हो।'

वे अपनी रचनाएं लिखने में ज्यादातर हल्के हरे रंग के कागज का उपयोग करते थे और नाश्ता करने के बाद से दोपहर के भोजन तक औसतन डेढ़ हजार शब्द आसानी से लिख लेते थे। वैसे यह रंगमंचीय जटिलता पर निर्भर होता था, जिसके बारे में वे अधिक धैर्य से काम नहीं लेते थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा भी था कि मैं बड़ी तेजी और आसानी से 'हैमलेट' के सभी संवाद लिख डालता; पर किसी प्रेतात्मा को प्लाट में लाने के लिए मुझे मुझे बहुत सिर खपाना पड़ता।

यों वे किसी भी लंबे नाटक के संवाद दो महीनों में लिख डालते थे। उन्हें इस बात का विशेष ध्यान रहता था कि शब्द कम से कम, उपयुक्त और ठोस हों। अपने तीस वर्षों के कार्यकाल में मैंने केवल एक बार उनकी हिज्जे की गलती नोट की थी। वे हिज्जों में खास सावधानी बरतते थे।

बर्नार्ड शा अपने मुद्रक और जिल्दसाज से व्यक्तिगत रूप से मिलकर अपनी आंखों के सामने सभी काम करवाते थे। कागज की कीमत भी स्वयं चुकाते थे। टाइप के अक्षर भी अपनी पसंद के लगवाते और प्रेस की मशीनों के पास खड़े होकर स्वयं निगरानी करते कि छपाई कैसी हो रही है। उन्होंने यह तरीका इसलिए अपनाया था कि आरंभिक काल में प्रकाशकों के बारे में उनके अनुभव बहुत कड़वे थे। ब्लैकवुड, चैटो, मैकमिलन, स्मिथ एडलर आदि सभी उनकी पांडुलिपियां ठुकरा चुके थे।

बर्नार्ड शा स्वयं अपने काम की ऐसी निगरानी करते, जैसे मुर्गी अपने चूजों की निगरानी करती है। किसी की भला क्या मजाल कि उनका लगाया हुआ एक कामा भी पांडुलिपि में से हटा दे! शुरू में अपनी रचनाओं पर बनी फिल्मों में भी वे अपना कोई संवाद नहीं काटने देते थे। वे अपनी पुस्तकों के प्रकाशक भी स्वयं ही बन गये थे और अपनी रचनाओं को ज्यों का त्यों छापने का आसान तरीका इसके अलावा कोई नहीं था।

वे प्रूफ भी स्वयं ही पढ़ते। इस तरह उन्हें करोड़ों शब्दों के हिज्जे गौर से देखने पड़ते और कई पृष्ठों पर तो वे अपने गलत

ठीक भी करते। औसतन पंद्रह हजार शब्द वे रोजाना पढ़ते थे। सत्तर वर्ष की उम्र तक शा ने चार करोड़ शब्द तो पढ़े होंगे। तीस वर्षों में एक करोड़ के लगभग शब्द तो मैंने भी टाइप किये होंगे।

'इन्हें भगा दो!' शा के कई आदेशों में एक आदेश हुआ करता था उन लोगों के लिए, जो पुस्तकों पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त करने या उनके किसी नाटक को मुफ्त मंच पर लाने या फिल्माने की अनुमति मांगने आते थे। दर्शनार्थियों और उपदेश सुनने वालों के लिए भी वे यही आदेश देते। कहते कि 'ये लोग शोले से चिनगारी प्राप्त करने के लोभी हैं।' अधिकांश को स्वयं ही मीठा बोलकर चलता कर देते। एक नवविवाहित जोड़े से बातचीत करते हुए एक बार उन्होंने कहा था—'मैं लोगों को दो तरह के पत्र भेजता हूं। एक वे पत्र जो कि मेरी सेक्रेटरी लिखती है, और दूसरे वे पत्र जो कि मैं अपने हाथ से फुरसत में लिखता हूं।' पर शा का यह फुरसत मेरी समझ से एकदम परे था। क्योंकि मैंने उन्हें फुरसत में कभी नहीं देखा। उनके पास इतना फालतू समय कभी नहीं होता कि वे किसी को भी अपने हाथ से पत्र लिखें। यदि थककर कुछ देर सुस्ताने का फुरसत है तो अलग बात है।

पहले वर्ग के व्यक्ति निस्संदेह अपने पत्रों के उत्तर पा लेते थे। पर उनके किसी खास मित्र को कभी कोई उत्तर नहीं मिलता—उनका ध्यान खींचने के लिए कोई

> आइन्स्टाइन के सम्मान में लार्ड राथ्स-चाइल्ड द्वारा आयोजित भोज में शा ने आइन्स्टाइन पर फब्ती कसी कि आपने तो विज्ञान में बड़ा घोटाला कर डाला है। 'तो क्या नुकसान हुआ! वह आपका मामला थोड़े ही है।' आइन्स्टाइन ने भी चुटकी ली।
>
> —ब्लांश पैच

मित्र शादी कर बैठा हो, तो भी नहीं। 'मैं जितना समय लोगों के पत्रों का उत्तर देने में व्यय करूंगा, उतने समय में बीस नाटक आसानी से लिख लूंगा।' वे प्रायः मुझसे कहा करते थे—'और यदि ये लोग शेक्स-पियर के जमाने में भी होते, तो यकीन करो कि वह कभी इतना न लिख पाता, जितना कि वह लिख गया है।'

इस बारे में वे और भी एक बात कहते थे। 'इन सबको उत्तर देने के लिए एक बड़े दफ्तर के अलावा, हमें कम से कम तीस क्लर्कों की आवश्यकता होगी, जो शार्टहैंड और टाइप भी जानते हों।' 'हर व्यक्ति मेरा परिचित है, पर मेरे मित्र बहुत कम हैं।' वे कहते थे।

वे किसी सैलानी से मिलना पसंद नहीं करते थे। कहते—'ये लोग मुझे भी अपने विजिट में इस तरह शामिल करना चाहते हैं, जैसे मैं भी लंदन-टावर, चिड़ियाघर या मैडम टस्साड की प्रदर्शनी जैसी कोई चीज हूं।' ऐसे लोगों को वे 'समय नष्ट करने वाले' की उपाधि से विभूषित करते थे और उनकी किसी भी खुशामद से पसी-

जते न थे।

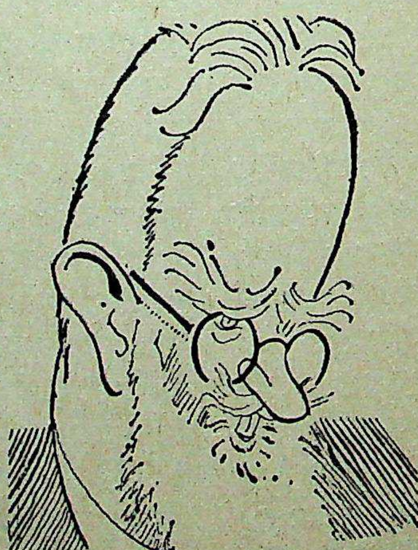
शा की सेक्रेटरी के रूप में मेरे कर्तव्यों में यह भी शामिल था कि मैं उचित और बिलकुल सही किस्म के व्यक्तियों को ही उनसे मुलाकात का समय दूं। लंदन में रहने के दौरान में वे फिर भी सुबह आने वालों से मिल लेते; पर एयट में वे दोपहर के एक बजे तक किसी से नहीं मिलते थे।

'मैं अब काम के लिए जाना चाहता हूं।' वे प्रायः मुलाकातियों के बीच बैठे-बैठे घड़ी निकालकर उस पर नजर डालते हुए कहते और जाने को उठ खड़े होते। अंतिम समय में भी कोई न कोई उनसे मिलने के लिए चला ही आता। 'एकांत ईश्वर का वरदान है।' वे प्रायः कहते थे। अपराह्न में भी वे बहुत कम मित्रों से मिलते थे।

०००

धनप्राप्ति के लिए काम करने में बर्नार्ड शा की बहुत दिलचस्पी नहीं थी। उदाहरणार्थ, जुआ खेलने या स्टाक-एक्सचेंज के बारे में उन्होंने कभी नहीं सोचा था। वे जनता में राष्ट्रीय आय के समान विभाजन के पक्षधर तो थे; पर महज इस हद तक कि हर व्यक्ति की जायज जरूरतें आसानी से पूरी हो सकें। सभ्य संसार की दिखावटों और विलासिता से उन्हें तीव्र घृणा थी। महंगाई से वे स्वयं कभी प्रभावित नहीं होते थे। उनका गुजारा बड़ी आसानी से चलता था और सामान्य लोगों की अपेक्षा उनके खर्च भी कम थे। उनकी निजी आवश्यकताएं बहुत कम और मामूली थीं। इसीलिए उनकी समझ में यह कभी नहीं आया कि महायुद्ध के बाद सारी चीजें महंगी कैसे हो गयीं।

महायुद्ध के बाद चेक लिखते और बिलों पर हस्ताक्षर करते वक्त वे हैरान हो जाते थे कि खर्च क्यों बढ़ गया है, जबकि वे तो पहले की तरह ही जीवन-यापन कर रहे हैं! वे अपने दिमाग में हर चीज की कीमत महायुद्ध से पूर्व की कीमतों के हिसाब से लगाते और यही समझते कि हम सभी विलासितापूर्ण जीवन बिता रहे हैं। महायुद्ध-जनित महंगाई के बारे में उनका एकाउंटेंट भी उन्हें कोई बात समझाने में असमर्थ था। धन के बारे में उनके विचार हम लोगों से बिलकुल भिन्न थे। जब महंगाई के कारण तनख्वाहों में वृद्धि का तकाजा बढ़ा, तो उन्होंने हर व्यक्ति को चार शिलिंग की वेतन-वृद्धि देना स्वीकार किया



बर्नार्ड शा [कैरिकेचर : एडलर]

...जब उन्हें बताया गया कि यह चार ...की वेतन-वृद्धि कोई अर्थ ही नहीं ...ी, तो फिर वे चालीस शिलिंग की ...को तैयार हो गये।

...लू खर्चों के बिलों में से यदि कोई ...एक पौंड या उससे कम का होता तो ...ही पसंद करते थे कि बिल पोस्टल-...र से चुकाया जाये। एक पौंड के चेक ...हस्ताक्षर करना उनकी नजरों में बेव-...थी। एक बार मैंने कहा था कि आप ...चेकों पर हस्ताक्षर करके मुझे ...हाल कोर्ट भेज दीजिये, मैं आवश्य-...नुसार उन पर रकम लिखकर बैंक ...दिया करूंगी। यह तजवीज सुनकर वे ...उठे। उन्होंने मुझसे बहस करते ...यह तर्क दिया कि यदि हम दोनों एका-...मर गये, तो हस्ताक्षर की हुई चेकबुक ...भी हाथ लगेगी, वह तत्काल बैंक ...और भागेगा और सारी रकम ले उड़ेगा।

...बार उन्हें इन्फ्लुएंजा हुआ। इससे ...उन्हें चेचक भी हो चुकी थी, जिसका ...उनके चेहरे पर हुआ था। यही ...था कि वे दाढ़ी नहीं बनाते थे। ...दाढ़ी के बारे में वे प्रायः कहा करते ...ने चेहरे पर घास उगा रखी है। ...भी पालतू जानवर इसे खा सकता है।' ...भी अपनी उम्र के अंतिम कुछ वर्षों ...अपनी दाढ़ी हर तीसरे महीने छंट-...थे। भौंहें तराशने की अनुमति उन्होंने ...नाई को कभी नहीं दी। अंतिम उम्र ...की भौंहें बहुत घनी थीं।

एक दिन एयट में उन्होंने मुझसे पूछा कि कोट के फटे हुए कफों को कैसे ठीक करें। उन्हें अपना एक कोट बहुत ही पसंद था। यों भी महायुद्ध के दौरान कपड़ों की खासी कमी थी और वे नहीं चाहते थे कि वह कोट फेंक दिया जाये। पर वे कफों के गिर्द चमड़ा नहीं लगवाना चाहते थे। मैंने कहा कि कफों के गिर्द फेल्ट लगा दूंगी। मैं यह फेल्ट खिलौने बनाने में इस्तेमाल करती थी, जोकि मेरा प्रिय मनोरंजन है। वे इस पर रजामंद हो गये। उनके कोट का रंग भूरा था और दुर्भाग्य से मेरे पास सिर्फ हरे रंग का फेल्ट मौजूद था। मैंने वही फेल्ट कफों के गिर्द बड़ी नफासत से सी दिया, जिसे उन्होंने बहुत पसंद किया।

एक सुबह वे मेरे पास एक स्कार्फ लाये। उसका रंग नीला था और कफों पर लगे फेल्ट से मेल नहीं खाता था। पर वे उसे हरा कह रहे थे और यह भी कि वह कफों पर लगे फेल्ट से मैच करता है। हरे और नीले रंग में शायद वे भेद नहीं कर पाते थे।

वे कहते—'मैं मुर्दाखोरों (मांसाहारियों) से दस गुना ज्यादा स्वस्थ हूं।' पर शाकाहार और दवाओं के बारे में वे दुराग्रही नहीं थे। एक बार इलाज में जब उन्होंने सूअर के जिगर के एक्स्ट्रैक्ट का सेवन किया और शाकाहारियों में इससे खलबली मची, तो वे बोले—'मैं क्या खाता हूं, क्या नहीं, इसकी इन्हें क्यों चिंता है?' इन लोगों को उनकी सलाह थी—'अपने शाकाहार के बारे में झूठ बोलना, डींग हांकना छोड़ो; सचाई

शा को सुनने के लिए लोग उसी तरह उमड़ पड़ते थे जैसे कि वे लायड जार्ज, होरेशियो बाटम्ली या विंस्टन चर्चिल को सुनने के लिए उनके यश के मध्याह्न-काल में उमड़ा करते थे। फिर भी शा जब-कभी भाषण करने लंदन से बाहर जाते, तो फीस के रूप में सिर्फ जाने-आने का तीसरे दर्जे का रेल-किराया लिया करते थे। सो भी सिर्फ जवानी के दिनों में। जब वे अधिक अच्छी आर्थिक हालत में पहुंच गये, तो रेल-किराया भी अपनी जेब से खर्च करने लगे। एक भाषण के आयोजक ने तीस साल बाद मुझे सुनाया कि जब भाषण के बाद उन्होंने पूछा कि 'शा साहब, हर्जाना क्या देना होगा?' तो शा ने उनके कंधे पर हाथ रखकर उत्तर दिया था—'बच्चा, जीवन में मेरे तीन शौक हैं—कार चलाना, तैरना और भाषण देना। मैं इन शौकों को कभी कमाई का जरिया नहीं बनाता।'

—ब्लांश पैच

से भागो मत।'

न उन्हें डाक्टरों के प्रति ही कोई पूर्वग्रह था। वे बड़े धैर्य से उनके निर्देश सुनते, फिर करते वही जो उन्हें उचित लगता। हालांकि अस्थि-चिकित्सकों, आस्था के बल पर रोग दूर करने वालों और योग-प्रचारकों से वे बहुत प्रभावित होते थे, पर जब डाक्टरों ने उनसे कहा कि उनकी पुरानी एनीमिया की बीमारी सूअर के जिगर के एक्स्ट्रैक्ट से दूर हो जायेगी, तो उन्होंने अपने को डाक्टरों की दया पर छोड़ दिया और डाक्टरों ने छह सप्ताह तक उन्हें कुछ काम-धाम नहीं करने दिया।

यों उनका विचार था कि डाक्टर महज प्रयोग के रूप में आपरेशन करते हैं, जिससे उनका अपना ही लाभ होता है। रहा टीका, वह एक गंदगी-भरा भ्रम है। इसके बावजूद जब कभी वे बीमार पड़ते और डाक्टरों को बुलाया जाता, तो वे प्रतिरोध नहीं करते थे। वे बहुत धैर्यवान रोगी सिद्ध होते और नीरोग होने तक बेहद धैर्य से काम लेते। शायद उनकी लंबी आयु का रहस्य इसी धैर्य में छिपा था। उन्होंने अपनी शाकाहारी खूराक को दीर्घायु का कारण नहीं माना।

शा-दंपति जब कभी देश से बाहर जाते तो शार्लट उनके प्रिय शाकाहारी खानों की सूची अवश्य अपने साथ ले जातीं। उसकी अनेक प्रतिलिपियां तैयार की जातीं। समुद्री जहाज की यात्रा के दौरान शार्लट उसकी एक प्रति जहाज के रसोइये को दे देती थीं और जब कभी वे किसी होटल में ठहरते तो एक प्रति होटल के खानसामे के सुपुर्द कर दी जाती।

'स्वास्थ्य की कुंजी क्या है?' किसी ने एक बार बर्नार्ड शा से पूछा। वे बोले-'स्वास्थ्य विवेक-बुद्धि की सहज क्रिया है।' इसी विवेकीपन के कारण भोजन के बारे में वे कभी हुज्जत नहीं करते थे। वे जो चाहते सहर्ष खा लेते और यदि उनकी पसंद की कोई चीज न मिले तो वे उसके बिना भी गुजारा कर लेते। नाश्ते के लिए वे एक प्रकार के

मुदा 'सीरियल' का उपयोग करते और एक विशेष पेय पीते। यदि वह पेय न मिलता तो काफी पीकर गुजारा कर लेते; और यह काफी बहुत हल्की होती थी।

०००

पत्नी के मरने के बाद उनका यह नित्य-नियम बन गया कि वे सुबह आठ बजे के लगभग उठ जाते, जबकि घरेलू नौकर अभी सोये होते थे। नौकरों को उनका कमरा साफ करने के लिए बहुत कम समय मिलता था। जिन दिनों महायुद्ध चल रहा था, वे नाश्ते के बाद अपने भारी-भरकम बूट पहन-कर बाग में बने 'शरण-स्थल' की ओर चले जाते और फिर दोपहर के भोजन पर नौक-रानी उन्हें बुलाकर लातीं। उम्र के अंतिम दिनों में वे सैंडविच पसंद करने लगे थे। सलाद और कच्ची सब्जियां भी वे शौक से खाते। वे सेब के रस का गिलास भी पीने लगे। पर मैंने उन्हें सादा पानी और चाय पीते कभी न देखा। अंडा वे तभी खाते, जब उन्हें सिवा और कुछ खाने को नहीं मिलता था। अंत में तो वे अंडों से भी ऊब-से गये थे। मैंने उन्हें सादा मक्खन भी खाते नहीं देखा। दोपहर के खाने के बाद से शाम साढ़े सात बजे के ब्यालू तक बीच में वे कुछ नहीं खाते थे। यदि कभी वे घर पर अकेले हों, तब तो चाय का गिलास भी नहीं पीते थे, जो कि चाय पर आने वाले मुलाकातियों के साथ पीते थे। दोपहर को सुस्ताने के बाद वे बाग में जाकर लकड़ियां चीरने लगते। बाद में बुढ़ापे के कारण जब इस काम के योग्य न रहे, तो वे बगीचे में या घर के चारों ओर ही चहलकदमी कर लिया करते थे। रात के भोजन के दौरान वे रेडियो चालू कर देते थे। मेरा खयाल है कि रेडियो वे इसलिए खोल देते थे कि खाते समय कोई उनसे बात न करे।

एक बार प्रसिद्ध फिल्म-निर्माता अल्फ्रेड हिचकाक ने बर्नार्ड शा से कहा–'आपको देखकर महसूस होता है कि देश में अकाल पड़ा हुआ है।' बर्नार्ड शा ने तत्काल उत्तर दिया–'और अलफ्रेड! तुम्हें देखकर मुझे पता चल गया है कि इस अकाल का कारण कौन है।' शा न बहुत खाते थे और न भूखे रहते थे। ९२ वर्ष की उम्र में उन्होंने घोषणा की कि वे मांसाहार के विरुद्ध इसलिए हैं कि इससे मनुष्य की शक्ति लाखों जानवरों, मुर्गियों, मछलियों को पालने और मारने में नष्ट होती है।

यों बर्नार्ड शा जानवरों के संबंध में भावुक भी नहीं थे। वे स्वयं कुत्ते पालना पसंद नहीं करते थे। पर वे प्रायः बताया करते कि उन्होंने ऐसे घर में परवरिश पायी थी, जहां एक कुत्ता भी परवरिश पा रहा था। शायद जानवरों से उन्हें इसलिए प्यार था। वे प्रायः कहा करते–'यदि कभी मैं अकेला रहूं तो कुत्ते से बात कर सकता हूं।'

मैंने महायुद्ध के दौरान सेना के जवानों के लिए बहुत-से दस्ताने बुने थे। इनमें से कुछ दस्ताने मैंने बर्नार्ड शा को दिये थे। ये बिना उंगलियों के थे। उन्हें शा पति-पत्नी दोनों ने पसंद किया और इच्छा प्रकट की

शा की शादी कैसे हुई, इस कहानी के कई रूप प्रचलित हैं। जो रूप मुझे शा ने खुद सुनाया, उसे प्रामाणिक माना जा सकता है। बेहद काम और पैर की तकलीफ के कारण वे फ़्रिट्ज़राय स्ट्रीट पर अपने कूड़ेदाननुमा कमरे में खटिया पर पड़े थे। खबर पाकर शार्लट रोम से भागी आयीं। आते ही शार्लट ने हाइन्डहेड में एक मकान किराये पर लिया, दो नर्सें नियुक्त कीं और आकर शा से बोलीं कि चलकर वहां रहो, ताकि मैं तुम्हारी तीमारदारी कर सकूं। शा ने ही बताया कि इस पर उन्होंने शार्लट से कहा—'जाकर पहले शादी का लाइसेन्स ले आओ। तुम्हारी जो स्थिति है, उसमें किसी अविवाहित आदमी को घर पर रखना तुम्हारे लिए असंभव है।'

—ब्लांश पैच

कि मैं ऐसे अनेक जोड़े विभिन्न कमरों में रख दूं, ताकि जब आवश्यकता हो शा उन्हें पहन सकें।

रात को वे लंबा कोट पहनकर बाहर निकलते। उनका विचार था कि उनका सफेद कोट देखकर कार चलाने वालों को बहुत मदद मिलती है। लेकिन एक व्यक्ति को यह कहते भी सुना गया कि शा को यह कोट नहीं पहनना चाहिये; क्योंकि रात के अंधेरे में मोड़ मुड़ते हुए जब लंबी सफेद छाया दिखाई देती है, तब आदमी अचानक घबरा जाता है कि कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं है।

बर्नार्ड शा सदा सलीके से कपड़े पहनते। कुहरे में हमेशा छतरी लिये रहते। विस्टन चर्चिल की तरह उन्हें भी तरह-तरह के हैट जमा करने का शौक था।

रविवार को भी वे आम दिनों की तरह काम करते। जन्मदिन मनाने से उन्हें चिढ़ थी। शायद वे बढ़ती हुई उम्र को याद नहीं करना चाहते थे। या संभव है, यह समारोह उन्हें रूढ़िवादिता लगता हो। शार्लट भी उनके इस विरोध में बराबर की हिस्सेदार थीं। दोनों ही कभी अपना जन्मदिन नहीं मनाते थे।

काम में वे इतने मग्न रहते थे कि उन्हें दोपहर के खाने के लिए बार-बार बुलाना पड़ता था। यदि कोई मेहमान खाने पर आमंत्रित हो तो उन्हें दस मिनट पहले सूचित करना पड़ता था, ताकि वे मेहमान के आगमन से पहले उसका स्वागत करने के लिए वहां मौजूद रहें। दोपहर के खाने के बाद वे घंटा-डेढ़ घंटा आराम जरूर करते थे। उनका आदेश था कि इस दौरान में उन्हें हरगिज बुलाया न जाये। सत्तर वर्ष की 'जवानी' में भी वे अपराह्न में शायद ही कभी सोये हों। इस विराम के दौरान में भी उनके हाथ में कोई न कोई पुस्तक अवश्य होती थी।

क्रिस्मस पर श्रीमती शा कुछ कार्ड और उपहार दूसरों को भेजती थीं; पर उन्हें किसी से उपहार पाना पसंद नहीं था। शा-दंपति के लिए क्रिस्मस का दिन भी आम दिनों जैसा ही होता। कोई उनके निवास-स्थान

...सामने रुककर क्रिसमस के गीत नहीं ...था। और न कभी किसी घरेलू नौकर ...यह साहस होता था कि वह उन्हें कोई ...उपहार दे, या कम से कम बधाई ही दे डाले। ...ज्यों समय बीतता गया, कोई भी ...जन्मदिन के दिनों में उन्हें याद नहीं करता ...। वास्तव में, सभी उनकी पसंद-नापसंद ...बहुत खयाल करते थे।

...रात के खाने के बाद वे देर तक रेडियो ...रखते, यहां तक कि प्रोग्राम खत्म हो ...के बाद भी। अक्सर वे कोई खास ...वाला प्रोग्राम लगाकर स्वयं गहरी नींद ...जाते। कई बार ऐसा भी होता कि जब ...पसंद का प्रोग्राम शुरू होता, तब ...रहे होते थे।

...बीस वर्ष की संगति में मैंने उन्हें केवल ...बार गुस्सा करते देखा। खीझने पर वे ...अक्सर यही कहते—'वह शैतान आखिर ...क्या है?' या कि 'धिक्कार है उसकी ...गुस्ताखी पर!' मेरा अपना धैर्य उनके ...बराबर न था। मैं कई बार तो उनसे खीझ ...पड़ती थी। खास तौर से इसलिए कि कोई ...उनके दिमाग में घुस जाये तो फिर वे ...टस से मस न होते; और दूसरे, वे बहुधा ...दिखाते, जैसे आपका वजूद ही नहीं है। ...एक बार तो उन्होंने मुझे इतना उद्विग्न ...किया कि यदि संभव होता तो उसी क्षण ...नौकरी छोड़कर घर की राह पकड़ लेती। ...वजह कि उन्होंने कई काम जो मैं किया ...करती थी, एक आदमी के सुपुर्द कर दिये, ...उन्हें यह पता था कि कोई भी महिला

हस्ताक्षर जुटाने के शौकीन एक अमरीकी ने शा से पत्र के जरिये पूछा कि मैंने एक गोली का आविष्कार किया है, अगर उसे मैं जी. बी. एस. गोलियों के नाम से बाजार में बेचूं तो क्या आपको कोई उज्र होगा? फौरन उसे पोस्ट कार्ड मिला—'अगर आपने ऐसा दुःसाहस किया तो मैं आप पर मुकद्दमा दायर कर दूंगा।' उधर से आत्मस्वीकृति आयी कि मैंने जिंदगी-भर न कोई गोली बनायी है, न मैं कभी बनाऊंगा; असल में मैंने एक दोस्त से शर्त बदी थी कि मैं शा साहब का हस्ताक्षर मंगवाकर दिखा दूंगा। और उसने हस्ताक्षरों के लिए शा को धन्यवाद दिया।

—ब्लांश पैच

सेक्रेटरी इसे सहन नहीं कर सकती। उन्होंने तजवीज किया कि वे मुझे वही पत्र भेजा करेंगे, जो टाइप करने हों। मैंने कठोरता से उत्तर दिया कि मैं निरी टाइपिस्ट बनना पसंद नहीं करती; और यह भी कि केवल मुझे चिढ़ाने की इच्छा से ही उन्होंने यह बात लिखी है। इसके उत्तर में वे फट पड़े और लिखा :

'प्यारी ब्लांश,

'आखिर तुमने मुझे झटका दे ही डाला! इतने वर्ष हमारा साथ रहा, जिनमें तुमने मेरा लिखा लगभग प्रत्येक अक्षर टाइप किया। पर इनमें तुम्हें सिर्फ मेरी "चिढ़ाने की इच्छा" नजर आयी, जो कि क्रूरता का ऐसा रूप है जिससे मुझे जुगुप्सा है और

'सेंट जोन' में जोन की भूमिका सिबिल थार्नडाइक करेंगी, यह शुरू से ही असंदिग्ध था। फिर भी जिन दिनों नाटक मंच पर खेला जा रहा था, एक के बाद एक कई युवतियां ह्वाइटहाल कोर्ट में शा से मिलने आयीं और उनमें से प्रत्येक जोन की भूमिका करना चाहती थी। इनमें से एक ने दावा किया कि जोन की आत्मा उसमें निवास करती है। एक दूसरी दावेदार मुलाकात का समय लेकर मिलने आयी थी। जब वह जाने लगी तो शा ने उसके साथ हाथ मिलाया। वह जब दरवाजे के पास पहुंची, मैंने भी अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया। इन्कार में सिर हिलाते हुए वह बोली—'न, आज तो मैं दूसरे किसी को भी यह हाथ छूने नहीं दूंगी।' —ब्लांश पैच

जिसका प्रयोग मैंने कभी भी नहीं किया। ताकि तुम्हें दुनिया की मूर्खतम औरत की उपाधि न मिले, इसलिए मुझे तुम्हें यह प्रमाणपत्र देना ही पड़ेगा :

'तुम हो तो "शा-प्रूफ", पर मूर्ख तुम हरगिज नहीं हो। तुम ठंडे दिमाग वाली, ईमानदार, परिश्रमी हो और असंख्य वर्षों से इस पद पर हो, जो कि कहने की जरूरत नहीं। तुम बुद्धिमती, समझदार, आत्म-निर्भर, दयाशील, उपयोगी, सुयोग्य, अवि-श्वसनीय रूप से संतुलित स्वभाव की और संयत हो। दुनिया में तुम सबसे कम गर-वीली और छुईमुई नारी हो। तुमने मेरी असीम सहायता की है और तुम्हारी कीमत मुझसे बढ़कर कोई नहीं जानता।

'यह हम दोनों ही के लिए लाभकारी रहा है कि तुम पर मेरे सिद्धांत और दर्शन का कोई असर नहीं पड़ा और शा-भक्तों की तरह, उसमें बह जाने के बजाय तुम डटकर खड़ी हो। पर इसमें एक खामी है। तुमने गलती से मेरे दर्शन को निरा मजाक और द्वेष समझ लिया है। इससे मैं कांप उठा हूं। द्वेष वाली बात पर पुनर्विचार करने की प्रार्थना तुमसे करता हूं।'

शा से ऐसा पत्र मिलना अनोखी बात थी। क्योंकि सामान्यतः यही लगता था कि अपने कर्मचारियों की भावनाओं से उनका कोई सरोकार नहीं है। वैसे वे बड़ी शिष्टता से हम लोगों से पेश आते थे। नब्बे वर्ष की उम्र में भी, जबकि वे किसी पतझड़ के पत्ते की तरह हवा के झोंके पर दिखाई पड़ते थे, मेरे आने पर उठकर अधिक आरामदेह कुर्सी मुझे देते थे।

मैं यह नहीं कहूंगी कि जार्ज बर्नार्ड शा उपाधियों से प्रभावित न होते थे। मगर अपने लिए वे इनकी कामना नहीं करते थे। रैमजे मैकडानल्ड के समय उन्हें लार्ड-पद या 'आर्डर आफ मेरिट' के किस्म की उपाधि मिल सकती थी। मगर इस सुझाव पर वे हंस दिये थे। उन्होंने १९२५ में नोबेल-पुरस्कार का चेक लेने से इन्कार करते हुए कहा था कि मेरे पाठकों और मित्रों ने मेरे गुजारे के लिए बहुत कुछ उपलब्ध करा रखा है। यह चेक उस लाइफ-बेल्ट से अधिक कुछ भी नहीं, जो एक डूबते हुए को उस समय दी

...जब वह किनारे पर पहुंच चुका था।
उन्होंने स्वीडन सरकार से यह भी कहा था कि वह नोबेल-पुरस्कार की धनराशि से स्वीडन और इंग्लैंड में साहित्य और कला की समझ के प्रसार के लिए एक फंड कायम कर दे।

इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि जार्ज बर्नार्ड शा को रुपयों के महत्त्व का ज्ञान था। पर वे रुपयों के लिए कभी लालायित नहीं हुए। वे गरीबों पर अमीरों को हमेशा तरजीह देते थे, पर किसान की तुलना में राजाओं से बेलाग होकर पेश आते थे।

ख्याति के बारे में उनका मत यह था कि वह 'एक ऐसी नकाब है, जिसे हर व्यक्ति को वैसे ही पहनना पड़ता है जैसे कि वह कोट और पतलून पहनता है।' असली बर्नार्ड शा इस नकाब के पीछे छिप गये थे। वे अक्सर कहते थे—'मैं अपनी ख्याति से जरा भी प्रभावित नहीं हूं। इसे तो मैंने स्वयं बनाया है।'

निंदक समझते हैं, शा अपने को बहुत बड़ा समझते थे। असल में वे उन पर हंसते थे जो उन्हें बहुत बड़ा समझते थे। ९२ वर्ष की उम्र में, आयरिश रिपब्लिकन एक्ट के पास होने पर जब उनसे आयरिश लोगों के लिए संदेश मांगा गया, तो उन्होंने कहा था—'मैं कौन हूं भला जो राष्ट्रों के नाम संदेश जारी करूं?' ४३ वर्ष की वय में १९ वीं सदी का स्वागत करते हुए उन्होंने लिखा 'यकीन मानिये, सौ बरस के भीतर हम

एक युवा लेखक ने शा से मासूमियत से पूछा था—'क्या कोई व्यक्ति अपने आपको प्रशिक्षण देकर लेखक बना सकता है?' शा ने उसे सलाह दी थी कि किसी अच्छे विश्वकोश के पन्ने पलटते जाओ, जब कोई दिलचस्प चीज मिले तो उसे पढ़ डालो। शा का कहना था कि लिखना जानना व्यर्थ है अगर आपके पास कहने को कुछ न हो, और अगर आपके पास कहने को कुछ है और आपमें साहित्यिक क्षमता है तो शब्द अपने आप आ जायेंगे। 'यदि ये आपके पास नहीं हैं, तो आपको अभिव्यक्ति का कोई और उपाय खोजना चाहिये।' —ब्लांश पैच

सब मर चुके होंगे और हमारी कमी कभी महसूस नहीं की जायेगी।' वे स्वयं को एक माइक समझते थे, जिसके द्वारा विश्व-नियामक का लक्ष्य मानव-जाति तक पहुंचता था।

मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि यदि जार्ज बर्नार्ड शा स्वयं को साधन मात्र न समझते, तो भी वे इतना ही अधिक और अच्छा लिख लेते। उन्होंने लिखा तो इसलिए कि वे कुछ न कुछ लिखने के लिए ही पैदा हुए थे। जवानी की अवस्था में जब वे लंदन आये तो पांच-छह पृष्ठ प्रतिदिन लिखते थे। उनकी रचनाओं में कुछ उपन्यास, साहित्य पर लेख, नाटक, संगीत-समीक्षाएं और भूमिकाएं आदि भी शामिल थीं। लिखना भी उनके लिए एक आदत थी, जैसे नशे की लत हो। नब्बे वर्ष की आयु में

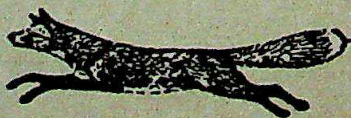
उन्होंने कहा था—'यदि मैं लिखना छोड़ दूं, तो फिर मैं कुछ न कुछ करने की तलब में ही मर जाऊंगा।' यों मुझे लगता था कि वे जरूरत से ज्यादा लिखते हैं। शायद इसका कारण यह हो कि वह सब मेरे सामने लिखा जाता था।

वे कहा करते थे—'कला और सुंदरता मेरे जीवन के लिए परमावश्यक हैं।' लेकिन सच तो यह है कि उनके पास इनके लिए समय ही नहीं था। उनका घर और उसमें मौजूद फर्नीचर तक मामूली था। बगीचा भी यों ही सा था। इसलिए कि फूलों से उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्हें फूलों के नाम तक नहीं मालूम थे। पर फूल तोड़ना उन्हें हरगिज सहन नहीं होता था। एक दिन एक मुलाकाती ने पूछा कि आपके कमरे में एक भी फूल क्यों नहीं है? उत्तर में शा बोले—'मैं बच्चों से प्यार करता हूं। पर मुझे यह पसंद नहीं कि उनके सिर काटकर गमलों में सजा दूं और कमरों में रख लूं।'

समय की बचत उनके लिए एक अबूझ समस्या बन गयी थी। 'मेरा विचार है, मैं दोपहर का खाना न खाया करूं।' एक दिन वे मुझसे कहने लगे। उस दिन का खाना वे कुछ अधिक ही दिलचस्पी से खा गये थे। 'सोचो न, खाना पकाने में कितना समय नष्ट हुआ है और फिर अब बरतन धोने में कितना समय नष्ट होगा। इससे क्या मिलेगा? यही न कि मैंने बड़े संतोष से खाया। यह कितनी हास्यास्पद बात है!'

एक सौ वर्ष तक जीने की कल्पना से उन्हें डर लगने लगा था। वे सख्त थकावट और कमजोरी के बावजूद निरंतर काम करते रहते थे—यद्यपि लिखने की गति बहुत कम हो चुकी थी और उनसे शार्टहैंड के संकेत भी ठीक से नहीं लिखे जाते थे। दिन-प्रतिदिन वे भुलक्कड़ होते जा रहे थे। उन्हें शिकायत थी कि उनकी नेत्रज्योति कम हो रही है और श्रवण-शक्ति पर भी वृद्धावस्था का प्रभाव पड़ चुका है, बहुत हद तक स्वादशक्ति भी कमजोर पड़ गयी है। यों सामान्य वृद्धों की तरह उन्हें अपने बुढ़ापे पर खेद नहीं था। उन्हें गिला तो शायद इस बात का था कि समय ने उनकी कलम को पकड़ लिया है और अभी वे 'वह सब' नहीं कह पाये हैं, जो कहना चाहते थे।

मुझे अच्छी तरह याद है, अपने इन अंतिम दिनों में जार्ज बर्नार्ड शा को डबलिन की खाड़ी के किनारे बिताये जवानी के दिन याद नहीं आते थे, न उन्हें ट्राफल्गर स्क्वायर में विलियम मारिस की बेटी के प्रेम में बिताये हुए रविवार याद आते थे और न शार्लट (पत्नी) के साथ बिताये अनमोल क्षण। मैंने तो बुढ़ापे का यही लक्षण उनमें देखा कि वे आसानी से गहरी नींद सो जाते हैं। और जब वे कभी न टूटने वाली नींद में सो गये, तो मैंने महसूस किया कि एक दिया बुझ गया है।



[पृष्ठ ५६ का शेष]

...जतदार !

०००

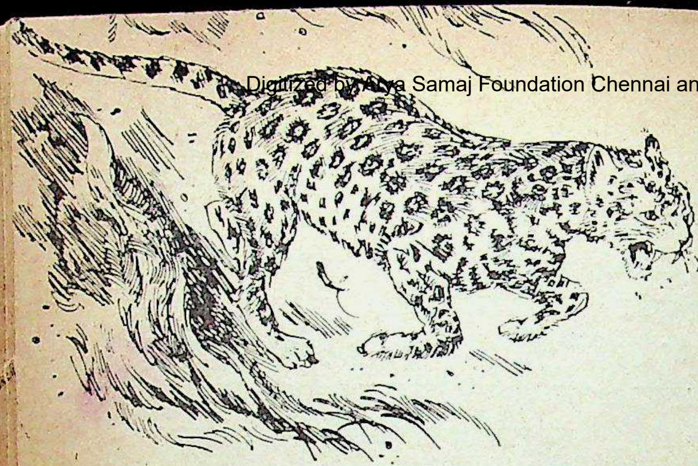
...रे दिन जब मैं अपने अभियान पर ...लगा, तो नरमी से मनीराम को साथ ...से मना कर दिया कि जंगल में जख्मी ...की तलाश बहुत खतरनाक होती है। ...उदास अवश्य हुआ, पर यही उचित था। ...र फौरन मान गया।

...रदा बकरा अभी वहीं पड़ा था। पता ...तेंदुए को उसे खाने का मौका नहीं ...था। अंदाज किया कि भूख मिटाने ...लिए दो-तीन दिन के अंदर ही अंदर वह ...ई वारदात जरूर करेगा। उसके पंजों ...इक्का-दुक्का चिह्नों से यह स्पष्ट था कि ...गांव की उत्तरी दिशा के जंगल में गया ...यह जंगल वसूड़े के घर से दो छोटे-छोटे ...ों के बाद ही बड़े पहाड़ के दामन से शुरू ...र क्रमशः ऊंचा होता चला जाता है।

...रे साथ दो मजबूत गोंड जग्गू और ...दामी थे। जग्गू के पास धनीराम की ...ह बोर थी और छिदामी ने नमी और ...न की वजह से अपनी भरमार बंदूक ...जाय बरछा ले चलना पसंद किया था। ...ने आपस में तय किया कि पहाड़ पर ...ते हुए बीस-तीस गज का फासला रखेंगे। ...म दो अलग जगहों से जंगल में दाखिल ...। हमारी रफ्तार बेहद सुस्त थी। पहाड़ ...ग पांच सौ फुट ऊंचा था और चलते-...ते हम इधर-उधर पत्थर भी फेंकते जाते ...कि तेंदुआ किसी झाड़ी या गुफा में छिपा ...र

अभी हम मुश्किल से दो सौ फुट चढ़े होंगे कि जग्गू के चीखने की आवाज आयी और फिर फायरिंग की, और साथ ही तेंदुए के गुर्राने की भी। मैं तेजी से उसकी ओर बढ़ा। फिर कराहने की आवाज के साथ ही पहाड़ की ऊंचाई पर एक काकड़ ने डर की आवाज में चीखना शुरू कर दिया। फिर यह आवाज दूर हटती चली गयी, मतलब कि तेंदुआ उसी ओर गया था। अब मैंने जग्गू को आवाज दी–'जल्दी पहुंचो भइया!' पर छिदामी की आवाज आयी–'गलबगहा हमको ले डारस!'

कांटों और पत्थरों से उलझता मैं उन तक पहुंचा, तो वहां का खूनी नजारा देखकर कांप उठा। जग्गू खून से लथपथ औंधे मुंह पड़ा था। कमीज तार-तार थी और पीठ का गोश्त यों उधड़ा हुआ था कि पसलियां बाहर झांक रही थीं। गरदन बुरी तरह चबायी हुई थी। सामने बारह बोर बंदूक पड़ी थी। उससे लगभग दस गज दूर छिदामी पड़ा था। उसके बायें गाल का गोश्त उधड़-कर लटक गया था। दायें कूल्हे का एक लोथड़ा जरा दूर पड़ा था। पेट फट गया था और आंतें बाहर निकल आयी थीं। जग्गू बेहोश था। छिदामी ने सिसकते हुए बताया कि तेंदुआ शायद इन्हीं घनी झाड़ियों से ढंकी हुई चट्टान की ओट में छिपा था। ज्यों ही जग्गू आगे बढ़ा कि उसने पिछली ओर से छलांग लगाकर हमला किया। जग्गू औंधे मुंह गिर पड़ा। तभी उसके चीखने की



आवाज सुनकर छिदामी लपका। लेकिन तेंदुआ उस पर भी इस तेजी से झपटा कि पहले ही हमले में अपने नुकीले पंजे के भरपूर वार से उसका बायां गाल उधेड़ा तो दूसरे पंजे से सारे का सारा पेट फाड़ दिया। तेंदुए का वजन बरछे पर पड़ा तो वह उसके हाथ से छिटक गया। वह नीचे गिरा और शायद तेंदुआ उसे और भी झिझोड़ता कि जग्गू ने बंदूक का घोड़ा दबा दिया। तेंदुआ भाग खड़ा हुआ। जख्मों से चूर उन दोनों गोंडों ने कुछ ही मिनट बाद दम तोड़ दिया।

'यह सब कुछ मेरी गलती से हुआ।' खेद प्रकट करते हुए मैंने छिदामी की विधवा से कहा।

'नहीं मालिक! तुम्हारी क्या लगती? उसकी मौत ऐसे ही लिखी थी, नहीं तो गलबगहा की समझें का?'

फिर रोती हुई पास ही खड़ी औरत से बोली–'देख न री! बंदूक साथ थी, पन मौत जो बदी थी, सोई तो किछू न करत बनो।'

सारा गांव इकट्ठा हो चुका था। सब लोग उदास थे और लज्जित मैं अपने आवास-स्थान में सिर झुकाये बैठा था। मेरी पूरी शिकारी जिंदगी में कभी भी ऐसा नहीं हुआ था।

०००

दूसरे दिन बारिश थम गयी और थोड़ी देर के लिए धूप भी निकलती रही। मौसम बेहतर होने पर भी मैं यह तय नहीं कर पाया कि तेंदुए को कैसे ढूंढ़ूं। फिर भी चुपचाप अकेला जंगल की ओर चल पड़ा। पहाड़ के दामन में उन दोनों अभागों की चिताओं से अभी तक धुआं उठ रहा था और हवा बंद होने के कारण जले हुए गोश्त की गंध से वातावरण मलिन था। मैं आगे बढ़ा और पहाड़ की चोटी तक जा पहुंचा। दूसरी ओर उतरने तक कोई घटना नहीं हुई। अब मैं पहाड़ के दामन के साथ-साथ छोटी-सी नहर की पटरी पर चल रहा था। पास ही पौडी नाम का कस्बा था, जहां चारों ओर के देहाती सौदा-सुलफ खरीदते आते-जाते रहते। वहां जाकर लोगों को आदमखोर तेंदुए से सचेत करना बहुत जरूरी था। छोटेलाल बनिये की दुकान पर जब मैं तेंदुए की पिछली वारदात का जिक्र कर ही रहा था, दो ग्रामीण जो नमक खरीद रहे थे, चौंक पड़े।

'यह वारदात कल दस-ग्यारह बजे के लगभग हुई थी?' उनमें से एक ने प्रश्न किया।

हां! शायद साढ़े दस बजे थे।

फिर तो गड़बड़ है।' उसने अपने साथी को संबोधित करते हुए कहा—'भगवानदास को आना तो जरूर था।'

उनके चेहरों पर फिक्र देखकर मैंने वजह पूछी, तो वे बोले कि यहां से पांच मील दूर देवरी गांव से पिछली शाम उनके एक साथी भगवानदास को साथ ही साथ पौडी आना था। प्रोग्राम यह था कि यहां मजे से रामलीला देखेंगे और धर्मशाला में रात बिताकर दूसरे दिन कुछ नून-तेल खरीदकर साथ ही देवरी वापस जायेंगे।

मैं छोटेलाल बनिये के यहां कुछ देर बैठा और जलपान करके लगभग डेढ़ घंटे बाद थाने पहुंचा। वहां नहर का एक जमादार पहले से ही मौजूद था। उसने बताया कि यहां से लगभग दो मील दूर नहर की पटरी के पास जंगल में उसने एक आदमी की लाश देखी है। किसी जानवर ने उसे खाया है। उसने जिस स्थान का जिक्र किया, वह उसी क्षेत्र में आता था, जहां तेंदुए की मौजूदगी की संभावना थी।

जमादार के साथ हम छोटेलाल की दुकान पर आये। संयोगवश देवरी के दोनों आदमी भी वहां मौजूद थे। उनसे भगवानदास का हुलिया पूछा तो वह नहर के जमादार की देखी हुई लाश के ऐन अनुकूल था। किसी विलंब के बिना जमादार के पथ-प्रदर्शन में नहर की पटरी-पटरी लाश तक पहुंचे। चेहरा शिनाख्त के लायक नहीं रहा था। आंतें और पेट के साथ कमर का कुछ भाग भी खाया जा चुका था। चेहरे, सीने और कूल्हों पर भी गोश्त बाकी न रहा था। फटे हुए कपड़े और काले रंग की बंडी से निकलने वाली तंबाकू और चूने की डिबिया से लाश की शिनाख्त हुई। वह भगवानदास ही था।

दिन ढल चुका था, सो मेरे आग्रह पर लाश उसी जगह छोड़ दी गयी। मैंने नहर के किनारे ही आम के एक उपयुक्त पेड़ पर जल्दी-जल्दी उलटा-सीधा मचान बनवाया और सबको विदा करके उसी पर छिप गया। दोनों ग्रामवासी, पुलिस का हवलदार, नहर का जमादार और दो-तीन अन्य आदमी जो पौडी से मेरे साथ आये थे, देवरी चले गये।

०००

जब मैं चला था, उस वक्त दिन था और मुझे इस दुःखदायक घटना का गुमान भी न था। मैं अपने साथ टार्च नहीं लाया था। पौडी में भी उसका खयाल न आया। अब टार्च प्राप्त करने का कोई साधन न था, न समय ही। अतः मैंने अंधेरे ही में भाग्य परखने का निश्चय कर लिया। भगवानदास की चूने की डिबिया काम आयी और मैंने अपनी एम. एम. माउज़र राइफल की नाली पर दो-दो इंच के फासले पर चूने की टिपकियां लगा दीं। दीदबान भी सफेद कर दिया, ताकि कुछ तो नजर आये।

तेंदुए के आने की आशा कम थी, क्योंकि लाश का बड़ा भाग खाया जा चुका था। फिर भी कुछ प्रतिशत आशा यों बंधती थी

कि शायद उसने स्वभावानुसार केवल आंतें और पेट खाया हो और शेष मांस अन्य जानवर चट कर गये हों और इस रात मांस खाने के लिए वह चला आये।

सूरज पहाड़ की ओट में ओझल हो गया था। बारिश फिर शुरू हो चुकी थी। मोटी-मोटी बूंदें तड़ातड़ मेरी बरसाती और नंगे सिर पर गिरने लगीं। आम के पत्ते साया न किये होते तो वहां बैठना कठिन हो जाता। अंधेरा अब इतना गहरा था कि पास रखी हुई राइफल भी नजर नहीं आती थी। मैंने उसकी नाली बरसाती में छिपा ली थी कि चूना न बहे। दिल ही दिल में प्रार्थना कर रहा था कि बारिश थम जाये। साथ ही यह भी कि बिजली बराबर चमकती रहे। इसी से तो मुझे पंद्रह गज दूर पड़ी हुई लाश नजर आ जाती थी। जंगली परिवेश रात में यों भी क्या कम भयानक होता है! फिर बरसात की रात में विकृत लाश के एहसास ने उसे और भी डरावना बना दिया था। रात ज्यों-ज्यों बीतती गयी, दिल की धड़कनें तेज होती गयीं। बारिश धीमी हुई। दूर कहीं भेड़ के चीखने की आवाज आयी। अब मेरे कान खड़े हुए और निगाहें लाश पर ऐसी जमीं कि लमहे-भर के लिए भी उसे ओझल करने को तैयार न थीं।

घड़ी देखी तो रेडियम की सूइयों ने ग्यारह बजकर दस मिनट की सूचना दी। बिजली चमकी। मैंने नहर की पटरी पर एक साया चलता हुआ देखा और फौरन राइफल संभाली। पर उसके पीछे तीन-चार और भी वैसे ही स्याह धब्बे रेंगते हुए नजर आये। उनका रुख लाश की ओर न था, बल्कि वे पटरी ही पटरी आगे बढ़ते जा रहे थे। निश्चय ही वे सूअर थे, जो जंगल से निकलकर खेत उजाड़ने चले जा रहे थे।

बारह बजने में पांच मिनट थे, जब मैंने लाश के पास और एक साया उभरता हुआ देखा। मैं उसे राइफल के घेरे में लेकर बिजली चमकने की प्रतीक्षा करने लगा। दुर्भाग्य से बिजली चमकने का मध्यांतर लंबा हो गया और जब वह चमकी, तो यह देखकर मेरे होश-हवास उड़ गये कि लाश गायब है। आस-पास की झाड़ियों में भी झांकने का प्रयत्न किया; पर वहां वह नजर न आयी। अवश्य ही तेंदुआ उसे उठाकर झाड़ियों में विलीन हो गया था और मेरी सारी मेहनत व्यर्थ गयी थी।

मैं सख्त उलझन में था और मेरी समझ में नहीं आता था कि क्या करूं। सहसा झाड़ियों में से गुर्राने की आवाज आयी। फिर कोई जानवर घबराकर वहां से नहर की ओर भागा। दूसरे ही क्षण अंधेरे में दरिंदों की खौफनाक आवाजें आने लगीं। मेरी मचान के ऐन नीचे तेंदुए और लकड़बग्घे की लड़ाई हो रही थी। रोशनी होती तो बड़ा दिलचस्प दृश्य सामने आता। लड़ाई इतनी तेज थी कि तेंदुआ बिजली की-सी तेजी से अपनी जगह बदलता रहा और मुझे गोली चलाने का अवसर न मिल सका।

मैं समझ गया कि लाश हटाने वाला लकड़बग्घा था और शायद वह खाना भी

कर सका था कि दूसरी ओर से तेंदुआ आया और उस पर टूट पड़ा। मैं जानता था कि लकड़बग्घे को मारने से पहले दोनों फिर झाड़ियों में चले गये तो तेंदुआ मारा न जा सकेगा। मेरा दिल बेतहाशा धड़क रहा था और आशा-निराशा की दुविधा में पड़ा हुआ था।

बिजली फिर चमकी। मैंने देखा, लकड़बग्घा हार मानकर चित लेट गया है। उसने अपने मुड़े हुए पांव ऊपर उठा रखे थे और घिघियाते हुए कूं-कूं के साथ गलती की माफी और प्राणभिक्षा मांग रहा था। ऐसी हालत में प्रायः शेर या तेंदुए अपनी शाही शान को धब्बा नहीं लगने देते और प्रतिद्वंद्वी दरिंदे की प्राणदान की प्रार्थना को नहीं ठुकराते। पर तेंदुआ सख्त गुस्से में आपे से बाहर था। कूं-कूं की आवाज एक वहशतनाक चीख में बदली। फिर तीव्र यातना व पीड़ा की कराह बनकर जंगल की वहशत की ओर बढ़ा गयी। अब निगाह पड़ी, तो लकड़बग्घे के पास उसकी अंतड़ियों का ढेर पड़ा था और वह उन्हीं पर तड़प रहा था। चार-चार गज दूर खड़ा हुआ तेंदुआ बड़े शाही अंदाज में उस गरीब की मौत का तमाशा देख रहा था।

अब तेंदुए ने अपने पिछले और अगले पांवों का फासला बढ़ाया और पीठ और कमर मोड़कर अंगड़ाई-सी ली। मेरे सामने वह खड़ा पड़ता था और यह बात मेरे लिए ईश्वर की सहायता से कम न थी—इसलिए कि अंधेरे में दूर के राइफल से सिर या दिल को निशाना बनाना लगभग असंभव था। मुझे अंदाजा था कि अंगड़ाई के साथ ही तेंदुआ दहाड़कर अपनी विजय का नारा लगायेगा। पर यह आशंका भी थी कि दहाड़ते ही छलांग लगाकर वह झाड़ियों में विलीन हो जायेगा।

मैंने अनुमान से उसकी बगल और पसलियों को घेरे में लिया। अभी उसका विजयपूर्ण नारा गूंजने भी न पाया था कि मेरी राइफल की गरज में वह लोप हो गया। बिजली फिर चमकी। अब वहां केवल लकड़बग्घा पड़ा तड़प-तड़पकर दम तोड़ रहा था और तेंदुए का कहीं पता न था। शायद गोली नहीं लगी—मैंने सोचा। वैसे भी इन प्रतिकूल परिस्थितियों में गोली का निशाने पर लगना शायद असंभव था।

बूंदें पड़नी बंद हो चुकी थीं और बादलों के बीच इक्का-दुक्का तारा भी नजर आने लगा था। अभी दो-चार मिनट भी न बीते होंगे कि पास की झाड़ियों में हंगामे और गुर्राने की भयानक आवाजें आने लगीं। बिलकुल वैसी ही जैसी तेंदुए और लकड़बग्घे की लड़ाई के समय आयी थीं। चार मिनट बाद चुप्पी छा गयी।

मैं पेड़ पर बैठा दिन निकलने की प्रतीक्षा करता रहा। सूर्य निकलने के बाद नीचे उतरा और भरी हुई राइफल संभाले बहुत सावधान कदमों के साथ उन झाड़ियों की ओर बढ़ा, जिनकी ओर गोली लगते समय तेंदुए का मुंह था। ऐसे अवसरों पर तेंदुआ उसी ओर छलांग लगाता है, जिस ओर

उसका मुंह हो।

मैं अभी दस गज भी न गया था कि झाड़ी के अंदर तेंदुआ नजर आया। उसने अपना सिर अपने अगले पंजों पर डाल रखा था और लहूलुहान था। पास ही भगवानदास की लाश के टुकड़े इधर-उधर इस तरह पड़े थे कि मानो किसी ने कुल्हाड़ी से काटकर फेंक दिये हों। सिर और सीना अलबत्ता अभी तक तेंदुए के अगले पंजों में दबे हुए थे। उसने अपना सारा गुस्सा गरीब भगवानदास की लाश पर ही उतारा था।

मैंने एक पत्थर उठाकर उसकी ओर फेंका। उसने धीरे-से सिर उठाया। नींद में डूबी हुई आंखें खोलीं, जिनसे आंसू बह रहे थे। मुझे देखा और सिर अपने पंजों पर रखकर आंखें बंद कर लीं। शायद उसमें हिलने-डुलने की शक्ति न रही थी और वह कुछ ही क्षणों का मेहमान था। फिर भी उसकी प्रसिद्ध धूर्तता ने मुझे दुविधा का अवसर न दिया और मेरी दूसरी गोली उस पर पड़ी। लगभग सात-आठ गज से गोली का धक्का इतना जबर्दस्त था कि वह अपनी जगह पर पड़े-पड़े घूम गया। खोपड़ी की हड्डी का छोटा-सा भाग गोली के साथ उड़ गया और भेजे के टुकड़े बिखरकर झाड़ियों में चिपक गये। फिर भी उसका बदन थरथराया। शायद उस समय तक जान नहीं निकली थी। मेरी पहली गोली उसके पेट में लगी थी।

मैं नहर की पटरी पर बैठा देवरी से मदद की प्रतीक्षा कर रहा था कि साइकल पर बंदूक संभाले पौडी की ओर से मनीराम अकेला आता नजर आया। मुझे उस लड़के की हिम्मत और निडरता पर विस्मय भी हुआ और आनंद भी।

वह रात-भर मेरे गायब रहने के कारण परेशान था। सुबह उसने साइकल और बंदूक उठायी और तीन-चार मील दूर एक घाटी से पहाड़ पार करके अकेला ही पौडी पहुंचा था। मैंने उससे जिक्र किया था कि गोंडों की मौत की रिपोर्ट दर्ज करवाने पौडी जाऊंगा। वहां से उसे मेरा पता चला तो खबर लेने दौड़ता हुआ मेरे पास पहुंचा। मुझे सकुशल पाकर खुशी से उसके आंसू निकल आये।

देवरी के लोगों के आगमन के बाद मैंने तेंदुए को मनीराम की साइकल के कैरियर पर लाद दिया कि वह उसी रास्ते से उदयपुरा आ जाये। मनीराम के आने के बाद साइकल के साथ ही यादगार के तौर पर उसकी और तेंदुए की तस्वीर उतारी। यह शिकार उसी का तो था; क्योंकि सबसे पहले उसी के गनशाट का दाना तेंदुए की रान पर लगा था और उसे जखमी कर गया था।

०००

अब तो सिर्फ यादगारें बाकी हैं। मनीराम तो दूसरे ही वर्ष टाइफाइड से पीडित होकर अपनी बहन शांति से जा मिला था।



प्रेम, जिजीविषा और आनंद की कविता

• दिनकर सोनवलकर •

भवानीप्रसाद मिश्र हिंदी के ऐसे कवि हैं जो स्वयं अपनी मिसाल आप हैं। हिंदी कविता के पिछले पचास वर्षों के उतार-चढ़ाव, बदलते संदर्भ तथा काव्य-आंदोलन उन्हें अपनी सीमाओं में कैद नहीं कर पाये और उनका कवि निरंतर विकसित होता गया। अब तो उनके कवि-व्यक्तित्व में चिंतन की परिपक्वता, दृष्टि की निर्मलता, अनुभवों की हार्दिक ऊष्मा और अभिव्यक्ति की सहज प्रौढ़ता ऐसी घुल-मिल गयी है कि हिंदी-समीक्षा अपने 'रेडीमेड' पैमाने और सीमित दृष्टि त्यागकर ही उनका सही मूल्यांकन कर पायेगी। मसलन, यह दुराग्रह कि किसी वाद-विशेष से बंधी कविता ही प्रतिबद्ध कविता है और वही प्रगतिशील भी है, अथवा यह कि 'आसानी से समझ में आने वाली कविता यानी लोकप्रिय कविता श्रेष्ठ साहित्यिक रचना नहीं हो सकती।' सच में ऐसी भ्रांतियों के कारण ही आज की अधिकांश कविता से पाठक का रिश्ता टूटता जा रहा है। कविता कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हो, यदि वह हृद्य एवं संप्रेषक नहीं बन पाती, तो काव्य-रचना की मूल उपपत्ति ही खंडित हो जाती है।

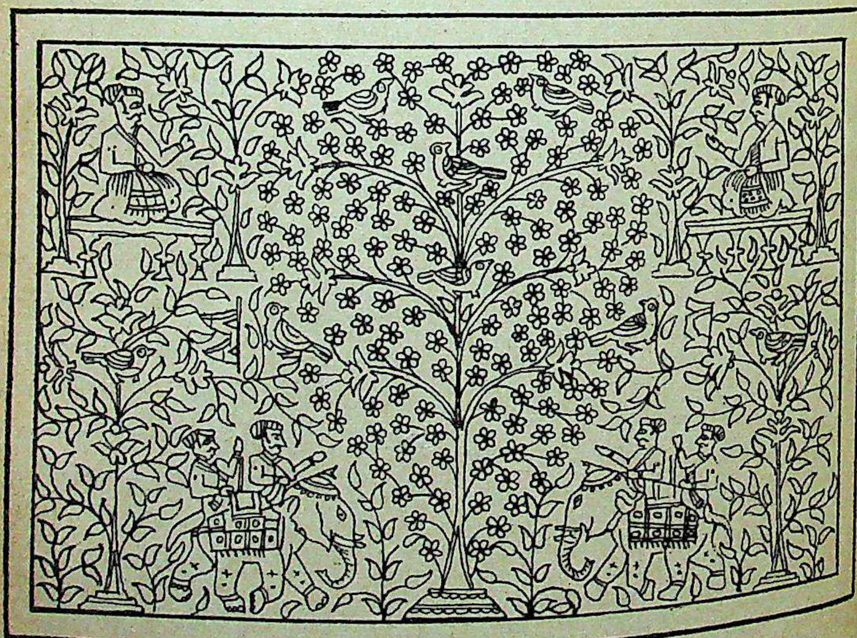
'अनाम तुम आते हो' (१९७६) भवानीप्रसाद मिश्र का दसवां कविता-संग्रह है, जिसमें सात लंबी कविताएं हैं, जो महादेवी को समर्पित हैं। इन कविताओं में मिश्रजी का जीवन-दर्शन पहली बार इतना स्पष्ट हुआ है। उनकी जीवन-दृष्टि गांधीवादी संस्कारों से संस्कारित है। उनके पास अनुभवों की प्रेरक पूंजी है, भारत की माटी और देश-परिवेश से जुड़ी आत्मीय आस्था है, प्रकृति की उदात्त सुषमा से रसवती बनी हार्दिकता है और आधुनिकता तथा यांत्रिक सभ्यता के गुण-दोष परखने का जागृत विवेक है।

पिछले कई वर्षों से मिश्रजी दिल्ली में रहते हैं और राजनीति के तमाशे, महानगरीय जीवन के खोखलेपन और साहित्य, संस्कृति, प्रगति, निर्माण के नाम पर चलने वाले शासकीय, अर्ध-शासकीय नाटक भी खूब देख रहे हैं। यानी वे रामझरोखे बैठकर जग का मुजरा लेते रहे हैं। दिल के चार-चार दौरों ने जहां उन्हें जीवन और मृत्यु, आत्मा और देह, नये और पुराने पर गहराई से सोचने के लिए विवश किया है, वहीं उनके अंतर्बाह्य व्यक्तित्व को स्फटिक-सा निर्मल और रसधार की तरह तरल भी बना दिया है।

मिश्रजी की यह निश्चित मान्यता है कि कवि का कृतित्व उसके व्यक्तित्व से ही उपजता है; इसलिए दोनों के सम्यक् तथा समग्र अध्ययन से ही किसी की कविता को ठीक-ठीक समझा-परखा जा सकता है। 'अनाम तुम आते हो' में यही व्यक्तित्व अपने अलबेले रूप में बिखरा है। 'अध्यात्म, व्यवहार, यथार्थ, आदर्श और कितने या जितने पहलू जीवन के हो सकते हैं, वे सभी इन लंबी कविताओं में उस ताकत के साथ मिल-जुलकर वह रहे हैं और बहा रहे हैं, जिसे शा ने 'लाइफ फोर्स' और बर्गसां ने 'एलाँ वीताल' कहा है।'

'अनाम तुम आते हो' में जैसे इसी जीवनी-[illegible] को संबोधित करते हुए मिश्रजी कहते हैं—**'टूट जाता है समूचा आदमी / आदमी तक जाते-जाते कई बार / मगर तुम सालिम आते हो / बच्चे की तरह मुस्कराते हो / जड छोड़ देते हो मुझे तुम / मुझे तुम चेतन नहीं करते।'**

कवि की तकलीफ है कि समष्टि-गत चेतना और ऋत से जुड़कर भी वह उसी तरह स्फूर्ति और प्रेरणा से आप्लावित क्यों नहीं हो पाता? प्रकृति जैसे फूल को खिलाते हुए चुपचाप गुजर जाती है, वैसी निस्संग ऊर्जा हम क्यों नहीं जगा पाते? शायद इसलिए कि हम अपने नाम या 'मैं-पन' से इतने घिरे रहते हैं कि जीवन-सूर्य की किरणें



एक प्राचीन चित्र की चरन शर्मा द्वारा अनुकृति।

...तक पहुंच नहीं पाती। **'मैं भी अपना ...छोड़ता हूं / अपने न कुछ रूप को, ...अछोर रूप में जोड़ता हूं।'**

...संग्रह की सबसे महत्त्वपूर्ण लंबी ...दो टुकड़े देस : दस टुकड़े जनमदिन' ...संग्रह की सबसे लंबी कविता भी है। ...कवि जन्मदिन के बहाने स्वयं को तो ...ही है, अपने परिवेश, देश, समाज ...भी गहरा विश्लेषण करते चलता है। ...के आह्वान पर आंदोलन में कूद पड़ने ...दिनों की याद करते हुए मिश्रजी को ...अनुभूति होती है कि उन दिनों जैसी ...उठाने वाली जिजीविषा ही आज ...हो गयी है। और गांधी के आदर्शों, नैतिक ...के संकल्पों का क्या हश्र हुआ? **...क्या है प्रभातफेरी का स्वर / खादी का ... / आजादी का छोटा-मोटा मसीहा / ...का ढेला हो गया है।'.... 'सुनाई नहीं ...तुम्हें फैले हुए सतपुड़ा के कटते हुए ...की आवाज / निरर्थक कारखानों की ... / अच्छे-खासे खेत का खयाल क्यों ...आता तुम्हें / कि जंगली एक सुगंध का ... / जो लहराता था हमारे आस-पास— ...से भरे आसमानों में विलीन हो ...है।'**

...औद्योगीकरण के पीछे जिस पागलपन से ...दौड़ रहे हैं, वह हमारी कृषि-सभ्यता ...कृषि-आधारित अर्थशास्त्र के संदर्भ ...कितना आत्मघाती हो सकता है, इसका ...त्मक संकेत कवि ने ठीक-ठीक किया ...इसी तरह 'बुद्धिजीवी' का गौरवपूर्ण ...

विशेषण धारण करने वाले समाज पर कवि की टिप्पणी भी बेहद व्यंजनामयी है। जाहिर है कि हमारे अधिकांश रचनाकार इसी वर्ग से आते हैं और उनकी आंखों पर आधुनिकता या फैशनेबल मुहावरेबाजी का ऐसा चश्मा चढ़ा रहता है कि वे अपनी धरती और उसकी जड़ों से भी सही पहचान नहीं बना पाते।

'और फिर खयाल रखना चाहिये कि हम जो ज्यादातर आशीर्वाद लेते हैं या देते हैं / इस जमात के हैं / जिन्होंने दिया हमेशा कम है / सच कहें तो खून-पसीने के काम से / हमारा वास्ता नहीं रहा / मैं नहीं मानता / ऐसे लोग लंबे जमाने तक / मन से भी अच्छे रह सकते हैं।' दरअसल इन पंक्तियों में जहां तीखा व्यंग्य है, वहीं परोक्ष रूप से श्रम की महत्ता का उद्घोष भी है।

इसी तरह, महानगरीय भीड़ के अकेलेपन में तैरते उपभोग-परायण संस्कृति के जो समृद्धि-द्वीप पनप रहे हैं, जहां आधुनिकता के नाम पर सुरासुंदरी की ऐयाश महफिलें सजती हैं, जहां स्वाद बदलने के नाम पर मुक्त यौनाचार को क्रांतिकारी विकल्प माना जाता है, उस छद्म संस्कृति पर यह दो टूक वक्तव्य— **'मगर यह बात कहां की कर रहे हो तुम / शहर की शाम से / इसका वास्ता क्या है / सजग है शहर की रात / कई अर्थों में उन लोगों के लिए जो दिन-भर कुछ न करके भी / बड़ा काम करने वाले माने जाते हैं / सरताज माने जाते हैं जो शहरी संस्कृति और शहरी विकृति के /**

पुत्र नहीं हैं जो प्रकृति के। समझदार लोग समझ ही लेंगे कि इन पंक्तियों का संकेत उस दुनिया की तरफ भी है, जो 'वी. आइ. पी.' लोगों के आस-पास पनपती है।

लेकिन ये सब तो लक्षण हैं रोग के। रोग की जड़ यह है कि हमने गलत मूल्यों को अपने जीवन और व्यवस्था का आधार बना दिया है। हिंसा, अंधी प्रतिस्पर्धा, शोषण, विभेद पर आधारित कोई व्यवस्था मनुष्य को सुखी नहीं बना सकती। जहां अस्तित्ववादी मुहावरे 'दूसरा नरक है' (द अदर इज़ हेल) को ही संबंधों की बुनियाद में देखा जा रहा है, जहां हर आदमी दूसरे को मिटाकर खुद आगे बढ़ने की फिराक में है, वहां मानवीय प्रेम, भाईचारे और समता का दर्शन कैसे विकसित होगा? शायद हमारे संस्कारों की प्रक्रिया ही उलटी दिशा में जा रही है। दीवारों पर टांगने या लिखने के लिए विश्वबंधुत्व का नारा भले आकर्षक लगता हो, व्यवहार में तो हम निरंतर एक दूसरे से कटे, अकेले और खूंख्वार प्रतिद्वंद्वी बनते जा रहे हैं। **'हमें प्रेम की जगह स्पर्धा दी गयी है / और कहा गया है कि इस / घिनौनी चीज में हम अपने को / बढ़ा हुआ सिद्ध करें / जैसे बने वैसे / अपने आस-पास को विद्ध करें /'.....'असंवेदनशील ढंग से / चोट पहुंचाने का नाम व्यवहार-कुशलता / और बुद्धि की तीव्रता तक है / बंजर बहसें बुद्धिवादिता के शिखर हैं।'**

कवि इस अमानवीयता का चित्रण करके ही रुक नहीं गया है; प्रत्युत उसने काव्यात्मक इंगितों से यह भी प्रकट किया है कि आपसी विश्वास और प्रेम की आत्मीय दृष्टि से ही हमारे जीवन में खोया हुआ रस और आनंद पुनः मिल सकता है। यदि हम फायदे वाली, तात्कालिक उपयोगितावादी दृष्टि के बदले थोड़ा-सा ध्यान दूसरों के दुःख-दर्द पर भी दे सकें, वस्तुओं पर अपनी पकड़ जरा ढीली कर सकें, तो हम न केवल दुनिया को बल्कि स्वयं को भी बेहतर समझ सकेंगे। गांधीवादी जीवन-दृष्टि में छिपा अपरिग्रह का तत्त्व इन पंक्तियों में सहज खिल उठा है। उपदेश की नीरसता या कृत्रिमता यहां कतई नहीं है। **'न छोड़ना है मुझे कुछ / न प्राप्त करना है / मैं एक शांति, एक सुंदरता / एक लय और एक विलय / की स्थिति में आना चाहता हूं।'**

समष्टि के प्रति समर्पित आत्मीय भाव ही कवि के जीवन-दर्शन का आधारभूत सूत्र है। कुछ कोमल तंतु उसे साधे हैं, इसलिए उसमें न तो विरक्ति का भाव है और न कठोर नीरवता। जीवनी-शक्ति से लबालब भरा हुआ वह हर फूल, हर पत्ती, हर बदली, हर पंछी से मानो 'एकात्म' हो जाना चाहता है। और सचमुच ऐसा लगता है कि हार्ट एटैक के झटके चार बार झेलने के बाद भी मिश्रजी का यों बच्चों की तरह जीवंत तथा सरस बना रहना ऐसे ही किसी साक्षात्कार की चमत्कारी उपलब्धि है। शायद ऐसी मनस्थिति में ही 'अनाम तुम आते हो' की कविताएं रची गयी हैं। तभी तो इनमें कथ्य और शिल्प एक दूसरे से घुले-मिले तन्मय

खिलते हुए चलते हैं। ..... 'महत्वा-भर नहीं है यह मेरी / प्राणों को अनु-होने लगा है / इस इच्छा का / केवल मुझे तरंगित नहीं कर रहा है / मैं को तरंगित कर रहा हूं / और मजा है / कि एकाध क्षण नहीं / प्रतिक्षण ऐसे आ रहे हैं।'

ने उचित ही कहा था कि तार्किक सत्य के टुकड़े कर देती है, इसलिए वह संपूर्णता में पकड़ नहीं पाती। अपरोक्ष की आंख से ही सत्य को देखा-पाया सकता है। अस्तित्व की अनवरत धारा तो अतीत है, न भविष्य। बस, एक है सतत और अविच्छिन्न। इसी का समय है, सत्य है। .... 'अभी तक समझा यह / कि काल को काटा नहीं सकता / अस्तित्व और अनस्तित्व के / की खाई को पाटा नहीं जा सकता।' चेतन तक, अचेतन से ऊर्ध्वचेतन तक प्राणशक्ति है, एक ही ऊर्जा है, उसे जिस नाम से पुकारें। पदार्थ और मनस एवं विरोध अब पुराने दिनों की हो गयी है विज्ञान में भी, दर्शन में भी। भवानीप्रसाद मिश्र की कविदृष्टि ने आंखों को ही प्रेम का सप्तसागर बना है। तभी तो वे क्षणभंगुर के लिए नहीं हैं और न खालिस मृगतृष्णा हैं। जीने का छंद वे खूब जानते हैं परस्पर आदान-प्रदान का आनंद भी। उनकी पकड़ में आ गया है कि मात्र एक दूसरे से जुड़ा हुआ है।



.... 'आध्यात्मिक और भौतिक मुझे इतने मिले-जुले लगते हैं / कि लगता है मुझे / हमारे हर काम का असर / सार्वभौम प्राणों पर पड़ता है।' इसी को आज का विज्ञान कास्मिक ऊर्जा कहता है और इधर ईकॉलाजी ने इसके कई प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। यानी यह कोई ऐसा अध्यात्म नहीं है, जिसे परंपरावादी या हवाई कहकर टाल दिया जाये। इसकी जड़ अपनी जमीन में है और फिर भी यह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि है। देश की माटी देश के जल में यह कमल विकसित हुआ है, जिसकी हर पंखुरी मानवीय प्रेम में रंगी हुई है। इसे चाहे तो गांधी-विचार-दृष्टि कह सकते हैं। लेकिन कवि भवानीप्रसाद के अनुभवों की ऊष्मा और व्यक्तित्व के फक्कड़पन ने उसे रूप-रस-गंध से सुंदरतर बना दिया है।

'अनाम तुम आते हो' की ये महत्त्वपूर्ण कविताएं इस बात का एहसास करा देती हैं कि सचमुच साधारण ही उदात्त है। यह एक ऐसा सत्य है, जिसे हम भूल गये हैं, या बड़ी-बड़ी चीजों के पीछे दौड़ने की धुन में जिसे हमने भुला दिया है। यह संग्रह समकालीन कविता के आकाश में एक स्तब्ध सौंदर्य है और मन में शायद इसके कुछ नहीं है आनंद के सिवा। आनंद बांटने की यही जिजीविषा कवि के शब्द-शब्द से छलक उठती—'मैं फिर यहां आऊंगा / अपने गीत में / एकाध अनंत का / तो ज्यादातर स्वर धरती के लगाऊंगा।'

—शासकीय महाविद्यालय, जावरा, म. प्र.

किस्से रस-पगे

स्वामी वाहिद काजमी

नादिरशाह जब भारत से ईरान जाने लगा, तो यहां से लूटी हुई अतुल संपत्ति तो अपने साथ ले ही गया, अनेक बाकमाल व्यक्तियों को भी लेता गया। दिल्ली में उन दिनों सख बाई नामक एक नृत्यांगना और सलोना नामक भांड अपनी-अपनी कला के लिए प्रसिद्ध थे। नादिरशाह ने उन्हें भी नहीं बख्शा। ईरान पहुंचकर सखाबाई के नृत्य-गायन से नादिरशाह इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उससे मनचाहा पुरस्कार मांगने को कहा। सखाबाई ने मौका गनीमत जाना और अर्ज किया कि लौंडी को आजाद कर दिया जाये। लिहाजा उसे वापस दिल्ली भेज दिया गया। सलोना अकेला रह गया। सखाबाई से उसकी नोक-झोंक चला करती थी, फिर दोनों एक ही देश के; सो अब सखाबाई न होने से उस अजनबी देश में उसका जी घबराने लगा।

अंत में एक दिन उसने भी अपनी कला के जौहर दिखाये। प्रसन्न होकर नादिरशाह ने उससे भी वही सवाल किया और मनचाही बात पूरी करने का वचन दिया। इस पर सलोने ने हाथ जोड़कर उससे इन शब्दों में प्रार्थना की :

ख्वाहिश ये मुख्तसिर[१] सी है, किस्सा तो तूल[२] है
बाई नहीं रही तो सलोना फुजूल है॥

इस प्रकार मियां सलोने भी नादिरशाही गुलामी से मुक्त होकर हंसते-खेलते वापस दिल्ली आ गये।

× × ×

अवध के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह 'अख्तर' के समान नृत्य, संगीत, शायरी आदि ललित कलाओं का प्रेमी और पारखी लखनऊ की नवाबी में दूसरा नहीं हुआ। जब उनका अंतिम समय था, तो वे मटिया-बुर्ज में एक मसहरी पर लेटे वेदना से कराह रहे थे, अंतःपुर से निकलकर उनकी सभी बेगमें मसहरी के निकट खड़ी सिसक रही थीं। इनका कराहना सहन न कर पाती हुई वे सभी एक स्वर से अर्ज करने लगीं- 'सुल्ताने-आलम! कराहने से बदसगुन होता है, लिहाजा आप कराहें नहीं।' नवाब ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुए बेगमों पर एक दृष्टि डाली और ठंडी सांस भरकर यह शेर कहकर सुनाया :

---

१. संक्षिप्त, छोटी; २. लंबा।

...करने से तो सब लोग ख़फ़ा होते हैं,
...नसीमे-सहरी[1]! हम तो हवा होते हैं।

...न, इन शब्दों के साथ ही उनके प्राणों ...शरीर से विदा ले लीं। यह शेर नवाब ...का अंतिम शेर था और यही शायद ...मुख से निकले अंतिम शब्द थे।

× × ×

...क़द्र' बिलग्रामी साहब उच्चकोटि के ...र और स्वभाव से बड़े ही विनोदप्रिय ...एक बार उन्हें बढ़िया किस्म के बांसों ...की आवश्यकता पड़ी। बहुत तलाश किये, ...मनपसंद बांस उपलब्ध न हो सके। ...के किसी मित्र ने बताया कि स्थानीय ...सील में बांस मौजूद हैं। उन्होंने तुरंत ...हसीलदार मुंशी जवाहरलाल के पास, जो ...यरों के बड़े कद्रदान और काव्य-रसिक ...क्ति थे, अपना निवेदन एक नज़्म के रूप ...में लिखकर भेज दिया। उसके कुछ शेर ...यहां प्रस्तुत हैं :

...नाब मुंशी-ए-आली गुहर[2] जवाहरलाल!
...जिस मकान में रहता हूं
सुनिये उसका हाल।
...दिन को धूप है सिर पर,
तो रात को शबनम[3],
...ख़ुश्क-तर[4] है मिरी जान के लिए जंजाल।
...न बांसों की ख़ातिर कुओं में बांस पड़े,
...र किसी ने न इक बांस का
किया इक़बाल[5]।

सुना है आपकी तहसील में हैं बांस बहुत,
जहां से गंज में आये, वहां है टाल की टाल।
मुझे भी दीजिये, उनमें से अस्सी-नब्बे बांस
जो हुक्म दीजिये, तो कट आयें,
कुछ नहीं है मुहाल[6]।
बुरा जो मानो, बुरा मानने की बात नहीं
न आप होंगे अमीर इसमें और न मैं कंगाल।

इस नज़्म को पढ़कर तहसीलदार महोदय फड़क उठे और बांस तो क्या अपने आपको भेंट करने के लिए तैयार हो गये। रचना की भूरि-भूरि सराहना करते हुए बड़े आदर के साथ उन्होंने 'क़द्र' साहब को चिट्ठी लिखी और शीघ्र ही अपने चपरासियों द्वारा आवश्कता से कहीं अधिक बांस पहुंचवा दिये।

× × ×

गाज़ीपुर के रईसों में मीर गदाहुसैन 'फ़ज़ा' एक अच्छे शायर थे और उस्ताद 'क़लक़' के शिष्य थे। ये फ़ज़ा साहब एक कुलीन पर्दानशीन चंद्रमुखी से मन ही मन अत्यधिक प्रेम करते थे। किंतु सारा जीवन उसके विरह में व्यतीत कर दिया, मगर किसी को कानोकान खबर भी न हुई। आखिर जब उनका अंतकाल



खजुराहो की नारी
[अनुकृति : अ. ल. श्रीवास्तव]

---

[1] ...प्रातःकालीन समीर; [2] उच्च कोटि ...मोती; [3] ओस-कण; [4] गीला-सूखा; ...स्वीकार; [6] कठिन।



दर्पण-दर्शिनी—अनुकृति : अ. ल. श्रीवास्तव

आ पहुंचा और हालत बिगड़ी, तो उनके किसी अंतरंग मित्र ने उनकी 'उस' को जाकर बताया कि फ़ज़ा साहब अब केवल कुछ घड़ियों के मेहमान और हैं। वह रूप-गर्विता भी इनकी तरह शायद खामोश मुहब्बत में बुरी तरह गिरफ्तार थी। सुनकर बेचैन हो गयी और उन्हें देखने चली आयी।

फ़ज़ा ने जब उस देवी को, जिसे वे जीवन-भर पूजते रहे थे, अपने सिरहाने खड़ी पाया, तो उनके चेहरे पर हर्ष की एक लहर दौड़ गयी। भावातिरेक में गला रुंध गया। किंतु रंगीन-मिज़ाजी उन क्षणों में भी न गयी। प्रेयसी की आंखों में आंखें डालकर मुस्कराये और बेसाख्ता यह शेर कहा :

नज़्अ[1] में ऐ सीमतन[2] !

सूरत जो दिखलायी तो क्या !

वक़्ते-मुर्दन[3], दौलते-क़ारूं[4] भी

हाथ आयी तो क्या !

और विधाता की कैसी निर्ममता कि बस वही उन दोनों का प्रथम व अंतिम मिलन साबित हुआ ! कुछ क्षणों के पश्चात् ही फ़ज़ा साहब इस संसार से विदा हो गये। मानो वे अपनी प्रेयसी की एक झलक पाने को ही अब तक जीवन व्यतीत करते रहे थे।

× × ×

सन सतावन के विप्लव से दिल्ली के उजड़ जाने के कारण, आश्रय प्राप्त करने जो लोग लखनऊ चले आये, उन्हीं में मीर मुहम्मद तक़ी 'मीर' भी थे।

जब मीर लखनऊ पहुंचे तो एक सराय में उतरे। उसी दिन कहीं एक मुशायरा था। इन्हें पता लगा तो ये भी वहां पहुंचे। किंतु इनकी वेशभूषा वही पुराने वक्तों की—सिर पर खिड़कीदार पगड़ी, पचास गज के घेर वाला जामा, पिस्तौलिये का एक पूरा थान कमर से पटके के रूप में लिपटा, उसी में तह किया एक रूमाल लटकता हुआ, पूरे अर्ज के पांयचों वाला मशरू का पाजामा, नाग-फनी की अनीदार जूतियां जिनकी डेढ़-डेढ़ बालिश्त ऊंची नाकें, कमर में एक ओर सीधी तलवार (सैफ) और दूसरी ओर कटार बंधी हुई और हाथ में जरीब ! इस वेश में जब मीर ने मुशायरे में प्रवेश किया, तो उपस्थित जन इन्हें देखकर हंसने और आपस में आंखों-आंखों में इशारे करने लगे। एक तो भाग्य के सताये हुए, तिस पर परदेस, और अब लोगों का हंसना—मीर साहब बेचारे बड़े

१. मरणासन्न दशा; २. रजत-देह वाली; ३. मृत्यु के क्षण; ४. एक प्रसिद्ध धनकुबेर।

...हुए। किंतु खून का सा घूंट पीते हुए ...साधे रहे।

...इनकी बारी आयी तो इन्होंने एक ...उसी समय कहकर पढ़ा, गजल से पहले। ...मार्मिक उत्तर दिया है! फरमाते हैं:

...-ओ-बाश[1] पूछो हो पूरब के साकिनो[2]!
...गरीब जानके, हंस-हंस पुकार के।
...जो एक शहर था आलम[3] में इन्तिख़ाब[4]
...थे मुन्तख़िब[5] ही जहां रोज़गार[6] के।
...फ़लक[7] ने लूटके वीरान कर दिया,
...रहने वाले हैं उसी उजड़े दयार[8] के।

...पढ़ना था कि श्रोताओं में सन्नाटा ...गया। अंतिम पंक्तियां कहते-कहते मीर ...गला रुंध गया। लोगों को समझते देर न ...कि उर्दू शायरी के स्वनामधन्य मीर, ...साहब लखनऊ पधारे हैं। सभी बड़े ...हुए और कुछ ने तो हाथ जोड़कर ...याचना की। इन्होंने अपनी गजल ...। मुशायरा इन्हीं के हाथ रहा। सुबह ...होते नगर-भर में खबर फैल गयी कि ...में मीर साहब का आगमन हो चुका ...नवाब आसिफुद्दौला ने सुना और दो सौ ...मासिक वजीफा मुकर्रर कर दिया।

× × ×

लखनऊ के एक रईस के यहां कोई समा-...था। एक हसीन नाजनीन तवायफ भी ...मेहमान थी। जलसे के समय वह बड़े ...भाव के साथ सज-संवरकर बैठी थी। जैसी कि तवायफों को अदाएं दिखाने की आदत होती है, वह भी बातें करते-करते पास रखा दर्पण उठाती, अपना चेहरा देखती, फिर रख देती। संयोग से एक बार जब दर्पण उठाया, तो उसके हाथ से गिर पड़ा और टूट गया। उस मस्तशबाब को किंचित् ग्लानि तो अवश्य हुई, किंतु अगले ही क्षण रूप के गर्व और शोखी ने ग्लानि पर नियंत्रण पा लिया। त्योरियों पर बल डालकर गृह-स्वामी से बड़े नाज से बोली—'हम क्या करें, हाथ से आईना छूटा और गिरके टूट गया। अब और मंगवाइये।'

महफिल में तो सभी तरह के व्यक्ति होते हैं। कुछ होंगे ऐसे दिल-जले जिनकी नजर लगने से दर्पण टूट गया। किंतु वहीं दिल पर चोट खाये एक नौजवान शायर भी मौदजू था। इतना सुनकर बेसाख्ता उसकी जबान से एक शेर इस प्रकार मुखरित हुआ:

शीश-ए-दिल तोड़कर बोला वो शोख़,
देखते थे, छुट पड़ा, हम क्या करें!

लोगों ने सुना और उछल पड़े।

ये थे सिराजुलहसन 'सिराज' लखनवी। जिस समय की यह घटना है, उस समय उनकी शायरी की विधिवत् शुरूआत भी न हुई थी; क्योंकि तब तक किसी को यह गुमान भी न था कि उन्होंने कोई पंक्ति भी कही है। संभवत: यही शेर सिराज साहब के जीवन का प्रथम शेर था। बाद में तो मुशायरों में उन्होंने बड़े-बड़े गजब ढाये।

द्वारा—पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी,
५३, खुर्शेद बाग, लखनऊ-२२६००४

...-बसना; २. निवसियो; ३. विश्व; ...हुआ; ५. चुनिंदा; ६. कला, व्यव-...; ७. आकाश; ८. स्थान, गली।



[पृष्ठ ११९ का शेष]

'लाजो' एक बहुत ही भावुकतापूर्ण उपन्यास है। चुस्त, दुरुस्त, सुधारवादी, प्रवाहपूर्ण। हिंदी की समृद्धि के लिए नये स्थानीय शब्दों से परिपूर्ण। कथानक में अंत तक पाठकीय कौतूहल की रक्षा की गयी है। हर पाखंड का भंडाफोड़ संयत भाषा में किया जाता है। जहां तक मुझे याद है, एक साप्ताहिक में यह धारावाहिक निकला भी था।

'लाजो' के सारे ही चरित्र आकर्षक हैं। लाजो, कांता, प्रेम, रमेश, भीखूराम, सुमेरचंद आदि प्राणवंत हैं। दूसरे सभी प्रतिनिधि चरित्र हैं और सभी के व्यक्तित्व का निर्वाह हुआ है। जो समस्याएं इसमें उठायीं गयीं हैं, उनके व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत हैं—शायद कुछ लोग इसीलिए इसे पसंद न करें। सुमेरचंद्र की हत्या की जगह उसका अंगभंग किया जाता और उसे हमेशा के लिए जिंदगी खार होकर जीनी पड़ती, तो ज्यादा अच्छा होता। गुलजार-जैसे दक्ष निर्देशक के हाथों इस पर बढ़िया फिल्म वन सकती है।

०००

*** दूतवाक्यम् * महाकवि भास; अनुवादक: हरिवंश अनेजा; कादंबरी प्रकाशन, नयी दिल्ली, ५६ पृष्ठ; ६.५० रुपये।**

महाभारत के कृष्ण और अन्य सभी मुख्य पात्र कितनी ही अन्य साहित्यिक कलाकृतियों के आधार बन चुके हैं। भारत की ऐसी कोई भाषा नहीं, जिसमें ऐसा न किया गया हो। संस्कृत तो इन सब में इस दृष्टि से प्रमुख है ही। महाकवि भास के इस एकांकी में श्रीकृष्ण का दौत्य-कर्म स्पष्ट हुआ है। श्री अनेजा ने संस्कृत न जानने वाले हिंदी पाठकों के लिए भास के एकांकियों का रूपांतर करके एक तरह की साहित्य-सेवा की है। कृति में संस्कृत मूल बायें पृष्ठ पर, दायें पर हिंदी गद्य-पद्य रूपांतर छात्रों के लिए तो पर्याप्त उपयोगी है ही, संस्कृतज्ञों के लिए भी ठीक है।

जहां तक मेरी अपनी (वैयक्तिक) राय है, मुझे यह ठीक नहीं लगा कि भास की भाषा को रूपांतरित करते वक्त हिंदी की नाटकोपयुक्तता का ध्यान न रखा जाये। और यह शायद इसलिए हुआ है कि श्री अनेजा ने हिंदी के वर्तमान नाट्य-साहित्य से पूरा परिचय नहीं पाया। अन्यथा वे कदापि वह 'भाषा' न लिखते जो बोली नहीं जाती। भास की एक विशेषता यह है कि उनके सारे नाटक खूब अभिनेय हैं। यह गुण हिंदी अनुवाद में आना चाहिये न? लेकिन ऐसा नहीं हो पाया है हिंदी रूपांतर में। जैसे, द्वारपाल की जगह 'द्वार-अधिकारी' संस्कृत के 'प्रतिहाराधिकृत' के वजन में! पद्यानुवाद भी ऐसे ही वजनदार हैं—मक्षिका-स्थाने मक्षिका शैली में अनूदित। रूपांतरित होते तो अतुकांत हिंदी कविता बन जाते। यह बात दूसरी है कि 'दूतवाक्य' का अच्छा हिंदी रूपांतर भी शायद ही मंचस्थ हो पाता; क्योंकि वह आज के दर्शकों को रुचिकर नहीं लगता।



[पृष्ठ ११५ का शेष]

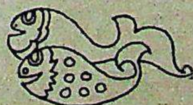
। शांतादी दरवाजे से टिककर खड़ी
। बच्चे सब बाहर निकल आये थे।
तुम चलोगे?' दौड़कर वह साइकल
गया। रोहित ने जीजाजी से मना
हुए कहा–'आप क्यों कष्ट कर रहे
'एक दिन का कष्ट ही सही', कहकर
बढ़ गये। मैंने बारी-बारी से शुभा,
और गुड़िया को प्यार किया। रोहित
के पैर छूते हुए कहा–'एग्ज़ाम के
शुभा और बच्चों को भेज दीजियेगा।'
में बैठकर मैंने एक बार मुड़कर
देखा–धोती के छोर से आंसू पोंछती
शांतादी मुझे बेहद निरीह लग रही
। मन में बड़ी देर से जो घुल रहा था,
निकला। मुंह फेरकर मैंने आंसू पोंछ
।

मारे कम्पार्टमेंट के नीचे काफी देर
चुपचाप रोहित और जीजाजी खड़े
। केवल टिंकू अपनी बाल-सुलभ बातों
वातावरण की बोझिलता को रोक रहा
मुझे लगा, टिंकू की किसी भी बात
जीजाजी नहीं सुन रहे थे, बल्कि वे
ऐसा कहना चाह रहे थे जिसे रोहित
उपस्थिति व्यक्त होने से रोक रही थी।
बार उनके ओंठों में कंपन होता और
दूर नजर आते टी-स्टाल को देखते।
के नाजुकपन को समझते हुए मैंने
रोहित से कहा–'तुम बर्थ चेंज कराने के लिए कह रहे थे न? अभी बात कर लो, फिर दिक्कत होगी।'

'हूं' कहकर रोहित चला गया। कुछ क्षण जमीन को पैर के अंगूठे से कुरेदते रहने के बावजूद जब जीजाजी चुप रहे तो मैंने ही पूछा–'आप इतने चुप क्यों हैं?' लगा, उन्हें मार्ग मिल गया। नजरें झुकाये-झुकाये ही उन्होंने पूछा–'हमसे नाराज होकर जा रहे हो न तुम लोग?' 'आप भी कैसी बातें करते हैं जीजाजी!' मैंने बात को टालने के उद्देश्य से कहा।

'मीनू, मैं बुरी तरह हार गया हूं। परिस्थितियों ने मुझे बुरी तरह झकझोर दिया है।......मीनू, पता नहीं तुम अभावों को महसूस कर सकती हो या नहीं, पर मैं टूट गया हूं। अपने लिए मुझे दुःख नहीं होता–दुःख होता है शांता के लिए। उसके लिए मैं कुछ नहीं कर सका, कुछ नहीं बन सका। शांता ने, मैंने जो कुछ कहा, उसके लिए हो सके तो मुझे.....' बात पूरी करने से पहले रोहित आ गया था। ट्रेन की खिड़की पर सिर झुकाये मैं बुरी तरह रोती रही।

तेजी से ट्रेन ने सीटी दी। चाहकर भी मेरे मुंह से शब्द नहीं निकले। ट्रेन की धीमी गति तेज होती जा रही थी। सिर उठाकर मैंने देखा–दूर पर एक अवश हाथ मंद गति से हिल रहा है।



दो क्षण तो हँस लें

अपनी संतान को सांस्कृतिक संस्कार देने को उत्सुक फैशनेबल महिला अपनी पांच र्ष की बिटिया को पाश्चात्य संगीत के प्रोग्राम में ले गयी। कार्यक्रम आरंभ हुआ, गीत-संचालक ने अपना बैटन (छड़) उठाया और एक सुप्रानो गायिका ने तारस्वर में ना शुरू किया।

इस पर बच्ची ने अपनी मां से पूछा–'मां, यह आदमी उस औरत को पीट क्यों हा है?'

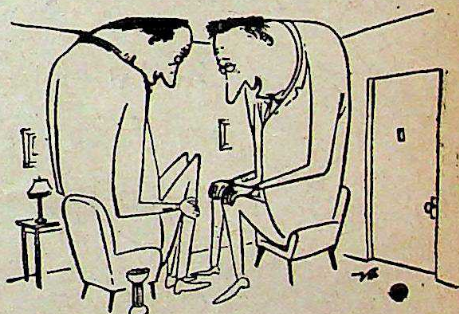
'हुश्!' मां बोली–'वह उसे पीट नहीं रहा है।'

'तो फिर वह औरत ऐसे चीख क्यों ही है?' मासूम बच्ची ने सवाल किया।

o

ना: मुर्गी के बच्चों ने मां की बात नहीं नी। वे अच्छे बच्चे नहीं थे। वे दड़बे े बाहर निकले और लोमड़ी उन्हें खा यी।

ा: अगर वे अच्छे बच्चे होते, हम उन्हें सकते थे।



सचमुच छोटा-सा सुंदर-सा फ्लैट है तुम्हारा।



अगर यह चुटकला भी पहले सुन रखा हो, तो मुझे गोली मार देना।



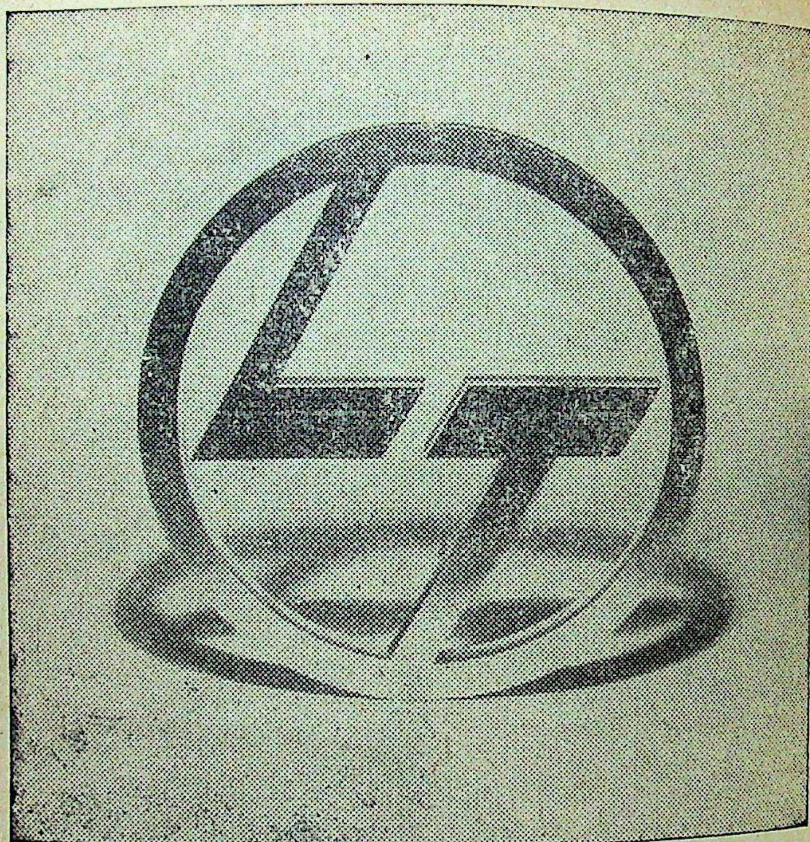




नवनीत (हिन्दी डाइजेस्ट)

अक्तूबर १९७९ मूल्य रु. ३-५० पै.





किस चीज का प्रतीक है यह चिह्न ?

इंजीनियरी में नयी कल्पनाएं। वे जन्म लेती हैं L&T में, जहां कि इंजीनियरों की टोली प्रमुख उद्योगों के लिए संयंत्रों और उपकरणों का आकल्पन, रचना तथा प्रतिष्ठापन करती है। ये उद्योग हैं—रसायन एवं औषध, खाद्य एवं डेरी, खनिज एवं तेल, लुगदी एवं कागज, फौलाद एवं सीमेंट, बिजली एवं सिंचाई। L&T चिह्न प्रमुख ग्राहकों और विश्वविख्यात सहायकों के विशेष ज्ञान के आधार पर संपूर्ण संयंत्र के निर्माण का भी प्रतीक है। L&T संयंत्र की नींव डालने से उत्पादन आरंभ करने तक सारी देखभाल करता है। संक्षेप में, L&T चिह्न भारत के प्रत्येक अति महत्त्वपूर्ण उद्योग के विकास का प्रतीक है।

लार्सन एंड टूब्रो लिमिटेड

devices or equipments

HIRECT RECTIFIERS

are made to be faithful

When perfection goes into DC power supplies, the result is a confirmed faithfulness of semi-conductor devices—a faithfulness that ensures smooth operation of your unit. Backed with years of Westinghouse expertise, Hirect rectifiers bring you the best in technical competence. Hirect is equipped to chalk out and design the most suitable equipment your power system demands. Like rectifiers, Hirect engineers are faithful to your requirements.



HIND RECTIFIERS LTD.
MARKETING DIVISION
Mahalaxmi Chambers,
Bhulabhai Desai Road,
BOMBAY-26.

heros'-HR47-A

बूंद बूंद से घट भरे

...मिलन और सुखसमृद्धि ...का अवसर लेकर आता ...का त्यौहार।

...के इस सुनहले ...साथ बैंक ऑफ़ इंडिया ...। बच्चों के सुखद और ...की कल्पना ही तो ...का एकमात्र सपना है।

उसकी बचत की छोटीमोटी रक़म भी उसके सुरक्षित भविष्य की नींव रख रही है।

भारत का सबसे बड़ा राष्ट्रीयकृत बैंक आज समाज के हर तबके के लोगों तक पहुंच रहा है... प्रगति में उनका सहायक बन रहा है।



बैंक ऑफ़ इंडिया
(भारत सरकार का उपक्रम)
सेवा में श्रेष्ठता ही हमारी विशेषता है।

CONCEPT-BOI-4295

दर्द से तुरन्त आराम
नोवा
पेन बाम

लाभदायक औषधियों
सुयोग्य मिश्रण याने
नोवा पेन बाम

दि नोवा कंपनी
बंबई-४०००७८



TOM & BAY-NC-7915M

Spreading colour around the world

Colour is an important part of your life. Atul makes some of the finest man-made dyes which colour everything around you. Atul dyes are used all over the country and are exported to many parts of the world. Atul also makes Dye Intermediates, Chemicals and pharmaceuticals. Atul is India's giant chemical complex.



THE ATUL PRODUCTS LIMITED

P. O. ATUL, DIST. VALSAD, GUJARAT.

११७९

... की सजावट के लिए

क्राउन

ब्रांड अल्युमिनियम के बरतनों को ही पसंद करती है।

सुंदर, चमकदार, मजबूत, सुडौल और वजन में हल्के, क्राउन ब्रांड बरतन रसोई बनाने के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। उन्हें जंग नहीं लगता। फिर विविध रंगों में मिलते हैं, कारण शोभा में खूब वृद्धि करते हैं। **क्राउन ब्रांड अल्युमिनियम** के बर्तन तथा अन्य उत्पादन, घर, हास्पिटल, सुरक्षा-विभाग तथा अनेक उद्योगोंकी बहुत तरह से सेवा कर रहे हैं।



जीवनलाल (१९२९) लिमिटेड

लिबर्टी बिल्डिंग, मरीनलाइंस, बंबई–४०० ०२०

फोन : २९११५६

एअर कंडीशन शो रूम :—कंसारा चाल, कालवादेवी रोड, बंबई–४०० ००२

फोन : ३५४८६९

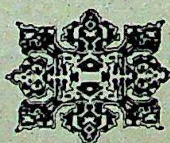
द बाम्बे रजिस्टर्ड पाइप डीलर्स सिंडिकेट लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :
९३ ए, नागदेवी स्ट्रीट, बंबई-४०० ००३

तार : PIPESTOCK

फोन : कार्यालय ३२१६६७
३२०२१४
३४१३६४
गोडाउन ३९४६११
८९३६६०

काले और गाल्वनाइज्ड पाइपों के वितरक तथा
द इंडियन ट्यूब कंपनी लिमिटेड
के. ई. आर. डब्ल्यू. बॉइलर ट्यूबों और जोड़ रहित
ट्यूबों के स्टाकिस्ट
श्री अंबिका ट्यूबस, अहमदाबाद
के स्टाकिस्ट।

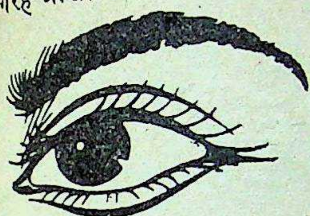


शाखा :
५२२/२, सरोज मैन्शन, पंचकुआ गेट के बाहर
अहमदाबाद-३८०००१

तार : PIPEDEALERS

फोन : ३६४३४९

खों की लाली (कन्जक्टीवायटीस), जलन, आंखों की करकराहट, आंखों में से पानी
रना वगैरह आंखों की शिकायतों पर अत्यंत उपयुक्त ......



जीवदया नेत्रप्रभा

(सर्वत्र प्राप्य)

औषधि को हिलाकर अंजन करें...अंजन करने के बाद आंखें न मलें !

बरसों से घर में इस्तेमाल होने वाली आंखों की सुप्रसिद्ध औषधि

* धूप में घूमने से होने वाली आंखों की जलन व सरदर्द पर **'जीवदया नेत्रप्रभा'** बहुत ही गुणकारी अंजन है ।
* ज्यादा परिश्रम, लिखाई-पढ़ाई वगैरह से आनेवाली आंखों की थकन में **'जीवदया नेत्रप्रभा'** उपयुक्त औषधि ।
* आंखों में फूली व मोतिया के आपरेशन के बाद **'जीवदया नेत्रप्रभा'** का अंजन बहुत ही गुणकारी है।
* रात्रि को देर तक जागना व मानसिक तनाव, आंखों में से पानी झरना व आंखें लाल होना इत्यादि पर **'जीवदया नेत्रप्रभा'** लाभदायक औषधि है।

*** 'जीवदया नेत्रप्रभा' आंखों के लिए एक बढ़िया टॉनिक है ***

कान्टेक्ट लेन्स लगाने से पूर्व व निकालने के पश्चात **'जीवदया नेत्रप्रभा'** का अंजन करें।
नियमित अंजन आंखों को साफ, सुरक्षित व निरोगी रखता है ।

'जीवदया नेत्रप्रभा' हमेशा घर में रखें...यह एक घरेलू औषधि है ... !

फ्री चेक-अप

हमारे यहां आंखों के स्पेशलिस्ट डाक्टर आपकी आंखों की मुफ्त जांच करेंगे । उसके लिए **'जीवदया नेत्रप्रभा'** का खाली कार्टून साथ लाना आवश्यक है।
फोन नं. ३६६५१० पर पूर्व अप्वाइन्टमेन्ट लेकर पधारें।



जीवदया नेत्रप्रभा कार्यालय
गावदेवी रोड, बंबई-४००००७
फोन: ३६६५१०, ५८४८२४.

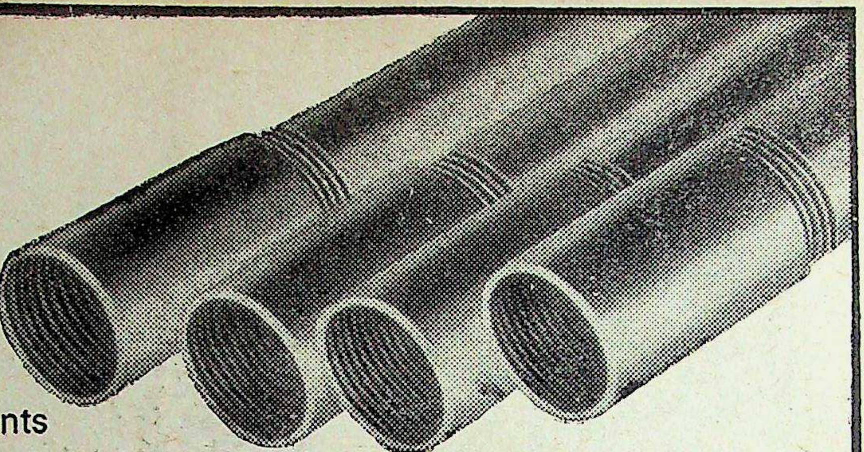
देवीदयाल रोलिंग एंड रिफायनरीज प्रा. लिमिटेड

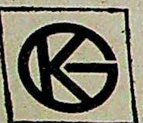
गुप्ता मिल्स इस्टेट
रे रोड, बम्बई-४०० ०१०

कारखाना : पोखरण वैली, थाना

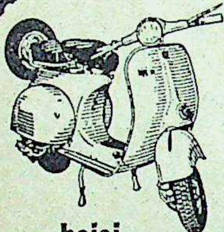


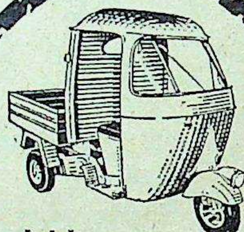
कार्बन और एलाय शीट्स के निर्माता

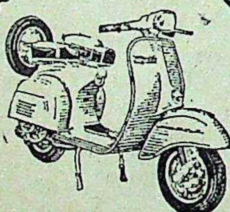


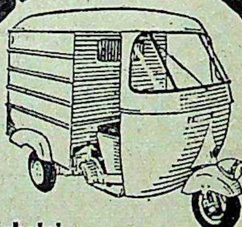


bajaj Vehicles
Light as air. Light on fuel.

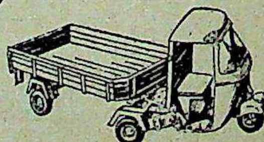










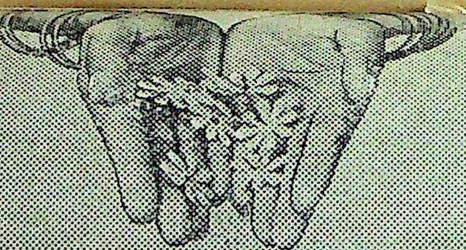




bajaj auto ltd.

AKURDI, POONA 411035, INDIA.

heros' BA-15



दीपावली की शुभ कामनाएँ

दीपावली के पावन पर्व पर अपने प्रियजनों को
समृद्धि और सुरक्षा का उपहार दीजिए।
हमारी विविध जमा-योजनाओं में से
अपनी पसंद की योजना चुन लीजिए।
यही है आपका सर्वोत्तम उपहार।





बैंक ऑफ़ बड़ौदा
(भारत सरकार उपक्रम)

Sobhagya/BOB/79/17 Hin

नवनीत

संस्थापक
श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया



संपादक
नारायण दत्त
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक : महेन्द्र महेता

दीपावली विशेषांक

विताएं :

नाथ मिश्र प्रभात ३७; जानकीवल्लभ शास्त्री ३८; रमेशचंद्र शाह ४६; तीप्रसाद मिश्र ४७; अजित कुमार ५६; गोपाल चतुर्वेदी ५६; सूर्यभानु गुप्त; वीरेन्द्र मिश्र ८४; निरंकार देव सेवक ९९; पुष्पा राही १०८; वीरेन्द्रकुमार १३०; पद्मा सचदेव १४४; राजेन्द्र गौतम १५५; जहीर कुरैशी १६५; रामदरश मिश्र १९७; कन्हैयालाल सेठिया १९७; मिलरेप २०८।

चर्चा :

१९८४ में–डा. के. शिवराम कारंत और एम. जे. अकबर ४०।

वाक्य में जीवन-दर्शन :

ीत के निमंत्रण पर श्री बनारसीदास चतुर्वेदी से लेकर आज की पीढ़ी तक के अनेक हित्यकारों-पत्रकारों-विचारकों द्वारा सूत्र रूप में अपने जीवन-दर्शन का निरूपण ४९।

ख :

द दवे–मानव-विकास का महापर्व ३६; डा. मोहन रामचंदाणी–आइन्स्टाइन कल्पना साकार ६५; कुमार प्रशांत–तूफानी गेंदबाजों की रफ्तार ७३; जगदीश चतुर्वेदी–पाकिस्तानी परमाणु-बम ७६; माल्कम कूली–सफलता का विफल री ८५; मनुगुप्त–हनुमान चीन में ८८; रतनलाल जोशी–महत्त्वाकांक्षा में

चित्र : राय देवीप्रसाद चौधरी, भाऊ समर्थ, ओके, शेणै, राणा, डा. विष्णु भटनागर, सतीश चव्हाण, चरन शर्मा।

'एक वाक्य में पाठकों का जीवन-दर्शन' अगले अंक में।





अंतस्थ देवत्व

संसार का इतिहास उन थोड़े-से व्यक्तियों का इतिहास है, जिनमें आत्मविश्वास था। यह विश्वास अंतःस्थित देवत्व को ललकार कर प्रकट कर देता है। तब व्यक्ति कुछ भी कर सकता है; वह सर्व-समर्थ हो जाता है। विफलता तभी होती है, जब तुम अंतःस्थ अमोघ शक्ति को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न नहीं करते। जिस क्षण व्यक्ति या राष्ट्र आत्मविश्वास खो देता है, उसी क्षण उसकी मृत्यु आ जाती है। ... कुछ न कुछ भूलें तो सर्वदा होंगी ही। उन पर खेद मत करो। .... कोई छूटेगा नहीं, कोई नष्ट भी नहीं होगा। अंततः सभी को पूर्णत्व की प्राप्ति होगी। अहर्निश आह्वान करो–'आओ बंधुओ, तुम सब पवित्रता के असीम सागर हो! ब्रह्म बनो! ब्रह्म रूप में अपने को प्रकट करो।'

सभ्यता क्या है? वह अंतस्थ देवत्व की अनुभूति है। —स्वामी विवेकानंद

मानव-विकास का महापर्व

मकरंद दवे

दीपावली केवल एक त्योहार नहीं है; वह पांच त्योहारों का समाहार है। धनतेरस, नरक-चतुर्दशी, दीवाली, प्रतिपदा और भैयादूज—इस तरह पांच दिन तक यह उत्सव चलता है और मनुष्य ने पशुता में से बाहर निकलकर जो पांच सिद्धियां हासिल कीं, उनकी स्मृति इस उत्सव के साथ जोड़ दी गयी है।



लक्ष्मी (कांस्य लोककला) बांकुड़ा, प. बंगाल

धनतेरस धन का, विनिमय का, मनुष्यों के परस्पर शांतिपूर्ण व्यवहार का उत्सव है। मनुष्य समूह में जीने वाला सामुदायिक प्राणी है। एक समूह दूसरे समूह पर हमला करे और उसे मारकर उसका सर्वस्व छीन ले, तो यह प्राकृतिक घटना होगी। आज भी भिन्न रूप में भिन्न स्तर पर ऐसा चल ही रहा है। परंतु मानव-प्राणी को अन्य प्राणियों से अलग करने वाला तत्त्व है विनिमय। जब मनुष्य ने वस्तुओं द्वारा लेन-देन शुरू किया होगा और जब धन का प्रतीक उसके हाथ में आया होगा तब उसे एक सरल और सुगम मार्ग द्वारा विश्वयात्रा करने की पुकार सुनाई दी होगी। इस प्रकार मनुष्य के ललाट पर लक्ष्मी ने जो तिलक लगाया, उसका त्योहार धनतेरस है।

नरक-चतुर्दशी को अब तो तंत्रमंत्र-विद्या सिद्ध करने अथवा कष्ट-क्लेश मिटाने के त्योहार के रूप में पहचाना जाता है। पर नरक-चतुर्दशी के दिन श्मशान जग उठते हैं, इस मान्यता से उसका श्मशानवासी मृत पितरों के साथ संबंध स्थापित होता है। यह पितरों के स्मरण और उनसे ऋणमुक्ति का उत्सव है। हमारे यहां 'चतुर्दश विद्या' का जिक्र है। यह चतुर्दश विद्या जिनके द्वारा हमें मिलीं है, उन पितरों का ऋण-स्वीकार इस पर्व द्वारा होता है। हमें जो भी कुछ वित्त और विद्या प्राप्त हुई है, उसमें पितरों के पुरुषार्थ का बहुत बड़ा योगदान है। इस दिन उनका स्मरण करके उनके ज्ञानतंतु को हमें आगे बढ़ाना है।

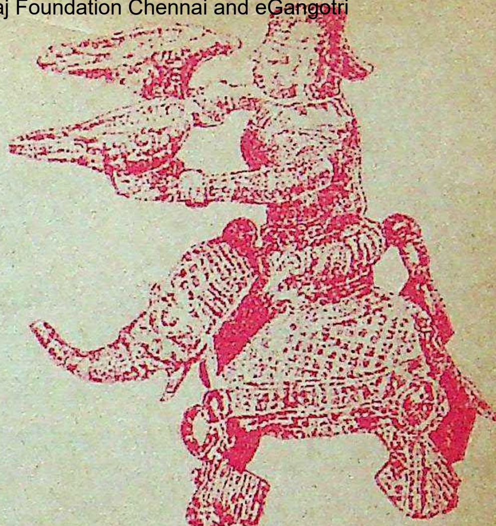
दीपावली तो अमावस की रात में पृथ्वी पर दिन उतारने की मानवीय सिद्धि का पर्व

अग्नि की खोज और अग्नि में से दीये की खोज, मनुष्य के अस्तित्व और आनंद को नयी भूमिका पर लाने वाली घटना है। प्रकार दीपोत्सव प्रकृति के राज्य में मनुष्य द्वारा स्वयं प्रकट किया गया नया प्रकाश है। प्रकाश का पर्व मनुष्य की स्वतंत्रता की में प्रसारित करता है। मिट्टी का दीया कवि रवींद्रनाथ ठाकुर के अनुसार, 'कर्तव्य-ग्रहण' का प्रतीक है और दीपावली के कर्तव्य से संसार को उजागर करने के मनुष्यत्व का महापर्व है।

दीपावली के बाद की प्रथम प्रतिपदा अन्नकूट के उत्सव के रूप में मनायी जाती है। आजकल तो अन्नकूट मुख्यतः मंदिरों की चीज बन गयी है। परंतु मूलतः यह प्रभु के चरणों में नैवेद्य अर्पित करने का उत्सव है। नया अन्न घर में आने पर सर्वप्रथम उसे प्रभु के चरणों में अर्पित करके उसका प्रसाद ग्रहण करें, यह भावना उसके पीछे है। अपने पुरुषार्थ के फल से गर्वोन्मत्त न होना, उसे प्रभु की कृपा मानना मनुष्य को नम्र और निर्मल बनाने वाली दीक्षा है।

प्रतिपदा के बाद आती है भैयादूज। मनुष्य स्त्री और पुरुष के संबंधों में भाई-बहन का संबंध स्थापित कर सका, वह पशु-जगत से इतना ऊपर उठ सका। यह मनुष्य द्वारा 'सहोदरा' को दिया गया एक अनोखा उपहार है।

इस प्रकार दीवाली के ये उत्सव अपनी बाहरी और भीतरी प्रकृति पर मनुष्य द्वारा प्राप्त विजय के उत्सव हैं।



संध्या-प्रदीप, प. बंगाल [अनुकृति : ओके]

त्वचा आग है

त्वचा आग है
यह पंजर जो रचा, आग है।

सुधा चाहते, शांति कहां है
कला चाहते, कांति कहां है
क्षमा चाहते, क्षांति कहां है
जग में जो कुछ बचा, आग है।

देखा मैंने मानव जलता
देखा फूलों का शव जलता
देखा भावों का भव जलता
तुम्हें गीत जो जंचा, आग है।।

—केदारनाथ मिश्र प्रभात

इलावर्त, रामकृष्ण एवेन्यू,
राजेन्द्रनगर, पटना—८०००१६



सामगान

सामवेद के पूर्वार्चिक, प्रथम प्रपाठक, प्रथमार्ध की, अग्नि को संबोधित एक दशति का अनुगायन। [जयदेव के 'गीतगोविंद' में जैसे अष्टपदियां हैं, वैसे सामवेद में दशतियां हैं।]

जानकीवल्लभ शास्त्री

आओ अग्निदेव, आहुति लो,
सुरगण-सहित पधारो !
मेरा जीवन-यज्ञ सफल हो,
सबको स्वयं पुकारो ! !

*

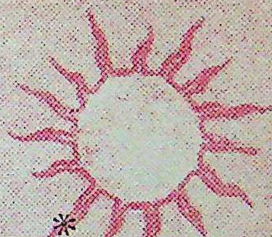
चले तेजरथ मेरे स्तुतिपथ पर
उन्मुक्त तुम्हारा,
तुम समर्थ माध्यम बन
पृथ्वी पर सुरलोक उतारो !

*

अग्निदेव, हैं यज्ञ तुम्हारे
संकेतों से होते,
धूम-मलिन मन में जनगण के
अपनी विभा उभारो !

*

लुटा रही हैं रत्नशिखाएं
सार्थकता स्वप्नों की,
लपटें तम पर झपटें,
तुम अंगारों में हुंकारो !



...संगी पुण्यों के,
सबल सखा प्राणों के,
...थि परमप्रिय, गान सुनाता,
पथ की थकन निवारो !

*

श्री, सुख, सौरभ बुनो,
नि:स्वता विकल विश्व की ढंक लो,
अग्निदेव, तम में मानवता-
लपट उछाल उबारो !

*

...की सिद्धि, साधना स्वर की—
मेरे गान सुनो तो !
...तुम्हारे जुड़ा जायँगे,
सोम-चषक कर धारो !

*

अभिवादन का स्वर उन्मादन,
तेज तुम्हारा लहके,
लूंगा खींच शून्य से,
तुमको तम में प्रभा पसारो !

*

...कर तुम्हें अरणियों से
ऋषि ने साकार किया था,
...वंद्य यों ही न हुए तुम —
सोचो और विचारो !

*

अग्नि-देवता, तुम भू पर हो,
ऊपर सूरज-चंदा,
मैं प्रकाश-मंडल का वासी,
मेरा सुयश सँवारो !

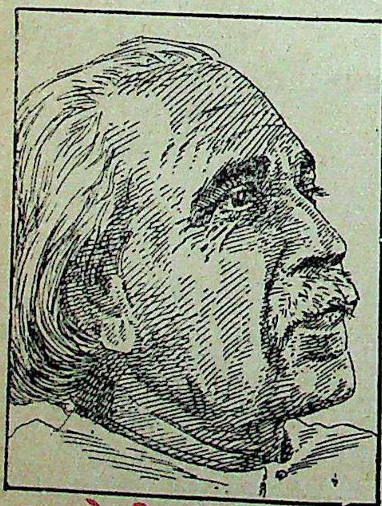
निराला-निकेतन
मुजफ्फरपुर-१

भारत १९८४ में

देश की राजनैतिक स्थिति तेजी से बदल और बिगड़ रही है और इसका बहुत अंदेशा है कि मध्यावधि चुनाव भी केंद्र में मजबूत सरकार की स्थापना न करा सकें, जिसकी कि बड़ी जरूरत है। इस पृष्ठभूमि में, आपके खयाल से आज से पांच साल बाद सन १९८४ में भारत की तस्वीर क्या होगी? क्या वह वैसी ही डरावनी और रूह कंपाने वाली होगी, जैसी तस्वीर ब्रिटिश लेखक जार्ज आर्वेल ने अपने विख्यात उपन्यास 'नाइन्टीन एटी-फोर' में खींची है? ...... **नवनीत** के इस प्रश्न का उत्तर सुनिये मूर्धन्य साहित्यकार **शिवराम कारंत** तथा प्रखर पत्रकार **एस. जे. अकबर** से।

संयोजक : विश्वनाथ सचदेव

मैं उन लोगों में से था, जो १९२२ में कालेज की पढ़ाई छोड़कर असहयोग आंदोलन में शामिल हुए थे। कुछ वर्ष तक



डा. के. शिवराम कारंत
[विख्यात कन्नड साहित्यकार]

मैं अपने कस्बे के आस-पास के गांवों में घूम-घूमकर खादी, स्वदेशी तथा ब्रिटिश संस्थाओं के बहिष्कार के संदेश का प्रचार करता रहा। जब 'साल-भर में स्वराज' का गांधीजी का वचन पूरा नहीं हुआ, तो हमारी आशाएं झूठी सिद्ध हो गयीं। इसके बाद तीन दशक और लग गये उस सपने को सच होने में। और अंत में जैसी स्वतंत्रता १५ अगस्त १९४७ को आयी, उसे आप सब जानते हैं!

कितना अधिक विश्वास था हमें तब अपने नेताओं पर! और कितना त्याग उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए किया था! इस चीज ने एक ढंग से उनके चित्त से यह बात उतार ही दी कि दूसरे भी हजारों लोगों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए त्याग किया है; और जब भारत-जैसे विशाल देश का शासन संभालने का सवाल आया,

हम स्वतंत्रता की लड़ाई का नेतृत्व
वाले अपने इन नेताओं को छोड़कर
का खयाल ही नहीं कर सके। इसका
सीधा अर्थ यह था कि जो योद्धा होता है,
प्रशासन की भी पूरी योग्यता रखता है।
हमारी जनता को हमारे नेताओं में
वास था और हमारे नेताओं ने भी
भारत के शासक होने का दावा सहज
कर दिया। अब आगे चलकर उन्हें
काम करना था, उसकी उनमें कितनी
ता है, इसका कोई विचार ही नहीं किया
। चुनावों में हमने कभी योग्य आद-
मियों से नहीं कहा कि आप हमारा प्रति-
निधित्व कीजिये। कांग्रेस में लोगों की जो
श्रद्धा थी, उसके सबब से कांग्रेसी
उम्मीदवारों का पलड़ा अपने विरोधियों
की तुलना में भारी रहता था। क्या यह
त ही नहीं था? आखिर, देश के लिए
ना सब त्याग किया था उन्होंने।

अगले दो दशकों तक देश का राजनैतिक
ारा यह रहा कि प्रत्येक नेता बाकी सबके
द्ध अपनी निजी ताकत और हैसियत
मजबूत बनाने में जुटा रहा। जैसा कि
स्वाभाविक था, कांग्रेस के भीतर जो लोग
ह बात समझ गये थे कि देशभक्ति या
का नाम मुनाफा देता है, उन्हें जनता की
देश की समस्याओं की बहुत कम चिंता
। गांधी के नाम पर वे तमाम अक्लमंदी
र एकाधिकार का दावा करने लगे और
ों के अंदर के अपने दलालों के जरिये
म जनता पर अपनी पकड़ पक्की करने के
लिए निरंतर मेहनत करते रहे।

निरक्षर जनता को चतुराई-भरे प्रचार और चुस्त नारों से निरंतर उल्लू बनाया जाता रहा। सर्वोपरि सत्ता पर अधिकार इन्हें पैसा बटोरने और सरकारी तंत्र पर अपना वर्चस्व फैलाने का अवसर देता था। मियादी चुनाव उचित-अनुचित सब तरह के उपायों से वोट जुटाने की विशाल हाट बनते चले गये। इसके लिए जरूरी होती थीं भारी रकमें, जो कि उद्योगपतियों और व्यापारियों से दुही जा सकती थीं, बशर्ते इसके एवज में आप व्यापार और अर्थतंत्र के चक्के इस तरह घुमायें कि जिससे उनका लाभ होता हो।

भारत की आजादी के इन तीन दशकों में हमने यही देखा है कि देशभक्ति के नाम पर हमारे नेताओं ने तमाम नैतिक बुद्धि को और जनता के प्रति (जिसने कि उन्हें अधिकार और पद दिलवाया था) अपनी तमाम नैतिक जिम्मेदारी को तिलांजलि दे डाली; ऊपर से गरीबों और पददलितों के त्राणदाता होने का दिखावा भी करते रहे।

ऐसे नेताओं में सबसे चतुर थीं श्रीमती इंदिरा गांधी। जो भी उनकी तानाशाही कायम करने में मददगार हुए, उन सबको लात मारने की क्षमता उनमें थी। दूसरे नेताओं की आंखें बहुत देर से खुलीं। तब तक उन्हें लात मारकर निकाला जा चुका था, फिर जेल में बंद कर दिया गया। तब तक देश के राजनैतिक और प्रशासनिक तंत्र पर श्रीमती गांधी की पकड़ ऐसी मज-

बूत हो गयी थी कि देश ने देखा कि जो आजादी महात्मा गांधी भारत की जनता के लिए लाये थे, उसे श्रीमती गांधी एक ही रात में पोंछ डाल सकीं।

श्रीमती गांधी और उनके बेटे ने सत्ता का जो बहुत ही उद्धततापूर्ण प्रदर्शन किया, उससे भारत की (मुख्यतया उत्तर भारत की) जनता को एकाएक होश आया। अपने तानाशाही तरीकों के लिए जनता की जोरदार मंजूरी प्राप्त करने की फिराक में श्रीमती गांधी गच्चा खा गयीं और चुनाव करा बैठीं। और, लोगों ने जो कि आखिरकार जान गये थे कि इस सबका मकसद क्या है, उन्हें निकाल बाहर किया। इस चमत्कार की सारे प्रजातंत्रीय संसार ने सराहना की।

'जनता' के नाम से चंद राजनैतिक दलों का नवोदित गुट चुनाव जीत गया; मगर लोगों ने उसमें जो अपार विश्वास रखा था, उसका शोचनीय ढंग से विश्वासघात हुआ।

कौन लोग थे इस पार्टी में? वे जिन्होंने श्रीमती गांधी के हाथों उनके सत्ता-संघर्ष में सबसे ज्यादा मार खायी थी, वे लोग जो श्रीमती गांधी की तानाशाही से चिढ़ते थे और ऐसे चंद समूह जिनके अपने अलहदा राजनतिक आदर्श थे। श्रीमती गांधी को पदच्युत करने के लिए इन तमाम लोगों को एकजुट होकर लड़ना पड़ा और वे जीतें। इस जीत ने उन्हें अपने कर्तव्यों की याद न रहने दी।

जनता पार्टी के सत्तारूढ होने और शासन शुरू करने के बाद से कई बातें उभरकर सामने आने लगीं।

हालांकि श्रीमती गांधी के दुष्कृत्यों की भरपूर पब्लिसिटी हुई है, फिर भी उन्हें विशाल समर्थन प्राप्त है, जिसका यही अर्थ है कि उनके अनुयायी शैतान को भी पूजने को तैयार हैं, बशर्ते सत्ता का लाभ उठाने का अवसर उन्हें मिले।

यह इसका भी प्रमाण है कि सार्वजनिक जीवन में ब्लैक मेल, भ्रष्टाचार और बेईमानी को लज्जास्पद चीजें नहीं समझा जाता।

जनता पार्टी जिस तरह ढह गयी उस पर नजर डालें तो एक चीज बहुत उभरकर सामने आती है, जो बड़ी ही दर्दनाक है। यह हमारे राजनीतिज्ञों का—भले वे किसी भी दल के हों—बड़ा स्पष्ट एक्सरे चित्र प्रस्तुत करती है। 'जनता' भी इसका अपवाद नहीं थी। पुरानी कांग्रेस पार्टी तो इन सब दूषित प्रवृत्तियों को अंत तक सींचती-पनपाती रही ही थी।

जनता की सेवा की सारी बढ़ी-चढ़ी बातें तो बस सत्तालिप्सा के लिए एक आड़ हैं। और इन लोगों में जो बूढ़े हैं वे मंत्रिपद या प्रधान-मंत्रित्व पेश किये जाने पर चिर-युवा बन जाते हैं।

जो लोग अब पार्टी में महत्त्वपूर्ण थे, उनमें से कई कुछ ही वक्त पहले श्रीमती गांधी के समर्थक थे। कई लोग राजनीति की शतरंज के पक्के खिलाड़ी थे और उन्हें चरित्र, शराफत और अंतःकरण से कुछ

देता नहीं था—अगर ये चीजें उनके र्थ साधने में सहायक न हों।

नता पार्टी के जाने के साथ अब हम मन से इस सचाई को रूबरू देख रहे कि अब कोई भी एक पार्टी भारत के नैतिक रंगमंच पर हावी नहीं हो गी। एक ढंग से यह अच्छा ही है, क सत्तारूढ पार्टी तानाशाह से भी बद- साबित हो सकती है।

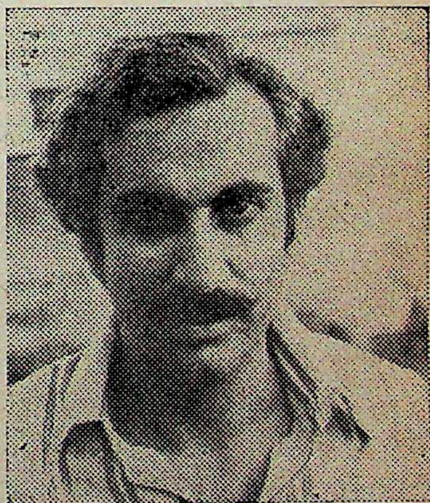
अगर विभिन्न राजनैतिक दृष्टिकोणों की चंद ईमानदार पार्टियां उभर आयें, मुझे अफसोस न होगा। ऐसे कुछ दृष्टि- ण अभी भी मौजूद हैं; और आवश्यक तो कुछ और गढ़े जा सकते हैं। मगर न इस बात का आश्वासन देगा कि इन र्टियों के सदस्य अपनी वफादारी सबसे की बोलने वाले को बेच न देंगे?

इस सारी अव्यवस्था में से राष्ट्र के लिए सबसे लज्जास्पद बात उभरकर आयी वह यह नहीं है कि मिली-जुली सरकारें कर सकेंगी और क्या नहीं, बल्कि वह है कि राजनीतिज्ञ बेहयाई की किस हद तक जा सकते हैं।

आगामी चुनाव चंद पार्टियों को राज- नैतिक वर्चस्व कायम करने का मौका शायद ही हो सकता है, वे मिली-जुली सरकार बनायें और वह भी ज्यादा दिन टिक न सकें। जब ईमानदारी, चरित्र और सत्य- निष्ठा का ऐसा अकाल पड़ गया हो, तब १९८४ में देश का राजनैतिक मौसम अधिक अच्छा होगा, इसकी उम्मीद नहीं ही करनी चाहिये। हताश धूर्त लोग राजनैतिक वर्चस्व कायम करने के लिए जरूर हिंसा पर उतर आयेंगे, क्योंकि उनमें से ज्यादातर को केवल अपनी फिक्र है, देश की नहीं।

हमें आपातकाल से भी कहीं ज्यादा खतरनाक दिन देखने पड़ेंगे। हमारे अन- पढ़ और पढ़े-लिखे सभी मतदाता इस वाता- वरण को तैयार करने में निरंतर अपना तुच्छ योगदान देते आये हैं। मुझे नहीं लगता कि वे उतने निर्दोष हैं। बहुत-से अज्ञानी हैं, पर साथ ही ओछे भी हैं।





एम. जे. अकबर

[संपादक : सन्डे, कलकत्ता]

क्या सन १९४७ या १९५० या १९५२ में किसी ने कहा था कि प्रजातंत्र आसान-सा खेल होगा ? अथवा क्या हमारे देश के विशिष्ट-जनों और बुद्धिजीवियों ने

प्रजातंत्र की सचमुच नये सिर से व्याख्या की थी ? क्या प्रजातंत्र उनकी नजरों में तभी तक सुरक्षित है जब तक उसके सर-गना वे खुद हों ? क्या प्रजातंत्र तभी तक सुरक्षित रहता है जब तक वह ईर्ष्यास्पद अंग्रेजी या बनावटी हिंदी या शहरी वकीलों की लच्छेदार लफ्फाजी में बात करे ? क्या इस विशेषाधिकार-भोगी एक प्रतिशत में से किसी ने कभी सपने में भी सोचा था कि एक दिन दिल्ली के भव्य सत्ता-प्रासादों के बुलंद छांवदार शीतल गलियारों में गांवों के प्रतिनिधि ठट के ठट घूमेंगे, मिनिस्टर लोग सरे आम बेझिझक डकार लेंगे और पार्टी-लीडरान मजे से भुट्टा चबायेंगे और संसद-सदस्य चीखकर, गला फाड़कर बोलेंगे–निपट जिला-स्तरीय सत्ता-दलालों की तरह, जो कि वे सचमुच हैं और होने भी चाहिये ? खुदा के वास्ते, संसद का काम इन्हीं जिलों का प्रतिनिधित्व करना है, न कि लंदन के काफीक्लबों, पेरिस के दीवान-खानों और राजाओं के भोजन-कक्षों का का प्रतिनिधित्व करना। संसद का काम बंबई और बंबइया संस्कृति का प्रतिनिधित्व करना नहीं है, जिसका स्वरूप कुछ तो तय करते हैं अपने को अफलातून समझने वाले आडंबरी वकील, और कुछ तय करते हैं वे व्यापारी जिनके जिस्मों पर कुरुचिपूर्ण कपड़े हैं और जिनकी जेबों में है बेशुमार ब्लैक का पैसा।

आज देश की राजनीति में जो हड़कंप मचा हुआ है, वह देश के सत्ता-ढांचे में हो रहे परिवर्तन का आरंभिक लक्षण भर है। इस परिवर्तन का मूल मार्च १९७७ में नहीं बल्कि १९६७ में है, जब ठेठ अमृतसर से लेकर कलकत्ता तक गैरकांग्रेसी सरकारें बन गयीं। इसके कई सबब हैं कि उस समय यह परिवर्तन पैर क्यों नहीं जमा पाया। अव्वल यह इस कदर नयी और क्रांतिकारी चीज थी कि (डा. राममनोहर लोहिया को छोड़कर) हमारे नेता समझ ही नहीं पाये कि असल में यह सब क्या है।

ज्यादा तफसील में न जाते हुए, सीधी-सी सचाई यह थी कि १९६७ में गांवों ने कुल मिलाकर शहरी राय से प्रभावित होने वाले वोट-बैंक बने रहना बंद कर दिया। पहली बार, गांव वालों ने फैसला किया कि हम भी अपनी राय रख सकते हैं। यह सच है कि यह नव-जागरण (अगर आप इसे यह आडंबरपूर्ण नाम देना चाहें) कुल मिलाकर ऊंची जातियों तक ही सीमित था। मगर यह चीज कि निर्भरता टूटी, अपने आपमें महत्त्वपूर्ण और उत्साहवर्धक बात थी। कांग्रेस को वोट तो पड़ते थे गांवों में, मगर बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से कांग्रेस शहरी जमघट बन गयी थी। व्यवहार में, समाजवाद पब्लिक सेक्टर का दूसरा नाम बन गया था। और चूंकि गांव की गरीबी के, भूख और फूले हुए पेटों और बच्चों के मुखड़ों पर के मवाद रिसते घावों के बहुत नजदीक तो कोई कभी फटका ही नहीं था, सो गरीबी महज एक शब्द रह गयी थी, बहसों व भाषणों में काम आने

शब्द, वैसा ही बेमानी शब्द जैसा कि में बोले जाने पर हर शब्द बन है। वे आंसू और जज्बात कि जिन पर खड़ी की गयी थी, पनपी थी, काफूर । आंसू तो सूख गये मिनिस्टरों के स्टार' बंगलों की एयर-कंडिशनिंग जज्बात जमकर बर्फ हो गये प्राइ-इंडस्ट्री के पैसों से राजनीतिज्ञों को बेचने वाले गठिया-ग्रस्त दलालों की सायँ-सायँ में।

बेशक ये बुराइयां आज भी हमारे यहां हैं। मगर यह अपरिहार्य था कि गांव और राजनीति की मुख्यधारा में आ । यह स्वाभाविक ही है कि गांव वाले कर बैठें और शहरियों की नजरों हास्यास्पद बनें (खासकर बंबई-जैसी भरी, खुदगर्ज, धोखेबाज और जगहों में)। असल में गांवों से ऊंची जातियां अपने प्रतिनिधि सत्ता दिल्ली भेजती रहीं, तब तक तो कमोवेश ठीक ही था—अगर एक-पकों' को अपवाद मान लें। आखिर जातियों के पास पैसा था, तालीम और वह नकली परिष्कार भी लगभग जिसकी मांग शहर किया करते हैं। निश्चय ही उन्हें हुकूमत कैसे करते हैं भी कुछ अंदाज था; क्योंकि समूचे में उन्होंने हुकूमत की ही थी। जब पिछड़े लोग प्रतिनिधि बनकर , तो शहर वाले और देहात के ऊंची वाले इस खतरे से लड़ने को एकजुट हो गये और अपने तमाम हथियार (पैसे, लाठी, झूठ, खिल्ली) लेकर उनसे लड़े। पिछड़े हुए लोग भी लड़े—लाठी, झूठ और खिल्ली के बूते पर।

परिवर्तन आकस्मिक चीज नहीं होती; न वह उतनी स्पष्ट और सुनिर्धारित ही होती है। अक्सर जब परिवर्तन हो रहा होता है, उसका पता भी नहीं चलता। बड़ी लंबी प्रक्रिया होती है यह, और कालमान में परिवर्तन की रफ्तार कभी तेज रहती है तो कई बार सभी कुछ थम-सा जाता है। कभी-कभी सारी प्रक्रिया उलट भी सकती है कुछ देर के लिए। मगर कोई आंदोलन पूरी तरह ठप हो जाये, ऐसा बहुत ही कम होता है।

जो भी हो, राजनैतिक सत्ता के शहरों से उठकर गांवों में आ जाने से धीरे-धीरे गांवों के अधिकाधिक तबके इस सत्ता में हिस्सा बंटाने लगे हैं, या इसकी मांग करने लगे हैं कि सत्ता में और उसके साथ जुड़े लाभों में उन्हें भी हिस्सा मिले। मसलन, योजनाओं की धनराशियों के आबंटन में। मसलन, नौकरियों में। आरक्षण का मामला इसका क्लासिकी उदाहरण है। कुछ-एक राज-नैतिक शक्तियां आज चौधरी चरणसिंह जैसे लोगों को ठेलकर चोटी पर चढ़ा रही हैं। क्या बगैर किसान-रैलियों के वे प्रधान-मंत्री बन पाते? शायद ही।

आज गांवों में यह खुसुर-फुसुर मची है कि एक किसान का बेटा प्रधान-मंत्री बन गया है। बहुत मुमकिन है कि यह खुसुर-

फुसुर इतनी [illegible] चुनावों के बाद चौधरी चरणसिंह को एक बार फिर प्रधान-मंत्री की कुर्सी पर बैठा सके। मगर यह एक तथ्य है कि यह खुसुर-फुसुर मौजूद है और यह चिल्लाहट का रूप धारण कर लेगी—अगर बुढ़ा रहे चौधरीजी के जीवन-काल में नहीं तो किसी और के जीवन-काल में सही। कोई और जो कि किसान का प्रतिनिधि होगा, सत्ताधारी बनेगा। और १९८० वाले दशक के आखिरी हिस्से में शायद उससे अगला स्तर यानी आर्थिक सीढ़ी पर उससे निचला स्तर बोलने और चिल्लाने लगेगा, जैसे कि आज किसान बोलने-चिल्लाने लगा है, और उसमें से ऐसे नेता उभरेंगे जो बाबू जगजीवन राम की तरह स्थापित व्यवस्था से जुड़ नहीं जायेंगे, बल्कि अपने तबके के लोगों के जोशीले और उग्र हिमायती होंगे।

बेशक परस्पर-विरोधी मांगें हमारे अर्थ-तंत्र को क्षति पहुंचायेंगी, जोकि पहले ही निर्बल और क्षीण है और जिसके पास अभी [illegible] नौकरियां नहीं ही हैं। शायद इससे उथल-पुथल और अराजकता पैदा होगी। एक नया लड़ाकूपन देश पर छा जायेगा। कई रूपों में गृहयुद्ध होंगे—बहुधा हिंसात्मक भी। मगर यह तो वृद्धि और विकास की कीमत है। आपातकाल और घबरा उठी शहरी जनता द्वारा थोपी हुई 'कानून और व्यवस्था' तथा स्थिरता थोड़ी देर के लिए परिवर्तन का मुंह शायद बंद कर दे, मगर परिवर्तन होकर रहेगा। पिछले तीस बरसों की विरासत ने इसका पक्का इंतजाम कर दिया है कि यह प्रक्रिया शांतिपूर्ण तो नहीं ही होगी। मगर नहीं, हम बेजबान पशु नहीं बन जायेंगे, जोकि हम आपातकाल में बन गये थे। यह देश विशाल पूर्वी 'एनिमल फार्म' नहीं बनेगा, जिसमें कि 'बड़े भैया' या 'बड़ी दीदी' भोंक-भोंककर हुक्म जारी करते रहें। भारत में जिंदगी इससे कहीं ज्यादा दिलचस्प होगी सन १९८४ में। ['एनिमल फार्म' जार्ज आर्वेल की प्रसिद्ध राजनैतिक रूपक-कथा है। —सं.]

★

हवा

हवा से कहो—
तुम्हारा खालीपन भरे।
अंधेरे से कहो—
तुम्हें नदी पार कराये।
आसमान से कहो—
तुम्हें मकान ढूंढ़ दे।
सड़कों से कहो—
तुम्हें नौकरी दिला दें।
शब्दों से कहो—
तुम्हें सोचना सिखा दें।

—रमेशचंद्र शाह—

३।२ प्रोफेसर्स कालोनी, विद्याविहार, भोपाल

★

आदमीयत के आंसू

याद तो हमें
अपने आदमी होने की
रखना है।

क्योंकि सुख-दुख
जाति धर्म क़ौम
वर्ण या वर्ग या देश के
जो भी चखना है
सो आदमी होने
और बने रहने के माध्यम से।

हमसे सबसे पहली आशा
आदमी बने रहने की
की गयी है
और की गयी है आदमीयत को
विकसित करने की।

दूसरी सारी बातें इसके
घेरे में आ जाती हैं
सृष्टियां अन्य सत्ताओं की
इसमें इस तरह
समा जाती हैं
जैसे बच्चा
मां की गोद में।

अगर हमने हर चीज़ से आगे
रखा नहीं आदमीयत को
तो चाहे जो कर लें
जाति धर्म क़ौम सब
देशाभिमान छुएंगे
पशुता के छोर
और चुराएंगे
किसी एकांत में
आदमीयत के आंसू!

o

व्यक्ति-यंत्र

निरपेक्ष मानते हैं न
हम सब परिवर्त्तन को
हम सब सहमत हैं न
इस पर कि
बदलना सत्ता का शील है?

कल जहां धारा थी
आज वहां किनारा है
इतना ही नहीं
आग की जगह पानी है
शून्य की जगह वाणी है।

फिर इतना मानने में
क्या अड़चन है
कि यंत्र जो हो गये हैं हम
फिर आदमी हो जायें
हमें न चलायें यंत्र
हम चलायें उन्हें
आदमी को विवश करने की
दिशा में नहीं
आदमी को
एक प्रभु-सत्ता
देने की दिशा में!

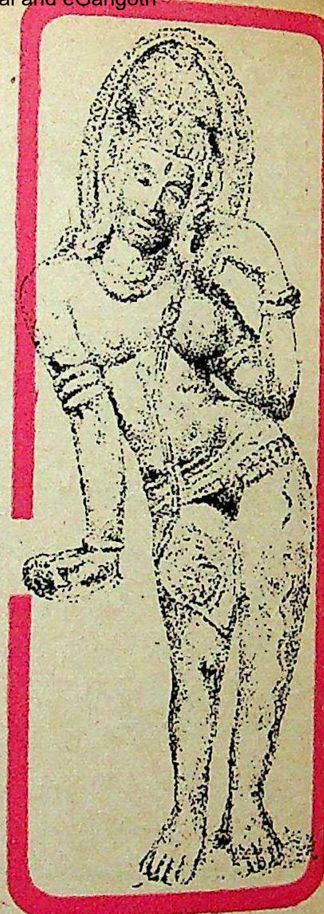
—भवानीप्रसाद मिश्र
—६, राजघाट कालोनी, नयी दिल्ली-२

शुभकामना

आलोक और आनंद-मंगल का
महापर्व दीपावली
आपके एवं आपके स्वजनों के
अंतर में उल्लास
तथा आपके घर में
सुख-समृद्धि भरे।

आपने **नवनीत** को
लेखक, पाठक, विज्ञापनदाता
आदि विविध रूपों में
निरंतर जो स्नेह एवं समर्थन
दिया है, उसके लिए
हम हार्दिक आभार मानते हैं;
और अगले वर्ष के लिए भी
इसी प्रकार के स्नेह-समर्थन की
प्रार्थना करते हैं।

आपका,
नवनीत-परिवार



इस अंक के आकल्पन और रूप-सज्जा के लिए हम श्री कमलाक्ष एम. शेणै तथा श्री वी. एन. ओके के विशेष आभारी हैं।
—संपादक

ोई अनूठा सवाल पूछकर विभिन्न लेखकों के उत्तर दीपावली अंक में
ापना नवनीत की परंपरा रही है। इस बार हमने विषय रखा था—**'एक
ाक्य में मेरा जीवन-दर्शन'**। यह वाक्य स्वरचित भी हो सकता था, कोई
हावत, सूक्ति या उद्धरण भी। सौ से भी अधिक जाने-माने लेखक,
ाकार आदि ने उत्तर भेजने की कृपा की और वे उत्तर यहां प्रस्तुत हैं।

एक वाक्य में जीवन-दर्शन

**ाराम बी. ए., बनारसीदास चतुर्वेदी, राय कृष्णदास, पं. बेचरदास दोशी, एस. एम.
ोशी, डा. कामिल बुल्के, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, अखण्डानन्द सरस्वती, सत्यप्रकाश सर-
ती, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', डा. 'बच्चन', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', डा. धर्मवीर भारती,
. बाबूराम सक्सेना, विनयमोहन शर्मा, अमृतलाल नागर, सोहनलाल द्विवेदी, जानकी-
ल्लभ शास्त्री, अमृत राय, कमलेश्वर, डा. प्रभाकर माचवे, राजेन्द्र यादव, चंद्रगुप्त
द्यालंकार, श्रीनारायण चतुर्वेदी, किशोरीदास वाजपेयी, डा. रामविलास शर्मा, व्योहार
ाजेन्द्र सिंह, सीताराम सेक्सरिया, डा. शिवमंगल सिंह 'सुमन', अक्षयकुमार जैन, रतन-
ाल जोशी, गोपालप्रसाद व्यास, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, अगरचंद नाहटा, डा. विद्या-
िवास मिश्र, डा. प्रभुदयालु अग्निहोत्री, प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी, कर्त्तारसिंह दुग्गल,
ेकी राय, काका हाथरसी, इंद्रनाथ मदान, जयवंत दळवी, पुरुषोत्तम भास्कर भावे,
ीरेन्द्रकुमार जैन, हंसकुमार तिवारी, शंकरदेव विद्यालंकार, कुबेरनाथ राय, प्रो. हरि-
ोहन झा, भैरवप्रसाद गुप्त, कृष्णनाथ, डा. युगेश्वर, डा. शंभुनाथ सिंह, केशवचंद्र वर्मा,
ीकृष्णदत्त भट्ट, वेंकटलाल ओझा, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, नीरज, डा. जगदीश गुप्त,
ांति मेहरोत्रा, विष्णु प्रभाकर, मन्मथनाथ गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, यशपाल जैन, आरिग-
ुडि रमेश चौधरी, रामकुमार भ्रमर, नंद चतुर्वेदी, डा. रामदरश मिश्र, डा. लोकेशचंद्र,
ांतकुमार 'पाषाण', लक्ष्मीचंद्र जैन, डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल',
ानप्रभा शास्त्री, रामावतार त्यागी, वीरेन्द्र मिश्र, बालकवि बैरागी, कुं. सुरेश सिंह,**

अजितकुमार, राजीव सक्सेना, विनोद रस्तोगी, ओमप्रकाश निर्मल, गौरीशंकर गुप्त, रामेश्वर दयाल दुबे, नरेन्द्र, वचनेश त्रिपाठी, डा. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, डा. आत्मानन्द मिश्र, रामनारायण उपाध्याय, रवीन्द्रनाथ त्यागी, गिरिराज किशोर, डा. वि. श्री. वाकणकर, जगदीश चतुर्वेदी, रमेश बक्षी, सुरेन्द्र तिवारी, डा. परमानंद श्रीवास्तव, जयप्रकाश भारती, दिनकर सोनवलकर, डा. रमेश उपाध्याय, सुधा चौहान, बालकृष्ण गर्ग, गंगाप्रसाद विमल, उमाकांत मालवीय, चंद्रकांत बांदिवडेकर, मृणालिनी देसाई, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', विश्वम्भर मानव, महेन्द्रकुमार 'मानव', वसंत देव, कुमार प्रशांत, डा. शिवसहाय पाठक।



बनारसीदास चतुर्वेदी

दीन क्या है
किसी कामिल की इबादत करना।
[महाकवि चकबस्त]

o

पं. बेचरदास दोशी

सुखी रहें सब जीव जगत के
कोई कभी न घबरावे।
वैर पाप अभिमान छोड़कर
नित्य नये मंगल गावे॥
['मेरी भावना', जुगलकिशोर मुख्तार]

o

राय कृष्णदास

राम भजे जा काम किये जा
का काहू का डर है।
इस दुनिया में सभी बिराने
का काहू का घर है॥

o

एस. एम. जोशी

मानव-जीवन को एक प्राकृतिक अनुग्रह मानकर अंतरात्मा की आवाज की प्रतारणा किये बिना जिसे हम अच्छा कर्म समझते हैं उसे करते जाना; और लाभ-हानि की चिंता किये बगैर जीवन का आनंद लूटकर मस्त रहना!

o

संतराम बी. ए.

यही है इबादत यही दीनो ईमां
कि दुनिया में काम आये इन्सां के इन्सां॥

o

डा. कामिल बुल्के

ईसा के अनुसार मानव-मात्र के प्रति सक्रिय प्रेम (अर्थात् परोपकार) हमारी भगवद्-भक्ति की कसौटी है, अतः मैं अपनी समस्त शक्ति से सेवाकार्य करता रहता हूं और इसमें तुलसी से भी प्रेरणा मिलती है, जिन्होंने लिखा–'परहित सरिस धरम नहिं भाई।'

o

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खलमन्दिरम्।
अक्लेशयित्वाऽऽत्मानं यदल्पमपि तद् बहु॥

दोहा :
परसंताप दिये बिना, बिनु खलमंदिर जोय।
बिनु आतमा संताप के, अल्प अर्थ बहु होय॥

o

...मी अखण्डानन्द सरस्वती

...जीवन में सदा सत्य का जिज्ञासु रहकर ...ह के साथ अपने कर्तव्य का पालन ...न्तिम श्वास तक करते रहना चाहिये।

०

...मी सत्यप्रकाश सरस्वती

...कोई इतना पतित नहीं कि उठ न सके, ...ई इतना महान नहीं कि उसका पतन ...न हो।

०

...नाथ 'अश्क'

...तोड़ निभाइये, ओह् दी ओह जाने।

(पंजाबी भाषा की लोकोक्ति)

...अर्थात् अपनी तरफ से पूरी कोशिश ...ो, उसकी (भगवान की) उसी पर ...दो।

०

...हरिवंश राय 'बच्चन'

अमृत पी करके नहीं
अमर वह होता है
...मर्त्यदेह
...जो जीवन-रस हर एक रूप,
हर एक रंग में
छककर, जमकर पीता है
इतने में ही कवि की सारी रामायण
सारी गीता है।

['जाल समेटा' से—१९७३]

०

...यालाल मिश्र 'प्रभाकर'

मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं है और मान-...श्रेष्ठता प्राप्त करने का उपाय है—सरल-सहज जीवन।

०

डा. बाबूराम सक्सेना

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

[निष्ठा और ईमानदारी से कर्तव्य का पालन करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा कर, हे मानव!]

०

विनयमोहन शर्मा

'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' का सतत साक्षात्कार ही मेरे जीवन का दर्शन है।

०

अमृतलाल नागर

शतहस्तः समाहर सहस्रहस्तः संकिर।

[अथर्ववेद]

—सौ हाथों से जमा करो, हजार हाथों से बांटो।

०

डा. धर्मवीर भारती

मैं पूर्ण नहीं हूं न कोई मनुष्य पूर्ण हो सकता है, पर अपनी अपूर्णता में अधिक से अधिक सार्थक हो सकूं—यही मेरा जीवन-दर्शन है।

०

सोहनलाल द्विवेदी

यथानियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।

०

जानकीवल्लभ शास्त्री

आदिकवि की कल्याणी वाणी—'एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि' अर्थात् 'देर है अंधेर नहीं' ही मेरा जीवन-दर्शन है।

अपने ढंग से

राजेन्द्र यादव

जीवन-दर्शन या जीवन-सूत्र वाली बात सिर्फ एक बौद्धिक कसरत या सपाट-बयानी हो सकती है, चाहे उसे आप दूसरे की सूक्ति चुनकर पायें या अपनी सूक्ति गढ़ने का आत्म-प्रदर्शन करें। वैसे मुझे जो विचार अब अपने सबसे निकट लगता है वह यह है कि 'दूसरों की दृष्टि को समझना, उनके अंतर में उतरना अर्थात् परकाय-प्रवेश-क्षमता ही आत्म-साक्षात्कार है।' चाहें तो आप उसे यों कह लें कि दूसरों को समझकर ही आप अपने आपको समझ सकते हैं।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

अपने जीवन के अनुभव से मेरी तो यह धारणा बनी है कि बंधा हुआ जीवन-दर्शन मनुष्य की विचार-शक्ति के लिए अनुल्लंघनीय बाधा सिद्ध हो सकता है। जीवन के सभी मूल्य सापेक्ष हैं और सभी मानव-उपलब्धियां (विज्ञान, चिंतन तथा अध्यात्म) सापेक्ष होने के साथ ही साथ परिवर्तनशील भी हैं। जीवन-दर्शनों के प्रति जिज्ञासा वांछनीय है, पर किसी जीवन-दर्शन को चरम सत्य मान लेना अवैज्ञानिक है। शायद इसी से भारत के प्राचीनतम चिंतकों ने गायत्री मंत्र में परमात्मा से सिर्फ एक चीज मांगी है–'हमारी बुद्धि निरंतर विकसमान रहे।' (धियो यो नः प्रचोदयात्।)

श्रीनारायण चतुर्वेदी

मैं इतना आत्मज्ञानी नहीं हूं कि अपने सच्चे स्वरूप को समझ सकूं। हां, आज के समाज का दर्शन जैसा मैंने उसे समझा है, वह है–'सुविधा'। इसकी व्यापक व्याख्या यहां संभव नहीं।

किशोरीदास वाजपेयी

एक वाक्य में मेरा जीवन यह है कि–तीसरे दर्जे तक हिंदी और केवल तीन वर्ष संस्कृत का अध्ययन कर लेने पर ही देश के सबसे बड़े साहित्यिकों का सम्मान प्राप्त किया, यह मेरा सौभाग्य है; और दुर्भाग्य यह कि वैसा 'प्रकाश' देने पर भी हिंदी-संबंधी अंधकार पूरी तरह नहीं हटा, क्योंकि मेरी छोटी-छोटी पुस्तकों में से कोई भी मैट्रिक, सम्मेलन की प्रथमा या इंटर-विशारद में नहीं रखी गयी।

डा. रामविलास शर्मा

जीवन-दर्शन अभी पूरी तरह दिखाई नहीं दिया; दिख जायेगा तो लिख भेजूंगा।

डा. इंद्रनाथ मदान

जब जीवन जीता नहीं हूं तो जीवन-दर्शन के बारे में सोचता हूं।

०

...राय

...ना विवेक यथाशक्ति निर्मल रहा ...और मैं उसके प्रति सच्चा रहते ...कुछ सार्थक ढंग से जी सकूं और अपने ...और समाज की बेहतरी के लिए कुछ ...सकूं, यही मेरी और मेरे रचना-कर्म ...का जीवन-दृष्टि है।

०

...शेखर

...तक हर मनुष्य को सम्मान और ...ता से जीवित रहने का हक नहीं ...जाता-तब तक वाम चिरंतन है।

०

...प्रभाकर माचवे

...कार, सृष्टि-सौंदर्य-संग्रह, सेवा, सृजन।

०

...र राजेन्द्र सिंह

...विश्व के श्रेष्ठ ग्रंथों का स्वाध्याय कर ...चिंतन करना, प्रत्येक सद्विचार को ...साहित्य में ग्रंथित कर अपनी जनता ...पहुंचाना; साथ ही जड-चेतन में ...त्मा के दर्शन कर, सब जीवों की ...सृजन-कर्म से सेवा करना और उससे ...न आनंद का अनुभव करके जीवन ...सफल बनाना मेरा जीवन-दर्शन है।

०

...चंद नाहटा

...निरंतर स्वाध्याय और अभ्यास ही ...जीवन-प्रगति का मूलमंत्र है।

०

सीताराम सेक्सरिया

सत्यं शिवं सुंदरम्।

०

डा. शिवमंगल सिंह 'सुमन'

जो कुछ समेटते हो वह तो सपना है,
जो लुटा रहे हो वह केवल अपना है।

०

अक्षयकुमार जैन

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

(बिना सबके सहयोग के हम जियें भी तो कैसे!)

०

रतनलाल जोशी

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नाऽत्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्याऽत्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

०

गोपालप्रसाद व्यास

हँस बोल बखत कटि जायगौ।
जानें को कित कूं रमि जायगौ।।

०

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

एक वाक्य में मेरा जीवन-दर्शन समता और स्वतंत्रता का जीवन-दर्शन है, जो मेरी पुस्तकों में अभिव्यक्त है।

०

डा. विद्यानिवास मिश्र

रस के साथ अपने परिवेश में रमना और विरस हुए बिना उस परिवेश को छोड़ सकना, थोड़े-से आत्मीय संबंध बनाना और उनका निर्वाह कर लेना, अपनी इयत्ता के विराट इयत्ता से जुड़ने

की आशा जगाये रहना और जीवन के अंतिम क्षण तक दूसरे के लिए सोचने की बुद्धि रख पाना—यही मेरा जीवन-दर्शन है।

०

डा. प्रभुदयालु अग्निहोत्री

विषयेष्वसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचरन् ।
आत्मनः प्रतिकूलं यन्न परेषां चरामि तत् ।।

—मैं यथाशक्ति विषयों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और मत्सर) के आकर्षण से बचता हुआ अपने कर्तव्य कार्य में जुटा रहता हूं और जो बात मुझे अच्छी नहीं लगती, उसे दूसरों के प्रति भी नहीं करता।

यह मेरे लिए दैनंदिन व्यवहार का दर्शन है, इसीलिए मैंने विधिलिङ् (चाहिये) के स्थान पर वर्तमान का प्रयोग किया है।

प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी

'वसुधैव कुटुम्बकम्।' (यहां 'वसुधा' से मेरा तात्पर्य विश्व के सभी चेतन-अचेतन समूह से है। 'कुटुंब' से मेरा अभिप्राय आजकल की अत्याधुनिक विशृंखलित 'फैमिली' से नहीं, अपितु व्यवस्थित परिवार से है, जिसके प्रत्येक प्राणी के कर्तव्य और अधिकार निश्चित हैं।

०

कर्त्तारसिंह दुग्गल

मरना सच और जीना झूठ।

०

हंसराज रहबर

औद्योगिक युग में प्रतिपादित हुआ सर्वहारा का अचूक शस्त्र 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' मेरा जीवन-दर्शन है।

०

विवेकी राय

वक्त पड़ने पर जीवन-दर्शन के रूप में मेरे भीतर ऐसी एक छोटी लहर पैदा होकर बड़ा प्रभाव पैदा कर देती है कि गलती मेरी ही है।

०

काका हाथरसी

भोजन आधा पेट कर, दुगुना पानी पीउ।
तिगुना श्रम, चौगुन हंसी वर्ष सवा सौ जीउ।।

०

जयवंत दळवी (मराठी साहित्यकार)

अंतिम असमाधान!

०

पुरुषोत्तम भास्कर भावे (मराठी साहित्यकार)

सूर्य-चंद्र के भ्रमण से लेकर इस विश्व का हर एक व्यवहार नियमबद्ध और सूत्रबद्ध होने के कारण यहां अन्याय और अपघात असंभव है।

०

वीरेन्द्रकुमार जैन

समुद्र में तरंग का इन्कार नहीं है और तरंग में समुद्र का इन्कार नहीं है, यह जो देखता है वह देखता है, यह जो जानता है वह जानता है, यह जो जीता है वह जीता है!
['अनुत्तर योगी' से]

०

हंसकुमार तिवारी

'देह धरे का दंड है।'

०

...विद्यालंकार

...परसन्तापमपगत्वा खलनम्रताम् ।
...तु यत् साध्यं यत् स्वल्पमपि
तद् बहु ॥

...रों को कष्ट दिये बिना, अभद्रजन
...ह स्वीकार किये बिना, अपने ही
...से जो कुछ उपलब्ध हो, वह थोड़ा
...भी मेरे लिए बहुत है।

...निक पाठभेद से यही श्लोक श्री
...रीजी भी दे चुके हैं।

०

...थ राय

...ऐसे देश और कुल में पैदा हुआ,
...एवं ऐसे पिता-पितामह मिले कि
...समस्त जीवन ही ईश्वर के समक्ष
...और हाहाकार में बदल गया,
...ईश्वर के समक्ष अश्रुपात' मेरा जीवन-
...है-इससे भिन्न जीवन-दर्शन मेरी
...रिक, दैहिक और मानसिक औक़ात
...हिम्मत के बाहर की चीज है।

०

...रिमोहन झा

...जीवन-यात्रा के पथ को आलोकित करने
...सबसे बड़ा दीपक है अंतर्विवेक जो
...में कठिन परिस्थिति में भी अपने
...में हमें मार्ग-दर्शन कराता है।

०

...साद गुप्त

...दूरों का दर्शन मार्क्सवाद मेरा
...र्शन है।

०

कृष्णनाथ

निरंतर यात्रा, बाहर-भीतर।

०

डा. युगेश्वर

सुख का सहभाग।

०

डा. शंभुनाथ सिंह

पथ को करो प्यार!
होंगे सुमन तप्त अंगार।

०

केशवचंद्र वर्मा

सार्थक संदर्भों से जुड़ पाना ही आनंद है।

०

नीरज

स्वयं के प्रति ईमानदार रहो।

०

डा. जगदीश गुप्त

अपने परिवेश की परिज्ञा से वंचित को
छलती है ज्योति भी।
[निजी कविता-पंक्ति]

व्यक्ति के लिए व्यक्ति की चाह,
एक सुगंधित राह।
['युग्म' से]

०

राजेन्द्र अवस्थी

हमारी सबसे बड़ी विडंबना यह है कि हम जब जहां रहते हैं, वहां नहीं रहते; या तो हम व्यतीत को देखते हैं अथवा भविष्य के सूर्यचक्र को; वर्तमान को यों काटते चलते हैं जैसे कि वह एक नितांत

[शेष पृष्ठ २२७ पर]

तीन कविताएं

अजित कुमार

धरती

सुबह उठके देखा—
पिछली रात की बरखा का सारा जल
धरती ने पूरमपूर सोख लिया था।

सूखी हुई खआं
सहसा फिर
क्यों
डबडबा उठी!

रुचि

शहर की तमाम जगहों में
अकेली वही तुम्हें क्यों रुची?
भीड़-भरे चौराहे के
आगे...
वह अंधेरा-सा नुक्कड़!

विडंबना

किसको चुनौती दूं
मुझे देख डरा हुआ
सभी तो
सहम गये!

जी—६, माडल टाउन, दिल्ली-९

सूरज के चार ओर

सूरज के चार ओर
लगे हुए पहरे
कैसे कम हों तम के—
जाल ये घनेरे!
चकाचौंध बिजली की
धोखे गति के
ओढ़े हैं नरभक्षी
चेहरे यति के
सत्ता के वन में—
सिद्धांत के नडेरे!
कैसे कम हों तम के
जाल ये घनेरे!
मंजिल की ओर चलें
हम किस पथ से
दलदल में फंसे हुए —
पहिये रथ के
कृष्ण नहीं एक किंतु
अर्जुन बहुतेरे!
कैसे कम हों तम के
जाल ये घनेरे!
नये सुखों की तलाश
में हैं कुछ लोग
बाकी को लगा हुआ
रोटी का रोग!
जीवन को सिर्फ चांद—
रोटी घेरे!
कैसे कम हों तम के
जाल ये घनेरे!

ऊंची मीनारें हैं—
घटे आदमी,
कुछ त्रिशंकु, कुछ मनु में—
बंटे आदमी
बाहर की चमक-दमक
अंतरी अंधेरे!
कैसे कम हों तम के
जाल ये घनेरे!
अलग-अलग खेमे हैं—
सिर्फ लक्ष्य एक
कुर्सी हथियाने के
कथ्य हैं अनेक
मुखौटे उसूलों के
रण अपने-तेरे!
कैसे कम हों तम के
जाल ये घनेरे!

—गोपाल चतुर्वेदी
३, फायर ब्रिगेड लेन,
नयी दिल्ली-११०००१

मेरे प्रधान-मंत्रित्व का पहला दिन

रमेश मंत्री

जनवरी १९८५ । कल रात दस बजे
ने प्रधान-मंत्री-पद की शपथ ली
कसभा में मेरा छह सदस्यों का
सिद्ध हो चुका था । इन छहों सदस्यों
छले पंद्रह दिन से राजाओं की तरह
दारी कर रहा था । उनके मेरा साथ
र ही मेरे प्रधान-मंत्री-पद का दारो-
था । आखिर जब उन सबको मैंने
ाने का आश्वासन दिया, तब उन्होंने
मर्थन किया था ।

सवेरे पांच बजे ही मैं उठ बैठा ।
र आदमकद आईने के सामने गया ।
ा चाहता था कि प्रधान-मंत्री के रूप
सा दिखाई देता हूं । बस मेरी दाढ़ी
गयी थी, सिवा इसके दूसरा कोई
र नहीं आया । मैंने घंटी बजाकर
ी को बुलाया । उससे पूछा–'प्रधान-
े मिलने कौन-कौन आये हैं ? उन्हें
में बैठने के लिए कहो ।' चपरासी
'हुजूर, अभी तक तो कोई नहीं
।' इस पर मैंने हुक्म दिया–'पुलिस-
ो फोन करो और उनसे कहो कि
सौ सिपाही सादे वेश में तुरंत भेज दें ।'

पांच मिनट बाद ही पुलिस-प्रमुख का फोन मुझे मिला–'सर, अभी तो ड्यूटी पर सौ सिपाही आये नहीं, सो सादे वेश में बीस सिपाही, कल रात हवालात में बंद किये गये अस्सी गुनहगार, गुंडे आदि को आपसे मिलने वालों की भीड़ का नाटक करने के लिए भेज रहा हूं ।' मैंने खुश होकर कहा–'शाबाश ! तुम्हें तरक्की दूंगा । कुछ गुनह-गारों के हाथों में मालाएं व गुलदस्ते, कुछ के हाथों में जनता की शिकायती चिट्ठियां तथा अर्जियां भी हों ।'

कुछ ही देर बाद मेरे सेक्रेटरी ने आकर कहा–'हुजूर, दिल्ली के विभिन्न दलों के नेता आपके दर्शनार्थ हार-गुलदस्ते लेकर आये हैं ।' मैंने आदेश दिया, उन्हें प्रतीक्षा करने को कहो । तय किया कि आठ बजे प्रेस-फोटोग्राफरों के आ जाने पर ही इन जन-प्रतिनिधियों से मुलाकात करूंगा । उससे पहले उनसे मिलकर फायदा ही क्या था ? फोटोग्राफरों की उपस्थिति में गरीबों की शिकायतें दूर करने पर और कुछ नहीं तो

मराठी से अनुवाद : विष्णु निवसरकर

अगले दिन अखबारों में पब्लिसिटी तो मिलती है। वरना गरीबों से मिलने में तो समय ही नष्ट होता है।

नौ बजे मुझे लाल किले पर से राष्ट्र के नाम भाषण करना था। इसमें मैं अपनी नयी सरकार की राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय नीतियां समझाने वाला था। सेक्रेटरी मेरा भाषण आसानी से लिख सके, इसके लिए उसे मुद्दे समझाये :

'गरीबों की सेवा का अवसर मिले, केवल इसीलिए मैंने प्रधान-मंत्रित्व स्वीकारा है। देश में व्याप्त घूसखोरी, चोरबाजारी और भ्रष्टाचार को समाप्त कर दूंगा। छह महीनों के भीतर देश की आर्थिक स्थिति सुधार दूंगा। सभी देशों से भारत के संबंध ....'

'सौहार्दपूर्ण रहेंगे .... वगैरह-वगैरह न? वह सारा ही भाषण स्टेन्सिल किया रखा है।' सेक्रेटरी ने मेरे आगामी भाषण की साइक्लोस्टाइल प्रति मेरे हाथ में थमाते हुए कहा–'साहब, ये पुराने स्टेन्सिल हमने कतीस वर्षों से बहुत संभालकर रखे हैं। सिर्फ प्रधान-मंत्री का नाम हम बदल देते हैं। बाकी .... गरीबों का कल्याण आदि सब सामग्री वैसी ही रहती है।'

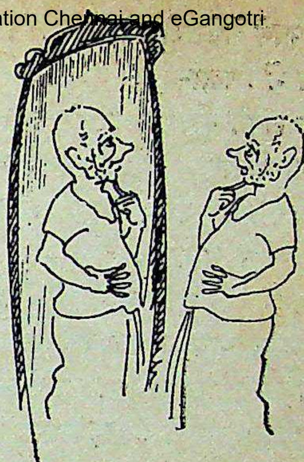
मेरा उत्साह कुछ ठंडा पड़ा। लेकिन प्रधान-मंत्री को तो हमेशा मुस्कराते रहना चाहिये न, इसलिए मैंने बरबस मुस्कराकर कहा–'अच्छा, मेरे भाषण के बीच तालियों की ठीक से व्यवस्था कर दी है?'

सेक्रेटरी ने उत्तर दिया–'हां साहब, फिल्मों में माब-सीन के लिए एक्स्ट्रा मुहैया करने वाले एक सप्लायर को पांच हजार आदमी लाने का ठेका दिया है। घंटे के पांच रुपये के हिसाब से। पिछले कई वर्षों से यही लोग लाल किले से होने वाले प्रधान-मंत्री के भाषण में निश्चित जगहों पर तालियां बजाकर प्रधान-मंत्री के जयकारे लगाते हैं। बस, रियाज करते वक्त उन्हें नये प्रधान-मंत्री का नाम जरूर बताना पड़ता है।'

इस तरह व्यवस्था के बारे में तसल्ली करके कुछ देर के लिए सेक्रेटरी को छुट्टी दी। अब मुझे दाढ़ी बनानी थी, क्योंकि मेरा भाषण दूरदर्शन से प्रसारित होना था। असल में देश-भर में बहुत-से संपादकों ने यह कहकर मेरी हजामत पहले ही कर दी थी कि मैं विश्वासघात करके, दल-बदलकर, भ्रष्टाचार फैलाकर प्रधान-मंत्री बना हूं। ..... फिर भी दाढ़ी तो बनानी ही थी।

मेरे चार बेटे, दो बेटियां और ग्यारह पोते-दोहते पिछली रात अलग-अलग कारणों से जागते रहे थे; अभी तक उनमें से कोई नहीं उठा था। सो परिवार के लोगों के मेरा भाषण सुनने चलने का सवाल ही नहीं था। मैंने ब्रेकफास्ट, दाढ़ी व स्नान के बाद, और यह इत्मीनान हो जाने पर कि फोटोग्राफर आ गये हैं, जनता-जनार्दन के प्रतिनिधियों को दर्शन दिये। फिर खूब शानदार गाड़ी से लाल किले को चल दिया। मेरी गाड़ी में सूचना व प्रसारण-मंत्री भी थे। मैंने उन्हें धमकाया कि जब तक मैं प्रधान-मंत्री हूं तमाम सरकारी खबरों में मेरा नाम

बार न लिया गया, [illegible] खदेड़ दूंगा। मेरी यह विनम्र उन्होंने अविलंब स्वीकार कर ली। किले से मैंने बड़ी करारी तकरीर सेक्रेटरी का दिया स्टेन्सिल क्रमांक समूचा भाषण मैंने पढ़कर सुनाया। अपने विचार बताये–'हमें वृक्षा- की मुहिम हाथ में लेनी चाहिये। आज के रोपे पौधे कुछ वर्षों में वृक्ष फिर एक दिन देश के चोरबाजारिये भ्रष्टाचारी लोगों को खुले आम फांसी लिए ये वृक्ष उपयोगी होंगे।' ऐसा विचार प्रस्तुत करने पर भी एक ने ताली नहीं बजायी। तब मैंने आवाज में सेक्रेटरी को डांटा–'हर पर एक-एक रुपया जुर्माना ठोको!' मंत्री-निवास पर वापस आया तो के प्रमुख होल-सेल व्यापारी कुंदन-मल ने कहा कि मेरा भ्रष्टाचार-भाषण अत्यंत प्रभावशाली रहा। फुसफुसाकर कहा–'आप इकहत्तर हैं, इसलिए मैं आपको इकहत्तर मुद्राओं का हार भेंट करने जा रहा लेकिन चूंकि आप भ्रष्टाचार-विरोधी इसलिए हार वापस ले जा रहा हूं।' उनकी पीठ पर धौल जमाकर कहा– क्या हम-आप स्कूली बच्चे हैं जो सभाओं में बघारे गये दर्शन को सच ? लाइये वह हार!' यह कहकर उनकी जेब से स्वर्णमुद्राओं का वह हार लिया।



मैं सोच ही रहा था कि उसे कहां रखूं कि मेरे सेक्रेटरी ने आकर निवेदन किया–'साहब! दीजिये, मैं उसे संभालकर रख देता हूं; मैं भी आपके जैसा ही ईमानदार हूं।' उसकी बात मुझे सही लगी और हार ऐसे ईमानदार आदमी को देकर गंवाने के बजाय मैंने उसे अपने ही खिसे में डाल लिया।

फिर सेठ कुंदनमल चंदनमल ने असली विषय छेड़ा–'ट्रांजिस्टरों के नये कारखाने के लिए सोलह करोड़ की मशीनरी आयात करने के लाइसेंस की मुझे जरूरत है।'

'देंगे, जरूर देंगे!' मैंने उन्हें आश्वासन दिया–'लेकिन आप उस कारखाने में मेरे बड़े बेटे को हिस्सेदार बना लीजिये; क्योंकि मैं चाहता हूं कि समान विचारों के लोग निकट आयें। मेरी-आपकी तरह मेरा बेटा भी भ्रष्टाचार का कट्टर विरोधी है।' कुंदनमलजी को मेरा सिद्धांतवादी मार्ग-दर्शन जंचा। उन्हें इम्पोर्ट-लाइसेंस देने का

आदेश अपने सेक्रेटरी को दे दिया।

इतने में शिक्षा-मंत्री आये। मुझे स्मरण हुआ कि अपने सुपुत्र नंबर दो के लिए भी कुछ करना चाहिये। पढ़ाई में उसकी बड़ी रुचि थी। किंतु उसकी महत्त्वाकांक्षा को बुद्धिमत्ता का सहारा नहीं मिला। सो वह मैट्रिक की देहरी आठ बार कोशिश करके भी लांघ न पाया। अब मेरे प्रधान-मंत्री हो जाने के बाद उसे शिक्षा की कमी न रहे, इसलिए शिक्षा-मंत्री के सहयोग से मैंने उसे एक केंद्रीय विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनवा दिया। अब वह अपने विश्वविद्यालय से कोई भी दो-एक मनचाही डिग्रियां प्राप्त कर सकता है। तीसरे बेटे को दिल्ली की गैस-कंपनी की सोल-एजेंसी देने की व्यवस्था कर रहा था कि मेरे ही पक्ष के दो सांसद भुनभुनाये-से मेरे पास आये।

आते ही उनमें से एक ने कहा—'आप तो प्रधान-मंत्री बन गये। हमें क्या मिलेगा—तलाक?'

उसकी बात पर मैं बहुत चकित हुआ। जब मैंने पूछा कि मेरे प्रधान-मंत्री बनने का उसके विवाह-विच्छेद से क्या संबंध? तब उसने बड़े सात्विक क्रोध से कहा—'कल से श्रीमतीजी बेहद खफा हैं। कह रही हैं, आजकल हर ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा मंत्री बन रहा है। तुमने प्रधान-मंत्री को समर्थन दिया था, लेकिन तुम्हें साधारण-सा मंत्री-पद भी नहीं मिला। निकल जाओ घर से, अब मंत्री होने के बाद ही मुंह दिखाना। वरना मैं तलाक की अर्जी दे दूंगी।'

दूसरे सांसद ने भी यही शिकायत की। मुझे अपना बहुमत जैसे भी हो टिकाये रखना था। मैंने उन्हें राज्यमंत्री बनाने का आश्वासन देकर शाम की शपथ-विधि में उपस्थित रहने को कहा। तब वे दोनों सांसद आनंद से गलबहियां डाले हुए विदा हुए।

चौथे बेटे को अमरीका में राजदूत नियुक्त करना था। किंतु विदेश-मंत्री के भानजे की भी नजर उसी पद पर लगी हुई थी। विदेश-मंत्री इस पर अड़े हुए थे। भाई-भतीजों को महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करने-कराने की उनकी दूषित मनोवृत्ति का मैंने तीव्र शब्दों में खंडन किया। इस पर विदेश-मंत्री भड़क उठे; अपने ग्यारह समर्थकों के साथ हमारा दल छोड़ देने की धमकी देने लगे। सब विवाद-ग्रस्त मामलों को बातचीत से निबटाने में मेरी आस्था है; इसलिए मैंने अपने चौथे बेटे को ब्रिटेन में हाई कमिश्नर बना दिया। विदेश-मंत्री के भानजे को उसका मनचाहा पद दे दिया।

इस प्रकार गरीबों तथा देश के 'कमजोर तबकों' की समस्याएं हल करने में सारी सुबह बीत गयी। साढ़े बारह बजे भोजन के लिए उठ ही रहा था कि सारे देश में नशाबंदी लागू करने की मांग लेकर एक शिष्टमंडल मिलने आ गया। मैंने सोचा कि इन सर्वोदयी लोगों से पांच मिनट बातें करके ही भोजन करना ठीक होगा। किंतु जब मैं बगल के कमरे में उन लोगों से मिलने गया, तो उन पंद्रह-सोलह लोगों के मुखड़ों पर कोई सर्वोदयी सात्विकता नजर न आयी;

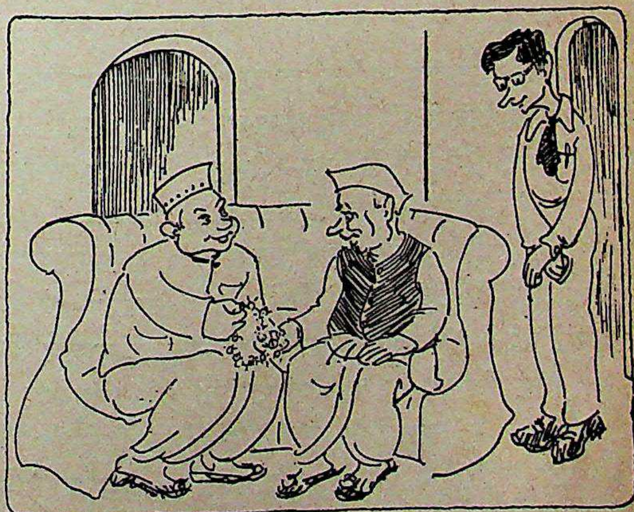
ो पक्के गुंडे दिखाई दे रहे थे। सेक्रेटरी परिचय कराया—'ये अखिल भारतीय पट्ठी संघ के पदाधिकारी हैं। इनका ना है कि यदि देश-भर में, सप्ताह में दिन, सख्त नशाबंदी लागू न की गयी, उनका धंधा पनपेगा नहीं।' मैंने शिष्ट-ल को आश्वासन दिया—'हमारे संवि-न में संपूर्ण नशाबंदी नीति-निर्देशक तत्त्व रूप में शामिल है, इसलिए सप्ताह में दिन नशाबंदी रखने की आपकी मांग प्रति मेरे मन में काफी सहानुभूति है।' ह आश्वासन सुनकर शिष्टमंडल बहुत खुश होकर लौटा। जाते-जाते उन्होंने क्रेटरी से पूछा—'हकपानी किसके पास ?' मेरे सेक्रेटरी ने उनकी आवाज दबाने कोशिश की, यह मेरी नजर में आये बिना रहा।

मेरा भोजन पूरा भी नहीं हुआ था कि ड्राइंग रूम में आठ प्रक्षुब्ध सांसदों का एक त्था घुस आया। वे कुछ हें इसके पहले ही मैंने हें समझाते हुए कहा—जानता हूं कि आपको मंत्री बनना है। जाइये, पद की शपथ कंठस्थ रिये, डेढ़ बजे शपथ और तीन बजे मंत्रिमंडल बैठक के लिए उपस्थित जाइये।' हाथ धोकर मंत्रिमंडल का विस्तार ने के पीछे पड़ गया। अब तक मंत्रियों की संख्या पैंसठ हो चुकी थी। मुझे अपना प्रधान-मंत्री-पद बरकरार रखना था, सो इस बढ़ती संख्या का परि-वार-नियोजन करना असंभव था।

सवेरे से काम का इस कदर बोझ था कि अब आंखों पर नींद छा रही थी। इतने में पत्रकारों की फौज चढ़ आयी। मैंने उन सबसे कहा कि शपथ-विधि के समय अशोक हाल में आइये। लेकिन वे लोग बोले—'हमें मंत्रिपद नहीं, इंटरव्यू चाहिये।' उनसे न कहना भी संभव नहीं था। क्योंकि तब वे यह प्रचार कर देते कि 'प्रधान-मंत्री पत्र-कारों से घबरा गये!' उन्हें बैठाकर मैं साक्षात्कार के लिए सुसज्जित होकर आया। प्रश्नों की गोलाबारी शुरू हुई।

'क्या आप यह आरोप स्वीकार करते हैं कि आप दलबदलू हैं?'

मैंने कहा—'हर्गिज नहीं! एक सांसद अगर दल छोड़े तो वह दलबदलू है। अगर



दो या अधिक सदस्य दल त्यागें, तो वह सिद्धांत-निष्ठा है।'

'क्या आप मतलब-साधू हैं ?'

'आपकी बात का आधा भाग मैं स्वीकार करता हूं। मैं साधू हूं यह स्वीकारता हूं।'

'क्या आप जोड़-तोड़ करके प्रधान-मंत्री बने हैं ?'

'बिलकुल नहीं। देश के करोड़ों गरीबों की सेवा के लिए, अपनी इच्छा के विरुद्ध मुझे यह दायित्व संभालना पड़ा है।'

'आपने अपने बेटे को एक बड़े उद्योग में हिस्सेदार बनवाने के लिए दबाव डाला, क्या यह सच है ?'

'यह झूठा इल्जाम है। मेरे लड़के ही खूबियां देखकर अगर किसी ने उसे हिस्सेदार बनाया हो तो मैं उसकी प्रगति में आड़े नहीं आऊंगा।'

ऐसे ही उत्तर देकर मैंने पत्रकारों की बैठक निबटा दी। अभी मुझे अपने ३८ रिश्तेदारों को कहीं जमाना था; कहीं न कहीं जमाया।

सुबह से लगातार किये गये दलित जनता के उद्धार तथा गरिष्ठ भोजन से नींद आने लगी थी। मैंने सेक्रेटरी से कहा—'दोपहर को मंत्रिमंडल की बैठक से पंद्रह मिनट पहले जग देना। इस बीच न तो मुझे किसी का फोन देना और न किसी को मिलने भेजना। अब मैं घंटे भर सोऊंगा।' कहकर मैंने शयन-कक्ष का द्वार बंद कर लिया। मगर नींद जल्दी नहीं आयी। लोगों के झुंड के झुंड मेरे स्वागत के लिए या विरोध-प्रदर्शन के लिए या अपनी मांग मनवाने के लिए मेरे शरीर पर से चलकर उमड़ते आ रहे हैं, ऐसे दृश्य मेरी आंखों के सामने तैरने लगे। आखिर नींद की गोलियां लीं, तब कहीं नींद लगी।

सोचता था, सेक्रेटरी जगायेगा, क्योंकि मंत्रिमंडल की बैठक से पहले रेडियो के अधिकारी अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्यदिन के सिलसिले में मेरा वक्तव्य रिकार्ड करने के लिए आने वाले थे। शायद आ ही गये थे, क्योंकि शयन-कक्ष का द्वार भड़भड़ाया जा रहा था। मैं आंखें मलता हुआ उठा। मंत्रिमंडल की बैठक शुरू होने में सिर्फ दस मिनट बाकी थे। मैंने द्वार खोला। रेडियो के दो अधिकारी और आठ-दस चपरासी भीतर दाखिल हुए।

रेडियो के अधिकारियों को बैठने को कहकर मैं मुंह धो आया। चपरासी सामान यहां-वहां कर रहे थे। मैंने उधर ध्यान न दिया। फोन से सेक्रेटरी को बुलाया तो पता चला कि वे राष्ट्रपति के यहां गये हैं। मेरा 'स्वास्थ्यदिन' का संदेश तो सेक्रेटरी के पास ही था। मेरे सामने माइक्रोफोन थामकर रेडियो-अधिकारी बोले—'अपनी प्रतिक्रिया बतायें!'

तैयार वक्तव्य हाथ में नहीं था, इसलिए अटकते-लड़खड़ाते हुए मैंने कहा—'स्वास्थ्य बड़े महत्त्व की चीज है! हर एक नागरिक के पास कम से कम एक स्वास्थ्य होना ही चाहिये।'

मगर रेडियो-अधिकारी श्री पांडे मेरी

...चकित नजरों से देखते हुए बोले—
...त्यदिन का संदेश तो प्रधान-मंत्री दे
...हे हैं। आप नयी उथल-पुथल के विषय में
...नी प्रतिक्रिया स्पष्ट करें!'

'प्रधान-मंत्री? अरे तो मैं क्या हज्जाम
...?' मैं क्रोध से चीखा। मन ही मन मैंने
...ई को उसी क्षण निलंबित कर दिया।
...स वृद्ध को यह भी नहीं मालूम कि प्रधान-
...त्री कौन है?

'हम यह जानना चाहते हैं कि प्रधान-
...त्री-पद खोते हुए आपको कैसा लग रहा
...? हम रेडियो-अधिकारी नहीं, टाइम्स
...प्रतिनिधि हैं।' पांडे के चश्मे वाले साथी
...कहा। इतने में चपरासी दो बैग मेरे
...मने रख गया। हेड चपरासी सलाम न
...रके उद्धतता से बोला—'साहब, नये प्रधान-
...त्री के आने से पहले आप यहां से रफादफा
...जाइये। वरना आपके झगड़े में गालियां
...में खानी पड़ेंगी।'

'कौन नया प्रधान-मंत्री? तुम सब क्या
...गल हो गये हो?' मैं चीखा।

पांडे शांति से मेरी ओर देखकर बोले—
...तो क्या आप कुछ भी नहीं जानते! आपके
...त्रिमंडल की सदस्य-संख्या ८७ तक पहुंच
...ई थी, मगर जिन ३१ सांसदों को मंत्री-
...द नहीं मिला, उन्होंने दल बदल लिया।
...आपका बहुमत समाप्त हो गया। अब
..."आयाराम-गयाराम" दल के नेता चमचा-
...के घरफोड़े प्रधान-मंत्री हो गये हैं। उनकी
...शपथ-विधि भी हो चुकी है। बस, दस मिनट
...के भीतर वे यहां रहने भी आ पहुंचेंगे।'



मुझ पर वज्रपात हुआ। मैंने उन सज्जन पत्रकारों को अंतिम संदेश दिया—'मुझे प्रधान-मंत्री-पद की लालसा कभी नहीं रही। एक ही दिन में यह समझ जाने पर कि इस पद पर रहकर देश के गरीबों-कमजोरों की को सेवा नहीं की जा सकती, मैं अपनी खुशी से प्रधान-मंत्री-पद छोड़ रहा हूं। एक साधारण कार्यकर्ता के रूप में जनता के बीच काम करना मुझे इससे कहीं अधिक पसंद है!'

इसी समय चपरासी ने मेरे बैग उठाकर कड़े स्वर में कहा—'अब आप चुपचाप यहां से चलते बनेंगे या नहीं, या सामान उठाकर बाहर फेंकना होगा?' मैं शांति और अहिंसा का समर्थक रहा हूं। मैंने बैग संभाले और पास के बस-स्टाप की ओर दौड़ पड़ा। इकहत्तरवें बरस में भी मेरा स्वास्थ्य खूब बढ़िया है, क्या यह सिद्ध नहीं होता इससे?

बुरा लगता है तो महज इसका कि चलते-चलते प्रधान-मंत्री-निवास से दो तौलिये और साबुन अपने झोले में न डाल सका। जो परिस्थितियां थीं, उनमें यह महत्त्वाकांक्षा पूरी न हो सकी।



ग़ज़ल

सूर्यभानु गुप्त

सूरज के उजाले में, किंदील[1] की तनहाई।
भीड़ों में शहर की ज्यूं इक भील की तनहाई।

जिस कील से उतरी हो, तस्वीर हसीं कोई;
दीवार पे भारी है, उस कील की तनहाई।

इस दौर के ईसा भी, बीमार ही मिलते हैं;
रोती है हवाओं में, इंजील[2] की तनहाई।

सपनों के महल टूटे, अब मुल्क की गलियों में;
चेहरे हैं किसी उजड़ी तहसील की तनहाई।

जो डील सभी का है, पर उसका नहीं कोई;
तावीज़ें बना बांटें, उस डील की तनहाई।

भूले से कोई पंछी, नज़दीक नहीं आता;
सूरज की तरह ठहरी, इक चील की तनहाई।

फिरता है सिकारे-सा, ये कौन मेरे अंदर?
पहने है बदन मेरा, किस झील की तनहाई?

धागा तो सुई के संग, किस देश गया जाने;
यादों के रहट हैं और, इक रील की तनहाई।

दिल्ली तो नहीं दिल कुछ, जो आये इसे लूटे;
हर एक कदम पर हो, सौ मील की तनहाई।

पत्थर हो कि आईना, दोनों ही बराबर हैं;
जीवन है अब इक अंधी तम्सील[3] की तनहाई।

१. मोमबत्ती, २. बाइबल ३. उपमा।



आइन्स्टाइन का सपना साकार

डा. मोहन रामचंदाणी

१९७९ प्रसिद्ध भौतिकीविद् अल्बर्ट आइन्स्टाइन की जन्म-शताब्दी के लिए साथ ही सितंबर में घोषित चिरकाल जाते जा रहे अतिमूलकण 'ग्लूओन' की निक खोज के लिए स्मरणीय रहेगा। जीवन के अंतिम वर्षों में अल्बर्ट आइन्स्टाइन एक ऐसे क्षेत्र में कार्य कर रहे थे, न दिनों चल रहे भौतिक अनुसंधान से था। एक युवक वैज्ञानिक ने तब पूछा था कि आप इस क्षेत्र में अपना क्यों बरबाद कर रहे हैं? इसका उत्तर न्स्टाइन ने यह दिया था कि इस प्रौढ



निक-दर्शनिक अल्बर्ट आइन्स्टाइन

अवस्था में ही मैं अपना समय बरबाद कर सकता हूं। (उनका आशय यह था कि उन्हें अब पदोन्नति की कोई चाह नहीं है, न नाम कमाने की तमन्ना ही।)

प्रत्येक विषय में ऐसे कुछ क्षेत्र होते हैं, जिनमें उस समय के मेधावी मनीषी काम करते हैं। परंतु आइन्स्टाइन तो वैज्ञानिक के साथ-साथ दार्शनिक भी थे। वे कुछ मूल प्रश्नों का उत्तर पाना चाहते थे। इनका हल ढूंढ़ पाना इतना कठिन था कि रोजी-रोटी कमाने वाला वैज्ञानिक उस पर अपना समय खर्च नहीं कर सकता था।

आइन्स्टाइन ने सन १९०५ में सापेक्ष-वाद का विशेष सिद्धांत प्रतिपादित किया और कुछ वर्ष बाद सापेक्षवाद का व्यापक सिद्धांत। इसके बाद से १९५५ में अपनी मृत्यु तक के सब वर्ष वे एक ही प्रश्न का उत्तर पाने के लिए काम करते रहे। उनके सामने सबसे बड़ा सवाल था—'भौतिक बल का आधार क्या है?'

जो विभिन्न प्रकार के बल पदार्थों के बीच काम करते हैं, वे चार हैं:

१. गुरुत्वाकर्षण। (यह दो द्रव्यों के बीच मात्रा के कारण होता है। उदाहरण है, पृथ्वी और सूर्य के बीच का आकर्षण। इसी बल के कारण विभिन्न ग्रहों की कक्षाएं

निश्चित होती है।)

२. विद्युत-चुंबकीय बल। (दो आवेशित कणों के बीच का बल, जिससे भिन्न-भिन्न पदार्थों के गुणों को समझा जा सकता है।)

३. न्यूक्लीय बल। (इसी से दो न्यूक्लियस बंधते हैं। उदाहरणतः, तारों की ऊर्जा का स्रोत न्यूक्लीय है।)

४. दुर्बल बल। (यह भी न्यूक्लीय गतिविधि को समझने के लिए प्रतिपादित किया गया है। उदाहरणतः, रेडियम की चमक इसी बल के कारण है।)

इन बलों में से विद्युत-चुंबकीय बल पर सबसे अधिक कार्य किया गया है और उसे क्षेत्र-सिद्धांत (फील्ड थीयरी) के आधार पर समझाया जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक कण के चारों ओर क्षेत्र है। कण के न होने पर भी यह क्षेत्र रहता है। इस क्षेत्र को क्वांटीकृत किया जा सकता है। विद्युत-चुंबकीय क्षेत्र के क्वांटम को 'फोटान' कहते हैं। क्षेत्र-सिद्धांत के अनुसार, दो कणों के बीच बल का आधार है कणों के बीच इस क्षेत्र के क्वांटम का विनिमय (एक्सचेंज)।

आइन्स्टाइन का विश्वास था कि यह विनिमय का सिद्धांत और अधिक विस्तृत होना चाहिये और सभी प्रकार के बलों में कुछ सामान्य आधार होना चाहिये। उन्होंने इसे 'एकीकृत क्षेत्र सिद्धांत' (यूनिफाइड फील्ड थीयरी) का नाम दिया। अपने जीवन के अंतिम बीस-एक वर्ष वे इसी क्षेत्र में काम करते रहे, अपने इस सपने को साकार बनाने के लिए। अपने जीवन-काल में ऐसा हो पाना उन्हें कठिन लग रहा था; पर उनका दार्शनिक मन इस सिद्धांत से हटता ही न था। उनकी मृत्यु के बाद इस सिद्धांत को मात्र कल्पना मानकर छोड़ दिया गया।

सितंबर १९७९ में विश्व के ३८ देशों के ६०० वैज्ञानिकों की एक सभा शिकागो के पास फर्मी लैबोरेटरी में हुई और उसमें यह घोषणा की गयी कि वह कण, जिस पर 'एकीकृत क्षेत्र सिद्धांत' आधारित है, खोज लिया गया है। इस कण का नाम रखा गया है—'ग्लूओन'। प्रबल न्यूक्लीय बल को समझने के लिए ऐसी कल्पना की गयी थी कि दो न्यूक्लियसों में आकर्षण के लिए 'क्वार्क' और 'ग्लूओन' नामक कणों का विनिमय होना चाहिये।

न्यूक्लीय भौतिकी में लगभग २०० कण 'मूलकण' कहलाते आये हैं। एक सिद्धांत के अनुसार, ये कण 'क्वार्क' नामक कणों से बने हैं। इन क्वार्कों के बीच बल का आधार है 'ग्लूओन' कणों का विनिमय। जैसे दो क्वार्कों के बीच वालीबाल का खेल चल रहा हो और ग्लूओन उसमें गेंद हों। अभी-अभी तक ग्लूओन का अस्तित्व केवल न्यूक्लीय समीकरणों में कागज या ब्लैक बोर्ड पर था। उसे सैद्धांतिक भौतिकीविदों की कल्पना मात्र माना जाता था। किंतु अब उसे प्रयोग द्वारा प्राप्त कर लिया गया है।

पश्चिम जर्मनी के हैम्बर्ग नगर में पेट्रा (PETRA) नामक त्वरक बनाया गया है।

जानते ही हैं, त्वरक कणों की गति बढ़ाता है।) पेट्रा त्वरक से कणों को अरब इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा देना संभव है। इसमें कुछ अरब इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा वाले इलेक्ट्रान को उतनी ही ऊर्जा वाले पाजिट्रान से टकराया गया। (पाजिट्रान कण इलेक्ट्रान का प्रतिकण है, जिसकी मात्रा इलेक्ट्रान के समान ही होती है, परंतु आवेश विपरीत होता है।) अपेक्षा यह थी कि दो क्वार्क (विपरीत आवेश वाले) पाये जायेंगे। प्रयोग में इन क्वार्कों की दो धाराएं देखी गयीं। पर आश्चर्यजनक बात यह थी कि एक तीसरी धारा भी अत्यल्प समय के लिए देखने में आयी। प्रयोग का विस्तृत विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकला कि क्वार्क ने ग्लूओन का उत्सर्जन किया।

ग्लूओन की खोज ने आइन्स्टाइन के सपने के साकार होने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आइन्स्टाइन ने गुरुत्वाकर्षण को समझने के लिए गुरुत्व-क्षेत्र की कल्पना की थी। इस क्षेत्र के मूल कण को 'ग्रैविटॉन' की संज्ञा दी गयी है। विज्ञानी अब इस कण की खोज में लगे हैं। ग्लूओन ने विद्युत-चुंबकीय क्षेत्र और न्यूक्लीय क्षेत्र को जोड़ने में सहायता दी है। ग्रैविटान की खोज से आइन्स्टाइन का यह सपना साकार होगा कि कणों के बीच विनिमय सभी बलों का आधार है।

क्या भगवान की सृष्टि इतनी सरल है?

–१२ बी, केदारनाथ, अणुशक्तिनगर, बंबई



ऊंचे रिहाइशी मकान जलते गोदामों की रोशनी में लाल दिखते हैं। आप कुछ लेने दुकान पर जाते हैं, दुकान ही नदारद है। किसी के घर फोन करते हैं, मगर घर ही नष्ट हो चुका है। एक दिन बड़ी रात गये दफ्तर से लौटे एक मित्र बताने लगे कि किस प्रकार उन्होंने बम से बना एक गढ़ा देखा और उस गढ़े में हवा में उठे हुए दो हाथ देखे, जो आपस में जुड़े हुए थे और जिस भाव से मानो आसमान से अपील कर रहे थे—एक नर-हाथ और एक नारी-हाथ—श्रम-जर्जर हाथ जो आपस में जुड़े हुए थे। निहायत मामूली, परेशान और पीड़ित आदमियों के अविस्मरणीय प्रतीक दो हाथ।...... मैं चाहता हूं, दुनिया के हरएक नेता की मेज पर उन हाथों की नकल रखी रहे।



–जे. बी. प्रीस्टले



सलाखें और आंखें



सुखबीर की सौगात नवनीत के बाल-पाठकों को

खिड़की धीरे-से खुली तो चांदनी ने कमरे में प्रवेश किया।

वह छोटा-सा कमरा था, जिसमें बहुत-से खिलौने बिखरे पड़े थे। चांदनी के प्रकाश में वे जैसे एकाएक जाग उठे।

उसी समय खिलौनों के बीच जो एक कुत्ता खड़ा था, वह खिड़की की ओर मुंह उठाकर भोंकने लगा। वह काले रंग का डरावना-सा कुत्ता था, जिसकी एक टांग टूटी हुई थी। उसका भोंकना सुनकर पास में लेटी गुड़िया ने पूछा–'क्या बात है, कालू? भोंक क्यों रहा है?'

कुत्ता उसी प्रकार खिड़की की ओर मुंह उठाये फिर भोंका।

अब गुड़िया ने खिड़की की ओर देखा, जहां से दो आंखें अंदर झांक रही थीं। वे बड़ी-बड़ी आंखें थीं। फिर खिड़की में एक छोटी-सी लड़की दिखाई दी, जो बिलकुल

...-सी लगती थी। और वह लड़की ...की सलाखों में से कमरे में आ ...।

...कुत्ता उसे देखकर इतना हैरान हुआ कि ...ना ही भूल गया। गुड़िया और दूसरे ...ने भी उसे एकटक देखने लगे।

आखिर गुड़िया ने पूछा–'कौन हो तुम?'

लड़की ने कहा–'मैं चंदा हूं।'

'कौन चंदा?'

'लक्ष्मी की बेटी।'

'कौन लक्ष्मी?'

'वह जो इस घर में काम करती है?'

'वही जो रोज इस कमरे में झाड़ू लगाती ...?'

'हां। पर जरा धीमे बोलो। कहीं मीना ...पड़ी, तो मुझे यहां से निकाल देगी। ...बार मैं इस कमरे में आयी थी, तो ...ने मेरे बाल नोच डाले थे। फिर उसकी ...ने मुझे बहुत डांटा था।'

'हां, मीना बहुत खराब लड़की है', ...गुड़िया ने मुंह बनाकर कहा–'अब तो मुझसे ...ती ही नहीं। जब देखो, किताबें पढ़ती ...है। मेरी तरफ देखती भी नहीं।'

कुत्ते ने भी मीना की शिकायत की–...से टांग टूटी हुई है, मीना ने जोड़ी ही ...। बड़ी आयी डाक्टर बनने वाली! अब ...सभी मुझे लंगड़ा कहकर चिढ़ाते हैं।'

चंदा ने गुड़िया को उठाया और कुत्ते के ...र पर प्यार से हाथ फेरा।

गुड़िया ने फिर कहा–'मीना ने मेरा ...ह भी नहीं किया। अब कौन मेरा ब्याह करेगा? मैं बिनब्याही ही मर जाऊंगी।'

'मैं करूंगी!' चंदा ने कहा–'बोलो, किससे कराओगी?'

गुड़िया ने लजाकर कहा–'किसी से भी कर दो।'

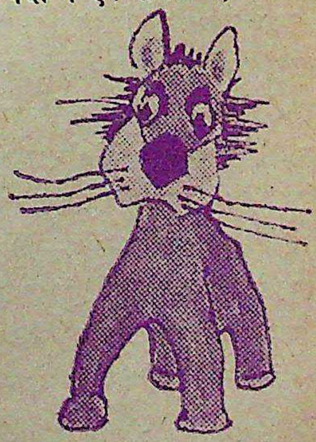
चंदा ने इधर-उधर देखा। कोने में एक बड़ा-सा सफेद रीछ टांगें ऊपर उठाये पड़ा था। चंदा ने उसकी ओर संकेत करके कहा–'उस रीछ से करोगी?'

'हां!' गुड़िया ने खुश होकर कहा–'वह मुझे बहुत अच्छा लगता है। पर वह कभी मेरे पास आता ही नहीं। जब देखो, उस कोने में पड़ा रहता है।'

चंदा उठी। कुछ दूर पर रंग-बिरंगी सीपियों का बना एक घर था। चंदा ने उसे उठाया, झाड़-पोंछकर कमरे के बीच में रखा, फिर कुत्ते से कहा–'देखो, यह गुड़िया का घर है, इसकी ठीक से रखवाली करना।'

कुत्ते ने उसी प्रकार मुंह उठाये हुए कहा–'भौं-भौं।'

तब चंदा ने एक तरफ पड़े सफेद दाढ़ी



• और चित्र हैं कमलाक्ष शेणै की सौगात •

वाले बूढ़े को उठाया और घर के सामने लाकर खड़ा करते हुए उससे कहा–'तुम यहां के दरबान हो।' फिर चंदा ने बूढ़े के सिर को जरा-सा हिलाया, तो वह लगातार हिलता रहा, जैसे कह रहा हो–'अच्छा बेटी, अच्छा!'

फिर चंदा ने दियासलाई की डिबियों का बना एक टूटा-फूटा सोफा-सेट घर के सामने रखा, बीच में मेज रखकर ऊपर छोटे-छोटे कपों का टी-सेट सजाया और अपने मन में कहा–यहां दूल्हा आकर बैठेगा और दुल्हन के साथ चाय पियेगा।

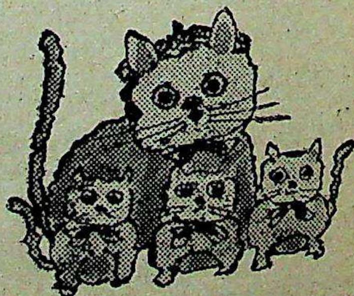
'घर की सारी तैयारी हो गयी है, अब आओ तुम्हें भी तैयार कर दूं,' चंदा ने गुड़िया से कहा और उसके कपड़े ठीक करने लगी। उसने उसके बालों पर से धूल झाड़ी और उसकी टूटी हुई नाक को सीधा किया। फिर उसने पूछा–'बोलो, दूल्हे से ब्याह करने किस पर बैठकर जाओगी?' और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही इधर-उधर बिखरे हुए खिलौनों को देखकर कहा–'इंजन में या हाथी पर? घोड़ा तो है नहीं यहां।'

गुड़िया ने मटककर कहा–'मैं हाथी पर बैठूंगी। इंजन में तो मेरे कपड़े काले हो जायेंगे।'



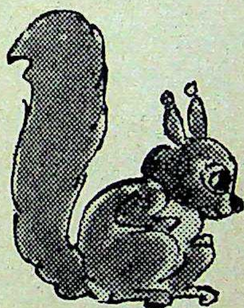
'अच्छी बात है।' चंदा एक तरफ पड़ा हाथी उठा लायी। लाल रंग का हाथी था वह, जिसके पैरों के नीचे पहिये लगे हुए थे। चंदा ने गुड़िया को हाथी पर बैठाया। जब वह एक-दो बार इधर-उधर लुढ़की, चंदा ने कहा–'ब्याह कराने चली है, पर ठीक से बैठना भी नहीं आता! दूल्हा देखेगा तो क्या कहेगा?' उसने गुड़िया को फिर ठीक से सीधा करके बैठाया। तब उसने खुद हाथी की सूंड से बंधी रस्सी पकड़ी और उसे खींचती हुई गाने लगी:

गोरे-गोरे हाथों में मेहंदी लगाके
आंखों में कजरा डालके,
चली दुल्हनिया पिया से मिलने
छोटा-सा घूंघट निकालके .....



चंदा हाथी को खींचती हुई कमरे का चक्कर लगाकर उस कोने में ले गयी, जहां रीछ पड़ा था। उसे उठाकर बैठाते हुए उसने कहा–'अरे, तू अभी तक सोया हुआ है! इतना दिन चढ़ आया है! देख, तेरी दुल्हन तुझसे ब्याह करने आयी है।'

रीछ की आंखों के स्थान पर दो बड़े-बड़े काले मोती थे। उसने गुड़िया को देखा तो दोनों मोती और भी चमक उठे। उसके ओंठों पर मुस्कराहट आयी और उसने चंदा से कहा–'यह तो नयी रीत सुनी है कि दूल्हे



से ब्याह करने दुल्हन आयी है! आज तक तो दूल्हा ही दुल्हन के यहां ब्याहने जाता था। मैं इस उलटी रीत से ब्याह नहीं करूंगा।'

चंदा सोच में पड़ गयी। यह तो बात बिगड़ गयी! अब क्या किया जाये? ..... अचानक उसे एक बात सूझी और उसने रीछ से कहा–'ऐसी बात है! तो मैं अपनी गुड़िया रानी का ब्याह शेर से कर दूंगी। और शेर तुम्हें खा जायेगा!'

शेर का नाम सुनकर रीछ डर गया। बोला–'नहीं-नहीं, शेर से ब्याह मत करना।

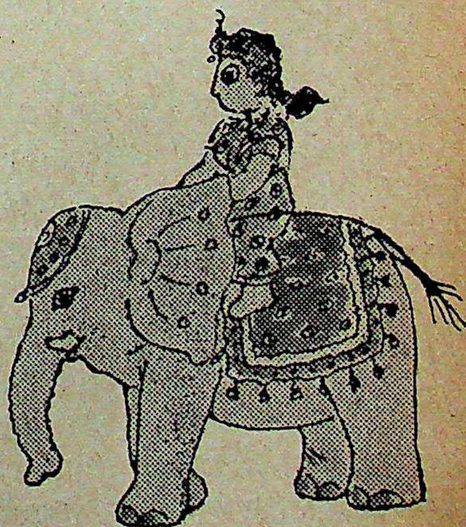


मैं इससे ब्याह करने को तैयार हूं।'

तब चंदा ने रीछ के चारों ओर गुड़िया को एक चक्कर लगवाया, फिर रीछ को गुड़िया के चारों ओर एक चक्कर लगवाया और इस प्रकार उनका ब्याह कर दिया।

अब चंदा ने रीछ को गुड़िया के पीछे हाथी पर बैठाते हुए कहा–'कभी हाथी पर बैठे भी हो? देखो, गिर न पड़ना। और गुड़िया को पकड़कर रखना।'

चंदा हाथी की रस्सी खींचती हुई उसे सीपियों वाले घर तक ले गयी। वहां उसने गुड़िया और रीछ को हाथी पर से उतारा, सोफा-सेट पर बैठाया और कोई गीत गुन-



गुनाते हुए चाय का सामान तैयार करने लगी । .....

उसी समय कुत्ता भोंका । चंदा ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया और मन में कहा– 'इसे तो बस भोंकने के सिवा कोई काम ही नहीं । जब देखो, भौं-भौं करता रहता है ।'

भोंकने की आवाज फिर आयी, तो चंदा ने उस तरफ देखे बिना ही कहा–'अब चुप भी होगा कि नहीं ? पहले दूल्हा-दुल्हन चाय पी लें, फिर तुम सबको भी मिलेगी । जरा सब्र करो ।'

लेकिन कुत्ता भोंकने से बाज नहीं आया ।

और जब चंदा ने उस तरफ मुंह फेरकर उसे डांटना चाहा, तो उसके मुंह से एक भी शब्द न निकल सका । वह आंखें फाड़े देखती रह गयी–वह सलाखों को पकड़े खिड़की पर बैठी हुई थी, और एक बड़ा-सा कुत्ता भोंकता हुआ उछल-उछलकर उसे पकड़ने की कोशिश कर रहा था, लेकिन उसका मुंह खिड़की तक पहुंच नहीं पा रहा था ।

चंदा भयभीत हो देखती रही । फिर उसके मुंह से चीख निकल गयी ।

उसी समय उसकी मां अपनी झोपड़ी में से भागी-भागी वहां आयी । आते ही उसने कुत्ते को डांटा और चंदा को खिड़की पर से उतारते हुए कहा–'क्यों री, तू यहां कब चली आयी ? और यहां तू क्या कर रही थी ? इतनी ऊंची खिड़की पर चढ़ कैसे गयी ? घर की मालकिन ने देख लिया, तो मुझे नौकरी से निकाल देगी । कहेगी, बेटी को खिलौने चुराने यहां भेजा है । चल, घर चल । रात के समय घर से निकलने की तेरी हिम्मत कैसे हुई ? ..... '

चंदा बिना कुछ बोले अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ी । उसे लगा, जैसे गुड़िया और रीछ उसे खिड़की से बुला रहे हैं । पर उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा । वह अपनी झोपड़ी में दाखिल हुई । अंदर अंधेरा था । वह टटोलती हुई एक कोने में बिछे अपने बिस्तर पर जाकर लेट गयी ।



गरमी की छुट्टियों में मैं अपनी मां तथा छोटी बहन के साथ अपनी मौसी के पास नीमच गया । हमने दो ही टिकट लिये; क्योंकि मेरी छोटी बहन जो वास्तव में सवा छह वर्ष की है, देखने में पांच वर्ष की ही लगती है । चित्तौड़गढ़ से जैसे ही गाड़ी चली, एक टी. टी. महोदय डिब्बे में पधारे । हमने टिकिट दिखा दिये । उन्होंने कहा–'इस बच्ची का टिकट ?' मैं बोला कि यह अभी पूरे पांच वर्ष की नहीं है । इतना कहना था कि मेरी छोटी बहन झट बोल पड़ी–'कहां हूं पांच वर्ष की ! सवा छह साल की हूं ।' सब यात्रियों के साथ टी. टी. महोदय भी हंस पड़े, पर बोले कुछ नहीं । असल में आजकल जब घर में यह किसी काम को करने से इन्कार करती है, तो पिताजी इससे कहते हैं– 'सवा छह साल की हो गयी है और यह काम नहीं कर सकती ?' लौटती बार हमने पहले उसका आधा टिकिट लिया । बाद में अपने दो टिकट ।

–विनोद कुमार दुआ



तूफानी गेंदबाजों की रफ्तार

कुमार प्रशांत

सन् १९७५ की शृंखला में न्यूजीलैंड-इंग्लैंड का पहला टेस्ट था, जो ओकलैंड में खेला जा रहा था। गेंद पीटर लीवर के हाथ में थी, और सामने थे न्यूजीलैंड के खिलाड़ी इवान चैटफील्ड। लीवर इंग्लैंड के तेज गेंदबाज, और बाउन्सर उनका हथियार! उन्होंने एक बाउन्सर फेंकी। गेंद सिर की ऊंचाई तक उछली, चैटफील्ड ने सिर बचाना चाहा...एक धचक हुई ... गेंद सिर से टकराकर उछली ... चैटफील्ड मैदान में कटे वृक्ष की भांति गिर गये ... अगल-बगल के खिलाड़ी दौड़े।

पर नहीं, यह साधारण चोट नहीं थी। चैटफील्ड का चेहरा स्याह हो रहा था और उनके दिल की धड़कन बंद हो चुकी थी... इंग्लैंड के फिजियोथैरेपिस्ट बर्नार्ड टामस तथा एक और जानकार व्यक्ति तीर की तरह मैदान में भागे ... उन्होंने 'मृत' चैटफील्ड के मुंह से मुंह लगाकर कृत्रिम सांस देने की प्रक्रिया शुरू की ... इंग्लैंड के क्षेत्र-रक्षक असहाय और विमूढ-से खड़े, मौत की आकस्मिकता को देख रहे थे ... और लीवर? . . . वे सबसे अलग घुटनों में मुंह छिपाकर रो रहे थे ... वे भीतर-भीतर अपने को धिक्कार रहे थे—मैंने एक आदमी की हत्या कर दी है!

चार सेकेंड तक बंद रहने के बाद चैटफील्ड का हृदय बर्नार्ड टामस की उपचार-क्रिया से फिर धड़कने लगा। बेहोश चैटफील्ड को लादकर अस्पताल लाया गया। एक घंटे बाद उन्हें होश आया।

लीवर क्रिकेट से तत्काल अवकाश लेने का फैसला कर चुके थे। उन्होंने भर्राये गले से कहा—'मैं कैसे भूल सकता हूं कि वह गेंद मैंने जान-बूझकर शार्ट फेंकी थी। उसके सिर को तो निशाना नहीं बनाया था, पर गेंद तो जान-बूझकर ही फेंकी थी मैंने।'

यह है तेज गेंद का आतंक!

क्रिकेट-मैदान में सुरक्षा के लिए लौह-टोप आदि पहने खिलाड़ी आज उसी आतंक की घोषणा करते हैं। विश्व-स्तर की किसी भी टीम के लिए आवश्यक है कि उसके पास तूफानी गेंदबाजों की एक जोड़ी हो। दोनों

सिरे से सनसनाती गेंदों के बल पर बल्लबाज के होश गुम करके उसका विकेट लेने का नाम है तेज गेंदबाजी ! आज इन तेज गेंदबाजों को 'तूफानी दैत्य', 'राक्षस' या 'सनसनाते सितारे' कहा जाता है।

इन सनसनाते सितारों की गाथा भी उतनी ही रोमांचक है। विज्ञान के विकास ने अब इनकी गति मापना संभव बना दिया है; इसलिए भी इनका तुलनात्मक विश्लेषण दिलचस्प बन गया है। रे लिंडवाल, फ्रैंक टाय्सन, मुहम्मद निसार, कीथ मिलर, वेस्ली हाल, चार्ली ग्रिफिथ, फ्रेडी ट्रूमन आदि तूफानी गेंदबाजों की गति का कोई परीक्षण नहीं हुआ, इसलिए अब तक का सबसे तेज गेंदबाज निर्धारित कर सकना कठिन है। फिर भी 'तूफानी टाय्सन' की पहले कुछ ओवरों में जो गति होती थी, उसका मुकाबला दूसरे न कर सकें शायद।

आज क्रिकेट की दुनिया में जिन गेंदबाजों की गति ने धूम मचा रखी है, उनका परीक्षण पिछले दिनों पश्चिम आस्ट्रेलिया के एक वैज्ञानिक ने किया। डा. फ्रैंक पाइक ने एक ऐसा यंत्र बनाया है, जो यह नाप सकता है कि गेंदबाज के हाथ से जब गेंद छूटी तब उसकी गति क्या थी। डा. पाइक का यंत्र, सामान्य गति से २० गुनी ज्यादा गति से गेंदबाज की फेंकी हुई गेंद का फोटो ले लेता है। उसे फिर एक खास कंप्यूटर में डालकर सही आंकड़ा प्राप्त किया जाता है।

परीक्षण के लिए आस्ट्रेलिया के तीन (जेफ टाम्सन, डेनिस लिली, लेन पास्को), वेस्ट इंडीज के चार (माइकल होल्डिंग, एंडी राबर्ट्स, वे डेनियल, कोलिन क्राफ्ट), पाकिस्तान के दो (इमरान खां, सरफराज नवाज), दक्षिण अफ्रीका के दो (गर्थ-ले रॉक्स, माइक प्राक्टर) तथा न्यूजी-

---

१. जेफ टाम्सन–आस्ट्रेलिया.........................९१.८६ मील प्रति घंटा
२. माइकल होल्डिंग–वेस्ट इंडीज.....................८७.७६ मील प्रति घंटा
३. इमरान खां–पाकिस्तान.........................८६.७७ मील प्रति घंटा
४. गर्थ-ले रॉक्स–दक्षिण अफ्रीका.....................८६.५८ मील प्रति घंटा
५. कोलिन क्राफ्ट–वेस्ट इंडीज.......................८६.४५ मील प्रति घंटा
६. एंडी राबर्ट्स–वेस्ट इंडीज........................८६.०८ मील प्रति घंटा
७. डेनिस लिली–आस्ट्रेलिया........................८४.७२ मील प्रति घंटा
८. वेइन डेनियल–वेस्ट इंडीज........................८२.९१ मील प्रति घंटा
९. लेन पास्को–आस्ट्रेलिया.........................८१.७३ मील प्रति घंटा
१०. रिचर्ड हेड्ली–न्यूजीलैंड.........................८०.६२ मील प्रति घंटा
११. माइक प्राक्टर–दक्षिण अफ्रीका.....................७९.८७ मील प्रति घंटा
१२. सरफराज नवाज–पाकिस्तान.......................७८.८८ मील प्रति घंटा

ने एक (रिचर्ड हिड्ली) गेंदबाज को या गया था। विधि यह रखी गयी थी र गेंदबाज आठ गेंदों का एक ओवर और उसमें जो गेंद सबसे तेज निकले ही उसकी रफ्तार माना जाये।

इस परीक्षण का नतीजा पृष्ठ ७४ है। देखिये और अनुमान कीजिये इन के सामने खड़े बल्लेबाज की मनः- स्थिति का।

लेकिन तेज गेंदबाजी आदमी की शक्ति कितना शोषण करती है, इसका अनु- मान इससे लगाया जा सकता है कि इन्हीं में से कुछ गेंदबाजों की गति का परीक्षण, १९७६ में, इसी विधि से किया गया था। टामसन की गति थी ९९.८० मील प्रति घंटा। एंडी राबर्ट्स तब ९७.८० मी. प्र. घं. थे, डेनिस लिली ९६.२० मी. प्र. घं., माइकल होल्डिंग ९५.२० मी. प्र. घं.। दो-तीन वर्षों में ही इनकी गति में कितना ह्रास हुआ है!

गेंद की मार से मौत के उदाहरण, इतनी मारक गति के बावजूद, बहुत कम हैं। १७५१ में, इंग्लैंड के युवराज फ्रेडरिक लुइस, सरे के पहले कप्तान बने थे। एक साधारण मैच में खेलते हुए गेंद उनके सिर के एक पार्श्व में लगी। उस समय तो कुछ पता नहीं चला, पर एक खतरनाक फोड़ा भीतर ही भीतर पनपने लगा। एक नृत्य-समारोह में फोड़ा अचानक भीतर ही फट गया, और युवराज लुइस ने, क्रिकेट के गेंद से पहली शहादत दी।

दूसरा उदाहरण १८०० का है। जान रिंग को, अपने ही भाई द्वारा फेंकी गयी गेंद, लेग में घुमाने की कोशिश में नाक पर लगी। कुछ सप्ताह अस्पताल में बिताने के बाद उनकी मृत्यु हो गयी।

भारत के क्रिकेट-प्रेमी कैसे भूल सकते हैं नरी कंट्रैक्टर की कहानी। चार्ली ग्रिफिथ की बाउन्सर ने उन्हें मृत्यु के एकदम करीब पहुंचा दिया था। जान तो उनकी बच गयी, पर टेस्ट-क्रिकेट का उनका उज्ज्वल जीवन उस टेस्ट के साथ ही समाप्त हो गया।

गेंद की रफ्तार भी बढ़ी है और उसे फेंकने की तकनीक में भी काफी सुधार हुआ है। इसका परिणाम यह है कि जिन बल्ले- बाजों की तकनीक एकदम खरी नहीं है, उनके लिए खतरा बढ़ गया है। इसके परिणामस्वरूप लौह-टोप आदि का प्रयोग शुरू हुआ है, जिसने क्रिकेट की सूरत खेल की कम, युद्ध की ज्यादा कर दी है। अपनी तकनीक को सुधारकर, गेंदबाज का मुका- बला करने की जगह, लौह-टोप पहनने के चलन पर, अपने समय में दुनिया के सबसे खतरनाक गेंदबाज फ्रेडी ट्रूमन ने कहा है— 'जब मैं बल्लेबाज को जिरह-बख्तर से लैस देखता हूं, तो इच्छा होती है कि गेंद को ढेले की तरह फेंकने की सुविधा दी जाये।'

इस तरह की सुविधा के बगैर ही तो बल्लेबाजों में खलबली मची है। आगे-आगे देखिये, क्रिकेट क्या रूप बदलता है!



पाकिस्तानी परमाणु-बम

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

प्रधान-मंत्री चौधरी चरणसिंह ने १५ अगस्त १९७९ को लाल किले के प्राचीर से भाषण देते हुए पाकिस्तान द्वारा 'बम' बनाये जाने की चर्चा की थी। साधारण बम तो पाकिस्तान क्या सभी देश अनेक दशकों से बना रहे हैं; उनका तात्पर्य पाकिस्तानी परमाणु-बम से था, जिसकी चर्चा हाल में ही बहुत जोरों से हुई है। कुछ ने इसे 'इस्लामी बम' कहा है और यह संकेत किया है कि इसका उद्देश्य इस्लामी राज्यों को इस्रायल के विरुद्ध परमाणु-बम से सन्नद्ध करना है।

इस्रायल के बारे में यह मान्यता है कि उसने अमरीका के सरकारी यूरेनियम-भंडारों से चोरी करके तथा यूरेनियम ले जा रहे एक जहाज का अपहरण करके यूरेनियम प्राप्त किया और उससे परमाणु-बमों का निर्माण कर लिया है।

पाकिस्तान के पास परमाणविक ज्ञान बहुत वर्षों से है और उसके पास एक बड़ी परमाणु-भट्ठी भी है। अमरीका की सेनेट की अंतरराष्ट्रीय समिति के लिए इसका विवरण तैयार किया गया था कि २३ सितंबर १९७७ को संसार-भर में किस-किस देश के पास परमाणविक ज्ञान था और कहां-कहां परमाणु-भट्ठियां थीं। इस विवरण के अनुसार, १९७२ से ही पाकिस्तान के पास एक परमाणविक संयंत्र है, जिससे १२६ मेगावाट बिजली तैयार होती है। उस विवरण में यह भी भविष्यवाणी की गयी थी कि १९८४ तक पाकिस्तान में दो परमाणविक संयंत्र हो जायेंगे, जिनसे ७२६ मेगावाट बिजली तैयार हो सकेगी।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि भट्ठियों की संख्या में तो एक की ही वृद्धि होगी, परंतु क्षमता पांच गुना बढ़ जायेगी। यह इस बात को भी बताता है कि इन संयंत्रों से कितना प्लूटोनियम तैयार हो सकता है या कितना पुष्ट (एनरिच्ड) यूरेनियम प्राप्त हो सकता है।

पाकिस्तान के पास जो संयंत्र है, वह कनाडा से प्राप्त कैन्डू प्रकार का संयंत्र है, जिसमें जलाने के लिए पुष्ट यूरेनियम की नहीं बल्कि शुद्ध यूरेनियम की आवश्यकता

है और जिससे निकलने वाला प्लूटो- बम बनाने के काम में आ सकता है। कारण है कि जब पोखरण में भारत ने णविक विस्फोट किया, तो कनाडा हुई कि उसका दिया हुआ जो रावतभाटा (कोटा) में चल रहा है, उसी से तो प्लूटोनियम इकट्ठा करके परमाणविक विस्फोट नहीं किया गया?

वर्षों से पाकिस्तान में जो यूरे- ईंधन की राख बचती रही है, उसे शुद्ध करके प्लूटोनियम में परिवर्तित के लिए पाकिस्तान ने जून १९७६ में की एक कंपनी के साथ एक पुनःसंसा- (रिप्रोसेसिंग) कारखाने की स्थापना का समझौता किया था। इस सम- के अनुसार, उस कारखाने से प्रतिवर्ष प्लूटोनियम तैयार हो सकता था। परमाणु-बम हिरोशिमा और नागासाकी गये थे और जिन्होंने जापान को समर्पण करने के लिए बाध्य किया, किलोग्राम के थे। अतः आप सहज ही कर सकते हैं कि १ टन प्लूटोनियम शक्ति के कितने बम प्रतिवर्ष तैयार थे। परंतु अमरीका के दबाव के फ्रांस ने वह सौदा खत्म कर दिया वह कारखाना पाकिस्तान में लग नहीं।

किन यह न समझिये कि पाकिस्तान बम बनाने के लिए केवल एक देश भर होकर बैठा था। जैसा कि उस भूतपूर्व प्रधान-मंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपों का जवाब देते हुए पिछले वर्ष रावलपिंडी जेल से लिखा था, वे ग्यारह वर्षों से एक करार के लिए बड़ी धुन से और बिना हारे प्रयत्न करते रहे थे और उसी का परिणाम था जून १९७६ का समझौता। इसके बारे में भुट्टो ने लिखा था—'जून १९७६ में किया गया वह करार संभवतः हमारी जनता और हमारे देश के जीवित रहने के लिए मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि और सबसे बड़ा योग-दान होगा।'

यह 'योगदान' किसी ऐसे देश के साथ परमाणविक समझौता ही हो सकता था, जो पाकिस्तान को उपादान दे, प्रौद्योगिक जानकारी दे और वह सामग्री दे जिससे परमाणु-बम निरंतर बन सकें। और इस प्रकार का समझौता दो ही देशों के साथ



'हम घास-पात खायेंगे, भूखे रह लेंगे;
मगर परमाणु-बम जरूर बनायेंगे।'
—जुल्फिकार अली भुट्टो

संभव था—एक चीन और दूसरा दक्षिण अफ्रीका। इन दोनों देशों के पास पर्याप्त यूरेनियम है और उन्होंने उसे पुष्ट (एनरिच) करना भी सीख लिया है।

चीन के परमाणविक ज्ञान के बारे में किसी को अविश्वास करने की जरूरत नहीं। और रहा दक्षिण अफ्रीका, उसके बारे में भी जानकार लोगों का अनुमान है कि पश्चिम जर्मनी के सहयोग से उसने इसकी जानकारी प्राप्त कर ली है कि किस प्रकार परमाणविक ईंधन के अपने विपुल भंडार का वह स्वयं प्रयोग कर सकता है। दक्षिण अफ्रीका यानी श्वेत अफ्रीका को हमेशा यह भय लगा रहता है कि एक दिन उसे सारे अश्वेत अफ्रीका की शक्ति का सामना करना पड़ेगा। उस विशाल जनशक्ति का सामना करने के लिए तथा उसे डराने के लिए उसने परमाणु-विद्या के विकास की ओर कदम बढ़ाया है। इन दोनों ही देशों के साथ पाकिस्तान का पुराना दोस्ताना संबंध है। चीन के साथ तो श्री भुट्टो को इसलिए भी विशेष दर्जा प्राप्त था कि उन्होंने अमरीका से उसका (चीन का) मेल कराकर रूस के विरुद्ध उसे एक साथी दिलवाया।

परमाणु-बम बनाने के लिए तीन पदार्थ काम में आ सकते हैं—यूरेनियम-२३३, यूरेनियम-२३५ और प्लूटोनियम। लेकिन इनमें से कोई भी पदार्थ प्राकृतिक रूप से उपलब्ध नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि आपके पास यूरेनियम का विपुल भंडार हो, तो भी उससे आप न परमाणु-बम बना सकते हैं और न परमाणु-ऊर्जा से संबंधित अन्य बड़े कार्य ही कर सकते हैं। प्राकृतिक यूरेनियम में यूरेनियम-२३५ मिला होता है, मगर सिर्फ ०.७ प्रतिशत की मात्रा में। इस थोड़े-से यूरेनियम-२३५ को प्राकृतिक यूरेनियम से पृथक् करके एकत्र किया जाता है। इसी का नाम है—यूरेनियम को पुष्ट करना। यह पुष्ट यूरेनियम ही यूरेनियम-२३५ के नाम से काम में आता है। जब इसकी पुष्टता ९० प्रतिशत शुद्ध हो जाती है, तो यह अनुसंधान के लिए बनायी गयी परमाणु-भट्ठियों, अत्यंत उच्च ताप उत्पन्न करने वाली गैस से ठंडी होने वाले बिजली-उत्पादक संयंत्रों, पनडुब्बियों और अन्य जलपोतों के परिचालन-यंत्रों में और विघटनशील परमाणविक सामग्री के रूप में काम में आता है।

'विघटनशील सामग्री' शब्द का प्रयोग हम इसलिए कर रहे हैं कि आजकल परमाणु-बम की परिकल्पना बड़ी बासी हो गयी है और उसके स्थान पर 'परमाणविक हथियारों का शीर्ष' (एटामिक वारहेड) शब्द का प्रयोग किया जाता है। ये 'परमाणविक हथियारों के शीर्ष' इतने छोटे हो सकते हैं कि बंदूक की कारतूस में या तोप या पहाड़ी तोप के गोले में लगा दिये जायें, या इतने बड़े भी हो सकते हैं कि कई मैगाटन शक्ति वाले विस्फोटक अंतर्महाद्वीपीय मिसाइलों में लगाये जायें। सो आज प्रश्न यह नहीं है कि आप जो परमाणु-बम बना रहे हैं उसे आप

और कैसे फेंकेंगे ? बल्कि प्रश्न यह है आप परमाणविक हथियार बना हैं?

यूरेनियम को और अधिक पुष्ट न जाये, तो वह हल्के पानी से चलने तापीय आणविक भट्ठियों में काम जा सकता है। लेकिन उसका प्रयोग विक विस्फोटक यानी हथियारों के बनाने के काम में नहीं हो सकता। किसी पुष्टीकरण संयंत्र में यूरेनियम धिक पुष्ट करने के लिए उसका उप-हो सकता है।

तक यूरेनियम को पुष्ट करने के दो प्रसिद्ध हैं। इनमें पहला है—गैसियस (गैसीय विसृति)। इसमें बड़े-बड़े काम में आते हैं, बहुत बिजली खर्च है और तब पुष्ट यूरेनियम की उप-होती है। ये संयंत्र इतने विशाल होते इतनी शक्ति व्यय करते हैं कि पता जरा-सी देर में लग सकता है। और सोवियत संघ में इस प्रकार बड़े कारखाने हैं, जबकि इस प्रकार छोटे कारखाने ब्रिटेन और फ्रांस में में भी ऐसे ही कारखानों द्वारा यम बनाया गया। फ्रांस में इस तरह बड़े कारखाने बन रहे हैं—एक है यूरो-योजना (जिसका निर्माण शुरू हो) और दूसरा, कोरेडिप परियोजना। करण की दूसरी प्रणाली को सेन्ट्रि-(अपकेंद्री) प्रणाली कहते हैं। इसमें छोटा होता है, बिजली कम खर्च होती है और पुष्ट यूरेनियम जल्दी और सस्ते में तैयार होता है। ब्रिटेन में इस प्रकार का एक कारखाना है। परंतु वह परीक्षण-संयंत्र ही समझा जाता है। व्यापारिक दृष्टि से पश्चिम जर्मनी, ब्रिटेन और हालैंड तीनों देशों ने मिलकर एक कारखाना खोला है, जो हालैंड के एलमीलो नामक स्थान पर स्थित है। यह ब्रिटेन के कैंपनहर्स्ट स्थित कारखाने से बड़ा है और १९७० में इसकी क्षमता ४ लाख यूनिट यूरेनियम पृथक् करने की थी, जबकि ब्रिटेन के कैंपनहर्स्ट कारखाने की क्षमता कुल ६ हजार यूनिट पृथक् करने की है।

इन तीनों देशों के 'यूरेन्को' नामक संघटन की योजना यह है कि इसकी क्षमता बढ़ाते हुए १९८० तक १० लाख यूनिट, १९८५ तक ६० लाख यूनिट और १९९० तक १ करोड़ १० लाख यूनिट पर पहुंचा दी जाये।

अमरीका ने सेन्ट्रिफ्यूज-प्रणाली का उपयोग नहीं किया गया था। लेकिन राष्ट्रपति कार्टर ने घोषणा की है कि अमरीका में इस संबंध में जो प्रयोग किये जा रहे हैं, उन्हें अब व्यावहारिक कार्य में लगाया जायेगा। अमरीका की क्षमता जानना चाहें तो वहां ओकरिज, पड्डूका और पोर्टसमाउथ में जो बड़े-बड़े कारखाने बने हुए हैं, उनकी क्षमता ४७ लाख इकाइयों से लेकर ७३ लाख इकाइयों तक है। ये तीनों गैस-डिफ्यूजन प्रणाली के हैं। इन कारखानों की कार्यविधि में सुधार के लिए सिक्किप में



पाक सेन्ट्रिफ्यूज संयंत्र के लिए रहस्य चुराने वाले डा. अब्दुल कादर खां।

एक और कारखाना खड़ा किया जा रहा है, जिसकी क्षमता १९७७ में तो केवल ३ लाख यूनिट थी, परंतु १९९० में १ करोड़ यूनिट हो जायेगी। इनके अलावा पोर्टसमाउथ का विस्तार किया जा रहा है और ८७ लाख ५० हजार यूनिट की क्षमता वाला एक कारखाना १९८५ में खड़ा हो जायेगा। ये सभी डिफ्यूजन-प्रणाली के ही हैं। लेकिन अब एक्सान, सेंटार और गैरिट कंपनियों ने अमरीका में जो कारखाने खड़े करने की योजना बनायी है, वे सब सेन्ट्रिफ्यूज-प्रणाली के होंगे।

रूस के कारखाने साइबेरिया में हैं। ये डिफ्यूजन-प्रणाली के हैं और इनकी क्षमता ९५ लाख यूनिट की है। फ्रांस और ब्रिटेन के डिफ्यूजन-प्रणाली के कारखाने ४६ लाख यूनिट की क्षमता के हैं। जापान सेन्ट्रिफ्यूज-प्रणाली पर शोध कर रहा है। कनाडा में भी क्विबेक में एक कारखाना बनेगा; वह भी डिफ्यूजन-प्रणाली का होगा।

दक्षिण अफ्रीका ने एक तीसरी प्रणाली का आविष्कार किया है। यह सेन्ट्रिफ्यूज-प्रणाली से मिलती-जुलती है और इसे 'नोज़िल' प्रणाली कहते हैं। दक्षिण अफ्रीका की यूकोर कंपनी ५० लाख यूनिट पुष्ट करने की क्षमता वाला कारखाना १९८५ तक तैयार कर लेगी। पर इसके मानी यह नहीं कि वहां अभी काम नहीं हो रहा है। दक्षिण अफ्रीका ने पश्चिम जर्मनी से सहयोग किया है और पश्चिम जर्मनी की स्टैग कंपनी अनुसंधान और विकास-कार्य दोनों में इस प्रणाली को अपना रही है। परमाणु-शक्ति का युद्धकार्यों में प्रयोग न करने की जो बंदिश पश्चिम जर्मनी पर थी, उससे बचने के लिए उसने दक्षिण अफ्रीका का सहयोग लिया। दक्षिण अफ्रीका में खुलकर परीक्षण किये जा सकते हैं और वहां यूरेनियम की बहुतायत भी है।

इन प्रणालियों के खर्च में कितना अंतर है, इसे समझने के लिए कुछ आंकड़े काफी ह।

डिफ्यूजन-प्रणाली में दो प्रक्रियाएं होती हैं—एक है ३ प्रतिशत शुद्धीकरण की, दूसरी ९० प्रतिशत शुद्धीकरण की। उसकी ६ हजार यूनिटों के लिए २,५०० किलोवाट प्रतिघंटा बिजली चाहिये; जबकि सेन्ट्रिफ्यूज-प्रणाली के लिए बिजली की आवश्यकता कुल २५० और नोज़िल-प्रणाली में २,५०० से ३,५०० किलोवाट घंटा तक हो सकती है। आर्थिक दृष्टि से ९ हजार यूनिटों

[शेष पृष्ठ २३३ पर]

बच्चे के आदिगुरु

बच्चा अगर नुक्ताचीनी के बीच जीता है
तो खंडन करना सीखता है।
बच्चा अगर विरोध के बीच जीता है
तो लड़ना सीखता है।
बच्चा अगर उपहास के बीच जीता है
तो शरमाना सीखता है।
बच्चा अगर लज्जा के बीच जीता है
तो अपराध-भावना सीखता है।
बच्चा अगर सहिष्णुता के बीच जीता है
तो सब्र सीखता है।
बच्चा अगर प्रोत्साहन के बीच जीता है
तो विश्वास करना सीखता है।
बच्चा अगर प्रशंसा के बीच जीता है
तो सराहना करना सीखता है।
बच्चा अगर न्याय-भावना के बीच जीता है
तो इन्साफ करना सीखता है।
बच्चा अगर सुरक्षा के बीच जीता है
तो श्रद्धा करना सीखता है।
बच्चा अगर सहमति के बीच जीता है
तो अपने को पसंद करना सीखता है।
बच्चा अगर स्वीकृति और मित्रता के बीच जीता है
तो दुनिया में प्यार पाना सीखता है।

– डोरोथी लॉ ह्रोलिज –



राज्यपाल के लिए चोरी

आशुतोष पांडेय

श्री अनंतशयनम् अय्यंगार तब बिहार के राज्यपाल थे। 'गंडक बराज' का काम शुरू होने वाला था और वे उसे देखने वाल्मीकि नगर (प. चंपारण) पधारे थे।

जब जिले के सभी अधिकारियों के साथ श्री सिंह (भू-अर्जन पदाधिकारी) वाल्मीकि नगर जाने लगे, तो अंचलाधिकारी-बगहा को तथा मुझे भी साथ ले चले। श्री सिंह संगीत-प्रेमी और शायर-तबीयत के आदमी थे। दिवंगत कवियों और प्रचार से दूर रहने वाले जीवित कवियों की कविताएं झूम-झूमकर अपने नाम से सुनाते थे। बड़े मुखर थे–यह भी एक कमी थी। हांकते तो बेलगाम हांकते।

किसी राज्यपाल को निकट से देखने का कौतूहल मेरे मन में था। फिर राज्यपाल के साथ श्री जगदीशचंद्र माथुर भी पधार रहे थे, जो तिरहुत-आयुक्त थे और जिनकी विद्वत्ता और साहित्यिकता की ख्याति थी।

राज्यपालजी के चौगिर्द सभी अधिकारी खड़े थे। प्रसंगवश, गंडक की पौराणिकता की चर्चा चल पड़ी। श्री सिंह की ओर जब कोई मुखातिब नहीं हुआ तो वे बर्दाश्त न कर पाये। बोल पड़े ..... 'इस गंडक में तुलसी-दल डालते ही शालिग्राम की प्रतिमा ऊपर आ जाती है।'

राज्यपाल अय्यंगारजी तो हिंदू संस्कृति के परम भक्त थे–भीतर से जितने आस्तिक, पंडित और वेदज्ञ थे, वेश-भूषा में भी उसने ही परंपरा-प्रेमी। (पं. कमलापतिजी त्रिपाठी कहते हैं–'मनुष्य की पहचान पांच "व" से होती है। वे हैं–विद्या, विनय, वाचा, वपु और वेष।') सो राज्यपालजी ने कहा–'शाम को मैं उस स्थान पर चलना चाहता हूं, जहां शालिग्राम मिलते हैं। मेरे पिताजी शालिग्राम की उत्पत्ति के बारे में काफी कुछ बतलाया करते थे।'

मौका हाथ लग गया सिंहजी के। बोले–'जरूर देखा जाये, सर, शालिग्राम मिलेंगे।'

जब सब लोग दोपहर के भोजन के लिए चले गये, तो हम लोग अपनी छोलादारी में लौटे। मैंने राज्यपालजी की उपस्थिति में जो हंसी बमुश्किल रोक रखी थी, अपने मित्र अंचलाधिकारी को देखकर अब फूट पड़ी। मैंने कहा–'मजा आ गया। आज सारा भेद राज्यपालजी के सामने खुल जायेगा, मित्र!'

जैसे जांच के लिए डाक्टर मरीज को सीधा पीठ के बल लिटाकर दोनों एड़ियां आपस में सटाने के लिए कहता है, ठीक



ई संस्कृति
आस्तिक,
भी उसने
त्रिपाठी
"व" से
चा, वपु
ने कहा–
चाहता
पिताजी
काफी कुछ

। बोले–
मिलेंगे।'
के लिए
दारी में
स्थिति में
, अपने
अब फूट
ज सारा
जायेगा,

चीज को
एड़ियां
है, ठीक

अक्तूबर

...पोज में सिंहजी बिस्तर पर लेटे थे। ...मातमी था। उन्हें देखते ही हम दोनों ...पड़े। इस पर वे बरस पड़े–'क्या खेंखर ...तरह हंस रहे हो तुम लोग ! अब क्या ...इसे भी तो सोचो !'

...मन में तो आया कि कह दूं –'बेसिर-पैर ...आप हांकियेगा तो भोगेगा कौन ?' ...चुप रह गया।

...अंचलाधिकारी ने जब देखा कि उनका ...अफसर मुसीबत में फंस जायेगा, तो गंभीर ...गये। धोबी को न दूसरा जानवर, गदहे ...न दूसरा मालिक। बोले–'सर, क्यों न ...लोग पानी में एक निश्चित स्थान पर ...शालिग्राम पहले से रख दें और राज्य- ...पालजी से उसी जगह तुलसी-दल डलवायें। ...आप तो पानी में उतर सकते नहीं। ...लोग भीतर से शालिग्राम निकाल कर दे ...गे।'

...एक झूठ इस तरह सच होता नजर ...आयेगा, सिंहजी को उम्मीद नहीं थी। सो ...पड़े–'भुनेसर ! तुम ही मेरी लाज ...बचा सकते हो। शालिग्राम शीघ्र मंगवा ...दो।' अंचलाधिकारी बोले–'अब पंडितजी ...ही सब प्रबंध करें।' और दोनों मेरी ओर ...देखने लगे।

मैंने उन दोनों को बताया कि काशी- ...प्रयाग के सिवा दूसरे शहरों में शालिग्राम ...नहीं मिलते। हां, किसी मंदिर से ले लिया ...जाये तो बात बनेगी।

मेरा इतना कहना था कि दोनों मेरे पीछे ...पड़ गये कि आप ही घर जाकर अपने मंदिर से चुरा लाइये।

उस दिन मुझे पता चला कि 'धर्म संकट' में कैसे कोई फंसता है ! जब देखा एक असत्य को सत्य का चोला पहनाने के लिए इतना बड़ा पाप मुझे करना पड़ेगा, तो मैंने साफ इन्कार कर दिया।

मेरे बचपन में चरणोदक वाला पंचपात्र तथा आचमनी गायब हो गयी थी मंदिर से, तो हम बच्चों की शामत आ गयी थी।

पर दोनों मित्र बड़ी खुशामद और अनुनय-विनय कर रहे थे। अंत में यह कुकर्म करना ही पड़ा। चालीस किलोमीटर जीप दौड़ाकर घर पहुंचा और मंदिर में घुसा। पिताजी जगमोहन में कुशासनी पर लेटे थे। उनकी नजर बचाकर किसी तरह दबे पांव शालिग्राम लेकर लौट आया। जीप जितनी तेज चल सकती है, चलायी गयी।

शाम के ४ बजे त्रिवेणी (वाल्मीकि नगर) संगम पर घुटने-भर जल में शालिग्राम सुरक्षित रख दिया गया। राज्यपालजी ने हमारी प्रेरणा पर जब वहीं पर तुलसी-दल डाला, तो एक अधिकारी ने नीचे से उठाकर शालिग्राम उन्हें समर्पित कर दिया। इस तरह नाटक समाप्त हुआ।

श्री अनंतशयनम् अय्यंगार अब इहलोक में नहीं हैं, पर उनके घर में अब भी मेरे मंदिर के शालिग्रामजी पूजित हो रहे होंगे। यह चोरी उस धर्मप्राण व्यक्ति के लिए करनी पड़ी थी, जब यह सोचता हूं तो मेरे पाप का प्रायश्चित्त-सा हो जाता है।

–पो. मलकौली (बगहा), प. चंपारण, बिहार



रचना-संसार

ज़िंदगी को अर्थ देने के लिए
शब्द का संसार हम गढ़ते रहे।

(१)

जो गढ़ा है, वह महल तो है नहीं
झोपड़ी में रक्त से जलता दिया
जो पसीना था समय के साथ पर
कंठ तक आया कि हमने गा दिया
कौन जाने, गीत थे या मर्सिये
जो सरे बाज़ार हम पढ़ते रहे।

(२)

कुछ न हम, सब कुछ हमारे स्वप्न हैं
दृष्टि जिनसे रोशनी पाती रही
एक चौराहा शहर के बीच था
भीड़ जिसको चीरकर जाती रही
देख हमको, मुस्कराये हाशिये
आंसुओं के काफ़िले बढ़ते रहे।

(३)

जिस नज़र में एक जंगलपन दिखा
एक आंसू का समंदर भर दिया
और छाया-गीत सुनने के लिए
धूप के हर प्रश्न का उत्तर दिया
सब किया, जो कुछ हुआ अपने किये
पर स्वयं से हम सदा लड़ते रहे।

(४)

गुनगुनाना भी न संभव हो जहां
हों जहां पर आवरण ही आवरण
घूमता है जो सदा ठहराव में
जी रहा हमको वही वातावरण
गीत-गंधी बस्तियों के काफ़िये
छंद की दुर्गंध में सड़ते रहे।

कृष्णकुंज, दादाभाई क्रास–३,
बंबई–५६

—वीरेन्द्र मिश्र

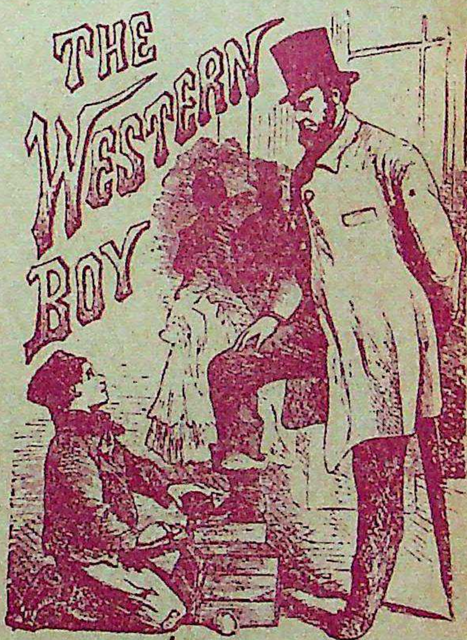
...फलता का ...फल पुजारी

मैल्कम कूली के लेख पर से

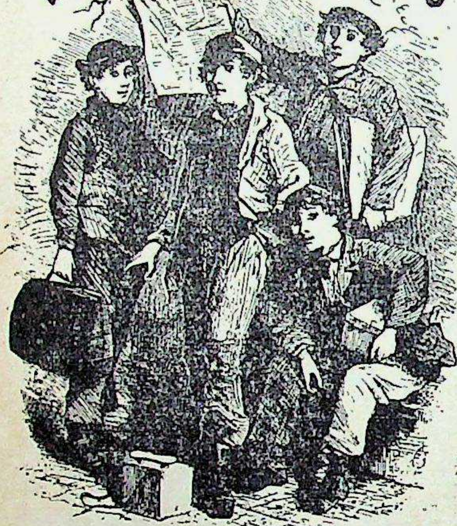
...हित्यिक मिथक भी बड़े विचित्र होते हैं। अमरीकी लेखक होरेशियो एल्गर ...बारे में मशहूर है कि उसने अपनी रच... ...ों से अपने देशवासियों को सफलता के ...े संजोना सिखाया था। उसके उप... ...ों के अधिकांश किशोर-नायक रंक से ...बनते हुए चित्रित हैं। अतः ऐसा कोई ...व्यक्ति, जो गंदी बस्तियों में जनमा-पला ...लेकिन बाद में किस्मत की कृपा और ...ी मेहनत के जोर से उद्योग-व्यापार में ...ेका आदमी बन गया हो, अमरीका ...'एल्गर हीरो' कहलाता था। मगर स्वयं ...क होरेशियो एल्गर का जीवन सफलता ...कथा नहीं थी।

...भी तक यह भी ठीक पता नहीं चल ...ा है कि एल्गर ने कितनी पुस्तकें लिखीं। ...लेखकों ने उसका नाम खरीद लिया था। ...बाद में भी उसके नाम से दर्जनों किताबें ...ी रहीं। बहरहाल उसके नाम से छपी ...तकों की कुल संख्या १४३ बतायी जाती ...इनमें एल्गर की लिखी पुस्तकें शायद ...से अधिक नहीं थीं। बेशक, उसके ...कों की संख्या बहुत बड़ी थी; लेकिन ...चीस करोड़ नहीं, जैसी कि जनश्रुति है।

हां, यह जरूर था कि लगभग चालीस वर्ष तक करीबन दस लाख अमरीकी लड़के आपस में एल्गर की किताबें लिया-दिया करते थे। हजारों पाठक व्यापार में काम-



सफलता के सपने जगाने वाली एक किताब



लोकप्रिय डिक सीरीज की एक पुस्तक का मुखपृष्ठ।

यावी के लिए एलगर से मुफ्त में राय मांगते थे–चिट्ठियां लिख-लिखकर। उनका खयाल था कि सबके चाचा-मामा की तरह वह उन्हें व्यापारी सूझ-बूझ के गुप्त गुर सिखा देगा!

होरेशियो एलगर का पिता पादरी था और उसकी यही तमन्ना थी कि बेटा धर्म-शिक्षा और धर्म-प्रचार के काम को आगे बढ़ाये। इसीलिए उसने बेटे को आठ बरस की कच्ची उम्र में ही अफलातून का फलसफा पढ़ने को मजबूर कर दिया। नौवें साल में लड़के को लातीनी भाषा पढ़नी पड़ी। वैसे, तब तक उसने 'जैक द जायन्ट किलर' भी पढ़ लिया था। जब घर पर कोई मुलाकाती आते, तो उनके सामने पादरी पिता पूछता कि बड़े होकर तुम क्या बनोगे, होरेशियो? ..... 'मैं भगवत्प्राप्ति के मार्ग का शिक्षक, उसकी आज्ञाओं का उपदेशक, स्वतंत्र किंतु उदारवादी विचारक और अपने राष्ट्र का वफादार नागरिक बनूंगा।' बेटा यह रटा-रटाया जवाब तड़ाक् से सुना देता।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ते समय एलगर अपने ठिंगनेपन (५ फुट २ इंच) के लिए सुविदित था। क्लास में उसका स्थान दसवां रहता था। वैसे फ्रेंच भाषा और क्लासिकों के अध्ययन में लोग उसकी कुशलता को सराहते थे। पेशेन्स स्तायर नाम की एक लड़की से उसे प्रेम भी हुआ था। किंतु पिता ने शादी की इजाजत नहीं दी। उन्हीं दिनों उसने अपनी डायरी में लिखा था–'मोबी डिक (जो हाल ही छपा था) पढ़कर बहुत मजा आया। लेखकों की जिंदगी भी कैसी मजेदार होती होगी! क्या लिखने का पेशा मेरे लिए ठीक रहेगा?'

पर जिंदगी शुरू की उसने मास्टरी से। बोस्टन के अखबारों में कुछ छपवाता भी था। एक पत्रिका में सहायक-संपादकी भी की; लेकिन वह पत्रिका कुछ ही हफ्तों बाद बंद हो गयी। आखिर हारकर उसे पिता की बात माननी पड़ी और वह पादरियों के स्कूल में भरती हो गया। स्नातक होने के दिन ही उसे पता चला कि उसके एक बूढ़े दोस्त ने विरासत में कुछ रकम उसके लिए

...ती है। बस, फिर क्या था! वह तुरंत ...ल चला गया। वहां एक मुर्दाघर को ...ल गया, तो एलिस मोंसले के प्रेम में पड़ ...ा वहीं मिले थे वे दोनों सर्वप्रथम। उसे ...साहित्यकारों से उतना ही लगाव था ...ितना कि एल्गर को। दोनों विक्टर ह्यूगो ...र हेनरी मर्जर के इतने भक्त थे कि जब ...र की मौत हुई तो ये प्रेमी-युगल एक ...ानों में हाथ में हाथ डाले देर तक आंसू ...ाते रहे।

...आखिर एल्गर को पेरिस छोड़कर ...ाना पड़ा; क्योंकि विरासत में मिली ...म खत्म हो चुकी थी और एलिस की ...ह अब एक तेज-तर्रार अंग्रेज रमणी ...की प्रेमिका थी। तीन बार उसने अम- ...की यूनियन की फौज में भरती होने की ...शिश की; लेकिन दो बार तो हाथ तुड़वा ...र और तीसरी बार खतरनाक न्यूमोनिया ...गिरफ्त में आ गया। अंत में पिता ने रक्षा ...की उसकी; और १८६४ में उसे पादरी ...बनना ही पड़ा। केप कॉड की एक छोटी-सी ...ह ब्यूस्टर की पादरीगीरी उसे रास ...आयी, यद्यपि उस गिरजे के लोग उसे ...'विनयी, परोपकारी और ईश्वर-भक्त' ...मानने लगे थे। वहीं से उसने अपना अधि- ...क समय किशोरों के लिए उपन्यास ...लिखने में लगाना शुरू किया।

...दो साल बाद वह गिरजे की नौकरी छोड़ ...न्यूयार्क आ गया। वहां उसने सपने तो ...साहित्यिक सफलता और गरिमा के देखे, ...लेकिन रहा सिर्फ एक कलम-नवीस ही, जिसे प्रकाशकों की मांग के मुताबिक लिखना पड़ा था।

एल्गर का औपन्यासिक किशोर-नायक डिक सड़कों पर बूटपालिश करने वाला अनाथ बालक है, जो बाद में समाज का सम्मानित व्यक्ति हो जाता है। जब एल्गर को डिक पर आश्रित और भी छह पुस्तकें उसी शैली में लिखने के लिए अनुबंधित किया गया और रहने के लिए एक कमरा मिल गया तो उसने अपने को स्थापित समझ लिया। उसकी दिली ख्वाहिश यह थी कि वह स्थायी मूल्य का एक ऐसा उपन्यास लिखे, जो किशोर-साहित्य से एकदम अलग हो। एक बार 'टुमॉरो' नाम से उसने इसे शुरू भी किया; लेकिन कोई खास नतीजा नहीं निकला। इस बार पेरिस आकर उसने तीसरी बार एक विवाहिता औरत से प्यार शुरू किया, पर उसने बढ़ावा नहीं दिया। आखिर लोगों ने उसे चीख-पुकार करते देखकर पागलखाने में भरती करा दिया।

ठीक होने पर एल्गर ने फिर किशोर-साहित्य ही तैयार किया। इसमें किसी खास सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं की गयी थी; बस, रुचिकर बनाने की ओर ही ज्यादा ध्यान रखा गया। अपनी एक कृति में उसने 'पाद्रोन प्रथा' का विषम चित्रण किया था। इस प्रथा में होता यह था कि इटली से रास्तों पर गाने-बजाने वाले सैकड़ों बच्चे खरीद-कर लाये जाते और अमरीका में उनसे गुलामों के जैसे काम लिया जाता। उसकी

[शेष पृष्ठ १११ पर]

हनुमान चीन में

विविध स्रोतों से मनु गुप्त द्वारा प्रस्तुत

भारत के हनुमानजी पवनपुत्र, रुद्राव-तार, आंजनेय एवं बेजोड़ रामभक्त माने जाते हैं। चीन के 'हनुमानजी' भी हैं तो पवनपुत्र ही, किंतु देवता तो वे बहुत से पापड़ बेलकर ही बन पाते हैं। उनकी पुराण-गाथा बहुत बड़ी है। यहां संक्षेप में, चीनी हनुमानजी के कुछ चरितों का वर्णन दिया जा रहा है।

चीनी पुराण-गाथाओं का एक श्रेष्ठ ग्रंथ है शि-यू-ची। इसमें चीनी सम्राट द्वारा भेजे गये भारत-यात्री सुआन् (युआन) चुआंग् या तांग् सेंग्, जो प्रज्ञा और विवेक के प्रतीक-रूप हैं, पश्चिम के स्वर्लोक (अर्थात् भारत) की यात्रा करते हैं, ताकि यहां से मूल बौद्ध ग्रंथों को चीन ले जा सकें। उसी से चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार संभव होता है। इस धर्मयात्रा में उनका साथ देते हैं हनुमानजी। चीनी इन्हें सुन् हाउत्सू, सिंग्-ची, वु-कुंग्, मेई हाउ-वांग्, चि ति-एन ता शेंग, और पि-मा वेन् आदि कई नामों से पुकारते और पहचानते हैं। भारत-यात्री सुआन् की मृत्यु ६६४ ई. में हुई। अतः स्पष्ट है कि सुन् (चीनी हनुमानजी) की पुराण-गाथा बहुत ज्यादा प्राचीन नहीं है। अच्छा, अब सुनिये कथा।

चीनी समुद्र के पूर्वी द्वीप में आओ-लाई राज्य के एक पर्वत हुआ-कुओ शान पर पड़े एक अंडे में प्रभंजन (पवन) ने प्राण डाला तो सुन् अर्थात् हनुमानजी का जन्म हुआ। यद्यपि जन्म के समय सुन् प्रस्तरमय थे किंतु इनकी आंखों में ऐसी स्वर्णिम विद्युत् झलकती थी कि उत्तरी ध्रुवतारे के प्रासाद को भी आलोकित कर दे। सुन् ने चारों दिक्-पालों को प्रणाम करके सजीव होकर बढ़ना शुरू किया और अपनी विचित्र लीलाओं से शीघ्र ही 'वानरराज' बन बैठे।

नर-वानर में तो बहुत साम्य होता है। सो सुन् मानव की तरह पृथ्वी और समुद्र की अठारह वर्ष तक यात्रा करते-करते यों ही सोचने लगे—'क्यों न हम भी अमर बन जायें।' भाग्यवश इनकी भेंट हो गयी एक अमर ताओ-भक्त पू ती त्सू-शिह से, लिंग्-वाई-फांग-सुन पर्वत पर। उसी ने सुन् को 'रहस्यों का अन्वेषक' बना दिया और ऐसी विद्या सिखा दी कि सुन् अपने को ७२ रूपों में बदल सकें और हवा में उड़ सकें—एक ही छलांग में ३६,००० मील की दूरी लांघ जायें!

बस, फिर क्या था! वानरराज सुन् ने अपनी अनुपस्थिति में बंदरों को सताने वाले

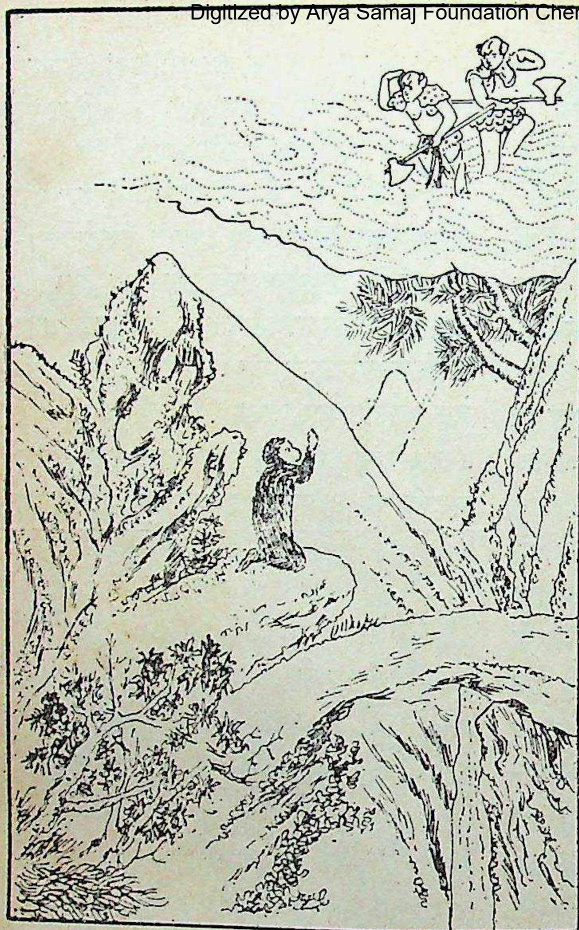
हुन-शि-मो-वांग् का वध कर दिया। ००० बंदरों की सेना प्रस्तुत करके वे के व्यालराज आओ कुआंग से मायावी लौहदंड ले आये और उसके से समुद्र के चारों कोणों के राजाओं डरा-धमकाकर राजोचित अच्छी वेष- भी पा गये। इसके बाद इन्हें सात राजाओं ने दावत दी। पर उसमें ये शराब पी बैठे कि धुत्त हो गये और इन्हें अपराधी के रूप में नरकपति के पकड़कर ले गये और सांकलों से बांध- वहीं कैद कर दिया।

किंतु प्रतापी सुन् ने शीघ्र ही अपने को से मुक्त किया और 'चित्रगुप्त' की बही अपने और अन्य वानरों के नामों के लिखे दुष्कर्मों को मिटा दिया। तब ने इनसे कैफियत तलब की और में इन्हें शांत रखने के लिए अपनी अश्व- का निरीक्षक बना दिया। किंतु ये निम्न पद पर शांत कैसे बने रहते! अपने पर्वत पर भाग आये। स्वर्गपति ने घेराव किया, पर उन्हें सफलता नहीं। उलटे सुन् ने अपने को स्वर्ग का और महान संत घोषित कर दिया। में समझौता हुआ कि ये स्वर्ग के को मानें, बदले में स्वर्गिक अमृत आड़ूफलों के वन के मुख्य अधीक्षक। मगर जब इन्हें स्वर्ग के एक उत्सव निमंत्रण नहीं मिला, तो क्रुद्ध होकर सारे आड़ू खा लिये और उनसे बनी शराब भी (जो दावत के लिए बनी थी) पी डाली। साथ ही लाओ चुन् के यहां से चुरायी हुई अमृत की गोलियां खाकर ये दुहरे तौर पर 'अमर' बन गये। फिर ये वापस आ गये अपने पर्वत पर।

इस बार सारे देवी-देवताओं ने इन पर धावा बोल दिया और इनकी हजार चतुराइयों के बावजूद इन्हें पकड़ ही लिया। देव-सम्राट के सामने इनकी पेशी हुई, और स्वर्गिक साम्राज्य की मुखालफत या बगावत का दंड यह मिला कि इन्हें लाओ चुन (लाओ त्सू) के हाथ सौंप दिया गया, ताकि भट्ठी में डालकर इनका सत्त निकाला



सिंगापुर में पूजार्थ सजे चीनी हनुमान।



पवनपुत्र सुन् का जन्म—एक चीनी चित्र की अनुकृति।

जाये। कैसा भीषण दंड!

पूरे ४९ दिन तक भट्ठी जली थी। ताप लाल भभूका से श्वेत हो गया था, जिसमें सब कुछ भस्म हो जाये। किंतु सुन् ने भट्ठी का ढक्कन हटाकर सारे स्वर्ग को ही जला डालने की ठान ली। हारकर, झख मार-कर देव-सम्राट ने सुन् को बुद्ध के हवाले कर दिया।

बुद्ध ने सुन् से पूछा—'तुम स्वर्ग पर अधिकार क्यों जमाना चाहते हो?'

सुन् ने उत्तर दिया—'क्योंकि मैं जानता हूं कि स्वर्ग के शासन-योग्य क्षमता मुझमें है।'

'तुम प्रमाणित कर सकोगे अपना यह दावा?'

'हां, क्यों नहीं? मैं अमर हूं, अजेय हूं, स्वेच्छा से ७२ रूप धारण कर सकता हूं और ३६ हजार मील की छलांगें भर सकता हूं।'

'मेरा तो अनुमान है कि तुम मेरी हथेली के भी बाहर नहीं कूद सकते। खैर, अगर इसमें सफल हुए तो निश्चय ही तुम्हारी इच्छा पूरी की जायेगी।'

सुन् फौरन हवा में उछले और बड़ी मेहनत से संपूर्ण स्वर्ग और पृथ्वी की परिक्रमा करके वापस आ गये। प्रमाण के रूप में उन्होंने स्वर्ग से पृथ्वी के सुदूरतम पर्वत पर, जहां वे क्षण-भर विश्राम के लिए रुके थे, अपना नाम लिख दिया था। (यह भी कहा जाता है कि वहां पर इन्होंने पेशाब किया था, चूंकि जानवर अपने प्रभुता-क्षेत्र की सीमा इसी तरह अंकित करते हैं।)

सुन् ने जब बुद्ध के सामने अपनी शेखी बघारी, तो बुद्ध हंस पड़े, बोले—'वह पर्वत जहां तुम ठहरे थे, मेरी इस उंगली के नीचे है। असल में, तुम अभी मेरी हथेली से भी

...नहीं जा पाये हो।' फिर उन्होंने एक ...ी पर्वत बनाकर सुन् को वहां कैद ... दिया।

शायद सुन् को जीवन-भर वहीं रहना ...ता। किंतु भाग्य अच्छा था, सो बोधि-...कुआन् विन् ने भारत-यात्री तांग् सेंग् ...सहयात्री और अंग-रक्षक के रूप में जाने ...लिए इन्हें मुक्ति दिलवा दी। किंतु सेंग् ...एक बुद्धिमानी की थी। सुन् के सिर पर ...जादुई लौह शिरस्त्राण स्थिर करवा ...ता था। यदि सुन् के दिमाग में कोई ...ख्याल आती थी तो वह शिरस्त्राण बुरी ...तरह कसने लगता था। जो हो, सुन् ने इस ...अपनी भूमिका बहुत ही अच्छी तरह ...निभायी; अपने सहयात्री की कई बार ...रक्षा की; प्रलोभन सामने होने पर भी ...मन को विचलित नहीं होने दिया।

...अंत में जब तांग् सेंग् और सुन् वापस आ रहे थे तो ग्रंथों-सहित एक कछुए की पीठ पर नदी पार करने लगे। परंतु चूंकि जाते वक्त तांग् सेंग् ने उस कछुए से जो वादा किया था उसे पूरा नहीं किया, सो कछुए ने उन्हें मझधार में डूबने को छोड़ दिया। तब सुन् ने तांग् सेंग् की मदद की।

सुरक्षित वापसी पर दोनों का सम्राट् ने बड़ा भव्य स्वागत-सत्कार किया। स्वर्ग की स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे भावी बुद्ध मि-लो। उन्होंने तांग सेंग् को बुद्ध के भूतपूर्व पट्टशिष्य के रूप में पहचाना और वहां उच्च पद पर अभिषिक्त किया। सुन् को 'युद्धवीर देवता' की उपाधि मिली। सुन् ने अपने सिर से वह लौह टोपी हटा देने की मांग की तो सेंग् ने हंसकर कहा— 'अब तो तुम बोधि प्राप्त कर चुके हो। देखो न, सिर पर हाथ फेरकर!' सुन् ने देखा कि अब उनका सिर भी मुक्त है!



उर्दू के उपन्यासकार एम. असलम के बारे में प्रसिद्ध है कि वे जब भी किसी को भोजन ...लिए निमंत्रित करते हैं, उसे अपना नया उपन्यास सुनाये बिना नहीं छोड़ते।

एक बार एम. असलम ने शायर कतील शफाई को निमंत्रित किया। मित्रों ने कतील ...से कहा—'मियां, जा तो रहे हो, वे पूरा उपन्यास सुनाकर भोजन का मूल्य वसूल ...गे।' कतील शफाई भोजन पर गये, पेट भरकर खाना खाया। उसके बाद एम. असलम ...उपन्यास की पांडुलिपि ले आये और वातावरण बनाने के लिए कहने लगे—'कतील ...! आपकी कुछ कविताएं मेरी नजर से गुजरी हैं। आप तो जाने-माने शायर हैं। ...लोग हर प्रगतिशील शायर के बारे में न जाने क्यों बदगुमानी के शिकार हैं!'

कतील ने उत्तर दिया—'जी हां, असल में आम लोग अक्सर बदगुमानियां पैदा करते ...देखिये न, आपके बारे में यह मशहूर है कि आप हर मेहमान को अपना नया उपन्यास ...सुनाते हैं, हालांकि यह सरासर झूठ है।'

इसके बाद असलम साहब अपना उपन्यास भला कैसे सुनाते! —नारायण लाल

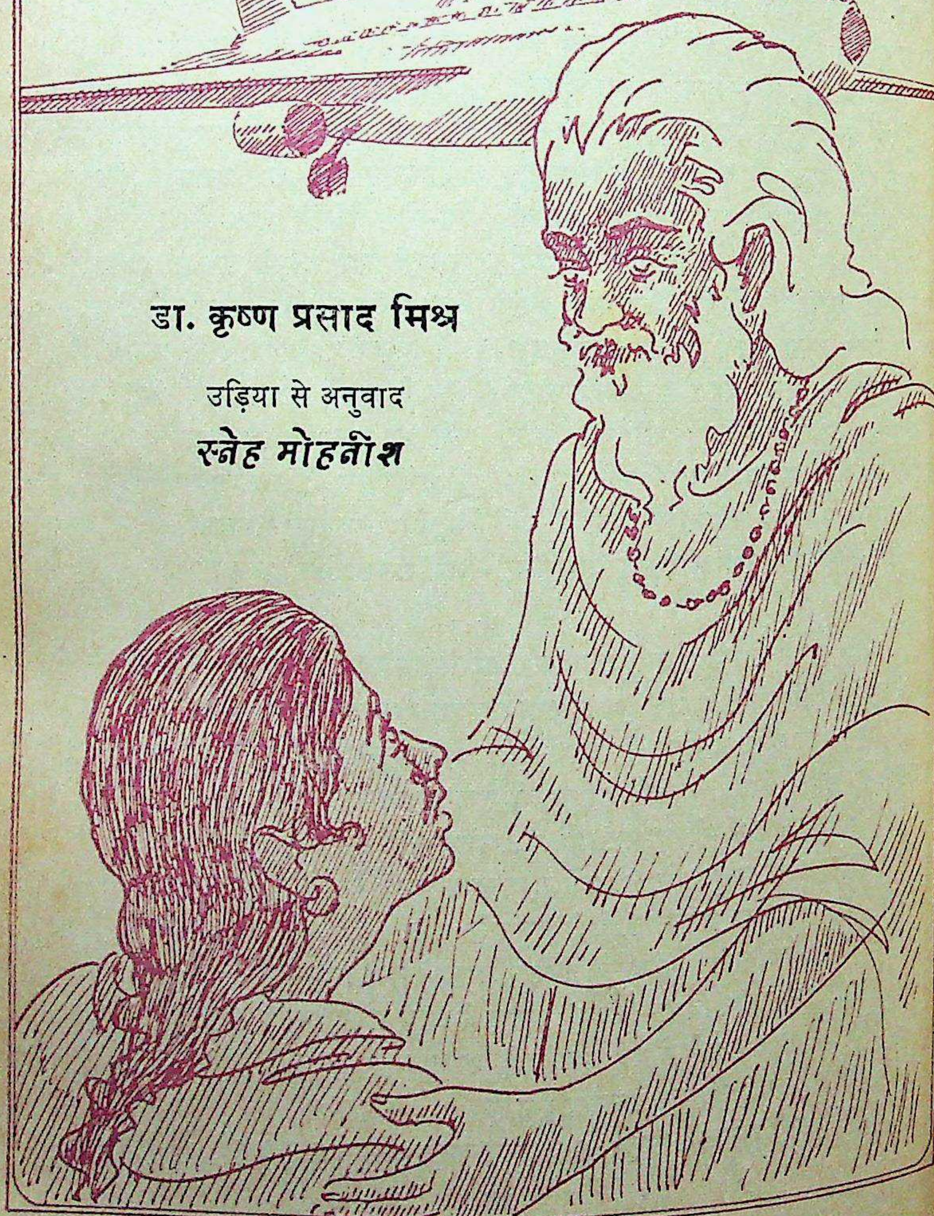


अत्यंत जरूरी

डा. कृष्ण प्रसाद मिश्र

उड़िया से अनुवाद

स्नेह मोहनीश



सोफे पर नतमुख ध्यानमग्न बैठे युवक की ओर उंगली से इशारा करते हुए, काउंटर पर बैठी एयर होस्टेस-सी दिखती युवती ने पास ही खड़ी युवती से कहा—'ये सज्जन किसी अत्यावश्यक कार्य से दिल्ली जा रहे हैं।'

काउंटर के पास बड़ी देर तक खड़े रहने पर भी युवती को किसी भी टिकट के कैंसलेशन की खबर नहीं हुई थी। वेटिंग लिस्ट में उसका नाम सर्वप्रथम है, पर उससे लाभ क्या ?

एक ऊंचे-पूरे हृष्ट-पुष्ट भद्र पुरुष फैन्टा की बोतल पर से बड़ी अनिच्छा के साथ अपना मुंह उठाकर बोले—'मैं सेक्रेटरियों की मीटिंग में जा रहा हूं। सरकारी कान्फ्रेंस है, मैं उस कार्यक्रम को तो रोक नहीं सकता। प्राजेक्ट की मीटिंग में जैसे भी हो मुझे उपस्थित होना ही होगा। कोई गैर-सरकारी काम से, घूमने या सैर-सपाटे के लिए जा रहा हो, तो उससे अनुरोध करके देखिये।' तरुणी संकुचित हो उठी—यह जानकर कि इतने बड़े अधिकारी से वह अनुरोध कर बैठी थी।

वह क्षमा मांगकर लाउंज में कुछ दूरी पर भीड़ से घिरे धोतीधारी अधेड़ महाशय के पास जाकर बोली—'सेठजी, यदि आप अपना टिकट लौटा सकें, तो संकट में पड़ी एक महिला की सहायता हो सकती है। पठानकोट में उनका कोई आत्मीय मर गया है, शव होटल में पड़ा है, उनके पहुंचने के पश्चात् ही शव का दाह-संस्कार हो सकेगा। बड़ी मुसीबत है—अगर आप दया कर सकें ..... आपको अन्य किसी फ्लाइट में टिकट दे दिया जायेगा .....'

सेठजी अपनी पत्नी से बातें करना बंद करके तरुणी की ओर एकटक घूरने लगे; पर उसकी बात खत्म होने के पहले ही उनकी आंखों में पूरी दुनियादारी आ गयी। हंसते हुए अपने भदरंग दांतों की प्रदर्शनी लगाते हुए बोले—'आजकल के लोग-बाग—खासकर इंडियन एयर लाइन्स में यात्रा करने वाले लोग—बड़े चतुर हो गये हैं। मैं पिछले बीस वर्षों से व्यापार के सिलसिले में नियमित रूप से दिल्ली से मद्रास, बंबई माह में तीन-चार बार आता-जाता रहता हूं। ये सब चोंचले मैं अच्छी तरह समझता हूं, इस तरह का अनुरोध मेरे लिए नया नहीं है। फिर मैं अगर इस प्लाइट से नहीं गया, तो मेरे दस लाख के टेंडर का क्या होगा ? नहीं-नहीं, मेरा दिल्ली जाना बहुत जरूरी है।' इतना सब एक ही सांस में कहकर सेठजी पीठ फेरकर अपनी सेठानी के साथ फिर से बातें करने लगे।

दोनों बार निराशा हाथ लगने के बाद एयरपोर्ट की कर्मचारी तरुणी में उत्साह बाकी नहीं रहा था।

काउंटर के पास बड़ी देर तक खड़ी रहने के पश्चात् भी जब किसी टिकट के कैन्सल होने की सूचना उस युवती को नहीं मिली, तो वह रो पड़ी थी :

'प्लीज़ मैडम, डू समथिंग फ़ॉर मी। ही वाज़ माइ फ़ादर। वे कश्मीर भ्रमण

करने गये थे। मां के साथ झगड़ा करके चले गये थे। हम लोगों को वे बेहद प्यार करते थे। क्या नहीं किया उन्होंने हम लोगों के लिए! उनकी एकमात्र इच्छा थी मां के साथ कश्मीर-भ्रमण करने की। हम लोगों के झंझटों के कारण वे इच्छा रहने पर भी इसके पहले कभी कश्मीर जा नहीं पाये थे। अभी उन्हें सुयोग मिला था। पर मां घर की जिम्मेदारी के कारण जाना नहीं चाहती थीं। पिताजी ने बहुत समझाया था उन्हें। हम सब लोगों ने भी खूब कहा था। पर मां सबकी बातें सुनी-अनसुनी करके, टस से मस नहीं हुई थीं। आखिरकार पिताजी गुस्से में भरकर अकेले ही कश्मीर चले गये थे। फिर सहसा यह वज्रपात करता हुआ टेलिग्राम! पठानकोट से उनकी मृत्यु का समाचार! उनकी डायरी से पता ढूंढ़कर होटल वालों ने तार किया है। हमारे पहुंचने के बाद ही दाह-संस्कार किया जायेगा। तब तक शव को सुरक्षित रखे रहें, इस आशय का तार पठानकोट के होटल-मैनेजर को किया है। पर होटल वाले भी आखिर कब तक प्रतीक्षा कर सकते हैं? मां बाहर कार के अंदर बौरायी-सी बैठी हैं, उनकी भी पठानकोट जाने की तीव्र इच्छा है। मगर आप तो एक टिकट भी मुझे दिलवा नहीं पा रही हैं। प्लीज़ सिस्टर, फिर से जरा किसी से पूछकर देखिये। संभवतः कोई अपना टिकट कैन्सल करवा रहा हो।'

एयरपोर्ट की कर्मचारी तरुणी उस युवती की व्यथा-व्याकुलता को अनुभव करके सब काम छोड़कर फिर से लाउंज के अंदर चली गयी।

यात्रियों के लिए सूचनाएं दी जा रही थीं। 'एटेंशन प्लीज़!' कहकर ग्राउंड-होस्टेस विवरण प्रसारित करती जा रही थी। कंधे पर हैंड लगेज का बैग लटकाये विलंब से पहुंचे कुछ यात्री अपने सूटकेस तुलवाने में व्यस्त थे। अचानक कार से चालीस-पैंतालीस वर्ष के एक सजीले आकर्षक पुरुष उतरकर एयरपोर्ट की कर्मचारी तरुणी के पास आकर फ्लाइट-एनाउंसमेंट के बारे में पूछने लगे। उन्हें फ्लाइट के संबंध में जानकारी देने के बाद कर्मचारी तरुणी विनीत होकर बोली—'आप अगर अन्यथा न लें तो मैं आपसे एक अनुरोध करूं?' फिर उसने अन्य व्यक्तियों के सामने दुहराये हुए वाक्य उनसे भी कहे। किंतु तरुणी को इस बार भी विश्वास न था कि उसका अनुरोध मान लिया जायेगा। पर्याप्त नाटकीय ढंग से भद्र पुरुष ने उत्तर दिया—'हनी, सारे विश्व के अभिनेता-अभिनेत्रियां आज दिल्ली में एकत्र हो रहे हैं। आज अंतर-राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव का उद्घाटन है। क्या तुम नहीं चाहतीं, तुम्हारे प्रदेश से कोई प्रतिनिधि वहां जाये? खासकर उस स्थिति में जबकि तुम्हारे प्रदेश की फिल्म को स्वर्ण-पदक प्राप्त हो रहा हो?'

यह सुनकर गागल्स के भीतर छिपा चेहरा कर्मचारी तरुणी के समक्ष स्पष्ट हो उठा। दीवारों व चौराहों पर चिपके

फिल्म पोस्टरों पर का चेहरा उसके नृत्य कर उठा । फिल्मों के इतने बड़े का वह इस तरह दर्शन-लाभ पा उसने सपने में भी नहीं सोचा था । तरुणी के कुछ और कहने के पूर्व सी यू एगेन' कहकर चलते बने। उसके ही किसी मोहक सेंट की मदमाती भी हवा में तैरती चली गयी । कालेज समय इस चलचित्र-नायक की तस्वीरें उसने अपने कमरे में टांग थीं। सहेलियां भी इसके लिए उसका उड़ाती रहती थीं ।

सहसा लोगों की भीड़ में गेरुआ वस्त्र- व्यक्ति को आते देखकर कर्मचारी की मृतप्राय आशालता को नवजीवन हुआ । वह प्रसन्न हो उठी । पैसेंजर्स में उसने उनका नाम देखा था—स्वामी नंद। दिल्ली में निवास करते हैं । देश प्रायः प्रत्येक प्रदेश में उनके शिष्य, अनु- हैं । स्वामीजी के लाउंज में प्रवेश करते, नतमुख रोती हुई, टिकट के होने की प्रतीक्षा करती युवती ने बिजली की तरह दौड़कर उनके पांव लिये ।

स्वामीजी, मेरी रक्षा कीजिये ! मेरा नाश ही हो रहा है ! मेरी दुनिया उजड़ है । आपके प्रिय शिष्य भवेश उपा ..... मेरे पिता ..... अब इस संसार नहीं रहे । वे चले गये—हम सबको रोता बिलखता छोड़कर चले गये ! '

स्वामीजी तथा उन्हें घेरकर चल रहे भद्र व्यक्तियों का झुंड क्षण-भर स्तंभित रह गया । एक क्षण के विस्मय के पश्चात् स्वामीजी ने युवती को पहचानकर, उसे पकड़कर खड़ा किया। सारी जानकारी ली। उससे सारी बातें पूछते-पूछते ही, स्वामीजी के इशारे से उनका सामान वजन होने के बाद कैरेज-वैन में भेज दिया गया, जो हवाई जहाज में सामान लदवाने के लिए तैयार खड़ा था । युवती से बातें करते हुए स्वामी- जी ने अपनी छोटी-छोटी तीक्ष्ण आंखों से एयरपोर्ट के इन सारे क्रिया-कलापों को भी परख लिया था । वे युवती को अपने अंक में लगभग भींचते हुए लाउंज के अंतिम छोर तक ले गये—साथ में एयरपोर्ट की कर्म- चारी तरुणी के साथ-साथ स्वामीजी के भक्तों का जत्था भी था । स्वामीजी युवती को समझा रहे थे :

'यह संसार क्षणभंगुर है । आज जो है, कल वह नष्ट हो सकता है; एक क्षण का जीता-जागता, हंसता-खेलता व्यक्ति दूसरे पल नहीं भी रह सकता है । नाम की भिन्नता के कारण हम सब अलग-अलग हैं; पर वास्तव में हम सब मूल रूप से एक ही तत्त्व सच्चिदानंद से उत्पन्न हैं । एक व्यक्ति की नश्वर देह के प्रति विशेष आसक्ति का प्रदर्शन अनुचित है, चाहे वह हमारी माता या पिता ही क्यों न हो । व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके पार्थिव शरीर को जलाया गया या दफनाया गया, साधारण लकड़ी से जलाया गया या चंदन की लकड़ी से, शव-यात्रा में एक ही स्वजन शामिल हुआ या



डा. कृष्ण प्रसाद मिश्र

बंधुओं की पूरी जमात शामिल हुई, वह स्वदेश में मरा या विदेश में—इन सब बातों का कोई मूल्य नहीं है। मृत्यु हो जाने के पश्चात्, शरीर को त्याग कर आत्मा के चले जाने के उपरांत, उस शरीर को जलाओ, दफनाओ या कुल्हाड़ी से उसके टुकड़े-टुकड़े कर फेंको, या पारसी लोगों की मानिंद पक्षियों को खिला दो—उससे मृत व्यक्ति का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। मृत देह तो जड़ है, क्या वह अनुभव कर सकती है? जानने लायक तो वह रही नहीं :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥'

हवाई जहाज उड़ नहीं पा रहा था। ग्राउंड-पर्सोनेल लोग स्वामीजी की ओर ताकते खड़े थे। स्वयं कैप्टन स्वामीजी का शिष्य है। स्वामीजी भवेश उपाध्याय की युवती पुत्री को समझाते चल रहे थे—'जा, बेटी जा। मैं दिल्ली पहुंचकर पठानकोट फोन करके सारी जानकारी ले लूंगा। तू चार-पांच दिनों के बाद भी अगर पहुंचेगी तो भी कोई हर्ज नहीं। अस्थि-फूल सुरक्षित रहेंगे। मैं अपने एक शिष्य को फूल संभालकर रखने के लिए कह दूंगा। तू जा, चिंता मत कर। गीता के उस अमर श्लोक को याद रखना ..... वासांसि जीर्णानि यथा विहाय .....'

स्वामीजी धीरे-धीरे चलते हुए मंथर गति से चले गये। एयरपोर्ट की कर्मचारी तरुणी उनसे जो कहने आयी थीं, वह अनकहा ही रह गया था। वह मुंह बाये सम्मोहित-सी खड़ी रहीं।

उन लोगों की आंखों के आगे ही हवाई जहाज ने टेक ऑफ लिया—मैदान में इधर-उधर विचरण करने के पश्चात् रनवे पर कुछ क्षण दौड़ने के बाद आकाश में ऊंचा उठ गया। ग्राउंड पर्सोनेल रनवे पर से लौटने लगे। फायर ब्रिगेड का इंजन एवं मैकेनिक लोग लौट आये। युवती की आंखों में आंसू न थे। वह धीरे-धीरे थकी-थकी चाल से एयरपोर्ट से बाहर निकल गयी। अपनी कार के पास धीरे-से पहुंचकर उसने दरवाजा खोला और स्टीयरिंग पर बैठ गयी। कार में बैठी उसकी मां श्रीमती उपाध्याय ने पूछा :

'तब तो उनकी अंत्येष्टि-क्रिया के समय हममें से कोई उनके पास नहीं रह पायेगा न?'



बलबीर सिंह

ईश्वर से साक्षात्कार

...जित्स्की नामक लेखक तालसताय से मिलने आया था। बातों के दौरान ...ताय ने उससे कहा :

'...बुश्का, तुम पढ़ते बिलकुल नहीं हो, बहुत बुरी बात है। यह इस बात ...त है कि तुम अहंकार के शिकार ... तुम्हारे विपरीत गोर्की बहुत ज्यादा ...है। यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि ...आदमी में आत्मविश्वास की कमी ...ता चलता है। मैं लिखता बहुत ज्यादा ...भी अच्छी बात नहीं है, क्योंकि इससे ...ता है कि एक बूढ़ा आदमी सभी को ...विचारों से प्रभावित करना चाहता ... मेरा सोचना मेरे लिए ठीक है, ...हो सकता है कि वह गोर्की के लिए ...हो। पर तुम्हारी तो बात ही अलग ...क्योंकि तुम सोचते ही नहीं हो। तुम तो ...समय इस ताक में रहते हो कि जो भी ...सामने आये, उसी को हथिया लो। ...गलत चीजें ही तुम्हारे हाथ लगती ... तुम्हारी हालत तो चेखव की कहानी ...लिंग" जैसी है। उस कहानी में वर्णित ...नारीपात्र जैसी ही तुम्हारी आदतें हैं।'

'कैसे?' सुलरजित्स्की ने हंसते हुए पूछा।

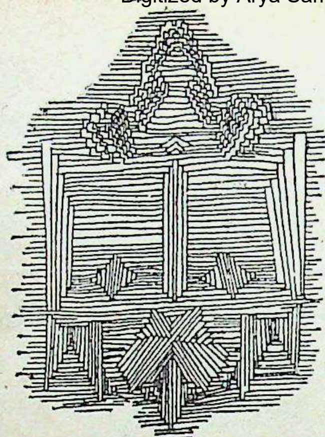
'तुम प्यार करते हो, लेकिन चुनाव ...कूल नहीं करते। जो भी मिल गयी, ...ठीक है।..... पहले यह बताओ कि ...रा ईश्वर में विश्वास क्यों नहीं है?'

'बस, नहीं है।' सुलरजित्स्की ने कहा।

'झूठ बोलते हो। उसके बिना तुम्हारा ...रा नहीं है—यह बात तुम जल्दी ही महसूस करने लगोगे। किसी चिढ़ के कारण ही तुम नास्तिक बन गये हो। शायद इसलिए कि ईश्वर ने संसार की रचना वैसी नहीं की है, जैसी तुम चाहते हो। कई बार लोग किसी संकोच के कारण भी ईश्वर में विश्वास नहीं करते। ऐसे ही जैसे कोई नौजवान किसी लड़की से प्यार तो करता है, लेकिन किसी को बताता नहीं, क्योंकि उसमें इतना साहस ही नहीं होता।



तालसताय [एक रूसी मूर्ति]



मौन

ईसा ने अपने शिष्यों से कहा :

'तुलना करके बताओ कि मैं कैसा लगता हूं ?'

साइमन पीटर ने कहा :

'आप किसी न्यायपूर्ण देवता जैसे लगते हैं।'

मैथ्यू ने कहा :

'आप किसी बुद्धिमान दार्शनिक जैसे लगते हैं।'

टामस ने कहा :

'स्वामी, मेरी जबान यह कहने का साहस नहीं कर पा रही कि आप कैसे लगते हैं।'

ईसा ने कहा :

'मैं तुम्हारा स्वामी नहीं हूं।'

–पाल रैप्स–

विश्वास भी प्यार की तरह साहस की मांग करता है। फिर सब-कुछ ठीक हो जाता है, सब कुछ उसी तरह हो जाता है, जिस तरह कि आदमी चाहता है। हर रहस्य अपने आप खुल जाता है। मनुष्य जीवन में बहुत-सी चीजों से प्यार करता है, और विश्वास प्यार का शिखर ही तो है। विश्वास तक पहुंचने के लिए मनुष्य को कहीं अधिक तीव्रता से प्यार करना पड़ता है।

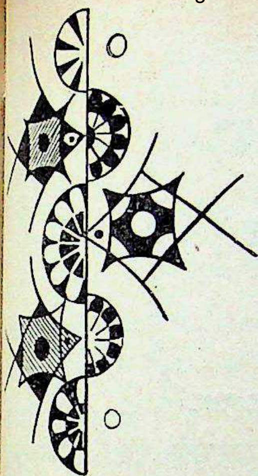
'जब कोई किसी स्त्री से प्यार करता है, तो वह उसकी दृष्टि में संसार की सबसे बढ़िया स्त्री होती है। यह उसका विश्वास ही तो है कि वह उसे संसार में सबसे बढ़िया स्त्री समझता है।..... लेकिन नास्तिक व्यक्ति तो प्यार कर ही नहीं सकता। वह आज किसी एक को प्यार करता है, तो कल किसी दूसरी को, और परसों किसी तीसरी को। ऐसे लोगों की आत्माएं पवित्र नहीं होतीं।..... तुम तो पैदा ही विश्वास लेकर हुए हो। लेकिन देखना, अब गलत रास्ते पर न पड़ जाना। तुम अक्सर सुंदरता की बातें करते रहते हो। सुंदरता अगर ईश्वर नहीं है, तो क्या है?

सुलरजित्स्की मंत्रमुग्ध-सा एक टक तालसताय के चेहरे की ओर देखे जा रहा था।

तालसताय ने उसे चुप देखकर कहा–'इस प्रकार चुप्पी साधकर यह न समझना कि तुम इस समस्या से पीछा छुड़ा लोगे।'

उस समय अचानक सुलरजित्स्की को लगा कि ईश्वर अगर सचमुच है, तो वह तालसताय जैसा ही होगा।





ग़ज़ल

—निरंकार देव सेवक

शब्दों के अर्थ और इशारे बदल गये
संबंध अब हमारे तुम्हारे बदल गये ।

कहते हैं किस्मतों को चलाते रहे थे जो
इन्सान के वह चांद-सितारे बदल गये ।

सत्ता की राजनीति ने यह क्या किया कि वह
बिलकुल करीब थे जो हमारे बदल गये ।

इन्सान क्या हैं मिट्टी हैं, मिट्टी कुम्हार की
जब चाक पर चढ़े तो बिचारे बदल गये ।

वातावरण को अपने नहीं जो बदल सके
वह खुद ही उसके खौफ के मारे बदल गये ।

अब तक बना हुआ है यह पुल जाने क्यों यहां
कब से नदी के कूल-किनारे बदल गये ।

१८५, सिविल लाइन्स, बरेली-२४३००१



महत्त्वाकांक्षा में महत्त्व कितना?

• रतनलाल जोशी •

प्राचीन काल की बात है। चांडाल के घर जनमी एक लड़की को अपने ही कुल और जाति से बड़ी घृणा थी। असह्य संताप से तिलमिलाकर एक दिन उसने प्रतिज्ञा कर ली कि शेष जीवन या तो वह धरती के सबसे बड़े व्यक्ति की पत्नी होकर बितायेगी या अपने को गंगा के हवाले कर देगी। अबोध-अनाड़ी तो वह थी ही, उसके विद्रोह को सम्मान के सर्वोच्च पद की स्वामिनी बनने की प्रज्वलित महत्त्वाकांक्षा ने ऐसा चाबुक मारा कि वह घर छोड़कर डगर-डगर और नगर-नगर भटकती संसार के सर्वोच्च व्यक्ति की खोज में निकल पड़ी।

कई दिनों तक भटकने के बाद उसने एक शहर में एक बड़ा जुलूस देखा। कई घोड़े, कई रथ, सैकड़ों वर्दीधारी सैनिक उस जुलूस में एक हाथी के पीछे-पीछे चल रहे थे। हाथी सोने-चांदी के अलंकरणों से सुसज्जित था और उस पर राजा बैठा हुआ था। चार सुंदर युवतियां राजा पर चंवर डुला रही थीं। चांडाल-कन्या ने निर्णय कर लिया कि संसार का सबसे बड़ा व्यक्ति राजा ही हो सकता है। वह जुलूस के पीछे-पीछे चल पड़ी। उसका हृदय बांसों उछल रहा था कि उसने अपना मनोवांछित प्राप्त कर लिया है।

कुछ दूर चलने के बाद उसने एक संन्यासी को उस मार्ग से गुजरते हुए देखा। जैसे ही राजा की दृष्टि संन्यासी पर पड़ी, वह हाथी से नीचे उतर पड़ा और अपने दरबारियों सहित उसने संन्यासी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। चांडाल-कन्या सोच में पड़ गयी। उसने अपने निर्णय को बदला—यह मेरी भूल थी; राजा से बड़ा तो संन्यासी होता है।

जुलूस को छोड़कर वह संन्यासी के पीछे-पीछे चलने लगी। गांव की सीमा पार करके संन्यासी जंगल में घुसा और वहां वीराने में एक मंदिर के द्वार पर पहुंचा। मंदिर में मूर्ति को प्रणाम करके संन्यासी ध्यानमग्न बैठ गया। चांडाल-कन्या के

...ने फिर पलटा खाया—अरे, इस संन्यासी से तो यह मूर्ति बड़ी है; मैं इस मूर्ति से ही ब्याह करूंगी । और अपने निष्कर्ष से संतुष्ट होकर वह मंदिर में बैठ गयी ।

थोड़ी देर बाद मंदिर में एक कुत्ता घुस आया। संन्यासी को ध्यानस्थ देख उसने अपने जातीय स्वभाव के अनुसार मूर्ति पर मूत्र-विसर्जन किया और इधर-उधर देखकर मंदिर के आंगन में बैठ गया । चांडाल-कन्या फिर अपने को कोसने लगी—ओ, इस बार भी मैं गलती कर गयी; मूर्ति से कहीं बड़ा तो यह कुत्ता है । अब मेरी समझ में आ गया, मैं इस कुत्ते से ब्याह करके प्रतिष्ठा का वांछित स्थान क्यों न पा लूं ?

कुत्ते को अचानक कुछ याद आया और वह उठकर दौड़ता हुआ गांव की तरफ चल पड़ा । फिर क्या था, चांडाल-कन्या भी उसके पीछे-पीछे भागने लगी—पूरी तरह बदहवास कि संसार का यह सर्वोच्च प्राणी कहीं हाथ से निकल न जाये । लंबी छलांगें भरता हुआ कुत्ता थोड़ी देर के बाद एक चांडाल के झोंपड़े में जा घुसा । चांडाल-



पूजा—देवीप्रसाद रायचौधरी के चित्र की डा. विष्णु भटनागर द्वारा अनुकृति ।

कन्या भी उसका पीछा करती हुई वहां जा धमकी। पैरों की आवाज सुनकर एक युवक बाहर निकला। अपने मालिक को देख कुत्ता उसके कदमों में लोट गया और प्रसन्नता के भावातिरेक में उसके पांव चाटने लगा। युवक भी प्रेम से कुत्ते को थपथपाने लगा।

चांडाल-कन्या ने यह दृश्य देखा तो सन्न रह गयी। अपनी बुद्धि को धिक्कारती हुई मन ही मन वह बोली—कितना भटकाया इस छिनाल ने मुझे! दुनिया का सबसे बड़ा व्यक्ति तो यहां मेरे सामने खड़ा है और मैं दर-दर भटकती उसे कब से खोज रही हूं।

सुगठित देहयष्टि वाला युवक सुंदर भी कम नहीं था। चांडाल-कन्या कुछ क्षण तक तो उसे विमुग्ध देखती रही, फिर उसने युवक से ब्याह का प्रस्ताव किया। जब घर के द्वार पर स्वयं आकर एक रूपवती कन्या मुग्ध कंठ से ब्याह का प्रस्ताव करे, वह चांडाल-युवक इन्कार कैसे करता! दोनों का ब्याह हो गया और दोनों निश्चित होकर गृहस्थ-जीवन का सुख भोगने लगे।

ओछे कुल और जाति के प्रति असंतोष में झुलसती और प्रतिकार की भावना से प्रताडित, महत्त्वाकांक्षा के डंक से पीडित चांडाल-कन्या कैसी-कैसी हास्यास्पद सीढ़ियों पर चढी और गिरी। अपने विद्रोह में अंधी वह कुत्ते को भी पति बनाने में परम सौभाग्य का अनुभव करने लगी!

मुंहजोर महत्त्वाकांक्षाएं मनुष्य को क्या से क्या नहीं बना देती हैं, कहां से कहां ले जाकर नहीं छोड़ देती हैं— इसका ज्वलंत उदाहरण है 'कथासरित्सागर' की इस चांडाल-कन्या का यह वृत्तांत! यह भाग्य की ही बात थी कि चांडाल-कन्या का मूढ़ स्वप्न ऐसी श्रेयस्कर जागृति में जाकर भंग हुआ, नहीं तो उच्छृंखल महत्त्वाकांक्षाओं के ज्वार साधारण जन तो क्या, ऋषि-मुनि, देव-दानव और सम्राटों को भी दुर्दैव की निष्करुण चट्टानों पर पछाड़कर टुकड़ों-टुकड़ों में बिखेर देते हैं।

यूनानी पुराणों में महत्त्वाकांक्षा को ऐसा घोड़ा कहा है, जिसके पैर नहीं, सिर्फ पंख हैं और जिसकी पूंछ पर सैकड़ों बिच्छू चिपके बैठे डंक मार रहे हैं। पूरी ताकत

स्वर्ग कहां है?

एक रब्बी (यहूदी पादरी) मरकर अदन के बगीचे में पहुंचा। वहां उसने देखा कि मनीषी जन वृक्षों के नीचे बैठकर तालमुद (यहूदी धर्मग्रंथ) का स्वाध्याय कर रहे हैं।

उसने उधर से गुजरते एक फरिश्ते से कहा—'क्या स्वर्ग में बस यही कुछ है? यह सब तो हम धरती पर भी किया करते हैं।'

फरिश्ते ने उत्तर दिया—'तुम समझते हो, ये मनीषी स्वर्ग में हैं! तुम गलत सोचते हो। असल में स्वर्ग इन मनीषियों के भीतर हैं।'

...रहना और थककर गिर पड़ना ...टकराकर खत्म हो जाना–इसके ...इस घोड़े की और गति नहीं। साफ ...सवार का भाग्य भी इस गति से ...रहता है।

...हेनरी एट्थ' में शेक्सपियर जैसे ...को संबोधित करते हुए कहता ...मवेल, महत्त्वाकांक्षा को दूर फेंक ...इस पाप से देवदूतों का भी पतन हो ...फिर अपने ही विधाता के सांचे में ...बेचारा मनुष्य इससे कैसे पार पा ...है!'

महत्त्वाकांक्षा, वास्तव में, ऐसी ...है, जो हमारे गले में रस्सी ...कर हमें दर-दर बेचती फिरती है। ...जहां हमें अपने मनोरथ की सिद्धि का ...मिलता है, वहां-वहां वह हमें गुलामी ...खूंटे से बांधती चलती है। गुलाम का ...एक स्वामी होता है, मगर महत्त्वा-...के स्वामियों की तो कोई गिनती ...।–ब्रूयेर ने महत्त्वाकांक्षा की उछल-...पर यह ताना मारते हुए आगे कहा ...गधे और महत्त्वाकांक्षा में इतना ...होता है कि गधा हर मालिक के घर ...-सूखा खाकर भी सुख की नींद सोता ...मगर महत्त्वाकांक्षा हर पड़ाव पर एक ...कर एक शाही भोग छककर भी ...बाघिन ही बनी रहती है।'

महत्त्वाकांक्षा को कई रूपों में व्यक्त ...गया है। हमारे यहां इसे तृष्णा, ...मोह आदि नामों से दुतकारा गया है। कबीर कहते हैं :

'कबीर' माया जिनि मिले, सो बरियां दे बांह;
नारद से मुनिवर मिले, किसो भरोसो त्यांह।

–अरे भाई, यह माया तुम्हारे गले में बांहें डालकर सौ-सौ बार भी बुलाये तो भी इससे मिलना-जुलना ठीक नहीं। जब नारद-सरीखे मुनिवरों को यह समूचा निगल गयी, तो इसका विश्वास क्या?

चाणक्य ने तृष्णा की निंदा में कहा है–'तृष्णया मतिश्छाद्यते'–अर्थात् तृष्णा से अक्ल मारी जाती है। भर्तृहरि को जीवन की मंजिल तय करने के बाद पता चलता है कि 'तृष्णा जीर्ण न हुई, हम ही जीर्ण हो गये।' चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयी हैं, बाल सफेद हो गये हैं, अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गये हैं, भरपूर बुढ़ापा आ गया है; बस एक तृष्णा तरुण होती जा रही है–

वलिभिर्मुखमाक्रांतं पलितैरंकितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥

लिन्-यु-तांग कहते हैं कि इतिहास क्या है, महत्त्वाकांक्षाओं का कब्रगाह ही तो! यहां बड़े-बड़े महत्त्वाकांक्षी अतृप्ति का कफन लपेटे सोये पड़े हैं। अतृप्त सिकंदर भी यहां बडवाग्नि-जैसी प्यास लिये सड़ रहा है।

दिग्विजय की महत्त्वाकांक्षा ने सिकंदर के अंतःकरण को कितनी दृढता से दबोच रखा था, इस प्रसंग की एक कथा है :

डायोजनीज यूनान का फक्कड़ संत था। एक दिन सिकंदर नया देश जीतकर उसे प्रणाम करने आया, तो डायोजनीज

खिलखिलाकर हंस पड़ा। आस-पास की शिष्य-मंडली और सम्राट सिकंदर आश्चर्य-चकित थे; मगर डायोजनीज था कि लगातार हंसता ही चला जा रहा था। आखिर, डायोजनीज की हंसी जब रुकी तो सिकंदर ने हंसी का कारण पूछा। डायोजनीज सव्यंग्य बोला–'मैं हंस यों रहा हूं कि तू जिस तेजी से देश पर देश जीतता जा रहा है, उससे तो शीघ्र ही सारी दुनिया पर तू विजय प्राप्त कर लेगा। इसके बाद तू क्या जीतेगा? क्या आसमान जीतने जायेगा?' सुना तो सिकंदर की मुखकांति को जैसे ग्रहण लग गया–अरे, इतनी दूर तक तो मैंने सोचा ही नहीं था; सचमुच दिग्विजय के बाद मैं क्या जीतूंगा?

अपने दिग्विजय-अभियान में सिकंदर धरती का एक कोना भी तो सर नहीं कर पाया था; किंतु डायोजनीज को हंसी उड़ाते देख उसकी महत्त्वाकांक्षा को चोट लगी–कितनी छोटी है यह धरती। सिकंदर को निराशा ने धर दबाया।

महत्त्वाकांक्षा सीमातीत अधिकार की भूख है। और, अधिकार एवं दुःख का छाया-काया का संबंध है। महत्त्वाकांक्षी के भाग्य में सुख कहां?

किंतु महत्त्वाकांक्षा की इस निपट भर्त्सना के विरोध में विद्रोह का यह स्वर भी महत्त्वहीन नहीं है। इस स्वर में कई प्रश्न एकत्र हैं– 'क्या महत्त्वाकांक्षा ऐसी मरकनी (सींग मारने वाली) गाय है जो सींग ही मारती है, दूध नहीं देती? क्या महत्त्वाकांक्षा ऐसा बिगड़ा घोड़ा है जो सवार को गिराता ही है, उसकी मंजिल तय नहीं कराता?' यदि महत्त्वाकांक्षा ऐसी छलना है तो कठोपनिषद् के ऋषि ने क्यों आदेश दिया: **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**

और, अमरीका के तत्त्वद्रष्टा इमर्सन ने नयी पीढ़ी को यह मंत्रदान क्यों किया– **'हिच दाइ वैगन टु द स्टार्स'।**

प्रायः युवा पीढ़ी के मन में ये प्रश्न उमड़ते हैं। यह विद्रोह स्वागत के योग्य है। देश-काल से विद्रोह नहीं हो तो जवानी के क्या मानी? जवानी की शक्ति-स्फूर्ति ही महत्त्वाकांक्षा को इंद्रासन से टकराती है।

महत्त्वाकांक्षा में से तृष्णा को निकाल दीजिये, ऐसा संतों का आग्रह है। बुद्ध कहते हैं कि प्रमाद निकाल दीजिये–उत्तिट्ठे न पमज्जेय। गांधीजी कहते हैं–सेवा से बड़ा कोई महत्त्व नहीं। महामना मालवीयजी कहते थे–हर नौजवान महत्त्वाकांक्षी बने, अदम्य महत्त्वाकांक्षी बनकर यश-कीर्ति कमाये; किंतु कीर्ति या उपलब्धि बादशाह माइडास का वरदान न बन जाये। इसके लिए तुलसीदासजी की इस चौपाई को भी सदैव अपने लक्ष्य में रखें:

कीरति भनिति भूति भलि सोई;
सुरसरि सम सब कहुं हित होई।

–कीर्ति, उक्ति और संपत्ति तभी श्रेयस्कर हैं, जब वे गंगा की तरह सबका समान-भाव से हित साधन करती हैं।

१२, फीरोज गांधी मार्ग, लाजपतनगर–३,
दिल्ली–११००२४

★

भुवनेश्वर
एक उचटती याद

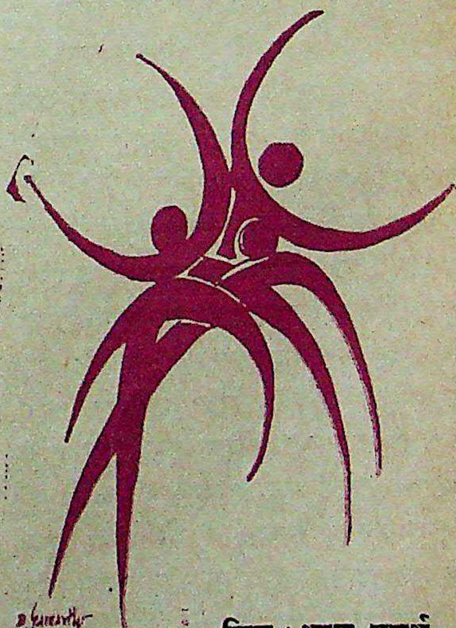
लगभग भुला दी गयी एक साहित्यिक प्रतिभा का स्मृतिचित्र।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

भुवनेश्वर हिंदी की उन विस्फोटक प्रतिभाओं में थे, जिनकी एक-दो रचनाओं ने पाठकों और साहित्य-महारथियों का ...न समान रूप से आकर्षित कर उन्हें ...ित कर दिया था। पर मेरी उनकी न ...ल मुलाकात वरन प्रगाढ परिचय उसके ...ले ही लखनऊ की रंगीन सड़कों पर हो ...या था।

अमीनाबाद में कब कहां उनसे पहली ...र में टकराया, यह तो याद नहीं आ रहा, ...सन १९३३ की ही बात यह है। उमा...कर वाजपेयी 'उमेश' उन दिनों लखनऊ ...प्रसिद्ध कवि थे, जिनकी रचनाएं 'सुधा', 'माधुरी' और 'सुकवि' के मुखपृष्ठ पर छपा ...ती थीं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली ...नों में वे समान अधिकार से लिखते थे। ...के पिताजी की आयुर्वेदिक औषधियों ...की दुकान हम नवोदितों और साहित्यिक ...कों की प्रमुख मिलन-स्थली थी। वहीं ...री शामें बीतती थीं। अक्सर मेरे पिताजी (पं. मातादीन शुक्ल, संपादक 'माधुरी') और निरालाजी भी साथ-साथ वहां आते ...। भुवनेश्वर अकस्मात् एक शाम वहीं ...गये—कुछ ऐसे कि आजीवन मिलते ही चले गये।

हम लोगों ने प्रास के लोभवश उन्हें 'भाई भुवनजी' कहना शुरू कर दिया। पर उनकी नापसंद पर यह संबोधन हम लोगों ने छोड़ दिया। हाथ में कविता की कापी—काफी मोटी, जिसमें बीच-बीच में एकांकी भी गुंथे थे ...... उनकी और शा की सूक्तियों से मंडित—वे बराबर लिये रहते थे। कविताएं छायावादी, पर बीच-बीच में



चित्र : भाऊ समर्थ

चमक उठने वाले जीवन के भौतिक यथार्थों के टुकड़े। अपने में ही डूबे और डगमगाये उनके साफ-सुथरे, परिष्कृत लघु व्यक्तित्व से हम सभी लघु-मानव अभिभूत थे। उनसे मिलने की उत्कंठा दिन-भर यूनिवर्सिटी में या घर पर बराबर बनी रहती थी।

भुवनेश्वर कहां ठहरे थे और कब कहां मिलते थे, यह किसी को पता न था। आवारापन उनकी सांस-सांस में बसा था। सुबह कहीं, शाम कहीं, रात कहीं—यही उनका अस्तव्यस्त जीवन-क्रम था। लगता था, किसी भरी-पूरी डाल से बिछुड़ा प्रकाश का एक बड़ा-सा पत्ता हो जो शरद, शिशिर, हेमंत की लहराती या स्थिर हवाओं में एक-सी बेचैनी लिये डोलता-फिरता हो।

उनके अध्ययन, अनुभव और संवेदना का दायरा कितना व्यापक और घना था, इसे छायावादी कुहासे से निकल भागने के लिए छटपटाता मेरा भावुक, कल्पनाशील मन समझ न पाता था। उनकी कविताएं तो कमोबेश वैसी ही थीं, जैसी उन दिनों हम लोग लिखते थे। पर उनके एकांकी और उनके 'स्केच' जीवन, भाग्य, आभिजात्य, मुखौटों से भरे समाज की विडंबनाओं और वेदनाओं के रोमांचक दस्तावेज जैसे लगते थे। ऐसी जलन, ऐसी आकर्षक आंच, कुंठाओं पर ऐसे अग्निम प्रहार कि उनके एकांकी उनके मुंह से सुनते ही बनते थे। एक-एक कथ्य दिखाई न देने वाली जीवन की गहराई के साथ ऐसी जीवंत मार्मिकता से जुड़ा रहता था कि हमें जैनेंद्र जैसे उस युग के अग्रणी नये लेखक भी अपनी सारी मानवीय करुणा के बावजूद ऊपर-ऊपर की सतह पर तैरकर ही निकल जाने वाले शब्द-शिल्पी मात्र लगते थे।

लखनऊ के साहित्यिक क्षितिज पर तब तक डा. रामविलास शर्मा, अमृतलाल नागर, गंगाप्रसाद मिश्र और 'प्रदीप' (प्रसिद्ध फिल्मी गीतकार) का उदय नहीं हुआ था। मेरे साहित्यिक साथियों में डा. कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह, डा. रामरतन भटनागर, गिरीशचंद्र पंत 'अनंग', लक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण', हर्षवर्धन नैथाणी ही थे। हम सब निरालाजी के आस-पास मंडराते रहते थे और उनके तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रेरणा पाया करते थे। उन्हीं दिनों बिहार से आकर स्व. गोपालसिंह नैपाली सुधा-कार्यालय में काम करने लगे थे। स्व. शांतिप्रिय द्विवेदी काशी से लखनऊ प्रायः आकर हफ्ते-हफ्ते भर लखनऊ में रहते थे। यही हमारी साहित्यिक मंडली थी।

भुवनेश्वर का अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान और निर्दोष उच्चारण हमें प्रभावित करता था। उनकी अनेक सच्ची, झूठी आत्मपरिचयात्मक बातें और खानदानियत अलग हमें रोब में लिये रहती थी। पर हमें सबसे भीतर तक छूती थी उनकी पैनी प्रतिभा और बिलकुल नयी लेखन-शैली—शा की शैली की तरह काटने वाली। भुवनेश्वर की सारी खामियों, विकृतियों और बीमार हरकतों को हम सह लेते थे—प्यार करने की सीमा तक बरदाश्त करते थे।

सन १९३३ से लेकर १९३७ तक भुवने-श्वर का मेरा करीब-करीब दैनिक साथ रहा। यदि वे लखनऊ के बाहर हुए तो बात दूसरी थी। हुसैनगंज और बाद में उससे लगे हुए उदयगंज के मेरे घर वे घंटों पड़े रहते थे। १९३६ में बिना बी. ए. किये ही मैं आर्थिक कठिनाइयों के कारण यूनिवर्सिटी छोड़ चुका था। नौकरी की तलाश, केवल पिता की तनख्वाह पर पलने वाले परिवार का बोझ और फाका-मस्ती का आलम। एक फड़कती हुई खुदी का नशा हमारे नाशादोनाकारा जीवन पर छाया रहता था। नित्य नये साथी बनते थे और छूटते थे—सपने पनपते थे और फूटते थे। हजरतगंज, कैसरबाग, अमीनाबाद, कैनिंग रोड और एबट रोड पर घंटों निरु-द्देश्य घूम-घूमकर—एक दूसरे की रचनाओं की बखिया उधेड़ते हुए, विद्रूप-भरे उपहास से एक दूसरे को तराशते हुए हम रात को ११-१२ बजे अलग होते थे। एक दूसरे के ऊपर से घृणा बहाते और घृणा के भीतर के आत्मीयभाव को निरंतर मांजते।

जिंदगी की सड़क पर बढ़ते-बढ़ते मैं इलाहाबाद आ गया। भुवनेश्वर यहां भी आ गये और मेरे नौकरी पा जाने पर खुश। लखनऊ के अमीनाबाद की जगह चौक, एबट रोड की जगह केनिंग रोड और लखनऊ की ...जी की दुकान के स्थान पर दारागंज में पं. भगवती प्रसाद वाजपेयी का मकान या ...पुर का मेरा घर। पर हमारा सबसे बड़ा साहित्यिक अड्डा लीडर प्रेस में पं. वाचस्पति पाठक का ड्राइंग रूम था। भुवनेश्वर का एकांकी-संग्रह 'कारवां' तब तक भारती भंडार से प्रकाशित हो चुका था। पाठकजी के सुरुचिपूर्ण बैठकखाने में लगे हिंदी के अग्रणी साहित्यकारों के फोटो प्रति-दिन जैसे हम-जैसे छुटभैयों को अपनी औकात का बोध कराते रहते थे। भुवनेश्वर प्रगतिशील-लेखक-संघी प्रगतिशीलता के रंग में डूबे हुए और उसके घनघोर प्रचारक। पर अपनी रचनात्मक सर्जना में वैसे ही ईमानदार। सामाजिक मुखौटेबाजियों, कु-रूपताओं और आचरणों की 'स्मगलिंग' के विनाश के लिए वैसे ही कटिबद्ध।

भुवनेश्वर के गर्हित क्रिया-कलापों की चर्चा का अंत नहीं है; पर हममें से जिन्होंने उन्हें जाना और भोगा है, वे उनकी प्रतिभा के विस्फोट को भी पहचानते थे। हम लोग उन बलवती परिस्थितियों से भी वाकिफ हैं, जिनके आगे उनका जीवन विवशता की एक दुःखद प्रक्रिया बनकर रह जाता था। उनकी अनेक विडंबनाओं में मैं उनका सह-भागी था। न जाने कितनी भूख-प्यास हमने साथ-साथ झेली थी, न जाने कितने संघर्षों से होकर गुजरे थे। सुख, सुविधा और जीवित रहने की प्रेरणाओं को तला-शती हुई हमारी जिंदगी विफलता और लाचारी की चट्टानों से टकरा-टकराकर रह जाती थी। और हम थे कि अपनी सर्जना के विश्वास का बल लिये अपनी नामुराद जिंदगी साथ-साथ जीते रहे।

याद नहीं आता, सन १९४५-४६ के बाद

यात्रा

—पुष्पा राहीं—

यात्रा
पूरी कब हुई ?
हमने दूर से
मंजिल
छुई ।

भगदड़-सी मची रही
जीवन में
निकल गया समय
व्यर्थ चिंतन में
रहे सदा धुनते
रुई ।
यात्रा
पूरी कब हुई ?

साथ-साथ चले
रुके नहीं दुःख
पीछे कहीं छूट गये
सारे ही सुख
क्षण-क्षण
सूजे अंग
चुभती रही
सुई !
यात्रा
पूरी कब हुई ?

पहले से तय था
कुछ होना नहीं
अपने लिए था
नहीं कुछ कहीं
मिटा सब कुछ
मिटी न क्यों
वह आकांक्षा
मुई ?
यात्रा
पूरी कब हुई ?

—एफ ८।७, माडल टाउन,
दिल्ली-११०००९

मैंने भुवनेश्वर को देखा हो। जब उनके मरने की खबर सुनी—उनकी याद में लिखा गया सुरेश अवस्थी का हृदयस्पर्शी लेख कहीं पढ़ा (और शमशेर की वैसी ही अंतरंग-अनुभूति-शून्य कविता कहीं पढ़ी), तब तक मेरी संघर्षकामी जिंदगी का एक बड़ा हिस्सा मर चुका था।

जीवन की मिठास, रस, परिपूर्ति तो सभी कवि-लेखक प्रायः देख लेते हैं और उसमें डूब-डूबकर उसका आकलन करते हैं। पर जीवन की कड़वाहट, तिक्तता और उसकी जड़ों में लगे घुन जैसे जहर को पकड़ना तो दूर रहा, प्रायः रचनाकार उससे कतरा-कर निकल जाते हैं। जीवन की बुनियादों में भिदी खामोश अनैतिकता और मूल्यों की भ्रष्टता को पूरी ताकत से पकड़कर उस पर प्रहार करना और उसे शालीन नग्नता के साथ सामने रख देने की कला-क्षमता भुवनेश्वर को जैसे जन्मजात मिली थी।

तनावों से थक-थककर निढाल होते जाने वाले नर-नारियों की नियति का तीखा, जलता हुआ एहसास अपराधी रुग्णता से आक्रांत पर अपराध-भावना से सर्वथा मुक्त, अपनी खुदी में डूबे रहने वाले, हर प्रकार के चौखटे से खुली बालक की-सी निरीह आत्मा वाले उस व्यक्ति को बराबर होता रहता था। इस तीक्ष्ण, कटु सामाजिक चेतना के लिए उसे किसी प्रमाण, सौगंध या गवाह की जरूरत नहीं थी। तर्क की संगति को भुवनेश्वर तीसरी श्रेणी के कलाकारों के चोर दरवाजे की संज्ञा देते थे। वे आत्मभुक्त यथार्थों को ही लिखना

है।
के जीवन में घोर असंतुलित और
भी भुवनेश्वर अपनी रचनाओं में जिस
आरोचित संयम का परिचय देते हैं,
देखकर उन्हें निकटता से जानने वाले
मित्र को हैरत हो सकती है। ऐसे
'कट' डायलाग, वर्णनों में शब्दों
की किफायतशारी छायावादी वाचा-
उस भावोच्छ्वास-भरे युग में सभी
चकित कर देती थी।

कम से कम शब्दों में गहरी से गहरी
तीव्र पीडा जगाने की, जीवन के अभ्यं-
को देखकर उसकी चोट पर बंधी भावु-
की पट्टी को अलग कर जख्म को उजा-
गर देने की बेलौस, बेबाक जर्राही
श्वर को आती थी।

न जाने क्यों भुवनेश्वर को यह गिला
था कि साहित्य-जगत में वे अस्वीकृत
और ठोकर खाते हुए मिटते जाने के
ही लेखक बने हैं। प्रेमचंद मुक्तकंठ से
की प्रशंसा करते थे। उनकी रचनाओं
कभी ही उनकी सशक्त लेखनी की पह-
होने लगी थी। न जाने क्या सोचकर
श्वर ने कविता लिखना छोड़ दिया
मैं जब उन्हें याद दिलाता था कि वे
भी हैं, तो हंसकर कहते थे कि कविता
तुम्हारे और मजाज के लिए छोड़ दी
वे कहानी, नाटक और 'स्केच' ही
थे। कभी-कभी साहित्यिक टिप्प-
भी लिखा करते थे।

आरोपित भावुकता और छद्म मुद्राओं
से भरी दार्शनिकता या क्रांतिकारिता के
उस युग में (जब अज्ञेय 'भग्नदूत' में संक-
लित सस्ती भावुकता से भरी कविताएं या
'विपथगा' में संकलित रूमानी कहानियां
ही लिख रहे थे) एन्टी-रूमानियत का या
विद्रोह की नारेबाजी का मुखौटा लगाये
बिना भुवनेश्वर वर्तमान की गहरी अवज्ञा
करते हुए, अपनी प्रतिष्ठा की छबि बनाना
चाहते थे। उन्हें अपनी गहरी बेसरोकारी
से प्रेरित और प्रसूत व्यंग्य का ही सहारा
था। रूमानियत से उन्हें 'एलर्जी' थी।

भुवनेश्वर के साथ हिंदी का कितना
क्या मर गया, यह सोचने की बात कभी
किसी ने अनुभव की ही नहीं। यों उनके
जीवन-काल में ही हिंदी नाटक का एक
जानदार, जीवित बड़ा हिस्सा दम तोड़ चला
था। पेशेवर एकांकीकारों ने भुवनेश्वर को
खुलवाते जाने में ही अपनी जिंदगी और
बेहतरी देखी। यांत्रिक जीवन की दिनोदिन
बढ़ती जाने वाली विभीषिकाओं का पूर्वा-
भास ही नहीं, नग्न रूप भुवनेश्वर को
दिखाई दे भी रहा था। अपने 'तांबे के कीड़े'
में एक जगह उन्होंने कहा है:

'लेकिन ये सब बेबात की बातें हैं। सभी
"न्यूराटिक" इसी तरह की बातें करते हैं।
मेरी समझ में इस नाटक का लेखक "न्यूरा-
टिक" है। हमें जो रुचता नहीं, जो हमारे
विचारों के सांचे में ढलता नहीं, उसे हम
"न्यूरोसिस" न कहें तो क्या कहें? इस पूरे
नाटक में कोई मतलब नहीं है। यह हमें

[शेष पृष्ठ १११ पर]

भयानक-रस की एक मूर्ति

• दिनेशचंद्र वर्मा •



साहित्य की भांति शिल्पशास्त्र में भी विभिन्न रसों का प्रयोग होता है। साहित्य में कुछ विद्वान नौ रस मानते हैं और कुछ दस। शिल्पशास्त्र में इन सभी रसों के दर्शन होते हैं। खजुराहो की प्रतिमाएं शृंगार रस में पगी हैं। भगवान शंकर की अनेक प्रतिमाएं रौद्र रस का प्रतिनिधित्व करती हैं। भगवान बुद्ध की अधिकांश प्रतिमाएं शांत रस का उत्तम निदर्शन हैं। हनुमानजी की अधिकांश प्रतिमाएं वीर रस का निरूपण करती हैं। गणेश एवं सर्पों की प्रतिमाओं में अद्भुत रस का परिपाक देखने में आता है। परंतु दो रसों की प्रतिमाएं बहुत कम देखने को मिलती हैं। ये रस हैं—भयानक और वीभत्स।

भयानक रस का असाधारण सफलता से निरूपण करने वाली एक प्रतिमा विदिशा के संग्रहालय की शोभा बढ़ाती रही है। पुरातत्त्वज्ञों के अनुसार, यह चामुंडा देवी की प्रतिमा है। वैसे इसे काल की प्रतिमा भी कहा जाता है।

अनुमान है कि इसका निर्माण दसवीं शताब्दी ई. के आस-पास हुआ था। उन दिनों विदिशा पर राजा भोज के भाई उदयादित्य का शासन था, जिनके निर्माण-कार्यों के कई अवशेष आज भी विदिशा जिले में हैं। इनमें प्रमुख है उदयपुर का नीलकंठेश्वर मंदिर। माना जाता है कि विदिशा के प्रसिद्ध विजया मंदिर का निर्माण भी महाराज उदयादित्य के समय में ही हुआ। इस मंदिर को इल्तुतमिश, अलाउद्दीन खिलजी एवं औरंगजेब ने तोड़ा था।

यह अभी तक पता नहीं चल सका है कि क्या चामुंडा या काल की यह प्रतिमा किसी मंदिर में प्रतिष्ठित थी और क्या इसकी पूजा आदि भी होती थी।

प्रतिमा की मुखाकृति तो भयानक है ही, उसका शृंगार भी कम भयजनक नहीं है।

...मा के सिर पर जो मुकुट है उस पर ...वों के कपाल उत्कीर्ण हैं। वस्तुतः सारी ...कृति ही किसी कंकाल के कपाल के ...न है। नाक-कान खंडित हो गये हैं। ...प्रतिमा की भयानकता बढ़ ही गयी है। ...यह प्रतिमा विदिशा के संग्रहालय की ...वस्तुओं में गिनी जाती थी। पर ...समय पूर्व उसे भोपाल संग्रहालय में ले ...ा गया है। कहा जा रहा है कि वहां ...की कुछ प्रतिकृतियां बनवायी जा रही हैं, ...हें विभिन्न संग्रहालयों में रखा जायेगा। ...तिमा को भोपाल गये इतना समय हो ...ा है कि विदिशा के पुरातत्त्व-प्रेमियों में बेचैनी-सी फैल रही है। इसका कारण यह है कि विदिशा की प्रतिमाओं को किसी भी बहाने से दूसरे संग्रहालयों में ले जाकर रख देने की परंपरा बड़ी पुरानी है। यहां की यक्षिणी तथा कल्पवृक्ष की प्रतिमाएं कलकत्ता संग्रहालय में हैं। कल्पवृक्ष-प्रतिमा का चित्र डाक-टिकिटों पर भी छापा गया है। शाल-भंजिका की एक प्रतिमा ग्वालियर के संग्रहालय में है। इसके अतिरिक्त दर्जनों प्रतिमाएं देशी-विदेशी संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही हैं। विदिशा में प्राप्त प्रतिमाओं को बाहर ले जाने का यह सिलसिला आज भी जारी है।



[पृष्ठ ८७ का शेष]

...एक कृति में भी अनाथों की स्थिति का ...ही हृदयस्पर्शी चित्रण है।

...लेकिन सबसे विचित्र बात तो यह है कि ...र के सारे किशोर-नायक तो जीवन में ...न किसी तरह सफल व्यक्ति बन जाते ...र स्वयं एल्गर कभी अच्छा व्यवसायी ...बन सका। बेचारा अपनी किताबों का कापीराइट भी थोड़े-से रुपये पेशगी लेकर बेच डालता था। अंत में उसे अपना नाम भी बेच देना पड़ा और मरने से पहले के कुछ वर्ष मुफलिसी और मायूसी में बिताने पड़े। अगर उसकी विवाहिता बहन अंतिम दिनों में उसकी सेवा-शुश्रूषा न करती तो पता नहीं, उसकी और क्या दुर्दशा हुई होती।



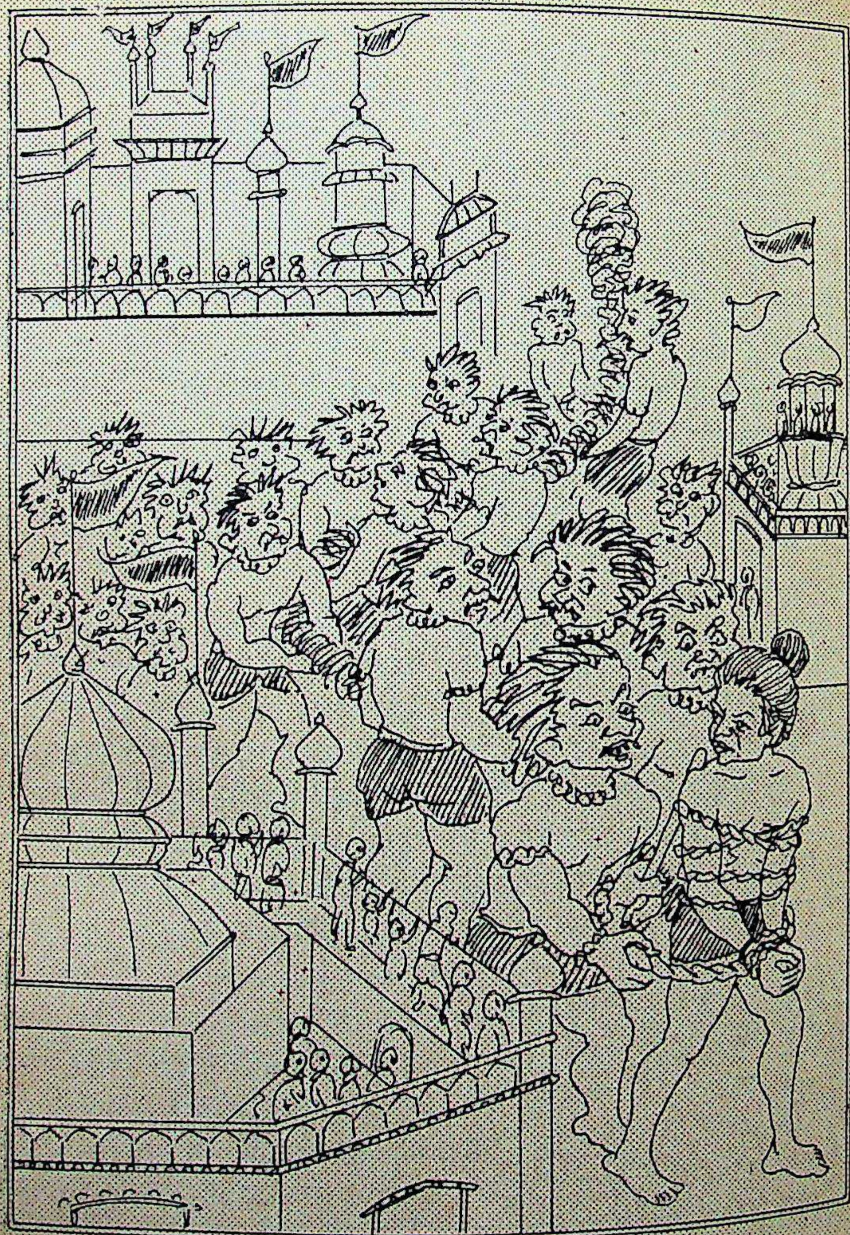
[पृष्ठ १०९ का शेष]

...ख्वाह भ्रम में डाल रहा है।'

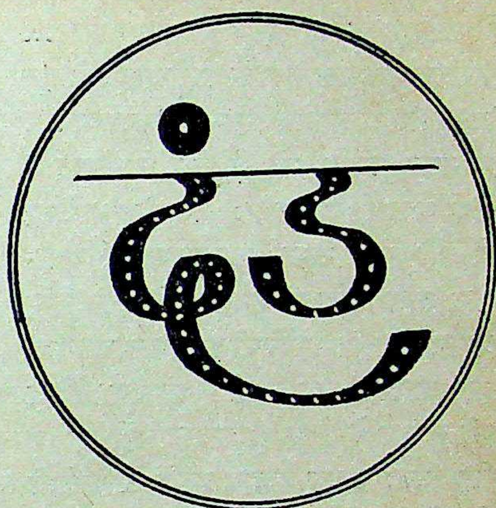
...यद ही किसी अन्य संवेदनशील हिंदी ...कार ने अपनी नियति की कुत्सा ...कर इतनी निष्ठुर बात लिखकर ...की एक शुष्क और कठोर हास्य बन ...दिया हो। यही नहीं, अपने को ही ...तिलकर जलाने और खाने वाले इस अग्निकीट को भले अपनी रचनाओं से बेदर्द असंतोष रहा हो, पर वे हिंदी-नाटक-चेतना को यथार्थता की उबलती रेत पर लाकर और झुलसते जाने के लिए छोड़कर सदा के लिए चले जाने वाले एक निर्दय रंगशिल्पी के रूप में याद किये जायेंगे।

—दक्षिण सिविल लाइन्स, पचपेढ़ी, जबलपुर





रेन्द्र कोहली



ऋषि विश्वामित्र के सिद्धाश्रम में राक्षसों के उपद्रव से लेकर लंका में राम के हाथों रावण के वध तक की रामकथा नरेन्द्र कोहली ने चार उपन्यासों के एक क्रम में आधुनिक चिंतन तथा मनःस्थिति के परिप्रेक्ष्य में लिखी है। पहला उपन्यास 'दीक्षा' १९७५ ई. में प्रकाशित हुआ। 'अवसर' का प्रकाशन १९७६ ई. में तथा 'संघर्ष की ओर' का १९७८ ई. में हुआ। इस क्रम का चौथा उपन्यास 'युद्ध' इस वर्ष दीपावली के अवसर पर प्रकाश्य है। (चारों उपन्यासों के प्रकाशक पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्ण गली, विश्वास नगर, दिल्ली-३२ हैं।)

प्रस्तुत प्रकरण उसी चौथे खंड 'युद्ध' का एक अंश है।



नुमान से सारी कार्यवाही धैर्यपूर्वक देखी और सुनी थी। स्वयं उनके लिए सम-ना कठिन था कि उनके मन में क्या-क्या त हुआ था। एक बार तो ऐसा लगा कि जैसे वे सर्वथा संवेदनशून्य ही हो गये उनके सम्मुख उनके मृत्युदंड का आदेश या जा रहा है और वे उससे प्रभावित ही हो रहे .... उनके मन में कोई प्रति-क्रिया ही नहीं हो रही .... क्या वे अपनी मृत्यु के भय से जड हो गये थे ? नहीं ! इस प्रकार के भय का अनुभव उन्होंने नहीं किया था। कदाचित् मस्तिष्क यहां आकर रुक गया था कि अधिक से अधिक, मृत्युदंड ही तो मिलेगा .... या मन मृत्युदंड के लिए प्रस्तुत हो गया था ....

हनुमान के लिए उस क्षण अपने मन का

१७१

विश्लेषण करना कठिन हो रहा था। .... पर अब मन, उस जडावस्था से बाहर निकल आया था। वह सोचने-समझने लगा था .... हनुमान समझ रहे थे कि विभीषण ने उन्हें बचा लिया था। .... अशोक-वाटिका में देवी वैदेही ने उन्हें बताया था कि विभीषण तथा अविंध्य उनकी रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। पर विभीषण का सारा व्यवहार बता रहा था कि वे केवल देवी वैदेही की सुरक्षा के लिए ही सचेष्ट नहीं थे; वे सिद्धांततः रावण के इन कृत्यों के विरोधी थे और उसके अन्याय और अत्याचार के भरसक प्रतिकार के लिए व्यावहारिक रूप से सक्रिय थे। विभीषण ने हनुमान को बचा लिया था ....

पीछे से किसी ने हनुमान को धक्का दिया–'चल !'

हनुमान के पग उठे, किंतु उनकी दृष्टि विभीषण पर टिक गयी। विभीषण उन्हीं की ओर देख रहे थे। उनकी आंखें कितनी वाचाल थीं इस समय। कितना कुछ एक साथ ही कह रही थीं .... कितनी करुणा थी उनमें, सद्भावना .... और चेतावनी भी ......

सभागार से बाहर निकलकर हनुमान ने स्वयं को एक नये लोक में पाया। रावण-मेघनाद, विभीषण तथा अन्य लोग पीछे छूट गये थे। अब हनुमान थे और राक्षस सैनिकों का पूरा एक गुल्म ! हनुमान के शरीर में केवल उनके पैर ही मुक्त थे जिनसे वे चल पा रहे थे; अन्यथा सारा शरीर रस्सियों से जकड़ा हुआ था। रस्सियों के अनेक फंदों ने उनके शरीर को कस रखा था, जिनके सिरे उनके पीछे-पीछे चल रहे सैनिकों के हाथों में थे। टुकड़ी का नायक उनके साथ-साथ चल रहा था, और लगातार कोई न कोई आदेश देता चल रहा था। हनुमान को लगा कि वे रथ में जुते घोड़े के समान हैं, जो सारथी की अनुमति से केवल निर्देशित दिशा में भाग सकता है .....

सहसा उनकी कल्पना में विदा के समय विभीषण की आंखों में जागा भाव पुनः साकार हो आया। लगा, हनुमान जो तब नहीं समझे थे, वह अब समझ पा रहे हैं। कितना खुलकर कह रही थीं विभीषण की आंखें–'हनुमान ! मैंने तेरे जीवन की रक्षा कर दी है। अब यह तेरी बुद्धि पर निर्भर है कि तू इन सैनिकों से मुक्त हो सकता है, या इनके हाथों मारा जाता है .... ।'

हनुमान का मस्तिष्क उल्लास से जगमगा उठा। अभी तक कुछ नहीं बिगड़ा था ......

एक बार हनुमान के मन में आया कि वे यदि अकस्मात् ही वेगपूर्वक भाग निकलें, तो ये रस्सियां इन सैनिकों के हाथों से निकल जायेंगी और वे मुक्त हो सकेंगे ..... किंतु अगले ही क्षण उन्होंने यह विचार भी त्याग दिया। .... उनके पैर मुक्त थे, किंतु भुजाएं तथा शरीर बंधा हुआ था। सैनिकों ने बाणों का प्रहार किया तो वे क्या करेंगे ? ... और दिन का समय था। चारों ओर आवागमन सघन हो रहा था। और

बुलाने तथा वृद्ध हनुमान को बेरकर
...ने में उन्हें कितना समय लगेगा ?

...सैनिक उन्हें निर्विघ्न चलने नहीं दे रहे ... थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् वे उन्हें ... अथवा ठोकर मार देते थे। कभी-... हाथ में पकड़ी रस्सियों के सिरों से वे ... का काम लेते थे। मारने का कोई ... कारण हनुमान की समझ में नहीं ...। चलने की गति अथवा मुड़ने की ... से उसका कोई संबंध नहीं था। अपना ... अथवा आक्रोश दिखाने के लिए ... इच्छा के अनुसार वे अपना हाथ ... हाथ में पकड़ी रस्सी फटकार देते ... कदाचित् यह हनुमान को अपमानित ... अथवा रात के युद्ध का प्रतिशोध लेने ... लिए भी हो सकता था।

सैनिकों ने अब स्थान-स्थान पर रुककर ... णाएं करना आरंभ कर दिया था। ... घोषणाओं में वे हनुमान के अपराध ... रावण द्वारा दिये गये दंड के आदेश का ... कर रहे थे। राह चलते लोग अब ... रुककर उन्हें देख ही नहीं रहे थे, कुछ ... उनके साथ-साथ चलने भी लगे थे। ... लगी भीड़ में बालकों तथा किशोरों की ... संख्या अधिक थी। एक-आध वृद्ध भी ... कदा थोड़ी दूर तक साथ चल लेता ...। युवक तथा प्रौढ लोग घोषणाएं सुनकर ... राह चले जाते थे। कदाचित् इस ... के लिए उनके पास समय नहीं था...

... घोषणा क्या कर रहे हो!' एक मन-... रुककर बोला—'इसकी पूंछ भी तो बनाओ। राजाधिराज ने आदेश दे दिया और तुम उस आदेश की घोषणा करते फिर रहे हो। उसका पालन कौन करेगा?'

'पालन भी करेंगे!' नायक ने कुछ उग्र स्वर में कहा। किंतु स्पष्ट था कि मन ही मन वह अपनी भूल स्वीकार कर रहा था......

अगले ही मोड़ पर वे लोग हनुमान को एक दंडधर-चौकी में ले गये।

चौकी के अधिकारी ने नायक की बात सुनी और बिफर गया—'वे तो आदेश देकर भूल गये; अब हम उसके पालन के लिए वस्त्र कहां से लायें! यह दंडधर-चौकी है, राजाधिराज का भंडारगृह नहीं।'

गुल्म का नायक कुछ क्षणों तक चुपचाप कुछ सोचता रहा, फिर धीरे से बोला—'दंडधरों के परिवारों के पास फटे-पुराने कुछ वस्त्र तो होंगे ही। जिन अपराधियों को निगडबद्ध करते हो, उनके वस्त्र भी तो उतारकर इधर-उधर कर देते हो। उन्हें तुम राजाधिराज के भंडारगृह में जमा करवाने तो नहीं जाते।'

अधिकारी ने वितृष्णा से मुंह बिचकाया, पर कुछ वस्त्र मंगा ही दिये। उन्होंने हनुमान की कमर में एक रस्सी बांधी और उसे बटकर उस पर पुराने वस्त्र लपेट उनकी दुम बना दी। इस बार जब वे बाहर निकलकर चौराहे पर आये तो लोगों के लिए हनुमान एक विदेशी बंदी वानर मात्र नहीं थे—अब वे मनोरंजन की वस्तु हो गये थे। अपने मनोरंजन में क्रमशः वह भीड़ क्रूर

हो उठी थी । जब-तब कोई व्यक्ति कोई ढेला दे मारता था । कोई बहुत निकट आ गया व्यक्ति पीछे से थप्पड़ अथवा मुक्के का प्रहार भी कर देता था ।

सहसा एक मनचला आकर हनुमान के ठीक सामने खड़ा हो गया, जैसे किसी अद्भुत वस्तु का निरीक्षण कर रहा हो । सैनिकों को भी किसी लक्ष्य तक पहुंचने की जल्दी नहीं थी । उन्हें तनिक भी आपत्ति नहीं थी कि दर्शक हनुमान के साथ कैसा व्यवहार करते हैं । वरन दर्शक यदि उनके साथ दुर्व्यवहार करते थे और उन्हें आगे बढ़ने से रोकते थे, तो उन्हें और भी सुविधा होती थी । उनका भी मनोरंजन होता था और आगे बढ़कर घोषणा करने की भी आवश्यकता नहीं होती थी ..... और यह मनचला तो वेशभूषा से कोई अत्यंत समृद्ध व्यक्ति मालूम हो रहा था .....

उस मनचले ने हनुमान की परिक्रमा भली प्रकार की, उन्हें अच्छी प्रकार निरखा-परखा और नायक से बोला–'इतना बड़ा वानर, और इतनी छोटी-सी पूंछ ?'

हनुमान समझ नहीं पाये कि वे इस विद्रूप के लिए मनचले से रुष्ट हों, या उसके निरीक्षण की प्रशंसा करें ।

नायक ने भी मनचले की ओर कुछ मिश्रित भाव से देखा–'ठीक कहते हो युवक ! बड़े वानर की पूंछ बड़ी ही होनी चाहिये, यद्यपि प्रकृति का यह अनिवार्य नियम नहीं है ।'

'प्रकृति का नियम न सही ! अनुपात भी तो कोई वस्तु है ।' वह बोला–'सौंदर्य-बोध का तो कुछ विचार किया होता ।'

इस बार नायक कुछ रुष्ट स्वर में बोला–'कहते तो ठीक हो; पर हमें केवल आदेश मिला है, आदेश पूरा करने के उपकरण नहीं मिले । वस्त्र कहां हैं, जिनसे तुम्हारी अपेक्षा के अनुकूल पूंछ बनायी जा सके ?'

मनचले की इच्छा इतने पर भी अवरुद्ध नहीं हुई ।

'अच्छे राजा को आदेश देने चाहिये और अच्छी प्रजा को उसका पालन करना चाहिये ।' वह बोला–'इसीसे तो राजा के प्रति प्रजा की निष्ठा प्रमाणित होगी । .....'

'निष्ठा तो ठीक है,' नायक बोला–'पर राजा के प्रति अपनी निष्ठा जताने के उपक्रम में इसकी पूंछ बनाने के लिए मैं अपनी पत्नी की साड़ियां जला दूंगा, तो मेरी पत्नी मुझे जीवित जला देगी ।'

'तुमसे कुछ नहीं बनेगा ।' मनचले ने रोष का-सा अभिनय किया–'राजा से भी डरते हो और अपनी पत्नी से भी । तुम विभाजित निष्ठा के रोगी हो । .....'

मनचला रुक गया । उसने घूमकर चारों ओर घिर आयी भीड़ को देखा । हनुमान ने भी उसकी बातों से मुक्त होकर जैसे पहली बार लोगों को भी देखा और उस स्थान को भी । चारों ओर ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं थीं । कोई अत्यंत समृद्ध मुहल्ला प्रतीत होता था । लोगों की वेशभूषा भी इसी प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत कर रही

...किसी को कहीं आने जाने की
भी नहीं थी। सबको अवकाश था
सब मनोरंजन के लिए आ जुटे थे ...
के मन में आया कि इस वृद्धावस्था
वे अपने पैरों के प्रहारों से इन दुष्टों
समझा दें कि अपने जैसे मनुष्य के साथ
का-सा व्यवहार करने का क्या परि-
होता है। ... किंतु उनके विवेक ने
रोका। कदाचित् यह आक्रोश भी
भूख और निद्रा का ही परिणाम
......अशोक-वाटिका में भी भूख और
के ही वश में होकर वे इस अपमान-
स्थिति को पहुंचे थे। इस बार चूक
गयी तो इससे भी अधिक दुर्गति होगी।
अपनी इस कष्टप्रद तथा अपमान-
स्थिति में धैर्य नहीं खोना चाहिये।
के अवसर बार-बार नहीं आते......
चारों ओर खड़े लोगों को आंखों ही
में परखकर मनचले ने ललकारा–
लंकावासियो! तुम लोग अपनी
निष्ठा का प्रमाण नहीं दोगे? राजाज्ञा
पूर्ण करने के साधन नहीं जुटाओगे?
हम लोग दो-दो, चार-चार वस्त्रों का
त्याग नहीं कर सकते कि इस वानर को
वानर बनाकर, इसे जीवित
जा सके? तनिक गंभीरता से
कि इतना सस्ता मनोरंजन अन्यत्र
है क्या? दो-चार वस्त्र देकर एक
मनुष्य के जलने का दृश्य देखना–
क्रीडा इतने कम मूल्य में हो सकती है
?......'

मनचले की बात ने अनेक लोगों की जडता को तोड़ा। अनेक लोग एक साथ ही बोल पड़े थे।

मनचला फिर उच्च स्वर में बोला–'हमें राजाधिराज का संकेत और अभिप्राय समझना चाहिये। वे चाहते तो इस वानर का तत्काल वध करवा सकते थे। किंतु उन्होंने अपने प्रजाजन के मनोरंजनार्थ इसे हमें सौंप दिया है। कितना उदार मन है, हमारे राजाधिराज का! कितना संयम! अपने बेटे के हत्यारे का वध करने के लोभ का संवरण कर गये और हमारे मनोरंजनार्थ हमें एक जीवित प्राणी सौंप दिया। आप थोड़े-थोड़े वस्त्रों का त्याग करें और फिर आंच में जीवित मानव-मांस के भुनने की गंध लें, इसके रक्त का बाष्प बनता देखें, इसकी हड्डियों को भस्म होते देखें। और इस सारी प्रक्रिया में जब इसकी बोटी-बोटी तड़पे, आप इस पर ईंट-पत्थरों का प्रहार कर सुख लूटें .....!'

कैसी बीभत्स कल्पना है–हनुमान सोच रहे थे–ये भी मनुष्य हैं क्या? पशु भी इतना क्रूर नहीं होता। वह अपना पेट भरने के लिए जीवहत्या करता है। ये अपने मनोरंजन के लिए अपने ही जैसे एक मनुष्य को यातनापूर्वक मृत्यु देना चाहते हैं...... इन्हें मनुष्य कहलाने का कोई अधिकार है क्या?......जिन मनुष्यों को, किसी को पीडा में देखते ही तड़पकर उसकी सहायता को पहुंचना चाहिये, वे मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए जीवित मांस जलायेंगे......

हनुमान अब तक जिसे एक राह चलता मनचला समझे बैठे थे, उसका यह पाशविक रूप रह-रहकर उनका रक्त जला रहा था ......

किंतु राक्षसों की भीड़ ने उस मनचले की बात को बहुत गंभीरतापूर्वक ग्रहण किया था। आस-पास की अट्टालिकाओं से विविध प्रकार के वस्त्रों और परिधानों की वर्षा होने लगी थी। उन वस्त्रों को देख-देखकर हनुमान की आंखें फटी जा रही थीं। वे वस्त्र न तो साधारण सूती वस्त्र थे और न ही घिसे हुए अथवा फटे-पुराने थे। बहुमूल्य तथा बढ़िया प्रकार के वस्त्रों का वहां ढेर लग गया था ......हनुमान उदास दृष्टि से देख रहे थे—इन सारे वस्त्रों से उनकी पूंछ बनायी जायेगी और फिर उस पूंछ को आग लगा दी जायेगी......हनुमान के प्राण तो उनके शत्रु के दूत के प्राण हैं; किंतु ये वस्त्र तो उनके अपने हैं। कैसे लोग हैं ये .... अपने ही धन को इस निर्दयता से फूंक रहे हैं?......कहीं इतने सारे वस्त्र किसी निर्धन वानर-यूथ में बांट दिये जाते तो उनका महोत्सव हो जाता।......और तो और, इन वस्त्रों को देखकर किष्किंधा के धनाढ्य वर्ग की लार भी टपकने लगेगी। किष्किंधा में ऐसे महीन, कोमल और सुंदर वस्त्र नहीं बनते थे ..... हनुमान कल्पना कर रहे थे.....यदि इन वस्त्रों का ऐसा ही एक ढेर किष्किंधा के मुख्य चतुष्पथ पर लगा दिया जाता तो बड़े-बड़े सामंत तथा उनकी पत्नियां इन वस्त्रों को उठाकर ले जाते और बड़े अभिमान के साथ धारण करते ......

किंतु सहसा हनुमान का भाव बदला ..... ये लोग मनुष्य नहीं हैं, ये राक्षस हैं। अपने विलास के लिए ये इन दुर्लभ वस्त्रों को अग्निसात् कर सकते हैं, किंतु किसी निर्धन का तन ढंकने को इन वस्त्रों का त्याग नहीं कर सकते। सचमुच अपने 'स्व' तक सीमित हो जाने वाला व्यक्ति स्वार्थी और अहंकारी ही नहीं, राक्षस हो जाता है, राक्षस! अपनी एक सनक के पीछे स्वर्णमुद्राएं बहा सकता है और दूसरे के प्राण बचाने के लिए एक कौड़ी नहीं दे सकता ..... वैसे भी यह धन उन्होंने अपने श्रम से उत्पन्न नहीं किया था। यह लूट और शोषण से प्राप्त किया गया धन था। उसे इस प्रकार फूंकने में उन्हें क्या पीड़ा हो सकती थी ......

उन लोगों ने हनुमान की उस कृत्रिम पूंछ को बढ़ाने का कार्य आरंभ कर दिया था। हनुमान ने कुछ अतिरिक्त रुचि से देखा कि नायक तथा अन्य सैनिक पृष्ठ-भूमि में बैठे सुस्ता रहे थे और भीड़ ने सक्रिय होकर रावण के आदेश के पालन का कर्तव्य अपने हाथ में ले लिया था। अब यह सारा प्रसंग पूर्णतः असैनिक हो उठा था। सैनिक अनुशासन के स्थान पर अब भीड़ की मनो-वृत्ति काम कर रही थी ..... पूंछ लंबी से लंबी होती जा रही थी। उसके आकार के साथ-साथ उसका रूप भी सुदर्शन होता जा रहा था। उसमें इतने प्रकार के विभिन्न रंगों के वस्त्र लगे थे कि हनुमान द्वारा अब तक देखी गयी समस्त वस्तुओं में वह सबसे

रंगीली वस्तु हो गयी थी । .....
साथ ही साथ बड़ी होती जाने के
उसका सिरा उनके शरीर से बहुत
चला गया था और हनुमान सोच रहे थे
यदि इस पूंछ को उनके शरीर के चारों
लपेटकर आग लगायी गयी तो उनके
अधिक देर नहीं बचेंगे; किंतु यदि
के समान दूर तक फैली इस पूंछ के
सिरे पर आग लगा दी गयी तो उनकी
हानि होने की संभावना नहीं है ।
बनाने की इस प्रक्रिया में सैनिकों ने वे
सियां भी छोड़ दी थीं, जिनके फंदों में
मान बंधे थे ..... यह उनकी मुक्ति का
अच्छा संयोग हो सकता था . ...

मनचले ने दृष्टि भरकर इस नवनिर्मित
को देखा और संतुष्ट होकर भीड़ से
-'क्यों मित्रो ! अब ठीक है ?'

'अब तो पूंछ वानर से भी बड़ी हो गयी' किसी ने कहा ।

'तो लाओ अब तेल !'

'इतनी लंबी पूंछ को स्नेहयुक्त करने के
काफी तेल चाहिये ।' मनचला बोला
'मैं पांच पीपे तेल दूंगा .....' वह पलटा
'जाओ वे ! पांच पीपे तेल ले आ ।' उसने
भीड़ में किसी को आदेश दिया ।

तभी एक अत्यंत स्थूलकाय और घनी
मूंछों वाला व्यक्ति भीड़ में से आगे आ
-'पांच-पांच पीपों का काम नहीं है
सेठ! इस वानर को इसकी पूंछ के
धकियाकर मेरे भंडारगृह तक ले
। इस विकट क्रीडा के लिए सौ-दो सौ
पीपे तेल मैं दे दूंगा ..... ।'

हनुमान स्तंभित-से खड़े उनकी बातें सुन रहे थे । एक व्यक्ति को जीवित जलाना उनके लिए क्रीडा थी; सो भी इतनी मनोरंजक कि उसके लिए यह व्यक्ति सौ-दो सौ पीपे तेल निःशुल्क दे सकता था ..... दो सौ पीपे तो सारी किष्किंधा की आवश्यकताओं के लिए सप्ताह-भर के लिए पर्याप्त थे .....

'हां ! यह ठीक है ।' मनचला व्यक्ति बोला—'सेठ तिक्तजिह्व ने बहुत मीठी बात कही है किंतु मेरे पांच पीपे तो आयेंगे ही । अन्य लोग भी जो योगदान करेंगे, उसे अस्वीकार नहीं किया जायेगा ।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं ।' स्थूलकाय सेठ तिक्तजिह्व ने सेना के नायक को संकेत किया ।

लंबी पूंछ में बंधे-से हनुमान की यात्रा पुनः आरंभ हुई । किंतु यह यात्रा लंबी नहीं थी । हनुमान के लिए सुखद आश्चर्य यह था कि राक्षसों ने उन्हें यह विराटकाय, भारी-भरकम कृत्रिम पूंछ घसीटने के लिए बाध्य नहीं किया । जाने क्यों, भीड़ ने पूंछ को स्वयं ही घसीटकर ले जाना उचित समझा ।

इस बार जिस वीथि में वे लोग मुड़े थे वह इसी प्रकार के भंडारगृहों की गली प्रतीत होती थी । खुले फाटकों में से हनुमान ने विस्तृत अहातों में विभिन्न प्रज्वलनशील पदार्थों के भंडार देखे थे । कहीं सहस्रों की संख्या में तेल के पीपे थे और कहीं ईंधन की सूखी लकड़ी के पर्वताकार ढेर लगे

हुए थे। कहीं विस्फोटक पदार्थों की गंध आ रही थी। एक स्थान पर हनुमान को कपास के बोरों के भी ढेर दिखाई दिये ..... कदाचित् यह इसी प्रकार की वस्तुओं के व्यापार की मंडी रही होगी। .....

सहसा हनुमान की चेतना ऊर्ध्वमुखी होकर जाग खड़ी हुई ..... इस क्षेत्र में लाकर ये मूर्ख मेरी पूंछ को आग लगाना चाहते हैं। इन्हें क्या अग्निकांड का तनिक भी भय नहीं है? या इस समय अपने राक्षसी सुख के विध्वंसक उन्माद में यह भूल गये हैं कि वे जो क्रीडा करने जा रहे हैं, वह उनके अपने लिए भी कितनी घातक हो सकती है .....

हनुमान को लगा, यह उनकी मुक्ति का अद्भुत अवसर है ..... इससे चूक जाना भयंकर भूल होगी और फिर हनुमान के लिए सिवा चुपचाप यातनापूर्ण मृत्यु का आलिंगन करने के और कोई मार्ग शेष नहीं रहेगा ..... किंतु साथ ही हनुमान अनिद्रा और भूख से अर्ध-विक्षिप्त अपनी चेतना और थके हुए शरीर की ओर से भी सशंक थे .....

सेठ तिक्तजिह्व ने हनुमान को एक खुले स्थान में खड़े करने का संकेत करके अपने दासों को तेल के पीपे लाने का आदेश दिया। दासों ने पीपे खोलकर हनुमान के निकट लाकर रखे, तो भीड़ में एक हिंस्र उन्माद छा गया। तब तक मनचले के मंगाये पांच पीपे भी आ गये थे। अन्य लोगों का योगदान पहुंचना भी आरंभ हो गया था ..... फिर भीड़ को जैसे पागलपन का दौरा पड़ा। अब किसी पर किसी का नियंत्रण नहीं था। जिसके मन में जैसे आ रहा था, वह वैसे ही तेल से हनुमान की वस्त्र-निर्मित कृत्रिम पूंछ को भिगो रहा था ..... और सहसा बिना किसी योजना के पूंछ के अनेक स्थानों पर आग लगा दी गयी।

हनुमान खड़े-खड़े वह संहार-लीला देखते रहे। वस्त्रों तथा रुई की बटी हुई वह रस्सी, जिसे वे लोग 'हनुमान की पूंछ' कह रहे थे, अनेक स्थानों से पूरी प्रचंडता के साथ जल रही थी और हनुमान के शरीर को अभी उसकी आंच भी नहीं लगी थी। ... उनका शरीर अब भी रस्सियों से बंधा था; अन्यथा वे मुक्त थे ..... सहसा हनुमान एक प्रचंड हुंकार के साथ स्वयं ही अग्नि की ओर बढ़े, जैसे उसमें कूदने जा रहे हों ..... राक्षसों की भीड़ ने जोर की हर्षध्वनि की .....

हनुमान ने एक ही धक्के में तेल के बीसियों पीपे लुढ़का दिये। आस-पास खड़ी भीड़ समझ नहीं पायी कि वे क्या करने जा रहे हैं। किंतु उन्हें समझने में अधिक देर नहीं लगी। ..... हनुमान ने आग से बचने का अभिनय करते हुए, भयंकर भाग-दौड़ मचायी और विभिन्न स्थानों पर गिराये गये तेल तक जलती हुई पूंछ पहुंचा दी। उस बाड़े में अनेक स्थानों पर छोटी-बड़ी अग्नियां प्रज्वलित हो गयी थीं और भीड़ में से अनेक लोग सशंक हो उठे थे .....

'यह वानर मेरा भंडारगृह न जला

रे!' सेठ तिक्तजिह्व ने अजान ही कहा। वह आग से बचने के लिए तड़पता फिर रहा है और आप समझ रहे हैं कि वह गोदाम में आग लगा रहा है।' मनचला बोला– और फिर, एक जीवित व्यक्ति के जलने का तमाशा देखने के लिए एक भंडारगृह का जलना बहुत महंगा है क्या?'

तिक्तजिह्व की चिंता कम नहीं हुई। उसने उच्च स्वर में अपने दासों तथा कर्मचारियों को तेल को अग्नि से दूर रखने का आदेश देना आरंभ कर दिया।

कुछ लोग जलते हुए हनुमान को देखने के लिए उचक-उचककर आगे आने का प्रयत्न कर रहे थे; कुछ लोग आग से दूर रहने के लिए पीछे हट रहे थे। तिक्तजिह्व के कर्मचारी अलग भागदौड़ मचाये हुए थे..... यह धक्का-मुक्की, घबराहट और असावधानी का वातावरण हनुमान को अपने अनुकूल लग रहा था। वे आग से बचने का अभिनय करते हुए बार-बार, सप्रयास आग के पास जा रहे थे. . उनके इस अभिनय को देखकर दर्शकों में अनेक लोग खिलखिलाकर हंस रहे थे.....

दो-चार चक्करों में ही हनुमान ने अनुभव किया कि उनके शरीर पर बंधी रस्सियां आग से झुलसकर ढीली पड़ चुकी हैं। शरीर भी कुछ स्थानों पर झुलस गया था और आंच का ताप अनुभव कर रहा था; किंतु कोई गंभीर क्षति नहीं हुई थी। उन्होंने बल-प्रयोग किया, तो रस्सियां अपने स्थान से सरकती मालूम पड़ीं और अगले ही क्षण उनके हाथ मुक्त हो गये। हनुमान ने निमिष-भर भी समय नहीं खोया। अपने शरीर की रस्सियां खोलीं, कृत्रिम पूंछ को अपने शरीर से अलग करके उसका एक सिरा हाथ में पकड़, उसे हिलाते हुए वे राक्षसों की भीड़ पर लपके। लगा, जैसे एक विशाल अग्नि-सर्प राक्षसों की भीड़ पर चढ़ दौड़ा हो। भीड़ में विकट हलचल हुई और अनेक लोगों के कंठों से चीत्कार फूट पड़ा। हनुमान अनुमान लगा रहे थे कि कुछ लोग आग से डर गये होंगे, कुछ लोग भीड़ के धक्के से गिर गये होंगे ..... हो सकता है कि कोई किसी के पैरों-तले आकर कुचला भी गया हो ..... एक कोने में वह स्थूलकाय तिक्तजिह्व विक्षिप्त-सा मुंह बाये खड़ा था .....

हनुमान ने अनुभव किया कि उनके शत्रुओं ने मूर्खतावश न केवल उन्हें पूर्णतः मुक्त कर दिया है, वरन इस अग्निदग्ध कृत्रिम पूंछ के रूप में उनके हाथ में एक सशक्त और प्रभावकारी शस्त्र दे दिया है। वे विस्फोटक और प्रज्वलनशील पदार्थों के भंडारों के बीच में खड़े थे। कदाचित् अभी राक्षसों को इस स्थिति की भयावहता का आभास भी नहीं था। ....

हनुमान ने उस अग्निपुंज के साथ बार-बार भीड़ पर झपटने का अभिनय किया और जब उन्हें लगा कि लोगों की घबराहट इतनी बढ़ गयी है कि वे उन्हें बंदी करने के स्थान पर अपनी सुरक्षा के लिए अधिक चिंतित हो उठे हैं, तो उन्होंने पूंछ का एक बड़ा-सा जलता हुआ टुकड़ा तेल के पीपों

पर फेंका और शेष पंछ को लेकर वे उचककर बाड़े की दीवार पर जा चढ़े। साथ ही रूई का भंडारगृह था। हनुमान ने अनेक छोटे-बड़े जलते हुए वस्त्र रूई के बोरों पर फेंक दिये और उस बाड़े में से भी निकल भागे..... उन्होंने पलटकर देखा तो तेल और रूई के भंडारगृह धू-धू जल रहे थे..... उनके मन में स्थिति अत्यंत स्पष्ट थी। ..... थोड़ी ही देर में राक्षस सेना उन्हें पकड़ने के लिए झपटती हुई आयेगी। अशोक-वाटिका में उनका व्यवस्था-कौशल वे देख ही चुके थे। इसलिए आवश्यक था कि वे इतने अधिक स्थानों पर, इतनी मात्रा में आग लगा दें कि लंका-राज्य का सारा व्यवस्था-कौशल आग बुझाने में ही केंद्रित होता जाये और हनुमान की उनको याद भी न रहे...

अधिकांश भीड़ इधर-उधर छिटक गयी थी। भंडारगृहों में लगी अग्नि इतनी प्रचंड हो चुकी थी कि लोग आग लगाने वाले को भूलकर अग्नि से ही त्रस्त हो उठे थे। स्थान-स्थान पर स्त्रियों और बच्चों के रोने तथा पुरुषों के क्रुद्ध चीत्कारों की ध्वनियां आग के साथ-साथ बढ़ती जा रही थीं। लगता था कि अग्नि भंडारगृहों से आगे बढ़कर, प्रजाजनों के आवासों तक जा पहुंची थी। अपना घर न जल रहा होता तो चीत्कार इतने यातनापूर्ण तथा याचनापूर्ण न होते...

भागते हुए हनुमान उचककर एक बाड़े की दीवार पर जा चढ़े। उनके सामने पशुओं के खाने के सूखे भूसे के ढेर लगे थे। ...कुछ लोग हनुमान की ओर बढ़; किंतु हनुमान अपनी अग्नि के साथ उन्हीं पर जा कूदे। हनुमान ने यह ढंग अनेक स्थानों पर अपनाया था। कुछ उनकी शारीरिक शक्ति तथा कुछ अग्नि का त्रास तो था ही—किंतु उन्हें लग रहा था कि अशोक-वाटिका की घटनाओं तथा इस अग्निकांड के समाचार के साथ-साथ उनके नाम का आतंक भी फैल रहा होगा। रावण के आदेश में बंधी हुई सेना आये तो आये, सामान्य जन उनको पकड़ने का साहस नहीं करेंगे...

सूखे भूसे के ढेर को आग लगाकर, हनुमान ईंधन की सूखी लकड़ी के भंडार में जा घुसे। ... स्थान-स्थान पर आग की लपटें फेंकते हुए उनका मस्तिष्क अत्यंत सजग हो उठा था। ... काफी विलंब हो चुका था। अब राक्षसों की सेना आ ही रही होगी। उन्हें अधिक देर रुकना नहीं चाहिये ... ऐसा लगता था, वे एक भंडारगृह से दूसरे भंडारगृह और एक भवन से दूसरे भवन तक उड़े चले जा रहे हैं। उनकी वह वस्त्र-निर्मित कृत्रिम पूंछ स्थान-स्थान पर खंड-प्रखंड फेंकने के कारण क्रमशः छोटी होती चली गयी थी; और अब वे और अधिक देर तक आग को फैला भी नहीं सकते थे; किंतु जब भी पलटकर उन्होंने पीछे देखा था, उन्हें अग्नि का भयंकर तांडव दिखाई दिया था।

एक विचित्र प्रकार से आतंकित भीड़ उनके पीछे लगी हुई थी। न तो वह उन्हें पकड़ना चाहती थी, न छोड़ना। वस्तुतः

भीड़ उन्हें खदेड़ती जा रही थी । खदेड़ने की इस प्रक्रिया में हनुमान को भीड़ का कुछ न कुछ निर्देश मानना ही पड़ता था । लगता था, उनके भागने का दिशा-निर्देश भीड़ के ही हाथ में था; और जाने-अनजाने वह भीड़ उन्हें एक विशेष दिशा में खदेड़ रही थी ...

सहसा हनुमान ने अपने को समुद्र-तट के एक विशाल भवन की दीवार पर पाया । भवन का प्रांगण विचित्र प्रकार की गंध से भरा हुआ था । यह भवन तथा उसका अहाता समुद्र से इस प्रकार सटा हुआ था, जैसे वह जलपत्तन का ही अंग हो और जलपत्तन पर उतारा गया सामान आगे जाने से पहले यहां रखा जाता हो । किंतु वह सारा भवन भीतर से निर्जन पड़ा था । संभवतः आज अवकाश का दिन हो । हो सकता है कि बाहर फाटक पर रक्षाचौकी पर रक्षक लोग हों, वे भी इस समय उनके पीछे आयी भीड़ में गुम हो गये होंगे । ...

अब हनुमान भी भीड़ का कुछ-कुछ मनोविज्ञान समझ रहे थे । अग्निकांड से घबराकर भीड़ ने उन्हें समुद्र-तट की ओर खदेड़ा था ... उनकी आग बुझाने के लिए ... या उन्हें सागर में डुबोकर मार देने के लिए ... लंका के शासन के समान भीड़ ने उन्हें पकड़ने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया था ...

दीवार के ऊपर बैठे हनुमान के पास बहुत थोड़ी-सी अग्नि बची थी और नीचे विभिन्न प्रकार के पदार्थ, विभिन्न आकार-प्रकार के डब्बों, पीपों तथा पेटियों में पड़े थे । निर्णय करने का समय नहीं था । हनुमान ने बिना किसी लक्ष्य के जलते हुए वस्त्र का अंतिम टुकड़ा उछालकर मन ही मन कहा—'विदा मेरी पूंछ !'

किंतु उस अग्नि का प्रभाव हनुमान द्वारा सोचे गये भयंकर से भयंकर परिणाम से भी अधिक विकट था । वहां जाने इन राक्षसों ने कैसे-कैसे प्रज्वलनशील तथा विस्फोटक पदार्थ रखे थे कि आग की लपट पड़ते ही वहां जैसे अग्नि का सागर लहरा उठा और लपटों की उत्ताल तरंगें लपलपाने लगीं ... उस अग्निकांड को देख, हनुमान को अपनी सुरक्षा की भी चिंता होने लगी थी । ... उनका मस्तिष्क सोने-सोने को हो रहा था... वे मस्तिष्क की स्तब्धावस्था में ही दीवार पर भागे और समुद्र के जल में कूद पड़े ।

समुद्र में तैरते हुए बहुत दूर तक लंकावासियों के चीत्कारों ने उनका पीछा किया । हनुमान ने थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् मुड़कर पीछे देखा भी कि कहीं उन्हें बंदी बनाने के लिए उनका पीछा तो नहीं किया जा रहा है । किंतु लगता था कि राक्षसों को अपनी लंका को बचाने से ही अवकाश नहीं था । हनुमान को कदाचित वे लोग भूल चुके थे ......

हनुमान को इतना ही समय चाहिये था, जितने में सागर के उस बीहड़ भाग में पहुंच जायें जहां राक्षसों के जलपोत उनका पीछा न कर सकें......



बहुजन हिताय बहुजन-सुखाय

इस दंपति का जीवन जनसेवा के लिए समर्पित है।

विलास गिते

सामाजिक नेतृत्व के लिए इस साल का रैमन मैगसेसे पारितोषिक डा. रजनीकांत आरोळे और उनकी पत्नी डा. मेबल आरोळे को दिया गया है। आरोळे-दंपति जि. अहमदनगर (महाराष्ट्र) में जामखेड के 'ग्रामीण आरोग्य प्रकल्प' (काम्प्रेहेन्सिव रूरल हेल्थ प्राजेक्ट) के संस्थापक और संचालक हैं।

'इस ग्राम स्वास्थ्य प्रकल्प से आस-पास के तीस गांवों के लगभग चालीस हजार नागरिकों में नयी सामाजिक चेतना निर्माण हुई है' ..... इन शब्दों में मैगसेसे प्रतिष्ठान ने आरोळे-दंपति के कार्य की प्रशंसा की है।

इन डाक्टर पति-पत्नी को बधाई देने मैं गया था। मैंने उनके बारे में, उनके कार्यों के बारे में उनसे चर्चा भी की। उनके काम का दायरा बहुत बड़ा है। इस समय ६० गांवों के १ लाख १० हजार बाशिंदे इस प्रकल्प की विविध योजनाओं से लाभान्वित हो रहे हैं।

डा. रजनीकांत मूलतः राहुरी (जि. अहमदनगर) के रहने वाले हैं, जहां उनका जन्म १९३४ में हुआ। उनके माता-पिता दोनों ही प्राथमिक शाला के शिक्षक थे। १९४६ में, जब रजनीकांत बारह बरस के थे, राहुरी में भयंकर बाढ़ आयी। लोगों की भ्रांत कल्पनाओं, अंधविश्वासों और दवा-दारू के अभाव के कारण बहुत जानें गयीं। तभी से रजनीकांत में यह प्रेरणा जागी कि इन लोगों के लिए मुझे कुछ करना चाहिये और उन्होंने निश्चय किया कि डाक्टर बनकर इनकी सेवा करूंगा।

सन १९६० में रजनीकांत ने वेल्लोर (तमिलनाडु) के विख्यात क्रिश्चियन मेडिकल कालेज से एम. बी., बी. एस. पास किया। कालेज में ही मेबल से उनका परिचय हुआ था। दोनों ने ही उस वर्ष की परीक्षा में स्वर्ण-पदक जीता था। उसी वर्ष वे दांपत्य के सूत्र में बंधे। विवाह से पहले ही दोनों ने निश्चय कर लिया था कि ग्रामीण भारत की सेवा में उन्हें जीवन-भर एक दूसरे की मदद करनी है।

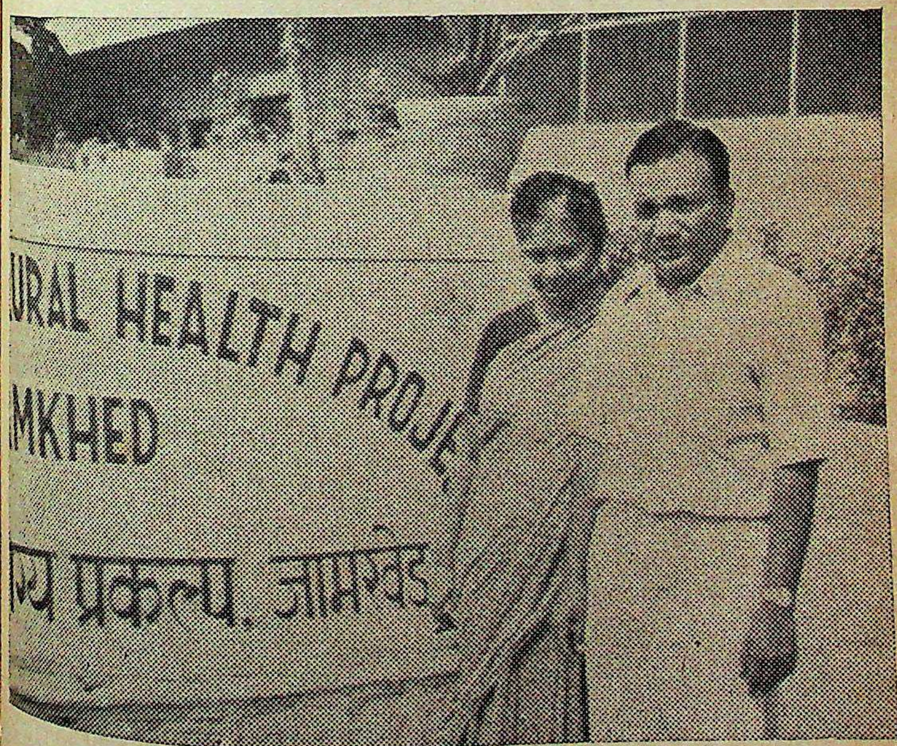
सन १९६० से १९६५ तक आरोळे-दंपति ने अहमदनगर जिले के वडाला वहिरोबा में मिशन अस्पताल में काम किया।

...त में उत्तम डाक्टरी सेवा के लिए ...६५ में उन्हें 'पाल हैरिसन पारितोषिक' ...ा गया। अगले पांच साल (१९६५-...) ये दंपति अमरीका में रहे। वहां ...होंने शल्य-चिकित्सा का विशेष प्रशिक्षण ...या और 'मास्टर ऑफ पब्लिक हेल्थ' ...ा कोर्स भी पूरा किया।

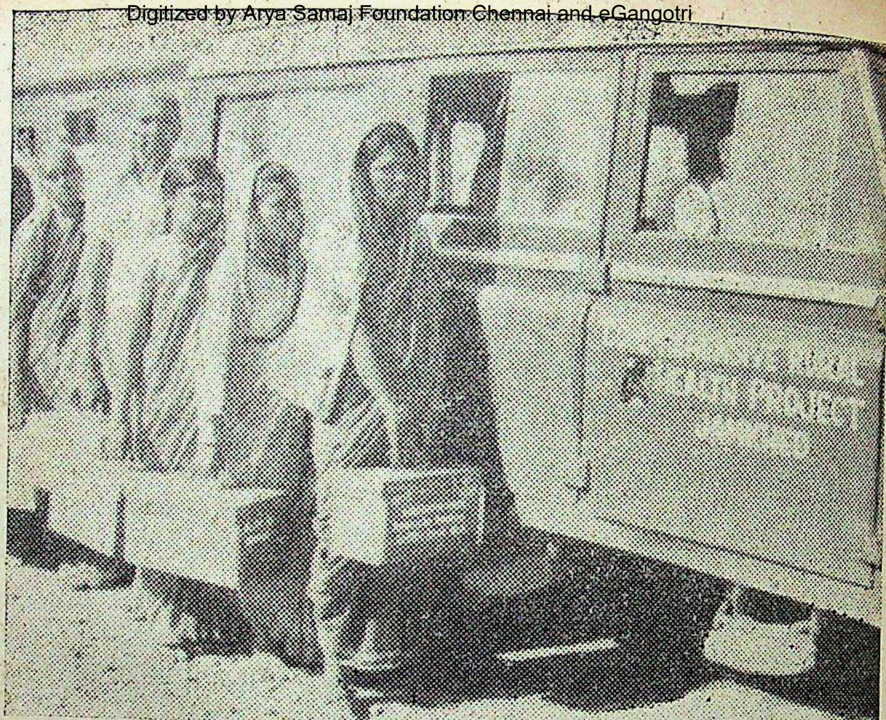
...अमरीका में रहते हुए ही उन्होंने अह-...नगर और जामखेड के नेताओं से पत्र-...व्यवहार करके जामखेड में काम शुरू करने ...ा निश्चय कर लिया था। सन १९७१ में ...जामखेड आये। वहां के पशु-चिकित्सा-लय के एक कमरे में उन्होंने अपना दवाखाना शुरू किया। रोगियों को पास की धर्मशाला में ठहराया जाता।

अपने काम में इन डाक्टर पति-पत्नी की भावनापूर्ण तन्मयता देखकर सर्वश्री बंसीलाल कोठारी, मिश्रीलाल कोठारी और चंदूलाल कोठारी ने उन्हें नया दवाखाना शुरू करने के लिए मुफ्त में जमीन दी और इमारत बनाने के लिए भी मदद दी।

आज उस जमीन पर कन्सल्टिंग-रूम, एक्स-रे-रूम, आपरेशन थिएटर, दफ्तर, अलग-अलग किस्म के तीन वार्डों से युक्त



डा. रजनीकान्त तथा श्रीमती डा. मेबल आरोळे।



कार्यकर्ता-दल सेवाकार्य के लिए निकल रहा है।

अस्पताल शान से खड़ा है। जनता में से अंधश्रद्धा दूर करने और विविध रोगों के बारे में सही जानकारी देने वाले तरह-तरह के पोस्टर अस्पताल में लगे हुए हैं।

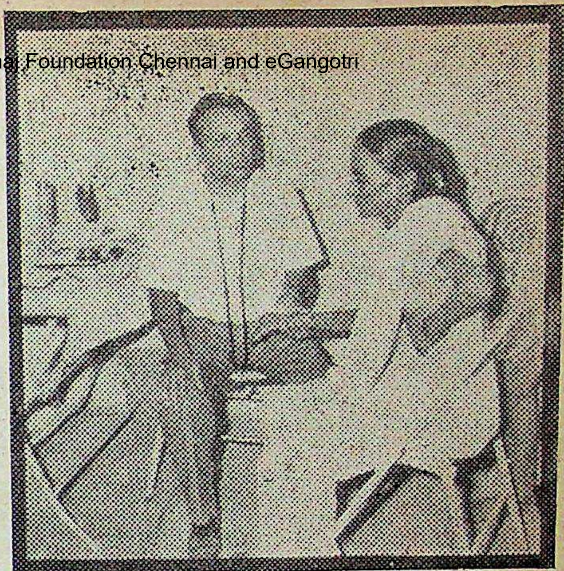
ग्रामवासियों के स्वास्थ्य का दारोमदार है गांव के वातावरण, भोजन, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर। इसका पूरा एहसास इन डाक्टर पति-पत्नी को था। इसलिए डाक्टरी सेवा के साथ उन्होंने परिवार-कल्याण, बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन, प्रौढ़शिक्षा तथा जनता के आर्थिक विकास के लिए विविध कार्यक्रम आरंभ किये। साथ ही शुरू हुए कृषि-विकास, जमीन को हमसार बनाने, नलकूप खोदने, पेड़ रोपने, पशु-संवर्धन और नये मकान बांधने के कार्यक्रम।

गांवों में स्वास्थ्यरक्षा का काम संभालने के लिए आरोळे-दंपति ने १५० महिलाओं को प्रशिक्षित किया है। इसी तरह खेती-विषयक कामों के लिए पुरुष कार्यकर्ता भी तैयार किये हैं। स्वास्थ्य-सेविका के प्रशिक्षण के लिए देहात की मध्यवय की विवाहित और सबकी आदरपात्र महिलाएं चुनी जाती हैं। इन्हें प्रति शनिवार को प्रशिक्षण दिया जाता है। स्त्रियों में आत्मगौरव जगाने और उन्हें समाज में अपना सही

ात समझाने का काम भी इस ा के जरिये हो रहा है। जब मैं को देखने गया, इन महिला कार्य- ओं को स्त्री-विषयक कायदे-कानूनों विषय दिया जा रहा था।

वासियों को शिशु-संगोपन एवं -कल्याण की जानकारी देना, दाई काम करना, प्राथमिक उपचार करना, से पांच वर्ष तक की उम्र के बच्चों के पूरक भोजन की व्यवस्था करने में सह- ता, बच्चों का वजन नियमित रूप से करके रखना ये काम स्वास्थ्य-सेविकाएं ी हैं। इनके जरिये साक्षरता-कक्षाएं स्त्रियों के लिए सिलाई-कक्षाएं भी ी जाती हैं।

ने पाया कि सभी कार्यकर्ताओं को के प्रति, अपने काम और इन डाक्टर त्नी के प्रति बहुत प्रेम है। एक कार्य- ने मुझसे कहा—'प्रकल्प शुरू होने से यहां क्या था? निरा बबूल-भरा मैदान। मैं इमारती काम की देख- करने वाला मुकादम बनकर यहां था। डाक्टर साहब और डाक्टर िबा ने मुझे खेती संबंधी नयी-नयी का ज्ञान दिया। अब मैं प्रकल्प की विषयक योजनाओं के सुपरवाइजर में काम कर रहा हूं। सचमुच डाक्टर और डाक्टर साहिबा ने निरे ढोर वालों में से योग्य कार्यकर्ता तैयार दिये हैं। यहां के अनुभव के बूते पर को दूसरी जगहों पर अच्छी-अच्छी

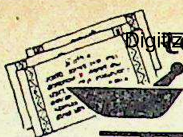


रोगी की जांच करते हुए डा. रजनीकान्त।

नौकरियां मिल रही हैं।'

प्रकल्प के काम का शुभ परिणाम जाम-खेड के परिसर में देखने को मिलता है। अब तक वहां छह हजार पुरुषों और एक हजार स्त्रियों के संतति-नियमन के आप-रेशन हो चुके हैं। इस इलाके में जन्मदर हजार पीछे ४० से घटकर हजार पीछे २० हो गयी है। शिशुमृत्यु-दर जो हजार पीछे २०० थी, अब हजार पीछे ४० पर उतर आयी है। १,२०० कुष्ठरोगियों का इलाज इस प्रकल्प के अंतर्गत किया गया है। उनमें से ४०० रोगी स्वस्थ हो गये हैं। इनके पुनर्वास के लिए प्रकल्प ने मदद दी है।

इस सारी सफलता का श्रेय स्थानीय नेताओं और कार्यकर्ताओं को देते हुए डा. रजनीकांत आरोळे ने मुझसे कहा—'कोठारी-



...ार ने हमारी बहुत ही सहायता की। ...र्ताओं और नागरिकों ने भी बड़ी ...की। उनमें कभी आपस में मतभेद ...संघर्ष नहीं होता। "सोसायटी फॉर ...हेंसिव रूरल हेल्थ प्राजेक्ट" एक ...है; पर उसके सलाहकार-मंडल ने ...के काम में कभी किसी प्रकार का ...क्षेप नहीं किया। सभी से मुझे सर्वथा ...स्वार्थ सहायता मिली है। मैगसेसे पुर-...र मिलना वास्तव में इन सब लोगों ...सम्मान है।'

...सी बात नहीं कि कतिपय समाज-...ों ने उनके काम में अडंगे न डाले हों। ...डा. आरोळे उन कटु अनुभवों की चर्चा ...जाते हैं। अंत भला सो भला, ऐसा ...मानते हैं।

...प्रकल्प के कामों पर हर साल २५ लाख ...का खर्च आता है। स्थानीय और ...की जनता से आर्थिक सहायता प्रकल्प ...मिलती है। विविध युवक संघटन भी ...करते हैं। विश्व स्वास्थ्य संघटन, ...सेफ, जर्मन सेंट्रल एजेंसी, आक्सफाम ...कासा आदि संस्थाओं से भी दान मिले ...मैगसेसे पुरस्कार की २० हजार डालर ...राशि भी प्रकल्प के ही काम आयेगी। ...परंतु आरोळे-दंपति का सरकार संबंधी ...अनुभव बहुत उत्साहवर्धक नहीं है। भारत ...सरकार और महाराष्ट्र सरकार ने आज तक ...प्रकल्प को अनुदान देने से लगातार इन्कार किया है। यही क्यों, प्रकल्प को मिले दानों पर सरकार ने टैक्स वसूल किया है! मैगसेसे पुरस्कार मिलने पर विभिन्न मंत्रियों से इस आशय के बधाई-पत्र तो आये कि आपका काम अभिनंदनीय है; परंतु प्रकल्प को मिलने वाली दान की रकमों को करमुक्त करने के मामले में कुछ भी नहीं किया गया। क्या सरकार की यह नीति उचित है? डा. आरोळे कहते हैं कि और कुछ नहीं तो सरकार हमें विविध रोगों की रोकथाम के टीके ही मुफ्त में दे दिया करे।

डाक्टर-दंपति के कन्सल्टिंग रूम में मराठी की एक कविता फ्रेम मढ़कर टांगी हुई दिख पड़ी। उस कविता का ही मूर्तरूप है उनका 'ग्रामीण आरोग्य प्रकल्प'। कविता का अनुवाद यों है:

प्रेम का सच्चा पुजारी तो साधक होता है
वह सेवा का मौका ढूंढ़ा करता है
उसकी सब पर आस्था होती है।
सच्ची प्रेम-भावना मनुष्य को
धीरोदात्त बनाती है,
सहनशील बनाती है।
सच्चे मन से प्रेम करने वाला मनुष्य
बहुत समझ-भरा होता है,
सबको समझ पाता है।
प्रेम में देने की भावना होती है।
प्रेम करने वाला सिर्फ काम नहीं करता,
वह सेवा करता है। प्रेम की खातिर
मनुष्य प्राणों की भी परवाह नहीं करता।



दूरी और सामीप्य

- वीरेन्द्रकुमार जैन

हमारे बीच
सिर्फ एक मील की दूरी है :
उस छोर, 'सन्ता-मेरिया' के अपने कमरे में
तुम सोयी हो अपनी शैया में अकेली :
इस छोर 'विले-वर्जीनिया' के
अपने शयन-कक्ष में
मैं जाग रहा हूं
अनेक आस-पास सोयों के बीच
तुमसे भी अधिक अकेला . . . !

और मझरात के इस निस्तब्ध प्रहर में
यह एक मील की दूरी अनंत हो उठी है . . . !
और तुम्हारा वह शैया-शयित अंतिम एकाकीपन
हो उठा है कितना उजागर,
मेरी आत्मा के भीतर,
अंतरिक्षों के ऊपर।

क्या तुम सचमुच ही इतनी अकेली हो
कभी भी, कहीं भी,
जितनी इस पल लग रही हो ?
और मैं . . . ? इससे अधिक अकेला
इससे पहले मैं कभी नहीं हुआ ...

... और अकस्मात्
अभेद्यता का एक शीशा
हमारे बीच से तड़तड़ाकर टूट गया !
देशकालातीत अगोचर में से

औचक ही सुनाई पड़ा :
'कभी कहीं भी तुम अकेली नहीं हो, ओ आत्मन् !
कभी कहीं भी मैं अकेला नहीं हूं, ओ मेरी अंतरतम !
यह एकाकीपन है, निरा देशकाल-जनित एक भ्रम !'
सच ही, देखो न,
तुम्हारे कमरे में फैली नाइट-लैम्प की
बहुत महीन हल्की रोशनी की
नीली उंगलियों से
मैं तुम्हें सहला रहा हूं ...!

हमारे बीच फैले इस शून्य की
अगाधता में
मैं तुम्हें अपने भीतर समाये ले रहा हूं।
दूर-पास अलक्ष्य में फैले
झाड़ों और वनस्पतियों की
उच्छ्वसित रात्रिगंध में
मैं तुम्हारी सांसों को महसूस रहा हूं।

बेशुमार दूरियों को सामीप्य में अपसारित करते
इन समस्त लोकगामी बिजली के तारों की
अविरल झंकृतियों में
मेरा रक्त,
तुम्हारी रक्त-वाहिनियों में अभिसरित हो रहा है.....!

इस सन्नाटे के प्रसार में
विकल भटकती चली जा रही मेरी चेतना
तुम्हारे ओढ़े लिहाफ की ऊष्मा हो उठी है !
मीलों की दूरियों में आर-पार चली गयीं
इन चमचमाती रेल की पटरियों
के ठंडे फौलाद में
मेरी बांहें तुम्हें अंतिम आलिंगन में
कवच-बद्ध किये ले रही हैं !

कहीं दूर किसी झाड़ की कोटर में
सुग-बुगाकर एकाएक बोल उठे पंछी-मिथुन
की विरल विह्वल ध्वनि में होकर
मैं तुम्हारे शयित अंगांगों में
निबिड गुंफित हो गया हूं !

मेरे चित्त की चिंताकुल कुंडलिनी
एकाएक जागकर फनकार उठी :
मध्यरात्रि के इस घन निबिड अंधकार में
सरसराती हुई
वह तुम्हारे मुखड़े के आस-पास
तुम्हारे तकिये पर छाये विपुल केशपाशों में
डूबकर सुगंध-मूर्छित हो गयी है !
और मैं अनायास
अपनी सुषुम्ना नाडी की सुखशैया में
आत्म-संविलीन हो गया हूं !

क्षितिज के नीड़ में अगोचर बैठे
गरुड की आंख से
मैं तुम्हें अपने शरीर से भी
समीपतर के सामीप्य में
देख रहा हूं, महसूस रहा हूं।

रात की इस अथाह निस्तब्ध शांति में
दूर के समुद्र के
अतल में पड़े शंख के भीतर
गुंजित
तुम्हारी आत्मा के अनहद नाद में
मैं निर्वाण पा गया हूं !

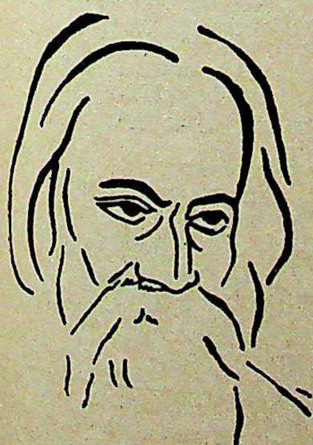


गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विले पार्ले (प.), बंबई-५६

रवीन्द्र और सूरदास

रामचंद्र राय

साहित्यकार या कलाकार सौंदर्य का द्रष्टा ही नहीं स्रष्टा भी होता है। उसकी दृष्टि प्रकृति के कण-कण में व्याप्त होती है और प्रकृति का सौंदर्य ही उसकी रचनाओं का उपादान होता है। कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर सौंदर्य के उपासक होने के साथ-साथ सौंदर्य के साधक भी रहे हैं। उन्होंने 'सूरदासेर प्रार्थना' (सूरदास की प्रार्थना) सौंदर्य को प्रधान आंगिक मानकर रची है। 'सौंदर्य के प्रति आंख का जो स्वाभाविक आकर्षण होता है, उसी के समर्थन या



कविवर रवीन्द्रनाथ

जयगान का लक्ष्य उद्धृत कविता में है।' (रवीन्द्र-जीवनी, प्रथम खंड, १८६१-१९०१, प्रभात कुमार मुखोपाध्याय)

रवीन्द्रनाथ के संपूर्ण साहित्य में महाकवि सूरदास पर यही एक कविता है, जो 'मानसी' काव्यग्रंथ में मिलती है। 'मानसी' का रचना-काल १८९६ ई. है और 'सूरदासेर प्रार्थना' जिसे बाद में 'रवीन्द्र रचनावली' (विश्वभारती प्रकाशन) के भाग-२ में सम्मिलित किया गया, १८८८ ई. में रची गयी थी।

'मानसी' की 'सूचना' में कवि ने कहा है :

'१८८७ ई. में परिवार सहित गाजीपुर में रहने की इच्छा प्रकट की। कारण, सुना था, वहां बहुत-से गुलाब के पौधे हैं, इसी लिए वहां कुछ दिन रहकर गुलाब के सौंदर्य का पान करूं।

'मैंने अपने संगीत में कहा है—मैं सुदूर का प्यासा हूं। परिचित संसार से यहां मैं उस दूरत्व के द्वारा वेष्टित हुआ, अभ्यास के स्थूल हस्तावलेप दूर होने से मेरे मनोराज्य में स्वच्छंदता आयी। इस परिस्थिति में




काव्य-रचना पर नूतन पर्व ने प्रकाश ।मेरी कल्पना के ऊपर इस नूतन दर्शन का प्रभाव बार-बार दिखाई है।'

सूरदासेर प्रार्थना" प्रथम बार १८९६ काव्य-ग्रंथावली में सम्मिलित की तब इसका नामकरण "आँखिर ाध" किया गया था। कारण, प्रकृति के ...में संन्यासी ने जगत् के रूप-रस ...निर्वासित कर रखा था, वह प्रकृति ...दन की कथा नहीं जानता था और ...ने सुंदर को रूप के मध्य देखा यही ...आंखों का अपराध है।' (रवीन्द्र-...ी, प्रथम खंड, प्रभात कुमार मुखो-...ाय, १८६१-१९०१)

कविकुलगुरु रवीन्द्रनाथ ने "सूर-...र प्रार्थना" नामक एक लंबी कविता ...ी है। दृश्य उस समय का है, जब एक ...ी पर आसक्त हो चुकने के बाद सूरदास ...आत्मज्ञान हुआ था। हाथों में छुरी ...र वे उस रमणी से अपनी आंखों को ...देने का अनुरोध कर रहे हैं।' (सूर ...्य, डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी ...रत्नाकर लिमिटेड, बंबई)

कविता के प्रथम चरण में ही सूरदास ...ी को संबोधित करते हैं :

ढाको ढाको मुख टानिया वसन
आमि कवि सूरदास।
(ढंको ढंको मुख खींचकर वसन
मैं कवि सूरदास।)

सूरदास सौंदर्य को पवित्र, निर्मल, देवी, सती, लक्ष्मी और शक्ति कहते हैं और अपने को अत्यंत कुत्सित, दीन, अधम, नीच और पंकिल समझते हैं। वे देवी से प्रार्थना करते हैं हृदय में भक्ति का संचार करने की :

पवित्र तुमि निर्मल तुमि
तुमि देवी, तुमि सती—
कुत्सित दीन अधम पामर
पंकिल आमि अति।
तुमिइ लक्ष्मी तुमिइ शक्ति
हृदय आमार पाठाओ भक्ति—
पापेर तिमिर पुड़े याय ज्वले
कोथा से पुण्यज्योति।

जिस प्रकार गंगा का अवतरण पृथ्वी पर पाप को प्रक्षालित करने के लिए हुआ, उसी प्रकार तुम सौंदर्य रूपी आनंदधारा से मेरे पाप को निर्मल कर दो :

देवेर करुणा मानवी आकारे
आनन्दधारा विश्वमाझारे,
पतितपावनी गंगा येमन
एलेन पापीर काजे
तोमार चरित रबे निर्मल
तोमार धर्म रबे उज्ज्वल
आमार पाप करि दाओ लीन
तोमार पुण्यमाझे।

सूरदास पश्चात्ताप करते हैं कि पापी नेत्रों ने तुम्हारे सौंदर्य पर मोहित होकर, कामांधता में तुम्हारा मुखपान करने की चेष्टा की थी। क्या तुम्हें उस समय अपने विमल हृदय की आरसी में इसकी सूचना मिली थी?

जान कि आमि ए पाप-आँखि मेलि

तोमारे देखेछि चेये
लियेछिल मोर विभोर वासना
ओर मुखपाने चेये,
तुमि कि तखन पेयेछ जानिते
विमल हृदय आरशिखानिते।

सूरदास सौंदर्यरूपी देवी को यह भी ... देते हैं कि प्रभात की रश्मि के सदृश ... दीप्त वाली छुरी लाया हूं। तुम ... मुझे बींध दो, और मेरी दोनों वासना- ... आंखें निकाल दो :

आनियाछि छूरि तीक्षण दीप्त,
प्रभात रश्मि सम,
ताओ बिंधे दाओ वासना-सघन
ए कालो नयन मम।
ए आँखि आमार शरीरे तो नाइ
फुटेछे मर्मतले,
निर्वाणहीन अंगारसम
निशिदिन शुधु ज्वले।
सेथा हते तारे उपाड़िया लओ
ज्वालामय दुटी चोखे,
तोमार लागिया तियाष याहार
से आँखि तोमारि होक।

अंत में सौंदर्यरूपी देवी से वे कहते हैं— ... फिर वही हो देवि, विमुख न होओ, ... दोष ही क्या है ? हृदयाकाश में जगी ... दो न, अपनी देहहीन ज्योति। मेरी ... -मलिन आंखों का कलंक उस पर ... नहीं डालेगा, अंध-हृदय चिर दिन तक नील-उत्पल पाता रहेगा।

तबे ताइ होक, होयो ना विमुख
देवी, ताहे की वा क्षति
हृदय आकाशे थाक ना जागिया
देहहीन तव ज्योति।
वासना-मलिन आँखि-कलंक
छाया फेलिबे ना ताय,
आँधार हृदय नील-उत्पल
चिरदिन रबे पाय।

और तब तुममें देखूंगा मैं अपने देवता को, अपने हरि को। तुम्हारे आलोक में जगा रहूंगा इस अनंत विभावरी रात्रि में।

तोमाते हेरिब आमाय देवता,
हेरिब आमार हरि
तोमार आलोके जागिया रहिब
अनंत विभावरी।

'सूरदासेर प्रार्थना' में रवीन्द्रनाथ के सूरदास 'सूरसागर' अथवा 'भ्रमरगीत' के रचयिता कृष्ण-भक्त सूरदास नहीं हैं। अपितु उससे पूर्व के वह 'बिल्वमंगल' हैं जो स्वभावगत मानवीय कमजोरियों के शिकार हैं और अंत में आत्मज्ञान होने पर परम भक्त बन जाते हैं। रवीन्द्रनाथ ने उनकी उन कमजोरियों को अपनी कविता द्वारा सात्त्विक रूप प्रदान करके एक नयी दृष्टि देने का प्रयास किया है।

—कुमार सदन, रतनपल्ली,
शांतिनिकेतन-७३१२३५



अमर प्रेमिका के नाम



महान स्वरस्रष्टा लुडविग फॉन बीठोफेन की हृदय-वीणा के स्वर तीन प्रेम-पत्रों में ......

अनुवादक : जगन्नाथ विद्यालंकार

यह सोचकर आश्चर्य होता है कि लुडविग फॉन बीठोफ़ेन जैसे सृजनशील संगीतकार को लंबे पत्र लिखने का समय कैसे मिल जाता था! उसका तो सारा समय सिम्फ-नियां, वायलिन और पियानो के कन्सर्ट और आपेरा के लिए धुनें रचने में ही चला जाता होगा। फिर भी बीठोफेन एकाकीपन, निराशा, प्रेम आदि आंतरिक भावनाओं को कागज पर उतारने के लिए समय निकाल ही लेता था और अपने पत्रों में उसने अपनी विक्षुब्ध महासागर सरीखी आत्मा के समस्त संवेगों को उड़ेल दिया है।

बीठोफेन का संगीत अत्यंत अनुशासन-बद्ध था, जबकि इसके विपरीत अपने पत्रों में वह कुछ बहककर अपने दिल के राज खोल बैठता था। दु:ख और संतापों ने उसके दिल को तोड़ा नहीं था, बल्कि ये किसी सिम्फनी की तरह उसके पत्रों में झरने के आकार में फूट पड़ते थे। यहां उन्हीं में से कुछ पत्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

'अमर प्रेमिका' को संबोधित ये पत्र वस्तुत: किसे लक्ष्य करके लिखे गये थे, इसका तो केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। वह 'अमर प्रेमिका' इन तीनों में से कोई एक थी—१. काउंटेस ग्युइलिएटा ग्यूसियार्डी (जिसे बीठोफेन ने 'मून लाइट सोनाटा' अर्पित की थी), २. रिश्ते की एक बहन तेरेस फा न ब्रन्स्विक, ३. बेटीना ब्रेन्टानो फॉन अर्निम। कई जीवनीकारों का कहना है, बीठोफेन की दर्जन-भर प्रेमिकाएं और थीं। मगर 'अमर प्रेमिका' पद की अधिकारिणी काउंटेस ग्युसियार्डी ही थी, ऐसा माना जाता है। बीठोफेन के अल्लोल-कल्लोल रूमानी जीवन में काउंटेस एक प्रेरणादीप की तरह उसके हृदय में

जलती रही।

बीठोफेन प्रेमपूर्ण विवाह में आस्था रखता था और चाहता था कि उसकी कोई संगिनी हो। किंतु उसके उद्दाम-उन्मत्त स्वभाव, जिद्दीपन, गंवारू आदतों और ता के कारण कोई नारी उससे विवाह के लिए तैयार न हुई। इसका आघात इन में भी स्पष्टतः मुखर हुआ है।

सबसे मार्मिक बात यह है कि ये पत्र लिखे तो गये, मगर कभी रवाना नहीं किये गये बीठोफेन की मृत्यु के बाद उसके कैश-बाक्स में रखे हुए मिले।

६ जुलाई के प्रातः (१८०१)

री अप्सरा, मेरी सर्वस्व, मेरी आत्मा—आज केवल थोड़े-से शब्द और वह भी तुम्हारी पेंसिल से—कल तक मेरे ठौर-ठिकाने का कुछ निश्चय नहीं है—व्यर्थ ही समय की बादी! मेरे मन की व्यथा कहने को विवश है—क्या हमारा प्रेम आत्म-बलिदान के कभी स्थायी बना रह सकता है—सर्वस्व की मांग किये बिना? क्या तुम मेरी इस ला को बदल सकती हो कि तुम संपूर्ण रूप से मेरी नहीं हो और मैं संपूर्ण रूप से तुम्हारा हूं?

हे भगवान!.....प्रकृति की सुंदरता देखो और उससे अपने आपको आनंदित करो। सर्वस्व-अर्पण की मांग करता है—यह उचित ही है—यह सर्वस्व-अर्पण की मांग जितनी है उतनी तुमसे भी। यदि हम पूर्णतः एक हो जायें तो मेरी तरह तुम्हारी भी व्यथा हो जायेगी। मेरी कल की यात्रा बहुत खतरनाक थी। मैं सुबह के चार बजे से पहले नहीं पहुंच पाया था। घोड़ों की कमी के कारण इस जगह पहुंचने के लिए हमें गाड़ी रास्ता बदल देना पड़ा। परंतु यह सब कितना भयंकर था!

मुझे पहले ही चेतावनी दे दी गयी थी कि मैं रात में—जो जंगल को और भी ज्यादा नाक बना देती है—यात्रा न करूं। लेकिन मुझे यह यात्रा करने की बड़ी उत्सुकता थी। गलती की। मेरी जर्जर घोड़ागाड़ी कीचड़-भरी सड़क पर टूट ही गयी और मैं सड़क जा पड़ा। इस्टरहेजी—जो अपने आठ घोड़ों वाली गाड़ी पर था जबकि मेरे पास चार थे—इसी सड़क पर यात्रा कर रहा था, उसकी भी यही दशा हुई। तो भी इस यात्रा मुझे कुछ आनंद ही मिला, जैसा कि हमेशा होता है, जब मैं मुसीबतों पर सफलता प्राप्त लेता हूं।

अब बाह्य जगत की बातों से एकाएक आंतरिक जगत में संक्रमण। निश्चय ही हम शीघ्र एक दूसरे से मिलेंगे। यों भी, पिछले दिनों मैंने अपने ही जीवन के बारे में जो देखी-सोची हैं उन्हें मैं लिखकर नहीं बता सकता—अगर हमारे हृदय सदा ही एक के निकट होते तो मैं ये बातें देख-सोच भी न पाता। मेरा हृदय तुमसे बहुत कुछ

...को छलछला रहा है—अह ! एक क्षण ऐसा भी आया जब मैंने अनुभव किया कि ...एकदम शक्तिहीन-सामर्थ्यहीन है—खुश रहो—मेरी सच्ची, मेरी एकमात्र संपदा, ...सर्वस्व बनी रहो ! जैसे कि मैं सदा-सदा के लिए तुम्हारा हूं । भगवान अवश्य ही ...वह सकून देगा जो हमारे लिए सबसे हितकर है ।

तुम्हारा वफादार—लुडविग

०

सायंकाल, सोमवार, ६ जुलाई

...री प्रियतमा ! तुम बहुत कष्ट पा रही हो । मुझे अभी-अभी पता चला है कि मुझे ...बड़े सवेरे पत्र डाक में डाल देने चाहिये, क्योंकि सोमवार और बृहस्पतिवार ये ही दो ...न हैं जब डाकगाड़ी यहां से क..... को जाती है—तुम संतप्त हो—आह ! जहां कहीं भी मैं ...हीं तुम भी हो । मैं ऐसी आपसी व्यवस्था कर रहा हूं कि मैं जी सकूं, और तुम्हारे ...जी सकूं ! जीवन भी क्या है ! ऐसा जीवन !!!! ऐसा जीवन !!!! तुम्हारे ...ना-दुनिया की नेकनीयती यहां, वहां, सब कहीं मेरा पीछा कर रही है । और मैं जिस ...च हूं उस योग्य होने के लिए, थोड़ा-बहुत प्रयास कर रहा हूं ।

मानव का मानव के समक्ष दैन्य—मुझे सालता है । जब मैं अपने को ब्रह्मांड से ...रखकर देखता हूं, तब क्या हूं मैं, और वह भी क्या है जिसे हम सबसे महान कहते हैं !—...भी—मनुष्य की दिव्यता इसी में तो है । यह सोचकर मुझे रुलाई आ जाती है कि मेरी ...पहली चिट्ठी तुम तक शनिवार से पहले नहीं पहुंच पायेगी । जितना सारा प्यार तुम ...मुझे करती हो उससे भी ज्यादा प्यार मैं तुम्हें करता हूं—परंतु अपनी भावनाएं तुम मुझसे ...कभी छिपाना ना । अच्छा अलविदा ! अब मैं नहाकर सोने जाऊंगा । ओह भगवान ! ...तनी पास उतनी ही दूर ! क्या सचमुच हमारा प्यार एक स्वर्गिक भवन नहीं है—आकाश ...के गुंबद की तरह अचल !

०

सप्रेम प्रातः-अभिवादन, ७ जुलाई

...लांकि मैं अभी बिस्तर में ही हूं, मेरी अमर प्रेमिका !.....मेरा मन तुम्हारे पास पहुंच ...जाता है, कभी आनंद के साथ, कभी उदासी के साथ, यह जानने की प्रतीक्षा में कि ...भाग्य हमारी सुनेगा भी या नहीं । मैं पूर्णतया केवल तुम्हारे साथ जी सकता हूं, या ...कुल जी ही नहीं सकता—हां, मैंने संकल्प कर लिया है कि मैं तब तक तुमसे दूर भटकता ...रहूंगा, जब तक उड़कर तुम्हारी बांहों में न समा सकूं और कह न सकूं कि मैं अपने घर ...आ गया हूं, मेरी आत्मा को तुम अपने में लपेटकर आत्माओं के देश में भेज दो । हां, ...र्भाग्य से यह बात ऐसी ही है—तुम अधिक दृढ़निश्चयी हो, क्योंकि तुम मेरी वफादारी को



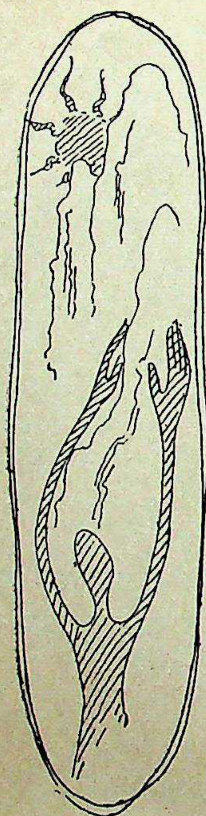
जानती हो–अब मेरा हृदय सिवा तुम्हारे किसी का नहीं होगा–किसी का नहीं–कभी नहीं । हे भगवान ! यह क्यों जरूरी है कि जिससे इतना प्यार किया जाये उसी का बिछोह सहना हो! और अब व .....(वियेना) में मेरा जीवन नितांत दयनीय हो गया है–तुम्हारे प्रेम ने मुझे एक साथ ही सबसे सुखी और सबसे दुःखी आदमी बना डाला है। इस उम्र में मुझे जरूरत है शांत और स्थिर जीवन की–क्या वह संभव है हमारी वर्तमान अवस्था में ? मेरी अप्सरा, अभी-अभी मुझे पता चला है डाकगाड़ी यहां से हर रोज जाती है–सो मुझे फौरन यह चिट्ठी समाप्त करनी होगी, ताकि यह तुम्हें फौरन मिल जाये। शांत रहो, केवल शांति से अपने अस्तित्व पर विचार करने से ही हम साथ जीने की अपनी मंजिल तक पहुंच सकते हैं–शांत रहो–मुझे प्यार करती रहो–आज–कल–कितनी आंसूपूर्ण है तुम्हारे लिए मेरी लालसा–तुम–तुम–तुम–मेरी प्राण–मेरी सर्वस्व–अलविदा–ओह, मुझसे प्यार करती रहना– अपने प्रेमी ल. (लुडविग) के वफादार हृदय को कभी गलत न समझना।

मैं सदा तुम्हारा
तुम सदा मेरी
हम सदा एक दूसरे के।

०

परंतु ग्युइलिएटा ने बीठोफेन को ठुकराकर काउंट गैलेनबर्ग से शादी कर ली। युवा संगीत-स्रष्टा के लिए घटना यह वज्रपात सिद्ध हुई। बीठोफेन आजीवन अविवाहित रहा। ये पत्र लिखने के पांच साल बाद १८०६ में 'चतुर्थ सिम्फनी' रचने के दौरान, उसने अपने अंतरंग मित्र फ्रांज फान ब्रन्सविक की बहन काउंटेस तेरेस से सगाई कर ली। जैसा कि सर जार्ज ग्रोव ने लिखा है–'प्रेम-प्रकरण बीठोफेन के जीवन में बहुत-से हुए थे, मगर कोई चिरस्थायी न हुआ, और निश्चय ही पहले कभी सगाई तक आगे नहीं बढ़ा था। चतुर्थ सिम्फनी लिखते समय उसका हृदय इस नये आनंद से उच्छ्वसित रहा होगा। वह अपनी इस पहली विजय पर उसका स्तुतिगीत है।'





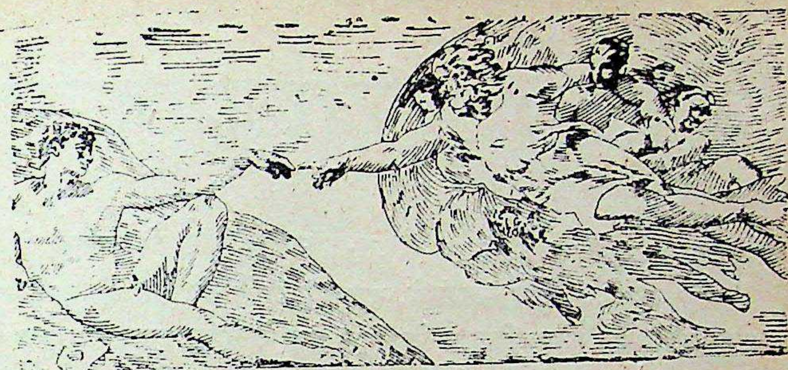
सुबह होने पर

पहाड़ियों की परछाइयों की तहें
मेरी आत्मा पर झुकती जा रही हैं
मेरी चेतना की आंखों में
बारीक रेत डाल रही हैं !
काश्मीर के बाग की दूब पर लेटी मेरी रूह
आंखें मलती है
बंद आंखों में भी पहाड़ियों की परछाइं
साथ-साथ चलती है
मेरी आंखों के पपोटे लाल हैं
गुलाब की पत्तियों को जैसे किसी ने
आंसुओं से पोंछा हो
दूब के नीचे आये हुए कीड़े
दूब के सिर उठाते ही कुलबुलाने लगे हैं
जैसे मनुष्य इस समय सुबह होने पर
कुलबुला रहे हैं।
मैं उठ खड़ी हुई हूं
कुछ टटोल रही हूं
जैसे कि आज एक दिन काटने के लिए
मनुष्य की जिंदगी कुछ टटोल रही है
हां, एक दिन
पर उसका भी क्या भरोसा है !

—पद्मा सचदेव

—मे फ्लावर, एम. एल. डहाणुकर मार्ग,
बंबई—२६





चित्र :
...म की सृष्टि
...इकलेंजेलो)

सुनो, आदम की संतान !

...लमुद (यहूदी धर्मग्रंथ) में यह सवाल उठाया गया है—'परमात्मा ने एक ही आदम क्यों रचा ? आदमों की जमात क्यों नहीं रच दी ?'

काफी चर्चा के बाद इसके कई समाधान वहां प्रस्तुत किये गये हैं :

१. परमात्मा ने एक ही आदम इसलिए रचा कि वह मनुष्यों को यह दरसाना चाहता ...कि कोई भी मनुष्य अपने आपमें पूरी दुनिया है। इसलिए जो भी किसी एक आदमी की ...त्या करता है, वह सबके सब आदमियों की हत्या करने के बराबर अपराधी है; और जो ...किसी एक आदमी की प्राणरक्षा करता है, वह सबके सब आदमियों की प्राणरक्षा करने ...बराबर उदात्त है।

२. परमात्मा ने एक ही आदम इसलिए रचा कि लोग अपने को दूसरों से श्रेष्ठ न ...ना सकें या अपने वंश का घमंड न करें। क्योंकि अगर परमात्मा ने अनेक आदम रचे ...ते तो निश्चय ही कुछ लोग कहने लगते कि हमारा आदम तुम्हारे आदम से श्रेष्ठ था।

३. परमात्मा ने सोचा कि अगर मैं एक से अधिक आदम रचूंगा तो काफिर शायद ...ोचें कि एक से अधिक परमात्मा हैं; सो अपना एकत्त्व प्रमाणित करने के लिए परमात्मा ...े एक ही आदम रचा।

४. और परमात्मा मनुष्यों को अनेकता का सौंदर्य समझाना चाहता था; क्योंकि ...ारे मनुष्य हालांकि एक ही आदम की संतान हैं, फिर भी कोई भी दो आदमी हूबहू एक-से ...हीं होते। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपनी विलक्षणता और अखंडता की रक्षा करनी ...ाहिये और प्रत्येक मनुष्य को ऐसा सोचना चाहिये—'परमात्मा ने दुनिया मेरे भीतर और ...ेरे खातिर बनायी है, सो मुझे किसी तुच्छ कारण से अथवा किसी मूर्खतापूर्ण वासना के ...िए अपनी अमरता को खंडित नहीं करना है।'

—लियो रोस्टेन

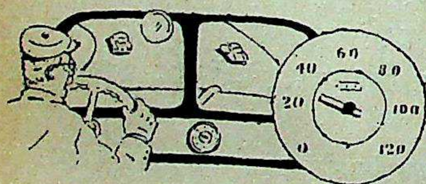


ज़रा दिमाग लड़ाइये

जब १९५६ में मास्को के एक गणित-मास्टर बोरिस कोरडेम्स्की ने गणित की पहेलियों की अपनी किताब छपवायी, तब औरों की तो बात ही क्या, खुद उन्हें भी इसकी कल्पना नहीं थी कि यह किताब बिक्री के क्षेत्र में खासा तहलका मचा देगी। पिछले तेईस साल में रूसी भाषा में ही इसकी दस लाख से ज्यादा प्रतियां बिक चुकी हैं; सोवियत संघ की पंद्रह अलग भाषाओं में जो संस्करण छपे हैं, उनकी बिक्री के आंकड़े इसमें शामिल नहीं हैं। मार्टिन गार्डनर ने इसे 'रूसी गणित के इतिहास में अद्वितीय पहेली-संग्रह' कहा है।

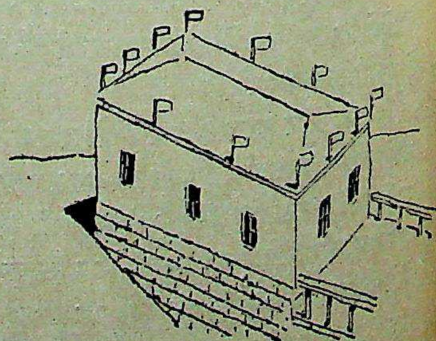
कोरडेम्स्की की इस पुस्तक का अनुवाद इसी साल अमरीकी प्रकाशक चार्ल्स स्क्रिबनर्स सन्स ने 'द मास्को पज़ल्स' के नाम से छापा है। अनुवादक हैं अल्बर्ट पैरी और संपादक हैं मार्टिन गार्डनर। अमरीकी पत्रिका 'गेम्स' में उसमें से उद्धृत कुछ पहेलियां पढ़िये।



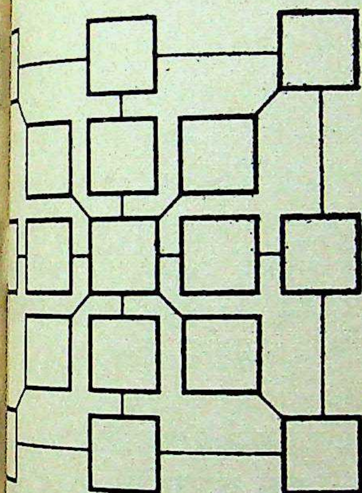


१. उस कार का ऑडोमीटर १५,९५१ किलोमीटर दिखा रहा था। कार-चालक के ध्यान में यह बात आयी कि यह संख्या मुरजबद्ध (पैलिन्ड्रोमिक) है, अर्थात् आगे और पीछे दोनों ओर से एक-सी पढ़ी जाती है। 'कमाल है!' वह सोचने लगा—'अब तो बहुत समय बाद ही दुबारा ऐसी संख्या आयेगी।' मगर दो ही घंटे बाद ऑडोमीटर पर एक नयी मुरजबद्ध (पैलिन्ड्रोमिक) संख्या आ गयी। उन दो घंटों में कार किस रफ्तार दौड़ती रही?

२. युवा साम्यवादी दल के सदस्यों ने एक छोटे-से पनबिजली-घर का निर्माण किया था। उद्घाटन-समारोह के लिए वे उस आयताकार इमारत को बंदनवारों और झंडों से सजाने लगे। उनके पास कुल बारह झंडे थे। इन्हें उन्होंने पहले तो इस ढंग से लगाया कि इमारत के हर पार्श्व पर चार-



नजर आयें (देखिये, पृ. १४६ का)। मगर बाद में उन्हें सूझा कि उन्हीं झंडों को इस ढंग से भी लगाया जा सकता है कि हर पार्श्व पर पांच-पांच झंडे और छह झंडे भी नजर आयें। कैसे ?



३. इस पहेली में ये १७ सिक्के काम में आते हैं:

पांच २० कोपेक के
तीन १५ कोपेक के
तीन १० कोपेक के
छह ५ कोपेक के

ऊपर बतायी आकृति के हर चौखटे में एक-एक सिक्का इस तरह रखें कि आकृति की बाह्य रेखा को छूने वाली प्रत्येक सीधी कतार में सिक्कों का जोड़ ५५ कोपेक आये।

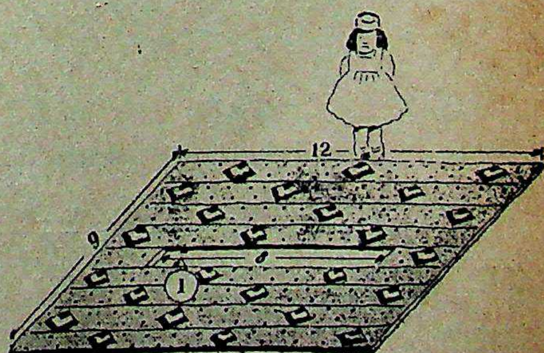
४. सामुदायिक कृषिफार्म को अपने कोटे का गेहूं कस्बे के सरकारी गोदाम में पहुंचाना था। फार्म के अधिकारियों ने तय किया कि गेहूं-लदे ट्रक गोदाम पर दिन के ११ बजे पहुंचें। यदि ट्रक ३० किलो मीटर प्रति घंटे की रफ्तार से चलाये जाते तो वे १० बजे ही गोदाम पर पहुंच जाते और २० किलो मीटर प्रति घंटा चलाने पर १२ बजे यानी एक घंटा विलंब से पहुंचते।

सामुदायिक कृषिफार्म कस्बे से कितनी दूर है और ट्रकों को किस रफ्तार से चलाया जाना चाहिये ताकि वे ठीक ११ बजे कस्बे में पहुंचें ?

५. संघ की प्रबंध-समिति बच्चों के लिए नये वर्ष के तोहफे कागज की थैलियों में भर रही थी। चूसने की गोलियां और बिस्कुट थैलों में डालने के बाद संतरों की बारी आयी। अब यह विचित्र बात देखी गयी कि अगर प्रत्येक थैले में १०-१० संतरे डाले जायें तो आखिरी थैले में ९ ही संतरे आते हैं, और अगर ९-९ संतरे डाले जायें तो ८ आते हैं, और इसी प्रकार ८–८ डाले जायें तो ७, ७–७ डाले जायें तो ६, ६–६ डाले जायें तो ५ ... और २–२ डाले जायें तो सिर्फ १।

समिति के पास कुल कितने संतरे थे ?

६. नूरिया सरद्जेन्ना जब अभी किशोरी ही थी, उसने कपास बीनने का अधिक अच्छा

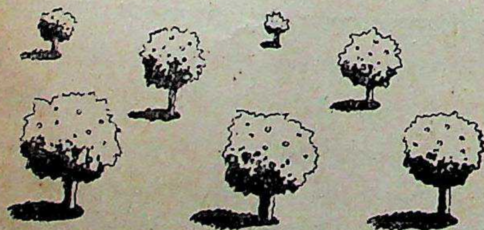


तरीका खोज निकाला था और इस उपलक्ष्य में सामुदायिक कृषिफार्म ने उसे एक सुंदर तुर्कमानी गलीचा भेंट में दिया था, जो कि ९×१२ मीटर का था।

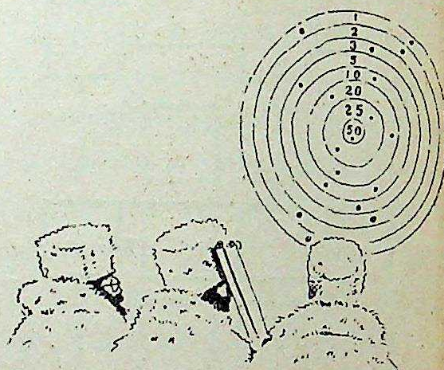
अब नूरिया बड़ी हो गयी है और फार्म पर कृषि-विज्ञानी के रूप में काम करती है। एक दिन घर पर ही वह कोई परीक्षण कर रही थी कि उसके हाथ से गलीचे पर तेजाब गिर गया और गलीचे का कुछ हिस्सा जल गया। जले हिस्से को काट देने पर गलीचे में १×८ मीटर का छेद बन गया।

चतुर नूरिया ने सरल रेखा में कटाई करते हुए गलीचे को इस प्रकार दो टुकड़ों में काटा कि उन्हें जोड़ने पर गलीचा वर्गाकार बन गया। कैसे?

७. वित्या ने प्रतिज्ञा की कि बाकी सारे पायोनियर (साम्यवादी बालसेना के सदस्य) गांव में जितने पौधे रोपेंगे, उसकी पायोनियरों की टुकड़ी उसके आधे जितने फल-वृक्ष रोपेगी। किरयूशा ने प्रतिज्ञा की कि उसकी टुकड़ी (जो कि समूची बालसेना में सबसे बड़ी टुकड़ी थी) उतने वृक्ष रोपेगी,



जितने कि वित्या की टुकड़ी समेत बाकी सब पायोनियर रोपेंगे। वित्या और किरयूशा की टुकड़ियों ने आखिरी पाली में एक साथ काम किया। पिछली टुकड़ियों ने ४० वृक्ष रोपे। अगर मान लिया जाये कि वित्या और किरयूशा दोनों की प्रतिज्ञाएं पूरी हो गयीं, तो समूची बालसेना ने कितने वृक्ष रोपे?



८. एन्दरूशा, बोर्या और वालोद्या तीनों ने ६-६ बार फायर किया और ७१-७१ अंक पाये। एन्दरूशा को पहले दो शाटों में २२ अंक मिले। वालोद्या को पहले शाट में सिर्फ ३ अंक मिले। चित्र देखकर बताइये, चांद (बुल्स आइ) में गोली किसने मारी?

९. निठल्ला आदमी आह भरते हुए कह बैठा—'सब यही कहते हैं, हमें निठल्लों की जरूरत नहीं; तुम काम में आड़े आते हो; चले जाओ, शैतान के पास। पर क्या शैतान मुझे मालदार बनने का गुर सिखायेगा?'

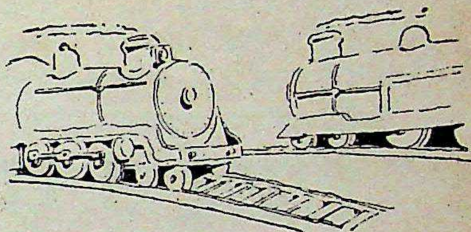
मगर आश्चर्य! उसके मुंह से यह निकलना था कि शैतान हाजिर हो गया। बोला शैतान—'तुम्हें मामूली-सा काम करना पड़ेगा और तुम मालामाल हो जाओगे। देख रहे हो वह पुल? बस, चलकर उसे पार करो;

रे पास जितनी रकम है, वह दुगुनी हो गी। सच तो यह है कि तुम जितनी भी पुल पार करोगे, उतनी ही बार रकम नी होती जायेगी। मगर एक छोटी-सी है। मैं तुम पर इतना उपकार कर रहा तो तुम्हें हर बार पुल पार करने पर मुझे रूबल देने होंगे।'

निठल्ला तैयार हो गया। उसने पुल र किया और ठहरकर अपने पैसे गिने। कार! सचमुच रकम दुगुनी हो गयी थी। उसने २४ रूबल शैतान के आगे फेंके और रा पुल पार किया। उसकी रकम नी हो गयी। दुबारा उसने शैतान को ४ रूबल चुकाये। फिर तीसरी बार पुल र किया। इस बार भी रकम दुगुनी हो गी। मगर इसके बावजूद इस बार उसके स सिर्फ २४ रूबल थे और वे सबके सब उसे शैतान के हवाले कर देने पड़े। तान कहकहा लगाकर गायब हो गया।

नसीहत: दूसरों की सलाह मानने से पहल ठहरकर उस पर विचार कर लेना चाहिये।

मगर हां, निठल्ले के पास शुरू में कितने रूबल थे ?



१०. आमने-सामने से आती हुई दो मालगाड़ियां (दोनों १/६ किलो मीटर लंबी हैं और दोनों ६० किलो मीटर प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ रही हैं) मिलती हैं और एक दूसरे की बगल से गुजर जाती हैं। उनके इंजनों के एक दूसरे की बगल से गुजरने के कितने सेकेंड बाद उनके काबूस एक दूसरे की बगल से गुजरे? [उत्तर पृष्ठ १७७ पर]



वेल-इन्फार्म्ड

बॉस के कक्ष में बैठे मुझे तीस मिनट से अधिक हो चले थे। इस अवधि में कम से कम मेरे आठ सहकर्मी वहां आ-जा चुके थे। इन आठ में से पांच ने तपाक से बॉस से हाथ मिलाया और बॉस ने एक लंबी मुस्कान बिखेरकर इस अभिवादन को स्वीकार किया था।

जब मेरी समझ में कुछ नहीं आया, तो मैंने बॉस से पूछा—'एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही सर, इतने सारे लोग किस खुशी में आपसे हाथ मिलाने आ रहे हैं ? और आप भी गरमजोशी से सबसे हाथ मिला रहे हैं ...'

बॉस मुस्कराये—'शायद आपको मालूम नहीं, आज मेरा जन्मदिन है ...'

मेरे इन सब साथियों को यह महत्त्वपूर्ण जानकारी है, और मैं इससे अनभिज्ञ हूं—अवाक् था। देखा कि बॉस मुस्करा रहे हैं—'आज आपको विश्वास हो गया कि आप वेल इन्फार्म्ड नहीं हैं ?'

—सत्य स्वरूप दत्त





प्राकृत रामचरित पउमचरिय

श्रीरंजन सूरिदेव

काव्य की अनेक विधाओं में चरित-काव्य का अपना विशिष्ट स्थान है। इस काव्यविधा में, चरित की ही प्रधानता अपेक्षित होती है। यद्यपि इसमें घटना-विन्यास में कुतूहल तथा अलंकार-सघनता से रहित रसानुभूति की क्षमता भी अनिवार्य है। डा. नेमिचंद्र शास्त्री ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (पृ. ३१०) में लिखा है कि चरित-काव्य में कथा और आख्यानों के माध्यम से घटना-विन्यास में कौतूहल-तत्त्व का समन्वय कर ऐसे चरित की स्थापना की जाती है, जो उत्तरोत्तर रसानुभूति उत्पन्न करने की क्षमता रखता हो, पर अलंकृत कम हो।'

चरित-काव्यों में पुराण के अनेक तत्त्व संजोये रहते हैं—आत्मा का आवागमन, स्वर्ग-नरक, भूत-प्रेत, देव-गंधर्व, रूपपरिवर्तन आदि। अतः चरित-काव्य के लेखकों के समक्ष हर घड़ी यह खतरा बना रहता है कि उनकी कृति कहीं पुराण ग्रंथ न बन जाये। वस्तुतः सतर्क चरित-काव्यकार उपर्युक्त प्रत्येक पौराणिक विषय की प्रतिष्ठा रसानुभूति के उस धरातल पर करते हैं, जहां पाठक मनोरंजन के साथ ही भाव-तादात्म्य भी प्राप्त कर लेता है।

जैन प्राकृत चरित-काव्यों की कथावस्तु राम, कृष्ण, तीर्थंकर या अन्य महापुरुषों के जीवन-तथ्यों से भरी रहती है। 'तिलोयपण्णत्ति' नामक ग्रंथ तो चरित-काव्यों के प्रचुर उपकरणों का आगार ही है। 'कल्पसूत्र' एवं 'विशेषावश्यकभाष्य' में भी चरित-काव्यों के अर्धविकसित रूप मिलते हैं। अनेकानेक विकसित चरित-काव्यों में

विमलसूरि का 'पउमचरिय' सबसे पहला प्राकृत चरित-काव्य है। संस्कृत-साहित्य में जो स्थान वाल्मीकि-रामायण का है, वही प्राकृत में इस चरित-काव्य का है।

'पउमचरिय' के रचयिता जैनाचार्य विमलसूरि आचार्य राहु के प्रशिष्य, विजय के शिष्य एवं नाइल्ल-कुल के वंशधर थे। नाइल्लों ने ईसा पूर्व प्रथम शती में उज्जयिनी में राज्य किया था। जैनाचार्य मेरुतुंग की प्रसिद्ध कृति 'स्थविरावली' (थेरावलि) के अनुसार, नाइल्ल गर्दभिल्ल-कुल के वंशज थे। गर्दभिल्ल वंश का राज्य उज्जयिनी में १५३ वर्ष-पर्यंत रहा था। लगभग १३ वर्ष तक गर्दभिल्ल के राज्य करने के बाद उसके पुत्र विक्रमादित्य ने ६० से ६१ वर्ष तक उज्जयिनी में राज्य किया और इसी विक्रमादित्य ने शकों को पराभूत करके विक्रम-संवत् प्रचलित किया। इसी शासनक्रम में विक्रमादित्य के बाद धर्मादित्य ने ४० वर्ष, भाइल्ल ने ११ वर्ष, नाइल्ल ने १४ वर्ष तथा नाहद्र ने १० वर्ष पर्यंत शासन किया। तदनंतर शकों ने उज्जयिनी पर पुनः अधिकार करके अपना शक-संवत् आरंभ किया।

इस प्रकार, 'स्थविरावली' के आधार पर यह कहना भी असंगत नहीं कि गर्दभिल्ल-वंशपरंपरा के नाइल्ल-कुल-भूषण आचार्य विमलसूरि के 'पउमचरिय' के रचने से पूर्व कालिदास-कृत रामचरित (रघुवंश) की काव्य-परंपरा प्रचलित हो चुकी थी। हालांकि विमलसूरि की प्राकृत रचना कालिदास की पारंपरिक कथावस्तु से स्वतंत्र है और मौलिकता से मंडित भी है।

'पउमचरिय' की 'प्रशस्ति' के अनुसार, विमलसूरि का काल प्रथम शती ई. ठहरती है। परंतु ग्रंथ के अंतःपरीक्षकों ने उसे तीसरी-चौथी शती ई. का ठहराया है। भाषा-परीक्षकों का अनुमान है कि इसकी रचना महाराष्ट्री-मिश्रित परिष्कृत प्राकृत में हुई है। अतः इसका रचना-काल दूसरी शती ई. के पूर्व संभव नहीं है। इस भाषा के काल की उत्तर-सीमा सातवीं शती ई. है; क्योंकि इसी शती में महाकवि रविषेण ने 'पउमचरिय' के आधार पर संस्कृत 'पद्मचरितम्' की रचना की। कुछ छंदों के प्रयोग भी विमलसूरि को द्वितीय शती से बाद का ही सिद्ध करते हैं।

संक्षिप्त कथावस्तु

अयोध्या के महाराज दशरथ के अपराजिता और सुमित्रा नाम की दो रानियां थीं। एक समय नारद ने आकर कहा कि आपके पुत्र द्वारा सीता के निमित्त रावण का वध होने की भविष्यवाणी सुनकर विभीषण आपको मारने आ रहा है। इस पर राजा दशरथ छद्मवेश में अयोध्या छोड़ निकल गये। संयोगवश वे कैकेयी के स्वयंवर में जा पहुंचे। कैकेयी ने दशरथ का वरण किया, तो अन्यान्य आमंत्रित राजकुमार रुष्ट हो गये और युद्ध ठन गया। युद्ध में कैकेयी ने दशरथ के रथ का संचालन बड़ी कुशलता से किया। फलतः दशरथ विजयी हुए; उन्होंने प्रसन्न होकर कैकेयी को एक वर दिया।

कालक्रम से पहली रानी अपराजिता के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ। नवजात शिशु का मुख पद्म-जैसा सुंदर था; इसलिए उसका नाम 'पद्म' (पउम) रखा गया। 'पद्म' का ही दूसरा नाम 'राम' था, जो 'पद्म' की अपेक्षा अधिक प्रिय और प्रसिद्ध है। इसी प्रकार, सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण और कैकेयी के गर्भ से भरत का जन्म हुआ।

एक बार राम ने अर्ध-बर्बरों के आक्रमण से जनक की रक्षा की। इससे प्रसन्न होकर जनक ने अपनी औरस पुत्री सीता का राम से विवाह तय कर दिया। जनक के पुत्र भामंडल को बचपन में ही चंद्रगति नाम का विद्याधर हर ले गया था। युवा भामंडल अज्ञानवश अपनी बहन सीता पर ही आसक्त हो गया। इसलिए चंद्रगति विद्याधर ने भामंडल के लिए जनक से सीता की याचना की। असमंजस में पड़े जनक ने तब सीता-स्वयंवर रचा। अंत में, सीता के साथ राम का विवाह हुआ।

दशरथ राम को राज्य देकर भरत-सहित श्रमण-दीक्षा ग्रहण करना चाहते थे। परंतु कैकेयी ने भरत को गृहस्थ बनाये रखने के लिए दशरथ से वर-स्वरूप, भरत के लिए राज्य मांग लिया। दशरथ ने भरत को राज्य देना स्वीकार कर लिया। जब भरत ने राज्य लेने में आनाकानी की तो राम ने उन्हें समझा-बुझाकर राज्याधिकारी बनाया और स्वयं अपनी इच्छा से लक्ष्मण तथा सीता के साथ वन चले गये।

दशरथ तो श्रमण-दीक्षा लेकर तपस्वी हो गये, परंतु अपराजिता और सुमित्रा पुत्र-वियोग की व्यथा से अत्यंत विह्वल हो गयीं। कैकेयी से उनका यह दुःख देखा नहीं गया और उसने पारियात्रवन में जाकर राम, सीता और लक्ष्मण को वापस लाने का प्रयत्न किया। परंतु राम अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुए।

जब राम दंडकारण्य पहुंचे, तब वहां एक दिन लक्ष्मण को एक तलवार मिली। शक्ति-परीक्षा के लिए लक्ष्मण ने उससे एक झुरमुट पर वार किया, जिससे अनजाने ही शंबूक की हत्या हो गयी, जो उस झुरमुट में बैठकर तप कर रहा था।

तभी शंबूक की माता तथा रावण की बहन चंद्रनखा पुत्र को ढूंढ़ती हुई वहां आयी। पहले तो राम-लक्ष्मण को देखकर वह क्षुब्ध हुई; पश्चात् उनके रूप से मोहित होकर उसने उन दोनों में किसी एक को अपना पति बनाने की इच्छा व्यक्त की। राम और लक्ष्मण ने उसका यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। इससे क्रुद्ध होकर उसने अपने पति खरदूषण को उलटा-सीधा समझाया, उन दोनों भाइयों के वध के लिए भेजा। इधर रावण भी अपने बहनोई की सहायता करने आ पहुंचा। वह सीता के सौंदर्य पर मुग्ध हो उठा और राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सीता को चुरा ले गया।

खरदूषण के वध से निवृत्त होकर राम ने सीता को कुटिया में नहीं पाया, तो वे बहुत दुःखी हुए। उसी समय विराधित नाम का एक विद्याधर राम को अपनी

राजधानी पातालपुरी लंका ले गया, खरदूषण ने विराधित के पिता को छीना था।

तभी सुग्रीव अपनी पत्नी तारा को सुग्रीव के चंगुल से बचाने के लिए की शरण में आया। राम नें सुग्रीव के विट-सुग्रीव को परास्त करके वानर-सुग्रीव का उपकार किया। अंत में, ने सुग्रीव की सहायता से रावण वध किया और सीता को साथ लेकर लक्ष्मण-सहित अयोध्या लौट आये।

राम के अयोध्या वापस आने पर कैकेयी भरत ने श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली। भी स्वयं राजा नहीं बने; उन्होंने को राज्य सौंप दिया। कुछ काल सीता गर्भवती हुईं; किंतु लोकापवाद भय से राम ने उन्हें निर्वासित कर दिया। वश, पुंडरीकपुर का राजा उधर आ। उसने सीता को निर्जन घोर से अपने यहां ले जाकर बहन की रखा। वहीं सीता के लवण और नाम के दो पुत्र जनमे। उन दोनों दिग्विजय करने के पश्चात् अपनी माता का बदला लेने के लिए राम पर की। परंतु अंत में, पिता-पुत्रों का स्नेहार्द्र मिलन में परिणत हो गया।

सीता की अग्नि-परीक्षा की गयी। वे निष्कलंक प्रमाणित हुईं; परंतु समय साध्वी (भिक्षुणी) बन गयीं। लक्ष्मण का अकस्मात् देहावसान गया और राम अत्यंत शोकाभिभूत होकर भ्रातृमोह में उसका शव उठाकर इधर-उधर भटकने लगे। जब उनके आर्त्त मन का उद्वेग शांत हुआ, तब उन्होंने भी दीक्षा ले ली और कठोर तपस्या द्वारा परम-निर्वाण पाया।

विवेचन

'पउमचरिय' में पौराणिक और शास्त्रीय दोनों प्रबंध-लक्षणों का समावेश है। वाल्मीकि-रामायण से इसका कथाभेद इस मानी में है कि इसमें कवि ने वाल्मीकि-रामायण की कथावस्तु के ईश्वरवादी स्थलों में किंचित् परिवर्तन करके बुद्धि वादी मानवतावाद या कर्मप्रधानता की प्रतिष्ठा की है। राक्षसों और वानरों को उसने मानव-जाति के ही वंश-विशेष बतलाया है।

'पउमचरिय' में रावण स्वयं धार्मिक और व्रती पुरुष के रूप में चित्रित है। सीता की सुंदरता पर मुग्ध होकर उसने उसका अपहरण तो किया, परंतु सीता पर बला-त्कार करने की कामुक कुचेष्टा कभी नहीं की। वह तो सीता को लौटा देना चाहता था; किंतु लोग कायर न समझ लें, इस भय से नहीं लौटा सका था। उसने मन में तय कर रखा था कि युद्ध में राम-लक्ष्मण को जीतकर वैभव और सम्मान के साथ सीता को वापस कर दूंगा, जिससे मेरी कीर्ति निष्कलंक और उज्ज्वल बनी रहे।

सच पूछिये, तो विमलसूरि ने रावण-जैसे विवादास्पद पात्र के चरित्र को उन्नत करके दिखाने में अद्भुत कविकर्म का परि-चय दिया है। उन्होंने दशरथ और कैकेयी

के निंदित पक्ष को भी ऊंचा उठाया है।

'पउमचरिय' परंपरागत रामकथा को ईश्वरवादी अवतार-कल्पना से बचाकर मानववादी दृष्टिकोण से इस तरह ढालता है कि हमें परमात्मा राम की जगह विशुद्ध मानव राम के दर्शन होते हैं। कविवर विमलसूरि में मानव की अंतःप्रकृति के सूक्ष्म और सुंदर विश्लेषण की जितनी प्रौढता है, उतनी ही निपुणता बाह्य प्राकृतिक तथ्यों को सजीवता से अंकित करने में है।

संक्षेप में, उत्तर भारत की प्रचलित रामकथा से 'पउमचरिय' की रामकथा का मुख्य अंतर इस बात में है कि इसमें सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर पूर्ण प्रकाश डालते हुए श्रमण-संस्कृति का सहज और सांगोपांग वर्णन मिलता है। प्रत्येक चरित्र में स्वाभाविकता और सहज उदात्तता के साथ ही बौद्धिकता की भी प्रतिष्ठा की गयी है। चरित्रों की तर्क-संगत स्थापना में कवि कहीं भी गाफिल नहीं हुआ है। कथा-प्रवाह भी गतिशील रहता है।

भाषा की सुष्ठुता तथा वर्णन की शिष्टता से भी 'पउमचरिय' चरित-काव्यों में सुमेरु-शिखर बना हुआ है। उदाहरणार्थ सीता का वर्णन देखें :

वरकमलपत्तनयणा,
कोमुइरयणियरसरिसमुहसोहा।
कुंददलसरिसदसणा,
दाडिमफुल्लाहरच्छाया ॥
कोमलबाहालइया,
रत्तासोउज्ज्वलाभकरजुलया।
करयलसुगेज्झमज्झा,
वित्थिण्णनियम्बकरभोरु ॥
रत्तुप्पलसमचलणा,
कोमुइरयणियरकिरणसंघाया।
ओहासिउं व नज्जइ,
रयणियरं चेव कन्तीए ॥

(२६। ९९-१०२)

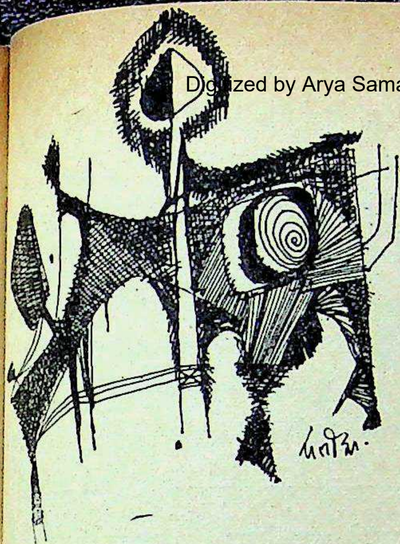
सीता की आंखें श्रेष्ठ कमल-दल की तरह थीं; मुख चांदनी की किरण-राशि के समान शोभित था; दांत कुंददल की भांति थे; अधर की कांति दाडिम-पुष्प की समानता रखती थी; बाहुलता अतिशय कोमल थी और दोनों हथेलियां रक्ताशोक की निर्मल आभा बिखेरती थीं; उनके शरीर का मध्य भाग (कमर) मुट्ठी में अंटने लायक था; नितंब विस्तीर्ण थे और ऊरू (जांघें) हाथी के बच्चे की सूंड़ के समान गावदुमा थे; पैर रक्त कमल की भांति लाल थे। इस प्रकार, कौमुदी के किरण-समूह जैसी उनकी अतिशय रमणीय कांति का वर्णन करना संभव नहीं है।

रसानुगामी भाषा के मर्मज्ञ के रूप में विमलसूरि अद्वितीय हैं।

एक सौ अठारह सर्गों में निबद्ध यह चरित-काव्य रामकथा पर रीझने वाले प्रत्येक तटस्थ पाठक के लिए प्रीतिकर और सुखकर है। आवश्यकतानुसार करुण और भीषण स्थितियों के चित्रण में विचक्षण कवि विमलसूरि की मनीषा निश्चय ही विलक्षण है।

—राष्ट्रभाषा परिषद, पटना-८००००४





चित्र : सतीश चव्हाण

उत्तरायण की प्रतीक्षा में

मैं आंधियों से जूझ सकता हूं
सरल है मेरे लिए लड़ना
उत्ताल हहराते सागर की सर्वभक्षी तरंगों से
या भूधरों को हिलाने वाले बवंडरों से
मगर वक्त के अर्जुन के रथ पर
आ बैठा है जब से मौन का शिखंडी
मेरी भीष्म-देह छलनी होती जा रही है
मैंने स्वेच्छया ही रख दिये हैं
धनुष-बाण
भटक गयी है मेरी युयुत्सा
नैतिकता के जंगलों में
नहीं, अब मैं नहीं कर सकता युद्ध
बर्फ-सी निष्क्रिय मौन की चट्टान से
अब तो प्रतीक्षा-मात्र शेष है—उत्तरायण की
गाथा; शेष होकर रह जाये
मेरा पौरुष, मेरा शौर्य
पर मैं नहीं निभा सकता भूमिका
निर्णायक की
वर्तमान के इस मूल्यहंता,
विवेक-अंध, धर्म-विरुद्ध महाभारत में !

—राजेन्द्र गौतम

• १४५०।२५ डी, पश्चिमी ज्योति नगर, दिल्ली—३२ •

भावी इतिहास का उसे आभास था

डा. सुरेश मिश्र

नोस्ट्राडेमस। यूरोप का एक अद्भुत व्यक्ति। ज्ञात इतिहास में शायद ही दूसरा कोई व्यक्ति हुआ है, जिसने इतनी सारी ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में इतने पहले भविष्यवाणी की हो।

यह व्यक्ति १५०३ ई. में फ्रांस में पैदा हुआ और ५२ वें वर्ष में उसने अपनी भविष्यवाणियां प्रकाशित करना प्रारंभ किया। उस वर्ष उसने १०० भविष्यवाणियां एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कीं। चूंकि ये भविष्यवाणियां पद्यबद्ध थीं, इसलिए इस संकलन का नाम उसने रखा–'शतियां'। ऐसी चार शतियां उसने प्रकाशित कीं, जिनमें कुल ४०० भविष्यवाणियां थीं।

प्रारंभ में नोस्ट्राडेमस चिकित्सक था; किंतु शीघ्र ही वह एक भविष्यवक्ता के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। पीतल की तिपाई पर रखे पानी-भरे कटोरे में झांककर वह भविष्य की घटनाओं की टोह ले लेता था और कभी-कभी तो उसकी अंतश्चेतना उसे भावी घटनाओं का पूर्वाभास दे देती थी।

एक बार जब फ्रांस की रानी कैथरीन द मेदिची उससे भेंट करने आयी, रानी के साथ के एक बालक की ओर इशारा करके उसने कह दिया कि यह बालक कभी फ्रांस का सम्राट बनेगा। वह बालक बाद में हेनरी चतुर्थ के नाम से फ्रांस का सम्राट बना।

कैथरीन द मेदिची फ्रांस के सम्राट हेनरी द्वितीय की पत्नी थी। हेनरी द्वितीय की मृत्यु के बारे में भी नोस्ट्राडेमस ने चार वर्ष पहले लिख दिया था और मृत्यु किस प्रकार होगी, यह भी इंगित कर दिया था। इस घटना के बाद तो कैथरीन द मेदिची उसकी भक्त ही हो गयी।

इसी प्रकार एक बार नोस्ट्राडेमस ने रास्ते से गुजर रहे एक ईसाई साधु के चरण पकड़ लिये और कहा कि यह साधु बाद में पोप होगा। सचमुच १५८५ ई. में वह साधु पोप बना।

यूरोप के भावी इतिहास की कितनी ही घटनाओं के बारे में नोस्ट्राडेमस ने अपनी 'शतियों' में पद्यात्मक पंक्तियां लिख छोड़ी थीं। यह बड़े चमत्कार की बात है कि ये भविष्यवाणियां प्रायः सत्य सिद्ध हुई हैं। जैसे, उसने एक जगह लिखा था :

रात में रोने के वन में से

घुमावदार रास्ते से होकर दो भागीदार—
रानी, श्वेत पत्थर
और भूरी पोशाक वाला साधु राजा
वारेन आयेंगे
बुना हुआ क्रेप आंधी, आग
और रक्तपात उत्पन्न करेगा।

यह भविष्यवाणी फ्रांस के सम्राट लुई सोलहवें और उसकी रानी मेरी आन्त्वानेत के पलायन से संबंधित है। दोनों घुमावदार मार्ग रास्ते से वारेन को भागे थे। रानी सामान्यतः सफेद पोशाक पहनती थी। हो सकता है, श्वेत पत्थर से तात्पर्य उस हीरे के हार से हो, जिसने रानी को बदनाम किया था। साधु राजा से यहां अभिप्रेत है लुई सोलहवां, जो प्रारंभ में नपुंसक माना जाता था। यह तो सर्वविदित है कि पलायन के समय लुई सोलहवां भूरी पोशाक पहने था। फ्रांस की जो राज्यक्रांति लुई सोलहवें के समय हुई, उसमें भयंकर रक्तपात, हत्याएं हुई थीं।

नेपोलियन के बारे में नोस्ट्राडेमस की उक्तियां हैं :

इटली के निकट एक सम्राट पैदा होगा,
जो साम्राज्य को बहुत महंगा बनायेगा।

और नेपोलियन के अंत के बारे में :

महान साम्राज्य शीघ्र ही एक छोटे-से स्थान के लिए
दे दिया जायेगा,
जो शीघ्र ही बढ़ने लगेगा।
छोटे-से क्षेत्र के उस स्थान के मध्य
वह अपना राजदंड रखने आयेगा।

नेपोलियन को एक छोटे-से द्वीप एल्बा में निष्कासित कर दिया गया था। वहां से भागकर वह पुनः सौ दिनों तक साम्राज्य का स्वामी रहा। फिर से पराजित होने पर वह अटलांटिक सागर के सेंट हेलेना द्वीप में बंदी बनाकर रखा गया।

इंग्लैंड के शासक चार्ल्स प्रथम के बारे में नोस्ट्राडेमस ने लिखा था :

वह अयोग्य व्यक्ति इंग्लैंड से भगाया जायेगा।
उसके सलाहकार क्रोध में जला दिये जायेंगे।



साम्राज्ञी मारी आन्त्वानेत

उसके अनुयायी इतने नीचे गिर जायेंगे
कि प्रिटेन्डर को लगभग स्वीकार कर
लिया जायेगा ।

चार्ल्स को अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा था और उसका सलाहकार आर्चबिशप लाड १६४५ ई. में जिंदा जला दिया गया था। चार्ल्स के विश्वासघाती स्काट अनुयायियों ने उसे इंग्लैंड की पार्लमेन्ट के सुपुर्द कर दिया। 'प्रिटेन्डर' संभवतः आलिवर क्रामवेल को कहा गया है, जिसे इंग्लैंड की जनता ने राजा के रूप में लगभग स्वीकार कर लिया था। चार्ल्स प्रथम की मृत्यु के बारे में नोस्ट्राडेमस ने लिखा था :

लंदन की पार्लमेन्ट अपने राजा को
मृत्युदंड देगी ......

महान वैज्ञानिक लुई पाश्चर के बारे में तो नोस्ट्राडेमस ने बहुत ठीक लिखा था:

पाश्चर को देवतुल्य माना जायेगा
यह तब होगा जब चंद्रमा अपना चक्र
पूरा कर लेगा ।

सन १८८९ में पाश्चर ने पाश्चर इंस्टिट्यूट की स्थापना की। उस वर्ष चंद्रमा का चक्र पूरा हुआ था।

बीसवीं शती की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संकेत भी इस भविष्यवक्ता ने ठीक-ठीक दिया था। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड के राजा एडवर्ड अष्टम के सिंहासन-त्याग के बारे में उसने लिखा था :

परित्याग करने की स्वीकृति न देने पर,
जो बाद में उचित नहीं माना जायेगा,
द्वीपों के राजा को भागने के लिए बाध्य
किया जायेगा
और उसके स्थान पर ऐसे व्यक्ति को
स्थापित
किया जायेगा जिसमें राजत्व के कोई
चिह्न न होंगे ।

एडवर्ड अष्टम ने चूंकि श्रीमती सिम्प्सन से विवाह करना चाहा था, अतः उन्हें सिंहासन छोड़ना और देश तज देना पड़ा था। उनके उत्तराधिकारी जार्ज षष्ठ में राजपद की योग्यता तब नहीं थी। द्वीपों से तात्पर्य इंग्लैंड से है।

स्पेन के जनरल फ्रैंको के बारे में नोस्ट्राडेमस ने बिलकुल स्पष्ट रूप से नाम-सहित विवरण लिख दिया था :

कैस्टाइल से फ्रैंको जनसमूह लायेगा।
राजदूत सहमत न होंगे और
रिवेरा के लोग भीड़ में होंगे
गृहयुद्ध होगा ।
और उस महान व्यक्ति को खाड़ी में
प्रवेश करने की
अनुमति नहीं मिलेगी ।

स्पेन के गृहयुद्ध (१९३६–३९ ई.) में जनरल फ्रैंको और प्राइमो द रिवेरा की भूमिका प्रसिद्ध है। अंतिम पंक्तियों में इस बात का जिक्र है कि फ्रैंको को अस्थायी निष्कासन के समय भूमध्यसागर पार करके स्पेन में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। यह विस्मयकारी है कि स्पेन के गृहयुद्ध के कोई चार शती पहले नोस्ट्राडेमस ने न केवल घटना की भविष्यवाणी की, बल्कि उसके दो प्रमुख पात्रों के नाम भी बता दिये!

हिटलर के उत्थान का भी विवरण ट्राडेमस ने दिया था। एक पद्य में ने उसके जीवन के बारे में तथा उसकी निश्चित मृत्यु के बारे में यों लिखा था :

राइन के निकट आस्ट्रिया के पर्वतों में
साधारण माता-पिता से एक व्यक्ति
उत्पन्न होगा जो पोलैंड और हंगरी
की रक्षा करने का दावा करेगा
और जिसका भाग्य कभी निश्चित नहीं
रहेगा।

इस पद्य में आगे वह इस व्यक्ति का नाम भी देने का प्रयास करता है—हिस्टर, जो कि हिटलर के काफी निकट है। नोस्ट्राडेमस यह भी कहता है कि अनेक देश उसके शत्रु होंगे। 'आसमान में गूंजने वाले शस्त्रों' और 'जलने वाले आग्नेयास्त्रों' का जिक्र करके वह वायुयानों व बमबारी का भी संकेत देता है।

द्वितीय महायुद्ध के समय जापान के दो नगर हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम के विस्फोट का वर्णन भी वह करता है :

बंदरगाह के निकट दो नगरों में दो ऐसे
अभिशाप होंगे जैसे कभी नहीं देखे गये।

तीसरे महायुद्ध के बारे में भी नोस्ट्राडेमस ने भविष्यवाणी की है। वह लिखता है कि यह युद्ध उत्तरी गोलार्ध में होगा और पूर्व के विरुद्ध दो महान शक्तियां एक हो जायेंगी। वह लिखता है :

जब उत्तरी ध्रुव की शक्तियां गठबंधन,
कर लेंगी
तो पूर्व में भय और आतंक व्याप्त हो
जायेगा.....
एक दिन दो महान नेता मित्र बन जायेंगे
नयी भूमि शक्ति के शिखर पर होगी।

'नयी भूमि' से तात्पर्य अमरीका से है; नोस्ट्राडेमस अमरीका के लिए नयी भूमि ही लिखता है। लगता है कि वह कहना चाहता है कि रूस और अमरीका इकट्ठे होकर चीन के विरुद्ध युद्ध छेड़ेंगे। उसने तो युद्ध की तिथि भी दे दी है—जुलाई १९९९।

१९९९ में और सातवें महीने में
आकाश से आतंक का
महान राजा आ आयेगा
फिर युद्ध का साम्राज्य होगा।

आगे वह कहता है कि युद्ध में उत्तरी गोलार्ध को सर्वाधिक हानि होगी।

यह अंतिम भविष्यवाणी अभी पूरी होनी शेष है। देखें कि बीस वर्ष बाद का इतिहास इसे सत्य कर दिखाता है या नहीं?

—शासकीय नर्मदा महाविद्यालय,
होशंगाबाद, म. प्र.



अभागे की पहचान

अभागा घड़ी में चाबी भरे तो चलती घड़ी रुक जाती है।
अभागा मुर्गी मारे तो मुर्गी चलने लगती है।
अभागा छाते बेचने जाये तो धूप खिल आती है।
अभागा कफन बेचने लगे तो लोग मरना बंद कर देते हैं। **—यहूदी कहावत**





पंजाबी कहानी :

अंतःकरण का छल

कर्तार सिंह दुग्गल

डाक्टर खेड़ा ने जब सुना कि नयी बस्ती का सुंदरसिंह चल बसा है, तो उसे बहुत दुःख हुआ।

'अभी परसों तो आया था। उसे फ्लू हो रहा था, मुझसे दवाई लेकर गया था।'

'और फ्लू से उसकी मौत हुई?' उसकी पत्नी ने हाथ मलते हुए कहा। सुंदरसिंह और श्रीमती खेड़ा एक ही गांव के थे। दोनों एक साथ खेल-पढ़कर बड़े हुए थे। श्रीमती खेड़ा ने उसे धर्मभाई बनाया था।

'नहीं, फ्लू से तो वह नहीं मरा होगा!' डाक्टर खेड़ा ने सोचते हुए कहा।

'तो फिर उसे क्या हो गया? यह कोई उम्र थी उसके मरने की?' श्रीमती खेड़ा

जान हो रही थी।

हार्ट-फेल हो गया होगा ... ।' डाक्टर ...एक अजीब सोच में डूब गया था ।

यह हार्ट ... कमबख्त, इसकी कुछ ...नहीं आती ।' श्रीमती खेड़ा बुदबुदा ...थी, और उसकी आंखों के सामने उसके ...पन के कई दृश्य तैरने लगे । उधर गांव ...एक ही गली में रहते थे । सुंदर बड़ा ...न था । खेलता कम, हुड़दंग ज्यादा ...ता था ।

डाक्टर खेड़ा सोच रहा था कि उसने ...सी दवा उसे फ्लू के लिए दी थी ? ...कोई गलत पुड़िया तो उसे नहीं थमा ...दराज में से निकालकर दी थी या ...ने अलमारी में से ? डाक्टर खेड़ा को ...याद नहीं आ रहा था । सब-कुछ जैसे ...हो रहा हो । कई वर्ष हुए, जब ...ब्याह हुआ था तो गांव में एक सुंदर ...तो था पढ़ा-लिखा नौजवान, जिससे ...बात कर सके । और फिर उसकी ...राल के पड़ोस में ही तो रहता था । हर ...उसके यहां ताजा अंग्रेजी का अखबार ...ता था । किताबों की अलमारी भरी ...थी । उसी ने तो श्रीमती खेड़ा को ...का शौक डाला था ।

'जो किताब आप पढ़ता, मुझे पढ़ने के ...जरूर देता,' श्रीमती खेड़ा उसे याद ...रही थी—'मैं उससे हमेशा कहा करती ...सुंदर ! तुम खुद तो अच्छी-अच्छी ...किताबें पढ़ते हो और घटिया-घटिया मुझे ...देते हो । ... और वह कहता—मैं बुरी किताबें छांटकर रख लेता हूं और सिर्फ अच्छी किताबें तुम्हें देता हूं ।'

मुसीबत यह थी, अब श्रीमती खेड़ा मन ही मन में सोच रही थी, जिन किताबों को अच्छी समझकर वह मुझे देता था, वे सरासर बोर होती थीं—बदमजा होती थीं, फीकी-फीकी । यह वह उम्र थी जब चटपटी कहानियां पढ़ने को जी चाहता है । और श्रीमती खेड़ा उसकी अलमारी में से इस तरह की किताबें चुरा-चुराकर पढ़ा करती थी । चुपके-से किताब निकाल लाती और जब वह घर पर न होता चुपके-से जाकर रख आती । उसकी मां को अंग्रेजी नहीं आती थी । उसने कभी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया था ।

'अगर वे अरोड़ा न होते तो तुम्हारा उसके साथ ब्याह हो गया होता ।' डाक्टर खेड़ा ने अपनी पत्नी को याद दिलाया—'तुमने ही तो एक बार मुझे बताया था ।'

'हां—हां, हम एक उम्र ही के तो थे । हमेशा खेल में एक-दूसरे का साथ देते थे ।'

'फिर इस कमबख्त जात-पात ने बीच में टांग अड़ा दी !'

और श्रीमती खेड़ा को एकाएक जैसे कंपकंपी-सी महसूस हुई ।

'क्यों ! तुम्हारा बदन क्यों इस तरह कांप रहा है ?' उसके डाक्टर पति ने श्रीमती खेड़ा से पूछा ।

'नहीं, नहीं, नहीं, कुछ नहीं ।' श्रीमती खेड़ा जैसे कांप रही हो । उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया था । 'नहीं, नहीं, नहीं,

कुछ भी तो नहीं । उसने फिर कहा और जहां खड़ी थी, वहीं की वहीं गोल कमरे के कालीन पर बैठ गयी, जैसे किसी के मातम में जाकर बैठते हैं ।

श्रीमती खेड़ा सोच रही थी, जो अगर जिद करके उसने उसके साथ ब्याह करवा लिया होता, तो आज वह विधवा हो गयी होती ! और श्रीमती खेड़ा की नाक लाल-सुर्ख हो गयी । उसकी आंखों में आंसू छल-छला आये । कोई बहाना, और वे छम-छम बहने लगेंगे ।

डाक्टर खेड़ा ने अपनी पत्नी की ओर देखा और उसके मुंह का स्वाद फीका-फीका हो गया । उसे तो हमेशा यही शक खाता रहा था कि उसकी पत्नी अपने बचपन के साथी पर मोहित थी । इकट्ठे खेले थे, इकट्ठे पढ़े थे । डाक्टर खेड़ा खुद जिन लड़कियों के साथ खेलता था, पढ़ता था, सब पर जान देता था । हर एक का पानी भरता, हर एक की खिदमत करता, हर एक के सपने उसे आया करते थे ।

फिर डाक्टर खेड़ा को खयाल आया कि वह किसी से पूछे तो सही कि सुंदरसिंह की मौत कैसे हुई ? इतनी दूर बस्ती में वे लोग रहते थे । उनके यहां टेलिफोन भी तो न था ।

'क्या सचमुच उसकी मौत हार्ट-फेल से हुई है ?' उसकी पत्नी पूछ रही थी—'दिल तो उसका कमजोर कभी नहीं सुना था ।'

डाक्टर खेड़ा ने कोई जवाब नहीं दिया । उसकी घरवाली अपने मर चुके प्रेमी का सोग मना रही थी । उसे इसमें क्या दिलचस्पी हो सकती थी !

लेकिन सवाल यह है कि डाक्टर खेड़ा ने सुंदरसिंह को दवा कौन-सी दी थी ? उसे फ्लू हो रहा था । फ्लू की दवा लेने आया था । कोई पुड़िया दी थी । पर कौन-सी पुड़िया ? डाक्टर खेड़ा अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर डाल रहा था, लेकिन उसे बिलकुल याद नहीं आ रहा था ।

'जरूर तुमने उसे कोई गलत दवाई दे दी होगी ।' डाक्टर खेड़ा के भीतर जैसे कोई बम आ फटा हो । और उसे महसूस हुआ, जैसे उसके टुकड़े-टुकड़े उड़ गये हों ।

सारी उम्र का शक । सारी उम्र का उसके भीतर घुल रहा जहर । एक पति की सारी उम्र की बदले की भावना ! श्रीमती खेड़ा उसे लाड़ में सुंदर पुकारा करती है । 'सुंदर का कद आपसे ऊंचा है... सुंदर का रंग आपसे कहीं ज्यादा साफ है... सुंदर अंग्रेजी यों बोलता है जैसे कोई अंग्रेज हो ... सुंदर गाता कितना सुंदर है, ठेकेदारी में न होता तो फिल्म का हीरो होता ... ।'

'हां—हां, खुद जो सारी उम्र हीरोइन बनने के सपने देखती रही है । क्या मजाल जो शहर में आयी कोई फिल्म देखे बिना रह जाये । फिल्म देखकर आयेगी और फिर उसकी कहानी सुनाती रहेगी । हर फैशन जो फिल्म में देखती, उसकी नकल करने लगती । कई बार घर में फिल्मी डायलाग बोलने लगती । उसके बाथरूम में से हमेशा फिल्मी गानों की आवाज आती । कोई भगवान का नाम लेता है, कोई किसी इष्ट

भजन करता है, पर वह फिलमी गाने गाती रहती–''कभी-कभी मेरे दिल में खयाल आता है'' ...... ।'

'हमें उनके यहां हो आना चाहिये ।' श्रीमती खेड़ा अपने पति को राय दे रही थी ।

'हां-हां ।' अपने खयालों में खोया हुआ डाक्टर खेड़ा चौंक पड़ा ।

'तो फिर गाड़ी निकालो, हो आते हैं ।'

'मौत कल हुई है । संस्कार तो हो चुका होगा । अब ''भोग'' पर चलेंगे । कोई कह रहा था, अगले इतवार, शाम को पांच बजे ''भोग'' पड़ेगा ।'

'आप खबर तो पूरी-पूरी रखते हैं,' श्रीमती खेड़ा ने कुछ इस तरह यह कहा कि न तो पता चला कि वह नाराज थी, और न पता चला कि वह अपने पति के साथ सहमत थी ।

डाक्टर खेड़ा जल-भुन गया । 'औरत जात की यही बात तो मुझे जहर लगती है ।'

जहर !

जहर ! !

जहर ! ! !

उसकी आंखों के सामने अंधेरा-अंधेरा छा गया । अंधेरे की दीवारें जैसे उभरती चली आ रही हों । उसके पांव-तले की जमीन जैसे खिसक रही हो । आंधी का एक थपेड़ा जैसे उससे आ लगा हो । वह औंधा जा पड़ा था ! कैसे पानी बरसने लगा था ! ये तो ओले थे । वह पिटा जा रहा था, पिसा जा रहा था । दायें-बायें तूफान कैसे उसे पटक-पटककर फेंक रहा था । ओलों से कैसे उसके नील पड़ गये थे ! उसका अंग-अंग टूट रहा था । उसकी हड्डियां चटक रही थीं । ओले थे कि गोले थे । इस तरह का वज्रपात उसने कभी नहीं सुना था, कभी नहीं देखा था ।

'मेरा क्या कसूर है ? मेरा कोई कसूर नहीं । मैं बेगुनाह हूं ।'

'यह आप क्या बुड़बुड़ कर रहे हैं ? आप दुकान पर क्यों नहीं जाते ? ..... आपके क्लिनिक का टाइम हो गया है ।' उसकी पत्नी ने उसे याद दिलाया ।

'... ताकि मेरे पीछे तुम अपने महबूब का सोग मना सको !' डाक्टर खेड़ा ने यों घूरकर अपनी पत्नी की ओर देखा, जैसे उसका अंग-अंग झुलसकर रह गया हो ।

फिर वह दुकान की ओर चल दिया ।

'अब अच्छी तरह देख-सुनकर दवा दिया करूंगा ।' डाक्टर खेड़ा मन ही मन कह रहा था । जैसे उसने भीतर ही भीतर यह स्वीकार कर लिया हो कि नयी बस्ती का सुंदरसिह उसी की दी हुई दवा से मरा था । मौत आयी होगी । कहां नयी बस्ती थी और कहां उसका क्लिनिक था । कहने लगा–'इधर आया था, तो मैंने सोचा कि अपने दोस्त से दवा लेता चलूं ।'

'दोस्त तो वह था ..... लेकिन उसकी घरवाली का ।'

फिर डाक्टर खेड़ा को यों लगा, जैसे उसका अंग-अंग मैला-मैला-सा हो रहा है । उसे अपने आपमें से बदबू आने लगी थी । उसने एक एंटीसेप्टिक से हाथों को साफ

किया। फिर एक ओर से। फिर एक ओर से। यह बदबू जा ही नहीं रही थी।

और फिर एक के बाद एक मरीज आने लगे। हर बार जब किसी मरीज को नुस्खा लिखकर देता, तो डाक्टर खेड़ा अपने कंपाउंडर को बुलाकर हिदायत करता—'इसे ध्यान से तैयार करना।' कंपाउंडर हैरान हो रहा था कि आज डाक्टर साहब को हो क्या रहा है! कैसी बातें कर रहे हैं?

इतवार को 'भोग' था। 'भोग' नयी बस्ती के गुरुद्वारे में रखा गया था। सुंदर गुरु-सिक्ख था। हर रोज सुबह गुरुद्वारे जाता। नित्य-नेम का प्रेमी। शायद इसलिए कि उसकी महबूबा के घरवाले कट्टर सिक्ख थे।

और डाक्टर खेड़ा अपने आपको कोसने लगा। उसे ऐसा नहीं सोचना चाहिये था। किसी के 'भोग' पर आकर उसे यों नहीं सोचना चाहिये था। कितना सुंदर कीर्तन हो रहा था! सारी साधु-संगत एकसुर थी। रागी जत्था बार-बार गायन कर रहा था:

देहि माटी बोले पौण
बुज्झ रहे ज्ञानी, मुआ है कौण
बुज्झ रहे ज्ञानी, मुआ है कौण!....
बुज्झ रहे ज्ञानी मुआ है कौण!!....
बुज्झ रहे ज्ञानी मुआ है कौण!!!

शब्द का स्वर ऊंचा और ऊंचा होता जा रहा था। डाक्टर खेड़ा ने महसूस किया कि पीछे से किसी ने उसके कंधे पर हाथ आ रखा है। उसने कोई खास ध्यान नहीं दिया। नहीं, यह तो कोई है। फिर कोई उसके कंधे को छू रहा था। और डाक्टर खेड़ा ने मुड़कर देखा—हे भगवान! यह तो सुंदर था। सुंदरसिंह!

और डाक्टर खेड़ा अवाक् उसकी ओर देखता का देखता रह गया। यह तो सुंदर था। सामने के दांत बाहर निकले हुए। खिचड़ी दाढ़ी। पिचके हुए गाल। मंद-मंद मुस्कुराते हुए उसकी ओर देख रहा था।

डाक्टर खेड़ा का मुंह खुले का खुला रह गया। पसीने की धारें उसके शरीर पर चींटियों की तरह चल रही थीं। उसका सिर घूम रहा था। उसकी आंखों के सामने तारे उतर आये थे। कीर्तन की आवाज, 'बुज्झ रहे ज्ञानी, मुआ है कौण' जैसे सायँ-सायँ में बदल गयी हो। उसे महसूस हुआ, जैसे उसके शरीर का सारा खून सूख गया हो। जिस कंधे पर सुंदर ने हाथ रखा था, वह कंधा जैसे जम गया हो। सुंदर के हाथ ने जैसे जमूर की तरह उसे पकड़ लिया हो। डाक्टर खेड़ा चीखना चाहता था, लेकिन उसकी आवाज नहीं निकल रही थी। उसका दम घुट रहा था। उसकी नब्ज धीमी पड़ गयी थी। उसे जैसे गश आ रहा हो।

और फिर एकदम डाक्टर खेड़ा माथा टेककर उठ खड़ा हुआ। उसे जाते हुए देखकर, उसकी पत्नी भी गुरुद्वारे से निकल आयी।

गुरुद्वारे के बाहर जूते पहनकर वह जल्दी-जल्दी अपनी गाड़ी की ओर जा रहा था—परेशान-परेशान, जैसे सोते सूख गये हों, पीला जर्द चेहरा, पसीना-पसीना—कि उसने

...कर देखा, सुंदरसिंह उनके पीछे-पीछे ...द्वारे में से निकल आया था। डाक्टर ...ने अपनी पत्नी को कंधे से पकड़कर ...दी-जल्दी गाड़ी में जा बैठाया, खुद गाड़ी ...जा बैठा, उसने मोटर चालू कर दी।

...भाई साहब! यों कहां भागे जा रहे ...?' पीछे से सुंदर ने आवाज दी। श्रीमती ...ड़ा ने सुना और उसका मुंह खुला का ...ला रह गया। बिट-बिट उसकी ओर ...खने लगी।

तब तक सुंदरसिंह डाक्टर खेड़ा के पास ...हुंच गया था। 'इतनी दूर आये हो, घर ...हीं चलोगे?' वह कह रहा था।

डाक्टर खेड़ा का जैसे गला सूख गया हो। ...पीला-जर्द चेहरा! वह उसकी ओर देख ...रहा था। श्रीमती खेड़ा का मुंह जैसे खुला ...था, वैसा का वैसा खुला रहा।

'लेकिन यह बताओ कि आप इस सुंदर सुनार को कैसे जानते हैं?' सुंदरसिंह उनसे पूछ रहा था–'उसे तो इस बस्ती में आये हुए कुल छह महीने ही हुए थे। बाजार में दुकान थी। सोने में खोट मिलाता था। बड़ा बदनाम...'

डाक्टर खेड़ा ने मोटर गियर में डाल ली थी और एक्सेलरेटर दबाकर वह वहां से निकल पड़ा। न उसने, न उसकी पत्नी ने अपने पुराने परिचित सुंदरसिंह को कोई जवाब दिया।

उनकी मोटर बस्ती में से यों निकली, जैसे जले हुए गांव में से कोई जोगी भागता है।

'इनको आज हो क्या रहा है?' सुंदरसिंह अपने आपसे कहने लगा। फिर कुछ सोचकर एकदम उसकी हंसी छूट गयी।

–पी ७, हौज खास, नयी दिल्ली–१६



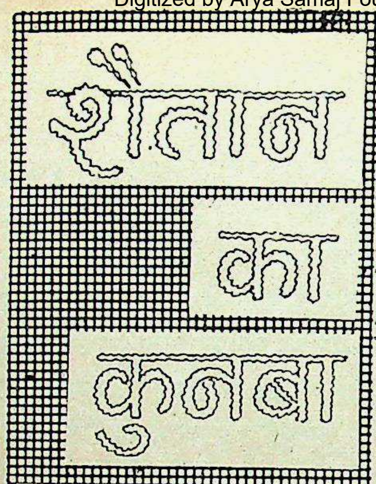
ग़ज़ल

किया गर क़ैद तो दम घोंटता है,
रिहा होकर धुआं ऊंचा उठा है।
कहें कैसे कि 'कोई गीत गाओ',
बहुत ख़ामोश कमरे की हवा है।
नदी राहें बनाना जानती है,
नदी को अपनी मंज़िल का पता है।
तुम्हारे महल को चोरी का डर हो,
हमारी झोंपड़ी का दर खुला है।
वो जिसने मील के पत्थर तराशे,
उसी का नाम पानी पर लिखा है।

–जहीर कुरेशी

राम-भवन, चिटनीस की गोठ, ग्वालियर–४७४००१





•

जार्ज थियोडोर विल्किन्सन का 'द न्यूगेट कैलेंडर' विश्व के अपराध-साहित्य का एक विलक्षण दस्तावेज है। इसमें सत्रहवीं से उन्नीसवीं सदी तक के ब्रिटेन के कुख्यात हत्यारों, लुटेरों-बटमारों, ठगों, उचक्कों, देशद्रोहियों आदि के भयानक एवं बीभत्स वृत्तांत दिये गये हैं। इनमें से ज्यादातर अपराधियों को लंदन की न्यूगेट जेल में मृत्युदंड दिया गया था।

•

सॉनी बीन स्काटलैंड में जेम्स चतुर्थ के शासन-काल में एडिनबरो से आठ मील पूरब ईस्ट लोथियन परगने में पैदा हुआ था। उसका पिता बाड़ों और मेड़ों की मरम्मत करके गुजारा किया करता था। बेटे को भी उसने इसी पेशे की शिक्षा दी। पेशा ऐसा था जिसमें रोजगार कभी-कभी ही मिलता था। बेटा ज्यादातर बेकार बैठा रहता था और स्वभाव से तो दुष्ट वह था ही। अंत में अपने जैसे ही दुष्ट स्वभाव की एक युवती के साथ वह गांव से भाग निकला और गैलोवे के ऊसर बियाबान में समुद्र के किनारे एक गुफा में रहने लगा।

गुफा लगभग एक मील लंबी और काफी चौड़ी थी और समुद्र के इतने नजदीक थी कि ज्वार के समय उसमें लगभग दो सौ गज तक पानी चला आता था। उसमें घुसने का रास्ता बहुत कठिन और चक्करदार था।

सॉनी बीन और उसकी बीवी इस गुफा में रहने लगे और लूट-मार से गुजारा करने लगे। जिसे भी लूटते उसे मार भी डालते थे, ताकि किसी को उनके वहां रहने का पता न चले।

वह जगह इतनी बियाबान थी कि वहां रसद प्राप्त करना बहुत मुश्किल था। सो भूखों मरने से बचने के लिए उन्होंने मानव-मांस खाने का निश्चय किया। अब जब भी वे किसी को लूटते और उसकी हत्या करते, उसका मुर्दा उठाकर गुफा में ले जाते। वहां वे मुर्दे का अंगभंग करके कुछ मांस खाते और बचा हुआ सुखाकर या नमक लगाकर रख लेते।

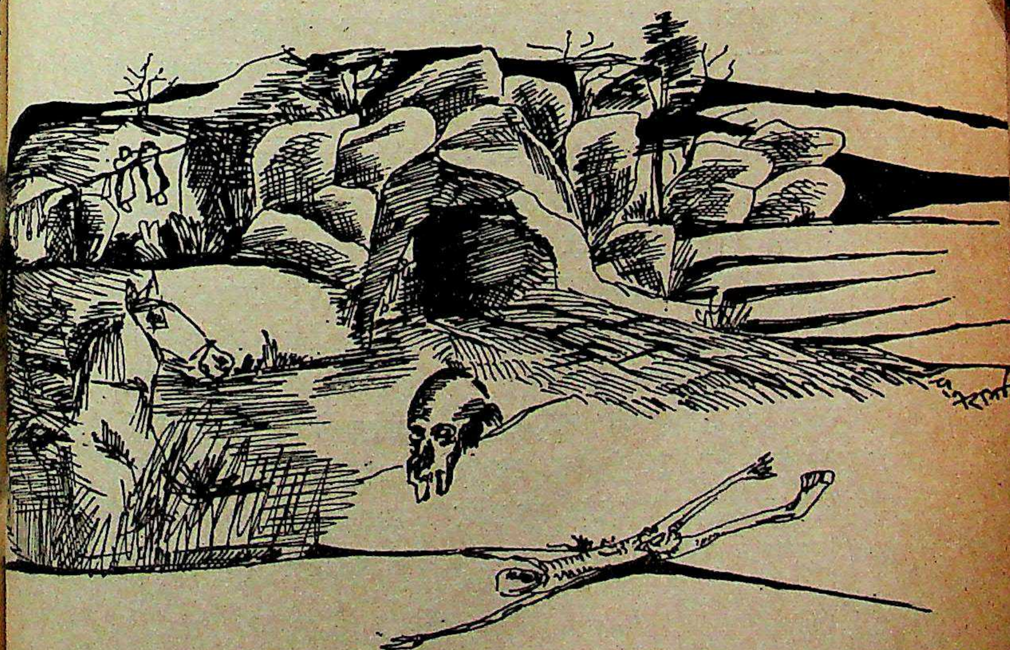
इसी तरह सॉनी और उसकी बीवी उस गुफा में वर्षों जिंदगी गुजारते रहे। वहां उनके आठ बेटे और छह बेटियां हुईं। नैतिक-नियम तो वे किसी प्रकार का मानते थे नहीं, सो अठारह पोते और चौदह पोतियां भी पैदा हो गयीं।

अब तो गुफा की आबादी बहुत बढ़ गयी मगर इतने सारे राहगीर उनके चंगुल में फंस जाते थे कि उन्हें खाने की यानी मांस की कभी कमी नहीं हुई। बल्कि खाने के बाद भी बहुत-सा नरमांस बच ही जाता था। इसलिए वे लोग बहुधा क्षीण- आदमियों के हाथ और टांगें काटकर समुद्र में फेंक देते थे। ये कटे हाथ-पैर समुद्र की लहरों के थपेड़े खाते हुए ज्वार के समय आसपास की बस्तियों में तट पर जा गिरते। लोग उन्हें देखकर बहुत भयभीत होते थे। साथ ही वे इस बात से परेशान थे कि उस इलाके से लोग जब-तब गायब हो जाते थे और उनका फिर कभी पता नहीं चलता था।

बीन-परिवार की सदस्य-संख्या बढ़ने के साथ उसका दुःसाहस भी बढ़ता गया। अब वे इक्के-दुक्के यात्रियों पर ही नहीं, चार-चार राहगीरों की टोलियों पर भी हमला करते और उन्हें लूटकर उनका काम तमाम करते और अंत में उन्हें उदरस्थ कर लेते। मगर कभी वे ऐसी किसी टोली पर हमला न करते, जिसमें एक से अधिक घुड़सवार हों—इसलिए कि कहीं ऐसा न हो कि कोई घुड़सवार बचकर भाग निकले और पुलिस में खबर पहुंचा दे। वे कई टोलियों में बंटकर इधर-उधर छिपे रहते थे, ताकि अगर कोई यात्री एक टोली के आक्रमण से बचकर भाग निकले, तो दूसरी टोली उसे पकड़कर उसका काम तमाम कर सके। लिहाजा कोई भी उनके चंगुल से बच नहीं पाता था।

इस तरह होते-होते इतने लोग गायब हो गये कि वह सारा इलाका बदनाम हो गया। बहुत बार सरकार ने वहां खोजी टोलियां भेजीं कि वे उस प्रदेश की छानबीन करके पता लगायें कि आखिर राहगीर

चित्र : चरण शर्मा



कहां गायब हो जाते हैं! मगर ये खोजी टोलियां गुफा के मुहाने के पास से निकल जातीं और उन्हें पता ही न चलता कि नर-भक्षी लुटेरों का एक पूरा खानदान उसमें बसा हुआ है।

सारे इलाके में आतंक छा गया था। लोग रात को बाहर निकलने से डरते थे। जिस पर भी लोगों को शंका होती उसकी, शामत आ जाती थी। सबसे ज्यादा दुर्दशा हुई सराय-मालिकों की। बहुधा ऐसा होता कि लोग कहते—फलां आदमी अंतिम बार फलां सराय में देखा गया था, उसके बाद से उसका कुछ पता नहीं। पुलिस उस सराय-मालिक को सताती थी। परिणाम यह हुआ कि उस इलाके की ज्यादातर सरायों पर ताले पड़ गये। इससे यात्रियों को बहुत कष्ट होने लगा।

वह इलाका उजड़ने लगा। लोग अपने पुश्तैनी गांव छोड़कर दूर के गांवों में जाकर बसने लगे। सारा देश हैरान था कि आखिर इतने सारे लोग कहां गायब हो जाते हैं और इतने सारे कटे हुए अवयव कहां से समुद्र में आते हैं! जरूर कोई राक्षसी कृत्य वहां बड़े पैमाने पर चल रहे हैं। मगर कौन इन्हें करता है और वह पकड़ाई में क्यों नहीं आता?

अंत में जैसे विधाता से और सहा नहीं गया और उसने हस्तक्षेप किया।

एक सांझ को एक आदमी और उसकी पत्नी पास के किसी गांव से मेला देखकर एक ही घोड़े पर बैठकर लौट रहे थे कि सॉनी बीन के कुनबे ने उन पर धावा बोला। आदमी ने बड़ी वीरता से उनका मुकाबला किया। मगर दुर्भाग्य से हमलावरों ने उसकी पत्नी को घोड़े पर से खींच लिया और घसीटते हुए जरा दूर ले जाकर उसका पेट चीर डाला। अपनी पत्नी का यह भीषण अंत देखकर आदमी भयंकर आवेश से उनसे लड़ता रहा। अपने घोड़े के खुरों से उसने कई हमलावरों को कुचल डाला।

सौभाग्य से तभी उसी मेले से लौट रहे बीस-तीस आदमियों की टोली घोड़ों पर बैठकर उधर से निकली। उसे देखते ही सॉनी बीन की शैतानी औलाद वहां से नौ दो ग्यारह हो गयी और जाकर अपनी गुफा में छिप गयी। इस तरह वह जिंदा बच गया।

यही पहला आदमी था, जो सॉनी बीन के कुनबे के कातिलाना हमले से बच निकला था। उसने पूरी कथा उस टोली के आदमियों को सुनायी और अपनी पत्नी का क्षत-विक्षत शव भी उन्हें दिखाया। वे लोग उसी इलाके के रहने वाले थे। वे सब स्तब्ध रह गये। वे सब उसे साथ लेकर ग्लास्गो गये और वहां के मजिस्ट्रेट की सेवा में पहुंचकर सारा वाकया बयान किया। मजिस्ट्रेट ने उनका बयान दर्ज किया और फौरन राजा के पास पूरी रिपोर्ट भेजी।

चंद दिनों में राजा जेम्स द्वितीय चार सौ सैनिकों को लेकर स्वयं आ पहुंचा उन आततायियों का उन्मूलन करने। जिस आदमी की पत्नी उसकी आंखों के सामने काट डाली गयी थी, वह मार्गदर्शक बना। बहुत सारे सधे हुए शिकारी कुत्ते भी जुटा

गये।

राजा की टोली ने वह सारा इलाका—पहाड़, समुद्र-तट सब—छान मारा। टोली गुफा के पास से भी गुजरी। किसी को शक नहीं हुआ कि इस अंधेरी गुफा में भी कोई आदमी रहता होगा। मगर कुछ शिकारी कुत्ते गुफा में घुस गये थे और उन्होंने जोर-जोर से भौंकना शुरू कर दिया था, जो इस बात का संकेत था कि वे शिकार के पास पहुंच गये हैं।

राजा और उसके सैनिक जो जरा आगे निकल गये थे, वापस लौटे। लेकिन उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि इस अंधेरी ऊबड़-खाबड़ गुफा में कोई आदमी सचमुच रहता होगा। लेकिन कुत्ते थे कि भौंके जा रहे थे और वापस लौटने से इन्कार कर रहे थे। बल्कि उनके भौंकने की उग्रता बढ़ती जा रही थी। अंत में राजा ने गुफा की छानबीन करने का फैसला किया।

बड़ी संख्या में मशालें तैयार की गयीं। जलती मशालें और शिकारी कुत्ते साथ लेकर एक साथ बहुत-से सैनिक गुफा में घुसे और उसकी भूलभुलैयाओं को पार करते हुए गुफा से उस खंड में पहुंचे, जो नरभक्षियों का निवास-स्थान था।

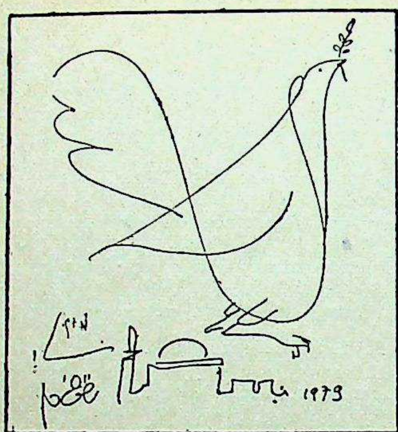
वहां उन्हें जो नजारा देखने को मिला, वह रूह कंपा देने वाला था। पूरे स्काटलैंड में ही क्या, समूचे संसार में वैसा नजारा सभ्यता के इतिहास में किसी ने नहीं देखा होगा। इन्सानों की जांघें, रानें व कंधे नमक लगाकर लटका दिये गये थे सूखने के लिए। बहुत-से मानव-अवयव अचार के रूप में नमक के पानी में पड़े हुए थे। नकद पैसों, सोने-चांदी के आभूषणों, घड़ियों, सूती-ऊनी-रेशमी वस्त्रों के ढेर गुफा में जगह-जगह लगे हुए थे।

सॉनी बीन और उसका पूरा कुनबा यानी वह, उसकी पत्नी, उसके आठ लड़के, छह लड़कियां और अठारह पोते और चौदह पोतियां गिरफ्तार कर लिये गये। सारा नरमांस समुद्र के किनारे रेत में दफना दिया गया। सारा मालमत्ता जब्त किया गया। फिर राजा ने कैदियों और सैनिकों के साथ एडिनबरो को कूच किया। सारे इलाके के लोग उमड़ पड़े उस राक्षस-परिवार को देखने।

राजधानी पहुंचकर नरभक्षी कुनबे को चुंगी नाके पर सख्त पहरे में रखा गया। अगले दिन उन्हें लीथवाक की कत्लगाह ले जाया गया और वहां बिना बाकायदा मुकद्दमे के ही उनका वध कर दिया गया। पहले पुरुषों को तलवार के घाट उतारा गया, फिर औरतों-बच्चों को जिंदा जला दिया गया। जितनी क्रूरता से सॉनी बीन और उसके बेटे-पोतों ने अभागे राहगीरों की हत्याएं की थीं, वैसी ही क्रूरता उनके साथ भी बरती गयी।

मगर उस राक्षस-परिवार के किसी भी सदस्य ने न अपने को अपराधी माना, न क्षमायाचना की। बल्कि वे मरते दम तक सबको गालियां देते और कोसते रहे। वे नारकीय जीवन जिये थे और नारकीय मौत ही मरे!





साझी कलाकृति

कु. नवनीत

योसी स्टर्न इस्रायल के प्रसिद्ध चित्रकार हैं। एक दिन वे येरुशलम संबंधी अपने चित्र अपने देश के प्रधान-मंत्री बेगिन को दिखाने के लिए उनके यहां गये।

चित्रों को देखते हुए प्रधान-मंत्री ने कहा–'इनमें सचमुच अलौकिक प्रतिभा झलकती है। ... हममें से हर किसी की दस उंगलियां हैं। पर जब याशा हाइफेट्ज उन उंगलियों से वायलिन बजाते हैं, तो अलौकिक संगीत जन्म लेता है। लेकिन अगर मैं वायलिन बजाने लगूं, तो उसमें से कर्कश ध्वनियां ही निकलेंगी।'

फिर प्रधान-मंत्री ने स्टर्न की ओर मुंह उठाकर कहा–'आपकी उंगलियों में भी कमाल है। अगर कहीं मैं चित्र बनाने लगूं, तो ...'

'नहीं, आप भी कलाकार हैं,' स्टर्न ने उनकी बात काटते हुए कहा और कागज-पेंसिल मंगवाकर उनके सामने रखते हुए कहा कि इस पर कुछ भी अंकित कर दीजिये।

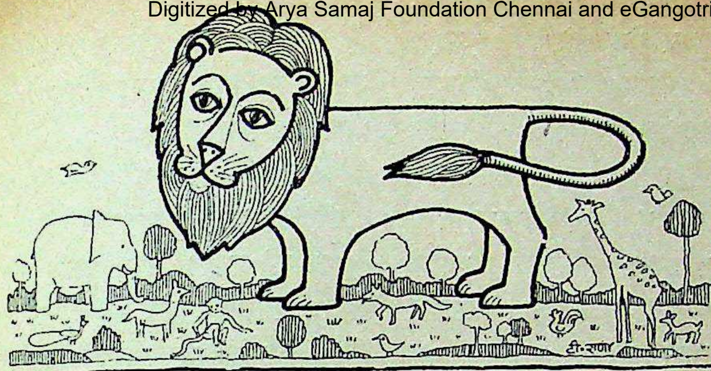
प्रधान-मंत्री ने कागज पर अंग्रेजी के 'एस' अक्षर जैसी एक लकीर खींच दी।

स्टर्न ने उसे एक नजर देखा और लगे हाथ चंद रेखाएं खींचकर उस आकृति को पूरा किया।

चोंच में जैतून की टहनी पकड़े एक फाख्ता की आकृति बन गयी थी।

फिर बेगिन और स्टर्न दोनों ने अपनी उस साझी कलासृष्टि पर हस्ताक्षर किये। यही आकृति आप इस लघु लेख के साथ देख रहे हैं।





बार का जिक्र है, किसी जंगल में एक र रहता था। जंगल के सभी जानवरों सी का राज्य था। उसने जंगल में एक लागू कर रखा था, जिसके अनुसार से लेकर झींगुर तक और भेड़िये से बुलबुल तक हर पशु-पक्षी को एक टैक्स चुकाना पड़ता था। यह था का व्यक्तिगत टैक्स! कोई जानवर टैक्स से बरी न था। हर एक जानवर से शाम तक मेहनत करता, पर जो वह कमाता, उसका सर्वोत्तम हिस्सा के व्यक्तिगत टैक्स के रूप में उससे लिया जाता। भेड़िया हिरन का कार करता, तो हिरन के गोश्त का सबसे दिष्ट टुकड़ा शेर के लिए वसूल कर लिया जाता। बेचारी लोमड़ी सौ जुगत भिड़ाकर एक मुर्ग मारती तो शेर के टैक्स से मुर्ग की रान कभी न बच सकती।

शेर दिन-रात अपने महल में रहता। वहां खाता-पीता, ऐश करता। दरबारियों का एक हुजूम हर समय उसके इर्द-गिर्द जमा रहता। उनमें खासी संख्या बंदरों की थी, जो मक्खन लगाने की कला में प्रवीण थे। दर्जनों बंदरियां थीं, जो नाच-कूदकर जंगल के बादशाह का दिल बहलाने में कुशल थीं। कुछ बूढ़े तोते थे, जो विद्वत्ता और ज्ञान का सोता समझे जाते थे। काले स्याह कौए थे, जो हर समय अपनी संगीत-कला का प्रदर्शन करके बादशाह सलामत को खुश रखने को उत्सुक रहते थे।

तुर्की व्यंग्यकथा

जंगल का कानून

अजीज ने सिन

शेर कभी-कभार थोड़ी देर के लिए महल से बाहर निकलता। एक लंबी-सी अंगड़ाई लेता, दुम हिलाता, मूंछों पर जीभ फेरता, एक-आध बार जोर से दहाड़ता और फिर वापस महल में जाकर भोग-विलास में मग्न हो जाता। इस व्यवहार के पीछे उसके दो उद्देश्य थे—एक तो यह कि प्रजा पर बादशाह सलामत का दबदबा कायम रहे; दूसरा यह कि देखने-सुनने वाले जान जायें कि बादशाह भी आम प्रजा की तरह हाथ-पैर हिला कर जीविका कमाता है, मुफ्तखोरी नहीं करता।

शेर चतुर था। उसे पता था कि एक न एक दिन जंगल के जानवरों की सोयी हुई बुद्धि जाग उठेगी और वे जंगल के काले कानून के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठायेंगे। इस डर से उसने अपने महल के चारों ओर रखवाले कुत्तों के दस्ते नियुक्त कर रखे थे। कभी-कभार जब टैक्स में प्राप्त खुराक शेर की निजी आवश्यकता से अधिक हो जाती तो बची-खुची खाद्य वस्तुएं उन रखवाले कुत्तों के आगे फेंक दी जातीं। इस उपकार के बदले कुत्ते दिलोजान से बादशाह के महल की रखवाली करते।

इसके अलावा बादशाह ने सावधानी के तौर पर पूरे जंगल में अपने वफादार कुत्तों का जाल बिछा दिया था। सबसे निचले स्तर पर आम आवारा कुत्ते नियुक्त किये गये थे। उनके ऊपर गुरजी कुत्तों को जगह दी गयी थी। फिर आते थे शिकारी कुत्ते, गड़िया कुत्ते आदि-आदि। सब कुत्तों के सेनापति के रूप में एक बुलडाग नियुक्त था। उसकी भयानक शक्ल देखकर बड़े-बड़ों के होश उड़ जाते थे।

जंगल में यदि कहीं जरा-सी काना-फूसी होती, तो उसकी खबर दर्जा-ब-दर्जा नीचे से ऊपर आती और फिर बुलडाग के जरिये बादशाह तक पहुंच जाती। संवाद-प्रेषण की जंजीर से हर बात अपने असल रूप से कई गुना बढ़ा-चढ़ाकर बादशाह के कानों तक पहुंचायी जाती। शेर बादशाह आश्वस्त था कि राज्य में कोई बागी उसके विरुद्ध अपनी बेजा कार्रवाइयों को गुप्त रूप से जारी नहीं रख सकेगा और वह खुद हमेशा इसी तरह व्यक्तिगत टैक्स में मिले तर निवालों पर चैन से पलता रह सकेगा।

समय बीतता गया। एक दिन साथ वाले जंगल में जानवरों ने अपने बादशाह के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कबूतरों की जबानी यह खबर इस जंगल में भी पहुंची। यहां के जानवरों को भी अपने बादशाह की ज्यादतियों और अन्यायों का तीव्रता से एहसास होने लगा। इस अत्याचार के विरुद्ध सबसे पहले प्रजा के जिस वर्ग ने आवाज उठायी, वह थीं बुलबुलें।

'हम इस बूढ़े खूसट शेर को टैक्स क्यों चुकायें? इन्साफ जिंदाबाद! समता और स्वाधीनता जिंदाबाद!'

बुलबुलों की बात जंगल की पहाड़ियों पर नियुक्त सरकारी कुत्तों ने सुनी। उन्होंने गुरजी कुत्तों को वह पहुंचायी। दर्जा-ब-दर्जा

...हुचता बुलडाग तक पहुंची। अंत में ...ने बादशाह सलामत को अवगत ...या।

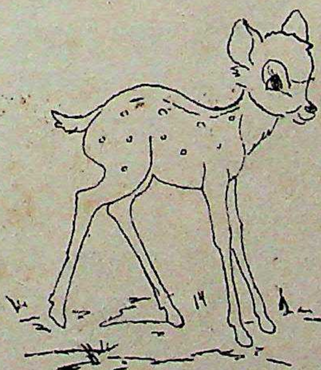
...र को चिंता हुई। बहुत सोच-विचार ...उसने निश्चय किया कि इस समस्या ...राजनैतिक समाधान ढूंढ़ना चाहिये। ...ए उसने एक बहुत विश्वस्त सरकारी ...के हाथों बुलबुलों को निम्नलिखित ...भेजा :

...हमारी प्रजा में सबसे अधिक मधुर ...ज वाली बुलबुलो! हमें विश्वस्त ...से पता चला है कि हमारे जंगल की ...ता, सुव्यवस्था और शांति भंग करने के ...एक सोची-समझी योजना पर कार्य ...हुए हमारे एक पड़ोसी जंगल ने हमारे ...हाल और शांतिपूर्ण राज्य में निराशा-... विध्वंसकारी अफवाहें फैलाना शुरू ... दिया है, जिन्हें सुन-सुनकर तुम्हारे ...गुमराह साथी तथाकथित स्वतंत्रता ...राग अलापने में लग गये हैं।

...हमारे देश की खुश-...प्रजाजनो! जरा ...के नाखून लो! सदा ...की डालियों पर बैठ-...मीठे राग सुनाते-सुनाते ...तुम्हारी अक्ल पर क्यों ...पड़ गया है!. तुमने ...वाह हमारी प्रजा के ...प्रिय वर्गों को बगावत ...लिए उकसाने की ठान ...है। हम तुम सबको निमंत्रण देते हैं कि हमारे महल में आओ और अपने प्यारे-प्यारे रागों से हमारा दिल बहलाओ। इससे संगीत-कला की भी सेवा होगी और हमें भी इसका अवसर मिलेगा कि अपने व्यक्तिगत टैक्स से तुम सबकी परवरिश का प्रबंध बेहतर बना सकें।

'अगर तुममें कुछ ऐसी स्वतंत्र तबीयत की बुलबुलें भी हैं, जो हमारे महल में न आना चाहें, तो उन्हें हमारा परामर्श है कि गुलाब की टहनियों पर स्थायी रूप में आबाद हो जायें और अपना शेष जीवन राग और संगीत की सेवा में अर्पित कर दें। हम उनके हितों का विशेष ध्यान रखेंगे।

'हमारी इस संधि की किसी और को कानों-कान खबर न होगी। अगर कोई बुलबुल इन दो रास्तों के अलावा तीसरा रास्ता अपनायेगी, तो उसे कानून अपनी मजबूत जकड़ में ले लेगा। यह कभी मत भूलना कि तुम सबके टेंटुए हमारे पंजों से दूर नहीं हैं।'



निरीह शिशु प्रजा

यह संदेश मिलते ही ज्यादातर बुलबुलें शाही महल में जा पहुंचीं। शेर ने उन सबको सोने के पिंजरों में बंद कर दिया और अपने व्यक्तिगत टैक्स में से हर बुलबुल का वजीफा निश्चित कर दिया। जल्दी ही ये सारी बुलबुलें बादशाह सलामत के दरबारियों में शामिल हो गयीं और

हर समय प्रशंसा के राग अलाप-अलापकर अपने स्वामी का जी बहलाने लगीं।

कुछ समय के लिए जंगल में खामोशी छा गयी। सारे राज्य में शांति की अवस्था पहले जैसी नजर आने लगी। मगर कुछ बुलबुलें, जो अब तक स्वतंत्रतापूर्वक जंगल में उड़ती फिरती थीं, जल्दी ही फिर से एक दूसरे से कुछ इस प्रकार की खुसर-फुसर करती पायी गयीं :

'पिंजरा आखिर पिंजरा होता है, चाहे सोने का हो या चांदी का!'

'अत्याचार है भई! सरासर अत्याचार है! बुलबुलों पर इससे बड़ा अत्याचार कब हुआ था?'

सरकारी कुत्तों ने कान खड़े किये। फिर दुम हिला-हिलाकर, चटखारे ले-लेकर यह खबर बादशाह सलामत तक पहुंचायी। शेर गुस्से से दहाड़ा—'लोगो! अब हमसे कोई शिकायत न करना! हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया! पर सच कहते हैं, सदा बुलबुल की जीभ ही उसकी तबाही का कारण बनती है। हमने अब निश्चय कर लिया है कि जो बुलबुलें चुप नहीं रहना चाहतीं, उन सबकी जीभें काट दी जायें।'

बादशाह के नये आदेश के अनुसार जहां कहीं कोई बुलबुल शिकायत करती पकड़ी जाती, तत्काल उसकी जीभ काट दी जाती। कुछ समय के लिए राज्य-भर में फिर खामोशी छा गयी। मगर जल्दी ही जीभ-कटी बुलबुलों ने एक-दूसरे को इशारों-इशारों में अपना दुख-दर्द बयान करना सीख लिया। शेर को पता चला, तो उसने तुरंत एक और आदेश जारी किया, जिसके अनुसार इशारे करना भी निषिद्ध घोषित कर दिया गया।

जब यह आदेश भी कारगर साबित न हुआ, तो बादशाह ने जंगल का सबसे कठोर कानून लागू कर दिया। इस नये कानून में यह व्यवस्था थी कि ऐसे हर जानवर की गरदन उड़ा दी जायेगी, जो किसी भी बारे में शिकायत करने का दुस्साहस करे। जंगल में अजीब तरह की निस्तब्धता छा गयी।

मगर अब प्रश्न यह पैदा हुआ कि सरकारी कुत्ते क्या करें? उनके रोजगार की खातिर कुछ न कुछ कार्रवाई तो जरूरी थी। उनकी तरक्की और तनख्वाह का दारोमदार उनके द्वारा पहुंचायी जाने वाली शिकायतों की संख्या पर था। इसलिए कुत्तों ने एका किया और सारे जंगल में सूंघने का एक जोरदार अभियान शुरू कर दिया। उन्हें विश्वास था कि इतने बड़े जंगल में कहीं न कहीं जरूर कोई बुलबुल शेर के विरुद्ध शिकायत करती हुई पकड़ी जायेगी। वे जंगल के कोने-कोने में गये ताकि कोई ऐसी बुलबुल ढूंढ़ निकालें, जो अब तक शेर के विरुद्ध घृणा फैलाने के मूर्खतापूर्ण काम से बाज न आयी हो।

बड़े प्रयत्नों के बाद दो सरकारी कुत्तों की नजर एक बुलबुल पर पड़ी, जो एक गुलाब की टहनी पर चुपचाप बैठी थी। उन्होंने देखा, बुलबुल न तो मुंह खोलती है,

और न किसी से इशारों से ही बात कर रही है, पर रह-रहकर अपनी छाती गुलाब के कांटों से टकराती है और जब छाती से खून की बूंद बहने लगती है, तो आंखों में आंसुओं के मोती भर लाती है।

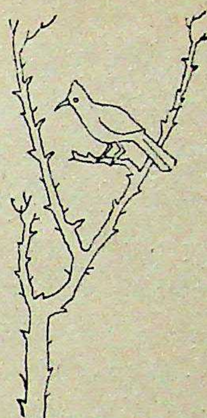
कुत्तों ने योजना बनायी कि किसी तरह बुलबुल को बोलने को मजबूर किया जाये, और ज्यों ही वह मुंह खोले, उसे पकड़कर बादशाह सलामत की सेवा में पेश करके इनाम प्राप्त किया जाये। सो उनमें से एक बोला-'प्यारी बुलबुल ! यह तो बताओ, क्या हम-तुम रात-दिन केवल शेर का पेट पालने की खातिर मेहनत करते हैं? यह कहां का न्याय है? यह कहां की समानता है?'

बुलबुल पहले तो कुत्तों के झांसे में न आयी। पर जब दोनों कुत्तों ने भोंक-भोंककर जमीन-आसमान एक कर दिया, तो उसके मुंह से केवल ये शब्द निकले-'तुम ठीक कहते हो, भाइयो!'

'क्या कहा? हम ठीक कहते हैं!'

यह कहकर दोनों कुत्ते भागते-भागते सीधे शेर के पास पहुंचे और बुलबुल की शिकायत की। शेर आग-बबूला होकर बोला-'बुलबुल को गिरफ्तार कर लिया जाये। जो भी इस गुस्ताख पंछी को पकड़कर हमारी सेवा में पेश करेगा, उसे महल का रक्षक गारद का सरदार बना दिया जायेगा।'

दोनों कुत्ते भागते-भागते फिर वहां पहुंचे, जहां बुलबुल बैठी थी। एक ने कहा-



मुंह खोलने से वंचित बुलबुल

'बहन बुलबुल! तुम हमारे जंगल के सब साथियों में जागृति पैदा करने के लिए दिन-रात भाषण करती हो। स्पष्ट है, अब तुम बहुत थक चुकी होगी। थोड़ी देर आराम कर लो। हम पहरा देते हैं। तुम निश्चित होकर सो जाओ। हमारी उपस्थिति में किसी की मजाल नहीं, जो तुम्हारा बाल भी बांका कर सके।'

बेचारी बुलबुल उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गयी। यों भी बेचारी कई दिन से लगातार जाग रही थी। उसने आंखें बंद कीं और कुछ ही क्षणों में सपनों में खो गयी।

कुत्ते इसी प्रतीक्षा में थे कि बुलबुल सोये और हम उस पर हाथ साफ करें। शिकारी कुत्ता लपका और उसने बुलबुल की एक टांग अपने मुंह में दबोच ली। बुलबुल चौंकी और फौरन समझ गयी कि वह किसी गहरी साजिश का शिकार हो

गयी है। मगर अफसोस अब कुछ नहीं हो सकता था।

शिकारी कुत्ते ने बुलबुल को मुंह में दबाया और तेजी से राजमहल की ओर भागा कि दूसरे कुत्ते से पहले वहां पहुंचकर बुलबुल की गिरफ्तारी का सेहरा अपने सिर बंधवाऊं और इनाम पाऊं।

दूसरा कुत्ता भी अपने साथी की फुर्ती देखकर उसकी चालाकी भांप गया। लपककर आगे आया और शिकारी कुत्ते को चकमा देने के लिए बोला—'बड़े भाई! जरा धीरे भागो, ताकि हम दोनों एक साथ राजमहल में दाखिल हों और मिलकर भोंकते हुए अपनी शानदार सफलता की खुशखबरी बादशाह सलामत को सुनायें। बादशाह सलामत दोनों को मुंहमांगा इनाम देने पर मजबूर हो जायेंगे।'

यह सुनकर शिकारी कुत्ते ने अपनी रफ्तार धीमी की। दूसरे कुत्ते ने शिकारी कुत्ते की दुम हाथ में थाम ली और इस तरह दोनों एक साथ भागते-दौड़ते राजमहल की ओर चलते गये।

इस बीच बुलबुल ने कुत्तों से जान छुड़ाने की एक अनोखी तरकीब सोच ली थी। वह उनसे कहने लगी—'भाई कुत्तो! तुमने मुझे तो पकड़ लिया है। तुम्हारी इस सेवा के बदले में बादशाह सलामत तुम्हें न जाने कैसे-कैसे इनाम-इकराम देंगे। आओ, इस खुशी में हम तीनों इकट्ठे बैठकर अपने मेहरबान बादशाह की सेहत, सलामती और लंबी उम्र की प्रार्थना करें।'

कुत्ते बुलबुल की चालाकी फौरन ताड़ तो गये, मगर समस्या बादशाह सलामत की सेहत और लंबी उम्र की थी। दोनों कुत्तों के दिलों में एक-दूसरे के विरुद्ध बदगुमानी पैदा हुई कि कहीं मेरा साथी मेरे विरुद्ध बादशाह सलामत से शिकायत न करे कि महाराज, इसने आपकी सलामती के लिए प्रार्थना करने में संकोच से काम लिया था। सो इस डर से दोनों कुत्तों ने बुलबुल का प्रस्ताव फौरन मान लिया।

उन दोनों ने ज्योंही प्रार्थना करने के लिए मुंह खोला, बुलबुल फुर्र से उड़ी और गुलाब की एक ऊंची डाली पर जा बैठी। वहां से वह जंगल के सब जानवरों को चिल्ला-चिल्लाकर सावधान करने लगी—'साथियो! सरकारी कुत्तों की जबान पर कभी विश्वास न करना! धोखा खाओगे!'

उधर दोनों कुत्ते जोर-जोर से भोंक रहे थे। वे भी जंगल के जानवरों को अपने जीवन के इस कटु अनुभव का निचोड़ बता रहे थे—'भाइयो! अपना इनाम वसूल कर लेने से पहले अपने स्वामी की लंबी उम्र की प्रार्थना के लिए कभी मुंह न खोलना।'

इसके बाद बादशाह पर क्या बीती और जंगल का क्या हुआ, यह एक लंबी दास्तान है, जो फिर कभी बयान करेंगे।

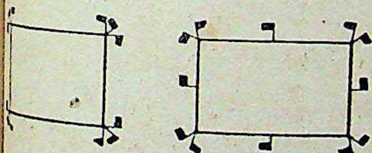


जरा दिमाग लड़ाइये

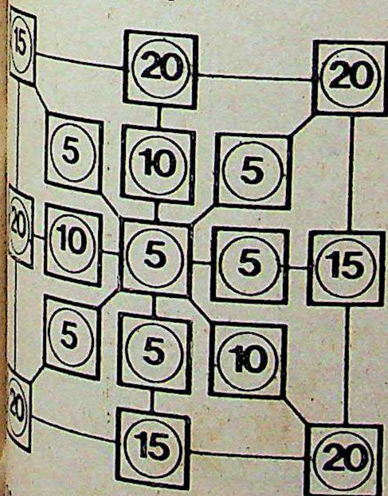
[पृष्ठ १४६-४९ के प्रश्नों के उत्तर]

(१) १५,९५१ का पहला अंक दो घंटों बदल नहीं सकता। लिहाजा नयी संख्या पहला और आखिरी अंक १ होगा। और चौथा अंक बदलकर ६ हो गये। बीच का अंक ०, १, २ ..... हो, तो कार घंटों में ११०, २१०, ३१० .... कि. मी. होगी। पहले दो विकल्पों में से ही एक सही हो सकता है। इसलिए कार अथवा १०५ किलो मीटर प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ी।

(२) नीचे की आकृति देखें।



(३) नीचे की आकृति देखें।



(४) प्रति घंटा ३० किलो मीटर की रफ्तार पर ट्रक २ मिनट में एक किलो मीटर तय करता है; प्रति घंटा २० किलो मीटर की रफ्तार पर ३ मिनट में। दूसरी रफ्तार पर ट्रक को प्रति किलो मीटर पर एक मिनट विलंब होता है। सो १२० मिनट विलंब से पहुंचने के लिए उसे १२० किलो-मीटर तय करने होंगे। वही कृषिफार्म से कस्बे की दूरी है।

शायद आप सोचें कि अभीष्ट रफ्तार ३० और २० किलो मीटर प्रति घंटा के ठीक बीच होगी यानी २५ किलो मीटर प्रति घंटा। मगर आपका खयाल गलत है।

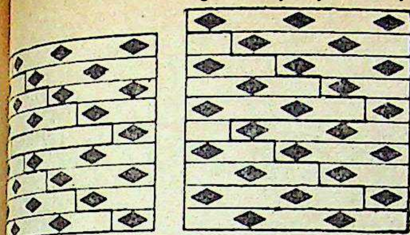
३० किलो मीटर प्र. घं. पर ट्रक को १२० किलोमीटर तय करने में ४ घंटे लगते हैं। ट्रक को एक घंटा और लगाना है, यानी ११ बजे पहुंचना है। सो रफ्तार होनी चाहिये (१२० ÷ ५) = २४ किलो मीटर प्रति घंटा।

(५) अगर १ संतरा और होता तो वह संख्या १०, ९, ८ ..... से विभक्त हो सकती थी। वह संख्या है—२,५२० और उसके गुणनफल।

अर्थात् समिति के पास २,५१९ संतरे थे अथवा २,५१९ + २,५२० n संतरे थे, जिसमें n पाजिटिव इंटीगर है।

(६) नूरिया ने सीढ़ीदार कटाई करके गलीचे के दो टुकड़े किये और दोनों टुकड़े सी दिये। पृष्ठ १७८ की आकृतियां देखें।

(७) मान लें कि उत्तर है X। वात्या की प्रतिज्ञा है १/३ X पेड़ रोपने की। किरयूशा की प्रतिज्ञा है १/२ X पेड़ रोपने की। पिछली



नूरिया का कालीन – दो स्थितियां

…ोली ने रोपे होंगे शेष पेड़, अर्थात् १/६ X। …कि वे ४० थे, इसलिए X=२४०।

(८) आप ही हिसाब लगाकर देखें। …८ शाटों को ६–६ के तीन समान सेटों में …टने का एक ही तरीका है :

२५, २०, २०, ३, २, १;
२५, २०, १०, १०, ५, १;
५०, १०, ५, ३, २, १।

पहली पंक्ति एन्दरूशा की है; क्योंकि …सी में ऐसी दो संख्याएं हैं, जिनका जोड़ …२ होता है।

चूंकि ३ केवल पहली और तीसरी पंक्ति …में हैं, इसलिए तीसरी पंक्ति वालोद्या की है और उसी ने चांद में गोली मारी।

(९) समस्या को पीछे की ओर से गणना करके आसानी से हल किया जा सकता है। तीसरी बार पुल पार करने के ठीक पहले निठल्ले के पास १२ रूबल थे। उसमें अगर २४ रूबल जोड़ें (जो उसने दूसरी बार पुल पार करने पर शैतान को दिये), तो ३६ रूबल हुए, जिसका आधा यानी १८ रूबल दूसरी बार पुल पार करने के पहले निठल्ले के पास थे। अब इसमें फिर २४ रूबल जोड़ें तो ४२ रूबल हुए, जो कि पहली बार पुल पार करने के बाद उसके पास थे। ये ४२ रूबल हुए २१ रूबल के दुगुने, जो कि निठल्ले की मूल रकम थी।

(१०) जब इंजिनों का मिलन होता है, उनके काबूसों में २/६=१/३ किलोमीटर का अंतर होता है और उनकी कुल निकट आने की रफ्तार १२० किलो मीटर प्रति-घंटा है। उन्हें एक दूसरे से मिलने में १/३६० घंटे = १० सेकंड लगते ह।

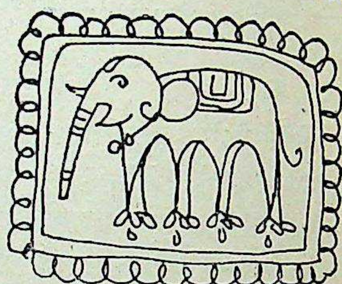


मियामी (फ्लोरिडा राज्य, अमरीका) के निवासी विलियम ई. हास्ट एक विलक्षण आदमी हैं। बचपन से उन्हें विषैले सांपों में दिलचस्पी रही है और उन्होंने नाग (क्रोबा) तथा अन्य खौफनाक सांपों का काफी बड़ा परिवार अपने घर में पाल रखा है। इनसे वे नियमित रूप से विष दुहते हैं और वैज्ञानिक शोधकार्य के लिए मुहैया करते हैं। आप जानते ही हैं कि सर्पविष का उपयोग आजकल अनेक रोगों के इलाज में होता है।

श्री हास्ट को अब तक १२६ से ज्यादा बार सांपों ने काटा है। दो बार तो वे मरते-मरते बचे। चूंकि उन्हें सांपों के हमले का खतरा था, इसलिए उन्होंने वर्षों पहले अपने शरीर में नागविष के इंजेक्शन देना शुरू कर दिया। अब उनका रक्त इतना अधिक विष-रोधी बन गया है कि सांप के काटे आदमियों के लिए अत्युत्तम सीरम बन गया है। इस रूप में उपयोग के लिए वे मुफ्त में अपना रक्त देते हैं और अब तक २२ मनुष्यों की जान बचा चुके हैं। बहुत बार तो रक्त देने के लिए वे अपनी गांठ का पैसा खर्च करके हवाई यात्रा करते हैं।



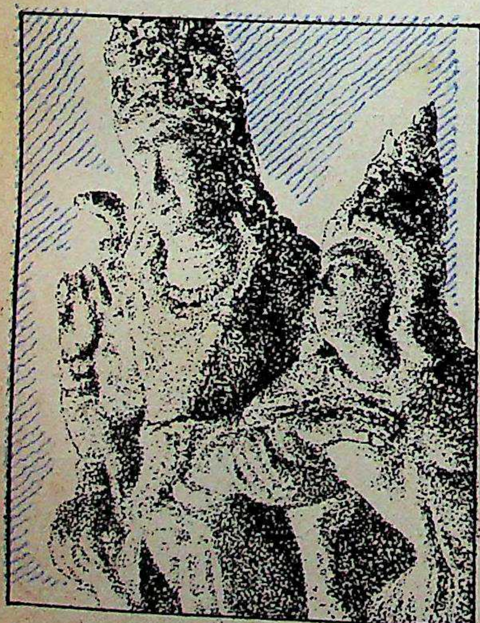
कला का आध्यात्मिक महत्त्व



• रुक्मिणीदेवी अरुंडेल •

मेरा विश्वास है कि कला और धर्म में गठबंधन है। धर्म से मेरा तात्पर्य सारे धर्मों के सारांश से है। इसीलिए यदि कोई मुझसे पूछे कि आपका अपना धर्म क्या है, तो मैं उसे कोई विशेष धर्म नहीं बता सकती। इसी तरह कला भी मेरे लिए केवल मनोरंजन नहीं है। वह देवताओं की सांकेतिक भाषा है। कलाकार का लक्ष्य अपने विचार (आइडिया) की अभिव्यक्ति करना ही नहीं, अपने माध्यम से कला को प्रवाहित होने देना है।

लोग सर्जनात्मक कला की बात करते हैं। किंतु कला की सर्जना तो वैसी ही होती है, जैसी कि जीवन की होती है। जो सर्जनात्मक नहीं होता, वही तो मृत होता है। कला का बढ़ना ही विकास है। हम जब स्वतंत्र और सजीव होते हैं और अपने 'आइडियाओं' में जिंदादिली रख पाते हैं, तब अपने आप ही सृजनशील हो जाते हैं। सारी प्रेरणाओं का उत्स तो हमारे अंदर ही है। बस हमें अपने इस अक्षय स्रोत का लाभ उठाना होता है।



शिव-पार्वती [अनुकृति : ओके]

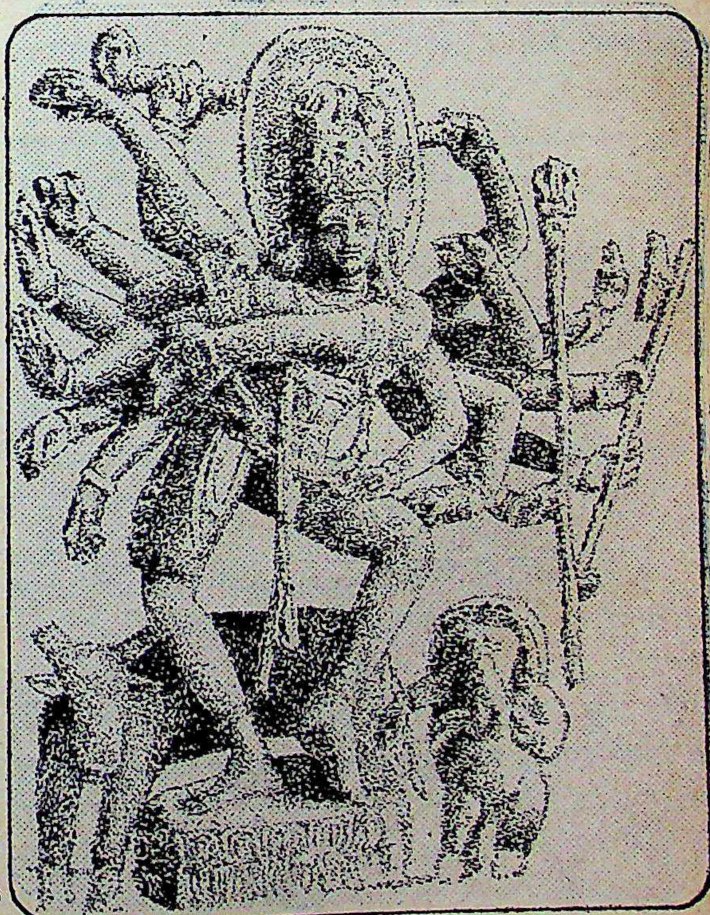
आविष्कार और सर्जना एक ही बात नहीं है। आविष्कार का जनक मस्तिष्क होता है; किंतु सर्जना मन और आत्मा से आती है। इसीलिए वह बृहत्तर और वैश्विक हो जाती है। उसमें सर्जनात्मक शक्ति और ऊर्जा का संयोग जो होता है! सुंदर की सर्जना को एक शरीर या आकार भी तो देना पड़ता है न! इसलिए हम तकनीक या शारीरिक (आकारीय) व्यवस्था की संवर्धना करते हैं।

यह एक अजीब-सी बात है किंतु है

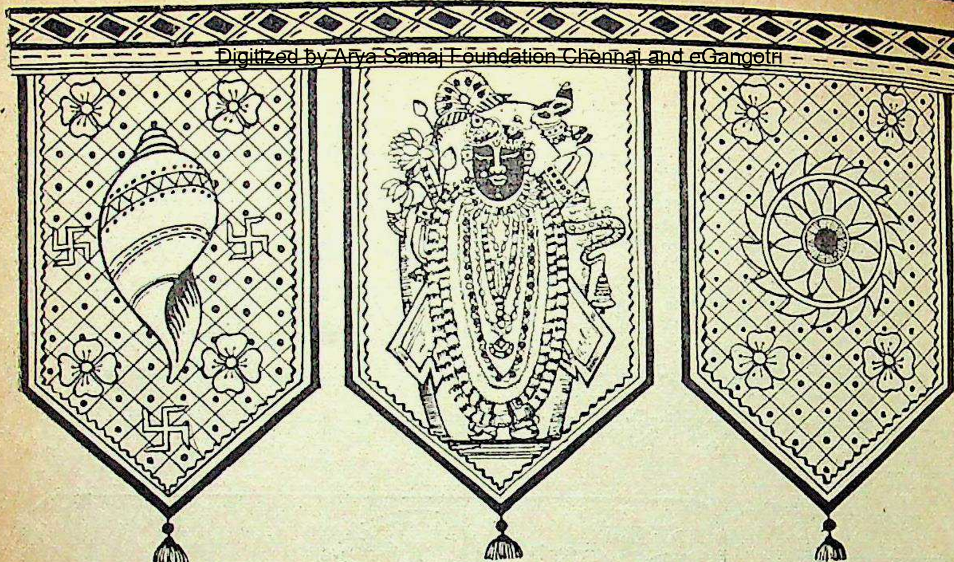
...व कि हमें स्वतंत्र या स्वच्छंद होने के लिए नियंत्रण (अनुशासन) की जरूरत होती है। नदी को बहने के लिए दो किनारे चाहिये न? सर्जनात्मक वृत्ति के सतत प्रवाह के लिए तकनीक के तट भी आवश्यक होते हैं।

तकनीक के बारे में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हममें उसे भूलने की क्षमता भी हो। तब हम अपने से ऊपर उठ जाते हैं, भौतिकता का अतिक्रमण कर पाते हैं। उस वक्त हम नहीं होते वहां, कोई और ही हमें परिपूर्ण और समृद्ध कर देता है। इसीलिए मैं प्रायः कहती हूं कि कला केवल मनोरंजन नहीं है। उसे सच्चे अवकाश के क्षण तो चाहिये. किंतु वे क्षण तभी उपलब्ध होते हैं जब हम सहज और अपने आपके प्रति असचेत होते हैं। कला का मुख्य स्वर उल्लास या आनंद है और वह तभी मिलता है जब हम उसमें रमे हों और अपने को भूले हुए होते हैं।

उदाहरणार्थ, नृत्य या नाटक को लें। इन दोनों में मानव को प्रभावित करने वाली सारी भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। लोग यह ठीक तरह जानते नहीं कि दोनों कलाओं के माध्यम से हमें अपने अनजाने ही अनेकविध ज्ञान एवं अनुभूतियों की उपलब्धि हो जाती है। इनसे हमें अपने और



नटराज–बादामी, गुफा-१ [अनुकृति : ओके]







...तरों के बारे में बहुत-सी जानकारी प्राप्त होती है। आधुनिक विज्ञान भी हमें स्वयं अपने सिवा और सब-कुछ के बारे में बहुत-कुछ सिखाता है। किंतु यदि हम अपने बारे में कुछ भी न जानें, तो और सब-कुछ के बारे में बहुत कुछ जानने का उपयोग ही क्या है!

कला यदि केवल वैयक्तिक आत्म-प्रदर्शन का साधन बन जाती है, तो वह अपने स्तर से गिरकर आखिर मर जाती है। नृत्य में बहुत अधिक संभावना रहती है इसकी। कारण, नृत्य में कला का सारा प्रदर्शन शरीर पर निर्भर रहता है। दिखावा तो मानव मात्र की कमजोरी होती है। जो नर्तक-गण प्रायः यह भूल जाते हैं कि नृत्य की उत्कृष्टता इसी में है कि शरीर एकदम अभौतिक हो जाये और दर्शक उसकी ठोस सत्ता को भी भूल जायें। नहीं तो नृत्य फिर केवल मांसल ऐंद्रिय भावों को ही व्यक्त करता है, मन की भावनाएं उससे अछूती रह जाती हैं। इसी से तो मैं नृत्य को 'शरीर का संगीत' कहती हूं और यह संगीत शरीर के अंग-प्रत्यंग में समाया होता है।

संगीत में केवल ताल (योग) ही नहीं लय भी होती है। लय ध्वनि का नृत्य है, भावनाओं का नृत्य है। यही ताल की अंतरात्मा होती है। लोग जब कला के रूप और शिल्प की चर्चा करते हैं, तो यह खयाल नहीं करते कि कला की आत्मा का ध्यान न रहे तो आप उसका मर्म कभी नहीं समझ सकते। मुझे इसका अनुभव 'कुमार-सम्भव' नृत्य की रचना में हुआ था। इस पर मैं छह वर्ष तक समाहित रही थी, यद्यपि इसकी सर्जना केवल ग्यारह दिन में हो गयी थी।

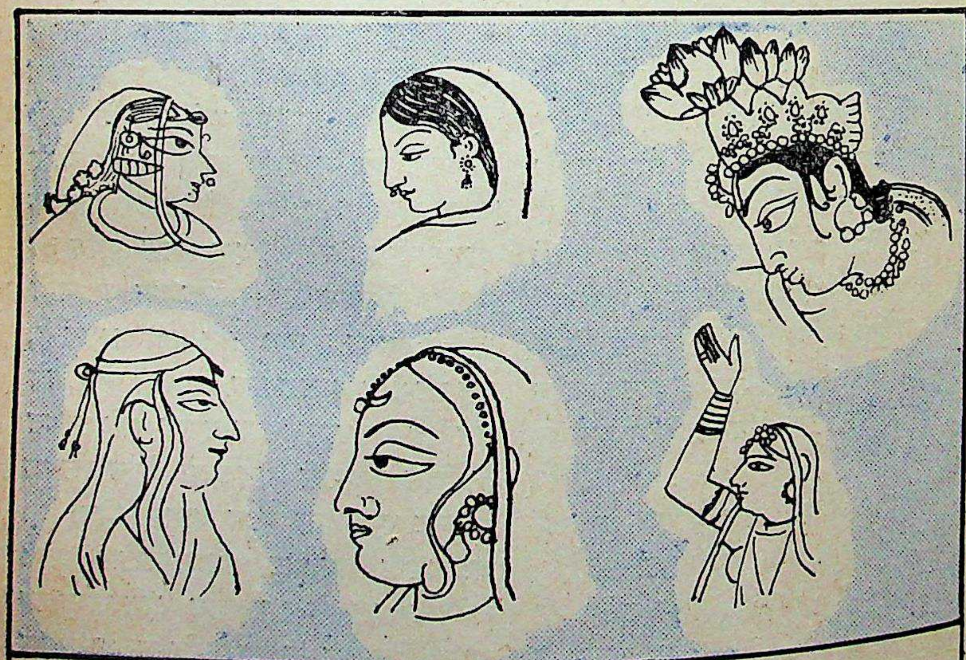
आजकल प्रायः लोग यह कहते हैं कि भारत में धर्म का महत्त्व घटता जा रहा है। मैं कहती हूं कि क्या यह आवश्यक है कि धर्म को धर्म की तरह दिखाया जाये। हम उसे कला क्यों नहीं बना दें? किंतु यह तो तभी संभव है, जब कला की आध्यात्मिकता नष्ट न होने दी जाये। समग्र राष्ट्र को हम तभी अनुप्राणित कर सकते हैं, जब कला एक प्रकार से हमारे समर्पण की संवाहक बन जाये। यह अत्यावश्यक है। नहीं तो मुझे यह आशंका है कि कला के प्रति जो आजकल बहुत ज्यादा जोश उमड़ रहा है और लोग जो 'मॉडर्न आर्ट' के दीवाने-से हो रहे हैं, इस सबसे हानि की ज्यादा संभावना है। क्योंकि हम यह नहीं जानते कि कला एक बहुत बड़ी ताकत है, वह सिर्फ ऐसी तकनीक ही नहीं हैं, जिसे हम देख-सुन पाते हैं। कला एक ऐसी ताकत है, जिससे हमारी भावनाओं को उदात्त या निकृष्ट बना देना बहुत आसान होता है। अधकचरी, अनगढ़ निम्नस्तरीय और अशिष्ट कला के द्वारा हम अपने राष्ट्र का ही नहीं, समूची मानव-जाति का अत्यधिक अहित कर डालते हैं।

यों तो हम सभी भारतीय कला की बात करते हैं और हमें उसकी गरिमा का अभि-

मान भी होता है, क्योंकि सचमुच हमारा देश कला की सभी विधाओं में समृद्ध है। किंतु कोई देश केवल अपने कला-भंडार के कारण ही सुसंस्कृत नहीं हो जाता। और कला भी तो सचमुच की कला होनी चाहिये। मेरी राय में सच्ची कला के लिए सौंदर्य सर्वप्रथम आवश्यकता है। मुझे यह कहने के लिए क्षमा करें, किंतु आधुनिक कला के नाम पर कभी-कभी तो बहुत ही भोंडी चीजें पेश की जाती हैं। वास्तव में, यह कला की दुर्गति करना है। क्योंकि कोई भी कलात्मक कृति कुरूप नहीं हुआ करती। कला के प्राण तो सौंदर्य में ही बसते हैं और इसीलिए हम उसे जीवन में अनिवार्य मानते हैं।

कला हमारे जीवन को उदात्त बनाये, हमें संवेदनशील बनाये। यह तभी होगा जब शुरू से ही हमारी शिक्षा में उसे उचित स्थान मिले, जो अभी तक नहीं मिला है। हमारे अवचेतन में आज कला के प्रति जो उपेक्षा-भाव है, वह तभी मिटेगा जब हम कला का सम्मान करना सीखेंगे और यह जान लेंगे कि सच्ची कला-सर्जना अद्भुत और महान अभिव्यक्ति होती है।

यदि हमें अपने राष्ट्र का चारित्रिक मानदंड ऊंचा करना है तो वह भी कला से



भारत की छह प्रसिद्ध पुरानी चित्रशैलियों में रची इन मुखाकृतियों को देखकर पहचानिये कि कौन-सी आकृति किस शैली में है। [उत्तर पृष्ठ २२१ पर]



होगा, कोरे भाषणों से नहीं। इसके लिए हमें कला और उसकी पृष्ठभूमि में ज्यादा से ज्यादा दिलचस्पी लेनी होगी, मुस्तैदी से काम करना होगा। कला की श्रेष्ठ परंपराओं को पुनर्जीवित करके लोगों को कला की सराहना करना सिखाना होगा। तभी उनमें यह विवेक जागृत होगा कि क्लासिकी परंपरा के नाम पर सब कुछ नहीं चलाया जा सकता तभी लोकधर्मी और नाट्यधर्मी में अंतर स्पष्ट होगा और वे समझ सकेंगे कि कृष्ण की माखनचोरी और साधारण बच्चे के मक्खन चुराने में कितना अधिक अंतर है! कला मानव को देवता कैसे बनाती है! भगवान पृथ्वी पर कैसे अवतरित हो सकते हैं! सामान्य को विशिष्ट और उत्कृष्ट बना देना ही तो कला है। किंतु यह मानव-मन की वृत्ति से नियंत्रित होता है कि कोई भी कलात्मक अभिव्यक्ति का विषय उदात्त हो जाये। कलाकार दिव्यता से संप्रेरित हो, एकतान हो, यह तभी संभव होता है।

महान कलाकार जो दुनिया में है उसी को प्रतिबिंबित नहीं करता। वह दिव्य एवं उदात्त, सूक्ष्म तथा अतींद्रिय के अनुभव की दिशाएं भी दिखाता है। उसकी कला में उसी के अपने 'आइडिया' नहीं समूची सभ्यता-संस्कृति प्रतिफलित हो उठती हैं और साथ ही अंतिम लक्ष्य का स्पष्ट निर्देश भी रहता है। लगता है, मानो कला देवताओं की संदेशवाहिका बन गयी है। हमारी नटराज की धारणा से यही



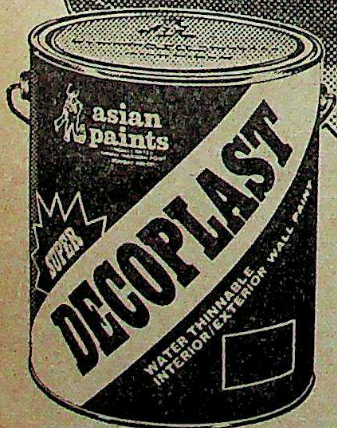
श्रीमती रुक्मिणीदेवी अरुंडेल

स्पष्ट होता है। नटराज विश्व के महान कलाकार हैं—नर्तक, गायक, भास्कर-शिल्पी, चित्रकार और योगी सभी नटराज के एक ही आदर्श में समाहित हैं। वे अपने नृत्य के द्वारा महानतम को बिना बदले ही निम्नतम या भौतिक स्तर पर ला देते हैं। नृत्य से परम सत्ता की सुंदर अभिव्यक्ति इसीलिए हो पाती है कि वह देह से साधन की तरह काम तो लेता है, किंतु अपने उदात्तीकरण के बाद वह सारी भौतिकता को लांघकर आत्मिकता का संवाहक और दिव्य हो जाता है।

इसीलिए कुमारसंभव की कथा ने मुझे अपनी प्रतीकात्मकता से प्रभावित किया था। आखिर पार्वती जो पाती है वह कामना की पूर्ति नहीं, श्रद्धा-भक्ति और

क्या इमल्शन पेण्ट का महंगा होना जरूरी है?

सुपर डेकोप्लास्ट कम खर्चीला है,
जानते नहीं?



किफ़ायत की किफ़ायत, ठाठ का ठाठ
इमल्शन पेन्ट में

सुपर
डेकोप्लास्ट
एशियन पेन्ट्स



Adroit-1816 Hin

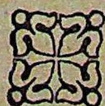
आत्मोदात्तता है। शिव के साथ उसका सायुज्य परम महान के, भगवान के साक्षात्कार की कहानी है। जो कुछ भौतिक है, नटराज शिव उसे भस्म कर डालते हैं। इसी प्रकार नर्तक या गायक को भी सारी मिलावट या अशुद्धि को जलाकर भीतर के सुवर्ण को सामने ला देना होता है।

कलाकारों का उत्तरदायित्व इसलिए बहुत बड़ा हो जाता है कि वे सभ्यता एवं राष्ट्र के उन्नायकों में होते हैं। महान परिवर्तन के विधाता महान कलाकार ही होते हैं। हमें ऐसे लोगों की इस दुनिया में हमेशा जरूरत रहती है, जो दुनिया में रहकर सिर्फ दुनियादार ही न बन गये हों; क्योंकि वे ही हमारी समूची जीवन-पद्धति को बदल सकते हैं। वे ही उस वातावरण को बना पाते हैं, जिसमें मानव का हृदय-परिवर्तन संभव होता है। यह हमारा सौभाग्य है कि भारत में बहुत-से पढ़े-लिखे लोगों को भी कला का आंतरिक ज्ञान है। हमें उन्हें कला के प्रति और भी अधिक सचेतन करना है।

भारतीय कला की और एक विशेषता यह रही है कि वह निर्वैयक्तिक है। विशाल मंदिरों के वास्तुशिल्पी और उत्तम भित्ति-चित्रों के चितेरों के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं। भारत में कला का यही आदर्श रहा है कि उसे कलाकार के व्यक्तित्व की महिमा का माध्यम न बनाया जाये। मेरा विश्वास है कि आज भी यदि हमें ठीक तरह के कलाकार मिलें, तो भारतीय कला का भविष्य भी उतना ही उज्ज्वल एवं भव्य हो सकता है जितना उज्ज्वल एवं भव्य उसका अतीत रहा है।

वास्तव में सच्ची कला तो शाश्वत ही होती है। सुंदर सदा सुंदर ही रहता है। इसलिए जब मैं भारतीय कला के समुज्ज्वल अतीत की बात करती हूं, तो मेरा आशय उसकी आत्मा या अंतःशक्ति से होता है। और यदि हम उस राजमार्ग पर चल पायें जिसे हमारे महान कलाकार प्रशस्त कर गये हैं, तो हमें गली-गली भटकने की परेशानी नहीं सहनी पड़ेगी।

निश्चय ही 'माडर्न आर्ट' का अधिक भाग भारत की मौलिक कला नहीं है। उसके पीछे ज्यादातर पाश्चात्य प्रेरणा ही है, विषय भले ही भारतीय हों। परंतु मौलिकता तो अंतःस्फूर्ति से ही प्राप्त हो सकती है और अंतःस्फूर्ति तभी आयेगी जब हम अपने प्रति अनन्य होंगे, जब हम अपने आप को भूलकर अपने महान द्रष्टाओं, संतों और ऋषियों के दिये सुंदर विचारों की धारा में बहने लगेंगे। जब हम उस स्पिरिट पर वापस लौटेंगे, तब हम पायेंगे कि वास्तव में हम पीछे नहीं लौट रहे हैं, अपितु आगे बढ़ रहे हैं। तब हम भारत के महान संदेश का गौरव उजागर करेंगे। तब हम सौंदर्य की अधिक गहरी तमीज और आत्मिक मूल्यों का अधिक व्यापक बोध प्राप्त करेंगे।





1816 Hin

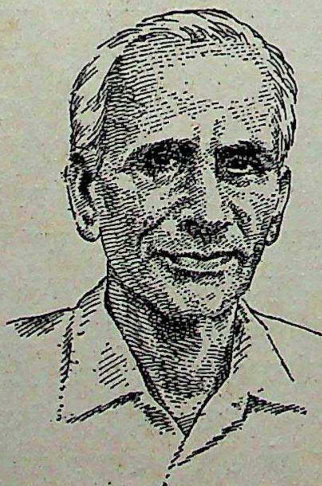
अंग्रेजी में नया वेदानुवाद

सत्यकाम विद्यालंकार

चारों वेदों के नये अंग्रेजी अनुवाद का कार्य गत पांच वर्षों से स्वामी सत्यप्रकाश जी और मेरे सम्मिलित प्रयत्न से चल रहा है। स्वर्गीय प्रकाशवीर जी शास्त्री ने इसका संयोजन किया था और वेद-प्रतिष्ठान संस्था द्वारा यह कार्य संपन्न हो रहा है। दुर्भाग्य से श्री शास्त्रीजी का आकस्मिक निधन हो गया; फिर भी उनके सहयोगियों से इस कार्य को निरंतर गति मिल रही है।

इस अनुवाद-कार्य की उपयोगिता के संबंध में अनेक तरह के प्रश्न किये गये हैं। किंतु उनमें सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न यह है कि मैक्स-मुलर, ह्विट्नी, ग्रिफिथ, विल्सन और ग्रासमैन आदि अनेक पश्चिमी विद्वानों के किये अंग्रेजी अनुवादों के रहते इस नये प्रयास की आवश्यकता क्या है?

यह सवाल अक्सर वही लोग करते हैं, जिन्होंने वेदों का नाम तो सुना है, मगर न तो वेदमंत्रों को मूल संहिता में पढ़ा है और न उनका अंग्रेजी अनुवाद ही देखा है।



लेखक

यहां मैं कुछ मंत्र और पश्चिमी विद्वानों द्वारा किये गये उनके अर्थ और तदनंतर हमारे किये हुए अर्थ प्रस्तुत कर रहा हूं; उन्हें पढ़कर पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि पाश्चात्य विद्वान वेदमंत्रों का अनुवाद न करते तो ही अच्छा था।

निम्न मंत्र ऋग्वेद के मंडल १, सूक्त ११० का आठवां मंत्र है:

निश्चर्मण ऋभवो
गामपिंशत
सं वत्सेनासृजता
मातरं पुनः।
सौधन्वनासः
स्वपस्यया नरो
जिव्री युवाना
पितराकृणोतन॥

श्री ग्रिफिथ अपनी पुस्तक 'हिम्स ऑफ़ ऋग्वेद' में इस मंत्र का यह अर्थ करते हैं:

'O, Ribhus, once you made cow out

of skin and brought the mother close to her calf again. O sons of Sudhanvan, Heroes, with surpassing skill you made your aged parents youthful as before.'

मंत्र में प्रयुक्त 'गो' शब्द के दो अर्थ लिये जा सकते हैं–पृथ्वी और वाणी। दोनों अर्थों में मंत्र की सार्थकता बनी रहती है। 'गो' शब्द का अर्थ पृथ्वी लें तो मंत्रार्थ होता है :

हे (ऋभवः) मनीषी लोगो, (निश्चर्मण गाम्) जलाभाव से सूखी पृथ्वी को (अपिंशत) यथेष्ट जलसिंचन से संवारो, पयस्विनी बनाओ। फिर (सं वत्सेनासृजता पुनः) उसमें बीज-वपन करो। इस प्रकार (जिव्री पितरा युवाना कृणोतन) कर्मठ किसान अपनी मेहनत से बूढ़ी जमीन को भी बार-बार जवान बनाकर उपजाऊ बनाते रहो।

'गो' शब्द का अर्थ 'वाणी' लें, तो उपर्युक्त मंत्र का अर्थ होगा :

'हे मनीषी कवियो, तुम शुष्क तत्त्वज्ञान को छंदों-अलंकारों से सरस बनाओ और उसके प्रयोग से नवीन सृजन करते हुए परंपरागत विश्वासों को नया रूप देते हुए अपनी वाणी को तेजस्वी और प्राणवंत बनाते रहो।'

इसी प्रसंग में दूसरा मंत्र है :

त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः ।
अष्टापदीभिराहुतः ॥ ऋक् २.७.५

ग्रिफिथ साहब इसका यों अर्थ करते हैं :

'Ours art thou, Agni, Bharat. May you be honoured by us with barren cows, with bullocks and with kine in calf.' (According to Sayan अष्टापदीभि: means animals with young.)

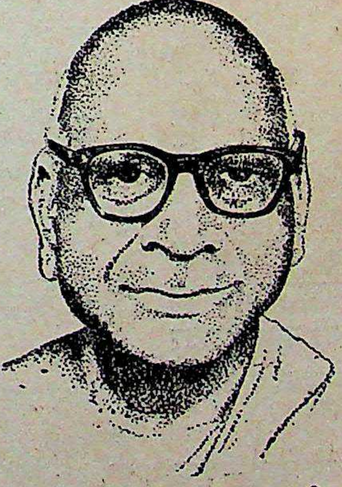
हिंदी के विद्वान श्री रामगोविंद त्रिवेदी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंदी ऋग्वेद' में उक्त मंत्र का निम्न अर्थ किया है– 'भरणकर्ता अग्नि, तुम हमारे हो। तुम वंध्या गौ, वृषभ और गर्भिणी गौ की बलि द्वारा आहुत होते हो–तृप्त होते हो।'

उक्त मंत्र का असली अर्थ है :

'हे (भारताग्ने) ज्योतिर्मय प्रभु, (त्वं नः) आप हमारे इष्टदेव हैं। (त्वं वशाभिः उक्षभिः अष्टापदीभिः) आप हमारी स्निग्ध, मधुर, भक्तिभाव-भीनी, अष्ट प्रकार के छंदों से मंडित स्तुति-मंजूषा से (आहुतः) वंदित हों।'

इसी प्रसंग का तीसरा मंत्र है:

यस्मिन्नश्वास
ऋषभास उक्षणो
वशा मेषा
अवसृष्टास आहुताः।
कीलालपे



स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती



राल्फ टी. एच. ग्रिफिथ

सोमपृष्ठाय वेधसे
हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ।।

ऋक् १०.९१.१४

इसका ग्रिफिथ-कृत अर्थ यह है :

'He in whom horses, bulls, oxen, barren cows and rams when duly set apart, are offered upto Agni, Soma sprinkled, drinker of sweet juice, disposer, with my heart I bring a fair hymn forth.'

श्री रामगोविंद त्रिवेदी ने इसी शैली में यह हिंदी अनुवाद किया है :

'जिस यज्ञाग्नि में घोड़ों, बैलों और पौरुषहीन मेढों को काटकर आहुति दी जाती है, जो जल पीते हैं और जो यज्ञानुष्ठाता हैं, उन अग्नि के लिए मैं हृदय से कल्याणकारी स्तुति बनाता हूं।'

पिछले दोनों मंत्रों का अर्थ यदि विशुद्ध आधिदैविक किया जाये और अग्नि को विश्वयज्ञ की सार्वभौम अग्नि माना जाये, तो मंत्रों का भावार्थ यह होगा कि अंतरिक्ष और सौर मंडल की सब ज्योतियां विश्वज्योति में आहुत हो रही हैं। आहुत होने वाली cosmic energies का ही नाम–अश्वासः, उक्षासः, उक्षणः, वशा, मेषा, वृषभासः आदि है। अग्नि का अर्थ पार्थिव अग्नि नहीं, अंतरिक्ष-स्थित उत्तरज्योतियां है और आदित्य-स्थित रश्मियां भी है। उक्षणः और वशा भी इसी विश्वाग्नि के पर्याय हैं।

इस सुंदर मंत्र का सच्चा अर्थ है :

'जिन ज्योतिर्मय प्रभु के चरणों में भौतिक संपत्ति, समस्त साधन-संपन्नता और समस्त ज्ञान व तपस्या को त्याग द्वारा अर्पित किया जाता है, जो स्वयं स्निग्धता के प्रतीक हैं, जिनके कल्याण-कार्यों की पूर्ति के लिए यज्ञानुष्ठान होते हैं, जो स्वयं यज्ञमय हैं, उन शिवमूर्ति प्रभु का मैं हृदय से अभिनंदन करता हूं।'

चौथा मंत्र इस प्रकार है :

उक्षणो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् । उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।

ऋक् १०.८६.१४

ग्रिफिथ ने इस मंत्र का अर्थ किया है :

'Fifteen in number, then, for me a score of bullocks they prepare and I devour the fat thereof. They fill my belly full with food. Supreme is Indra over all.'

श्री रामगोविंद त्रिपाठी के अनुसार, मंत्र का अर्थ है :

'मेरे लिए इंद्राणी द्वारा प्रेरित याज्ञिक लोग पंद्रह-बीस सांड या बैल पकाते हैं। उन्हें खाकर मैं मोटा होता हूं। मेरी दोनों कुक्षियों को यज्ञिक लोग सोम से भरते हैं। इंद्र अन्य सबसे श्रेष्ठ हैं।'

पर इसका सच्चा अर्थ है :

'मनुष्य का अंतःस्थित आत्मा स्वयं को संबोधित करता है :– मेरे लिए ही याज्ञिक लोग आत्मशक्ति से प्रेरित होकर अनेक प्रकार के प्रार्थना-गीत बनाकर अर्पित करते हैं, मैं उन्हें स्वीकार करके तृप्त होता हूं। वे मेरे दोनों पार्श्वों—आध्यात्मिक और भौतिक संपदा—को श्रद्धावनत हृदय से पूर्ण करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि आत्मा ही दिव्य शक्तियों में श्रेष्ठतम है।'

इसी प्रसंग में पांचवां मंत्र प्रस्तुत है :

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे। घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

ऋक् १०·८६·१३

ग्रिफिथ इसका अर्थ यों करते हैं :

'Wealthy Vrishakapayi, blest with sons and consorts of thy sons, Indra will eat thy bulls, thy dear oblation that effecteth much. Supreme is Indra over all.'

इसका हिंदी अनुवाद श्री त्रिवेदीजी ने यों किया है :

'वृषाकपि स्त्री, तुम धनशालिनी, उत्तम पुत्र वाली और सुंदरी पुत्रवधू हो। तुम्हारे वृषों (सांडों) को इंद्र खा जायें। तुम्हारी सुखकर हवि का भक्षण वही करें। इंद्र अन्य सबसे श्रेष्ठ हैं।'

मंत्र का सच्चा अर्थ है :

'हे मन की वृत्तियो, तुम अपने सुंदर मनोरथों और सुषमा से समृद्ध हो; किंतु श्रेष्ठ यही है कि तुम्हारी महान हवि का भोग आत्मा करे। क्योंकि आत्मा ही दिव्य शक्तियों में श्रेष्ठ है।'

छठा मंत्र है :

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति। अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥

ऋक् १.१६२.१८

ग्रिफिथ ने इसका अनुवाद किया है :

'For the four and thirty ribs of the swift charger, is one dissector, this is the custom. Two there are who guide him. Such of his limbs, as I divide in order, all these amid the bulls, in fire I offer.'

श्री रामगोविंद त्रिवेदी ने इसी अर्थ का अनुकरण करते हुए यह अनुवाद दिया है:

'देवों के बंधु-स्वरूप अश्व की जो बगल की टेढ़ी चौंतीस हड्डियां हैं, उन्हें काटने के लिए खड्ग जाता है। हे अश्वच्छेदक, ऐसा करना, जिससे अंग विछिन्न न हो जाये। शब्द करके और देख-देखकर एक-एक हिस्सा काटो।'

मंत्र का सच्चा अर्थ निम्न है:

'दिव्यशक्ति-संपन्न आत्मा के सहवासी मन की जो चौंतीस मनोग्रंथियां हैं, उनके विश्लेषण के लिए आत्मा अपनी विदारक शक्ति का उपयोग करे। किंतु वह निरोध इतना क्रूर न हो जाये कि मन की वृत्तियां ही निश्चेष्ट हो जायें। व्यवस्थानुसार एक-एक वृत्ति को संयत करके और सावधान करते हुए उनका निरोध करो।'

भावार्थ यह है—आत्मशक्ति द्वारा मनोग्रंथियों का विदारण-विश्लेषण करो; यही संयम की विधि है।

जिस पवित्र ग्रंथ को हमारे प्राचीन आर्यों ने अपने धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान का बीजग्रंथ माना, जिसे आज संसार के सभी विद्वान विचारक विश्व-साहित्य की प्रथम उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति मानते हैं, उसे पशु-हिंसा, मदिरापान आदि निकृष्ट कार्यों की स्वीकृति देने वाला ग्रंथ वही व्यक्ति कह सकता है, जो या तो मूर्ख हो, या हीनता और अज्ञानांधकार में घिरे किसी समाज को इरादतन बुरी नीयत से ठगना चाहता हो।

या अधिक से अधिक उदार बनकर यह कहा जा सकता है कि ये सब पाश्चात्य वेदानुवादक ईसाई थे, साम्राज्यवादी शासक जाति के थे; उनके संस्कार, उनकी मनोरचना इस प्रकार की नहीं थी कि भारतीयों के पुरातन धर्मग्रंथों के सच्चे गौरव को वे खुले मन से जान और स्वीकार कर सकें।

वेदार्थ करने की कुछ कठिनाइयों से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। वेद की भाषा संस्कृत-समेत अन्य अनेक लौकिक भाषाओं की जननी अवश्य है; किंतु वह इनसे कुछ भिन्न है, और इसीलिए कठिन है। उसे समझना आसान बनाने के लिए सदियों पूर्व यास्काचार्य ने निघंटु-निरुक्त का प्रणयन किया था। ब्राह्मण-ग्रंथों ने भी वेदार्थ की व्याख्या में बहुत प्रयास किये। उन आर्षग्रंथों की सहायता से वेदमंत्रों की व्याख्या करना असंभव नहीं है। किंतु पूर्वग्रह-ग्रस्त पाश्चात्य विद्वानों ने यास्काचार्य का आधार न लेकर, केवल उत्तर-कालीन सायणाचार्य के भाष्य का सहारा लिया, जो कि अपने अंधयुग में प्रचलित पशुवध-पक्षीय यज्ञ-पद्धति के प्रभाव से मुक्त नहीं थे।

सायणाचार्य से प्रभावित इन पाश्चात्य वेदभाष्यकारों ने 'अश्व' का अर्थ केवल घोड़ा, 'गौ' का केवल गाय, 'अज' का केवल बकरा, 'वृषभ' का केवल बैल, 'मेध' का केवल हिंसा, 'आहुति' का केवल बलि देना, 'सोमपान' का अर्थ केवल मदिरापान और 'अग्नि' का केवल आग कर दिया। सांकेतिक शब्दों की गहराई में जाने का कष्ट उन्होंने जानबूझकर ही नहीं उठाया; क्योंकि उनका लक्ष्य भारतीयों के हृदय में बसे वेद, वेदांग और अन्य प्राचीन प्राच्य ग्रंथों में अपूर्व सौंदर्य और गहरे चिंतन का दर्शन करना नहीं था। दुर्भाग्यवश, हमारे यहां भी अनेक अर्वाचीन पंडितों ने पाश्चात्यों के वेद-पांडित्य की इन सीमाओं और असमर्थताओं को न समझते हुए उनका अंधानुकरण किया है।

—चंद्रेश्वर भवन, सायन रोड, बंबई–२२



देशप्रेम

बोया किसी ने हो
मैंने बस काटा है
हिस्सा किसी का हो
मैंने तो बंदर की तरह बांटा है
मैं सदा तेरे साथ हूं मेरे देश
मेरी आवाजें हैं
तेरा सन्नाटा है ।

मार्ग

यह मार्ग तो है
लेकिन लाल बत्तियों से गुंथा हुआ
यह चलने को तो कहता है
लेकिन इसकी लाल-लाल आंखें
हमेशा घूरती ही रहती हैं
घूरती हैं तो घूरती रहें
आओ अब चलें
बहुत देर हो रही है ।

—डा. रामदरश मिश्र
ई ४/११ माडल टाउन, दिल्ली—९

उत्खनन!

व्यर्थ है
विगत का
उत्खनन !
कहां मिलेगा
शंबूक का
विछिन्न सिर
एकलव्य का
खंडित अंगूठा ?
उग आया है
पौराणिक ढहों पर
प्रतीकों का
सघन जंगल,
नहीं है
वर्तमान का
समाधान
अनजाने
अतीत की समीक्षा !
सुनो
अपने ही भीतर के
सत्य को
मात्र
स्थितियां ही हैं
युगधर्म की
परिभाषा !

—कन्हैयालाल सेठिया
सेठिया इंडिया कं., ३ मैंगोलेन, कलकत्ता-१



–व्योहार राजेन्द्र सिंह–



यूकेलिप्टस के दो वृक्ष मेरे अहाते में लगे हुए थे–एक मोटा-ताजा, दूसरा दुबला-पतला। पास-पास होने के कारण मैंने उनका नाम 'यमलार्जुन' रख दिया था।

एक दिन बड़े अर्जुन ने छोटे से कहा–'हम दोनों का बीजारोपण एक साथ ही हुआ था, हम दोनों की अवस्था बराबर है; किंतु तुम कितने छोटे और दुबले-पतले हो और मैं इतना ऊंचा और मोटा-ताजा हूं। जान पड़ता है, तुमने रसा से काफी रस नहीं खींचा है, सूर्य-किरणों से तुमने ओज ग्रहण नहीं किया और न वायु से काफी प्राणवायु ली। आकाश में इतना अवकाश होने पर भी तुम नीचा सिर किये रहते हो, मेरी तरह तनकर खड़े नहीं होते।'

छोटे अर्जुन ने वायु में झूमते हुए कहा–'पृथ्वी मेरी माता है। उसकी अनेक संतानें हैं। वह सभी को रसदान करती है। उसमें से अधिक रस खींचने में मुझे ऐसा लगता है कि अपने छोटे-छोटे भाई-बंधुओं का हक छीन रहा हूं। सूर्य कितनी उदारता से अपना किरण-जाल बिखेरता है। अपनी आवश्यकता से अधिक किरणें लेकर उसकी उदारता का मैं अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहता। वायु का सुखस्पर्श मुझे पुलकित कर देता है। मैं समझता हूं कि उसका मुक्त प्राण सभी प्राणियों के लिए है। इसलिए मैं उससे अधिक प्राणवायु नहीं खींचना चाहता। आप तो इतने अकड़कर खड़े हुए हैं, मानो अपने पिता आकाश का वक्ष ही चीर डालेंगे।'

और मैंने एक दिन देखा कि प्रबल वेग से वर्षा और आंधी आयी। छोटे अर्जुन ने सिर झुका-झुकाकर उसे नमस्कार किया। किंतु बड़ा अर्जुन अपने अहंकार में और भी अकड़कर खड़ा हो गया। फल यह हुआ कि वायु के थपेड़ों ने और पानी की बौछारों ने उसे उखाड़कर फेंक दिया। पृथ्वी ने भी उसकी जड़ें तोड़ दीं और सूर्य की प्रखर किरणों ने उसे सुखा डाला। छोटा अर्जुन ज्यों का त्यों आनंद से झूमता रहा।





महायोगी मिलेरप

एक आध्यात्मिक यात्रा-कथा

तिब्बत में भगवान बुद्ध के अवतार के रूप में पूजित, महान सिद्ध, संत-कवि मिलरेप (१०५२-११३५ ई.) तिलोप, नारोप और मर्प की परंपरा में चौथे सिद्ध थे और ज्योतिर्मय जीवन की योग-प्रक्रिया के तिब्बती आचार्य थे। भारत की श्रीचक्र-संवर (सुखमंडल) की पद्धति को तिब्बती सिद्धों ने अपनी इस छह-सूत्री प्रक्रिया से प्रवर्तित किया था—१. अंतर्ज्योति-सिद्धांत, २. शरीर के मिथ्यात्व का आभास, ३. स्वप्नावस्था में चेतना, ४. विशुद्ध ज्योति का अनुभव, ५. अंतरिम अवस्था की धारणा, ६. चेतना प्रत्यंतरण। तिब्बत की यह योग-पद्धति 'कुंडलिनी-योग' से भिन्न है। इसमें केवल चार चक्रों का निर्देश है तथा शक्ति की जगह प्रज्ञा और कुंडलिनी की जगह वज्र-योगिनी का वर्णन है।

मिलरेप की साधना में क्रियमाण कर्म का आत्यंतिक महत्त्व है। उसी से साधक के प्रारब्ध और संचित कर्म नष्ट होते हैं। इसमें भी पहले मणिपूर चक्र पर अधिकार होने से चक्रों का भेद होता है। इसमें समस्त शारीरिक तत्त्वों के उदात्तीकरण को ही लक्ष्य माना गया है। वैश्विक चेतना के उदय से 'अस्मि' और 'अस्ति' (आत्म और अनात्म) की सीमाएं टूटती हैं, तदनंतर हृदय में वज्रसत्त्व (जो कि अक्षोभ्य का क्रियापक्ष है) की अनुभूति वैयक्तिक और मानवीय स्तर पर होती है। तभी उस प्रज्ञा का आलोक फैलता है, जिसमें समस्त वस्तुएं शून्य में आभासित होती हैं और समस्त सृष्टि का शून्यत्व आभासित होता है। यही है ससीम में असीम की उपलब्धि। इसी को वे अंतःप्रज्ञा भी मानते हैं। वज्र का तात्पर्य अपरिवर्त्य और नित्य से है। सारे ज्ञान जब उसी में समाहित हो जाते हैं, तब वज्र-चेतना अनंत प्रेम, करुणा, परम औदार्य और सर्वभूत-हित से अनुप्राणित रहती है। इसीलिए महायोगी मिलरेप अपने शिष्यों को अंतिम उपदेश के रूप में कह गये—'जब तक तथा आत्मोपलब्धि न हो जाये, तब तक सर्वभूत-हित की साधना और उसके लिए आतुरता से बचो।'

मिलरेप ने अपनी जीवन-गाथा अपने पट्टशिष्य रे-चुंग को सुनायी थी, जिसे रे-चुंग ने तद्वत् लिपिबद्ध किया था। दिवंगत लामा काजी दव-संदुप ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया था, जिसका सार-संक्षेप इन पृष्ठों में श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री ने प्रस्तुत किया है।



उत्तरी तिब्बत के उरू प्रांत में एक घूमंतू कबीला था—बहुत-सी भेड़ों और अन्य पालतू पशुओं का पालक। एक बार इसी कबीले का एक सुरूप युवक एकाकी ही देश की यात्रा पर निकल पड़ा। कितने ही दुर्गम मनोरम और महत्त्वपूर्ण स्थानों को भली भांति देखकर अंत में वह एक तांत्रिक सिद्ध लामा के रूप में तिब्बत के त्सांग प्रांत में आया। वहां अपनी सिद्धियों का कल्याणकारी प्रयोग करके वह बहुत

प्रसिद्ध होकर चुङ-वा-ची नामक गांव में बस गया। वहां के लोग उसे 'चील कबीले का सरदार-वंशीय' (ख्युंग-पो-जोसे) कहते थे। चुङ-वा-ची में जब भी कोई बहुत परेशान होता, तो उसे स्वस्थ करने के लिए लोग इसी लामा के पास लाते थे।

किंतु वहीं एक ऐसा कुटुंब भी था, जो लामा जोसे के बहुत विरुद्ध था। एक बार ऐसा हुआ कि यह परिवार एक अपदेवता के उपद्रवों से बहुत परेशान हो गया। उससे मुक्ति पाने में किसी भी लामा की ओझा-गीरी काम नहीं आयी। अंत में, संबंधियों की सलाह पर उस परिवार ने लामा जोसे की शरण ली, जिसने आमंत्रण मिलते ही अपने घर बैठे-बैठे उस अपदेवता को इस तरह ललकारा :

'मैं तेरा मांस चबाऊंगा और लहू पी जाऊंगा, रे शैतान! ठहर तो सही!' यह ललकार सुनते ही उस अपदेवता की फूंक निकल गयी और वह चिल्लाने लगा :

'आप! आप! मिल! मिल! (बाप रे बाप! मां री मां! ओ रे आदमी!)

जोसे ने उससे वचन लिया कि वह इस परिवार को फिर कभी तंग नहीं करेगा, और तभी उसे छोड़ा। जाते वक्त यह अप-देवता अपने एक भक्त-परिवार को बता गया कि जोसे ने मुझे इतने जोर से दबाया था कि मैं मरते-मरते बचा। तभी से जोसे परिवार का उपनाम 'मिल' पड़ गया।

जोसे के बाद कुछ और पीढ़ियां मिल-वंश में हो गुजरीं, जिनमें कुछ लोग लामा बने तो कुछ व्यापारी। इन्हीं में से एक था मिल-शेरब-ग्याल्-त्सेन, जो एक धनी व्यापारी था और मिलरेप का पिता था। १०५२ ई. में जब मिलरेप ने अपनी मां, कर्मो-क्येन (श्वेतमाला) की कोख से जन्म लिया, तब उसका पिता विदेश में था। मिलरेप की जन्मस्थली क्याङ-गान्-त्सा थी, जो जब भी नेपाल और तिब्बत के सीमा-प्रदेश में वर्तमान किरोंग से कुछ मील पूर्व में और काठमांडू से ३० मील उत्तर में है।

पिता को जब मिलरेप के जन्म का समाचार दिया गया, तब उसके मुंह से अचानक ही निकला—'थो-प-ग' अर्थात् 'श्रुति-मधुर'। अंत में यही उसके नवजात पुत्र का नाम रख दिया गया। यों घर लौटकर उसने बड़ी धूमधाम से बेटे का नामकरण संस्कार किया। मिलरेप का लालन-पालन भी बड़े जतन से किया गया। जब वह बोलने लगा तो सचमुच उसकी आवाज इतनी मीठी थी कि उसका 'थोपग' नाम चरितार्थ हो गया। ('मिलरेप' का अर्थ है—सूती वस्त्र से आवृत पुरुष।)

मिलरेप की मां कर्मो-क्येन अपने समय त्यांग् की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी कहलाती थी। बहुत ही बुद्धिमती और बड़ी उदारमना महिला थी वह। लोग उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। चार साल बाद उसके एक पुत्री और हुई, जिसका नाम रखा गया गाङ-मा-क्यित (सौभाग्यशालिनी संरक्षिका)। परंतु सब उसे बुलाते थे—पेत।

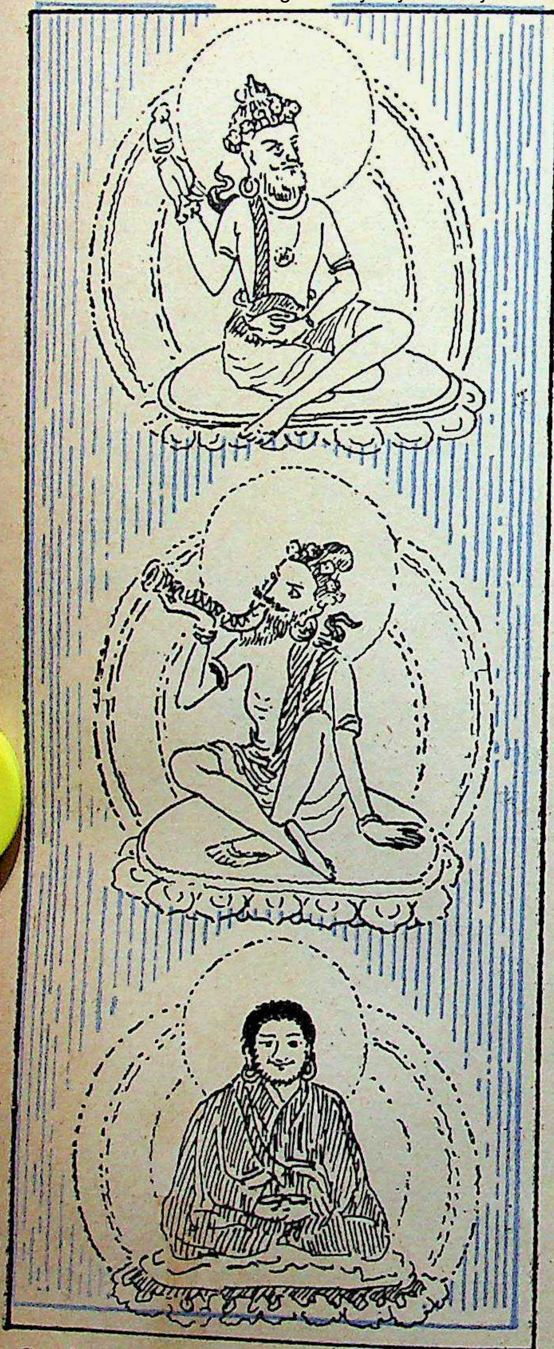
जब मिलरेप सात साल का था और

साल तीन की, तब दुर्भाग्यवश उनके ग्याल्-त्सेन की मृत्यु हो गयी। से पहले उसने अपने सारे रिश्तेदारों मित्रों को बुलाकर अपनी वसीयत दी। इसके अनुसार, उसकी समस्त अचल संपत्ति का प्रबंध मिलरेप चाचा के जिम्मे रहना था। किंतु यह व्यवस्था मिलरेप के बालिग होने तक के लिए थी। पिता ने मिलरेप का विवाह एक कुलीन बालिका ज़ेसे से तय कर रखा था। यह विवाह भी मिलरेप के बालिग होकर संपत्ति संभाल लेने के बाद होने वाला था। पिता के क्रियाकर्म के बाद सारे संबंधियों की यही राय थी कि कर्मो-क्येन अपने देवर यानी मिलरेप के चाचा की संरक्षकता भले स्वीकार ले पर संपत्ति का प्रबंध वह स्वयं ही करे। किंतु चाचा ने यह बात नहीं मानी और सब कुछ हथिया लिया।

मिलरेप, पेत और कर्मो-क्येन उसके आसरे ही अपने दिन काटने लगे। वे बेचारे गर्मियों में चाचा के खेतों में मजदूरों की तरह मेहनत करते और जाड़ों में चाची की ऊन कातते, बुनते। उन्हें कुत्तों की तरह बचा-खुचा खाना दिया जाता। कपड़ों के नाम पर उनके पास रह गये थे कुछ चिथड़े, जिन्हें वे अपनी-अपनी देह पर ऊन या सूत की डोरियों से बांध लेते थे। काम करते-करते अक्सर उनके हाथों में छाले पड़ जाते, पैरों में बिवाइयां फट जातीं, मगर काम से कभी छुट्टी नहीं मिलती। वे इतने दुबले हो गये कि उनके पांजरों की हड्डियां गिन लो। उनके चेहरे लंबोतरे दीखने लगे और सिर के बाल रूखे हो गये, लाइयां किलबिलातीं और जुएं रेंगती रहतीं। उन्हें देखकर पड़ोसियों को दया आ जाती; लेकिन उनके चाचा-चाची का कठोर दिल कभी न पसीजता था, न उन्हें सामाजिक निंदा की ही परवाह थी।

मिलरेप की चाची का नाम कर्मो-क्येन ने 'दुमो-ताकदेन' (शैतान-बाघिन) रख दिया था। सब लोग उसे इसी नाम से पुकारने लगे थे। कर्मो-क्येन अक्सर एक कहावत दुहराया करती थी, जिसका अर्थ था—'संबंधियों को संपत्ति सौंपी कि द्वार के श्वान बने।' अक्सर कर्मो-क्येन और उसके बच्चों को वे दिन याद आते जब आस-पास के लोग उनके तेवर देखकर हंसते-मुस्कराते, भौंहें चढ़ाते या मुंह बनाते थे। मगर उनका सारा खानदानी रुतबा अब चाचा-चाची की बपौती बन चुका था।

धीरे-धीरे उनके प्रति लोगों की सम-वेदना भी चुक गयी। अब तो लोग कर्मो-क्येन पर फबतियां कसने से भी बाज न आते। कोई कहता—'अरे, पति धनी होता है तो हर पत्नी योग्य और क्षमता-संपन्न समझी जाती है। अच्छे शाल या अलवान तो पशमीने से ही बनते हैं न?..... अब देखो न इस कर्मो-क्येन को! कहां चले गये उसके वे हाथ, जो कभी सबकी पर-वरिश किया करते थे! सारी योग्यता और क्षमता क्या पति के मरते ही विदा



मिलरेप की गुरु-परंपरा–तिलोप, नारोप, मर्‌प

हो गयी ?'... दूसरा कहता–'असल में तब सारा जलवा तो दौलत का था। गरीबी की मार पड़ते ही अब अक्ल ठिकाने लग गयी।'

मिलरेप की मंगेतर ज़ेसे के मां-बाप उसे कभी-कभी एक-आध कपड़ा और एक जोड़ी जूता दे जाते। वे उसे समझाते–'संपत्ति तो घास के पत्तों पर बैठी ओस की बूंदों जैसी होती है। सो तुम उसके लिए ज्यादा रंज न करो। तुम्हारे पुरखों ने उसे अपनी मेहनत से कमाया था। सदा से तो वे भी धनी नहीं थे। ऐसा वक्त फिर आयेगा, जब तुम खुद ही बहुत-सी दौलत कमा लोगे।'

स्वयं मिलरेप ने अपने शिष्य रे-चुंग् को अपनी कहानी सुनाते हुए कहा था:

'मेरे पंद्रहवें साल में मामा की मदद से मां ने किसी तरह अपना एक खेत खरीद लिया। खेत का नाम तो था तेपे-तेनचुंग् (अकाल का छोटा-सा कालीन), लेकिन उसमें फसल बहुत अच्छी होती थी। उसे अक्सर मेरे मामा ही जोत दिया करते; वे ही कटाई आदि भी करते। उपज के थोड़े हिस्से से वे हमारे लिए मांस खरीदते, उसे सुखाते और सफेद जौ से सत्तू व आटा और कत्थई जौ की छंग (हल्की शराब) तैयार करते।

'फिर एक दिन गांव में खबर फैली कि मिलरेप बालिग हो रहा है, अब उसे अपने पिता की सारी संपत्ति मिलने वाली है। उस दिन मिल-परिवार के पुश्तैनी घर में सब जगह सुंदर कालीन बिछाये गये और

न सभी को बुलाया गया जो वसीयत लिखने के समय उपस्थित रहे थे। सबको दावत दी गयी, कसकर छंग का दौर चला। फिर हमारे मामा ने वह वसीयत पढ़ी मेरी मां ने सब उपस्थित जनों से कहा–'आप सबके सामने मेरे पति ने जो कुछ कहा था, मैं उसे दुहराकर आप लोगों का वक्त बरबाद नहीं करूंगी। बस, मैं इतना ही कहना चाहती हूं कि मेरा बेटा अब बालिग हो गया है सो उसे अब अपनी पैतृक संपत्ति की देखरेख करने दी जाये, और उसकी शादी ज़ेसे से हो, जैसा कि पहले से ही तय है।"

'इतना सुनना था कि मेरे चाचा-चाची दोनों बिगड़कर उठ खड़े हुए और बोले–'कौन-सी संपत्ति? कहां है वह? मिल-रेप के बाप ने तो जो कुछ हमसे उधार लिया था वही ब्याज समेत हमें सौंपा था मरते वक्त। उलटे हमीं ने इन अनाथों की परवरिश की; यही गलती है हमारी। इन्हें तो भूखों ही मरने देते तो अधिक अच्छा था। हमें क्या मालूम था कि ये लोग ऐसी कृतघ्नता दिखायेंगे।"

'इसके बाद उन्होंने अपनी कीमती पोशाकों के लंबे लटकते आस्तीनों से हमारे ऊपर झटक दिये। मां तब रो-रोकर कहने लगीं–"ओ मिल-शेरब-ग्याल्-त्सेन, देख रहे हो तुम्हारे भाई-भावज हमारे साथ क्या बरताव कर रहे हैं। तुमने मरते वक्त मुझसे कहा था कि अगर कोई गड़बड़ी की गयी तो तुम्हें पितृलोक से आकर सजा दूंगा। और अब कब तुम अपना न्याय करोगे?" इसी तरह रोती-कलपती वह बेचारी बेहोश होकर गिर पड़ी। मैं और मेरी छोटी बहन भी रोने लगे। मामा ने यह देखकर कि चाचा के बहुत-से बेटे और दोस्त मौजूद हैं, उनसे लड़ाई मोल नहीं ली। पड़ोसी भी सब "बेचारी विधवा! बेचारे अनाथ!" कहते हुए चल दिये।

'फिर भी चाची ने ऊपर से यह ताना कसा–"तुम लोग हमसे जायदाद मांगते हो। लेकिन लगता है, तुम्हारे पास तो पहले से ही सब कुछ मौजूद है। नहीं तो भला तुम लोग यह अच्छी खासी दावत कैसे देते? अगर तुम यह समझते हो कि लड़ोगे तो कुछ मिलेगा, तो शौक से आ जाओ मैदान में, जी भरकर लड़ लो। नहीं तो बस, रोते-कलपते रहो। असल में तो यह घर भी अब तुम्हारा नहीं, हमारा ही है।"

'अपने साथियों के साथ वे हमें उसी तरह रोता-कलपता छोड़कर चले गये। बाकी रह गये सिर्फ हमारे मामा और मेरी मंगेतर ज़ेसे का परिवार, और चंद सच्चे बंधु-बांधव। वे लोग भी बाकी बची छंग पीकर यही कहते रहे–"अरे, अब व्यर्थ रोने से क्या फायदा, चुप हो जाओ।" फिर उन्होंने आपस में तय किया कि दावत में जो लोग शरीक हुए थे उन्हीं से कुछ चंदा उगाहा जाये और मिलरेप के चाचा-चाची को भी एक मोटी रकम देने को बाध्य किया जाये। जो कुछ इस तरह

इकट्ठा हो उसके आधार पर मुझे शिक्षा प्राप्त करने भेजा जाये।

'मामा ने इसे मंजूर कर लिया और अपनी बहन और भानजी, यानी मेरी मां और छोटी बहन को अपने साथ रहने को बुलाया। वे बोले—"तुम लोग अपना खेत जोतो और मिलरेप के चाचा-चाची को शर्मिंदा करो।"

'तब मेरी मां ने अपने होशो-हवास संभालकर कहा—" मैं मिलरेप को सुशिक्षित तो करना चाहती हूं, लेकिन लोगों से भीख मांगकर नहीं। और मैं अब उन दोनों (चाचा-चाची) की शक्ल भी नहीं देखूंगी, क्योंकि वे लोग तो हमें लज्जित करने पर ही तुले बैठे हैं। लेकिन हम लोग अब अपने इस घर को छोड़कर और कहीं नहीं जायेंगे। यहीं रहकर हम अपनी खेती की देखभाल करेंगे।"

'फिर मां ने मुझे त्सा प्रांत में मिडोंग्-गत्-रग् के प्रसिद्ध तांत्रिक लामा लु-येत्-खन् के पास शिक्षा के लिए भेज दिया। तकलीफों के इस दौर में हमारे नाते-रिश्ते के कुछ लोग अवश्य काम आये। मेरी मंगेतर ज़ेसे के मां-बाप ने भी हमारा साथ कभी नहीं छोड़ा। वे कभी हमारे यहां आटा भेज देते, तो कभी मक्खन और जाड़ों के लिए जलावन। ज़ेसे भी मेरे गुरुगृह में आकर मुझे ढाढ़स बंधा जाती। मामा भी यथासाध्य खाना-कपड़ा भेजते रहते। वे ही ऊन भी जुटा देते, ताकि मां घर पर ही कात-बुन सके। मेरी छोटी बहन पेत भी कड़ी मेहनत करके कुछ न कुछ कमा लेती। फिर भी रहे हम गरीब के गरीब ही—मोटे-फटे कपड़े और सादा खाना ही उन दिनों हमारी किस्मत बन चुकी थी। मुझे बहुत ही कष्ट होता था यह सब देखकर।'

मिलरेप से ही इसके आगे की कथा भी सुनिये :

'एक बार मैं अपने लामा गुरु के साथ त्सा प्रांत के ही एक गांव में दावत खाने गया। वहां से कुछ छंग चखकर मैं मस्ती से लोकगीत गाता हुआ घर लौट आया। मां ने मुझे इस हालत में देखा तो मेरी बड़ी लानत-मलामत की। बोली कि यदि तू कुछ तंत्र-मंत्र सीखकर हमारे दुश्मनों को ध्वस्त नहीं कर देगा, तो मैं आत्महत्या कर लूंगी। मुझे तब बहुत ही शरम आयी। हम भाई-बहन दोनों ने उसे सांत्वना दी और मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि मैं मां की इच्छा पूरी किये बिना कभी शांत नहीं बैठूंगा। मां ने तब अपना आधा खेत बेचकर धन जुटाया और मुझे एक बड़े तांत्रिक के पास भेजा। मुझे वह गांव के बाहर बहुत दूर तक छोड़ने आयी। वह वापस लौटने लगी तो मेरी इच्छा हुई कि उससे एक बार और भेंट करूं। न जाने क्यों, मुझे लग रहा था कि अब मैं कभी दुबारा उसके दर्शन नहीं कर सकूंगा। फिर भी मैं अपनी भावनाओं पर काबू करके आगे बढ़ गया। यर्लुङ-क्योर-पो जाकर मैं एक अत्यंत समर्थ तांत्रिक का शिष्य बन गया। गुरु-दक्षिणा के रूप में मैंने उसे अपना सर्वस्व सौंप दिया

और प्रार्थना की कि मुझे ऐसी तंत्रविद्या सिखा दें कि जिससे मैं अपने अन्यायी रिश्तेदारों को तबाह कर सकूं।

'मेरी सेवा-शुश्रूषा से सुप्रसन्न होकर गुरुजी ने वह विद्या मुझे सिखा दी। किंतु पहले उन्होंने अपना एक पवन-सा द्रुतगामी शिष्य मेरे गांव भेजकर यह जान लिया था कि मेरी विपद-कहानी सच भी है या नहीं, अर्थात् मुझे अपने संबंधियों से बदला लेने का सच्चा हक था या नहीं।

'आखिर मैंने अपने चाचा-चाची को छोड़कर (ताकि अपनी समूची बरबादी देखकर वे और भी अधिक कष्ट पायें) उनकी समूची संतानों और स्वजनों-मित्रों को मारकर अपना प्रतिशोध पूरा किया।'

मिलरेप की इतनी आपबीती सुनने के बाद रे-चुंग् ने पूछा—'गुरुदेव, इतने पाप करने के बाद फिर आप बुद्धत्व-प्राप्ति जैसे पुण्य-कर्म की ओर कैसे प्रवृत्त हुए?'

मिलरेप ने आंखें बंद करके ध्यानमुद्रा में कुछ सोचते हुए कहा :

'वास्तव में हुआ यह कि इतनी सब हत्याओं और संपत्ति के विनाश के बाद मेरी भूख-प्यास और नींद सब-कुछ गायब हो गयी। अपनी जन्मस्थली में गुप्त रूप से जाकर मैंने देखा था कि लोग मेरे इतने विरुद्ध हो गये हैं कि अगर वे मुझे देखते तो तुरंत ही मार डालते। सो, मैं अकेला अपने तांत्रिक गुरु के पास ही रहने लगा। मां और बहन मेरी जन्मस्थली में रहती थीं। पर, अब उन्हें कोई तंग करने की हिम्मत नहीं करता था। चाचा-चाची ने भी मेरी बची-खुची पैतृक संपत्ति उन्हें वापस कर दी थी। किंतु मेरी ऐसी हालत हो गयी कि बैठता तो इच्छा होती कि घूमूं और घूमता तो मन में आता कि चुपचाप कहीं मुंह छिपाकर बैठा रहूं। पाप-कर्म के अनुताप ने मेरी हालत खस्ता कर दी थी। बस, यही चाहता था कि मैं यहां से किसी तरह मुक्ति पाकर कहीं भी ऐसे किसी गुरु के पास जाऊं जो मुझे पूर्ण शांति दे, सद्धर्म की शिक्षा दे।

'तभी, एक दिन मेरे तांत्रिक गुरु का भक्त, एक धनी सद्गृहस्थ शिष्य, बहुत ही बीमार पड़ा और उसे ठीक करने वे उसके यहां बुलाये गये। मैं उनके घर की देखभाल के वास्ते पीछे रह गया। लेकिन मैंने देखा कि तीन दिन बाद वे अपना-सा मुंह लिये वापस आ गये, और मुझसे बोले—"ओह! हमारा यह संसारी जीवन और उसकी वस्तुएं कितनी अनित्य और क्षणभंगुर हैं। मुझे अब अपने सारे पाप याद आ रहे हैं। अपने लिए और तुम्हारे लिए मैंने कितने लोगों की जानें लीं, कितनी संपत्ति नष्ट की। किंतु सारी कोशिशें करके भी भी मैं एक आदमी के जीवन की रक्षा तो नहीं कर सका। मेरे साथ तुम भी क्या पापकर्म ही संचित नहीं कर रहे हो?"

'मैंने उनसे बड़े विनम्रतापूर्वक पूछा—"महाराज, क्या यह सच नहीं कि हमारे जादू से मरे हुए वे सब लोग सृष्टि की उच्च से उच्चतर योनियों में पैदा होकर कहीं न कहीं तो जीवित होंगे ही।"

मैं नहीं डरता

मौत के डर से मैंने सिरजा एक घर,
मेरा यह घर तो है सत्य के शून्य का भवन;
अब मैं नहीं डरता मौत से।
ठंड के डर से मैंने खोजा एक कोट,
मेरा यह कोट तो है आंतरिक ऊष्मा का कोट;
अब मैं नहीं डरता ठंड से।
अभाव के डर से मैंने खोजी थी संपदा,
मेरी यह संपदा तो है ऊर्जस्वित अंतहीन सप्तधा;
अब मैं नहीं डरता अभाव से।
भूख के डर से मैंने खोजा था भोजन,
मेरा यह भोजन तो है सत्य के ध्यान का भक्षण;
अब मैं नहीं डरता भूख से।
प्यास के डर से मैंने खोजा था पेय,
मेरा यह पेय तो है सम्यक्-ज्ञान-अमृत;
अब मैं नहीं डरता प्यास से।
थकान के डर से मैंने खोजा था साथी,
मेरा यह साथी तो है शाश्वत आनंद का शून्य;
अब मैं नहीं डरता थकान से।
भ्रांति के डर से मैंने खोजा था मार्ग,
मेरा यह मार्ग है परम-लय का सन्मार्ग;
अब मैं नहीं डरता भ्रांति से।
मैं हूं एक, ऋषि जो है स्वामी सब-कुछ का,
बहुविध एषणाओं की निधियों का;
और जहां-कहीं भी मैं रहता हूं, मैं हूं आनंदित ।।

• मिलरेप •

[अनुवाद : मनगुप्त]

उन्होंने उत्तर दिया—"हां, यह तो है कि सभी प्राणियों में एक ऐसी अग्नि अथवा आत्मज्योति होती है, उनको सत्पथ पर ही प्रेरित करती है। हमें भी तो उनकी मुक्ति और आत्म- के लिए प्रयत्न करना चाहिये। यह सब तो इस बात पर ही निर्भर कि हम अपने मंत्रों और अनुष्ठानों का केवल अच्छे उद्देश्य से ही करें उनकी शक्ति का वास्तविक तात्पर्य है। अन्यथा इनका सतही ज्ञान और प्रयोग तो हमेशा दु:खदायी ही है। इसलिए मेरी तो अब यही इच्छा है कि मैं अपना यह तांत्रिक गुरुगृह सौंपकर सद्धर्म की साधना करूं और योग्यतम शिष्य होने के नाते तुम मेरे और अन्य शिष्यों की रक्षा करो। तुम्हारे और अपने सभी पापों का पूर्ण प्रायश्चित्त करके प्राणिमात्र के अभ्युदय के ही अपना शेष जीवन बिताना चाहता अथवा तुम ही यदि ऐसा करना चाहो, तन-मन-धन से सहायतार्थ प्रस्तुत हूं।"

मैं तो यही चाहता था। बस, तुरंत तैयार गया। तब मेरे तांत्रिक गुरु लामा युंग-ग्याल ने मुझे बहुत-कुछ सामग्री और लादा याक देकर त्सांग घाटी के नार् स्थान को रवाना कर दिया। वहां -ल्हागा संप्रदाय का एक पहुंचा सिद्ध लामा रहता था, जो निवृत्ति- के सिद्धांतों और प्रयोगों में भी पूर्णता कर चुका था। किंतु मेरी सारी बातें सुनकर और मेरी परीक्षा करके उसने मुझ नार् से भी आगे न्याङ घाटी की ओर भेजा और वहां से मैं भारतीय संत नारोपा के शिष्य मर्‌प "अनुवादक" के पास भेजा गया।

'मैं जब लामा मर्‌प "अनुवादक" के पास पहुंचा, तब वे एक अनजुते खेत में हल चला रहे थे। उन्हें देखते ही मुझे अभूतपूर्व आनंद की ऐसी अनुभूति हुई कि एक बार तो जैसे मैं सभी कुछ भूल-सा गया; मेरा समस्त शरीर रोमांचित हो उठा। उन्होंने मुझे सिर्फ एक बार सिर से पैर तक ताककर देखा और फिर मेरे आने का उद्देश्य सुनकर वे बोले—"तुम लामा मर्‌प से मिलना चाहते हो न, मैं तुम्हें उनसे मिला दूंगा; लेकिन पहले तुम यह मेरा खेत जोत दो।" यह कहकर उन्होंने मुझे खूब बढ़िया छंग पिला-कर तरोताजा किया; फिर मेरे हाथों में हल पकड़ाकर चलते बने। यह थी गुरु मर्‌प से मेरी पहली मुलाकात।

'काम पूरा करके जब मैं दुबारा उनसे मिला और जब मैंने उनसे निवेदन किया कि यद्यपि मैं पश्चिमी अधित्यका का एक महान पापी हूं, किंतु अब उन्हें अपनी काया, मन, वाक् सभी कुछ समर्पित करता हूं। मैं उनसे अध्यात्म का उपदेश पाकर अपनी कामना पूरी करके इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त करना चाहता हूं। तब उन्होंने कहा—"मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि तुम कितने बड़े पापी हो! मैंने तुम्हें अपनी खातिर पाप कमाने नहीं भेजा था! किंतु मुझे तुम्हारा यह 'सर्वस्व-समर्पण' अच्छा लगा।

फिर भी मैं तुम्हें अपना अंतेवासी बनाकर अन्न-वस्त्र तो देने से रहा। यदि अन्न-वस्त्र भी चाहते हो, तो फिर अध्यात्म-विद्या का उपदेश कहीं अन्यत्र जाकर लो। यदि उपदेश और दीक्षा यहीं प्राप्त करना चाहते हो, तो फिर अन्न-वस्त्र का जुगाड़ स्वयं करो। यह भी तुम्हारी अपनी निष्ठा और श्रम पर निर्भर है कि तुम इसी जन्म में निर्वाण पा लोगे या नहीं।"

'मैंने उनसे वादा किया कि अपना तन ढंकने और पेट भरने के लिए आपको कष्ट न दूंगा। जब मैं उनके यहां रहने गया और अपने साथ की कुछ पोथियां उनकी वेदिका पर पुस्तकें रखने की जगह पर रखने लगा, तो वे डांटकर बोले—"अरे, अपने इस कूड़े-कबाड़ को हटाओ यहां से! इनसे मेरे पवित्र ग्रंथों और पावन अवशेषों को जुकाम हो जायेगा!" मैं फौरन समझ गया कि सिद्ध गुरु मर्‌प यह जानते हैं कि मेरी ये पोथियां उस तंत्रविद्या की हैं, जो अभी तक केवल विनाश करने और दंड देने के काम ही आती रही है। मैंने फिर वे सब पोथियां अपनी कोठरी में रख दीं। किंतु माताजी (गुरुपत्नी) ने मुझे भरपेट खाना और दूसरी जरूरी चीजें दीं; उस दिन मुझे भीख मांगने कहीं बाहर नहीं जाना पड़ा।

'दूसरे दिन नीचे की समूची ल्हो-ब्रक घाटी मैंने छान डाली। जौ के ४२० माप भरकर भिक्षा एकत्र की। इसमें से जौ के २८० माप देकर मैंने एक बड़ा-सा ताम्र-पात्र खरीदा, जिसमें कुंडे लगे थे; १० माप देकर मांस और छंग जुटाये; बाकी १३० माप एक बड़े से बोरे में भरे और उसके ऊपर वह ताम्रपात्र रखकर मैं गुरुगृह वापस आया।

'ऊपर की चढ़ाई तय करके मैं इतना थक गया था कि घर की देहली पर पहुंचते ही मैंने अपना सारा भार जमीन पर जोर से पटक दिया, जिससे सारा घर कांप-सा उठा। गुरु मर्‌प इस पर बहुत रुष्ट होकर चिल्लाये—"अरे, तू मेरे भक्तों में सबसे ज्यादा हट्टा-कट्टा है तो क्या अपनी शारीरिक शक्ति के प्रदर्शन से हमें मार डालना चाहता है? चल, उठा अपना यह बोरा, और भाग यहां से।" उन्होंने लातें मारकर मेरा सामान घर से बाहर फेंक दिया। मुझे तभी पता चल गया कि गुरुदेव जरा क्रोधी स्वभाव के हैं। मुझे उनकी उपस्थिति में बहुत सावधानी से रहना होगा।

'बाद में जब मैंने वह ताम्रपात्र उन्हें भेंट किया, तो वे अपने करस्पर्श से उसे स्वीकार करके आंखें बंद किये कुछ मंत्र-से पढ़ते रहे थे। और जब उनकी आंखें खुलीं, तब उनमें से आंसू टपक रहे थे! वे बोले—"यह बहुत शुभ वस्तु है। मैं इसे अपने गुरु नारोपा को भेंट करूंगा।" साथ ही अपनी अंजलि में कुछ भरकर उन्होंने भेंट देने जैसी हरकत की। और फिर उस ताम्र-पात्र के कुंडे खूब जोर से खटकाये। एक डंडे से उसे इतने जोर से पीटा कि बड़े जोर की ध्वनि हुई और अंत में उसे ले जाकर वेदिका पर रखा और उसमें घी भरकर

क जला दिया ।

बाद में तो उन्होंने मेरी तरह-तरह से क्षा ली, अत्यंत कठोर बनकर और भी नतम कार्य कराये मुझसे, और बड़ी नय-विनय के बाद पहले तो सिर्फ बुद्ध, और धर्म का परिचय मात्र दिया। माताजी (गुरु मर्‌प की पत्नी) बहुत ामयी थीं, उन्होंने पग-पग पर हर तरह री मदद की। एक बार तो गुरु-दक्षिणा के लिए उन्होंने मुझे अपने स्त्रीधन से और नीलमणि भी दिये। फिर भी मुझे सद्धर्म के पूर्ण ज्ञान का अधिकारी समझा गया, तो मैं इतना निराश हो कि मैंने आत्महत्या करनी चाही। तभी मुझे यह बोध भी हुआ कि गुरु-मेरे पिछले दुष्कर्मों का प्रभाव नष्ट के लिए ही शायद मुझे इतनी पीडा है।

निर्वाण-प्राप्ति के लिए अत्यंत व्यग्र के कारण जब मैं दीक्षा के लिए बार-गुरुजी के पीछे पड़ने लगा, तो वे बोले—यू और त्संग घाटियों में मेरे बहुत-से हैं। वे यहां आने को बहुत उत्सुक हैं; किंतु यहां आते वक्त रास्ते में यमदुक और तलुंग के खानाबदोश लूट लेते हैं। वे बेचारे साथ में भेंट न के कारण शरम के मारे यहां नहीं आते। ओं और दुष्टों पर ओले बरसाकर नष्ट कर दो। यह तुम्हारा धार्मिक है। इसके बाद मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा।" आज्ञानुसार मैंने भयंकर उपल-वर्षा से दुष्टों के वे गिरोह तहस-नहस कर दिये। वापस आकर फिर दीक्षा के लिए गुरु मर्‌प के पीछे पड़ा, तो वे मुझे डांटने लगे—"क्यों, तुम किस बूते पर इतनी धृष्टता कर रहे हो? जो विद्या घोर कष्ट उठाकर मैं भारत से यहां लाया हूं, वह तुम्हें इस जरा-से काम के बदले में सौंप दूं! .....पहले तुम ऐसा ही दुष्ट-दलन ल्हो-ब्रक घाटी में और करो, क्योंकि वहां के पहाड़ी भी न्याल-लो-रो वाले मेरे भक्तों को लूटते रहे हैं। उन्होंने कई बार मुझे भी बहुत तंग किया है।"

'आखिर मैंने उनकी यह इच्छा भी पूरी कर दी। ल्हो-ब्रक घाटी में तो मेरी तांत्रिक करामात के बाद आपसी मारकाट भी शुरू हो गयी थी। वहां की खून-खराबी देखकर मुझे घोर पश्चात्ताप भी हुआ था। परंतु गुरुदेव ने वापस आने पर मेरी जादुई करामात की खूब तारीफ की और मुझे एक खिताब-"थू छेन" अर्थात् महातांत्रिक दिया। लेकिन दीक्षा की बात उठते ही वे ठठाकर हंसे—"अहा हा! तुम सोचते हो कि ये सब पाप करके तुम मुझसे वह पवित्र विद्या सीख लोगे, जिसके लिए मैं मनों सोना लुटा चुका हूं और जिसमें अभी तक देवताओं के स्वर निनादित हैं! यह तो बड़ी हास्यास्पद बात होगी। पहले तुम उसी घाटी में जाकर, तुमने जो कहर वहां बरसाया है, उसे ठीक करो। सारे गड़रियों को जिलाओ और फसलों को फिर उगाओ। जब यह कर दोगे, तब मैं तुम्हें दीक्षा देने के बारे में सोचूंगा।" उन्होंने मुझे इस बुरी तरह डांटा

कि लगा, वे मेरी मरम्मत भी कर देंगे। उस वक्त जो मेरी हालत बिगड़ी, उसमें माताजी की सांत्वना ने ही मुझे संभाला था।

'दूसरी सुवह गुरु मर्प मुझसे बोले– "शायद कल मैंने तुम्हें बहुत बुरी तरह डांट दिया था। कुछ भी बुरा मत मानो उसका। धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करो। दीक्षा तो मिलेगी ही तुम्हें। मुझे लगता है, तुम बड़े काम के आदमी हो। पर बेटे, पहले तुम मेरे लिए एक गोलाकार मकान उस पहाड़ी चट्टान पर बना दो।" उन्होंने मुझे एक ऊंची पहाड़ी पर ले जाकर स्थान बताया।

'और जब मैंने यह काम आधा संपन्न कर लिया, तो गुरुजी आकर बोले–"अरे! इसकी आकार-योजना में मुझसे एक भूल हो गयी थी। तुम अभी तो इसे तुरंत गिरा दो। यह सारा सामान (मिट्टी-पत्थर) जहां से उठाकर लाये थे, वहीं पहुंचा दो।" मैंने उनकी यह आज्ञा भी पूरी की।

'फिर एक बार मेरे पास वे आये तो मुझे लगा कि वे नशे में धुत्त हैं। वे मुझे उसी चट्टान के पश्चिमी पहलू पर ले जाकर द्वितीया के चंद्रमा की जैसी एक आकृति खींचकर बोले–"ऐसा मकान बनाओ।" और जब मैं उसे आधा बना चुका, तो उन्होंने फिर उसे पूरा करने से मुझे रोक दिया। फिर से मुझे सारा गारा-पत्थर वहीं ले जाना पड़ा, जहां से उठाकर लाया था। हुक्म तो उनका मैंने बजा दिया, किंतु अब मैं बहुत खीझ गया था। क्योंकि अब फिर तीसरी बार वे मुझे उसी चट्टान के उत्तरी पहलू पर एक त्रिकोणाकृति योजना वाला मकान बनाने को कह गये थे। जब मैं उसका एक तिहाई भाग बना चुका, तो वे लगे डांटने–"किसने कहा था तुम्हें इसे बनाने को? मुझे तो याद नहीं आता कि मैंने कभी तुम्हें ऐसी आज्ञा दी हो। या शायद मैं उस वक्त होश में नहीं रहा होऊंगा।"

'मैं बोला–"लेकिन मैंने तो आपसे कहा था कि इस बार खूब सोच-विचार कर आज्ञा दें। और आपने यह भरोसा भी दिलाया था कि ऐसा ही किया गया है।" उन्होंने चट्-से उत्तर दिया–"कोई गवाह है तुम्हारे पास इस बात का? तुम तो मुझे इस अशुभ तिकोनिया घर में बसाकर मार डालना चाहते थे!...... नहीं? ..... देखो, अब तुम इसे फौरन तोड़ो और फिर सारा सामान वहीं पहुंचाओ, जहां से लाये थे।"

'इस बार मेरी पीठ पर इतने घाव हो गये थे कि मैं ठीक से चल-फिर भी नहीं पाता था। माताजी ने अवश्य ही मेरी देखभाल की थी। किंतु मैं तन-मन से बहुत कुछ टूट चुका था। पर गुरु मर्प की मानो इस ओर दृष्टि ही नहीं पड़ती थी। इस बार वे मेरे पास आये तो बोले–"जैसे लद्दू खच्चरों के कंधों और पीठ पर माल ढोते वक्त घाव हो जाते हैं तो वहां पट्टियां बांध दी जाती हैं, वैसे ही तुम भी काम चलाओ। हां, अब चौथी बार जो भवन बनाओगे, उसे उजाड़ने के लिए मैं कभी नहीं कहूंगा।" मैंने उनकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। किंतु अब तो मैं इतना अशक्त हो गया

था कि मैंने विश्राम के लिए कुछ समय का अवकाश ले लिया ।.....'

फिर कुछ ठीक होने पर माताजी के कहने पर मैंने एक बार तो यह नाटक भी किया कि मैं सदा के लिए गुरुगृह छोड़ कर चला जा रहा हूं ! लेकिन इस बार उन्होंने मुझे बहुत जोर से पीटा और बोले–"तुम तो पहले ही तन, मन और वाणी सहित अपने को मुझे समूचा सौंप चुके हो । अब तुम मेरी इच्छा के बिना कैसे जाओगे कहीं ? पहले यहां अपना काम पूरा करो।"

'जब मैं जमीन पर गिरकर जोर-जोर से रोने लगा, तो मेरी गुरुपत्नी ने करुणार्द्र होकर मुझे "वज्र-वाराही-ध्यान" सिखा दिया। किंतु फिर भी मानो मेरे समस्त पाप नष्ट नहीं हुए । मैं फिर अपने कार्य (चौथी बार गुरुजी के लिए गृह-निर्माण) में जुट गया; क्योंकि यह मेरा दृढ निश्चय था कि मुझे इसी जन्म में निर्वाण या पूर्ण सत्य की प्राप्ति करनी ही है, चाहे कुछ भी क्यों न करना पड़े, कितने ही घोर कष्ट क्यों न भुगतने पड़ें ।

'किंतु सफलता फिर भी नहीं मिली तो मैं वहां से निकल भागा । कुछ दिन एक वृद्ध व्यक्ति को "प्रज्ञा-पारमिता ग्रंथ" पढ़कर सुनाया तो उसमें लिखा पाया कि एक अर्हत ने तो अध्यात्म-विद्या सीखने के लिए अपनी देह का मांस भी बेच डाला था। मुझे तब बड़ी ग्लानि हुई कि शायद मैं अपने लक्ष्य के प्रति उस अर्हत जितना समर्पित नहीं हूं ।

'मैं फिर गुरु मर्‌प के यहां लौट आया । पता चला कि मेरे जाने के बाद गुरु मर्‌प ने रो-चिल्लाकर अपना दुःख इस तरह प्रकट किया था – "मेरा भाग्यवान और प्रतिभाशाली शिष्य तुरंत वापस लाओ ।" किंतु मुझे इसका विश्वास नहीं हुआ; सोचा, गुरुपत्नी मुझे सांत्वना देने के लिए ही ऐसा कह रही हैं । क्योंकि जैसे ही गुरुपत्नी ने मेरी वापसी की सूचना गुरुजी को दी, वे फिर पहले के जैसी मुद्रा बनाकर उनसे बोले–"वह आया है तो अपने मतलब से आया है।" मुझसे भी बोले–"यदि तुम सच-मुच पूर्ण ज्ञान के अधिकारी होना चाहते हो, तो पहले चौथे भवन का अधूरा कार्य पूरा करो। नहीं तो जहां चाहो चले जाओ।"

'मैंने तब तो उनसे तो कुछ नहीं कहा, किंतु माताजी से कह दिया कि मैं अपनी मां के दर्शनार्थ जाना चाहता हूं; क्योंकि मुझे लगता है, गुरुदेव मुझे अंतिम दीक्षा शायद ही कभी देंगे !

'इस पर माताजी ने मुझे गुरु मर्‌प की ओर से एक पत्र और नारोपा सिद्ध के स्मृतिचिह्न-रूप मालाएं देकर अन्य एक सिद्ध लामा ङगोग्प के पास भेज दिया कि वे मुझे दीक्षा दें । परंतु वहां दीक्षा मिलने पर भी ध्यान आदि साधनाओं का वांछित परिणाम नहीं हुआ । कारण यही था कि इसमें प्रधान गुरु मर्‌प का हार्दिक सहयोग नहीं था। जो भी हो, फिर एक मौका आया कि मैं गुरु मर्‌प की शरण में दुबारा जा सकूं। इसी बीच मुझे माताजी अर्थात्

...पत्नी का एक पत्र भी मिला—"शीघ्र वापस आ जाओ, गुरुजी ने तुम्हें पुनः क्षमा कर दिया है और इस बार शायद वे तुम्हें अंतिम दीक्षा भी देंगे।"

'इधर लामा नुगोग्प को भी न्योता मिला था, गुरु मर्प के पुत्र के बालिग होने और नये मकान में जाने के उत्सव में शामिल होने का। भेंट के लिए अपनी सारी संपत्ति लेकर सपत्नीक वे मेरे साथ गुरु मर्प के यहां आये।

'गुरु मर्प ने इस बार भी लामा नुगोग्प को तो वज्रयान-पद्धति सिखा दी, किंतु मुझे और माताजी (जिन्होंने जाली पत्र और वस्तुएं मुझे दी थीं) और लामा नुगोग्प (जिन्होंने मुझे दीक्षा दी थी) सभी को डांट-फटकार ही मिली। मैं तब इतना दुःखी और निराश हुआ कि मैंने आत्महत्या का निश्चय कर लिया। आखिर अन्य सबकी प्रार्थना पर गुरु मर्प मुझ पर किसी प्रकार तनिक प्रसन्न हुए और हम सबको समझाया कि गलत तरीकों से पूर्ण सत्य कभी प्राप्त नहीं हो सकता। इसके लिए व्यक्ति को पूर्णतः निष्पाप-निष्कलंक होना जरूरी है।......"मिलरेप अभी तक गलत काम करता रहा है; इसीलिए मैंने उसे अभी तक दीक्षा का अधिकारी नहीं समझा था।" उन्होंने कहा।

'गुरु मर्प ने निश्चित समय पर मुझे दीक्षा दी और मेरा नाम श्रीविकसित (विकसित) वज्र रखा। मंत्रयान-तंत्र पढ़ने की आज्ञा भी दी। मेरे सिर पर हाथ रख-कर आशीर्वाद दिया। प्राणायाम और ध्यान की नयी-नयी विधियां तो वे मुझे कुछ पहले ही सिखा चुके थे।

'ग्यारह महीने तक एक कंदरा-सदृश जगह में बैठकर मैंने ध्यान आदि किया। माताजी और गुरुजी ने इस अवधि में मेरी पूरी देखभाल की थी। उन्हीं की आज्ञा से मैंने इस साधना को समाप्त किया।

'मुझे क्या-क्या अनुभव हुए यह पूछे जाने पर मैंने उन्हें बताया :

'बारहों निधानों से बने अज्ञान से यह शरीर बनता है, जिसके उपादान हैं रक्त और मांस। चेतना की धारणा-शक्ति से यह आलोकित है। यही वह साधन भी है, जिससे यथार्थ स्वातंत्र्य और स्वाराज्य मिलते हैं। और हमारा यह जीवन ही वह सीमा है, जहां से कोई भी नीचे का ऊपर की ओर जा सकता है।

'सबसे मूल्यवान है वर्तमान समय, जिसमें प्रत्येक को यह निर्णय करना पड़ता है कि स्थायी कल्याण या अकल्याण का पथ कौन-सा है। जो केवल वैयक्तिक शांति और आनंद का लक्ष्य रखते हैं उनका पथ "हीनयान" है। जो अपने समस्त प्रेम और करुणा को दूसरों को भी वितरित करते हैं उनका पथ "महायान" है। हीनयान से महायान पर आना "वज्रयान" के बिना असंभव होता है।

'गुरु ही शिष्य को दीक्षा द्वारा गंभीर विचार-सरणी से पूर्ण सत्य के अंतिम लक्ष्य तक पहुंचाता है। ध्यान करते हुए एक-

एक पग आगे बढ़कर साधक अपनी सारी वाक्यशक्ति, मानसिक ऊर्जा और नैतिक प्रेरणाओं से आंतरिक खोज में लगता है। तब उसे वैयक्तिक अहम् के अनस्तित्व का आभास होता है। मन केवल बाह्य ज्ञान से हटकर पूर्ण शांति की स्थिति में आ जाता है। तब दिन, मास और वर्ष अनजाने-से ही निकल जाते हैं। किंतु यह विस्मृति और अचेतन अवस्था नहीं होती; इसमें बुद्धि और चेतना का पूर्ण सहकार रहता है। परम-चैतन्य की यह स्थिति बुद्धत्व पाने के बाद होती है, जिसमें विचार और दर्शन एकरूप रहते हैं।

'मन की यह स्पष्टतः शांत स्थिति पाने में विश्लेषणरत ऊर्जा और जिज्ञासु बुद्धि की सहायता भी अनिवार्य है। सीढ़ी पर ऊपर चढ़ने के लिए निचली ओर के डंडे भी जरूरी होते हैं। उनके बिना कोई ऊपर चढ़ ही नहीं सकता। किंतु ध्यान या एकाग्रता की साधना सदा ही करुणामयी मनोवृत्ति से ही शुरू होनी चाहिये; क्योंकि पुण्य कर्म मात्र वही है, जिससे सबका कल्याण होता हो। दूसरे, साधक का लक्ष्य साधना के प्रत्येक स्तर पर एकदम स्पष्ट होना चाहिये, विशेषतः जब विचारों का अतिक्रमण हो रहा हो और चिदाकाश में विचरण शुरू हुआ हो। मन में तब सदा ही यही प्रार्थना और इच्छा रहनी चाहिये कि सबका कल्याण हो तभी विचारों और भावों से अतीत हुआ जाता है। यही पूर्ण सत्य की उपलब्धि से पहले की स्थिति होती है।

'किंतु जैसे भोजन का नाम लेने मात्र से पेट नहीं भर जाता, वैसे ही "शून्य" (पूर्ण सत्य) का शाब्दिक प्रत्यय ही नहीं समग्र एवं यथार्थ अनुभव होना चाहिये। मतलब, वैयक्तिक चेतना अनादि-अनंत सृष्टि चैतन्य में डूबे तो सही किंतु खो न जाये—बूंद और समुद्र की तरह, दीपक और सूर्य की तरह। संक्षेपतः, शून्य, साम्य, अनिर्वचनीयता और अप्रमेयता का ध्यान—ये वज्रयानी दीक्षा के चार स्तर हैं, जिनमें पारंगत होने के लिए शारीरिक सुखों और मनोविलासों का त्याग, विघ्नों या अंतरायों का परिहार, हर कदम पर जीवन की बलि देने के लिए भी प्रस्तुति और धैर्य न खोते हुए हर तरह की मुसीबत झेलने के लिए तैयार रहना परमावश्यक है।

'फिर मैंने गुरु और गुरुपत्नी दोनों के प्रति असीम कृतज्ञता व्यक्त की, सदा ध्यानी बने रहने का वचन दिया और उनके विदा होने के बाद मैं पुनः साधना करने लगा।

'एक दिन मुझे स्वप्न हुआ कि अभी तक मुझे "द्रोंग-जुग" (वह विधि जिससे क्षण-भर में ही बुद्धत्व मिल सकता है) नहीं सिखायी गयी है। पता चला कि यह तो एक "डाकिनी-कर्ण-तंत्र-प्रक्रिया" है, जो कि किसी ग्रंथ में वर्णित नहीं है, केवल गुरुपरंपरा से ही मिलती है। गुरु मरपा को भारतीय सिद्ध नारोपा ने यह सिखायी थी। भारत से लौटकर गुरु मरपा ने अपने पुत्र की अकाल मृत्यु के बाद हम चार प्रधान

शिष्यों को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। प्रत्येक को उसकी अपनी प्रकृति और क्षमता के अनुसार शिक्षा में समर्थ बनाया । अलग-अलग ग्रंथ तो दिये ही, नारोपा के अवशिष्ट चिह्न भी दिये । अन्य तीन तो अपनी-अपनी जगह चले गये; किंतु मैं उन्हीं के पास रहा । मुझे वे और भी बहुत कुछ सिखाना चाहते थे । विशेषत: वे सब तंत्र भी जो केवल मुंह-जबानी ही बताये जाते हैं, ग्रंथों में नहीं मिलते । उन्होंने मुझे एक मुहरबंद पांडुलिपि भी दी थी और कहा था कि इसे तभी पढ़ना, जब किसी घोर विपत्ति में पड़ जाओ ।.....

'फिर एक दिन मैं उनसे भाव-भीनी विदा और संपूर्ण आशीर्वाद लेकर अपने घर की ओर चल पड़ा । गुरु के आदेशानुसार मैं रास्ते में लामा गोगुदुन के पास भी ठहरा था और योगशक्ति के बल पर मैंने तीन दिन में ही अपनी यात्रा पूरी कर ली थी; मामूली तौर पर तो इसमें महीनों लगते । अपने गांव में आकर मैंने देखा कि मेरा सपना सच था, मां करीबन आठ वर्ष पहले ही मर चुकी थी । बहन पेत का कोई अता-पता नहीं था । हमारा घर बस खंडहर रह गया था । मां की अस्थियों का तकिया बनाकर तब मैंने सात दिन तक समाधि लगायी और फिर अस्थियों को विधिवत् विसर्जित कर दिया । मेरे पहले शिक्षक के पुत्र ने मुझसे बहुत कहा कि ज़ेसे से विवाह कर गृहस्थ बन जाओ, आखिर तुम्हारे गुरु मर्‌प भी तो गृहस्थ हैं ! किंतु मैं किसी तरह राजी नहीं हुआ ।

'भिक्षाटन करते-करते मुझे एक दिन मेरी चाची मिली और वह मुझे मारने को दौड़ी । यही हाल चाचा ने भी किया । उसने तो पड़ोसियों को भी मेरे खिलाफ़ बरगलाया । लेकिन जब उन सबने यह जान लिया कि मैं तो अब एक साधक भिक्षु हूं, तब वे शांत हो गये, भिक्षा भी देने लगे । ज़ेसे भी मुझसे कई बार मिली । उसकी अभी तक शादी नहीं हुई थी; क्योंकि सबको डर था कि कहीं फिर मैं अपनी तंत्रविद्या से उन्हें नुक्सान न पहुंचा दूं । मैंने ज़ेसे को समझाया कि चाहो तो तुम मेरा मकान और खेत ले लो और आजीवन उनकी स्वामिनी बनी रहो । पर वह राजी नहीं हुई । आखिर मैंने खेत चाची को सौंप दिया; उसने मुझसे यह वादा किया कि वह हर महीने मेरे खाने को अन्न आदि देती रहेगी । उसने मुझसे तंत्रविद्या का प्रयोग न करने का वचन भी ले लिया था ।

'गांव में रहते हुए कभी-कभी मुझे ऐसा लगता था कि मैं अपनी साधना में कोई प्रगति नहीं कर पा रहा हूं । फिर सपने में देखा कि मैं एक बहुत ही कड़ी भूमि वाला खेत जोतने में लगा हूं, किंतु हल नहीं चला पा रहा हूं । तभी सपने में ही प्रकट होकर गुरु मर्‌प ने कहा कि तुम्हें और भी दुगुनी मेहनत और लगन से साधना करनी है, तुम्हारी सफलता सुनिश्चित है ।

'तभी एक दिन अचानक मेरी चाची कुछ अन्न और अन्य सामग्री लेकर आयी


एयर-इंडिया
AI-2531

और बोली—"तुम यहां से कहीं और चले जाओ, अपना खेत मुझे इन चीजों के बदले बेचा हुआ समझ लो। यहां के लोग मुझे रोज धमकाते हैं कि यदि मैं तुमसे कोई रिश्ता रखूंगी तो मुझे और तुम्हें दोनों को मार डालेंगे।" मैं समझ गया कि यह सब झूठ है। लेकिन मैंने हंसकर कहा—"तुम अभी तक लोभी और प्रतिकार-परायण ही बनी हुई हो, चाची। खैर, मैं तुम्हें खेत ही नहीं मकान भी देता हूं। जाओ। खुश रहो और अपना मन ठीक करो।" यों मैं चाहता तो बहुत-कुछ कर सकता था; किंतु मैंने सोचा यदि अपनी चाची पर ही धैर्य नहीं आजमाया तो और कहां आजमाऊंगा।

'बस, मैं अपनी गुफा में ही जमकर ध्यान करने लगा। जब मेरे पास कुछ भी खाने को न बचा, तो गुफा के बाहर उगती पीतपर्णी का शोरवा ही पीना शुरू कर दिया। मेरा तन बहुत क्षीण हो गया—सिर्फ कंकाल रह गया। त्वचा का रंग हरा-सा हो गया, बालों का भी। पेट में या शरीर में और कहीं भी बहुत अधिक पीड़ा होती तो मैं अपने गुरु की दी हुई वह मुहरबंद पांडुलिपि उस दर्द वाली जगह पर छुआ लेता। अभी मैं उसे खोलना नहीं चाहता था। क्योंकि मुझे ऐसा महसूस होता था कि अभी वह घड़ी बहुत दूर है। इस तरह लगभग चार वर्ष गुजर गये।

'और एक वर्ष बाद उधर कुछ शिकारी आये। पहले तो उन्होंने मुझे कोई भूत-प्रेत समझा, सो भाग खड़े हुए। बाद में जब उन्हें विश्वास हो गया कि मैं तो सिर्फ तपस्वी हूं तो मेरी गुफा में घुस आये। इधर-उधर सब ओर देख-दाखकर बोले—"खाना कहां छिपा रखा है? हमें भी कुछ उधार दे दो। नहीं तो हम तुम्हीं को मार डालेंगे।" मैंने उन्हें पीतपर्णी दिखा दी, जो उन दिनों मेरा एकमात्र भोजन थी। उन्हें विश्वास नहीं हुआ। वे मुझे पीटने लगे। पर मुझे तो उन पर बहुत दया ही आयी। अंततः मुझे सच्चा लामा समझकर वे मुंह बनाते, मेरा मजाक उड़ाते और "हमारे लिए प्रार्थना करना" कहते हुए चले गये। बाद में, मैंने सुना कि सिर्फ उस शिकारी के सिवा जिसने मुझे अपने लिए प्रार्थना करने के लिए कहा था, बाकी सबको उस प्रांत के शासक ने पकड़ लिया और उनके नेता को फांसी दे दी, अन्य सबकी आंखें निकलवा लीं।...

'फिर कुछ दिनों बाद और एक शिकारी-दल आया। वह अपने साथ काफी खाद्य वस्तुएं लेकर आया था। जब वे जाने लगे तो अपने खाने से बची चीजें छोड़ गये। कुछ दिन बाद उनकी चीजों में से बचे मांस में काफी चींटियां लग गयीं। पहले तो मैंने सोचा कि मांस से चींटियां निकाल बाहर करूं। फिर तुरंत मन में विचार आया कि यह तो एक प्रकार से डाका डालना हुआ—बलवान का निर्बल पर नग्न अत्याचार! सो मैंने वह मांस अपनी गुफा से बाहर रख दिया। [क्रमशः]

[पृष्ठ २०० का मिलरेप का चित्र डा. लोकेशचंद्र के सौजन्य से]



विज्ञान नयी करवटें

डा. कृष्ण कुमार गुप्त

विज्ञान की बदौलत इस दुनिया और इसमें रहने वाले इन्सान का हुलिया इस कदर बदल गया है कि कभी-कभी तो उसे पहचान पाना भी मुश्किल हो जाता है। ऐसा क्या है जो इस बदलाव के असर से अछूता रह गया हो! रहना-सहना, सोचना-समझना, देखना-भालना सभी का तो ढंग बदल गया है। यह परिवर्तन काफी गहन और व्यापक तो है ही, उसकी रफ्तार भी कम नहीं है। परिवर्तन का चढ़ाव हर दिन देखा जा सकता है। यह कहां जाकर रुकेगा, कौन कह सकता है?

मगर बेचारा विज्ञान खुद भी कहां चैन से सांस ले सका है। उसने दुनिया की शक्ल-सूरत अगर बदल डाली है तो अपनी शक्ल और मूरत को भी वह कहां बचा पाया है परिवर्तन से! आधुनिक विज्ञान आज एक नयी करवट ले रहा है। यह ऊंट किस करवट बैठेगा, कौन जाने? अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दियों से लेकर इस सदी के मध्य तक की अवधि में स्थापित सिद्धांतों पर आधारित विज्ञान आधुनिक विज्ञान की निगाह में पुराणपंथी या परंपरावादी (कन्जर्वेटिव) विज्ञान होकर रह गया है, जिसका कार्यक्षेत्र प्रयोगशालेय यंत्रों, उपकरणों एवं कल-पुर्जों तक ही सीमित है। यह सीमा की दूसरी तरफ ताकने-झांकने से कतराता है। 'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है' कहने की हिम्मत भी नहीं है उसमें। 'मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक' वाली कहावत उस पर फबती है।

मगर आधुनिक विज्ञान की पहचान क्या है, हमें यह जानने के लिए उसके ताजातर रुख और रुझान का जायजा लेना होगा। सच पूछा जाये तो नये विज्ञान की नींव तो आइन्स्टाइन के जमाने में ही पड़ चुकी थी; हां, तना और शाखाएं कहीं अब जाकर उभर पाये हैं। जीवन और जगत के विषय में आइन्स्टाइन की मान्यता और विश्वास की एक झलक उन शब्दों से मिलती है, जो उन्होंने एक बार बीमारी की हालत में यह पूछने पर कहे थे कि क्या आपको मृत्यु से बिलकुल डर नहीं लग रहा है? बड़े ही सरल भाव से उन्होंने कहा था—'मैं समस्त चेतन-जगत से इतना अधिक तादात्म्य अनुभव कर रहा हूं कि मेरे लिए यह बात कोई अर्थ नहीं रखती कि कोई एक व्यक्ति कब यहां आता है और कब यहां से चला जाता है।' फिर उन्होंने कहा था—'इस संसार में कुछ भी तो ऐसा नहीं हैं, जिसे मैं एक क्षण के इशारे पर पूरा न कर सकूं।'

अर्थात् आइन्स्टाइन व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व को संपूर्ण सूक्ष्म चेतन जगत से

अलग न मानकर उसका ही एक अभिन्न अंग या अंश मानते थे। मृत्यु उनके शब्दों में 'इति' नहीं, आवागमन की सतत प्रक्रिया का एक चरण मात्र है। विज्ञान की यह संकल्पना और उसका यह स्वरूप प्रयोगशाला के दायरे में, जीवन-निर्वाह के लिए अपने पद से जुड़े दायित्वों का पालन करते रहने वाले औसत विज्ञानी की पहुंच और क्षमता से बहुत दूर है। भारत-जैसे विकासशील देशों के विज्ञानी तो इसी नियति से आबद्ध लगते हैं।

नवभौतिकीविद्

अब जरा आधुनिक विज्ञान की खोज-खबर लें। इसके लिए हमें कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी की लारेंस-बर्कले प्रयोगशाला की ताक-झांक करनी होगी। भौतिकीविद् एलिजावेथ रॉशर, माइकेल मर्फी, फ्रिटजोफ काप्रा, डेविड फिन्सेल्टाइन और गैरी जुकैव के विचारों और उनके द्वारा उद्भासित-स्थापित संधारणाओं को जानने की कोशिश करनी होगी। ब्रह्मांडीय (कॉस्मिक) अध्ययन में रुचि रखने वाले प्रो. रॉशर का कहना है–'भौतिकीविदों का एकमात्र ध्येय यथार्थ के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना है।' इसी उद्देश्य से उन्होंने १९७४ में बर्कले प्रयोगशाला में चालीस भौतिकीविदों और प्राच्य धर्म-दर्शन के विशेषज्ञों का एक दल संघटित किया था। बाद में उन्होंने अपने अनुभवों पर प्रकाश डालते हुए कहा–'हमने अपनी शुरूआत तो शुद्धतम विज्ञान से ही की, परंतु आकर भटक गये दर्शन के क्षेत्र में। कुछ भौतिकीविदों का मत है कि हमारा यह काम महज सनक या रहस्यवाद से अधिक कुछ नहीं है; परंतु वास्तविकता यह है कि हमें बिलकुल नये तथ्यों का पता लगता जा रहा है।'

आशंका और आलोचना के बावजूद नये उत्साही युवा भौतिकीविदों का एक दल बहुत आत्मविश्वास के साथ और योजनाबद्ध तरीकों से इस क्रांतिकारी क्षेत्र में शोधकार्य में जुटा हुआ है। प्रतिवर्ष इन वैज्ञानिकों का एक सम्मेलन होता है, जो पूरे एक महीने तक चलता है। उसमें इस क्षेत्र की उपलब्धियों और संभावनाओं पर गंभीर विचार-विमर्श किया जाता है। सन १९७६ में आयोजित एक ऐसे ही सम्मेलन में अपने विचार प्रकट करते हुए प्रो. मर्फी ने कहा था–'वास्तव में एक नये विश्व-विचार का उदय हो रहा है ...... अंतरिक्ष-वक्र, ऊर्जा और पदार्थ मूलतः एक ही तत्त्व हैं।'

इसी बीच दो नयी पुस्तकों के प्रकाशन ने इस गहन रहस्य को जनभाषा में प्रस्तुत कर आधुनिक भौतिकी और प्राच्य पराभौतिकी (मेटाफिजिक्स) की आपसी समानताओं को आम आदमी के लिए भी सुग्राह्य बना दिया है। प्रो. काप्रा की पुस्तक 'द ताओ ऑफ़ फ़िजिक्स' पहली बार १९७५ में प्रकाशित हुई थी और तब से उसकी लगभग एक लाख प्रतियां बिक चुकी हैं। दूसरी पुस्तक प्रो जुकैव की है। उसका नाम है–'द डान्सिंग ऑफ वू-ली मास्टर्स'। पुस्तक इसी वर्ष मार्च में प्रकाशित हुई, पर इसका

रा संस्करण भी बाजार में आ चुका है। उधर 'जार्जिया स्कूल ऑफ टेक्नोलॉजी स्कूल ऑफ फिज़िक्स' के डाइरेक्टर प्रो. ल्स्टाइन ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया है कि अब इसका समय आ गया है कि 'काल' और 'अंतरिक्ष' के संबंध प्रचलित परंतु पुरानी पड़ गयी धारणाओं निष्कासित करके एक आधारभूत भौतिकी-भाषा की रचना की जाये।

हाल ही में अमरीका की प्रसिद्ध विचार-पत्रिका 'सैटर्डे रेव्यू' में छपे अपने एक लेख प्रो. काप्रा ने कहा है—'प्रकृति के अन्वेषण और सत्य के उजागर के लिए तार्किक बुद्धि (रेशनल माइंड) का जितना महत्त्व है, उतना मानव की अंत:प्रज्ञा (इन्टचुइशन) का है।' अब तक विज्ञान अंत:प्रज्ञा को नकारा-ठुकराता रहा है।

सहजानुभूति

सत्यान्वेषण के लिए विज्ञान और दार्शनिक चिंतन अलग-अलग रास्तों का सहारा लेते आये हैं। इसमें बेजा भी क्या है? परंतु सहजानुभूति किसी व्यक्ति-विशेष या वर्ग-विशेष की जागीर नहीं है। चिंतन के क्षणों में मानव मात्र ऐसी अनुभूति की स्थिति से गुजरता है। तब उसे लगता है कि बाह्य जगत (मस्तिष्क) और अंतर्जगत (मन) के सत्य अलग-अलग कैसे हो सकते हैं? सत्य के कई स्वरूप हों, यह स्वाभाविक है; परंतु उसकी सत्ताएं भी एक से अधिक हों, यह उसका अंतर्मन स्वीकार नहीं कर पाता। वह कहीं गहरे में महसूस करता है कि संपूर्ण सृष्टि किसी एक परम तत्त्व की उपज है। कटु सत्य यह है कि आज तक ज्ञान की कोई भी विधा उसके सभी स्तरों को एक साथ संभालने में समर्थ नहीं हो सकी है। सहजानुभूति सनक से अलग है और किसी न किसी स्तर पर उसका अस्तित्व है, इसे नकारा नहीं जा सकता।

आधुनिक विज्ञान अब इसी सहज सत्य को विज्ञान के तर्क की कसौटी पर खरा साबित करने की दिशा में कदम बढ़ाने लगा है और उसे इसमें सफलता भी मिली है। यहां यह याद रखें कि नये और पुराने विज्ञान एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं, हो भी नहीं सकते। फर्क सिर्फ सीमाओं और दायरों का है। नये विज्ञान की सीमाएं निरंतर चलायमान और विकासशील हैं; पुराने विज्ञान की अचल और स्थिर। नये विज्ञान का स्वर संश्लेषणात्मक है; पुराने विज्ञान की वृत्ति विश्लेषणात्मक है। नया विज्ञान चेतनामय या जानदार है, पुराना विज्ञान चेतनाहीन या बेजान है।

नव-संकल्पनाएं

इस नये विज्ञान द्वारा स्थापित कतिपय नूतन संकल्पनाओं की चर्चा भी कर लें। इनमें कुछ प्रमुख संकल्पनाएं इस प्रकार हैं:

१. भौतिक यथार्थ वस्तुतः पदार्थेतर है: अर्थात् स्थूल जगत की रचना पदार्थ से हुई है, परंतु पदार्थ स्वयं में अंतिम इकाई नहीं है। समस्त पदार्थ-जगत जिस तत्त्व की उपज है, वह स्वयं पदार्थेतर है। संक्षेप में, स्थूल की उत्पत्ति सूक्ष्म तत्त्व की सृष्टि है।

२. सृष्टि का निर्माण मानसिक तत्त्व (माइंड स्टफ) से हुआ है: दूसरे शब्दों में इस संकल्पना को यों कह सकते हैं कि जिस पदार्थेतर तत्त्व से सृष्टि की रचना हुई है, उसकी मूल अभिलक्षणाएं, गुणधर्म और प्रकृति वही है, जो मानसिक तत्त्व की है। यहां मानसिक तत्त्व को समझने के लिए हमें 'मन' को समझना होगा। मन (माइंड) मस्तिष्क से भिन्न है। मस्तिष्क एक उपकरण है। परंतु 'मन' क्या है? 'मन' की जो परिभाषाएं अभी तक की गयी हैं, वे सुस्पष्ट नहीं हैं। मसलन, 'मन का इतिहास तो है, मगर उसका कोई भूगोल नहीं' और 'मन वैयक्तिक नहीं, ब्रह्मांडीय (कास्मिक) है'। तो क्या फिर उक्त संधारणा को प्राच्य चिंतन के परंपरागत अर्थ में लिया जाये, जिसके अनुसार 'समस्त भौतिक जगत मन का व्यापार है।'

३. समस्त वस्तुएं (आब्जेक्ट्स) और घटनाएं ब्रह्मांडीय प्रक्रिया के पैटर्न भर हैं: समस्त भौतिक रचनाएं ब्रह्मांड में उसी तरह के गतिशील पैटर्न हैं, जैसे बहते पानी और बहती हवा में चित्र-विचित्र आकृतियां उभरती हैं।

४. परिप्रेक्ष्य, काल, अंतरिक्ष, व्यक्ति, पदार्थ और घटनाएं—ये सभी चीजें बस एक चिरस्थायी तत्त्व में विलीन हो जाती हैं: घूम-फिरकर वही एक बात कि समस्त सृष्टि एक ही तत्त्व की उत्पत्ति है और अंत में समस्त जगत उसी में विलीन हो जाता है।

विज्ञान त्याज्य नहीं

आधुनिक विज्ञान की उक्त नवीन संकल्पनाओं से ऐसा कहीं ध्वनित नहीं होता कि विज्ञान या परंपरावादी विज्ञान त्याज्य और निरर्थक है। इन संकल्पनाओं की यदि कोई साख, प्रामाणिकता अथवा विश्वसनीयता है, तो उसका मूल कारण यही है कि वे विज्ञान-सम्मत हैं। आधुनिक विज्ञान अपनी वर्तमान स्थिति में मूल विज्ञान के माध्यम से ही पहुंच सका है। अवैज्ञानिक, वैज्ञानिकता-विरोधी और विज्ञान-निरपेक्ष चिंतन भयावह है और इसके खतरे काफी खौफनाक हो सकते हैं। स्वस्थ शारीरिक-मानसिक विकास तथा सामाजिक-आर्थिक उन्नति के लिए हमें वैज्ञानिक चिंतन और वैज्ञानिक प्रवृत्तियों और प्रक्रियाओं को ईमानदारी से अपनाना ही होगा। अवैज्ञानिक धर्म, धर्म नहीं अधर्म है। आइन्स्टाइन के शब्दों में—'धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञान के बिना धर्म अंधा।'



एड्वेंचर की जिसे तलाश हो उसे अलगाव, उपेक्षा और उपहास को सहने और दमन, अत्याचार एवं शोषण को जीतने, और भूख, प्यास एवं थकान को झेलने में समर्थ होना चाहिये। उसे इसके लिए तैयार रहना चाहिये कि बहुत बार चाहे पहाड़ की चट्टानी नोक पर या अपनी आस्था की रक्षा की लड़ाई में उसे गतिमय संकटपूर्ण जीवन जीना पड़ेगा।

—बर्ट्रैंड रसेल



[पृष्ठ ५५ का शेष]

निरर्थक इकाई है और इस तरह एक सार्थक तत्व को स्वयं निरर्थक स्वीकार कर हम अपनी पराजय का बीज बोते चलते हैं।

०

विष्णु प्रभाकर

आत्मानं विद्धि। (अपने को पहचानो ... यद्यपि यह दुस्तर कार्य अभी भी संभव नहीं हो पाया है।)

०

मन्मथनाथ गुप्त

मैं इस सुचिंतित नतीजे पर पहुंचा हूं कि जब रक्षक भक्षक बन चुके हैं और रहबर राहजन, जब लोकतंत्र की गाड़ी को गुंडों और किराये के लेखकों-पत्रकारों की सहायता से चाहे जिस रावण या हिटलर की पटरी पर चालू किया जा सकता है, जब राजनीति में शहीदों की नीति त्याज्य होकर शोहदों की गुंडागर्दी एकमात्र पूज्य तरीका हो चुका है, तब क्रांति के सिवा शांति हो सकती है यह महज भ्रांति ही है।

०

यशपाल जैन

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

०

आरिगपूडि रमेश चौधरी
रामकुमार भ्रमर

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (श्री भ्रमर ने इस श्लोक की अगली पंक्ति का भी समावेश किया है—मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।)

०

शांति मेहरोत्रा

हँसो और हँसने दो।

०

नंद चतुर्वेदी

कल फिर नयी ऋतुओं, नये चरागाहों के लिए।

०

डा. रामदरश मिश्र

यह जीवन है अमृत
प्यार से पियो और पीने दो,
साथ सभी के जियो,
साथ अपने सबको जीने दो।

०

डा. लोकेशचन्द्र

कर्म से ही जीवन का उत्कर्ष प्राप्त हो सकता है।

०

अनंतकुमार 'पाषाण'

अपने को जानो, दूसरों को पहचानो। (बस, इसी में लगा हूं।)

०

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

अभय और असंग का आश्रय ग्रहण कर प्रेय के सामने श्रेय का वरण करना।

०

लक्ष्मीचंद्र जैन

जं सक्कइ तं कीरइ
जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
—जो (भला कार्य) कर सकते हो करो,

अपने ढंग से

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

बचपन से बड़े बुलंद हौसले थे, पर कहां हो पाया कुछ ! सिंह की भांति गरदन घुमाकर जब जीवन की ओर देखता हूं, तो श्रीमतीजी के कुटुंब के एक 'भाई' का विनोद में दिया हुआ नाम ही अपने पर फिट पाता हूं—'पढ़ा-लिखा बेवकूफ !'

शायद इसी के आस-पास कहीं मेरा जीवन-दर्शन लहराता हो !

वेंकटलाल ओझा

'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्' को जीवन-दर्शन बनाकर मैं अपने हजार काम छोड़कर दूसरों के काम में सहायता-सहयोग करने जुट पड़ता रहा हूं। पर बाद में वे लोग मेरी ओर देखते तक नहीं, मेरी निंदा करते हैं, मुझे मूर्ख समझते हैं। कारण, उनका जीवन-दर्शन तो 'परोपकारः पापाय पुण्याय परपीडनम्' होता है। इन्हीं अनुभवों से अब मैंने अपने जीवन-दर्शन की दिशा बदल दी है और अब मैं दिवंगत पत्र-पत्रिकाओं और पत्रकारों की स्मृतिरक्षा पर अधिक ध्यान दे रहा हूं।

जो शक्य नहीं है अथवा जिसे करने का सामर्थ्य नहीं है, उस पर श्रद्धा न रखो।

o

डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी

संतोषी सदा सुखी।

o

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

आस्था, अभय और आलोक से अभिमंत्रित आत्मविश्वास ही परमात्म-विश्वास है।

o

शशिप्रभा शास्त्री

पक्षियों की तरह शुद्ध वर्तमान में जियो।

o

रामावतार त्यागी

सहज और मनोनुकूल कर्म से ही जीवन की सार्थकता है।

o

वीरेन्द्र मिश्र

जीवन रथ में हैं
जुती हुई बांसुरी।

[कवि के गीत-संग्रह 'अविराम चल मधुवंती' की रचना 'द्वापर-श्रव्य' से]

o

बालकवि बैरागी

अतीत उजला था, वर्तमान रुपहला है और भविष्य सुनहरा। विनम्रता मत छोड़ो। ठठाकर जियो।

o

अजितकुमार

हम अपने खयाल को सनम समझे थे,
अपने को खयाल से भी कम समझे थे,
होना था, समझना न था कुछ भी 'शमशेर',
होना भी कहां था वो, जो हम समझे थे।

o

सुरेश सिंह

ईश्वर में विश्वास न करने वाले नास्तिक नहीं हैं, नास्तिक तो वे हैं जो अपने में विश्वास नहीं रखते।

०

राजीव सक्सेना

मैं मार्क्स की सुप्रसिद्ध उक्ति में थोड़ा-सा फेर-बदल करना चाहूंगा कि अब तक दार्शनिकों ने दुनिया की व्याख्या की है, किंतु प्रश्न है इसको बदलने का, इसलिए बदलने के हर संघर्ष में अपनी भरपूर शक्ति से भाग लेना हमारा सबसे बड़ा दायित्व है।

०

ओमप्रकाश निर्मल

'प्यार मेरा बनजारा बनकर
भटक रहा है मंजिल-मंजिल।'

०

विनोद रस्तोगी
गौरीशंकर गुप्त

हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरिनाम।
जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।।

(श्री गुप्तजी ने प्रथम पंक्ति में 'राम-नाम' पाठ रखा है।)

०

रवीन्द्रनाथ त्यागी

भगवान ने मुझे जो भी शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियां दी हैं, मैं उन्हें ज्यादा से ज्यादा विकसित कर सकूं और उनसे अधिकतम आनंद प्राप्त कर सकूं।

०

रामेश्वर दयाल दुबे

भारत जननी एक हृदय हो,
एक राष्ट्रभाषा हिंदी में
कोटि-कोटि जनता की जय हो।

०

नरेन्द्र (संपादक : वीर अर्जुन)

अन्याय के सामने झुकना नहीं और न्याय के लिए कठिनतम तपस्या करने में खुशी महसूस करना।

०

वचनेश त्रिपाठी

मैं नहीं, तू ही . . .।

०

डा. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

०

डा. आत्मानन्द मिश्र

जीवन में सामान्यतः अहितकर जान पड़ने वाली घटनाओं में भी कुछ न कुछ अपना कल्याण निहित होता है; अतएव दया, सेवा और कर्तव्य-निष्ठा के मार्ग पर सतत अग्रसर होते रहना चाहिये।

०

रामनारायण उपाध्याय

इस दुनिया में आयके, सबसे मिलिये धाय
ना जाने किस रूप में, नारायण मिल जाय।

०

गिरिराज किशोर

धूप में चलने की नियति स्वीकार करना और फिर दरख्तों की छांह न होने की शिकायत करना, हास्यास्पद बनाता है!

०

डा. वि. श्री. वाकणकर

देशभक्ति प्रारंभ जीवनाचा
आत्मयज्ञाने अंत व्हावयाचा ।।
(देशभक्ति प्रारंभ जीवन का
आत्मयज्ञों से अंत हो उसी का ।।)

०

जगदीश चतुर्वेदी

मैं मार्क्सवादी जीवन-दर्शन का हामी हूं; किंतु व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ।

०

रमेश बक्षी

'चलता हुआ लावा' में मैंने हताश-निराश मनःस्थिति के बीच लिखा था : 'जीवन तो चलता है, चलता है, बस चलता है .....।'

०

सुरेन्द्र तिवारी

सुख हो या दुःख, अपराजित हृदय से दोनों का स्वागत करना चाहिये।

०

डा. परमानंद श्रीवास्तव

रचने के लिए जीना चाहिये—जीने के लिए रचना दोनों का अन्यथाकरण और अवमूल्यन है।

०

जयप्रकाश भारती

ओ मेरे राजहंस
अभी थककर पंख समेटने का
समय नहीं आया—
चलता चल
उसका सौंपा काम करता चल।

०

दिनकर सोनवलकर

साहित्य और संगीत के माध्यम से जन-जन के बीच आत्मीयता के सेतु बनाना ही मेरा जीवन-दर्शन है।

०

डा. रमेश उपाध्याय

मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर टिकी अन्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था को बदलकर समाजवादी समाज-व्यवस्था की स्थापना ॥

०

सुधा चौहान

अपने जीवन में किसी के लिए कुछ कर सकूं यह तो बड़ी बात होगी; मैं किसी को कष्ट न पहुंचाऊं, मेरे द्वारा किसी का अपकार न हो, यही मेरे लिए बहुत होगा।

०

बालकृष्ण गर्ग

मेरे विचार से मेरा मन ही सबसे बड़ा देवता, सबसे बड़ा तीर्थ तथा सर्वशक्तिमान ईश्वर है।

०

गंगाप्रसाद विमल

विरूप को रूप देने की कांक्षा ही वह सत्य है, जिसे पाना चाहता हूं।

०

उमाकांत मालवीय

प्रतिकूलतम परिस्थितियों में भी भगवत्-भरोसा और जीवन की उत्सवधर्मिता को

न केवल बनाये रखना, वरन उत्तरोत्तर संवर्धित करते रहना ही मेरे लिए वास्तविक पुरुषार्थ है।

०

चंद्रकांत बांदिवडेकर

आंतरिक प्रेम का दायरा बढ़ता जाये इसलिए मानवीय संस्कृति को सतत उर्वरा रखने का प्रयास करना मैं जीवन का उद्देश्य मानता हूं, फिर उसे कोई जीवन-दर्शन जैसा नाम दे या महज दृष्टिकोण कहे।

०

मृणालिनी देसाई (मराठी-गुजराती लेखिका)

प्राप्त परिस्थिति में फूल के माफिक खिलना, रूप-गंध, आनंद भर-भरके देना और फल की खातिर प्रसन्नता से मिट जाना।

०

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

समस्त मानव-जाति और विश्वात्मा के प्रति जो एक स्थिर कर्तव्य-बुद्धि है और अपने को देने की जो एक मधुर भावना है-मेरा जीवन-दर्शन यही है। कला और प्यार-इन्हीं के लिए मुझे जीवित रहना है।

०

विश्वम्भर 'मानव'

भाव बहुत मूल्यवान वस्तु है, लेकिन उस पर विवेक का नियंत्रण होना चाहिये।

०

महेन्द्र कुमार 'मानव'

सफलता से अभिमान की वृद्धि होती है; सफलता और असफलता के सम्मिश्रण से जीवन का संतुलन बनता है और संतुलन प्राप्त करना ही मनुष्य का लक्ष्य है।

०

वसंत देव

अपने से डरो, दुनिया से नहीं।

०

कुमार प्रशांत

अपनी बनायी कसौटी पर स्वयं को निर्ममतापूर्वक कसना और उस पर खरा उतरने की कोशिश करना।

०

डा. शिवसहाय पाठक

निःशेष-भाव से देना परहित अमिय-किरन
संसृति में कुछ तो स्नेहालोक जगेगा ही !

०

डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

मेरे विचार और कर्म में प्रज्ञा और करुणा के समन्वय से अहिंसा और मानवीयता का आधार लेकर सर्वोदयी न्याय का उत्कर्ष और संवर्धन हो।

★

पृष्ठ १८४ के चित्रों की शैलियां

बायें से दायें (ऊपर की पंक्ति) : १. चंपावती; २. 'बिहारी सतसई' में से, चंबा शैली; ३. कृष्ण, बसोहली शैली, कुल्लू। (नीचे की पंक्ति) ४. 'भागवत पुराण' से, मानकोट, १८ वीं सदी; ५. 'गीतगोविंद' से, बसोहली शैली; ६. 'सूरसागर' से, मेवाड, १७ वीं सदी।

[संयोजक : चरन शर्मा]

★

[पृष्ठ ८० का शेष]

कम में गैस-डिफ्यूजन का काम लाभकारी नहीं समझा जाता; नोज़िल में २,५०० का और सेन्ट्रिफ्यूज में १ हजार यूनिटों का ही। निर्माण-कार्य की दृष्टि से डिफ्यूजन-प्रणाली का कारखाना छह साल में तैयार होता है, नोज़िल का पांच में और सेन्ट्रिफ्यूज का चार साल में। इस प्रकार सेन्ट्रिफ्यूज प्रणाली सस्ती, कम समय में परिणाम देने वाली और शुद्धता की दृष्टि से भी अन्य प्रणालियों से अच्छी है।

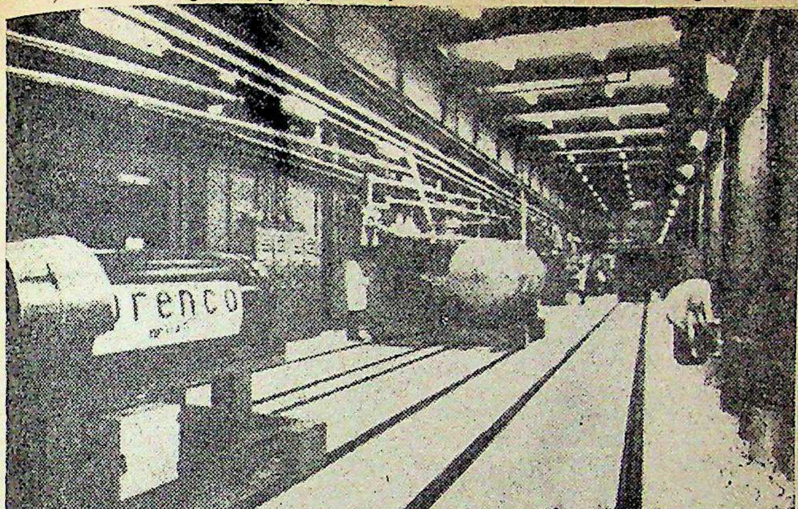
इनके अतिरिक्त दो और प्रणालियां भी विकसित हो रही हैं, जिनमें यूरेनियम के परमाणुओं को उत्तेजित करने के लिए लेसर का प्रयोग होता है, ताकि बड़े कारखाने के बिना ही शुद्ध यूरेनियम में से यूरेनियम-२३५ निकाला जा सके। सेन्ट्रिफ्यूज और लेसर पृथक्करण-प्रणालियां ऐसी हैं, जिनसे चुपचाप परमाणु-बमों का निर्माण किया जा सकता है; क्योंकि इनमें कारखाने छोटे होते हैं और बिजली कम खर्च होती है तथा छिपाना आसान होता है।

ऐसा ही एक कारखाना इस्लामाबाद से २५ मील दूर दक्षिण में कहूता नाम के एक पुराने किले के नजदीक स्थापित है। यह कारखाना कैसे स्थापित हुआ और इस पर (अमरीकी अनुमान के अनुसार) जो ५० करोड़ डालर खर्च हुए होंगे वे कहां से प्राप्त हुए, यह एक रहस्य है। परंतु इसकी विद्या पाकिस्तान को कैसे प्राप्त हुई, यह अब रहस्य नहीं रह गया है।

सन १९६३ में एक पाकिस्तानी छात्र अब्दुल कादर खां हालैंड के डेल्फट स्थित टेक्निकल विश्वविद्यालय में भरती हुए। उस समय उनकी उम्र २७ वर्ष की थी। बाद में उन्होंने बेल्जियम के लुवेन में स्थित कैथलिक विश्वविद्यालय से विज्ञान में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने १९७२ में हालैंड के बहुत बड़े औद्योगिक कारखाने वरेनीग्डे मेटालफैब्रीकेन वर्क्सपूअर में प्रवेश मांगा। कंपनी की भौतिकी और डाइनैमिक्स (गतिकी) की एक प्रयोगशाला थी, जो कि यूरेन्को कंपनी के एलमीलो में स्थापित होने वाले, सेन्ट्रिफ्यूज-प्रणाली से यूरेनियम को पुष्ट करने वाले कारखाने के लिए शोध कर रही थी। यह वह जमाना था जब पाकिस्तान की राजसत्ता प्रधान-मंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो के हाथ में आ गयी थी।

इसी बीच डा. खान ने दक्षिण अफ्रीका की एक गोरी महिला से विवाह कर लिया था, जिससे हालैंड की कंपनी में प्रवेश पाना उनके लिए आसान हो जाता। उन्होंने यह घोषणा भी की कि वे शीघ्र ही हालैंड की नागरिकता प्राप्त करना चाहते हैं। अपनी पत्नी को उन्होंने डच नागरिक बताया। इस प्रकार डा. खां को उस प्रयोगशाला में काम करने का अवसर मिल गया और दो वर्ष बाद वे एलमीलो के कारखाने में भेज दिये गये।

डा. खान अंग्रेजी और डच भाषाएं तो जानते ही हैं, जर्मन का भी उन्हें अच्छा ज्ञान



एलमीलो (हालैंड) के सेन्ट्रिफ्यूज कारखाने का दृश्य।

है। यूरेन्को कंपनी यूरेनियम पुष्ट करने का सेन्ट्रिफ्यूज कारखाना पश्चिम जर्मनी में लगाने का विचार कर रही थी। उसके लिए उसने जर्मन कंपनी के कागजात का डच भाषा में अनुवाद करने का काम डा. खां को सौंपा। इससे डा. खां को उन सब व्यापारियों और ठेकेदारों की सूची प्राप्त हो गयी, जो इस सेन्ट्रिफ्यूज कारखाने को सामान सप्लाई करने वाले थे। डा. खां ने ये सूचनाएं पाकिस्तान सरकार को दे दीं और पाकिस्तान ने यूरोप में फर्जी कंपनियां खड़ी करके अलग-अलग उन कल-पुर्जों को खरीदना शुरू किया, जिनसे मिलकर सेन्ट्रिफ्यूज कारखाना बन सकता था।

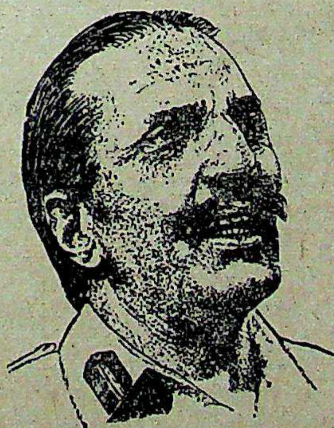
एक दिन डा. खां कुछ ऐसे गुप्त कागजात पढ़ते हुए पाये गये, जो उन्हें अनुवाद करने के लिए नहीं दिये गये थे, बल्कि जो उन्होंने चोरी से उठा लिये थे। डच अधिकारियों को उन पर शक हो गया और इसके सत्रह दिन बाद ही उन्हें वापस एम्स्टरडम भेज दिया गया। एम्स्टरडम में उन्हें ऐसे काम पर रखा गया, जिसका एलमीलो के कारखाने से कोई संबंध नहीं था। खुफिया पुलिस ने भी उनके विरुद्ध जांच शुरू कर दी। तब उसे डा. खां के पड़ोसियों से ज्ञात हुआ कि राजनयिक नंबर-प्लेट वाली एक मर्सिडीज गाड़ी उनके घर पर आया करती थी। जैसे ही डा. खां को पता लगा कि उनके ऊपर शक हो गया है, वे यह कहकर हालैंड छोड़कर चले आये कि उन्हें पाकिस्तान सरकार के वित्त-मंत्रालय में एक नौकरी मिल गयी है।

इस तरह १९७५ के अंत तक पाकिस्तान को इस बात की सूचना मिल गयी थी कि

सेन्ट्रिफ्यूज कारखाने में किन-किन यंत्रों का प्रयोग होता है और वे कहां से प्राप्त किये जा सकते हैं।

जब पाकिस्तान की ओर से इस प्रकार की खरीद शुरू हुई, तो ब्रिटेन में जोरदार बहस छिड़ गयी। ब्रिटेन सेन्ट्रिफ्यूज-प्रणाली में अग्रणी था और वह नहीं चाहता था कि यह सामरिक और आर्थिक भेद जल्दी ही खुल जाये। पिछले वर्ष हाउस ऑफ कामन्स के सदस्य एलाउन ने ब्रिटिश अधिकारियों से पूछताछ की कि क्या उन्हें मालूम है कि पाकिस्तान ब्रिटेन और स्विट्जरलैंड की विभिन्न कंपनियों से सेन्ट्रिफ्यूज-कारखाने के उपकरण खरीद रहा है?

इसके बाद अमरीकी खुफिया पुलिस ने भी इस मामले में जांच की और पाकिस्तान को दी जाने वाली अमरीकी मदद रोक दी गयी। एक साल पहले अमरीका ने फ्रांस को इस बात के लिए बाध्य किया था कि ऐसा यंत्र पाकिस्तान को न दे, जिससे परमाणु-भट्ठी में काम लाये जा चुके ईंधन को दुबारा शुद्ध करके प्लूटोनियम बनाया जा सके। परंतु अब तो पाकिस्तान ने अपना कारखाना ही खड़ा कर लिया था। जर्मन टेलिविजन के अनुसार, यह एक सैनिक अधिकारी ब्रिगेडियर अनीस अली सईद की अध्यक्षता में बना, यद्यपि सारा वैज्ञानिक कार्य डा. अब्दुल कादर खां कर रहे थे।


जनरल जियाउल् हक

यूरोप में और अमरीका में यह प्रश्न उठाया गया कि इस बम-कारखाने पर खर्च होने वाली पूंजी किसने लगायी? कहा गया कि लीबिया के झक्की शासक कर्नल गदाफी की तीव्र इच्छा रही है परमाणु-बम खरीदने की। उसने चीन से भी बम खरीदना चाहा था। उसी ने इसमें पूंजी लगायी। दूसरों का कहना है कि केवल गदाफी का ही नहीं, सऊदी अरब का भी रुपया इसमें लगा है; क्योंकि पाकिस्तान जो बम बना रहा है, वह समूचे इस्लामी जगत के लिए है। पर स्पष्ट है कि पाकिस्तान बम बनाकर उसे लीबिया या सऊदी अरब के रेगिस्तान में विस्फोट के लिए नहीं भेजेगा।

स्व. भुट्टो ने जून १९७६ के जिस समझौते का जिक्र किया है, वह प्रौद्योगिकी या धन या यूरेनियम के लिए रहा होगा। धनप्राप्ति ऐसा कठिन कार्य नहीं था कि श्री भुट्टो जैसे चतुर और समर्थ राजनीतिज्ञ को ग्यारह वर्ष प्रयत्न करना पड़े। निःसंदेह उस समझौते का संबंध यूरेनियम या प्रौद्योगिकी से ही है और इस दिशा में उसे सबसे अधिक सहायता चीन और दक्षिण अफ्रीका दे सकते हैं। पर चूंकि चीन की प्रौद्योगिकी सेन्ट्रिफ्यूज-

प्रणाली पर आधारित नहीं है, इसलिए प्रौद्योगिकी और यूरेनियम दोनों के लिए पाकिस्तान की नजर दक्षिण अफ्रीका की ओर अधिक जा सकती है।

अनुमान किया गया है कि इसी अक्तूबर में पाकिस्तान में मकरान के समुद्र-तट से ६० मील उत्तर में होशाब कस्बे के पास के रेगिस्तान में प्रथम पाकिस्तानी परमाणु-बम का विस्फोट किया जायेगा। उस इलाके में जो लोग रहते थे, उन सबको भगा दिया गया है और वहां सेना की ओर से निर्माण-कार्य हो रहा है।

पाकिस्तान का उद्देश्य भारत को यह बताना है कि जरूरत पड़ने पर वह भी परमाणु-बम का प्रयोग कर सकता है और साथ ही वह छोटे हथियारों में परमाणविक शीर्षों का प्रयोग करने की स्थिति में है। इस दृष्टि से चौधरी चरणसिंह ने भारत की परमाणविक नीति में परिवर्तन लाने का जो संकेत दिया है, वह आवश्यक था।

हमने कल्पक्कम और नरोरा में निजी डिजाइन से परमाणु-भट्ठियां बनाने की क्षमता प्रदर्शित कर दी है। हमारा एक छोटा-सा रिप्रोसेसिंग कारखाना भी है। यदि परमाणु-बम बनाना जरूरी हो जाये, तो हमें घबराने की कोई आवश्यकता नहीं।

लेकिन पाकिस्तान काफी बड़े आधार पर खरीद-फरोख्त कर रहा है, जिसकी ताजी सूचनाएं ब्रिटेन से मिली हैं। ब्रिटेन के वैल्सी शहर की वीयरगेट नाम की कंपनी ने ८ लाख पौंड के मशीनी पुर्जे और अन्य उपकरण पाकिस्तान को भेजे हैं। हाइ वक्युअम वाल्व स्विट्जरलैंड से खरीदे गये हैं। ब्रिटेन की एक अन्य कंपनी जो पाकिस्तान को माल भेज रही है, लंदन में स्थित है। कहा जाता है कि इन कंपनियों के मालिक पाकिस्तानी हैं।

पाकिस्तान में परमाणविक कारखानों के निर्माण का कार्य जिस संघटन के जरिये हो रहा है, उसे 'स्पेशल वर्क्स आर्गनाइजेशन' नाम दिया गया है। उसके अध्यक्ष ब्रिगेडियर अनीस अली सईद ने पिछले वर्ष दिसंबर में और फिर इस वर्ष भी ब्रिटेन की यात्रा की थी। पाकिस्तानी परमाणु ऊर्जा आयोग के सदस्य भी ब्रिटेन गये थे।

पाकिस्तान में कहूता के पास बन रहा बड़ा कारखाना सैकड़ों एकड़ में फैला है और उसमें एक बांध भी है। एक छोटा पुष्टीकरण कारखाना तो पहले से चालू है और उसी में तैयार किये गये बम का परीक्षण इस मास होगा।

पाकिस्तान में इस समय दो परमाणविक संयंत्र हैं। एक तो शोध-संयंत्र है, जो ६० वाले दशक में प्रारंभ हुआ। दूसरा है कैन्डू प्रकार का संयंत्र, जो १९७१ में चालू हुआ था। यद्यपि ब्रिटेन ने बहुत-से उपकरणों की बिक्री पर रोक लगा दी है, पर चोरी-छिपे खरीद जारी है। यद्यपि इस्लामाबाद से यह कहा गया है कि इकबाली गवाह मसूद महमूद परमाणु-बम के भेद लेकर अमरीका भाग गये हैं, परंतु इससे पाकिस्तानी कार्यक्रम में कोई रुकावट नहीं आयेगी।

—५५, काका नगर, नयी दिल्ली—११०००३



सिंकारा 200% टॉनिक

इसका आधा १००% अन्य टॉनिकों के बराबर।

सिंकारा से आपको सब आवश्यक विटामिन और खनिज पदार्थ मिलते हैं जिन से आप के शरीर को शक्ति और तन्दुरुस्ती मिलती है। इसमें विटामिन ए, बी,बी२, सी, डी२, नियासिनामाइड, कैल्सियम ग्लाइसरोफ़ास्फेट, सोडियम ग्लाइसरोफ़ास्फेट आदि सम्मिलित हैं।



और दूसरा आधा १००% अपनी मिसाल आप

सिंकारा में सम्मिलित जड़ी-बूटियां जैसे छोटी इलायची, बड़ी इलायची, लौंग, धनिया, दारचीनी, तेजपात गुलाब के फूल, बालछड़, तुलसी आदि जैसे द्रव्य आपकी पाचनक्रिया को ठीक और मजबूत बनाते हैं जिससे आपका दैनिक आहार के सब पौष्टिक तत्व शरीर में सम्मिलित होकर आपको अधिक शक्ति मिलती है।

इस प्रकार आप सिंकारा से दोहरा लाभ उठाते हैं।

सिंकारा

आपके शरीर को २००% शक्ति प्रदान करता है।

हमदर्द

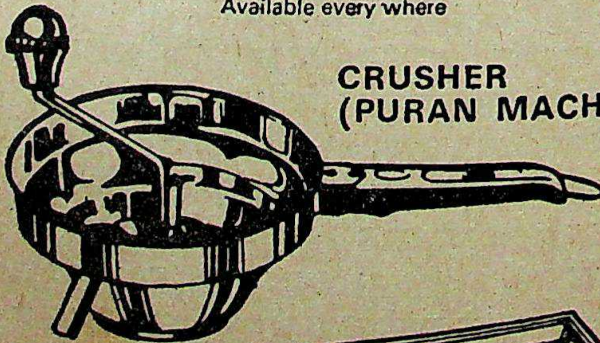
HD 4964 AH

ANJALI

Kitchenware

Available every where

CRUSHER (PURAN MACHINE)



VEGETABLE CUTTING TRAY



BYP/A-67

मोदी थ्रेड विश्व का एक असाधारण धागा प्रस्तुत कर रहें हैं जो इस शताब्दी की महान तकनीकी उपलब्धि है

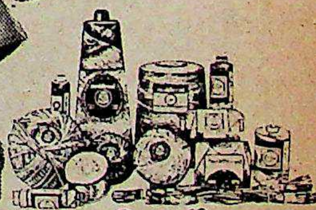
बाटा बगदाद को अपने बढ़िया जूतों के लिए एक मज़बूत विश्वसनीय धागे की आवश्यकता हुई

अब चमड़े के सामान के लिए विशेष मोदी धागा उनके जूतों को लम्बी आयु प्रदान कर रहा है

बाटा बगदाद द्वारा निर्मित सुन्दर और आरामदेह जूते। उत्कृष्ट कारीगरी व नमूने जो मोदी थ्रेड मिल्स से आयातित मज़बूत और विश्वसनीय विशेष धागे से और भी अधिक मज़बूत और टिकाऊ बन जाते हैं।
यह मोदी थ्रेड मिल्स द्वारा सारे विश्व के क्वालिटी पसन्द करने वाले ग्राहकों के लिए विशेष रूप से बढ़िया धागे बनाने का एक और उदाहरण।

मोदी धागे: बुनाई, टांका लगाने, कशीदा, केस, गोट लगाने, रफू करने, मशीनी सिलाई और जूतों की सिलाई में भी प्रयुक्त होते हैं।
प्रत्येक कार्य के लिए एक ही धागा—मोदी धागा।

मोदी थ्रेड मिल्स, मोदीनगर, उ०प्र०

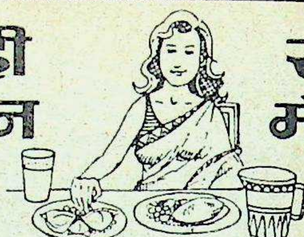


मोदी थ्रेड

विश्व के ४० से भी अधिक देशों में बिकते हैं

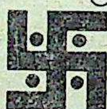

निश्चिंत रहिये
सेंट्रल बैंक के सुपरमनी ट्रैवलर्स चेक साथ ले जाइये
Central Bank of India
सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया
Rs 500
सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया
(भारत सरकार का उपक्रम)
यही वह बैंक है जो हर जगह हर मनुष्य को सहायता देने में तत्पर है
Interpub/CB/6/HN

खुद ही मेहमान खुद ही मेज़बान

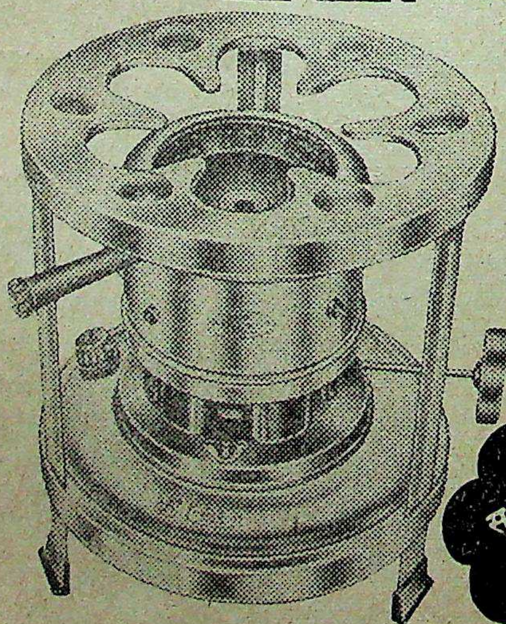


आज की अत्याधिक व्यस्त गृहणियां अपनी दावतों का भरपूर आनन्द उठाती हैं। परफैक्ट स्टोव से निकली धुआं रहित चक्रधार नीली लपटें बहुत जल्द खाना पकाती हैं। न पम्प न पिन न फटे न झटके - 'परफैक्ट स्टोव' 30% कम तेल व समय में खाना पकाते हैं।

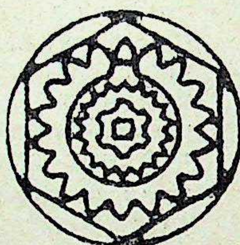
इसी तरह हर रात आपको अपने ही खाने पर अपना मेहमान बनाने का श्रेय 'परफैक्ट स्टोव' को है। स्वास्तिक रजि० ट्रेड मार्क युक्त क्रोमियम, एनैमल्ड तथा ब्रास 'परफैक्ट स्टोव' 8, 6, 4 बत्तियां (किंग साईज) तथा 10, 6, 3 बत्तियां (स्टैण्डर्ड साईज) में सर्वत्र उपलब्ध है।



स्वास्तिक परफ़ैक्ट स्टोव



यांत्रिक प्रगति का अनुपम प्रतीक



लोहे में गोल छेद बनाना आसान है, पर उसे विभिन्न प्रकार का बनाने के लिए विशेष प्रकार के टूल 'ब्रोच' की जरूरत होती है। जिन-जिन देशों में मोटर, लारी, स्कूटर, मशीन टूल इत्यादि इंजीनियरिंग उत्पादन होते हैं, वहां 'ब्रोच' उत्पादन परमावश्यक होता है। डॅगर-फोर्स्ट टूल लिमिटेड ने इस आवश्यकता की पूर्ति की है। उनके बनाये 'ब्रोच' से लोहे या अन्य धातु के भीतर व बाहर के भाग को आसानी से विविध स्वरूप दीजिये।

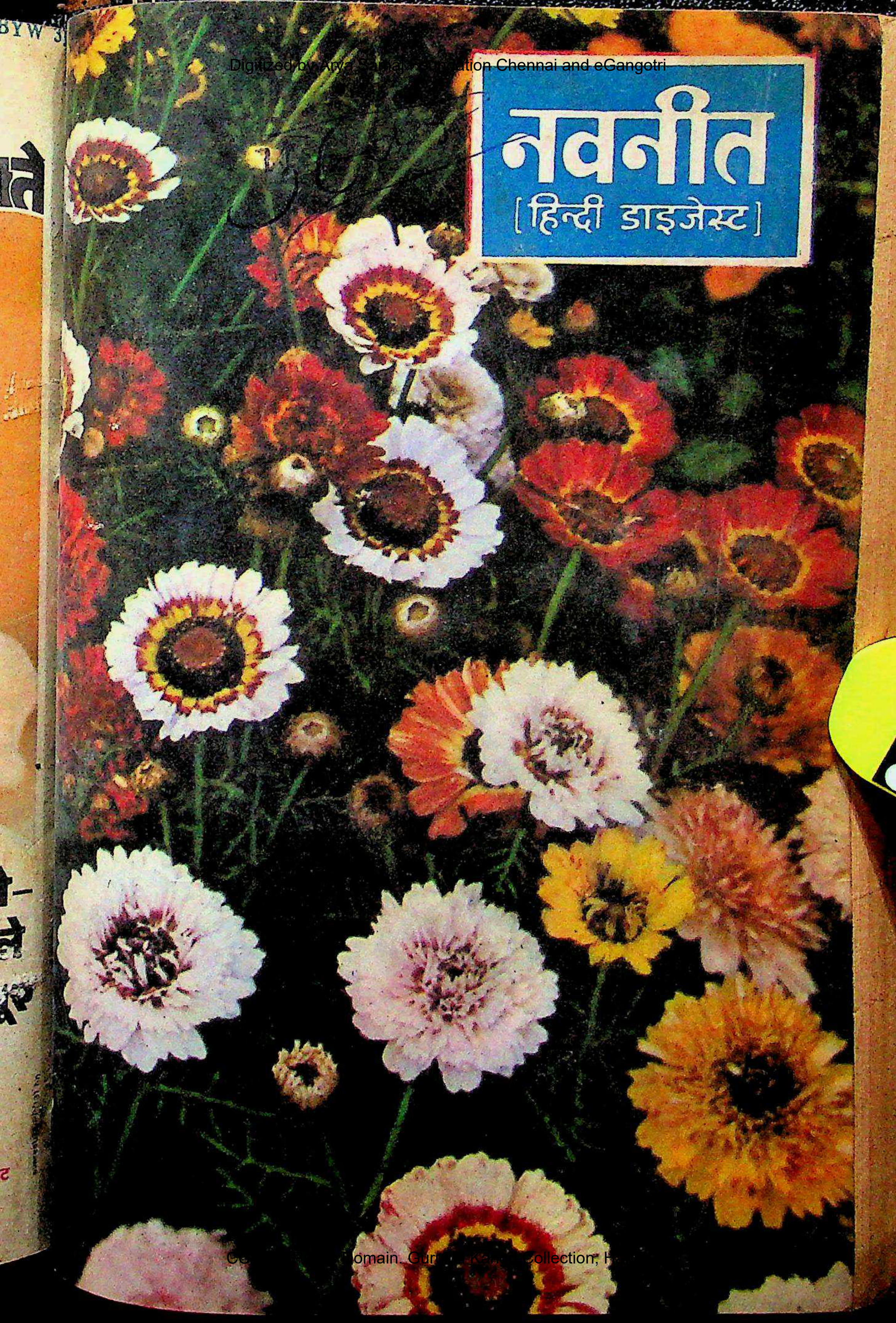


डॅगर-फोर्स्ट टूल्स लि.,
पहला पोखरण रास्ता,
थाना (बंबई)





Regd. No. BYW 3


नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

लालबहादुर शास्त्री मार्ग, भांडुप, बंबई-४०० ०७८

केबल : 'लकी' भांडुप फोन : ५८४३८१

१. नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीट, स्ट्रिप और फाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल

एलाय और कास्टिंग विभाग :



एंटिफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स
गनमैटल्स और ब्रोन्ज़ेस, ब्रेज़िंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स, फाइन जिंक डाइकास्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम बेस्ड डाइकास्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज़ राड्स सालिड कोर्ड, फिनिश्ड कास्टिंग रफ और मशीन्ड ।

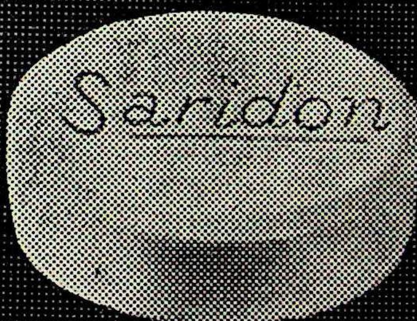
२. फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयर्न और स्पेशल स्टील कास्टिंग्स
मेलिएबल आयर्न कास्टिंग्स
आइ०एस०एस०, बी०एस०एस०, एस०एस० आइ० एम० के पेसिफिकेशन्स तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता के अनुसार सप्लाई किये जाते हैं।

अगर सेरिडॉन से भी आपका सरदर्द नहीं जाए तो डाक्टर की सलाह लीजिए.

सिर्फ़ एक सेरिडॉन से ही सरदर्द जल्द गायब हो जाता है और आप फिर से चुस्त और तरोताज़ा हो जाते हैं. लेकिन कभी-कभी सरदर्द इतना तेज़ और



असाध्य होता है कि सेरिडॉन से भी आराम नहीं मिलता. ऐसी हालत में डाक्टर की सलाह लीजिए. वही आपको सही नुस्ख़ा बताएँगे.

सेरिडॉन

ट्रेडमार्क 'रोश'

शक्तिशाली • हानिरहित

सिर्फ़ एक काफ़ी है.



4160

नवनीत के ग्राहकों को सूचना

१) पत्र-व्यवहार में अपना ग्राहक-क्रमांक या रसीद-संख्या अवश्य लिखें।

२) ग्राहक-क्रमांक देने से आपकी शिकायत और सूचनाओं पर हम शीघ्र ध्यान दे सकेंगे।

३) 'नवनीत' की प्रतियां पिछले माह के आखिरी सप्ताह में आपको भेजी जाती हैं। प्रति न मिलने की शिकायत मास की १० तारीख के बाद की जा सकती है।

४) यदि आपको अपने पते में परिवर्तन कराना हो, तो उसकी सूचना माह की १५ तारीख तक हमारे दफ्तर में दें।

५) बहुत थोड़े समय के लिए हम पते में परिवर्तन नहीं कर सकेंगे। अतः डाकघर से ऐसी व्यवस्था कर लें कि वह आपकी डाक नये पते पर भेज दे।

६) नये ग्राहकों को चंदा भेजते समय पूरा पता साफ अक्षरों में लिखना चाहिये।

रबेक्स की गरमाहट

सर्दी से दे राहत



रबेक्स

Alembic

कोडिन के निर्माता
बिक का उत्पादन

गरमाहट फैलाए, सर्दी-ज़ुकाम से राहत दिलाए.

everest/79/ACW/151-hn



संस्थापक
स्व. श्रीगोपाल नेवटिया
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

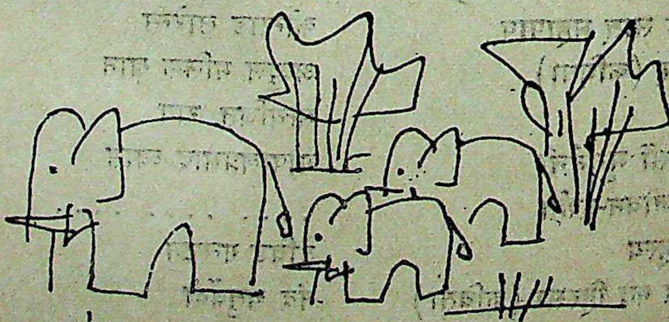
संपादक
नारायण दत्त
उपसंपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

व्यापार-व्यवस्थापक .... महेंद्र महेता

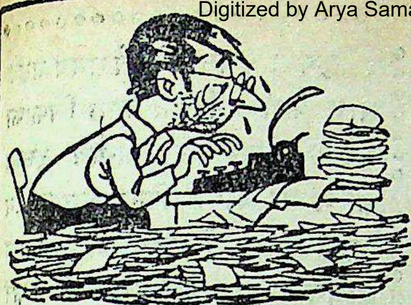
वर्ष २८ : अंक ११ — नवंबर १९७९

इस अंक में

चित्रसज्जा : ओके, शेणै, सत्यजित राय, एन. पी. सोनी, डा. भटनागर, राणे, राणा।



श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताड़देव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४ में मुद्रित।



पत्र-वृष्टि

नवनीत का दीपावली विशेषांक अपनी गरिमा और परंपरा के अनुरूप बहुत उच्चस्तरीय और पठनीय बन गया है। बधाई। ऐसी मानक पत्रिकाओं के रहते हिंदी भाषा और साहित्य की प्रतिष्ठा सुरक्षित है। भविष्य के लिए शुभकामना।

—विवेकी राय, गाजीपुर, उ. प्र.

०००

सुसंपादित, सुमुद्रित सुंदर दीपावली विशेषांक के लिए हृदय से आभारी हूं।

—गौरीशंकर गुप्त, वाराणसी

०००

नवनीत का दीपावली विशेषांक अपने परंपरागत गौरव के सर्वथा अनुरूप लगा। श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह की बोधकथा, श्री रतनलाल जोशी का 'महत्त्वाकांक्षा में महत्त्व कितना?', श्री रंजन सूरिदेव का 'प्राकृत रामचरित' एवं श्री केदारनाथ मिश्र और श्री वीरेन्द्र मिश्र की रचनाएं श्रेष्ठ हैं। गणेश और लक्ष्मी पर सामग्री का अभाव दृष्टिगत हुआ।

—कैलाश त्रिपाठी, सेवरही (देवरिया), उ. प्र.

०००

नवनीत के दीपावली विशेषांक में 'एक अनूठे सवाल' की परंपरा में इस बार लेखकों के ज्ञान की परीक्षा थी। उन्हें अपनी बात एक वाक्य में कहनी थी। अतः कई लेखकों के जवाब टालमटोल वाले लगे, तो कुछ ने इसे हंसी-मज़ाक में लिया। जबकि स्वामी विवेकानंद का 'अंतस्थ देवत्व' सर्वाधिक प्रेरणादायी प्रतीत हुआ।

—डा. रश्मिकांत व्यास, उज्जैन, म. प्र.

०००

सरस कविताओं, सुंदर लेखों से परिपूर्ण है यह अंक। 'उद्‌बोधन', 'संस्मरण' और 'जीवन-सौरभ' विशेष ज्ञानवर्द्धक और प्रेरणास्पद हैं। 'एक वाक्य में जीवन-दर्शन', 'महायोगी मिलरेपा' इस विशेषांक के प्राण हैं। आवरण पृष्ठ का चित्र **नवनीत** की सांस्कृतिक विरासत का उद्‌बोधक है। मुद्रण, आकलन अद्वितीय और आकर्षक है। **नवनीत** परिवार को मेरी बधाई।

—चक्रधर नलिन, रायबरेली

०००

श्री सत्यकाम विद्यालंकार का 'अंग्रेज़ी में नया वेदानुवाद' लेख मुझे अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्द्धक लगा।

आज से कुछ वर्ष पूर्व जब मैंने वेद पढ़े थे, मुझे उनमें कहीं भी दार्शनिकता या चिंतन का अहसास ज़रा भी नहीं हुआ

था। इसका कारण शायद यही था कि मैंने वेदों का वही अर्थ पढ़ा था जो लोक-प्रचलित है और जिसका लेखक ने अपने लेख में खंडन किया है। वेदों का इतना गहन और आध्यात्मिक अर्थ पढ़कर मैं पुलकित हो उठा। पाठकों की ज्ञानवृद्धि और वेदों के वास्तविक स्वरूप का दर्शन करवाने के लिए मैं लेखक का हृदय से आभारी हूं। ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह लेखक और स्वामी सत्यप्रकाश को इस महान कार्य को संपन्न करने में सफलता प्रदान करे। **—प्रभाकर शेवगांवकर,**

रामन् रिसर्च इंस्टिट्यूट, बेंगलोर-६

०००

नवनीत की परंपरानुसार दीपावली अंक में लेखकों से दिलचस्प प्रश्न पूछकर उनके उत्तर छापना सराहनीय है। पाठकों को भी इसमें सम्मिलित किया जाना और भी स्वागतयोग्य है।

—साधूराम एम. तोतलानी, जयपुर

०००

काव्य के अतिरिक्त लेख, संस्मरण एवं कहानियां भी विशेषांक में अत्यंत उत्कृष्ट हैं। स्वर्गीय भुवनेश्वरजी का अंचलजी लिखित संस्मरण मर्मस्पर्शी है। श्री मकरंद दवे का लेख 'मानव विकास का महापर्व', श्री रतनलाल जोशी का 'महत्त्वाकांक्षा में महत्त्व कितना ?', श्री दिनेशचंद्र वर्मा का 'भयानक रस की एक मूर्ति' जैसे लेख एवं कोहलीजी का उपन्यास-सार 'दंड' इस अंक की सांस्कृतिक उपलब्धियां कही जा सकती हैं। इसी कोटि की श्रेष्ठ रचनाएं हैं 'प्राकृत रामचरित' (श्री रंजन सूरिदेव) तथा महायोगी मिलरेप। श्री रमेश मंत्री का व्यंग्य लेख सामयिक एवं सटीक है।

—राजेन्द्र गौतम, नयी दिल्ली-३२

०००

कृपया रचना भेजते समय उसके साथ पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजा करें। अन्यथा रचना को न तो वापस किया जायेगा, न उसके विषय में पत्र-व्यवहार किया जायेगा। कृपया यह आशा भी न करें कि रचना हमारे यहां रखी रहेगी और बाद में कभी डाक-टिकट भेज-कर मंगवायी जा सकेगी। —संपादक

अक्तूबर-७९ के विशेषांक ने **नवनीत** के विशेषांकों की परंपरा में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। सोलह से अधिक कविताएं, डा. शिवराम कारंत और 'संडे' संपादक एम. जे. अकबर से परिचर्चा के साथ-साथ 'एक वाक्य में जीवन-दर्शन' पर एक साथ इतने विचार ! आपने सचमुच कितना श्रम किया है इनके संकलन-संपादन में ! कुमार प्रशांत, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी और सुखबीर का योगदान प्रशंसनीय है। आशुतोष पांडेय का संस्मरण 'राज्यपाल के लिए चोरी' अच्छा लगा। मिलरेप का कथासार और श्री सत्यकाम विद्यालंकार का लेख 'अंग्रेजी में नया वेदानुवाद'

अपने लेखकों से

श्री संपादकजी, कृपया मुझे बतायें कि नवनीत में आप कैसी रचनाएं लेते हैं? इस आशय के अनेक पत्र हमें प्रतिदिन मिलते हैं। नवनीत के कुछ अंक देखने से भी इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा; फिर भी यदि आप हमसे ही जानना चाहें, तो हम कहेंगे कि निम्नलिखित ढंग की रचनाएं हमें नहीं चाहिये।

क. जो जीवन में अनास्था जगायें, देश के विभिन्न समुदायों में स्नेहसूत्र तोड़ें, व्यक्तिगत आक्षेप करें, सहज-स्वस्थ सुरुचि को ठेस पहुंचायें; या जो कैलेंडर देखकर पर्वों, जयंतियों और पुण्यतिथियों के उपलक्ष्य में लिखी गयी हों।

ख. आपके अन्यत्र प्रकाशित लेख का नया संस्करण, कश्मीरी कविता का वाया तमिल उल्था, अल्बर्तो मोराविया के 'रोम की औरत' का भारतीय रूपांतर 'कौशांबी की कामकन्या', सर्वविदित हास्योक्तियों का श्रेय आपके जिला-महाकवि या तहसील-राजनेता को देने वाले विनोद-प्रसंग।

ग. इन विषयों से हमें परहेज है—वेदों में हृदय-प्रतिरोपण, कोसी कलां के जंगल में जिराफ़ और बबरशेर की मुठभेड़, कामायनी में क अक्षर का प्रयोग, महावानर पुराण में मिर्जापुर का उल्लेख, कड़वी लौकी के रस से सर्वरोगों का उपचार, इत्यादि-इत्यादि।

* लेखमालाएं या मास-भविष्य लिखने के आश्वासन कृपया हमें न दें; न एक साथ सवा सत्ताईस कविताएं भेजें।
* रचना पर्याप्त हाशिया और पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़कर सधे अक्षरों में कागज के एक ओर लिखकर या टाइप करवाकर भेजें। भेजने से पहले उसे एक बार पूरे मनोयोग से अवश्य पढ़ लें, भले उस दिन के बजाय अगले दिन की डाक में भेजनी पड़े। कार्बन-कापी न भेजें। लेख के आरंभ या अंत में अपना पूरा डाक-पता दें।
* रचना के साथ टिकट लगा और पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी, न उसके बारे में पत्र-व्यवहार होगा।
* रचनाएं किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं, निम्नलिखित पते पर भेजें:

संपादक—नवनीत हिंदी डाइजेस्ट

नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, ३४१, ताडदेव, बंबई—३४

आकर्षक हैं। हार्दिक बधाई।

—अखिल विनय, बंबई-९२

०००

सितंबर अंक में प्रकाशित तीनों कहानियां बेहद अच्छी लगीं। खास तौर से डा. राधावल्लभ त्रिपाठी की कहानी 'विद्यारंभ'। **—राजेश पटेल 'उत्साही', होशंगाबाद, म. प्र.**

०००

सितंबर अंक में प्रकाशित 'विद्यारंभ' कहानी वर्तमान 'पब्लिक स्कूलों' की तथाकथित उच्च मानसिकता और उससे जुड़े एक मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति पर गहरी चोट करती है। आजकल समाज की अव्यवस्थाओं, भ्रष्टाचार पर तो बहुधा कहानीकार चोट करते दिखाई देते हैं; पर एक शिक्षक और कथाकार के नाते डा. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इस कहानी के माध्यम से बेलाग बात कही है।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी, मिर्जापुर, उ. प्र.

०००

सितंबर अंक में श्री सुनील कौशिक की कहानी 'वसीयत' उत्तर प्रदेश पत्रिका के अक्तूबर १९७८ के अंक में भी प्रकाशित हो चुकी है। पूर्व प्रकाशित कहानी का **नवनीत** में छपना आश्चर्य का विषय है!

'विद्यारंभ' कहानी एक साधनरहित उच्च आकांक्षाओं से युक्त निम्न मध्यमवर्गीय परिवार का वास्तविक चित्र है। इसके लेखक डा. राधावल्लभ त्रिपाठी साधुवाद के पात्र हैं। 'जनता संकट' श्री अटल बिहारी वाजपेयी का व्यक्तिगत स्पष्टीकरण अधिक प्रतीत होता है।

—कु. पूनम अग्निहोत्री, मैनपुरी, उ. प्र.

०००

नवनीत (सितंबर-७९) में श्री रामानन्द शर्मा संबंधी अपील पढ़ने का अवसर मिला।

श्री दिनकरजी के पटना-स्थित निवास पर मुझे दो-तीन बार शर्माजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में उनके योगदान को अस्वीकारना अपने आपको नहीं पहचानने-जैसी भूल होगी।

—हिमांशु श्रीवास्तव, पटना-८०००००७

०००

श्री नेमिशरण मित्तल के लेख 'फुलर : विचारों की खदान' (सितंबर अंक) ने मुझे यह पत्र लिखने को प्रेरित किया है। मुझे विश्वास है कि आप इसे निस्संकोच स्वीकारेंगे कि फुलर के 'विचारों की खदान'

चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु., दो वर्ष ४६ रु., तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री डाक से: एक वर्ष : ६० रु., दो वर्ष : १०५ रु., तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई डाक से: एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु., दो वर्ष का २१० रु., तीन वर्ष का ३००रु.; एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु., दो वर्ष : २७५ रु. और तीन वर्ष : ४१० रु.।

ने ज्ञानबोध का 'माल' निकालने के लिए केवल एक लेख काफी नहीं है... फुलर ही ऐसे एकमात्र दार्शनिक हैं जो तथ्यों और आंकड़ों की सहायता से अपनी स्थापनाएं समझा सकते हैं। उनके चिंतन का सार एक सामान्य व्यक्ति को भी अपने कर्मक्षेत्र में वांछनीय दिशा पकड़ने के लिए प्रेरित करता है।

–वसन्त आथा, सम्बलपुर-७६८००४

०००

सितंबर-७९ में प्रकाशित डा. सीताराम सहगल का लेख 'सूर्य, जीवन का ऊर्जा स्रोत' वैदिक विज्ञान की मनोरम झांकी प्रस्तुत करता है।

वेदार्थ में वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले आचार्य यास्क जैसे मनीषियों के निष्कर्षों की वर्तमान भौतिक विज्ञान के साथ संगति बिठाकर पौर्वात्य और पाश्चात्य बुद्धिजीवियों को चमत्कृत कर देने वाले अप्रतिम विद्वान् महामहोपाध्याय श्री मधुसूदन ओझा वर्तमान शताब्दी की विभूति थे। श्री ओझाजी की स्मृति जागृत करा देने वाले उक्त लेख के लिए मेरे शतशः वर्धापन स्वीकार करें।

डा. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी 'विद्यारंभ' कहानी में पब्लिक स्कूलों के प्रति मध्यवर्ग में पनपते मिथ्या आकर्षण को जिस सहज किंवा गूढ़ व्यंग्यात्मक शैली में चित्रित किया है, वह लाजवाब है।

ऐसी ही शिक्षा पद्धति पर अकबर इलाहाबादी का निम्न शेर सटीक बैठता है:

हम ऐसी कुछ किताबें
काबिले-जब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के
बाप को खब्ती समझते हैं।।

–पं. प्रेमाचार्य शास्त्री, दिल्ली-७

०००

श्री वचनेश त्रिपाठी का लेख 'एक स्वातंत्र्य-व्रती' (सितंबर-७९) शहीद माहौर की तपस्या और त्याग का स्मरण दिलाता है। इस संबंध में पहले भी लिखा जा चुका है, किंतु श्री त्रिपाठीजी के लेख में नयापन है।

फिर भी उनके लेख से एक भ्रम होता है। उन्होंने लिखा है–'झांसी के गुप्तचरों की सरगरमी बढ़ी तो आजाद, भगवानदास माहौर, सदाशिव और वैशंपायन ग्वालियर चले गये।'

पर यह सही नहीं है। झांसी में गुप्तचर विभाग की सरगरमी बढ़ने पर माहौर एवं सदाशिव राव ने आजाद को ओरछा के जंगलों में रहने की सलाह दी थी। वहीं वे लोग उनके सहायक भी रहे। वहीं आजाद ने गोली चलाने का अच्छा अभ्यास किया, बम भी बनाये।

शायद वे कुछ दिनों तक ग्वालियर भी रहे हों, किंतु उनका मुख्य कार्य सन १९२५ से १९२९ तक सातार नदी के तट पर ही चला था। काकोरी-कांड के बाद वे झांसी आये और वहां कुछ महीने रहकर ही ओरछा चले गये। वे वहां साधु के वेश में रहे।

–भैयालाल शर्मा,
मामोन दरवाजा, टीकमगढ़, म. प्र.

नवनीत (सितंबर-७९) में पाकिस्तानी शायरा परवीन शाकिर पर प्रकाशित लेख को पढ़कर निम्नलिखित पंक्तियां :

मुश्तरका दुश्मन की बेटी,
मेरी बेटी जैसी प्यारी,
तूने भारत की धरती पर
नज्मे गायीं गीत सुनाये
प्यार के गीत।

उन गीतों ने फूल खिलाये,
प्यार के फूल-मुहब्बत के गुल,
जुही, चमेली, नरगिस, सम्बुल,
नन्हे बच्चों के हंसते ओंठों से सुंदर.
उनकी भीनी-भीनी खुशबू
चारों जानिब फैल रही है।
लेकिन मैं यह सोच रहा हूं,
तेरे इस प्यारे गुलशन की
पहरेदारी कौन करेगा?

आयेगी एक रोज सियासत,
(फूलों और कलियों की दुश्मन)
चोर की सूरत, चुपके-चुपके,
फूलों पर बारूद बिछाकर,
उनमें आग लगा देगी,
सारा बाग जला देगी।
कितने भी खुशरंग हों,
कैसी भी प्यारी खुशबू देते हों,
फूल मगर गोली तो नहीं हैं।
एटम बम से कौन लड़ेगा?

(पहली पंक्ति परवीन साहिबा की है, जो लता मंगेशकर के लिए लिखी गयी थी।)

—योगेन्द्रपाल साबिर, शिकोहाबाद, जि. मैनपुरी, उ. प्र.

०००

नवनीत का नियमित पाठक हूं। हमेशा अंक प्राप्त करने की प्रतीक्षा रहती है। दीपावली-अंक हाथ में आते ही पढ़ गया। इस अंक में जानकीवल्लभ शास्त्री का 'सामगान', श्रीरंजन सूरिदेव का 'प्राकृत रामचरित', 'भारत १९८४ में' रचनाओं की जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। मेरा नम्र अनुरोध है कि खेल-जगत संबंधी लेख कभी न छूटने दिया करें। समाज में फैले भ्रष्टाचार पर भी कभी-कभी लेख छापते रहें।

—सुरेन्द्रकुमार शर्मा, फैजाबाद, उ. प्र.

०००

मेरी इच्छा है कि 'नवनीत सौरभ' की तरह आप **नवनीत** में अब तक प्रकाशित कहानियों का एक संग्रह भी प्रकाशित करें। **नवनीत** में प्रकाशित कहानियां स्तरीय होती हैं।

—गुणेन्द्रनाथ सिन्हा, सासाराम, रोहतास, बिहार



संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई-४०००३४
फोन : ३७२८४७
व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, आशीष बिल्डिंग, ३३५, बेलासिस रोड, ताडदेव, बंबई-४०००३४
फोन : ३९२८८७

भारतीय राजनीति का शुद्धात्मा

गंगाशरण सिंह

जे. पी. एक दुर्लभ व्यक्ति थे, जिन्हें जीवन के हर क्षेत्र में स्वच्छता का, लगभग झक की हद तक का, आग्रह था।

असुंदरता उन्हें सरासर असह्य थी। उनके निजी जीवन की स्वच्छता फैलकर राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन की स्वच्छता में परिणत हुई थी।

जीवन को वे कला मानते थे। कहा करते थे–'जीना सबसे श्रेष्ठ कला है–तमाम कलाएं उसी से निकलती हैं। जो कलात्मक ढंग से जीना नहीं जानता, वह अच्छा नागरिक और अच्छा मनुष्य नहीं हो सकता।'

स्वच्छता उनकी सनक-सी बन गयी थी। जीवन के सामान्य कामों को भी वे कलात्मक ढंग से करने का यत्न करते थे। हजामत बनाना, खाना, कपड़े पहनना, कमरे को ठीक रखना और यहां तक कि लोगों के साथ सलूक–सभी कुछ वे बड़े करीने से करते।

मैंने बहुत कम सार्वजनिक व्यक्तियों को इन मामलों में इतना अधिक संवेदनशील पाया है।

एक मानी में जे. पी. का रूप भ्रामक था–उनके तौर-तरीके इतने नरमी-भरे और शिष्टतापूर्ण थे कि उनके किये कुछ कामों की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। उदाहरण के लिए, आज भी बहुतों को अचरज होता है कि ऐसा नरम आदमी हजारीबाग सेंट्रल जेल की दीवारें कैसे फांद सका होगा! इसी तरह वे बहुत-से साहस-कार्य कर सकते थे, जिनकी आशा लोग सामान्यतः उनसे नहीं करते थे।

जे. पी. को जनता की शक्ति में सदा ही अडिग विश्वास था; यह चीज उनके लिए धार्मिक आस्था जैसी थी। उन्हें इसका पक्का यकीन था कि केवल सरकारी तंत्र के जरिये बहुत ज्यादा भलाई साधी नहीं जा सकती। आम जनता की असली और स्थायी भलाई करने के लिए जनमत, जानदार संघटन, और जन-जागृति जरूरी है।

इन्हीं कारणों से वे पदों-ओहदों से बचते रहे। वे मानते थे कि दफ्तर-रूपी 'पिंजरे' के बजाय आम जनता में रहते हुए वे अधिक उपयोगी काम कर सकेंगे। इसीलिए वे राष्ट्रीय कांग्रेस के उन प्रमुख व्यक्तियों में से थे, जो अंग्रेजों द्वारा नियंत्रित धारासभाओं में शरीक होने के हमेशा विरुद्ध थे।

गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस आंदोलन

• 'इंडियन एक्सप्रेस' से साभार •



लोकनायक जयप्रकाशजी प्रभावतीजी के साथ

ने सरकारी ओहदे न लेने की मनोवृत्ति को जन्म दिया था। उसका परिणाम देखा गया कांग्रेस (१९२२) में, जहां कि परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों में टकराव हुआ। परिवर्तनवादी चाहते थे कि कांग्रेस धारासभाओं में पहुंचे। अपरिवर्तनवादी इसके विरुद्ध थे। मतभेद हो गया।

फिर १९२६ में जब कांग्रेस ने केंद्रीय धारासभा में जाने का निर्णय सामूहिक रूप से किया, तब भी कई कांग्रेस-जन—विशेषतः युवक—बाहर ही रहे। इसी तरह १९४३ में कांग्रेस ने पुनः केंद्रीय धारासभा में जाने का फैसला किया। बहुत बड़ी संख्या में युवा कांग्रेस-जनों ने कांग्रेस में बने रहते हुए ही, धारासभा में न जाने का निश्चय किया।

जे. पी. इस युवावर्ग के ठेठ प्रतिनिधि थे। हालांकि जे. पी. सन १९२२ से सन १९२९ तक भारत से बाहर रहे, जब वे भारत लौटे और राष्ट्रीय आंदोलन में शरीक हुए, तब संयोग से बहुत-से कांग्रेस-जन—विशेषतः युवक—इन्हीं भावनाओं से

मरण रे तुहु मम श्याम समान

पिछले दिनों जे. पी. अक्सर मृत्यु की चर्चा करते रहते थे। ऐसी ही चर्चाओं के दौरान मैंने उन्हें बतलाया था कि रवीन्द्रनाथ ने मरण पर कई कविताएं लिखी हैं। मरण को उन्होंने नितांत स्पृहणीय बना दिया है। एक बार मैंने उनको रवीन्द्रनाथ की 'भानु-सिंहेर पदावली' की 'मरण रे तुहु मम श्याम समान' तथा 'मरण ओहे मोर मरण कबे तुमि आमाके करिबे वरण' आदि कविताएं सुनायीं। जयप्रकाशजी इनसे बहुत प्रभावित हुए तथा उन्होंने इनका आनंद लिया। लेकिन इस सबके बाद उन्होंने कहा—'रवीन्द्रनाथ ने अपनी प्रतिभा के बल पर मृत्यु को इतना बढ़िया, इतना "फैसिनेटिंग" बना दिया है। क्या मृत्यु सचमुच इतनी "फैसिनेटिंग" है? फिर लोग डरते क्यों हैं? फिर घबराते क्यों हैं? मुझे लगता है कि रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा ने इसको बहुत ऊंचा उठा दिया है। शायद वास्तविकता से बहुत ऊंची उठ गयी है यह चीज़?' एक वर्ष पहले उन्होंने यह कहा था।

इस बार बंबई से लौटकर जब आये, तो एक रोज उन्होंने अचानक मुझसे कहा—'आपने रवीन्द्रनाथ की कविताएं सुनायी थीं, कुछ याद हैं?' पहले तो मैंने उन्हें बहुत-सी कविताएं सुनायी थीं, लेकिन आखिर में यही दोनों कविताएं मुझे याद थीं—ये दोनों मैंने उन्हें सुनायीं।

तब उन्होंने कहा—'आपको स्मरण होगा कि मैंने कहा था कि यह थोड़ा कल्पनापूर्ण है वास्तविकता नहीं है। इसमें कल्पना ही है। बंबई से लौटने के बाद में अपने अनुभव से कह सकता हूं कि रवीन्द्रनाथ वाज करेक्ट। डेथ इज़ ए वेरी फैसिनेटिंग थिंग। मृत्यु डरने की चीज नहीं है। मृत्यु घबड़ाने की चीज नहीं है। बल्कि मैं तो यह अनुभव करता हूं कि जिस पीड़ा से होकर मैं गुजर रहा हूं, जो कष्ट मैं भोग रहा हूं, उससे मृत्यु तो हजार गुनी अच्छी है। सिर्फ तुलनात्मक दृष्टि से अच्छी नहीं है। मेरा खयाल है कि मृत्यु कष्ट-दायक नहीं है और इसका कुछ अनुभव मुझे बंबई में हुआ है।'

वह उन्होंने बताया भी।

मुझे अभी क्षमा कीजिये, समय गुजरने दीजिये तो मैं बतलाऊंगा कि उन्होंने क्या कहा, बंबई में उन्होंने किस तरह का अनुभव किया।

—बाबू गंगाशरण सिंह ['रविवार' में]

आंदोलित थे।

जे. पी. अमरीका चले गये थे और उनके तथा युवा कांग्रेस-जनों के बीच किसी प्रकार का संपर्क नहीं था। मगर जे. पी. युवा पीढ़ी को प्रेरित करने वाली मुख्य भावधारा के साथ इस तरह घुल-मिल गये कि लोगों को महसूस ही नहीं हुआ कि वे अनेक महत्त्व-पूर्ण वर्षों में भारत में नहीं थे। वे प्रगति-शील कांग्रेस-जनों की मुख्य धारा की मुख्य रौ बन गये।

जे. पी. मामूली बातों और छोटी सम-स्याओं की कभी चिंता नहीं करते थे। मसलन, उनके हाथ हमेशा ही तंग रहते थे, मगर वे इससे कभी चिंतित नहीं हुए।

सन १९३७ से १९४७ तक मैं जे. पी. और प्रभावतीजी के साथ पटना में परिवार के सदस्य की तरह रहा। पैसे न जे. पी. के पास होते थे न मेरे पास, और हम लोग चतुर भी न थे। गांव में अपने घर से अनाज लाकर किसी तरह गुजारा कर लेते थे। गेहूं, दाल, घी जे. पी. के घर से आ जाता; चावल, गुड़ मेरे घर से।

एक दिन जे. पी., प्रभावतीजी और मैंने राजगिर जाने का निश्चय किया। चूंकि जे. पी. को कुछ काम निबटाना था, उन्होंने मुझसे कहा कि प्रभावतीजी को पटना जंक्शन ले जाओ और वहां मेरा इंतजार करो। जब जे. पी. पटना जंक्शन पहुंचे, ट्रेन छूट चुकी थी। हम ट्रेन में थे। जे. पी. के पास पैसे नहीं थे। वे चाहते तो घर चले जाते और सैर से चूक जाने के बारे में मन को मना लेते। मगर वे रेलवे बुक स्टाल के मैनेजर के पास पहुंचे और बोले कि कुछ पैसे दे दीजिये। बदले में वे अपनी हाथघड़ी देने को तत्पर थे। मैनेजर ने कृपापूर्वक पटना से बख्तियारपुर तक का किराया उन्हें दे दिया।

जे. पी. ने राजगिर के बजाय बख्तियार-पुर तक के ही टिकट के पैसे मांगे थे। उन्हें उम्मीद थी कि प्रभावतीजी और मैं वहां उनका इंतजार कर रहे होंगे। मगर जब वे बख्तियारपुर पहुंचे, तब तक राजगिर की ट्रेन छूट चुकी थी। अगली ट्रेन तक वे रुके रहे और ट्रेन आते ही बिना टिकट के ही उसमें चढ़ गये।

रास्ते में टिकट-कलेक्टर ने उनसे टिकट मांगा। 'टिकट के एवज में मेरी हाथघड़ी रख लीजिये', जे. पी. उससे बोले। मगर तब तक टी. सी. ने जे. पी. को पहचान लिया और वह दूसरे यात्रियों के टिकट जांचने में मशगूल हो गया।

दूसरा कोई आदमी होता तो इसे अपनी खुशकिस्मती समझता। मगर जे. पी. ने राजगिर स्टेशन पर उतरते ही मुझसे टी. सी. को किराया चुकाने को कहा। टी. सी. पैसे लेने को तैयार न था। मगर जे. पी. ने जोर डाला। टिकट का पैसा चुकता किया गया और रसीद प्राप्त की गयी।

जयप्रकाश

स्व. यूसुफ मेहरअली

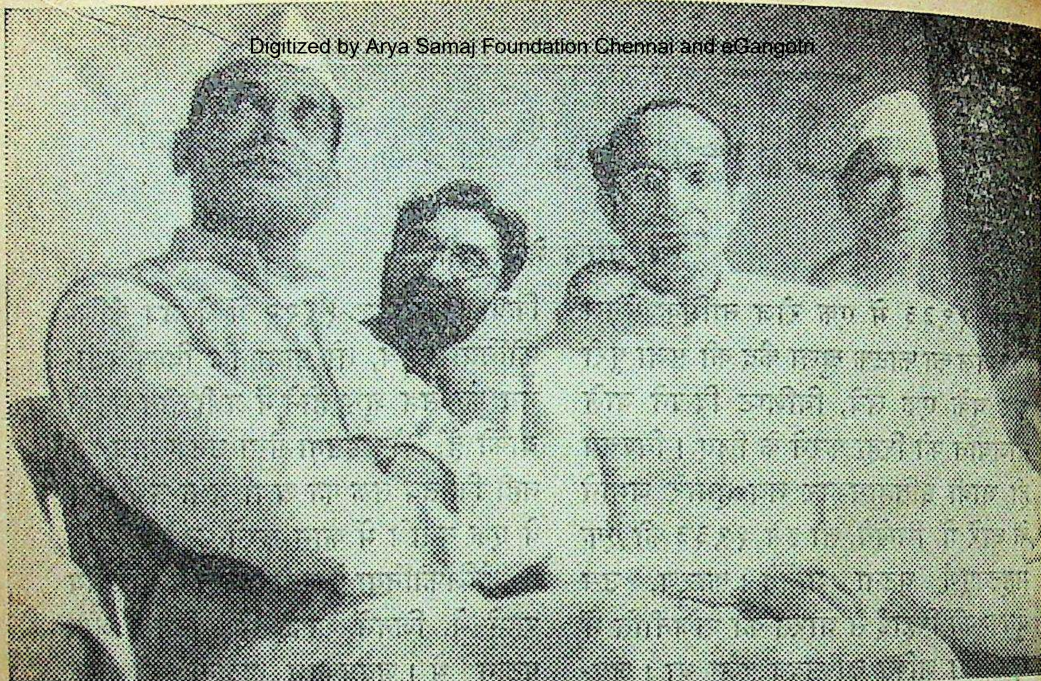
सन १९३३ में एक रोज नासिक सेंट्रल जेल का फाटक खुला कैद की सजा पूरी कर चुके एक लंबे, विशिष्ट दिखने वाले नौजवान को रिहा करने के लिए। निश्चय ही भावी इतिहासकार जब हमारे जमाने के बारे में लिखेंगे, तो इसे १९३३ की एक महत्वपूर्ण घटना मानेंगे। कारण, उस युवक की रिहाई से भारत की राजनीति में एक नयी शक्ति का उदय हुआ था। जयप्रकाश नारायण एक विचार, एक संकल्प, एक दृष्टि लेकर जेल से निकले थे। और उसमें से जनमी थी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी।

आज वे भारत के सार्वजनिक जीवन में सबसे लोकप्रिय और सम्मानित नामों में से एक हैं। मगर बहुत कम लोगों को मालूम है कि कितना शानदार है वह व्यक्तित्व, जिसे कि जयप्रकाश नारायण कहा जाता है। और इसका अंदाज तो और भी कम लोगों को है कि किन-किन अनुभवों और साहस-यात्राओं ने इस अत्यंत आकर्षक व्यक्तित्व का निर्माण किया है।

जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव उन्हें है। शायद यही कारण है जो उनका चिंतन इतना स्पष्ट है। जब वे पढ़ाई जारी रखने अमरीका पहुंचे, तो अपना छात्र-जीवन उन्होंने क्लास-रूम में नहीं, बल्कि खेतों में शुरू किया। अक्तूबर १९२२ में वे जब कैलिफोर्निया पहुंचे, तो पाया कि विश्वविद्यालय का सत्र शुरू होने में अभी तीन महीने बाकी हैं, और इतना पैसा उनके पास भी नहीं कि तब तक का खर्चा चला सकें। सो वे एक बगीचे में काम करने पहुंचे।

कैलिफोर्निया में बड़ी तादाद में भारतीय रहते थे, जिनमें काफी सारे सिक्ख और पठान थे। जयप्रकाश पठानों की एक टुकड़ी में शामिल हो गये; जिसका मुखिया शेर खां का बड़ा दर्शनीय व्यक्तित्व था—खां अब्दुल गफ्फार खां से भी ज्यादा ऊंचा और चौड़ा। असहयोग आंदोलन ने संसार-भर में भारतीयों को बहुत गहरा प्रभावित किया था और भारत से आने वाला हर शख्स गहरी दिलचस्पी का विषय होता था। जब यह जाहिर हुआ कि जयप्रकाश ने असहयोग आंदोलन में शरीक होने के लिए कालेज छोड़ा और विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति छोड़ दी, तब तो उन्हें काम पाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

फलों का मौसम तब खत्म होने को ही था और जयप्रकाश सुबह से रात तक सख्त मेहनत करते अंगूरों, आडुओं, और बादामों के बीच। डाल से फल उतारने के बाद उनका चूने और गंधक से उपचार किया



एक सार्वजनिक सभा में बायें से जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, यूसुफ मेहरअली और आर. ए. खेडगोकर।

जाता, फिर सुखाकर फैक्टरी में भेजा जाता सफाई के लिए। जयप्रकाश का काम था हर टोकरी में झांकना, सड़े फल बीन-बीन कर बाहर फेंकना। शायद यही काम वे आज भी कर रहे हैं—कांग्रेस की टोकरी में से सड़े फल निकाल फेंकना।

इस तरह दिन में दस घंटे और सप्ताह में सात दिन काम करते रहे—न उनके लिए रविवार था न तीज-त्योहार। मगर मजदूरी आकर्षक थी—चालीस सेंट प्रतिघंटा यानी चार डालर प्रति दिन, जो कि उन दिनों की मुद्रा-विनिमय की दर से चौदह रुपया दैनिक बैठती थी। नौजवान जयप्रकाश को यह शाही रकम जान पड़ती थी और महीने-भर में वे अस्सी डालर बचा सके। फलों का मौसम खत्म होने पर वे यह दौलत लिये बर्कले पहुंचे और विश्वविद्यालय के खुलने का इंतजार करने लगे। उन्होंने एक कमरा किराये पर लिया और अपना खाना खुद पकाने लगे।

कैलिफोर्निया में एक ही सत्र गुजर पाया कि जयप्रकाश फिर दिवालिया हो गये। लिहाजा वे चले गये आयोवा विश्वविद्यालय, जहां पर शुल्क कैलिफोर्निया से एक चौथाई ही था। इसे चुका पाने के लिए भी वे आड़ू के बगीचे में काम करते रहे। आयोवा से वे पहुंचे विस्कान्सिन विश्वविद्यालय। यहां पर एक नया तत्त्व उनके

जीवन में प्रविष्ट हुआ—ऐसा तत्त्व जिसने उनके जीवन को सर्वथा नयी ही दिशा में मोड़ दिया ।

जयप्रकाश का व्यग्र मन जिस रोशनी के लिए टटोलबाजी कर रहा था, वह रोशनी उन्हें यहीं मिली । यह देखकर वे दिग्भ्रांत थे कि असीम अवसरों के देश अमरीका में भी अपार वैभव और घोर गरीबी लगभग साथ-साथ में मिलते हैं । इस पहेली का समाधान क्या है ? क्या कारण है कि कुछ के पास तो दुनिया की तमाम बेहतरीन चीजें हैं, जबकि ज्यादातर लोगों को गंदगी, गरीबी और अंतहीन मेहनत में जिंदगी गुजार देनी पड़ती है ?

विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के एक अध्यापक ने ऐलान किया था कि पूंजीवादी व्यवस्था के ढांचे में गरीबी की समस्या का कोई हल नहीं है, और वे एक उत्कट समाजवादी के रूप में मशहूर थे । जयप्रकाश बड़ी उत्सुकता से उनके पास गये, दोनों का आपस में गहरा लगाव हो गया । जयप्रकाश मार्क्सवाद के क्लासिकी ग्रंथों को आतुरता से बाचने लगे और शीघ्र ही वे पक्के समाजवादी बन गये—मगर जबर्दस्त मानसिक संघर्ष के बिना नहीं । अब तो उनके जीवन का अर्थ ही बदल गया । वे विज्ञान छोड़कर अर्थशास्त्र पढ़ने लगे । एम. ए. की उपाधि के लिए उनके लिखे शोध-निबंध की बड़ी तारीफ हुई और वे विश्वविद्यालय के प्रखरमति छात्रों में गिने जाने लगे । यहां से वे न्यूयार्क गये, जहां वे सख्त बीमार पड़ गये और कई महीने अस्पताल में रहे ।

अमरीका में जयप्रकाश लगभग आठ साल रहे और पांच अलग-अलग विश्वविद्यालयों में पढ़े । शुरूआत उन्होंने की थी गणित भौतिकी और रसायनशास्त्र के छात्र के रूप में; फिर वर्षों तक वे जीवशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र पढ़ते रहे । कई बार उन्हें पढ़ाई स्थगित करनी पड़ी, ताकि एक या दो सत्रों की पढ़ाई के लायक पैसा कमा सकें । उन्होंने दिन में दस घंटे खेतिहर मजदूर का, एक जाम-फैक्टरी में पैकर का, लोहे की एक फर्म में मैकेनिक का और एक रेस्तरां में बैरे का काम किया था । सेल्समैन के रूप में भी उन्होंने अपनी किस्मत आजमायी । लिहाजा १९२९ में जब वे भारत लौटे, तो आराम की जिंदगी की आशा करने वाले अनुभवहीन विद्यार्थी के रूप में नहीं, बल्कि दुनिया को नजदीक से देख चुके और सार्वजनिक जीवन में अपने को पूरी तरह समर्पित करने को कृतसंकल्प व्यक्ति के रूप में लौटे ।

जवाहरलाल नेहरू ने फौरन उन्हें भारतीय कांग्रेस का श्रम अनुसंधान विभाग संभलवा दिया । कुछ ही महीने बाद १९३२ की सिविल नाफरमानी आंदोलन में जयप्रकाश कांग्रेस के कार्यकारी महामंत्री के रूप में काम कर रहे थे ।

नासिक जेल में उनकी क़ैद के दिनों को इतिहास बड़े प्यार से याद किया करेगा ।

उनके साथ वहां काफी संख्या में प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता थे। मसानी वहां थे और थे अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, एन. जी. गोरे, एस. एम. जोशी, एम. एल. दांतवाला।

इन तथा दूसरे मित्रों ने वहां भावी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की रूपरेखा तैयार की। दूसरी जेलों में भी कांग्रेस कर्मियों का युवा वर्ग या जो कि कांग्रेस में पैदा हो गयी सड़न से असंतुष्ट था, कांग्रेस के दृष्टिकोण और कार्यक्रम में अधिक गतिशील दिशा-परिवर्तन का आकांक्षी था और समाजवादी परिणामों पर पहुंच चुका था।

रिहाई के बाद शीघ्र ही जयप्रकाश ने पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट सम्मेलन आयोजित किया, जो आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ। मौका महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि ठीक उसी समय अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की बैठक भी हो रही थी सिविल नाफरमानी को वापस लेने और संसदीय कार्यक्रम शुरू करने की मांग करने के लिए। यह उचित ही था कि इस दक्षिणपंथी बहाव को रोकने के लिए वामपक्ष अपनी शक्तियों को संघटित करे। जयप्रकाश संघटन समिति के महामंत्री चुने गये। अगले महीनों में वे निरंतर काम में जुटे रहे—वे हर प्रांत में जाते, क्रांतिकारी तत्त्वों को एक जुट करते और सब स्थानों पर कांग्रेस समाजवादी टोलियां स्थापित करते। चंद महीनों बाद बंबई में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी कायम हुई। जयप्रकाश पार्टी के महामंत्री बने और लखनऊ अधिवेशन में कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य बनाये जाने तक इस पद पर काम करते रहे। चंद महीनों बाद उन्होंने कांग्रेस हाइकमान से त्यागपत्र देकर फिर से पार्टी का महामंत्री पद संभाला।

रामगढ़ कांग्रेस से ठीक पहले जयप्रकाश जमशेदपुर में 'राजद्रोहात्मक भाषण' करने के आरोप में एकाएक गिरफ्तार कर लिये गये। उन्होंने बड़े फख्र के साथ अपना 'अपराध' स्वीकार किया और साल-भर की सख्त कैद की सजा पायी। रिहा होते ही जेल के फाटक पर ही उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया गया।

कुछ समय बाद उन्हें अपने घर से हजार मील से भी ज्यादा दूर देवली के नजरबंद शिबिर में भेज दिया गया। हफ्ते महीनों में ढल गये और महीने बरस बन गये; और अंततः स्थिति इतनी असहनीय हो उठी कि देवली कैंप में नजरबंद तमाम राजनैतिक कैदियों ने अपनी शिकायतें दूर करवाने के लिए आमरण भूख-हड़ताल करने का फैसला कर लिया। जयप्रकाश के नेतृत्व में देवली कैंप में हुए उस अनशन से सारे देश में उबाल आ गया। भूख-हड़तालियों की हालत दिनो-दिन बिगड़ती गयी और देश में क्रोध की लहरें दौड़ने लगीं। पूरे ३१ दिन उस अग्नि-परीक्षा को चलने देने के बाद भूख-हड़तालियों की मौत की जिम्मेदारी से बचने के लिए विदेशी सरकार अंत में बड़े अशोभन ढंग से झुकी। उन बहादुर

साथियों में से बहुतों की तंदुरुस्ती तबाह हो चुकी थी। जयप्रकाश इस अग्नि-परीक्षा से 'हीरो' बनकर निकले, हालांकि नौकर-शाही ने उनके पास से बरामद हुआ कहकर एक पत्र छापा था और उन्हें बद-नाम करने की भरपूर कोशिश की थी। इस पत्र के सिलसिले में गांधीजी ने सरकार को जो शानदार जवाब दिया था, वह दीर्घ कालतक स्मरण किया जायेगा।

जब 'भारत छोड़ो' आंदोलन छिड़ा, तब जयप्रकाश जेल में ही थे। उन्हें देवली से बिहार के हजारीबाग सेंट्रल जेल भेज दिया गया था। बाहर क्रांति छिड़ी हुई थी, ऐसे में जेलवास उनके लिए असह्य हो उठा। फिर एक सुबह सबने सुना कि जयप्रकाश अन्य चार साथियों के साथ जेल से निकल भागे हैं। सन बयालीस की क्रांति की सबसे सनसनी-खेज घटनाओं में से एक थी यह। उनके साहस और उपक्रम ने ब्रिटिश सरकार की नाक में दम कर दिया। उन्हें पकड़वाने के लिए ५,००० रु. के इनाम की घोषणा की गयी। बाद में इनाम की रकम बढ़ाकर १०,००० रु. कर दी गयी।

कुछ समय बाद आयी इस खबर ने और भी ज्यादा सनसनी फैला दी कि जय-प्रकाश और राममनोहर लोहिया नेपाल में पकड़े गये, मगर उनके गोरिल्ला साथियों ने उन्हें हाथों-हाथ छुड़ा लिया और इसमें आम लोगों ने भी उनका साथ दिया। सर-कार के मुंह पर यह करारा तमाचा था और जयप्रकाश और लोहिया लगभग पौराणिक पुरुष बन गये।

घटना-चक्र का असह्य बोझ पड़ रहा था उन पर—शिकार किये जा रहे पशु की तरह भटकाव, काम की असामान्य स्थितियां, लगातार रतजगा। उनका स्वास्थ्य चौपट हो गया। ऐसे ही वक्त पंजाब में वे पकड़ लिये गये। सरकार उनसे इस कदर खौफ खाती थी कि लंबे अरसे तक तो यह बात भी एकदम गुप्त रखी गयी कि वे कहां पर हैं। उन्हें शारीरिक यंत्रणा दी जाने और उन पर 'थर्ड डिग्री' तरीके आजमाये जाने की खबरों से जनता बेचैन थी। असलियत क्या है, यह पता लगाने के लिए श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने लाहौर हाइकोर्ट में हैबियस कार्पस अर्जी दाखिल की।

इस कदम को बेकाम करने के लिए सरकार ने घोषित कर दिया कि जय-प्रकाश १८१८ के रेग्युलेशन-३ के तहत राजबंदी हैं; लिहाजा हाइकोर्ट के अधिकार-क्षेत्र से परे हैं। और जब हाइ-कोर्ट ने इसी आधार पर हैबियस कार्पस की अर्जी खारिज कर दी कि जयप्रकाश राजबंदी हैं और इस कारण हाइकोर्ट के अधिकार-क्षेत्र से परे हैं, तब विदेशी सर-कार ने फौरन उन्हें फिर से सुरक्षा-बंदी बना दिया। ऐसे किया जाता है कानून और व्यवस्था का पालन इस देश में!

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के तमाम नेताओं में जयप्रकाश 'थीअरी' से सबसे ज्यादा आकृष्ट हुआ करते। मगर वे कठ-

मुल्ला नहीं हैं। उनकी उंगलियां सदा मजबूती से टिकी रहती हैं जनता की नब्ज पर। संकुचित मतवाद उन्हें सरासर नापसंद है। अगर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी एक निरी राजनैतिक पार्टी से बढ़कर कुछ है, अगर आज वह देश के अधिकाधिक क्रांतिकारी तत्त्वों को अपने वैचारिक प्रभाव में समेटती हुई एक सशक्त आंदोलन बन गयी है तो जयप्रकाश को इसका कम श्रेय नहीं है।

लेखक के रूप में जयप्रकाश ऐसी शैली के धनी हैं जो एक साथ सरल और सीधी है। उनकी पुस्तक 'समाजवाद क्यों ?' की बड़ी तारीफ हुई है। भाषणकर्ता के रूप में वे धुआंधार वक्ता नहीं हैं, मगर अपने खरेपन और विषय पर पूरी पकड़ के जरिये वे श्रोताओं पर धुआंधार वक्ताओं से कहीं ज्यादा प्रभाव छोड़ जाते हैं।

जहां तक मैं ढूंढ़ पाया हूं, उनमें दो अवगुण हैं। पहला यह कि उनके पास बड़ा ही शानदार शेविंग-सेट है और वे उजली मुस्कान के साथ खुद बताया करते हैं कि शहर में इससे बढ़िया सेट दूसरा नहीं मिलेगा। जब जयप्रकाश जैसा खूबसूरत चेहरा किसी ने पाया हो, क्षम्य ही कहा जायेगा न इसे ?

दूसरे अवगुण को क्या नाम दूं, मेरी समझ में नहीं आ रहा है। शायद इसे 'टाइम सेन्स का अभाव' कहना ठीक रहेगा; क्योंकि इसे 'वक्त की गैरपाबंदी' कहना बहुत बेरौनक होगा। असल में बात यह है कि जयप्रकाश को बढ़िया बहस में आनंद आता है, खासकर जब कि सामने वाला बुद्धिमान हो; और उसके लिए वे दूसरे दस कार्यक्रम चूकने को भी तैयार हो जाते हैं। मगर ऐसे मौकों पर जब वे अगले कार्यक्रम में विलंब से तशरीफ लाते हैं तब उनके मुखड़े पर ऐसी सच्ची वेदना बिछी होती है कि उनकी वह वक्त की गैरपाबंदी उन्हें और भी प्यारा बना देती है।

जयप्रकाश अभी युवक हैं; मगर उनके पास ज्ञान और अनुभव की ऐसी विपुल राशि है, जैसी कि इस देश में कम लोगों के ही पास होगी। वे सौम्य हैं, पर साथ ही दृढ़ भी हो सकते हैं और यह तो वे साबित कर ही चुके हैं कि बड़े-बड़े फैसले करने का दमखम उनमें है। इन सबसे बढ़कर, उनके पास आने वालों को मोहते हैं उनके मानवीय गुण।

ये हैं जयप्रकाश—निराडंबर, बेहद उदार, दिन की तरह खुले और साफ, आज की साधन-सामग्री से उजले कल के निर्माण में निरत। बिहार के सारन जिले के छोटे-से गांव सिताबदियारा में जनमे इस किसान-बालक ने जीवन में पहली बार ट्राम उन्नीस बरस की उम्र में देखी थी। आज वह उस आंदोलन के अग्रगण्य नायकों में से है, जिसके साथ इस देश के भविष्य का अटूट संबंध जुड़ गया है।

[सिताबदियारा इस समय उत्तर प्रदेश के बलिया जिले का हिस्सा है। —सं.]

★

एक बुनियादी क्रांति की दहलीज पर

जयप्रकाशनारायण

आज हमें समाज के मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन करना है। यह छोटा-सा काम नहीं है। करोड़ों लोगों के मानस-परिवर्तन का काम है। ऐसे महान काम के वाहक बनने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से आज की युवा-पीढ़ी को उठानी है। हमारी पीढ़ी के लोगों को जो काम करना था, वह कर चुके। आने वाले जमाने की जिम्मेदारी आज की नयी पीढ़ी की हैं, इस देश के तरुणों की है, युवकों की है।

एक बार सर्वहारा को समाज में क्रांतिकारी वर्ग माना गया। किंतु आज अब मजदूर वर्ग क्रांति का अग्रदूत नहीं बन सकता। अमरीका, इंग्लैंड और यूरोप के अन्य देशों में मजदूर-वर्ग भी समाज का एक स्थापित हित बन गया है। और स्थापित हित बन जाने के बाद उसमें क्रांतिकारी शक्ति नहीं रहती।

इसलिए यूरोप के युवा आज कह रहे हैं कि अब जो क्रांति होने वाली है, वह बुद्धिजीवियों की क्रांति होगी। विद्यार्थी उसमें सम्मिलित होंगे और क्रांतिकारी विचारक उसका नेतृत्व करेंगे।

हमारे यहां भी विद्यार्थियों तथा युवकों में असंतोष है। वर्तमान शिक्षण पद्धति की जो खराबियां हैं, जिस तरह आज हमारे विद्यार्थियों को शिक्षा दी जा रही है, शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनको जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, उन सबके कारण उनमें एक विद्रोह की भावना जागती है। बावजूद इसके आज के सभी प्रचलित मूल्यों को वे चुनौती दे रहे हैं, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता।

इसलिए हमारे युवकों में एक क्रांतिकारी शक्ति जागृत हो और वे एक रचनात्मक मार्ग की तरफ मुड़ें, ऐसा प्रयास करना है। व्यापक समाज-परिवर्तन के काम में युवकों की शक्ति लगाकर सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन को एक मोड़ देना है। आज के युग की यह मांग है। मानव-आत्मा स्वातंत्र्य चाहती है, आत्मसाक्षात्कार चाहती है। आज तक जो क्रांतियां हुई हैं, वे मानव आत्मा की तड़प की ही परिणाम हैं। किंतु बाद में इन क्रांतियों का स्वरूप ऐसा हो गया, जिसमें मानव-आत्मा की उपेक्षा हुई और तंत्र तथा संस्थाओं पर अधिक जोर दिया गया।

क्रांतिकारी नेताओं ने यह माना कि समाज-संचालन के तंत्रों को वे बदल सके हैं और क्रांति करने में सफल हुए हैं, किंतु

इतना ही यथेष्ट नहीं था। क्रांति के जो मूलभूत ध्येय थे, वे तो अभी दूर ही थे। समानता स्वतंत्रता, बंधुता, बिरादरी, राज्यविहीन समाज, हर एक को उसकी आवश्यकतानुसार मिले और हर एक अपनी क्षमता-भर समाज को दे–ये सब बहुत अच्छे ध्येय थे। किंतु अब तक वे स्वप्नवत् ही हैं। अब सब ध्येय सिद्ध हों, प्रत्यक्ष व्यवहार में उन पर अमल हो, ऐसी आज के युग की मांग है।

गांधीजी एक बात बार-बार कहते थे, वह मुझे याद आती है। वे कहते थे कि दूसरी क्रांतियां इकहरी हैं, यानी ऐसी क्रांति, जो मात्र समाज के बाह्य ढांचे में ही परिवर्तन लाती है, जब कि मेरी क्रांति दुहरी क्रांति होगी, जो मनुष्य के मानस में शुरू होगी और अंत में समाज के बाह्य ढांचे में परिवर्तन लायेगी। व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर तो वास्तविक क्रांतिकारी के लिए सत्ता पर कब्जा करने का कोई अर्थ ही नहीं होगा।

इसलिए अब यह चीज स्पष्ट रूप से समझ में आ जानी चाहिए कि शांति के लिए ऐसी पद्धति अपनानी होगी, जिसके कारण मनुष्य के मानस में परिवर्तन आये; उसके जीवन-मूल्यों में परिवर्तन आये; जीवन के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन आये; वस्तुओं के प्रति, मानवों के प्रति और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आये। और दूसरा यह कि आज के इतिहास की मंजिल पर मनुष्य जब चंद्र और शुक्र पर



पहुंचा है, तब उसके सामने मानव-बंधुओं का एक विश्वकुटुम्ब बनाने से छोटा आदर्श नहीं हो सकता। आज एक यही क्रांतिकारी ध्येय हो सकता है।

अब सवाल यह उठता है कि मनुष्य को हम बदलेंगे कैसे? गांधी-विनोबा ने उसके लिए व्यापक सामाजिक आंदोलन का मार्ग अपनाया है। परंतु बहुत बार विचारक हमें चेतावनी देते रहते हैं कि ऐसे आंदोलनों में जब-जब मतवाद और कर्मकांड पर अधिक जोर दिया जाता है, तब-तब उसकी कीमत मनुष्य से वसूल की जाती है। ऐसे आंदोलन स्वयं स्थापित आदर्शों की बलि-वेदी पर मनुष्य को कुरबान करते हैं। आंदोलनकारियों के लिए आदर्श मानव-निरपेक्ष मूल्य बन जाता है।

यह चेतावनी जरूर ध्यान में रखने लायक है। इस विषय में हमें सावधान रहना है। हम यदि अहिंसा द्वारा जीवन

परिवर्तन और समाज परिवर्तन करना चाहते हों, तो भी इस चेतावनी का अवश्य ही ध्यान रखना पड़ेगा। किंतु मैं मानता हूं कि गांधी-विनोबा के सर्वोदय आंदोलन में मनुष्य ही केंद्र बिंदु है, इसलिए उसमें मानवता ही अंतिम मूल्य है। मनुष्य के प्रति संवेदना न हो, तो कोई ऐसे आंदोलन में नहीं पड़ेगा। फिर भी हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारा 'एप्रोच' मानवीय हो और समग्र हो।

यद्यपि कृष्णमूर्ति जैसे तत्त्वज्ञानी तो यह भी पूछेंगे कि मनुष्य को बदलने वाले हम कौन? यह अधिकार हमें किसने दिया? मैं कहूंगा कि हम सब भाई हैं और ऐसे मानव-बंधुत्व के नाते ही हमें यह अधिकार मिला है, हमारा यह कर्तव्य बन गया है। हम अपने आपमें परिवर्तन लाने के लिए निरंतर चिंतन-मनन करते हैं और अपने मानव-बंधु में भी परिवर्तन लाना, यह भी हमारे चिंतन-मनन का एक भाग ही है। इसलिए ऐसे सामाजिक आंदोलन द्वारा मनुष्य में परिवर्तन लाकर समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास हम कर रहे हैं।

यह एक व्यापक लोक-शिक्षण का काम है। साथ ही गांधी-विनोबा ने तो प्रचलित शिक्षण-पद्धति को भी नया स्वरूप देने की हिमायत की है। उन्होंने नयी शिक्षा का विचार समाज के समक्ष रखा है, जिससे बचपन से ही मनुष्य के मन में नये मूल्य जड़ पकड़ते आयें। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान-दान करना और प्रशिक्षण देना तो है ही, परंतु इसके साथ ही शिक्षा का एक सर्वमान्य उद्देश्य है—मानव को मानव बनाना, उत्तम मानव बनाना। मनुष्य का पर्यावरण समझने और बदलने के लिए बहुत-कुछ किया गया है; लेकिन स्वयं मनुष्य को समझने और बदलने के लिए बहुत कम काम किया गया है।

पिछले कुछ वर्षों से पूर्व और पश्चिम में भीतरी और बाहरी, भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान को जोड़ने का, दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। उसके द्वारा ऐसे ज्ञान का विकास होगा, जिसमें न तो भौतिकवाद की उपेक्षा होगी और न अध्यात्मवाद की। वह दोनों का सच्चा समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न होगा।

इसके फलस्वरूप आज मनुष्य का व्यक्तित्व विच्छिन्न हो गया है। और जब तक सुसंवादी ज्ञान और शिक्षा द्वारा 'नैतिक व्यक्ति और अनैतिक समाज के बीच' का विरोध दूर नहीं होगा, तब तक मनुष्य के व्यक्तित्व की यह विच्छिन्नता कायम रहेगी। नैतिकता और आध्यात्मिकता इस जगत से जब तक विमुख रहेगी, तब तक समाज के दिन-प्रतिदिन के व्यावहारिक विषय भी नैतिकता और आध्यात्मिकता से उतने ही विमुख रहेंगे। यह चीज मनुष्य के कल्याण तथा विकास के लिए अत्यंत हानिकारक है।

मनुष्य केवल पेट भरने के लिए नहीं जीता, उसके भीतर अधिक गहरी और

अधिक सूक्ष्म आकांक्षाएं भी होती हैं, जिनकी वह तृप्ति चाहता है। इसलिए स्कूल-कालेजों में विद्यार्थियों को यह समझना-समझाना जरूरी है कि आप अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने बाहरी कार्य-कलापों का अपने आध्यात्मिक और नैतिक विचारों के साथ किस प्रकार सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे।

आज आपके सामने प्रश्न है कि आप खंडित व्यक्तित्व वाले मनुष्य बनेंगे या अखंडित व्यक्तित्व वाले? यदि आप अपने व्यक्तिगत जीवन में सदाचार को जैसा ऊंचा स्थान दें, वैसा ऊंचा स्थान उसे आप सार्वजनिक या सामाजिक जीवन में दें, तो कहीं अधिक उत्तम और अधिक उपयोगी अर्थशास्त्री, वकील, डाक्टर, इंजीनियर, प्रशासक, अध्यापक, राजनीतिज्ञ अथवा कुछ भी बन सकेंगे।

ऐसा करने से आप न केवल सामाजिक हित में अधिक योगदान करेंगे और अपने देश की अधिक सच्चाई के साथ सेवा कर सकेंगे, बलिक इससे आपका व्यक्तिगत लाभ भी होगा। आपको अधिक प्रसन्नता और शांति मिलेगी। आपका जीवन अधिक उपयोगी और पूर्ण बनेगा।

आज हम जिस बुनियादी क्रांति की दहलीज पर खड़े हैं, उसके लिए कार्यकर्ता तैयार करने होंगे और उसके लिए स्कूल-कालेजों के द्वारा सुसंवादी शिक्षा और सामाजिक आंदोलनों के जरिये व्यापक लोक-शिक्षण समाज को निरंतर देते रहना होगा।

★

इतिहास में अब तक जो क्रांतियां हुई हैं, वे मेरे विचार से केवल राजकीय क्रांतियां थीं। और जिन्हें औद्योगिक क्रांति कहते हैं, उनके अलावा जितनी भी राजकीय क्रांतियां हुई हैं, वे अधिकांश में हिंसा के द्वारा हुई हैं। अभी हम चाहते हैं कि भारत में गांधीजी के रास्ते से एक संपूर्ण क्रांति अहिंसा के माध्यम से हो।

ऐसी संपूर्ण क्रांति से एक नया समाज बनेगा, जो आज से बिलकुल भिन्न होगा। समाज की ऐसी नवरचना के लिए एक ऐसी क्रांति की जरूरत है, जो संपूर्ण भी हो और समग्र भी हो। वह समाज के एक-एक अंग को और क्षेत्र को स्पर्श करे। साथ ही साथ वह व्यक्ति के समग्र जीवन को भी आंदोलित करे। ऐसी एक संपूर्ण क्रांति लाना हमारा ध्येय है।

कई लोग कहते हैं कि यह सब मेरा दिवा-स्वप्न है। मैं उन लोगों के साथ विवाद में नहीं पड़ता। फिर भी इतना तो अवश्य कहूंगा कि जिन्होंने सपना देखना छोड़ दिया है, वे कदापि क्रांति नहीं ला सकते। क्रांतिकारी यदि स्वप्नदर्शी नहीं होगा तो उसे नये समाज का चित्र कहां से प्राप्त होगा?

—जयप्रकाश नारायण

नवनीत

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन

हमारा पेशा

हम अपना क्या उपयोग भगवान को करने देते हैं, महत्त्व इसका है। भगवान हमारे जरिये क्या कर रहा है, महत्त्व इसका है। क्योंकि हम धार्मिक हैं और हमारा पेशा कोढ़ियों और मरते हुओं के लिए काम करना नहीं है, हमारा पेशा ईसा का होकर रहना है। चूंकि मैं ईसा की हूं, इसलिए ईसा के प्रति अपने प्रेम को कार्यगत करने का साधन है यह सब काम-काज। वह अपने आपमें साध्य नहीं, साधन है।

मैं जिसको भी छूती हूं, उसमें ईसा को देखती हूं, उसमें ईसा को देखती हूं; क्योंकि ईसा ने कहा है–'मैं भूखा था, मैं प्यासा था, मैं नंगा था, मैं बीमार था, मैं तकलीफ में था, मैं बेघरबार था, तुमने मुझे अपनाया ....' इतनी सीधी-सी बात है यह। इसीलिए हमें भूखे को तलाशना होगा, नंगे को तलाशना होगा। इसीलिए हम गरीबों से जुड़े-बंधे हैं।

–मदर तेरेसा

अनंत में जीना

बलवीर सिंह

एक साधारण-से बूढ़े साधु ने किसी मठ में रहते हुए अपना सारा जीवन गुमनामी में ही बिताया था। वह अपने जीवन से संतुष्ट था और वृद्धावस्था में भी हर समय किसी न किसी काम में लीन रहता था।

एक दिन वह मठ की रसोई में जूठे बरतन साफ कर रहा था कि मौत का फरिश्ता उसके पास आया।

फरिश्ते ने कहा—'ईश्वर ने मुझे भेजा है। तुम्हारा समय आ गया है कि अब तुम अनंतता में निवास करो।'

'मैं ईश्वर का आभारी हूं कि उसने मुझे याद किया है। लेकिन तुम देख ही रहे हो कि ये इतने सारे बरतन साफ करने के लिए पड़े हैं। क्या इन्हें इसी हालत में छोड़कर मेरा जाना उचित है?'

मौत के फरिश्ते के ओठों पर मुस्कराहट आयी और उसने कहा—'ठीक है, मैं फिर कभी आऊंगा।' और वह गायब हो गया।

साधु बरतन साफ करने के बाद हमेशा की तरह अपने दूसरे कामों में लग गया।

एक दिन वह बाग में पौधे रोप रहा था कि मौत का फरिश्ता फिर उसके पास आया। 'अब तो तुम्हें चलना ही होगा।' उसने कहा।

'ओह, तुम आये हो!' साधु ने उसकी ओर देखा। फिर पौधों की क्यारियों की ओर संकेत करते हुए कहा—'बस, थोड़ा-सा ही काम बाकी रह गया है। इसे अधूरा छोड़ना ठीक नहीं। क्या कुछ देर रुका नहीं जा सकता?'

'जैसा तुम चाहो,' मौत के फरिश्ते ने कहा और गायब हो गया।

साधु काम करता रहा। पौधे रोपने के बाद वह दूसरे काम करने लगा।

एक बार महामारी फैलने पर वह गरीबों की एक बस्ती में बीमारों की सेवा कर रहा था कि मौत का फरिश्ता उसके पास आया और चुपचाप बड़ी दिलचस्पी से उसे देखने लगा। अचानक साधु का ध्यान उसकी ओर गया, तो उसने कहा—'बड़े गलत समय पर आये हो! इस बार मैं तुम्हारे साथ चलने से इन्कार नहीं कर सकता; लेकिन इन मरीजों को देखकर ही सोचो कि यहां मेरी कितनी जरूरत है। फिर भी, अगर कहो तो...?'

साधु की बात पूरी होने से पहले ही

फरिश्ता गायब हो चुका था।

कई दिनों के बाद साधु काफी रात गये तक मरीजों की सेवा करने के बाद अपनी छोटी-सी कोठरी में जाकर लेटा, तो बहुत ज्यादा थका हुआ था। वह निढाल-सी सूनी-सी नजरों से छत की ओर देख रहा था कि अचानक उसे मौत के फरिश्ते का खयाल आया और उसने मन में कहा—अगर वह इस समय आ जाये, तो मैं इसी क्षण उसके साथ चल पड़ूंगा..... तब, उसे अपना शरीर और भी अवसन्न और निर्जीव-सा प्रतीत हुआ। उसकी इच्छा हो रही थी कि लंबी, गहरी नींद में डूब जाऊं।

वह अपनी बोझिल आंखें बंद करने ही वाला था कि उसने देखा, मौत का फरिश्ता उसके सामने खड़ा है। देखते ही उसके चेहरे पर खुशी दौड़ गयी और उसके मुंह से निकला—'प्रभो, धन्य हो तुम, जो इतनी जल्दी मेरी सुन ली और अपने फरिश्ते को मेरे पास भेज दिया।' और उसने मौत के फरिश्ते को संबोधित करते हुए कहा—'मैं तुम्हारा भी आभारी हूं, जो इतनी जल्दी आ गये हो। मैं चलने को तैयार हूं और चाहता हूं कि अब हमेशा के लिए ईश्वर के चरणों में बैठकर अनंतता में निवास करूं।'

वह उठने ही लगा था कि मौत के फरिश्ते ने कहा—'लेटे रहो, लेटे रहो, उठने की जरूरत नहीं है।' फरिश्ते के ओठों पर हल्की-सी मुस्कराहट आयी। 'उठकर तुम्हें कहां जाना है? तुम अनंतता में ही तो जी रहे हो।'



पूरे तमिलनाडु में ५६ हजार देवालय विद्यमान हैं, जिनमें से ५० हजार देवालय गांवों में हैं। इन देवालयों में पूजा-आराधना की व्यवस्था के लिए सरकार को एक रुपया भी खर्च करना नहीं पड़ता। जिन देवालयों के पास पूजा आदि के लिए अपनी कोई निधि नहीं है, उनमें गांव का कोई वृद्ध जल और फूल चढ़ा देता है। ऐसे देवालयों की संख्या बीस हजार से कम नहीं होगी।

तमिलनाडु में सोलह देवालय ऐसे हैं, जिनकी वार्षिक आय पांच लाख रुपये से अधिक है। इनमें पलनी, मदुरै, तिरुत्तणि, चिदंबरम आदि उल्लेखनीय हैं।

हाल में मदुरै देवालय के बाहर दर्शनार्थियों के जूतों की रक्षा के लिए जो कांट्राक्ट स्वीकृत हुआ, उससे देवालय को डेढ़ लाख रुपया मिला है।

दक्षिण के सभी मंदिरों के लिए आजकल एक खतरा पैदा हो गया है। उनकी सुंदर देवमूर्तियां चुराकर विदेश भेज दी जाती हैं। इसमें एक व्यवस्थित तस्कर दल का हाथ है, ऐसा दीखता है। अगर इस तस्करी को समूलतः नष्ट न किया गया, तो हमारे देवालयों की सारी देवमूर्तियां अमरीका के धनिकों के ड्राइंग रूमों की शोभा बन जायेंगी।

—टी. एस. राजु शर्मा





अंतिम प्रणाम !

जन्म : ११ अक्तुबर १९०२ निर्वाण : ८ अक्तुबर १९७९



कोन्राड लारेन्स

आठ प्रक्रियाएं, जो यों तो अलग-अलग हैं मगर कार्यकारण-भाव से आपस में जुड़ी हुई हैं, हमारी सभ्यता को ही नहीं बल्कि मानव-नस्ल को भी नष्ट कर डालने की धमकी दे रही हैं। ये प्रक्रियाएं हैं :

१. **धरती पर बेहद घनी आबादी।** इससे सामाजिक संपर्क बेतहाशा बढ़ जाते हैं, जिससे हममें से हर कोई अपने आपको अमानवीय ढंग से एक खोल में बंद कर लेता है। इसके अलावा, चूंकि थोड़ी-सी जगह में बहुत लोगों को ठुंसकर रहना पड़ता है, उनमें आक्रामक वृत्ति उभरती है।

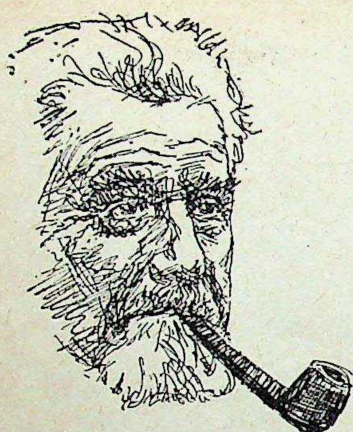
२. **प्राकृतिक परिवेश का विध्वंस।** न केवल हमारे चारों ओर का परिवेश ही विनष्ट हो रहा है, बल्कि अपने से श्रेष्ठ प्राकृतिक सृष्टि की सुंदरता और भव्यता के प्रति मनुष्य का भक्तिभरा आश्चर्य-भाव भी विनष्ट हो रहा है।

३. **अपने ही विरुद्ध मनुष्य की होड़-भरी दौड़।** इससे प्रौद्योगिकी के विकास की रफ्तार निरंतर तेज होती जा रही है; मनुष्य तमाम मूल्यों के प्रति अंधे हो उठे हैं और उन्हें चिंतन-जैसे असली मानवीय कार्य के लिए फुरसत ही नहीं रह गयी है।

४. **अनुभूतियों व भावनाओं का कुंद हो जाना।** यह ऐयाशी का परिणाम है। प्रौद्योगिकी और औषधशास्त्र की प्रगति के कारण आज मनुष्य को तनिक-सा भी असुख असह्य होने लगा है। इस तरह मनुष्य ऐसे आनंदों को अनुभव करने की क्षमता खोता चला जा रहा है, जो आनंद विषम विघ्न-बाधाओं को जीतने पर ही प्राप्त होते हैं। आनंद और शोक की स्वाभाविक तरंगें आज वर्णनातीत बोरियत की अगोचर-सी हल्की हलचलें बनकर रह जाती हैं।

५. **आनुवंशिक क्षय।** हमारी आधुनिक सभ्यता में 'जन्मजात न्यायबुद्धि' और उचित-अनुचित की चंद पैतृक परंपराओं के सिवा ऐसे कोई तत्त्व नहीं रहे हैं, जिनके दबाव में हमें सामाजिक व्यवहार के सहजबुद्धि-प्रेरित (इन्स्टिक्टिव) प्रतिमानों को जातीय अस्तित्व और विकास के लिए अनिवार्य तत्त्वों के रूप में अपनाना ही पड़े।

६. **परंपरा का उच्छेद।** वह विषम बिंदु आ पहुंचा है, जब नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से संवाद करने में भी असमर्थ हो गयी है—उसके साथ तादात्म्य अनुभव करने की तो बात ही क्या! फलतः आज के युवक प्रौढ़ों व बूढ़ों के साथ एक अलग नस्ल के लोगों का-सा सलूक करने लगे हैं और उनसे इस



चिकित्सक, विज्ञानी एवं जीव-व्यवहार के विशेष अध्येता लारेन्स, जिनकी पुस्तक 'सिविलाइज्ड मेन्स एट डेडली सिन्स' का उपसंहार-अध्याय यहां प्रस्तुत किया गया है।

तरह द्वेषपूर्वक पेश आते हैं, जैसे कि वे शत्रु-देश के हों। इससे परंपरा का जारी रह पाना असंभव हो उठा है। इस गड़बड़ का मुख्य कारण है माता-पिता और बच्चों के बीच संपर्क की कमी, जिसका शैशव के नितांत आरंभिक चरणों में भी रोगोत्पादक परिणाम हो सकता है।

७. मानव-मन में बलात् विचार भरने की शक्यता का बढ़ जाना। प्रत्येक सांस्कृतिक समूह में सदस्यों की संख्या के बेतहाशा बढ़ जाने से तथा तकनीकी साधनों के पूर्णता पर पहुंच जाने से आज जनमत को मरोड़कर इस तरह एकरूप बना देना संभव हो गया है, जिसकी मिसाल अब तक के मानव-इतिहास में नहीं है। इसके अलावा किसी सिद्धांत के मानने वालों की संख्या जितनी ही बढ़ती है, उसी के ज्यामितीय अनुपात में उसकी सम्मोहन-शक्ति भी शायद बढ़ जाती है। अब तो ऐसे भी सांस्कृतिक-समूह बन गये हैं, जिनमें 'माध्यमों' (उदाहरणार्थ, टेलिविजन) के प्रभाव से अपने को प्रयत्नपूर्वक दूर रखने वाले व्यक्ति को रोगी-सा समझा जाता है।

मनुष्य को व्यक्तित्व-विहीन बनाने वाले प्रभाव उन सभी को प्रिय हैं, जो बड़ी तादाद में लोगों को अपने मन के मुताबिक मोड़ना चाहते हैं। जनमत-संग्रह, विज्ञापन, चतुराई-पूर्वक चुपके-से प्रचारित फैशन और खब्तें आज गैरसाम्यवादी देशों में बृहत् उत्पादकों को और साम्यवादी देशों में अफसरों को आम जनता पर लगभग एक-सा वर्चस्व प्राप्त करने में मदद दे रहे हैं।

८. मानव-समाज का परमाणु-शस्त्रों से लैस होना। बाकी सात खतरों की तुलना में इस खतरे को टालना कहीं आसान है।



जिन बातों पर हम अड़े उनसे नहीं, बल्कि जो घाव हमने भरे, जो जिंदगियां हमने बचायीं, जो दुःख-दर्द हमने मिटाये—उनसे हमें जांचा जायेगा।

—राष्ट्रपति सादत



जीवन में गलतियां तो हम सभी करते हैं; मगर प्रशंसनीय व्यक्ति वह है, जो अपनी गलती स्वीकार करे और उसे सुधारे।

—मुहम्मद करीम चागला



अंधेरे की तरफ

मुझे उजाले की तरफ मत खींचो
मैं उस अंधेरे की तरफ जाना चाहता हूं
जहां कई सूरज अपने पेट पर पट्टी बांधे
आग की तलाश कर रहे हैं
जो उन्हें पूरब से पश्चिम तक जाने की शक्ति दे।

मैं उस अंधेरे की तरफ जाना चाहता हूं
जहां बीमार चांदनी अपने दूधिया रूप की खातिर
चौराहे पर खड़ी कर दी गयी है
और उसकी बेदाग चादर
नाली के कीचड़ से भर दी गयी है!

मैं उस अंधेरे की तरफ जाना चाहता हूं
जहां गंदुम के एक दाने के पीछे
आदम और हव्वा आपस में वार कर रहे हैं
एक दूसरे को पहचानने से इन्कार कर रहे हैं!

मेरे दोस्त!
मैं उस अंधेरे की तरफ जाना चाहता हूं
जहां इन्सानियत की कब्र पर इन्सान की ममी रो रही है
जिंदगी खुद अपनी लाश ढो रही है
मुझे जाने दो, अंधेरे का तिलिस्म तोड़ना है
आदमी और आदमी के बीच का पुल बनाना है
आदमी को आदमी से जोड़ना है।

—अब्दुल मलिक ख़ान
प्रेस रोड, भवानीमंडी, जि. झालावाड़, राजस्थान

मेरे पिता

सत्यजित राय

जब मेरे पिता की मृत्यु हुई, मैं ढाई वर्ष का था। इसलिए आत्मीयता के नाते एक से दूसरे का जैसा संबंध होता है, वैसा अपने पिता के साथ जोड़ पाने का सुयोग मुझे नहीं मिला। उन्हें मैंने उनकी रचनाओं और चित्रों के माध्यम से पहचाना; उनकी एक खस्ता कापी, कई नोटबुकें, एक हस्तलिखित पत्रिका के दो अंक, अपनी मां एवं कई आत्मीय स्वजनों से सुने वर्णनों के माध्यम से पहचाना।

मेरे पिता सुकुमार राय का जन्म सन १८८७ में हुआ। उनकी मां बिधुमुखी देवी ब्राह्मसमाज के उज्ज्वल नक्षत्र, स्वाधीनचेता द्वारकानाथ गंगोपाध्याय की पुत्री थीं। पिता थे उपेन्द्रकिशोर राय जिनकी प्रतिभा का परिचय उनके गीतों, चित्रों एवं मुद्रण-कार्यों में बिखरा पड़ा है। उनमें विज्ञान और कला, प्राची और प्रतीची का आश्चर्यजनक समन्वय था।

उपेन्द्रकिशोर ने वायलिन के साथ-साथ पखावज बजाया, ब्राह्मसंगीत की रचना के साथ-साथ मुद्रण-कार्य में मौलिक अनुसंधान किया, रात में घर की छत पर बैठकर दूरबीन से आंखें सटाकर आकाश में तारे देखे, सहज-सुंदर भाषा में पौराणिक कहानियों एवं ग्रामकथाओं को बच्चों के लिए नये ढंग से लिखा। साथ ही खास विलायती ढंग से तैलरंग, जलरंग, स्याही से चित्र भी बनाये।

ऐसे पिता के स्नेह-सान्निध्य में बड़े हुए थे सुकुमार राय। उनके दो भाई और तीन बहनें थीं। उम्र में सबसे बड़ी थीं सुखलता, और उनके बाद थे सुकुमार। रवीन्द्रनाथ के 'राजर्षि' उपन्यास में से लेकर इन भाई-बहन के घरेलू नाम 'ताता' और 'हासि' रखे गये थे।

सुकुमार की स्कूल-कालेज की शिक्षा कलकत्ते में ही हुई। शिवनाथ शास्त्री की 'मुकुल' पत्रिका में प्रकाशित दो बाल्यकालीन रचनाओं के सिवा छात्रावस्था में सुकुमार की साहित्य-रचना का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

कालेज छोड़ने के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने 'नान्सेन्स क्लब' की स्थापना की। उनके साहित्य की मूल धारा किस ओर प्रवाहित होगी, वह इस क्लब के नामकरण

अनुवाद : शरद राकेश

से ही स्पष्ट है। अंतरंग मित्रों को लेकर संघटित इस क्लब के लिए लिखे दो नाटकों 'झाला पाला' एवं 'लक्ष्मणेर शक्तिशेल' एवं क्लब की पत्रिका 'साड़े बत्रिस भाजा' के पृष्ठों में सुकुमार के हास्यरस का प्रथम आभास मिलता है।

ऊपर बताये दोनों नाटकों में से निस्संदेह दूसरा अधिक सार्थक और उपभोग्य है। लेकिन पहले में भी मौलिक प्रतिभा का संकेत है। भाषा के सहारे हास्यरस की सर्जना सुकुमार-साहित्य की एक विशिष्टता है। इसका एक सुंदर उदाहरण 'झाला पाला' में है, जिसमें एक पंडितजी 'आइ गो अप' (I go up) का अर्थ संस्कृत के आधार पर 'गाय रो रही है' करते हैं।

'लक्ष्मणेर शक्तिशेल' नाटक में रामायण के कुछ चरित्रों को महाकाव्य की दुनिया से उठाकर एकदम रंग-तमाशे की महफिल में फेंक दिया गया है। इस रामायण में हनुमान बताशे खाता है, यमदूत का वेतन बकाया रहता है, और विभीषण की दाढ़ी की गंध जांबवान को उद्वेलित करती है। सुकुमार का संगीत-रचयिता रूप पहले-पहल 'लक्ष्मणेर शक्तिशेल' में ही प्रकट हुआ था। सहज छंद और स्वर में रचित गीतों से इस नाटक में हास्यरस की चमत्कारी अभिव्यक्ति हुई है।

लेकिन हास्यरस की जिस विशेष अभिव्यक्ति में सुकुमार अद्वितीय थे, उसका प्रथम परिचय तो 'संदेश पत्रिका' में मिला।

रसायन एवं भौतिकी में डबल आनर्स लेकर बी. एस-सी. पास करने के पांच वर्ष बाद सुकुमार १९११ में मुद्रण-कला की विशेष शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैंड रवाना हुए। इसके एक वर्ष बाद रवीन्द्रनाथ भी लंदन पहुंचे। उनके साथ थी 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद की पांडुलिपि।



पिता सुकुमार राय
[स्केच : सत्यजित राय]

रवीन्द्रनाथ उपेन्द्रकिशोर के समवयस्क एवं मित्र थे; और सुकुमार थे रवीन्द्रनाथ के तरुण भक्त-वृंद के सिरमौर। रवीन्द्रनाथ की कवि-प्रतिभा से इंग्लैंड के विद्वत्समाज का उस समय तक परिचय नहीं हुआ था। इसी समय 'क्रेस्ट' सोसायटी के एक अधिवेशन में सुकुमार ने 'द स्पिरिट आफ रवीन्द्रनाथ' नामक लेख पढ़कर

इस परिचय का पथ प्रशस्त किया था।

सन १९१३ की मई से उपेन्द्रकिशोर के संपादकत्व में 'संदेश' मासिक पत्रिका निकली। इसके कुछ महीने बाद ही सुकुमार भारत लौटे और तभी से उनके चित्र और अन्य रचनाएं 'संदेश' में छपने लगीं।

पहले तीन वर्षों में सुकुमार की रचनाओं की संख्या अधिक नहीं थी। कारण, उपेन्द्रकिशोर उस समय जीवित थे और अकेले उन्हीं की रचनाओं और चित्रों से 'संदेश' के पृष्ठ भरे जाते थे। उन्हीं रचनाओं से, और विशेषत: चित्रों से यह स्पष्ट पता चलता है कि हास्यस्रष्टा के रूप में उपेन्द्रकिशोर कुछ कम नहीं थे।

पौराणिक कथाओं के चित्रों में हास्य के लिए विशेष अवकाश नहीं होता; किंतु वहां भी दैत्य-दानव-राक्षस-पिशाचों का चेहरा अंकित करते समय भयानकरस के साथ हास्यरस को मिलाने में उपेन्द्रकिशोर को जरा भी दुविधा नहीं हुई; और इसीलिए उनके बनाये राक्षसों के चित्र कई बार मनुष्यों के ही उग्र रूप लगते हैं। उनके मानव-व्यंग्यचित्रों में हम अपने अति परिचित जाने-पहचाने लोगों को ही हास्यकर स्थितियों एवं भावभंगिमाओं में देखते हैं। इनमें कार्टूनों जैसी अत्युक्ति और अट्टहास नहीं हैं। इनमें है मृदु, स्निग्ध, सहज हंसी, जिसमें श्लेष या विद्रूप रंचमात्र भी नहीं होता। असल में इस हंसी में उपेन्द्रकिशोर का अपना चरित्र ही प्रतिफलित है। जो उन्हें एक मानव की तरह जानते थे, वे यही कहते हैं।

सुकुमार के हास्य में श्लेष नहीं था, किंतु व्यंग्य अवश्य रहता था। वे जरूरत पड़ने पर उन्मुक्त अट्टहास से भी पीछे नहीं हटते थे; और यह भी उनके अपने स्वभाव का परिचायक था। सुकुमार राय के कौतुकप्रिय, मजलिसी-स्वभाव की बात मैंने और भी बहुत से व्यक्तियों से सुनी है।

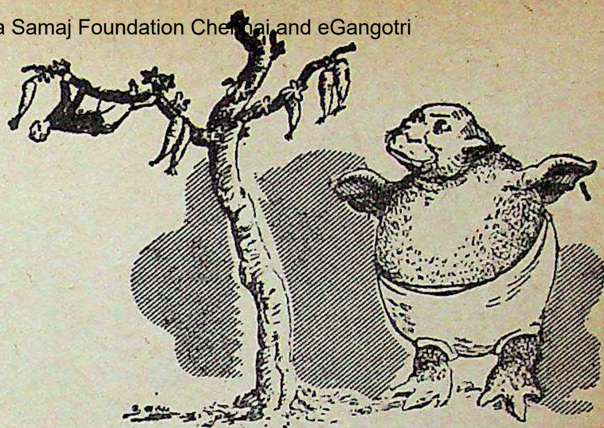
चित्रकारी उपेन्द्रकिशोर और सुकुमार किसी ने भी बाकायदा नहीं सीखी थी। उपेन्द्रकिशोर के चित्रों में तो इसका जरा भी आभास नहीं मिलता; परंतु सुकुमार के चित्रों में यह अवश्य झलकता है। चित्रकारी में उपेन्द्रकिशोर की समकक्षता की अभावपूर्ति सुकुमार ने दो दुर्लभ गुणों से कर ली थी--उनकी असाधारण पर्यवेक्षण क्षमता और निछक कल्पना-शक्ति। इन दोनों के समन्वय से सुकुमार के चित्रों की विषय-वस्तु चित्रकला की तकनीक को लांघकर जीवंत-सी आ खड़ी होती है। इसीलिए सुकुमार-चित्रित किसी भी वास्तविक या काल्पनिक प्राणी का अस्तित्व यथार्थ-सा लगता है। चाहे 'काठ बूड़ो' या 'चंडीदासेर खुड़ो' हो, चाहे 'रामगरुड़' या 'हिजिबिजबिज' या 'गोमराथेरियाम'— सभी समान रूप से विश्वसनीय हैं।

उपेन्द्रकिशोर के संपादन-काल में 'संदेश' में प्रकाशित सुकुमार की कई रचनाओं में उनकी साहित्यिक विशिष्टता भी स्पष्ट झलकती है। १९१४ में 'आबोल-ताबोल' जैसी पहली कविता 'खिचुड़ी' प्रकाशित

हुई और सुकुमार-साहित्य में पहली बार अद्भुत जीव ने सांस ली। उसके बाद ही 'बकच्छप', 'मोरगरू', 'गिरगिटिया', 'सिंहहरिण', 'हातिम', 'काठबूड़ो' की सर्जना हुई। उन्होंने इनके चित्र भी बनाये।

लेकिन सुकुमार ने इन चरित्रों की कल्पना हमेशा मनुष्य रूप में नहीं की। प्राय: ये काल्पनिक भी रहे हैं तभी 'हुंको मुखे ह्यांगला' रचा गया जिसके हाव-भाव तो मनुष्यों से हैं लेकिन अंग-प्रत्यंग पशु-पक्षियों की खिचड़ी हैं। ये 'छेले भुला' या 'छड़ा' के 'हाट्टिमाटिमटिम' या 'एकानड़े' के समगोत्री नहीं हैं। छड़ा (तुक) के इन अद्भुत प्राणियों की कोई चारित्रिक विशेषता नहीं है। शायद 'एकानड़े' एक तरह का जुजु है और हाट्टिमाटिमटिम विशिष्ट शृंगी पक्षी।

दो-एक अद्भुत प्राणियों को छोड़कर सुकुमार के पहले के बंगला साहित्य में काल्पनिक प्राणियों की चर्चा नहीं मिलती। विदेशी साहित्य में निश्चय ही लुई कैरोल एवं एडवर्ड लियर ने कुछ अद्भुत प्राणी रचे हैं। कैरोल की विख्यात कविता 'जैवारोयाकि' के ब्रिलिग और बोरोगोव में सुकुमार की रुचि का थोड़ा-सा आभास है। फिर भी उससे एक मूल अंतर है। 'जैवारोयाकि' के प्राणी ऐसे कल्पना-जगत में विचरते हैं कि उनके कार्यकलाप की वर्णना में एकदम नये शब्द गढ़ने पड़ते हैं।



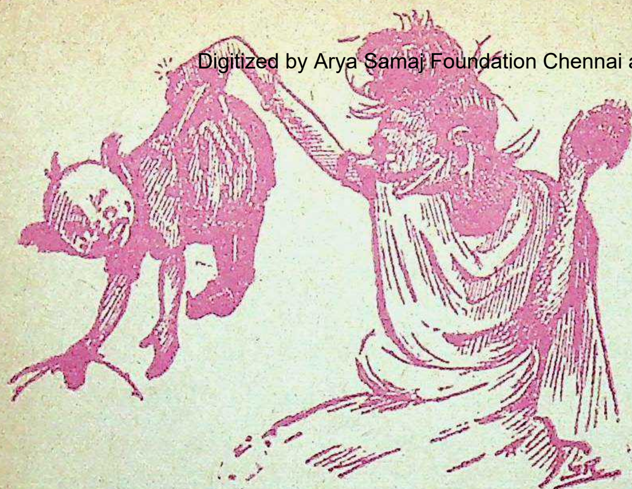
जब कुम्हड़ो पोटाश नाचने लगे तो आपकी खैरियत इसी में है कि आप मूली के झाड़ से बंदर की तरह लटककर झूलने लगें।

लियर ने भी एक से अधिक अजीब प्राणी रचे हैं। लेकिन उनमें से एक भी हमारे जाने-पहचाने जगत के बहुत निकट नहीं आता। वे तो रूपकथाओं में ही मिलते हैं। किंतु 'हुंकोमुखो' का निवास तो पूरे बंगाल में है। सिर्फ यही नहीं :

श्यामदास मामा तार आफिगेर थानादार आर तार केउ नय एछाड़ा।

—श्यामदास मामा उसका आफिङ का दारोगा नहीं और कोई था उनके सिवाय उसका।

ठीक इसी तरह 'टचांश गोरू' अनायास ही हारू के दफ्तर में दिखता है। 'किम्भूत' मैदानों और घाटों के पार रो-रोकर मरता है, निश्चय ही 'कुमड़ोपटाश' भी शहर के आस-पास ही घूमते फिरते हैं, नहीं तो



स्पूकी ...... सुकुमार राय के स्केच भी उनके लेखन की तरह ही आनंददायक थे।

हमें उनसे इतना सतर्क होने की जरूरत नहीं पड़ती। देखता हूं कि सिर्फ रामगरुड़ ने ही संगति के कारण एकांत वातावरण में रहना पसंद किया है, लेकिन वह भी रूपकथा के राज्य में नहीं। निश्चय ही इनकी दुनिया को सच्ची दुनिया कहने से बात नहीं बनती। असल में, यह सुकुमार की अपनी–सिर्फ अपनी–दुनिया है और इसकी रचना में ही साहित्यिक सुकुमार का श्रेष्ठ कृतित्व है।

उपेन्द्रकिशोर अपने पुत्र की साहित्यिक प्रतिभा का आभास मिलने पर भी उसका पूर्ण विकास नहीं देख पाये। १९१५ में बावन वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया और 'संदेश' के संपादन का भार सुकुमार पर आ पड़ा।

ठीक इसी समय स्थापित हुआ 'मंडे क्लब' या सुकुमार की भाषा में 'मंडा लोगों का सम्मेलन'। उस समय के अनेक विशिष्ट तरुण कलाकार, साहित्यकार, शिक्षाविद् एवं काव्यरसिकों के प्रयास से निर्मित इस क्लब के सुमेरु थे सुकुमार। सदस्यों की सूची में सुकुमार के बाद के भाई सुविनय के अलावा सत्येन्द्रनाथ दत्त, अजित कुमार चक्रवर्ती, सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, अतुलप्रसाद सेन, कालिदास नाग, प्रशांतचंद्र महलानविश, प्रभात गंगोपाध्याय, चारुचंद्र वंद्योपाध्याय, निर्मलकुमार सिद्धांत आदि के नाम भी मिलते हैं।

प्लेटो और नीत्शे से लेकर बंकिम, विवेकानंद, वैष्णव कविता, रवीन्द्र-काव्य कुछ भी 'मंडे क्लब' के आलोचना-चक्र से नहीं बचता था। इसके अलावा चलता गाना-बजाना, भोज, पिकनिक, अड्डेबाजी आदि। क्लब की सूचनाएं सुकुमार के प्रेस में छपतीं और उनकी भाषा भी सुकुमार की ही होती। एक बार क्लब-संपादक (सेक्रेटरी) की अनुपस्थिति में सदस्यों के पास छपा हुआ एक पोस्टकार्ड पहुंचा:

संपादक बेयाकूब कोथा जे गिये छे डूब एदिके ते हाय हाय क्लाबटि जे जाय जाय ताई बोलि सोमबारे मद्गृहे गड़पारे दिले सबै पदधूलि क्लाबटिरे ठेले तुलि। रकमारि पूंथि जत निज-निज रुचि मत

आनिबेन साथे सबे किछु किछु पाठ हबे।
......कर जोड़े बार बार निवेदिछे सुकुमार।
–संपादक बेवकूफ कहीं गया है डूब !
इधर मची हाय हाय ! क्लब तो बस जाय
जाय ! तभी कहूं सोमवार मेरे घर किले
पार। पदरज सब देंगे। क्लब आगे ढकेलेंगे।
तरह-तरह की पुस्तक निज मर्जी के मुता-
बिक साथ सब लायेंगे, कुछ-कुछ पढ़ेंगे।
हाथ जोड़ बार-बार कहता है सुकुमार।

सुकुमार के और भी एक कार्य का उल्लेख जरूरी है, जिसका संबंध ब्राह्मसमाज से है। ब्राह्म-युवकों की एक समिति बनाकर साप्ताहिक गोष्ठियों में भाषणों और आलोचना की सहायता द्वारा समाज की चिन्तनधारा और कर्मपद्धति में नवीनता का संचार करना सुकुमार के जीवन का एक प्रधान लक्ष्य था।

ब्राह्मसमाज के आदिपर्व का गौरवोज्ज्वल इतिहास मानो उनमें जोश भर देता था। यद्यपि आदर्शच्युति की कई मिसालों ने उन्हें हताश भी किया था। अंतिम दिनों में बच्चों के लिए पद्य में रचित ब्राह्मसमाज के इतिहास 'अतीतेर छबिर शेष' में कई जगह इसी मायूसी की झलक मिलती है।

'संदेश' के संपादन से पहले शिशु-साहित्य के अलावा उनकी रचनाओं में 'प्रवासी' में छपे कला और भाषा संबंधी कई निबंधों एवं 'चलचित्तचंचरी' और 'शब्द कल्पद्रुम' इन दो नाटकों का भी उल्लेख जरूरी है। निबंधों में सुकुमार के विचारबुद्धि-दीप्त आधुनिक मन का परिचय मिलता है। दोनों नाटकों में मुख्यतः विचारों की प्रधानता है। फिर भी वे चुटीले-हास्यमय संवाद के कारण आस्वाद्य हैं। सुकुमार के मजलिसी मिजाज का भी पूरा परिचय मिलता है इन दोनों नाटकों में। इसलिए पारिवारिक परिवेश में ये खूब जमते हैं।

'संदेश' का भार कंधे पर पड़ने के बाद से सुकुमार की शिशु-साहित्य-सृष्टि दिनोंदिन बढ़ती ही गयी। सिर्फ कहानी, कविता ही नहीं विभिन्न विषयों पर चित्ताकर्षक निबंध, सारे विश्व की छोटी-छोटी खबरें, देश-विदेश की उपकथाएं, स्वरचित 'धांधा', 'हेंमालि' (पहेलियां) आदि से 'संदेश' के पृष्ठ भर उठे। उस समय के 'संदेश' के किसी अंक को लेकर उसकी सामग्री का विश्लेषण करने पर शिशु-साहित्य की सार्थक और शाश्वत परिभाषा के लिए संकेत मिलते हैं। स्कूली कहानियां बंगला में 'संदेश' से पहले भी लिखी गयी थीं, लेकिन 'पागल दाशु' जैसी पहली कहानी में ही सुकुमार ने दिखा दिया कि ऐसी कहानी का उचित रूप क्या होता है।

सुकुमार के संपादक होने के कुछ महीने के अंदर ही एक छोटी कहानी 'संदेश' में प्रकाशित हुई। मेरी राय में यह सुकुमार की एक श्रेष्ठ रचना है। कहानी का नाम है 'द्रिघांचु'। एक राजदरबार में अचानक एक बड़े कौवे के 'कः' (कौन) बोलने पर जो प्रतिक्रियाएं होती हैं वहां हुए उन्हीं का आकलन है इसमें। कहानी के अंत



गंजा, जो गाये बिना नहीं रह सकता।

में राजा साहब राजमहल की छत पर और एक बड़े कौवे के सामने चार पंक्तियों का एक मंत्र बोलते हैं। इस मंत्र का दस पंक्तियों का एक संस्करण सुकुमार ने अपने नाटक 'शब्द कल्पद्रुम' में बृहस्पति के मंत्र के रूप में दिया जो कि 'नान्सेन्स राइम' का उत्कृष्ट उदाहरण है।

सुकुमार राय ने 'नान्सेन्स' के इस विशेष रस का नाम रखा था—'खेयाल रस'। इस रस का आभास दुनिया के सभी देशों की देहाती तुकबंदियों में मिलता है।

बंगला साहित्य के गद्य या पद्य में हास्य-रस के दृष्टांत आदिकाल से मिलते हैं। मंगलकाव्य या मयमनसिंह-गीतिकाव्य में हैं, वैसे ही हुतोम-आलाल-बंकिम-ईश्वर-गुप्त में भी हैं। इनमें निरर्थक (नान्सेन्स) कुछ भी नहीं मिलता। लेकिन इसका मतलब यकीनन यह नहीं है कि अपने पहले के हास्यरसिकों का कोई भी गुण सुकुमार में नहीं था। श्लेष, अनुप्रास, ध्वनि-साम्य आदि की सहायता से हास्य की सर्जना जैसे पहले होती थी वैसी ही सुकुमार ने भी की थी।

असली बात यह है कि सुकुमार के नान्सेन्स प्राय: मौलिक हैं। प्रभाव की बात कहें तो सिर्फ बंगाल की हास्य परंपरा ही नहीं विदेशी साहित्य, पान्टोमाईम, चार्ली चैपलिन, विलायती कामिक्स आदि सभी का प्रभाव सुकुमार की निरर्थक (नानसेन्स) तुकबंदियों पर पड़ा था।

इसीलिए 'आबोल-ताबोल' की भूमिका में उन्होंने लिखा—'यह "खेयाल रस" की पुस्तक है। जो इसमें रुचि नहीं रखते उनके लिए नहीं है यह पुस्तक।'

रवीन्द्रनाथ ने भी अपने अंतिम दिनों में 'अद्भुत छड़ा' (विचित्र तुकबंदियों) के संकलन 'खापछाड़ा' में इसी तरह की कैफियत दी थी। परंतु उनके ये विचित्र तुक्तक सुकुमार के जैसे एकदम निरर्थक और खामखयाली नहीं थे। रवीन्द्रनाथ ने अपनी सहज छंदोलय से पाठकों का कौतूहल अवश्य मिटाया है, परंतु रचना की शैलीगत चातुरी ने निरर्थक कवित्व के पागलपन का रास्ता भी बंद कर दिया है।

१९१५ से १९२३ तक, आठ वर्ष की अवधि में सुकुमार ने संदेश-संपादन किया

किंतु उनके अंतिम ढाई वर्ष तो रोग-शैया पर ही कटे थे।

उनके लेखन और चित्रकारी की श्रेष्ठ कृतियां इसी ढाई वर्ष की देन हैं। 'ह-ज-ब-र-ल' का रचनाकाल १९२२ है। बंगला निरर्थक (नान्सेन्स) गद्य का यह श्रेष्ठ उदाहरण निस्संदेह लुईस कैरोल की 'एलिस' से अनुप्राणित है। यहां भी हरी घास पर सोना, सपने देखना, परिचित-अर्धपरिचित जानवर और मनुष्यों के चरित्र का मेल, भाषा और सामाजिक आचार-विचार एवं नियम आदि पर वक्र रसिकता, और सबसे अंत में नींद टूटने पर स्वप्न जगत से वास्तविक जगत में वापस लौटना संरचित है। फर्क इतना ही है कि 'ह-ज-ब-र-ल' की स्वरूप योजना एकदम से बंगाली है—इतनी कि किसी भी अन्य भारतीय भाषा में भी इसके अनुवाद की संभावना नहीं है।

'हेशोशम हुंशियार की डायरी' भी ह-ज-ब-र-ल की समसामयिक है। इसमें भी 'खेयाल रस' (नान्सेन्स) तो है, लेकिन यह स्वरूपतः पैरोडी है कानन डायल के एक रोमांचक उपन्य।स 'द लास्ट वर्ल्ड' की। डायल की कहानी में बीसवीं शताब्दी का एक प्रोफेसर (चैलेंजर) दक्षिण अमरीका के आमेजन क्षेत्र में एक ऐसी अनजानी दुनिया खोज लेता है जहां आज भी प्रागैतिहासिक प्राणियों का अस्तित्व है।

सुकुमार की कहानी में चैलेंजर प्रोफेसर हुंशियार और घटनास्थल काराकोरम पर्वत का एक अदेखा अनजाना अंश है। यहां भी प्रागैतिहासिक प्राणियों की भरमार है, लेकिन इनका कोई उल्लेख प्राणिशास्त्री या जीवशास्त्री की किसी पुस्तक में नहीं मिलेगा। सिर्फ सुकुमार ही इन्हें पहचानते थे और बंगला और लैटिन के मिश्रण से इनका नामकरण भी वे ही कर पाये थे। इनकी मुखाकृति भी सुकुमार ने ऐसी विश्वसनीय बना दी है कि अजायबघर में जाकर 'लैगबार्गनिस', 'कटकटोडन', 'चिल्लानेरसरास' या 'गोमराथेरियाम' के कंकाल नहीं देख पाने पर अचरज होता है।

बीमारी की अवधि में सुकुमार का मन बार-बार एक रचना की ओर गया है। सुकुमार ने रचना का नाम दिया था—'श्रीश्रीवर्णमालातत्त्व'। बंगला काव्य में अनुप्रास की जो धारा प्राचीन काल से चली आ रही है, उसकी ही एक चमत्कारिक परिणति की संभावना थी इस रचना में। दुःख की बात है कि सुकुमार इसे पूरी नहीं कर पाये।

सुकुमार राय की कोई भी रचना उनके जीवनकाल में पुस्तक-रूप में नहीं छपी थी। 'आबोल-ताबोल' छपा था १९२३ में, उनकी मृत्यु के तेरह दिन बाद। यद्यपि उसकी तिरंगी जिल्द और अंगसज्जा, तथा पादपूरक दो-चार पंक्तियों की कुछ तुकबंदियां, टेलपीस के चित्र इत्यादि वे स्वयं शैयाशायी अवस्था में ही बना गये थे। उनकी अंतिम रचना थी 'आबोल-ताबोल' जिसकी अंतिम कविता का विचित्र

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

कित खोयी कुर्सी मृगनैनी

गोपालप्रसाद व्यास

इस बार क्वार के महीने में रामलीला हुई तो सही, मगर मजा नहीं आया। मजा किसी का नौकर थोड़े ही है। मजा भारत का नेता भी नहीं है कि जब बुलाओ तो माला पहनने और भाषण देने के लिए खुद अपने वाहन पर चढ़के चला आये। वह तो मतदाताओं के मन की लहर है कि कहो तो निहाल कर दें और बिना कहे पामाल कर दें।

हां, तो बात रामलीला की हो रही थी। देवता कोपे, तो कहीं पानी की एक बूंद नहीं और कहीं राजनीति के आश्वासनों की तरह ऐसे बरसे कि खेत-खलिहान जल-जंगल एक हो गये। सन सत्तर में जैसे इंदिरा-दल का सफाया हो गया था, वैसे ही गांव के गांव गधे के सिर पर सींग की तरह गायब हो गये। विभिन्न घटकों के नाले-परनाले जनता की सूखी नदी में ऐसे मिले कि भयंकर बाढ़ आ गयी। उसके सामने जो भी पड़ा, वह ढह गया, बह गया। मगर इस बार तो सावन भी सूखा गया और भादों भी। नतीजा यह हुआ कि सचाई का धान सूख गया। ईमानदारी की दाल कहीं जमी ही नहीं, तो गलती कैसे? लोग मक्का-मदीने तो गये, लेकिन बिना वर्षा के ज्वार, बाजरा और मक्का पैदा नहीं हुए, तब रामलीला का रंग कैसे जमता?

रामलीला होती है चेहरों से। भारत की कोई भी लीला आदमी के असली चेहरे से नहीं खेली जाती। राम राम नहीं होता, रावण रावण नहीं होता। सब नाटक करते हैं। कोई पूंछ लगाने से हनुमान हुआ है? रामलीला के लिए चेहरे उसी तरह आवश्यक हैं, जिस तरह राजनीति के लिए आश्वासन, गरीब-परवरी और मगर के आंसू। जैसे भारत के नेता को अपनी पार्टी की विजय के लिए अपने असली चेहरे को छिपाने के लिए आदर्शों का मुखौटा पहनना पड़ता है, वैसे ही रामलीला में अभिनेताओं को बंदरों, भालुओं, गिद्धों, स्वर्णमृगों और राक्षसों के चेहरे लगाने पड़ते हैं।

लेकिन इस बार चेहरे बनाने वालों ने हड़ताल कर दी। कहा—नकली चेहरे बनाते-बनाते हम तो ऊब गये। इस धंधे में कोई ज्यादा फायदा भी नहीं है। भगवान ने हमारी सुनी। मध्यावधि चुनाव होने को

है। अब हम नकली नहीं, हजारों की तादाद में ऐसे मुखौटे तैयार कर रहे हैं, जिससे वानर नर दिखाई देने लगे और हमारा मुखौटा पहनने पर लोग आदमी को देवता समझकर उसकी जय-जयकार करने लगें और भेड़ की तरह उसके पीछे लग जायें। अब हम कागजी मुगदर और नकली तीर-कमान नहीं बनायेंगे। यह बालवर्ष है। हम बच्चों को हिंसा का पाठ नहीं पढ़ा सकते। दिखावटी आतिशबाजी चलाने से लाभ भी क्या? इस बार का चुनाव कोई नाटक या खेल नहीं है। हमने पार्टियों के एजेंटों के आर्डर बुक कर लिये हैं। इस बार हमारी सुर्रियां 'फुक्क' करके नहीं बुझ जायेंगी। पटाखे 'धुस्स' करके नहीं रह जायेंगे। इस बार आप हमारा कमाल देखियेगा। चुनाव-सभाओं में भगदड़ न मचा दें तो हमारा नाम आतिशबाज नहीं। चुनाव-मंच को नेताओं सहित न उड़ा दिया तो हमारी दाढ़ी भी मियां, मिर्जापुर वाली देवी के सामने मुड़वा देना।

और तो और, कमबख्त एक्टरों ने भी तो इस बार दल बदल लिया। कहने लगे—जब हर पेशेवर ने दल बदल लिया तो हम क्या किसी से कम हैं? लोग बेकार नेताओं को दोष देते हैं। बेहतर सुविधाओं के लिए एक के बाद एक नौकरी बदली जा सकती है तो अपने भविष्य की सुरक्षा के लिए नेता दल क्यों नहीं बदल सकते? हमने भी अपने डायलाग बदल लिये हैं। अब, 'गुरु वशिष्ठ के चरणों में दास राम का प्रणाम स्वीकार हो' के बजाय हम इस वाक्य का रिहर्सल कर रहे हैं कि 'हे पूज्य पिताजी, हे परम पूजनीया माताजी, मेरे प्यारे चाचाजी, चतुरानी चाचीजी, हे मेरे मतलब के गुरु चौधरी साहब! इस बार आपका, आपके घर का, आपकी बिरादरी का परम पावन वोट हमारी पार्टी को ही मिलना चाहिये, नहीं तो आपके जूतों को छूकर आपकी ही कसम खाता हूं कि आपके घर पर धरना देकर यह कीर्तन कर उठूंगा कि—जीना तेरी गली में, मरना तेरी गली में।'

रावण का पार्ट करने वाला एक दिन आईने के सामने खड़ा होकर मुट्ठी ताने यह रिहर्सल कर रहा था—'हे निशाचरो और हे निशाचरियो, नहीं-नहीं, भाइयो और बहनो, हम किसी भी कीमत पर अपनी सोने की लंका को, उसके शानदार सिंहासन को किन्नरों, वानरों और भालुओं के हवाले नहीं कर सकते। हम मर जायेंगे, लेकिन कुर्सी नहीं छोड़ेंगे। कोई हनुमान

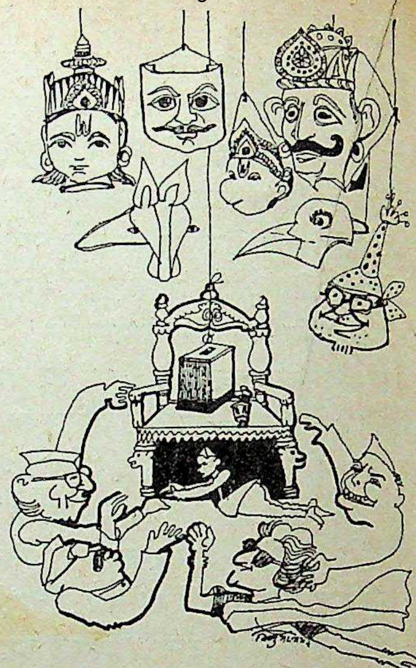


चित्र : भटनागर

हमारी लंका को आकर जलाय, इससे पहले ही हम उसमें खुद आग लगा देंगे। यह हमारी बिरादरी का सवाल है। हमारी भाषा का सवाल है। हमारी सभ्यता का सवाल है। हमारी संस्कृति का प्रश्न है। हमारा धर्म खतरे में है। इसकी रक्षा के लिए आप कमर कसकर खड़े हो जाइये। अपने फौलादी बाजुओं में बंदूक की तरह वोट को उठा लीजिये और मतपेटी पर निशाना दाग दीजिये। जय हो आपकी और भला हो हमारा।'

तो साहब, अंग्रेजी कलैंडर के सप्टेंबर मंथ में जैसे-तैसे रामलीला हुई। हुई क्या लकीर पिटी। रावण, कुंभकर्ण और मेघनाद के पुतलों पर बौने, छौने और सलोने राम-लछमनों के सरकंडों के बेनिशाने तीर चले तो सही, लेकिन निशाचरों के सैकड़ों फुट लंबे पुतले साफ बच गये। विरोधी नेताओं के पुतलों की तरह उनमें भी स्वयंसेवकों ने हाय-हाय करके आग लगायी। राजा रामचंद्र भी अपना नकली पार्ट भूल कर सीताहरण के प्रसंग में असली विलाप करने लगे :

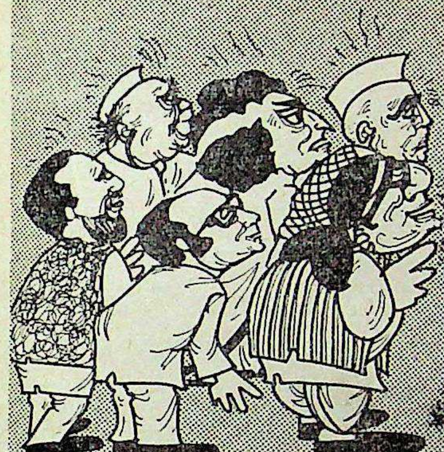
हा गुणखान जान की कुर्सी।
तेरे बिन अब मातमपुर्सी॥
हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी।
कित खोई कुर्सी मृगनैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना।
बिन कुर्सी सब डोलत दीना॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी।
कब मिलिहै कुर्सी-कामिनी॥



चित्र : भटनागर

बरुन पास मनोज धनु हंसा।
सब सत्ता की करहिं प्रशंसा॥
आपुन गुन गन सहज बखानी।
नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुन कुर्सी तेरे बिन आजू।
भूली सुधि-बुधि बिसरे काजू॥
किमि सहि जात विरह तोहि पाहीं।
मिलत प्रिया कुर्सी क्यों नाहीं॥
चरण धरत, चिंता करत,
नींद न भावत शोर।
कुर्सी कह ढूंढ़त फिरत,
नेतागण चहुं ओर॥
सियावर रामचंद्र की जय!

कहा न कि रामायण का पूरा पाठ ही



व्यंग्य चित्र : उमाशंकर

बदल गया, यानी सब ठाठ ही बदल गया। तब दर्शकों और श्रोताओं को लीला का आनंद कैसे आता? आनंद या मजा आता है पैसे से। पैसा इस बार लोगों ने रामलीला के चंदे में दिया ही नहीं। कहने लगे कि बाजार में मंदा है। मध्यावधि चुनावों की घोषणा के कारण चौपट हमारा धंधा है। मांगने वाले अनेक देने वाला अकेला यह बंदा है। जब रात अंधेरी हो तो कहां चंदा है? चंदा वहां दिया जाता है, जहां कुछ धंधा है। इस बार हम रामलीला को नहीं, चुनाव-लीला को चंदा देंगे। देंगे क्या, देना पड़ेगा। नहीं देंगे तो चुन जाने पर लोग हमारे लाइसेंस रद्द कर देंगे, परमिट फाड़ देंगे, दुकानों के तख्ते और मकानों के छज्जे उखाड़ देंगे। इन्कम टैक्स के दबे हुए कागज फिर से उभाड़ देंगे। हमारे दुश्मन नेताओं के कान भरने लगेंगे। इंस्पेक्टर आये दिन चालान करने लगेंगे। ना बाबा, राम-नीति पर चलने से अब तक हमारा कोई भला नहीं हुआ। राजनीति पर संभलकर चलने पर कम-से-कम नुक्सान न होने की गारंटी तो है? संभलकर चलना यही है कि कांग्रेस (इ) वाले आयें तो कहें—आइये! जनता वाले आयें तो कहें—तशरीफ लाइये! लोकदल वाले घुसते चले आयें, तो गद्दी छोड़कर खड़े हो जायें और हाथ जोड़कर कहें—यहां बिराजिये! साम्यवादी आयें तो कहिये—हम तो सेवा के लिए हाजिर हैं, मगर अपने यूनियन वालों से कह दीजिये कि एक घर तो डायन भी बख्श देती है। खुदा न खास्ता मार्क्सवादी भी दल बांधकर आ धमकें तो बोलें नहीं, इतना ही कहें, जो आप सोचकर आये हैं उसके आधे की रसीद

काट दीजिये और नकद ले जाइये। कहने का मतलब यह है कि हम तो जी हिंदू हैं, मूर्ति ही नहीं, पहाड़ों को भी पूजते हैं। गाय की ही नहीं, कुत्ते की भी पूजा करते हैं। देवी के लिए ही नहीं, भैरों के लिए भी बलि देते हैं। पीपल पर ही नहीं, बबूल पर भी जल चढ़ाते हैं।

तो साहब, मनी ब्लाक हो गया और इस बार की रामलीला फीकी हो गयी, इसलिए हमने दुबारा से रामलीला नहीं रामन (रावण) लीला करने की ठानी है। पहले सोचा था कि इसे नवंबर-दिसंबर में करेंगे, लेकिन जुगाड़ नहीं बैठा। फिर लीला के चौधरियों ने तय किया कि दिसंबर-जनवरी ठीक रहेगा। जितने चौधरी, उतनी बात। अब एक लठैत नंबरदार अपनी सलाह को चुनौती बताते हुए एलान कर गये हैं कि अगर फरवरी से पहले लीला की, तो शहर में दफा १४४ लगवा देंगे, झगड़ा हो जायेगा और कर्फ्यू लग जायेगा।

जो भी हो, रामलीला तो होगी और होकर रहेगी। यह धर्म का सवाल है। दीन-हीन आर्टिस्टों की रोजी-रोटी का सवाल है। जनता के मनोरंजन का ही नहीं, उसे प्रशिक्षित करने का सवाल है। जनता को प्रशिक्षित किये बिना लोकतंत्र चल सकता है, रामलीला नहीं चल सकती। नेता अपने उसूलों पर कायम न रहें, लीला वाले अपने उद्देश्यों पर स्थिर हैं। नेता अपनी आस्थाओं से डिग जायें, हम नहीं डिग सकते। यह हमारी बात का सवाल है और बात भी अगर दाढ़ी-मूंछ तक की होती, तो कटवा देते। बाल तो घर की खेती हैं, फिर उग आते, लेकिन सवाल बाल का नहीं, बाल की खाल का है। बात काटी और कटायी जा सकती है; लेकिन नाक न काटी जा सकती है और न कटायी जाती है; क्योंकि इसकी वजह से सीताहरण होता है। सीता-हरण से रावण-मरण होता है। रावण-मरण से रामायण लिखी जाती है।

रामायण लिखने के बाद लोग काम-धाम छोड़कर, उसका खंड और अखंड पाठ करने लगते हैं। जनता धर्म के नाम पर कर्म-विमुख हो जाती है। कर्म-विमुख होने पर देश की तरक्की नहीं हो सकती, गरीबों का भला नहीं हो सकता और आप तो जानते ही हैं कि हमारा जन्म तो देश की गरीबी मिटाने के लिए ही हुआ है। उसे हमारे सिवाय और कोई नहीं मिटा सकता। लोग अपनी गरीबी मिटा रहे हैं, देश की नहीं। इसलिए हम और हमारे साथी हाथ जोड़कर आपकी सेवा में पहुंचने वाले हैं कि हमारे अगले-पिछले खोटों की तरफ ध्यान न दें। जरूरत समझें तो हमारे थैले में पड़े इन नोटों की तरफ ध्यान दें। नोटों का क्या है? यह तो जैसे आये हैं, वैसे ही जायेंगे। अगर आपके काम आयेंगे तो हम भर पायेंगे।

हम आपकी वोट (नाव) पर ही चढ़कर चुनाव की वैतरणी पार कर सकते हैं, लेकिन बिना आपकी वोट के हम न दीन के रहेंगे और न दुनिया के।

—बी ५२, गुलमोहर पार्क, नयी दिल्ली-४९



दीपावली अंक में हमारे आग्रह पर अनेक जाने-माने साहित्यकार-पत्रकार-विचारकों ने एक वाक्य में अपना जीवन-दर्शन लिख भेजा था। हमारे अनेक कृपालु पाठकों ने भी अपने उत्तर भेजे, जो दीपावली अंक में स्थानाभाव के कारण जा नहीं पाये थे, वे इन पृष्ठों में प्रस्तुत हैं।

एक वाक्य में जीवन-दर्शन

किशोरीरमण टंडन

शिकायतों की तंग गली में रहने के बजाय कृतज्ञता की विस्तृत दुनिया में मुक्त विचरण!

o

डा. माहेश्वरी सिंह 'महेश'

ठुक-ठुक करते चलो बात कुछ बन जायेगी।
पग-पग बढ़ते चलो, कभी मंजिल आयेगी।

o

डा. बी. एल. कपूर

समुद्र इव गाम्भीर्यें धैर्येण हिमवान् इव।

o

कैलाश त्रिपाठी

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। (मेरा मन कल्याणमय संकल्पों वाला हो।)

o

डा. श्यामसुंदर दुबे

सामाजिक अन्याय और शोषण के खिलाफ, अपनी रचनात्मक शक्तियों द्वारा जन-जीवन में जागृति ला सकूं।

o

डा. जमुना प्रसाद जलेश

एक विशेष पात्र के रूप में रंगमंच पर अपनी कला के निखार हेतु बार-बार आना और परदा गिरते ही पुनः पृष्ठभूमि में अदृश्य हो जाना।

o

अजित कुमार (पटना)

अन्याय से संघर्ष तथा न्याय से प्रेम।

o

निर्मल मिलिंद

अधिक मीठे फलों में कीड़े लग जाते हैं, अतः वाणी और व्यवहार की मिठास की भी सीमा होनी चाहिये।

o

मोहम्मद सहीद शेख

प्रकृति-प्रेम, भ्रमण और अकेलापन।

o

रमेश चमन

अतिरिक्त सुविधाओं को त्यागकर, हर हालत में जिज्ञासु बने रहना।

o

देवधर महंत

जीवन ही संघर्ष और संघर्ष ही जीवन है।

०

शेखर चंद्र बुधानी

विकास ही जीवन और संकोच ही मृत्यु है। प्रेम ही विकास, और स्वार्थपरता ही संकोच है। इसलिए प्रेम ही जीवन का मूलमंत्र है। प्रेम करने वाला ही जीता है और स्वार्थी मरता रहता है। इसलिए प्रेम प्रेम के ही लिए करो; क्योंकि एकमात्र प्रेम ही जीवन का वैसा आधार है, जैसा कि जीने के लिए श्वास लेना।

[स्वामी विवेकानंद]

०

संजीव वर्मा

किसी सिद्धांत की सीमा में बंधकर मत रहो; बदलते समय व परिस्थितियों के साथ मनन, चिंतन व कर्म को बदलते रहो।

०

मीना शर्मा

जरूरतें कम करना और जिज्ञासा को जन्म देना।

०

बी. बी. राय

अपनी एक रोटी भी बांटकर खा सकूं।

०

श्रीमती राजलक्ष्मी शिवहरे

निरंतर संघर्ष ही जीवन है।

०

राजेश 'रिक्त'

प्रेम से सौंदर्य की उत्पत्ति होती है; सौंदर्य से प्रेम की नहीं—इस कथन की सत्यता को जीवन द्वारा प्रमाणित करना।

०

छोटे लाल

बिना तरजीह के चुनो, बिना कामना के कार्यगत करो। [श्रीमाताजी]

०

शैलेन्द्र कुमार

जीवन जैसा भी बीते परंतु शुभ और सत्य के लिए उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्नशील रहे।

०

सत्य स्वरूप दत्त

जिसका दृष्टिदीप बुझ जाये उसका पथ-प्रदर्शन सूर्य भी नहीं कर सकता।

०

रमेश चंद्र भरतिया

मेरा जीवन अंगूर का दाना—कुछ खट्टा कुछ मीठा है।

०

राहुल कुमार सिंह

यदि मृत्यु के सिवा जीवन का कोई उद्देश्य है तो यह कि औपचारिकता जानकर जीवन के सभी कर्तव्यों का बिना लोभ के निर्वाह।

०

रामकुमार पांडेय

तेरा वैभव अमर रहे मां
हम दिन चार रहें न रहें।

०

राजेश कुमार सिंह

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।

तिष्ठं स्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ।।
चरैवेति चरैवेति । [ऐतरेय ब्राह्मण]

०

कौमुदी मिश्र

स्वांतः सुखाय बहुजनहिताय, सतत स्वाध्याय ।

●

डा. महावीर सिंह मुडिया

मैं शरीफ हूं, सभी शरीफ हैं, यह मानता हूं; यही मेरी असफलता है । तो क्या शराफत छोड़ दूं ? नहीं ।

०

रघुपति हेगडे कडवे

दल बदलकर वोट मांगने वाले अवसरवादियों को कभी वोट न देना ।

०

सुशीला हेगडे कडवे

मोरनी की तरह इस दुनिया का सौंदर्य देखकर नाचूं और बादलों की तरह इसके हरेपन के लिए बरसूं ।

०

शिवदयाल काबरा

अभी की राजनैतिक उठा-पटक को देखते हुए—'कोउ नृप होउ हमहि का हानी, चेरि छांड़ि अब होब कि रानी !'

०

अखिल विनय

परहित सरिस धरम नहिं भाई ।

०

श्रवण कुमार दोपावरे

मीठा बोलो चाहे झूठा बोलो ।

०

तुलसी नीलकंठ

जीवन एक लंबी यात्रा है ।

०

लीलाबहादुर पौंडेल क्षत्री

ज्योतिर्गामी संतुलित जीवन-चर्या ।

●

अखिल कुमार जैन

भाषण चांदी है, मौन सोना है । भाषण मानवीय है, मौन दैविक है ।

[जर्मन कहावत]

०

सर जौनसारी

निरंतर कार्यरत रहो और इससे जो कुछ पाते हो, उसमें संतोष और प्रसन्नता अनुभव करो ।

०

जगदीश किंजल्क

ईश्वर मुझे कटु से कटु वचन सुनने और मीठे से मीठे वचन बोलने की क्षमता दे, फिर मैं निर्भय होकर लक्ष्य तक पहुंच सकूंगा ।

०

कुमारी मीरा वर्मा

जब हम कोई कार्य करने की इच्छा करते हैं तो शक्ति अपने आप आ जाती है ।

[मुंशी प्रेमचन्द कृत 'गबन' से उद्धृत]

●

पी. के. महेश

मेरे पिताजी अक्सर कहते हैं—'बेटा, बुढ़ापे और गरीबी का कभी भी मजाक

मत उड़ाना।'

०

जी. वी. शेट्टिगार

'चलने वाले ही ठोकर खायेंगे, बैठने वाले नहीं।' [कन्नड कवि राघवांक]

०

डा. शुकरत्न उपाध्याय

स्वयं को स्रष्टा की लीला का यंत्र समझकर सभी का शुभ चाहते हुए द्वंद्वों में भी अपने अखंड आनन्द को सुरक्षित रख, उत्तरदायित्वों के प्रति पूर्ण सजग चेतना के आलोक में, चट्टानों के प्रतिरोधों में भी प्रवहमान पहाड़ी झरने की तरह जीवन-लक्ष्य की ओर अजेय संकल्प और पूरे उल्लास के साथ निरंतर गतिशील बने रहना।

०

महेन्द्र भानावत

काम में जी-जान, बना रहे स्वाभिमान।

०

रूपनारायण

सत्य एवं विधान (कानून) का दृढ़ता से पालन करना एवं कराना।

०

महावीर प्रसाद अग्रवाल

जीवन किसी से संयुक्त होने में है। अच्छे से अच्छा होने की प्रक्रिया में इसका दर्शन है : 'योगस्थ: कुरु कर्माणि'।

०

श्याम मनोहर व्यास

रोगग्रस्त शरीर सह्य हो सकता है, रोगग्रस्त मन नहीं।

०

डा. खेमराज मेहता

उत्तिष्ठित जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

०

दामोदर लखानी

और कितने समेटे पृष्ठ इसके
जिंदगी बिखरा कथानक हो गयी।
देख ली हमने चरम सीमा बहुत
अंत में हमसे बगावत हो गयी।

[सुश्री प्रज्ञा तिवारी की कविता]

०

शरद श्रीमाल

किसी बुद्धिमान को बोलने के अनेक अवसर दो, लेकिन मूर्ख को मुंह खोलने का मौका भी मत देना।

०

आदिकुमार जैन

'विश्वास वह पक्षी है जो प्रभात के पूर्व अंधकार में ही प्रकाश का अनुभव करता है और गाने लगता है।

[रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

०

अवधेश

सत्य सदा सूली चढ़ता है,
असत राज सिंहासन,
किंतु सत्य ही कहता रहता,
असतराज का शासन।

०

नारायण कृष्ण जोशी

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या

जीवनं सत्यशोधनम् ।

०

नयनतारा नत्थानी

सुख की छायाएं झीनी-झीनी
दुख तो वर्षा की धूप सरीखा है।
सातों ही रंग नयन में बसते हैं
बाहर का जग तो फीका-फीका है।

०

पुष्पलता जैन

शिक्षा प्राप्त करने के तीन आधार स्तंभ—अधिक निरीक्षण, अधिक अनुभव, अधिक अध्ययन।

०

अभय कुमार जैन

सर्वश्रेष्ठ जो कुछ तुम्हारे पास हो उसे दुनिया को दे डालो; उसके बदले में तुम्हें सर्वश्रेष्ठ ही मिलेगा।

०

रामसरनदास

खाओ, पियो करो आनन्द,
भाड़ में जाये परमानन्द !

०

भुवनेश्वरी प्रसाद 'भुवन'

यदि हम अपने जीवन में त्याग, प्रेम तथा पवित्रता को उतार सकें तो हमारे लिए और कुछ भी करना शेष नहीं रहता।

राजेंद्रप्रसाद लहरिया

पथ-शूलों पर चलकर भी मानवता की अर्चना, प्रेम की उपासना और हैवान नियत की अवहेलना करना मैंने अपना कर्तव्य समझा है।

०

डा. बी. पी. खरे

जीवन की सरलता और सच्चे सुख की प्राप्ति अपने-अपने कर्तव्य-क्षेत्र में समुचित और कल्याणकारी श्रम करने से होती है।

०

डा. वसन्तकुमार श्रीमाल

यद् भाव्यं तद् भविष्यति।

०

सच्चिदानन्द 'सिद्धार्थ'

अपनी अंतिम सांस तक भी किसी के काम आ सकूं।

०

गीता मेहरा

ऐसा कोई काम नहीं करना, जिससे अपनी आत्मा और परमात्मा के सामने आंखें नीची करनी पड़ें।

०

मीना मेहरा

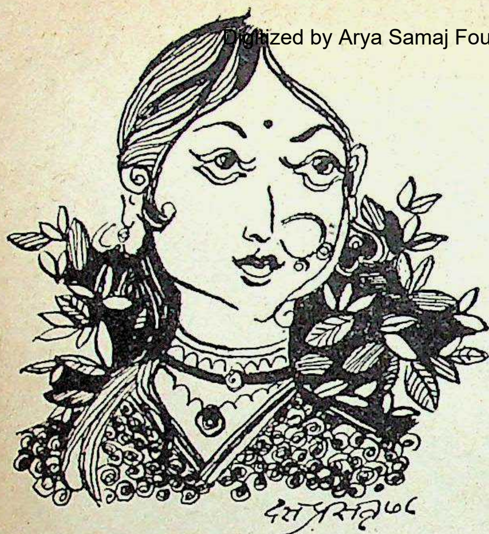
जीवन को बढ़ाना नहीं, सुधारना चाहिये।

०

मिट्ठूलाल भारती

पीड़ित मानवता से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है।





सुंदरता का रहस्य

आखिर सुंदरता का रहस्य क्या है—खास तौर पर स्त्री की सुंदरता का ?

वस्तुतः सुंदर स्त्री में केवल नखशिख का ही सौंदर्य नहीं होता; बल्कि उसमें एक आंतरिक सौंदर्य का प्रकाश भी होता है, जिसका उसके बनाव-सिंगार या साज-सज्जा से कोई संबंध नहीं होता, न उसकी उम्र से ही उसका संबंध होता है।

जैसा कि एक मनोविज्ञानी ने कहा है, किसी स्त्री को बच्चे की फोटो दिखाइये और देखिये कि उसकी आंखें किस प्रकार चमक उठती हैं। और उसे बच्चे के साथ बैठी उसकी मां की फोटो दिखाइये, तो उसकी आंखें और भी चमक उठेंगी और चेहरे पर ममता उभर आयेगी। तब उसके चेहरे पर वास्तविक सुंदरता दिखाई देगी; क्योंकि वह उसके अंदर से प्रस्फुटित हो रही होगी।

हम सबने वह सुंदरता देखी है, जो मां बनने वाली किसी स्त्री के या गोद में बच्चा लिये किसी मां के चेहरे पर झलक रही होती है। लेकिन कई स्त्रियां अपनी भावनाओं को इस हद तक जागृत नहीं कर पातीं कि उनके अंदर की सुंदरता उनके चेहरे पर प्रकट हो। इस मामले में उन्हें कई बार पुरुषों से वह सहायता नहीं मिलती जोकि मिलनी चाहिये। वास्तव में, उनकी कई भावनाओं को पुरुष ही जगा सकते हैं।

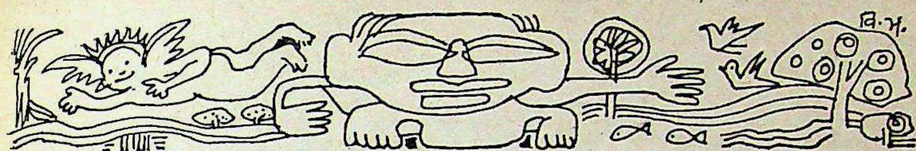
हमारे पूर्वज इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझते थे। उनका कहना था कि पुरुष का थोड़ा-सा प्यार और अपनत्व-भरा साथ स्त्री को कुछ का कुछ बना सकता है।

प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक जे. बी. प्रीस्टले ने बहुत पते की बात कही है :

'वह सुंदर नहीं थी, लेकिन वह आकर्षक बन सकती थी, बशर्ते उसे कोई कभी-कभी यह एहसास कराता कि वह सुंदर है।'

—डेविड गन्स्टन





जिंदगी के युद्ध का हिस्सा

—नंद चतुर्वेदी

बहुत दिनों तक
गहरी नीली अतलांत झील की याद नहीं आती
आती है तो
एक अकथनीय दुःख की हवा और वर्षा के
झिंझोड़े हुए पेड़ की तरह खड़ा रहता हूं
चलता हूं अच्छे-बुरे दिनों की स्मृति और आतंक के
बीचो-बीच

०

पुरानी दुनिया का सारा बोझ कंधों पर है
काल पत्थर को घिसता है
यह है
लेकिन तब तक जंगल के तमाम वृक्षों की
नसें टूटी हुईं, छिन्न-भिन्न
वनस्पतियों का शोक
एक अंधेरे में बहती हुई नदी के
क्रुद्ध एकालाप से बढ़कर कुछ नहीं होता

०

धूप की याद आती ही रहती है
धूप के दिन, हवा की थापों से चलते

बादल पुलों के सपने
धूप में नहाये वृक्षों के कुंज
फिर-फिर आश्वस्त होना
अपने प्रति, धूप, बादल और हवा के प्रति
लेकिन इसी बीच
लौटता है बार-बार
रेंगता हुआ धीरे-धीरे अंधेरे की तरफ घिसटता दिन

०

पीले रक्तहीन लोगों में बैठा हुआ मैं प्रतीक्षा करता हूं
एक फल की और धूप-किरण की
जिसकी स्मृति अब सिर्फ व्यंग्य हंसी रह गयी है।

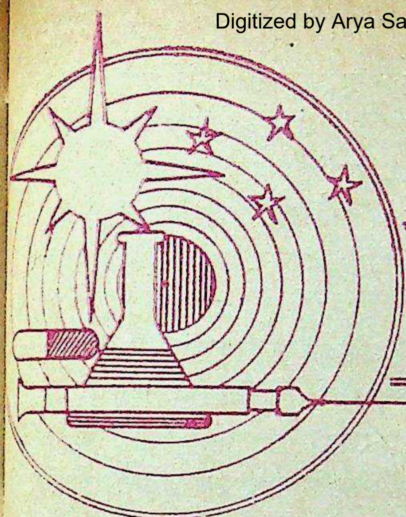
०

हवाओं का वेग थक गया हो ऐसा नहीं है
लेकिन मां जिस पेड़ के नीचे बैठी है
वहां पत्ता तक नहीं हिलता
एक पेड़ के सपने का
इस तरह मिट्टी में मिलने का
दुःख जो भी हो
हवा का रुकना
एक असह्य त्रास है

०

यही सोचना, डूबे रहना
हटाना निराशा की धुंध
फिर डूबना, उठना
यह दिनचर्या का हिस्सा है
जिंदगी के युद्ध का हिस्सा भी।

—३०, अहिंसापुरी, फतहपुरा,
उदयपुर (राजस्थान)



विज्ञान बिंदु

● जिता

आदमी की जिंदगी का सबसे बड़ा डर है—मौत का डर। भारतीय चिंतन मौत को शरीर बदलना भर मानता आ रहा है। मौत को रहस्य अब विज्ञान भी नहीं मानता। उसके अनुसार वह सामान्य यानी रहस्यविहीन एक जैव प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को समझने के जो अनेक प्रयास हुए हैं, उनसे यह बात उभर कर सामने आयी है कि मृत्यु के लिए उत्तरदायी प्रक्रिया की गति को नियंत्रित कर पाना असंभव नहीं है।

यहां यह समझ लें कि मनुष्य को अमर बनाये जाने की बात विज्ञान नहीं कर रहा है। संसार की किसी भी जैव प्रक्रिया को अनंत काल तक अक्षुण्ण बनाये नहीं रखा जा सकता। जो बात कही जा रही है वह यह है कि समय से पहले होने वाली मौतों को रोका रखा जाना नामुमकिन नहीं है। अनुमान यह है कि अधिकांश मौतें, नासमझी और लापरवाही की वजह से समय से पहले ही शरीर को निर्जीव बना देती हैं। इस कच्ची या असामयिक मृत्यु को रोकने की प्रक्रिया को अब एक नये शब्द 'पुनःसप्राणीकरण' (रिएनीमेशन) से संबोधित किया जाने लगा है।

रूसी वैज्ञानिक डा. व्लादामीर नेगोव्स्की विश्व के जाने-माने पुनःसप्राणीकर्ता- (रिएनीमेटर) हैं। वे मास्को विश्वविद्यालय में रीएनिमेटालाजी विभाग के अध्यक्ष हैं। हाल ही में उन्होंने पिछले चालीस सालों से चले जा रहे इस क्षेत्र के अपने अनुसंधान-कार्यों और अपनी उपलब्धियों पर प्रकाश डाला है, जिससे कई चौंकाने वाले तथ्य सामने आ सके हैं। डा. नेगोव्स्की के अनुसार, मनुष्य का स्वाभाविक आयुष्य डेढ़ सौ वर्ष के आस-पास होना चाहिये। उदाहरण के लिए जब कोई डाक्टर यह कहता है कि उसके मरीज की मृत्यु खून की कमी के कारण हो गयी तो वास्तव में वह बहुत बड़े जघन्य अपराध की स्वीकृति-

भर करता है। ऐसी मृत्यु को वे चिकित्सीय मृत्यु (किलीनिकल डेथ) कहा करते हैं। निःसंदेह ऐसे मरीजों को बचाना असंभव नहीं कहा जा सकता। डा. नेगोव्स्की का कहना है कि दुनिया-भर में लाखों ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, जो इस क्षेत्र में प्रशिक्षित किये जा सकें। स्वयं उनके अनुसार वे इस क्षेत्र में इतनी निपुणता हासिल कर सके हैं कि पांच-छह से लेकर पंद्रह मिनिट तक मौत को आगे के लिए टाल सकते हैं और उन्हें विश्वास है कि शरीर के ताप को कम करके इस अवधि को दो-तीन घंटों तक के लिए बढ़ाया जा सकता है।

वे बताते हैं कि शरीर के यांत्रिक ढांचे के अचानक निष्क्रिय होने को रोकने के लिए उचित विधि द्वारा कृत्रिम श्वसन, हृदय की मालिश, विद्युत आघात (शाक) औषध, हाइपोर्थामिया (शारीरिक ताप का कम होना) तथा हाइयोक्सिया (शरीर की कोशिकाओं में आक्सिजन की कमी हो जाना) के नियंत्रण की आवश्यकता होती है। इस पद्धति के विशेषज्ञ मृत्यु को कोई 'निश्चित क्षण' न मानकर एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में ही स्वीकारते हैं।

प्रो. नेगोव्स्की के अनुसार, उनके इस सनसनीखेज अनुसंधान का एक रोचक पहलू यह है कि उनके द्वारा पुनर्जीवित किये गये अनेक मरीजों को डाक्टरी मृत्यु (क्लिनिकल डेथ) के बाद एक 'नये जीवन' की संवेदनाओं का अनुभव हुआ। परंतु पश्चिम के विभिन्न गैर-साम्यवादी देशों में हो रहे इस प्रकार के परीक्षणों से प्राप्त निष्कर्षों से उन्होंने अपनी गहरी असहमति प्रकट करते हुए कहा है कि इस प्रकार के अनुभव रोगी मस्तिष्क के वहम अथवा भ्रम से अधिक कुछ नहीं हैं। ऐसे अनुभव सारे संसार में होते हैं, इसका भी कारण यही तो है कि मन-मस्तिष्क की संरचना और संचालन-प्रक्रिया विश्व-भर में एक-सी है।

संतान-शाप

औलाद के चक्कर में हमारे यहां परिवार नियोजन के इस युग में भी कोई-कोई नारी अपने जीवन से हाथ धो डालती देखी जाती है। मगर पश्चिम के देशों में यह चक्कर औलाद पाने का नहीं, उससे बचने का है। ब्रिटिश मेडिकल जर्नल की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार पैंतीस से लेकर चवालीस के बीच की उम्र वाली कई महिलाओं की मृत्यु का कारण उनका गर्भ से बचने के लिए गर्भरोधी 'पिल' का लगातार इस्तेमाल करना पाया गया है। इसकी तुलना में गर्भ, प्रसव या गर्भपात के कारण होने वाली मृत्युओं की संख्या अब काफी कम हो गयी है। १९७५ की अवधि में 'पिल' के कारण ही ब्रिटेन में पंद्रह महिलाओं को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है।

बताया गया है कि 'पिल' के अधिक प्रयोग से रक्त-परिचक्रण संबंधी रोगों का खतरा काफी बढ़ जाता है। 'पिल' के कारण होने वाली अधिकांश मृत्युओं का कारण यही रोग है। परंतु ट्यूमर और गर्भाशय-ग्रीवा के कैंसर के मामले भी

बने में आये हैं। एक महिला तो 'पिल' के कारण अपनी आंखों की रोशनी ही खो बैठी थी। इसके अतिरिक्त, मानसिक विक्षेप के अनेक मामलों का कारण भी 'पिल' को ही पाया गया है।

प्रोटीन हमारे भोजन के वे पोषकतत्त्व होते हैं, जो शरीर के निर्माण में ईंटों का काम करते हैं। प्रोटीन किसी एक योगिक-विशेष का नाम नहीं है। यह एक वर्ग है जिसमें काफी बड़ी संख्या में योगिक शामिल होते हैं। हर प्रोटीन का अपना अलग-अलग रासायनिक नाम है और शरीर में हर प्रोटीन के अलग-अलग काम भी निश्चित हैं।

नये प्रोटीनों की खोज, उनकी रासायनिक संरचनाओं के निर्धारण और शरीर में उनके महत्त्व को लेकर जैव-विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधान-कार्य का अपना विशेष महत्त्व है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित दो लेखों के अनुसार, एक भारतीय और एक जर्मन वैज्ञानिक के एक दल ने सांड के ताजा वीर्य के प्लाज्मा में से एक नये प्रोटीन की खोज की है। प्लाज्मा उस द्रव को कहते हैं जिसमें शुक्राणु (स्पर्म) अपनी प्राकृतिक अवस्था में तैरते रहते हैं। इस प्रोटीन का नाम है—सेमिनलप्लाज्मिन। और यह नयी खोज करने वाले वैज्ञानिक हैं—रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी, हैदराबाद के डा. पी. एस. भार्गव और पश्चिम जर्मनी के मेक्स प्लांक इन्स्टिटयूट आफ बायोकेमिकल्स के डा. शोट।

चेतन चुंबक

कई अन्य पक्षियों की तरह कबूतर का दिशा-ज्ञान भी गजब का होता है। कहीं छोड़ दीजिये, वह सीधे बिना ज्यादा भटके-अटके अपने निवास-स्थान पर पहुंच जायेगा। दूरी कितनी ही क्यों न हो, उससे कबूतर को अपना स्थान खोज लेने में कोई बाधा नहीं पड़ती। इस क्षेत्र के अध्येताओं को इतना तो मालूम हो चुका है कि इस काम में ये पक्षी सूरज की स्थिति की सहायता लेते हैं और रात में या बादल होने पर जब सूर्य लापता होता है, तब पृथ्वी के चुंबक का। मगर इससे आगे शोध की गाड़ी अटकी हुई थी।

अब एक महत्त्वपूर्ण खोज की है न्यूयार्क की स्टेट यूनिवर्सिटी के जाने-माने जीव-विज्ञानी प्रो. चार्ल्स वाल्कोट ने। उन्होंने कबूतर की आंख के गड्ढे के पीछे और मस्तिष्क के समीप एक ऐसे ऊतक (टिश्यू) का पता लगाया है, जो आकार में एक वर्ग मिलिमीटर से भी छोटा है, और लौहतत्त्व से सम्पन्न है। रासायनिक रचना की दृष्टि से यह लौहतत्त्व वहां मेग्नेटाइट अथवा लोड स्टोन नामक खनिज के रूप में उपस्थित रहता है, जो कि एक चुंबकीय पदार्थ है। यानी कबूतर के शरीर में एक चुंबक मौजूद रहता है।

'बोस्टन संडे ग्लोब' नामक पत्रिका में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार, प्रो. वाल्कोट का कहना है कि अभी निश्चित रूप से इस

चुंबकीय ऊतक और [illegible] के बीच के संबंध तो सिद्ध नहीं किया गया है; परंतु इससे इस दिशा में नया शोध-सूत्र अवश्य हाथ लग गया है।

भूचाल की चाल

भूचाल आते रहे हैं और ले जाते रहे हैं अपने साथ सैकड़ों-हजारों बेगुनाह इंसानों की जानें। दुनिया के किसी न किसी हिस्से में ये हर वर्ष आते हैं—कभी कहीं तेज और कभी कहीं हल्के। भूचाल का रोक पाना शायद मानव की शक्ति और सामर्थ्य के बाहर है। उससे बचने के लिए इस दिशा में प्रयत्न किया जा रहा है कि उसके घटित होने से पहले उसका अनुमान लगाया जा सके। मुख्य प्रश्न है इस अनुमान का आधार क्या हो। अब तक कई विकल्प सामने आये हैं। आप इस स्तंभ में पहले पढ़ चुके हैं कि पशु-पक्षियों के व्यवहार में आकस्मिक परिवर्तन से भावी भूकंप का अनुमान किया [illegible] है। इस विषय में चीन में हुए शोधकार्य पर एक पूरा लेख भी आप **नवनीत** (जून १९७९) में पढ़ चुके हैं।

बताया जाता है कि चट्टानों की विद्युत-चालकता जिन घटकों पर निर्भर है, वे भूकंप आने से पूर्व पृथ्वी के उदर में होने वाले परिवर्तनों से इस सीमा तक प्रभावित होते हैं कि चट्टानों की विद्युत-चालकता में भी परिवर्तन आ जाता है और इस परिवर्तन को नापा भी जा सकता है। ये घटक हैं—चट्टान का आयतन, उसमें बने छिद्रों की रचना और छिद्रों में मौजूद तरल पदार्थ की अपनी चालकता।

रूस में अब इस पद्धति को इतना प्रामाणिक माना जाने लगा है कि वहां भूकंप-संवेदी क्षेत्रों में बड़े-बड़े जनित्र लगाये जा रहे हैं। इन जनित्रों से उत्पन्न विद्युत-चुंबकीय क्षेत्र के कारण चट्टानों में होने वाले विद्युत-परिवर्तनों पर हर समय निगाह रखी जा सकेगी।

★

[पृष्ठ ४७ का शेषांश]

मिला-जुला आस्वाद बंगला साहित्य में सदा विस्मयकारी वस्तु रहेगा। इसकी रचना के समय उन पर मृत्युछाया पड़ी थी, उसका संकेत अंतिम कई छंदों में है—

'आदिम कालेर चांदिम हिम
तोड़ाय बांधा घोड़ार डिम
घनिये एलो घूमेर घोर
गानेर पाला सांग मोर।'

—आदिम समय यह चंद्रीय हिम मानो खांचे में रखा घोड़े का अंडा है। मुझे भी अब घोर निद्रा आ रही है और यह गान का मेरा अवसर अब समाप्त हुआ।

जीवन-मृत्यु की संधि वेला में ऐसी रसिकता किसी अन्य रससर्जक के लिए संभव हुई या नहीं मैं नहीं जानता।

०००

[लेख सत्यजित राय और पार्थ वसु द्वारा संपादित एवं आनंद पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशनाधीन पुस्तक 'सुकुमार साहित्यसमग्र' से प्रकाशित।]

★

मेरा बचपना सही

मैं चाहता हूं
कि पेड़ के पहले फूल को देखूं
अचानक कब
वह डाल पर फूट निकलता है
कैसे खिलता है।

मैं चाहता हूं
अंडे से निकलती गौरैया देखूं
और देखूं
वह तुतलाते–तुतलाते
अचानक कैसे जवान हो जाती है
और कब पहला अंडा देती है।

मैं चाहता हूं
कि मुंह अंधेरे उठूं
घुप्प, काले आसमान को
पहले सिलेटी
फिर नीला होता हुआ देखूं
सुबह को होता हुआ देखूं।

मैं चाहता हूं
कि पहाड़ी के पीछे
उगता सूरज देखूं
उसकी अग्रभूमि में
ताड़ के पेड़ों की
स्पष्ट होती हुई आकृतियां देखूं।

मैं चाहता हूं
कि जब तक यह सब
अपनी आंखों से न महसूस कर लूं
कोई मुझे यह न बताये
कि ये बातें पुरानी हो चुकी हैं
साहित्य में बेमानी हो चुकी हैं।

मैं चाहता हूं
कि उगते हुए सूरज का रंग
खुद पहचानूं।
कोई मुझे यह न बताये
वह कैसा होता है
कहां से आता है
कैसे उगता है ?

जो बिना बताये नहीं रह सकता
मैं चाहता हूं
वह पहले
अपने घर की आधी रोटियां लाये
मुस्कराकर, आदर से मुझे खिलाये
जब तक वह ऐसा नहीं करता
मैं उसकी बात
नहीं सुनना चाहता
उसके सूरज का रंग
नहीं जानना चाहता
चाहे वह कोई भी हो।

— यज्ञ शर्मा

जी–१२।१७, जलपद्मा, बांगड़ नगर,
गोरेगांव (प.), बंबई–४०००९०



तेल कहां है?

• रमेशदत्त शर्मा •

यह तिल ही था जिसे हमारे पूर्वज दिल दे बैठे और उसी के बीजों के चिकनाई-भरे निचोड़ को 'तैल' (तेल) कहा गया था। पर अब तो शायद ही कोई चीज बची हो, जिसका तेल न निकाला जाता हो— मिट्टी से लेकर मछली और आदमी तक। यों आदमी को खुद हर रोज ३० ग्राम चिकनाई चाहिये। पर अपने देश में अगर हर कोई तेल खाने लगे, तो प्रतिदिन ११ ग्राम से ज्यादा किसी को न मिले। आधी आबादी तो गरीबी के ऐसे अंधेरे में डूबी है कि उसे दिया जलाने को क्या, दूर से दिखाने को भी तेल नहीं मिलता।

तिल के अलावा सरसों (सर्षप), अरंड और अलसी तथा नारियल भी हमारे पूर्वजों को मालूम थे। पर आज तेल देने-वाली हमारी मुख्य फसल है—मूंगफली। ७२ लाख हेक्टर में मूंगफली उगायी जा रही है। इसके बाद आती हैं सरसों, तोरिया, जिनकी खेती ३५ लाख हेक्टर में होती है। फिर आता है तिल २३ लाख हेक्टर में, अलसी २० लाख हेक्टर में, और अरंड ५ लाख हेक्टर में। तेल-जगत के इन पांच बड़ों के बाद कुसुंभ (करडी) और रामतिल हैं; और उनके बाद आती हैं नयी फसलें सोयाबीन और सूरजमुखी।

वैसे कोई एक सौ पौधे ऐसे हैं, जिनके बीजों से उपयोगी तेल निकलता है, पर अभी उन सबका पूरा-पूरा इस्तेमाल नहीं हो रहा। परंपरागत तिलहनी फसलों की भी



'तेल' (तैल) शब्द भले 'तिल' शब्द से निकला हो, परंतु पंजाब से असम-उड़ीसा तक तेलों का राजा सरसों का तेल है।

उपेक्षा हुई है, फिर नयों को कौन गले लगाये !

उपेक्षित क्षेत्रों की पिछड़ी फसल

उपेक्षा इस तरह कि फसल-प्रणालियों में दलहन और तिलहन—दोनों के साथ भेद-भाव बरता गया है। सबसे अधिक उपजाऊ और सिंचित जमीनों में तो बैठाये गये गेहूं-धान और बेचारे दलहन-तिलहन खदेड़ दिये गये वर्षा पर निर्भर रहने वाले बारानी क्षेत्रों में, बची-खुची जमीनों में। सरसों की तो बरसों तक लोग मिलवां खेती ही करते रहे। अलग से भी कोई तो दर्जा इसे दिया जा सकता है, किसी ने नहीं सोचा। इसी हिसाब से खाद और पानी इन फसलों के हिस्से कम आया। रोग और कीट-नाशक दवाओं का तो जिक्र ही नहीं था।



कुसुम, कुसुंभ या करडी का तेल शरीर में कोलेस्टेरोल का निर्माण न करने के कारण आजकल महिमा अर्जित कर रहा है।

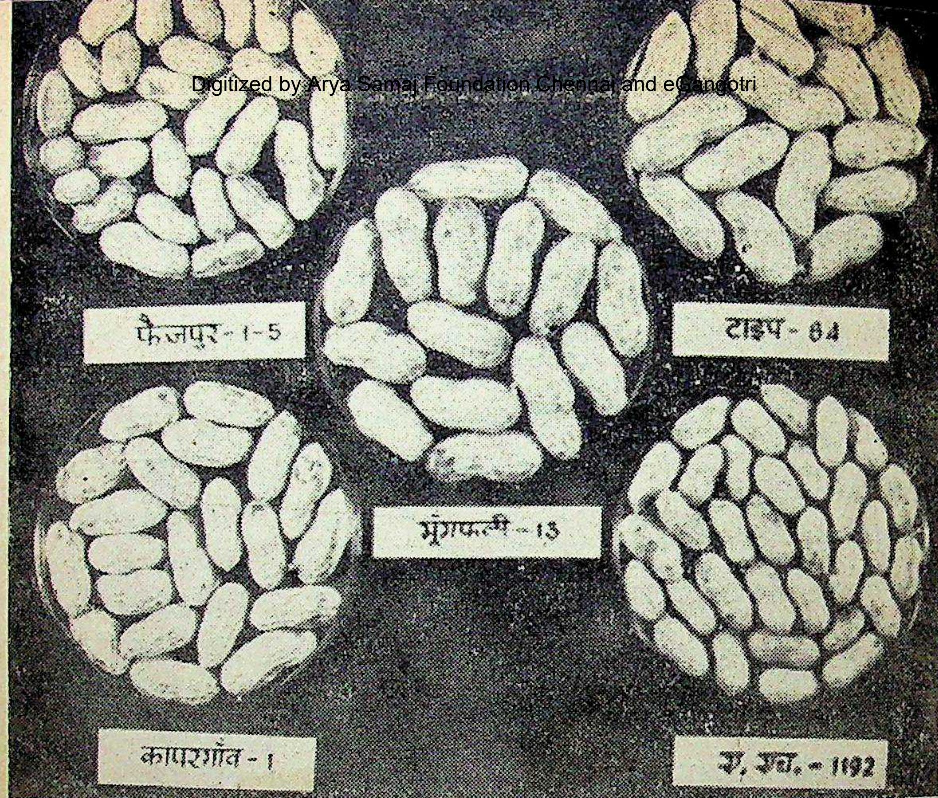
विज्ञान ने भी इनके सुधार पर ध्यान नहीं दिया।

इधर आबादी बढ़ी। तेल की मांग बढ़ी। पिछले कुछ वर्षों से सोचा जाने लगा कि तिलहनी फसलों की पैदावार बढ़ाकर अधिक तेल उपलब्ध किया जाये। यों थोड़ा-बहुत काम तो तभी से शुरू हो गया था, जब आज की 'इंडियन' और तब की 'इम्पीरियल' कौन्सिल ऑफ एग्रिकल्चरल रिसर्च (कृषि अनुसंधान परिषद) की स्थापना सन १९२४ में हुई थी।

खोज के खुरदरे रास्तों पर :

उस समय तिलहनी फसलों पर अनुसंधान का काम राज्यों के कृषि-विभाग करते थे। अपने-अपने इलाके से जो भी किस्में मिलीं, उगा लीं। कुछ अच्छी छांटी भी गयीं। पर अखिल भारतीय स्तर पर परीक्षण करने की कोई व्यवस्था नहीं थी। जिस तरह बची-खुची जमीनों में इसकी खेती होती थी, वैसे ही बची-खुची सुविधाओं से इस पर अनुसंधान चला।

आजादी आने के बाद केंद्रीय तिलहन समिति बनी। पहली बार तिलहनी फसलों पर अनुसंधान और



मूंगफली, जिसे पुर्तगाली हिंदुस्तान लाये, आज देश का प्रमुख तिलहन बन गयी है। इस चित्र में दरसायी गयी हैं उसकी कतिपय प्रमुख किस्मों की फलियां।

विकास की देशव्यापी योजना बनी। इसका नतीजा यह हुआ कि पंजाब में अच्छी उपज देने वाली मूंगफली-१ किस्म गुजरात में भी जा पहुंची। तमिलनाडु में विकसित की गयी मूंगफली की 'टी एम वी' किस्में आंध्र प्रदेश में तथा उत्तर प्रदेश में विकसित तिल की टाइप-१२ और १३ अन्य प्रदेशों में प्रसारित हुईं। हैदराबाद में तिलहन विकास निदेशालय बना। परंतु अखिल भारतीय समन्वित तिलहन अनुसंधान परियोजना सन १९६७ में ही आकर शुरू की जा सकी। आजकल इसका भी मुख्यालय हैदराबाद में है और इसके पंतनगर में प्रशिक्षित उत्साही निदेशक डा. विक्रम सिंह पूरे जोश से तिलहनी फसलों के उद्धार में लगे हुए हैं।

डा. विक्रम सिंह ने बताया कि देश के हर कोने में इकट्ठी की गयी तिलहनी फसलों की विविधिता-भरी किस्मों के अलावा दुनिया के हर तिलहनी क्षेत्र से किस्में मंगवाकर उन्हें तिलहन-सुधार कार्यक्रम में इस्तेमाल किया जा रहा है। फसलों के ऐसे चक्र खोजे जा रहे हैं, जिनमें तिलहनी फसलों का समावेश हो सके। रोगरोधी

और कीटरोधी किस्में विकसित की जा रही हैं। नये रासायनिक तरीके जांचे जा रहे हैं, जिनके इस्तेमाल से बीमारियों और कीड़े-मकोड़ों की रोकथाम हो सके। खेती-बाड़ी के बेहतर तरीकों के अलावा किसानों को तिलहन की खेती के लिए प्रोत्साहित करने के उपाय भी सुझाये गये हैं। उदाहरण के लिए लीजिये मूंगफली।

'मनीला कोटे' और 'चीना बदाम'

आज कौन यकीन करेगा कि सोलहवीं सदी से पहले हमारे देश में मूंगफली का कोई नाम ही नहीं जानता था। ४५ से ५० प्रतिशत तक तेल और २८ से ३० प्रतिशत तक प्रोटीन से भरपूर मूंगफली का मूल देश है ब्राजील। वहां से इसे दुनिया-भर में फैलाया पुर्तगाली सौदागरों ने। हमारे देश में फिलीपाइन्स से कोई फादर जोसफ लाये थे उसे। तभी तो दक्षिण भारत में कुछ स्थानों पर मूंगफली को 'मनीला कोटे' भी कहते हैं। लेकिन उत्तर भारत में यह चीन से चलकर बंगाल होती हुई आयी और पूर्वी भारत में अब भी फेरीवाले इसे 'चीना बादाम' कहकर बेचते हैं।

मूंगफली भी उसी फलियों वाली फसलों के कुल की है, जिसमें दालें आती हैं। वैसे तो इसकी कोई पचास जातियां मिली हैं, पर खेती की जाने वाली मूंगफली का शास्त्रीय नाम है—अरेकिस हाइपोजिया। 'हाइपो' यानी 'नीचे' और 'जिया' यानी 'भूमि'। भूमि की फली से बिगड़कर बना 'मूमफली' और किसी अल्पज्ञ भाषा-सुधारक ने कर दिया 'मूंगफली'। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी तो 'मूमफली' को ही शुद्ध मानते हैं। पर बादाम घोंटने वालों में 'मूमफली' की आवाज कौन सुने!

कभी आपने सोचा है कि इसकी फली भूमि के अंदर कैसे पहुंचती है! अच्छा-खासा पौधा तो हवा में ही अंकुराता है। पांच पंखुरियों वाले फूल रोशनी में ही खिलते हैं, सुबह छह से आठ बजे तक। पर फूल खिलने से कोई घंटे भर पहले ही इसके परागकोश अपने परागकण स्त्रीकेशर पर बरसा चुके होते हैं। बंद फूल में ही परागण हो चुकता है। अगले बारह घंटों में फूल मुरझाकर गिर जाते हैं। अब अंडाशय का वृंत बढ़ना शुरू करता है। यह खूंटी-सरीखा होता है और कहलाता है—'पेग' या नस्से। लगता है जैसे ये पौधे की उंगलियां हों। ये ही झुकते हैं और धरती को खोजकर उसके अंदर धंस जाते हैं। दो से सात सेंटिमीटर तक अंदर जाकर ये फिर बढ़ना और फलियां बनाना शुरू करते हैं। मजे की बात यह है कि जो 'पेग' या नस्से पौधे पर १५ सेंटिमीटर से ऊपर लगे रहते हैं, वे झुककर भूमि तक नहीं पहुंच पाते और उन पर फलियां नहीं लगतीं। फलियां तो भूमि के नीचे ही पनपती हैं। देखा नम्रता का महत्त्व! एक पौधे पर २५ से लेकर १५० तक फलियां आती हैं। भूमि की इस फली को नरम, भुरभुरी मिट्टी चाहिये, नहीं तो कोमल टहनी धंसेगी कैसे!

पानी मूंगफली को ज्यादा नहीं चाहिये।

एक हल्की वर्षा खेत की तैयारी से पहले हो जाये, दूसरी बुआई के पहले पखवारे में और अगले तीन-चार महीनों में हल्की ही दो बारिशें और हो जायें। बस काफी है। वर्षा न होने पर दो-तीन सिंचाई करनी होंगी। पर पानी खेत में खड़ा नहीं रहना चाहिये। कटाई या कहिये कि खुदाई के समय मौसम सूखा और साफ रहे तो अच्छा। गीला होने पर फलियों में फफूंदी लग सकती है। यह फफूंदी एक ज़हर पैदा करती है–अफ्लाटाक्सिन। इस जहर की अधिक मात्रा कैंसर तक पैदा कर सकती है। पर इससे दाने का स्वाद भी बिगड़ जाता है और खराब दाना मुंह में आते ही आप थूक देते हैं।

मूंगफली की किस्में दो तरह की हैं–गुच्छे वाली और फैलने वाली। गुच्छे वाली ९५ से ११० दिन में पक जाती हैं और फैलने वाली किस्म १२५ से १४० दिन लेती है। पर ज्यादा पैदावार फैलने वाली से ही मिलती है। वैज्ञानिकों ने अब ऐसी किस्मों का विकास किया है, जो गुच्छे वाली होती हुई भी अच्छी उपज देती हैं। 'ज्योति' गुच्छे वाली है, 'टाइप-६४' अध-गुच्छिया है और 'नं. १३' और 'आर. एस. १' फैलने वाली। पर उपज इन सबसे २० से ३० क्विंटल प्रति हेक्टर मिलती है। नयी किस्मों में 'एम-१३', 'एम-१४५' और 'पी जी–१' उल्लेखनीय हैं। बंबई की ट्राम्बे स्थित अनुसंधानशाला में परमाणु-विकिरण द्वारा मोटे दाने वाली बेहतर किस्में विक-



अलसी, जिसकी नयी किस्में १५ से १८ क्विंटल प्रति हेक्टर तक उपज देती हैं।

सित की हैं।

एक सर्वेक्षण से पता चला है कि मूंगफली उगाने वाले किसान खाद लगाते ही नहीं। फली वाले कुल की होने के कारण मूंगफली की जड़ों में नाइट्रोजनकारी जीवाणु पलते हैं। शुरू के २०-२५ दिन, जब तक जड़ों में जीवाणु पालने वाली गांठें नहीं बनतीं, तब तक के लिए १५-२० किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टर लगा देना काफी है। इसके अलावा फास्फेट (५०-६० कि.), पोटाश (३०-४० कि.), कैल्शियम और सल्फर भी मिलने चाहिये। नहीं तो फलियां छोटी, सिकुड़ी, बिना बीज की या छोटे दाने वाली बनती हैं।

कई फंफूदियों को मूंगफली बड़ी प्रिय है। सबसे भयंकर है 'टिक्का' रोग पैदा करने वाली सर्कोस्पोरा। पत्तियों पर छोटे-छोटे गोल गहरे भूरे दाग इसकी पहचान हैं। बहुत तेजी से फैलती है यह बीमारी। शुरू में ही दस दिन के अंतर से फफूंदनाशी दवा २ किलो १ हजार लिटर पानी में घोलकर छिड़क दें, तो प्रकोप कम हो जाता है। सबसे अच्छा यह है कि बीज बोने से पहले बीज का 'थिराम' (१३ ग्राम प्रति हेक्टर) या 'कपटान' (८ ग्राम प्रति हेक्टर) दवाओं से उपचार कर दें।

मूंगफली पैदा करने में गुजरात सबसे आगे है। तीन हेक्टर खेत में मूंगफली की खेती जितने पानी से की जा सकती है, उससे धान की खेती सिर्फ एक हेक्टर में हो पायेगी। फिर मूंगफली से मिट्टी भी उप-

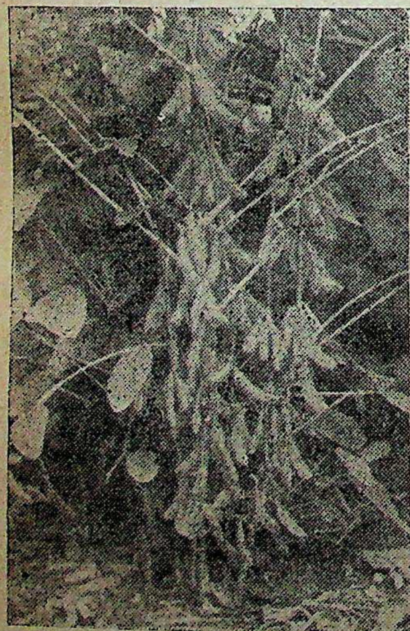


सूरजमुखी अब बगीचों से खेतों में पहुंच गयी है। रोगों और चिड़ियों की वक्रदृष्टि से बचे तो यह प्रति हेक्टर १।। हजार रु. मुनाफा दे सकती है। ऊपर स्वस्थ पौधा, नीचे बीमार पौधा।



जाऊ बनती है। सिंचाई की व्यवस्था हो जाये तो ५ टन प्रति हेक्टर तक मूंगफली की पैदावार नयी किस्मों से आराम से मिल सकती है। अतः तिलहन-विकास के नये अभियान में मूंगफली को प्राथमिकता दी गयी है।

छठी योजना में मूंगफली का क्षेत्र ६ लाख ३० हजार हेक्टर से बढ़ाकर १० लाख ९० हजार हेक्टर तक ले जाने का विचार है। इसके लिए अनेक बड़े बांधों के आस-पास के सिंचित क्षेत्र को चुना जा रहा है – आंध्र प्रदेश में नागार्जुनसागर और पोचंपद कर्नाटक में तुंगभद्रा और भद्रा, उड़ीसा में हीराकुड और डेल्टा सिंचाई प्रायोजना-क्षेत्र,



सोयाबीन—आज का कल्पतरु

राजस्थान में राजस्थान नहर और भाकड़ा-क्षेत्र। तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के लघु सिंचाई-क्षेत्रों में भी मूंगफली का प्रसार किया जायेगा। कुल मिलाकर ४१ जिलों में मूंगफली की सघन खेती का प्रसार किया जायेगा। मूंगफली के उत्पादन और वितरण में राष्ट्रीय डेरी विकास निगम के सफल अनुभवों का भी लाभ उठाया जा रहा है।

विकास के नये प्रयास

मूंगफली के बाद आती है सरसों, तोरिया और राई। सरसों और उसके इन उपभेदों की खेती ३,४२८ हजार हेक्टर में होती है और पैदावार है, लगभग १६९२ हजार टन। फिर आता है, तिल, जिसकी खेती २,२५० हजार हेक्टर में होती है और पैदावार लगभग ३८० हजार टन मिलती है। फिर अलसी और अरंडी आते हैं। सूरजमुखी और सोयाबीन तो अभी जहां-तहां जड़ें पकड़ रही है।

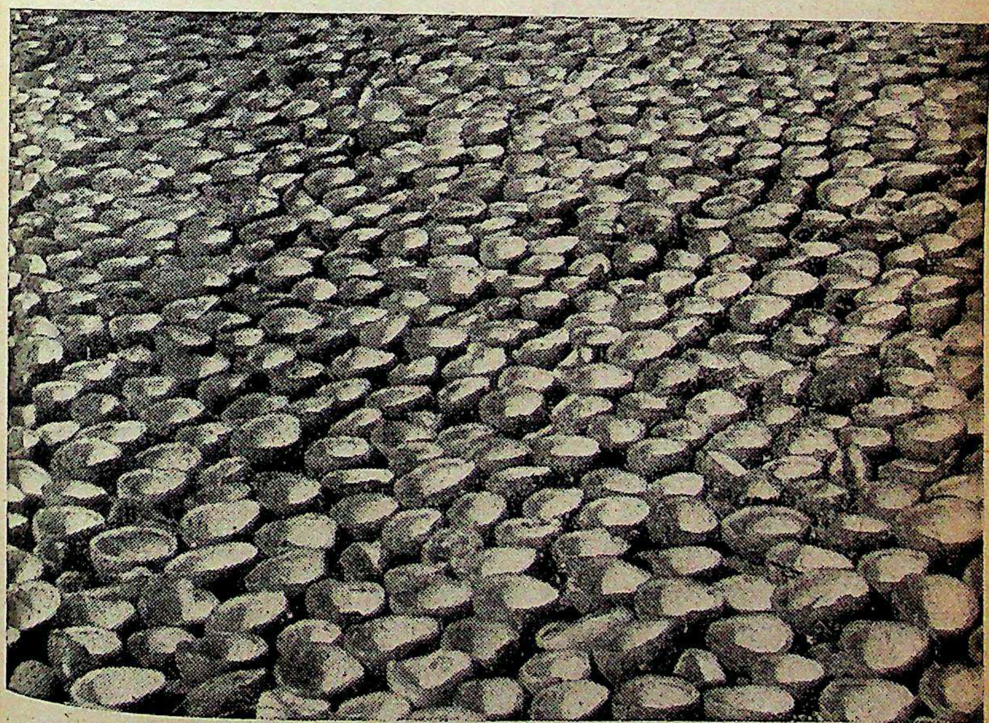
इन सभी तिलहनी फसलों में से खाने योग्य तेल देने वाली फसलों के विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है। ७८-७९ के लिए मूंगफली का समर्थन-मूल्य बढ़ाकर १७५ रुपये प्रति क्विटल कर दिया गया था। सरसों-तोरिया का समर्थन-मूल्य तो अब (७९-८०) के लिए २४५ रुपये प्रति क्विटल घोषित किया गया है। सूरजमुखी और सोयाबीन के लिए भी ७८-७९ में समर्थन-मूल्य १७५ रुपये रखा गया था।

तिलहनी फसलें उगाने वाले किसानों को

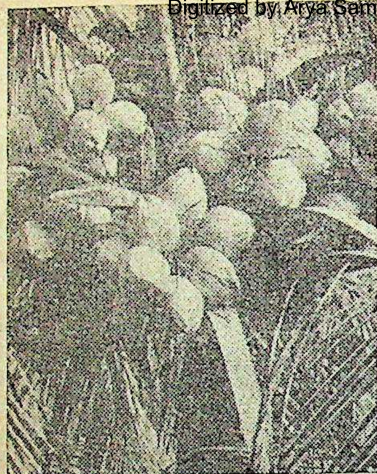
चुने हुए जिलों में वहां की जलवायु के लिए उपयुक्त नयी किस्मों के मिनीकिट मुफ्त बांटे जायेंगे। हर मिनीकिट में आधे हेक्टर में बोने लायक नयी किस्म का बीज रहेगा। बीज-उपचार की दवा भी मिलेगी। उगाने की तरकीब बताने वाला साहित्य भी रहेगा— अंग्रेजी में नहीं, भारतीय भाषाओं में। आगे भी फसल-रक्षा के लिए, बीजों के उत्पादन के लिए, ढुलाई के लिए तथा प्रदर्शनों के लिए आर्थिक सहायता की व्यवस्था की गयी है। राज्य सरकारों को तिलहनों के इस राष्ट्रीय अभियान के लिए आवश्यक कर्मचारी भरती करने के वास्ते केंद्र शत-प्रतिशत आर्थिक सहायता देगा।

नयी फसलें

सूरजमुखी को तिलहनी फसल के रूप में उगाने के प्रयास हमारे यहां सन ६९-७० में सफल हुए, जब रूस से लायी गयी चार किस्में और कनाडा की 'सनराइज' से भारत में सूरजमुखी का उदय हुआ। ७३-



तेल की प्रतीक्षा में मुंह खोले दीये नहीं, तेल के लिए सुखाये जा रहे गोले। देश में हर साल ३० लाख टन गोले का तेल निकाला जाता है। अब तो इसके विकास के लिए अलग बोर्ड कायम किया जा रहा है।



नारियल—गुच्छे के गुच्छे

७४ में इसका क्षेत्र २ लाख हेक्टर हो गया था। नाम से सूरज की भक्त पर प्रकाश के प्रति नितांत तटस्थ यह फसल सारे साल किसी भी मौसम में ली जा सकती है। ज्यादा बारिश हो तो ठीक, कम हो तो भी ठीक। अब आठ राज्यों में इसके प्रसार की योजना कार्यान्वित की जा रही है। इस फसल के प्रसार में सबसे बड़ी बाधा हैं चिड़ियां, जो बीज चुग जाती हैं।

कल्पतरु सोयाबीन

सोयाबीन को तो पंतनगर के भूतपूर्व यशस्वी कुलपति डा. ध्यानपाल सिंह कल्पतरु कहा करते थे। ४० प्रतिशत प्रोटीन और २० प्रतिशत तेल देने वाली सोयाबीन दलहन भी है और तिलहन भी। तेल निकालने के बाद बची सोयाबीन-खली प्रोटीन से भरपूर रहती है और किस्म-किस्म के प्रोटीनपूर्ण व्यंजन इसी खली से बनाये जाते हैं। कुमायूं की पहाड़ियों में सोयाबीन को 'भट' कहते हैं। वहां सन १८२२ से इसकी खेती के प्रमाण मिले हैं। फिर १९३० वाले दशक में गांधीजी ने इसका प्रचार किया। पर देश में इसे अपनाने की असली शुरूआत १९६३-६४ में इसकी अमरीकी किस्मों पर पंतनगर तथा जबलपुर में किये गये प्रयोगों से हुई। अब इसकी खेती लगभग २५ हजार हेक्टर में हो रही है। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक के अलावा हिमाचल प्रदेश और बिहार में भी सोयाबीन का व्यापक प्रसार करने के लिए कदम उठाये गये हैं।

सोयाबीन-कार्यक्रम के प्रवर्तक डा. ध्यानपाल सिंह (संप्रति, कुलपति – राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पटना) ने बताया कि बिहार के रांची के आदिवासी-क्षेत्र में सोयाबीन और मूंगफली दोनों के प्रसार की काफी संभावनाएं हैं। इसके लिए कार्यकर्ता भी आदिवासियों में से ही छांटने की कोशिश की जा रही है। अक्तूबर में बुआई करने पर सरसों की 'वरुण' किस्म ने वहां ३० क्विंटल प्रति हेक्टर तक उपज दी है। अब किसान इसे गेहूं के साथ मिलवां बोने के बजाय अकेली फसल के रूप में ही ले रहे हैं। वे जानते हैं कि सरसों को ऊंचे दाम पर बेचकर गेहूं तो वे अपनी जरूरत के लिए खरीद भी सकते हैं। छोटा नागपुर, संथाल परगना और सिंघभूम जिलों में भी मूंगफली और सोयाबीन का प्रसार हो रहा है।

लेकिन डा. सिंह इस बात से सहमत नहीं हैं कि कुछ क्षेत्रों में किसानों को अनाज की खेती बंद करके तिलहन या दलहन उगाने पर कानूनी तौर पर या किसी और तरह का दबाव डालकर मजबूर किया जाये। उनका कहना है–'किसान वैसे ही दुखी प्राणी है, पर समझदार भी है। उसे इतनी ठोकरें लग चुकी हैं कि अगर उसके मतलब की चीज होगी और उसे एक की जगह दो पैसा मिलता दिखाई देगा, तो वह जरूर उसे ग्रहण करेगा। बस आप उसे ठीक से समझा दीजिये और आवश्यक साधन उपलब्ध करा दीजिये। बीज, खाद, दवा और पैदावार की अच्छी कीमत मिल जाये, तो फिर किसान न तिलहनों की कमी होने देंगे, न अनाज की।'

डा. स्वामिनाथन् की योजना

किसानों की क्षमता में ऐसा ही अटूट विश्वास व्यक्त किया प्रसिद्ध शोध विज्ञानी तथा भारत सरकार के वर्तमान कृषि एवं सहकारिता सचिव डा. एम. एस. स्वामिनाथन् ने। उन्होंने तिलहन-समस्या के समाधान की रणनीति स्पष्ट की– 'सबसे पहली बात यह है कि अनुसंधान में तिलहनों को प्राथमिकता मिले। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की समन्वित तिलहन अनुसंधान निदेशालय को इसके ४५ केंद्रों और उपकेंद्रों सहित छठी योजना में और भी सबल बनाया जायेगा। जूनागढ़ में मूंगफली का अनुसंधान संस्थान अलग से बनाया जा रहा है। कुछ केंद्र उन स्थानों में बनाये जायेंगे, जहां अभी कोई अन्य केंद्र तिलहनों पर खोज-कार्य नहीं कर रहा है। कनाडा और स्वीडन की सहायता से सरसों, तोरिया, तिल और सूरजमुखी पर अनुसंधान को बढ़ाया जा रहा है। बड़ी सिंचाई-परियोजनाओं के १६ अनुसंधान केंद्रों को कृषि विज्ञान-केंद्रों से जोड़कर तिलहनों की खेती के नये तरीके किसानों तक पहुंचाये जा रहे हैं।

'इसके अलावा बारानी कृषि अनुसंधान की समन्वित योजना में ३० प्रसार-शिक्षा







सरसों का पौधा–बायें परंपरागत, बीच में सिंचित क्षेत्र के लिए और दायें बारानी क्षेत्र के लिए नवविकसित।

केंद्र खोले गये हैं, क्योंकि तिलहन मुख्यतः बारानी फसलें हैं। रेडियो, दूरदर्शन तथा प्रेस और प्रसार-कार्यकर्ताओं द्वारा भी तिलहन की खेती के नये तरीकों का जोरों से प्रचार किया जायेगा। जो किसान तिलहनों की सबसे अधिक पैदावार दिखायेंगे, उन्हें भी अब कृषि-पंडित का सम्मान मिलेगा।

'राष्ट्रीय डेरी विकास निगम को अमरीका से १६० हजार टन खाने का तेल दान में मिल रहा है। इसे बेचकर जो रुपया मिलेगा, उससे तेल-वितरण का भी एक राष्ट्रव्यापी सहकारी संघटन चलाया जायेगा, ताकि डेरी की तरह तेल-विकास का भी सीधा लाभ किसानों को मिले।'

आगे डा. स्वामिनाथन् ने बताया कि तिलहनों के बीज पैदा करने और बेचने की व्यवस्था भी सुदृढ़ की जा रही है। जो किसान बीज-कार्यक्रम में भाग लेंगे, उन्हें भी विशेष सुविधाएं दी जायेंगी। कीड़ों की समस्या के समाधान के लिए कृषि-उद्योग निगम जैसी संस्थाओं को काम पर लगाया जायेगा कि वे देखें कि सरसों की फसल चेंपा लगने से खराब न हो। किसानों को दालों और तिलहनों की खेती के लिए ऋण दिलाने की व्यवस्था को और सरल किया जा रहा है। इसके लिए बैंक खुद किसानों के पास जायेंगे। कटाई के बाद रख-रखाव और सरकारी खरीद के संघटन को भी मजबूत बनाया जायेगा, ताकि किसानों को अपनी मेहनत का पूरा फ़ायदा मिले।

नारियल से ३० लाख टन गोले का तेल



अरुणा—अरंडी की बौनी किस्म.. ..प्रति हेक्टर २०-३० क्विंटल तक उपज।

मिलता है। इसके विकास के लिए अलग से बोर्ड बनाया जा रहा है। सबसे अधिक तेल देने वाला 'आइलपाम' है, जो प्रति हेक्टर २५ हजार किलो ग्राम तेल देता है। केरल में इसे बड़े पैमाने पर उगाने के प्रयास किये जा रहे हैं। तारामीरा, महुआ, साल, नीम और करंज के अलावा चावल की कनी, मक्का की कनी तथा आम की गुठली से भी बहुत-सा तेल मिल सकता है। साबुन तथा अन्य उद्योगों में इनका उपयोग किया जा सकता है।

डा. हरिकृष्ण जैन की राय

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक डा. हरिकृष्ण जैन का विश्वास है कि सरसों के पौधे की बनावट में प्रजनन-विज्ञानी और भी सुधार कर सकेंगे। जल्दी ही ऐसा पौधा विकसित हो सकेगा, जिसमें फलियां ज्यादा लगें, फलियों में दाने

ज्यादा संख्या में और मोटे तथा ज्यादा तेल वाले हों। इस संस्थान के कानपुर केंद्र ने तोरिया की ८५ दिन में पकने वाली और १५ क्विंटल प्रति हेक्टर देने वाली नयी किस्म 'टी आई के-७८२' विकसित की है। पीली सरसों की भी १२ क्विंटल प्रति हेक्टर उपज देने वाली किस्म 'वाइ. एस. आइ. क-७४२' जारी की गयी है। यह १२५ दिन में पकती है और इसके दानों में ४६ प्रतिशत तेल होता है। अलसी की भूरे दाने वाली 'एल्-एस-३' और पीले दाने वाली 'एल्-एस-४' भी जारी की गयी है, जो १५ से १८ क्विंटल प्रति हेक्टर उपज देती है। इसके पाउडरी फफूंद का पूरा जीवन-चक्र खोज लिया गया है और अब इसका पूरा नियंत्रण भी संभव हो पायेगा।

प्रथम योजना काल में तिलहनी फसलों की पैदावार ५२ लाख ४१ हजार टन थी और पचीस वर्षों में बढ़कर सन ७५-७६ में ९९ लाख १० हजार टन पर पहुंच गयी थी। लेकिन अगले दो सालों में उत्पादन गिरा। तेल की मांग ६ प्रतिशत की दर से बढ़ रही है और पैदावार ३.४ प्रतिशत की दर से। इसका दोष मौसम को दिया जा रहा है। और मौसम तो इस बार भी टेढ़ा ही है। इस बार के भयानक सूखे ने खरीफ की मूंगफली पर बुरा असर डाला है। इससे संदेह पैदा होता है कि क्या हम छठी योजना में १२५ लाख टन तिलहनों के वार्षिक उत्पादन का लक्ष्य पूरा कर पायेंगे। ऐसे में आशा-भरी बातें दिया तो क्या जिया ही ज्यादा जलायेंगी।

फिर जो बात अधिकांश विकास-कार्यक्रमों में हुई वही तिलहन-अभियान में हो गयी तो क्या होगा। केंद्र से राज्य तक, राज्य से जिले तक, जिले से तहसील तक और तहसील से गांव तक, हजारों खाइयां हैं, जिनमें फिसलने से बचने पर ही तिलहनों की चिकनाई देहातियों के सूखे चेहरों को चमका सकेगी।



मजाज लखनवी बड़े ही हाजिर-जवाब थे। जबान से बात निकली और उन्होंने जुमला चस्पां किया। एक बार डाक्टर अतहर परवेज उनके साथ चांदनी चौक से गुजर रहे थे। इतवार का दिन था। चांदनी चौक की दुकानें बंद थीं। एक दुकान पर बहुत ही बड़ा ताला लगा हुआ था। डा. साहब ने कहा—'मजाज साहब ! यह ताला देखिये।'

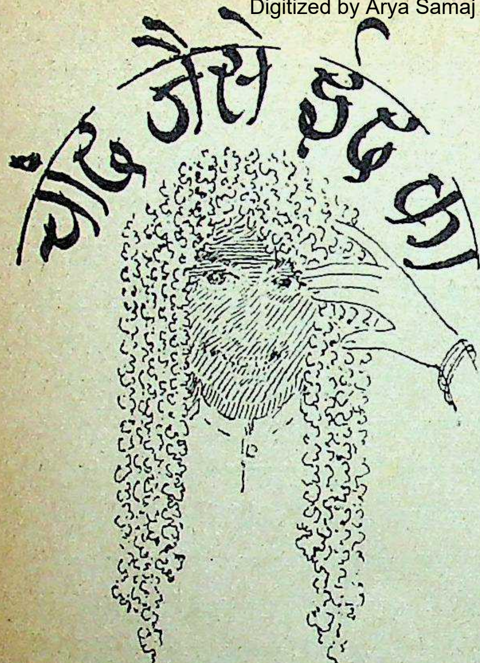
मजाज साहब ने मुड़कर देखा और बेसाख्ता बोले—'मियां, यह ताला है या अल्लाह-ताला !'

—हसन जमाल छीपा

०००

'पंडितजी, आप प्रार्थना बड़ी तेजी से करते हैं और पारायण बहुत धीरे-धीरे......क्या कारण है ?' उत्तर मिला—'भाई, बात यह है, प्रार्थना में मैं भगवान से बात कर रहा होता हूं, जबकि पारायण में भगवान मुझसे बात कर रहे होते हैं।'





अतिया परवीन की उर्दू कहानी

दूल्हा अपनी तीन बहनों के रुपहले आंचलों की छांव में अंदर आ रहा है। भाभी बेतहाशा दौड़ीं। उन्होंने काम के हंगामे में अभी तक अपने ननदोई की शक्ल नहीं देखी थी। निकाह हो चुका था और उनके आग्रह पर ही दूल्हे को अंदर लाया गया था।

'अरे भई, दुल्हन की भावज कहां हैं? अपने ननदोई को संभालें।' किसी ने हांक लगायी।

'हां, और क्या!' और एक शोख आवाज उभरी–'जी भरकर संभालें। साली तो आधी घरवाली होती है, पर सलहज पूरी जोरू मानी जाती है!'

कहकहों की बौछार से सराबोर भाभी सचमुच शरमा गयीं।

'लीजिये! भाईजान! अपनी काफिर-अदा सलहज से मिलिये .....' एक बहन ने दूल्हे से कहा। दूसरी ने सेहरे की लड़ियां हटायीं।

'देखिये, कितनी खूबसूरत हैं!'

दूल्हे ने हंसकर अपनी सुंदर सलहज को देखा। सफेद फूलों के बीच दूल्हे का काला रंग और भी गहरा गया था और उसके पीछे से सफेद दांत यों चमक रहे थे, जैसे काले बादलों के बीच बिजली! यह बिजली भाभीजान के दिल पर गिरी।

भाभी ने दूल्हे की तस्वीर ही देखी थी जिसमें काला रंग गोरा था और नक्श इतने खूबसूरत थे कि वे खो-सी गयी थीं। फिर बड़ी शोखी और जोश के साथ वह तस्वीर उन्होंने अंजुम की गोद में डाल दी थी।

'अंजो! जी चाहता है, तुम्हारे मंगेतर पर आशिक हो जाऊं!'

'हाय अल्लाह, भाभी!' अंजुम ने शरमाकर तस्वीर उन पर फेंक मारी थी और आंचल में चेहरा ढांप लिया था।

अंजुम, उनकी प्यारी ननद, बीस वर्ष की बड़ी ही खूबसूरत, गोरी-चिट्टी, गुदाज जिस्म और बूटा-सा कद। न जाने कितने रिश्ते आये थे उसके लिए। एक से बढ़कर एक। पर किसी के साथ फूल न खिल सके। यह रिश्ता एक रिश्तेदार ने तय कराया था। दूल्हा अच्छे घर का था। एम. ए. पास। उम्र २८-३० साल। उन रिश्तेदार का

• अनुवाद : सुरजीत •

देखा-भाला, जाना-बूझा। बड़ी अच्छी सर्विस। और क्या चाहिये भला! भैया ने हां कर दी।

भाभी खुशी से फूली न समायीं। अल्लाह उनको मरहूम सास-ससुर के सामने सुर्खरू ले जायेगा। सास मरते समय अपनी चहेती बच्ची को इन शब्दों के साथ बहू के सुपुर्द कर गयी थीं–'दुल्हन! अंजो को ननद नहीं, बहन समझना। उसका दिल न मैला होने देना। वरना यह समझो, मेरी पीठ कब्र में नहीं लगेगी।'

और सचमुच भाभी ने अंजो को अपने दिल से लगाया तो हथेली का फफोला और आंखों का तिल बनाकर रखा। लोग कहते–भावज हो तो ऐसी। उन्होंने जहां अंजुम को तालीम के जेवर से सजाया, वहां घर-दारी में भी माहिर बना दिया। शक्ल तो उसकी थी ही हजारों में एक। इन गुणों के साथ वह वाकई लाखों में एक हो गयी।

महीनों पहले ही भाभी ने शादी की तैयारियां शुरू कर दी थीं, और आखिर आज वह दिन भी आ ही गया। अंजुम इज्जत-आबरू के साथ भाई-भावज के कंधों को हल्का करके पति के घर जा रही है। गुलाब और बेले के फूलों से लदी मोटर दरवाजे के पास खड़ी है–अंजुम को बाबुल की दहलीज से फूल की तरह उठाकर पिया के आंगन में मलिका बनाकर उतारने के लिए। अचानक भाभी की सारी खुशी काफूर हो गयी। जैसे उनका दिल कोई हथेलियों से मसल रहा हो!

अंजुम और दूल्हे का कोई जोड़ न था

हंसती-चहचहाती अंजुम की सहेलियां इधर-उधर खड़ी खुसर-फुसर कर रही थीं। मेहमान औरतों में से किसी के ओंठों पर व्यंग्य-भरी मुसकान थी, तो किसी के चेहरे पर अचरज। कोई दांतों तले जीभ दबाये थी तो कोई खेद प्रकट के लिए माथा पकड़े।

'हाय! दूल्हा कितना काला है!' एक रिश्तेदारिन फुसफुसायीं।

'अरे, जैसे उलटा तवा!' दूसरी बोली।

'हाय! अंजुम की किस्मत ही फूट गयी!' तीसरी ने रोनी-सी सूरत बना ली।

'मां-बाप होते तो देख-भालकर, छान-फटककर शादी करते। भाई-भावज ने तो यों समझो, कंधे का बोझा उतार फेंका, चाहे वह .....'

'चाहे वह कोयले की खदान में गिरा. ...' किसी ने बात बढ़ायी और हंसी की एक लहर तलवार की धार बनकर भाभी के दिल को काटती चली गयी।

उनको गुमसुम देखकर अन्य रिश्तेदार औरतों ने दूल्हे को मसनद पर ला बैठाया।

सुर्ख मखमल की मसनद। भाभी ने पूरे एक महीने इस मसनद पर कारचोबी की थी। किनारों पर एक बालिश्त चौड़ा चम-चम करता गोटा टांका था।

'अरे, दूल्हा इस मसनद पर बैठकर शहजादा लगेगा, शहजादा!' वे बड़े चाव से कहा करतीं।

लेकिन अब उस झमझमाती मसनद पर दूल्हा बैठा तो लगा कि अंजुम की किस्मत



की तरह इस मसनद की किस्मत भी फूट गयी! अब वे अंजुम को क्या मुंह दिखायेंगी?

'अंजुम !' उनके मुंह से एक हल्की-सी कराह निकली। वे पलटीं और अंजुम के कमरे की ओर भागीं।

अंजुम सजी-संवरी, ससुराल से आया हुआ सुर्ख सुहाग-जोड़ा पहने सिर से पांव तक गहने से लदी थी। पतली सुतवां नाक में बड़ी-सी नथ। माथे पर बिंदिया। हाथों में मेहंदी। कितनी खूबसूरत, नजर आती है। भाभी की पलकें झपकने लगीं।

अंजुम ने भाभी को देखा तो पहले मुसकरायी। फिर उनका उदास चेहरा देखकर स्वयं भी रो पड़ी। भाभी, भैया, दो फूल-से भतीजे। अब्बा का घर छोड़कर आज वह कितनी दूर जा रही थी!

'अंजो! मेरी बहन .....' भाभी बढकर उससे लिपट गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं। इतना रोयीं कि अंजुम घबरा गयी। इसके बजाय कि भाभी उसे तसल्ली देतीं, वह भाभी को समझाने लगी—'हर लड़की को एक दिन अपने मायके से विदा होना पड़ता है, भाभी! अरे, मैं आती तो रहूंगी। सदा के लिए तो नहीं छूट रही हूं।'

'अंजो ... मेरी प्यारी .... मैं तुमसे बेहद शर्मिंदा हूं!' हिचकियां उनके सारे शरीर को हिला रही थीं।

'शर्मिंदगी काहे की, भाभी!' अंजुम रो पड़ी—'आपने मुझे सब कुछ दे दिया। कोई कसर नहीं उठा रखी। अम्मां भी होतीं तो मुझे इतना लायक न बना पातीं। और क्या चाहिये मुझे?'

भाभी ने सोचा, अंजुम को मालूम करा देना ही बेहतर है। यह एकदम दूल्हे का मुंह देखेगी, तो कहीं इसका दिल धड़कना ही न भूल जाये!

'अंजो!' उन्होंने उससे नजरें मिलाये बिना रोते हुए कहा—'हम सबके साथ किस्मत ने एक भयानक मजाक किया है। और अशफाक भाई को मैं क्या कहूं, जिनके भरोसे पर हमने यह शादी कर दी और दूल्हे को स्वयं देखना भी गवारा न किया....'

'क्यों? क्या हुआ, भाभी?' अंजुम का जगमगाता चेहरा फीका पड़ गया।

'वह .... वह .... दूल्हा तुम्हारे काबिल .... मतलब यह कि दूल्हा बहुत काला है। चेहरे के नक्श भी बहुत अच्छे नहीं हैं।'

अंजुम कुछ क्षणों तक उनको देखती रही। भाभी ने डरते-डरते उसकी ओर देखा, पर यह क्या? वे रोना भूल गयीं। उनकी हिचकियां एकदम रुक गयीं।

अंजुम का चेहरा फिर उसी तरह जगमगाने लगा। ओंठों पर मुसकान, आंखों में एक सुंदर भविष्य की दमक। उसने अपने नरम-नरम हाथों में भाभी के ठंडे हाथ दबा

लिये। उसकी मुस्कराहट हंसी में बदल गयी।

'भाभी, आप क्या इसीलिए इतना परेशान थीं?'

'हां, अंजो! मैं तुमसे बहुत शर्मिंदा हूं...'

'भाभी!' वह हंसी और फिर संजीदा हो गयी—'गुस्ताखी और बेगैरती माफ!... उनका सिर्फ रंग ही काला है न? चेहरे के नक्श ही मामूली हैं न?'

'हां!' भाभी अदालत में खड़े अभियुक्त की तरह अपराध स्वीकार करते हुए गरदन झुकाकर बोलीं।

'उन्होंने इस शादी के लिए कोई शर्त रखी थी?'

'नहीं!'

'आपसे ट्रक-भर दहेज की मांग की थी?'

'नहीं!'

'शादी से पहले मुझे देखने की ख्वाहिश जाहिर की थी?'

'नहीं!'

'अपने लिए स्कूटर या मोटर की मांग की थी?'

'नहीं!'

'बारात में भैया के कहे हुए २० आदमियों की जगह १०० आदमी लाने की जिद की थी?'

'नहीं!'

'और कोई मांग, भाभी?'

'कुछ भी नहीं, अंजो!'

'दूसरे सभी रिश्ते जो मेरे लिए आये थे, उन सबने किसी न किसी ऐसी चीज की मांग की थी, जो मेरे भैया की कमर तोड़ देती। मैंने उनमें से कोई भी रिश्ता पसंद नहीं किया था, भाभी ... वे सबके सब लालची और स्वार्थी इन्सान थे।'

'अंजो!' भाभी की आंखें फैल गयीं।

'हां भाभी!' अंजुम ने अपने गुलाब की पंखुरी-जैसे ओंठों से उनका माथा चूम लिया और शरमाकर बोली—'भाभी, वे अगर चाहते तो बड़ी से बड़ी शर्त रख सकते थे। लोग उनका काला रंग नहीं, उनका जगमगाता ओहदा देखते। आलीशान मकान देखते। यह खूबसूरत कार देखते, जो आज आपके छोटे-से दरवाजे पर दुल्हन बनी खड़ी है; पर उन्होंने कोई शर्त नहीं रखी। उनका दिल सोने का है, भाभी। उनके अंदर का आदमी इतना हसीन है कि उनकी बाहरी परत उसको छिपा नहीं सकती। मैं बहुत खुश हूं, भाभी! आपने और भैया ने मेरे आंचल में सारी दुनिया डाल दी है। जाइये, उठिये, भाभी। उनका इस्तिकबाल (स्वागत) हंसते-जगमगाते चेहरे के साथ कीजिये। उनको जरा भी एहसास न हो कि ......'

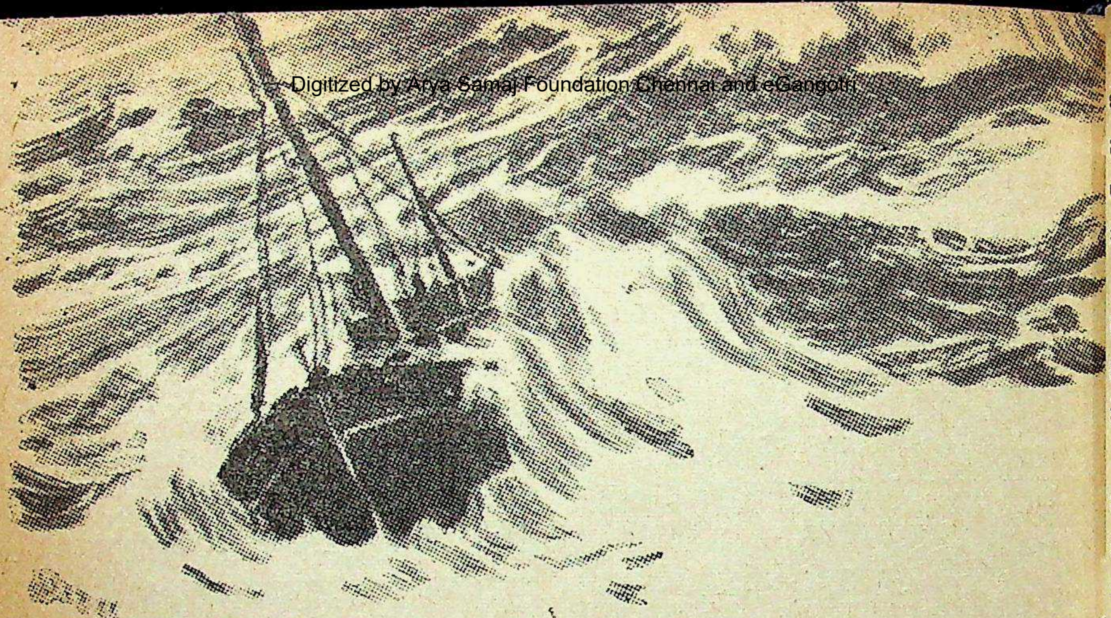
भाभी चप्पलें छोड़कर बाहर भागीं। हंसती-खिलखिलाती, चहकती हुई!

दूल्हे का सेहरा उलटकर साफे के गिर्द मढ़ दिया गया था और भाभी को ऐसा लग रहा था, कोई सपनों का शहजादा मसनद पर बैठा है!

भाभी ने लहककर ढोल बजाती, गाती हुई लड़कियों की आवाज में आवाज मिला दी:

'बना मेरा ईद का चांद कि नाचो सांवरी रे....'





निकलस मोन्सरात के विश्वविख्यात उपन्यास 'द क्रुएल सी' का एक अंश।

सागर .... निष्करुण



ब्रिटिश युद्धपोत '[illegible]ास रोज' शेष जहाजी बेड़े के साथ उत्तरी स्काटलैंड से गुजर रहा था। यह इलाका बड़ा सुंदर था। किनारे पर छोटे-छोटे सफेदी-पुते मकान थे और चारों तरफ़ चमकीली धूप फैली हुई थी। पीछे दूरी पर नीले रंग की पहाड़ियां दिखती थीं, जिन पर सरदी के मौसम की पहली बर्फ अभी-अभी ही गिरी थी। कटे-फटे तट पर समुद्र भीतर कहीं-कहीं बड़ी दूर तक घुस गया था, और इन खाड़ियों के मुहानों पर प्रकाश-स्तंभ बने हुए थे। सारी की सारी दृश्यावली नौसैनिकों को पुलकित कर रही थी।

फिर एक दिन सांझ ढलते-ढलते वे स्काटलैंड के उत्तरी छोर राथ अंतरीप तक पहुंच गये थे। यहां बड़े जोर की बारिश हुई थी, और बौछारों और सांझ के धुंधलके में जमीन धीरे-धीरे उनकी आंखों से ओझल होने लगी थी। अब वे विशाल अतलांतक सागर में प्रवेश कर रहे थे।

महासागर में प्रवेश के साथ ही नौसैनिक फिर से युद्ध का तनाव महसूस करने लगे

अनुवाद : राजेन्द्र शर्मा

थे। अब वे ऐसी जगह पर थे जहां उनके साथ कुछ भी हो गुजर सकता था। जर्मन पनडुब्बियां दुश्मन के जहाजों की टोह में वहां बराबर घूमा करती थीं।

'कम्पास रोज' अपने जहाजी बेड़े के साथ धुर उत्तर में स्थित आइसलैंड की तरफ बढ़ रहा था। कुछ दिनों के उपरांत वे वहां पहुंच गये।

आइसलैंड में विकट सरदी थी, और वहां काली चट्टानों और सफेद बर्फ के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता था। जहाज की ऊपरी सतह पर भी बर्फ की मोटी तह जम गयी। राजधानी रेकयाविक में चार जहाजों को सुरक्षित पहुंचाकर वे वापस चल दिये।

दोपहर चार बजे कप्तान ऐरिकसन ने समुद्र में अपनी स्थिति का निरीक्षण किया और फिर जहाज की रफ्तार बढ़ाने का आदेश दे दिया। रेकयाविक जाने के कारण वे शेष जहाजी बेड़े से कट गये थे, और कप्तान चाहता था कि मध्यरात्रि तक वे वापस अपने बेड़े से मिल जायें। सुरक्षा इसी में थी।

रात होते-होते सरदी बहुत बढ़ गयी थी। जहाज अब अपनी पूरी रफ्तार से जा रहा था। अचानक बड़े जोर का धमाका हुआ। नीचे छिपी एक जर्मन पनडुब्बी का फेंका हुआ तारपीडो जहाज के लोहे के पेंदे को चीरता हुआ भीतर घुस गया और उसके साथ ही समुद्र का पानी धड़धड़ाता हुआ भीतर आने लगा। उस भयंकर झटके से 'कम्पास रोज' चकरघिन्नी की तरह घूम गया और फिर लड़खड़ाता हुआ बीच समुद्र में खड़ा हो गया। पानी भरते ही जहाज टेढ़ा होने लगा और उसका पिछला हिस्सा ऊपर उठने लगा।

उस समय कप्तान ऐरिकसन एवं उपा-कप्तान लाकहार्ट ऊपर डेक पर ही थे। कुछ क्षण तो वे भौचक रह गये। उन्होंने कई साथी जहाज इसी तरह डूबते देखे थे; पर उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि उनका जहाज भी डूब सकता है। उनके चारों तरफ रात का घुप अंधेरा था और कुछ भी देख पाना असंभव था। पर वह धमाका और डेक का एकाएक एक तरफ झुक जाना एक ही बात की तरफ इशारा करते थे। जहाज के निचले हिस्से में उथल-पुथल होने का भी एक ही मतलब था।

कप्तान ऐरिकसन ने वेल्स को आदेश दिया कि वह बेड़े के अगुआ जहाज 'वाइ-परस' को खबर करे कि 'कम्पास रोज' डूब रहा है। वे अभी भी बेड़े से तीस मील पीछे थे।

ब्रिटिश लेखक निकलस मोन्सरात (हाल में दिवंगत) का उपन्यास 'द क्रुएल सी' द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया था। उसे युद्ध-विभीषिका का सबसे सशक्त वर्णन करने वाली कथा-कृतियों में गिना जाता है। अब तक उसकी ७० लाख प्रतियां बिक चुकी हैं—३०-३५ हजार प्रतियां हर साल बिक जाती हैं।

लाकहार्ट से उसने कहा— लाइफबोट और रैफ्ट फौरन निकाल लो, और अगले आदेश का इंतजार करो।'

डेक अब और भी टेढ़ा हो गया था। नीचे फिर बड़ी जोर की आवाज हुई। कोई भारी चीज जहाज से टूटकर गिरी और फिर अरराकर पानी की तरफ ढुलकने लगी। साथ ही चिमनी के पास लगे सेफ्टी वाल्व को फोड़कर भाप दहाड़ती हुई बाहर निकल रही थी।

ऐरिकसन समझ गया कि उसका जहाज बड़ी तेजी से डूब रहा है, उसी रफ्तार से जिससे उसने कुछ साथी जहाजों को डूबते देखा था।

डेक पर नावों के बीच की जगह में बड़ा शोरगुल हो रहा था। अंधेरे और हड़बड़ी में वे लोग एक दूसरे से टकरा रहे थे; टेढ़े डेक पर उन्हें पैर जमाना मुश्किल पड़ रहा था और वे बार-बार फिसल रहे थे। भाप अब भी चीखती हुई बाहर निकल रही थी, मानो जहाज अपने दुर्भाग्य पर रोष प्रकट कर रहा हो। दो नावों में से एक तो बेकार हो गयी थी—जहाज इतने टेढ़े कोण पर था कि उस नाव को निकाल पाना नामुमकिन था। दूसरी नाव अपनी जगह पर ही इस बुरी तरह से फंस गयी थी कि हथौड़े मारने के बाद भी वह निकल नहीं पा रही थी, हालांकि एक दर्जन लोग उसे बाहर खींच रहे थे। और इस दौरान बेहद कीमती वक्त बरबाद हो रहा था।

अब एक ही चारा था। लोग पानी पर तैरने वाले रबर के रैफ्टों की तरफ दौड़ रहे थे। इस अंधी दौड़ में वे फिर एक दूसरे से टकरा रहे थे और गुस्से में गाली-गलौज कर रहे थे।

आखिर छह-सात लोगों ने एक रैफ्ट बाहर निकाल लिया और उसे खींचकर वे जहाज के छोर पर ले गये। वे सभी आतुर थे रैफ्ट पर सबसे पहले अपनी जगह बना लेने को। डेक अब और टेढ़ा होकर आसमान की तरफ उठ रहा था।

दुर्घटना बड़ी अप्रत्याशित थी। तारपीडो जब जहाज से टकराया, उस समय सैंतीस नौसैनिक और मल्लाह जहाज के निचले हिस्से में थे। कुछ गपशप कर रहे थे, कुछ ताश खेल रहे थे या कहानियां पढ़ रहे थे। कुछ सो भी गये थे। कमरे में बस एक ही दरवाजा था।

इन लोगों में से कोई भी जिंदा नहीं बच सका। अधिकांश तो धमाका होते ही मर गये। धमाके से दरवाजा टेढ़ा-मेढ़ा होकर चौखट में बुरी तरह फंस गया था। कुछ लोग धमाके के बाद दरवाजे की तरफ दौड़े, पर वे उसे किसी भी तरह खोल ही नहीं पाये। बाहर निकलने का और कोई रास्ता था नहीं, सिवा बम से टूटे उस हिस्से के जिसमें से होकर पानी भीतर घुसा चला आ रहा था।

मौत से इन नाविकों की लड़ाई बहुत थोड़ी देर चल पायी थी। पर जब तक भीतर दौड़ते पानी ने आखिरी आदमी का

मुंह बंद नहीं कर दिया, उनकी भयाक्रांत चीखें बड़ी तेजी से ऊपर डेक पर पहुंचती रहीं। लेकिन ऊपर से उन्हें मदद पहुंचाना संभव नहीं था।

इस बीच सात मिनट गुजर चुके थे। ऐरिकसन समझ गया कि डूबते जहाज को बचाने का कोई रास्ता नहीं है। जहाज का अगला हिस्सा अब पानी के भीतर था और पिछला हिस्सा बहुत ऊपर उठ गया था। सभी को इसका बड़ा रंज था कि उनका प्यारा जहाज, जिस पर वे इतने दिन साथ-साथ रहे थे, अब डूब रहा था।

कप्तान ऐरिकसन को घोर मानसिक यातना उन बातों से हो रही थी जो वह नहीं कर पाया था—न तो वह लाइफबोट ही निकलवा पाया था और न नीचे फंसे लोगों को ही बचा पाया था। 'कम्पास रोज' का पिछला हिस्सा अब बिलकुल ऊपर उठ गया था। 'जहाज छोड़ दो', ऐरिकसन ने आदेश दिया—'ईश्वर तुम लोगों की मदद करे!'

अब नाविकों में भयंकर डर फैल गया। उनमें से कुछ फौरन समुद्र में कूद गये और डूबते जहाज से थोड़ी दूर निकल गये। वे अपने कुछ अन्य साथियों को बुला रहे थे और रात की भयंकर सरदी में कांप रहे थे। कुछ समुद्र के बर्फीले पानी में कूदने से डर रहे थे और जहाज के पिछले हिस्से में झुंड बनाकर खड़े हो गये थे। जहाज का यही थोड़ा-सा हिस्सा अब पानी के ऊपर था। कुछ और लोग हिम्मत कर जहाज के पिछले हिस्से से सरकते हुए कूदे, मगर उनके शरीर जहाज की कीलों से भरी खुरदरी सतह से बुरी तरह से जख्मी हो गये।

जहाज के डूबने में अब ज्यादा समय नहीं था। उनके देखते-देखते पिछला हिस्सा और ऊपर उठा और आखिरी आदमी भी डर से चिल्लाता हुआ नीचे पानी में कूद पड़ा। जब जहाज डूबा, तब पानी का एक फव्वारा बड़े जोर से ऊपर उठा, फिर उनके चारों तरफ जहाज से निकलते तेल की दुर्गंध फैल गयी।

तेल बिखरकर और फैलता गया। अब समुद्र में पड़े इन लोगों को भयंकर सरदी लग रही थी। वे जानते थे कि उस घुप अंधेरे में वे कितने असहाय हैं। उन पचास आदमियों के बीच सिर्फ दो रैफ्ट थे और उनके चारों तरफ अथाह सागर था।

उन दो रैफ्टों पर हर आदमी के लिए जगह नहीं थी। जगह हो भी नहीं सकती थी। इने-गिने लोग ही उन पर बैठ पाये थे। बाकी रैफ्ट से लटकने वाली रस्सी की सीढ़ियों को पकड़े थे, या उन लोगों को पकड़े हुए थे जो रैफ्ट पर थे। कुछ और लोग इन्हीं के इर्द-गिर्द पानी में तैर रहे थे। थकान और असहनीय सरदी से उनकी सांस रुक-रुककर चल रही थी और बर्फीली लहरें उन्हें तमाचे मार रही थीं। पानी पर फैला तेल उनकी नाक और मुंह से भीतर जा रहा था। शीघ्र ही उनके हाथ जमने लगे, फिर उनकी टांगें, और तब सरदी

बड़ी निर्ममता से उनके जिस्मों के और भीतर घुसने लगी–वहां जहां उनकी रगों में खून दौड़ता था। अब वे छटपटा रहे थे। कुछ लोग एक दूसरे को धकियाकर रैफ्ट पर चढ़ने की कोशिश कर रहे थे, पर ऊपर बैठे लोग उन्हें नीचे धकेल देते थे। तब वे फिर लाचारी में तैरने लगते थे–अपने दोस्तों को गाली देते हुए, मदद के लिए चिल्लाते हुए और ईश्वर से प्रार्थनाएं करते हुए।

जो लोग रस्सी पकड़े हुए थे उनके हाथ बर्फीले पानी से ठिठुर गये थे और रस्सी थामे रहना उनके लिए असंभव हो गया था। जहाज से बिखरा तेल तैरने वाले लोगों के मुंह में जा रहा था और वे कै कर रहे थे। वे लोग जिनके अंग जहाज की खुरदरी सतह से जख्मी हो गये थे, अब भयंकर पीडा महसूस कर रहे थे।

धीरे-धीरे लोग मरने लगे।

पर कुछ खुशकिस्मत लोग थे, जो जिंदा बच गये थे–कप्तान ऐरिकसन, उप-कप्तान लाकहार्ट व चंद और लोग। दोनों रैफ्टों पर कुल मिलाकर ग्यारह लोग ऐसे थे, जो अगली सुबह तक अपने आपको जिंदा बचा पाये थे।

लाकहार्ट बीच-बीच में पानी में पड़े सभी लोगों की गिनती कर लेता था। रात में एक बार जब उसने गिनती की थी, तब तीस लोग जिंदा थे। पर जैसे-जैसे रात गुजरी थी, ये लोग पटापट मरते चले गये थे। बातचीत करते-करते एकाएक उनके हाथों से रस्सी छूट जाती और वे नीचे रसातल में चले जाते थे। यह सब देखकर लाकहार्ट को एक बार तो यह लगा कि अगर जल्दी ही रात खत्म न हुई और सुबह की धूप नहीं निकली, तो शायद उनमें से कोई भी जिंदा नहीं बचेगा। रात के उस घुप अंधेरे में रैफ्ट पर बैठे नौसैनिकों में यदि कोई कुछ देर तक नहीं बोलता था तो अंदाज हो जाता था कि वह मर गया है, और उसका स्थान पानी में तैरता हुआ उसका कोई साथी ले लेता था।

रात में कुछ देर के लिए चांद घने बादलों से निकल आया था और उसने इस दर्दनाक दृश्य को रोशन कर दिया था। तीखी व सर्द हवा से लहरें कुछ और ऊपर उठ रही थीं और आदमी रैफ्ट के इर्द-गिर्द पानी में सिकुड़े हुए पड़े थे। बाहरी घेरे में कुछ और लोग थे। ये लाइफबेल्ट व रस्सी से एक दूसरे से बंधे हुए थे। पर ये सबके सब मर चुके थे और अब इनकी लाशें ही तैर रही थीं। चांदनी कुछ क्षण लाशों पर चमकी, फिर आश्चर्य और सहानुभूति के साथ चांद बादलों की ओट में हो गया। ऐसे दर्दनाक दृश्य पर अंधेरे का परदा पड़ा रहना ही बेहतर था।

सुबह के धुंधलके में मरने वालों और जिंदा बचे रहने वालों में कोई खास फर्क नहीं दिखता था। रैफ्ट पर जो बचे-खुचे लोग थे, उनकी बांहों में उनके मृत साथी थे, और यह कहना मुश्किल था कि उनमें से कौन मरा हुआ है और कौन जिंदा।

कप्तान ऐरिकसन ने कुछ देर बाद गौर किया कि सभी जीवित नाविकों के चेहरे भयग्रस्त हैं। वे किसी तरह मौत से बच गये थे, पर मौत का खतरा अभी भी उनके सिर पर मंडरा रहा था। उनके जिस्म भयंकर सरदी से ऐंठ गये थे और चेहरे स्याह पड़ गये थे। ऐरिकसन ने अपने जमे हुए ओंठों को बड़ी मुश्किल से हाथ से रगड़कर अपने मातहत लाकहार्ट से तीन शब्द कहे :

'नंबर एक, सुनो....'

'जी, सर....'

लाकहार्ट ने एक क्षण अपने कप्तान की तरफ देखा और फिर वह दूसरी तरफ देखने लगा। दोनों का उन असहनीय क्षणों में ज्यादा बातचीत कर पाना संभव नहीं था। पैनी बर्फीली हवा उनके चेहरों पर लग रही थी, सर्द लहरें रैफ्ट से टकरा रही थीं, रस्सी से बंधे नौसैनिकों की लाशें पानी पर थिरक रही थीं।

अब सूरज निकल रहा था—इस भीषण दर्दनाक दृश्य को और उजागर करने के लिए। रोशनी में साफ दिख रहा था कि विशाल समुद्र पर उनके दो रैफ्ट ही नहीं थे, बल्कि बहुत-सी दीगर चीजें भी पड़ी हुई थीं। तैरती लाशों के घेरे से आगे उनके टूटे जहाज का मलबा बिखरा हुआ था। तेल की दुर्गंध से भरे पानी पर फैला यह मलबा आंखों में चुभता था।

उन्हें बचाने वाले जहाज 'वाइपरस' ने कुछ घंटों बाद उन्हें इसी स्थिति में पाया था।

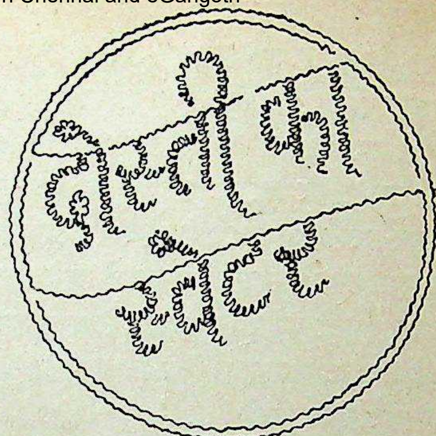
घास

—कार्ल सैंडबर्ग—

लगा दो
जिस्मों के ढेर
आस्टरलिट्ज
और वाटरलू में
दफना दो
बेलचों से उन्हें
और करने दो
मुझे काम
घास हूं मैं
सब ढंक लेती हूं
लगाओ
उनके ऊंचे ढेर
गेटिसबर्ग
ईप्र
और वर्डन में
दफना दो उन्हें
और करने दो
मुझे काम।
दो साल
दस साल
और सैलानी पूछते हैं
बस कन्डक्टर से :
कौन-सी जगह है यह?
हम अब कहां हैं?
घास हूं मैं
करने दो
मुझे काम।

[अंग्रेजी से रूपांतर : विनोद शर्मा]





अमृता प्रीतम

मैं एक ही सदी में जीती हूं—इसी अपनी सदी में, जिसका साहित्य मैं पढ़ती हूं। लेकिन खुशवंतसिंह पिछली बहुत-सी सदियों में जीते हैं; क्योंकि वे उनका इतिहास लिखते हैं। उन्हें पुरानी रचनाओं और पुराने खंडहरों में इतनी गहरी दिलचस्पी है कि जब वे उनके नामों का सविस्तार वर्णन करने लगते हैं, तो सुनने वालों को लगता है, जैसे वे अभी-अभी स्कूल में भरती हुए हों।

एक दिन जब खुशवंतसिंह ने मुझसे दिल्ली की कब्रों और खंडहरों का इतिहास पूछा, तो मैंने उन्हें जवाब दिया हंसकर कि मैं इतिहास पढ़ती नहीं, बल्कि इतिहास की सृष्टि करती हूं। लेकिन असलियत यह थी कि मुझे किसी भी चीज के इतिहास की जानकारी नहीं थी। फिर एक दिन उन्होंने मुझे महरौली के आस-पास की बहुत-सी कब्रें दिखायीं—अलाउद्दीन खिलजी की, कुतुबुद्दीन ऐबक की, सुलतान गारी की, तेरहवीं सदी के ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की, सोलहवीं सदी के शायर मौलाना जमाली की और शहंशाह अकबर की धाई-मां के बेटे आदम खां की... । और कब्रें दिखाते हुए खुशवंतसिंह ने मुझसे कहा :

'तुम पंजाब की कैसी कवयित्री हो कि तुम्हें न फूलों के नाम आते हैं, न पेड़ों के नाम आते हैं!'

'मैं वर्ड्सवर्थ की तरह प्रकृति के गीत नहीं लिखती, न ही वाल्ट ह्विटमैन की तरह घास की पत्तियों के गीत लिखती हूं। मैं तो मुहब्बत के गीत लिखती हूं, और जिसके बारे में लिखती हूं, वह चाहे किसी ऐसे पेड़ के नीचे खड़ा हो जिसका नाम मुझे न आता हो, फिर भी मैं गीत लिख सकती हूं।'

'पर तुम्हें अगर यह भी नहीं पता कि ये किन लोगों की कब्रें हैं, तो तुम कहानियां क्यों लिखती हो?'

'मुझे कब्रों से क्या लेना-देना? मैं तो अपने बारे में लिखती हूं। और मैं अभी जिंदा हूं।'

'मैं अपने बारे में कहानी नहीं लिखता।'

'यह मैं जानती हूं। इसका यह मतलब हुआ कि आपसे कहानी लिखवाने के लिए आदमी को मरकर किसी कब्र में लेट जाना चाहिये, ताकि आप जब कभी उस कब्र के पास से गुजरें, तो उसका इतिहास पूछें, फिर उसके बारे में लिखें।'

'क्या मतलब ?'

'मैं अपने बारे में सोच रही थी कि आप मेरे उपन्यास का अंग्रेजी में अनुवाद तब करेंगे, जब मेरी कब्र बन चुकी होगी। फिर जब आप नया इतिहास लिखेंगे, तो उसमें मेरी कब्र का भी जिक्र करेंगे, और फिर शायद......'

खुशवंतसिंह उन्हीं दिनों इंग्लैंड जाने वाले थे। इस बार उन्हें हवाई जहाज के बजाय समुद्री जहाज में जाना था और वह भी कार्गो बोट में, जिसमें कोई और यात्री जाने वाला नहीं था। उस पूरी यात्रा के दौरान खुशवंतसिंह ने मेरा उपन्यास अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया। मैं नहीं जानती थी कि वे दोस्ती की इतनी कद्र करते हैं। उनके व्यक्तित्व का यह पहलू मैंने पहली बार देखा था।

और फिर, ज्यों-ज्यों मैंने उनकी रचनाएं पढ़ीं, उनके मन की सुंदरता को देखा, और गलतफहमियों के खुरदरे धागे से बुना हुआ स्वेटर उधड़ता गया और उसकी जगह कद्रदानी की मुलायम और स्निग्धता-भरी पशम से दोस्ती का स्वेटर बुना जाने लगा।



बात सन १९३१ या १९३२ की है। उस समय फीरोजाबाद (जिला आगरा) के सब-डिविजनल आफिसर श्री सुलतान हैदर जोश नाम के एक काव्य-रसिक सज्जन थे। उन दिनों राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था और एक बार एक नवयुवक मुसलमान राजनैतिक अभियुक्त उनके इजलास में पेश हुआ।

उन दिनों अधिकांश राजनैतिक कैदी अपना बचाव नहीं करते थे और ठीक-ठीक कोई बयान भी नहीं देते थे। मगर इस अज्ञात नवयुवक को जोश साहब की काव्य-रसिकता का ज्ञान था, और शायद वह स्वयं भी कविता करता था। सो, जब उससे बयान देने को कहा गया, उसने ये तीन शेर तरन्नुम के साथ अदालत में पढ़े :

वल्लाह रे मुंसिफ़! तेरे इंसाफ़ के सदके!
मुंह बंद, जुबां बंद, दहन बंद, नज़र बंद।
खुल खेलूं तो फिर देखो मेरी जोशिशे-वहशत
बोतल की तरह मैं भी हूं लबरेज़, मगर बंद!
सैयाद! तेरा रिस्क-ए-रसा और कोई है
खुल जायेंगे सौ दर जो किया एक भी दर बंद!

जिस समय उसने ये शेर पढ़े, सारी अदालत में सन्नाटा छा गया। सहृदय डिप्टी साहब भाव-विभोर हो गये। कर्तव्य-वश उन्हें उसे दंड तो देना पड़ा; किंतु उन्होंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

– डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'



सृजनात्मक चिंतन

अर्नेस्ट डिम्नेट की पुस्तक 'आर्ट ऑफ़ थिंकिंग' के एक प्रकरण का सार।

प्रतिभा अर्थात् सृजनात्मक विचार, सृजनमय सोच। या कहिये, प्रतिभा उस मनःस्थिति को कहते हैं, जिसमें सृजनात्मक विचारों का आविर्भाव या उद्भव होता है। किंतु सृजन केवल साहित्य में ही नहीं, किसी शिल्प या कला के क्षेत्र में भी हो सकता है। सृजन विज्ञान और दर्शन में भी होता है। कारण, विचार की दिशाएं अनंत हैं, उसका क्षेत्र अपरिसीम है।

मनःस्थिति सदा ऐसी नहीं बनी रहती कि प्रतिभाशाली सर्जक सृजनरत बने रहें। कुछ लोगों की प्रतिभा किसी कालबिंदु पर पहुंचकर सृजन की प्रेरणा मात्र से ही चुक जाती है; अन्य कुछ लोग दीर्घकाल तक प्रतिभा के उपयोग से अनेक सर्जनात्मक कृतियां दे जाते हैं।

सृजन के मूल में सदा ही कोई न कोई भाव, विचार, प्रत्यय, धारणा या भावना रहती है। अंग्रेजी में इसके लिए एक छोटा-सा प्यारा शब्द है—'आइडिया'। यही धीरे-धीरे अपने आस-पास की शक्तियां जुटाकर एक उद्देश्य बन जाता है और वह फिर किसी न किसी सृजन में परिणत होता है। अनातोल फ्रांस ने जब तारों-भरे आकाश को ध्यान से देखा, तब उसे मनुष्य की क्षुद्रता और पृथ्वी की अणुता का पता चला था और इससे अनातोल को जो प्रेरणा मिली थी, उसका प्रभाव उसकी सारी कृतियों में दीख पड़ता है। यही बात कवि ताइन और उसकी प्रेरणा-स्रोत बिल्ली और बिल्लियों के कार्य-कलाप के बारे में सच है। ताइन के बिल्ली पर लिखे सानिटों में इसीलिए प्रतिभा का मनोरम चमत्कार दीख पड़ता है।

हमारी आत्मा एक महासागर जैसी है। उसकी संभावनाएं, ग्रहणशीलता और सुनम्यता सचमुच रहस्यमयी हैं—हमारी मामूली पहुंच के बाहर। किंतु होती हैं वे असंदिग्ध ही। प्रेरणा के प्रसंग हमें कब क्या प्रतीति करा दें, कुछ नहीं कहा जा सकता। इसका हमारे अपने दैनंदिन जीवन की मरुभूमि से कोई रिश्ता नहीं होता।

किसी भी क्षण हमारी बुद्धि इतनी प्रदीप्त हो सकती है कि सचमुच आश्चर्य होता है। तब हम किसी की भी बातों या विचारों का सार या मर्म पकड़ पाते हैं, किसी भी भाषण की खरी और वजनदार आलोचना कर

सकते हैं या उसे भली भांति समझकर वक्ता की सराहना कर सकते हैं। किंतु ऐसा क्या हम हमेशा कर पाते हैं? बस, मन-मस्तिष्क में जो भी कौंधता है, उसके प्रति सचेतन ही तो हो पाते हैं हम; और यदि हम ऐसे सब क्षणों के प्रति सावधान रहें, तो असाधारण उद्बोधन के अधिकारी भी बन सकते हैं। इसीलिए कागज की चिंदियों पर जब-तब लिखी बातें या रेखांकन भी कभी-कभी समग्र मानवीय जीवन के उन्नायक और प्रेरक बन जाते हैं। अक्सर ये भंगुर और दुर्ग्राह्य होते हैं, अथवा दूसरी चीज़ों की और भांति-भांति के एहसासों की भीड़ में खो जाते हैं। किंतु अपने आपमें ये प्रतिभा-प्रसूत अनवद्य कृतियों से किसी तरह भी कम नहीं होते। इनका हम अपने अवचेतन से कैसे उद्धार करें—यही सृजन के क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या होती है।

विश्व के अधिकांश विचारक इस बात पर सहमत हैं कि सत्य की उपलब्धि का कारण हमारी कोई न कोई मानस प्रक्रिया ही होती है। सत्य से हमारा तात्पर्य उस आलोक से है, जिसे हमारा मन वास्तविकताओं के सघन संपर्क से प्राप्त करता है। सत्य को पा लेने पर हमारी बौद्धिक खोज खत्म हो जाती है और हमें एक प्रकार की प्रशांति का अनुभव होता है।

सत्य की प्राप्ति का और भी एक तरीका है—आत्मिक या अंतर्वर्ती यथार्थ से साक्षात्कार। प्रायः श्रेष्ठ धार्मिकों या कवियों की यही सहजबोध्य पद्धति होती है। उनकी प्रमा या अंतःप्रज्ञा की प्रामाणिकता के लिए तर्क, युक्ति, संगति आदि की कोई जरूरत नहीं पड़ती। ध्यान या मनन अथवा गंभीर चिंतन ही पर्याप्त होता है। उदाहरणार्थ, आप कोई भी उत्तम रहस्यवादी साहित्य लें, जैसे संत तेरेसा का 'द कासल ऑफ द सोल' (आत्मदुर्ग)। यूरोपीय साहित्य में प्लातनुस से स्वेडेनबर्ग तक यही बात दीख पड़ती है। प्रातिभ ज्ञान या अंतर्बोध के आधुनिक हिमायती न्यूमन या बर्गसां भी रहस्यात्मकता के ही अधिक निकट लगते हैं। ऐसा नहीं है कि उन्हें तथ्यात्मकता का मूल्य नहीं मालूम था। परंतु वे उस उच्चस्तरीय बुद्धि का भी अनुभव कर चुके थे, जिससे सत्य का आवरण भेदना संभव हो पाता है।

ये अंतःप्रज्ञाएं (प्रमाएं या सहजबोध) प्रकाशना या श्रुति नहीं होतीं। हमारे मन-मस्तिष्क में समाहित बिंबों की जो तुलनाएं या आपसी मुकाबले होते हैं, या कहिये कौंधते हैं, उन्हीं से सारी प्रमाएं प्रकट होती हैं। इनकी सुनम्यता (लचीलापन) या समंजसता हमारी बुद्धि से जनमे खयाली फार्मूलों (गुरों) से कहीं अधिक होती है। न्यूमन इन्हें वास्तविक तथ्यों की अपेक्षा 'वैचारिक सत्य' कहना ज्यादा पसंद करता था। यह आप 'ग्रामर आफ एसेन्ट' (सहमति या स्वीकृति का व्याकरण) और 'क्रिएटिव इवोल्यूशन' (सर्जनात्मक क्रमविकास) पढ़ते वक्त समझ सकते हैं कि सोचने की कला की विशेषताएं क्या होती हैं और वे कैसे विवरणों की अपेक्षा अनुभव पर

अधिक निर्भर होती हैं।

मौलिक सृजन के लिए दो उपादान अत्यंत आवश्यक होते हैं–१. आत्मवान बनो; २. आत्मा या अपने आपकी खोज में लगे रहो।

आत्मवान या अपना आपा बनने में दो बाधाएं मुख्यत: आती हैं–ढोंग और शंका-लुता।

ढोंग या भंगिमा भरोसा नहीं बन सकती। भरोसा जब दूसरी अच्छी और खरी खूबियों के साथ मिल जाता है, तो प्रतिभा में परिणत हो जाता है। बाल्जाक में आप दोनों बातों की मिसाल पा सकते हैं। किंतु दोषदर्शिता या व्यंग्य अपने आपमें कोई भंगिमा नहीं है। अपने उत्कृष्ट रूप में व्यंग्य सचाई या निष्कपटता और आत्मश्लाघा का घोलमेल ही बन पाता है। उसमें वह रूसो वाली निश्चित धारणा छिपी रहती है कि 'कोई भी अपने से ज्यादा अच्छा नहीं होता'। जो आप नहीं हैं, उसे अपने में आरोपित करके दिखाना ही भंगिमा है। यदि कोई ऐसा करने या अभिनय करने में ही अपनी शान समझता है, तो वह मौलिक सृजन कैसे कर सकता है! ज्यादा से ज्यादा वह एक अच्छा ग्रामोफोन रिकार्ड ही बन सकता है। और ऐसा अक्सर पेशेवर कलम-नवीसों के साथ घटता है। बहुत-से 'आधुनिक' पाठकों को उनकी 'लोरियां' अच्छी भी लगती हैं। सच तो यह है कि साहित्यिक फैशन और फार्मूलों के मुताबिक लिखने वाले अपनी हस्ती ही मिटा डालते हैं। वे यह समझ ही नहीं पाते कि नकल सर्जनात्मकता का गला घोंट डालती है।

निरी दोषदर्शिता या व्यंग्य करते रहने से हमारा व्यक्तित्व भी नहीं बन पाता। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सृजन की दिशा में हम निरे आलसी बने रहें। हमें अपनी चेतना को झकझोरकर यह देख लेना चाहिये कि क्या किसी रचना को शुरू करने से पहले हम उतनी तैयारी कर पाये हैं, जितनी कि करनी चाहिये थी। अपनी विगत उपलब्धियों से संतोष कर लेना भी एक तरह का आलस्य ही है। और अपने किसी भी रचनात्मक प्रयत्न को अंतिम एवं पूर्णतया दोषहीन समझ लेना भी बहुत बड़ी भूल है।

चिंतनीय

चिंता करने योग्य दो ही बातें हैं–आप स्वस्थ हैं कि बीमार हैं। अगर आप स्वस्थ हैं, तो फिर चिंता करने की कोई बात ही नहीं। लेकिन अगर आप बीमार हैं तो चिंता करने योग्य दो ही बातें हैं–स्वस्थ होंगे कि परलोक सिधारेंगे। स्वस्थ हो गये तो फिर चिंता की कोई बात ही नहीं। लेकिन अगर परलोक सिधार गये तो चिंता करने योग्य दो ही बातें हैं–स्वर्ग जायेंगे कि नरक। स्वर्ग गये तो फिर चिंता की कोई बात ही नहीं। लेकिन अगर नरक गये तो वहां इतने सारे मित्र मिलेंगे कि उनके साथ हाथ मिलाते-मिलाते आपको चिंता करने की फुरसत ही नहीं मिलेगी।

अपनी मनीषा, योग्यता या क्षमता का भरपूर उपयोग कर पाना हमारा एक नैतिक दायित्व है, जिसकी पूर्ति से सृजनात्मकता का प्रवाह खुल जाता है। और इसके लिए हमें अपनी इच्छाशक्ति दृढ़ करनी चाहिये।

हम अपने आपकी उपलब्धि अधिकांशतः मानसिक परिवेश में ही करते हैं। विशेषतः तब जब एकांत में आत्मचिंतन या पुनर्विचार करते हों अथवा किसी नैतिक समस्या को अपने लिए सुलझा रहे हों। बौद्धिक अनुभूति या मानस प्रत्यक्ष के सघन क्षणों में हम शेष सृष्टि की हर वस्तु के साथ एक तरह की समानुभूति प्राप्त करते हैं, उसे समझने की पूरी कोशिश करते हैं—यद्यपि उस वक्त अपने को एकदम अकेला महसूस करते हैं। कोई महान कृति, किसी संत या मनीषी का सामीप्य, संगीत का श्रवण या ऊंची कोटि की साधना भी हमें ऐसे क्षणों में ले जा सकते हैं। सभी विचारशील सृजनरत लोगों के जीवन में ऐसे क्षण आते ही हैं, जब सृजन के असीम आनंद की प्रभा उनके चेहरे पर झलक उठती है।

अनदेखे, अनजाने सौंदर्य या तथ्य अथवा सिद्धांत की आकस्मिक उपलब्धि या सप्रयत्न आविष्कृति के समय भी ऐसा ही होता है। सच तो यह है कि जब तक हम अपने निकटतम से यानी अवचेतन से संयुक्त नहीं हो जाते, तब तक अपने को दूसरों से बहुत कम अलग कर पाते हैं। इसके लिए कुछ व्यावहारिक उपाय ये हैं :

१. अपनी मुख्य मनोवृत्ति मालूम करें।

इससे तात्पर्य चेतना के उस स्तर से है, जो सर्वाधिक समृद्ध होता है, जिससे हम बहुत ज्यादा विचार-सामग्री पाते हैं, जिस पर होने से हम बहुत अधिक सोच पाते हैं। प्रतिभा बुनियादी तौर पर इसी स्तर की विचार-शक्ति है, जो बड़ी सहजता से काम करती है। साथ ही, यह धैर्य और आनंद से परिपूर्ण होती है। तभी तो प्रतिभा के कार्यों में हमारे मन-मस्तिष्क रम पाते हैं।

२. अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल ही बोलें और लिखें।

अक्सर लोग जब उत्कृष्ट प्रेम या क्रोध में होते हैं, अथवा किसी विचार, विश्वास, मतवाद या तीव्र इच्छा के वश में होते हैं, तो बहुत अच्छा बोलते हैं। गहरी नैतिकता की आधार-भूमि पर बने रहने वाले लेखक अन्य कलाकारों की अपेक्षा बेहतर मनोवृत्ति रख पाते हैं। इसके लिए उन्हें किसी फन्तासी और अतियथार्थ के अनुभवों की जरूरत नहीं पड़ती। हां, यह अवश्य होता है कि कुछ लयें (यदि इस शब्द को सारे अर्थों में लें) लेखकों को अपने अवचेतन के अधिक निकट रख पाती हैं।

३. अंतःप्रज्ञा, प्रमा अथवा प्रातिभ ज्ञान का महत्त्व समझें।

यही वह मानस क्रिया है, जो सहज ही होती है और जिसमें कम से कम बाहरी उपकरणों की जरूरत पड़ती है। यह अचानक ही कौंधता है। चाहे अपने जाने हमने इसके विषय की तीव्र इच्छा की हो या नहीं, किंतु एक क्षण में ही हमें उसके निश्चित यथार्थ

का बोध हो जाता है। इसी से हमारी किसी भी पुरानी समस्या का समाधान मिल सकता है। हमारा सारा रुख ही बदल जाता है। कारण, हमें एक ऐसे रहस्य-सूत्र का पता लग जाता है कि जो सारी गुत्थी सुलझाने में हमारी पूरी मदद करता है। ऐसे क्षणों में हमें कोई दबाव, तनाव या परेशानी भी नहीं महसूस होती; प्रत्युत एक प्रकार की समग्रता और स्वतंत्रता का एहसास होता है। लेकिन ये क्षण कभी इतने भंगुर होते हैं कि हम उनकी वास्तविकता से परिचय भी नहीं कर पाते कि वे विस्मृति-विलीन हो जाते हैं। और कभी ये हमारी ऐंद्रिय अनुभूति के क्षणों से भी कहीं अधिक दृढ और स्पष्ट होते हैं।

छोटी-छोटी प्रमाएं प्रायः तब बहुत आती हैं, जब हम जगते हुए-से भी सपने देखते या अत्यंत मनोरम संगीत सुनते होते हैं। कभी तो इनकी संख्या इतनी बड़ी होती है कि हम कोई अंदाज तक नहीं कर सकते। सोचने की कला पर किसी का आधिपत्य तभी माना जा सकता है, जब वह मन-चाहे वक्त पर इन प्रमाओं को उद्बोधित कर सके और ऐसा करते वक्त उसके दिमाग पर कोई जोर भी न पड़े।

४. अपनी प्रमाओं से स्नेहिल बरताव करें।

इसलिए कि वे बार-बार उसी रूप में और उतनी ही अपील से नहीं आतीं। प्रमा के क्षणों में हमें भीतर-बाहर शांत और मौन रहना चाहिये। हमें इन पर ध्यान तो देना है, किंतु इनके प्रति बहुत इच्छुक या जिज्ञासु एवं सकौतुक नहीं होना है। ये ऐसी तितलियां हैं, जो पकड़ी जाने पर अपनी खूबियां खो देती हैं। इसीलिए बहुत-से लेखक अपने प्रातिभ अनुभवों पर बुद्धि की कसरत या श्रम नहीं करने लगते। अच्छा यही होगा कि इन क्षणों में हम अपने मन में अधिकाधिक बिंब उभरने दें।

५. अपना 'मूड' उद्बोधक रखने की आदत डालें।

हमारी चेतना का एक स्तर सर्वाधिक संवेदनशील होता है। हम इसे जानते हैं और इस पर कभी भी पहुंच सकते हैं। तब हमारी जो भी प्रतिक्रिया होती है, वह सुनिश्चित होती है। यदि हम अधिकाधिक अपने आपमें रहें तो हमारा व्यक्तित्व भी विकसित होता रहता है और तभी हमारी ग्रहणशीलता भी बढ़ती जाती है।

वास्तव में हमारे जीवन की भावनाओं, प्रयत्नों, महनीयता और बुद्धि के उत्कर्ष के सर्वोच्च शिखर उद्बोधक 'मूड' रहने पर ही अधिगत हो पाते हैं। अवकाश के थोड़े-से क्षण ऐसा मूड ला दे सकते हैं। जैसे ही हम इसके प्रति सचेतन हुए कि प्रमानुभूतियां भी टिमटिमाने लगती हैं। कविगण यह अच्छी तरह समझते हैं। ऐसी स्थिति में कभी-कभी तो हमें आगामी घटनाओं का भी आभास या एहसास भी हो जाता है। बच्चों को अपनी मासूमियत के कारण प्रायः ऐसा होता है। हमें भी हो सकता है, बशर्ते हम अपने मन-मस्तिष्क से मासूमियत बिलकुल धो-पोंछ न डालें।



कौन मूल्यवान ?

मनुगुप्त

नायक का नाम हिरोमी कियोकावा। शहर–जापान में एक कस्बा काने। कियोकावा की उम्र–सिर्फ ३६ वर्ष। पेशा–दफ्तर में क्लर्क।

घटना बहुत छोटी-सी है। कियोकावा को एक लाटरी मिली–१ करोड़ येन, यानी लगभग ४,०६,४०० रुपये।

नये साल के दिन जब यह खबर मिली, तभी से कियोकावा तरह-तरह के सपने देखने लगा–एक गाड़ी होगी, एक बाड़ी, बीवी के पास तरह-तरह के किमोनो और आधुनिक फैशन की वेषभूषाएं। घर में जापानी शैली का उपवन होगा–छोटे पेड़ों और पहाड़ों तथा झरनों से नयनाभिराम।

किसे मालूम था कि अंत इस कहानी का भी वही हुआ, जो उस कहानी का हुआ जिसमें एक भिखमंगा घड़ा-भर सत्तू जमा करके उसे छत से लटकाकर सपने बुनता और आखिर लात मारकर घड़ा तोड़ देता है–सत्तू बिखरकर किसी काम का नहीं रहता।

कियोकावा ने लाटरी की रकम वसूलने से पहले ही उसे जला दिया। मित्रों ने, हितैषी सहकर्मियों ने रोका तो भी नहीं माना। सबके देखते कियोकावा को लखपति बना सकने वाला भाग्य-टिकिट राख हो गया ......

क्यों किया उसने यह कृत्य ? ..... इसलिए कि दोस्तों ने बोलना बंद कर दिया था उससे, यद्यपि सारा शहर उसे जान-पहचान गया था। जिधर जाता उधर ही लोग उंगली उठाकर दिखाते–वह जा रहा है भाग्यशाली हिरोमी कियोकावा ! लेकिन कियोकावा तो नजदीकी प्यारे दोस्तों की ईर्ष्याजन्य नयी दुश्मनी से परेशान हो गया था। नहीं बनेगा वह 'लक्ष्मीवाहन'–यानी उल्लू ...

बन ही गया फिर भी ! सारा धन किसी अस्पताल को दे सकता था .... कुछ भी ऐसा कर सकता था, जिससे दूसरों की निगाह में वह बहुत ज्यादा प्यारा हो जाता...

नहीं, फ्रांस के मशहूर लेखक-दार्शनिक सार्त्र ने साहित्य में नोबेल पुरस्कार के साढ़े सात लाख रुपये नहीं कबूले थे। कहा था–आलू के बोरे के बराबर हैं ये रुपये .... मुझे नहीं चाहिये। बर्नार्ड शा ने नोबेल पुरस्कार की सारी रकम एक ट्रस्ट को दान कर दी थी। उद्देश्य था ऐसी भाषा और लिपि का प्रचार-प्रसार जिसे दुनिया में सब लोग समझें, पढ़ें। मगर कुछ नहीं हो सका उस

दिशा में। अब ब्रिटिश सरकार सोच रही है कि संसद से कानून बनवाकर राष्ट्रीयकरण कर ले उस सारी धनराशि का। इसलिए कियोकावा ने लाटरी वसूलना ही गलत समझ लिया। वैसे भी बेचारा उत्तेजना के मारे सो नहीं पा रहा था। कई रातें जागते, चहलकदमी करते और बिस्तर पर करवटें बदलते बीती थीं। .... बीवी होती तो शायद ऐसा न हुआ होता।

मान लीजिये, आप कियोकावा हैं और आपको दीवाली के दिन खुली महाराष्ट्र सरकार की पांच लाख की लाटरी मिली है... आप सोचने लगे हैं—'पौने दो लाख तो सरकार टैक्स के वसूलेगी, बचे ३ लाख २५ हजार! ठीक-सा फ्लैट लूं तो कम से कम दो लाख गये, ४०–५० हजार घर सजाने को चाहिये, ३५ हजार के लगभग की कार आयेगी। बाकी ५० हजार ब्याज पर लगा दूंगा, ५०० रुपये प्रतिमास की आमदनी हो जायेगी। नहीं, रिइन्वेस्ट कर दूंगा उसे, आठ वर्ष में एक लाख हो जायेंगे!

'छोड़ो जी, फ्लैट-वैट के चक्कर में नहीं पड़ना। सारी रकम का पूंजी विनियोग करके (विनियोगाद् वृद्धिः) दुगुना क्यों न बना लिया जाये? ..... मुफ्त सलाह देने वाले, कुछ मिलने की उम्मीद लगाने वाले रिश्तेदारों की भीड़ शुरू हो गयी है ..... अचानक 'सुपर हीरो' हो गया हूं उनके लिए... जो कभी याद नहीं करते थे, वे भी बधाइयों के तार, खत भेज रहे हैं। कुछ लोग तो यही कहते नहीं अघाते—'मजे करो प्यारे, अब तो। अब क्यों आठ सौ की नौकरी से चिपके हो? ब्याज ही काफी होगा, सवा तीन लाख का। मूल में हाथ लगाने की जरूरत नहीं।'

लोग मुझे 'मुकद्दर का सिकंदर' तो बता ही रहे हैं, बख्शते नहीं अपनी मेहरबानियों से रोज-रोज! बीवी के घरवालों का तांता शुरू हो गया है .... पैसे सबकी निगाह में खटक रहे हैं, घर का कामकाज नौकर करने लगे हैं, बीवी मेरी खातिर-खुशामद में दिन-रात एक किये है ..... दोस्त उसे दुश्मन लगते हैं, रुपये अभी हाथ में नहीं आये लेकिन कर्ज मांगने वालों की 'क्यू' लग गयी है! टिकिट तो मैंने बैंक में जमा कर दिया है, अन्यथा जान के लाले पड़ जाते.... यों किडनैप होने का डर लगा रहता है, बहुत सावधानी से दिन बिता रहा हूं। अखबार वाले भी आये थे कई। उनसे कह दिया है कि पहले अब तक जिन्हें पांच लाख, दस लाख, दो लाख और एक लाख की लाटरियां मिली हैं उनके इंटरव्यू छापिये दो-चार। सरकार के लाटरी-विभाग के निदेशक से पता लीजिये पाने वाले के नाम-पते!

सच! यह एक बड़ा अच्छा विषय है। 'इन्वेस्टिगेटिव' अखबार-नवीसी के लिए। .... मैं इस पर कुछ काम करूंगा कल से।

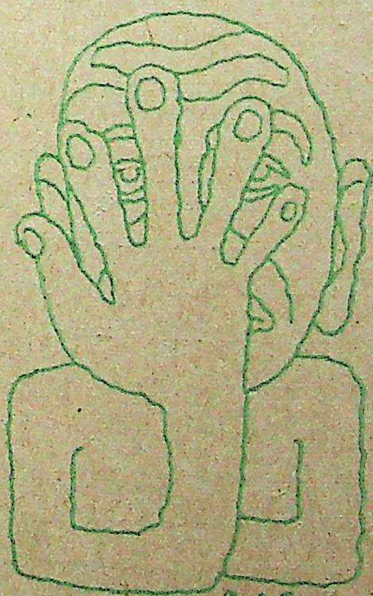




चावल का भात

सन १९७० में मैं ठाकुर रणमतसिंह कालेज, रीवा में स्नातक-कक्षा के अंतिम वर्ष की पढ़ाई पूरी कर रहा था। गांव से कालेज लगभग २४-२५ किलोमीटर के फासले पर है। प्रति सप्ताह साइकल से आता-जाता था। अतः अपने गांव और शहर के बीच सड़क के किनारे पड़ने वाले गांवों के अधिकांश व्यक्तियों से परिचय-सा हो गया था।

मार्च के महीने में एक दिन मैं राशन-पानी लेने गांव जा रहा था। जैसे ही शहर की सीमा पार करके एक गांव में मेरा प्रवेश हुआ, कुछ दूरी पर हरिजनों की बस्ती से स्त्री-पुरुषों के रोने व शोर का समवेत स्वर सुनाई पड़ा। कौतूहलवश सड़क छोड़कर मैंने पगडंडी पकड़ ली तथा टोह लेते-लेते उस घर तक पहुंचा, जहां से वह आवाज आ रही थी। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था। उस घर का मालिक दमे की बीमारी के बाद चल बसा था। शव से लिपट-लिपटकर मृतक की बुढ़िया पत्नी रो रही थी। बहुएं घूंघट के भीतर सुबक रही थीं। किंतु मृतक के दोनों लड़के आपस में लड़ रहे थे। पास खड़े लोगों से इस लड़ाई का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि बड़ा भाई मृत पिता के दाह-संस्कार में मुखाग्नि स्वयं देना चाहता है, किंतु छोटा भाई कहता है कि आग मैं दूंगा, बस इतनी-सी बात है।



चित्र : एन. पी. सोनी

मैंने बीच-बचाव करते हुए उन दोनों से कहा—'चिता में आग चाहे बड़ा भाई दे या छोटा भाई, एक ही तो बात है।'

इस पर बड़े भाई ने तमककर कहा—'आप नहीं जानते जी, छोटा इसलिए आग देने की जिद कर रहा है कि चिता में जो भी आग देगा, उसे हफ्ते-भर चावल का भात खाने को मिलेगा। मैं ससुरा कोदों का भात खाऊं और यह हफ्ते-भर चावल का भात खाये,

ऐसा नहीं हो सकता।'

गरीबी की खाई कितनी गहरी है, इसका इससे सचोट निदर्शन क्या होगा?

—कालिका त्रिपाठी, शहडोल, म. प्र.

०००

पश्चात्ताप

वे मेरे स्वर्गीय पिताजी के मित्र हैं—आइ. ए. एस. एवं राज्य सरकार के उच्च पदाधिकारी, हम लोगों के अत्यंत शुभचिंतक। पिछले दिनों उनके घर जाना हुआ। विशाल सरकारी बंगला—चपरासी, ड्राइवर-युक्त कार से सुसज्जित। जो मांगो हाजिर। साहब जो चाहते, चपरासी से कहते और चीज कुछ ही पलों में सामने हाजिर। पैसे अथवा मूल्य की कोई चर्चा न होती। मैंने मन में सोचा, नौकरी हो तो ऐसी हो। सारी तनख्वाह बैंक में!

मेरे कैमरे में चढ़ी रील में तीन ही फोटो और खींचे जा सकते थे। मन में विचार आया, क्यों न फटाफट तीन फोटो खींच डालें और रील यहीं धुलवा लें मुफ्त में। बेकार में कानपुर में धुलवाने पर और आठ-दस रुपये लग जायेंगे। बस तीन फोटो खींच डाले चील-कौवों के। रील निकालकर चपरासी को सौंप दी कि धुलवा लाना। 'जी, साहबजी' कहकर उसने रील मेरे हाथ से ले ली। दूसरे दिन रील धुलकर आ गयी। फोटो साफ उतरे थे। मन खुश हो गया कि हर्रा लगा न फिटकरी, रंग चोखा आया।

दो दिन बाद चपरासी ४ रुपये और ९६ रुपये का बिल मेज पर रख गया। उत्सुकतावश बिल को पढा तो घर के सामानों के बीच रील धुलवायी के १३ रुपये लिखे थे। बात समझते देर न लगी। मन ग्लानि से भर गया। साहब हर हफ्ते १०० रुपये चपरासी को देकर उससे सामान मंगाते रहते थे, जब रुपये खर्च हो जाते तो चपरासी हिसाब दे देता। देर न की मैंने, तुरंत रील के पैसे काटे और १३ रुपये जोड़कर साहब की मेज पर रख दिये। बात तो टल गयी, पर मन की ग्लानि अभी तक नहीं गयी। अब भी किसी को चोर या रिश्वतखोर कहने से पहले मन एक बार ठिठक-सा जाता है उस घटना को याद करके।

— अरूप मुखर्जी, कानपुर-५

०००

जीत हार में बदल गयी

उन दिनों मैं गुरुकुल कांगड़ी में पांचवीं कक्षा में पढ़ता था। हमारी कक्षा के शिक्षक श्री मुंशी रामसिंहजी थे। वे उर्दू तथा गणित तो जानते थे, पर संस्कृत से अनभिज्ञ थे। इस कमी की पूर्ति के लिए छात्रों के साथ विद्यालय में बैठकर संस्कृत पढ़ते थे। एक कर्तव्यपरायण शिक्षक के नाते वे सायंकाल के भोजन के बाद हमें भी पठित पाठ याद करने को कहते और स्वयं भी पाठ दोहराते। फिर सबसे पाठ सुनकर और प्रार्थना-मंत्र बुलवाकर सोने के लिए कहते।

उस दिन अन्य सब छात्रों ने पाठ सुना दिया, पर मैं नहीं सुना सका। मुंशीजी ने दंडस्वरूप मुझे तख्त पर खड़े होने के लिए कहा। १५-२० मिनिट बाद मंत्र बोलकर सब छात्र सो गये। थोड़ी देर बाद मुंशीजी को भी नींद आ गयी और वे भी सो गये। उनके सो जाने के बाद मैं भी बिस्तर बिछाकर सो गया। प्रातःकाल साढ़े चार बजे बड़ी कक्षा के छात्रों के उठने की घंटी बजी तो मैं जग गया और बिस्तर लपेटकर फिर तख्त पर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद मुंशीजी उठे। मुझे खड़ा देखकर पास आकर बोले–'तुम क्यों खड़े हो?' मैंने कहा –'कल रात आपने मुझे खड़ा होने का दंड दिया था। आपके बिना कहे कैसे सोता।' मेरा उत्तर सुनकर वे मेरे पैर पकड़कर आंखों से आंसू बहाते हुए कहने लगे–'सोम! मुझे क्षमा कर दे। मैं भी कैसा पापी हूं कि तुझे खड़ा होने का दंड देकर खुद सो गया और तू बेचारा सारी रात खड़ा रहा! अब तू लेट जा, तेरी टांगें दुखने लगी होंगी मैं दबा दूं।'

मुझे बड़ी ग्लानि हुई। मैं उनके पैरों पर गिरकर बोला–'मुझे क्षमा कर दीजिये, मैं आपसे झूठ बोला कि मैं सारी रात खड़ा रहा। आपको सोया देखकर मैं भी बिस्तर बिछाकर सो गया था।'

मेरी बात सुनकर उनके चेहरे पर प्रसन्नता झलक उठी। धोती के छोर से अपने आंसू पोंछते हुए उन्होंने मुझे उठाकर छाती से लगा लिया और बोले–'तूने मुझे पाप से बचा लिया सोम, वरना मैंने सोचा था कि इस अपराध के दंडस्वरूप आज सारा दिन उपवास रखूंगा।' उनकी बात सुनकर अपने हाथ से अपने गाल पर तीन-चार थप्पड़ लगाते हुए मैंने कहा–'मैंने आपको धोखा दिया, आप मुझे क्षमा कर दें।' इस तरह असाधुं साधुना जयेत् का पहला उदाहरण मैंने अपने जीवन में देखा।

–सोमदत्त विद्यालंकार, नयी दिल्ली-६०



धोलनगर (गुजरात) के राजा पलंग पर लेटे हुए थे। सेवक पैर दबा रहा था। राजा ने आंखें मूंद लीं तो उसने उनके पैर से एक अंगूठी निकाल ली। प्रातःकाल राजा ने अंगूठी को पैर में न पाकर सेवक पर संदेह तो किया, किंतु उससे पूछा नहीं।

दूसरे दिन संदेह की पुष्टि के लिए राजा ने नींद में होने का बहाना किया और जब सेवक दूसरे पैर से अंगूठी निकालने लगा, तब बोले–'एक तो रहने दो भाई।' सेवक घबरा गया, पैरों में गिरकर बोला–'मुझसे बड़ी गलती हो गयी हूजूर, क्षमा कर दें।'

'गलती तुम्हारी नहीं, मेरी है। मुझे यह सोचना चाहिये था कि इतने कम वेतन में तुम्हारा गुजारा कैसे होता होगा। बस, मेरी इसी असावधानी से तुम यह दुष्कृत्य करने पर विवश हुए।'

इसके बाद राजा ने अपने कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दिया। **–एस. के. त्रिपाठी**



बिछुड़े हुए पड़ोसी मुल्क के नाम

ड्योढ़ी पार बसती आबादी में—ताकता हूं
मैं अपने बिछुड़े भाई को;
कई साल हुए जिसे खदेड़ दिया था
किसी ने मेरे जन्म से पहले।
वह बत्तीस साल का अरसा ....
छोटा अरसा नहीं, एक सदी है!

मां-बाप भी बेटे के नक्श भूल जाते हैं,
यादें मिट जाती हैं
खुश्क हवाओं और नागफनी की
बाड़ उग आती है
उस पार की बस्ती रात में गुम जाती है।
.....

पर इन रातों में अब भी कई बार
अंधेरे में बिछोह से चीखता मैं
ड्योढ़ी के उस पार भी
किसी को रोते सुनता हूं।

—नवराज

कुमाऊं हास्टल, आइ. आइ. टी., नयी दिल्ली-२९

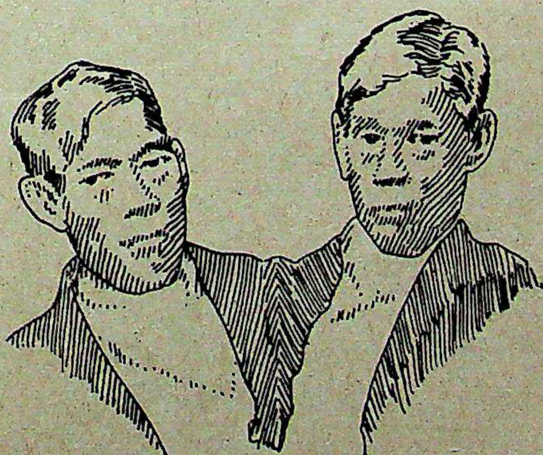
एंग और चेंग

डा. आस्पी गोलवाला

वे जुड़वां बच्चे जिनके शरीर भी आपस में जुड़े हुए हों, अंग्रेजी में 'सयामीज़ ट्विन्स' कहलाते हैं। इस शब्द के लिए अंग्रेजी भाषा ऋणी है सयाम (थाईलैंड) के दो जुड़वां भाइयों की, जिनके शरीर आपस में एक चौड़ी पट्टी से जुड़े हुए थे।

बात सन १८११ की है। बैंकाक के निकट एक गांव में दो बच्चों ने जन्म लिया, जिनके शरीर वक्षोस्थि से लेकर उदर के निचले हिस्से तक आमने-सामने से जुड़े थे। इन्हें आमने-सामने चेहरा रखकर ही सुलाया जा सकता था। इनके नाम रखे गये एंग और चेंग। ज्यों-ज्यों ये बच्चे बड़े होते गये उन्हें जोड़ने वाली पट्टी ज्यादा चौड़ी तथा लचीली होती गयी। जब इन्होंने किशोरावस्था की देहरी पर कदम रखा, तब तक वे एक दूसरे की ओर थोड़ा झुककर अगल-बगल में खड़े हो सकते थे। इन्होंने साथ-साथ कदम बढ़ाकर चलना और दौड़ना ही नहीं तैरना भी सीख लिया था।

गांव के लोग तो एंग और चेंग को उतनी विचित्र निगाहों से नहीं देखते थे, क्योंकि वे उस गांव में ही



मूल 'सयामीज़ ट्विन्स'

जन्म लेकर बड़े हुए थे; परंतु बैंकाक के राजमहल में जब भी कोई विदेशी शाही मेहमान आता, उसके मनोरंजन के लिए एंग और चेंग को जरूर बुलाया जाता था।

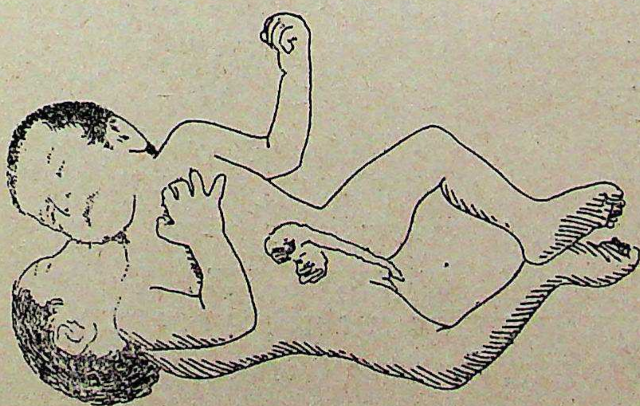
ऐसे ही एक मौके पर एक अमरीकी जहाजी कप्तान ने राजमहल में उन्हें देखा। वह उनसे बहुत प्रभावित हुआ और उन्हें मई १८३० में इंग्लैंड ले गया। वहां वे मनोरंजन की दुनिया के अपूर्व आकर्षण बन गये। वे जहां भी जाते, हजारों लोग उन्हें घेर लेते। इस तरह एंग और चेंग की शारीरिक बाधा उनके लिए अच्छी आमदनी का साधन बन गयी।

अमरीका और यूरोप में लगभग दस वर्षों तक चक्कर लगाने के बाद उन्होंने काफी बड़ी दौलत जमा कर ली। फिर उन्होंने मनोरंजन की दुनिया को अलविदा कहकर किसी स्थान पर स्थायी रूप से बस जाने का निश्चय किया। उत्तरी कैरोलिना (अमरीका) में उन्होंने एक शानदार कोठी खरीदी और वहां रहने लगे।

उन्हें वहां रहते साल-भर ही बीता था कि आस-पास यह खबर फैल गयी कि समीप के ही एक धनी किसान की दो खूबसूरत लड़कियों से उन जुड़वां भाइयों का रोमांस चल रहा है और वे कभी भी विवाह-सूत्र में बंध सकते हैं। इन लड़कियों के नाम थे—एडी और सैली। लोगों ने इस रोमांस का सख्त विरोध किया और कहा कि जुड़वां लड़के दो लड़कियों से कैसे विवाह-संबंध स्थापित कर सकते हैं!

लेकिन एंग और चेंग विवाह की बात पर दृढ थे और इसके लिए कोई भी कुर्बानी देने को तैयार थे। यह तय किया गया कि यदि आपरेशन करके दोनों के शरीर अलग-अलग कर दिये जायें, तो विवाह हो सकता है। दोनों भाई ऐसे आपरेशन के लिए तैयार हो गये। इसके पहले भी कई बार यह बात उनके दिमाग में उठी थी; पर कोई शल्य-चिकित्सक इस आपरेशन का खतरा उठाने के लिए तैयार नहीं हुआ था।

इस बार उन्होंने किसी तरह फिलाडेलफिया के शल्य-चिकित्सकों को आपरेशन के लिए तैयार कर लिया। पूरी तैयारी की गयी और आपरेशन शुरू होने ही वाला था कि अचानक एडी और सैली वहां आ पहुंचीं। उन्हें यह पता चल गया था



जे. पी. अस्पताल, दिल्ली में जनमे जुड़वां बच्चे।

कि एंग और चेंग क्यों आपरेशन करवा रहे हैं। काफी अनुनय-विनय द्वारा उन्होंने एंग और चेंग को उसी तरह जुड़े रहने के लिए मना लिया। आपरेशन नहीं हुआ और विरोध के बावजूद कुछ सप्ताहों के भीतर ही एंग और चेंग का विवाह सैली और एडी से हो गया। युगल-दंपति ने सम्मिलित रूप से घर बसाया।

अगले तीस वर्षों के सुखी दांपत्य-जीवन में उनके कुल २१ बच्चे हुए—एडी और चेंग के दस, और सैली तथा एंग के ग्यारह। यह बात सोचकर हैरत होती है कि उन्होंने अपने वैवाहिक संबंधों को कैसे व्यवस्थित किया होगा? दोनों दंपतियों के एक-एक गूंगा और बहरा बच्चा हुआ, शेष सभी पूरी तरह स्वस्थ और सामान्य थे।

अमरीकी गृहयुद्ध ने एंग और चेंग को अपनी वैभवशाली कोठी को छोड़ने पर मजबूर कर दिया। उनकी संपत्ति लूट ली गयी। अब वे फिर से सड़कों पर थे। लेकिन किस्मत ने फिर भी उनका साथ दिया। सन १८७२ तक उन्होंने फिर से काफी धन जमा कर लिया और अपने पुराने मकान को दुबारा आबाद कर लिया। लेकिन उनका सुख थोड़े ही समय का रहा।

कुछ समय से चेंग अस्वस्थ रहने लगा था। जनवरी १८७४ में एक दिन उसे काफी तेज बुखार चढ़ गया और बेचैनी होने लगी। उसी जुड़ी हालत में दोनों भाई उस रात अपनी पत्नियों से अलग दूसरे कमरे में सोये। तड़के चार बजे के करीब चेंग की पत्नी एडी यह देखने दबे पांव उस कमरे में गयी कि सब कुछ ठीक तो है। चेंग के मृत देह पर नजर पड़ते ही वह चीख उठी।

उसकी चीख सुनते ही दूसरे लोग भी जमा हो गये। इस शोरगुल से एंग की नींद खुल गयी। जैसे ही उसने सिर उठाकर चेंग की ओर देखा, वह भी बेहोश हो गया। एक घंटे के भीतर उसकी भी मृत्यु हो गयी!

जुड़वां भाइयों की जुड़वां मौत का समाचार सुनकर लोग उनके घर की ओर भागे। भीड़ जमा होती गयी। कुछ लोग उन शवों को खासी रकमें देकर खरीदने को तैयार थे। पर एडी और सैली ने शव फिलाडेलफिया के एक अस्पताल को दान में दे दिये, ताकि उन पर चिकित्साशास्त्रीय अनुसंधान किया जा सके।

पोस्टमार्टम से पता चला कि यद्यपि एंग और चेंग के शरीर के अन्य सभी अंग अलग-अलग थे, पर उनके दिल एक ही था। जुड़ी हुई पट्टी के सहारे वही दिल दूसरे को भी जिंदा रखे हुए था—यदि उनके जीवन-काल में कभी उस पट्टी को काटकर उन्हें अलग करने की कोशिश की जाती, तो निश्चय ही एक की मौत हो जाती। एडी और सैली ने तीस साल पहले आपरेशन रुकवाया था, तब कौन जानता था कि वे उनकी जिंदगी बचा रही हैं।



पिंजरे से आजाद लेकिन उड़ने से भयभीत

– स्व. बलराज साहनी

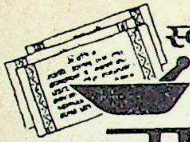
[जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली में दिये गये दीक्षांत भाषण के अंश]

बीस साल पहले की बात है, 'दो बीघा जमीन' फिल्म के निर्माता, बिमल राय और उनके कलाकारों तथा टेक्नीशियनों का कलकत्ता की 'फिल्म जर्नलिस्ट एसोसियेशन' की ओर से सम्मान किया जा रहा था। बड़े सुंदर भाषण हुए। पर श्रोता बड़ी उत्सुकता से बिमल राय को सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे उस महान व्यक्ति से उसकी कला और जीवन संबंधी अनुभव और विचार सुनना चाहते थे। आखिर बिमल राय से बोलने के लिए प्रार्थना की गयी। मैं उस समय बिमल राय के बिलकुल पास फर्श पर बैठा हुआ था और काफी समय से देख रहा था कि वे बहुत ही बेचैन और घबराये हुए-से लग रहे हैं। आखिर वे उठे और उन्होंने श्रोताओं के सामने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर सिर्फ इतना कहा–'जो कुछ कहना था, मैं फिल्म में कह चुका हूं। मैं क्षमा चाहता हूं कि मेरे पास कहने के लिए और कुछ नहीं है, और न मुझे भाषण करना ही आता है।'

इस समय मैं भी सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं। अगर मैं इससे ज्यादा कहने का साहस कर रहा हूं, तो सिर्फ इसलिए कि जिस व्यक्ति के नाम पर आपकी यूनिवर्सिटी कायम की गयी है, उसके व्यक्तित्व से मुझे प्यार है। इसलिए आपकी संस्था की ओर से मिलने वाली किसी भी आज्ञा का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। अगर आप मुझे इस इमारत की सीढ़ियां और फर्श साफ करने की आज्ञा देते, तो मैं अपना उतना ही सौभाग्य समझता, जितना इस समय यहां खड़े होकर आपको संबोधित करने में महसूस कर रहा हूं। उस सेवा के लिए मैं शायद योग्य साबित होता।

मुझे गलत न समझा जाये। मैं यहां नम्रता और शिष्टता का दिखावा करने के लिए नहीं आया हूं। जो बात मैंने कही है, वह दिल से कही है। मैं यहां जो कुछ कहूंगा, अपने उस जीवन-अनुभव के बारे में ही कहूंगा, जिसमें से गुजर रहा हूं। उससे बाहर जाना मूर्खता होगी।

इस समय मुझे अपने विद्यार्थी-जीवन के जमाने की एक घटना याद आ रही है,



स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के लिये ३००० वर्ष पुराना नुसखा

डाबर च्यवनप्राश पूरे परिवार के लिये ४ सूत्री आयुर्वेदिक टॉनिक



विटामिन सी से भरपूर, स्वादिष्ट खट्टा-मीठा मिश्रण अपने प्राकृतिक रूप में

१. शरीर के तंतुओं को जवान रखता है

डाबर च्यवनप्राश से शरीर के तंतुओं का क्षय धीमा पड़ जाता है।

२. शरीर की प्रतिरक्षा शक्ति को बढ़ाता है

डाबर च्यवनप्राश शरीर की संपूर्ण प्रतिरोधक शक्ति का विकास करता है तथा सर्दी और जुकाम में भी लाभदायक है।

३. स्फूर्ति प्रदान करता है

डाबर च्यवनप्राश बच्चों में स्फूर्ति बनाए रखता है और वृद्धावस्था में कार्यशक्ति विकसित करता है।

४. इसमें संचय और वृद्धि करने के गुण हैं

डाबर च्यवनप्राश शरीर के विकास मे मदद देता है।

देवताओं का नुसखा

च्यवनप्राश का नुसखा ३००० वर्षों से भी पहले का है, जैसाकि कहा जाता है कि देवताओं के चिकित्सकों ने महर्षि च्यवन को उनका यौवन फिर से प्रदान करने के लिए तैयार किया था। यद्यपि च्यवनप्राश सम्भवतः विश्व में प्राचीन स्वास्थ्य-प्रद टानिक है, तथापि डाबर मे इसके बनाने का तरीका पूर्ण आधुनिक एव वैज्ञानिक है।

एक शक्तिदायक आयुर्वेदिक टानिक

डाबर च्यवनप्राश

सभी दवा विक्रेताओं के यहाँ मिलता है।

जिसे मैं कभी भुला नहीं सका, और जिसने मेरे मन पर बहुत गहरा असर डाला।

हमारा परिवार बस में रावलपिंडी से कश्मीर जा रहा था। रास्ते में पहाड़ का एक हिस्सा टूटने के कारण सड़क बंद हो गयी थी। ऊपर से बेहद बारिश हो रही थी। कई दिन तक न बारिश बंद हुई, न सड़क की मरम्मत हो पायी। दोनों तरफ मोटरों की लंबी कतारें लग गयीं। न खाने-पीने का अच्छा इंतजाम था, न सोने का। आस-पास के गांवों के लोग यात्रियों की सेवा करते हुए थक गये थे। पी. डब्ल्यू. डी. के कर्मचारी सड़क की मरम्मत करने में सिरतोड़ मेहनत कर रहे थे। फिर भी ड्राइवर और यात्री हर समय उनके पीछे पड़े रहते, उन्हें सुस्त और निकम्मा कह-कहकर कोसते रहते। आखिर चौथे-पांचवें दिन रास्ता खुलने का एलान हुआ और ड्राइवरों को हरी झंडी दिखा दी गयी।

पर तब एक बड़ा ही अजीब नजारा देखने में आया। न इस तरफ से और न ही उस तरफ से कोई ड्राइवर अपनी गाड़ी आगे बढ़ाने में पहल करने के लिए तैयार था। सभी खड़े एक-दूसरे का मुंह देख रहे थे। इसमें शक नहीं कि रास्ता कच्चा था, और खतरनाक भी। एक तरफ पहाड़ था, और दूसरी तरफ खाई और ठाठें मारता जेहलम दरिया। ओवरसियर ने अपनी पूरी तसल्ली करके रास्ता खोला था, पर कोई भी व्यक्ति उसका आश्वासन सुनने को तैयार नहीं था। आधा घंटा बीत गया। कोई टस से मस न हुआ। इतने में पीछे से एक छोटी-सी, हल्के हरे रंग की, स्पोर्ट्स-कार आती हुई दिखाई दी। एक अंग्रेज उसे चला रहा था। भीड़ को देखकर वह हैरान हुआ। मैं कोट-पतलून पहने जरा बन-ठनकर खड़ा था। उसने मुझसे पूछा, 'क्या हुआ है?' मैंने उसे सारी बात बतायी, तो वह जोर से हंसा और उसी क्षण हार्न बजाता हुआ, बिना किसी डर के, कार चलाता हुआ आगे बढ़ गया।

उसके बाद का नजारा और भी देखने लायक था। कहां तो कोई माई का लाल गाड़ी स्टार्ट करने के लिए तैयार नहीं था, और कहां अब सभी की गाड़ियों के इंजन एकदम स्टार्ट हो गये, और वे हार्न पर हार्न बजाते हुए एक साथ वह हिस्सा पार करने लगे। इतनी भगदड़ मची कि रास्ता फिर काफी देर के लिए बंद हो गया। तब मैंने अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देखा कि गुलाम और आजाद आदमी में कितना फर्क है!

पता नहीं, आपमें से किसी ने नंदलाल बसु द्वारा चित्रित गांधीजी का चित्र देखा है या नहीं। यह एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है, जिसें अपने आप पर, अपने विचारों और अपने चरित्र पर विश्वास है।

मेरा थोड़ा-बहुत संबंध साहित्य की दुनिया से भी है, और यही हालत मैं उस दुनिया में भी देखता हूं। यूरोपीय साहित्य के फैशन हमारे उपन्यासकारों, कहानी-लेखकों और कवियों पर झट हावी हो जाते हैं। मेरे पंजाब में कवियों की नयी पौध इन्कलाबी जज्बे से ओतप्रोत है। वह जनता

को इन्कलाब के लिए चुनौती देने वाली कविता लिखती है, पर पश्चिमी पूंजीपति देशों की कविता की तरह उसमें न तुक है, न लय है, न छंद है। वह जनता की समझ में नहीं आती, जिसे कि वह इन्कलाब की प्रेरणा देना चाहती है।

और अगर आप अपने शैक्षणिक संसार को भी जरा गहरी नजर से देखें, तो शायद दूसरों पर हंसने के साथ-साथ आप खुद पर भी हंसना चाहेंगे।

पंजाब में यह जानी-पहचानी बात है कि किसान का बेटा कालेज की शिक्षा प्राप्त करने के बाद खेती-बाड़ी के काम के लायक नहीं रहता। उसे अपने चौगिर्द और अपने लोगों से नफरत हो जाती है। वह शहर भागने की कोशिश करता है। क्या आपके शैक्षणिक वातावरण की यह स्थिति शोकपूर्ण नहीं है?

आपने पंडित जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा में पढ़ा होगा कि हमारे देश के आजादी के आंदोलन पर, जिसका नेतृत्व इंडियन नेशनल कांग्रेस करती थी, शुरू से ही पूंजीपति वर्ग का प्रभाव रहा है। सो, स्वाभाविक था कि आजादी के बाद इसी वर्ग का शासन और समाज पर प्रभाव होता। आपमें से कोई भी इस बात से इन्कार नहीं करेगा कि पिछले बीस सालों से पूंजीपति वर्ग दिन प्रतिदिन और ज्यादा धनवान और शक्तिशाली होता जा रहा है, और मजदूर और किसान वर्ग और ज्यादा लाचार और परेशान। पंडित नेहरू इस स्थिति को बदलना चाहते थे, पर बदल नहीं सके। इसके लिए मैं उन्हें दोष नहीं देता। हालात ने उन्हें मजबूर कर रखा था।

हम जानते हैं कि अंग्रेजों की पूंजीवादी व्यवस्था ने अपने कदम मजबूत करने के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया था। आज हमारे देश की पूंजीवादी व्यवस्था के कदम कौन-सी भाषा मजबूत करती है? पूंजीपति हर चीज को मुनाफे की दृष्टि से देखता है। उस दृष्टि से उसके लिए आज भी अंग्रेजी ही फायदेमंद है।

भारत का पूंजीपति वर्ग देश में इन्कलाब नहीं चाहता, कोई बुनियादी तब्दीली नहीं चाहता। अंग्रेजों से विरसे में मिली हुई व्यवस्था को उसी प्रकार कायम रखने में उसका फायदा है। पर वह खुले आम अंग्रेजी को अंगीकार नहीं कर सकता। राष्ट्रीयता का कोई न कोई आडंबर खड़ा करना उसके लिए जरूरी है। इसीलिए वह संस्कृतनिष्ठ

जिम्मेदारी

श्रीमती गोल्डा मेयर सत्तर वर्ष की उम्र में इस्रायल की प्रधान-मंत्री बनी थीं। अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है:

'मैं प्रधान-मंत्री उसी प्रकार बनी, जिस प्रकार कि हमारे यहां दूध देने वाला आदमी हर्मन पहाड़ी पर बनी एक फौजी चौकी का कमांडर बना। हम दोनों को ही इस काम का खास शौक नहीं था; लेकिन हम दोनों ने उसे अपने पूरे सामर्थ्य के अनुसार निभाया।'

हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने का ढोंग करता है। उसे पता है कि संस्कृत शब्दों के बोझ तले दबी नकली और बेजान भाषा अंग्रेजी के मुकाबले में खड़ी होने का सामर्थ्य अपने अंदर कभी भी पैदा नहीं कर सकेगी। आज के युग के वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों से रिक्त होने के कारण वह हमेशा कमजोर भाषा बनी रहेगी। और सबसे बढ़िया बात तो यह है कि जिस प्रकार अंग्रेजों के समय था, उसी प्रकार आज भी वह लड़ाई-झगड़े का कारण बनी रहेगी।

कोई भी देश तभी उन्नति कर सकता है, जब उसमें अपनी समस्याओं को अपने ढंग से हल करने की शक्ति आ जाये। पर मैं जिस ओर भी देखता हूं, मुझे लगता है कि हमारी हालत अभी भी उस पक्षी जैसी है, जो लंबी कैद के बाद पिंजरे में से आजाद तो हो गया, पर उस आजादी का फायदा उठाने और खुले आसमान में उड़ने से उसे अभी भी डर लग रहा है।

व्यक्तिगत जीवन में भी और सामाजिक जीवन में भी, हमारी हालत वाल्टर मिटी जैसी है। हर आदमी जीना चाहता है किसी और ढंग से, लेकिन जी रहा है किसी और ढंग से। वह कहना चाहता है कुछ, लेकिन कह रहा है कुछ और। जो हालत व्यक्ति की है, वही हमारे समाज की भी है, वही हमारी हुकूमत की भी है, और वही हमारी यूनिवर्सिटियों की भी है।

मैं समझता हूं कि हमारे देश में भी कई पुलिस-अफसर ऐसे होंगे, जो जनता के मन में डर पैदा करने के बजाय उसकी सेवा और सहायता करना चाहते हैं। पर वे अंग्रेजी साम्राज्य से मिली हुई व्यवस्था का शिकार हैं। जब भी कोई व्यक्ति उनके दफ्तर में दाखिल होता है, वे मानो अपना फर्ज समझते हैं कि उसे ऐसे घूरकर देखें कि उसकी जान ही निकल जाये। यही हाल हमारे मंत्रियों का है। यही हाल चपरासियों का है।

पर अजीब बात तो यह है कि जो लोग हर समय मंत्रियों के रवैये के खिलाफ शिकायतें करते हैं, वही मंत्रियों को हार पहनाने के लिए सबसे आगे जाकर खड़े होते हैं। किसी भी सभा-सोसायटी का जलसा हो, वहां मंत्री जरूर आना चाहिये। मैं पचीस वर्षों से 'इप्टा' (इंडियन पीपल्स थियेटर एसोसियेशन) का मेम्बर हूं। यह संस्था आम जनता के लिए नाटक खेलने का दावा करती है। इसके नाटकों में सरकार और शासन-व्यवस्था की बड़ी आलोचना होती रही है। इसीलिए सी. आइ. डी. पुलिस इस पर खास नजर रखती है। पर मैंने देखा है कि इसी 'इप्टा' की कान्फरेंस के उद्घाटन के लिए मंत्रियों का आना जरूरी समझा जाता रहा है।

दूसरी ओर दूसरे विश्वयुद्ध के जमाने में मैंने चार साल इंग्लैंड में बिताये थे, जहां म बी. बी. सी. का अनाउन्सर था। उन चार सालों के दौरान में मैंने चर्चिल को एक बार भी नहीं देखा था। चर्चिल तो क्या मैंने इंग्लैंड के किसी मंत्री को भी नहीं देखा था।

पता नहीं, वे कहां छिपे रहते थे। पर जब से हिंदुस्तान आजाद हुआ है, मैंने मंत्रियों के सिवा और कुछ देखा ही नहीं है।

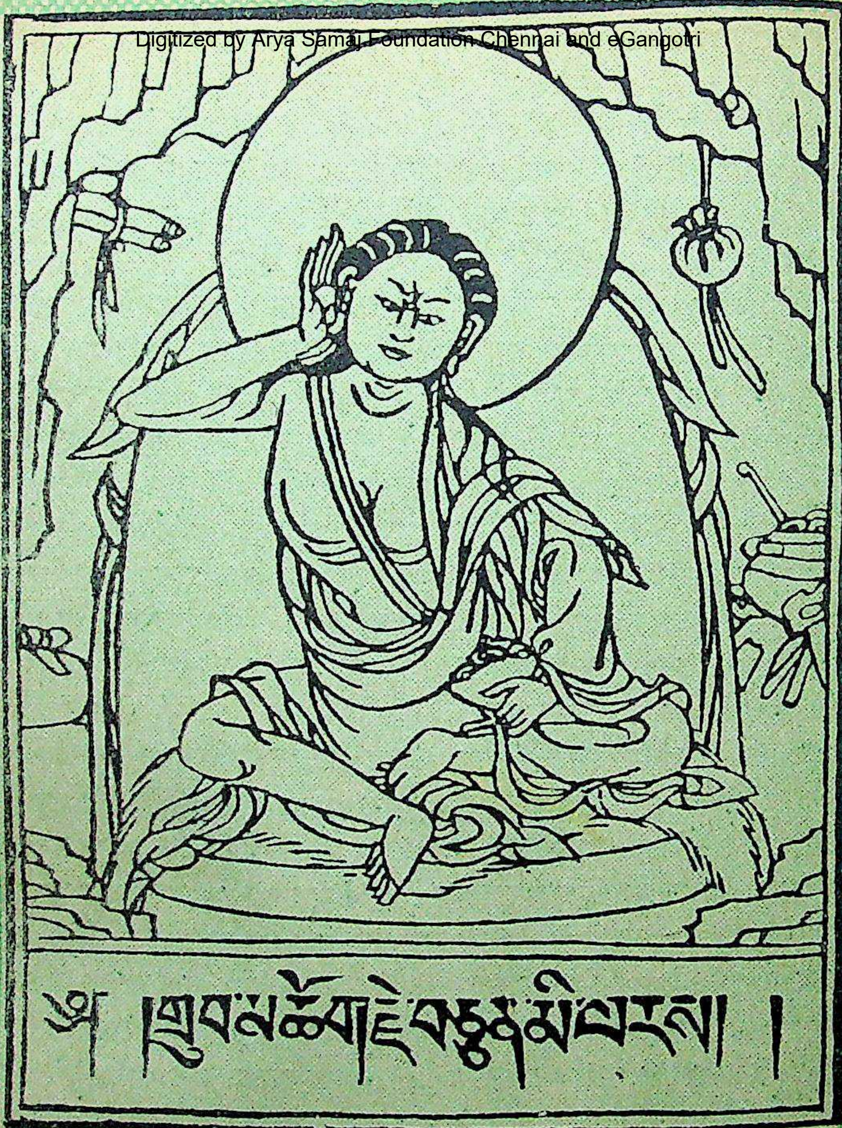
महात्मा गांधी जब गोलमेज-कान्फरेंस के लिए इंग्लैंड गये थे, तो उन्होंने इंग्लैंड के सम्राट को संबोधित करके कहा था—'हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ लोग ब्रिटिश सरकार की बंदूकों और मशीनगनों को उसी तरह देखते हैं, जिस तरह कि दीवाली के दिन उनके बच्चे पटाखों को देखते हैं।' यह दावा वे क्यों कर कर सके ? इसलिए कि उन्होंने हिन्दुस्तानियों के दिलों में से अंग्रेज शासकों का डर निकाल दिया था। आम लोग अंग्रेज शासकों को इज्जत की जगह नफरत से देखने और उनके साथ असहयोग करने लगे थे। यह साहस माहात्मा गांधी ने निहत्थे हिन्दुस्तानियों के दिलों में भर दिया था।

आज अगर हम सचमुच चाहते हैं कि हमारे देश में समाजवाद आये, तो जन-साधारण को पैसे और रुतबे के सहम से आजाद कराने की जरूरत है। पर इस समय असलियत क्या है ? हर तरफ पैसे और रुतबे का बोलबाला है। समाज में इज्जत उसी की है, जिसके पास मोटरें हैं, बंगले हैं, दौलत का दरिया बहता है। क्या कभी ऐसी हालत में भी समाजवाद आ सकता है ? अगर जनता के विचार पुराने युग से जुड़े हुए हों, तो नया युग कैसे जन्म ले सकता है ? अगर हम देश में समाजवाद लाना चाहते हैं, तो पहले हमें ऐसा वातावरण पैदा करना चाहिये, जिसमें इज्जत पैसे वाले की नहीं, बल्कि गरीब की हो; सम्मान उसे मिले, जो अपने दो हाथों की मेहनत से देश के लिए अनाज पैदा करता है, मशीनें चलाता है। सम्मान गुणवानों का होना चाहिये—साहित्यकारों का, कलाकारों का, वैज्ञानिकों का। पर ऐसे व्यक्तियों को कहां इज्जत मिलती है ?

आज फिर हमें किसी महात्मा गांधी की जरूरत है, जो हमें गुलाम कद्रें-कीमतें छोड़कर आजाद कद्रें-कीमतें अपनाने की प्रेरणा दे। अब यह जरूरत किसी नये अवतार का रास्ता देखने के बजाय उन रास्तों पर चलकर पूरी की जा सकती है, जो महात्मा गांधी ने बनाये थे। वे रास्ते कौन-से हैं ? अपने आपको शासकों के साथ जोड़ने के बजाय आम जनता के साथ जोड़ना। जैसे कि मेरे पंजाब के गुरु अर्जुन देव ने कहा है :

जन की टहल सम्भाखन जन स्यिउ
ऊठन बैठन जन के संगा।
जन चर रज मुख माथे लागी
आसा पूरन अनंत तरंगा।

आप जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी के ग्रैजुएट अपने अंदर ऐसा साहस पैदा कर सकेंगे और आजाद होकर सोच सकेंगे, जो मेरे जैसे लोग अपने जीवन में करने से असमर्थ रहे हैं—यही मेरी आकांक्षा है। भूल-चूक माफ।



महायोगी मिलरेप

एक आध्यात्मिक यात्रा-कथा

॥ दूसरी किस्त ॥

तिब्बत में भगवान बुद्ध के अवतार के रूप में पूजित, महान सिद्ध, संत-कवि मिलरेप (१०५२-११३५ ई.) तिलोप, नारोप और मर्प की परंपरा में चौथे सिद्ध थे और अंतर्ज्योतिर्मय जीवन की योग-प्रक्रिया के तिब्बती आचार्य थे। भारत की श्रीचक्र-संवर (महासुखमंडल) की पद्धति को तिब्बती सिद्धों ने अपनी इस छह-सूत्री प्रक्रिया से प्रवर्तित किया था—१. अंतर्ज्योति-सिद्धांत, २. शरीर के मिथ्यात्व का आभास, ३. स्वप्नावस्था में आत्मचेतना, ४. विशुद्ध ज्योति का अनुभव, ५. अंतरिम अवस्था की धारणा, ६. चेतना का प्रत्यंतरण। तिब्बत की यह योग-पद्धति 'कुंडलिनी-योग' से भिन्न है। इसमें केवल ऊपरी चार चक्रों का निर्देश है तथा शक्ति की जगह प्रज्ञा और कुंडलिनी की जगह वज्र-योगिनी का वर्णन है।

मिलरेप की साधना में क्रियमाण कर्म का आत्यंतिक महत्त्व है। उसी से साधक के प्रारब्ध और संचित कर्म नष्ट होते हैं। इसमें भी पहले मणिपूर चक्र पर अधिकार होने से अन्य चक्रों का भेद होता है। इसमें समस्त शारीरिक तत्त्वों के उदात्तीकरण को ही लक्ष्य माना गया है। वैश्विक चेतना के उदय से 'अस्मि' और 'अस्ति' (आत्म और अनात्म) की सीमाएं टूटती हैं, तदनंतर हृदय में वज्रसत्त्व (जो कि अक्षोभ्य का क्रियापक्ष है) की अनुभूति वैयक्तिक और मानवीय स्तर पर होती है। तभी उस प्रज्ञा का आलोक फैलता है जिसमें समस्त वस्तुएं शून्य में आभासित होती हैं और समस्त सृष्टि का शून्यत्व आभासित होता है। यही है ससीम में असीम की उपलब्धि। इसी को वे अंतःप्रज्ञा भी मानते हैं। वज्र से तात्पर्य अपरिवर्त्य और नित्य से है। सारे ज्ञान जब उसी में समाहित हो जाते हैं, तब व्यक्ति-चेतना अनंत प्रेम, करुणा, परम औदार्य और सर्वभूत-हित से अनुप्राणित रहती है। इसीलिए महायोगी मिलरेप अपने शिष्यों को अंतिम उपदेश के रूप में कह गये—'जब तक पूर्णतया आत्मोपलब्धि न हो जाये, तब तक सर्वभूत-हित की साधना और उसके लिए आतुरता से बचो।'

मिलरेप ने अपनी जीवन-गाथा अपने पट्टशिष्य रे-चुंग् को सुनायी थी, जिसे रे-चुंग् ने तद्वत् लिपिबद्ध किया था। दिवंगत लामा काजी दव-संदुप ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया था, जिसका सार-संक्षेप इन पृष्ठों में श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री ने प्रस्तुत किया है।

★

'एक दिन फिर अचानक वहां मेरी बहन पेत आ गयी। वह मेरे लिए एक प्याला छंग और कुछ खाना जुटा लायी थी। उसकी हालत भिखमंगन जैसी थी। गांव में उसे कुछ लोगों के मुंह से एक गाना सुन पड़ा था, जो मेरा बनाया हुआ था। उन्हीं से

उसे मेरे यहां होने का सुराग लगा था। उसकी लायी चीजें खाकर मुझे बहुत अच्छा लगा था और उस रात मेरी ध्यान-धारणा भी और रातों की अपेक्षा अधिक अच्छी हुई। लेकिन दूसरे दिन सुबह से शाम तक मेरे पेट में बहुत दर्द हुआ। तरह-तरह के अच्छे-बुरे खयाल भी आते रहे। बहुत कोशिश करने पर भी ध्यान में जी नहीं लगा। पेत बहन को मैंने अपनी बनायी दो-एक गीतियां सुनाकर वापस कर दिया।

'कुछ समय बाद एक दिन वह फिर आयी। इस बार उसके साथ ज़ेसे भी थी। इस बार वे दोनों जौ का कुछ आटा, मांस, मक्खन और छंग लेकर आयी थीं। अब तक तो किसी तरह मेरे शरीर पर चिथड़े रहते थे। कुछ दिन मैंने वह बोरा भी अपने शरीर पर बांधा था, जिसमें चाची जौ का आटा छोड़ गयी थी। लेकिन इस बार मेरी देह बिलकुल नंगी थी और मैं पानी लेने को गुफा से बाहर निकला था। मेरी यह अवस्था देखकर वे बहुत लज्जित और दुःखी हुईं। दोनों ही रोने लगीं। वे इस बात के लिए मेरे बहुत पीछे पड़ीं कि मुझे लोगों से भिक्षा मांगकर अपना काम चलाना चाहिये। बोलीं—"हम दोनों भी थोड़ा-बहुत चीजें और कपड़े जुटा देंगी। तुम्हें इस तरह अमानवीय ढंग से जिंदगी बरबाद नहीं करनी चाहिये।" मैंने कहा कि मुझे कुछ नहीं लेना—किसी से भी नहीं। न मैं भीख मांगने में अपना वक्त ही बरबाद करूंगा। क्योंकि पता नहीं, कब मौत आ जाये। उससे पहले ही मैं अपनी साधना पूरी कर लूं, यही इच्छा है। मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया—"तुम दोनों भी अब और कुछ देने की इच्छा से यहां न आना।" इस पर पेत बोली—"इससे भी बुरी और कौन-सी स्थिति तुम्हें संतोष देगी, मेरे भाई?" मैंने उसे समझाया कि ऐसे कई लोक हैं, जिनमें इससे भी घोर यंत्रणा मिलती है और लोग हैं कि दिन-रात वहीं पहुंचने का यत्न करते रहते हैं। वे अपने वर्तमान कर्मों की पापमयता पर ध्यान ही नहीं देते।

'फिर अचानक मेरे कंठ से और एक गीत फूट पड़ा, जिसमें एकाकी, निस्संग, पूर्ण मुक्त अवस्था में रहने की अभिव्यक्ति थी।

'पेत बोली—"भाई, तुम्हारी पिछली और अब की बातों और कार्यों में एक प्रकार की समरसता अवश्य है। किंतु मैं तुम्हें इस हालत में नहीं रहने दे सकती। मैं तुम्हारे लिए कुछ कपड़े आदि अवश्य जुटा लाऊंगी। उससे तुम्हारी ध्यान-साधना पर कुछ बुरा असर नहीं पड़ेगा।"

'वे दोनों तो यह कहकर चली गयीं; लेकिन उनका लाया हुआ वह अच्छा खाना खाकर मुझे इस बार इतनी पीडा हुई कि मेरा ध्यान ही छूट गया! मैंने इसे घोर विपत्ति समझकर वह गुरु-प्रदत्त मुहरबंद पांडुलिपि खोली। उसमें लिखा था कि तुम्हें अब अच्छे खाने से परहेज नहीं करना है। अन्यथा तुम्हारा नाडीतंत्र और भी अधिक खराब हो जायेगा। उसमें मेरे लिए और भी कुछ आदेश थे, जिनके परि-

पालन से मेरे तन-मन ठीक हो सकते थे।

'मैंने तुरंत उनका पालन किया। मुझे अनुभव हुआ कि मेरे नाडीचक्रों की गांठें खुल रही हैं। सुषुम्ना की जकड़ भी ढीली पड़ रही है। मेरे तन-मन में अभूतपूर्व शांति और आनंद भी संचारित होने लगे हैं। मेरा धर्मकाय सुसंघटित हो गया है। तब मुझे संसार और निर्वाण के अन्योन्याश्रित संबंध-स्रोत का भी स्पष्ट अनुभव हुआ। मंत्रयान के इस नये ज्ञान से मेरी समझ में आ गया कि पूर्ण ज्ञान के लिए शरीर की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अच्छा खाना, कपड़ा उसमें बाधक नहीं होते। मैं यह भी समझ गया कि इन दिनों पेत और ज़ेसे मेरी क्यों मदद कर रही हैं। उन दोनों के प्रति मुझे बड़ी कृतज्ञता का अनुभव हुआ। मेरे कंठ से फिर कई प्रार्थना-गीतियां फूट पड़ीं।

'इसके बाद तो सिद्धियों का तांता लग गया। मैं अब कोई भी रूप धारण कर सकता था। हवा में उड़ सकता था। मैं रात को सपनों में सारे विश्व का परिभ्रमण करने लगा। मूलाधार चक्र से सहस्रार पद्म तक मेरी गति अबाध हो गयी। अपने जैसे सैकड़ों अन्य व्यक्तियों में मैं अपने को बांट सकता था। मैं अपने शरीर को प्रज्वलित अग्निपुंज या प्रशांत उदधि में परिणत कर सकता था। यद्यपि यह सब सपनों में ही होता था; किंतु मुझे इससे बहुत संतोष हुआ। क्योंकि बाद में ये सब बातें यथार्थ में भी होने लगीं।

'ऐसे ही एक बार मैं एक गांव के ऊपर से उड़ता जा रहा था कि मुझे खेत में काम करते हुए दो बाप-बेटों का यह संवाद सुन पड़ा :

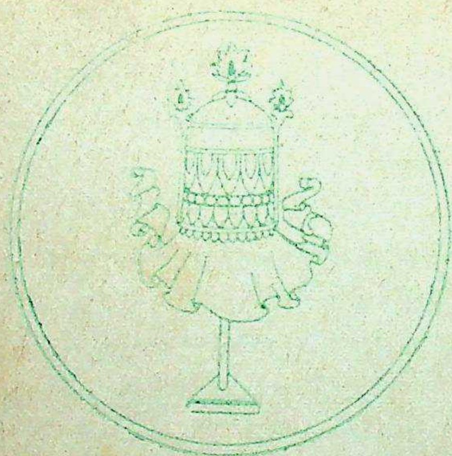
'बाप—"देख, देख, इस उड़ते हुए खोटे बेमतलब के जादूगर की परछाइं न पड़े तेरे ऊपर!"

'बेटा—"अगर कोई इस तरह उड़ सकता है तो वह खोटा और बेमतलब का व्यक्ति नहीं हो सकता।"

'मुझे उसी क्षण खयाल आया कि अब मुझे प्राणिमात्र की सेवा में जुट जाना चाहिये। अन्यथा मेरी ये सारी सिद्धियां व्यर्थ हैं। किंतु तभी भीतर से यह भी सुनाई पड़ा—नहीं, मुझे तो अपना सारा जीवन साधना में ही बिताना है, ताकि दूसरे लोग भी मेरे दृष्टांत से लाभ उठायें। लेकिन अब मुझे यहां नहीं रहना चाहिये; क्योंकि जो लोग मेरे चमत्कार देख और सुन चुके हैं, वे भीड़ लगवा देंगे मेरी गुफा पर। इससे आध्यात्मिक कार्यों में बाधा पड़ेगी। मैं यतींद्र बन जाऊंगा जो अभी मेरा लक्ष्य नहीं है।

'जब-तब लोगों के मुंह से अपनी निंदा-स्तुति या उनकी निर्देशात्मक बातें सुनकर मेरे कंठ से गीतियां निकल पड़ती थीं, जिन्हें मेरी मीठी आवाज में सुनकर लोगों की आंखें खुलती थीं, धर्म-भक्ति बढ़ती थी। मैं एक जगह कभी ठहरता न था, घूमता ही रहता था।

'पेत मुझे ढूंढ़ती हुई फिर वहीं आ गयी,



धर्म-पताका

जहां उस दिन मैं ठहरा हुआ था। वह एक कंबल लायी और मेरे पीछे ही पड़ गयी कि इसे सीकर शरीर को ढंकने के लिए एक पोशाक बना लो। वह बार-बार यह भी कहती रही कि तुम दूसरे धनी महंत (मठाधीश) लामाओं की तरह क्यों नहीं रहते! नहीं तो क्या तुम सचमुच अयोग्य और आलसी हो और सर्वस्व-त्यागी होने का ढोंग ही करते हो? कम से कम अपनी नंगी देह को तो ढंक लो, जिससे मुझे या अन्य स्त्रियों को नंगधड़ंग देखकर लज्जित न होना पड़े।

'मैंने उसे समझाया कि मेरे शरीर में लज्जित होने लायक कुछ भी नहीं है। जैसा यह शरीर जनमा था, वैसा ही है। स्त्रियों को अपने स्तन ढंकने की जरूरत पड़ती है, क्योंकि जन्म के समय वे उनके शरीर में विकसित नहीं होते, बाद में बहुत बेहूदे ढंग से वे निकल पड़ते हैं। ... और लज्जा के बारे में अचानक एक गीतिका मेरे मुंह से प्रस्फुटित हुई, जिसका भाव था :

'असल में लज्जास्पद हैं हमारी अज्ञान-पूर्ण प्रथाएं। मानव के व्यक्तित्व के तीन पहलू हैं—काय, मन और वाक्। इन्हें यदि कोई सहज भाव से ही व्यक्त करे, तो इसमें शरम की कोई बात नहीं। मानव स्त्री या पुरुष होकर ही जनमते हैं। यह भी सब जानते हैं कि उनके सारे अंग-प्रत्यंग एक-से नहीं होते। इसमें छिपाने की क्या बात है! असली लज्जा की बात तो संपत्ति से जन्म लेती है। वह धनिकों की गोद में ही बड़ी होती है। लोभी, हिंसक, हानिकर विचार, अविश्वास, खोटे कर्म, शैतानी षड्यंत्र, चोरियां और डाके, मित्रों को छलना, विश्वासघात—ये सब ही वस्तुतः लज्जास्पद हैं, मानव का तन नहीं। हमारे कुछ काम और तरीके ही लज्जास्पद होते हैं, देह के अवयव नहीं। जिन लोगों ने अध्यात्म का पथ चुन लिया है, जो ध्यानमग्न रहकर ही जीवन बिता रहे हैं, उनके लिए लाज-शरम की रूढ़िबद्ध दृष्टि कोई महत्त्व नहीं रखती। इसलिए पेत बहन, सहज होओ, सहजता से जीने दो। अपनी और मेरी परेशानियां न बढ़ाओ।'

मिलरेप ने उसे अपने साथ आध्यात्मिक जीवन-यात्रार्थ कैलास पर्वत चलने को भी आमंत्रित किया। किंतु वह राजी नहीं हुई। केवल तब तक ठहरने को राजी हुई, जब तक उसकी लायी खाद्य वस्तुएं समाप्त न हों।

इसी बीच एक दिन मिलरेप की चाची

भी एक याक पर बहुत-सा सामान लादकर आ पहुंची। उसके पति और भाई मर चुके थे। वह अपने पापों का प्रायश्चित्त करने की भावना से मिलरेप और पेत के पास क्षमा मांगने आयी थी। मिलरेप ने उसकी वस्तुएं लेने से इन्कार कर दिया और उसे एक गीतिका गाकर उसके सारे खोटे कृत्यों का एहसास करा दिया। अंत में वह बहुत रोयी और बोली कि यदि तुमने मुझे क्षमा नहीं किया, तो मैं अभी इसी क्षण जाकर आत्म-हत्या कर लूंगी। बहन के बहुत मना करने पर भी मिलरेप ने अपने को क्षमाशील यति मानते हुए चाची को क्षमा कर दिया और वह सद्धर्म के पथ पर आ गयी।

एक बार शिव-वौद-रेप नामक गुरुभाई ने मिलरेप से पूछा—'संसार से मुक्ति पाने के लिए हम क्या करें?'

मिलरेप ने तब उसे यह कर्म-सिद्धांत समझाया :

'संसार के सारे लक्ष्य और पदार्थ एक-दूसरे के विरोधी हैं। जैसे आराम-कष्ट, अमीरी-गरीबी, यश-अपयश, परिचय-अपरिचय आदि।

'शून्य से ही कर्म के वे नियम निकले हैं। शून्य को समझना और उसमें विश्वास करना बहुत कठिन होता है; इसी से लोग कर्म के नियम और सिद्धांत से भी वंचित रह जाते हैं। शून्य की उपलब्धि होते ही कर्म-अकर्म, विकर्म-कुकर्म, सुकर्म-अपकर्म के सारे रहस्य खुल जाते हैं। विवेक बलवान बन जाता है। तब पुण्य के प्रति प्रयत्न और पाप से विरति स्वतः होने लगती है। इसी लिए संयम और ध्यान, एकांत में गुप्त और रहस्यमय तथ्यों का चिंतन आवश्यक है। तब शून्य का भेद खुलता है। मंत्रयान से हमें इसमें बहुत मदद मिलती है।

'संसार की स्थितियों का सम्यक् विवेचन करो। संत-महात्माओं की जीवनियों का अध्ययन करो। मृत्यु की अवश्यंभाविता और मृत्युक्षण की अनिश्चितता पर सोचो। एकांत में ध्यान धारणा करो। भक्तिपूर्वक गुरुवचनों का पालन करो। तब समझोगे कि कर्म का यथार्थ रहस्य क्या है।'

संत मिलरेप के प्रथम शिष्य अमानव कोटि के थे। ये सब उन्हें तंग करने ही आये थे। बाद में उनके कुछ मानव-शिष्य बने। फिर कैलास पर्वत पर रहने वाली देवी तेन-मस (चिरजीवन) उनकी शिष्या हुई।

नेपाल के योल्मो-कंग्र में उनकी एक कुटिया थी। किंतु उनकी मुख्य निवास-स्थली लप्जी-चूबर में एक गुफा ही थी। और भी बहुत-से एकांत स्थलों में उन्होंने ध्यान किया था। उनके नाम से बीस दुर्ग भी विख्यात हैं। अंत में तो उनमें ध्यान, ध्येय और ध्याता ऐसे एकाकार हो गये थे कि फिर किसी प्रक्रिया या प्रज्ञा की आवश्यकता ही नहीं रह गयी थी। अब जहां भी वे जाते, वहां उनकी शिष्य-मंडली भी साथ जाती।

कैलास पर्वत पर मिलरेप ने गणपति को भी सद्धर्म की शिक्षा दी थी। वे पल्बर पर्वत पर लिग्व नाम की कंदरा में रहे थे, जहां

उन्होंने एक चुड़ैल की मुक्ति करायी थी। वे जहां भी गये, वहां की बहुत-सी गाथाएं उनके जीवन से जुड़ गयीं। ऐसा समझा जाता है कि वे कई शताब्दियों तक जीवित थे और आज भी वे मानवता की रक्षा के लिए सप्तर्षियों की तरह अमर हैं। मैत्री और करुणा उनके व्यक्तित्व में ऐसी घुल-मिल गयी थीं कि अपने-पराये के भेद से वे एकदम मुक्त हो चुके थे। अधिकार और प्रतिष्ठा के बल पर किसी का शासन करने की प्रवृत्ति उनमें कभी भी नहीं देखने में आयी। 'कर्णतंत्र' में निष्णात होने से उन्हें कभी भी शास्त्रों और ग्रंथों की आवश्यकता नहीं हुई। त्रिकाय (धर्मकाय, संभोगकाय और निर्माणकाय में) प्रतिष्ठित होकर उन्हें आशा-निराशा के अनुभव से बचने का गुर ज्ञात हो गया था। मृत्युभय ने उन्हें कभी पीड़ित नहीं किया।

अपनी अनुभूतियों के विवेचन में वे इतने प्रवीण थे कि लोगों की राय का उनके लिए कोई महत्त्व न था। हर अनुभूति को वे अपनी आध्यात्मिक साधना का अंग बनाते हुए सिद्धांतों और मतों के तार्किक पचड़े में कभी नहीं पड़े। निर्वाण ने उन्हें इस या उस लक्ष्य के पीछे नहीं दौड़ने दिया। धर्मकार्य में सदास्थित मिलरेप को प्रथा और रूढियों को मानने-पालने की भी कोई जरूरत नहीं हुई, कभी कृत्रिम उपायों से काम नहीं लेना पड़ा। उनके तन-मन इतने विनयी हो गये थे कि गर्व और उद्धत बरताव क्या होता है, यह वे एकदम भूल गये थे। शरीर को ही एक प्रकार का 'आश्रम' बना लेने पर उन्हें मठ-स्थापना की कोई आवश्यकता ही नहीं रही। अशब्द (अवाङ्-मनसगोचर) की उपलब्धि होने के कारण शब्दों के धातु और अर्थ जानने के लिए वे क्यों परिश्रम करते! इसकी यदि किसी को चाह है तो वह सद्-ग्रंथों का अध्ययन करे—वे यही कहते थे।

उनकी सहज-सुबोध गीतियों के प्रभाव से बहुत-से पंडितों और मठाधीश लामाओं को ईर्ष्या-द्वेष ने पीडित किया। परंतु वे मिलरेप का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाये। हां, सब जानते-बूझते हुए मिलरेप ने एक गेशे (पंडित) की रखैल के हाथों से दही में जहर खाया था, सो भी यह कहकर कि मेरा दूसरे लोक को जाने का समय आ गया है। देह छोड़ने से पहले उन्होंने अपने बहुत सारे शिष्य-शिष्याओं को बुलवा भेजा। और उन सबको भी आमंत्रित किया, जो उनसे मिलना चाहते थे, किंतु अभी तक ऐसा नहीं कर पाये थे। लप्ची-चूबर में यह अंतिम सभा जुटी। काफी दिनों तक वे उसे कर्म और धर्मकाय के सिद्धांत और भी स्पष्टतया समझाते रहे थे। उनकी एक प्रसिद्ध गीतिका है इस पर, जिसका भाव यह है:

'पिछले कर्मों के फलस्वरूप प्राणी जनमते ही पाप करने में मजा लेने लगता है; उसे पुण्यकार्य करने में उतना आनंद नहीं आता, जितना कि आना चाहिये। यह प्रवृत्ति बुढ़ापे तक पीछा नहीं छोड़ती। स्वभाव विकृत बना रहता है। इसलिए पापों के फल ही पल्ले पड़ते हैं।

'कुकर्म नष्ट तो नहीं होते, किंतु सदिच्छा से क्षीण अवश्य किये जा सकते हैं। जो जान-बूझकर कुकर्म करते हैं, वे जी भरकर अपयश बटोरते हैं।

'जो इतना भी नहीं जानते कि वे स्वयं कहां जा रहे हैं, यदि वे दूसरों को राह दिखाने लगते हैं, तो वे अपनी हानि तो करते ही हैं, दूसरों को भी ले डूबते हैं।

'यदि किसी को दुख-दर्द नहीं चाहिये, तो दूसरों को हानि पहुंचाना बंद कर दे।

'पिछले सारे पापों को स्वीकारना और उनके लिए पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करना, सद्गुरु और आराध्य के चरणों में बैठकर यह प्रतिज्ञा करना कि भविष्य में हम कभी कोई दुष्कर्म नहीं करेंगे—पापों के फल-भोग से बचने के श्रेष्ठ सत्पथ हैं।

'अधिकांश पापियों की बुद्धि तीव्र होती है, किंतु मन चंचल होने से कभी समाहित नहीं होता उनका चित्त; वे संसार-चक्र में निरुद्देश्य घूमते रहते हैं। उन्हें बार-बार अनुताप और प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता है। पाप की प्रवृत्ति पुण्यों से प्रेम के द्वारा ही नष्ट होती है।

'अवश्य ही तुम उत्साहपूर्वक पापों को क्षीण और पुण्यों को पुष्ट बनाओगे। तभी तुम्हें दिव्यातिदिव्य आत्माओं के दर्शन होंगे। तभी तुम अपने मन का धर्मकाय देखोगे। और उसके साथ ही तुम देखने योग्य सब-कुछ देख लोगे—अनंत अप्रमेय की उपलब्धि संसार और निर्वाण (जन्म-मृत्यु-चक्र और मुक्ति)। तभी तुम्हारी कर्म-प्रक्रिया भी समाप्त होगी।'

इस गीतिका के साथ तादात्म्य होते ही बहुत-से उपस्थित शिष्य समाधिस्थ हो गये। उन्हें यह मालूम हो गया कि निर्वाण क्या होता है। किंतु ऐसा उन्हीं को हुआ, जो सचमुच मुमुक्षु थे। फिर मिलरेप (जेत्स्युन) सारी सभा से बोले :

'मैं अब न्यानम् और टिंगरी तो नहीं जा सकता, जैसा कि मेरे कुछ प्रिय शिष्य आग्रह कर रहे हैं; क्योंकि यह शरीर बहुत बूढ़ा हो चुका है। मृत्यु की प्रतीक्षा अब मैं ब्रिन् और चूबर में करूंगा। बस, अब हमारी यही अंतिम भेंट है। इसके बाद मैं तुम सबसे पावन स्वर्लोक में ही मिलूंगा। मैं तुम सबके वर्तमान और अनंत भविष्य के लिए सुख-शांति की, परमानंद-प्राप्ति की कामना करता हूं।'

इसके बाद फिर उनके कंठ से एक गीतिका और निःसृत हुई, जिसका सारांश यह है :

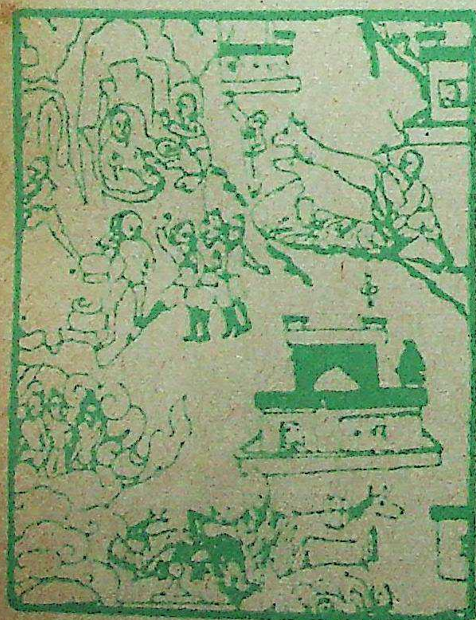
'हम सब एक-दूसरे के प्रति कृपालु और करुणार्द्र रहे हैं। अब हम लोग अमरावती में फिर मिलेंगे।

'तुम सब चिरायु रहो। शांति, सुख, समृद्धि पाओ। तुम्हारे मन कुविचारों से मुक्त रहें, धर्म में निष्ठा रखो, पुण्य-कर्म करने में सफल बनो।

'यह देश सामरस्यपूर्ण शांति के कारण युद्धों और कष्टों से मुक्त रहे, फसलें फूलें-फलें, लोग सत्कर्म में प्रवृत्त हों; वे ध्यान का महत्त्व समझें, उनकी साधना में अंतराय न आयें, वे गलतियां न करें; पुण्य, प्रसाद और

प्रभूत कृपा से उनका पथ मंगलमय हो।

ब्रिन पहुंचकर मिलरेप ने 'छूने में भी जहरीली' चट्टान पर कुटिया में निवास किया और बहुत-से भक्तों की कितनी ही शंकाओं का समाधान किया। उन्होंने मृत्यु को जन्म का फल बताया और यह भी कहा कि योगी के लिए यह ठीक नहीं कि कोई दूसरा भी उसके हमेशा बने रहने की कामना करे। काल का ग्रास होने से कोई कभी बचा नहीं। इसीलिए दूसरों की सेवा करने के लिए भी किसी को तांत्रिक एवं यौगिक प्रक्रियाओं से अपना जीवन बढ़ाना नहीं चाहिये। सांसारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जो तांत्रिक प्रक्रिया करते हैं, वे अंत में दुःख ही पाते हैं। अहंमन्यता, वासना,



नरक—एक प्राचीन तिब्बती चित्र

घृणा, ईर्ष्या और मूर्खता कभी उनका पीछा नहीं छोड़तीं। केवल संयोग-वश हुए रोग की निवृत्ति के लिए बुद्ध ने अपनी नाडी दिखाने के लिए जीवक कुमार की ओर हाथ बढ़ा दिया था। मृत्यु से निवृत्ति की तो उन्होंने भी कभी कोशिश नहीं की। अपना वक्त आने पर उन्होंने उसका सहर्ष वरण ही किया था। मिलरेप ने भी अपने लिए किसी को कुछ भी न करने दिया। औषध तक नहीं ली।

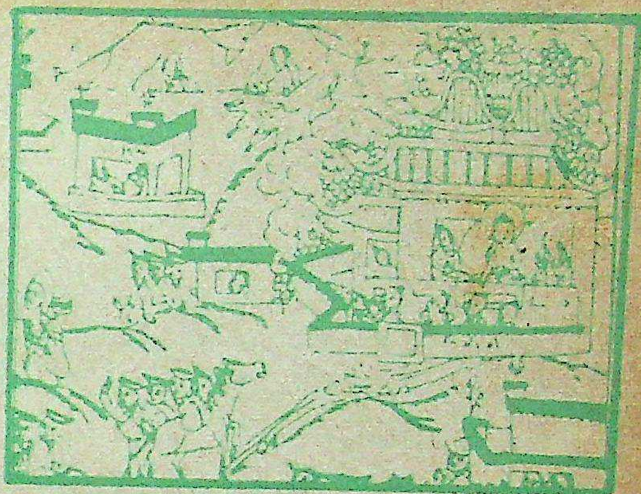
उन्होंने यह भी बताया कि संभव है, मृत्यु के बाद उनका शव स्तूप आदि बनाने के लिए उपलब्ध न भी हो। अतः उसकी कोई तैयारी न की जाये। 'न मेरा कोई मठ है, न मंदिर। इसलिए मैं किसी को उत्तराधिकारी नहीं बनाऊंगा। जहां जिसका जी चाहे, एकांत में साधना करे। जीवन छोटा है, मृत्यु का क्षण अनिश्चित है, अतः बस अभी से ध्यान में लग जाओ। पाप से बचो, सामर्थ्य-भर पुण्यार्जन करो, चाहे उसके लिए जीवन भी देना पड़े। ऐसा कोई काम न करो, जिसके लिए तुम्हें लज्जित होना पड़े। इस नियम को कभी न भूलो। दूसरों की प्रेमपूर्वक सेवा करो।

मरने से पहले मिलरेप का शारीरिक क्लेश देखने के लिए वह गेशे (पंडित) भी पूजा करने के बहाने आया, जिसने अपनी रखैल के हाथों उन्हें जहर दिलवाया था। मिलरेप ने उसे योग की महामुद्रा दिखाकर एक गीति सुनायी और उसे क्षमा कर दिया। उसकी सारी संपत्ति की भेंट उन्होंने तो नहीं

स्वीकारी; किंतु शिष्यों ने उसे लेकर बाद में उसी से मिलरेप के अंतिम संस्कार का व्यय उठाया और प्रतिवर्ष उनकी पुण्यतिथि के अयोजन का काम उसी को सौंपा।

मिलरेप ने अपने प्राण चूबर जाकर त्यागे। रास्ते-भर वे एक खेल करते रहे थे। उन्होंने अपने कितने ही शरीर बना लिये और वे एक साथ सर्वत्र विद्यमान प्रतीत हुए। जो लोग प्रबंध आदि के लिए पहले चूबर पहुंचे थे, उन्हें वे वहां बैठे मिले। वे अपने साथियों के भी साथ रहे और उन्हीं दिनों में अन्य अनेक स्थलों पर भी पूजा स्वीकारते हुए पाये गये।

ब्रिल्शे की गुफा में वे कुछ दिन रुग्णावस्था में पड़े रहे थे। उन्होंने आज्ञा दी कि रे-चुंग के सिवा पट्टशिष्यों में से और कोई भी उनका शव न छूए। उन्होंने सबसे यह भी कह दिया था–'इसी गुफा में जीवन-भर जो सोना और लिखित उपदेश मैंने एकत्र किये हैं, वे गड़े हैं। उनका ठीक इस्तेमाल करना। पाखंड से हमेशा बचना। नाम और नामा कमाने के लिए कभी कुछ न करना। निष्ठापूर्वक, भक्ति से, साधना ही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये।' उन्होंने यह भी बहुत जोर देकर कहा–'अगर थोड़ा भी स्वार्थ संलग्न रहा, तो तुम कभी भी सफल रूप में परोपकार भी नहीं कर



स्वर्ग–एक प्राचीन तिब्बती चित्र

पाओगे; दूसरों के हित-साधन में तब कुछ न कुछ कमी रहेगी ही। स्वयं ही डूब रहा आदमी दूसरों को क्या बचायेगा!'

८४ साल की उम्र में उन्होंने महासमाधि में प्राण छोड़े–फाल्गुन की चतुर्दशी के दिन, उषःकाल में। तब सारा आकाश अनेक प्रकार के दृश्यों से उद्भासित हो उठा था। सारे वातावरण में एक दिव्य सुगंध छा गयी थी। आकाश से पुष्पवर्षा हुई। दिव्यगान सुनाई पड़े। देवता-गण, डाकिनियां आदि अपने नग्न शरीर से आकर सबके साथ सहज भाव से मिल रहे थे, बातें कर रहे थे। सारे प्रदेशों से शिष्य एकत्र होने लगे थे।

किंतु आदमी तो आदमी हैं। शव की अंतिम क्रिया के लिए वे आपस में झगड़ने लगे। अंततः मिलरेप ने अपना शव भी बहुगुणित कर दिया था। ब्रिन वाले एक शव ले गये; न्यानम् वाले दूसरा। किंतु चूबर में, जहां उनकी मृत्यु हुई थी, छह

दिन तक उनका मुख्य शव एक अजीब-सी प्रभा से आलोकित रहा और छठे दिन वह आठ वर्ष के बच्चे का जैसा हो गया। रे-चुंग् तब तक वहां पहुंच नहीं पाया था। केवल उसी को शव छूने की अनुमति थी।

सातवें दिन सब शिष्यों ने हठपूर्वक शव को चिता पर रख दिया और विधिपूर्वक उसे जलाने की चेष्टा की। किंतु चिता ने आग पकड़ी ही नहीं। अंत में एक डाकिनी ने उन्हें एक गीतिका सुनायी, तब उनका अज्ञान हटा और वे फिर रे-चुंग् की प्रतीक्षा करने लगे।

रे-चुंग् उस वक्त लोहो-दौल मठ में था। उसे स्वप्न में ही दिखाई पड़ा था कि चूबर में एक स्फटिक का चैत्य जगमगा रहा है। उसके चारों ओर देवी, देवता, डाकिनी आदि खड़े हैं। सभी गा रहे हैं, भेंट-पूजा चढ़ा रहे हैं। रे-चुंग् को मिलरेप की आवाज भी सुनाई पड़ी और उनका हाथ अपने सिर पर महसूस हुआ। जागने पर वह समझ गया कि गुरु मिलरेप ने महा-समाधि ले ली है। वह तुरंत चल पड़ा वहां से; और किसी तरह महीनों की यात्रा कुछ ही दिनों में पूरी करके चूबर आ गया। उसने आते ही एक प्रार्थना-गीति पढ़ी और शव पुनः ज्योतिर्मय हो उठा, चिता की आग स्वतः जल उठी।

मिलरेप भी तब तक वज्रकाय में आ गये थे। सो चिता की अग्नि अष्टदल कमल के आकार में परिणत हो गयी। मिलरेप उस पर एक घुटना उठाये बैठे दीख पड़े। उन्होंने अपना दायां हाथ आगे बढ़ाया, जिससे चिता की लौ दब गयी। वे बोले– 'सुनो सब इस वृद्ध पुरुष का अंतिम उपदेश, फिर अपना बायां हाथ गाल पर रखकर उन्होंने छह उपदेशों की एक गीतिका चिता की अग्नि में से ही सुनायी। उसका भाव यह था :

'सांसारिक वस्तुओं का त्याग करो। मन की यथार्थ प्रकृति जानो, उसका स्वभाव पहचानो। सहज ज्ञान में रमो, सदा रहो। शाश्वत सत्य को पहचानो, सर्वत्र पाओ। पसंद-नापसंद, रुचि-अरुचि से बचो। सूक्ष्म तर्कों में न पड़ो। ध्याता, ध्यान, ध्येय की एकता जानकर अपने अनुभवों के आधार पर ही आगे बढ़ो।'

अंत में चिता की अग्नि ने एक विहार की शक्ल धारण कर ली। आग की चटखती आवाज संगीत-सी लगी, धुआं सुगंधमय। आकाश से चिता पर अमृत-वर्षा होने लगी। डाकिनियों की गीतिकाएं सुनाई पड़ीं। चिता जलने के बाद सबको वहां पृथक्-पृथक् वस्तुएं दीख पड़ीं। कुछ को सिर्फ बीजमंत्र ही मिले। किसी को कुछ भी नहीं मिला।

कुछ लोगों को तो चिता जलने से पहले भी मिलरेप के शव में हेवज्र, शेवर (या सेवर), गुह्यकाल और वज्रवाराही दीख पड़े थे। फिर रे-चुंग् को पांच डाकि-नियां एक ज्योतिर्मय पिंड चितागृह से बाहर ले जाती दिखीं। उसने दूसरे सबको बुला-कर अंदर जाकर देखा, तो वहां कुछ भी शेष

नहीं रहा था—राख का एक भी कण नहीं। रे-चुंग् ने जब डाकिनियों से कुछ अवशेष देने के लिए कहा तो सुनाई पड़ा :

'उसके लिए तुम मिलरेप से प्रार्थना करो। वे धर्मकाय के रूप में तो तुम सबके मन में बचे ही हैं। उनके लिए कोई चिह्न या अवशेष बेकार है।'

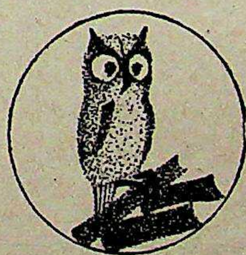
बहुत प्रार्थना करने पर शिष्यों को और भी तरह-तरह के दृश्य दिखाई पड़े और अंत में मिलरेप की आवाज में यह सुनाई पड़ा :

'दुःखी न होओ। अमोलिक चट्टान पर तुम चार अक्षर खुदे देखोगे। उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक देखो।'

इसी तरह लप्जी-चूबर मठ में मिलरेप का अवशिष्ट चिह्न बना लिया गया। चट्टान उठाकर खोदने पर भी उन्हें सोना तो नहीं मिला, सूती कपड़े का एक चौकोर टुकड़ा और उल्लू के आकार की मूंठ वाला एक चाकू अवश्य मिला। वहीं लाल मिस्री का एक टुकड़ा भी रखा था, एक छोटी-सी पांडुलिपि थी, उसमें एक गीतिका लिखी थी, जिसका भावार्थ है :

'इस कपड़े और मिस्री को यदि इस चाकू से काटो और जितने टुकड़े हो सकें करो, फिर उन्हें भक्तों को बांट दो तो जो इस मिस्री को चखेंगे और कपड़े को छुएंगे वे अपने अस्तित्व की निम्नताओं से बचे रहेंगे। समाधि के समय यही दोनों वस्तुएं मिलरेप का खाद्य और आच्छादन थीं। उसके पास कभी कुछ भी सोना नहीं था। सारी सृष्टि ही उसके लिए स्वर्ण हो चुकी थी।'

बहुत-से टुकड़े किये जाने पर भी मूल मिस्री और कपड़ा चुके नहीं। हरएक टुकड़ा उतना ही बड़ा हो गया, जितने कि मूल टुकड़े थे। हरएक पाने वाले के पास वे ज्यों के त्यों रहे और बहुत-से चमत्कार दिखाते रहे। [समाप्त]



एक विज्ञ बूढ़ा उलूक बैठा बलूत के तरुवर पर,
जितना निरखा करता उतना ही बोला करता था कम।
जितना कम बोला करता था, सुनता उतना ही ज्यादा,
फिर क्यों इस बूढ़े पक्षी के सदृश नहीं हो सकते हम !

[अंग्रेजी से अनुवाद : किशोरी रमण टंडन]



एक पत्र-अंश

लक्ष्मीकांत सरस

मुझे पता है तुम आये थे
कब आये थे और क्यों ?
मैं जानता हूं
क्योंकि मैं तुम्हारे साथ-साथ था।

आदमी का संवेदनशील होना बुरी बात नहीं
ओढ़ा जाना बुरी बात है
चलो, मान लिया मेरी राहों में
कई मोड़ हैं
मैं कोई सीधा रास्ता बनाना भी नहीं चाहता
मुझे पता है, यह तुम्हें पसंद नहीं
क्यों और क्यों नहीं ?
का उत्तर भी मैं जानता हूं।

यह जो सूरज है न
मुझे बहुत अच्छा लगता है
तुम्हारी पसंद विपरीत है
फिर भी हमारी छोटी-सी दुनिया
दिन और रात के घेरे में आबाद रही है।

कल की बात मैं नहीं करता
तुम्हीं करो, मैं सुनता रहूंगा।

सुनो !
मैं तुम्हें अपने दहकते हुए मांसपिंड में मिला तो सकता हूं,
लेकिन, मुझे पता है
तुम बारिश में भीगी हुई रोशनी बनना चाहते हो,
बनो,
मुझे तो दहकते हुए सूरज की रोशनी पसंद है।

—१७, अण्णा पिल्ले स्ट्रीट, थर्ड लेन, मद्रास—६०० ००१

शास्त्रीय संगीत कितना शास्त्रीय ?

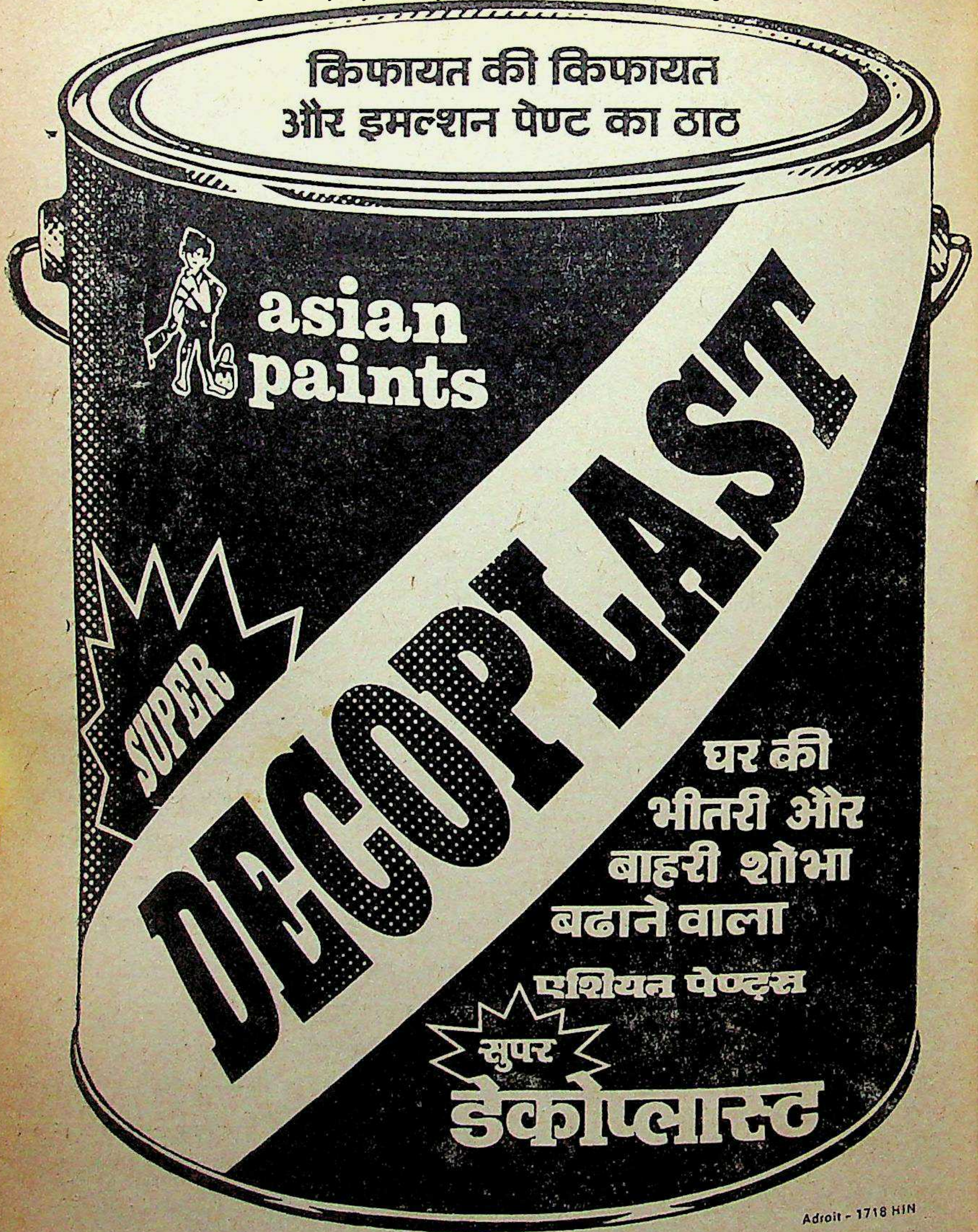
प्यारेलाल श्रीमाल

संगीत को आजकल मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—शास्त्रीय, सुगम तथा लोक-संगीत। हमारे पुराने शास्त्रकारों ने संगीत के तीन अंग माने हैं—गायन, वादन तथा नृत्य। परंतु प्रस्तुत चर्चा को हम गायन और वादन तक सीमित रखेंगे। हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति में ध्रुपद, धमार तथा खयाल को, वादन में मसीत-खानी-रजाखानी गतों को, अवनद्ध वाद्य-वादन में दिल्ली-पूरब आदि बाज को 'शास्त्रीय' की संज्ञा दी जाती है। किंतु आजकल व्यवहार में 'शास्त्रीय संगीत' केवल खयाल गायन का ही पर्यायवाची बनता जा रहा है। ठुमरी को उपशास्त्रीय कहा जाता है। भजन, गीत, गजल आदि विधाएं सुगम संगीत की श्रेणी में आती हैं। शहरों तथा गांवों में गाये जाने वाले पारंपरिक गीतों को लोक-संगीत के नाम से जाना जाता है।

जीवन के विविध प्रसंगों पर विविध भावों की अभिव्यक्ति के लिए समाज द्वारा सहज ही गाये जाने वाले पारंपरिक गीतों को लोक-संगीत नाम देना तो उचित लगता है, किंतु 'सुगम संगीत' एवं 'शास्त्रीय संगीत' नाम बहुत तर्क-संगत नहीं लगते। व्यवहार में आते-आते ये नाम आज रूढ बन गये हैं। फिर भी इन शब्दों की मर्यादाओं को समझने के लिए कुछ चर्चा करना असमीचीन न होगा।

'सुगम संगीत' से तात्पर्य यदि सरलता-पूर्वक गाये जाने वाले संगीत से है, तो क्या लोक-संगीत सुगम नहीं है? भजन, गीत और गजल की अपेक्षा बना-बनी, सौहर, गंगापूजन, मातापूजन आदि लोकगीत कहीं अधिक सुगम है। यदि ध्रुपद और खयाल की अपेक्षा से भजन-गीत-गजल को सुगम संगीत नाम दिया गया है, तो फिर ध्रुपद और खयाल को भी भजन-गीत-गजल के अपेक्षाभाव से 'दुर्गम संगीत' अथवा 'क्लिष्ट संगीत' नाम दिया जा सकता है।

यदि यह कहा जाये कि शास्त्र भी सुगम नहीं होता, अतः ध्रुपद-धम्मार-खयाल आदि शास्त्रबद्ध गानों को, जो सर्वसामान्य की


किफायत की किफायत
और इमल्शन पेण्ट का ठाठ
asian paints
SUPER
DECOPLAST
घर की
भीतरी और
बाहरी शोभा
बढाने वाला
एशियन पेण्ट्स
सुपर
डेकोप्लास्ट
Adroit - 1718 HIN

गायन-क्षमता से परे हैं, 'शास्त्रीय संगीत' नाम दिया गया तो बात कुछ समझ में आती है। फिर भी तर्क की दृष्टि से यह बात सिद्ध नहीं है। कई भजन, गीत और गजल की बंदिशें इतनी कठिन हैं कि उन्हें सामान्यजन नहीं गा सकते। रागों पर आधारित अनेक भजन जो तानालाप के साथ गाये जाते हैं, क्यों न उन्हें शास्त्रीय संगीत कहा जाये ?

शास्त्र पर आधारित संगीत को 'शास्त्रीय संगीत' कहते हैं—ऐसी परिभाषा करते हमने संगीतशास्त्रियों को प्रायः सुना है। यह परिभाषा भी विचारणीय है। 'शास्त्र' किसे कहा जाये और कौन-से 'शास्त्र' पर आधारित संगीत को 'शास्त्रीय संगीत' कहा जाये—यह हमें देखना है।

भरत के 'नाट्यशास्त्र' को लें तो उसमें राग नदारद है और शार्ङ्गधर के 'संगीत-रत्नाकर' को लें तो उसमें खयाल का कहीं उल्लेख नहीं। मतंग का 'बृहद्देशी' (ई. ४००) प्रथम ग्रंथ है, जिसमें राग की चर्चा मिलती है। कई रागों का तो बहुत बाद में निर्माण हुआ है। श्रीराग को आज पूर्वी थाट-जनित राग माना जाता है; किंतु तेरहवीं शताब्दी से पूर्व रचे गये संगीत-ग्रंथों में पूर्वी का कहीं उल्लेख नहीं है। मियां की मल्हार, बिलासखानी तोड़ी आदि राग मुगल-काल में निर्मित हुए, यह प्रायः सभी जानते हैं। खयाल शैली को विशेष रूप से प्रचार में लाने का श्रेय मोहम्मदशाह रंगीले के आश्रित सदारंग-अदारंग को दिया जाता है। स्वर-स्थापना, थाट-पद्धति तथा राग-निर्णय की दृष्टि से प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रंथों में पूर्ण साम्य नहीं है।

नाद से लेकर रागोत्पत्ति तक का क्रमिक वर्णन जिस ग्रंथ में रहता है, यदि उसे शास्त्र कहा जाये, तो वह शास्त्र तीनों प्रकार के संगीत का आधार हो सकता है। यदि ध्रुपद और खयाल की बंदिशें जिस ग्रंथ में लिखी हैं उसे शास्त्र कहा जाये तो सुगम तथा लोक-संगीत के भी ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। ग्रंथरूप में लिपिबद्ध होने से ही यदि किसी संगीत को शास्त्रीय कहा जाता है, तो सुगम और लोक-संगीत को भी शास्त्रीय संगीत क्यों नहीं कहा जा सकता ? संगीतोद्धारक पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने हिंदुस्तानी संगीत को लिपिबद्ध करके शास्त्र का स्वरूप दिया, इस आधार पर यदि उसे शास्त्रीय कहना उपयुक्त है, तो क्या उनके पूर्व-प्रचलित इसी संगीत को अशास्त्रीय की संज्ञा देनी होगी ?

सामान्यतः संगीत-प्रेमी यह मानते हैं कि रागों पर आधारित संगीत शास्त्रीय संगीत है। वे उन फिल्मी धुनों को भी शास्त्रीय संगीत कह बैठते हैं, जो किसी राग में निबद्ध हों। यदि यह कसौटी सही मानी जाये तो अनेक भजन, गीत, गजल और लोकगीतों को शास्त्रीय संगीत कहना होगा। लोक-संगीत को तो रागों का जनक ही माना जाता है। क्या शास्त्रीय संगीत इतना व्यापक शब्द है, जिसमें सुगम और लोक-संगीत भी समाहित हो जाते हैं ?

यह भी तर्क दिया जा सकता है कि

ध्रुपद, धमार और खयाल गाने के लिए स्वर, ताल तथा लय की कठोर साधना अनिवार्य है (जिसका विशद विवेचन ग्रंथों में पाया जाता है) और इसी कारण उसे शास्त्रीय संगीत कहते हैं। किंतु यह तर्क भी अकाट्य नहीं है, क्योंकि स्वर, ताल और लय की साधना तो सुगम तथा लोक-संगीत में भी आवश्यक है, चाहे वह ध्रुपद-खयाल की तरह कठोर न हो।

ध्यान देने की बात है कि ठुमरी को उपशास्त्रीय क्यों कहा जाता है, जबकि उसमें स्वर-ताल-लय की साधना खयाल से किसी प्रकार कम नहीं होती। इस आधार पर तो ठुमरी को भी शास्त्रीय संगीत ही कहा जाना चाहिये। शायद इसका यह उत्तर दिया जाये कि ठुमरी में उतनी गंभीरता नहीं है, जितनी ध्रुपद व खयाल में है तथा वह सुगम संगीत के निकट भी है। ठीक है, क्या छोटा खयाल और तराना जनसाधारण को सुगम संगीत की तरह रुचिकर नहीं लगते? क्यों न उन्हें भी उपशास्त्रीय कहा जाये?

जहां तक मैं जानता हूं, 'शास्त्रीय संगीत' शब्द हमारे यहां स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् व्यवहार में आया है। इसी ध्रुपद और खयाल को राजदरबारों में शास्त्रीय संगीत नहीं कहा जाता था। राजदरबारों से निकलकर जब यह संगीत जनता-जनार्दन के बीच आया, तब जनता को यह सुनने में तो प्रिय लगा, किंतु समझने और गाने में कष्टसाध्य जान पड़ा। बिना गुरु के इसे समझना और सीखना संभव नहीं होने से लगा कि इसका शास्त्र अत्यंत कठिन है। इस प्रकार संगीत की यह विधा शास्त्रीय संगीत के नाम से पुकारी जाने लगी। छोटा खयाल और तराना, बड़े खयाल से जुड़कर खयाल-शैली को पूर्णता प्रदान करते हैं, इस कारण उन्हें ठुमरी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

वस्तुतः ठुमरी गाना खयाल गाने से कठिन है। फिर भी उसे उपशास्त्रीय कहा जाता है; इसका कारण है ध्रुपद-खयाल की तुलना में इसमें गंभीरता की कमी तथा नियमों की शिथिलता। ठुमरी का विस्तार करते समय भावानुकूल सुमधुर स्वरावलियों का मनचाहा आविर्भाव-तिरोभाव किया जा सकता है, जबकि ध्रुपद और खयाल में यह छूट नहीं है। ध्रुपद और खयाल गाते समय तनिक भी मर्यादा भंग करने वाला गायक अकुशल समझ लिया जाता है। इस प्रकार ध्रुपद, धमार तथा खयाल को अपनी-अपनी मान्य सीमाओं के भीतर ही चलना होता है। दूसरी ओर भजन, गीत तथा गजल को अल्प प्रयास द्वारा भी गाया जा सकता है। इसी कारण इन्हें सुगम संगीत के नाम से अभिहित किया जाने लगा।

इस प्रकार यौगिक अर्थ की दृष्टि से बहुत शुद्ध न होते हुए भी 'शास्त्रीय संगीत', 'उपशास्त्रीय संगीत' तथा 'सुगम संगीत' नाम प्रयोग में आते-आते उक्त विधाओं के वाचक बन गये हैं।

—रंगमहल, नयी पेठ, उज्जैन, म. प्र.

★

अवैध किंतु असाधारण

सुदीप

क्या अवैध संतान होना वास्तव में बहुत बड़ा अभिशाप है? क्या दुनिया अवैध बच्चों को हमेशा हेय नजर से ही देखती रही है? इस संबंध में ख्याति, कीर्ति, यश-मान और प्रशंसा प्राप्त करने वाले 'अवैध' लोगों पर एक नजर डाली जाये, तो ऐसा नहीं लगता।

जब एक विश्व-विख्यात अभिनेत्री ने एक अवैध बच्चे को जन्म दिया, तो उसके प्रशंसकों को आश्चर्य तो हुआ, लेकिन बुरा नहीं लगा। रंगमंच से संबंधित कलाकारों में ऐसा होता ही रहता है, उन्होंने सोचा। बल्कि ऐसा न हुआ होता, तो मंचीय दुनिया की परंपरा टूट जाती। और फिर फ्रांसीसी अभिनेत्री सारा बर्नहार्ड को तो उन्नीसवीं सदी का यूरोप उसकी अभिनय-प्रतिभा के कारण 'दैवी सारा' के नाम से पुकारता था। सारा जब तक अपने अभिनय से लोगों को मुग्ध करती रही, लोगों को इस बात पर कोई एतराज नहीं था कि उसकी व्यक्तिगत जिंदगी कैसी है – वह किससे प्यार करती है, किसके साथ रहती है। सारा के बच्चे का पिता शहजादा दि लाईनी है, उसका अपना पति नहीं; यह बात भी सब लोगों को मालूम थी।

प्रेम—घनिष्ठ प्रेम—बहुत बार नैतिकता की सीमाओं को मान्यता नहीं देता। यह बात जरूर है कि सामान्य जन इस सीमातिक्रमण पर क्षुब्ध होते हैं और मन ही मन 'प्रेमियों' और उनके अवैध संबंधों को कोसते रहते हैं—हालांकि आपस में गपबाजी करते समय लोग इन्हीं संबंधों की चर्चा चटखारे ले-लेकर करते हैं। यह अंतर्विरोध भी अनंतकाल से चला आ रहा है—ठीक वैसे ही जैसे अवैध संबंध चले आ रहे हैं।

एक बात और भी है। समाज कई बार गलती करने वालों को माफ भी कर देता है, लेकिन वक्त कई बार माफ नहीं करता। सारा बर्नहार्ड के बेटे, मॉरिस ने अपनी मां को बहुत सताया। वह मॉरिस से बहुत प्यार करती थी, उसे हर तरह का आराम देती थी। नतीजा यह हुआ कि मॉरिस बिगड़ गया। अपनी गैर-जिम्मेदाराना जिंदगी से उसने अपनी मां की जिंदगी में कड़वाहट भर दी।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि सभी 'अवैध' संतानें मॉरिस की ही तरह गुमनामी के अंधेरों में खोयी रही हों। बल्कि इनमें से अनेक ने तो खूब यश कमाया है और समाज



फ्रेंच अभिनेत्री सारा बर्नहार्ड

एक मामूली-से चमार की बेटी की अवैध संतान था। राबर्ट की कोई वैध संतान नहीं थी। मरते समय उसने अपना खिताब विलियम को ही हस्तांतरित कर दिया। विलियम नार्मंडी का ड्यूक तो था ही, अपने प्रताप से इंग्लैंड का राजा भी बना।

ग्यारहवीं सदी के इंग्लैंड में 'बास्टर्ड' यानी अवैध संतान होना बहुत ज्यादा बुरी बात नहीं मानी जाती थी। अंग्रेजी के 'बास्टर्ड' शब्द की व्युत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'बास्त' से मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है—घोड़े की काठी। बास्टर्ड का अर्थ हुआ 'काठी का बेटा'।

में मान भी पाया है।

अवैध संतान होना रैमसे मेक्डॉनल्ड को ब्रिटेन का प्रधान मंत्री बनने से रोक नहीं सका। वे एक गरीब किसान और एक मजूरिन की संतान थे और अपने जन्मजात कलंक से डरकर छिपते फिरने के बजाय उन्होंने इतनी तरक्की भी कि वे ब्रिटेन के चोटी के राजनीतिज्ञ बन गये।

ग्यारहवीं सदी में इंग्लैंड पर विजय पाने वाला प्रख्यात नार्मन सम्राट विजेता विलियम (विलियम द कान्करर) 'दोगला विलियम' के नाम से भी जाना जाता है। वह नार्मंडी के ड्यूक 'शैतान' राबर्ट और

विलियम जब इंग्लैंड पर विजय प्राप्त कर रहा था, तो उसके सिपाहियों को एक-एक तंबू में एक-एक औरत भी दी जाती थी। इन औरतों को अलग से बिस्तर नहीं दिया जाता था और उन्हें घोड़े की जीन या काठी ही सोने के लिए मिलती थी। इन औरतों के बच्चे ही 'बास्टर्ड' कहलाते थे और अक्सर इन्हें भी पता नहीं रहता था कि उनके बच्चे का बाप कौन है! लेकिन उस जमाने में पिता अपनी अवैध संतान को प्रश्रय देने में हिचकिचाते नहीं थे।

पंद्रहवीं सदी में एक पोप हुए, अलेग्जेंडर षष्ठ। एक सामंत महिला से उनका संबंध

हो गया और इस संबंध से जन्म लिया सीजर बोर्गिया ने। सीजर बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। वह सत्ता चाहता था। पिता अलेग्जेंडर ने उसे प्यार ही नहीं दिया, उसे ख्याति अर्जित करने में भी मदद दी। लेकिन सीजर जितना महत्त्वाकांक्षी था, उतना ही क्रूर भी था। अंततः वह कार्डिनल बना। पूरा इटली उसके वर्चस्व में आ गया; फिर फ्रांस भी, क्योंकि फ्रांसीसी राजा उसके रोब में आ गया।

पिता की अवैध संतानों की वजह से कई बार वैध संतानों को काफी परेशानियां भी उठानी पड़ी हैं। मध्ययुगीन ब्रितानवी राजा रिचर्ड को, जिसे 'शेरदिल' (लायन हार्टेड) कहा जाता था, लंबे अरसे तक धर्मयुद्धों में मुब्तिला रहना पड़ा था। वह युद्धभूमि में पड़ा हुआ था कि एक दिन उसे पता चला, उसके पिता के एक अवैध बेटे जान ने अपने आपको इंग्लैंड का राजा घोषित कर दिया है। ताजपोशी होने ही जा रही थी कि ऐन वक्त पर रिचर्ड इंग्लैंड आ पहुंचा और उसने अपने तख्त को बचा लिया।

विवादास्पद जन्म के कारण इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ प्रथम भी राजपद से वंचित रह गयी होती। उसके पिता हेनरी अष्टम ने उसकी मां एन से शादी करने के लिए अपनी पहली रानी को तलाक दे दिया था, लेकिन गिरजे ने इस तलाक को मंजूरी नहीं दी थी। जब हेनरी की मृत्यु हो गयी, तो पहले एलिजाबेथ की



पोप अलेग्जेंडर षष्ठ का बेटा सीजर बोर्गिया

बहन को गद्दी पर बैठाया गया, फिर उसके भाई को, क्योंकि एलिजाबेथ को अवैध संतान माना जाता था। अंत में एलिजाबेथ रानी बनने में सफल तो हुई, परंतु इस ग्रंथि से वह अपने आपको कभी मुक्त नहीं कर सकी।

यह बात अक्सर कही जाती है कि नाजायज बच्चे नहीं, नाजायज मां-बाप होते हैं। मां-बाप की गलतियों की सजा निर्दोष बच्चों को भुगतनी पड़े, यह कहां का न्याय है?

लेकिन कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं, जो अपने मां-बाप की गलतियों से फायदा उठाने से भी बाज नहीं आते। ब्लैकमेल करने वाले नाजायज बच्चों की कहानियां

बड़ी आम हैं। जब जमाना सामंतों और राजा-महाराजाओं का था, गद्दी या दौलत के हकदारों की अच्छी-खासी फौजें इकट्ठा हो जाया करती थीं। अठारहवीं सदी में फ्रांस में एक कुख्यात औरत हुई—ज्यां दे वलोइ। इस औरत ने यह कहते हुए फ्रेंच सरकार से पेन्शन की मांग की कि उसकी मां फ्रांस के राजा की बेटी थी।

एक ऐसी नाजायज लड़की, जिसे कभी किसी तरह की तकलीफ नहीं उठानी पड़ी, आल्बनी की डचेस शार्लट थी। उसका जन्म २९ अक्तूबर १७५३ को हुआ। उसका पिता था इंग्लैंड का प्रिंस चार्ल्स एड्वर्ड स्टूअर्ट। मां—क्लिमेंटीना वाकिनशा। प्रिंस चार्ल्स की बीवियां तो बहुत-सी थीं, लेकिन वह उनमें से किसी से भी प्यार नहीं करता था। क्लिमेंटीना से उसे अगाध प्रेम था और इसी वजह से उसे अपनी बेटी शार्लट से भी बहुत प्यार था। चार्ल्स जहां कहीं भी जाता, शार्लट उसके साथ जाती और आखिर में शार्लट की गोद में ही चार्ल्स ने दम तोड़ा। शार्लट डचेस बना दी गयी। उसने पूरे यूरोप की यात्राएं कीं और कभी किसी व्यक्ति ने उसकी तरफ उंगली नहीं उठायी। सच बात तो यह है कि शार्लट को अवैध संतान मानने के बजाय लोग उसे 'प्रेम-संतान' कहकर पुकारते थे।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो प्रेम पर किसी तरह का बंधन कभी स्वीकार नहीं करते। प्रख्यात नर्तकी इसाडोरा डंकन ऐसे ही लोगों में से एक थी। इसाडोरा अपने प्रणय संबंधों के लिए भी इतनी ही मशहूर है, जितनी अपने नृत्य और स्वतंत्रता संबंधी अपने विचारों के लिए। इसाडोरा ने यह घोषणा खुले-आम की थी कि उसे शादी की संस्था में कोई यकीन नहीं है। लेकिन उसे बच्चों से भी प्यार था—और बच्चे उसके हुए। हालांकि उसके प्रेमियों की एक लंबी फेहरिस्त मौजूद है, फिर भी अपने बच्चों के पिता के रूप में उसने केवल ऐसे लोगों को ही चुना, जो उसके बच्चों को भी अपनी प्रतिभा और कलात्मक रुचियों का अंश दे सकें।

इसी इरादे से एक बार इसाडोरा ने प्रख्यात नाटककार जार्ज बर्नार्ड शा को भी एक पत्र लिखा था—'हमें मिलकर एक बच्चा पैदा करना चाहिये।' उसने लिखा था—'मेरी खूबसूरती और तुम्हारी बुद्धि के मिलन से कितना आश्चर्यजनक बच्चा पैदा होगा, तुम खुद सोच सकते हो!' शा ने जवाब दिया था—'लेकिन मेरी प्यारी इसाडोरा—कल्पना करो, बच्चे में तुम्हारी बुद्धि और मेरी खूबसुरती हो, तब क्या होगा?'

(वैसे अब इस बारे में काफी विवाद है कि इसाडोरा ने शा को कभी यह पत्र लिखा भी था या नहीं—इससे भी ज्यादा विवादास्पद यह है कि शा खुद अपने पिता की संतान थे या उस पड़ोसी संगीतज्ञ के, जिसके आधार पर शा के प्रख्यात चरित्र प्रोफेसर हिगिन्स का जन्म हुआ!)

इसाडोरा डंकन की हीं तरह कोसीमा वैग्नर ने भी प्यार के लिए दुनिया को

धता बतायी थी। कोसीमा खुद महान पियानोवादक फ्रांज लीस्त की नाजायज संतान थी। उसकी शादी लीस्त के पट्टशिष्य हान्स वान बूलो से हुई थी; लेकिन वह उसे छोड़कर रिचर्ड वैग्नर के साथ रहने लगी। वैग्नर से शादी होने तक उनके तीन बच्चे हो चुके थे।

बैंजामिन फ्रैंकलिन अमरीका के अत्यंत प्रभावशाली राजनेता और प्रतिभावान आविष्कारक थे। उनकी मान्यता थी कि आदमी अगर थोड़े-से संयम से काम ले, तो दुनिया का हर काम ठीक हो सकता है। पर उन्होंने खुद कितने संयम से काम लिया ? उन्हें फ्रांस का राजदूत बनाकर भेजा गया, और जब तक वे वापस अमरीका पहुंचे, तब तक वे अपने पीछे चौदह नन्हें-मुन्ने फ्रेंच-अमरीकी राजदूत छोड़ चुके थे !

फ्रैंकलिन के समकालीन अलेग्जैंडर हैमिल्टन अमरीका के राष्ट्र-संस्थापकों में गिने जाते हैं। कूटनीतिज्ञ के रूप में अपने जमाने में उनकी ख्याति अतुलनीय थी। वे खुद एक स्काट व्यापारी और एक फ्रांसीसी चिकित्सक की बेटी की जारज संतान थे।

प्रख्यात चित्रकार मॉरिस डजिलो की कहानी भी काफी दिलचस्प है। डजिलो ने अपनी जिंदगी की शुरूआत पेरिस के हंगामाखेज इलाके मोंमार्ग में की थी। उनकी मां का नाम था सूज़ाना वालादों, जो अपना गांव छोड़कर मोंमार्ज में आ बसी थी—अपनी मां के साथ। वह स्वयं



इतालवी अभिनेत्री अन्ना मैन्यानी

भी अवैध संतान थी और उसे न तो य पता था कि उसका बाप कौन है, और न वह यह ही निश्चय कर पायी कि उसके बेटे मॉरिस का बाप कौन है ! आज तक लोग यह तय नहीं कर पाये हैं कि मॉरिस के पिता रेनुआ थे, या देगा, प्युई दि शेवाने थे या कोई और, क्योंकि सूज़ाना इन सभी के लिए माडल का काम किया करती थी।

उन्नीसवीं सदी तक नाजायज संतानों के मामले में जो स्थिति रंगमंच की दुनिया की थी, आज वही स्थिति फिल्म जगत की हो चुकी है। इतालवी अभिनेत्री अन्ना मैन्यानी खुद अवैध संतान थी, तो सोफ़िया लारेन ने कार्लो पोंती (जिससे उसने बाद में शादी की) के बच्चों को जन्म दिया; प्रख्यात फ्रांसीसी अभिनेत्री जां मॉर्यो अपने

हर निर्देशक के बच्चे की मां बनने की इच्छुक रही है। भारतीय फिल्म-जगत में भी अवैध संतानों का अभाव नहीं है।

नाजायज संतानों और उनकी ख्याति-कुख्याति का सिलसिला अनादि काल से चला आ रहा है। यूनान, रोम और भारत की ही नहीं, मैसोपोटेमिया, असीरिया, बेबिलोनिया की संस्कृतियों का इतिहास भी जारज संतानों की कथाओं से भरा पड़ा है..... और उनमें हमें अनेक प्रतिभावान कर्तृत्ववान जारजों के दर्शन होते हैं।

ऐसी भी एक धारणा है कि अवैध संतानों में वैध संतानों की अपेक्षा प्रतिभाशालियों का अनुपात बहुत अधिक होता है। इस बारे में एक चुटकुला लगे हाथ पढ़ लीजिये।

दिल्ली के एक प्रोफेसर ने नाजायज बच्चों पर काफी खोज कार्य किया था। एक दिन अपने मित्रों के साथ काफी-हाउस में काफी की चुस्की लेते हुए उन्होंने अपनी थीसिस का सारांश लोगों को सुनाया और बोले–'मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि "बास्टर्ड" (अवैध) लोग जीनियस होते हैं।' तभी एक मित्र सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए प्रोफेसर साहब की तरफ मुखातिब हुआ और बड़े सराहना-भरे स्वरों में बोला–'वाह-वाह प्रोफेसर, सचमुच आप जीनियस हैं।' कहते हैं, प्रोफेसर साहब ने अपना शोध-कार्य उसी दिन बंद कर दिया।

–एन ४/१३ सुंदर नगर, एस. वी. रोड, मालाड (पश्चिम), बंबई–४०००६४



उस दिन दादा (पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र) के पास मैं भी था, जब उनके निवास-स्थान 'उत्तरायण' में जबलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री कान्ति चौधुरी उन्हें डी. लिट्. की मानद उपाधि देने आये। उपाधि-पत्र बड़े-से फाइल-कवर में एक ओर अंग्रेजी में तथा दूसरी ओर हिंदी में था, लेकिन हिंदी-अंग्रेजी दोनों में पंडितजी का नाम गलत लिखा था–पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र, जबकि वे अपना नाम द्वारकाप्रसाद मिश्र लिखते हैं।

मिश्रजी ने बड़े आकार के उस उपाधि-पत्र को देखा और श्री कान्ति चौधुरी से बोले–'अरे भाई, मैं जानता था कि गलती से यह डी. लिट्. की डिग्री मुझे देने आये हो, इसलिए मना भी किया था। अगर सही होता तो कम से कम सही नाम तो लिखाते।'

मैंने इस पर टिप्पणी की–'सच में डी. लिट्. की उपाधि पर तो सही नाम होना ही चाहिये, नहीं तो लोग विश्वविद्यालय को क्या कहेंगे!'

इस पर कुलपति महोदय ने अपनी गलती स्वीकारते हुए आश्वासन दिया कि इसे मैं संशोधित करा दूंगा। चार-पांच महीने बाद पंडितजी के दर्शनार्थ जब जबलपुर गया तो मैंने पूछा–'दादा, डी. लिट्. की उस मानद उपाधि में नाम संशोधित हुआ या नहीं?'

वे बोले–'भाई, मैंने इसीलिए तो मना किया था, लेकिन वे डिग्री दे गये और गलत नाम से दे गये।'

– शंकरदयाल सिंह



महान विप्लवी

वचनेश त्रिपाठी

यतीन्द्रनाथ दास की शहादत का अर्ध-शताब्दी समारोह पिछले १३ सितंबर को मनाया गया। केंद्र सरकार ने उनकी स्मृति में डाक-टिकट जारी किया; दिल्ली, कलकत्ता, लखनऊ, चंडीगढ़ आदि कुछ नगरों में समारोह हुए जिनमें उन्हें श्रद्धांजलि दी गयी। फिर भी नयी पीढ़ी को अभी यह जानना है कि ये यतीन्द्रनाथ दास कौन थे? किस लिए उन्होंने ६३ दिन के उपवास में तिल-तिल करके छीजते-गलते हुए अपनी जवानी उत्सर्ग की?

सन १९०४ की २७ अक्तूबर को कलकत्ता में उस बालक को मानो घुट्टी के साथ ही देशभक्ति के संस्कार दे दिये गये थे। पिता बंकिम बिहारी दास सामान्य सद्‌गृहस्थ थे। घर में कोई अभाव न था। बंगभंग करके अंग्रेजों ने उस समय युवकों के मानस को उद्वेलित कर रखा था; उसी वातावरण में बालक यतीन्द्र (जतीन) पला-बढ़ा।

अभी वह आठ साल का था कि माता संसार छोड़ गयीं। चूंकि वह बहुत भावुक बच्चा था, मृत्यु की बात उससे छिपायी गयी; उसे यही बताया गया कि वे बीमार हो गयी हैं और ऊपर आकाश के पार एक अच्छा अस्पताल है, वहीं इलाज कराने गयी हैं; अच्छी होते ही वापस आ जायेंगी।

भोला-भाला यतीन्द्र बहुत समय तक इसी को सच समझ, मां की प्रतीक्षा करता रहा। अंत में असलियत उसकी समझ में आयी। मगर तभी उसे उससे भी बड़ी मातेश्वरी का परिचय अनायास ही मिल गया और उसकी सारी प्रीति, सारी भक्ति सदा के लिए उस पर स्थिर हो गयी।

उन दिनों बंगाल में घर-घर माताएं शहीद खुदीराम बोस पर लोकगीत गाया करती थीं। बच्चों को सुलाने के लिए लोरियां भी खुदीराम बोस पर ही गायी जातीं। एक गीत की दो पंक्तियां मुझे आज भी याद हैं:

ए बार बिदाई दो मां
घरे आसी......

[हे मां, इस बार विदाई दो, जल्दी ही फिर लौट आऊंगा।]

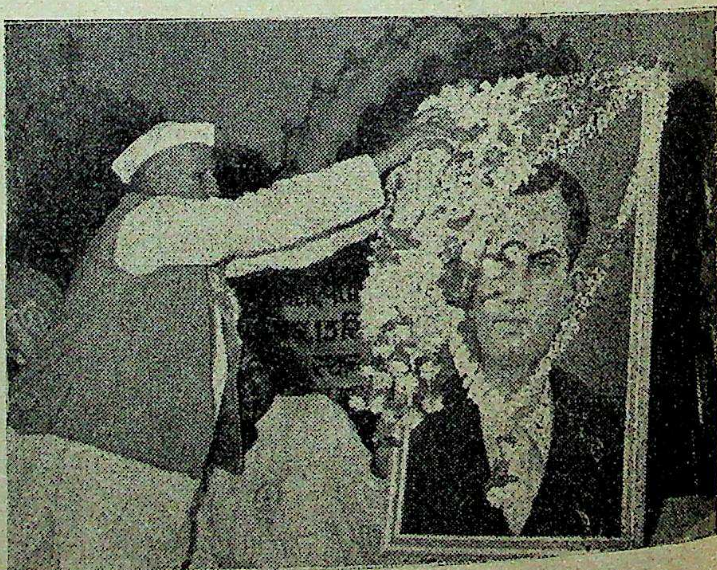
शहीद खुदीराम को सोलह वर्ष की कच्ची उम्र में ही फांसी दी जा रही है और वे भारत-जननी को आश्वस्त कर रहे हैं—इस बार तो जाने दो मां! जल्दी

ही आकर फिर से तुम्हारी सेवा-अर्चना करूंगा। यतीन्द्र यह गीत सुनता, बार-बार सुनता और इसका मर्म गुनता। उसके भावुक अंत:करण में वह गीत बस गया। कुछ गीत और थे जो उसे विशेष प्रिय थे और जिन्हें वह अक्सर गुनगुनाया करता था—बंकिम का 'वंदे मातरम्', नजरुल इस्लाम का 'आमि विद्रोही' और रवीन्द्रनाथ ठाकुर का 'एकला चलो रे।'

अब यतीन्द्र किशोरावस्था से यौवन में प्रवेश कर रहे थे। १९२० में सोलह साल की अवस्था में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली थी। तभी महात्मा गांधी ने देशवासियों का आह्वान किया, छात्रों से कहा—सरकारी स्कूल-कालेज छोड़ दो। साल-भर में देश को आजादी दिला देने का वचन उन्होंने दिया था। यतीन्द्र ने पढ़ाई छोड़ दी और १९२१ के असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। धरना देने पर एक मास की जेल हुई। रिहा हुए तो फिर से मोर्चे पर पहुंच गये। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के सिलसिले में पकड़े गये और छह महीने की जेल हो गयी।

पिता बहुत नाराज थे। वे चाहते थे कि बेटा आंदोलन से दूर रहे, पढ़े-लिखे। पर यतीन्द्र कहां मानने वाले थे! इसलिए जब जेल से रिहा हुए तो घर से भी अलग हो गये। अब कलकत्ते का कांग्रेस कार्यालय ही उनका रैन-बसेरा बन गया।

तभी अचानक असहयोग आंदोलन रुक गया। उत्तर प्रदेश के चौरीचौरा नामक स्थान पर एक जुलूस के सिलसिले में उग्र जनता ने पुलिस के २९ आदमियों को थाने में बंद करके आग लगा दी, जिससे वे सब जल कर मर गये। गांधीजी ने इसे हिंसा कह कर आंदोलन स्थगित कर दिया।



समारोह के अध्यक्ष तथा काकोरी केस के क्रांतिकारी श्री रामकृष्ण खत्री १३ सितंबर को शहीद यतीन्द्र दास को श्रद्धांजलि देते हुए।

सारे देश में निराशा और निष्कर्मण्यता का अंधेरा छाया देखकर वे सशस्त्र क्रांतिकारी जो असहयोग में आ जुटे थे, अपने अग्निपथ पर फिर लौट गये। तडिदाघातों की तरह उनके बम-रिवाल्वर फिर गरज उठे। यतीन्द्र भी ऐसे ही एक दल में सम्मिलित हो गये। दल का नाम था–'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'।

शचीन्द्रनाथ सान्याल सशस्त्र क्रांति के एक अत्यंत कर्मठ नेता थे। यतीन्द्र उन्हीं के संपर्क से विप्लवी दल में आये। शचीनदा से उन्होंने बम बनाना सीखा। उन्होंने दल की ओर से गुप्त पर्चे बड़ी तादाद में छपवाये और पूरे देश में एक ही दिन एक ही समय बंटवाये। दल को शस्त्रास्त्रों से सन्नद्ध करने में भी वे जुटे रहे। इसी उद्देश्य से उन्होंने इंडो-बर्मा पेट्रोलियम कंपनी का रुपया लूटा–वह भी राह चलते छापा मारकर और रुपया ले जाने वालों की आंखों में पिसी मिर्चें झोंककर! यूरोपीय कंपनी थी और काफी रुपया मिला। यतीन्द्रनाथ ने उससे पार्टी के लिए छह माउजर पिस्तौलें मोल लीं।

इन माउजरों से अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। इनमें से चार तो शाहजहांपुर में पं. रामप्रसाद बिस्मिल के पास भेज दिये गये और वे काकोरी में सरकारी खजाना लूटने में प्रयुक्त हुए। दो माउजर काशी की शाखा को भेजे गये। इन दिनों शचीनदा काशी में ही थे और यतीन्द्रनाथ उनके दायें हाथ समझे जाते थे। शचीनदा से मिलने वे दो बार काशी आये।

तभी 'काकोरी केस' के सिलसिले में गिरफ्तारियां शुरू हुईं और यतीन्द्र भी पकड़े गये। कलकत्ते से उन्हें पंजाब ले जाकर मियांवाली जेल में रखा गया, हालांकि सबूत के अभाव में उन पर मुकद्दमा बन नहीं पा रहा था।

जेल अधिकारियों के पाशविक बरताव के विरुद्ध यतीन्द्र ने अनशन कर दिया, जो २१ दिन चला। स्वास्थ्य चौपट हो गया। जब वे अत्यंत दुर्बल हो गये, सरकार ने उन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया। यही नहीं, मियांवाली जेल के जेलर ने उनसे अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा-याचना भी की। परंतु अभी सारा देश उनका नाम नहीं जान पाया था, हालांकि इससे पूर्व बंगाल में वे सुभाषचंद्र बसु के साथी रहे थे और सुभाष बाबू ने उन्हें बंगाल वालंटियर्स कोर में मेजर बनाया था।

मियांवाली जेल से छूटकर यतीन्द्र चौथी बार धर लिये गये। इस बार उन्हें बंगाल आर्डिनेन्स में नजरबंद किया गया। नजरबंदी से मुक्त हुए तो फिर वही धुन। सरदार भगतसिंह और भगवती चरण बोहरा कलकत्ते आकर उनसे मिले और उत्तर प्रदेश में बम-फैक्टरी खोलने के लिए बात की। यतीन्द्र बम-विशेषज्ञ थे; वे बड़ी खुशी से भगतसिंह के साथ आगरा चल दिये।

यतीन्द्र के ही कर्तृत्व से बाद में आगरा के अलावा दिल्ली में झंडेवालां में और



दायें से क्रांतिकारी और शहीद के साथी सर्वश्री जयदेव कपूर, शिव वर्मा, रामकृष्ण खत्री (काकोरी केस), सदाशिवराव मलकापुरकर (भुसावल बमकांड), बोलते हुए शचीन्द्रनाथ बख्शी (काकोरी केस) तथा रमेश सिन्हा (समिति के मंत्री)।

सहारनपुर में भी बम-फैक्टरी चलायी गयी। झंडेवालां में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन (बाद में 'अज्ञेय'), यशपाल और विमलप्रसाद जैन आदि बम बनाते थे; बाहर साइन-बोर्ड लगा था साबुन-फैक्टरी का। सहारनपुर की बम-फैक्टरी में जयदेव कपूर, शिव वर्मा और डा. गया प्रसाद कटियार जुटे हुए थे। जयदेव और शिव वर्मा वहीं पकड़े गये।

[जब गत १३ सितंबर को लखनऊ की कैसर बाग-बारादरी में यतीन्द्रनाथ दास के बलिदान की अर्ध-शताब्दी मनायी गयी तो उसमें यतीन्द्र के जीवित साथी जयदेव कपूर, शिव वर्मा और जितेन्द्र सान्याल (शचीन्द्र सान्याल के अनुज) का सार्वजनिक सम्मान उ. प्र. के राज्यपाल और मुख्यमंत्री ने किया। बंबई के लैमिंग्टन शूटिंग केस से जुड़ी प्रसिद्ध क्रांतिकारिणी दुर्गा भाभी ने इस अवसर पर यतीन्द्रनाथ दास स्मारक डाक-टिकट का विमोचन किया।]

सर्वश्री जयदेव कपूर, शिव वर्मा, विजयकुमार सिन्हा, जितेन्द्र सान्याल प्रत्यक्षदर्शी हैं उस बोर्स्टल जेल के, जहां यतीन्द्र ने स्वेच्छया मृत्यु का वरण किया था। वह उनकी पांचवीं और आखिरी गिरफ्तारी थी। असेम्बली बमकांड और लाहौर षड्यंत्र केस में (जिसमें राजगुरु और भगतसिंह ने गोली मारकर अंग्रेज़ पुलिस अफसर सांडर्स को खत्म किया था) भगत-

सिंह के साथ यतीन्द्र भी गिरफ्तार किये गये थे। उन्हें पकड़वाया था मुखबिर फणीन्द्र घोष ने जिसे बाद में क्रांतिकारी वैकुंठ शुक्ल और चंद्रमा सिंह ने चाकुओं से गोदकर मार डाला। वैकुंठ ने फांसी पायी; चंद्रमा सिंह को हाजीपुर ट्रेन डकैती में लंबी सजा मिल चुकी थी।

चंद्रमा भाई से मेरी मुलाकात थी। यतीन्द्रनाथ के वे बड़े प्रशंसक थे और उन्हें इसका बड़ा संतोष था कि यतीन्द्र को पकड़वाने वाले को वे यमलोक भेज सके। उस समय वे २८ साल के थे। सुंदर व्यक्तित्व, फुर्तीला कसरती शरीर। देश-शत्रु से जूझने की उमंग। आजाद से उनका संपर्क रहा।

असेम्बली बम-केस में आजीवन काले पानी की सजा पाकर भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दिल्ली से लाहौर सेंट्रल जेल आये, जहां उन पर सांडर्स-वध का मुकद्दमा चलना था। यतीन्द्र तब लाहौर बोर्स्टल जेल में थे। उन दिनों जेलों में अलग श्रेणियां न थीं। राजनैतिक कैदियों के साथ जानवरों से भी बदतर सलूक होता था। दिन-रात उन्हें अपमानित किया जाता। इसलिए काकोरी केस के कैदियों ने और उसके बाद भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने अनशन शुरू कर दिया। साथियों के निर्णय से यतीन्द्र, शिव वर्मा, जयदेव कपूर, विजय कुमार सिन्हा आदि भी अनशन पर उतर आये।

उन दिनों जेल-अधिकारी भूख-हड़तालियों को बलात् दूध पिलाने की चेष्टा किया करते थे। अनशनकारी के हाथ-पांव, सीने और सिर पर सात-आठ आदमी बैठ जाते और नाक में नली डालकर दूध और अन्य तरल पदार्थ पेट में उतार दिये जाते। यतीन्द्र अनशन से काफी कमजोर हो गये थे मगर दवा तो क्या एनीमा लेने से भी इन्कार कर रहे थे—इस भय से कि कहीं इसी बहाने जेल के डाक्टर कोई पौष्टिक तत्त्व शरीर में न पहुंचा दें।

उन्हें मनाने के लिए भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को बोर्स्टल जेल लाया गया; पर उनके कहने पर भी यतीन्द्र माने नहीं। उनकी देखभाल के लिए उनके छोटे भाई किरणचंद्र दास को उनके पास रखा गया था। मगर यतीन्द्र ने पहले ही उनसे प्रतिज्ञा करा ली थी कि वे दवा और भोजन लेने के लिए उनसे आग्रह न करेंगे। तब भगतसिंह और बटुकेश्वर ने उनसे इल्तिजा की कि एनीमा ले लें ताकि इस बहाने मैं और बटुकेश्वर आपके साथ रह सकें और आजादी की लड़ाई के भविष्य के संबंध में योजनाएं बना सकें। देश की बात आने पर यतीन्द्र मान गये। उन्होंने एनीमा ले लिया।

परंतु एक दिन जेल अधिकारी उन्हें बलात् दूध पिलाने के लिए जोर-आजमाइश कर रहे थे। यतीन्द्र विरोध कर रहे थे। उन्होंने नाक की नली हटाकर मुंह में डाल ली और दांतों से चबा डाली। तब दूसरी नली नथुने में डाली गयी। उसे हटाने के लिए यतींद्र ने हाथ का झटका दिया तो

नली का निचला सिरा फेफड़े में उतर गया। फलतः उस दिन जो सेर भर दूध नली में उड़ेला गया, सबका सब फेफड़े में चला गया। यतीन्द्र की हालत खराब हो गयी। सांस लेना दुश्वार, भयंकर खांसी। अर्धमूर्च्छा की हालत। फिर भी जब डाक्टर ने दवा देना चाहा वे आकुल आकुल होकर प्रतिरोध करने लगे। नहीं ली कोई दवा। वे जानते थे कि क्या हुआ है और इसी लिए पूर्णतया संतुष्ट थे। कह रहे थे—'अब सरकार मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकती।'

सरकार ने फर्जी जामीन खड़े करके जमानत करायी। जेल-अधीक्षक ने आकर कहा—'आपको बिना शर्त छोड़ने को सरकार तैयार है और मुकद्दमा भी उठा लिया जायेगा।' क्रांतिकारी का प्रश्न था—'और कैदियों की मांगों का क्या हुआ?' जेल-अधीक्षक चुप। फिर यतीन्द्र अनशन कैसे तोड़ते, रिहाई कैसे स्वीकारते!

उसी तरह अनुदिन मृत्यु की घाटी की तरफ अग्रसर होते-होते १३ सितंबर आ गया। (वर्ष था १९२९, जिस साल आगे चलकर लाहौर में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का ऐतिहासिक जलसा हुआ।) डाक्टरों ने बिगड़ती दशा देखकर इंजेक्शन देना चाहा। मगर दधीचि तुल्य क्रांतिकारी की विरोध-मुद्रा देखकर उन्हें साहस न हुआ। अंतिम क्षण दूर न थे। ए बार बिदाई दो मां, घरे आसी.....

अनुज किरणदास से बोले—'एक कथा सुनाता हूं।' और सुनाने लगे रुक-रुककर वशिष्ठ की नंदिनी कामधेनु की कथा। किस प्रकार उसने अपहर्ता के विपुल सैन्य बल को व्यर्थ कर दिया, किस तरह सैन्य-शक्ति के मुकाबले में सैन्य शक्ति ही जीती, न कि निष्क्रिय-निहत्था विरोध-प्रदर्शन। यही था उस कथा का मर्म और साथियों के लिए आग्रह कि रास्ता सही है, उसे न छोड़ना।

बार-बार उनका शरीर सिहर उठता था। अनुज से कहा—'एकला चलो रे गाओ।' किरणदास गाते रहे। तब कहा—'अब वंदे मातरम् गाओ।' और उसी महामंत्र को सुनते उनका प्राण-प्रदीप दिन के दो बजे निर्वापित हो गया। आत्मत्याग और बलिदान की परंपरा में एक अखंड दीपक जल उठा।

सुभाषचंद्र बसु, किरण दास, दुर्गा भाभी और एहसान इलाही उनके शव को लेकर ट्रेन से कलकत्ता चले। मथुरा स्टेशन पर आजाद और भगवती चरण बोहरा ने अपने साथी के अंतिम दर्शन किये; पुलिस उन्हें पहचान ही न पायी। कलकत्ता में पांच-छह लाख की भीड़ ने अमरशहीद को अंतिम श्रद्धांजलि दी। चिता की एक-एक चुटकी राख बंट गयी।

ये थे यतीन्द्रनाथ दास, जिनकी शहादत की अर्ध-शताब्दी हमने हाल में मनायी।

—२० रमा निवास, उपासनी बिल्डिंग; हुसैनगंज, लखनऊ।



महाभियोग एक अमरीकी राष्ट्रपति पर

० विश्वास ०

अब्राहम लिंकन की हत्या के बाद एंड्रू जान्सन ने न केवल लिंकन का रिक्त किया हुआ राष्ट्रपति-पद ही संभाला बल्कि दिवंगत राष्ट्रपति की उन नीतियों के क्रियान्वय का दायित्व भी अपने कंधों पर ले लिया, जिनकी खातिर लिंकन को मौत का शिकार होना पड़ा था। पराजित दक्षिणी राज्यों की समस्या का समाधान भी इन नीतियों में एक थी। लिंकन पराजित दक्षिण के प्रति उदारता बरतना चाहते थे। परंतु उत्तर के उग्र रिपब्लिकन नेता दक्षिण के साथ समस्त संवैधानिक अधिकार गंवा चुके विजित प्रदेशों जैसा व्यवहार करना चाहते थे।

उदारता और प्रतिशोध का यह संघर्ष एंड्रू जान्सन को विरासत में मिला था। लिंकन की तरह उन्होंने भी उग्र रिपब्लिकनों का मुकाबला करने का निर्णय किया। संघर्ष जारी रहा। वस्तुतः यह संघर्ष केवल उदारता और प्रतिशोध के बीच का ही नहीं था, कार्यपालिका और विधायिका के बीच का भी था। उग्र रिपब्लिकन नेता देश के पुनर्निर्माण के विषय में लिंकन के संवैधानिक एवं उदार दृष्टिकोण के विरुद्ध थे तथा विधायिका को प्रशासन का सर्वोच्च अंग बनाना चाहते थे। लिंकन की मृत्यु के बाद उन्हें अपने इरादों की सफलता का विश्वास हो गया था। परंतु राष्ट्रपति एंड्रू जान्सन की लिंकनपंथी नीतियों ने उनकी आशाओं पर तुषारपात कर दिया।

अधिकारों के नाम पर राष्ट्रपति और सेनेट के बीच तलवारें खिंच गयीं। राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा पारित अनेक विधायकों को संविधान-विरुद्ध, दक्षिण के प्रति अत्यंत कठोर, शांतिकाल में अनावश्यक रूप से सैनिक शासन को जारी रखने वाला, कार्यपालिका के कार्य में अकारण हस्तक्षेप करने वाला आदि कह-कहकर रद्द करते चले गये। दूसरी ओर अमरीकी इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि कांग्रेस (अमरीकी संसद) ने महत्त्वपूर्ण विधेयकों को राष्ट्रपति के निषेध के बावजूद पारित करके,

राष्ट्रपति की सहमति के बिना ही कानून का रूप दे दिया।

परंतु उग्र रिपब्लिकन अपने बहुमत के बावजूद राष्ट्रपति जान्सन के सभी निषेधों को रद्द नहीं कर पाये थे। राष्ट्रपति को वे अपना शत्रु समझने लगे थे और शत्रु को 'समाप्त' करना उनका एकमात्र ध्येय बन गया था। उन्होंने राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का निर्णय कर लिया। किंतु इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए जरूरी था सेनेट में दो तिहाई का बहुमत। यह उनके पास नहीं था। इसे प्राप्त करना उनका तात्कालिक लक्ष्य बन गया।

अब तो समस्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर—विशेषत: संघ में नये राज्यों के समावेश, पुराने दक्षिणी राज्यों के पुन: प्रवेश और सेनेटरों के अधिकार-पत्रों की स्वीकृति आदि पर—एक ही सवाल को दृष्टि में रखकर निर्णय किया जाने लगा। और वह सवाल था राष्ट्रपति के विरुद्ध ठोस दो-तिहाई बहुमत कैसे खड़ा किया जाये। इस के लिए उचित-अनुचित का विवेक भी ताक पर रख दिया गया। जान्सन का समर्थन करने वाले एक सेनेटर को अत्यंत संदिग्ध उपायों द्वारा उसकी सीट से वंचित कर दिया गया। राष्ट्रपति के निषेध के बावजूद नेब्रास्का को संघ में सम्मिलित कर लिया गया, जिससे सेनेट में दो और राष्ट्रपति-विरोधी सदस्य आ गये।

राष्ट्रपति-विरोधी सदस्यों का बहुमत एक-एक करके बढ़ता जा रहा था। इसी बीच कन्सास के परंपरावादी रिपब्लिकन जिम लेन ने आत्महत्या कर ली। वे राष्ट्रपति के समर्थकों में से थे। राष्ट्रपति-विरोधी इससे मन ही मन बहुत खुश थे और जब जिम लेन के रिक्त स्थान पर एडमंड जी. रास निर्वाचित होकर आये, तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। लेन के कट्टर विरोधियों में से थे रास। अब उग्र रिपब्लिकन नेताओं को विश्वास हो गया कि वे राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाकर उन्हें पदच्युत करने की अपनी महत्त्वाकांक्षा जरूर पूरी कर सकेंगे।

और उन्हें इसका मौका भी जल्दी ही मिल गया। ५ अगस्त १८६७ को राष्ट्रपति जान्सन ने अपने युद्धमंत्री एम. स्टेन्टन से इस्तीफा मांगा; क्योंकि उन्हें महसूस होने लगा था कि स्टेन्टन पराजित दक्षिण पर अपनी तानाशाही चलाना चाहते हैं। इस बीच कांग्रेस ने राष्ट्रपति के निषेध के बावजूद 'कार्यकाल-विधेयक' पारित कर दिया था, जिसने राष्ट्रपति के लिए



राष्ट्रपति एंड्रू जान्सन

यह लाजमी कर दिया था कि वे किसी भी ऐसे कर्मचारी को, जिसकी नियुक्ति की पुष्टि सेनेट से करानी आवश्यक हो, पदच्युत करने के लिए सेनेट की स्वीकृति ले।

'मैं कांग्रेस के अगले अधिवेशन से पहले इस्तीफा नहीं दूंगा।' स्टेन्टन ने राष्ट्रपति को धमकी-सी दी।

राष्ट्रपति ने स्टेन्टन को मुअत्तिल कर दिया।

स्टेन्टन ने भी मोर्चाबंदी कर रखी थी। सारे राष्ट्रपति-विरोधी रिपब्लिकन सेनेटर उनके साथ थे ही। कांग्रेस के निर्णय का उल्लंघन करने के नाम पर जनमत को भी राष्ट्रपति के खिलाफ भड़का दिया गया। राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग लगाने का प्रस्ताव रखा गया और प्रस्ताव हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स में स्वीकृत हो गया।

५ मार्च १८६८। अमरीकी सेनेट में महाभियोग का मुकद्दमा शुरू हुआ अमरीका के प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में। प्रत्येक सेनेटर इसमें न्यायाधीश था और प्रधान न्यायाधीश ने प्रत्येक को निष्पक्ष होकर निर्णय देने की शपथ विधिवत् ग्रहण करवायी थी।

हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स की ओर से मुख्य अभियोक्ता थे जनरल बेंजमिन एफ. बटलर, जो 'न्यू ओर्लियन्स का कसाई' कहलाते थे।

महाभियोग के आरोप-पत्र में ११ धाराएं थीं। इनमें से पहली आठ धाराएं कार्यकाल-कानून का उल्लंघन करने तथा स्टेन्टन की पदच्युति के संबंध में थीं। नौवीं धारा में सैनिक व्यय कानून का उल्लंघन करने के लिए एक जनरल को उकसाने का आरोप था। दसवीं धारा में अमरीकी कानूनों के विरुद्ध असंयत तथा भड़काने वाले भाषण करने का आक्षेप था और ग्यारहवीं धारा इन सब आरोपों की खिचड़ी थी। (अमरीकी राष्ट्रपति स्व. जान एफ. केनेडी के अनुसार, यह धारा जानबूझ कर अस्पष्ट रखी गयी थी, ताकि उन तमाम सेनेटरों को एकमत होने का अवसर मिल सके, जो राष्ट्रपति को अपराधी तो घोषित करना चाहते थे, पर बुनियादी प्रश्नों पर अपना मत स्पष्ट नहीं करना चाहते थे।)

पक्ष-विपक्ष के वकील मुकद्दमे में हाजिर थे। मगर धीरे-धीरे यह बिलकुल स्पष्ट दिखने लगा था कि रिपब्लिकन सेनेटरों ने भले ही निष्पक्ष निर्णय देने की शपथ ली हो, परंतु वे पूर्वग्रहों से ग्रस्त हैं और उन्होंने राष्ट्रपति के लिए सजा पहले ही तय कर रखी है। सच तो यह है कि उन सेनेटरों ने निष्पक्षता का ढोंग रचने की भी आवश्यकता नहीं समझी। और पहले ही अपने निर्णय की घोषणा कर दी।

उधर महाभियोग-विरोधी सेनेटरों को अपने पक्ष में करने के लिए घूस और दबाव का खुला खेल खेला जा रहा था।

मतदान का गणित बहुत सीधा और स्पष्ट था। सेनेट में कुल ५४ सदस्य थे। राष्ट्रपति को दोषी घोषित करने के लिए दो तिहाई अर्थात् ३६ वोटों की आवश्यकता

थी। ५४ में से बारह सदस्य डेमोक्रेट थे शेष ४२ रिपब्लिकन। इन ४२ में से यदि छह से अधिक सेनेटर टूट गये, तो महाभियोग खारिज हो जाता। स्थिति यह थी कि छह रिपब्लिकन सेनेटर पहले ही यह घोषणा कर चुके थे कि वे राष्ट्रपति को अपराधी नहीं मानते। इसलिए अब राष्ट्रपति के विरोधियों के लिए यह निहायत जरूरी था कि बाकी ३६ को जैसे भी हो एकजुट रखा जाये। यह मामला जटिल इसलिए था कि इन ३६ में से एक सेनेटर ऐसा था जिसने पहले से अपना मत बताने से इन्कार कर दिया था। सो असली सवाल यह था कि उसकी अक्ल जैसे ठिकाने लगायी जाये।

अपना निर्णय पहले से बताने से इन्कार करने वाले उस एकाकी सेनेटर का नाम था एडमंड जी. रास। वैसे इससे पहले तक रास सेनेट में प्रत्येक रिपब्लिकन प्रस्ताव का हमेशा समर्थन करते आये थे; इसलिए उग्र रिपब्लिकनों को लगभग विश्वास था कि वे राष्ट्रपति को अपराधी ही करार देंगे।

परंतु 'विश्वास' और 'लगभग विश्वास' एक ही चीज नहीं होती। रास का वोट अनिश्चित बना रहे, यह उग्र रिपब्लिकनों को सह्य नहीं था। इसी बीच यह अफवाह फैल गयी कि 'रास डांवाडोल है।' फिर तो रास का जीना हराम कर दिया गया। रोज उनसे अपीलें की जातीं। रोज उन्हें धमकियां दी जातीं। यही हाल उन छह सेनेटरों का भी था, जिन्होंने राष्ट्रपति को दोषी मानने से इन्कार कर दिया था। सातों सेनेटरों को अब दिन-रात परेशान किया जा रहा था। उन्हीं पर नहीं, उनके परिवारों पर भी नजर रखी जा रही थी। उनकी हर गतिविधि का ब्योरा दर्ज किया जाता था। उन्हें राजनैतिक बहिष्कार और हत्या तक की धमकियां दी जा रही थीं।

रास के भाई को इस आशय का पत्र मिला कि अगर आप एडमंड रास का इरादा बता देंगे, तो आपको २० हजार डालर दिये जायेंगे। बेन बटलर ने तो खुल्लमखुल्ला कहा—'लो यह डालरों का बोरा धरा है, वह बदमाश कितना धन चाहता है?'

परंतु सारे प्रलोभनों, सारी धमकियों के जवाब में रास ने एक ही बात कही—'मैंने शपथ ली है कि मैं संविधान और कानून के अनुसार निष्पक्ष न्याय-निर्णय करूंगा। और मुझे विश्वास है कि अपने विवेक के अनुसार तथा देशहित की दृष्टि से वोट देने का साहस मुझमें रहेगा।'

आखिर निर्णय का दिन भी आ पहुंचा। सेनेट की गैलरियां ठसाठस भरी हुई थीं। दर्शकों के लिए लगभग १,००० टिकट छापे गये थे और कांग्रेस-भवन के बाहर हर टिकट की बोली लग रही थी। सभी सेनेटर अपनी-अपनी कुर्सियों पर आ बिराजे थे। एक सेनेटर को तो स्ट्रेचर पर लाया गया था।

कार्रवाई शुरू हुई। शायद अभ्यासवश प्रधान न्यायाधीश ने शांति और व्यवस्था बनाये रखने का निर्देश दिया। असल में

इस निदश की आवश्यकता नहीं थी; वैसे ही चुप्पी छायी हुई थी। एक सेनेटर ने बाद में कहा था–'मेरे पास बैठे कुछ सदस्य अनिश्चितता के बोझ के मारे पीले और बीमार-से हो गये थे। .... फर्श पर पांव सरकने की आवाज, रेशमी वस्त्रों की सर-सराहट, पंखों की चरमर और लोगों की फुसफुसाहट सब बंद हो गयी थी।'

सबसे पहले मतदान आरंभ हुआ महा-भियोग की ११ वीं धारा पर जो कि सबसे अस्पष्ट धारा थी और जिस पर सबसे अधिक सहमति की आशा की गयी थी। एक-एक करके चौबीस रिपब्लिकन सेनेटरों ने राष्ट्रपति को दोषी घोषित कर दिया था। शेष ग्यारह रिपब्लिकन सेनेटरों के बारे में भी यह तय था कि वे राष्ट्रपति को बरी नहीं करेंगे। परंतु २४ और ११ का योग सिर्फ ३५ होता है, जबकि महाभियोग के पारित होने के लिए ३६ वोट जरूरी थे। एक वोट अनिश्चित था और वह था कन्सास के युवा सेनेटर रास का वोट।

तभी प्रधान न्यायाधीश की आवाज गूंजी–'सेनेटर रास, आपकी क्या राय है ? .... प्रतिवादी एंड्रू जान्सन इस धारा में उल्लिखित महापराध का अपराधी है या नहीं ?'

प्रधान न्यायाधीश के इस प्रश्न के बाद जो कुछ हुआ, उसका विवरण स्वयं सेनेटर रास ने यों दिया है :

'उस विराट जमघट का प्रत्येक व्यक्ति मुझे अलग और स्पष्ट दीख रहा था। कुछ के मुंह उत्सुकता के मारे खुले हुए थे और शरीर आगे को झुके हुए थे। कुछ लोग अपने हाथ ऐसे उठाये हुए थे मानो किसी आशंकित वार को रोकना चाहते हों .... सबके चेहरों पर आशंका और आशा का मिश्रण झलक रहा था। कुछ के चेहरों से प्रतिहिंसापूर्ण घृणा टपक रही थी; कुछ के चेहरे आशा से दमक रहे थे। ... सेनेटर अपनी डेस्कों पर आगे झुके हुए थे। कुछ ने ध्यान से सुनने के लिए हाथ कानों से लगा रखे थे। ..... बड़ी जबर्दस्त जिम्मे-दारी थी। और परिस्थितियों के विचित्र संयोग के कारण जिस व्यक्ति पर यह जिम्मेदारी आन पड़ी थी, यदि वह इसे दुःस्वप्न की तरह दूर करने की, इससे बचने की कोशिश करे तो उसमें आश्चर्य ही क्या था! ...... मैंने देखा कि मेरी कब्र मुंह बाये हुए है। मित्रता, पद, प्रतिष्ठा, धन-संपत्ति और वे सब वस्तुएं जो किसी भी महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति के लिए जीवन को स्पृहणीय बनाती हैं, मेरी जबान की एक हलचल से शायद सदा के लिए समाप्त हो जाने वाली थीं। इसलिए अगर मेरी आवाज कांप गयी और दूर बैठे सेनेटरों को मुझसे अपना निर्णय पुनः घोषित करने की मांग करनी पड़ी, तो उसमें अचरज ही क्या है!'

परंतु दूसरी बार रास की आवाज बिल-कुल भी कांपी नहीं। बहुत स्पष्ट और दृढ आवाज में उन्होंने कहा–'निर्दोष।'

पासा पलट गया। राष्ट्रपति बच गये। मुकद्दमा मानो समाप्त ही हो गया। अब

प्रधान न्यायाधीश के द्वारा राष्ट्रपति के बरी किये जाने की घोषणा मात्र एक औपचारिकता रह गयी थी।

०००

राष्ट्रपति एंड्रू जान्सन तो बच गये; मगर अपने विवेक और अंतःकरण की आज्ञा पर चलने का दंड एडमंड जी. रास को भुगतना पड़ा। अखबारों में इन्हें क्षुद्र नारकीय कीड़ा, और 'मुट्ठी-भर पैसे के लिए बिक जाने वाला' कहा गया। मांग की गयी कि रास और उनके छह साथियों के साथ 'किसी प्रकार का रहम या रियायत न की जाये।'

इसके बाद वे सातों सज्जन फिर कभी सेनेटर नहीं चुने गये। उनका राजनैतिक जीवन ही समाप्त हो गया। रास जब कन्सास लौटे तो उन्हें और उनके परिवार को सामाजिक बहिष्कार, मार-पीट तथा गरीबी का सामना करना पड़ा।

परंतु रास को अपने किये का कोई पछतावा नहीं था। उन्होंने कहा था—'जो लाखों आदमी आज मुझे शाप दे रहे हैं, वही कल मुझे इस बात के लिए असीस देंगे कि मैंने देश को भयंकर खतरे से बचा लिया।'

क्या था यह खतरा?

रास के ही शब्दों में, 'शासन के समानाधिकारी अंग के रूप में कार्यपालिका की स्वतंत्रता की परख हो रही थी। ...... यदि राष्ट्रपति को ..... अपमानित और राजनीति से बहिष्कृत होकर पदत्याग करना पड़े, और वह भी अपर्याप्त प्रमाण के आधार पर तथा दलीय कारणों से, तो राष्ट्रपति का पद अपना सारा गौरव खो बैठेगा। ...... वह सदा के लिए विधायकों की इच्छा का दास बन जायेगा। ..... हमारी सरकार के समक्ष ऐसा खतरा पहले कभी नहीं आया था ...... यह था अमरीका की राजनीति के निकृष्टतम तत्त्वों द्वारा सरकार पर नियंत्रण का खतरा।'

राष्ट्रपति के निर्दोष घोषित करने वाले एक अन्य रिपब्लिकन सेनेटर ने कहा था—'राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की नजीर एक बार कायम हो गयी तो जब भी किसी राष्ट्रपति का हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्स के बहुसंख्यकों को एवं सेनेट के दो तिहाई सदस्यों से ऐसे किसी भी प्रस्ताव पर विरोध होगा जिसे वे लोग महत्त्वपूर्ण समझते हों, तो राष्ट्रपति की स्थिति खतरे में पड़ जायेगी। फिर संविधान में निर्दिष्ट उन निरोधों और संतुलनों (चेक्स एंड बैलेन्सेज) का क्या होगा, जो संविधान के लिए परमावश्यक हैं?'



एक वचन विज्ञापन

जमशेदपुर में हुए दंगे की अवधि का एक विज्ञापन—

'हम जन्म-जन्मांतर के संबंधों में विश्वास रखते हैं, इसीलिए इन दिनों भी आसान किस्तों में आपके लिए हमारे यहां कूलर और पंखे उपलब्ध हैं।' —सत्य स्वरूप दत्त



ग्रंथलोक

समीक्षक : पृथ्वीनाथ शास्त्री

*** आलोक गंगा * डा. कृष्णप्रसाद मिश्र; वाणी प्रकाशन, दिल्ली-७; ११६ पृ.; १० रुपये।**

डा. मिश्र के इस कहानी-संग्रह में तीन अनुवादकों द्वारा ओड़िया से अनूदित ११ कहानियां हैं। डा. मिश्र स्वयं दर्शनवेत्ता हैं, सो मानव-मन की गहराई में पैठने की सहज क्षमता रखते हैं। यों भी वे कथा-साहित्य में किसी खास फैशन, वाद या आंदोलन के पक्षधर नहीं हैं। किंतु आधुनिक भावबोध और सशक्त संप्रेषण-क्षमता उनकी समस्त कथाकृतियों में परिलक्षित रहते हैं। हिंदी में यह उनका दूसरा कहानी-संग्रह अनूदित हुआ है, एक लघु उपन्यास भी छप चुका है।

प्रस्तुत संग्रह की शीर्षक-कहानी : 'आलोक गंगा' सबसे श्रेष्ठ कहानी है। श्यामाचरण का मित्र इंद्रपति जलाशय में अपनी तैरने की कला का प्रदर्शन करते-करते डूब जाता है। किंतु लोग उसकी अपनी गलती को कारण न मानकर उसकी मृत्यु का 'अन्यथासिद्ध' हेतु पत्नी मीनाक्षी के शारीरिक लक्षणों में ढूंढ़ते हैं, जो उनकी परंपरागत अंधविश्वासी धारणा के अनुसार वैधव्य के सूचक हैं। वैज्ञानिक होने पर भी श्यामाचरण अपनी मानसिक अपराध-ग्रंथि (डूबने से पहले इंद्रपति ने शायद उससे मदद मांगी थी, लेकिन वह गुस्से में भरा वहां से चल पड़ा था, क्योंकि बार-बार पुकारने पर भी इंद्रपति तालाब से बाहर नहीं आया था) का निराकरण स्वयं अपनी पत्नी सुप्रभा में भी 'वैधव्य' के लक्षण देखकर उसके प्रति क्रूरता एवं हिंसा-भाव के प्रदर्शन से करता है। किंतु अंत में सुप्रभा का मातृत्व-मंडित नारीत्व पति को खूनी होने से बचा लेता है। उसे यह बोध हो जाता है कि पुरुष अपनी भूल से मरता है और दोष मढ़ देता है नारी पर। सुपरिणति होती है सुप्रभा के पावन स्पर्श से उपलब्ध आनंद और विश्वास में।

अन्य कहानियों में 'मुखौटा', 'एक हिप्पी तरुणी की कहानी', 'यौवन की वापसी', 'ट्रोजन घोड़े' (जो **नवनीत** में छपा था) 'हिमपद्म' और 'यशोदा का शोक' अच्छी हैं। 'एक बात' और 'देवयानी और नियागरा' सामान्य हैं। कृति की विशेषता है

लेखक के 'अपने अनुभवों' की विदग्ध सहेज जो उसने कनाडा और अमरीका में हासिल की है, किंतु जिसमें प्राणवत्ता उसकी अपनी भूमि और भाषा के साथ गहराई के साथ जुड़े रहने से आयी है। यह संग्रह विदेशी मानव-जीवन के कुछ हृद्य और अमिट चित्रों के लिए भी स्मरणीय रहेगा।

०००

*** प्रतिमान (त्रैमासिक संकलन) * सं. राजेन्द्र कुमार मेहरोत्रा एवं श्याम किशोर सेठ; सदर बाजार, शाहजहांपुर-२४२००१; चौथा (पृ. १७६) और पांचवां (पृष्ठ १६४) अंक, प्रत्येक का मूल्य ४ रुपये।**

इलाहाबाद से शुरू हुई हिंदी की यह संकलन-परंपरा सचमुच श्लाघ्य है। संकलनों में प्राय: सभी कुछ स्तरीय होता है—साक्षात्कार, कहानियां, लेख-टिप्पणी, कविताएं, समीक्षाएं, बातें, परिसंवाद, रपट आदि। प्रस्तुत दोनों में मार्कंडेय, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, शेखर जोशी, रवीन्द्र कालिया, रमेश उपाध्याय जैसे लेखक हैं। साहित्य में मध्यम वर्ग की भूमिका पर अच्छे विचार हैं। बुद्धिजीवी समुदाय के दायित्व पर खरी बातें हैं। रचना-प्रक्रिया के मर्म का उद्घाटन है। भैरवप्रसाद गुप्त और नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों का सुंदर आकलन है। कम कीमत में इतनी अच्छी सुपाठ्य और सुप्रकाशित सामग्री के लिए संपादकों को बधाई। मेरा खयाल है, ऐसे संकलनों में कुछ श्रेष्ठ अनुवाद, यात्रा और पत्र-साहित्य एवं संस्मरण, भी हों तो और भी अच्छा होगा।

०००

*** ये खर्चीली बीवियां * चंद्रगुप्त विद्यालंकार; राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली; १०७ पृष्ठ; १० रुपये।**

*** गीली लकड़ियों का गट्ठर * सोहन शर्मा; हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई-४; १४५ पृष्ठ; १० रुपये।**

• आत्मज * प्रवणकुमार वंद्योपाध्याय; शारदा प्रकाशन, महरौली, नयी दिल्ली; १०० पृष्ठ; १० रुपये।

*** कच्चे मकान * निरुपमा सेवती; नशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली; ११८ पृष्ठ; १२।। रुपये।**

श्री सोहन शर्मा की कहानियों में माहौल और चरित्रों के सशक्त चित्र हैं। लेखक की समवेदनाशक्ति भी अच्छी तरह जगी हुई है। गांव और शहर सभी जगह उनके कैमरे का फोकस ठीक काम करता है। इस संग्रह की पंद्रहों कहानियां मनोरम हैं। मुझे 'दूसरा अंधेरा', 'एक और आत्महत्या' और 'समानांतर' ने बहुत प्रभावित किया। समग्र रचना में भाषा की रवानी भी सुखप्रद है। कैन्वस भी इतना बड़ा है कि देखते ही बनता है।

प्रणवकुमारजी सिद्धहस्त साहित्यकार हैं। संग्रह की पांचों कहानियों में उनकी समाज-सचेतनता बड़े सशक्त शब्दों में कलात्मकता के साथ व्यक्त हुई है। 'आलोक-

पुत्र' और 'आत्मज' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानियां हैं।

'ये खर्चीली बीवियां' श्री चंद्रगुप्तजी की चौदह कहानियों का नवीनतम संग्रह है। मुख्य स्वर व्यंग्य है, अतः पाठकों को निश्चय ही रुचिकर लगेगा।

सेवतीजी ने नारी-मानसिकता और आधुनिक परिस्थितियों में बनती-बिगड़ती-संवरती युवा-युवतियों की मनःस्थितियों का बड़ा जीवंत खाका खींचा है अपनी कहानियों में। एक नयी 'नैतिकता' भी है, जो आज तथाकथित 'हाइ सोसायटी' का मूलमंत्र बन गयी हैं। 'चालक' कहानी इस दृष्टि से संग्रह की ज़ोरदार कहानी है। यह उन लोगों की भ्रांति को उजागर करती है, जो दोगले 'कल्चर' में रहकर भी दोगले इंसानों से बचना चाहते हैं। पर साथ ही, ये आठों कहानियां आज की युवतियों की विवशता भी प्रस्तुत करती हैं। सचमुच वे 'कच्चे मकानों' में ही रहते हैं अभी तक।

०००

*** तेंदुआ और चीता * रामेश बेदी; प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली; ७१ पृष्ठ; ८ रुपये।**

'सिंह' और 'गेंडा' लिखने के बाद बेदीजी ने इस पुस्तक में 'तेंदुआ और चीता' का परिचय दिया है। कृति चित्रों और चुटकुलों से बहुत ही मनोरम बन गयी है। वन के हिंस्र पशुओं के जीवन की जानकारी के लिए अवश्य ही संग्रहणीय है। बच्चे, जवान और बूढ़े सभी इसे पसंद करेंगे। कीमत भी एकदम वाजिब है।

०००

*** तुंगभद्रा के तीर * उग्रसेन गोस्वामी; संजुल प्रकाशन, गुड़गांव; १२५ पृष्ठ; ८ रुपये।**

विजयनगर साम्राज्य की यह सचित्र कहानी विषय का एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करती है। लेखक ने भूमिका में कहा है–'विभिन्न विज्ञ इतिहासवेत्ताओं की कृतियों से तथा सैकड़ों वर्ष पूर्व विजयनगर की यात्रा करने वाले अनेक विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों से भरपूर मदद मिली है।' किंतु इनकी कोई भी सूची नहीं दी गयी। पुस्तक छात्रोपयोगी तो है ही, भारतीय इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण अध्याय से अपरिचित सामान्य हिंदी पाठक भी इससे लाभान्वित होगा।

०००

*** ओस-धुआं * मनोज सोनकर; क्षितिज प्रकाशन, बंबई-४; ८० पृष्ठ; ६ रुपये।**

सोनकर की कविताएं सभी मनोरम हैं। भाषा में रवानी है और शैलीगत प्रयोग मनोहर हैं। कहीं वे एकदम नपे-तुले चित्र खींच देते हैं, जो शीघ्र भूले नहीं जा सकते तो कहीं थोड़े-से शब्दों में इतनी अनुभूति भर देते हैं कि पाठक सहृदय हो उठता है। जैसे–'आदमीयत की फिक्र महज इतनी/नजर न आये ज़रा-सा आदमी।'

या 'जिंदगी एक फसल-सी/ जमे उखाड़, उखाड़।'

०००

*** फूल भी, शाल भी * डा. नरेश; पुस्तक गृह, चंडीगढ़; ९६ पृष्ठ; १० रुपये।**

डा नरेश अपनी कविताओं में साधारण से असाधारण की ओर सहज ही अग्रसर होते हैं। चूंकि 'कविता' उनका 'शौक नहीं मजबूरी है।' कविता के शब्दों में उनकी परिपक्व अनुभूतियां ही व्यक्त हुई हैं। यह कविता-संग्रह उनकी प्रथम प्रकाशित कृति है, कुछ कविताएं अच्छी बन पड़ी हैं।

०००

*** महानाटक * सुरेश श्रीवास्तव, संभावना प्रकाशन, हापुड़-२४५१०१; ८० पृष्ठ:; १० रुपये।**

'महानाटक' में कवि सुरेश श्रीवास्तव का यह प्रयत्न रहा है कि 'हर कविता वर्तमान महासंदर्भों का महानाटक प्रस्तुत करे।' पाठकों से भी उनकी यही अपेक्षा है कि 'वे इन कविताओं की महानाटकीय मुद्राएं पढ़ेंगे।' कुछ पंक्तियां बहुत ही भाव-गर्भ हैं: 'सारे संधि पत्रों पर पड़ गयी हैं दरारें/ जन्म ले रहे हैं नये-नये ज्वालामुखी / लावे में बह जाना चाहते हैं अनेक कुरुक्षेत्र।' अथवा 'अधिकार की नोकों पर / झेल लिये जाते हैं जीने के संकल्प।' और भी 'आंगन में प्रतीक्षारत है देवत्व / और पूजा के नाम पर चढ़ाये गये/बासी फूलों से पुजारी कर रहा है / खाली सिंहासनों का शृंगार'।



सन १९०५ या १९०६ में एक बार हेस्टिंग्ज हाउस में प्रसादजी, मैथिलीशरणजी गुप्त, राय कृष्णदास आदि एकत्र थे। संयोग से पं. रूपनारायण पांडे भी, जो किसी काम से काशी गये हुए थे, इन महानुभावों से मिलने वहां पहुंच गये। भादों का महीना और सायंकाल का समय। अंधेरा बढ़ रहा था और वर्षा भी हो रही थी। किसी प्रकार कविता और फिर समस्यापूर्ति की बात छिड़ गयी।

उन दिनों पांडेजी काव्यक्षेत्र में पदार्पण कर रहे थे और उन्हें समस्यापूर्ति का अभ्यास हो चला था। प्रसादजी ने समस्या दी—'रैन अंधेरी'; किंतु शर्त यह लगायी कि शृंगाररस में न हो। पांडेजी ने तत्काल यह पूर्ति कर दी :

बुद्धि, विवेक की ज्योति बुझी, ममता, मद, मोह घटा घन घेरी।
है न सहारौ, अनेकन हैं ठग, पाप के पन्नग की रहै फेरी।
त्यों अभिमान कौ कूप इतै, उतै कामना रूप शिलान की ढेरी।
तू चलु मूढ़ ! सम्हारि, अरे मन ! राह न जानी है, रैन अंधेरी !

इस चमत्कारपूर्ण आशु पूर्ति को सुनकर सब उपस्थित विदग्ध साहित्यिकों ने पांडेजी की काव्यशक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

—डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'



मैं धोबी हूं

यदुनाथ थत्ते

श्री एस. एम. जोशी बता रहे थे........ भूतपूर्व रेल-मंत्री श्री मधु दंडवते की पत्नी श्रीमती प्रमिला दंडवते एक दुर्घटना में घायल हो गयी थीं।

बंबई सेंट्रल स्टेशन के पास जगजीवन राम अस्पताल में उनका इलाज हो रहा था।

उनसे मिलने जाना था।

एक टैक्सी रोकी, उसमें बैठ गया।

टैक्सी वाले से पूछा—'जगजीवन राम अस्पताल जानते हो?'

बोला—'हां-हां, जानता हूं। जगजीवन बाबू हमारे ही प्रदेश के हैं। वे चमार हैं न?'

'तुम्हें यह पता कैसे चला?'

'क्यों न चलेगा? हमारे जाने पर उनकी जाति के लोग अपना काम छोड़कर उठकर खड़े हो जाते हैं।'

'क्यों उठकर खड़े हो जाते हैं?'

'वे नीची जाति के हैं। हम उनसे ऊंची जाति के हैं।'

'तो तुम कौन हो?'

'मैं मल्लाह हूं।'

'तो क्या नीची जाति के आदमी का ऊंची जाति वाले के आने पर हाथ का काम छोड़कर खड़े हो जाना जरूरी है?'

'बिलकुल। ऐसी ही परंपरा है।'

'तो तुम भी स्टीयरिंग छोड़कर खड़ हो जाओ।'

'क्यों?'

'मल्लाह तो ब्राह्मणों से नीची जाति के हैं, और अभी तुमने बताया न कि ऊंची जाति वाला आ जाये तो नीची जाति वाले को हाथ का काम छोड़कर खड़े हो जाना चाहिये।'

'लेकिन साहब, वह तो मैं देहात की बात बता रहा था। शहर में थोड़े ही वह सब चलता है!'

मैं चुप हो गया।

फिर उसने पूछा—'साहब, आप धंधा क्या करते हैं?'

उसका सवाल सुनकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। कह दिया—'मैं धोबी हूं, धोबी!'

वह बोला—'साहब, मजाक तो नहीं कर रहे? अभी तो कह रहे थे कि ब्राह्मण हूं और अब बता रहे हैं कि धोबी हूं।'

'तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? तुम मल्लाह हो, फिर भी नाव चलाने के बजाय टैक्सी चला रहे हो? तो ब्राह्मण धोबी का धंधा करे तो क्यों आश्चर्य होना चाहिये?'

'नहीं साहब, विश्वास नहीं होता।'

सफ़ेदी ऐसी चकाचौंध कि जो भी देखे, वो बोले...

यह है
डेट
डिटर्जेंट
टिकिया की
धुलाई



Shilpi DM 35A/78 Hin

'अरे भैया, धुलाई का काम करने वाले को ही तो धोबी कहते हैं न ?'

'हां साहब !'

'और मैं दिल और दिमाग की धुलाई का काम करता हूं। दस मिनट से वही तो कर रहा हूं।'

बिहार, उत्तर प्रदेश आदि प्रदेशों में धोबी की गणना बहुत नीची जातियों में होती है।

वह हक्का-बक्का मुझे देख रहा था। मैंने कहा–'आश्चर्य की इसमें क्या बात है ? दिल और दिमाग की धुलाई का काम सचमुच ही मैं पिछली आधी सदी से कर रहा हूं। हमारे दिल और दिमाग ऐसे मैले हो गये हैं कि कपड़ा फट जाता है, लेकिन ये ऊंच-नीच के धब्बे नहीं धुलते। भगवान बुद्ध से लेकर गांधी-अंबेडकर तक सबने दिल-दिमाग की धुलाई करने की बराबर कोशिश की। धोबी धोते-धोते थक गये, लेकिन ये धब्बे हैं कि अभी नहीं मिटे हैं। गांधी, अंबेडकर तो चले गये, उनका काम किसी न किसी को उठाना ही पड़ेगा। कबीर ने कहा था–सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीन्हीं चदरिया। दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। कबीर की तरह मैली किये बगैर अपने जीवन की चादर वैसी ही रखेंगे, तभी यह धोबी का धंधा बंद हो सकेगा। नहीं तो किसी न किसी आदमी को यह धंधा करना ही पड़ेगा।'

टैक्सी अस्पताल पहुंच चुकी थी। टैक्सीवाला मेरी बातों से आश्चर्य कर रहा था। शायद बोर भी हुआ हो। पैसा चुकाते ही मुस्कराते हुए निकल गया।

–३१३, शुक्रवार पेठ, पूना-४११००२



एक सज्जन अपने लिए कुरता सिलवाने कपड़ा लेकर एक दर्जी की दुकान में गये। दर्जी बोला–'यह कपड़ा काफी नहीं। आधा मीटर और चाहिये !' सज्जन कपड़ा उठाकर पास ही दूसरे दर्जी की दुकान में गये। यह दर्जी उनका नाप लेकर बोला–'अगले बुध को आइये। आपका कुरता तैयार मिलेगा।'

नियत दिन वे सज्जन उस दुकान में गये, तो देखा कि पांच साल का एक बच्चा उन्हीं के दिये हुए कपड़े से बना नया कुरता पहने बैठा है। दर्जी मुस्कान के साथ उनके हाथ में कुरता थमाते हुए बोला–'आपके दिये कपड़े में कुछ बच गया था। मैंने सोचा, इतना-सा कपड़ा आपके किस काम आयेगा। सो उसी से अपने बच्चे के लिए भी मैंने एक कुरता सी दिया !' सज्जन को ताज्जुब हुआ कि इसने कपड़ा बचा भी लिया जबकि पहला दर्जी तो और अधिक कपड़ा मांग रहा था ! वे अपने कुरते और उस बच्चे के साथ बगल के दर्जी के पास गये और बोले–'तुम अधिक कपड़ा मांग रहे थे। पर बगल वाले ने तो कपड़ा बचाकर अपने पांच बरस के बेटे के लिए भी एक कुरता सी लिया है।' 'पर मेरा बेटा तो पांच बरस का नहीं, बीस बरस का है ! मैं कैसे सीता ?' दर्जी ने तुरंत उत्तर दिया ! –रा. वीलिनाथन



दो क्षण तो हँस लें

जुआरियों के अंतरराष्ट्रीय अड्डे मोन्टो कार्लो के एक होटल में एक अमरीकी प्रकाशक जेम्स गार्डन बेनेट नियमित आते और एक खास कोने में रखी एक खास कुर्सी पर बैठते थे। वह उनकी निश्चित और प्रिय जगह थी। एक दिन वे आये, तो अपनी कुर्सी पर दूसरे को बैठा देखा। वे ठिठके। क्षण-भर में उन्होंने निर्णय कर लिया और मुंहमांगी कीमत देकर होटल को खरीद लिया। फिर अपनी कुर्सी पर बैठे हुए आदमी से बड़ी नम्रतापूर्वक कुर्सी खाली करने को कहा।

उस कुर्सी पर बेनेट ने वह शाम खूब आनंद से बितायी। फिर जब जाने का समय हुआ, तो पूरा होटल ही 'टिप' में उस वेटर को दे दिया, जो उनकी सुख-सुविधा का खयाल रखता था। उनकी इस उदारता ने क्षणमात्र में एक साधारण आदमी को मोन्टे कार्लो के एक प्रसिद्ध होटल का मालिक बना दिया।

०००

कविता-पाठ चल रहा था। श्रोताओं में कुछ फुसफुसाहट हुई। कवि महोदय ने रुककर श्रोताओं से पूछा–'आप लोगों को कविता ठीक से सुनाई पड़ रही है?'

एक श्रोता ने कहा–'नहीं।'

तुरंत माइक ठीक किया गया और कवि ने अधिक उत्साह से कविता पढ़ी। अब पहले से अधिक आवाज आने लगी। कवि ने पुनः प्रश्न किया–'प्रिय श्रोताओ, अब आपको क्या तकलीफ है?'

'यही कि अब आपकी कविता सुनायी दे रही है।' एक श्रोता ने उत्तर दिया।

०००

प्रकृति-प्रेमी सज्जन एक पहाड़ की आगे बढ़ी हुई चट्टान पर से समुद्र-दर्शन का आनंद ले रहे थे। उनके एक हाथ में मिठाई का डिब्बा था। उनका बेटा आया और उनके कोट का छोर पकड़कर बोला–'पापा, मम्मी कहती हैं कि यहां खड़े रहना सुरक्षित नहीं है। इसलिए या तो आप उतर चलें, नहीं तो मिठाई का डिब्बा मुझे दे दें।'

०००

रोगी : हे भगवान, बहुत दर्द हो रहा है। इससे तो अच्छा है कि तू मुझे मौत दे दे।

डाक्टर : घबराओ नहीं, भई मैं आ गया हूं।

०००

किराये पर मकान ढूंढ़ रहे क्लर्क को

मकान-मालिक ने घर दिखाते हुए कहा—'ये दो कमरे, रसोईघर, स्नानघर, बरामदा और.....'

'और किराया?' क्लर्क ने उत्सुकता से पूछा।

'केवल ३०० रुपये।' मकान मालिक ने बताया। फिर आश्वासन देते हुए बोला—'और बिजली-पानी का बिल तुम्हें नहीं चुकाना पड़ेगा। वह मुफ्त में रहेगा।'

'और भोजन?' क्लर्क ने दबी जबान से पूछा।

०००

अभिनेत्री के घर पार्टी थी। चीनी मिट्टी के सुंदर से सुंदर बरतन अतिथियों के लिए निकाले गये थे। खाने के बाद कमसिन नौकरानी टेबल पर से एक साथ बहुत-सी प्लेटें उठाकर रसोईघर की ओर जाने लगी और अचानक तमाम प्लेटें हाथ से छूटकर खन्न से फर्श पर गिरीं और टूट गयीं। अभिनेत्री रसोईघर की ओर दौड़ी। उसका कीमती डिनर-सेट सैकड़ों टुकड़ों में चारों ओर बिखरा पड़ा था।

क्षण-भर के स्तब्ध मौन के बाद नौकरानी बोली—'मालकिन, यह अच्छा हुआ कि मैंने अभी इन्हें धोया नहीं था। वरना मेरी मेहनत बेकार जाती।'

०००

एक सज्जन होटल में चाय-टोस्ट का आर्डर देकर इंतजार करते-करते थक गये थे।

इतने में कोई वेटर सामने से गुजरा तो चिढ़कर उससे बोले—'तुम्हीं लोगों में से कोई मुझसे आर्डर ले गया था, कहां चला गया वह?'

'जी, दाढ़ीवाला था वह?'

'जब उसने मुझसे आर्डर लिया था, तब तो दाढ़ी नहीं थी उसके, अब उग आयी हो, तो ईश्वर जाने।'



काल-बेल बजी। दरवाजा खोलने पर देखा कि मकान के सामने बैठने वाला भिखारी है।

'आज आपसे भीख नहीं एक सूचना चाहिये।' उसने कहा।

मुझे कुछ आश्चर्य हुआ—'कैसी सूचना?'

'आज आप "मैटीरियल हैंडलिंग" के सेमिनार में जा रहे हैं कंपनी की ओर से...'

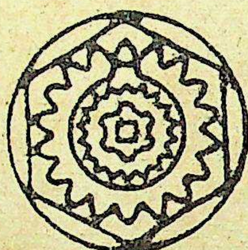
मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया—'तुम्हें कैसे मालूम?'

'आपके मकान के सामने बैठकर भीख मांगता हूं, इसलिए यह सब खबर मुझे रहनी ही चाहिये। मैं आपसे यही पूछना चाहता था कि सेमिनार में चाय किस समय मिलेगी और लंच किस समय दिया जायेगा? सच बात यह है कि आजकल खाने-पीने का जितना अधिक और जितना बढ़िया प्रबंध सेमिनारों में रहता है, दूसरी जगह नहीं रहता। इसी कारण मैं शहर में होने वाले हर सेमिनार में उपस्थित रहना चाहता हूं और उनकी खबर रखता हूं।'

—सत्य स्वरूप दत्त



यांत्रिक प्रगति का अनुपम प्रतीक



लोहे में गोल छेद बनाना आसान है, पर उसे विभिन्न प्रकार का बनाने के लिए विशेष प्रकार के टूल 'ब्रोच' की जरूरत होती है। जिन-जिन देशों में मोटर, लारी, स्कूटर, मशीन टूल इत्यादि इंजीनियरिंग उत्पादन होते हैं, वहां 'ब्रोच' उत्पादन परमावश्यक होता है। डॅगर-फोर्स्ट टूल लिमिटेड ने इस आवश्यकता की पूर्ति की है। उनके बनाये 'ब्रोच' से लोहे या अन्य धातु के भीतर व बाहर के भाग को आसानी से विविध स्वरूप दीजिये।



डॅगर-फोर्स्ट टूल्स लि.,
पहला पोखरण रास्ता,
थाना (बंबई)

